॥ श्रीहरिः ॥ 1898

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण

[द्वितीय खण्ड]

(सचित्र, सरल हिन्दी-व्याख्यासहित)



गीताप्रेस गोरखपुर
GITA PRESS, GORAKHPUR

गीताप्रेस, गोरखपुर

॥ श्रीहरिः ॥ 1898

महर्षि वेदव्यासप्रणीत

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण

[द्वितीय खण्ड]

(सचित्र, सरल हिन्दी-व्याख्यासहित)

स्कन्ध ७ से १२ तक

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

गीताप्रेस, गोरखपुर

सं० २०६७ प्रथम संस्करण १०,०००

❖ मूल्य—१५० रु०
(एक सौ पचास रुपये)

प्रकाशक एवं मुद्रक—
गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५
(गोबिन्दभवन-कार्यालय, कोलकाता का संस्थान)
फोन : (०५५१) २३३४७२१, २३३१२५०; फैक्स : (०५५१) २३३६९९७
e-mail : **booksales@gitapress.org** website : **www.gitapress.org**

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

अष्टम स्कन्ध

नवम स्कन्ध

दशम स्कन्ध

॥ श्रीजगदम्बिकायै नमः ॥
॥ ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ॥

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण

[उत्तरार्ध]

सप्तमः स्कन्धः

अथ प्रथमोऽध्यायः

पितामह ब्रह्माकी मानसी सृष्टिका वर्णन, नारदजीका दक्षके पुत्रोंको सन्तानोत्पत्तिसे विरत करना और दक्षका उन्हें शाप देना, दक्षकन्याओंसे देवताओं और दानवोंकी उत्पत्ति

सूत उवाच

**श्रुत्वैतां तापसाद्दिव्यां कथां राजा मुदान्वितः।
व्यासं पप्रच्छ धर्मात्मा परीक्षितसुतः पुनः॥ १**

जनमेजय उवाच

**स्वामिन् सूर्यान्वयानां च राज्ञां वंशस्य विस्तरम्।
तथा सोमान्वयानां च श्रोतुकामोऽस्मि सर्वथा॥ २**

**कथयानघ सर्वज्ञ कथां पापप्रणाशिनीम्।
चरितं भूपतीनां च विस्तराद्वंशयोर्द्वयोः॥ ३**

**ते हि सर्वे पराशक्तिभक्ता इति मया श्रुतम्।
देवीभक्तस्य चरितं शृण्वन्कोऽस्ति विरक्तिभाक्॥ ४**

**इति राजर्षिणा पृष्टो व्यासः सत्यवतीसुतः।
तमुवाच मुनिश्रेष्ठः प्रसन्नवदनो मुनिः॥ ५**

व्यास उवाच

**निशामय महाराज विस्तराद् गदतो मम।
सोमसूर्यान्वयानां च तथान्येषां समुद्भवम्॥ ६**

**विष्णोर्नाभिसरोजाद्वै ब्रह्माभूच्चतुराननः।
तपस्तप्त्वा समाराध्य महादेवीं सुदुर्गमाम्॥ ७**

**तया दत्तवरो धाता जगत्कर्तुं समुद्यतः।
नाशकन्मानुषीं सृष्टिं कर्तुं लोकपितामहः॥ ८**

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] तपस्वी व्यासजीसे यह दिव्य कथा सुनकर परीक्षित्के पुत्र धर्मात्मा राजा जनमेजयने प्रसन्नतापूर्वक पुनः व्यासजीसे पूछा॥ १॥

जनमेजय बोले—हे स्वामिन्! मैं सूर्यवंशी तथा चन्द्रवंशी राजाओंके वंशका विस्तृत वर्णन सम्यक् प्रकारसे सुनना चाहता हूँ॥ २॥

हे पुण्यात्मन्! हे सर्वज्ञ! आप उन राजाओंके चरित्र तथा उनके दोनों वंशोंसे सम्बन्धित उस पापनाशिनी कथाका विस्तारसे वर्णन कीजिये॥ ३॥

मैंने ऐसा सुना है कि वे सभी पराशक्ति जगदम्बाके महान् भक्त थे; अतः देवीभक्तका चरित्र सुननेसे भला कौन विमुख होना चाहेगा?॥ ४॥

राजर्षि जनमेजयके ऐसा पूछनेपर प्रसन्न मुखमण्डलवाले सत्यवतीनन्दन मुनि व्यासने उनसे कहा॥ ५॥

व्यासजी बोले—हे महाराज! अब मैं सूर्यवंश, चन्द्रवंश तथा अन्य वंशोंकी उत्पत्तिसे सम्बन्धित कथाओंका विस्तारपूर्वक वर्णन करता हूँ, आप सुनिये॥ ६॥

भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे चार मुखवाले ब्रह्माजी उत्पन्न हुए। उन्होंने घोर तपस्या करके अत्यन्त कठिनतापूर्वक प्राप्त होनेवाली महादेवीकी आराधना की॥ ७॥

उन भगवतीसे वरदान प्राप्त करके ब्रह्माजी जगत्की रचना करनेमें प्रवृत्त हुए, किंतु लोकपितामह ब्रह्माजी मानवी सृष्टि कर पानेमें सफल नहीं हुए॥ ८॥

विचिन्त्य बहुधा चित्ते सृष्ट्यर्थं चतुराननः।
न विस्तारं जगामाशु रचितापि महात्मना॥ ९

ब्रह्माजीके मनमें सृष्टिके लिये अनेक प्रकारके विचार उत्पन्न हुए, किंतु वे महात्मा अपनी रचनाको शीघ्र विस्तार प्रदान करनेमें समर्थ नहीं हुए॥ ९॥

(ससर्ज मानसान्पुत्रान्सप्तसंख्यान्प्रजापतिः।)
मरीचिरङ्गिरात्रिश्च वसिष्ठः पुलहः क्रतुः।
पुलस्त्यश्चेति विख्याताः सप्तैते मानसाः सुताः॥ १०

(तत्पश्चात् प्रजापति ब्रह्माजीने अपने सात मानस पुत्रोंका सृजन किया।) मरीचि, अंगिरा, अत्रि, वसिष्ठ, पुलह, क्रतु और पुलस्त्य—इन नामोंसे उन सात मानस पुत्रोंकी प्रसिद्धि हुई॥ १०॥

रुद्रो रोषात्समुत्पन्नोऽप्युत्सङ्गान्नारदोऽभवत्।
दक्षोऽङ्गुष्ठात्तथान्येऽपि मानसाः सनकादयः॥ ११

ब्रह्माजीके रोषसे रुद्र उत्पन्न हुए तथा उनकी गोदसे नारदजीका प्राकट्य हुआ। अँगूठेसे दक्षप्रजापति उत्पन्न हुए। इसी प्रकार सनक आदि अन्य मानस पुत्रोंकी उत्पत्ति हुई॥ ११॥

वामाङ्गुष्ठाद्दक्षपत्नी जाता सर्वाङ्गसुन्दरी।
वीरिणी नाम विख्याता पुराणेषु महीपते॥ १२

बायें हाथके अँगूठेसे समस्त सुन्दर अंगोंवाली दक्षपत्नीका प्रादुर्भाव हुआ। हे राजन्! वे पुराणोंमें 'वीरिणी' नामसे प्रसिद्ध हैं॥ १२॥

असिक्नीति च नाम्ना सा यस्यां जातोऽथ नारदः।
देवर्षिप्रवरः कामं ब्रह्मणो मानसः सुतः॥ १३

वे असिक्नी नामसे भी विख्यात हैं और उन्हींसे ब्रह्माजीके मानसपुत्र देवर्षिश्रेष्ठ नारदजीका प्रादुर्भाव हुआ है॥ १३॥

जनमेजय उवाच

अत्र मे संशयो ब्रह्मन् यदुक्तं भवता वचः।
वीरिण्यां नारदो जातो दक्षादिति महातपाः॥ १४

जनमेजय बोले—हे ब्रह्मन्! अभी-अभी आपने जो बात कही है कि महान् तपस्वी नारदजी दक्षसे तथा वीरिणीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे, इस विषयमें मुझे सन्देह हो रहा है॥ १४॥

कथं दक्षस्य पत्न्यां तु वीरिण्यां नारदो मुनिः।
जातो हि ब्रह्मणः पुत्रो धर्मज्ञस्तापसोत्तमः॥ १५

धर्मके पूर्ण ज्ञाता तथा तपस्वियोंमें श्रेष्ठ नारदमुनि तो ब्रह्माके मानस पुत्र हैं तो फिर वे दक्षपत्नी वीरिणीसे किस प्रकार उत्पन्न हुए?॥ १५॥

विचित्रमिदमाख्यातं भवता नारदस्य च।
दक्षाज्जन्मास्य भार्यायां तद्वदस्व सविस्तरम्॥ १६

आपके द्वारा कथित यह वार्ता अत्यन्त विस्मयमें डालनेवाली है। दक्षसे तथा उनकी भार्या 'वीरिणी' से इन नारदजीके जन्मके विषयमें आप मुझे विस्तारपूर्वक बताइये॥ १६॥

पूर्वदेहः कथं मुक्तः शापात्कस्य महात्मना।
नारदेन बहुज्ञेन कस्माज्जन्म कृतं मुने॥ १७

हे मुने! विपुल ज्ञान रखनेवाले महात्मा नारदजीने किसके शापसे अपने पूर्व शरीरका त्याग करके किसलिये फिरसे जन्म धारण किया?॥ १७॥

व्यास उवाच

ब्रह्मणासौ समादिष्टो दक्षः सृष्ट्यर्थमादितः।
प्रजाः सृजेति सुभृशं वृद्धिहेतोः स्वयम्भुवा॥ १८

व्यासजी बोले—स्वयम्भू ब्रह्माजीने सबसे पहले दक्षप्रजापतिको सृष्टिके लिये आज्ञा दी और कहा कि तुम प्रजाकी रचनामें तत्पर हो जाओ, जिससे प्रजाकी अधिकाधिक वृद्धि हो सके॥ १८॥

ततः पञ्चसहस्रांश्च जनयामास वीर्यवान्।
दक्षः प्रजापतिः पुत्रान्वीरिण्यां बलवत्तरान्॥ १९

तब दक्षप्रजापतिने वीरिणीके गर्भसे अत्यन्त बल-शाली तथा पराक्रमी पाँच हजार पुत्र उत्पन्न किये॥ १९॥

दृष्ट्वा तान्नारदः पुत्रान्सर्वान्वर्धयिषून्प्रजाः।
उवाच प्रहसन्वाचं देवर्षिः कालनोदितः॥ २०

भुवः प्रमाणमज्ञात्वा स्त्रष्टुकामाः प्रजाः कथम्।
लोकानां हास्यतां यूयं गमिष्यथ न संशयः॥ २१

पृथिव्या वै प्रमाणं तु ज्ञात्वा कार्यः समुद्यमः।
कृतोऽसौ सिद्धिमायाति नान्यथेति विनिश्चयः॥ २२

बालिशा बत यूयं वै यदज्ञात्वा भुवस्तलम्।
समुद्यताः प्रजाः कर्तुं कथं सिद्धिर्भविष्यति॥ २३

व्यास उवाच

नारदेनैवमुक्तास्ते हर्यश्वा दैवयोगतः।
अन्योन्यमूचुः सहसा सम्यगाह मुनिः किल॥ २४

ज्ञात्वा प्रमाणमुर्व्यास्तु सुखं स्त्रक्ष्यामहे प्रजाः।
इति सञ्चिन्त्य ते सर्वे प्रयाताः प्रेक्षितुं भुवः॥ २५

तलं सर्वं परिज्ञातुं वचनान्नारदस्य च।
प्राच्यां केचिद् गताः कामं दक्षिणस्यां तथापरे॥ २६

प्रतीच्यामुत्तरस्यां तु कृतोत्साहाः समन्ततः।
दक्षः पुत्रान्गतान्दृष्ट्वा पीडितस्तु शुचा भृशम्॥ २७

अन्यानुत्पादयामास प्रजार्थं कृतनिश्चयः।
तेऽपि तत्रोद्यताः कर्तुं प्रजार्थमुद्यमं सुताः॥ २८

नारदः प्राह तान्दृष्ट्वा पूर्वं यद्वचनं मुनिः।
बालिशा बत यूयं वै यदज्ञात्वा भुवः किल॥ २९

प्रमाणं तु प्रजाः कर्तुं प्रवृत्ताः केन हेतुना।
श्रुत्वा वाक्यं मुनेस्तेऽपि मत्वा सत्यं विमोहिताः॥ ३०

प्रजाकी वृद्धिहेतु विपुल उत्साहसे सम्पन्न उन सभी पुत्रोंको देखकर कालकी प्रेरणाके अनुसार देवर्षि नारदजी हँसते हुए यह बात कहने लगे॥ २०॥

पृथ्वीकी वास्तविक परिमितिका बिना ज्ञान किये ही तुमलोग प्रजाके सृष्टिकार्यमें कैसे तत्पर हो गये? इससे तो तुमलोग निःसन्देह जगत्‌में उपहासके पात्र बनोगे॥ २१॥

पृथ्वीका परिमाण जानकर ही तुम्हें इस कार्यमें संलग्न होना चाहिये। ऐसा करनेपर ही तुमलोगोंका कार्य सिद्ध होगा, अन्यथा नहीं; इसमें कोई सन्देह नहीं है॥ २२॥

तुमलोग तो मूर्ख हो जो कि पृथ्वीके परिमाणको जाने बिना ही प्रजोत्पत्तिमें संलग्न हो गये हो; इसमें सफलता कैसे मिल सकती है?॥ २३॥

व्यासजी बोले—नारदजीके इस प्रकार कहनेपर दैवयोगसे दक्षपुत्र हर्यश्व परस्पर कहने लगे कि मुनिने तो ठीक ही कहा है। अब हमलोग पृथ्वीका परिमाण जान लेनेके पश्चात् ही सुखपूर्वक प्रजाकी सृष्टि करेंगे। ऐसा विचार करके वे सभी पृथ्वीका विस्तार जाननेके लिये चल पड़े॥ २४-२५॥

तत्पश्चात् नारदजीके कथनानुसार पृथ्वीके सम्पूर्ण तलका ज्ञान करनेके लिये कुछ पूर्व दिशामें, कुछ पश्चिम दिशामें, कुछ उत्तर दिशामें तथा कुछ दक्षिण दिशामें बड़े उत्साहके साथ चले। इधर, दक्षप्रजापति सभी पुत्रोंको गया हुआ देखकर बहुत ही शोकाकुल हो गये॥ २६-२७॥

दृढ़निश्चयी दक्षप्रजापतिने प्रजाओंकी सृष्टिके लिये पुनः अन्य पुत्र उत्पन्न किये। वे सभी पुत्र भी प्रजा-सृष्टिके कार्यमें उत्साहपूर्वक तत्पर हो गये॥ २८॥

उन्हें देखकर नारदमुनिने पूर्वकी भाँति वही बात उनसे भी कही—तुमलोग बड़े ही मूर्ख हो। अरे, पृथ्वीके वास्तविक परिमाणका ज्ञान किये बिना ही तुमलोग प्रजाकी सृष्टि करनेमें किस कारणसे संलग्न हो गये हो?॥ २९½॥

मुनिकी वाणी सुनकर तथा उसे सत्य मानकर वे भी भ्रमित हो गये। वे सभी पुत्र उसी प्रकार भूमण्डलका विस्तार जाननेके लिये चल पड़े, जिस

जग्मुः सर्वे यथापूर्वं भ्रातरश्चलितास्तथा।
तान्सुतान्प्रस्थितान्दृष्ट्वा दक्षः कोपसमन्वितः॥ ३१

शशाप नारदं कोपात् पुत्रशोकसमुद्भवात्।

दक्ष उवाच

नाशिता मे सुता यस्मात्तस्मान्नाशमवाप्नुहि॥ ३२

पापेनानेन दुर्बुद्धे गर्भवासं व्रजेति च।
पुत्रो मे भव कामं त्वं यतो मे भ्रंशिताः सुताः॥ ३३

इति शप्तस्ततो जातो वीरिण्यां नारदो मुनिः।
षष्टिर्भूयोऽसृजत्कन्या वीरिण्यामिति नः श्रुतम्॥ ३४

शोकं विहाय पुत्राणां दक्षः परमधर्मवित्।
तासां त्रयोदश प्रादात्कश्यपाय महात्मने॥ ३५

दश धर्माय सोमाय सप्तविंशति भूपते।
द्वे चैव भृगवे प्रादाच्चतस्रोऽरिष्टनेमिने॥ ३६

द्वे चैवाङ्गिरसे कन्ये तथैवाङ्गिरसे पुनः।
तासां पुत्राश्च पौत्राश्च देवाश्च दानवास्तथा॥ ३७

जाता बलसमायुक्ताः परस्परविरोधकाः।
रागद्वेषान्विताः सर्वे परस्परविरोधिनः।
सर्वे मोहावृताः शूरा ह्यभवन्नतिमायिनः॥ ३८

प्रकार उनके भाईलोग पहले चले गये थे। उन पुत्रोंको वहाँसे प्रस्थित देखकर दक्ष अत्यन्त कुपित हो उठे और पुत्रशोकजन्य कोपसे उन्होंने नारदजीको शाप दे दिया॥ ३०-३१½॥

दक्ष बोले—[हे नारद!] जिस प्रकार तुमने मेरे पुत्रोंको नष्ट किया है, उसी प्रकार तुम भी नाशको प्राप्त हो जाओ। हे दुर्बुद्धे! तुमने मेरे पुत्रोंको भ्रष्ट किया है, अतएव इस पापके परिणामस्वरूप तुम्हें गर्भमें वास करना होगा और मेरा पुत्र बनना पड़ेगा॥ ३२-३३॥

इस प्रकार शापके प्रभावसे मुनि नारद वीरिणीके गर्भसे उत्पन्न हुए। तदनन्तर दक्षने वीरिणीके गर्भसे साठ कन्याओंको उत्पन्न किया, ऐसा हमने सुना है॥ ३४॥

पुत्रोंका शोक त्यागकर परम धर्मनिष्ठ दक्षप्रजापतिने उन कन्याओंमेंसे तेरह कन्याएँ महात्मा कश्यपको अर्पित कर दीं। हे पृथ्वीपते! उनमेंसे दस कन्याएँ धर्मको, सत्ताईस चन्द्रमाको, दो भृगुमुनिको, चार अरिष्टनेमिको, दो अंगिरा-ऋषिको तथा शेष दोको पुनः अंगिराऋषिको ही सौंप दिया। उन्हीं कन्याओंके पुत्र तथा पौत्र देवता एवं दानवके रूपमें उत्पन्न हुए। वे महान् बलशाली तथा आपसमें विरोधभाव रखते थे। एक-दूसरेके विरोधी तथा परस्पर रागद्वेषकी भावना रखनेवाले वे सभी पराक्रमी देवता तथा दानव अत्यन्त मायावी थे तथा सदा मोहसे ग्रस्त रहते थे॥ ३५—३८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे सोमसूर्यवंशवर्णने दक्षप्रजापतिवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

~~O~~

अथ द्वितीयोऽध्यायः

सूर्यवंशके वर्णनके प्रसंगमें सुकन्याकी कथा

जनमेजय उवाच

ममाख्याहि महाभाग राज्ञां वंशं सुविस्तरम्।
सूर्यान्वयप्रसूतानां धर्मज्ञानां विशेषतः॥ १

जनमेजय बोले—हे महाभाग! आप मुझसे राजाओंके वंशका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये और विशेषरूपसे सूर्यवंशमें उत्पन्न धर्मज्ञ राजाओंके वंशके विषयमें बताइये॥ १॥

व्यास उवाच

शृणु भारत वक्ष्यामि रविवंशस्य विस्तरम्।
यथा श्रुतं मया पूर्वं नारदादृषिसत्तमात्॥ २

एकदा नारदः श्रीमान्सरस्वत्यास्तटे शुभे।
आजगामाश्रमे पुण्ये विचरन्स्वेच्छया मुनिः॥ ३

प्रणम्य शिरसा पादौ तस्याग्रे संस्थितस्तदा।
ततस्तस्यासनं दत्त्वा कृत्वार्हणमथादरात्॥ ४

विधिवत्पूजयित्वा तमुक्तवान्वचनं त्विदम्।
पावितोऽहं मुनिश्रेष्ठ पूज्यस्यागमनेन वै॥ ५

कथां कथय सर्वज्ञ राज्ञां चरितसंयुताम्।
राजानो ये समाख्याताः सप्तमेऽस्मिन्मनोः कुले॥ ६

तेषामुत्पत्तिरतुला चरितं परमाद्भुतम्।
श्रोतुकामोऽस्म्यहं ब्रह्मन् सूर्यवंशस्य विस्तरम्॥ ७

समाख्याहि मुनिश्रेष्ठ समासव्यासपूर्वकम्।
इति पृष्टो मया राजन्नारदः परमार्थवित्॥ ८

उवाच प्रहसन्प्रीतः समाभाष्य मुदान्वयम्।

नारद उवाच

शृणु सत्यवतीसूनो राज्ञां वंशमनुत्तमम्॥ ९

पावनं कर्णसुखदं धर्मज्ञानादिभिर्युतम्।
ब्रह्मा पूर्वं जगत्कर्ता नाभिपङ्कजसम्भवः॥ १०

विष्णोरिति पुराणेषु प्रसिद्धः परिकीर्तितः।
सर्वज्ञः सर्वकर्तासौ स्वयम्भूः सर्वशक्तिमान्॥ ११

तपस्तप्त्वा स विश्वात्मा वर्षाणामयुतं पुरा।
सृष्टिकामः शिवां ध्यात्वा प्राप्य शक्तिमनुत्तमाम्॥ १२

पुत्रानुत्पादयामास मानसाञ्शुभलक्षणान्।
मरीचिः प्रथितस्तेषामभवत्सृष्टिकर्मणि॥ १३

व्यासजी बोले—हे भारत! ऋषिश्रेष्ठ नारदजीसे पूर्वकालमें जैसा मैंने सुना है, उसीके अनुसार सूर्यवंशका विस्तृत वर्णन करूँगा; आप सुनिये॥ २॥

एक समयकी बात है—श्रीमान् नारदमुनि स्वेच्छापूर्वक विचरण करते हुए सरस्वतीनदीके पावन तटपर पवित्र आश्रममें पधारे॥ ३॥

मैं सिर झुकाकर उनके चरणोंमें प्रणाम करके उनके सामने स्थित हो गया। तत्पश्चात् बैठनेके लिये आसन प्रदान करके मैंने आदरपूर्वक उनकी पूजा की॥ ४॥

उनकी विधिवत् पूजा करके मैंने उनसे यह वचन कहा—हे मुनिवर! आप पूजनीयके आगमनसे मैं पवित्र हो गया॥ ५॥

हे सर्वज्ञ! इन सातवें मनुके वंशमें जो विख्यात राजागण हो चुके हैं, उन राजाओंके चरित्रसे सम्बन्धित कथा कहिये। उन राजाओंकी उत्पत्ति अनुपम है और उनका चरित्र अत्यन्त अद्भुत है; अतएव हे ब्रह्मन्! मैं विस्तारके साथ सूर्यवंशका वर्णन सुननेका इच्छुक हूँ। हे मुनिश्रेष्ठ! संक्षिप्त या विस्तृत जिस किसी भी रूपमें आप मुझसे इसका वर्णन कीजिये॥ ६-७½॥

हे राजन्! मेरे ऐसा पूछनेपर परमार्थके ज्ञाता नारदजी हँसते हुए मुझे सम्बोधित करके प्रेमपूर्वक प्रसन्नताके साथ कहने लगे॥ ८½॥

नारदजी बोले—हे सत्यवतीतनय! राजाओंके अत्युत्तम वंशके विषयमें सुनिये। कानोंको सुख प्रदान करनेवाला यह वंशचरित अत्यन्त पवित्र और धर्म, ज्ञान आदिसे समन्वित है॥ ९½॥

सर्वप्रथम जगत्स्रष्टा ब्रह्माजी भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे प्रकट हुए; ऐसा उनके विषयमें पुराणोंमें प्रसिद्ध है। सम्पूर्ण जगत्के कर्ता स्वयम्भू ब्रह्माजी सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिसम्पन्न हैं॥ १०-११॥

सृष्टि करनेकी अभिलाषावाले उन विश्वात्मा ब्रह्माजीने पहले देवी शिवाका ध्यान करके दस हजार वर्षोंतक तपस्या की और उनसे महान् शक्ति प्राप्त करके शुभ लक्षणोंवाले मानस पुत्र उत्पन्न किये। उन मानस पुत्रोंमें सर्वप्रथम मरीचि उत्पन्न हुए, जो सृष्टि-कार्यमें प्रवृत्त हुए॥ १२-१३॥

तस्य पुत्रोऽतिविख्यातः कश्यपः सर्वसम्मतः।
त्रयोदशैव तस्यासन्भार्या दक्षसुताः किल॥ १४

देवाः सर्वे समुत्पन्ना दैत्या यक्षाश्च पन्नगाः।
पशवः पक्षिणश्चैव तस्मात्सृष्टिस्तु काश्यपी॥ १५

देवानां प्रथितः सूर्यो विवस्वान्नाम तस्य तु।
तस्य पुत्रः स विख्यातो वैवस्वतमनुर्नृपः॥ १६

तस्य पुत्रस्तथेक्ष्वाकुः सूर्यवंशविवर्धनः।
नवाभवन्सुतास्तस्य मनोरिक्ष्वाकुपूर्वजाः॥ १७

तेषां नामानि राजेन्द्र शृणुष्वैकमनाः पुनः।
इक्ष्वाकुरथ नाभागो धृष्टः शर्यातिरेव च॥ १८

नरिष्यन्तस्तथा प्रांशुर्नृगो दिष्टश्च सप्तमः।
करूषश्च पृषध्रश्च नवैते मानवाः स्मृताः॥ १९

इक्ष्वाकुस्तु मनोः पुत्रः प्रथमः समजायत।
तस्य पुत्रशतं चासीज्ज्येष्ठो विकुक्षिरात्मवान्॥ २०

नवानां वंशविस्तारं संक्षेपेण निशामय।
शूराणां मनुपुत्राणां मनोरन्तरजन्मनाम्॥ २१

नाभागस्य तु पुत्रोऽभूदम्बरीषः प्रतापवान्।
धर्मज्ञः सत्यसन्धश्च प्रजापालनतत्परः॥ २२

धृष्टात्तु धार्ष्टकं क्षत्रं ब्रह्मभूतमजायत।
संग्रामकातरं सम्यग्ब्रह्मकर्मरतं तथा॥ २३

शर्यातेस्तनयश्चाभूदानर्तो नाम विश्रुतः।
सुकन्या च तथा पुत्री रूपलावण्यसंयुता॥ २४

च्यवनाय सुता दत्ता राज्ञाप्यन्धाय सुन्दरी।
मुनिः सुलोचनो जातस्तस्याः शीलगुणेन ह॥ २५
विहितो रविपुत्राभ्यामश्विभ्यामिति नः श्रुतम्।

उन मरीचिके परम प्रसिद्ध तथा सर्वमान्य पुत्र कश्यपजी हुए। दक्षप्रजापतिकी तेरह कन्याएँ उन्हींकी भार्याएँ थीं॥ १४॥

देवता, दैत्य, यक्ष, सर्प, पशु और पक्षी—सब-के-सब उन्हींसे उत्पन्न हुए; अतएव यह सृष्टि काश्यपी है॥ १५॥

देवताओंमें सूर्य सबसे श्रेष्ठ हैं। उनका नाम विवस्वान् भी है। उनके पुत्र वैवस्वत मनु थे, वे परम प्रसिद्ध राजा हुए॥ १६॥

उन वैवस्वत मनुके पुत्ररूपमें सूर्यवंशकी वृद्धि करनेवाले इक्ष्वाकुका प्रादुर्भाव हुआ। इक्ष्वाकुके जन्मके बाद उन मनुके नौ पुत्र और उत्पन्न हुए। हे राजेन्द्र! आप एकाग्रचित्त होकर उनके नाम सुनिये; इक्ष्वाकुके अतिरिक्त नाभाग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, प्रांशु, नृग, सातवें दिष्ट एवं करूष और पृषध्र—ये नौ 'मनुपुत्र' के रूपमें प्रसिद्ध हैं॥ १७—१९॥

इन मनुपुत्रोंमें इक्ष्वाकु सबसे पहले उत्पन्न हुए थे। उनके सौ पुत्र हुए; उनमें आत्मज्ञानी विकुक्षि सबसे बड़े थे॥ २०॥

अब आप मनुवंशमें जन्म लेनेवाले पराक्रमी सभी नौ मनुपुत्रोंके वंश-विस्तारके विषयमें संक्षेपमें सुनिये॥ २१॥

नाभागके पुत्र अम्बरीष हुए। वे प्रतापी, धर्मज्ञ, सत्यप्रतिज्ञ और प्रजापालनमें तत्पर रहनेवाले थे॥ २२॥

धृष्टसे धार्ष्ट हुए, जो क्षत्रिय होते हुए भी ब्राह्मण बन गये। संग्रामसे विमुख रहकर वे सम्यक्‌रूपसे ब्राह्मणोचित कर्ममें निरत रहते थे॥ २३॥

शर्यातिके आनर्त नामक पुत्र उत्पन्न हुए; वे अति प्रसिद्ध हुए। रूप तथा सौन्दर्यसे युक्त एक सुकन्या नामक पुत्री भी उनसे उत्पन्न हुई। राजा शर्यातिने अपनी वह सुन्दरी पुत्री नेत्रहीन च्यवनमुनिको सौंप दी। बादमें उसी सुकन्याके शील तथा गुणके प्रभावसे च्यवनमुनि सुन्दर नेत्रोंवाले हो गये। सूर्यपुत्र अश्विनीकुमारोंने उन्हें नेत्रयुक्त कर दिया था—ऐसा हमने सुना है॥ २४-२५½॥

जनमेजय उवाच

सन्देहोऽयं महान् ब्रह्मन् कथायां कथितस्त्वया ॥ २६

यद्राज्ञा मुनयेऽन्धाय दत्ता पुत्री सुलोचना।
कुरूपा गुणहीना वा नारी लक्षणवर्जिता ॥ २७

पुत्री यदा भवेद्राजा तदान्धाय प्रयच्छति।
ज्ञात्वान्धं सुमुखीं कस्माद्दत्तवान्नृपसत्तमः ॥ २८

कारणं ब्रूहि मे ब्रह्मन्ननुग्राह्योऽस्मि सर्वदा।

सूत उवाच

इति राज्ञो वचः श्रुत्वा परीक्षितसुतस्य वै ॥ २९

द्वैपायनः प्रसन्नात्मा तमुवाच हसन्निव।

व्यास उवाच

वैवस्वतसुतः श्रीमाञ्छर्यातिर्नाम पार्थिवः ॥ ३०

तस्य स्त्रीणां सहस्राणि चत्वार्यासन्परिग्रहाः।
राजपुत्र्यः सरूपाश्च सर्वलक्षणसंयुताः ॥ ३१

पत्न्यः प्रेमयुताः सर्वाः प्रिया राज्ञः सुसम्मताः।
एका पुत्री तु तासां वै सुकन्या नाम सुन्दरी ॥ ३२

पितुः प्रिया च मातॄणां सर्वासां चारुहासिनी।
नगरान्नातिदूरेऽभूत्सरो मानससन्निभम् ॥ ३३

बद्धसोपानमार्गं च स्वच्छपानीयपूरितम्।
हंसकारण्डवाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम् ॥ ३४

दात्यूहसारसाकीर्णं सर्वपक्षिगणावृतम्।
पञ्चधाकमलोपेतं चञ्चरीकसुसेवितम् ॥ ३५

पार्श्वतश्च द्रुमाकीर्णं वेष्टितं पादपैः शुभैः।
सालैस्तमालैः सरलैः पुन्नागाशोकमण्डितम् ॥ ३६

वटाश्वत्थकदम्बैश्च कदलीखण्डराजितम्।
जम्बीरैर्बीजपूरैश्च खर्जूरैः पनसैस्तथा ॥ ३७

क्रमुकैर्नारिकेलैश्च केतकैः काञ्चनद्रुमैः।
यूथिकाजालकैः शुभ्रैः संवृतं मल्लिकागणैः ॥ ३८

जनमेजय बोले—हे ब्रह्मन्! आपने कथामें जो यह कहा कि राजा शर्यातिने अन्धे मुनिको अपनी सुन्दर नेत्रोंवाली कन्या प्रदान कर दी; तो इसमें मुझे महान् सन्देह हो रहा है। यदि उनकी पुत्री कुरूप, गुणहीन और शुभ लक्षणोंसे हीन होती, तब वे राजा शर्याति उसका विवाह नेत्रहीनके साथ कर भी सकते थे, किंतु [च्यवनमुनिको] दृष्टिहीन जानते हुए भी उन नृपश्रेष्ठने उन्हें अपनी सुमुखी कन्या कैसे सौंप दी? हे ब्रह्मन्! मुझे इसका कारण बतायें; मैं सदा आपके अनुग्रहके योग्य हूँ॥ २६—२८½ ॥

सूतजी बोले—परीक्षित्‌के पुत्र राजा जनमेजयकी बात सुनकर प्रसन्न मनवाले व्यासजी हँसते हुए उनसे कहने लगे॥ २९½ ॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! वैवस्वत मनुके पुत्र शर्याति नामवाले ऐश्वर्यशाली राजा थे। उनकी चार हजार भार्याएँ थीं। वे सभी राजकुमारियाँ अत्यन्त रूपवती तथा समस्त शुभ लक्षणोंसे युक्त थीं। राजाकी सभी पत्नियाँ प्रेमयुक्त रहती हुई सदा उनके अनुकूल व्यवहार करती थीं॥ ३०-३१½ ॥

उन सबके बीचमें सुकन्या नामक एक ही सुन्दरी पुत्री थी। सुन्दर मुसकानवाली वह कन्या पिता तथा समस्त माताओंके लिये अत्यन्त प्रिय थी॥ ३२½ ॥

उस नगरसे थोड़ी ही दूरीपर मानसरोवरके तुल्य एक तालाब था। उसमें उतरनेके लिये सीढ़ियोंका मार्ग बना हुआ था। वह सरोवर स्वच्छ जलसे परिपूर्ण था। हंस, बत्तख, चक्रवाक, जलकाक और सारस पक्षियोंसे वह सरोवर व्याप्त और सुशोभित था। अन्य पक्षिसमूहोंसे भी वह आवृत रहता था। वह पाँच प्रकारके कमलोंसे सुशोभित था, जिनपर भौंरे मँडराते रहते थे॥ ३३—३५ ॥

उस सरोवरका तट बहुत-से वृक्षों तथा सुन्दर पौधों आदिसे घिरा हुआ था। वह सरोवर साल, तमाल, देवदारु, पुन्नाग और अशोकके वृक्षोंसे सुशोभित था। वट, पीपल, कदम्ब, केला, नीबू, बीजपूर (बिजौरा नीबू), खजूर, कटहल, सुपारी, नारियल तथा केतकी, कचनार, जूही, मालती-जैसी सुन्दर एवं स्वच्छ

जम्ब्वाम्रतिन्तिणीभिश्च करञ्जकुटजावृतम्।
पलाशनिम्बखदिरबिल्वामलकमण्डितम्॥ ३९

बभूव कोकिलारावः केकास्वनविराजितम्।
तत्समीपे शुभे देशे पादपानां गणावृते॥ ४०

भार्गवश्च्यवनः शान्तस्तापसः संस्थितो मुनिः।
ज्ञात्वासौ विजनं स्थानं तपस्तेपे समाहितः॥ ४१

कृत्वा दृढासनं मौनमाधाय जितमारुतः।
इन्द्रियाणि च संयम्य त्यक्ताहारस्तपोनिधिः॥ ४२

जलपानादिरहितो ध्यायन्नास्ते पराम्बिकाम्।
सवल्मीकोऽभवद्राजल्ँलताभिः परिवेष्टितः॥ ४३

कालेन महता राजन् समाकीर्णः पिपीलिकैः।
तथा स संवृतो धीमान्मृत्पिण्ड इव सर्वतः॥ ४४

कदाचित्स महीपालः कामिनीगणसंवृतः।
आजगाम सरो राजन् विहर्तुमिदमुत्तमम्॥ ४५

शर्यातिः सुन्दरीवृन्दसंयुतः सलिलेऽमले।
क्रीडासक्तो महीपालो बभूव कमलाकरे॥ ४६

सुकन्या वनमासाद्य विजहार सखीवृता।
सुमनांसि विचिन्वन्ती चञ्चला चञ्चलोपमा॥ ४७

सर्वाभरणसंयुक्ता रणच्चरणनूपुरा।
चंक्रममाणा वल्मीकं च्यवनस्य समासदत्॥ ४८

क्रीडासक्तोपविष्टा सा वल्मीकस्य समीपतः।
ददर्श चास्य रन्ध्रे वै खद्योत इव ज्योतिषी॥ ४९

लताओं तथा वृक्षोंसे वह सम्यक् प्रकारसे सम्पन्न था। जामुन, आम, इमली, करंज, कौरैया, पलाश, नीम, खैर और बेल तथा आमला आदि वृक्षोंसे सुशोभित था॥ ३६—३९॥

कोकिलों और मयूरोंकी ध्वनिसे वह सदा निनादित रहता था। उस सरोवरके पासमें ही वृक्षोंसे घिरे हुए एक शुभ स्थानपर शान्त चित्तवाले महातपस्वी भृगुवंशी च्यवनमुनि रहते थे। उस स्थानको निर्जन समझकर उन्होंने मनको एकाग्र करके तपस्या प्रारम्भ कर दी॥ ४०-४१॥

वे आसनपर दृढ़तापूर्वक विराजमान होकर मौन धारण किये हुए थे। प्राणवायुपर उनका पूर्ण अधिकार था तथा सभी इन्द्रियाँ उनके वशमें थीं। उन तपोनिधिने भोजन भी त्याग दिया था॥ ४२॥

वे जल ग्रहण किये बिना जगदम्बाका ध्यान करते थे। हे राजन्! उनके शरीरपर लताएँ घिरी हुई थीं तथा दीमकोंद्वारा वे पूरी तरहसे ढक लिये गये थे॥ ४३॥

हे राजन्! बहुत दिनोंतक इस प्रकार बैठे रहनेके कारण उनपर दीमककी चींटियाँ चढ़ गयीं और उनसे वे घिर गये। वे बुद्धिसम्पन्न मुनि पूरी तरहसे मिट्टीके ढेर-सदृश हो गये थे॥ ४४॥

हे राजन्! किसी समय वे राजा शर्याति अपनी रानियोंके साथ विहार करनेके लिये उस उत्तम सरोवरपर आये॥ ४५॥

सरोवरका जल स्वच्छ था, कमल खिले हुए थे। अतएव राजा शर्याति सुन्दरियोंको साथ लेकर जल-क्रीड़ा करने लगे॥ ४६॥

लक्ष्मीकी तुलना करनेवाली तथा चंचल स्वभाववाली वह सुकन्या वनमें आकर सुन्दर फूलोंको चुनती हुई सखियोंके साथ विहार करने लगी। वह सभी प्रकारके आभूषणोंसे अलंकृत थी तथा उसके चरणके नूपुर मधुर ध्वनि कर रहे थे। इधर-उधर भ्रमण करती हुई वह राजकुमारी [सुकन्या] वल्मीक बने हुए च्यवनमुनिके निकट पहुँच गयी। क्रीडामें आसक्त वह सुकन्या वल्मीकके निकट बैठ गयी और उसे वल्मीकके छिद्रोंसे जुगुनूकी तरह चमकनेवाली दो ज्योतियाँ दिखायी पड़ीं॥ ४७—४९॥

किमेतदिति सञ्चिन्त्य समुद्धर्तुं मनो दधे।
गृहीत्वा कण्टकं तीक्ष्णं त्वरमाणा कृशोदरी॥ ५०

सा दृष्टा मुनिना बाला समीपस्था कृतोद्यमा।
विचरन्ती सुकेशान्ता मन्मथस्येव कामिनी॥ ५१

तां वीक्ष्य सुदतीं तत्र क्षामकण्ठस्तपोनिधिः।
तामभाषत कल्याणीं किमेतदिति भार्गवः॥ ५२

दूरं गच्छ विशालाक्षि तापसोऽहं वरानने।
मा भिन्दस्वाद्य वल्मीकं कण्टकेन कृशोदरि॥ ५३

तेनेदं प्रोच्यमानापि सा चास्य न शृणोति वै।
किमु खल्विदमित्युक्त्वा निर्बिभेदास्य लोचने॥ ५४

दैवेन नोदिता भित्त्वा जगाम नृपकन्यका।
क्रीडन्ती शङ्कमाना सा किं कृतं तु मयेति च॥ ५५

चुक्रोध स तथा विद्धनेत्रः परममन्युमान्।
वेदनाभ्यर्दितः कामं परितापं जगाम ह॥ ५६

शकृन्मूत्रनिरोधोऽभूत्सैनिकानां तु तत्क्षणात्।
विशेषेण तु भूपस्य सामात्यस्य समन्ततः॥ ५७

गजोष्ट्रतुरगाणां च सर्वेषां प्राणिनां तदा।
ततो रुद्धे शकृन्मूत्रे शर्यातिर्दुःखितोऽभवत्॥ ५८

सैनिकैः कथितं तस्मै शकृन्मूत्रनिरोधनम्।
चिन्तयामास भूपालः कारणं दुःखसम्भवे॥ ५९

विचिन्त्याह ततो राजा सैनिकान्स्वजनांस्तथा।
गृहमागत्य चिन्तार्तः केनेदं दुष्कृतं कृतम्॥ ६०

सरसः पश्चिमे भागे वनमध्ये महातपाः।
च्यवनस्तापसस्तत्र तपश्चरति दुश्चरम्॥ ६१

केनाप्यपकृतं तत्र तापसेऽग्निसमप्रभे।
तस्मात्पीडा समुत्पन्ना सर्वेषामिति निश्चयः॥ ६२

यह क्या है?—ऐसी जिज्ञासा होनेपर उसने आवरण हटानेका मनमें निश्चय किया। तत्पश्चात् वह सुन्दरी एक नुकीला काँटा लेकर शीघ्रतापूर्वक मिट्टी हटाने लगी॥ ५०॥

मुनि च्यवनने विचरण करनेवाली, कामदेवकी स्त्री रतिके सदृश तथा सुन्दर केशोंवाली उस राजकुमारीको पासमें स्थित होकर मिट्टी हटानेमें संलग्न देखा॥ ५१॥

क्षीण स्वरवाले तपोनिधि च्यवनमुनि सुन्दर दाँतोंवाली उस सुन्दरी सुकन्याको देखकर उससे कहने लगे—यह क्या! हे विशाल नयनोंवाली! दूर चली जाओ। हे सुमुखि! मैं एक तपस्वी हूँ। हे कृशोदरि! इस बाँबीको काँटेसे मत हटाओ॥ ५२-५३॥

मुनिके कहनेपर भी उसने उनकी बातें न सुनीं। यह कौन-सी [चमकनेवाली] वस्तु है—यह कहकर उसने मुनिके नेत्र भेद डाले॥ ५४॥

दैवकी प्रेरणासे राजकुमारी उनके नेत्र बींधकर सशंक भावसे खेलती हुई और 'मैंने यह क्या कर डाला'—यह सोचती हुई वहाँसे चली गयी। नेत्रोंके बिँध जानेसे महर्षिको क्रोध हुआ और अत्यधिक वेदनासे पीड़ित होनेके कारण वे बहुत दुःखित हुए॥ ५५-५६॥

उसी समयसे राजाके सभी सैनिकोंका मल-मूत्र अवरुद्ध हो गया। मन्त्रीसहित राजाको विशेषरूपसे यह कष्ट झेलना पड़ा। हाथी, घोड़े और ऊँट आदि सभी प्राणियोंके मल तथा मूत्रका अवरोध हो जानेपर राजा शर्याति अत्यन्त दुःखी हुए॥ ५७-५८॥

सैनिकोंने मल-मूत्रके अवरोधकी बात उन्हें बतायी, तब उन्होंने इस कष्टके कारणपर विचार किया। कुछ समय सोचनेके बाद राजा घरपर आकर अपने परिजनों तथा सैनिकोंसे अत्यन्त व्याकुल होकर पूछने लगे—किसके द्वारा यह निकृष्ट कार्य किया गया है? उस सरोवरके पश्चिमी तटवाले वनमें महान् तपस्वी च्यवनमुनि कठिन तपस्या कर रहे हैं॥ ५९—६१॥

अग्निके समान तेजस्वी उन तपस्वीके प्रति किसीने कोई अपकार अवश्य ही किया है। इसलिये हम सबको ऐसा कष्ट हुआ है—यह निश्चित है॥ ६२॥

तपोवृद्धस्य वृद्धस्य वरिष्ठस्य विशेषतः।
केनाप्यपकृतं मन्ये भार्गवस्य महात्मनः॥ ६३

महातपस्वी, वृद्ध तथा श्रेष्ठ भृगुनन्दन महात्मा च्यवनका अवश्य ही किसीने अनिष्ट कर दिया है—ऐसा मैं मानता हूँ॥ ६३॥

ज्ञातं वा यदि वाज्ञातं तस्येदं फलमुत्तमम्।
कैश्च दुष्टैः कृतं तस्य हेलनं तापसस्य ह॥ ६४

यह अनिष्ट जानमें किया गया हो अथवा अनजानमें, उसका नियत फल तो भोगना ही पड़ेगा। न जाने किन दुष्टोंने उन तपस्वीका अपमान किया है?॥ ६४॥

इति पृष्टास्तमूचुस्ते सैनिका वेदनार्दिताः।
मनोवाक्कायजनितं न विद्मोऽपकृतं वयम्॥ ६५

राजाके ऐसा पूछनेपर दुःखसे व्याकुल हुए सैनिकोंने उनसे कहा—हमलोगोंके द्वारा मन-वाणी-कर्मसे मुनिका कुछ भी अपकार हुआ हो—इसे हमलोग नहीं जानते॥ ६५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे शर्यातिराजवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥



अथ तृतीयोऽध्यायः

सुकन्याका च्यवनमुनिके साथ विवाह

व्यास उवाच

इति पप्रच्छ तान्सर्वान् राजा चिन्ताकुलस्तथा।
पर्यपृच्छत्सुहृद्वर्गं साम्ना चोग्रतयापि च॥ १

व्यासजी बोले—हे राजन्! इस घटनासे अत्यन्त चिन्तित राजा शर्यातिने उन सबसे पूछनेके पश्चात् शान्ति तथा उग्रतापूर्वक भी अपने बन्धुजनोंसे पूछा॥ १॥

पीड्यमानं जनं वीक्ष्य पितरं दुःखितं तथा।
विचिन्त्य शूलभेदं सा सुकन्या चेदमब्रवीत्॥ २

वने मया पितस्तत्र वल्मीको वीरुधावृतः।
क्रीडन्त्या सुदृढो दृष्टश्छिद्रद्वयसमन्वितः॥ ३

समस्त प्रजाजन और अपने पिताको अत्यन्त दुःखी देखकर तथा अपने द्वारा उन छिद्रोंमें काँटा चुभानेकी बातको सोचकर उस सुकन्याने यह कहा—हे पिताजी! वनमें खेलती हुई मैंने लताओंसे घिरा हुआ दो छिद्रोंवाला एक विशाल वल्मीक देखा॥ २-३॥

तत्र खद्योतवद्दीप्तज्योतिषी वीक्षिते मया।
सूच्याविद्धे महाराज पुनः खद्योतशङ्कया॥ ४

उन छिद्रोंमेंसे जुगनूकी भाँति तीव्र प्रकाशमान दो ज्योतियाँ मैंने देखीं। तब हे महाराज! जुगनूकी शंका करके मैंने उन छिद्रोंमें सूई चुभो दी॥ ४॥

जलक्लिन्ना तदा सूची मया दृष्टा पितः किल।
हाहेति च श्रुतः शब्दो मन्दो वल्मीकमध्यतः॥ ५

हे पिताजी! उस समय मैंने देखा कि वह सूई जलसे भींग गयी थी और उस वल्मीकमेंसे 'हा-हा' की मन्द-मन्द ध्वनि मुझे सुनायी पड़ी॥ ५॥

तदाहं विस्मिता राजन्किमेतदिति शङ्कया।
न जाने किं मया विद्धं तस्मिन्वल्मीकमण्डले॥ ६

हे राजन्! तब मैं आश्चर्यमें पड़ गयी कि यह क्या हो गया। मैं इस शंकासे ग्रस्त हो गयी कि न जाने मेरे द्वारा उस वल्मीकके मध्यमें कौन-सी वस्तु बिँध गयी॥ ६॥

राजा श्रुत्वा तु शर्यातिः सुकन्यावचनं मृदु।
मुनेस्त्वद्धेलनं ज्ञात्वा वल्मीकं क्षिप्रमभ्यगात्॥ ७

सुकन्याका यह मधुर वचन सुनकर राजा शर्याति इस कृत्यको मुनिका अपमान समझकर शीघ्रतापूर्वक उस वल्मीकके पास जा पहुँचे॥ ७॥

तत्रापश्यत्तपोवृद्धं च्यवनं दुःखितं भृशम्।
स्फोटयामास वल्मीकं मुनिदेहावृतं भृशम्॥ ८

प्रणम्य दण्डवद्भूमौ राजा तं भार्गवं प्रति।
तुष्टाव विनयोपेतस्तमुवाच कृताञ्जलिः॥ ९

पुत्र्या मम महाभाग क्रीडन्त्या दुष्कृतं कृतम्।
अज्ञानाद् बालया ब्रह्मन् कृतं तत्क्षन्तुमर्हसि॥ १०

अक्रोधना हि मुनयो भवन्तीति मया श्रुतम्।
तस्मात्त्वमपि बालायाः क्षन्तुमर्हसि साम्प्रतम्॥ ११

व्यास उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य च्यवनो वाक्यमब्रवीत्।
विनयोपनतं दृष्ट्वा राजानं दुःखितं भृशम्॥ १२

च्यवन उवाच

राजन्नाहं कदाचिद्वै करोमि क्रोधमण्वपि।
न मयाद्यैव शप्तस्त्वं दुहित्रा पीडने कृते॥ १३

नेत्रे पीडा समुत्पन्ना मम चाद्य निरागसः।
तेन पापेन जानामि दुःखितस्त्वं महीपते॥ १४

अपराधं परं कृत्वा देवीभक्तस्य को जनः।
सुखं लभेत यदपि भवेत् त्राता शिवः स्वयम्॥ १५

किं करोमि महीपाल नेत्रहीनो जरावृतः।
अन्धस्य परिचर्यां च कः करिष्यति पार्थिव॥ १६

राजोवाच

सेवका बहवः सेवां करिष्यन्ति तवानिशम्।
क्षमस्व मुनिशार्दूल स्वल्पक्रोधा हि तापसाः॥ १७

च्यवन उवाच

अन्धोऽहं निर्जनो राजंस्तपस्तप्तुं कथं क्षमः।
त्वदीयाः सेवकाः किं ते करिष्यन्ति मम प्रियम्॥ १८

वहाँ उन्होंने महान् कष्टमें पड़े हुए परम तपस्वी च्यवनमुनिको देखा। तत्पश्चात् उन्होंने मुनिके शरीरपर जमी हुई विशाल वल्मीक (बाँबी)-को हटाया॥ ८॥

इसके बाद राजा शर्यातिने दण्डकी भाँति पृथ्वीपर पड़कर मुनि भार्गवको प्रणाम करके उनकी स्तुति की और पुनः वे हाथ जोड़कर विनम्रतापूर्वक उनसे कहने लगे—हे महाभाग! मेरी पुत्री खेल रही थी, उसीने यह दुष्कर्म कर दिया है। हे ब्रह्मन्! उस बालिकाके द्वारा अनजानमें किये गये इस अपराधको आप क्षमा कर दें। मुनिगण क्रोधशून्य होते हैं—ऐसा मैंने सुना है; अतएव आप इस समय बालिकाका अपराध क्षमा कर दीजिये॥ ९—११॥

व्यासजी बोले—उनकी बात सुनकर च्यवनमुनि नम्रतापूर्वक खड़े उन राजाको अत्यन्त दुःखित जानकर उनसे कहने लगे॥ १२॥

च्यवन बोले—हे राजन्! मैं कभी भी लेशमात्र क्रोध नहीं करता। आपकी पुत्रीके द्वारा मुझे पीड़ा पहुँचाये जानेपर भी मैंने अभीतक आपको शाप नहीं दिया है॥ १३॥

हे महीपते! इस समय मुझ निरपराधके नेत्रोंमें पीड़ा उत्पन्न हो रही है। मैं जानता हूँ कि इसी पापकर्मके कारण आप कष्टमें पड़ गये हैं॥ १४॥

भगवतीके भक्तके प्रति घोर अपराध करके कौन-सा व्यक्ति सुख पा सकता है, चाहे साक्षात् शंकर ही उसके रक्षक क्यों न हों॥ १५॥

हे महीपाल! मैं क्या करूँ? मैं अन्धा हो गया हूँ और बुढ़ापेने मुझे घेर रखा है। हे राजन्! अब मुझ अन्धेकी सेवा कौन करेगा?॥ १६॥

राजा बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! मेरे बहुत-से सेवक दिन-रात आपकी सेवा करेंगे। आप अपराध क्षमा करें; क्योंकि तपस्वीलोग अत्यन्त अल्प क्रोधवाले होते हैं॥ १७॥

च्यवन बोले—हे राजन्! मैं अन्धा हूँ, अतः अकेले रहकर मैं तप करनेमें कैसे समर्थ हो सकता हूँ? क्या आपके वे सेवक सम्यक् रूपसे मेरा प्रिय कार्य कर सकेंगे?॥ १८॥

क्षमापयसि चेन्मां त्वं कुरु मे वचनं नृप।
देहि मे परिचर्यार्थं कन्यां कमललोचनाम्॥ १९

तुष्येऽनया महाराज पुत्र्या तव महामते।
करिष्यामि तपश्चाहं सा मे सेवां करिष्यति॥ २०

एवं कृते सुखं मे स्यात्तव चैव भविष्यति।
सन्तुष्टे मयि राजेन्द्र सैनिकानां न संशयः॥ २१

विचिन्त्य मनसा भूप कन्यादानं समाचर।
न चात्र दूषणं किञ्चित्तापसोऽहं यतव्रतः॥ २२

व्यास उवाच

शर्यातिर्वचनं श्रुत्वा मुनेश्चिन्तातुरोऽभवत्।
न दास्येऽप्यथवा दास्ये किञ्चिन्नोवाच भारत॥ २३

कथमन्धाय वृद्धाय कुरूपाय सुतामिमाम्।
देवकन्योपमां दत्त्वा सुखी स्यामात्मसम्भवाम्॥ २४

को वात्मनः सुखार्थाय पुत्र्याः संसारजं सुखम्।
हरतेऽल्पमतिः पापो जानन्नपि शुभाशुभम्॥ २५

प्राप्य सा च्यवनं सुभ्रूः पञ्चबाणशरार्दिता।
अन्धं वृद्धं पतिं प्राप्य कथं कालं नयिष्यति॥ २६

यौवने दुर्जयः कामो विशेषेण सुरूपया।
आत्मतुल्यं पतिं प्राप्य किमु वृद्धं विलोचनम्॥ २७

गौतमं तापसं प्राप्य रूपयौवनसंयुता।
अहल्या वासवेनाशु वञ्चिता वरवर्णिनी॥ २८

शप्ता च पतिना पश्चाज्ज्ञात्वा धर्मविपर्ययम्।
तस्माद्भवतु मे दुःखं न ददामि सुकन्यकाम्॥ २९

हे राजन्! यदि आप क्षमा करनेके लिये मुझसे कहते हैं तो मेरी एक बात मान लीजिये। मेरी सेवाके लिये कमलके समान नेत्रोंवाली अपनी कन्या मुझे सौंप दीजिये॥ १९॥

हे महाराज! मैं आपकी इस कन्यापर प्रसन्न हूँ। हे महामते! मैं तपस्या करूँगा और वह मेरी सेवा करेगी॥ २०॥

हे राजन्! ऐसा करनेपर मुझे सुख मिलेगा और आपका भी कल्याण होगा। मेरे प्रसन्न हो जानेपर आपके सैनिकोंको भी सुख प्राप्त होगा, इसमें सन्देह नहीं है॥ २१॥

हे भूप! मनमें यह विचार करके आप कन्यादान कर दीजिये। इसमें आपको कुछ भी दोष नहीं लगेगा; क्योंकि मैं एक संयमशील तपस्वी हूँ॥ २२॥

व्यासजी बोले—हे भारत! मुनिकी बात सुनकर राजा शर्याति घोर चिन्तामें पड़ गये। 'दूँगा' या 'नहीं दूँगा'—कुछ भी उन्होंने नहीं कहा॥ २३॥

वे सोचने लगे कि देवकन्याके तुल्य अपनी यह पुत्री इस अन्धे, कुरूप तथा बूढ़े मुनिको देकर मैं कैसे सुखी रह सकता हूँ!॥ २४॥

ऐसा अल्पबुद्धि तथा पापी कौन होगा, जो शुभ तथा अशुभका ज्ञान रखते हुए भी अपने सुखके लिये अपनी ही कन्याके सांसारिक सुखको नष्ट कर देगा!॥ २५॥

अन्धे तथा वृद्ध च्यवनमुनिको पतिरूपमें प्राप्त करके सुन्दर भौंहोंवाली तथा कामबाणसे व्यथित वह कन्या उनके साथ किस प्रकार अपना जीवन व्यतीत करेगी!॥ २६॥

अपने अनुकूल पति पाकर भी यौवनावस्थामें [किसी स्त्रीके द्वारा] और वह भी विशेष रूपसे रूपसम्पन्न स्त्रीके द्वारा कामको जीतना अत्यन्त कठिन है तो फिर इस वृद्ध तथा नेत्रहीन पतिको पाकर उसकी क्या स्थिति होगी?॥ २७॥

तपस्वी गौतमऋषिको पतिरूपमें प्राप्त करके रूप तथा यौवनसे युक्त सुन्दरी अहल्या इन्द्रके द्वारा शीघ्र ही ठग ली गयी थी और बादमें इसे धर्मविरुद्ध जानकर उसके पति गौतमने शाप दे दिया था। अतएव मुझे कष्ट भले ही मिले, किंतु मैं मुनिको अपनी पुत्री सुकन्या नहीं दूँगा॥ २८-२९॥

इति सञ्चिन्त्य शर्यातिर्विमनाः स्वगृहं ययौ।
सचिवांश्च समादाय मन्त्रं चक्रेऽतिदुःखितः॥ ३०

भो मन्त्रिणो ब्रुवन्त्वद्य किं कर्तव्यं मयाधुना।
पुत्री देयाथ विप्राय भोक्तव्यं दुःखमेव वा॥ ३१

विचारयध्वं मिलिता हितं स्यान्मम वै कथम्।

मन्त्रिण ऊचुः

किं ब्रूमोऽस्मिन्महाराज सङ्कटेऽतिदुरासदे॥ ३२

दुर्भगाय सुकन्यैषा कथं देयातिसुन्दरी।

व्यास उवाच

तदा चिन्ताकुलं वीक्ष्य पितरं मन्त्रिणस्तदा॥ ३३

सुकन्या त्विङ्गितं ज्ञात्वा प्रहस्येदमुवाच ह।
पितः कस्माद्भवानद्य चिन्ताव्याकुलितेन्द्रियः॥ ३४

मत्कृते दुःखसंविग्नो विषण्णवदनोऽसि वै।
अहं गत्वा मुनिं तत्र समाश्वास्य भयार्दितम्॥ ३५

करिष्यामि प्रसन्नं तमात्मदानेन वै पितः।
इति राजा वचः श्रुत्वा भाषितं यत्सुकन्यया॥ ३६

तामुवाच प्रसन्नात्मा सचिवानां च शृण्वताम्।
कथं पुत्रि त्वमन्धस्य परिचर्यां वनेऽबला॥ ३७

करिष्यसि जरार्तस्य क्रोधनस्य विशेषतः।
कथमन्धाय चानेन रूपेण रतिसन्निभाम्॥ ३८

ददामि जरया ग्रस्तदेहाय सुखवाञ्छया।
पित्रा पुत्री प्रदातव्या वयोज्ञातिबलाय च॥ ३९

धनधान्यसमृद्धाय नाधनाय कदाचन।
क्व ते रूपं विशालाक्षि क्वासौ वृद्धो वनेचरः॥ ४०
कथं देया मया पुत्री तस्मै नातिवराय च।

ऐसा विचार करके राजा शर्याति सन्तप्त मनसे अपने घर चले गये और अत्यन्त विषादग्रस्त होकर उन्होंने मन्त्रियोंको बुलाकर उनसे मन्त्रणा की—हे मन्त्रियो! आपलोग बताइये कि मैं इस समय क्या करूँ? अपनी पुत्री मुनिको सौंप दूँ अथवा स्वयं दुःख भोगूँ? अब आपलोग मिलकर इसपर सम्यक् विचार कीजिये कि मेरा हित किस प्रकार होगा?॥ ३०–३१½ ॥

मन्त्रिगण बोले—हे महाराज! इस विषम संकटकी स्थितिमें हम आपसे क्या कहें? यह अत्यन्त लावण्यमयी सुकन्या इस अभागेको देना कैसे उचित होगा?॥ ३२½ ॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] तब अपने पिता तथा मन्त्रियोंको चिन्तासे आकुल देखकर सुकन्या उनका अभिप्राय समझ गयी और मुसकराकर बोली—हे पिताजी! आज आप चिन्तासे व्याकुल इन्द्रियोंवाले किसलिये हैं? निश्चित ही आप मेरे लिये ही अत्यन्त दुःखार्त तथा म्लानमुख हैं। अतएव हे पिताजी! मैं अभी भयाक्रान्त मुनि च्यवनके पास जाकर और उन्हें आश्वस्त करके अपनेको अर्पितकर प्रसन्न करूँगी॥ ३३—३५½ ॥

इस प्रकार सुकन्याने जो बात कही, उसे सुनकर प्रसन्न मनवाले राजा शर्यातिने सचिवोंके समक्ष उससे कहा—हे पुत्रि! तुम अबला हो, अतएव वृद्धतासे ग्रस्त उस अन्धे तथा विशेष रूपसे क्रोधी मुनिकी सेवा उस वनमें कैसे कर पाओगी?॥ ३६–३७½ ॥

मैं इस प्रकारके रूपसे युक्त तथा रतिके तुल्य सुन्दरी कन्याको वार्धक्यसे ग्रस्त शरीरवाले अन्धे मुनिको अपने सुखके लिये भला कैसे दे दूँ? पिताको चाहिये कि वह अपनी पुत्री समान अवस्था, जाति तथा सामर्थ्यवाले और धन-धान्यसे सम्पन्न व्यक्तिको सौंपे, किंतु धनहीनको कभी भी नहीं सौंपे॥ ३८–३९½ ॥

हे विशाल नयनोंवाली पुत्रि! कहाँ तो तुम ऐसी रूपवती और कहाँ वनमें रहनेवाला वह वृद्ध मुनि! ऐसी स्थितिमें मैं अपनी पुत्रीको उस अयोग्यको भला कैसे अर्पित करूँ?॥ ४०½ ॥

उटजे नियतं वासो यस्य नित्यं मनोहरे॥ ४१

कथमम्बुजपत्राक्षि कल्पनीयो मया तव।
मरणं मे वरं प्राप्तं सैनिकानां तथैव च॥ ४२

न ते प्रदानमन्धाय रोचते पिकभाषिणि।
भवितव्यं भवत्येव धैर्यं नैव त्यजाम्यहम्॥ ४३

सुस्थिरा भव सुश्रोणि न दास्येऽन्धाय कर्हिचित्।
राज्यं तिष्ठतु वा यातु देहोऽयं च तथैव मे॥ ४४

न त्वां दास्याम्यहं तस्मै नेत्रहीनाय बालिके।
सुकन्या तं तदा प्राह श्रुत्वा तद्वचनं पितुः॥ ४५

प्रसन्नवदनातीव स्नेहयुक्तमिदं वचः।

सुकन्योवाच

न मे चिन्ता पितः कार्या देहि मां मुनयेऽधुना॥ ४६

सुखं भवतु सर्वेषां लोकानां मत्कृतेन हि।
सेवयिष्यामि सन्तुष्टा पतिं परमपावनम्॥ ४७

भक्त्या परमया चापि वृद्धं च विजने वने।
सतीधर्मपरा चाहं चरिष्यामि सुसम्मतम्॥ ४८

न भोगेच्छास्ति मे तात स्वस्थं चित्तं ममानघ।

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा भाषितं तस्या मन्त्रिणो विस्मयं गताः॥ ४९

राजा च परमप्रीतो जगाम मुनिसन्निधौ।
गत्वा प्रणम्य शिरसा तमुवाच तपोधनम्॥ ५०

स्वामिन् गृहाण पुत्रीं मे सेवार्थं विधिवद्विभो।
इत्युक्त्वासौ ददौ पुत्रीं विवाहविधिना नृपः॥ ५१

हे मनोहरे! हे कमलपत्रके समान नेत्रोंवाली! छोटी-सी पर्णकुटीमें जो सदा निवास करता है, ऐसे वरके साथ तुम्हारे विवाहकी कल्पना भी मैं कैसे कर सकता हूँ!॥ ४१½ ॥

मेरी तथा मेरे सैनिकोंकी मृत्यु हो जाय यह तो मेरे लिये उत्तम है, किंतु हे पिकभाषिणि! तुम्हें एक अन्धेको सौंप देना मुझे अच्छा नहीं लग रहा है॥ ४२½ ॥

होनहार तो होकर ही रहता है, किंतु मैं अपने धैर्यका त्याग नहीं करूँगा और हे सुश्रोणि! तुम निश्चिन्त रहो; मैं तुम्हें उस अन्धे मुनिको कभी भी नहीं सौंप सकता॥ ४३½ ॥

हे पुत्रि! मेरा राज्य और यहाँतक कि मेरा शरीर भी रहे अथवा चला जाय, किंतु मैं उस नेत्रहीन मुनिको तुम्हें किसी भी स्थितिमें नहीं दूँगा॥ ४४½ ॥

तत्पश्चात् पिताका वह वचन सुनकर अत्यन्त प्रसन्न मुखवाली सुकन्याने उनसे यह स्नेहयुक्त वचन कहा— ॥ ४५½ ॥

सुकन्या बोली—हे पिताजी! मेरे लिये आप चिन्ता न करें और अब मुझे मुनिको सौंप दीजिये; क्योंकि मेरे लिये ऐसा कर देनेसे सम्पूर्ण प्रजाको सुख प्राप्त होगा। मैं हर प्रकारसे सन्तुष्ट होकर उस निर्जन वनमें अपने परम पवित्र वृद्ध पतिकी अगाध श्रद्धासे सेवा करूँगी और शास्त्रसम्मत सती-धर्मका पूर्ण तत्परताके साथ पालन करूँगी। हे निष्पाप पिताजी! भोग-विलासमें मेरी अभिरुचि नहीं है। आप अपने चित्तमें स्थिरता रखिये॥ ४६—४८½ ॥

व्यासजी बोले—उस सुकन्याकी बातें सुनकर सभी मन्त्री आश्चर्यमें पड़ गये और राजा भी परम प्रसन्न होकर मुनिके पास गये॥ ४९½ ॥

वहाँ पहुँचकर उन तपोनिधिको सिर झुकाकर प्रणाम करके राजाने कहा—हे स्वामिन्! हे प्रभो! मेरी इस पुत्रीको आप अपनी सेवाके लिये विधिपूर्वक स्वीकार कीजिये॥ ५०½ ॥

ऐसा कहकर उन राजाने विधि-विधानसे विवाह सम्पन्न करके अपनी पुत्री मुनिको सौंप दी और उस कन्याको ग्रहण करके च्यवनऋषि भी प्रसन्न

प्रतिगृह्य मुनिः कन्यां प्रसन्नो भार्गवोऽभवत्।
पारिबर्हं न जग्राह दीयमानं नृपेण ह॥ ५२

कन्यामेवाग्रहीत्कामं परिचर्यार्थमात्मनः।
प्रसन्नेऽस्मिन्मुनौ जातं सैनिकानां सुखं तदा॥ ५३

राज्ञश्च परमाह्लादः सञ्जातस्तत्क्षणादपि।
दत्त्वा पुत्रीं यदा राजा गमनाय गृहं प्रति॥ ५४

मतिं चकार तन्वङ्गी तदोवाच नृपं सुता।

सुकन्योवाच

गृहाण मम वासांसि भूषणानि च मे पितः॥ ५५

वल्कलं परिधानाय प्रयच्छाजिनमुत्तमम्।
वेषं तु मुनिपत्नीनां कृत्वा तपसि सेवनम्॥ ५६

करिष्यामि तथा तात यथा ते कीर्तिरच्युता।
भविष्यति भुवः पृष्ठे तथा स्वर्गे रसातले॥ ५७

परलोकसुखायाहं चरिष्यामि दिवानिशम्।
दत्त्वान्धाय च वृद्धाय सुन्दरीं युवतीं तु माम्॥ ५८

चिन्ता त्वया न कर्तव्या शीलनाशसमुद्भवा।
अरुन्धती वसिष्ठस्य धर्मपत्नी यथा भुवि॥ ५९

तथैवाहं भविष्यामि नात्र कार्या विचारणा।
अनसूया यथा साध्वी भार्यात्रेः प्रथिता भुवि॥ ६०

तथैवाहं भविष्यामि पुत्री कीर्तिकरी तव।
सुकन्यावचनं श्रुत्वा राजा परमधर्मवित्॥ ६१

दत्त्वाजिनं रुरोदाशु वीक्ष्य तां चारुहासिनीम्।
त्यक्त्वा भूषणवासांसि मुनिवेषधरां सुताम्॥ ६२

विवर्णवदनो भूत्वा स्थितस्तत्रैव पार्थिवः।
राज्ञ्यः सर्वाः सुतां दृष्ट्वा वल्कलाजिनधारिणीम्॥ ६३
रुरुदुर्भृशशोकार्ता वेपमाना इवाभवन्।

हो गये। मुनिने राजाके द्वारा प्रदत्त उपहार ग्रहण नहीं किया। अपनी सेवाके लिये उन्होंने केवल राजकुमारीको ही स्वीकार किया॥ ५१-५२½ ॥

उन मुनिके प्रसन्न हो जानेपर सैनिकोंको सुख प्राप्त हो गया। उसी समयसे राजा भी परम आह्लादित रहने लगे॥ ५३½ ॥

जब राजा शर्यातिने मुनिको पुत्री सौंपकर घर चलनेका विचार किया, तब कोमल अंगोंवाली राजकुमारी सुकन्या राजासे कहने लगी—॥ ५४½ ॥

सुकन्या बोली—हे पिताजी! आप मेरे वस्त्र तथा आभूषण ले लीजिये और पहननेके लिये मुझे वल्कल एवं उत्तम मृगचर्म प्रदान कीजिये। मैं मुनिपत्नियोंका वेष बनाकर तपमें निरत रहती हुई पतिसेवा करूँगी; जिससे पृथ्वीतल, रसातल और स्वर्गलोकमें भी आपकी कीर्ति अक्षुण्ण रहेगी; परलोकके सुखके लिये मैं दिन-रात मुनिकी सेवा करती रहूँगी॥ ५५—५७½ ॥

सुन्दर तथा यौवनसम्पन्न अपनी पुत्री मुझ सुकन्याको एक अन्धे तथा वृद्ध मुनिको सौंपकर मेरे आचरणच्युत हो जानेकी शंका करके आप तनिक भी चिन्ता न कीजियेगा॥ ५८½ ॥

जिस प्रकार पृथ्वीलोकमें वसिष्ठकी धर्मपत्नी अरुन्धती थी, उसी प्रकार मैं भी होऊँगी और जिस प्रकार अत्रिकी साध्वी भार्या अनसूया प्रसिद्ध हुईं, उसी प्रकार आपकी पुत्री मैं सुकन्या भी [अपने पातिव्रत्यके प्रभावसे] कीर्ति बढ़ानेवाली होऊँगी; इसमें आपको सन्देह नहीं करना चाहिये॥ ५९-६०½ ॥

सुकन्याकी बात सुनकर महान् धर्मज्ञ राजा शर्याति वस्त्रके रूपमें उसे मृगचर्म प्रदान करके रोने लगे। उस सुन्दर मुसकानवाली अपनी पुत्रीको शीघ्र ही आभूषण तथा वस्त्र त्यागकर मुनिवेष धारण किये देखकर राजा म्लानमुख होकर वहींपर ठहरे रहे॥ ६१-६२½ ॥

अपनी पुत्रीको वल्कल तथा मृगचर्म धारण की हुई देखकर सभी रानियाँ भी रो पड़ीं। वे परम शोकाकुल हो उठीं और काँपने लगीं॥ ६३½ ॥

तामापृच्छ्य महीपालो मन्त्रिभिः परिवारितः।
ययौ स्वनगरं राजन् मुक्त्वा पुत्रीं शुचार्पिताम्॥ ६४

[व्यासजी बोले—] हे राजन्! तत्पश्चात् अपनी उस समर्पित पुत्री सुकन्यासे विदा लेकर तथा उसे वहीं छोड़कर चिन्तित राजा मन्त्रियोंके साथ अपने नगरको चले गये॥ ६४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे च्यवनसुकन्ययोर्गार्हस्थ्यवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥



अथ चतुर्थोऽध्यायः

सुकन्याकी पतिसेवा तथा वनमें अश्विनीकुमारोंसे भेंटका वर्णन

व्यास उवाच

गते राजनि सा बाला पतिसेवापरायणा।
बभूव च तथाग्नीनां सेवने धर्मतत्परा॥ १

व्यासजी बोले—[हे जनमेजय!] राजा शर्यातिके चले जानेपर सुकन्या अपने पति च्यवन-मुनिकी सेवामें संलग्न हो गयी। धर्मपरायण वह उस आश्रममें अग्नियोंकी सेवामें सदा निरत रहने लगी॥ १॥

फलान्यादाय स्वादूनि मूलानि विविधानि च।
ददौ सा मुनये बाला पतिसेवापरायणा॥ २

सर्वदा पतिसेवामें संलग्न रहनेवाली वह बाला विविध प्रकारके स्वादिष्ट फल तथा कन्द-मूल लाकर मुनिको अर्पण करती थी॥ २॥

पतिं तप्तोदकेनाशु स्नापयित्वा मृगत्वचा।
परिवेष्ट्य शुभायां तु बृस्यां स्थापितवत्यपि॥ ३

तिलान् यवकुशानग्रे परिकल्प्य कमण्डलुम्।
तमुवाच नित्यकर्म कुरुष्व मुनिसत्तम॥ ४

वह [शीतकालमें] ऊष्ण जलसे उन्हें शीघ्रता-पूर्वक स्नान करानेके पश्चात् मृगचर्म पहनाकर पवित्र आसनपर विराजमान कर देती थी। पुनः उनके आगे तिल, जौ, कुशा और कमण्डलु रखकर उनसे कहती थी—मुनिश्रेष्ठ! अब आप अपना नित्यकर्म करें॥ ३-४॥

तमुत्थाप्य करे कृत्वा समाप्ते नित्यकर्मणि।
बृस्यां वा संस्तरे बाला भर्तारं संन्यवेशयत्॥ ५

मुनिका नित्यकर्म समाप्त हो जानेपर वह सुकन्या पतिका हाथ पकड़कर उठाती और पुनः किसी आसन अथवा कोमल शय्यापर उन्हें बिठा देती थी॥ ५॥

पश्चादानीय पक्वानि फलानि च नृपात्मजा।
भोजयामास च्यवनं नीवारान्नं सुसंस्कृतम्॥ ६

तत्पश्चात् वह राजकुमारी पके हुए फल तथा भली-भाँति सिद्ध किये गये नीवारान्न (धान्यविशेष) च्यवन-मुनिको भोजन कराती थी॥ ६॥

भुक्तवन्तं पतिं तृप्तं दत्त्वाचमनमादरात्।
पश्चाच्च पूगं पत्राणि ददौ चादरसंयुता॥ ७

वह सुकन्या भोजन करके तृप्त हुए पतिको आदरपूर्वक आचमन करानेके पश्चात् बड़े प्रेमके साथ उन्हें ताम्बूल तथा पूगीफल प्रदान करती थी॥ ७॥

गृहीतमुखवासं तं संवेश्य च शुभासने।
गृहीत्वाज्ञां शरीरस्य चकार साधनं ततः॥ ८

च्यवनमुनिके मुखशुद्धि कर लेनेपर सुकन्या उन्हें सुन्दर आसनपर बिठा देती थी। तत्पश्चात् उनसे आज्ञा लेकर वह अपने शरीर-सम्बन्धी कृत्य सम्पन्न करती थी॥ ८॥

फलाहारं स्वयं कृत्वा पुनर्गत्वा च सन्निधौ।
प्रोवाच प्रणयोपेता किमाज्ञापयसे प्रभो॥ ९

पादसंवाहनं तेऽद्य करोमि यदि मन्यसे।
एवं सेवापरा नित्यं बभूव पतितत्परा॥ १०

सायं होमावसाने सा फलान्याहृत्य सुन्दरी।
अर्पयामास मुनये स्वादूनि च मृदूनि च॥ ११

ततः शेषाणि बुभुजे प्रेमयुक्ता तदाज्ञया।
सुस्पर्शास्तरणं कृत्वा शाययामास तं मुदा॥ १२

सुप्ते सुखं प्रिये कान्ता पादसंवाहनं तदा।
चकार पृच्छती धर्मं कुलस्त्रीणां कृशोदरी॥ १३

पादसंवाहनं कृत्वा निशि भक्तिपरायणा।
निद्रितं च मुनिं ज्ञात्वा सुष्वाप चरणान्तिके॥ १४

शुचौ प्रतिष्ठितं वीक्ष्य तालवृन्तेन भामिनी।
कुर्वाणा शीतलं वायुं सिषेवे स्वपतिं तदा॥ १५

हेमन्ते काष्ठसम्भारं कृत्वाग्निज्वलनं पुरः।
स्थापयित्वा तथापृच्छत्सुखं तेऽस्तीति चासकृत्॥ १६

ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय जलं पात्रं च मृत्तिकाम्।
समर्पयित्वा शौचार्थं समुत्थाप्य पतिं प्रिया॥ १७

स्थानाद्दूरे च संस्थाप्य दूरं गत्वा स्थिराभवत्।
कृतशौचं पतिं ज्ञात्वा गत्वा जग्राह तं पुनः॥ १८

आनीयाश्रममव्यग्रा चोपवेश्यासने शुभे।
मृज्जलाभ्यां च प्रक्षाल्य पादावस्य यथाविधि॥ १९

दत्त्वाचमनपात्रं तु दन्तधावनमाहरत्।
समर्प्य दन्तकाष्ठं च यथोक्तं नृपनन्दिनी॥ २०

चकारोष्णं जलं शुद्धं समानीतं सुपावनम्।
स्नानार्थं जलमाहृत्य पप्रच्छ प्रणयान्विता॥ २१

तत्पश्चात् स्वयं फलाहार करके वह पुनः मुनिके पास जाकर नम्रतापूर्वक उनसे कहती थी—'हे प्रभो! मुझे क्या आज्ञा दे रहे हैं? यदि आपकी सम्मति हो तो मैं अब आपके चरण दबाऊँ।' इस प्रकार पतिपरायणा वह सुकन्या उनकी सेवामें सदा संलग्न रहती थी॥ ९-१०॥

सायंकालीन हवन समाप्त हो जानेपर वह सुन्दरी स्वादिष्ट तथा मधुर फल लाकर मुनिको अर्पित करती थी। पुनः उनकी आज्ञासे भोजनसे बचे हुए आहारको बड़े प्रेमके साथ स्वयं ग्रहण करती थी। इसके बाद अत्यन्त कोमल तथा सुन्दर आसन बिछाकर उन्हें प्रेमपूर्वक उसपर लिटा देती थी॥ ११-१२॥

अपने प्रिय पतिके सुखपूर्वक शयन करनेपर वह सुन्दरी उनके पैर दबाने लगती थी। उस समय क्षीण कटि-प्रदेशवाली वह सुकन्या कुलीन स्त्रियोंके धर्मके विषयमें उनसे पूछा करती थी॥ १३॥

चरण दबा करके रातमें वह भक्तिपरायणा सुकन्या जब यह जान जाती थी कि च्यवनमुनि सो गये हैं, तब वह भी उनके चरणोंके पास ही सो जाती थी॥ १४॥

ग्रीष्मकालमें अपने पति च्यवनमुनिको बैठा देखकर वह सुन्दरी सुकन्या ताड़के पंखेसे शीतल वायु करती हुई उनकी सेवामें तत्पर रहती थी। शीतकालमें सूखी लकड़ियाँ एकत्रकर उनके सम्मुख प्रज्वलित अग्नि रख करके वह उनसे बार-बार पूछा करती थी कि आप सुखपूर्वक तो हैं?॥ १५-१६॥

ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर वह सुकन्या जल, पात्र तथा मिट्टी पतिके पास रखकर उन्हें शौचके लिये उठाती थी। इसके बाद उन्हें आश्रमसे कुछ दूर ले जाकर बैठा देनेके बाद वहाँसे स्वयं कुछ दूर हटकर बैठी रहती थी। 'मेरे पतिदेव शौच कर चुके होंगे'—ऐसा जानकर वह उनके पास जा करके उन्हें उठाती थी और आश्रममें ले आकर अत्यन्त सावधानीपूर्वक एक सुन्दर आसनपर बिठा देती थी। तत्पश्चात् मिट्टी और जलसे विधिवत् उनके दोनों चरण धोकर फिर आचमनपात्र दे करके दन्तधावन (दातौन) ले आती थी। शास्त्रोक्त दातौन मुनिको देनेके बाद वह राजकुमारी मुनिके स्नानके लिये लाये गये शुद्ध तथा परम पवित्र

किमाज्ञापयसे ब्रह्मन् कृतं वै दन्तधावनम्।
उष्णोदकं सुसम्पन्नं कुरु स्नानं समन्त्रकम्॥ २२

वर्तते होमकालोऽयं सन्ध्या पूर्वा प्रवर्तते।
विधिवद्धवनं कृत्वा देवतापूजनं कुरु॥ २३

जलको गरम करने लगती थी। तत्पश्चात् उस जलको ले आकर प्रेमपूर्वक उनसे पूछती थी—'हे ब्रह्मन्! आप क्या आज्ञा दे रहे हैं? आपने दन्तधावन तो कर लिया? उष्ण जल तैयार है, अतः अब आप मन्त्रोच्चारपूर्वक स्नान कर लीजिये। हवन और प्रातःकालीन संध्याका समय उपस्थित है; आप विधिपूर्वक अग्निहोत्र करके देवताओंका पूजन कीजिये'॥ १७—२३॥

एवं कन्या पतिं लब्ध्वा तपस्विनमनिन्दिता।
नित्यं पर्यचरत्प्रीत्या तपसा नियमेन च॥ २४

इस प्रकार वह श्रेष्ठ सुकन्या तपस्वी पति प्राप्तकर तप तथा नियमके साथ प्रेमपूर्वक प्रतिदिन उनकी सेवा करती रहती थी॥ २४॥

अग्नीनामतिथीनां च शुश्रूषां कुर्वती सदा।
आराधयामास मुदा च्यवनं सा शुभानना॥ २५

सुन्दर मुखवाली वह सुकन्या अग्नि तथा अतिथियोंकी सेवा करती हुई प्रसन्नतापूर्वक सदा च्यवनमुनिकी सेवामें तल्लीन रहती थी॥ २५॥

कस्मिंश्चिदथ काले तु रविजावश्विनावुभौ।
च्यवनस्याश्रमाभ्याशे क्रीडमानौ समागतौ॥ २६

किसी समय सूर्यके पुत्र दोनों अश्विनीकुमार क्रीड़ा करते हुए च्यवनमुनिके आश्रमके पास आ पहुँचे॥ २६॥

जले स्नात्वा तु तां कन्यां निवृत्तां स्वाश्रमं प्रति।
गच्छन्तीं चारुसर्वाङ्गीं रविपुत्रावपश्यताम्॥ २७

उन अश्विनीकुमारोंने जलमें स्नान करके निवृत्त हुई तथा अपने आश्रमकी ओर जाती हुई उस सर्वांगसुन्दरी सुकन्याको देख लिया॥ २७॥

तां दृष्ट्वा देवकन्याभां गत्वा चान्तिकमादरात्।
ऊचतुः समभिद्रुत्य नासत्यावतिमोहितौ॥ २८

देवकन्याके समान कान्तिवाली उस सुकन्याको देखकर दोनों अश्विनीकुमार अत्यधिक मुग्ध हो गये और शीघ्र ही उसके पास पहुँचकर आदरपूर्वक कहने लगे—॥ २८॥

क्षणं तिष्ठ वरारोहे प्रष्टुं त्वां गजगामिनि।
आवां देवसुतौ प्राप्तौ ब्रूहि सत्यं शुचिस्मिते॥ २९

पुत्री कस्य पतिः कस्ते कथमुद्यानमागता।
एकाकिनी तडागेऽस्मिन् स्नानार्थं चारुलोचने॥ ३०

हे वरारोहे! थोड़ी देर ठहरो। हे गजगामिनि! हम दोनों सूर्यदेवके पुत्र अश्विनीकुमार तुमसे कुछ पूछनेके लिये यहाँ आये हैं। हे शुचिस्मिते! सच-सच बताओ कि तुम किसकी पुत्री हो, तुम्हारे पति कौन हैं? हे चारुलोचने! इस सरोवरमें स्नान करनेके लिये तुम अकेली ही उद्यानमें क्यों आयी हुई हो?॥ २९-३०॥

द्वितीया श्रीरिवाभासि कान्त्या कमललोचने।
इच्छामस्तु वयं ज्ञातुं तत्त्वमाख्याहि शोभने॥ ३१

हे कमललोचने! तुम तो सौन्दर्यमें दूसरी लक्ष्मीकी भाँति प्रतीत हो रही हो। हे शोभने! हम यह रहस्य जानना चाहते हैं, तुम बताओ॥ ३१॥

कोमलौ चरणौ कान्ते स्थितौ भूमावनावृतौ।
हृदये कुरुतः पीडां चलन्तौ चललोचने॥ ३२

विमानार्हासि तन्वङ्गि कथं पद्भ्यां व्रजस्यदः।
अनावृतात्र विपिने किमर्थं गमनं तव॥ ३३

हे कान्ते! हे चंचल नयनोंवाली! जब तुम्हारे ये कोमल तथा नग्न चरण कठोर भूमिपर पड़ते हैं तथा आगेकी ओर बढ़ते हैं, तब ये हमारे हृदयमें व्यथा उत्पन्न करते हैं। हे तन्वंगि! तुम विमानपर चलनेयोग्य हो; तब तुम नंगे पाँव पैदल ही क्यों चल रही हो? इस वनमें तुम्हारा भ्रमण क्यों हो रहा है?॥ ३२-३३॥

दासीशतसमायुक्ता कथं न त्वं विनिर्गता।
राजपुत्र्यप्सरा वासि वद सत्यं वरानने॥ ३४

धन्या माता यतो जाता धन्योऽसौ जनकस्तव।
वक्तुं त्वां नैव शक्तौ च भर्तुर्भाग्यं तवानघे॥ ३५

देवलोकाधिका भूमिरियं चैव सुलोचने।
प्रचलंश्चरणस्तेऽद्य सम्पावयति भूतलम्॥ ३६

सौभाग्याश्च मृगाः कामं ये त्वां पश्यन्ति वै वने।
ये चान्ये पक्षिणः सर्वे भूरियं चातिपावना॥ ३७

स्तुत्यालं तव चात्यर्थं सत्यं ब्रूहि सुलोचने।
पिता कस्ते पतिः क्वासौ द्रष्टुमिच्छास्ति सादरम्॥ ३८

व्यास उवाच

तयोरिति वचः श्रुत्वा राजकन्यातिसुन्दरी।
तावुवाच त्रपाक्रान्ता देवपुत्री नृपात्मजा॥ ३९

शर्यातितनयां मां वां वित्तं भार्यां मुनेरिह।
च्यवनस्य सतीं कान्तां पित्रा दत्तां यदृच्छया॥ ४०

पतिरन्धोऽस्ति मे देवौ वृद्धश्चातीव तापसः।
तस्य सेवामहोरात्रं करोमि प्रीतिमानसा॥ ४१

कौ युवां किमिहायातौ पतिस्तिष्ठति चाश्रमे।
तत्रागत्य प्रकुरुतमाश्रमं चाद्य पावनम्॥ ४२

तदाकर्ण्य वचो दस्त्रावूचतुस्तां नराधिप।
कथं त्वमपि कल्याणि पित्रा दत्ता तपस्विने॥ ४३

भ्राजसेऽस्मिन्वनोद्देशे विद्युत्सौदामिनी यथा।
न देवेष्वपि तुल्या हि तव दृष्टास्ति भामिनि॥ ४४

तुम सैकड़ों दासियोंको साथ लेकर घरसे क्यों नहीं निकली? हे वरानने! तुम राजपुत्री हो अथवा अप्सरा हो, यह सच-सच बता दो॥ ३४॥

तुम्हारी माता धन्य हैं, जिनसे तुम उत्पन्न हुई हो। तुम्हारे वे पिता भी धन्य हैं। हे अनघे! तुम्हारे पतिके भाग्यके विषयमें तो हम तुमसे कह ही नहीं सकते॥ ३५॥

हे सुलोचने! यहाँकी भूमि देवलोकसे भी बढ़कर है। पृथ्वीतलपर पड़ता हुआ तुम्हारा चरण इसे पवित्र बना रहा है॥ ३६॥

इस वनमें रहनेवाले सभी मृग तथा दूसरे पक्षी जो तुम्हें देख रहे हैं, वे परम भाग्यशाली हैं। यह भूमि भी परम पवित्र हो गयी है॥ ३७॥

हे सुलोचने! तुम्हारी अधिक प्रशंसा क्या करें? अब तुम सत्य बता दो कि तुम्हारे पिता कौन हैं और तुम्हारे पतिदेव कहाँ रहते हैं? उन्हें आदरपूर्वक देखनेकी हमारी इच्छा है॥ ३८॥

व्यासजी बोले—अश्विनीकुमारोंकी यह बात सुनकर परम सुन्दरी राजकुमारी सुकन्या अत्यन्त लज्जित हो गयी। देवकन्याके सदृश वह राजपुत्री उनसे कहने लगी—॥ ३९॥

आपलोग मुझे राजा शर्यातिकी पुत्री तथा च्यवन-मुनिकी भार्या समझें। मैं एक पतिव्रता स्त्री हूँ। मेरे पिताजीने स्वेच्छासे मुझे इन्हें सौंप दिया है॥ ४०॥

हे देवताओ! मेरे पतिदेव वृद्ध तथा नेत्रहीन हैं। वे परम तपस्वी हैं। मैं प्रसन्न मनसे दिन-रात उनकी सेवा करती रहती हूँ॥ ४१॥

आप दोनों कौन हैं और यहाँ क्यों पधारे हुए हैं? मेरे पतिदेव इस समय आश्रममें विराजमान हैं। आपलोग वहाँ चलकर आश्रमको पवित्र कीजिये॥ ४२॥

हे राजन्! अश्विनीकुमारोंने सुकन्याकी बात सुनकर उससे कहा—हे कल्याणि! तुम्हारे पिताने तुम्हें उन तपस्वीको कैसे सौंप दिया?॥ ४३॥

तुम तो बादलमें चमकनेवाली विद्युत्‌की भाँति इस वन-प्रदेशमें सुशोभित हो रही हो। हे भामिनि! तुम्हारे सदृश स्त्री तो देवताओंके यहाँ भी नहीं देखी गयी है॥ ४४॥

त्वं दिव्याम्बरयोग्यासि शोभसे नाजिनैर्वृता।
सर्वाभरणसंयुक्ता नीलालकवरूथिनी॥ ४५

अहो विधेर्दुष्कलितं विचेष्टितं
यदत्र रम्भोरु वने विषीदसि।
विशालनेत्रेऽन्धमिमं पतिं प्रिये
मुनिं समासाद्य जरातुरं भृशम्॥ ४६

वृथा वृतस्तेन भृशं न शोभसे
नवं वयः प्राप्य सुनृत्यपण्डिते।
मनोभवेनाशु शराः सुसन्धिताः
पतन्ति कस्मिन्पतिरीदृशस्तव॥ ४७

त्वमन्धभार्या नवयौवनान्विता
कृतासि धात्रा ननु मन्दबुद्धिना।
न चैनमर्हस्यसितायतेक्षणे
पतिं त्वमन्यं कुरु चारुलोचने॥ ४८

वृथैव ते जीवितमम्बुजेक्षणे
पतिं च सम्प्राप्य मुनिं गतेक्षणम्।
वने निवासं च तथाजिनाम्बर-
प्रधारणं योग्यतरं न मन्महे॥ ४९

अतोऽनवद्याङ्ग्युभयोस्त्वमेकं
वरं कुरुष्वावहिता सुलोचने।
किं यौवनं मानिनि सङ्करोषि
वृथा मुनिं सुन्दरि सेवमाना॥ ५०

किं सेवसे भाग्यविवर्जितं तं
समुज्झितं पोषणरक्षणाभ्याम्।
त्यक्त्वा मुनिं सर्वसुखापवर्जितं
भजानवद्याङ्ग्युभयोस्त्वमेकम्॥ ५१

त्वं नन्दने चैत्ररथे वने च
कुरुष्व कान्ते प्रथितं विहारम्।
अन्धेन वृद्धेन कथं हि कालं
विनेष्यसे मानिनि मानहीनम्॥ ५२

काले केशपाशवाली तुम दिव्य वस्त्र तथा सर्वविध आभूषण धारण करनेके योग्य हो। इन वल्कल वस्त्रोंको धारण करके तुम शोभा नहीं पा रही हो॥ ४५॥

हे रम्भोरु! हे विशालनेत्रे! हे प्रिये! विधाताने यह कैसा मूर्खतापूर्ण कृत्य किया है, जो कि तुम वार्धक्यसे पीड़ित इस नेत्रहीन मुनिको पतिरूपमें प्राप्त करके इस वनमें महान् कष्ट भोग रही हो!॥ ४६॥

हे नृत्यविशारदे! तुमने इन्हें व्यर्थ ही वरण किया। नवीन अवस्था प्राप्त करके तुम उनके साथ शोभा नहीं पा रही हो। भलीभाँति लक्ष्य साध करके कामदेवके द्वारा वेगपूर्वक छोड़े गये बाण किसपर गिरेंगे; तुम्हारे पति तो इस प्रकारके [असमर्थ] हैं॥ ४७॥

विधाता निश्चय ही मन्द बुद्धिवाले हैं, जो उन्होंने नवयौवनसे सम्पन्न तुम्हें नेत्रहीनकी पत्नी बना दिया। हे विशाललोचने! तुम इनके योग्य नहीं हो। अतः हे चारुलोचने! तुम किसी दूसरेको अपना पति बना लो॥ ४८॥

हे कमललोचने! ऐसे नेत्रहीन मुनिको पतिरूपमें पाकर तुम्हारा जीवन व्यर्थ हो गया है। हमलोग इस तरहसे वनमें तुम्हारे निवास करने तथा वल्कलवस्त्र धारण करनेको उचित नहीं मानते हैं॥ ४९॥

अतः हे प्रशस्त अंगोंवाली! तुम सम्यक् विचार करके हम दोनोंमेंसे किसी एकको अपना पति बना लो। हे सुलोचने! हे मानिनि! हे सुन्दरि! तुम इस [अन्धे तथा बूढ़े] मुनिकी सेवा करती हुई अपने यौवनको व्यर्थ क्यों कर रही हो?॥ ५०॥

भाग्यसे हीन तथा पोषण-भरण और रक्षाके सामर्थ्यसे रहित उस मुनिकी सेवा तुम क्यों कर रही हो? हे निर्दोष अंगोंवाली! सभी प्रकारके सुखोपभोगोंसे वंचित इस मुनिको छोड़कर तुम हम दोनोंमेंसे किसी एकको स्वीकार कर लो॥ ५१॥

हे कान्ते! हमें वरण करके तुम इन्द्रके नन्दनवनमें तथा कुबेरके चैत्ररथवनमें स्वेच्छापूर्वक विहार करो। हे मानिनि! तुम इस अन्धे तथा वृद्धके साथ अपमानित होकर अपना जीवन कैसे बिताओगी?॥ ५२॥

भूपात्मजा त्वं शुभलक्षणा च
जानासि संसारविहारभावम्।
भाग्येन हीना विजने वनेऽत्र
कालं कथं वाहयसे वृथा च॥ ५३

तुम समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न एक राजकुमारी हो तथा सांसारिक हाव-भावोंको भलीभाँति जानती हो। अतः तुम भाग्यहीन स्त्रीकी भाँति इस निर्जन वनमें अपना समय व्यर्थ क्यों बिता रही हो?॥ ५३॥

तस्माद्भजस्व पिकभाषिणि चारुवक्त्रे
एवं द्वयोस्तव सुखाय विशालनेत्रे।
देवालयेषु च कृशोदरि भुङ्क्ष्व भोगां-
स्त्यक्त्वा मुनिं जरठमाशु नृपेन्द्रपुत्रि॥ ५४

अतः हे पिकभाषिणि! हे सुमुखि! हे विशालनेत्रे! तुम अपने सुखके लिये हम दोनोंमेंसे किसी एकको स्वीकार कर लो। कृश कटि-प्रदेशवाली हे राजकुमारी! तुम इस वृद्ध मुनिको शीघ्र छोड़कर हमारे साथ देवभवनोंमें चलकर नानाविध सुखोंका भोग करो॥ ५४॥

किं ते सुखं चात्र वने सुकेशि
वृद्धेन सार्धं विजने मृगाक्षि।
सेवा तथान्धस्य नवं वयश्च
किं ते मतं भूपतिपुत्रि दुःखम्॥ ५५

हे सुन्दर केशोंवाली! हे मृगनयनी! इस निर्जन वनमें एक वृद्धके साथ रहते हुए तुम्हें कौन-सा सुख है? एक तो तुम्हारी यह नयी युवावस्था और उसपर भी एक अन्धेकी सेवा तुम्हें करनी पड़ रही है। हे राजकुमारी! क्या दुःख भोगना ही तुम्हारा अभीष्ट है?॥ ५५॥

शशिमुखि त्वमतीव सुकोमला
फलजलाहरणं तव नोचितम्॥ ५६

हे चन्द्रमुखी! तुम अत्यन्त कोमल हो, अतः [वनसे] तुम्हारा इस प्रकार फल तथा जल ले आना कदापि उचित नहीं है॥ ५६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे अश्विनीकुमारयोः सुकन्यां प्रति बोधवचनवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥



अथ पञ्चमोऽध्यायः

अश्विनीकुमारोंका च्यवनमुनिको नेत्र तथा नवयौवनसे सम्पन्न बनाना

व्यास उवाच

तयोस्तद्भाषितं श्रुत्वा वेपमाना नृपात्मजा।
धैर्यमालम्ब्य तौ तत्र बभाषे मितभाषिणी॥ १

व्यासजी बोले—उन अश्विनीकुमारोंकी वह बात सुनकर मितभाषिणी राजपुत्री सुकन्या थर-थर काँपने लगी और धैर्य धारण करके उनसे बोली॥ १॥

देवौ वां रविपुत्रौ च सर्वज्ञौ सुरसम्मतौ।
सतीं मां धर्मशीलां च नैवं वदितुमर्हथः॥ २

हे देवताओ! आप दोनों सूर्यपुत्र हैं। आपलोग सर्वज्ञ तथा देवताओंमें सम्मान्य हैं। मुझ पतिव्रता तथा धर्मपरायणा स्त्रीके प्रति आपको ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये॥ २॥

पित्रा दत्ता सुरश्रेष्ठौ मुनये योगधर्मिणे।
कथं गच्छामि तं मार्गं पुंश्चलीगणसेवितम्॥ ३

हे सुरश्रेष्ठो! मेरे पिताजीने मुझे इन्हीं योग-परायण मुनिको सौंप दिया है, तब मैं व्यभिचारिणी स्त्रियोंके द्वारा सेवित उस मार्गका अनुसरण कैसे करूँ?॥ ३॥

द्रष्टायं सर्वलोकस्य कर्मसाक्षी दिवाकरः।
कश्यपाच्चैव सम्भूतो नैवं भाषितुमर्हथः॥ ४

कुलकन्या पतिं त्यक्त्वा कथमन्यं भजेन्नरम्।
असारेऽस्मिन्हि संसारे जानन्तौ धर्मनिर्णयम्॥ ५

यथेच्छं गच्छतं देवौ शापं दास्यामि वानघौ।
सुकन्याहं च शर्यातेः पतिभक्तिपरायणा॥ ६

व्यास उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्या नासत्यौ विस्मितौ भृशम्।
तावब्रूतां पुनस्त्वेनां शङ्कमानौ भयं मुनेः॥ ७

राजपुत्रि प्रसन्नौ ते धर्मेण वरवर्णिनि।
वरं वरय सुश्रोणि दास्यावः श्रेयसे तव॥ ८

जानीहि प्रमदे नूनमावां देवभिषग्वरौ।
युवानं रूपसम्पन्नं प्रकुर्याव: पतिं तव॥ ९

ततस्त्रयाणामस्माकं पतिमेकतमं वृणु।
समानरूपदेहानां मध्ये चातुर्यपण्डिते॥ १०

सा तयोर्वचनं श्रुत्वा विस्मिता स्वपतिं तदा।
गत्वोवाच तयोर्वाक्यं ताभ्यामुक्तं यदद्भुतम्॥ ११

सुकन्योवाच

स्वामिन् सूर्यसुतौ देवौ सम्प्राप्तौ च्यवनाश्रमे।
दृष्टौ मया दिव्यदेहौ नासत्यौ भृगुनन्दन॥ १२

वीक्ष्य मां चारुसर्वाङ्गीं जातौ कामातुरावुभौ।
कथितं वचनं स्वामिन् पतिं ते नवयौवनम्॥ १३

दिव्यदेहं करिष्यावश्चक्षुष्मन्तं मुनिं किल।
एतेन समयेनाद्य तं शृणु त्वं मयोदितम्॥ १४

कश्यपसे उत्पन्न हुए भगवान् सूर्य समस्त प्राणियोंके कर्मोंके साक्षी हैं। ये सब कुछ देखते रहते हैं। [इन्हींके साक्षात् पुत्ररूप] आपलोगोंको ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये॥ ४॥

कोई भी कुलीन कन्या अपने पतिको छोड़कर किसी अन्य पुरुषको इस सारहीन जगत्में भला कैसे स्वीकार कर सकती है? धर्मसिद्धान्तोंको जाननेवाले आप दोनों अपनी इच्छाके अनुसार जहाँ चाहें चले जाइये, अन्यथा हे निष्पाप देवताओ! मैं आपलोंगोको शाप दे दूँगी; पतिकी भक्तिमें तत्पर रहनेवाली मैं महाराज शर्यातिकी पुत्री सुकन्या हूँ॥ ५-६॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] सुकन्याकी यह बात सुनकर अश्विनीकुमार बहुत विस्मयमें पड़ गये। उसके बाद मुनि च्यवनके भयसे सशंकित उन दोनोंने सुकन्यासे कहा—॥ ७॥

सुन्दर अंगोंवाली हे राजपुत्रि! तुम्हारे इस पतिधर्मसे हम दोनों परम प्रसन्न हैं। हे सुश्रोणि! तुम वर माँगो, हम तुम्हारे कल्याणार्थ अवश्य देंगे॥ ८॥

हे प्रमदे! तुम यह निश्चय जान लो कि हम देवताओंके श्रेष्ठ वैद्य हैं। हम [अपनी चिकित्सासे] तुम्हारे पतिको रूपवान् तथा युवा बना देंगे। हे चातुर्यपण्डिते! जब हम ऐसा कर दें, तब तुम समानरूप और देहवाले हम तीनोंमेंसे किसी एकको पति चुन लेना॥ ९-१०॥

तब उन दोनोंकी बात सुनकर सुकन्याको बड़ा आश्चर्य हुआ। अपने पतिके पास जाकर वह सुकन्या अश्विनीकुमारोंके द्वारा कही गयी वह अद्भुत बात उनसे कहने लगी॥ ११॥

सुकन्या बोली—हे स्वामिन्! आपके आश्रममें सूर्यपुत्र दोनों अश्विनीकुमार आये हुए हैं। हे भृगुनन्दन! दिव्य देहवाले उन देवताओंको मैंने स्वयं देखा है॥ १२॥

मुझ सर्वांगसुन्दरीको देखते ही वे दोनों कामासक्त हो गये। हे स्वामिन्! उन्होंने मुझसे यह बात कही—'हमलोग तुम्हारे पति इन च्यवनमुनिको निश्चय ही नवयौवनसे सम्पन्न, दिव्य शरीरवाला तथा नेत्रोंसे युक्त बना देंगे, इसमें यह एक शर्त है, उसे तुम मुझसे सुन

समावयवरूपं च करिष्यावः पतिं तव।
तत्र त्रयाणामस्माकं पतिमेकतमं वृणु॥ १५

तच्छ्रुत्वाहमिहायाता प्रष्टुं त्वां कार्यमद्भुतम्।
किं कर्तव्यमतः साधो ब्रूह्यस्मिन्कार्यसङ्कटे॥ १६

देवमायापि दुर्ज्ञेया न जाने कपटं तयोः।
यदाज्ञापय सर्वज्ञ तत्करोमि तवेप्सितम्॥ १७

च्यवन उवाच

गच्छ कान्तेऽद्य नासत्यौ वचनान्मम सुव्रते।
आनयस्व समीपं मे शीघ्रं देवभिषग्वरौ॥ १८

क्रियतामाशु तद्वाक्यं नात्र कार्या विचारणा।

व्यास उवाच

एवं सा समनुज्ञाता तत्र गत्वा वचोऽब्रवीत्॥ १९

क्रियतामाशु नासत्यौ समयेन सुरोत्तमौ।
तच्छ्रुत्वा चाश्विनौ वाक्यं तस्यास्तौ तत्र चागतौ॥ २०

ऊचतू राजपुत्रीं तां पतिस्तव विशत्वपः।
रूपार्थं च्यवनस्तूर्णं ततोऽम्भः प्रविवेश ह॥ २१

अश्विनावपि पश्चात्तत्प्रविष्टौ सर उत्तमम्।
ततस्ते निःसृतास्तस्मात्सरसस्तत्क्षणात्त्रयः॥ २२

तुल्यरूपा दिव्यदेहा युवानः सदृशाः किल।
दिव्यकुण्डलभूषाढ्याः समानावयवास्तथा॥ २३

तेऽब्रुवन्सहिताः सर्वे वृणीष्व वरवर्णिनि।
अस्माकमीप्सितं भद्रे पतिं त्वममलानने॥ २४
यस्मिन्वाप्यधिका प्रीतिस्तं वृणुष्व वरानने।

लो। जब हम तुम्हारे पतिको अपने समान अंग तथा रूपवाला बना दें, तब तुम्हें हम तीनोंमेंसे किसी एकको पति चुन लेना होगा'॥ १३—१५॥

उनकी यह बात सुनकर आपसे इस अद्भुत कार्यके विषयमें पूछनेके लिये मैं यहाँ आयी हूँ। हे साधो! अब आप मुझे बतायें कि इस संकटमय कार्यके आ जानेपर मुझे क्या करना चाहिये? देवताओंकी माया बड़ी दुर्बोध होती है। उन दोनोंके इस छद्मको मैं नहीं समझ पा रही हूँ। अतः हे सर्वज्ञ! अब आप ही मुझे आदेश दीजिये, आपकी जो इच्छा होगी, मैं वही करूँगी॥ १६-१७॥

च्यवन बोले—हे कान्ते! हे सुव्रते! मेरी आज्ञाके अनुसार तुम देवताओंके श्रेष्ठ चिकित्सक अश्विनी-कुमारोंके समीप जाओ और उन्हें मेरे पास शीघ्र ले आओ। तुम उनकी शर्त तुरंत स्वीकार कर लो, इसमें किसी प्रकारका सोच-विचार नहीं करना चाहिये॥ १८½॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार च्यवनमुनिकी आज्ञा पा जानेपर वह अश्विनीकुमारोंके पास जाकर उनसे बोली—हे देवश्रेष्ठ अश्विनीकुमारो! आपलोग प्रतिज्ञाके अनुसार शीघ्र ही कार्य करें॥ १९½॥

सुकन्याकी बात सुनकर वे अश्विनीकुमार वहाँ आये और राजकुमारीसे बोले—'तुम्हारे पति इस सरोवरमें प्रवेश करें।' तब रूपप्राप्तिके लिये च्यवनमुनि शीघ्रतापूर्वक सरोवरमें प्रविष्ट हो गये। उनके बादमें दोनों अश्विनीकुमारोंने भी उस उत्तम सरोवरमें प्रवेश किया॥ २०-२१½॥

तदनन्तर वे तीनों तुरंत ही उस सरोवरसे बाहर निकल आये। उन तीनोंका शरीर दिव्य था, वे समान रूपवाले थे और एकसमान युवा बन गये थे। शरीरके सभी समान अंगोंवाले वे तीनों युवक दिव्य कुण्डलों तथा आभूषणोंसे सुशोभित थे॥ २२-२३॥

वे सभी एक साथ बोल उठे—'हे वरवर्णिनि! हे भद्रे! हे अमलानने! हम लोगोंमें जिसे तुम चाहती हो, उसका पतिरूपमें वरण कर लो। हे वरानने! जिसमें तुम्हारी सबसे अधिक प्रीति हो, उसे पतिरूपमें चुन लो॥ २४½॥

व्यास उवाच

सा दृष्ट्वा तुल्यरूपांस्तान्समानवयसस्तथा॥ २५

एकस्वरांस्तुल्यवेषांस्त्रीन्वै देवसुतोपमान्।
सा तु संशयमापन्ना वीक्ष्य तान्सदृशाकृतीन्॥ २६

अजानन्ती पतिं सम्यग्व्याकुला समचिन्तयत्।
किं करोमि त्रयस्तुल्याः कं वृणोमि न वेद्म्यहम्॥ २७

पतिं देवसुता ह्येते संशये पतितास्म्यहम्।
इन्द्रजालमिदं सम्यग्देवाभ्यामिह कल्पितम्॥ २८

कर्तव्यं किं मया चात्र मरणं समुपागतम्।
न मया पतिमुत्सृज्य वरणीयः कथञ्चन॥ २९

देवस्त्वाधुनिकः कश्चिदित्येषा मम धारणा।
इति सञ्चिन्त्य मनसा परां विश्वेश्वरीं शिवाम्॥ ३०

दध्यौ भगवतीं देवीं तुष्टाव च कृशोदरी।

सुकन्योवाच

शरणं त्वां जगन्मातः प्राप्तास्मि भृशदुःखिता॥ ३१

रक्ष मेऽद्य सतीधर्मं नमामि चरणौ तव।
नमः पद्मोद्भवे देवि नमः शङ्करवल्लभे॥ ३२

विष्णुप्रिये नमो लक्ष्मि वेदमातः सरस्वति।
इदं जगत्त्वया सृष्टं सर्वं स्थावरजङ्गमम्॥ ३३

पासि त्वमिदमव्यग्रा तथात्सि लोकशान्तये।
ब्रह्मविष्णुमहेशानां जननी त्वं सुसम्मता॥ ३४

बुद्धिदासि त्वमज्ञानां ज्ञानिनां मोक्षदा सदा।
आज्ञा त्वं प्रकृतिः पूर्णा पुरुषप्रियदर्शना॥ ३५

भुक्तिमुक्तिप्रदासि त्वं प्राणिनां विशदात्मनाम्।
अज्ञानां दुःखदा कामं सत्त्वानां सुखसाधना॥ ३६
सिद्धिदा योगिनामम्ब जयदा कीर्तिदा पुनः।

व्यासजी बोले—देवकुमारोंके समान प्रतीत होनेवाले उन तीनोंको रूप, अवस्था, स्वर, वेषभूषा तथा आकृतिमें पूर्णतः एक-जैसा देखकर वह सुकन्या बड़े असमंजसमें पड़ गयी॥ २५-२६॥

वह अपने पति [च्यवनमुनि]-को ठीक-ठीक पहचान नहीं पा रही थी, अतः व्याकुल होकर सोचने लगी—मैं क्या करूँ? ये तीनों देवकुमार एक-जैसे हैं। अतः मैं यह नहीं समझ पा रही हूँ कि इनमेंसे मैं पतिरूपमें किसका वरण करूँ? मैं तो बड़े संशयकी स्थितिमें पड़ गयी हूँ। दोनों देवताओं (अश्विनीकुमारों)-ने यह विचित्र इन्द्रजाल यहाँ रच डाला है; इस स्थितिमें मुझे अब क्या करना चाहिये? मेरे लिये तो यह मृत्यु ही उपस्थित हो गयी है। मैं अपने पतिको छोड़कर किसी दूसरेको कभी नहीं चुन सकती, चाहे वह कोई परम सुन्दर देवता ही क्यों न हो—यह मेरा दृढ़ विचार है॥ २७—२९½॥

इस प्रकार मनमें भलीभाँति सोचकर क्षीण कटि-प्रदेशवाली वह सुकन्या कल्याणस्वरूपिणी पराम्बा भगवती भुवनेश्वरीके ध्यानमें लीन हो गयी और उनकी स्तुति करने लगी॥ ३०½॥

सुकन्या बोली—हे जगदम्बे! मैं महान् कष्टसे पीड़ित होकर आपकी शरणमें आयी हूँ। आप मेरे पातिव्रत्य धर्मकी रक्षा करें; मैं आपके चरणोंमें प्रणाम करती हूँ। हे पद्मोद्भवे! आपको नमस्कार है। हे शंकरप्रिये! हे देवि! आपको नमस्कार है। हे विष्णुकी प्रिया लक्ष्मी! हे वेदमाता सरस्वती! आपको नमस्कार है॥ ३१-३२½॥

आपने ही इस सम्पूर्ण चराचर जगत्का सृजन किया है। आप ही सावधान होकर जगत्का पालन करती हैं और [प्रलयकालमें] लोक-शान्तिके लिये इसे अपनेमें लीन भी कर लेती हैं॥ ३३½॥

आप ब्रह्मा, विष्णु तथा महेशकी सुसम्मत जननी हैं। आप अज्ञानियोंको बुद्धि तथा ज्ञानियोंको सदा मोक्ष प्रदान करनेवाली हैं। परम पुरुषके लिये प्रिय दर्शनवाली आप आज्ञामयी तथा पूर्ण प्रकृतिस्वरूपिणी हैं। आप श्रेष्ठ विचारवाले प्राणियोंको भोग तथा मोक्ष प्रदान करती हैं। आप ही अज्ञानियोंको दुःख देती हैं तथा सात्त्विक प्राणियोंके सुखका साधन भी आप ही हैं। हे माता! आप ही योगिजनोंको सिद्धि, विजय तथा कीर्ति भी प्रदान करती हैं॥ ३४—३६½॥

शरणं त्वां प्रपन्नास्मि विस्मयं परमं गता॥ ३७

पतिं दर्शय मे मातर्मग्नास्मि शोकसागरे।
देवाभ्यां चरितं कूटं कं वृणोमि विमोहिता॥ ३८

पतिं दर्शय सर्वज्ञे विदित्वा मे सतीव्रतम्।

व्यास उवाच

एवं स्तुता तदा देवी तथा त्रिपुरसुन्दरी॥ ३९

हृदयेऽस्यास्तदा ज्ञानं ददावाशु सुखोदयम्।
निश्चित्य मनसा तुल्यवयोरूपधरान्सती॥ ४०

प्रसमीक्ष्य तु तान्सर्वान्वव्रे बाला स्वकं पतिम्।
वृतेऽथ च्यवने देवौ सन्तुष्टौ तौ बभूवतुः॥ ४१

सतीधर्मं समालोक्य सम्प्रीतौ ददतुर्वरम्।
भगवत्याः प्रसादेन प्रसन्नौ तौ सुरोत्तमौ॥ ४२

मुनिमामन्त्र्य तरसा गमनायोद्यतावुभौ।
लब्ध्वा तु च्यवनो रूपं नेत्रे भार्यां च यौवनम्॥ ४३

हृष्टोऽब्रवीन्महातेजास्तौ नासत्याविदं वचः।
उपकारः कृतोऽयं मे युवाभ्यां सुरसत्तमौ॥ ४४

किं ब्रवीमि सुखं प्राप्तं संसारेऽस्मिन्ननुत्तमे।
प्राप्य भार्यां सुकेशान्तां दुःखं मेऽभवदन्वहम्॥ ४५

अन्धस्य चातिवृद्धस्य भोगहीनस्य कानने।
युवाभ्यां नयने दत्ते यौवनं रूपमद्भुतम्॥ ४६

सम्पादितं ततः किञ्चिदुपकर्तुमहं ब्रुवे।
उपकारिणि मित्रे यो नोपकुर्यात्कथञ्चन॥ ४७
तं धिगस्तु नरं देवौ भवेच्च ऋणवान्भुवि।

हे माता! महान् असमंजसमें पड़ी हुई मैं इस समय आपकी शरणमें आयी हूँ। आप मेरे पतिको दिखानेकी कृपा करें। मैं इस समय शोक-सागरमें डूबी हुई हूँ; क्योंकि इन दोनों देवताओं (अश्विनीकुमारों)-ने अत्यन्त कपटपूर्ण चरित्र उपस्थित कर दिया है। मेरी बुद्धि तो कुण्ठित हो गयी है। मैं इनमें किसका वरण करूँ? हे सर्वज्ञे! मेरे पातिव्रत्यपर सम्यक् ध्यान देकर आप मेरे पतिका दर्शन करा दें॥ ३७-३८½ ॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार सुकन्याके स्तुति करनेपर भगवती त्रिपुरसुन्दरीने शीघ्र ही सुखका उदय करनेवाला ज्ञान उसके हृदयमें उत्पन्न कर दिया॥ ३९½ ॥

तदनन्तर [अपने पतिको पा लेनेका] मनमें निश्चय करके साध्वी सुकन्याने समान रूप तथा अवस्थावाले उन तीनोंपर भलीभाँति दृष्टिपात करके अपने पतिका वरण कर लिया॥ ४०½ ॥

इस प्रकार सुकन्याके द्वारा च्यवनमुनिके वरण कर लिये जानेपर वे दोनों देवता परम सन्तुष्ट हुए और सुकन्याका सतीधर्म देखकर उन्होंने उसे अति प्रसन्नतापूर्वक वर प्रदान किया॥ ४१½ ॥

तत्पश्चात् भगवतीकी कृपासे प्रसन्नताको प्राप्त वे दोनों देवश्रेष्ठ अश्विनीकुमार मुनिसे आज्ञा लेकर तुरंत वहाँसे प्रस्थान करनेको उद्यत हो गये॥ ४२॥

सुन्दर रूप, नेत्र, यौवन तथा अपनी भार्याको पाकर च्यवनमुनि अत्यन्त हर्षित हुए। उन महातेजस्वी मुनिने अश्विनीकुमारोंसे यह वचन कहा—हे देववरो! आप दोनोंने मेरा यह महान् उपकार किया है। क्या कहूँ, ऐसा हो जानेसे इस सुन्दर संसारमें अब मुझे परम सुख मिल गया है। इसके पूर्व मुझ अन्धे, अत्यन्त वृद्ध तथा भोग-सामर्थ्यसे हीन पुरुषको ऐसी सुन्दर केशपाशवाली भार्या पाकर भी इस वनमें सदा दुःख-ही-दुःख रहता था॥ ४३—४५½ ॥

आपलोगोंने मुझे नेत्र, युवावस्था तथा अद्भुत रूप प्रदान किया है, अतः मैं भी आपका कुछ उपकार करूँ; इसके लिये आपसे प्रार्थना कर रहा हूँ। हे देवताओ! जो मनुष्य उपकार करनेवाले मित्रका किसी प्रकारका उपकार नहीं करता, उस मनुष्यको धिक्कार है। ऐसा मनुष्य पृथ्वीलोकमें अपने उपकारी मित्रका ऋणी होता है॥ ४६-४७½ ॥

तस्माद्वां वाञ्छितं किञ्चिद्दातुमिच्छामि साम्प्रतम्॥ ४८

आत्मनो ऋणमोक्षाय देवेशौ नूतनस्य च।
प्रार्थितं वां प्रदास्यामि यदलभ्यं सुरासुरैः॥ ४९

ब्रुवाथां वां मनोद्दिष्टं प्रीतोऽस्मि सुकृतेन वाम्।
श्रुत्वा तौ तु मुनेर्वाक्यमभिमन्त्र्य परस्परम्॥ ५०

तमूचतुर्मुनिश्रेष्ठं सुकन्यासहितं स्थितम्।
मुने पितुः प्रसादेन सर्वं नो मनसेप्सितम्॥ ५१

उत्कण्ठा सोमपानस्य वर्तते नौ सुरैः सह।
भिषजाविति देवेन निषिद्धौ चमसग्रहे॥ ५२

शक्रेण वितते यज्ञे ब्रह्मणः कनकाचले।
तस्मात्त्वमपि धर्मज्ञ यदि शक्तोऽसि तापस॥ ५३

कार्यमेतद्धि कर्तव्यं वाञ्छितं नौ सुसम्मतम्।
एतद्विज्ञाय वा ब्रह्मन्कुरु वां सोमपायिनौ॥ ५४

पिपासास्ति सुदुष्प्रापा त्वत्तः समुपयास्यति।
च्यवनस्तु तयोः प्राह तच्छ्रुत्वा वचनं मृदु॥ ५५

यदहं रूपसम्पन्नो वयसा च समन्वितः।
कृतो भवद्भ्यां वृद्धः सन्भार्यां च प्राप्तवानिति॥ ५६

तस्माद्युवां करिष्यामि प्रीत्याहं सोमपायिनौ।
मिषतो देवराजस्य सत्यमेतद् ब्रवीम्यहम्॥ ५७

राज्ञस्तु वितते यज्ञे शर्यातेरमितद्युतेः।
इत्याकर्ण्य वचो हृष्टौ तौ दिवं प्रतिजग्मतुः॥ ५८

च्यवनस्तां गृहीत्वा तु जगामाश्रममण्डलम्॥ ५९

अतएव हे देवेश्वरो! मुझे नूतन शरीर प्रदान करनेके आपके ऋणसे मुक्तिके लिये मैं इस समय आपकी कोई अभिलषित वस्तु आपको प्रदान करना चाहता हूँ। मैं आप दोनोंको वह अभीष्ट वस्तु प्रदान करूँगा, जो देवताओं तथा दानवोंके लिये भी अलभ्य है। मैं आपलोगोंके इस उत्तम कार्यसे बहुत प्रसन्न हूँ; अब आपलोग अपना मनोरथ व्यक्त करें॥ ४८-४९½ ॥

च्यवनमुनिका वचन सुनकर परस्पर विचार-विमर्श करके वे दोनों अश्विनीकुमार सुकन्याके साथ बैठे हुए उन मुनिश्रेष्ठसे कहने लगे—हे मुने! पिताजीकी कृपासे हमारा सारा मनोरथ पूर्ण हो चुका है, किंतु देवताओंके साथ सम्मिलित होकर सोमरस पीनेकी हमारी इच्छा शेष रह गयी है। एक बार सुमेरुपर्वतपर ब्रह्माजीके महायज्ञमें इन्द्रदेवने हम दोनोंको 'वैद्य' कहकर सोमपात्र ग्रहण करनेसे रोक दिया था। अतएव हे धर्मज्ञ! हे तापस! यदि आप समर्थ हों तो हमारा यह कार्य कर दीजिये। हे ब्रह्मन्! हमारी इस प्रिय इच्छापर विचार करके आप हम दोनोंको सोमपानका अधिकारी बना दीजिये। सोमपानकी अभिलाषा हमारे लिये अत्यन्त दुर्लभ हो गयी है, वह आपसे शान्त हो जायगी॥ ५०—५४½ ॥

उन दोनोंकी यह बात सुनकर च्यवनमुनिने मधुर वाणीमें कहा—आप दोनोंने मुझ वृद्धको रूपवान् तथा युवावस्थासे सम्पन्न बना दिया है और [आपके अनुग्रहसे] मैंने साध्वी भार्या भी प्राप्त कर ली है। अतः मैं अमित-तेजस्वी राजा शर्यातिके विशाल यज्ञमें देवराज इन्द्रके समक्ष ही आप दोनोंको प्रसन्नतापूर्वक सोमपानका अधिकारी बना दूँगा; मैं यह सत्य कह रहा हूँ। यह बात सुनकर अश्विनीकुमारोंने हर्षपूर्वक स्वर्गके लिये प्रस्थान किया और च्यवनमुनि भी सुकन्याको साथ लेकर अपने आश्रमपर चले गये॥ ५५—५९ ॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे अश्विभ्यां च्यवनद्वारा सोमपानाय प्रतिज्ञावर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥



अथ षष्ठोऽध्यायः

राजा शर्यातिके यज्ञमें च्यवनमुनिका अश्विनीकुमारोंको सोमरस देना

जनमेजय उवाच

च्यवनेन कथं वैद्यौ तौ कृतौ सोमपायिनौ।
वचनं च कथं सत्यं जातं तस्य महात्मनः॥ १

मानुषस्य बलं कीदृग्देवराजबलं प्रति।
निषिद्धौ भिषजौ तेन कृतौ तौ सोमपायिनौ॥ २

धर्मनिष्ठ तदाश्चर्यं विस्तरेण वद प्रभो।
चरितं च्यवनस्याद्य श्रोतुकामोऽस्मि सर्वथा॥ ३

जनमेजय बोले—[हे व्यासजी!] च्यवनने उन दोनों वैद्योंको सोमरस पीनेका अधिकारी किस प्रकार बनाया? उन महात्मा च्यवनकी बात कैसे सत्य सिद्ध हुई?॥ १॥

देवराज इन्द्रके बलके सामने मानव-बलकी क्या तुलना हो सकती है? फिर भी उन इन्द्रके द्वारा सोमरसके पानसे निषिद्ध किये गये उन दोनों अश्विनी-कुमारोंको च्यवनमुनिने सोमरस-पानका अधिकारी बना दिया। हे धर्मनिष्ठ! हे प्रभो! इस आश्चर्यमय विषयका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये; क्योंकि मैं इस समय च्यवनमुनिका चरित्र पूर्णरूपसे सुननेका इच्छुक हूँ॥ २-३॥

व्यास उवाच

निशामय महाराज चरितं परमाद्भुतम्।
च्यवनस्य मखे तस्मिञ्छर्यातेर्भुवि भारत॥ ४

सुकन्यां सुन्दरीं प्राप्य च्यवनः सुरसन्निभः।
विजहार प्रसन्नात्मा देवकन्यामिवापरः॥ ५

व्यासजी बोले—हे महाराज! हे भारत! राजा शर्यातिने जब भूमण्डलपर यज्ञ किया था, च्यवनमुनिके तत्कालीन उस अत्यन्त अद्भुत चरित्रके विषयमें सुनिये। दूसरे देवताके समान तेजस्वी मुनि च्यवन सुन्दर रूपवाली उस देवकन्यास्वरूपिणी सुकन्याको पाकर प्रसन्नचित्त हो गये और उसके साथ विहार करने लगे॥ ४-५॥

कदाचिदथ शर्यातिभार्या चिन्तातुरा भृशम्।
पतिं प्राह वेपमाना वचनं रुदती प्रिया॥ ६

राजन् पुत्री त्वया दत्ता मुनयेऽन्धाय कानने।
मृता जीवति वा सा तु द्रष्टव्या सर्वथा त्वया॥ ७

एक समयकी बात है—महाराज शर्यातिकी पत्नी [अपनी कन्याके विषयमें] अत्यन्त चिन्तित हो उठीं। काँपती और रोती हुई वे अपने पतिसे बोलीं—हे राजन्! आपने वनमें एक अन्धे मुनिको पुत्री सौंप दी थी। वह न जाने जीवित है अथवा मर गयी। अतः आपको उसे सम्यक् रूपसे देखना चाहिये॥ ६-७॥

गच्छ नाथ मुनेस्तावदाश्रमं द्रष्टुमादरात्।
किं करोति सुकन्या सा प्राप्य नाथं तथाविधम्॥ ८

हे नाथ! आप मुनि च्यवनके आश्रममें आदरपूर्वक यह देखनेके लिये जाइये कि उस प्रकारका पति पाकर वह सुकन्या क्या कर रही है?॥ ८॥

पुत्रीदुःखेन राजर्षे दग्धास्मि सर्वथा हृदि।
तामानय विशालाक्षीं तपःक्षामां मदन्तिके॥ ९

हे राजर्षे! पुत्रीके दुःखके कारण मेरा हृदय जल रहा है। तपस्या करनेसे क्षीण शरीरवाली मेरी उस विशालनयना पुत्रीको मेरे पास ले आइये॥ ९॥

पश्यामि सर्वथा पुत्रीं कृशाङ्गीं वल्कलावृताम्।
अन्धं पतिं समासाद्य दुःखभाजं कृशोदरीम्॥ १०

नेत्रहीन पति पाकर महान् कष्ट भोगनेवाली, [तपके कारण] कृश शरीरवाली, वल्कल धारण करनेवाली तथा क्षीण कटिप्रदेशवाली अपनी पुत्रीको मैं देखना चाहती हूँ॥ १०॥

शर्यातिरुवाच

गच्छामोऽद्य विशालाक्षि सुकन्यां द्रष्टुमादरात्।
प्रियपुत्रीं वरारोहे मुनिं तं संशितव्रतम्॥ ११

व्यास उवाच

एवमुक्त्वा तु शर्यातिः कामिनीं शोकसंकुलाम्।
जगाम रथमारुह्य त्वरितश्चाश्रमं मुनेः॥ १२

गत्वाश्रमसमीपे तु तमपश्यन्महीपतिः।
नवयौवनसम्पन्नं देवपुत्रोपमं मुनिम्॥ १३

तं विलोक्यामराकारं विस्मयं नृपतिर्गतः।
किं कृतं कुत्सितं कर्म पुत्र्या लोकविगर्हितम्॥ १४

निहतोऽसौ मुनिर्वृद्धस्त्वनयान्यः पतिः कृतः।
कामपीडितया कामं प्रशान्तोऽप्यतिनिर्धनः॥ १५

दुःसहोऽयं पुष्पधन्वा विशेषेण च यौवने।
कुले कलङ्कः सुमहाननया मानवे कृतः॥ १६

धिक्तस्य जीवितं लोके यस्य पुत्री हि कुत्सिता।
सर्वपापैस्तु दुःखाय पुत्री भवति देहिनाम्॥ १७

मया त्वनुचितं कर्म कृतं स्वार्थस्य सिद्धये।
वृद्धायान्धाय या दत्ता पुत्री सर्वात्मना किल॥ १८

कन्या योग्याय दातव्या पित्रा सर्वात्मना किल।
तादृशं हि फलं प्राप्तं यादृशं वै कृतं मया॥ १९

हन्मि चेदद्य तनयां दुःशीलां पापकारिणीम्।
स्त्रीहत्या दुस्तरा स्यान्मे तथा पुत्र्या विशेषतः॥ २०

शर्याति बोले—हे विशालाक्षि! हे वरारोहे! मैं अभी अपनी प्रिय पुत्री सुकन्याको आदरपूर्वक देखनेके लिये उत्तम व्रतका आचरण करनेवाले उन च्यवनऋषिके पास जा रहा हूँ॥ ११॥

व्यासजी बोले—शोकसे अत्यन्त व्याकुल अपनी पत्नीसे ऐसा कहकर राजा शर्याति रथपर बैठकर च्यवनमुनिके आश्रमकी ओर तुरंत चल पड़े॥ १२॥

आश्रमके निकट पहुँचकर राजा शर्यातिने देवपुत्रके समान प्रतीत होनेवाले एक नवयौवनसे सम्पन्न मुनिको वहाँ देखा॥ १३॥

देवताओंके स्वरूपवाले उस मुनिको देखकर राजा शर्याति विस्मयमें पड़ गये। वे सोचने लगे कि मेरी पुत्रीने लोकमें निन्दा करानेवाला यह कैसा नीच कर्म कर डाला है?॥ १४॥

प्रतीत होता है कि इसने कामपीड़ित होकर उन वृद्ध, शान्तचित्त तथा अति निर्धन मुनिका वध कर दिया एवं किसी अन्यको अपना पति बना लिया है। यह कामदेव बड़ा दुःसह है और युवावस्थामें तो यह विशेषरूपसे और भी दुःसह हो जाता है। इस पुत्रीने तो मनुवंशमें बड़ा भारी कलंक लगा दिया॥ १५-१६॥

जिस मनुष्यकी पुत्री ऐसा नीच कर्म करनेवाली हो, संसारमें उसके जीवनको धिक्कार है। ऐसी पुत्री मनुष्योंके लिये सभी पापोंसे बढ़कर दुःख देनेवाली होती है। मैंने भी तो स्वार्थकी सिद्धिके लिये ऐसा अनुचित कार्य कर दिया था, जो कि जानबूझकर नेत्रहीन और वृद्ध मुनिको अपनी पुत्री सौंप दी। पिताको चाहिये कि वह भलीभाँति सोच-समझकर ही एक योग्य वरको अपनी कन्या प्रदान करे। मैंने जैसा कर्म किया था, वैसा फल भी पाया॥ १७—१९॥

अब यदि मैं पापकर्म करनेवाली इस दुश्चरित्र कन्याको मार डालता हूँ, तो मुझे दुस्तर स्त्री-हत्या और विशेषरूपसे पुत्री-हत्याका बड़ा भारी दोष लगेगा॥ २०॥

मनुवंशस्तु विख्यातः सकलङ्कः कृतो मया।
लोकापवादो बलवान्दुस्त्याज्या स्नेहशृङ्खला॥ २१

किं करोमीति चिन्ताब्धौ यदा मग्नः स पार्थिवः।
सुकन्यया तदा दैवाद् दृष्टश्चिन्ताकुलः पिता॥ २२

सा दृष्ट्वा तं जगामाशु सुकन्या पितुरन्तिके।
गत्वा पप्रच्छ भूपालं प्रेमपूरितमानसा॥ २३

किं विचारयसे राजंश्चिन्ताव्याकुलिताननः।
उपविष्टं मुनिं वीक्ष्य युवानमम्बुजेक्षणम्॥ २४

एह्येहि पुरुषव्याघ्र प्रणमस्व पतिं मम।
मा विषादं नृपश्रेष्ठ साम्प्रतं कुरु मानव॥ २५

व्यास उवाच

इति पुत्र्या वचः श्रुत्वा शर्यातिः क्रोधपीडितः।
प्रोवाच वचनं राजा पुरःस्थां तनयां ततः॥ २६

राजोवाच

क्व मुनिश्च्यवनः पुत्रि वृद्धोऽन्धस्तापसोत्तमः।
कोऽयं युवा मदोन्मत्तः सन्देहोऽत्र महान्मम॥ २७

मुनिः किं निहतः पापे त्वया दुष्कृतकारिणि।
नूतनोऽसौ पतिः कामात्कृतः कुलविनाशिनि॥ २८

सोऽहं चिन्तातुरस्तं न पश्याम्याश्रमसंस्थितम्।
किं कृतं दुष्कृतं कर्म कुलटाचरितं किल॥ २९

निमग्नोऽहं दुराचारे शोकाब्धौ त्वत्कृतेऽधुना।
दृष्ट्वैनं पुरुषं दिव्यमदृष्ट्वा च्यवनं मुनिम्॥ ३०

विहस्य तमुवाचाशु सा श्रुत्वा वचनं पितुः।
गृहीत्वानीय पितरं भर्तुरन्तिकमादरात्॥ ३१

मैंने तो इस परम प्रसिद्ध मनुवंशको कलंकित कर दिया। एक ओर बलवती लोकनिन्दा है और दूसरी ओर न छोड़ी जा सकनेवाली [सन्तानके प्रति] स्नेहशृंखला; अब मैं क्या करूँ? इस प्रकार सोचते हुए राजा शर्याति जब चिन्ताके सागरमें डूबे हुए थे, उसी समय सुकन्याने चिन्तासे आकुल अपने पिताको संयोगवश देख लिया॥ २१-२२॥

उन्हें देखते ही प्रेमसे परिपूर्ण हृदयवाली वह सुकन्या अपने पिता राजा शर्यातिके पास गयी और वहाँ जाकर उनसे पूछने लगी—हे राजन्! कमलके समान नेत्रवाले बैठे हुए इन युवा मुनिको देखकर चिन्ताके कारण व्याकुल मुखमण्डलवाले आप इस समय क्या सोच रहे हैं? हे पुरुषव्याघ्र! इधर आइये और मेरे पतिको प्रणाम कीजिये। हे मनुवंशी राजेन्द्र! इस समय आप शोक मत कीजिये॥ २३—२५॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] तब अपनी पुत्री सुकन्याकी बात सुनकर क्रोधसे सन्तप्त राजा शर्याति अपने सामने खड़ी उस कन्यासे कहने लगे॥ २६॥

राजा बोले—हे पुत्रि! परम तपस्वी, वृद्ध तथा नेत्रहीन वे मुनि च्यवन कहाँ हैं और यह मदोन्मत्त युवक कौन है? इस विषयमें मुझे महान् सन्देह हो रहा है॥ २७॥

दुराचारमें लिप्त रहनेवाली हे पापिनि! हे कुल-नाशिनि! क्या तुमने च्यवनमुनिको मार डाला और कामके वशीभूत होकर इस पुरुषका नये पतिके रूपमें वरण कर लिया?॥ २८॥

इस आश्रममें रहनेवाले उन मुनिको मैं इस समय नहीं देख रहा हूँ, इसीलिये मैं चिन्ताग्रस्त हूँ। तुमने यह नीच कर्म क्यों किया? यह तो निश्चय ही व्यभिचारिणी स्त्रियोंका चरित्र है॥ २९॥

हे दुराचारिणि! इस समय तुम्हारे पास इस दिव्य पुरुषको देखकर तथा उन च्यवनमुनिको न देखकर मैं तुम्हारे द्वारा उत्पन्न किये गये शोकसागरमें डूबा हुआ हूँ॥ ३०॥

अपने पिताकी बात सुनकर उन्हें साथ लेकर वह सुकन्या तुरंत पतिके पास पहुँची और उनसे आदरपूर्वक कहने लगी—॥ ३१॥

च्यवनोऽसौ मुनिस्तात जामाता ते न संशयः।
अश्विभ्यामीदृशः कान्तः कृतः कमललोचनः॥ ३२

यदृच्छयात्र सम्प्राप्तौ नासत्यावाश्रमे मम।
ताभ्यां करुणया नूनं च्यवनस्तादृशः कृतः॥ ३३

नाहं तव सुता तात तथा स्यां पापकारिणी।
यथा त्वं मन्यसे राजन् विमूढो रूपसंशये॥ ३४

प्रणम त्वं मुनिं राजन् भार्गवं च्यवनं पितः।
आपृच्छ कारणं सर्वं कथयिष्यति विस्तरम्॥ ३५

इति श्रुत्वा वचः पुत्र्याः शर्यातिस्त्वरितस्तदा।
प्रणनाम मुनिं तत्र गत्वा पप्रच्छ सादरम्॥ ३६

राजोवाच

कथयस्व स्ववृत्तान्तं भार्गवाशु यथोचितम्।
नयने च कथं प्राप्ते क्व गता ते जरा पुनः॥ ३७

संशयोऽयं महान्मेऽस्ति रूपं दृष्ट्वातिसुन्दरम्।
वद विस्तरतो ब्रह्मञ्छ्रुत्वाहं सुखमाप्नुयाम्॥ ३८

च्यवन उवाच

नासत्यावत्र सम्प्राप्तौ देवानां भिषजावुभौ।
उपकारः कृतस्ताभ्यां कृपया नृपसत्तम॥ ३९

मया ताभ्यां वरो दत्त उपकारस्य हेतवे।
करिष्यामि मखे राज्ञो भवन्तौ सोमपायिनौ॥ ४०

एवं मया वयः प्राप्तं लोचने विमले तथा।
स्वस्थो भव महाराज संविशस्वासने शुभे॥ ४१

इत्युक्तः स तु विप्रेण सभार्यः पृथिवीपतिः।
सुखोपविष्टः कल्याणीः कथाश्चक्रे महात्मना॥ ४२

हे तात! ये आपके जामाता च्यवनमुनि ही हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है। अश्विनीकुमारोंने इन्हें ऐसा कान्तिमान् तथा कमलके समान नेत्रवाला बना दिया है॥ ३२॥

वे दोनों अश्विनीकुमार एक बार दैवयोगसे मेरे आश्रममें पधारे थे। उन्होंने ही दयालुतापूर्वक च्यवनमुनिको ऐसा कर दिया है॥ ३३॥

हे पिताजी! मैं आपकी पुत्री हूँ। हे राजन्! [मेरे पतिदेवका] यह रूप देखकर संशयमें पड़े हुए आप मोहके वशीभूत होकर मुझे जैसी समझ रहे हैं, मैं वैसी पापकृत्य करनेवाली नहीं हूँ॥ ३४॥

हे राजन्! भृगुवंशको सुशोभित करनेवाले च्यवनमुनिको आप प्रणाम करें। हे पिताजी! आप इन्हींसे पूछ लीजिये; ये आपको सारी बात विस्तारपूर्वक बता देंगे॥ ३५॥

तब पुत्रीकी यह बात सुनकर राजा शर्यातिने तुरंत मुनिके पास पहुँचकर उन्हें प्रणाम किया और वे उनसे आदरपूर्वक पूछने लगे॥ ३६॥

राजा बोले—हे भार्गव! आप अपना सारा वृत्तान्त समुचितरूपसे मुझे शीघ्र बतलाइये। आपने फिरसे किस प्रकार अपने दोनों नेत्र प्राप्त किये और आपका बुढ़ापा कैसे दूर हुआ? आपका परम सुन्दर रूप देखकर मुझे यह महान् सन्देह हो रहा है। हे ब्रह्मन्! आप विस्तारपूर्वक यह सब बतलाइये, जिसे सुनकर मुझे सुख प्राप्त हो॥ ३७-३८॥

च्यवन बोले—हे नृपश्रेष्ठ! देवताओंकी चिकित्सा करनेवाले दोनों अश्विनीकुमार एक बार यहाँ आये थे। उन दोनोंने ही कृपापूर्वक मेरा यह उपकार किया है। उस उपकारके बदले मैंने उन दोनोंको वर दिया है कि मैं आप दोनोंको राजा शर्यातिके यज्ञमें सोमपानका अधिकारी बना दूँगा॥ ३९-४०॥

हे महाराज! इस प्रकार अश्विनीकुमारोंद्वारा मुझे यह युवावस्था तथा ये विमल नेत्र प्राप्त हुए हैं; आप निश्चिन्त रहें और इस पवित्र आसनपर विराजमान हों॥ ४१॥

मुनिके यह कहनेपर राजा शर्याति रानीसहित सुखपूर्वक आसनपर बैठ गये। इसके बाद वे महात्मा च्यवनजीसे कल्याणमयी बातें करने लगे॥ ४२॥

अथैनं भार्गवः प्राह राजानं परिसान्त्वयन्।
याजयिष्यामि राजंस्त्वां सम्भारानुपकल्पय॥ ४३

मया प्रतिश्रुतं ताभ्यां कर्तव्यौ सोमपौ युवाम्।
तत्कर्तव्यं नृपश्रेष्ठ तव यज्ञेऽतिविस्तरे॥ ४४

इन्द्रं निवारयिष्यामि क्रुद्धं तेजोबलेन वै।
पाययिष्यामि राजेन्द्र सोमं सोममखे तव॥ ४५

ततः परमसन्तुष्टः शर्यातिः पृथिवीपतिः।
च्यवनस्य महाराज तद्वाक्यं प्रत्यपूजयत्॥ ४६

सम्मान्य च्यवनं राजा जगाम नगरं प्रति।
सभार्यश्चातिसन्तुष्टः कुर्वन्वार्तां मुनेः किल॥ ४७

प्रशस्तेऽहनि यज्ञीये सर्वकामसमृद्धिमान्।
कारयामास शर्यातिर्यज्ञायतनमुत्तमम्॥ ४८

समानीय मुनीन्पूज्यान्वसिष्ठप्रमुखानसौ।
भार्गवो याजयामास च्यवनः पृथिवीपतिम्॥ ४९

वितते तु तथा यज्ञे देवाः सर्वे सवासवाः।
आजग्मुश्चाश्विनौ तत्र सोमार्थमुपजग्मतुः॥ ५०

इन्द्रस्तु शङ्कितस्तत्र वीक्ष्य तावश्विनावुभौ।
पप्रच्छ च सुरान्सर्वान्किमेतौ समुपागतौ॥ ५१

चिकित्सकौ न सोमार्हौ केनानीताविहेति च।
नाब्रुवन्नमरास्तत्र राज्ञस्तु वितते मखे॥ ५२

अगृह्णाच्च्यवनः सोममश्विनोर्देवयोस्तदा।
शक्रस्तं वारयामास मा गृहाणैतयोर्ग्रहम्॥ ५३

तत्पश्चात् भृगुवंशी च्यवनमुनिने राजाको सान्त्वना देते हुए उनसे कहा—हे राजन्! मैं आपसे यज्ञ कराऊँगा, आप यज्ञसम्बन्धी सामग्रियाँ जुटाइये। मैं दोनों अश्विनीकुमारोंसे प्रतिज्ञा कर चुका हूँ कि 'मैं आप दोनोंको सोमपानका अधिकारी बना दूँगा?' हे नृपश्रेष्ठ! आपके महान् यज्ञमें मुझे वह कार्य सम्पन्न करना है और हे राजेन्द्र! आपके सोमयज्ञमें इन्द्रके कोप करनेपर मैं अपने तेजबलसे उन्हें शान्त कर दूँगा और [उन देववैद्योंको] सोमरस पिलाऊँगा॥ ४३—४५॥

हे राजन्! इस बातसे राजा शर्याति परम सन्तुष्ट हुए और उन्होंने च्यवनमुनिकी उस बातको आदरपूर्वक स्वीकार कर लिया॥ ४६॥

तत्पश्चात् च्यवनमुनिका सम्मान करके परम सन्तुष्ट होकर राजा शर्याति अपनी पत्नीके साथ मुनिसे सम्बन्धित चर्चा करते हुए अपने नगरको चले गये॥ ४७॥

तदनन्तर सम्पूर्ण कामनाओंसे परिपूर्ण राजा शर्यातिने किसी शुभ मुहूर्तमें एक उत्तम यज्ञशालाका निर्माण कराया॥ ४८॥

इसके बाद वसिष्ठ आदि प्रमुख पूज्य मुनियोंको बुलाकर भृगुवंशी च्यवनमुनिने राजा शर्यातिसे यज्ञ कराना आरम्भ कर दिया॥ ४९॥

उस महायज्ञमें इन्द्रसहित सभी देवता उपस्थित हुए और दोनों अश्विनीकुमार भी सोमपानकी इच्छासे वहाँ आये॥ ५०॥

वहाँ दोनों अश्विनीकुमारोंको भी उपस्थित देखकर इन्द्र सशंकित हो उठे और वे सभी देवताओंसे पूछने लगे—'ये दोनों यहाँ क्यों आये हुए हैं? ये चिकित्सक हैं; अतः ये सोमरस पीनेके अधिकारी नहीं हैं। इन्हें यहाँ किसने बुलाया है?' इसपर राजाके उस महायज्ञमें उपस्थित देवताओंने कोई उत्तर नहीं दिया॥ ५१-५२॥

तत्पश्चात् जब च्यवनमुनि दोनों अश्विनीकुमारोंको सोमरस ग्रहण कराने लगे, तब इन्द्रने [यह कहते हुए] उन्हें रोका—'इन दोनोंको सोमभाग ग्रहण मत कराइये'॥ ५३॥

तमाह च्यवनस्तत्र कथमेतौ रवेः सुतौ।
न ग्रहार्हौ च नासत्यौ ब्रूहि सत्यं शचीपते॥ ५४

तब च्यवनमुनिने इन्द्रसे कहा—ये सूर्यपुत्र अश्विनीकुमार सोमरस ग्रहण करनेके अधिकारी कैसे नहीं हैं? हे शचीपते! आप इस बातको प्रमाणित कीजिये॥ ५४॥

न सङ्करौ समुत्पन्नौ धर्मपत्नीसुतौ रवेः।
केन दोषेण देवेन्द्र नार्हौ सोमं भिषग्वरौ॥ ५५

ये वर्णसंकर नहीं हैं, अपितु सूर्यकी धर्मपत्नीसे उत्पन्न हुए हैं। तब हे देवेन्द्र! ये दोनों श्रेष्ठ चिकित्सक किस दोषके कारण सोमपानके योग्य नहीं हैं?॥ ५५॥

निर्णयोऽत्र मखे शक्र कर्तव्यः सर्वदैवतैः।
ग्राहयिष्याम्यहं सोमं कृतौ तौ सोमपौ मया॥ ५६

हे इन्द्र! इस यज्ञमें उपस्थित सभी देवता ही इसका निर्णय कर दें। मैं तो इन्हें सोमरस अवश्य पिलाऊँगा; क्योंकि मैंने इन्हें सोमपानका अधिकारी बना दिया है॥ ५६॥

प्रेरितोऽसौ मया राजा मखाय मघवन्किल।
एतदर्थं करिष्यामि सत्यं मे वचनं विभो॥ ५७

हे मघवन्! मैंने ही इस यज्ञके लिये राजा शर्यातिको प्रेरित किया है। हे विभो! इनके लिये मैं ऐसा अवश्य करूँगा; मेरा यह कथन सत्य है॥ ५७॥

आभ्यामुपकृतं शक्र तथा दत्तं नवं वयः।
तस्मात्प्रत्युपकारस्तु कर्तव्यः सर्वथा मया॥ ५८

हे शक्र! मुझे नवीन अवस्था प्रदान करके इन्होंने मेरा बड़ा उपकार किया है, अतः उसके बदलेमें मुझे सभी प्रकारसे इनका प्रत्युपकार करना चाहिये॥ ५८॥

इन्द्र उवाच

चिकित्सकौ कृतावेतौ नासत्यौ निन्दितौ सुरैः।
उभावेतौ न सोमार्हौ मा गृहाणैतयोर्ग्रहम्॥ ५९

इन्द्र बोले—चिकित्सावृत्तिवाले ये दोनों अश्विनीकुमार देवताओंके द्वारा निन्दनीय माने गये हैं। अतः ये सोमपानके अधिकारी नहीं हैं। इनके लिये सोमरसका भाग मत ग्रहण कीजिये॥ ५९॥

च्यवन उवाच

अहल्याजार संयच्छ कोपं चाद्य निरर्थकम्।
वृत्रघ्न किं हि नासत्यौ न सोमार्हौ सुरात्मजौ॥ ६०

च्यवनमुनि बोले—हे अहल्याजार! इस समय व्यर्थ कोप मत करो। वृत्रका वध करनेवाले हे इन्द्र! ये देवपुत्र अश्विनीकुमार सोमपानके अधिकारी क्यों नहीं हैं?॥ ६०॥

एवं विवादे समुपस्थिते च
न कोऽपि वाचं तमुवाच भूप।
ग्रहं तयोर्भार्गवतिग्मतेजाः
संग्राहयामास तपोबलेन॥ ६१

[व्यासजी बोले—] हे राजन्! इस प्रकारका विवाद छिड़ जानेपर वहाँ उपस्थित कोई भी देवता च्यवनमुनिसे कुछ भी नहीं कह सका। तब अपने तपोबलके द्वारा अत्यन्त तेजस्वी च्यवनमुनिने सोमरसका भाग लेकर अश्विनीकुमारोंको दे दिया॥ ६१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे च्यवनेनाश्विनोः कृते सोमपानाधिकारत्वचेष्टावर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥



अथ सप्तमोऽध्यायः

क्रुद्ध इन्द्रका विरोध करना; परंतु च्यवनके प्रभावको देखकर शान्त हो जाना, शर्यातिके बादके सूर्यवंशी राजाओंका विवरण

व्यास उवाच

दत्ते ग्रहे तु राजेन्द्र वासवः कुपितो भृशम्।
प्रोवाच च्यवनं तत्र दर्शयन्बलमात्मनः॥ १

मा ब्रह्मबन्धो मर्यादामिमां त्वं कर्तुमर्हसि।
वधिष्यामि द्विषन्तं त्वां विश्वरूपमिवाऽपरम्॥ २

व्यासजी बोले—हे राजेन्द्र! [च्यवनमुनिके द्वारा अश्विनीकुमारोंको] सोमभाग दे दिये जानेपर इन्द्र अत्यन्त कुपित हुए और उन्होंने अपना पराक्रम दिखाते हुए मुनिसे कहा—हे ब्रह्मबन्धो! आप इस प्रकारकी अनुचित मर्यादा स्थापित मत कीजिये, अन्यथा मेरा विरोध करनेवाले आप मुनिका भी दूसरे विश्वरूपकी भाँति वध कर डालूँगा॥ १-२॥

च्यवन उवाच

मावमंस्था महात्मानौ रूपद्रविणवर्चसा।
यौ चक्रतुर्मां मघवन् वृन्दारकमिवापरम्॥ ३

ऋते त्वां विबुधाश्चान्ये कथं वाददते ग्रहम्।
अश्विनावपि देवेन्द्र देवौ विद्धि परन्तपौ॥ ४

च्यवन बोले—हे मघवन्! जिन महात्मा अश्विनी-कुमारोंने रूपसम्पदाके तेजके द्वारा मुझे दूसरे देवताकी भाँति बना दिया है, उनका अपमान मत कीजिये। हे देवेन्द्र! आपके अतिरिक्त अन्य देवता सोमभाग क्यों पाते हैं? परम तपस्वी इन अश्विनीकुमारोंको भी आप देवता समझें॥ ३-४॥

इन्द्र उवाच

भिषजौ नार्हतः कामं ग्रहं यज्ञे कथञ्चन।
यदि दित्ससि मन्दात्मन् शिरश्छेत्स्यामि साम्प्रतम्॥ ५

इन्द्र बोले—हे मन्दात्मन्! ये दोनों चिकित्सक किसी प्रकार भी यज्ञमें सोमभाग पानेके अधिकारी नहीं हैं। यदि आप इन्हें सोमरस देंगे, तो मैं अभी आपका सिर काट दूँगा॥ ५॥

व्यास उवाच

अनादृत्य तु तद्वाक्यं वासवस्य च भार्गवः।
ग्रहं तु ग्राहयामास भर्त्सयन्निव तं भृशम्॥ ६

व्यासजी बोले—[हे जनमेजय!] इन्द्रकी उस बातकी उपेक्षा करके उनकी बहुत भर्त्सना करते हुए च्यवनमुनिने अश्विनीकुमारोंको यज्ञ-भाग प्रदान कर दिया॥ ६॥

सोमपात्रं यदा ताभ्यां गृहीतं तु पिपासया।
समीक्ष्य बलभिद्देव इदं वचनमब्रवीत्॥ ७

आभ्यामर्थाय सोमं त्वं ग्राहयिष्यसि चेत्स्वयम्।
वज्रं तु प्रहरिष्यामि विश्वरूपमिवापरम्॥ ८

जब उन दोनोंने पीनेकी इच्छासे सोमपात्र ग्रहण किया, तब शत्रुसेनाका भेदन करनेवाले इन्द्रने मुनिसे यह वचन कहा—यदि आप इन्हें सोमरस देंगे, तो मैं स्वयं आपके ऊपर वज्रसे उसी प्रकार प्रहार करूँगा, जैसे मैंने विश्वरूपको वज्रसे मार डाला था॥ ७-८॥

वासवेनैवमुक्तस्तु भार्गवश्चातिगर्वितः।
जग्राह विधिवत्सोममश्विभ्यामतिमन्युमान्॥ ९

इन्द्रके ऐसा कहनेपर [तपोबलसे] गर्वित च्यवनमुनि अत्यन्त कुपित हो उठे और उन्होंने विधिपूर्वक अश्विनीकुमारोंको सोमरस दे दिया॥ ९॥

इन्द्रोऽपि प्राक्षिपत्कोपाद्वज्रमस्मै स्वमायुधम्।
पश्यतां सर्वदेवानां सूर्यकोटिसमप्रभम्॥ १०

इसपर इन्द्रने भी क्रोध करके करोड़ों सूर्योंके समान प्रभावाला अपना आयुध वज्र सभी देवताओंके सामने ही च्यवनमुनिपर चला दिया॥ १०॥

प्रेरितं चाशनिं प्रेक्ष्य च्यवनस्तपसा ततः।
स्तम्भयामास वज्रं स शक्रस्यामिततेजसः॥ ११

तब अमित तेजवाले इन्द्रके चलाये गये उस वज्रको देखकर च्यवनमुनिने अपने तपोबलसे उसे स्तम्भित कर दिया॥ ११॥

कृत्यया स महाबाहुरिन्द्रं हन्तुमिहोद्यतः।
जुहावाग्नौ शृतं हव्यं मन्त्रेण मुनिसत्तमः॥ १२

इसके बाद वे महाबाहु मुनियोंमें श्रेष्ठ च्यवन कृत्या राक्षसीके द्वारा इन्द्रको मरवा डालनेके लिये उद्यत हो गये और पकाये गये हव्यसे मन्त्रसहित अग्निमें आहुति देने लगे॥ १२॥

तत्र कृत्या समुत्पन्ना च्यवनस्य तपोबलात्।
प्रबलः पुरुषः क्रूरो बृहत्कायो महासुरः॥ १३

उन च्यवनके तपोबलसे वहाँपर कृत्या उत्पन्न हो गयी। अत्यन्त बलशाली तथा क्रूर पुरुषके रूपमें वह आविर्भूत हुई। उस पुरुषका शरीर महान् दैत्यके समान बहुत विशाल था॥ १३॥

मदो नाम महाघोरो भयदः प्राणिनामिह।
शरीरे पर्वताकारस्तीक्ष्णदंष्ट्रो भयानकः॥ १४

चतस्त्रश्चायता दंष्ट्रा योजनानां शतं शतम्।
इतरे त्वस्य दशना बभूवुर्दशयोजनाः॥ १५

बाहू पर्वतसंकाशावायतौ क्रूरदर्शनौ।
जिह्वा तु भीषणा क्रूरा लेलिहाना नभस्तलम्॥ १६

उसका नाम 'मद' था। वह अत्यन्त उग्र तथा संसारके प्राणियोंके लिये बहुत भयदायक था। वह शरीरसे पर्वतके आकारका था, उसके दाँत तीक्ष्ण थे, वह बड़ा ही भयावह था। उसके चार दाँत तो सौ-सौ योजन लम्बे थे और इसके अन्य दाँत दस योजनके विस्तारवाले थे। देखनेमें क्रूर लगनेवाली उसकी दोनों भुजाएँ पर्वतके समान दूरतक फैली हुई थीं। अत्यन्त क्रूर तथा भयानक लगनेवाली उसकी जिह्वा आकाश और पातालको चाट रही थी॥ १४—१६॥

ग्रीवा तु गिरिशृङ्गाभा कठिना भीषणा भृशम्।
नखा व्याघ्रनखप्रख्याः केशाश्चातीवभीषणाः॥ १७

शरीरं कज्जलाभं च तस्य चास्यं भयानकम्।
नेत्रे दावानलप्रख्ये भीषणेऽतिभयानके॥ १८

हनुरेका स्थिता तस्य भूमावेका दिवं गता।
एवंविधः समुत्पन्नो मदो नाम बृहत्तनुः॥ १९

उसकी अत्यन्त डरावनी तथा कठोर गर्दन पर्वतकी चोटीके समान थी, उसके नाखून बाघके नाखूनके सदृश थे, उसके केश तो अत्यन्त भयंकर थे। उसका शरीर काजलकी आभावाला तथा मुख भयानक था और उसके अत्यन्त भीषण तथा भयावह दोनों नेत्र दावानलके समान प्रतीत हो रहे थे। उसका एक ओठ पृथ्वीपर स्थित था तो दूसरा ओठ आकाशतक गया हुआ था। इस प्रकारका विशाल शरीरवाला 'मद' नामक दानव उत्पन्न हुआ॥ १७—१९॥

तं विलोक्य सुराः सर्वे भयमाजग्मुरंहसा।
इन्द्रोऽपि भयसंत्रस्तो युद्धाय न मनो दधे॥ २०

उसे देखते ही सभी देवता शीघ्र ही भयभीत हो गये। इन्द्र भी भयसे व्याकुल हो उठे और उनके मनमें युद्धका विचार नहीं रह गया॥ २०॥

दैत्योऽपि वदने कामं वज्रमादाय संस्थितः।
व्याप्तं नभो घोरदृष्टिर्ग्रसन्निव जगत्त्रयम्॥ २१

वह दैत्य वज्रको मुखमें लेकर सम्पूर्ण आकाशको व्याप्त करके सामने खड़ा था। ऐसा प्रतीत होता था मानो भयावनी दृष्टिवाला वह दानव तीनों लोकोंको निगल जायगा॥ २१॥

स भक्षयिष्यन्संक्रुद्धः शतक्रतुमुपाद्रवत्।
चक्रुशुश्च सुराः सर्वे हा हताः स्मेति संस्थिताः॥ २२

इन्द्रको खा जानेके विचारसे वह क्रोधित होकर उनकी ओर दौड़ा। इसपर 'हाय, हम सब मारे गये'—ऐसा कहकर सभी देवता जोर-जोरसे चीखने-चिल्लाने लगे॥ २२॥

इन्द्रः स्तम्भितबाहुस्तु मुमुक्षुर्वज्रमन्तिकात्।
न शशाक पविं तस्मिन्प्रहर्तुं पाकशासनः॥ २३

इन्द्र वज्र चलाना चाहते थे, किंतु भुजाओंके कुण्ठित हो जानेके कारण वे उसपर वज्र-प्रहार करनेमें समर्थ नहीं हुए॥ २३॥

वज्रहस्तः सुरेशानस्तं वीक्ष्य कालसन्निभम्।
सस्मार मनसा तत्र गुरुं समयकोविदम्॥ २४

तब हाथमें वज्र धारण करनेवाले देवराज इन्द्रने काल-सदृश उस दानवको देखकर सामयिक समस्याका समाधान करनेमें कुशल देवगुरु बृहस्पतिका मन-ही-मन स्मरण किया॥ २४॥

स्मरणादाजगामाशु बृहस्पतिरुदारधीः।
गुरुस्तत्समयं दृष्ट्वा विपत्तिसदृशं महत्॥ २५

विचार्य मनसा कृत्यं तमुवाच शचीपतिम्।
दुःसाध्योऽयं महामन्त्रैस्त्वयं वज्रेण वासव॥ २६

इन्द्रके स्मरण करते ही उदार बुद्धिवाले गुरु बृहस्पति वहाँ शीघ्र आ गये। इन्द्रकी बड़ी दयनीय दशा देखकर तथा मन-ही-मन सारे कृत्यपर विचार करके वे शचीपति इन्द्रसे कहने लगे— ॥ २५½ ॥

असुरो मदसंज्ञस्तु यज्ञकुण्डात्समुत्थितः।
तपोबलमृषेः सम्यक् च्यवनस्य महाबलः॥ २७

अनिवार्यो ह्ययं शत्रुस्त्वया देवैस्तथा मया।
शरणं याहि देवेश च्यवनस्य महात्मनः॥ २८

स निवारयिता नूनं कृत्यामात्मकृतां किल।
न निवारयितुं शक्ताः शक्तिभक्तरुषं क्वचित्॥ २९

हे इन्द्र! मद नामक इस असुरको महामन्त्रोंसे अथवा वज्रसे मार पाना अत्यन्त कठिन है। च्यवनमुनिका तपोबलस्वरूप यह महाबली दैत्य सम्यक् रूपसे यज्ञकुण्डसे उत्पन्न हुआ है। यह शत्रु तुम्हारे, देवगणोंके तथा मेरे द्वारा भी पराभूत नहीं किया जा सकता। अतः हे देवेश! आप महात्मा च्यवनकी शरणमें जायँ, वे अपने द्वारा उत्पन्न की गयी इस 'कृत्या' का शमन अवश्य कर देंगे। आदिशक्तिके भक्तका रोष निवारण करनेमें कोई भी समर्थ नहीं है॥ २६—२९॥

व्यास उवाच

इत्युक्तो गुरुणा शक्रस्तदागच्छन्मुनिं प्रति।
प्रणम्य शिरसा नम्रस्तमुवाच भयान्वितः॥ ३०

क्षमस्व मुनिशार्दूल शमयासुरमुद्यतम्।
प्रसन्नो भव सर्वज्ञ वचनं ते करोम्यहम्॥ ३१

व्यासजी बोले—गुरु बृहस्पतिके यह कहनेपर इन्द्र च्यवनमुनिके पास गये और नम्रतापूर्वक सिर झुकाकर प्रणाम करके भयभीत होते हुए उनसे बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! क्षमा कीजिये। संहारके लिये तत्पर इस असुरको शान्त कीजिये। आप प्रसन्न हो जाइये। हे सर्वज्ञ! मैं आपकी आज्ञाका पालन अवश्य करूँगा॥ ३०-३१॥

सोमार्हावश्विनावेतावद्यप्रभृति भार्गव।
भविष्यतः सत्यमेतद्वचो विप्र प्रसीद मे॥ ३२

हे भार्गव! ये दोनों अश्विनीकुमार आजसे सोमपानके अधिकारी हो जायँगे। हे विप्र! मेरा यह वचन सत्य है, अब आप प्रसन्न हो जायँ॥ ३२॥

मिथ्या ते नोद्यमो ह्येष भवत्वेव तपोधन।
जाने त्वमपि धर्मज्ञ मिथ्या नैव करिष्यसि॥ ३३

सोमपावश्विनावेतौ त्वत्कृतौ च सदैव हि।
भविष्यतश्च शर्यातेः कीर्तिस्तु विपुला भवेत्॥ ३४

हे तपोधन! अश्विनीकुमारोंको सोमपानका अधिकारी बनानेका आपका उद्यम व्यर्थ नहीं हुआ; यह उचित ही है। हे धर्मज्ञ! मैं जानता हूँ कि आप निष्प्रयोजन कोई भी कार्य नहीं करेंगे। आपने इन अश्विनीकुमारोंको सोमपानका अधिकारी बना दिया, अतः अब ये यज्ञोंमें सदा सोमरसका पान कर सकेंगे। साथ ही राजा शर्यातिका महान् यश भी स्थापित हो जायगा॥ ३३-३४॥

मया यद्धि कृतं कर्म सर्वथा मुनिसत्तम।
परीक्षार्थं तु विज्ञेयं तव वीर्यप्रकाशनम्॥ ३५

हे मुनिश्रेष्ठ! मैंने यह जो भी कार्य किया है, उसे आपके पराक्रमको प्रकट करनेके उद्देश्यसे ही किया है—ऐसा आप समझिये॥ ३५॥

प्रसादं कुरु मे ब्रह्मन् मदं संहर चोत्थितम्।
कल्याणं सर्वदेवानां तथा भूयो विधीयताम्॥ ३६

हे ब्रह्मन्! आप मेरे ऊपर कृपा कीजिये। अपने द्वारा उत्पन्न किये गये इस 'मद' नामक दैत्यको तिरोहित कर दीजिये और ऐसा करके सभी देवताओंका पुनः कल्याण कीजिये॥ ३६॥

एवमुक्तस्तु शक्रेण च्यवनः परमार्थवित्।
संजहार तपः कोपं समुत्पन्नं विरोधजम्॥ ३७

देवमाश्वास्य संविग्नं भार्गवस्तु मदं ततः।
व्यभजत्स्त्रीषु पानेषु द्यूतेषु मृगयासु च॥ ३८

इन्द्रके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर परमार्थ-तत्त्वके ज्ञाता च्यवनमुनिने विरोधके कारण उत्पन्न अपने क्रोधको दबा लिया। तत्पश्चात् उद्विग्न चित्तवाले देवराज इन्द्रको सान्त्वना देकर भृगुवंशी च्यवनमुनिने स्त्री, मदिरापान, द्यूत और आखेट—इन सबमें 'मद' को स्थापित कर दिया॥ ३७-३८॥

मदं विभज्य देवेन्द्रमाश्वास्य चकितं भिया।
संस्थाप्य च सुरान्सर्वान्मखं तस्य न्यवर्तयत्॥ ३९

इस प्रकार 'मद' को विभिन्न जगहोंपर विभक्त करके, भयसे घबराये हुए इन्द्रको आश्वासन देकर तथा सभी देवताओंको अपने-अपने कार्यपर लगाकर च्यवनमुनिने राजा शर्यातिका यज्ञ सम्पन्न कराया॥ ३९॥

ततस्तु संस्कृतं सोमं वासवाय महात्मने।
अश्विभ्यां सर्वधर्मात्मा पाययामास भार्गवः॥ ४०

तदनन्तर सभी धर्मोंके आत्मास्वरूप भृगुवंशी च्यवनमुनिने महात्मा इन्द्रको तथा दोनों अश्विनी-कुमारोंको परिष्कृत सोमरस पिलाया॥ ४०॥

एवं तौ च्यवनेनार्यावश्विनौ रविपुत्रकौ।
विहितौ सोमपौ राजन् सर्वथा तपसो बलात्॥ ४१

हे राजन्! इस प्रकार च्यवनमुनिने अपने तपके प्रभावसे उन दोनों सूर्यपुत्र श्रेष्ठ अश्विनीकुमारोंको पूर्णरूपसे सोमपानका अधिकारी बना दिया॥ ४१॥

सरस्तदपि विख्यातं जातं यूपविमण्डितम्।
आश्रमस्तु मुनेः सम्यक् पृथिव्यां विश्रुतोऽभवत्॥ ४२

उसी समयसे यज्ञ-स्तम्भसे सुशोभित वह सरोवर भी विख्यात हो गया तथा मुनिके आश्रमकी प्रसिद्धि सम्यक्-रूपसे पृथ्वीपर सर्वत्र व्याप्त हो गयी॥ ४२॥

शर्यातिरपि सन्तुष्टो ह्यभवत्तेन कर्मणा।
यज्ञं समाप्य नगरे जगाम सचिवैर्वृतः॥ ४३

उस कर्मसे राजा शर्याति भी सन्तुष्ट हो गये और यज्ञसम्पन्न करके मन्त्रियोंके साथ नगरको चले गये॥ ४३॥

राज्यं चकार धर्मज्ञो मनुपुत्रः प्रतापवान्।
आनर्तस्तस्य पुत्रोऽभूदानर्ताद्रेवतोऽभवत्॥ ४४

सोऽन्तःसमुद्रे नगरीं विनिर्माय कुशस्थलीम्।
आस्थितोऽभुङ्क्त विषयानानर्तादीनरिन्दमः॥ ४५

इसके बाद धर्मज्ञ तथा प्रतापी मनुपुत्र शर्याति राज्य करने लगे। उनके पुत्र 'आनर्त' हुए और आनर्तसे 'रेवत' उत्पन्न हुए। शत्रुओंका दमन करनेवाले वे रेवत समुद्रके मध्य कुशस्थली नामक नगरी स्थापित करके वहींपर रहकर आनर्त आदि देशोंपर शासन करने लगे॥ ४४-४५॥

तस्य पुत्रशतं जज्ञे ककुद्मिज्येष्ठमुत्तमम्।
पुत्री च रेवती नाम्ना सुन्दरी शुभलक्षणा॥ ४६

उनके सौ पुत्र हुए, उनमें ककुद्मी सबसे ज्येष्ठ तथा उत्तम था। उनकी रेवती नामक एक पुत्री भी थी, जो परम सुन्दर तथा शुभ लक्षणोंसे युक्त थी॥ ४६॥

वरयोग्या यदा जाता तदा राजा च रेवतः।

चिन्तयामास राजेन्द्रो राजपुत्रान्कुलोद्भवान्॥ ४७

जब वह कन्या विवाहके योग्य हो गयी, तब महाराज रेवत उत्तम कुलमें उत्पन्न राजकुमारोंके विषयमें सोचने लगे॥ ४७॥

रैवतं नाम च गिरिमाश्रितः पृथिवीपतिः।
चकार राज्यं बलवानानर्तेषु नराधिपः॥ ४८

उस समय वे बलशाली नरेश 'रैवत' नामक पर्वतपर रहते हुए आनर्त आदि देशोंपर राज्य कर रहे थे॥ ४८॥

विचिन्त्य मनसा राजा कस्मै देया मया सुता।
गत्वा पृच्छामि ब्रह्माणं सर्वज्ञं सुरपूजितम्॥ ४९

इति सञ्चिन्त्य भूपालः सुतामादाय रेवतीम्।
ब्रह्मलोकं जगामाशु प्रष्टुकामः पितामहम्॥ ५०

यत्र देवाश्च यज्ञाश्च छन्दांसि पर्वतास्तथा।
अब्धयः सरितश्चापि दिव्यरूपधराः स्थिताः॥ ५१

ऋषयः सिद्धगन्धर्वाः पन्नगाश्चारणास्तथा।
तस्थुः प्राञ्जलयः सर्वे स्तुवन्तश्च पुरातनाः॥ ५२

वे मन-ही-मन सोचने लगे 'मैं यह कन्या किसे प्रदान करूँ, अतः सर्वज्ञ तथा देवपूजित ब्रह्माजीके पास जाकर उन्हींसे पूछ लूँ'—ऐसा विचार करके राजा रेवत अपनी पुत्री रेवतीको साथ लेकर पितामह ब्रह्माजीसे वर पूछनेकी अभिलाषासे शीघ्र ही ब्रह्मलोक जा पहुँचे; जहाँपर देवता, यज्ञ, छन्द, पर्वत, समुद्र और नदियाँ दिव्य रूप धारण करके विराजमान थे और सनातन ऋषि, सिद्ध, गन्धर्व, पन्नग तथा चारणवृन्द—ये सभी हाथ जोड़कर स्तुति करते हुए खड़े थे॥ ४९—५२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे रेवतस्य रेवतीवरार्थं ब्रह्मलोकगमनवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

~~~o~~~

अथाष्टमोऽध्यायः

राजा रेवतकी कथा

जनमेजय उवाच

संशयोऽयं महान् ब्रह्मन् वर्तते मम मानसे।
ब्रह्मलोकं गतो राजा रेवतीसंयुतः स्वयम्॥ १

मया पूर्वं श्रुतं कृत्स्नं ब्राह्मणेभ्यः कथान्तरे।
ब्राह्मणो ब्रह्मविच्छान्तो ब्रह्मलोकमवाप्नुयात्॥ २

जनमेजय बोले—हे ब्रह्मन्! मेरे मनमें यह महान् संशय हो रहा है कि स्वयं राजा रेवत अपनी कन्या रेवतीको साथ लेकर ब्रह्मलोक चले गये। मैंने पूर्वकालमें ब्राह्मणोंसे कथा-प्रसंगमें यह अनेक बार सुना है कि ब्रह्मको जाननेवाला शान्त-स्वभाव ब्राह्मण ही ब्रह्मलोक प्राप्त कर सकता है॥ १-२॥
~~~

राजा कथं गतस्तत्र रेवतीसंयुतः स्वयम्।
सत्यलोकेऽतिदुष्प्रापे भूर्लोकादिति संशयः॥ ३
मृतः स्वर्गमवाप्नोति सर्वशास्त्रेषु निर्णयः।
(मानुषेण तु देहेन ब्रह्मलोके गतिः कथम्)
स्वर्गात्पुनः कथं लोके मानुषे जायते गतिः॥ ४
एतन्मे संशयं विद्वंश्छेत्तुमर्हसि साम्प्रतम्।
यथा राजा गतस्तत्र प्रष्टुकामः प्रजापतिम्॥ ५

राजा रेवत अत्यन्त दुष्प्राप्य सत्यलोकमें स्वयं अपनी पुत्री रेवतीके साथ पृथ्वीलोकसे कैसे पहुँच गये—इसी बातका मुझे सन्देह है। सभी शास्त्रोंमें यही निर्णय विद्यमान है कि मृत व्यक्ति ही स्वर्ग प्राप्त कर सकता है; (इस मानवदेहसे ब्रह्मलोकमें जाना कैसे सम्भव है?) और स्वर्गसे पुनः इस मनुष्यलोकमें पहुँच जाना कैसे हो सकता है? हे विद्वन्! महाराज रेवत जिस तरह ब्रह्माजीसे अपनी कन्याके लिये वर पूछनेकी इच्छासे वहाँ गये थे—इसे बताकर इस समय मेरे इस सन्देहको दूर करनेकी कृपा करें॥ ३—५॥

व्यास उवाच

मेरोस्तु शिखरे राजन् सर्वे लोकाः प्रतिष्ठिताः।
इन्द्रलोको वह्निलोको या च संयमिनी पुरी॥ ६
तथैव सत्यलोकश्च कैलासश्च तथा पुनः।
वैकुण्ठश्च पुनस्तत्र वैष्णवं पदमुच्यते॥ ७

व्यासजी बोले—हे राजन्! सुमेरुपर्वतके शिखरपर ही इन्द्रलोक, वह्निलोक, संयमिनीपुरी, सत्यलोक, कैलास और वैकुण्ठ—ये सभी लोक प्रतिष्ठित हैं। वैकुण्ठको ही वैष्णव पद कहा जाता है॥ ६-७॥

यथार्जुनः शक्रलोके गतः पार्थो धनुर्धरः।
पञ्चवर्षाणि कौन्तेयः स्थितस्तत्र सुरालये॥ ८
मानुषेणैव देहेन वासवस्य च सन्निधौ।
तथैवान्येऽपि भूपालाः ककुत्स्थप्रमुखाः किल॥ ९
स्वर्लोकगतयः पश्चाद्दैत्याश्चापि महाबलाः।
जित्वेन्द्रसदनं प्राप्य संस्थितास्तत्र कामतः॥ १०

जैसे धनुष धारण करनेवाले कुन्तीपुत्र अर्जुन इन्द्रलोक गये थे और वे इसी मनुष्य-शरीरसे उस इन्द्रलोकमें पाँच वर्षतक इन्द्रके सान्निध्यमें रहे, उसी प्रकार ककुत्स्थ आदि अन्य प्रमुख राजा भी स्वर्गलोक जा चुके हैं। इसके अतिरिक्त महाबलशाली दैत्य भी इन्द्रलोकको जीतकर वहाँ पहुँचकर अपनी इच्छाके अनुसार रह चुके हैं॥ ८—१०॥

महाभिषः पुरा राजा ब्रह्मलोकं गतः स्वराट्।
आगच्छन्तीं नृपो गङ्गामपश्यच्चातिसुन्दरीम्॥ ११
वायुनाम्बरमस्यास्तु दैवादपहृतं नृप।
किञ्चिन्नग्ना नृपेणाथ दृष्टा सा सुन्दरी तथा॥ १२
स्मितं चकार कामार्तः सा च किञ्चिज्जहास वै।
ब्रह्मणा तौ तदा दृष्टौ शप्तौ जातौ वसुन्धराम्॥ १३
वैकुण्ठेऽपि सुराः सर्वे पीडिता दैत्यदानवैः।
गत्वा हरिं जगन्नाथमस्तुवन्कमलापतिम्॥ १४

पूर्वकालमें महाराज महाभिष भी ब्रह्मलोक गये थे। उन नरेशने परम सुन्दरी गंगाजीको आते देखा। हे राजन्! उस समय दैवयोगसे वायुने उनके वस्त्र उड़ा दिये, जिससे राजाने उन सुन्दरी गंगाको कुछ अनावृत अवस्थामें देख लिया। इसपर कामसे व्यथित राजा मुसकराने लगे और गंगाजी भी हँस पड़ीं। उस समय ब्रह्माजीने उन दोनोंको देख लिया और शाप दे दिया, जिससे उन दोनोंको पृथ्वीपर जन्म लेना पड़ा। दैत्यों और दानवोंसे पीड़ित सभी देवताओंने भी वैकुण्ठधाममें जाकर कमलाकान्त जगत्पति भगवान् विष्णुकी स्तुति की थी॥ ११—१४॥

सन्देहो नात्र कर्तव्यः सर्वथा नृपसत्तम।
गम्याः सर्वेऽपि लोकाः स्युर्मानवानां नराधिप॥ १५
अवश्यं कृतपुण्यानां तापसानां नराधिप।
पुण्यसद्भाव एवात्र गमने कारणं नृप॥ १६
तथैव यजमानानां यज्ञेन भावितात्मनाम्।

अतएव हे नृपश्रेष्ठ! इस विषयमें किसी भी प्रकारका सन्देह नहीं करना चाहिये। हे नराधिप! पुण्यात्मा, तपस्वी और महापुरुष सभी लोकोंमें जा सकते हैं। हे नरेन्द्र! हे राजन्! जैसे पवित्र सदाचरण ही ब्रह्मादि लोकोंमें जानेका कारण है, वैसे ही पवित्र मनवाले यजमानलोग भी यज्ञके प्रभावसे वहाँ पहुँच जाते हैं॥ १५-१६ १/२॥

जनमेजय उवाच

रेवतो रेवतीं कन्यां गृहीत्वा चारुलोचनाम्॥ १७
ब्रह्मलोकं गतः पश्चात्किं कृतं तेन भूभुजा।
ब्रह्मणा किं समादिष्टं कस्मै दत्ता सुता पुनः॥ १८
तत्सर्वं विस्तराद् ब्रह्मन् कथय त्वं ममाधुना।

व्यास उवाच

निशामय महीपाल राजा रेवतकः किल॥ १९
पुत्र्या वरं परिप्रष्टुं ब्रह्मलोकं गतो यदा।
आवर्तमाने गान्धर्वे स्थितो लब्धक्षणः क्षणम्॥ २०
शृण्वन्नतृप्यद्धृष्टात्मा सभायां तु सकन्यकः।
समाप्ते तत्र गान्धर्वे प्रणम्य परमेश्वरम्॥ २१
दर्शयित्वा सुतां तस्मै स्वाभिप्रायं न्यवेदयत्।

राजोवाच

वरं कथय देवेश कन्येयं मम पुत्रिका॥ २२
देया कस्मै मया ब्रह्मन् प्रष्टुं त्वां समुपागतः।
बहवो राजपुत्रा मे वीक्षिताः कुलसम्भवाः॥ २३
कस्मिंश्चिन्मे मनः कामं नोपतिष्ठति चञ्चलम्।
तस्मात्त्वां देवदेवेश प्रष्टुमत्रागतोऽस्म्यहम्॥ २४
तदाज्ञापय सर्वज्ञ योग्यं राजसुतं वरम्।
कुलीनं बलवन्तं च सर्वलक्षणसंयुतम्॥ २५
दातारं धर्मशीलं च राजपुत्रं समादिश।

व्यास उवाच

तदाकर्ण्य जगत्कर्ता वचनं नृपतेस्तदा॥ २६
तमुवाच हसन्वाक्यं दृष्ट्वा कालस्य पर्ययम्।

ब्रह्मोवाच

राजपुत्रास्त्वया राजन् वरा ये हृदये कृताः॥ २७
ग्रस्ताः कालेन ते सर्वे सपितृपौत्रबान्धवाः।
सप्तविंशतिमोऽद्यैव द्वापरस्तु प्रवर्तते॥ २८
वंशजास्ते मृताः सर्वे पुरी दैत्यैर्विलुण्ठिता।
सोमवंशोद्भवस्तत्र राजा राज्यं प्रशास्ति हि॥ २९

जनमेजय बोले—महाराज रेवत सुन्दर नेत्रोंवाली अपनी पुत्री रेवतीको साथमें लेकर ब्रह्मलोक पहुँच गये; उसके बाद उन्होंने क्या किया, ब्रह्माजीने उन्हें क्या आदेश दिया और उन रेवतने अपनी पुत्री किसे सौंपी? हे ब्रह्मन्! अब आप इन सारी बातोंको विस्तारपूर्वक मुझको बतलाइये॥ १७-१८½ ॥

व्यासजी बोले—हे महीपाल! सुनिये, जब राजा रेवत अपनी पुत्रीके वरके विषयमें पूछनेके लिये ब्रह्मलोक पहुँचे, उस समय गन्धर्वलोगोंका संगीत हो रहा था। वे अपनी कन्याके साथ कुछ देरतक सभामें रुककर संगीत सुनते हुए परम तृप्त हुए। पुनः गन्धर्वोंका संगीत समाप्त हो जानेपर परमेश्वर (ब्रह्माजी)-को प्रणाम करके उन्हें अपनी कन्या रेवतीको दिखाकर अपना आशय प्रकट कर दिया॥ १९—२१½ ॥

राजा बोले—हे देवेश! यह कन्या मेरी पुत्री है, मैं इसे किसको प्रदान करूँ—यही पूछनेके लिये आपके पास आया हूँ। अतः हे ब्रह्मन्! आप इसके योग्य वर बतायें। मैंने उत्तम कुलमें उत्पन्न बहुतसे राजकुमारोंको देखा है, किंतु किसीमें भी मेरा चंचल मन स्थिर नहीं होता है। इसलिये हे देवदेवेश! [वरके विषयमें] आपसे पूछनेके लिये यहाँ आया हूँ। हे सर्वज्ञ! आप किसी योग्य राजकुमार वरके विषयमें बताइये। ऐसे राजकुमारका निर्देश कीजिये; जो कुलीन, बलवान्, समस्त लक्षणोंसे सम्पन्न, दानी तथा धर्मपरायण हो॥ २२—२५½ ॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! तब राजाकी बात सुनकर जगत्की रचना करनेवाले ब्रह्माजी कालपर्यय (ब्रह्मलोकके थोड़े समयमें पृथ्वीलोकका बड़ा लम्बा समय बीता हुआ) देखकर हँस करके उनसे कहने लगे—॥ २६½ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे राजन्! आपने अपने हृदयमें जिन राजकुमारोंको वरके रूपमें समझ रखा था, वे सब-के-सब पुत्र-पौत्र तथा बन्धुओंसमेत काल-कवलित हो चुके हैं। इस समय वहाँ सत्ताईसवाँ द्वापर चल रहा है। आपके सभी वंशज मृत हो चुके हैं और दैत्योंने आपकी पुरी भी विनष्ट कर डाली है। इस समय वहाँ चन्द्रवंशी राजा शासन कर रहे हैं। अब

उग्रसेन इति ख्यातो मथुराधिपतिः किल।
ययातिवंशसम्भूतो राजा माथुरमण्डले॥ ३०

उग्रसेनात्मजः कंसः सुरद्वेषी महाबलः।
दैत्यांशः पितरं सोऽपि कारागारं न्यवेशयत्॥ ३१

स्वयं राज्यं चकारासौ नृपाणां मदगर्वितः।
मेदिनी चातिभारार्ता ब्रह्माणं शरणं गता॥ ३२

दुष्टराजन्यसैन्यायां भारेणातिसमाकुला।
अंशावतरणं तत्र गदितं सुरसत्तमैः॥ ३३

वासुदेवः समुत्पन्नः कृष्णः कमललोचनः।
देवक्यां देवरूपिण्यां योऽसौ नारायणो मुनिः॥ ३४

तपश्चचार दुःसाध्यं धर्मपुत्रः सनातनः।
गङ्गातीरे नरसखः पुण्ये बदरिकाश्रमे॥ ३५

सोऽवतीर्णो यदुकुले वासुदेवोऽपि विश्रुतः।
तेनासौ निहतः पापः कंसः कृष्णेन सत्तम॥ ३६

उग्रसेनाय राज्यं वै दत्तं हत्वा खलं सुतम्।

कंसस्य श्वशुरः पापो जरासन्धो महाबलः॥ ३७

आगत्य मथुरां क्रोधाच्चकार सङ्गरं मुदा।
कृष्णेनासौ जितः संख्ये जरासन्धो महाबलः॥ ३८

प्रेषयामास युद्धाय सबलं यवनं ततः।
श्रुत्वायान्तं महाशूरं ससैन्यं यवनाधिपम्॥ ३९

(कृष्णस्तु मथुरां त्यक्त्वा पुरीं द्वारावतीमगात्।
प्रभग्नां तां पुरीं कृष्णः शिल्पिभिः सह सङ्गतैः॥
कारयामास दुर्गाढ्यां हट्टशालाविमण्डिताम्।
जीर्णोद्धारं पुरः कृत्वा वासुदेवः प्रतापवान्।
उग्रसेनं च राजानं चकार वशवर्तिनम्॥)

यादवान्स्थापयामास द्वारवत्यां यदूत्तमः।
वासुदेवस्तु तत्राद्य वर्तते बान्धवैः सह॥ ४०

मथुरा नामसे प्रसिद्ध उस पुरीके अधिपतिके रूपमें उग्रसेन विख्यात हैं। ययातिवंशमें उत्पन्न वे उग्रसेन सम्पूर्ण मथुरामण्डलके नरेश हैं। उन महाराज उग्रसेनका एक कंस नामक पुत्र हुआ, जो महान् बलशाली तथा देवताओंसे द्वेष रखनेवाला था। राजाओंमें सबसे अधिक मदोन्मत्त उस दानववंशी कंसने अपने पिताको भी कारागारमें डाल दिया और वह स्वयं राज्य करने लगा॥ २७—३१ $\frac{1}{2}$ ॥

तब पृथ्वी असह्य भारसे व्याकुल होकर ब्रह्माजीकी शरणमें गयी। श्रेष्ठ देवगणोंने ऐसा कहा है कि दुष्ट राजाओं तथा उनके सैनिकोंके भारसे पृथ्वीके अति व्याकुल होनेपर ही भगवान्का अंशावतार होता है। अतः उस समय कमलके समान नेत्रवाले वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण देवीस्वरूपा देवकीके गर्भसे उत्पन्न हुए, वे साक्षात् नारायणमुनि ही थे॥ ३२—३४॥

उन सनातन धर्मपुत्र नरसखा नारायणमुनिने बदरिकाश्रममें गंगाजीके तटपर अत्यन्त कठोर तपस्या की थी। वे ही यदुकुलमें अवतार लेकर 'वासुदेव' नामसे विख्यात हुए। हे महाभाग! उन्हीं वासुदेव भगवान् श्रीकृष्णने पापी कंसका संहार किया और इस प्रकार उस दुष्ट राजाको मारकर उन्होंने [उसके पिता] उग्रसेनको सम्पूर्ण राज्य दे दिया॥ ३५-३६ $\frac{1}{2}$ ॥

कंसका श्वसुर जरासन्ध महान् बलशाली तथा पापी था। वह अत्यन्त क्रोधित हो मथुरा आकर श्रीकृष्णके साथ आवेगपूर्वक युद्ध करने लगा। अन्तमें श्रीकृष्णने उस महाबली जरासन्धको युद्धमें जीत लिया। तब उसने सेनासहित कालयवनको [कृष्णके साथ] युद्ध करनेके लिये भेजा॥ ३७-३८ $\frac{1}{2}$ ॥

महापराक्रमी यवनाधिप कालयवनको सेनासहित आता सुनकर (कृष्ण मथुरा छोड़कर द्वारका चले गये। भगवान् श्रीकृष्णने कुशल शिल्पियोंके द्वारा बड़े-बड़े दुर्ग तथा बाजारोंसे सुशोभित उस नष्ट-भ्रष्ट पुरीका पुनः निर्माण कराया, उस पुरीका जीर्णोद्धार करके प्रतापी श्रीकृष्णने उग्रसेनको वहाँका अपना आज्ञाकारी राजा बनाया।) तत्पश्चात् यदुश्रेष्ठ श्रीकृष्णने उस द्वारकापुरीमें यादवोंको भलीभाँति बसाया। इस समय वे वासुदेव अपने बन्धु-बान्धवोंके साथ उस द्वारकामें रह रहे हैं॥ ३९-४०॥

तस्याग्रजः स विख्यातो बलदेवो हलायुधः।
शेषांशो मुसली वीरो वरोऽस्तु तव सम्मतः॥ ४१

सङ्कर्षणाय देह्याशु कन्यां कमललोचनाम्।
रेवतीं बलभद्राय विवाहविधिना ततः॥ ४२

दत्त्वा पुत्रीं नृपश्रेष्ठ गच्छ त्वं बदरिकाश्रमम्।
तपस्तप्तुं सुराराम पावनं कामदं नृणाम्॥ ४३

व्यास उवाच

इति राजा समादिष्टो ब्रह्मणा पद्मयोनिना।
जगाम तरसा राजन् द्वारकां कन्ययान्वितः॥ ४४

ददौ तां बलदेवाय कन्यां वै शुभलक्षणाम्।
ततस्तप्त्वा तपस्तीव्रं नृपतिः कालपर्यये॥ ४५

जगाम त्रिदशावासं त्यक्त्वा देहं सरित्तटे।

राजोवाच

भगवन्महदाश्चर्यं भवता समुदाहृतम्॥ ४६

रेवतस्तु स्थितस्तत्र ब्रह्मलोके सुतार्थतः।
युगानां तु गतं तत्र शतमष्टोत्तरं किल॥ ४७

कन्या वृद्धा न सञ्जाता राजा वातितरां नु किम्।
एतावन्तं तथा कालमायुः पूर्णं तयोः कथम्॥ ४८

व्यास उवाच

न जरा क्षुत्पिपासा वा न मृत्युर्न भयं पुनः।
न तु ग्लानिः प्रभवति ब्रह्मलोके सदानघ॥ ४९

मेरुं गतस्य शर्यातेः सन्तती राक्षसैर्हता।
गताः कुशस्थलीं त्यक्त्वा भयभीता इतस्ततः॥ ५०

मनोश्च क्षुवतः पुत्र उत्पन्नो वीर्यवत्तरः।
इक्ष्वाकुरिति विख्यातः सूर्यवंशकरस्तु सः॥ ५१

वंशार्थं तप आतिष्ठद्देवीं ध्यात्वा निरन्तरम्।
नारदस्योपदेशेन प्राप्य दीक्षामनुत्तमाम्॥ ५२

उनके बड़े भाई बलराम हैं। हल तथा मूसलको आयुधके रूपमें धारण करनेवाले वे शूरवीर बलराम शेषके अंशावतार कहे जाते हैं। वे ही आपकी कन्याके लिये उपयुक्त वर हैं॥ ४१॥

अब आप वैवाहिक विधिके अनुसार शीघ्र ही संकर्षण बलरामको कमलके समान नेत्रोंवाली अपनी कन्या रेवती सौंप दीजिये। हे नृपश्रेष्ठ! उन्हें कन्या प्रदानकर आप तप करनेके लिये देवोद्यान बदरिकाश्रम चले जाइये; क्योंकि तप मनुष्योंकी सारी अभिलाषाएँ पूर्ण कर देता है और उनके अन्तःकरणको पवित्र बना देता है॥ ४२-४३॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! पद्मयोनि ब्रह्माजीसे यह आदेश पाकर राजा रेवत अपनी कन्याके साथ शीघ्र ही द्वारका चले गये। वहाँ उन्होंने बलरामजीको शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न अपनी पुत्री सौंप दी। उसके बाद सुदीर्घ कालतक कठोर तपस्या करके वे राजा रेवत नदीके तटपर अपना शरीर त्यागकर देवलोक चले गये॥ ४४-४५½॥

राजा बोले—हे भगवन्! आपने यह तो महान् आश्चर्यजनक बात कही कि राजा रेवत कन्याके योग्य वर जाननेके उद्देश्यसे ब्रह्मलोक गये और उनके वहाँ ठहरे हुए एक सौ आठ युग बीत गये, तबतक वह कन्या तथा वे राजा वृद्ध क्यों नहीं हुए अथवा इतने दीर्घ समयकी पूर्ण आयु ही उन्हें कैसे प्राप्त हुई?॥ ४६—४८॥

व्यासजी बोले—हे निष्पाप जनमेजय! ब्रह्मलोकमें भूख, प्यास, मृत्यु, भय, वृद्धावस्था तथा ग्लानि—इनमें कोई भी विकार कभी भी उत्पन्न नहीं होता॥ ४९॥

जब राजा रेवत वहाँसे सुमेरुपर्वतपर चले गये, तब राक्षसोंने शर्याति-वंशकी संततियोंको नष्ट कर डाला। वहाँके सभी लोग भयभीत होकर कुशस्थली छोड़कर इधर-उधर भाग गये॥ ५०॥

कुछ समयके बाद क्षुव नामक मनुसे एक परम ओजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ। इक्ष्वाकु नामसे विख्यात वे ही सूर्यवंशके प्रवर्तक माने जाते हैं॥ ५१॥

नारदजीके उपदेशसे और उनसे श्रेष्ठ दीक्षा प्राप्त करके उन्होंने वंशवृद्धिके उद्देश्यसे भगवतीके ध्यानमें निरन्तर संलग्न रहकर कठोर तपस्या की॥ ५२॥

तस्य पुत्रशतं राजन्निक्ष्वाकोरिति विश्रुतम्।
विकुक्षिः प्रथमस्तेषां बलवीर्यसमन्वितः॥ ५३

हे राजन्! ऐसा सुना गया है कि उन इक्ष्वाकुके एक सौ पुत्र हुए। उनमें सबसे बड़े विकुक्षि थे, जो बल तथा पराक्रमसे सम्पन्न थे॥ ५३॥

अयोध्यायां स्थितो राजा इक्ष्वाकुरिति विश्रुतः।
शकुनिप्रमुखाः पुत्राः पञ्चाशद् बलवत्तराः॥ ५४

उत्तरापथदेशस्य रक्षितारः कृताः किल।
दक्षिणस्यां तथा राजन्नादिष्टास्तेन ते सुताः॥ ५५

चत्वारिंशत्तथाष्टौ च रक्षणार्थं महात्मना।
अन्यौ द्वौ संस्थितौ पार्श्वे सेवार्थं तस्य भूपतेः॥ ५६

वे इक्ष्वाकु राजाके रूपमें अयोध्यामें निवास करते थे—यह बात प्रसिद्ध है। उनके शकुनि आदि पचास परम बलवान् पुत्र उत्तरापथ नामक देशके रक्षक नियुक्त किये गये और हे राजन्! उनके जो अड़तालीस पुत्र थे, वे सब उन महात्मा इक्ष्वाकुके द्वारा दक्षिणी देशोंकी रक्षाके लिये आदेशित किये गये। इनके अतिरिक्त अन्य दो पुत्र राजा इक्ष्वाकुकी सेवाके लिये उनके पास रहने लगे॥ ५४—५६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे इक्ष्वाकुवंशवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः॥ ८॥



अथ नवमोऽध्यायः

सूर्यवंशी राजाओंके वर्णनके क्रममें राजा ककुत्स्थ, युवनाश्व और मान्धाताकी कथा

व्यास उवाच

कदाचिदष्टकाश्राद्धे विकुक्षिं पृथिवीपतिः।
आज्ञापयदसंमूढो मांसमानय सत्वरम्॥ १

मेध्यं श्राद्धार्थमधुना वने गत्वा सुतादरात्।

व्यासजी बोले—हे राजन्! किसी समय अष्टका-श्राद्धके अवसरपर बुद्धिमान् भूपति इक्ष्वाकुने विकुक्षिको आज्ञा दी कि हे पुत्र! इस समय वनमें जाकर श्राद्धके लिये शीघ्र ही आदरपूर्वक पवित्र कव्य ले आओ॥ १$\frac{1}{2}$॥

इत्युक्तोऽसौ तथेत्याशु जगाम वनमस्त्रभृत्॥ २

गत्वा जघान बाणैः स वराहान्सूकरान्मृगान्।
शशांश्चापि परिश्रान्तो बभूवाथ बुभुक्षितः॥ ३

विस्मृता चाष्टका तस्य शशं चाददसौ वने।
शेषं निवेदयामास पित्रे मांसमनुत्तमम्॥ ४

प्रोक्षणाय समानीतं मांसं दृष्ट्वा गुरुस्तदा।
अनर्हमिति तज्ज्ञात्वा चुकोप मुनिसत्तमः॥ ५

राजाके इस प्रकार कहनेपर विकुक्षि आयुध धारण करके तुरंत वनकी ओर चल पड़ा। वहाँ जाकर वह थक गया तथा भूखसे व्याकुल हो उठा। इस कारणसे वह अष्टका-श्राद्धकी बात भूल गया और उसने वनमें ही एकत्रित किये गये श्राद्धद्रव्यके कुछ अंशका भक्षण कर लिया और बचा हुआ लाकर पिताजीको दे दिया। तब प्रोक्षणके निमित्त समक्ष लाये गये उस कव्यको देखकर और फिर उसे श्राद्धके लिये अनुपयुक्त जानकर मुनिश्रेष्ठ गुरु वसिष्ठ अत्यन्त कुपित हो उठे॥ २—५॥

भुक्तशेषं तु न श्राद्धे प्रोक्षणीयमिति स्थितिः।
राज्ञे निवेदयामास वसिष्ठः पाकदूषणम्॥ ६

'भोजनसे शेष बचे हुए द्रव्यका श्राद्धमें प्रोक्षण नहीं करना चाहिये—ऐसा नियम है'—इस पाकदोषके विषयमें वसिष्ठने राजाको बता दिया॥ ६॥

पुत्रस्य कर्म तज्ज्ञात्वा भूपतिर्गुरुणोदितम्।
चुकोप विधिलोपात्तं देशान्निःसारयत्ततः॥ ७

शशाद इति विख्यातो नाम्ना जातो नृपात्मजः।
गतो वने शशादस्तु पितृकोपादसम्भ्रमः॥ ८

वन्येन वर्तयन्कालं नीतवान् धर्मतत्परः।
पितर्युपरते राज्यं प्राप्तं तेन महात्मना॥ ९

शशादस्त्वकरोद्राज्यमयोध्यायाः पतिः स्वयम्।
यज्ञाननेकशः पूर्णांश्चकार सरयूतटे॥ १०

शशादस्याभवत्पुत्रः ककुत्स्थ इति विश्रुतः।
तस्यैव नामभेदाद्वै इन्द्रवाहः पुरञ्जयः॥ ११

जनमेजय उवाच

नामभेदः कथं जातो राजपुत्रस्य चानघ।
कारणं ब्रूहि मे सर्वं कर्मणा येन चाभवत्॥ १२

व्यास उवाच

शशादे स्वर्गते राजा ककुत्स्थ इति चाभवत्।
(राज्यं चकार धर्मज्ञः पितृपैतामहं बलात्।)
एतस्मिन्नन्तरे देवा दैत्यैः सर्वे पराजिताः॥ १३

जग्मुस्त्रिलोकाधिपतिं विष्णुं शरणमव्ययम्।
तान्प्रोवाच महाविष्णुस्तदा देवान्सनातनः॥ १४

विष्णुरुवाच

पार्ष्णिग्राहं महीपालं प्रार्थयन्तु शशादजम्।
स हनिष्यति वै दैत्यान्संग्रामे सुरसत्तमाः॥ १५

आगमिष्यति धर्मात्मा साहाय्यार्थं धनुर्धरः।
पराशक्तेः प्रसादेन सामर्थ्यं तस्य चातुलम्॥ १६

हरेः सुवचनाद्देवा ययुः सर्वे सवासवाः।
अयोध्यायां महाराज शशादतनयं प्रति॥ १७

तानागतान् सुरान् राजा पूजयामास धर्मतः।
पप्रच्छागमने राजा प्रयोजनमतन्द्रितः॥ १८

गुरु वसिष्ठके कथनानुसार अपने पुत्र विकुक्षिका वह दुष्कर्म जानकर विधिलोपके कारण उन्होंने उसे अपने देशसे बाहर निकाल दिया। वह राजकुमार तभीसे 'शशाद'—इस नामसे विख्यात हो गया। वह शशाद पिताके कोपसे किंचित् भयभीत होकर वनमें चला गया॥ ७-८॥

वह विकुक्षि वहाँ वन्य आहारपर जीवनयापन करते हुए धर्मपरायण होकर रहने लगा। तत्पश्चात् पिताकी मृत्यु हो जानेपर उस मनस्वी शशादको राज्य प्राप्त हो गया और वह शासन करने लगा। उस अयोध्यापति शशादने स्वयं सरयूनदीके तटपर अनेक यज्ञ सम्पन्न किये॥ ९-१०॥

उस शशादको एक पुत्र हुआ जो 'ककुत्स्थ'—इस नामसे प्रसिद्ध हुआ। उस ककुत्स्थके इन्द्रवाह और पुरंजय—ये दो नाम और भी थे॥ ११॥

जनमेजय बोले—हे निष्पाप मुने! उस राजकुमारके अनेक नाम कैसे हुए? उसके जिस-जिस कर्मके कारण ये नाम हुए, वह सब मुझे बताइये॥ १२॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! शशादके स्वर्गवासी हो जानेपर 'ककुत्स्थ' राजा बने। (वे धर्मज्ञ ककुत्स्थ पिता-पितामहसे परम्पराप्राप्त राज्यपर बलपूर्वक शासन करने लगे।) उसी समय सभी देवगण दैत्योंसे पराजित होकर तीनों लोकोंके स्वामी अविनाशी भगवान् विष्णुकी शरणमें गये। तब सनातन भगवान् श्रीहरि उन देवताओंसे कहने लगे॥ १३-१४॥

भगवान् विष्णु बोले—हे श्रेष्ठ देवगण! आपलोग शशादपुत्र राजा ककुत्स्थसे युद्धमें सहायक बननेके लिये प्रार्थना कीजिये। वे ही युद्धमें दैत्योंको मार सकेंगे। वे धर्मात्मा ककुत्स्थ धनुष धारण करके सहायताके लिये अवश्य आयेंगे। भगवती पराशक्तिकी कृपासे उनके पास अतुलनीय सामर्थ्य है॥ १५-१६॥

हे महाराज! भगवान् विष्णुकी यह उत्तम वाणी सुनकर इन्द्रसमेत सभी देवतागण अयोध्यामें रहनेवाले शशादपुत्र महाराज ककुत्स्थके पास जा पहुँचे॥ १७॥

राजा ककुत्स्थने उन आये हुए देवताओंका धर्मपूर्वक अत्यन्त उत्साहके साथ पूजन किया और इसके बाद वे उनसे आनेका प्रयोजन पूछने लगे॥ १८॥

राजोवाच

धन्योऽहं पावितश्चास्मि जीवितं सफलं मम।
यदागत्य गृहे देवा ददुश्च दर्शनं महत्॥ १९

ब्रुवन्तु कृत्यं देवेशा दुःसाध्यमपि मानवैः।
करिष्यामि महत्कार्यं सर्वथा भवतां महत्॥ २०

देवा ऊचुः

साहाय्यं कुरु राजेन्द्र सखा भव शचीपतेः।
संग्रामे जय दैत्येन्द्रान्दुर्जयांस्त्रिदशैरपि॥ २१

पराशक्तिप्रसादेन दुर्लभं नास्ति ते क्वचित्।
विष्णुना प्रेरिताश्चैवमागतास्तव सन्निधौ॥ २२

राजोवाच

पार्ष्णिग्राहो भवाम्यद्य देवानां सुरसत्तमाः।
इन्द्रो मे वाहनं तत्र भवेद्यदि सुराधिपः॥ २३

संग्रामं तु करिष्यामि दैत्यैर्देवकृतेऽधुना।
आरुह्येन्द्रं गमिष्यामि सत्यमेतद् ब्रवीम्यहम्॥ २४

तदोचुर्वासवं देवाः कर्तव्यं कार्यमद्भुतम्।
पत्रं भव नरेन्द्रस्य त्यक्त्वा लज्जां शचीपते॥ २५

लज्जमानस्तदा शक्रः प्रेरितो हरिणा भृशम्।
बभूव वृषभस्तूर्णं रुद्रस्येवापरो महान्॥ २६

तमारुरोह राजासौ संग्रामगमनाय वै।
स्थितः ककुदि येनास्य ककुत्स्थस्तेन चाभवत्॥ २७

इन्द्रो वाहः कृतो येन तेन नाम्नेन्द्रवाहकः।
पुरं जितं तु दैत्यानां तेनाभूच्च पुरञ्जयः॥ २८

जित्वा दैत्यान्महाबाहुर्धनं तेषां प्रदत्तवान्।
पप्रच्छ चैवं राजर्षेरिति सख्यं बभूव ह॥ २९

राजा बोले—हे देवगण! मैं धन्य और पवित्र हो गया; मेरा जीवन सार्थक हो गया, जो कि आपलोगोंने मेरे घर पधारकर मुझे अपना महनीय दर्शन दिया है। हे देवेश्वरो! आप मुझे अपने कार्यके विषयमें बतलाएँ। आपका वह कार्य चाहे मनुष्योंके लिये परम दुःसाध्य ही हो, मैं वह महान् कार्य हर प्रकारसे सम्पन्न करूँगा॥ १९-२०॥

देवता बोले—हे राजेन्द्र! हमारी सहायता कीजिये; शचीपति इन्द्रके सखा बन जाइये और देवताओंके लिये भी अजेय महान् दैत्योंको युद्धमें परास्त कर दीजिये। पराशक्ति जगदम्बाके अनुग्रहसे आपके लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं है। भगवान् विष्णुके भेजनेपर ही हमलोग आपके पास आये हैं॥ २१-२२॥

राजा बोले—हे श्रेष्ठ देवतागण! यदि इन्द्र उस युद्धमें मेरा वाहन बनें तो मैं अभी देवताओंकी ओरसे सेनापति बन जाऊँगा। मैं इसी समय इन्द्रपर आरूढ़ होकर युद्धक्षेत्रमें जाऊँगा और देवताओंके लिये युद्ध करूँगा, मैं यह सत्य कह रहा हूँ॥ २३-२४॥

तब देवताओंने इन्द्रसे कहा—हे शचीपते! [इस समय] आपको यह अद्भुत कार्य करना है। आप लज्जा छोड़कर राजा ककुत्स्थका वाहन बन जाइये॥ २५॥

उस समय इन्द्र बड़े संकोचमें पड़ गये, फिर भगवान् श्रीहरिके बार-बार प्रेरणा करनेपर वे तुरंत एक ऐसे वृषभके रूपमें प्रकट हो गये मानो भगवान् रुद्रके दूसरे महान् नन्दी ही हों॥ २६॥

तब संग्राममें जानेके लिये वे राजा उस वृषभपर चढ़े और उसके ककुद्पर बैठे, इसी कारणसे वे 'ककुत्स्थ' नामवाले हो गये। उन्होंने इन्द्रको अपना वाहन बनाया था, इसलिये वे 'इन्द्रवाहक' नामसे प्रसिद्ध हुए और उन्होंने दैत्योंके पुर (नगर)-पर विजय प्राप्त की थी, इसलिये वे 'पुरंजय' नामवाले भी हो गये॥ २७-२८॥

तत्पश्चात् उन महाबाहु ककुत्स्थने दैत्योंको जीतकर उनका धन देवताओंको दे दिया और [फिर वहाँसे प्रस्थान करनेके लिये देवताओंसे] पूछा। इस प्रकार इन्द्रके साथ राजर्षि ककुत्स्थकी मैत्री हुई॥ २९॥

ककुत्स्थश्चातिविख्यातो नृपतिस्तस्य वंशजाः।
काकुत्स्था भुवि राजानो बभूवुर्बहुविश्रुताः॥ ३०

ककुत्स्थस्याभवत्पुत्रो धर्मपत्न्यां महाबलः।
अनेना विश्रुतस्तस्य पृथुः पुत्रश्च वीर्यवान्॥ ३१

विष्णोरंशः स्मृतः साक्षात्पराशक्तिपदार्चकः।
विश्वरन्धिस्तु विज्ञेयः पृथोः पुत्रो नराधिपः॥ ३२

चन्द्रस्तस्य सुतः श्रीमान् राजा वंशकरः स्मृतः।
तत्सुतो युवनाश्वस्तु तेजस्वी बलवत्तरः॥ ३३

शावन्तो युवनाश्वस्य जज्ञे परमधार्मिकः।
शावन्ती निर्मिता तेन पुरी शक्रपुरीसमा॥ ३४

बृहदश्वस्तु पुत्रोऽभूच्छावन्तस्य महात्मनः।
कुवलयाश्वः सुतस्तस्य बभूव पृथिवीपतिः॥ ३५

धुन्धुर्नामा हतो दैत्यस्तेनासौ पृथिवीतले।
धुन्धुमारेति विख्यातं नाम प्रापातिविश्रुतम्॥ ३६

पुत्रस्तस्य दृढाश्वस्तु पालयामास मेदिनीम्।
दृढाश्वस्य सुतः श्रीमान्हर्यश्व इति कीर्तितः॥ ३७

निकुम्भस्तत्सुतः प्रोक्तो बभूव पृथिवीपतिः।
बर्हणाश्वो निकुम्भस्य कृशाश्वस्तस्य वै सुतः॥ ३८

प्रसेनजित्कृशाश्वस्य बलवान्सत्यविक्रमः।
तस्य पुत्रो महाभागो यौवनाश्वेति विश्रुतः॥ ३९

यौवनाश्वसुतः श्रीमान्मान्धातेति महीपतिः।
अष्टोत्तरसहस्रं तु प्रासादा येन निर्मिताः॥ ४०

भगवत्यास्तु तुष्ट्यर्थं महातीर्थेषु मानद।
मातृगर्भे न जातोऽसावुत्पन्नो जनकोदरे॥ ४१

निःसारितस्ततः पुत्रः कुक्षिं भित्त्वा पितुः पुनः।

महाराज ककुत्स्थ महान् प्रसिद्ध राजा थे। उनके वंशमें उत्पन्न सभी राजा 'काकुत्स्थ' नामसे पृथ्वीलोकमें अत्यधिक प्रसिद्ध हुए॥ ३० ॥

राजा ककुत्स्थकी धर्मपत्नीके गर्भसे एक महाबली पुत्र हुआ, जो 'अनेना' नामसे विख्यात हुआ। उस 'अनेना' को एक पृथु नामक पराक्रमी पुत्र हुआ; उसे साक्षात् भगवान् विष्णुका अंश कहा गया है। वह पराशक्ति जगदम्बाके चरणोंका उपासक था, उन पृथुके पुत्ररूपमें राजा विश्वरन्धिको जानना चाहिये॥ ३१-३२ ॥

उन 'विश्वरन्धि' के चन्द्र नामक परम ऐश्वर्यशाली पुत्र हुए, वे चन्द्रवंशकी वृद्धि करनेवाले कहे जाते हैं। उनके पुत्र युवनाश्व थे, जो परम तेजस्वी तथा महान् बलशाली थे॥ ३३ ॥

उन युवनाश्वके 'शावन्त' नामक परम धार्मिक पुत्र उत्पन्न हुए। उन्होंने इन्द्रपुरीके समान प्रतीत होनेवाली शावन्ती नामकी पुरीका निर्माण कराया॥ ३४ ॥

उन महात्मा शावन्तके 'बृहदश्व' नामक पुत्र हुए और बृहदश्वके पुत्र राजा कुवलयाश्व हुए। उन कुवलयाश्वने 'धुन्धु' नामक दैत्यका संहार किया, तभीसे उन्होंने पृथ्वीलोकमें 'धुन्धुमार' नामसे परम प्रसिद्धि प्राप्त की॥ ३५-३६ ॥

उनके पुत्र दृढाश्व हुए, जिन्होंने पृथ्वीकी भलीभाँति रक्षा की। उन दृढाश्वके पुत्र श्रीमान् हर्यश्व कहे गये हैं॥ ३७ ॥

उन हर्यश्वके 'निकुम्भ' नामक पुत्र कहे गये हैं। वे महान् राजा हुए; निकुम्भके पुत्र बर्हणाश्व और उनके पुत्र कृशाश्व हुए॥ ३८ ॥

उन कृशाश्वके प्रसेनजित् नामक बलवान् तथा सत्यपराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुए और प्रसेनजित्के एक भाग्यशाली पुत्र उत्पन्न हुए, वे 'यौवनाश्व'—इस नामसे प्रसिद्ध हुए॥ ३९ ॥

उन यौवनाश्वके पुत्र श्रीमान् राजा मान्धाता थे। हे मानद! उन्होंने भगवती जगदम्बाको प्रसन्न करनेके लिये महातीर्थोंमें एक हजार आठ देवालयोंका निर्माण कराया था। ये माताके गर्भसे जन्म न लेकर पिताके उदरसे उत्पन्न हुए थे। पिताकी कुक्षिका भेदनकर उन्हें वहाँसे निकाला गया था॥ ४०-४१½ ॥

राजोवाच

न श्रुतं न च दृष्टं वा भवता तदुदाहृतम्॥ ४२

असम्भाव्यं महाभाग तस्य जन्म यथोदितम्।
विस्तरेण वदस्वाद्य मान्धातुर्जन्मकारणम्॥ ४३

राजोदरे यथोत्पन्नः पुत्रः सर्वाङ्गसुन्दरः।

व्यास उवाच

यौवनाश्वोऽनपत्योऽभूद्राजा परमधार्मिकः॥ ४४

भार्याणां च शतं तस्य बभूव नृपतेर्नृप।
राजा चिन्तापरः प्रायश्चिन्तयामास नित्यशः॥ ४५

अपत्यार्थे यौवनाश्वो दुःखितस्तु वनं गतः।
ऋषीणामाश्रमे पुण्ये निर्विण्णः स च पार्थिवः॥ ४६

मुमोच दुःखितः श्वासांस्तापसानां च पश्यताम्।
दृष्ट्वा तु दुःखितं विप्रा बभूवुश्च कृपालवः॥ ४७

तमूचुर्ब्राह्मणा राजन्कस्माच्छोचसि पार्थिव।
किं ते दुःखं महाराज ब्रूहि सत्यं मनोगतम्॥ ४८

प्रतीकारं करिष्यामो दुःखस्य तव सर्वथा।

यौवनाश्व उवाच

राज्यं धनं सदश्वाश्च वर्तन्ते मुनयो मम॥ ४९

भार्याणां च शतं शुद्धं वर्तते विशदप्रभम्।
नारातिस्त्रिषु लोकेषु कोऽप्यस्ति बलवान्मम॥ ५०

आज्ञाकरास्तु सामन्ता वर्तन्ते मन्त्रिणस्तथा।
एकं सन्तानजं दुःखं नान्यत्पश्यामि तापसाः॥ ५१

अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गो नैव च नैव च।
तस्माच्छोचामि विप्रेन्द्राः सन्तानार्थं भृशं ततः॥ ५२

राजा बोले—हे महाभाग [व्यासजी!] उन महाराज मान्धाताके जन्मके विषयमें जैसा आपने कहा है, वह तो असम्भव-सी घटना है, मैंने ऐसा न तो सुना है और न देखा ही है। अब आप राजा मान्धाताके जन्मका वृत्तान्त विस्तारपूर्वक बताइये। वह सर्वांगसुन्दर पुत्र राजा यौवनाश्वके उदरसे जिस प्रकार उत्पन्न हुआ, उसे कहिये॥ ४२-४३½ ॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! परम धर्मनिष्ठ राजा यौवनाश्व सन्तानहीन थे। उन महाराजकी एक सौ रानियाँ थीं, किंतु किसीसे भी सन्तान न होनेके कारण वे प्रायः चिन्तित रहते और सन्तानके लिये नित्य सोचमें पड़े रहते थे। अन्तमें अत्यन्त दुःखित होकर वे यौवनाश्व वनमें चले गये॥ ४४-४५½ ॥

वहाँ ऋषियोंके पवित्र आश्रममें रहते हुए वे महाराज यौवनाश्व सदा खिन्न रहते थे और व्यथित होकर सदा दीर्घ श्वास छोड़ते रहते थे, इसे वहाँ रहनेवाले तपस्वीजन बराबर देखा करते थे। उन्हें इस प्रकार दुःखित देखकर सभी विप्रोंको उनपर दया आ गयी। ब्राह्मणोंने उनसे पूछा—हे राजन्! आप यह चिन्ता किसलिये कर रहे हैं? हे पार्थिव! आपको कौन-सा कष्ट है? हे महाराज! आप अपने मनकी बात सच-सच बताइये, हमलोग हर तरहसे आपका दुःख दूर करनेका उपाय करेंगे॥ ४६—४८½ ॥

यौवनाश्व बोले—हे मुनियो! मेरे पास राज्य, धन तथा उत्तम कोटिके बहुत-से घोड़े विद्यमान हैं; दिव्य प्रभासे युक्त एक सौ साध्वी रानियाँ मेरे पास हैं, तीनों लोकोंमें मेरा कोई भी बलवान् शत्रु नहीं है और मेरे सभी मन्त्री तथा सामन्त सदा मेरे आज्ञापालनमें तत्पर रहते हैं॥ ४९-५०½ ॥

हे तपस्वियो! मुझे एकमात्र दुःख सन्तान न होनेका है; इसके अतिरिक्त दूसरा कोई भी दुःख मेरी दृष्टिमें नहीं है। हे विप्रेन्द्रो! पुत्रहीन व्यक्तिकी न तो सद्गति होती है और न उसे स्वर्ग ही मिलता है, अतः सन्तानके लिये मैं सदा अत्यधिक शोकाकुल रहता हूँ। हे तपस्वियो! आपलोग महान् परिश्रम

वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञास्तापसाश्च कृतश्रमाः।
इष्टिं सन्तानकामस्य युक्तां ज्ञात्वा दिशन्तु मे॥ ५३

कुर्वन्तु मम कार्यं वै कृपा चेदस्ति तापसाः।

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं राज्ञः कृपया पूर्णमानसाः॥ ५४

कारयामासुरव्यग्रास्तस्येष्टिमिन्द्रदेवताम्।
कलशः स्थापितस्तत्र जलपूर्णस्तु वाडवैः॥ ५५

मन्त्रितो वेदमन्त्रैश्च पुत्रार्थं तस्य भूपतेः।
राजा तद्यज्ञसदनं प्रविष्टस्तृषितो निशि॥ ५६

विप्रान्दृष्ट्वा शयानान्स पपौ मन्त्रजलं स्वयम्।
भार्यार्थं संस्कृतं विप्रैर्मन्त्रितं विधिनोद्धृतम्॥ ५७

पीतं राज्ञा तृषार्तेन तदज्ञानान्नृपोत्तम।
व्युदकं कलशं दृष्ट्वा तदा विप्रा विशङ्किताः॥ ५८

पप्रच्छुस्ते नृपं केन पीतं जलमिति द्विजाः।
राज्ञा पीतं विदित्वा ते ज्ञात्वा दैवबलं महत्॥ ५९

इष्टिं समापयामासुर्गतास्ते मुनयो गृहान्।
गर्भं दधार नृपतिस्ततो मन्त्रबलादथ॥ ६०

ततः काले स उत्पन्नः कुक्षिं भित्त्वाऽस्य दक्षिणाम्।
पुत्रं निष्कासयामासुर्मन्त्रिणस्तस्य भूपतेः॥ ६१

देवानां कृपया तत्र न ममार महीपतिः।
कं धास्यति कुमारोऽयं मन्त्रिणश्चुक्रुशुर्भृशम्॥ ६२

करके वेद-शास्त्रोंके रहस्य जाननेवाले हैं, मुझ सन्तानकामीके लिये करणीय जो उपयुक्त यज्ञ हो, उसे सोच-समझकर मुझे बतायें। हे तापसो! यदि मुझपर आपलोगोंकी कृपा हो, तो मेरा यह कार्य सम्पन्न कर दें॥ ५१—५३½ ॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! राजा यौवनाश्वकी बात सुनकर दयासे परिपूर्ण हृदयवाले उन ब्राह्मणोंने इन्द्रको प्रधान देवता बनाकर अत्यन्त सावधानीपूर्वक उन नरेशसे एक यज्ञ करवाया। ब्राह्मणोंने वहाँपर जलसे परिपूर्ण एक कलश स्थापित कराया और राजा यौवनाश्वकी पुत्रप्राप्तिके निमित्त वेदमन्त्रोंके द्वारा उस कलशका अभिमन्त्रण किया॥ ५४-५५½ ॥

राजा यौवनाश्वको रातमें प्यास लग गयी, जिससे वे यज्ञशालामें चले गये। [वहाँ कहीं भी जल न देखकर तथा] ब्राह्मणोंको सोता हुआ देखकर उन्होंने कलशवाला अभिमन्त्रित जल स्वयं ही पी लिया॥ ५६½ ॥

हे नृपश्रेष्ठ! प्याससे व्याकुल राजा यौवनाश्व ब्राह्मणोंके द्वारा विधिपूर्वक अभिमन्त्रित करके रानीके लिये रखे गये उस पवित्र जलको अज्ञानपूर्वक पी गये॥ ५७½ ॥

तत्पश्चात् कलशको जल-विहीन देखकर ब्राह्मण सशंकित हो गये। उन विप्रोंने राजा यौवनाश्वसे पूछा कि इस जलको किसने पीया है?॥ ५८½ ॥

स्वयं राजा यौवनाश्वने जल पीया है—इस बातको जानकर और दैव सबसे बढ़कर बलवान् होता है—यह समझकर उन महर्षियोंने यज्ञ सम्पन्न किया और बादमें वे अपने-अपने घर चले गये॥ ५९½ ॥

तदनन्तर मन्त्रके प्रभावसे राजा यौवनाश्वने गर्भ धारण कर लिया। तब गर्भके पूर्ण होनेपर राजाकी दाहिनी कोखका भेदन करके वे (मान्धाता) उत्पन्न हुए॥ ६०½ ॥

राजाके मन्त्रियोंने पुत्रको बाहर निकाला। देवताओंकी कृपासे राजा यौवनाश्वकी मृत्यु नहीं हुई। तब चिन्तित होकर मन्त्रीलोग यह कहकर जोरसे चिल्ला उठे—यह कुमार किसका दूध पीयेगा? इतनेमें इन्द्रने उसके मुखमें अपनी तर्जनी अँगुली

तदेन्द्रो देशिनीं प्रादान्मां धातेत्यवदद्वचः।

सोऽभवद् बलवान् राजा मान्धाता पृथिवीपतिः।

तदुत्पत्तिस्तु भूपाल कथिता तव विस्तरात्॥ ६३

डाल दी और यह वचन कहा—'**मां धाता**' अर्थात् यह मेरा दुग्ध-पान करेगा। वे ही मान्धाता नामक महान् बलशाली राजा हुए। हे राजन्! इस प्रकार मैंने उनकी उत्पत्तिका विस्तारपूर्वक वर्णन आपसे कर दिया॥ ६१—६३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे मान्धातोत्पत्तिवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः॥ ९॥



अथ दशमोऽध्यायः

सूर्यवंशी राजा अरुणद्वारा राजकुमार सत्यव्रतका त्याग, सत्यव्रतका वनमें भगवती जगदम्बाके मन्त्र-जपमें रत होना

व्यास उवाच

बभूव चक्रवर्ती स नृपतिः सत्यसङ्गरः।
मान्धाता पृथिवीं सर्वामजयन्नृपतीश्वरः॥ १

दस्यवोऽस्य भयत्रस्ता ययुर्गिरिगुहासु च।
इन्द्रेणास्य कृतं नाम त्रसद्दस्युरिति स्फुटम्॥ २

तस्य बिन्दुमती भार्या शशबिन्दोः सुताभवत्।
पतिव्रता सुरूपा च सर्वलक्षणसंयुता॥ ३

तस्यामुत्पादयामास मान्धाता द्वौ सुतौ नृप।
पुरुकुत्सं सुविख्यातं मुचुकुन्दं तथापरम्॥ ४

पुरुकुत्सात्ततोऽरण्यः पुत्रः परमधार्मिकः।
पितृभक्तिरतश्चाभूद् बृहदश्वस्तदात्मजः॥ ५

हर्यश्वस्तस्य पुत्रोऽभूद्धार्मिकः परमार्थवित्।
तस्यात्मजस्त्रिधन्वाभूदरुणस्तस्य चात्मजः॥ ६

अरुणस्य सुतः श्रीमान्सत्यव्रत इति श्रुतः।
सोऽभूदिच्छाचरः कामी मन्दात्मा ह्यतिलोलुपः॥ ७

स पापात्मा विप्रभार्यां हृतवान्काममोहितः।
विवाहे तस्य विघ्नं स चकार नृपतेः सुतः॥ ८

व्यासजी बोले—[हे जनमेजय!] वे महाराज मान्धाता सत्यप्रतिज्ञ तथा चक्रवर्ती नरेश हुए। उन राजाधिराजने सम्पूर्ण पृथ्वीको जीत लिया था॥ १॥

उनके भयसे त्रस्त होकर सभी दस्यु (लुटेरे) पर्वतोंकी गुफाओंमें छिप गये थे। इसी कारण इन्द्रने इन्हें 'त्रसद्दस्यु' इस नामसे विख्यात कर दिया॥ २॥

महाराज शशबिन्दुकी पुत्री बिन्दुमती उनकी भार्या थीं; जो पतिव्रता, रूपवती तथा सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न थीं॥ ३॥

हे राजन्! मान्धाताने उनसे दो पुत्र उत्पन्न किये। उनमें एक पुत्र पुरुकुत्स तथा दूसरा पुत्र मुचुकुन्द नामसे विख्यात हुआ॥ ४॥

उसके बाद पुरुकुत्ससे अरण्य नामक एक पुत्र हुआ। वे परम धार्मिक तथा पितृभक्त थे। उनके पुत्र बृहदश्व थे। उन बृहदश्वके भी हर्यश्व नामक पुत्र हुए, जो परम धर्मिष्ठ तथा परमार्थज्ञानी थे। उनके पुत्र त्रिधन्वा हुए और त्रिधन्वाके अरुण नामक पुत्र हुए। अरुणका पुत्र सत्यव्रत नामसे प्रसिद्ध हुआ, वह परम ऐश्वर्यसे सम्पन्न था; किंतु वह स्वेच्छाचारी, कामी, मन्दबुद्धि तथा अत्यन्त लोभी निकला॥ ५—७॥

एक समयकी बात है—उस पापीने कामासक्त होकर एक विप्रकी भार्याका अपहरण कर लिया। जब उस विप्रका विवाह कन्याके साथ हो रहा था, उसी समय विवाह-मण्डपमें ही उस राजकुमारने यह विघ्न उपस्थित किया था॥ ८॥

मिलिता ब्राह्मणास्तत्र राजानमरुणं नृप।
ऊचुर्भृशं सुदुःखार्ता हा हताःस्मेति चासकृत्॥ ९

हे राजन्! तत्पश्चात् सभी ब्राह्मण एक साथ राजा अरुणके पास पहुँचे और अत्यधिक दुःखित होकर बार-बार कहने लगे—'हाय, हमलोग मारे गये'॥ ९॥

पप्रच्छ राजा तान्विप्रान्दुःखितान्पुरवासिनः।
किं कृतं मम पुत्रेण भवतामशुभं द्विजाः॥ १०

तब राजा अरुणने दुःखसे पीड़ित उन नगरवासी ब्राह्मणोंसे पूछा—हे विप्रगण! मेरे पुत्रने आपलोगोंका क्या अनिष्ट किया है?॥ १०॥

तन्निशम्य द्विजा वाक्यं राज्ञो विनयपूर्वकम्।
तदोचुस्त्वरुणं विप्राः कृताशीर्वचना भृशम्॥ ११

तब राजाकी यह वाणी सुनकर विप्रगण विपुल आशीर्वाद देते हुए उनसे विनम्रतापूर्वक कहने लगे॥ ११॥

ब्राह्मणा ऊचुः

राजंस्तव सुतेनाद्य विवाहे प्रहृता किल।
विवाहिता विप्रकन्या बलेन बलिनांवर॥ १२

ब्राह्मण बोले—बलशालियोंमें श्रेष्ठ हे राजन्! आज आपके पुत्र सत्यव्रतने विवाहमण्डपसे एक ब्राह्मणकी विवाहिता कन्याका बलपूर्वक हरण कर लिया है॥ १२॥

व्यास उवाच

श्रुत्वा तेषां वचस्तथ्यं राजा परमधार्मिकः।
पुत्रमाह वृथा नाम कृतं ते दुष्टकर्मणा॥ १३

गच्छ दूरं सुमन्दात्मन्दुराचार गृहान्मम।
न स्थातव्यं त्वया पाप विषये मम सर्वथा॥ १४

व्यासजी बोले—[हे महाराज जनमेजय!] उनकी तथ्यपूर्ण बात सुनकर परम धार्मिक राजा अरुणने पुत्रसे कहा—इस कुकर्मके कारण तुम्हारा 'सत्यव्रत' नाम व्यर्थ हो गया है। हे दुर्बुद्धि! दुराचारी! तुम मेरे घरसे दूर चले जाओ। अरे पापी! अब तुम मेरे राज्यमें ठहरनेके योग्य बिलकुल ही नहीं रह गये हो॥ १३-१४॥

कुपितं पितरं प्राह क्व गच्छामीति वै मुहुः।
अरुणस्तमथोवाच श्वपाकैः सह वर्तय॥ १५

श्वपचस्य कृतं कर्म द्विजदारापहारणम्।
तस्मात्तैः सह संसर्गं कृत्वा तिष्ठ यथासुखम्॥ १६

नाहं पुत्रेण पुत्रार्थी त्वया च कुलपांसन।
यथेष्टं व्रज दुष्टात्मन् कीर्तिनाशः कृतस्त्वया॥ १७

अपने पिताको कुपित देखकर वह बार-बार कहने लगा कि मैं कहाँ जाऊँ? तब राजा अरुणने उससे कहा कि तुम चाण्डालोंके साथ रहो। विप्रकी भार्याका अपहरण करके तुमने चाण्डालका कर्म किया है, इसलिये अब तुम उन्हींके साथ संसर्ग करते हुए स्वेच्छापूर्वक रहो। अरे कुलकलंकी! तुझ-जैसे पुत्रसे मैं पुत्रवान् नहीं बनना चाहता। अरे दुष्ट! तुमने मेरी सारी कीर्ति नष्ट कर दी है; इसलिये जहाँ तुम्हारी इच्छा हो, वहाँ चले जाओ॥ १५—१७॥

स निशम्य पितुर्वाक्यं कुपितस्य महात्मनः।
निश्चक्राम पुरात्तस्मात्तरसा श्वपचान्ययौ॥ १८

सत्यव्रतस्तदा तत्र श्वपाकैः सह वर्तते।
धनुर्बाणधरः श्रीमान्कवची करुणालयः॥ १९

कोपसे युक्त अपने महात्मा पिताकी बात सुनकर सत्यव्रत उस नगरसे तत्काल निकल गया और चाण्डालोंके पास चला गया। उस समय ऐश्वर्यसम्पन्न तथा करुणालय सत्यव्रत कवच पहनकर तथा धनुष-बाण लेकर उन चाण्डालोंके साथ रहने लगा॥ १८-१९॥

यदा निष्कासितः पित्रा कुपितेन महात्मना।
गुरुणाथ वसिष्ठेन प्रेरितोऽसौ महीपतिः॥ २०

तस्मात्सत्यव्रतस्तस्मिन्बभूव क्रोधसंयुतः।
वसिष्ठे धर्मशास्त्रज्ञे निवारणपराङ्मुखे॥ २१

केनचित्कारणेनाथ पिता तस्य महीपतिः।

पुत्रार्थेऽसौ तपस्तप्तुं पुरं त्यक्त्वा वनं गतः॥ २२

न ववर्ष तदा तस्मिन्विषये पाकशासनः।
समा द्वादश राजेन्द्र तेनाधर्मेण सर्वथा॥ २३

विश्वामित्रस्तदा दारांस्तस्मिंस्तु विषये नृप।
संन्यस्य कौशिकीतीरे चचार विपुलं तपः॥ २४

कातरा तत्र सञ्जाता भार्या वै कौशिकस्य ह।
कुटुम्बभरणार्थाय दुःखिता वरवर्णिनी॥ २५

बालकान्क्षुधयाक्रान्तान्रुदतः पश्यती भृशम्।
याचमानांश्च नीवारान्कष्टमाप पतिव्रता॥ २६

चिन्तयामास दुःखार्ता तोकान्वीक्ष्य क्षुधातुरान्।
नृपो नास्ति पुरे ह्यद्य कं याचे वा करोमि किम्॥ २७

न मे त्रातास्ति पुत्राणां पतिर्मे नास्ति सन्निधौ।
रुदन्ति बालकाः कामं धिङ्मे जीवनमद्य वै॥ २८

धनहीनां च मां त्यक्त्वा तपस्तप्तुं गतः पतिः।
न जानाति समर्थोऽपि दुःखितां धनवर्जिताम्॥ २९

बालानां भरणं केन करोमि पतिना विना।
मरिष्यन्ति सुताः सर्वे क्षुधया पीडिता भृशम्॥ ३०

एकं सुतं तु विक्रीय द्रव्येण कियता पुनः।
पालयामि सुतानन्यानेष मे विहितो विधिः॥ ३१

जब महात्मा राजा अरुणने कुपित होकर अपने पुत्र सत्यव्रतको निष्कासित किया था, तब गुरु वसिष्ठने उन्हें इस कार्यके लिये प्रेरित किया था। इसलिये राजकुमार सत्यव्रत निष्कासनसे न रोकनेवाले उन धर्मशास्त्रके ज्ञाता वसिष्ठजीपर कुपित था॥ २०-२१॥

एक समय किसी प्रसंगवश उस सत्यव्रतके पिता राजा अरुण अयोध्यापुरी छोड़कर पुत्रकी कल्याण-कामनासे तप करनेके लिये वनमें चले गये॥ २२॥

हे महाराज! उस समय उस अधर्मके कारण इन्द्रने उस राज्यमें बारह वर्षोंतक बिलकुल जल नहीं बरसाया॥ २३॥

हे राजन्! उस समय मुनि विश्वामित्र अपनी पत्नीको उस राज्यमें छोड़कर स्वयं कौशिकीनदीके तटपर कठोर तपस्या करने लगे थे॥ २४॥

विश्वामित्रकी सुन्दर रूपवाली भार्या उस अकालके समय कुटुम्बके भरण-पोषणकी समस्याके कारण दुःखित होकर चिन्तासे व्याकुल हो उठीं॥ २५॥

भूखसे पीड़ित होकर रोते-कलपते तथा नीवार अन्न माँगते हुए अपने पुत्रोंको देख-देखकर उस पतिव्रताको महान् कष्ट होता था॥ २६॥

भूखसे आक्रान्त पुत्रोंको देखकर दुःखसे व्याकुल हो वे सोचने लगीं कि इस समय नरेश भी नगरमें नहीं हैं; अतः अब मैं किससे माँगूँ अथवा अन्य कौन-सा उपाय करूँ॥ २७॥

यहाँ मेरे पुत्रोंकी रक्षा करनेवाला कोई नहीं है। मेरे पतिदेव भी इस समय मेरे पास नहीं हैं। ये बालक बहुत रो रहे हैं, अब तो मेरे जीवनको धिक्कार है॥ २८॥

मैं धनरहित हूँ—ऐसा जानते हुए भी मुझे छोड़कर पतिदेव तप करनेके लिये चले गये। समर्थ होकर भी वे इस बातको नहीं समझते कि धनके अभावमें मैं यह कष्ट भोग रही हूँ॥ २९॥

पतिकी अनुपस्थितिमें अब मैं किसकी सहायतासे बालकोंका भरण-पोषण करूँ। अब तो भूखसे तड़प-तड़पकर मेरे सभी पुत्र मर जायँगे। अतः अब एक यह उपाय मुझे सूझ रहा है कि इनमेंसे एक पुत्रको बेचकर जो कुछ भी धन प्राप्त हो, उस धनसे अन्य पुत्रोंका पालन-पोषण करूँ॥ ३०-३१॥

सर्वेषां मारणं नाद्धा युक्तं मम विपर्यये।
कालस्य कलनायाहं विक्रीणामि तथात्मजम्॥ ३२

हृदयं कठिनं कृत्वा संचिन्त्य मनसा सती।
सा दर्भरज्ज्वा बद्ध्वाथ गले पुत्रं विनिर्गता॥ ३३

मुनिपत्नी गले बद्ध्वा मध्यमं पुत्रमौरसम्।
शेषस्य भरणार्थाय गृहीत्वा चलिता गृहात्॥ ३४

दृष्ट्वा सत्यव्रतेनार्ता तापसी शोकसंयुता।
पप्रच्छ नृपतिस्तां तु किं चिकीर्षसि शोभने॥ ३५

रुदन्तं बालकं कण्ठे बद्ध्वा नयसि काधुना।
किमर्थं चारुसर्वाङ्गि सत्यं ब्रूहि ममाग्रतः॥ ३६

ऋषिपत्न्युवाच

विश्वामित्रस्य भार्याहं पुत्रोऽयं मे नृपात्मज।
विक्रेतुमौरसं कामं गमिष्ये विषमे सुतम्॥ ३७

अन्नं नास्ति पतिर्मुक्त्वा गतस्तप्तुं नृप क्वचित्।
विक्रीणामि क्षुधार्तैनं शेषस्य भरणाय वै॥ ३८

राजोवाच

पतिव्रते रक्ष पुत्रं दास्यामि भरणं तव।
तावदेव पतिस्तेऽत्र वनाच्चैवागमिष्यति॥ ३९

वृक्षे तवाश्रमाभ्याशे भक्ष्यं किञ्चिन्निरन्तरम्।
बन्धयित्वा गमिष्यामि सत्यमेतद् ब्रवीम्यहम्॥ ४०

इत्युक्ता सा तदा तेन राज्ञा कौशिककामिनी।
विबन्धं तनयं कृत्वा जगामाश्रममण्डलम्॥ ४१

सोऽभवद् गालवो नाम गलबन्धान्महातपाः।
सा तु स्वस्याश्रमे गत्वा मुमोद बालकैर्वृता॥ ४२

इस प्रकार भूखसे सभी पुत्रोंको मार डालना मेरे विचारसे उचित नहीं है। अतः इस संकटकी स्थितिसे निबटनेके लिये मैं एक पुत्रको बेचूँगी॥ ३२॥

मन-ही-मन इस तरहका संकल्प करके अपने हृदयको कठोर बनाकर वह साध्वी एक पुत्रके गलेमें कुशकी रस्सी बाँधकर घरसे निकल पड़ी॥ ३३॥

जब वह मुनि-पत्नी शेष पुत्रोंके रक्षार्थ अपने औरस मझले पुत्रके गलेमें रस्सी बाँधकर उसे लेकर अपने घरसे निकली, तभी [उसके कुछ दूर जानेपर] राजकुमार सत्यव्रतने उस शोक-सन्तप्त तथा घबरायी हुई तपस्विनीको देख लिया और उससे पूछा—हे शोभने! आप क्या करना चाहती हो? हे सर्वांगसुन्दरि! आप कौन हैं और इस रोते हुए बालकके गलेमें रस्सी बाँधकर किसलिये ले जा रही हैं? यह सब आप मेरे समक्ष सच-सच बताइये॥ ३४—३६॥

ऋषिपत्नी बोलीं—हे राजकुमार! मैं ऋषि विश्वामित्रकी पत्नी हूँ और यह मेरा पुत्र है। विषम संकटमें पड़कर मैं अपने इस औरस पुत्रको बेचनेके लिये जा रही हूँ। हे राजन्! मेरे पास अन्न नहीं है और मेरे पति मुझे छोड़कर तपस्या करनेके लिये कहीं चले गये हैं, अतः भूखसे व्याकुल मैं अब अपने शेष पुत्रोंके भरण-पोषणके निमित्त इसे बेचूँगी॥ ३७-३८॥

राजा बोले—हे पतिव्रते! आप अपने पुत्रकी रक्षा करें। जबतक आपके पति वनसे यहाँ वापस नहीं आ जाते, तबतक मैं आपके भरण-पोषणका प्रबन्ध कर दे रहा हूँ। मैं आपके आश्रमके समीपवाले वृक्षपर कुछ भोज्य-सामग्री प्रतिदिन बाँधकर चला जाया करूँगा, मैं यह सत्य कह रहा हूँ॥ ३९-४०॥

राजकुमारके यह कहनेपर विश्वामित्रकी भार्या अपने पुत्रके गलेसे रस्सी खोलकर अपने आश्रमको लौट गयीं॥ ४१॥

गला बँधनेके कारण उस बालकका नाम 'गालव' पड़ गया और वह महान् तपस्वी हुआ। अपने आश्रममें जाकर वे बालकोंके साथ आनन्द-पूर्वक रहने लगीं॥ ४२॥

सत्यव्रतस्तु भक्त्या च कृपया च परिप्लुतः।
विश्वामित्रस्य च मुनेः कलत्रं तद् बभार ह॥ ४३

वने स्थितान्मृगान्हत्वा वराहान्महिषांस्तथा।
विश्वामित्रवनाभ्याशे मांसं वृक्षे बबन्ध ह॥ ४४

ऋषिपत्नी गृहीत्वा तन्मांसं पुत्रानदात्ततः।

निर्वृतिं परमां प्राप प्राप्य भक्ष्यमनुत्तमम्॥ ४५

अयोध्यां चैव राज्यं च तथैवान्तःपुरं मुनिः।
गते तप्तुं नृपे तस्मिन्वसिष्ठः पर्यरक्षत॥ ४६

सत्यव्रतोऽपि धर्मात्मा ह्यतिष्ठन्नगराद् बहिः।
पितुराज्ञां समास्थाय पशुघ्नव्रतवान्वने॥ ४७

सत्यव्रतो ह्यकस्माच्च कस्यचित्कारणान्नृपः।
वसिष्ठे चाधिकं मन्युं धारयामास नित्यदा॥ ४८

त्यज्यमानं वने पित्रा धर्मिष्ठं च प्रियं सुतम्।
न वारयामास मुनिर्वसिष्ठः कारणेन ह॥ ४९

पाणिग्रहणमन्त्राणां निष्ठा स्यात्सप्तमे पदे।
जानन्नपि स धर्मात्मा विप्रदारपरिग्रहे॥ ५०

कस्मिंश्चिद्दिवसेऽरण्ये मृगाभावे महीपतिः।
वसिष्ठस्य च गां दोग्ध्रीमपश्यद्वनमध्यगाम्॥ ५१

तां जघान क्षुधार्तस्तु क्रोधान्मोहाच्च दस्युवत्।
वृक्षे बबन्ध तन्मांसं नीत्वा स्वयमभक्षयत्॥ ५२

ऋषिपत्नी सुतान्सर्वान्भोजयामास तत्तदा।
शङ्कमाना मृगस्येति न गोरिति च सुव्रता॥ ५३

वसिष्ठस्तु हतां दोग्ध्रीं ज्ञात्वा क्रुद्धस्तमब्रवीत्।
दुरात्मन् किं कृतं पापं धेनुघातात्पिशाचवत्॥ ५४

एवं ते शङ्कवः क्रूराः पतन्तु त्वरितास्त्रयः।
गोवधाद्दारहरणात्पितुः क्रोधात्तथा भृशम्॥ ५५

राजकुमार सत्यव्रत भी आदर और दयासे परिपूर्ण होकर मुनि विश्वामित्रकी पत्नीका भरण-पोषण करने लगे। वे वन्य भोज्य-पदार्थोंको लाकर विश्वामित्रके तपोवनके समीपवाले वृक्षपर बाँध दिया करते थे और ऋषिपत्नी प्रतिदिन उसे लाकर अपने पुत्रोंको देती थी। वह उत्तम भोज्य-पदार्थ प्राप्त करके उसे परम तृप्ति मिलती थी॥ ४३—४५॥

राजा अरुणके तपस्या करनेके लिये चले जानेके बाद महर्षि वसिष्ठ अयोध्यानगरीके सम्पूर्ण राज्य तथा अन्तःपुरकी भलीभाँति रक्षा करने लगे॥ ४६॥

धर्मात्मा सत्यव्रत भी पिताकी आज्ञाका पालन करते हुए सदा नगरके बाहर ही रहते थे तथा वनमें पशुओंका आखेट किया करते थे॥ ४७॥

अकस्मात् एक समय राजकुमार सत्यव्रत किसी कारणवश महर्षि वसिष्ठके प्रति अत्यधिक कुपित हो उठे और उनका यह कोप निरन्तर बढ़ता ही गया॥ ४८॥

[वे बार-बार यही सोचते थे कि] जब मेरे पिता राजा अरुण मुझ धर्मपरायण तथा प्रिय पुत्रका त्याग कर रहे थे, उस समय मुनि वसिष्ठने उन्हें किस कारणसे नहीं रोका?॥ ४९॥

सप्तपदी होनेके अनन्तर ही विवाहके मन्त्रोंकी पूर्ण प्रतिष्ठा होती है। [जब मैंने सप्तपदीके पहले ही कन्याका हरण कर लिया तो] यह विवाहित विप्र-स्त्रीका हरण हुआ ही नहीं—यह सब जानते हुए भी धर्मात्मा वसिष्ठने उन्हें ऐसा करनेसे नहीं रोका॥ ५०॥

किसी दिन वनमें आखेटके लिये गये सत्यव्रतको कोई भी मृग न मिलनेपर वे घूमते-घूमते वनके मध्यमें पहुँच गये। वहाँपर उन्हें मुनि वसिष्ठकी दुधारू गौ दिखायी पड़ गयी। भूखसे पीड़ित रहने तथा मुनि वसिष्ठपर कुपित होनेके कारण अज्ञानपूर्वक राजकुमार सत्यव्रतने एक दस्युकी भाँति उसका वध कर डाला। 'सत्यव्रतने मेरी दुधारू गायको मार डाला है'—यह जानकारी होनेपर मुनि वसिष्ठने कुपित होकर उससे कहा—अरे दुरात्मन्! पिशाचकी भाँति गायका वध करके तुमने यह कैसा पाप कर डाला! उन्होंने [शाप देते हुए] कहा—'गोवध, विप्रभार्याके हरण और

त्रिशङ्कुरिति नाम्ना वै भुवि ख्यातो भविष्यसि।
पिशाचरूपमात्मानं दर्शयन्सर्वदेहिनाम्॥ ५६

पिताके भयंकर कोप—इन तीनोंके कारण तुम्हारे मस्तकपर तत्काल तीन गहरे शंकु (पाप-चिह्न) पड़ जायँ। अब सभी प्राणियोंको अपना पैशाचिक रूप दिखलाते हुए तुम संसारमें 'त्रिशंकु' नामसे प्रसिद्ध होओगे'॥ ५१—५६॥

व्यास उवाच

एवं शप्तो वसिष्ठेन तदा सत्यव्रतो नृपः।
चचार च तपस्तीव्रं तस्मिन्नेवाश्रमे स्थितः॥ ५७

कस्माच्चिन्मुनिपुत्रात्तु प्राप्य मन्त्रमनुत्तमम्।
ध्यायन्भगवतीं देवीं प्रकृतिं परमां शिवाम्॥ ५८

व्यासजी बोले—[हे जनमेजय!] तब मुनि वसिष्ठसे इस तरह शापग्रस्त होकर राजकुमार सत्यव्रतने उसी आश्रममें रहते हुए कठोर तप आरम्भ कर दिया। किसी मुनि-पुत्रसे श्रेष्ठ देवी-मन्त्रकी दीक्षा प्राप्त करके परम कल्याणमयी प्रकृतिस्वरूपिणी भगवती जगदम्बाका ध्यान करते हुए वह सत्यव्रत उस मन्त्रका जप करने लगा॥ ५७-५८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे सत्यव्रताख्यानवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥

अथैकादशोऽध्यायः

भगवती जगदम्बाकी कृपासे सत्यव्रतका राज्याभिषेक और राजा अरुणद्वारा उन्हें नीतिशास्त्रकी शिक्षा देना

जनमेजय उवाच

वसिष्ठेन च शप्तोऽसौ त्रिशङ्कुर्नृपतेः सुतः।
कथं शापाद्विनिर्मुक्तस्तन्मे ब्रूहि महामते॥ १

जनमेजय बोले—हे महामते! वसिष्ठजी द्वारा शापित वह राजकुमार त्रिशंकु उस शापसे किस प्रकार मुक्त हुआ, उसे मुझे बताइये॥ १॥

व्यास उवाच

सत्यव्रतस्तथा शप्तः पिशाचत्वमवाप्तवान्।
तस्मिन्नेवाश्रमे तस्थौ देवीभक्तिपरायणः॥ २

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] इस प्रकार शापग्रस्त सत्यव्रत पिशाचत्वको प्राप्त हो गये। वे देवीभक्तिमें संलग्न होकर उसी आश्रममें रहने लगे॥ २॥

कदाचिन्नृपतिस्तत्र जप्त्वा मन्त्रं नवाक्षरम्।
होमार्थं ब्राह्मणान्गत्वा प्रणम्योवाच भक्तितः॥ ३

भूमिदेवाः शृणुध्वं वै वचनं प्रणतस्य मे।
ऋत्विजो मम सर्वेऽत्र भवन्तः प्रभवन्तु ह॥ ४

जपस्य च दशांशेन होमः कार्यो विधानतः।
भवद्भिः कार्यसिद्ध्यर्थं वेदविद्भिः कृपापरैः॥ ५

सत्यव्रतोऽहं नृपतेः पुत्रो ब्रह्मविदांवराः।
कार्यं मम विधातव्यं सर्वथा सुखहेतवे॥ ६

किसी समय राजा सत्यव्रत नवाक्षर मन्त्रका जप समाप्त करके हवन करानेके लिये ब्राह्मणोंके पास जाकर भक्तिपूर्वक प्रणाम करके उनसे बोले—हे भूदेवगण! आपलोग मुझ शरणागतकी प्रार्थना सुनिये। इस समय आप सभी लोग मेरे यज्ञमें ऋत्विक् होनेकी कृपा कीजिये। आप सब कृपालु तथा वेदवेत्ता विप्रगण मेरे कार्यकी सिद्धिके लिये जपके दशांशसे हवन-कर्म सम्पन्न करा दीजिये। हे ब्रह्मविदोंमें श्रेष्ठ विप्रगण! मेरा नाम सत्यव्रत है; मैं एक राजकुमार हूँ। मेरे सर्वविध सुखके लिये आपलोग मेरा यह कार्य सम्पन्न कर दें॥ ३—६॥

तच्छ्रुत्वा ब्राह्मणास्तत्र तमूचुर्नृपतेः सुतम्।
शप्तस्त्वं गुरुणा प्राप्तं पिशाचत्वं त्वयाधुना॥ ७

न यागार्होऽसि तस्मात्त्वं वेदेष्वनधिकारतः।
पिशाचत्वमनुप्राप्तं सर्वलोकेषु गर्हितम्॥ ८

यह सुनकर ब्राह्मणोंने उस राजकुमारसे कहा—अपने गुरुसे शापग्रस्त होकर इस समय तुम पिशाच बन गये हो, इसलिये वेदोंपर अधिकार न रहनेके कारण तुम यज्ञ करनेके योग्य नहीं हो। तुम सभी लोकोंमें निन्द्य पैशाचिकतासे ग्रस्त हो चुके हो॥ ७-८॥

व्यास उवाच

तन्निशम्य वचस्तेषां राजा दुःखमवाप ह।
धिग्जीवितमिदं मेऽद्य किं करोमि वने स्थितः॥ ९

पित्रा चाहं परित्यक्तः शप्तश्च गुरुणा भृशम्।
राज्याद् भ्रष्टः पिशाचत्वमनुप्राप्तः करोमि किम्॥ १०

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] उनकी बात सुनकर राजा अत्यन्त दुःखित हुए। [वे सोचने लगे—] मेरे जीवनको धिक्कार है, अब मैं वनमें रहकर क्या करूँ? पिताने मेरा परित्याग कर दिया है, गुरुने मुझे घोर शाप दे दिया है, राज्यसे च्युत हो गया हूँ और पैशाचिकतासे ग्रस्त हो चुका हूँ, तो ऐसी स्थितिमें मैं क्या करूँ?॥ ९-१०॥

तदा पृथुतरां कृत्वा चितां काष्ठैर्नृपात्मजः।
सस्मार चण्डिकां देवीं प्रवेशमनुचिन्तयन्॥ ११

तत्पश्चात् उस राजकुमारने लकड़ियोंसे बहुत बड़ी चिता तैयार करके उसमें प्रवेश करनेका विचार करते हुए भगवती चण्डिकाका स्मरण किया॥ ११॥

स्मृत्वा देवीं महामायां चितां प्रज्वलितां पुरः।
कृत्वा स्नात्वा प्रवेशार्थं स्थितः प्राञ्जलिरग्रतः॥ १२

भगवती महामायाका स्मरण करके उसने चिता प्रज्वलित की और स्नान करके उसमें प्रविष्ट होनेके लिये दोनों हाथ जोड़कर चिताके सामने खड़ा हो गया॥ १२॥

ज्ञात्वा भगवती तं तु मर्तुकामं महीपतिम्।
आजगाम तदाकाशं प्रत्यक्षं तस्य चाग्रतः॥ १३

दत्त्वाथ दर्शनं देवी तमुवाच नृपात्मजम्।
सिंहारूढा महाराज मेघगम्भीरया गिरा॥ १४

राजकुमार सत्यव्रत मरनेहेतु उद्यत हैं—ऐसा जानकर भगवती जगदम्बा उनके सामने आकाशमें प्रत्यक्ष स्थित हो गयीं। हे महाराज! सिंहपर आरूढ़ वे देवी राजकुमारको दर्शन प्रदान करके मेघके समान गम्भीर वाणीमें उनसे कहने लगीं॥ १३-१४॥

देव्युवाच

किं ते व्यवसितं साधो हुताशे मा तनुं त्यज।
स्थिरो भव महाभाग पिता ते जरसान्वितः॥ १५

राज्यं दत्त्वा वने तुभ्यं गन्तास्ति तपसे किल।
विषादं त्यज हे वीर परश्वोऽहनि भूपते॥ १६

नेतुं त्वामागमिष्यन्ति सचिवाश्च पितुस्तव।
मत्प्रसादात्पिता च त्वामभिषिच्य नृपासने॥ १७

जित्वा कामं ब्रह्मलोकं गमिष्यत्येष निश्चयः।

देवी बोलीं—हे साधो! आप यह दुष्प्रयास क्यों कर रहे हैं? इस तरह अग्निमें देहत्याग मत कीजिये। हे महाभाग! आप स्वस्थचित्त हो जाइये। आपके वृद्ध पिता आपको राज्य सौंपकर तपस्याके लिये वनमें जानेवाले हैं। हे वीर! शोकका त्याग कीजिये। हे राजन्! आपके पिताके मन्त्रीगण आपको ले जानेके लिये परसों आयेंगे। मेरी कृपाके प्रभावसे आपके पिताजी राजसिंहासनपर आपका अभिषेक करके कामनापर विजय प्राप्तकर ब्रह्मलोकके लिये प्रस्थान करेंगे; यह सुनिश्चित है॥ १५—१७½॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा तं तदा देवी तत्रैवान्तरधीयत॥ १८
राजपुत्रो विरमितो मरणात्पावकात्ततः।

व्यासजी बोले—राजकुमारसे ऐसा कहकर देवी वहींपर अन्तर्धान हो गयीं। तब राजकुमार सत्यव्रतने चितामें जलकर मरनेका विचार छोड़ दिया॥ १८½॥

अयोध्यायां तदागत्य नारदेन महात्मना॥ १९

वृत्तान्तः कथितः सर्वो राज्ञे सत्वरमादितः।
श्रुत्वा राजाथ पुत्रस्य तं तथा मरणोद्यमम्॥ २०

खेदमाधाय मनसि शुशोच बहुधा नृपः।
सचिवानाह धर्मात्मा पुत्रशोकपरिप्लुतः॥ २१

ज्ञातं भवद्भिरत्युग्रं पुत्रस्य मम चेष्टितम्।
त्यक्तो मया वने धीमान्पुत्रः सत्यव्रतो मम॥ २२

आज्ञयासौ गतः सद्यो राज्यार्हः परमार्थवित्।
स्थितस्तत्रैव विज्ञाने धनहीनः क्षमान्वितः॥ २३

वसिष्ठेन तथा शप्तः पिशाचसदृशः कृतः।
सोऽद्य दुःखेन सन्तप्तः प्रवेष्टुञ्च हुताशनम्॥ २४

उद्यतः श्रीमहादेव्या निषिद्धः संस्थितः पुनः।
तस्माद् गच्छन्तु तं शीघ्रं ज्येष्ठपुत्रं महाबलम्॥ २५

आश्वास्य वचनैरत्र तरसैवानयन्त्विह।

अभिषिच्य सुतं राज्ये औरसं पालनक्षमम्॥ २६

वनं यास्यामि शान्तोऽहं तपसे कृतनिश्चयः।
इत्युक्त्वा मन्त्रिणः सर्वान्प्रेषयामास पार्थिवः॥ २७

तस्यैवानयनार्थं हि प्रीतिप्रवणमानसः।
ते गत्वा तं समाश्वास्य मन्त्रिणः पार्थिवात्मजम्॥ २८

अयोध्यायां महात्मानं मानपूर्वं समानयन्।
दृष्ट्वा सत्यव्रतं राजा दुर्बलं मलिनाम्बरम्॥ २९

जटाजूटधरं क्रूरं चिन्तातुरमचिन्तयत्।
किं कृतं निष्ठुरं कर्म मया पुत्रो विवासितः॥ ३०

राज्यार्हश्चातिमेधावी जानता धर्मनिश्चयम्।

तत्पश्चात् महात्मा नारदजीने अयोध्यामें आकर आरम्भसे लेकर सत्यव्रतका सारा वृत्तान्त राजा अरुणसे कह दिया॥ १९½ ॥

अपने पुत्रकी उस प्रकारकी जलकर मरनेकी चेष्टा सुनकर राजा अत्यन्त दुःखीचित्त होकर तरह-तरहकी बात सोचने लगे॥ २०½ ॥

पुत्रके शोकमें निमग्न धर्मात्मा राजा अरुणने मन्त्रियोंसे कहा—आपलोग मेरे पुत्रके द्वारा की गयी अत्यन्त भीषण चेष्टाके विषयमें जान गये हैं। मैंने अपने बुद्धिमान् पुत्र सत्यव्रतका वनमें त्याग कर दिया था। परमार्थका ज्ञान रखनेवाला वह पुत्र यद्यपि राज्यका अधिकारी था, फिर भी मेरी आज्ञासे वह तत्काल वन चला गया। मेरा वह क्षमाशील पुत्र धनहीन होकर अभी उसी वनमें [देवीकी] उपासनामें रत होकर रह रहा है। वसिष्ठजीने उसे शाप दे दिया है और पिशाचतुल्य बना दिया है॥ २१—२३½ ॥

दुःखसे सन्तप्त वह सत्यव्रत आज अग्निमें प्रवेश करनेको तत्पर हो गया था, किंतु भगवतीने उसे ऐसा करनेसे मना कर दिया। इस समय वह वहींपर स्थित है। अतः आपलोग शीघ्र जाइये और मेरे उस महाबली ज्येष्ठ पुत्रको अपने वचनोंसे आश्वासन देकर तुरंत यहाँ ले आइये। प्रजापालन करनेमें समर्थ अपने औरस पुत्रका राज्याभिषेक करके मैं शान्त होकर वनमें चला जाऊँगा। अब मैंने तपस्याके लिये निश्चय कर लिया है॥ २४—२६½ ॥

ऐसा कहकर पुत्रप्रेममें प्रवृत्त मनवाले राजा अरुणने सत्यव्रतको लानेके लिये अपने सभी मन्त्रियोंको वहाँ भेज दिया॥ २७½ ॥

वनमें जाकर वे मन्त्री महात्मा राजकुमार सत्यव्रतको आश्वासन देकर उन्हें सम्मानपूर्वक अयोध्या ले आये॥ २८½ ॥

सत्यव्रतको अत्यन्त दुर्बल, मलिन वस्त्र धारण किये, बड़े-बड़े जटा-जूटवाला, भयंकर तथा चिन्तासे व्यग्र देखकर राजा [अरुण] सोचने लगे कि मैंने यह कैसा निष्ठुर कर्म कर डाला था, जो कि धर्मका वास्तविक स्वरूप जानते हुए भी मैंने राजपदके योग्य तथा अत्यन्त मेधावी पुत्रको निर्वासित कर दिया था॥ २९-३०½ ॥

इति सञ्चिन्त्य मनसा तमालिङ्ग्य महीपतिः॥ ३१

आसने स्वसमीपस्थे समाश्वास्योपवेशयत्।
उपविष्टं सुतं राजा प्रेमपूर्वमुवाच ह॥ ३२

प्रेमगद्गदया वाचा नीतिशास्त्रविशारदः।

राजोवाच

पुत्र धर्मे मतिः कार्या माननीया मुखोद्भवाः॥ ३३

न्यायागतं धनं ग्राह्यं रक्षणीयाः सदा प्रजाः।
नासत्यं क्वापि वक्तव्यं नामार्गे गमनं क्वचित्॥ ३४

शिष्टप्रोक्तं प्रकर्तव्यं पूजनीयास्तपस्विनः।
हन्तव्या दस्यवः क्रूरा इन्द्रियाणां तथा जयः॥ ३५

कर्तव्यः कार्यसिद्ध्यर्थं राज्ञा पुत्र सदैव हि।
मन्त्रस्तु सर्वथा गोप्यः कर्तव्यः सचिवैः सह॥ ३६

नोपेक्ष्योऽल्पोऽपि कृतिना रिपुः सर्वात्मना सुत।
न विश्वसेत्परासक्तं सचिवं च तथा नतम्॥ ३७

चाराः सर्वत्र योक्तव्याः शत्रुमित्रेषु सर्वथा।
धर्मे मतिः सदा कार्या दानं दद्याच्च नित्यशः॥ ३८

शुष्कवादो न कर्तव्यो दुष्टसङ्गं च वर्जयेत्।

यष्टव्या विविधा यज्ञाः पूजनीया महर्षयः॥ ३९

न विश्वसेत्स्त्रियं क्वापि स्त्रैणं द्यूतरतं नरम्।
अत्यादरो न कर्तव्यो मृगयायां कदाचन॥ ४०

द्यूते मद्ये तथा गेये नूनं वारवधूषु च।
स्वयं तद्विमुखो भूयात्प्रजास्तेभ्यश्च रक्षयेत्॥ ४१

ब्राह्मे मुहूर्ते कर्तव्यमुत्थानं सर्वथा सदा।
स्नानादिकं सर्वविधिं विधाय विधिवद्यथा॥ ४२

पराशक्तेः परां पूजां भक्त्या कुर्यात्सुदीक्षितः।
पुत्रैतज्जन्मसाफल्यं पराशक्तेः पदार्चनम्॥ ४३

[हे राजन्!] इस प्रकार मन-ही-मन सोचकर महाराज [अरुण]-ने राजकुमार सत्यव्रतको वक्षःस्थलसे लगा लिया और उसे सम्यक् आश्वासन देकर अपने पासमें ही स्थित आसनपर बैठा लिया। तत्पश्चात् नीतिशास्त्रके पारगामी विद्वान् राजा अरुण पासमें बैठे हुए अपने उस पुत्रसे प्रेमयुक्त गद्गद वाणीमें कहने लगे॥ ३१-३२½॥

राजा बोले—हे पुत्र! तुम सदा धर्ममें ही अपनी बुद्धि लगाना, विप्रोंका सम्मान करना, न्यायपूर्वक प्राप्त धन ही ग्रहण करना, प्रजाओंकी सर्वदा रक्षा करना, कभी असत्य भाषण मत करना, निन्दित मार्गका अनुसरण मत करना, शिष्टजनोंके आज्ञानुसार कार्य करना, तपस्वियोंकी पूजा करना, क्रूर लुटेरोंका दमन करना और इन्द्रियोंको अपने वशमें रखना। हे पुत्र! कार्यसिद्धिके लिये राजाको अपने मन्त्रियोंके साथ सदा गुप्त मन्त्रणा करते रहना चाहिये। हे सुत! सबके आत्मास्वरूप राजाको चाहिये कि छोटे-से-छोटे शत्रुकी भी उपेक्षा न करे। शत्रुसे मिले हुए अपने अत्यन्त विनम्र मन्त्रीपर भी राजाको विश्वास नहीं करना चाहिये॥ ३३—३७॥

सर्वत्र शत्रु तथा मित्रकी गतिविधियोंको जाननेके लिये सर्वदा गुप्तचरोंकी नियुक्ति करनी चाहिये, धर्ममें सदा बुद्धि लगाये रखनी चाहिये और प्रतिदिन दान देते रहना चाहिये। नीरस सम्भाषण नहीं करना चाहिये, दुष्टोंकी संगतिका त्याग कर देना चाहिये, विविध यज्ञानुष्ठान करते रहना चाहिये और महर्षियोंकी सदा पूजा करनी चाहिये। स्त्री, नपुंसक तथा द्यूतपरायण व्यक्तिपर कभी भी विश्वास नहीं करना चाहिये और आखेटके प्रति अत्यन्त आदरबुद्धि कभी नहीं रखनी चाहिये॥ ३८—४०॥

द्यूत, मदिरा, अश्लील संगीत तथा वेश्याओंसे स्वयं बचना चाहिये और अपनी प्रजाओंको भी इनसे बचाना चाहिये। ब्राह्ममुहूर्तमें [शयनसे] सदा निश्चय ही उठ जाना चाहिये। तत्पश्चात् दीक्षित मनुष्यको स्नान आदि सभी नित्य नियमोंसे निवृत्त होकर भलीभाँति भक्तिपूर्वक पराशक्ति जगदम्बाकी पूजा करनी चाहिये। हे पुत्र! पराशक्ति जगदम्बाके चरणोंकी पूजा ही इस जन्मकी सफलता है॥ ४१—४३॥



मूलप्रकृतिके दक्षिण अंगसे राधाका और वाम अंगसे लक्ष्मीका प्राकट्य



मकरवाहिनी भगवती गङ्गा



इन्द्र आदि देवताओं तथा महर्षि विश्वामित्रद्वारा हरिश्चन्द्रको आशीर्वाद



भगवती शाकम्भरीदेवीद्वारा शाककी वर्षा







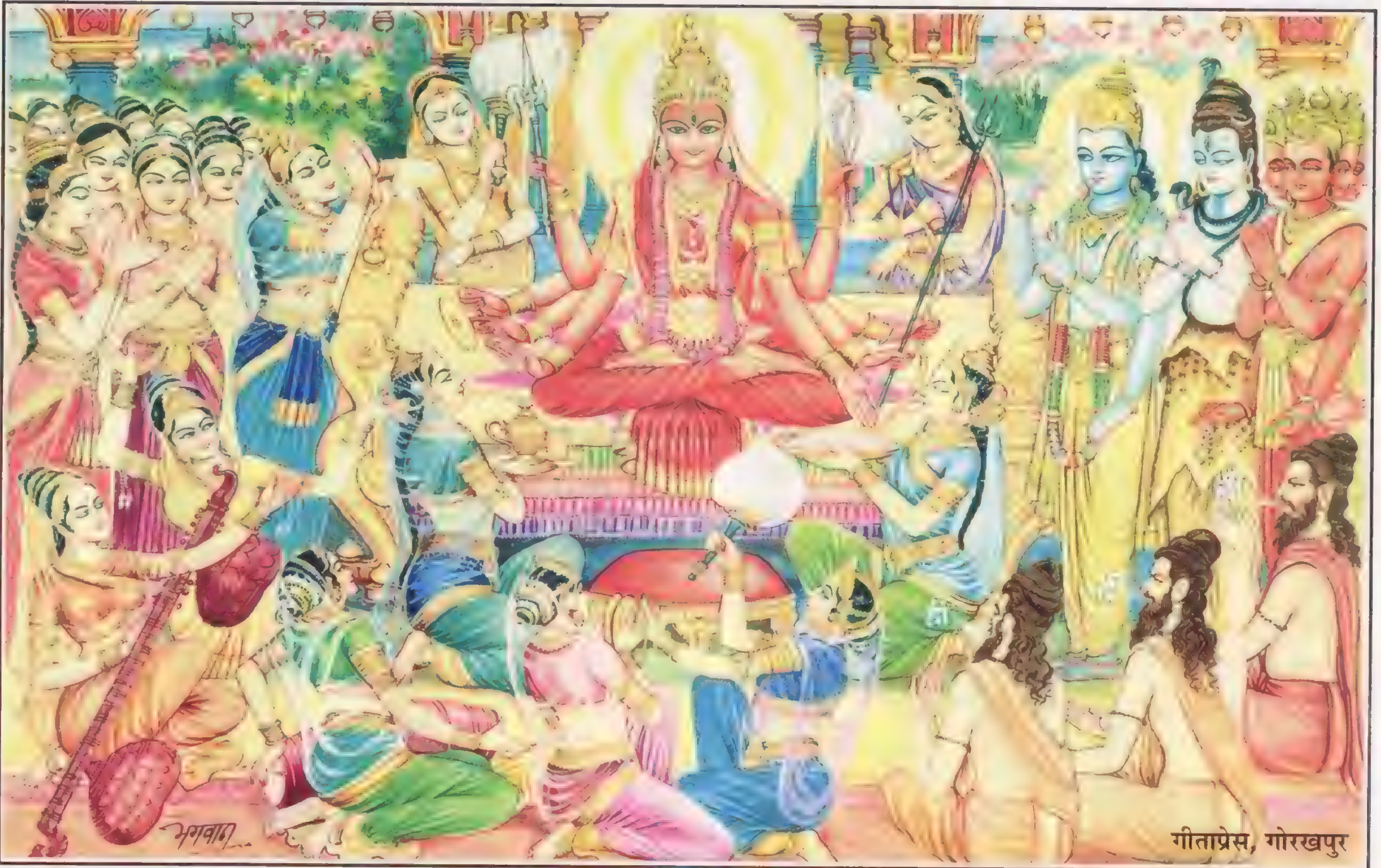
भगवती गायत्रीके प्रातः, मध्याह्न तथा सायं—तीनों सन्ध्या-कालोंका ध्यान-स्वरूप



श्रीकृष्णसे पंचमुख महादेवका प्राकट्य



भगवती भ्रामरीदेवी



मणिद्वीपाधिष्ठात्री भगवती श्रीभुवनेश्वरी

सकृत्कृत्वा महापूजां देवीपादजलं पिबन्।
न जातु जननीगर्भे गच्छेदिति विनिश्चयः॥ ४४

सर्वं दृश्यं महादेवी द्रष्टा साक्षी च सैव हि।
इति तद्भावभरितस्तिष्ठेन्निर्भयचेतसा॥ ४५

कृत्वा नित्यविधिं सम्यग्गन्तव्यं सदसि द्विजान्।
समाहूय च प्रष्टव्यो धर्मशास्त्रविनिर्णयः॥ ४६

सम्पूज्य ब्राह्मणान्पूज्यान्वेदवेदान्तपारगान्।
गोभूहिरण्यादिकं च देयं पात्रेषु सर्वदा॥ ४७

अविद्वान्ब्राह्मणः कोऽपि नैव पूज्यः कदाचन।
आहारादधिकं नैव देयं मूर्खाय कर्हिचित्॥ ४८

न वा लोभात्त्वया पुत्र कर्तव्यं धर्मलङ्घनम्।
अतः परं न कर्तव्यं क्वचिद्विप्रावमाननम्॥ ४९

ब्राह्मणा भूमिदेवाश्च माननीयाः प्रयत्नतः।
कारणं क्षत्रियाणां च द्विजा एव न संशयः॥ ५०

अद्भ्योऽग्निर्ब्रह्मणः क्षत्रमश्मनो लोहमुत्थितम्।
तेषां सर्वत्रगं तेजः स्वासु योनिषु शाम्यति॥ ५१

तस्माद्राज्ञा विशेषेण माननीया मुखोद्भवाः।
दानेन विनयेनैव सर्वथा भूतिमिच्छता॥ ५२

दण्डनीतिः सदा कार्या धर्मशास्त्रानुसारतः।
कोशस्य संग्रहः कार्यो नूनं न्यायागतस्य ह॥ ५३

एक बार भी भगवती जगदम्बाकी महापूजा करके उनके चरणोदकका पान करनेवाला मनुष्य फिर कभी माताके गर्भमें नहीं जाता, यह सर्वथा निश्चित है॥ ४४॥

सारा जगत् दृश्य है और महादेवी द्रष्टा तथा साक्षी हैं—इस प्रकारकी भावनासे युक्त होकर सदा भयमुक्त चित्तसे रहना चाहिये॥ ४५॥

[हे पुत्र!] तुम प्रतिदिन नित्य-नियमका पालन करके सभामें जाना और द्विजोंको बुलाकर उनसे धर्मशास्त्रसम्बन्धी निर्णय पूछना॥ ४६॥

वेद-वेदान्तके पारगामी आदरणीय विद्वानोंकी विधिवत् पूजा करके सुयोग्य पात्रोंको गौ, भूमि तथा सुवर्ण आदिका सदा दान करना॥ ४७॥

तुम कभी भी किसी मूर्ख ब्राह्मणकी पूजा मत करना और मूर्ख व्यक्तिको कभी भी भोजनसे अधिक कुछ भी मत देना। हे पुत्र! तुम किसी भी परिस्थितिमें लोभवश धर्मका उल्लंघन मत करना। इसके अतिरिक्त तुम्हें कभी भी विप्रोंका अपमान नहीं करना चाहिये। पृथ्वीके देवतास्वरूप ब्राह्मणोंका प्रयत्नपूर्वक सम्मान करना चाहिये। क्षत्रियोंके एकमात्र आधार ब्राह्मण ही हैं, इसमें सन्देह नहीं है॥ ४८—५०॥

जलसे अग्निकी, ब्राह्मणसे क्षत्रियकी और पत्थरसे लोहेकी उत्पत्ति हुई है। उनका सर्वत्रगामी तेज अपनी ही योनिमें शान्त होता है। अतः ऐश्वर्यकी इच्छा रखनेवाले राजाको विशेषरूपसे विनम्रतापूर्वक दानके द्वारा ब्राह्मणोंका सत्कार करना चाहिये। राजाको चाहिये कि वह धर्मशास्त्रके अनुसार दण्डनीतिका पालन करे और न्यायसे उपार्जित धनका निरन्तर संग्रह करे॥ ५१—५३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे सत्यव्रताय राजनीत्युपदेशवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः॥ ११॥

~~~o~~~

अथ द्वादशोऽध्यायः

राजा सत्यव्रतको महर्षि वसिष्ठका शाप तथा युवराज हरिश्चन्द्रका राजा बनना

व्यास उवाच

एवं प्रबोधितः पित्रा त्रिशङ्कुः प्रणतो नृपः।
तथेति पितरं प्राह प्रेमगद्गदया गिरा॥ १

व्यासजी बोले—[हे महाराज जनमेजय!] इस प्रकार पिताके समझानेपर राजकुमार त्रिशंकुने हाथ जोड़कर प्रेमपूर्वक गद्गद वाणीमें पितासे कहा—'मैं वैसा ही करूँगा'॥ १॥
~~~

विप्रानाहूय मन्त्रज्ञान्वेदशास्त्रविशारदान्।
अभिषेकाय सम्भारान् कारयामास सत्वरम्॥ २

सलिलं सर्वतीर्थानां समानाय्य विशांपतिः।
प्रकृतीश्च समाहूय सामन्तान्भूपतींस्तथा॥ ३

पुण्येऽह्नि विधिवत्तस्मै ददावासनमुत्तमम्।
अभिषिच्य सुतं राज्ये त्रिशङ्कुं विधिवत्पिता॥ ४

तृतीयमाश्रमं पुण्यं जग्राह भार्यया युतः।
वने त्रिपथगाकूले चचार दुश्चरं तपः॥ ५

काले प्राप्ते ययौ स्वर्गं पूजितस्त्रिदशैरपि।
इन्द्रासनसमीपस्थो रराज रविवत्सदा॥ ६

राजोवाच

पूर्वं भगवता प्रोक्तं कथायोगेन साम्प्रतम्।
सत्यव्रतो वसिष्ठेन शप्तो दोग्ध्रीवधात्किल॥ ७

कुपितेन पिशाचत्वं प्रापितो गुरुणा ततः।
कथं मुक्तः पिशाचत्वादित्येतत्संशयः प्रभो॥ ८

न सिंहासनयोग्यो हि भवेच्छापसमन्वितः।
मुनिना मोचितः शापात्केनान्येन च कर्मणा॥ ९

एतन्मे ब्रूहि विप्रर्षे शापमोक्षणकारणम्।
आनीतस्तु कथं पित्रा स्वगृहे तादृशाकृतिः॥ १०

व्यास उवाच

वसिष्ठेन च शप्तोऽसौ सद्यः पैशाचतां गतः।
दुर्वेषश्चातिदुर्धर्षः सर्वलोकभयङ्करः॥ ११

यदैवोपासिता देवी भक्त्या सत्यव्रतेन ह।
तया प्रसन्नया राजन् दिव्यदेहः कृतः क्षणात्॥ १२

पिशाचत्वं गतं तस्य पापं चैव क्षयं गतम्।
विपाप्मा चातितेजस्वी सम्भूतस्तत्कृपामृतात्॥ १३

तत्पश्चात् महाराज अरुणने वेदशास्त्रके पारगामी विद्वान् तथा मन्त्रवेत्ता ब्राह्मणोंको बुलाकर अभिषेककी सारी सामग्रियाँ तुरंत एकत्र करायीं और सम्पूर्ण तीर्थोंका जल मँगाकर तथा सभी मन्त्रियों, सामन्तों और नरेशोंको बुलाकर शुभ दिनमें उस राजकुमारको विधिपूर्वक श्रेष्ठ राज्यासनपर आसीन कर दिया॥ २-३½॥

इस प्रकार पिताने पुत्र त्रिशंकुको राज्यपर विधिपूर्वक अभिषिक्त करके अपनी धर्मपत्नीके साथ पवित्र तीसरे आश्रम (वानप्रस्थ)-को ग्रहण किया और वे वनमें गंगाके तटपर कठोर तप करने लगे॥ ४-५॥

आयु समाप्त हो जानेपर वे स्वर्गको चले गये। वहाँ वे देवताओंके द्वारा भी पूजित हुए और इन्द्रके समीप स्थित रहते हुए सदा सूर्यकी भाँति सुशोभित होने लगे॥ ६॥

राजा [जनमेजय] बोले—[हे व्यासजी!] आप पूज्यवरने कथाके प्रसंगमें अभी-अभी बताया कि गुरुदेव वसिष्ठने पयस्विनी गौका वध कर देनेके कारण राजकुमार सत्यव्रतको कुपित होकर शाप दे दिया और वह पिशाचत्वको प्राप्त हो गया। हे प्रभो! तदनन्तर पैशाचिकतासे उसका कैसे उद्धार हुआ? इस विषयमें मुझे संशय हो रहा है। शापग्रस्त मनुष्य सिंहासनके योग्य नहीं होता। सत्यव्रतके दूसरे किस कर्मके प्रभावसे मुनि वसिष्ठने उसे अपने शापसे मुक्त कर दिया। हे विप्रर्षे! शापसे मुक्तिका कारण बताइये और मुझे यह भी बताइये कि वैसे [निन्द्य] आकृतिवाले पुत्रको उसके पिता [राजा अरुण]-ने अपने घर वापस क्यों बुला लिया?॥ ७—१०॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] मुनि वसिष्ठके द्वारा शापित वह सत्यव्रत तत्काल पैशाचिकताको प्राप्त हो गया। इसके फलस्वरूप वह कुरूप, दुर्धर्ष तथा सभी प्राणियोंके लिये भयंकर हो गया, किंतु हे राजन्! जब उस सत्यव्रतने भक्तिपूर्वक भगवतीकी उपासना की, तब भगवतीने प्रसन्न होकर क्षणभरमें उसे दिव्य शरीरवाला बना दिया॥ ११-१२॥

भगवतीके कृपारूपी अमृतसे उसकी पैशाचिकता समाप्त हो गयी और उसका पाप विनष्ट हो गया। अब वह पापरहित तथा अतितेजस्वी हो गया॥ १३॥

वसिष्ठोऽपि प्रसन्नात्मा जातः शक्तिप्रसादतः।
पितापि च बभूवास्य प्रेमयुक्तस्त्वनुग्रहात्॥ १४

राज्यं शशास धर्मात्मा मृते पितरि पार्थिवः।
ईजे च विविधैर्यज्ञैर्देवदेवीं सनातनीम्॥ १५

तस्य पुत्रो बभूवाथ हरिश्चन्द्रः सुशोभनः।
लक्षणैः शास्त्रनिर्दिष्टैः संयुतश्चातिसुन्दरः॥ १६

युवराजं सुतं कृत्वा त्रिशङ्कुः पृथिवीपतिः।
मानुषेण शरीरेण स्वर्गं भोक्तुं मनो दधे॥ १७

वसिष्ठस्याश्रमं गत्वा प्रणम्य विधिवन्नृपः।
उवाच वचनं प्रीतः कृताञ्जलिपुटस्तदा॥ १८

राजोवाच

ब्रह्मपुत्र महाभाग सर्वमन्त्रविशारद।
विज्ञप्तिं मे सुमनसा श्रोतुमर्हसि तापस॥ १९

इच्छा मेऽद्य समुत्पन्ना स्वर्गलोकसुखाय च।
अनेनैव शरीरेण भोगान्भोक्तुममानुषान्॥ २०

अप्सरोभिश्च संवासः क्रीडितुं नन्दने वने।
देवगन्धर्वगानं च श्रोतव्यं मधुरं किल॥ २१

याजय त्वं मखेनाशु तादृशेन महामुने।
यथानेन शरीरेण वसे लोकं त्रिविष्टपम्॥ २२

समर्थोऽसि मुनिश्रेष्ठ कुरु कार्यं ममाधुना।
प्रापयाशु मखं कृत्वा देवलोकं दुरासदम्॥ २३

वसिष्ठ उवाच

राजन् मानुषदेहेन स्वर्गे वासः सुदुर्लभः।
मृतस्य हि ध्रुवं स्वर्गः कथितः पुण्यकर्मणा॥ २४

तस्माद् बिभेमि सर्वज्ञ दुर्लभाच्च मनोरथात्।
अप्सरोभिश्च संवासो जीवमानस्य दुर्लभः॥ २५

कुरु यज्ञान्महाभाग मृतः स्वर्गमवाप्स्यसि।

भगवतीकी कृपासे वसिष्ठजी भी प्रसन्नचित्त हो गये और उसके पिता [अरुण] भी प्रेमसे परिपूर्ण हो गये॥ १४॥

पिताके मृत हो जानेपर धर्मात्मा राजा सत्यव्रत राज्यपर सम्यक् शासन करने लगा। वह अनेक प्रकारके यज्ञोंद्वारा देवेश्वरी सनातनी भगवतीकी उपासनामें तत्पर रहने लगा॥ १५॥

उस त्रिशंकु (सत्यव्रत)-के पुत्र हरिश्चन्द्र हुए, जो शास्त्रोक्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न तथा परम सुन्दर स्वरूपवाले थे॥ १६॥

[कुछ समयके बाद] राजा त्रिशंकुने अपने पुत्र हरिश्चन्द्रको युवराज बनाकर मानव-शरीरसे ही स्वर्ग-सुख भोगनेका निश्चय किया॥ १७॥

तब राजा त्रिशंकु वसिष्ठके आश्रममें गये और उन्हें विधिवत् प्रणाम करके दोनों हाथ जोड़कर प्रसन्नतापूर्वक उनसे यह वचन कहने लगे॥ १८॥

राजा बोले—हे ब्रह्मपुत्र! हे महाभाग! हे सर्वमन्त्र-विशारद! हे तापस! आप प्रसन्नतापूर्वक मेरी प्रार्थना सुननेकी कृपा कीजिये। अब स्वर्ग-लोकका सुख भोगनेकी इच्छा मेरे मनमें उत्पन्न हुई है। अप्सराओंके साथ रहने, नन्दनवनमें क्रीड़ा करने तथा देव-गन्धर्वोंका मधुर गीत सुनने आदि दिव्य भोगोंको मैं इसी मानव-शरीरसे भोगना चाहता हूँ॥ १९—२१॥

हे महामुने! आप शीघ्र ही मुझसे ऐसा यज्ञ सम्पन्न कराइये, जिससे मैं इसी मानव-शरीरसे स्वर्ग-लोकमें निवास कर सकूँ। हे मुनिश्रेष्ठ! आप सर्वसमर्थ हैं, अतः मेरा यह कार्य अब पूर्ण कर दीजिये; यज्ञ सम्पन्न कराकर मुझे अत्यन्त दुर्लभ देवलोककी प्राप्ति करा दीजिये॥ २२-२३॥

वसिष्ठजी बोले—हे राजन्! मानव-शरीरसे स्वर्ग-लोकमें निवास अत्यन्त दुर्लभ है। मरनेके पश्चात् ही पुण्य कर्मके प्रभावसे स्वर्गकी सुनिश्चित प्राप्ति कही गयी है। अतः हे सर्वज्ञ! तुम्हारे इस दुर्लभ मनोरथको पूर्ण करनेमें मैं डर रहा हूँ। जीवित प्राणीके लिये अप्सराओंके साथ निवास दुर्लभ है। अतः हे महाभाग! आप अनेक यज्ञ कीजिये, मृत्युके अनन्तर आप स्वर्ग प्राप्त कर लेंगे॥ २४-२५½॥

व्यास उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य राजा परमदुर्मनाः॥ २६

उवाच वचनं भूयो वसिष्ठं पूर्वरोषितम्।
न त्वं याजयसे ब्रह्मन् गर्वावेशाच्च मां यदि॥ २७

अन्यं पुरोहितं कृत्वा यक्ष्येऽहं किल साम्प्रतम्।

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य वसिष्ठः कोपसंयुतः॥ २८

शशाप भूपतिं चेति चाण्डालो भव दुर्मते।
अनेन त्वं शरीरेण श्वपचो भव सत्वरम्॥ २९

स्वर्गकृन्तन पापिष्ठ सुरभीवधदूषित।
ब्रह्मपत्नीहरोच्छिन्न धर्ममार्गविदूषक॥ ३०

न ते स्वर्गगतिः पाप मृतस्यापि कथञ्चन।

व्यास उवाच

इत्युक्तो गुरुणा राजंस्त्रिशङ्कुस्तत्क्षणादपि॥ ३१

तत्र तेन शरीरेण बभूव श्वपचाकृतिः।
कुण्डलेऽश्ममये वापि जाते तस्य च तत्क्षणात्॥ ३२

देहे चन्दनगन्धश्च विगन्धो ह्यभवत्तदा।
नीलवर्णेऽथ सञ्जाते दिव्ये पीताम्बरे तनौ॥ ३३

गजवर्णोऽभवद्देहः शापात्तस्य महात्मनः।
शक्त्युपासकरोषेण फलमेतदभून्नृप॥ ३४

तस्माच्छ्रीशक्तिभक्तो हि नावमान्यः कदाचन।
गायत्रीजपनिष्ठो हि वसिष्ठो मुनिसत्तमः॥ ३५

दृष्ट्वा निन्द्यं निजं देहं राजा दुःखमवाप्तवान्।
न जगाम गृहे दीनो वनमेवाभितो ययौ॥ ३६

चिन्तयामास दुःखार्तस्त्रिशङ्कुः शोकविह्वलः।
किं करोमि क्व गच्छामि देहो मेऽतीव निन्दितः॥ ३७

कर्तव्यं नैव पश्यामि येन मे दुःखसंक्षयः।
गृहे गच्छामि चेत्पुत्रः पीडितोऽद्य भविष्यति॥ ३८

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] वसिष्ठजीका यह वचन सुनकर अत्यन्त उदास मनवाले राजा त्रिशंकुने पहलेसे ही कुपित उन मुनिवर वसिष्ठसे कहा—हे ब्रह्मन्! यदि आप अभिमानवश मेरा यज्ञ नहीं करायेंगे, तो मैं किसी दूसरेको अपना पुरोहित बनाकर इसी समय यज्ञ करूँगा॥ २६–२७½ ॥

उनका यह वचन सुनते ही वसिष्ठजीने क्रोधित होकर राजाको शाप दे दिया—'हे दुर्बुद्धि! चाण्डाल हो जाओ। इसी शरीरसे तुम अभी नीच योनिको प्राप्त हो जाओ। स्वर्गको नष्ट करनेवाले तथा सुरभीके वधके दोषसे युक्त हे पापिष्ठ! विप्रकी भार्याका हरण करनेवाले तथा धर्ममार्गको दूषित करनेवाले हे पापी! मरनेके बाद भी तुम किसी प्रकार स्वर्ग नहीं प्राप्त कर सकते॥ २८—३०½ ॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! गुरु वसिष्ठके ऐसा कहते ही त्रिशंकु तत्क्षण उसी शरीरसे चाण्डाल हो गये। उनके रत्नमय कुण्डल उसी क्षण पत्थर हो गये तथा शरीरमें लगा हुआ सुगन्धित चन्दन दुर्गन्धयुक्त हो गया। उनके शरीरपर धारण किये हुए दिव्य पीताम्बर कृष्ण वर्णके हो गये। महात्मा वसिष्ठके शापसे उनका शरीर गजवर्ण-जैसा धूमिल हो गया॥ ३१—३३½ ॥

हे राजन्! भगवतीके उपासक मुनि वसिष्ठके रोषके कारण ही त्रिशंकुको यह फल प्राप्त हुआ। इसलिये भगवती जगदम्बाके भक्तका कभी भी अपमान नहीं करना चाहिये। मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ बड़ी निष्ठाके साथ गायत्रीजपमें संलग्न रहते थे॥ ३४–३५ ॥

[हे राजन्!] उस समय अपना कलंकित शरीर देखकर राजा त्रिशंकु अत्यन्त दुःखित हुए। इस प्रकार दीन-दशाको प्राप्त वे राजा घर नहीं गये, अपितु जंगलकी ओर चले गये॥ ३६ ॥

शोक-सन्तप्त वे त्रिशंकु दुःखित होकर सोचने लगे—अब मैं क्या करूँ और कहाँ जाऊँ? मेरा शरीर तो अत्यन्त निन्दित हो गया। मुझे ऐसा कोई उपाय नहीं सूझ रहा है, जिससे मेरा दुःख दूर हो सके। यदि मैं आज घर जाता हूँ, तो मुझे इस स्वरूपमें देखकर पुत्रको महान् पीड़ा होगी और भार्या भी मुझे चाण्डालके

भार्यापि श्वपचं दृष्ट्वा नाङ्गीकारं करिष्यति।
सचिवा नादरिष्यन्ति वीक्ष्य मामीदृशं पुनः॥ ३९

ज्ञातयो बन्धुवर्गश्च सङ्गतो न भजिष्यति।
सर्वैस्त्यक्तस्य मे नूनं जीवितान्मरणं वरम्॥ ४०

विषं वा भक्षयित्वाद्य पतित्वा वा जलाशये।
कृत्वा वा कण्ठपाशं च देहत्यागं करोम्यहम्॥ ४१

अग्नौ वा ज्वलिते देहं जुहोमि विधिवद् बलात्।
कृत्वा वानशनं प्राणांस्त्यजामि दूषितान्भृशम्॥ ४२

आत्महत्या भवेन्नूनं पुनर्जन्मनि जन्मनि।
श्वपचत्वं च शापश्च हत्यादोषाद्भवेदपि॥ ४३

पुनर्विचार्य भूपालश्चेतसा समचिन्तयत्।
आत्महत्या न कर्तव्या सर्वथैव मयाधुना॥ ४४

भोक्तव्यं स्वकृतं कर्म देहेनानेन कानने।
भोगेनास्य विपाकस्य भविता सर्वथा क्षयः॥ ४५

प्रारब्धकर्मणां भोगादन्यथा न क्षयो भवेत्।
तस्मान्मयात्र भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्॥ ४६

कुर्वन्पुण्याश्रमाभ्याशे तीर्थानां सेवनं तथा।
स्मरणं चाम्बिकायास्तु साधूनां सेवनं तथा॥ ४७

एवं कर्मक्षयं नूनं करिष्यामि वने वसन्।
भाग्ययोगात्कदाचित्तु भवेत्साधुसमागमः॥ ४८

इति सञ्चिन्त्य मनसा त्यक्त्वा स्वनगरं नृपः।
गङ्गातीरे गतः कामं शोचंस्तत्रैव संस्थितः॥ ४९

हरिश्चन्द्रस्तदा ज्ञात्वा पितुः शापस्य कारणम्।
दुःखितः सचिवांस्तत्र प्रेषयामास पार्थिवः॥ ५०

रूपमें देखकर स्वीकार नहीं करेगी। इस प्रकारके चाण्डाल रूपवाले मुझ निन्द्यको देखकर मेरे मन्त्रीगण तथा जातिवाले भी आदर नहीं करेंगे और भाई-बन्धु भी संगमें नहीं रहेंगे। इस प्रकार सभी लोगोंके द्वारा परित्यक्त किये जानेवाले मेरे लिये तो जीनेकी अपेक्षा मर जाना ही अच्छा है। अतः अब मैं विष खाकर, जलाशयमें कूदकर या गलेमें फाँसी लगाकर देह-त्याग कर दूँ अथवा विधिवत् प्रज्वलित अग्निमें अपने देहको जला डालूँ या फिर अनशन करके अपने कलंकित प्राणोंका त्याग कर दूँ॥ ३७—४२॥

[ऐसा विचार आते ही उन्होंने पुनः सोचा] आत्महत्या करनेसे मुझे निश्चय ही जन्म-जन्मान्तरमें पुनः चाण्डाल होना पड़ेगा और आत्महत्या-दोषके परिणामस्वरूप मैं शापसे कभी मुक्त नहीं हो सकूँगा॥ ४३॥

ऐसा सोचनेके बाद राजाने अपने मनमें पुनः विचार किया कि इस समय मुझे किसी भी स्थितिमें आत्महत्या नहीं करनी चाहिये, अपितु वनमें रहकर मुझे अपने द्वारा किये गये कर्मका फल इसी शरीरसे भोग लेना चाहिये; क्योंकि इससे इस कुकर्मका फल सर्वथा समाप्त हो जायगा॥ ४४-४५॥

भोगसे ही प्रारब्ध कर्मोंका क्षय होता है, अन्यथा इनका क्षय नहीं होता। इसलिये अब यहींपर तीर्थोंका सेवन, भगवती जगदम्बाका स्मरण तथा साधुजनोंकी सेवा करते हुए मुझे अपने द्वारा किये गये शुभ तथा अशुभ कर्मोंका फल भोग लेना चाहिये। इस प्रकार वनमें रहते हुए मैं अपने कर्मोंका क्षय अवश्य ही करूँगा। साथ ही, सम्भव है कि भाग्यवश किसी साधुजनसे मिलनेका भी कभी अवसर प्राप्त हो जाय॥ ४६—४८॥

मनमें ऐसा सोचकर राजा [त्रिशंकु] अपना नगर छोड़कर गंगाके तटपर चले गये और अत्यधिक चिन्तित रहते हुए वहीं रहने लगे॥ ४९॥

उसी समय पिताके शापका कारण जानकर राजा हरिश्चन्द्र अत्यन्त दुःखित हुए और उन्होंने अपने मन्त्रियोंको पिता त्रिशंकुके पास भेजा॥ ५०॥

सचिवास्तत्र गत्वाशु तमूचुः प्रश्रयान्विताः।
प्रणम्य श्वपचाकारं निःश्वसन्तं मुहुर्मुहुः॥ ५१

राजन् पुत्रेण ते नूनं प्रेषितान्समुपागतान्।
अवेहि सचिवांस्त्वं नो हरिश्चन्द्राज्ञया स्थितान्॥ ५२

युवराजसुतः प्राह यत्तच्छृणु नराधिप।
आनयध्वं नृपं यूयं सम्मान्य पितरं मम॥ ५३

तस्माद्राजन् समागच्छ राज्यं प्रति गतव्यथः।
सेवां सर्वे करिष्यन्ति सचिवाश्च प्रजास्तथा॥ ५४

गुरुं प्रसादयिष्यामः स यथा तु दयेत वै।
प्रसन्नोऽसौ महातेजा दुःखस्यान्तं करिष्यति॥ ५५

इति पुत्रेण ते राजन् कथितं बहुधा किल।
तस्माद् गमनमेवाशु रोचतां निजसद्मनि॥ ५६

व्यास उवाच

इति तेषां नृपः श्रुत्वा भाषितं श्वपचाकृतिः।
स्वगृहं गमनायासौ न मतिं कृतवानतः॥ ५७

तानुवाच तदा वाक्यं व्रजन्तु सचिवाः पुरम्।
गत्वा पुरं महाभागा ब्रुवन्तु वचनाच्च मे॥ ५८

नागमिष्याम्यहं पुत्र कुरु राज्यमतन्द्रितः।
मानयन्ब्राह्मणान्देवान्यजन्यज्ञैरनेकशः॥ ५९

नाहं श्वपचवेषेण गर्हितेन महात्मभिः।
आगमिष्याम्ययोध्यायां सर्वे गच्छन्तु मा चिरम्॥ ६०

पुत्रं सिंहासने स्थाप्य हरिश्चन्द्रं महाबलम्।
कुर्वन्तु राज्यकर्माणि यूयं तत्र ममाज्ञया॥ ६१

इत्यादिष्टास्ततस्ते तु रुरुदुश्चातुरा भृशम्।
सचिवा निर्ययुस्तूर्णं नत्वा तं च वनाश्रमात्॥ ६२

अयोध्यायामुपागत्य पुण्येऽह्नि विधिपूर्वकम्।
अभिषेकं तदा चक्रुर्हरिश्चन्द्रस्य मूर्ध्नि ते॥ ६३

मन्त्रीगण वहाँ शीघ्र पहुँचकर बार-बार दीर्घ श्वास ले रहे चाण्डालकी आकृतिवाले राजा त्रिशंकुको प्रणामकर विनम्रतापूर्वक उनसे बोले—हे राजन्! आपके पुत्र हरिश्चन्द्रकी आज्ञासे यहाँ आये हुए हमलोगोंको आप मन्त्री समझिये। हे महाराज! आपके पुत्र युवराज हरिश्चन्द्रने [हमसे] जो कहा है, उसे आप सुनिये—'आपलोग मेरे पिता राजा त्रिशंकुको सम्मानपूर्वक यहाँ ले आइये'॥ ५१—५३॥

अतः हे राजन्! अब आप सारी चिन्ता छोड़कर अपने राज्य वापस लौट चलिये। वहाँ सभी मन्त्रीगण तथा प्रजाजन आपकी सेवा करेंगे॥ ५४॥

हमलोग भी गुरु वसिष्ठको प्रसन्न करेंगे, जिससे वे आपके ऊपर दया करें। प्रसन्न हो जानेपर वे महान् तेजस्वी आपका कष्ट अवश्य दूर कर देंगे॥ ५५॥

हे राजन्! इस प्रकार आपके पुत्रने बहुत प्रकारसे कहा है। अतः अब शीघ्रतापूर्वक अपने घर लौट चलनेकी कृपा कीजिये॥ ५६॥

व्यासजी बोले—[हे जनमेजय!] उनकी बात सुनकर चाण्डालकी आकृतिवाले राजा त्रिशंकुने अपने घर चलनेका कोई विचार मनमें नहीं किया। उस समय राजाने उनसे कहा—हे सचिवगण! आपलोग नगरको लौट जाइये और हे महाभाग! वहाँ जाकर [हरिश्चन्द्रसे] मेरे शब्दोंमें कह दीजिये—'हे पुत्र! मैं नहीं आऊँगा। तुम अनेकविध यज्ञोंके द्वारा ब्राह्मणोंका सम्मान करते हुए तथा देवताओंकी पूजा करते हुए सदा सावधान होकर राज्य करो'॥ ५७—५९॥

[हे सचिवगण!] महात्माओंके द्वारा सर्वथा निन्दित इस चाण्डाल-वेशसे अब मैं अयोध्या नहीं जाऊँगा। आप सभी लोग यहाँसे शीघ्र लौट जाइये। [वहाँ जाकर] मेरे महाबली पुत्र हरिश्चन्द्रको सिंहासनपर बिठाकर आपलोग मेरी आज्ञासे राज्यके समस्त कार्य कीजिये॥ ६०-६१॥

इस प्रकार त्रिशंकुके उपदेश देनेपर सभी मन्त्री अत्यधिक दुःखी होकर रोने लगे और उन्हें प्रणाम करके वानप्रस्थ-आश्रममें जीवन व्यतीत करनेवाले उन [राजा त्रिशंकु]-के पाससे लौट आये। अयोध्यामें आकर उन मन्त्रियोंने शुभ दिनमें हरिश्चन्द्रके मस्तकपर विधिपूर्वक अभिषेक किया॥ ६२-६३॥

अभिषिक्तस्तु तेजस्वी सचिवैश्च नृपाज्ञया।
राज्यं चकार धर्मिष्ठः पितरं चिन्तयन्भृशम्॥ ६४

राजा [त्रिशंकु]-की आज्ञासे मन्त्रियोंके द्वारा राज्याभिषिक्त होकर तेजस्वी तथा धर्मपरायण हरिश्चन्द्र अपने पिताका निरन्तर स्मरण करते हुए राज्य करने लगे॥ ६४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे त्रिशङ्कूपाख्यानवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

~~~०~~~

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

राजर्षि विश्वामित्रका अपने आश्रममें आना और सत्यव्रतद्वारा किये गये उपकारको जानना

राजोवाच

हरिश्चन्द्रः कृतो राजा सचिवैर्नृपशासनात्।
त्रिशङ्कुस्तु कथं मुक्तस्तस्माच्चाण्डालदेहतः॥ १

मृतो वा वनमध्ये तु गङ्गातीरे परिप्लुतः।
गुरुणा वा कृपां कृत्वा शापात्तस्माद्विमोचितः॥ २

एतद् वृत्तान्तमखिलं कथयस्व ममाग्रतः।
चरितं तस्य नृपतेः श्रोतुकामोऽस्मि सर्वथा॥ ३

राजा [जनमेजय] बोले—[हे व्यासजी!] राजा त्रिशंकुके आदेशसे सचिवोंने हरिश्चन्द्रको राजा बना दिया, किंतु स्वयं त्रिशंकुने उस चाण्डाल-देहसे मुक्ति कैसे प्राप्त की? वे वनमें कहीं मर गये अथवा गंगा-तटपर जलमें डूब गये अथवा गुरु वसिष्ठने कृपा करके उन्हें शापसे मुक्त कर दिया। यह सम्पूर्ण वृत्तान्त आप मेरे समक्ष कहिये; मैं राजा त्रिशंकुका चरित्र भलीभाँति सुनना चाहता हूँ॥ १—३॥

व्यास उवाच

अभिषिक्तं सुतं कृत्वा राजा सन्तुष्टमानसः।
कालातिक्रमणं तत्र चकार चिन्तयञ्छिवाम्॥ ४

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] अपने पुत्रका राज्याभिषेक करके राजा त्रिशंकुका चित्त बहुत प्रसन्न हुआ और वे वहीं जंगलमें कल्याणकारिणी भगवती जगदम्बाका ध्यान करते हुए समय व्यतीत करने लगे॥ ४॥

एवं गच्छति काले तु तपस्तप्त्वा समाहितः।
द्रष्टुं दारान्सुतादींश्च तदागात्कौशिको मुनिः॥ ५

आगत्य स्वजनं दृष्ट्वा सुस्थितं मुदमाप्तवान्।
भार्यां पप्रच्छ मेधावी स्थितामग्रे सपर्यया॥ ६

दुर्भिक्षे तु कथं कालस्त्वया नीतः सुलोचने।
अन्नं विना त्विमे बालाः पालिता केन तद्वद॥ ७

इस तरह कुछ समय बीतनेके बाद कौशिक-मुनि एकाग्रचित्त होकर तपस्या पूर्ण करके अपनी पत्नी तथा पुत्रों आदिको देखनेके लिये [अपने आश्रममें] आये। वहाँ आकर अपने स्त्री-पुत्रादिको स्वस्थ देखकर वे परम हर्षित हुए। मेधावी ऋषिने पूजाके लिये आगे स्थित अपनी भार्यासे पूछा—हे सुनयने! दुर्भिक्षकी स्थितिमें तुमने समय कैसे व्यतीत किया? तुमने अन्नके बिना इन बालकोंको किस उपायसे पाला; यह मुझे बताओ॥ ५—७॥

अहं तपसि सन्नद्धो नागतः शृणु सुन्दरि।
किं कृतं तु त्वया कान्ते विना द्रव्येण शोभने॥ ८

हे सुन्दरि! मैं तो तपस्यामें संलग्न था, इसलिये नहीं आ सका। हे प्रिये! हे शोभने! बिना धनके तुमने क्या व्यवस्था की?॥ ८॥

मया चिन्ता कृता तत्र श्रुत्वा दुर्भिक्षमद्भुतम्।
नागतोऽहं विचार्यैवं किं करिष्यामि निर्धनः॥ ९

यहाँ पर भीषण अकालका समाचार सुनकर मैं अत्यधिक चिन्तित था, किंतु यह सोचकर नहीं आया कि धनहीन मैं [वहाँ जाकर] करूँगा ही क्या!॥ ९॥
~~~

अहमप्यति वामोरु पीडितः क्षुधया वने।
प्रविष्टश्चौरभावेन कुत्रचिच्छ्वपचालये॥ १०

श्वपचं निद्रितं दृष्ट्वा क्षुधया पीडितो भृशम्।
महानसं परिज्ञाय भक्ष्यार्थं समुपस्थितः॥ ११

यदा भाण्डं समुद्घाट्य पक्वं श्वतनुजामिषम्।
गृह्णामि भक्षणार्थाय तदा दृष्टस्तु तेन वै॥ १२

पृष्टः कस्त्वं कथं प्राप्तो गृहे मे निशि सादरम्।
ब्रूहि कार्यं किमर्थं त्वमुद्घाटयसि भाण्डकम्॥ १३

इत्युक्तः श्वपचेनाहं क्षुधया पीडितो भृशम्।
तमवोचं सुकेशान्ते कामं गद्गदया गिरा॥ १४

ब्राह्मणोऽहं महाभाग तापसः क्षुधयार्दितः।
चौरभावमनुप्राप्तो भक्ष्यं पश्यामि भाण्डके॥ १५

चौरभावेन सम्प्राप्तोऽस्म्यतिथिस्ते महामते।
क्षुधितोऽस्मि ददस्वाज्ञां मांसमद्मि सुसंस्कृतम्॥ १६

विश्वामित्र उवाच

श्वपचस्तु वचः श्रुत्वा मामुवाच सुनिश्चितम्।
भक्षं मा कुरु वर्णाग्र्य जानीहि श्वपचालयम्॥ १७

दुर्लभं खलु मानुष्यं तत्रापि च द्विजन्मता।
द्विजत्वे ब्राह्मणत्वं च दुर्लभं वेत्सि किं न हि॥ १८

दुष्टाहारो न कर्तव्यः सर्वथा लोकमिच्छता।
अग्राह्या मनुना प्रोक्ताः कर्मणा सप्त चान्त्यजाः॥ १९

त्याज्योऽहं कर्मणा विप्र श्वपचो नात्र संशयः।
निवारयामि भक्ष्यात्त्वां न लोभेनाञ्जसा द्विज॥ २०

वर्णसङ्करदोषोऽयं मा यातु त्वां द्विजोत्तम।

हे सुजघने! वनमें एक दिन मैं भी भूखसे अत्यधिक विकल होकर चोरकी भाँति एक चाण्डालके घरमें प्रविष्ट हुआ। वहाँ चाण्डालको सोया हुआ देखकर भूखसे अत्यन्त व्याकुल मैं रसोईघर खोजकर कुछ खानेके लिये उसमें पहुँच गया॥ १०-११॥

बर्तन खोलकर भोजन प्राप्त करनेके लिये मैंने ज्यों ही बर्तनमें हाथ डाला, तभी उस चाण्डालने मुझे देख लिया। उसने आदरपूर्वक मुझसे पूछा—आप कौन हैं? रातके समय मेरे घरमें आप क्यों प्रविष्ट हुए हैं और मेरे बर्तनको क्यों खोल रहे हैं? आप अपना उद्देश्य बताइये॥ १२-१३॥

हे सुन्दर केशोंवाली! चाण्डालके यह पूछनेपर क्षुधासे अत्यधिक पीड़ित मैं गद्गद वाणीमें उससे कहने लगा—हे महाभाग! मैं एक तपस्वी ब्राह्मण हूँ। मैं भूखसे विकल होकर चोरीके विचारसे युक्त होकर यहाँ आया हूँ और इस बर्तनमें कोई खानेकी वस्तु देख रहा हूँ। हे महामते! चोरीके विचारसे यहाँ आया हुआ मैं आपका अतिथि हूँ। इस समय मैं भूखा हूँ। अतः आप मुझे आज्ञा दीजिये, जिससे मैं आपके द्वारा भलीभाँति पकाये गये पदार्थका भक्षण करूँ॥ १४—१६॥

विश्वामित्र बोले—[हे सुन्दरि!] मेरी बात सुनकर चाण्डालने मुझसे कहा—हे चारों वर्णोंमें अग्रगण्य! इसे चाण्डालका घर जानिये, अतः आप मेरे यहाँ भोजन मत कीजिये; क्योंकि एक तो मानव-योनिमें जन्म पाना दुर्लभ है, उसमें भी द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य)-के यहाँ बड़ा ही दुर्लभ है। द्विजोंमें भी ब्राह्मण-कुलमें जन्म तो सर्वथा दुर्लभ है। क्या आप इसे नहीं जानते हैं? उत्तम लोककी कामना करनेवाले व्यक्तिको कभी भी दूषित आहार ग्रहण नहीं करना चाहिये। भगवान् मनुने कर्मानुसार सात जातियोंको अन्त्यज मानकर उन्हें अग्राह्य बतलाया है। हे विप्र! मैं चाण्डाल हूँ, अतः अपने कर्मके अनुसार त्याज्य हूँ; इसमें कोई सन्देह नहीं है। हे द्विज! मैं अपना धर्म समझकर ही आपको भोजन करनेसे रोक रहा हूँ, न कि [अपने पदार्थके] लोभसे। हे द्विजवर! वर्णसंकरताका दोष आपको न लगे, केवल यही मेरा अभिप्राय है॥ १७—२०½॥

विश्वामित्र उवाच

सत्यं वदसि धर्मज्ञ मतिस्ते विशदान्त्यज॥ २१

तथाप्यापदि धर्मस्य सूक्ष्ममार्गं ब्रवीम्यहम्।
देहस्य रक्षणं कार्यं सर्वथा यदि मानद॥ २२

पापस्यान्ते पुनः कार्यं प्रायश्चित्तं विशुद्धये।
दुर्गतिस्तु भवेत्पापादनापदि न चापदि॥ २३

मरणात्क्षुधितस्याथ नरको नात्र संशयः।
तस्मात्क्षुधापहरणं कर्तव्यं शुभमिच्छता॥ २४

तेनाहं चौर्यधर्मेण देहं रक्षेऽप्यथान्त्यज।
अवर्षणे च चौर्येण यत्पापं कथितं बुधैः॥ २५

यो न वर्षति पर्जन्यस्तत्तु तस्मै भविष्यति।

विश्वामित्र उवाच

इत्युक्ते वचने कान्ते पर्जन्यः सहसापतत्॥ २६

गगनाद्धस्तिहस्ताभिर्धाराभिरभिकाङ्क्षितः।
मुदितोऽहं घनं वीक्ष्य वर्षन्तं विद्युता सह॥ २७

तदाहं तद्गृहं त्यक्त्वा निःसृतः परया मुदा।
कथय त्वं वरारोहे कालो नीतस्त्वया कथम्॥ २८

कान्तारे परमः क्रूरः क्षयकृत्प्राणिनामिह।

व्यास उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा पतिमाह प्रियंवदा॥ २९

यथा शृणु मया नीतः कालः परमदारुणः।
गते त्वयि मुनिश्रेष्ठ दुर्भिक्षं समुपागतम्॥ ३०

अन्नार्थं पुत्रकाः सर्वे बभूवुश्चातिदुःखिताः।
क्षुधितान्बालकान्वीक्ष्य नीवारार्थं वने वने॥ ३१

भ्रान्ताहं चिन्तयाविष्टा किञ्चित्प्राप्तं फलं तदा।
एवं च कतिचिन्मासा नीवारेणातिवाहिताः॥ ३२

विश्वामित्र बोले—हे धर्मज्ञ! तुम सत्य कह रहे हो। हे अन्त्यज! तुम्हारी बुद्धि अत्यन्त विशाल है, फिर भी मैं तुम्हें आपत्तिकालमें पालनीय धर्मका सूक्ष्म मार्ग बता रहा हूँ॥ २१½ ॥

हे मानद! मनुष्यको चाहिये कि जिस किसी भी उपायसे शरीरकी रक्षा करे। इसमें यदि कोई पाप हो जाय, तो बादमें पापसे मुक्तिके लिये प्रायश्चित्त कर लेना चाहिये। आपत्तिकालमें किये गये पापकर्मके कारण दुर्गति नहीं होती, किंतु सामान्य समयमें किये गये पापके कारण दुर्गति अवश्य होती है॥ २२-२३॥

भूखसे मरनेवालेको नरक होता है, इसमें सन्देह नहीं है। अतः अपने कल्याणकी इच्छा रखनेवालेको भूख मिटानेका प्रयत्न करना चाहिये। हे अन्त्यज! इसीलिये मैं भी चौर-कर्मसे अपने देहकी रक्षा कर रहा हूँ। विद्वानोंने कहा है कि अनावृष्टिके समय चोरी करनेसे जो पाप होता है, वह पाप उस मेघको लगता है, जो पानी नहीं बरसाता है॥ २४-२५½ ॥

विश्वामित्र बोले—हे प्रिये! मेरे ऐसा यह वचन कहते ही आकाशसे हाथीकी सूँड़की तरह मोटी धारवाली मनोभिलषित जलवृष्टि सहसा होने लगी। बिजलीकी चमकके साथ बरसते हुए मेघको देखकर मैं अत्यन्त आनन्दित हुआ॥ २६-२७॥

उसी समय उस चाण्डालका घर छोड़कर मैं परम प्रसन्नतापूर्वक बाहर निकल पड़ा। हे सुन्दरि! अब यह बताओ कि तुमने प्राणियोंका विनाश करनेवाले उस अत्यन्त भीषण समयको इस वनमें किस प्रकार बिताया?॥ २८½ ॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] पतिकी यह बात सुनकर उस प्रियभाषिणी स्त्रीने पतिसे कहा—हे मुनिश्रेष्ठ! मैंने जिस प्रकार उस अत्यन्त कष्टकारी समयको व्यतीत किया, उसे आप सुनिये। आपके चले जानेके बाद यहाँ अकाल पड़ गया था। मेरे सभी पुत्र अन्नके लिये बड़े दुःखित हुए॥ २९-३०½ ॥

बालकोंको भूखा देखकर घोर चिन्तासे ग्रस्त मैं नीवार (जंगली धान्य)-के लिये वन-वन घूमती रही। उस समय मुझे कुछ फल मिल गये। इस प्रकार नीवार अन्नके द्वारा मैंने कुछ महीने व्यतीत किये॥ ३१-३२॥

तदभावे मया कान्त चिन्तितं मनसा पुनः।
न भिक्षा किल दुर्भिक्षे नीवारा नापि कानने॥ ३३

न वृक्षेषु फलान्यासुर्न मूलानि धरातले।
क्षुधया पीडिता बाला रुदन्ति भृशमातुराः॥ ३४

किं करोमि क्व गच्छामि किं ब्रवीमि क्षुधार्दितान्।
एवं विचिन्त्य मनसा निश्चयस्तु मया कृतः॥ ३५

पुत्रमेकं ददाम्यद्य कस्मैचिद्धनिने किल।
गृहीत्वा तस्य मौल्यं तु तेन द्रव्येण बालकान्॥ ३६

पालयेऽहं क्षुधार्तांस्तु नान्योपायोऽस्ति पालने।
इति सञ्चिन्त्य मनसा पुत्रोऽयं प्रहितो मया॥ ३७

विक्रयार्थं महाभाग क्रन्दमानो भृशातुरः।
क्रन्दमानं गृहीत्वैनं निर्गताहं गतत्रपा॥ ३८

तदा सत्यव्रतो मार्गे मामुद्वीक्ष्य भृशातुराम्।
पप्रच्छ स च राजर्षिः कस्माद्रोदिति बालकः॥ ३९

तदाहं तमुवाचेदं वचनं मुनिसत्तम।
विक्रयार्थं नीयतेऽसौ बालकोऽद्य मया नृप॥ ४०

श्रुत्वा मे वचनं राजा दयार्द्रहृदयस्ततः।
मामुवाच गृहं याहि गृहीत्वैनं कुमारकम्॥ ४१

भोजनार्थे कुमाराणामामिषं विहितं तव।
प्रापयिष्याम्यहं नित्यं यावन्मुनिसमागमः॥ ४२

अहन्यहनि भूपालो वृक्षेऽस्मिन्मृगसूकरान्।
विन्यस्य याति हत्वासौ प्रत्यहं दययान्वितः॥ ४३

तेनैव बालकाः कान्त पालिता वृजिनार्णवात्।
वसिष्ठेनाथ शप्तोऽसौ भूपतिर्मम कारणात्॥ ४४

हे कान्त! उसके भी समाप्त हो जानेपर मैं मन-ही-मन पुनः सोचने लगी—'इस वनमें अब नीवारान्न भी नहीं मिल रहा है और इस अकालमें भिक्षा भी नहीं मिल सकती। वृक्षोंपर फल नहीं रह गये और धरतीमें कन्दमूल भी नहीं रहे। भूखसे पीड़ित बालक व्याकुल होकर बहुत रो रहे हैं। अब मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ और भूखसे तड़पते हुए इन बालकोंसे क्या कहूँ'॥ ३३-३४½॥

ऐसा सोचकर मैंने मनमें यही निश्चय किया कि किसी धनी व्यक्तिके हाथ आज अपने एक पुत्रको बेचूँगी और उसका मूल्य लेकर उस द्रव्यसे भूखसे पीड़ित अपने बालकोंका पालन करूँगी; क्योंकि इनके पालन-पोषणका कोई दूसरा उपाय नहीं रह गया है॥ ३५-३६½॥

अपने मनमें यह विचार करके मैंने इस पुत्रको बेचनेका दृढ़ निश्चय कर लिया। हे महाभाग! उस समय मेरा यह पुत्र व्याकुल होकर जोर-जोरसे रोने-चिल्लाने लगा, किंतु मैं निर्लज्ज होकर अपने रोते-चिल्लाते इस पुत्रको लेकर घरसे निकल पड़ी॥ ३७-३८॥

उस समय राजर्षि सत्यव्रतने मार्गमें मुझ अति व्याकुल चित्तवालीको देखकर पूछा कि यह बालक क्यों रो रहा है?॥ ३९॥

हे मुनिवर! तब मैंने उनसे यह वचन कहा—हे राजन्! मैं इस बालकको आज बेचनेके लिये ले जा रही हूँ॥ ४०॥

तब मेरी बात सुनकर राजाका हृदय दयासे भर गया और उन्होंने मुझसे कहा—'तुम इस बालकको लेकर अपने घर लौट जाओ। जबतक मुनि विश्वामित्र लौटकर आ नहीं जाते, तबतक तुम्हारे इन बालकोंके भोजनके लिये सामग्री प्रतिदिन तुम्हारे यहाँ पहुँचा दिया करूँगा'॥ ४१-४२॥

तभीसे दयालु राजा सत्यव्रत प्रतिदिन कुछ भोज्य-सामग्री इस पेड़पर रखकर चले जाते थे॥ ४३॥

हे कान्त! उन्होंने ही संकटके सागरसे इन बालकोंकी रक्षा की, किंतु मेरे ही कारण राजा सत्यव्रतको मुनि वसिष्ठके शापका भागी होना पड़ा॥ ४४॥

कस्मिंश्चिद्दिवसे मांसं न प्राप्तं तेन कानने।
हता दोग्ध्री वसिष्ठस्य तेनासौ कुपितो मुनिः॥ ४५

त्रिशङ्कुरिति भूपस्य कृतं नाम महात्मना।
कुपितेन वधाद्धेतोश्चाण्डालश्च कृतो नृपः॥ ४६

तेनाहं दुःखिता जाता तस्य दुःखेन कौशिक।
श्वपचत्वमसौ प्राप्तो मत्कृते नृपनन्दनः॥ ४७

येन केनाप्युपायेन भवता नृपतेः किल।
तस्माद्रक्षा प्रकर्तव्या तपसा प्रबलेन ह॥ ४८

व्यास उवाच

इति भार्यावचः श्रुत्वा कौशिको मुनिसत्तमः।
तामाह कामिनीं दीनां सान्त्वपूर्वमरिन्दम॥ ४९

विश्वामित्र उवाच

मोचयिष्यामि तं शापान्नृपं कमललोचने।
उपकारः कृतो येन कान्ताराद्रक्षितासि वै॥ ५०

विद्यातपोबलेनाहं करिष्ये दुःखसंक्षयम्।
इत्याश्वास्य प्रियां तत्र कौशिकः परमार्थवित्॥ ५१

चिन्तयामास नृपतेः कथं स्याद्दुःखनाशनम्।
संविमृश्य मुनिस्तत्र जगाम यत्र पार्थिवः॥ ५२

त्रिशङ्कुः पक्वणे दीनः संस्थितः श्वपचाकृतिः।
आगच्छन्तं मुनिं दृष्ट्वा विस्मितोऽसौ नराधिपः॥ ५३

दण्डवन्निपपातोर्व्यां पादयोस्तरसा मुनेः।
गृहीत्वा तं करे भूपं पतितं कौशिकस्तदा॥ ५४

उत्थाप्योवाच वचनं सान्त्वपूर्वं द्विजोत्तमः।
मत्कृते त्वं महीपाल शप्तोऽसि मुनिना यतः॥ ५५

वाञ्छितं ते करिष्यामि ब्रूहि किं करवाण्यहम्।

किसी दिन राजा सत्यव्रत जंगलमें कोई सामग्री नहीं पा सके। तब उन्होंने वसिष्ठजीकी दूध देनेवाली गाय मार डाली; इससे मुनि वसिष्ठ उनपर बहुत कुपित हुए॥ ४५॥

कुपित महात्मा वसिष्ठने राजाका नाम 'त्रिशंकु' रख दिया और गोवध करनेके कारण राजाको चाण्डाल बना दिया॥ ४६॥

हे कौशिक! उनके इसी कष्टसे मैं अत्यन्त दुःखित हूँ; क्योंकि मेरे ही कारण वे राजकुमार सत्यव्रत चाण्डाल हो गये हैं। इसलिये अब आपको जिस किसी भी उपायसे; यहाँतक कि अपनी उग्र तपस्याके प्रभावसे राजाकी रक्षा अवश्य करनी चाहिये॥ ४७-४८॥

व्यासजी बोले—हे शत्रुका दमन करनेवाले [राजा जनमेजय]! अपनी पत्नीकी यह बात सुनकर मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्र उस दुःखित स्त्रीको सान्त्वना देते हुए कहने लगे॥ ४९॥

विश्वामित्र बोले—हे कमलनयने! जिन्होंने तुम्हारा उपकार किया है और घोर वनमें तुम्हारी रक्षा की है, उन राजा सत्यव्रतको मैं शापमुक्त अवश्य करूँगा। मैं अपनी योगविद्या तथा तपस्याके प्रभावसे उनका दुःख दूर कर दूँगा॥ ५०½॥

परमतत्त्ववेत्ता विश्वामित्रजी अपनी भार्याको इस तरह आश्वस्त करके सोचने लगे कि राजा सत्यव्रतका दुःख किस प्रकार दूर हो सकता है? तब भलीभाँति विचार करके मुनि विश्वामित्र उस स्थानपर गये, जहाँ राजा सत्यव्रत (त्रिशंकु) दीन अवस्थाको प्राप्त होकर चाण्डालके रूपमें एक कुटियामें रह रहे थे॥ ५१-५२½॥

मुनिको आते देखकर राजा त्रिशंकु विस्मयमें पड़ गये। वे तत्काल मुनिके चरणोंपर दण्डकी भाँति गिर पड़े। तब भूमिपर पड़े हुए राजाको हाथसे पकड़कर द्विजश्रेष्ठ विश्वामित्रने उठाया और उन्हें सान्त्वना देते हुए यह वचन कहा—'हे राजन्! मेरे ही कारण वसिष्ठमुनिने आपको शाप दिया है, अतः मैं आपकी सारी कामना पूर्ण करूँगा। अब आप बताइये कि मैं आपका कौन-सा कार्य करूँ?'॥ ५३—५५½॥

राजोवाच

मया सम्प्रार्थितः पूर्वं वसिष्ठो मखहेतवे॥ ५६

मां याजय मुनिश्रेष्ठ करोमि मखमुत्तमम्।
यथेष्टं कुरु विप्रेन्द्र यथा स्वर्गं व्रजाम्यहम्॥ ५७

अनेनैव शरीरेण शक्रलोकं सुखालयम्।
कोपं कृत्वा वसिष्ठोऽसौ मामाहेति सुदुर्मते॥ ५८

मानुषेण हि देहेन स्वर्गवासः कुतस्तव।
पुनर्मयोक्तो भगवान्स्वर्गलुब्धेन चानघ॥ ५९

अन्यं पुरोहितं कृत्वा यक्ष्येऽहं यज्ञमुत्तमम्।

तदा तेनैव शप्तोऽहं चाण्डालो भव पामर॥ ६०

इत्येतत्कथितं सर्वं कारणं शापसम्भवम्।
मम दुःखविनाशाय समर्थोऽसि मुनीश्वर॥ ६१

इत्युक्त्वा विरराामासौ राजा दुःखरुजार्दितः।
कौशिकोऽपि निराकर्तुं शापं तस्य व्यचिन्तयत्॥ ६२

राजा बोले—पूर्वकालमें मैंने यज्ञ करानेके लिये वसिष्ठजीसे यह प्रार्थना की थी—हे मुनिश्रेष्ठ! मैं महान् यज्ञ करना चाहता हूँ, अतः आप मुझसे यज्ञ सम्पन्न कराइये। हे विप्रेन्द्र! आप मेरा यह अभीष्ट कार्य कीजिये, जिससे मैं स्वर्ग चला जाऊँ; मैं इसी मानव-देहसे सुखोंके निधान इन्द्रलोक जाना चाहता हूँ॥ ५६-५७½ ॥

इसपर वसिष्ठमुनिने क्रोधित होकर मुझसे कहा—अरे दुर्बुद्धि! इस मानवशरीरसे तुम्हारा स्वर्गमें वास कैसे हो सकता है?॥ ५८½ ॥

तब स्वर्गकी उत्कट लालसावाले मैंने भगवान् वसिष्ठसे पुनः कहा—हे निष्पाप! तब मैं किसी अन्यको पुरोहित बनाकर वह श्रेष्ठ यज्ञ आरम्भ करूँगा। उसी समय उन्होंने मुझे यह शाप दे दिया 'हे नीच! तुम चाण्डाल हो जाओ'॥ ५९-६० ॥

हे मुनीश्वर! इस प्रकार मैंने शाप पानेका सारा कारण आपसे कह दिया। अब एकमात्र आप ही मेरा दुःख दूर करनेमें समर्थ हैं॥ ६१ ॥

कष्टकी पीड़ासे व्यथित राजा त्रिशंकु इतना कहकर चुप हो गये और विश्वामित्रजी भी उनके शापको दूर करनेका उपाय सोचने लगे॥ ६२ ॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे त्रिशङ्कुशापोद्धाराय विश्वामित्रसान्त्वनवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥



अथ चतुर्दशोऽध्यायः

विश्वामित्रका सत्यव्रत (त्रिशंकु)-को सशरीर स्वर्ग भेजना, वरुणदेवकी आराधनासे राजा हरिश्चन्द्रको पुत्रकी प्राप्ति

व्यास उवाच

विचिन्त्य मनसा कृत्यं गाधिसूनुर्महातपाः।
प्रकल्प्य यज्ञसम्भारान्मुनीनामन्त्रयत्तदा॥ १

मुनयस्तं मखं ज्ञात्वा विश्वामित्रनिमन्त्रिताः।
नागताः सर्व एवैते वसिष्ठेन निवारिताः॥ २

व्यासजी बोले—हे राजन्! महातपस्वी गाधिपुत्र विश्वामित्रने यज्ञानुष्ठानका विचार करके यज्ञसम्बन्धी सामग्रियाँ जुटाकर सभी मुनियोंको निमन्त्रित किया। तत्पश्चात् विश्वामित्रके द्वारा निमन्त्रित किये गये मुनिगण उस यज्ञके बारेमें जानकर भी वहाँ नहीं आये; क्योंकि वसिष्ठजीने उन सबको आनेसे मना कर दिया था॥ १-२ ॥

गाधिसूनुस्तदाज्ञाय विमनाश्चातिदुःखितः।
आजगामाश्रमं तत्र यत्रासौ नृपतिः स्थितः॥ ३

तमाह कौशिकः क्रुद्धो वसिष्ठेन निवारिताः।
नागता ब्राह्मणाः सर्वे यज्ञार्थं नृपसत्तम॥ ४

पश्य मे तपसः सिद्धिं यथा त्वां सुरसद्मनि।
प्रापयामि महाराज वाञ्छितं ते करोम्यहम्॥ ५

इत्युक्त्वा जलमादाय हस्तेन मुनिसत्तमः।
ददौ पुण्यं तदा तस्मै गायत्रीजपसम्भवम्॥ ६

दत्त्वाथ सुकृतं राज्ञे तमुवाच महीपतिम्।
यथेष्टं गच्छ राजर्षे त्रिविष्टपमतन्द्रितः॥ ७

पुण्येन मम राजेन्द्र बहुकालार्जितेन च।
याहि शक्रपुरीं प्रीतः स्वस्ति तेऽस्तु सुरालये॥ ८

व्यास उवाच

इत्युक्तवति विप्रेन्द्रे त्रिशङ्कुस्तरसा ततः।
उत्पपात यथा पक्षी वेगवांस्तपसो बलात्॥ ९

उत्पत्य गगने राजा गतः शक्रपुरीं यदा।
दृष्टो देवगणैस्तत्र क्रूरश्चाण्डालवेषभाक्॥ १०

कथितोऽसौ सुरेन्द्राय कोऽयमायाति सत्वरः।
गगने देववद्धा यो दुर्दर्शः श्वपचाकृतिः॥ ११

सहसोत्थाय शक्रस्तमपश्यत्पुरुषाधमम्।
ज्ञात्वा त्रिशङ्कुमपि स निर्भर्त्स्य तरसाब्रवीत्॥ १२

श्वपच क्व समायासि देवलोके जुगुप्सितः।

याहि शीघ्रं ततो भूमौ नात्र स्थातुं त्वयोचितम्॥ १३

इत्युक्तः स्खलितः स्वर्गाच्छक्रेणामित्रकर्शन।
निपपात तदा राजा क्षीणपुण्यो यथामरः॥ १४

यह जानकर गाधिपुत्र विश्वामित्र खिन्नमनस्क तथा अतिदुःखित हुए और उस आश्रममें आये, जहाँ राजा [त्रिशंकु] विराजमान थे॥ ३॥

कुपित विश्वामित्रने उन त्रिशंकुसे कहा—हे नृपश्रेष्ठ! वसिष्ठजीके मना कर देनेके कारण सभी ब्राह्मण तो यज्ञमें नहीं आये, किंतु हे महाराज! मेरे तपका वह प्रभाव देखिये, जिससे मैं आपको अभी सुरलोक पहुँचाता हूँ और आपकी अभिलाषा पूरी करता हूँ॥ ४-५॥

यह कहकर मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रने हाथमें जल लेकर गायत्रीजपसे अर्जित अपना समस्त पुण्य उन्हें दे दिया॥ ६॥

राजाको अपना पुण्य देकर विश्वामित्रने उन पृथ्वीपतिसे कहा—हे राजर्षे! अब आप अपने अभीष्ट स्वर्गलोकको जाइये। हे राजेन्द्र! बहुत दिनोंसे मेरे द्वारा अर्जित किये गये पुण्यसे अब आप प्रसन्नतापूर्वक इन्द्रलोक जायँ और वहाँ देवलोकमें आपका कल्याण हो॥ ७-८॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] विप्रेन्द्र विश्वामित्रके इतना कहते ही राजा त्रिशंकु मुनिके तपोबलसे बड़े वेगसे उड़नेवाले पक्षीकी भाँति तुरंत ऊपरकी ओर उड़े॥ ९॥

आकाशमें उड़कर जब राजा त्रिशंकु इन्द्रपुरी पहुँचे, तब सभी देवताओंने देखा कि चाण्डालवेषधारी कोई क्रूर व्यक्ति चला आ रहा है। तत्पश्चात् उन लोगोंने इन्द्रसे पूछा कि चाण्डालके समान आकृतिवाला तथा दुर्दर्श यह कौन व्यक्ति देवताकी भाँति आकाशमार्गसे बड़े वेगसे चला आ रहा है?॥ १०-११॥

तब इन्द्रने सहसा उठकर उस अधम पुरुषकी ओर देखा। उसे त्रिशंकुके रूपमें पहचानकर तत्काल डाँटते हुए इन्द्र कहने लगे—हे चाण्डाल! घृणित कर्मवाले तुम देवलोकमें कहाँ चले आ रहे हो! तुम अभी पृथ्वीलोकको लौट जाओ; क्योंकि तुम्हारे लिये यहाँ निवास करना सर्वथा उचित नहीं है॥ १२-१३॥

[व्यासजी बोले—] हे शत्रुओंका दमन करनेवाले जनमेजय! इन्द्रके ऐसा कहते ही त्रिशंकु स्वर्गसे वैसे ही नीचे गिरने लगे, जैसे पुण्यके क्षीण होनेपर देवताओंका स्वर्गसे पतन हो जाता है॥ १४॥

पुनश्चुक्रोश भूपालो विश्वामित्रेति चासकृत्।
पतामि रक्ष दुःखार्तं स्वर्गाच्चलितमाशुगम्॥ १५

तस्य तत्क्रन्दितं राजन् पततः कौशिको मुनिः।
श्रुत्वा तिष्ठेति होवाच पतन्तं वीक्ष्य भूपतिम्॥ १६

वचनात्तस्य तत्रैव स्थितोऽसौ गगने नृपः।
मुनेस्तपःप्रभावेण चलितोऽपि सुरालयात्॥ १७

विश्वामित्रोऽप्यपः स्पृष्ट्वा चकारेष्टिं सुविस्तराम्।
विधातुं नूतनां सृष्टिं स्वर्गलोकं द्वितीयकम्॥ १८

तस्योद्यमं तथा ज्ञात्वा त्वरितस्तु शचीपतिः।
तत्राजगाम सहसा मुनिं प्रति तु गाधिजम्॥ १९

किं ब्रह्मन् क्रियते साधो कस्मात्कोपसमाकुलः।
अलं सृष्ट्या मुनिश्रेष्ठ ब्रूहि किं करवाणि ते॥ २०

विश्वामित्र उवाच

स्वं निवासं महीपालं च्युतं त्वद्भुवनाद् विभो।
नयस्व प्रीतियोगेन त्रिशङ्कुं चातिदुःखितम्॥ २१

व्यास उवाच

तस्य तं निश्चयं ज्ञात्वा तुराषाडतिशङ्कितः।
तपोबलं विदित्वोग्रमोमित्योवाच वासवः॥ २२

दिव्यदेहं नृपं कृत्वा विमानवरसंस्थितम्।
आपृच्छ्य कौशिकं शक्रोऽगमन्निजपुरीं तदा॥ २३

गते शक्रे तु वै स्वर्गं त्रिशङ्कुसहिते ततः।
विश्वामित्रः सुखं प्राप्य स्वाश्रमे सुस्थिरोऽभवत्॥ २४

हरिश्चन्द्रोऽथ तच्छ्रुत्वा विश्वामित्रोपकारकम्।
पितुः स्वर्गमनं कामं मुदितो राज्यमन्वशात्॥ २५

तब राजा त्रिशंकु वहींसे बार-बार चिल्लाने लगे—हे विश्वामित्र! हे विश्वामित्र! मैं स्वर्गसे च्युत होकर बड़े वेगसे नीचेकी ओर गिर रहा हूँ, अतः आप मुझ कष्टपीड़ितकी रक्षा कीजिये॥ १५॥

हे राजन्! गिरते हुए त्रिशंकुका करुणक्रन्दन सुनकर तथा उन्हें नीचेकी ओर गिरते देखकर विश्वामित्रने कहा—'वहीं रुक जाइये'॥ १६॥

[हे राजन्!] यद्यपि त्रिशंकु देवलोकसे च्युत हो चुके थे तथापि मुनि विश्वामित्रके ऐसा कहते ही उनके तपोबलके प्रभावसे वे त्रिशंकु वहींपर आकाशमें ही स्थित हो गये॥ १७॥

तत्पश्चात् विश्वामित्रने नयी सृष्टिकी रचनाद्वारा दूसरा स्वर्गलोक बनानेके लिये जलका स्पर्श करके एक दीर्घकालीन यज्ञ आरम्भ किया॥ १८॥

उनके उस प्रकारके प्रयत्नको जानकर इन्द्र गाधि-पुत्र मुनि विश्वामित्रके पास तुरंत आ पहुँचे। [इन्द्र बोले—] हे ब्रह्मन्! आप यह क्या कर रहे हैं? हे साधो! आप कुपित क्यों हैं? हे मुनिश्रेष्ठ! आप दूसरी सृष्टि मत कीजिये और बताइये कि मैं आपका कौन-सा कार्य करूँ?॥ १९-२०॥

विश्वामित्र बोले—हे विभो! आपके लोकसे च्युत होकर अत्यन्त दुःखमें पड़े हुए राजा त्रिशंकुको आप प्रेमपूर्वक अपने निवास-स्थान (स्वर्गलोक)-में ले जाइये॥ २१॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! विश्वामित्रका वह निश्चय जानकर इन्द्रको बहुत भय हुआ। उन्होंने मुनिका उग्र तपोबल समझकर कहा—'ठीक है।' तत्पश्चात् राजाको दिव्य शरीरवाला बनाकर तथा उन्हें एक उत्तम विमानपर बैठाकर इन्द्रने विश्वामित्रसे आज्ञा लेकर अपनी पुरीके लिये प्रस्थान किया॥ २२-२३॥

राजा त्रिशंकुसहित इन्द्रके स्वर्ग चले जानेके उपरान्त विश्वामित्र सुखी होकर अपने आश्रममें निश्चिन्त होकर रहने लगे॥ २४॥

इधर राजा हरिश्चन्द्र मुनि विश्वामित्रके द्वारा किये गये अपने पिताके स्वर्गगमन-सम्बन्धी उपकारको सुनकर अत्यन्त हर्षित हुए और राज्य-शासन करने लगे॥ २५॥

अयोध्याधिपतिः क्रीडां चकार सह भार्यया।
रूपयौवनचातुर्ययुक्तया प्रीतिसंयुतः॥ २६

अतीतकाले युवती न सा गर्भवती ह्यभूत्।
तदा चिन्तातुरो राजा बभूवातीव दुःखितः॥ २७

वसिष्ठस्याश्रमं गत्वा प्रणम्य शिरसा मुनिम्।
अनपत्यत्वजां चिन्तां गुरवे समवेदयत्॥ २८

दैवज्ञोऽसि भवान्कामं मन्त्रविद्याविशारदः।
उपायं कुरु धर्मज्ञ सन्ततेर्मम मानद॥ २९

अपुत्रस्य गतिर्नास्ति जानासि द्विजसत्तम।
कस्मादुपेक्षसे जानन् दुःखं मम च शक्तिमान्॥ ३०

कलविंकास्त्विमे धन्या ये शिशुं लालयन्ति हि।
मन्दभाग्योऽहमनिशं चिन्तयामि दिवानिशम्॥ ३१

व्यास उवाच

इत्याकर्ण्य मुनिस्तस्य निर्वेदमिश्रितं वचः।
सञ्चिन्त्य मनसा सम्यक् तमुवाच विधेः सुतः॥ ३२

वसिष्ठ उवाच

सत्यं ब्रूषे महाराज संसारेऽस्मिन्न विद्यते।
अनपत्यत्वजं दुःखं यत्तथा दुःखमद्भुतम्॥ ३३

तस्मात्त्वमपि राजेन्द्र वरुणं यादसां पतिम्।
समाराधय यत्नेन स ते कार्यं करिष्यति॥ ३४

वरुणादधिको नास्ति देवः सन्तानदायकः।
तमाराधय धर्मिष्ठ कार्यसिद्धिर्भविष्यति॥ ३५

दैवं पुरुषकारश्च माननीयाविमौ नृभिः।
उद्यमेन विना कार्यसिद्धिः सञ्जायते कथम्॥ ३६

न्यायतस्तु नरैः कार्य उद्यमस्तत्त्वदर्शिभिः।
कृते तस्मिन्भवेत्सिद्धिर्नान्यथा नृपसत्तम॥ ३७

अयोध्यापति [हरिश्चन्द्र] रूप, यौवन तथा चातुर्यसे सम्पन्न अपनी भार्याके साथ प्रेमपूर्वक विहार करने लगे॥ २६॥

इस प्रकार बहुत समय व्यतीत हो जानेपर भी जब वह युवती रानी गर्भवती नहीं हुई, तब राजा बड़े चिन्तित तथा दुःखी हुए॥ २७॥

इसके बाद वसिष्ठमुनिके आश्रममें जाकर तथा मस्तक झुकाकर उन्हें प्रणाम करनेके पश्चात् उन्होंने सन्तान उत्पन्न न होनेके कारण अपनी चिन्ता व्यक्त करते हुए गुरुसे कहा—हे धर्मज्ञ! हे मानद! आप महान् ज्योतिर्विद् तथा मन्त्रविद्याके परम विद्वान् हैं। अतः आप मेरे लिये सन्तानप्राप्तिका कोई उपाय कीजिये॥ २८-२९॥

हे द्विजश्रेष्ठ! आप तो जानते ही हैं कि पुत्रहीनकी गति नहीं होती। मेरे दुःखको जानते हुए तथा [उसे दूर करनेमें] समर्थ होते हुए भी आप उपेक्षा क्यों कर रहे हैं?॥ ३०॥

ये गौरैया पक्षी बड़े धन्य हैं, जो अपने शिशुका लालन-पालन कर रहे हैं। मैं ही ऐसा भाग्यहीन हूँ, जो सदा दिन-रात चिन्तित रहता हूँ॥ ३१॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] उनकी व्यथाभरी वाणी सुनकर ब्रह्माजीके पुत्र वसिष्ठजी भलीभाँति मनमें विचार करके उनसे कहने लगे॥ ३२॥

वसिष्ठजी बोले—हे महाराज! आप ठीक कह रहे हैं। जो दुःख पुत्र न होनेके कारण होता है, वैसा अद्भुत दुःख इस संसारमें नहीं है। अतएव हे राजेन्द्र! आप प्रयत्नपूर्वक जलाधिपति वरुणदेवकी आराधना कीजिये, वे ही आपका कार्य करेंगे॥ ३३-३४॥

हे धर्मिष्ठ! वरुणदेवसे बढ़कर कोई दूसरा सन्तानदाता देवता नहीं है। इसलिये आप उन्हींकी आराधना कीजिये, इससे आपका प्रयोजन अवश्य सिद्ध हो जायगा॥ ३५॥

मनुष्योंको भाग्य तथा पुरुषार्थ—इन दोनोंका आदर करना चाहिये; क्योंकि बिना उद्योग किये कार्य-सिद्धि कैसे हो सकती है?॥ ३६॥

हे नृपश्रेष्ठ! तत्त्वदर्शी मनुष्योंको न्यायपूर्वक उद्योग करना चाहिये। वैसा करनेसे सिद्धि अवश्य मिलती है, अन्यथा नहीं॥ ३७॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा गुरोरमिततेजसः।
प्रणम्य निर्ययौ राजा तपसे कृतनिश्चयः॥ ३८

गङ्गातीरे शुभे स्थाने कृतपद्मासनो नृपः।
ध्यायन्पाशधरं चित्ते चचार दुश्चरं तपः॥ ३९

एवं तपस्यतस्तस्य प्रचेता दृष्टिगोचरः।
कृपयाभून्महाराज प्रसन्नमुखपङ्कजः॥ ४०

हरिश्चन्द्रमुवाचेदं वचनं यादसां पतिः।
वरं वरय धर्मज्ञ तुष्टोऽस्मि तपसा तव॥ ४१

राजोवाच

अनपत्योऽस्मि देवेश पुत्रं देहि सुखप्रदम्।
ऋणत्रयापहारार्थमुद्यमोऽयं मया कृतः॥ ४२

नृपस्य वचनं श्रुत्वा प्रगल्भं दुःखितस्य च।
स्मितपूर्वं ततः पाशी तमाह पुरतः स्थितम्॥ ४३

वरुण उवाच

पुत्रो यदि भवेद्राजन् गुणी मनसि वाञ्छितः।
सिद्धे कार्ये ततः पश्चात्किं करिष्यसि मे प्रियम्॥ ४४

यदि त्वं तेन पुत्रेण मां यजेथा विशङ्कितः।
पशुबन्धेन तेनैव ददामि नृपते वरम्॥ ४५

राजोवाच

देव मे मास्तु वन्ध्यत्वं यजिष्येऽहं जलाधिप।
पशुं कृत्वा सुतं पुत्रं सत्यमेतद् ब्रवीमि ते॥ ४६

वन्ध्यत्वे परमं दुःखमसह्यं भुवि मानद।
शोकाग्निशमनं नृणां तस्माद्देहि सुतं शुभम्॥ ४७

वरुण उवाच

भविष्यति सुतः कामं राजन् गच्छ गृहाय वै।
सत्यं तद्वचनं कार्यं यद् ब्रवीषि ममाग्रतः॥ ४८

अपरिमित तेजवाले उन गुरु वसिष्ठकी यह बात सुनकर राजा हरिश्चन्द्रने तप करनेका निश्चय किया और गुरुको प्रणाम करके वे निकल पड़े॥ ३८॥

राजा हरिश्चन्द्र गंगानदीके तटपर एक शुभ स्थानमें पद्मासन लगाकर बैठ गये और अपने मनमें पाशधारी वरुणदेवका ध्यान करते हुए कठोर तप करने लगे॥ ३९॥

हे महाराज! इस प्रकारका तप करनेवाले उन [राजा हरिश्चन्द्र]-पर कृपा करके प्रसन्न मुख-कमलवाले वरुणदेव उनके सम्मुख प्रकट हो गये। जलाधिपति वरुणदेवने हरिश्चन्द्रसे यह वचन कहा—हे धर्मज्ञ! आपके तपसे मैं प्रसन्न हूँ, आप मुझसे वर माँगिये॥ ४०-४१॥

राजा बोले—हे देवेश! मैं सन्तानहीन हूँ, अतः आप मुझे सुखदायक पुत्र दीजिये। मैंने देव-ऋण, ऋषि-ऋण और पितृ-ऋण—इन तीनों ऋणोंसे मुक्त होनेके लिये यह [तपरूप] उद्यम किया है॥ ४२॥

तब दुःखित राजाका यह प्रगल्भ वचन सुनकर वरुणदेव अपने सम्मुख स्थित राजा हरिश्चन्द्रसे मुसकराते हुए कहने लगे॥ ४३॥

वरुण बोले—हे राजन्! यदि आपको मनोवांछित गुणवान् पुत्र उत्पन्न हो तब मनोरथ पूरा हो जानेके पश्चात् आप मेरा कौन-सा प्रिय कार्य करेंगे?॥ ४४॥

हे राजन्! यदि आप शंकारहित भावसे उस पुत्रको बलिपशु बनाकर मेरा यज्ञ करें, तो मैं आपको वर प्रदान करूँगा॥ ४५॥

राजा बोले—हे देव! मैं सन्तानहीन न रहूँ। हे जलाधिप! मैं उस पुत्रको बलिपशु बनाकर आपका यज्ञ करूँगा। मैं आपसे यह सत्य कह रहा हूँ। हे मानद! इस पृथ्वीलोकमें मनुष्योंके लिये सन्तान न होनेका दुःख अत्यन्त असह्य होता है, अतः आप मुझे कल्याणकारी तथा मेरी शोकाग्निको शान्त करनेवाला पुत्र प्रदान कीजिये॥ ४६-४७॥

वरुण बोले—राजन्! आपको अपनी कामनाके अनुकूल पुत्र प्राप्त होगा। अब आप घर लौट जाइये, किंतु अभी मेरे सामने आपने जो वचन कहा है, उसे सत्य कीजियेगा॥ ४८॥

व्यास उवाच

इत्युक्तो वरुणेनासौ हरिश्चन्द्रो गृहं ययौ।
भार्यायै कथयामास वृत्तान्तं वरदानजम्॥ ४९

तस्य भार्याशतं पूर्णं बभूवातिमनोहरम्।

पट्टराज्ञी शुभा शैव्या धर्मपत्नी पतिव्रता॥ ५०

काले गतेऽथ सा गर्भं दधार वरवर्णिनी।
बभूव मुदितो राजा श्रुत्वा दोहदचेष्टितम्॥ ५१

कारयामास विधिवत्संस्कारान्नृपतिस्तदा।
मासेऽथ दशमे पूर्णे सुषुवे सा शुभे दिने॥ ५२

ताराग्रहबलोपेते पुत्रं देवसुतोपमम्।
पुत्रे जाते नृपः स्नात्वा ब्राह्मणैः परिवेष्टितः॥ ५३

चकार जातकर्मादौ ददौ दानानि भूरिशः।
राज्ञश्चातिप्रमोदोऽभूत्पुत्रजन्मसमुद्भवः॥ ५४

बभूव परमोदारो धनधान्यसमन्वितः।
विशेषदानसंयुक्तो गीतवादित्रसंकुलः॥ ५५

व्यासजी बोले—वरुणदेवके ऐसा कहनेपर राजा हरिश्चन्द्र घर चले गये और वरदान-सम्बन्धी सारा वृत्तान्त अपनी रानीसे कहा॥ ४९॥

उनकी एक सौ परम सुन्दर रानियाँ थीं। उनमेंसे कल्याणी तथा पतिव्रता शैव्या ही उनकी प्रधान धर्मपत्नी तथा पटरानी थीं॥ ५०॥

कुछ समय बीतनेपर सुन्दरी शैव्याने गर्भ धारण किया। तब उनकी गर्भकालीन अभिलाषाको सुनकर राजा परम प्रसन्न हुए॥ ५१॥

उस समय राजाने विधिपूर्वक [पुंसवन आदि] सभी संस्कार सम्पन्न कराये। दसवाँ महीना पूरा होनेपर रानीने नक्षत्र तथा ग्रहके उत्तम प्रभावसे युक्त शुभ दिनमें देवपुत्रके समान कान्तिमान् पुत्रको जन्म दिया॥ ५२½॥

पुत्रके जन्म लेनेपर राजाने ब्राह्मणोंके साथ जाकर स्नान करके सर्वप्रथम बालकका जातकर्म-संस्कार किया और बहुत दान दिये। पुत्रका जन्म होनेसे राजाको परम प्रसन्नता हुई। उस समय उन्होंने धन-धान्यसे युक्त होकर परम उदारतापूर्वक अनेक प्रकारके विशिष्ट दान दिये और गीत-वाद्योंके साथ महोत्सव मनाया॥ ५३—५५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे वरुणकृपया शैव्यायां पुत्रोत्पत्तिवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥

~~~O~~~

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

प्रतिज्ञा पूर्ण न करनेसे वरुणका क्रुद्ध होना और राजा हरिश्चन्द्रको जलोदरग्रस्त होनेका शाप देना

व्यास उवाच

प्रवृत्ते सदने तस्य राज्ञः पुत्रमहोत्सवे।
आजगाम तदा पाशी विप्रवेषधरः शुभः॥ १

स्वस्तीत्युक्त्वा नृपं प्राह वरुणोऽहं निशामय।
पुत्रो जातस्तवाधीश यजानेन नृपाशु माम्॥ २

सत्यं कुरु वचो राजन् यत्प्रोक्तं भवतः पुरा।
वन्ध्यत्वं तु गतं तेऽद्य वरदानेन मे किल॥ ३

व्यासजी बोले—[राजा जनमेजय!] राजा हरिश्चन्द्रके घरमें पुत्रका जन्मोत्सव मनाया जा रहा था, उसी समय सुन्दर ब्राह्मणका वेष धारण करके वरुणदेव वहाँ आ पहुँचे॥ १॥

'आपका कल्याण हो'—ऐसा कहकर उन्होंने राजा हरिश्चन्द्रसे कहा—हे राजन्! मैं वरुणदेव हूँ, मेरी बात सुनिये। हे नृप! आपको पुत्र हो गया है, इसलिये अब इसके द्वारा मेरा यज्ञ कीजिये। हे राजन्! मेरे वरदानसे अब आपकी सन्तानहीनताका दोष समाप्त हो चुका है, अतः आपने जो बात पहले कही है, उसे सत्य कीजिये॥ २-३॥
~~~

इति तस्य वचः श्रुत्वा राजा चिन्तां चकार ह।
कथं हन्मि सुतं जातं जलजेन समाननम्॥ ४

लोकपालः समायातो विप्रवेषेण वीर्यवान्।
न देवहेलनं कार्यं सर्वथा शुभमिच्छता॥ ५

पुत्रस्नेहः सुदुश्छेद्यः सर्वथा प्राणिभिः सदा।
किं करोमि कथं मे स्यात्सुखं सन्ततिसम्भवम्॥ ६

धैर्यमालम्ब्य भूपालस्तं नत्वा प्रतिपूज्य च।
उवाच वचनं श्लक्ष्णं युक्तं विनयपूर्वकम्॥ ७

राजोवाच

देवदेव तवानुज्ञां करोमि करुणानिधे।
वेदोक्तेन विधानेन मखं च बहुदक्षिणम्॥ ८

पुत्रे जाते दशाहेन कर्मयोग्यो भवेत्पिता।
मासेन शुध्येज्जननी दम्पती तत्र कारणम्॥ ९

सर्वज्ञोऽसि प्रचेतस्त्वं धर्मं जानासि शाश्वतम्।
कृपां कुरु त्वं वारीश क्षमस्व परमेश्वर॥ १०

व्यास उवाच

इत्युक्तस्तु प्रचेतास्तं प्रत्युवाच जनाधिपम्।
स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि कुरु कार्याणि पार्थिव॥ ११

आगमिष्यामि मासान्ते यष्टव्यं सर्वथा त्वया।
कृत्वौत्थानिकमाचारं पुत्रस्य नृपसत्तम॥ १२

इत्युक्त्वा श्लक्ष्णया वाचा राजानं यादसां पतिः।
हरिश्चन्द्रो मुदं प्राप गते पाशिनि पार्थिवः॥ १३

कोटिशः प्रददौ गास्ता घटोध्नीर्हेमपूरिताः।
विप्रेभ्यो वेदविद्भ्यश्च तथैव तिलपर्वतान्॥ १४

वरुणदेवकी बात सुनकर राजा चिन्तित हो उठे कि कमलके समान मुखवाले इस नवजात पुत्रका वध कैसे करूँ अर्थात् इसे बलिपशु बनाकर यज्ञ कैसे करूँ? किंतु स्वयं लोकपाल तथा पराक्रमी वरुणदेव विप्रवेषमें आये हुए हैं। अपने कल्याणकी इच्छा रखनेवाले व्यक्तिको देवताओंका अनादर कभी नहीं करना चाहिये। साथ ही, पुत्रस्नेहको दूर करना भी तो प्राणियोंके लिये सर्वदा अत्यन्त दुष्कर कार्य है। अतः अब मैं कौन-सा उपाय करूँ, जिससे मुझे सन्तानजनित सुख प्राप्त हो॥ ४—६॥

तब धैर्य धारण करके राजा हरिश्चन्द्रने वरुणदेवको प्रणामकर उनकी पूजा की और वे विनम्रतापूर्वक मधुर तथा युक्तियुक्त वचन कहने लगे॥ ७॥

राजा बोले—हे देवदेव! मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगा। हे करुणानिधान! मैं वेदोक्त विधि-विधानसे प्रचुर दक्षिणावाला यज्ञ करूँगा, किंतु अभी यज्ञ न करनेका कारण यह है कि पुत्र उत्पन्न होनेके दस दिन बाद पिता शुद्ध होकर कर्मानुष्ठानके योग्य होता है और एक महीनेमें माता शुद्ध होती है। अतः जबतक पति-पत्नी दोनों शुद्ध नहीं हो जाते, तबतक यज्ञ कैसे होगा? वरुणदेव! आप तो सर्वज्ञ हैं और सनातन धर्मको भलीभाँति जानते हैं। हे वारीश! आप मुझपर दया कीजिये, हे परमेश्वर! मुझे क्षमा कीजिये॥ ८—१०॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! राजा हरिश्चन्द्रके यह कहनेपर वरुणदेवने उनसे कहा—हे पृथ्वीपते! आपका कल्याण हो; अब मैं जा रहा हूँ और आप अपने कार्य सम्पन्न करें। नृपश्रेष्ठ! अब मैं एक मासके अन्तमें आऊँगा, तब आप अपने पुत्रका जातकर्म, नामकरण आदि संस्कार करनेके पश्चात् ही भलीभाँति मेरा यज्ञ कीजियेगा॥ ११-१२॥

जलाधिपति वरुणदेव मधुर वाणीमें राजा हरिश्चन्द्रसे ऐसा कहकर जब चले गये तो वे अत्यन्त प्रसन्न हुए। वरुणदेवके चले जानेपर राजाने वेदज्ञ ब्राह्मणोंको घट-जैसे बड़े-बड़े थनवाली तथा स्वर्णाभूषणोंसे अलंकृत करोड़ों गायों और तिलके पर्वतोंका दान किया॥ १३-१४॥

राजा पुत्रमुखं दृष्ट्वा सुखमाप महत्तरम्।
नामास्य रोहितश्चेति चकार विधिपूर्वकम्॥ १५

पूर्णे मासे ततः पाशी विप्रवेषेण भूपतेः।
आजगाम गृहे सद्यो यजस्वेति ब्रुवन्मुहुः॥ १६

वीक्ष्य तं नृपतिर्देवं निमग्नः शोकसागरे।
प्रणिपत्य कृतातिथ्यं तमुवाच कृताञ्जलिः॥ १७

दिष्ट्या देव त्वमायातो गृहं मे पावितं प्रभो।
मखं करोमि वारीश विधिवद्वाञ्छितं तव॥ १८

अदन्तो न पशुः श्लाघ्य इत्याहुर्वेदवादिनः।
तस्माद्दन्तोद्भवे तेऽहं करिष्यामि महामखम्॥ १९

व्यास उवाच

इत्युक्तस्तेन वरुणस्तथेत्युक्त्वा ययावथ।
हरिश्चन्द्रो मुदं प्राप्य विजहार गृहाश्रमे॥ २०

पुनर्दन्तोद्भवं ज्ञात्वा प्रचेता द्विजरूपवान्।
आजगाम गृहे तस्य कुरु कार्यमिति ब्रुवन्॥ २१

भूपालोऽपि जलाधीशं वीक्ष्य प्राप्तं द्विजाकृतिम्।
प्रणम्यासनसम्मानैः पूजयामास सादरम्॥ २२

स्तुत्वा प्रोवाच वचनं विनयानतकन्धरः।
करोमि विधिवत्कामं मखं प्रबलदक्षिणम्॥ २३

बालोऽप्यकृतचौलोऽयं गर्भकेशो न सम्मतः।
यज्ञार्थे पशुकरणे मया वृद्धमुखाच्छ्रुतम्॥ २४

तावत्क्षमस्व वारीश विधिं जानासि शाश्वतम्।
कर्तव्यः सर्वथा यज्ञो मुण्डनान्ते शिशोः किल॥ २५

अपने पुत्रका मुख देखकर राजा हरिश्चन्द्र परम आनन्दित हुए और उन्होंने विधिपूर्वक उसका नाम 'रोहित' रखा॥ १५॥

तत्पश्चात् एक मास बीतनेपर वरुणदेव ब्राह्मणका वेष धारणकर 'शीघ्र यज्ञ करो'—ऐसा बार-बार कहते हुए पुनः राजाके घर आये॥ १६॥

वरुणदेवको देखकर राजा हरिश्चन्द्र शोकसागरमें डूब गये। उन्हें प्रणाम तथा उनका अतिथिसत्कार करके राजाने दोनों हाथ जोड़कर कहा—हे देव! मैं कितना भाग्यशाली हूँ कि आप मेरे यहाँ पधारे हुए हैं। हे प्रभो! आपने आज मेरे भवनको पवित्र कर दिया है। हे वारीश! मैं विधिपूर्वक आपका अभिलषित यज्ञ अवश्य करूँगा। वेदवेत्ताओंने कहा है कि दन्तविहीन पशु यज्ञके लिये श्रेष्ठ नहीं होता, अतः इस पुत्रके दाँत निकल आनेके बाद मैं आपका महायज्ञ करूँगा॥ १७—१९॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! राजा हरिश्चन्द्रके ऐसा कहनेपर वरुणदेव 'वैसा ही हो'—यह कहकर वहाँसे लौट गये। इधर, राजा हरिश्चन्द्र आनन्दित होकर गृहस्थाश्रममें रहने लगे॥ २०॥

उसके बाद बालकको दाँत निकल आनेकी बात जानकर वरुणदेव ब्राह्मणका रूप धारणकर 'अब मेरा कार्य कर दो'—ऐसा बोलते हुए राजाके महलमें पुनः पहुँचे॥ २१॥

ब्राह्मणके वेषमें जलाधिनाथ वरुणको आया देखकर राजाने उन्हें प्रणाम किया और आसन, अर्घ्य, पाद्य आदिके द्वारा आदरपूर्वक उनकी पूजा की। तदनन्तर राजाने उनकी स्तुति करके विनम्रतापूर्वक सिर झुकाकर कहा—'मैं प्रचुर दान-दक्षिणाके साथ विधिपूर्वक आपका यज्ञ करूँगा; किंतु अभी तो इस बालकका चूडाकर्म-संस्कार भी नहीं हुआ है। मैंने वृद्धजनोंके मुखसे सुना है कि गर्भकालीन केशवाला बालक यज्ञके लिये पशु बनानेके योग्य नहीं माना गया है। हे जलेश्वर! आप सनातन विधि तो जानते ही हैं, अतः चूडाकरणतककी अवधिके लिये मुझे क्षमा कीजिये। मैं इस बालकके मुण्डन-संस्कारके पश्चात् आपका यज्ञ अवश्य करूँगा॥ २२—२५॥

तस्येति वचनं श्रुत्वा प्रचेताः प्राह तं पुनः।
प्रतारयसि मां राजन् पुनः पुनरिदं ब्रुवन्॥ २६

अपि ते सर्वसामग्री वर्तते नृपतेऽधुना।
पुत्रस्नेहनिबद्धस्त्वं वञ्चयस्येव साम्प्रतम्॥ २७

क्षौरकर्मविधिं कृत्वा न कर्तासि मखं यदि।
तदाहं दारुणं शापं दास्ये कोपसमन्वितः॥ २८

अद्य गच्छामि राजेन्द्र वचनात्तव मानद।
न मृषा वचनं कार्यं त्वयेक्ष्वाकुकुलोद्भव॥ २९

इत्याभाष्य ययावाशु प्रचेता नृपतेर्गृहात्।
राजा परमसन्तुष्टो ननन्द भवने तदा॥ ३०

चूडाकरणकाले तु प्रवृत्ते परमोत्सवे।
सम्प्राप्तस्तरसा पाशी भवनं नृपतेः पुनः॥ ३१

यदाङ्के सुतमादाय राज्ञी नृपतिसन्निधौ।
उपविष्टा क्रियाकाले तदैव वरुणोऽभ्यगात्॥ ३२

कुरु कर्मेति विस्पष्टं वचनं कथयन्नृपम्।
विप्ररूपधरः श्रीमान् प्रत्यक्ष इव पावकः॥ ३३

नृपतिस्तं समालोक्य बभूवातीव विह्वलः।
नमश्चकार तं भीत्या कृताञ्जलिपुटः पुरः॥ ३४

विधिवत्पूजयित्वा तं राजोवाच विनीतवान्।
स्वामिन् कार्यं करोम्यद्य मखस्य विधिपूर्वकम्॥ ३५

वक्तव्यमस्ति तत्रापि शृणुष्वैकमना विभो।
युक्तं चेन्मन्यसे स्वामिंस्तद् ब्रवीमि तवाग्रतः॥ ३६

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः।
संस्कृताश्चान्यथा शूद्रा एवं वेदविदो विदुः॥ ३७

तब राजाका यह वचन सुनकर वरुणदेवने उनसे कहा—हे राजन्! आप बार-बार यही कहते हुए मुझे धोखा दे रहे हैं॥ २६॥

हे राजन्! इस समय आपके पास यज्ञकी सम्पूर्ण सामग्री तो विद्यमान है, किंतु पुत्रस्नेहमें बँधे होनेके कारण आप मुझे इस बार भी धोखा दे रहे हैं॥ २७॥

अब इसका मुण्डन-संस्कार हो जानेके बाद भी यदि आप यज्ञ नहीं करेंगे, तो मैं कोपाविष्ट होकर आपको भीषण शाप दे दूँगा। हे राजेन्द्र! हे मानद! आज तो मैं आपकी बात मानकर चला जा रहा हूँ, किंतु हे इक्ष्वाकुवंशज! आप अपनी बात असत्य मत कीजियेगा॥ २८-२९॥

ऐसा कहकर वरुणदेव राजाके भवनसे तुरंत चले गये। तब राजा हरिश्चन्द्र भी अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने राजमहलमें आनन्द करने लगे॥ ३०॥

इसके बाद जब चूडाकरणके समय महान् उत्सव मनाया जा रहा था, उसी समय वरुणदेव शीघ्रतापूर्वक राजाके महलमें पुनः आ पहुँचे। महारानी शैव्या पुत्रको अपनी गोदमें लेकर राजाके पासमें बैठी थीं और ज्यों ही मुण्डनका कार्य आरम्भ हुआ, उसी समय साक्षात् अग्निके समान तेजवाले विप्ररूपधारी श्रीमान् वरुणदेव 'यज्ञकर्म करो'—ऐसा स्पष्ट वचन बोलते हुए राजाके समीप पहुँच गये॥ ३१—३३॥

उन्हें देखकर राजा हरिश्चन्द्र बहुत व्याकुल हो गये। राजाने डरते हुए उन्हें नमस्कार किया और वे दोनों हाथ जोड़कर उनके आगे खड़े हो गये॥ ३४॥

तत्पश्चात् वरुणदेवकी विधिपूर्वक पूजा करके विनयशील राजा हरिश्चन्द्रने उनसे कहा—हे स्वामिन्! मैं आज ही विधिपूर्वक आपका यज्ञकार्य करूँगा, किंतु हे विभो! इस सम्बन्धमें मुझे आपसे कुछ कहना है, आप एकाग्रचित्त होकर उसे सुनें। हे स्वामिन्! मैं आपके समक्ष उसे अब कह रहा हूँ, यदि आप उचित समझें तो स्वीकार कर लें॥ ३५-३६॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—ये तीनों वर्ण संस्कार-सम्पन्न हो जानेके बाद ही द्विजाति कहलाते हैं, अन्यथा ये शूद्र रहते हैं—ऐसा वेदवेत्ताओंने कहा है; इसलिये मेरा यह पुत्र अभी शूद्रके समान है। कोई

तस्मादयं सुतो मेऽद्य शूद्रवद्वर्तते शिशुः।
उपनीतः क्रियार्हः स्यादिति वेदेषु निर्णयः॥ ३८

राज्ञामेकादशे वर्षे सदोपनयनं स्मृतम्।
अष्टमे ब्राह्मणानां च वैश्यानां द्वादशे किल॥ ३९

दयसे यदि देवेश दीनं मां सेवकं तव।
तदोपनीय कर्तास्मि पशुना यज्ञमुत्तमम्॥ ४०

लोकपालोऽसि धर्मज्ञ सर्वशास्त्रविशारद।
मन्यसे मद्वचः सत्यं तद् गच्छ भवनं विभो॥ ४१

व्यास उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा दयावान् यादसां पतिः।
ओमित्युक्त्वा ययावाशु प्रसन्नवदनो नृपः॥ ४२

गतेऽथ वरुणे राजा बभूवातिमुदान्वितः।
सुखं प्राप्य सुतस्यैवं राजा मुदमवाप ह॥ ४३

चकार राजकार्याणि हरिश्चन्द्रस्तदा नृपः।
कालेन व्रजता पुत्रो बभूव दशवार्षिकः॥ ४४

तस्योपवीतसामग्रीं विभूतिसदृशीं नृपः।
चकार ब्राह्मणैः शिष्टैरन्वितः सचिवैस्तथा॥ ४५

एकादशे सुतस्याब्दे व्रतबन्धविधौ नृपः।
विदधे विधिवत्कार्यं चित्ते चिन्तातुरः पुनः॥ ४६

वर्तमाने तथा कार्ये उपनीते कुमारके।
आजगामाथ वरुणो विप्रवेषधरस्तदा॥ ४७

तं वीक्ष्य नृपतिस्तूर्णं प्रणम्य पुरतः स्थितः।
कृताञ्जलिपुटः प्रीतः प्रत्युवाच सुरोत्तमम्॥ ४८

देव दत्तोपवीतोऽयं पशुयोग्योऽस्ति मे सुतः।
प्रसादात्तव मे शोको गतो वन्ध्यापवादजः॥ ४९

बालक उपनयन-संस्कारसे सम्पन्न हो जानेके पश्चात् ही यज्ञ-क्रियाके योग्य होता है—ऐसा निर्णय वेदोंमें उल्लिखित है। क्षत्रियोंका उपनयन संस्कार ग्यारहवें वर्ष, ब्राह्मणोंका आठवें वर्ष और वैश्योंका बारहवें वर्षमें हो जाना बताया गया है॥ ३७—३९॥

हे देवेश! यदि आप मुझ दीन सेवकपर दया करें तो मैं इसका उपनयनसंस्कार करनेके पश्चात् इसे यज्ञ-पशु बनाकर आपका श्रेष्ठ यज्ञ करूँ॥ ४०॥

सभी शास्त्रोंके विद्वान् तथा धर्मके ज्ञाता हे विभो! आप लोकपाल हैं, यदि आप मेरी बात सत्य मानते हों, तो अपने भवनको लौट जाइये॥ ४१॥

व्यासजी बोले—उनकी यह बात सुनकर दयालु वरुणदेव 'ठीक है'—ऐसा कहकर वहाँसे तुरंत चले गये और राजा प्रसन्न मुखमण्डलवाले हो गये॥ ४२॥

वरुणदेवके चले जानेपर राजा हरिश्चन्द्र परम आनन्दित हुए। इस प्रकार पुत्र-सुख प्राप्त करके राजाको अपार हर्ष प्राप्त हुआ॥ ४३॥

तदनन्तर राजा हरिश्चन्द्र अपने राज-कार्यमें तत्पर हो गये। इस प्रकार समय बीतनेके साथ उनका पुत्र दस वर्षका हो गया॥ ४४॥

तब राजाने श्रेष्ठ ब्राह्मण तथा सचिवोंकी सम्मतिके अनुसार अपने विभवके अनुरूप राजकुमारके उपनयन-संस्कारकी सामग्री एकत्र की॥ ४५॥

पुत्रका ग्यारहवाँ वर्ष लगते ही राजाने व्रतबन्धके विधानके अनुसार विधिवत् कार्य आरम्भ किया, किंतु उनके मनमें चिन्ताके कारण बड़ी उद्विग्नता थी। जब राजकुमारका यज्ञोपवीत हो गया तथा इससे सम्बन्धित अन्य कार्य हो रहे थे, उसी समय वरुणदेव ब्राह्मणका वेष धारण करके वहाँ आ पहुँचे॥ ४६-४७॥

उन्हें देखते ही राजा हरिश्चन्द्र तुरंत प्रणामकर उनके सामने खड़े हो गये और दोनों हाथ जोड़कर प्रसन्नतापूर्वक सुरश्रेष्ठ वरुणदेवसे बोले—हे देव! अब यज्ञोपवीत हो जानेके बाद मेरा पुत्र यज्ञपशुके योग्य हो गया है और अब आपकी कृपासे मेरा निःसन्तान रहनेसे होनेवाली लोकनिन्दासे उत्पन्न शोक भी दूर हो चुका है॥ ४८-४९॥

कर्तुमिच्छाम्यहं यज्ञं प्रभूतवरदक्षिणम्।
समये शृणु धर्मज्ञ सत्यमद्य ब्रवीम्यहम्॥ ५०

समावर्तनकर्मान्ते करिष्यामि तवेप्सितम्।
ममोपरि दयां कृत्वा तावत्त्वं क्षन्तुमर्हसि॥ ५१

अब मैं चाहता हूँ कि प्रचुर दक्षिणावाला आपका श्रेष्ठ यज्ञ उपयुक्त अवसरपर कर डालूँ। हे धर्मज्ञ! आज मैं आपसे सत्य बात कह रहा हूँ, उसे सुन लीजिये। इस बालकके समावर्तन-संस्कारके पश्चात् मैं आपका अभिलषित यज्ञ करूँगा, मेरे ऊपर दया करके आप तबतकके लिये मुझे क्षमा करें॥ ५०-५१॥

वरुण उवाच

प्रतारयसि मां राजन् पुत्रप्रेमाकुलो भृशम्।
मुहुर्मुहुर्मतिं कृत्वा युक्तियुक्तां महामते॥ ५२

गच्छाम्यद्य महाराज वचसा तव नोदितः।
आगमिष्यामि समये समावर्तनकर्मणि॥ ५३

वरुण बोले—हे राजन्! हे महामते! अत्यधिक पुत्र-प्रेममें बँधे होनेके कारण आप बार-बार कोई-न-कोई युक्तिसंगत बुद्धिका प्रयोग करके मुझे धोखा देते चले आ रहे हैं। हे महाराज! आपकी बात मानकर आज तो मैं बिना कुछ कहे चला जा रहा हूँ, किंतु समावर्तन-कर्मके समय पुनः आऊँगा॥ ५२-५३॥

इत्युक्त्वा प्रययौ पाशी तमापृच्छ्य विशांपते।
राजा प्रमुदितः कार्यं चकार च यथोत्तरम्॥ ५४

हे राजा जनमेजय! राजा हरिश्चन्द्रसे यह कहकर तथा उनसे विदा लेकर वरुणदेव चले गये और राजा हर्षित होकर आगेका काम करने लगे॥ ५४॥

आगतं वरुणं दृष्ट्वा कुमारोऽतिविचक्षणः।
यज्ञस्य समयं ज्ञात्वा तदा चिन्तातुरोऽभवत्॥ ५५

परम प्रतिभासम्पन्न राजकुमार (रोहित) बार-बार वरुणदेवको आते देखकर और यज्ञ-सम्बन्धी प्रतिज्ञा जानकर चिन्तित हो उठे॥ ५५॥

शोकस्य कारणं राज्ञः पर्यपृच्छदितस्ततः।
ज्ञात्वात्मवधमायुष्मन् गमनाय मतिं दधौ॥ ५६

निश्चयं परमं कृत्वा सम्मन्त्र्य सचिवात्मजैः।
प्रययौ नगरात्तस्मान्निर्गत्य वनमप्यसौ॥ ५७

उन्होंने राजाके शोकका कारण इधर-उधर लोगोंसे पूछा। हे आयुष्मान् जनमेजय! वरुणदेवके यज्ञमें होनेवाले अपने वधकी बात जानकर राजकुमारने भाग जानेका निश्चय किया। तदनन्तर मन्त्रिकुमारोंसे परामर्श करनेके बाद दृढ़ निश्चय करके उस नगरसे निकलकर वे वनकी ओर चल पड़े॥ ५६-५७॥

गते पुत्रे नृपः कामं दुःखितोऽभूद् भृशं तदा।
प्रेरयामास दूतान्स्वांस्तस्यान्वेषणकाम्यया॥ ५८

पुत्रके चले जानेपर राजा बहुत दुःखी हुए और उन्होंने राजकुमारको खोजनेके उद्देश्यसे अपने दूतोंको भेजा॥ ५८॥

एवं गतेऽथ कालेऽसौ वरुणस्तद्गृहं गतः।
राजानं शोकसन्तप्तं कुरु यज्ञमिति ब्रुवन्॥ ५९

इस प्रकार कुछ समय बीतनेके पश्चात् वे वरुणदेव शोक-संतप्त राजासे 'मेरा यज्ञ करो'—ऐसा बोलते हुए उनके घर पहुँचे॥ ५९॥

राजा प्रणम्य तं प्राह देवदेव करोमि किम्।
न जाने क्वापि पुत्रो मे गतस्त्वद्य भयाकुलः॥ ६०

राजाने उन्हें प्रणाम करके कहा—हे देवदेव! अब मैं क्या करूँ? भयसे व्याकुल होकर मेरा पुत्र न जाने कहाँ चला गया है?॥ ६०॥

सर्वत्र गिरिदुर्गेषु मुनीनामाश्रमेषु च।
अन्वेषितो मे दूतैस्तु न प्राप्तो यादसांपते॥ ६१

आज्ञापय महाराज किं करोमि गते सुते।
न मे दोषोऽत्र सर्वज्ञ भाग्यदोषस्तु सर्वथा॥ ६२

हे वरुणदेव! मैंने अपने दूतोंसे पर्वतकी कन्दराओं तथा मुनियोंके आश्रमोंमें उसे सर्वत्र खोजवाया, किंतु वह कहीं नहीं मिला। हे महाराज! पुत्रके चले जानेपर अब आप ही बताइये कि मैं क्या करूँ? हे सर्वज्ञ! इसमें मेरा कोई दोष नहीं है, इसमें हर प्रकारसे भाग्यका ही दोष है॥ ६१-६२॥

व्यास उवाच

इति भूपवचः श्रुत्वा प्रचेताः कुपितो भृशम्।
शशाप च नृपं क्रोधाद्वञ्चितस्तु पुनः पुनः॥ ६३

नृपतेऽहं त्वया यस्माद्वचसा च प्रवञ्चितः।
तस्माज्जलोदरो व्याधिस्त्वां तुदत्वतिदारुणः॥ ६४

व्यासजी बोले—हे जनमेजय! राजाकी यह बात सुनकर वरुणदेव अत्यन्त कुपित हुए। राजाके द्वारा बार-बार धोखा दिये जानेके कारण उन्होंने क्रोधपूर्वक शाप दे दिया—'हे राजन्! आपने तरह-तरहकी बातोंसे मुझे सदा धोखा दिया है, इसलिये अत्यन्त भयंकर जलोदर रोग आपको पीड़ित करे'॥ ६३-६४॥

व्यास उवाच

इति शप्तो महीपालः कुपितेन प्रचेतसा।
पीडितोऽभूत्तदा राजा व्याधिना दुःखदेन तु॥ ६५

व्यासजी बोले—हे राजन्! तब वरुणदेवके कुपित होकर इस प्रकारका शाप देनेसे राजा हरिश्चन्द्र कष्टदायक जलोदर रोगसे ग्रस्त हो गये॥ ६५॥

एवं शप्त्वा नृपं पाशी जगाम निजमास्पदम्।
राजा प्राप्य महाव्याधिं बभूवातीव दुःखितः॥ ६६

इस प्रकार राजाको शाप देकर पाश धारण करनेवाले वरुणदेव अपने लोकको चले गये और राजा हरिश्चन्द्र उस महाव्याधिसे ग्रस्त होकर महान् कष्टमें पड़ गये॥ ६६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे हरिश्चन्द्रस्य जलोदरव्याधिप्राप्तिवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥ १५॥

~~O~~

अथ षोडशोऽध्यायः

राजा हरिश्चन्द्रका शुनःशेपको स्तम्भमें बाँधकर यज्ञ प्रारम्भ करना

व्यास उवाच

गतेऽथ वरुणे राजा रोगेणातीव पीडितः।
दुःखाद्दुःखं परं प्राप्य व्यथितोऽभूद् भृशं तदा॥ १

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] वरुणदेवके चले जानेपर राजा हरिश्चन्द्र [जलोदर] रोगसे अत्यन्त पीड़ित हुए; एक-पर-एक महान् कष्ट पाकर वे अति व्याकुल हो उठे॥ १॥

कुमारोऽसौ वने श्रुत्वा पितरं रोगपीडितम्।
गमनाय मतिं राजंश्चकार स्नेहयन्त्रितः॥ २

हे राजन्! वनमें स्थित राजकुमार रोहितने अपने पिताके [जलोदर] रोगसे पीड़ित होनेकी बात सुनकर स्नेहमें बँधे होनेके कारण [अयोध्या] लौट जानेका विचार किया॥ २॥

संवत्सरे व्यतीते तु पितरं द्रष्टुमादरात्।
गन्तुकामं तु तं ज्ञात्वा शक्रस्तत्राजगाम ह॥ ३

वासवस्तु तदा रूपं कृत्वा विप्रस्य सत्वरः।
वारयामास युक्त्या वै कुमारं गन्तुमुद्यतम्॥ ४

एक वर्ष बीतनेपर जब रोहितने अपने पिताका आदरपूर्वक दर्शन करनेके लिये अयोध्या जानेकी इच्छा की तब यह जानकर इन्द्र उसके पास पहुँचे। शीघ्र ही ब्राह्मणका रूप धारण करके इन्द्रने अपने पिताके दर्शनार्थ जानेको उद्यत राजकुमारको युक्तिपूर्वक रोका॥ ३-४॥

इन्द्र उवाच

राजपुत्र न जानासि राजनीतिं सुदुर्लभाम्।
अतः करोषि मूढस्त्वं गमनाय मतिं वृथा॥ ५

पिता तव महाभाग ब्राह्मणैर्वेदपारगैः।
कारयिष्यति होमं ते ज्वलितेऽथ विभावसौ॥ ६

आत्मा हि वल्लभस्तात सर्वेषां प्राणिनां खलु।
तदर्थे वल्लभाः सन्ति पुत्रदारधनादयः॥ ७

आत्मनो देहरक्षार्थं हत्वा त्वां वल्लभं सुतम्।
हवनं कारयित्वासौ रोगमुक्तो भविष्यति॥ ८

तस्मात्त्वया न गन्तव्यं राजपुत्र पितुर्गृहे।
मृते पितरि गन्तव्यं राज्यार्थे सर्वथा पुनः॥ ९

एवं निषेधितस्तत्र वासवेन नृपात्मजः।
वनमध्ये स्थितः कामं पुनः संवत्सरं नृप॥ १०

अत्यन्तं दुःखितं श्रुत्वा हरिश्चन्द्रं तदात्मजः।
गमनाय मतिं चक्रे मरणे कृतनिश्चयः॥ ११

तुराषाड् द्विजरूपेण तत्रागत्य च रोहितम्।
निवारयामास सुतं युक्तिवाक्यैः पुनः पुनः॥ १२

हरिश्चन्द्रोऽतिदुःखार्तो वसिष्ठं स्वपुरोहितम्।
पप्रच्छ रोगनाशाय तत्रोपायं सुनिश्चितम्॥ १३

तमाह ब्रह्मणः पुत्रो यज्ञं कुरु नृपोत्तम।
क्रयक्रीतेन पुत्रेण शापमोक्षो भविष्यति॥ १४

पुत्रा दशविधाः प्रोक्ता ब्राह्मणैर्वेदपारगैः।
द्रव्येणानीय तस्मात्त्वं पुत्रं कुरु नृपोत्तम॥ १५

वरुणोऽपि प्रसन्नः सन्सुखकारी भविष्यति।
लोभात्कोऽपि द्विजः पुत्रं प्रदास्यति स्वराष्ट्रजः॥ १६

इन्द्र बोले—हे राजपुत्र! आप अत्यन्त दुष्कर राजनीतिके विषयमें नहीं जानते, इसीलिये मूर्खताको प्राप्त आपने अयोध्या जानेका व्यर्थ ही विचार किया है॥ ५॥

हे महाभाग! [आपके वहाँ जानेपर] आपके पिता वेदोंके पारगामी ब्राह्मणोंके द्वारा कराये गये यज्ञमें प्रज्वलित अग्निमें आपकी आहुति दे देंगे॥ ६॥

हे तात! अपना प्राण सभी जीवोंको अवश्य ही अत्यन्त प्रिय होता है। उसीकी रक्षाके लिये पुत्र, स्त्री और धन आदि प्रिय लगते हैं॥ ७॥

अपने शरीरकी रक्षाके निमित्त आप-जैसे प्रिय पुत्रका अग्निमें हवन करवाकर वे रोगसे मुक्त हो जायँगे। अतएव हे राजपुत्र! इस समय आपको पिताके घर नहीं जाना चाहिये। पिताके मर जानेपर ही राज्य करनेके लिये आप वहाँ जायँ॥ ८-९॥

[हे राजन्!] इस प्रकार इन्द्रके मना कर देनेपर राजकुमार रोहित उस वनमें एक वर्षतक रुके रह गये॥ १०॥

इसके बाद राजकुमारने जब सुना कि मेरे पिता अब बहुत दुःखी हैं, तब उसने मर जानेका निश्चय करके उनके पास जानेका दृढ़ विचार कर लिया॥ ११॥

तब इन्द्रने पुनः ब्राह्मणका रूप धारण करके वहाँ आकर राजकुमारको अपनी तर्कसंगत बातोंसे बार-बार समझाकर उसे अयोध्या जानेसे रोक दिया॥ १२॥

इधर, कष्टसे अत्यधिक पीड़ित राजा हरिश्चन्द्रने अपने पुरोहित वसिष्ठजीसे इस रोगके नाशका निश्चित उपाय पूछा॥ १३॥

इसपर ब्रह्मापुत्र वसिष्ठजीने कहा—हे नृपश्रेष्ठ! अब आप धनके द्वारा खरीदे गये पुत्रसे यज्ञ कीजिये; इससे आप शापसे मुक्त हो जायँगे॥ १४॥

हे नृपश्रेष्ठ! वेदके पारगामी ब्राह्मणोंने दस प्रकारके पुत्र बतलाये हैं। अतः आप अपने द्रव्यसे क्रीत एक बालकको ले आकर उसे अपना पुत्र बना लीजिये। इससे वरुणदेव भी प्रसन्न होकर आपके लिये सुखकारी हो जायँगे। आपके राज्यका कोई-न-कोई द्विज धनके लोभसे अपना पुत्र बेच भी देगा॥ १५-१६॥

एवं प्रमोदितो राजा वसिष्ठेन महात्मना।
प्रधानं प्रेरयामास तदन्वेषणकाम्यया॥ १७

महात्मा वसिष्ठजीकी बातसे परम प्रसन्नताको प्राप्त राजा हरिश्चन्द्रने वैसा बालक ढूँढ़नेके उद्देश्यसे अपने प्रधान अमात्यको भेज दिया॥ १७॥

अजीगर्तो द्विजः कश्चिद्विषये तस्य भूपतेः।
तस्यासंश्च त्रयः पुत्रा निर्धनस्य विशेषतः॥ १८

प्रधानेनाप्यसौ पृष्टः पुत्रार्थं दुर्बलो द्विजः।
गवां शतं ददामीति देहि पुत्रं मखाय वै॥ १९

शुनःपुच्छः शुनःशेपः शुनोलांगूल इत्यमी।
तेषामेकतमं देहि ददामि तु गवां शतम्॥ २०

अजीगर्तस्तु तच्छ्रुत्वा क्षुधया पीडितो भृशम्।
पुत्रं च कतमं तेभ्यो विक्रेतुं वै मनो दधे॥ २१

राजा हरिश्चन्द्रके राज्यमें अजीगर्त नामक कोई ब्राह्मण रहता था। अति निर्धन उस ब्राह्मणके तीन पुत्र थे। पुत्र खरीदनेके लिये गये हुए प्रधान सचिवने उस दुर्बल ब्राह्मणसे कहा—मैं आपको एक सौ गायें दूँगा; आप अपना पुत्र यज्ञके लिये मुझे दे दीजिये। 'शुनःपुच्छ', 'शुनःशेप' तथा 'शुनोलांगूल' नामक जो आपके तीन पुत्र हैं, उनमेंसे कोई एक मुझे दे दीजिये और उसके बदले मैं आपको एक सौ गायें दे दूँगा। यह सुनकर भूखसे अत्यधिक व्याकुल अजीगर्तने उनमेंसे किसी एक पुत्रको बेच डालनेका मनमें निश्चय कर लिया॥ १८—२१॥

कार्याधिकारिणं ज्येष्ठं मत्वा नासावदादमुम्।
कनिष्ठं नाप्यदान्माता ममैष इति वादिनी॥ २२

मध्यमं च शुनःशेपं ददौ गवां शतेन च।
आनिनाय पशुं चक्रे नरमेधे नराधिपः॥ २३

ज्येष्ठ पुत्र पिण्डदान आदि कर्मोंका अधिकारी होता है—ऐसा सोचकर अजीगर्तने उसे नहीं दिया। कनिष्ठ पुत्रको ममताके कारण माताने यह कहकर नहीं दिया कि यह मेरा है। अतः अजीगर्तने एक सौ गायें लेकर अपने मँझले पुत्र शुनःशेपको बेच दिया। तब मन्त्री उसे राजाके पास ले गये और राजाने उसे यज्ञमें बलिपशु बनाया॥ २२-२३॥

रुदन्तं दुःखितं दीनं वेपमानं भृशातुरम्।
यूपे बद्धं निरीक्ष्यामुं चुक्रुशुर्मुनयस्तदा॥ २४

यज्ञीय स्तम्भमें वधके निमित्त बाँधे गये उस बालकको रोते हुए, दुःखित, दीन, भयके मारे थर-थर काँपते हुए तथा अत्यधिक व्याकुल देखकर उस समय ऋषिगण भी चिल्ला उठे॥ २४॥

शामित्राय पशुं चक्रे नरमेधे नराधिपः।
शमिता नाददे शस्त्रं तमालम्भयितुं शिशुम्॥ २५

नाहं द्विजसुतं दीनं रुदन्तं करुणं भृशम्।
हनिष्यामि स्वलोभार्थमित्युवाचाप्यसौ तदा॥ २६

इत्युक्त्वा विररामासौ कर्मणो दुष्करादथ।
राजा सभासदः प्राह किं कर्तव्यमिति द्विजाः॥ २७

तभी राजा हरिश्चन्द्रने नरमेध-यज्ञमें वध करनेके लिये उस बालकको पशुरूपसे शामित्र (वधकर्ता)-को सौंप दिया, किंतु उसने आलम्भनके लिये उसपर शस्त्र नहीं चलाया। उस समय उसने यह भी कहा—'मैं दुःखित तथा करुण स्वरसे बहुत विलाप करते हुए इस ब्राह्मणपुत्रको धनके लोभमें आकर नहीं मारूँगा'। ऐसा कहकर वह उस घृणित कर्मसे विरत हो गया। तब राजा हरिश्चन्द्रने सभासदोंसे पूछा—'हे विप्रगण! अब क्या किया जाय?'॥ २५—२७॥

जातः किलकिलाशब्दो जनानां क्रोशतां तदा।
क्रन्दमाने शुनःशेपे सभायां भृशमद्भुतम्॥ २८

उसी समय शुनःशेपके बड़े विचित्र ढंगसे करुण-क्रन्दन करनेपर सभामें चीखती-चिल्लाती जनताके बीच हाहाकार मच गया॥ २८॥

अजीगर्तस्तदोत्थाय तमुवाच नृपोत्तमम्।
राजन् कार्यं करिष्यामि तवाहं सुस्थिरो भव॥ २९

वेतनं द्विगुणं देहि हनिष्यामि पशुं किल।
कर्तव्यं मखकार्यं वै मया तेऽद्य धनार्थिना॥ ३०

दुःखितस्य धनार्थस्य सदासूया प्रसूयते।

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य हरिश्चन्द्रो मुदान्वितः॥ ३१

तमुवाच ददाम्यद्य गवां शतमनुत्तमम्।
तदाकर्ण्य पिता तस्य पुत्रं हन्तुं समुद्यतः॥ ३२

लोभेनाकुलचित्तोऽसौ शामित्रे कृतनिश्चयः।
समुद्यतं च तं दृष्ट्वा जनाः सर्वे सभासदः॥ ३३

चुक्रुशुर्भृशदुःखार्ता हाहेति जगदुर्वचः।
पिशाचोऽयं महापापी क्रूरकर्मा द्विजाकृतिः॥ ३४

यत्स्वयं स्वसुतं हन्तुमुद्यतः कुलपांसनः।
धिक्चाण्डाल किमेतत्ते पापकर्म चिकीर्षितम्॥ ३५

हत्वा सुतं धनं प्राप्य किं सुखं ते भविष्यति।
आत्मा वै जायते पुत्र अङ्गाद्वै वेदभाषितम्॥ ३६

तत्कथं पापबुद्धे त्वमात्मानं हन्तुमिच्छसि।
एवं कोलाहले तत्र जाते कुशिकनन्दनः॥ ३७

समीपं नृपतेर्गत्वा तमुवाच दयापरः।

विश्वामित्र उवाच

राजन्नमुं शुनःशेपं रुदन्तं भृशदुःखितम्॥ ३८

क्रतुस्ते भविता पूर्णो रोगनाशश्च सर्वथा।

तभी अजीगर्त उठकर उन नृपश्रेष्ठसे बोला—हे राजन्! आप निश्चिन्त रहें, मैं स्वयं आपका यह कार्य करूँगा। उस (वधकर्ता)-को दिये जानेवाले धनसे दूना धन मुझे दीजिये, तो मैं इस बलिपशुका वध अवश्य कर दूँगा। धन-लोलुप होनेके कारण मैं आज आपका यज्ञकार्य निश्चित-रूपसे पूर्ण कर दूँगा; जो दुःखी है अथवा धनका लोभी है, उसके गुणोंमें भी दोष आ जाते हैं॥ २९-३०½ ॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! अजीगर्तकी यह बात सुनकर राजा हरिश्चन्द्र बहुत प्रसन्न हुए और उससे बोले कि मैं अभी एक सौ श्रेष्ठ गायें आपको दूँगा॥ ३१½ ॥

उनकी यह बात सुनकर अजीगर्त अपने पुत्र शुनःशेपका वध करने हेतु तैयार हो गया। लोभके कारण उद्विग्न चित्तवाले अजीगर्तने शामिता बननेका पूर्ण निश्चय कर लिया॥ ३२½ ॥

उसे हथियार उठाकर अपने पुत्रको मारनेहेतु उद्यत देखकर वहाँ उपस्थित सभासद्गण तथा सारी जनता दुःखसे विकल होकर चीखने-चिल्लाने लगी तथा हाय-हाय करते हुए कहने लगी कि ब्राह्मणके रूपमें यह पिशाच, महापापी तथा क्रूर कर्म करनेवाला है; यह अपने कुलको कलंकित करता हुआ स्वयं अपने ही पुत्रका वध करनेके लिये उद्यत है। हे चाण्डाल! तुम्हें धिक्कार है, तुमने यह पापकर्म करनेकी इच्छा क्यों की? पुत्रका वध करनेके बाद धन प्राप्त करके तुम कौन-सा सुख पा जाओगे? वेदोंमें कहा गया है कि पुत्ररूपमें अपनी आत्मा ही शरीरसे जन्म लेती है, इसलिये हे पापबुद्धि! तुम अपनी ही आत्माका वध किसलिये करना चाहते हो?। यज्ञस्थलमें इस प्रकारका कोलाहल होनेपर विश्वामित्रजी दयार्द्र हो गये और वे राजा हरिश्चन्द्रके पास जाकर उनसे कहने लगे॥ ३३—३७½ ॥

विश्वामित्र बोले—हे राजन्! अत्यधिक दुःखित होकर करुण क्रन्दन करते हुए इस शुनः-शेपको आप पाशमुक्त कर दीजिये। ऐसा करनेसे एक तो यज्ञ पूरा होगा और आपका रोग भी दूर हो जायगा॥ ३८½ ॥

दयासमं नास्ति पुण्यं पापं हिंसासमं नहि॥ ३९

रागिणां रोचनार्थाय नोदनेयं विचारय।
आत्मदेहस्य रक्षार्थं परदेहनिकृन्तनम्॥ ४०

न कर्तव्यं महाराज सर्वतः शुभमिच्छता।
दयया सर्वभूतेषु सन्तुष्टो येन केन च॥ ४१

सर्वेन्द्रियोपशान्त्या च तुष्यत्याशु जगत्पतिः।
आत्मवत्सर्वभूतेषु चिन्तनीयं नृपोत्तम॥ ४२

जीवितव्यं प्रियं नूनं सर्वेषां सर्वदा किल।
त्वमिच्छसि सुखं कर्तुं देहे हत्वा त्वमुं द्विजम्॥ ४३

कथं नेच्छेदसौ देहं रक्षितुं स्वसुखास्पदम्।
पूर्वजन्मकृतं वैरं नानेन सह ते नृप॥ ४४

येनामुं हन्तुकामस्त्वं द्विजपुत्रं निरागसम्।

यो यं हन्ति विना वैरं स्वकामः सततं पुनः॥ ४५

हन्तारं हन्ति तं प्राप्य जननं जननान्तरे।
जनकोऽस्य सुदुष्टात्मा येनासौ ते समर्पितः॥ ४६

स्वात्मजो धनलोभेन पापाचारः सुदुर्मतिः।
एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत्॥ ४७

यजेत चाश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत्।

दयाके समान कोई पुण्य नहीं है और हिंसाके समान कोई पाप नहीं है। यज्ञोंमें हिंसा करनेका जो विधिवाद बना, उसका उद्देश्य जिह्वालोलुपोंके जिह्वास्वादकी पूर्तिके माध्यमसे उनमें यज्ञ करनेकी प्रवृत्ति बढ़ाना है, किंतु यथासम्भव हिंसासे विरत रहना ही शास्त्रका आशय है*॥ ३९½ ॥

हे महाराज! सब प्रकारसे अपना कल्याण चाहनेवाले व्यक्तिको अपने शरीरकी रक्षाके लिये दूसरेके शरीरको विनष्ट नहीं करना चाहिये॥ ४०½ ॥

जो सभी प्राणियोंके प्रति दयाभाव रखता है, जो कुछ भी प्राप्त हो जाय; उसीसे सन्तोष करता और अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखता है, उसके ऊपर जगत्पति भगवान् श्रीविष्णु शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं॥ ४१½ ॥

हे नृपश्रेष्ठ! सभी प्राणियोंमें आत्मभावका चिन्तन करना चाहिये। जिस प्रकार अपनेको देह प्रिय होती है, उसी प्रकार सभी जीवोंको अपना शरीर प्रिय होता है। आप इस शुनःशेप द्विजका वध करके शरीरको रोगमुक्त करके सुख प्राप्त करना चाहते हैं, तो यह बालक सुखके आश्रयस्वरूप अपने देहको क्यों नहीं बचाना चाहेगा॥ ४२-४३½ ॥

हे नृप! इसके साथ आपका पूर्वजन्मका कोई वैर नहीं है, जो कि आप इस निरपराध द्विजपुत्रका वध करनेके इच्छुक हैं। जो व्यक्ति सदा अपनी कामनाकी पूर्तिके लिये बिना वैरभावके ही किसी प्राणीका वध करता है, दूसरी योनिमें जन्म लेकर वही जीव अपने संहर्ताका वध करता है॥ ४४-४५½ ॥

इस बालकका पिता अत्यन्त दुष्टात्मा, दुर्बुद्धि तथा पापाचारी है, जिसने धनके लोभमें अपने ही पुत्रको आपके हाथों बेच डाला॥ ४६½ ॥

लोगोंको यह इच्छा रखनी चाहिये कि मेरे बहुतसे पुत्र हों, जिससे उनमेंसे कोई एक भी पुत्र गयातीर्थ जाय, अश्वमेधयज्ञ करे अथवा नील वृषभ छोड़े॥ ४७½ ॥

---

* **लोके व्यवायामिषमद्यसेवा नित्यास्तु जन्तोर्न हि तत्र चोदना। व्यवस्थितिस्तेषु विवाहयज्ञसुराग्रहैरासु निवृत्तिरिष्टा॥**

(वेद विधिके रूपमें ऐसे ही कर्मोंके करनेकी आज्ञा देता है कि जिनमें मनुष्यकी स्वाभाविक प्रवृत्ति नहीं होती।) संसारमें देखा जाता है कि मैथुन, मांस और मद्यकी ओर प्राणीकी स्वाभाविक प्रवृत्ति हो जाती है। तब उसे उसमें प्रवृत्त करनेके लिये विधान तो हो ही नहीं सकता। ऐसी स्थितिमें विवाह, यज्ञ और सौत्रामणियज्ञके द्वारा ही जो उनके सेवनकी व्यवस्था दी गयी है, उसका अर्थ है लोगोंकी उच्छृंखल प्रवृत्तिका नियन्त्रण, उनका मर्यादामें स्थापन। वास्तवमें उनकी ओरसे लोगोंको हटाना ही श्रुतिको अभीष्ट है। (श्रीमद्भा० ११।५।११)

देशमध्ये च यः कश्चित्पापकर्म समाचरेत्॥ ४८
षष्ठांशस्तस्य पापस्य राजा भुङ्क्ते न संशयः।
निषेधनीयो राज्ञासौ पापं कर्तुं समुद्यतः॥ ४९
न निषिद्धस्त्वया कस्मात्पुत्रं विक्रेतुमुद्यतः।
सूर्यवंशे समुत्पन्नस्त्रिशङ्कुतनयः शुभः॥ ५०
आर्यस्त्वनार्यवत्कर्म कर्तुमिच्छसि पार्थिव।
मोचनान्मुनिपुत्रस्य करणाद्वचनस्य मे॥ ५१
तव देहे सुखं राजन् भविष्यत्यविचारणात्।
पिता ते शापयोगेन चाण्डालत्वमुपागतः॥ ५२
मयासौ तेन देहेन स्वर्लोकं प्रापितः किल।
तेनैव प्रीतियोगेन कुरु मे वचनं नृप॥ ५३
मुञ्चैनं बालकं दीनं रुदन्तं भृशमातुरम्।
याचितोऽसि मया नूनं यज्ञेऽस्मिन् राजसूयके॥ ५४
प्रार्थनाभङ्गजं दोषं कथं त्वं नावबुध्यसे।
प्रार्थितं सर्वदा देयं मखेऽस्मिन्नृपसत्तम॥ ५५
अन्यथा पापमेव स्यात्तव राजन्न संशयः।

व्यास उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा कौशिकस्य नृपोत्तमः॥ ५६
प्रत्युवाच महाराज कौशिकं मुनिसत्तमम्।
जलोदरेण गाधेय दुःखितोऽहं भृशं मुने॥ ५७
तस्मान्न मोचयाम्येनमन्यत्प्रार्थय कौशिक।
न त्वया विग्रहः कार्यः कार्येऽस्मिन्मम सर्वथा॥ ५८
तच्छ्रुत्वा वचनं राज्ञो विश्वामित्रोऽतिकोपनः।
बभूव दुःखसन्तप्तो वीक्ष्य दीनं द्विजात्मजम्॥ ५९

[हे राजन्!] राज्यमें जो कोई भी व्यक्ति पापकर्म करता है तो उसके पापका छठाँ अंश राजाको भोगना पड़ता है; इसमें कोई सन्देह नहीं है। अतः राजाको चाहिये कि पापकर्म करनेके लिये उद्यत उस व्यक्तिको मना करे, तो फिर आपने पुत्रको बेचनेके लिये तत्पर उस अजीगर्तको क्यों नहीं रोका?॥ ४८-४९½ ॥

हे राजन्! आप सूर्यवंशमें उत्पन्न हुए हैं और महाराज त्रिशंकुके कल्याणकारी पुत्र हैं। आप आर्य होकर भी अनार्यों-जैसा कर्म करना चाहते हैं?॥ ५०½ ॥

हे राजन्! मेरी बात मानकर मुनिपुत्र शुनःशेपको बन्धनमुक्त कर देनेसे आपका देह अवश्य ही रोगमुक्त हो जायगा॥ ५१½ ॥

महर्षि वसिष्ठके शापके कारण आपके पिता चाण्डाल हो गये थे, तब मैंने उसी देहसे उन्हें स्वर्गलोक पहुँचा दिया था। हे राजन्! उसी उपकारको समझकर आप मेरी बात मान लीजिये और अत्यधिक विलाप करते हुए इस दीन तथा भयाकुल बालकको मुक्त कर दीजिये॥ ५२-५३½ ॥

हे राजन्! आपके इस राजसूययज्ञमें मैं आपसे मात्र इसकी प्राण-रक्षाकी याचना कर रहा हूँ। क्या आप प्रार्थनाभंगसे होनेवाले दोषके विषयमें नहीं जानते? हे नृपश्रेष्ठ! इस राजसूययज्ञमें प्रार्थीको उसकी कामनाके अनुकूल वस्तु दी जानी चाहिये। यदि आप ऐसा नहीं करेंगे तो आपको पाप ही लगेगा; इसमें सन्देह नहीं है॥ ५४-५५½ ॥

व्यासजी बोले—[हे राजा जनमेजय!] विश्वामित्रकी यह बात सुनकर राजाओंमें श्रेष्ठ हरिश्चन्द्रने मुनिवर विश्वामित्रसे कहा—गाधिपुत्र! मुने! मैं जलोदर रोगसे बहुत पीड़ित हूँ, इसलिये इस बालकको नहीं छोड़ सकता। हे कौशिक! इसके अतिरिक्त आप दूसरी वस्तु माँग लीजिये और मेरे इस कार्यमें किसी तरहकी बाधा मत उत्पन्न कीजिये॥ ५६—५८॥

राजा हरिश्चन्द्रकी यह बात सुनकर तथा दुःखित ब्राह्मण-पुत्र शुनःशेपको देखकर मुनि विश्वामित्र अत्यधिक कुपित हो उठे॥ ५९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे यज्ञपशुभूतस्य ब्राह्मणपुत्रस्य वधकरणाय विश्वामित्रनिषेधवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः॥ १६॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः

विश्वामित्रका शुनःशेपको वरुणमन्त्र देना और उसके जपसे वरुणका प्रकट होकर उसे बन्धनमुक्त तथा राजाको रोगमुक्त करना, राजा हरिश्चन्द्रकी प्रशंसासे विश्वामित्रका वसिष्ठपर क्रोधित होना

व्यास उवाच

रुदन्तं बालकं वीक्ष्य विश्वामित्रो दयातुरः।
शुनःशेपमुवाचेदं गत्वा पार्श्वेऽतिदुःखितम्॥ १

मन्त्रं प्रचेतसः पुत्र मयोक्तं मनसा स्मरन्।
जपतस्तव कल्याणं भविष्यति ममाज्ञया॥ २

विश्वामित्रवचः श्रुत्वा शुनःशेपः शुचाकुलः।
मन्त्रं जजाप मनसा कौशिकोक्तं स्फुटाक्षरम्॥ ३

जपतस्तत्र तस्याशु प्रचेतास्तु कृपाकरः।
प्रादुर्बभूव सहसा प्रसन्नो नृप बालके॥ ४

दृष्ट्वा तमागतं सर्वे विस्मयं परमं गताः।
तुष्टुवुर्वरुणं देवं मुदिता दर्शनेन ते॥ ५

राजातिविस्मितः पादौ प्रणनाम रुजातुरः।
बद्धाञ्जलिपुटो देवं तुष्टाव पुरतः स्थितम्॥ ६

हरिश्चन्द्र उवाच

देवदेव कृपासिन्धो पापात्माहं सुमन्दधीः।
कृतापराधः कृपणः पावितः परमेष्ठिना॥ ७

मया ते पुत्रकामेन दुःखसंस्थेन हेलनम्।
कृतं क्षमाप्यं प्रभुणा कोऽपराधः सुदुर्मतेः॥ ८

व्यासजी बोले—राजन्! अत्यन्त दुःखित तथा करुण-क्रन्दन करते हुए बालक शुनःशेपको देखकर महर्षि विश्वामित्रको बड़ी दया आयी और वे उसके पास जाकर यह बोले—'हे पुत्र! मैं तुम्हें वरुणदेवका मन्त्र बतला रहा हूँ। तुम मनमें उनका स्मरण करते हुए इस मन्त्रका जप करो। मेरी आज्ञासे इसका जप करनेसे तुम्हारा कल्याण अवश्य होगा'॥ १-२॥

दुःखसे अत्यन्त व्यग्र शुनःशेप मुनि विश्वामित्रकी बात सुनकर उनके द्वारा बताये गये स्पष्ट अक्षरोंवाले उस मन्त्रका मन-ही-मन जप करने लगा॥ ३॥

हे राजन्! शुनःशेपके जप करते ही कृपानिधान वरुणदेव उस बालकपर प्रसन्न होकर शीघ्र ही प्रकट हो गये॥ ४॥

इस प्रकार वहाँ प्रकट हुए वरुणदेवको देखकर सभी लोग अत्यन्त आश्चर्यमें पड़ गये। उनके दर्शनसे आनन्दित होकर वे सब उनकी स्तुति करने लगे॥ ५॥

जलोदर रोगसे पीड़ित राजा हरिश्चन्द्र अतीव विस्मित होकर उनके चरणोंमें प्रणाम करने लगे और दोनों हाथ जोड़कर वे अपने सम्मुख स्थित वरुणदेवकी स्तुति करने लगे॥ ६॥

हरिश्चन्द्र बोले—हे देवदेव! हे कृपासागर! आप परमेश्वरने यहाँ आकर मुझ पापात्मा, अत्यन्त मन्दबुद्धि, अपराधी तथा भाग्यहीनको आज पवित्र कर दिया है॥ ७॥

मैं पुत्रके अभावमें दुःखित था और आपकी कृपासे पुत्र होनेपर आपकी अवहेलना की। अतः आप प्रभु मेरे द्वारा किये गये अपराधको क्षमा कर दें; क्योंकि भ्रष्ट बुद्धिवालेका दोष ही क्या?॥ ८॥

अर्थी दोषं न जानाति तस्मात्पुत्रार्थिना मया।
वञ्चितस्त्वं देवदेव भीतेन नरकाद्विभो॥ ९

अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गो नैव च नैव च।
भीतोऽहं तेन वाक्येन तस्मात्ते हेलनं कृतम्॥ १०

नाज्ञस्य दूषणं चिन्त्यं नूनं ज्ञानवता विभो।
दुःखितोऽहं रुजाक्रान्तो वञ्चितः स्वसुतेन ह॥ ११

न जानेऽहं महाराज पुत्रो मे क्व गतः प्रभो।
वञ्चयित्वा वने भीतो मरणान्मां कृपानिधे॥ १२

प्रययौ द्रविणं दत्त्वा गृहीतो द्विजबालकः।
यज्ञोऽयं क्रीतपुत्रेण प्रारब्धस्तव तुष्टये॥ १३

दर्शनं तव सम्प्राप्य गतं दुःखं ममाद्भुतम्।
जलोदरकृतं सर्वं प्रसन्ने त्वयि साम्प्रतम्॥ १४

हे देवदेव! स्वार्थपरायण व्यक्तिको अपने दोषका ज्ञान नहीं रहता। इसीलिये पुत्र पानेका स्वार्थी मैं अपना दोष नहीं देख सका और हे विभो! नरकमें पड़नेके भयसे आपको धोखा देता रहा। पुत्रहीन व्यक्तिकी गति नहीं होती और उसे स्वर्ग नहीं मिलता—इस शास्त्रवचनसे मैं डर गया था, इसीलिये मैंने आपकी अवहेलना की॥ ९-१०॥

हे विभो! आप ज्ञानसम्पन्न हैं, अतः मुझ अज्ञानीके अपराधपर ध्यान न दें। इस समय मैं बहुत दुःखित तथा भयंकर रोगसे ग्रस्त हूँ और अपने पुत्रसे वंचित हो गया हूँ॥ ११॥

हे महाराज! हे प्रभो! मुझे ज्ञात नहीं कि मेरा पुत्र कहाँ चला गया है। हे कृपानिधे! ऐसा प्रतीत होता है कि मारे जानेके डरसे वह मुझे धोखा देकर वनमें चला गया है। तब मैंने धन देकर इस ब्राह्मण-बालकको खरीदा और फिर आपको सन्तुष्ट करनेके लिये इस क्रीतपुत्रसे यह यज्ञ आरम्भ कर दिया। अब आपका दर्शन प्राप्त हो जानेसे मेरा महान् दुःख दूर हो गया और आपके प्रसन्न हो जानेपर [भयंकर] जलोदर रोगसे होनेवाला सारा कष्ट भी समाप्त हो जायगा॥ १२—१४॥

व्यास उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा राज्ञो रोगातुरस्य च।
दयावान्देवदेवेशः प्रत्युवाच नृपोत्तमम्॥ १५

व्यासजी बोले—रोगग्रस्त राजा हरिश्चन्द्रकी यह बात सुनकर देवदेवेश्वर दयालु वरुण नृपश्रेष्ठ हरिश्चन्द्रसे कहने लगे—॥ १५॥

वरुण उवाच

मुञ्च राजञ्छुनःशेपं स्तुवन्तं मां भृशातुरम्।
यज्ञोऽयं परिपूर्णस्ते रोगमुक्तो भवात्मना॥ १६

इत्युक्त्वा वरुणस्तूर्णं राजानं विरुजं तथा।
चकार पश्यतां तत्र सदस्यानां सुसंस्थितम्॥ १७

विमुक्तोऽसौ द्विजः पाशाद्वरुणेन महात्मना।
जयशब्दस्ततस्तत्र सञ्जातो मखमण्डपे॥ १८

राजा प्रमुदितः सद्यो रोगान्मुक्तः सुदारुणात्।
यूपान्मुक्तः शुनःशेपो बभूवातीव संस्थितः॥ १९

वरुण बोले—हे राजन्! अत्यन्त दुःखी होकर मेरी स्तुति करते हुए इस शुनःशेपको आप मुक्त कर दें। अब आपका यह यज्ञ भलीभाँति पूरा हो जायगा और आप रोगसे भी मुक्त हो जायँगे॥ १६॥

यह कहकर वरुणदेवने वहाँ यज्ञमण्डपमें स्थित राजा हरिश्चन्द्रको सभी सभासदोंके समक्ष ही रोगरहित कर दिया॥ १७॥

महात्मा वरुणदेवके द्वारा उस ब्राह्मणपुत्रके बन्धनमुक्त करा देनेपर वहाँ यज्ञमण्डपमें जय-जयकारकी ध्वनि होने लगी॥ १८॥

अत्यन्त भीषण रोगसे तत्काल मुक्त हो जानेपर राजा हरिश्चन्द्र बहुत प्रसन्न हुए और शुनःशेप भी यज्ञस्तम्भसे मुक्त होकर अत्यन्त स्वस्थचित्त हो गया॥ १९॥

राजा त्विमं मखं पूर्णं चकार विनयान्वितः।
शुनःशेपस्तदा सभ्यानित्युवाच कृताञ्जलिः॥ २०

भो भोः सभ्याः सुधर्मज्ञाः ब्रुवन्तु धर्मनिर्णयम्।
वेदशास्त्रानुसारेण यथार्थवादिनः किल॥ २१

पुत्रोऽहं कस्य सर्वज्ञाः पिता मे कोऽग्रतः परम्।
भवतां वचनात्तस्य शरणं प्रव्रजाम्यहम्॥ २२

इत्युक्ते वचने तत्र सभ्याः प्रोचुः परस्परम्।

सभ्या ऊचुः

अजीगर्तस्य पुत्रोऽयं कस्यान्यस्य भवेदसौ॥ २३

अङ्गादङ्गात्समुद्भूतः पालितस्तेन भक्तितः।
अन्यस्य कस्य पुत्रोऽसौ प्रभवेदिति निश्चयः॥ २४

तच्छ्रुत्वा वामदेवस्तु तानुवाच सभासदः।
विक्रीतस्तेन तातेन द्रव्यलोभात्सुतः किल॥ २५

पुत्रोऽयं धनदातुश्च राज्ञस्तत्र न संशयः।
अथवा वरुणस्यैष पाशान्मुक्तोऽस्त्यनेन वै॥ २६

अन्नदाता भयत्राता तथा विद्याप्रदश्च यः।
तथा वित्तप्रदश्चैव पञ्चैते पितरः स्मृताः॥ २७

तदा केचित्पितुः प्राहुः केचिद्राज्ञस्तथापरे।
वरुणस्येति संवादे निर्णयं न ययुश्च ते॥ २८

इत्थं सन्देहमापन्ने वसिष्ठो वाक्यमब्रवीत्।
सभ्यान्विवदतस्तत्र सर्वज्ञः सर्वपूजितः॥ २९

शृणुध्वं भो महाभागा निर्णयं श्रुतिसम्मतम्।
निःस्नेहेन यदा पित्रा विक्रीतोऽयं सुतः शिशुः॥ ३०

सम्बन्धस्तु गतस्तस्य तदैव धनसंग्रहात्।
हरिश्चन्द्रस्य सञ्जातः पुत्रोऽसौ क्रीत एव च॥ ३१

तत्पश्चात् राजा हरिश्चन्द्रने अत्यन्त विनम्रतापूर्वक इस यज्ञको सम्पन्न किया। इसके बाद शुनःशेपने हाथ जोड़कर सभासदोंसे कहा—हे सभासद्गण! आपलोग धर्मशास्त्रके पूर्ण ज्ञाता तथा यथार्थवादी हैं; अतः आपलोग वेदशास्त्रानुसार धर्मका निर्णय कीजिये॥ २०-२१॥

हे सर्वज्ञ [ऋषिगण]! अब मैं किसका पुत्र हुआ और आगे मेरा पिता कौन होगा? आपलोगोंके वचनानुसार ही मैं उसीकी शरणमें जाऊँगा। शुनःशेपके द्वारा यह वचन कहे जानेपर सभी सभासद् आपसमें परामर्श करने लगे॥ २२½॥

सभासद् बोले—यह तो अजीगर्तका पुत्र है, तब यह अन्य किसका पुत्र हो सकता है? यह उसीके अंगसे उत्पन्न हुआ है तथा उसीने स्नेहपूर्वक इसका लालन-पालन किया है तो फिर यह अन्य किस व्यक्तिका पुत्र हो सकता है, हमलोगोंका यही निर्णय है॥ २३-२४॥

यह निर्णय सुनकर महर्षि वामदेवने उन सभासदोंसे कहा कि उस पिताने धनके लोभसे अपने पुत्रको बेच दिया है, इसलिये अब यह बालक धन देकर क्रय करनेवाले राजा हरिश्चन्द्रका पुत्र हुआ; इसमें संशय नहीं है। अथवा यह वरुणदेवका पुत्र हुआ; क्योंकि इन्होंने ही इसे बन्धनसे मुक्त कराया है॥ २५-२६॥

अन्न प्रदान करनेवाला, भयसे बचानेवाला, विद्याका दान करनेवाला, धन प्रदान करनेवाला और जन्म देनेवाला—ये पाँच पिता कहे गये हैं॥ २७॥

उस समय कुछ सभासदोंने उसे पिता अजीगर्तका पुत्र, कुछ सभासदोंने राजा हरिश्चन्द्रका पुत्र और अन्यने उसे वरुणदेवका पुत्र बतलाया। इस प्रकार परस्पर बातचीतमें वे किसी निर्णयपर नहीं पहुँचे॥ २८॥

इस तरहकी सन्देहकी स्थिति उत्पन्न हो जानेपर सर्वज्ञ तथा सर्वपूजित महर्षि वसिष्ठने वहाँ परस्पर विवाद करते हुए सभासदोंसे यह बात कही—हे महाभाग! अब आपलोग मेरा वेदानुकूल निर्णय सुनिये—जिस समय इसके पिता अजीगर्तने स्नेहका त्याग करके इस बालकको बेच दिया था, उसी समय धन लेते ही अपने पुत्रसे उसका सम्बन्ध समाप्त हो गया और यह राजा हरिश्चन्द्रका क्रीतपुत्र हो गया।

यूपे बद्धो यदा राज्ञा तदा तस्य न वै सुतः।
वरुणस्तु स्तुतोऽनेन तेन तुष्टेन मोचितः॥ ३२

तस्मान्नायं महाभागा ह्यसौ पुत्रः प्रचेतसः।
यो यं स्तौति महामन्त्रैः सोऽपि तुष्टो ददाति च॥ ३३

धनं प्राणान्पशून् राज्यं तथा मोक्षं किलेप्सितम्।
कौशिकस्य सुतश्चायमरिष्टे येन रक्षितः॥ ३४

मन्त्रं दत्त्वा महावीर्यं वरुणस्यातिसङ्कटे।

व्यास उवाच

श्रुत्वा वाक्यं वसिष्ठस्य बाढमूचुः सभासदः॥ ३५

विश्वामित्रस्तु जग्राह तं करे दक्षिणे तदा।
एहि पुत्र गृहं मे त्वमित्युक्त्वा प्रेमपूरितः॥ ३६

शुनःशेपो जगामाशु तेनैव सह सत्वरः।
वरुणस्तु प्रसन्नात्मा जगाम च स्वमालयम्॥ ३७

ऋत्विजश्च तथा सभ्याः स्वगृहान्निर्ययुस्तदा।
राजापि रोगनिर्मुक्तो बभूवातिमुदान्वितः॥ ३८

प्रजास्तु पालयामास सुप्रसन्नेन चेतसा।
रोहिताख्यस्तु तच्छ्रुत्वा वृत्तान्तं वरुणस्य ह॥ ३९

आजगाम गृहं प्रीतो दुर्गमाद्वनपर्वतात्।
दूता राजानमभ्येत्य प्रोचुः पुत्रं समागतम्॥ ४०

मुदितोऽसौ जगामाशु सम्मुखः कोसलाधिपः।
दृष्ट्वा पितरमायान्तं प्रेमोद्रिक्तः सुसम्भ्रमः॥ ४१

दण्डवत्पतितो भूमावश्रुपूर्णमुखः शुचा।

बादमें जब राजाने यज्ञके स्तम्भमें इस बालकको बाँध दिया, तब यह उनका भी पुत्र नहीं रहा। जब इसने वरुणदेवकी स्तुति की, तब उन्होंने प्रसन्न होकर इसे बन्धनमुक्त करा दिया, अतः हे महाभाग सभासद्गण! यह वरुणदेवका भी पुत्र नहीं हो सकता। इसका कारण यह है कि जब जो व्यक्ति महामन्त्रोंके द्वारा जिस देवताकी स्तुति करता है, तभी वह प्रसन्न होकर उस व्यक्तिकी कामनाके अनुसार उसे धन, प्राण, पशु, राज्य तथा मोक्ष प्रदान करता है। वास्तवमें यह बालक मुनि विश्वामित्रका पुत्र हुआ, जिन्होंने विषम प्राण-संकटके समय परम शक्तिशाली वरुणमन्त्र देकर इसकी रक्षा की है॥ २९—३४½ ॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! महर्षि वसिष्ठकी बात सुनकर सभासदोंने 'बहुत ठीक' ऐसा कहकर उनका समर्थन कर दिया। तब मुनि विश्वामित्र प्रेमसे पूरित हो उठे। 'हे पुत्र! अब तुम मेरे आश्रममें चलो'—ऐसा कहकर उन्होंने उसका दाहिना हाथ पकड़ लिया। तब शुनःशेप भी तुरंत उनके साथ शीघ्रतापूर्वक चल दिया और वरुणदेव भी प्रसन्नचित्त होकर अपने लोकको चले गये। सभी ऋत्विक् और सभासद् भी अपने-अपने भवनोंके लिये प्रस्थित हो गये॥ ३५—३७½ ॥

राजा हरिश्चन्द्र भी जलोदर रोगसे मुक्त हो जानेसे परम आनन्दित हो गये। वे अत्यन्त प्रसन्न मनसे प्रजापालनमें तत्पर हो गये॥ ३८½ ॥

इधर, वरुणदेवसम्बन्धी सारा वृत्तान्त सुनकर राजकुमार रोहितको बड़ी प्रसन्नता हुई और वे दुर्गम वनों तथा पर्वतोंको पार करते हुए अपने राजमहलके पास आ पहुँचे॥ ३९½ ॥

तब दूतोंने राजाके पास जाकर उनसे पुत्रके आ जानेकी बात बतायी। यह सुनते ही कोसलराज हरिश्चन्द्र बहुत प्रसन्न हुए और वे शीघ्र उसके समीप पहुँच गये॥ ४०½ ॥

पिताको आया हुआ देखकर रोहितका प्रेम उमड़ पड़ा और वे बड़े सम्मानपूर्वक भूमिपर दण्डकी भाँति गिर पड़े। शोकके कारण रोहितका मुखमण्डल अश्रुसे भीग गया॥ ४१½ ॥

राजापि तं समुत्थाप्य परिरभ्य मुदान्वितः॥ ४२

तमाघ्राय सुतं मूर्ध्नि पप्रच्छ कुशलं पुनः।
उत्सङ्गे तं समारोप्य मुदितो मेदिनीपतिः॥ ४३

उष्णैर्नेत्रजलैः शीर्षण्यभिषेकमथाकरोत्।
राज्यं शशास तेनासौ पुत्रेणातिप्रियेण च॥ ४४

वृत्तान्तं नरमेधस्य कथयामास विस्तरात्।
राजसूयं क्रतुवरं चकार नृपसत्तमः॥ ४५

वसिष्ठं पूजयित्वाथ होतारमकरोद्विभुः।
समाप्ते त्वथ यज्ञेशे वसिष्ठोऽतीव पूजितः॥ ४६

शक्रस्य सदनं रम्यं जगाम मुनिरादरात्।
विश्वामित्रोऽपि तत्रैव वसिष्ठेन च सङ्गतः॥ ४७

मिलित्वा तौ स्थितौ देवसदने मुनिसत्तम।
विश्वामित्रोऽपि पप्रच्छ वसिष्ठं प्रतिपूजितम्॥ ४८

वीक्ष्य विस्मयचित्तस्तं सभायां तु शचीपतेः।

विश्वामित्र उवाच

क्वेयं पूजा त्वया प्राप्ता महती मुनिसत्तम॥ ४९

कृता केन महाभाग सत्यं ब्रूहि ममान्तिके।

वसिष्ठ उवाच

यजमानोऽस्ति मे राजा हरिश्चन्द्रः प्रतापवान्॥ ५०

राजसूयः कृतस्तेन राज्ञा प्रवरदक्षिणः।
नेदृशोऽस्ति नृपश्चान्यः सत्यवादी धृतव्रतः॥ ५१

दाता च धर्मशीलश्च प्रजारञ्जनतत्परः।
तस्य यज्ञे मया पूजा प्राप्ता कौशिकनन्दन॥ ५२

(किं पृच्छसि पुनः सत्यं ब्रवीम्यकृत्रिमं द्विज।)
हरिश्चन्द्रसमो राजा न भूतो न भविष्यति।
सत्यवादी तथा दाता शूरः परमधार्मिकः॥ ५३

राजा हरिश्चन्द्रने भी उन्हें उठाकर हृदयसे लगा लिया और आनन्दपूर्वक पुत्रका मस्तक सूँघकर उससे कुशल-क्षेम पूछा। राजकुमार रोहितको गोदमें बिठाकर हर्षसे परिपूर्ण पृथ्वीपति हरिश्चन्द्रने प्रेमातिरेकके कारण नेत्रोंसे गिरते हुए उष्ण अश्रुओंसे उनका अभिषेक कर दिया। वे अपने परम प्रिय पुत्र रोहितके साथ राज्यका शासन करने लगे। बादमें उन्होंने राजकुमारसे यज्ञकी सारी बातें विस्तारपूर्वक बतलायीं॥ ४२—४४½ ॥

कुछ दिनोंके अनन्तर नृपश्रेष्ठ हरिश्चन्द्रने सभी यज्ञोंमें उत्तम राजसूययज्ञ प्रारम्भ किया। राजाने गुरु वसिष्ठकी पूजा करके उन्हें उस यज्ञका 'होता' बनाया॥ ४५½ ॥

उस सर्वश्रेष्ठ यज्ञके समाप्त होनेपर वसिष्ठजीका बहुत अधिक सम्मान किया गया। तदनन्तर मुनि वसिष्ठ श्रद्धापूर्वक इन्द्रकी रमणीक नगरी अमरावतीपुरीमें गये॥ ४६½ ॥

वहींपर विश्वामित्र भी वसिष्ठजीको मिल गये। मिलनेके बाद वे दोनों महर्षि देवसभामें एक साथ बैठे। तब ऐसी विशेष पूजा पाये हुए महर्षि वसिष्ठको देखकर विश्वामित्रके मनमें महान् आश्चर्य हुआ और वे हे मुनिश्रेष्ठ! ऐसा सम्बोधन करके शचीपति इन्द्रकी सभामें ही उनसे पूछने लगे॥ ४७-४८½ ॥

विश्वामित्र बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! आपने इतना बड़ा सम्मान कहाँ पाया? हे महाभाग! आपकी ऐसी पूजा किसने की; आप मुझे यह बात सच-सच बतलाइये॥ ४९½ ॥

वसिष्ठजी बोले—परम प्रतापी राजा हरिश्चन्द्र मेरे यजमान हैं। उन्होंने प्रचुर दक्षिणावाला राजसूययज्ञ किया है। उनके-जैसा सत्यवादी, दृढव्रती, दानी, धर्मपरायण तथा प्रजाको प्रसन्न रखनेवाला दूसरा राजा नहीं है। हे विश्वामित्र! उन्हींके यज्ञमें मुझे यह पूजा प्राप्त हुई है। (हे द्विज! आप मुझसे बार-बार क्या पूछ रहे हैं! मैं आपसे सत्य तथा यथार्थ कह रहा हूँ।) हरिश्चन्द्रके समान सत्यवादी, दानी, पराक्रमी तथा परम धार्मिक राजा न तो हुआ है और न होगा॥ ५०—५३ ॥

व्यास उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा विश्वामित्रोऽतिकोपनः।
बभूव क्रोधसंरक्तलोचनोऽप्यब्रवीच्च तम्॥ ५४

व्यासजी बोले—हे राजन्! उनकी यह बात सुनकर विश्वामित्रजी बहुत कुपित हो उठे और क्रोधसे आँखें लाल करके उनसे कहने लगे—॥ ५४॥

विश्वामित्र उवाच

एवं स्तौषि नृपं मिथ्यावादिनं कपटप्रियम्।
वञ्चितो वरुणो येन प्रतिश्रुत्य वरं पुनः॥ ५५

विश्वामित्र बोले—आप ऐसे मिथ्याभाषी तथा कपटी राजाकी प्रशंसा कर रहे हैं, जिसने पुत्रप्राप्तिका वर पाकर प्रतिज्ञा करके भी वरुणदेवको बार-बार धोखा दिया॥ ५५॥

मम जन्मार्जितं पुण्यं तपसः पठितस्य च।
त्वदीयं वातितपसो ग्लहं कुरु महामते॥ ५६

अहं चेत्तं नृपं सद्यो न करोम्यतिसंस्तुतम्।
असत्यवादिनं काममदातारं महाखलम्॥ ५७

आजन्मसञ्चितं सर्वं पुण्यं मम विनश्यतु।
अन्यथा त्वत्कृतं सर्वं पुण्यं त्विति पणावहे॥ ५८

हे महामते! इस जन्ममें मेरे द्वारा किये गये तप तथा वेदाध्ययनके फलस्वरूप संचित पुण्य तथा अपने महान् तपकी शर्त लगा लीजिये। यदि मैं आपके द्वारा अति प्रशंसित किये गये राजा हरिश्चन्द्रको शीघ्र ही मिथ्याभाषी, दान न देनेवाला तथा महादुष्ट न प्रमाणित कर दूँ तो सम्पूर्ण जन्मका मेरा संचित पुण्य नष्ट हो जाय; अन्यथा आपके द्वारा उपार्जित सारा पुण्य नष्ट हो जाय—इसी बातकी हम दोनों शर्त लगा लें॥ ५६—५८॥

ग्लहं कृत्वा ततस्तौ तु विवदन्तौ मुनी तदा।
स्वाश्रमं स्वर्गलोकाच्च गतौ परमकोपनौ॥ ५९

तब यह शर्त लगाकर अत्यधिक कुपित हुए वे दोनों मुनि परस्पर विवाद करते हुए स्वर्गलोकसे अपने-अपने आश्रमको लौट गये॥ ५९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे वसिष्ठविश्वामित्रपणवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥

~~○~~

अथाष्टादशोऽध्यायः

विश्वामित्रका मायाशूकरके द्वारा हरिश्चन्द्रके उद्यानको नष्ट कराना

व्यास उवाच

कदाचित्तु हरिश्चन्द्रो मृगयार्थं वनं ययौ।
अपश्यद्रुदतीं बालां सुन्दरीं चारुलोचनाम्॥ १

व्यासजी बोले—राजन्! किसी समय राजा हरिश्चन्द्र आखेट करनेके लिये वनमें गये हुए थे। उन्होंने वहाँ मनोहर नेत्रोंवाली रोती हुई एक सुन्दर युवतीको देखा॥ १॥

तामपृच्छन्महाराजः कामिनीं करुणापरः।
पद्मपत्रविशालाक्षि किं रोदिषि वरानने॥ २

केनासि पीडितात्यर्थं किं ते दुःखं वदाशु मे।
का च त्वं विजने घोरे कस्ते भर्ता पिताथवा॥ ३

करुणामय महाराज हरिश्चन्द्रने उस कामिनीसे पूछा—कमलपत्रके समान विशाल नेत्रोंवाली हे वरानने! तुम क्यों रो रही हो, तुम्हें किसने कष्ट दिया है, तुम्हें कौन-सा अपार दुःख आ पड़ा है, इस निर्जन वनमें रहनेवाली तुम कौन हो और तुम्हारे पिता तथा पति कौन हैं? यह सब मुझे शीघ्र बताओ॥ २-३॥

न बाधते च राज्ये मे राक्षसोऽपि पराङ्गनाम्।
तं हन्मि तरसा कान्ते यस्त्वां सुन्दरि बाधते॥ ४

ब्रूहि दुःखं वरारोहे स्वस्था भव कृशोदरि।
विषये मम पापात्मा न तिष्ठति सुमध्यमे॥ ५

हे कान्ते! मेरे राज्यमें तो राक्षस भी परायी स्त्रीको कष्ट नहीं पहुँचाते। हे सुन्दरि! जो व्यक्ति तुम्हें पीड़ित करता होगा, उसे मैं अभी मार डालूँगा। हे वरारोहे! तुम मुझे अपना दुःख बताओ और निश्चिन्त हो जाओ। हे कृशोदरि! हे सुमध्यमे! मेरे राज्यमें दुराचारी व्यक्ति नहीं रह सकता॥ ४-५॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा नारी तमब्रवीन्नृपम्।
प्रमृज्याश्रूणि वदनाद्धरिश्चन्द्रं नृपोत्तमम्॥ ६

उनकी यह बात सुनकर वह स्त्री अपने मुखमण्डलके आँसू पोंछकर उन नृपश्रेष्ठ राजा हरिश्चन्द्रसे कहने लगी॥ ६॥

नार्युवाच

राजन् मां बाधतेत्यर्थं विश्वामित्रो महामुनिः।
तपः करोति यद्घोरं मदर्थं कौशिको वने॥ ७

तेनाहं दुःखिता राजन् विषये तव सुव्रत।
विद्धि मां कमनां कान्तां पीडितां मुनिना भृशम्॥ ८

नारी बोली—हे राजन्! मेरे लिये वनमें रहकर जो घोर तपस्या कर रहे हैं, वे महामुनि विश्वामित्र मुझे बहुत कष्ट दे रहे हैं; उत्तम व्रतका पालन करनेवाले हे राजन्! आपके राज्यमें मैं इसी कारणसे दुःखी हूँ। उन मुनिके द्वारा अत्यधिक सतायी जानेवाली मुझ स्त्रीको आप 'कमना' नामवाली जान लीजिये॥ ७-८॥

राजोवाच

स्वस्था भव विशालाक्षि न ते दुःखं भविष्यति।
तमहं वारयिष्यामि मुनिं तापपरायणम्॥ ९

राजा बोले—हे विशाल नयनोंवाली! तुम प्रसन्नचित्त रहो, अब तुम्हें कष्ट नहीं होगा। तपस्यामें तत्पर रहनेवाले उन मुनिको मैं मना कर दूँगा॥ ९॥

इत्याश्वास्य स्त्रियं राजा तरसा मुनिसन्निधौ।
नत्वा प्रणम्य शिरसा तमुवाच महीपतिः॥ १०

स्वामिन्किं क्रियतेऽत्यर्थं तपसा देहपीडनम्।
किमर्थं ते समारम्भो ब्रूहि सत्यं महामते॥ ११

उस स्त्रीको यह आश्वासन देकर पृथ्वीपति राजा हरिश्चन्द्र शीघ्र ही मुनिके पास गये और नम्रतापूर्वक सिर झुकाकर प्रणाम करके उनसे बोले—हे स्वामिन्! आप ऐसी कठिन तपस्यासे अपने शरीरको अत्यधिक पीड़ित क्यों कर रहे हैं? हे महामते! किस प्रयोजनसे आप यह करनेके लिये उद्यत हैं? सच-सच बताइये॥ १०-११॥

वाञ्छितं तव गाधेय करोमि सफलं किल।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ तरसा तपसालमतः परम्॥ १२

विषये मम सर्वज्ञ न कर्तव्यं सुदारुणम्।
लोकपीडाकरं घोरं तपः केनापि कर्हिचित्॥ १३

हे गाधितनय! मैं आपकी अभिलाषा अवश्य पूर्ण करूँगा। अब इसी समय उठ जाइये और आगे तपस्या करनेका विचार त्याग दीजिये। हे सर्वज्ञ! मेरे राज्यमें रहकर कभी किसीको भी अत्यन्त भीषण, लोकके लिये पीड़ाकारक तथा उग्र तप नहीं करना चाहिये॥ १२-१३॥

इत्थं निषिध्य तं राजा विश्वामित्रं गृहं ययौ।
मनसा क्रोधमाधाय गतोऽसौ कौशिको मुनिः॥ १४

इस प्रकार विश्वामित्रजीको तपस्यासे रोककर राजा हरिश्चन्द्र अपने भवन चले गये और उनके इस कृत्यसे मुनि विश्वामित्र भी मन-ही-मन कुपित होकर वहाँसे चल दिये॥ १४॥

स गत्वा चिन्तयामास नृपकृत्यमसाम्प्रतम्।
वसिष्ठस्य च संवादं तपसः प्रतिषेधनम्॥ १५

कोपाविष्टेन मनसा प्रतीकारमथाकरोत्।
विचिन्त्य बहुधा चित्ते दानवं घोरविग्रहम्॥ १६

प्रेषयामास तद्देशं विधाय सूकराकृतिम्।
सोऽतिकायो महाकालः कुर्वन्नादं सुदारुणम्॥ १७

राज्ञश्चोपवने प्राप्तस्त्रासयन् रक्षकांस्तदा।
मालतीनां च खण्डानि कदम्बानां तथैव च॥ १८

यूथिकानां च वृन्दानि कम्पयंश्च मुहुर्मुहुः।
दन्तेन विलिखन्भूमिं समुन्मूलयते द्रुमान्॥ १९

चम्पकान्केतकीखण्डान्मल्लिकानां च पादपान्।
करवीरानुशीरांश्च निचखान शुभान्मृदून्॥ २०

मुचुकुन्दानशोकांश्च बकुलांस्तिलकांस्तथा।
उन्मूल्य कदनं तत्र चकार सूकरो वने॥ २१

वाटिकारक्षकाः सर्वे दुद्रुवुः शस्त्रपाणयः।
हाहेति चुक्रुशुस्तत्र मालाकारा भृशातुराः॥ २२

बाणैः सन्ताड्यमानोऽपि यदा त्रस्तो न वै मृगः।
रक्षकान्पीडयामास कोलः कालसमद्युतिः॥ २३

ते तदातिभयाक्रान्ता राजानं शरणं ययुः।
तमूचुस्त्राहि त्राहीति वेपमाना भयाकुलाः॥ २४

तानागतान्समालोक्य भयार्तान्भूपतिस्तदा।
पप्रच्छ किं भयं कस्मान्मां ब्रुवन्तु समागताः॥ २५

नाहं बिभेमि देवेभ्यो राक्षसेभ्यश्च रक्षकाः।
कस्माद्भयं समुत्पन्नं तद् ब्रुवन्तु ममाग्रतः॥ २६

घर जाकर विश्वामित्रजी राजा हरिश्चन्द्रके अनुचित कृत्य, वसिष्ठकी कही हुई बात तथा तपस्यासे विरत कर दिये जानेके विषयमें सोचने लगे। वे कोपाविष्ट मनसे बदला लेनेके लिये तत्पर हो गये। इस प्रकार मनमें बहुत प्रकारसे सोचकर उन्होंने एक भयानक शरीरवाले दानवको सूअरके रूपमें बनाकर उसे राजाके यहाँ भेजा॥ १५-१६½ ॥

महाकालके समान प्रतीत होनेवाला तथा विशाल शरीरवाला वह सूअर अत्यन्त भयावह शब्द करता हुआ राजा हरिश्चन्द्रके उपवनमें पहुँच गया। रक्षकोंको भयभीत करते हुए, मालतीकी तथा कदम्बोंकी लताको एवं जूहीसमूहोंको बार-बार रौंदते हुए और अपने दाँतसे जमीनको खोदते हुए उस सूअरने बड़े-बड़े वृक्षोंको जड़से उखाड़ डाला; उसने चम्पक, केतकी, मल्लिका, कनेर तथा उशीरके सुन्दर तथा कोमल पौधोंको बींध डाला तथा मुचुकुन्द, अशोक, मौलसिरी एवं तिलक आदि वृक्षोंको उखाड़कर उस सूअरने उपवनको विनष्ट कर दिया॥ १७—२१ ॥

हाथोंमें शस्त्र लिये हुए उस उपवनकी रखवाली करनेवाले सभी रक्षक वहाँसे भाग चले और अत्यन्त भयभीत मालियोंने हाय-हायकी ध्वनि करते हुए चिल्लाना आरम्भ कर दिया॥ २२ ॥

साक्षात् कालके समान तेजवाला वह सूअर जब बाणोंसे मारे जानेपर भी त्रस्त नहीं हुआ और रक्षकोंको पीड़ित करता रहा, तब वे अत्यन्त भयाक्रान्त होकर राजा हरिश्चन्द्रकी शरणमें गये। भयसे व्याकुल तथा थर-थर काँपते हुए वे रक्षकगण 'रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये'—ऐसा उनसे कहने लगे॥ २३-२४ ॥

तब भयसे घबड़ाये हुए उन रक्षकोंको समक्ष उपस्थित देखकर राजाने उनसे पूछा—आपलोगोंको क्या भय है और किसलिये आप सब यहाँ आये हुए हैं? मुझे यह बताइये। हे रक्षको! मैं देवताओं तथा राक्षसों—किसीसे भी नहीं डरता। तुम्हें यह भय किससे उत्पन्न हुआ है, मेरे सामने उसे बताओ, मैं

हन्मि चैकेन बाणेन तं शत्रुं दुर्भगं किल।
यो मेऽरातिः समुत्पन्नो लोके पापमतिः खलः॥ २७

देवो वा दानवो वापि तं निहन्मि शरैः शितैः।
क्व तिष्ठति कियद्रूपः कियद्बलसमन्वितः॥ २८

मालाकारा ऊचुः

न देवो न च दैत्योऽस्ति न यक्षो न च किन्नरः।
कश्चित्कोलो महाकायो राजंस्तिष्ठति कानने॥ २९

पुष्पवृक्षानतिमृदून्दन्तेनोन्मूलयत्यसौ।
विदीर्णं तद्वनं सर्वं सूकरेणातिरंहसा॥ ३०

विशिखैस्ताडितोऽस्माभिर्दृषद्भिर्लकुटैस्तथा।
न बिभेति महाराज हन्तुमस्मानुपाद्रवत्॥ ३१

व्यास उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तेषां राजा कोपसमाकुलः।
अश्वमारुह्य तरसा जगामोपवनं प्रति॥ ३२

सैन्येन महता युक्तो गजाश्वरथसंयुतः।
पदातिवृन्दसहितः प्रययौ वनमुत्तमम्॥ ३३

तत्रापश्यन्महाकोलं घुर्घुरन्तं भयानकम्।
वनं भग्नं च संवीक्ष्य राजा क्रोधयुतोऽभवत्॥ ३४

चापे बाणं समारोप्य विकृष्य च शरासनम्।
तं हन्तुं सूकरं पापं तरसा समुपाक्रमत्॥ ३५

समालोक्य च राजानं चापहस्तं रुषाकुलम्।
सम्मुखोऽभ्यद्रवत्तूर्णं कुर्वञ्छब्दं सुदारुणम्॥ ३६

तमायान्तं समालोक्य वराहं विकृताननम्।
मुमोच विशिखं तस्मिन्हन्तुकामो महीपतिः॥ ३७

वञ्चयित्वाथ तद्बाणं सूकरस्तरसा बलात्।
निर्जगाम महावेगात्तमुल्लंघ्य नृपं तदा॥ ३८

उस अभागे शत्रुको एक ही बाणसे अभी मार डालता हूँ। जो पापबुद्धि तथा दुष्ट इस लोकमें मेरे शत्रुके रूपमें उत्पन्न हुआ हो, चाहे वह देवता हो या दानव, वह चाहे कहीं भी रहता हो, कैसे भी रूपवाला हो तथा कितना भी बलवान् हो, उसे मैं अपने तीक्ष्ण बाणोंसे मार डालूँगा॥ २५—२८॥

मालाकार बोले—हे राजन्! वह न देवता है, न दैत्य है, न यक्ष है और न तो किन्नर ही है। विशाल शरीरवाला एक सूअर उपवनमें आया हुआ है। उसने अपने दाँतसे अत्यन्त कोमल पुष्पमय वृक्षोंको उखाड़ डाला है। अत्यन्त तीव्र गतिवाले उस सूअरने सारे उपवनको तहस-नहस कर दिया है। हे महाराज! बाणों, पत्थरों और लाठियोंसे हमलोगोंके प्रहार करनेपर भी वह भयभीत नहीं हुआ और हमें मारनेके लिये दौड़ पड़ा॥ २९—३१॥

व्यासजी बोले—उनकी यह बात सुनते ही राजा हरिश्चन्द्र कुपित हो उठे और उसी क्षण घोड़ेपर सवार होकर उपवनकी ओर शीघ्रतापूर्वक चल पड़े॥ ३२॥

हाथी, घोड़े, रथ और पैदल चलनेवाले सैनिकोंसे युक्त एक विशाल सेनाके साथ वे उस श्रेष्ठ उपवनमें पहुँच गये॥ ३३॥

वहाँ उन्होंने एक विशाल शरीरवाले भयानक सूअरको घुरघुराते हुए देखा। उसके द्वारा उजाड़े गये उपवनको देखकर राजा कुपित हो उठे। फिर वे धनुषपर बाण चढ़ाकर तथा धनुषको खींचकर उस दुष्ट सूअरको मारनेके लिये वेगपूर्वक आगे बढ़े॥ ३४-३५॥

हाथमें धनुष लिये हुए कोपाविष्ट राजा हरिश्चन्द्रको देखकर वह सूअर अत्यन्त भयानक शब्द करता हुआ तुरंत उनके सामने आ गया॥ ३६॥

उस विकृत मुखवाले सूअरको सामने आता हुआ देखकर राजा हरिश्चन्द्रने उसे मार डालनेकी इच्छासे उसपर बाण छोड़ा॥ ३७॥

तब उस बाणसे अपनेको बचाकर वह सूअर राजाको बड़े वेगसे लाँघकर बलपूर्वक शीघ्रताके साथ वहाँसे निकल भागा॥ ३८॥

गच्छन्तं तं समालोक्य राजा कोपसमन्वितः।
मुमोच विशिखांस्तीक्ष्णांश्चापमाकृष्य यत्नतः॥ ३९

क्षणं दृष्टिपथं राज्ञः क्षणं चादर्शनं गतः।
कुर्वन्बहुविधारावं सूकरः समुपाद्रवत्॥ ४०

हरिश्चन्द्रोऽतिकुपितो मृगस्यानुजगाम ह।
अश्वेन वायुवेगेन विकृष्य च शरासनम्॥ ४१

इतस्ततस्ततः सैन्यमगमच्च वनान्तरम्।
एकाकी नृपतिः कोलं व्रजन्तं समुपाद्रवत्॥ ४२

मध्याह्नसमये राजा सम्प्राप्तो विजने वने।
तृषितः क्षुधितोऽत्यर्थं बभूव श्रान्तवाहनः॥ ४३

सूकरोऽदर्शनं प्राप्तो राजा चिन्तातुरोऽभवत्।
मार्गभ्रष्टोऽतिविपिने दारुणे दीनवत्स्थितः॥ ४४

किं करोमि क्व गच्छामि न सहायोऽस्ति मे वने।
अज्ञातस्वपथः कुत्र व्रजामीति व्यचिन्तयत्॥ ४५

एवं चिन्तयतस्तत्र विपिने जनवर्जिते।
राजा चिन्तातुरोऽपश्यन्नदीं सुविमलोदकाम्॥ ४६

वीक्ष्य तां मुदितो राजा पाययित्वा तुरङ्गकम्।
अश्वादुत्तीर्य विमलं पपौ पानीयमुत्तमम्॥ ४७

जलं पीत्वा नृपस्तत्र सुखमाप महीपतिः।
इयेष नगरं गन्तुं दिग्भ्रमेणातिमोहितः॥ ४८

विश्वामित्रस्तु सम्प्राप्तो वृद्धब्राह्मणरूपधृक्।
ननाम वीक्ष्य राजा तं प्रीतिपूर्वं द्विजोत्तमम्॥ ४९

उसे भागते हुए देखकर राजा हरिश्चन्द्र क्रोधित होकर धनुष खींचकर सावधानीपूर्वक उसपर तीक्ष्ण बाण छोड़ने लगे॥ ३९॥

वह सूअर किसी क्षण दिखायी पड़ता था, दूसरे क्षण आँखोंसे ओझल हो जाता था और क्षणभरमें ही अनेक प्रकारके शब्द करता हुआ राजाके पास पहुँच जाता था॥ ४०॥

तब राजा हरिश्चन्द्र वायुके समान तीव्रगामी अश्वपर सवार होकर और धनुष खींचकर अत्यन्त क्रोधके साथ उस सूअरका पीछा करने लगे। तत्पश्चात् उनकी सेना इधर-उधर उनके साथ दौड़ती हुई दूसरे वनमें चली गयी और राजा उस भागते हुए सूअरका अकेले ही पीछा करते रहे॥ ४१-४२॥

इस तरह राजा मध्याह्नकालमें एक निर्जन वनमें जा पहुँचे। वे अत्यधिक भूख तथा प्याससे व्याकुल हो गये तथा उनका वाहन बहुत थक गया॥ ४३॥

सूअर आँखोंसे ओझल हो चुका था, अतः वे चिन्तासे व्यग्र हो गये। उस घने जंगलमें मार्गज्ञान न होनेके कारण वे रास्तेसे भटक भी गये; उनकी दशा बड़ी दयनीय हो गयी थी। वे सोचने लगे कि अब मैं क्या करूँ और कहाँ जाऊँ? इस वनमें मेरा कोई सहायक भी नहीं है। अब अपना मार्ग भूल जानेके कारण मैं किधर जाऊँ?॥ ४४-४५॥

इस प्रकार उस निर्जन वनमें सोचते हुए चिन्तातुर राजा हरिश्चन्द्रकी दृष्टि एक स्वच्छ जलवाली नदीपर पड़ गयी॥ ४६॥

उसे देखकर राजा बहुत हर्षित हुए। घोड़ेसे उतरकर उन्होंने उसे स्वादिष्ट जल पिलाकर स्वयं भी पीया। जल पी लेनेपर राजाको बड़ी शान्ति मिली। अब वे अपने नगर जानेकी इच्छा करने लगे, किंतु दिशाज्ञान न रहनेसे उनकी बुद्धि भ्रमित हो गयी॥ ४७-४८॥

इतनेमें विश्वामित्रजी एक वृद्ध ब्राह्मणका रूप धारण करके वहाँ आ गये। उस श्रेष्ठ ब्राह्मणको देखकर राजा हरिश्चन्द्रने आदरपूर्वक उन्हें प्रणाम किया॥ ४९॥

तमुवाच गाधिराजः प्रणमन्तं नृपोत्तमम्।
स्वस्ति तेऽस्तु महाराज किमर्थमिह चागतः॥ ५०

एकाकी विजने राजन् किं चिकीर्षितमत्र ते।
ब्रूहि सर्वं स्थिरो भूत्वा कारणं नृपसत्तम॥ ५१

प्रणाम करते हुए उन नृपश्रेष्ठ राजा हरिश्चन्द्रसे विश्वामित्र कहने लगे—हे महाराज! आपका कल्याण हो। आप यहाँ किसलिये आये हुए हैं? हे राजन्! इस निर्जन वनमें अकेले आनेका आपका क्या उद्देश्य है? हे नृपश्रेष्ठ! शान्तचित्त होकर अपने आगमनका सारा कारण बताइये॥ ५०-५१॥

राजोवाच

सूकरोऽतिमहाकायो बलवान्पुष्पकाननम्।
समुपेत्य ममर्दाशु कोमलान्पुष्पपादपान्॥ ५२

तं निवारयितुं दुष्टं करे कृत्वा च कार्मुकम्।
ससैन्योऽहं स्वनगरान्निर्गतो मुनिसत्तम॥ ५३

राजा बोले—विशाल शरीरवाला एक बलशाली सूअर मेरे पुष्पोद्यानमें पहुँचकर वहाँके कोमल पुष्पमय वृक्षोंको रौंदने लगा। हे मुनिश्रेष्ठ! उसी दुष्टको रोकनेके लिये हाथमें धनुष लेकर मैं सेनासहित अपने नगरसे निकल पड़ा॥ ५२-५३॥

गतोऽसौ दृक्पथात्पापो मायावी क्वापि वेगवान्।
पृष्ठतोऽहमपि प्राप्तः सैन्यं क्वापि गतं मम॥ ५४

अब वह पापी तथा मायावी सूअर वेगपूर्वक मेरी आँखोंसे ओझल होकर न जाने कहाँ चला गया! मैं भी उसके पीछे-पीछे यहाँ आ गया तथा मेरी सेना कहीं और निकल गयी॥ ५४॥

क्षुधितस्तृषितश्चाहं सैन्यभ्रष्टस्त्विहागतः।
न जाने पुरमार्गं च तथा सैन्यगतिं मुने॥ ५५

पन्थानं दर्शय विभो व्रजामि नगरं प्रति।
ममात्र भाग्ययोगेन प्राप्तस्त्वं विजने वने॥ ५६

सेनाका साथ छूट जानेपर भूख तथा प्याससे व्याकुल होकर मैं यहाँ आ पहुँचा। हे मुने! मुझे अपने नगरके मार्गका ज्ञान नहीं रहा और मेरी सेना किधर गयी—यह भी मैं नहीं जानता। हे विभो! आप मुझे मार्ग दिखा दीजिये, जिससे मैं अपने नगर चला जाऊँ; मेरे सौभाग्यसे आप इस निर्जन वनमें पधारे हुए हैं॥ ५५-५६॥

अयोध्याधिपतिश्चाहं हरिश्चन्द्रोऽतिविश्रुतः।
राजसूयस्य कर्ता च वाञ्छितार्थप्रदः सदा॥ ५७

धनेच्छा यदि ते ब्रह्मन् यज्ञार्थं द्विजसत्तम।
आगन्तव्यमयोध्यायां दास्यामि विपुलं धनम्॥ ५८

मैं अयोध्याका राजा हूँ और हरिश्चन्द्र नामसे विख्यात हूँ। मैं राजसूययज्ञ कर चुका हूँ और याचना करनेवालोंको उनकी हर अभिलषित वस्तु सर्वदा प्रदान करता हूँ। हे ब्रह्मन्! हे द्विजश्रेष्ठ! यदि आपको भी यज्ञके निमित्त धनकी आवश्यकता हो तो अयोध्या आयें, मैं आपको प्रचुर धन प्रदान करूँगा॥ ५७-५८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे हरिश्चन्द्रद्वारा वृद्धब्राह्मणाय धनदानप्रतिज्ञावर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

~~~O~~~

अथैकोनविंशोऽध्यायः

विश्वामित्रकी कपटपूर्ण बातोंमें आकर राजा हरिश्चन्द्रका राज्यदान करना

व्यास उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा भूपतेः कौशिको मुनिः।
प्रहस्य प्रत्युवाचेदं हरिश्चन्द्रं तथा नृप॥ १

व्यासजी बोले—हे नृप [जनमेजय]! हरिश्चन्द्रकी यह बात सुनकर मुनि विश्वामित्र हँस करके उनसे कहने लगे—॥ १॥
~~~

राजंस्तीर्थमिदं पुण्यं पावनं पापनाशनम्।
स्नानं कुरु महाभाग पितॄणां तर्पणं तथा॥ २

कालः शुभतमोऽस्तीह तीर्थे स्नात्वा विशांपते।
दानं ददस्व शक्त्याऽत्र पुण्यतीर्थेऽतिपावने॥ ३

प्राप्य तीर्थं महापुण्यमस्नात्वा यस्तु गच्छति।
स भवेदात्महा भूय इति स्वायम्भुवोऽब्रवीत्॥ ४

तस्मात्तीर्थवरे राजन् कुरु पुण्यं स्वशक्तितः।
दर्शयिष्यामि मार्गं ते गन्तासि नगरं ततः॥ ५

आगमिष्याम्यहं मार्गदर्शनार्थं तवानघ।
त्वया सहाद्य काकुत्स्थ तव दानेन तोषितः॥ ६

तच्छ्रुत्वा वचनं राजा मुनेः कपटमण्डितम्।
वासांस्युत्तार्य विधिवत्स्नातुमभ्याययौ नदीम्॥ ७

बन्धयित्वा हयं वृक्षे मुनिवाक्येन मोहितः।
अवश्यंभावियोगेन तद्वशस्तु तदाभवत्॥ ८

राजा स्नानविधिं कृत्वा सन्तर्प्य पितृदेवताः।
विश्वामित्रमुवाचेदं स्वामिन् दानं ददामि ते॥ ९

यदिच्छसि महाभाग तत्ते दास्यामि साम्प्रतम्।
गावो भूमिर्हिरण्यं च गजाश्वरथवाहनम्॥ १०

नादेयं मे किमप्यस्ति कृतमेतद् व्रतं पुरा।
राजसूये मखश्रेष्ठे मुनीनां सन्निधावपि॥ ११

तस्मात्त्वमिह सम्प्राप्तस्तीर्थेऽस्मिन्प्रवरे मुने।
यत्तेऽस्ति वाञ्छितं ब्रूहि ददामि तव वाञ्छितम्॥ १२

विश्वामित्र उवाच

मया पूर्वं श्रुता राजन् कीर्तिस्ते विपुला भुवि।
वसिष्ठेन च सम्प्रोक्ता दाता नास्ति महीतले॥ १३

हरिश्चन्द्रो नृपश्रेष्ठः सूर्यवंशे महीपतिः।
तादृशो नृपतिर्दाता न भूतो न भविष्यति॥ १४

हे राजन्! यह तीर्थ अत्यन्त पुण्यमय, पवित्र तथा पापनाशक है। हे महाभाग! इसमें स्नान करो और पितरोंका तर्पण करो॥ २॥

हे भूपते! यह समय भी अति उत्तम है; इसलिये इस पुण्यमय तथा परम पावन तीर्थमें स्नान करके आप इस समय अपनी सामर्थ्यके अनुसार दान दीजिये॥ ३॥

'जो परम पवित्र तीर्थमें पहुँचकर बिना स्नान किये ही लौट जाता है, वह आत्मघाती होता है'—ऐसा स्वायम्भुव मनुने कहा है॥ ४॥

अतएव हे राजन्! आप इस सर्वोत्तम तीर्थमें अपनी शक्तिके अनुसार पुण्यकर्म कीजिये। इससे [प्रसन्न होकर] मैं आपको मार्ग दिखा दूँगा और तब आप अपने नगरको चले जाइयेगा। हे अनघ! हे काकुत्स्थ! आपके दानसे प्रसन्न होकर आपको मार्ग दिखानेके लिये इसी समय मैं आपके साथ चलूँगा॥ ५-६॥

मुनिकी यह कपटभरी वाणी सुनकर राजा हरिश्चन्द्र घोड़ेको एक वृक्षमें बाँधकर तथा अपने वस्त्र उतारकर विधिवत् स्नान करनेके लिये नदीके तटपर आ गये। होनहारके प्राबल्यके कारण उस समय राजा हरिश्चन्द्र मुनिके वाक्यसे मोहित होकर उनके वशीभूत हो गये थे॥ ७-८॥

विधिपूर्वक स्नान करनेके पश्चात् पितरों तथा देवताओंका तर्पण करके राजाने विश्वामित्रसे यह कहा—हे स्वामिन्! अब मैं आपको दान देता हूँ। हे महाभाग! इस समय आप जो चाहते हैं, उसे मैं आपको दूँगा। गाय, भूमि, सोना, हाथी, घोड़ा, रथ, वाहन आदि कुछ भी मेरे लिये अदेय नहीं है—ऐसी प्रतिज्ञा मैं पूर्वकालमें सर्वोत्तम राजसूययज्ञमें मुनियोंके समक्ष कर चुका हूँ। अतः हे मुने! आपकी जो आकांक्षा हो उसे बताइये; मैं आपकी वह अभिलषित वस्तु आपको दूँगा; क्योंकि आप इस सर्वोत्तम तीर्थमें पधारे हुए हैं॥ ९—१२॥

विश्वामित्र बोले—हे राजन्! संसारमें व्याप्त आपकी विपुल कीर्तिके विषयमें मैं बहुत पहले सुन चुका हूँ। महर्षि वसिष्ठने भी कहा था कि पृथ्वीतलपर उनके समान कोई दानी नहीं है। राजाओंमें श्रेष्ठ वे राजा हरिश्चन्द्र सूर्यवंशमें उत्पन्न हुए हैं। जैसे दानी

पृथिव्यां परमोदारस्त्रिशङ्कुतनयो यथा।
अतस्त्वां प्रार्थयाम्यद्य विवाहो मेऽस्ति पार्थिव॥ १५
पुत्रस्य च महाभाग तदर्थं देहि मे धनम्।

राजोवाच

विवाहं कुरु विप्रेन्द्र ददामि प्रार्थितं तव॥ १६
यदिच्छसि धनं कामं दाता तस्यास्मि निश्चितम्।

व्यास उवाच

इत्युक्तः कौशिकस्तेन वञ्चनातत्परो मुनिः॥ १७
उद्भाव्य मायां गान्धर्वीं पार्थिवायाप्यदर्शयत्।
कुमारः सुकुमारश्च कन्या च दशवार्षिकी॥ १८
एतयोः कार्यमप्यद्य कर्तव्यं नृपसत्तम।
राजसूयाधिकं पुण्यं गृहस्थस्य विवाहतः॥ १९
भविष्यति तवाद्यैव विप्रपुत्रविवाहतः।
तच्छ्रुत्वा वचनं राजा मायया तस्य मोहितः॥ २०
तथेति च प्रतिज्ञाय नोवाचाल्पं वचस्तथा।
तेन दर्शितमार्गोऽसौ नगरं प्रति जग्मिवान्॥ २१
विश्वामित्रोऽपि राजानं वञ्चयित्वाश्रमं ययौ।
कृतोद्वाहविधिस्तावद्विश्वामित्रोऽब्रवीन्नृपम् ॥ २२
वेदीमध्ये नृपाद्य त्वं देहि दानं यथेप्सितम्।

राजोवाच

किं तेऽभीष्टं द्विज ब्रूहि ददामि वाञ्छितं किल॥ २३
अदेयमपि संसारे यशःकामोऽस्मि साम्प्रतम्।
व्यर्थं हि जीवितं तस्य विभवं प्राप्य येन वै॥ २४
नोपार्जितं यशः शुद्धं परलोकसुखप्रदम्।

विश्वामित्र उवाच

राज्यं देहि महाराज वराय सपरिच्छदम्॥ २५
गजाश्वरथरत्नाढ्यं वेदीमध्येऽतिपावने।

तथा परम उदार त्रिशंकुपुत्र महाराज हरिश्चन्द्र हैं, वैसा राजा पृथ्वीपर पहले न हुआ है और न तो आगे होगा। हे महाभाग! हे पार्थिव! आज मेरे पुत्रका विवाह होनेवाला है, अतः मैं आपसे प्रार्थना कर रहा हूँ कि इसके लिये आप मुझे धन प्रदान करें॥ १३—१५½ ॥

राजा बोले—हे विप्रेन्द्र! आप विवाह कीजिये, मैं आपकी अभिलषित वस्तु दूँगा। आप अधिकसे अधिक जितना धन चाहते हैं, मैं उसे अवश्य दूँगा॥ १६½ ॥

व्यासजी बोले—हरिश्चन्द्रके ऐसा कहनेपर उन्हें ठगनेके लिये तत्पर मुनि विश्वामित्रने गान्धर्वी माया रचकर राजाके समक्ष एक सुकुमार पुत्र और दस वर्षकी कन्या उपस्थित कर दी और कहा—हे नृपश्रेष्ठ! आज इन्हीं दोनोंका विवाह सम्पन्न करना है। किसी गृहस्थकी सन्तानका विवाह करा देनेका पुण्य राजसूययज्ञसे भी बढ़कर होता है। अतः आज ही इस विप्रपुत्रका विवाह सम्पन्न करा देनेसे आपको महान् पुण्य होगा॥ १७—१९½ ॥

विश्वामित्रकी बात सुनकर उनकी मायासे मोहित हुए राजा हरिश्चन्द्र 'वैसा ही करूँगा'—यह प्रतिज्ञा करके आगे कुछ भी नहीं बोले। इसके बाद मुनिके द्वारा मार्ग दिखा दिये जानेपर वे अपने नगरको चले गये और राजाको ठगकर विश्वामित्र भी अपने आश्रमके लिये प्रस्थान कर गये॥ २०-२१½ ॥

विवाह-कार्य पूर्ण होनेके पूर्व विश्वामित्रने राजा हरिश्चन्द्रसे कहा—हे राजन्! अब आप हवनवेदीके मध्य मुझे अभिलषित दान दीजिये॥ २२½ ॥

राजा बोले—हे द्विज! आपकी क्या अभिलाषा है, उसे बताइए; मैं आपको अभिलषित वस्तु अवश्य दूँगा। इस संसारमें मेरे लिये कुछ भी अदेय नहीं है। अब मैं केवल यश प्राप्त करना चाहता हूँ; क्योंकि वैभव प्राप्त करके भी जिसने परलोकमें सुख देनेवाले पवित्र यशका उपार्जन नहीं किया, उसका जीवन व्यर्थ है॥ २३-२४½ ॥

विश्वामित्र बोले—हे राजन्! इस परम पुनीत हवनवेदीके मध्य आप हाथी, घोड़े, रथ, रत्न और अनुचरोंसे युक्त सम्पूर्ण राज्य वरको दे दीजिये॥ २५½ ॥

व्यास उवाच

मोहितो मायया तस्य श्रुत्वा वाक्यं मुनेर्नृपः॥ २६

दत्तमित्युक्तवान् राज्यमविचार्य यदृच्छया।
गृहीतमिति तं प्राह विश्वामित्रोऽतिनिष्ठुरः॥ २७

दक्षिणां देहि राजेन्द्र दानयोग्यां महामते।
दक्षिणारहितं दानं निष्फलं मनुरब्रवीत्॥ २८

तस्माद्दानफलाय त्वं यथोक्तां देहि दक्षिणाम्।
इत्युक्तस्तु तदा राजा तमुवाचातिविस्मितः॥ २९

ब्रूहि कियद्धनं तुभ्यं देयं स्वामिन् मयाधुना।
दक्षिणानिष्क्रयं साधो वद तावत्प्रमाणकम्॥ ३०

दानपूर्त्यै प्रदास्यामि स्वस्थो भव तपोधन।
विश्वामित्रस्तु तच्छ्रुत्वा तमाह मेदिनीपतिम्॥ ३१

हेमभारद्वयं सार्धं दक्षिणां देहि साम्प्रतम्।
दास्यामीति प्रतिश्रुत्य तस्मै राजातिविस्मितः॥ ३२

तदैव सैनिकास्तस्य वीक्षमाणाः समागताः।
दृष्ट्वा महीपतिं व्यग्रं तुष्टुवुस्ते मुदान्विताः॥ ३३

व्यास उवाच

श्रुत्वा तेषां वचो राजा नोक्त्वा किञ्चिच्छुभाशुभम्।
चिन्तयन्स्वकृतं कर्म ययावन्तःपुरे ततः॥ ३४

किं मया स्वीकृतं दानं सर्वस्वं यत्समर्पितम्।
वञ्चितोऽहं द्विजेनात्र वने पाटच्चरैरिव॥ ३५

राज्यं सोपस्करं तस्मै मया सर्वं प्रतिश्रुतम्।
भारद्वयं सुवर्णस्य सार्धं च दक्षिणा पुनः॥ ३६

किं करोमि मतिर्भ्रष्टा न ज्ञातं कपटं मुनेः।
प्रतारितोऽहं सहसा ब्राह्मणेन तपस्विना॥ ३७

न जाने दैवकार्यं वै हा दैव किं भविष्यति।
इति चिन्तापरो राजा गृहं प्राप्तोऽतिविह्वलः॥ ३८

व्यासजी बोले—मुनिकी बात सुनते ही उनकी मायासे मोहित होनेके कारण बिना कुछ सोचे-विचारे राजाने अकस्मात् कह दिया—'सारा राज्य आपको दे दिया।' तत्पश्चात् परम निष्ठुर विश्वामित्रने उनसे कहा—'मैंने पा लिया और हे राजेन्द्र! हे महामते! अब दानकी सांगता-सिद्धिके लिये उसके योग्य दक्षिणा भी दे दीजिये; क्योंकि मनुने कहा है कि दक्षिणारहित दान व्यर्थ होता है। अतएव दानका पूर्ण फल प्राप्त करनेके लिये आप यथोचित दक्षिणा भी दीजिये'॥ २६—२८½॥

मुनिके यह कहनेपर राजा हरिश्चन्द्र उस समय बड़े आश्चर्यमें पड़ गये। उन्होंने मुनिसे कहा—हे स्वामिन्! आप यह तो बताइये कि इस समय कितना धन आपको और देना है। हे साधो! दक्षिणाके रूपमें निष्क्रय-द्रव्यका परिमाण बता दीजिये। हे तपोधन! आप निश्चिन्त रहिये; दानकी पूर्णताके लिये मैं वह दक्षिणा अवश्य दूँगा॥ २९-३०½॥

यह सुनकर विश्वामित्रने राजा हरिश्चन्द्रसे कहा कि आप दक्षिणाके रूपमें ढाई भार सोना अभी दीजिये। तत्पश्चात् 'आपको दूँगा'—यह प्रतिज्ञा विश्वामित्रसे करके राजा बड़े विस्मयमें पड़ गये॥ ३१-३२॥

उसी समय उनके सभी सैनिक भी उन्हें खोजते हुए वहाँ आ गये। राजाको देखकर वे बहुत हर्षित हुए और उन्हें चिन्तित देखकर सान्त्वना देने लगे॥ ३३॥

व्यासजी बोले—[हे जनमेजय!] उनकी बात सुनकर राजा हरिश्चन्द्र शुभाशुभ कुछ भी उत्तर न देकर अपने किये हुए कार्यपर विचार करते हुए अन्तःपुरमें चले गये॥ ३४॥

यह मैंने कैसा दान देना स्वीकार कर लिया, जो कि मैंने अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया। इस ब्राह्मणने तो ठगोंकी भाँति वनमें मुझे बड़ा धोखा दिया। सामग्रियों-सहित सम्पूर्ण राज्य उस ब्राह्मणको देनेके लिये मैंने प्रतिज्ञा कर ली थी और फिर साथमें ढाई भार स्वर्णकी भी प्रतिज्ञा कर ली है। अब मैं क्या करूँ? मेरी तो बुद्धि ही भ्रष्ट हो गयी है। मुनिके कपटको मैं नहीं जान पाया और उस तपस्वी ब्राह्मणने मुझे अकस्मात् ही ठग लिया। विधिका विधान मैं बिलकुल नहीं समझ पा रहा हूँ। हा दैव! पता नहीं भविष्यमें क्या होनेवाला है—इसी चिन्तामें पड़े हुए अत्यन्त क्षुब्धचित्त राजा हरिश्चन्द्र अपने महलमें पहुँचे॥ ३५—३८॥

पतिं चिन्तापरं दृष्ट्वा राज्ञी पप्रच्छ कारणम्।
किं प्रभो विमना भासि का चिन्ता ब्रूहि साम्प्रतम्॥ ३९

अपने पति राजा हरिश्चन्द्रको चिन्ताग्रस्त देखकर रानीने इसका कारण पूछा—हे प्रभो! इस समय आप उदास क्यों दिखायी दे रहे हैं, आपको कौन-सी चिन्ता है? मुझे बताइये॥ ३९॥

वनात्पुत्रः समायातो राजसूयः कृतः पुरा।
कस्माच्छोचसि राजेन्द्र शोकस्य कारणं वद॥ ४०

अब तो आपका पुत्र भी वनसे लौट आया है और आपने बहुत पहले ही राजसूययज्ञ भी सम्पन्न कर लिया है, तो फिर आप किसलिये शोक कर रहे हैं? हे राजेन्द्र! अपनी चिन्ताका कारण बताइये॥ ४०॥

नारातिर्विद्यते क्वापि बलवान्दुर्बलोऽपि वा।
वरुणोऽपि सुसन्तुष्टः कृतकृत्योऽसि भूतले॥ ४१

चिन्तया क्षीयते देहो नास्ति चिन्तासमा मृतिः।
त्यज्यतां नृपशार्दूल स्वस्थो भव विचक्षण॥ ४२

इस समय बलशाली अथवा बलहीन आपका कोई शत्रु भी कहीं नहीं है। वरुणदेव भी आपसे परम सन्तुष्ट हैं। आपने संसारमें अपने सारे मनोरथ सफल कर लिये हैं। हे बुद्धिमान् नृपश्रेष्ठ! चिन्तासे शरीर क्षीण हो जाता है, चिन्ताके समान तो मृत्यु भी नहीं है; इसलिये आप चिन्ता छोड़िये और स्वस्थ रहिये॥ ४१-४२॥

तन्निशम्य प्रियावाक्यं प्रीतिपूर्वं नराधिपः।
प्रोवाच किञ्चिच्चिन्तायाः कारणं च शुभाशुभम्॥ ४३

[हे जनमेजय!] अपनी पत्नीकी बात सुनकर राजाने प्रेमपूर्वक उन्हें चिन्ताका शुभाशुभ थोड़ा-बहुत कारण बतला दिया॥ ४३॥

भोजनं न चकाराऽसौ चिन्ताविष्टस्तथा नृपः।
सुप्त्वापि शयने शुभ्रे लेभे निद्रां न भूमिपः॥ ४४

उस समय चिन्तासे आकुल राजा हरिश्चन्द्रने भोजनतक नहीं किया। सुन्दर शय्यापर लेटे रहनेपर भी राजाको निद्रा नहीं आयी॥ ४४॥

प्रातरुत्थाय चिन्तार्तो यावत्सन्ध्यादिकाः क्रियाः।
करोति नृपतिस्तावद्विश्वामित्रः समागतः॥ ४५

चिन्ताग्रस्त राजा हरिश्चन्द्र प्रातःकाल उठकर जब सन्ध्या-वन्दन आदि क्रियाएँ कर रहे थे, उसी समय मुनि विश्वामित्र वहाँ आ पहुँचे॥ ४५॥

क्षत्रा निवेदितो राज्ञे मुनिः सर्वस्वहारकः।
आगत्योवाच राजानं प्रणमन्तं पुनः पुनः॥ ४६

राजाका सर्वस्व हरण कर लेनेवाले मुनिके आनेकी सूचना द्वारपालने राजाको दी। तब मुनि विश्वामित्र उनके पास गये और बार-बार प्रणाम करते हुए राजासे कहने लगे—॥ ४६॥

विश्वामित्र उवाच

राजंस्त्यज स्वराज्यं मे देहि वाचा प्रतिश्रुतम्।
सुवर्णं स्पृश राजेन्द्र सत्यवाग्भव साम्प्रतम्॥ ४७

विश्वामित्र बोले—हे राजन्! अपना राज्य छोड़िये और अपने वचनसे संकल्पित इस राज्यको मुझे दे दीजिये। हे राजेन्द्र! अब प्रतिज्ञा की हुई सुवर्णकी दक्षिणा भी दीजिये और सत्यवादी बनिये॥ ४७॥

हरिश्चन्द्र उवाच

स्वामिन् राज्यं तवेदं मे मया दत्तं किलाधुना।
त्यक्त्वान्यत्र गमिष्यामि मा चिन्तां कुरु कौशिक॥ ४८

हरिश्चन्द्र बोले—हे स्वामिन्! मेरा यह राज्य अब आपका है; क्योंकि मैंने इसे आपको दे दिया है। हे कौशिक! इसे छोड़कर अब मैं अन्यत्र चला जाऊँगा, आप चिन्ता न करें॥ ४८॥

सर्वस्वं मम ते ब्रह्मन् गृहीतं विधिवद्विभो।
सुवर्णदक्षिणां दातुमशक्तोऽस्म्यधुना द्विज॥ ४९

दानं ददामि ते तावद्यावन्मे स्याद्धनागमः।
पुनश्चेत्कालयोगेन तदा दास्यामि दक्षिणाम्॥ ५०

हे ब्रह्मन्! मेरा सर्वस्व तो विधिपूर्वक आपने ग्रहण कर लिया है, अतः हे विभो! इस समय मैं आपको स्वर्ण-दक्षिणा देनेमें असमर्थ हूँ। हे द्विज! जब मेरे पास धन हो जायगा, तब मैं आपको दक्षिणा दे दूँगा और यदि दैवयोगसे धन उपलब्ध हो गया, तो उसी समय मैं आपकी दक्षिणा चुका दूँगा॥ ४९-५०॥

इत्युक्त्वा नृपतिः प्राह पुत्रं भार्यां च माधवीम्।
राज्यमस्मै प्रदत्तं वै मया वेद्यां सुविस्तरम्॥ ५१

हस्त्यश्वरथसंयुक्तं रत्नहेमसमन्वितम्।
त्यक्त्वा त्रीणि शरीराणि सर्वं चास्मै समर्पितम्॥ ५२

त्यक्त्वायोध्यां गमिष्यामि कुत्रचिद्वनगह्वरे।
गृह्णात्विदं मुनिः सम्यग्राज्यं सर्वसमृद्धिमत्॥ ५३

विश्वामित्रसे यह कहकर राजा हरिश्चन्द्रने अपने पुत्र रोहित तथा पत्नी माधवीसे कहा—हाथी, घोड़े, रथ, स्वर्ण तथा रत्न आदिसहित अपना सारा विस्तृत राज्य मैं विवाहवेदीपर इन ब्राह्मणदेवको दान कर चुका हूँ; केवल हमलोगोंके इन तीन शरीरोंको छोड़कर और सब कुछ इन्हें समर्पित कर दिया है। अतः अब मैं अयोध्या छोड़कर किसी वनकी गुफामें चला जाऊँगा। अब ये मुनि इस सर्वसमृद्धिशाली राज्यको भलीभाँति ग्रहण करें॥ ५१—५३॥

इत्याभाष्य सुतं भार्यां हरिश्चन्द्रः स्वमन्दिरात्।
विनिर्गतः सुधर्मात्मा मानयंस्तं द्विजोत्तमम्॥ ५४

[हे जनमेजय!] अपने पुत्र तथा पत्नीसे यह कहकर परम धार्मिक राजा हरिश्चन्द्र द्विजश्रेष्ठ विश्वामित्रको सम्मान देते हुए अपने भवनसे निकल पड़े॥ ५४॥

व्रजन्तं भूपतिं वीक्ष्य भार्यापुत्रावुभावपि।
चिन्तातुरौ सुदीनास्यौ जग्मतुः पृष्ठतस्तदा॥ ५५

राजाको जाते देखकर उनकी पत्नी माधवी तथा पुत्र रोहित चिन्तित हो गये तथा उनके मुखपर उदासी छा गयी। वे दोनों भी उनके पीछे-पीछे चल दिये॥ ५५॥

हाहाकारो महानासीन्नगरे वीक्ष्य तांस्तथा।
चुक्रुशुः प्राणिनः सर्वे साकेतपुरवासिनः॥ ५६

हा राजन् किं कृतं कर्म कुतः क्लेशः समागतः।
वञ्चितोऽसि महाराज विधिनापण्डितेन ह॥ ५७

उन सभीको इस स्थितिमें देखकर नगरमें बड़ा हाहाकार मच गया। अयोध्यामें रहनेवाले सभी प्राणी चीख-चीखकर रोने लगे—हा राजन्! आपने यह कैसा कर्म कर डाला! आपके ऊपर यह संकट कहाँसे आ पड़ा। हे महाराज! यह निश्चय है कि आप विवेकहीन विधाताद्वारा ठग लिये गये हैं॥ ५६-५७॥

सर्वे वर्णास्तदा दुःखमाप्नुयुस्तं महीपतिम्।
विलोक्य भार्यया सार्धं पुत्रेण च महात्मना॥ ५८

महात्मा पुत्र रोहित तथा भार्या माधवीके सहित उन राजा हरिश्चन्द्रको इस दशामें देखकर सभी वर्णके लोग बहुत दुःखी हुए॥ ५८॥

निनिन्दुर्ब्राह्मणं तं तु दुराचारं पुरौकसः।
धूर्तोऽयमिति भाषन्तो दुःखार्ता ब्राह्मणादयः॥ ५९

'यह महान् धूर्त है'—ऐसा कहते हुए नगरवासी ब्राह्मण आदि लोग दुःखसे व्याकुल होकर उस दुराचारी ब्राह्मण (विश्वामित्र)-की निन्दा करने लगे॥ ५९॥

निर्गत्य नगरात्तस्माद्विश्वामित्रः क्षितीश्वरम्।
गच्छन्तं तमुवाचेदं समेत्य निष्ठुरं वचः॥ ६०

दक्षिणायाः सुवर्णं मे दत्त्वा गच्छ नराधिप।
नाहं दास्यामि वा ब्रूहि मया त्यक्तं सुवर्णकम्॥ ६१

राज्यं गृहाण वा सर्वं लोभश्चेद्धृदि वर्तते।
दत्तं चेन्मन्यसे राजन् देहि यत्तत्प्रतिश्रुतम्॥ ६२

एवं ब्रुवन्तं गाधेयं हरिश्चन्द्रो महीपतिः।
प्रणिपत्य सुदीनात्मा कृताञ्जलिपुटोऽब्रवीत्॥ ६३

महाराज हरिश्चन्द्र अभी नगरसे निकलकर जा ही रहे थे कि इतनेमें विश्वामित्र पुनः उनके सम्मुख आकर उनसे यह निष्ठुर वचन कहने लगे—हे राजन्! मेरी सुवर्ण दक्षिणा देकर आप जाइये अथवा यह कह दीजिये कि मैं नहीं दूँगा तो मैं वह सुवर्ण छोड़ दूँगा। हे राजन्! यदि आपके हृदयमें लोभ हो तो आप अपना सारा राज्य वापस ले लीजिये और यदि आप यह मानते हैं कि 'मैं वस्तुतः दान दे चुका हूँ' तो जिस सुवर्णकी आप प्रतिज्ञा कर चुके हैं, उसे मुझको दे दीजिये॥ ६०—६२॥

विश्वामित्रके यह कहनेपर अत्यन्त उदास मनवाले राजा हरिश्चन्द्र उन्हें दण्डवत् प्रणाम करके दोनों हाथ जोड़कर कहने लगे॥ ६३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे कौशिकाय सर्वस्वसमर्पणं तद्दक्षिणादानवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

~~○~~

अथ विंशोऽध्यायः

हरिश्चन्द्रका दक्षिणा देनेहेतु स्वयं, रानी और पुत्रको बेचनेके लिये काशी जाना

हरिश्चन्द्र उवाच

अदत्त्वा ते हिरण्यं वै न करिष्यामि भोजनम्।
प्रतिज्ञा मे मुनिश्रेष्ठ विषादं त्यज सुव्रत॥ १

सूर्यवंशसमुद्भूतः क्षत्रियोऽहं महीपतिः।
राजसूयस्य यज्ञस्य कर्ता वाञ्छितदो नृषु॥ २

कथं करोमि नाकारं स्वामिन्दत्त्वा यदृच्छया।
अवश्यमेव दातव्यमृणं ते द्विजसत्तम॥ ३

स्वस्थो भव प्रदास्यामि सुवर्णं मनसेप्सितम्।
कञ्चित्कालं प्रतीक्षस्व यावत्प्राप्स्याम्यहं धनम्॥ ४

हरिश्चन्द्र बोले—उत्तम व्रतका पालन करनेवाले हे मुनिवर! आप विषाद छोड़िये, मेरी प्रतिज्ञा है कि आपको बिना स्वर्ण दिये मैं भोजन नहीं करूँगा॥ १॥

मैं सूर्यवंशमें उत्पन्न एक क्षत्रिय राजा हूँ। मनुष्योंकी सारी अभिलाषा पूर्ण करनेवाला मैं राजसूययज्ञ सम्पन्न कर चुका हूँ॥ २॥

हे स्वामिन्! इच्छानुसार दान दे करके मैं 'नहीं' ऐसा शब्द किस प्रकार उच्चारित कर सकता हूँ। हे द्विजश्रेष्ठ! मैं आपका ऋण अवश्य चुका दूँगा। आप निश्चिन्त रहें, मैं आपका मनोवांछित स्वर्ण आपको अवश्य दूँगा, किंतु जबतक मुझे धन उपलब्ध नहीं हो जाता, तबतक कुछ समयके लिये आप प्रतीक्षा करें॥ ३-४॥

विश्वामित्र उवाच

कुतस्ते भविता राजन् धनप्राप्तिरतः परम्।
गतं राज्यं तथा कोशो बलं चैवार्थसाधनम्॥ ५

विश्वामित्र बोले—हे राजन्! अब आपको धनप्राप्ति कहाँसे होगी? आपका राज्य, कोष, सेना तथा अर्थोपार्जनका समस्त साधन—यह सब [आपके अधिकारसे] चला गया। अतः हे राजन्! धनके लिये

वृथाशा ते महीपाल धनार्थे किं करोम्यहम्।
निर्धनं त्वां च लोभेन पीडयामि कथं नृप॥ ६

तस्मात्कथय भूपाल न दास्यामीति साम्प्रतम्।
त्यक्त्वाशां महतीं कामं गच्छाम्यहमतः परम्॥ ७

यथेष्टं व्रज राजेन्द्र भार्यापुत्रसमन्वितः।
सुवर्णं नास्ति किं तुभ्यं ददामीति वदाधुना॥ ८

व्यास उवाच

गच्छन्वाक्यमिदं श्रुत्वा ब्राह्मणस्य च भूपतिः।
प्रत्युवाच मुनिं ब्रह्मन् धैर्यं कुरु ददाम्यहम्॥ ९

मम देहोऽस्ति भार्यायाः पुत्रस्य च ह्यनामयः।
क्रीत्वा देहं तु तं नूनमृणं दास्यामि ते द्विज॥ १०

ग्राहकं पश्य विप्रेन्द्र वाराणस्यां पुरि प्रभो।
दासभावं गमिष्यामि सदारोऽहं सपुत्रकः॥ ११

गृहाण काञ्चनं पूर्णं सार्धं भारद्वयं मुने।
मौल्येन दत्त्वा सर्वान्नः सन्तुष्टो भव भूधर॥ १२

इति ब्रुवञ्जगामाथ सह पत्न्या सुतान्वितः।
उमया कान्तया सार्धं यत्रास्ते शङ्करः स्वयम्॥ १३

तां दृष्ट्वा च पुरीं रम्यां मनसो ह्लादकारिणीम्।
उवाच स कृतार्थोऽस्मि पुरीं पश्यन्सुवर्चसम्॥ १४

ततो भागीरथीं प्राप्य स्नात्वा देवादितर्पणम्।
देवार्चनं च निर्वर्त्य कृतवान् दिग्विलोकनम्॥ १५

प्रविश्य वसुधापालो दिव्यां वाराणसीं पुरीम्।
नैषा मनुष्यभुक्तेति शूलपाणेः परिग्रहः॥ १६

जगाम पद्भ्यां दुःखार्तः सह पत्न्या समाकुलः।
पुरीं प्रविश्य स नृपो विश्वासमकरोत्तदा॥ १७

आपको आशा करना व्यर्थ है। हे नृप! इस स्थितिमें मैं क्या करूँ? मैं धनके लोभसे आप-जैसे निर्धन व्यक्तिको पीड़ित भी कैसे करूँ? इसलिये हे राजन्! आप कह दीजिये—'अब मैं नहीं दे सकूँगा।' तब मैं धनप्राप्तिकी आशा त्यागकर यहाँसे इच्छानुसार चला जाऊँगा। हे राजेन्द्र! 'अब मेरे पास स्वर्ण नहीं है, तो आपको क्या दूँ'—ऐसा बोल दीजिये और पत्नी तथा पुत्रके साथ अपने इच्छानुसार चले जाइये॥ ५—८॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] ब्राह्मणकी यह बात सुनकर उस समय जा रहे राजा हरिश्चन्द्रने मुनिको उत्तर दिया—हे ब्रह्मन्! आप धैर्य रखिये, मैं आपको धन अवश्य दूँगा। हे द्विज! अभी भी मेरा, मेरी पत्नी तथा मेरे पुत्रका शरीर स्वस्थ है; मैं उस शरीरको बेचकर आपका ऋण अवश्य चुका दूँगा। हे विप्रवर! हे प्रभो! आप वाराणसी पुरीमें किसी ग्राहकका अन्वेषण कीजिये, मैं अपनी पत्नी तथा पुत्रसहित उसका दास बन जाऊँगा। हे मुने! हे भूधर! उसके हाथों हमें बेचकर आप हमारे मूल्यसे ढाई भार सोना ले लीजिये और सन्तुष्ट हो जाइये॥ ९—१२॥

ऐसा कहकर राजा हरिश्चन्द्र अपनी भार्या तथा पुत्रके साथ उस काशीपुरीमें गये, जहाँ साक्षात् भगवान् शिव अपनी प्रिया उमाके साथ विराजमान रहते हैं॥ १३॥

मनको आह्लादित करनेवाली उस दिव्य पुरीको देखकर उन्होंने कहा कि इस परम तेजोमयी काशीपुरीका दर्शन पाकर मैं कृतार्थ हो गया॥ १४॥

तत्पश्चात् गंगातटपर आकर स्नान करके उन्होंने देवता आदिका तर्पण किया। इसके बाद देवताओंकी पूजासे निवृत्त होकर वे चारों ओर घूमकर देखने लगे॥ १५॥

राजा हरिश्चन्द्र उस दिव्य वाराणसीपुरीमें प्रविष्ट होकर सोचने लगे कि यह पुरी मानवोंके भोगकी वस्तु नहीं है; क्योंकि यह भगवान् शिवकी सम्पदा है। दुःखसे अधीर होकर घबराये हुए राजा हरिश्चन्द्र अपनी भार्याके साथ पैदल ही चलते रहे। पुरीमें प्रवेश हो जानेपर राजा आश्वस्त हो गये॥ १६-१७॥

ददृशेऽथ मुनिश्रेष्ठं ब्राह्मणं दक्षिणार्थिनम्।
तं दृष्ट्वा समनुप्राप्तं विनयावनतोऽभवत्॥ १८

प्राह चैवाञ्जलिं कृत्वा हरिश्चन्द्रो महामुनिम्।
इमे प्राणाः सुतश्चायं प्रिया पत्नी मुने मम॥ १९

येन ते कृत्यमस्त्याशु गृहाणाद्य द्विजोत्तम।
यच्चान्यत्कार्यमस्माभिस्तन्ममाख्यातुमर्हसि॥ २०

विश्वामित्र उवाच

पूर्णः स मासो भद्रं ते दीयतां मम दक्षिणा।
पूर्वं तस्य निमित्तं हि स्मर्यते स्ववचो यदि॥ २१

राजोवाच

ब्रह्मन्नाद्यापि सम्पूर्णो मासो ज्ञानतपोबल।
तिष्ठत्येकदिनार्धं यत्तत्प्रतीक्षस्व नापरम्॥ २२

विश्वामित्र उवाच

एवमस्तु महाराज आगमिष्याम्यहं पुनः।
शापं तव प्रदास्यामि न चेदद्य प्रयच्छसि॥ २३

इत्युक्त्वाथ ययौ विप्रो राजा चाचिन्तयत्तदा।
कथमस्मै प्रयच्छामि दक्षिणा या प्रतिश्रुता॥ २४

कुतः पुष्टानि मित्राणि कुत्रार्थः साम्प्रतं मम।
प्रतिग्रहः प्रदुष्टो मे तत्र याच्ञा कथं भवेत्॥ २५

राज्ञां वृत्तित्रयं प्रोक्तं धर्मशास्त्रेषु निश्चितम्।
यदि प्राणान्विमुञ्चामि ह्यप्रदाय च दक्षिणाम्॥ २६

ब्रह्मस्वहा कृमिः पापो भविष्याम्यधमाधमः।
अथवा प्रेततां यास्ये वर एवात्मविक्रयः॥ २७

उसी समय उन्होंने दक्षिणाकी अभिलाषा रखनेवाले ब्राह्मणवेशधारी मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रको देखा। उन महामुनिको सामने उपस्थित देखकर महाराज हरिश्चन्द्र विनयावनत हो गये और दोनों हाथ जोड़कर उनसे कहने लगे—हे मुने! मेरे प्राण, पुत्र तथा प्रिय पत्नी—सब उपस्थित हैं। इनमेंसे जिससे भी आपकी कार्यसिद्धि हो सके, उसे आप शीघ्रतापूर्वक अभी ले लीजिये। साथ ही हे द्विजश्रेष्ठ! हमसे आपका अन्य जो भी कार्य बन सकता हो, उसे भी आप बतानेकी कृपा करें॥ १८—२०॥

विश्वामित्र बोले—[हे राजन्!] आपका कल्याण हो। वह महीना पूर्ण हो गया, इसलिये यदि आपको अपने वचनका स्मरण हो तो पूर्वमें की गयी प्रतिज्ञाकी दक्षिणा चुका दीजिये॥ २१॥

राजा बोले—ज्ञान और तपके बलसे सम्पन्न हे ब्रह्मन्! आज अवश्य ही महीना पूर्ण हो गया, किंतु अभी दिनका आधा भाग अवशिष्ट है। अतः आप तबतक प्रतीक्षा करें, इसके बाद नहीं॥ २२॥

विश्वामित्र बोले—हे महाराज! ऐसा ही हो, मैं पुनः आऊँगा। किंतु यदि आपने आज दक्षिणा नहीं दी, तो मैं आपको शाप दे दूँगा॥ २३॥

ऐसा कहकर जब विप्ररूप विश्वामित्र चले गये, तब राजा हरिश्चन्द्र सोचने लगे कि इन विप्रदेवके लिये जिस दक्षिणाकी प्रतिज्ञा मैं कर चुका हूँ, उसे अब इन्हें कैसे दूँ?॥ २४॥

इस समय कहाँसे मेरे धनसम्पन्न मित्र मिल जायँगे अथवा इतनी सम्पत्ति ही कहाँसे मिल जायगी। साथ ही किसीसे धन लेना मेरे लिये दोषकारक है, अतः धनकी याचना भी कैसे की जा सकती है? धर्मशास्त्रोंमें राजाओंके लिये तीन प्रकारकी ही सुनिश्चित वृत्तियाँ (दान देना, विद्याध्ययन करना तथा यज्ञ करना) बतायी गयी हैं। यदि दक्षिणा दिये बिना ही प्राणत्याग कर देता हूँ तो ब्राह्मणका धन अपहरण करनेके कारण मुझ अधमसे भी अधम पापीको दूसरे जन्ममें कीड़ा होना पड़ेगा अथवा मैं प्रेतयोनिमें चला जाऊँगा। अतः अपनेको बेच डालना ही मेरे लिये श्रेयस्कर है॥ २५—२७॥

सूत उवाच

राजानं व्याकुलं दीनं चिन्तयानमधोमुखम्।
प्रत्युवाच तदा पत्नी बाष्पगद्गदया गिरा॥ २८

त्यज चिन्तां महाराज स्वधर्ममनुपालय।
प्रेतवद्वर्जनीयो हि नरः सत्यबहिष्कृतः॥ २९

नातः परतरं धर्मं वदन्ति पुरुषस्य च।
यादृशं पुरुषव्याघ्र स्वसत्यस्यानुपालनम्॥ ३०

अग्निहोत्रमधीतं च दानाद्याः सकलाः क्रियाः।
भवन्ति तस्य वैफल्यं वाक्यं यस्यानृतं भवेत्॥ ३१

सत्यमत्यन्तमुदितं धर्मशास्त्रेषु धीमताम्।
तारणायानृतं तद्वत्पातनायाकृतात्मनाम्॥ ३२

शताश्वमेधानादृत्य राजसूयं च पार्थिवः।
कृत्वा राजा सकृत्स्वर्गादसत्यवचनाच्च्युतः॥ ३३

राजोवाच

वंशवृद्धिकरश्चायं पुत्रस्तिष्ठति बालकः।
उच्यतां वक्तुकामासि यद्वाक्यं गजगामिनि॥ ३४

पत्न्युवाच

राजन् माभूदसत्यं ते पुंसां पुत्रफलाः स्त्रियः।
तन्मां प्रदाय वित्तेन देहि विप्राय दक्षिणाम्॥ ३५

व्यास उवाच

एतद्वाक्यमुपश्रुत्य ययौ मोहं महीपतिः।
प्रतिलभ्य च संज्ञां वै विललापातिदुःखितः॥ ३६

महद्दुःखमिदं भद्रे यत्त्वमेवं ब्रवीषि मे।
किं तव स्मितसंल्लापा मम पापस्य विस्मृताः॥ ३७

हा हा त्वया कथं योग्यं वक्तुमेतच्छुचिस्मिते।
दुर्वाच्यमेतद्वचनं कथं वदसि भामिनि॥ ३८

सूतजी बोले—उस समय व्याकुल होकर नीचेकी ओर मुख करके ऐसा सोचते हुए दयनीय दशाको प्राप्त राजा हरिश्चन्द्रसे उनकी पत्नी अश्रुके कारण रुँधे कंठसे गद्गद वाणीमें कहने लगीं—॥ २८॥

हे महाराज! आप चिन्ता छोड़िये और अपने धर्मका पालन कीजिये; क्योंकि सत्यसे बहिष्कृत मनुष्य प्रेतके समान त्याज्य है॥ २९॥

हे पुरुषव्याघ्र! अपने सत्य वचनका अनुपालनरूप जो धर्म है, उससे बढ़कर दूसरा कोई अन्य धर्म मनुष्यके लिये नहीं कहा गया है॥ ३०॥

जिस व्यक्तिका वचन मिथ्या हो जाय, उसके अग्निहोत्र, वेदाध्ययन, दान आदि सभी कृत्य निष्फल हो जाते हैं॥ ३१॥

जिस प्रकार धर्मशास्त्रोंमें पुण्यात्माओंके उद्धारके लिये सत्यपालनको विशेष कारण बताया गया है, उसी प्रकार दुराचारियोंके पतनके लिये मिथ्याको परम हेतु कहा गया है॥ ३२॥

सैकड़ों अश्वमेध तथा राजसूययज्ञ आदरपूर्वक करके भी मात्र एक बार मिथ्या बोल देनेके कारण एक राजाको स्वर्गसे च्युत हो जाना पड़ा था॥ ३३॥

राजा बोले—हे गजगामिनि! वंशकी वृद्धि करनेवाला यह बालक पुत्र तो विद्यमान है ही, अतः तुम जो भी बात कहना चाहती हो, उसे कहो; मैं उसे माननेके लिये तैयार हूँ॥ ३४॥

पत्नी बोली—हे राजन्! आपकी वाणी असत्य नहीं होनी चाहिये। स्त्रियाँ पुत्रप्रसव कर देनेपर सफल हो जाती हैं, अतः आप मुझे बेचकर उस धनसे विप्रकी दक्षिणा चुका दें॥ ३५॥

व्यासजी बोले—[हे राजा जनमेजय!] पत्नीकी यह बात सुनकर राजा मूर्च्छित हो गये, पुनः चेतनामें आनेके बाद वे बहुत दुःखी होकर इस प्रकार विलाप करने लगे—हे भद्रे! यह मेरे लिये महान् दुःखप्रद है, जो तुम मुझसे ऐसा बोल रही हो। क्या तुम्हारे मुसकानयुक्त वचन मुझ पापीको विस्मृत हो गये हैं? हे शुचिस्मिते! ऐसा बोलना तुम्हारे लिये भला कैसे ठीक है? हे भामिनि! इस प्रकारकी अप्रिय बात तुम क्यों बोल रही हो?॥ ३६—३८॥

इत्युक्त्वा नृपतिश्रेष्ठो न धीरो दारविक्रये।
निपपात महीपृष्ठे मूर्च्छयातिपरिप्लुतः॥ ३९

स्त्रीविक्रयकी बातसे अधीरताको प्राप्त नृपतिश्रेष्ठ महाराज हरिश्चन्द्र यह कहकर पृथ्वीपर गिर पड़े और मूर्च्छासे अत्यधिक व्याकुल हो गये॥ ३९॥

शयानं भुवि तं दृष्ट्वा मूर्च्छयापि महीपतिम्।
उवाचेदं सुकरुणं राजपुत्री सुदुःखिता॥ ४०

हा महाराज कस्येदमपध्यानादुपागतम्।
यस्त्वं निपतितो भूमौ रङ्कवच्छरणोचितः॥ ४१

येनैव कोटिशो वित्तं विप्राणामपवर्जितम्।
स एव पृथिवीनाथो भुवि स्वपिति मे पतिः॥ ४२

हा कष्टं किं तवानेन कृतं दैव महीक्षिता।
यदिन्द्रोपेन्द्रतुल्योऽयं नीतः पापामिमां दशाम्॥ ४३

राजाको मूर्च्छाके कारण भूमिपर पड़ा हुआ देखकर राजपुत्री अत्यन्त दुःखित हो गयीं और वे उनसे परम करुणामय वचन कहने लगीं—हे महाराज! किसके अनिष्टचिन्तनसे यह संकट आ पड़ा है, जिसके परिणामस्वरूप शरणदाता होते हुए भी आप दरिद्रकी भाँति पृथ्वीपर पड़े हैं। जिन्होंने करोड़ोंकी सम्पत्ति ब्राह्मणोंको दान कर दी, वे ही पृथ्वीनाथ मेरे पति आज पृथ्वीपर सो रहे हैं। हाय, महान् कष्ट है। हे दैव! इन महाराजने आपका क्या कर दिया, जिसके कारण आपने इन्द्र तथा उपेन्द्रकी तुलना करनेवाले इन नरेशको इस पापमयी दशामें पहुँचा दिया है॥ ४०—४३॥

इत्युक्त्वा सापि सुश्रोणी मूर्च्छिता निपपात ह।
भर्तुर्दुःखमहाभारेणासह्येनातिपीडिता॥ ४४

ऐसा कहकर अपने स्वामीके असहनीय महान् दुःखके भारसे अत्यधिक सन्तप्त वे सुन्दर कटिप्रदेशवाली रानी भी मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ीं॥ ४४॥

शिशुर्दृष्ट्वा क्षुधाविष्टः प्राह वाक्यं सुदुःखितः।
तात तात प्रदेह्यन्नं मातर्मे देहि भोजनम्॥ ४५

क्षुन्मे बलवती जाता जिह्वाग्रे मेऽतिशुष्यति॥ ४६

उस समय क्षुधासे पीड़ित बालक रोहित यह देखकर अत्यन्त दुःखित होकर यह वचन कहने लगा—हे तात! हे तात! मुझे अन्न दीजिये, हे माता! मुझे भोजन दीजिये। इस समय मुझे अत्यधिक भूख लगी है और मेरी जिह्वाका अग्रभाग तेजीसे सूखा जा रहा है॥ ४५-४६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे हरिश्चन्द्रोपाख्यानवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः॥ २०॥

~~~○~~~

अथैकविंशोऽध्यायः

विश्वामित्रका राजा हरिश्चन्द्रसे दक्षिणा माँगना और रानीका अपनेको विक्रयहेतु प्रस्तुत करना

सूत उवाच

एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तो विश्वामित्रो महातपाः।
अन्तकेन समः क्रुद्धो धनं स्वं याचितुं हृदा॥ १

सूतजी बोले—इतनेमें यमराजके समान क्रोधयुक्त महान् तपस्वी विश्वामित्र मनमें संकल्पित अपना दक्षिणा-सम्बन्धी धन माँगनेके लिये वहाँ आ पहुँचे॥ १॥

तमालोक्य हरिश्चन्द्रः पपात भुवि मूर्च्छितः।
स वारिणा तमभ्युक्ष्य राजानमिदमब्रवीत्॥ २

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ राजेन्द्र स्वां ददस्वेष्टदक्षिणाम्।
ऋणं धारयतां दुःखमहन्यहनि वर्धते॥ ३

उन्हें देखते ही हरिश्चन्द्र मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। विश्वामित्रने जलके छींटे देकर राजासे यह वचन कहा—हे राजेन्द्र! उठिये, उठिये और अपनी अभीष्ट दक्षिणा दीजिये। ऋण धारण करनेवालोंका दुःख दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही रहता है॥ २-३॥
~~~

आप्यायमानः स तदा हिमशीतेन वारिणा।
अवाप्य चेतनां राजा विश्वामित्रमवेक्ष्य च॥ ४

पुनर्मोहं समापेदे ह्यथ क्रोधं ययौ मुनिः।
समाश्वास्य च राजानं वाक्यमाह द्विजोत्तमः॥ ५

विश्वामित्र उवाच

दीयतां दक्षिणा सा मे यदि धैर्यमवेक्षसे।
सत्येनार्कः प्रतपति सत्ये तिष्ठति मेदिनी॥ ६

सत्ये प्रोक्तः परो धर्मः स्वर्गः सत्ये प्रतिष्ठितः।
अश्वमेधसहस्रं तु सत्यं च तुलया धृतम्॥ ७

अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेकं विशिष्यते।
अथवा किं ममैतेन प्रोक्तेनास्ति प्रयोजनम्॥ ८

मदीयां दक्षिणां राजन्न दास्यति भवान्यदि।
अस्ताचलगते ह्यर्के शप्स्यामि त्वामतो ध्रुवम्॥ ९

इत्युक्त्वा स ययौ विप्रो राजा चासीद्भयातुरः।
दुःखीभूतोऽवनौ निःस्वो नृशंसमुनिनार्दितः॥ १०

सूत उवाच

एतस्मिन्नन्तरे तत्र ब्राह्मणो वेदपारगः।
ब्राह्मणैर्बहुभिः सार्धं निर्ययौ स्वगृहाद् बहिः॥ ११

ततो राज्ञी तु तं दृष्ट्वा आयान्तं तापसं स्थितम्।
उवाच वाक्यं राजानं धर्मार्थसहितं तदा॥ १२

त्रयाणामपि वर्णानां पिता ब्राह्मण उच्यते।
पितृद्रव्यं हि पुत्रेण ग्रहीतव्यं न संशयः॥ १३

तस्मादयं प्रार्थनीयो धनार्थमिति मे मतिः।

राजोवाच

नाहं प्रतिग्रहं काङ्क्षे क्षत्रियोऽहं सुमध्यमे॥ १४

याचनं खलु विप्राणां क्षत्रियाणां न विद्यते।
गुरुर्हि विप्रो वर्णानां पूजनीयोऽस्ति सर्वदा॥ १५

तस्माद् गुरुर्न याच्यः स्यात्क्षत्रियाणां विशेषतः।

तत्पश्चात् बर्फतुल्य शीतल जलके छींटेसे आप्यायित होकर राजा चेतनामें आ गये, किंतु विश्वामित्रको देखते ही वे पुनः मूर्च्छित हो गये। इससे मुनि कुपित हो उठे और राजा हरिश्चन्द्रको आश्वासन देते हुए द्विजश्रेष्ठ विश्वामित्र कहने लगे—॥ ४-५॥

विश्वामित्र बोले—यदि आपको धैर्य अभीष्ट है तो मेरी वह दक्षिणा दे दीजिये। सत्यसे ही सूर्य तपता है और सत्यपर ही पृथ्वी टिकी हुई है। परमधर्मको भी सत्यमें स्थित कहा गया है और स्वर्गकी प्रतिष्ठा भी सत्यसे ही है। यदि एक हजार अश्वमेधयज्ञ और सत्य तुलापर रखे जायँ तो सत्य उन हजार अश्वमेधयज्ञोंसे बढ़ जायगा। मेरे यह सब कहनेसे क्या प्रयोजन? हे राजन्! यदि आप मेरी दक्षिणा नहीं दे देते तो सूर्यास्त होते ही मैं आपको निश्चितरूपसे शाप दे दूँगा॥ ६—९॥

ऐसा कहकर वे विप्र विश्वामित्र चले गये। इधर राजा हरिश्चन्द्र भयसे व्याकुल हो उठे और उन नृशंस मुनिके द्वारा पीड़ित वे निर्धन राजा दुःखित होकर पृथ्वीपर बैठ गये॥ १०॥

सूतजी बोले—इसी बीच एक वेदपारंगत विद्वान् ब्राह्मण अनेक ब्राह्मणोंके साथ अपने घरसे बाहर निकले। तत्पश्चात् वहाँ आकर रुके हुए उन तपस्वी ब्राह्मणको देखकर रानीने राजासे धर्म और अर्थसे युक्त वचन कहा—ब्राह्मण तीनों वर्णोंका पिता कहा जाता है। पुत्रके द्वारा पितासे धन लिया जा सकता है, इसमें सन्देह नहीं है। अतः मेरी तो यह सम्मति है कि इस ब्राह्मणसे धनके लिये प्रार्थना की जाय॥ ११—१३½॥

राजा बोले—हे सुमध्यमे! मैं क्षत्रिय हूँ, इसलिये किसीसे दान लेनेकी इच्छा नहीं कर सकता। याचना करना ब्राह्मणोंका कार्य है, क्षत्रियोंका नहीं। ब्राह्मण चारों वर्णोंका गुरु है और सर्वदा पूजनीय है। इसलिये गुरुसे याचना नहीं करनी चाहिये और क्षत्रियोंको विशेषरूपसे इसका पालन करना चाहिये॥ १४-१५½॥

यजनाध्ययनं दानं क्षत्रियस्य विधीयते॥ १६

शरणागतानामभयं प्रजानां प्रतिपालनम्।
न चाप्येवं तु वक्तव्यं देहीति कृपणं वचः॥ १७

ददामीत्येव मे देवि हृदये निहितं वचः।
अर्जितं कुत्रचिद् द्रव्यं ब्राह्मणाय ददाम्यहम्॥ १८

पत्न्युवाच

कालः समविषमकरः परिभवसम्मानमानदः कालः।
कालः करोति पुरुषं दातारं याचितारं च॥ १९

विप्रेण विदुषा राजा क्रुद्धेनातिबलीयसा।
राज्यान्निरस्तः सौख्याच्च पश्य कालस्य चेष्टितम्॥ २०

राजोवाच

असिना तीक्ष्णधारेण वरं जिह्वा द्विधा कृता।
न तु मानं परित्यज्य देहि देहीति भाषितम्॥ २१

क्षत्रियोऽहं महाभागे न याचे किञ्चिदप्यहम्।
ददामि वाहं नित्यं हि भुजवीर्यार्जितं धनम्॥ २२

पत्न्युवाच

यदि ते हि महाराज याचितुं न क्षमं मनः।
अहं तु न्यायतो दत्ता देवैरपि सवासवैः॥ २३

अहं शास्या च पत्या च रक्ष्या चैव महाद्युते।
मन्मौल्यं संगृहीत्वाथ गुर्वर्थं सम्प्रदीयताम्॥ २४

एतद्वाक्यमुपश्रुत्य हरिश्चन्द्रो महीपतिः।
कष्टं कष्टमिति प्रोच्य विललापातिदुःखितः॥ २५

भार्या च भूयः प्राहेदं क्रियतां वचनं मम।
विप्रशापाग्निदग्धत्वान्नीचत्वमुपयास्यसि ॥ २६

यज्ञ करना, अध्ययन करना, दान देना, शरणमें आये हुए लोगोंको अभय देना और प्रजाओंका पालन करना—ये ही कर्म क्षत्रियोंके लिये विहित हैं। 'मुझे कुछ दीजिये'—ऐसा दीन वचन क्षत्रियको नहीं बोलना चाहिये। हे देवि! 'देता हूँ'—ऐसा वचन मेरे हृदयमें सदा विद्यमान रहता है। अतः मैं कहीं से भी धन अर्जित करके उस ब्राह्मणको दूँगा॥ १६—१८॥

पत्नीने कहा—कालके प्रभावसे सम और विषम परिस्थितियाँ आया ही करती हैं। काल ही मनुष्यको सम्मान तथा अपमान प्रदान करता है। यह काल ही मनुष्यको दाता तथा याचक बना देता है॥ १९॥

एक विद्वान्, शक्तिशाली तथा कुपित ब्राह्मणने राजाको सौख्य तथा राज्यसे च्युत कर दिया, कालकी यह विचित्र गति तो देखिये॥ २०॥

राजा बोले—तीक्ष्ण धारवाली तलवारसे जीभके दो टुकड़े हो जाना ठीक है, किंतु सम्मानका त्याग करके 'दीजिये-दीजिये'—ऐसा कहना ठीक नहीं है॥ २१॥

हे महाभागे! मैं क्षत्रिय हूँ, अतः किसीसे कुछ भी माँग नहीं सकता, अपितु अपने बाहुबलसे अर्जित धनका नित्य दान करता हूँ॥ २२॥

पत्नीने कहा—हे महाराज! यदि आपका मन याचना करनेमें समर्थ नहीं है तो इन्द्रसहित सभी देवताओंने न्यायपूर्वक मुझे आपको सौंपा है और आपने स्वामी बनकर मुझ आज्ञाकारिणी पत्नीकी सदा रक्षा की है। अतएव हे महाद्युते! आप मेरा मूल्य लेकर गुरु विश्वामित्रकी दक्षिणा चुका दीजिये॥ २३-२४॥

पत्नीकी यह बात सुनकर राजा हरिश्चन्द्र 'महान् कष्ट है, महान् कष्ट है'—ऐसा कहकर अत्यन्त दुःखित हो विलाप करने लगे॥ २५॥

तब उनकी धर्मपत्नीने पुनः कहा—'आप मेरी यह बात मान लीजिये। अन्यथा विप्रके शापरूपी अग्निसे दग्ध हो जानेपर आपको नीचयोनिमें पहुँचना पड़ेगा। न तो द्यूतक्रीडाके लिये, न मदिरापानके

न द्यूतहेतोर्न च मद्यहेतो-
र्न राज्यहेतोर्न च भोगहेतोः।
ददस्व गुर्वर्थमतो मया त्वं
सत्यव्रतत्वं सफलं कुरुष्व॥ २७

लिये, न राज्यके निमित्त और न तो भोग-विलासके लिये ही आप ऐसा करेंगे। अतः मेरे मूल्यसे गुरुकी दक्षिणा चुका दीजिये और अपने सत्यरूपी व्रतको सफल बनाइये॥ २६-२७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे हरिश्चन्द्रोपाख्यानवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः॥ २१॥

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

राजा हरिश्चन्द्रका रानी और राजकुमारका विक्रय करना और विश्वामित्रको ग्यारह करोड़ स्वर्णमुद्राएँ देना तथा विश्वामित्रका और अधिक धनके लिये आग्रह करना

व्यास उवाच

स तया नोद्यमानस्तु राजा पत्न्या पुनः पुनः।
प्राह भद्रे करोम्येष विक्रयं ते सुनिर्घृणः॥ १

नृशंसैरपि यत्कर्तुं न शक्यं तत्करोम्यहम्।
यदि ते भ्राजते वाणी वक्तुमीदृक्सुनिष्ठुरम्॥ २

व्यासजी बोले—हे राजन्! अपनी धर्मपत्नीके द्वारा बार-बार प्रेरित किये जानेपर राजा हरिश्चन्द्रने कहा—हे भद्रे! मैं अत्यन्त निष्ठुर होकर तुम्हारे विक्रयकी बात स्वीकार करता हूँ। यदि तुम्हारी वाणी ऐसा निष्ठुर वचन बोलनेके लिये तत्पर है तो जिस कामको महान्-से-महान् क्रूर भी नहीं कर सकते, उसे मैं करूँगा॥ १-२॥

एवमुक्त्वा ततो राजा गत्वा नगरमातुरः।
अवतार्य तदा रङ्गे तां भार्यां नृपसत्तमः॥ ३

बाष्पगद्गदकण्ठस्तु ततो वचनमब्रवीत्।
भो भो नागरिकाः सर्वे शृणुध्वं वचनं मम॥ ४

कस्यचिद्यदि कार्यं स्याद्दास्या प्राणेष्टया मम।
स ब्रवीतु त्वरायुक्तो यावत्स्वं धारयाम्यहम्॥ ५

तेऽब्रुवन्पण्डिताः कस्त्वं पत्नीं विक्रेतुमागतः।

ऐसा कहकर नृपश्रेष्ठ राजा हरिश्चन्द्र शीघ्रतापूर्वक नगरमें गये और वहाँ नाटक आदि दिखाये जानेवाले स्थानपर अपनी भार्याको प्रस्तुत करके आँसुओंसे रुँधे हुए कण्ठसे उन्होंने कहा—हे नगरवासियो! आपलोग ध्यानपूर्वक मेरी बात सुनिये। आपलोगोंमेंसे किसीको भी यदि मेरी इस प्राणप्रिया भार्यासे दासीका काम लेनेकी आवश्यकता हो तो वह शीघ्र बोले। मैं जितना धन चाहता हूँ, उतनेमें कोई भी इसे खरीद ले। इसपर वहाँ उपस्थित बहुतसे विद्वान् पुरुषोंने पूछा—'अपनी पत्नीका विक्रय करनेके लिये यहाँ आये हुए तुम कौन हो?'॥ ३—५½॥

राजोवाच

किं मां पृच्छथ कस्त्वं भो नृशंसोऽहममानुषः॥ ६

राक्षसो वास्मि कठिनस्ततः पापं करोम्यहम्।

राजा बोले—आपलोग मुझसे यह क्यों पूछते हैं—'तुम कौन हो?' मैं मनुष्य नहीं; बल्कि महान् क्रूर हूँ, अथवा यह समझिये कि एक भयानक राक्षस हूँ, तभी तो ऐसा पाप कर रहा हूँ॥ ६½॥

व्यास उवाच

तं शब्दं सहसा श्रुत्वा कौशिको विप्ररूपधृक्॥ ७

वृद्धरूपं समास्थाय हरिश्चन्द्रमभाषत।
समर्पयस्व मे दासीमहं क्रेता धनप्रदः॥ ८

व्यासजी बोले—उस शब्दको सुनकर विश्वामित्र एक वृद्ध ब्राह्मणका रूप धारण करके राजा हरिश्चन्द्रके सामने अचानक आ गये और बोले—मैं धन देकर इस दासीको खरीदनेके लिये तत्पर हूँ, अतः इसे मुझे दे दीजिये॥ ७-८॥

अस्ति मे वित्तमतुलं सुकुमारी च मे प्रिया।
गृहकर्म न शक्नोति कर्तुमस्मात्प्रयच्छ मे॥ ९

अहं गृह्णामि दासीं तु कति दास्यामि ते धनम्।
एवमुक्ते तु विप्रेण हरिश्चन्द्रस्य भूपतेः॥ १०

विदीर्णं तु मनो दुःखान्न चैनं किञ्चिदब्रवीत्।

विप्र उवाच

कर्मणश्च वयोरूपशीलानां तव योषितः॥ ११

अनुरूपमिदं वित्तं गृहाणार्पय मेऽबलाम्।
धर्मशास्त्रेषु यद् दृष्टं स्त्रियो मौल्यं नरस्य च॥ १२

द्वात्रिंशल्लक्षणोपेता दक्षा शीलगुणान्विता।
कोटिमौल्यं सुवर्णस्य स्त्रियः पुंसस्तथार्बुदम्॥ १३

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य हरिश्चन्द्रो महीपतिः।
दुःखेन महताविष्टो न चैनं किञ्चिदब्रवीत्॥ १४

ततः स विप्रो नृपतेः पुरतो वल्कलोपरि।
धनं निधाय केशेषु धृत्वा राज्ञीमकर्षयत्॥ १५

राज्ञ्युवाच

मुञ्च मुञ्चार्य मां सद्यो यावत्पश्याम्यहं सुतम्।
दुर्लभं दर्शनं विप्र पुनरस्य भविष्यति॥ १६

पश्येह पुत्र मामेवं मातरं दास्यतां गताम्।
मां मास्प्राक्षी राजपुत्र न स्पृश्याहं त्वयाधुना॥ १७

ततः स बालः सहसा दृष्ट्वाकृष्टां तु मातरम्।
समभ्यधावदम्बेति वदन्साश्रुविलोचनः॥ १८

हस्ते वस्त्रं समाकर्षन् काकपक्षधरः स्खलन्।
तमागतं द्विजः क्रोधाद् बालमप्याहनत्तदा॥ १९
वदंस्तथापि सोऽम्बेति नैव मुञ्चति मातरम्।

मेरे पास बहुत धन है। मेरी पत्नी बहुत ही सुकुमार है, इसलिये वह गृहकार्य नहीं कर पाती, अतः इसे आप मुझे दे दीजिये। मैं इस दासीको स्वीकार तो कर लूँगा, किंतु मुझे इसके बदले आपको धन कितना देना होगा?॥ ९½ ॥

ब्राह्मणके इस प्रकार कहनेपर राजा हरिश्चन्द्रका हृदय दुःखसे विदीर्ण हो गया और वे कुछ भी नहीं बोले॥ १०½ ॥

विप्रने कहा—आपकी भार्याके कर्म, आयु, रूप और स्वभावके अनुसार यह धन दे रहा हूँ, इसे स्वीकार कीजिये और स्त्री मुझे सौंप दें। धर्मशास्त्रोंमें स्त्री तथा पुरुषका जो मूल्य निर्दिष्ट है, वह इस प्रकार है—यदि स्त्री बत्तीसों लक्षणोंसे सम्पन्न, दक्ष, शीलवती और गुणोंसे युक्त हो तो उसका मूल्य एक करोड़ स्वर्णमुद्रा है और उसी प्रकारके पुरुषका मूल्य दस करोड़ स्वर्णमुद्रा होता है॥ ११—१३ ॥

उस ब्राह्मणकी यह बात सुनकर राजा हरिश्चन्द्र महान् दुःखसे व्याकुल हो उठे और उनसे कुछ भी नहीं कह सके॥ १४॥

तत्पश्चात् उस ब्राह्मणने राजाके सामने वल्कलके ऊपर धन रखकर रानीके बालोंको पकड़कर उन्हें खींचना आरम्भ कर दिया॥ १५ ॥

रानीने कहा—हे आर्य! जबतक मैं अपने पुत्रको भलीभाँति देख न लूँ तबतकके लिये आप मुझे छोड़ दीजिये, छोड़ दीजिये; क्योंकि हे विप्र! फिरसे इस पुत्रका दर्शन तो दुर्लभ ही हो जायगा॥ १६ ॥

[तत्पश्चात् रानीने कहा—] हे पुत्र! अब दासी बनी हुई अपनी इस माँकी ओर देखो। हे राजपुत्र! तुम मेरा स्पर्श मत करो; क्योंकि अब मैं तुम्हारे स्पर्शके योग्य नहीं रह गयी हूँ॥ १७ ॥

तदनन्तर [ब्राह्मणके द्वारा] खींची जाती हुई माताको सहसा देखकर उस बालकके नेत्रोंमें अश्रु भर आये और वह 'माँ-माँ' कहता हुआ उनकी ओर दौड़ा॥ १८ ॥

कौवेके पंखके समान केशवाला वह राजकुमार जब हाथसे माताका वस्त्र पकड़कर गिरते हुए साथ चलने लगा, तब वह ब्राह्मण उस आये हुए बालकको क्रोधपूर्वक मारने लगा, फिर भी उस बालकने 'माँ-माँ' कहते हुए अपनी माताको नहीं छोड़ा॥ १९½ ॥

राज्युवाच

प्रसादं कुरु मे नाथ क्रीणीष्वेमं हि बालकम्॥ २०

क्रीतापि नाहं भविता विनैनं कार्यसाधिका।
इत्थं ममाल्पभाग्यायाः प्रसादं कुरु मे प्रभो॥ २१

रानी बोलीं—हे नाथ! मुझपर कृपा कीजिये और इस बालकको भी खरीद लीजिये; क्योंकि आपके द्वारा खरीदी गयी भी मैं इसके बिना आपका कार्य सिद्ध करनेमें समर्थ नहीं रहूँगी। हे प्रभो! मुझ मन्दभागिनीपर इस प्रकारकी कृपा आप अवश्य कीजिये॥ २०-२१॥

ब्राह्मण उवाच

गृह्यतां वित्तमेतत्ते दीयतां मम बालकः।
स्त्रीपुंसोर्धर्मशास्त्रज्ञैः कृतमेव हि वेतनम्॥ २२

शतं सहस्रं लक्षं च कोटिमौल्यं तथापरैः।
द्वात्रिंशल्लक्षणोपेता दक्षा शीलगुणान्विता॥ २३

कोटिमौल्यं स्त्रियः प्रोक्तं पुरुषस्य तथार्बुदम्।

ब्राह्मणने कहा—यह धन लीजिये और अपना पुत्र मुझे दे दीजिये। धर्मशास्त्रज्ञोंने स्त्री-पुरुषका मूल्य निर्धारित कर दिया है—जैसे सौ, हजार, लाख और करोड़। उसी प्रकार अन्य विद्वानोंने शुभ लक्षणोंसे युक्त, कुशल तथा सुन्दर स्वभाववाली स्त्रीका मूल्य एक करोड़ तथा वैसे ही गुणोंवाले पुरुषका मूल्य दस करोड़ बताया है॥ २२-२३½॥

सूत उवाच

तथैव तस्य तद्वित्तं पुरः क्षिप्तं पटे पुनः॥ २४

प्रगृह्य बालकं मात्रा सहैकस्थमबन्धयत्।
प्रतस्थे स गृहं क्षिप्रं तया सह मुदान्वितः॥ २५

सूतजी बोले—तब ब्राह्मणने उसी प्रकार बालकका मूल्य भी सामने रखे हुए वस्त्रपर फेंक दिया और फिर बालकको पकड़कर उसे माताके साथ ही बन्धनमें बाँध दिया। इसके बाद वह ब्राह्मण उन्हें साथ लेकर हर्षपूर्वक शीघ्र ही अपने घरकी ओर चल दिया॥ २४-२५॥

प्रदक्षिणां तु सा कृत्वा जानुभ्यां प्रणता स्थिता।
बाष्पपर्याकुला दीना त्विदं वचनमब्रवीत्॥ २६

यदि दत्तं यदि हुतं ब्राह्मणास्तर्पिता यदि।
तेन पुण्येन मे भर्ता हरिश्चन्द्रोऽस्तु वै पुनः॥ २७

उस समय अत्यन्त दयनीय अवस्थाको प्राप्त रानी राजा हरिश्चन्द्रकी प्रदक्षिणा करके दोनों घुटनोंके सहारे झुककर उन्हें प्रणामकर स्थित हो गयी और नेत्रोंमें आँसू भरकर यह वचन बोली—यदि मैंने दान दिया हो, हवन किया हो तथा ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट किया हो तो उस पुण्यके प्रभावसे राजा हरिश्चन्द्र पुनः मुझे पतिरूपमें प्राप्त हो जायँ॥ २६-२७॥

पादयोः पतितां दृष्ट्वा प्राणेभ्योऽपि गरीयसीम्।
हाहेति च वदन् राजा विललापाकुलेन्द्रियः॥ २८

वियुक्तेयं कथं जाता सत्यशीलगुणान्विता।
वृक्षच्छायापि वृक्षं तं न जहाति कदाचन॥ २९

अपने प्राणसे भी बढ़कर प्रिय रानीको चरणोंपर पड़ी हुई देखकर 'हाय, हाय'—ऐसा कहते हुए व्याकुल इन्द्रियोंवाले राजा हरिश्चन्द्र विलाप करने लगे। सत्य, शील और गुणोंसे सम्पन्न मेरी यह भार्या मुझसे अलग कैसे हो गयी? वृक्षकी छाया भी उस वृक्षको कभी नहीं छोड़ती॥ २८-२९॥

एवं भार्यां वदित्वाथ सुसम्बद्धं परस्परम्।
पुत्रं च तमुवाचेदं मां त्वं हित्वा क्व यास्यसि॥ ३०
कां दिशं प्रति यास्यामि को मे दुःखं निवारयेत्।

इस प्रकार परस्पर घनिष्ठता प्रकट करनेवाला यह वचन भार्यासे कहकर राजाने उस पुत्रसे ऐसा कहा—मुझे छोड़कर तुम कहाँ जाओगे, फिर मैं किस दिशामें जाऊँगा और मेरा दुःख कौन दूर करेगा?॥ ३०½॥

राज्यत्यागे न मे दुःखं वनवासे न मे द्विज॥ ३१

यत्पुत्रेण वियोगो मे एवमाह स भूपतिः।
सद्भर्तृभोग्या हि सदा लोके भार्या भवन्ति हि॥ ३२

मया त्यक्तासि कल्याणि दुःखेन विनियोजिता।
इक्ष्वाकुवंशसम्भूतं सर्वराज्यसुखोचितम्॥ ३३

मामीदृशं पतिं प्राप्य दासीभावं गता ह्यसि।
ईदृशे मज्जमानं मां सुमहच्छोकसागरे॥ ३४

को मामुद्धरते देवि पौराणाख्यानविस्तरैः।

सूत उवाच

पश्यतस्तस्य राजर्षेः कशाघातैः सुदारुणैः॥ ३५

घातयित्वा तु विप्रेशो नेतुं समुपचक्रमे।
नीयमानौ तु तौ दृष्ट्वा भार्यापुत्रौ स पार्थिवः॥ ३६

विललापातिदुःखार्तो निःश्वस्योष्णं पुनः पुनः।
यां न वायुर्न वादित्यो न चन्द्रो न पृथग्जनाः॥ ३७

दृष्टवन्तः पुरा पत्नीं सेयं दासीत्वमागता।
सूर्यवंशप्रसूतोऽयं सुकुमारकराङ्गुलिः॥ ३८

सम्प्राप्तो विक्रयं बालो धिङ्मामस्तु सुदुर्मतिम्।
हा प्रिये हा शिशो वत्स ममानार्यस्य दुर्नयः॥ ३९

दैवाधीनदशां प्राप्तो न मृतोऽस्मि तथापि धिक्।

व्यास उवाच

एवं विलपतो राज्ञोऽग्रे विप्रोऽन्तरधीयत॥ ४०

वृक्षगेहादिभिस्तुङ्गैस्तावादाय त्वरान्वितः।
अत्रान्तरे मुनिश्रेष्ठस्त्वाजगाम महातपाः॥ ४१

सशिष्यः कौशिकेन्द्रोऽसौ निष्ठुरः क्रूरदर्शनः।

विश्वामित्र उवाच

या त्वयोक्ता पुरा राजन् राजसूयस्य दक्षिणा॥ ४२
तां ददस्व महाबाहो यदि सत्यं पुरस्कृतम्।

हे द्विज! राज्यका परित्याग करने और वनवास करनेमें मुझे वह दुःख नहीं होगा, जो पुत्रके वियोगसे हो रहा है—ऐसा उस राजाने कहा। [तत्पश्चात् रानीको लक्ष्य करके राजा कहने लगे—] इस लोकमें पत्नियाँ सदा अपने उत्तम पतिके सहयोगहेतु होती हैं, फिर भी हे कल्याणि! मैंने तुम्हारा परित्याग कर दिया है और तुम्हें दुःखी बना दिया है॥ ३१-३२½ ॥

इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न तथा राज्यके सम्पूर्ण सुख-सुविधाओंसे सम्पन्न मुझ-जैसे पतिको पाकर भी तुम दासी बन गयी हो। हे देवि! विस्तृत पौराणिक आख्यानोंके द्वारा इस महान् शोकरूपी सागरमें डूब रहे मुझ दीनका उद्धार अब कौन करेगा?॥ ३३-३४½ ॥

सूतजी बोले—तदनन्तर राजर्षि हरिश्चन्द्रके सामने ही कोड़ेसे निष्ठुरतापूर्वक पीटते हुए वह विप्रश्रेष्ठ उन्हें ले जानेका प्रयत्न करने लगा॥ ३५½ ॥

अपनी भार्या तथा पुत्रको ब्राह्मणके द्वारा ले जाते हुए देखकर वे राजा हरिश्चन्द्र अत्यन्त दुःखसे व्याकुल होकर बार-बार उष्ण श्वास लेकर विलाप करने लगे—अबतक जिसे वायु, सूर्य, चन्द्रमा तथा पृथ्वीके लोग देख नहीं सके थे, वही मेरी यह भार्या आज दासी बन गयी! हाथोंकी कोमल अँगुलियोंवाला यह बालक, जो सूर्य-वंशमें उत्पन्न है, आज बिक गया। मुझ दुर्बुद्धिको धिक्कार है। हा प्रिये! हा बालक! हा वत्स! मुझ अधमकी दुर्नीतिके कारण ही तुम सब इस दैवाधीन दशाको प्राप्त हुए हो, फिर भी मेरी मृत्यु नहीं हुई, अतः मुझे धिक्कार है॥ ३६—३९½ ॥

व्यासजी बोले—उन दोनोंको लेकर ऊँचे-ऊँचे वृक्ष, घर आदिको पार करते हुए वे ब्राह्मण इस तरह विलाप कर रहे राजाके सामनेसे शीघ्रतापूर्वक अन्तर्धान हो गये। इसी समय महान् तपस्वी मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्र अपने शिष्यके साथ वहाँ आ पहुँचे; उस समय वे कौशिकेन्द्र अत्यन्त निष्ठुर तथा क्रूर दृष्टिगत हो रहे थे॥ ४०-४१½ ॥

विश्वामित्र बोले—हे राजन्! हे महाबाहो! यदि आपने सत्यको सदा स्वीकार किया है तो राजसूययज्ञकी जिस दक्षिणाका वचन आपने पहले दे रखा है, उसे अब दे दीजिये॥ ४२½ ॥

हरिश्चन्द्र उवाच

नमस्करोमि राजर्षे गृहाणेमां स्वदक्षिणाम्॥ ४३

राजसूयस्य यागस्य या मयोक्ता पुरानघ।

विश्वामित्र उवाच

कुतो लब्धमिदं द्रव्यं दक्षिणार्थे प्रदीयते॥ ४४

एतदाचक्ष्व राजेन्द्र यथा द्रव्यं त्वयार्जितम्।

राजोवाच

किमनेन महाभाग कथितेन तवानघ॥ ४५

शोकस्तु वर्धते विप्र श्रुतेनानेन सुव्रत।

ऋषिरुवाच

अशस्तं नैव गृह्णामि शस्तमेव प्रयच्छ मे॥ ४६

द्रव्यस्यागमनं राजन् कथयस्व यथातथम्।

राजोवाच

मया देवी तु सा भार्या विक्रीता कोटिसम्मितैः॥ ४७

निष्कैः पुत्रो रोहिताख्यो विक्रीतोऽर्बुदसंख्यया।
विप्रैकादशकोट्यस्त्वं सुवर्णस्य गृहाण मे॥ ४८

सूत उवाच

तद्वित्तं स्वल्पमालक्ष्य दारविक्रयसम्भवम्।
शोकाभिभूतं राजानं कुपितः कौशिकोऽब्रवीत्॥ ४९

ऋषिरुवाच

राजसूयस्य यज्ञस्य नैषा भवति दक्षिणा।
अन्यदुत्पादय क्षिप्रं सम्पूर्णा येन सा भवेत्॥ ५०

क्षत्रबन्धो ममेमां त्वं सदृशीं यदि दक्षिणाम्।
मन्यसे तर्हि तत्क्षिप्रं पश्य त्वं मे परं बलम्॥ ५१

तपसोऽस्य सुतप्तस्य ब्राह्मणस्यामलस्य च।
मत्प्रभावस्य चोग्रस्य शुद्धस्याध्ययनस्य च॥ ५२

राजोवाच

अन्यद्दास्यामि भगवन् कालः कश्चित्प्रतीक्ष्यताम्।
अधुनैवास्ति विक्रीता पत्नी पुत्रश्च बालकः॥ ५३

हरिश्चन्द्र बोले—हे राजर्षे! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। हे अनघ! राजसूययज्ञके अवसरपर पहले मैंने जिस दक्षिणाकी प्रतिज्ञा की थी, यह अपनी दक्षिणा आप ग्रहण कीजिये॥ ४३½॥

विश्वामित्र बोले—हे राजन्! दक्षिणाके निमित्त जो यह धन आप दे रहे हैं, उसे आपने कहाँसे प्राप्त किया है? आपने जिस तरहसे यह धन अर्जित किया है, उसे मुझे साफ-साफ बताइये॥ ४४½॥

राजा बोले—हे महाभाग! हे अनघ! अब यह सब बतानेसे क्या प्रयोजन; क्योंकि उत्तम व्रतका पालन करनेवाले हे विप्र! इसे सुननेसे आपका शोक ही बढ़ेगा॥ ४५½॥

ऋषि बोले—हे राजन्! मैं दूषित धन कदापि ग्रहण नहीं करता, मुझे पवित्र धन दीजिये और जिस उपायसे द्रव्य प्राप्त हुआ हो, उसे यथार्थरूपसे बता दीजिये॥ ४६½॥

राजा बोले—हे विप्र! मैंने अपनी उस साध्वी भार्याको एक करोड़ स्वर्णमुद्रामें और अपने रोहित नामक पुत्रको दस करोड़ स्वर्णमुद्रामें बेच दिया है। हे विप्र! इस प्रकार मेरे पास एकत्र इन ग्यारह करोड़ स्वर्णमुद्राओंको आप स्वीकार करें॥ ४७-४८॥

सूतजी बोले—स्त्री और पुत्रको बेचनेपर प्राप्त हुए धनको अल्प समझकर विश्वामित्रने क्रोधित होकर शोकग्रस्त राजा हरिश्चन्द्रसे कहा—॥ ४९॥

ऋषि बोले—राजसूययज्ञकी इतनी ही दक्षिणा नहीं होती, अतः शीघ्र ही और धनका उपार्जन कीजिये, जिससे वह दक्षिणा पूर्ण हो सके। क्षत्रियधर्मका पालन करनेसे विमुख हे राजन्! यदि आप मेरी दक्षिणाको इतने द्रव्यके ही तुल्य मानते हैं तो फिर मेरे परम तेजको शीघ्र ही देख लीजिये। अत्यन्त पवित्र अन्तःकरणवाले मुझ ब्राह्मणकी कठोर तपस्या तथा मेरे विशुद्ध अध्ययनके प्रभावको आप अभी देख लें॥ ५०—५२॥

राजा बोले—हे भगवन्! मैं इसके अतिरिक्त और भी दक्षिणा दूँगा, किंतु कुछ समयतक प्रतीक्षा कीजिये। अभी-अभी मैंने अपनी पत्नी तथा अबोध पुत्रको बेचा है॥ ५३॥

विश्वामित्र उवाच

चतुर्भागः स्थितो योऽयं दिवसस्य नराधिप।
एष एव प्रतीक्ष्यो मे वक्तव्यं नोत्तरं त्वया॥ ५४

विश्वामित्र बोले—हे नराधिप! दिनका चौथा प्रहर उपस्थित है; यही प्रतीक्षाका अन्तिम समय है। इसके बाद फिर आप मुझसे कुछ न कहियेगा॥ ५४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे हरिश्चन्द्रस्य पत्नीपुत्रविक्रयवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः॥ २२॥

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

विश्वामित्रका राजा हरिश्चन्द्रको चाण्डालके हाथ बेचकर ऋणमुक्त करना

व्यास उवाच

तमेवमुक्त्वा राजानं निर्घृणं निष्ठुरं वचः।
तदादाय धनं पूर्णं कुपितः कौशिको ययौ॥ १

विश्वामित्रे गते राजा ततः शोकमुपागतः।
श्वासोच्छ्वासं मुहुः कृत्वा प्रोवाचोच्चैरधोमुखः॥ २

वित्तक्रीतेन यस्यार्तिर्मया प्रेतेन गच्छति।
स ब्रवीतु त्वरायुक्तो यामे तिष्ठति भास्करः॥ ३

अथाजगाम त्वरितो धर्मश्चाण्डालरूपधृक्।
दुर्गन्धो विकृतोरस्कः श्मश्रुलो दन्तुरोऽघृणी॥ ४

कृष्णो लम्बोदरः स्निग्धः करालः पुरुषाधमः।
हस्तजर्जरयष्टिश्च शवमाल्यैरलङ्कृतः॥ ५

व्यासजी बोले—राजा हरिश्चन्द्रसे इस प्रकारका दयाहीन एवं निष्ठुर वचन कहकर और वह सम्पूर्ण धन लेकर कुपित विश्वामित्र वहाँसे चले गये॥ १॥

विश्वामित्रके चले जानेपर राजा शोकसन्तप्त हो उठे। वे बार-बार दीर्घ साँसें लेते हुए तथा नीचेकी ओर मुख करके उच्च स्वरसे बोलने लगे—धनसे बिक जानेके लिये उद्यत प्रेतरूप मुझसे जिसका दुःख दूर हो सके, वह अभी शीघ्रता करके सूर्यके चौथे प्रहरमें रहते-रहते मुझसे बात कर ले॥ २-३॥

इतनेमें शीघ्र ही वहाँ चाण्डालका रूप धारण करके धर्मदेव आ पहुँचे। उस चाण्डालके शरीरसे दुर्गन्ध आ रही थी। उसका वक्ष भयानक था, उसकी विशाल दाढ़ी थी, उसके दाँत बड़े थे और वह बड़ा निर्दयी लग रहा था। उस नराधम तथा भयावने चाण्डालके शरीरका वर्ण काला था, उसका उदर लम्बा था, वह बहुत मोटा था, उसने अपने हाथमें एक जर्जर लाठी ले रखी थी और वह शवोंकी मालाओंसे अलंकृत था॥ ४-५॥

चाण्डाल उवाच

अहं गृह्णामि दासत्वे भृत्यार्थः सुमहान्मम।
क्षिप्रमाचक्ष्व मौल्यं किमेतत्ते सम्प्रदीयते॥ ६

चाण्डाल बोला—मैं तुम्हें दासके रूपमें रखना चाहता हूँ; क्योंकि मुझे सेवककी अत्यन्त आवश्यकता है। शीघ्र बताओ कि इसके लिये तुम्हें कितना मूल्य देना होगा?॥ ६॥

व्यास उवाच

तं तादृशमथालक्ष्य क्रूरदृष्टिं सुनिर्घृणम्।
वदन्तमतिदुःशीलं कस्त्वमित्याह पार्थिवः॥ ७

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] अत्यन्त क्रूर दृष्टिवाले उस निष्ठुर तथा अविनीत चाण्डालको इस प्रकार बोलते हुए देखकर महाराज हरिश्चन्द्रने यह पूछा—'तुम कौन हो?'॥ ७॥

चाण्डाल उवाच

चाण्डालोऽहमिह ख्यातः प्रवीरेति नृपोत्तम।
शासने सर्वदा तिष्ठ मृतचैलापहारकः॥ ८

एवमुक्तस्तदा राजा वचनं चेदमब्रवीत्।
ब्राह्मणः क्षत्रियो वापि गृह्णात्विति मतिर्मम॥ ९

उत्तमस्योत्तमो धर्मो मध्यमस्य च मध्यमः।
अधमस्याधमश्चैव इति प्राहुर्मनीषिणः॥ १०

चाण्डाल उवाच

एवमेव त्वया धर्मः कथितो नृपसत्तम।
अविचार्य त्वया राजन्नधुनोक्तं ममाग्रतः॥ ११

विचारयित्वा यो ब्रूते सोऽभीष्टं लभते नरः।
सामान्यमेव तत्प्रोक्तमविचार्य त्वयानघ॥ १२

यदि सत्यं प्रमाणं ते गृहीतोऽसि न संशयः।

हरिश्चन्द्र उवाच

असत्यान्नरके गच्छेत्सद्यः क्रूरे नराधमः॥ १३

ततश्चाण्डालता साध्वी न वरा मे ह्यसत्यता।

व्यास उवाच

तस्यैवं वदतः प्राप्तो विश्वामित्रस्तपोनिधिः॥ १४

क्रोधामर्षविवृत्ताक्षः प्राह चेदं नराधिपम्।
चाण्डालोऽयं मनस्थं ते दातुं वित्तमुपस्थितः॥ १५

कस्मान्न दीयते मह्यमशेषा यज्ञदक्षिणा।

राजोवाच

भगवन्सूर्यवंशोत्थमात्मानं वेद्मि कौशिक॥ १६

कथं चाण्डालदासत्वं गमिष्ये वित्तकामतः।

चाण्डाल बोला—हे राजेन्द्र! मैं 'प्रवीर' इस नामसे यहाँपर विख्यात एक चाण्डाल हूँ। मृत व्यक्तिका वस्त्र ग्रहण करना यहाँ तुम्हारा कार्य होगा और तुम्हें सदा मेरी आज्ञाका पालन करना पड़ेगा॥ ८॥

चाण्डालके ऐसा कहनेपर राजाने यह वचन कहा, 'मेरा तो ऐसा विचार है कि ब्राह्मण या क्षत्रिय—कोई भी मुझे ग्रहण कर ले; क्योंकि उत्तम पुरुषके साथ उत्तमका, मध्यमके साथ मध्यमका और अधमके साथ अधमका धर्म स्थित रहता है'—ऐसा विद्वानोंने कहा है॥ ९-१०॥

चाण्डाल बोला—हे नृपश्रेष्ठ! हे राजन्! आपने इस समय मेरे समक्ष जो धर्मका स्वरूप व्यक्त किया है, वह बिना सोचे-समझे ही आपने कहा है। जो मनुष्य सम्यक् सोच-समझकर बोलता है, वह अभीष्ट फल प्राप्त करता है, किंतु हे अनघ! आपने बिना विचार किये ही जो सामान्य बात है, उसे कह दिया। यदि आप सत्यको प्रमाण मानते हैं तो आप मेरे द्वारा खरीदे जा चुके हैं; इसमें कोई सन्देह नहीं है॥ ११-१२½ ॥

हरिश्चन्द्र बोले—असत्य भाषण करनेके कारण अधम मनुष्य शीघ्र ही भयानक नरकमें जाता है। अतः मेरे लिये चाण्डाल बन जाना उचित है, किंतु असत्यका आश्रय लेना श्रेष्ठ नहीं है॥ १३½ ॥

व्यासजी बोले—वे ऐसा बोल ही रहे थे कि क्रोध और अमर्षसे फैली हुई आँखोंवाले तपोनिधि विश्वामित्र वहाँ आ पहुँचे और उन्होंने राजासे यह कहा—यह चाण्डाल आपके मनके अनुसार धन देनेके लिये यहाँ उपस्थित है, तब आप [इससे अपना मूल्य लेकर] यज्ञकी सम्पूर्ण दक्षिणा मुझे क्यों नहीं दे देते?॥ १४-१५॥

राजा बोले—हे भगवन्! हे कौशिक! मैं अपनेको सूर्यवंशमें उत्पन्न समझता हूँ, अतः मैं धनके लोभसे चाण्डालके दासत्वको कैसे प्राप्त होऊँ?॥ १६½ ॥

विश्वामित्र उवाच

यदि चाण्डालवित्तं त्वमात्मविक्रयजं मम॥ १७

न प्रदास्यसि चेत्तर्हि शप्स्यामि त्वामसंशयम्।
चाण्डालादथवा विप्राद्देहि मे दक्षिणाधनम्॥ १८

विना चाण्डालमधुना नान्यः कश्चिद्धनप्रदः।
धनेनाहं विना राजन्न यास्यामि न संशयः॥ १९

इदानीमेव मे वित्तं न प्रदास्यसि चेन्नृप।
दिनेऽर्धघटिकाशेषे तत्त्वां शापाग्निना दहे॥ २०

विश्वामित्र बोले—यदि आप स्वयंको चाण्डालके हाथ बेचकर उससे प्राप्त धन मुझे नहीं दे देते तो मैं आपको निःसन्देह शाप दे दूँगा। चाण्डाल अथवा ब्राह्मण—किसीसे भी द्रव्य लेकर मेरी दक्षिणा दे दीजिये। फिर इस समय चाण्डालके अतिरिक्त कोई अन्य व्यक्ति आपको धन देनेवाला है नहीं। और हे राजन्! यह भी निश्चित है कि मैं धन लिये बिना नहीं जाऊँगा। हे नृप! यदि आप अभी मेरा धन नहीं देंगे तो दिनके चौथे प्रहरकी आधी घड़ी शेष रह जानेपर मैं शापरूपी अग्निसे आपको भस्म कर दूँगा॥ १७—२०॥

व्यास उवाच

हरिश्चन्द्रस्ततो राजा मृतवच्छ्रितजीवितः।
प्रसीदेति वदन्पादौ ऋषेर्जग्राह विह्वलः॥ २१

व्यासजी बोले—तब राजा हरिश्चन्द्रने जीवित रहते हुए भी मृतकके समान होकर 'आप प्रसन्न हों'—ऐसा कहते हुए विकलतापूर्वक ऋषि विश्वामित्रके पाँव पकड़ लिये॥ २१॥

हरिश्चन्द्र उवाच

दासोऽस्म्यार्तोऽस्मि दीनोऽस्मि त्वद्भक्तश्च विशेषतः।
प्रसादं कुरु विप्रर्षे कष्टश्चाण्डालसङ्करः॥ २२

भवेयं वित्तशेषेण तव कर्मकरो वशः।
तवैव मुनिशार्दूल प्रेष्यश्चित्तानुवर्तकः॥ २३

हरिश्चन्द्र बोले—हे विप्रर्षे! मैं आपका दास हूँ, अत्यन्त दुःखी हूँ, दीन हूँ और विशेषरूपसे आपका भक्त हूँ। चाण्डालके सम्पर्कमें रहना बड़ा ही कष्टप्रद है, अतः मुझपर अनुग्रह कीजिये। अवशिष्ट धन चुकानेके लिये मैं आपके अधीन आपका सेवक बनूँगा। हे मुनिश्रेष्ठ! आपके मनकी इच्छाओंके अनुसार कार्य करता हुआ मैं आपका सदा दास बना रहूँगा॥ २२-२३॥

विश्वामित्र उवाच

एवमस्तु महाराज ममैव भव किङ्करः।
किंतु मद्वचनं कार्यं सर्वदैव नराधिप॥ २४

विश्वामित्र बोले—हे महाराज! ऐसा ही हो, आप मेरे ही दास हो जाइये, किंतु हे नराधिप! आपको सदा मेरे वचनोंका पालन करना पड़ेगा॥ २४॥

व्यास उवाच

एवमुक्तेऽथ वचने राजा हर्षसमन्वितः।
अमन्यत पुनर्जातमात्मानं प्राह कौशिकम्॥ २५

तवादेशं करिष्यामि सदैवाहं न संशयः।
आदेशय द्विजश्रेष्ठ किं करोमि तवानघ॥ २६

व्यासजी बोले—विश्वामित्रके इस प्रकार कहनेपर राजा अत्यन्त हर्षित हो उठे और उन्होंने इसे अपना पुनर्जन्म समझा। वे विश्वामित्रसे कहने लगे—हे द्विजश्रेष्ठ! मैं सदा आपकी आज्ञाका पालन करूँगा; इसमें कोई संशय नहीं है। हे अनघ! आदेश दीजिये, आपका कौन-सा कार्य सम्पन्न करूँ॥ २५-२६॥

विश्वामित्र उवाच

चाण्डालागच्छ मद्दासमौल्यं किं मे प्रयच्छसि।
गृहाण दासं मौल्येन मया दत्तं तवाधुना॥ २७
नास्ति दासेन मे कार्यं वित्ताशा वर्तते मम।

विश्वामित्र बोले—हे चाण्डाल! इधर आओ, तुम मेरे इस दासका क्या मूल्य दोगे? मूल्य लेकर मैं तुम्हें इसे इसी समय दे दूँगा। तुम इसे स्वीकार कर लो; क्योंकि मुझे दाससे कोई प्रयोजन नहीं है, मुझे तो केवल धनकी आवश्यकता है॥ २७½॥

व्यास उवाच

एवमुक्ते तदा तेन श्वपचो हृष्टमानसः॥ २८

आगत्य सन्निधौ तूर्णं विश्वामित्रमभाषत।

चाण्डाल उवाच

दशयोजनविस्तीर्णे प्रयागस्य च मण्डले॥ २९

भूमिं रत्नमयीं कृत्वा दास्ये तेऽहं द्विजोत्तम।
अस्य विक्रयणेनेयमार्तिश्च प्रहता त्वया॥ ३०

व्यास उवाच

ततो रत्नसहस्राणि सुवर्णमणिमौक्तिकैः।
चाण्डालेन प्रदत्तानि जग्राह द्विजसत्तमः॥ ३१

हरिश्चन्द्रस्तथा राजा निर्विकारमुखोऽभवत्।
अमन्यत तथा धैर्याद्विश्वामित्रो हि मे पतिः॥ ३२

तत्तदेव मया कार्यं यदयं कारयिष्यति।
अथान्तरिक्षे सहसा वागुवाचाशरीरिणी॥ ३३

अनृणोऽसि महाभाग दत्ता सा दक्षिणा त्वया।
ततो दिवः पुष्पवृष्टिः पपात नृपमूर्धनि॥ ३४

साधु साध्विति तं देवाः प्रोचुः सेन्द्रा महौजसः।
हर्षेण महताविष्टो राजा कौशिकमब्रवीत्॥ ३५

राजोवाच

त्वं हि माता पिता चैव त्वं हि बन्धुर्महामते।
यदर्थं मोचितोऽहं ते क्षणाच्चैवानृणीकृतः॥ ३६

किं करोमि महाबाहो श्रेयो मे वचनं तव।
एवमुक्ते तु वचने नृपं मुनिरभाषत॥ ३७

विश्वामित्र उवाच

चाण्डालवचनं कार्यमद्यप्रभृति ते नृप।
स्वस्ति तेऽस्त्विति तं प्रोच्य तदादाय धनं ययौ॥ ३८

व्यासजी बोले—उनके इस प्रकार कहनेपर चाण्डालके मनमें प्रसन्नता आ गयी। विश्वामित्रके पास तत्काल आकर वह उनसे कहने लगा॥ २८½ ॥

चाण्डाल बोला—हे द्विजवर! प्रयागके दस योजन विस्तारवाले मण्डलकी भूमिको रत्नमय कराकर मैं आपको दे दूँगा। इसके विक्रयसे आपने मेरा यह महान् कष्ट दूर कर दिया॥ २९-३० ॥

व्यासजी बोले—तत्पश्चात् स्वर्ण, मणि और मोतियोंसे युक्त हजारों प्रकारके दिये गये रत्नोंको द्विजश्रेष्ठ विश्वामित्रने प्राप्त किया॥ ३१ ॥

इससे राजा हरिश्चन्द्रके मुखपरसे उदासी दूर हो गयी और उन्होंने धैर्यपूर्वक यह मान लिया कि विश्वामित्र ही मेरे स्वामी हैं, मुझे तो केवल वही करना है जो ये करायेंगे॥ ३२½ ॥

उसी समय सहसा अन्तरिक्षमें यह आकाशवाणी हुई कि हे महाभाग! आपने मेरी वह दक्षिणा दे दी और अब आप ऋणसे मुक्त हो गये हैं॥ ३३½ ॥

इसके बाद राजा हरिश्चन्द्रके मस्तकपर आकाशसे पुष्पवर्षा होने लगी और इन्द्रसहित महान् ओजवाले सभी देवता उन महाराज हरिश्चन्द्रके प्रति 'साधु-साधु' कहने लगे। तब अत्यन्त हर्षित होकर राजा हरिश्चन्द्र विश्वामित्रसे कहने लगे—॥ ३४-३५ ॥

राजा बोले—हे महामते! आप ही मेरे माता-पिता तथा आप ही मेरे बन्धु हैं; क्योंकि आपने मुझे मुक्त कर दिया और क्षणभरमें ऋणरहित भी बना दिया। हे महाबाहो! आपका वचन मेरे लिये कल्याणप्रद है। कहिये, अब मैं कौन-सा कार्य करूँ? राजाके इस प्रकार कहनेपर मुनि उनसे कहने लगे॥ ३६-३७ ॥

विश्वामित्र बोले—हे राजन्! आजसे इस चाण्डालका वचन मानना आपका कर्तव्य होगा। आपका कल्याण हो—उनसे ऐसा कहकर और वह धन लेकर विश्वामित्र वहाँसे चले गये॥ ३८ ॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे हरिश्चन्द्रोपाख्यानवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः॥ २३॥



अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

चाण्डालका राजा हरिश्चन्द्रको श्मशानघाटमें नियुक्त करना

शौनक उवाच

ततः किमकरोद्राजा चाण्डालस्य गृहे गतः।
तद् ब्रूहि सूतवर्य त्वं पृच्छतः सत्वरं हि मे॥ १

सूत उवाच

विश्वामित्रे गते विप्रे श्वपचो हृष्टमानसः।
विश्वामित्राय तद् द्रव्यं दत्त्वा बद्ध्वा नरेश्वरम्॥ २

असत्यो यास्यसीत्युक्त्वा दण्डेनाताडयत्तदा।
दण्डप्रहारसम्भ्रान्तमतीव व्याकुलेन्द्रियम्॥ ३

इष्टबन्धुवियोगार्तमानीय निजपक्कणे।
निगडे स्थापयित्वा तं स्वयं सुष्वाप विज्वरः॥ ४

निगडस्थस्ततो राजा वसंश्चाण्डालपक्कणे।
अन्नपाने परित्यज्य सदा वै तदशोचयत्॥ ५

तन्वी दीनमुखी दृष्ट्वा बालं दीनमुखं पुरः।
मां स्मरन्त्यसुखाविष्टा मोक्षयिष्यति नौ नृपः॥ ६

उपात्तवित्तो विप्राय दत्त्वा वित्तं प्रतिश्रुतम्।
रोदमानं सुतं वीक्ष्य मां च सम्बोधयिष्यति॥ ७

तातपार्श्वं व्रजामीति रुदन्तं बालकं पुनः।
तात तातेति भाषन्तं तथा सम्बोधयिष्यति॥ ८

न सा मां मृगशावाक्षी वेत्ति चाण्डालतां गतम्।
राज्यनाशः सुहृत्त्यागो भार्यातनयविक्रयः॥ ९

ततश्चाण्डालता चेयमहो दुःखपरम्परा।
एवं स निवसन्नित्यं स्मरंश्च दयितां सुतम्॥ १०

निनाय दिवसान् राजा चतुरो विधिपीडितः।
अथाह्नि पञ्चमे तेन निगडान्मोचितो नृपः॥ ११

चाण्डालेनानुशिष्टश्च मृतचैलापहारणे।
क्रुद्धेन परुषैर्वाक्यैर्निर्भर्त्स्य च पुनः पुनः॥ १२

शौनक बोले—हे श्रेष्ठ सूतजी! चाण्डालके घर जाकर राजा हरिश्चन्द्रने क्या किया? आप मेरे प्रश्नका उत्तर शीघ्र ही दीजिये॥ १॥

सूतजी बोले—विश्वामित्रको वह दक्षिणाद्रव्य देकर चाण्डाल प्रसन्नचित्त हो गया। तत्पश्चात् विप्र विश्वामित्रके चले जानेपर वह चाण्डाल नरेशको बाँधकर 'तुम पुनः झूठ बोलोगे'—ऐसा कहकर उन्हें दण्डसे मारने लगा। दण्डके प्रहारसे घबड़ाये हुए तथा अत्यन्त व्याकुल इन्द्रियोंवाले और अपने इष्ट-मित्रोंके वियोगसे दुःखित उन हरिश्चन्द्रको अपने गृहमें लाकर तथा जंजीरमें बाँधकर वह चाण्डाल स्वयं निश्चिन्त होकर सो गया॥ २—४॥

जंजीरमें जकड़े हुए वे राजा हरिश्चन्द्र चाण्डालके घरमें रहते हुए अन्न और जलका परित्याग करके निरन्तर मनमें यह सोचते रहते थे—'उदास मुखवाली मेरी दुर्बल स्त्री दीन मुखवाले बालकको सम्मुख देखकर असीम कष्टसे भर जाती होगी और मुझे याद करके सोचती होगी कि धन अर्जित करके प्रतिज्ञा की गयी दक्षिणा ब्राह्मणको देकर वे राजा हम दोनोंको बन्धनसे मुक्त कर देंगे। रोते हुए पुत्रको देखकर वह मुझे पुकारती होगी; पुनः 'हे तात! हे तात!'—ऐसा कहते हुए तथा रोते हुए बालकसे कहती होगी कि मैं तुम्हारे पिताके पास तुम्हें ले चल रही हूँ, किंतु वह मृगनयनी यह नहीं जानती कि मैं चाण्डालकी दासताको प्राप्त हो गया हूँ॥ ५—८½॥

राज्य नष्ट हो गया, इष्ट-मित्र अलग हो गये, स्त्री एवं पुत्र बिक गये, मुझे चाण्डालता स्वीकार करनी पड़ी। अहो! यह विधिकी कैसी दुःख-परम्परा है। इस प्रकार चाण्डालके घर रहते हुए तथा निरन्तर स्त्री और पुत्रका स्मरण करते हुए दैवके विधानसे परम दुःखी उन नरेशने चार दिन व्यतीत किये। पाँचवें दिन चाण्डालने उन्हें बन्धनसे मुक्त किया। तत्पश्चात् चाण्डालने उन्हें [श्मशानपर] मृत व्यक्तियोंके वस्त्र

काश्याश्च दक्षिणे भागे श्मशानं विद्यते महत्।
तद्रक्षस्व यथान्यायं न त्याज्यं तत्त्वया क्वचित्॥ १३

इमं च जर्जरं दण्डं गृहीत्वा याहि मा चिरम्।
वीरबाहोरयं दण्ड इति घोषस्व सर्वतः॥ १४

लेनेकी आज्ञा दी। उस क्रोधी चाण्डालने अत्यन्त कठोर वचनोंका प्रयोग करके बार-बार डाँटते हुए हरिश्चन्द्रसे कहा—काशीके दक्षिणभागमें महान् श्मशान है। तुम न्यायपूर्वक उसकी रखवाली करो, तुम्हें कभी भी वहाँसे हटना नहीं चाहिये। इस जर्जर दण्डको लेकर तुम अभी वहाँ चले जाओ, विलम्ब मत करो। तुम भलीभाँति घोषित कर दो कि यह दण्ड वीरबाहुका है॥ ९—१४॥

सूत उवाच

कस्मिंश्चिदथ काले तु मृतचैलापहारकः।
हरिश्चन्द्रोऽभवद्राजा श्मशाने तद्वशानुगः॥ १५

सूतजी बोले—[हे शौनक!] कुछ समयके अनन्तर राजा हरिश्चन्द्र उस चाण्डालके वशवर्ती होकर श्मशानमें मृतकोंके वस्त्र (कफन) ग्रहण करनेवाले हो गये॥ १५॥

चाण्डालेनानुशिष्टस्तु मृतचैलापहारिणा।
राजा तेन समादिष्टो जगाम शवमन्दिरम्॥ १६

मृतकोंका वस्त्र लेनेवाले उस चाण्डालने राजाको आज्ञा प्रदान की, तब उससे आदेश पाकर वे श्मशानमें चले गये॥ १६॥

पुर्यास्तु दक्षिणे देशे विद्यमानं भयानकम्।
शवमाल्यसमाकीर्णं दुर्गन्धं बहुधूमकम्॥ १७

श्मशानं घोरसन्नादं शिवाशतसमाकुलम्।
गृध्रगोमायुसंकीर्णं श्ववृन्दपरिवारितम्॥ १८

अस्थिसङ्घातसङ्कीर्णं महादुर्गन्धसंकुलम्।
अर्धदग्धशवास्यानि विकसद्दन्तपंक्तिभिः॥ १९

हसन्तीवाग्निमध्यस्थकायस्यैवं व्यवस्थितिः।

वह भयानक श्मशान काशीपुरीके दक्षिण भागमें था। वहाँ शवकी मालाएँ बिखरी रहती थीं, वह दुर्गन्धियुक्त था तथा अत्यधिक धुएँसे भरा हुआ था। सर्वत्र भयंकर चीत्कार हो रहा था। सैकड़ों सियारिनोंसे व्याप्त था। गीधों और सियारोंसे सारा स्थान भरा था। वह श्मशान कुत्तोंसे सदा घिरा रहता था, चारों ओर हड्डियाँ बिखरी पड़ी थीं, महान् दुर्गन्धसे भरा हुआ था, अधजले शवोंके मुख निकले हुए दाँतोंसे हँसते-जैसे दीख रहे थे। चिताके मध्य-स्थित शवकी ऐसी दशा थी॥ १७—१९½॥

नानामृतसुहृन्नादं महाकोलाहलाकुलम्॥ २०

हा पुत्र मित्र हा बन्धो भ्रातर्वत्स प्रियाद्य मे।
हाप्यते भागिनेयार्ह हा मातुल पितामह॥ २१

मातामह पितः पौत्र क्व गतोऽस्येहि बान्धव।
इति शब्दैः समाकीर्णं भैरवैः सर्वदेहिनाम्॥ २२

ज्वलन्मांसवसामेदच्छूमिति ध्वनिसङ्कुलम्।
अग्नेश्चटचटाशब्दो भैरवो यत्र जायते॥ २३

कल्पान्तसदृशाकारं श्मशानं तत्सुदारुणम्।

मरे हुए लोगोंके अनेक सुहृद्जनोंके रुदनकी ध्वनि तथा महान् कोलाहलसे वह स्थान व्याप्त था। 'हा मेरे पुत्र, मित्र, बन्धु, भ्राता, वत्स, प्रिया! इस समय मुझे छोड़ रहे हैं। हा पूज्य भागिनेय, मातुल, पितामह, मातामह, पिता, पौत्र! आप कहाँ चले गये हैं; हे बान्धव! लौट आइये'—इस प्रकार वहाँ उपस्थित सभी लोगोंके भीषण शब्दोंसे वह श्मशान व्याप्त था। जलते हुए मांस, वसा और मेदसे साँय-साँयकी ध्वनि निकलती थी। अग्निमेंसे चट-चटानेका जहाँ भयंकर शब्द होता रहता था, इस प्रकारका वह श्मशान अत्यन्त भीषण तथा प्रलयकालीन स्वरूपवाला था॥ २०—२३½॥

स राजा तत्र सम्प्राप्तो दुःखादेवमशोचत॥ २४

हा भृत्या मन्त्रिणो यूयं क्व तद्राज्यं कुलोचितम्।
हा प्रिये पुत्र मे बाल मां त्यक्त्वा मन्दभाग्यकम्॥ २५

ब्राह्मणस्य च कोपेन गता यूयं क्व दूरतः।
विना धर्मं मनुष्याणां जायते न शुभं क्वचित्॥ २६

यत्नतो धारयेत्तस्मात्पुरुषो धर्ममेव हि।
इत्येवं चिन्तयंस्तत्र चाण्डालोक्तं पुनः पुनः॥ २७

मलेन दिग्धसर्वाङ्गः शवानां दर्शने व्रजन्।
लकुटाकारकल्पश्च धावंश्चापि ततस्ततः॥ २८

अस्मिञ्छव इदं मौल्यं शतं प्राप्स्यामि चाग्रतः।
इदं मम इदं राज्ञ इदं चाण्डालकस्य च॥ २९

इत्येवं चिन्तयन् राजा व्यवस्थां दुस्तरां गतः।
जीर्णैकपटसुग्रन्थिकृतकन्थापरिग्रहः ॥ ३०

चिताभस्मरजोलिप्तमुखबाहूदराङ्घ्रिकः ।
नानामेदोवसामज्जालिप्तपाण्यङ्गुलिः श्वसन्॥ ३१

नानाशवौदनकृतक्षुन्निवृत्तिपरायणः ।
तदीयमाल्यसंश्लेषकृतमस्तकमण्डलः ॥ ३२

न रात्रौ न दिवा शेते हाहेति प्रवदन्मुहुः।
एवं द्वादश मासास्तु नीता वर्षशतोपमाः॥ ३३

वहाँ पहुँचकर राजा हरिश्चन्द्र दुःखपूर्वक इस प्रकार सोचने लगे—हाय, मेरे भृत्य तथा मन्त्रीगण! तुम कहाँ हो? कुल-परम्परासे प्राप्त मेरा राज्य कहाँ गया? हे प्रिये! हे अबोध पुत्र! मुझ अभागेको छोड़कर ब्राह्मणके कोपसे तुमलोग दूर कहाँ चले गये? धर्मके बिना मनुष्यका कभी कल्याण नहीं हो सकता। अतएव मनुष्यको चाहिये कि यत्नपूर्वक धर्मको धारण करे॥ २४—२६½ ॥

इन बातों तथा चाण्डालके कहे हुए वचनोंको वे पुनः-पुनः सोचते रहते थे। मैलसे लिप्त शरीरवाले तथा लकड़ीके समान दुर्बल देहवाले वे राजा शवोंको देखनेके लिये जाते थे तथा इधर-उधर दौड़ते भी रहते थे। इस शवसे यह मूल्य मिला, पुनः दूसरेसे सौ मुद्रा मूल्य मिलेगा, यह मेरा है, यह राजाका और यह चाण्डालका—इस प्रकार सोचते हुए वे राजा महान् दुर्गतिको प्राप्त हुए॥ २७—२९½ ॥

उनके शरीरपर एक ही पुराना वस्त्र था, जिसमें बहुत-सी गाँठें लगी थीं। एकमात्र कन्था (गुदड़ी) ही उनके पास थी। उनके मुख, हाथ, उदर और पैर चिताकी राख एवं धूलसे धूसरित थे। हाथकी अँगुलियाँ तरह-तरहके मेद, वसा और मज्जासे सनी रहती थीं और वे दुर्गन्धयुक्त श्वास लेते रहते थे। शवोंके पिण्डदानार्थ जो भात बनता था, उससे वे अपनी भूख मिटाते थे। शवोंकी माला पहनकर अपने मस्तकको मण्डित किये रहते थे। 'हाय-हाय' ऐसा बार-बार कहते हुए न वे दिनमें सो पाते थे और न रातमें ही। इस प्रकार महाराज हरिश्चन्द्रने बारह महीने सौ वर्षके समान व्यतीत किये॥ ३०—३३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे हरिश्चन्द्रचिन्तावर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः॥ २४॥



अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

सर्पदंशसे रोहितकी मृत्यु, रानीका करुण विलाप, पहरेदारोंका रानीको राक्षसी समझकर चाण्डालको सौंपना और चाण्डालका हरिश्चन्द्रको उसके वधकी आज्ञा देना

सूत उवाच

एकदा तु गतो रन्तुं बालकैः सहितो बहिः।
वाराणस्या नातिदूरे रोहिताख्यः कुमारकः॥ १

सूतजी बोले—[हे शौनक!] एक समयकी बात है, वह रोहित नामक राजकुमार लड़कोंके साथ बाहर खेलनेके लिये वाराणसीके समीप चला गया॥ १॥

क्रीडां कृत्वा ततो दर्भान् ग्रहीतुमुपचक्रमे।
कोमलानल्पमूलांश्च साग्राञ्छक्त्यनुसारतः॥ २

आर्यप्रीत्यर्थमित्युक्त्वा हस्तयुग्मेन यत्नतः।
सलक्षणाश्च समिधो बर्हिरिध्मं सलक्षणम्॥ ३

पलाशकाष्ठान्यादाय त्वग्निहोमार्थमादरात्।
मस्तके भारकं कृत्वा खिद्यमानः पदे पदे॥ ४

उदकस्थानमासाद्य तदा बालस्तृषान्वितः।
भुवि भारं विनिक्षिप्य जलस्थाने तदा शिशुः॥ ५

कामतः सलिलं पीत्वा विश्रम्य च मुहूर्तकम्।
वल्मीकोपरि विन्यस्तभारो हर्तुं प्रचक्रमे॥ ६

विश्वामित्राज्ञया तावत्कृष्णसर्पो भयावहः।
महाविषो महाघोरो वल्मीकान्निर्गतस्तदा॥ ७

तेनासौ बालको दष्टस्तदैव च पपात ह।
रोहिताख्यं मृतं दृष्ट्वा ययुर्बाला द्विजालयम्॥ ८

त्वरिता भयसंविग्नाः प्रोचुस्तन्मातुरग्रतः।
हे विप्रदासि ते पुत्रः क्रीडां कर्तुं बहिर्गतः॥ ९

अस्माभिः सहितस्तत्र सर्पदष्टो मृतस्ततः।
इति सा तद्वचः श्रुत्वा वज्रपातोपमं तदा॥ १०

पपात मूर्च्छिता भूमौ छिन्नेव कदली यथा।
अथ तां ब्राह्मणो रुष्टः पानीयेनाभ्यषिञ्चत॥ ११

मुहूर्ताच्चेतनां प्राप्ता ब्राह्मणस्तामथाब्रवीत्।

ब्राह्मण उवाच

अलक्ष्मीकारकं निन्द्यं जानती त्वं निशामुखे॥ १२

रोदनं कुरुषे दुष्टे लज्जा ते हृदये न किम्।

तत्पश्चात् वहाँपर वह खेलनेके बाद कुश उखाड़ने लगा। उसने अपनी शक्तिके अनुसार अल्प जड़वाले तथा अग्रभागसे युक्त बहुतसे कोमल कुश उखाड़े। इससे मेरे आर्य (स्वामी) प्रसन्न होंगे—ऐसा बोलते हुए वह बड़ी सावधानीसे दोनों हाथोंसे कुश उखाड़ता था। साथ ही वह उत्तम लक्षणोंवाली समिधाओं तथा ईंधनहेतु श्रेष्ठ लकड़ियों और यज्ञहेतु कुशों तथा अग्निमें हवन करनेके लिये पलाश-काष्ठोंको आदरपूर्वक एकत्र करके सम्पूर्ण बोझ मस्तकपर रखकर दुःखित होता हुआ पैदल चलने लगा और वह बालक प्याससे व्याकुल हो गया। वह शिशु एक जलाशयके पास पहुँचकर बोझको जमीनपर रखकर जल-स्थानपर गया और इच्छानुसार जल पीकर मुहूर्तभर विश्राम करके वल्मीकके ढेरपर रखे उस बोझको उठाने लगा॥ २—६॥

उसी समय विश्वामित्रकी प्रेरणासे एक प्रचण्ड रूपवाला डरावना महाविषधर काला सर्प उस वल्मीकसे निकला॥ ७॥

उस सर्पने बालक रोहितको डँस लिया और वह उसी समय भूमिपर गिर पड़ा। रोहितको मृत देखकर भयसे व्याकुल सभी बालक शीघ्रतापूर्वक ब्राह्मणके घर गये और रोहितकी माताके सामने खड़े होकर कहने लगे—हे विप्रदासि! आपका पुत्र हमलोगोंके साथ खेलनेके लिये बाहर गया हुआ था। वहाँ उसे साँपने काट लिया, जिससे उसकी मृत्यु हो गयी॥ ८-९½॥

वज्रपात-सदृश वह बात सुनकर रानी मूर्च्छित हो गयीं और जड़से कटे हुए केलेके वृक्षकी भाँति वे भूमिपर गिर पड़ीं॥ १०½॥

इससे ब्राह्मण कुपित हो गया और उनपर जलसे छींटे मारने लगा। थोड़ी देरमें उन्हें चेतना आ गयी, तब ब्राह्मण उनसे कहने लगा॥ ११½॥

ब्राह्मण बोला—हे दुष्टे! सायंकालके समय रोना निन्दनीय तथा दरिद्रता प्रदान करनेवाला होता है—ऐसा जानती हुई भी तुम इस समय रो रही हो। क्या तुम्हारे हृदयमें लज्जा नहीं है?॥ १२½॥

ब्राह्मणेनैवमुक्ता सा न किञ्चिद्वाक्यमब्रवीत्॥ १३

रुरोद करुणं दीना पुत्रशोकेन पीडिता।
अश्रुपूर्णमुखी दीना धूसरा मुक्तमूर्धजा॥ १४

अथ तां कुपितो विप्रो राजपत्नीमभाषत।
धिक्त्वां दुष्टे क्रयं गृह्य मम कार्यं विलुम्पसि॥ १५

अशक्ता चेत्कथं तर्हि गृहीतं मम तद्धनम्।
एवं निर्भर्त्सिता तेन क्रूरवाक्यैः पुनः पुनः॥ १६

रुदिता कारणं प्राह विप्रं गद्गदया गिरा।
स्वामिन् मम सुतो बालः सर्पदष्टो मृतो बहिः॥ १७

अनुज्ञां मे प्रयच्छस्व द्रष्टुं यास्यामि बालकम्।
दुर्लभं दर्शनं तेन सञ्जातं मम सुव्रत॥ १८

इत्युक्त्वा करुणं बाला पुनरेव रुरोद ह।
पुनस्तां कुपितो विप्रो राजपत्नीमभाषत॥ १९

ब्राह्मण उवाच

शठे दुष्टसमाचारे किं न जानासि पातकम्।
यः स्वामिवेतनं गृह्य तस्य कार्यं विलुम्पति॥ २०

नरके पच्यते सोऽथ महारौरवपूर्वके।
उषित्वा नरके कल्पं ततोऽसौ कुक्कुटो भवेत्॥ २१

किमनेनाथवा कार्यं धर्मसंकीर्तनेन मे।
यस्तु पापरतो मूर्खः क्रूरो नीचोऽनृतः शठः॥ २२

तद्वाक्यं निष्फलं तस्मिन्भवेद् बीजमिवोषरे।
एहि ते विद्यते किञ्चित्परलोकभयं यदि॥ २३

एवमुक्ताथ सा विप्रं वेपमानाब्रवीद्वचः।
कारुण्यं कुरु मे नाथ प्रसीद सुमुखो भव॥ २४

प्रस्थापय मुहूर्तं मां यावद् द्रक्ष्यामि बालकम्।

ब्राह्मणके ऐसा कहनेपर वे कुछ भी नहीं बोलीं। पुत्र-शोकसे सन्तप्त तथा दीन होकर वे करुण क्रन्दन करने लगीं। उनका मुख आँसुओंसे भीग गया था, उनकी दशा अत्यन्त दयनीय थी, वे धूल-धूसरित हो गयी थीं तथा उनके सिरके केश अस्त-व्यस्त हो गये थे॥ १३-१४॥

तब क्रोधमें आकर ब्राह्मणने उस रानीसे कहा—दुष्टे! तुम्हें धिक्कार है; क्योंकि अपना मूल्य लेकर भी तुम मेरे कार्यकी उपेक्षा कर रही हो। यदि तुम काम करनेमें असमर्थ थी, तो मुझसे वह धन तुमने क्यों लिया?॥ १५½ ॥

इस प्रकार उस ब्राह्मणके द्वारा निष्ठुर वचनोंसे बार-बार फटकारनेपर रानीने रोते हुए गद्गद वाणीमें [अपने रुदनका] कारण बताते हुए कहा—हे स्वामिन्! [क्रीडाहेतु] बाहर गये हुए मेरे पुत्रको सर्पने डँस लिया और वह मर गया। मैं उस बालकको देखने जाऊँगी। अतः आप मुझे आज्ञा दीजिये। हे सुव्रत! अब मेरे लिये उस पुत्रका दर्शन दुर्लभ हो गया है॥ १६—१८॥

इस प्रकार करुणापूर्ण वचन कहकर रानी फिर रोने लगी, इसपर वह ब्राह्मण कुपित होकर उन राजमहिषीसे फिर कहने लगा॥ १९॥

ब्राह्मण बोला—कुटिल व्यवहारवाली हे शठे! क्या तुम्हें इस पापका ज्ञान नहीं है कि जो मनुष्य अपने स्वामीसे वेतन लेकर उसके कार्यकी उपेक्षा करता है, वह महारौरव नरकमें पड़ता है, एक कल्पतक नरकमें रहकर वह मुर्गेकी योनिमें जन्म लेता है॥ २०-२१॥

अथवा इस धार्मिक चर्चासे मेरा क्या प्रयोजन है; क्योंकि पापी, मूर्ख, क्रूर, नीच, मिथ्याभाषी एवं शठके प्रति वह वचन उसी प्रकार निष्फल होता है, जैसे ऊसरमें बोया गया बीज। अतः यदि तुम्हें परलोकका कुछ भी भय हो तो आओ, अपना कार्य करो॥ २२-२३॥

उसके ऐसा कहनेपर [भयके कारण] थर-थर काँपती हुई रानी ब्राह्मणसे यह वचन बोलीं—हे नाथ! मुझपर दया कीजिये, अनुग्रह कीजिये। प्रसन्नमुखवाले होइये। मुझे मुहूर्तभरके लिये वहाँ जाने दीजिये, जिससे मैं अपने पुत्रको देख सकूँ॥ २४½ ॥

एवमुक्त्वाथ सा मूर्ध्ना निपत्य द्विजपादयोः ॥ २५
रुरोद करुणं बाला पुत्रशोकेन पीडिता।
अथाह कुपितो विप्रः क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ २६

विप्र उवाच

किं ते पुत्रेण मे कार्यं गृहकर्म कुरुष्व मे।
किं न जानासि मे क्रोधं कशाघातफलप्रदम् ॥ २७

एवमुक्ता स्थिता धैर्याद् गृहकर्म चकार ह।
अर्धरात्रो गतस्तस्याः पादाभ्यङ्गादिकर्मणा ॥ २८

ब्राह्मणेनाथ सा प्रोक्ता पुत्रपार्श्वं व्रजाधुना।
तस्य दाहादिकं कृत्वा पुनरागच्छ सत्वरम् ॥ २९

न लुप्येत यथा प्रातर्गृहकर्म ममेति च।
ततस्त्वेकाकिनी रात्रौ विलपन्ती जगाम ह ॥ ३०

दृष्ट्वा मृतं निजं पुत्रं भृशं शोकेन पीडिता।
यूथभ्रष्टा कुरङ्गीव विवत्सा सौरभी यथा ॥ ३१

वाराणस्या बहिर्गत्वा क्षणाद् दृष्ट्वा निजं सुतम्।
शयानं रङ्कवद्भूमौ काष्ठदर्भतृणोपरि ॥ ३२

विललापातिदुःखार्ता शब्दं कृत्वा सुनिष्ठुरम्।
एहि मे सम्मुखं कस्माद्रोषितोऽसि वदाधुना ॥ ३३

आयास्यभिमुखो नित्यमम्बेत्युक्त्वा पुनः पुनः।
गत्वा स्खलत्पदा तस्य पपातोपरि मूर्च्छिता ॥ ३४

पुनः सा चेतनां प्राप्य दोर्भ्यामालिङ्ग्य बालकम्।
तन्मुखे वदनं न्यस्य रुरोदार्तस्वनैस्तदा ॥ ३५

कराभ्यां ताडनं चक्रे मस्तकस्योदरस्य च।
हा बाल हा शिशो वत्स हा कुमारक सुन्दर ॥ ३६

हा राजन् क्व गतोऽसि त्वं पश्येमं बालकं निजम्।
प्राणेभ्योऽपि गरीयांसं भूतले पतितं मृतम् ॥ ३७

ऐसा कहकर पुत्रशोकसे सन्तप्त वे रानी ब्राह्मणके चरणोंपर सिर रखकर करुण विलाप करने लगीं। इसपर क्रोधसे लाल नेत्रोंवाला वह ब्राह्मण कुपित होकर रानीसे कहने लगा ॥ २५-२६ ॥

विप्र बोला—तुम्हारे पुत्रसे मेरा क्या प्रयोजन, तुम मेरे घरका कार्य सम्पन्न करो। क्या तुम कोड़ेके प्रहारका फल देनेवाले मेरे क्रोधको नहीं जानती हो? ॥ २७ ॥

इस प्रकार ब्राह्मणके कहनेपर रानी धैर्य धारण करके उसके घरका काम करनेमें संलग्न हो गयीं। इस तरह पैर दबाने आदि कार्य करते रहनेमें उनकी आधी रात बीत गयी ॥ २८ ॥

इसके बाद ब्राह्मणने उनसे कहा—अब तुम अपने पुत्रके पास जाओ और उसका दाह-संस्कार आदि सम्पन्न करके शीघ्र पुनः वापस आ जाना, जिससे मेरा प्रातःकालीन गृहकार्य बाधित न हो ॥ २९½ ॥

तब रानी अकेली ही रातमें विलाप करती हुई गयीं और अपने पुत्रको मृत देखकर अत्यन्त शोकाकुल हो उठीं। उस समय वे झुण्डसे बिछड़ी हुई हिरनी अथवा बिना बछड़ेकी गायकी भाँति प्रतीत हो रही थीं ॥ ३०-३१ ॥

थोड़ी ही देरमें वाराणसीसे बाहर निकलनेपर काष्ठ, कुश और तृणके ऊपर अपने पुत्रको रंककी भाँति भूमिपर सोया हुआ देखकर वे दुःखसे अत्यन्त अधीर हो गयीं और अत्यन्त निष्ठुर शब्द करके विलाप करने लगीं—मेरे सामने आओ और बताओ कि तुम इस समय मुझसे क्यों रूठ गये हो? पहले तुम बार-बार 'अम्बा'—ऐसा कहकर मेरे सामने नित्य आया करते थे। इसके बाद लड़खड़ाते हुए पैरोंसे कुछ दूर जाकर वे मूर्च्छित होकर उसके ऊपर गिर पड़ीं ॥ ३२—३४ ॥

तत्पश्चात् सचेत होनेपर बालकको दोनों हाथोंमें भरकर और उसके मुखसे अपना मुख लगाकर वे करुण स्वरमें रुदन करने लगीं और दोनों हाथोंसे अपना सिर तथा वक्षःस्थल पीटने लगीं—[वे ऐसा कहकर रो रही थीं] हा पुत्र! हा शिशो! हा वत्स! हा सुन्दर कुमार! हा राजन्! आप कहाँ चले गये? मृत होकर भूमिपर पड़े हुए अपने प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय पुत्रको देख तो लीजिये ॥ ३५—३७ ॥

तथापश्यन्मुखं तस्य भूयो जीवितशङ्कया।
निर्जीववदनं ज्ञात्वा मूर्च्छिता निपपात ह॥ ३८

हस्तेन वदनं गृह्य पुनरेवमभाषत।
शयनं त्यज हे बाल शीघ्रं जागृहि भीषणम्॥ ३९

निशार्धं वर्धते चेदं शिवाशतनिनादितम्।
भूतप्रेतपिशाचादिडाकिनीयूथनादितम् ॥ ४०

मित्राणि ते गतान्यस्तात्त्वमेकस्तु कुतः स्थितः।

सूत उवाच

एवमुक्त्वा पुनस्तन्वी करुणं प्ररुरोद ह॥ ४१

हा शिशो बाल हा वत्स रोहिताख्य कुमारक।
रे पुत्र प्रतिशब्दं मे कस्मात्त्वं न प्रयच्छसि॥ ४२

तवाहं जननी वत्स किं न जानासि पश्य माम्।
देशत्यागाद्राज्यनाशात्पुत्र भर्त्रा स्वविक्रयात्॥ ४३

यद्दासीत्वाच्च जीवामि त्वां दृष्ट्वा पुत्र केवलम्।
ते जन्मसमये विप्रैरादिष्टं यत्त्वनागतम्॥ ४४

दीर्घायुः पृथिवीराजः पुत्रपौत्रसमन्वितः।
शौर्यदानरतिः सत्त्वो गुरुदेवद्विजार्चकः॥ ४५

मातापित्रोस्तु प्रियकृत्सत्यवादी जितेन्द्रियः।
इत्यादि सकलं जातमसत्यमधुना सुत॥ ४६

चक्रमत्स्यावातपत्रश्रीवत्सस्वस्तिकध्वजाः।
तव पाणितले पुत्र कलशश्चामरं तथा॥ ४७

लक्षणानि तथान्यानि त्वद्धस्ते यानि सन्ति च।
तानि सर्वाणि मोघानि सञ्जातान्यधुना सुत॥ ४८

हा राजन्पृथिवीनाथ क्व ते राज्यं क्व मन्त्रिणः।
क्व ते सिंहासनं छत्रं क्व ते खड्गः क्व तद्धनम्॥ ४९

क्व सायोध्या क्व हर्म्याणि क्व गजाश्वरथप्रजाः।
सर्वमेतत्तथा पुत्र मां त्यक्त्वा क्व गतोऽसि रे॥ ५०

तत्पश्चात् 'कहीं बालक जीवित तो नहीं है'—इस शंकासे वे उसका मुख बार-बार निहारने लगीं, किंतु मुखकी चेष्टासे उसे निष्प्राण जानकर पुनः मूर्च्छित होकर वे गिर पड़ीं। इसके बाद हाथमें बालकका मुख लेकर उन्होंने इस प्रकार कहा—हे पुत्र! तुम इस भयंकर निद्राका त्याग करो और शीघ्र जागो! आधी रातसे भी अधिक समय हो रहा है, सैकड़ों सियारिनें बोल रही हैं; भूत, प्रेत, पिशाच, डाकिनी आदिके समूह ध्वनि कर रहे हैं। सूर्यास्त होते ही तुम्हारे सभी मित्र चले गये; केवल तुम्हीं यहाँ कैसे रह गये?॥ ३८—४०½ ॥

सूतजी बोले—ऐसा कहकर दुर्बल शरीरवाली रानी पुनः इस प्रकार करुण रुदन करने लगीं—'हा शिशो! हा बालक! हा वत्स! हा रोहित नामवाले कुमार! हे पुत्र! तुम मेरी बातका उत्तर क्यों नहीं दे रहे हो?'॥ ४१-४२॥

हे वत्स! क्या तुम यह नहीं जानते कि मैं तुम्हारी माता हूँ; मेरी ओर देखो। हे पुत्र! मुझे अपना देश छोड़ना पड़ा, राज्यविहीन होना पड़ा और पतिके द्वारा बेच दिये जानेपर दासी बनना पड़ा, फिर भी हे पुत्र! केवल तुम्हें देखकर जी रही हूँ। तुम्हारे जन्मके समय ब्राह्मणोंने भविष्यके सम्बन्धमें बताया था कि यह बालक दीर्घ आयुवाला, पृथ्वीका शासक, पुत्र-पौत्रसे सम्पन्न, पराक्रम तथा दानके प्रति अनुराग रखनेवाला, बलवान्, ब्राह्मण-गुरु-देवताका उपासक, माता-पिताको प्रसन्न रखनेवाला, सत्यवादी और जितेन्द्रिय होगा, किंतु हे पुत्र! यह सब इस समय असत्य सिद्ध हो गया॥ ४३—४६॥

हे पुत्र! तुम्हारी हथेलीमें चक्र, मत्स्य, छत्र, श्रीवत्स, स्वस्तिक, ध्वजा, कलश तथा चामर आदिके चिह्न और हे सुत! अन्य जो भी शुभ लक्षण तुम्हारे हाथमें विद्यमान हैं, वे सब इस समय निष्फल हो गये हैं॥ ४७-४८॥

हा राजन्! हा पृथ्वीनाथ! आपका राज्य, आपके मन्त्री, आपका सिंहासन, आपका छत्र, आपका खड्ग, आपका वह धन-वैभव, वह अयोध्या, राजमहल, हाथी, घोड़े, रथ और प्रजा—ये सब कहाँ चले गये? हे पुत्र! इन सबके साथ ही तुम भी मुझे छोड़कर कहाँ चले गये?॥ ४९-५०॥

हा कान्त हा नृपागच्छ पश्येमं स्वसुतं प्रियम्।
येन ते रिङ्गता वक्षः कुंकुमेनावलेपितम्॥ ५१

स्वशरीररजःपङ्कैर्विशालं मलिनीकृतम्।
येन ते बालभावेन मृगनाभिविलेपितः॥ ५२

भ्रंशितो भालतिलकस्तवाङ्कस्थेन भूपते।
यस्य वक्त्रं मृदा लिप्तं स्नेहाद्वै चुम्बितं मया॥ ५३

तन्मुखं मक्षिकालिङ्ग्यं पश्ये कीटैर्विदूषितम्।
हा राजन् पश्य तं पुत्रं भुविस्थं रङ्कवन्मृतम्॥ ५४

हा देव किं मया कृत्यं कृतं पूर्वभवान्तरे।
तस्य कर्मफलस्येह न पारमुपलक्षये॥ ५५

हा पुत्र हा शिशो वत्स हा कुमारक सुन्दर।
एवं तस्या विलापं ते श्रुत्वा नगरपालकाः॥ ५६

जागृतास्त्वरितास्तस्याः पार्श्वमीयुः सुविस्मिताः।

जना ऊचुः

का त्वं बालश्च कस्यायं पतिस्ते कुत्र तिष्ठति॥ ५७

एकैव निर्भया रात्रौ कस्मात्त्वमिह रोदिषि।
एवमुक्ताथ सा तन्वी न किञ्चिद्वाक्यमब्रवीत्॥ ५८

भूयोऽपि पृष्टा सा तूष्णीं स्तब्धीभूता बभूव ह।
विललापातिदुःखार्ता शोकाश्रुप्लुतलोचना॥ ५९

अथ ते शङ्कितास्तस्यां रोमाञ्चिततनूरुहाः।
संत्रस्ताः प्राहुरन्योन्यमुद्धृतायुधपाणयः॥ ६०

नूनं स्त्री न भवत्येषा यतः किञ्चिन्न भाषते।
तस्माद्वध्या भवेदेषा यत्नतो बालघातिनी॥ ६१

शुभा चेत्तर्हि किं ह्यत्र निशार्धे तिष्ठते बहिः।
भक्षार्थमनया नूनमानीतः कस्यचिच्छिशुः॥ ६२

हा कान्त! हा राजन्! आइये, अपने इस प्रिय पुत्रको देख लीजिये, जो [खेलते-खेलते] आपके वक्षपर चढ़कर कुमकुमसे लिप्त उस विशाल वक्षको अपने शरीरमें लगे धूल तथा कीचड़से मलिन कर देता था, आपकी गोदमें बैठकर जो बालसुलभ स्वभावके कारण आपके ललाटपर लगे हुए कस्तूरीमिश्रित चन्दनके तिलकको मिटा देता था। हे भूपते! जिसके मिट्टी लगे मुखको मैं स्नेहपूर्वक चूम लेती थी, उसी मुखको आज मैं देख रही हूँ कि कीड़ोंने उसे विकृत कर दिया है और उसपर मक्खियाँ बैठ रही हैं। हे राजन्! अकिंचनकी भाँति पृथ्वीपर पड़े इस मृत पुत्रको देख लीजिये॥ ५१—५४॥

हा दैव! मैंने पूर्वजन्ममें कौन-सा कार्य कर दिया था कि उस कर्म-फलका अन्त मैं देख नहीं पा रही हूँ!॥ ५५॥

'हा पुत्र! हा शिशो! हा वत्स! हा सुन्दर कुमार!' उस रानीका ऐसा विलाप सुनकर नगरपालक जाग गये और वे अत्यन्त आश्चर्यचकित होकर शीघ्र ही उनके पास पहुँचे॥ ५६½॥

जनोंने कहा—तुम कौन हो, यह बालक किसका है, तुम्हारे पति कहाँ हैं और रातमें निर्भय होकर तुम अकेली यहाँ किस कारणसे रो रही हो?॥ ५७½॥

उनके ऐसा कहनेपर उस कृशकाय रानीने कुछ भी बात नहीं कही। उनके पुनः पूछनेपर भी वे चुप रहीं और स्तब्ध-जैसी हो गयीं। वे अत्यन्त दुःखित होकर विलाप करने लगीं और उनकी आँखोंसे शोकके आँसू निरन्तर निकलते रहे॥ ५८-५९॥

तब उनके मनमें रानीके प्रति सन्देह उत्पन्न हो गया, उनके शरीरके रोंगटे खड़े हो गये और वे भयभीत हो उठे; तब हाथोंमें आयुध लिये हुए वे परस्पर कहने लगे—॥ ६०॥

निश्चय ही यह स्त्री नहीं है; क्योंकि यह कुछ भी बोल नहीं रही है। यह बालकोंको मार डालनेवाली कोई राक्षसी है, अतः यत्नपूर्वक इसका वध कर देना चाहिये। यदि यह कोई उत्तम स्त्री होती तो इस अर्धरात्रिमें घरसे बाहर क्यों रहती? यह निश्चितरूपसे किसीके शिशुको खानेके लिये यहाँ ले आयी है॥ ६१-६२॥

इत्युक्त्वा तैर्गृहीता सा गाढं केशेषु सत्वरम्।
भुजयोरपरैश्चैव कैश्चापि गलके तथा॥ ६३

खेचरी यास्यतीत्युक्तं बहुभिः शस्त्रपाणिभिः।
आकृष्य पक्कणे नीता चाण्डालाय समर्पिता॥ ६४

हे चाण्डाल बहिर्दृष्टा ह्यस्माभिर्बालघातिनी।
वध्यतां वध्यतामेषा शीघ्रं नीत्वा बहिःस्थले॥ ६५

चाण्डालः प्राह तां दृष्ट्वा ज्ञातेयं लोकविश्रुता।
न दृष्टपूर्वा केनापि लोकडिम्भान्यनेकधा॥ ६६

भक्षितान्यनया भूरि भवद्भिः पुण्यमर्जितम्।
ख्यातिर्वः शाश्वती लोके गच्छध्वं च यथासुखम्॥ ६७

द्विजस्त्रीबालगोघाती स्वर्णस्तेयी च यो नरः।
अग्निदो वर्त्मघाती च मद्यपो गुरुतल्पगः॥ ६८

महाजनविरोधी च तस्य पुण्यप्रदो वधः।
द्विजस्यापि स्त्रियो वापि न दोषो विद्यते वधे॥ ६९

अस्या वधश्च मे योग्य इत्युक्त्वा गाढबन्धनैः।
बद्ध्वा केशेष्वथाकृष्य रज्जुभिस्तामताडयत्॥ ७०

हरिश्चन्द्रमथोवाच वाचा परुषया तदा।
रे दास वध्यतामेषा दुष्टात्मा मा विचारय॥ ७१

तद्वाक्यं भूपतिः श्रुत्वा वज्रपातोपमं तदा।
वेपमानोऽथ चाण्डालं प्राह स्त्रीवधशङ्कितः॥ ७२

न शक्तोऽहमिदं कर्तुं प्रेष्यं देहि ममापरम्।
असाध्यमपि यत्कर्म तत्करिष्ये त्वयोदितम्॥ ७३

ऐसा कहकर उनमेंसे कुछने शीघ्र ही दृढ़तापूर्वक रानीके केश पकड़ लिये, कुछ अन्य व्यक्तियोंने उनकी दोनों भुजाएँ पकड़ लीं और कुछने गर्दन पकड़ ली। 'यह खेचरी [कहीं] भाग जायगी'—ऐसा कहकर हाथोंमें शस्त्र धारण किये हुए बहुतसे पहरेदार रानीको घसीटते हुए चाण्डालके घर ले गये और उसे चाण्डालको सौंप दिया [और कहा]—हे चाण्डाल! इस बालघातिनीको हमलोगोंने बाहर देखा। तुम बाहर किसी स्थानपर शीघ्र ही ले जाकर इसे मार डालो, मार डालो॥ ६३—६५॥

रानीको देखकर चाण्डालने कहा—मैं इसे जानता हूँ; यह लोकमें प्रसिद्ध है। इसके पहले किसीने भी इसे देखा नहीं था। इसने अनेक बार लोगोंके बच्चोंका भक्षण कर लिया है। आपलोगोंने इसे पकड़कर महान् पुण्य अर्जित किया है। इससे आपलोगोंका यश जगत्में सर्वदा बना रहेगा। अब आपलोग यहाँसे सुखपूर्वक चले जाइये॥ ६६-६७॥

जो मनुष्य ब्राह्मण, स्त्री, बालक तथा गायका वध करता है; स्वर्णकी चोरी करता है; आग लगाता है; मार्गमें अवरोध उत्पन्न करता है; मदिरा-पान करता है; गुरुपत्नीके साथ व्यभिचार करता है और श्रेष्ठजनोंके साथ विरोध-भाव रखता है, उसका वध कर देनेसे पुण्य प्राप्त होता है। ऐसे कार्यमें तत्पर ब्राह्मणका अथवा स्त्रीका भी वध कर डालनेमें दोष नहीं लगता। अतः इसका वध मेरी दृष्टिमें उचित है—ऐसा कहकर चाण्डालने दृढ़ बन्धनोंसे बाँधकर और केश पकड़कर उन्हें रस्सियोंसे पीटा। इसके बाद उसने हरिश्चन्द्रको बुलाकर उनसे कठोर वाणीमें कहा—'हे दास! इस पापात्मा स्त्रीका तत्काल वध कर दो; इसमें सोच-विचार मत करो'॥ ६८—७१॥

वज्रपातके समान उस वचनको सुनकर स्त्री-वधकी आशंकासे राजा हरिश्चन्द्र थर-थर काँपते हुए उस चाण्डालसे बोले—मैं ऐसा करनेमें समर्थ नहीं हूँ, अतः मुझे कोई दूसरा कार्य करनेकी आज्ञा दीजिये। इसके अतिरिक्त आप जो भी कठिन-से-कठिन कार्य करनेको कहेंगे, उसे मैं सम्पन्न कर दूँगा॥ ७२-७३॥

श्रुत्वा तदुक्तं वचनं श्वपचो वाक्यमब्रवीत्।
मा भैषीस्त्वं गृहाणासिं वधोऽस्याः पुण्यदो मतः॥ ७४

बालानामेव भयदा नेयं रक्ष्या कदाचन।
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य राजा बचनमब्रवीत्॥ ७५

स्त्रियो रक्ष्याः प्रयत्नेन न हन्तव्याः कदाचन।
स्त्रीवधे कीर्तितं पापं मुनिभिर्धर्मतत्परैः॥ ७६

पुरुषो यः स्त्रियं हन्याज्ज्ञानतोऽज्ञानतोऽपि वा।
नरके पच्यते सोऽथ महारौरवपूर्वके॥ ७७

चाण्डाल उवाच

मा वदासिं गृहाणैनं तीक्ष्णं विद्युत्समप्रभम्।
यत्रैकस्मिन्वधं नीते बहूनां तु सुखं भवेत्॥ ७८

तस्य हिंसा कृता नूनं बहुपुण्यप्रदा भवेत्।
भक्षितान्यनया भूरि लोके डिम्भानि दुष्टया॥ ७९

तत्क्षिप्रं वध्यतामेषा लोकः स्वस्थो भविष्यति।

राजोवाच

चाण्डालाधिपते तीव्रं व्रतं स्त्रीवधवर्जनम्॥ ८०

आजन्मतस्ततो यत्नं न कुर्यां स्त्रीवधे तव।

चाण्डाल उवाच

स्वामिकार्यं विना दुष्ट किं कार्यं विद्यतेऽपरम्॥ ८१

गृहीत्वा वेतनं मेऽद्य कस्मात्कार्यं विलुम्पसि।
यः स्वामिवेतनं गृह्य स्वामिकार्यं विलुम्पति॥ ८२

नरकान्निष्कृतिस्तस्य नास्ति कल्पायुतैरपि।

राजोवाच

चाण्डालनाथ मे देहि प्राप्यमन्यत्सुदारुणम्॥ ८३

स्वशत्रुं ब्रूहि तं क्षिप्रं घातयिष्याम्यसंशयम्।
घातयित्वा तु तं शत्रुं तव दास्यामि मेदिनीम्॥ ८४

देव देवोरगैः सिद्धैर्गन्धर्वैरपि संयुतम्।
देवेन्द्रमपि जेष्यामि निहत्य निशितैः शरैः॥ ८५

उनके द्वारा कही गयी यह बात सुनकर चाण्डालने यह वचन कहा—तुम बिलकुल मत डरो। तलवार उठाओ और इसका वध कर दो; क्योंकि ऐसी स्त्रीका वध अत्यन्त पुण्यदायक माना गया है। बालकोंको भय पहुँचानेवाली यह स्त्री कभी भी रक्षाके योग्य नहीं है॥ ७४$\frac{1}{2}$॥

चाण्डालकी वह बात सुनकर राजाने यह वचन कहा—जिस किसी भी उपायसे स्त्रियोंकी रक्षा करनी चाहिये, उनका वध कभी नहीं करना चाहिये; क्योंकि धर्मपरायण मुनियोंने स्त्रीवधको पाप बताया है। जो पुरुष जानकर अथवा अनजानमें भी स्त्रीकी हत्या करता है, वह महारौरव नरकमें गिरकर यातना भोगता है॥ ७५—७७॥

चाण्डाल बोला—'यह सब मत बोलो, विद्युत्के समान चमकनेवाली यह तीक्ष्ण तलवार उठा लो; क्योंकि यदि एकका वध कर देनेसे बहुत प्राणियोंको सुख हो तो उसकी की गयी हिंसा निश्चय ही पुण्यप्रद होती है। यह दुष्टा संसारमें बहुत-से बच्चोंको खा चुकी है, अतः शीघ्र ही इसका वध कर दो, जिससे लोक शान्तिमय हो जाय॥ ७८-७९$\frac{1}{2}$॥

राजा बोले—हे चाण्डालराज! मैंने आजीवन स्त्रीवध न करनेका कठोर व्रत ले रखा है, अतः मैं स्त्रीवधके लिये प्रयत्न नहीं कर सकता; अपितु आपका अन्य कोई कार्य सम्पन्न करूँगा॥ ८०$\frac{1}{2}$॥

चाण्डाल बोला—अरे दुष्ट! स्वामीके इस कार्यको छोड़कर तुम्हारे लिये दूसरा कौन-सा कार्य है? वेतन लेकर मेरे कार्यकी उपेक्षा क्यों कर रहे हो? जो सेवक स्वामीसे वेतन लेकर उसके कार्यकी उपेक्षा करता है, उसका दस हजार कल्पोंतक नरकसे उद्धार नहीं होता॥ ८१-८२$\frac{1}{2}$॥

राजा बोले—हे चाण्डालनाथ! आप मुझे कोई अन्य अत्यन्त कठिन कार्य करनेका आदेश दीजिये। आप अपने किसी शत्रुको बतायें, मैं उसे निःसन्देह शीघ्र ही मार डालूँगा और उस शत्रुका वध करके उसकी भूमि आपको सौंप दूँगा। हे देव! देवताओं, नागों, सिद्धों और गन्धर्वोंसहित इन्द्रको भी तीक्ष्ण बाणोंसे मारकर उन्हें जीत लूँगा॥ ८३—८५॥

एतच्छ्रुत्वा ततो वाक्यं हरिश्चन्द्रस्य भूपतेः।
चाण्डालः कुपितः प्राह वेपमानं महीपतिम्॥ ८६

तब राजा हरिश्चन्द्रका यह वचन सुनकर उस चाण्डालने क्रुद्ध होकर थर-थर काँप रहे उन राजासे कहा॥ ८६॥

चाण्डाल उवाच

(नैतद्वाक्यं सुघटितं यद्वाक्यं दासकीर्तितम्।)
चाण्डालदासतां कृत्वा सुराणां भाषसे वचः।
दास किं बहुना नूनं शृणु मे गदतो वचः॥ ८७

निर्लज्ज तव चेदस्ति किञ्चित्पापभयं हृदि।
किमर्थं दासतां यातश्चाण्डालस्य तु वेश्मनि॥ ८८

गृहाणैनं ततः खड्गमस्याश्छिन्धि शिरोऽम्बुजम्।
एवमुक्त्वाथ चाण्डालो राज्ञे खड्गं न्यवेदयत्॥ ८९

चाण्डाल बोला—(सेवकोंके लिये जो बात कही गयी है, वह बात तुम्हारे व्यवहारमें लक्षित नहीं होती)। चाण्डालकी दासता करके तुम देवताओं-जैसी बात करते हो। अरे दास! अधिक कहनेसे क्या प्रयोजन? तुम मेरी बात ध्यानसे सुनो। निर्लज्ज! यदि तुम्हारे हृदयमें थोड़ा भी पापका भय था, तो चाण्डालके घरमें दासता करना तुमने स्वीकार ही क्यों किया? अतः इस तलवारको उठाओ और इसके कमलवत् सिरको काट दो—ऐसा कहकर चाण्डालने राजाको तलवार पकड़ा दी॥ ८७—८९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे चाण्डालाज्ञया हरिश्चन्द्रस्य खड्गग्रहणवर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः॥ २५॥



अथ षड्विंशोऽध्यायः

रानीका चाण्डालवेशधारी राजा हरिश्चन्द्रसे अनुमति लेकर पुत्रके शवको लाना और करुण विलाप करना, राजाका पत्नी और पुत्रको पहचानकर मूर्च्छित होना और विलाप करना

सूत उवाच

ततोऽथ भूपतिः प्राह राज्ञीं स्थित्वा ह्यधोमुखः।
अत्रोपविश्यतां बाले पापस्य पुरतो मम॥ १

शिरस्ते छेदयिष्यामि हन्तुं शक्नोति चेत्करः।
एवमुक्त्वा समुद्यम्य खड्गं हन्तुं गतो नृपः॥ २

न जानाति नृपः पत्नीं सा न जानाति भूपतिम्।
अब्रवीद् भृशदुःखार्ता स्वमृत्युमभिकाङ्क्षति॥ ३

सूतजी बोले—तत्पश्चात् राजा हरिश्चन्द्र नीचेकी ओर मुख करके रानीसे कहने लगे—हे बाले! मुझ पापीके सामने यहाँ आकर बैठ जाओ। यदि मेरा हाथ मारनेमें समर्थ हो सका तो मैं तुम्हारा सिर काट लूँगा॥ १½॥

ऐसा कहकर हाथमें तलवार लेकर रानीको मारनेके लिये राजा हरिश्चन्द्र उनकी ओर गये। उस समय राजा न तो अपनी पत्नीको पहचान रहे थे और न तो रानी राजाको ही पहचान रही थीं। तब अत्यन्त दुःखसे पीड़ित रानी अपनी मृत्युकी इच्छा रखती हुई कहने लगीं॥ २-३॥

स्त्र्युवाच

चाण्डाल शृणु मे वाक्यं किञ्चित्त्वं यदि मन्यसे।
मृतस्तिष्ठति मे पुत्रो नातिदूरे बहिः पुरात्॥ ४

तं दहामि हतं यावदानयित्वा तवान्तिकम्।
तावत्प्रतीक्ष्यतां पश्चादसिना घातयस्व माम्॥ ५

स्त्रीने कहा—हे चाण्डाल! यदि तुम थोड़ा भी उचित समझते हो तो मेरी बात सुनो। इस नगरसे बाहर थोड़ी ही दूरीपर मेरा पुत्र मृत पड़ा है। मैं जबतक उस बालकको आपके पास लाकर उसका दाह न कर दूँ, तबतकके लिये मेरी प्रतीक्षा कीजिये, इसके बाद मुझे तलवारसे मार डालियेगा॥ ४-५॥

तेनाथ बाढमित्युक्त्वा प्रेषिता बालकं प्रति।
सा जगामातिदुःखार्ता विलपन्ती सुदारुणम्॥ ६

भार्या तस्य नरेन्द्रस्य सर्पदष्टं हि बालकम्।
हा पुत्र हा वत्स शिशो इत्येवं वदती मुहुः॥ ७

कृशा विवर्णा मलिना पांसुध्वस्तशिरोरुहा।
श्मशानभूमिमागत्य बालं स्थाप्याविशद्भुवि॥ ८

(राजन्नद्य स्वबालं तं पश्यसीह महीतले।
रममाणं स्वसखिभिर्दष्टं दुष्टाहिना मृतम्॥)
तस्या विलापशब्दं तमाकर्ण्य स नराधिपः।
शवसन्निधिमागत्य वस्त्रमस्याक्षिपत्तदा॥ ९

तां तथा रुदतीं भार्यां नाभिजानाति भूमिपः।
चिरप्रवाससन्तप्तां पुनर्जातामिवाबलाम्॥ १०

सापि तं चारुकेशान्तं पुरो दृष्ट्वा जटालकम्।
नाभ्यजानान्नृपवरं शुष्कवृक्षत्वचोपमम्॥ ११

भूमौ निपतितं बालं दृष्ट्वाशीविषपीडितम्।
नरेन्द्रलक्षणोपेतमचिन्तयदसौ नृपः॥ १२

अस्य पूर्णेन्दुवद्वक्त्रं शुभमुन्नसमव्रणम्।
दर्पणप्रतिमोत्तुङ्गकपोलयुगशोभितम् ॥ १३

नीलान्केशान्कुञ्चिताग्रान्सान्द्रान्दीर्घांस्तरङ्गिणः।
राजीवसदृशे नेत्रे ओष्ठौ बिम्बफलोपमौ॥ १४

विशालवक्षा दीर्घाक्षो दीर्घबाहून्नतांसकः।
विशालपादो गम्भीरः सूक्ष्माङ्गुल्यवनीधरः॥ १५

'बहुत अच्छा'—ऐसा कहकर उसने रानीको बालकके पास भेज दिया। वे अत्यन्त शोकसे सन्तप्त होकर करुण विलाप करती हुई वहाँसे चली गयीं॥ ६॥

उन राजा हरिश्चन्द्रकी भार्या 'हा पुत्र! हा वत्स! हा शिशो!' ऐसा बार-बार कहती हुई सर्पसे डँसे हुए उस बालकको लेकर तुरंत श्मशानभूमिमें आकर उसे जमीनपर लिटाकर स्वयं बैठ गयी। उस समय उनका शरीर दुर्बल हो गया था, उनका वर्ण विकृत था, उनका शरीर मलिन था और सिरके बाल धूलसे धूमिल हो गये थे॥ ७-८॥

[रानी यह कहकर विलाप कर रही थी] हे राजन्! अपने मित्रोंके साथ खेलते समय क्रूर सर्पके द्वारा डँस लिये जानेसे मरे हुए पुत्रको आज आप पृथ्वीतलपर पड़ा हुआ देख लीजिये। तब उनके रुदनकी वह ध्वनि सुनकर राजा हरिश्चन्द्र शवके समीप आये और उन्होंने उसके ऊपरका वस्त्र हटाया। दीर्घ समयसे प्रवास-सम्बन्धी दुःख भोगनेके कारण दूसरे स्वरूपमें परिणत उन विलाप करती हुई अपनी अबला भार्याको उस समय राजा नहीं पहचान सके। पहले सुन्दर केशोंवाले उन नृपश्रेष्ठको अब जटाधारीके रूपमें तथा शुष्क वृक्षकी छाल-सदृश देखकर वे रानी भी उन्हें नहीं पहचान पायीं॥ ९—११॥

सर्पके विषसे ग्रस्त होकर धरतीपर पड़े हुए बालकको देखकर वे महाराज हरिश्चन्द्र उसके राजोचित लक्षणोंपर विचार करने लगे—इसका मुख पूर्णिमाके चन्द्रमाके सदृश है; इसकी नासिका अत्यन्त सुन्दर, उन्नत तथा व्रणरहित है और इसके दर्पणके समान चमकीले तथा ऊँचे दोनों कपोल अनुपम शोभा दे रहे हैं। इसके केश कृष्णवर्ण, घुँघराले अग्रभागवाले, स्निग्ध, लम्बे तथा लहरोंके समान हैं। इसके दोनों नेत्र कमलके समान हैं। इसके दोनों ओठ बिम्बाफलके सदृश हैं। यह बालक चौड़े वक्षःस्थल, विशाल नेत्र, लम्बी भुजाओं और ऊँचे स्कन्धोंवाला है। इसके बड़े-बड़े पैर हैं, इसकी छोटी-छोटी अँगुलियाँ हैं और यह गम्भीर स्वभाववाला कोई राजलक्षणयुक्त बालक

मृणालपादो गम्भीरनाभिरुद्धतकन्धरः।
अहो कष्टं नरेन्द्रस्य कस्याप्येष कुले शिशुः॥ १६

जातो नीतः कृतान्तेन कालपाशाद्दुरात्मना।

सूत उवाच

एवं दृष्ट्वाथ तं बालं मातुरङ्के प्रसारितम्॥ १७

स्मृतिमभ्यागतो राजा हाहेत्यश्रूण्यपातयत्।
सोऽप्युवाच च वत्सो मे दशामेतामुपागतः॥ १८

नीतो यदि च घोरेण कृतान्तेनात्मनो वशम्।
विचारयित्वा राजासौ हरिश्चन्द्रस्तथा स्थितः॥ १९

ततो राज्ञी महादुःखावेशादिदमभाषत।

राज्ञ्युवाच

हा वत्स कस्य पापस्य त्वपध्यानादिदं महत्॥ २०

दुःखमापतितं घोरं तद्रूपं नोपलभ्यते।
हा नाथ राजन् भवता मामपास्य सुदुःखिताम्॥ २१

कस्मिन्संस्थीयते स्थाने विश्रब्धं केन हेतुना।
राज्यनाशः सुहृत्त्यागो भार्यातनयविक्रयः॥ २२

हरिश्चन्द्रस्य राजर्षेः किं विधातः कृतं त्वया।
इति तस्या वचः श्रुत्वा राजा स्थानच्युतस्तदा॥ २३

प्रत्यभिज्ञाय देवीं तां पुत्रं च निधनं गतम्।
कष्टं ममैव पत्नीयं बालकश्चापि मे सुतः॥ २४

ज्ञात्वा पपात सन्तप्तो मूर्च्छामतिजगाम ह।
सा च तं प्रत्यभिज्ञाय तामवस्थामुपागतम्॥ २५

मूर्च्छिता निपपातार्ता निश्चेष्टा धरणीतले।
चेतनां प्राप्य राजेन्द्रो राजपत्नी च तौ समम्॥ २६

विलेपतुः सुसन्तप्तौ शोकभारेण पीडितौ।

जान पड़ता है। यह कमलनाल-सदृश चरणोंवाला, गहरी नाभिवाला और ऊँचे कन्धोंवाला है। अहो, महान् कष्टकी बात है कि किसी राजाके कुलमें उत्पन्न हुए इस बालकको दुरात्मा यमराजने अपने कालपाशमें बाँध लिया॥ १२—१६½ ॥

सूतजी बोले—माताकी गोदमें पड़े हुए उस बालकको देखकर ऐसा विचार करनेके उपरान्त राजा हरिश्चन्द्रको पूर्वकालकी स्मृति हो आयी और वे 'हाय, हाय'—ऐसा कहकर अश्रुपात करने लगे। वे कहने लगे कि 'कहीं मेरे ही पुत्रकी यह दशा तो नहीं हो गयी है और क्रूर यमराजने उसे अपने अधीन कर लिया है', इस प्रकार विचार करके वे राजा हरिश्चन्द्र कुछ समयके लिये ठहर गये। तत्पश्चात् अत्यन्त शोकसे सन्तप्त रानी ऐसा कहने लगीं॥ १७—१९½ ॥

रानी बोलीं—हा वत्स! किस पाप या अनिष्ट चिन्तनके परिणामस्वरूप यह महान् दारुण दुःख मेरे सामने आ पड़ा है? इसका कारण भी समझमें नहीं आ रहा है। हे नाथ! हे राजन्! मुझ अत्यन्त दुःखिनीको छोड़कर इस समय आप किस स्थानपर विद्यमान हैं? आप किस कारणसे निश्चिन्त हैं? राजर्षि हरिश्चन्द्रको राज्यसे हाथ धोना पड़ा, उनके सुहृद्वर्ग अलग हो गये और उन्हें भार्या तथा पुत्रतकको बेच देना पड़ा। हा विधाता! तुमने यह क्या कर दिया?॥ २०—२२½ ॥

तब रानीकी यह बात सुनकर राजा हरिश्चन्द्र अपने स्थानसे उठकर उनके समीप आ गये। तत्पश्चात् अपनी साध्वी पत्नी तथा मृत पुत्रको पहचानकर वे कहने लगे—'महान् कष्ट है कि यह स्त्री मेरी ही पत्नी है और यह बालक भी मेरा ही पुत्र है'॥ २३-२४॥

यह सब जानकर असीम दुःखसे सन्तप्त राजा हरिश्चन्द्र मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े और वे रानी भी उन्हें पहचानकर उसी स्थितिको प्राप्त हो गयीं। वे दुःखके मारे मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ीं और उनकी समस्त इन्द्रियाँ चेष्टारहित हो गयीं। पुनः कुछ समय बाद चेतना आनेपर शोकके भारसे पीडित राजा और रानी दोनों अत्यन्त दुःखित होकर एक साथ विलाप करने लगे॥ २५-२६½ ॥

राजोवाच

हा वत्स सुकुमारं ते वदनं कुञ्चितालकम्॥ २७

पश्यतो मे मुखं दीनं हृदयं किं न दीर्यते।
तात तातेति मधुरं ब्रुवाणं स्वयमागतम्॥ २८

उपगुह्य कदा वक्ष्ये वत्सवत्सेति सौहृदात्।
कस्य जानुप्रणीतेन पिङ्गेन क्षितिरेणुना॥ २९

ममोत्तरीयमुत्सङ्गं तथाङ्गं मलमेष्यति।
न वालं मम सम्भूतं मनो हृदयनन्दन॥ ३०

(मयासि पितृमान्पित्रा विक्रीतो येन वस्तुवत्।)
गतं राज्यमशेषं मे सबान्धवधनं महत्।
(हीनदैवान्नृशंसेन दृष्टो मे तनयस्ततः।)
अहं महाहिदष्टस्य पुत्रस्याननपङ्कजम्॥ ३१

निरीक्षन्नद्य घोरेण विषेणाधिकृतोऽधुना।
एवमुक्त्वा तमादाय बालकं बाष्पगद्गदः॥ ३२

परिष्वज्य च निश्चेष्टो मूर्च्छया निपपात ह।
ततस्तं पतितं दृष्ट्वा शैव्या चैवमचिन्तयत्॥ ३३

अयं स पुरुषव्याघ्रः स्वरेणैवोपलक्ष्यते।
विद्वज्जनमनश्चन्द्रो हरिश्चन्द्रो न संशयः॥ ३४

तथास्य नासिका तुङ्गा तिलपुष्पोपमा शुभा।

दन्ताश्च मुकुलप्रख्याः ख्यातकीर्तेर्महात्मनः॥ ३५

श्मशानमागतः कस्माद्यद्येवं स नरेश्वरः।
विहाय पुत्रशोकं सा पश्यन्ती पतितं पतिम्॥ ३६

प्रहृष्टा विस्मिता दीना भर्तृपुत्रार्तिपीडिता।
वीक्षन्ती सा तदापतन्मूर्च्छया धरणीतले॥ ३७

प्राप्य चेतश्च शनकैः सा गद्गदमभाषत।
धिक्त्वां दैव ह्यकरुण निर्मर्याद जुगुप्सित॥ ३८

राजा बोले—हा वत्स! कुंचित अलकावलीसे घिरा हुआ तुम्हारा मुख बड़ा ही सुकुमार है। तुम्हारे दीन मुखको देखकर मेरा हृदय विदीर्ण क्यों नहीं हो जाता? पहले तुम 'तात, तात'—ऐसा मधुर वाणीमें बोलते हुए मेरे पास स्वयं आ जाते थे, किंतु अब मैं तुम्हें बाहोंमें भरकर 'वत्स, वत्स'—ऐसा प्रेमपूर्वक कब पुकारूँगा? अब भूमिकी पीतवर्णवाली धूलसे सने हुए किसके घुटने मेरी चादर, गोद और शरीरके अंगोंको मलिन करेंगे? हे हृदयनन्दन! मेरा मनोरथ पूर्ण नहीं हो सका; (क्योंकि जिसने सामान्य वस्तुकी भाँति तुम्हें बेच दिया था, उसी पितासे तुम पितावाले बने थे।) बहुतसे बन्धु-बान्धवों तथा अपार धन-सहित मेरा सम्पूर्ण राज्य चला गया। (आज दुर्भाग्यके कारण मुझ निर्दयीको अपना ही पुत्र दिखायी पड़ गया।) विषधर सर्पके द्वारा डँसे गये पुत्रके कमलसदृश मुखको देखता हुआ मैं इस समय स्वयं भीषण विषसे ग्रस्त हो गया हूँ॥ २७—३१½ ॥

इस प्रकार विलाप करके आँसूसे भरे हुए कण्ठवाले राजा हरिश्चन्द्रने उस बालकको उठा लिया और वे उसे वक्षःस्थलसे लगाकर मूर्च्छासे अचेत होकर गिर पड़े॥ ३२½ ॥

तदनन्तर पृथ्वीपर गिरे हुए उन राजाको देखकर रानी शैव्याने मनमें ऐसा सोचा कि पुरुषोंमें श्रेष्ठ ये महानुभाव तो अपने स्वरसे ही पहचानमें आ जाते हैं। इसमें अब कोई सन्देह नहीं कि ये विद्वानोंके मनको प्रसन्न करनेवाले चन्द्रमारूपी हरिश्चन्द्र ही हैं। इन परम यशस्वी महात्मा पुरुषकी सुन्दर तथा ऊँची नासिका तिलके पुष्पके समान शुभ है और इनके दाँत पुष्पोंकी अधखिली कलियोंकी भाँति प्रतीत हो रहे हैं। इस प्रकार यदि ये वे ही राजा हरिश्चन्द्र हैं, तो इस श्मशानपर वे कैसे आ गये?॥ ३३—३५½ ॥

अब पुत्र-शोकका त्याग करके वे रानी भूमिपर गिरे हुए अपने पतिको देखने लगीं। उस समय पति और पुत्र दोनोंके दुःखसे पीडित असहाय उन रानीके मनमें विस्मय और हर्ष—दोनों उत्पन्न हो उठे। राजाको देखती हुई वे सहसा मूर्च्छित होकर पृथ्वीतलपर गिर पड़ीं और धीरे-धीरे चेतनामें आनेपर गद्गद वाणीमें कहने लगीं—'अरे दयाहीन, मर्यादारहित तथा

येनायममरप्रख्यो नीतो राजा श्वपाकताम्।
राज्यनाशं सुहृत्त्यागं भार्यातनयविक्रयम्॥ ३९

प्रापयित्वापि येनाद्य चाण्डालोऽयं कृतो नृपः।
नाद्य पश्यामि ते छत्रं सिंहासनमथापि वा॥ ४०

चामरव्यजने वापि कोऽयं विधिविपर्ययः।
यस्यास्य व्रजतः पूर्वं राजानो भृत्यतां गताः॥ ४१

स्वोत्तरीयैः प्रकुर्वन्ति विरजस्कं महीतलम्।
सोऽयं कपालसंलग्ने घटीपटनिरन्तरे॥ ४२

मृतनिर्माल्यसूत्रान्तर्लग्नकेशसुदारुणे।
वसानिष्यन्दसंशुष्कमहापटलमण्डिते॥ ४३

भस्माङ्गारार्धदग्धास्थिमज्जासंघट्टभीषणे।
गृध्रगोमायुनादार्ते पुष्टक्षुद्रविहङ्गमे॥ ४४

चिताधूमायतपटे नीलीकृतदिगन्तरे।
कुणपास्वादनमुदा सम्प्रकृष्टनिशाचरे॥ ४५

चरत्यमेध्ये राजेन्द्रः श्मशाने दुःखपीडितः।
एवमुक्त्वाथ संश्लिष्य कण्ठे राज्ञो नृपात्मजा॥ ४६

कष्टं शोकसमाविष्टा विललापार्तया गिरा।
राजन् स्वप्नोऽथ तथ्यं वा यदेतन्मन्यते भवान्॥ ४७

तत्कथ्यतां महाभाग मनो वै मुह्यते मम।
यद्येतदेवं धर्मज्ञ नास्ति धर्मे सहायता॥ ४८

तथैव विप्रदेवादिपूजने सत्यपालने।
नास्ति धर्मः कुतः सत्यं नार्जवं नानृशंसता॥ ४९

यत्र त्वं धर्मपरमः स्वराज्यादवरोपितः।

निन्दनीय दैव! तुम्हें धिक्कार है, जो कि तुमने देवतुल्य इन नरेशको चाण्डाल बना दिया। इनका राज्य नष्ट हो गया, इनके बन्धु-बान्धव इनसे अलग हो गये और इन्हें अपनी पत्नी तथा पुत्रतक बेचने पड़े, ऐसी स्थितिमें पहुँचानेके बाद भी तुमने इन्हें चाण्डाल बना दिया॥ ३६—३९½॥

[हे राजन्!] आज मैं आपके छत्र, सिंहासन, चामर अथवा व्यजन—कुछ भी नहीं देख रही हूँ; विधाताकी यह कैसी विडम्बना है!॥ ४०½॥

पहले जिनके यात्रा करते समय राजालोग भी सेवाकार्यमें लग जाते थे और अपने उत्तरीय वस्त्रोंसे धूलयुक्त भूमिमार्गको स्वच्छ करते थे, वे ही ये महाराज इस समय दुःखसे व्यथित होकर अपवित्र श्मशानमें भटक रहे हैं; जहाँ सर्वत्र खोपड़ियाँ बिखरी पड़ी हैं, फूटे हुए घड़े तथा फटे वस्त्र पड़े हैं, जो मृतकोंके शरीरसे उतारे गये सूत्र तथा उनमें लगे हुए केशसे अत्यन्त भयंकर लगता है, जहाँकी भूमि शुष्क चर्बियोंकी विशाल स्थिर राशिसे पटी पड़ी है, जो भस्म, अंगारों, अधजली हड्डियों और मज्जाओंके समूहसे अति भीषण दिखायी पड़ता है, जहाँ गीध और सियार सदा बोलते रहते हैं, जहाँ क्षुद्र जातिके हृष्ट-पुष्ट पक्षी मँडराते रहते हैं, जहाँकी सभी दिशाएँ चितासे निकले धुएँरूपी मेघसे अन्धकारयुक्त रहती हैं और जहाँपर शवोंके मांसको खाकर प्रसन्नतासे युक्त निशाचर दृष्टिगोचर हो रहे हैं॥ ४१—४५½॥

ऐसा कहकर दुःख तथा शोकसे सन्तप्त रानी शैव्या राजाके कण्ठसे लिपटकर कातर वाणीमें विलाप करने लगीं—हे राजन्! यह स्वप्न है अथवा सत्य, जिसे आप मान रहे हैं। हे महाभाग! यह आप स्पष्ट बतायें; क्योंकि मेरा मन व्याकुल हो रहा है। हे धर्मज्ञ! यदि ऐसा ही है तो धर्ममें, सत्यपालनमें, ब्राह्मण और देवता आदिके पूजनमें सहायता करनेकी शक्ति विद्यमान नहीं है। जब आप-जैसे धर्मपरायण पुरुषको अपने राज्यसे च्युत होना पड़ा तो फिर धर्म, सत्य, सरलता और अनृशंसता (अहिंसा)-का कोई महत्त्व ही नहीं रहा॥ ४६—४९½॥

सूत उवाच

इति तस्या वचः श्रुत्वा निःश्वस्योष्णं सगद्गदः ॥ ५०

कथयामास तन्वङ्ग्यै यथा प्राप्तः श्वपाकताम्।
रुदित्वा सा तु सुचिरं निःश्वस्योष्णं सुदुःखिता ॥ ५१

स्वपुत्रमरणं भीरुर्यथावत्तं न्यवेदयत्।
श्रुत्वा राजा तथा वाक्यं निपपात महीतले ॥ ५२

मृतपुत्रं समानीय जिह्वया विलिहन्मुहुः।
हरिश्चन्द्रमथो प्राह शैव्या गद्गदया गिरा ॥ ५३

कुरुष्व स्वामिनः प्रेष्यं छेदयित्वा शिरो मम।
स्वामिद्रोहो न तेऽस्त्वद्य मासत्यो भव भूपते ॥ ५४

मासत्यं तव राजेन्द्र परद्रोहस्तु पातकम्।
एतदाकर्ण्य राजा तु पपात भुवि मूर्च्छितः ॥ ५५

क्षणेन चेतनां प्राप्य विललापातिदुःखितः।

राजोवाच

कथं प्रिये त्वया प्रोक्तं वचनं त्वतिनिष्ठुरम् ॥ ५६

यदशक्यं भवेद्वक्तुं तत्कर्म क्रियते कथम्।

पत्न्युवाच

मया च पूजिता गौरी देवा विप्रास्तथैव च ॥ ५७

भविष्यसि पतिस्त्वं मे ह्यन्यस्मिञ्जन्मनि प्रभो।
श्रुत्वा राजा तदा वाक्यं निपपात महीतले ॥ ५८

मृतस्य पुत्रस्य तदा चुचुम्ब दुःखितो मुखम्।

राजोवाच

प्रिये न रोचते दीर्घं कालं क्लेशं मयाशितुम् ॥ ५९

नात्मायत्तोऽहं तन्वङ्गि पश्य मे मन्दभाग्यताम्।
चाण्डालेनाननुज्ञातः प्रवेक्ष्ये ज्वलनं यदि ॥ ६०

सूतजी बोले—उनका यह वचन सुनकर राजाने उष्ण श्वास छोड़कर रुँधे कण्ठसे उन कृश शरीरवाली शैव्यासे वह सब कुछ बताया, जिस प्रकार उन्हें चाण्डालत्व प्राप्त हुआ था। इसके बाद वह वृत्तान्त सुनकर रानी अत्यन्त दुःखित होकर बहुत देरतक रोती रहीं; फिर उष्ण श्वास छोड़कर उन्होंने भीरुतापूर्वक अपने पुत्रके मरणसम्बन्धी वृत्तान्तका यथावत् वर्णन राजासे कर दिया। वह वृत्तान्त सुनते ही राजा पृथ्वीपर गिर पड़े और फिर उठकर मृतपुत्रको बाहोंमें लेकर बार-बार जिह्वासे उसके मुखका स्पर्श करने लगे ॥ ५०—५२½ ॥

तत्पश्चात् शैव्याने हरिश्चन्द्रसे गद्गद वाणीमें कहा—अब आप मेरा सिर काटकर अपने स्वामीकी आज्ञाका पालन कीजिये, जिससे आपको स्वामिद्रोहका दोष न लगे और आप सत्यसे च्युत न हों। हे राजेन्द्र! आपकी वाणी असत्य नहीं होनी चाहिये और दूसरोंके प्रति द्रोह भी महान् पाप है ॥ ५३-५४½ ॥

यह सुनते ही राजा हरिश्चन्द्र मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। थोड़ी ही देरमें सचेत होनेपर वे अत्यन्त दुःखित होकर विलाप करने लगे ॥ ५५½ ॥

राजा बोले—हे प्रिये! तुमने ऐसा अतिनिष्ठुर वचन कैसे कह दिया? जो बात कही नहीं जा सकती, उसे कार्यरूपमें कैसे परिणत किया जाय? ॥ ५६½ ॥

पत्नीने कहा—हे प्रभो! मैंने भगवती गौरीकी उपासना की है और उसी प्रकार मैंने देवताओं तथा ब्राह्मणोंकी भी भलीभाँति पूजा की है। उनके आशीर्वादसे आप अगले जन्ममें भी मेरे पति होंगे ॥ ५७½ ॥

रानीकी यह बात सुनकर राजा भूमिपर गिर पड़े और दुःखित होकर अपने मरे हुए पुत्रका मुख चूमने लगे ॥ ५८½ ॥

राजा बोले—हे प्रिये! अब दीर्घ समयतक इस प्रकारका कष्ट भोगना मुझे अभीष्ट नहीं है। अब मैं अपने शरीरको स्वयं बचाये रखनेमें समर्थ नहीं हूँ। हे तन्वंगि! मेरी मन्दभाग्यताको तो देखो कि यदि मैं इस चाण्डालसे बिना आज्ञा लिये ही आगमें जल

चाण्डालदासतां यास्ये पुनरप्यन्यजन्मनि।
नरकं च वरं प्राप्य खेदं प्राप्स्यामि दारुणम्॥ ६१

तापं प्राप्स्यामि सम्प्राप्य महारौरवरौरवे।
मग्नस्य दुःखजलधौ वरं प्राणैर्वियोजनम्॥ ६२

जाऊँ तो अगले जन्ममें मुझे फिर चाण्डालकी दासता करनी पड़ेगी और मैं घोर नरकमें पड़कर भयंकर यातना भोगूँगा। इतना ही नहीं, महारौरव नरकमें भी गिरकर अनेक प्रकारके संताप सहने पड़ेंगे, फिर भी दुःखरूपी सागरमें डूबे हुए मुझ अभागेका अब प्राण त्याग देना ही श्रेयस्कर है॥ ५९—६२॥

एकोऽपि बालको योऽयमासीद्वंशकरः सुतः।
मम दैवानुयोगेन मृतो सोऽपि बलीयसा॥ ६३

कथं प्राणान्विमुञ्चामि परायत्तोऽस्मि दुर्गतः।
तथापि दुःखबाहुल्यात्त्यक्ष्यामि तु निजां तनुम्॥ ६४

वंशकी वृद्धि करनेवाला मेरा जो यह एकमात्र पुत्र था, वह भी आज बलवान् दैवके प्रकोपसे मर गया। इस प्रकारकी दुर्गतिको प्राप्त हुआ मैं पराधीन होनेके कारण प्राणोंका त्याग कैसे करूँ? फिर भी इस असीम दुःखसे ऊबकर अब मैं अपना शरीर त्याग ही दूँगा॥ ६३-६४॥

त्रैलोक्ये नास्ति तद्दुःखं नासिपत्रवने तथा।
वैतरण्यां कुतस्तद्वद्यादृशं पुत्रविप्लवे॥ ६५

सोऽहं सुतशरीरेण दीप्यमाने हुताशने।
निपतिष्यामि तन्वङ्गि क्षन्तव्यं तन्ममाधुना॥ ६६

तीनों लोकोंमें, असिपत्रवनमें और वैतरणीनदीमें वैसा क्लेश नहीं है; जैसा पुत्रशोकमें है। अतः हे तन्वंगि! मैं पुत्र-देहके साथ प्रज्वलित अग्निमें स्वयं भी कूद पड़ूँगा, इसके लिये तुम मुझे क्षमा करना॥ ६५-६६॥

न वक्तव्यं त्वया किञ्चिदतः कमललोचने।
मम वाक्यं च तन्वङ्गि निबोधाहतमानसा॥ ६७

अनुज्ञाताथ गच्छ त्वं विप्रवेश्म शुचिस्मिते।
यदि दत्तं यदि हुतं गुरवो यदि तोषिताः॥ ६८

सङ्गमः परलोके मे निजपुत्रेण चेत्त्वया।
इहलोके कुतस्त्वेतद्भविष्यति समीप्सितम्॥ ६९

हे कमललोचने! पुनः कुछ भी मत कहना। हे तन्वंगि! सन्तप्त मनवाली तुम मेरी बात सुन लो। हे पवित्र मुसकानवाली प्रिये! अब तुम मेरी आज्ञाके अनुसार ब्राह्मणके घर जाओ। यदि मैंने दान किया है, हवन किया है और सेवा आदिसे गुरुजनोंको सन्तुष्ट किया है तो उसके फलस्वरूप परलोकमें तुम्हारे साथ और अपने इस पुत्रके साथ मेरा मिलन अवश्य होगा। इस लोकमें अभिलषित मिलन अब कहाँसे होगा?॥ ६७—६९॥

यन्मया हसता किञ्चिद्रहसि त्वां शुचिस्मिते।
अशेषमुक्तं तत्सर्वं क्षन्तव्यं मम यास्यतः॥ ७०

राजपत्नीति गर्वेण नावज्ञेयः स मे द्विजः।
सर्वयत्नेन तोष्यः स्यात्स्वामी दैवतवच्छुभे॥ ७१

हे शुचिस्मिते! अब यहाँसे प्रस्थान करते हुए मेरेद्वारा एकान्तमें हँसीके रूपमें जो कुछ भी अनुचित वचन तुम्हें कहा गया हो, उन सबको तुम क्षमा कर देना। हे शुभे! 'मैं राजाकी पत्नी हूँ'—ऐसा सोचकर अभिमानपूर्वक तुम्हें मेरे उस ब्राह्मणकी अवहेलना नहीं करनी चाहिये; क्योंकि स्वामीको देवतुल्य समझकर पूर्ण प्रयत्नके साथ उन्हें सन्तुष्ट रखना चाहिये॥ ७०-७१॥

राज्युवाच

अहमप्यत्र राजर्षे निपतिष्ये हुताशने।
दुःखभारासहा देव सह यास्यामि वै त्वया॥ ७२

त्वया सह मम श्रेयो गमनं नान्यथा भवेत्।
सह स्वर्गं च नरकं त्वया भोक्ष्यामि मानद।
श्रुत्वा राजा तदोवाच एवमस्तु पतिव्रते॥ ७३

रानी बोली—हे राजर्षे! हे देव! अत्यधिक दुःखके भारको सहन करनेमें असमर्थ मैं भी इस आगमें कूद पड़ूँगी और आपके साथ ही चलूँगी। हे मानद! आपके साथ जानेमें मेरा परम कल्याण है, इसमें सन्देह नहीं है। आपके साथ रहकर मैं स्वर्ग और नरक—सबकुछ भोगूँगी। यह सुनकर राजा बोले—हे पतिव्रते! ऐसा ही हो॥ ७२-७३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे हरिश्चन्द्रोपाख्याने राज्ञो हुताशनप्रवेशोद्योगवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः॥ २६॥

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

चिता बनाकर राजाका रोहितको उसपर लिटाना और राजा-रानीका भगवतीका ध्यानकर स्वयं भी पुत्रकी चितामें जल जानेको उद्यत होना, ब्रह्माजीसहित समस्त देवताओंका राजाके पास आना, इन्द्रका अमृत-वर्षा करके रोहितको जीवित करना और राजा-रानीसे स्वर्ग चलनेके लिये आग्रह करना, राजाका सम्पूर्ण अयोध्यावासियोंके साथ स्वर्ग जानेका निश्चय

सूत उवाच

ततः कृत्वा चितां राजा आरोप्य तनयं स्वकम्।
भार्यया सहितो राजा बद्धाञ्जलिपुटस्तदा॥ १

चिन्तयन्परमेशानीं शताक्षीं जगदीश्वरीम्।
पञ्चकोशान्तरगतां पुच्छब्रह्मस्वरूपिणीम्॥ २

रक्ताम्बरपरीधानां करुणारससागराम्।
नानायुधधरामम्बां जगत्पालनतत्पराम्॥ ३

तस्य चिन्तयमानस्य सर्वे देवाः सवासवाः।
धर्मं प्रमुखतः कृत्वा समाजग्मुस्त्वरान्विताः॥ ४

आगत्य सर्वे प्रोचुस्ते राजञ्छृणु महाप्रभो।
अहं पितामहः साक्षाद्धर्मश्च भगवान्स्वयम्॥ ५

साध्याः सविश्वे मरुतो लोकपालाः सचारणाः।
नागाः सिद्धाः सगन्धर्वा रुद्राश्चैव तथाश्विनौ॥ ६

एते चान्येऽथ बहवो विश्वामित्रस्तथैव च।
विश्वत्रयेण यो मैत्रीं कर्तुमिच्छति धर्मतः॥ ७
विश्वामित्रः स तेऽभीष्टमाहर्तुं सम्यगिच्छति।

सूतजी बोले—तत्पश्चात् राजा हरिश्चन्द्रने चिता तैयार करके उसपर अपने पुत्रको लिटा दिया और भार्यासहित दोनों हाथ जोड़कर वे शताक्षी (सौ नेत्रोंवाली) परमेश्वरी, जगत्की अधिष्ठात्री, पंचकोशके भीतर सदा विराजमान रहनेवाली, पुच्छब्रह्मस्वरूपिणी, रक्तवर्णका वस्त्र धारण करनेवाली, करुणारसकी सागरस्वरूपा, अनेक प्रकारके आयुध धारण करनेवाली और जगत्की रक्षा करनेमें निरन्तर तत्पर जगदम्बाका ध्यान करने लगे॥ १—३॥

इस प्रकार ध्यानमग्न उन राजा हरिश्चन्द्रके समक्ष इन्द्रसहित सभी देवता धर्मको आगे करके तुरन्त उपस्थित हुए॥ ४॥

वहाँ आकर उन सबने कहा—हे राजन्! हे महाप्रभो! सुनिये, [ब्रह्माने कहा—] मैं साक्षात् पितामह ब्रह्मा हूँ और ये स्वयं भगवान् धर्मदेव हैं; इसी प्रकार साध्यगण, विश्वेदेव, मरुद्गण, चारणोंसहित लोकपाल, नाग, सिद्ध, गन्धर्वोंके साथ रुद्रगण, दोनों अश्विनीकुमार, महर्षि विश्वामित्र तथा अन्य ये बहुतसे देवता भी यहाँ उपस्थित हैं। जो धर्मपूर्वक तीनों लोकोंके साथ मित्रता करनेकी इच्छा रखते हैं, वे विश्वामित्र सम्यक् प्रकारसे आपका अभीष्ट सिद्ध करनेकी अभिलाषा प्रकट कर रहे हैं॥ ५—७½॥

धर्म उवाच

मा राजन् साहसं कार्षीर्धर्मोऽहं त्वामुपागतः॥ ८
तितिक्षादमसत्त्वाद्यैस्त्वद्गुणैः परितोषितः।

इन्द्र उवाच

हरिश्चन्द्र महाभाग प्राप्तः शक्रोऽस्मि तेऽन्तिकम्॥ ९

त्वयाद्य भार्यापुत्रेण जिता लोकाः सनातनाः।
आरोह त्रिदिवं राजन् भार्यापुत्रसमन्वितः॥ १०

सुदुष्प्रापं नरैरन्यैर्जितमात्मीयकर्मभिः।

सूत उवाच

ततोऽमृतमयं वर्षमपमृत्युविनाशनम्॥ ११

इन्द्रः प्रासृजदाकाशाच्चितामध्यगते शिशौ।
पुष्पवृष्टिश्च महती दुन्दुभिस्वन एव च॥ १२

समुत्तस्थौ मृतः पुत्रो राज्ञस्तस्य महात्मनः।
सुकुमारतनुः स्वस्थः प्रसन्नः प्रीतमानसः॥ १३

ततो राजा हरिश्चन्द्रः परिष्वज्य सुतं तदा।
सभार्यः स्वश्रिया युक्तो दिव्यमाल्याम्बरावृतः॥ १४

स्वस्थः सम्पूर्णहृदयो मुदा परमयावृतः।
बभूव तत्क्षणादिन्द्रो भूपं चैवमभाषत॥ १५

सभार्यस्त्वं सपुत्रश्च स्वर्लोकं सद्गतिं पराम्।
समारोह महाभाग निजानां कर्मणां फलम्॥ १६

हरिश्चन्द्र उवाच

देवराजाननुज्ञातः स्वामिना श्वपचेन हि।
अकृत्वा निष्कृतिं तस्य नारोक्ष्ये वै सुरालयम्॥ १७

धर्म उवाच

तवैवं भाविनं क्लेशमवगम्यात्ममायया।
आत्मा श्वपचतां नीतो दर्शितं तच्च पक्कणम्॥ १८

धर्म बोले—हे राजन्! आप ऐसा साहस मत कीजिये। आपमें जो सहनशीलता, इन्द्रियोंपर नियन्त्रण रखनेकी शक्ति तथा सत्त्व आदि गुण विद्यमान हैं; उनसे परम सन्तुष्ट होकर मैं साक्षात् धर्म आपके पास आया हूँ॥ ८॥

इन्द्र बोले—हे महाभाग हरिश्चन्द्र! मैं इन्द्र आपके समक्ष उपस्थित हूँ। हे राजन्! आज स्त्री-पुत्रसहित आपने सनातन लोकोंपर विजय प्राप्त कर ली है। अतः अब आप अपनी भार्या तथा पुत्रको साथमें लेकर अपने श्रेष्ठ कर्मोंके द्वारा प्राप्त करनेयोग्य तथा अन्य लोगोंके लिये अत्यन्त दुर्लभ स्वर्गके लिये प्रस्थान कीजिये॥ ९-१०॥

सूतजी बोले—तत्पश्चात् इन्द्रने आकाशसे चिताके मध्यभागमें सोये हुए शिशु रोहितपर अपमृत्युका नाश करनेवाली अमृतमयी वृष्टि आरम्भ कर दी। उस समय पुष्पोंकी विपुल वर्षा तथा दुन्दुभियोंकी तेज ध्वनि होने लगी॥ ११-१२॥

महान् आत्मावाले उन राजा हरिश्चन्द्रके सुकुमार अंगोंवाले मृत पुत्र रोहित स्वस्थ, प्रसन्न तथा आनन्दचित्त हो गये। तब राजाने अपने पुत्रको हृदयसे लगा लिया। तत्पश्चात् पत्नीसहित वे राजा हरिश्चन्द्र दिव्य मालाओं तथा वस्त्रोंसे सहसा अलंकृत हो गये। उनके मनमें शान्ति छा गयी, उनके हृदय हर्षसे भर गये और वे परम आनन्दसे समन्वित हो गये। उस समय इन्द्रने राजासे कहा—हे महाभाग! अब आप स्त्री-पुत्रसहित स्वर्गलोकके लिये प्रस्थान कीजिये। आपने परम सद्गति प्राप्त की है, यह आपके अपने ही कर्मोंका फल है॥ १३—१६॥

हरिश्चन्द्र बोले—हे देवराज! अपने स्वामी चाण्डालसे बिना आज्ञा प्राप्त किये और बिना उनका प्रत्युपकार किये, मैं स्वर्गलोक नहीं जाऊँगा॥ १७॥

धर्म बोले—आपके भावी क्लेशके सम्बन्धमें विचार करके मैं ही अपनी मायाके प्रभावसे चाण्डाल बन गया था। आपको जो चाण्डालका घर दिखायी पड़ा था, वह भी मेरी माया ही थी॥ १८॥

इन्द्र उवाच

प्रार्थ्यते यत्परं स्थानं समस्तैर्मनुजैर्भुवि।
तदारोह हरिश्चन्द्र स्थानं पुण्यकृतां नृणाम्॥ १९

हरिश्चन्द्र उवाच

देवराज नमस्तुभ्यं वाक्यं चेदं निबोध मे।
मच्छोकमग्नमनसः कौसले नगरे नराः॥ २०

तिष्ठन्ति तानपास्यैवं कथं यास्याम्यहं दिवम्।
ब्रह्महत्या सुरापानं गोवधः स्त्रीवधस्तथा॥ २१

तुल्यमेभिर्महत्पापं भक्तत्यागादुदाहृतम्।
भजन्तं भक्तमत्याज्यं त्यजतः स्यात्कथं सुखम्॥ २२

तैर्विना न प्रयास्यामि तस्माच्छक्र दिवं व्रज।
यदि ते सहिताः स्वर्गं मया यान्ति सुरेश्वर॥ २३

ततोऽहमपि यास्यामि नरकं वापि तैः सह।

इन्द्र उवाच

बहूनि पुण्यपापानि तेषां भिन्नानि वै नृप॥ २४

कथं सङ्घातभोज्यं त्वं भूप स्वर्गमभीप्ससि।

हरिश्चन्द्र उवाच

भुङ्क्ते शक्र नृपो राज्यं प्रभावात्प्रकृतेर्ध्रुवम्॥ २५

यजते च महायज्ञैः कर्म पूर्तं करोति च।
तच्च तेषां प्रभावेण मया सर्वमनुष्ठितम्॥ २६

उपदादान्न सन्त्यक्ष्ये तानहं स्वर्गलिप्सया।
तस्माद्यन्मम देवेश किञ्चिदस्ति सुचेष्टितम्॥ २७

दत्तमिष्टमथो जप्तं सामान्यं तैस्तदस्तु नः।
बहुकालोपभोज्यं च फलं यन्मम कर्मगम्॥ २८

तदस्तु दिनमप्येकं तैः समं त्वत्प्रसादतः।

इन्द्र बोले—हे हरिश्चन्द्र! पृथ्वीपर रहनेवाले मनुष्य जिस श्रेष्ठ स्थानकी प्राप्तिहेतु कामना करते हैं, पुण्यात्मा पुरुषोंके उस पवित्र स्थानके लिये अब आप प्रस्थान कीजिये॥ १९॥

हरिश्चन्द्र बोले—हे देवराज! आपको नमस्कार है। अब मेरी एक बात सुन लीजिये। अयोध्या नगरमें रहनेवाले सभी मानव मेरे शोकसे सन्तप्त मनवाले हैं, उन्हें यहाँ छोड़कर मैं स्वर्ग कैसे जाऊँगा? ब्रह्महत्या, सुरापान, गोवध और स्त्रीहत्या-जैसे महापातकोंके ही समान अपने भक्तोंका त्याग भी महान् पाप बताया गया है। श्रद्धालु भक्त त्याज्य नहीं होता है, उसे त्यागनेवालेको सुख भला कैसे मिल सकता है? अतएव हे इन्द्र! उन्हें छोड़कर मैं स्वर्ग नहीं जाऊँगा, अब आप स्वर्ग प्रस्थान करें। हे सुरेन्द्र! यदि मेरे साथ वे भी स्वर्ग चलें तो मैं स्वर्ग चल सकता हूँ। उनके साथ यदि नरकमें जाना हो तो मैं वहाँ भी चला जाऊँगा॥ २०—२३½॥

इन्द्र बोले—हे राजन्! उन अयोध्याके नागरिकोंके भिन्न-भिन्न प्रकारके पुण्य और पाप हैं। हे भूप! समस्त जन-समूहके लिये स्वर्ग उपभोगका साधन हो जाय—ऐसी इच्छा आप क्यों प्रकट कर रहे हैं?॥ २४½॥

हरिश्चन्द्र बोले—हे इन्द्र! प्रजाके प्रभावसे ही राजा राज्यका भोग करता है, यह सुनिश्चित है और उन्हींकी सहायतासे ही राजा बड़े-बड़े यज्ञोंके द्वारा देवताओंकी उपासना करता है और पूर्तकर्म (कुएँ-तालाब आदिका निर्माण) करता है। मैंने भी उन्हींके बलपर यह सब कृत्य किया है। उनके द्वारा की गयी सहायताके कारण मैं स्वर्गके लोभसे उनका त्याग नहीं करूँगा। अतः हे देवेश! मैंने जो कुछ भी उत्तम कार्य किया हो; दान, यज्ञ और जप आदि किया हो, उसका फल हमें उन सभीके साथ प्राप्त हो; और मेरे उत्तम कर्मके फलस्वरूप बहुत समयतक भोग करनेका जो फल मिल रहा हो, वह भले ही एक दिनके लिये हो, उन नागरिकोंके साथ भोगनेके लिये मुझे आपकी कृपासे मिल जाय॥ २५—२८½॥

सूत उवाच

एवं भविष्यतीत्युक्त्वा शक्रस्त्रिभुवनेश्वरः॥ २९
प्रसन्नचेता धर्मश्च विश्वामित्रश्च गाधिजः।
गत्वा तु नगरं सर्वे चातुर्वर्ण्यसमाकुलम्॥ ३०
हरिश्चन्द्रस्य निकटे प्रोवाच विबुधाधिपः।
आगच्छन्तु जनाः शीघ्रं स्वर्गलोकं सुदुर्लभम्॥ ३१
धर्मप्रसादात्सम्प्राप्तं सर्वैर्युष्माभिरेव तु।
हरिश्चन्द्रोऽपि तान्सर्वाञ्जनान्नगरवासिनः॥ ३२
प्राह राजा धर्मपरो दिवमारुह्यतामिति।

सूत उवाच

तदिन्द्रस्य वचः श्रुत्वा प्रीतास्तस्य च भूपतेः॥ ३३
ये संसारेषु निर्विण्णास्ते धुरं स्वसुतेषु वै।
कृत्वा प्रहृष्टमनसो दिवमारुरुहुर्जनाः॥ ३४
विमानवरमारूढाः सर्वे भास्वरविग्रहाः।
तदा सम्भूतहर्षास्ते हरिश्चन्द्रश्च पार्थिवः॥ ३५
राज्येऽभिषिच्य तनयं रोहिताख्यं महामनाः।
अयोध्याख्ये पुरे रम्ये हृष्टपुष्टजनान्विते॥ ३६
तनयं सुहृदश्चापि प्रतिपूज्याभिनन्द्य च।
पुण्येन लभ्यां विपुलां देवादीनां सुदुर्लभाम्॥ ३७
सम्प्राप्य कीर्तिमतुलां विमाने स महीपतिः।
आसाञ्चक्रे कामगमे क्षुद्रघण्टाविराजिते॥ ३८
ततस्तर्हि समालोक्य श्लोकमन्त्रं तदा जगौ।
दैत्याचार्यो महाभागः सर्वशास्त्रार्थतत्त्ववित्॥ ३९

शुक्र उवाच

अहो तितिक्षामाहात्म्यमहो दानफलं महत्।
यदागतो हरिश्चन्द्रो महेन्द्रस्य सलोकताम्॥ ४०

सूत उवाच

एतत्ते सर्वमाख्यातं हरिश्चन्द्रस्य चेष्टितम्।
यः शृणोति च दुःखार्तः स सुखं लभतेऽन्वहम्॥ ४१

सूतजी बोले—त्रिलोकीके स्वामी इन्द्रने 'ऐसा ही होगा'—इस प्रकार कहा। इससे धर्म और गाधिपुत्र विश्वामित्रके मनमें प्रसन्नता छा गयी। तदनन्तर वे सभी लोग चारों वर्णोंके लोगोंसे भरी हुई अयोध्या नगरीमें पहुँचे। वहाँपर सुरपति इन्द्रने राजा हरिश्चन्द्रके सन्निकट आकर कहा—हे नागरिको! अब आप सभी लोग परम दुर्लभ स्वर्गलोक चलिये। धर्मके फलस्वरूप ही आप सभीको यह स्वर्ग सुलभ हुआ है॥ २९—३१½ ॥

तत्पश्चात् धर्मपरायण राजा हरिश्चन्द्रने उन सभी नगरवासियोंसे कहा कि आप सभी लोग मेरे साथ स्वर्गलोक प्रस्थान कीजिये॥ ३२½ ॥

सूतजी बोले—देवराज इन्द्र तथा राजा हरिश्चन्द्रका वचन सुनकर सभी नागरिक प्रफुल्लित हो उठे। जो नागरिक सांसारिकतासे विरक्त हो चुके थे, वे गृहस्थीका भार अपने पुत्रोंको सौंपकर प्रसन्न मनसे स्वर्ग जानेके लिये तैयार हो गये। वे सभी लोग उत्तम विमानोंपर चढ़ गये। उनके शरीरसे सूर्यके समान तेज निकलने लगा। उस समय वे परम आनन्दित हो गये। उदार चित्तवाले राजा हरिश्चन्द्र भी हृष्ट-पुष्ट नागरिकोंसे युक्त अयोध्या नामक रमणीक पुरीमें अपने रोहित नामसे प्रसिद्ध पुत्रका राज्याभिषेक करके अपने पुत्र तथा सुहृदोंका सम्मान-पूजन करके और पुण्यसे प्राप्त होनेवाली तथा देवता आदिके लिये भी अत्यन्त दुर्लभ महान् कीर्तिको प्राप्त करके छोटी-छोटी घण्टियोंसे सुशोभित तथा इच्छाके अनुसार चलनेवाले विमानपर बैठ गये॥ ३३—३८॥

यह सब देखकर दैत्योंके आचार्य एवं सभी शास्त्रोंके अर्थों तथा तत्त्वोंको जाननेवाले महाभाग शुक्राचार्यने यह श्लोकरूपी मन्त्र उच्चारित किया—॥ ३९॥

शुक्राचार्य बोले—अहो, सहिष्णुताकी ऐसी महिमा और दानका इतना महान् फल कि राजा हरिश्चन्द्रने इन्द्रका लोक प्राप्त कर लिया॥ ४०॥

सूतजी बोले—इस प्रकार राजा हरिश्चन्द्रके सम्पूर्ण चरित्रका वर्णन मैंने आपलोगोंसे कर दिया। जो दुःखी प्राणी इस आख्यानका श्रवण करता है, वह सदा सुखी रहता है। इसका श्रवण करनेसे स्वर्गकी

स्वर्गार्थी प्राप्नुयात्स्वर्गं सुतार्थी सुतमाप्नुयात्।
भार्यार्थी प्राप्नुयाद्भार्यां राज्यार्थी राज्यमाप्नुयात्॥ ४२

इच्छा रखनेवाला स्वर्ग प्राप्त कर लेता है, पुत्रकी अभिलाषा रखनेवाला पुत्र प्राप्त कर लेता है, पत्नीकी कामना करनेवाला पत्नी प्राप्त कर लेता है और राज्यकी वांछा रखनेवाला राज्य प्राप्त कर लेता है॥ ४१-४२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे हरिश्चन्द्राख्यानश्रवणफलवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः॥ २७॥



अथाष्टाविंशोऽध्यायः

दुर्गम दैत्यकी तपस्या; वर-प्राप्ति तथा अत्याचार, देवताओंका भगवतीकी प्रार्थना करना, भगवतीका शताक्षी और शाकम्भरीरूपमें प्राकट्य, दुर्गमका वध और देवगणोंद्वारा भगवतीकी स्तुति

जनमेजय उवाच

विचित्रमिदमाख्यानं हरिश्चन्द्रस्य कीर्तितम्।
शताक्षीपादभक्तस्य राजर्षेर्धार्मिकस्य च॥ १

शताक्षी सा कुतो जाता देवी भगवती शिवा।
तत्कारणं वद मुने सार्थकं जन्म मे कुरु॥ २

को हि देव्या गुणाञ्छृण्वंस्तृप्तिं यास्यति शुद्धधीः।
पदे पदेऽश्वमेधस्य फलमक्षय्यमश्नुते॥ ३

जनमेजय बोले—हे मुने! भगवती शताक्षीके चरणोंके उपासक एवं धर्मपरायण राजर्षि हरिश्चन्द्रकी यह बड़ी अद्भुत कथा आपने कही। हे मुने! वे कल्याणमयी देवी भगवती किस प्रकारसे शताक्षी (सौ नेत्रोंवाली) हुईं? उसका कारण बताइये। मेरे जन्मको सार्थक कीजिये। कौन ऐसा विमल बुद्धिवाला मनुष्य होगा, जो भगवतीके गुणोंका श्रवण करके पूर्णरूपसे तृप्त हो जाय! इसे सुननेसे पद-पदपर अश्वमेध-यज्ञका फल मनुष्यको प्राप्त होता है॥ १—३॥

व्यास उवाच

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि शताक्षीसम्भवं शुभम्।
तवावाच्यं न मे किञ्चिद्देवीभक्तस्य विद्यते॥ ४

व्यासजी बोले—हे राजन्! मैं शताक्षीकी मंगलकारिणी उत्पत्तिका वर्णन करता हूँ, आप सुनिये। आपसदृश देवीभक्तके प्रति कोई भी बात मेरे लिये अवाच्य नहीं है॥ ४॥

दुर्गमाख्यो महादैत्यः पूर्वं परमदारुणः।
हिरण्याक्षान्वये जातो रुरुपुत्रो महाखलः॥ ५

प्राचीन कालकी बात है—दुर्गम नामक एक अत्यन्त भयंकर महादैत्य था। हिरण्याक्षके वंशमें उत्पन्न वह महान् दुष्ट दुर्गम रुरुका पुत्र था॥ ५॥

देवानां तु बलं वेदो नाशे तस्य सुरा अपि।
नंक्ष्यन्त्येव न संदेहो विधेयं तावदेव तत्॥ ६

विमृश्यैतत्तपश्चर्यां गतः कर्तुं हिमालये।
ब्रह्माणं मनसा ध्यात्वा वायुभक्षो व्यतिष्ठत॥ ७

सहस्त्रवर्षपर्यन्तं चकार परमं तपः।
तेजसा तस्य लोकास्तु सन्तप्ताः ससुरासुराः॥ ८

'देवताओंका बल वेद है। उस वेदके नष्ट हो जानेपर देवताओंका भी नाश हो जायगा, इसमें सन्देह नहीं है। अतः पहले वही (वेदनाश) किया जाना चाहिये'—ऐसा सोचकर वह तप करनेके लिये हिमालयपर्वतपर चला गया। वहाँपर मनमें ब्रह्माजीका ध्यान करके उसने केवल वायु पीकर रहते हुए एक हजार वर्षतक कठोर तपस्या की। उसके तेजसे देव-दानवसहित समस्त प्राणी सन्तप्त हो उठे॥ ६—८॥

ततः प्रसन्नो भगवान् हंसारूढश्चतुर्मुखः।
ययौ तस्मै वरं दातुं प्रसन्नमुखपङ्कजः॥ ९

समाधिस्थं मीलिताक्षं स्फुटमाह चतुर्मुखः।
वरं वरय भद्रं ते यस्ते मनसि वर्तते॥ १०

तवाद्य तपसा तुष्टो वरदेशोऽहमागतः।
श्रुत्वा ब्रह्ममुखाद्वाणीं व्युत्थितः स समाधितः॥ ११

पूजयित्वा वरं वव्रे वेदान्देहि सुरेश्वर।
त्रिषु लोकेषु ये मन्त्रा ब्राह्मणेषु सुरेष्वपि॥ १२

विद्यन्ते ते तु सान्निध्ये मम सन्तु महेश्वर।
बलं च देहि येन स्याद्देवानां च पराजयः॥ १३

इति तस्य वचः श्रुत्वा तथास्त्विति वचो वदन्।
जगाम सत्यलोकं तु चतुर्वेदेश्वरः परः॥ १४

ततःप्रभृति विप्रैस्तु विस्मृता वेदराशयः।
स्नानसन्ध्यानित्यहोमश्राद्धयज्ञजपादयः॥ १५

विलुप्ता धरणीपृष्ठे हाहाकारो महानभूत्।
किमिदं किमिदं चेति विप्रा ऊचुः परस्परम्॥ १६

वेदाभावात्तदस्माभिः कर्तव्यं किमतः परम्।
इति भूमौ महानर्थे जाते परमदारुणे॥ १७

निर्जराः सजरा जाता हविर्भागाद्यभावतः।
रुरोध स तदा दैत्यो नगरीममरावतीम्॥ १८

अशक्तास्तेन ते योद्धुं वज्रदेहासुरेण च।
पलायनं तदा कृत्वा निर्गता निर्जराः क्वचित्॥ १९

निलयं गिरिदुर्गेषु रत्नसानुगुहासु च।
संस्थिताः परमां शक्तिं ध्यायन्तस्ते पराम्बिकाम्॥ २०

तब [उसके तपसे] प्रसन्न होकर विकसित कमलके समान सुन्दर मुखवाले चतुर्मुख भगवान् ब्रह्मा हंसपर आरूढ़ होकर उसे वर देनेके लिये वहाँ गये॥ ९॥

नेत्र मूँदकर समाधिकी स्थितिमें बैठे हुए उस दैत्यसे चार मुखवाले ब्रह्माजीने स्पष्ट वाणीमें कहा—'तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारे मनमें जो भी इच्छा हो, उसे वरके रूपमें माँग लो। वरदाताओंका स्वामी मैं तुम्हारी तपस्यासे प्रसन्न होकर इस समय उपस्थित हुआ हूँ'॥ १० १/२ ॥

ब्रह्माजीके मुखसे यह वाणी सुनकर वह दैत्य समाधिसे उठ खड़ा हुआ और उसने पूजा करके वर माँगते हुए कहा—हे सुरेश्वर! मुझे सभी वेद देनेकी कृपा कीजिये। साथ ही हे महेश्वर! तीनों लोकोंमें ब्राह्मणों और देवताओंके पास जो मन्त्र हों, वे सब मेरे पास आ जायँ और मुझे वह बल दीजिये, जिससे मेरे द्वारा देवताओंकी पराजय हो जाय॥ ११—१३॥

उसकी यह बात सुनकर चारों वेदोंके परम अधिष्ठाता ब्रह्माजी 'ऐसा ही हो'—यह वचन कहते हुए सत्यलोक चले गये॥ १४॥

उसी समयसे ब्राह्मणोंको समस्त वेद विस्मृत हो गये। स्नान, संध्या, नित्य होम, श्राद्ध, यज्ञ और जप आदिका लोप हो गया, जिससे भूमण्डलमें बड़ा हाहाकार मच गया। ब्राह्मण आपसमें कहने लगे—'यह क्या हो गया, यह क्या हो गया; अब इसके बाद वेदके अभावकी स्थितिमें हमलोगोंको क्या करना चाहिये?'॥ १५-१६ १/२ ॥

इस प्रकार जगत्में अत्यन्त भयंकर तथा घोर अनर्थ उत्पन्न होनेपर हविभाग न मिलनेके कारण सभी देवता जरारहित होते हुए भी जराग्रस्त हो गये। तब उसने देवताओंकी नगरी अमरावतीको घेर लिया॥ १७-१८॥

देवतागण वज्रके समान शरीरवाले उस दैत्यके साथ युद्ध करनेमें असमर्थ हो गये। अतः भागकर वे देवता पर्वतकी कन्दराओं और सुमेरुपर्वतकी गुफाओंमें स्थान बनाकर परम शक्तिस्वरूपा पराम्बिकाका ध्यान करते हुए रहने लगे॥ १९-२०॥

अग्नौ होमाद्यभावात्तु वृष्ट्यभावोऽप्यभून्नृप।
वृष्टेरभावे संशुष्कं निर्जलं चापि भूतलम्॥ २१

कूपवापीतडागाश्च सरितः शुष्कतां गताः।
अनावृष्टिरियं राजन्नभूच्च शतवार्षिकी॥ २२

मृताः प्रजाश्च बहुधा गोमहिष्यादयस्तथा।
गृहे गृहे मनुष्याणामभवच्छवसंग्रहः॥ २३

अनर्थे त्वेवमुद्भूते ब्राह्मणाः शान्तचेतसः।
गत्वा हिमवतः पार्श्वे रिराधयिषवः शिवाम्॥ २४

समाधिध्यानपूजाभिर्देवीं तुष्टुवुरन्वहम्।
निराहारास्तदासक्तास्तामेव शरणं ययुः॥ २५

दयां कुरु महेशानि पामरेषु जनेषु हि।
सर्वापराधयुक्तेषु नैतच्छ्लाघ्यं तवाम्बिके॥ २६

कोपं संहर देवेशि सर्वान्तर्यामिरूपिणि।
त्वया यथा प्रेर्यतेऽयं करोति स तथा जनः॥ २७

नान्या गतिर्जनस्यास्य किं पश्यसि पुनः पुनः।
यथेच्छसि तथा कर्तुं समर्थासि महेश्वरि॥ २८

समुद्धर महेशानि संकटात्परमोत्थितात्।
जीवनेन विनास्माकं कथं स्यात्स्थितिरम्बिके॥ २९

प्रसीद त्वं महेशानि प्रसीद जगदम्बिके।
अनन्तकोटिब्रह्माण्डनायिके ते नमो नमः॥ ३०

नमः कूटस्थरूपायै चिद्रूपायै नमो नमः।
नमो वेदान्तवेद्यायै भुवनेश्यै नमो नमः॥ ३१

नेति नेतीति वाक्यैर्या बोध्यते सकलागमैः।
तां सर्वकारणां देवीं सर्वभावेन सन्नताः॥ ३२

हे राजन्! अग्निमें हवन आदि न होनेके कारण वर्षाका भी अभाव हो गया। वर्षाके अभावमें भूतल शुष्क तथा जलविहीन हो गया। कुएँ, बावलियाँ, तालाब और नदियाँ—ये सभी सूख गये। हे राजन्! यह अनावृष्टि सौ वर्षोंतक बनी रही, जिससे बहुत-सी प्रजाएँ और गाय-भैंस आदि पशु मर गये। इस प्रकार घर-घरमें मनुष्योंके शवके ढेर लग गये॥ २१—२३॥

इस प्रकार अनर्थके उपस्थित होनेपर शान्त चित्तवाले वे ब्राह्मण कल्याणस्वरूपिणी जगदम्बाकी आराधना करनेके विचारसे हिमालयपर्वतपर जाकर समाधि, ध्यान और पूजाके द्वारा भगवतीको निरन्तर प्रसन्न करने लगे। वे निराहार रहते हुए एकमात्र उन्हीं भगवतीमें चित्त लगाकर उनके शरणापन्न हो गये [और उनकी इस प्रकार स्तुति करने लगे—]॥ २४-२५॥

हे महेश्वरि! हम असहाय जनोंपर दया कीजिये। हे अम्बिके! समस्त अपराधोंसे युक्त हमलोगोंपर कृपा न करना आपके लिये शोभनीय नहीं है। सभीके भीतर निवास करनेवाली हे देवेश्वरि! आप अपना कोप दूर कीजिये। आप प्राणीको जैसी प्रेरणा देती हैं, वैसा ही वह करता है। इस मानवकी अन्य गति है ही नहीं। हे महेश्वरि! आप बार-बार क्या देख रही हैं? आप जैसा चाहें, वैसा करनेमें पूर्ण समर्थ हैं। हे महेशानि! इस उत्पन्न हुए घोर संकटसे हमारा उद्धार कीजिये। हे अम्बिके! जीवनी शक्तिके अभावमें हमारी स्थिति कैसे रह सकती है? हे महेश्वरि! आप प्रसन्न हो जाइये। हे जगदम्बिके! आप प्रसन्न हो जाइये। अनन्तकोटि ब्रह्माण्डकी अधीश्वरि! आपको बार-बार नमस्कार है। कूटस्थरूपिणी देवीको नमस्कार है, चिद्रूपा देवीको बार-बार नमस्कार है, वेदान्तोंके द्वारा ज्ञात होनेवालीको नमस्कार है और अखिल भुवनकी स्वामिनीको बार-बार नमस्कार है। सम्पूर्ण आगमशास्त्र 'नेति-नेति' इन वचनोंसे जिनका ज्ञान कराते हैं, हम सब प्रकारसे उन सर्वकारण-स्वरूपिणी भगवतीके शरणागत हैं॥ २६—३२॥

इति सम्प्रार्थिता देवी भुवनेशी महेश्वरी।
अनन्ताक्षिमयं रूपं दर्शयामास पार्वती॥ ३३

नीलाञ्जनसमप्रख्यं नीलपद्मायतेक्षणम्।
सुकर्कशसमोत्तुङ्गवृत्तपीनघनस्तनम् ॥ ३४

बाणमुष्टिं च कमलं पुष्पपल्लवमूलकान्।
शाकादीन्फलसंयुक्ताननन्तरससंयुतान् ॥ ३५

क्षुत्तृड्जरापहान् हस्तैर्बिभ्रती च महाधनुः।
सर्वसौन्दर्यसारं तद्रूपं लावण्यशोभितम्॥ ३६

कोटिसूर्यप्रतीकाशं करुणारससागरम्।
दर्शयित्वा जगद्धात्री सानन्तनयनोद्भवा॥ ३७

मोचयामास लोकेषु वारिधाराः सहस्रशः।
नवरात्रं महावृष्टिरभून्नेत्रोद्भवैर्जलैः॥ ३८

दुःखितान्वीक्ष्य सकलान्नेत्राश्रूणि विमुञ्चती।
तर्पितास्तेन ते लोका ओषध्यः सकला अपि॥ ३९

नदीनदप्रवाहास्तैर्जलैः समभवन्नृप।
निलीय संस्थिताः पूर्वं सुरास्ते निर्गता बहिः॥ ४०

मिलित्वा ससुरा विप्रा देवीं समभितुष्टुवुः।
नमो वेदान्तवेद्ये ते नमो ब्रह्मस्वरूपिणि॥ ४१

स्वमायया सर्वजगद्विधात्र्यै ते नमो नमः।
भक्तकल्पद्रुमे देवि भक्तार्थं देहधारिणि॥ ४२

नित्यतृप्ते निरुपमे भुवनेश्वरि ते नमः।
अस्मच्छान्त्यर्थमतुलं लोचनानां सहस्रकम्॥ ४३

त्वया यतो धृतं देवि शताक्षी त्वं ततो भव।
क्षुधया पीडिता मातः स्तोतुं शक्तिर्न चास्ति नः॥ ४४

कृपां कुरु महेशानि वेदानप्याहराम्बिके।

इस प्रकार ब्राह्मणोंके प्रार्थना करनेपर समस्त भुवनपर शासन करनेवाली भगवती भुवनेशी महेश्वरी पार्वतीने उन्हें अनन्त नेत्रोंसे युक्त अपना रूप दिखाया। उनका विग्रह काले कज्जलके सदृश था, नीलकमलके समान विशाल नेत्रोंसे सम्पन्न था और अत्यन्त कठोर, समान आकार-प्रकारवाले, उन्नत, गोल, स्थूल एवं सुडौल स्तनोंसे सुशोभित था। वे अपने हाथोंमें मुट्ठीभर बाण, विशाल धनुष, कमल, पुष्प-पल्लव, जड़ तथा फलोंसे सम्पन्न, अनन्त रससे युक्त तथा भूख-प्यास और बुढ़ापेको दूर करनेवाले शाक आदि धारण किये हुए थीं॥ ३३—३५½ ॥

सम्पूर्ण सुन्दरताके सारस्वरूप, कमनीयता-सम्पन्न, करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान और करुणारसके सागरस्वरूप उस विग्रहका दर्शन कराकर अनन्त नेत्रोंके साथ प्रकट वे जगद्धात्री भगवती समस्त लोकोंमें अपनी आँखोंसे सहस्रों जलधाराएँ गिराने लगीं। इस तरह उनके नेत्रोंसे निकले हुए जलसे नौ राततक महान् वृष्टि होती रही॥ ३६—३८॥

समस्त प्राणियोंको दुःखी देखकर भगवती अपने नेत्रोंसे आँसू गिराती रहीं, उससे वे सभी प्राणी और सभी औषधियाँ भी तृप्त हो गयीं। हे राजन्! उस वृष्टिके द्वारा सभी नदियाँ और समुद्र जलसे परिपूर्ण हो गये। पहले जो देवता छिपकर रह रहे थे, वे अब बाहर निकल आये। इसके बाद सभी देवता और ब्राह्मण एक साथ मिलकर देवीकी स्तुति करने लगे— ॥ ३९-४०½ ॥

हे वेदान्तवेद्ये! आपको नमस्कार है। हे ब्रह्मस्वरूपिणि! आपको नमस्कार है। अपनी मायासे सम्पूर्ण जगत्‌की रचना करनेवाली, भक्तोंके लिये देह धारण करनेवाली तथा कल्पवृक्षके समान उनके मनोरथ पूर्ण करनेवाली हे देवि! आपको बार-बार नमस्कार है। सदा सन्तुष्ट रहनेवाली और सभी उपमाओंसे रहित हे भुवनेश्वरि! आपको नमस्कार है। हे देवि! हमारी शान्तिके लिये आपने सहस्र नेत्रोंसे सम्पन्न अनुपम रूप धारण किया है, अतः आप 'शताक्षी' नामसे विख्यात हों। हे जननि! भूखसे अत्यन्त पीडित होनेके कारण आपकी स्तुति करनेके लिये हमलोगोंमें सामर्थ्य नहीं है। हे महेशानि! हे अम्बिके! अब आप कृपा कीजिये और हमें वेदोंको प्राप्त कराइये॥ ४१—४४½ ॥

व्यास उवाच

इति तेषां वचः श्रुत्वा शाकान्स्वकरसंस्थितान्॥ ४५

स्वादूनि फलमूलानि भक्षणार्थं ददौ शिवा।
नानाविधानि चान्नानि पशुभोज्यानि यानि च॥ ४६

काम्यानन्तरसैर्युक्तान्यानवीनोद्भवं ददौ।
शाकम्भरीति नामापि तद्दिनात्समभून्नृप॥ ४७

ततः कोलाहले जाते दूतवाक्येन बोधितः।
ससैन्यः सायुधो योद्धुं दुर्गमाख्योऽसुरो ययौ॥ ४८

सहस्राक्षौहिणीयुक्तः शरान्मुञ्चंस्त्वरान्वितः।
रुरोध देवसैन्यं तद्यद्देव्यग्रे स्थितं पुरा॥ ४९

तथा विप्रगणं चैव रोधयामास सर्वतः।
ततः किलकिला शब्दः समभूद्देवमण्डले॥ ५०

त्राहि त्राहीति वाक्यानि प्रोचुः सर्वे द्विजामराः।
ततस्तेजोमयं चक्रं देवानां परितः शिवा॥ ५१

चकार रक्षणार्थाय स्वयं तस्माद् बहिः स्थिता।
ततः समभवद्युद्धं देव्या दैत्यस्य चोभयोः॥ ५२

शरवर्षसमाच्छन्नं सूर्यमण्डलमद्भुतम्।
परस्परशरोद्घर्षसमुद्भूताग्निसुप्रभम्॥ ५३

कठोरज्याटणत्कारबधिरीकृतदिक्तटम्।
ततो देवीशरीरात्तु निर्गतास्तीव्रशक्तयः॥ ५४

कालिका तारिणी बाला त्रिपुरा भैरवी रमा।
बगला चैव मातङ्गी तथा त्रिपुरसुन्दरी॥ ५५

कामाक्षी तुलजा देवी जम्भिनी मोहिनी तथा।
छिन्नमस्ता गुह्यकाली दशसाहस्रबाहुका॥ ५६

द्वात्रिंशच्छक्तयश्चान्याश्चतुष्षष्टिमिताः पराः।
असंख्यातास्ततो देव्यः समुद्भूतास्तु सायुधाः॥ ५७

व्यासजी बोले—उनका यह वचन सुनकर कल्याण-कारिणी भगवतीने उन्हें खानेके लिये अपने हाथमें स्थित शाक तथा स्वादिष्ट फल-मूल प्रदान किये। साथ ही नानाविध अन्न तथा पशुओंके खानेयोग्य पदार्थ और अनन्त काम्य रसोंसे सम्पन्न भोज्य पदार्थ उन्हें नवीन अन्नोत्पत्तितकके लिये प्रदान किये। हे नृप! उसी दिनसे शाकम्भरी—यह उनका एक और भी नाम पड़ गया॥ ४५—४७॥

इसके बाद जगत्‌में कोलाहल मच जाने तथा दूतके सब कुछ बता देनेपर वह दुर्गम नामक दैत्य युद्ध करनेके लिये अस्त्र-शस्त्र लेकर सेनाके साथ चल पड़ा। एक हजार अक्षौहिणी सेनासे युक्त उस दैत्यने शीघ्रतापूर्वक बाण छोड़ते हुए पहले देवीके आगे स्थित देवसेनाको अवरुद्ध कर दिया और उसी प्रकार उसने सभी ब्राह्मणोंको भी चारों ओरसे रोक दिया। इससे देवताओंकी मण्डलीमें चीख-पुकारकी ध्वनि होने लगी। सभी ब्राह्मण तथा देवता 'रक्षा करो, रक्षा करो'—इस प्रकारके शब्द बोलने लगे॥ ४८—५०½॥

तत्पश्चात् भगवती शिवाने देवताओंकी रक्षाके लिये उनके चारों ओर तेजयुक्त चक्र (मण्डल) बना दिया और स्वयं उससे बाहर आकर खड़ी हो गयीं॥ ५१½॥

तदनन्तर भगवती और दैत्य दुर्गम—इन दोनोंके मध्य युद्ध होने लगा। बाणोंकी वर्षासे अद्भुत सूर्यमण्डल आच्छादित हो गया। बाणोंके परस्पर घर्षणसे तीव्र प्रभावाली अग्नि निकलने लगती थीं। धनुषकी कठोर प्रत्यंचाके टंकारसे अपने प्रान्तभागतक दिशाएँ बहरी-सी हो जाती थीं॥ ५२-५३½॥

तत्पश्चात् देवीके शरीरसे अनेक उग्र शक्तियाँ प्रकट हुईं। उनमें कालिका, तारिणी, बाला, त्रिपुरा, भैरवी, रमा, बगला, मातंगी, त्रिपुरसुन्दरी, कामाक्षी, तुलजादेवी, जम्भिनी, मोहिनी, छिन्नमस्ता, गुह्यकाली तथा दस हजार हाथोंवाली देवी [ये सोलह], पुनः बत्तीस, इसके बाद चौंसठ और फिर अनन्त देवियाँ हाथोंमें अस्त्र-शस्त्र धारण किये हुए प्रकट हुईं॥ ५४—५७॥

मृदङ्गशङ्खवीणादिनादितं सङ्गरस्थलम्।
शक्तिभिर्दैत्यसैन्ये तु नाशितेऽक्षौहिणीशते॥ ५८

अग्रेसरः समभवद्दुर्गमो वाहिनीपतिः।
शक्तिभिः सह युद्धं च चकार प्रथमं रिपुः॥ ५९

महद्युद्धं समभवद्यत्राभूद्रक्तवाहिनी।
अक्षौहिण्यस्तु ताः सर्वा विनष्टा दशभिर्दिनैः॥ ६०

तत एकादशे प्राप्ते दिने परमदारुणे।
रक्तमाल्याम्बरधरो रक्तगन्धानुलेपनः॥ ६१

कृत्वोत्सवं महान्तं तु युद्धाय रथसंस्थितः।
संरम्भेणैव महता शक्तीः सर्वा विजित्य च॥ ६२

महादेवीरथाग्रे तु स्वरथं संन्यवेशयत्।
ततोऽभवन्महद्युद्धं देव्या दैत्यस्य चोभयोः॥ ६३

प्रहरद्वयपर्यन्तं हृदयत्रासकारकम्।
ततः पञ्चदशात्युग्रबाणान्देवी मुमोच ह॥ ६४

चतुर्भिश्चतुरो वाहान्बाणेनैकेन सारथिम्।
द्वाभ्यां नेत्रे भुजौ द्वाभ्यां ध्वजमेकेन पत्रिणा॥ ६५

पञ्चभिर्हृदयं तस्य विव्याध जगदम्बिका।
ततो वमन् स रुधिरं ममार पुर ईशितुः॥ ६६

तस्य तेजस्तु निर्गत्य देवीरूपे विवेश ह।
हते तस्मिन्महावीर्ये शान्तमासीज्जगत्त्रयम्॥ ६७

ततो ब्रह्मादयः सर्वे तुष्टुवुर्जगदम्बिकाम्।
पुरस्कृत्य हरीशानौ भक्त्या गद्गदया गिरा॥ ६८

वह युद्धस्थल मृदंग, शंख, वीणा आदि वाद्योंसे गूँज उठा। उन शक्तियोंके द्वारा दैत्योंकी एक सौ अक्षौहिणी सेनाका संहार कर दिये जानेपर देवशत्रु वह दैत्यसेनाध्यक्ष दुर्गम तुरन्त सामने आ खड़ा हुआ और शक्तियोंके साथ अद्भुत युद्ध करने लगा॥ ५८-५९॥

जहाँ वह घोर युद्ध हो रहा था, वहाँ रक्तकी धारा बहने लगी। दस दिनोंमें उस दैत्यकी वे सभी अक्षौहिणी सेनाएँ नष्ट हो गयीं॥ ६०॥

तदनन्तर अत्यन्त भयंकर ग्यारहवाँ दिन आनेपर वह दैत्य लाल रंगकी माला एवं वस्त्र धारण किये तथा शरीरमें लाल चन्दन लगाये महान् उत्सव मनाकर युद्धके लिये रथपर आरूढ़ हुआ। बड़े उत्साहके साथ सभी शक्तियोंको जीतकर वह दैत्य महादेवीके रथके सामने अपना रथ ले गया॥ ६१-६२½॥

अब देवी और दुर्गम दैत्य—इन दोनोंमें भीषण युद्ध होने लगा। हृदयको त्रास पहुँचानेवाला वह युद्ध दो प्रहरतक होता रहा। इसके बाद भगवतीने पाँच भीषण बाण छोड़े, जिनमें चार बाणोंसे उसके चार घोड़ों और एक बाणसे सारथिको मार डाला। पुनः जगदम्बाने दो बाणोंसे उसके दोनों नेत्रोंको वेध दिया, दो बाणोंसे उसकी दोनों भुजाएँ एवं एक बाणसे उसकी ध्वजा काट डाली और पाँच बाणोंसे उसके वक्षःस्थलका भेदन कर दिया॥ ६३—६५½॥

तदनन्तर वह दैत्य रुधिरका वमन करता हुआ भगवती परमेश्वरीके सामने मृत्युको प्राप्त हो गया और उसके शरीरसे तेज निकलकर देवीके विग्रहमें प्रविष्ट हो गया। इस प्रकार उस महापराक्रमी दैत्यका संहार हो जानेपर तीनों लोकोंमें शान्ति व्याप्त हो गयी॥ ६६-६७॥

इसके बाद ब्रह्मा आदि सभी देवता भगवान् विष्णु और शिवको आगे करके भक्तिपूर्वक गद्गद वाणीमें जगदम्बाकी स्तुति करने लगे॥ ६८॥

देवा ऊचुः

जगद्भ्रमविवर्तैककारणे परमेश्वरि।
नमः शाकम्भरि शिवे नमस्ते शतलोचने॥ ६९

सर्वोपनिषदुद्घुष्टे दुर्गमासुरनाशिनि।
नमो मायेश्वरि शिवे पञ्चकोशान्तरस्थिते॥ ७०

चेतसा निर्विकल्पेन यां ध्यायन्ति मुनीश्वराः।
प्रणवार्थस्वरूपां तां भजामो भुवनेश्वरीम्॥ ७१

अनन्तकोटिब्रह्माण्डजननीं दिव्यविग्रहाम्।
ब्रह्मविष्ण्वादिजननीं सर्वभावैर्नता वयम्॥ ७२

कः कुर्यात्पामरान्दृष्ट्वा रोदनं सकलेश्वरः।
सदयां परमेशानीं शताक्षीं मातरं विना॥ ७३

व्यास उवाच

इति स्तुता सुरैर्देवी ब्रह्मविष्ण्वादिभिर्वरैः।
पूजिता विविधैर्द्रव्यैः सन्तुष्टाभूच्च तत्क्षणे॥ ७४

प्रसन्ना सा तदा देवी वेदानाहृत्य सा ददौ।
ब्राह्मणेभ्यो विशेषेण प्रोवाच पिकभाषिणी॥ ७५

ममेयं तनुरुत्कृष्टा पालनीया विशेषतः।
यया विनानर्थ एष जातो दृष्टोऽधुनैव हि॥ ७६

पूज्याहं सर्वदा सेव्या युष्माभिः सर्वदैव हि।
नातः परतरं किञ्चित्कल्याणायोपदिश्यते॥ ७७

पठनीयं ममैतद्धि माहात्म्यं सर्वदोत्तमम्।
तेन तुष्टा भविष्यामि हरिष्यामि तथापदः॥ ७८

दुर्गमासुरहन्त्रीत्वाद्दुर्गेति मम नाम यः।
गृह्णाति च शताक्षीति मायां भित्त्वा व्रजत्यसौ॥ ७९

किमुक्तेनात्र बहुना सारं वक्ष्यामि तत्त्वतः।
संसेव्याहं सदा देवाः सर्वैरपि सुरासुरैः॥ ८०

देवता बोले—भ्रान्ति तथा अविद्याजन्य मोहसे युक्त इस जगत्‌की एकमात्र कारण हे परमेश्वरि! आपको नमस्कार है। हे शिवे! हे शाकम्भरि! हे शतलोचने! आपको नमस्कार है। समस्त उपनिषदोंका उद्घोष करनेवाली तथा दुर्गम नामक दैत्यका संहार करनेवाली हे मायेश्वरि! पंचकोशके भीतर सदा विराजमान रहनेवाली हे शिवे! आपको नमस्कार है। मुनीश्वर विशुद्ध मनसे जिनका ध्यान करते हैं, उन प्रणवके अर्थरूप विग्रहवाली भगवती भुवनेश्वरीका हम आश्रय ग्रहण करते हैं। अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंका प्रादुर्भाव करनेवाली, ब्रह्मा-विष्णु आदिको उत्पन्न करनेवाली तथा दिव्य विग्रहवाली भगवतीके समक्ष हमलोग सम्पूर्ण भावसे नतमस्तक हैं। दयामयी परमेश्वरी माता शताक्षीके अतिरिक्त ऐसा कौन सर्वेश्वर है, जो दीन-दुःखी प्राणियोंको देखकर रुदन कर सकता है?॥ ६९—७३॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] ब्रह्मा, विष्णु आदि श्रेष्ठ देवताओंके इस प्रकार स्तवन तथा विविध द्रव्योंसे पूजन करनेपर भगवती उसी क्षण सन्तुष्ट हो गयीं॥ ७४॥

कोयलके समान मधुर स्वरवाली उन भगवतीने दुर्गम दैत्यसे वेदोंको वापस लाकर सौंप दिया और विशेषरूपसे ब्राह्मणोंसे कहा—जिस वेदराशिके अभावमें यह अनर्थ उत्पन्न हुआ था और उस अनर्थको आपलोगोंने अभी-अभी प्रत्यक्ष देखा भी है, वह वेदराशि मेरा उत्कृष्ट विग्रह है; आपलोगोंको विशेषरूपसे इसकी रक्षा करनी चाहिये। आपलोगोंको सर्वदा मेरी पूजा तथा सेवा करनी चाहिये। आपलोगोंके कल्याणके लिये इससे बढ़कर कोई अन्य उपदेश नहीं है। आपलोगोंको चाहिये कि मेरे इस उत्तम माहात्म्यका सर्वदा पाठ करें, उससे प्रसन्न होकर मैं आपलोगोंके समस्त कष्ट दूर कर दूँगी। दुर्गम असुरका संहार करनेके कारण दुर्गा तथा शताक्षी—मेरे इन नामोंका जो प्राणी उच्चारण करता है, वह मायाका भेदन करके मेरे लोकको प्राप्त होता है। अब अधिक कहनेकी क्या आवश्यकता। हे देवगण! मैं वस्तुतः साररूपमें यही कहती हूँ कि सभी देवताओं तथा दैत्योंको सर्वदा मेरी उपासना करनी चाहिये॥ ७५—८०॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वान्तर्हिता देवी देवानां चैव पश्यताम्।
सन्तोषं जनयन्त्येवं सच्चिदानन्दरूपिणी॥ ८१

एतत्ते सर्वमाख्यातं रहस्यं परमं महत्।
गोपनीयं प्रयत्नेन सर्वकल्याणकारकम्॥ ८२

य इमं शृणुयान्नित्यमध्यायं भक्तितत्परः।
सर्वान्कामानवाप्नोति देवीलोके महीयते॥ ८३

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] सच्चिदानन्द-स्वरूपिणी जगदम्बा ऐसा कहकर देवताओंको आनन्दित करती हुई उनके देखते-देखते अन्तर्धान हो गयीं। यह सब मैंने आपको बता दिया। सबका कल्याण करनेवाले इस अति महान् रहस्यको प्रयत्नपूर्वक गोपनीय रखना चाहिये, जो मनुष्य भक्तिपरायण होकर इस अध्यायका नित्य श्रवण करता है, वह सभी मनोरथोंको प्राप्त कर लेता है और देवीलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ ८१—८३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे शताक्षीचरित्रवर्णनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः॥ २८॥



अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः

व्यासजीका राजा जनमेजयसे भगवतीकी महिमाका वर्णन करना और उनसे उन्हींकी आराधना करनेको कहना, भगवान् शंकर और विष्णुके अभिमानको देखकर गौरी तथा लक्ष्मीका अन्तर्धान होना और शिव तथा विष्णुका शक्तिहीन होना

व्यास उवाच

इत्येवं सूर्यवंश्यानां राज्ञां चरितमुत्तमम्।
सोमवंशोद्भवानां च वर्णनीयं मया कियत्॥ १

पराशक्तिप्रसादेन महत्त्वं प्रतिपेदिरे।
राजन् सुनिश्चितं विद्धि पराशक्तिप्रसादतः॥ २

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं पराशक्त्यंशसम्भवम्॥ ३

व्यासजी बोले—हे राजन्! इस प्रकार मैंने यत्किंचित् सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी राजाओंके उत्तम चरित्रका वर्णन किया। हे राजन्! पराशक्ति भगवतीकी कृपासे उन राजाओंने महती प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। आप यह निश्चितरूपसे जान लीजिये कि उन पराशक्तिकी कृपासे सब कुछ सिद्ध हो जाता है। जो-जो विभूतियुक्त अर्थात् ऐश्वर्ययुक्त, कान्तियुक्त तथा शक्तियुक्त पदार्थ हैं; उन सबको आप उन्हीं परम शक्तिमयी भगवतीके अंशसे ही उत्पन्न समझिये॥ १—३॥

एते चान्ये च राजानः पराशक्तेरुपासकाः।
संसारतरुमूलस्य कुठारा अभवन्नृप॥ ४

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन संसेव्या भुवनेश्वरी।
पलालमिव धान्यार्थी त्यजेदन्यमशेषतः॥ ५

हे नृप! ये तथा अन्य बहुतसे पराशक्तिके उपासक राजागण संसाररूपी वृक्षकी जड़ काटनेके लिये कुठारके समान हो चुके हैं। अतएव जिस प्रकार धान्य चाहनेवाला व्यक्ति पुआल छोड़ देता है, उसी प्रकार अन्य व्यवसायोंका पूर्णरूपसे त्याग कर देना चाहिये और सम्पूर्ण प्रयत्नके साथ भुवनेश्वरीकी उपासना करनी चाहिये॥ ४-५॥

आमथ्य वेददुग्धाब्धिं प्राप्तं रत्नं मया नृप।
पराशक्तिपदाम्भोजं कृतकृत्योऽस्म्यहं ततः॥ ६

हे नृप! वेदरूपी क्षीरसागरका मन्थन करके मैंने भगवती पराशक्तिके चरण-कमलरूपी रत्नको प्राप्त किया है, उससे मैं कृतार्थ हो गया हूँ॥ ६॥

पञ्चब्रह्मासनारूढा नास्त्यन्या कापि देवता।
तत एव महादेव्या पञ्चब्रह्मासनं कृतम्॥ ७

पञ्चभ्यस्त्वधिकं वस्तु वेदेऽव्यक्तमितीर्यते।
यस्मिन्नोतं च प्रोतं च सैव श्रीभुवनेश्वरी॥ ८

तामविज्ञाय राजेन्द्र नैव मुक्तो भवेन्नरः।
यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः॥ ९

तदा शिवामविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति।
अत एव श्रुतौ प्राहुः श्वेताश्वतरशाखिनः॥ १०

ते ध्यानयोगानुगता अपश्य-
न्देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्॥ ११

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन जन्मसाफल्यहेतवे।
लज्जया वा भयेनापि भक्त्या वा प्रेमयुक्तया।
सर्वसङ्गं परित्यज्य मनो हृदि निरुध्य च॥ १२

तन्निष्ठस्तत्परो भूयादिति वेदान्तडिण्डिमः।
येन केन मिषेणापि स्वपंस्तिष्ठन्व्रजन्नपि॥ १३

कीर्तयेत्सततं देवीं स वै मुच्येत बन्धनात्।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन भज राजन् महेश्वरीम्॥ १४

विराड्रूपां सूत्ररूपां तथान्तर्यामिरूपिणीम्।
सोपानक्रमतः पूर्वं ततः शुद्धे तु चेतसि॥ १५

सच्चिदानन्दलक्ष्यार्थरूपां तां ब्रह्मरूपिणीम्।
आराधय परां शक्तिं प्रपञ्चोल्लासवर्जिताम्॥ १६

तस्यां चित्तलयो यः स तस्या आराधनं स्मृतम्।

पंचब्रह्मके आसनपर कोई अन्य देवता स्थित नहीं है अर्थात् इन पंचदेवोंके अतिरिक्त उनका अतिक्रमण करके उनके अधिष्ठाताके रूपमें अपना प्रभाव स्थापित करनेमें कोई अन्य देवता समर्थ नहीं है, अतः ब्रह्मके रूपमें मान्यताप्राप्त उन पंचब्रह्मको भगवतीने अपना आसन बना लिया अर्थात् उन पंचदेवोंकी अधिष्ठात्री शक्तिके रूपमें वे अधिष्ठित हुईं। इन पाँचोंसे परेकी वस्तुको वेदमें 'अव्यक्त' कहा गया है। जिस अव्यक्तमें यह सम्पूर्ण जगत् ओत-प्रोत है, वह श्रीभुवनेश्वरी ही हैं। हे राजेन्द्र! उन भगवतीके स्वरूपको जाने बिना मनुष्य मुक्त नहीं हो सकता॥ ७-८½ ॥

जब मनुष्य आकाशको चर्मसे आच्छादित कर लेंगे तब शिवाको न जानकर भी दुःखका अन्त होगा अर्थात् जैसे चर्मसे आकाशका ढकना सम्भव नहीं है, वैसे ही शिवातत्त्वके ज्ञानके बिना दुःखका अन्त होना सम्भव नहीं है। अतः श्वेताश्वतरशाखाध्यायी मनीषियोंने श्रुतिमें ऐसा कहा है कि उन महापुरुषोंने अपने गुणोंसे व्यक्त न होनेवाली दिव्यशक्तिसम्पन्न भगवती जगदम्बाका दर्शन ध्यानयोगद्वारा प्राप्त किया था॥ ९—११ ॥

अतः जन्म सफल करनेके निमित्त सभी आसक्तियोंका परित्याग करके तथा अपने मनको हृदयमें रोककर लज्जा, भय अथवा प्रेममय भक्तिके साथ किसी भी तरहसे सम्यक् प्रयत्न करके उन भगवतीमें पूर्ण निष्ठा तथा तत्परता रखनी चाहिये—ऐसा वेदान्तका स्पष्ट उद्घोष है। जो मनुष्य जिस किसी भी बहाने सोते, बैठते अथवा चलते समय भगवतीका निरन्तर कीर्तन करता है, वह [सांसारिक] बन्धनसे निश्चितरूपसे छूट जाता है॥ १२-१३½ ॥

अतः हे राजन्! आप विराट् रूपवाली, सूक्ष्म रूपवाली तथा अन्तर्यामिस्वरूपिणी महेश्वरीकी उपासना कीजिये। इस प्रकार आप पहले सोपान-क्रमसे उपासना करके पुनः अन्तःकरण शुद्ध हो जानेपर सांसारिक प्रपंच तथा उल्लासरहित सच्चिदानन्द, लक्ष्यार्थरूपिणी तथा ब्रह्मरूपिणी उन पराशक्ति भगवतीकी आराधना कीजिये। उन भगवतीमें चित्तको जो लीन कर देना है, वही उनका आराधन कहा गया है॥ १४—१६½ ॥

राजन् राज्ञां पराशक्तिभक्तानां चरितं मया॥ १७

धार्मिकाणां सूर्यसोमवंशजानां मनस्विनाम्।
पावनं कीर्तिदं धर्मबुद्धिदं सद्गतिप्रदम्॥ १८

कथितं पुण्यदं पश्चात्किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि।

जनमेजय उवाच

गौरीलक्ष्मीसरस्वत्यो दत्ताः पूर्वं पराम्बया॥ १९

हराय हरये तद्वन्नाभिपद्मोद्भवाय च।
तुषाराद्रेश्च दक्षस्य गौरी कन्येति विश्रुतम्॥ २०

क्षीरोदधेश्च कन्येति महालक्ष्मीरिति स्मृतम्।
मूलदेव्युद्भवानां च कथं कन्यात्वमन्ययोः॥ २१

असम्भाव्यमिदं भाति संशयोऽत्र महामुने।
छिन्धि ज्ञानासिना तं त्वं संशयच्छेदतत्परः॥ २२

व्यास उवाच

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि रहस्यं परमाद्भुतम्।
देवीभक्तस्य ते किञ्चिदवाच्यं न हि विद्यते॥ २३

देवीत्रयं यदा देवत्रयायादात्पराम्बिका।
तदाप्रभृति ते देवाः सृष्टिकार्याणि चक्रिरे॥ २४

कस्मिंश्चित्समये राजन् दैत्या हालाहलाभिधाः।
महापराक्रमा जातास्त्रैलोक्यं तैर्जितं क्षणात्॥ २५

ब्रह्मणो वरदानेन दर्पिता रजताचलम्।
रुरुधुर्निजसेनाभिस्तथा वैकुण्ठमेव च॥ २६

कामारिः कैटभारिश्च युद्धोद्योगं च चक्रतुः।
षष्टिवर्षसहस्राणामभूद्युद्धं महोत्कटम्॥ २७

हाहाकारो महानासीद्देवदानवसेनयोः।
महताथ प्रयत्नेन ताभ्यां ते दानवा हताः॥ २८

हे राजन्! इस प्रकार मैंने सूर्य और चन्द्र-वंशमें उत्पन्न, पराशक्तिके उपासक, धर्मपरायण तथा मनस्वी राजाओंके कीर्ति, धर्म, बुद्धि, उत्तम गति तथा पुण्य प्रदान करनेवाले पावन चरित्रका वर्णन कर दिया, अब आप दूसरा कौन-सा प्रसंग सुनना चाहते हैं?॥ १७-१८½ ॥

जनमेजय बोले—हे मुने! पूर्वमें मणिद्वीप-निवासिनी पराम्बा भगवतीने गौरी, लक्ष्मी और सरस्वतीको उत्पन्न कर उन्हें क्रमशः शिव, विष्णु तथा पद्मयोनि ब्रह्माको सौंप दिया था। साथ ही यह भी सुना गया है कि गौरी हिमालय तथा दक्षप्रजापतिकी कन्या हैं और महालक्ष्मी क्षीरसमुद्रकी कन्या हैं—ऐसा कहा गया है। मूलप्रकृति भगवतीसे उत्पन्न ये देवियाँ दूसरोंकी कन्याएँ कैसे हुईं? महामुने! यह असम्भव-सी बात प्रतीत होती है, इसमें मुझे सन्देह है। अतः सन्देहोंका छेदन करनेमें पूर्ण तत्पर आप मेरे उस संशयको अपने ज्ञानरूपी खड्गसे काट दीजिये॥ १९—२२॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! सुनिये, मैं आपको परम अद्भुत रहस्य बतलाता हूँ। आप-सदृश देवीभक्तके लिये भगवतीका कोई भी रहस्य छिपानेयोग्य नहीं है॥ २३॥

जब पराम्बिकाने तीनों देवियाँ उन तीनों देवताओंको सौंप दीं, उसी समयसे उन देवताओंने सृष्टिके कार्य आरम्भ कर दिये॥ २४॥

हे राजन्! एक समयकी बात है कि हालाहल नामवाले अनेक महापराक्रमी दैत्य उत्पन्न हुए और उन्होंने क्षणभरमें तीनों लोकोंको जीत लिया॥ २५॥

ब्रह्माजीके वरदानसे अभिमानमें चूर उन दैत्योंने अपनी सेनाओंके साथ कैलास और वैकुण्ठको घेर लिया॥ २६॥

तब भगवान् शंकर और विष्णु उनके साथ युद्धके लिये तत्पर हो गये और साठ हजार वर्षोंतक उनके बीच अत्यन्त भीषण युद्ध होता रहा। देवता और दानव—दोनों सेनाओंमें महान् हाहाकार मच गया। तब अन्तमें उन दोनोंने बड़े प्रयत्नके साथ उन दैत्योंको मार डाला॥ २७-२८॥

स्वस्वस्थानेषु गत्वा तावभिमानं च चक्रतुः।
स्वशक्त्योर्निकटे राजन् यद्वशादेव ते हताः॥ २९

अभिमानं तयोर्ज्ञात्वा छलहास्यं च चक्रतुः।
महालक्ष्मीश्च गौरी च हास्यं दृष्ट्वा तयोस्तु तौ॥ ३०

देवावतीव संक्रुद्धौ मोहितावादिमायया।
दुरुत्तरं च ददतुरवमानपुरःसरम्॥ ३१

ततस्ते देवते तस्मिन्क्षणे त्यक्त्वा तु तौ पुनः।
अन्तर्हिते चाभवतां हाहाकारस्तदा ह्यभूत्॥ ३२

निस्तेजस्कौ च निःशक्ती विक्षिप्तौ च विचेतनौ।
अवमानात्तयोः शक्त्योर्जातौ हरिहरौ तदा॥ ३३

ब्रह्मा चिन्तातुरो जातः किमेतत्समुपस्थितम्।
प्रधानौ देवतामध्ये कथं कार्याक्षमावमू॥ ३४

अकाण्डे किं निमित्तेन संकटं समुपस्थितम्।
प्रलयो भविता किं वा जगतोऽस्य निरागसः॥ ३५

निमित्तं नैव जानेऽहं कथं कार्या प्रतिक्रिया।
इति चिन्तातुरोऽत्यर्थं दध्यौ मीलितलोचनः॥ ३६

पराशक्तिप्रकोपात्तु जातमेतदिति स्म ह।
जानंस्तदा सावधानः पद्मजोऽभून्नृपोत्तम॥ ३७

ततस्तयोश्च यत्कार्यं स्वयमेवाऽकरोत्तदा।
स्वशक्तेश्च प्रभावेण कियत्कालं तपोनिधिः॥ ३८

ततस्तयोस्तु स्वस्त्यर्थं मन्वादीन्स्वसुतानथ।
आह्वयामास धर्मात्मा सनकादींश्च सत्वरः॥ ३९

उवाच वचनं तेभ्यः सन्नतेभ्यस्तपोनिधिः।
कार्यासक्तोऽहमधुना तपः कर्तुं न च क्षमः॥ ४०

पराशक्तेस्तु तोषार्थं जगद्भारयुतोऽस्म्यहम्।
शिवविष्णू च विक्षिप्तौ पराशक्तिप्रकोपतः॥ ४१

हे राजन्! तत्पश्चात् वे शंकर तथा विष्णु अपने-अपने लोकको जाकर अपनी शक्तियों (गौरी तथा लक्ष्मी)-के समक्ष, जिनके बल-प्रभावसे वे उन दैत्योंको मार सके थे, अपने बलका अभिमान करने लगे॥ २९॥

उन दोनोंका यह अभिमान देखकर महालक्ष्मी तथा गौरी छद्मपूर्ण हास करने लगीं। तब उन दोनों देवियोंकी हँसी देखकर आदिमायाके प्रभावसे विमोहित वे दोनों देवता अत्यन्त कुपित हो उठे और अवहेलनापूर्वक अनुचित उत्तर देने लगे॥ ३०-३१॥

तदनन्तर वे दोनों देवियाँ उसी क्षण उन दोनों (शंकर तथा विष्णु)-से पृथक् होकर अन्तर्धान हो गयीं, इससे हाहाकार मच गया॥ ३२॥

उन दोनों शक्तियोंके अपमानके कारण उस समय विष्णु तथा शंकर निस्तेज, शक्तिहीन, विक्षिप्त तथा चेतनारहित हो गये॥ ३३॥

इसपर ब्रह्माजी चिन्तासे अधीर हो गये और सोचने लगे कि यह क्या हो गया? देवताओंमें प्रधान वे विष्णु तथा शिव अपना-अपना कार्य करनेमें असमर्थ क्यों हो गये? यह संकट अचानक किस कारणसे उपस्थित हो गया? क्या इस निरपराध जगत्का प्रलय हो जायगा? मैं इसका कारण नहीं जान पा रहा हूँ, तो फिर इस स्थितिमें इसका प्रतीकार कैसे किया जाय॥ ३४-३५½॥

इसी महान् चिन्तामें निमग्न ब्रह्माजीने नेत्र बन्द करके ध्यान लगाया और तब उन्होंने जाना कि पराशक्तिके प्रकोपसे ही यह सब घटित हुआ है। हे नृपश्रेष्ठ! यह जानते ही ब्रह्माजी सावधान हो गये। इसके अनन्तर विष्णु तथा शंकरका जो कार्य था, उसे तपोनिधि ब्रह्माजी अपनी शक्तिके प्रभावसे कुछ समयतक स्वयं करते रहे॥ ३६—३८॥

तदनन्तर धर्मात्मा ब्रह्माजीने उन विष्णु तथा शंकरके कल्याणार्थ अपने मनु आदि तथा सनक आदि पुत्रोंका शीघ्र आह्वान किया। तपोनिधि ब्रह्माजीने अपने समक्ष सिर झुकाये हुए उन कुमारोंसे कहा— मैं संसारके भारसे युक्त हूँ। अतः कार्यमें अत्यधिक आसक्त रहनेके कारण मैं इस समय पराशक्ति जगदम्बाको

तस्मात्तां परमां शक्तिं यूयं सन्तोषयन्त्वथ।
अत्यद्भुतं तपः कृत्वा भक्त्या परमया युताः॥ ४२

यथा तौ पूर्ववृत्तौ च स्यातां शक्तियुतावपि।
तथा कुरुत मत्पुत्रा यशोवृद्धिर्भवेद्धि वः॥ ४३

कुले यस्य भवेज्जन्म तयोः शक्त्योस्तु तत्कुलम्।
पावयेज्जगतीं सर्वां कृतकृत्यं स्वयं भवेत्॥ ४४

व्यास उवाच

पितामहवचः श्रुत्वा गताः सर्वे वनान्तरे।
रिराधयिषवः सर्वे दक्षाद्या विमलान्तराः॥ ४५

प्रसन्न करनेके लिये तपस्या करनेमें समर्थ नहीं हूँ। उन पराशक्तिके प्रकोपके कारण विष्णु तथा शिव विक्षिप्त हो गये हैं, अतः आपलोग परम भक्तिसे युक्त होकर अद्भुत तप करके उन पराशक्ति जगदम्बाको प्रसन्न कीजिये॥ ३९—४२॥

हे मेरे पुत्रो! जिस भी प्रकारसे शिव तथा विष्णु पूर्वकी भाँति हो जायँ और अपनी शक्तियोंसे सम्पन्न हो सकें, आपलोग वैसा प्रयत्न कीजिये; इससे आपलोगोंका यश ही बढ़ेगा। जिस कुलमें उन दोनों शक्तियोंका जन्म होगा, वह कुल सम्पूर्ण जगत्को पवित्र कर देगा और स्वयं कृतार्थ हो जायगा॥ ४३-४४॥

व्यासजी बोले—पितामह ब्रह्माकी बात सुनकर विशुद्ध अन्तःकरणवाले उनके दक्ष आदि सभी पुत्र भगवती जगदम्बाकी आराधना करनेकी इच्छासे वनमें चले गये॥ ४५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे भगवतीं समाराधयिषूणां देवानां तपःकरणवर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः॥ २९॥

~~○~~

अथ त्रिंशोऽध्यायः

शक्तिपीठोंकी उत्पत्तिकी कथा तथा उनके नाम एवं उनका माहात्म्य

व्यास उवाच

ततस्ते तु वनोद्देशे हिमाचलतटाश्रयाः।
मायाबीजजपासक्तास्तपश्चेरुः समाहिताः॥ १

ध्यायतां परमां शक्तिं लक्षवर्षाण्यभून्नृप।
ततः प्रसन्ना देवी सा प्रत्यक्षं दर्शनं ददौ॥ २

पाशाङ्कुशवराभीतिचतुर्बाहुस्त्रिलोचना।
करुणारससम्पूर्णा सच्चिदानन्दरूपिणी॥ ३

दृष्ट्वा तां सर्वजननीं तुष्टुवुर्मुनयोऽमलाः।
नमस्ते विश्वरूपायै वैश्वानरसुमूर्तये॥ ४

व्यासजी बोले—हे राजन्! तत्पश्चात् वे वन-प्रदेशमें हिमालयकी तलहटीमें स्थित रहकर समाहितचित्त हो मायाबीज (भुवनेश्वरीमन्त्र)-के जपमें तत्पर रहते हुए घोर तप करने लगे॥ १॥

हे राजन्! एक लाख वर्षपर्यन्त उन पराशक्तिका ध्यान करते रहनेके उपरान्त देवी उनके ऊपर प्रसन्न हो गयीं और उन्होंने प्रत्यक्ष दर्शन दिया। उस समय उन्होंने अपने चारों हाथोंमें पाश, अंकुश, वर और अभय मुद्रा धारण कर रखी थीं, वे तीन नेत्रोंसे युक्त थीं, वे करुणारससे परिपूर्ण थीं और उनका विग्रह सत्, चित् तथा आनन्दसे सम्पन्न था॥ २-३॥

उन सर्वजननीको देखकर विशुद्ध चित्तवाले वे मुनिगण उनकी स्तुति करने लगे—विश्वरूप तथा वैश्वानररूपवाली आपको नमस्कार है। जिसमें समग्र लिंगदेह ओत-प्रोत होकर व्यवस्थित है, उस सूत्ररूप

नमस्तेजसरूपायै सूत्रात्मवपुषे नमः।
यस्मिन्सर्वे लिङ्गदेहा ओतप्रोता व्यवस्थिताः॥ ५

नमः प्राज्ञस्वरूपायै नमोऽव्याकृतमूर्तये।
नमः प्रत्यक्स्वरूपायै नमस्ते ब्रह्ममूर्तये॥ ६

नमस्ते सर्वरूपायै सर्वलक्ष्यात्ममूर्तये।
इति स्तुत्वा जगद्धात्रीं भक्तिगद्गदया गिरा॥ ७

प्रणेमुश्चरणाम्भोजं दक्षाद्या मुनयोऽमलाः।
ततः प्रसन्ना सा देवी प्रोवाच पिकभाषिणी॥ ८

वरं ब्रूत महाभागा वरदाहं सदा मता।
तस्यास्तु वचनं श्रुत्वा हरविष्णवोस्तनोः शमम्॥ ९

तयोस्तच्छक्तिलाभं च वव्रिरे नृपसत्तम।
दक्षोऽथ पुनरप्याह जन्म देवि कुले मम॥ १०

भवेत्तवाम्ब येनाहं कृतकृत्यो भवे इति।
जपं ध्यानं तथा पूजां स्थानानि विविधानि च॥ ११

वद मे परमेशानि स्वमुखेनैव केवलम्।

देव्युवाच

मच्छक्त्योरवमानाच्च जातावस्था तयोर्द्वयोः॥ १२

नैतादृशः प्रकर्तव्यो मेऽपराधः कदाचन।
अधुना मत्कृपालेशाच्छरीरे स्वस्थता तयोः॥ १३

भविष्यति च ते शक्ती त्वद्गृहे क्षीरसागरे।
जनिष्यतस्तत्र ताभ्यां प्राप्स्यतः प्रेरिते मया॥ १४

मायाबीजं हि मन्त्रो मे मुख्यः प्रियकरः सदा।
ध्यानं विराट्स्वरूपं मेऽथवा त्वत्पुरतः स्थितम्॥ १५

सच्चिदानन्दरूपं वा स्थानं सर्वं जगन्मम।
युष्माभिः सर्वदा चाहं पूज्या ध्येया च सर्वदा॥ १६

विग्रहवाली तथा तेजसम्पन्न रूपवाली आपको बार-बार नमस्कार है। प्राज्ञस्वरूपवाली आपको नमस्कार है, अव्यक्तस्वरूपवाली आपको नमस्कार है, प्रत्यक्स्वरूप आपको नमस्कार है और परब्रह्मका स्वरूप धारण करनेवाली आपको नमस्कार है। समस्त रूपोंवाली आपको नमस्कार है तथा सभी प्राणियोंमें आत्ममूर्तिके रूपमें लक्षित होनेवाली आपको नमस्कार है॥ ४—६½॥

इस प्रकार भक्तियुक्त गद्गद वाणीसे उन जगद्धात्रीकी स्तुति करके निर्मल मनवाले दक्ष आदि मुनियोंने भगवतीके चरण-कमलमें प्रणाम किया। तब कोयलके समान मधुर वचन बोलनेवाली उन देवीने प्रसन्न होकर कहा—हे महान् भाग्यशाली मुनियो! आपलोग वर माँगिये, मैं सदा वर प्रदान करनेवाली मानी जाती हूँ॥ ७-८½॥

हे नृपश्रेष्ठ! उनकी वाणी सुनकर मुनियोंने यह वरदान माँगा कि शंकर तथा विष्णुका शरीर स्वस्थ हो जाय और उन्हें पुनः वही पूर्व शक्तियाँ प्राप्त हो जायँ॥ ९½॥

इसके बाद दक्षने कहा—हे देवि! हे अम्ब! मेरे कुलमें आपका जन्म हो, जिससे मैं कृतकृत्य हो जाऊँ। हे परमेश्वरि! आप अपने मुखसे अपने जप, ध्यान, पूजा तथा विविध स्थानोंके विषयमें बतानेकी कृपा कीजिये॥ १०-११½॥

देवी बोलीं—मेरी शक्तियोंका अपमान करनेसे ही उन दोनों (विष्णु तथा शिव)-की यह दशा हुई है। उन्हें मेरे प्रति ऐसा अपराध कभी नहीं करना चाहिये। अब मेरी लेशमात्र कृपासे ही उन दोनोंके शरीरमें स्वस्थता आ जायगी। साथ ही गौरी और लक्ष्मी नामक वे दोनों शक्तियाँ आपके घरमें तथा क्षीरसागरमें जन्म लेंगी और मेरेद्वारा प्रेरित किये जानेपर वे शक्तियाँ उन दोनोंको प्राप्त हो जायँगी॥ १२—१४॥

मुझे सदा प्रसन्न करनेवाला 'मायाबीज' ही मेरा प्रधान मन्त्र है। मेरे विराट् रूपका अथवा आपके समक्ष उपस्थित इस रूपका अथवा सच्चिदानन्द रूपका ध्यान करना चाहिये। सम्पूर्ण जगत् ही मेरा निवास-स्थान है। आपलोगोंको सर्वदा मेरा पूजन तथा ध्यान करना चाहिये॥ १५-१६॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वान्तर्दधे देवी मणिद्वीपाधिवासिनी।
दक्षाद्या मुनयः सर्वे ब्रह्माणं पुनराययुः॥ १७

ब्रह्मणे सर्ववृत्तान्तं कथयामासुरादरात्।
हरो हरिश्च स्वस्थौ तौ स्वस्वकार्यक्षमौ नृप॥ १८

जातौ पराम्बाकृपया गर्वेण रहितौ तदा।
कदाचिदथ काले तु महः शाक्तमवातरत्॥ १९

दक्षगेहे महाराज त्रैलोक्येऽप्युत्सवोऽभवत्।
देवाः प्रमुदिताः सर्वे पुष्पवृष्टिं च चक्रिरे॥ २०

नेदुर्दुन्दुभयः स्वर्गे करकोणाहता नृप।
मनांस्यासन्प्रसन्नानि साधूनाममलात्मनाम्॥ २१

सरितो मार्गवाहिन्यः सुप्रभोऽभूद्दिवाकरः।
मङ्गलायां तु जातायां जातं सर्वत्र मङ्गलम्॥ २२

तस्या नाम सतीं चक्रे सत्यत्वात्परसंविदः।
ददौ पुनः शिवायाथ तस्य शक्तिस्तु याभवत्॥ २३

सा पुनर्ज्वलने दग्धा दैवयोगान्मनोर्नृप।

जनमेजय उवाच

अनर्थकरमेतत्ते श्रावितं वचनं मुने॥ २४

एतादृशं महद्वस्तु कथं दग्धं हुताशने।
यन्नामस्मरणान्नृणां संसाराग्निभयं न हि॥ २५

केन कर्मविपाकेन मनोर्दग्धं तदेव हि।

व्यास उवाच

शृणु राजन् पुरा वृत्तं सतीदाहस्य कारणम्॥ २६

कदाचिदथ दुर्वासा गतो जाम्बूनदेश्वरीम्।
ददर्श देवीं तत्रासौ मायाबीजं जजाप सः॥ २७

व्यासजी बोले—ऐसा कहकर मणिद्वीपमें निवास करनेवाली भगवती जगदम्बा अन्तर्धान हो गयीं। तब दक्ष आदि सभी मुनिगण ब्रह्माजीके पास लौट आये और उन्होंने ब्रह्माजीसे आदरपूर्वक सारा वृत्तान्त कह दिया॥ १७½ ॥

हे राजन्! तब पराम्बाकी कृपासे वे दोनों विष्णु तथा शिव स्वस्थ हो गये, उनमें अपने-अपने कार्य-सम्पादनकी क्षमता आ गयी और वे अभिमानरहित भी हो गये॥ १८½ ॥

हे महाराज! कुछ समय व्यतीत होनेपर दक्षके भवनमें शक्तिसम्पन्न एक महान् तेज प्रकट हुआ। उस समय तीनों लोकोंमें उत्सव मनाया गया। सभी देवतागण प्रसन्न होकर पुष्पोंकी वर्षा करने लगे और वे स्वर्गमें हाथोंसे आघात करके दुन्दुभियाँ बजाने लगे। हे नृप! निर्मल मनवाले साधुपुरुषोंके मन प्रसन्न हो गये, नदियाँ मार्गोंमें जलधारा बहाने लगीं और भगवान् सूर्य मनोहर प्रभासे युक्त हो गये। इस प्रकार मंगलमयी भगवतीके प्रकट होनेपर सभी स्थानोंपर मंगल ही मंगल हो गया॥ १९—२२॥

दक्षने सत्यस्वरूप होने तथा ब्रह्मस्वरूपिणी होनेके कारण उस देवीका नाम 'सती' रखा और उन्हें पुनः शिवको समर्पित कर दिया; क्योंकि वे पूर्वमें भी उन्हीं शिवकी शक्ति थीं। हे राजन्! वे ही सती पुनः दक्षके यज्ञमें दैवयोगसे अग्निमें जलकर भस्म हो गयीं॥ २३½ ॥

जनमेजय बोले—हे मुने! आपने यह तो बड़ा ही अनर्थकारी प्रसंग सुनाया। इस प्रकारकी महान् विभूति वे सती, जिनके नामके स्मरणमात्रसे मनुष्योंको संसाररूप अग्निका भय नहीं रहता, अग्निमें जलकर भस्म क्यों हो गयीं? दक्षके किस प्रतिकूल कर्मके कारण वे सती भस्म हो गयीं?॥ २४-२५½ ॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! सतीके भस्म होनेका कारणसम्बन्धी प्राचीन वृत्तान्त सुनिये। किसी समय ऋषि दुर्वासा [जम्बूनदके तटपर स्थित] भगवती जाम्बूनदेश्वरीके समीप गये। उन्होंने वहाँ देवीका दर्शन किया और वहींपर वे मायाबीज मन्त्रका जप करने लगे॥ २६-२७॥

ततः प्रसन्ना देवेशी निजकण्ठगतां स्रजम्।
भ्रमद्भ्रमरसंसक्तां मकरन्दमदाकुलाम्॥ २८

ददौ प्रसादभूतां तां जग्राह शिरसा मुनिः।
ततो निर्गत्य तरसा व्योममार्गेण तापसः॥ २९

आजगाम स यत्रास्ते दक्षः साक्षात्सतीपिता।
सन्दर्शनार्थमम्बाया ननाम च सतीपदे॥ ३०

पृष्टो दक्षेण स मुनिर्माला कस्यास्त्यलौकिकी।
कथं लब्धा त्वया नाथ दुर्लभा भुवि मानवैः॥ ३१

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य प्रोवाचाश्रुयुतेक्षणः।
देव्याः प्रसादमतुलं प्रेमगद्गदितान्तरः॥ ३२

प्रार्थयामास तां मालां तं मुनिं स सतीपिता।
अदेयं शक्तिभक्ताय नास्ति त्रैलोक्यमण्डले॥ ३३

इति बुद्ध्या तु तां मालां मनवे स समर्पयत्।
गृहीता शिरसा माला मनुना निजमन्दिरे॥ ३४

स्थापिता शयनं यत्र दम्पत्योरतिसुन्दरम्।
पशुकर्मरतो रात्रौ मालागन्धेन मोदितः॥ ३५

अभवत्स महीपालस्तेन पापेन शङ्करे।
शिवे द्वेषमतिर्जातो देव्यां सत्यां तथा नृप॥ ३६

राजंस्तेनापराधेन तज्जन्यो देह एव च।
सत्या योगाग्निना दग्धः सतीधर्मदिदृक्षया॥ ३७

पुनश्च हिमवत्पृष्ठे प्रादुरासीत्तु तन्महः।

जनमेजय उवाच

दह्यमाने सतीदेहे जाते किमकरोच्छिवः॥ ३८

प्राणाधिका सती तस्य तद्वियोगेन कातरः।

व्यास उवाच

ततः परं तु यज्जातं मया वक्तुं न शक्यते॥ ३९
त्रैलोक्यप्रलयो जातः शिवकोपाग्निना नृप।

उससे प्रसन्न होकर देवेश्वरीने दिव्य पुष्पोंके परागसे परिपूर्ण होनेके कारण उसपर मँडराते हुए भ्रमरोंसे सुशोभित अपने गलेमें पड़ी हुई माला मुनिको दे दी और उन्होंने सिर झुकाकर प्रसादरूपमें प्राप्त उस मालाको स्वीकार कर लिया॥ २८$\frac{1}{2}$ ॥

तदनन्तर वहाँसे तत्काल निकलकर वे तपस्वी मुनि दुर्वासा जगदम्बाके दर्शनार्थ आकाशमार्गसे वहाँ आ गये, जहाँ साक्षात् सतीके पिता दक्ष विराजमान थे। मुनिने सतीके चरणोंमें नमन किया॥ २९-३०॥

दक्षने उन मुनिसे पूछा—हे नाथ! यह अलौकिक माला किसकी है? पृथ्वीपर मनुष्योंके लिये परम दुर्लभ यह माला आपने कैसे प्राप्त कर ली?॥ ३१॥

उनका यह वचन सुनकर प्रेमसे विह्वलहृदय तथा अश्रुपूरित नेत्रोंवाले मुनि दुर्वासाने कहा—यह भगवतीका अनुपम प्रसाद है॥ ३२॥

तब सतीके पिता दक्षने उन मुनिसे उस मालाके लिये याचना की। 'तीनों लोकोंमें ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जो देवीभक्तको न दी जा सके'—ऐसा विचार करके मुनिने वह माला दक्षको दे दी। दक्षने सिर झुकाकर उस मालाको ग्रहण कर लिया और उसे अपने घरमें, जहाँपर पति-पत्नीकी अत्यन्त सुन्दर शय्या थी, वहीं पर रख दिया। उस मालाकी सुगन्धिसे मत्त होकर राजा दक्ष रातमें पशुकर्म (स्त्री-समागम)-में प्रवृत्त हुए। हे राजन्! उसी पाप-कर्मके प्रभावसे वे कल्याणकारी शंकर तथा देवी सतीके प्रति द्वेषबुद्धिवाले हो गये॥ ३३—३६॥

हे राजन्! उसी अपराधके परिणामस्वरूप सतीने सतीधर्म प्रदर्शित करनेके लिये उन दक्षसे उत्पन्न अपने शरीर को योगाग्निसे भस्म कर दिया। फिर वही ज्योति हिमालयके घर प्रादुर्भूत हुई॥ ३७॥

जनमेजय बोले—[हे मुने!] जिन शिवके लिये सती प्राणोंसे भी अधिक प्रिय थीं, उन भगवान् शिवने सतीका शरीर भस्म हो जानेके उपरान्त उनके वियोगसे व्याकुल होकर क्या किया?॥ ३८$\frac{1}{2}$ ॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! उसके बाद जो कुछ हुआ, उसे कह सकनेमें मैं असमर्थ हूँ। शिवकी कोपाग्निसे तीनों लोकोंमें प्रलयकी स्थिति उत्पन्न हो

वीरभद्रः समुत्पन्नो भद्रकालीगणान्वितः॥ ४०

त्रैलोक्यनाशनोद्युक्तो वीरभद्रो यदाभवत्।
ब्रह्मादयस्तदा देवाः शङ्करं शरणं ययुः॥ ४१

जाते सर्वस्वनाशेऽपि करुणानिधिरीश्वरः।
अभयं दत्तवांस्तेभ्यो बस्तवक्त्रेण तं मनुम्॥ ४२

अजीवयन्महात्मासौ ततः खिन्नो महेश्वरः।
यज्ञवाटमुपागम्य रुरोद भृशदुःखितः॥ ४३

अपश्यत्तां सतीं वह्नौ दह्यमानां तु चित्कलाम्।
स्कन्धेऽप्यारोपयामास हा सतीति वदन्मुहुः॥ ४४

बभ्राम भ्रान्तचित्तः सन्नानादेशेषु शङ्करः।
तदा ब्रह्मादयो देवाश्चिन्तामापुरनुत्तमाम्॥ ४५

विष्णुस्तु त्वरया तत्र धनुरुद्यम्य मार्गणैः।
चिच्छेदावयवान्सत्यास्तत्तत्स्थानेषु तेऽपतन्॥ ४६

तत्तत्स्थानेषु तत्रासीन्नानामूर्तिधरो हरः।
उवाच च ततो देवान्स्थानेष्वेतेषु ये शिवाम्॥ ४७

भजन्ति परया भक्त्या तेषां किञ्चिन्न दुर्लभम्।
नित्यं सन्निहिता यत्र निजाङ्गेषु पराम्बिका॥ ४८

स्थानेष्वेतेषु ये मर्त्याः पुरश्चरणकर्मिणः।
तेषां मन्त्राः प्रसिद्ध्यन्ति मायाबीजं विशेषतः॥ ४९

इत्युक्त्वा शङ्करस्तेषु स्थानेषु विरहातुरः।
कालं निन्ये नृपश्रेष्ठ जपध्यानसमाधिभिः॥ ५०

जनमेजय उवाच

कानि स्थानानि तानि स्युः सिद्धपीठानि चानघ।
कति संख्यानि नामानि कानि तेषां च मे वद॥ ५१

तत्र स्थितानां देवीनां नामानि च कृपाकर।
कृतार्थोऽहं भवे येन तद्वदाशु महामुने॥ ५२

गयी। उस समय वीरभद्र प्रकट हुए और जब वे वीरभद्र, भद्रकाली आदि गणोंको साथ लेकर तीनों लोकोंको नष्ट करनेके लिये तत्पर हुए, तब ब्रह्मा आदि देवता भगवान् शंकरकी शरणमें गये॥ ३९—४१॥

सर्वस्व-नाश हो जानेपर भी करुणानिधि परमेश्वर शिवने उन देवताओंको अभय प्रदान कर दिया और बकरेका सिर जोड़कर उन दक्षप्रजापतिको जीवित कर दिया। तदनन्तर वे महात्मा शिव उदास होकर यज्ञस्थलपर गये और अत्यन्त दुःखित होकर विलाप करने लगे॥ ४२-४३॥

उन्होंने वहाँ चिन्मय शरीरवाली सतीको अग्निमें दग्ध होते हुए देखा। तब 'हा सती'—ऐसा बार-बार बोलते हुए शिवने उस शरीरको अपने कन्धेपर रख लिया और भ्रमितचित्त होकर वे देश-देशमें भ्रमण करने लगे॥ ४४½॥

इससे ब्रह्मा आदि देवता अत्यन्त चिन्तित हो उठे। विष्णुने शीघ्रतापूर्वक धनुष उठाकर बाणोंसे सतीके अंगोंको काट डाला। वे अंग जिन-जिन स्थानोंपर गिरे, उन-उन स्थानोंपर भगवान् शंकर अनेक विग्रह धारण करके प्रकट हो गये॥ ४५-४६½॥

तत्पश्चात् शिवने देवताओंसे कहा कि जो लोग इन स्थानोंपर महान् श्रद्धाके साथ भगवती शिवाकी आराधना करेंगे, उनके लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं रहेगा; क्योंकि उन स्थानोंपर साक्षात् भगवती पराम्बा अपने अंगोंमें सदा निहित हैं। जो मनुष्य इन स्थानोंपर पुरश्चरण करेंगे; उनके मन्त्र, विशेषरूपसे मायाबीज मन्त्र अवश्य सिद्ध हो जायँगे॥ ४७—४९॥

हे नृपश्रेष्ठ! ऐसा कहकर सतीके विरहसे अधीर भगवान् शिव उन स्थानोंमें जप, ध्यान और समाधिमें संलग्न होकर समय व्यतीत करने लगे॥ ५०॥

जनमेजय बोले—हे अनघ! वे कौनसे स्थान हैं, जो सिद्धपीठ हुए; वे संख्यामें कितने हैं, उनके क्या नाम हैं? मुझे बताइये। हे कृपाकर! हे महामुने! उन स्थानोंपर विराजमान देवियोंके नाम भी शीघ्र बतला दीजिये, जिससे मैं कृतार्थ हो जाऊँ॥ ५१-५२॥

व्यास उवाच

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि देवीपीठानि साम्प्रतम्।
येषां श्रवणमात्रेण पापहीनो भवेन्नरः॥ ५३

येषु येषु च पीठेषूपास्येयं सिद्धिकाङ्क्षिभिः।
भूतिकामैरभिध्येया तानि वक्ष्यामि तत्त्वतः॥ ५४

वाराणस्यां विशालाक्षी गौरीमुखनिवासिनी।
क्षेत्रे वै नैमिषारण्ये प्रोक्ता सा लिङ्गधारिणी॥ ५५

प्रयागे ललिता प्रोक्ता कामुकी गन्धमादने।
मानसे कुमुदा प्रोक्ता दक्षिणे चोत्तरे तथा॥ ५६

विश्वकामा भगवती विश्वकामप्रपूरणी।
गोमन्ते गोमती देवी मन्दरे कामचारिणी॥ ५७

मदोत्कटा चैत्ररथे जयन्ती हस्तिनापुरे।
गौरी प्रोक्ता कान्यकुब्जे रम्भा तु मलयाचले॥ ५८

एकाम्रपीठे सम्प्रोक्ता देवी सा कीर्तिमत्यपि।
विश्वे विश्वेश्वरीं प्राहुः पुरुहूतां च पुष्करे॥ ५९

केदारपीठे सम्प्रोक्ता देवी सन्मार्गदायिनी।
मन्दा हिमवतः पृष्ठे गोकर्णे भद्रकर्णिका॥ ६०

स्थानेश्वरे भवानी तु बिल्वके बिल्वपत्रिका।
श्रीशैले माधवी प्रोक्ता भद्रा भद्रेश्वरे तथा॥ ६१

वराहशैले तु जया कमला कमलालये।
रुद्राणी रुद्रकोट्यां तु काली कालञ्जरे तथा॥ ६२

शालग्रामे महादेवी शिवलिङ्गे जलप्रिया।
महालिङ्गे तु कपिला माकोटे मुकुटेश्वरी॥ ६३

मायापुर्यां कुमारी स्यात्सन्ताने ललिताम्बिका।
गयायां मङ्गला प्रोक्ता विमला पुरुषोत्तमे॥ ६४

उत्पलाक्षी सहस्राक्षे हिरण्याक्षे महोत्पला।
विपाशायाममोघाक्षी पाडला पुण्ड्रवर्धने॥ ६५

नारायणी सुपार्श्वे तु त्रिकूटे रुद्रसुन्दरी।
विपुले विपुला देवी कल्याणी मलयाचले॥ ६६

व्यासजी बोले—हे राजन्! सुनिये, अब मैं देवीपीठोंका वर्णन कर रहा हूँ, जिनके श्रवणमात्रसे मनुष्य पापरहित हो जाता है। सिद्धिकी अभिलाषा रखनेवाले तथा ऐश्वर्यकी कामना करनेवाले पुरुषोंके द्वारा जिन-जिन स्थानोंपर इन देवीकी उपासना तथा इनका ध्यान किया जाना चाहिये, उन स्थानोंको मैं तत्त्वपूर्वक बता रहा हूँ॥ ५३-५४॥

वाराणसीमें गौरीके मुखमें निवास करनेवाली देवी विशालाक्षी प्रतिष्ठित हैं और नैमिषारण्यक्षेत्रमें वे लिंगधारिणी नामसे कही गयी हैं॥ ५५॥

उन्हें प्रयागमें 'ललिता' तथा गन्धमादनपर्वतपर 'कामुकी' नामसे कहा गया है। वे दक्षिण मानसरोवरमें 'कुमुदा' तथा उत्तर मानसरोवरमें सभी कामनाएँ पूर्ण करनेवाली भगवती 'विश्वकामा' कही गयी हैं। उन्हें गोमन्तपर देवी 'गोमती', मन्दराचलपर 'कामचारिणी', चैत्ररथमें 'मदोत्कटा', हस्तिनापुरमें 'जयन्ती', कान्यकुब्जमें 'गौरी' तथा मलयाचलपर 'रम्भा' कहा गया है॥ ५६—५८॥

वे भगवती एकाम्रपीठपर 'कीर्तिमती' नामवाली कही गयी हैं। लोग उन्हें विश्वपीठपर 'विश्वेश्वरी' और पुष्करमें 'पुरुहूता' नामवाली कहते हैं॥ ५९॥

वे देवी केदारपीठमें 'सन्मार्गदायिनी', हिमवत्पृष्ठपर 'मन्दा', गोकर्णमें 'भद्रकर्णिका', स्थानेश्वरमें 'भवानी', बिल्वकमें 'बिल्वपत्रिका', श्रीशैलमें 'माधवी' तथा भद्रेश्वरमें 'भद्रा' कही गयी हैं॥ ६०-६१॥

उन्हें वराहपर्वतपर 'जया', कमलालयमें 'कमला', रुद्रकोटिमें 'रुद्राणी', कालंजरमें 'काली', शालग्राममें 'महादेवी', शिवलिंगमें 'जलप्रिया', महालिङ्गमें 'कपिला' और माकोटमें 'मुकुटेश्वरी' कहा गया है॥ ६२-६३॥

वे भगवती मायापुरीमें 'कुमारी', सन्तानपीठमें 'ललिताम्बिका', गयामें 'मंगला' और पुरुषोत्तमक्षेत्रमें 'विमला' कही गयी हैं। वे सहस्राक्षमें 'उत्पलाक्षी', हिरण्याक्षमें 'महोत्पला', विपाशामें 'अमोघाक्षी', पुण्ड्रवर्धनमें 'पाडला', सुपार्श्वमें 'नारायणी', त्रिकूटमें 'रुद्रसुन्दरी', विपुलक्षेत्रमें 'विपुला', मलयाचलपर देवी 'कल्याणी', सह्याद्रिपर्वतपर 'एकवीरा', हरिश्चन्द्रमें

सह्याद्रावेकवीरा तु हरिश्चन्द्रे तु चन्द्रिका।
रमणा रामतीर्थे तु यमुनायां मृगावती॥ ६७
कोटवी कोटतीर्थे तु सुगन्धा माधवे वने।
गोदावर्यां त्रिसन्ध्या तु गङ्गाद्वारे रतिप्रिया॥ ६८
शिवकुण्डे शुभानन्दा नन्दिनी देविकातटे।
रुक्मिणी द्वारवत्यां तु राधा वृन्दावने वने॥ ६९
देवकी मथुरायां तु पाताले परमेश्वरी।
चित्रकूटे तथा सीता विन्ध्ये विन्ध्याधिवासिनी॥ ७०
करवीरे महालक्ष्मीरुमा देवी विनायके।
आरोग्या वैद्यनाथे तु महाकाले महेश्वरी॥ ७१
अभयेत्युष्णतीर्थेषु नितम्बा विन्ध्यपर्वते।
माण्डव्ये माण्डवी नाम स्वाहा माहेश्वरीपुरे॥ ७२
छगलण्डे प्रचण्डा तु चण्डिकामरकण्टके।
सोमेश्वरे वरारोहा प्रभासे पुष्करावती॥ ७३
देवमाता सरस्वत्यां पारावारा तटे स्मृता।
महालये महाभागा पयोष्ण्यां पिङ्गलेश्वरी॥ ७४
सिंहिका कृतशौचे तु कार्तिके त्वतिशाङ्करी।
उत्पलावर्तके लोला सुभद्रा शोणसङ्गमे॥ ७५
माता सिद्धवने लक्ष्मीरनङ्गा भरताश्रमे।
जालन्धरे विश्वमुखी तारा किष्किन्धपर्वते॥ ७६
देवदारुवने पुष्टिर्मेधा काश्मीरमण्डले।
भीमा देवी हिमाद्रौ तु तुष्टिर्विश्वेश्वरे तथा॥ ७७
कपालमोचने शुद्धिर्माता कामावरोहणे।
शङ्खोद्धारे धारा नाम धृतिः पिण्डारके तथा॥ ७८
कला तु चन्द्रभागायामच्छोदे शिवधारिणी।
वेणायाममृता नाम बदर्यामुर्वशी तथा॥ ७९
औषधिश्चोत्तरकुरौ कुशद्वीपे कुशोदका।
मन्मथा हेमकूटे तु कुमुदे सत्यवादिनी॥ ८०
अश्वत्थे वन्दनीया तु निधिर्वैश्रवणालये।
गायत्री वेदवदने पार्वती शिवसन्निधौ॥ ८१
देवलोके तथेन्द्राणी ब्रह्मास्येषु सरस्वती।
सूर्यबिम्बे प्रभा नाम मातॄणां वैष्णवी मता॥ ८२
अरुन्धती सतीनां तु रामासु च तिलोत्तमा।
चित्ते ब्रह्मकला नाम शक्तिः सर्वशरीरिणाम्॥ ८३

'चन्द्रिका', रामतीर्थमें 'रमणा', यमुनामें 'मृगावती', कोटतीर्थमें 'कोटवी', माधववनमें 'सुगन्धा', गोदावरीमें 'त्रिसन्ध्या', गंगाद्वारमें 'रतिप्रिया', शिवकुण्डमें 'शुभानन्दा', देविकातटपर 'नन्दिनी', द्वारकामें 'रुक्मिणी', वृन्दावनमें 'राधा', मथुरामें 'देवकी', पातालमें 'परमेश्वरी', चित्रकूटमें 'सीता', विन्ध्याचलपर 'विन्ध्यवासिनी', करवीरक्षेत्रमें 'महालक्ष्मी', विनायकक्षेत्रमें देवी 'उमा', वैद्यनाथधाममें 'आरोग्या', महाकालमें 'महेश्वरी', उष्णतीर्थोंमें 'अभया', विन्ध्यपर्वतपर 'नितम्बा', माण्डव्यक्षेत्रमें 'माण्डवी' तथा माहेश्वरीपुरमें 'स्वाहा' नामसे प्रतिष्ठित हैं॥ ६४—७२॥

वे देवी छगलण्डमें 'प्रचण्डा', अमरकण्टकमें 'चण्डिका', सोमेश्वरमें 'वरारोहा', प्रभासक्षेत्रमें 'पुष्करावती', सरस्वतीतीर्थमें 'देवमाता', समुद्रतटपर 'पारावारा', महालयमें 'महाभागा' और पयोष्णीमें 'पिंगलेश्वरी' नामसे प्रसिद्ध हुईं॥ ७३-७४॥

वे कृतशौचक्षेत्रमें 'सिंहिका', कार्तिकक्षेत्रमें 'अतिशांकरी', उत्पलावर्तकमें 'लोला', सोनभद्रनदके संगमपर 'सुभद्रा', सिद्धवनमें माता 'लक्ष्मी', भरताश्रमतीर्थमें 'अनंगा', जालन्धरपर्वतपर 'विश्वमुखी', किष्किन्धापर्वतपर 'तारा', देवदारुवनमें 'पुष्टि', काश्मीर-मण्डलमें 'मेधा', हिमाद्रिपर देवी 'भीमा', विश्वेश्वरक्षेत्रमें 'तुष्टि', कपालमोचनतीर्थमें 'शुद्धि', कामावरोहणतीर्थमें 'माता', शंखोद्धारतीर्थमें 'धारा' और पिण्डारकतीर्थमें 'धृति' नामसे विख्यात हैं॥ ७५—७८॥

चन्द्रभागानदीके तटपर 'कला', अच्छोदक्षेत्रमें 'शिवधारिणी', वेणानदीके किनारे 'अमृता', बदरीवनमें 'उर्वशी', उत्तरकुरुप्रदेशमें 'औषधि', कुशद्वीपमें 'कुशोदका', हेमकूटपर्वतपर 'मन्मथा', कुमुदवनमें 'सत्यवादिनी', अश्वत्थतीर्थमें 'वन्दनीया', वैश्रवणालयक्षेत्रमें 'निधि', वेदवदनतीर्थमें 'गायत्री', भगवान् शिवके सांनिध्यमें 'पार्वती', देवलोकमें 'इन्द्राणी', ब्रह्माके मुखोंमें 'सरस्वती', सूर्यके बिम्बमें 'प्रभा' तथा मातृकाओंमें 'वैष्णवी' नामसे कही गयी हैं। सतियोंमें 'अरुन्धती', अप्सराओंमें 'तिलोत्तमा' और सभी शरीरधारियोंके चित्तमें 'ब्रह्मकला' नामसे वे शक्ति प्रसिद्ध हैं॥ ७९—८३॥

इमान्यष्ट शतानि स्युः पीठानि जनमेजय।
तत्संख्याकास्तदीशान्यो देव्यश्च परिकीर्तिताः॥ ८४

सतीदेव्यङ्गभूतानि पीठानि कथितानि च।
अन्यान्यपि प्रसङ्गेन यानि मुख्यानि भूतले॥ ८५

यः स्मरेच्छृणुयाद्वापि नामाष्टशतमुत्तमम्।
सर्वपापविनिर्मुक्तो देवीलोकं परं व्रजेत्॥ ८६

एतेषु सर्वपीठेषु गच्छेद्यात्राविधानतः।
सन्तर्पयेच्च पित्रादीञ्छ्राद्धादीनि विधाय च॥ ८७

कुर्याच्च महतीं पूजां भगवत्या विधानतः।
क्षमापयेज्जगद्धात्रीं जगदम्बां मुहुर्मुहुः॥ ८८

कृतकृत्यं स्वमात्मानं जानीयाज्जनमेजय।
भक्ष्यभोज्यादिभिः सर्वान्ब्राह्मणान्भोजयेत्ततः॥ ८९

सुवासिनीः कुमारीश्च बटुकादींस्तथा नृप।
तस्मिन्क्षेत्रे स्थिता ये तु चाण्डालाद्या अपि प्रभो॥ ९०

देवीरूपाः स्मृताः सर्वे पूजनीयास्ततो हि ते।
प्रतिग्रहादिकं सर्वं तेषु क्षेत्रेषु वर्जयेत्॥ ९१

यथाशक्ति पुरश्चर्यां कुर्यान्मन्त्रस्य सत्तमः।
मायाबीजेन देवेशीं तत्तत्पीठाधिवासिनीम्॥ ९२

पूजयेदनिशं राजन् पुरश्चरणकृद्भवेत्।
वित्तशाठ्यं न कुर्वीत देवीभक्तिपरो नरः॥ ९३

य एवं कुरुते यात्रां श्रीदेव्याः प्रीतमानसः।
सहस्रकल्पपर्यन्तं ब्रह्मलोके महत्तरे॥ ९४

वसन्ति पितरस्तस्य सोऽपि देवीपुरे तथा।
अन्ते लब्ध्वा परं ज्ञानं भवेन्मुक्तो भवाम्बुधेः॥ ९५

हे जनमेजय! ये एक सौ आठ सिद्धपीठ हैं और उन स्थानोंपर उतनी ही परमेश्वरी देवियाँ कही गयी हैं। भगवती सतीके अंगोंसे सम्बन्धित पीठोंको मैंने बतला दिया; साथ ही इस पृथ्वीतलपर और भी अन्य जो प्रमुख स्थान हैं, प्रसंगवश उनका भी वर्णन कर दिया॥ ८४-८५॥

जो मनुष्य इन एक सौ आठ उत्तम नामोंका स्मरण अथवा श्रवण करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त होकर भगवतीके परम धाममें पहुँच जाता है॥ ८६॥

विधानके अनुसार इन सभी तीर्थोंकी यात्रा करनी चाहिये और वहाँ श्राद्ध आदि सम्पन्न करके पितरोंको सन्तृप्त करना चाहिये। तदनन्तर विधिपूर्वक भगवतीकी विशिष्ट पूजा करनी चाहिये और फिर जगद्धात्री जगदम्बासे [अपने अपराधके लिये] बार-बार क्षमा-याचना करनी चाहिये। हे जनमेजय! ऐसा करके अपने आपको कृतकृत्य समझना चाहिये। हे राजन्! तदनन्तर भक्ष्य और भोज्य आदि पदार्थ सभी ब्राह्मणों, सुवासिनी स्त्रियों, कुमारिकाओं तथा बटुओं आदिको खिलाने चाहिये॥ ८७-८९½॥

हे प्रभो! उस क्षेत्रमें रहनेवाले जो चाण्डाल आदि हैं, वे भी देवीरूप कहे गये हैं। अतः उन सबकी भी पूजा करनी चाहिये। उन सिद्धपीठक्षेत्रोंमें सभी प्रकारके दानग्रहण आदिका निषेध करना चाहिये। श्रेष्ठ साधकको चाहिये कि वह उन क्षेत्रोंमें यथाशक्ति मन्त्रका पुरश्चरण करे और मायाबीज मन्त्रसे उन-उन क्षेत्रोंकी अधिष्ठात्री देवेश्वरीकी निरन्तर उपासना करे। हे राजन्! इस प्रकार साधकको पुरश्चरणकर्ममें तत्पर रहना चाहिये। देवीकी भक्तिमें परायण पुरुषको चाहिये कि वह अनुष्ठान करते समय द्रव्यके व्ययमें कृपणता न करे॥ ९०—९३॥

जो मनुष्य इस प्रकार श्रीदेवीके सिद्धपीठोंकी प्रसन्न मनसे यात्रा करता है, उसके पितर हजार कल्पोंतक महत्तर ब्रह्मलोकमें निवास करते हैं और अन्तमें वह भी परम ज्ञान प्राप्त करके संसार-सागरसे मुक्त हो जाता है तथा देवीलोकमें निवास करता है॥ ९४-९५॥

नामाष्टशतजापेन बहवः सिद्धतां गताः।
यत्रैतल्लिखितं साक्षात्पुस्तके वापि तिष्ठति॥ ९६

ग्रहमारीभयादीनि तत्र नैव भवन्ति हि।
सौभाग्यं वर्धते नित्यं यथा पर्वणि वारिधिः॥ ९७

इन एक सौ आठ नामोंके जपसे अनेक लोग सिद्धि प्राप्त कर चुके हैं। जहाँपर यह अष्टोत्तरशतनाम स्वयं लिखा हुआ अथवा पुस्तकमें अंकित रूपमें स्थित रहता है, उस स्थानपर ग्रहों तथा महामारी आदिके उपद्रवका भय नहीं रहता और पर्वपर जैसे समुद्र बढ़ता है, वैसे ही वहाँ सौभाग्यकी नित्य वृद्धि होती है॥ ९६-९७॥

न तस्य दुर्लभं किञ्चिन्नामाष्टशतजापिनः।
कृतकृत्यो भवेन्नूनं देवीभक्तिपरायणः॥ ९८

नमन्ति देवतास्तं वै देवीरूपो हि स स्मृतः।
सर्वथा पूज्यते देवैः किं पुनर्मनुजोत्तमैः॥ ९९

इन एक सौ आठ नामोंका जप करनेवालेके लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं रह जाता; ऐसा वह देवीभक्तिपरायण निश्चय ही कृतकृत्य हो जाता है। देवता भी उसे नमस्कार करते हैं; क्योंकि उसे देवीका ही रूप कहा गया है। देवतागण सब तरहसे उसकी पूजा करते हैं, तो फिर श्रेष्ठ मनुष्योंकी बात ही क्या!॥ ९८-९९॥

श्राद्धकाले पठेदेतन्नामाष्टशतमुत्तमम्।
तृप्तास्तत्पितरः सर्वे प्रयान्ति परमां गतिम्॥ १००

जो व्यक्ति अपने पितरोंके श्राद्धके समय इस उत्तम अष्टोत्तरशतनामका पाठ करता है, उसके सभी पितर तृप्त होकर परम गति प्राप्त करते हैं॥ १००॥

इमानि मुक्तिक्षेत्राणि साक्षात्संविन्मयानि च।
सिद्धपीठानि राजेन्द्र संश्रयेन्मतिमान्नरः॥ १०१

हे राजेन्द्र! ये सिद्धपीठ प्रत्यक्षज्ञानस्वरूप तथा मुक्तिक्षेत्र हैं, अतः बुद्धिमान् मनुष्यको इनका आश्रय ग्रहण करना चाहिये॥ १०१॥

पृष्टं यत्तत्त्वया राजन्नुक्तं सर्वं महेशितुः।
रहस्यातिरहस्यं च किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ १०२

हे राजन्! आपने भगवती महेश्वरीके अत्यन्त निगूढ रहस्यके विषयमें जो कुछ पूछा था, वह सब मैंने बता दिया; अब आप पुनः क्या सुनना चाहते हैं?॥ १०२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे देवीपीठवर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः॥ ३०॥

~~~o~~~

अथैकत्रिंशोऽध्यायः

तारकासुरसे पीड़ित देवताओंद्वारा भगवतीकी स्तुति तथा भगवतीका हिमालयकी पुत्रीके रूपमें प्रकट होनेका आश्वासन देना

जनमेजय उवाच

धराधराधीशमौलावाविरासीत्परं महः।
यदुक्तं भवता पूर्वं विस्तरात्तद्वदस्व मे॥ १

जनमेजय बोले—[हे मुने!] हिमालयके शिखरपर आविर्भूत जिस परम ज्योतिके विषयमें आप पहले बता चुके हैं, उसे मुझे विस्तारसे बताइये॥ १॥

को विरज्येत मतिमान् पिबञ्छक्तिकथामृतम्।
सुधां तु पिबतां मृत्युः स नैतच्छृण्वतो भवेत्॥ २

ऐसा कौन बुद्धिमान् मनुष्य होगा, जो भगवतीके कथामृतका पान करता हुआ उससे विरत हो जाय; क्योंकि अमृत पीनेवालोंकी मृत्यु तो सम्भव है, किंतु इस कथामृतका पान करनेवालेकी मृत्यु नहीं हो सकती॥ २॥
~~~

व्यास उवाच

धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि शिक्षितोऽसि महात्मभिः।
भाग्यवानसि यद्देव्यां निर्व्याजा भक्तिरस्ति ते॥ ३

शृणु राजन् पुरा वृत्तं सतीदेहेऽग्निभर्जिते।
भ्रान्तः शिवस्तु बभ्राम क्वचिद्देशे स्थिरोऽभवत्॥ ४

प्रपञ्चभानरहितः समाधिगतमानसः।
ध्यायन्देवीस्वरूपं तु कालं निन्ये स आत्मवान्॥ ५

सौभाग्यरहितं जातं त्रैलोक्यं सचराचरम्।
शक्तिहीनं जगत्सर्वं साब्धिद्वीपं सपर्वतम्॥ ६

आनन्दः शुष्कतां यातः सर्वेषां हृदयान्तरे।
उदासीनाः सर्वलोकाश्चिन्ताजर्जरचेतसः॥ ७

सदा दुःखोदधौ मग्ना रोगग्रस्तास्तदाभवन्।
ग्रहाणां देवतानां च वैपरीत्येन वर्तनम्॥ ८

अधिभूताधिदैवानां सत्यभावान्नृपाभवन्।
अथास्मिन्नेव काले तु तारकाख्यो महासुरः॥ ९

ब्रह्मदत्तवरो दैत्योऽभवत्त्रैलोक्यनायकः।
शिवौरसस्तु यः पुत्रः स ते हन्ता भविष्यति॥ १०

इति कल्पितमृत्युः स देवदेवैर्महासुरः।
शिवौरससुताभावाज्जगर्ज च ननन्द च॥ ११

तेन चोपद्रुताः सर्वे स्वस्थानात्प्रच्युताः सुराः।
शिवौरससुताभावाच्चिन्तामापुर्दुरत्ययाम्॥ १२

नाङ्गना शङ्करस्यास्ति कथं तत्सुतसम्भवः।
अस्माकं भाग्यहीनानां कथं कार्यं भविष्यति॥ १३

व्यासजी बोले—आप धन्य हैं, कृतकृत्य हैं, भाग्यवान् हैं और महात्माओंद्वारा शिक्षित किये गये हैं; इसीसे भगवतीके प्रति आपकी निश्छल भक्ति है॥ ३॥

हे राजन्! एक प्राचीन कथा सुनिये। अग्निमें सतीदेहके दग्ध हो जानेपर भगवान् शिव व्याकुल होकर इधर-उधर भ्रमण करने लगे और अन्तमें किसी स्थानपर ठहर गये। इसके बाद उन आत्मनिष्ठ शिवने प्रपंचज्ञानसे शून्य होकर मनको समाधिस्थ करके भगवतीके स्वरूपका ध्यान करते हुए कुछ समय वहींपर व्यतीत किया॥ ४-५॥

स्थावर-जंगममय तीनों लोक सौभाग्यसे रहित हो गये। समुद्रों, द्वीपों और पर्वतोंसहित सम्पूर्ण जगत् शक्तिहीन हो गया। सभी प्राणियोंके हृदयमें प्रवहमान आनन्द सूख गया और सभी लोग चिन्तासे पीड़ित मनवाले तथा खिन्नमनस्क हो गये। सभी दुःखरूपी समुद्रमें डूब गये और रोगग्रस्त हो गये। हे राजन्! सतीके अभावसे उस समय ग्रहों, देवताओं, अधिभूत तथा अधिदैवत—इन सबका व्यवहार विपरीत हो गया और समस्त प्राणी अपनी मर्यादासे विचलित हो गये॥ ६—८½॥

उसी समय तारक नामक एक महान् असुर उत्पन्न हुआ। वह दैत्य ब्रह्माजीसे वरदान पाकर तीनों लोकोंका शासक हो गया। भगवान् शंकरका जो औरस पुत्र होगा, वही तुम्हारा संहारक होगा—देवाधिदेव ब्रह्माद्वारा इस प्रकारकी कल्पित मृत्युका वर पाकर वह महासुर तारक शंकरजीके औरस पुत्रके अभावके कारण [निर्भीक होकर] गर्जन तथा निनाद करने लगा॥ ९—११॥

इससे सभी देवता अपना-अपना स्थान छोड़कर भाग गये। शिवका कोई औरस पुत्र न होनेके कारण देवताओंको महान् चिन्ता हुई। वे सोचने लगे कि शंकरजीकी भार्या तो है नहीं, तो पुत्रोत्पत्ति कैसे होगी? ऐसी स्थितिमें हम भाग्यहीनोंका कार्य किस प्रकार सिद्ध होगा?॥ १२-१३॥

इति चिन्तातुराः सर्वे जग्मुर्वैकुण्ठमण्डले।
शशंसुर्हरिमेकान्ते स चोपायं जगाद ह॥ १४

कुतश्चिन्तातुराः सर्वे कामकल्पद्रुमा शिवा।
जागर्ति भुवनेशानी मणिद्वीपाधिवासिनी॥ १५

अस्माकमनया देव तदुपेक्षास्ति नान्यथा।
शिक्षैवेयं जगन्मात्रा कृतास्मच्छिक्षणाय च॥ १६

लालने ताडने मातुर्नाकारुण्यं यथार्भके।
तद्वदेव जगन्मातुर्नियन्त्र्या गुणदोषयोः॥ १७

अपराधो भवत्येव तनयस्य पदे पदे।
कोऽपरः सहते लोके केवलं मातरं विना॥ १८

तस्माद्यूयं पराम्बां तां शरणं यात मा चिरम्।
निर्व्याजया चित्तवृत्त्या सा वः कार्यं विधास्यति॥ १९

इत्यादिश्य सुरान्सर्वान्महाविष्णुः स्वजायया।
संयुतो निर्जगामाशु देवैः सह सुराधिपः॥ २०

आजगाम महाशैलं हिमवन्तं नगाधिपम्।
अभवंश्च सुराः सर्वे पुरश्चरणकर्मिणः॥ २१

अम्बायज्ञविधानज्ञा अम्बायज्ञं च चक्रिरे।
तृतीयादिव्रतान्याशु चक्रुः सर्वे सुरा नृप॥ २२

केचित्समाधिनिष्णाताः केचिन्नामपरायणाः।
केचित्सूक्तपराः केचिन्नामपारायणोत्सुकाः॥ २३

मन्त्रपारायणपराः केचित्कृच्छ्रादिकारिणः।
अन्तर्यागपराः केचित्केचिन्न्यासपरायणाः॥ २४

हृल्लेखया पराशक्तेः पूजां चक्रुरतन्द्रिता।
इत्येवं बहुवर्षाणि कालोऽगाज्जनमेजय॥ २५

इस प्रकारकी चिन्तासे व्याकुल सभी देवता वैकुण्ठलोक गये और उन्होंने एकान्तमें भगवान् विष्णुसे सब कुछ बताया। इसपर उन्होंने उपाय बताते हुए कहा—आप सब चिन्तासे व्यग्र क्यों हो रहे हैं? वे भगवती शिवा कामनाएँ पूर्ण करनेवाले कल्पवृक्षके समान हैं। मणिद्वीपमें विराजमान रहनेवाली भगवती भुवनेश्वरी सदा जागती रहती हैं॥ १४-१५॥

हमलोगोंके दोषके कारण ही हमारे प्रति उनकी उपेक्षा है, कोई अन्य कारण नहीं है। हमें सीख प्रदान करनेके लिये ही जगदम्बाने हमें यह शिक्षा प्रदान की है॥ १६॥

जिस प्रकार प्यार करने अथवा डाँटने-फटकारने—किसी भी स्थितिमें माता बालकके प्रति निर्दयताका व्यवहार नहीं करती, वैसे ही गुण-दोषपर नियन्त्रण करनेवाली जगदम्बाके विषयमें भी जानना चाहिये॥ १७॥

पुत्रसे तो पग-पगपर अपराध होता है, माताको छोड़कर जगत्में दूसरा कौन उसे सह सकता है। अतः आपलोग निष्कपट चित्तवृत्तिके साथ उन भगवती पराम्बाकी शरणमें अविलम्ब जाइये। वे आपलोगोंका कार्य अवश्य सिद्ध करेंगी॥ १८-१९॥

सभी देवताओंको यह उपदेश देकर देवेश्वर महाविष्णु अपनी भार्या लक्ष्मी तथा देवताओंके साथ शीघ्र चल पड़े और महाद्रि गिरिराज हिमालयपर आ गये। वहाँ सभी देवता पुरश्चरण कर्ममें संलग्न हो गये। हे राजन्! अम्बायज्ञकी विधि जाननेवाले देवतागण अम्बायज्ञ करने लगे। सभी देवता शीघ्रतापूर्वक तृतीया आदि व्रत सम्पादित करनेमें लग गये॥ २०—२२॥

कुछ लोग समाधि लगाकर बैठ गये, कुछ लोग भगवतीके नामजपमें लीन हो गये, कुछ लोग सूक्तपाठ करने लगे और कुछ लोग नामोंका पारायण करनेमें निष्णात हो गये। इसी प्रकार कुछ देवता मन्त्रपारायणमें तत्पर हो गये, कुछ कृच्छ्रव्रत करने लगे, कुछ अन्तर्याग करनेमें संलग्न हो गये और कुछ देवता न्यास आदिमें तत्पर हो गये। कुछ देवता सावधान होकर हृल्लेखाबीज-मन्त्रसे पराशक्ति जगदम्बाकी पूजा करने लगे। हे जनमेजय! इस प्रकार बहुत वर्षोंतक भगवतीकी आराधना करते हुए समय व्यतीत हुआ॥ २३—२५॥

अकस्माच्चैत्रमासीयनवम्यां च भृगोर्दिने।
प्रादुर्बभूव पुरतस्तन्महः श्रुतिबोधितम्॥ २६

चतुर्दिक्षु चतुर्वेदैर्मूर्तिमद्भिरभिष्टुतम्।
कोटिसूर्यप्रतीकाशं चन्द्रकोटिसुशीतलम्॥ २७

विद्युत्कोटिसमानाभमरुणं तत्परं महः।
नैव चोर्ध्वं न तिर्यक्च न मध्ये परिजग्रभत्॥ २८

आद्यन्तरहितं तत्तु न हस्ताद्यङ्गसंयुतम्।
न च स्त्रीरूपमथवा न पुंरूपमथोभयम्॥ २९

दीप्त्या पिधानं नेत्राणां तेषामासीन्महीपते।
पुनश्च धैर्यमालम्ब्य यावत्ते ददृशुः सुराः॥ ३०

तावत्तदेव स्त्रीरूपेणाभाद्दिव्यं मनोहरम्।
अतीव रमणीयाङ्गीं कुमारीं नवयौवनाम्॥ ३१

उद्यत्पीनकुचद्वन्द्वनिन्दिताम्भोजकुड्मलाम्।
रणत्किङ्किणिकाजालसिञ्जन्मञ्जीरमेखलाम्॥ ३२

कनकाङ्गदकेयूरग्रैवेयकविभूषिताम्।
अनर्घ्यमणिसम्भिन्नगलबन्धविराजिताम्॥ ३३

तनुकेतकसंराजन्नीलभ्रमरकुन्तलाम्।
नितम्बबिम्बसुभगां रोमराजिविराजिताम्॥ ३४

कर्पूरशकलोन्मिश्रताम्बूलपूरिताननाम्।
कनत्कनकताटङ्कविटङ्कवदनाम्बुजाम्॥ ३५

अष्टमीचन्द्रविम्बाभललाटामायतभ्रुवम्।
रक्तारविन्दनयनामुन्नसां मधुराधराम्॥ ३६

तदनन्तर चैत्रमासकी शुक्लपक्षकी नवमी तिथिमें शुक्रवारको श्रुतियोंद्वारा प्रतिपादित एक महान् ज्योति अकस्मात् सबके समक्ष प्रकट हुई। चारों वेद मूर्तिमान् होकर चारों दिशाओंमें उसकी स्तुति कर रहे थे, वह ज्योति करोड़ों सूर्योंकी प्रभाके समान आलोकित थी, उसमें करोड़ों चन्द्रमाओंकी शीतलता विद्यमान थी, वह करोड़ों बिजलियोंके समान अरुण आभासे युक्त थी, वह परम ज्योति न ऊँची, न तिरछी, न मध्यमें अपितु सभी ओर व्याप्त थी। आदि और अन्तसे हीन वह तेज हाथ आदि अंगोंसे युक्त नहीं था। वह तेज न स्त्रीरूप, न पुरुषरूप अथवा न उभयरूपमें ही था॥ २६—२९॥

हे राजन्! उस ज्योतिकी दीप्तिसे उन देवताओंकी आँखें बन्द हो गयीं। इसके बाद धैर्य धारणकर जब देवताओंने देखा तब वह दिव्य तथा मनोहर आभा उन्हें नव-यौवनसे सम्पन्न अति सुन्दर अंगोंवाली तथा कुमारी अवस्थावाली स्त्रीके रूपमें दृष्टिगोचर हुई॥ ३०-३१॥

उनके उन्नत तथा विशाल दोनों वक्ष:स्थल पूर्ण विकसित कमलको भी तिरस्कृत कर रहे थे। वे बजती हुई किंकिणी तथा मधुर ध्वनि करती हुई नूपुर एवं करधनी धारण किये हुए थीं। वे सुवर्णके बाजूबन्द, मुकुट तथा कण्ठहारसे सुशोभित थीं। वे बहुमूल्य मणियोंसे जड़ा हुआ हार गलेमें धारण किये हुए थीं। केतकीके नूतन पत्तोंके समान उनके कपोलोंपर काले भ्रमरसदृश केश लटक रहे थे। उनका नितम्बस्थल अत्यन्त मनोहर था। वे सुन्दर रोमावलियोंसे अत्यन्त शोभा पा रही थीं। उनका मुख कर्पूरके छोटे-छोटे टुकड़ोंसे युक्त ताम्बूलसे परिपूर्ण था। उनके कमलसदृश मुखपर सुवर्णमय कुण्डलकी मधुर ध्वनि हो रही थी। उनका ललाट अष्टमीके चन्द्रमण्डलकी आभाके समान सुशोभित हो रहा था और उसपर उनकी फैली हुई विशाल भौंहें महान् शोभा पा रही थीं। उनके नेत्र लाल कमलके समान थे, नासिका उन्नत थी तथा ओष्ठ मधुर थे॥ ३२—३६॥

कुन्दकुड्मलदन्ताग्रां मुक्ताहारविराजिताम्।
रत्नसम्भिन्नमुकुटां चन्द्ररेखावतंसिनीम्॥ ३७

मल्लिकामालतीमालाकेशपाशविराजिताम्।
काश्मीरबिन्दुनिटिलां नेत्रत्रयविलासिनीम्॥ ३८

पाशाङ्कुशवराभीतिचतुर्बाहुं त्रिलोचनाम्।
रक्तवस्त्रपरीधानां दाडिमीकुसुमप्रभाम्॥ ३९

सर्वशृङ्गारवेषाढ्यां सर्वदेवनमस्कृताम्।
सर्वाशापूरिकां सर्वमातरं सर्वमोहिनीम्॥ ४०

प्रसादसुमुखीमम्बां मन्दस्मितमुखाम्बुजाम्।
अव्याजकरुणामूर्तिं ददृशुः पुरतः सुराः॥ ४१

दृष्ट्वा तां करुणामूर्तिं प्रणेमुः सादरं सुराः।
वक्तुं नाशक्नुवन् किञ्चिद्बाष्पसंरुद्धनिःस्वनाः॥ ४२

कथञ्चित्स्थैर्यमालम्ब्य भक्त्या चानतकन्धराः।
प्रेमाश्रुपूर्णनयनास्तुष्टुवुर्जगदम्बिकाम्॥ ४३

देवा ऊचुः

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः।
नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम्॥ ४४

तामग्निवर्णां तपसा ज्वलन्तीं
वैरोचनीं कर्मफलेषु जुष्टाम्।
दुर्गां देवीं शरणमहं प्रपद्ये
सुतरसि तरसे नमः॥ ४५

देवीं वाचमजनयन्त देवा-
स्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति।
सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना
धेनुर्वागस्मानुपसुष्टुतैतु॥ ४६

वे भगवती कुन्दकी पूर्ण विकसित कलियोंके समान सुन्दर दाँतोंसे सुशोभित थीं। वे मोतियोंकी माला धारण किये हुए थीं। वे रत्नजटित मुकुट पहने हुई थीं। वे चन्द्ररेखारूपी शिरोभूषणसे सुशोभित हो रही थीं; उनके केशकी वेणीमें मल्लिका और मालती पुष्पोंकी माला विद्यमान थी। केसरकी बिन्दीसे उनका ललाट सुशोभित था। वे तीन नेत्रोंसे शोभा पा रही थीं। तीन नेत्रोंवाली वे अपनी चारों भुजाओंमें पाश, अंकुश, वर और अभय मुद्राएँ धारण किये हुए थीं। वे लाल रंगका वस्त्र पहने हुए थीं। उनके शरीरकी प्रभा दाडिमके पुष्पके समान थी। वे शृंगारके सभी वेषोंसे अलंकृत थीं और समस्त देवताओंसे नमस्कृत हो रही थीं। इस प्रकार देवताओंने सभी प्राणियोंकी आशाओंको पूर्ण करनेवाली, सभीकी जननी, सबको मोहित करनेवाली, प्रसन्नतायुक्त सुन्दर मुखमण्डलवाली, मन्द-मन्द मुसकानयुक्त मुखकमलवाली और विशुद्ध करुणाकी साक्षात् मूर्तिस्वरूपा माता जगदम्बाको अपने सामने देखा॥ ३७—४१॥

उन करुणामूर्ति भगवतीको देखकर देवताओंने आदरपूर्वक उन्हें प्रणाम किया। आनन्दाश्रुसे रुँधे हुए कण्ठवाले सभी देवता कुछ भी नहीं बोल सके॥ ४२॥

किसी प्रकार धैर्य धारणकर प्रेमके आँसुओंसे परिपूर्ण नेत्रोंवाले वे देवगण शीश झुकाकर भक्तिपूर्वक जगदम्बिकाकी स्तुति करने लगे॥ ४३॥

देवताओंने कहा—देवीको नमस्कार है, महादेवी शिवाको निरन्तर नमस्कार है, प्रकृति एवं भद्राको नमस्कार है; हमलोग नियमपूर्वक उन्हें प्रणाम करते हैं॥ ४४॥

उन अग्निसदृश वर्णवाली, ज्ञानसे जगमगानेवाली, दीप्तिमयी, कर्मफलोंकी प्राप्तिहेतु सेवन की जानेवाली भगवती दुर्गाकी शरण हम ग्रहण करते हैं। पार करनेयोग्य संसार-सागरसे तरनेके लिये उन भगवतीको नमस्कार है॥ ४५॥

विश्वरूप देवताओंने जिस वैखरी वाणीको उत्पन्न किया, उसीको अनेक प्रकारके प्राणी बोलते हैं। वे कामधेनुतुल्य, आनन्ददायिनी और अन्न तथा बल देनेवाली वाग्रूपिणी भगवती उत्तम स्तुतिसे संतुष्ट होकर हमारे समीप पधारें॥ ४६॥

कालरात्रिं ब्रह्मस्तुतां वैष्णवीं स्कन्दमातरम्।
सरस्वतीमदितिं दक्षदुहितरं नमामः पावनां शिवाम्॥ ४७

महालक्ष्म्यै च विद्महे सर्वशक्त्यै च धीमहि।
तन्नो देवी प्रचोदयात्॥ ४८

नमो विराट्स्वरूपिण्यै नमः सूत्रात्ममूर्तये।
नमोऽव्याकृतरूपिण्यै नमः श्रीब्रह्ममूर्तये॥ ४९

यदज्ञानाज्जगद्भाति रज्जुसर्पस्त्रगादिवत्।
यज्ज्ञानाल्लयमाप्नोति नुमस्तां भुवनेश्वरीम्॥ ५०

नुमस्तत्पदलक्ष्यार्थां चिदेकरसरूपिणीम्।
अखण्डानन्दरूपां तां वेदतात्पर्यभूमिकाम्॥ ५१

पञ्चकोशातिरिक्तां तामवस्थात्रयसाक्षिणीम्।
नुमस्त्वंपदलक्ष्यार्थां प्रत्यगात्मस्वरूपिणीम्॥ ५२

नमः प्रणवरूपायै नमो ह्रींकारमूर्तये।
नानामन्त्रात्मिकायै ते करुणायै नमो नमः॥ ५३

इति स्तुता तदा देवैर्मणिद्वीपाधिवासिनी।
प्राह वाचा मधुरया मत्तकोकिलनिःस्वना॥ ५४

देव्युवाच

वदन्तु विबुधाः कार्यं यदर्थमिह सङ्गताः।
वरदाहं सदा भक्तकामकल्पद्रुमास्मि च॥ ५५

तिष्ठन्त्यां मयि का चिन्ता युष्माकं भक्तिशालिनाम्।
समुद्धरामि मद्भक्तान्दुःखसंसारसागरात्॥ ५६

इति प्रतिज्ञां मे सत्यां जानीथ विबुधोत्तमाः।

हम सब देवतागण कालरात्रिस्वरूपिणी, वेदोंद्वारा स्तुत, विष्णुकी शक्तिस्वरूपा, स्कन्दमाता (शिवशक्ति), सरस्वती (ब्रह्मशक्ति), देवमाता अदिति, दक्षपुत्री सती तथा पावन भगवती शिवाको नमस्कार करते हैं॥ ४७॥

हम महालक्ष्मीको जानते हैं और उन सर्वशक्ति-स्वरूपिणीका ध्यान करते हैं। वे भगवती हमें इस ज्ञान-ध्यानमें प्रवृत्त करें॥ ४८॥

विराट्रूप धारण करनेवालीको नमस्कार है, सूक्ष्मरूप धारण करनेवालीको नमस्कार है, अव्यक्तरूप धारण करनेवालीको नमस्कार है और श्रीब्रह्ममूर्तिस्वरूपिणी देवीको नमस्कार है॥ ४९॥

जिन भगवतीको न जाननेके कारण यह जगत् मनुष्यको रस्सीमें सर्प, माला आदिकी भाँति प्रतीत होता है और जिसे जान लेनेपर यह भ्रान्ति नष्ट हो जाती है, उन जगदीश्वरीको हम नमस्कार करते हैं॥ ५०॥

'तत्' पदकी लक्ष्यार्थ, एकमात्र चिन्मय स्वरूपवाली, अखण्डानन्दस्वरूपिणी तथा वेदोंके तात्पर्यकी भूमिकास्वरूपिणी उन भगवतीको हम नमन करते हैं॥ ५१॥

पंचकोशसे अतिरिक्त, तीनों अवस्थाओंकी साक्षिणी, **'त्वम्'** पदकी लक्ष्यार्थ तथा प्रत्यगात्मस्वरूपिणी उन जगदम्बाको हम नमस्कार करते हैं॥ ५२॥

प्रणवरूपवाली भगवतीको नमस्कार है। ह्रींकारविग्रहवाली भगवतीको नमस्कार है। अनेक मन्त्रोंके स्वरूपवाली आप करुणामयी देवीको बार-बार नमस्कार है॥ ५३॥

देवताओंके इस प्रकार स्तुति करनेपर मणिद्वीपमें निवास करनेवाली तथा मत्त कोयलके समान ध्वनि करनेवाली भगवती मधुर वाणीमें कहने लगीं॥ ५४॥

देवी बोलीं—आप सभी देवतागण अपना वह कार्य बताइये, जिसके लिये आप सब यहाँ एकत्रित हुए हैं। सर्वदा वर प्रदान करनेवाली मैं भक्तोंकी कामना पूर्ण करनेहेतु कल्पवृक्ष हूँ॥ ५५॥

मेरे रहते भक्तिपरायण आप सब देवताओंको कौन-सी चिन्ता है? मैं इस दुःखमय संसारसागरसे अपने भक्तोंका उद्धार कर देती हूँ। हे श्रेष्ठ देवतागण! आपलोग मेरी इस प्रतिज्ञाको सत्य समझिये॥ ५६½॥

इति प्रेमाकुलां वाणीं श्रुत्वा सन्तुष्टमानसाः ॥ ५७
निर्भया निर्जरा राजन्नूचुर्दुःखं स्वकीयकम्।

देवा ऊचुः

नाज्ञातं किञ्चिदप्यत्र भवत्यास्ति जगत्त्रये ॥ ५८
सर्वज्ञया सर्वसाक्षिरूपिण्या परमेश्वरि।
तारकेणासुरेन्द्रेण पीडिताः स्मो दिवानिशम् ॥ ५९
शिवाङ्गजाद्वधस्तस्य निर्मितो ब्रह्मणा शिवे।
शिवाङ्गना तु नैवास्ति जानासि त्वं महेश्वरि ॥ ६०
सर्वज्ञपुरतः किं वा वक्तव्यं पामरैर्जनैः।
एतदुद्देशतः प्रोक्तमपरं तर्कयाम्बिके ॥ ६१
सर्वदा चरणाम्भोजे भक्तिः स्यात्तव निश्चला।
प्रार्थनीयमिदं मुख्यमपरं देहहेतवे ॥ ६२
इति तेषां वचः श्रुत्वा प्रोवाच परमेश्वरी।
मम शक्तिस्तु या गौरी भविष्यति हिमालये ॥ ६३
शिवाय सा प्रदेया स्यात्सा वः कार्यं विधास्यति।
भक्तिर्मच्चरणाम्भोजे भूयाद्युष्माकमादरात् ॥ ६४
हिमालयो हि मनसा मामुपास्तेऽतिभक्तितः।
ततस्तस्य गृहे जन्म मम प्रियकरं मतम् ॥ ६५

व्यास उवाच

हिमालयोऽपि तच्छ्रुत्वात्यनुग्रहकरं वचः।
बाष्पैः संरुद्धकण्ठाक्षो महाराज्ञीं वचोऽब्रवीत् ॥ ६६
महत्तरं तं कुरुषे यस्यानुग्रहमिच्छसि।
नोचेत्क्वाहं जडः स्थाणुः क्व त्वं सच्चित्स्वरूपिणी ॥ ६७
असम्भाव्यं जन्मशतैस्त्वत्पितृत्वं ममानघे।
अश्वमेधादिपुण्यैर्वा पुण्यैर्वा तत्समाधिजैः ॥ ६८
अद्य प्रपञ्चे कीर्तिः स्याज्जगन्माता सुताभवत्।
अहो हिमालयस्यास्य धन्योऽसौ भाग्यवानिति ॥ ६९

हे राजन्! भगवतीकी यह स्नेहमयी वाणी सुनकर देवताओंके मनमें अत्यन्त प्रसन्नता हुई और वे निर्भय होकर उनसे अपना दुःख कहने लगे ॥ ५७½ ॥

देवता बोले—हे परमेश्वरि! इस त्रिलोकीमें ऐसा कुछ भी नहीं है, जो सब कुछ जाननेवाली तथा सबकी साक्षिस्वरूपा आप भगवतीके लिये अज्ञात हो ॥ ५८½ ॥

हे शिवे! असुरराज तारक हमलोगोंको दिन-रात पीड़ित कर रहा है। ब्रह्माजीने शिवजीके औरसपुत्रके द्वारा उसका वध सुनिश्चित किया है। हे महेश्वरि! आप तो जानती ही हैं कि शिवकी कोई भार्या नहीं है। हम अल्पबुद्धि प्राणी सब कुछ जाननेवाली आपसे क्या कहें, [आप देह धारणकर अवतरित हों] इसी प्रयोजनसे हमलोगोंने आपसे निवेदन किया है। हे अम्बिके! दूसरी बात भी ध्यानमें रखें। आपके चरणकमलमें हमलोगोंकी अविचल भक्ति सर्वदा बनी रहे। देहकी रक्षाके निमित्त यह हमारा दूसरा मुख्य निवेदन है ॥ ५९—६२ ॥

उनकी यह बात सुनकर भगवती परमेश्वरीने कहा—'गौरी' नामक मेरी जो शक्ति है, वह हिमालयके घर आविर्भूत होगी। आपलोग ऐसा प्रयत्न कीजिये कि वह शिवको प्रदान कर दी जाय, वही गौरी आपलोगोंका कार्य सिद्ध करेगी। मेरे चरणकमलमें आपलोगोंकी भक्ति सदा आदरपूर्वक बनी रहे। हिमालय भी अत्यन्त भक्तिके साथ मनोयोगसे मेरी उपासना कर रहे हैं; अतः उनके घर जन्म लेना मैंने प्रियकर माना है ॥ ६३—६५ ॥

व्यासजी बोले—[वहाँ देवताओंके साथ विद्यमान] हिमालयने भी देवीकी वह अति कृपापूर्ण वाणी सुनकर आँसुओंसे रुँधे कंठ तथा अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे महाराज्ञी भगवतीसे यह वचन कहा—आप जिसपर कृपा करना चाहती हैं, उसे अति महान् बना देती हैं अन्यथा कहाँ जड़ तथा स्थाणु मैं और कहाँ सच्चित्स्वरूपिणी आप ॥ ६६-६७ ॥

हे अनघे! सैकड़ों जन्मोंमें अश्वमेध आदि यज्ञों तथा समाधिसे प्राप्त होनेवाले पुण्योंसे भी आपका पिता बन पाना असम्भव है। अब जगत्में मेरी कीर्ति फैल जायगी। लोग कहेंगे—अहो! इस हिमालयकी पुत्रीके रूपमें स्वयं जगज्जननी उत्पन्न हुई हैं, ये बड़े धन्य तथा भाग्यशाली हैं ॥ ६८-६९ ॥

यस्यास्तु जठरे सन्ति ब्रह्माण्डानां च कोटयः।
सैव यस्य सुता जाता को वा स्यात्तत्समो भुवि॥ ७०

जिनके उदरमें करोड़ों ब्रह्माण्ड स्थित हैं, वे ही जगदम्बा जिसकी कन्या होकर जन्म लें, उसके समान इस पृथ्वीपर कौन हो सकता है?॥ ७०॥

न जानेऽस्मत्पितॄणां किं स्थानं स्यान्निर्मितं परम्।
एतादृशानां वासाय येषां वंशेऽस्ति मादृशः॥ ७१

जिनके वंशमें मेरे-जैसा [भाग्यशाली] उत्पन्न हुआ है, मेरे ऐसे उन पूर्वजोंके निवासके लिये कैसा श्रेष्ठ स्थान निर्मित हुआ होगा—यह मैं नहीं जानता॥ ७१॥

इदं यथा च दत्तं मे कृपया प्रेमपूर्णया।
सर्ववेदान्तसिद्धं च त्वद्रूपं ब्रूहि मे तथा॥ ७२

जिस प्रकार आपने स्नेहपूर्ण कृपा करके मुझे गौरीका पिता होनेका अवसर प्रदान किया, उसी प्रकार अब आप सम्पूर्ण वेदान्तके सिद्धान्तभूत अपने स्वरूपको मुझे बताइये॥ ७२॥

योगं च भक्तिसहितं ज्ञानं च श्रुतिसम्मतम्।
वदस्व परमेशानि त्वमेवाहं यतो भवे:॥ ७३

हे परमेश्वरि! वेदसम्मत ज्ञान, भक्ति तथा योगका मुझे उपदेश करें, जिससे मैं आपके स्वरूपको प्राप्त हो जाऊँ॥ ७३॥

व्यास उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा प्रसन्नमुखपङ्कजा।
वक्तुमारभताम्बा सा रहस्यं श्रुतिगूहितम्॥ ७४

व्यासजी बोले—उनकी यह बात सुनकर प्रसन्नतासे प्रफुल्लित मुखकमलवाली उन भगवतीने श्रुतियोंमें निहित रहस्यका वर्णन करना आरम्भ किया॥ ७४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे हिमालयगृहे पार्वतीजन्मविषये देवान् प्रति देवीकथनवर्णनं नामैकत्रिंशोऽध्यायः॥ ३१॥

~~~○~~~

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः

देवीगीताके प्रसंगमें भगवतीका हिमालयसे माया तथा अपने स्वरूपका वर्णन

देव्युवाच

शृण्वन्तु निर्जराः सर्वे व्याहरन्त्या वचो मम।
यस्य श्रवणमात्रेण मद्रूपत्वं प्रपद्यते॥ १

देवी बोलीं—सभी देवता मेरे द्वारा कहे जानेवाले वचनको सुनें, जिसके श्रवणमात्रसे मनुष्य मेरे स्वरूपको प्राप्त हो जाता है॥ १॥

अहमेवास पूर्वं तु नान्यत्किञ्चिन्नगाधिप।
तदात्मरूपं चित्संवित्परब्रह्मैकनामकम्॥ २

अप्रतर्क्यमनिर्देश्यमनौपम्यमनामयम्।
तस्य काचित्स्वतः सिद्धा शक्तिर्मायेति विश्रुता॥ ३

न सती सा नासती सा नोभयात्मा विरोधतः।
एतद्विलक्षणा काचिद्वस्तुभूतास्ति सर्वदा॥ ४

हे पर्वतराज! पूर्वमें केवल मैं ही थी और कुछ भी नहीं था। उस समय मेरा रूप चित्, संवित् (ज्ञानस्वरूप) और परब्रह्म नामवाला था। उसके सम्बन्धमें कोई तर्क नहीं किया जा सकता, इदमित्थं रूपसे उसका निर्देश नहीं किया जा सकता, उसकी कोई उपमा नहीं है तथा वह विकाररहित है॥ २½॥

भगवतीकी कोई स्वतःसिद्ध शक्ति है, जो माया नामसे प्रसिद्ध है। वह शक्ति न सत् है, न असत् है और दोनोंमें विरोध होनेके कारण वह सत्-असत्—उभयरूप भी नहीं है। सत्-असत् इन दोनोंसे विलक्षण वह माया कोई अन्य ही वस्तु है॥ ३-४॥
~~~

पावकस्योष्णतेवेयमुष्णांशोरिव दीधितिः।
चन्द्रस्य चन्द्रिकेवेयं ममेयं सहजा ध्रुवा॥ ५

तस्यां कर्माणि जीवानां जीवाः कालाश्च सञ्चरे।
अभेदेन विलीनाः स्युः सुषुप्तौ व्यवहारवत्॥ ६

स्वशक्तेश्च समायोगादहं बीजात्मतां गता।
स्वाधारावरणात्तस्या दोषत्वं च समागतम्॥ ७

चैतन्यस्य समायोगान्निमित्तत्वं च कथ्यते।
प्रपञ्चपरिणामाच्च समवायित्वमुच्यते॥ ८

केचित्तां तप इत्याहुस्तमः केचिज्जडं परे।
ज्ञानं मायां प्रधानं च प्रकृतिं शक्तिमप्यजाम्॥ ९

विमर्श इति तां प्राहुः शैवशास्त्रविशारदाः।
अविद्यामितरे प्राहुर्वेदतत्त्वार्थचिन्तकाः॥ १०

एवं नानाविधानि स्युर्नामानि निगमादिषु।
तस्या जडत्वं दृश्यत्वाज्ज्ञाननाशात्ततोऽसती॥ ११

चैतन्यस्य न दृश्यत्वं दृश्यत्वे जडमेव तत्।
स्वप्रकाशं च चैतन्यं न परेण प्रकाशितम्॥ १२

अनवस्थादोषसत्त्वान्न स्वेनापि प्रकाशितम्।
कर्मकर्त्रीविरोधः स्यात्तस्मात्तद्दीपवत्स्वयम्॥ १३

प्रकाशमानमन्येषां भासकं विद्धि पर्वत।
अतएव च नित्यत्वं सिद्धसंवित्तनोर्मम॥ १४

जैसे अग्निमें उसकी उष्णता सदा रहती है, सूर्यमें प्रकाशकी किरण रहती है और चन्द्रमामें उसकी चन्द्रिका विद्यमान रहती है, उसी प्रकार यह माया निश्चितरूपसे सदा मेरी सहचरी है॥ ५॥

जैसे सुषुप्ति-अवस्थामें व्यवहार समाप्त हो जाता है, उसी प्रकार प्रलयकालमें समस्त जीव, काल तथा जीवोंके कर्म उन्हीं भगवतीमें अभेदरूपसे विलीन हो जाते हैं॥ ६॥

मैं अपनी उसी शक्तिके समायोगसे बीजरूपको प्राप्त हुई अर्थात् मुझमें सृष्टिके कर्तृत्वका उदय हुआ। उस मायाके अपने आधाररूपी आवरणके कारण मुझमें उसका कुछ दोष आ गया अर्थात् चैतन्यादिका तिरोधान हो गया॥ ७॥

चैतन्यके सम्बन्धसे मुझे संसारका निमित्तकारण कहा जाता है और मेरा परिणामरूप यह सृष्टिप्रपंच मुझसे ही उत्पन्न होता है तथा मुझमें ही विलीन होता है, अतः मुझे समवायिकारण कहा जाता है॥ ८॥

कुछ लोग उस शक्तिको तप, कुछ लोग तम तथा दूसरे लोग उसे जड—ऐसा कहते हैं। इसी प्रकार कुछ लोग उसे ज्ञान, माया, प्रधान, प्रकृति, शक्ति तथा अजा कहते हैं और शैवशास्त्रके मनीषी उसे विमर्श भी कहते हैं। वेदतत्त्वार्थको जाननेवाले अन्य पुरुष उसे अविद्या कहते हैं। इस प्रकार वेद आदिमें उस शक्तिके नानाविध नाम प्रतिपादित हैं॥ ९-१० $\frac{1}{2}$ ॥

केवल दिखायी देनेके कारण वह जड है और ज्ञानप्राप्तिसे नष्ट होनेके कारण वह असत् है। चैतन्य दिखायी नहीं पड़ता और जो दिखायी पड़ता है, वह जड ही है। चैतन्य स्वयं प्रकाशस्वरूप है, वह दूसरेसे प्रकाशित नहीं होता। वह अपने द्वारा भी प्रकाशित नहीं है; क्योंकि इससे अनवस्थाका दोष आ जायगा। कर्मत्व और कर्तृत्व—ये दोनों विरुद्ध धर्म एक अधिकरणमें नहीं रह सकते, अतः यह नहीं कहा जा सकता कि वह चैतन्य अपने द्वारा प्रकाशित होता है। प्रत्युत हे पर्वत! दीपककी भाँति प्रकाशमान उसे सूर्य आदि दूसरोंका प्रकाशक समझिये। अतएव मेरे ज्ञानरूप शरीरका नित्यत्व स्पष्टतः सिद्ध है॥ ११—१४॥

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादौ दृश्यस्य व्यभिचारतः।
संविदो व्यभिचारश्च नानुभूतोऽस्ति कर्हिचित्॥ १५

यदि तस्याप्यनुभवस्तर्ह्ययं येन साक्षिणा।
अनुभूतः स एवात्र शिष्टः संविद्वपुः पुरा॥ १६

अतएव च नित्यत्वं प्रोक्तं सच्छास्त्रकोविदैः।
आनन्दरूपता चास्याः परप्रेमास्पदत्वतः॥ १७

मा न भूवं हि भूयासमिति प्रेमात्मनि स्थितम्।
सर्वस्यान्यस्य मिथ्यात्वादसङ्गत्वं स्फुटं मम॥ १८

अपरिच्छिन्नताप्येवमत एव मता मम।
तच्च ज्ञानं नात्मधर्मो धर्मत्वे जडतात्मनः॥ १९

ज्ञानस्य जडशेषत्वं न दृष्टं न च सम्भवि।
चिद्धर्मत्वं तथा नास्ति चितश्चिन्न हि भिद्यते॥ २०

तस्मादात्मा ज्ञानरूपः सुखरूपश्च सर्वदा।
सत्यः पूर्णोऽप्यसङ्गश्च द्वैतजालविवर्जितः॥ २१

स पुनः कामकर्मादियुक्तया स्वीयमायया।
पूर्वानुभूतसंस्कारात् कालकर्मविपाकतः॥ २२

अविवेकाच्च तत्त्वस्य सिसृक्षावान्प्रजायते।
अबुद्धिपूर्वः सर्गोऽयं कथितस्ते नगाधिप॥ २३

एतद्धि यन्मया प्रोक्तं मम रूपमलौकिकम्।
अव्याकृतं तदव्यक्तं मायाशबलमित्यपि॥ २४

जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति आदि अवस्थाओंमें संवित् (ज्ञानस्वरूप स्वयं)-का अभाव प्रतीत न होकर प्रत्युत तीनों अवस्थाओंका अभाव अनुभवमें आता है, इस प्रकार कभी भी संवित्का अभाव अनुभवमें नहीं आता है। अतः संवित्के अभावका अनुभव न होनेके कारण उसका नित्यत्व स्वतः सिद्ध है। यदि किसीको संवित्के अभावका अनुभव होता है तो जिस साक्षीके द्वारा उस संविद्रूपके अभावका अनुभव होता है, वही संवित्का स्वरूप होगा। अतः उत्तम शास्त्रोंके ज्ञाता विद्वानोंने उसे नित्य कहा है। वह परम प्रेमास्पद है, अतः उसमें आनन्दरूपता भी है॥ १५—१७॥

पूर्वमें मेरा अभाव था, ऐसा नहीं; मैं तब भी थी और प्रेमरूपमें सबकी आत्मामें स्थित थी। अन्य सभी वस्तुओंके मिथ्या होनेके कारण मेरा उन वस्तुओंसे सम्बन्ध न रहना स्वयं स्पष्ट है; अतः यह मेरे रूपकी अपरिच्छिन्नता (व्यापकता) भी कही गयी है। वह ज्ञान आत्माका धर्म नहीं है, अन्यथा धर्मत्व होनेसे उसमें जडता आ सकती है। ज्ञानके किसी भी अंशमें जडता और अनित्यताको न कभी देखा गया और न देखा जा सकता है। ज्ञानरूप चित् आत्मरूप चित्का धर्म नहीं है; क्योंकि आत्मरूप चित् और ज्ञानरूप चित् एक ही हैं और धर्मिधर्मीभाव एकत्र सम्भव नहीं है। अतः आत्मा सर्वदा ज्ञानरूप तथा सुखरूप है; वह सत्य, पूर्ण और असंग है तथा द्वैत-जालसे रहित है॥ १८—२१॥

वही आत्मा काम अर्थात् इच्छा तथा कर्म अर्थात् अदृष्ट आदिके साथ युक्त होकर अपनी मायासे पूर्वमें किये गये अनुभवोंके संस्कार, कालके द्वारा किये गये कर्मके परिपाक और तत्त्वोंके अविवेकसे सृष्टि करनेकी इच्छावाला हो जाता है। हे पर्वतराज हिमालय! मैंने आपसे अबुद्धिपूर्वक (शयनके अनन्तर परमात्माकी जो जागरणरूप अवस्था है वह बुद्धिपूर्वक नहीं है) हुए इस सृष्टिक्रमका वर्णन किया है॥ २२-२३॥

यह मैंने आपसे अपने जिस रूपके विषयमें कहा है; वह अलौकिक, अव्याकृत (प्रारम्भिक), अव्यक्त (सृष्टिका आदिकारण) तथा मायाशबल (मायासे आवृत) भी है॥ २४॥

प्रोच्यते सर्वशास्त्रेषु सर्वकारणकारणम्।
तत्त्वानामादिभूतं च सच्चिदानन्दविग्रहम्॥ २५

सर्वकर्मघनीभूतमिच्छाज्ञानक्रियाश्रयम् ।
ह्रींकारमन्त्रवाच्यं तदादितत्त्वं तदुच्यते॥ २६

तस्मादाकाश उत्पन्नः शब्दतन्मात्ररूपकः।
भवेत्स्पर्शात्मको वायुस्तेजोरूपात्मकं पुनः॥ २७

जलं रसात्मकं पश्चात्ततो गन्धात्मिका धरा।
शब्दैकगुण आकाशो वायुः स्पर्शरवान्वितः॥ २८

शब्दस्पर्शरूपगुणं तेज इत्युच्यते बुधैः।
शब्दस्पर्शरूपरसैरापो वेदगुणाः स्मृताः॥ २९

शब्दस्पर्शरूपरसगन्धैः पञ्चगुणा धरा।
तेभ्योऽभवन्महत्सूत्रं यल्लिङ्गं परिचक्षते॥ ३०

सर्वात्मकं तत्सम्प्रोक्तं सूक्ष्मदेहोऽयमात्मनः।
अव्यक्तं कारणो देहः स चोक्तः पूर्वमेव हि॥ ३१

यस्मिञ्जगद्बीजरूपं स्थितं लिङ्गोद्भवो यतः।
ततः स्थूलानि भूतानि पञ्चीकरणमार्गतः॥ ३२

पञ्चसंख्यानि जायन्ते तत्प्रकारस्त्वथोच्यते।
पूर्वोक्तानि च भूतानि प्रत्येकं विभजेद् द्विधा॥ ३३

एकैकं भागमेकस्य चतुर्धा विभजेद् गिरे।
स्वस्वेतरद्वितीयांशे योजनात्पञ्च पञ्च ते॥ ३४

तत्कार्यं च विराड्देहः स्थूलदेहोऽयमात्मनः।
पञ्चभूतस्थसत्त्वांशैः श्रोत्रादीनां समुद्भवः॥ ३५

समस्त शास्त्रोंमें इसे सभी कारणोंका कारण; महत्, अहंकार आदि तत्त्वोंका आदिकारण तथा सत्-चित्-आनन्दमय विग्रहवाला बताया गया है॥ २५॥

उस रूपको सम्पूर्ण कर्मोंका साक्षी, इच्छा-ज्ञान तथा क्रियाशक्तिका अधिष्ठान, ह्रींकार मन्त्रका वाच्य (अर्थ) और आदितत्त्व कहा गया है॥ २६॥

उसीसे शब्दतन्मात्रावाला आकाश, स्पर्शतन्मात्रावाला वायु और पुनः रूपतन्मात्रावाला तेज उत्पन्न हुआ। इसके बाद रसात्मक जल तथा पुनः गन्धात्मक पृथ्वीकी [क्रमशः] उत्पत्ति हुई। आकाश शब्द नामक एक गुणसे; वायु शब्द तथा स्पर्श—इन दो गुणोंसे और तेज शब्द, स्पर्श, रूप—इन तीन गुणोंसे युक्त हुए—ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं। इसी प्रकार शब्द, स्पर्श, रूप तथा रस—ये चार गुण जलके कहे गये हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध—इन पाँच गुणोंसे युक्त पृथ्वी है॥ २७—२९$\frac{1}{2}$॥

उन्हीं पृथ्वी आदि सूक्ष्म भूतोंसे महान् व्यापक सूत्र उत्पन्न हुआ, जिसे लिंग शब्दसे कहा जाता है; वह सर्वात्मक कहा गया है। यही परमात्माका सूक्ष्म शरीर है। जिसमें यह जगत् बीजरूपमें स्थित है और जिससे लिंगदेहकी उत्पत्ति हुई है, वह अव्यक्त कहा जाता है और वह परब्रह्मका कारणशरीर है; उसके विषयमें पहले ही कहा जा चुका है॥ ३०-३१$\frac{1}{2}$॥

तदनन्तर उसी अव्यक्तशरीर (लिंगशरीर)-से पंचीकरणप्रक्रियाके द्वारा पाँच स्थूल भूत उत्पन्न होते हैं। अब उस पंचीकरणप्रक्रियाका वर्णन किया जा रहा है। पूर्वमें कहे गये पाँच भूतों (पृथ्वी, जल, तेज, वायु तथा आकाश)-में प्रत्येक भूतके दो बराबर-बराबर भाग करके प्रत्येक भूतके प्रथम आधे भागको पुनः चार भागोंमें विभक्त कर दे। इस प्रकार प्रथम भागके विभक्त चतुर्थांशको अन्य चार भूतोंके अवशिष्ट अर्धांशमें संयोजित कर दे। इस प्रकार प्रत्येक भूतके अर्धांशमें तदतिरिक्त चार भूतोंके अंशका योग होनेसे पाँचों स्थूल भूतोंका निर्माण हो जाता है। इस प्रकार पंचीकृतभूतरूपी कारणके द्वारा जो कार्य (सृष्टिप्रपंच) उत्पन्न हुआ, वही विराट् शरीर है और वही परमात्माका स्थूल देह है। हे राजेन्द्र! पंचभूतोंमें

ज्ञानेन्द्रियाणां राजेन्द्र प्रत्येकं मिलितैस्तु तैः।
अन्तःकरणमेकं स्याद् वृत्तिभेदाच्चतुर्विधम्॥ ३६

यदा तु संकल्पविकल्पकृत्यं
तदा भवेत्तन्मन इत्यभिख्यम्।
स्याद् बुद्धिसंज्ञं च यदा प्रवेत्ति
सुनिश्चितं संशयहीनरूपम्॥ ३७

अनुसन्धानरूपं तच्चित्तं च परिकीर्तितम्।
अहङ्कृत्यात्मवृत्त्या तु तदहङ्कारतां गतम्॥ ३८

तेषां रजोंशैर्जातानि क्रमात्कर्मेन्द्रियाणि च।
प्रत्येकं मिलितैस्तैस्तु प्राणो भवति पञ्चधा॥ ३९

हृदि प्राणो गुदेऽपानो नाभिस्थस्तु समानकः।
कण्ठदेशेऽप्युदानः स्याद् व्यानः सर्वशरीरगः॥ ४०

ज्ञानेन्द्रियाणि पञ्चैव पञ्चकर्मेन्द्रियाणि च।
प्राणादिपञ्चकं चैव धिया च सहितं मनः॥ ४१

एतत्सूक्ष्मं शरीरं स्यान्मम लिङ्गं यदुच्यते।
तत्र या प्रकृतिः प्रोक्ता सा राजन्द्विविधा स्मृता॥ ४२

सत्त्वात्मिका तु माया स्यादविद्या गुणमिश्रिता।
स्वाश्रयं या तु संरक्षेत्सा मायेति निगद्यते॥ ४३

तस्यां यत्प्रतिबिम्बं स्याद् बिम्बभूतस्य चेशितुः।
स ईश्वरः समाख्यातः स्वाश्रयज्ञानवान्परः॥ ४४

सर्वज्ञः सर्वकर्ता च सर्वानुग्रहकारकः।
अविद्यायां तु यत्किञ्चित्प्रतिबिम्बं नगाधिप॥ ४५

तदेव जीवसंज्ञं स्यात्सर्वदुःखाश्रयं पुनः।
द्वयोरपीह सम्प्रोक्तं देहत्रयमविद्यया॥ ४६

स्थित सत्त्वांशोंके परस्पर मिलनेसे श्रोत्र आदि पाँच ज्ञानेन्द्रियों तथा एक अन्तःकरणकी उत्पत्ति हुई, जो वृत्तिभेदसे चार प्रकार (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार)-का हो जाता है॥ ३२—३६॥

जब उसमें संकल्प-विकल्पवृत्तिका उदय होता है, तब उस अन्तःकरणको मन कहा जाता है। जब वह अन्तःकरण संशयरहित निश्चयात्मक वृत्तिसे युक्त होता है, तब उसकी बुद्धि संज्ञा होती है। अनुसन्धान (चिन्तन)-वृत्तिके आनेपर वही अन्तःकरण चित्त कहा जाता है और अहंकृतिवृत्तिसे संयुक्त होनेपर वह अन्तःकरण अहंकारसंज्ञक हो जाता है॥ ३७-३८॥

तदनन्तर उन पाँच भूतोंके राजस अंशोंसे क्रमशः पाँच कर्मेन्द्रियाँ उत्पन्न हुईं। प्रत्येक राजस अंशोंके मिलनेसे पाँच प्रकारके प्राण उत्पन्न हुए। प्राण हृदयमें, अपान गुदामें, समान नाभिमें, उदान कंठमें तथा व्यान सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त हुआ। इस प्रकार पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, प्राण आदि पाँच वायु और बुद्धिसहित मन—इन्हीं सत्रह अवयवोंवाला मेरा सूक्ष्म शरीर है, जिसे लिंग शब्दसे भी कहा जाता है॥ ३९—४१½॥

हे राजन्! जो प्रकृति कही गयी है, वह भी दो भेदोंवाली बतायी गयी है। शुद्धसत्त्वप्रधान प्रकृति माया है तथा मलिनसत्त्वप्रधान प्रकृति अविद्या है। जो प्रकृति अपने आश्रित रहनेवालेकी रक्षा करती है अर्थात् आवरण या व्यामोह नहीं करती, उसे माया कहा जाता है। उस शुद्ध-सत्त्वप्रधान मायामें बिम्बरूप परमात्माका जो प्रतिबिम्ब होता है, वही ईश्वर कहा गया है। वह ईश्वर अपने आश्रय अर्थात् व्यापक ब्रह्मको जाननेवाला, परात्पर, सर्वज्ञ, सब कुछ करनेवाला तथा समस्त प्राणियोंके ऊपर कृपा करनेवाला है॥ ४२—४४½॥

हे पर्वतराज हिमालय! [मलिनसत्त्वप्रधान] अविद्यामें जो परमात्माका प्रतिबिम्ब है, वही जीव कहा जाता है और वही जीव अविद्याके द्वारा आनन्दांशका आवरण कर देनेके कारण सभी दुःखोंका आश्रय हो जाता है। माया—अविद्याके कारण ईश्वर

देहत्रयाभिमानाच्चाप्यभूनामत्रयं पुनः।
प्राज्ञस्तु कारणात्मा स्यात्सूक्ष्मदेही तु तैजसः॥ ४७

स्थूलदेही तु विश्वाख्यस्त्रिविधः परिकीर्तितः।
एवमीशोऽपि सम्प्रोक्त ईशसूत्रविराट्पदैः॥ ४८

प्रथमो व्यष्टिरूपस्तु समष्ट्यात्मा परः स्मृतः।
स हि सर्वेश्वरः साक्षाज्जीवानुग्रहकाम्यया॥ ४९

करोति विविधं विश्वं नानाभोगाश्रयं पुनः।
मच्छक्तिप्रेरितो नित्यं मयि राजन् प्रकल्पितः॥ ५०

और जीव—इन दोनोंके तीन देह तथा देहत्रयके अभिमानके कारण तीन नाम कहे जाते हैं। कारणदेहाभिमानी जीवको प्राज्ञ, सूक्ष्मदेहाभिमानीको तैजस तथा स्थूलदेहाभिमानीको विश्व—इन तीन प्रकारवाला कहा गया है। इसी प्रकार ईश्वर भी ईश, सूत्र तथा विराट् नामोंसे कहा गया है। जीवको व्यष्टिरूप तथा परमेश्वरको समष्टिरूप कहा गया है। वे सर्वेश्वर मेरी मायाशक्तिसे प्रेरित होकर जीवोंपर कृपा करनेकी कामनासे विविध भोगोंसे युक्त विश्वोंकी सृष्टि करते हैं। हे राजन्! मेरी शक्तिके अधीन होकर वे ईश्वर रज्जुमें सर्पकी भाँति मुझ ब्रह्मरूपिणीमें नित्य कल्पित हैं॥ ४५—५०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे देवीगीतायां देव्या व्यष्टिसमष्टिरूपवर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः॥ ३२॥



अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

भगवतीका अपनी सर्वव्यापकता बताते हुए विराट्रूप प्रकट करना, भयभीत देवताओंकी स्तुतिसे प्रसन्न भगवतीका पुनः सौम्यरूप धारण करना

देव्युवाच

मन्मायाशक्तिसंक्लृप्तं जगत्सर्वं चराचरम्।
सापि मत्तः पृथङ्माया नास्त्येव परमार्थतः॥ १

व्यवहारदृशा सेयं विद्या मायेति विश्रुता।
तत्त्वदृष्ट्या तु नास्त्येव तत्त्वमेवास्ति केवलम्॥ २

साहं सर्वं जगत्सृष्ट्वा तदन्तः प्रविशाम्यहम्।
मायाकर्मादिसहिता गिरे प्राणपुरःसरा॥ ३

लोकान्तरगतिर्नो चेत्कथं स्यादिति हेतुना।
यथा यथा भवन्त्येव मायाभेदास्तथा तथा॥ ४

उपाधिभेदाद्भिन्नाहं घटाकाशादयो यथा।
उच्चनीचादिवस्तूनि भासयन्भास्करः सदा॥ ५
न दुष्यति तथैवाहं दोषैर्लिप्ता कदापि न।

देवी बोलीं—[हे हिमालय!] यह सम्पूर्ण चराचर जगत् मेरी मायाशक्तिसे ही उत्पन्न हुआ है। परमार्थदृष्टिसे विचार करनेपर वह माया भी मुझसे पृथक् नहीं है। व्यवहारदृष्टिसे वह विद्या ही 'माया' इस नामसे प्रसिद्ध है। तत्त्वदृष्टिसे भेदसम्बन्ध नहीं है, दोनों एक ही तत्त्व हैं॥ १-२॥

हे गिरे! मैं सम्पूर्ण जगत्का सृजनकर माया और कर्म आदिके साथ प्राणोंको आगे करके उस जगत्के भीतर प्रवेश करती हूँ, अन्यथा संसारके सभी क्रिया-कलाप कैसे हो पाते? इसी कारणसे मैं ऐसा करती हूँ। मायाके भेदानुसार मेरे विभिन्न कार्य होते हैं। जिस प्रकार आकाश एक होते हुए भी घटाकाश आदि अनेक नामोंसे व्यवहृत है, उसी प्रकार मैं एक होती हुई भी उपाधिभेदसे भिन्न हूँ॥ ३-४½॥

जिस प्रकार उत्तम और निकृष्ट—सभी वस्तुओंको सदा प्रकाशित करता हुआ सूर्य कभी भी दूषित नहीं होता, उसी प्रकार मैं कभी उपाधियोंके दोषोंसे लिप्त नहीं होती हूँ॥ ५½॥

मयि बुद्ध्यादिकर्तृत्वमध्यस्यैवापरे जनाः॥ ६
वदन्ति चात्मा कर्मेति विमूढा न सुबुद्धयः।
अज्ञानभेदतस्तद्वन्मायाया भेदतस्तथा॥ ७
जीवेश्वरविभागश्च कल्पितो माययैव तु।
घटाकाशमहाकाशविभागः कल्पितो यथा॥ ८
तथैव कल्पितो भेदो जीवात्मपरमात्मनोः।
यथा जीवबहुत्वं च माययैव न च स्वतः॥ ९
तथेश्वरबहुत्वं च मायया न स्वभावतः।
देहेन्द्रियादिसङ्घातवासनाभेदभेदिता ॥ १०
अविद्या जीवभेदस्य हेतुर्नान्यः प्रकीर्तितः।
गुणानां वासनाभेदभेदिता या धराधर॥ ११
माया सा परभेदस्य हेतुर्नान्यः कदाचन।
मयि सर्वमिदं प्रोतमोतं च धरणीधर॥ १२
ईश्वरोऽहं च सूत्रात्मा विराडात्माऽहमस्मि च।
ब्रह्माहं विष्णुरुद्रौ च गौरी ब्राह्मी च वैष्णवी॥ १३
सूर्योऽहं तारकाश्चाहं तारकेशस्तथास्म्यहम्।
पशुपक्षिस्वरूपाहं चाण्डालोऽहं च तस्करः॥ १४
व्याधोऽहं क्रूरकर्माहं सत्कर्माहं महाजनः।
स्त्रीपुन्नपुंसकाकारोऽप्यहमेव न संशयः॥ १५
यच्च किञ्चित्क्वचिद्वस्तु दृश्यते श्रूयतेऽपि वा।
अन्तर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्याहं सर्वदा स्थिता॥ १६
न तदस्ति मया त्यक्तं वस्तु किञ्चिच्चराचरम्।
यद्यस्ति चेत्तच्छून्यं स्याद्वन्ध्यापुत्रोपमं हि तत्॥ १७

कुछ अज्ञानी मुझमें बुद्धि इत्यादिके कर्तृत्वका आरोपकर मुझे आत्मा तथा कर्मकी संज्ञा देते हैं, किंतु विज्ञजन ऐसा नहीं करते। जिस प्रकार घटरूप उपाधिके द्वारा महाकाशका घटाकाशसे भेद कल्पित होता है, उसी प्रकार [ईश्वर तथा जीवमें वास्तविक भेद न होनेपर भी] अज्ञानरूप उपाधिके द्वारा ही जीवका ईश्वरसे भेद मायाके द्वारा कल्पित है॥ ६—८½ ॥

जैसे मायाके प्रभावसे ही जीव अनेक प्रतीत होते हैं; जो वास्तवमें अनेक नहीं हैं, वैसे ही मायाके प्रभावसे ईश्वरकी भी विविधताका भान होता है न कि अपने स्वभाववश॥ ९½ ॥

विभिन्न जीवोंके देह तथा इन्द्रियके समूहमें जैसे भेदकी प्रतीति अविद्याके कारण है (वास्तविक नहीं है), उसी प्रकार जीवोंमें भेद अविद्याके कारण है, इसमें दूसरेको हेतु नहीं बताया गया है। हे धराधर! गुणों (सत्त्व, रज तथा तम)-में उन गुणोंके कार्यरूप वासनाके भेदसे जो भिन्नताकी प्रतीति करनेवाली है, वही माया एक पदार्थसे दूसरे पदार्थमें भेदका हेतु है, कोई अन्य कभी नहीं॥ १०-११½ ॥

हे धरणीधर! यह समग्र जगत् मुझमें ओतप्रोत है। मैं ईश्वर हूँ, मैं सूत्रात्मा हूँ तथा मैं ही विराट् आत्मा हूँ। मैं ही ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र हूँ। गौरी, ब्राह्मी और वैष्णवी भी मैं ही हूँ॥ १२-१३॥

मैं ही सूर्य हूँ, मैं ही चन्द्रमा हूँ और तारे भी मैं ही हूँ। पशु-पक्षी आदि भी मेरे ही स्वरूप हैं। चाण्डाल, तस्कर, व्याध, क्रूर कर्म करनेवाला, सत्कर्म करनेवाला तथा महान् पुरुष—ये सब मैं ही हूँ। स्त्री, पुरुष तथा नपुंसकके रूपमें मैं ही हूँ; इसमें कोई संशय नहीं है॥ १४-१५॥

जो कुछ भी वस्तु जहाँ कहीं भी देखने या सुननेमें आती है—वह चाहे भीतर अथवा बाहर कहीं भी विद्यमान हो, उन सबको व्याप्तकर उनमें सर्वदा मैं ही स्थित रहती हूँ॥ १६॥

चराचर कोई भी वस्तु मुझसे रहित नहीं है। यदि मुझसे शून्य कोई वस्तु मान ली जाय तो वह वन्ध्यापुत्रके समान असम्भव ही है॥ १७॥

रज्जुर्यथा सर्पमालाभेदैरेका विभाति हि।
तथैवेशादिरूपेण भाम्यहं नात्र संशयः॥ १८

अधिष्ठानातिरेकेण कल्पितं तन्न भासते।
तस्मान्मत्सत्तयैवैतत्सत्तावान्नान्यथा भवेत्॥ १९

जिस प्रकार एक रस्सी भ्रमवश सर्प अथवा मालाके रूपमें प्रतीत होती है, उसी प्रकार मैं ही ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि रूपसे प्रतीत होती हूँ; इसमें कोई संशय नहीं है। अधिष्ठानकी सत्ताके अतिरिक्त कल्पित वस्तुकी सत्ता नहीं होती। [उसकी प्रतीति अधिष्ठानकी सत्ताके कारण होती है।] अतः मेरी सत्तासे ही वह जगत् सत्तावान् है, इसके अतिरिक्त दूसरी बात नहीं हो सकती॥ १८-१९॥

हिमालय उवाच

यथा वदसि देवेशि समष्ट्यात्मवपुस्त्विदम्।
तथैव द्रष्टुमिच्छामि यदि देवि कृपा मयि॥ २०

हिमालयने कहा—हे देवेश्वरि! हे देवि! यदि मुझपर आपकी कृपा हो तो आपने अपने इस समष्ट्यात्मक विराट् रूपका जैसा वर्णन किया है, आपके उसी रूपको मैं देखना चाहता हूँ॥ २०॥

व्यास उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा सर्वे देवाः सविष्णवः।
ननन्दुर्मुदितात्मानः पूजयन्तश्च तद्वचः॥ २१

व्यासजी बोले—उन हिमालयकी यह बात सुनकर विष्णुसहित सभी देवता प्रसन्नचित्त हो गये और उनकी बातका अनुमोदन करते हुए आनन्दित हो गये॥ २१॥

अथ देवमतं ज्ञात्वा भक्तकामदुघा शिवा।
अदर्शयन्निजं रूपं भक्तकामप्रपूरणी॥ २२

अपश्यंस्ते महादेव्या विराड्रूपं परात्परम्।
द्यौर्मस्तकं भवेद्यस्य चन्द्रसूर्यौ च चक्षुषी॥ २३

दिशः श्रोत्रे वचो वेदाः प्राणो वायुः प्रकीर्तितः।
विश्वं हृदयमित्याहुः पृथिवी जघनं स्मृतम्॥ २४

तदनन्तर देवताओंकी इच्छा जानकर भक्तोंकी कामना पूर्ण करनेवाली तथा भक्तोंके लिये कामधेनुतुल्य भगवती शिवाने अपना रूप दिखा दिया। वे देवता महादेवीके उस परात्पर विराट्रूपका दर्शन करने लगे; जिसका मस्तक आकाश है, चन्द्रमा और सूर्य जिसके नेत्र हैं, दिशाएँ कान हैं और वेद वाणी है। वायुको उस रूपका प्राण कहा गया है। विश्व ही उसका हृदय कहा गया है और पृथ्वी उस रूपकी जंघा कही गयी है॥ २२—२४॥

नभस्तलं नाभिसरो ज्योतिश्चक्रमुरःस्थलम्।
महर्लोकस्तु ग्रीवा स्याज्जनोलोको मुखं स्मृतम्॥ २५

तपोलोको रराटिस्तु सत्यलोकादधः स्थितः।
इन्द्रादयो बाहवः स्युः शब्दः श्रोत्रं महेशितुः॥ २६

पाताल उस रूपकी नाभि, ज्योतिश्चक्र वक्षःस्थल और महर्लोक ग्रीवा है। जनलोकको उसका मुख कहा गया है। सत्यलोकसे नीचे रहनेवाला तपोलोक उसका ललाट है। इन्द्र आदि उन महेश्वरीके बाहु हैं और शब्द श्रोत्र हैं॥ २५-२६॥

नासत्यदस्रौ नासे स्तो गन्धो घ्राणं स्मृतो बुधैः।
मुखमग्निः समाख्यातो दिवारात्री च पक्ष्मणी॥ २७

ब्रह्मस्थानं भ्रूविजृम्भोऽप्यापस्तालुः प्रकीर्तिताः।
रसो जिह्वा समाख्याता यमो दंष्ट्राः प्रकीर्तिताः॥ २८

नासत्य और दस्र (दोनों अश्विनीकुमार) उनकी नासिका हैं। विद्वान् लोगोंने गन्धको उनकी घ्राणेन्द्रिय कहा है। अग्निको मुख कहा गया है। दिन और रात उनके पक्ष्म (बरौनी) हैं। ब्रह्मस्थान भौंहोंका विस्तार है। जलको भगवतीका तालु कहा गया है। रस जिह्वा कही गयी है और यमको उनकी दाढ़ें बताया गया है॥ २७-२८॥

दन्ताः स्नेहकला यस्य हासो माया प्रकीर्तिता।
सर्गस्त्वपाङ्गमोक्षः स्याद् व्रीडोर्ध्वोष्ठो महेशितुः॥ २९

लोभः स्यादधरोष्ठोऽस्याधर्ममार्गस्तु पृष्ठभूः।
प्रजापतिश्च मेढ्रं स्याद्यः स्रष्टा जगतीतले॥ ३०

कुक्षिः समुद्रा गिरयोऽस्थीनि देव्या महेशितुः।
नद्यो नाड्यः समाख्याता वृक्षाः केशाः प्रकीर्तिताः॥ ३१

कौमारयौवनजरा वयोऽस्य गतिरुत्तमा।
बलाहकास्तु केशाः स्युः सन्ध्ये ते वाससी विभोः॥ ३२

राजञ्छ्रीजगदम्बायाश्चन्द्रमास्तु मनः स्मृतः।
विज्ञानशक्तिस्तु हरी रुद्रोऽन्तःकरणं स्मृतम्॥ ३३

अश्वादिजातयः सर्वाः श्रोणिदेशे स्थिता विभोः।
अतलादिमहालोकाः कट्यधोभागतां गताः॥ ३४

एतादृशं महारूपं ददृशुः सुरपुङ्गवाः।
ज्वालामालासहस्राढ्यं लेलिहानं च जिह्वया॥ ३५

दंष्ट्राकटकटारावं वमन्तं वह्निमक्षिभिः।
नानायुधधरं वीरं ब्रह्मक्षत्रौदनं च यत्॥ ३६

सहस्रशीर्षनयनं सहस्रचरणं तथा।
कोटिसूर्यप्रतीकाशं विद्युत्कोटिसमप्रभम्॥ ३७

भयङ्करं महाघोरं हृदक्ष्णोस्त्रासकारकम्।
ददृशुस्ते सुराः सर्वे हाहाकारं च चक्रिरे॥ ३८

विकम्पमानहृदया मूर्च्छामापुर्दुरत्ययाम्।
स्मरणं च गतं तेषां जगदम्बेयमित्यपि॥ ३९

अथ ते ये स्थिता वेदाश्चतुर्दिक्षु महाविभोः।
बोधयामासुरत्युग्रं मूर्च्छातो मूर्च्छितान्सुरान्॥ ४०

अथ ते धैर्यमालम्ब्य लब्ध्वा च श्रुतिमुत्तमाम्।
प्रेमाश्रुपूर्णनयना रुद्धकण्ठास्तु निर्जराः॥ ४१

स्नेहकी कलाएँ उस रूपके दाँत हैं, मायाको उसका हास कहा गया है। सृष्टि उन महेश्वरीका कटाक्षपात और लज्जा उनका ऊपरी ओष्ठ है। लोभ उनका नीचेका ओष्ठ और अधर्ममार्ग उनका पृष्ठभाग है। जो पृथ्वीलोकमें स्रष्टा कहे जाते हैं, वे प्रजापति ब्रह्मा उस विराट्रूपकी जननेन्द्रिय हैं॥ २९-३०॥

समुद्र उन देवी महेश्वरीकी कुक्षि और पर्वत उनकी अस्थियाँ हैं। नदियाँ उनकी नाडियाँ कही गयी हैं और वृक्ष उनके केश बताये गये हैं। कुमार, यौवन और बुढ़ापा—ये अवस्थाएँ उनकी उत्तम गति हैं। मेघ उनके सिरके केश हैं। [प्रातः और सायं] दोनों सन्ध्याएँ उन ऐश्वर्यमयी देवीके दो वस्त्र हैं॥ ३१-३२॥

हे राजन्! चन्द्रमाको श्रीजगदम्बाका मन कहा गया है। विष्णुको उनकी विज्ञानशक्ति और रुद्रको उनका अन्तःकरण बताया गया है। अश्व आदि जातियाँ उन ऐश्वर्यशालिनी भगवतीके कटिप्रदेशमें स्थित हैं और अतलसे लेकर पातालतकके सभी महान् लोक उनके कटिप्रदेशके नीचेके भाग हैं॥ ३३-३४॥

श्रेष्ठ देवताओंने हजारों प्रकारकी ज्वालाओंसे युक्त, जीभसे बार-बार ओठ चाटते हुए, दाँत कट-कटाकर चीखनेकी ध्वनि करते हुए, आँखोंसे अग्नि उगलते हुए, अनेक प्रकारके आयुध धारण किये हुए, पराक्रमी, ब्राह्मण-क्षत्रिय ओदनरूप, हजार मस्तक, हजार नेत्र और हजार चरणोंसे सम्पन्न, करोड़ों सूर्योंके समान तेजयुक्त तथा करोड़ों बिजलियोंके समान प्रभासे प्रदीप्त, भयंकर, महाभीषण तथा हृदय और नेत्रोंके लिये सन्त्रासकारक ऐसे विराट्रूपका दर्शन किया। जब उन देवताओंने इसे देखा तब वे हाहाकार करने लगे, उनके हृदय काँप उठे, उन्हें घोर मूर्च्छा आ गयी और उनकी यह स्मृति भी समाप्त हो गयी कि यही भगवती जगदम्बा हैं॥ ३५—३९॥

उन महाविभुकी चारों दिशाओंमें जो वेद विराजमान थे, उन्होंने मूर्च्छित देवताओंको अत्यन्त घोर मूर्च्छासे चेतना प्रदान की। इसके बाद धैर्य धारणकर वे देवताश्रेष्ठ श्रुति प्राप्त करके प्रेमाश्रुओंसे परिपूर्ण नेत्रों तथा रुँधे हुए कंठसे गद्गद वाणीमें उनकी स्तुति करने लगे॥ ४०-४१॥

बाष्पगद्‌गदया वाचा स्तोतुं समुपचक्रिरे।

देवा ऊचुः

अपराधं क्षमस्वाम्ब पाहि दीनांस्त्वदुद्भवान्॥ ४२

कोपं संहर देवेशि सभया रूपदर्शनात्।
का ते स्तुतिः प्रकर्तव्या पामरैर्निर्जरैरिह॥ ४३

स्वस्याप्यज्ञेय एवासौ यावान्यश्च स्वविक्रमः।
तदर्वाग्जायमानानां कथं स विषयो भवेत्॥ ४४

नमस्ते भुवनेशानि नमस्ते प्रणवात्मिके।
सर्ववेदान्तसंसिद्धे नमो ह्रींकारमूर्तये॥ ४५

यस्मादग्निः समुत्पन्नो यस्मात्सूर्यश्च चन्द्रमाः।
यस्मादोषधयः सर्वास्तस्मै सर्वात्मने नमः॥ ४६

यस्माच्च देवाः सम्भूताः साध्याः पक्षिण एव च।
पशवश्च मनुष्याश्च तस्मै सर्वात्मने नमः॥ ४७

प्राणापानौ व्रीहियवौ तपः श्रद्धा ऋतं तथा।
ब्रह्मचर्यं विधिश्चैव यस्मात्तस्मै नमो नमः॥ ४८

सप्तप्राणार्चिषो यस्मात्समिधः सप्त एव च।
होमाः सप्त तथा लोकास्तस्मै सर्वात्मने नमः॥ ४९

यस्मात्समुद्रा गिरयः सिन्धवः प्रचरन्ति च।
यस्मादोषधयः सर्वा रसास्तस्मै नमो नमः॥ ५०

यस्माद्यज्ञः समुद्भूतो दीक्षा यूपश्च दक्षिणाः।
ऋचो यजूंषि सामानि तस्मै सर्वात्मने नमः॥ ५१

नमः पुरस्तात्पृष्ठे च नमस्ते पार्श्वयोर्द्वयोः।
अध ऊर्ध्वं चतुर्दिक्षु मातर्भूयो नमो नमः॥ ५२

उपसंहर देवेशि रूपमेतदलौकिकम्।
तदेव दर्शयास्माकं रूपं सुन्दरसुन्दरम्॥ ५३

देवता बोले—हे अम्ब! हमारे अपराधोंको क्षमा कीजिये और अपने दीन सन्तानोंकी रक्षा कीजिये। हे देवेश्वरि! आप अपना क्रोध शान्त कर लीजिये; क्योंकि हमलोग यह रूप देखकर भयभीत हो गये हैं। हम मन्दबुद्धि देवता यहाँ आपकी कौन-सी स्तुति कर सकते हैं? आपका अपना जितना तथा जैसा पराक्रम है, उसे आप स्वयं भी नहीं जानतीं, तो फिर वह बादमें प्रादुर्भूत होनेवाले हम देवताओंके ज्ञानका विषय कैसे हो सकता है?॥ ४२—४४॥

हे भुवनेश्वरि! आपको नमस्कार है। हे प्रणवात्मिके! आपको नमस्कार है। समस्त वेदान्तोंसे प्रमाणित तथा ह्रींकाररूप धारण करनेवाली हे भगवति! आपको नमस्कार है॥ ४५॥

जिनसे अग्नि उत्पन्न हुआ है, जिनसे सूर्य तथा चन्द्र आविर्भूत हुए हैं और जिनसे समस्त औषधियाँ उत्पन्न हुई हैं, उन सर्वात्माको नमस्कार है॥ ४६॥

जिनसे सभी देवता, साध्यगण, पक्षी, पशु तथा मनुष्य उत्पन्न हुए हैं; उन सर्वात्माको नमस्कार है॥ ४७॥

जिनसे प्राण, अपान, व्रीहि (धान), यव, तप, श्रद्धा, सत्य, ब्रह्मचर्य और विधिका आविर्भाव हुआ है; उन सर्वात्माको बार-बार नमस्कार है॥ ४८॥

जिनसे सातों प्राण, सात अग्नियाँ, सात समिधाएँ, सात होम तथा सात लोक उत्पन्न हुए हैं; उन सर्वात्माको नमस्कार है॥ ४९॥

जिनसे समुद्र, पर्वत तथा सभी सिन्धु निकलते हैं और जिनसे सभी औषधियाँ तथा रस उद्भूत होते हैं, उन सर्वात्माको बार-बार नमस्कार है॥ ५०॥

जिनसे यज्ञ, दीक्षा, यूप, दक्षिणाएँ, ऋचाएँ, यजुर्वेद तथा सामवेदके मन्त्र उत्पन्न हुए हैं; उन सर्वात्माको नमस्कार है॥ ५१॥

हे माता! आपको आगे, पीछे, दोनों पार्श्वभाग, ऊपर, नीचे तथा चारों दिशाओंसे बार-बार नमस्कार है॥ ५२॥

हे देवेश्वरि! अब इस अलौकिक रूपको छिपा लीजिये और हमें उसी परम सुन्दर रूपका दर्शन कराइये॥ ५३॥

व्यास उवाच

इति भीतान्सुरान्दृष्ट्वा जगदम्बा कृपार्णवा।
संहृत्य रूपं घोरं तद्दर्शयामास सुन्दरम्॥ ५४

पाशाङ्कुशवराभीतिधरं सर्वाङ्गकोमलम्।
करुणापूर्णनयनं मन्दस्मितमुखाम्बुजम्॥ ५५

दृष्ट्वा तत्सुन्दरं रूपं तदा भीतिविवर्जिताः।
शान्तचित्ताः प्रणेमुस्ते हर्षगद्गदनिःस्वनाः॥ ५६

व्यासजी बोले—देवताओंको भयभीत देखकर कृपासिन्धु जगदम्बाने उस घोर रूपको छिपाकर और पाश, अंकुश, वर तथा अभय मुद्रासे युक्त, समस्त कोमल अंगोंवाले, करुणासे परिपूर्ण नेत्रोंवाले एवं मन्द-मन्द मुसकान-युक्त मुखकमलवाले मनोहर रूपका दर्शन करा दिया॥ ५४-५५॥

तब भगवतीका वह सुन्दर रूप देखकर वे देवता भयरहित हो गये और शान्तचित्त होकर हर्षयुक्त गद्गद वाणीसे देवीको प्रणाम करने लगे॥ ५६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे श्रीदेवीविराड्रूपदर्शनसहितं देवकृततत्स्तववर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३३॥

~~~○~~~

अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

भगवतीका हिमालय तथा देवताओंसे परमपदकी प्राप्तिका उपाय बताना

देव्युवाच

क्व यूयं मन्दभाग्या वै क्वेदं रूपं महाद्भुतम्।
तथापि भक्तवात्सल्यादीदृशं दर्शितं मया॥ १

न वेदाध्ययनैर्योगैर्न दानैस्तपसेज्यया।
रूपं द्रष्टुमिदं शक्यं केवलं मत्कृपां विना॥ २

देवी बोलीं—कहाँ तुम सब मन्दभाग्य देवता और कहाँ मेरा यह अद्भुत रूप, तथापि भक्तवत्सलताके कारण मैंने आपलोगोंको ऐसे रूपका दर्शन कराया है। केवल मेरी कृपाको छोड़कर वेदाध्ययन, योग, दान, तपस्या और यज्ञ आदि किन्ही भी साधनसे मेरे उस रूपका दर्शन नहीं किया जा सकता॥ १-२॥

प्रकृतं शृणु राजेन्द्र परमात्मात्र जीवताम्।
उपाधियोगात्सम्प्राप्तः कर्तृत्वादिकमप्युत॥ ३

क्रियाः करोति विविधा धर्माधर्मैकहेतवः।
नानायोनीस्ततः प्राप्य सुखदुःखैश्च युज्यते॥ ४

हे राजेन्द्र! अब ब्रह्मविद्याविषयक पूर्व प्रसंग सुनिये। परमात्मा ही उपाधिभेदसे जीवसंज्ञा प्राप्त करता है और उसमें कर्तृत्व आदि आ जाता है। वह धर्म-अधर्महेतुभूत विविध प्रकारके कर्म करने लगता है। फिर कर्मोंके अनुसार अनेक योनियोंमें जन्म प्राप्त करके वह सुख-दुःखका भोग करता है॥ ३-४॥

पुनस्तत्संस्कृतिवशान्नानाकर्मरतः सदा।
नानादेहान्समाप्नोति सुखदुःखैश्च युज्यते॥ ५

घटीयन्त्रवदेतस्य न विरामः कदापि हि।
अज्ञानमेव मूलं स्यात्ततः कामः क्रियास्ततः॥ ६

पुनः अपने उन संस्कारोंके प्रभावसे वह सदा नानाविध कर्मोंमें प्रवृत्त रहता है, अनेक प्रकारके शरीर धारण करता है और सुखों तथा दुःखोंका भोग करता है। घटीयन्त्रकी भाँति इस जीवको कभी भी विश्राम नहीं मिलता। अज्ञान ही उसका कारण है; उसी अज्ञानसे कामना और पुनः क्रियाओंका प्रादुर्भाव होता है॥ ५-६॥
~~~

तस्मादज्ञाननाशाय यतेत नियतं नरः।
एतद्धि जन्मसाफल्यं यदज्ञानस्य नाशनम्॥ ७

पुरुषार्थसमाप्तिश्च जीवन्मुक्तदशापि च।
अज्ञाननाशने शक्ता विद्यैव तु पटीयसी॥ ८

न कर्म तज्जं नोपास्तिर्विरोधाभावतो गिरे।
प्रत्युताशाज्ञाननाशे कर्मणा नैव भाव्यताम्॥ ९

अनर्थदानि कर्माणि पुनः पुनरुशन्ति हि।
ततो रागस्ततो द्वेषस्ततोऽनर्थो महान्भवेत्॥ १०

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन ज्ञानं सम्पादयेन्नरः।
कुर्वन्नेवेह कर्माणीत्यतः कर्माप्यवश्यकम्॥ ११

ज्ञानादेव हि कैवल्यमतः स्यात्तत्समुच्चयः।
सहायतां व्रजेत्कर्म ज्ञानस्य हितकारि च॥ १२

इति केचिद्वदन्त्यत्र तद्विरोधान्न सम्भवेत्।
ज्ञानाद्धृद्ग्रन्थिभेदः स्याद्धृद्ग्रन्थौ कर्मसम्भवः॥ १३

यौगपद्यं न सम्भाव्यं विरोधात्तु ततस्तयोः।
तमःप्रकाशयोर्यद्वद्यौगपद्यं न सम्भवि॥ १४

तस्मात्सर्वाणि कर्माणि वैदिकानि महामते।
चित्तशुद्ध्यन्तमेव स्युस्तानि कुर्यात्प्रयत्नतः॥ १५

शमो दमस्तितिक्षा च वैराग्यं सत्त्वसम्भवः।
तावत्पर्यन्तमेव स्युः कर्माणि न ततः परम्॥ १६

तदन्ते चैव संन्यस्य संश्रयेद् गुरुमात्मवान्।
श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं च भक्त्या निर्व्याजया पुनः॥ १७

वेदान्तश्रवणं कुर्यान्नित्यमेवमतन्द्रितः।
तत्त्वमस्यादिवाक्यस्य नित्यमर्थं विचारयेत्॥ १८

तत्त्वमस्यादिवाक्यं तु जीवब्रह्मैक्यबोधकम्।
ऐक्ये ज्ञाते निर्भयस्तु मद्रूपो हि प्रजायते॥ १९

अतः अज्ञानके नाशके लिये मनुष्यको निश्चितरूपसे प्रयत्न करना चाहिये। अज्ञानका नष्ट हो जाना ही जीवनकी सफलता है। अज्ञानके नष्ट हो जानेपर पुरुषार्थकी समाप्ति तथा जीवन्मुक्त दशाकी उपलब्धि हो जाती है। विद्या ही अज्ञानका नाश करनेमें पूर्ण समर्थ है॥ ७-८॥

हे गिरे! अज्ञानसे ही कर्म होता है, इसलिये कर्मका अज्ञानसे विरोध नहीं है। अज्ञानके नाश हो जानेसे कर्म और उपासना आदिका अभाव हो जायगा, प्रत्युत आशारूपी अज्ञानके नाश हो जानेपर कर्मका अभाव हो जायगा। अनर्थकारी कर्म बार-बार होते रहते हैं। उसीसे राग, उसीसे द्वेष और फिर उसीसे महान् अनर्थकी उत्पत्ति होती है। अतः मनुष्यको पूर्ण प्रयत्नके साथ ज्ञानका अर्जन करना चाहिये। '**कुर्वन्नेवेह कर्माणि**' इस श्रुतिवचनके अनुसार कर्म भी आवश्यक है। साथ ही ज्ञानसे ही कैवल्यपदकी प्राप्ति सम्भव है, अतः मोक्षके लिये कर्म और ज्ञान—दोनोंका समुच्चय आवश्यक है, साथ ही हितकारक कर्म ज्ञानकी सहायता करता है—ऐसा कुछ लोग कहते हैं, किंतु उन दोनों (ज्ञान तथा कर्म)-के परस्पर विरोधी होनेसे वैसा सम्भव नहीं है॥ ९—१२½॥

ज्ञानसे हृदय-ग्रन्थिका भेदन होता है और हृदय-ग्रन्थिमें कर्म उत्पन्न होता है। फिर उन दोनों (ज्ञान और कर्म)-में परस्पर विरोधभाव होनेसे वे एक स्थानपर उसी तरह नहीं रह सकते, जैसे अन्धकार और प्रकाशका एक साथ रहना सम्भव नहीं है॥ १३-१४॥

हे महामते! इसलिये समस्त वैदिक कर्म जो चित्तकी शुद्धिके लिये होते हैं, उन्हें प्रयत्नपूर्वक करना चाहिये। शम, दम, तितिक्षा, वैराग्य और सत्त्वका प्रादुर्भाव—इनकी प्राप्तितक ही कर्म आवश्यक हैं, इसके बाद नहीं॥ १५-१६॥

तदनन्तर ज्ञानी मनुष्यको चाहिये कि वह संन्यासी होकर श्रोत्रिय एवं ब्रह्मनिष्ठ गुरुका आश्रय ग्रहण करे और पुनः सावधान होकर निष्कपट भक्तिके साथ प्रतिदिन वेदान्तका श्रवण करे। साथ ही '**तत्त्वमसि**' आदि वाक्यके अर्थका वह नित्य चिन्तन करे; क्योंकि तत्त्वमसि आदि वाक्य जीव और ब्रह्मकी एकताके बोधक हैं। ऐक्यका बोध हो जानेपर मनुष्य निर्भय होकर मेरा रूप बन जाता है॥ १७—१९॥

पदार्थावगतिः पूर्वं वाक्यार्थावगतिस्ततः।
तत्पदस्य च वाक्यार्थो गिरेऽहं परिकीर्तितः॥ २०

त्वंपदस्य च वाच्यार्थो जीव एव न संशयः।
उभयोरैक्यमसिना पदेन प्रोच्यते बुधैः॥ २१

वाच्यार्थयोर्विरुद्धत्वादैक्यं नैव घटेत ह।
लक्षणातः प्रकर्तव्या तत्त्वमोः श्रुतिसंस्थयोः॥ २२

चिन्मात्रं तु तयोर्लक्ष्यं तयोरैक्यस्य सम्भवः।
तयोरैक्यं तथा ज्ञात्वा स्वाभेदेनाद्वयो भवेत्॥ २३

देवदत्तः स एवायमितिवल्लक्षणा स्मृता।
स्थूलादिदेहरहितो ब्रह्म सम्पद्यते नरः॥ २४

पञ्चीकृतमहाभूतसम्भूतः स्थूलदेहकः।
भोगालयो जराव्याधिसंयुतः सर्वकर्मणाम्॥ २५

मिथ्याभूतोऽयमाभाति स्फुटं मायामयत्वतः।
सोऽयं स्थूल उपाधिः स्यादात्मनो मे नगेश्वर॥ २६

ज्ञानकर्मेन्द्रिययुतं प्राणपञ्चकसंयुतम्।
मनोबुद्धियुतं चैतत्सूक्ष्मं तत्कवयो विदुः॥ २७

अपञ्चीकृतभूतोत्थं सूक्ष्मदेहोऽयमात्मनः।
द्वितीयोऽयमुपाधिः स्यात्सुखादेरवबोधकः॥ २८

अनाद्यनिर्वाच्यमिदमज्ञानं तु तृतीयकः।
देहोऽयमात्मनो भाति कारणात्मा नगेश्वर॥ २९

उपाधिविलये जाते केवलात्मावशिष्यते।
देहत्रये पञ्चकोशा अन्तःस्थाः सन्ति सर्वदा॥ ३०

हे पर्वत! वाक्यार्थमें पदार्थज्ञान कारण होता है, अतः पहले पदार्थका ज्ञान होता है, उसके बाद वाक्यार्थकी प्रतीति होती है। हे पर्वत! '**तत्**' पदके वाच्यार्थके रूपमें मैं ही कही गयी हूँ। '**त्वम्**' पदका वाच्यार्थ जीव ही है, इसमें कोई संशय नहीं है। विद्वान् पुरुष '**असि**' पदसे '**तत्**' और '**त्वम्**'—इन दोनों पदोंकी एकता बतलाते हैं॥ २०-२१॥

इन दोनों पदोंके वाच्यार्थ परस्पर विरोधी होनेसे इन पदार्थोंकी एकता सम्भव नहीं है, अतः श्रुतिप्रतिपादित इन '**तत्**' और '**त्वम्**'—दोनों पदोंके वाच्यार्थमें विशेषण-रूपसे सन्निविष्ट सर्वज्ञत्व और अल्पज्ञत्व धर्मका भागत्यागलक्षणाके द्वारा त्याग करके केवल चैतन्यांशको ग्रहण करनेसे उनकी एकता सम्भव होती है। उनके ऐक्यका इस प्रकार बोध हो जानेपर स्वगत भेद समाप्त होकर अद्वैत बुद्धिका उदय हो जाता है॥ २२-२३॥

'वह यही देवदत्त है'—इस वाक्यार्थमें देवदत्त और तत् पदके अभेद-बोधके लिये जैसे लक्षणा आवश्यक है, वैसी ही लक्षणा यहाँ समझनी चाहिये। स्थूलादि देहमें जीवका जो स्वरूपाध्यास है, उसकी निवृत्ति हो जानेपर वह जीव ब्रह्म ही हो जाता है॥ २४॥

पंचीकरणसे युक्त पाँच महाभूतोंसे रचित यह स्थूल शरीर सभी कर्मोंके भोगोंका आश्रय है। यह देह वृद्धत्व एवं रोगसे संयुक्त होनेवाला है। हे पर्वतराज! मायामय होनेके कारण ही यह मिथ्याभूत देह सत्य प्रतीत होता है। यह स्थूल शरीर भी मेरी आत्माकी ही उपाधि है॥ २५-२६॥

यह जो पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच प्राण, मन तथा बुद्धिसे युक्त है तथा अपंचीकृत भूतोंसे उत्पन्न है, उसे विद्वानोंने सूक्ष्म शरीर कहा है। सुख-दुःखका बोध करनेवाला यह सूक्ष्म शरीर आत्माकी दूसरी उपाधि है॥ २७-२८॥

हे पर्वतराज! अनादि, अनिर्वचनीय और अज्ञानमूलक जो यह कारण शरीर है, वही आत्माके तीसरे शरीरके रूपमें प्रतीत होता है। तीनों उपाधियों (स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण शरीर)-का विलय हो जानेपर केवल परमात्मा ही शेष रह जाता है। इन तीनों देहोंके भीतर पंचकोश सदा स्थित रहते हैं। पंचकोशका परित्याग कर देनेपर

पञ्चकोशपरित्यागे ब्रह्मपुच्छं हि लभ्यते।
नेतिनेतीत्यादिवाक्यैर्मम रूपं यदुच्यते॥ ३१

ब्रह्ममें प्रतिष्ठा प्राप्त होती है, जो 'नेति-नेति' आदि श्रुतिवाक्योंके द्वारा सम्बोधित किया जाता है और जिसे मेरा ही रूप कहा जाता है॥ २९—३१॥

न जायते म्रियते तत्कदाचि-
न्नायं भूत्वा न बभूव कश्चित्।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥ ३२

यह आत्मा न कभी उत्पन्न होता है और न कभी मरता है। यह होकर फिर कभी हुआ भी नहीं। यह आत्मा अजन्मा, नित्य, शाश्वत तथा पुरातन है। शरीरके मारे जानेपर भी यह नहीं मारा जाता है॥ ३२॥

हतं चेन्मन्यते हन्तुं हतश्चेन्मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते॥ ३३

यदि कोई मारनेवाला आत्माको मारनेमें समर्थ मानता है और यदि कोई मारा जानेवाला व्यक्ति अपनेको मरा हुआ मानता है तो वे दोनों ही आत्मस्वरूपको नहीं जानते; क्योंकि यह आत्मा न तो मारता है और न तो मारा जाता है॥ ३३॥

अणोरणीयान्महतो महीया-
नात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्।
तमक्रतुः पश्यति वीतशोको
धातुः प्रसादान्महिमानमस्य॥ ३४

यह आत्मा अणुसे भी सूक्ष्म है और महान्से भी महान् है। यह आत्मा (परमात्मा) इस जीवात्माके हृदयरूप गुफा (बुद्धि)-में निहित रहनेवाला है। संकल्प-विकल्परहित और चिन्तामुक्त साधक ही परमात्माकी उस महिमाको परब्रह्म परमेश्वरकी कृपासे देख पाता है॥ ३४॥

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च॥ ३५

जीवात्माको रथका स्वामी और शरीरको रथ समझिये। बुद्धिको सारथि और मनको ही लगाम समझिये॥ ३५॥

इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान्।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः॥ ३६

विद्वान्लोग इन्द्रियोंको घोड़े, विषयोंको उन घोड़ोंके विचरनेका मार्ग बतलाते हैं और शरीर, इन्द्रिय तथा मन—इनके साथ रहनेवाले जीवात्माको भोक्ता कहते हैं॥ ३६॥

यस्त्वविद्वान्भवति चामनस्कश्च सदाशुचिः।
न तत्पदमवाप्नोति संसारं चाधिगच्छति॥ ३७

यस्तु विज्ञानवान्भवति समनस्कः सदा शुचिः।
स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद्भूयो न जायते॥ ३८

जो मनुष्य सदा अज्ञानी, असंयतचित्त और अपवित्र रहता है; वह उस परम पदको नहीं प्राप्त कर पाता और बार-बार संसारमें जन्म लेता रहता है। किंतु जो सदा ज्ञानशील, संयतचित्त और पवित्र रहता है; वह तो उस परम पदको प्राप्त कर लेता है, जहाँसे लौटकर पुनः जन्म धारण नहीं करना पड़ता॥ ३७-३८॥

विज्ञानसारथिर्यस्तु मनःप्रग्रहवान्नरः।
सोऽध्वनः पारमाप्नोति मदीयं यत्परं पदम्॥ ३९

जो मनुष्य विवेकयुक्त बुद्धिरूप सारथिसे सम्पन्न और मनरूप लगामको वशमें रखनेवाला है, वह संसारमार्गसे पार जो मेरा परम पद है; उसे प्राप्त कर लेता है॥ ३९॥

इत्थं श्रुत्या च मत्या च निश्चित्यात्मानमात्मना।
भावयेन्मामात्मरूपां निदिध्यासनतोऽपि च॥ ४०

इस प्रकार [वेदान्त-] श्रवण तथा मननके द्वारा अपने यथार्थ स्वरूपका निश्चय करके बार-बार गम्भीर चिन्तन-मननके द्वारा मुझ परमात्मस्वरूपिणी भगवतीकी भावना करनी चाहिये॥ ४०॥

योगवृत्तेः पुरा स्वस्मिन्भावयेदक्षरत्रयम्।
देवीप्रणवसंज्ञस्य ध्यानार्थं मन्त्रवाच्ययोः॥ ४१

मन्त्र और अर्थके स्वरूपके सम्यक् ध्यानके लिये सर्वप्रथम योगाभ्यासमें प्रतिष्ठित होकर देवीप्रणव नामक मन्त्रके तीनों अक्षरोंकी अपने भीतर भावना करनी चाहिये॥ ४१॥

हकारः स्थूलदेहः स्याद्रकारः सूक्ष्मदेहकः।
ईकारः कारणात्मासौ ह्रींकारोऽहं तुरीयकम्॥ ४२

एवं समष्टिदेहेऽपि ज्ञात्वा बीजत्रयं क्रमात्।
समष्टिव्यष्ट्योरेकत्वं भावयेन्मतिमान्नरः॥ ४३

'हकार' स्थूलदेह, 'रकार' सूक्ष्मदेह और ईकार कारणदेह है। 'ह्रीं' यह चतुर्थरूप स्वयं मैं हूँ। इस प्रकार बुद्धिमान् मनुष्यको चाहिये कि समष्टि शरीरमें भी क्रमशः तीनों बीजोंको समझकर समष्टि और व्यष्टि—इन दोनों रूपोंकी एकताका चिन्तन करे॥ ४२-४३॥

समाधिकालात्पूर्वं तु भावयित्वैवमादृतः।
ततो ध्यायेन्निलीनाक्षो देवीं मां जगदीश्वरम्॥ ४४

समाधिकालके पूर्व ही आदरपूर्वक इस प्रकारकी भावना करके पुनः उसके बाद दोनों नेत्र बन्दकर मुझ भगवती जगदीश्वरीका ध्यान करना चाहिये॥ ४४॥

प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ।
निवृत्तविषयाकाङ्क्षो वीतदोषो विमत्सरः॥ ४५

भक्त्या निर्व्याजया युक्तो गुहायां निःस्वने स्थले।
हकारं विश्वमात्मानं रकारे प्रविलापयेत्॥ ४६

रकारं तैजसं देवमीकारे प्रविलापयेत्।
ईकारं प्राज्ञमात्मानं ह्रींकारे प्रविलापयेत्॥ ४७

उस समय साधकको चाहिये कि वह किसी गुफा अथवा शब्दरहित एकान्त स्थानमें आसीन होकर विषयभोगोंकी कामनासे रहित, दोषमुक्त तथा ईर्ष्याशून्य रहते हुए और नासिकाके भीतर विचरणशील प्राण तथा अपान वायुको समान स्थितिमें करके निष्कपट भक्तिसे सम्पन्न होकर विश्वात्मारूप हकारको रकारमें समाविष्ट करे अर्थात् हकारवाच्य स्थूलदेहको रकारवाच्य सूक्ष्म-देहमें लीन करे, तैजस देवस्वरूप रकारको ईकारमें समाविष्ट करे अर्थात् रकारवाच्य तैजस—सूक्ष्मदेहको ईकारवाच्य कारणदेहमें लीन करे और प्राज्ञस्वरूप ईकारको ह्रींकारमें समाविष्ट करे अर्थात् ईकारवाच्य कारणदेहको ह्रींकारवाच्य ब्रह्ममें लीन करे॥ ४५—४७॥

वाच्यवाचकताहीनं द्वैतभावविवर्जितम्।
अखण्डं सच्चिदानन्दं भावयेत्तच्छिखान्तरे॥ ४८

तब वाच्य-वाचकसे रहित, समस्त द्वैतभावसे परे अखण्ड सच्चिदानन्दकी भावना अपने शिखास्थान (सहस्रार)-में करे। हे राजन्! इस प्रकारके ध्यानसे श्रेष्ठ पुरुष मेरा साक्षात्कार करके मेरे ही रूपवाला हो जाता है; क्योंकि दोनोंमें सदा एकता सिद्ध है। इस

इति ध्यानेन मां राजन् साक्षात्कृत्य नरोत्तमः।
मद्रूप एव भवति द्वयोरप्येकता यतः॥ ४९

योगयुक्त्यानया दृष्ट्वा मामात्मानं परात्परम्।
अज्ञानस्य सकार्यस्य तत्क्षणे नाशको भवेत्॥ ५०

योगरीतिसे मुझ परमात्मरूप परात्पर भगवतीका दर्शन करके साधक तत्क्षण कर्मसहित अपने अज्ञानका नाश करनेवाला हो जाता है॥ ४८—५०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे देवीगीतायां ज्ञानस्य मोक्षहेतुत्ववर्णनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३४॥

~~O~~

अथ पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

भगवतीद्वारा यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा तथा कुण्डलीजागरणकी विधि बताना

हिमालय उवाच

योगं वद महेशानि साङ्गं संवित्प्रदायकम्।
कृतेन येन योग्योऽहं भवेयं तत्त्वदर्शने॥ १

हिमालय बोले—हे महेश्वरि! अब आप ज्ञान प्रदान करनेवाले योगका सांगोपांग वर्णन कीजिये, जिसकी साधनासे मैं तत्त्वदर्शनकी प्राप्तिके योग्य हो जाऊँ॥ १॥

देव्युवाच

न योगो नभसः पृष्ठे न भूमौ न रसातले।
ऐक्यं जीवात्मनोराहुर्योगं योगविशारदाः॥ २

देवी बोलीं—यह योग न आकाशमण्डलमें है, न पृथ्वीतलपर है और न तो रसातलमें ही है। योगविद्याके विद्वानोंने जीव और आत्माके ऐक्यको ही योग कहा है॥ २॥

तत्प्रत्यूहाः षडाख्याता योगविघ्नकरानघ।
कामक्रोधौ लोभमोहौ मदमात्सर्यसंज्ञकौ॥ ३

हे अनघ! उस योगमें विघ्न उत्पन्न करनेवाले काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य नामक—ये छः प्रकारके दोष बताये गये हैं॥ ३॥

योगाङ्गैरेव भित्त्वा तान्योगिनो योगमाप्नुयुः।
यमं नियममासनप्राणायामौ ततः परम्॥ ४

प्रत्याहारं धारणाख्यं ध्यानं सार्धं समाधिना।
अष्टाङ्गान्याहुरेतानि योगिनां योगसाधने॥ ५

अतः योगके अंगोंके द्वारा उन विघ्नोंका उच्छेद करके योगियोंको योगकी प्राप्ति करनी चाहिये। योगियोंके लिये योगसिद्धिहेतु यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि—ये आठ अंग बताये गये हैं॥ ४-५॥

अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं दयार्जवम्।
क्षमा धृतिर्मिताहारः शौचं चेति यमा दश॥ ६

अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य, दया, सरलता, क्षमा, धृति, परिमित आहार और शौच—ये दस प्रकारके यम कहे गये हैं॥ ६॥

तपः सन्तोष आस्तिक्यं दानं देवस्य पूजनम्।
सिद्धान्तश्रवणं चैव ह्रीर्मतिश्च जपो हुतम्॥ ७

हे पर्वतराज! तप, संतोष, आस्तिकता, दान, देवपूजन, शास्त्रसिद्धान्तोंका श्रवण, लज्जा, सद्बुद्धि, जप और हवन—ये दस नियम मेरे द्वारा कहे गये हैं॥ ७॥

दशैते नियमाः प्रोक्ता मया पर्वतनायक।
पद्मासनं स्वस्तिकं च भद्रं वज्रासनं तथा॥ ८

वीरासनमिति प्रोक्तं क्रमादासनपञ्चकम्।
ऊर्वोरुपरि विन्यस्य सम्यक्पादतले शुभे॥ ९

अङ्गुष्ठौ च निबध्नीयाद्धस्ताभ्यां व्युत्क्रमात्ततः।
पद्मासनमिति प्रोक्तं योगिनां हृदयङ्गमम्॥ १०

पद्मासन, स्वस्तिकासन, भद्रासन, वज्रासन और वीरासन—क्रमशः ये पाँच आसन बतलाये गये हैं। दोनों पैरोंके दोनों शुभ तलवोंको सम्यक् रूपसे जंघोंपर रखकर पीठकी ओरसे हाथोंको ले जाकर दाहिने हाथसे दाहिने पैरके अँगूठेको और बायें हाथसे बायें पैरके अँगूठेको पकड़े; योगियोंके हृदयमें प्रसन्नता उत्पन्न करनेवाला यह पद्मासन कहा गया है॥ ८—१०॥

जानूर्वोरन्तरे सम्यक्कृत्वा पादतले शुभे।
ऋजुकायो विशेद्योगी स्वस्तिकं तत्प्रचक्षते॥ ११

सीवन्याः पार्श्वयोर्न्यस्य गुल्फयुग्मं सुनिश्चितम्।
वृषणाधः पादपार्ष्णी पार्ष्णिभ्यां परिबन्धयेत्॥ १२

भद्रासनमिति प्रोक्तं योगिभिः परिपूजितम्।
ऊर्वोः पादौ क्रमान्न्यस्य जान्वोः प्रत्यङ्मुखाङ्गुली॥ १३

करौ विदध्यादाख्यातं वज्रासनमनुत्तमम्।
एकं पादमधः कृत्वा विन्यस्योरुं तथोत्तरे॥ १४

ऋजुकायो विशेद्योगी वीरासनमितीरितम्।
इडयाकर्षयेद्वायुं बाह्यं षोडशमात्रया॥ १५

धारयेत्पूरितं योगी चतुःषष्ट्या तु मात्रया।
सुषुम्णामध्यगं सम्यग्द्वात्रिंशन्मात्रया शनैः॥ १६

नाड्या पिङ्गलया चैव रेचयेद्योगवित्तमः।
प्राणायाममिमं प्राहुर्योगशास्त्रविशारदाः॥ १७

भूयो भूयः क्रमात्तस्य बाह्यमेवं समाचरेत्।
मात्रावृद्धिक्रमेणैव सम्यग्द्वादश षोडश॥ १८

जपध्यानादिभिः सार्धं सगर्भं तं विदुर्बुधाः।
तदपेतं विगर्भं च प्राणायामं परे विदुः॥ १९

क्रमादभ्यस्यतः पुंसो देहे स्वेदोद्गमोऽधमः।
मध्यमः कम्पसंयुक्तो भूमित्यागः परो मतः॥ २०

उत्तमस्य गुणावाप्तिर्यावच्छीलनमिष्यते।

जाँघ और घुटनेके बीचमें पैरके दोनों सुन्दर तलवोंको अच्छी तरह करके योगीको शरीर सीधाकर बैठना चाहिये। इसे स्वस्तिकासन कहा जाता है॥ ११॥

सीवनीके दोनों ओर दोनों एड़ियोंको अण्डकोषके नीचे अच्छी तरह रखकर दोनों पैरोंको हाथोंसे पकड़कर बैठना चाहिये। योगियोंके द्वारा सम्यक् पूजित यह आसन भद्रासन कहा गया है॥ १२½॥

दोनों पैरोंको क्रमशः दोनों जाँघोंपर रखकर दोनों घुटनोंके निचले भागमें सीधी अँगुलीवाले दोनों हाथ स्थापित करके बैठनेको अत्युत्तम वज्रासन कहा गया है॥ १३½॥

एक पैरको नीचे करके उसके ऊपर दूसरे पैरका जंघा रखकर योगीको शरीर सीधा करके बैठना चाहिये; यह वीरासन कहा गया है॥ १४½॥

योगी सोलह बार प्रणवका उच्चारण करनेमें लगनेवाले समयतक इडा अर्थात् बायीं नासिकासे बाहरकी वायुको खींचे (पूरक), पुनः इस पूरित वायुको चौंसठ बार प्रणवके उच्चारणसमयतक सुषुम्नाके मध्य रोके रहे (कुम्भक) और इसके बाद योगविद्‌को चाहिये कि बत्तीस बार प्रणवके उच्चारणमें जितना समय लगे—उतने समयमें धीरे-धीरे पिंगला नाडी अर्थात् दायीं नासिकाके द्वारा उस वायुको बाहर करे (रेचक)। योगशास्त्रके विद्वान् इस प्रक्रियाको 'प्राणायाम' कहते हैं॥ १५—१७॥

इस प्रकार पुनः-पुनः बाहरकी वायुको लेकर क्रमसे पूरक, कुंभक तथा रेचक करके प्राणायामका अभ्यास मात्रा (प्रणवके उच्चारणके समय)-की वृद्धिके अनुसार करना चाहिये। इस प्रकार प्राणायाम पहले बारह बार, तदनन्तर सोलह बार इसके बाद क्रमशः उत्तरोत्तर वृद्धि करनी चाहिये॥ १८॥

जो प्राणायाम [अपने इष्टके] जप-ध्यान आदिसे युक्त होता है, उसे विद्वज्जनोंने सगर्भ प्राणायाम और उस जप-ध्यानसे रहित प्राणायामको विगर्भ प्राणायाम कहा है॥ १९॥

इस प्रकार क्रमसे अभ्यास करते हुए मनुष्यके शरीरमें पसीना आ जाय तो उसे अधम, कम्पन उत्पन्न होनेपर मध्यम और जमीन छोड़कर ऊपर उठनेपर उत्तम प्राणायाम कहा गया है। जबतक उत्तम प्राणायामतक पहुँचा जाय, तबतक अभ्यास करते रहना चाहिये॥ २०½॥

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेषु निरर्गलम्॥ २१

बलादाहरणं तेभ्यः प्रत्याहारोऽभिधीयते।
अङ्गुष्ठगुल्फजानूरुमूलाधोलिङ्गनाभिषु ॥ २२

हृद्ग्रीवाकण्ठदेशेषु लम्बिकायां ततो नसि।
भ्रूमध्ये मस्तके मूर्ध्नि द्वादशान्ते यथाविधि॥ २३

धारणं प्राणमरुतो धारणेति निगद्यते।
समाहितेन मनसा चैतन्यान्तरवर्तिना॥ २४

आत्मन्यभीष्टदेवानां ध्यानं ध्यानमिहोच्यते।
समत्वभावना नित्यं जीवात्मपरमात्मनोः॥ २५

समाधिमाहुर्मुनयः प्रोक्तमष्टाङ्गलक्षणम्।
इदानीं कथये तेऽहं मन्त्रयोगमनुत्तमम्॥ २६

विश्वं शरीरमित्युक्तं पञ्चभूतात्मकं नग।
चन्द्रसूर्याग्नितेजोभिर्जीवब्रह्मैक्यरूपकम् ॥ २७

तिस्रः कोट्यस्तदर्धेन शरीरे नाडयो मताः।
तासु मुख्या दश प्रोक्तास्ताभ्यस्तिस्रो व्यवस्थिताः॥ २८

प्रधाना मेरुदण्डेऽत्र चन्द्रसूर्याग्निरूपिणी।
इडा वामे स्थिता नाडी शुभ्रा तु चन्द्ररूपिणी॥ २९

शक्तिरूपा तु सा नाडी साक्षादमृतविग्रहा।
दक्षिणे या पिङ्गलाख्या पुंरूपा सूर्यविग्रहा॥ ३०

सर्वतेजोमयी सा तु सुषुम्णा वह्निरूपिणी।
तस्या मध्ये विचित्राख्ये इच्छाज्ञानक्रियात्मकम्॥ ३१

मध्ये स्वयम्भूलिङ्गं तु कोटिसूर्यसमप्रभम्।
तदूर्ध्वं मायाबीजं तु हरात्माबिन्दुनादकम्॥ ३२

तदूर्ध्वं तु शिखाकारा कुण्डली रक्तविग्रहा।
देव्यात्मिका तु सा प्रोक्ता मदभिन्ना नगाधिप॥ ३३

अपने-अपने विषयोंमें स्वच्छन्दरूपसे विचरण करती हुई इन्द्रियोंको उन विषयोंसे बलपूर्वक हटानेको प्रत्याहार कहा जाता है॥ २१½ ॥

अँगूठा, एड़ी, घुटना, जाँघ, गुदा, लिंग, नाभि, हृदय, ग्रीवा, कण्ठ, भ्रूमध्य और मस्तक—इन बारह स्थानोंमें प्राणवायुको विधिपूर्वक धारण किये रखनेको धारणा कहा जाता है॥ २२-२३½ ॥

चेतन आत्मामें मनको स्थित करके एकाग्रचित्त होकर अपने भीतर अभीष्ट देवताका सतत चिन्तन करनेको ध्यान कहा जाता है॥ २४½ ॥

मुनियोंने जीवात्मा और परमात्मामें नित्य 'समत्व' भावना रखनेको समाधि कहा है। यह मैंने आपको अष्टांगयोगका लक्षण बतला दिया। अब मैं आपसे उत्कृष्ट मन्त्रयोगका वर्णन कर रही हूँ॥ २५-२६ ॥

हे नग! इस पंचभूतात्मक शरीरको 'विश्व' कहा जाता है। चन्द्र, सूर्य और अग्निके तेजसे युक्त होनेपर (इडा-पिंगला-सुषुम्नामें योगसाधनसे) जीव-ब्रह्मकी एकता होती है॥ २७॥

इस शरीरमें साढ़े तीन करोड़ नाड़ियाँ बतायी गयी हैं। उनमें दस नाड़ियाँ मुख्य कही गयी हैं। उनमें भी तीन नाड़ियोंको प्रधान कहा गया है। चन्द्र, सूर्य तथा अग्निस्वरूपिणी—ये नाड़ियाँ मेरुदण्डमें व्यवस्थित रहती हैं। चन्द्ररूपिणी श्वेत 'इडा' नाड़ी उसके बायीं ओर स्थित है। शक्तिरूपा वह इडा नाड़ी साक्षात् अमृतस्वरूपिणी है। दायीं ओर जो 'पिंगला' नामक नाड़ी है, वह पुरुषरूपिणी तथा सूर्यमूर्ति है। उनके बीचमें जो सर्वतेजोमयी तथा अग्निरूपिणी नाड़ी स्थित है, वह 'सुषुम्ना' है॥ २८—३०॥

उसके भीतर 'विचित्रा' नामक नाड़ी स्थित है और उसके भीतर इच्छा-ज्ञान-क्रियाशक्तिसे सम्पन्न करोड़ों सूर्योंके तेजके समान स्वयम्भूलिंग है। उसके ऊपर बिन्दुनाद (ँ)-सहित हरात्मा (हकार, रेफ तथा ईकार)-स्वरूप मायाबीज (ह्रीं) विराजमान है। उसके ऊपर रक्त विग्रहवाली शिखाके आकारकी कुण्डलिनी है। हे पर्वतराज हिमालय! वह देव्यात्मिका कही गयी है और मुझसे अभिन्न है॥ ३१—३३॥

तद्बाह्ये हेमरूपाभं वादिसान्तचतुर्दलम्।
द्रुतहेमसमप्रख्यं पद्मं तत्र विचिन्तयेत्॥ ३४

तदूर्ध्वं त्वनलप्रख्यं षड्दलं हीरकप्रभम्।
बादिलान्तषड्वर्णेन स्वाधिष्ठानमनुत्तमम्॥ ३५

मूलमाधारषट्कोणं मूलाधारं ततो विदुः।
स्वशब्देन परं लिङ्गं स्वाधिष्ठानं ततो विदुः॥ ३६

तदूर्ध्वं नाभिदेशे तु मणिपूरं महाप्रभम्।
मेघाभं विद्युदाभं च बहुतेजोमयं ततः॥ ३७

मणिवद्भिन्नं तत्पद्मं मणिपद्मं तथोच्यते।
दशभिश्च दलैर्युक्तं डादिफान्ताक्षरान्वितम्॥ ३८

विष्णुनाधिष्ठितं पद्मं विष्णवालोकनकारणम्।
तदूर्ध्वेनाहतं पद्ममुद्यदादित्यसन्निभम्॥ ३९

कादिठान्तदलैरर्कपत्रैश्च समधिष्ठितम्।
तन्मध्ये बाणलिङ्गं तु सूर्यायुतसमप्रभम्॥ ४०

शब्दब्रह्ममयं शब्दानाहतं तत्र दृश्यते।
अनाहताख्यं तत्पद्मं मुनिभिः परिकीर्तितम्॥ ४१

आनन्दसदनं तत्तु पुरुषाधिष्ठितं परम्।
तदूर्ध्वं तु विशुद्धाख्यं दलं षोडशपङ्कजम्॥ ४२

स्वरैः षोडशभिर्युक्तं धूम्रवर्णं महाप्रभम्।
विशुद्धं तनुते यस्माज्जीवस्य हंसलोकनात्॥ ४३

विशुद्धं पद्ममाख्यातमाकाशाख्यं महाद्भुतम्।

कुण्डलिनीके बाह्यभागमें स्वर्णवर्णके चतुर्दल कमल [मूलाधार]-का चिन्तन करना चाहिये, जिसपर व, श, ष, स—ये चार बीजाक्षर स्थित हैं। उसके ऊपर छः दलवाला उत्तम स्वाधिष्ठान पद्म स्थित है, जो अग्निके समान तेजोमय, हीरेकी चमकवाला और ब, भ, म, य, र, ल—इन छः बीजाक्षरोंसे युक्त है। आधार षट्कोणपर स्थित होनेके कारण मूलाधार तथा स्व शब्दसे परम लिंगको इंगित करनेके कारण स्वाधिष्ठान संज्ञा है॥ ३४—३६॥

इसके ऊपर नाभिदेशमें मेघ तथा विद्युत्के समान कान्तिवाला अत्यन्त तेजसम्पन्न और महान् प्रभासे युक्त मणिपूरक चक्र है। मणिके सदृश प्रभावाला होनेके कारण यह 'मणिपद्म' भी कहा जाता है। यह दस दलोंसे युक्त है और ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ—इन अक्षरोंसे समन्वित है। भगवान् विष्णुके द्वारा अधिष्ठित होनेके कारण यह कमल उनके दर्शनका महान् साधन है॥ ३७-३८½॥

उसके ऊपर उगते हुए सूर्यके समान प्रभासे सम्पन्न अनाहत पद्म है। यह कमल क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ—इन अक्षरोंसे युक्त बारह पत्रोंसे प्रतिष्ठित है। उसके मध्यमें दस हजार सूर्योंके समान प्रभावाला बाणलिंग स्थित है। बिना किसी आघातके इसमें शब्द होता रहता है। अतः मुनियोंके द्वारा उस शब्दब्रह्ममय पद्मको 'अनाहत' कहा गया है। परमपुरुषद्वारा अधिष्ठित वह चक्र आनन्दसदन है॥ ३९—४१½॥

उसके ऊपर सोलह दलोंसे युक्त 'विशुद्ध' नामक कमल है। महती प्रभासे युक्त तथा धूम्रवर्णवाला यह कमल अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः—इन सोलह स्वरोंसे सम्पन्न है। इसमें हंसस्वरूप परमात्माके दर्शनसे जीव विशुद्ध आत्मस्वरूपको प्राप्त हो जाता है, इसीलिये इसे विशुद्ध पद्म (विशुद्ध चक्र) कहा गया है। इस महान् अद्भुत कमलको 'आकाशचक्र' भी कहा गया है॥ ४२-४३½॥

आज्ञाचक्रं तदूर्ध्वं तु आत्मनाधिष्ठितं परम्॥ ४४

आज्ञासंक्रमणं तत्र तेनाज्ञेति प्रकीर्तितम्।
द्विदलं हक्षसंयुक्तं पद्मं तत्सुमनोहरम्॥ ४५

कैलासाख्यं तदूर्ध्वं तु रोधिनी तु तदूर्ध्वतः।
एवं त्वाधारचक्राणि प्रोक्तानि तव सुव्रत॥ ४६

सहस्त्रारयुतं बिन्दुस्थानं तदूर्ध्वमीरितम्।
इत्येतत्कथितं सर्वं योगमार्गमनुत्तमम्॥ ४७

आदौ पूरकयोगेनाप्याधारे योजयेन्मनः।
गुदमेढ्रान्तरे शक्तिस्तामाकुञ्च्य प्रबोधयेत्॥ ४८

लिङ्गभेदक्रमेणैव बिन्दुचक्रं च प्रापयेत्।
शम्भुना तां परां शक्तिमेकीभूतां विचिन्तयेत्॥ ४९

तत्रोत्थितामृतं यत्तु द्रुतलाक्षारसोपमम्।
पाययित्वा तु तां शक्तिं मायाख्यां योगसिद्धिदाम्॥ ५०

षट्चक्रदेवतास्तत्र सन्तर्प्यामृतधारया।
आनयेत्तेन मार्गेण मूलाधारं ततः सुधीः॥ ५१

एवमभ्यस्यमानस्याप्यहन्यहनि निश्चितम्।
पूर्वोक्तदूषिता मन्त्राः सर्वे सिद्ध्यन्ति नान्यथा॥ ५२

जरामरणदुःखाद्यैर्मुच्यते भवबन्धनात्।
ये गुणाः सन्ति देव्या मे जगन्मातुर्यथा तथा॥ ५३

ते गुणाः साधकवरे भवन्त्येव न चान्यथा।

उसके ऊपर परमात्माके द्वारा अधिष्ठित श्रेष्ठ 'आज्ञाचक्र' है। उसमें परमात्माकी आज्ञाका संक्रमण होता है, इसीसे उसे 'आज्ञाचक्र'—ऐसा कहा गया है। वह कमल दो दलोंवाला, ह तथा क्ष—इन दो अक्षरोंसे युक्त और अत्यन्त मनोहर है॥ ४४-४५॥

उसके ऊपर 'कैलास' नामक चक्र और उसके भी ऊपर 'रोधिनी' नामक चक्र स्थित है। हे सुव्रत! इस प्रकार मैंने आपको आधारचक्रोंके विषयमें बता दिया। इसके और भी ऊपर सहस्त्र दलोंसे सम्पन्न बिन्दुस्थानरूप 'सहस्त्रारचक्र' बताया गया है। यह मैंने आपसे सम्पूर्ण श्रेष्ठ योगमार्गका वर्णन कर दिया॥ ४६-४७॥

सर्वप्रथम पूरक प्राणायामके द्वारा मूलाधारमें मन लगाना चाहिये। तत्पश्चात् गुदा और मेढ्रके बीचमें वायुके द्वारा कुण्डलिनी शक्तिको समेटकर उसे जाग्रत् करना चाहिये। पुनः लिंग-भेदनके क्रमसे स्वयम्भूलिंगसे आरम्भ करके उस कुण्डलिनी शक्तिको बिन्दुचक्र [सहस्त्रार]-तक ले जाना चाहिये। इसके बाद उस परा शक्तिका सहस्त्रारमें स्थित परमेश्वर शम्भुके साथ ऐक्यभावसे ध्यान करना चाहिये॥ ४८-४९॥

वहाँ द्रवीभूत लाक्षारसके समान उत्पन्न अमृतका योगसिद्धि प्रदान करनेवाली माया नामक उस शक्तिको पान कराकर षट्चक्रमें स्थित देवताओंको उस अमृतधारासे सन्तृप्त करे। इसके बाद बुद्धिमान् साधक उसी मार्गसे कुण्डलिनी शक्तिको मूलाधारतक वापस लौटा लाये॥ ५०-५१॥

इस प्रकार प्रतिदिन अभ्यास करनेपर साधकके पूर्वोक्त सभी दूषित मन्त्र भी निश्चितरूपसे सिद्ध हो जाते हैं; इसमें सन्देह नहीं है। इसके द्वारा साधक जरा-मरण आदि दुःखों तथा भवबन्धनसे मुक्त हो जाता है। जो गुण मुझ जगज्जननी भगवतीमें जिस प्रकार विद्यमान हैं, वे सभी गुण उसी प्रकार उस श्रेष्ठ साधकमें उत्पन्न हो जाते हैं; इसमें कोई संदेह नहीं है॥ ५२-५३½॥

इत्येवं कथितं तात वायुधारणमुत्तमम्॥ ५४

इदानीं धारणाख्यं तु शृणुष्वावहितो मम।
दिक्कालाद्यनवच्छिन्नदेव्यां चेतो विधाय च॥ ५५

तन्मयो भवति क्षिप्रं जीवब्रह्मैक्ययोजनात्।
अथवा समलं चेतो यदि क्षिप्रं न सिद्ध्यति॥ ५६

तदावयवयोगेन योगी योगान्समभ्यसेत्।
मदीयहस्तपादादावङ्गे तु मधुरे नग॥ ५७

चित्तं संस्थापयेन्मन्त्री स्थानं स्थानजयात्पुनः।
विशुद्धचित्तः सर्वस्मिन्रूपे संस्थापयेन्मनः॥ ५८

यावन्मनो लयं याति देव्यां संविदि पर्वत।
तावदिष्टमनुं मन्त्री जपहोमैः समभ्यसेत्॥ ५९

मन्त्राभ्यासेन योगेन ज्ञेयज्ञानाय कल्पते।
न योगेन विना मन्त्रो न मन्त्रेण विना हि सः॥ ६०

द्वयोरभ्यासयोगो हि ब्रह्मसंसिद्धिकारणम्।
तमः परिवृते गेहे घटो दीपेन दृश्यते॥ ६१

एवं मायावृतो ह्यात्मा मनुना गोचरीकृतः।
इति योगविधिः कृत्स्नः साङ्गः प्रोक्तो मयाधुना।
गुरूपदेशतो ज्ञेयो नान्यथा शास्त्रकोटिभिः॥ ६२

हे तात! इस प्रकार मैंने आपसे इस श्रेष्ठ प्राणायामका वर्णन किया है। अब आप सावधान होकर मुझसे धारणा नामक योगका श्रवण कीजिये। दिशा, काल आदिसे अपरिच्छिन्न मुझ भगवतीमें चित्त स्थिर करके जीव और ब्रह्मका ऐक्य हो जानेसे शीघ्र ही साधक तन्मय हो जाता है और यदि चित्तके मलयुक्त रहनेके कारण शीघ्रतापूर्वक सिद्धि प्राप्त न हो तो योगीको चाहिये कि मेरे विग्रहके अंगोंमें [अपना मन स्थित करके] निरन्तर योगका अभ्यास करता रहे। हे पर्वत! साधकको मेरे करचरणादि मधुर अंगोंमें चित्तको एक-एक करके केन्द्रित करना चाहिये और इस प्रकार विशुद्धचित्त होकर उसे मेरे समस्त रूपमें मनको स्थिर करना चाहिये। हे पर्वत! जबतक ज्ञानरूपिणी मुझ भगवतीमें मनका लय न हो जाय, तबतक मन्त्रजापकको जप-होमके द्वारा अपने इष्ट मन्त्रका अभ्यास करते रहना चाहिये॥ ५४—५९॥

मन्त्राभ्यास-योगके द्वारा ज्ञेय तत्त्वका ज्ञान प्राप्त हो जाता है। योगके बिना मन्त्र सिद्ध नहीं होता और मन्त्रके बिना योग सिद्ध नहीं होता। अतः योग और मन्त्र—इन दोनोंका अभ्यास-योग ही ब्रह्मसिद्धिका साधन है। अन्धकारसे आच्छादित घरमें स्थित घड़ा दीपकके प्रकाशमें दिखायी देने लगता है, इसी प्रकार मायासे आवृत आत्मा मन्त्रके द्वारा दृष्टिगोचर होने लगता है। इस प्रकार मैंने अंगोंसहित सम्पूर्ण योगविधि इस समय आपको बतला दी। गुरुके उपदेशसे ही यह योग जाना जा सकता है, इसके विपरीत करोड़ों शास्त्रोंके द्वारा भी यह प्राप्त नहीं किया जा सकता॥ ६०—६२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे देवीगीतायां मन्त्रसिद्धिसाधनवर्णनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः॥ ३५॥



अथ षट्त्रिंशोऽध्यायः

भगवतीके द्वारा हिमालयको ज्ञानोपदेश—ब्रह्मस्वरूपका वर्णन

देव्युवाच

इत्यादियोगयुक्तात्मा ध्यायेन्मां ब्रह्मरूपिणीम्।
भक्त्या निर्व्याजया राजन्नासने समुपस्थितः॥ १

देवी बोलीं—हे राजन्! इस प्रकार आसनपर सम्यक् विराजमान होकर योगसे युक्त चित्तवाले साधकको निष्कपट भक्तिके साथ मुझ ब्रह्मस्वरूपिणी भगवतीका ध्यान करना चाहिये॥ १॥

आविः सन्निहितं गुहाचरं नाम महत्पदम्।
अत्रैतत्सर्वमर्पितमेजत्प्राणन्निमिषच्च यत्॥ २

एतज्जानथ सदसद्वरेण्यं परं
विज्ञानाद्यद्वरिष्ठं प्रजानाम्।
यदर्चिमद्यदणुभ्योऽणु च
यस्मिँल्लोका निहिता लोकिनश्च॥ ३

तदेतदक्षरं ब्रह्म स प्राणस्तदु वाङ्मनः।
तदेतत्सत्यममृतं तद्वेद्धव्यं सौम्य विद्धि॥ ४

धनुर्गृहीत्वौपनिषदं महास्त्रं
शरं ह्युपासानिशितं सन्धयीत।
आयम्य तद्भावगतेन चेतसा
लक्ष्यं तदेवाक्षरं सौम्य विद्धि॥ ५

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्॥ ६

यस्मिन्द्यौश्च पृथिवी चान्तरिक्षमोतं
मनः सह प्राणैश्च सर्वैः।
तमेवैकं जानथात्मानमन्या
वाचो विमुञ्चथामृतस्यैष सेतुः॥ ७

अरा इव रथनाभौ संहता यत्र नाड्यः।
स एषोऽन्तश्चरते बहुधा जायमानः॥ ८

ओमित्येवं ध्यायथात्मानं
स्वस्ति वः पाराय तमसः परस्तात्।
दिव्ये ब्रह्मपुरे व्योम्नि आत्मा सम्प्रतिष्ठितः॥ ९

जो प्रकाशस्वरूप, सबके अत्यन्त समीप स्थित, हृदयरूपी गुफामें स्थित होनेके कारण 'गुहाचर' नामसे प्रसिद्ध परम तत्त्व है; उसीमें जितने भी चेष्टायुक्त, श्वास लेनेवाले तथा नेत्र खोलने-मूँदनेवाले प्राणी हैं—वे सब उस ब्रह्ममें ही कल्पित हैं॥ २॥

जो सत्कारणरूप माया तथा असत्कार्यरूप जगत्—इन दोनोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ, प्राणियोंके ज्ञानसे परे अर्थात् उनके ज्ञानका अविषय, सर्वोत्कृष्ट तथा सबको प्रकाशित करनेवाला, अणुसे भी अणु (सूक्ष्म) है और जिसमें सभी लोक तथा उसमें रहनेवाले प्राणी स्थित हैं—उस ब्रह्मको आपलोग जानिये॥ ३॥

जो अक्षरब्रह्म है—वही सबका प्राण है, वही वाणी है, वही सबका मन है, वही परम सत्य तथा अमृतस्वरूप है। अतः हे सौम्य [पर्वतराज]! उस भेदन करनेयोग्य ब्रह्मस्वरूप लक्ष्यका भेदन करो॥ ४॥

हे सौम्य! उपनिषदरूपी महान् धनुषास्त्र लेकर उसपर उपासनाद्वारा तीक्ष्ण किये गये बाणको स्थापित करो और इसके बाद विषयोंसे विरक्त और भगवद्भावभावित चित्तके द्वारा उस बाणको खींचकर उस अक्षररूप ब्रह्मको लक्ष्य करके वेधन करो॥ ५॥

प्रणव धनुष, जीवात्मा बाण और ब्रह्म उसका लक्ष्य कहा जाता है। प्रमादरहित होकर उसका भेदन करना चाहिये और बाणकी भाँति उसमें तन्मय हो जाना चाहिये॥ ६॥

जिसमें स्वर्ग, पृथ्वी, अन्तरिक्ष और सम्पूर्ण प्राणोंके सहित मन ओतप्रोत है, उसी एकमात्र परब्रह्मको जानो और अन्य बातोंका परित्याग कर दो; [भवसागरसे पार होनेके लिये] यही अमृतका सेतु है॥ ७॥

रथके चक्केमें लगे अरोंकी भाँति जिस हृदयमें शरीरकी नाडियाँ एकत्र स्थित हैं—उसी हृदयमें विविध रूपोंमें प्रकट होनेवाला परब्रह्म निरन्तर संचरण करता है॥ ८॥

संसारसमुद्रसे पार होनेके लिये 'ओम्'—इस प्रणवमन्त्रके जपसे परमात्माका ध्यान करो। आपका कल्याण हो। वह परमात्मा अन्धकारसे सर्वथा परे ब्रह्मलोकस्वरूप दिव्य आकाश (हृदय)-में प्रतिष्ठित है॥ ९॥

मनोमयः प्राणशरीरनेता
प्रतिष्ठितोऽन्ने हृदयं सन्निधाय।
तद्विज्ञानेन परिपश्यन्ति धीरा
आनन्दरूपममृतं यद्विभाति॥ १०

वह परब्रह्म मनोमय है और सबके प्राण तथा शरीरका नियमन करता है। वह समस्त प्राणियोंके हृदयमें निहित रहकर अन्नमय स्थूल शरीरमें प्रतिष्ठित है। जो आनन्दस्वरूप तथा अमृतमय परमात्मा सर्वत्र प्रकाशित हो रहा है, उसे विज्ञान (अपरोक्षानुभूति)-के द्वारा बुद्धिमान् पुरुष भलीभाँति दृष्टिगत कर लेते हैं॥ १०॥

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे॥ ११

उस कार्य-कारणरूप परमात्माको देख लेनेपर इस जीवके हृदयकी ग्रन्थिका भेदन हो जाता है अर्थात् अनात्मपदार्थोंमें स्वरूपाध्यास समाप्त हो जाता है, सभी सन्देह दूर हो जाते हैं और सभी कर्म क्षीण हो जाते हैं॥ ११॥

हिरण्मये परे कोशे विराजं ब्रह्म निष्कलम्।
तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्मविदो विदुः॥ १२

वह निष्कल (व्यापक) ब्रह्म स्वर्णमय परकोश (आनन्दमयकोश)-में विराजमान है। वह शुभ्र तथा परम प्रकाशित वस्तुओंका भी प्रकाशक है। उसे आत्मज्ञानी पुरुष ही जान पाते हैं॥ १२॥

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति॥ १३

वहाँ न तो सूर्य प्रकाश फैला सकता है, न चन्द्रमा और ताराओंका समुदाय ही, न ये बिजलियाँ ही वहाँ प्रकाशित हो सकती हैं; फिर यह लौकिक अग्नि कैसे प्रकाशित हो सकती है। उसीके प्रकाशित होनेपर सब प्रकाशित होते हैं। यह सम्पूर्ण जगत् उसीके प्रकाशसे आलोकित होता है॥ १३॥

ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद्ब्रह्म
पश्चाद्ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण।
अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वं वरिष्ठम्॥ १४

यह अमृतस्वरूप ब्रह्म ही आगे है, यह ब्रह्म ही पीछे है और यह ब्रह्म ही दाहिनी तथा बायीं ओर स्थित है। यह ब्रह्म ही ऊपर तथा नीचे फैला हुआ है। यह समग्र जगत् सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म ही है॥ १४॥

एतादृगनुभवो यस्य स कृतार्थो नरोत्तमः।
ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति॥ १५

जिसका इस प्रकारका अनुभव है, वह श्रेष्ठ मनुष्य कृतार्थ है। ब्रह्मको प्राप्त पुरुष नित्य प्रसन्नचित्त रहता है; वह न शोक करता है और न किसी प्रकारकी आकांक्षा रखता है॥ १५॥

द्वितीयाद्वै भयं राजंस्तदभावाद् बिभेति न।
न तद्वियोगो मेऽप्यस्ति मद्वियोगोऽपि तस्य न॥ १६

हे राजन्! भय दूसरेसे हुआ करता है; द्वैतभाव न रहनेपर [संसारसे] भय नहीं होता। उस ज्ञानीसे मेरा कभी वियोग नहीं होता और मुझसे उस ज्ञानीका वियोग कभी नहीं होता॥ १६॥

अहमेव स सोऽहं वै निश्चितं विद्धि पर्वत।
मद्दर्शनं तु तत्र स्याद्यत्र ज्ञानी स्थितो मम॥ १७

हे पर्वत! आप यह निश्चित जान लीजिये कि मैं ही वह हूँ और वही मेरा स्वरूप है। जिस किसी भी स्थानमें ज्ञानी रहे, उसको वहीं मेरा दर्शन होता रहता है॥ १७॥

नाहं तीर्थे न कैलासे वैकुण्ठे वा न कर्हिचित्।
वसामि किं तु मज्ज्ञानिहृदयाम्भोजमध्यमे॥ १८

मत्पूजाकोटिफलदं सकृन्मज्ज्ञानिनोऽर्चनम्।
कुलं पवित्रं तस्यास्ति जननी कृतकृत्यका॥ १९

विश्वम्भरा पुण्यवती चिल्लयो यस्य चेतसः।
ब्रह्मज्ञानं तु यत्पृष्टं त्वया पर्वतसत्तम॥ २०

कथितं तन्मया सर्वं नातो वक्तव्यमस्ति हि।
इदं ज्येष्ठाय पुत्राय भक्तियुक्ताय शीलिने॥ २१

शिष्याय च यथोक्ताय वक्तव्यं नान्यथा क्वचित्।
यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ॥ २२

तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः।
येनोपदिष्टा विद्येयं स एव परमेश्वरः॥ २३

यस्यायं सुकृतं कर्तुमसमर्थस्ततो ऋणी।
पित्रोरप्यधिकः प्रोक्तो ब्रह्मजन्मप्रदायकः॥ २४

पितृजातं जन्म नष्टं नेत्थं जातं कदाचन।
तस्मै न द्रुह्येदित्यादि निगमोऽप्यवदन्नग॥ २५

तस्माच्छास्त्रस्य सिद्धान्तो ब्रह्मदाता गुरुः परः।
शिवे रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न शङ्करः॥ २६

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन श्रीगुरुं तोषयेन्नग।
कायेन मनसा वाचा सर्वदा तत्परो भवेत्॥ २७

अन्यथा तु कृतघ्नः स्यात्कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः।

मैं कभी भी न तीर्थमें, न कैलासपर और न तो वैकुण्ठमें ही निवास करती हूँ। मैं केवल अपने ज्ञानी भक्तके हृदयकमलमें निवास करती हूँ। मेरे ज्ञानपरायण भक्तकी एक बारकी पूजा मेरी करोड़ों पूजाओंका फल प्रदान करती है॥ १८½ ॥

जिसका चित्त चित्स्वरूप ब्रह्ममें लीन हो गया, उसका कुल पवित्र हो गया, उसकी जननी कृतकृत्य हो गयी और पृथ्वी उसे धारण करके पुण्यवती हो गयी॥ १९½ ॥

हे पर्वतश्रेष्ठ! आपने जो ब्रह्मज्ञानके सम्बन्धमें पूछा था, वह सब मैंने बता दिया। अब इसके आगे बतानेयोग्य कुछ शेष नहीं है। भक्तिसम्पन्न तथा शीलवान् ज्येष्ठ पुत्र तथा इसी प्रकारके गुणवाले शिष्यको इसे बताना चाहिये, किसी दूसरेसे इसे कभी प्रकाशित नहीं करना चाहिये। जिसकी परमदेव परमेश्वरमें परम भक्ति है तथा जिस प्रकार परमेश्वरमें है; उसी प्रकार गुरुमें भी है, उस महात्मा पुरुषके हृदयमें ही ये बताये हुए रहस्यमय अर्थ प्रकाशित होते हैं॥ २०—२२½ ॥

जिसके द्वारा इस ब्रह्मविद्याका उपदेश दिया जाता है, वह साक्षात् परमेश्वर ही है। उपदिष्ट विद्याका प्रत्युपकार करनेमें मनुष्य सर्वथा असमर्थ है, इसलिये वह गुरुका सदा ऋणी रहता है। ब्रह्मजन्म प्रदान करनेवाला (ब्रह्म-तत्त्वका साक्षात्कार करानेवाला) गुरु माता-पितासे भी श्रेष्ठ कहा गया है; क्योंकि माता-पितासे प्राप्त जीवन तो नष्ट हो जाता है, किंतु गुरुद्वारा प्राप्त ब्रह्मजन्म कभी नष्ट नहीं होता॥ २३-२४½ ॥

हे पर्वत! '**तस्मै न द्रुह्येत्**' अर्थात् उन गुरुसे द्रोह नहीं करना चाहिये। इत्यादि वचन वेदने भी कहे हैं। अतः शास्त्रसिद्धान्त है कि ब्रह्मज्ञानदाता गुरु सबसे श्रेष्ठ होता है। हे नग! शिवके रुष्ट होनेपर गुरु रक्षा कर सकते हैं, किंतु गुरुके रुष्ट होनेपर शंकर भी रक्षा नहीं कर सकते, अतः पूर्ण प्रयत्नसे गुरुको सन्तुष्ट रखना चाहिये। तन-मन-वचनसे सर्वदा गुरुपरायण रहना चाहिये, अन्यथा कृतघ्न होना पड़ता है और कृतघ्न हो जानेपर उद्धार नहीं होता॥ २५—२७½ ॥

इन्द्रेणाथर्वणायोक्ता शिरश्छेदप्रतिज्ञया॥ २८

अश्विभ्यां कथने तस्य शिरश्छिन्नं च वज्रिणा।
अश्वीयं तच्छिरो नष्टं दृष्ट्वा वैद्यौ सुरोत्तमौ॥ २९

पुनः संयोजितं स्वीयं ताभ्यां मुनिशिरस्तदा।
इति संकटसम्पाद्या ब्रह्मविद्या नगाधिप।
लब्धा येन स धन्यः स्यात्कृतकृत्यश्च भूधर॥ ३०

पूर्व समयकी बात है—अथर्वणमुनिके द्वारा इन्द्रसे ब्रह्मविद्याकी याचना किये जानेपर इन्द्रने अथर्वणमुनिको ब्रह्मविद्या इस शर्तपर बतायी कि किसी अन्यको बतानेपर आपका सिर काट लूँगा। अश्विनीकुमारोंके याचना करनेपर मुनिने उन्हें ब्रह्मविद्याका उपदेश कर दिया और इन्द्रने मुनिका सिर काट लिया। तदनन्तर सुरश्रेष्ठ दोनों वैद्योंने उनके सिरको कटा देखकर घोड़ेका सिर मुनिपर पुनः जोड़ दिया। हे भूधर! हे पर्वतराज! इस प्रकार महान् संकटसे सम्पादित होनेवाली ब्रह्मविद्याको जिसने प्राप्त कर लिया, वह धन्य तथा कृतकृत्य है॥ २८—३०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे देवीगीतायां ब्रह्मविद्योपदेशवर्णनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३६॥

~~०~~

अथ सप्तत्रिंशोऽध्यायः

भगवतीद्वारा अपनी श्रेष्ठ भक्तिका वर्णन

हिमालय उवाच

स्वीयां भक्तिं वदस्वाम्ब येन ज्ञानं सुखेन हि।
जायेत मनुजस्यास्य मध्यमस्याविरागिणः॥ १

हिमालय बोले—हे अम्ब! आप मुझे अपनी वह भक्ति बतानेकी कृपा कीजिये, जिस भक्तिके द्वारा अपरिपक्व वैराग्यवाले मध्यम अधिकारीको भी सुगमतापूर्वक ज्ञान हो जाय॥ १॥

देव्युवाच

मार्गास्त्रयो मे विख्याता मोक्षप्राप्तौ नगाधिप।
कर्मयोगो ज्ञानयोगो भक्तियोगश्च सत्तम॥ २

त्रयाणामप्ययं योग्यः कर्तुं शक्योऽस्ति सर्वथा।
सुलभत्वान्मानसत्वात्कायचित्ताद्यपीडनात्॥ ३

देवी बोलीं—हे पर्वतराज! हे सत्तम! मोक्षप्राप्तिके साधनभूत कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग—ये मेरे तीन मार्ग प्रसिद्ध हैं। इन तीनोंमें भी यह भक्तियोग सर्वथा सुलभ होने, [बाह्य साधनोंसे निरपेक्ष केवल] मनसे सम्पादित होने और शरीर तथा चित्त आदिको पीड़ा न पहुँचानेके कारण सरलतापूर्वक किया जा सकता है॥ २-३॥

गुणभेदान्मनुष्याणां सा भक्तिस्त्रिविधा मता।
परपीडां समुद्दिश्य दम्भं कृत्वा पुरःसरम्॥ ४

मात्सर्यक्रोधयुक्तो यस्तस्य भक्तिस्तु तामसी।
परपीडादिरहितः स्वकल्याणार्थमेव च॥ ५

मनुष्योंके गुणभेदके अनुसार वह भक्ति भी तीन प्रकारकी कही गयी है। जो मनुष्य डाह तथा क्रोधसे युक्त होकर दम्भपूर्वक दूसरोंको संतप्त करनेके उद्देश्यसे भक्ति करता है, उसकी वह भक्ति तामसी होती है॥ ४½॥

हे पर्वतराज! सर्वदा हृदयमें कामनाएँ रखनेवाला, यश चाहनेवाला तथा भोगका लोलुप जो मनुष्य परपीडासे

नित्यं सकामो हृदयं यशोऽर्थी भोगलोलुपः।
तत्तत्फलसमावाप्त्यै मामुपास्तेऽतिभक्तितः॥ ६

भेदबुद्ध्या तु मां स्वस्मादन्यां जानाति पामरः।
तस्य भक्तिः समाख्याता नगाधिप तु राजसी॥ ७

परमेशार्पणं कर्म पापसंक्षालनाय च।
वेदोक्तत्वादवश्यं तत्कर्तव्यं तु मयानिशम्॥ ८

इति निश्चितबुद्धिस्तु भेदबुद्धिमुपाश्रितः।
करोति प्रीतये कर्म भक्तिः सा नग सात्त्विकी॥ ९

परभक्तेः प्रापिकेयं भेदबुद्ध्यवलम्बनात्।
पूर्वप्रोक्ते ह्युभे भक्ती न परप्रापिके मते॥ १०

अधुना परभक्तिं तु प्रोच्यमानां निबोध मे।
मद्गुणश्रवणं नित्यं मम नामानुकीर्तनम्॥ ११

कल्याणगुणरत्नानामाकरायां मयि स्थिरम्।
चेतसो वर्तनं चैव तैलधारासमं सदा॥ १२

हेतुस्तु तत्र को वापि न कदाचिद्भवेदपि।
सामीप्यसार्ष्टिसायुज्यसालोक्यानां न चैषणा॥ १३

मत्सेवातोऽधिकं किञ्चिन्नैव जानाति कर्हिचित्।
सेव्यसेवकताभावात्तत्र मोक्षं न वाञ्छति॥ १४

परानुरक्त्या मामेव चिन्तयेद्यो ह्यतन्द्रितः।
स्वाभेदेनैव मां नित्यं जानाति न विभेदतः॥ १५

मद्रूपत्वेन जीवानां चिन्तनं कुरुते तु यः।
यथा स्वस्यात्मनि प्रीतिस्तथैव च परात्मनि॥ १६

चैतन्यस्य समानत्वान्न भेदं कुरुते तु यः।
सर्वत्र वर्तमानानां सर्वरूपां च सर्वदा॥ १७

नमते यजते चैवाप्याचाण्डालान्तमीश्वर।
न कुत्रापि द्रोहबुद्धिं कुरुते भेदवर्जनात्॥ १८

रहित होकर मात्र अपने ही कल्याणके लिये उन-उन फलोंकी प्राप्तिके लिये अत्यन्त भक्तिपूर्वक मेरी उपासना करता है, साथ ही वह मन्दमति भेदबुद्धिके कारण मुझ भगवतीको अपनेसे भिन्न समझता है, उसकी वह भक्ति राजसी कही गयी है॥ ५—७॥

हे नग! जो मनुष्य अपना पाप धो डालनेके लिये अपना कर्म परमेश्वरको अर्पित कर देता है और 'वेदकी आज्ञाके अनुसार मुझे प्रतिदिन वही वेदनिर्दिष्ट कर्म अवश्य करना चाहिये'—ऐसा मनमें निश्चित करके [सेव्य-सेवक]-की भेदबुद्धिका आश्रय लेकर मेरी प्रसन्नताके लिये कर्म करता है; उस मनुष्यकी वह भक्ति सात्त्विकी होती है॥ ८-९॥

[सेव्य-सेवककी] भेदबुद्धिका सहारा लेकर की गयी यह सात्त्विकी भक्ति पराभक्तिकी प्राप्ति करानेवाली सिद्ध होती है। पूर्वमें कही गयी तामसी और राजसी—दोनों भक्तियाँ पराभक्तिकी प्राप्तिका साधन नहीं मानी गयी हैं॥ १०॥

अब मैं पराभक्तिका वर्णन कर रही हूँ, आप उसे सुनिये—नित्य मेरे गुणोंका श्रवण और मेरे नामका संकीर्तन करना, कल्याण एवं गुणस्वरूप रत्नोंकी भण्डार मुझ भगवतीमें तैलधाराकी भाँति अपना चित्त सर्वदा लगाये रखना, किसी प्रकारकी हेतुभावना कभी नहीं होने देना, सामीप्य; सार्ष्टि; सायुज्य और सालोक्य मुक्तियोंकी कामना न होना—इन गुणोंसे युक्त जो भक्त मेरी सेवासे बढ़कर किसी भी वस्तुको कभी श्रेष्ठ नहीं समझता और सेव्य-सेवककी उत्कृष्ट भावनाके कारण मोक्षकी भी आकांक्षा नहीं रखता, परम भक्तिके साथ सावधान होकर जो मेरा ही ध्यान करता रहता है, मुझमें तथा अपनेमें भेदबुद्धि छोड़कर अभेदबुद्धि रखते हुए मुझे नित्य जानता है, सभी जीवोंमें मेरे ही रूपका चिन्तन करता है, जैसी प्रीति अपने प्रति होती है; वैसी ही दूसरोंमें भी रखता है, चैतन्यपरब्रह्मकी समानरूपसे सर्वत्र व्याप्ति समझकर किसीमें भी भेद नहीं करता, हे राजन्! सर्वत्र विद्यमान् सभी प्राणियोंमें मुझ सर्वरूपिणीको विराजमान जानकर मेरा नमन तथा पूजन करता है, चाण्डालतकमें मेरी ही भावना करता

मत्स्थानदर्शने श्रद्धा मद्भक्तदर्शने तथा।
मच्छास्त्रश्रवणे श्रद्धा मन्त्रतन्त्रादिषु प्रभो॥ १९

मयि प्रेमाकुलमती रोमाञ्चिततनुः सदा।
प्रेमाश्रुजलपूर्णाक्षः कण्ठगद्गदनिःस्वनः॥ २०

अनन्येनैव भावेन पूजयेद्यो नगाधिप।
मामीश्वरीं जगद्योनिं सर्वकारणकारणम्॥ २१

व्रतानि मम दिव्यानि नित्यनैमित्तिकान्यपि।
नित्यं यः कुरुते भक्त्या वित्तशाठ्यविवर्जितः॥ २२

मदुत्सवदिदृक्षा च मदुत्सवकृतिस्तथा।
जायते यस्य नियतं स्वभावादेव भूधर॥ २३

उच्चैर्गायंश्च नामानि ममैव खलु नृत्यति।
अहङ्कारादिरहितो देहतादात्म्यवर्जितः॥ २४

प्रारब्धेन यथा यच्च क्रियते तत्तथा भवेत्।
न मे चिन्तास्ति तत्रापि देहसंरक्षणादिषु॥ २५

इति भक्तिस्तु या प्रोक्ता परभक्तिस्तु सा स्मृता।
यस्यां देव्यतिरिक्तं तु न किञ्चिदपि भाव्यते॥ २६

इत्थं जाता परा भक्तिर्यस्य भूधर तत्त्वतः।
तदैव तस्य चिन्मात्रे मद्रूपे विलयो भवेत्॥ २७

भक्तेस्तु या पराकाष्ठा सैव ज्ञानं प्रकीर्तितम्।
वैराग्यस्य च सीमा सा ज्ञाने तदुभयं यतः॥ २८

भक्तौ कृतायां यस्यापि प्रारब्धवशतो नग।
न जायते मम ज्ञानं मणिद्वीपं स गच्छति॥ २९

तत्र गत्वाखिलान्भोगाननिच्छन्नपि चर्च्छति।
तदन्ते मम चिद्रूपज्ञानं सम्यग्भवेन्नग॥ ३०

है और भेदका परित्याग करके किसीसे भी द्रोहभाव नहीं रखता, हे प्रभो! जो मेरे स्थानोंके दर्शन, मेरे भक्तोंके दर्शन, मेरे शास्त्रोंके श्रवण तथा मेरे तन्त्र-मन्त्रों आदिमें श्रद्धा रखता है, हे पर्वतराज! जो मेरे प्रति प्रेमसे आकुल चित्तवाला, मेरा निरन्तर चिन्तन करते हुए पुलकित शरीरवाला, प्रेमके आँसुओंसे परिपूर्ण नेत्रोंवाला तथा कंठ गद्गद होनेसे अवरुद्ध वाणीवाला होकर जगत्को उत्पन्न करनेवाली तथा सभी कारणोंकी कारण मुझ परमेश्वरीका अनन्य भावसे पूजन करता है, जो मेरे नित्य तथा नैमित्तिक सभी दिव्य व्रतोंको धनकी कृपणतासे रहित होकर भक्तिपूर्वक नित्य करता है, हे भूधर! जो स्वभावसे ही मेरा उत्सव देखनेकी अभिलाषा रखता है तथा मेरा उत्सव आयोजित करता है तथा जो अहंकार आदिसे रहित तथा देहभावनासे विहीन होकर ऊँचे स्वरसे मेरे नामोंका ही कीर्तन करते हुए नृत्य करता है और प्रारब्धके द्वारा जैसा जो किया जाता है, वह वैसा ही होता है, इसलिये अपने शरीरकी रक्षा आदि करनेकी भी कोई चिन्ता नहीं करता है, ऐसे पुरुषोंकी जो भक्ति कही गयी, वह पराभक्तिके नामसे विख्यात है, जिसमें देवीको छोड़कर अन्य किसीकी भी भावना नहीं की जाती॥ ११—२६॥

हे भूधर! इस प्रकारकी पराभक्ति जिसके हृदयमें उत्पन्न हो जाती है, उसका उसी क्षण मेरे चिन्मयरूपमें विलय हो जाता है॥ २७॥

भक्तिकी जो पराकाष्ठा है, उसीको ज्ञान कहा गया है और वही वैराग्यकी सीमा भी है; क्योंकि ज्ञान प्राप्त हो जानेपर भक्ति और वैराग्य—ये दोनों ही स्वयं सिद्ध हो जाते हैं॥ २८॥

हे नग! मेरी भक्ति करनेपर भी जिसे प्रारब्धवश मेरा ज्ञान नहीं हो पाता है, वह मेरे धाम 'मणिद्वीप'में जाता है। वहाँ जाकर समस्त प्रकारके भोगोंमें अनासक्त होता हुआ वह अपना समय व्यतीत करता है। हे नग! अन्तमें उसे मेरे चिन्मयरूपका सम्यक् ज्ञान हो

तेन मुक्तः सदैव स्याज्ज्ञानान्मुक्तिर्न चान्यथा।
इहैव यस्य ज्ञानं स्याद्धृद्गतप्रत्यगात्मनः॥ ३१

मम संवित्परतनोस्तस्य प्राणा व्रजन्ति न।
ब्रह्मैव संस्तदाप्नोति ब्रह्मैव ब्रह्म वेद यः॥ ३२

कण्ठचामीकरसममज्ञानात्तु तिरोहितम्।
ज्ञानादज्ञाननाशेन लब्धमेव हि लभ्यते॥ ३३

विदिताविदितादन्यन्नगोत्तम वपुर्मम।
यथादर्शे तथात्मनि यथा जले तथा पितृलोके॥ ३४

छायातपौ यथा स्वच्छौ विविक्तौ तद्वदेव हि।
मम लोके भवेज्ज्ञानं द्वैतभावविवर्जितम्॥ ३५

यस्तु वैराग्यवानेव ज्ञानहीनो म्रियेत चेत्।
ब्रह्मलोके वसेन्नित्यं यावत्कल्पं ततः परम्॥ ३६

शुचीनां श्रीमतां गेहे भवेत्तस्य जनिः पुनः।
करोति साधनं पश्चात्ततो ज्ञानं हि जायते॥ ३७

अनेकजन्मभी राजन् ज्ञानं स्यान्नैकजन्मना।
ततः सर्वप्रयत्नेन ज्ञानार्थं यत्नमाश्रयेत्॥ ३८

नोचेन्महान् विनाशः स्याज्जन्मैतद्दुर्लभं पुनः।
तत्रापि प्रथमे वर्णे वेदप्राप्तिश्च दुर्लभा॥ ३९

शमादिषट्कसम्पत्तिर्योगसिद्धिस्तथैव च।
तथोत्तमगुरुप्राप्तिः सर्वमेवात्र दुर्लभम्॥ ४०

तथेन्द्रियाणां पटुता संस्कृतत्वं तनोस्तथा।
अनेकजन्मपुण्यैस्तु मोक्षेच्छा जायते ततः॥ ४१

जाता है। उस ज्ञानके प्रभावसे वह सदाके लिये मुक्त हो जाता है; क्योंकि ज्ञानसे ही मुक्ति होती है; इसमें सन्देह नहीं है। इस लोकमें जिस व्यक्तिको हृदयमें स्थित प्रत्यगात्माका स्वरूपावबोध हो जाता है, मेरे ज्ञानपरायण उस भक्तके प्राण उत्क्रमण नहीं करते अर्थात् इस शरीरमें ही प्राणोंका लय हो जाता है। जो मनुष्य ब्रह्मको जान लेता है, वह स्वयं ब्रह्मका ही रूप होकर उसी ब्रह्मको ही प्राप्त हो जाता है॥ २९—३२॥

जैसे कंठमें स्थित सोनेका हार भ्रमवश खो गयेके समान प्रतीत होने लगता है, किंतु भ्रमका नाश होते ही वह प्राप्त हो जाता है, जबकि वह मिला हुआ पहलेसे ही था। हे पर्वतश्रेष्ठ! मेरा स्वरूप ज्ञात और अज्ञातसे विलक्षण है। जैसे दर्पणपर परछाहीं पड़ती है, वैसे ही इस शरीरमें आत्माकी परछाहींका अनुभव होता है। जैसे जलमें प्रतिबिम्ब पड़ता है, वैसे ही पितृलोकमें अनुभव होता है। छाया और प्रकाश जैसे स्पष्टतः भिन्न दीखते हैं, वैसे ही मेरे लोकमें द्वैतभावसे रहित ज्ञानकी प्राप्ति होती है॥ ३३—३५॥

यदि मनुष्य वैराग्ययुक्त होकर पूर्ण ज्ञानके बिना मृत्युको प्राप्त हो जाय तो एक कल्पतक निरन्तर ब्रह्मलोकमें निवास करता है। उसके बाद पवित्र श्रीमान् पुरुषोंके घरमें उसका जन्म होता है। वहाँपर वह साधना करता है और फिर उसमें ज्ञानका उदय होता है॥ ३६-३७॥

हे राजन्! एक जन्ममें मनुष्यको ज्ञान नहीं होता, अपितु अनेक जन्मोंमें ज्ञानका आविर्भाव होता है। अतः पूर्ण प्रयत्नके साथ ज्ञानप्राप्तिके लिये उपायका आश्रय लेना चाहिये, अन्यथा महान् अनर्थ होता है; क्योंकि यह मनुष्य-जन्म अत्यन्त दुर्लभ है, उसमें भी ब्राह्मणवर्णमें और उसमें भी वेदज्ञानकी प्राप्ति होना महान् दुर्लभ है। साथ ही शम, दम आदि छः सम्पदाएँ, योगसिद्धि तथा उत्तम गुरुकी प्राप्ति— यह सब इस लोकमें दुर्लभ है। अनेक जन्मोंके पुण्योंसे इन्द्रियोंमें सदा कार्य करते रहनेकी क्षमता, शरीरका संस्कारसम्पन्न रहना तथा मोक्षकी अभिलाषा

साधने सफलेऽप्येवं जायमानेऽपि यो नरः।
ज्ञानार्थं नैव यतते तस्य जन्म निरर्थकम्॥ ४२

उत्पन्न होती है। जो मनुष्य इस प्रकारके सफल साधनसे युक्त रहनेपर भी ज्ञानके लिये प्रयत्न नहीं करता, उसका जन्म निरर्थक है॥ ३८—४२॥

तस्माद्राजन् यथाशक्त्या ज्ञानार्थं यत्नमाश्रयेत्।
पदे पदेऽश्वमेधस्य फलमाप्नोति निश्चितम्॥ ४३

घृतमिव पयसि निगूढं भूते भूते च वसति विज्ञानम्।
सततं मन्थयितव्यं मनसा मन्थानभूतेन॥ ४४

ज्ञानं लब्ध्वा कृतार्थः स्यादिति वेदान्तडिण्डिमः।
सर्वमुक्तं समासेन किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ ४५

अतएव हे राजन्! मनुष्यको यथाशक्ति ज्ञानप्राप्तिके लिये प्रयत्नशील रहना चाहिये। उससे मनुष्य एक-एक पदपर अश्वमेधयज्ञका फल निश्चितरूपसे प्राप्त करता है। दूधमें छिपे हुए घृतकी भाँति प्रत्येक प्राणीमें विज्ञान रहता है। उसे मनरूपी मथानीसे निरन्तर मथते रहना चाहिये और इस प्रकार उस विज्ञानको प्राप्त करके कृतार्थ हो जाना चाहिये—ऐसा वेदान्तका डिंडिमघोष है। [हे पर्वतराज हिमालय!] मैंने आपको सब कुछ संक्षेपमें बता दिया, अब आप पुनः क्या सुनना चाहते हैं?॥ ४३—४५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे देवीगीतायां भक्तिमहिमवर्णनं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः॥ ३७॥



अथाष्टत्रिंशोऽध्यायः

भगवतीके द्वारा देवीतीर्थों, व्रतों तथा उत्सवोंका वर्णन

हिमालय उवाच

कति स्थानानि देवेशि द्रष्टव्यानि महीतले।
मुख्यानि च पवित्राणि देवीप्रियतमानि च॥ १

व्रतान्यपि तथा यानि तुष्टिदान्युत्सवा अपि।
तत्सर्वं वद मे मातः कृतकृत्यो यतो नरः॥ २

हिमालय बोले—हे देवेश्वरि! इस पृथ्वीतलपर कौन-कौनसे पवित्र, मुख्य, दर्शनीय तथा आप भगवतीके लिये अत्यन्त प्रिय स्थान हैं? हे माता! आपको सन्तुष्ट करनेवाले जो-जो व्रत तथा उत्सव हों, उन सबको भी मुझे बताइये, जिससे मुझ-जैसा प्राणी कृतकृत्य हो जाय॥ १-२॥

देव्युवाच

सर्वं दृश्यं मम स्थानं सर्वे काला व्रतात्मकाः।
उत्सवाः सर्वकालेषु यतोऽहं सर्वरूपिणी॥ ३

तथापि भक्तवात्सल्यात्किञ्चित्किञ्चिदथोच्यते।
शृणुष्वावहितो भूत्वा नगराज वचो मम॥ ४

देवी बोलीं—दृष्टिगोचर होनेवाले सभी स्थान मेरे अपने हैं, सभी काल व्रतयोग्य हैं तथा सभी समयोंमें मेरे उत्सव मनाये जा सकते हैं; क्योंकि मैं सर्वरूपिणी हूँ। फिर भी हे पर्वतराज! भक्तवात्सल्यके कारण मैं कतिपय स्थानोंको बता रही हूँ, आप सावधान होकर मेरा वचन सुनिये॥ ३-४॥

कोलापुरं महास्थानं यत्र लक्ष्मीः सदा स्थिता।
मातुःपुरं द्वितीयं च रेणुकाधिष्ठितं परम्॥ ५

कोलापुर एक अत्यन्त श्रेष्ठ स्थान है, जहाँ लक्ष्मी सदा निवास करती हैं। मातृपुर दूसरा परम स्थान है, जहाँ भगवती रेणुका विराजमान हैं॥ ५॥

तुलजापुरं तृतीयं स्यात्सप्तशृङ्गं तथैव च।
हिङ्गुलाया महास्थानं ज्वालामुख्यास्तथैव च॥ ६

शाकम्भर्याः परं स्थानं भ्रामर्याः स्थानमुत्तमम्।
श्रीरक्तदन्तिकास्थानं दुर्गास्थानं तथैव च॥ ७

विन्ध्याचलनिवासिन्याः स्थानं सर्वोत्तमोत्तमम्।
अन्नपूर्णामहास्थानं काञ्चीपुरमनुत्तमम्॥ ८

भीमादेव्याः परं स्थानं विमलास्थानमेव च।
श्रीचन्द्रलामहास्थानं कौशिकीस्थानमेव च॥ ९

नीलाम्बायाः परं स्थानं नीलपर्वतमस्तके।
जाम्बूनदेश्वरीस्थानं तथा श्रीनगरं शुभम्॥ १०

गुह्यकाल्या महास्थानं नेपाले यत्प्रतिष्ठितम्।
मीनाक्ष्याः परमं स्थानं यच्च प्रोक्तं चिदम्बरे॥ ११

वेदारण्यं महास्थानं सुन्दर्याः समधिष्ठितम्।
एकाम्बरं महास्थानं परशक्त्या प्रतिष्ठितम्॥ १२

महालसा परं स्थानं योगेश्वर्यास्तथैव च।
तथा नीलसरस्वत्याः स्थानं चीनेषु विश्रुतम्॥ १३

वैद्यनाथे तु बगलास्थानं सर्वोत्तमं मतम्।
श्रीमच्छ्रीभुवनेश्वर्या मणिद्वीपं मम स्मृतम्॥ १४

श्रीमत्त्रिपुरभैरव्याः कामाख्यायोनिमण्डलम्।
भूमण्डले क्षेत्ररत्नं महामायाधिवासितम्॥ १५

नातः परतरं स्थानं क्वचिदस्ति धरातले।
प्रतिमासं भवेद्देवी यत्र साक्षाद्रजस्वला॥ १६

तत्रत्या देवताः सर्वाः पर्वतात्मकतां गताः।
पर्वतेषु वसन्त्येव महत्यो देवता अपि॥ १७

तत्रत्या पृथिवी सर्वा देवीरूपा स्मृता बुधैः।
नातः परतरं स्थानं कामाख्यायोनिमण्डलात्॥ १८

गायत्र्याश्च परं स्थानं श्रीमत्पुष्करमीरितम्।
अमरेशे चण्डिका स्यात्प्रभासे पुष्करेक्षिणी॥ १९

तीसरा स्थान तुलजापुर है। इसी प्रकार सप्तशृंग भी एक स्थान है। हिंगुला, ज्वालामुखी, शाकम्भरी, भ्रामरी, रक्तदन्तिका और दुर्गा—इन देवियोंके उत्तम स्थान इन्हींके नामोंसे विख्यात हैं॥ ६-७॥

भगवती विन्ध्यवासिनीका स्थान [विन्ध्यपर्वत] सर्वोत्कृष्ट है। देवी अन्नपूर्णाका परम स्थान श्रेष्ठ कांचीपुर है। भगवती भीमा, विमला, श्रीचन्द्रला और कौशिकीके महास्थान इन्हींके नामोंसे प्रसिद्ध हैं॥ ८-९॥

भगवती नीलाम्बाका परम स्थान नीलपर्वतके शिखरपर है और देवी जाम्बूनदेश्वरीका पवित्र स्थान श्रीनगरमें है। भगवती गुह्यकालीका महान् स्थान है, जो नेपालमें प्रतिष्ठित है और देवी मीनाक्षीका श्रेष्ठ स्थान है, जो चिदम्बरमें स्थित बताया गया है॥ १०-११॥

भगवती सुन्दरीका महान् स्थान वेदारण्यमें अधिष्ठित है और भगवती पराशक्तिका महास्थान एकाम्बरमें स्थित है। भगवती महालसा और इसी प्रकार देवी योगेश्वरीके महान् स्थान इन्हींके नामोंसे विख्यात हैं। भगवती नीलसरस्वतीका स्थान चीन देशमें स्थित कहा गया है॥ १२-१३॥

भगवती बगलाका सर्वोत्तम स्थान वैद्यनाथधाममें स्थित माना गया है। मुझ श्रीमत्-श्रीभुवनेश्वरीका स्थान मणिद्वीप बताया गया है। श्रीमत्त्रिपुरभैरवीका महान् स्थान कामाख्यायोनिमण्डल है, यह भूमण्डलपर क्षेत्ररत्नस्वरूप है तथा महामायाद्वारा अधिवासित क्षेत्र है॥ १४-१५॥

धरातलपर इससे बढ़कर श्रेष्ठ स्थान कहीं नहीं है, यहाँ भगवती प्रत्येक माहमें साक्षात् रजस्वला हुआ करती हैं। उस समय वहाँके सभी देवता पर्वतस्वरूप हो जाते हैं और अन्य महान् देवता भी वहाँ पर्वतोंपर निवास करते हैं। विद्वान् पुरुषोंने वहाँकी सम्पूर्ण भूमिको देवीरूप कहा है। इस कामाख्यायोनिमण्डलसे बढ़कर श्रेष्ठ स्थान कोई नहीं है॥ १६—१८॥

ऐश्वर्यमय पुष्करक्षेत्र भगवती गायत्रीका उत्तम स्थान कहा गया है। अमरेशमें चण्डिका तथा प्रभासमें भगवती पुष्करेक्षिणी विराजमान हैं।

नैमिषे तु महास्थाने देवी सा लिङ्गधारिणी।
पुरुहूता पुष्कराक्षे आषाढौ च रतिस्तथा॥ २०

चण्डमुण्डी महास्थाने दण्डिनी परमेश्वरी।
भारभूतौ भवेद्भूतिर्नाकुले नकुलेश्वरी॥ २१

चन्द्रिका तु हरिश्चन्द्रे श्रीगिरौ शाङ्करी स्मृता।
जप्येश्वरे त्रिशूला स्यात्सूक्ष्मा चाम्रातकेश्वरे॥ २२

शाङ्करी तु महाकाले शर्वाणी मध्यमाभिधे।
केदाराख्ये महाक्षेत्रे देवी सा मार्गदायिनी॥ २३

भैरवाख्ये भैरवी सा गयायां मङ्गला स्मृता।
स्थाणुप्रिया कुरुक्षेत्रे स्वायम्भुव्यपि नाकुले॥ २४

कनखले भवेदुग्रा विश्वेशा विमलेश्वरे।
अट्टहासे महानन्दा महेन्द्रे तु महान्तका॥ २५

भीमे भीमेश्वरी प्रोक्ता स्थाने वस्त्रापथे पुनः।
भवानी शाङ्करी प्रोक्ता रुद्राणी त्वर्धकोटिके॥ २६

अविमुक्ते विशालाक्षी महाभागा महालये।
गोकर्णे भद्रकर्णी स्याद्भद्रा स्याद्भद्रकर्णके॥ २७

उत्पलाक्षी सुवर्णाक्षे स्थाण्वीशा स्थाणुसंज्ञके।
कमलालये तु कमला प्रचण्डा छगलण्डके॥ २८

कुरण्डले त्रिसन्ध्या स्यान्माकोटे मुकुटेश्वरी।
मण्डलेशे शाण्डकी स्यात्काली कालञ्जरे पुनः॥ २९

शङ्कुकर्णे ध्वनिः प्रोक्ता स्थूला स्यात्स्थूलकेश्वरे।
ज्ञानिनां हृदयाम्भोजे हृल्लेखा परमेश्वरी॥ ३०

प्रोक्तानीमानि स्थानानि देव्याः प्रियतमानि च।
तत्तत्क्षेत्रस्य माहात्म्यं श्रुत्वा पूर्वं नगोत्तम॥ ३१

महास्थान नैमिषारण्यमें लिंगधारिणी विराजमान हैं। पुष्कराक्षमें देवी पुरुहूता और आषाढीमें भगवती रति प्रतिष्ठित हैं॥ १९-२०॥

चण्डमुण्डी नामक महान् स्थानमें परमेश्वरी दण्डिनी और भारभूतिमें देवी भूति तथा नाकुलमें देवी नकुलेश्वरी विराजमान हैं। हरिश्चन्द्र नामक स्थानमें भगवती चन्द्रिका और श्रीगिरिपर शांकरी प्रतिष्ठित कही गयी हैं। जप्येश्वर स्थानमें त्रिशूला और आम्रातकेश्वरमें देवी सूक्ष्मा हैं॥ २१-२२॥

महाकालक्षेत्रमें शांकरी, मध्यम नामक स्थानमें शर्वाणी और केदार नामक महान् क्षेत्रमें वे भगवती मार्गदायिनी अधिष्ठित हैं। भैरव नामक स्थानमें भगवती भैरवी और गयामें भगवती मंगला प्रतिष्ठित कही गयी हैं। कुरुक्षेत्रमें देवी स्थाणुप्रिया और नाकुलमें भगवती स्वायम्भुवीका स्थान है॥ २३-२४॥

कनखलमें भगवती उग्रा, विमलेश्वरमें विश्वेशा, अट्टहासमें महानन्दा और महेन्द्रपर्वतपर देवी महान्तका विराजमान हैं। भीमपर्वतपर भगवती भीमेश्वरी, वस्त्रापथ नामक स्थानमें भवानी शांकरी और अर्धकोटिपर्वतपर भगवती रुद्राणी प्रतिष्ठित कही गयी हैं॥ २५-२६॥

अविमुक्तक्षेत्र (काशी)-में भगवती विशालाक्षी, महालय क्षेत्रमें महाभागा, गोकर्णमें भद्रकर्णी और भद्रकर्णकमें देवी भद्रा विराजमान हैं। सुवर्णाक्ष नामक स्थानमें भगवती उत्पलाक्षी, स्थाणुसंज्ञक स्थानमें देवी स्थाण्वीशा, कमलालयमें कमला, छगलण्डकमें प्रचण्डा, कुरण्डलमें त्रिसन्ध्या, माकोटमें मुकुटेश्वरी, मण्डलेशमें शाण्डकी और कालंजरपर्वतपर काली प्रतिष्ठित हैं। शंकुकर्णपर्वतपर भगवती ध्वनि विराजमान बतायी गयी हैं। स्थूलकेश्वरपर भगवती स्थूला हैं। परमेश्वरी हृल्लेखा ज्ञानियोंके हृदयकमलमें विराजमान रहती हैं॥ २७—३०॥

बताये गये ये स्थान देवीके लिये अत्यन्त प्रिय हैं। हे पर्वतराज! पहले उन क्षेत्रोंका माहात्म्य

तदुक्तेन विधानेन पश्चाद्देवीं प्रपूजयेत्।
अथवा सर्वक्षेत्राणि काश्यां सन्ति नगोत्तम॥ ३२

अतस्तत्र वसेन्नित्यं देवीभक्तिपरायणः।
तानि स्थानानि सम्पश्यञ्जपन्देवीं निरन्तरम्॥ ३३

ध्यायंस्तच्चरणाम्भोजं मुक्तो भवति बन्धनात्।
इमानि देवीनामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत्॥ ३४

भस्मीभवन्ति पापानि तत्क्षणान्नग सत्वरम्।
श्राद्धकाले पठेदेतान्यमलानि द्विजाग्रतः॥ ३५

मुक्तास्तत्पितरः सर्वे प्रयान्ति परमां गतिम्।
अधुना कथयिष्यामि व्रतानि तव सुव्रत॥ ३६

नारीभिश्च नरैश्चैव कर्तव्यानि प्रयत्नतः।
व्रतमनन्ततृतीयाख्यं रसकल्याणिनीव्रतम्॥ ३७

आर्द्रानन्दकरं नाम्ना तृतीयाया व्रतं च यत्।
शुक्रवारव्रतं चैव तथा कृष्णचतुर्दशी॥ ३८

भौमवारव्रतं चैव प्रदोषव्रतमेव च।
यत्र देवो महादेवो देवीं संस्थाप्य विष्टरे॥ ३९

नृत्यं करोति पुरतः सार्धं देवैर्निशामुखे।
तत्रोपोष्य रजन्यादौ प्रदोषे पूजयेच्छिवाम्॥ ४०

प्रतिपक्षं विशेषेण तद्देवीप्रीतिकारकम्।
सोमवारव्रतं चैव ममातिप्रियकृन्नग॥ ४१

तत्रापि देवीं सम्पूज्य रात्रौ भोजनमाचरेत्।
नवरात्रद्वयं चैव व्रतं प्रीतिकरं मम॥ ४२

एवमन्यान्यपि विभो नित्यनैमित्तिकानि च।
व्रतानि कुरुते यो वै मत्प्रीत्यर्थं विमत्सरः॥ ४३

सुनकर तत्पश्चात् शास्त्रोक्त विधिसे भगवतीकी पूजा करनी चाहिये अथवा हे नगश्रेष्ठ! ये सभी क्षेत्र काशीमें भी स्थित हैं, इसलिये देवीकी भक्तिमें तत्पर रहनेवाले मनुष्यको निरन्तर वहाँ रहना चाहिये। वहाँ रहकर उन स्थानोंका दर्शन, भगवतीके मन्त्रोंका निरन्तर जप और उनके चरणकमलका नित्य ध्यान करनेवाला मनुष्य भवबन्धनसे मुक्त हो जाता है॥ ३१—३३½ ॥

हे नग! जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर भगवतीके इन नामोंका पाठ करता है, उसके समस्त पाप उसी क्षण शीघ्र ही भस्म हो जाते हैं। जो व्यक्ति श्राद्धके समय ब्राह्मणोंके समक्ष इन पवित्र नामोंका पाठ करता है, उसके सभी पितर मुक्त होकर परम गतिको प्राप्त हो जाते हैं॥ ३४-३५½ ॥

हे सुव्रत! अब मैं देवीके व्रतोंके विषयमें आपको बताऊँगा। सभी स्त्रियों और पुरुषोंको ये व्रत प्रयत्नपूर्वक करने चाहिये॥ ३६½ ॥

व्रतोंमें जो तृतीयाके व्रत हैं; वे अनन्ततृतीया, रसकल्याणिनी और आर्द्रानन्दकर नामसे प्रसिद्ध हैं। शुक्रवार, कृष्णचतुर्दशी तथा भौमवारको देवीका व्रत किया जाता है। प्रदोष भी देवीव्रत है; उस दिन देवाधिदेव भगवान् शिव सायंकालके समय देवी पार्वतीको कुशासनपर विराजमान करके उनके समक्ष देवताओंके साथ नृत्य करते हैं। उस दिन उपवास करके सायंकालके प्रदोषमें भगवती शिवाकी पूजा करनी चाहिये। देवीको विशेषरूपसे सन्तुष्ट करनेवाला यह प्रदोष प्रत्येक पक्षमें करना चाहिये॥ ३७—४०½ ॥

हे पर्वत! सोमवारका व्रत मुझे अत्यधिक सन्तुष्ट करनेवाला है। इस व्रतमें भी [उपवास करके] भगवतीकी पूजाकर रातमें भोजन करना चाहिये। इसी प्रकार चैत्र और आश्विन महीनोंके दोनों नवरात्रव्रत मेरे लिये अत्यन्त प्रियकर हैं॥ ४१-४२॥

हे विभो! इसी प्रकार और भी नित्य तथा नैमित्तिक व्रत हैं। जो मनुष्य राग-द्वेषसे रहित होकर मेरी प्रसन्नताके लिये इन व्रतोंको करता है, वह मेरा

प्राप्नोति मम सायुज्यं स मे भक्तः स मे प्रियः।
उत्सवानपि कुर्वीत दोलोत्सवमुखान्विभो॥ ४४

शयनोत्सवं तथा कुर्यात्तथा जागरणोत्सवम्।
रथोत्सवं च मे कुर्याद्दमनोत्सवमेव च॥ ४५

पवित्रोत्सवमेवापि श्रावणे प्रीतिकारकम्।
मम भक्तः सदा कुर्यादेवमन्यान्महोत्सवान्॥ ४६

मद्भक्तान्भोजयेत्प्रीत्या तथा चैव सुवासिनीः।
कुमारीर्वटुकांश्चापि मद्बुद्ध्या तद्गतान्तरः॥ ४७
वित्तशाठ्येन रहितो यजेदेतान्सुमादिभिः।

य एवं कुरुते भक्त्या प्रतिवर्षमतन्द्रितः॥ ४८

स धन्यः कृतकृत्योऽसौ मत्प्रीतेः पात्रमञ्जसा।
सर्वमुक्तं समासेन मम प्रीतिप्रदायकम्।
नाशिष्याय प्रदातव्यं नाभक्ताय कदाचन॥ ४९

सायुज्यपद प्राप्त कर लेता है। वह मेरा भक्त है और मुझे अतिप्रिय है। हे विभो! व्रतोंके अवसरपर झूला सजाकर उत्सव मनाना चाहिये। मेरा शयनोत्सव, जागरणोत्सव, रथोत्सव और दमनोत्सव आयोजित करना चाहिये॥ ४३—४५॥

श्रावण महीनेमें होनेवाला पवित्रोत्सव भी मेरे लिये प्रीतिकारक है। मेरे भक्तको चाहिये कि वह इसी तरहसे अन्य महोत्सवोंको भी सदा मनाये। उन अवसरोंपर मेरे भक्तों, सुवासिनी स्त्रियों, कुमारी कन्याओं और बटुकोंको मेरा ही स्वरूप समझकर उनमें मन स्थित करके उन्हें प्रेमपूर्वक भोजन कराना चाहिये, साथ ही धनकी कृपणतासे रहित होकर पुष्प आदिसे इनकी पूजा करनी चाहिये॥ ४६-४७½॥

जो मनुष्य सावधान होकर भक्तिपूर्वक प्रत्येक वर्ष ऐसा करता है, वह धन्य तथा कृतकृत्य है और वह शीघ्र ही मेरा प्रियपात्र बन जाता है। मुझे प्रसन्नता प्रदान करनेवाला यह सब प्रसंग मैंने संक्षेपमें आपसे कह दिया। उपदेश न माननेवाले तथा मुझमें भक्ति न रखनेवाले मनुष्यके समक्ष इसे कभी भी प्रकाशित नहीं करना चाहिये॥ ४८-४९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे देवीगीतायां श्रीदेव्या महोत्सवव्रतस्थानवर्णनं नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः॥ ३८॥



अथैकोनचत्वारिंशोऽध्याय

देवी-पूजनके विविध प्रकारोंका वर्णन

हिमालय उवाच

देवदेवि महेशानि करुणासागरेऽम्बिके।
ब्रूहि पूजाविधिं सम्यग्यथावदधुना निजम्॥ १

श्रीदेव्युवाच

वक्ष्ये पूजाविधिं राजन्नम्बिकाया यथाप्रियम्।
अत्यन्तश्रद्धया सार्धं शृणु पर्वतपुङ्गव॥ २

हिमालय बोले—हे देवेश्वरि! हे महेश्वरि! हे करुणासागरे! हे अम्बिके! अब आप यथार्थरूपसे अपने पूजनकी विधिको भलीभाँति बतलाइये॥ १॥

श्रीदेवी बोलीं—हे राजन्! हे पर्वतश्रेष्ठ! मैं यथार्थरूपमें जगदम्बाको प्रसन्न करनेवाली पूजाविधि बता रही हूँ, महती श्रद्धाके साथ आप इसे सुनिये॥ २॥

द्विविधा मम पूजा स्याद् बाह्या चाभ्यन्तरापि च।
बाह्यापि द्विविधा प्रोक्ता वैदिकी तान्त्रिकी तथा॥ ३

वैदिक्यर्चापि द्विविधा मूर्तिभेदेन भूधर।
वैदिकी वैदिकैः कार्या वेददीक्षासमन्वितैः॥ ४

तन्त्रोक्तदीक्षावद्भिस्तु तान्त्रिकी संश्रिता भवेत्।
इत्थं पूजारहस्यं च न ज्ञात्वा विपरीतकम्॥ ५

करोति यो नरो मूढः स पतत्येव सर्वथा।
तत्र या वैदिकी प्रोक्ता प्रथमा तां वदाम्यहम्॥ ६

यन्मे साक्षात्परं रूपं दृष्टवानसि भूधर।
अनन्तशीर्षनयनमनन्तचरणं महत्॥ ७

सर्वशक्तिसमायुक्तं प्रेरकं यत्परात्परम्।
तदेव पूजयेन्नित्यं नमेद् ध्यायेत्स्मरेदपि॥ ८

इत्येतत्प्रथमार्चायाः स्वरूपं कथितं नग।
शान्तः समाहितमना दम्भाहङ्कारवर्जितः॥ ९

तत्परो भव तद्याजी तदेव शरणं व्रज।
तदेव चेतसा पश्य जप ध्यायस्व सर्वदा॥ १०

अनन्यया प्रेमयुक्तभक्त्या मद्भावमाश्रितः।
यज्ञैर्यज तपोदानैर्मामेव परितोषय॥ ११

इत्थं ममानुग्रहतो मोक्ष्यसे भवबन्धनात्।
मत्परा ये मदासक्तचित्ता भक्तवरा मताः॥ १२

प्रतिजाने भवादस्मादुद्धराम्यचिरेण तु।
ध्यानेन कर्मयुक्तेन भक्तिज्ञानेन वा पुनः॥ १३

प्राप्याहं सर्वथा राजन्न तु केवलकर्मभिः।

मेरी पूजा दो प्रकारकी है—बाह्य और आभ्यन्तर। बाह्य पूजा भी वैदिकी और तान्त्रिकी—दो प्रकारकी कही गयी है॥ ३॥

हे भूधर! वैदिकी पूजा भी मूर्तिभेदसे दो प्रकारकी होती है। वेददीक्षासे सम्पन्न वैदिकोंद्वारा वैदिकी पूजा की जानी चाहिये और तन्त्रोक्त दीक्षासे युक्त पुरुषोंके द्वारा तान्त्रिकी पूजा की जानी चाहिये। इस प्रकार पूजाके रहस्यको न समझकर जो अज्ञानी मनुष्य इसके विपरीत करता है, उसका सर्वथा अध:पतन हो जाता है॥ ४-५½॥

उसमें जो पहली वैदिकी पूजा कही गयी है, उसे मैं बता रही हूँ, हे भूधर! तुम अनन्त मस्तक, नेत्र तथा चरणवाले मेरे जिस महान् रूपका साक्षात् दर्शन कर चुके हो और जो समस्त शक्तियोंसे सम्पन्न, प्रेरणा प्रदान करनेवाला तथा परात्पर है; उसी रूपका नित्य पूजन, नमन, ध्यान तथा स्मरण करना चाहिये। हे नग! मेरी प्रथम पूजाका यही स्वरूप बताया गया है। आप शान्त होकर समाहित मनसे और दम्भ तथा अहंकारसे रहित होकर उसके परायण होइये, उसीका यजन कीजिये, उसीकी शरणमें जाइये और चित्तसे सदा उसीका दर्शन-जप-ध्यान कीजिये॥ ६—१०॥

अनन्य एवं प्रेमपूर्ण भक्तिसे मेरे उपासक बनकर यज्ञोंके द्वारा मेरी पूजा कीजिये और तपस्या तथा दानके द्वारा मुझे पूर्णरूपसे सन्तुष्ट कीजिये। ऐसा करनेपर मेरी कृपासे आप भवबन्धनसे छूट जायँगे॥ ११½॥

जो मेरे ऊपर निर्भर रहते हैं और अपना चित्त मुझमें लगाये रखते हैं, वे मेरे उत्तम भक्त माने गये हैं। यह मेरी प्रतिज्ञा है कि मैं शीघ्र ही इस भवसागरसे उनका उद्धार कर देती हूँ॥ १२½॥

हे राजन्! मैं सर्वथा कर्मयुक्त ध्यानसे अथवा भक्तिपूर्ण ज्ञानसे ही प्राप्त हो सकती हूँ। केवल कर्मोंसे ही मेरी प्राप्ति सम्भव नहीं है॥ १३½॥

धर्मात्सञ्जायते भक्तिर्भक्त्या सञ्जायते परम्॥ १४

श्रुतिस्मृतिभ्यामुदितं यत्स धर्मः प्रकीर्तितः।
अन्यशास्त्रेण यः प्रोक्तो धर्माभासः स उच्यते॥ १५

सर्वज्ञात्सर्वशक्तेश्च मत्तो वेदः समुत्थितः।
अज्ञानस्य ममाभावादप्रमाणा न च श्रुतिः॥ १६

स्मृतयश्च श्रुतेरर्थं गृहीत्वैव च निर्गताः।
मन्वादीनां श्रुतीनां च ततः प्रामाण्यमिष्यते॥ १७

क्वचित्कदाचित्तन्त्रार्थकटाक्षेण परोदितम्।
धर्मं वदन्ति सोंऽशस्तु नैव ग्राह्योऽस्ति वैदिकैः॥ १८

अन्येषां शास्त्रकर्तॄणामज्ञानं प्रभवत्वतः।
अज्ञानदोषदुष्टत्वात्तदुक्तेर्न प्रमाणता॥ १९

तस्मान्मुमुक्षुर्धर्मार्थं सर्वथा वेदमाश्रयेत्।
राजाज्ञा च यथा लोके हन्यते न कदाचन॥ २०

सर्वेशान्या ममाज्ञा सा श्रुतिस्त्याज्या कथं नृभिः।
मदाज्ञारक्षणार्थं तु ब्रह्मक्षत्रियजातयः॥ २१

मया सृष्टास्ततो ज्ञेयं रहस्यं मे श्रुतेर्वचः।
यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भूधर॥ २२

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदा वेषान्बिभर्म्यहम्।
देवदैत्यविभागश्चाप्यत एवाभवन्नृप॥ २३

ये न कुर्वन्ति तद्धर्मं तच्छिक्षार्थं मया सदा।
सम्पादितास्तु नरकास्त्रासो यच्छ्रवणाद्भवेत्॥ २४

धर्मसे भक्ति उत्पन्न होती है और भक्तिसे परब्रह्मका ज्ञान प्राप्त होता है। श्रुति और स्मृतिके द्वारा जो कुछ भी प्रतिपादित है, वही धर्म कहा गया है। अन्य शास्त्रोंके द्वारा जो निरूपित किया गया है, उसे धर्माभास कहा जाता है॥ १४-१५॥

मुझ सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिसम्पन्न भगवतीसे वेद उत्पन्न हुआ है और इस प्रकार मुझमें अज्ञानका अभाव रहनेके कारण श्रुति भी अप्रामाणिक नहीं है। श्रुतिके अर्थको लेकर ही स्मृतियाँ निकली हुई हैं। अतः श्रुतियों और मनु आदि स्मृतियोंकी प्रामाणिकता स्वयंसिद्ध है॥ १६-१७॥

स्मृति आदिमें कहीं-कहीं कटाक्षपूर्वक वामाचार-सम्बन्धी वेदविरुद्ध कही गयी बातको भी लोग धर्मके रूपमें स्वीकार करते हैं, किंतु वैदिक विद्वानोंके द्वारा वह अंश कभी भी ग्राह्य नहीं है॥ १८॥

अन्य शास्त्रकर्ताओंके वाक्य अज्ञानमूलक भी हो सकते हैं। अतः अज्ञानदोषसे दूषित होनेके कारण उनकी उक्तिकी कोई प्रामाणिकता नहीं है। इसलिये मोक्षकी अभिलाषा रखनेवालेको धर्मकी प्राप्तिके लिये सदा वेदका आश्रय ग्रहण करना चाहिये॥ १९½॥

जिस प्रकार लोकमें राजाकी आज्ञाकी अवहेलना कभी नहीं की जाती, वैसे ही मनुष्य मुझ सर्वेश्वरी भगवतीकी आज्ञास्वरूपिणी उस श्रुतिका त्याग कैसे कर सकते हैं? मेरी आज्ञाके पालनके लिये ही तो ब्राह्मण और क्षत्रिय आदि जातियाँ मेरे द्वारा सृजित की गयी हैं। अब मेरी श्रुतिकी वाणीका रहस्य समझ लीजिये॥ २०-२१½॥

हे भूधर! जब-जब धर्मकी हानि होती है और अधर्मकी वृद्धि होती है, तब-तब मैं विभिन्न अवतार धारण करती हूँ। हे राजन्! इसीलिये देवताओं और दैत्योंका विभाग हुआ है॥ २२-२३॥

जो लोग उन धर्मोंका सदा आचरण नहीं करते, उन्हें शिक्षा देनेके लिये मैंने अनेक नरकोंकी व्यवस्था कर रखी है, जिनके सुननेमात्रसे भय उत्पन्न हो जाता है॥ २४॥

यो वेदधर्ममुज्झित्य धर्ममन्यं समाश्रयेत्।
राजा प्रवासयेद्देशान्निजादेतानधर्मिणः॥ २५

ब्राह्मणैर्न च सम्भाष्याः पंक्तिग्राह्या न च द्विजैः।
अन्यानि यानि शास्त्राणि लोकेऽस्मिन्विविधानि च॥ २६

श्रुतिस्मृतिविरुद्धानि तामसान्येव सर्वशः।
वामं कापालकं चैव कौलकं भैरवागमः॥ २७

शिवेन मोहनार्थाय प्रणीतो नान्यहेतुकः।
दक्षशापाद् भृगोः शापाद्दधीचस्य च शापतः॥ २८

दग्धा ये ब्राह्मणवरा वेदमार्गबहिष्कृताः।
तेषामुद्धरणार्थाय सोपानक्रमतः सदा॥ २९

शैवाश्च वैष्णवाश्चैव सौराः शाक्तास्तथैव च।
गाणपत्या आगमाश्च प्रणीताः शङ्करेण तु॥ ३०

तत्र वेदविरुद्धोंऽशोऽप्युक्त एव क्वचित्क्वचित्।
वैदिकैस्तद्ग्रहे दोषो न भवत्येव कर्हिचित्॥ ३१

सर्वथा वेदभिन्नार्थे नाधिकारी द्विजो भवेत्।
वेदाधिकारहीनस्तु भवेत्तत्राधिकारवान्॥ ३२

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वैदिको वेदमाश्रयेत्।
धर्मेण सहितं ज्ञानं परं ब्रह्म प्रकाशयेत्॥ ३३

सर्वैषणाः परित्यज्य मामेव शरणं गताः।
सर्वभूतदयावन्तो मानाहङ्कारवर्जिताः॥ ३४

मच्चित्ता मद्गतप्राणा मत्स्थानकथने रताः।
संन्यासिनो वनस्थाश्च गृहस्था ब्रह्मचारिणः॥ ३५

उपासन्ते सदा भक्त्या योगमैश्वरसंज्ञितम्।
तेषां नित्याभियुक्तानामहमज्ञानजं तमः॥ ३६

ज्ञानसूर्यप्रकाशेन नाशयामि न संशयः।

जो लोग वेदप्रतिपादित धर्मका परित्याग करके अन्य धर्मका आश्रय लेते हैं, राजाको चाहिये कि वह ऐसे अधर्मियोंको अपने राज्यसे निष्कासित कर दे। ब्राह्मण उन अधार्मिकोंसे सम्भाषण न करें और द्विजगण उन्हें अपनी पंक्तिमें न बैठायें॥ २५½ ॥

इस लोकमें श्रुति-स्मृतिविरुद्ध नानाविध अन्य जो भी शास्त्र हैं, वे हर प्रकारसे तामस हैं। वाम, कापालक, कौलक और भैरवागम—ऐसे ही शास्त्र हैं, जो मोहमें डाल देनेके लिये शिवजीके द्वारा प्रतिपादित किये गये हैं—इसके अतिरिक्त अन्य कोई भी कारण नहीं है॥ २६-२७½ ॥

वेदमार्गसे च्युत होनेके कारण जो उच्च कोटिके ब्राह्मण दक्षप्रजापतिके शापसे, महर्षि भृगुके शापसे और महर्षि दधीचिके शापसे दग्ध कर दिये गये थे; उनके उद्धारके लिये भगवान् शंकरने सोपान क्रमसे शैव, वैष्णव, सौर, शाक्त तथा गाणपत्य आगमोंकी रचना की। उनमें कहीं-कहीं वेदविरुद्ध अंश भी कहा गया है। वैदिकोंको उस अंशके ग्रहण कर लेनेमें कोई दोष नहीं होता है॥ २८—३१ ॥

वेदसे सर्वथा भिन्न अर्थको स्वीकार करनेके लिये द्विज अधिकारी नहीं है। वेदाधिकारसे रहित व्यक्ति ही उसे ग्रहण करनेका अधिकारी है। अतः वैदिक पुरुषको पूरे प्रयत्नके साथ वेदका ही आश्रय ग्रहण करना चाहिये; क्योंकि वेद-प्रतिपादित धर्मसे युक्त ज्ञान ही परब्रह्मको प्रकाशित कर सकता है॥ ३२-३३ ॥

सम्पूर्ण इच्छाओंको त्यागकर मेरी ही शरणको प्राप्त, सभी प्राणियोंपर दया करनेवाले, मान-अहंकारसे रहित, मनसे मेरा ही चिन्तन करनेवाले, मुझमें ही अपना प्राण समर्पित करनेवाले तथा मेरे स्थानोंका वर्णन करनेमें संलग्न रहनेवाले जो संन्यासी, वानप्रस्थ, गृहस्थ और ब्रह्मचारी मेरे ऐश्वरसंज्ञक योगकी सदा भक्तिपूर्वक उपासना करते हैं—मुझमें निरन्तर अनुरक्त रहनेवाले उन साधकोंके अज्ञानजनित अन्धकारको मैं ज्ञानरूपी सूर्यके प्रकाशसे नष्ट कर देती हूँ; इसमें सन्देह नहीं है॥ ३४—३६½ ॥

इत्थं वैदिकपूजायाः प्रथमाया नगाधिप॥ ३७

स्वरूपमुक्तं संक्षेपाद् द्वितीयाया अथो ब्रुवे।
मूर्तौ वा स्थण्डिले वापि तथा सूर्येन्दुमण्डले॥ ३८

जलेऽथवा बाणलिङ्गे यन्त्रे वापि महापटे।
तथा श्रीहृदयाम्भोजे ध्यात्वा देवीं परात्पराम्॥ ३९

सगुणां करुणापूर्णां तरुणीमरुणारुणाम्।
सौन्दर्यसारसीमां तां सर्वावयवसुन्दरीम्॥ ४०

शृङ्गाररससम्पूर्णां सदा भक्तार्तिकातराम्।
प्रसादसुमुखीमम्बां चन्द्रखण्डशिखण्डिनीम्॥ ४१

पाशाङ्कुशवराभीतिधरामानन्दरूपिणीम्।
पूजयेदुपचारैश्च यथावित्तानुसारतः॥ ४२

यावदान्तरपूजायामधिकारो भवेन्न हि।
तावद् बाह्यामिमां पूजां श्रयेज्जाते तु तां त्यजेत्॥ ४३

आभ्यन्तरा तु या पूजा सा तु संविल्लयः स्मृतः।
संविदेव परं रूपमुपाधिरहितं मम॥ ४४

अतः संविदि मद्रूपे चेतः स्थाप्यं निराश्रयम्।
संविद्रूपातिरिक्तं तु मिथ्या मायामयं जगत्॥ ४५

अतः संसारनाशाय साक्षिणीमात्मरूपिणीम्।
भावयेन्निर्मनस्केन योगयुक्तेन चेतसा॥ ४६

अतः परं बाह्यपूजाविस्तारः कथ्यते मया।
सावधानेन मनसा शृणु पर्वतसत्तम॥ ४७

हे पर्वतराज! इस प्रकार मैंने पहली वैदिक पूजाके स्वरूपका संक्षेपमें वर्णन कर दिया। अब दूसरी पूजाके विषयमें बता रही हूँ॥ ३७½ ॥

मूर्ति, वेदी, सूर्य-चन्द्रमण्डल, जल, बाणलिंग, यन्त्र, महापट अथवा हृदयकमलमें सगुण रूपवाली परात्पर भगवतीका इस प्रकार ध्यान करे कि वे करुणासे परिपूर्ण हैं, तरुण अवस्थामें विद्यमान हैं, अरुणके समान अरुण आभासे युक्त हैं और सौन्दर्यके सारतत्त्वकी सीमा हैं। इनके सम्पूर्ण अंग परम मनोहर हैं, वे शृंगाररससे परिपूर्ण हैं तथा सदा भक्तोंके दुःखसे दुःखी रहा करती हैं। इन जगदम्बाका मुखमण्डल प्रसन्नतासे युक्त रहता है; वे मस्तकपर बालचन्द्रमा तथा मयूरपंख धारण की हुई हैं; उन्होंने पाश, अंकुश, वर तथा अभयमुद्रा धारण कर रखा है; वे आनन्दमयरूपसे सम्पन्न हैं—इस प्रकार ध्यान करके अपने वित्त-सामर्थ्यके अनुसार विभिन्न उपचारोंसे भगवतीकी पूजा करनी चाहिये॥ ३८—४२ ॥

जबतक अन्तःपूजामें अधिकार नहीं हो जाता, तबतक यह बाह्यपूजा करनी चाहिये। पुनः अन्तःपूजामें अधिकार हो जानेपर उस बाह्यपूजाको छोड़ देना चाहिये। जो आभ्यन्तरपूजा है, उसे ज्ञानरूप मुझ ब्रह्ममें चित्तका लय होना कहा गया है। उपाधिरहित ज्ञान ही मेरा परम रूप है, अतः मेरे ज्ञानमयरूपमें अपना आश्रयहीन चित्त लगा देना चाहिये॥ ४३-४४½ ॥

इस ज्ञानमयरूपके अतिरिक्त यह मायामय जगत् पूर्णतः मिथ्या है। अतः भव-बन्धनके नाशके लिये एकनिष्ठ तथा योगयुक्त चित्तसे मुझ सर्व-साक्षिणी तथा आत्मस्वरूपिणी भगवतीका चिन्तन करना चाहिये॥ ४५-४६ ॥

हे पर्वतश्रेष्ठ! इसके बाद मैं बाह्यपूजाका विस्तारपूर्वक वर्णन कर रही हूँ, आप सावधान मनसे सुनिये॥ ४७ ॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे देवीगीतायां श्रीदेव्याः पूजाविधिवर्णनं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ३९॥

~~~०~~~
~~~

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः

देवीकी पूजा-विधि तथा फलश्रुति

देव्युवाच

प्रातरुत्थाय शिरसि संस्मरेत्पद्ममुज्ज्वलम्।
कर्पूराभं स्मरेत्तत्र श्रीगुरुं निजरूपिणम्॥ १

सुप्रसन्नं लसद्भूषाभूषितं शक्तिसंयुतम्।
नमस्कृत्य ततो देवीं कुण्डलीं संस्मरेद् बुधः॥ २

प्रकाशमानां प्रथमे प्रयाणे
प्रतिप्रयाणेऽप्यमृतायमानाम्।
अन्तः पदव्यामनुसंचरन्ती-
मानन्दरूपामबलां प्रपद्ये॥ ३

ध्यात्वैवं तच्छिखामध्ये सच्चिदानन्दरूपिणीम्।
मां ध्यायेदथ शौचादिक्रियाः सर्वाः समापयेत्॥ ४

अग्निहोत्रं ततो हुत्वा मत्प्रीत्यर्थं द्विजोत्तमः।
होमान्ते स्वासने स्थित्वा पूजासङ्कल्पमाचरेत्॥ ५

भूतशुद्धिं पुरा कृत्वा मातृकान्यासमेव च।
हृल्लेखामातृकान्यासं नित्यमेव समाचरेत्॥ ६

मूलाधारे हकारं च हृदये च रकारकम्।
भ्रूमध्ये तद्वदीकारं ह्रींकारं मस्तके न्यसेत्॥ ७

तत्तन्मन्त्रोदितानन्यान्न्यासान्सर्वान्समाचरेत्।
कल्पयेत्स्वात्मनो देहे पीठं धर्मादिभिः पुनः॥ ८

ततो ध्यायेन्महादेवीं प्राणायामैर्विजृम्भिते।
हृदम्भोजे मम स्थाने पञ्चप्रेतासने बुधः॥ ९

देवी बोलीं—प्रातःकाल उठकर सिरमें प्रतिष्ठित ब्रह्मरन्ध्र (सहस्रार-चक्र)-में कर्पूरके समान आभावाले उज्ज्वल कमलका ध्यान करना चाहिये। उसपर अत्यन्त प्रसन्न, वस्त्र-आभूषणसे सुसज्जित तथा शक्तिसे सम्पन्न अपने ही स्वरूपवाले श्रीगुरु विराजमान हैं—ऐसी भावना करनी चाहिये। उन्हें प्रणाम करनेके अनन्तर विद्वान् साधकको भगवती कुण्डलिनी शक्तिका इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—प्रथम प्रयाणमें अर्थात् ब्रह्मरन्ध्रमें संचरण करनेपर प्रकाश-पुंजरूपवाली, प्रतिप्रयाणमें अर्थात् मूलाधारमें संचरण करनेपर अमृतमयस्वरूपवाली तथा अन्तःपदमें अर्थात् सुषुम्णा नाड़ीमें विराजनेपर आनन्दमयी स्त्रीरूपिणी देवी कुण्डलिनीकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ॥ १—३॥

इस प्रकार कुण्डलिनी शक्तिका ध्यान करके उसकी शिखाके मध्यमें सच्चिदानन्दरूपिणी मुझ भगवतीका ध्यान करना चाहिये। इसके बाद शौच आदि सभी नित्य क्रियाएँ सम्पन्न करनी चाहिये॥ ४॥

तत्पश्चात् श्रेष्ठ द्विजको चाहिये कि मेरी प्रसन्नताके लिये अग्निहोत्र करे। पुनः होमके अन्तमें अपने आसनपर बैठकर पूजनका संकल्प करना चाहिये। पहले भूतशुद्धि करके मातृकान्यास करे; हृल्लेखामातृकान्यास नित्य ही करना चाहिये। मूलाधारमें हकार, हृदयमें रकार, भ्रूमध्यमें ईकार तथा मस्तकमें ह्रींकारका न्यास करना चाहिये। तत्-तत् मन्त्रोंके कथनानुसार अन्य सभी न्यासोंको सम्पन्न करना चाहिये। फिर अपने शरीरमें धर्म आदि सभी सत्कर्मोंसे परिपूर्ण एक दिव्य पीठकी कल्पना करनी चाहिये॥ ५—८॥

तदनन्तर विज्ञ पुरुषको प्राणायामके प्रभावसे खिले हुए अपने हृदयकमलरूप स्थानमें पंचप्रेतासनके ऊपर महादेवीका ध्यान करना चाहिये। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और सदाशिव—ये पाँचों महाप्रेत मेरे

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः।
एते पञ्च महाप्रेताः पादमूले मम स्थिताः॥ १०

पञ्चभूतात्मका ह्येते पञ्चावस्थात्मका अपि।
अहं त्वव्यक्तचिद्रूपा तदतीतास्मि सर्वदा॥ ११

ततो विष्टरतां याताः शक्तितन्त्रेषु सर्वदा।
ध्यात्वैवं मानसैर्भोगैः पूजयेन्मां जपेदपि॥ १२

जपं समर्प्य श्रीदेव्यै ततोऽर्घ्यस्थापनं चरेत्।
पात्रासादनकं कृत्वा पूजाद्रव्याणि शोधयेत्॥ १३

जलेन तेन मनुना चास्त्रमन्त्रेण देशिकः।
दिग्बन्धं च पुरा कृत्वा गुरून्नत्वा ततः परम्॥ १४

तदनुज्ञां समादाय बाह्यपीठे ततः परम्।
हृदिस्थां भावितां मूर्तिं मम दिव्यां मनोहराम्॥ १५

आवाहयेत्ततः पीठे प्राणस्थापनविद्यया।
आसनावाहने चार्घ्यं पाद्याद्याचमनं तथा॥ १६

स्नानं वासोद्वयं चैव भूषणानि च सर्वशः।
गन्धपुष्पं यथायोग्यं दत्त्वा देव्यै स्वभक्तितः॥ १७

यन्त्रस्थानामावृतीनां पूजनं सम्यगाचरेत्।
प्रतिवारमशक्तानां शुक्रवारो नियम्यते॥ १८

मूलदेवीप्रभारूपाः स्मर्तव्या अङ्गदेवताः।
तत्प्रभापटलव्याप्तं त्रैलोक्यं च विचिन्तयेत्॥ १९

पुनरावृत्तिसहितां मूलदेवीं च पूजयेत्।
गन्धादिभिः सुगन्धैस्तु तथा पुष्पैः सुवासितैः॥ २०

नैवेद्यैस्तर्पणैश्चैव ताम्बूलैर्दक्षिणादिभिः।
तोषयेन्मां त्वत्कृतेन नाम्नां साहस्रकेण च॥ २१

कवचेन च सूक्तेनाहं रुद्रेभिरिति प्रभो।
देव्यथर्वशिरोमन्त्रैर्हृल्लेखोपनिषद्भवैः॥ २२

महाविद्यामहामन्त्रैस्तोषयेन्मां मुहुर्मुहुः।

पादमूलमें अवस्थित हैं। ये महाप्रेत पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—इन पाँच भूतों एवं जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय तथा अतीत—इन पाँच अवस्थाओंके स्वरूप हैं। चिन्मय तथा अव्यक्त-रूपवाली मैं इन सबसे सर्वथा परे हूँ। शक्तितन्त्रोंमें ब्रह्मा आदिका आसनरूपमें परिणत होना सर्वदा प्रसिद्ध है। इस प्रकार ध्यान करके मानसिक भोगसामग्रियोंसे मेरी पूजा करे और मेरा जप भी करे॥ ९—१२॥

श्रीदेवीको जप अर्पण करके अर्घ्य-स्थापन करना चाहिये। सर्वप्रथम पूजन-पात्रोंको सामने रखकर साधक अस्त्रमन्त्र (ॐ फट्)-का उच्चारण करके जलसे पूजाद्रव्योंको शुद्ध करे। पुनः इसी मन्त्रसे दिग्बन्ध करके गुरुको प्रणाम करनेके अनन्तर उनकी आज्ञा लेकर साधक अपने हृदयमें भावित मेरी दिव्य मनोहर मूर्तिको बाह्य पीठपर आवाहित करे। इसके बाद प्राणप्रतिष्ठामन्त्रद्वारा पीठपर उस मूर्तिकी प्राणप्रतिष्ठा करे॥ १३—१५½॥

इस प्रकार आसन, आवाहन, अर्घ्य, पाद्य, आचमन, स्नान, दो वस्त्र, हर प्रकारके आभूषण, गन्ध, पुष्प आदि भगवतीको यथोचितरूपसे भक्तिपूर्वक अर्पण करके यन्त्रमें लिखित आवरणदेवताओंकी विधिपूर्वक पूजा करनी चाहिये। प्रतिदिन पूजा करनेमें असमर्थ लोगोंके लिये देवीकी पूजाहेतु शुक्रवारका दिन निर्धारित है॥ १६—१८॥

मूलदेवीके प्रभास्वरूप आवरणदेवताओंका ध्यान करना चाहिये। उन देवीके प्रभामण्डलमें त्रिलोक व्याप्त है—ऐसा चिन्तन करना चाहिये। इसके बाद सुगन्धित गन्ध आदि द्रव्यों, सुन्दर वाससे युक्त पुष्पों, विभिन्न प्रकारके नैवेद्यों, तर्पणों, ताम्बूलों तथा दक्षिणा आदिसे आवरणदेवताओंसहित मुझ मूलदेवीकी पूजा करनी चाहिये। तत्पश्चात् हे राजन्! आपके द्वारा रचित सहस्रनामके द्वारा मुझे प्रसन्न करना चाहिये; साथ ही देवीकवच, '**अहं रुद्रेभिः**' इत्यादि सूक्त, हृल्लेखोपनिषद्-सम्बन्धी देव्यथर्वशीर्ष मन्त्रों और महाविद्याके प्रधान मन्त्रोंसे मुझे बार-बार प्रसन्न करना चाहिये॥ १९—२२½॥

क्षमापयेज्जगद्धात्रीं प्रेमार्द्रहृदयो नरः॥ २३

पुलकाङ्कितसर्वाङ्गैर्बाष्परुद्धाक्षिनिःस्वनः।
नृत्यगीतादिघोषेण तोषयेन्मां मुहुर्मुहुः॥ २४

वेदपारायणैश्चैव पुराणैः सकलैरपि।
प्रतिपाद्या यतोऽहं वै तस्मात्तैस्तोषयेत्तु माम्॥ २५

निजं सर्वस्वमपि मे सदेहं नित्यशोऽर्पयेत्।
नित्यहोमं ततः कुर्याद् ब्राह्मणांश्च सुवासिनीः॥ २६

वटुकान्पामरानन्यान्देवीबुद्ध्या तु भोजयेत्।
नत्वा पुनः स्वहृदये व्युत्क्रमेण विसर्जयेत्॥ २७

सर्वं हृल्लेखया कुर्यात् पूजनं मम सुव्रत।
हृल्लेखा सर्वमन्त्राणां नायिका परमा स्मृता॥ २८

हृल्लेखादर्पणे नित्यमहं तत्प्रतिबिम्बिता।
तस्माद्धृल्लेखया दत्तं सर्वमन्त्रैः समर्पितम्॥ २९

गुरुं सम्पूज्य भूषाद्यैः कृतकृत्यत्वमावहेत्।
य एवं पूजयेद्देवीं श्रीमद्भुवनसुन्दरीम्॥ ३०

न तस्य दुर्लभं किञ्चित्कदाचित्क्वचिदस्ति हि।
देहान्ते तु मणिद्वीपं मम यात्येव सर्वथा॥ ३१

ज्ञेयो देवीस्वरूपोऽसौ देवा नित्यं नमन्ति तम्।
इति ते कथितं राजन् महादेव्याः प्रपूजनम्॥ ३२

विमृश्यैतदशेषेणाप्यधिकारानुरूपतः।
कुरु मे पूजनं तेन कृतार्थस्त्वं भविष्यसि॥ ३३

इदं तु गीताशास्त्रं मे नाशिष्याय वदेत् क्वचित्।
नाभक्ताय प्रदातव्यं न धूर्ताय च दुर्हृदे॥ ३४

तत्पश्चात् पुलकित समस्त अंगोंसे युक्त, अश्रुसे अवरुद्ध नेत्र तथा कण्ठवाला और प्रेमसे आर्द्र हृदयवाला वह साधक मुझ जगद्धात्रीके प्रति क्षमापराधके लिये प्रार्थना करे; साथ ही नृत्य और गीत आदिकी ध्वनिसे मुझे बार-बार प्रसन्न करे। चूँकि मैं सभी वेदों तथा पुराणोंकी मुख्य प्रतिपाद्य विषय हूँ, अतः उनके पाठ-पारायणोंसे मुझे प्रसन्न करना चाहिये। देहसहित अपना सब कुछ मुझे नित्य अर्पित कर देना चाहिये। तदनन्तर नित्य होम करे। ब्राह्मणों, सुवासिनी स्त्रियों, वटुकों तथा अन्य दीनलोगोंको देवीका रूप समझकर उन्हें भोजन कराना चाहिये। पुनः नमस्कार करके अपने हृदयमें जिस क्रमसे आवाहन आदि किया हो, ठीक उसके विपरीत क्रमसे विसर्जन करना चाहिये॥ २३—२७॥

हे सुव्रत! मेरी सम्पूर्ण पूजा हृल्लेखा (ह्रीं) मन्त्रसे सम्पन्न करनी चाहिये; क्योंकि यह हृल्लेखा सभी मन्त्रोंकी परम नायिका कही गयी है। हृल्लेखारूपी दर्पणमें मैं निरन्तर प्रतिबिम्बित होती रहती हूँ; अतः हृल्लेखा मन्त्रोंके द्वारा मुझे अर्पित किया गया पदार्थ सभी मन्त्रोंके द्वारा अर्पित किया गया समझा जाता है। भूषण आदि सामग्रियोंसे गुरुकी विधिवत् पूजा करके अपनेको कृतकृत्य समझना चाहिये॥ २८-२९½॥

जो मनुष्य इस प्रकार मुझ श्रीमद्भुवनसुन्दरी भगवतीकी पूजा करता है, उसके लिये कोई भी वस्तु किसी भी समयमें कहीं भी दुर्लभ नहीं रह सकती। देहावसान होनेपर वह निश्चित ही मेरे मणिद्वीपमें पहुँच जाता है। उसे देवीका ही स्वरूप समझना चाहिये; देवता उसे नित्य प्रणाम करते हैं॥ ३०-३१½॥

हे राजन्! इस प्रकार मैंने आपसे महादेवीके पूजनके विषयमें बता दिया। आप इसपर भलीभाँति विचार करके अपने अधिकारके अनुरूप मेरा पूजन कीजिये; उससे आप कृतार्थ हो जायँगे॥ ३२-३३॥

जो सत् शिष्य नहीं है, उसे कभी भी मेरे इस गीताशास्त्रको नहीं बताना चाहिये। साथ ही जो भक्त न हो, धूर्त हो तथा दुरात्मा हो, उसे भी इसका उपदेश

एतत्प्रकाशनं मातुरुद्घाटनमुरोजयोः।
तस्मादवश्यं यत्नेन गोपनीयमिदं सदा॥ ३५

देयं भक्ताय शिष्याय ज्येष्ठपुत्राय चैव हि।
सुशीलाय सुवेषाय देवीभक्तियुताय च॥ ३६

श्राद्धकाले पठेदेतद् ब्राह्मणानां समीपतः।
तृप्तास्तत्पितरः सर्वे प्रयान्ति परमं पदम्॥ ३७

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा सा भगवती तत्रैवान्तरधीयत।
देवाश्च मुदिताः सर्वे देवीदर्शनतोऽभवन्॥ ३८

ततो हिमालये जज्ञे देवी हैमवती तु सा।
या गौरीति प्रसिद्धासीद्दत्ता सा शङ्कराय च॥ ३९

ततः स्कन्दः समुद्भूतस्तारकस्तेन पातितः।
समुद्रमन्थने पूर्वं रत्नान्यासुर्नराधिप॥ ४०

तत्र देवैः स्तुता देवी लक्ष्मीप्राप्त्यर्थमादरात्।
तेषामनुग्रहार्थाय निर्गता तु रमा ततः॥ ४१

वैकुण्ठाय सुरैर्दत्ता तेन तस्य शमोऽभवत्।
इति ते कथितं राजन् देवीमाहात्म्यमुत्तमम्॥ ४२

गौरीलक्ष्म्योः समुद्भूतिविषयं सर्वकामदम्।
न वाच्यं त्वेतदन्यस्मै रहस्यं कथितं यतः॥ ४३

गीतारहस्यभूतेयं गोपनीया प्रयत्नतः।
सर्वमुक्तं समासेन यत्पृष्टं तत्त्वयानघ।
पवित्रं पावनं दिव्यं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ ४४

नहीं देना चाहिये। अनधिकारीके समक्ष इसे प्रकाशित करना अपनी माताके वक्षःस्थलको प्रकट करनेके समान है, अतः इसे सदा प्रयत्नपूर्वक अवश्य गोपनीय रखना चाहिये॥ ३४-३५॥

भक्तिसम्पन्न शिष्यको तथा सुशील, सुन्दर और देवीभक्तिपरायण ज्येष्ठ पुत्रको ही इसका उपदेश करना चाहिये॥ ३६॥

श्राद्धके अवसरपर जो मनुष्य ब्राह्मणोंके समीप इसका पाठ करता है, उसके सभी पितर तृप्त होकर परम पदको प्राप्त हो जाते हैं॥ ३७॥

व्यासजी बोले—[हे जनमेजय!] ऐसा कहकर वे भगवती वहींपर अन्तर्धान हो गयीं और देवीके दर्शनसे सभी देवता अत्यन्त प्रसन्न हो गये॥ ३८॥

तदनन्तर वे देवी हैमवती हिमालयके यहाँ उत्पन्न हुईं, जो 'गौरी' नामसे प्रसिद्ध हुईं। बादमें वे शंकरजीको प्रदान की गयीं। तत्पश्चात् कार्तिकेय उत्पन्न हुए और उन्होंने तारकासुरका संहार किया॥ ३९ १/२॥

हे नराधिप! पूर्व समयमें समुद्रमन्थनसे अनेक रत्न निकले। उस समय लक्ष्मीको प्रकट करनेके लिये देवताओंने आदरपूर्वक भगवतीकी स्तुति की। तब उन देवताओंपर अनुग्रह करनेके लिये वे भगवती ही पुनः रमा (लक्ष्मी)-के रूपमें समुद्रसे प्रकट हुईं। देवताओंने उन लक्ष्मीको भगवान् विष्णुको सौंप दिया, इससे उन्हें परम शान्ति प्राप्त हुई॥ ४०-४१ १/२॥

हे राजन्! मैंने आपसे भगवतीके इस उत्तम माहात्म्यका वर्णन कर दिया। गौरी तथा लक्ष्मीकी उत्पत्तिसे सम्बन्धित यह प्रसंग सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है। मेरे द्वारा कहे गये इस रहस्यको किसी दूसरेको नहीं बताना चाहिये; क्योंकि रहस्यमयी यह गीता सदा प्रयत्नपूर्वक गोपनीय है। हे अनघ! आपने जो कुछ पूछा था, वह सब मैंने आपको संक्षेपमें बता दिया। यह दिव्य प्रसंग [स्वयं] पवित्र है तथा दूसरोंको भी पवित्र करनेवाला है। अब आप पुनः क्या सुनना चाहते हैं?॥ ४२—४४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे देवीगीतायां बाह्यपूजाविधिवर्णनं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४०॥

~~~O~~~

॥ सप्तमः स्कन्धः समाप्तः॥
~~~

॥ श्रीजगदम्बिकायै नमः ॥
॥ ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ॥

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण

अष्टमः स्कन्धः

अथ प्रथमोऽध्यायः

प्रजाकी सृष्टिके लिये ब्रह्माजीकी प्रेरणासे मनुका देवीकी आराधना करना तथा देवीका उन्हें वरदान देना

जनमेजय उवाच

**सूर्यचन्द्रान्वयोत्थानां नृपाणां सत्कथाश्रितम्।
चरितं भवता प्रोक्तं श्रुतं तदमृतास्पदम्॥ १**

**अधुना श्रोतुमिच्छामि सा देवी जगदम्बिका।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु यद्यद्रूपेण पूज्यते॥ २**

**यस्मिन्यस्मिंश्च वै स्थाने येन येन च कर्मणा।
(शरीरेण च देवेशी पूजनीया फलप्रदा।
येनैव मन्त्रबीजेन यत्र यत्र च पूज्यते॥)
देव्या विराट्स्वरूपस्य वर्णनं च यथातथम्॥ ३**

**येन ध्यानेन तत्सूक्ष्मे स्वरूपे स्यान्मतेर्गतिः।
तत्सर्वं वद विप्रर्षे येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम्॥ ४**

व्यास उवाच

**शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि देव्याराधनमुत्तमम्।
यत्कृतेन श्रुतेनापि नरः श्रेयोऽत्र विन्दते॥ ५**

**एवमेतन्नारदेन पृष्टो नारायणः पुरा।
तस्मै यदुक्तवान्देवो योगचर्याप्रवर्तकः॥ ६**

**एकदा नारदः श्रीमान्पर्यटन्पृथिवीमिमाम्।
नारायणाश्रमं प्राप्तो गतखेदश्च तस्थिवान्॥ ७**

**तस्मै योगात्मने नत्वा ब्रह्मदेवतनूद्भवः।
पर्यपृच्छदिमं चार्थं यत्पृष्टो भवतानघ॥ ८**

जनमेजय बोले—[हे मुने!] आपने सूर्यवंश तथा चन्द्रवंशमें उत्पन्न राजाओंका जो उत्तम कथाओंसे अन्वित तथा अमृतमय चरित्र वर्णित किया, उसे मैंने सुना॥ १॥

सम्पूर्ण मन्वन्तरोंमें जिस-जिस स्थानपर तथा जिस-जिस कर्मसे एवं जिस-जिस रूपसे उन देवी जगदम्बाकी पूजा की जाती है, अब उसे मैं सुनना चाहता हूँ। (सभी फल प्रदान करनेवाली वे पूज्या देवीश्वरी जिस बीज-मन्त्रसे, जहाँ-जहाँ तथा जिस रूपमें पूजी जाती हैं, उसे सुनाइये।) साथ ही भगवतीके विराट् स्वरूपका वर्णन यथार्थरूपमें सुनना चाहता हूँ॥ २-३॥

हे विप्रर्षे! जिस ध्यानसे उन भगवतीके सूक्ष्म स्वरूपमें बुद्धि स्थिर हो जाय, वह सब मुझे बतलाइये जिससे मैं कल्याणको प्राप्त हो जाऊँ॥ ४॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! सुनिये, अब मैं देवीकी उत्तम आराधनाके विषयमें कह रहा हूँ, जिसे करने अथवा सुननेसे भी मनुष्य इस लोकमें कल्याण प्राप्त कर लेता है॥ ५॥

इसी प्रकार पूर्वकालमें नारदजीके द्वारा योगचर्याके प्रवर्तक भगवान् नारायणसे पूछे जानेपर उन्होंने नारदजीसे जो कहा था, वही मैं बता रहा हूँ॥ ६॥

एक बार श्रीमान् नारद इस पृथ्वीपर विचरण करते हुए नारायणके आश्रमपर पहुँचे और वहाँ निश्चिन्त होकर बैठ गये। हे अनघ! तत्पश्चात् उन योगात्मा नारायणको प्रणाम करके ब्रह्माजीके पुत्र नारदने उनसे यही प्रश्न पूछा था, जो आपने मुझसे पूछा है॥ ७-८॥

नारद उवाच

देवदेव महादेव पुराणपुरुषोत्तम।
जगदाधार सर्वज्ञ श्लाघनीयोरुसद्गुण॥ ९

जगतस्तत्त्वमाद्यं यत्तन्मे वद यथेप्सितम्।
जायते कुत एवेदं कुतश्चेदं प्रतिष्ठितम्॥ १०

कुतोऽन्तं प्राप्नुयात्काले कुत्र सर्वफलोदयः।
केन ज्ञातेन मायैषा मोहभूर्नाशमाप्नुयात्॥ ११

कयार्चया किं जपेन किं ध्यानेनात्महृत्कजे।
प्रकाशो जायते देव तमस्यर्कोदयो यथा॥ १२

एतत्प्रश्नोत्तरं देव ब्रूहि सर्वमशेषतः।
यथा लोकस्तरेदन्धतमसं त्वञ्जसैव हि॥ १३

व्यास उवाच

एवं देवर्षिणा पृष्टः प्राचीनो मुनिसत्तमः।
नारायणो महायोगी प्रतिनन्द्य वचोऽब्रवीत्॥ १४

श्रीनारायण उवाच

शृणु देवर्षिवर्यात्र जगतस्तत्त्वमुत्तमम्।
येन ज्ञातेन मर्त्यो हि जायते न जगद्भ्रमे॥ १५

जगतस्तत्त्वमित्येव देवी प्रोक्ता मयापि हि।
ऋषिभिर्देवगन्धर्वैरन्यैश्चापि मनीषिभिः॥ १६

सा जगत्सृजते देवी तया च प्रतिपाल्यते।
तया च नाश्यते सर्वमिति प्रोक्तं गुणत्रयात्॥ १७

तस्याः स्वरूपं वक्ष्यामि देव्याः सिद्धर्षिपूजितम्।
स्मरतां सर्वपापघ्नं कामदं मोक्षदं तथा॥ १८

मनुः स्वायम्भुवस्त्वाद्यः पद्मपुत्रः प्रतापवान्।
शतरूपापतिः श्रीमान्सर्वमन्वन्तराधिपः॥ १९

नारदजी बोले—हे देवदेव! हे महादेव! हे पुराणपुरुषोत्तम! हे जगदाधार! हे सर्वज्ञ! हे श्लाघनीय! हे विपुल सद्गुणोंसे सम्पन्न! इस जगत्‌का जो आदितत्त्व है, उसे आप यथेच्छरूपसे मुझे बताइये। यह जगत् किससे उत्पन्न होता है, किससे इसकी रक्षा होती है, किसके द्वारा इसका संहार होता है, किस समय सभी कर्मोंका फल उदित होता है तथा किस ज्ञानके हो जानेपर इस मोहमयी मायाका नाश हो जाता है?॥ ९—११॥

हे देव! किस पूजासे, किस जपसे और किस ध्यानसे अन्धकारमें सूर्योदयकी भाँति अपने हृदयकमलमें प्रकाश उत्पन्न होता है?॥ १२॥

हे देव! इन सभी प्रश्नोंका उत्तर पूर्णरूपसे बताइये, जिससे इस संसारके प्राणी अज्ञानान्धकारमय जगत्‌को शीघ्रतासे पार कर लें॥ १३॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] देवर्षि नारदके इस प्रकार पूछनेपर महायोगी, मुनिश्रेष्ठ तथा सनातन पुरुष भगवान् नारायणने साधुवाद देकर यह वचन कहा॥ १४॥

श्रीनारायण बोले—हे देवर्षिश्रेष्ठ! अब आप जगत्‌का उत्तम तत्त्व सुनिये, जिसे जान लेनेपर मनुष्य सांसारिक भ्रममें नहीं पड़ता॥ १५॥

इस जगत्‌का एकमात्र तत्त्व भगवती जगदम्बा ही हैं—ऐसा मैं बता चुका हूँ और ऋषियों, देवताओं, गन्धर्वों तथा अन्य मनीषियोंने भी ऐसा ही कहा है॥ १६॥

तीनों गुणों (सत्त्व, रज, तम)-से युक्त होनेके कारण वे भगवती ही सम्पूर्ण जगत्‌की रचना करती हैं, वे ही पालन करती हैं और वे ही संहार करती हैं—ऐसा कहा गया है॥ १७॥

अब मैं भगवतीके सिद्ध-ऋषिपूजित स्वरूपका वर्णन करूँगा; जो स्मरण करनेवालोंके सभी पापोंका नाश करनेवाला, उनके मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला तथा उन्हें मोक्ष प्रदान करनेवाला है॥ १८॥

ब्रह्माके पुत्र तथा शतरूपाके पति स्वायम्भुव मनु आदि मनु हैं। उन प्रतापी तथा श्रीमान् मनुको समस्त मन्वन्तरोंका अधिपति कहा जाता है॥ १९॥

स मनुः पितरं देवं प्रजापतिमकल्मषम्।
भक्त्या पर्यचरत्पूर्वं तमुवाचात्मभूः सुतम्॥ २०

पुत्र पुत्र त्वया कार्यं देव्याराधनमुत्तमम्।
तत्प्रसादेन ते तात प्रजासर्गः प्रसिद्ध्यति॥ २१

एवमुक्तः प्रजास्रष्ट्रा मनुः स्वायम्भुवो विराट्।
जगद्योनिं तदा देवीं तपसातर्पयद् विभुः॥ २२

तुष्टाव देवीं देवेशीं समाहितमतिः किल।
आद्यां मायां सर्वशक्तिं सर्वकारणकारणाम्॥ २३

मनुरुवाच

नमो नमस्ते देवेशि जगत्कारणकारणे।
शङ्खचक्रगदाहस्ते नारायणहृदाश्रिते॥ २४

वेदमूर्त्ते जगन्मातः कारणस्थानरूपिणि।
वेदत्रयप्रमाणज्ञे सर्वदेवनुते शिवे॥ २५

माहेश्वरि महाभागे महामाये महोदये।
महादेवप्रियावासे महादेवप्रियंकरि॥ २६

गोपेन्द्रस्य प्रिये ज्येष्ठे महानन्दे महोत्सवे।
महामारीभयहरे नमो देवादिपूजिते॥ २७

सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते॥ २८

यतश्चेदं यया विश्वमोतं प्रोतं च सर्वदा।
चैतन्यमेकमाद्यन्तरहितं तेजसां निधिम्॥ २९

ब्रह्मा यदीक्षणात्सर्वं करोति च हरिः सदा।
पालयत्यपि विश्वेशः संहर्ता यदनुग्रहात्॥ ३०

पूर्वकालमें एक बार वे स्वायम्भुव मनु अपने पुण्यात्मा पिता प्रजापति ब्रह्माके पास भक्तिपूर्वक सेवामें संलग्न थे। तब ब्रह्माजीने उन पुत्र मनुसे कहा—हे पुत्र! हे पुत्र! तुम्हें भगवतीकी उत्तम आराधना करनी चाहिये। हे तात! उन्हींके अनुग्रहसे प्रजासृष्टिका तुम्हारा कार्य सिद्ध हो सकेगा॥ २०-२१॥

प्रजाओंकी सृष्टि करनेवाले ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर महान् ऐश्वर्यशाली स्वायम्भुव मनु अपनी तपस्यासे जगत्की योनिरूपा भगवतीको प्रसन्न करनेमें तत्पर हो गये। उन्होंने एकाग्रचित्त होकर मायास्वरूपिणी, सर्वशक्तिमयी, सभी कारणोंकी भी कारण, देवेश्वरी आद्या भगवतीका स्तवन आरम्भ किया॥ २२-२३॥

मनु बोले—जगत्के कारणोंकी भी कारण, नारायणके हृदयमें विराजमान तथा हाथोंमें शंख-चक्र-गदा धारण करनेवाली हे देवेश्वरि! आपको बार-बार नमस्कार है॥ २४॥

वेदमूर्तिस्वरूपिणी, जगज्जननी, कारणस्थान-स्वरूपा, तीनों वेदोंके प्रमाण जाननेवाली, समस्त देवोंद्वारा नमस्कृत, कल्याणमयी, परमेश्वरी, परमभाग्यशालिनी, अनन्त मायासे सम्पन्न, महान् अभ्युदयवाली, महादेवकी प्रिय आवासरूपिणी, महादेवका प्रिय करनेवाली, गोपेन्द्रकी प्रिया, ज्येष्ठा, महान् आनन्दस्वरूपिणी, महोत्सवा, महामारीके भयका नाश करनेवाली तथा देवता आदिके द्वारा पूजित हे भगवति! आपको नमस्कार है॥ २५—२७॥

सभी मंगलोंका भी मंगल करनेवाली, सबका कल्याण करनेवाली, सभी पुरुषार्थोंको सिद्ध करनेवाली, शरणागतजनोंकी रक्षा करनेवाली तथा तीन नेत्रोंवाली हे गौरि! हे नारायणि! आपको नमस्कार है॥ २८॥

यह जगत् जिनसे उत्पन्न हुआ है तथा जिनसे पूर्णतया ओतप्रोत है; उन भगवतीके चैतन्यमय, अद्वितीय आदि-अन्तसे रहित तथा तेजोंके निधानभूत रूपको नमस्कार है॥ २९॥

जिनकी कृपादृष्टिसे ब्रह्मा सम्पूर्ण सृष्टि करते हैं, विष्णु सदा पालन करते हैं और जिनके अनुग्रहसे विश्वेश्वर शिव संहार करते हैं, उन जगदम्बाको नमस्कार है॥ ३०॥

मधुकैटभसम्भूतभयार्तः पद्मसम्भवः।
यस्याः स्तवेन मुमुचे घोरदैत्यभवाम्बुधेः॥ ३१

मधु-कैटभके द्वारा उत्पन्न किये गये भयसे व्याकुल ब्रह्माने जिनकी स्तुति करके भयंकर दैत्यरूपी भव-सागरसे मुक्ति प्राप्त की थी, (उन भगवतीको नमस्कार है।)॥ ३१॥

त्वं ह्रीः कीर्तिः स्मृतिः कान्तिः कमला गिरिजा सती।
दाक्षायणी वेदगर्भा सिद्धिदात्री सदाभया॥ ३२

स्तोष्ये त्वां च नमस्यामि पूजयामि जपामि च।
ध्यायामि भावये वीक्षे श्रोष्ये देवि प्रसीद मे॥ ३३

आप ह्री, कीर्ति, स्मृति, कान्ति, कमला, गिरिजा, सती, दाक्षायणी, वेदगर्भा, सिद्धिदात्री तथा अभया नामसे सर्वदा प्रसिद्ध हैं। हे देवि! मैं आपकी स्तुति करता हूँ, आपको नमस्कार करता हूँ, आपकी पूजा करता हूँ, आपका जप करता हूँ, आपका ध्यान करता हूँ, आपकी भावना करता हूँ, आपका दर्शन करता हूँ तथा आपका चरित्र सुनता हूँ; आप मुझपर प्रसन्न हो जाइये॥ ३२-३३॥

ब्रह्मा वेदनिधिः कृष्णो लक्ष्म्यावासः पुरन्दरः।
त्रिलोकाधिपतिः पाशी यादसाम्पतिरुत्तमः॥ ३४

कुबेरो निधिनाथोऽभूद्यमो जातः परेतराट्।
नैर्ऋतो रक्षसां नाथः सोमो जातो ह्यपोमयः॥ ३५

आपके ही अनुग्रहसे ब्रह्माजी वेदके निधि, श्रीहरि लक्ष्मीके स्वामी, इन्द्र त्रिलोकीके अधिपति, वरुण जलचर जन्तुओंके श्रेष्ठ नायक, कुबेर धनके स्वामी, यमराज प्रेतोंके अधिपति, नैर्ऋत राक्षसोंके नाथ और चन्द्रमा रसमय बन गये हैं॥ ३४-३५॥

त्रिलोकवन्द्ये लोकेशि महामाङ्गल्यरूपिणि।
नमस्तेऽस्तु पुनर्भूयो जगन्मातर्नमो नमः॥ ३६

हे त्रिलोकवन्द्ये! हे लोकेश्वरि! हे महामांगल्यस्वरूपिणि! आपको नमस्कार है। हे जगन्मातः! आपको बार-बार प्रणाम है॥ ३६॥

श्रीनारायण उवाच

एवं स्तुता भगवती दुर्गा नारायणी परा।
प्रसन्ना प्राह देवर्षे ब्रह्मपुत्रमिदं वचः॥ ३७

श्रीनारायण बोले—हे देवर्षे! इस प्रकार स्तुति करनेपर परारूपा नारायणी भगवती दुर्गा प्रसन्न होकर ब्रह्माके पुत्र मनुसे यह वचन कहने लगीं॥ ३७॥

देव्युवाच

वरं वरय राजेन्द्र ब्रह्मपुत्र यदिच्छसि।
प्रसन्नाहं स्तवेनात्र भक्त्या चाराधनेन च॥ ३८

देवी बोलीं—हे राजेन्द्र! मैं आपके द्वारा भक्तिपूर्वक की गयी इस स्तुति तथा आराधनासे प्रसन्न हूँ। अतः हे ब्रह्मपुत्र! आप जो वर चाहते हैं, उसे माँग लें॥ ३८॥

मनुरुवाच

यदि देवि प्रसन्नासि भक्त्या कारुणिकोत्तमे।
तदा निर्विघ्नतः सृष्टिः प्रजायाः स्यात्तवाज्ञया॥ ३९

मनु बोले—[भक्तोंपर] महान् अनुकम्पा करनेवाली हे देवि! यदि आप मेरी भक्तिसे प्रसन्न हैं तो मेरी यही याचना है कि आपकी आज्ञासे प्रजाकी सृष्टि निर्विघ्नतापूर्वक सम्पन्न हो॥ ३९॥

देव्युवाच

प्रजासर्गः प्रभवतु ममानुग्रहतः किल।
निर्विघ्नेन च राजेन्द्र वृद्धिश्चाप्युत्तरोत्तरम्॥ ४०

देवी बोलीं—हे राजेन्द्र! मेरे अनुग्रहसे प्रजासृष्टि अवश्य सम्पन्न होगी और निर्विघ्नतापूर्वक निरन्तर उसकी वृद्धि भी होती रहेगी॥ ४०॥

यः कश्चित्पठते स्तोत्रं मद्भक्त्या त्वत्कृतं सदा।
तेषां विद्या प्रजासिद्धिः कीर्तिः कान्त्युदयः खलु॥ ४१

जो कोई भी मनुष्य मेरी भक्तिसे युक्त होकर आपके द्वारा की गयी इस स्तुतिका पाठ करेगा; उसकी विद्या, सन्तान-सुख तथा कीर्ति बढ़ेगी तथा

जायन्ते धनधान्यानि शक्तिरप्रहता नृणाम्।
सर्वत्र विजयो राजन् सुखं शत्रुपरिक्षयः॥ ४२

श्रीनारायण उवाच

एवं दत्त्वा वरान् देवी मनवे ब्रह्मसूनवे।
अन्तर्धानं गता चासीत्पश्यतस्तस्य धीमतः॥ ४३

अथ लब्धवरो राजा ब्रह्मपुत्रः प्रतापवान्।
ब्रह्माणमब्रवीत्तात स्थानं मे दीयतां रहः॥ ४४

यत्राहं समधिष्ठाय प्रजाः स्त्रक्ष्यामि पुष्कलाः।
यक्ष्यामि यज्ञैर्देवेशं तत्समादिश माचिरम्॥ ४५

इति पुत्रवचः श्रुत्वा प्रजापतिपतिर्विभुः।
चिन्तयामास सुचिरं कथं कार्यं भवेदिदम्॥ ४६

सृजतो मे गतः कालो विपुलोऽनन्तसंख्यकः।
धरा वार्भिः प्लुता मग्ना रसं याताखिलाश्रया॥ ४७

इदं मच्चिन्तितं कार्यं भगवानादिपूरुषः।
करिष्यति सहायो मे यदादेशेऽहमाश्रितः॥ ४८

कान्तिका उदय होगा और धन-धान्य निरन्तर बढ़ते रहेंगे। हे राजन्! उन मनुष्योंकी शक्ति कभी निष्फल नहीं होगी, सर्वत्र उनकी विजय होगी, उनके शत्रुओंका नाश होगा और वे सदा सुखी रहेंगे॥ ४१-४२॥

श्रीनारायण बोले—ब्रह्माजीके पुत्र स्वायम्भुव मनुको इस प्रकारके वर देकर उन बुद्धिमान् मनुके देखते-देखते भगवती अन्तर्धान हो गयीं॥ ४३॥

तत्पश्चात् वर प्राप्त करके महान् प्रतापी ब्रह्मापुत्र राजा स्वायम्भुव मनुने ब्रह्मासे कहा—हे तात! आप मुझे कोई ऐसा एकान्त स्थान दीजिये, जहाँ रहकर प्रचुर प्रजाओंकी सृष्टि और यज्ञोंके द्वारा देवेश्वरकी उपासना कर सकूँ। अतः अविलम्ब आदेश दीजिये॥ ४४-४५॥

अपने पुत्रकी यह बात सुनकर प्रजापतियोंके भी स्वामी ऐश्वर्यशाली ब्रह्मा देरतक सोचने लगे कि यह कार्य कैसे सम्पन्न हो। प्रजाकी सृष्टि करते हुए मेरा अनन्तकालका बहुत समय बीत गया। सम्पूर्ण प्राणियोंको आश्रय प्रदान करनेवाली यह पृथ्वी जलके द्वारा आप्लावित हो गयी और जलमय होकर डूब गयी। अतः अब वे भगवान् आदिपुरुष मेरे सहायक बनकर मेरा यह सुचिन्तित कार्य सम्पन्न करेंगे, जिनके आदेशपर मैं आश्रित हूँ॥ ४६—४८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायामष्टमस्कन्धे भुवनकोशप्रसङ्गे देव्या मनवे वरदानवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

~~o~~

अथ द्वितीयोऽध्यायः

ब्रह्माजीकी नासिकासे वराहके रूपमें भगवान् श्रीहरिका प्रकट होना और पृथ्वीका उद्धार करना, ब्रह्माजीका उनकी स्तुति करना

श्रीनारायण उवाच

एवं मीमांसतस्तस्य पद्मयोनेः परन्तप।
मन्वादिभिर्मुनिवरैर्मरीच्याद्यैः समन्ततः॥ १

ध्यायतस्तस्य नासाग्राद्विरञ्चेः सहसानघ।
वराहपोतो निरगादेकाङ्गुलप्रमाणतः॥ २

श्रीनारायण बोले—हे परन्तप! मनु एवं मरीचि आदि श्रेष्ठ मुनियोंके द्वारा चारों ओरसे घिरे हुए उन पद्मयोनि ब्रह्माजीके मनमें अनेक प्रकारके विचार उत्पन्न हो रहे थे। हे अनघ! इस प्रकार ध्यान करते हुए उन ब्रह्माजीकी नासिकाके अग्रभागसे अंगुष्ठमात्र परिमाणवाला एक वराह-शिशु सहसा प्रकट हो गया॥ १-२॥

तस्यैव पश्यतः खस्थः क्षणेन किल नारद।
करिमात्रं प्रववृधे तदद्भुततमं ह्यभूत्॥ ३

हे नारद! उन ब्रह्माजीके देखते-देखते वह वराह-शिशु आकाशमें स्थित होकर क्षणभरमें बढ़कर एक विशालकाय हाथीके आकारका हो गया। वह एक महान् आश्चर्यजनक घटना थी॥ ३॥

मरीचिमुख्यैर्विप्रेन्द्रैः सनकाद्यैश्च नारद।
तद् दृष्ट्वा सौकरं रूपं तर्कयामास पद्मभूः॥ ४

किमेतत्सौकरव्याजं दिव्यं सत्त्वमवस्थितम्।
अत्याश्चर्यमिदं जातं नासिकाया विनिःसृतम्॥ ५

दृष्टोऽङ्गुष्ठशिरोमात्रः क्षणाच्छैलेन्द्रसन्निभः।
आहोस्विद्भगवान्किं वा यज्ञो मे खेदयन्मनः॥ ६

हे नारद! उस समय मरीचि आदि प्रधान विप्रवरों तथा सनक आदि ऋषियोंके साथ बैठे ब्रह्माजी वह वराहरूप देखकर मन-ही-मन विचार करने लगे कि सूकरके व्याजसे यह कौन-सा दिव्य प्राणी मेरी नासिकासे निकलकर मेरे सम्मुख उपस्थित हो गया। यह तो महान् आश्चर्य है। अभी-अभी अँगूठेके पोरके बराबर दिखायी पड़नेवाला यह क्षणभरमें ही पर्वतराजके सदृश हो गया है। कहीं ऐसा तो नहीं कि स्वयं यज्ञरूप भगवान् विष्णु ही मेरे मनको खिन्न करते हुए इस रूपमें प्रकट हुए हों॥ ४—६॥

इति तर्कयतस्तस्य ब्रह्मणः परमात्मनः।
वराहरूपो भगवाञ्जगर्जाचलसन्निभः॥ ७

परमात्मा ब्रह्माजी ऐसा सोच ही रहे थे कि उसी समय पर्वतके समान आकृतिवाले वाराहरूपधारी उन भगवान्ने गर्जना की॥ ७॥

विरञ्चिं हर्षयामास संहतांश्च द्विजोत्तमान्।
स्वगर्जशब्दमात्रेण दिक्प्रान्तमनुनादयन्॥ ८

उन्होंने अपने गर्जनमात्रसे समस्त दिशाओंको निनादित करते हुए ब्रह्माजी तथा वहाँ उपस्थित उत्तम ब्राह्मणोंके समुदायको हर्षित कर दिया॥ ८॥

ते निशम्य स्वखेदस्य क्षयिष्णुं घुर्घुरस्वनम्।
जनस्तपःसत्यलोकवासिनोऽमरवर्यकाः॥ ९

छन्दोमयैः स्तोत्रवरैर्ऋक्सामाथर्वसम्भवैः।
वचोभिः पुरुषं त्वाद्यं द्विजेन्द्राः पर्यवाकिरन्॥ १०

अपने खेदको नष्ट करनेवाली घुरघुराहटकी ध्वनि सुनकर जनलोक, तपलोक तथा सत्यलोकमें निवास करनेवाले उन श्रेष्ठ देवताओं और विप्रवरोंने छन्दोबद्ध उत्तम स्तोत्रों तथा ऋक्, साम और अथर्ववेदसे सम्भूत पवित्र सूक्तोंसे आदिपुरुषकी स्तुति प्रारम्भ कर दी॥ ९-१०॥

तेषां स्तोत्रं निशम्याद्यो भगवान् हरिरीश्वरः।
कृपावलोकमात्रेणानुगृहीत्वाप आविशत्॥ ११

उनकी स्तुति सुनकर ऐश्वर्यसम्पन्न वाराहरूप भगवान् श्रीहरि अपनी कृपादृष्टिमात्रसे उन्हें अनुगृहीत करके जलमें प्रविष्ट हो गये॥ ११॥

तस्यान्तर्विशतः क्रूरसटाघातप्रपीडितः।
समुद्रोऽथाब्रवीद्देव रक्ष मां शरणार्तिहन्॥ १२

जलमें प्रविष्ट होते हुए उन भगवान्की सटाके आघातसे अत्यन्त पीड़ित समुद्रने उनसे कहा—शरणागतोंके दुःख दूर करनेवाले हे देव! मेरी रक्षा कीजिये॥ १२॥

इत्याकर्ण्य समुद्रोक्तं वचनं हरिरीश्वरः।
विदारयञ्जलचराञ्जगामान्तर्जले विभुः॥ १३

समुद्रके द्वारा कथित यह वचन सुनकर सर्वसमर्थ भगवान् श्रीहरि जलचर जीवोंको इधर-उधर हटाते हुए अथाह जलमें चले गये॥ १३॥

इतस्ततोऽभिधावन्सन् विचिन्वन्पृथिवीं धराम्।
आघ्रायाघ्राय सर्वेशो धरामासादयच्छनैः॥ १४

इधर-उधर भ्रमण करते हुए, पृथ्वीको खोजते हुए उन सर्वेश्वरने धीरे-धीरे सूँघ-सूँघकर अन्तमें सबको धारण करनेवाली उस पृथ्वीको पा लिया॥ १४॥

अन्तर्जलगतां भूमिं सर्वसत्त्वाश्रयां तदा।
भूमिं स देवदेवेशो दंष्ट्रयोदाजहार ताम्॥ १५

उस समय अगाध जलके भीतर प्रविष्ट तथा सभी प्राणियोंको आश्रय देनेवाली उस पृथ्वीको देवदेवेश्वर श्रीहरिने अपने दाढ़ोंपर उठा लिया॥ १५॥

तां समुद्धृत्य दंष्ट्राग्रे यज्ञेशो यज्ञपूरुषः।
शुशुभे दिग्गजो यद्वदुद्धृत्याथ सुपद्मिनीम्॥ १६

उस पृथ्वीको अपने दाढ़पर रखे हुए यज्ञेश्वर तथा यज्ञपुरुष भगवान् श्रीहरि ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो कोई दिग्गज कमलिनीको [अपने दाँतपर] उठाये हो॥ १६॥

तं दृष्ट्वा देवदेवेशो विरञ्चिः समनुः स्वराट्।
तुष्टाव वाग्भिर्देवेशं दंष्ट्रोद्धृतवसुन्धरम्॥ १७

अपने दाढ़पर पृथ्वीको उठाये हुए उन देवेश्वरको देखकर स्वराट् मनुसहित देवाधिदेव ब्रह्मा उनकी स्तुति करने लगे॥ १७॥

ब्रह्मोवाच

जितं ते पुण्डरीकाक्ष भक्तानामार्तिनाशन।
खर्वीकृतसुराधार सर्वकामफलप्रद॥ १८

ब्रह्माजी बोले—भक्तोंके कष्ट दूर करनेवाले, देवताओंके आवास स्वर्गको तिरस्कृत करनेवाले तथा समस्त मनोभिलषित फल प्रदान करनेवाले हे कमलनयन! आपकी जय हो॥ १८॥

इयं च धरणी देव शोभते वसुधा तव।
पद्मिनीव सुपत्राढ्या मतङ्गजकरोद्धृता॥ १९

हे देव! आपके दाढ़पर स्थित यह पृथ्वी उसी भाँति सुशोभित हो रही है, जैसे सुन्दर पत्रोंसे युक्त कमलिनी किसी मतवाले हाथीकी सूँड़पर विराजमान हो॥ १९॥

इदं च ते शरीरं वै शोभते भूमिसङ्गमात्।
उद्धृताम्बुजशुण्डाग्रकरीन्द्रतनुसन्निभम्॥ २०

पृथ्वीके साथ आपका यह शरीर कमलको उखाड़कर उसे अपनी सूँड़के अग्रभागपर धारण किये गजराजके शरीरकी भाँति शोभायमान हो रहा है॥ २०॥

नमो नमस्ते देवेश सृष्टिसंहारकारक।
दानवानां विनाशाय कृतनानाकृते प्रभो॥ २१

सृष्टि तथा संहार करनेवाले और दानवोंके विनाशके लिये अनेकविध रूप धारण करनेवाले हे देवेश्वर! हे प्रभो! आपको बार-बार नमस्कार है॥ २१॥

अग्रतश्च नमस्तेऽस्तु पृष्ठतश्च नमो नमः।
सर्वामराधारभूत बृहद्धाम नमोऽस्तु ते॥ २२

सभी देवताओंके आधारभूत! आपको आगेसे नमस्कार है, आपको पीछेसे बार-बार नमस्कार है। हे बृहद्धाम! आपको नमस्कार है॥ २२॥

त्वयाहं च प्रजासर्गे नियुक्तः शक्तिबृंहितः।
त्वदाज्ञावशतः सर्गं करोमि विकरोमि च॥ २३

मैं आपके द्वारा शक्तिशाली बनाकर प्रजा-सृष्टिके कार्यमें नियुक्त किया गया हूँ। आपकी आज्ञाके वशमें होकर ही मैं सृष्टि करता हूँ और उसे बिगाड़ता हूँ॥ २३॥

त्वत्सहायेन देवेशा अमराश्च पुरा हरे।
सुधां विभेजिरे सर्वे यथाकालं यथाबलम्॥ २४

हे हरे! आपकी सहायतासे ही पूर्व कालमें देवेश्वर तथा देवता बल तथा कालके अनुसार अमृतके विभाजनमें सफल हुए थे॥ २४॥

इन्द्रस्त्रिलोकीसाम्राज्यं लब्धवांस्त्वन्निदेशतः।
भुनक्ति लक्ष्मीं बहुलां सुरसंघप्रपूजितः॥ २५

वह्निः पावकतां लब्ध्वा जाठरादिविभेदतः।
देवासुरमनुष्याणां करोत्याप्यायनं तथा॥ २६

आपके ही निर्देशसे इन्द्र त्रिलोकीका साम्राज्य प्राप्त कर सके हैं, देवसमुदायसे भलीभाँति पूजित होकर विपुल वैभवका उपभोग करते हैं और अग्निदेव दाहकताका गुण पाकर जठराग्नि आदिके भेदसे देवताओं, असुरों और मनुष्योंकी तृप्ति करते हैं॥ २५-२६॥

धर्मराजोऽथ पितॄणामधिपः सर्वकर्मदृक्।
कर्मणां फलदातासौ त्वन्नियोगादधीश्वरः॥ २७

आपके ही नियोगसे धर्मराज पितरोंके अधिपति, समस्त कर्मोंके साक्षी, कर्मोंका फल देनेवाले तथा अधीश्वर बने हुए हैं॥ २७॥

नैर्ऋतो रक्षसामीशो यक्षो विघ्नविनाशनः।
सर्वेषां प्राणिनां कर्मसाक्षी त्वत्तः प्रजायते॥ २८

विघ्नोंको दूर करनेवाले, सभी प्राणियोंके कर्मोंके साक्षी और राक्षसोंके ईश्वर यक्षरूप नैर्ऋत भी आपसे ही उत्पन्न हुए हैं॥ २८॥

वरुणो यादसामीशो लोकपालो जलाधिपः।
त्वदाज्ञाबलमाश्रित्य लोकपालत्वमागतः॥ २९

आपकी ही आज्ञाका आश्रय लेकर लोकपाल वरुणने जलचर जीवोंके स्वामी, जलाधिपति और लोकपालका पद प्राप्त किया है॥ २९॥

वायुर्गन्धवहः सर्वभूतप्राणनकारणम्।
जातस्तव निदेशेन लोकपालो जगद्गुरुः॥ ३०

गन्ध प्रवाहित करनेवाले तथा सभी प्राणियोंमें प्राण-संचार करनेवाले वायु आपकी ही आज्ञासे लोकपाल और जगद्गुरु हो सके हैं॥ ३०॥

कुबेरः किन्नरादीनां यक्षाणां जीवनाश्रयः।
त्वदाज्ञान्तर्गतः सर्वलोकपेषु च मान्यभूः॥ ३१

किन्नरों और यक्षोंके जीवनके आधारस्वरूप कुबेर आपकी आज्ञाके वशवर्ती रहकर ही समस्त लोकपालोंमें सम्मान प्राप्त करते हैं॥ ३१॥

ईशानः सर्वरुद्राणामीश्वरान्तकरः प्रभुः।
जातो लोकेशवन्द्योऽसौ सर्वदेवाधिपालकः॥ ३२

सभी देवताओंका अन्त करनेवाले, सभी देवोंके अधिपालक तथा तीनों लोकोंके ईश्वरके भी वन्दनीय भगवान् ईशान आपकी ही आज्ञासे सभी रुद्रोंमें प्रधान हो गये हैं॥ ३२॥

नमस्तुभ्यं भगवते जगदीशाय कुर्महे।
यस्यांशभागाः सर्वे हि जाता देवाः सहस्रशः॥ ३३

आप जगदीश्वर परमात्माको हम नमस्कार करते हैं, जिनके अंशमात्रसे हजारों देवता उत्पन्न हुए हैं॥ ३३॥

नारद उवाच

एवं स्तुतो विश्वसृजा भगवानादिपूरुषः।
लीलावलोकमात्रेणाप्यनुग्रहमवासृजत्॥ ३४

नारदजी बोले—इस प्रकार विश्वकी सृष्टि करनेवाले ब्रह्माजीके द्वारा स्तुत होनेपर आदिपुरुष भगवान् श्रीहरि अपनी लीला प्रदर्शित करते हुए उनपर अनुग्रह करनेके लिये तत्पर हो गये॥ ३४॥

तत्रैवाभ्यागतं दैत्यं हिरण्याक्षं महासुरम्।
रुन्धानमध्वनो भीमं गदयाताडयद्धरिः॥ ३५

भगवान् श्रीहरिने उस समय वहाँ आये हुए महान् असुर तथा भयंकर दैत्य हिरण्याक्षको, जिसने उनका मार्ग रोक रखा था, अपनी गदासे मार डाला॥ ३५॥

तद्रक्तपङ्कदिग्धाङ्गो भगवानादिपूरुषः।
उद्धृत्य धरणीं देवो दंष्ट्रया लीलयाप्सु ताम्॥ ३६

निवेश्य लोकनाथेशो जगाम स्थानमात्मनः।
एतद्भगवतश्चित्रं धरण्युद्धरणं परम्॥ ३७

शृणुयाद्यः पुमान् यश्च पठेच्चरितमुत्तमम्।
सर्वपापविनिर्मुक्तो वैष्णवीं गतिमाप्नुयात्॥ ३८

तत्पश्चात् उसके रक्तपंकसे लिप्त अंगोंवाले आदिपुरुष भगवान् श्रीहरिने पृथ्वीको अपने दाढ़से उठाकर लीलापूर्वक उसे जलके ऊपर स्थापित कर दिया। इसके बाद वे लोकनाथेश्वर भगवान् अपने धामको चले गये। जो मनुष्य पृथ्वीके उद्धारसे सम्बन्धित इस परम विचित्र तथा उत्तम भगवच्चरितको सुनेगा और पढ़ेगा, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर वैष्णवपद प्राप्त करेगा॥ ३६—३८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामष्टमस्कन्धे धरण्युद्धारवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

महाराज मनुकी वंश-परम्पराका वर्णन

श्रीनारायण उवाच

महीं देवः प्रतिष्ठाप्य यथास्थाने च नारद।
वैकुण्ठलोकमगमद् ब्रह्मोवाच स्वमात्मजम्॥ १

स्वायम्भुव महाबाहो पुत्र तेजस्विनांवर।
स्थाने महीमये तिष्ठ प्रजाः सृज यथोचितम्॥ २

देशकालविभागेन यज्ञेशं पुरुषं यज।
उच्चावचपदार्थैश्च यज्ञसाधनकैर्विभो॥ ३

धर्ममाचर शास्त्रोक्तं वर्णाश्रमनिबन्धनम्।
एतेन क्रमयोगेन प्रजावृद्धिर्भविष्यति॥ ४

पुत्रानुत्पाद्य गुणतः कीर्त्या कान्त्यात्मरूपिणः।
विद्याविनयसम्पन्नान् सदाचारवतां वरान्॥ ५

कन्याश्च दत्त्वा गुणवद्यशोवद्भ्यः समाहितः।
मनः सम्यक् समाधाय प्रधानपुरुषे परे॥ ६

भक्तिसाधनयोगेन भगवत्परिचर्यया।
गतिमिष्टां सदा वन्द्यां योगिनां गमिता भवान्॥ ७

इत्याश्वास्य मनुं पुत्रं पद्मयोनिः प्रजापतिः।
प्रजासर्गे नियम्यामुं स्वधाम प्रत्यपद्यत॥ ८

श्रीनारायण बोले—हे नारद! इस प्रकार पृथ्वीको यथास्थान प्रतिष्ठित करके भगवान् जब वैकुण्ठ चले गये तब ब्रह्माजीने अपने पुत्रसे कहा—॥ १॥

तेजस्वियोंमें श्रेष्ठ तथा विशाल भुजाओंवाले हे पुत्र स्वायम्भुव! अब तुम उस स्थलमय स्थानपर रहकर समुचित रूपसे प्रजाओंकी सृष्टि करो। हे विभो! देश एवं कालके विभागके अनुसार यज्ञके साधनस्वरूप उत्तम तथा मध्यम सामग्रियोंसे यज्ञके स्वामी परम पुरुषका यजन करो; शास्त्रोंमें वर्णित धर्मका आचरण करो और वर्णाश्रम-व्यवस्थाका पालन करो। इस क्रमसे प्रवृत्त रहनेपर प्रजा-वृद्धि होती रहेगी। विद्या-विनयसे सम्पन्न, सदाचारियोंमें श्रेष्ठ और अपने गुण, कीर्ति तथा कान्तिके अनुरूप पुत्र उत्पन्न करके कन्याओंको गुणी तथा यशस्वी पुरुषोंको अर्पण करके और एकाग्रचित्त होकर अपने मनको पूर्णरूपसे प्रधान पुरुष परमेश्वरमें स्थित करके भक्तिपूर्वक साधना तथा भगवान्‌की सेवाद्वारा आप योगियोंके लिये सदा वन्दनीय अभीष्ट गतिको प्राप्त कर लोगे॥ २—७॥

[हे नारद!] इस प्रकार अपने पुत्र स्वायम्भुव मनुको उपदेश देकर तथा उन्हें प्रजा-सृष्टिके कार्यमें नियुक्त करके पद्मयोनि ब्रह्माजी अपने धामको चले गये॥ ८॥

प्रजाः सृजत पुत्रेति पितुराज्ञां समादधत्।
स्वायम्भुवः प्रजासर्गमकरोत्पृथिवीपतिः॥ ९

प्रियव्रतोत्तानपादौ मनुपुत्रौ महौजसौ।
कन्यास्तिस्त्रः प्रसूताश्च तासां नामानि मे शृणु॥ १०

आकूतिः प्रथमा कन्या द्वितीया देवहूतिका।
तृतीया च प्रसूतिर्हि विख्याता लोकपावनी॥ ११

आकूतिं रुचये प्रादात्कर्दमाय च मध्यमाम्।
दक्षायादात्प्रसूतिं च यासां लोक इमाः प्रजाः॥ १२

रुचेः प्रजज्ञे भगवान् यज्ञो नामादिपूरुषः।
आकूत्यां देवहूत्यां च कपिलोऽसौ च कर्दमात्॥ १३

सांख्याचार्यः सर्वलोके विख्यातः कपिलो विभुः।
दक्षात्प्रसूत्यां कन्याश्च बहुशो जज्ञिरे प्रजाः॥ १४

यासां सन्तानसम्भूता देवतिर्यङ्नरादयः।
प्रसूता लोकविख्याताः सर्वे सर्गप्रवर्तकाः॥ १५

यज्ञश्च भगवान् स्वायम्भुवमन्वन्तरे विभुः।
मनुं ररक्ष रक्षोभ्यो यामैर्देवगणैर्वृतः॥ १६

कपिलोऽपि महायोगी भगवान् स्वाश्रमे स्थितः।
देवहूत्यै परं ज्ञानं सर्वाविद्यानिवर्तकम्॥ १७

सविशेषं ध्यानयोगमध्यात्मज्ञाननिश्चयम्।
कापिलं शास्त्रमाख्यातं सर्वाज्ञानविनाशनम्॥ १८

उपदिश्य महायोगी स ययौ पुलहाश्रमम्।
अद्यापि वर्तते देवः सांख्याचार्यो महाशयः॥ १९

यन्नामस्मरणेनापि सांख्ययोगश्च सिद्ध्यति।
तं वन्दे कपिलं योगाचार्यं सर्ववरप्रदम्॥ २०

'हे पुत्र! प्रजाओंका सृजन करो' पिताकी इस आज्ञाको पृथ्वीपति स्वायम्भुव मनुने हृदयमें धारण कर लिया और वे प्रजा-सृष्टि करने लगे॥ ९॥

मनुसे प्रियव्रत तथा उत्तानपाद नामक दो महान् ओजस्वी पुत्र और तीन कन्याएँ उत्पन्न हुईं, उनके नाम मुझसे सुनिये; पहली कन्या आकूति, दूसरी देवहूति तथा लोकपावनी तीसरी कन्या प्रसूति नामसे विख्यात हुई॥ १०-११॥

उन्होंने आकूतिका रुचिके साथ, मध्यम कन्या देवहूतिका कर्दमके साथ और प्रसूतिका विवाह दक्षप्रजापतिके साथ कर दिया, जिनकी ये प्रजाएँ लोकमें फैली हुई हैं॥ १२॥

रुचिके द्वारा आकूतिसे यज्ञरूप भगवान् आदिपुरुष प्रकट हुए। कर्दमऋषिके द्वारा देवहूतिसे कपिल उत्पन्न हुए। परम ऐश्वर्यशाली उन कपिलमुनिने सभी लोकोंमें सांख्यशास्त्रके आचार्यके रूपमें प्रसिद्धि प्राप्त की। इसी प्रकार दक्षके द्वारा प्रसूतिसे सन्तानके रूपमें बहुत-सी कन्याएँ उत्पन्न हुईं; जिनकी सन्तानोंके रूपमें देवता, पशु और मानव आदि उत्पन्न होकर लोकमें प्रसिद्ध हुए; वे सभी इस सृष्टिके प्रवर्तक हैं॥ १३—१५॥

सर्वसमर्थ भगवान् यज्ञपुरुषने याम नामक देवताओंके साथ मिलकर स्वायम्भुव मन्वन्तरमें राक्षसोंसे मनुकी रक्षा की थी॥ १६॥

महान् योगी भगवान् कपिलने अपने आश्रममें रहकर माता देवहूतिको सभी अविद्याओंका नाश करनेवाले परमज्ञानका उपदेश किया था॥ १७॥

उन्होंने ध्यानयोग तथा अध्यात्मज्ञानके सिद्धान्तका विशेषरूपसे प्रतिपादन किया। समस्त अज्ञानको नष्ट करनेवाला उनका शास्त्र कापिल शास्त्रके रूपमें प्रसिद्ध हुआ॥ १८॥

वे महायोगी कपिल अपनी माताको उपदेश देकर ऋषि पुलहके आश्रमपर चले गये। सांख्यशास्त्रके आचार्य महान् यशस्वी भगवान् कपिल आज भी विद्यमान हैं॥ १९॥

मैं सभी प्रकारके वर प्रदान करनेवाले उन योगाचार्य कपिलको प्रणाम करता हूँ, जिनके नामके स्मरणमात्रसे सांख्ययोग सिद्ध हो जाता है॥ २०॥

एवमुक्तं मनोः कन्यावंशवर्णनमुत्तमम्।
पठतां शृण्वतां चापि सर्वपापविनाशनम्॥ २१

हे नारद! इस प्रकार मैंने स्वायम्भुव मनुकी कन्याओंके वंशका उत्तम वर्णन कर दिया, जिसके पढ़ने तथा सुननेवालोंके सभी पाप नष्ट हो जाते हैं॥ २१॥

अतः परं प्रवक्ष्यामि मनुपुत्रान्वयं शुभम्।
यदाकर्णनमात्रेण परं पदमवाप्नुयात्॥ २२

इसके बाद मैं मनु-पुत्रोंके पवित्र वंशका वर्णन करूँगा, जिसके श्रवणमात्रसे मनुष्य परम पद प्राप्त कर लेता है॥ २२॥

द्वीपवर्षसमुद्रादिव्यवस्था यत्सुतैः कृता।
व्यवहारप्रसिद्ध्यर्थं सर्वभूतसुखाप्तये॥ २३

उन मनुपुत्रोंने व्यवहारकी सिद्धिके लिये और सभी प्राणियोंकी सुख-प्राप्तिके लिये द्वीप, वर्ष और समुद्र आदिकी व्यवस्था की है॥ २३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायामष्टमस्कन्धे भुवनकोशविस्तारे स्वायम्भुवमनुवंशकीर्तनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥



अथ चतुर्थोऽध्यायः

महाराज प्रियव्रतका आख्यान तथा समुद्र और द्वीपोंकी उत्पत्तिका प्रसंग

श्रीनारायण उवाच

मनोः स्वायम्भुवस्यासीज्ज्येष्ठः पुत्रः प्रियव्रतः।
पितुः सेवापरो नित्यं सत्यधर्मपरायणः॥ १

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] स्वायम्भुव मनुके ज्येष्ठ पुत्र प्रियव्रत थे, वे नित्य पिताकी सेवामें संलग्न रहते थे तथा सत्य-धर्मका पालन करते थे॥ १॥

प्रजापतेर्दुहितरं सुरूपां विश्वकर्मणः।
बर्हिष्मतीं चोपयेमे समानां शीलकर्मभिः॥ २

विश्वकर्मा नामक प्रजापतिकी सुन्दर रूपवाली कन्या बर्हिष्मतीके साथ प्रियव्रतने विवाह किया था, जो स्वभाव तथा कर्ममें उन्हींके सदृश थी॥ २॥

तस्यां पुत्रान्दश गुणैरन्वितान्भावितात्मनः।
जनयामास कन्यां चोर्जस्वतीं च यवीयसीम्॥ ३

प्रियव्रतने उस बर्हिष्मतीसे पवित्र आत्मावाले दस गुणी पुत्रों और ऊर्जस्वती नामक एक कन्याको उत्पन्न किया, जो सबसे छोटी थी॥ ३॥

आग्नीध्रश्चेध्मजिह्वश्च यज्ञबाहुस्तृतीयकः।
महावीरश्चतुर्थस्तु पञ्चमो रुक्मशुक्रकः॥ ४
घृतपृष्ठश्च सवनो मेधातिथिरथाष्टमः।
वीतिहोत्रः कविश्चेति दशैते वह्निनामकाः॥ ५

आग्नीध्र, इध्मजिह्व, यज्ञबाहु, महावीर, रुक्मशुक्र, घृतपृष्ठ, सवन, मेधातिथि, वीतिहोत्र और कवि—इन नामोंसे ये दसों पुत्र अग्निसंज्ञक कहे गये हैं॥ ४-५॥

एतेषां दशपुत्राणां त्रयोऽप्यासन्विरागिणः।
कविश्च सवनश्चैव महावीर इति त्रयः॥ ६
आत्मविद्यापरिष्णाताः सर्वे ते ह्यूर्ध्वरेतसः।
आश्रमे परहंसाख्ये निःस्पृहा ह्यभवन्मुदा॥ ७

इन दस पुत्रोंमें कवि, सवन और महावीर—ये तीन पुत्र विरागी हो गये। आत्मविद्यामें निष्णात तथा ब्रह्मचर्यव्रतके पालक वे सभी पुत्र परमहंस नामक आश्रममें आनन्दपूर्वक स्पृहारहित भावसे रहने लगे॥ ६-७॥

अपरस्यां च जायायां त्रयः पुत्राश्च जज्ञिरे।
उत्तमस्तामसश्चैव रैवतश्चेति विश्रुताः॥ ८
मन्वन्तराधिपतय एते पुत्रा महौजसः।

प्रियव्रतकी दूसरी पत्नीसे तीन पुत्र उत्पन्न हुए; जो उत्तम, तामस और रैवत—इन नामोंसे विख्यात हुए। ये महान् प्रतापी पुत्र एक-एक मन्वन्तरके अधिपति बने॥ ८½॥

प्रियव्रतः स राजेन्द्रो बुभुजे जगतीमिमाम्॥ ९
एकादशार्बुदाब्दानामव्याहतबलेन्द्रियः ।
यदा सूर्यः पृथिव्याश्च विभागे प्रथमेऽतपत्॥ १०
भागे द्वितीये तत्रासीदन्धकारोदयः किल।
एवं व्यतिकरं राजा विलोक्य मनसा चिरम्॥ ११
प्रशास्ति मयि भूम्यां च तमः प्रादुर्भवेत्कथम्।
एवं निवारयिष्यामि भूमौ योगबलेन च॥ १२
एवं व्यवसितो राजा पुत्रः स्वायम्भुवस्य सः।
रथेनादित्यवर्णेन सप्तकृत्वः प्रकाशयन्॥ १३
तस्यापि गच्छतो राज्ञो भूमौ यद्रथनेमयः।
पतितास्ते समुद्राख्यां भेजिरे लोकहेतवे॥ १४
जाताः प्रदेशास्ते सप्त द्वीपा भूमौ विभागशः।
रथनेमिसमुत्थास्ते परिखाः सप्त सिन्धवः॥ १५
यत आसंस्ततः सप्त भुवो द्वीपा हि ते स्मृताः।
जम्बुद्वीपः प्लक्षद्वीपः शाल्मलीद्वीपसंज्ञकः॥ १६
कुशद्वीपः क्रौञ्चद्वीपः शाकद्वीपश्च पुष्करः।
तेषां च परिमाणं तु द्विगुणं चोत्तरोत्तरम्॥ १७
समन्ततश्चोपक्लृप्तं बहिर्भागक्रमेण च।
क्षारोदेक्षुरसोदौ च सुरोदश्च घृतोदकः॥ १८
क्षीरोदो दधिमण्डोदः शुद्धोदश्चेति ते स्मृताः।
सप्तैते प्रतिविख्याताः पृथिव्यां सिन्धवस्तदा॥ १९
प्रथमो जम्बुद्वीपाख्यो यः क्षारोदेन वेष्टितः।
तत्पतिं विदधे राजा पुत्रमाग्नीध्रसंज्ञकम्॥ २०
प्लक्षद्वीपे द्वितीयेऽस्मिन्द्वीपेक्षुरससंप्लुते।
जातस्तदधिपः प्रैयव्रत इध्मादिजिह्वकः॥ २१
शाल्मलीद्वीप एतस्मिन्सुरोदधिपरिप्लुते।
यज्ञबाहुं तदधिपं करोति स्म प्रियव्रतः॥ २२

अपराजेय बल तथा इन्द्रियोंवाले महाराज प्रियव्रतने इस पृथ्वीपर ग्यारह अर्बुद वर्षोंतक राज्य किया॥ ९½ ॥

एक बारकी बात है—जब सूर्य पृथ्वीके प्रथम भागमें प्रकाशित हो रहे थे, तब दूसरे भागमें अन्धकार हो गया। इस प्रकारका संकट देखकर राजाके मनमें तत्काल यह विचार उत्पन्न हुआ कि मेरे शासन करते हुए पृथ्वीपर अन्धकार कैसे उत्पन्न हुआ? मैं अपने योगबलसे पृथ्वीपरसे इसका निवारण कर दूँगा॥ १०—१२॥

ऐसा निश्चय करके स्वायम्भुव मनुके पुत्र उन प्रियव्रतने सूर्य-सदृश तेजवाले रथपर आसीन होकर जगत्को प्रकाशित करते हुए पृथ्वीकी सात प्रदक्षिणाएँ कीं॥ १३॥

उन राजा प्रियव्रतके परिक्रमण करते समय पृथ्वीपर जहाँ-जहाँ रथके पहिये पड़े थे, वे स्थान लोक-हितके लिये सात समुद्र बन गये॥ १४॥

पृथ्वीकी परिक्रमाके बीचके स्थल विभागानुसार सात द्वीपके रूपमें हो गये और रथके पहियोंके धँसनेसे बने हुए सात समुद्र उनकी परिखा (खाई)-के रूपमें हो गये ॥ १५॥

तभीसे पृथ्वीपर सात द्वीप हो गये; जो जम्बूद्वीप, प्लक्षद्वीप, शाल्मलिद्वीप, कुशद्वीप, क्रौंचद्वीप, शाकद्वीप और पुष्करद्वीपके नामसे प्रसिद्ध हुए। उत्तरोत्तर क्रमसे उनका परिमाण दुगुना है॥ १६-१७॥

उन द्वीपोंके बाहर चारों ओर विभाग-क्रमसे समुद्र आप्लावित हैं। वे क्षारोद, इक्षुरसोद, सुरोद, घृतोद, क्षीरोद, दधिमण्डोद और शुद्धोद नामसे जाने गये। तभीसे भूमण्डलपर ये सातों समुद्र विख्यात हो गये॥ १८-१९॥

क्षारोद समुद्रसे घिरा हुआ जो पहला द्वीप है, वह जम्बूद्वीप नामसे विख्यात है। राजा प्रियव्रतने अपने आग्नीध्र नामक पुत्रको उस द्वीपका स्वामी बनाया था॥ २०॥

प्रियव्रत-पुत्र इध्मजिह्व इक्षुरससे आप्लावित इस दूसरे प्लक्षद्वीपके शासक हुए॥ २१॥

महाराज प्रियव्रतने सुरोदधिसे आप्लावित शाल्मली द्वीपका राजा अपने पुत्र यज्ञबाहुको बनाया॥ २२॥

कुशद्वीपेऽतिरम्ये च घृतोदेनोपवेष्टिते।
हिरण्यरेता राजाभूत्प्रियव्रततनूजनिः॥ २३

क्रौञ्चद्वीपे पञ्चमे तु क्षीरोदपरिसंप्लुते।
प्रैयव्रतो घृतपृष्ठः पतिरासीन्महाबलः॥ २४

शाकद्वीपे चारुतरे दधिमण्डोदसंकुले।
मेधातिथिरभूद्राजा प्रियव्रतसुतो वरः॥ २५

पुष्करद्वीपके शुद्धोदकसिन्धुसमाकुले।
वीतिहोत्रो बभूवासौ राजा जनकसम्मतः॥ २६

कन्यामूर्जस्वतीनाम्नीं ददावुशनसे विभुः।
आसीत्तस्यां देवयानी कन्या काव्यस्य विश्रुता॥ २७

एवं विभज्य पुत्रेभ्यः सप्तद्वीपान् प्रियव्रतः।
विवेकवशगो भूत्वा योगमार्गाश्रितोऽभवत्॥ २८

प्रियव्रतके पुत्र हिरण्यरेता घृतोद नामक समुद्रसे घिरे हुए अति रमणीक कुशद्वीपके राजा हुए॥ २३॥

महान् बलशाली प्रियव्रतपुत्र घृतपृष्ठ क्षीरसागरके द्वारा चारों ओरसे घिरे क्रौंचद्वीप नामक पाँचवें द्वीपके स्वामी हुए॥ २४॥

प्रियव्रतके उत्तम पुत्र मेधातिथि दधिमण्डोद नामक समुद्रसे आवृत तथा अन्य द्वीपोंसे अपेक्षाकृत सुन्दर शाकद्वीपके राजा बने॥ २५॥

अपने पिता प्रियव्रतकी अनुमति पाकर पुत्र वीतिहोत्र शुद्धोद नामक समुद्रसे घिरे पुष्करद्वीपके राजा हुए॥ २६॥

महाराज प्रियव्रतने अपनी ऊर्जस्वती नामक कन्या शुक्राचार्यको अर्पित कर दी थी। शुक्राचार्यकी सर्वविश्रुत कन्या देवयानी उन्हीं ऊर्जस्वतीके गर्भसे उत्पन्न हुई थी॥ २७॥

इस प्रकार अपने पुत्रोंमें सातों द्वीपोंका विभाजन करके महाराज प्रियव्रतने विवेकसम्पन्न होकर योगमार्गका आश्रय ग्रहण किया॥ २८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामष्टमस्कन्धे भुवनकोशविषये प्रियव्रतवंशवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥



अथ पञ्चमोऽध्यायः

भूमण्डलपर स्थित विभिन्न द्वीपों और वर्षोंका संक्षिप्त परिचय

श्रीनारायण उवाच

देवर्षे शृणु विस्तारं द्वीपवर्षविभेदतः।
भूमण्डलस्य सर्वस्य यथा देवप्रकल्पितम्॥ १

समासात्सम्प्रवक्ष्यामि नालं विस्तरतः क्वचित्।
जम्बुद्वीपः प्रथमतः प्रमाणे लक्षयोजनः॥ २

विशालो वर्तुलाकारो यथाब्जस्य च कर्णिका।
नव वर्षाणि यस्मिंश्च नवसाहस्रयोजनैः॥ ३

आयामैः परिसंख्यानि गिरिभिः परितः श्रितैः।
अष्टाभिर्दीर्घरूपैश्च सुविभक्तानि सर्वतः॥ ४

श्रीनारायण बोले—हे देवर्षे! अब आप द्वीप तथा वर्षके भेदसे देवताओंके द्वारा किये गये सम्पूर्ण भूमण्डलके विस्तारके विषयमें सुनिये। इस प्रसंगमें कहीं भी विस्तार न करके मैं संक्षेपमें ही वर्णन करूँगा। सर्वप्रथम एक लाख योजन परिमाणवाले जम्बूद्वीपका निर्माण हुआ। यह अति विशाल द्वीप आकृतिमें जैसी कमलकी कर्णिका होती है, वैसा ही गोल है। इस द्वीपमें कुल नौ हजार योजनतक विस्तारवाले नौ वर्ष कहे गये हैं, जो चारों ओरसे घिरे हुए अतिविशाल रूपवाले आठ पर्वतोंसे अच्छी तरहसे विभाजित हैं॥ १—४॥

धनुर्वत्संस्थिते ज्ञेये द्वे वर्षे दक्षिणोत्तरे।
दीर्घाणि तत्र चत्वारि चतुरस्त्रमिलावृतम्॥ ५

इलावृतं मध्यवर्षं यन्नाभ्यां सुप्रतिष्ठितः।
सौवर्णो गिरिराजोऽयं लक्षयोजनमुच्छ्रितः॥ ६

कर्णिकारूप एवायं भूगोलकमलस्य च।
मूर्ध्नि द्वात्रिंशत्सहस्त्रयोजनैर्विततस्त्वयम्॥ ७

मूले षोडशसाहस्त्रस्तावतान्तर्गतः क्षितौ।
इलावृतस्योत्तरतो नीलः श्वेतश्च शृङ्गवान्॥ ८

त्रयो वै गिरयः प्रोक्ता मर्यादावधयस्त्रिषु।
रम्यकाख्ये तथा वर्षे द्वितीये च हिरण्मये॥ ९

कुरुवर्षे तृतीये तु मर्यादां व्यञ्जयन्ति ते।
प्रागायता उभयतः क्षारोदावधयस्तथा॥ १०

द्विसहस्त्रपृथुतरास्तथा एकैकशः क्रमात्।
पूर्वात्पूर्वाच्चोत्तरस्यां दशांशादधिकांशतः॥ ११

दैर्घ्य एव ह्रसन्तीमे नानानदनदीयुताः।
इलावृताद्दक्षिणतो निषधो हेमकूटकः॥ १२

हिमालयश्चेति त्रयः प्राग्विस्तीर्णाः सुशोभनाः।
अयुतोत्सेधभाजस्ते योजनैः परिकीर्तिताः॥ १३

हरिवर्षं किम्पुरुषं भारतं च यथातथम्।
विभागात्कथयन्त्येते मर्यादागिरयस्त्रयः॥ १४

इलावृतात्पश्चिमतो माल्यवान्नामपर्वतः।
पूर्वेण च ततः श्रीमान् गन्धमादनपर्वतः॥ १५

आनीलनिषधं त्वेतौ चायतौ द्विसहस्त्रतः।
योजनैः पृथुतां यातौ मर्यादाकारकौ गिरी॥ १६

केतुमालाख्यभद्राश्ववर्षयोः प्रथितौ च तौ।
मन्दरश्च तथा मेरुमन्दरश्च सुपार्श्वकः॥ १७

कुमुदश्चेति विख्याता गिरयो मेरुपादकाः।
योजनायुतविस्तारोन्नाहा मेरोश्चतुर्दिशम्॥ १८

अवष्टम्भकरास्ते तु सर्वतोऽभिविराजिताः।

धनुषके आकारकी भाँति दो वर्षोंको दक्षिण-उत्तरतक फैला हुआ जानना चाहिये। वहीं चार और विशाल वर्ष हैं। इलावृत नामका वर्ष चौकोर है। यह इलावृत मध्यवर्ष भी कहा जाता है; जिसकी नाभि (मध्यभाग)-में एक लाख योजन ऊँचाईवाला सुवर्णमय सुमेरु नामक पर्वतराज विद्यमान है। यह पर्वत ही गोलाकार पृथ्वीरूप कमलकी कर्णिकाके रूपमें स्थित है। इस पर्वतका शिखरभाग बत्तीस हजार योजनके विस्तारमें है, इसका मूलभाग (तलहटी) सोलह हजार योजनतक पृथ्वीपर फैला है और इतने ही योजनतक पृथ्वीके भीतर प्रविष्ट है॥ ५—७½ ॥

इलावृतके उत्तरमें उसकी सीमाके रूपमें नील, श्वेत और शृंगवान्—ये तीन पर्वत कहे गये हैं॥ ८½ ॥

वे पर्वत रम्यक नामक वर्ष, दूसरे हिरण्मयवर्ष तथा तीसरे कुरुवर्षकी सीमा व्यक्त करते हैं॥ ९½ ॥

वे वर्ष आगेकी ओर फैले हुए हैं। दोनों ओरकी सीमा क्षार समुद्र है। वे दो हजार योजन विस्तारवाले हैं। वे क्रमशः एकसे एक पूर्वकी ओर दशांशमें बढ़ते गये हैं और उत्तरमें एक-एक दशांशका अन्तर चौड़ाईमें कम होता गया है। ये वर्ष अनेक नदियों तथा सरोवरोंसे युक्त हैं॥ १०-११½ ॥

इलावृतके दक्षिणमें निषध, हेमकूट और हिमालय नामक अत्यन्त सुन्दर तीन पर्वत पूर्वकी ओर फैले हुए हैं। वे दस हजार योजन ऊँचाईवाले कहे जाते हैं। हरिवर्ष, किम्पुरुष और भारतवर्ष—इन तीनोंका विभागानुसार यथार्थ वर्णन किया गया है। ये तीनों पर्वत (निषध, हेमकूट और हिमालय) उक्त तीनों वर्षोंकी सीमा हैं॥ १२—१४॥

इलावृतके पश्चिममें माल्यवान् नामक पर्वत और पूर्वकी ओर श्रीयुक्त गन्धमादनपर्वत स्थित हैं। ये दोनों पर्वत नीलपर्वतसे लेकर निषधपर्वततक लम्बाईमें फैले हैं और चौड़ाईमें इनका विस्तार दो हजार योजन है। वे दोनों पर्वत केतुमाल और भद्राश्व—इन दोनों वर्षोंकी सीमा निश्चित करते हैं॥ १५-१६॥

मन्दर, मेरुमन्दर, सुपार्श्व और कुमुद—ये चारों पर्वत सुमेरुगिरिके पादके रूपमें कहे गये हैं। दस-दस हजार योजन ऊँचाईवाले ये पर्वत सभी ओरसे सुमेरुको सहारा दिये हुए चारों दिशाओंमें विराजमान हैं॥ १७-१८½ ॥

एतेषु गिरिषु प्राप्ताः पादपाश्चूतजम्बुनी॥ १९

कदम्बन्यग्रोध इति चत्वारः पर्वताः स्थिताः।
केतवो गिरिराजेषु एकादशशतोच्छ्रयाः॥ २०

तावद्विटपविस्ताराः शताख्यपरिणाहिनः।
चत्वारश्च ह्रदास्तेषु पयोमध्विक्षुसज्जलाः॥ २१

यदुपस्पर्शिनो देवा योगैश्वर्याणि विन्दते।
देवोद्यानानि चत्वारि भवन्ति ललनासुखाः॥ २२

नन्दनं चैत्ररथकं वैभ्राजं सर्वभद्रकम्।
येषु स्थित्वामरगणा ललनायूथसंयुताः॥ २३

उपदेवगणैर्गीतमहिमानो महाशयाः।
विहरन्ति स्वतन्त्रास्ते यथाकामं यथासुखम्॥ २४

मन्दरोत्सङ्गसंस्थस्य देवचूतस्य मस्तकात्।
एकादशशतोच्छ्रायात्फलान्यमृतभाञ्जि च॥ २५

गिरिकूटप्रमाणानि सुस्वादूनि मृदूनि च।

तेषां विशीर्यमाणानां फलानां सुरसेन च॥ २६

अरुणोदसवर्णेन अरुणोदा प्रवर्तते।
नदी रम्यजला देवदैत्यराजप्रपूजिता॥ २७

अरुणाख्या महाराज वर्तते पापहारिणी।
पूजयन्ति च तां देवीं सर्वकामफलप्रदाम्॥ २८

नानोपहारबलिभिः कल्मषघ्न्यभयप्रदाम्।
तस्याः कृपावलोकेन क्षेमारोग्यं व्रजन्ति ते॥ २९

आद्या मायातुलानन्ता पुष्टिरीश्वरमालिनी।
दुष्टनाशकरी कान्तिदायिनीति स्मृता भुवि॥ ३०

अस्याः पूजाप्रभावेण जाम्बूनदमुदावहत्॥ ३१

इन पर्वतोंपर आम, जामुन, कदम्ब तथा बरगदके वृक्ष स्थित हैं, जो इन पर्वतराजोंकी ध्वजाओंके रूपमें विराजमान हैं। इनमेंसे सभी वृक्ष ग्यारह सौ योजन ऊँचाईवाले हैं, इतना ही इनकी शाखाओंका विस्तार है और ये सौ योजन मोटाईवाले हैं॥ १९-२०$\frac{1}{2}$॥

इन पर्वतोंपर दूध, मधु, ईखके रस और सुस्वादु जलसे परिपूर्ण चार सरोवर हैं; जिनमें स्नान, आचमन आदि करनेवाले देवता योग-सम्बन्धी महाशक्तियाँ प्राप्त कर लेते हैं॥ २१$\frac{1}{2}$॥

वहाँ स्त्रियोंको सुख प्रदान करनेवाले नन्दन, चैत्ररथ, वैभ्राज और सर्वभद्र नामक चार देवोद्यान हैं। गन्धर्व आदि उपदेवताओंके द्वारा गायी जानेवाली महिमासे युक्त महाभाग देवतागण सुन्दर अंगनाओंके साथ वहाँ निवास करते हैं और स्वतन्त्र होकर सुखपूर्वक यथेच्छ विहार करते हैं॥ २२—२४॥

मन्दराचलके शिखरपर विराजमान ग्यारह सौ योजन ऊँचे दिव्य आम्र-वृक्षके फल अमृतमय पर्वत-शिखरके समान विशाल, अत्यन्त स्वादिष्ट तथा कोमल होते हैं। उस वृक्षके ऊँचे शिरोभागसे गिरकर विदीर्ण हुए उन फलोंके सुस्वादु एवं लाल वर्णवाले रससे 'अरुणोदा' नामक नदी बन गयी। रम्य जलवाली यह नदी बड़े-बड़े देवताओं तथा दैत्योंद्वारा पूजी जाती है॥ २५—२७॥

हे महाराज! उसी पर्वतपर पापनाशिनी भगवती 'अरुणा' प्रतिष्ठित हैं। लोग अनेकविध उपहारों तथा बलिसे समस्त मनोरथ पूर्ण करनेवाली, पापोंका शमन करनेवाली तथा अभय प्रदान करनेवाली उन भगवतीका पूजन करते हैं। उनकी कृपादृष्टिमात्रसे वे कल्याण तथा आरोग्य प्राप्त कर लेते हैं॥ २८-२९॥

ये आद्या, माया, अतुला, अनन्ता, पुष्टि, ईश्वरमालिनी, दुष्टनाशकरी और कान्तिदायिनी—इन नामोंसे भूमण्डलपर विख्यात हैं। इन्हींके पूजा-प्रभावसे जाम्बूनद नामक सुवर्ण उत्पन्न हुआ है॥ ३०-३१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामष्टमस्कन्धे भुवनलोकवर्णने द्वीपवर्षविभेदवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥



अथ षष्ठोऽध्यायः

भूमण्डलके विभिन्न पर्वतोंसे निकलनेवाली विभिन्न नदियोंका वर्णन

श्रीनारायण उवाच

अरुणोदा नदी या तु मया प्रोक्ता च नारद।
मन्दरान्निपतन्ती सा पूर्वेणेलावृतं प्लवेत्॥ १

यज्जोषणाद्भवान्याश्चानुचरीणां स्त्रियामपि।
यक्षगन्धर्वपत्नीनां देहगन्धवहोनिलः॥ २

वासयत्यभितो भूमिं दशयोजनसंख्यया।
एवं जम्बूफलानां च तुङ्गदेशनिपातनात्॥ ३

विशीर्यतामनस्थीनां कुञ्जराङ्गप्रमाणिनाम्।
रसेन च नदी जम्बूनाम्नी मेर्वाख्यमन्दरात्॥ ४

पतन्ती भूमिभागे च दक्षिणेलावृतं गता।
देवी जम्बूफलास्वादतुष्टा जम्ब्वादिनी स्मृता॥ ५

तत्रत्यानां च लोकानां देवनागर्षिरक्षसाम्।
पूजनीयपदा मान्या सर्वभूतदयाकरी॥ ६

पावनी पापिनां रोगनाशिनी स्मरतामपि।
कीर्तिता विघ्नसंहर्त्री माननीया दिवौकसाम्॥ ७

कोकिलाक्षी कामकला करुणा कामपूजिता।
कठोरविग्रहा धन्या नाकिमान्या गभस्तिनी॥ ८

एभिर्नामपदैः कामं जपनीया सदा नृणाम्।
जम्बूनदीरोधसोर्या मृत्तिकातीरवर्तिनी॥ ९

जम्बूरसेनानुविद्ध्यमाना वाय्वर्कयोगतः।
विद्याधरामरस्त्रीणां भूषणं विविधं महत्॥ १०

जाम्बूनदं सुवर्णं च प्रोक्तं देवविनिर्मितम्।
यत्सुवर्णं च विबुधा योषिद्भिः कामुकाः सदा॥ ११
मुकुटं कटिसूत्रं च केयूरादीन्प्रकुर्वते।

श्रीनारायण बोले—हे नारद! मैंने अरुणोदा नामक जिस नदीका वर्णन किया है, वह मन्दरपर्वतसे निकलकर इलावृतके पूर्व भागमें प्रवाहित होती है॥ १॥

भगवतीकी अनुचरी स्त्रियों तथा यक्षों और गन्धर्वोंकी पत्नियोंके अरुणोदाके जलमें स्नान करनेसे उनके शरीरकी दिव्य गन्धसे उसका जल सुवासित हो जाता है। उस सुगन्धको लेकर बहता हुआ पवन चारों ओरकी दशयोजनपर्यन्त भूमिको सुगन्धित कर देता है॥ २$\frac{1}{2}$॥

इसी प्रकार पर्वतकी अधिक ऊँचाईसे गिरनेके कारण हाथीके शरीरके समान विशाल आकारवाले गुठलीरहित जम्बू-फलोंके फटनेसे निकले हुए रसके द्वारा जम्बू नामक नदी बन गयी। वह मेरुमन्दरसे पृथ्वीतलपर गिरती हुई इलावृतवर्षसे दक्षिणकी ओर प्रवाहित होने लगी॥ ३-४$\frac{1}{2}$॥

जम्बू-फलके स्वादसे सन्तुष्ट होनेवाली भगवती 'जम्ब्वादिनी' नामसे विख्यात हैं। वहाँके देवता, नाग, ऋषि, राक्षस तथा अन्य लोगोंके लिये सभी प्राणियोंपर दया करनेवाली ये भगवती मान्य तथा पूजाके योग्य हैं। ये स्मरण करनेवाले पापियोंको पवित्र कर देनेवाली तथा उनके रोगोंको नष्ट कर देनेवाली हैं। देवताओंकी भी वन्दनीया इन भगवतीका कीर्तन करनेसे विघ्नोंका नाश हो जाता है। कोकिलाक्षी, कामकला, करुणा, कामपूजिता, कठोरविग्रहा, धन्या, नाकिमान्या, गभस्तिनी—इन नामोंका उच्चारण करके मनुष्योंको सदा देवीका जप करना चाहिये॥ ५—८$\frac{1}{2}$॥

जम्बूनदीके तटोंपर विद्यमान जो मिट्टी है, वह जम्बू-रससे सिक्त होकर और पुनः सूर्य तथा वायुके सम्पर्कसे सुवर्ण बन जाती है। उसीसे विद्याधरों और देवताओंकी स्त्रियोंके अनेक उत्तम आभूषण बने हैं, वह जाम्बूनद सुवर्ण देवनिर्मित कहा गया है। सदा अपनी स्त्रियोंकी कामना पूर्ण करनेवाले देवतागण उसी सुवर्णसे मुकुट, करधनी और केयूर आदिका निर्माण करते हैं॥ ९—११$\frac{1}{2}$॥

महाकदम्बः सम्प्रोक्तः सुपार्श्वगिरिसंस्थितः॥ १२
तस्य कोटरदेशेभ्यः पञ्च धाराश्च याः स्मृताः।
सुपार्श्वगिरिमूर्ध्नीह पतन्त्येता भुवं गताः॥ १३
मधुधाराः पञ्च तास्तु पश्चिमेलावृतं प्लुताः।
याश्चोपभुज्यमानानां देवानां मुखगन्धभृत्॥ १४
वायुः समन्ततोऽगच्छच्छतयोजनवासनः।
धारेश्वरी महादेवी भक्तानां कार्यकारिणी॥ १५
देवपूज्या महोत्साहा कालरूपा महानना।
वसते कर्मफलदा कान्तारग्रहणेश्वरी॥ १६
करालदेहा कालाङ्गी कामकोटिप्रवर्तिनी।
इत्येतैर्नामभिः पूज्या देवी सर्वसुरेश्वरी॥ १७
एवं कुमुदरूढो यो नाम्ना शतबलो वटः।
तत्स्कन्धेभ्योऽधोमुखाश्च नदाः कुमुदमूर्धतः॥ १८
पयोदधिमधुघृतगुडान्नाद्यम्बरादिभिः।
शय्यासनाद्याभरणैः सर्वे कामदुघाश्च ते॥ १९
उत्तरेणेलावृतं ते प्लावयन्ति समन्ततः।
मीनाक्षी तत्तले देवी देवासुरनिषेविता॥ २०
नीलाम्बरा रौद्रमुखी नीलालकयुता च सा।
नाकिनां देवसंघानां फलदा वरदा च सा॥ २१
अतिमान्यातिपूज्या च मत्तमातङ्गगामिनी।
मदनोन्मादिनी मानप्रिया मानप्रियान्तरा॥ २२
मारवेगधरा मारपूजिता मारमादिनी।
मयूरवरशोभाढ्या शिखिवाहनगर्भभूः॥ २३
एभिर्नामपदैर्वन्द्या देवी सा मीनलोचना।
जपतां स्मरतां मानदात्री चेश्वरसङ्गिनी॥ २४
तेषां नदानां पानीयपानानुगतचेतसाम्।
प्रजानां न कदाचित्स्याद्वलीपलितलक्षणम्॥ २५
क्लमस्वेदादिदौर्गन्ध्यं जरामयमृतिभ्रमाः।
शीतोष्णवातवैवर्ण्यमुखोपप्लवसंचयाः॥ २६

कदम्बका एक विशाल वृक्ष सुपार्श्वपर्वतपर विराजमान बताया गया है। उसके कोटरोंसे जो पाँच धाराएँ निकली हुई बतायी गयी हैं, वे सुपार्श्वगिरिके शिखरपर गिरकर पृथ्वीतलपर आयीं। वे पाँचों मधुधाराएँ इलावृतवर्षके पश्चिमभागमें प्रवाहित होती हैं। इनका सेवन करनेवाले देवताओंके मुखकी सुगन्धि लेकर प्रवाहित होता हुआ पवन चारों ओर सौ योजनतककी भूमिको सुवासित कर देता है॥ १२—१४½ ॥

भक्तोंका काम सिद्ध करनेवाली महादेवी धारेश्वरी वहाँ वास करती हैं। देवपूज्या, महोत्साहा, कालरूपा, महानना, कर्मफलदा, कान्तारग्रहणेश्वरी, करालदेहा, कालांगी और कामकोटिप्रवर्तिनी—इन नामोंसे सर्वसुरेश्वरी भगवतीकी पूजा करनी चाहिये॥ १५—१७॥

इसी प्रकार कुमुदपर्वतके ऊपर शतबल नामसे प्रसिद्ध जो वट-वृक्ष है, उसकी शाखाओंसे नीचे गिरते हुए रससे बहुतसे नद हो गये हैं; कुमुदगिरिके शिखरसे नीचेकी ओर गिरनेवाले वे सभी नद दूध, दही, मधु, घी, गुड़, अन्न, वस्त्र, शय्या, आसन तथा आभूषण आदिके द्वारा सबके मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले हैं। वे इलावृतवर्षके उत्तरभागकी सम्पूर्ण भूमिको आप्लावित किये रहते हैं॥ १८-१९½ ॥

इन्हींके तटपर देवताओं और दानवोंद्वारा नित्य उपासित भगवती मीनाक्षी प्रतिष्ठित हैं। नीलाम्बरा, रौद्रमुखी, नीलालकयुता, अतिमान्या, अतिपूज्या, मत्तमातंगगामिनी, मदनोन्मादिनी, मानप्रिया, मानप्रियान्तरा, मारवेगधरा, मारपूजिता, मारमादिनी, मयूरवरशोभाढ्या तथा शिखिवाहनगर्भभू—इन नामोंसे युक्त पदोंके द्वारा स्वर्गवासी देवताओंको अभीष्ट फल तथा वर प्रदान करनेवाली देवीकी वन्दना करनी चाहिये। सदा परब्रह्मसे सांनिध्य रखनेवाली वे भगवती मीनाक्षी जप तथा ध्यान करनेवाले प्राणियोंको सम्मान प्रदान करती हैं॥ २०—२४॥

उन नदोंका जल पीनेसे चैतन्य प्राप्त करनेवाले प्राणियोंके शरीरपर झुर्रियों तथा केशोंकी सफेदीके लक्षण कभी नहीं दिखायी पड़ते। थकान, पसीने आदिमें दुर्गन्धि, जरा, रोग, भय, मृत्यु, भ्रम, शीत एवं उष्ण वायु-विकार, मुखपर उदासी एवं अन्य आपत्तियाँ

नापदश्चैव जायन्ते यावज्जीवं सुखं भवेत्।
नैरन्तर्येण तत्स्याद्वै सुखं निरतिशायकम्॥ २७
तत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि सन्निवेशं च तद्गिरेः।
सुवर्णमयनाम्नो वै सुमेरोः पर्वताः पृथक्॥ २८
गिरयो विंशतिपराः कर्णिकाया इवेह ते।
केसरीभूय सर्वेऽपि मेरोर्मूलविभागके॥ २९
परितश्चोपक्लृप्तास्ते तेषां नामानि शृण्वतः।
कुरङ्गः कुरगश्चैव कुसुम्भोऽथो विकङ्कतः॥ ३०
त्रिकूटः शिशिरश्चैव पतङ्गो रुचकस्तथा।
निषधश्च शिनीवासः कपिलः शङ्ख एव च॥ ३१
वैदूर्यश्चारुधिश्चैव हंसो ऋषभ एव च।
नागः कालञ्जरश्चैव नारदश्चेति विंशतिः॥ ३२

कभी नहीं उत्पन्न होती हैं और जीवनपर्यन्त प्राणीको सुख मिलता है और वह सुख पूर्णरूपसे निरन्तर बढ़ता ही रहता है॥ २५—२७॥

हे नारद! अब मैं उस सुमेरु नामक सुवर्णमय पर्वतके अवान्तर पर्वतोंका वर्णन करूँगा। इस पर्वतसे पृथक् बीस पर्वत हैं, जो कर्णिकाके समान हैं। उनके मूलभागमें सुमेरुपर्वत है और उसको चारों ओरसे घेरकर वे सभी पर्वत पुष्पके केसरके रूपमें विराजमान हैं। उनके नाम ये हैं—शृण्वत, कुरंग, कुरग, कुसुम्भ, विकंकत, त्रिकूट, शिशिर, पतंग, रुचक, निषध, शिनीवास, कपिल, शंख, वैदूर्य, अरुधि, हंस, ऋषभ, नाग, कालंजर और नारद—ये बीस पर्वत हैं॥ २८—३२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामष्टमस्कन्धे भुवनकोशवर्णने-ऽरुणोदादिनदीनां निसर्गस्थानवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥



अथ सप्तमोऽध्यायः

सुमेरुपर्वतका वर्णन तथा गंगावतरणका आख्यान

श्रीनारायण उवाच

गिरी मेरुं च पूर्वेण द्वौ चाष्टादशयोजनैः।
सहस्रैरायतौ चोदग्द्विसहस्रं पृथूच्चकौ॥ १
जठरो देवकूटश्च तावेतौ गिरिवर्यकौ।
मेरोः पश्चिमतोऽद्री द्वौ पवमानस्तथापरः॥ २
पारियात्रश्च तौ तावद्विख्यातौ तुङ्गविस्तरौ।
मेरोर्दक्षिणतः ख्यातौ कैलासकरवीरकौ॥ ३
प्रागायतौ पूर्ववृत्तौ महापर्वतराजकौ।
एवं चोत्तरतो मेरोस्त्रिशृङ्गमकरौ गिरी॥ ४
एतैश्चाद्रिवरैरष्टसंख्यैः परिवृतो गिरिः।
सुमेरुः काञ्चनगिरिः परिभ्राजन् रविर्यथा॥ ५
मेरोर्मूर्धनि धातुर्हि पुरी पङ्कजजन्मनः।
मध्यतश्चोपक्लृप्तेयं दशसाहस्रयोजनैः॥ ६

श्रीनारायण बोले—हे नारद! सुमेरुगिरिके पूर्वमें अठारह हजार योजन लम्बाई तथा दो हजार योजन चौड़ाई तथा ऊँचाईवाले दो पर्वत हैं। वे दोनों श्रेष्ठ पर्वत जठर और देवकूट हैं। सुमेरुके पश्चिममें भी दो पर्वत हैं; उनमें पहला पवमान और दूसरा पारियात्र नामसे विख्यात है। वे दोनों पर्वत जठर तथा देवकूटके ही समान ऊँचाई तथा विस्तारवाले कहे गये हैं। सुमेरुके दक्षिणमें कैलास और करवीर नामसे विख्यात दो पर्वत हैं; ये दोनों विशाल पर्वतराज पहलेके ही समान लम्बाई तथा चौड़ाईवाले हैं। इसी प्रकार सुमेरुके उत्तरमें त्रिशृंग और मकर नामक दो पर्वत स्थित हैं। सूर्यकी भाँति सदा प्रकाश करता हुआ यह सुवर्णमय सुमेरुपर्वत इन्हीं आठों पर्वतश्रेष्ठोंसे चारों तरफसे घिरा हुआ है॥ १—५॥

इस सुमेरुपर्वतके शिखरपर ठीक मध्यमें पद्मयोनि ब्रह्माजीकी पुरी है। यह दस हजार योजनके विस्तारमें विराजमान है॥ ६॥

समानचतुरस्त्रां च शातकौम्भमयीं पुरीम्।
वर्णयन्ति महात्मानः परावरविदो बुधाः॥ ७

तां पुरीमनुलोकानामष्टानामीशिषां पराः।
पुर्यः प्रख्यातसौवर्णरूपास्ताश्च यथादिशम्॥ ८

यथारूपं सार्धनेत्रसहस्त्रप्रमिताः कृताः।
मेरोर्नव पुराणि स्युर्मनोवत्यमरावती॥ ९

तेजोवती संयमनी तथा कृष्णाङ्गनापरा।
श्रद्धावती गन्धवती तथा चान्या महोदया॥ १०

यशोवती च ब्रह्मेन्द्रवह्न्यादीनां यथाक्रमम्।
तत्रैव यज्ञलिङ्गस्य विष्णोर्भगवतो विभोः॥ ११

वामपादाङ्गुष्ठनखनिर्भिन्नस्य च नारद।
अण्डोर्ध्वभागरन्ध्रस्य मध्यात्संविशती दिवः॥ १२

मूर्धन्यवततारेयं गङ्गा संविशती विभो।
लोकानामखिलानां च पापहारिजलाकुला॥ १३

इयं च साक्षाद्भगवत्पदी लोकेषु विश्रुता।
कालेन महता सा तु युगसाहस्त्रकेण तु॥ १४

दिवो मूर्धानमागत्य देवी देवनदीश्वरी।
यत्तद्विष्णुपदं नाम स्थानं त्रैलोक्यविश्रुतम्॥ १५

औत्तानपादिर्यत्रास्ते ध्रुवः परमपावनः।
भगवत्पादयुगलं पद्मकोशरजो दधत्॥ १६

अद्याप्यास्ते स राजर्षिः पदवीमचलां श्रितः।
तत्र सप्तर्षयस्तस्य प्रभावज्ञा महाशयाः॥ १७

प्रदक्षिणं प्रक्रमन्ति सर्वलोकहितेप्सवः।
आत्यन्तिकी सिद्धिरियं तपतां सिद्धिदायिनी॥ १८

आद्रियन्ते च शिरसा जटाजूटोषितेन च।
ततो विष्णुपदाद्देवी नैकसाहस्त्रकोटिभिः॥ १९

तत्त्वज्ञानी विद्वान् महात्मागण समचौकोर इस स्वर्णमयी पुरीके विषयमें कहते हैं कि उस पुरीके चारों ओर आठ लोकपालोंकी श्रेष्ठ पुरियाँ प्रसिद्ध हैं। सुवर्णमयी वे पुरियाँ दिशा तथा रूपके अनुसार स्थापित हैं। ढाई हजार योजनके विस्तारमें इनकी रचना की गयी है॥ ७-८½ ॥

इस प्रकार सुमेरुपर्वतपर ब्रह्मा तथा इन्द्र, अग्नि आदि लोकपालोंकी क्रमशः मनोवती, अमरावती, तेजोवती, संयमनी, कृष्णांगना, श्रद्धावती, गन्धवती, महोदया और यशोवती—ये नौ पुरियाँ प्रतिष्ठित हैं॥ ९-१०½ ॥

हे नारद! यज्ञमूर्ति सर्वव्यापी भगवान् विष्णुके बायें पैरके अँगूठेके नखसे आघातके कारण ब्रह्माण्डके ऊपरी भागमें हुए छिद्रके मध्यसे गंगा प्रकट हुईं और हे विभो! वे स्वर्गके शिखरपर आकर रुक गयीं। सम्पूर्ण प्राणियोंके पापोंका नाश करनेवाले जलसे परिपूर्ण ये गंगा संसारमें साक्षात् विष्णुपदीके नामसे प्रसिद्ध हैं॥ ११—१३½ ॥

हजार युगका अत्यन्त दीर्घ समय बीतनेपर सम्पूर्ण देवनदियोंकी स्वामिनी वे भगवती गंगा स्वर्गके शिखरपर जहाँ आयी थीं, वह स्थान तीनों लोकमें 'विष्णुपद' नामसे विख्यात है। यह वही स्थान है, जहाँ उत्तानपादके पुत्र परम पवित्र ध्रुव रहते हैं। भगवान्के दोनों चरणकमलोंके पवित्र पराग धारण किये हुए वे परम पुण्यात्मा राजर्षि ध्रुव अचल पदवीका आश्रय लेकर आज भी वहींपर विराजमान हैं॥ १४—१६½ ॥

गंगाके प्रवाहको जाननेवाले तथा सभी प्राणियोंके हितकी कामना करनेवाले उदारहृदय सप्तर्षि भी वहीं रहते हैं और उनकी प्रदक्षिणा किया करते हैं॥ १७½ ॥

आत्यन्तिकी सिद्धि (मोक्ष)-स्वरूपिणी ये गंगा तपस्या करनेवाले पुरुषोंको सिद्धि देनेवाली हैं—ऐसा समझकर सिरपर जटाजूट धारण करनेवाले वे सिद्धगण उनमें निरन्तर स्नान करते रहते हैं॥ १८½ ॥

तत्पश्चात् वे गंगा विष्णुपदसे चलकर हजारों-करोड़ों विमानोंसे व्याप्त देवमार्गपर अवतरित होती

विमानैराकुले देवयानेऽवतरती च सा।
चन्द्रमण्डलमाप्लाव्य पतन्ती ब्रह्मसद्मनि॥ २०

चतुर्धा भिद्यमाना सा ब्रह्मलोके च नारद।
चतुर्भिर्नामभिर्देवी चतुर्दिशमभिसृता॥ २१

सरितां च नदीनां च पतिमेवान्वपद्यत।
सीता चालकनन्दा च चतुर्भद्रेति नामभिः॥ २२

सीता च ब्रह्मसदनाच्छिखरेभ्यः क्षमाभृताम्।
केसराभिधनाम्ना च प्रस्रवन्ती च स्वर्णदी॥ २३

गन्धमादनमूर्ध्नीह पतिता पापहारिणी।
अन्तरेण तु भद्राश्ववर्षं प्राच्यां समागता॥ २४

क्षारोदधिं गता सा तु द्युनदी देवपूजिता।
ततो माल्यवतः शृङ्गाद् द्वितीया परिनिर्गता॥ २५

ततो वेगवती भूत्वा केतुमालं समागता।
चक्षुर्नाम्नी देवनदी प्रतीच्यां दिश्युपागता॥ २६

सरितां पतिमाविष्टा सा गङ्गा देववन्दिता।
ततस्तृतीया धारा तु नाम्ना ख्याता च नारद॥ २७

पुण्या चालकनन्दा वै दक्षिणेनाब्जभूपदात्।
वनानि गिरिकूटानि समतिक्रम्य चागता॥ २८

हेमकूटं गिरिवरं प्राप्तातोऽपीह निर्गता।
अतिवेगवती भूत्वा भारतं चागतापरा॥ २९

दक्षिणं जलधिं प्राप्ता तृतीया सा सरिद्वरा।
यस्याः स्नानाय सरतां मनुजानां पदे पदे॥ ३०

राजसूयाश्वमेधादि फलं तु न हि दुर्लभम्।
ततश्चतुर्थी धारा तु शृङ्गवत्पर्वतात्पुनः॥ ३१

भद्राभिधा संस्रवन्ती कुरून्सन्तर्प्य चोत्तरान्।
समुद्रं समनुप्राप्ता गङ्गा त्रैलोक्यपावनी॥ ३२

अन्ये नदाश्च नद्यश्च वर्षे वर्षेऽपि सन्ति हि।
बहुशो मेरुमन्दारप्रसूताश्चैव नारद॥ ३३

हुई चन्द्रमण्डलको आप्लावित करके ब्रह्मलोकमें पहुँचीं। हे नारद! वहाँ ब्रह्मलोकमें वे देवी गंगा चार भागोंमें विभक्त होकर चार नामोंसे चारों दिशाओंमें प्रवाहित हुईं और अन्तमें वे नद तथा नदियोंके स्वामी समुद्रमें मिल गयीं॥ १९—२१½ ॥

सीता, चतुः (चक्षु), अलकनन्दा और भद्रा—इन चार नामोंसे वे प्रसिद्ध हैं। उनमेंसे सभी पापोंका शमन करनेवाली सीता नामसे विख्यात गंगा ब्रह्मलोकसे उतरकर केसर नामक पर्वतोंके शिखरसे गिरती हुईं गन्धमादनपर्वतके शिखरपर गिरीं और वहाँसे भद्राश्ववर्षके बीचसे होती हुई पूर्व दिशामें चली गयीं। इसके बाद देवताओंसे पूजित वे देवनदी गंगा क्षारोदधिमें जाकर मिल गयीं॥ २२—२४½ ॥

तदनन्तर चक्षु नामवाली दूसरी गंगा माल्यवान्पर्वतके शिखरसे निकलीं और अत्यन्त वेगके साथ बहती हुई केतुमालवर्षमें आ गयीं। पुनः देववन्द्या वे देवनदी गंगा पश्चिम दिशामें आ गयीं और अन्तमें सागरमें समाविष्ट हो गयीं॥ २५-२६½ ॥

हे नारद! तीसरी वह पुण्यमयी धारा अलकनन्दा नामसे विख्यात है। वह ब्रह्मलोकके दक्षिणसे होकर बहुत-से वनों और पर्वत-शिखरोंको पार करके पर्वतश्रेष्ठ हेमकूटपर पहुँची। यहाँसे भी निकलकर वह अत्यन्त वेगके साथ बहती हुई भारतवर्षमें आ गयी। इसके बाद नदियोंमें श्रेष्ठ अलकनन्दा नामक वह तीसरी नदी दक्षिण समुद्रमें मिल गयी, जिसमें स्नानके लिये प्रस्थान करनेवाले मनुष्योंको पग-पगपर राजसूय तथा अश्वमेध आदिका फल भी दुर्लभ नहीं है॥ २७—३०½ ॥

तदनन्तर भद्रा नामक चौथी धारा शृंगवान्पर्वतसे निकली। तीनों लोकोंको पवित्र करनेवाली यह गंगा उत्तर कुरुप्रदेशोंको भलीभाँति तृप्त करती हुई अन्तमें समुद्रमें मिल गयी॥ ३१-३२॥

हे नारद! अन्य बहुतसे नद और नदियाँ प्रत्येक वर्षमें हैं। प्रायः ये सभी मेरु और मन्दारपर्वतसे ही निकले हुए हैं॥ ३३॥

तत्रापि भारतं वर्षं कर्मक्षेत्रमुशन्ति हि।
अन्यानि चाष्टवर्षाणि भौमस्वर्गप्रदानि च॥ ३४

स्वर्गिणां पुण्यशेषस्य भोगस्थानानि नारद।
पुरुषाणां चायुतायुर्वज्राङ्गा देवसन्निभाः॥ ३५

पुरुषा नागसाहस्त्रैर्दशभिः परिकल्पिताः।
महासौरतसन्तुष्टाः कलत्राढ्याः सुखान्विताः॥ ३६

एकवर्षोनके चायुष्याप्तगर्भाः स्त्रियोऽपि हि।
त्रेतायुगसमः कालो वर्तते सर्वदैव हि॥ ३७

उन नौ वर्षोंमें भारतवर्ष कर्मक्षेत्र कहा गया है। अन्य आठ वर्ष पृथ्वीपर रहते हुए भी स्वर्ग-भोग प्रदान करनेवाले हैं। हे नारद! ये वर्ष स्वर्गमें रहनेवाले पुरुषोंके शेष पुण्योंको भोगनेके स्थान हैं। देवताओंके समान स्वरूप तथा वज्रतुल्य अंगोंवाले उन पुरुषोंकी आयु दस हजार वर्ष होती है। दस हजार हाथियोंके बलसे सम्पन्न वे पुरुष स्त्रियोंसे समन्वित, यथेच्छ कामक्रीडासे सन्तुष्ट तथा सुखी रहते हैं। वहाँकी स्त्रियाँ अपनी आयु समाप्त होनेके एक वर्ष पूर्वतक गर्भ धारण करती हैं। वहाँपर सदा त्रेतायुगके समान समय विद्यमान रहता है॥ ३४—३७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायामष्टमस्कन्धे भुवनकोशवर्णने पर्वतनदीवर्षादिवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

~~~o~~~

अथाष्टमोऽध्यायः

इलावृतवर्षमें भगवान् शंकरद्वारा भगवान् श्रीहरिके संकर्षणरूपकी आराधना तथा भद्राश्ववर्षमें भद्रश्रवाद्वारा हयग्रीवरूपकी उपासना

श्रीनारायण उवाच

तेषु वर्षेषु देवेशाः पूर्वोक्तैः स्तवनैः सदा।
पूजयन्ति महादेवीं जपध्यानसमाधिभिः॥ १
सर्वर्तुकुसुमश्रेणी शोभिता वनराजयः।
फलानां पल्लवानां च यत्र शोभा निरन्तरम्॥ २
तेषु काननवर्षेषु वर्षपर्वतसानुषु।
गिरिद्रोणीषु सर्वासु निर्मलोदकराशिषु॥ ३
विकचोत्पलमालासु हंससारससञ्चयैः।
विमिश्रितेषु तेष्वेव पक्षिभिः कूजितेषु च॥ ४
जलक्रीडादिभिश्चित्रविनोदैः क्रीडयन्ति च।
सुन्दरीललितभ्रूणां विलासायतनेषु च॥ ५
तत्रत्या विहरन्त्यत्र स्वैरं युवतिभिः सह।
नवस्वपि च वर्षेषु भगवानादिपूरुषः॥ ६
(नारायणाख्यो लोकानामनुग्रहरसैकदृक्।)
देवीमाराधयन्नास्ते स च सर्वैश्च पूज्यते।
आत्मव्यूहेनेज्ययासौ सन्निधत्ते समाहितः॥ ७

श्रीनारायण बोले—उन नौ वर्षोंमें रहनेवाले सभी देवेश पूर्वोक्त स्तोत्रों तथा जप, ध्यान और समाधिके द्वारा महादेवीकी उपासना करते हैं॥ १॥

सभी ऋतुओंमें खिलनेवाले पुष्पोंके समूहोंसे सुशोभित अनेक वन उनमें विद्यमान हैं, जहाँ फलों तथा पल्लवोंकी शोभा निरन्तर बनी रहती है॥ २॥

उन वर्षोंमें विद्यमान सभी वनोद्यानों, पर्वतशिखरों तथा सभी गिरिकन्दराओंमें और खिले हुए कमलोंसे शोभायमान तथा हंस-सारस आदि भिन्न-भिन्न जातिके पक्षियोंकी ध्वनिसे निनादित निर्मल जलवाले सरोवरोंमें वहाँके देवतागण जल-क्रीड़ा आदि विचित्र विनोदोंके द्वारा क्रीडा करते हैं और ललित भौहोंवाली सुन्दरियोंके विलासभवनोंमें उन युवतियोंके साथ यथेच्छ विहार करते हैं॥ ३—५½॥

उन नौ वर्षोंमें (सभी लोकोंपर अनुग्रहरससे परिपूर्ण दृष्टि रखनेवाले नारायण नामसे प्रसिद्ध) भगवान् आदिपुरुष भगवतीकी आराधना करते हुए विराजमान रहते हैं और वहाँ सभी लोग उनकी पूजा करते हैं। वे भगवान् लोकोंसे पूजा स्वीकार करनेके निमित्त अपनी विभिन्न मूर्तियोंके रूपमें समाहित होकर वहाँ विराजमान रहते हैं॥ ६-७॥
~~~

इलावृते तु भगवान् पद्मजाक्षिसमुद्भवः।
एक एव भवो देवो नित्यं वसति साङ्गनः॥ ८

तत्क्षेत्रे नापरः कश्चित्प्रवेशं वितनोति च।
भवान्याः शापतस्तत्र पुमान्स्त्री भवति स्फुटम्॥ ९

भवानीनाथकैः स्त्रीणामसंख्यैर्गणकोटिभिः।
संरुध्यमानो देवेशो देवं सङ्कर्षणं भजन्॥ १०

आत्मना ध्यानयोगेन सर्वभूतहितेच्छया।
तां तामसीं तुरीयां च मूर्तिं प्रकृतिमात्मनः॥ ११

उपधावते चैकाग्रमनसा भगवानजः।

श्रीभगवानुवाच

ॐनमो भगवते महापुरुषाय
सर्वगुणसंख्यानायानन्तायाव्यक्ताय नम इति॥ १२

भजे भजन्यारणपादपङ्कजं
भगस्य कृत्स्नस्य परं परायणम्।
भक्तेष्वलं भावितभूतभावनं
भवापहं त्वा भव भावमीश्वरम्॥ १३

न यस्य मायागुणकर्मवृत्तिभि-
र्निरीक्षितो ह्यण्वपि दृष्टिरज्यते।
ईशे यथा नो जितमन्युरंहसा
कस्तं न मन्येत जिगीषुरात्मनः॥ १४

असद्दृशो यः प्रतिभाति मायया
क्षीबेव मध्वासवताम्रलोचनः।
न नागवध्वोऽर्हण ईशिरे ह्रिया
यत्पादयोः स्पर्शनधर्षितेन्द्रियाः॥ १५

इलावृतवर्षमें भगवान् श्रीहरि ब्रह्माजीके नेत्रसे उत्पन्न भवरूपमें अपनी भार्या भवानीके साथ नित्य निवास करते हैं॥ ८॥

उस क्षेत्रमें कोई दूसरा प्रवेश नहीं कर सकता है। वहाँ जानेपर भवानीके शापसे पुरुष तत्काल नारी हो जाता है॥ ९॥

वहाँ भवानीकी सेवामें संलग्न असंख्य स्त्रियों तथा अपने करोड़ों गणोंसे घिरे हुए देवेश्वर भगवान् शिव संकर्षणदेवकी आराधना करते हैं। वे अजन्मा भगवान् शिव सभी प्राणियोंके कल्याणार्थ तामस प्रकृतिवाली अपनी ही उस संकर्षण नामक चौथी मूर्तिका एकाग्र मनसे ध्यानयोगके द्वारा चिन्तन करते रहते हैं॥ १०-११$\frac{1}{2}$॥

श्रीभगवान् बोले—सभी गुणोंके अभिव्यक्तिरूप, अनन्त, अव्यक्त और ॐकारस्वरूप परम पुरुष भगवान्को नमस्कार है॥ १२॥

हे भजनीय प्रभो! भक्तोंके आश्रयस्वरूप चरण-कमलवाले, समग्र ऐश्वर्योंके परम आश्रय, भक्तोंके सामने अपना भूतभावनस्वरूप प्रकट करनेवाले और उनका सांसारिक बन्धन दूर करनेवाले, किंतु अभक्तोंको सदा भव-बन्धनमें बाँधे रहनेवाले आप परमेश्वरका मैं भजन करता हूँ॥ १३॥

हे प्रभो! मैं क्रोधको नहीं जीत सका हूँ तथा मेरी दृष्टि पापसे लिप्त हो जाती है, किंतु आप तो संसारका नियमन करनेके लिये साक्षीरूपसे उसके व्यापारोंको देखते रहते हैं। फिर भी मेरी तरह आपकी दृष्टि उन मायिक गुणों तथा कर्म-वृत्तियोंसे प्रभावित नहीं होती। ऐसी स्थितिमें अपने मनको वशमें करनेकी इच्छावाला कौन पुरुष ऐसे आपका आदर नहीं करेगा॥ १४॥

मधुपान करके लाल आँखोंवाले मदमत्तकी भाँति जो प्रभु मायाके कारण विकृत नेत्रोंवाले दिखायी पड़ते हैं, जिन प्रभुके चरणोंका स्पर्श करके नागपत्नियोंका मन मोहित हो जाता है और लज्जावश वे अन्य प्रकारसे उपासना नहीं कर पातीं [उन प्रभुको मेरा नमस्कार है।]॥ १५॥

यमाहुरस्य स्थितिजन्मसंयमं
त्रिभिर्विहीनं यमनन्तमृषयः।
न वेद सिद्धार्थमिव क्वचित्स्थितं
भूमण्डलं मूर्धसहस्रधामसु॥ १६
यस्याद्य आसीद् गुणविग्रहो महान्
विज्ञानधिष्ण्यो भगवानजः किल।
यत्संवृतोऽहं त्रिवृता स्वतेजसा
वैकारिकं तामसमैन्द्रियं सृजे॥ १७
एते वयं यस्य वशे महात्मनः
स्थिताः शकुन्ता इव सूत्रयन्त्रिताः।
महानहंवैकृततामसेन्द्रियाः
सृजाम सर्वे यदनुग्रहादिदम्॥ १८
यन्निर्मितां कर्ह्यपि कर्मपर्वणीं
मायां जनोऽयं गुरुसर्गमोहितः।
न वेद निस्तारणयोगमञ्जसा
तस्मै नमस्ते विलयोदयात्मने॥ १९

श्रीनारायण उवाच

एवं स भगवान् रुद्रो देवं सङ्कर्षणं प्रभुम्।
इलावृतमुपासीत देवीगणसमाहितः॥ २०
तथैव धर्मपुत्रोऽसौ नाम्ना भद्रश्रवा इति।
तत्कुलस्यापि पतयः पुरुषा भद्रसेवकाः॥ २१
भद्राश्ववर्षे तां मूर्तिं वासुदेवस्य विश्रुताम्।
हयमूर्तिभिदा तां तु हयग्रीवपदाङ्किताम्॥ २२
परमेण समाध्यन्यवारकेण नियन्त्रिताम्।
एवमेव च तां मूर्तिं गृणन्त उपयान्ति च॥ २३

भद्रश्रवस ऊचुः

ॐ नमो भगवते धर्मायात्मविशोधनाय नम इति।
अहो विचित्रं भगवद्विचेष्टितं
घ्नन्तं जनोऽयं हि मिषन्न पश्यति।
ध्यायन्न सद्यर्हि विकर्म सेवितुं
निर्हृत्य पुत्रं पितरं जिजीविषुः॥ २४

वेदके मन्त्र जिन्हें इस जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और लयका कारण बताते हैं; परंतु वे तीनोंसे रहित हैं और जिन्हें ऋषिगण अनन्त कहते हैं, जिनके सहस्र मस्तकोंपर स्थित यह भूमण्डल सरसोंके दानेके समान प्रतीत होता है और जिन्हें यह भी नहीं ज्ञात होता कि वह कहाँ स्थित है [उन प्रभुको मेरा नमस्कार है।] ॥ १६ ॥

जिनसे उत्पन्न हुआ मैं अहंकाररूप अपने त्रिगुणमय तेजसे देवता, इन्द्रिय और भूतोंकी रचना करता हूँ—वे विज्ञानके आश्रय भगवान् ब्रह्माजी भी आपके ही महत्तत्त्वसंज्ञक प्रथम गुणमय स्वरूप हैं॥ १७॥

महत्तत्त्व, अहंकार, इन्द्रियाभिमानी देवता, इन्द्रियाँ और पंचमहाभूत आदि हम सभी महात्मालोग डोरीमें बँधे हुए पक्षीकी भाँति जिनकी क्रियाशक्तिके वशीभूत होकर और जिनकी कृपाके द्वारा इस जगत्की रचना करते हैं [उन प्रभुको मेरा नमस्कार है।] ॥ १८ ॥

सत्त्वादि गुणोंकी सृष्टिसे मोहित यह जीव जिनके द्वारा रचित तथा कर्मबन्धनमें बाँधनेवाली मायाको तो कदाचित् जान लेता है, किंतु उससे छूटनेका उपाय उसे सरलतापूर्वक नहीं ज्ञात हो पाता—उन जगत्की उत्पत्ति तथा लयरूप आप परमात्माको मेरा नमस्कार है॥ १९॥

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] इस प्रकार देवीके गणोंसे घिरे हुए वे भगवान् रुद्र इलावृतवर्षमें सर्वसमर्थ परमेश्वर संकर्षणकी उपासना करते हैं॥ २०॥

उसी प्रकार भद्राश्ववर्षमें भद्रश्रवा नामक वे धर्मपुत्र और उनके कुलके प्रधान पुरुष तथा सेवक भी भगवान् वासुदेवकी हयग्रीव नामसे प्रसिद्ध हयमूर्तिको एकनिष्ठ परम समाधिके द्वारा अपने हृदयमें धारण किये रहते हैं और इस प्रकार उस हयमूर्तिरूप भगवान् वासुदेवकी स्तुति करते हुए उनके समीप रहते हैं॥ २१—२३॥

भद्रश्रवा बोले—चित्तको शुद्ध करनेवाले ओंकारस्वरूप भगवान् धर्मको नमस्कार है। अहो, ईश्वरकी लीला बड़ी विचित्र है कि यह जीव सम्पूर्ण लोकोंका संहार करनेवाले कालको देखता हुआ भी नहीं देखता और तुच्छ विषयोंका सेवन करनेके लिये कुत्सित चिन्तन करता हुआ अपने ही पुत्र तथा पिताको जलाकर भी स्वयं जीवित रहनेकी इच्छा करता है॥ २४॥

वदन्ति विश्वं कवयः स्म नश्वरं
पश्यन्ति चाध्यात्मविदो विपश्चितः।
तथापि मुह्यन्ति तवाज मायया
सुविस्मितं कृत्यमजं नतोऽस्मि तम्॥ २५

विश्वोद्भवस्थाननिरोधकर्म ते
ह्यकर्तुरङ्गीकृतमप्यपावृतः ।
युक्तं न चित्रं त्वयि कार्यकारणे
सर्वात्मनि व्यतिरिक्ते च वस्तुतः॥ २६

वेदान् युगान्ते तमसा तिरस्कृतान्
रसातलाद्यो नृतुरङ्गविग्रहः।
प्रत्याददे वै कवयेऽभियाचते
तस्मै नमस्ते वितथेहिताय ते॥ २७

एवं स्तुवन्ति देवेशं हयशीर्षं हरिं च ते।
भद्रश्रवसनामानो वर्णयन्ति च तद्गुणान्॥ २८

एषां चरितमेतद्धि यः पठेच्छ्रावयेच्च यः।
पापकंचुकमुत्सृज्य देवीलोकं व्रजेच्च सः॥ २९

हे अज! विद्वान् पुरुष इस विश्वको नाशवान् बताते हैं और अध्यात्मको जाननेवाले सूक्ष्मदर्शी महात्मा भी जगत्‌को इसी रूपमें देखते हैं, फिर भी वे आपकी मायासे मोहित हो जाते हैं। अतः मैं विस्मयकारक कृत्यवाले उस अजन्मा प्रभुको नमस्कार करता हूँ॥ २५॥ मायाके आवरणसे रहित आपने अकर्ता होते हुए भी विश्वकी उत्पत्ति, पालन तथा संहारका कार्य अंगीकृत किया है। यह उचित ही है, सर्वात्मरूप तथा कार्यकारणभावसे सर्वथा अतीत आपके लिये यह कोई आश्चर्य नहीं है॥ २६॥ जब प्रलयकालमें तमोगुणसे युक्त दैत्यगण वेदोंको चुरा ले गये थे तब ब्रह्माजीके प्रार्थना करनेपर मनुष्य और अश्वके संयुक्त विग्रहवाले जिन्होंने रसातलसे उन्हें ला दिया था, ऐसा अमोघ हित करनेवाले उन आप प्रभुको नमस्कार है॥ २७॥ इस प्रकार भद्रश्रवा नामवाले वे महात्मागण हयग्रीवरूप देवेश्वर श्रीहरिकी स्तुति करते हैं और उनके गुणोंका संकीर्तन करते हैं॥ २८॥

जो मनुष्य इनके इस चरित्रको पढ़ता है और दूसरोंको सुनाता है, वह पापरूपी केंचुलसे मुक्त होकर देवीलोकको प्राप्त होता है॥ २९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामष्टमस्कन्धे भुवनकोशवर्णने इलावृतभद्राश्ववर्षवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः॥ ८॥



अथ नवमोऽध्यायः

हरिवर्षमें प्रह्लादके द्वारा नृसिंहरूपकी आराधना, केतुमालवर्षमें श्रीलक्ष्मीजीके द्वारा कामदेवरूपकी तथा रम्यकवर्षमें मनुजीके द्वारा मत्स्यरूपकी स्तुति-उपासना

श्रीनारायण उवाच

हरिवर्षे च भगवान्नृहरिः पापनाशनः।
वर्तते योगयुक्तात्मा भक्तानुग्रहकारकः॥ १
तस्य तद्दयितं रूपं महाभागवतोऽसुरः।
पश्यन्भक्तिसमायुक्तः स्तौति तद्गुणतत्त्ववित्॥ २

प्रह्लाद उवाच

ॐ नमो भगवते नरसिंहाय नमस्तेजस्तेजसे आविराविर्भव वज्रदंष्ट्र कर्माशयान् रन्धय रन्धय तमो ग्रस ग्रस ॐ स्वाहा। अभयं ममात्मनि भूयिष्ठाः॥ ॐ क्ष्रौं॥

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] पापोंका नाश करनेवाले, योगसे युक्त आत्मावाले तथा भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाले भगवान् नृसिंह हरिवर्षमें प्रतिष्ठित हैं॥ १॥

भगवान्‌के गुण-तत्त्वोंको जाननेवाले परम भागवत असुर प्रह्लाद उनके दयामयरूपका दर्शन करते हुए भक्तिभावसे युक्त होकर उनकी स्तुति करते हैं॥ २॥

प्रह्लाद बोले—तेजोंके भी तेज ॐकारस्वरूप भगवान् नरसिंहको बार-बार नमस्कार है। हे वज्रदंष्ट्र! आप मेरे सामने प्रकट होइये, प्रकट होइये; मेरे कर्मविषयोंको जला डालिये, जला डालिये और मेरे अज्ञानरूप अन्धकारको नष्ट कीजिये, ॐ स्वाहा; मुझे अभय दीजिये तथा मेरे अन्तःकरणमें प्रतिष्ठित होइये। ॐ क्ष्रौं।

स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदतां
ध्यायन्तु भूतानि शिवं मिथो धिया।
मनश्च भद्रं भजतादधोक्षजे
आवेश्यतां नो मतिरप्यहैतुकी॥ ३

हे प्रभो! अखिल जगत्‌का कल्याण हो, दुष्टलोग शुद्ध भावनासे युक्त हों, सभी प्राणी अपने मनमें एक दूसरेके कल्याणका चिन्तन करें, हम सबका मन शुभ मार्गमें प्रवृत्त हो और हमारी मति निष्कामभावसे युक्त होकर भगवान् श्रीहरिमें प्रविष्ट हो॥ ३॥

मागारदारात्मजवित्तबन्धुषु
सङ्गो यदि स्याद्भगवत्प्रियेषु नः।
यः प्राणवृत्त्या परितुष्ट आत्मवान्
सिद्ध्यत्यदूरान्न तथेन्द्रियप्रियः॥ ४

[हे भगवन्!] घर, स्त्री, पुत्र, धन और बन्धु-बान्धवोंमें हमारी आसक्ति न हो और यदि हो तो भगवान्‌के प्रियजनोंमें हो। जो संयमी पुरुष केवल प्राण-रक्षाके योग्य आहारसे सन्तुष्ट रहता है, वह शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त कर लेता है, किंतु इन्द्रियप्रिय व्यक्ति वैसा नहीं कर पाता॥ ४॥

यत्सङ्गलब्धं निजवीर्यवैभवं
तीर्थं मुहुः संस्पृशतां हि मानसम्।
हरत्यजोऽन्तः श्रुतिभिर्गतोऽङ्गजं
को वै न सेवेत मुकुन्दविक्रमम्॥ ५

जिन भगवद्भक्तोंके संगसे भगवान्‌के तीर्थतुल्य चरित्र सुननेको मिलते हैं, जो उनकी असाधारण शक्ति-वैभवके सूचक हैं तथा जिनका बार-बार सेवन करनेवालोंके कानोंके मार्गसे भगवान् हृदयमें प्रवेश करके उनके सभी प्रकारके मानसिक तथा दैहिक कष्टोंको हर लेते हैं—उन भगवद्भक्तोंका संग कौन नहीं करना चाहेगा?॥ ५॥

यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिञ्चना
सर्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुराः।
हरावभक्तस्य कुतो महद्गुणा
मनोरथेनासति धावतो बहिः॥ ६

भगवान्‌में जिस पुरुषकी निष्काम भक्ति होती है, उसके हृदयमें देवता, धर्म, ज्ञान आदि सभी गुणोंसहित निवास करते हैं, किंतु अनेक मनोरथोंसे युक्त होकर बाहरी विषय-सुखकी ओर दौड़नेवाले भगवद्भक्तिरहित मनुष्यमें महान् गुण कहाँसे हो सकते हैं?॥ ६॥

हरिर्हि साक्षाद्भगवाञ्छरीरिणा-
मात्मा झषाणामिव तोयमीप्सितम्।
हित्वा महांस्तं यदि सज्जते गृहे
तदा महत्त्वं वयसा दम्पतीनाम्॥ ७

जैसे मछलियोंको जल अत्यन्त प्रिय है, उसी प्रकार साक्षात् भगवान् श्रीहरि ही सभी देहधारियोंकी आत्मा हैं। उनका त्याग करके यदि कोई महत्त्वाभिमानी घरमें आसक्त रहता है तो उस दशामें दम्पतियोंका महत्त्व केवल उनकी आयुको लेकर माना जाता है, गुणोंकी दृष्टिसे कदापि नहीं॥ ७॥

तस्माद्रजोरागविषादमन्यु-
मानस्पृहाभयदैन्याधिमूलम्।
हित्वा गृहं संसृतिचक्रवालं
नृसिंहपादं भजतां कुतो भयम्॥ ८

अतएव तृष्णा, राग, विषाद, क्रोध, मान, कामना, भय, दीनता, मानसिक सन्तापके मूल और जन्म-मरणरूप संसारचक्रका वहन करनेवाले गृहका परित्याग करके भगवान् नृसिंहके चरणका आश्रय लेनेवालोंको भय कहाँ!॥ ८॥

एवं दैत्यपतिः सोऽपि भक्त्यानुदिनमीडते।
नृहरिं पापमातङ्गहरिं हृत्पद्मवासिनम्॥ ९

[हे नारद!] इस प्रकार वे दैत्यपति प्रह्लाद पापरूपी हाथियोंके लिये सिंहस्वरूप तथा हृदयकमलमें निवास करनेवाले भगवान् नृसिंहकी भक्तिपूर्वक निरन्तर स्तुति करते रहते हैं॥ ९॥

केतुमाले च वर्षे हि भगवान्स्मररूपधृक्।
आस्ते तद्वर्षनाथानां पूजनीयश्च सर्वदा॥ १०

एतेनोपासते स्तोत्रजालेन च रमाब्धिजा।
तद्वर्षनाथा सततं महतां मानदायिका॥ ११

रमोवाच

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ॐ नमो भगवते हृषीकेशाय सर्वगुणविशेषैर्विलक्षितात्मने आकूतीनां चित्तीनां चेतसां विशेषाणां चाधिपतये षोडशकलाय छन्दोमयायान्नमयायामृतमयाय सर्वमयाय महसे ओजसे बलाय कान्ताय कामाय नमस्ते उभयत्र भूयात्।

स्त्रियो व्रतैस्त्वां हृषीकेश्वरं स्वतो
ह्याराध्य लोके पतिमाशासतेऽन्यम्।
तासां न ते वै परिपान्त्यपत्यं
प्रियं धनायूंषि यतोऽस्वतन्त्राः॥ १२

स वै पतिः स्यादकुतोभयः स्वतः
समन्ततः पाति भयातुरं जनम्।
स एक एवेतरथा मिथो भयं
नैवात्मलाभादधिमन्यते परम्॥ १३

या तस्य ते पादसरोरुहार्हणं
न कामयेत्साखिलकामलम्पटा।
तदेव रासीप्सितमीप्सितोऽर्चितो
यद्भग्नयाच्ञा भगवन् प्रतप्यते॥ १४

मत्प्राप्तयेऽजेशसुरासुरादय-
स्तप्यन्त उग्रं तप ऐन्द्रिये धियः।
ऋते भवत्पादपरायणान्न मां
विदन्त्यहं त्वद्धृदया यतोऽजित॥ १५

केतुमालवर्षमें भगवान् श्रीहरि कामदेवका रूप धारण करके प्रतिष्ठित हैं। उस वर्षके अधीश्वरोंके लिये वे सर्वदा पूजनीय हैं॥ १०॥

इस वर्षकी अधीश्वरी तथा महान् लोगोंको सम्मान देनेवाली समुद्रतनया लक्ष्मीजी इस स्तोत्रसमूहसे निरन्तर उनकी उपासना करती हैं॥ ११॥

रमा बोलीं—इन्द्रियोंके स्वामी, सम्पूर्ण श्रेष्ठ वस्तुओंसे लक्षित आत्मावाले, ज्ञान-क्रिया-संकल्पशक्ति आदि चित्तके धर्मों तथा उनके विषयोंके अधिपति, सोलह कलाओंसे सम्पन्न, वेदोक्त कर्मोंसे प्राप्त होनेवाले, अन्नमय, अमृतमय, सर्वमय, महनीय, ओजवान्, बलशाली तथा कान्तियुक्त भगवान् कामदेवको ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ॐ—इन बीजमन्त्रोंके साथ सब ओरसे नमस्कार है।

[हे प्रभो!] स्त्रियाँ अनेक प्रकारके व्रतोंद्वारा आप हृषीकेश्वरकी आराधना करके लोकमें अन्य पतिकी इच्छा किया करती हैं; किंतु वे पति उनके प्रिय पुत्र, धन और आयुकी रक्षा नहीं कर पाते हैं; क्योंकि वे स्वयं ही परतन्त्र होते हैं॥ १२॥

[हे परमात्मन्!] पति तो वह होता है, जो स्वयं किसीसे भयभीत न रहकर भयग्रस्त जनकी भलीभाँति रक्षा करता है। वैसे पति एकमात्र आप ही हैं; यदि एक-से अधिक पति माने जायँ तो उन्हें परस्पर भयकी सम्भावना रहती है। अतः आप अपनी प्राप्तिसे बढ़कर और कोई लाभ नहीं मानते॥ १३॥

हे भगवन्! जो स्त्री आपके चरणकमलोंके पूजनकी कामना करती है और अन्य वस्तुकी अभिलाषा नहीं करती, उसकी सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं; किंतु जो किसी एक कामनाको लेकर आपकी उपासना करती है, उसे आप केवल वही वस्तु देते हैं और जब भोगके पश्चात् वह वस्तु नष्ट हो जाती है तो उसके लिये उसे दुःखित होना पड़ता है॥ १४॥

हे अजित! इन्द्रियसुख पानेका विचार रखनेवाले ब्रह्मा, रुद्र, देव तथा दानव आदि मेरी प्राप्तिके लिये कठिन तप करते हैं; किंतु आपके चरणकमलोंकी उपासना करनेवालेके अतिरिक्त अन्य कोई भी मुझे प्राप्त नहीं कर सकते; क्योंकि मेरा हृदय सदा आपमें ही लगा रहता है॥ १५॥

स त्वं ममाप्यच्युत शीर्ष्णि वन्दितं
कराम्बुजं यत्त्वदधायि सात्वताम्।
बिभर्षि मां लक्ष्म वरेण्य मायया
क ईश्वरस्येहितमूहितुं विभुः॥ १६

एवं कामं स्तुवन्त्येव लोकबन्धुस्वरूपिणम्।
प्रजापतिमुखा वर्षनाथाः कामस्य सिद्धये॥ १७

रम्यके नामवर्षे च मूर्तिं भगवतः पराम्।
मात्स्यां देवासुरैर्वन्द्यां मनुः स्तौति निरन्तरम्॥ १८

मनुरुवाच

ॐ नमो भगवते मुख्यतमाय नमः सत्त्वाय प्राणायौजसे बलाय महामत्स्याय नमः।

अन्तर्बहिश्चाखिललोकपालकै-
रदृष्टरूपो विचरस्युरुस्वनः।
स ईश्वरस्त्वं य इदं वशे नय-
न्नाम्ना यथा दारुमयीं नरः स्त्रियम्॥ १९

यं लोकपालाः किल मत्सरज्वरा
हित्वा यतन्तोऽपि पृथक् समेत्य च।
पातुं न शेकुर्द्विपदश्चतुष्पदः
सरीसृपं स्थाणु यदत्र दृश्यते॥ २०

भवान् युगान्तार्णव ऊर्मिमालिनि
क्षोणीमिमामोषधिवीरुधां निधिम्।
मया सहोरुक्रम तेऽज ओजसा
तस्मै जगत्प्राणगणात्मने नमः॥ २१

एवं स्तौति च देवेशं मनुः पार्थिवसत्तमः।
मत्स्यावतारं देवेशं संशयच्छेदकारणम्॥ २२

हे अच्युत! आप अपने जिस वन्दनीय करकमलको भक्तोंके मस्तकपर रखते हैं, उसे मेरे भी सिरपर रखिये। हे वरेण्य! आप मुझे केवल श्रीवत्सरूपसे अपने वक्षःस्थलपर ही धारण करते हैं। मायासे की हुई आप परमेश्वरकी लीलाको जाननेमें भला कौन समर्थ है?॥ १६॥

[हे नारद!] इस प्रकार [केतुमालवर्षमें] लक्ष्मीजी तथा इस वर्षके अन्य प्रजापति आदि प्रमुख अधीश्वर भी कामनासिद्धिके लिये कामदेव-रूपधारी लोकबन्धुस्वरूपी श्रीहरिकी स्तुति करते हैं॥ १७॥

रम्यक नामक वर्षमें मनुजी भगवान् श्रीहरिकी देवदानवपूजित सर्वश्रेष्ठ मत्स्यमूर्तिकी निरन्तर इस प्रकार स्तुति करते रहते हैं॥ १८॥

मनुजी बोले—सबसे प्रधान, सत्त्वमय, प्राणसूत्रात्मा, ओजस्वी तथा बलयुक्त ॐकारस्वरूप भगवान् महामत्स्यको बार-बार नमस्कार है।

आप सभी प्राणियोंके भीतर और बाहर संचरण करते हैं। आपके रूपको ब्रह्मा आदि सभी लोकपाल भी नहीं देख सकते। वेद ही आपका महान् शब्द है। वे ईश्वर आप ही हैं। ब्राह्मण आदि विधिनिषेधात्मकरूप डोरीसे इस जगत्को अपने अधीन करके उसे उसी प्रकार नचाते हैं, जैसे कोई नट कठपुतलीको नचाता है॥ १९॥

आपके प्रति ईर्ष्याभावसे भरे हुए लोकपाल आपको छोड़कर अलग-अलग तथा मिलकर भी मनुष्य, पशु, नाग आदि जंगम तथा स्थावर प्राणियोंकी रक्षा करनेका प्रयत्न करते हुए भी रक्षा नहीं कर सके॥ २०॥

हे अजन्मा प्रभो! जब ऊँची लहरोंसे युक्त प्रलयकालीन समुद्र विद्यमान था, तब आप औषधियों और लताओंकी निधिस्वरूप पृथ्वी तथा मुझको लेकर उस समुद्रमें उत्साहपूर्वक क्रीडा कर रहे थे; जगत्के समस्त प्राणसमुदायके नियन्ता आप भगवान् मत्स्यको नमस्कार है॥ २१॥

इस प्रकार राजाओंमें श्रेष्ठ मनुजी सभी संशयोंको समूल समाप्त कर देनेवाले मत्स्यरूपमें अवतीर्ण देवेश्वर भगवान् श्रीहरिकी स्तुति करते हैं॥ २२॥

ध्यानयोगेन देवस्य निर्धूताशेषकल्मषः।
आस्ते परिचरन्भक्त्या महाभागवतोत्तमः॥ २३

भगवान्‌के ध्यानयोगके द्वारा अपने सम्पूर्ण पापोंको नष्ट कर चुके तथा महाभागवतोंमें श्रेष्ठ मनुजी भक्तिपूर्वक भगवान्‌की उपासना करते हुए यहाँ प्रतिष्ठित रहते हैं॥ २३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामष्टमस्कन्धे भुवनकोशवर्णने हरिवर्षकेतुमालरम्यकवर्षवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः॥ ९॥



अथ दशमोऽध्यायः

हिरण्मयवर्षमें अर्यमाके द्वारा कच्छपरूपकी आराधना, उत्तरकुरुवर्षमें पृथ्वीद्वारा वाराहरूपकी एवं किम्पुरुषवर्षमें श्रीहनुमान्‌जीके द्वारा श्रीरामचन्द्ररूपकी स्तुति-उपासना

श्रीनारायण उवाच

हिरण्मये नाम वर्षे भगवान्कूर्मरूपधृक्।
आस्ते योगपतिः सोऽयमर्यम्णा पूज्य ईड्यते॥ १

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] हिरण्मय नामक वर्षमें भगवान् श्रीहरि कूर्मरूप धारण करके विराजमान हैं। यहाँ अर्यमाके द्वारा उन योगेश्वरभगवान्‌की पूजा तथा स्तुति की जाती है॥ १॥

अर्यमोवाच

ॐ नमो भगवते अकूपाराय सर्वसत्त्वगुण-विशेषणाय नोपलक्षितस्थानाय नमो वर्ष्मणे नमो भूम्ने नमोऽवस्थानाय नमस्ते।

अर्यमा बोले—सम्पूर्ण सत्त्व आदि गुण-विशेषणोंसे युक्त, जलमें रहनेके कारण अलक्षित स्थानवाले, कालसे सर्वथा अतीत, आधारस्वरूप तथा ॐकाररूप भगवान् कूर्मको बार-बार नमस्कार है।

यद्रूपमेतन्निजमाययार्पित-
मर्थस्वरूपं बहुरूपरूपितम्।
संख्या न यस्यास्त्ययथोपलम्भना-
त्तस्मै नमस्तेऽव्यपदेशरूपिणे॥ २

[हे प्रभो!] अनेक रूपोंमें दिखायी देनेवाला यह जगत् यद्यपि मिथ्या ही निश्चय होता है, इसलिये इसकी वस्तुतः कोई संख्या नहीं है; तथापि यह मायासे प्रकाशित होनेवाला आपका ही रूप है, ऐसे उन अनिर्वचनीय आपको नमस्कार है॥ २॥

जरायुजं स्वेदजमण्डजोद्भिदं
चराचरं देवर्षिपितृभूतमैन्द्रियम्।
द्यौः खं क्षितिः शैलसरित्समुद्र-
द्वीपग्रहर्क्षेत्यभिधेय एकः॥ ३

एकमात्र आप ही जरायुज, स्वेदज, अण्डज, उद्भिज्ज, चर, अचर, देवता, ऋषि, पितर, भूत, इन्द्रिय, स्वर्ग, आकाश, पृथ्वी, पर्वत, नदी, समुद्र, द्वीप, ग्रह और नक्षत्र—इन नामोंसे विख्यात हैं॥ ३॥

यस्मिन्नसंख्येयविशेषनाम-
रूपाकृतौ कविभिः कल्पितेयम्।
संख्या यया तत्त्वदृशापनीयते
तस्मै नमः सांख्यनिदर्शनाय ते॥ ४

विद्वानोंने असंख्य नाम, रूप और आकृतियोंवाले आपमें जिन चौबीस तत्त्वोंकी संख्या निश्चित की है, वह जिस-जिस तत्त्वदृष्टिका उदय होनेपर निवृत्त हो जाती है, वह भी वस्तुतः आपका ही स्वरूप है; ऐसे सांख्य-सिद्धान्तस्वरूप आपको मेरा नमस्कार है॥ ४॥

एवं स्तुवति देवेशमर्यमा सह वर्षपैः।
गीयते चापि भजते सर्वभूतभवं प्रभुम्॥ ५

इस प्रकार अर्यमा हिरण्मयवर्षके अन्य अधीश्वरोंके साथ सभी प्राणियोंको उत्पन्न करनेवाले कूर्मरूप देवेश्वर भगवान् श्रीहरिकी स्तुति, उनका गुणानुवाद तथा भजन करते हैं॥ ५॥

तथोत्तरेषु कुरुषु भगवान्यज्ञपूरुषः।
आदिवाराहरूपोऽसौ धरण्या पूज्यते सदा॥ ६

सम्पूज्य विधिवद्देवं तद्भक्त्यार्द्रार्द्रहृत्कजा।
भूमिः स्तौति हरिं यज्ञवाराहं दैत्यमर्दनम्॥ ७

भूरुवाच

ॐ नमो भगवते मन्त्रतत्त्वलिङ्गाय यज्ञक्रतवे महाध्वरावयवाय महावराहाय नमः कर्मशुक्लाय त्रियुगाय नमस्ते॥ ८॥

यस्य स्वरूपं कवयो विपश्चितो
गुणेषु दारुष्विव जातवेदसम्।
मथ्नन्ति मथ्ना मनसा दिदृक्षवो
गूढं क्रियार्थैर्नम ईरितात्मने॥ ९

द्रव्यक्रियाहेत्वयनेशकर्तृभि-
र्मायागुणैर्वस्तुभिरीक्षितात्मने।
अन्वीक्षयाङ्गातिशयात्मबुद्धिभि-
र्निरस्तमायाकृतये नमोऽस्तु ते॥ १०

करोति विश्वस्थितिसंयमोदयं
यस्येप्सितं नेप्सितुमीक्षितुर्गुणैः।
माया यथाऽयो भ्रमते तदाश्रयं
ग्राव्णो नमस्ते गुणकर्मसाक्षिणे॥ ११

प्रमथ्य दैत्यं प्रतिवारणं मृधे
यो मां रसाया जगदादिसूकरः।
कृत्वाग्रदंष्ट्रं निरगादुदन्वतः
क्रीडन्निवेभः प्रणतास्मि तं विभुम्॥ १२

उत्तरकुरुवर्षमें पृथ्वीदेवी आदिवराहरूप यज्ञपुरुष भगवान् श्रीहरिकी निरन्तर उपासना करती हैं॥ ६॥

प्रेमरससे परिपूर्ण हृदयकमलवाली वे पृथ्वीदेवी दैत्योंका नाश करनेवाले यज्ञवराह श्रीहरिकी विधिपूर्वक पूजा करके भक्तिभावसे उनकी स्तुति करती हैं॥ ७॥

पृथ्वी बोलीं—मन्त्रोंके द्वारा ज्ञेय तत्त्वोंवाले, यज्ञ तथा क्रतुस्वरूप, बड़े-बड़े यज्ञरूप अवयवोंवाले, सात्त्विक कर्मोंवाले तथा त्रियुगमूर्तिरूप आप ओंकार-स्वरूप भगवान् महावराहको बार-बार नमस्कार है॥ ८॥

काष्ठोंमें छिपी हुई अग्निको प्रकट करनेके लिये मन्थन करनेवाले ऋत्विज्-गणोंकी भाँति परम प्रवीण विद्वान् पुरुष कर्मासक्ति एवं कर्मफलकी कामनासे छिपे हुए जिनके रूपको देखनेकी इच्छासे अपने विवेकयुक्त मनरूपी मथानीद्वारा शरीर एवं इन्द्रियोंको मथ डालते हैं; इस प्रकार मन्थनके पश्चात् अपने रूपको प्रकट करनेवाले आपको नमस्कार है॥ ९॥

हे प्रभो! विचार तथा यम-नियमादि योगांगोंके साधनोंके प्रभावसे निश्चयात्मिका बुद्धिवाले महापुरुष द्रव्य (विषय), क्रियाहेतु (इन्द्रिय-व्यापार), अयन (शरीर), ईश और कर्ता (अहंकार) आदि मायाके कार्योंको देखकर जिनके वास्तविक स्वरूपका निश्चय करते हैं; ऐसे मायिक आकृतियोंसे रहित आपको नमस्कार है॥ १०॥

जिसकी इच्छामात्रसे निःस्पृह होती हुई भी प्रकृति गुणोंके द्वारा जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और संहारके कार्यमें इस प्रकार प्रवृत्त हो जाती है, जैसे चुम्बकका सम्पर्क पाकर लोहा गतिशील हो जाता है; उन आप सम्पूर्ण गुणों एवं कर्मोंके साक्षी श्रीहरिको नमस्कार है॥ ११॥

जिन्होंने एक हाथीको पछाड़नेवाले दूसरे हाथीकी भाँति युद्धके अवसरपर खेल-खेलमें प्रतिद्वन्द्वी दैत्य हिरण्याक्षका लीलापूर्वक हनन करके मुझे अपने दाढ़ोंके अग्रभागपर उठाकर रसातलसे बाहर निकाल लिया, उन जगत्के आदिकारणस्वरूप सर्वशक्तिमान् भगवान् वराहको नमस्कार है॥ १२॥

किम्पुरुषे वर्षेऽस्मिन्भगवन्तं दाशरथिं च सर्वेशम्।
सीतारामं देवं श्रीहनुमानादिपूरुषं स्तौति॥ १३

हनुमानुवाच

ॐ नमो भगवते उत्तमश्लोकाय नम इति। आर्यलक्षणशीलव्रताय नम उपशिक्षितात्मने उपासितलोकाय नमः। साधुवादनिकषणाय नमो ब्रह्मण्यदेवाय महापुरुषाय महाभागाय नम इति।

यत्तद्विशुद्धानुभवात्ममेकं
स्वतेजसा ध्वस्तगुणव्यवस्थम्।
प्रत्यक् प्रशान्तं सुधियोपलम्भनं
ह्यनामरूपं निरहं प्रपद्ये॥ १४

मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं
रक्षोवधायैव न केवलं विभो।
कुतोऽन्यथा स्याद्रमतः स्व आत्मनः
सीताकृतानि व्यसनानीश्वरस्य॥ १५

न वै स आत्मात्मवतां सुहृत्तमः
सक्तस्त्रिलोक्यां भगवान्वासुदेवः।
न स्त्रीकृतं कश्मलमश्नुवीत
न लक्ष्मणं चापि विहातुमर्हति॥ १६

किम्पुरुषवर्षमें श्रीहनुमान्‌जी सम्पूर्ण जगत्‌के शासक आदिपुरुष दशरथपुत्र भगवान् श्रीसीतारामकी इस प्रकार स्तुति करते हैं॥ १३॥

हनुमान् बोले—उत्तम कीर्तिवाले ओंकारस्वरूप भगवान् श्रीरामको नमस्कार है। श्रेष्ठ पुरुषोंके लक्षण, शील और व्रतसे सम्पन्न श्रीरामको नमस्कार है; संयत चित्तवाले तथा लोकाराधनमें तत्पर श्रीरामको नमस्कार है; साधुताकी परीक्षाके लिये कसौटीस्वरूप श्रीरामको नमस्कार है; ब्राह्मणोंके परम भक्त एवं महान् भाग्यशाली महापुरुष श्रीरामको नमस्कार है।

जो विशुद्ध बोधस्वरूप, अद्वितीय, अपने तेजसे गुणोंकी जाग्रत् आदि अवस्थाओंका निवारण करनेवाले, सर्वान्तरात्मा, परम शान्त, निर्मल बुद्धिके द्वारा ग्रहण किये जानेयोग्य, नाम-रूपसे रहित तथा अहंकारशून्य हैं; उन आप भगवान्‌की मैं शरण ग्रहण करता हूँ॥ १४॥

हे प्रभो! आपका मनुष्यावतार केवल राक्षसोंके वधके लिये ही नहीं है, अपितु इसका मुख्य उद्देश्य तो मनुष्योंको शिक्षा देना है; अन्यथा, अपने स्वरूपमें ही रमण करनेवाले साक्षात् आप जगदीश्वरको सीताजीके वियोगमें इतना दुःख कैसे हो सकता था॥ १५॥

आप धीर पुरुषोंके आत्मा[1] और प्रियतम भगवान् वासुदेव हैं; त्रिलोकीकी किसी भी वस्तुमें आपकी आसक्ति नहीं है। आप न तो सीताजीके लिये मोहको ही प्राप्त हो सकते हैं और न लक्ष्मणजीका त्याग ही कर सकते हैं[2]॥ १६॥

---

१. यहाँ शंका होती है कि भगवान् तो सभीके आत्मा हैं, फिर यहाँ उन्हें आत्मवान् (धीर) पुरुषोंके ही आत्मा क्यों बताया गया? इसका कारण यही है कि सबके आत्मा होते हुए भी उन्हें केवल आत्मज्ञानी पुरुष ही अपने आत्मारूपसे अनुभव करते हैं—अन्य पुरुष नहीं। श्रुतिमें जहाँ-कहीं आत्मसाक्षात्कारकी बात आयी है, वहीं आत्मवेत्ताके लिये 'धीर' शब्दका प्रयोग किया है। जैसे '**कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षत**' इति '**नः शुश्रुम धीराणाम्**' इत्यादि। इसीलिये यहाँ भी भगवान्‌को आत्मवान् या धीर पुरुषका आत्मा बताया है।

२. एक बार भगवान् श्रीराम एकान्तमें एक देवदूतसे बात कर रहे थे। उस समय लक्ष्मणजी पहरेपर थे और भगवान्‌की आज्ञा थी कि यदि इस समय कोई भीतर आयेगा तो वह मेरे हाथसे मारा जायगा। इतनेमें ही दुर्वासामुनि चले आये और उन्होंने लक्ष्मणजीको अपने आनेकी सूचना देनेके लिये भीतर जानेको विवश किया। इससे अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार भगवान् बड़े असमंजसमें पड़ गये। तब वसिष्ठजीने कहा कि लक्ष्मणजीके प्राण न लेकर उन्हें त्याग देना चाहिये; क्योंकि अपने प्रियजनका त्याग मृत्युदण्डके समान ही है। इसीसे भगवान्‌ने उन्हें त्याग दिया।

न जन्म नूनं महतो न सौभगं
न वाङ् न बुद्धिर्नाकृतिस्तोषहेतुः।
तैर्यद्विसृष्टानपि नो वनौकस-
श्चकार सख्ये बत लक्ष्मणाग्रजः॥ १७

न उत्तम कुलमें जन्म, न सुन्दरता, न वाक्चातुर्य, न तो बुद्धि और न तो श्रेष्ठ योनि ही आपकी प्रसन्नताके कारण हो सकते हैं; यही बात दिखानेके लिये हे लक्ष्मणाग्रज! आपने इन सभी गुणोंसे रहित हम वनवासी वानरोंसे मित्रता की है॥ १७॥

सुरोऽसुरो वाप्यथवा नरोऽनरः
सर्वात्मना यः सुकृतज्ञमुत्तमम्।
भजेत रामं मनुजाकृतिं हरिं
य उत्तराननयत्कोसलान् दिवम्॥ १८

देवता, असुर, वानर अथवा मनुष्य जो कोई भी हो, उस उपकारीके थोड़े उपकारको भी बहुत अधिक माननेवाले, नररूपधारी श्रेष्ठ श्रीरामस्वरूप आप श्रीहरिका सब प्रकारसे भजन करना चाहिये, जो दिव्य धामको प्रस्थान करते समय सभी उत्तरकोसलवासियोंको भी अपने साथ लेते गये थे॥ १८॥

श्रीनारायण उवाच

एवं किम्पुरुषे वर्षे सत्यसन्धं दृढव्रतम्।
रामं राजीवपत्राक्षं हनुमान् वानरोत्तमः॥ १९

स्तौति गायति भक्त्या च सम्पूजयति सर्वशः।
य एतच्छृणुयाच्चित्रं रामचन्द्रकथानकम्।
सर्वपापविशुद्धात्मा याति रामसलोकताम्॥ २०

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] इस प्रकार किम्पुरुषवर्षमें वानरश्रेष्ठ हनुमान् सत्यप्रतिज्ञ, दृढ़व्रती तथा कमलपत्रके समान नेत्रोंवाले भगवान् श्रीरामकी भक्तिपूर्वक स्तुति करते हैं, उनके गुण गाते हैं तथा भलीभाँति उनकी पूजा करते हैं। जो पुरुष भगवान् श्रीरामचन्द्रके इस अद्भुत कथाप्रसंगका श्रवण करता है; वह पापोंसे मुक्त होकर विशुद्ध आत्मावाला हो जाता है और श्रीरामके परम धामको प्राप्त होता है॥ १९-२०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामष्टमस्कन्धे भुवनकोशवर्णने हिरण्मयकिम्पुरुषवर्षवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥

~~○~~

अथैकादशोऽध्यायः

जम्बूद्वीपस्थित भारतवर्षमें श्रीनारदजीके द्वारा नारायणरूपकी स्तुति-उपासना तथा भारतवर्षकी महिमाका कथन

श्रीनारायण उवाच

भारताख्ये च वर्षेऽस्मिन्नहमादिजपूरुषः।
तिष्ठामि भवता चैव स्तवनं क्रियतेऽनिशम्॥ १

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] भारत नामक इस वर्षमें आदिपुरुष मैं सदा विराजमान रहता हूँ और यहाँ आप निरन्तर मेरी स्तुति करते रहते हैं॥ १॥

नारद उवाच

ॐ नमो भगवते उपशमशीलायोपरतानात्म्याय नमोऽकिञ्चनवित्ताय ऋषिऋषभाय नरनारायणाय परमहंसपरमगुरवे आत्मारामाधिपतये नमो नम इति।

नारद बोले—शान्त स्वभाववाले, अहंकारसे रहित, निर्धनोंके परम धन, ऋषियोंमें श्रेष्ठ, परमहंसोंके परम गुरु, आत्मारामोंके अधिपति तथा ओंकारस्वरूप भगवान् नरनारायणको बार-बार नमस्कार है।

कर्तास्य सर्गादिषु यो न बध्यते
न हन्यते देहगतोऽपि दैहिकैः।
द्रष्टुर्न दृश्यस्य गुणैर्विदूष्यते
तस्मै नमोऽसक्तविविक्तसाक्षिणे॥ २

जो विश्वकी उत्पत्ति आदिमें उनके कर्ता होकर भी कर्तृत्वके अभिमानसे नहीं बँधते, जो देहमें रहते हुए भी भूख-प्यास आदि दैहिक गुण-धर्मोंके वशीभूत नहीं होते तथा द्रष्टा होते हुए भी जिनकी दृष्टि दृश्यके गुण-दोषोंसे दूषित नहीं होती; उन असंग तथा विशुद्ध साक्षिस्वरूप भगवान् नारायणको नमस्कार है॥ २॥

इदं हि योगेश्वरयोगनैपुणं
हिरण्यगर्भो भगवाञ्जगाद यत्।
यदन्तकाले त्वयि निर्गुणे मनो
भक्त्या दधीतोज्झितदुष्कलेवरः॥ ३
यथैहिकामुष्मिककामलम्पटः
सुतेषु दारेषु धनेषु चिन्तयन्।
शङ्केत विद्वान् कुकलेवरात्यया-
द्यस्तस्य यत्नः श्रम एव केवलम्॥ ४
तन्नः प्रभो त्वं कुकलेवरार्पितां
त्वं माययाहं ममतामधोक्षज।
भिन्द्याम येनाशु वयं सुदुर्भिदां
विधेहि योगं त्वयि नः स्वभावजम्॥ ५
एवं स्तौति सदा देवं नारायणमनामयम्।
नारदो मुनिशार्दूलः प्रज्ञाताखिलसारदृक्॥ ६
अस्मिन् वै भारते वर्षे सरिच्छैलास्तु सन्ति हि।
तान्प्रवक्ष्यामि देवर्षे शृणुष्वैकाग्रमानसः॥ ७
मलयो मङ्गलप्रस्थो मैनाकश्च त्रिकूटकः।
ऋषभः कूटकः कोल्लः सह्यो देवगिरिस्तथा॥ ८
ऋष्यमूकश्च श्रीशैलो व्यङ्कटाद्रिर्महेन्द्रकः।
वारिधारश्च विन्ध्यश्च मुक्तिमानृक्षपर्वतः॥ ९
पारियात्रस्तथा द्रोणश्चित्रकूटगिरिस्तथा।
गोवर्धनो रैवतकः ककुभो नीलपर्वतः॥ १०
गौरमुखश्चेन्द्रकीलो गिरिः कामगिरिस्तथा।
एते चान्येऽप्यसंख्याता गिरयो बहुपुण्यदाः॥ ११
एतदुत्पन्नसरितः शतशोऽथ सहस्रशः।
पानावगाहनस्नानदर्शनोत्कीर्तनैरपि॥ १२
नाशयन्ति च पापानि त्रिविधानि शरीरिणाम्।
ताम्रपर्णी चन्द्रवशा कृतमाला वटोदका॥ १३
वैहायसी च कावेरी वेणा चैव पयस्विनी।
तुङ्गभद्रा कृष्णवेणा शर्करावर्तका तथा॥ १४
गोदावरी भीमरथी निर्विन्ध्या च पयोष्णिका।
तापी रेवा च सुरसा नर्मदा च सरस्वती॥ १५
चर्मण्वती च सिन्धुश्च अन्धशोणौ महानदौ।
ऋषिकुल्या त्रिसामा च वेदस्मृतिर्महानदी॥ १६

हे योगेश्वर! हिरण्यगर्भ ब्रह्माजीने योगसाधनकी सबसे बड़ी कुशलता यही बतलायी है कि मनुष्य अन्तकालमें देहाभिमानको छोड़कर भक्तिपूर्वक आप गुणातीतमें अपना मन लगाये॥ ३॥

लौकिक तथा पारलौकिक भोगोंकी लालसा रखनेवाला मूढ मनुष्य जैसे पुत्र, स्त्री और धनकी चिन्ता करता हुआ मृत्युसे डरता है, उसी प्रकार यदि विद्वान् भी इस कुत्सित शरीरके छूट जानेके भयसे युक्त रहे तो ज्ञानप्राप्तिके लिये किया हुआ उसका सारा प्रयत्न केवल परिश्रममात्र है॥ ४॥

अतः हे अधोक्षज! हे प्रभो! आप हमें अपना स्वाभाविक प्रेमरूप भक्तियोग प्रदान कीजिये, जिससे इस निन्दनीय शरीरमें आपकी मायाके कारण बद्धमूल हुई दुर्भेद्य अहंता तथा ममताको हम तुरंत काट डालें॥ ५॥

इस प्रकार अखिल ज्ञातव्य रहस्योंको देखनेवाले मुनिश्रेष्ठ नारद निर्विकार भगवान् नारायणकी स्तुति करते रहते हैं॥ ६॥

[नारायण बोले—] हे देवर्षे! इस भारतवर्षमें अनेक नदियाँ तथा पर्वत हैं; अब मैं उनका वर्णन करूँगा; आप एकाग्रचित्त होकर सुनिये॥ ७॥

मलय, मंगलप्रस्थ, मैनाक, त्रिकूट, ऋषभ, कुटक, कोल्ल, सह्य, देवगिरि, ऋष्यमूक, श्रीशैल, व्यंकटाद्रि, महेन्द्र, वारिधार, विन्ध्य, मुक्तिमान्, ऋक्ष, पारियात्र, द्रोण, चित्रकूट, गोवर्धन, रैवतक, ककुभ, नील, गौरमुख, इन्द्रकील तथा कामगिरि पर्वत हैं। इनके अतिरिक्त भी प्रचुर पुण्य प्रदान करनेवाले अन्य असंख्य पर्वत हैं॥ ८—११॥

इन पर्वतोंसे निकली हुई सैकड़ों-हजारों नदियाँ हैं; जिनका जल पीने, जिनमें डुबकी लगाकर स्नान करने, दर्शन करने तथा जिनके नामका उच्चारण करनेसे मनुष्योंके तीनों प्रकारके पाप नष्ट हो जाते हैं। ताम्रपर्णी, चन्द्रवशा, कृतमाला, वटोदका, वैहायसी, कावेरी, वेणा, पयस्विनी, तुंगभद्रा, कृष्णवेणा, शर्करावर्तका, गोदावरी, भीमरथी, निर्विन्ध्या, पयोष्णिका, तापी, रेवा, सुरसा, नर्मदा, सरस्वती, चर्मण्वती, सिन्धु, अन्ध तथा

कौशिकी यमुना चैव मन्दाकिनी दृषद्वती।
गोमती सरयू रोधवती सप्तवती तथा॥ १७

सुषोमा च शतद्रुश्च चन्द्रभागा मरुद्वृधा।
वितस्ता च असिक्नी च विश्वा चेति प्रकीर्तिताः॥ १८

अस्मिन्वर्षे लब्धजन्मपुरुषैः स्वस्वकर्मभिः।
शुक्ललोहितकृष्णाख्यैर्दिव्यमानुषनारकाः ॥ १९

भवन्ति विविधा भोगाः सर्वेषां च निवासिनाम्।
यथा वर्णविधानेनापवर्गो भवति स्फुटम्॥ २०

एतदेव च वर्षस्य प्राधान्यं कार्यसिद्धितः।
वदन्ति मुनयो वेदवादिनः स्वर्गवासिनः॥ २१

अहो अमीषां किमकारि शोभनं
प्रसन्न एषां स्विदुत स्वयं हरिः।
यैर्जन्म लब्धं नृषु भारताजिरे
मुकुन्दसेवौपयिकं स्पृहा हि नः॥ २२

किं दुष्करैर्नः क्रतुभिस्तपोव्रतै-
र्दानादिभिर्वा द्युजयेन फल्गुना।
न यत्र नारायणपादपङ्कज-
स्मृतिः प्रमुष्टातिशयेन्द्रियोत्सवात्॥ २३

कल्पायुषां स्थानजयात्पुनर्भवा-
त्क्षणायुषां भारतभूजयो वरम्।
क्षणेन मर्त्येन कृतं मनस्विनः
संन्यस्य संयान्त्यभयं पदं हरेः॥ २४

न यत्र वैकुण्ठकथासुधापगा
न साधवो भागवतास्तदाश्रयाः।
न यत्र यज्ञेशमखा महोत्सवाः
सुरेशलोकोऽपि न वै स सेव्यताम्॥ २५

शोण नामवाले दो महान् नद, ऋषिकुल्या, त्रिसामा, वेदस्मृति, महानदी, कौशिकी, यमुना, मन्दाकिनी, दृषद्वती, गोमती, सरयू, रोधवती, सप्तवती, सुषोमा, शतद्रु, चन्द्रभागा, मरुद्वृधा, वितस्ता, असिक्नी और विश्वा—ये प्रसिद्ध नदियाँ हैं॥ १२—१८॥

इस भारतवर्षमें जन्म लेनेवाले पुरुष अपने-अपने शुक्ल (सात्त्विक), लोहित (राजस) तथा कृष्ण (तामस) कर्मोंके कारण क्रमशः देव, मनुष्य तथा नारकीय भोगोंको प्राप्त करते हैं। भारतवर्षमें निवास करनेवाले सभी लोगोंको अनेक प्रकारके भोग सुलभ होते हैं। अपने वर्णधर्मके नियमोंका पालन करनेसे मोक्षतक निश्चितरूपसे प्राप्त हो जाता है॥ १९-२०॥

इस मोक्षरूपी महान् कार्यकी सिद्धिका साधन होनेके कारण ही स्वर्गके निवासी वेदज्ञ मुनिगण भारतवर्षकी महिमाका इस प्रकार वर्णन करते हैं—॥ २१॥

अहो! जिन जीवोंने भारतवर्षमें भगवान्‌की सेवाके योग्य जन्म प्राप्त किया है, उन्होंने ऐसा क्या पुण्य किया है? अथवा इनपर स्वयं श्रीहरि ही प्रसन्न हो गये हैं। इस सौभाग्यके लिये तो हमलोग भी लालायित रहते हैं॥ २२॥

हमने कठोर यज्ञ, तप, व्रत, दान आदिके द्वारा जो यह तुच्छ स्वर्ग प्राप्त किया है, इससे क्या लाभ? यहाँ तो इन्द्रियोंके भोगोंकी अधिकताके कारण स्मरणशक्ति क्षीण हो जानेसे भगवान्‌के चरणकमलोंकी स्मृति होती ही नहीं॥ २३॥

इस स्वर्गके निवासियोंकी आयु एक कल्पकी होनेपर भी उन्हें पुनः जन्म लेना पड़ता है। उसकी अपेक्षा भारतभूमिमें अल्प आयुवाला होकर जन्म लेना श्रेष्ठ है; क्योंकि यहाँ धीर पुरुष एक क्षणमें ही अपने इस मर्त्य शरीरसे किये हुए सम्पूर्ण कर्म भगवान्‌को अर्पण करके उनका अभयपद प्राप्त कर लेते हैं॥ २४॥

जहाँ भगवत्कथाकी अमृतमयी सरिता प्रवाहित नहीं होती, जहाँ उसके उद्‌गमस्थानस्वरूप भगवद्भक्त साधुजन निवास नहीं करते और जहाँ समारोहपूर्वक भगवान् यज्ञेश्वरकी पूजा-अर्चा नहीं होती, वह चाहे ब्रह्मलोक ही क्यों न हो, उसका सेवन नहीं करना चाहिये॥ २५॥

प्राप्ता नृजातिं त्विह ये च जन्तवो
ज्ञानक्रियाद्रव्यकलापसम्भृताम् ।
न वै यतेरन्न पुनर्भवाय ते
भूयो वनौका इव यान्ति बन्धनम्॥ २६

यैः श्रद्धया बर्हिषि भागशो हवि-
र्निरुप्तमिष्टं विधिमन्त्रवस्तुतः।
एकः पृथङ्नामभिराहुतो मुदा
गृह्णाति पूर्णः स्वयमाशिषां प्रभुः॥ २७

सत्यं दिशत्यर्थितमर्थितो नृणां
नैवार्थदो यत्पुनरर्थिता यतः।
स्वयं विधत्ते भजतामनिच्छता-
मिच्छापिधानं निजपादपल्लवम्॥ २८

(यद्यत्र नः स्वर्गसुखावशेषितं
स्विष्टस्य पूर्तस्य कृतस्य शोभनम्।
तेनाब्जनाभे स्मृतिमज्जन्म नः स्या-
द्वर्षे हरिर्भजतां शं तनोति॥)

श्रीनारायण उवाच

एवं स्वर्गगता देवाः सिद्धाश्च परमर्षयः।
प्रवदन्ति च माहात्म्यं भारतस्य सुशोभनम्॥ २९

जम्बुद्वीपस्य चाष्टौ हि उपद्वीपाः स्मृताः परे।
हयमार्गान्विशोधद्भिः सागरैः परिकल्पिताः॥ ३०

स्वर्णप्रस्थश्चन्द्रशुक्र आवर्तनरमाणकौ।
मन्दरोपाख्यहरिणः पाञ्चजन्यस्तथैव च॥ ३१
सिंहलश्चैव लङ्केति उपद्वीपाष्टकं स्मृतम्।

भारतवर्षमें उत्तम ज्ञान, कर्म तथा द्रव्य आदिसे सम्पन्न मानवयोनि प्राप्त करके भी जो प्राणी पुनर्भव (आवागमन)-रूप बन्धनसे छूटनेका प्रयत्न नहीं करते, वे [व्याधकी फाँसीसे मुक्त होकर फल आदिके लोभसे उसी वृक्षपर विहार करनेवाले] जंगली पक्षियोंकी भाँति पुनः बन्धनमें पड़ते हैं॥ २६॥

भारतवासियोंका कैसा सौभाग्य है कि जब वे यज्ञमें भिन्न-भिन्न देवताओंके उद्देश्यसे अलग-अलग भाग रखकर विधि, मन्त्र और द्रव्य आदिके योगसे भक्तिपूर्वक हवि प्रदान करते हैं, तब भिन्न-भिन्न नामोंसे पुकारे जानेपर सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाले वे एक पूर्णब्रह्म श्रीहरि स्वयं ही प्रसन्न होकर उस हविभागको ग्रहण करते हैं॥ २७॥

यह ठीक है कि भगवान् सकाम पुरुषोंके माँगनेपर उन्हें अभीष्ट पदार्थ देते हैं, किंतु यह भगवान्का वास्तविक दान नहीं है; क्योंकि उन वस्तुओंको पा लेनेपर भी मनुष्यके मनमें पुनः कामनाएँ होती ही रहती हैं। इसके विपरीत जो उनका निष्कामभावसे भजन करते हैं, उन्हें तो वे साक्षात् अपने चरणकमल ही दे देते हैं—जो अन्य समस्त इच्छाओंको समाप्त कर देनेवाले हैं॥ २८॥

(अतः अबतक स्वर्गसुख भोग लेनेके बाद हमारे पूर्वकृत यज्ञ और पूर्त कर्मोंसे यदि कुछ भी पुण्य अवशिष्ट हो, तो उसके प्रभावसे हमें इस भारतवर्षमें भगवान्की स्मृतिसे युक्त मनुष्यजन्म मिले; क्योंकि श्रीहरि अपना भजन करनेवाले प्राणियोंका परम कल्याण करते हैं।)

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] इस प्रकार स्वर्गको प्राप्त देवता, सिद्ध और महर्षिगण भारतवर्षकी उत्तम महिमाका गान करते हैं॥ २९॥

जम्बूद्वीपमें अन्य आठ उपद्वीप भी बताये गये हैं। खोये हुए घोड़ेके मार्गोंका अन्वेषण करनेवाले सगरके पुत्रोंने इन उपद्वीपोंकी कल्पना की थी। स्वर्णप्रस्थ, चन्द्रशुक्र, आवर्तन, रमाणक, मन्दरहरिण, पांचजन्य, सिंहल और लंका—ये आठ उपद्वीप

जम्बुद्वीपस्य मानं हि कीर्तितं विस्तरेण च॥ ३२
अतः परं प्रवक्ष्यामि प्लक्षादिद्वीपषट्ककम्॥ ३३

प्रसिद्ध हैं। इस प्रकार मैंने विस्तारके साथ जम्बूद्वीपका परिमाण बता दिया। अब इसके बाद प्लक्ष आदि छः द्वीपोंका वर्णन करूँगा॥ ३०—३३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायामष्टमस्कन्धे भुवनकोशवर्णने भारतवर्षवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः॥ ११॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

प्लक्ष, शाल्मलि और कुशद्वीपका वर्णन

श्रीनारायण उवाच

जम्बुद्वीपो यथा चायं यत्प्रमाणेन कीर्तितः।
तावता सर्वतः क्षारोदधिना परिवेष्टितः॥ १
जम्ब्वाख्येन यथा मेरुस्तथा क्षारोदकेन च।
क्षारोदधिस्तु द्विगुणः प्लक्षाख्येनोपवेष्टितः॥ २
यथैव परिखा बाह्योपवनेन हि वेष्ट्यते।
प्लक्षाख्यश्च स्वयं जम्बुप्रमाणो द्वीपरूपधृक्॥ ३

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] यह जम्बूद्वीप जैसा और जितने परिमाणवाला बताया गया है, वह उतने ही परिमाणवाले क्षारसमुद्रसे चारों ओरसे उसी प्रकार घिरा है, जैसे मेरुपर्वत जम्बूद्वीपसे घिरा हुआ है। क्षारसमुद्र भी अपनेसे दूने परिमाणवाले प्लक्षद्वीपसे उसी प्रकार घिरा हुआ है, जिस प्रकार कोई परिखा (खाई) बाहरके उपवनसे घिरी रहती है। जम्बूद्वीपमें जितना बड़ा जामुनका वृक्ष है, उतने ही विस्तारवाला प्लक्ष (पाकड़)-का वृक्ष उस प्लक्षद्वीपमें है, इसीसे वह प्लक्षद्वीप नामसे प्रसिद्ध हुआ॥ १—३॥

हिरणमयोऽग्निस्तत्रैव तिष्ठतीति विनिश्चयः।
प्रियव्रतात्मजस्तत्र सप्तजिह्व इति स्मृतः॥ ४
अग्निस्तदधिपस्त्विध्मजिह्वः स्वं द्वीपमेव च।
विभज्य सप्तवर्षाणि स्वपुत्रेभ्यो ददौ विभुः॥ ५
स्वयमात्मविदां मान्यां योगचर्यां समाश्रितः।
तेनैव चात्मयोगेन भगवन्तमुपागतः॥ ६

सुवर्णमय अग्निदेव वहींपर निश्चितरूपसे प्रतिष्ठित हैं। सात जिह्वाओंवाले ये अग्निदेव प्रियव्रतके पुत्र कहे गये हैं। 'इध्मजिह्व' नामवाले ये अग्निदेव उस द्वीपके अधिपति थे, जिन्होंने अपने द्वीपको सात वर्षोंमें विभक्तकर अपने पुत्रोंको सौंप दिया। तदनन्तर वे ऐश्वर्यशाली इध्मजिह्व आत्मज्ञानियोंके द्वारा मान्य योगसाधनमें तत्पर हो गये। उसी आत्मयोगके साधनसे उन्होंने भगवान्‌का सांनिध्य प्राप्त किया॥ ४—६॥

शिवं च यवसं भद्रं शान्तं क्षेमामृते तथा।
अभयं चेति सप्तैव तद्वर्षाणि सदेक्षताम्॥ ७
तेषु प्रोक्ता नदीः सप्त गिरयः सप्त चैव हि।
अरुणा नृम्णाङ्गिरसी सावित्री सुप्रभातिका॥ ८
ऋतम्भरा सत्यम्भरा इति नद्यः प्रकीर्तिताः।
मणिकूटो वज्रकूट इन्द्रसेनस्तथैव च॥ ९
ज्योतिष्मान्वै सुपर्णश्च हिरण्यष्ठीव एव च।
मेघमाल इति ख्याताः प्लक्षद्वीपस्य पर्वताः॥ १०

शिव, यवस, भद्र, शान्त, क्षेम, अमृत और अभय—प्लक्षद्वीपके ये सात वर्ष उन पुत्रोंके नामोंसे विख्यात हैं। उन वर्षोंमें सात नदियाँ तथा सात पर्वत कहे गये हैं। अरुणा, नृम्णा, आंगिरसी, सावित्री, सुप्रभातिका, ऋतम्भरा और सत्यम्भरा—इन नामोंसे नदियाँ तथा मणिकूट, वज्रकूट, इन्द्रसेन, ज्योतिष्मान्, सुपर्ण, हिरण्यष्ठीव और मेघमाल—इन नामोंसे प्लक्षद्वीपके पर्वत प्रसिद्ध हैं॥ ७—१०॥

नदीनां जलमात्रेण दर्शनस्पर्शनादिभिः।
निर्धूताशेषरजसो निस्तमस्काः प्रजास्तथा॥ ११

प्लक्षद्वीपकी नदियोंके जलके केवल दर्शन, स्पर्श आदिसे वहाँकी प्रजाका सम्पूर्ण पाप समाप्त हो जाता है और उनका अज्ञानान्धकार मिट जाता है॥ ११॥

हंसश्चैव पतङ्गश्च ऊर्ध्वायन इतीव च।
सत्याङ्गसंज्ञाश्चत्वारो वर्णाः प्लक्षस्य द्वीपके॥ १२

सहस्रायुःप्रमाणाश्च विविधोपमदर्शनाः।
स्वर्गद्वारं त्रयीविद्याविधिनार्कं यजन्ति ते॥ १३

प्रत्नस्य विष्णो रूपं च सत्यर्तस्य च ब्रह्मणः।
अमृतस्य च मृत्योश्च सूर्यमात्मानमीमहि॥ १४

प्लक्षादिषु च सर्वेषु पञ्चद्वीपेषु नारद।
आयुरिन्द्रियमोजश्च बलं बुद्धिः सहोऽपि च॥ १५

विक्रमः सर्वलोकानां सिद्धिरौत्पत्तिकी सदा।
प्लक्षद्वीपात्परं चेक्षुरसोदः सरिताम्पतिः॥ १६

प्लक्षद्वीपं समग्रं च परिवार्यावतिष्ठते।
शाल्मलाख्यस्ततो द्वीपश्चास्माद् द्विगुणविस्तरः॥ १७

समानेन सुरोदेन सिन्धुना परिवेष्टितः।
यत्र वै शाल्मलीवृक्षः प्लक्षायामः प्रकीर्तितः॥ १८

स्थानं तत्पक्षिराजस्य गरुडस्य महात्मनः।
तस्य द्वीपस्य नाथो हि यज्ञबाहुः प्रियव्रतात्॥ १९

जातः स एव सप्तभ्यः स्वपुत्रेभ्यो ददौ धराम्।
तद्वर्षाणां च नामानि कथितानि निबोधत॥ २०

सुरोचनं सौमनस्यं रमणं देववर्षकम्।
पारिभद्रं तथा चाप्यायनं विज्ञातनामकम्॥ २१

तेषु वर्षाद्रयः सप्त सप्तैव सरितः स्मृताः।
सरसः शतशृङ्गश्च वामदेवश्च कन्दकः॥ २२

कुमुदः पुष्पवर्षश्च सहस्रश्रुतिरेव च।
एते च पर्वताः सप्त नदीनामानि चोच्यते॥ २३

अनुमतिः सिनीवाली सरस्वती कुहूस्तथा।
रजनी चैव नन्दा च राकेति परिकीर्तिताः॥ २४

उस प्लक्षद्वीपमें हंस, पतंग, ऊर्ध्वायन और सत्यांग नामवाले चार वर्णके लोग निवास करते हैं॥ १२॥

उनकी आयु एक हजार वर्षकी होती है और वे देखनेमें विलक्षण प्रतीत होते हैं। वे तीनों वेदोंमें बताये गये विधानसे स्वर्गके द्वारस्वरूप भगवान् सूर्यकी इस प्रकार उपासना करते हैं—जो सत्य, ऋत, वेद तथा सत्कर्मके अधिष्ठाता हैं; अमृत और मृत्यु जिनके विग्रह हैं, हम उन शाश्वत विष्णुरूप भगवान् सूर्यकी शरण लेते हैं॥ १३-१४॥

हे नारद! प्लक्ष आदि सभी पाँचों द्वीपोंमें वहाँके सभी प्राणियोंमें आयु, इन्द्रिय, मनोबल, इन्द्रियबल, शारीरिकबल, बुद्धि और पराक्रम—ये सब स्वाभाविक रूपसे सिद्ध रहते हैं॥ १५ $\frac{1}{2}$॥

सभी सरिताओंका पति इक्षुरसका समुद्र प्लक्षद्वीपसे भी बड़ा है। वह सम्पूर्ण प्लक्षद्वीपको सभी ओरसे घेरकर स्थित है॥ १६ $\frac{1}{2}$॥

इस प्लक्षद्वीपके बाद इससे भी दूने विस्तारवाला शाल्मल नामक द्वीप है, जो अपने ही विस्तारवाले सुरोद नामक समुद्रसे घिरा हुआ है। वहाँपर एक शाल्मली (सेमर)-का वृक्ष है, जो [प्लक्षद्वीपमें स्थित] 'पाकर' के वृक्षके विस्तारवाला कहा गया है॥ १७-१८॥

वह शाल्मलीद्वीप पक्षियोंके स्वामी महात्मा गरुडका निवासस्थान है। महाराज प्रियव्रतके ही पुत्र यज्ञबाहु उस द्वीपके शासक हुए। उन्होंने अपने सात पुत्रोंमें पृथ्वीको [विभक्त करके] प्रदान कर दिया है। अब उन वर्षोंके जो नाम बताये गये हैं; उन्हें सुनिये—सुरोचन, सौमनस्य, रमण, देववर्षक, पारिभद्र, आप्यायन और विज्ञात॥ १९—२१॥

उन वर्षोंमें सात पर्वत और सात ही नदियाँ कही गयी हैं। सरस, शतशृंग, वामदेव, कन्दक, कुमुद, पुष्पवर्ष और सहस्रश्रुति—ये सात पर्वत हैं और अब नदियोंके नाम बताये जाते हैं; अनुमति, सिनीवाली, सरस्वती, कुहू, रजनी, नन्दा और राका—ये नदियाँ बतायी गयी हैं॥ २२—२४॥

तद्वर्षपुरुषाः सर्वे चातुर्वर्ण्यसमाह्वयाः।
श्रुतधरो वीर्यधरो वसुन्धर इषुन्धरः॥ २५

भगवन्तं वेदमयं यजन्ते सोममीश्वरम्।
स्वगोभिः पितृदेवेभ्यो विभजन्कृष्णशुक्लयोः॥ २६

सर्वासां च प्रजानां च राजा सोमः प्रसीदतु।
एवं सुरोदाद् द्विगुणः स्वमानेन प्रकीर्तितः॥ २७

घृतोदेनावृतः सोऽयं कुशद्वीपः प्रकाशते।
यस्मिन्नास्ते कुशस्तम्बो द्वीपाख्याकारणो ज्वलन्॥ २८

स्वशष्परोचिषा काष्ठा भासयन्परितिष्ठते।
हिरण्यरेतास्तद्द्वीपपतिः प्रैयव्रतः स्वराट्॥ २९

स्वपुत्रेभ्यश्च सप्तभ्यस्तद्द्वीपं सप्तधाभजत्।
वसुश्च वसुदानश्च तथा दृढरुचिः परः॥ ३०

नाभिगुप्तस्तुत्यव्रतौ विविक्तनामदेवकौ।
तेषां वर्षेषु सप्तैव सीमागिरिवराः स्मृताः॥ ३१

नद्यः सप्तैव सन्तीह तन्नामानि निबोधत।
चक्रस्तथा चतुःशृङ्गः कपिलश्चित्रकूटकः॥ ३२

देवानीकश्चोर्ध्वरोमा द्रविणः सप्त पर्वताः।
रसकुल्या मधुकुल्या मित्रविन्दा तथैव च॥ ३३

श्रुतविन्दा देवगर्भा घृतच्युन्मन्दमालिके।
यत्पयोभिः कुशद्वीपवासिनः सर्व एव ते॥ ३४

कुशलः कोविदश्चैवाप्यभियुक्तस्तथैव च।
कुलकश्चेति संज्ञाभिश्चतुर्वर्णाः प्रकीर्तिताः॥ ३५

जातवेदसरूपं तं देवं कर्मजकौशलैः।
यजन्ते देववर्याभाः सर्वे सर्वविदो जनाः॥ ३६

उन वर्षोंमें निवास करनेवाले श्रुतधर, वीर्यधर, वसुन्धर और इषुन्धर नामक चार वर्णोंके सभी पुरुष साक्षात् वेदस्वरूप ऐश्वर्यसम्पन्न भगवान् चन्द्रमाकी इस प्रकार उपासना करते हैं—अपनी किरणोंसे पितरोंके लिये कृष्ण तथा देवताओंके लिये शुक्लमार्गका विभाजन करनेवाले और सम्पूर्ण प्रजाओंके राजा भगवान् सोम प्रसन्न हों॥ २५-२६½ ॥

इसी प्रकार सुरोदकी अपेक्षा दूने विस्तारवाला कुशद्वीप बताया गया है। यह भी अपने ही समान विस्तारवाले घृतोद नामक समुद्रसे घिरा हुआ है। इसमें कुशोंका एक महान् पुंज प्रकाशित होता रहता है, इसीसे इस द्वीपको कुशद्वीप कहा गया है। प्रज्वलित होता हुआ यह अपनी कोमल शिखाओंकी कान्तिसे सभी दिशाओंको प्रकाशित करता हुआ वहाँ प्रतिष्ठित है॥ २७-२८½ ॥

उस कुशद्वीपके अधिपति प्रियव्रतपुत्र महाराज हिरण्यरेताने उस द्वीपको अपने सात पुत्रोंमें सात भागोंमें विभाजित कर दिया। वसु, वसुदान, दृढरुचि, नाभिगुप्त, स्तुत्यव्रत, विविक्त और नामदेव—ये उनके नाम थे॥ २९-३०½ ॥

उनके वर्षोंमें उनकी सीमा निर्धारित करनेवाले सात ही श्रेष्ठ पर्वत कहे गये हैं और सात ही नदियाँ भी हैं। उनके नाम सुनिये—चक्र, चतुःशृंग, कपिल, चित्रकूट, देवानीक, ऊर्ध्वरोमा और द्रविड—ये सात पर्वत हैं और रसकुल्या, मधुकुल्या, मित्रविन्दा, श्रुतविन्दा, देवगर्भा, घृतच्युता तथा मन्दमालिका—ये नदियाँ हैं, जिनके जलमें कुशद्वीपके निवासी स्नान करते हैं। वे सब कुशल, कोविद, अभियुक्त और कुलक—इन नामोंसे चार वर्णोंवाले कहे हैं। श्रेष्ठ देवताओंके सदृश तेजस्वी तथा सर्वज्ञ वहाँके सभी लोग अपने यज्ञ आदि कुशलकर्मोंद्वारा अग्निस्वरूप उन भगवान् श्रीहरिकी उपासना करते हैं॥ ३१—३६ ॥

परस्य ब्रह्मणः साक्षाज्जातवेदोऽसि हव्यवाट्।
देवानां पुरुषाङ्गानां यज्ञेन पुरुषं यज।
एवं यजन्ते ज्वलनं सर्वे द्वीपाधिवासिनः॥ ३७

उस द्वीपमें निवास करनेवाले सभी पुरुष अग्निदेवकी इस प्रकार स्तुति करते हैं—'हे जातवेद! आप परब्रह्मको साक्षात् हवि पहुँचानेवाले हैं। अतः भगवान्के अंगभूत देवताओंके यजनद्वारा आप उन परम पुरुषका ही यजन करें'॥ ३७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायामष्टमस्कन्धे भुवनकोशवर्णने प्लक्षद्वीपकुशद्वीपवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥



अथ त्रयोदशोऽध्यायः

क्रौंच, शाक और पुष्करद्वीपका वर्णन

नारद उवाच

शिष्टद्वीपप्रमाणं च वद सर्वार्थदर्शन।
येन विज्ञातमात्रेण परानन्दमयो भवेत्॥ १

श्रीनारायण उवाच

कुशद्वीपस्य परितो घृतोदावरणं महत्।
ततो बहिः क्रौञ्चद्वीपो द्विगुणः स्यात्स्वमानतः॥ २
क्षीरोदेनावृतो भाति यस्मिन्क्रौञ्चाद्रिरस्ति च।
नामनिर्वर्तकः सोऽयं द्वीपस्य परिवर्तते॥ ३
योऽसौ गुहस्य शक्त्या च भिन्नकुक्षिः पुराभवत्।
क्षीरोदेनासिच्यमानो वरुणेन च रक्षितः॥ ४
घृतपृष्ठो नाम यस्य विभाति किल नायकः।
प्रियव्रतात्मजः श्रीमान् सर्वलोकनमस्कृतः॥ ५
स्वद्वीपं तु विभज्यैव सप्तधा स्वात्मजान्ददौ।
पुत्रनामसु वर्षेषु वर्षपान्सन्निवेशयन्॥ ६
स्वयं भगवतस्तस्य शरणं सञ्जगाम ह।
आमो मधुरुहश्चैव मेघपृष्ठः सुधामकः॥ ७
भ्राजिष्ठो लोहितार्णश्च वनस्पतिरितीव च।
नगा नद्यश्च सप्तैव विख्याता भुवि सर्वतः॥ ८
शुक्लो वै वर्धमानश्च भोजनश्चोपबर्हणः।
नन्दश्च नन्दनः सर्वतोभद्र इति कीर्तिताः॥ ९

नारदजी बोले—हे सर्वार्थदर्शन! अब आप शेष द्वीपोंके परिमाण बतलाइये, जिन्हें जाननेमात्रसे मनुष्य परम आनन्दमय हो जाता है॥ १॥

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] कुशद्वीपके चारों ओर घृतके समुद्रका महान् आवरण है। उसके बाहर उससे दूने परिमाणवाला क्रौंचद्वीप है, जो अपने ही समान विस्तारवाले क्षीरसमुद्रसे घिरा हुआ सुशोभित होता है। उसमें क्रौंच नामक पर्वत विद्यमान है, उसीके कारण इसका नाम क्रौंचद्वीप पड़ गया॥ २-३॥

पूर्वकालमें स्वामी कार्तिकेयकी शक्तिके प्रहारसे इसका कटिप्रदेश कट गया था, किंतु क्षीरसमुद्रसे सिंचित और वरुणदेवसे रक्षित होकर यह पुनः स्थिर हो गया॥ ४॥

इस द्वीपके शासक प्रियव्रतपुत्र घृतपृष्ठ थे। सम्पूर्ण लोकके वन्दनीय उन श्रीमान्ने अपने द्वीपको सात वर्षोंमें विभक्त करके अपने सात पुत्रोंको दे दिया। इस प्रकार पुत्रोंके ही नामवाले वर्षोंके अधिपतिके रूपमें पुत्रोंको नियुक्त करके उन्होंने स्वयं भगवान् श्रीहरिका आश्रय ग्रहण कर लिया॥ ५-६½॥

आम, मधुरुह, मेघपृष्ठ, सुधामक, भ्राजिष्ठ, लोहितार्ण और वनस्पति—ये उनके सात पुत्र हैं। [उनके वर्षोंमें] सात पर्वत तथा सात नदियाँ इस सम्पूर्ण भूमण्डलपर प्रसिद्ध हैं। शुक्ल, वर्धमान, भाजन, उपबर्हण, नन्द, नन्दन और सर्वतोभद्र—ये पर्वत कहे गये हैं॥ ७—९॥

अभया अमृतौघा चार्यका तीर्थवतीति च।
वृत्तिरूपवती शुक्ला पवित्रवतिका तथा॥ १०
एतासामुदकं पुण्यं चातुर्वर्ण्येन पीयते।
पुरुषऋषभौ तद्वद् द्रविणाख्यश्च देवकः॥ ११
एते चतुर्वर्णजाताः पुरुषा निवसन्ति हि।
तत्रत्याः पुरुषा आपोमयं देवमपां पतिम्॥ १२
पूर्णेनाञ्जलिना भक्त्या यजन्ते विविधक्रियाः।
आपः पुरुषवीर्याः स्थ पुनन्तीर्भूर्भुवः स्वरः॥ १३
ता नः पुनीतामीवघ्नीः स्पृशतामात्मना भुवः।
इति मन्त्रजपान्ते च स्तुवन्ति विविधैः स्तवैः॥ १४
एवं परस्तात्क्षीरोदात्परितश्चोपवेशितः।
द्वात्रिंशल्लक्षसंख्याकयोजनायाममाश्रितः ॥ १५
स्वमानेन च द्वीपोऽयं दधिमण्डोदकेन च।
शाकद्वीपो विशिष्टोऽयं यस्मिञ्छाको महीरुहः॥ १६
स्वक्षेत्रव्यपदेशस्य कारणं स हि नारद।
प्रैयव्रतोऽधिपस्तस्य मेधातिथिरिति स्मृतः॥ १७
विभज्य सप्त वर्षाणि पुत्रनामानि तेषु च।
सप्त पुत्रान्निजान् स्थाप्य स्वयं योगगतिं गतः॥ १८
पुरोजवो मनःपूर्वजवोऽथ पवमानकः।
धूम्रानीकश्चित्ररेफो बहुरूपोऽथ विश्वधृक्॥ १९
मर्यादागिरयः सप्त नद्यः सप्तैव कीर्तिताः।
ईशान ऊरुशृङ्गोऽथ बलभद्रः शतकेशरः॥ २०
सहस्रस्रोतको देवपालोऽप्यन्ते महाशनः।
एतेऽद्रयः सप्त चोक्ताः सरिन्नामानि सप्त च॥ २१
अनघा प्रथमायुर्दा उभयस्पृष्टिरेव च।
अपराजिता पञ्चपदी सहस्रश्रुतिरेव च॥ २२
ततो निजधृतिश्चोक्ताः सप्त नद्यो महोज्ज्वलाः।

अभया, अमृतौघा, आर्यका, तीर्थवती, वृत्तिरूपवती, शुक्ला और पवित्रवतिका—ये सात नदियाँ हैं। इन नदियोंका पवित्र जल वहाँके चार वर्णोंके समुदायद्वारा पीया जाता है। पुरुष, ऋषभ, द्रविण और देवक—ये चार वर्णोंके पुरुष वहाँ निवास करते हैं। वहाँके पुरुष जलसे भरी हुई अंजलिके द्वारा विविध क्रियाएँ करते हुए भक्तिपूर्वक जलके स्वामी जलरूप भगवान् वरुणदेवकी उपासना इस प्रकार करते हैं—'हे जलदेवता! आपको परमात्मासे सामर्थ्य प्राप्त है। आप भूः, भुवः और स्वः—इन तीनों लोकोंको पवित्र करते हैं; क्योंकि आप स्वरूपसे पापोंका नाश करनेवाले हैं। हम अपने शरीरसे आपका स्पर्श करते हैं, आप हमारे अंगोंको पवित्र करें'—इस मन्त्रके जपके पश्चात् वे विविध स्तोत्रोंसे उनकी स्तुति करते हैं॥ १०—१४॥

इसी प्रकार क्षीरसमुद्रसे आगे उसके चारों ओर बत्तीस लाख योजन विस्तारवाला शाकद्वीप फैला हुआ है। यह द्वीप भी अपने ही समान परिमाणवाले दधिमण्डोदक समुद्रसे घिरा हुआ है। यह शाकद्वीप एक विशिष्ट द्वीप है, जिसमें 'शाक' नामक एक विशाल वृक्ष स्थित है। हे नारद! वही वृक्ष इस क्षेत्रके नामका कारण है। प्रियव्रतपुत्र मेधातिथि उस द्वीपके अधिपति कहे जाते हैं। वे इस द्वीपको सात वर्षोंमें विभाजित करके उनमें उन्हींके समान नामवाले अपने सात पुत्रोंको नियुक्तकर स्वयं योगगतिकी प्राप्तिके उद्देश्यसे निकल पड़े। पुरोजव, मनोजव, पवमान, धूम्रानीक, चित्ररेफ, बहुरूप और विश्वधृक्—ये उनके सात पुत्र थे॥ १५—१९॥

इसकी मर्यादा (सीमा) निश्चित करनेवाले सात प्रसिद्ध पर्वत हैं तथा सात ही नदियाँ हैं। ईशान, उरुशृंग, बलभद्र, शतकेसर, सहस्रस्रोत, देवपाल और महाशन—ये सात पर्वत वहाँ विद्यमान कहे गये हैं। इसी तरह वहाँकी सात नदियोंके भी नाम हैं—अनघा, आयुर्दा, उभयस्पृष्टि, अपराजिता, पंचपदी, सहस्रश्रुति और निजधृति—ये सात परम पवित्र नदियाँ बतायी गयी हैं॥ २०—२२½॥

तद्वर्षपुरुषाः सर्वे सत्यव्रतक्रतुव्रतौ ॥ २३
दानव्रतानुव्रतौ च चतुर्वर्णा उदीरिताः।
भगवन्तं प्राणवायुं प्राणायामेन संयुताः ॥ २४
यजन्ति निर्धूतरजस्तमसः परमं हरिम्।
अन्तः प्रविश्य भूतानि यो बिभर्त्यात्मकेतुभिः ॥ २५
अन्तर्यामीश्वरः साक्षात्पातु नो यद्वशे इदम्।
परस्ताद्दधिमण्डोदात्ततस्तु बहुविस्तरः ॥ २६
पुष्करद्वीपनामायं शाकद्वीपद्विसंगुणः।
स्वसमानेन स्वादूदकेनायं परिवेष्टितः ॥ २७
यत्रास्ते पुष्करं भ्राजदग्निचूडानिभानि च।
पत्राणि विशदानीह स्वर्णपत्रायुतायुतम् ॥ २८
श्रीमद्भगवतश्चेदमासनं परमेष्ठिनः।
कल्पितं लोकगुरुणा सर्वलोकसिसृक्षया ॥ २९
तद्द्वीप एक एवायं मानसोत्तरनामकः।
अर्वाचीनपराचीनवर्षयोरवधिर्गिरिः ॥ ३०
उच्छ्रायायामयोः संख्यायुतयोजनसम्मिता।
यत्र दिक्षु च चत्वारि चतसृषु पुराणि ह ॥ ३१
इन्द्रादिलोकपालानां यदुपर्यर्कनिर्गमः।
मेरुं प्रदक्षिणीकुर्वन् भानुः पर्येति यत्र हि ॥ ३२
संवत्सरात्मकं चक्रं देवाहोरात्रतो भ्रमन्।
प्रैयव्रतोऽधिपो वीतिहोत्रः स्वात्मजकद्वयम् ॥ ३३
वर्षद्वये परिस्थाप्य वर्षनामधरं क्रमात्।
रमणो धातकिश्चैव तत्तद्वर्षपती उभौ ॥ ३४
कृताः स्वयं पूर्वजवद्भगवद्भक्तितत्पराः।

उस वर्षके सभी पुरुष सत्यव्रत, क्रतुव्रत, दानव्रत और अनुव्रत—इन चार वर्णोंवाले कहे गये हैं। वे प्राणायामके द्वारा अपने रजोगुण तथा तमोगुणको नष्ट करके प्राणवायुरूप परमेश्वर भगवान् श्रीहरिकी इस प्रकार उपासना करते हैं। 'जो प्राणादिवृत्तिरूप अपनी ध्वजाओंके सहित प्राणियोंके भीतर प्रवेश करके उनका पालन करते हैं तथा यह सम्पूर्ण जगत् जिनके अधीन है, वे साक्षात् अन्तर्यामी भगवान् वायु हमारी रक्षा करें'॥ २३—२५½ ॥

इसी प्रकार उस दधिमण्डोद समुद्रसे आगे बहुत विस्तारवाला पुष्कर नामक अन्य द्वीप है, यह शाकद्वीपसे दो गुने विस्तारका है। यह अपने समान विस्तारवाले स्वादिष्ट जलके समुद्रसे चारों ओरसे घिरा हुआ है॥ २६-२७॥

अग्निकी शिखाके समान प्रकाशमान विशाल पंखुड़ियोंवाला तथा लाखों स्वर्णमय पत्रोंवाला एक पुष्कर (कमल) इस द्वीपमें विराजमान है। समस्त लोकोंकी रचना करनेकी कामनासे लोकगुरु श्रीहरिने भगवान् ब्रह्माके आसनके रूपमें उस कमलकी रचना की॥ २८-२९॥

उस द्वीपमें उसके पूर्वी तथा पश्चिमी वर्षोंकी सीमा निश्चित करनेवाला मानसोत्तर नामक एक ही पर्वत है। यह दस हजार योजन ऊँचा तथा इतना ही विस्तृत है। इसकी चारों दिशाओंमें इन्द्र आदि लोकपालोंके चार पुर हैं और इनके ऊपरसे होकर सूर्य निकलते हैं और वे सुमेरुकी प्रदक्षिणा करते हुए संवत्सरात्मक चक्रके रूपमें देवताओंके दिन (उत्तरायण) तथा रात (दक्षिणायन)-के क्रमसे घूमते हुए परिक्रमण करते रहते हैं॥ ३०—३२॥

उस द्वीपके अधिपति प्रियव्रतपुत्र वीतिहोत्र उसे दो वर्षोंमें बाँटकर वर्षोंके ही नामवाले अपने दो पुत्रों रमण तथा धातकीको उन वर्षोंका स्वामी नियुक्त करके स्वयं अपने बड़े भाइयोंकी भाँति भगवान् श्रीहरिकी भक्तिमें संलग्न हो गये॥ ३३-३४½ ॥

तद्वर्षपुरुषा ब्रह्मरूपिणं परमेश्वरम्॥ ३५

सकर्मकेन योगेन यजन्ति परिशीलिताः।
यत्तत्कर्ममयं लिङ्गं ब्रह्मलिङ्गं जनोऽर्चयेत्।
एकान्तमद्वयं शान्तं तस्मै भगवते नमः॥ ३६

उन वर्षोंमें निवास करनेवाले शीलसम्पन्न पुरुष ब्रह्मसालोक्यादिकी प्राप्ति करानेवाले कर्मयोगके द्वारा ब्रह्मस्वरूप परमेश्वरकी इस प्रकार उपासना करते हैं—'कर्मफलस्वरूप, ब्रह्मके साक्षात् विग्रह, एकान्तस्वभाव, अद्वैत तथा शान्तस्वरूप जिन परमेश्वरकी लोग अर्चना करते हैं, उन भगवान् श्रीहरिको नमस्कार है'॥ ३५-३६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामष्टमस्कन्धे भुवनकोशवर्णने क्रौञ्चशाकपुष्करद्वीपवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥



अथ चतुर्दशोऽध्यायः

लोकालोकपर्वतका वर्णन

श्रीनारायण उवाच

ततः परस्तादचलो लोकालोकेति नामकः।
अन्तराले च लोकालोकयोर्यः परिकल्पितः॥ १

यावदस्ति च देवर्षे ह्यन्तरं मानसोत्तरात्।
सुमेरोस्तावती शुद्धा काञ्चनी भूमिरस्ति हि॥ २

दर्पणोदरतुल्या सा सर्वप्राणिविवर्जिता।
यस्यां पदार्थः प्रहितो न किञ्चित्प्रत्युदीयते॥ ३

अतः सर्वप्राणिसङ्घरहिता सा च नारद।
लोकालोक इति व्याख्या यदत्र परिकल्पिता॥ ४

लोकालोकान्तरे चास्य वर्तते सर्वदा स्थितिः।
ईश्वरेण स लोकानां त्रयाणामन्तगः कृतः॥ ५

सूर्यादीनां ध्रुवान्तानां रश्मयो यद्वशादिह।
अर्वाचीनाश्च त्रीँल्लोकानातन्वानाः कदापि हि॥ ६

पराचीनत्वभाजो हि न भवन्ति च नारद।
तावदुन्नहनायामः पर्वतेन्द्रो महोदयः॥ ७

एतावाँल्लोकविन्यासोऽयं संस्थामानलक्षणैः।
कविभिः स तु पञ्चाशत्कोटिभिर्गणितस्य च॥ ८

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] उसके आगे लोकालोक नामक पर्वत है, जो प्रकाशित तथा अप्रकाशित—दो प्रकारके लोकोंका विभाग करनेके लिये उनके मध्यमें स्थित है॥ १॥

हे देवर्षे! मानसोत्तरपर्वतसे लेकर सुमेरुपर्वततक जितना अन्तर है, उतनी भूमि सुवर्णमयी तथा दर्पणके समान स्वच्छ है। वह भूमि सर्वसाधारण प्राणियोंसे रहित है। इसमें गिरी हुई कोई वस्तु फिर नहीं मिलती। अतः हे नारद! वह भूमि [देवताओंके अतिरिक्त] सभी प्राणिसमुदायसे रहित है। इस पर्वतको लोकालोक जो कहा गया है, वह इसीलिये; क्योंकि यह सूर्यसे प्रकाशित तथा अप्रकाशित दो भागोंके मध्य स्थित है॥ २—४½॥

भगवान्‌ने त्रिलोकीकी सीमा निर्धारित करनेके लिये उस पर्वतका निर्माण किया है। हे नारद! सूर्य आदिसे लेकर ध्रुवपर्यन्त सभी ग्रहोंकी किरणें उसके अधीन होनेके कारण उसके एक ओरसे तीनों लोकोंको प्रकाशित करती हैं और दूसरी ओरके लोक प्रकाशित नहीं हो पाते॥ ५-६½॥

यह अति विशाल पर्वतराज जितना ऊँचा है, उतना ही विस्तृत है। लोकोंका विस्तार इतना ही है। गणितशास्त्रके विद्वानोंने स्थिति, मान और लक्षणके अनुसार सम्पूर्ण भूगोलका परिमाण पचास करोड़ योजन निश्चित किया है। हे मुने! उस भूगोलका

भूगोलस्य चतुर्थांशो लोकालोकाचलो मुने।
तस्योपरि चतुर्दिक्षु ब्रह्मणा चात्मयोनिना॥ ९

निवेशिता दिग्गजा ये तन्नामानि निबोधत।
ऋषभः पुष्पचूडोऽथ वामनोऽथापराजितः॥ १०

एते समस्तलोकस्य स्थितिहेतव ईरिताः।
तेषां च स्वविभूतीनां बहुवीर्योपबृंहणम्॥ ११

विशुद्धसत्त्वं चैश्वर्यं वर्धयन्भगवान् हरिः।
आस्ते सिद्ध्यष्टकोपेतो विष्वक्सेनादिसंवृतः॥ १२

निजायुधैः परिवृतो भुजदण्डैः समन्ततः।
आस्ते सकललोकस्य स्वस्तये परमेश्वरः॥ १३

आकल्पमेवं वेषं स गतो विष्णुः सनातनः।
स्वमायारचितस्यास्य गोपीथायात्मसाधनः॥ १४

योऽन्तर्विस्तार एतेन ह्यलोकपरिमाणकम्।
व्याख्यातं यद्बहिर्लोकालोकाचल इतीरणात्॥ १५

ततः परस्ताद्योगेशगतिं शुद्धां वदन्ति हि।
अण्डमध्यगतः सूर्यो द्यावाभूम्योर्यदन्तरम्॥ १६

सूर्याण्डगोलयोर्मध्ये कोट्यः स्युः पञ्चविंशतिः।
मृतेऽण्ड एष एतस्मिञ्जातो मार्तण्डशब्दभाक्॥ १७

हिरण्यगर्भ इति यद्धिरण्याण्डसमुद्भवः।
सूर्येण हि विभज्यन्ते दिशः खं द्यौर्महीभिदा॥ १८

स्वर्गापवर्गौ नरका रसौकांसि च सर्वशः।
देवतिर्यङ्मनुष्याणां सरीसृपसवीरुधाम्॥ १९

सर्वजीवनिकायानां सूर्य आत्मा दृगीश्वरः।
एतावान्भूमण्डलस्य सन्निवेश उदाहृतः॥ २०

चौथाई भाग (साढ़े बारह करोड़ योजन) केवल यह लोकालोकपर्वत ही है। उसके ऊपर चारों दिशाओंमें स्वयम्भू ब्रह्माजीने जिन चार दिग्गजोंको नियुक्त किया है, उनके नाम हैं—ऋषभ, पुष्पचूड, वामन और अपराजित। इन दिग्गजोंको समस्त लोकोंकी स्थितिका कारण कहा गया है॥ ७—१०½ ॥

भगवान् श्रीहरि उन दिग्गजों तथा अपनी विभूतिस्वरूप इन्द्र आदि लोकपालोंकी विविध शक्तियोंके विकास और उनमें विशुद्ध गुण तथा ऐश्वर्यकी वृद्धि करनेके उद्देश्यसे आठों सिद्धियोंसहित विष्वक्सेन आदि पार्षदोंसे घिरे हुए सदा उस लोकालोकपर्वतपर विराजमान रहते हैं। सम्पूर्ण लोकके कल्याणके लिये चारों भुजाओंमें अपने शंख, चक्र, गदा तथा पद्म—इन आयुधोंसे सुशोभित होते हुए भगवान् श्रीहरि वहाँ सर्वत्र विराजमान हैं। अपने मायारचित इस जगत्की रक्षाके लिये स्वयं साधनस्वरूप वे सनातन भगवान् अपने लीलामयरूपसे ऐसे वेषको धारण किये वहाँ कल्पपर्यन्त प्रतिष्ठित रहते हैं॥ ११—१४॥

लोकालोकपर्वतके अन्तर्वर्ती भागका जो विस्तार कहा गया है, इसीसे उसके दूसरी ओरके अलोक प्रदेशके परिमाणकी व्याख्या समझ लेनी चाहिये। विद्वान् लोग कहते हैं कि उसके आगे योगेश्वरोंकी ही विशुद्ध गति सम्भव है। पृथ्वी तथा स्वर्गके बीचमें जो ब्रह्माण्डका केन्द्र है, वही सूर्यकी स्थिति है। सूर्य तथा ब्रह्माण्डगोलकके बीच सभी ओर पचीस करोड़ योजनकी दूरी है। इस मृत ब्रह्माण्डमें सूर्यके विराजमान रहनेके कारण इनका नाम 'मार्तण्ड' पड़ा और हिरण्यमय ब्रह्माण्डसे उत्पन्न होनेके कारण इन्हें 'हिरण्यगर्भ' कहा जाता है॥ १५—१७½ ॥

दिशा, आकाश, अन्तरिक्ष, पृथ्वी, स्वर्ग, अपवर्ग, नरक और पाताल—इन सभीका भलीभाँति विभाजन सूर्यके ही द्वारा किया जाता है। देवता, पशु-पक्षी, मनुष्य, रेंगकर चलनेवाले जन्तुओं, वृक्ष तथा अन्य सभी प्रकारके जीवसमूहोंकी आत्मा सूर्य ही हैं। ये नेत्रेन्द्रियके स्वामी हैं। हे नारद! भूमण्डलका इतना ही विस्तार कहा गया है। इस विषयके जानकार लोग इसीके द्वारा स्वर्गलोकका भी विस्तार

एतेन हि दिवो मानं वर्णयन्ति च तद्विदः।
द्विदलानां च निष्पावादीनां च दलयोर्यथा॥ २१

अन्तरेण तयोरन्तरिक्षं तदुभयसन्धितम्।
यन्मध्यगश्च भगवान् भानुर्वै तपतां वरः॥ २२

आतपेन त्रिलोकं च प्रतपत्येव भासयन्।
उत्तरायणमासाद्य गतिमान्द्यं वितन्वते॥ २३

आरोहणस्थानमसौ गत्वाहो दैर्घ्यमाचरेत्।
दक्षिणायनमासाद्य गतिशैघ्र्यं वितन्वते॥ २४

अवरोहस्थानमसौ गच्छन्ह्रस्वं दिनं चरेत्।
विषुवत्संज्ञमासाद्य गतिसाम्यं वितन्वते॥ २५

समस्थानमथासाद्य दिनसाम्यं करोति च।
यदा च मेषतुलयोः सञ्चरेद्धि दिवाकरः॥ २६

समानानि त्वहोरात्राण्यातनोति त्रयीमयः।
वृषादिपञ्चसु यदा राशिष्वर्को विरोचते॥ २७

तदाहानि च वर्धन्ते रात्रयोऽपि ह्रसन्ति च।
वृश्चिकादिषु सूर्यो हि यदा सञ्चरते रविः॥ २८

तदापीमान्यहोरात्राणि भवन्ति विपर्ययात्॥ २९

बतलाते हैं, जैसे कि चना-मटर आदिके दो दलोंमेंसे एकका स्वरूप जान लेनेपर दूसरेका अनुमान कर लिया जाता है॥ १८—२१॥

उन द्युलोक तथा पृथ्वीलोकके मध्यमें अन्तरिक्ष स्थित है। अन्तरिक्ष उन दोनोंका सन्धिस्थान है। इसके मध्यमें स्थित रहकर तपनेवाले ग्रहोंमें श्रेष्ठ भगवान् सूर्य चमकते हुए अपनी ऊष्मासे तीनों लोकोंको प्रतप्त करते हैं॥ २२½॥

उत्तरायण होनेपर सूर्य मन्दगतिसे चलने लगते हैं। उत्तरायण उनका आरोहणस्थान है, जहाँ पहुँचनेपर दिनमें वृद्धि होने लगती है। दक्षिणायनकी स्थिति प्राप्त करके वे तीव्र गति धारण कर लेते हैं। दक्षिणायन उनका अवरोहस्थान है, जिसपर सूर्यके चलनेपर दिन छोटा होने लगता है॥ २३-२४½॥

विषुवत् नामक स्थानपर पहुँचनेपर सूर्यकी गतिमें समानता आ जाती है। इस समस्थानपर सूर्यके आनेपर दिनके परिमाणमें समानता आ जाती है। जब वेदस्वरूप भगवान् सूर्य मेष और तुला राशिपर संचरण करते हैं, तब दिन और रात समान होने लगते हैं। जब सूर्य वृष आदि पाँच राशियोंपर होते हैं, तब दिन बढ़ने लगते हैं और रातें छोटी होने लगती हैं। इसी प्रकार जब सूर्य वृश्चिक आदि पाँच राशियोंपर गति करते हैं, तब दिन और रातमें इसके विपरीत परिवर्तन होते हैं॥ २५—२९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामष्टमस्कन्धे सूर्यगतिवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥



अथ पञ्चदशोऽध्यायः

सूर्यकी गतिका वर्णन

श्रीनारायण उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि भानोर्गमनमुत्तमम्।
शीघ्रमन्दादिगतिभिस्त्रिविधं गमनं रवेः॥ १

सर्वग्रहाणां त्रीण्येव स्थानानि सुरसत्तम।
स्थानं जारद्गवं मध्यं तथैरावतमुत्तरम्॥ २

वैश्वानरं दक्षिणतो निर्दिष्टमिति तत्त्वतः।

श्रीनारायण बोले—हे नारद! अब मैं सूर्यकी उत्तम गतिका वर्णन करूँगा। शीघ्र, मन्द गतियोंके द्वारा सूर्यका गमन होता है॥ १॥

हे सुरश्रेष्ठ! सभी ग्रहोंके तीन ही स्थान हैं। वे स्थान हैं—जारद्गव, ऐरावत तथा वैश्वानर; जिनमें जारद्गव मध्यमें, ऐरावत उत्तरमें तथा वैश्वानर दक्षिणमें यथार्थतः निर्दिष्ट किये गये हैं॥ २½॥

अश्विनी कृत्तिका याम्या नागवीथीति शब्दिता॥ ३

रोहिण्यार्द्रा मृगशिरो गजवीथ्यभिधीयते।
पुष्याश्लेषा तथादित्या वीथी चैरावती स्मृता॥ ४

एतास्तु वीथयस्तिस्त्र उत्तरो मार्ग उच्यते।
तथा द्वे चापि फल्गुन्यौ मघा चैवार्षभी मता॥ ५

हस्तश्चित्रा तथा स्वाती गोवीथीति तु शब्दिता।
ज्येष्ठा विशाखानुराधा वीथी जारद्गवी मता॥ ६

एतास्तु वीथयस्तिस्त्रो मध्यमो मार्ग उच्यते।
मूलाषाढोत्तराषाढा अजवीथ्यभिशब्दिता॥ ७

श्रवणं च धनिष्ठा च मार्गी शतभिषक् तथा।
वैश्वानरी भाद्रपदे रेवती चैव कीर्तिता॥ ८

एतास्तु वीथयस्तिस्त्रो दक्षिणो मार्ग उच्यते।
उत्तरायणमासाद्य युगाक्षान्तर्निबद्धयोः॥ ९

कर्षणं पाशयोर्वायुबद्धयो रोहणं स्मृतम्।
तदाभ्यन्तरगान्मण्डलाद्रथस्य गतेर्भवेत्॥ १०

मान्द्यं दिवसवृद्धिश्च जायते सुरसत्तम।
रात्रिह्रासश्च भवति सौम्यायनक्रमो ह्ययम्॥ ११

दक्षिणायनके पाशे प्रेरणादवरोहणम्।
बहिर्मण्डलवेशेन गतिशैघ्र्यं तदा भवेत्॥ १२

तदा दिनाल्पता रात्रिवृद्धिश्च परिकीर्तिता।
वैषुवे पाशसाम्यात्तु समावस्थानतो रवेः॥ १३

मध्यमण्डलवेशश्च साम्यं रात्रिदिनादिके।
आकृष्येते यदा तौ तु ध्रुवेण समधिष्ठितौ॥ १४

तदाभ्यन्तरतः सूर्यो भ्रमते मण्डलानि च।
ध्रुवेण मुच्यमानेन पुना रश्मियुगेन तु॥ १५

तथैव बाह्यतः सूर्यो भ्रमते मण्डलानि च।

अश्विनी, भरणी और कृत्तिकाको नागवीथी कहा जाता है। रोहिणी, मृगशिरा और आर्द्राको गजवीथी कहा जाता है। इसी प्रकार पुनर्वसु, पुष्य और अश्लेषाको ऐरावती-२७९वीथी कहा गया है। ये तीनों वीथियाँ उत्तरमार्ग कही गयी हैं॥ ३-४½ ॥

मघा, पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनीको आर्षभी-वीथी माना गया है। हस्त, चित्रा तथा स्वातीको गोवीथी कहा गया है और इसी प्रकार ज्येष्ठा, विशाखा तथा अनुराधाको जारद्गवीवीथी कहा गया है। इन तीनों वीथियोंको मध्यममार्ग कहा जाता है॥ ५-६½ ॥

मूल, पूर्वाषाढ़ और उत्तराषाढ़ अजवीथी नामसे पुकारी जाती है। श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषाको मार्गीवीथी कहा जाता है और इसी तरह पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद और रेवती वैश्वानरीवीथीके नामसे प्रसिद्ध हैं। ये तीनों वीथियाँ दक्षिणमार्ग कही जाती हैं॥ ७-८½ ॥

जब सूर्यका रथ उत्तरायण मार्गपर रहता है, उस समय उसके दोनों पहियेके अक्षोंसे आबद्ध पवनरूपी पाशसे बँधकर ध्रुवद्वारा उसका कर्षण 'आरोहण' कहा गया है। उस समय मण्डलके भीतर रथ चलनेसे गतिकी मन्दता हो जाती है। हे सुरश्रेष्ठ! इस मन्द गतिमें दिनकी वृद्धि और रातका ह्रास होने लगता है। यही सौम्यायनका क्रम है। इसी प्रकार जब वह रथ दक्षिणायन मार्गपर पाशद्वारा खींचा जाता है, तब वह अवरोहण गति होती है। उस समय मण्डलके बाहरसे गति होनेके कारण सूर्यकी गतिमें तीव्रता हो जाती है। उस समय दिनका छोटा तथा रातका बड़ा होना बताया गया है॥ ९—१२½ ॥

विषुव मार्गपर सूर्यका रथ पाशद्वारा किसी ओर न खींचे जानेके कारण साम्य स्थिति बनी रहती है। इसमें मण्डलके मध्यसे गति होनेसे दिन तथा रातके मानमें समानता होती है॥ १३½ ॥

जब ध्रुवकी प्रेरणासे दोनों वायुपाश खींचे जाते हैं, उस समय भीतरके मण्डलोंमें ही सूर्य चक्कर लगाते हैं। पुनः ध्रुवके द्वारा दोनों पाशोंके मुक्त किये जाते ही सूर्य बाहरके मण्डलोंमें चक्कर लगाने लगते हैं॥ १४-१५½ ॥

तस्मिन्मेरौ पूर्वभागे पुर्यैन्द्री देवधानिका॥ १६
दक्षिणे वै संयमनी नाम याम्या महापुरी।
पश्चान्निम्लोचनी नाम वारुणी वै महापुरी॥ १७
तदुत्तरे पुरी सौम्या प्रोक्ता नाम विभावरी।
ऐन्द्रपुर्यां रवेः प्रोक्त उदयो ब्रह्मवादिभिः॥ १८
संयमन्यां च मध्याह्ने निम्लोचन्यां निमीलनम्।
विभावर्यां निशीथः स्यात्तिग्मांशोः सुरपूजितः॥ १९
प्रवृत्तेश्च निमित्तानि भूतानां तानि सर्वशः।
मेरोश्चतुर्दिशं भानोः कीर्तितानि मया मुने॥ २०
मेरुस्थानां सदा मध्यं गत एव विभाति हि।
सव्यं गच्छन्दक्षिणेन करोति स्वर्णपर्वतम्॥ २१
उदयास्तमये चैव सर्वकालं तु सम्मुखे।
दिशास्वशेषासु तथा सुरर्षे विदिशासु च॥ २२
यैर्यत्र दृश्यते भास्वान्स तेषामुदयः स्मृतः।
तिरोभावं च यत्रैति तत्रैवास्तमनं रवेः॥ २३
नैवास्तमनमर्कस्य नोदयः सर्वदा सतः।
उदयास्तमनाख्यं हि दर्शनादर्शनं रवेः॥ २४
शक्रादीनां पुरे तिष्ठन्स्पृशत्येष पुरत्रयम्।
विकर्णौ द्वौ विकर्णस्थस्त्रीन्कोणान्द्वे पुरे तथा॥ २५
सर्वेषां द्वीपवर्षाणां मेरुरुत्तरतः स्थितः।
यैर्यत्र दृश्यते भानुः सैव प्राचीति चोच्यते॥ २६
तद्वामभागतो मेरुर्वर्ततेति विनिर्णयः।
यदि चैन्द्र्याः प्रचलते घटिका दशपञ्चभिः॥ २७
याम्यां तदा योजनानां सपादं कोटियुग्मकम्।
सार्धद्वादशलक्षाणि पञ्चनेत्रसहस्रकम्॥ २८
प्रक्रामति सहस्रांशुः कालमार्गप्रदर्शकः।

उस मेरुपर्वतपर पूर्वभागमें इन्द्रकी पुरी 'देवधानिका' और दक्षिणभागमें यमराजकी 'संयमनी' नामक विशाल पुरी विद्यमान है। पश्चिममें वरुणदेवकी 'निम्लोचनी' नामक महान् पुरी है और उस मेरुके उत्तर-भागमें चन्द्रमाकी 'विभावरी' नामक पुरी बतायी गयी है॥ १६-१७½ ॥

ब्रह्मवादियोंके द्वारा कहा गया है कि सूर्यका उदय इन्द्रकी पुरीमें होता है और वे मध्याह्नकालमें संयमनीपुरीमें पहुँचते हैं। सूर्यके निम्लोचनीपुरीमें पहुँचनेपर सायंकाल और विभावरीपुरीमें पहुँचनेपर आधी रात होती है। वे भगवान् सूर्य सभी देवताओंके पूज्य हैं॥ १८-१९ ॥

हे मुने! सुमेरुपर्वतके चारों ओर सूर्यके जिस परिभ्रमणसे जीवधारियोंकी सभी क्रियाएँ सम्पन्न होती हैं, उसका वर्णन मैंने कर दिया॥ २० ॥

सुमेरुपर रहनेवालोंको सूर्य सदा मध्यमें विराजमान प्रतीत होते हैं। सूर्यका रथ सुमेरुके बायें चलते हुए वायुकी प्रेरणासे दायें हो जाता है। अतः उदय तथा अस्त-समयोंमें सर्वदा वह सामने ही पड़ता है। हे देवर्षे! सभी दिशाओं तथा विदिशाओंमें रहनेवाले जो लोग सूर्यको जहाँ देखते हैं, उनके लिये वह सूर्योदय तथा जहाँ सूर्य छिप जाते हैं, वहाँके लोगोंके लिये वह सूर्यास्त माना गया है। सर्वदा विद्यमान रहनेवाले सूर्यका न तो उदय होता है और न अस्त ही होता है, उनका दर्शन तथा अदर्शन ही उदय और अस्त नामसे कहा गया है॥ २१—२४ ॥

जिस समय सूर्य इन्द्र आदिकी पुरीमें पहुँचते हैं, उस समय उनके प्रकाशसे तीनों लोक प्रकाशित होने लगते हैं। दो विकर्ण, उनके तीन कोण तथा दो पुरियाँ—सबमें सूर्यकी किरणसे प्रकाश फैल जाता है। सम्पूर्ण द्वीप और वर्ष सुमेरुके उत्तरमें स्थित हैं। जो लोग सूर्यको जहाँ उदय होते देखते हैं, उनके लिये वही पूर्व दिशा कही जाती है॥ २५-२६ ॥

उसके वाम भागमें मेरुपर्वत है—ऐसा सुनिश्चित है। काल तथा मार्गके प्रदर्शक हजार किरणोंवाले सूर्य जब इन्द्रपुरीसे संयमनीपुरीको जाते हैं, तब वे पन्द्रह घड़ीमें सवा दो करोड़ बारह लाख पचहत्तर हजार योजनकी दूरी तय करते हैं॥ २७-२८½ ॥

एवं ततो वारुणीं च सौम्यामैन्द्रीं सहस्रदृक्॥ २९

पर्येति कालचक्रात्मा द्युमणिः कालबुद्धये।
तथा चान्ये ग्रहाः सोमादयो ये दिग्विचारिणः॥ ३०

नक्षत्रैः सह चोद्यन्ति सह चास्तं व्रजन्ति ते।
एवं मुहूर्तेन रथो भानोरष्टशताधिकम्॥ ३१

योजनानां चतुस्त्रिंशल्लक्षाणि भ्रमति प्रभुः।
त्रयीमयश्चतुर्दिक्षु पुरीषु च समीरणात्॥ ३२

प्रवहाख्यात्सदा कालचक्रं पर्येति भानुमान्।
यस्य चक्रं रथस्यैकं द्वादशारं त्रिनाभिकम्॥ ३३

षण्नेमि कवयस्तं च वत्सरात्मकमूचिरे।
मेरुमूर्धनि तस्याक्षो मानसोत्तरपर्वते॥ ३४

कृतेतरविभागो यः प्रोतं तत्र रथाङ्गकम्।
तैलकारकयन्त्रेण चक्रसाम्यं परिभ्रमन्। ३५

मानसोत्तरनाम्नीह गिरौ पर्येति चांशुमान्।
तस्मिन्नक्षे कृतं मूलं द्वितीयोऽक्षो ध्रुवे कृतः॥ ३६

तुर्यमानेन तैलस्य यन्त्राक्षवदितीरितः।
कृतोपरितनो भागः सूर्यस्य जगतां पतेः॥ ३७

रथनीडस्तु षट्त्रिंशल्लक्षयोजनमायतः।
तत्तुर्यभागतः सोऽयं परिणाहेन कीर्तितः॥ ३८

तावानर्करथस्यात्र युगस्तस्मिन्हयाः शुभाः।
सप्तच्छन्दोऽभिधानाश्च सूरसूतेन योजिताः॥ ३९

वहन्ति देवमादित्यं लोकानां सुखहेतवे।
पुरस्तात्सवितुः सूतोऽरुणः पश्चान्नियोजितः॥ ४०

सौत्ये कर्मणि संयुक्तो वर्तते गरुडाग्रजः।

इसी प्रकार सहस्र नेत्रोंवाले कालचक्रात्मा सूर्य कालज्ञान करानेके लिये वरुणलोक, चन्द्रलोक तथा इन्द्रलोकका भ्रमण करते हैं॥ २९½ ॥

चन्द्रमा आदि अन्य आकाशचारी जो भी ग्रह हैं, वे नक्षत्रोंके साथ उदय तथा अस्त होते रहते हैं॥ ३०½ ॥

इस प्रकार भगवान् सूर्यका वेदमय रथ एक मुहूर्तमें चौंतीस लाख आठ सौ योजन चलता है। प्रवह नामक वायुके प्रभावसे वह तेजस्वी कालचक्र चारों दिशाओंमें स्थित चारों पुरियोंपरसे घूमता रहता है॥ ३१-३२½ ॥

सूर्यके रथके एक चक्केमें बारह अरे, तीन धुरियाँ तथा छः नेमियाँ हैं; विद्वान् लोग उस चक्केको एक संवत्सरकी संज्ञा प्रदान करते हैं। इस रथकी धुरीका एक सिरा सुमेरुपर्वतके शिखरपर और दूसरा मानसोत्तरपर्वतके शिखरपर स्थित है। इस धुरीमें लगा हुआ जो पहिया है, वह तेल निकालनेवाले यन्त्र (कोल्हू)-के पहियेकी भाँति घूमता रहता है और सूर्य भी उस मानसोत्तरपर्वतके ऊपर भ्रमण करते रहते हैं॥ ३३—३५½ ॥

उस धुरीमें जिसका मूल भाग लगा हुआ है, ऐसी ही एक दूसरी धुरी है, जिसकी लम्बाई पहली धुरीकी चौथाई है। ध्रुवसे लगी हुई वह धुरी तैलयन्त्रकी धुरीके सदृश कही गयी है॥ ३६½ ॥

रथके ऊपरी भागमें जगत्के स्वामी सूर्यके बैठनेका स्थान छत्तीस लाख योजन लम्बा तथा उसका चतुर्थांश अर्थात् नौ लाख योजन चौड़ा बताया गया है। उतना ही परिमाणवाला सूर्यके रथका जूआ भी है। रथके सारथि (अरुण)-के द्वारा उस जूएमें जुते हुए गायत्री आदि छन्दोंके नामवाले सात घोड़े जगत्के प्राणियोंके कल्याणके लिये भगवान् सूर्यका वहन करते रहते हैं॥ ३७—३९½ ॥

सूर्यके आगे उन्हींकी ओर मुख करके उनके सारथि अरुण बैठते हैं। सारथिके कामपर नियुक्त ये अरुण गरुडके ज्येष्ठ भ्राता हैं॥ ४०½ ॥

तथैव बालखिल्याख्या ऋषयोऽङ्गुष्ठपर्वकाः ॥ ४१
प्रमाणेन परिख्याताः षष्टिसाहस्रसंख्यकाः।
स्तुवन्ति पुरतः सूर्यं सूक्तवाक्यैः सुशोभनैः ॥ ४२
तथा चान्ये च ऋषयो गन्धर्वा अप्सरोरगाः।
ग्रामण्यो यातुधानाश्च देवाः सर्वे परेश्वरम् ॥ ४३
एकैकशः सप्त सप्त मासि मासि विरोचनम्।
सार्धलक्षोत्तरं कोटिनवकं भूमिमण्डलम् ॥ ४४
द्विसहस्रं योजनानां स गव्यूत्युत्तरं क्षणात्।
पर्येति देवदेवेशो विश्वव्यापी निरन्तरम् ॥ ४५

उसी प्रकार बालखिल्य आदि साठ हजार ऋषिगण जो परिमाणमें अँगूठेके पोरके बराबर कहे गये हैं, सूर्यके सम्मुख स्थित होकर मनोहर वैदिक मन्त्रोंद्वारा उनका स्तवन करते हैं। वैसे ही अन्य जो सभी ऋषि, गन्धर्व, अप्सराएँ, नाग, यक्ष, राक्षस और देवता हैं—उनमेंसे एक-एक करके ये सातों दो-दो मिलकर प्रत्येक महीने परमेश्वर सूर्यकी उपासना करते हैं ॥ ४१—४३ ॥

इस प्रकार वे विश्वव्यापी देवदेवेश्वर भगवान् सूर्य प्रतिक्षण दो हजार दो योजनकी दूरी चलते हुए नौ करोड़ इक्यावन लाख योजन मार्गवाले भूमण्डलकी निरन्तर परिक्रमा करते रहते हैं ॥ ४४-४५ ॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामष्टमस्कन्धे भुवनकोशवर्णने सूर्यगतिवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥



अथ षोडशोऽध्यायः

चन्द्रमा तथा ग्रहोंकी गतिका वर्णन

श्रीनारायण उवाच

अथातः श्रूयतां चित्रं सोमादीनां गमादिकम्।
तद्गत्यनुसृता नृणां शुभाशुभनिदर्शना ॥ १
यथा कुलालचक्रेण भ्रमता भ्रमतां सह।
तदाश्रयाणां च गतिरन्या कीटादिनां भवेत् ॥ २
एवं हि राशिवृन्देन कालचक्रेण तेन च।
मेरुं ध्रुवं च सरतां प्रादक्षिण्येन सर्वदा ॥ ३
ग्रहाणां भानुमुख्यानां गतिरन्यैव दृश्यते।
नक्षत्रान्तरगामित्वाद्भान्तरे गमनं तथा ॥ ४
गतिद्वयं चाविरुद्धं सर्वत्रैष विनिर्णयः।
स एव भगवानादिपुरुषो लोकभावनः ॥ ५
नारायणोऽखिलाधारो लोकानां स्वस्तये भ्रमन्।
कर्मशुद्धिनिमित्तं तु आत्मानं वै त्रयीमयम् ॥ ६
कविभिश्चैव वेदेन विजिज्ञास्योऽर्कधाभवत्।
षट्सु क्रमेण ऋतुषु वसन्तादिषु च स्वयम् ॥ ७
यथोपजोषमृतुजान् गुणान् वै विदधाति च।

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] अब आप चन्द्रमा आदिकी अद्भुत गतिका वर्णन सुनिये। उसकी गतिके द्वारा ही मनुष्योंको शुभ तथा अशुभका परिज्ञान होता है ॥ १ ॥

जिस प्रकार कुम्हारके घूमते हुए चाकपर स्थित कीड़ों आदिकी एक दूसरी गति भी होती है, उसी प्रकार राशियोंसे उपलक्षित कालचक्रके अनुसार सुमेरु और ध्रुवको दाहिने करके घूमनेवाले सूर्य आदि प्रमुख ग्रहोंकी एक अन्य गति भी दृष्टिगोचर होती है ॥ २-३½ ॥

सूर्यकी यह गति नक्षत्रोंपर निर्भर करती है। एक नक्षत्रके बाद दूसरा नक्षत्र आनेपर सूर्यगतिमें परिवर्तन हो जाता है। ये दोनों गतियाँ एक-दूसरेके अविरुद्ध हैं। यह निश्चित नियम सर्वत्रके लिये है ॥ ४½ ॥

वेद तथा विद्वान् पुरुष जिन्हें जाननेकी इच्छा रखते हैं, वे लोकप्रकाशक तथा सम्पूर्ण जगत्के आधार आदिपुरुष सूर्य प्राणियोंके कल्याणार्थ और कर्मोंकी शुद्धिके निमित्त भ्रमण करते हुए अपने वेदमय विग्रहको बारह भागोंमें विभक्त करके स्वयं वसन्त आदि छः ऋतुओंमें ऋतुसम्बन्धी सभी गुणोंकी यथोचित व्यवस्था करते हैं ॥ ५—७½ ॥

तमेनं पुरुषाः सर्वे त्रय्या च विद्यया सदा॥ ८

वर्णाश्रमाचारपथा तथाम्नातैश्च कर्मभिः।
उच्चावचैः श्रद्धया च योगानां च वितानकैः॥ ९

अञ्जसा च यजन्ते ये श्रेयो विन्दन्ति ते मतम्।
अथैष आत्मा लोकानां द्यावाभूम्यन्तरेण च॥ १०

कालचक्रगतो भुङ्क्ते मासान्द्वादशराशिभिः।
संवत्सरस्यावयवान्मासः पक्षद्वयं दिवा॥ ११

नक्तं चेति स पादर्क्षद्वयमित्युपदिश्यते।
यावता षष्ठमंशं स भुञ्जीत ऋतुरुच्यते॥ १२

संवत्सरस्यावयवः कविभिश्चोपवर्णितः।
यावतार्धेन चाकाशवीथ्यां प्रचरते रविः॥ १३

तं प्राक्तना वर्णयन्ति अयनं मुनिपूजिताः।
अथ यावन्नभोमण्डलं सह प्रतिगच्छति॥ १४

कार्त्स्न्येन सह भुञ्जीत कालं तं वत्सरं विदुः।
संवत्सरं परिवत्सरमिडावत्सरमेव च॥ १५

अनुवत्सरमिद्वत्सरमिति पञ्चकमीरितम्।
भानोर्मान्द्यशैघ्र्यसमगतिभिः कालवित्तमैः॥ १६

एवं भानोर्गतिः प्रोक्ता चन्द्रादीनां निबोधत।
एवं चन्द्रोऽर्करश्मिभ्यो लक्षयोजनमूर्ध्वतः॥ १७

उपलभ्यमानो मित्रस्य संवत्सरभुजिं च सः।
पक्षाभ्यां चौषधीनाथो भुङ्क्ते मासभुजिं च सः॥ १८

सपादमाभ्यां दिवसभुक्तिं पक्षभुजिं चरेत्।
एवं शीघ्रगतिः सोमो भुङ्क्ते नूनं भचक्रकम्॥ १९

पूर्यमाणकलाभिश्चामराणां प्रीतिमावहन्।
क्षीयमाणकलाभिश्च पितॄणां चित्तरञ्जकः॥ २०

वर्णाश्रमधर्मका आचरण करनेवाले जो पुरुष त्रयीविद्या (वेद)-के आदेशोंका पालन करके, शास्त्र-निर्दिष्ट छोटे-बड़े कर्म सम्पादित करके तथा उच्च कोटिकी योग-साधना करके श्रद्धापूर्वक भगवान् सूर्यकी उपासना करते हैं, वे शीघ्र ही कल्याण प्राप्त कर लेते हैं; यह निश्चित सिद्धान्त है॥ ८-९½ ॥

सभी प्राणियोंकी आत्मास्वरूप ये सूर्य काल-चक्रपर स्थित होकर द्युलोक तथा पृथ्वीलोकके मध्य गति करते हुए बारह राशियोंके रूपमें संवत्सरके अवयवस्वरूप [बारह] महीनोंको भोगते हैं। उनमें प्रत्येक मास चन्द्रमानसे कृष्ण तथा शुक्ल—इन दो पक्षोंका, पितृमानसे एक दिन तथा एक रातका और सौरमानसे सवा दो नक्षत्रोंका कहा गया है। सूर्य जितने समयमें वर्षका छठा भाग भोगते हैं, विद्वान् लोग उसे संवत्सरका अवयवस्वरूप ऋतु कहते हैं॥ १०—१२½ ॥

भगवान् सूर्य जितने समयमें आकाशमार्गकी दूरी तय करते हैं, उसके आधे समयको पूज्य प्राचीन मुनिगण 'अयन' कहते हैं और जितने समयमें सूर्य सम्पूर्ण नभमण्डलको पार करते हैं, उस समयको वत्सर कहते हैं॥ १३-१४½ ॥

वत्सर पाँच प्रकारका कहा गया है—संवत्सर, परिवत्सर, इडावत्सर, अनुवत्सर और इद्वत्सर॥ १५½ ॥

कालतत्त्वके ज्ञाताओंने सूर्यके मन्द, शीघ्र तथा समान गतियोंसे चलनेके कारण उनकी इस प्रकार तीन गतियाँ बतायी हैं। [हे नारद!] अब चन्द्रमा आदिकी गतिके विषयमें सुनिये। इसी प्रकार चन्द्रमा सूर्यकी किरणोंसे एक लाख योजन ऊपर है। औषधियोंके स्वामी वे चन्द्रमा सूर्यके एक वर्षके मार्गको दो पक्षोंमें, एक महीनेमें तय किये गये मार्गको सवा दो दिनोंमें और एक पक्षमें तय किये गये मार्गको एक दिनमें भोग लेते हैं। इस प्रकार तीव्र गतिसे चलनेवाले चन्द्रमा नक्षत्रचक्रमें गति करते रहते हैं॥ १६—१९ ॥

ये चन्द्र क्रमशः अपनी पूर्ण होनेवाली कलाओंसे देवताओंको प्रसन्न करते हैं और क्षीण होती हुई कलाओंसे पितरोंका चित्तानुरंजन करते हैं॥ २० ॥

अहोरात्राणि तन्वानः पूर्वापरसुघस्त्रकैः।
सर्वजीवनिकायस्य प्राणो जीवः स एव हि॥ २१

भुङ्क्ते चैकैकनक्षत्रं मुहूर्तैस्त्रिंशता विभुः।
स एव षोडशकलः पुरुषोऽनादिरुत्तमः॥ २२

मनोमयोऽप्यन्नमयोऽमृतधामा सुधाकरः।
देवपितृमनुष्यादिसरीसृपसवीरुधाम् ॥ २३

प्राणाप्यायनशीलत्वात्स सर्वमय उच्यते।
ततो भचक्रं भ्रमति योजनानां त्रिलक्षतः॥ २४

मेरुप्रदक्षिणेनैव योजितं चेश्वरेण तु।
अष्टाविंशतिसंख्यानि गणितानि सहाभिजित्॥ २५

ततः शुक्रो द्विलक्षेण योजनानामथोपरि।
पुरः पश्चात्सहैवासावर्कस्य परिवर्तते॥ २६

शीघ्रमन्दसमानाभिर्गतिभिर्विचरन्विभुः ।
लोकानामनुकूलोऽयं प्रायः प्रोक्तः शुभावहः॥ २७

वृष्टिविष्टम्भशमनो भार्गवः सर्वदा मुने।
शुक्राद् बुधः समाख्यातो योजनानां द्विलक्षतः॥ २८

शीघ्रमन्दसमानाभिर्गतिभिः शुक्रवत्सदा।
यदार्काद्व्यतिरिच्येत सौम्यः प्रायेण तत्र तु॥ २९

अतिवाताभ्रपातानां वृष्ट्यादिभयसूचकः।
उपरिष्टात्ततो भौमो योजनानां द्विलक्षतः॥ ३०

पक्षैस्त्रिभिस्त्रिभिः सोऽयं भुङ्क्ते राशीनथैकशः।
द्वादशापि च देवर्षे यदि वक्रो न जायते॥ ३१

प्रायेणाशुभकृत्सोऽयं ग्रहौघानां च सूचकः।
ततो द्विलक्षमानेन योजनानां च गीष्पतिः॥ ३२

एकैकस्मिन्नथो राशौ भुङ्क्ते संवत्सरं चरन्।
यदि वक्रो भवेन्नैवानुकूलो ब्रह्मवादिनाम्॥ ३३

अपने पूर्व और उत्तर पक्षोंके द्वारा दिन तथा रातका विभाजन करनेवाले वे चन्द्रमा ही समस्त जीव-जगत्के प्राण तथा जीवन हैं। परम ऐश्वर्यसम्पन्न वे चन्द्रमा तीस मुहूर्तमें एक-एक नक्षत्रका भोग करते हैं। सोलह कलाओंसे युक्त, मनोमय, अन्नमय, अमृतमय तथा श्रेष्ठ अनादि पुरुष वे भगवान् चन्द्रमा देवताओं, पितरों, मनुष्यों, रेंगकर चलनेवाले जन्तुओं तथा वृक्ष आदिके प्राणोंका पोषण करनेके कारण सर्वमय कहे जाते हैं॥ २१—२३½ ॥

चन्द्रमाके स्थानसे तीन लाख योजन ऊपर नक्षत्रमण्डल है। अभिजित्को लेकर इस मण्डलमें कुल नक्षत्र संख्यामें अट्ठाईस गिने गये हैं। भगवान्के द्वारा कालचक्रमें बँधा हुआ यह नक्षत्रमण्डल मेरुको दाहिने करके सदा भ्रमण करता रहता है॥ २४-२५॥

उससे भी दो लाख योजन ऊपर रहनेवाले शुक्र कभी सूर्यके आगे तथा कभी पीछे और कभी सूर्यके साथ-साथ तीव्र, मन्द और समान गतियोंसे चलते हुए परिभ्रमण करते रहते हैं॥ २६½ ॥

ये प्राणियोंके लिये प्रायः अनुकूल ही रहते हैं। इन्हें शुभकारी ग्रह कहा गया है। हे मुने! ये भार्गव शुक्र वर्षाके विघ्नोंको सदा दूर करनेवाले हैं॥ २७½ ॥

शुक्रसे भी ऊपर दो लाख योजनकी दूरीपर बुध बताये गये हैं। ये भी शुक्रके ही समान तीव्र, मन्द तथा सम गतियोंसे सदा भ्रमण करते रहते हैं॥ २८½ ॥

ये चन्द्रपुत्र बुध जब सूर्यकी गतिका उल्लंघन करके चलते हैं, उस समय ये आँधी, विद्युत्पात और वृष्टि आदिके भयकी सूचना देते हैं॥ २९½ ॥

उनसे भी ऊपर दो लाख योजनकी दूरीपर मंगल हैं। हे देवर्षे! यदि वे वक्रगतिसे न चलें तो एक-एक राशिको तीन-तीन पक्षोंमें भोगते हुए बारहों राशियोंको पार करते हैं। ये प्रायः अशुभ करनेवाले तथा अमंगलके सूचक हैं॥ ३०-३१½ ॥

उनसे भी दो लाख योजन ऊपर बृहस्पति हैं। यदि वे वक्री न होकर भ्रमण करें तो एक-एक राशिको एक-एक वर्षमें भोगते हैं। वे प्रायः ब्रह्मवादियोंके अनुकूल रहते हैं॥ ३२-३३॥

ततः शनैश्चरो घोरो लक्षद्वयपरो मितः।
योजनैः सूर्यपुत्रोऽयं त्रिंशन्मासैः परिभ्रमन्॥ ३४

एकैकराशौ पर्येति सर्वान्राशीन्महाग्रहः।
सर्वेषामशुभो मन्दः प्रोक्तः कालविदां वरैः॥ ३५

तत उत्तरतः प्रोक्तमेकादशसुलक्षकैः।
योजनैः परिसंख्यातं सप्तर्षीणां च मण्डलम्॥ ३६

लोकानां शं भावयन्तो मुनयः सप्त ते मुने।
यत्तद्विष्णुपदं स्थानं दक्षिणं प्रक्रमन्ति ते॥ ३७

उनसे भी दो लाख योजन ऊपर भयंकर शनि हैं। सूर्यके पुत्र कहे जानेवाले ये महाग्रह शनि एक-एक राशिको तीस-तीस महीनोंमें भोगते हुए सभी राशियोंका परिभ्रमण करते रहते हैं। श्रेष्ठ कालज्ञ पुरुषोंने शनिको सबके लिये अशुभ बताया है॥ ३४-३५॥

उनसे भी ऊपर ग्यारह लाख योजनकी दूरीपर सप्तर्षियोंका मण्डल बताया गया है। हे मुने! वे सातों ऋषि प्राणियोंके कल्याणकी कामना करते हुए जो वह विष्णुपद है, उस ध्रुव-लोककी प्रदक्षिणा करते हैं॥ ३६-३७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायामष्टमस्कन्धे सोमादिगतिवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः॥ १६॥



अथ सप्तदशोऽध्यायः

शिशुमारचक्र तथा ध्रुवमण्डलका वर्णन

श्रीनारायण उवाच

अथर्षिमण्डलादूर्ध्वं योजनानां प्रमाणतः।
लक्षैस्त्रयोदशमितैः परमं वैष्णवं पदम्॥ १

महाभागवतः श्रीमान् वर्तते लोकवन्दितः।
औत्तानपादिरिन्द्रेण वह्निना कश्यपेन च॥ २

धर्मेण सह चैवास्ते समकालयुजा ध्रुवः।
बहुमानं दक्षिणतः कुर्वद्भिः प्रेक्षकैः सदा॥ ३

आजीव्यः कल्पजीविनामुपास्ते भगवत्पदम्।
ज्योतिर्गणानां सर्वेषां ग्रहनक्षत्रभादिनाम्॥ ४

कालेनानिमिषेणायं भ्राम्यतां व्यक्तरंहसा।
अवष्टम्भस्थाणुरिव विहितश्चेश्वरेण सः॥ ५

भासते भासयन्भासा स्वीयया देवपूजितः।
मेढिस्तम्भे यथा युक्ताः पशवः कर्षणार्थकाः॥ ६

मण्डलानि चरन्तीमे सवनत्रितयेन च।
एवं ग्रहादयः सर्वे भगणाद्या यथाक्रमम्॥ ७

श्रीनारायण बोले—इस सप्तर्षिमण्डलसे तेरह लाख योजन दूरीपर वह परम वैष्णवपद स्थित है॥ १॥

परम भागवत तथा लोकपूजित उत्तानपादपुत्र श्रीमान् ध्रुव यहींपर विराजमान हैं। इन्द्र, अग्नि, कश्यप, धर्म तथा सप्तर्षिगण—ये सब देखते हुए आदरपूर्वक जिनकी प्रदक्षिणा करते रहते हैं, वे ध्रुव कल्पपर्यन्त जीवित रहनेवाले प्राणियोंके जीवनाधार हैं और निरन्तर भगवान्‌के चरणोंकी उपासना करते रहते हैं॥ २-३½॥

सर्वदा जाग्रत् रहनेवाले व्यक्तगति भगवान् कालने भ्रमण करनेवाले ग्रह, नक्षत्र, राशि आदि समस्त ज्योतिर्गणोंके अचल स्तम्भके रूपमें ध्रुवको व्यवस्थित कर रखा है। वे देवपूज्य ध्रुव अपने तेजसे सबको आलोकित करते हुए सदा प्रकाशित होते रहते हैं॥ ४-५½॥

जिस प्रकार अनाजको पृथक् करनेवाले पशु छोटी-बड़ी रस्सियोंमें बँधकर निकट, दूर और मध्यमें रहकर खलिहानमें गड़े खम्भेके चारों ओर मण्डल

अन्तर्बहिर्विभागेन कालचक्रे नियोजिताः।
ध्रुवमेवावलम्ब्याशु वायुनोदीरिताश्च ते॥ ८

आकल्पान्तं च क्रमन्ति खे श्येनाद्याः खगा इव।
कर्मसारथयो वायुवशगाः सर्व एव ते॥ ९

एवं ज्योतिर्गणाः सर्वे प्रकृतेः पुरुषस्य च।
संयोगानुगृहीतास्ते भूमौ न निपतन्ति च॥ १०

ज्योतिश्चक्रं केचिदेतच्छिशुमारस्वरूपकम्।
सोपयोगं भगवतो योगधारणकर्मणि॥ ११

यस्यार्वाक्शिरसः कुण्डलीभूतवपुषो मुने।
पुच्छाग्रे कल्पितो योऽयं ध्रुव उत्तानपादजः॥ १२

लाङ्गूलेऽस्य च सम्प्रोक्तः प्रजापतिरकल्मषः।
अग्निरिन्द्रश्च धर्मश्च तिष्ठन्ते सुरपूजिताः॥ १३

धाता विधाता पुच्छान्ते कट्यां सप्तर्षयस्ततः।
दक्षिणावर्तभोगेन कुण्डलाकारमीयुषः॥ १४

उत्तरायणभानीह दक्षपार्श्वेऽर्पितानि च।
दक्षिणायनभानीह सव्ये पार्श्वेऽर्पितानि च॥ १५

कुण्डलाभोगवेशस्य पार्श्वयोरुभयोरपि।
समसंख्याश्चावयवा भवन्ति कजनन्दन॥ १६

अजवीथी पृष्ठभागे आकाशसरिदौदरे।
पुनर्वसुश्च पुष्यश्च श्रोण्यौ दक्षिणवामयोः॥ १७

आर्द्राश्लेषे पश्चिमयोः पादयोर्दक्षवामयोः।
अभिजिच्चोत्तराषाढा नासयोर्दक्षवामयोः॥ १८

यथासंख्यं च देवर्षे श्रुतिश्च जलभं तथा।
कल्पिते कल्पनाविद्भिर्नेत्रयोर्दक्षवामयोः॥ १९

धनिष्ठा चैव मूलं च कर्णयोर्दक्षवामयोः।
मघादीन्यष्टभानीह दक्षिणायनगानि च॥ २०

बनाकर घूमते रहते हैं, उसी प्रकार सभी नक्षत्रगण और ग्रह आदि भीतर-बाहरके क्रमसे कालचक्रमें नियुक्त होकर ध्रुवका ही आश्रय लेकर वायुकी प्रेरणासे कल्पपर्यन्त परिभ्रमण करते रहते हैं, जिस प्रकार बाज आदि पक्षी अपने कर्मोंकी सहायतासे वायुके अधीन रहकर आकाशमें घूमते रहते हैं, उसी प्रकार वे सभी ज्योतिर्गण भी पुरुष और प्रकृतिके संयोगसे अनुगृहीत होकर परिभ्रमण करते रहते हैं और भूमिपर नहीं गिरते॥ ६—१०॥

हे मुने! कुछ लोग भगवान् श्रीहरिकी योग-मायाके आधारपर स्थित इस ज्योतिष्चक्रका वर्णन शिशुमारके रूपमें करते हैं, जो नीचेकी ओर सिर किये हुए कुण्डली मारकर स्थित है। उसकी पूँछके अग्रभागपर उत्तानपादपुत्र ध्रुव विराजमान कहे गये हैं। उसकी पूँछके मध्यभागमें देवताओंद्वारा पूजित पवित्रात्मा प्रजापति, अग्नि, इन्द्र और धर्म विराजमान हैं। पूँछकी जड़में धाता और विधाता तथा उसके कटिभागमें सप्तर्षिगण स्थित हैं। यह शिशुमार अपने शरीरको दाहिनी ओरसे कुण्डलाकार बनाकर स्थित है॥ ११—१४॥

उत्तरायणके चौदह नक्षत्र इसके दाहिने भागमें हैं और दक्षिणायनके चौदह नक्षत्र इसके बायें भागमें हैं। हे ब्रह्मापुत्र नारद! लोकमें भी शिशुमार जब कुण्डलाकार होकर बैठता है तो उसके दोनों पार्श्वभागोंके अवयवोंकी संख्या समान होती है, उसी प्रकार यहाँ नक्षत्रसंख्यामें भी समानता है॥ १५-१६॥

इसके पृष्ठभागमें अजवीथी (मूल, पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ़ नक्षत्रोंका समूह) और उदरमें आकाशगंगा है। दायें तथा बायें कटिप्रदेशमें पुनर्वसु और पुष्य नक्षत्र स्थित हैं॥ १७॥

पीछेके दाहिने और बायें चरणोंमें आर्द्रा तथा आश्लेषा नक्षत्र हैं। दाहिनी तथा बायीं नासिकाओंमें अभिजित् और उत्तराषाढ़ नक्षत्र विद्यमान हैं॥ १८॥

हे देवर्षे! इसी प्रकार कल्पनाविदोंने दाहिने तथा बायें नेत्रोंमें क्रमशः श्रवण तथा पूर्वाषाढ़ और दाहिने तथा बायें कानोंमें क्रमशः धनिष्ठा और मूल नक्षत्रोंकी

युञ्जीत वामपार्श्वीयवंक्रिषु क्रमतो मुने।
तथैव मृगशीर्षादीन्युदग्भानि च यानि हि॥ २१

दक्षपार्श्वे वंक्रिकेषु प्रातिलोम्येन योजयेत्।
शततारा तथा ज्येष्ठा स्कन्धयोर्दक्षवामयोः॥ २२

अगस्तिश्चोत्तरहनावधरायां हनौ यमः।
मुखेष्वङ्गारकः प्रोक्तो मन्दः प्रोक्त उपस्थके॥ २३

बृहस्पतिश्च ककुदि वक्षस्यर्को ग्रहाधिपः।
नारायणश्च हृदये चन्द्रो मनसि तिष्ठति॥ २४

स्तनयोरश्विनौ नाभ्यामुशनाः परिकीर्तितः।
बुधः प्राणापानयोश्च गले राहुश्च केतवः॥ २५

सर्वाङ्गेषु तथा रोमकूपे तारागणाः स्मृताः।
एतद्भगवतो विष्णोः सर्वदेवमयं वपुः॥ २६

सन्ध्यायां प्रत्यहं ध्यायेत्प्रयतो वाग्यतो मुनिः।
निरीक्षमाणश्चोत्तिष्ठेन्मन्त्रेणानेन धीश्वरः॥ २७

नमो ज्योतिर्लोकाय कालायानिमिषां
पतये महापुरुषायाभिधीमहीति॥ २८

ग्रहर्क्षतारामयमाधिदैविकं
पापापहं मन्त्रकृतां त्रिकालम्।
नमस्यतः स्मरतो वा त्रिकालं
नश्येत तत्कालजमाशु पापम्॥ २९

स्थिति बतायी है। हे मुने! दक्षिणायनके मघा आदि आठ नक्षत्र वाम पार्श्वकी पसलियोंमें स्थित हैं। उसी प्रकार विपरीत क्रमसे उत्तरायणके मृगशिरा आदि जो आठ नक्षत्र हैं, वे इसके दाहिने पार्श्वकी पसलियोंमें स्थित हैं। शतभिषा और ज्येष्ठा नक्षत्र दाहिने तथा बायें कन्धोंपर विराजमान हैं॥ १९—२२॥

इसकी ऊपरकी ठोड़ीमें अगस्ति, नीचेकी ठोड़ीमें यमराज, मुखमें मंगल और जननेन्द्रियमें शनि स्थित कहे गये हैं। इसके ककुद्पर बृहस्पति, वक्षपर ग्रहपति सूर्य, हृदयमें नारायण और मनमें चन्द्रमा स्थित रहते हैं॥ २३-२४॥

दोनों स्तनोंमें दोनों अश्विनीकुमारों तथा नाभिमें शुक्रका स्थान कहा गया है। प्राण और अपानमें बुध, गलेमें राहु और केतु एवं सभी अंगों तथा रोमकूपोंमें तारागण कहे गये हैं। हे नारद! भगवान् विष्णुका यह सर्वदेवमय विग्रह है। परम बुद्धिमान् साधकको चाहिये कि वह प्रतिदिन सायंकालके समय मौन धारण करके अपने हृदयमें भगवान्‌को स्थित देखते हुए उनके उस दिव्य स्वरूपका ध्यान करे और इस मन्त्रसे जप करते हुए स्तुति करे—सम्पूर्ण ज्योतिर्गणोंके आश्रय, कालचक्ररूपसे विराजमान तथा देवताओंके अधिपति परम पुरुषको मेरा नमस्कार है; मैं आपका ध्यान करता हूँ॥ २५—२८॥

ग्रहों, नक्षत्रों तथा ताराओंके रूपमें भासित होता हुआ भगवान्‌का आधिदैविकस्वरूप तीनों कालोंमें इस मन्त्रका जप करनेवाले पुरुषोंके पापोंका नाश कर देता है। तीनों कालोंमें भगवान्‌के इस रूपका वन्दन तथा ध्यान करनेवाले व्यक्तिका उस समयका किया हुआ पाप तत्काल नष्ट हो जाता है॥ २९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामष्टमस्कन्धे ध्रुवमण्डलसंस्थानवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥

~~~o~~~

अथाष्टादशोऽध्यायः

राहुमण्डलका वर्णन

श्रीनारायण उवाच

अधस्तात्सवितुः प्रोक्तमयुतं राहुमण्डलम्।
नक्षत्रवच्चरति च सैंहिकेयोऽतदर्हणः॥ १

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] सूर्यसे दस हजार योजन नीचे राहुमण्डल कहा गया है। यह सिंहिकापुत्र राहु योग्य न होनेपर भी नक्षत्रकी भाँति
~~~

सूर्याचन्द्रमसोरेव मर्दनः सिंहिकासुतः।
अमरत्वं च खेटत्वं लेभे यो विष्ण्वनुग्रहात्॥ २

यददस्तरणेर्बिम्बं तपतो योजनायुतम्।
तच्छादकोऽसुरो ज्ञेयोऽप्यर्कसाहस्रविस्तरम्॥ ३

त्रयोदशसहस्रं तु सोमस्याच्छादको ग्रहः।
यः पर्वसमये वैरानुबन्धी छादकोऽभवत्॥ ४

सूर्याचन्द्रमसोर्दूराद्भवेच्छादनकारकः।
तन्निशम्योभयत्रापि विष्णुना प्रेरितं स्वकम्॥ ५

चक्रं सुदर्शनं नाम ज्वालामालातिभीषणम्।
तत्तेजसा दुःसहेन समन्तात्परिवारितम्॥ ६

मुहूर्तो द्विजमानस्तु दूराच्चकितमानसः।
आरान्निवर्तते सोऽयमुपराग इतीव ह॥ ७

उच्यते लोकमध्ये तु देवर्षे अवबुध्यताम्।
ततोऽधस्तात्समाख्याता लोकाः परमपावनाः॥ ८

सिद्धानां चारणानां च विद्याध्राणां च सत्तम।
योजनायुतविख्याता लोकाः पुण्यनिषेविताः॥ ९

ततोऽप्यधस्ताद्देवर्षे यक्षाणां च सरक्षसाम्।
पिशाचप्रेतभूतानां विहाराजिरमुत्तमम्॥ १०

अन्तरिक्षं च तत्प्रोक्तं यावद्वायुः प्रवाति हि।
यावन्मेघास्ततोद्यन्ति तत्प्रोक्तं ज्ञानकोविदैः॥ ११

ततोऽधस्ताद्योजनानां शतं यावद् द्विजोत्तम।
पृथिवी परिसंख्याता सुपर्णश्येनसारसाः॥ १२

हंसादयः प्रोत्पतन्ति पार्थिवाः पृथिवीभवाः।
भूसन्निवेशावस्थानं यथावदुपवर्णितम्॥ १३

विचरण करता रहता है। चन्द्रमा तथा सूर्यको पीड़ित करनेवाले इस सिंहिकापुत्र राहुने भगवान्‌की कृपासे ही अमर होने तथा आकाशमें विचरण करनेका सामर्थ्य प्राप्त किया है॥ १-२॥

तेरह हजार योजन विस्तारवाला यह असुर दस हजार योजन विस्तारके बिम्बमण्डलवाले तपते सूर्यका तथा बारह हजार योजन विस्तृत मण्डलवाले चन्द्रमाका आच्छादक कहा गया है। पूर्वकालमें अमृतपानके समयके वैरको याद करके वह राहु अमावास्या और पूर्णिमाके पर्वपर उनका आच्छादक होता है। दूरसे ही वह राहु सूर्य तथा चन्द्रमाको आच्छादित करनेके लिये तत्पर होता है। यह बात जानकर भगवान् विष्णुने विशाल ज्वालाओंसे युक्त अपना अत्यन्त भयानक सुदर्शन नामक चक्र उन दोनों (सूर्य तथा चन्द्रमा)-के पास भेज दिया था। उसके दुःसह तेजसे सूर्य और चन्द्रमाका मण्डल चारों ओरसे घिरा रहता है। इससे खिन्न तथा चकित मनवाला वह राहु बिम्बके पास जाकर और वहाँ क्षणभर रुककर फिर सहसा लौट आता है। हे देवर्षे! जगत्‌में इसीको उपराग (ग्रहण) कहा जाता है—ऐसा आप समझिये॥ ३—७½॥

हे श्रेष्ठ! उस राहुमण्डलसे भी नीचे सिद्धों, चारणों और विद्याधरोंके परम पवित्र लोक कहे गये हैं। पुण्यात्मा पुरुषोंद्वारा सेवित ये लोक दस हजार योजन विस्तारवाले बताये गये हैं॥ ८-९॥

हे देवर्षे! इन लोकोंके भी नीचे यक्षों, राक्षसों, पिशाचों, प्रेतों एवं भूतोंके उत्तम विहार-स्थल हैं। इसके नीचे जहाँतक वायु चलती है और जहाँतक मेघ दिखायी पड़ते हैं, ज्ञानी तथा विद्वान् लोगोंके द्वारा वह अन्तरिक्ष कहा गया है॥ १०-११॥

हे द्विजश्रेष्ठ! उसके नीचे सौ योजनकी दूरीपर, जहाँतक गरुड, बाज, सारस और हंस आदि पृथ्वीपर होनेवाले पार्थिव पक्षी उड़ सकते हैं, पृथ्वी बतायी गयी है। पृथ्वीके परिमाण तथा स्थितिका वर्णन पहले ही किया जा चुका है॥ १२-१३॥

अधस्तादवनेः सप्त देवर्षे विवराः स्मृताः।
एकैकशो योजनानामायामोच्छ्रायतः पुनः॥ १४

अयुतान्तरविख्याताः सर्वर्तुसुखदायकाः।
अतलं प्रथमं प्रोक्तं द्वितीयं वितलं तथा॥ १५

तृतीयं सुतलं प्रोक्तं चतुर्थं वै तलातलम्।
महातलं पञ्चमं च षष्ठं प्रोक्तं रसातलम्॥ १६

सप्तमं विप्र पातालं सप्तैते विवराः स्मृताः।
एतेषु बिलस्वर्गेषु दिवोऽप्यधिकमेव च॥ १७

कामभोगैश्वर्यसुखसमृद्धभुवनेषु च।
नित्योद्यानविहारेषु सुखास्वादः प्रवर्तते॥ १८

दैत्याश्च काद्रवेयाश्च दानवा बलशालिनः।
नित्यप्रमुदिता रक्ताः कलत्रापत्यबन्धुभिः॥ १९

सुहृद्भिरनुजीवाद्यैः संयुताश्च गृहेश्वराः।
ईश्वरादप्रतिहतकामा मायाविनश्च ते॥ २०

निवसन्ति सदा हृष्टाः सर्वर्तुसुखसंयुताः।
मयेन मायाविभुना येषु येषु च निर्मिताः॥ २१

पुरः प्रकामशो भक्ता मणिप्रवरशालिनः।
विचित्रभवनाट्टालगोपुराद्याः सहस्रशः॥ २२

सभाचत्वरचैत्यादिशोभाढ्याः सुरदुर्लभाः।
नागासुराणां मिथुनैः सपारावतसारिकैः॥ २३

कीर्णकृत्रिमभूमिश्च विवरेशगृहोत्तमैः।
अलङ्कृताश्चकासन्ति उद्यानानि महान्ति च॥ २४

मनःप्रसन्नकारीणि फलपुष्पविशालिभिः।
ललनानां विलासार्हस्थानैः शोभितभाञ्जि च॥ २५

नानाविहंगमव्रातसंयुक्तजलराशिभिः।
स्वच्छार्णपूरितह्रदैः पाठीनसमलङ्कृतैः॥ २६

हे देवर्षे! इस पृथ्वीके नीचे सात विवर बताये गये हैं। इनमें प्रत्येक विवरकी लम्बाई तथा चौड़ाई दस-दस हजार योजन है और ये एक-दूसरेसे दस-दस हजार योजनकी दूरीपर स्थित कहे गये हैं; ये सभी ऋतुओंमें सुखदायक होते हैं॥ १४½ ॥

इनमें पहलेको अतल, दूसरेको वितल, तीसरेको सुतल, चौथेको तलातल, पाँचवेंको महातल, छठेको रसातल और सातवेंको पाताल कहा गया है। हे विप्र! इस प्रकार ये सात विवर बताये गये हैं॥ १५-१६½ ॥

ये विवर एक प्रकारसे स्वर्ग ही हैं। अनेक उद्यानों तथा विहारस्थलियोंवाले तथा काम, भोग, ऐश्वर्य, सुख तथा समृद्धिसे युक्त यहाँके भुवनोंमें स्वर्गसे भी बढ़कर सुख तथा आस्वाद उपलब्ध है॥ १७-१८ ॥

वहाँ निवास करनेवाले महाबली दैत्य, नाग तथा दानव अपने स्त्री, पुत्रों तथा बन्धुओंके साथ सदा आनन्दित तथा प्रफुल्लित रहते हैं। वे अपने-अपने घरोंके स्वामी होते हैं। मित्र तथा अनुचर आदि सदा उनके पास विद्यमान रहते हैं। ईश्वर भी जिनकी इच्छाको विफल नहीं कर सकते, ऐसे वे अत्यन्त मायावी सदा हृष्ट-पुष्ट रहते हुए सभी ऋतुओंमें सुखी रहते हैं॥ १९-२०½ ॥

मायाके स्वामी मय नामक दानवने उनमें अनेक पुरियोंका निर्माण कराया, जो श्रेष्ठ मणियोंसे जटित हजारों अद्भुत भवनों, अट्टालिकाओं, गोपुरों, सभाभवनों, प्रांगणों तथा वृक्षसमूहों आदिसे सुशोभित हैं; वे पुरियाँ देवताओंके लिये भी अति दुर्लभ हैं। जिनकी कृत्रिम भूमि (फर्श)-पर नागों तथा असुरोंके जोड़े और कबूतर-मैना आदि पक्षी विहार करते हैं—ऐसे विवराधीश्वरोंके मनोहर भवनोंसे अलंकृत वे पुरियाँ अतीव सुशोभित हो रही हैं। उनमें मनको मुग्ध करनेवाले, बड़े-बड़े सुन्दर फलों तथा फूलोंसे लदे हुए वृक्षोंवाले और कामिनियोंके विलासयोग्य स्थानोंसे अत्यधिक शोभा पानेवाले विशाल उद्यान विद्यमान हैं। उन उद्यानोंमें स्वच्छ जलसे परिपूर्ण रहनेवाले विशाल जलाशय हैं, जो विविध पक्षियोंके समूहोंके कलरवसे तथा पाठीन नामक मछलियोंसे सुशोभित रहते हैं। जलचर जन्तुओंके क्रीडा करनेपर जलके क्षुब्ध

जलजन्तुक्षुब्धनीरनीरजातैरनेकशः ।
कुमुदोत्पलकह्लारनीलरक्तोत्पलैस्तथा ॥ २७

तेषु कृतनिकेतानां विहारैः सङ्कुलानि च।
इन्द्रियोत्सवकारैश्च तथैव विविधैः स्वरैः॥ २८

अमराणां च परमां श्रियं चातिशयन्ति च।
यत्र नैव भयं क्वापि कालाङ्गैर्दिनरात्रिभिः॥ २९

यत्राहिप्रवराणां च शिरःस्थैर्मणिरश्मिभिः।
नित्यं तमः प्रबाध्येत सदा प्रस्फुटकान्तिभिः॥ ३०

न वा एतेषु वसतां दिव्यौषधिरसायनैः।
रसान्नपानस्नानाद्यैर्नाधयो न च व्याधयः॥ ३१

वलीपलितजीर्णत्ववैवर्ण्यस्वेदगन्धताः ।
अनुत्साहवयोऽवस्था न बाधन्ते कदाचन॥ ३२

कल्याणानां सदा तेषां न च मृत्युभयं कुतः।
भगवत्तेजसोऽन्यत्र चक्राच्चैव सुदर्शनात्॥ ३३

यस्मिन्प्रविष्टे दैतेयवधूनां गर्भराशयः।
प्रायो भयात्पतन्त्येव स्रवन्ति ब्रह्मपुत्रक॥ ३४

होनेसे उसमें उगे हुए कुमुद, उत्पल, कह्लार, नीलकमल तथा रक्तकमल हिलने लगते हैं। उन उद्यानोंमें स्थान बनाकर रहनेवाले पक्षी अपने विहारों तथा इन्द्रियोंको उत्साहित करनेवाली अपनी विविध ध्वनियोंसे उन्हें सदा निनादित किये रहते हैं॥ २१—२८॥

वे पुरियाँ देवताओंके श्रेष्ठ ऐश्वर्यसे भी बढ़कर हैं। जहाँ कालके अंगभूत दिन-रातका कोई भय नहीं रहता और जहाँ बड़े-बड़े सर्पोंके मस्तकपर स्थित मणियोंकी रश्मियोंसे प्रस्फुटित कान्तिके द्वारा अन्धकार सदा मिटा रहता है॥ २९-३०॥

इनमें निवास करनेवाले लोगोंको दिव्य ओषधियों, रसायनों, रस, अन्नपान एवं स्नान आदिकी कोई आवश्यकता नहीं रहती; उन्हें किसी प्रकारके भी मानसिक या शारीरिक रोग नहीं होते; झुर्रियाँ पड़ने, बाल पकने, बुढ़ापा आ जाने, शरीरके विरूपित होने, पसीनेसे दुर्गन्ध निकलने, उत्साहहीन हो जाने और आयुके अनुसार शारीरिक अवस्थाओंमें परिवर्तन आने आदि विकार उन्हें कभी बाधित नहीं करते। हे ब्रह्मपुत्र नारद! उन कल्याणमय लोगोंको भगवान् श्रीहरिके तेजस्वी सुदर्शन चक्रके अतिरिक्त अन्य किसीसे भी भय नहीं रहता; जिस चक्रके वहाँ प्रवेश करते ही भयके कारण प्रायः दैत्योंकी स्त्रियोंका गर्भपात-गर्भस्राव* हो जाता है॥ ३१—३४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायामष्टमस्कन्धे राहुमण्डलाद्यवस्थानवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

~~ ० ~~

अथैकोनविंशोऽध्यायः

अतल, वितल तथा सुतललोकका वर्णन

श्रीनारायण उवाच

प्रथमे विवरे विप्र अतलाख्ये मनोरमे।
मयपुत्रो बलो नाम वर्ततेऽखर्वगर्वकृत्॥ १

षण्णवत्यो येन सृष्टा मायाः सर्वार्थसाधिकाः।
मायाविनो याश्च सद्यो धारयन्ति च काश्चन॥ २

श्रीनारायण बोले—हे विप्र! अतल नामसे विख्यात पहले परम सुन्दर विवरमें मय दानवका पुत्र 'बल' नामक अति अभिमानी दैत्य रहता है॥ १॥

जिसने सभी प्रकारकी कामनाओंकी सिद्धि करानेवाली छियानबे प्रकारकी मायाएँ रची हैं, जिनमेंसे कुछ मायाओंको मायावी लोग शीघ्र ही धारण कर लेते

* 'आचतुर्थाद्भवेत्स्रावः पातः पञ्चमषष्ठयोः' अर्थात् चौथे मासतक जो गर्भ गिरता है, उसे 'गर्भस्राव' कहते हैं तथा पाँचवें और छठे मासमें गिरनेसे वह 'गर्भपात' कहलाता है।

जृम्भमाणस्य यस्यैव बलस्य बलशालिनः।
स्त्रीगणा उपपद्यन्ते त्रयोलोकविमोहनाः॥ ३

पुंश्चल्यश्चैव स्वैरिण्यः कामिन्यश्चेति विश्रुताः।
या वै बिलायनं प्रेष्ठं प्रविष्टं पुरुषं रहः॥ ४

रसेन हाटकाख्येन साधयित्वा प्रयत्नतः।
स्वविलासावलोकानुरागस्मितविगूहनैः ॥ ५

संलापविभ्रमाद्यैश्च रमयन्त्यपि ताः स्त्रियः।
यस्मिन्नुपयुक्ते जनो मनुते बहुधा स्वयम्॥ ६

ईश्वरोऽहमहं सिद्धो नागायुतबलो महान्।
आत्मानं मन्यमानः सन्मदान्ध इव कथ्यते॥ ७

एवं प्रोक्ता स्थितिश्चात्र अतलस्य च नारद।
द्वितीयविवरस्यात्र वितलस्य निबोधत॥ ८

भूतलाधस्तले चैव वितले भगवान्भवः।
हाटकेश्वरनामायं स्वपार्षदगणैर्वृतः॥ ९

प्रजापतिकृतस्यापि सर्गस्य बृंहणाय च।
भवान्या मिथुनीभूय आस्ते देवाधिपूजितः॥ १०

भवयोर्वीर्यसम्भूता हाटकी सरिदुत्तमा।
समिद्धो मरुता वह्निरोजसा पिबतीव हि॥ ११

तन्निष्ठ्यूतं हाटकाख्यं सुवर्णं दैत्यवल्लभम्।
दैत्याङ्गना भूषणार्हं सदा तं धारयन्ति हि॥ १२

तद्‌बिलाधस्तलात्प्रोक्तं सुतलाख्यं बिलेश्वरम्।
पुण्यश्लोको बलिर्नामा आस्ते वैरोचनिर्मुने॥ १३

महेन्द्रस्य च देवस्य चिकीर्षुः प्रियमुत्तमम्।
त्रिविक्रमोऽपि भगवान् सुतले बलिमानयत्॥ १४

त्रैलोक्यलक्ष्मीमाक्षिप्य स्थापितः किल दैत्यराट्।
इन्द्रादिष्वप्यलब्धा या सा श्रीस्तमनुवर्तते॥ १५

हैं तथा जिस बलवान् दैत्य बलके जम्हाई लेते ही तीनों लोकोंके लोगोंको मोहित कर देनेवाली बहुत-सी स्त्रियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। वे पुंश्चली, स्वैरिणी और कामिनी—इन नामोंसे प्रसिद्ध हैं, जो अपने प्रिय पुरुषको बिलरूप भवनमें एकान्तमें ले जाकर उन्हें प्रयत्नपूर्वक हाटक नामक रस पिलाकर शक्तिसम्पन्न बना देती हैं। तत्पश्चात् वे स्त्रियाँ अपने हाव-भाव, कटाक्ष, प्रेमपूर्ण व्यवहार, मुसकान, आलिंगन, मधुर वार्तालाप, प्रणयभाव आदिसे उन्हें आकर्षित करके उनके साथ रमण करती हैं॥ २—५½ ॥

उस हाटक-रसका पान कर लेनेपर मनुष्य स्वयंको बहुत बड़ा मानने लगता है और अपनेको दस हजार हाथियोंके समान महान् बलवान् मानता हुआ मैं ईश्वर हूँ, मैं सिद्ध हूँ—मदान्धकी भाँति ऐसा बढ़-चढ़कर बोलने लगता है॥ ६-७॥

हे नारद! इस प्रकार मैंने अतललोककी स्थितिका वर्णन कर दिया। अब आप वितल नामक द्वितीय विवरके विषयमें सुनिये॥ ८॥

भूतलके नीचे वितल नामक विवरमें हाटकेश्वर नामसे प्रसिद्ध ये भगवान् शिव अपने पार्षदगणोंसे निरन्तर घिरे रहते हैं। देवताओंसे सुपूजित ये भगवान् शिव ब्रह्माकी रची गयी सृष्टिके विस्तारके लिये भवानीके साथ रमण करते हुए यहाँ विराजमान रहते हैं॥ ९-१०॥

वहाँ भगवान् शंकर और पार्वतीके तेजसे हाटकी नामक श्रेष्ठ नदी प्रादुर्भूत है। वायुसे प्रज्वलित अग्निदेव महान् ओजपूर्वक उसका जल पीते रहते हैं। उस समय उनके द्वारा निष्ठ्यूत (त्यक्त थूक) दैत्योंके लिये अत्यन्त प्रिय हाटक नामक सुवर्ण बन जाता है। दैत्योंकी स्त्रियाँ आभूषण-योग्य उस सुवर्णको सदा धारण किये रहती हैं॥ ११-१२॥

हे मुने! उस वितलके नीचे सुतल नामक विवर कहा गया है, जो सभी बिलोंमें श्रेष्ठ है। यहाँ विरोचनके पवित्र कीर्तिवाले बलि नामक पुत्र रहते हैं। देवराज इन्द्रका परम प्रिय कार्य करनेकी इच्छासे वामनरूप त्रिविक्रम भगवान् विष्णु बलिको इस सुतलमें लाये और उन्होंने तीनों लोकोंकी लक्ष्मी सन्निविष्ट करके दानवराज बलिको यहाँ स्थापित किया। इन्द्र आदि देवताओंके पास भी जो लक्ष्मी नहीं है, वह उस बलिके पीछे-पीछे चलती है॥ १३—१५॥

तमेव देवदेवेशमाराधयति भक्तितः।
व्यपेतसाध्वसोऽद्यापि वर्तते सुतलाधिपः॥ १६
भूमिदानफलं ह्येतत्पात्रभूतेऽखिलेश्वरे।
वर्णयन्ति महात्मानो नैतद्युक्तं च नारद॥ १७
वासुदेवे भगवति पुरुषार्थप्रदे हरौ।
एतद्दानफलं विप्र सर्वथा नहि युज्यते॥ १८
यस्यैव देवदेवस्य नामापि विवशो गृणन्।
स्वकीयकर्मबन्धीयगुणान्विधुनुतेऽञ्जसा ॥ १९
यत्क्लेशबन्धहानाय सांख्ययोगादिसाधनम्।
कुर्वते यतयो नित्यं भगवत्यखिलेश्वरे॥ २०
न चायं भगवानस्माननुजग्राह नारद।
मायामयं च भोगानामैश्वर्यं व्यतनोत्परम्॥ २१
सर्वक्लेशाधिहेतुं तदात्मानुस्मृतिमोषणम्।
यं साक्षाद्भगवान् विष्णुः सर्वोपायविदीश्वरः॥ २२
याच्ञाछलेनापहृतं सर्वस्वं देहशेषकम्।
अप्राप्तान्योपाय ईशः पाशैर्वारुणसम्भवैः॥ २३
बन्धयित्वावमुच्यापि गिरिदर्यामिवाब्रवीत्।
असाविन्द्रो महामूढो यस्य मन्त्री बृहस्पतिः॥ २४
प्रसन्नमिममत्यर्थमयाचल्लोकसम्पदम् ।
त्रैलोक्यमिदमैश्वर्यं कियदेवातितुच्छकम्॥ २५
आशिषां प्रभवं मुक्त्वा यो मूढो लोकसम्पदि।
अस्मत्पितामहः श्रीमान् प्रह्लादो भगवत्प्रियः॥ २६
दास्यं वव्रे विभोस्तस्य सर्वलोकोपकारकः।
पित्र्यमैश्वर्यमतुलं दीयमानं च विष्णुना॥ २७
पितर्युपरते वीरे नैवैच्छद्भगवत्प्रियः।
तस्यातुलानुभावस्य सर्वलोकोपधीमतः॥ २८
अस्मद्विधो नाल्पपक्वेतरदोषोऽवगच्छति।
एवं दैत्यपतिः सोऽयं बलिः परमपूजितः॥ २९

बलि उन्हीं देवदेवेश्वर श्रीहरिकी भक्तिपूर्वक आराधना करते हैं। वे सुतलके अधिपतिके रूपमें आज भी वहाँ निर्भय होकर रहते हैं॥ १६॥

बलिके लिये यह सुतललोककी प्राप्ति अखिल जगत्के स्वामी तथा दानपात्रभूत भगवान् विष्णुको दिये गये भूमिदानका ही फल है—ऐसा महात्मालोग कहते हैं, किंतु हे नारद! यह समीचीन नहीं है। हे विप्र! चारों पुरुषार्थोंको देनेवाले वासुदेव भगवान् श्रीहरिको दिये गये दानका इसे फल समझना किसी भी तरहसे उचित नहीं है; क्योंकि कोई विवश होकर भी उन देवाधिदेवके नामका उच्चारण करके अपने कर्मबन्धनरूपी पाशको शीघ्र ही काट देता है। योगीलोग उस क्लेशरूपी बन्धनको काटनेके लिये अखिल जगत्के स्वामीमें भक्ति रखते हुए सांख्ययोग आदिका साधन करते हैं। हे नारद! इन भगवान्ने हम देवताओंपर कोई अनुग्रह नहीं किया है, जो कि उन्होंने भोगोंका परम मायामय ऐश्वर्य इन्द्रको देनेके लिये यह प्रयत्न किया था; क्योंकि यह ऐश्वर्य तो सभी कष्टोंका मूल कारण है और परमात्माकी स्मृतिको मिटानेवाला है॥ १७—२१½॥

जिस समय समस्त उपायोंका सहज ज्ञान रखनेवाले साक्षात् विष्णुने कोई अन्य उपाय न देखकर याचनाके छलसे उस बलिका सर्वस्व छीन लिया और उसके पास केवल शरीरमात्र ही शेष रहने दिया, तब वरुणके पाशोंमें बाँधकर पर्वतकी गुफामें छोड़ दिये जानेपर उसने कहा था—जिसके मन्त्री बृहस्पति हों, वे इन्द्र इतने महान् मूर्ख हैं! जो कि उन्होंने परम प्रसन्न श्रीहरिसे सांसारिक सम्पत्तिकी याचना की। त्रिलोकीका यह ऐश्वर्य भला कितना नगण्य है। जो भगवान्के आशीर्वादोंका वैभव छोड़कर लोकसम्पत्तिकी कामना करता है, वह मूर्ख है॥ २२—२५½॥

सम्पूर्ण लोकका उपकार करनेवाले तथा भगवत्प्रिय मेरे पितामह श्रीमान् प्रह्लादने उन प्रभुसे दास्यभावकी याचना की थी। उनके पराक्रमी पिता हिरण्यकशिपुकी मृत्युके पश्चात् भगवान् विष्णुके द्वारा दी जानेवाली अतुलनीय पितृसम्पदाको ग्रहण करनेकी थोड़ी भी इच्छा उन भगवत्प्रिय प्रह्लादने नहीं की थी॥ २६—२८½॥

अतुलनीय अनुभाववाले तथा सम्पूर्ण लोकोंके उपकारकी बुद्धिवाले उन प्रह्लादका प्रभाव मुझ-जैसा

सुतले वर्तते यस्य द्वारपालो हरिः स्वयम्।
एकदा दिग्विजये राजा रावणो लोकरावणः॥ ३०

प्रविशन्सुतले येन भक्तानुग्रहकारिणा।
पादाङ्गुष्ठेन प्रक्षिप्तो योजनायुतमत्र हि॥ ३१

दोषोंका आगार पुरुष भला कैसे जान सकता है। इस प्रकारके विचारोंवाले परमपूज्य दानवराज बलि थे, जिनके द्वारपालके रूपमें स्वयं श्रीहरि सुतलमें विराजमान रहते हैं। एक समयकी बात है, जगत्को रुलानेवाला रावण दिग्विजयके उद्देश्यसे सुतललोकमें प्रवेश कर रहा था, इतनेमें भक्तोंपर कृपा करनेवाले उन श्रीहरिके पैरके अँगूठेकी ठोकरसे वह दस हजार योजन दूर जा गिरा था॥ २९—३१॥

एवंभूतानुभावोऽयं बलिः सर्वसुखैकभुक्।
आस्ते सुतलराजस्थो देवदेवप्रसादतः॥ ३२

इस प्रकारके प्रभाववाले तथा सभी सुखोंका भोग करनेवाले बलि देवाधिदेव श्रीहरिकी कृपासे सुतललोकमें राजाके रूपमें प्रतिष्ठित होकर विराजमान हैं॥ ३२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामष्टमस्कन्धे अतलवितलसुतललोकवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

अथ विंशोऽध्यायः

तलातल, महातल, रसातल और पाताल तथा भगवान् अनन्तका वर्णन

श्रीनारायण उवाच

ततोऽधस्ताद्विवरकं तलातलमुदीरितम्।
दानवेन्द्रो मयो नाम त्रिपुराधिपतिर्महान्॥ १

श्रीनारायण बोले—उस सुतलके नीचेके विवरको 'तलातल' कहा गया है। वहाँ त्रिपुराधिपति मय नामक महान् दानव रहता है॥ १॥

त्रिलोक्याः शङ्करेणायं पालितो दग्धपूस्त्रयः।
देवदेवप्रसादात्तु लब्धराज्यसुखास्पदः॥ २

त्रिलोकीकी रक्षाके लिये भगवान् शंकरने उसकी तीनों पुरियाँ भस्म करके उसके यहाँ रहनेकी व्यवस्था कर दी। उसे देवाधिदेव शिवकी कृपासे यहाँ सुखदायक राज्य प्राप्त हो गया है॥ २॥

आचार्यो मायिनां सोऽयं नानामायाविशारदः।
पूज्यते राक्षसैर्घोरैः सर्वकार्यसमृद्धये॥ ३

अपने समस्त कार्योंके अभ्युदयके लिये बड़े-बड़े भयानक राक्षसगण अनेक प्रकारकी माया रचनेमें परम प्रवीण उस मायावियोंके भी गुरु मयकी पूजा करते हैं॥ ३॥

ततोऽधस्तात्सुविख्यातं महातलमिति स्फुटम्।
सर्पाणां काद्रवेयाणां गणः क्रोधवशो महान्॥ ४
अनेकशिरसां विप्र प्रधानान्कीर्तयामि ते।
कुहकस्तक्षकश्चैव सुषेणः कालियस्तथा॥ ५
महाभोगा महासत्त्वाः क्रूराः क्रूरस्वजातयः।
पतत्रिराजाधिपतेरुद्विग्नाः सर्व एव ते॥ ६
स्वकलत्रापत्यसुहृत्कुटुम्बस्य च सङ्गताः।
प्रमत्ता विहरन्त्येव नानाक्रीडाविशारदाः॥ ७

उस तलातलके नीचे अति प्रसिद्ध 'महातल' नामक विस्तृत विवर है। उसमें कद्रूसे उत्पन्न हुए अनेक सिरोंवाले क्रोधी सर्पोंका एक बहुत बड़ा समूह रहता है। हे विप्र! उनमें प्रधान सर्पोंके नाम आपको बताता हूँ—कुहक, तक्षक, सुषेण और कालिय। ये विशाल फनवाले, महान् शक्तिसे सम्पन्न तथा अत्यन्त भयानक होते हैं। इनकी जाति ही बड़ी क्रूर होती है। वे सभी केवल पक्षिराज गरुडसे ही आतंकित रहते हैं। अनेक प्रकारकी क्रीडा करनेमें परम दक्ष ये सर्प अपनी स्त्रियों, सन्तानों, सुहृदों तथा परिवारजनोंके साथ प्रमत्त होकर वहाँ विहार करते रहते हैं॥ ४—७॥

ततोऽधस्ताच्च विवरे रसातलसमाह्वये।
दैतेया निवसन्त्येव पणयो दानवाश्च ये॥ ८
निवातकवचा नाम हिरण्यपुरवासिनः।
कालेया इति च प्रोक्ताः प्रत्यनीका हविर्भुजाम्॥ ९
महौजसश्चोत्पत्त्यैव महासाहसिनस्तथा।
सकलेशस्य च हरेस्तेजसा हतविक्रमाः॥ १०
बिलेशया इव सदा विवरे निवसन्ति हि।
ये वै वाग्भिः सरमया शक्रदूत्या निरन्तरम्॥ ११
मन्त्रवर्णाभिरसुरास्ताडिता बिभ्यति स्म ह।
ततोऽप्यधस्तात्पाताले नागलोकाधिपालकाः॥ १२
वासुकिप्रमुखाः शङ्खः कुलिकः श्वेत एव च।
धनञ्जयो महाशङ्खो धृतराष्ट्रस्तथैव च॥ १३
शङ्खचूडः कम्बलाश्वतरो देवोपदत्तकः।
महामर्षा महाभोगा निवसन्ति विषोल्बणाः॥ १४
पञ्चमस्तकवन्तश्च फणासप्तकभूषिताः।
केचिद्दशफणाः केचिच्छतशीर्षास्तथापरे॥ १५
सहस्त्रशिरसः केऽपि रोचिष्णुमणिधारकाः।
पातालरन्ध्रतिमिरनिकरं स्वमरीचिभिः॥ १६
विधमन्ति च देवर्षे सदा सञ्जातमन्यवः।
अस्य मूलप्रदेशे हि त्रिंशत्साहस्त्रकेऽन्तरे॥ १७
योजनैः परिसंख्याते तामसी भगवत्कला।
अनन्ताख्या समास्ते हि सर्वदेवप्रपूजिता॥ १८
अहमित्यभिमानस्य लक्षणं यं प्रचक्षते।
सङ्कर्षणं सात्वतीयाः कर्षणं द्रष्टृदृश्ययोः॥ १९
इदं भूमण्डलं यस्य सहस्त्रशिरसः प्रभोः।
अनन्तमूर्तेः शेषस्य ध्रियमाणं च शीर्षके॥ २०
पृथ्वीगोलमशेषं हि सिद्धार्थ इव लक्ष्यते।

उसके भी नीचे 'रसातल' नामवाले विवरमें 'पणि' नामके दैत्य और दानव रहते हैं, जो निवातकवच, हिरण्यपुरवासी और कालेय कहे गये हैं। देवताओंसे इनकी शत्रुता रहती है॥ ८-९॥

वे जन्मसे ही महान् पराक्रमी तथा साहसी होते हैं, किंतु अखिल जगत्के स्वामी भगवान् श्रीहरिके तेजसे कुण्ठित पराक्रमवाले होकर वे सर्पोंकी भाँति छिपकर सदा उस विवरमें पड़े रहते हैं। इन्द्रकी दूती सरमाके मन्त्र-वर्णरूप* वाक्योंके प्रभावसे असुर कष्ट पा चुके हैं—इसी बातका स्मरण करके वे हमेशा भयभीत रहते हैं॥ १०-११½॥

इससे भी नीचे स्थित 'पाताललोक'में मुख्यरूपसे वासुकि, शंख, कुलिक, श्वेत, धनंजय, महाशंख, धृतराष्ट्र, शंखचूड, कम्बल, अश्वतर और देवोपदत्तक आदि महान् क्रोधी, बड़े-बड़े फनोंवाले तथा महान् विषधर सर्प निवास करते हैं; वे सब नागलोकके अधिपालक हैं॥ १२—१४॥

उनमें कोई सर्प पाँच फनोंवाले, कोई सात फनोंवाले और कोई दस फनोंवाले हैं। कुछ सर्पोंके सौ सिर तथा कुछके हजार सिर हैं। हे देवर्षे! जगमगाती हुई मणियाँ धारण करनेवाले वे क्रोधयुक्त सर्प अपनी मणियोंके तेजसे पाताल-विवरके घोर अन्धकार-समूहको नष्ट कर देते हैं॥ १५-१६½॥

इस पाताललोकके नीचे तीस हजार योजनकी दूरीपर भगवान् श्रीहरिकी एक तामसी कला विराजमान है। सम्पूर्ण देवताओंसे सम्यक् पूजित इस कलाका नाम अनन्त है॥ १७-१८॥

अहंरूप अभिमानका लक्षण होनेके कारण यह द्रष्टा तथा दृश्यका कर्षण करके एक कर देती है, इसीलिये पांचरात्र आगमके अनुयायी इसे संकर्षण कहते हैं॥ १९॥

हजार सिरोंवाले इन अनन्तमूर्ति भगवान् शेषके एक सिरपर रखा हुआ यह गोलाकार समग्र भूमण्डल सरसोंके दानेकी भाँति दिखायी पड़ता है॥ २०½॥

* एक कथा आती है कि जब पणि नामक दैत्योंने पृथ्वीको रसातलमें छिपा लिया, तब इन्द्रने उसे ढूँढ़नेके लिये सरमा नामकी एक दूतीको भेजा था। सरमासे दैत्योंने सन्धि करनी चाही, परंतु सरमाने सन्धि न करके इन्द्रकी स्तुति करते हुए कहा था—'**हता इन्द्रेण पणयः शयध्वम्**' (हे पणिगण! तुम इन्द्रके हाथसे मरकर पृथ्वीपर सो जाओ) इसी शापके कारण उन्हें सदा इन्द्रका डर लगा रहता है।

यस्य कालेन देवस्य सञ्जिहीर्षोः समं विभोः॥ २१
चराचरं भ्रुवोरन्तर्विवरादुदपद्यत।
साङ्कर्षणो नाम रुद्रो व्यूहैकादशशोभितः॥ २२
त्रिलोचनश्च त्रिशिखं शूलमुत्तम्भयन्स्वयम्।
उदतिष्ठन्महासत्त्वो महाभूतक्षयङ्करः॥ २३
यस्याङ्घ्रिकमलद्वन्द्वशोणाच्छनखमण्डले ।
विराजन्मणिबिम्बेषु महाहिपतयोऽनिशम्॥ २४
एकान्तभक्तियोगेन सह सात्त्वतपुङ्गवैः।
प्रणमन्तः स्वमूर्ध्ना ते स्वमुखानि समीक्षते॥ २५
स्फुरत्कुण्डलमाणिक्यप्रभामण्डलभाञ्ज्यपि ।
सुकपोलानि चारूणि गण्डस्थलद्युमन्ति च॥ २६
नागराजकुमार्योऽपि चार्वङ्गविलसत्त्विषः।
विशदैर्विपुलैस्तद्वद्धवलैः सुभगैस्तथा॥ २७
रुचिरैर्भुजदण्डैश्च शोभमाना इतस्ततः।
चन्दनागुरुकाश्मीरपङ्कलेपेन भूषिताः॥ २८
तदभिमर्षसञ्जातकामावेशसमायुताः ।
ललितस्मितसंयुक्ताः सव्रीडं लोकयन्ति च॥ २९
अनुरागमदोन्मत्तविघूर्णारुणलोचनम् ।
करुणावलोकनेत्रं च आशासानास्तथाशिषः॥ ३०
सोऽनन्तो भगवान्देवोऽनन्तसत्त्वो महाशयः।
अनन्तगुणवार्धिश्च आदिदेवो महाद्युतिः॥ ३१
संहृतामर्षरोषादिवेगो लोकशुभाय च।
आस्ते महासत्त्वनिधिः सर्वदेवप्रपूजितः॥ ३२
ध्यायमानः सुरैः सिद्धैरसुरैश्चोरगैस्तथा।
विद्याधरैश्च गन्धर्वैर्मुनिसङ्घैश्च नित्यशः॥ ३३
अनारतमदोन्मत्तलोकविह्वललोचनः ।
वाक्यामृतेन विबुधान्स्वपार्षदगणानपि॥ ३४

समय आनेपर जब ये भगवान् अनन्त चराचर जगत्‌के संहारकी इच्छा करते हैं, तब इनकी भौंहोंके विवरसे ग्यारह रुद्रोंसे सुशोभित विग्रहवाले सांकर्षण नामक रुद्र प्रकट हो जाते हैं॥ २१-२२॥

ये रुद्र तीन नेत्रोंसे शोभा पाते हैं, ये स्वयं तीन नोकोंवाला त्रिशूल लेकर खड़े हो जाते हैं। असीम शक्तिसे सम्पन्न ये रुद्र अखिल प्राणिजगत्‌का संहार करनेवाले हैं॥ २३॥

उन भगवान् शेषनागके दोनों चरणकमलोंके नख स्वच्छ तथा लाल मणियोंके समान देदीप्यमान हैं। जब बड़े-बड़े नागराज एकान्तभक्तिसे युक्त होकर प्रधान भक्तोंके साथ भगवान् शेषके चरणोंमें सिर झुकाकर प्रणाम करते हैं, तब उन्हें माणिक्यजटित कुंडलकी प्रभासे प्रकाशित अपने मुख, सुन्दर कपोल तथा गण्डस्थल उनके मणिसदृश नखोंमें दृष्टिगोचर होने लगते हैं॥ २४—२६॥

वहाँ नागराजोंकी सुन्दर तथा कान्तियुक्त अंगोंवाली कुमारियाँ भी रहती हैं। लम्बी, विशाल, स्वच्छ, सुन्दर तथा मनोहर भुजाओंसे सुशोभित वे कुमारियाँ इधर-उधर घूमा करती हैं। वे अपने अंगोंमें चन्दन, अगुरु और कस्तूरीका लेपन किये रहती हैं॥ २७-२८॥

उन भगवान् संकर्षणके स्पर्शजन्य कामावेशसे समन्वित तथा मधुर मुस्कानसे युक्त होकर उन अनुराग-मदसे उन्मत्त विघूर्णित रक्त नेत्रोंवाले तथा करुणापूर्ण दृष्टिवाले भगवान्‌को वे नागकन्याएँ आशीर्वादकी आशासे लज्जापूर्वक निहारती रहती हैं॥ २९-३०॥

अनन्त पराक्रमवाले, अत्यन्त उदार हृदयवाले, अनन्त गुणोंके सागर, महान् तेजस्वी, क्रोध-रोष आदिके वेगोंको रोकनेवाले, असीम शक्तिके आगार-स्वरूप वे आदिदेव भगवान् अनन्त सभी देवताओंसे प्रपूजित होकर सिद्धों, देवताओं, असुरों, नागों, विद्याधरों, गन्धर्वों और मुनिगणोंके द्वारा निरन्तर ध्यान किये जाते हुए लोकोंके कल्याणार्थ वहाँ विराजमान रहते हैं॥ ३१—३३॥

निरन्तर प्रेमके मदसे मुग्ध एवं विह्वल नेत्रोंवाले वे भगवान् अपनी अमृतमयी वाणीसे सभी देवताओं तथा अपने पार्षदगणोंको भी सन्तुष्ट किये रहते हैं।

आप्यायमानः स विभुर्वैजयन्तीं स्रजं दधत्।
अम्लानाभिनवैः स्वच्छैस्तुलसीदलसञ्चयैः ॥ ३५

माद्यन्मधुकरव्रातघोषश्रीसंयुतां सदा।
नीलवासा देवदेव एककुण्डलभूषितः ॥ ३६

हलस्य ककुदि न्यस्तसुपीवरभुजोऽव्ययः।
महेन्द्रः काञ्चनीं यद्वद्वरत्रां च मतङ्गमः।
उदारलीलो देवेशो वर्णितः सात्त्वतर्षभैः ॥ ३७

वे कभी भी न मुरझानेवाले निर्मल और नवीन तुलसी-दलोंसे सुशोभित वैजयन्तीकी माला धारण किये रहते हैं। वह माला मतवाले भौंरोंके समूहोंकी मधुर गुंजारसे सदा सुशोभित रहती है। वे देवदेव भगवान् शेष नीले रंगका वस्त्र धारण करते हैं और उनके कानमें केवल एक कुंडल सुशोभित रहता है। वे अविनाशी भगवान् अपनी विशाल भुजा हलकी मूठपर रखे रहते हैं। सुवर्णमयी पृथ्वीको अपने सिरपर धारण किये हुए भगवान् शेष पीठपर हौदा रखे किसी मतवाले हाथीकी भाँति सुशोभित होते हैं। इस प्रकार श्रेष्ठ भगवद्भक्तोंने उदार लीलाओंवाले भगवान् शेषका वर्णन किया है ॥ ३४—३७ ॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामष्टमस्कन्धे तलातलादिलोकवर्णनेऽनन्तवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥



अथैकविंशोऽध्यायः

देवर्षि नारदद्वारा भगवान् अनन्तकी महिमाका गान तथा नरकोंकी नामावली

श्रीनारायण उवाच

तस्यानुभावं भगवान् ब्रह्मपुत्रः सनातनः।
सभायां ब्रह्मदेवस्य गायमान उपासते ॥ १

उत्पत्तिस्थितिलयहेतवोऽस्य कल्पाः
सत्त्वाद्याः प्रकृतिगुणा यदीक्षयासन्।
यद्रूपं ध्रुवमकृतं यदेकमात्मन्-
नानाधात्कथमुह वेद तस्य वर्त्म ॥ २

मूर्तिं नः पुरुकृपया बभार सत्त्वं
संशुद्धं सदसदिदं विभाति यत्र।
यल्लीलां मृगपतिराददेऽनवद्या-
मादातुं स्वजनमनांस्युदारवीर्यः ॥ ३

श्रीनारायण बोले—ब्रह्माके पुत्र महाभाग नारद ब्रह्मदेवकी सभामें उन भगवान् शेषकी महिमाका गान करते हुए उनकी उपासना करते हैं ॥ १ ॥

जिनका दर्शन पाकर इस जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके हेतुभूत सत्त्वादि प्राकृतिक गुणोंमें अपने कार्य करनेकी क्षमता आ जाती है, जिनका रूप अनन्त तथा अनादि है, जो अकेले होते हुए ही इस नानात्मक प्रपंचको धारण किये हुए हैं—उन भगवान् संकर्षणके तत्त्वको कोई कैसे जान सकता है? ॥ २ ॥

जिनमें यह सत्-असत्रूप सारा प्रपंच भास रहा है तथा स्वजनोंका चित्त आकर्षित करनेके लिये की हुई जिनकी वीरतापूर्ण लीलाको परम पराक्रमी मृगराज सिंहने आदर्श मानकर अपनाया है, उन उदारवीर्य भगवान् संकर्षणने हमपर बड़ी कृपा करके यह विशुद्ध सत्त्वमय स्वरूप धारण किया है ॥ ३ ॥

यन्नाम श्रुतमनुकीर्तयेदकस्मा-
दार्तो वा यदि पतितः प्रलम्भनाद्वा।
हन्त्यंहः सपदि नृणामशेषमन्यं
कं शेषाद्भगवत आश्रयेन्मुमुक्षुः॥ ४

यदि कोई दुःखी अथवा पतित मनुष्य अकस्मात् अथवा हँसी-हँसीमें उनके सुने हुए नामका एक बार भी उच्चारण कर लेता है तो वह दूसरे मनुष्योंके भी सभी पापोंको शीघ्र ही नष्ट कर देता है—ऐसे भगवान् शेषको छोड़कर मोक्षकी इच्छा रखनेवाला मनुष्य अन्य किसका आश्रय ग्रहण करे?॥ ४॥

मूर्धन्यर्पितमणुवत्सहस्रमूर्ध्नो
भूगोलं सगिरिसरित्समुद्रसत्त्वम्।
आनन्त्यादनमितविक्रमस्य भूम्नः
को वीर्याण्यधिगणयेत्सहस्रजिह्वः॥ ५

पर्वत, नदी और समुद्र आदिसे पूर्ण यह सम्पूर्ण भूमण्डल उन हजार सिरोंवाले भगवान् शेषके एक मस्तकपर धूलके एक कणके समान स्थित है। वे अनन्त हैं, इसलिये उनके पराक्रमका कोई परिमाण नहीं है। किसीके हजार जीभें हों, तो भी उन सर्वव्यापक भगवान्‌के पराक्रमकी गणना वह कैसे कर सकता है?॥ ५॥

एवंप्रभावो भगवाननन्तो
दुरन्तवीर्योरुगुणानुभावः ।
मूले रसायाः स्थित आत्मतन्त्रो
यो लीलया क्ष्मां स्थितये बिभर्ति॥ ६

वास्तवमें उनका वीर्य, अतिशय गुण और प्रभाव असीम है। ऐसे प्रभावशाली भगवान् अनन्त रसातलके मूलमें अपनी ही महिमामें स्थित होकर स्वतन्त्र हैं और सम्पूर्ण लोकोंकी स्थितिके लिये पृथ्वीको अपनी लीलासे धारण किये हुए हैं॥ ६॥

एता ह्येवेह तु नृभिर्गतयो मुनिसत्तम।
गन्तव्या बहुशो यद्वद्यथाकर्मविनिर्मिताः॥ ७
यथोपदेशं च कामान्सदा कामयमानकैः।
एतावतीर्हि राजेन्द्र मनुष्यमृगपक्षिषु॥ ८
विपाकगतयः प्रोक्ता धर्मस्य वशगास्तथा।
उच्चावचा विसदृशा यथाप्रश्नं निबोधत॥ ९

हे मुनिश्रेष्ठ! निरन्तर भोगोंकी कामना करनेवाले पुरुषोंकी अपने कर्मोंके अनुसार प्राप्त होनेवाली भगवान्‌की रची हुई ये ही गतियाँ कही गयी हैं। जैसा मुझे उपदेश प्राप्त हुआ, वैसा कह दिया। हे राजेन्द्र! मनुष्यों, पशुओं और पक्षियोंके प्रवृत्तिधर्मके परिणामस्वरूप प्राप्त होनेवाली परस्पर विलक्षण ऊँच-नीच गतियाँ इतनी ही हैं। जो आपने पूछा था, उसे मैंने बता दिया और आगे भी सुनिये॥ ७—९॥

नारद उवाच

वैचित्र्यमेतल्लोकस्य कथं भगवता कृतम्।
समानत्वे कर्मणां च तन्नो ब्रूहि यथातथम्॥ १०

नारदजी बोले—सभी प्राणियोंके कर्म समान होनेपर भी भगवान्‌ने उन लोगोंमें यह विभिन्नता क्यों की है? इसे आप यथार्थरूपमें बताइये॥ १०॥

श्रीनारायण उवाच

कर्तुः श्रद्धावशादेव गतयोऽपि पृथग्विधाः।
त्रिगुणत्वात्सदा तासां फलं विसदृशं त्विह॥ ११

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] कर्ताकी श्रद्धाके सात्त्विक, राजस और तामस—इन तीन भिन्न-भिन्न गुणोंके कारण गतियाँ भी अलग-अलग होती हैं और इसीलिये उनका फल भी भिन्न-भिन्न होता है॥ ११॥

सात्त्विक्या श्रद्धया कर्तुः सुखित्वं जायते सदा।
दुःखित्वं च तथा कर्तू राजस्या श्रद्धया भवेत्॥ १२
दुःखित्वं चैव मूढत्वं तामस्या श्रद्धयोदितम्।
तारतम्यात्तु श्रद्धानां फलवैचित्र्यमीरितम्॥ १३

सात्त्विक श्रद्धाके द्वारा कर्ताको सदा सुखकी प्राप्ति होती है, राजसी श्रद्धासे कर्ताको दुःख मिलता है और तामसी श्रद्धाके प्रभावसे कर्तामें दुःख और मूढ़ता दोनोंका उदय होता है। इस प्रकार श्रद्धाओंके तारतम्यसे फलोंमें भी विचित्रता बतायी गयी है॥ १२-१३॥

अनाद्यविद्याविहितकर्मणां परिणामजाः।
सहस्रशः प्रवृत्तास्तु गतयो द्विजपुङ्गव॥ १४
तद्भेदान्वर्णयिष्यामि प्राचुर्येण द्विजोत्तम।
त्रिजगत्या अन्तराले दक्षिणस्यां दिशीह वै॥ १५
भूमेरधस्तादुपरि त्वतलस्य च नारद।
अग्निष्वात्ताः पितृगणा वर्तन्ते पितरश्च ह॥ १६
वसन्ति यस्यां स्वीयानां गोत्राणां परमाशिषः।
सत्याः समाधिना शीघ्रं त्वाशासानाः परेण वै॥ १७
पितृराजोऽपि भगवान् सम्परेतेषु जन्तुषु।
विषयं प्रापितेष्वेषु स्वकीयैः पुरुषैरिह॥ १८
सगणो भगवत्प्रोक्ताज्ञापरो दमधारकः।
यथाकर्म यथादोषं विदधाति विचारदृक्॥ १९
स्वान्गणान्धर्मतत्त्वज्ञान्सर्वानाज्ञाप्रवर्तकान्।
सदा प्रेरयति प्राज्ञो यथादेशनियोजितान्॥ २०
नरकानेकविंशत्या संख्यया वर्णयन्ति हि।
अष्टाविंशमितान्केचित्तानानुक्रमतो ब्रुवे॥ २१
तामिस्त्र अन्धतामिस्त्रो रौरवोऽपि तृतीयकः।
महारौरवनामा च कुम्भीपाकोऽपरो मतः॥ २२
कालसूत्रं तथा चासिपत्रारण्यमुदाहृतम्।
सूकरस्य मुखं चान्धकूपोऽथ कृमिभोजनः॥ २३
संदंशस्तप्तमूर्तिश्च वज्रकण्टक एव च।
शाल्मली चाथ देवर्षे नाम्ना वैरतणी तथा॥ २४
पूयोदः प्राणरोधश्च तथा विशसनं मतम्।
लालाभक्षः सारमेयादनमुक्तमतः परम्॥ २५
अवीचिरप्ययः पानं क्षारकर्दम एव च।
रक्षोगणाख्यसम्भोजः शूलप्रोतोऽप्यतः परम्॥ २६
दन्दशूकोऽवटारोधः पर्यावर्तनकः परम्।
सूचीमुखमिति प्रोक्ता अष्टाविंशतिनारकाः॥ २७
इत्येते नारका नाम यातनाभूमयः पराः।
कर्मभिश्चापि भूतानां गम्याः पद्मजसम्भव॥ २८

हे मुनिश्रेष्ठ! अनादि मायाके बनाये हुए कर्मोंके परिणामस्वरूप हजारों प्रकारकी गतियाँ प्रवृत्त होती हैं। हे द्विजश्रेष्ठ! अब मैं उन गतियोंके भेदोंका विस्तारसे वर्णन करूँगा॥ १४½॥

हे नारद! त्रिलोकीके भीतर दक्षिण दिशामें अग्निष्वात्ता नामक पितृगण तथा अन्य पितर निवास करते हैं। यह स्थान पृथ्वीसे नीचे तथा अतल लोकसे ऊपर है। सत्यस्वरूप ये पितृगण सदा परम समाधिसे युक्त होकर अपने वंशजोंके परम कल्याणकी आशा करते हुए यहाँ रहते हैं॥ १५—१७॥

वहाँ पितृराज भगवान् यम अपने गणोंके साथ विराजमान रहते हैं। सम्यक् विचार दृष्टिवाले तथा दण्डधारी वे यमराज भगवान्‌की कही गयी आज्ञाका पालन करते हुए अपने दूतोंद्वारा वहाँ लाये गये मृत प्राणियोंके लिये उनके कर्मों तथा दोषोंके अनुसार वैसे ही फलका विधान करते हैं॥ १८-१९॥

वे परम ज्ञानी यमराज धर्मतत्त्वको जाननेवाले, यथास्थान नियुक्त किये गये तथा आज्ञाकारी अपने सभी गणोंको सदा प्रेरित करते रहते हैं॥ २०॥

संख्यामें कुल इक्कीस नरक बताये गये हैं। कुछ लोग नरकोंकी संख्या अट्ठाईस बताते हैं। मैं क्रमशः उनका वर्णन कर रहा हूँ॥ २१॥

हे देवर्षे! तामिस्र, अन्धतामिस्र, रौरव, महारौरव, कुम्भीपाक, कालसूत्र, असिपत्रवन, सूकरमुख, अन्धकूप, कृमिभोजन, सन्दंश, तप्तमूर्ति, वज्रकण्टक-शाल्मली, वैतरणी, पूयोद, प्राणरोध, विशसन, लालाभक्ष, सारमेयादन, अवीचि, अयःपान, क्षारकर्दम, रक्षोगणसंभोज, शूलप्रोत, दंदशूक, अवटारोध, पर्यावर्तनक और सूचीमुख—ये अट्ठाईस नरक बताये गये हैं। हे ब्रह्मपुत्र! इन नामोंवाले ये नरक यातना भोगनेके परम स्थान हैं; जहाँ प्राणी अपने-अपने कर्मोंके अनुसार जाते हैं॥ २२—२८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामष्टमस्कन्धे नरकस्वरूपवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः॥ २१॥

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

विभिन्न नरकोंका वर्णन

नारद उवाच

कर्मभेदाः कतिविधाः सनातनमुने मम।
श्रोतव्याः सर्वथैवैते यातनाप्राप्तिभूमयः॥ १

श्रीनारायण उवाच

यो वै परस्य वित्तानि दारापत्यानि चैव हि।
हरते स हि दुष्टात्मा यमानुचरगोचरः॥ २
कालपाशेन सम्बद्धो याम्यैरतिभयानकैः।
तामिस्रनामनरके पात्यते यातनास्पदे॥ ३
ताडनं दण्डनं चैव सन्तर्जनमतः परम्।
याम्याः कुर्वन्ति पाशाढ्याः कश्मलं याति चैव हि॥ ४
मूर्च्छामायाति विवशो नारकी पद्मभूसुत।
यः पतिं वञ्चयित्वा तु दारादीनुपभुञ्यति॥ ५
अन्धतामिस्रनरके पात्यते यमकिङ्करैः।
पात्यमानो यत्र जन्तुर्वेदनापरवान्भवेत्॥ ६
नष्टदृष्टिर्नष्टमतिर्भवत्येवाविलम्बतः।
वनस्पतिर्भज्यमानमूलो यद्वद्भवेदिह॥ ७
तस्मादप्यन्धतामिस्रनाम्ना प्रोक्तः पुरातनैः।
एतन्ममाहमिति यो भूतद्रोहेण केवलम्॥ ८
पुष्णाति प्रत्यहं स्वीयं कुटुम्बं कार्यलम्पटः।
एतद्विहाय चात्रैव स्वाशुभेन पतेदिह॥ ९
रौरवे नाम नरके सर्वसत्त्वभयावहे।
इह लोकेऽमुना ये तु हिंसिता जन्तवः पुरा॥ १०
त एव रुरवो भूत्वा परत्र पीडयन्ति तम्।
तस्माद्रौरवमित्याहुः पुराणज्ञा मनीषिणः॥ ११
रुरुः सर्पादतिक्रूरो जन्तुरुक्तः पुरातनैः।

नारदजी बोले—हे सनातन मुने! विविध प्रकारकी यातनाओंकी प्राप्ति करानेवाले कर्मोंके भेद कितने प्रकारके होते हैं; मैं इनके विषयमें भलीभाँति सुनना चाहता हूँ॥ १॥

श्रीनारायण बोले—जो पुरुष दूसरेके धन, स्त्री और सन्तानका हरण करता है, वह दुष्टात्मा यमराजके दूतोंद्वारा पकड़कर ले जाया जाता है॥ २॥

अत्यन्त भयानक रूपवाले यमदूत उसे कालपाशमें बाँधकर ले जाते हैं और यातना भोगनेके भयावह स्थानस्वरूप **तामिस्र** नामक नरकमें गिरा देते हैं॥ ३॥

हाथमें रस्सी लिये हुए यमदूत उस प्राणीको पीटते हैं, तरह-तरहके दण्ड देते हैं और उसे डराते हैं। इस प्रकार वह जीव महान् क्लेश पाता है। हे नारद! वह नारकी विवश होकर एकाएक मूर्च्छित हो जाता है॥ ४½॥

इसी प्रकार जो व्यक्ति किसीके पतिको धोखा देकर उसकी स्त्रीके साथ भोग करता है, वह यमदूतोंके द्वारा **अन्धतामिस्र** नामक नरकमें गिराया जाता है; जहाँ गिराये जाते हुए जीवको असह्य वेदना होती है। वह दृष्टिहीन हो जाता है, उसकी बुद्धि नष्ट हो जाती है और वह शीघ्र ही जड़से कटे हुए वृक्षकी भाँति नरकमें गिर पड़ता है। इसीलिये प्राचीन पुरुषोंने इसे अन्धतामिस्र नामकी संज्ञा दी है॥ ५—७½॥

यह शरीर ही मैं हूँ और ये [धन, स्त्री, पुत्रादि] मेरे हैं—ऐसा सोचकर जो अन्य प्राणियोंसे द्रोह करता हुआ केवल अपने परिवारके भरण-पोषणमें प्रतिदिन लगा रहता है, वह स्वार्थलोलुप प्राणी शरीर छोड़कर अपने अशुभ कर्मोंके प्रभावसे जीवोंको अत्यधिक भय देनेवाले इस रौरव नामक नरकमें गिरता है; और इस व्यक्तिके द्वारा जिन जन्तुओंकी पहले इस जगत्में हिंसा हुई रहती है, वे प्राणी भयंकर रुरु नामक जन्तु बनकर उसे यहाँ कष्ट देते हैं। इसीलिये पुराणवेत्ता मनीषी इसे **रौरव** नरक कहते हैं। पुरातन पुरुषोंने इस रुरु नामक जन्तुको सर्पसे भी अधिक क्रूर बतलाया है॥ ८—११½॥

एवं महारौरवाख्यो नरको यत्र पूरुषः॥ १२

यातनां प्राप्यमाणो हि यः परं देहसम्भवः।
क्रव्यादा नाम रुरवस्तं क्रव्ये घातयन्ति च॥ १३

य उग्रः पुरुषः क्रूरः पशुपक्षिगणानपि।
उपरन्धयते मूढो याम्यास्तं रन्धयन्ति च॥ १४

कुम्भीपाके तप्ततैले उपर्यपि च नारद।
यावन्ति पशुरोमाणि तावद्वर्षसहस्रकम्॥ १५

पितृविप्रब्राह्मणध्रुक्कालसूत्रे स नारके।
अग्न्यर्काभ्यां तप्यमाने नारकी विनिवेशितः॥ १६

क्षुत्पिपासादह्यमानोऽन्तःशरीरस्तथा बहिः।
आस्ते शेते चेष्टते चावतिष्ठति च धावति॥ १७

निजवेदपथाद्यो वै पाखण्डं चोपयाति च।
अनापद्यपि देवर्षे तं पापं पुरुषं भटाः॥ १८

असिपत्रवनं नाम नरकं वेशयन्ति च।
कशया प्रहरन्त्येव नारकी तद्गतस्तदा॥ १९

इतस्ततो धावमान उत्तालमतिवेगतः।
असिपत्रैश्छिद्यमान उभयत्र च धारभिः॥ २०

संछिद्यमानसर्वाङ्गो हाहतोऽस्मीति मूर्च्छितः।
वेदनां परमां प्राप्तः पतत्येव पदे पदे॥ २१

स्वधर्मानुगतं भुङ्क्ते पाखण्डफलमल्पधीः।
यो राजा राजपुरुषो दण्डयेद्वै त्वधर्मतः॥ २२

द्विजे शरीरदण्डं च पापीयान्नारकी च सः।
नरके सूकरमुखे पात्यते यमकिङ्करैः॥ २३

इसी प्रकार **महारौरव** नामक नरक भी है, जहाँ यातना पानेके लिये प्राणी दूसरा सूक्ष्म शरीर धारण करके जाता है। वहाँ कच्चा मांस खानेवाले रुरु नामक जन्तु उस जीवके मांसपर चोट पहुँचाते रहते हैं॥ १२-१३॥

हे नारद! जो अत्यन्त क्रोधी, निर्दयी तथा मूर्ख पुरुष पशु-पक्षियोंको मारकर उनका मांस पकाता है, यमराजके दूत उसे **कुम्भीपाक** नरकमें खौलते हुए तेलमें डालकर उस पशुके शरीरमें जितने रोम होते हैं, उतने हजार वर्षोंतक पकाते हैं॥ १४-१५॥

जो पिता, विप्र तथा ब्राह्मणसे द्रोह करता है, वह नारकी मनुष्य अग्नि तथा सूर्यसे सदा तप्त रहनेवाले **कालसूत्र** नामक नरकमें डाला जाता है। वहाँपर भूख और प्याससे पीड़ित हो जाता है और भीतर तथा बाहरसे जलते हुए शरीरवाला वह प्राणी व्याकुल होकर कभी बैठता है, कभी सोता है, कभी नानाविध चेष्टाएँ करता है, कभी उठकर खड़ा हो जाता है और कभी दौड़ने लगता है॥ १६-१७॥

हे देवर्षे! विपत्तिका समय न रहनेपर भी जो अपने वेदविहित मार्गसे हटकर पाखण्डका आश्रय लेता है, उस पापी पुरुषको यमदूत **असिपत्रवन** नामक नरकमें डाल देते हैं। जब वे उसके ऊपर कोड़ेसे प्रहार करते हैं, तब वहाँ डाला गया वह नारकी जीव उतावला होकर अत्यन्त वेगसे इधर-उधर भागने लगता है, जिससे दोनों ओर तीखी धारोंवाले असिपत्रोंसे उसका शरीर छिद जाता है। छिदे हुए सभी अंगोंवाला वह जीव 'हाय मैं मारा गया'—ऐसा कहते हुए मूर्च्छित हो जाता है। इस प्रकार वह अल्पबुद्धि प्राणी वहाँ असीम कष्ट भोगते हुए पद-पदपर गिरता है और अपने किये हुए कर्मके अनुसार उस पाखण्डका फल भोगता है॥ १८—२१½॥

जो राजा अथवा राजपुरुष अधर्मका सहारा लेकर प्रजाको दण्डित करता है और ब्राह्मणको शारीरिक दण्ड देता है, वह नारकी तथा महापापी मनुष्य यमदूतोंके द्वारा **सूकरमुख** नामक नरकमें गिराया जाता है। वहाँपर बलवान् यमदूतोंके द्वारा ईखकी भाँति पेरा जाता हुआ वह जीव सभी अंगोंके

विनिष्पिष्टावयवको बलवद्भिस्तथेक्षुवत्।
आर्तस्वरेण स्वनयन्मूर्च्छितः कश्मलङ्गतः॥ २४

स पीड्यमानो बहुधा वेदनां यात्यतीव हि।
विविक्तपरपीडो योऽप्यविविक्तपरव्यथाम्॥ २५

ईश्वराङ्कितवृत्तीनां व्यथामाचरते स्वयम्।
स चान्धकूपे पतति तदभिद्रोहयन्त्रिते॥ २६

तत्रासौ जन्तुभिः क्रूरैः पशुभिर्मृगपक्षिभिः।
सरीसृपैश्च मशकैर्यूकामत्कुणजातिभिः॥ २७

मक्षिकाभिश्च तमसि दन्दशूकैश्च पीड्यते।
परिक्रामति चैवात्र कुशरीरे च जन्तुवत्॥ २८

यस्तु संविहितैः पञ्चयज्ञैः काकैश्च संस्तुतः।
अश्नाति चासंविभज्य यत्किञ्चिदुपपद्यते॥ २९

स पापपुरुषः क्रूरैर्याम्यैश्च कृमिभोजने।
नरकाधमके दुष्टकर्मणा परिपात्यते॥ ३०

लक्षयोजनविस्तीर्णे कृमिकुण्डे भयङ्करे।
कृमिरूपं समासाद्य भक्ष्यमाणश्च तैः स्वयम्॥ ३१

अप्रत्ताप्रहुतादो यः पातमाप्नोति तत्र वै।
यस्तु स्तेयेन च बलाद्धिरण्यं रत्नमेव च॥ ३२

ब्राह्मणस्यापहरति अन्यस्यापि च कस्यचित्।

अनापदि च देवर्षे तममुत्र यमानुगाः॥ ३३

अयस्मयैरग्निपिण्डैः सदृशैर्निष्कुषन्ति च।
योऽगम्यां योषितं गच्छेदगम्यं पुरुषं च या॥ ३४

तावमुत्रापि कशया ताडयन्तो यमानुगाः।
तिग्मया लोहमय्या च सूर्म्याप्यालिङ्गयन्ति तम्॥ ३५

तां चापि योषितं सूर्म्यालिङ्गयन्ति यमानुगाः।

पिस जानेसे वेदनाके कारण आर्तस्वर करता हुआ मूर्च्छित हो जाता है और महान् क्लेश प्राप्त करता है। इस प्रकार अनेक प्रकारसे पीड़ित होता हुआ जीव बहुत पीड़ा पाता है॥ २२—२४½ ॥

जो पुरुष इस लोकमें खटमल आदि जीवोंकी हिंसा करता है, वह उनसे द्रोह करनेके कारण **अन्धकूप** नामक नरकमें गिरता है; क्योंकि स्वयं परमात्माने ही रक्तपानादि उनकी वृत्ति बना दी है और उसके कारण उन्हें दूसरोंको कष्ट पहुँचानेका ज्ञान भी नहीं है, किंतु ईश्वरके द्वारा विधि-निषेधपूर्वक बनायी गयी वृत्तियोंवाले मनुष्योंको दूसरोंके कष्टका ज्ञान है। इसीलिये वह प्राणी पशु, पक्षी, मृग, सर्प, मच्छर, जूँ, खटमल, मक्खी, दन्दशूक आदि क्रूर जन्तुओंके द्वारा अन्धकूप नरकमें पीडित किया जाता है। वह प्राणी भयानक रोगसे ग्रस्त शरीरमें रहनेवाले जीवकी भाँति व्यथित होकर इस नरकमें चक्कर काटता रहता है॥ २५—२८॥

जो कुछ भी धन आदि प्राप्त हो उसे शास्त्रविहित पंचयज्ञोंमें विभक्त किये बिना ही जो भोजन करता है, उसे काकतुल्य समझना चाहिये। यमराजके अत्यन्त निर्मम दूत उस पापी पुरुषको उसके दुष्कर्मोंके फलस्वरूप **कृमिभोजन** नामक अधम नरकमें गिराते हैं। इस प्रकार जो अतिथियोंको दिये बिना ही भोजन करता है। वह एक लाख योजन विस्तारवाले भयंकर कृमिकुण्डमें कीड़ा होकर नरकके कीड़ोंद्वारा खाया जाता हुआ वहीं पड़ा रहता है॥ २९—३१½ ॥

हे देवर्षे! विपत्तिकाल न होनेपर भी जो प्राणी ब्राह्मण अथवा अन्य किसी भी वर्णके लोगोंसे चोरीसे या बलात् स्वर्ण या रत्न छीन लेता है, उसे मरनेपर यमराजके दूत **संदंश** नामक नरकमें गिराते हैं और अग्निके समान सन्तप्त लोहपिण्डोंसे उसे दागते हैं तथा संड़सीसे उसकी खाल नोचते हैं॥ ३२-३३½ ॥

जो पुरुष अगम्या स्त्रीके साथ अथवा जो स्त्री अगम्य पुरुषके साथ समागम करती है, उन्हें यमदूत **तप्तसूर्मि (मूर्ति)** नामक नरकमें गिराकर कोड़ेसे पीटते हैं। पुनः वे यमदूत लोहेकी बनी प्रज्वलित स्त्रीमूर्तिसे पुरुषको तथा लौहनिर्मित जलती हुई पुरुषमूर्तिसे स्त्रीको आलिंगित कराते हैं॥ ३४-३५½ ॥

यस्तु सर्वाभिगमनः पुरुषः पापसञ्चयी॥ ३६
निरयेऽमुत्र तं याम्याः शाल्मलीं रोपयन्ति तम्।
वज्रकण्टकसंयुक्तां शाल्मलीं तामयस्मयीम्॥ ३७
राजन्या राजपुरुषा ये वा पाखण्डवर्तिनः।
धर्मसेतुं विभिन्दन्ति ते परेत्य गता नराः॥ ३८
वैतरण्यां पतन्त्येव भिन्नमर्यादपातकाः।
नद्यां निरयदुर्गस्य परिखायां च नारद॥ ३९
यादोगणैः समन्तात्तु भक्ष्यमाणा इतस्ततः।
नात्मना वियुजन्त्येव नासुभिश्चापि नारद॥ ४०
स्वीयेन कर्मपाकेनोपतपन्ति च सर्वतः।
विण्मूत्रपूयरक्तैश्च केशास्थिनखमांसकैः॥ ४१
मेदोवसासंयुतायां नद्यामुपपतन्ति ते।
वृषलीपतयो ये च नष्टशौचा गतत्रपाः॥ ४२
आचारनियमैस्त्यक्ताः पशुचर्यापरायणाः।
तेऽत्रानुकष्टगतयो विण्मूत्रश्लेष्मरक्तकैः॥ ४३
श्लेष्ममलसमापूर्णे निपतन्ति दुराग्रहाः।
तदेव खादयन्त्येतान्यमानुचरवर्गकाः॥ ४४
ये श्वानगर्दभादीनां पतयो वै द्विजातयः।
मृगयारसिका नित्यमतीर्थे मृगघातकाः॥ ४५
परेतांस्तान्यमभटा लक्षीभूतान्नराधमान्।
इषुभिश्च विभिन्दन्ति तांस्तान्दुर्नयमागतान्॥ ४६
ये दम्भा दम्भयज्ञेषु पशून्घ्नन्ति नराधमाः।
तानमुष्मिन्यमभटा नरके वैशसे तदा॥ ४७
निपात्य पीडयन्त्येव कशाघातैर्दुरासदैः।
यो भार्यां च सवर्णां वै द्विजो मदनमोहितः॥ ४८
रेतः पाययति मूढोऽमुत्र तं यमकिङ्कराः।
रेतःकुण्डे पातयन्ति रेतः सम्पाययन्ति च॥ ४९

जो घोर पापी मनुष्य जिस किसीके साथ व्यभिचार करता है, उसके मरनेपर यमराजके दूत उसे **शाल्मली** नामक नरकमें वज्रके समान कठोर काँटोंवाले उस लोहमय शाल्मली (सेमर)-के वृक्षपर चढ़ाते हैं॥ ३६-३७॥

जो राजा या राजपुरुष पाखण्डी बनकर धर्मकी मर्यादाको तोड़ते हैं, वे इस मर्यादाभंगरूपी पापके कारण मरनेपर **वैतरणी** नामक नरकमें गिरते हैं। हे नारद! नरकरूपी दुर्गकी खाईके समान प्रतीत होनेवाली उस वैतरणी नदीमें रहनेवाले जीव-जन्तु उन्हें चारों ओरसे काटते हैं और वे व्याकुल होकर इधर-उधर भागते रहते हैं। हे नारद! उनका शरीर नहीं छूटता तथा उनके प्राण भी नहीं निकलते और वे अपने पापकर्मके कारण सदा सन्तप्त रहते हैं। मल, मूत्र, पीब, रक्त, केश, अस्थि, नख, चर्बी, मांस और मज्जा आदिसे भरी पड़ी उस नदीमें गिरे हुए वे छटपटाते रहते हैं॥ ३८—४१½॥

जो लोग सदाचारके नियमोंसे विमुख तथा शौचाचारसे रहित होकर शूद्राओंके पति बन जाते हैं और निर्लज्जतापूर्वक पशुवत् आचरण करते हैं, उन्हें अत्यन्त कष्टप्रद गतियाँ प्राप्त होती हैं। यमराजके दुराग्रही दूत उन्हें विष्ठा, मूत्र, कफ, रक्त और मलसे युक्त **पूयोद** नामक नरकमें गिराते हैं; जहाँ ये पापी इन्हीं वस्तुओंको खाते हैं॥ ४२—४४॥

जो द्विजातिगण कुत्ते और गधे आदिको पालते हैं, आखेट करनेमें सदा रुचि रखते हैं तथा शास्त्रके विपरीत मृगोंका वध करते हैं; उन दुर्नीतिपूर्ण आचरणवाले अधम प्राणियोंको मरणोपरान्त यमदूत [**प्राणरोध** नामक नरकमें गिराकर] लक्ष्य बनाकर बाणोंसे बेधते हैं॥ ४५-४६॥

जो दम्भी और मनुष्योंमें अधम लोग अभिमानपूर्वक यज्ञोंका आयोजन करके उसमें पशुओंकी हिंसा करते हैं, उन्हें इस लोकसे जानेपर यमदूत **विशसन** नामक नरकमें गिराकर कोड़ोंके असहनीय प्रहारसे उनको अत्यधिक पीडा पहुँचाते हैं॥ ४७½॥

जो मूर्ख द्विज कामसे मोहित होकर सवर्णा भार्याको वीर्यपान कराता है, यमके दूत उसे वीर्यके कुण्डमें [**लालाभक्ष** नामक नरकमें] गिराते हैं और वीर्य ही पिलाते हैं॥ ४८-४९॥

ये दस्यवोऽग्निदाश्चैव गरदाः सार्थघातकाः।
ग्रामान्सार्थान्विलुम्पन्ति राजानो राजपूरुषाः॥ ५०

तान्परेतान्यमभटा नयन्ति श्वानकादनम्।
विंशत्यधिकसंख्याताः सारमेया महाद्भुताः॥ ५१

सप्तशत्या समाख्याता रभसं खादयन्ति ते।
सारमेयादनं नाम नरकं दारुणं मुने।
अतः परं प्रवक्ष्यामि अवीचिप्रमुखान्मुने॥ ५२

जो चोर, राजा अथवा राजपुरुष आग लगाते हैं, विष देते हैं, दूसरोंकी सम्पत्ति नष्ट करते हैं, गाँवों तथा धनिकोंको लूटते हैं, उनके मरनेपर यमराजके दूत उन्हें **सारमेयादन** नामक नरकमें ले जाते हैं। वहाँ सात सौ बीस अत्यन्त विचित्र सारमेय (कुत्ते) बताये गये हैं। वे बड़े वेगसे उन्हें नोच-नोचकर खाते हैं। हे मुने! वह सारमेयादन नामक नरक बड़ा ही भयानक है। हे मुने! अब इसके पश्चात् मैं अवीचि आदि प्रमुख नरकोंका वर्णन करूँगा॥ ५०—५२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामष्टमस्कन्धे नरकप्रदपातकवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः॥ २२॥

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

नरक प्रदान करनेवाले विभिन्न पापोंका वर्णन

श्रीनारायण उवाच

ये नराः सर्वदा साक्ष्ये अनृतं भाषयन्ति च।
दाने विनिमयेऽर्थस्य देवर्षे पापबुद्धयः॥ १

ते प्रेत्यामुत्र नरके अवीच्याख्येऽतिदारुणे।
योजनानां शतोच्छ्रायाद्गिरिमूर्ध्नः पतन्ति हि॥ २

श्रीनारायण बोले—हे देवर्षे! जो दान और धनके आदान-प्रदानमें साक्षी बनकर सदा झूठ बोलते हैं, वे पापबुद्धि मनुष्य मरनेपर सौ योजन ऊँचे पर्वत-शिखरसे **अवीचि** नामक परम भयंकर नरकमें गिरते हैं॥ १-२॥

अनाकाशेऽधःशिरसस्तदवीचीतिनामके।
यत्र स्थलं दृश्यते च जलवद्वीचिसंयुतम्॥ ३

अवीचिमत्ततस्तत्र तिलशश्छिन्नविग्रहः।
म्रियते नैव देवर्षे पुनरेवाऽवरोप्यते॥ ४

इस अवीचि नामक आधारशून्य नरकमें प्राणियोंको नीचा सिर किये हुए गिरना पड़ता है, जहाँ स्थलभाग लहरयुक्त जलकी भाँति दिखायी पड़ता है। इसीलिये इसे अवीचि कहते हैं। हे देवर्षे! वहाँ पत्थर-ही-पत्थर बिछे रहते हैं। उनपर गिरनेसे प्राणियोंका शरीर तिल-तिल करके कट जाता है। वे मरते भी नहीं और उसीमें उन्हें बार-बार गिराया जाता है॥ ३-४॥

यो वा द्विजो वा राजन्यो वैश्यो वा ब्रह्मसम्भव।
सोमपीथस्तत्कलत्रं सुरां वा पिबतीव हि॥ ५

प्रमादतस्तु तेषां वै निरये परिपातनम्।
कुर्वन्ति यमदूतास्ते पानं कार्ष्णायसो मुने॥ ६
वह्निना द्रवमाणस्य नितरां ब्रह्मसम्भव।

हे ब्रह्मपुत्र! जो ब्राह्मण अथवा ब्राह्मणी अथवा व्रतमें स्थित अन्य कोई भी प्रमादवश मद्यपान करता है तथा जो क्षत्रिय या वैश्य सोमपान* करता है, उसका **अयःपान** नामक नरकमें पतन होता है। हे मुने! हे ब्रह्मापुत्र! यमराजके दूत वहाँपर उन्हें आगसे अत्यन्त सन्तप्त तथा पिघला हुआ लोहा पिलाते हैं॥ ५-६½॥

* क्षत्रियों एवं वैश्योंके लिये शास्त्रमें सोमपानका निषेध है।

सम्भावनेन स्वस्यैव योऽधमोऽपि नराधमः॥ ७

विद्याजन्मतपोवर्णाश्रमाचारवतो नरान्।
वरीयसोऽपि न बहु मन्यते पुरुषाधमः॥ ८

स नीयते यमभटैः क्षारकर्दमनामके।
निरयेऽर्वाक्शिरा घोरा दुरन्तयातनाश्नुते॥ ९

ये वै नरा यजन्त्यन्यं नरमेधेन मोहिताः।
स्त्रियोऽपि वा नरपशुं खादन्त्यत्र महामुने॥ १०

पशवो निहितास्ते तु यमसद्मनि सङ्गताः।

सौनिका इव ते सर्वे विदार्य शितधारया॥ ११

असृक्पिबन्ति नृत्यन्ति गायन्ति बहुधा मुने।
यथेह मांसभोक्तारः पुरुषादा दुरासदाः॥ १२

अनागसोऽपि येऽरण्ये ग्रामे वा ब्रह्मपुत्रक।
वैश्रम्भकैरुपसृतान्विश्रम्भय्यजिजीविषून् ॥ १३

शूलसूत्रादिषु प्रोतान्क्रीडनोत्कारकानिव।
पातयन्ति च ते प्रेत्य शूलपाते पतन्ति ह॥ १४

शूलादिषु प्रोतदेहाः क्षुत्तृड्भ्यां चातिपीडिताः।
तिग्मतुण्डैः कङ्कबकैरितश्चेतश्च ताडिताः॥ १५

पीडिता आत्मशमलं बहुधा संस्मरन्ति हि।
ये भूतानुद्वेजयन्ति नरा उल्बणवृत्तयः॥ १६

यथा सर्पादिकास्तेऽपि नरके निपतन्ति हि।
दन्दशूकाभिधाने च यत्रोत्तिष्ठन्ति सर्वतः॥ १७

पञ्चाननः सप्तमुखा ग्रसन्ति नरकागतान्।
यथा बिलेशया विप्र क्रूरबुद्धिसमन्विताः॥ १८

हे मुने! जो नराधम स्वयं निम्न श्रेणीमें उत्पन्न हुआ है, किंतु अभिमानवश विद्या, जन्म, तप, आचार, वर्ण या आश्रममें अपनेसे श्रेष्ठ पुरुषोंका यथोचित सम्मान नहीं करता; वह महान् अधम मनुष्य यमदूतोंके द्वारा **क्षारकर्दम** नामक नरकमें सिर नीचा किये हुए ले जाया जाता है; वहाँपर वह घोर कष्टप्रद यातनाएँ भोगता है॥ ७—९॥

हे महामुने! जो मनुष्य मोहग्रस्त होकर नरमेधके द्वारा अन्य [यक्ष, राक्षस आदि]-का पूजन करते हैं अथवा जो स्त्रियाँ भी नरपशुका मांस खाती हैं; वे **रक्षोगणसम्भोज** नामक नरकमें गिरते हैं। उनके द्वारा इस लोकमें मारे गये वे पशु यमपुरीमें पहलेसे ही कसाईके रूपमें विद्यमान रहते हैं। हे मुने! जिस प्रकार इस लोकमें पशुओंका मांस खानेवाले पुरुष आनन्दित होते हैं, उसी प्रकार वे पशु भी निर्मम कसाईका रूप धारणकर तेज धारवाले अस्त्रसे उनके शरीरको काटकर उससे निकले रक्तको पीते हैं और अनेक प्रकारसे नाचते तथा गाते हैं॥ १०—१२॥

हे ब्रह्मपुत्र! जो लोग ग्राममें अथवा जंगलमें रहनेवाले निरपराध प्राणियोंको—जो जीनेकी इच्छा रखते हैं—उन्हें विविध उपायोंसे विश्वासमें लेकर तथा फुसलाकर अपने पास बुला लेते हैं और अपने मनोरंजनके लिये उनके शरीरमें काँटे चुभाकर अथवा रस्सी आदिमें बाँधकर पीड़ा पहुँचाते हैं, वे मरनेपर **शूलपात (शूलप्रोत)** नामक नरकमें गिरते हैं। उनके शरीरमें शूल आदि चुभाये जाते हैं, वे भूख तथा प्याससे अत्यन्त पीड़ित होते हैं और तीखी चोंचवाले कंक, बक आदि पक्षी उन्हें जहाँ-तहाँ नोचते हैं। उस समय कष्ट भोग रहे वे प्राणी अपने पूर्वकृत पापोंका बार-बार स्मरण करते हैं॥ १३—१५½॥

हे विप्र! उग्र स्वभाववाले जो मनुष्य सर्पोंकी भाँति प्राणियोंको उद्विग्न करते हैं, वे मरणोपरान्त **दन्दशूक** नामक नरकमें पड़ते हैं, जहाँपर पाँच तथा सात मुखोंवाले क्रूरस्वभाव सर्प मरनेके बाद इस नरकमें पहुँचे हुए प्राणियोंको चूहेकी भाँति निगल जाते हैं॥ १६—१८॥

येऽवटेषु कुसूलादिगुहादिषु निरुन्धते।
तानमुत्रोद्यतकराः कीनाशपरिसेवकाः॥ १९

तेष्वेवोपविशित्वा च सगरेण च वह्निना।
धूमेन च निरुन्धन्ति पापकर्मरतान्नरान्॥ २०

योऽतिथीन्समयप्राप्तान्दिधक्षुरिव चक्षुषा।
पापेनेहालोकयेच्च स्वयं गृहपतिर्द्विजः॥ २१

तस्यापि पापदृष्टेर्हि निरये यमकिङ्कराः।
अक्षिणी वज्रतुण्डा ये कङ्काः काकवटादयः॥ २२

गृध्राः क्रूरतराश्चापि प्रसह्योत्पाटयन्ति हि।
य आढ्याभिमतिर्याति अहङ्कृत्यातिगर्वितः॥ २३

तिर्यक्प्रेक्षण एवात्राभिविशङ्की नराधमः।
चिन्तयार्थस्य सर्वत्रायतिव्ययस्वरूपया॥ २४

शुष्यद्धृदयवक्त्रश्च निर्वृतिं नैव गच्छति।
ग्रहवद्रक्षते चार्थं स प्रेतो यमकिङ्करैः॥ २५

सूचीमुखे च नरके पात्यते निजकर्मणा।
वित्तग्रहं च पुरुषं वायका इव याम्यकाः॥ २६

किङ्कराः सर्वतोऽङ्गेषु सूत्रैः परिवयन्ति हि।
एते बहुविधा विप्र नरकाः पापकर्मणाम्॥ २७

नराणां शतशः सन्ति यातनास्थानभूमयः।
सहस्रशोऽपि देवर्षे उक्तानुक्तांस्तथापि हि॥ २८

विशन्ति नरकानेतान्यातनाबहुलान्मुने।
तथा धर्मपराश्चापि लोकान्यान्ति सुखोद्गतान्॥ २९

स्वधर्मो बहुधा गीतो यथा तव महामुने।
देवीपूजनरूपो हि देव्याराधनलक्षणः॥ ३०

जो अन्धकूपोंमें, प्रकाशरहित घर आदिमें अथवा अन्धकारयुक्त गुफाओंमें प्राणियोंको बन्द कर देते हैं, उन पापकर्मपरायण लोगोंको यमराजके दूत मरनेके उपरान्त [**अवटारोध** नामक नरकमें गिराते हैं और] उनका हाथ पकड़कर विषैली अग्निके धुएँसे भरे हुए उसी प्रकारके अँधेरे स्थानोंमें प्रवेश कराकर उन्हें बन्द कर देते हैं॥ १९-२०॥

जो द्विज स्वयं गृहका स्वामी होकर अपने यहाँ समयपर आये हुए अतिथियोंको पापपूर्ण नेत्रसे इस प्रकार देखता है, मानो उसे भस्म ही कर डालेगा, मरनेपर उस पापदृष्टिवाले पुरुषको यमराजके सेवक **पर्यावर्तन** नामक नरकमें गिराते हैं। वहाँपर वज्रतुल्य चोंचोंवाले कंक, काक, वट, गीध आदि महान् क्रूर पक्षी बलपूर्वक उसकी आँखें निकाल लेते हैं॥ २१-२२½॥

जो अधम मनुष्य अपनेको वैभवसम्पन्न मानकर अभिमानसे अत्यन्त गर्वित होकर दूसरोंको वक्रदृष्टिसे देखता है, जो सबके प्रति शंकाभाव रखता है, जो अपने चित्तमें सदा धन कमाने किंतु व्यय न करनेकी ही भावना रखता है तथा ग्रहकी भाँति सदा धनकी रक्षा करता है, वह सूखते हुए हृदय तथा मुखवाला प्राणी कभी शान्तिको प्राप्त नहीं होता है। मरनेपर यमराजके सेवकोंद्वारा वह अपने पापकर्मके कारण **सूचीमुख** नामक नरकमें गिराया जाता है। यमराजके दूत उस अर्थपिशाचके सम्पूर्ण अंगोंको उसी प्रकार सिल देते हैं, जैसे दर्जी सूई-धागेसे वस्त्र सिलते हैं॥ २३—२६½॥

हे विप्र! पापकर्म करनेवाले मनुष्योंको यातना देनेके लिये ये अनेक प्रकारके नरक हैं। इसी तरह और भी सैकड़ों तथा हजारों नरक हैं। हे देवर्षे! उनमेंसे कुछ ही बताये गये हैं, मैंने बहुत-से नरकोंका वर्णन ही नहीं किया। हे मुने! पापी मनुष्य अनेक यातनाओंसे भरे इन नरकोंमें जाते हैं और धर्मपरायणलोग सुखप्रद लोकोंमें जाते हैं॥ २७—२९॥

हे महामुने! मैंने जिस प्रकार आपसे भगवतीके पूजनके स्वरूप और देवीकी आराधनाके लक्षणोंका वर्णन विस्तारसे किया है, वही अपना धर्म है; जिसके

येनानुष्ठितमात्रेण नरो न नरकं व्रजेत्।
सा देवी भवपाथोधेरुद्धर्त्री पूजिता नृणाम्॥ ३१

अनुष्ठानमात्रसे मनुष्य नरकमें नहीं जाता। सम्यक् प्रकारसे पूजित होनेपर वे भगवती संसाररूपी समुद्रसे प्राणियोंका उद्धार कर देती हैं॥ ३०-३१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामष्टमस्कन्धे-ऽवशिष्टनरकवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः॥ २३॥

~~~O~~~

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

देवीकी उपासनाके विविध प्रसंगोंका वर्णन

नारद उवाच

धर्मश्च कीदृशस्तात देव्याराधनलक्षणः।
कथमाराधिता देवी सा ददाति परं पदम्॥ १
आराधनविधिः को वा कथमाराधिता कदा।
केन सा दुर्गनरकाद्दुर्गा त्राणप्रदा भवेत्॥ २

श्रीनारायण उवाच

देवर्षे शृणु चित्तैकाग्र्येण मे विदुषां वर।
यथा प्रसीदते देवी धर्माराधनतः स्वयम्॥ ३
स्वधर्मो यादृशः प्रोक्तस्तं च मे शृणु नारद।
अनादाविह संसारे देवी सम्पूजिता स्वयम्॥ ४
परिपालयते घोरसङ्कटादिषु सा मुने।
सा देवी पूज्यते लोकैर्यथावत्तद्विधिं शृणु॥ ५
प्रतिपत्तिथिमासाद्य देवीमाज्येन पूजयेत्।
घृतं दद्याद् ब्राह्मणाय रोगहीनो भवेत्सदा॥ ६
द्वितीयायां शर्करया पूजयेज्जगदम्बिकाम्।
शर्करां प्रददेद्विप्रे दीर्घायुर्जायते नरः॥ ७
तृतीयादिवसे देव्यै दुग्धं पूजनकर्मणि।
क्षीरं दत्त्वा द्विजाग्र्याय सर्वदुःखातिगो भवेत्॥ ८
चतुर्थ्यां पूजनेऽपूपा देया देव्यै द्विजाय च।
अपूपा एव दातव्या न विघ्नैरभिभूयते॥ ९

नारदजी बोले—हे तात! देवीके आराधनरूपी धर्मका स्वरूप क्या है? किस प्रकारसे उपासना करनेपर वे देवी परम पद प्रदान करती हैं? उनकी आराधनाकी विधि क्या है? कैसे, कब और किस स्तोत्रसे आराधना करनेपर वे भगवती दुर्गा कष्टप्रद नरकरूपी दुर्गसे उद्धार करके त्राणदायिनी होती हैं?॥ १-२॥

श्रीनारायण बोले—हे विद्वद्वर! हे देवर्षे! जिस प्रकार धर्मपूर्वक आराधना करनेसे देवी स्वयं प्रसन्न हो जाती हैं, उसे अब आप एकाग्रचित्त होकर मुझसे सुनिये। हे नारद! जैसा स्वधर्मका स्वरूप बताया गया है, उसे भी आप मुझसे सुनिये॥ ३½॥

हे मुने! इस अनादि संसारमें सम्यक्‌रूपसे पूजित होनेपर वे देवी घोर संकटोंमें स्वयं रक्षा करती हैं। वे भगवती जिस प्रकार लोकमें पूजी जाती हैं, वह विधि सुनिये॥ ४-५॥

[शुक्लपक्षकी] प्रतिपदा तिथिमें घृतसे देवीकी पूजा करनी चाहिये और ब्राह्मणको घृतका दान करना चाहिये; ऐसा करनेवाला सदा निरोग रहता है॥ ६॥

द्वितीया तिथिको शर्करासे जगदम्बाका पूजन करना चाहिये और विप्रको शर्कराका ही दान करना चाहिये; ऐसा करनेवाला मनुष्य दीर्घजीवी होता है॥ ७॥

तृतीया तिथिको भगवतीके पूजनकर्ममें उन्हें दुग्ध अर्पण करना चाहिये और श्रेष्ठ ब्राह्मणको दुग्धका दान करना चाहिये; ऐसा करनेसे मनुष्य सभी प्रकारके दुःखोंसे मुक्त हो जाता है॥ ८॥

चतुर्थीके दिन पूआ अर्पण करके देवीका पूजन करना चाहिये और ब्राह्मणको पूआ ही दान करना चाहिये; ऐसा करनेसे मनुष्य विघ्न-बाधाओंसे आक्रान्त नहीं होता॥ ९॥
~~~

पञ्चम्यां कदलीजातं फलं देव्यै निवेदयेत्।
तदेव ब्राह्मणे देयं मेधावान्पुरुषो भवेत्॥ १०

षष्ठीतिथौ मधु प्रोक्तं देवीपूजनकर्मणि।
ब्राह्मणाय च दातव्यं मधु कान्तिर्यतो भवेत्॥ ११

सप्तम्यां गुडनैवेद्यं देव्यै दत्त्वा द्विजाय च।
गुडं दत्त्वा शोकहीनो जायते द्विजसत्तम॥ १२

नारिकेलमथाष्टम्यां देव्यै नैवेद्यमर्पयेत्।
ब्राह्मणाय प्रदातव्यं तापहीनो भवेन्नरः॥ १३

नवम्यां लाजमम्बायै चार्पयित्वा द्विजाय च।
दत्त्वा सुखाधिको भूयादिह लोके परत्र च॥ १४

दशम्यामर्पयित्वा तु देव्यै कृष्णतिलान्मुने।
ब्राह्मणाय प्रदत्त्वा तु यमलोकाद्भयं न हि॥ १५

एकादश्यां दधि तथा देव्यै चार्पयते तु यः।
ददाति ब्राह्मणायैतद्देवीप्रियतमो भवेत्॥ १६

द्वादश्यां पृथुकान्देव्यै दत्त्वाचार्याय यो ददेत्।
तानेव च मुनिश्रेष्ठ स देवीप्रियतां व्रजेत्॥ १७

त्रयोदश्यां च दुर्गायै चणकान्प्रददाति च।
तानेव दत्त्वा विप्राय प्रजासन्ततिमान्भवेत्॥ १८

चतुर्दश्यां च देवर्षे देव्यै सक्तून्प्रयच्छति।
तानेव दद्याद्विप्राय शिवस्य दयितो भवेत्॥ १९

पायसं पूर्णिमातिथ्यामपर्णायै प्रयच्छति।
ददाति च द्विजाग्र्याय पितॄनुद्धरतेऽखिलान्॥ २०

पंचमी तिथिको भगवतीका पूजन करके उन्हें केला अर्पण करे और ब्राह्मणको केलेका ही दान करे; ऐसा करनेसे मनुष्य बुद्धिमान् होता है॥ १०॥

षष्ठी तिथिको भगवतीके पूजनकर्ममें मधुको प्रधान बताया गया है। ब्राह्मणको मधु ही देना चाहिये; ऐसा करनेसे मनुष्य दिव्य कान्तिवाला हो जाता है॥ ११॥

हे मुनिश्रेष्ठ! सप्तमी तिथिको भगवतीको गुड़का नैवेद्य अर्पण करके ब्राह्मणको गुड़का दान करनेसे मनुष्य सभी प्रकारके शोकोंसे मुक्त हो जाता है॥ १२॥

अष्टमीको भगवतीको नारियलका नैवेद्य अर्पित करना चाहिये और ब्राह्मणको भी नारियलका दान करना चाहिये; ऐसा करनेवाला मनुष्य सभी सन्तापोंसे रहित हो जाता है॥ १३॥

नवमीके दिन भगवतीको लावा अर्पण करनेके बाद ब्राह्मणको भी लावाका दान करनेसे मनुष्य इस लोकमें तथा परलोकमें परम सुखी रहता है॥ १४॥

हे मुने! दशमी तिथिको भगवतीको काले तिल अर्पित करने और ब्राह्मणको उसी तिलका दान करनेसे मनुष्यको यमलोकका भय नहीं रह जाता॥ १५॥

जो मनुष्य एकादशी तिथिको भगवतीको दधि अर्पित करता है और ब्राह्मणको भी दधि प्रदान करता है, वह देवीका परम प्रिय हो जाता है॥ १६॥

हे मुनिश्रेष्ठ! जो द्वादशीके दिन भगवतीको चिउड़ेका भोग लगाकर आचार्यको भी चिउड़ेका दान करता है, वह भगवतीका प्रियपात्र बन जाता है॥ १७॥

जो त्रयोदशीको भगवतीको चना अर्पित करता है और ब्राह्मणको चनेका दान करता है, वह प्रजाओं तथा सन्तानोंसे सदा सम्पन्न रहता है॥ १८॥

हे देवर्षे! जो मनुष्य चतुर्दशीके दिन भगवतीको सत्तू अर्पण करता है और ब्राह्मणको भी सत्तू प्रदान करता है, वह भगवान् शंकरका प्रिय हो जाता है॥ १९॥

जो पूर्णिमा तिथिको भगवती अपर्णाको खीरका भोग लगाता है और श्रेष्ठ ब्राह्मणको खीर प्रदान करता है, वह अपने सभी पितरोंका उद्धार कर देता है॥ २०॥

तत्तिथौ हवनं प्रोक्तं देवीप्रीत्यै महामुने।
तत्तत्तिथ्युक्तवस्तूनामशेषारिष्टनाशनम् ॥ २१
रविवारे पायसं च नैवेद्यं परिकीर्तितम्।
सोमवारे पयः प्रोक्तं भौमे च कदलीफलम्॥ २२
बुधवारे च सम्प्रोक्तं नवनीतं नवं द्विज।
गुरुवारे शर्करां च सितां भार्गववासरे॥ २३
शनिवारे घृतं गव्यं नैवेद्यं परिकीर्तितम्।
सप्तविंशतिनक्षत्रनैवेद्यं श्रूयतां मुने॥ २४
घृतं तिलं शर्करां च दधि दुग्धं किलाटकम्।
दधिकूर्ची मोदकं च फेणिकां घृतमण्डकम्॥ २५
कंसारं वटपत्रं च घृतपूरमतः परम्।
वटकं कोकरसकं पूरणं मधु सूरणम्॥ २६
गुडं पृथुकद्राक्षे च खर्जूरं चैव चारकम्।
अपूपं नवनीतं च मुद्गं मोदक एव च॥ २७
मातुलिङ्गमिति प्रोक्तं भनैवेद्यं च नारद।
विष्कम्भादिषु योगेषु प्रवक्ष्यामि निवेदनम्॥ २८
पदार्थानां कृतेष्वेषु प्रीणाति जगदम्बिका।
गुडं मधु घृतं दुग्धं दधि तक्रं त्वपूपकम्॥ २९
नवनीतं कर्कटीं च कूष्माण्डं चापि मोदकम्।
पनसं कदलं जम्बुफलमाम्रफलं तिलम्॥ ३०
नारङ्गं दाडिमं चैव बदरीफलमेव च।
धात्रीफलं पायसञ्च पृथुकं चणकं तथा॥ ३१
नारिकेलं जम्भफलं कसेरुं सूरणं तथा।
एतानि क्रमशो विप्र नैवेद्यानि शुभानि च॥ ३२
विष्कम्भादिषु योगेषु निर्णीतानि मनीषिभिः।
अथ नैवेद्यमाख्यास्ये करणानां पृथङ्मुने॥ ३३
कंसारं मण्डकं फेणी मोदकं वटपत्रकम्।
लड्डुकं घृतपूरं च तिलं दधि घृतं मधु॥ ३४
करणानामिदं प्रोक्तं देवीनैवेद्यमादरात्।

हे महामुने! देवीकी प्रसन्नताके लिये उसी तिथिको हवन भी बताया गया है। जिस तिथिमें नैवेद्यके लिये जो वस्तु बतायी गयी है, उसी वस्तुसे उन-उन तिथियोंमें हवन करनेसे सभी विपत्तियोंका नाश हो जाता है॥ २१॥

रविवारको खीरका नैवेद्य अर्पण करना चाहिये। सोमवारको दूध और मंगलवारको केलेका भोग लगाना बताया गया है॥ २२॥

हे द्विज! बुधको ताजा मक्खन भोगके लिये कहा गया है। गुरुवारको रक्त शर्करा, शुक्रवारको श्वेत शर्करा और शनिवारको गायका घृत नैवेद्यके रूपमें बताया गया है॥ २३½ ॥

हे मुने! अब सत्ताईस नक्षत्रोंमें दिये जानेवाले नैवेद्यके विषयमें सुनिये। घी, तिल, चीनी, दही, दूध, मलाई, लस्सी, लड्डू, फेणिका, घृतमण्ड (शक्करपारा), कंसार (गेहूँके आटे तथा गुड़से निर्मित पदार्थ विशेष), वटपत्र (पापड़), घेवर, वटक (बड़ा), कोकरस (खजूरका रस), घृतमिश्रित चनेका चूर्ण, मधु, सूरन, गुड़, चिउड़ा, दाख, खजूर, चारक, पूआ, मक्खन, मूँगका लड्डू और विजौरा नींबू—हे नारद! ये सत्ताईस नक्षत्रोंके नैवेद्य बताये गये हैं॥ २४—२७½ ॥

अब विष्कम्भ आदि योगोंमें नैवेद्य अर्पणके विषयमें कहूँगा। इन पदार्थोंको अर्पित करनेसे जगदम्बिका प्रसन्न होती हैं। गुड़, मधु, घी, दूध, दही, मट्ठा, पूआ, मक्खन, ककड़ी, कोंहड़ा, लड्डू, कटहल, केला, जामुन, आम, तिल, संतरा, अनार, बेरका फल, आमला, खीर, चिउड़ा, चना, नारियल, जम्भफल (जम्भीरा), कसेरू और सूरन—हे विप्र! ये शुभ नैवेद्य क्रमशः विष्कम्भ आदि योगोंमें [भगवतीको] अर्पण करनेके लिये विद्वानोंके द्वारा निश्चित किये गये हैं॥ २८—३२½ ॥

हे मुने! इसके बाद अब मैं भिन्न-भिन्न करणोंके नैवेद्यके बारेमें बताऊँगा। कंसार, मण्डक, फेनी, मोदक, वटपत्र, लड्डू, घृतपूर, तिल, दही, घी और मधु—ये करणोंके नैवेद्य बताये गये हैं, जिन्हें आदरपूर्वक भगवतीको अर्पण करना चाहिये॥ ३३-३४½ ॥

अथान्यत्सम्प्रवक्ष्यामि देवीप्रीतिकरं परम्॥ ३५

विधानं नारदमुने शृणु तत्सर्वमादृतः।
चैत्रशुद्धतृतीयायां नरो मधुकवृक्षकम्॥ ३६

पूजयेत्पञ्च खाद्यं च नैवेद्यमुपकल्पयेत्।
एवं द्वादशमासेषु तृतीयातिथिषु क्रमात्॥ ३७

शुक्लपक्षे विधानेन नैवेद्यमभिदध्महे।
वैशाखमासे नैवेद्यं गुडयुक्तं च नारद॥ ३८

ज्येष्ठमासे मधु प्रोक्तं देवीप्रीत्यर्थमेव तु।
आषाढे नवनीतं च मधुकस्य निवेदनम्॥ ३९

श्रावणे दधि नैवेद्यं भाद्रमासे च शर्करा।
आश्विने पायसं प्रोक्तं कार्तिके पय उत्तमम्॥ ४०

मार्गे फेण्युत्तमा प्रोक्ता पौषे च दधिकूर्चिका।
माघे मासि च नैवेद्यं घृतं गव्यं समाहरेत्॥ ४१

नारिकेलं च नैवेद्यं फाल्गुने परिकीर्तितम्।
एवं द्वादशनैवेद्यैर्मासे च क्रमतोऽर्चयेत्॥ ४२

मङ्गला वैष्णवी माया कालरात्रिर्दुरत्यया।
महामाया मतङ्गी च काली कमलवासिनी॥ ४३

शिवा सहस्रचरणा सर्वमङ्गलरूपिणी।
एभिर्नामपदैर्देवीं मधूके परिपूजयेत्॥ ४४

ततः स्तुवीत देवेशीं मधूकस्थां महेश्वरीम्।
सर्वकामसमृद्ध्यर्थं व्रतपूर्णत्वसिद्धये॥ ४५

नमः पुष्करनेत्रायै जगद्धात्र्यै नमोऽस्तु ते।
माहेश्वर्यै महादेव्यै महामङ्गलमूर्तये॥ ४६

परमा पापहन्त्री च परमार्गप्रदायिनी।
परमेश्वरी प्रजोत्पत्तिः परब्रह्मस्वरूपिणी॥ ४७

मददात्री मदोन्मत्ता मानगम्या महोन्नता।
मनस्विनी मुनिध्येया मार्तण्डसहचारिणी॥ ४८

हे नारदमुने! अब मैं देवीको प्रसन्न करनेवाले दूसरे श्रेष्ठ विधानका वर्णन करूँगा, उस सम्पूर्ण विधानको आदरपूर्वक सुनिये। चैत्रमासके शुक्ल-पक्षमें तृतीया तिथिको महुएके वृक्षमें भगवतीकी भावना करके उनका पूजन करे और नैवेद्यमें पाँच प्रकारके भोज्य-पदार्थ अर्पित करे। इसी प्रकार बारहों महीनोंके शुक्लपक्षकी तृतीया तिथिको पूजन-विधानके साथ क्रमशः नैवेद्य अर्पित करे। हे नारद! वैशाख-मासमें गुड़मिश्रित पदार्थ निवेदित करना चाहिये। ज्येष्ठ-महीनेमें भगवतीकी प्रसन्नताके लिये मधु अर्पित करना चाहिये। आषाढ़-महीनेमें नवनीत और महुएके रससे बना हुआ पदार्थ अर्पित करना चाहिये॥ ३५—३९॥

श्रावण-मासमें दही, भाद्रपद-मासमें शर्करा, आश्विन-मासमें खीर तथा कार्तिक-मासमें दूधका नैवेद्य उत्तम कहा गया है। मार्गशीर्ष-महीनेमें फेनी एवं पौष-माहमें दधिकूर्चिका (लस्सी)-का नैवेद्य उत्तम कहा गया है। माघके महीनेमें गायके घीका नैवेद्य अर्पण करना चाहिये; फाल्गुनके महीनेमें नारियलका नैवेद्य बताया गया है। इस प्रकार बारह महीनोंमें बारह नैवेद्योंसे क्रमशः भगवतीकी पूजा करनी चाहिये॥ ४०—४२॥

मंगला, वैष्णवी, माया, कालरात्रि, दुरत्यया, महामाया, मतंगी, काली, कमलवासिनी, शिवा, सहस्रचरणा और सर्वमंगलरूपिणी—इन नामोंका उच्चारण करते हुए महुएके वृक्षमें भगवतीकी पूजा करनी चाहिये। तत्पश्चात् सभी कामनाओंकी सिद्धि तथा व्रतकी पूर्णताके लिये महुएके वृक्षमें स्थित देवेशी महेश्वरीकी इस प्रकार स्तुति करनी चाहिये॥ ४३—४५॥

कमलके समान नेत्रोंवाली आप जगद्धात्रीको नमस्कार है। आप महामंगलमूर्तिस्वरूपा महेश्वरी महादेवीको नमस्कार है। [हे देवि!] परमा, पापहन्त्री, परमार्गप्रदायिनी, परमेश्वरी, प्रजोत्पत्ति, परब्रह्मस्वरूपिणी, मददात्री, मदोन्मत्ता, मानगम्या, महोन्नता, मनस्विनी, मुनिध्येया, मार्तण्डसहचारिणी—ये आपके नाम हैं। हे

जय लोकेश्वरि प्राज्ञे प्रलयाम्बुदसन्निभे।
महामोहविनाशार्थं पूजितासि सुरासुरैः॥ ४९

यमलोकाभावकर्त्री यमपूज्या यमाग्रजा।
यमनिग्रहरूपा च यजनीये नमो नमः॥ ५०

समस्वभावा सर्वेशी सर्वसङ्गविवर्जिता।
सङ्गनाशकरी काम्यरूपा कारुण्यविग्रहा॥ ५१

कङ्कालक्रूरा कामाक्षी मीनाक्षी मर्मभेदिनी।
माधुर्यरूपशीला च मधुरस्वरपूजिता॥ ५२

महामन्त्रवती मन्त्रगम्या मन्त्रप्रियङ्करी।
मनुष्यमानसगमा मन्मथारिप्रियङ्करी॥ ५३

अश्वत्थवटनिम्बाम्रकपित्थबदरीगते।
पनसार्ककरीरादिक्षीरवृक्षस्वरूपिणी॥ ५४

दुग्धवल्लीनिवासार्हे दयनीये दयाधिके।
दाक्षिण्यकरुणारूपे जय सर्वज्ञवल्लभे॥ ५५

एवं स्तवेन देवेशीं पूजनान्ते स्तुवीत ताम्।
व्रतस्य सकलं पुण्यं लभते सर्वदा नरः॥ ५६

नित्यं यः पठते स्तोत्रं देवीप्रीतिकरं नरः।
आधिव्याधिभयं नास्ति रिपुभीतिर्न तस्य हि॥ ५७

अर्थार्थी चार्थमाप्नोति धर्मार्थी धर्ममाप्नुयात्।
कामानवाप्नुयात्कामी मोक्षार्थी मोक्षमाप्नुयात्॥ ५८

ब्राह्मणो वेदसम्पन्नो विजयी क्षत्रियो भवेत्।
वैश्यश्च धनधान्याढ्यो भवेच्छूद्रः सुखाधिकः॥ ५९

स्तोत्रमेतच्छ्राद्धकाले यः पठेत्प्रयतो नरः।
पितॄणामक्षया तृप्तिर्जायते कल्पवर्तिनी॥ ६०

लोकेश्वरि! हे प्राज्ञे! आपकी जय हो। हे प्रलयकालीन मेघके समान प्रतीत होनेवाली! देवता और दानव महामोहके विनाशके लिये आपकी उपासना करते हैं॥ ४६—४९॥

आप यमलोक मिटानेवाली, यमराजपूज्या, यमकी अग्रजा और यमनिग्रहस्वरूपिणी हैं। हे परमाराध्ये! आपको बार-बार नमस्कार है। आप समस्वभावा, सर्वेशी, सर्वसंगविवर्जिता, संगनाशकरी, काम्यरूपा, कारुण्यविग्रहा, कंकालक्रूरा, कामाक्षी, मीनाक्षी, मर्मभेदिनी, माधुर्यरूपशीला, मधुरस्वरपूजिता, महामन्त्रवती, मन्त्रगम्या, मन्त्रप्रियंकरी, मनुष्य-मानसगमा और मन्मथारिप्रियंकरी—इन नामोंसे विख्यात हैं॥ ५०—५३॥

पीपल, वट, नीम, आम, कैथ एवं बेरमें निवास करनेवाली आप कटहल, मदार, करील, जामुन आदि क्षीरवृक्षस्वरूपिणी हैं। दुग्धवल्लीमें निवास करनेवाली, दयनीय, महान् दयालु, कृपालुता एवं करुणाकी साक्षात् मूर्तिस्वरूपा एवं सर्वज्ञजनोंकी प्रियस्वरूपिणि! आपकी जय हो॥ ५४-५५॥

इस प्रकार पूजनके पश्चात् इस स्तोत्रसे उन देवेश्वरीकी स्तुति करनी चाहिये। ऐसा करनेवाला मनुष्य व्रतका सम्पूर्ण पुण्य प्राप्त कर लेता है॥ ५६॥

जो मनुष्य भगवतीको प्रसन्न करनेवाले इस स्तोत्रका नित्य पाठ करता है, उसे किसी प्रकारके शारीरिक या मानसिक रोगका भय नहीं होता और उसे शत्रुओंका भी कोई भय नहीं रहता। इस स्तोत्रके प्रभावसे अर्थ चाहनेवाला अर्थ प्राप्त कर लेता है, धर्मके अभिलाषीको धर्मकी प्राप्ति हो जाती है, कामीको काम सुलभ हो जाते हैं और मोक्षकी इच्छा रखनेवालेको मोक्ष प्राप्त हो जाता है। इस स्तोत्रके पाठसे ब्राह्मण वेदसम्पन्न, क्षत्रिय विजयी, वैश्य धनधान्यसे परिपूर्ण और शूद्र परम सुखी हो जाता है। जो मनुष्य श्राद्धके समय मनको एकाग्र करके इस स्तोत्रका पाठ करता है, उसके पितरोंकी एक कल्पतक स्थायी रहनेवाली अक्षय तृप्ति हो जाती है॥ ५७—६०॥

एवमाराधनं देव्याः समुक्तं सुरपूजितम्।
यः करोति नरो भक्त्या स देवीलोकभाग्भवेत्॥ ६१

[हे नारद!] इस प्रकार मैंने देवताओंके द्वारा देवीकी की गयी आराधना तथा पूजाके विषयमें आपको भलीभाँति बता दिया। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक भगवतीकी उपासना करता है, वह देवीलोकका अधिकारी हो जाता है॥ ६१॥

देवीपूजनतो विप्र सर्वे कामा भवन्ति हि।
सर्वपापहतिः शुद्धा मतिरन्ते प्रजायते॥ ६२

हे विप्र! भगवतीके पूजनसे मनुष्यकी सभी कामनाएँ सिद्ध हो जाती हैं और अन्तमें उसकी बुद्धि सभी पापोंसे रहित होकर निर्मल हो जाती है॥ ६२॥

यत्र तत्र भवेत्पूज्यो मान्यो मानधनेषु च।
जायते जगदम्बायाः प्रसादेन विरञ्चिज॥ ६३

नरकाणां न तस्यास्ति भयं स्वप्नेऽपि कुत्रचित्।
महामायाप्रसादेन पुत्रपौत्रादिवर्धनः॥ ६४

देवीभक्तो भवत्येव नात्र कार्या विचारणा।

हे ब्रह्मपुत्र! भगवतीके अनुग्रहसे मनुष्य जहाँ-तहाँ पूजित होता है और मानको ही धन माननेवाले पुरुषोंमें सम्माननीय हो जाता है। उसे स्वप्नमें भी नरकोंका भय नहीं रहता। महामाया भगवतीकी कृपासे देवीका भक्त पुत्र तथा पौत्रोंसे सदा सम्पन्न रहता है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं करना चाहिये॥ ६३-६४½॥

इत्येवं ते समाख्यातं नरकोद्धारलक्षणम्॥ ६५
पूजनं हि महादेव्याः सर्वमङ्गलकारकम्।
मधूकपूजनं तद्वन्मासानां क्रमतो मुने॥ ६६
सर्वं समाचरेद्यस्तु पूजनं मधुकाह्वयम्।
न तस्य रोगबाधादिभयमुद्भवतेऽनघ॥ ६७

[हे नारद!] यह जो मैंने आपसे महादेवीके पूजनका वर्णन किया है, वह नरकसे उद्धार करनेवाला तथा सम्पूर्ण रूपसे मंगलकारी है। हे मुने! चैत्र आदि महीनोंमें क्रमसे महुएके वृक्षमें भगवतीकी पूजा करनी चाहिये। हे अनघ! जो मनुष्य मधूक नामक वृक्षमें सम्यक्‌रूपसे पूजन करता है; उसे रोग, बाधा आदिका कोई भय उत्पन्न नहीं होता॥ ६५—६७॥

अथान्यदपि वक्ष्यामि प्रकृतेः पञ्चकं परम्।
नाम्ना रूपेण चोत्पत्त्या जगदानन्ददायकम्॥ ६८
साख्यानं च समाहात्म्यं प्रकृतेः पञ्चकं मुने।
कुतूहलकरं चैव शृणु मुक्तिविधायकम्॥ ६९

अब मैं देवी मूलप्रकृतिके श्रेष्ठ पंचकसे सम्बन्धित अन्य प्रसंगका वर्णन कर रहा हूँ। यह प्रसंग अपने नाम, रूप और प्रादुर्भावसे सम्पूर्ण जगत्‌को आनन्दित कर देनेवाला है। हे मुने! यह प्रकृतिपंचक कुतूहल उत्पन्न करनेवाला तथा मुक्तिप्रदायक है; आख्यान तथा माहात्म्यसहित इसका श्रवण कीजिये॥ ६८-६९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायामष्टमस्कन्धे देवीपूजनविधिनिरूपणं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः॥ २४॥



॥ अष्टमः स्कन्धः समाप्तः॥

॥ श्रीजगदम्बिकायै नमः ॥

॥ ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ॥

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण

नवमः स्कन्धः

अथ प्रथमोऽध्यायः

प्रकृतितत्त्वविमर्श; प्रकृतिके अंश, कला एवं कलांशसे उत्पन्न देवियोंका वर्णन

श्रीनारायण उवाच

गणेशजननी दुर्गा राधा लक्ष्मीः सरस्वती।
सावित्री च सृष्टिविधौ प्रकृतिः पञ्चधा स्मृता॥ १

नारद उवाच

आविर्बभूव सा केन का वा सा ज्ञानिनांवर।
किं वा तल्लक्षणं साधो बभूव पञ्चधा कथम्॥ २

सर्वासां चरितं पूजाविधानं गुण ईप्सितः।
अवतारः कुत्र कस्यास्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥ ३

श्रीनारायण उवाच

प्रकृतेर्लक्षणं वत्स को वा वक्तुं क्षमो भवेत्।
किञ्चित्तथापि वक्ष्यामि यच्छ्रुतं धर्मवक्त्रतः॥ ४

प्रकृष्टवाचकः प्रश्च कृतिश्च सृष्टिवाचकः।
सृष्टौ प्रकृष्टा या देवी प्रकृतिः सा प्रकीर्तिता॥ ५

गुणे सत्त्वे प्रकृष्टे च प्रशब्दो वर्तते श्रुतः।
मध्यमे रजसि कृश्च तिशब्दस्तमसि स्मृतः॥ ६

त्रिगुणात्मस्वरूपा या सा च शक्तिसमन्विता।
प्रधाना सृष्टिकरणे प्रकृतिस्तेन कथ्यते॥ ७

प्रथमे वर्तते प्रश्च कृतिश्च सृष्टिवाचकः।
सृष्टेरादौ च या देवी प्रकृतिः सा प्रकीर्तिता॥ ८

श्रीनारायण बोले—सृष्टिविधानमें मूलप्रकृति पाँच प्रकारकी कही गयी है—गणेशजननी दुर्गा, राधा, लक्ष्मी, सरस्वती और सावित्री॥ १॥

नारदजी बोले—हे ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ! आप कृपापूर्वक बतायें कि किस निमित्त उनका आविर्भाव होता है, उनका स्वरूप क्या है, उनका लक्षण क्या है तथा वे किस प्रकार पाँच रूपोंमें प्रकट हुईं। हे साधो! इन सभी स्वरूपोंका चरित्र, पूजाविधान, अभीष्ट गुण तथा किसका अवतार कहाँ हुआ—यह सब विस्तारपूर्वक मुझे बतायें॥ २-३॥

श्रीनारायण बोले—हे वत्स! देवी प्रकृतिके सम्पूर्ण लक्षण कौन बता सकता है? फिर भी धर्मराजके मुखसे मैंने जो सुना है, उसे यत्किंचित् रूपसे बताता हूँ॥ ४॥

'प्र' अक्षर प्रकृष्टका वाचक है और 'कृति' से सृष्टिका बोध होता है। जो देवी सृष्टिप्रक्रियामें प्रकृष्ट हैं, वे ही प्रकृति कही गयी हैं। 'प्र' शब्द प्रकृष्ट सत्त्वगुण, 'कृ' रजोगुण और 'ति' शब्द तमोगुणका प्रतीक कहा गया है। जो त्रिगुणात्मिका हैं, वे ही सर्वशक्तिसे सम्पन्न होकर प्रधानरूपसे सृष्टिकार्यमें संलग्न रहती हैं, अतः उन्हें 'प्रकृति' या 'प्रधान' कहा जाता है॥ ५—७॥

प्रथमका बोधक 'प्र' और सृष्टिवाचक 'कृति' शब्दके संयोगसे सृष्टिके प्रारम्भमें जो देवी विद्यमान रहती हैं, उन्हें प्रकृति कहा गया है॥ ८॥

योगेनात्मा सृष्टिविधौ द्विधारूपो बभूव सः।
पुमांश्च दक्षिणार्धाङ्गो वामार्धा प्रकृतिः स्मृता॥ ९

सा च ब्रह्मस्वरूपा च नित्या सा च सनातनी।
यथात्मा च तथा शक्तिर्यथाग्नौ दाहिका स्थिता॥ १०

अत एव हि योगीन्द्रैः स्त्रीपुम्भेदो न मन्यते।
सर्वं ब्रह्ममयं ब्रह्मञ्छश्वत्सदपि नारद॥ ११

स्वेच्छामयस्येच्छया च श्रीकृष्णस्य सिसृक्षया।
साविर्बभूव सहसा मूलप्रकृतिरीश्वरी॥ १२

तदाज्ञया पञ्चविधा सृष्टिकर्मविभेदिका।
अथ भक्तानुरोधाद्वा भक्तानुग्रहविग्रहा॥ १३

गणेशमाता दुर्गा या शिवरूपा शिवप्रिया।
नारायणी विष्णुमाया पूर्णब्रह्मस्वरूपिणी॥ १४

ब्रह्मादिदेवैर्मुनिभिर्मनुभिः पूजिता स्तुता।
सर्वाधिष्ठातृदेवी सा शर्वरूपा सनातनी॥ १५

धर्मसत्यपुण्यकीर्तिर्यशोमङ्गलदायिनी।
सुखमोक्षहर्षदात्री शोकार्तिदुःखनाशिनी॥ १६

शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणा।
तेजःस्वरूपा परमा तदधिष्ठातृदेवता॥ १७

सर्वशक्तिस्वरूपा च शक्तिरीशस्य सन्ततम्।
सिद्धेश्वरी सिद्धिरूपा सिद्धिदा सिद्धिरीश्वरी॥ १८

बुद्धिर्निद्रा क्षुत्पिपासा छाया तन्द्रा दया स्मृतिः।
जातिः क्षान्तिश्च भ्रान्तिश्च शान्तिः कान्तिश्च चेतना॥ १९

तुष्टिः पुष्टिस्तथा लक्ष्मीर्धृतिर्माया तथैव च।
सर्वशक्तिस्वरूपा सा कृष्णस्य परमात्मनः॥ २०

सृष्टिके लिये योगमायाका आश्रय लेकर परमात्मा दो रूपोंमें विभक्त हो गये, जिनका दक्षिणार्ध भाग पुरुष और वामार्ध भाग प्रकृति कहा जाता है॥ ९॥

वे ब्रह्मस्वरूपा हैं, नित्या हैं और सनातनी हैं। जैसे अग्निमें दाहिका शक्ति अभिन्नरूपसे स्थित है, वैसे ही परमात्मा और प्रकृतिरूपा शक्ति भी अभिन्न हैं॥ १०॥

हे ब्रह्मन्! हे नारद! इसीलिये योगीजन परमात्मामें स्त्री और पुरुषभावसे भेद नहीं मानते और सब कुछ ब्रह्ममय है—ऐसा निरन्तर चिन्तन करते हैं॥ ११॥

स्वतन्त्रभाववाले श्रीकृष्णकी इच्छासे वे मूलप्रकृति भगवती सृष्टि करनेकी कामनासे सहसा प्रकट हो गयीं। उनकी आज्ञासे भिन्न-भिन्न कर्मोंकी अधिष्ठात्री होकर एवं भक्तोंके अनुरोधसे उनपर अनुग्रह करनेहेतु विग्रह धारण करनेवाली वे पाँच रूपोंमें अवतरित हुईं॥ १२-१३॥

जो गणेशमाता दुर्गा शिवप्रिया तथा शिवरूपा हैं, वे ही विष्णुमाया नारायणी हैं तथा पूर्णब्रह्म स्वरूपा हैं। ब्रह्मादि देवता, मुनि तथा मनुगण सभी उनकी पूजा-स्तुति करते हैं। वे सबकी अधिष्ठात्रीदेवी हैं, सनातनी हैं तथा शिवस्वरूपा हैं॥ १४-१५॥

वे धर्म, सत्य, पुण्य तथा कीर्तिस्वरूपा हैं; वे यश, कल्याण, सुख, प्रसन्नता और मोक्ष भी देती हैं तथा शोक, दुःख और संकटोंका नाश करनेवाली हैं॥ १६॥

वे अपनी शरणमें आये हुए दीन और आर्तजनोंकी निरन्तर रक्षा करती हैं। वे ज्योतिस्वरूपा हैं, उनका विग्रह परम तेजस्वी है और वे भगवान् श्रीकृष्णके तेजकी अधिष्ठातृदेवता हैं॥ १७॥

वे सर्वशक्तिस्वरूपा हैं और महेश्वरकी शाश्वत शक्ति हैं। वे ही साधकोंको सिद्धि देनेवाली, सिद्धिरूपा, सिद्धेश्वरी, सिद्धि तथा ईश्वरी हैं। बुद्धि, निद्रा, क्षुधा, पिपासा, छाया, तन्द्रा, दया, स्मृति, जाति, क्षान्ति, भ्रान्ति, शान्ति, कान्ति, चेतना, तुष्टि, पुष्टि, लक्ष्मी, धृति तथा माया—ये इनके नाम हैं। वे परमात्मा श्रीकृष्णके पास सर्वशक्तिस्वरूपा होकर स्थित रहती हैं॥ १८—२०॥

उक्तः श्रुतौ श्रुतगुणश्चातिस्वल्पो यथागमम्।
गुणोऽस्त्यनन्तोऽनन्ताया अपरां च निशामय॥ २१

शुद्धसत्त्वस्वरूपा या पद्मा सा परमात्मनः।
सर्वसम्पत्स्वरूपा सा तदधिष्ठातृदेवता॥ २२

कान्तातिदान्ता शान्ता च सुशीला सर्वमङ्गला।
लोभमोहकामरोषमदाहङ्कारवर्जिता ॥ २३

भक्तानुरक्ता पत्युश्च सर्वाभ्यश्च पतिव्रता।
प्राणतुल्या भगवतः प्रेमपात्रं प्रियंवदा॥ २४

सर्वसस्यात्मिका देवी जीवनोपायरूपिणी।
महालक्ष्मीश्च वैकुण्ठे पतिसेवारता सती॥ २५

स्वर्गे च स्वर्गलक्ष्मीश्च राजलक्ष्मीश्च राजसु।
गृहेषु गृहलक्ष्मीश्च मर्त्यानां गृहिणां तथा॥ २६

सर्वप्राणिषु द्रव्येषु शोभारूपा मनोहरा।
कीर्तिरूपा पुण्यवतां प्रभारूपा नृपेषु च॥ २७

वाणिज्यरूपा वणिजां पापिनां कलहाङ्कुरा।
दयारूपा च कथिता वेदोक्ता सर्वसम्मता॥ २८

सर्वपूज्या सर्ववन्द्या चान्यां मत्तो निशामय।
वाग्बुद्धिविद्याज्ञानाधिष्ठात्री च परमात्मनः॥ २९

सर्वविद्यास्वरूपा या सा च देवी सरस्वती।
सा बुद्धिः कविता मेधा प्रतिभा स्मृतिदा नृणाम्॥ ३०

नानाप्रकारसिद्धान्तभेदार्थकलना मता।
व्याख्याबोधस्वरूपा च सर्वसन्देहभञ्जिनी॥ ३१

विचारकारिणी ग्रन्थकारिणी शक्तिरूपिणी।
स्वरसङ्गीतसन्धानतालकारणरूपिणी ॥ ३२

श्रुतियोंमें इनके प्रसिद्ध गुणोंका थोड़ेमें वर्णन किया गया है, जैसा कि आगमोंमें भी वर्णन उपलब्ध है। उन अनन्ताके अनन्त गुण हैं। अब दूसरे स्वरूपके विषयमें सुनिये॥ २१॥

जो शुद्ध सत्त्वरूपा महालक्ष्मी हैं, वे भी परमात्माकी ही शक्ति हैं, वे सर्वसम्पत्स्वरूपिणी तथा सम्पत्तियोंकी अधिष्ठातृदेवता हैं॥ २२॥

वे शोभामयी, अति संयमी, शान्त, सुशील, सर्वमंगलरूपा हैं और लोभ, मोह, काम, क्रोध, मद, अहंकारादिसे रहित हैं॥ २३॥

भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाली, अपने स्वामीके लिये सबसे अधिक पतिव्रता, प्रभुके लिये प्राणतुल्य, उनकी प्रेमपात्र तथा प्रियवादिनी, सभी धन-धान्यकी अधिष्ठात्री तथा आजीविकास्वरूपिणी वे देवी सती महालक्ष्मी वैकुण्ठमें अपने स्वामी भगवान् विष्णुकी सेवामें तत्पर रहती हैं॥ २४-२५॥

वे स्वर्गमें स्वर्गलक्ष्मी, राजाओंमें राजलक्ष्मी, गृहस्थ मनुष्योंके घरमें गृहलक्ष्मी और सभी प्राणियों तथा पदार्थोंमें शोभारूपसे विराजमान रहती हैं। वे मनोहर हैं। वे पुण्यवान् लोगोंमें कीर्तिरूपसे, राजपुरुषोंमें प्रभारूपसे, व्यापारियोंमें वाणिज्यरूपसे तथा पापियोंमें कलहरूपसे विराजती हैं। वे दयारूपा कही गयी हैं, वेदोंमें उनका निरूपण हुआ है, वे सर्वमान्य, सर्वपूज्य तथा सबके लिये वन्दनीय हैं। अब आप अन्य स्वरूपके विषयमें मुझसे सुनिये॥ २६—२८½ ॥

जो परमात्माकी वाणी, बुद्धि, विद्या तथा ज्ञानकी अधिष्ठात्री हैं; सभी विद्याओंकी विग्रहरूपा हैं, वे देवी सरस्वती हैं। वे मनुष्योंको बुद्धि, कवित्व शक्ति, मेधा, प्रतिभा और स्मृति प्रदान करती हैं। वे भिन्न-भिन्न सिद्धान्तोंके भेद-निरूपणका सामर्थ्य रखनेवाली, व्याख्या और बोधरूपिणी तथा सारे सन्देहोंका नाश करनेवाली कही गयी हैं। वे विचारकारिणी, ग्रन्थकारिणी, शक्तिरूपिणी तथा स्वर-संगीत-सन्धान तथा तालकी कारणरूपा हैं। वे ही विषय, ज्ञान तथा वाणीस्वरूपा हैं; सभी प्राणियोंकी संजीवनी शक्ति हैं; वे व्याख्या और वाद-विवाद करनेवाली हैं; शान्तिस्वरूपा हैं तथा वीणा और पुस्तक धारण करनेवाली हैं। वे शुद्ध

विषयज्ञानवाग्रूपा प्रतिविश्वोपजीविनी।
व्याख्यावादकरी शान्ता वीणापुस्तकधारिणी॥ ३३

शुद्धसत्त्वस्वरूपा च सुशीला श्रीहरिप्रिया।
हिमचन्दनकुन्देन्दुकुमुदाम्भोजसन्निभा॥ ३४

यजन्ती परमात्मानं श्रीकृष्णं रत्नमालया।
तपःस्वरूपा तपसां फलदात्री तपस्विनाम्॥ ३५

सिद्धिविद्यास्वरूपा च सर्वसिद्धिप्रदा सदा।
यया विना तु विप्रौघो मूको मृतसमः सदा॥ ३६

देवी तृतीया गदिता श्रुत्युक्ता जगदम्बिका।
यथागमं यथाकिञ्चिदपरां त्वं निबोध मे॥ ३७

माता चतुर्णां वर्णानां वेदाङ्गानां च छन्दसाम्।
सन्ध्यावन्दनमन्त्राणां तन्त्राणां च विचक्षणा॥ ३८

द्विजातिजातिरूपा च जपरूपा तपस्विनी।
ब्रह्मण्यतेजोरूपा च सर्वसंस्काररूपिणी॥ ३९

पवित्ररूपा सावित्री गायत्री ब्रह्मणः प्रिया।
तीर्थानि यस्याः संस्पर्शं वाञ्छन्ति ह्यात्मशुद्धये॥ ४०

शुद्धस्फटिकसंकाशा शुद्धसत्त्वस्वरूपिणी।
परमानन्दरूपा च परमा च सनातनी॥ ४१

परब्रह्मस्वरूपा च निर्वाणपददायिनी।
ब्रह्मतेजोमयी शक्तिस्तदधिष्ठातृदेवता॥ ४२

यत्पादरजसा पूतं जगत्सर्वं च नारद।
देवी चतुर्थी कथिता पञ्चमीं वर्णयामि ते॥ ४३

पञ्चप्राणाधिदेवी या पञ्चप्राणस्वरूपिणी।
प्राणाधिकप्रियतमा सर्वाभ्यः सुन्दरी परा॥ ४४

सर्वयुक्ता च सौभाग्यमानिनी गौरवान्विता।
वामाङ्गार्धस्वरूपा च गुणेन तेजसा समा॥ ४५

परावरा सारभूता परमाद्या सनातनी।
परमानन्दरूपा च धन्या मान्या च पूजिता॥ ४६

सत्त्वगुणमयी, सुशील तथा श्रीहरिकी प्रिया हैं। उनकी कान्ति हिम, चन्दन, कुन्द, चन्द्रमा, कुमुद और श्वेत कमलके समान है। रत्नमाला लेकर परमात्मा श्रीकृष्णका जप करती हुई वे साक्षात् तपःस्वरूपा हैं तथा तपस्वियोंको उनकी तपस्याका फल प्रदान करनेवाली हैं। वे सिद्धिविद्यास्वरूपा और सदा सब प्रकारकी सिद्धियाँ प्रदान करनेवाली हैं। जिनकी कृपाके बिना विप्रसमूह सदा मूक और मृततुल्य रहता है, उन श्रुतिप्रतिपादित तथा आगममें वर्णित तृतीया शक्ति जगदम्बिका भगवती सरस्वतीका यत्किंचित् वर्णन मैंने किया। अब अन्य शक्तिके विषयमें आप मुझसे सुनिये॥ २९—३७॥

वे विचक्षण सावित्री चारों वर्णों, वेदांगों, छन्दों, सन्ध्यावन्दनके मन्त्रों एवं समस्त तन्त्रोंकी जननी हैं। वे द्विजातियोंकी जातिरूपा हैं; जपरूपिणी, तपस्विनी, ब्राह्मणोंकी तेजरूपा और सर्वसंस्काररूपिणी हैं॥ ३८-३९॥

वे ब्रह्मप्रिया सावित्री और गायत्री परम पवित्र रूपसे विराजमान रहती हैं, तीर्थ भी अपनी शुद्धिके लिये जिनके स्पर्शकी इच्छा करते हैं॥ ४०॥

वे शुद्ध स्फटिककी कान्तिवाली, शुद्धसत्त्वगुणमयी, सनातनी, पराशक्ति तथा परमानन्दरूपा हैं। हे नारद! वे परब्रह्मस्वरूपा, मुक्तिप्रदायिनी, ब्रह्मतेजोमयी, शक्तिस्वरूपा तथा शक्तिकी अधिष्ठातृदेवता भी हैं, जिनके चरणरजसे समस्त संसार पवित्र हो जाता है। इस प्रकार चौथी शक्तिका वर्णन कर दिया। अब पाँचवीं शक्तिके विषयमें आपसे कहता हूँ॥ ४१—४३॥

जो पंच प्राणोंकी अधिष्ठात्री, पंच प्राणस्वरूपा, सभी शक्तियोंमें परम सुन्दरी, परमात्माके लिये प्राणोंसे भी अधिक प्रियतम, सर्वगुणसम्पन्न, सौभाग्यमानिनी, गौरवमयी, श्रीकृष्णकी वामांगार्धस्वरूपा और गुण-तेजमें परमात्माके समान ही हैं; वे परावरा, सारभूता, परमा, आदिरूपा, सनातनी, परमानन्दमयी, धन्य, मान्य और पूज्य हैं॥ ४४—४६॥

रासक्रीडाधिदेवी श्रीकृष्णस्य परमात्मनः।
रासमण्डलसम्भूता रासमण्डलमण्डिता॥ ४७

रासेश्वरी सुरसिका रासावासनिवासिनी।
गोलोकवासिनी देवी गोपीवेषविधायिका॥ ४८

परमाह्लादरूपा च सन्तोषहर्षरूपिणी।
निर्गुणा च निराकारा निर्लिप्तात्मस्वरूपिणी॥ ४९

निरीहा निरहङ्कारा भक्तानुग्रहविग्रहा।
वेदानुसारिध्यानेन विज्ञाता सा विचक्षणैः॥ ५०

दृष्टिदृष्टा न सा चेशैः सुरेन्द्रैर्मुनिपुङ्गवैः।
वह्निशुद्धांशुकधरा नानालङ्कारभूषिता॥ ५१

कोटिचन्द्रप्रभा पुष्टसर्वश्रीयुक्तविग्रहा।
श्रीकृष्णभक्तिदास्यैककरा च सर्वसम्पदाम्॥ ५२

अवतारे च वाराहे वृषभानुसुता च या।
यत्पादपद्मसंस्पर्शात्पवित्रा च वसुन्धरा॥ ५३

ब्रह्मादिभिरदृष्टा या सर्वैर्दृष्टा च भारते।
स्त्रीरत्नसारसम्भूता कृष्णवक्षःस्थले स्थिता॥ ५४

यथाम्बरे नवघने लोला सौदामनी मुने।
षष्टिवर्षसहस्राणि प्रतप्तं ब्रह्मणा पुरा॥ ५५

यत्पादपद्मनखरदृष्टये चात्मशुद्धये।
न च दृष्टं च स्वप्नेऽपि प्रत्यक्षस्यापि का कथा॥ ५६

तेनैव तपसा दृष्टा भुवि वृन्दावने वने।
कथिता पञ्चमी देवी सा राधा च प्रकीर्तिता॥ ५७

अंशरूपाः कलारूपाः कलांशांशांशसम्भवाः।
प्रकृतेः प्रतिविश्वेषु देव्यश्च सर्वयोषितः॥ ५८

परिपूर्णतमाः पञ्च विद्यादेव्यः प्रकीर्तिताः।
या याः प्रधानांशरूपा वर्णयामि निशामय॥ ५९

वे परमात्मा श्रीकृष्णके रासक्रीडाकी अधिष्ठातृदेवी हैं, रासमण्डलमें उनका आविर्भाव हुआ है, वे रासमण्डलसे सुशोभित हैं; वे देवी रासेश्वरी, सुरसिका, रासरूपी आवासमें निवास करनेवाली, गोलोकमें निवास करनेवाली, गोपीवेष धारण करनेवाली, परम आह्लाद-स्वरूपा, सन्तोष तथा हर्षरूपा, आत्मस्वरूपा, निर्गुण, निराकार और सर्वथा निर्लिप्त हैं॥ ४७—४९॥

वे इच्छारहित, अहंकाररहित और भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाली हैं। बुद्धिमान् लोगोंने वेदविहित मार्गसे ध्यान करके उन्हें जाना है॥ ५०॥

वे ईश्वरों, देवेन्द्रों और मुनिश्रेष्ठोंके दृष्टिपथमें भी नहीं आतीं। वे अग्निके समान शुद्ध वस्त्रोंको धारण करनेवाली, विविध अलंकारोंसे विभूषित, कोटिचन्द्रप्रभासे युक्त और पुष्ट तथा समस्त ऐश्वर्योंसे समन्वित विग्रहवाली हैं। वे भगवान् श्रीकृष्णकी अद्वितीय दास्यभक्ति तथा सम्पदा प्रदान करनेवाली हैं॥ ५१-५२॥

वाराहकल्पमें उन्होंने [व्रजमण्डलमें] वृषभानुकी पुत्रीके रूपमें जन्म लिया, जिनके चरणकमलोंके स्पर्शसे पृथ्वी पवित्र हुई। ब्रह्मादि देवोंके द्वारा भी जो अदृष्ट थीं, वे भारतवर्षमें सर्वसाधारणको दृष्टिगत हुईं। हे मुने! स्त्रीरत्नोंमें सारस्वरूप वे भगवान् श्रीकृष्णके वक्षःस्थलमें उसी प्रकार सुशोभित हैं, जैसे आकाशमण्डलमें नवीन मेघोंके बीच विद्युत्-लता सुशोभित होती है। पूर्वकालमें ब्रह्माजीने आत्मशुद्धिहेतु जिनके चरणकमलके नखके दर्शनके लिये साठ हजार वर्षोंतक तपस्या की, किंतु स्वप्नमें भी नखज्योतिका दर्शन नहीं हुआ; साक्षात् दर्शनकी तो बात ही क्या? उन्हीं ब्रह्माने पृथ्वीतलके वृन्दावनमें तपस्याके द्वारा उनका दर्शन किया। मैंने पाँचवीं देवीका वर्णन कर दिया; वे ही राधा कही गयी हैं॥ ५३—५७॥

प्रत्येक भुवनमें सभी देवियाँ और नारियाँ इन्हीं प्रकृतिदेवीकी अंश, कला, कलांश अथवा अंशांशसे उत्पन्न हैं॥ ५८॥

भगवतीके पूर्णावताररूपमें जो-जो प्रधान अंशस्वरूपा पाँच विद्यादेवियाँ कही गयी हैं, उनका वर्णन कर रहा हूँ; सुनिये॥ ५९॥

प्रधानांशस्वरूपा सा गङ्गा भुवनपावनी।
विष्णुविग्रहसम्भूता द्रवरूपा सनातनी॥ ६०

पापिपापेध्मदाहाय ज्वलदग्निस्वरूपिणी।
सुखस्पर्शा स्नानपानैर्निर्वाणपददायिनी॥ ६१

गोलोकस्थानप्रस्थानसुखसोपानरूपिणी ।
पवित्ररूपा तीर्थानां सरितां च परावरा॥ ६२

शम्भुमौलिजटामेरुमुक्तापंक्तिस्वरूपिणी ।
तपःसम्पादिनी सद्यो भारतेषु तपस्विनाम्॥ ६३

चन्द्रपद्मक्षीरनिभा शुद्धसत्त्वस्वरूपिणी।
निर्मला निरहङ्कारा साध्वी नारायणप्रिया॥ ६४

प्रधानांशस्वरूपा च तुलसी विष्णुकामिनी।
विष्णुभूषणरूपा च विष्णुपादस्थिता सती॥ ६५

तपःसंकल्पपूजादिसङ्घसम्पादिनी मुने।
सारभूता च पुष्पाणां पवित्रा पुण्यदा सदा॥ ६६

दर्शनस्पर्शनाभ्यां च सद्यो निर्वाणदायिनी।
कलौ कलुषशुष्केध्मदहनायाग्निरूपिणी॥ ६७

यत्पादपद्मसंस्पर्शात्सद्यः पूता वसुन्धरा।
यत्स्पर्शदर्शने चैवेच्छन्ति तीर्थानि शुद्धये॥ ६८

यया विना च विश्वेषु सर्वकर्म च निष्फलम्।
मोक्षदा या मुमुक्षूणां कामिनी सर्वकामदा॥ ६९

कल्पवृक्षस्वरूपा या भारते वृक्षरूपिणी।
भारतीनां प्रीणनाय जाता या परदेवता॥ ७०

प्रधानांशस्वरूपा या मनसा कश्यपात्मजा।
शङ्करप्रियशिष्या च महाज्ञानविशारदा॥ ७१

लोकपावनी गंगा प्रधान अंशस्वरूपा हैं, वे भगवान् विष्णुके श्रीविग्रहसे प्रकट हुई हैं तथा सनातनरूपसे ब्रह्मद्रव होकर विराजती हैं॥ ६०॥

गंगा पापियोंके पापरूप ईंधनके दाहके लिये धधकती अग्निके समान हैं; किंतु [भक्तोंके लिये] सुखस्पर्शिणी तथा स्नान-आचमनादिसे मुक्तिपद-प्रदायिनी हैं॥ ६१॥

गंगा गोलोकादि दिव्य लोकोंमें जानेके लिये सुखद सीढ़ीके समान, तीर्थोंको पावन करनेवाली तथा नदियोंमें श्रेष्ठतम हैं। भगवान् शंकरके जटाजूटमें मुक्तामालकी भाँति सुशोभित होनेवाली वे गंगा भारतवर्षमें तपस्वीजनोंकी तपस्याको शीघ्र सफल करती रहती हैं। उनका जल चन्द्रमा, दुग्ध और श्वेत कमलके समान धवल है और वे शुद्ध सत्त्वरूपिणी हैं। वे निर्मल, निरहंकार, साध्वी और नारायणप्रिया हैं॥ ६२—६४॥

विष्णुवल्लभा तुलसी भी भगवतीकी प्रधानांशस्वरूपा हैं। वे सती सदा भगवान् विष्णुके चरणपर विराजती हैं और उनकी आभूषणरूपा हैं। हे मुने! उनसे तप, संकल्प और पूजादिके सभी सत्कर्मोंका सम्पादन होता है, वे सभी पुष्पोंकी सारभूता हैं तथा सदैव पवित्र एवं पुण्यप्रदा हैं॥ ६५-६६॥

वे अपने दर्शन एवं स्पर्शसे शीघ्र ही मोक्षपद देनेवाली हैं। कलिके पापरूप शुष्क ईंधनको जलानेके लिये वे अग्निस्वरूपा हैं। जिनके चरणकमलके संस्पर्शसे पृथ्वी शीघ्र पवित्र हो जाती है और तीर्थ भी जिनके दर्शन तथा स्पर्शसे स्वयंको पवित्र करनेके लिये कामना करते हैं॥ ६७-६८॥

जिनके बिना सम्पूर्ण जगत्में सभी कर्म निष्फल हो जाते हैं। जो मुमुक्षुजनोंको मोक्ष देनेवाली हैं, कामिनी हैं और सब प्रकारके भोग प्रदान करनेवाली हैं। कल्पवृक्षस्वरूपा जो परदेवता भारतीयोंको प्रसन्न करनेके लिये भारतवर्षमें वृक्षरूपमें प्रादुर्भूत हुईं॥ ६९—७०॥

कश्यपकी पुत्री मनसादेवी भी शक्तिके प्रधान अंशसे प्रकट हुई हैं। वे भगवान् शंकरकी प्रिय शिष्या हैं तथा अत्यन्त ज्ञानविशारद हैं। नागराज अनन्तकी

नागेश्वरस्यानन्तस्य भगिनी नागपूजिता।
नागेश्वरी नागमाता सुन्दरी नागवाहिनी॥ ७२

नागेन्द्रगणसंयुक्ता नागभूषणभूषिता।
नागेन्द्रवन्दिता सिद्धा योगिनी नगशायिनी॥ ७३

विष्णुरूपा विष्णुभक्ता विष्णुपूजापरायणा।
तपःस्वरूपा तपसां फलदात्री तपस्विनी॥ ७४

दिव्यं त्रिलक्षवर्षं च तपस्तप्त्वा च या हरेः।
तपस्विनीषु पूज्या च तपस्विषु च भारते॥ ७५

सर्वमन्त्राधिदेवी च ज्वलन्ती ब्रह्मतेजसा।
ब्रह्मस्वरूपा परमा ब्रह्मभावनतत्परा॥ ७६

जरत्कारुमुनेः पत्नी कृष्णांशस्य पतिव्रता।
आस्तीकस्य मुनेर्माता प्रवरस्य तपस्विनाम्॥ ७७

प्रधानांशस्वरूपा या देवसेना च नारद।
मातृकासु पूज्यतमा सा षष्ठी च प्रकीर्तिता॥ ७८

पुत्रपौत्रादिदात्री च धात्री त्रिजगतां सती।
षष्ठांशरूपा प्रकृतेस्तेन षष्ठी प्रकीर्तिता॥ ७९

स्थाने शिशूनां परमा वृद्धरूपा च योगिनी।

पूजा द्वादशमासेषु यस्या विश्वेषु सन्ततम्॥ ८०

पूजा च सूतिकागारे पुरा षष्ठदिने शिशोः।

एकविंशतिमे चैव पूजा कल्याणहेतुकी॥ ८१

मुनिभिर्नमिता चैषा नित्यकामाप्यतः परा।
मातृका च दयारूपा शश्वद्रक्षणकारिणी॥ ८२

जले स्थले चान्तरिक्षे शिशूनां सद्मगोचरे।
प्रधानांशस्वरूपा च देवीमङ्गलचण्डिका॥ ८३

प्रकृतेर्मुखसम्भूता सर्वमङ्गलदा सदा।
सृष्टौ मङ्गलरूपा च संहारे कोपरूपिणी॥ ८४

बहन, नागोंसे पूजित नागमाता, नागोंपर शासन करनेवाली, सुन्दरी तथा नागवाहिनी हैं। वे बड़े-बड़े नागगणोंसे समन्वित, नागरूपी आभूषणसे भूषित, नागराजोंसे वन्दित, सिद्धा, योगिनी तथा नागोंपर शयन करनेवाली हैं॥ ७१—७३॥

वे भगवान् विष्णुकी परम भक्त हैं, वे विष्णुपूजामें लगी रहती हैं और विष्णुरूपा हैं। वे तपरूपिणी हैं, तपस्वियोंको उनके तपका फल प्रदान करती हैं और तपस्विनी हैं। दिव्य तीन लाख वर्षोंतक भगवान् श्रीहरिकी तपस्यामें निरत रहकर वे भारतवर्षके तपस्वियों तथा तपस्विनियोंमें पूज्य हुईं॥ ७४-७५॥

सभी मन्त्रोंकी अधिष्ठात्री देवी मनसा ब्रह्मतेजसे देदीप्यमान रहती हैं। ब्रह्मध्यानमें सदा निरत वे परमा ब्रह्मस्वरूपा ही हैं। वे पतिव्रता, श्रीकृष्णके अंशसे प्रकट महामुनि जरत्कारुकी पत्नी और तपस्वियोंमें श्रेष्ठ आस्तीक मुनिकी माता हैं॥ ७६-७७॥

हे नारद! भगवतीकी प्रधान अंशस्वरूपा जो मातृकाओंमें पूज्यतम देवसेना हैं, वे ही षष्ठी नामसे कही गयी हैं॥ ७८॥

वे पुत्र-पौत्र आदि प्रदान करनेवाली, तीनों लोकोंकी जननी तथा पतिव्रता हैं। वे मूल-प्रकृतिकी षष्ठांशस्वरूपा हैं, इसलिये षष्ठी कही गयी हैं॥ ७९॥

शिशुओंके जन्मस्थानपर ये योगिनी परम वृद्धारूपमें विराजमान रहती हैं। समस्त जगत्‌में बारह महीने सदा इनकी पूजा होती रहती है। सूतिकागृहमें बालकके जन्मके छठे दिन तथा इक्कीसवें दिन उनकी पूजा कल्याणकारिणी होती है॥ ८०-८१॥

ये षष्ठीमाता मुनियोंसे वन्दित, नित्य कामना पूर्ण करनेवाली, दयारूपा एवं सदा रक्षा करनेवाली पराशक्ति हैं। जल, थल, आकाश और गृहमें भी बालकोंके कल्याणमें सदा निरत रहती हैं॥ ८२½॥

मंगलचण्डिका भी देवी मूलप्रकृतिकी प्रधान अंशस्वरूपा हैं। वे प्रकृतिदेवीके मुखसे प्रकट हुई हैं और सदा सभी प्रकारके मंगल प्रदान करनेवाली हैं। उत्पत्तिके समय वे मंगलरूपा तथा संहारके समय

तेन मङ्गलचण्डी सा पण्डितैः परिकीर्तिता।
प्रतिमङ्गलवारेषु प्रतिविश्वेषु पूजिता॥ ८५

पुत्रपौत्रधनैश्वर्ययशोमङ्गलदायिनी।
परितुष्टा सर्ववाञ्छाप्रदात्री सर्वयोषिताम्॥ ८६

रुष्टा क्षणेन संहर्तुं शक्ता विश्वं महेश्वरी।
प्रधानांशस्वरूपा सा काली कमललोचना॥ ८७

दुर्गाललाटसम्भूता रणे शुम्भनिशुम्भयोः।
दुर्गार्धांशस्वरूपा सा गुणेन तेजसा समा॥ ८८

कोटिसूर्यसमाजुष्टपुष्टजाज्वलविग्रहा।
प्रधाना सर्वशक्तीनां बला बलवती परा॥ ८९

सर्वसिद्धिप्रदा देवी परमा योगरूपिणी।
कृष्णभक्ता कृष्णतुल्या तेजसा विक्रमैर्गुणैः॥ ९०

कृष्णभावनया शश्वत्कृष्णवर्णा सनातनी।
संहर्तुं सर्वब्रह्माण्डं शक्ता निःश्वासमात्रतः॥ ९१

रणं दैत्यैः समं तस्याः क्रीडया लोकशिक्षया।
धर्मार्थकाममोक्षांश्च दातुं शक्ता च पूजिता॥ ९२

ब्रह्मादिभिः स्तूयमाना मुनिभिर्मनुभिर्नरैः।

प्रधानांशस्वरूपा सा प्रकृतेश्च वसुन्धरा॥ ९३

आधाररूपा सर्वेषां सर्वसस्या प्रकीर्तिता।
रत्नाकरा रत्नगर्भा सर्वरत्नाकराश्रया॥ ९४

प्रजाभिश्च प्रजेशैश्च पूजिता वन्दिता सदा।
सर्वोपजीव्यरूपा च सर्वसम्पद्विधायिनी॥ ९५

यया विना जगत्सर्वं निराधारं चराचरम्।

कोपरूपिणी हैं। इसीलिये विद्वानोंने इन्हें मंगलचण्डी कहा है। प्रत्येक मंगलवारको सर्वत्र इनकी पूजा होती है। ये पुत्र, पौत्र, धन, ऐश्वर्य, यश और मंगल प्रदान करती हैं। प्रसन्न होकर ये सभी नारियोंकी सभी कामनाएँ पूर्ण करनेवाली हैं। वे महेश्वरी रुष्ट होनेपर क्षणमात्रमें समस्त सृष्टिका संहार करनेमें सक्षम हैं॥ ८३—८६½ ॥

पराशक्तिके प्रधान अंशरूपसे कमललोचना भगवती कालीका प्राकट्य हुआ है। वे शुम्भ-निशुम्भके साथ युद्धकालमें जगदम्बा दुर्गाके ललाटसे प्रकट हुई हैं एवं दुर्गाके अर्धांशसे उत्पन्न होकर उन्हींके समान गुण और तेजसे सम्पन्न हैं। वे करोड़ों सूर्यके समान प्रकाशमान, पुष्ट तथा उज्ज्वल विग्रहवाली हैं। वे बलशालिनी पराशक्ति सभी शक्तियोंमें प्रधान रूपसे विराजमान हैं। परम योगरूपिणी वे देवी सभी प्रकारकी सिद्धियाँ प्रदान करती हैं। वे प्रभु श्रीकृष्णकी अनुगामिनी हैं और अपने तेज, पराक्रम तथा गुणोंमें श्रीकृष्णके समान ही हैं॥ ८७—९०॥

श्रीकृष्णके चिन्तनमें संलग्न रहनेके कारण वे सनातनी कृष्णवर्णा हो गयीं। अपने निःश्वासमात्रसे सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका संहार करनेमें वे समर्थ हैं। फिर भी लोकशिक्षणके लिये लीलापूर्वक उन्होंने दैत्योंसे युद्ध किया। पूजासे प्रसन्न होकर वे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—सब कुछ देनेमें समर्थ हैं; ब्रह्मा आदि देवता, मुनि, मनुगण तथा सभी मनुष्य उनकी उपासना करते हैं॥ ९१-९२½ ॥

भगवती प्रकृतिके प्रधान अंशरूपसे वे वसुन्धरादेवी प्रकट हुई हैं। वे सभी प्राणी-पदार्थोंकी आधाररूपा हैं तथा सभी प्रकारके शस्योंके स्वरूपवाली कही गयी हैं। वे रत्नोंकी निधि हैं। रत्नगर्भा तथा समस्त समुद्रोंकी आश्रयरूपा हैं। वे राजा-प्रजा सभीसे सदा पूजित तथा वन्दित हैं, वे सभीकी आश्रय तथा सब प्रकारकी सम्पत्ति प्रदान करनेवाली हैं, जिनके बिना चराचर सम्पूर्ण जगत् निराधार हो जाता है॥ ९३—९५½ ॥

प्रकृतेश्च कला या यास्ता निबोध मुनीश्वर॥ ९६
यस्य यस्य च या पत्नी तत्सर्वं वर्णयामि ते।
स्वाहादेवी वह्निपत्नी प्रतिविश्वेषु पूजिता॥ ९७
यया विना हविर्दानं न ग्रहीतुं सुराः क्षमाः।
दक्षिणा यज्ञपत्नी च दीक्षा सर्वत्र पूजिता॥ ९८
यया विना हि विश्वेषु सर्वकर्म हि निष्फलम्।
स्वधा पितॄणां पत्नी च मुनिभिर्मनुभिर्नरैः॥ ९९
पूजिता पितृदानं हि निष्फलं च यया विना।
स्वस्तिदेवी वायुपत्नी प्रतिविश्वेषु पूजिता॥ १००
आदानं च प्रदानं च निष्फलं च यया विना।
पुष्टिर्गणपतेः पत्नी पूजिता जगतीतले॥ १०१
यया विना परिक्षीणाः पुमांसो योषितोऽपि च।
अनन्तपत्नी तुष्टिश्च पूजिता वन्दिता भवेत्॥ १०२
यया विना न सन्तुष्टाः सर्वलोकाश्च सर्वतः।
ईशानपत्नी सम्पत्तिः पूजिता च सुरैर्नरैः॥ १०३
सर्वे लोका दरिद्राश्च विश्वेषु च यया विना।
धृतिः कपिलपत्नी च सर्वैः सर्वत्र पूजिता॥ १०४
सर्वे लोका अधैर्याश्च जगत्सु च यया विना।
सत्यपत्नी सती मुक्तैः पूजिता च जगत्प्रिया॥ १०५
यया विना भवेल्लोको बन्धुतारहितः सदा।
मोहपत्नी दया साध्वी पूजिता च जगत्प्रिया॥ १०६
सर्वे लोकाश्च सर्वत्र निष्फलाश्च यया विना।
पुण्यपत्नी प्रतिष्ठा सा पूजिता पुण्यदा सदा॥ १०७
यया विना जगत्सर्वं जीवन्मृतसमं मुने।
सुकर्मपत्नी संसिद्धा कीर्तिर्धन्यैश्च पूजिता॥ १०८
यया विना जगत्सर्वं यशोहीनं मृतं यथा।
क्रिया तूद्योगपत्नी च पूजिता सर्वसम्मता॥ १०९

हे मुनीश्वर! अब आप देवी प्रकृतिकी जो-जो कलाएँ हैं, उन्हें सुनिये। जिस-जिस देवताकी जो भार्या हैं, उन सबका मैं वर्णन करता हूँ। सभी लोकोंमें पूज्या स्वाहा-देवी अग्निदेवकी भार्या हैं, जिनके बिना देवगण यज्ञभाग प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं हो पाते। यज्ञदेवकी पत्नी दीक्षा तथा दक्षिणा हैं, जो सर्वत्र पूजित हैं तथा जिनके बिना लोकोंमें किये गये सभी कर्म निष्फल रहते हैं। पितृदेवोंकी पत्नी स्वधादेवी हैं। ये मुनियों, मनुओं तथा मनुष्योंसे पूजित हैं; जिनके बिना किया गया कोई भी पितृकर्म निष्फल रहता है। वायुदेवकी पत्नी स्वस्तिदेवी हैं, प्रत्येक लोकमें उनकी पूजा होती है। उनके बिना किया गया आदान-प्रदान निष्फल रहता है॥ ९६—१००½ ॥

भगवान् गणपतिकी पत्नी पुष्टिदेवी हैं, जो समस्त संसारमें पूजित हैं और जिनके बिना नर-नारी क्षीण शरीरवाले रहते हैं। भगवान् अनन्तकी पत्नी तुष्टि हैं, वे सभीसे वन्दित तथा पूजित हैं, जिनके बिना संसारमें सभी लोग सन्तुष्ट नहीं रहते। ईशानदेवकी पत्नी सम्पत्तिदेवी हैं, जिनकी सभी देव-मानव पूजा करते हैं तथा जिनके बिना संसारमें सभी लोग दरिद्र रहते हैं॥ १०१—१०३½ ॥

धृतिदेवी भगवान् कपिलकी पत्नी हैं, वे सभीके द्वारा सर्वत्र पूजित हैं, संसारमें जिनके बिना सभी लोग धैर्यहीन रहते हैं। सतीदेवी सत्यदेवकी पत्नी हैं जिन्हें सभी चाहते हैं; वे मुक्तलोगोंके द्वारा पूजित हैं और जगत्प्रिय हैं। इनके बिना लोग बन्धुत्वविहीन हो जाते हैं। दयादेवी मोहकी पत्नी हैं, वे साध्वी सबसे पूजित और जगत्प्रिय हैं। जिनके बिना सभी लोग सर्वत्र निष्फल हो जाते हैं। प्रतिष्ठादेवी पुण्यदेवकी पत्नी हैं। वे पुण्यदायिनी तथा सर्वत्र पूजित हैं, जिनके अभावमें सभी प्राणी जीवित रहते भी मृतकतुल्य हो जाते हैं। कीर्तिदेवी सुकर्मदेवकी पत्नी कही गयी हैं, जिनकी पूजा सौभाग्यशाली लोग करते हैं और जिनके बिना सम्पूर्ण संसार यशहीन होकर मृतकतुल्य हो जाता है॥ १०४—१०८½ ॥

उद्योगदेवकी पत्नी क्रियादेवी हैं, जो सभीके द्वारा पूजित तथा मान्य हैं, हे नारद! इनके बिना

यया विना जगत्सर्वं विधिहीनं च नारद।
अधर्मपत्नी मिथ्या सा सर्वधूर्तैश्च पूजिता॥ ११०

यया विना जगत्सर्वमुच्छिन्नं विधिनिर्मितम्।
सत्ये अदर्शना या च त्रेतायां सूक्ष्मरूपिणी॥ १११

अर्धावयवरूपा च द्वापरे चैव संवृता।
कलौ महाप्रगल्भा च सर्वत्र व्यापिका बलात्॥ ११२

कपटेन समं भ्रात्रा भ्रमते च गृहे गृहे।
शान्तिर्लज्जा च भार्ये द्वे सुशीलस्य च पूजिते॥ ११३

याभ्यां विना जगत्सर्वमुन्मत्तमिव नारद।
ज्ञानस्य तिस्रो भार्याश्च बुद्धिर्मेधाधृतिस्तथा॥ ११४

याभिर्विना जगत्सर्वं मूढं मत्तसमं सदा।
मूर्तिश्च धर्मपत्नी सा कान्तिरूपा मनोहरा॥ ११५

परमात्मा च विश्वौघो निराधारो यया विना।
सर्वत्र शोभारूपा च लक्ष्मीर्मूर्तिमती सती॥ ११६

श्रीरूपा मूर्तिरूपा च मान्या धन्यातिपूजिता।
कालाग्नी रुद्रपत्नी च निद्रा सा सिद्धयोगिनी॥ ११७

सर्वे लोकाः समाच्छन्ना यया योगेन रात्रिषु।
कालस्य तिस्रो भार्याश्च संध्या रात्रिर्दिनानि च॥ ११८

याभिर्विना विधाता च संख्यां कर्तुं न शक्यते।
क्षुत्पिपासे लोभभार्ये धन्ये मान्ये च पूजिते॥ ११९

याभ्यां व्याप्तं जगत्सर्वं नित्यं चिन्तातुरं भवेत्।
प्रभा च दाहिका चैव द्वे भार्ये तेजसस्तथा॥ १२०

याभ्यां विना जगत्स्रष्टा विधातुं च न हीश्वरः।
कालकन्ये मृत्युजरे प्रज्वारस्य प्रियाप्रिये॥ १२१

याभ्यां जगत्समुच्छिन्नं विधात्रा निर्मितं विधौ।
निद्राकन्या च तन्द्रा सा प्रीतिरन्या सुखप्रिये॥ १२२

याभ्यां व्याप्तं जगत्सर्वं विधिपुत्र विधेर्विधौ।
वैराग्यस्य च द्वे भार्ये श्रद्धा भक्तिश्च पूजिते॥ १२३
याभ्यां शश्वज्जगत्सर्वं यज्जीवन्मुक्तिमन्मुने।

सम्पूर्ण जगत् विधिहीन हो जाता है। अधर्मकी पत्नी मिथ्यादेवी हैं, जिन्हें सभी धूर्तजन पूजते हैं तथा जिनके बिना विधिनिर्मित धूर्त-समुदायरूप जगत् नष्ट हो जाता है। सत्ययुगमें ये मिथ्यादेवी तिरोहित रहती हैं, त्रेतायुगमें सूक्ष्मरूपमें रहती हैं, द्वापरमें आधे शरीरवाली होकर रहती हैं; किंतु कलियुगमें महाप्रगल्भ होकर ये बलपूर्वक सर्वत्र व्याप्त रहती हैं और अपने भाई कपटके साथ घर-घर घूमती-फिरती हैं॥ १०९—११२½ ॥

हे नारद! सुशीलकी शान्ति और लज्जा नामक दो सर्वपूजित भार्याएँ हैं, जिनके बिना यह समस्त जगत् उन्मत्तकी भाँति हो जाता है। ज्ञानकी तीन पत्नियाँ हैं—बुद्धि, मेधा और धृति; जिनके बिना सारा संसार मूर्ख तथा मत्त बना रहता है। धर्मकी पत्नी मूर्ति अत्यन्त मनोहर कान्तिवाली हैं, जिनके बिना परमात्मा तथा विश्वसमूह भी निराधार रहते हैं। ये सर्वत्र शोभारूपा, लक्ष्मीरूपिणी, मूर्तिमयी, साध्वी, श्रीरूपा, मूर्तिरूपा, सभीकी मान्य, धन्य और अतिपूज्य हैं॥ ११३—११६½ ॥

रुद्रकी पत्नी कालाग्नि हैं। वे ही सिद्धयोगिनी तथा निद्रारूपा हैं, जिनके संयोगसे रात्रिमें सभी लोग निद्रासे व्याप्त हो जाते हैं। कालकी तीन पत्नियाँ हैं—सन्ध्या, रात्रि और दिवा। जिनके बिना विधाता भी कालकी गणना नहीं कर सकते। लोभकी दो पत्नियाँ क्षुधा और पिपासा हैं, ये धन्य, मान्य और पूजित हैं। जिनसे व्याप्त यह सम्पूर्ण जगत् नित्य ही चिन्ताग्रस्त रहता है। तेजकी दो पत्नियाँ प्रभा और दाहिका हैं, जिनके बिना जगत्की रचना करनेवाले ब्रह्मा सृष्टि करनेमें समर्थ नहीं होते॥ ११७—१२०½ ॥

कालकी दो पुत्रियाँ मृत्यु और जरा हैं, जो ज्वरकी प्रिय पत्नियाँ हैं। जिनके द्वारा सृष्टि-विधानके अन्तर्गत ब्रह्माका बनाया यह संसार नष्ट होता रहता है। निद्राकी एक पुत्री तन्द्रा और दूसरी प्रीति—ये दोनों सुखकी पत्नियाँ हैं। जिनसे हे नारद! ब्रह्माके द्वारा निर्मित यह सारा जगत् व्याप्त है। वैराग्यकी दो पत्नियाँ श्रद्धा और भक्ति सभीकी पूज्या हैं, जिनसे हे मुने! यह जगत् निरन्तर जीवन्मुक्तके समान हो जाता है॥ १२१—१२३½ ॥

अदितिर्देवमाता च सुरभी च गवां प्रसूः॥ १२४
दितिश्च दैत्यजननी कद्रूश्च विनता दनुः।
उपयुक्ताः सृष्टिविधावेतास्तु कीर्तिताः कलाः॥ १२५
कला अन्याः सन्ति बह्व्यस्तासु काश्चिन्निबोध मे।
रोहिणी चन्द्रपत्नी च संज्ञा सूर्यस्य कामिनी॥ १२६
शतरूपा मनोर्भार्या शचीन्द्रस्य च गेहिनी।
तारा बृहस्पतेर्भार्या वसिष्ठस्याप्यरुन्धती॥ १२७
अहल्या गौतमस्त्री साप्यनसूयात्रिकामिनी।
देवहूतिः कर्दमस्य प्रसूतिर्दक्षकामिनी॥ १२८
पितॄणां मानसी कन्या मेनका साम्बिकाप्रसूः।
लोपामुद्रा तथा कुन्ती कुबेरकामिनी तथा॥ १२९
वरुणानी प्रसिद्धा च बलेर्विन्ध्यावलिस्तथा।
कान्ता च दमयन्ती च यशोदा देवकी तथा॥ १३०
गान्धारी द्रौपदी शैव्या सा च सत्यवती प्रिया।
वृषभानुप्रिया साध्वी राधामाता कुलोद्वहा॥ १३१
मन्दोदरी च कौसल्या सुभद्रा कौरवी तथा।
रेवती सत्यभामा च कालिन्दी लक्ष्मणा तथा॥ १३२
जाम्बवती नाग्नजितिर्मित्रविन्दा तथापरा।
लक्ष्मणा रुक्मिणी सीता स्वयं लक्ष्मीः प्रकीर्तिता॥ १३३
काली योजनगन्धा च व्यासमाता महासती।
बाणपुत्री तथोषा च चित्रलेखा च तत्सखी॥ १३४
प्रभावती भानुमती तथा मायावती सती।
रेणुका च भृगोर्माता राममाता च रोहिणी॥ १३५
एकनन्दा च दुर्गा सा श्रीकृष्णभगिनी सती।
बह्व्यः सत्यः कलाश्चैव प्रकृतेरेव भारते॥ १३६
या याश्च ग्रामदेव्यः स्युस्ताः सर्वाः प्रकृतेः कलाः।
कलांशांशसमुद्भूताः प्रतिविश्वेषु योषितः॥ १३७
योषितामवमानेन प्रकृतेश्च पराभवः।
ब्राह्मणी पूजिता येन पतिपुत्रवती सती॥ १३८
प्रकृतिः पूजिता तेन वस्त्रालङ्कारचन्दनैः।
कुमारी चाष्टवर्षीया वस्त्रालङ्कारचन्दनैः॥ १३९
पूजिता येन विप्रस्य प्रकृतिस्तेन पूजिता।
सर्वाः प्रकृतिसम्भूता उत्तमाधममध्यमाः॥ १४०

देवताओंकी माता अदिति हैं और गायोंकी उत्पत्ति सुरभिसे हुई है। दैत्योंकी माता दिति, कद्रू, विनता और दनु—सृष्टिनिर्माणमें इनका उपयोग हुआ है। ये सभी प्रकृतिदेवीकी कलाएँ कही गयी हैं॥ १२४-१२५॥

प्रकृतिदेवीकी अन्य बहुत-सी कलाएँ हैं, उनमेंसे कुछके विषयमें मुझसे सुनिये। चन्द्रमाकी पत्नी रोहिणी, सूर्यकी पत्नी संज्ञा, मनुकी पत्नी शतरूपा, इन्द्रकी पत्नी शची, बृहस्पतिकी पत्नी तारा, वसिष्ठकी पत्नी अरुन्धती, गौतमऋषिकी पत्नी अहल्या और अत्रिकी भार्या अनसूया, कर्दमकी पत्नी देवहूति तथा दक्षकी भार्या प्रसूति हैं॥ १२६—१२८॥

पितरोंकी मानसी कन्या मेनका हैं, जो अम्बिकाकी माता हैं। लोपामुद्रा, कुन्ती, कुबेरपत्नी, वरुणपत्नी, बलिकी पत्नी विन्ध्यावली, कान्ता, दमयन्ती, यशोदा, देवकी, गान्धारी, द्रौपदी, हरिश्चन्द्रकी सत्यवादिनी तथा प्रिय भार्या शैव्या, वृषभानुप्रिया राधाकी माता तथा कुलका उद्वहन करनेवाली पतिव्रता वृषभानुभार्या, मन्दोदरी, कौसल्या, सुभद्रा, कौरवी, रेवती, सत्यभामा, कालिन्दी, लक्ष्मणा, जाम्बवती, नाग्नजिती, मित्रविन्दा, रुक्मिणी, साक्षात् लक्ष्मी कही जानेवाली सीता, काली, व्यासमाता महासती योजनगन्धा, बाणपुत्री उषा, उसकी सखी चित्रलेखा, प्रभावती, भानुमती, साध्वी मायावती, परशुरामकी माता रेणुका, बलरामकी माता रोहिणी और श्रीकृष्णकी बहन दुर्गारूपी एकनन्दा—ये सब प्रकृतिदेवीकी कलारूपा अनेक शक्तियाँ भारतवर्षमें विख्यात हैं॥ १२९—१३६॥

जो-जो ग्रामदेवियाँ हैं, वे सभी प्रकृतिकी कलाएँ हैं। देवीके कलांशका अंश लेकर ही प्रत्येक लोकमें स्त्रियाँ उत्पन्न हुई हैं। इसलिये किसी नारीके अपमानसे प्रकृतिका ही अपमान माना जाता है। जिसने वस्त्र, अलंकार और चन्दनसे पति-पुत्रवती साध्वी ब्राह्मणीका पूजन किया; उसने मानो प्रकृतिदेवीका ही पूजन किया है। इसी प्रकार जिसने आठ वर्षकी विप्रकन्याका वस्त्र, अलंकार तथा चन्दनसे पूजन सम्पन्न कर लिया, उसने स्वयं प्रकृतिदेवीकी पूजा कर ली। उत्तम, मध्यम अथवा अधम—सभी स्त्रियाँ प्रकृतिसे ही उत्पन्न होती हैं॥ १३७—१४०॥

सत्त्वांशाश्चोत्तमा ज्ञेयाः सुशीलाश्च पतिव्रताः।
मध्यमा रजसश्चांशास्ताश्च भोग्याः प्रकीर्तिताः॥ १४१

सुखसम्भोगवश्याश्च स्वकार्ये तत्पराः सदा।
अधमास्तमसश्चांशा अज्ञातकुलसम्भवाः॥ १४२

दुर्मुखाः कुलहा धूर्ताः स्वतन्त्राः कलहप्रियाः।
पृथिव्यां कुलटा याश्च स्वर्गे चाप्सरसां गणाः॥ १४३

प्रकृतेस्तमसश्चांशाः पुंश्चल्यः परिकीर्तिताः।
एवं निगदितं सर्वं प्रकृते रूपवर्णनम्॥ १४४

प्रकृतिदेवीके सत्त्वांशसे उत्पन्न स्त्रियोंको उत्तम जानना चाहिये। वे सुशील एवं पतिव्रता होती हैं। उनके राजस अंशसे उत्पन्न स्त्रियाँ मध्यम कही गयी हैं, वे प्रायः भोगप्रिय होती हैं। वे सुख-भोगादिके वशीभूत होती हैं तथा अपने ही कार्यमें सदा तत्पर रहती हैं। अधम स्त्रियाँ प्रकृतिके तामस अंशसे उत्पन्न हैं, उनका कुल अज्ञात रहता है। वे कलहप्रिय, कटुभाषिणी, धूर्त, स्वच्छन्द विचरण करनेवाली तथा कुलका नाश करनेवाली होती हैं। जो पृथ्वीपर कुलटा, स्वर्गमें अप्सराएँ तथा अन्य पुंश्चली नारियाँ हैं; वे प्रकृतिके तामसांशसे प्रकट कही गयी हैं। इस प्रकार मैंने प्रकृतिदेवीके सभी रूपोंका वर्णन कर दिया॥ १४१—१४४॥

ताः सर्वाः पूजिताः पृथ्व्यां पुण्यक्षेत्रे च भारते।
पूजिता सुरथेनादौ दुर्गा दुर्गार्तिनाशिनी॥ १४५

ततः श्रीरामचन्द्रेण रावणस्य वधार्थिना।
तत्पश्चाज्जगतां माता त्रिषु लोकेषु पूजिता॥ १४६

भगवती प्रकृतिके वे सभी रूप पृथ्वीपर पुण्यक्षेत्र भारतवर्षमें पूजित हैं, सर्वप्रथम राजा सुरथने दुर्गतिका नाश करनेवाली दुर्गादेवीका पूजन किया था। तत्पश्चात् रावणका वध करनेकी इच्छासे श्रीरामचन्द्रने उनका पूजन किया था। तभीसे जगज्जननी दुर्गा तीनों लोकोंमें पूजित हैं॥ १४५-१४६॥

जातादौ दक्षकन्या या निहत्य दैत्यदानवान्।
ततो देहं परित्यज्य यज्ञे भर्तुश्च निन्दया॥ १४७

जज्ञे हिमवतः पत्न्यां लेभे पशुपतिं पतिम्।
गणेशश्च स्वयं कृष्णः स्कन्दो विष्णुकलोद्भवः॥ १४८

जो प्रारम्भमें दक्षकन्या सतीके रूपमें प्रकट हुईं और दैत्य-दानवोंका संहार करनेके उपरान्त यज्ञमें पतिनिन्दाके कारण देहत्याग करके हिमवान्‌की भार्यासे उत्पन्न हुईं और उन्होंने पुनः पशुपति भगवान् शंकरको पतिरूपमें प्राप्त किया। हे नारद! बादमें स्वयं श्रीकृष्णरूप गणेश तथा विष्णुकी कलाओंसे युक्त स्कन्द—ये उनके दो पुत्र उत्पन्न हुए॥ १४७-१४८½॥

बभूवतुस्तौ तनयौ पश्चात्तस्याश्च नारद।
लक्ष्मीर्मङ्गलभूपेन प्रथमं परिपूजिता॥ १४९

त्रिषु लोकेषु तत्पश्चाद्देवतामुनिमानवैः।
सावित्री चाश्वपतिना प्रथमं परिपूजिता॥ १५०

तत्पश्चात्त्रिषु लोकेषु देवतामुनिपुङ्गवैः।
आदौ सरस्वती देवी ब्रह्मणा परिपूजिता॥ १५१

तत्पश्चात्त्रिषु लोकेषु देवतामुनिपुङ्गवैः।
प्रथमं पूजिता राधा गोलोके रासमण्डले॥ १५२

राजा मंगलने सर्वप्रथम लक्ष्मीजीकी पूजा की थी। उसके बाद तीनों लोकोंमें देवता, मुनि और मनुष्योंने उनकी पूजा की। राजा अश्वपतिने सावित्रीदेवीकी सर्वप्रथम पूजा की, तत्पश्चात् तीनों लोकोंमें देवता तथा श्रेष्ठ मुनियोंसे वे पूजित हुईं। ब्रह्माने सर्वप्रथम भगवती सरस्वतीकी पूजा की थी। तत्पश्चात् वे तीनों लोकोंमें देवताओं तथा श्रेष्ठ मुनियोंद्वारा पूजित हुईं।

पौर्णमास्यां कार्तिकस्य कृष्णेन परमात्मना।
गोपिकाभिश्च गोपैश्च बालिकाभिश्च बालकैः॥ १५३

गवां गणैः सुरभ्या च तत्पश्चादाज्ञया हरेः।
तदा ब्रह्मादिभिर्देवैर्मुनिभिः परया मुदा॥ १५४

कार्तिकपूर्णिमाको गोलोकके रासमण्डलमें सर्वप्रथम परमात्मा श्रीकृष्णने गोप-गोपियों, बालक-बालिकाओं, सुरभि तथा गायोंके साथ राधारानीका पूजन किया था। तत्पश्चात् तीनों लोकोंमें परमात्माकी आज्ञासे

पुष्पधूपादिभिर्भक्त्या पूजिता वन्दिता सदा।
पृथिव्यां प्रथमं देवी सुयज्ञेनैव पूजिता॥ १५५

शङ्करेणोपदिष्टेन पुण्यक्षेत्रे च भारते।
त्रिषु लोकेषु तत्पश्चादाज्ञया परमात्मनः॥ १५६

पुष्पधूपादिभिर्भक्त्या पूजिता मुनिभिः सदा।
कला या याः समुद्भूताः पूजितास्ताश्च भारते॥ १५७

पूजिता ग्रामदेव्यश्च ग्रामे च नगरे मुने।
एवं ते कथितं सर्वं प्रकृतेश्चरितं शुभम्॥ १५८

यथागमं लक्षणं च किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ १५९

ब्रह्मादि देवों तथा मुनियोंद्वारा पुष्प, धूपादिसे भक्तिपूर्वक परम प्रसन्नताके साथ वे निरन्तर पूजित तथा वन्दित होने लगीं॥ १४९—१५४½॥

भगवान् शंकरके उपदेशसे पृथ्वीपर पुण्यक्षेत्र भारतवर्षमें राजा सुयज्ञके द्वारा सर्वप्रथम इन भगवतीका पूजन किया गया। तदनन्तर परमात्माकी आज्ञासे तीनों लोकोंमें पुष्प, धूप आदिसे मुनियोंके द्वारा ये निरन्तर भक्तिपूर्वक पूजित होने लगीं॥ १५५-१५६½॥

भारतवर्षमें प्रकृतिदेवीकी जो-जो कलाएँ प्रकट हुईं, वे सभी पूजित हैं। हे मुने! प्रत्येक ग्राम और नगरमें वे ग्रामदेवियाँ पूजित हैं। इस प्रकार मैंने आगमोंके अनुसार प्रकृतिदेवीका सम्पूर्ण शुभ चरित्र तथा स्वरूप आपको बता दिया; अब आप और क्या सुनना चाहते हैं?॥ १५७—१५९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे प्रकृतिचरित्रवर्णनं नाम प्रथमोध्यायः॥ १॥

~~○~~

अथ द्वितीयोऽध्यायः

परब्रह्म श्रीकृष्ण और श्रीराधासे प्रकट चिन्मय देवताओं एवं देवियोंका वर्णन

नारद उवाच

समासेन श्रुतं सर्वं देवीनां चरितं प्रभो।
विबोधनाय बोधस्य व्यासेन वक्तुमर्हसि॥ १

सृष्टेराद्या सृष्टिविधौ कथमाविर्बभूव ह।
कथं वा पञ्चधा भूता वद वेदविदांवर॥ २

भूता ययांशकलया तया त्रिगुणया भवे।
व्यासेन तासां चरितं श्रोतुमिच्छामि साम्प्रतम्॥ ३

तासां जन्मानुकथनं पूजाध्यानविधिं बुध।
स्तोत्रं कवचमैश्वर्यं शौर्यं वर्णय मङ्गलम्॥ ४

श्रीनारायण उवाच

नित्य आत्मा नभो नित्यं कालो नित्यो दिशो यथा।
विश्वानां गोलकं नित्यं नित्यो गोलोक एव च॥ ५

तदेकदेशो वैकुण्ठो नम्रभागानुसारकः।
तथैव प्रकृतिर्नित्या ब्रह्मलीला सनातनी॥ ६

नारदजी बोले—हे प्रभो! देवियोंका सम्पूर्ण चरित्र मैंने संक्षेपमें सुन लिया, अब सम्यक् प्रकारसे बोध प्राप्त करनेके लिये विस्तारसे वर्णन कीजिये॥ १॥

सृष्टिप्रक्रियामें सृष्टिकी आद्यादेवीका प्राकट्य कैसे हुआ? हे वेदज्ञोंमें श्रेष्ठ! वे प्रकृति पुनः पाँच रूपोंमें कैसे आविर्भूत हुईं; यह बतायें। इस संसारमें उन त्रिगुणात्मिका प्रकृतिके कलांशोंसे जो देवियाँ उत्पन्न हुईं, उनका चरित्र मैं अब विस्तारसे सुनना चाहता हूँ॥ २-३॥

हे विज्ञ! उनके जन्मकी कथा, उनके पूजा-ध्यानकी विधि, स्तोत्र, कवच, ऐश्वर्य और मंगलमय शौर्यका वर्णन कीजिये॥ ४॥

श्रीनारायण बोले—जैसे आत्मा नित्य है, आकाश नित्य है, काल नित्य है, दिशाएँ नित्य हैं, ब्रह्माण्डगोलक नित्य है, गोलोक नित्य है तथा उससे थोड़ा नीचे स्थित वैकुण्ठ नित्य है; उसी प्रकार ब्रह्मकी सनातनी लीलाशक्ति प्रकृति भी नित्य है॥ ५-६॥

यथाग्नौ दाहिका चन्द्रे पद्मे शोभा प्रभा रवौ।
शश्वद्युक्ता न भिन्ना सा तथा प्रकृतिरात्मनि॥ ७

विना स्वर्णं स्वर्णकारः कुण्डलं कर्तुमक्षमः।
विना मृदा घटं कर्तुं कुलालो हि नहीश्वरः॥ ८

न हि क्षमस्तथात्मा च सृष्टिं स्त्रष्टुं तया विना।
सर्वशक्तिस्वरूपा सा यया च शक्तिमान्सदा॥ ९

ऐश्वर्यवचनः शश्च क्तिः पराक्रम एव च।
तत्स्वरूपा तयोर्दात्री सा शक्तिः परिकीर्तिता॥ १०

ज्ञानं समृद्धिः सम्पत्तिर्यशश्चैव बलं भगः।
तेन शक्तिर्भगवती भगरूपा च सा सदा॥ ११

तया युक्तः सदात्मा च भगवांस्तेन कथ्यते।
स च स्वेच्छामयो देवः साकारश्च निराकृतिः॥ १२

तेजोरूपं निराकारं ध्यायन्ते योगिनः सदा।
वदन्ति च परं ब्रह्म परमानन्दमीश्वरम्॥ १३

अदृश्यं सर्वद्रष्टारं सर्वज्ञं सर्वकारणम्।
सर्वदं सर्वरूपं तं वैष्णवास्तन्न मन्वते॥ १४

वदन्ति चैव ते कस्य तेजस्तेजस्विना विना।
तेजोमण्डलमध्यस्थं ब्रह्म तेजस्विनं परम्॥ १५

स्वेच्छामयं सर्वरूपं सर्वकारणकारणम्।
अतीव सुन्दरं रूपं बिभ्रतं सुमनोहरम्॥ १६

किशोरवयसं शान्तं सर्वकान्तं परात्परम्।
नवीननीरदाभासधामैकं श्यामविग्रहम्॥ १७

शरन्मध्याह्नपद्मौघशोभामोचनलोचनम् ।
मुक्ताच्छविविनिन्द्यैकदन्तपंक्तिमनोरमम् ॥ १८

जैसे अग्निमें दाहिका शक्ति, चन्द्रमा तथा कमलमें शोभा, सूर्यमें दीप्ति सदा विद्यमान रहती और उससे अलग नहीं होती है; उसी प्रकार परमात्मामें प्रकृति विद्यमान रहती है॥ ७॥

जैसे बिना स्वर्णके स्वर्णकार कुण्डलादि आभूषणोंका निर्माण करनेमें असमर्थ होता है और बिना मिट्टीके कुम्हार घड़ेका निर्माण करनेमें सक्षम नहीं होता, उसी प्रकार प्रकृतिके सहयोगके बिना परमात्मा सृष्टिकी रचनामें समर्थ नहीं होता। वे प्रकृति ही सभी शक्तियोंकी अधिष्ठात्री हैं तथा उनसे ही परमात्मा सदा शक्तिमान् रहता है॥ ८-९॥

'श' ऐश्वर्यका तथा 'क्ति' पराक्रमका वाचक है। जो इनके स्वरूपवाली है तथा इन दोनोंको प्रदान करनेवाली है; उस देवीको शक्ति कहा गया है॥ १०॥

ज्ञान, समृद्धि, सम्पत्ति, यश और बलको 'भग' कहते हैं। उन गुणोंसे सदा सम्पन्न रहनेके कारण ही शक्तिको भगवती कहते हैं तथा वे सदा भगरूपा हैं। उनसे सम्बद्ध होनेके कारण ही परमात्मा भी भगवान् कहे जाते हैं। वे परमेश्वर अपनी इच्छाशक्तिसे सम्पन्न होनेके कारण साकार और निराकार दोनों रूपोंसे अवस्थित रहते हैं॥ ११-१२॥

उस तेजस्वरूप निराकारका योगीजन सदा ध्यान करते हैं तथा उसे परमानन्द, परब्रह्म तथा ईश्वर कहते हैं॥ १३॥

अदृश्य, सबको देखनेवाले, सर्वज्ञ, सबके कारणस्वरूप, सब कुछ देनेवाले, सर्वरूप उस परब्रह्मको वैष्णवजन नहीं स्वीकार करते॥ १४॥

वे कहते हैं कि तेजस्वी सत्ताके बिना किसका तेज प्रकाशित हो सकता है? अतः तेजोमण्डलके मध्य अवश्य ही तेजस्वी परब्रह्म विराजते हैं॥ १५॥

वे स्वेच्छामय, सर्वरूप और सभी कारणोंके भी कारण हैं। वे अत्यन्त सुन्दर तथा मनोहर रूप धारण करनेवाले हैं, वे किशोर अवस्थावाले, शान्तस्वभाव, सभी मनोहर अंगोंवाले तथा परात्पर हैं। वे नवीन मेघकी कान्तिके एकमात्र धामस्वरूप श्याम विग्रहवाले हैं, उनके नेत्र शरद् ऋतुके मध्याह्नमें खिले कमलकी शोभाको तिरस्कृत करनेवाले हैं और उनकी मनोरम दन्तपंक्ति मुक्ताकी शोभाको भी तुच्छ कर देनेवाली है॥ १६—१८॥

मयूरपिच्छचूडं च मालतीमाल्यमण्डितम्।
सुनसं सस्मितं कान्तं भक्तानुग्रहकारणम्॥ १९

ज्वलदग्निविशुद्धैकपीतांशुकसुशोभितम्।
द्विभुजं मुरलीहस्तं रत्नभूषणभूषितम्॥ २०

सर्वाधारं च सर्वेशं सर्वशक्तियुतं विभुम्।
सर्वैश्वर्यप्रदं सर्वस्वतन्त्रं सर्वमङ्गलम्॥ २१

परिपूर्णतमं सिद्धं सिद्धेशं सिद्धिकारकम्।
ध्यायन्ते वैष्णवाः शश्वद्देवदेवं सनातनम्॥ २२

जन्ममृत्युजराव्याधिशोकभीतिहरं परम्।
ब्रह्मणो वयसा यस्य निमेष उपचर्यते॥ २३

स चात्मा स परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते।
कृषिस्तद्भक्तिवचनो नश्च तद्दास्यवाचकः॥ २४

भक्तिदास्यप्रदाता यः स च कृष्णः प्रकीर्तितः।
कृषिश्च सर्ववचनो नकारो बीजमेव च॥ २५

स कृष्णः सर्वस्रष्टादौ सिसृक्षन्नेक एव च।
सृष्ट्युन्मुखस्तदंशेन कालेन प्रेरितः प्रभुः॥ २६

स्वेच्छामयः स्वेच्छया च द्विधारूपो बभूव ह।
स्त्रीरूपो वामभागांशो दक्षिणांशः पुमान्स्मृतः॥ २७

तां ददर्श महाकामी कामाधारां सनातनः।
अतीव कमनीयां च चारुपङ्कजसन्निभाम्॥ २८

चन्द्रबिम्बविनिन्द्यैकनितम्बयुगलां पराम्।
सुचारुकदलीस्तम्भनिन्दितश्रोणिसुन्दरीम्॥ २९

श्रीयुक्तश्रीफलाकारस्तनयुग्ममनोरमाम्।
पुष्पजुष्टां सुवलितां मध्यक्षीणां मनोहराम्॥ ३०

उन्होंने मयूरपिच्छका मुकुट धारण किया है, उनके गलेमें मालतीकी माला सुशोभित हो रही है। उनकी सुन्दर नासिका है, उनका मुखमण्डल मुसकानयुक्त तथा सुन्दर है और वे भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाले हैं। वे प्रज्वलित अग्निके सदृश विशुद्ध तथा देदीप्यमान पीताम्बरसे सुशोभित हो रहे हैं। उनकी दो भुजाएँ हैं, उन्होंने मुरलीको हाथमें धारण किया है, वे रत्नोंके आभूषणोंसे अलंकृत हैं। वे सर्वाधार, सर्वेश, सर्वशक्तिसे युक्त, विभु, सभी प्रकारके ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले, सब प्रकारसे स्वतन्त्र तथा सर्वमंगलरूप हैं॥ १९—२१॥

वे परिपूर्णतम सिद्धावस्थाको प्राप्त, सिद्धोंके स्वामी तथा सिद्धियाँ प्रदान करनेवाले हैं। वे जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि, शोक और भयको दूर करते हैं, ऐसे उन सनातन परमेश्वरका वैष्णवजन सदा ध्यान करते रहते हैं॥ २२½॥

ब्रह्माजीकी आयु जिनके एक निमेषकी तुलनामें है, उन परमात्मा परब्रह्मको 'कृष्ण' नामसे पुकारा जाता है। 'कृष्' उनकी भक्ति तथा 'न' उनके दास्यके वाचक शब्द हैं। इस प्रकार जो भक्ति और दास्य प्रदान करते हैं, उन्हें कृष्ण कहा गया है। अथवा 'कृष्' सर्वार्थका तथा 'न'-कार बीजका वाचक है, अतः श्रीकृष्ण ही आदिमें सर्वप्रपंचके स्रष्टा तथा सृष्टिके एकमात्र बीजस्वरूप हैं। उनमें जब सृष्टिकी इच्छा उत्पन्न हुई, तब उनके अंशभूत कालके द्वारा प्रेरित होकर स्वेच्छामय वे प्रभु अपनी इच्छासे दो रूपोंमें विभक्त हो गये। उनका वाम भागांश स्त्रीरूप तथा दक्षिणांश पुरुषरूप कहा गया है॥ २३—२७॥

उन [वामभागोत्पन्न] कामकी आधारस्वरूपाको उन सनातन महाकामेश्वरने देखा। उनका रूप अतीव मनोहर था। वे सुन्दर कमलकी शोभा धारण किये हुए थीं। उन परादेवीका नितम्बयुगल चन्द्रबिम्बको तिरस्कृत कर रहा था और अपने जघनप्रदेशसे सुन्दर कदलीस्तम्भको निन्दित करते हुए वे मनोहर प्रतीत हो रही थीं। शोभामय श्रीफलके आकारवाले स्तनयुगलसे वे मनोरम प्रतीत हो रही थीं। वे मस्तकपर पुष्पोंकी सुन्दर माला धारण किये थीं, वे सुन्दर वलियोंसे युक्त थीं, उनका कटिप्रदेश क्षीण था, वे अति मनोहर थीं,

अतीव सुन्दरीं शान्तां सस्मितां वक्रलोचनाम्।
वह्निशुद्धांशुकाधारां रत्नभूषणभूषिताम्॥ ३१
शश्वच्चक्षुश्चकोराभ्यां पिबन्तीं सततं मुदा।
कृष्णस्य मुखचन्द्रं च चन्द्रकोटिविनिन्दितम्॥ ३२
कस्तूरीबिन्दुना सार्धमधश्चन्दनबिन्दुना।
समं सिन्दूरबिन्दुं च भालमध्ये च बिभ्रतीम्॥ ३३
वक्रिमं कबरीभारं मालतीमाल्यभूषितम्।
रत्नेन्द्रसारहारं च दधतीं कान्तकामुकीम्॥ ३४
कोटिचन्द्रप्रभामृष्टपुष्टशोभासमन्विताम्।
गमनेन राजहंसगजगर्वविनाशिनीम्॥ ३५
दृष्ट्वा तां तु तया सार्धं रासेशो रासमण्डले।
रासोल्लासे सुरसिको रासक्रीडाञ्चकार ह॥ ३६
नानाप्रकारशृङ्गारं शृङ्गारो मूर्तिमानिव।
चकार सुखसम्भोगं यावद्वै ब्रह्मणो दिनम्॥ ३७
ततः स च परिश्रान्तस्तस्या योनौ जगत्पिता।
चकार वीर्याधानं च नित्यानन्दे शुभक्षणे॥ ३८
गात्रतो योषितस्तस्याः सुरतान्ते च सुव्रत।
निःससार श्रमजलं श्रान्तायास्तेजसा हरेः॥ ३९
महाक्रमणक्लिष्टाया निःश्वासश्च बभूव ह।
तदा वव्रे श्रमजलं तत्सर्वं विश्वगोलकम्॥ ४०
स च निःश्वासवायुश्च सर्वाधारो बभूव ह।
निःश्वासवायुः सर्वेषां जीविनां च भवेषु च॥ ४१
बभूव मूर्तिमद्वायोर्वामाङ्गात्प्राणवल्लभा।
तत्पत्नी सा च तत्पुत्राः प्राणाः पञ्च च जीविनाम्॥ ४२
प्राणोऽपानः समानश्चोदानव्यानौ च वायवः।
बभूवुरेव तत्पुत्रा अधः प्राणाश्च पञ्च च॥ ४३
घर्मतोयाधिदेवश्च बभूव वरुणो महान्।
तद्वामाङ्गाच्च तत्पत्नी वरुणानी बभूव सा॥ ४४
अथ सा कृष्णचिच्छक्तिः कृष्णगर्भं दधार ह।
शतमन्वन्तरं यावज्ज्वलन्ती ब्रह्मतेजसा॥ ४५

वे अत्यन्त सुन्दर, शान्त मुसकान और कटाक्षसे सुशोभित थीं। उन्होंने अग्निके समान पवित्र वस्त्र धारण कर रखा था और वे रत्नोंके आभूषणोंसे सुशोभित थीं॥ २८—३१॥

वे अपने चक्षुरूपी चकोरोंसे करोड़ों चन्द्रमाओंको तिरस्कृत करनेवाले श्रीकृष्णके मुखमण्डलका प्रसन्नतापूर्वक निरन्तर पान कर रही थीं। वे देवी ललाटके ऊपरी भागमें कस्तूरीकी बिन्दीके साथ-साथ नीचे चन्दनकी बिन्दी तथा ललाटके मध्यमें सिन्दूरकी बिन्दी धारण किये थीं। अपने प्रियतममें अनुरक्त चित्तवाली वे देवी मालतीकी मालासे भूषित घुँघराले केशसे शोभा पा रही थीं तथा श्रेष्ठ रत्नोंकी माला धारण किये हुए थीं। कोटि चन्द्रकी प्रभाको लज्जित करनेवाली शोभा धारण किये वे अपनी चालसे राजहंस और गजके गर्वको तिरस्कृत कर रही थीं॥ ३२—३५॥

उन्हें देखकर रासेश्वर तथा परम रसिक श्रीकृष्णने उनके साथ रासमण्डलमें उल्लासपूर्वक रासलीला की। ब्रह्माके दिव्य दिवसकी अवधितक नाना प्रकारकी शृंगारचेष्टाओंसे युक्त उन्होंने मूर्तिमान् शृंगाररसके समान सुखपूर्वक क्रीड़ा की। तत्पश्चात् थके हुए उन जगत्पिताने नित्यानन्दमय शुभ मुहूर्तमें देवीके क्षेत्रमें तेजका आधान किया। हे सुव्रत! क्रीडाके अन्तमें हरिके तेजसे परिश्रान्त उन देवीके शरीरसे स्वेद निकलने लगा और महान् परिश्रमसे खिन्न उनका श्वास भी वेगसे चलने लगा। तब वह सम्पूर्ण स्वेद विश्वगोलक बन गया और वह निःश्वास वायु जगत्में सब प्राणियोंके जीवनका आधार बन गया॥ ३६—४१॥

उस मूर्तिमान् वायुके वामांगसे उसकी प्राणप्रिय पत्नी प्रकट हुईं, पुनः उनके पाँच पुत्र उत्पन्न हुए जो जीवोंके प्राणके रूपमें प्रतिष्ठित हैं। प्राण, अपान, समान, उदान तथा व्यान—ये पाँच वायु और उनके पाँच अधोगामी प्राणरूप पुत्र भी उत्पन्न हुए॥ ४२-४३॥

स्वेदके रूपमें निकले जलके अधिष्ठाता महान् वरुणदेव हुए। उनके वामांगसे उनकी पत्नी वरुणानी प्रकट हुईं। श्रीकृष्णकी उन चिन्मयी शक्तिने उनके गर्भको धारण किया। वे सौ मन्वन्तरोंतक ब्रह्मतेजसे देदीप्यमान बनी रहीं। वे श्रीकृष्णके प्राणोंकी अधिष्ठातृदेवी

कृष्णप्राणाधिदेवी सा कृष्णप्राणाधिकप्रिया।
कृष्णस्य सङ्गिनी शश्वत्कृष्णवक्षःस्थलस्थिता॥ ४६

शतमन्वन्तरान्ते च कालेऽतीते तु सुन्दरी।
सुषाव डिम्भं स्वर्णाभं विश्वाधारालयं परम्॥ ४७

दृष्ट्वा डिम्भं च सा देवी हृदयेन व्यदूयत।
उत्ससर्ज च कोपेन ब्रह्माण्डगोलके जले॥ ४८

दृष्ट्वा कृष्णश्च तत्त्यागं हाहाकारं चकार ह।
शशाप देवीं देवेशस्तत्क्षणं च यथोचितम्॥ ४९

यतोऽपत्यं त्वया त्यक्तं कोपशीले च निष्ठुरे।
भव त्वमनपत्यापि चाद्यप्रभृति निश्चितम्॥ ५०

या यास्त्वदंशरूपाश्च भविष्यन्ति सुरस्त्रियः।
अनपत्याश्च ताः सर्वास्त्वत्समा नित्ययौवनाः॥ ५१

एतस्मिन्नन्तरे देवी जिह्वाग्रात्सहसा ततः।
आविर्बभूव कन्यैका शुक्लवर्णा मनोहरा॥ ५२

श्वेतवस्त्रपरीधाना वीणापुस्तकधारिणी।
रत्नभूषणभूषाढ्या सर्वशास्त्राधिदेवता॥ ५३

अथ कालान्तरे सा च द्विधारूपो बभूव ह।
वामार्धाङ्गाच्च कमला दक्षिणार्धाच्च राधिका॥ ५४

एतस्मिन्नन्तरे कृष्णो द्विधारूपो बभूव सः।
दक्षिणार्धश्च द्विभुजो वामार्धश्च चतुर्भुजः॥ ५५

उवाच वाणीं कृष्णस्तां त्वमस्य कामिनी भव।
अत्रैव मानिनी राधा तव भद्रं भविष्यति॥ ५६

एवं लक्ष्मीं च प्रददौ तुष्टो नारायणाय च।
स जगाम च वैकुण्ठं ताभ्यां सार्धं जगत्पतिः॥ ५७

अनपत्ये च ते द्वे च जाते राधांशसम्भवे।
भूता नारायणाङ्गाच्च पार्षदाश्च चतुर्भुजाः॥ ५८

तेजसा वयसा रूपगुणाभ्यां च समा हरेः।
बभूवुः कमलाङ्गाच्च दासीकोट्यश्च तत्समाः॥ ५९

हैं, कृष्णको प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं। वे कृष्णकी सहचरी हैं और सदा उनके वक्षःस्थलपर विराजमान रहती हैं। सौ मन्वन्तर बीतनेपर उन सुन्दरीने स्वर्णकी कान्तिवाले, विश्वके आधार तथा निधानस्वरूप श्रेष्ठ बालकको जन्म दिया॥ ४४—४७॥

उस बालकको देखकर उन देवीका हृदय अत्यन्त दुःखित हो गया और उन्होंने उस बालकको कोपपूर्वक उस ब्रह्माण्डगोलकमें छोड़ दिया। बालकके उस त्यागको देखकर देवेश्वर श्रीकृष्ण हाहाकार करने लगे और उन्होंने उसी क्षण उन देवीको समयानुसार शाप दे दिया—हे कोपशीले! हे निष्ठुरे! तुमने पुत्रको त्याग दिया है, इस कारण आजसे तुम निश्चित ही सन्तानहीन रहोगी। तुम्हारे अंशसे जो-जो देवपत्नियाँ प्रकट होंगी, वे भी तुम्हारी तरह सन्तानरहित तथा नित्ययौवना रहेंगी॥ ४८—५१॥

इसके बाद देवीके जिह्वाग्रसे सहसा ही एक सुन्दर गौरवर्ण कन्या प्रकट हुई। उन्होंने श्वेत वस्त्र धारण कर रखा था तथा वे हाथमें वीणा-पुस्तक लिये हुए थीं। सभी शास्त्रोंकी अधिष्ठात्री वे देवी रत्नोंके आभूषणसे सुशोभित थीं। कालान्तरमें वे भी द्विधारूपसे विभक्त हो गयीं। उनके वाम अर्धांगसे कमला तथा दक्षिण अर्धांगसे राधिका प्रकट हुईं॥ ५२—५४॥

इसी बीच श्रीकृष्ण भी द्विधारूपसे प्रकट हो गये। उनके दक्षिणार्धसे द्विभुज रूप प्रकट हुआ तथा वामार्धसे चतुर्भुज रूप प्रकट हुआ। तब श्रीकृष्णने उन सरस्वती-देवीसे कहा कि तुम इस (चतुर्भुज) विष्णुकी कामिनी बनो। ये मानिनी राधा इस द्विभुजके साथ यहीं रहेंगी। तुम्हारा कल्याण होगा। इस प्रकार प्रसन्न होकर उन्होंने लक्ष्मीको नारायणको समर्पित कर दिया। तत्पश्चात् वे जगत्पति उन दोनोंके साथ वैकुण्ठको चले गये॥ ५५—५७॥

राधाके अंशसे प्रकट वे दोनों लक्ष्मी तथा सरस्वती निःसन्तान ही रहीं। भगवान् नारायणके अंगसे चतुर्भुज पार्षद प्रकट हुए। वे तेज, वय, रूप और गुणोंमें नारायणके समान ही थे। उसी प्रकार लक्ष्मीके अंगसे उनके ही समान करोड़ों दासियाँ प्रकट हो गयीं॥ ५८-५९॥

अथ गोलोकनाथस्य लोम्नां विवरतो मुने।
भूताश्चासंख्यगोपाश्च वयसा तेजसा समाः॥ ६०
रूपेण च गुणेनैव बलेन विक्रमेण च।
प्राणतुल्यप्रियाः सर्वे बभूवुः पार्षदा विभोः॥ ६१
राधाङ्गलोमकूपेभ्यो बभूवुर्गोपकन्यकाः।
राधातुल्याश्च ताः सर्वा राधादास्यः प्रियंवदाः॥ ६२
रत्नभूषणभूषाढ्याः शश्वत्सुस्थिरयौवनाः।
अनपत्याश्च ताः सर्वाः पुंसः शापेन सन्ततम्॥ ६३
एतस्मिन्नन्तरे विप्र सहसा कृष्णदेवता।
आविर्बभूव दुर्गा सा विष्णुमाया सनातनी॥ ६४
देवी नारायणीशाना सर्वशक्तिस्वरूपिणी।
बुद्ध्यधिष्ठात्री देवी सा कृष्णस्य परमात्मनः॥ ६५
देवीनां बीजरूपा च मूलप्रकृतिरीश्वरी।
परिपूर्णतमा तेजःस्वरूपा त्रिगुणात्मिका॥ ६६
तप्तकाञ्चनवर्णाभा कोटिसूर्यसमप्रभा।
ईषद्धास्यप्रसन्नास्या सहस्रभुजसंयुता॥ ६७
नानाशस्त्रास्त्रनिकरं बिभ्रती सा त्रिलोचना।
वह्निशुद्धांशुकाधाना रत्नभूषणभूषिता॥ ६८
यस्याश्चांशांशकलया बभूवुः सर्वयोषितः।
सर्वे विश्वस्थिता लोका मोहिताः स्युश्च मायया॥ ६९
सर्वैश्वर्यप्रदात्री च कामिनां गृहवासिनाम्।
कृष्णभक्तिप्रदा या च वैष्णवानां च वैष्णवी॥ ७०
मुमुक्षूणां मोक्षदात्री सुखिनां सुखदायिनी।
स्वर्गेषु स्वर्गलक्ष्मीश्च गृहलक्ष्मीर्गृहेषु च॥ ७१
तपस्विषु तपस्या च श्रीरूपा तु नृपेषु च।
या वह्नौ दाहिकारूपा प्रभारूपा च भास्करे॥ ७२
शोभारूपा च चन्द्रे च सा पद्मेषु च शोभना।
सर्वशक्तिस्वरूपा या श्रीकृष्णे परमात्मनि॥ ७३

हे मुने! गोलोकनाथ श्रीकृष्णके रोमकूपोंसे असंख्य गोपगण प्रकट हुए; जो वय, तेज, रूप, गुण, बल तथा पराक्रममें उन्हींके समान थे। वे सभी परमेश्वर श्रीकृष्णके प्राणोंके समान प्रिय पार्षद बन गये॥ ६०-६१॥

श्रीराधाके अंगोंके रोमकूपोंसे अनेक गोपकन्याएँ प्रकट हुईं। वे सब राधाके ही समान थीं तथा उनकी प्रियवादिनी दासियोंके रूपमें रहती थीं। वे सभी रत्नाभरणोंसे भूषित और सदा स्थिरयौवना थीं, किंतु परमात्माके शापके कारण वे सभी सदा सन्तानहीन रहीं। हे विप्र! इसी बीच श्रीकृष्णकी उपासना करनेवाली सनातनी विष्णुमाया दुर्गा सहसा प्रकट हुईं। वे देवी सर्वशक्तिमती, नारायणी तथा ईशाना हैं और परमात्मा श्रीकृष्णकी बुद्धिकी अधिष्ठात्री देवी हैं॥ ६२—६५॥

सभी शक्तियोंकी बीजरूपा वे मूलप्रकृति ही ईश्वरी, परिपूर्णतमा तथा तेजपूर्ण त्रिगुणात्मिका हैं। वे तपाये हुए स्वर्णकी कान्तिवाली, कोटि सूर्योंकी आभा धारण करनेवाली, किंचित् हास्यसे युक्त प्रसन्नवदनवाली तथा सहस्र भुजाओंसे शोभायमान हैं। वे त्रिलोचना भगवती नाना प्रकारके शस्त्रास्त्र-समूहोंको धारण करती हैं, अग्निसदृश विशुद्ध वस्त्र धारण किये हुए हैं और रत्नाभरणसे भूषित हैं॥ ६६—६८॥

उन्हींकी अंशांशकलासे सभी नारियाँ प्रकट हुई हैं। उनकी मायासे विश्वके सभी प्राणी मोहित हो जाते हैं। वे गृहस्थ सकामजनोंको सब प्रकारके ऐश्वर्य प्रदान करनेवाली, वैष्णवजनोंको वैष्णवी कृष्णभक्ति देनेवाली, मोक्षार्थी-जनोंको मोक्ष देनेवाली तथा सुख चाहनेवालोंको सुख प्रदान करनेवाली हैं॥ ६९-७०½॥

वे देवी स्वर्गमें स्वर्गलक्ष्मी, गृहोंमें गृहलक्ष्मी, तपस्वियोंमें तप तथा राजाओंमें राज्यलक्ष्मीके रूपमें स्थित हैं। वे अग्निमें दाहिका शक्ति, सूर्यमें प्रभारूप, चन्द्रमा तथा कमलोंमें शोभारूपसे और परमात्मा श्रीकृष्णमें सर्वशक्तिरूपसे विद्यमान हैं॥ ७१—७३॥

यया च शक्तिमानात्मा यया च शक्तिमज्जगत्।
यया विना जगत्सर्वं जीवन्मृतमिव स्थितम्॥ ७४

या च संसारवृक्षस्य बीजरूपा सनातनी।
स्थितिरूपा वृद्धिरूपा फलरूपा च नारद॥ ७५

क्षुत्पिपासादयारूपा निद्रा तन्द्रा क्षमा मतिः।
शान्तिलज्जातुष्टिपुष्टिभ्रान्तिकान्त्यादिरूपिणी॥ ७६

सा च संस्तूय सर्वेशं तत्पुरः समुवास ह।
रत्नसिंहासनं तस्यै प्रददौ राधिकेश्वरः॥ ७७

एतस्मिन्नन्तरे तत्र सस्त्रीकश्च चतुर्मुखः।
पद्मनाभेर्नाभिपद्मान्निःससार महामुने॥ ७८

कमण्डलुधरः श्रीमांस्तपस्वी ज्ञानिनां वरः।
चतुर्मुखैस्तं तुष्टाव प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा॥ ७९

सा तदा सुन्दरी सृष्टा शतचन्द्रसमप्रभा।
वह्निशुद्धांशुकाधाना रत्नभूषणभूषणा॥ ८०

रत्नसिंहासने रम्ये संस्तूय सर्वकारणम्।
उवास स्वामिना सार्धं कृष्णस्य पुरतो मुदा॥ ८१

एतस्मिन्नन्तरे कृष्णो द्विधारूपो बभूव सः।
वामार्धाङ्गो महादेवो दक्षिणे गोपिकापतिः॥ ८२

शुद्धस्फटिकसंकाशः शतकोटिरविप्रभः।
त्रिशूलपट्टिशधरो व्याघ्रचर्माम्बरो हरः॥ ८३

तप्तकाञ्चनवर्णाभो जटाभारधरः परः।
भस्मभूषितगात्रश्च सस्मितश्चन्द्रशेखरः॥ ८४

दिगम्बरो नीलकण्ठः सर्पभूषणभूषितः।
बिभ्रद्दक्षिणहस्तेन रत्नमालां सुसंस्कृताम्॥ ८५

हे नारद! जिनसे परमात्मा शक्तिसम्पन्न होता है तथा जगत् भी शक्ति प्राप्त करता है और जिनके बिना सारा चराचर विश्व जीते हुए भी मृतकतुल्य हो जाता है, जो सनातनी संसाररूपी बीजरूपसे वर्तमान हैं, वे ही समस्त सृष्टिकी स्थिति, वृद्धि और फलरूपसे स्थित हैं॥ ७४-७५॥

वे ही भूख-प्यास, दया, निद्रा, तन्द्रा, क्षमा, मति, शान्ति, लज्जा, तुष्टि, पुष्टि, भ्रान्ति तथा कान्तिरूपसे सर्वत्र विराजती हैं। सर्वेश्वर प्रभुकी स्तुति करके वे उनके समक्ष स्थित हो गयीं। राधिकाके ईश्वर श्रीकृष्णने उन्हें रत्नसिंहासन प्रदान किया॥ ७६-७७॥

हे महामुने! इसी समय वहाँ सपत्नीक ब्रह्माजी पद्मनाभ भगवान्‌के नाभिकमलसे प्रकट हुए। ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ तथा परम तपस्वी वे ब्रह्मा कमण्डलु धारण किये हुए थे। देदीप्यमान वे ब्रह्मा चारों मुखोंसे श्रीकृष्णकी स्तुति करने लगे॥ ७८-७९॥

सैकड़ों चन्द्रमाके समान कान्तिवाली, अग्निके समान चमकीले वस्त्रोंको धारण किये और रत्नाभरणोंसे भूषित प्रकट हुईं वे सुन्दरी सबके कारणभूत परमात्माकी स्तुति करके अपने स्वामी श्रीकृष्णके साथ रमणीय रत्नसिंहासनपर उनके समक्ष प्रसन्नतापूर्वक बैठ गयीं॥ ८०-८१॥

उसी समय वे श्रीकृष्ण दो रूपोंमें विभक्त हो गये। उनका वाम अर्धांग महादेवके रूपमें परिणत हो गया और दक्षिण अर्धांग गोपीवल्लभ श्रीकृष्ण ही बना रह गया। वे महादेव शुद्ध स्फटिकके समान प्रभायुक्त थे, शतकोटि सूर्यकी प्रभासे सम्पन्न थे, त्रिशूल तथा पट्टिश धारण किये हुए थे तथा बाघम्बर पहने हुए थे। वे परमेश्वर तप्त स्वर्णके समान कान्तिवाले थे, वे जटाजूट धारण किये हुए थे, उनका शरीर भस्मसे विभूषित था, वे मन्द-मन्द मुसकरा रहे थे। उन्होंने मस्तकपर चन्द्रमाको धारण कर रखा था। वे दिगम्बर नीलकण्ठ सर्पोंके आभूषणसे अलंकृत थे। उन्होंने दाहिने हाथमें सुसंस्कृत रत्नमाला धारण कर रखी थी॥ ८२—८५॥

प्रजपन्पञ्चवक्त्रेण ब्रह्मज्योतिः सनातनम्।
सत्यस्वरूपं श्रीकृष्णं परमात्मानमीश्वरम्॥ ८६
कारणं कारणानां च सर्वमङ्गलमङ्गलम्।
जन्ममृत्युजराव्याधिशोकभीतिहरं परम्॥ ८७
संस्तूय मृत्योर्मृत्युं तं यतो मृत्युञ्जयाभिधः।
रत्नसिंहासने रम्ये समुवास हरेः पुरः॥ ८८

वे पाँचों मुखोंसे सनातन ब्रह्मज्योतिका जप कर रहे थे। उन सत्यस्वरूप, परमात्मा, ईश्वर, सभी कारणोंके कारण, सभी मंगलोंके भी मंगल, जन्म-मृत्यु, जरा- व्याधि-शोक और भयको दूर करनेवाले, कालके काल, श्रेष्ठ श्रीकृष्णकी स्तुति करके मृत्युंजय नामसे विख्यात हुए वे शिव विष्णुके समक्ष रमणीय रत्नसिंहासनपर बैठ गये॥ ८६—८८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे पञ्चप्रकृतितद्भर्तृगणोत्पत्तिवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥



अथ तृतीयोऽध्यायः

परिपूर्णतम श्रीकृष्ण और चिन्मयी राधासे प्रकट विराट्‌रूप बालकका वर्णन

श्रीनारायण उवाच

अथ डिम्भो जले तिष्ठन्यावद्वै ब्रह्मणो वयः।
ततः स काले सहसा द्विधाभूतो बभूव ह॥ १

श्रीनारायण बोले—वह बालक जो पहले जलमें छोड़ दिया गया था, ब्रह्माजीकी आयुपर्यन्त जलमें ही पड़ा रहा। उसके बाद वह समय आनेपर अचानक ही दो रूपोंमें विभक्त हो गया॥ १॥

तन्मध्ये शिशुरेकश्च शतकोटिरविप्रभः।
क्षणं रोरूयमाणश्च स्तनान्धः पीडितः क्षुधा॥ २

उनमेंसे एक बालक शतकोटि सूर्योंकी आभासे युक्त था; माताके स्तनपानसे रहित वह भूखसे व्याकुल होकर बार-बार रो रहा था॥ २॥

पित्रा मात्रा परित्यक्तो जलमध्ये निराश्रयः।
ब्रह्माण्डासंख्यनाथो यो ददर्शोर्ध्वमनाथवत्॥ ३

माता-पितासे परित्यक्त होकर आश्रयहीन उस बालकने जलमें रहते हुए अनन्त ब्रह्माण्डनायक होते हुए भी अनाथकी भाँति ऊपरकी ओर दृष्टि डाली॥ ३॥

स्थूलात्स्थूलतमः सोऽपि नाम्ना देवो महाविराट्।
परमाणुर्यथा सूक्ष्मात्परः स्थूलात्तथाप्यसौ॥ ४

तेजसा षोडशांशोऽयं कृष्णस्य परमात्मनः।
आधारः सर्वविश्वानां महाविष्णुश्च प्राकृतः॥ ५

जैसे परमाणु सूक्ष्मसे भी अति सूक्ष्म होता है, वैसे ही वह स्थूलसे भी स्थूल था। स्थूलसे भी स्थूलतम होनेसे वे देव महाविराट् नामसे प्रसिद्ध हुए। परमात्मा श्रीकृष्णके तेजसे सोलहवें अंशके रूपमें तथा प्रकृतिस्वरूपा राधासे उत्पन्न होनेके कारण यह सभी लोकोंका आधार तथा महाविष्णु कहा गया॥ ४-५॥

प्रत्येकं लोमकूपेषु विश्वानि निखिलानि च।
अस्यापि तेषां संख्यां च कृष्णो वक्तुं न हि क्षमः॥ ६

संख्या चेद्रजसामस्ति विश्वानां न कदाचन।
ब्रह्मविष्णुशिवादीनां तथा संख्या न विद्यते॥ ७

प्रतिविश्वेषु सन्त्येवं ब्रह्मविष्णुशिवादयः।

उसके प्रत्येक रोमकूपमें अखिल ब्रह्माण्ड स्थित थे, उनकी संख्या श्रीकृष्ण भी बता पानेमें समर्थ नहीं हैं। जैसे पृथिवी आदि लोकोंमें व्याप्त रजकणोंकी संख्या कोई निर्धारित नहीं कर सकता, उसी प्रकार उसके रोमकूपस्थित ब्रह्मा, विष्णु, शिवादिकी संख्या भी निश्चित नहीं है। प्रत्येक ब्रह्माण्डमें ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि विद्यमान हैं॥ ६-७½॥

पातालाद् ब्रह्मलोकान्तं ब्रह्माण्डं परिकीर्तितम्॥ ८

तत ऊर्ध्वं च वैकुण्ठो ब्रह्माण्डाद् बहिरेव सः।
तत ऊर्ध्वं च गोलोकः पञ्चाशत्कोटियोजनः॥ ९

नित्यः सत्यस्वरूपश्च यथा कृष्णस्तथाप्ययम्।
सप्तद्वीपमिता पृथ्वी सप्तसागरसंयुता॥ १०

ऊनपञ्चाशदुपद्वीपासंख्यशैलवनान्विता।
ऊर्ध्वं सप्त स्वर्गलोका ब्रह्मलोकसमन्विताः॥ ११

पातालानि च सप्ताधश्चैवं ब्रह्माण्डमेव च।
ऊर्ध्वं धराया भूर्लोको भुवर्लोकस्ततः परम्॥ १२

ततः परश्च स्वर्लोको जनलोकस्तथा परः।
ततः परस्तपोलोकः सत्यलोकस्ततः परः॥ १३

ततः परं ब्रह्मलोकस्तप्तकाञ्चनसन्निभः।
एवं सर्वं कृत्रिमं च बाह्याभ्यन्तरमेव च॥ १४

तद्विनाशे विनाशश्च सर्वेषामेव नारद।
जलबुद्बुदवत्सर्वं विश्वसंघमनित्यकम्॥ १५

नित्यौ गोलोकवैकुण्ठौ प्रोक्तौ शश्वदकृत्रिमौ।
प्रत्येकं लोमकूपेषु ब्रह्माण्डं परिनिश्चितम्॥ १६

एषां संख्यां न जानाति कृष्णोऽन्यस्यापि का कथा।
प्रत्येकं प्रतिब्रह्माण्डं ब्रह्मविष्णुशिवादयः॥ १७

तिस्रः कोट्यः सुराणां च संख्या सर्वत्र पुत्रक।
दिगीशाश्चैव दिक्पाला नक्षत्राणि ग्रहादयः॥ १८

भुवि वर्णाश्च चत्वारोऽप्यधो नागाश्चराचराः।
अथ कालेऽत्र स विराडूर्ध्वं दृष्ट्वा पुनः पुनः॥ १९

डिम्भान्तरे च शून्यं च न द्वितीयं च किञ्चन।
चिन्तामवाप क्षुद्युक्तो रुरोद च पुनः पुनः॥ २०

ज्ञानं प्राप्य तदा दध्यौ कृष्णं परमपूरुषम्।
ततो ददर्श तत्रैव ब्रह्मज्योतिः सनातनम्॥ २१

पातालसे ब्रह्मलोकपर्यन्त ब्रह्माण्ड कहा गया है। उसके ऊपर वैकुण्ठलोक है; वह ब्रह्माण्डसे बाहर है। उसके ऊपर पचास करोड़ योजन विस्तारवाला गोलोक है। जैसे श्रीकृष्ण नित्य और सत्यस्वरूप हैं, वैसे ही यह गोलोक भी है॥ ८–९½ ॥

यह पृथ्वी सात द्वीपोंवाली तथा सात महासागरोंसे समन्वित है। इसमें उनचास उपद्वीप हैं और असंख्य वन तथा पर्वत हैं। इसके ऊपर सात स्वर्गलोक हैं, जिनमें ब्रह्मलोक भी सम्मिलित है। इसके नीचे सात पाताल-लोक भी हैं; यह सब मिलाकर ब्रह्माण्ड कहा जाता है॥ १०–११½ ॥

पृथ्वीसे ऊपर भूर्लोक, उसके बाद भुवर्लोक, उसके ऊपर स्वर्लोक, तत्पश्चात् जनलोक, फिर तपोलोक और उसके आगे सत्यलोक है। उसके भी ऊपर तप्त स्वर्णकी आभावाला ब्रह्मलोक है। ब्रह्माण्डके बाहर-भीतर स्थित रहनेवाले ये सब कृत्रिम हैं। हे नारद! उस ब्रह्माण्डके नष्ट होनेपर उन सबका विनाश हो जाता है; क्योंकि जलके बुलबुलेकी तरह यह सब लोक-समूह अनित्य है॥ १२—१५ ॥

गोलोक और वैकुण्ठ सनातन, अकृत्रिम और नित्य बताये गये हैं। महाविष्णुके प्रत्येक रोमकूपमें ब्रह्माण्ड स्थित रहते हैं। इनकी संख्या श्रीकृष्ण भी नहीं जानते, फिर दूसरेकी क्या बात? प्रत्येक ब्रह्माण्डमें अलग-अलग ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि विराजमान रहते हैं। हे पुत्र! देवताओंकी संख्या वहाँ तीस करोड़ है। दिगीश्वर, दिक्पाल, ग्रह, नक्षत्र आदि भी ब्रह्माण्डमें विद्यमान रहते हैं। पृथ्वीपर चार वर्णके लोग और उसके नीचे पाताललोकमें नाग रहते हैं; इस प्रकार ब्रह्माण्डमें चराचर प्राणी विद्यमान हैं॥ १६—१८½ ॥

तदनन्तर उस विराट्स्वरूप बालकने बार-बार ऊपरकी ओर देखा; किंतु उस गोलाकार पिण्डमें शून्यके अतिरिक्त दूसरा कुछ भी नहीं था। तब वह चिन्तित हो उठा और भूखसे व्याकुल होकर बार-बार रोने लगा॥ १९–२० ॥

चेतनामें आकर जब उसने परमात्मा श्रीकृष्णका ध्यान किया तब उसे सनातन ब्रह्मज्योतिके दर्शन हुए।

नवीनजलदश्यामं द्विभुजं पीतवाससम्।
सस्मितं मुरलीहस्तं भक्तानुग्रहकातरम्॥ २२

जहास बालकस्तुष्टो दृष्ट्वा जनकमीश्वरम्।
वरं तदा ददौ तस्मै वरेशः समयोचितम्॥ २३

मत्समो ज्ञानयुक्तश्च क्षुत्पिपासादिवर्जितः।
ब्रह्माण्डासंख्यनिलयो भव वत्स लयावधि॥ २४

निष्कामो निर्भयश्चैव सर्वेषां वरदो भव।
जरामृत्युरोगशोकपीडादिवर्जितो भव॥ २५

इत्युक्त्वा तस्य कर्णे स महामन्त्रं षडक्षरम्।
त्रिःकृत्वश्च प्रजजाप वेदाङ्गप्रवरं परम्॥ २६

प्रणवादिचतुर्थ्यन्तं कृष्ण इत्यक्षरद्वयम्।
वह्निजायान्तमिष्टं च सर्वविघ्नहरं परम्॥ २७

मन्त्रं दत्त्वा तदाहारं कल्पयामास वै विभुः।
श्रूयतां तद् ब्रह्मपुत्र निबोध कथयामि ते॥ २८

प्रतिविश्वं यन्नैवेद्यं ददाति वैष्णवो जनः।
तत्षोडशांशो विषयिणो विष्णोः पञ्चदशास्य वै॥ २९

निर्गुणस्यात्मनश्चैव परिपूर्णतमस्य च।
नैवेद्ये चैव कृष्णस्य न हि किञ्चित्प्रयोजनम्॥ ३०

यद्यद्ददाति नैवेद्यं तस्मै देवाय यो जनः।
स च खादति तत्सर्वं लक्ष्मीनाथो विराट् तथा॥ ३१

तं च मन्त्रवरं दत्त्वा तमुवाच पुनर्विभुः।
वरमन्यं किमिष्टं ते तन्मे ब्रूहि ददामि च॥ ३२

कृष्णस्य वचनं श्रुत्वा तमुवाच विराड् विभुः।
कृष्णं तं बालकस्तावद्वचनं समयोचितम्॥ ३३

बालक उवाच

वरो मे त्वत्पदाम्भोजे भक्तिर्भवतु निश्चला।
सततं यावदायुर्मे क्षणं वा सुचिरं च वा॥ ३४

त्वद्भक्तियुक्तलोकेऽस्मिञ्जीवन्मुक्तश्च सन्ततम्।
त्वद्भक्तिहीनो मूर्खश्च जीवन्नपि मृतो हि सः॥ ३५

नवीन मेघके समान श्याम वर्ण, दो भुजाओंवाले, पीताम्बर धारण किये, मुसकानयुक्त, हाथमें मुरली धारण किये, भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये व्याकुल पिता परमेश्वरको देखकर वह बालक प्रसन्न होकर हँस पड़ा॥ २१–२२½ ॥

तब वरके अधिदेव प्रभुने उसे यह समयोचित वर प्रदान किया—हे वत्स! तुम मेरे समान ही ज्ञानसम्पन्न, भूख-प्याससे रहित तथा प्रलयपर्यन्त असंख्य ब्रह्माण्डके आश्रय रहो। तुम निष्काम, निर्भय तथा सभीको वर प्रदान करनेवाले हो जाओ; जरा, मृत्यु, रोग, शोक, पीडा आदिसे रहित हो जाओ॥ २३—२५॥

ऐसा कहकर उसके कानमें उन्होंने वेदोंके प्रधान अंगस्वरूप श्रेष्ठ षडक्षर महामन्त्रका तीन बार उच्चारण किया। आदिमें प्रणव तथा इसके बाद दो अक्षरोंवाले कृष्ण शब्दमें चतुर्थी विभक्ति लगाकर अन्तमें स्वाहासे संयुक्त यह परम अभीष्ट मन्त्र (**ॐ कृष्णाय स्वाहा**) सभी विघ्नोंका नाश करनेवाला है॥ २६–२७॥

मन्त्र देकर प्रभुने उसके आहारकी भी व्यवस्था की। हे ब्रह्मपुत्र! उसे सुनिये, मैं आपको बताता हूँ। प्रत्येक लोकमें वैष्णवभक्त जो नैवेद्य अर्पित करता है, उसका सोलहवाँ भाग तो भगवान् विष्णुका होता है तथा पन्द्रह भाग इस विराट् पुरुषके होते हैं॥ २८–२९॥

उन परिपूर्णतम तथा निर्गुण परमात्मा श्रीकृष्णको तो नैवेद्यसे कोई प्रयोजन नहीं है। भक्त उन प्रभुको जो कुछ भी नैवेद्य अर्पित करता है, उसे वे लक्ष्मीनाथ विराट् पुरुष ग्रहण करते हैं॥ ३०–३१॥

उस बालकको श्रेष्ठ मन्त्र प्रदान करके प्रभुने उससे पुनः पूछा कि तुम्हें दूसरा कौन-सा वर अभीष्ट है, उसे मुझे बताओ; मैं देता हूँ। श्रीकृष्णकी बात सुनकर बालकरूप उन विराट् प्रभुने कृष्णसे समयोचित बात कही॥ ३२–३३॥

बालक बोला—मेरा वर है आपके चरणकमलमें मेरी अविचल भक्ति आयुपर्यन्त निरन्तर बनी रहे। मेरी आयु चाहे क्षणभरकी ही हो या अत्यन्त दीर्घ। इस लोकमें आपकी भक्तिसे युक्त प्राणी जीवन्मुक्त ही है और जो आपकी भक्तिसे रहित है, वह मूर्ख जीते हुए भी मरेके समान है॥ ३४–३५॥

किं तज्जपेन तपसा यज्ञेन पूजनेन च।
व्रतेन चोपवासेन पुण्येन तीर्थसेवया॥ ३६

कृष्णभक्तिविहीनस्य मूर्खस्य जीवनं वृथा।
येनात्मना जीवितश्च तमेव न हि मन्यते॥ ३७

यावदात्मा शरीरेऽस्ति तावत्स शक्तिसंयुतः।
पश्चाद्यान्ति गते तस्मिन्स्वतन्त्राः सर्वशक्तयः॥ ३८

स च त्वं च महाभाग सर्वात्मा प्रकृतेः परः।
स्वेच्छामयश्च सर्वाद्यो ब्रह्मज्योतिः सनातनः॥ ३९

इत्युक्त्वा बालकस्तत्र विरराम च नारद।
उवाच कृष्णः प्रत्युक्तिं मधुरां श्रुतिसुन्दरीम्॥ ४०

श्रीकृष्ण उवाच

सुचिरं सुस्थिरं तिष्ठ यथाहं त्वं तथा भव।
ब्रह्मणोऽसंख्यपाते च पातस्ते न भविष्यति॥ ४१

अंशेन प्रतिब्रह्माण्डे त्वं च क्षुद्रविराड् भव।
त्वन्नाभिपद्माद् ब्रह्मा च विश्वस्त्रष्टा भविष्यति॥ ४२

ललाटे ब्रह्मणश्चैव रुद्राश्चैकादशैव ते।
शिवांशेन भविष्यन्ति सृष्टिसंहरणाय वै॥ ४३

कालाग्निरुद्रस्तेष्वेको विश्वसंहारकारकः।
पाता विष्णुश्च विषयी रुद्रांशेन भविष्यति॥ ४४

मद्भक्तियुक्तः सततं भविष्यसि वरेण मे।
ध्यानेन कमनीयं मां नित्यं द्रक्ष्यसि निश्चितम्॥ ४५

मातरं कमनीयां च मम वक्षःस्थलस्थिताम्।
यामि लोकं तिष्ठ वत्सेत्युक्त्वा सोऽन्तरधीयत॥ ४६

गत्वा स्वलोकं ब्रह्माणं शङ्करं समुवाच ह।
स्त्रष्टारं स्त्रष्टुमीशं च संहर्तुं चैव तत्क्षणम्॥ ४७

श्रीभगवानुवाच

सृष्टिं स्त्रष्टुं गच्छ वत्स नाभिपद्मोद्भवो भव।
महाविराड् लोमकूपे क्षुद्रस्य च विधे शृणु॥ ४८

उस जप, तप, यज्ञ, पूजन, व्रत, उपवास, पुण्य तथा तीर्थसेवनसे क्या लाभ है; जो आपकी भक्तिसे रहित है। कृष्णभक्तिसे रहित मूर्खका जीवन ही व्यर्थ है जो कि वह उस परमात्माको ही नहीं भजता, जिसके कारण वह जीवित है॥ ३६-३७॥

जबतक आत्मा शरीरमें है, तभीतक प्राणी शक्ति-सम्पन्न रहता है। उस आत्माके निकल जानेके बाद वे सारी शक्तियाँ स्वतन्त्र होकर चली जाती हैं॥ ३८॥

हे महाभाग! वे आप सबकी आत्मारूप हैं तथा प्रकृतिसे परे हैं। आप स्वेच्छामय, सबके आदि, सनातन तथा ब्रह्मज्योतिस्वरूप हैं॥ ३९॥

हे नारदजी! यह कहकर वह बालक चुप हो गया। तब श्रीकृष्णने मधुर और कानोंको प्रिय लगनेवाली वाणीमें उसे प्रत्युत्तर दिया॥ ४०॥

श्रीकृष्ण बोले—तुम बहुत कालतक स्थिर भावसे रहो, जैसे मैं हूँ वैसे ही तुम भी हो जाओ। असंख्य ब्रह्माके नष्ट होनेपर भी तुम्हारा नाश नहीं होगा। प्रत्येक ब्रह्माण्डमें तुम अपने अंशसे क्षुद्रविराट्‌रूपमें स्थित रहोगे। तुम्हारे नाभिकमलसे उत्पन्न होकर ब्रह्मा विश्वका सृजन करनेवाले होंगे। सृष्टिके संहारकार्यके लिये ब्रह्माके ललाटमें शिवांशसे वे ग्यारह रुद्र प्रकट होंगे। उनमेंसे एक कालाग्नि नामक रुद्र विश्वका संहार करनेवाले होंगे। तत्पश्चात् विश्वका पालन करनेवाले भोक्ता विष्णु भी रुद्रांशसे प्रकट होंगे। मेरे वरके प्रभावसे तुम सदा ही मेरी भक्तिसे युक्त रहोगे। तुम मुझ परम सुन्दर [जगत्पिता] तथा मेरे वक्षःस्थलमें निवास करनेवाली मनोहर जगन्माताको ध्यानके द्वारा निश्चितरूपसे निरन्तर देख सकोगे। हे वत्स! अब तुम यहाँ रहो, मैं अपने लोकको जा रहा हूँ—ऐसा कहकर वे प्रभु श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये। अपने लोकमें जाकर उन्होंने सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीको सृष्टि करनेके लिये तथा [संहारकर्ता] शंकरजीको संहार करनेके लिये आदेश दिया॥ ४१—४७॥

श्रीभगवान् बोले—हे वत्स! सृष्टिकी रचना करनेके लिये जाओ। हे विधे! सुनो, महाविराट्‌के एक रोमकूपमें स्थित क्षुद्रविराट्‌के नाभिकमलसे प्रकट

गच्छ वत्स महादेव ब्रह्मभालोद्भवो भव।
अंशेन च महाभाग स्वयं च सुचिरं तप॥ ४९

इत्युक्त्वा जगतां नाथो विरराम विधेः सुत।
जगाम ब्रह्मा तं नत्वा शिवश्च शिवदायकः॥ ५०

महाविराड् लोमकूपे ब्रह्माण्डगोलके जले।
बभूव च विराट् क्षुद्रो विराडंशेन साम्प्रतम्॥ ५१

श्यामो युवा पीतवासाः शयानो जलतल्पके।
ईषद्धास्यः प्रसन्नास्यो विश्वव्यापी जनार्दनः॥ ५२

तन्नाभिकमले ब्रह्मा बभूव कमलोद्भवः।
सम्भूय पद्मदण्डे च बभ्राम युगलक्षकम्॥ ५३

नान्तं जगाम दण्डस्य पद्मनालस्य पद्मजः।
नाभिजस्य च पद्मस्य चिन्तामाप पिता तव॥ ५४

स्वस्थानं पुनरागम्य दध्यौ कृष्णपदाम्बुजम्।
ततो ददर्श क्षुद्रं तं ध्यानेन दिव्यचक्षुषा॥ ५५

शयानं जलतल्पे च ब्रह्माण्डगोलकाप्लुते।
यल्लोमकूपे ब्रह्माण्डं तं च तत्परमीश्वरम्॥ ५६

श्रीकृष्णं चापि गोलोकं गोपगोपीसमन्वितम्।

तं संस्तूय वरं प्राप ततः सृष्टिं चकार सः॥ ५७

बभूवुर्ब्रह्मणः पुत्रा मानसाः सनकादयः।
ततो रुद्रकलाश्चापि शिवस्यैकादश स्मृताः॥ ५८

बभूव पाता विष्णुश्च क्षुद्रस्य वामपार्श्वतः।
चतुर्भुजश्च भगवान् श्वेतद्वीपे स चावसत्॥ ५९

क्षुद्रस्य नाभिपद्मे च ब्रह्मा विश्वं ससर्ज ह।
स्वर्गं मर्त्यं च पातालं त्रिलोकीं सचराचराम्॥ ६०

एवं सर्वं लोमकूपे विश्वं प्रत्येकमेव च।
प्रतिविश्वे क्षुद्रविराड् ब्रह्मविष्णुशिवादयः॥ ६१

होओ। हे वत्स! (हे महादेव!) जाओ, अपने अंशसे ब्रह्माके ललाटसे प्रकट होओ। हे महाभाग! स्वयं भी दीर्घ कालतक तपस्या करो॥ ४८-४९॥

हे ब्रह्मपुत्र नारद! ऐसा कहकर जगत्पति श्रीकृष्ण चुप हो गये। तब उन्हें नमस्कार करके ब्रह्मा तथा कल्याणकारी शिवजी चल पड़े॥ ५०॥

महाविराट्‌के रोमकूपमें स्थित ब्रह्माण्डगोलकके जलमें वे विराट्‌पुरुष अपने अंशसे ही अब क्षुद्रविराट् पुरुषके रूपमें प्रकट हुए। श्याम वर्ण, युवा, पीताम्बर धारण किये वे विश्वव्यापी जनार्दन जलकी शय्यापर शयन करते हुए मन्द-मन्द मुसकरा रहे थे। उनका मुखमण्डल प्रसन्नतासे युक्त था॥ ५१-५२॥

उनके नाभिकमलसे ब्रह्मा प्रकट हुए। उत्पन्न होकर वे ब्रह्मा उस कमलदण्डमें एक लाख युगोंतक चक्कर लगाते रहे। फिर भी वे पद्मयोनि ब्रह्मा पद्मनाभकी नाभिसे उत्पन्न हुए कमलदण्ड तथा कमलनालके अन्ततक नहीं जा सके, [हे नारद!]तब आपके पिता (ब्रह्मा) चिन्तातुर हो गये॥ ५३-५४॥

तब अपने पूर्वस्थानपर आकर उन्होंने श्रीकृष्णके चरणकमलका ध्यान किया। तत्पश्चात् ध्यानद्वारा दिव्य चक्षुसे उन्होंने ब्रह्माण्डगोलकमें आप्लुत जलशय्यापर शयन करते हुए उन क्षुद्रविराट् पुरुषको देखा, साथ ही जिनके रोमकूपमें ब्रह्माण्ड था, उन महाविराट् पुरुषको तथा उनके भी परम प्रभु श्रीकृष्णको और गोप-गोपियोंसे समन्वित गोलोकको भी देखा। तत्पश्चात् श्रीकृष्णकी स्तुति करके उन्होंने उनसे वर प्राप्त किया और सृष्टिका कार्य प्रारम्भ कर दिया॥ ५५—५७॥

सर्वप्रथम ब्रह्माजीके सनक आदि मानस पुत्र उत्पन्न हुए। तत्पश्चात् शिवकी सुप्रसिद्ध ग्यारह रुद्रकलाएँ प्रादुर्भूत हुईं। तदनन्तर क्षुद्रविराट्‌के वामभागसे लोकोंकी रक्षा करनेवाले चतुर्भुज भगवान् विष्णु प्रकट हुए, वे श्वेतद्वीपमें निवास करने लगे॥ ५८-५९॥

क्षुद्रविराट्‌के नाभिकमलमें प्रकट हुए ब्रह्माजीने सारी सृष्टि रची। उन्होंने स्वर्ग, मृत्युलोक, पाताल, चराचरसहित तीनों लोकोंकी रचना की। इस प्रकार महाविराट्‌के सभी रोमकूपोंमें एक-एक ब्रह्माण्डकी सृष्टि हुई। प्रत्येक ब्रह्माण्डमें क्षुद्रविराट्, ब्रह्मा, विष्णु एवं

इत्येवं कथितं ब्रह्मन् कृष्णसङ्कीर्तनं शुभम्।
सुखदं मोक्षदं ब्रह्मन् किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ ६२

शिव आदि भी हैं। हे ब्रह्मन्! मैंने श्रीकृष्णका शुभ चरित्र कह दिया, जो सुख और मोक्ष देनेवाला है। हे ब्रह्मन्! आप और क्या सुनना चाहते हैं?॥ ६०—६२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे ब्रह्मविष्णुमहेश्वरादिदेवतोत्पत्तिवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥



अथ चतुर्थोऽध्यायः

सरस्वतीकी पूजाका विधान तथा कवच

नारद उवाच

श्रुतं सर्वं मया पूर्वं त्वत्प्रसादात्सुधोपमम्।
अधुना प्रकृतीनां च व्यस्तं वर्णय पूजनम्॥ १

कस्याः पूजा कृता केन कथं मर्त्ये प्रचारिता।
केन वा पूजिता का वा केन का वा स्तुता प्रभो॥ २

तासां स्तोत्रं च ध्यानं च प्रभावं चरितं शुभम्।
काभिः केभ्यो वरो दत्तस्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥ ३

श्रीनारायण उवाच

गणेशजननी दुर्गा राधा लक्ष्मीः सरस्वती।
सावित्री च सृष्टिविधौ प्रकृतिः पञ्चधा स्मृता॥ ४

आसां पूजा प्रसिद्धा च प्रभावः परमाद्भुतः।
सुधोपमं च चरितं सर्वमङ्गलकारणम्॥ ५

प्रकृत्यंशाः कला याश्च तासां च चरितं शुभम्।
सर्वं वक्ष्यामि ते ब्रह्मन् सावधानो निशामय॥ ६

काली वसुन्धरा गङ्गा षष्ठी मङ्गलचण्डिका।
तुलसी मनसा निद्रा स्वधा स्वाहा च दक्षिणा॥ ७

संक्षिप्तमासां चरितं पुण्यदं श्रुतिसुन्दरम्।
जीवकर्मविपाकं च तच्च वक्ष्यामि सुन्दरम्॥ ८

दुर्गायाश्चैव राधाया विस्तीर्णं चरितं महत्।
तद्वत्पश्चात्प्रवक्ष्यामि संक्षेपक्रमतः शृणु॥ ९

नारदजी बोले—हे भगवन्! मैंने आपकी कृपासे यह अमृततुल्य सारी कथा तो सुन ली, अब आप प्रकृतिदेवियोंके पूजनका विस्तृत वर्णन कीजिये॥ १॥

किसने किस देवीकी पूजा की और उसने मृत्युलोकमें किस प्रकार पूजाका विस्तार किया? हे प्रभो! किस मन्त्रसे किस देवीकी पूजा तथा किस स्तोत्रसे किस देवीकी स्तुति की गयी? उन देवियोंके स्तोत्र, ध्यान, प्रभाव तथा पवित्र चरित्रके विषयमें मुझे बताइये। साथ ही किन-किन देवियोंने किन-किन भक्तोंको वर प्रदान किये, कृपा करके मुझे वह भी बताइये॥ २-३॥

श्रीनारायण बोले—हे नारद! मूलप्रकृति सृष्टिकार्यके प्रयोजनार्थ गणेशजननी दुर्गा, राधा, लक्ष्मी, सरस्वती तथा सावित्री—इन पाँच रूपोंवाली कही गयी हैं॥ ४॥

इन देवियोंकी पूजा अत्यन्त प्रसिद्ध है, इनका प्रभाव परम अद्भुत है और इनका चरित्र अमृततुल्य तथा सभी मंगलोंका कारण है॥ ५॥

हे ब्रह्मन्! प्रकृतिकी अंशसंज्ञक तथा कलासंज्ञक जो देवियाँ हैं, उनका सम्पूर्ण पवित्र चरित्र मैं आपको बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनिये॥ ६॥

काली, वसुन्धरा, गंगा, षष्ठी, मंगलचण्डिका, तुलसी, मनसा, निद्रा, स्वधा, स्वाहा तथा दक्षिणा—इन देवियोंके महान् पुण्यदायक तथा सुननेमें प्रिय चरित्रका एवं प्राणियोंके कर्मविपाकका मैं संक्षिप्त तथा सुन्दर वर्णन करूँगा॥ ७-८॥

दुर्गा और राधाका चरित्र बहुत विस्तृत है, उसीका विस्तार बादमें कहूँगा। पहले संक्षेपके क्रमसे सुन लीजिये॥ ९॥

आदौ सरस्वतीपूजा श्रीकृष्णेन विनिर्मिता।
यत्प्रसादान्मुनिश्रेष्ठ मूर्खो भवति पण्डितः॥ १०

आविर्भूता यथा देवी वक्त्रतः कृष्णयोषितः।
इयेष कृष्णं कामेन कामुकी कामरूपिणी॥ ११

स च विज्ञाय तद्भावं सर्वज्ञः सर्वमातरम्।
तामुवाच हितं सत्यं परिणामे सुखावहम्॥ १२

श्रीकृष्ण उवाच

भज नारायणं साध्वि मदंशं च चतुर्भुजम्।
युवानं सुन्दरं सर्वगुणयुक्तं च मत्समम्॥ १३

कामज्ञं कामिनीनां च तासां च कामपूरकम्।
कोटिकन्दर्पलावण्यं लीलालङ्कृतमीश्वरम्॥ १४

कान्ते कान्तं च मां कृत्वा यदि स्थातुमिहेच्छसि।
त्वत्तो बलवती राधा न भद्रं ते भविष्यति॥ १५

यो यस्माद् बलवान्वापि ततोऽन्यं रक्षितुं क्षमः।
कथं परान्साधयति यदि स्वयमनीश्वरः॥ १६

सर्वेशः सर्वशास्ताहं राधां बाधितुमक्षमः।
तेजसा मत्समा सा च रूपेण च गुणेन च॥ १७

प्राणाधिष्ठातृदेवी सा प्राणांस्त्यक्तुं च कः क्षमः।
प्राणतोऽपि प्रियः पुत्रः केषां वास्ति च कश्चन॥ १८

त्वं भद्रे गच्छ वैकुण्ठं तव भद्रं भविष्यति।
पतिं तमीश्वरं कृत्वा मोदस्व सुचिरं सुखम्॥ १९

लोभमोहकामक्रोधमानहिंसाविवर्जिता।
तेजसा त्वत्समा लक्ष्मी रूपेण च गुणेन च॥ २०

तया सार्धं तव प्रीत्या शश्वत्कालः प्रयास्यति।
गौरवं च हरिस्तुल्यं करिष्यति द्वयोरपि॥ २१

हे मुनिश्रेष्ठ! सर्वप्रथम श्रीकृष्णने सरस्वतीकी पूजा प्रारम्भ की, जिनकी कृपासे मूर्ख भी विद्वान् हो जाता है॥ १०॥

जब देवी सरस्वती कृष्णवल्लभा राधाके मुखसे प्रकट हुईं, तब उन कामरूपा कामिनीने श्रीकृष्णको कामभावसे प्राप्त करनेकी लालसा की॥ ११॥

उनका अभिप्राय समझकर सर्वज्ञ भगवान् श्रीकृष्णने सबकी माता उन सरस्वतीसे सत्य, हितकर तथा परिणाममें सुखकर बात कही॥ १२॥

श्रीकृष्ण बोले—हे साध्वि! तुम मेरे ही अंशस्वरूप चतुर्भुज नारायणका सेवन करो। वे सदा तरुणावस्थामें विराजमान, सुन्दर रूपवाले, सभी गुणोंसे सम्पन्न तथा मेरे ही समान हैं। वे कामिनियोंकी कामनाओंको जाननेवाले तथा उनकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले हैं, करोड़ों कामदेवोंके समान सुन्दर हैं और लीलामय अलंकारोंसे अलंकृत हैं तथा ऐश्वर्यसे सम्पन्न हैं॥ १३-१४॥

हे कान्ते! मुझे पति बनाकर यदि तुम यहाँ रहना चाहती हो, तो तुमसे भी अधिक बलवती राधा यहाँ हैं, अतः तुम्हारा कल्याण नहीं होगा॥ १५॥

जो मनुष्य जिससे बलवान् होता है, वह उससे तो दूसरे प्राणीकी रक्षा करनेमें समर्थ है; किंतु यदि स्वयं सामर्थ्यरहित है तो दूसरोंकी रक्षा कैसे कर सकता है?॥ १६॥

सबका ईश्वर तथा सबपर शासन करनेवाला मैं राधाको रोक पानेमें असमर्थ हूँ; क्योंकि वे भी तेज, रूप तथा गुणमें मेरे ही समान हैं। किन्हीं भी पुरुषोंके लिये कोई पुत्र क्या प्राणसे अधिक प्रिय हो सकता है अर्थात् नहीं। वे राधा तो मेरे प्राणोंकी अधिष्ठात्री देवी हैं तो फिर उन प्राणरूपा राधाको छोड़नेमें मैं कैसे समर्थ हो सकता हूँ। हे भद्रे! तुम वैकुण्ठलोक जाओ; तुम्हारा कल्याण होगा। उन्हीं ऐश्वर्यसम्पन्न विष्णुको पति बनाकर दीर्घ कालतक सुखपूर्वक आनन्द प्राप्त करो॥ १७—१९॥

लोभ, मोह, काम, क्रोध, मान और हिंसासे रहित एवं तेज, रूप और गुणमें तुम्हारे ही समान [उनकी पत्नी] लक्ष्मी भी वहाँ हैं। उनके साथ तुम्हारा समय सदा प्रेमपूर्वक व्यतीत होगा और विष्णु भी तुम दोनोंका समान-रूपसे सम्मान करेंगे॥ २०-२१॥

प्रतिविश्वेषु तां पूजां महतीं गौरवान्विताम्।
माघस्य शुक्लपञ्चम्यां विद्यारम्भे च सुन्दरि॥ २२
मानवा मनवो देवा मुनीन्द्राश्च मुमुक्षवः।
वसवो योगिनः सिद्धा नागा गन्धर्वराक्षसाः॥ २३
मद्वरेण करिष्यन्ति कल्पे कल्पे लयावधि।
भक्तियुक्ताश्च दत्त्वा वै चोपचाराणि षोडश॥ २४
कण्वशाखोक्तविधिना ध्यानेन स्तवनेन च।
जितेन्द्रियाः संयताश्च घटे च पुस्तकेऽपि च॥ २५
कृत्वा सुवर्णगुटिकां गन्धचन्दनचर्चिताम्।
कवचं ते ग्रहीष्यन्ति कण्ठे वा दक्षिणे भुजे॥ २६
पठिष्यन्ति च विद्वांसः पूजाकाले च पूजिते।
इत्युक्त्वा पूजयामास तां देवीं सर्वपूजिताम्॥ २७
ततस्तत्पूजनं चक्रुर्ब्रह्मविष्णुशिवादयः।
अनन्तश्चापि धर्मश्च मुनीन्द्राः सनकादयः॥ २८
सर्वे देवाश्च मुनयो नृपाश्च मानवादयः।
बभूव पूजिता नित्यं सर्वलोकैः सरस्वती॥ २९

नारद उवाच

पूजाविधानं कवचं ध्यानं चापि निरन्तरम्।
पूजोपयुक्तं नैवेद्यं पुष्पं च चन्दनादिकम्॥ ३०
वद वेदविदां श्रेष्ठ श्रोतुं कौतूहलं मम।
वर्तते हृदये शश्वत्किमिदं श्रुतिसुन्दरम्॥ ३१

श्रीनारायण उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि कण्वशाखोक्तपद्धतिम्।
जगन्मातुः सरस्वत्याः पूजाविधिसमन्विताम्॥ ३२
माघस्य शुक्लपञ्चम्यां विद्यारम्भदिनेऽपि च।
पूर्वेऽह्नि समयं कृत्वा तत्राह्नि संयतः शुचिः॥ ३३
स्नात्वा नित्यक्रियाः कृत्वा घटं संस्थाप्य भक्तितः।
स्वशाखोक्तविधानेन तान्त्रिकेणाथवा पुनः॥ ३४
गणेशं पूर्वमभ्यर्च्य ततोऽभीष्टां प्रपूजयेत्।

हे सुन्दरि! प्रत्येक ब्रह्माण्डमें माघ शुक्ल पंचमी तिथिको विद्यारम्भके अवसरपर मनुष्य, मनुगण, देवता, मुनीन्द्र, मुमुक्षुजन, वसु, योगी, सिद्ध, नाग, गन्धर्व और राक्षस मेरे वरके प्रभावसे आजसे लेकर प्रलयपर्यन्त प्रत्येक कल्पमें भक्तिपूर्वक षोडशोपचार-पूजा अर्पण करके बड़े गौरवके साथ तुम्हारी उत्कृष्ट पूजा सम्पन्न करेंगे॥ २२—२४॥

जितेन्द्रिय तथा संयमशील व्यक्ति कण्वशाखामें कही गयी विधिके अनुसार ध्यान तथा स्तुतिपूर्वक घट अथवा पुस्तकमें आवाहित करके तुम्हारा पूजन करेंगे। तुम्हारे कवचको लिखकर उसे सोनेकी गुटिका (डिब्बी)-में रखकर पुनः उसे गन्ध-चन्दन आदिसे सुपूजित करके लोग अपने गले अथवा दाहिनी भुजामें धारण करेंगे। पूजाके पावन अवसरपर विद्वज्जन तुम्हारे इस कवचका पाठ करेंगे॥ २५-२६½॥

ऐसा कहकर भगवान् श्रीकृष्णने सभी लोगोंके द्वारा पूजित उन भगवती सरस्वतीका पूजन किया। तत्पश्चात् ब्रह्मा, विष्णु, शिव, अनन्त, धर्म, सनकादि मुनीश्वर, देवता, मुनिगण, राजा और मनुष्य आदि—ये सब भी सरस्वतीकी उपासना करने लगे। तभीसे ये सरस्वती सम्पूर्ण प्राणियोंके द्वारा सदा पूजित होने लगीं॥ २७—२९॥

नारदजी बोले—हे वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! आप उन भगवतीके पूजाविधान, कवच, ध्यान, पूजाके उपयुक्त नैवेद्य, पुष्प, चन्दन आदिके विषयमें मुझे बतायें। यह सब सुननेकी लालसा मेरे हृदयमें निरन्तर बनी रहती है। सुननेमें इससे अधिक सुन्दर (प्रिय) क्या हो सकता है?॥ ३०-३१॥

श्रीनारायण बोले—हे नारद! सुनिये, जगज्जननी सरस्वतीकी पूजाविधिसे संयुक्त कण्वशाखोक्त पद्धतिका वर्णन कर रहा हूँ॥ ३२॥

माघ शुक्ल पंचमी तथा विद्यारम्भके दिन भी पूर्वाह्णकालमें प्रतिज्ञा करके आराधक उस दिन संयम तथा पवित्रतासे युक्त रहे। स्नान और नित्यक्रिया करके भक्तिपूर्वक कलश-स्थापन करनेके बाद अपनी शाखामें कही गयी विधिसे अथवा तान्त्रिक विधिसे पहले गणेशजीका पूजन करके अभीष्ट देवी सरस्वतीकी विधिपूर्वक पूजा करनी चाहिये॥ ३३-३४½॥

ध्यानेन वक्ष्यमाणेन ध्यात्वा बाह्यघटे ध्रुवम्॥ ३५

ध्यात्वा पुनः षोडषोपचारेण पूजयेद् व्रती।
पूजोपयुक्तं नैवेद्यं यच्च वेदनिरूपितम्॥ ३६

वक्ष्यामि सौम्य तत्किञ्चिद्यथाधीतं यथागमम्।
नवनीतं दधि क्षीरं लाजांश्च तिललड्डुकम्॥ ३७

इक्षुमिक्षुरसं शुक्लवर्णं पक्वगुडं मधु।
स्वस्तिकं शर्करां शुक्लधान्यस्याक्षतमक्षतम्॥ ३८

अच्छिन्नशुक्लधान्यस्य पृथुकं शुक्लमोदकम्।
घृतसैन्धवसंयुक्तं हविष्यान्नं यथोदितम्॥ ३९

यवगोधूमचूर्णानां पिष्टकं घृतसंयुतम्।
पिष्टकं स्वस्तिकस्यापि पक्वरम्भाफलस्य च॥ ४०

परमान्नं च सघृतं मिष्टान्नं च सुधोपमम्।
नारिकेलं तदुदकं कसेरुं मूलमार्द्रकम्॥ ४१

पक्वरम्भाफलं चारु श्रीफलं बदरीफलम्।
कालदेशोद्भवं चारु फलं शुक्लं च संस्कृतम्॥ ४२

सुगन्धं शुक्लपुष्पं च सुगन्धं शुक्लचन्दनम्।
नवीनं शुक्लवस्त्रं च शङ्खं च सुन्दरं मुने॥ ४३

माल्यं च शुक्लपुष्पाणां शुक्लहारं च भूषणम्।
यादृशं च श्रुतौ ध्यानं प्रशस्यं श्रुतिसुन्दरम्॥ ४४

तन्निबोध महाभाग भ्रमभञ्जनकारणम्।
सरस्वतीं शुक्लवर्णां सस्मितां सुमनोहराम्॥ ४५

कोटिचन्द्रप्रभामुष्टपुष्टश्रीयुक्तविग्रहाम्।
वह्निशुद्धांशुकाधानां वीणापुस्तकधारिणीम्॥ ४६

रत्नसारेन्द्रनिर्माणनवभूषणभूषिताम्।
सुपूजितां सुरगणैर्ब्रह्मविष्णुशिवादिभिः॥ ४७

बताये गये ध्यानके द्वारा बाह्य घटमें देवीका ध्यान करके तत्पश्चात् व्रतीको चाहिये कि फिर ध्यानपूर्वक षोडशोपचार विधिसे भगवती सरस्वतीका पूजन करे। हे सौम्य! सरस्वती-पूजाके लिये उपयोगी जो कुछ नैवेद्य वेदोंमें बताये गये हैं और जैसा मैंने आगमशास्त्रमें अध्ययन किया है, उसे आपको बता रहा हूँ—मक्खन, दही, दूध, धानका लावा, तिलका लड्डू, सफेद गन्ना, गन्नेका रस, उसे पकाकर बनाया हुआ गुड़, मधु, स्वस्तिक (एक प्रकारका पक्वान्न), शक्कर, सफेद धानका बिना टूटा हुआ चावल (अक्षत), बिना उबाले हुए श्वेत धानका चिउड़ा, सफेद लड्डू, घी और सेंधा नमक डालकर बनाया गया शास्त्रोक्त हविष्यान्न, जौ अथवा गेहूँके आटेसे घृतमें तले हुए पदार्थ, स्वस्तिक तथा पके हुए केलेका पिष्टक, उत्तम अन्नको घृतमें पकाकर उससे बना हुआ अमृततुल्य मधुर मिष्टान्न, नारियल, नारियलका जल, कसेरु, मूली, अदरक, पका हुआ केला, सुन्दर बेल, बेरका फल, देश और कालके अनुसार उपलब्ध सुन्दर, श्वेत और पवित्र ऋतुफल—ये नैवेद्य (प्रशस्त) हैं॥ ३५—४२॥

हे मुने! सुगन्धित श्वेत पुष्प, सुगन्धित श्वेत चन्दन, नवीन श्वेत वस्त्र तथा सुन्दर शंख, श्वेत पुष्पोंकी माला, श्वेत वर्णका हार तथा आभूषण भगवती सरस्वतीको अर्पण करने चाहिये॥ ४३½॥

हे महाभाग! भगवती सरस्वतीका जैसा ध्यान वेदमें वर्णित है; उस प्रशंसनीय, सुननेमें सुन्दर तथा भ्रमका नाश करनेवाले ध्यानके विषयमें सुनिये॥ ४४½॥

'मैं भक्तिपूर्वक शुक्ल वर्णवाली, मुसकानयुक्त, अत्यन्त मनोहर, करोड़ों चन्द्रमाकी प्रभाको तिरस्कृत करनेवाले परिपुष्ट तथा श्रीसम्पन्नविग्रहवाली, अग्निसदृश विशुद्ध वस्त्र धारण करनेवाली, हाथमें वीणा तथा पुस्तक धारण करनेवाली, उत्कृष्ट कोटिके रत्नोंसे निर्मित नवीन आभूषणोंसे विभूषित, ब्रह्मा-विष्णु-शिव आदि देवगणोंसे सम्यक् पूजित तथा मुनीश्वरों, मनुगण और मनुष्योंसे वन्दित भगवती सरस्वतीकी वन्दना करता हूँ'—इस प्रकार ध्यान करके विद्वान् पुरुष समस्त पूजन-सामग्री मूलमन्त्रसे विधिपूर्वक

वन्दे भक्त्या वन्दितां च मुनीन्द्रमनुमानवैः।
एवं ध्यात्वा च मूलेन सर्वं दत्त्वा विचक्षणः॥ ४८

संस्तूय कवचं धृत्वा प्रणमेद्दण्डवद्भुवि।
येषां चेयमिष्टदेवी तेषां नित्यक्रिया मुने॥ ४९

विद्यारम्भे च वर्षान्ते सर्वेषां पञ्चमीदिने।
सर्वोपयुक्तं मूलं च वैदिकाष्टाक्षरः परः॥ ५०

येषां येनोपदेशो वा तेषां स मूल एव च।
सरस्वती चतुर्थ्यन्तं वह्निजायान्तमेव च॥ ५१

लक्ष्मीमायादिकं चैव मन्त्रोऽयं कल्पपादपः।
पुरा नारायणश्चेमं वाल्मीकाय कृपानिधिः॥ ५२

प्रददौ जाह्नवीतीरे पुण्यक्षेत्रे च भारते।
भृगुर्ददौ च शुक्राय पुष्करे सूर्यपर्वणि॥ ५३

चन्द्रपर्वणि मारीचो ददौ वाक्पतये मुदा।
भृगोश्चैव ददौ तुष्टो ब्रह्मा बदरिकाश्रमे॥ ५४

आस्तिकस्य जरत्कारुर्ददौ क्षीरोदसन्निधौ।
विभाण्डको ददौ मेरौ ऋष्यशृङ्गाय धीमते॥ ५५

शिवः कणादमुनये गौतमाय ददौ मुदा।
सूर्यश्च याज्ञवल्क्याय तथा कात्यायनाय च॥ ५६

शेषः पाणिनये चैव भारद्वाजाय धीमते।
ददौ शाकटायनाय सुतले बलिसंसदि॥ ५७

चतुर्लक्षजपेनैव मन्त्रः सिद्धो भवेन्नृणाम्।
यदि स्यान्मन्त्रसिद्धो हि बृहस्पतिसमो भवेत्॥ ५८

कवचं शृणु विप्रेन्द्र यद्दत्तं ब्रह्मणा पुरा।
विश्वस्रष्टा विश्वजयं भृगवे गन्धमादने॥ ५९

सरस्वतीको अर्पण करके स्तुति करे और कवचको धारण करके दण्डकी भाँति भूमिपर गिरकर सरस्वतीको प्रणाम करे। हे मुने! ये सरस्वती जिन लोगोंकी इष्ट देवी हैं, उनके लिये तो यह नित्यक्रिया है। अन्य सभी लोगोंको विद्यारम्भके अवसरपर, वर्षके अन्तमें तथा पंचमी तिथिको यह आराधना अवश्य करनी चाहिये॥ ४५—४९॥

वैदिक अष्टाक्षर मूल मन्त्र परम श्रेष्ठ तथा सबके लिये उपयोगी है। अथवा जिन्हें जिसने जिस मन्त्रका उपदेश दिया है, उनके लिये वही मूल मन्त्र है। सरस्वती—इस शब्दके अन्तमें चतुर्थी तथा अन्तमें 'स्वाहा' लगाकर सबके आदिमें लक्ष्मीबीज और मायाबीज लगाकर बना हुआ यह मन्त्र '**श्रीं ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा**' कल्पवृक्षके समान है॥ ५०-५१ १/२॥

प्राचीन कालमें कृपानिधि भगवान् नारायणने पुण्यक्षेत्र भारतवर्षमें गंगाके तटपर वाल्मीकिको यह मन्त्र प्रदान किया था। इसी प्रकार भृगुमुनिने पुष्करक्षेत्रमें सूर्यग्रहणपर्वके अवसरपर यह मन्त्र शुक्राचार्यको प्रदान किया, मारीच (कश्यप)-ने चन्द्रग्रहणके समयपर प्रसन्न होकर बृहस्पतिको इसका उपदेश किया और ब्रह्माजीने भृगुसे सन्तुष्ट होकर बदरिकाश्रममें उन्हें यह मन्त्र दिया था॥ ५२—५४॥

जरत्कारुमुनिने क्षीरसागरके समीप आस्तिकको यह मन्त्र दिया था और विभाण्डकमुनिने मेरुपर्वतपर बुद्धिमान् ऋष्यशृंगको इसका उपदेश दिया था। भगवान् शिवने आनन्दित होकर कणादमुनि तथा गौतमको यह मन्त्र प्रदान किया था और सूर्यने याज्ञवल्क्य तथा कात्यायनको इस मन्त्रका उपदेश किया था। शेषनागने सुतल लोकमें बलिकी सभामें पाणिनि, बुद्धिमान् भारद्वाज और शाकटायनको यह मन्त्र दिया था॥ ५५—५७॥

चार लाख जप कर लेनेसे यह मन्त्र मनुष्योंके लिये सिद्ध हो जाता है। यदि मनुष्य इस मन्त्रमें सिद्ध हो जाय, तो वह बृहस्पतिके समान हो जाता है॥ ५८॥

हे विप्रवर! अब आप विश्वपर विजय प्राप्त करानेवाले सरस्वतीकवचके विषयमें सुनिये, जिसे पूर्वकालमें जगत्का सृजन करनेवाले ब्रह्माजीने गन्धमादनपर्वतपर भृगुमुनिको प्रदान किया था॥ ५९॥

भृगुरुवाच

ब्रह्मन्ब्रह्मविदां श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानविशारद।
सर्वज्ञ सर्वजनक सर्वेश सर्वपूजित॥ ६०

सरस्वत्याश्च कवचं ब्रूहि विश्वजयं प्रभो।
अयातयामं मन्त्राणां समूहसंयुतं परम्॥ ६१

ब्रह्मोवाच

शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि कवचं सर्वकामदम्।
श्रुतिसारं श्रुतिसुखं श्रुत्युक्तं श्रुतिपूजितम्॥ ६२

उक्तं कृष्णेन गोलोके मह्यं वृन्दावने वने।
रासेश्वरेण विभुना रासे वै रासमण्डले॥ ६३

अतीव गोपनीयं च कल्पवृक्षसमं परम्।
अश्रुताद्भुतमन्त्राणां समूहैश्च समन्वितम्॥ ६४

यद्धृत्वा भगवाञ्छुक्रः सर्वदैत्येषु पूजितः।
यद्धृत्वा पठनाद् ब्रह्मन् बुद्धिमांश्च बृहस्पतिः॥ ६५

पठनाद्धारणाद्वाग्मी कवीन्द्रो वाल्मिको मुनिः।
स्वायम्भुवो मनुश्चैव यद्धृत्वा सर्वपूजितः॥ ६६

कणादो गौतमः कण्वः पाणिनिः शाकटायनः।
ग्रन्थं चकार यद्धृत्वा दक्षः कात्यायनः स्वयम्॥ ६७

धृत्वा वेदविभागं च पुराणान्यखिलानि च।
चकार लीलामात्रेण कृष्णद्वैपायनः स्वयम्॥ ६८

शातातपश्च संवर्तो वसिष्ठश्च पराशरः।
यद्धृत्वा पठनाद् ग्रन्थं याज्ञवल्क्यश्चकार सः॥ ६९

ऋष्यशृङ्गो भरद्वाजश्चास्तिको देवलस्तथा।
जैगीषव्यो ययातिश्च धृत्वा सर्वत्र पूजिताः॥ ७०

कवचस्यास्य विपेन्द्र ऋषिरेव प्रजापतिः।
स्वयं छन्दश्च बृहती देवता शारदाम्बिका॥ ७१

सर्वतत्त्वपरिज्ञानसर्वार्थसाधनेषु च।
कवितासु च सर्वासु विनियोगः प्रकीर्तितः॥ ७२

भृगु बोले—ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ, ब्रह्मज्ञानमें पारंगत, सब कुछ जाननेवाले, सबकी सृष्टि करनेवाले, सबके स्वामी तथा सभीके द्वारा पूजित हे ब्रह्मन्! हे प्रभो! आप मुझे मन्त्रोंके समूहसे युक्त तथा परम पवित्र 'विश्वजय' नामक सरस्वती-कवच बतलाइये॥ ६०-६१॥

ब्रह्माजी बोले—हे वत्स! सुनिये; मैं आपसे सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाले, वेदोंके सारस्वरूप, कानोंको सुख देनेवाले, वेदप्रतिपादित तथा वेदपूजित कवचका वर्णन करूँगा। रासेश्वर भगवान् श्रीकृष्णने गोलोक वृन्दावनमें रासलीलाके अवसरपर रासमण्डलमें मुझे यह कवच बताया था॥ ६२-६३॥

हे ब्रह्मन्! यह कवच परम गोपनीय, कल्पवृक्षके समान श्रेष्ठ तथा न सुने हुए अद्भुत मन्त्रसमूहोंसे युक्त है, जिसे धारण करके भगवान् शुक्राचार्य समस्त दैत्योंके पूज्य बन गये और जिसे धारण करके इसका पाठ करनेसे बृहस्पति परम बुद्धिमान् हो गये॥ ६४-६५॥

इसी प्रकार इस कवचके धारण करने तथा इसका पाठ करनेसे वाल्मीकिमुनि विद्वान् तथा कवीश्वर हो गये और स्वायम्भुव मनु इसे धारण करके सभीके पूज्य हो गये॥ ६६॥

इस कवचको धारण करके ही स्वयं कणाद, गौतम, कण्व, पाणिनि, शाकटायन, दक्ष और कात्यायन ग्रन्थ-रचना करनेमें समर्थ हुए॥ ६७॥

इसी प्रकार स्वयं कृष्णद्वैपायन व्यासजीने भी इसे धारण करके लीलामात्रमें वेदोंका विभाग तथा सम्पूर्ण पुराणोंका प्रणयन किया॥ ६८॥

शातातप, संवर्त, वसिष्ठ, पराशर तथा याज्ञवल्क्यने इसे धारण करके इसके पाठसे ग्रन्थ-रचना की। इसी प्रकार ऋष्यशृंग, भरद्वाज, आस्तिक, देवल, जैगीषव्य और ययाति इस कवचको धारण करके सर्वत्र पूजित हुए॥ ६९-७०॥

हे विप्रेन्द्र! इस कवचके ऋषि स्वयं प्रजापति ही हैं इसका छन्द बृहती है और देवता माता शारदा हैं। सभी तत्त्वोंके परिज्ञान करनेमें, सम्पूर्ण अर्थोंके साधनमें तथा सभी कविताओंके विवेचनमें इस कवचका विनियोग बताया गया है॥ ७१-७२॥

श्रीं ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा शिरो मे पातु सर्वतः।
श्रीं वाग्देवतायै स्वाहा भालं मे सर्वदावतु॥ ७३

ॐ ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहेति श्रोत्रे पातु निरन्तरम्।
ॐ श्रीं ह्रीं भगवत्यै सरस्वत्यै स्वाहा नेत्रयुग्मं सदावतु॥ ७४

ऐं ह्रीं वाग्वादिन्यै स्वाहा नासां मे सर्वदावतु।
ह्रीं विद्याधिष्ठातृदेव्यै स्वाहा चोष्ठं सदावतु॥ ७५

ॐ श्रीं ह्रीं ब्राह्म्यै स्वाहेति दन्तपंक्तिं सदावतु।
ऐमित्येकाक्षरो मन्त्रो मम कण्ठं सदावतु॥ ७६

ॐ श्रीं ह्रीं पातु मे ग्रीवां स्कन्धौ मे श्रीं सदावतु।
ॐ ह्रीं विद्याधिष्ठातृदेव्यै स्वाहा वक्षः सदावतु॥ ७७

ॐ ह्रीं विद्याधिस्वरूपायै स्वाहा मे पातु नाभिकाम्।
ॐ ह्रीं क्लीं वाण्यै स्वाहेति मम हस्तौ सदावतु॥ ७८

ॐ सर्ववर्णात्मिकायै [स्वाहा] पादयुग्मं सदावतु।
ॐ वागधिष्ठातृदेव्यै स्वाहा सर्वं सदावतु॥ ७९

ॐ सर्वकण्ठवासिन्यै स्वाहा प्राच्यां सदावतु।
ॐ सर्वजिह्वाग्रवासिन्यै स्वाहाग्निदिशि रक्षतु॥ ८०

ॐ ऐं ह्रीं क्लीं सरस्वत्यै बुधजनन्यै स्वाहा।
सततं मन्त्रराजोऽयं दक्षिणे मां सदावतु॥ ८१

ऐं ह्रीं श्रीं त्र्यक्षरो मन्त्रो नैर्ऋत्यां सर्वदावतु।
ॐ ऐं जिह्वाग्रवासिन्यै स्वाहा मां वारुणेऽवतु॥ ८२

'**श्रीं ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा**'—यह मन्त्र सभी ओरसे मेरे सिरकी रक्षा करे। '**श्रीं वाग्देवतायै स्वाहा**'—यह मन्त्र सदा मेरे ललाटकी रक्षा करे॥ ७३॥

'**ॐ ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा**'—यह मन्त्र मेरे दोनों कानोंकी निरन्तर रक्षा करे और '**ॐ श्रीं ह्रीं भगवत्यै सरस्वत्यै स्वाहा**'—यह मन्त्र मेरे दोनों नेत्रोंकी सदा रक्षा करे॥ ७४॥

'**ऐं ह्रीं वाग्वादिन्यै स्वाहा**'—यह मन्त्र मेरी नासिकाकी सदा रक्षा करे और '**ह्रीं विद्याधिष्ठातृदेव्यै स्वाहा**'—यह मन्त्र सदा मेरे ओष्ठकी रक्षा करे॥ ७५॥

'**ॐ श्रीं ह्रीं ब्राह्म्यै स्वाहा**'—यह मन्त्र मेरी दन्तपंक्तिकी सदा रक्षा करे और '**ऐं**' यह एकाक्षरमन्त्र मेरे कण्ठकी सदा रक्षा करे॥ ७६॥

'**ॐ श्रीं ह्रीं**'—यह मन्त्र मेरी गर्दनकी रक्षा करे तथा '**श्रीं**'—यह मन्त्र मेरे दोनों कन्धोंकी सदा रक्षा करे। '**ॐ ह्रीं विद्याधिष्ठातृदेव्यै स्वाहा**'—यह मन्त्र सदा मेरे वक्षःस्थलकी रक्षा करे॥ ७७॥

'**ह्रीं विद्याधिस्वरूपायै स्वाहा**'—यह मन्त्र मेरी नाभिकी रक्षा करे और '**ॐ ह्रीं क्लीं वाण्यै स्वाहा**'—यह मन्त्र सदा मेरे दोनों हाथोंकी रक्षा करे॥ ७८॥

'**ॐ सर्ववर्णात्मिकायै [स्वाहा]**'—यह मन्त्र मेरे दोनों पैरोंकी सदा रक्षा करे और '**ॐ वागधिष्ठातृदेव्यै स्वाहा**'—यह मन्त्र सदा मेरे सम्पूर्ण शरीरकी रक्षा करे॥ ७९॥

'**ॐ सर्वकण्ठवासिन्यै स्वाहा**'—यह मन्त्र पूर्व दिशामें सदा मेरी रक्षा करे और '**ॐ सर्वजिह्वाग्रवासिन्यै स्वाहा**'—यह मन्त्र अग्निकोणमें मेरी रक्षा करे॥ ८०॥

'**ॐ ऐं ह्रीं क्लीं सरस्वत्यै बुधजनन्यै स्वाहा**'—यह मन्त्रराज दक्षिण दिशामें सर्वदा निरन्तर मेरी रक्षा करे॥ ८१॥

'**ऐं ह्रीं श्रीं**'—यह त्र्यक्षर मन्त्र नैर्ऋत्य-कोणमें सदा मेरी रक्षा करे और '**ॐ ऐं जिह्वाग्रवासिन्यै स्वाहा**'—यह मन्त्र पश्चिम दिशामें मेरी रक्षा करे॥ ८२॥

ॐ सर्वाम्बिकायै स्वाहा वायव्ये मां सदावतु।
ॐ ऐं श्रीं क्लीं गद्यवासिन्यै स्वाहा मामुत्तरेऽवतु॥ ८३

ॐ ऐं सर्वशास्त्रवासिन्यै स्वाहैशान्यां सदावतु।
ॐ ह्रीं सर्वपूजितायै स्वाहा चोर्ध्वं सदावतु॥ ८४

ॐ ह्रीं पुस्तकवासिन्यै स्वाहाधो मां सदावतु।
ॐ ग्रन्थबीजस्वरूपायै स्वाहा मां सर्वतोऽवतु॥ ८५

इति ते कथितं विप्र ब्रह्ममन्त्रौघविग्रहम्।
इदं विश्वजयं नाम कवचं ब्रह्मरूपकम्॥ ८६

पुरा श्रुतं धर्मवक्त्रात्पर्वते गन्धमादने।
तव स्नेहान्मयाख्यातं प्रवक्तव्यं न कस्यचित्॥ ८७

गुरुमभ्यर्च्य विधिवद्वस्त्रालङ्कारचन्दनैः।
प्रणम्य दण्डवद्भूमौ कवचं धारयेत्सुधीः॥ ८८

पञ्चलक्षजपेनैव सिद्धं तु कवचं भवेत्।
यदि स्यात्सिद्धकवचो बृहस्पतिसमो भवेत्॥ ८९

महावाग्मी कवीन्द्रश्च त्रैलोक्यविजयी भवेत्।
शक्नोति सर्वं जेतुं च कवचस्य प्रसादतः॥ ९०

इदं च कण्वशाखोक्तं कवचं कथितं मुने।
स्तोत्रं पूजाविधानं च ध्यानं च वन्दनं शृणु॥ ९१

'**ॐ सर्वाम्बिकायै स्वाहा**'—यह मन्त्र वायव्यकोणमें सदा मेरी रक्षा करे और '**ॐ ऐं श्रीं क्लीं गद्यवासिन्यै स्वाहा**'—यह मन्त्र सदा उत्तर दिशामें मेरी रक्षा करे॥ ८३॥

'**ॐ ऐं सर्वशास्त्रवासिन्यै स्वाहा**'—यह मन्त्र ईशानकोणमें सदा मेरी रक्षा करे और '**ॐ ह्रीं सर्वपूजितायै स्वाहा**'—यह मन्त्र ऊपरसे सदा मेरी रक्षा करे॥ ८४॥

'**ॐ ह्रीं पुस्तकवासिन्यै स्वाहा**'—यह मन्त्र नीचेसे सदा मेरी रक्षा करे। '**ॐ ग्रन्थबीजस्वरूपायै स्वाहा**'—यह मन्त्र सब ओरसे मेरी रक्षा करे॥ ८५॥

हे विप्र! मैंने आपको ब्रह्ममन्त्रसमूहके विग्रहरूप इस सरस्वतीकवचको बतला दिया। 'विश्वजय' नामक यह कवच साक्षात् ब्रह्मस्वरूप है॥ ८६॥

पूर्व कालमें मैंने गन्धमादनपर्वतपर धर्मदेवके मुखसे यह कवच सुना था। आपके स्नेहके कारण मैंने आपको इसे बतलाया है। किसी अन्य व्यक्तिको इसे नहीं बताना चाहिये॥ ८७॥

विद्वान् पुरुषको चाहिये कि नानाविध वस्त्र, अलंकार तथा चन्दनसे भलीभाँति गुरुकी पूजा करके दण्डकी भाँति जमीनपर गिरकर प्रणाम करे और इसके बाद इस कवचको धारण करे॥ ८८॥

पाँच लाख जप कर लेनेसे यह कवच सिद्ध हो जाता है। इस कवचको यदि साधक सिद्ध कर ले तो वह बृहस्पतिके समान हो जाता है। इस कवचके प्रसादसे मनुष्य महान् वक्ता, कवियोंका सम्राट् तथा तीनों लोकोंपर विजय प्राप्त करनेवाला हो जाता है और वह सब कुछ जीत लेनेमें समर्थ हो जाता है॥ ८९-९०॥

हे मुने! मैंने कण्वशाखाके अन्तर्गत वर्णित यह सरस्वती-कवच आपको बतला दिया। अब आप सरस्वतीके स्तोत्र, पूजाविधान, ध्यान तथा वन्दनके विषयमें सुनिये॥ ९१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे सरस्वतीस्तोत्रपूजाकवचादिवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

याज्ञवल्क्यद्वारा भगवती सरस्वतीकी स्तुति

श्रीनारायण उवाच

वाग्देवतायाः स्तवनं श्रूयतां सर्वकामदम्।
महामुनिर्याज्ञवल्क्यो येन तुष्टाव तां पुरा॥ १

गुरुशापाच्च स मुनिर्हतविद्यो बभूव ह।
तदा जगाम दुःखार्तो रविस्थानं सुपुण्यदम्॥ २

सम्प्राप्य तपसा सूर्यं लोलार्के दृष्टिगोचरे।
तुष्टाव सूर्यं शोकेन रुरोद च मुहुर्मुहुः॥ ३

सूर्यस्तं पाठयामास वेदं वेदाङ्गमीश्वरः।
उवाच स्तौहि वाग्देवीं भक्त्या च स्मृतिहेतवे॥ ४

तमित्युक्त्वा दीननाथोऽप्यन्तर्धानं चकार सः।
मुनिः स्नात्वा च तुष्टाव भक्तिनम्रात्मकन्धरः॥ ५

याज्ञवल्क्य उवाच

कृपां कुरु जगन्मातर्मामेवं हततेजसम्।
गुरुशापात्स्मृतिभ्रष्टं विद्याहीनं च दुःखितम्॥ ६

ज्ञानं देहि स्मृतिं विद्यां शक्तिं शिष्यप्रबोधिनीम्।
ग्रन्थकर्तृत्वशक्तिं च सुशिष्यं सुप्रतिष्ठितम्॥ ७

प्रतिभां सत्सभायां च विचारक्षमतां शुभाम्।
लुप्तं सर्वं दैवयोगान्नवीभूतं पुनः कुरु॥ ८

यथाङ्कुरं भस्मनि च करोति देवता पुनः।
ब्रह्मस्वरूपा परमा ज्योतीरूपा सनातनी॥ ९
सर्वविद्याधिदेवी या तस्यै वाण्यै नमो नमः।

श्रीनारायण बोले—हे मुने! अब आप वाग्देवी सरस्वतीका वह स्तोत्र सुनिये, जो सभी मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला है और जिसके द्वारा महामुनि याज्ञवल्क्यने प्राचीन कालमें उन सरस्वती-देवीकी स्तुति की थी॥ १॥

गुरुदेवके शापसे वे मुनि अपनी विद्यासे च्युत हो गये थे।* तब दुःखार्त होकर वे पुण्यप्रद सूर्यतीर्थ लोलार्क-क्षेत्रमें चले गये। वहाँ पहुँचकर अपनी तपस्यासे भगवान् सूर्यके दर्शन प्राप्त करके उन्होंने सूर्यकी स्तुति की तथा शोकसे सन्तप्त होकर बार-बार रुदन किया॥ २-३॥

उस समय भगवान् सूर्यने उन याज्ञवल्क्यको वेद तथा वेदांग पढ़ाया और उनसे कहा कि आप स्मरणशक्ति प्राप्त करनेके लिये भक्तिपूर्वक सरस्वतीदेवीकी स्तुति कीजिये॥ ४॥

उनसे ऐसा कहकर दीनोंके नाथ भगवान् सूर्य अन्तर्धान हो गये और याज्ञवल्क्यमुनि स्नान करके सिर झुकाकर भक्तिपूर्वक देवी सरस्वतीकी स्तुति करने लगे॥ ५॥

याज्ञवल्क्य बोले—हे जगज्जननि! गुरुके शापसे इस प्रकार मुझ विनष्ट स्मृतिवाले, निस्तेज, विद्याविहीन तथा दुःखितपर कृपा कीजिये॥ ६॥

आप मुझे ज्ञान, स्मरणशक्ति, विद्या, शिष्योंको प्रबोध करानेवाली शक्ति, ग्रन्थनिर्माणका सामर्थ्य, सुप्रतिष्ठित शिष्य तथा सज्जनोंकी सभामें अभिव्यक्तिहेतु प्रतिभा एवं उत्तम विचारक्षमता प्रदान कीजिये। दैवयोगसे मेरी लुप्त हुई इन समस्त शक्तियोंको आप पुनः उसी प्रकार नवीनरूपमें कर दीजिये, जैसे देवता भस्ममें छिपे बीजको पुनः अंकुरित कर देते हैं॥ ७-८½ ॥

जो ब्रह्मस्वरूपिणी, परमा, ज्योतिरूपा, शाश्वत तथा सभी विद्याओंकी अधिष्ठात्री देवी हैं; उन सरस्वतीको बार-बार नमस्कार है॥ ९½ ॥

* महर्षि याज्ञवल्क्य वैशम्पायनजीके शिष्य थे। उनसे ही इन्होंने सम्पूर्ण वेदज्ञान प्राप्त किया था। एक बार गुरुसे विवाद हो जानेके कारण गुरुजीने इन्हें शाप दे दिया कि तुम मेरे द्वारा पढ़ी हुई यजुर्वेदकी शाखाको उगल दो। गुरुकी आज्ञासे याज्ञवल्क्यजीने अन्नरूपमें वे ऋचाएँ उगल दीं, जिन्हें वैशम्पायनजीके अन्य शिष्योंने तित्तिर बनकर ग्रहण कर लिया, यजुर्वेदकी वही शाखा तैत्तिरीय शाखा कहलायी। वेदज्ञानसे शून्य याज्ञवल्क्यजीने सूर्यकी उपासनाकर पुनः नवीन वेदमन्त्रोंको प्राप्त किया; जो यजुर्वेदकी वाजसनेय या माध्यन्दिन शाखा कहलायी। (श्रीमद्भा० स्क० १२ अ० ६)

विसर्गबिन्दुमात्रासु यदधिष्ठानमेव च॥ १०

तदधिष्ठात्री या देवी तस्यै नित्यै नमो नमः।
व्याख्यास्वरूपा सा देवी व्याख्याधिष्ठातृरूपिणी॥ ११

यया विना प्रसंख्यावान् संख्यां कर्तुं न शक्यते।
कालसंख्यास्वरूपा या तस्यै देव्यै नमो नमः॥ १२

भ्रमसिद्धान्तरूपा या तस्यै देव्यै नमो नमः।
स्मृतिशक्तिज्ञानशक्तिबुद्धिशक्तिस्वरूपिणी ॥ १३

प्रतिभाकल्पनाशक्तिर्या च तस्यै नमो नमः।
सनत्कुमारो ब्रह्माणं ज्ञानं पप्रच्छ यत्र वै॥ १४

बभूव मूकवत्सोऽपि सिद्धान्तं कर्तुमक्षमः।
तदाजगाम भगवानात्मा श्रीकृष्ण ईश्वरः॥ १५

उवाच स तां स्तौहि वाणीमिष्टां प्रजापते।
स च तुष्टाव तां ब्रह्मा चाज्ञया परमात्मनः॥ १६

चकार तत्प्रसादेन तदा सिद्धान्तमुत्तमम्।
यदाप्यनन्तं पप्रच्छ ज्ञानमेकं वसुन्धरा॥ १७

बभूव मूकवत्सोऽपि सिद्धान्तं कर्तुमक्षमः।
तदा तां स च तुष्टाव संत्रस्तः कश्यपाज्ञया॥ १८

ततश्चकार सिद्धान्तं निर्मलं भ्रमभञ्जनम्।
व्यासः पुराणसूत्रं च पप्रच्छ वाल्मिकिं यदा॥ १९

मौनीभूतश्च सस्मार तामेव जगदम्बिकाम्।
तदा चकार सिद्धान्तं तद्वरेण मुनीश्वरः॥ २०
सम्प्राप्य निर्मलं ज्ञानं भ्रमान्धध्वंसदीपकम्।

विसर्ग, बिन्दु तथा मात्रा—इन तीनोंमें जो अधिष्ठान-रूपसे विद्यमान हैं तथा जो उनकी अधिष्ठात्री देवी हैं; उन नित्या देवीको बार-बार नमस्कार है। वे भगवती सरस्वती व्याख्यास्वरूपिणी तथा व्याख्याकी अधिष्ठातृ भी हैं॥ १०-११॥

जिनके बिना सुप्रसिद्ध गणक भी गणनाकार्य नहीं कर सकते तथा जो साक्षात् कालसंख्यास्वरूपिणी हैं; उन देवीको बार-बार नमस्कार है॥ १२॥

जो भ्रमसिद्धान्तस्वरूपा हैं, उन देवीको बार-बार नमस्कार है। जो स्मरणशक्ति, ज्ञानशक्ति, बुद्धिशक्ति, प्रतिभाशक्ति तथा कल्पनाशक्तिस्वरूपिणी हैं; उन देवीको बार-बार नमस्कार है॥ १३½ ॥

एक बार जब सनत्कुमारने ब्रह्माजीसे ब्रह्मज्ञानके विषयमें पूछा था, उस समय ब्रह्मसिद्धान्तकी व्याख्या करनेमें वे ब्रह्मा मूककी भाँति अक्षम हो गये थे। उसी समय स्वयं परमात्मा श्रीकृष्ण वहाँ आ गये और उन्होंने कहा—हे प्रजापते! आप भगवती सरस्वतीको अपनी इष्ट देवी बनाकर उनकी स्तुति कीजिये॥ १४-१५½ ॥

परमात्मा श्रीकृष्णकी आज्ञा पाकर ब्रह्माजीने उन सरस्वतीकी स्तुति की। उसके बाद वे सरस्वतीकी कृपासे उत्तम सिद्धान्तका विवेचन करनेमें सफल हो गये॥ १६½ ॥

इसी तरह जब पृथ्वीने शेषनागसे ज्ञानका एक रहस्य पूछा था, तब वे शेष भी मूक-जैसे बन गये और सिद्धान्तका विवेचन करनेमें असमर्थ रहे। तब अत्यन्त व्यथितहृदय शेषने कश्यपकी आज्ञाके अनुसार उन सरस्वतीकी स्तुति की। तदनन्तर वे भ्रमका नाश करनेवाले उस पवित्र सिद्धान्तका विवेचन कर सके॥ १७-१८½ ॥

ऐसे ही जब व्यासने वाल्मीकिसे पुराणसूत्र पूछा, तब वे मौन हो गये और तब उन्होंने उन्हीं जगदम्बा सरस्वतीका स्मरण किया। तत्पश्चात् उनके वरसे भ्रमरूपी अन्धकारको मिटानेवाला ज्योतिसदृश निर्मल ज्ञान प्राप्त करके मुनीश्वर वाल्मीकि पुराण-सिद्धान्तका प्रतिपादन करनेमें समर्थ हो सके॥ १९-२०½ ॥

पुराणसूत्रं श्रुत्वा च व्यासः कृष्णकलोद्भवः॥ २१

तां शिवां वेद दध्यौ च शतवर्षं च पुष्करे।
तदा त्वत्तो वरं प्राप्य सत्कवीन्द्रो बभूव ह॥ २२

तदा वेदविभागं च पुराणं च चकार सः।
यदा महेन्द्रः पप्रच्छ तत्त्वज्ञानं सदाशिवम्॥ २३

क्षणं तामेव सञ्चिन्त्य तस्मै ज्ञानं ददौ विभुः।
पप्रच्छ शब्दशास्त्रं च महेन्द्रश्च बृहस्पतिम्॥ २४

दिव्यं वर्षसहस्रं च स त्वां दध्यौ च पुष्करे।
तदा त्वत्तो वरं प्राप्य दिव्यवर्षसहस्रकम्॥ २५

उवाच शब्दशास्त्रं च तदर्थं च सुरेश्वरम्।
अध्यापिताश्च ये शिष्या यैरधीतं मुनीश्वरैः॥ २६

ते च तां परिसञ्चिन्त्य प्रवर्तन्ते सुरेश्वरीम्।
त्वं संस्तुता पूजिता च मुनीन्द्रैर्मनुमानवैः॥ २७

दैत्येन्द्रैश्च सुरैश्चापि ब्रह्मविष्णुशिवादिभिः।
जडीभूतः सहस्रास्यः पञ्चवक्त्रश्चतुर्मुखः॥ २८

यां स्तोतुं किमहं स्तौमि तामेकास्येन मानवः।
इत्युक्त्वा याज्ञवल्क्यश्च भक्तिनम्रात्मकन्धरः॥ २९

प्रणनाम निराहारो रुरोद च मुहुर्मुहुः।
ज्योतीरूपा महामाया तेन दृष्टाप्युवाच तम्॥ ३०
सुकवीन्द्रो भवेत्युक्त्वा वैकुण्ठं च जगाम ह।

भगवान् कृष्णके अंशसे उत्पन्न व्यासजीने उस पुराणसूत्रको सुनकर उन कल्याणमयी सरस्वतीको जाना और पुष्करक्षेत्रमें सौ वर्षोंतक उनकी उपासना की। [हे माता!] तत्पश्चात् आपसे वर प्राप्त करके वे श्रेष्ठ कवीन्द्र हुए और उसके बाद उन्होंने वेदोंका विभाजन तथा पुराणोंकी रचना की॥ २१-२२½ ॥

जब इन्द्रने भगवान् शंकरसे तत्त्वज्ञानके सम्बन्धमें पूछा, तब क्षणभर उन सरस्वतीका ध्यान करके ही शिवजीने उन इन्द्रको ज्ञानोपदेश दिया॥ २३½ ॥

[हे माता!] जब इन्द्रने शब्दशास्त्रके विषयमें बृहस्पतिसे पूछा था, तब उन्होंने पुष्करक्षेत्रमें दिव्य एक हजार वर्षोंतक आपकी आराधना की। तदुपरान्त आपसे वर प्राप्त करके वे एक हजार दिव्य वर्षोंतक देवपति इन्द्रको शब्दशास्त्रका उपदेश करते रहे। इसी तरह बृहस्पतिने जिन शिष्योंको पढ़ाया तथा अन्य जिन मुनीश्वरोंने उनसे अध्ययन किया, वे सब-के-सब उन भगवती सुरेश्वरीकी सम्यक् आराधना करके ही सफल हुए हैं॥ २४—२६½ ॥

मुनीश्वरों, मनुगणों, मनुष्यों, दैत्येश्वरों तथा ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवताओंके द्वारा भी सम्यक् रूपसे आपकी स्तुति तथा पूजा की गयी है। हजार मुखवाले शेषनाग, पाँच मुखवाले शिव तथा चार मुखवाले ब्रह्मा भी जिनकी स्तुति करनेमें जड़वत् हो जाते हैं, तब मैं साधारण-सा मनुष्य एक मुखसे उन आपकी स्तुति कैसे कर सकता हूँ?॥ २७-२८½ ॥

[हे नारद!] इस प्रकार स्तुति करके याज्ञवल्क्यमुनि भगवती सरस्वतीको प्रणाम करने लगे। उस समय भक्तिभावसे उनका कन्धा झुक गया था, वे आहाररहित थे तथा बार-बार रो रहे थे॥ २९½ ॥

इसी बीच ज्योतिस्वरूपिणी महामाया सरस्वतीने उन्हें दर्शन दिया और वे मुनिसे बोलीं—'तुम महान् कवीन्द्र हो जाओ'—ऐसा कहकर वे वैकुण्ठ चली गयीं॥ ३०½ ॥

याज्ञवल्क्यकृतं वाणीस्तोत्रमेतत्तु यः पठेत्॥ ३१

स कवीन्द्रो महावाग्मी बृहस्पतिसमो भवेत्।
महामूर्खश्च दुर्बुद्धिर्वर्षमेकं यदा पठेत्॥ ३२

स पण्डितश्च मेधावी सुकवीन्द्रो भवेद् ध्रुवम्॥ ३३

[हे नारद!] जो मनुष्य याज्ञवल्क्यके द्वारा रचित इस सरस्वतीस्तोत्रका पाठ करता है, वह कवीन्द्र तथा बृहस्पतिके समान महान् वक्ता हो जाता है। यदि कोई महान् मूर्ख तथा दुर्बुद्धि भी इस स्तोत्रका एक वर्षतक नियमपूर्वक पाठ करे, तो वह निश्चय ही पण्डित, मेधावी तथा श्रेष्ठ कवि हो जाता है॥ ३१—३३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे याज्ञवल्क्यकृतं सरस्वतीस्तोत्रवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥



अथ षष्ठोऽध्यायः

लक्ष्मी, सरस्वती तथा गंगाका परस्पर शापवश भारतवर्षमें पधारना

श्रीनारायण उवाच

सरस्वती तु वैकुण्ठे स्वयं नारायणान्तिके।
गङ्गाशापेन कलहात्कलया भारते सरित्॥ १

पुण्यदा पुण्यरूपा च पुण्यतीर्थस्वरूपिणी।
पुण्यवद्भिर्निषेव्या च स्थितिः पुण्यवतां मुने॥ २

तपस्विनां तपोरूपा तपसः फलरूपिणी।
कृतपापेध्मदाहाय ज्वलदग्निस्वरूपिणी॥ ३

ज्ञानात्सरस्वतीतोये मृता ये मानवा भुवि।
तेषां स्थितिश्च वैकुण्ठे सुचिरं हरिसंसदि॥ ४

भारते कृतपापश्च स्नात्वा तत्र च लीलया।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोके वसेच्चिरम्॥ ५

चातुर्मास्यां पौर्णमास्यामक्षयायां दिनक्षये।
व्यतीपाते च ग्रहणेऽन्यस्मिन्पुण्यदिनेऽपि च॥ ६

अनुषङ्गेण यः स्नातो हेतुना श्रद्धयापि वा।
सारूप्यं लभते नूनं वैकुण्ठे स हरेरपि॥ ७

श्रीनारायण बोले—हे मुने! साक्षात् भगवान् विष्णुके पास वैकुण्ठमें रहनेवाली सरस्वती कलहके कारण गंगाजीके द्वारा दिये गये शापसे भारतवर्षमें अपनी एक कलासे नदीरूपमें प्रतिष्ठित हैं। ये सरस्वती पुण्यदायिनी, पुण्यरूपिणी, पुण्यतीर्थस्वरूपिणी तथा पुण्यवान् मनुष्योंकी आश्रय हैं, अतः पुण्यात्मा लोगोंको इनका सेवन करना चाहिये॥ १-२॥

ये सरस्वती तपस्वियोंके लिये तपरूपिणी हैं और उनकी तपस्याका फल भी वे ही हैं। ये मनुष्यके द्वारा किये गये पापरूप ईंधनको दग्ध करनेके लिये प्रज्वलित अग्निस्वरूपा हैं॥ ३॥

सरस्वतीकी महिमाको जानते हुए जो मनुष्य इनके जलमें अपना प्राण त्याग करते हैं, वे वैकुण्ठमें वास करते हुए दीर्घकालतक भगवान् श्रीहरिकी सन्निधि प्राप्त करते हैं॥ ४॥

भारतमें रहनेवाला कोई मनुष्य पाप कर लेनेके बाद खेल-खेलमें भी सरस्वतीमें स्नान कर लेनेमात्रसे सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है और दीर्घकालतक विष्णुलोकमें निवास करता है॥ ५॥

जो मनुष्य चातुर्मास्यमें, पूर्णिमा तिथिपर, अक्षय नवमीके दिन, क्षयतिथिको तथा व्यतीपात या ग्रहणके अवसर अथवा अन्य किसी भी पुण्य दिन किसी हेतुसे अथवा श्रद्धापूर्वक सरस्वतीमें स्नान करता है, वह निश्चय ही वैकुण्ठलोकमें भगवान् विष्णुका सारूप्य प्राप्त कर लेता है॥ ६-७॥

सरस्वतीमनु तत्र मासमेकं च यो जपेत्।
महामूर्खः कवीन्द्रश्च स भवेन्नात्र संशयः॥ ८

नित्यं सरस्वतीतोये यः स्नायान्मुण्डयन्नरः।
न गर्भवासं कुरुते पुनरेव स मानवः॥ ९

इत्येवं कथितं किञ्चिद्भारतीगुणकीर्तनम्।
सुखदं कामदं सारं भूयः किं श्रोतुमिच्छसि॥ १०

सूत उवाच

नारायणवचः श्रुत्वा नारदो मुनिसत्तमः।
पुनः पप्रच्छ सन्देहमिमं शौनक सत्वरम्॥ ११

नारद उवाच

कथं सरस्वती देवी गङ्गाशापेन भारते।
कलया कलहेनैव बभूव पुण्यदा सरित्॥ १२

श्रवणे श्रुतिसाराणां वर्धते कौतुकं मम।
कथामृतेन मे तृप्तिः केन श्रेयसि तृप्यते॥ १३

कथं शशाप सा गङ्गा पूजितां तां सरस्वतीम्।
सा तु सत्त्वस्वरूपा या पुण्यदा शुभदा सदा॥ १४

तेजस्विनोर्द्वयोर्वादकारणं श्रुतिसुन्दरम्।
सुदुर्लभं पुराणेषु तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥ १५

श्रीनारायण उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि कथामेतां पुरातनीम्।
यस्याः श्रवणमात्रेण सर्वपापात्प्रमुच्यते॥ १६

लक्ष्मीः सरस्वती गङ्गा तिस्रो भार्या हरेरपि।
प्रेम्णा समास्तास्तिष्ठन्ति सततं हरिसन्निधौ॥ १७

चकार सैकदा गङ्गा विष्णोर्मुखनिरीक्षणम्।
सस्मिता च सकामा च सकटाक्षं पुनः पुनः॥ १८

जो मनुष्य एक महीनेतक प्रतिदिन सरस्वतीनदीके तटपर इनके मन्त्रका जप करता है, वह महान् मूर्ख होते हुए भी कवीश्वर हो जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है॥ ८॥

जो मनुष्य मुण्डन कराकर प्रतिदिन सरस्वतीके जलमें स्नान करता है, वह मनुष्य फिरसे माताके गर्भमें वास नहीं करता है॥ ९॥

[हे नारद!] इस प्रकार मैंने सुख देनेवाले, मनोरथ पूर्ण करनेवाले तथा सारस्वरूप भगवतीके गुणकीर्तनका वर्णन आपसे कर दिया। अब आप और क्या सुनना चाहते हैं?॥ १०॥

सूतजी बोले—हे शौनक! भगवान् नारायणकी बात सुनकर मुनिश्रेष्ठ नारद अपनी इस शंकाके विषयमें पुनः शीघ्र उनसे पूछने लगे—॥ ११॥

नारदजी बोले—ये भगवती सरस्वती कलहके कारण गंगाजीके शापसे भारतवर्षमें अपनी कलासे पुण्यदायिनी नदीके रूपमें कैसे प्रकट हो गयीं?॥ १२॥

वेदोंके सारस्वरूप कथानकोंको सुननेहेतु मेरा कौतूहल बढ़ गया है, इस कथामृतको सुनकर ही मुझे तृप्ति होगी। अपने कल्याणके विषयमें कौन सन्तुष्ट होता है?॥ १३॥

जो सर्वदा पुण्य तथा कल्याण प्रदान करनेवाली हैं, उन सत्त्वस्वरूपा गंगाने पूज्य सरस्वतीको शाप क्यों दे दिया? इन दोनों तेजस्विनी देवियोंके विवादका कारण निश्चय ही कानोंके लिये सुखकर होगा। पुराणोंमें अत्यन्त दुर्लभ उस वृत्तान्तको आप मुझे बतलाइये॥ १४-१५॥

श्रीनारायण बोले—हे नारद! मैं यह प्राचीन कथा कह रहा हूँ, जिसके सुननेमात्रसे मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है; आप इसे सुनिये॥ १६॥

लक्ष्मी, सरस्वती और गंगा—ये तीनों ही विष्णुकी भार्याएँ हैं। ये बड़े प्रेमके साथ सर्वदा भगवान् विष्णुके समीप विराजमान रहती हैं॥ १७॥

एक बार गंगा कामातुर होकर मुसकराती हुई कटाक्षपूर्वक भगवान् विष्णुका मुख निहार रही थीं॥ १८॥

विभुर्जहास तद्वक्त्रं निरीक्ष्य च क्षणं तदा।
क्षमां चकार तद् दृष्ट्वा लक्ष्मीर्नैव सरस्वती॥ १९

तब भगवान् विष्णु क्षणभर उनके मुखकी ओर देखकर मुसकराने लगे। उसे देखकर लक्ष्मीने तो सहन कर लिया, किंतु सरस्वतीने नहीं॥ १९॥

बोधयामास पद्मा तां सत्त्वरूपा च सस्मिता।
क्रोधाविष्टा च सा वाणी न च शान्ता बभूव ह॥ २०

उदारताकी मूर्ति लक्ष्मीने हँसकर उन सरस्वतीको समझाया, किंतु अत्यन्त कोपाविष्ट वे सरस्वती शान्त नहीं हुईं॥ २०॥

उवाच वाणी भर्तारं रक्तास्या रक्तलोचना।
कुपिता कामवेगेन शश्वत्प्रस्फुरिताधरा॥ २१

उस समय लाल नेत्रों तथा मुखमण्डलवाली और कुपित तथा कामवेगके कारण निरन्तर काँपते हुए ओठोंवाली सरस्वती अपने पति भगवान् विष्णुसे कहने लगीं॥ २१॥

सरस्वत्युवाच

सर्वत्र समताबुद्धिः सद्भर्तुः कामिनीं प्रति।
धर्मिष्ठस्य वरिष्ठस्य विपरीता खलस्य च॥ २२

सरस्वती बोलीं—एक धर्मनिष्ठ, श्रेष्ठ तथा उत्तम पतिकी बुद्धि अपनी सभी पत्नियोंके प्रति समान हुआ करती है, किंतु दुष्ट पतिकी बुद्धि इसके विपरीत होती है॥ २२॥

ज्ञातं सौभाग्यमधिकं गङ्गायां ते गदाधर।
कमलायां च तत्तुल्यं न च किञ्चिन्मयि प्रभो॥ २३

हे गदाधर! मुझे ज्ञात हो गया कि गंगापर आपका अधिक प्रेम रहता है और लक्ष्मीपर भी उसीके समान प्रेम रहता है। किंतु हे प्रभो! मुझपर आपका थोड़ा भी प्रेम नहीं है॥ २३॥

गङ्गायाः पद्मया सार्धं प्रीतिश्चास्ति सुसम्मता।
क्षमां चकार तेनेदं विपरीतं हरिप्रिया॥ २४

गंगा और लक्ष्मीके साथ आपकी प्रीति समान है, इसीलिये [गंगाके] इस विपरीत व्यवहारको भी लक्ष्मीने क्षमा कर दिया॥ २४॥

किं जीवनेन मेऽत्रैव दुर्भगायाश्च साम्प्रतम्।
निष्फलं जीवनं तस्या या पत्युः प्रेमवञ्चिता॥ २५

अब यहाँपर मुझ अभागिनीके जीवित रहनेसे क्या लाभ? क्योंकि जो स्त्री अपने पतिके प्रेमसे वंचित है, उसका जीवन व्यर्थ है॥ २५॥

त्वां सर्वे सत्त्वरूपं च ये वदन्ति मनीषिणः।
ते च मूर्खा न वेदज्ञा न जानन्ति मतिं तव॥ २६

जो विद्वान् लोग आपको सात्त्विक स्वरूपवाला कहते हैं, वे सब वेदज्ञ नहीं हैं अपितु मूर्ख हैं; वे आपकी बुद्धिको नहीं जानते हैं॥ २६॥

सरस्वतीवचः श्रुत्वा दृष्ट्वा तां कोपसंयुताम्।
मनसा च समालोच्य स जगाम बहिः सभाम्॥ २७

सरस्वतीकी यह बात सुनकर और उन्हें कोपाविष्ट देखकर भगवान्ने मन-ही-मन कुछ सोचा और इसके बाद वे वहाँसे बाहर निकलकर सभामें चले गये॥ २७॥

गते नारायणे गङ्गामुवाच निर्भयं रुषा।
वागधिष्ठातृदेवी सा वाक्यं श्रवणदुष्करम्॥ २८

भगवान् नारायणके चले जानेपर वाणीकी अधिष्ठातृ-देवी उन सरस्वतीने कुपित होकर निर्भीकतापूर्वक गंगासे सुननेमें अत्यन्त कटु वचन कहा—॥ २८॥

हे निर्लज्जे हे सकामे स्वामिगर्वं करोषि किम्।
अधिकं स्वामिसौभाग्यं विज्ञापयितुमिच्छसि॥ २९

हे निर्लज्ज! हे सकाम! तुम अपने पतिपर इतना गर्व क्यों कर रही हो? 'मेरे ऊपर पतिका अधिक प्रेम रहता है'—ऐसा तुम प्रदर्शित करना चाहती हो॥ २९॥

मानचूर्णं करिष्यामि तवाद्य हरिसन्निधौ।
किं करिष्यति ते कान्तो ममैवं कान्तवल्लभे॥ ३०

इत्येवमुक्त्वा गङ्गायाः केशं ग्रहीतुमुद्यता।
वारयामास तां पद्मा मध्यदेशं समाश्रिता॥ ३१

शशाप वाणी तां पद्मां महाबलवती सती।
वृक्षरूपा सरिद्रूपा भविष्यसि न संशयः॥ ३२

विपरीतं ततो दृष्ट्वा किञ्चिन्नो वक्तुमर्हसि।
सन्तिष्ठति सभामध्ये यथा वृक्षो यथा सरित्॥ ३३

शापं श्रुत्वा तु सा देवी न शशाप चुकोप ह।
तत्रैव दुःखिता तस्थौ वाणीं धृत्वा करेण च॥ ३४

असन्तुष्टां तु तां दृष्ट्वा कोपप्रस्फुरिताधराम्।
उवाच गङ्गा तां देवीं पद्मां चारक्तलोचनाम्॥ ३५

गङ्गोवाच

त्वमुत्सृज महोग्रां च पद्मे किं मे करिष्यति।
दुःशीला मुखरा नष्टा नित्यं वाचालरूपिणी॥ ३६

वागधिष्ठात्री देवीयं सततं कलहप्रिया।
यावती योग्यता चास्या यावती शक्तिरेव च॥ ३७

तथा करोतु वादं च मया सार्धं च दुर्मुखी।
स्वबलं यन्मम बलं विज्ञापयितुमिच्छति॥ ३८

जानन्तु सर्वे ह्युभयोः प्रभावं विक्रमं सति।
इत्येवमुक्त्वा सा देवी वाण्यै शापं ददाविति॥ ३९

सरित्स्वरूपा भवतु सा या त्वां च शशाप ह।
अधोमर्त्यं सा प्रयातु सन्ति यत्रैव पापिनः॥ ४०
कलौ तेषां च पापानि ग्रहीष्यति न संशयः।

हे कान्तवल्लभे! आज मैं भगवान् विष्णुके सामने ही तुम्हारा अभिमान चूर्ण कर दूँगी; तुम्हारा वह पति मेरा क्या कर लेगा?॥ ३०॥

ऐसा कहकर वे गंगाके बाल खींचनेके लिये उद्यत हुईं; तब लक्ष्मीने दोनोंके बीचमें आकर उन सरस्वतीको ऐसा करनेसे रोक दिया॥ ३१॥

इससे महान् बलवती तथा सतीत्वमयी सरस्वतीने उन लक्ष्मीको शाप दे दिया कि तुम नदी और वृक्षके रूपवाली हो जाओगी, इसमें कोई सन्देह नहीं है॥ ३२॥

गंगाका विपरीत आचरण देखकर भी तुमने कुछ नहीं कहा और सभाके बीचमें वृक्ष तथा नदीकी भाँति तुम जड़वत् बन गयी थी; इसलिये तुम वही हो जाओ॥ ३३॥

यह शाप सुनकर भी लक्ष्मीने न तो शाप दिया और न क्रोध ही किया। वे सरस्वतीका हाथ पकड़कर दुःखित हो वहींपर बैठी रह गयीं॥ ३४॥

कोपके कारण काँपते हुए ओठों तथा लाल नेत्रोंवाली और अत्यन्त असन्तुष्ट उस सरस्वतीको देखकर गंगा लक्ष्मीसे कहने लगीं॥ ३५॥

गंगा बोलीं—हे पद्मे! तुम अत्यन्त उग्र स्वभाववाली इस सरस्वतीको छोड़ दो। यह शीलरहित, मुखर, विनाशिनी तथा नित्य वाचाल रहनेवाली सरस्वती मेरा क्या कर लेगी॥ ३६॥

वाणीकी अधिष्ठात्री देवी यह सरस्वती सर्वदा कलहप्रिय है। इसमें जितनी योग्यता तथा शक्ति हो, वह सब लगाकर यह आज मेरे साथ विवाद कर ले। यह दुर्मुखी अपने तथा मेरे बलका प्रदर्शन करना चाहती है तो सभी लोग आज दोनोंके प्रभाव तथा पराक्रमको जान लें॥ ३७-३८½॥

ऐसा कहकर गंगाने सरस्वतीको शाप दे दिया। [और उन्होंने लक्ष्मीसे कहा—] जिस सरस्वतीने तुम्हें शाप दिया है, वह भी नदीरूप हो जाय। यह नीचे मृत्युलोकमें चली जाय, जहाँ पापीलोग निवास करते हैं। [वहाँ] यह कलियुगमें उन पापियोंके पाप ग्रहण करेगी; इसमें सन्देह नहीं है॥ ३९-४०½॥

इत्येवं वचनं श्रुत्वा तां शशाप सरस्वती ॥ ४१

त्वमेव यास्यसि महीं पापिपापं लभिष्यसि।
एतस्मिन्नन्तरे तत्र भगवानाजगाम ह॥ ४२

चतुर्भुजश्चतुर्भिश्च पार्षदैश्च चतुर्भुजैः।
सरस्वतीं करे धृत्वा वासयामास वक्षसि॥ ४३

बोधयामास सर्वज्ञः सर्वज्ञानं पुरातनम्।
श्रुत्वा रहस्यं तासां च शापस्य कलहस्य च॥ ४४

उवाच दुःखितास्ताश्च वाचं सामयिकीं विभुः।

श्रीभगवानुवाच

लक्ष्मि त्वं कलया गच्छ धर्मध्वजगृहं शुभे॥ ४५

अयोनिसम्भवा भूमौ तस्य कन्या भविष्यसि।
तत्रैव दैवदोषेण वृक्षत्वं च लभिष्यसि॥ ४६

मदंशस्यासुरस्यैव शङ्खचूडस्य कामिनी।
भूत्वा पश्चाच्च मत्पत्नी भविष्यसि न संशयः॥ ४७

त्रैलोक्यपावनी नाम्ना तुलसीति च भारते।
कलया च सरिद्भावं शीघ्रं गच्छ वरानने॥ ४८

भारतं भारतीशापान्नाम्ना पद्मावती भव।
गङ्गे यास्यसि पश्चात्त्वमंशेन विश्वपावनी॥ ४९

भारतं भारतीशापात्पापदाहाय पापिनाम्।
भगीरथस्य तपसा तेन नीता सुकल्पिते॥ ५०

नाम्ना भागीरथी पूता भविष्यसि महीतले ।
मदंशस्य समुद्रस्य जाया जायेर्ममाज्ञया॥ ५१

मत्कलांशस्य भूपस्य शन्तनोश्च सुरेश्वरि।
गङ्गाशापेन कलया भारतं गच्छ भारति॥ ५२

गंगाकी यह बात सुनकर सरस्वतीने भी उसे शाप दे दिया कि तुम्हें भी धरातलपर जाना होगा और वहाँ पापियोंके पापको अंगीकार करना होगा॥ ४११/२॥

इसी बीच चार भुजाओंवाले भगवान् विष्णु चार भुजाओंवाले अपने चारों पार्षदोंके साथ वहाँ आ गये॥ ४२½ ॥

सर्वज्ञ श्रीहरिने सरस्वतीका हाथ पकड़कर प्रेमपूर्वक उन्हें अपने वक्षसे लगा लिया और उन्हें शाश्वत तथा सर्वोत्कृष्ट ज्ञान प्रदान किया। उनके कलह तथा शापकी बात सुनकर प्रभु श्रीहरि उन दुःखित स्त्रियोंसे समयानुकूल बात कहने लगे॥ ४३-४४½ ॥

श्रीभगवान् बोले—हे लक्ष्मि! हे शुभे! तुम अपने अंशसे पृथ्वीपर राजा धर्मध्वजके घर जाओ। तुम अयोनिजके रूपमें उनकी कन्या होकर प्रकट होओगी। वहींपर तुम दुर्भाग्यसे वृक्ष बन जाओगी। मेरे ही अंशसे उत्पन्न शंखचूड नामक असुरकी भार्या होनेके बाद ही पुनः तुम मेरी पत्नी बनोगी; इसमें सन्देह नहीं है। उस समय तीनों लोकोंको पवित्र करनेवाली तुलसीके नामसे भारतवर्षमें तुम प्रसिद्ध होओगी। हे वरानने! अब तुम सरस्वतीके शापसे अपने अंशसे नदीरूपमें प्रकट होकर भारतवर्षमें शीघ्र जाओ और वहाँ 'पद्मावती' नामसे प्रतिष्ठित होओ॥ ४५—४८½ ॥

[तत्पश्चात् उन्होंने गंगासे कहा—] हे गंगे! लक्ष्मीके पश्चात् तुम भी सरस्वतीके शापवश पापियोंका पाप भस्म करनेके लिये अपने ही अंशसे विश्वपावनी नदी बनकर भारतवर्षमें जाओ। हे सुकल्पिते! राजा भगीरथकी तपस्यासे उनके द्वारा धरातलपर ले जायी गयी तुम पवित्र 'भागीरथी' नामसे प्रसिद्ध होओगी। हे सुरेश्वरि! मेरी आज्ञाके अनुसार तुम मेरे ही अंशसे उत्पन्न समुद्रकी पत्नी और मेरी कलाके अंशसे उत्पन्न राजा शन्तनुकी भी पत्नी होना स्वीकार कर लेना॥ ४९—५१½ ॥

[तदनन्तर उन्होंने सरस्वतीसे कहा—] हे भारति! गंगाके शापको स्वीकार करके तुम अपनी कलासे भारतवर्षमें जाओ और दोनों सपत्नियों (गंगा तथा

कलहस्य फलं भुंक्ष्व सपत्नीभ्यां सहाच्युते।
स्वयं च ब्रह्मसदने ब्रह्मणः कामिनी भव॥ ५३

गङ्गा यातु शिवस्थानमत्र पद्मैव तिष्ठतु।
शान्ता च क्रोधरहिता मद्भक्ता सत्त्वरूपिणी॥ ५४

महासाध्वी महाभागा सुशीला धर्मचारिणी।
यदंशकलया सर्वा धर्मिष्ठाश्च पतिव्रताः॥ ५५

शान्तरूपाः सुशीलाश्च प्रतिविश्वेषु पूजिताः।
तिस्रो भार्यास्त्रिशीलाश्च त्रयो भृत्याश्च बान्धवाः॥ ५६

ध्रुवं वेदविरुद्धाश्च न ह्येते मङ्गलप्रदाः।
स्त्रीपुंवच्च गृहे येषां गृहिणां स्त्रीवशः पुमान्॥ ५७

निष्फलं च जन्म तेषामशुभं च पदे पदे।
मुखे दुष्टा योनिदुष्टा यस्य स्त्री कलहप्रिया॥ ५८

अरण्यं तेन गन्तव्यं महारण्यं गृहाद्वरम्।
जलानां च स्थलानां च फलानां प्राप्तिरेव च॥ ५९

सततं सुलभा तत्र न तेषां गृह एव च।
वरमग्नौ स्थितिर्हिंस्रजन्तूनां सन्निधौ सुखम्॥ ६०

ततोऽपि दुःखं पुंसां च दुष्टस्त्रीसन्निधौ ध्रुवम्।
व्याधिज्वाला विषज्वाला वरं पुंसां वरानने॥ ६१

दुष्टस्त्रीणां मुखज्वाला मरणादतिरिच्यते।
पुंसां च स्त्रीजितां चैव भस्मान्तं शौचमध्रुवम्॥ ६२

लक्ष्मी)-के साथ कलह करनेका फल भोगो। साथ ही हे अच्युते! अपने पूर्ण अंशसे ब्रह्मसदनमें ब्रह्माकी भार्या बन जाओ॥ ५२-५३॥

गंगाजी शिवके स्थानपर चली जायँ। यहाँपर केवल शान्त स्वभाववाली, क्रोधरहित, मेरी भक्त, सत्त्वस्वरूपा, महान् साध्वी, अत्यन्त सौभाग्यवती, सुशील तथा धर्मका आचरण करनेवाली लक्ष्मी ही विराजमान रहें। जिनके एक अंशकी कलासे समस्त लोकोंमें सभी स्त्रियाँ धर्मनिष्ठ, पतिव्रता, शान्तरूपा तथा सुशील बनकर पूजित होती हैं॥ ५४-५५½॥

[भगवान् बोले] विभिन्न स्वभाववाली तीन स्त्रियाँ, तीन नौकर तथा तीन बान्धवोंका एकत्र रहना वेदविरुद्ध है। अतः ये मंगलदायक नहीं हो सकते॥ ५६½॥

जिन गृहस्थोंके घरमें स्त्री पुरुषकी भाँति व्यवहार करे और पुरुष स्त्रीके अधीन रहे, उनका जन्म निष्फल हो जाता है और पग-पगपर उनका अमंगल होता है॥ ५७½॥

जिसकी स्त्री मुखदुष्टा (कुवचन बोलनेवाली), योनिदुष्टा (व्यभिचारमें लिप्त रहनेवाली) तथा कलहप्रिया है, उस व्यक्तिको जंगलमें चले जाना चाहिये; क्योंकि उसके लिये बड़े-से-बड़ा जंगल भी घरसे बढ़कर श्रेयस्कर होता है; क्योंकि वहाँ उसे जल, स्थल और फल आदिकी निरन्तर प्राप्ति होती रहती है, किंतु घरपर ये सब नहीं मिल पाते॥ ५८-५९½॥

अग्निके पास रहना ठीक है अथवा हिंसक जन्तुओंके निकट रहनेपर भी सुख मिल सकता है, किंतु दुष्ट स्त्रीके सान्निध्यमें रहनेवाले पुरुषोंको अवश्य ही उससे भी अधिक दुःख भोगना पड़ता है॥ ६०½॥

हे वरानने! व्याधिज्वाला तथा विषज्वाला तो पुरुषोंके लिये ठीक हैं, किंतु दुष्ट स्त्रियोंके मुखकी ज्वाला मृत्युसे भी बढ़कर कष्टकारक होती है॥ ६१½॥

स्त्रीके वशमें रहनेवाले पुरुषोंकी शुद्धि शरीरके भस्म हो जानेपर भी निश्चित ही नहीं होती। ऐसा व्यक्ति दिनमें जो पुण्यकर्म करता है, उसके फलका

यदह्नि कुरुते कर्म न तस्य फलभाग्भवेत्।
निन्दितोऽत्र परत्रैव सर्वत्र नरकं व्रजेत्॥ ६३

यशःकीर्तिविहीनो यो जीवन्नपि मृतो हि सः।
बह्वीनां च सपत्नीनां नैकत्र श्रेयसे स्थितिः॥ ६४

एकभार्यः सुखी नैव बहुभार्यः कदाचन।
गच्छ गङ्गे शिवस्थानं ब्रह्मस्थानं सरस्वति॥ ६५

अत्र तिष्ठतु मद्गेहे सुशीला कमलालया।
सुसाध्या यस्य पत्नी च सुशीला च पतिव्रता॥ ६६

इह स्वर्गे सुखं तस्य धर्मो मोक्षः परत्र च।
पतिव्रता यस्य पत्नी स च मुक्तः शुचिः सुखी।
जीवन्मृतोऽशुचिर्दुःखी दुःशीलापतिरेव च॥ ६७

भागी नहीं होता है। वह इस लोक तथा परलोकमें सर्वत्र निन्दित होता है और नरक प्राप्त करता है। जो यश और कीर्तिसे रहित है, वह जीते हुए भी मृतकके समान है॥ ६२-६३½॥

किसी पुरुषकी बहुत-सी पत्नियोंका एक साथ रहना कल्याणप्रद नहीं है। एक भार्यावाला तो सुखी है ही नहीं, फिर अनेक भार्याओंवाला कैसे सुखी रह सकता है?॥ ६४½॥

हे गंगे! तुम शिवके स्थानपर जाओ और हे सरस्वति! तुम ब्रह्माके स्थानपर जाओ। यहाँ मेरे भवनमें उत्तम स्वभाववाली लक्ष्मी ही रहें॥ ६५½॥

जिस पुरुषकी पत्नी सहजरूपसे अनुकूल हो जानेवाली, उत्तम स्वभाववाली तथा पतिव्रता होती है, उसे इस लोकमें तथा स्वर्गमें सुख तथा धर्म प्राप्त होते हैं और परलोकमें मोक्ष-पद प्राप्त होता है। जिसकी पत्नी पतिव्रता होती है, वह मुक्त, पवित्र तथा सुखी है। इसके विपरीत दुराचारिणी स्त्रीका पति जीते-जी मृतकके समान, अपवित्र तथा दुःखी है॥ ६६-६७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे लक्ष्मीगङ्गासरस्वतीनां भूलोकेऽवतरणवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥



अथ सप्तमोऽध्यायः

भगवान् नारायणका गंगा, लक्ष्मी और सरस्वतीसे उनके शापकी अवधि बताना तथा अपने भक्तोंके महत्त्वका वर्णन करना

श्रीनारायण उवाच

इत्युक्त्वा जगतां नाथो विरराम च नारद।
अतीव रुरुदुर्देव्यः समालिङ्ग्य परस्परम्॥ १

ताश्च सर्वाः समालोक्य क्रमेणोचुस्तदेश्वरम्।
कम्पिताः साश्रुनेत्राश्च शोकेन च भयेन च॥ २

सरस्वत्युवाच

विशापं देहि हे नाथ दुष्टमाजन्मशोचनम्।
सत्स्वामिना परित्यक्ताः कुतो जीवन्ति ताः स्त्रियः॥ ३

श्रीनारायण बोले—हे नारद! ऐसा कहकर जगत्के स्वामी भगवान् विष्णु चुप हो गये। तब वे तीनों देवियाँ एक-दूसरेका आलिंगन करके बहुत रोने लगीं॥ १॥

भगवान्की ओर देखकर भय तथा शोकसे काँपती हुई वे सभी देवियाँ अश्रुपूरित नेत्रोंसे उनसे बारी-बारीसे कहने लगीं॥ २॥

सरस्वती बोलीं—हे नाथ! मुझे जीवनभर सन्ताप देनेवाला कोई भी कठोर शाप दे दें (किंतु मेरा त्याग न करें); क्योंकि श्रेष्ठ स्वामीके द्वारा परित्यक्त वे स्त्रियाँ कैसे जीवित रह सकती हैं। भारतवर्षमें जाकर

देहत्यागं करिष्यामि योगेन भारते ध्रुवम्।
अत्युन्नतो हि नियतं पातुमर्हति निश्चितम्॥ ४

मैं निश्चय ही योगके द्वारा देह त्याग कर दूँगी। जिसकी भी अत्यधिक उन्नति होती है, उसका अधोपतन भी अवश्यम्भावी है॥ ३-४॥

गङ्गोवाच

अहं केनापराधेन त्वया त्यक्ता जगत्पते।
देहत्यागं करिष्यामि निर्दोषाया वधं लभ॥ ५

निर्दोषकामिनीत्यागं करोति यो नरो भुवि।
स याति नरकं घोरं किन्तु सर्वेश्वरोऽपि वा॥ ६

गंगा बोली—हे जगत्पते! आपने मेरे किस अपराधके कारण मेरा त्याग कर दिया। मैं तो अपने देहको त्याग दूँगी और इस प्रकार आपको एक निरपराध स्त्रीके वधका पाप लगेगा। जो मनुष्य इस पृथ्वीपर निर्दोष पत्नीका परित्याग कर देता है, वह घोर नरककी यात्रा करता है, चाहे वह सर्वेश्वर ही क्यों न हो॥ ५-६॥

पद्मोवाच

नाथ सत्त्वस्वरूपस्त्वं कोपः कथमहो तव।
प्रसादं कुरु भार्ये द्वे सदीशस्य क्षमा वरा॥ ७

पद्मा बोलीं—हे नाथ! आप तो सत्त्वस्वरूप हैं। अहो, आपको ऐसा कोप कैसे हो गया! आप अपनी इन दोनों पत्नियोंको प्रसन्न कीजिये, क्योंकि एक उत्तम पतिके लिये क्षमा ही श्रेष्ठ है॥ ७॥

भारते भारतीशापाद्यास्यामि कलया ह्यहम्।
कियत्कालं स्थितिस्तत्र कदा द्रक्ष्यामि ते पदम्॥ ८

मैं सरस्वतीका शाप स्वीकार करके अपनी एक कलासे भारतवर्षमें जाऊँगी, किंतु मैं वहाँ कितने समयतक रहूँगी और आपके चरणोंका दर्शन कब कर पाऊँगी?॥ ८॥

दास्यन्ति पापिनः पापं सद्यः स्नानावगाहनात्।
केन तेन विमुक्ताहमागमिष्यामि ते पदम्॥ ९

पापीजन स्नान तथा अवगाहन करके शीघ्र ही अपना पाप मुझे दे देंगे। तब किस उपायके द्वारा उस पापसे मुक्त होकर आपके चरणोंमें मैं पुनः स्थान पाऊँगी?॥ ९॥

कलया तुलसीरूपं धर्मध्वजसुता सती।
भुक्त्वा कदा लभिष्यामि त्वत्पादाम्बुजमच्युत॥ १०

हे अच्युत! अपनी एक कलासे धर्मध्वजकी साध्वी पुत्री होकर तुलसीरूप प्राप्त करके मैं आपके चरणकमल पुनः कब प्राप्त कर सकूँगी?॥ १०॥

वृक्षरूपा भविष्यामि त्वदधिष्ठातृदेवता।
समुद्धरिष्यसि कदा तन्मे ब्रूहि कृपानिधे॥ ११

आप जिसके अधिष्ठातृदेवता हैं, ऐसे वृक्षरूप तुलसीके रूपमें मैं प्रकट होऊँगी। किंतु हे कृपानिधान! आप मुझे यह बता दीजिये कि मेरा उद्धार कब करेंगे?॥ ११॥

गङ्गा सरस्वतीशापाद्यदि यास्यति भारते।
शापेन मुक्ता पापाच्च कदा त्वां च लभिष्यति॥ १२

यदि गंगा सरस्वतीके शापसे भारतमें जायँगी, तब पुनः कब शाप तथा पापसे मुक्त होकर ये आपको प्राप्त करेंगी?॥ १२॥

गङ्गाशापेन वा वाणी यदि यास्यति भारतम्।
कदा शापाद्विनिर्मुच्य लभिष्यति पदं तव॥ १३

साथ ही, गंगाके शापसे ये सरस्वती भी यदि भारतमें जायँगी, तब पुनः कब शापसे मुक्त होकर ये आपके चरणोंका सांनिध्य प्राप्त कर सकेंगी?॥ १३॥

तां वाणीं ब्रह्मसदनं गङ्गां वा शिवमन्दिरम्।
गन्तुं वदसि हे नाथ तत्क्षमस्व च ते वचः॥ १४

हे नाथ! आप जो उन सरस्वतीको ब्रह्माके तथा गंगाको शिवके भवन जानेके लिये कह रहे हैं, तो मैं आपके इन वचनोंके लिये आपसे क्षमा चाहती हूँ॥ १४॥

इत्युक्त्वा कमला कान्तपादं धृत्वा ननाम सा।
स्वकेशैर्वेष्टनं कृत्वा रुरोद च पुनः पुनः॥ १५

(उवाच पद्मनाभस्तां पद्मां कृत्वा स्ववक्षसि।
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यो भक्तानुग्रहकातरः॥)

श्रीभगवानुवाच

त्वद्वाक्यमाचरिष्यामि स्ववाक्यं च सुरेश्वरि।
समतां च करिष्यामि शृणु त्वं कमलेक्षणे॥ १६

भारती यातु कलया सरिद्रूपा च भारते।
अर्धा सा ब्रह्मसदनं स्वयं तिष्ठतु मद्गृहे॥ १७

भगीरथेन सा नीता गङ्गा यास्यति भारते।
पूतं कर्तुं त्रिभुवनं स्वयं तिष्ठतु मद्गृहे॥ १८

तत्रैव चन्द्रमौलेश्च मौलिं प्राप्स्यति दुर्लभम्।
ततः स्वभावतः पूताप्यतिपूता भविष्यति॥ १९

कलांशांशेन गच्छ त्वं भारते वामलोचने।
पद्मावती सरिद्रूपा तुलसीवृक्षरूपिणी॥ २०

कलेः पञ्चसहस्रे च गते वर्षे तु मोक्षणम्।
युष्माकं सरितां चैव मद्गेहे चागमिष्यथ॥ २१

सम्पदा हेतुभूता च विपत्तिः सर्वदेहिनाम्।
विना विपत्तेर्महिमा केषां पद्मभवे भवेत्॥ २२

मन्मन्त्रोपासकानां च सतां स्नानावगाहनात्।
युष्माकं मोक्षणं पापाद्दर्शनात्स्पर्शनात्तथा॥ २३

पृथिव्यां यानि तीर्थानि सन्त्यसंख्यानि सुन्दरि।
भविष्यन्ति च पूतानि मद्भक्तस्पर्शदर्शनात्॥ २४

[हे नारद!] ऐसा कहकर लक्ष्मीने अपने पति श्रीविष्णुके चरण पकड़कर उन्हें प्रणाम किया और अपने केशोंसे उनके चरणोंको वेष्टित करके वे बार-बार रोने लगीं॥ १५॥

(भक्तोंपर कृपा करनेके लिये सदा व्याकुल रहनेवाले तथा मन्द मुसकानसे युक्त प्रसन्न मुखमण्डलवाले भगवान् विष्णु लक्ष्मीको अपने वक्षसे लगाकर उनसे कहने लगे।)

श्रीभगवान् बोले—हे सुरेश्वरि! मैं तुम्हारे तथा अपने दोनोंके वचन सत्य सिद्ध करूँगा। हे कमलेक्षणे! सुनो, मैं तुम तीनोंमें समता कर दूँगा॥ १६॥

ये सरस्वती अपनी कलाके एक अंशसे नदीरूप होकर भारतवर्षमें जायँ, आधे अंशसे ब्रह्माके भवन जायँ और पूर्ण अंशसे स्वयं मेरे पास रहें॥ १७॥

इसी प्रकार भगीरथके द्वारा ले जायी गयी ये गंगा तीनों लोकोंको पवित्र करनेके लिये अपने कलांशसे भारतवर्षमें जायँगी और स्वयं पूर्ण अंशसे मेरे भवनमें रहें। वहाँपर ये चन्द्रशेखर शिवके दुर्लभ मस्तकको प्राप्त करेंगी। वहाँ जानेपर स्वभावतः पवित्र ये गंगा और भी पवित्र हो जायँगी॥ १८-१९॥

हे वामलोचने! तुम अपनी कलाके अंशांशसे पद्मावती नामक नदीके रूपमें तथा तुलसी नामक वृक्षके रूपमें भारतवर्षमें जाओ॥ २०॥

कलिके पाँच हजार वर्ष व्यतीत हो जानेपर नदीरूपिणी तुम सब देवियोंकी मुक्ति हो जायगी और इसके बाद तुमलोग पुनः मेरे भवन आ जाओगी॥ २१॥

हे पद्मभवे! विपत्ति सभी प्राणियोंकी सम्पदाओंका हेतुस्वरूप है। विना विपत्तिके भला किन लोगोंको गौरव प्राप्त हो सकता है॥ २२॥

मेरे मन्त्रोंकी उपासना करनेवाले सत्पुरुषोंके द्वारा तुम्हारे जलमें स्नान तथा अवगाहनसे और उनके दर्शन तथा स्पर्शसे तुमलोगोंकी पापसे मुक्ति हो जायगी॥ २३॥

हे सुन्दरि! जितने भी असंख्य तीर्थ पृथ्वीपर हैं, वे सब मेरे भक्तोंके स्पर्श तथा दर्शनमात्रसे पवित्र हो जायँगे॥ २४॥

मन्मन्त्रोपासका भक्ता विश्रमन्ति च भारते।
पूतं कर्तुं तारितुं च सुपवित्रां वसुन्धराम्॥ २५

मेरे मन्त्रोंकी उपासना करनेवाले भक्त पृथ्वीको अत्यन्त पवित्र करने तथा वहाँ रहनेवाले प्राणियोंको पावन करने तथा तारनेके लिये ही भारतवर्षमें निवास करते हैं॥ २५॥

मद्भक्ता यत्र तिष्ठन्ति पादं प्रक्षालयन्ति च।
तत्स्थानं च महातीर्थं सुपवित्रं भवेद् ध्रुवम्॥ २६

मेरे भक्त जहाँ रहते तथा अपना पैर धोते हैं, वह स्थान निश्चितरूपसे अत्यन्त पवित्र महातीर्थके रूपमें हो जाता है॥ २६॥

स्त्रीघ्नो गोघ्नः कृतघ्नश्च ब्रह्मघ्नो गुरुतल्पगः।
जीवन्मुक्तो भवेत्पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात्॥ २७

स्त्रीवध करनेवाला, गोहत्या करनेवाला, कृतघ्न, ब्राह्मणका वध करनेवाला तथा गुरुपत्नीके साथ व्यभिचार करनेवाला प्राणी भी मेरे भक्तके दर्शन तथा स्पर्शसे पवित्र तथा जीवन्मुक्त हो जाता है॥ २७॥

एकादशीविहीनश्च सन्ध्याहीनोऽथ नास्तिकः।
नरघाती भवेत्पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात्॥ २८

एकादशीव्रत तथा सन्ध्यासे विहीन, नास्तिक तथा मनुष्यका वध करनेवाला भी मेरे भक्तके दर्शन तथा स्पर्श-मात्रसे पवित्र हो जाता है॥ २८॥

असिजीवी मसीजीवी धावको ग्रामयाचकः।
वृषवाहो भवेत्पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात्॥ २९

शस्त्रसे आजीविका चलानेवाला, लेखनवृत्तिसे जीवनयापन करनेवाला, धावक, भिक्षावृत्तिसे निर्वाह करनेवाला तथा बैल हाँकनेवाला भी मेरे भक्तके दर्शन और स्पर्शसे पवित्र हो जाता है॥ २९॥

विश्वासघाती मित्रघ्नो मिथ्यासाक्ष्यस्य दायकः।
स्थाप्याहारी भवेत्पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात्॥ ३०

विश्वासघात करनेवाला, मित्रका वध करनेवाला, झूठी गवाही देनेवाला तथा धरोहर सम्पत्तिका हरण कर लेनेवाला मनुष्य भी मेरे भक्तके दर्शन तथा स्पर्शसे पवित्र हो जाता है॥ ३०॥

अत्युग्रवान्दूषकश्च जारकः पुंश्चलीपतिः।
पूतश्च वृषलीपुत्रो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात्॥ ३१

अत्यन्त उग्र, दूषित करनेवाला, जार पुरुष, व्यभिचारिणी स्त्रीका पति और शूद्रा स्त्रीका पुत्र—ऐसा प्राणी भी मेरे भक्तके दर्शन तथा स्पर्शसे पवित्र हो जाता है॥ ३१॥

शूद्राणां सूपकारश्च देवलो ग्रामयाजकः।
अदीक्षितो भवेत्पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात्॥ ३२

शूद्रोंका रसोइया, देवधनका उपभोग करनेवाला, सभी वर्णोंका पौरोहित्य कर्म करानेवाला ब्राह्मण तथा दीक्षाविहीन मनुष्य भी मेरे भक्तके दर्शन तथा स्पर्शसे पवित्र हो जाता है॥ ३२॥

पितरं मातरं भार्यां भ्रातरं तनयं सुताम्।
गुरोः कुलं च भगिनीं चक्षुर्हीनं च बान्धवम्॥ ३३
श्वश्रूं च श्वशुरं चैव यो न पुष्णाति सुन्दरि।
स महापातकी पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात्॥ ३४

हे सुन्दरि! जो पिता, माता, पत्नी, भाई, पुत्र, पुत्री, गुरुकुल, बहन, नेत्रहीन, बन्धु-बान्धव, सास तथा श्वसुरका भरण-पोषण नहीं करता, वह महापापी भी मेरे भक्तके दर्शन तथा स्पर्शसे पवित्र हो जाता है॥ ३३-३४॥

अश्वत्थनाशकश्चैव मद्भक्तनिन्दकस्तथा।
शूद्रान्नभोजी विप्रश्च पूतो मद्भक्तदर्शनात्॥ ३५

पीपलका वृक्ष काटनेवाला, मेरे भक्तोंकी निन्दा करनेवाला तथा शूद्रोंका अन्न खानेवाला ब्राह्मण भी मेरे भक्तके दर्शनसे पवित्र हो जाता है॥ ३५॥

देवद्रव्यापहारी च विप्रद्रव्यापहारकः।
लाक्षालोहरसानां च विक्रेता दुहितुस्तथा॥ ३६
महापातकिनश्चैव शूद्राणां शवदाहकः।
भवेयुरेते पूताश्च मद्भक्तस्पर्शदर्शनात्॥ ३७

महालक्ष्मीरुवाच

भक्तानां लक्षणं ब्रूहि भक्तानुग्रहकातर।
येषां तु दर्शनस्पर्शात्सद्यः पूता नराधमाः॥ ३८
हरिभक्तिविहीनाश्च महाहङ्कारसंयुताः।
स्वप्रशंसारता धूर्ताः शठाश्च साधुनिन्दकाः॥ ३९
पुनन्ति सर्वतीर्थानि येषां स्नानावगाहनात्।
येषां च पादरजसा पूता पादोदकान्मही॥ ४०
येषां संदर्शनं स्पर्शं ये वा वाञ्छन्ति भारते।
सर्वेषां परमो लाभो वैष्णवानां समागमः॥ ४१
न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः।
ते पुनन्त्यपि कालेन विष्णुभक्ताः क्षणादहो॥ ४२

सूत उवाच

महालक्ष्मीवचः श्रुत्वा लक्ष्मीकान्तश्च सस्मितः।
निगूढतत्त्वं कथितुमपि श्रेष्ठोपचक्रमे॥ ४३

श्रीभगवानुवाच

भक्तानां लक्षणं लक्ष्मि गूढं श्रुतिपुराणयोः।
पुण्यस्वरूपं पापघ्नं सुखदं भुक्तिमुक्तिदम्॥ ४४
सारभूतं गोपनीयं न वक्तव्यं खलेषु च।
त्वां पवित्रां प्राणतुल्यां कथयामि निशामय॥ ४५
गुरुवक्त्राद्विष्णुमन्त्रो यस्य कर्णे पतिष्यति।
वदन्ति वेदास्तं चापि पवित्रं च नरोत्तमम्॥ ४६
पुरुषाणां शतं पूर्वं तथा तज्जन्ममात्रतः।
स्वर्गस्थं नरकस्थं वा मुक्तिमाप्नोति तत्क्षणात्॥ ४७
यैः कैश्चिद्यत्र वा जन्म लब्धं येषु च जन्तुषु।
जीवन्मुक्तास्तु ते पूता यान्ति काले हरेः पदम्॥ ४८

देवधन तथा विप्रधनका हरण करनेवाला, लाह-लोहा-रस तथा कन्याका विक्रय करनेवाला, महान् पातकी तथा शूद्रोंका शव जलानेवाला—ये सभी मेरे भक्तके स्पर्श तथा दर्शनसे पवित्र हो जाते हैं॥ ३६-३७॥

महालक्ष्मी बोलीं—भक्तोंपर कृपा करनेहेतु आतुर रहनेवाले हे प्रभो! अब आप अपने भक्तोंका लक्षण बतलाइये जिनके दर्शन तथा स्पर्शसे हरिभक्तिसे रहित, महान् अहंकारी, सदा अपनी प्रशंसामें लगे रहनेवाले, धूर्त, शठ, साधुनिन्दक तथा अत्यन्त अधम मनुष्य भी तत्काल पवित्र हो जाते हैं; जिनके स्नान तथा अवगाहनसे सभी तीर्थ पवित्र हो जाते हैं; जिनके चरणरज तथा चरणोदकसे पृथ्वी पवित्र हो जाती है एवं जिनके दर्शन तथा स्पर्शकी इच्छा भारतवर्षमें सभी लोग करते रहते हैं। विष्णुभक्तोंका समागम सभीके लिये परम लाभकारी होता है। जलमय तीर्थ तीर्थ नहीं है और मृण्मय तथा प्रस्तरमय देवता भी देवता नहीं हैं; क्योंकि वे बहुत समय बाद पवित्र करते हैं, किंतु यह आश्चर्य है कि विष्णुभक्त क्षणभरमें ही पवित्र कर देते हैं॥ ३८—४२॥

सूतजी बोले—महालक्ष्मीकी बात सुनकर कमलाकान्त श्रीहरि मुसकरा दिये और इसके बाद श्रेष्ठ तथा गूढ रहस्य कहनेके लिये उद्यत हुए॥ ४३॥

श्रीभगवान् बोले—हे लक्ष्मि! भक्तोंके लक्षण वेदों तथा पुराणोंमें रहस्यरूपमें प्रतिपादित हैं। वे पुण्यस्वरूप, पापोंका नाश करनेवाले, सुखप्रद तथा भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं। ऐसे सारभूत तथा गोपनीय लक्षणोंको दुष्टोंके समक्ष प्रकट नहीं करना चाहिये। तुम शुद्धस्वरूपा एवं प्राणप्रियासे इसे कह रहा हूँ, सुनो॥ ४४-४५॥

गुरुके मुखसे निकले विष्णुमन्त्र जिस मनुष्यके कानमें पड़ते हैं, वेद उसीको पवित्र तथा नरोंमें श्रेष्ठ कहते हैं। उस मनुष्यके जन्ममात्रसे पूर्वके सौ पुरुष चाहे वे स्वर्गमें हों या नरकमें हो, उसी क्षण मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं, उनमें जो कोई भी जिन योनियोंमें जहाँ कहीं भी जन्म प्राप्त किये रहते हैं, वे वहींपर पवित्र तथा जीवन्मुक्त हो जाते हैं और समयानुसार भगवान् विष्णुके परमधाम पहुँच जाते हैं॥ ४६—४८॥

मद्भक्तियुक्तो मर्त्यश्च स मुक्तो मद्गुणान्वितः।
मद्गुणाधीनवृत्तिर्यः कथाविष्टश्च सन्ततम्॥ ४९

मद्गुणश्रुतिमात्रेण सानन्दः पुलकान्वितः।
सगद्गदः साश्रुनेत्रः स्वात्मविस्मृत एव च॥ ५०

न वाञ्छति सुखं मुक्तिं सालोक्यादिचतुष्टयम्।
ब्रह्मत्वममरत्वं वा तद्वाञ्छा मम सेवने॥ ५१

इन्द्रत्वं च मनुत्वं च ब्रह्मत्वं च सुदुर्लभम्।
स्वर्गराज्यादिभोगं च स्वप्नेऽपि च न वाञ्छति॥ ५२

भ्रमन्ति भारते भक्तास्तादृग्जन्म सुदुर्लभम्।
मद्गुणश्रवणाः श्राव्यगानैर्नित्यं मुदान्विताः॥ ५३

ते यान्ति च महीं पूत्वा नरं तीर्थं ममालयम्।
इत्येवं कथितं सर्वं पद्मे कुरु यथोचितम्।
तदाज्ञया तास्तश्चक्रुर्हरिस्तस्थौ सुखासने॥ ५४

जो मेरे गुणोंके अनुसार आचरण करता है तथा निरन्तर मेरी कथाओंमें ही आसक्त रहता है, मेरी भक्तिसे युक्त वह मनुष्य मेरे गुणोंसे युक्त होकर मुक्त हो जाता है। मेरे गुणोंके श्रवणमात्रसे वह आनन्दविभोर हो जाता है, उसका शरीर पुलकित हो उठता है, हर्षातिरेकके कारण उसका गला भर आता है, उसकी आँखोंमें आँसू आ जाते हैं और वह अपनेको भूल जाता है। वह सुख, सालोक्य आदि चार प्रकारकी मुक्ति, ब्रह्माका पद अथवा अमरत्व आदि कुछ भी नहीं चाहता है। वह सदा मेरी ही सेवामें लगा रहना चाहता है। वह स्वप्नमें भी इन्द्र, मनु, ब्रह्मा आदिके अत्यन्त दुर्लभ पदों तथा स्वर्गके राज्य आदिके भोगोंकी कामना नहीं करता है॥ ४९—५२॥

मेरे भक्त भारतवर्षमें भ्रमण करते रहते हैं, भक्तोंका वैसा जन्म अत्यन्त दुर्लभ है। वे सदा मेरे गुणोंका श्रवण करते हुए तथा सुनानेयोग्य गीतोंको गाते हुए नित्य आनन्दित रहते हैं। अन्तमें वे मनुष्यों, तीर्थों तथा पृथ्वीको पवित्र करके मेरे धाम चले जाते हैं। हे पद्मे! इस प्रकार मैंने तुमसे यह सब कह दिया। अब तुम्हें जो उचित प्रतीत हो, वह करो। तत्पश्चात् उन श्रीहरिकी आज्ञाके अनुसार वे कार्य करनेमें संलग्न हो गयीं और स्वयं भगवान् अपने सुखदायक आसनपर विराजमान हो गये॥ ५३-५४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे गङ्गादीनां शापोद्धारवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥



अथाष्टमोऽध्यायः

कलियुगका वर्णन, परब्रह्म परमात्मा एवं शक्तिस्वरूपा मूलप्रकृतिकी कृपासे त्रिदेवों तथा देवियोंके प्रभावका वर्णन और गोलोकमें राधा-कृष्णका दर्शन

श्रीनारायण उवाच

सरस्वती पुण्यक्षेत्रमाजगाम च भारते।
गङ्गाशापेन कलया स्वयं तस्थौ हरेः पदे॥ १

भारती भारतं गत्वा ब्राह्मी च ब्रह्मणः प्रिया।
वाण्यधिष्ठातृदेवी सा तेन वाणी प्रकीर्तिता॥ २

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] गंगाके शापसे सरस्वती अपनी एक कलासे पुण्यक्षेत्र भारतवर्षमें आ गयीं और अपने पूर्ण अंशसे भगवान् श्रीहरिके स्थानपर ही रह गयीं॥ १॥

वे सरस्वती भारतमें आनेके कारण 'भारती', ब्रह्माकी प्रिया होनेके कारण 'ब्राह्मी' और वाणीकी अधिष्ठातृदेवी होनेके कारण 'वाणी' नामसे कही गयीं॥ २॥

सरो वाप्यां च स्त्रोतस्सु सर्वत्रैव हि दृश्यते।
हरिः सरस्वांस्तस्येयं तेन नाम्ना सरस्वती॥ ३

सरोवर, बावली तथा अन्य जलधाराओंमें सर्वत्र श्रीहरि दिखायी देते हैं, अतः वे सरस्वान् कहे जाते हैं; उनके इसी नामके कारण ये सरस्वती कही जाती हैं॥ ३॥

सरस्वती नदी सा च तीर्थरूपातिपावनी।
पापिनां पापदाहाय ज्वलदग्निस्वरूपिणी॥ ४

नदीके रूपमें आकर ये सरस्वती परम पावन तीर्थ बन गयीं। पापियोंके पाप भस्म करनेके लिये ये प्रज्वलित अग्निरूपा हैं॥ ४॥

पश्चाद्भागीरथी नीता महीं भगीरथेन च।
सा वै जगाम कलया वाणीशापेन नारद॥ ५

हे नारद! तत्पश्चात् भगीरथके द्वारा गंगाजी पृथ्वीपर ले जायी गयीं। वे सरस्वतीके शापसे अपनी एक कलासे पृथ्वीपर पहुँचीं॥ ५॥

तत्रैव समये तां च दधार शिरसा शिवः।
वेगं सोढुमयं शक्तो भुवः प्रार्थनया विभुः॥ ६

उस समय गंगाके वेगको सह सकनेमें केवल शिव ही समर्थ थे। अतः पृथ्वीके प्रार्थना करनेपर सर्वशक्तिशाली शिवने उन गंगाको अपने मस्तकपर धारण कर लिया॥ ६॥

पद्मा जगाम कलया सा च पद्मावती नदी।
भारतं भारतीशापात्स्वयं तस्थौ हरेः पदे॥ ७

पुनः सरस्वतीके शापसे लक्ष्मीजी अपनी एक कलासे 'पद्मावती' नदीके रूपमें भारतमें पहुँचीं और अपने पूर्ण अंशसे स्वयं श्रीहरिके पास स्थित रहीं॥ ७॥

ततोऽन्यया सा कलया लेभे जन्म च भारते।
धर्मध्वजसुता लक्ष्मीर्विख्याता तुलसीति च॥ ८

तत्पश्चात् लक्ष्मीजीने अपनी दूसरी कलासे भारतमें राजा धर्मध्वजकी पुत्रीके रूपमें जन्म ग्रहण किया और वे 'तुलसी'—इस नामसे विख्यात हुईं॥ ८॥

पुरा सरस्वतीशापात्पश्चाच्च हरिशापतः।
बभूव वृक्षरूपा सा कलया विश्वपावनी॥ ९

पूर्वकालमें सरस्वतीके शापसे और बादमें श्रीहरिके शापसे ये विश्वपावनी देवी अपनी एक कलासे वृक्षरूपमें हो गयीं॥ ९॥

कलेः पञ्चसहस्त्रं च वर्षं स्थित्वा तु भारते।
जग्मुस्ताश्च सरिद्रूपं विहाय श्रीहरेः पदम्॥ १०

कलिके पाँच हजार वर्षोंतक भारतवर्षमें रहकर वे तीनों देवियाँ अपने नदीरूपका परित्यागकर वैकुण्ठधाम चली जायँगी॥ १०॥

यानि सर्वाणि तीर्थानि काशीं वृन्दावनं विना।
यास्यन्ति सार्धं ताभिश्च वैकुण्ठमाज्ञया हरेः॥ ११

काशी तथा वृन्दावनको छोड़कर अन्य जो भी तीर्थ हैं, वे सब श्रीहरिकी आज्ञासे उन देवियोंके साथ वैकुण्ठ चले जायँगे॥ ११॥

शालग्रामः शक्तिशिवौ जगन्नाथश्च भारतम्।
कलेर्दशसहस्त्रान्ते त्यक्त्वा यान्ति निजं पदम्॥ १२

शालग्राम, शिव, शक्ति और जगन्नाथजी कलिके दस हजार वर्ष व्यतीत होनेपर भारतवर्षको छोड़कर अपने स्थानपर चले जायँगे॥ १२॥

साधवश्च पुराणानि शङ्खानि श्राद्धतर्पणे।
वेदोक्तानि च कर्माणि ययुस्तैः सार्धमेव च॥ १३

देवपूजा देवनाम तत्कीर्तिगुणकीर्तनम्।
वेदाङ्गानि च शास्त्राणि ययुस्तैः सार्धमेव च॥ १४

उन सभीके साथ साधु, पुराण, शंख, श्राद्ध, तर्पण तथा वेदोक्त कर्म भी भारतवर्षसे चले जायँगे। देवताओंकी पूजा, देवताओंके नाम, उनके यश तथा गुणका कीर्तन, वेदांग तथा शास्त्र भी उनके साथ चले जायँगे। इसी प्रकार संत, सत्य, धर्म, समस्त वेद,

सन्तश्च सत्यधर्मश्च वेदाश्च ग्रामदेवताः।
व्रतं तपश्चानशनं ययुस्तैः सार्धमेव च॥ १५

वामाचाररताः सर्वे मिथ्याकपटसंयुताः।
तुलसीरहिता पूजा भविष्यति ततः परम्॥ १६

शठाः क्रूरा दाम्भिकाश्च महाहङ्कारसंयुताः।
चोराश्च हिंसकाः सर्वे भविष्यन्ति ततः परम्॥ १७

पुंसो भेदः स्त्रीविभेदो विवाहो वापि निर्भयः।
स्वस्वामिभेदो वस्तूनां भविष्यति ततः परम्॥ १८

सर्वे स्त्रीवशगाः पुंसः पुंश्चल्यश्च गृहे गृहे।
तर्जनैर्भर्त्सनैः शश्वत्स्वामिनं ताडयन्ति च॥ १९

गृहेश्वरी च गृहिणी गृही भृत्याधिकोऽधमः।
चेटीदाससमौ वध्वाः श्वश्रूश्च श्वशुरस्तथा॥ २०

कर्तारो बलिनो गेहे योनिसम्बन्धिबान्धवाः।
विद्यासम्बन्धिभिः सार्धं सम्भाषापि न विद्यते॥ २१

यथापरिचिता लोकास्तथा पुंसश्च बान्धवाः।
सर्वकर्माक्षमाः पुंसो योषितामाज्ञया विना॥ २२

ब्रह्मक्षत्रविशः शूद्रा जात्याचारविवर्जिताः।
सन्ध्या च यज्ञसूत्रं च भवेल्लुप्तं न संशयः॥ २३

म्लेच्छाचारा भविष्यन्ति वर्णाश्चत्वार एव च।
म्लेच्छशास्त्रं पठिष्यन्ति स्वशास्त्राणि विहाय च॥ २४

ग्रामदेवता, व्रत, तप और उपवास आदि भी उनके साथ चले जायँगे। उनके चले जानेके पश्चात् सभी लोग वाममार्गका आचरण करनेवाले तथा मिथ्या और कपटपूर्ण आचरणमें संलग्न हो जायँगे और सर्वत्र बिना तुलसीके ही पूजा होने लगेगी॥ १३—१६॥

उनके जाते ही सभी लोग शठ, क्रूर, दम्भयुक्त, महान् अहंकारी, चोर तथा हिंसक हो जायँगे॥ १७॥

पुरुषभेद (परस्पर मैत्रीका अभाव) रहेगा, स्त्रीविभेद अर्थात् पुरुष-स्त्रीका ही भेद रहेगा, जातिभेद समाप्त हो जायगा; जिससे किसी भी वर्णके स्त्री-पुरुषका परस्पर विवाह निर्भयतापूर्वक होगा। वस्तुओंमें स्व-स्वामिभेद होगा अर्थात् लोग परस्पर एक-दूसरेको कोई वस्तु नहीं देंगे॥ १८॥

तब सभी पुरुष स्त्रियोंके वशमें हो जायँगे। घर-घरमें व्यभिचारिणी स्त्रियोंका बाहुल्य हो जायगा और वे अपने पतियोंको डाँटते हुए तथा दुर्वचन कहते हुए उन्हें पीड़ित करेंगी॥ १९॥

गृहिणी घरकी मालकिन बन जायगी तथा गृहस्वामी नौकरसे भी निकृष्ट रहेगा। घरकी बहू अपने सास-ससुरसे दाई-नौकर-जैसा व्यवहार करेगी॥ २०॥

घरमें बलवान् ही कर्ता माना जायगा, बान्धवोंकी सीमा [अपने बन्धु-बान्धवोंको छोड़कर] केवल स्त्रीके परिवारमें ही सीमित हो जायगी और एक साथ विद्याध्ययन करनेवाले लोगोंमें परस्पर बातचीत तकका व्यवहार नहीं रहेगा॥ २१॥

लोग अपने ही बन्धु-बान्धवोंसे अन्य अपरिचित व्यक्तियोंकी भाँति व्यवहार करेंगे और स्त्रीके आदेशके बिना पुरुष सभी कार्य करनेमें असमर्थ रहेंगे॥ २२॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र अपनी-अपनी जातिके आचार-विचारका परित्याग कर देंगे। सन्ध्यावन्दन तथा यज्ञोपवीत आदिका लोप हो जायगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है॥ २३॥

चारों वर्णोंके लोग म्लेच्छोंके समान आचरण करेंगे। वे अपने शास्त्र छोड़कर म्लेच्छशास्त्रका अध्ययन करेंगे॥ २४॥

ब्रह्मक्षत्रविशां वंशाः शूद्राणां सेवकाः कलौ।
सूपकारा धावकाश्च वृषवाहाश्च सर्वशः॥ २५

ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्योंके वंशज कलियुगमें शूद्रोंके यहाँ सेवक, रसोइया, वस्त्र धोनेवाले तथा बैलोंपर बोझा ढोनेका काम करनेवाले होंगे॥ २५॥

सत्यहीना जनाः सर्वे सस्यहीना च मेदिनी।
फलहीनाश्च तरवोऽपत्यहीनाश्च योषितः॥ २६

सभी प्राणी सत्यहीन हो जायँगे, वसुन्धरा फसलोंसे रहित हो जायगी, वृक्षोंमें फल नहीं रह जायँगे और स्त्रियाँ सन्तानविहीन हो जायँगी॥ २६॥

क्षीरहीनास्तथा गावः क्षीरं सर्पिर्विवर्जितम्।
दम्पती प्रीतिहीनौ च गृहिणः सत्यवर्जिताः॥ २७

गायोंमें दूध देनेकी क्षमता नहीं रह जायगी, दूधमें घृतका अंश समाप्त हो जायगा, पति-पत्नी परस्पर प्रेमभावसे वंचित रहेंगे और गृहस्थोंमें सत्यका अभाव हो जायगा॥ २७॥

प्रतापहीना भूपाश्च प्रजाश्च करपीडिताः।
जलहीना महानद्यो दीर्घिकाकन्दरादयः॥ २८

राजा पराक्रमहीन हो जायँगे, प्रजाएँ करोंके भारसे पीड़ित रहेंगी, बड़ी-बड़ी नदियाँ-जलाशय और कन्दरा आदि जलसे शून्य हो जायँगे॥ २८॥

धर्महीनाः पुण्यहीना वर्णाश्चत्वार एव च।
लक्षेषु पुण्यवान्कोऽपि न तिष्ठति ततः परम्॥ २९

चारों वर्णके लोग धर्म तथा पुण्यसे रहित हो जायँगे। लाखोंमें कोई एक भी पुण्यवान् नहीं रह जायगा॥ २९॥

कुत्सिता विकृताकारा नरा नार्यश्च बालकाः।
कुवार्ता कुत्सितः शब्दो भविष्यति ततः परम्॥ ३०

उसके बाद पुरुष, स्त्री तथा बालक नीच स्वभाववाले तथा विकृत स्वरूपवाले हो जायँगे। उस समय बुरी बातों तथा निन्दित शब्दोंका प्रयोग होगा॥ ३०॥

केचिद् ग्रामाश्च नगरा नरशून्या भयानकाः।
केचित्स्वल्पकुटीरेण नरेण च समन्विताः॥ ३१

कुछ गाँव और नगर मनुष्योंसे शून्य होकर बड़े भयानक प्रतीत होंगे। कुछ गाँवोंमें बहुत थोड़ी कुटिया तथा बहुत ही कम मनुष्य रह जायँगे॥ ३१॥

अरण्यानि भविष्यन्ति ग्रामेषु नगरेषु च।
अरण्यवासिनः सर्वे जनाश्च करपीडिताः॥ ३२

गाँवों और नगरोंमें जंगल हो जायँगे। जंगलमें रहनेवाले सभी लोग भी करोंके भारसे पीड़ित रहेंगे॥ ३२॥

सस्यानि च भविष्यन्ति तडागेषु नदीषु च।
प्रकृष्टवंशजा हीना भविष्यन्ति कलौ युगे॥ ३३

[वर्षाके अभावमें] नदियों और तालाबोंमें फसलें उगायी जायँगी। कलियुगमें उत्कृष्ट वंशमें उत्पन्न लोग नीच हो जायँगे॥ ३३॥

अलीकवादिनो धूर्ताः शठाश्चासत्यवादिनः।
प्रकृष्टानि च क्षेत्राणि सस्यहीनानि नारद॥ ३४

हे नारद! उस समय लोग अप्रिय वचन बोलनेवाले, धूर्त, मूर्ख तथा असत्यभाषी हो जायँगे। उत्तम कोटिके खेत भी फसलोंसे विहीन रहेंगे॥ ३४॥

हीनाः प्रकृष्टा धनिनो देवभक्ताश्च नास्तिकाः।
हिंसकाश्च दयाहीनाः पौराश्च नरघातिनः॥ ३५

नीच लोग भी धनी होनेके कारण श्रेष्ठ माने जायँगे और देवभक्त नास्तिक हो जायँगे। सभी नगरनिवासी हिंसक, निर्दयी और मनुष्योंका वध करनेवाले हो जायँगे॥ ३५॥

वामना व्याधियुक्ताश्च नरा नार्यश्च सर्वतः।
स्वल्पायुषो गदायुक्ता यौवनै रहिताः कलौ॥ ३६

कलियुगमें सभी जगहके स्त्री और पुरुष बौने, नानाविध व्याधियोंसे युक्त, अल्पायु, रोगग्रस्त तथा यौवनसे हीन हो जायँगे। सोलह वर्षमें ही उनके सिरके

पलिताः षोडशे वर्षे महावृद्धाश्च विंशतौ।
अष्टवर्षा च युवती रजोयुक्ता च गर्भिणी॥ ३७

वत्सरान्तप्रसूता स्त्री षोडशे च जरान्विता।
पतिपुत्रवती काचित्सर्वा वन्ध्याः कलौ युगे॥ ३८

कन्याविक्रयिणः सर्वे वर्णाश्चत्वार एव च।
मातृजायावधूनां च जारोपेतान्नभक्षकाः॥ ३९

कन्यानां भगिनीनां वा जारोपात्तान्नजीविनः।
हरेर्नाम्नां विक्रयिणो भविष्यन्ति कलौ युगे॥ ४०

स्वयमुत्सृज्य दानं च कीर्तिवर्धनहेतवे।
ततः पश्चात्स्वदानं च स्वयमुल्लङ्घयिष्यति॥ ४१

देववृत्तिं ब्रह्मवृत्तिं वृत्तिं गुरुकुलस्य च।
स्वदत्तां परदत्तां वा सर्वमुल्लङ्घयिष्यति॥ ४२

कन्यकागामिनः केचित्केचिच्च श्वश्रुगामिनः।
केचिद्वधूगामिनश्च केचिद्वै सर्वगामिनः॥ ४३

भगिनीगामिनः केचित्सपत्नीमातृगामिनः।
भ्रातृजायागामिनश्च भविष्यन्ति कलौ युगे॥ ४४

अगम्यागमनं चैव करिष्यन्ति गृहे गृहे।
मातृयोनिं परित्यज्य विहरिष्यन्ति सर्वतः॥ ४५

पत्नीनां निर्णयो नास्ति भर्तॄणां च कलौ युगे।
प्रजानां चैव ग्रामाणां वस्तूनां च विशेषतः॥ ४६

अलीकवादिनः सर्वे सर्वे चौराश्च लम्पटाः।
परस्परं हिंसकाश्च सर्वे च नरघातिनः॥ ४७

ब्रह्मक्षत्रविशां वंशा भविष्यन्ति च पापिनः।
लाक्षा लोहरसानां च व्यापारं लवणस्य च॥ ४८

वृषवाहा विप्रवंशाः शूद्राणां शवदाहिनः।
शूद्रान्नभोजिनः सर्वे सर्वे च वृषलीरताः॥ ४९

बाल पक जायँगे और बीस वर्षमें वे अत्यन्त वृद्ध हो जायँगे। आठ वर्षकी युवती रजस्वला होकर गर्भ धारण करने लगेगी। प्रत्येक वर्षमें सन्तान उत्पन्न करके वह स्त्री सोलह वर्षकी अवस्थामें ही वृद्धा हो जायगी। कलियुगमें प्रायः सभी स्त्रियाँ वन्ध्या रहेंगी, कोई-कोई स्त्री पति तथा पुत्रवाली होगी॥ ३६—३८॥

चारों वर्णोंके सभी लोग कन्याका विक्रय करेंगे। वे अपनी माता, पत्नी, बहू, कन्या तथा बहनके व्यभिचारी पुरुषोंसे प्राप्त धनसे अपनी आजीविका चलानेवाले होंगे और उनसे प्राप्त अन्नका भक्षण करनेवाले होंगे। कलियुगमें लोग भगवान्‌के नाम बेचनेवाले होंगे। लोग अपनी कीर्ति बढ़ानेके लिये दान देंगे और उसके बाद अपने उस दानरूप प्रदत्त धनको स्वयं ले लेंगे॥ ३९—४१॥

लोग अपने द्वारा दी गयी अथवा दूसरेके द्वारा दी गयी देववृत्ति, ब्राह्मणवृत्ति अथवा गुरुकुलकी वृत्ति—उन सबको पुनः छीन लेंगे॥ ४२॥

कलियुगमें कुछ लोग कन्याके साथ, कुछ लोग सासके साथ, कुछ लोग अपनी बहूके साथ, कुछ लोग बहनके साथ, कुछ लोग सौतेली माँके साथ, कुछ लोग भाईकी स्त्रीके साथ और कुछ लोग सब प्रकारकी स्त्रियोंके साथ समागम करनेवाले होंगे॥ ४३-४४॥

लोग घर-घरमें अगम्या स्त्रीके साथ गमन करेंगे, केवल माताको छोड़कर वे सबके साथ रमण करेंगे। कलियुगमें पतियों तथा पत्नियोंका कोई निर्णय नहीं रहेगा और विशेषरूपसे सन्तानों, ग्रामों तथा वस्तुओंका कोई निर्णय नहीं रहेगा॥ ४५-४६॥

सभी लोग अप्रिय वचन बोलनेवाले होंगे। सभी लोग चोर और लम्पट होंगे। सभी लोग एक-दूसरेकी हिंसा करनेवाले और नरघाती होंगे॥ ४७॥

ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्योंके वंशके लोग पापी हो जायँगे। सभी लोग लाख, लोहा, रस और नमकका व्यापार करेंगे॥ ४८॥

विप्र-वंशमें उत्पन्न सभी लोग बैलोंपर बोझ ढोनेका कर्म करेंगे, शूद्रोंका शव जलायेंगे, शूद्रोंका अन्न खायेंगे और शूद्रजातिकी स्त्रीमें आसक्त

पञ्चयज्ञविहीनाश्च कुहूरात्रौ च भोजिनः।
यज्ञसूत्रविहीनाश्च संध्याशौचविहीनकाः॥ ५०

होंगे, पंचयज्ञ करनेसे विरत रहेंगे, अमावास्याकी रात्रिमें भोजन करेंगे। यज्ञोपवीत धारण नहीं करेंगे और सन्ध्यावन्दन तथा शौचादि कर्मसे विहीन रहेंगे॥ ४९-५०॥

पुंश्चली वार्धुषाजीवा कुट्टनी च रजस्वला।
विप्राणां रन्धनागारे भविष्यति च पाचिका॥ ५१

कुलटा, सूदसे जीविका चलानेवाली, कुट्टनी तथा रजस्वला स्त्री ब्राह्मणोंके भोजनालयोंमें भोजन पकानेवालीके रूपमें रहेगी॥ ५१॥

अन्नानां नियमो नास्ति योनीनां च विशेषतः।
आश्रमाणां जनानां च सर्वे म्लेच्छाः कलौ युगे॥ ५२

एवं कलौ सम्प्रवृत्ते सर्वं म्लेच्छमयं भवेत्।
हस्तप्रमाणे वृक्षे च अङ्गुष्ठे चैव मानवे॥ ५३

कलियुगमें अन्नोंके ग्रहणमें, आश्रम-व्यवस्थाके पालनमें तथा विशेषरूपसे स्त्रियोंके साथ सम्बन्धमें कोई भी नियम नहीं रह जायगा; सभी लोग म्लेच्छ हो जायँगे। इस प्रकार कलियुगके सम्यक्‌रूपसे प्रवृत्त हो जानेपर सम्पूर्ण जगत् म्लेच्छमय हो जायगा। उस समय वृक्ष हाथ-हाथ भर ऊँचे तथा मनुष्य अँगूठेकी लम्बाईके बराबर हो जायँगे॥ ५२-५३॥

विप्रस्य विष्णुयशसः पुत्रः कल्किर्भविष्यति।
नारायणकलांशश्च भगवान् बलिनां वरः॥ ५४

दीर्घेण करवालेन दीर्घघोटकवाहनः।
म्लेच्छशून्यां च पृथिवीं त्रिरात्रेण करिष्यति॥ ५५

निर्म्लेच्छां वसुधां कृत्वा चान्तर्धानं करिष्यति।
अराजका च वसुधा दस्युग्रस्ता भविष्यति॥ ५६

उस समय विष्णुयश नामक ब्राह्मणके यहाँ उनके पुत्ररूपमें भगवान् कल्कि अवतरित होंगे। श्रीनारायणकी कलाके अंशसे उत्पन्न तथा बल-शालियोंमें श्रेष्ठ वे भगवान् कल्कि एक विशाल अश्वपर आरूढ होकर अपनी विशाल तलवारसे तीन रातमें ही सम्पूर्ण पृथ्वीको म्लेच्छोंसे विहीन कर देंगे। इस प्रकार पृथ्वीको म्लेच्छरहित करके वे अन्तर्धान हो जायँगे। तब पृथ्वीपर पुनः अराजकता फैल जायगी और यह चोरों तथा लुटेरोंसे पीड़ित हो जायगी॥ ५४—५६॥

स्थूलाप्रमाणा षड्रात्रं वर्षधाराप्लुता मही।
लोकशून्या वृक्षशून्या गृहशून्या भविष्यति॥ ५७

तदनन्तर मोटी धारसे निरन्तर छः दिनोंतक असीम वर्षा होगी, जिससे सम्पूर्ण पृथ्वी आप्लावित हो जायगी। वह प्राणियों, वृक्षों और घर आदिसे विहीन हो जायगी॥ ५७॥

ततश्च द्वादशादित्याः करिष्यन्त्युदयं मुने।
प्राप्नोति शुष्कतां पृथ्वी समा तेषां च तेजसा॥ ५८

हे मुने! उसके बाद बारह सूर्य एक साथ उदित होंगे। उनके प्रचण्ड तेजसे सम्पूर्ण पृथ्वी सूख जायगी॥ ५८॥

कलौ गते च दुर्धर्षे प्रवृत्ते च कृते युगे।
तपःसत्त्वसमायुक्तो धर्मः पूर्णो भविष्यति॥ ५९

इसके बाद भयंकर कलियुगके समाप्त होनेके बाद तथा सत्ययुगके प्रवृत्त होनेपर तप और सत्त्वसे युक्त धर्म पूर्णरूपसे प्रकट होगा॥ ५९॥

तपस्विनश्च धर्मिष्ठा वेदज्ञा ब्राह्मणा भुवि।
पतिव्रताश्च धर्मिष्ठा योषितश्च गृहे गृहे॥ ६०

उस समय पृथ्वीपर ब्राह्मण धर्मपरायण, तपस्वी तथा वेदज्ञ होंगे और घर-घरमें स्त्रियाँ पतिव्रता तथा धर्मनिष्ठ होंगी॥ ६०॥

राजानः क्षत्रिया: सर्वे विप्रभक्ता मनस्विनः।
प्रतापवन्तो धर्मिष्ठाः पुण्यकर्मरताः सदा॥ ६१

वैश्या वाणिज्यनिरता विप्रभक्ताश्च धार्मिकाः।
शूद्राश्च पुण्यशीलाश्च धर्मिष्ठा विप्रसेविनः॥ ६२

विप्रक्षत्रविशां वंशा देवीभक्तिपरायणाः।
देवीमन्त्ररताः सर्वे देवीध्यानपरायणाः॥ ६३

श्रुतिस्मृतिपुराणज्ञाः पुमांस ऋतुगामिनः।
लेशो नास्ति ह्यधर्मस्य पूर्णो धर्मः कृते युगे॥ ६४

धर्मस्त्रिपाच्च त्रेतायां द्विपाच्च द्वापरे ततः।
कलौ वृत्ते चैकपाच्च सर्वलुप्तिस्ततः परम्॥ ६५

वाराः सप्त तथा विप्र तिथयः षोडश स्मृताः।
तथा द्वादश मासाश्च ऋतवश्च षडेव च॥ ६६

द्वौ पक्षौ चायने द्वे च चतुर्भिः प्रहरैर्दिनम्।
चतुर्भिः प्रहरै रात्रिर्मासस्त्रिंशद्दिनैस्तथा॥ ६७

वर्षं पञ्चविधं ज्ञेयं कालसंख्याविधिक्रमे।
यथा चायान्ति यान्त्येव यथा युगचतुष्टयम्॥ ६८

वर्षे पूर्णे नराणां च देवानां च दिवानिशम्।
शतत्रये षष्ठ्यधिके नराणां च युगे गते॥ ६९

देवानां च युगं ज्ञेयं कालसंख्याविदां मतम्।
मन्वन्तरं तु दिव्यानां युगानामेकसप्ततिः॥ ७०

मन्वन्तरसमं ज्ञेयमायुष्यञ्च शचीपतेः।
अष्टाविंशतिमे चेन्द्रे गते ब्रह्मदिवानिशम्॥ ७१
अष्टोत्तरशते वर्षे गते पातश्च ब्रह्मणः।

क्षत्रियलोग ही राजा होंगे। वे सब सदा ब्राह्मणोंके भक्त, मनस्वी, तपस्वी, प्रतापी, धर्मात्मा तथा पुण्य कर्ममें संलग्न रहनेवाले होंगे॥ ६१॥

वैश्यलोग व्यापार-कर्ममें तत्पर, ब्राह्मणभक्त तथा धार्मिक होंगे। इसी प्रकार शूद्र भी पुण्य कृत्य करनेवाले, धर्मपरायण तथा विप्रोंके सेवक होंगे॥ ६२॥

ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्योंके वंशज सदा भगवतीकी भक्तिमें तत्पर रहनेवाले होंगे। वे सब देवीके मन्त्रका निरन्तर जप करनेवाले तथा उनके ध्यानमें सदा लीन रहनेवाले होंगे॥ ६३॥

उस समयके मनुष्य वेद-स्मृति-पुराणोंके ज्ञाता तथा ऋतुकालमें ही समागम करनेवाले होंगे। सत्ययुगमें लेशमात्र भी अधर्म नहीं रहेगा और धर्म अपने पूर्ण* स्वरूपमें स्थापित रहेगा। त्रेतायुगमें धर्म तीन पैरोंसे, द्वापरमें दो पैरोंसे तथा कलिके आनेपर एक पैरसे रहता है। तत्पश्चात् [घोर कलियुगके प्रवृत्त होनेपर] धर्मका पूर्णरूपसे लोप हो जाता है॥ ६४-६५॥

हे विप्र! सात वार, सोलह तिथियाँ, बारह महीने तथा छः ऋतुएँ बतायी गयी हैं। दो पक्ष (शुक्ल, कृष्ण), दो अयन (उत्तरायण, दक्षिणायन), चार प्रहरका एक दिन, चार प्रहरकी एक रात और तीस दिनोंका एक माह होता है॥ ६६-६७॥

संवत्सर, इडावत्सर आदि भेदसे पाँच प्रकारके वर्ष जानने चाहिये। यही कालकी संख्याका नियम है। जिस प्रकार दिन आते हैं तथा जाते हैं, उसी प्रकार चारों युगोंका आना-जाना लगा रहता है॥ ६८॥

मनुष्योंका एक वर्ष पूर्ण होनेपर देवताओंका एक दिन-रात होता है। मनुष्योंके तीन सौ साठ युग बीतनेपर उसे देवताओंका एक युग समझना चाहिये—ऐसा कालसंख्याके विद्वानोंका मानना है। इस प्रकारके एकहत्तर दिव्य युगोंका एक मन्वन्तर होता है। इन्द्रकी आयु एक मन्वन्तरके बराबर समझनी चाहिये। अट्ठाईस इन्द्रके बीत जानेपर ब्रह्माका एक दिन-रात होता है। इस मानसे एक सौ आठ वर्ष व्यतीत होनेपर ब्रह्माका भी विनाश हो जाता है॥ ६९—७१½॥

* धर्मको चार पैरवाले वृषरूपमें कहा गया है—'**वृषो हि भगवान् धर्मः**' (मनु० ८।१६, श्रीमद्भा० १।१६।१८ आदि) तथा सत्य, दया, तप और दान—ये धर्मरूप वृषके चार चरण बताये गये हैं (चतुष्पाद् धर्म)। **कृते प्रवर्तते धर्मश्चतुष्पात्तज्जनैर्धृतः। सत्यं दया तपो दानमिति पादा विभोर्नृप॥** (श्रीमद्भा० १२।३।१८)

प्रलयः प्राकृतो ज्ञेयस्तत्रादृष्टा वसुन्धरा॥ ७२

जलप्लुतानि विश्वानि ब्रह्मविष्णुशिवादयः।
ऋषयो ज्ञानिनः सर्वे लीनाः सत्ये चिदात्मनि॥ ७३

तत्रैव प्रकृतिर्लीना तत्र प्राकृतिको लयः।
लये प्राकृतिके जाते पाते च ब्रह्मणो मुने॥ ७४

निमेषमात्रं कालश्च श्रीदेव्याः प्रोच्यते मुने।
एवं नश्यन्ति सर्वाणि ब्रह्माण्डान्यखिलानि च॥ ७५

निमेषान्तरकालेन पुनः सृष्टिक्रमेण च।
एवं कतिविधा सृष्टिर्लयः कतिविधोऽपि वा॥ ७६

कति कल्पा गतायाताः संख्यां जानाति कः पुमान्।
सृष्टीनां च लयानां च ब्रह्माण्डानां च नारद॥ ७७

ब्रह्मादीनां च ब्रह्माण्डे संख्यां जानाति कः पुमान्।
ब्रह्माण्डानां च सर्वेषामीश्वरश्चैक एव सः॥ ७८

सर्वेषां परमात्मा च सच्चिदानन्दरूपधृक्।
ब्रह्मादयश्च तस्यांशास्तस्यांशश्च महाविराट्॥ ७९

तस्यांशश्च विराट् क्षुद्रः सैवेयं प्रकृतिः परा।
तस्याः सकाशात्सञ्जातोऽप्यर्धनारीश्वरस्ततः॥ ८०

सैव कृष्णो द्विधाभूतो द्विभुजश्च चतुर्भुजः।
चतुर्भुजश्च वैकुण्ठे गोलोके द्विभुजः स्वयम्॥ ८१

ब्रह्मादितृणपर्यन्तं सर्वं प्राकृतिकं भवेत्।
यद्यत्प्राकृतिकं सृष्टं सर्वं नश्वरमेव च॥ ८२

एवंविधं सृष्टिहेतुं सत्यं नित्यं सनातनम्।
स्वेच्छामयं परं ब्रह्म निर्गुणं प्रकृतेः परम्॥ ८३

निरुपाधि निराकारं भक्तानुग्रहकातरम्।
करोति ब्रह्मा ब्रह्माण्डं यज्ज्ञानात्कमलोद्भवः॥ ८४

इसीको प्राकृत प्रलय समझना चाहिये, उस समय पृथ्वी दिखायी नहीं पड़ती। जगत्के सभी स्थावर-जंगम पदार्थ जलमें विलीन हो जाते हैं। उस समय ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवता, ऋषि तथा ज्ञानी—ये सब सत्यस्वरूप चिदात्मामें समाविष्ट हो जाते हैं। उसी परब्रह्ममें प्रकृति भी लीन हो जाती है। यही प्राकृतिक लय है। हे मुने! इस प्रकार प्राकृतिक लय हो जानेपर ब्रह्माकी आयु समाप्त हो जाती है, इस पूरे समयको भगवतीका एक निमेष कहा जाता है। हे मुने! इस प्रकार जितने भी ब्रह्माण्ड हैं, सब-के-सब देवीके एक निमेषमें विनष्ट हो जाते हैं। पुनः उसी निमेषमात्रमें ही सृष्टिके क्रमसे अनेक ब्रह्माण्ड बन भी जाते हैं॥ ७२—७५½ ॥

इस प्रकार कितनी सृष्टियाँ हुईं तथा कितने लय हुए और कितने कल्प आये तथा गये—उनकी संख्याको कौन व्यक्ति जान सकता है? हे नारद! सृष्टियों, लयों, ब्रह्माण्डों और ब्रह्माण्डमें रहनेवाले ब्रह्मा आदिकी संख्याको भला कौन व्यक्ति जान सकता है?॥ ७६-७७½ ॥

सभी ब्रह्माण्डोंका ईश्वर एक ही है। वही समस्त प्राणियोंका परमात्मस्वरूप तथा सच्चिदानन्दरूप धारण करनेवाला है॥ ७८½ ॥

ब्रह्मा आदि देवता, महाविराट् और क्षुद्रविराट्—ये सब उसी परमेश्वरके अंश हैं और वे परमात्मा ही यह पराप्रकृति हैं। उसी पराप्रकृतिसे अर्धनारीश्वर भी आविर्भूत हुए हैं। वही पराप्रकृति श्रीकृष्णरूप भी है। वे श्रीकृष्ण दो भुजाओं तथा चार भुजाओंवाले होकर दो रूपोंमें विभक्त हो गये। उनमें चतुर्भुज श्रीहरिरूपसे वैकुण्ठमें और स्वयं द्विभुज श्रीकृष्णरूपसे गोलोकमें प्रतिष्ठित हुए॥ ७९—८१ ॥

ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त सब कुछ प्राकृतिक है और जो कुछ भी प्रकृतिसे उत्पन्न है, वह सब नश्वर ही है॥ ८२॥

इस प्रकार सृष्टिके कारणभूत वे परब्रह्म परमात्मा सत्य, नित्य, सनातन, स्वतन्त्र, निर्गुण, प्रकृतिसे परे, उपाधिरहित, निराकार तथा भक्तोंपर कृपा करनेके लिये सदा व्याकुल रहनेवाले हैं। उन परब्रह्मको सम्यक् जानकर ही पद्मयोनि ब्रह्मा ब्रह्माण्डकी रचना करते हैं॥ ८३-८४॥

शिवो मृत्युञ्जयश्चैव संहर्ता सर्वसत्त्ववित्।
यज्ज्ञानाद्यस्य तपसा सर्वेशस्तु तपो महान्॥ ८५

महाविभूतियुक्तश्च सर्वज्ञः सर्वदर्शनः।
सर्वव्यापी सर्वपाता प्रदाता सर्वसम्पदाम्॥ ८६

विष्णुः सर्वेश्वरः श्रीमान् यद्भक्त्या यस्य सेवया।
महामाया च प्रकृतिः सर्वशक्तिमयीश्वरी॥ ८७

सैव प्रोक्ता भगवती सच्चिदानन्दरूपिणी।
यज्ज्ञानाद्यस्य तपसा यद्भक्त्या यस्य सेवया॥ ८८

सावित्री देवमाता च वेदाधिष्ठातृदेवता।
पूज्या द्विजानां वेदज्ञा यज्ज्ञानाद्यस्य सेवया॥ ८९

सर्वविद्याधिदेवी सा पूज्या च विदुषां परा।
यत्सेवया यत्तपसा सर्वविश्वेषु पूजिता॥ ९०

सर्वग्रामाधिदेवी सा सर्वसम्पत्प्रदायिनी।
सर्वेश्वरी सर्ववन्द्या सर्वेषां पुत्रदायिनी॥ ९१

सर्वस्तुता च सर्वज्ञा सर्वदुर्गार्तिनाशिनी।
कृष्णवामांशसम्भूता कृष्णप्राणाधिदेवता॥ ९२

कृष्णप्राणाधिका प्रेम्णा राधिका शक्तिसेवया।
सर्वाधिकं च रूपं च सौभाग्यं मानगौरवे॥ ९३

कृष्णवक्षःस्थलस्थानं पत्नीत्वे प्राप सेवया।
तपश्चकार सा पूर्वं शतशृङ्गे च पर्वते॥ ९४

दिव्यवर्षसहस्रं च पतिं प्राप्त्यर्थमेव च।
जाते शक्तिप्रसादे तु दृष्ट्वा चन्द्रकलोपमाम्॥ ९५

कृष्णो वक्षःस्थले कृत्वा रुरोद कृपया विभुः।
वरं तस्यै ददौ सारं सर्वेषामपि दुर्लभम्॥ ९६

मृत्युपर विजय प्राप्त करनेवाले, समस्त तत्त्वार्थोंको जाननेवाले तथा महान् तपःस्वरूप सर्वेश्वर शिव उन्हींकी तपस्या करके, उन्हें जानकर ही जगत्‌का संहार करनेवाले हो सके। भगवान् विष्णु उन्हीं परब्रह्म परमात्माकी भक्ति तथा सेवाके द्वारा महान् ऐश्वर्यसे सम्पन्न, सर्वज्ञ, सर्वद्रष्टा, सर्वव्यापी, समस्त सम्पदा प्रदान करनेवाले, सबके ईश्वर, श्रीसम्पन्न तथा सबके रक्षक हुए॥ ८५-८६½ ॥

जिसके ज्ञानसे, जिसके तपसे, जिसकी भक्तिसे तथा जिसकी सेवासे महामायास्वरूपिणी, सर्वशक्तिमयी तथा परमेश्वरी वे प्रकृति ही सच्चिदानन्दस्वरूपिणी भगवती कही गयी हैं। जिसके ज्ञान तथा सेवासे देवमाता सावित्री वेदोंकी अधिष्ठातृदेवता, वेदज्ञानसे सम्पन्न तथा ब्राह्मणोंके द्वारा सुपूजित हुईं। जिनकी सेवा तथा तपस्याके द्वारा सरस्वती समस्त विद्याओंकी अधिष्ठातृदेवी, विद्वानोंके लिये पूज्य, श्रेष्ठ तथा समस्त लोकोंमें पूजित हुईं। इसी प्रकार इन्हींकी सेवा तथा तपस्यासे ही वे लक्ष्मी सभी प्रकारकी सम्पदा प्रदान करनेवाली, सभी प्राणिसमूहकी अधिष्ठातृदेवी, सर्वेश्वरी, सबकी वन्दनीया तथा सबको पुत्र देनेवाली हुईं और इन्हींकी उपासनाके प्रभावसे ही देवी दुर्गा सब प्रकारके कष्टका नाश करनेवाली, सबके द्वारा स्तुत तथा सर्वज्ञ हुईं॥ ८७—९१½ ॥

श्रीकृष्णके वाम अंशसे आविर्भूत राधा प्रेमपूर्वक उन्हीं शक्तिकी सेवा करके कृष्णके प्राणोंकी अधिष्ठातृदेवीके रूपमें प्रतिष्ठित हुईं और उनके लिये प्राणोंसे भी अधिक प्रिय बन गयीं। उन्हींकी सेवासे राधाने सर्वोत्कृष्ट रूप, सौभाग्य, सम्मान, गौरव तथा पत्नीके रूपमें श्रीकृष्णके वक्षःस्थलपर स्थान प्राप्त किया है॥ ९२-९३½ ॥

पूर्वकालमें श्रीराधाने श्रीकृष्णको पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये शतशृंगपर्वतपर एक हजार दिव्य वर्षोंतक तप किया था। उससे उन शक्तिस्वरूपाके प्रसन्न हो जानेपर श्रीकृष्ण प्रकट हो गये। वे प्रभु चन्द्रमाकी कलाके समान शोभा पानेवाली राधाको देखकर उन्हें अपने वक्षःस्थलसे लगाकर [प्रेमातिरेकके कारण] रोने लगे। तत्पश्चात् कृपा करके उन प्रभु श्रीकृष्णने राधाको सभीके लिये अत्यन्त दुर्लभ यह उत्तम वर

मम वक्षःस्थले तिष्ठ मम भक्ता च शाश्वती।
सौभाग्येन च मानेन प्रेम्णाथो गौरवेण च॥ ९७

त्वं मे श्रेष्ठा च ज्येष्ठा च प्रेयसी सर्वयोषिताम्।
वरिष्ठा च गरिष्ठा च संस्तुता पूजिता मया॥ ९८

सततं तव साध्योऽहं वश्यश्च प्राणवल्लभे।
इत्युक्त्वा च जगन्नाथश्चकार ललनां ततः॥ ९९

सपत्नीरहितां तां च चकार प्राणवल्लभाम्।
अन्या या याश्च ता देव्यः पूजिताः शक्तिसेवया॥ १००

तपस्तु यादृशं यासां तादृक्तादृक्फलं मुने।
दिव्यवर्षसहस्रं च तपस्तप्त्वा हिमाचले॥ १०१

दुर्गा च तत्पदं ध्यात्वा सर्वपूज्या बभूव ह।
सरस्वती तपस्तप्त्वा पर्वते गन्धमादने॥ १०२

लक्षवर्षं च दिव्यं च सर्ववन्द्या बभूव सा।
लक्ष्मीर्युगशतं दिव्यं तपस्तप्त्वा च पुष्करे॥ १०३

सर्वसम्पत्प्रदात्री च जाता देवीनिषेवणात्।
सावित्री मलये तप्त्वा पूज्या वन्द्या बभूव सा॥ १०४

षष्टिवर्षसहस्रं च दिव्यं ध्यात्वा च तत्पदम्।
शतमन्वन्तरं तप्तं शङ्करेण पुरा विभो॥ १०५

शतमन्वन्तरं चेदं ब्रह्मा शक्तिं जजाप ह।
शतमन्वन्तरं विष्णुस्तप्त्वा पाता बभूव ह॥ १०६

दशमन्वन्तरं तप्त्वा श्रीकृष्णः परमं तपः।
गोलोकं प्राप्तवान्दिव्यं मोदतेऽद्यापि यत्र हि॥ १०७

दशमन्वन्तरं धर्मस्तप्त्वा वै भक्तिसंयुतः।
सर्वप्राणः सर्वपूज्यः सर्वाधारो बभूव सः॥ १०८

प्रदान किया—'मेरे वक्षःस्थलपर सदा विराजमान रहो, मेरी शाश्वत भक्त बनो और सौभाग्य, मान, प्रेम तथा गौरवसे नित्य सम्पन्न रहो। तुम मेरी सभी भार्याओंमें श्रेष्ठ तथा ज्येष्ठ प्रेयसीके रूपमें सदा प्रतिष्ठित रहोगी। तुम्हें वरिष्ठ तथा महिमामयी मानकर मैं सदा तुम्हारी स्तुति-पूजा किया करूँगा। हे प्राणवल्लभे! मैं तुम्हारे लिये सर्वदा सुलभ और हर प्रकारसे तुम्हारे अधीन रहूँगा।' परम सुन्दरी राधाको ऐसा वर प्रदान करके जगत्पति श्रीकृष्णने उन्हें सपत्नीके भावसे रहित कर दिया और अपनी प्राणप्रिया बना लिया॥ ९४—९९½ ॥

हे मुने! इसी प्रकार अन्य भी जो-जो देवियाँ हैं, वे भी मूलप्रकृतिकी सेवाके कारण ही सुपूजित हुई हैं। जिनका जैसा-जैसा तप रहा है, वैसा-वैसा उन्हें फल मिला है। भगवती दुर्गा हिमालयपर्वतपर एक हजार दिव्य वर्षोंतक तपस्या करके तथा उन मूलप्रकृतिके चरणोंका ध्यान करके सबकी पूज्य हो गयीं। वे भगवती सरस्वती गन्धमादनपर्वतपर एक लाख दिव्य वर्षोंतक तप करके सर्ववन्द्या बन गयीं। श्रीलक्ष्मी पुष्करक्षेत्रमें दिव्य एक सौ युगोंतक तप करके भगवतीकी उपासनाके द्वारा सभी प्रकारकी सम्पदाएँ देनेवाली बन गयीं। इसी प्रकार सावित्री दिव्य साठ हजार वर्षोंतक मलयगिरिपर उन मूलप्रकृतिके दिव्य चरणोंका ध्यान करते हुए कठोर तप करके सबके लिये पूजनीय तथा वन्दनीय हो गयीं॥ १००—१०४½ ॥

हे विभो! प्राचीन कालमें शंकरजीने एक सौ मन्वन्तरतक उन भगवतीका तप किया था। ब्रह्माजीने भी सौ मन्वन्तरतक शक्तिके नामका जप किया था। इसी प्रकार भगवान् विष्णु भी सौ मन्वन्तरतक तपस्या करके सम्पूर्ण जगत्‌के रक्षक बने॥ १०५-१०६ ॥

श्रीकृष्णने दस मन्वन्तरतक कठोर तप करके दिव्य गोलोक प्राप्त किया, जहाँपर आज भी वे आनन्द प्राप्त कर रहे हैं॥ १०७॥

उन्हीं भगवतीकी भक्तिसे युक्त होकर धर्म दस मन्वन्तरतक तपस्या करके सबके प्राणस्वरूप, सर्वपूज्य तथा सर्वाधार हो गये॥ १०८॥

एवं देव्याश्च तपसा सर्वे देवाश्च पूजिताः।
मुनयो मनवो भूपा ब्राह्मणाश्चैव पूजिताः॥ १०९

इसी प्रकार सभी देवता, मुनि, मनुगण, राजा तथा ब्राह्मण भी उन भगवती मूलप्रकृतिकी तपस्याके द्वारा ही पूजित हुए हैं॥ १०९॥

एवं ते कथितं सर्वं पुराणं सयथागमम्।
गुरुवक्त्राद्यथा ज्ञातं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ ११०

[हे नारद!] इस प्रकार मैंने आगमसहित इस पुराणको गुरुके मुखसे जैसा जाना था, वह सब आपको बता दिया; अब आप आगे क्या सुनना चाहते हैं?॥ ११०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे नारायणनारदसंवादे कलिमाहात्म्यवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः॥ ८॥



अथ नवमोऽध्यायः

पृथ्वीकी उत्पत्तिका प्रसंग, ध्यान और पूजनका प्रकार तथा उनकी स्तुति

नारद उवाच

देव्या निमेषमात्रेण ब्रह्मणः पात एव च।
तस्य पातः प्राकृतिकः प्रलयः परिकीर्तितः॥ १

प्रलये प्राकृते चोक्ता तत्रादृष्टा वसुन्धरा।
जलप्लुतानि विश्वानि सर्वे लीनाः परात्मनि॥ २

वसुन्धरा तिरोभूता कुत्र वा सा च तिष्ठति।
सृष्टेर्विधानसमये साविर्भूता कथं पुनः॥ ३

कथं बभूव सा धन्या मान्या सर्वाश्रया जया।
तस्याश्च जन्मकथनं वद मङ्गलकारणम्॥ ४

नारदजी बोले—[हे भगवन्!] आपने बतलाया कि देवीके निमेषमात्र व्यतीत होनेपर ब्रह्माका अन्त हो जाता है और उनका यह विनाश ही प्राकृतिक प्रलय कहा गया है। उस प्राकृत प्रलयके होनेपर पृथ्वी अदृश्य हो जाती है—ऐसा कहा गया है, साथ ही सभी लोक जलमें डूब जाते हैं और समस्त प्राणी परमात्मामें विलीन हो जाते हैं। [हे प्रभो!] उस समय अदृश्य हुई वह पृथ्वी कहाँ स्थित रहती है और सृष्टि होनेके समय वह पुनः कैसे प्रकट हो जाती है? वह पृथ्वी फिरसे धन्य, मान्य, सबको आश्रय प्रदान करनेवाली तथा विजयशालिनी कैसे हो जाती है? अब आप उस पृथ्वीके उद्भवकी मंगलकारी कथा कहिये॥ १—४॥

श्रीनारायण उवाच

सर्वादिसृष्टौ सर्वेषां जन्म देव्या इति श्रुतिः।
आविर्भावस्तिरोभावः सर्वेषु प्रलयेषु च॥ ५

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] सम्पूर्ण सृष्टियोंके आरम्भमें भगवतीसे ही अखिल जगत्‌की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार सबका उन्हींसे आविर्भाव होता है और सभी प्रलयोंके समय प्राणियोंका उन्हींमें विलय हो जाता है—ऐसा श्रुति कहती है॥ ५॥

श्रूयतां वसुधाजन्म सर्वमङ्गलकारणम्।
विघ्ननिघ्नकरं पापनाशनं पुण्यवर्धनम्॥ ६

अब आप पृथ्वीके जन्मका वृत्तान्त सुनिये; जो सभी प्रकारका मंगल करनेवाला, विघ्नोंका नाश करनेवाला, पापोंका उच्छेद करनेवाला तथा पुण्यकी वृद्धि करनेवाला है॥ ६॥

अहो केचिद्वदन्तीति मधुकैटभमेदसा।
बभूव वसुधा धन्या तद्विरुद्धमतः शृणु॥ ७

कुछ लोग कहते हैं कि मधु-कैटभ नामक दैत्योंके मेदसे यह धन्य पृथ्वी उत्पन्न हुई, किंतु इससे जो भिन्न मत है, उसे सुनो। उन दोनों दैत्योंने प्राचीन

ऊचतुस्तौ पुरा विष्णुं तुष्टौ युद्धेन तेजसा।
आवां वध्यौ न यत्रोर्वी पाथसा संवृतेति च॥ ८

तयोर्जीवनकाले न प्रत्यक्षा साभवत्स्फुटम्।
ततो बभूव मेदश्च मरणानन्तरं तयोः॥ ९

मेदिनीति च विख्यातेत्युक्तमेतन्मतं शृणु।
जलधौता कृता पूर्वं वर्धिता मेदसा यतः॥ १०

कथयामि ते तज्जन्म सार्थकं सर्वमङ्गलम्।
पुरा श्रुतं यच्छ्रुत्युक्तं धर्मवक्त्राच्च पुष्करे॥ ११

महाविराट्शरीरस्य जलस्थस्य चिरं स्फुटम्।
मनो बभूव कालेन सर्वाङ्गव्यापकं ध्रुवम्॥ १२

तच्च प्रविष्टं सर्वेषां तल्लोम्नां विवरेषु च।
कालेन महता पश्चाद् बभूव वसुधा मुने॥ १३

प्रत्येकं प्रतिलोम्नां च कूपेषु संस्थिता सदा।
आविर्भूता तिरोभूता सजला च पुनः पुनः॥ १४

आविर्भूता सृष्टिकाले तज्जलोपर्युपस्थिता।
प्रलये च तिरोभूता जलस्याभ्यन्तरे स्थिता॥ १५

प्रतिविश्वेषु वसुधा शैलकाननसंयुता।
सप्तसागरसंयुक्ता सप्तद्वीपसमन्विता॥ १६

हेमाद्रिमेरुसंयुक्ता ग्रहचन्द्रार्कसंयुता।
ब्रह्मविष्णुशिवाद्यैश्च सुरैर्लोकैस्तदाज्ञया॥ १७

कालमें भगवान् विष्णुके साथ युद्धमें उनके तेजसे प्रसन्न होकर उनसे कहा कि हमदोनोंका वध वहींपर हो, जहाँ पृथ्वी जलमग्न न हो। उनके जीवनकालमें पृथ्वी जलके भीतर स्थित रहनेके कारण स्पष्ट रूपसे दिखायी नहीं पड़ती थी; यह बात उन्हें ज्ञात भी थी। इसीलिये उन्होंने वह वर माँगा था। उन दोनोंके वधके उपरान्त उनका मेद प्रभूत मात्रामें फैल गया। इस कारण पृथ्वी मेदिनी नामसे प्रसिद्ध हुई। इसका स्पष्टीकरण सुनो; जलसे बाहर निकलनेके अनन्तर ही पृथ्वी मेदसे परिपुष्ट हुई। इसीलिये उसका नाम मेदिनी पड़ा। मैं अब पृथ्वीके जन्मकी मंगलकारिणी तथा श्रुतिप्रतिपादित सार्थक कथा कहता हूँ, जिसे मैंने पहले धर्मराजके मुखसे पुष्करक्षेत्रमें सुना था॥ ७—११॥

महाविराट् पुरुष अनन्त कालसे जलमें स्थित रहते हैं, यह स्पष्ट है। समयानुसार उनके भीतर सर्वांगव्यापी शाश्वत मन प्रकट हुआ। तत्पश्चात् वह मन उस महाविराट् पुरुषके सभी रोमकूपोंमें प्रविष्ट हो गया। हे मुने! बहुत समयके पश्चात् उन्हीं रोमकूपोंसे पृथ्वी प्रकट हुई॥ १२-१३॥

उस महाविराट्के जितने रोमकूप हैं, उन सबमें सर्वदा स्थित रहनेवाली यह पृथ्वी एक-एक करके जलसहित बार-बार प्रकट होती और छिपती रहती है॥ १४॥

यह पृथ्वी सृष्टिके समय प्रकट होकर जलके ऊपर स्थित हो जाती है और प्रलयके समय यह अदृश्य होकर जलके भीतर स्थित रहती है॥ १५॥

प्रत्येक ब्रह्माण्डमें यह पृथ्वी पर्वतों तथा वनोंसे सम्पन्न रहती है, सात समुद्रोंसे घिरी रहती है और सात द्वीपोंसे युक्त रहती है॥ १६॥

यह वसुधा हिमालय तथा मेरु आदि पर्वतों, सूर्य तथा चन्द्र आदि ग्रहोंसे संयुक्त रहती है। महाविराट्की आज्ञाके अनुसार ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवता इसपर प्रकट होते हैं तथा समस्त प्राणी इसपर निवास करते हैं॥ १७॥

पुण्यतीर्थसमायुक्ता पुण्यभारतसंयुता।
काञ्चनीभूमिसंयुक्ता सप्तस्वर्गसमन्विता॥ १८

पातालसप्तं तदधस्तदूर्ध्वं ब्रह्मलोकतः।
ध्रुवलोकश्च तत्रैव सर्वं विश्वं च तत्र वै॥ १९

एवं सर्वाणि विश्वानि पृथिव्यां निर्मितानि च।
नश्वराणि च विश्वानि सर्वाणि कृत्रिमाणि वै॥ २०

प्रलये प्राकृते चैव ब्रह्मणश्च निपातने।
महाविराडादिसृष्टौ सृष्टः कृष्णेन चात्मना॥ २१

नित्यौ च स्थितिप्रलयौ काष्ठाकालेश्वरैः सह।
नित्याधिष्ठातृदेवी सा वाराहे पूजिता सुरैः॥ २२

मुनिभिर्मनुभिर्विप्रैर्गन्धर्वादिभिरेव च।
विष्णोर्वराहरूपस्य पत्नी सा श्रुतिसम्मता॥ २३

तत्पुत्रो मङ्गलो ज्ञेयो घटेशो मङ्गलात्मजः।

नारद उवाच

पूजिता केन रूपेण वाराहे च सुरैर्मही॥ २४

वाराहे चैव वाराही सर्वैः सर्वाश्रया सती।
मूलप्रकृतिसम्भूता पञ्चीकरणमार्गतः॥ २५

तस्याः पूजाविधानं चाप्यधश्चोर्ध्वमनेकशः।
मङ्गलं मङ्गलस्यापि जन्म वासं वद प्रभो॥ २६

श्रीनारायण उवाच

वाराहे च वराहश्च ब्रह्मणा संस्तुतः पुरा।
उद्दधार महीं हत्वा हिरण्याक्षं रसातलम्॥ २७

जले तां स्थापयामास पद्मपत्रं यथा ह्रदे।
तत्रैव निर्ममे ब्रह्मा विश्वं सर्वं मनोहरम्॥ २८

यह पृथ्वी पुण्यतीर्थों तथा पवित्र भारतदेशसे सम्पन्न है। यह स्वर्णमयी भूमिसे सुशोभित है तथा सात स्वर्गोंसे समन्वित है। इस पृथ्वीके नीचे सात पाताल हैं, ऊपर ब्रह्मलोक है तथा ब्रह्मलोकसे भी ऊपर ध्रुवलोक है और उसमें समस्त विश्व स्थित है। इस प्रकार सम्पूर्ण लोक पृथ्वीपर ही निर्मित हैं। ये सभी विश्व विनाशशील तथा कृत्रिम हैं॥ १८—२०॥

प्राकृत प्रलयके अवसरपर ब्रह्माका भी निपात हो जाता है। उस समय केवल महाविराट् पुरुष विद्यमान रहते हैं; क्योंकि सृष्टिके आरम्भमें ही परब्रह्म श्रीकृष्णने इनका सृजन किया था॥ २१॥

ये सृष्टि तथा प्रलय नित्य हैं और काष्ठा आदि अवयवोंवाले कालके स्वामीके अधीन होकर रहते हैं। सभीकी अधिष्ठातृदेवी पृथ्वी भी नित्य हैं। वाराहकल्पमें सभी देवता, मुनि, मनु, विप्र, गन्धर्व आदिने उन पृथ्वीका पूजन किया था। वेदसम्मत वे पृथ्वी वराहरूपधारी भगवान् विष्णुकी पत्नीके रूपमें विराजमान हुईं; उनके पुत्ररूपमें मंगलको तथा मंगलके पुत्ररूपमें घटेशको जानना चाहिये॥ २२-२३½॥

नारदजी बोले—देवताओंने वाराहकल्पमें किस रूपमें पृथ्वीका पूजन किया था? सभी लोग उस वाराहकल्पमें सबको आश्रय प्रदान करनेवाली इस वाराही साध्वी पृथ्वीकी पूजा करते थे। यह पृथ्वी पंचीकरण-मार्गसे मूलप्रकृतिसे उत्पन्न हुई है। हे प्रभो! नीचे तथा ऊपरके लोकोंमें उस पृथ्वीके पूजनके विविध प्रकार और (पृथ्वीपुत्र) मंगलके कल्याणमय जन्म तथा निवास-स्थानके विषयमें भी बताइये॥ २४—२६॥

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] प्राचीन कालमें वाराहकल्पमें ब्रह्माजीके द्वारा स्तुति करनेपर भगवान् श्रीहरि वराहरूप धारण करके हिरण्याक्षको मारकर रसातलसे पृथ्वीको निकाल ले आये॥ २७॥

उन्होंने पृथ्वीको जलमें इस प्रकार रख दिया, मानो सरोवरमें कमलपत्र स्थित हो। वहींपर रहकर ब्रह्माजीने सम्पूर्ण मनोहर विश्वकी रचना की॥ २८॥

दृष्ट्वा तदधिदेवीं च सकामां कामुको हरिः।
वराहरूपी भगवान् कोटिसूर्यसमप्रभः॥ २९

कृत्वा रतिकलां सर्वां मूर्तिं च सुमनोहराम्।
क्रीडाञ्चकार रहसि दिव्यवर्षमहर्निशम्॥ ३०

सुखसम्भोगसंस्पर्शान्मूर्च्छां सम्प्राप सुन्दरी।
विदग्धाया विदग्धेन सङ्गमोऽतिसुखप्रदः॥ ३१

विष्णुस्तदङ्गसंश्लेषाद् बुबुधे न दिवानिशम्।
वर्षान्ते चेतनां प्राप्य कामी तत्याज कामुकीम्॥ ३२

पूर्वरूपं वराहं च दधार स च लीलया।
पूजाञ्चकार तां देवीं ध्यात्वा च धरणीं सतीम्॥ ३३

धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैः सिन्दूरैरनुलेपनैः।
वस्त्रैः पुष्पैश्च बलिभिः सम्पूज्योवाच तां हरिः॥ ३४

श्रीभगवानुवाच

सर्वाधारा भव शुभे सर्वैः सम्पूजिता सुखम्।
मुनिभिर्मनुभिर्देवैः सिद्धैश्च दानवादिभिः॥ ३५

अम्बुवाचीत्यागदिने गृहारम्भे प्रवेशने।
वापीतडागारम्भे च गृहे च कृषिकर्मणि॥ ३६

तव पूजां करिष्यन्ति मद्वरेण सुरादयः।
मूढा ये न करिष्यन्ति यास्यन्ति नरकं च ते॥ ३७

वसुधोवाच

वहामि सर्वं वाराहरूपेणाहं तवाज्ञया।
लीलामात्रेण भगवन् विश्वं च सचराचरम्॥ ३८

मुक्तां शुक्तिं हरेरर्चां शिवलिङ्गं शिवां तथा।
शङ्खं प्रदीपं यन्त्रं च माणिक्यं हीरकं तथा॥ ३९

यज्ञसूत्रं च पुष्पं च पुस्तकं तुलसीदलम्।
जपमालां पुष्पमालां कर्पूरं च सुवर्णकम्॥ ४०

गोरोचनं चन्दनं च शालग्रामजलं तथा।
एतान्वोढुमशक्ताहं क्लिष्टा च भगवञ्छृणु॥ ४१

पृथ्वीकी अधिष्ठात्री देवीको कामभावसे युक्त देखकर करोड़ों सूर्यके समान प्रभावाले वाराहरूपधारी सकाम भगवान् श्रीहरिने अपना अत्यन्त मनोहर तथा रतिकलायोग्य समग्र रूप बना करके उसके साथ एकान्तमें दिव्य एक वर्षतक निरन्तर विहार किया। आनन्दकी अनुभूतिसे वह सुन्दरी मूर्च्छित हो गयी। विदग्ध पुरुषके साथ विदग्ध स्त्रीका संगम अत्यन्त सुखदायक होता है। उस सुन्दरीके अंग-संश्लेषके कारण विष्णुको दिन-रातका ज्ञान भी नहीं रहा। एक वर्षके पश्चात् चेतना आनेपर भगवान् श्रीहरि उससे विलग हो गये॥ २९—३२॥

तदनन्तर उन्होंने लीलापूर्वक अपना पूर्वका वराह-रूप धारण कर लिया। इसके बाद साध्वी भगवती पृथ्वीका ध्यान करके धूप, दीप, नैवेद्य, सिन्दूर, चन्दन, वस्त्र, पुष्प और बलि आदिसे उनकी पूजा करके श्रीहरि उनसे कहने लगे॥ ३३-३४॥

श्रीभगवान् बोले—हे शुभे! तुम सबको आश्रय देनेवाली बनो। तुम मुनि, मनु, देवता, सिद्ध और दानव आदि—सभीके द्वारा भलीभाँति पूजित होकर सुख प्राप्त करोगी॥ ३५॥

अम्बुवाचीयोग*को छोड़कर अन्य दिनोंमें, गृहारम्भ, गृहप्रवेश, बावली तथा सरोवरके निर्माणके समयपर, गृह तथा कृषिकार्यके अवसरपर देवता आदि सभी लोग मेरे वरके प्रभावसे तुम्हारी पूजा करेंगे और जो मूर्ख प्राणी तुम्हारी पूजा नहीं करेंगे, वे नरकमें जायँगे॥ ३६-३७॥

वसुधा बोली—हे भगवन्! आपकी आज्ञाके अनुसार मैं वाराहीरूपसे समस्त स्थावर-जंगममय विश्वका लीलापूर्वक वहन करती हूँ। किंतु हे भगवन्! आप यह सुन लीजिये कि मैं मोती, सीप, शालग्रामशिला, शिवलिंग, पार्वतीविग्रह, शंख, दीप, यन्त्र, माणिक्य, हीरा, यज्ञोपवीत, पुष्प, पुस्तक, तुलसीदल, जपमाला, पुष्पमाला, कपूर, सुवर्ण, गोरोचन, चन्दन और शालग्रामका जल—इन वस्तुओंका वहन करनेमें सर्वथा असमर्थ हूँ, इससे मुझे क्लेश होता है॥ ३८—४१॥

* सौरमानसे आर्द्रा नक्षत्रके प्रथम चरणमें पृथ्वी ऋतुमती रहती है; इतने समयका नाम अम्बुवाची है।

श्रीभगवानुवाच

द्रव्याण्येतानि ये मूढा अर्पयिष्यन्ति सुन्दरि।
यास्यन्ति कालसूत्रं ते दिव्यं वर्षशतं त्वयि॥ ४२

इत्येवमुक्त्वा भगवान् विरराम च नारद।
बभूव तेन गर्भेण तेजस्वी मङ्गलग्रहः॥ ४३

पूजाञ्चक्रुः पृथिव्याश्च ते सर्वे चाज्ञया हरेः।
कण्वशाखोक्तध्यानेन तुष्टुवुश्च स्तवेन ते॥ ४४

ददुर्मूलेन मन्त्रेण नैवेद्यादिकमेव च।
संस्तुता त्रिषु लोकेषु पूजिता सा बभूव ह॥ ४५

नारद उवाच

किं ध्यानं स्तवनं तस्या मूलमन्त्रं च किं वद।
गूढं सर्वपुराणेषु श्रोतुं कौतूहलं मम॥ ४६

श्रीनारायण उवाच

आदौ च पृथिवी देवी वराहेण च पूजिता।
ततो हि ब्रह्मणा पश्चात्पूजिता पृथिवी तदा॥ ४७

ततः सर्वैर्मुनीन्द्रैश्च मनुभिर्मानवादिभिः।
ध्यानं च स्तवनं मन्त्रं शृणु वक्ष्यामि नारद॥ ४८

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं वसुधायै स्वाहेत्यनेन
मन्त्रेण विष्णुना पूजिता पुरा।
श्वेतपङ्कजवर्णाभां शरच्चन्द्रनिभाननाम्॥ ४९

चन्दनोत्क्षिप्तसर्वाङ्गीं रत्नभूषणभूषिताम्।
रत्नाधारां रत्नगर्भां रत्नाकरसमन्विताम्॥ ५०

वह्निशुद्धांशुकाधानां सस्मितां वन्दितां भजे।
ध्यानेनानेन सा देवी सर्वैश्च पूजिताभवत्॥ ५१
स्तवनं शृणु विप्रेन्द्र कण्वशाखोक्तमेव च।

श्रीभगवान् बोले—हे सुन्दरि! जो मूर्ख तुम्हारे ऊपर (अर्थात् आसनविहीन भूमिपर) ये वस्तुएँ रखेंगे, वे कालसूत्र नामक नरकमें दिव्य सौ वर्षोंतक निवास करेंगे॥ ४२॥

हे नारद! यह कहकर भगवान् चुप हो गये। उस समय पृथ्वी गर्भवती हो चुकी थीं। उसी गर्भसे तेजस्वी मंगलग्रह उत्पन्न हुए॥ ४३॥

भगवान्‌की आज्ञाके अनुसार वहाँ उपस्थित सभी लोगोंने पृथ्वीकी पूजा की और कण्वशाखामें कहे गये ध्यान तथा स्तोत्रपाठसे उनकी स्तुति की और मूलमन्त्रसे नैवेद्य आदि अर्पण किया। इस प्रकार तीनों लोकोंमें उन पृथ्वीकी पूजा तथा स्तुति होने लगी॥ ४४-४५॥

नारदजी बोले—पृथ्वीका ध्यान क्या है, उनका स्तवन क्या है और उनका मूलमन्त्र क्या है, यह सब मुझे बतलाइये। समस्त पुराणोंमें निगूढ़ इस प्रसंगको सुननेके लिये मुझे बहुत कौतूहल हो रहा है॥ ४६॥

श्रीनारायण बोले—सर्वप्रथम भगवान् वराहने भगवती पृथ्वीकी पूजा की, तत्पश्चात् ब्रह्माजीद्वारा इन पृथ्वीकी पूजा की गयी। इसके बाद सभी मुनीश्वरों, मनुओं और मनुष्यों आदिने पृथ्वीकी पूजा की॥ ४७½॥

हे नारद! सुनिये; अब मैं पृथ्वीके ध्यान, स्तवन तथा मन्त्रके विषयमें बता रहा हूँ। '**ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं वसुधायै स्वाहा**'—इस मन्त्रसे भगवान् विष्णुने प्राचीनकालमें इनका पूजन किया था। उनके ध्यानका स्वरूप यह है—'पृथ्वीदेवी श्वेतकमलके वर्णके समान आभासे युक्त हैं, उनका मुखमण्डल शरत्पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान है, उनके सम्पूर्ण अंग चन्दनसे अनुलिप्त हैं, वे रत्नमय अलंकारोंसे सुशोभित हैं, वे रत्नोंकी आधारस्वरूपा हैं, वे रत्नगर्भा हैं, वे रत्नोंके आकर (खान)-से समन्वित हैं, उन्होंने अग्निके समान विशुद्ध वस्त्र धारण कर रखे हैं, उनका मुखमण्डल मुसकानसे युक्त है तथा वे सभी लोगोंके द्वारा वन्दित हैं—मैं ऐसी पृथ्वीदेवीकी आराधना करता हूँ।' इस प्रकारके ध्यानसे सभी लोगोंके द्वारा पृथ्वी पूजित हुईं। हे विप्रवर! अब कण्वशाखामें प्रतिपादित इनकी स्तुति सुनिये॥ ४८—५१½॥

श्रीनारायण उवाच

जये जये जलाधारे जलशीले जलप्रदे॥ ५२
यज्ञसूकरजाये त्वं जयं देहि जयावहे।
मङ्गले मङ्गलाधारे माङ्गल्ये मङ्गलप्रदे॥ ५३
मङ्गलार्थं मङ्गलेशे मङ्गलं देहि मे भवे।
सर्वाधारे च सर्वज्ञे सर्वशक्तिसमन्विते॥ ५४
सर्वकामप्रदे देवि सर्वेष्टं देहि मे भवे।
पुण्यस्वरूपे पुण्यानां बीजरूपे सनातनि॥ ५५
पुण्याश्रये पुण्यवतामालये पुण्यदे भवे।
सर्वसस्यालये सर्वसस्याढ्ये सर्वसस्यदे॥ ५६
सर्वसस्यहरे काले सर्वसस्यात्मिके भवे।
भूमे भूमिपसर्वस्वे भूमिपालपरायणे॥ ५७
भूमिपानां सुखकरे भूमिं देहि च भूमिदे।
इदं स्तोत्रं महापुण्यं प्रातरुत्थाय यः पठेत्॥ ५८
कोटिजन्मसु स भवेद् बलवान्भूमिपेश्वरः।
भूमिदानकृतं पुण्यं लभ्यते पठनाज्जनैः॥ ५९
भूमिदानहरात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः।
अम्बुवाचीभूकरणपापात्स मुच्यते ध्रुवम्॥ ६०
अन्यकूपे कूपखननपापात्स मुच्यते ध्रुवम्।
परभूमिहरात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः॥ ६१
भूमौ वीर्यत्यागपापाद्भूमौ दीपादिस्थापनात्।
पापेन मुच्यते सोऽपि स्तोत्रस्य पठनान्मुने॥ ६२
अश्वमेधशतं पुण्यं लभते नात्र संशयः।
भूमिदेव्या महास्तोत्रं सर्वकल्याणकारकम्॥ ६३

श्रीनारायण बोले—जलकी आधारस्वरूपिणी, जलमयी तथा सबको जल प्रदान करनेवाली, यज्ञवराहकी भार्या तथा विजयकी प्राप्ति करानेवाली हे भगवति जये! आप मुझे विजय प्रदान कीजिये। मंगल करनेवाली, मंगलकी आश्रयस्वरूपिणी, मंगलमयी तथा मंगल प्रदान करनेवाली हे मंगलेश्वरि! हे भवे! मेरे मंगलके लिये आप मुझे मंगल प्रदान कीजिये। सबको आश्रय देनेवाली, सब कुछ जाननेवाली, सर्वशक्तिमयी तथा सभी लोगोंके मनोरथ पूर्ण करनेवाली हे देवि! हे भवे! मेरा सम्पूर्ण अभिलषित मुझे प्रदान कीजिये। पुण्यमय विग्रहवाली, पुण्योंकी बीजस्वरूपा, सनातनी, पुण्यको आश्रय देनेवाली, पुण्यवानोंकी शरणस्थली तथा पुण्य प्रदान करनेवाली हे भवे! मुझे पुण्य प्रदान कीजिये। सभी फसलोंकी आलयस्वरूपिणी, सभी प्रकारकी फसलोंसे सम्पन्न, सभी फसलें प्रदान करनेवाली, (समयपर) सभी फसलोंको अपनेमें विलीन कर लेनेवाली तथा सभी फसलोंकी आत्मस्वरूपा हे भवे! मुझे फसलें प्रदान कीजिये। राजाओंकी सर्वस्व, राजाओंसे सम्मान पानेवाली, राजाओंको सुखी करनेवाली तथा भूमि प्रदान करनेवाली हे भूमे! मुझे भूमि प्रदान कीजिये॥ ५२—५७½ ॥

जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर इस महान् पुण्यप्रद स्तोत्रका पाठ करता है, वह करोड़ों जन्मोंतक बलवान् तथा राजाओंका अधीश्वर होता है। इसके पढ़नेसे मनुष्य भूमिदान करनेसे होनेवाला पुण्य प्राप्त कर लेते हैं। हे मुने! इस स्तोत्रका पाठ करनेसे मनुष्य दानमें दी गयी भूमिका हरण करने, अम्बुवाची दिनोंमें भूमि-सम्बन्धी कार्य करने, बिना आज्ञाके दूसरेके कुएँमें कूप-खनन करने, दूसरेकी भूमिका हरण करने, पृथ्वीपर वीर्यत्याग करने तथा भूमिपर दीपक आदि रखनेसे होनेवाले पापसे निश्चितरूपसे मुक्त हो जाता है और साथ ही वह एक सौ अश्वमेधयज्ञ करनेसे होनेवाला पुण्य भी प्राप्त कर लेता है; इसमें कोई सन्देह नहीं है। भूमिदेवीका यह महान् स्तोत्र सभी प्रकारका कल्याण करनेवाला है॥ ५८—६३ ॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे भूमिस्तोत्रवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥



अथ दशमोऽध्यायः

पृथ्वीके प्रति शास्त्र-विपरीत व्यवहार करनेपर नरकोंकी प्राप्तिका वर्णन

नारद उवाच

भूमिदानकृतं पुण्यं पापं तद्धरणेन च।
परभूहरणात्पापं परकूपे खनने तथा॥ १

अम्बुवाच्यां भूखनने वीर्यस्य त्याग एव च।
दीपादिस्थापनात्पापं श्रोतुमिच्छामि यत्नतः॥ २

अन्यद्वा पृथिवीजन्यं पापं यत्पृच्छते परम्।
यदस्ति तत्प्रतीकारं वद वेदविदांवर॥ ३

श्रीनारायण उवाच

वितस्तिमात्रभूमिं च यो ददाति च भारते।
सन्ध्यापूताय विप्राय स याति शिवमन्दिरम्॥ ४

भूमिं च सर्वसस्याढ्यां ब्राह्मणाय ददाति च।
भूमिरेणुप्रमाणाब्दमन्ते विष्णुपदे स्थितिः॥ ५

ग्रामं भूमिं च धान्यं च ब्राह्मणाय ददाति यः।
सर्वपापाद्विनिर्मुक्तौ चोभौ देवीपुरःस्थितौ॥ ६

भूमिदानं च तत्काले यः साधुश्चानुमोदते।
स च प्रयाति वैकुण्ठे मित्रगोत्रसमन्वितः॥ ७

स्वदत्तां परदत्तां वा ब्रह्मवृत्तिं हरेत्तु यः।
स तिष्ठति कालसूत्रे यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥ ८

तत्पुत्रपौत्रप्रभृतिर्भूमिहीनः श्रिया हतः।
पुत्रहीनो दरिद्रश्च घोरं याति च रौरवम्॥ ९

नारदजी बोले— भूमिका दान करनेसे होनेवाले पुण्य तथा उसका हरण करनेसे होनेवाले पाप, दूसरेकी भूमि छीननेसे होनेवाले पाप, दूसरेके द्वारा खोदे गये जलहीन कुएँको बिना उसकी आज्ञा लिये खोदने, अम्बुवाची दिनोंमें भूखनन करने, पृथ्वीपर वीर्य-त्याग करने तथा दीपक रखनेसे जो पाप होता है, उसे मैं यत्नपूर्वक सुनना चाहता हूँ। हे वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! मेरे पूछनेके अतिरिक्त अन्य भी जो पृथ्वीसम्बन्धी पाप हो, उसे तथा उसके निराकरणका उपाय बतलाइये॥ १—३॥

श्रीनारायण बोले— जो मनुष्य भारतवर्षमें वितस्ति (बित्ता)-मात्र भूमि भी किसी सन्ध्योपासनासे पवित्र हुए ब्राह्मणको दान करता है, वह शिवलोकको प्राप्त होता है॥ ४॥

जो मनुष्य किसी ब्राह्मणको सब प्रकारकी फसलोंसे सम्पन्न भूमि प्रदान करता है, वह उस भूमिमें विद्यमान धूलके कणोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक भगवान् विष्णुके लोकमें निवास करता है॥ ५॥

जो व्यक्ति ब्राह्मणको ग्राम, भूमि और धान्यका दान करता है, उसके पुण्यसे दाता और प्रतिगृहीता—दोनों व्यक्ति सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर जगदम्बाके लोकमें स्थान पाते हैं॥ ६॥

जो सज्जन भूमिदानके अवसरपर दाताके इस कर्मका अनुमोदन करता है, वह अपने मित्रों तथा सगोत्री बन्धुओंसहित वैकुण्ठलोकको प्राप्त होता है॥ ७॥

जो मनुष्य किसी ब्राह्मणकी अपने अथवा दूसरेके द्वारा दी गयी आजीविकाको उससे छीनता है, वह सूर्य तथा चन्द्रमाके स्थितिपर्यन्त कालसूत्र-नरकमें रहता है। इस पापके प्रभावसे उस व्यक्तिके पुत्र-पौत्र आदि भूमिसे हीन रहते हैं। वह लक्ष्मीरहित, पुत्रविहीन तथा दरिद्र होकर भीषण रौरवनरकमें पड़ता है॥ ८-९॥

गवां मार्गं विनिष्कृष्य यश्च सस्यं ददाति च।
दिव्यं वर्षशतं चैव कुम्भीपाके च तिष्ठति॥ १०

जो मनुष्य गोचर भूमिको जोतकर उससे उपार्जित धान्य ब्राह्मणको देता है, वह देवताओंके दिव्य सौ वर्षोंतक कुम्भीपाकनरकमें निवास करता है॥ १०॥

गोष्ठं तडागं निष्कृष्य मार्गे सस्यं ददाति यः।
स तिष्ठत्यसिपत्रे च यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥ ११

जो मनुष्य गायोंके रहनेके स्थान, तड़ाग तथा मार्गको जोतकर वहाँसे पैदा किये हुए अन्नका दान करता है, वह चौदह इन्द्रोंकी स्थितिपर्यन्त असिपत्र नामक नरकमें पड़ा रहता है॥ ११॥

पञ्चपिण्डाननुद्धृत्य परकूपे च स्नाति यः।
प्राप्नोति नरकं चैव स्नानं निष्फलमेव च॥ १२

जो मनुष्य किसी दूसरेके कुएँ, तड़ाग आदिमेंसे पाँच मृत्तिका-पिण्डोंको निकाले बिना ही उसमें स्नान करता है, वह नरक प्राप्त करता है और उसका स्नान भी निष्फल होता है॥ १२॥

कामी भूमौ च रहसि वीर्यत्यागं करोति यः।
भूमिरेणुप्रमाणं च वर्षं तिष्ठति रौरवे॥ १३

जो कामासक्त पुरुष एकान्तमें पृथ्वीपर वीर्यका त्याग करता है, वहाँकी जमीनपर जितने धूलकण हैं, उतने वर्षोंतक वह रौरवनरकमें वास करता है॥ १३॥

अम्बुवाच्यां भूकरणं यः करोति च मानवः।
स याति कृमिदंशं च स्थितिस्तत्र चतुर्युगम्॥ १४

जो मनुष्य अम्बुवाचीकालमें भूमि खोदनेका कार्य करता है, वह कृमिदंश नामक नरकमें जाता है और वहाँपर चार युगोंतक उसकी स्थिति रहती है॥ १४॥

परकीये लुप्तकूपे कूपं मूढः करोति यः।
पुष्करिण्यां च लुप्तायां पुष्करिणीं ददाति यः॥ १५
सर्वं फलं परस्यैव तप्तकुण्डं व्रजेच्च सः।
तत्र तिष्ठति सन्तप्तो यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥ १६

जो मूर्ख मनुष्य किसी दूसरेके लुप्त कुएँपर अपना कुआँ तथा लुप्त बावलीपर अपनी बावली बनवाता है, उस कार्यका सारा फल उस दूसरे व्यक्तिको मिल जाता है और वह स्वयं तप्तकुण्ड नामक नरकमें पड़ता है। वहाँपर चौदह इन्द्रोंकी स्थितिपर्यन्त कष्ट भोगते हुए वह पड़ा रहता है॥ १५-१६॥

परकीये तडागे च पङ्कमुद्धृत्य चोन्मृजेत्।
रेणुप्रमाणवर्षं च ब्रह्मलोके वसेन्नरः॥ १७

जो मनुष्य दूसरेके तड़ागमें पड़ी हुई कीचड़को साफ करके स्नान करता है, उस कीचड़में जितने कण होते हैं, उतने वर्षोंतक वह ब्रह्मलोकमें निवास करता है॥ १७॥

पिण्डं पित्रे भूमिभर्तुर्न प्रदाय च मानवः।
श्राद्धं करोति यो मूढो नरकं याति निश्चितम्॥ १८

जो मूर्ख मनुष्य भूमिपतिके पितरको पिण्ड दिये बिना श्राद्ध करता है, वह अवश्य ही नरकगामी होता है॥ १८॥

भूमौ दीपं योऽर्पयति स चान्धः सप्तजन्मसु।
भूमौ शङ्खं च संस्थाप्य कुष्ठं जन्मान्तरे लभेत्॥ १९

जो व्यक्ति भूमिपर दीपक रखता है, वह सात जन्मोंतक अन्धा रहता है और जो भूमिपर शंख रखता है, वह दूसरे जन्ममें कुष्ठरोगसे ग्रसित होता है॥ १९॥

मुक्तां माणिक्यहीरौ च सुवर्णं च मणिं तथा।
पञ्च संस्थापयेद्भूमौ स चान्धः सप्तजन्मसु॥ २०

जो मनुष्य मोती, माणिक्य, हीरा, सुवर्ण तथा मणि—इन पाँच रत्नोंको भूमिपर रखता है, वह सात जन्मोंतक अन्धा रहता है॥ २०॥

शिवलिङ्गं शिवामर्चां यश्चार्पयति भूतले।
शतमन्वन्तरं यावत्कृमिभक्षः स तिष्ठति॥ २१

जो मनुष्य शिवलिंग, भगवती शिवाकी प्रतिमा तथा शालग्रामशिला भूमिपर रखता है, वह सौ मन्वन्तरतक कृमिभक्ष नामक नरकमें वास करता है॥ २१॥

शङ्खं यन्त्रं शिलातोयं पुष्पं च तुलसीदलम्।
यश्चार्पयति भूमौ च स तिष्ठेन्नरके ध्रुवम्॥ २२

जो शंख, यन्त्र, शालग्रामशिलाका जल, पुष्प और तुलसीदलको भूमिपर रखता है; वह निश्चितरूपसे नरकमें वास करता है॥ २२॥

जपमालां पुष्पमालां कर्पूरं रोचनं तथा।
यो मूढश्चार्पयेद्भूमौ स याति नरकं ध्रुवम्॥ २३

जो मन्दबुद्धि मनुष्य जपमाला, पुष्पमाला, कपूर तथा गोरोचनको भूमिपर रखता है, वह निश्चितरूपसे नरकगामी होता है॥ २३॥

भूमौ चन्दनकाष्ठं च रुद्राक्षं कुशमूलकम्।
संस्थाप्य भूमौ नरके वसेन्मन्वन्तरावधि॥ २४

चन्दनकाष्ठ, रुद्राक्ष और कुशकी जड़ जमीनपर रखनेवाला मनुष्य एक मन्वन्तरपर्यन्त नरकमें वास करता है॥ २४॥

पुस्तकं यज्ञसूत्रं च भूमौ संस्थापयेन्नरः।
न भवेद्विप्रयोनौ च तस्य जन्मान्तरे जनिः॥ २५

जो मनुष्य पुस्तक तथा यज्ञोपवीत भूमिपर रखता है, वह अगले जन्ममें विप्रयोनिमें उत्पन्न नहीं होता है॥ २५॥

ब्रह्महत्यासमं पापमिह वै लभते ध्रुवम्।
ग्रन्थियुक्तं यज्ञसूत्रं पूज्यं च सर्ववर्णकैः॥ २६

जो सभी वर्णोंके द्वारा पूज्य ग्रन्थियुक्त यज्ञोपवीतको भूमिपर रखता है, वह निश्चितरूपसे इस लोकमें ब्रह्म-हत्याके समान पापका भागी होता है॥ २६॥

यज्ञं कृत्वा तु यो भूमिं क्षीरेण न हि सिञ्चति।
स याति तप्तभूमिं च सन्तप्तः सप्तजन्मसु॥ २७

जो मनुष्य यज्ञ करके यज्ञभूमिको दूधसे नहीं सींचता है, वह सात जन्मोंतक कष्ट भोगता हुआ तप्तभूमि नामक नरकमें निवास करता है॥ २७॥

भूकम्पे ग्रहणे यो हि करोति खननं भुवः।
जन्मान्तरे महापापो ह्यङ्गहीनो भवेद् ध्रुवम्॥ २८

जो मनुष्य भूकम्प तथा ग्रहणके अवसरपर भूमि खोदता है, वह महापापी जन्मान्तरमें निश्चितरूपसे अंगहीन होता है॥ २८॥

भवनं यत्र सर्वेषां भूमिस्तेन प्रकीर्तिता।
काश्यपी कश्यपस्येयमचला स्थिररूपतः॥ २९

विश्वम्भरा धारणाच्चानन्तानन्तस्वरूपतः।
पृथिवी पृथुकन्यात्वाद्विस्तृतत्वान्महामुने॥ ३०

हे महामुने! इस धरतीपर सभी लोगोंके भवन हैं; इसलिये यह 'भूमि', कश्यपकी पुत्री होनेके कारण 'काश्यपी', स्थिररूपमें रहनेके कारण 'अचला', विश्वको धारण करनेसे 'विश्वम्भरा', अनन्त रूपोंवाली होनेके कारण 'अनन्ता' और पृथुकी कन्या होने अथवा सर्वत्र फैली रहनेके कारण 'पृथिवी' कही गयी है॥ २९-३०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे पृथिव्युपाख्याने नरकफलप्राप्तिवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥



अथैकादशोऽध्यायः

गंगाकी उत्पत्ति एवं उनका माहात्म्य

नारद उवाच

श्रुतं पृथिव्युपाख्यानमतीव सुमनोहरम्।
गङ्गोपाख्यानमधुना वद वेदविदांवर॥ १

भारते भारतीशापात्सा जगाम सुरेश्वरी।
विष्णुस्वरूपा परमा स्वयं विष्णुपदीति च॥ २

कथं कुत्र युगे केन प्रार्थिता प्रेरिता पुरा।
तत्क्रमं श्रोतुमिच्छामि पापघ्नं पुण्यदं शुभम्॥ ३

श्रीनारायण उवाच

राजराजेश्वरः श्रीमान् सगरः सूर्यवंशजः।
तस्य भार्या च वैदर्भी शैव्या च द्वे मनोहरे॥ ४

तत्पत्न्यामेकपुत्रश्च बभूव सुमनोहरः।
असमञ्ज इति ख्यातः शैव्यायां कुलवर्धनः॥ ५

अन्या चाराधयामास शङ्करं पुत्रकामुकी।
बभूव गर्भस्तस्याश्च हरस्य च वरेण ह॥ ६

गते शताब्दे पूर्णे च मांसपिण्डं सुषाव सा।
तद् दृष्ट्वा सा शिवं ध्यात्वा रुरोदोच्चैः पुनः पुनः॥ ७

शम्भुर्ब्राह्मणरूपेण तत्समीपं जगाम ह।
चकार संविभज्यैतत्पिण्डं षष्टिसहस्रधा॥ ८

सर्वे बभूवुः पुत्राश्च महाबलपराक्रमाः।
ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डप्रभामुष्टकलेवराः ॥ ९

कपिलस्य मुनेः शापाद् बभूवुर्भस्मसाच्च ते।
राजा रुरोद तच्छ्रुत्वा जगाम गहने वने॥ १०

तपश्चकारासमञ्जो गङ्गानयनकारणात्।
लक्षवर्षं तपस्तप्त्वा ममार कालयोगतः॥ ११

नारदजी बोले—हे वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! पृथ्वीका यह परम मनोहर उपाख्यान मैं सुन चुका; अब आप गंगाका उपाख्यान कहिये। सुरेश्वरी, विष्णुस्वरूपा और स्वयं विष्णुपदी—इस नामसे विख्यात वे श्रेष्ठ गंगा प्राचीनकालमें सरस्वतीके शापसे भारतवर्षमें किस प्रकार, किस युगमें तथा किसके द्वारा प्रार्थित और प्रेरित होकर गयीं। मैं इस पापनाशक, पुण्यप्रद तथा मंगलकारी प्रसंगको क्रमसे सुनना चाहता हूँ॥ १—३॥

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] राजराजेश्वर श्रीमान् सगर सूर्यवंशी राजा हो चुके हैं। वैदर्भी तथा शैव्या नामोंवाली उनकी दो मनोहर भार्याएँ थीं। उनकी शैव्या नामक पत्नीसे अत्यन्त सुन्दर तथा कुलकी वृद्धि करनेवाला एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो असमंज—इस नामसे विख्यात हुआ॥ ४-५॥

उनकी दूसरी पत्नी वैदर्भीने पुत्रकी कामनासे भगवान् शंकरकी आराधना की और शिवजीके वरदानसे उसने गर्भ धारण किया॥ ६॥

पूरे सौ वर्ष व्यतीत हो जानेपर उसने एक मांस-पिण्डको जन्म दिया। उसे देखकर तथा शिवका ध्यान करके वह बार-बार ऊँचे स्वरमें विलाप करने लगी॥ ७॥

तब भगवान् शंकर ब्राह्मणका रूप धारणकर उसके पास गये और उन्होंने उस मांसपिण्डको बराबर-बराबर साठ हजार भागोंमें विभक्त कर दिया॥ ८॥

वे सभी टुकड़े पुत्ररूपमें हो गये। वे महान् बल तथा पराक्रमसे सम्पन्न थे। उनके शरीरकी कान्ति ग्रीष्मऋतुके मध्याह्नकालीन सूर्यकी प्रभाको भी तिरस्कृत कर देनेवाली थी॥ ९॥

कपिलमुनिके शापसे वे सभी जलकर भस्म हो गये। यह समाचार सुनकर राजा सगर बहुत रोये और वे घोर जंगलमें चले गये॥ १०॥

तदनन्तर उनके पुत्र असमंज गंगाको लानेके निमित्त तपस्या करने लगे। इस प्रकार एक लाख वर्षतक तप करनेके पश्चात् वे कालयोगसे मर गये॥ ११॥

अंशुमांस्तस्य तनयो गङ्गानयनकारणात्।
तपः कृत्वा लक्षवर्षं ममार कालयोगतः॥ १२

भगीरथस्तस्य पुत्रो महाभागवतः सुधीः।
वैष्णवो विष्णुभक्तश्च गुणवानजरामरः॥ १३

तपः कृत्वा लक्षवर्षं गङ्गानयनकारणात्।
ददर्श कृष्णं ग्रीष्मस्थसूर्यकोटिसमप्रभम्॥ १४

द्विभुजं मुरलीहस्तं किशोरं गोपवेषिणम्।
गोपालसुन्दरीरूपं भक्तानुग्रहरूपिणम्॥ १५

स्वेच्छामयं परं ब्रह्म परिपूर्णतमं प्रभुम्।
ब्रह्मविष्णुशिवाद्यैश्च स्तुतं मुनिगणैर्नुतम्॥ १६

निर्लिप्तं साक्षिरूपं च निर्गुणं प्रकृतेः परम्।
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकारणम्॥ १७

वह्निशुद्धांशुकाधानं रत्नभूषणभूषितम्।
तुष्टाव दृष्ट्वा नृपतिः प्रणम्य च पुनः पुनः॥ १८

लीलया च वरं प्राप वाञ्छितं वंशतारणम्।
कृत्वा च स्तवनं दिव्यं पुलकाङ्कितविग्रहः॥ १९

श्रीभगवानुवाच

भारतं भारतीशापाद् गच्छ शीघ्रं सुरेश्वरि।
सगरस्य सुतान्सर्वान्पूतान्कुरु ममाज्ञया॥ २०

त्वत्स्पर्शवायुना पूता यास्यन्ति मम मन्दिरम्।
बिभ्रतो मम मूर्तीश्च दिव्यस्यन्दनगामिनः॥ २१

मत्पार्षदा भविष्यन्ति सर्वकालं निरामयाः।
समुच्छिद्य कर्मभोगान् कृताञ्जन्मनि जन्मनि॥ २२

उन असमंजके पुत्र अंशुमान् भी गंगाको पृथ्वीपर ले आनेके उद्देश्यसे एक लाख वर्षतक तप करनेके उपरान्त कालयोगसे मृत्युको प्राप्त हो गये॥ १२॥

अंशुमान्‌के पुत्र भगीरथ थे। वे भगवान्‌के परम भक्त, विद्वान्, विष्णुके भक्त, गुणवान्, अजर-अमर तथा वैष्णव थे। उन्होंने गंगाको ले आनेके लिये एक लाख वर्षतक तप करके भगवान् श्रीकृष्णका साक्षात् दर्शन किया। वे ग्रीष्मकालीन करोड़ों सूर्योंके समान प्रभासे सम्पन्न थे, उनकी दो भुजाएँ थीं, वे हाथमें मुरली धारण किये हुए थे, उनकी किशोर अवस्था थी, वे गोपवेषमें थे और कभी गोपालसुन्दरीके रूपमें हो जाते थे, भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये ही उन्होंने यह रूप धारण किया था, उस समय ब्रह्मा-विष्णु-महेश आदि देवता अपनी इच्छाके अधीन उन परिपूर्णतम परब्रह्मस्वरूप प्रभु श्रीकृष्णका स्तवन कर रहे थे, मुनियोंने उनके समक्ष अपने मस्तक झुका रखे थे, सदा निर्लिप्त, सबके साक्षी, निर्गुण, प्रकृतिसे परे तथा भक्तोंपर कृपा करनेवाले उन श्रीकृष्णका मुखमण्डल मन्द मुसकानयुक्त तथा प्रसन्नतासे भरा हुआ था; वे अग्निके समान विशुद्ध वस्त्र धारण किये हुए थे और रत्नमय आभूषणोंसे सुशोभित हो रहे थे—ऐसे स्वरूपवाले भगवान् कृष्णको देखकर राजा भगीरथ बार-बार प्रणामकर उनकी स्तुति करने लगे। उन्होंने लीलापूर्वक श्रीकृष्णसे अपने पूर्वजोंको तारनेवाला अभीष्ट वर प्राप्त कर लिया। उस समय भगवान्‌की स्तुति करनेसे उनका रोम-रोम पुलकित हो गया था॥ १३—१९॥

श्रीभगवान् बोले—हे सुरेश्वरि! सरस्वतीके शापके प्रभावसे आप शीघ्र ही भारतवर्षमें जाइये और मेरी आज्ञासे राजा सगरके सभी पुत्रोंको पवित्र कीजिये॥ २०॥

आपसे स्पर्शित वायुका संयोग पाकर वे सब पवित्र हो जायँगे और मेरा स्वरूप धारण करके दिव्य रथपर आरूढ़ होकर मेरे लोकको प्राप्त होंगे। वे जन्म-जन्मान्तरमें किये गये कर्मोंके फलोंका समूल उच्छेद करके सर्वथा निर्विकार भावसे युक्त होकर मेरे पार्षदके रूपमें प्रतिष्ठित होंगे॥ २१-२२॥

कोटिजन्मार्जितं पापं भारते यत्कृतं नृभिः।
गङ्गाया वातस्पर्शेन नश्यतीति श्रुतौ श्रुतम्॥ २३

स्पर्शनाद्दर्शनाद्देव्याः पुण्यं दशगुणं ततः।
मौसलस्नानमात्रेण सामान्यदिवसे नृणाम्॥ २४

शतकोटिजन्मपापं नश्यतीति श्रुतौ श्रुतम्।
यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च॥ २५

जन्मसंख्यार्जितान्येव कामतोऽपि कृतानि च।
तानि सर्वाणि नश्यन्ति मौसलस्नानतो नृणाम्॥ २६

पुण्याहस्नानतः पुण्यं वेदा नैव वदन्ति च।
किञ्चिद्वदन्ति ते विप्र फलमेव यथागमम्॥ २७

ब्रह्मविष्णुशिवाद्याश्च सर्वं नैव वदन्ति च।
सामान्यदिवसस्नानसङ्कल्पं शृणु सुन्दरि॥ २८

पुण्यं दशगुणं चैव मौसलस्नानतः परम्।
ततस्त्रिंशद्गुणं पुण्यं रविसंक्रमणे दिने॥ २९

अमायां चापि तत्तुल्यं द्विगुणं दक्षिणायने।
ततो दशगुणं पुण्यं नराणामुत्तरायणे॥ ३०

चातुर्मास्यां पौर्णमास्यामनन्तं पुण्यमेव च।
अक्षयायां च तत्तुल्यं चैतद्वेदे निरूपितम्॥ ३१

असंख्यपुण्यफलदमेतेषु स्नानदानकम्।
सामान्यदिवसस्नानाद्दानाच्छतगुणं फलम्॥ ३२

श्रुतिमें ऐसा कहा गया है कि भारतवर्षमें मनुष्योंके द्वारा करोड़ों जन्मोंमें किये गये दुष्कर्मके परिणामस्वरूप जो भी पाप संचित रहता है, वह गंगाकी वायुके स्पर्शमात्रसे नष्ट हो जाता है॥ २३॥

गंगाजीके स्पर्श और दर्शनकी अपेक्षा दस गुना पुण्य गंगामें मौसल* स्नान करनेसे प्राप्त होता है। सामान्य दिनोंमें भी स्नान करनेसे मनुष्योंके सैकड़ों जन्मोंके पाप विनष्ट हो जाते हैं—ऐसा श्रुति कहती है। इच्छापूर्वक इस जन्ममें किये गये तथा अनेक पूर्वजन्मोंके संचित जो कुछ भी मनुष्योंके ब्रह्महत्या आदि पाप हैं, वे सब मौसलस्नान करनेमात्रसे नष्ट हो जाते हैं॥ २४—२६॥

हे विप्र [नारद]! पुण्यप्रद दिनोंमें गंगास्नानसे होनेवाले पुण्यका वर्णन तो वेद भी नहीं कर सकते। आगमशास्त्रके जो विद्वान् हैं, वे आगमोंमें प्रतिपादित कुछ-कुछ फल बताते हैं। ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवता भी पुण्यप्रद दिनोंके स्नानका सम्पूर्ण फल नहीं बता सकते। हे सुन्दरि! अब सामान्य दिवसोंमें संकल्पपूर्वक किये गये स्नानका फल सुनो। साधारण दिवसके संकल्पपूर्वक स्नानका पुण्य मौसलस्नानसे दस गुना अधिक होता है। उससे भी तीस गुना पुण्य सूर्य-संक्रान्तिके दिन स्नान करनेसे होता है॥ २७—२९॥

अमावस्यातिथिको भी स्नान करनेसे उसी सूर्यसंक्रान्तिके स्नानके समान पुण्य होता है। किंतु दक्षिणायनमें गंगा-स्नान करनेसे उसका दूना और उत्तरायणमें गंगा-स्नान करनेसे मनुष्योंको उससे दस गुना पुण्य प्राप्त होता है। चातुर्मास तथा पूर्णिमाके अवसरपर स्नान करनेसे अनन्त पुण्य प्राप्त होता है, अक्षय तृतीयाके दिन स्नान करनेसे भी उसीके समान पुण्य होता है—ऐसा वेदमें कहा गया है॥ ३०-३१॥

इन विशेष पर्वोंपर किये गये स्नान तथा दान असंख्य पुण्य-फल प्रदान करते हैं। इन पर्वोंपर किये गये स्नान-दानका फल सामान्य दिवसोंमें किये गये स्नान तथा दानकी अपेक्षा सौ गुना अधिक होता है॥ ३२॥

* गंगाको प्रणाम करके प्रवेश करे और निश्चेष्ट होकर अर्थात् बिना हाथ-पैर हिलाये शान्तभावसे स्नान कर ले। इसे मौसलस्नान कहते हैं।

मन्वन्तराद्यायां तिथौ युगाद्यायां तथैव च।
माघस्य सितसप्तम्यां भीष्माष्टम्यां तथैव च॥ ३३

अथाप्यशोकाष्टम्यां च नवम्यां च तथा हरेः।
ततोऽपि द्विगुणं पुण्यं नन्दायां तव दुर्लभम्॥ ३४

दशहरादशम्यां तु युगाद्यादिसमं फलम्।
नन्दासमं च वारुण्यां महत्पूर्वे चतुर्गुणम्॥ ३५

ततश्चतुर्गुणं पुण्यं द्विमहत्पूर्वके सति।
पुण्यं कोटिगुणं चैव सामान्यस्नानतोऽपि यत्॥ ३६

चन्द्रोपरागसमये सूर्ये दशगुणं ततः।
पुण्यमर्धोदये काले ततः शतगुणं फलम्॥ ३७

इत्येवमुक्त्वा देवेशो विरराम तयोः पुरः।
तमुवाच ततो गङ्गा भक्तिनम्रात्मकन्धरा॥ ३८

गङ्गोवाच

यामि चेद्भारतं नाथ भारतीशापतः पुरा।
तवाज्ञया च राजेन्द्र तपसा चैव साम्प्रतम्॥ ३९

दास्यन्ति पापिनो मह्यं पापानि यानि कानि च।
तानि मे केन नश्यन्ति तमुपायं वद प्रभो॥ ४०

कतिकालं परिमितं स्थितिर्मे तत्र भारते।
कदा यास्यामि देवेश तद्विष्णोः परमं पदम्॥ ४१

ममान्यद्वाञ्छितं यद्यत्सर्वं जानासि सर्ववित्।
सर्वान्तरात्मन् सर्वज्ञ तदुपायं वद प्रभो॥ ४२

श्रीभगवानुवाच

जानामि वाञ्छितं गङ्गे तव सर्वं सुरेश्वरि।
पतिस्ते द्रवरूपाया लवणोदो भविष्यति॥ ४३

मन्वन्तरादि[1] तथा युगादि[2] तिथियों, माघ शुक्ल सप्तमी, भीष्माष्टमी, अशोकाष्टमी, रामनवमी तथा नन्दा तिथिको दुर्लभ गंगा-स्नान करनेपर उससे भी दूना फल मिलता है॥ ३३-३४॥

गंगादशहराकी दशमीतिथिको स्नान करनेसे युगादि तिथियोंके तुल्य और वारुणीपर्वपर स्नान करनेसे नन्दातिथिके तुल्य फल प्राप्त होता है। महावारुणी आदि पर्वोंपर स्नान करनेसे उससे चार गुना पुण्य प्राप्त होता है। महामहावारुणी-पर्वपर स्नान करनेसे उससे भी चार गुना और सामान्य स्नानकी अपेक्षा करोड़ गुना पुण्य प्राप्त होता है। चन्द्रग्रहण तथा सूर्यग्रहणके अवसरपर स्नान करनेसे उससे भी दस गुना पुण्य मिलता है और अर्धोदयकालमें स्नान करनेसे उससे भी सौ गुना फल प्राप्त होता है॥ ३५—३७॥

गंगा और भगीरथके समक्ष ऐसा कहकर देवेश्वर श्रीहरि चुप हो गये। तब गंगा भक्तिभावसे अपना मस्तक झुकाकर कहने लगीं॥ ३८॥

गंगा बोलीं—हे नाथ! हे राजेन्द्र! भारतीके पूर्व शाप और साथ ही आपकी आज्ञा तथा भगीरथकी तपस्याके कारण मैं इस समय भारतवर्षमें जा रही हूँ। किंतु हे प्रभो! वहाँ जानेपर पापीलोग मुझमें स्नान करके अपने जो कुछ पाप मुझे दे देंगे, वे मेरे पाप किस प्रकार नष्ट होंगे; इसका उपाय मुझे बताइये॥ ३९-४०॥

हे देवेश! मुझे भारतवर्षमें कितने समयतक रहना होगा और पुनः भगवान् विष्णुके परम धामको मैं कब प्राप्त होऊँगी?॥ ४१॥

हे सर्ववित्! हे सर्वान्तरात्मन्! हे सर्वज्ञ! मेरा अन्य जो कुछ भी अभिलषित है, वह सब आप जानते ही हैं। अतः हे प्रभो! मेरे उन अभीष्टोंके पूर्ण होनेका उपाय बतला दीजिये॥ ४२॥

श्रीभगवान् बोले—हे गंगे! हे सुरेश्वरि! मैं तुम्हारी समस्त इच्छाओंको जानता हूँ। वहाँ भारतवर्षमें लवणसमुद्र नदीस्वरूपिणी तुम्हारे पति होंगे। वे मेरे ही अंशस्वरूप

१-आश्विन शुक्ल नवमी, कार्तिक शुक्ल द्वादशी, चैत्र शुक्ल तृतीया, भाद्र शुक्ल तृतीया, फाल्गुन अमावास्या, पौष शुक्ल एकादशी, आषाढ़ शुक्ल दशमी, माघ शुक्ल सप्तमी, श्रावण कृष्ण अष्टमी, आषाढ़ पूर्णिमा, कार्तिक पूर्णिमा, फाल्गुन पूर्णिमा, चैत्र पूर्णिमा और ज्येष्ठ पूर्णिमा—ये स्वायम्भुव आदि मन्वन्तरोंकी आरम्भिक तिथियाँ हैं। (मत्स्यपुराण १७। ६—८)

२-सत्ययुग—वैशाख शुक्ल तृतीया, त्रेतायुग—कार्तिक शुक्ल नवमी, द्वापर—माघ पूर्णिमा एवं कलियुग—भाद्र शुक्ल त्रयोदशी—ये सत्ययुग आदि चारों युगोंकी आरम्भिक तिथियाँ हैं (मत्स्यपुराण १७। ४)।

स ममांशस्वरूपश्च त्वं च लक्ष्मीस्वरूपिणी।
विदग्धाया विदग्धेन सङ्गमो गुणवान् भुवि॥ ४४

यावत्यः सन्ति नद्यश्च भारत्याद्याश्च भारते।
सौभाग्या त्वं च तास्वेव लवणोदस्य सौरते॥ ४५

अद्यप्रभृति देवेशि कलेः पञ्चसहस्रकम्।
वर्षं स्थितिस्ते भारत्याः शापेन भारते भुवि॥ ४६

नित्यं त्वमब्धिना सार्धं करिष्यसि रहो रतिम्।
त्वमेव रसिका देवि रसिकेन्द्रेण संयुता॥ ४७

त्वां स्तोष्यन्ति च स्तोत्रेण भगीरथकृतेन च।
भारतस्था जनाः सर्वे पूजयिष्यन्ति भक्तितः॥ ४८

कण्वशाखोक्तध्यानेन ध्यात्वा त्वां पूजयिष्यति।
यः स्तौति प्रणमेन्नित्यं सोऽश्वमेधफलं लभेत्॥ ४९

गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति॥ ५०

सहस्रपापिनां स्नानाद्यत्पापं ते भविष्यति।
प्रकृतेर्भक्तसंस्पर्शादेव तद्धि विनङ्क्ष्यति॥ ५१

पापिनां तु सहस्राणां शवस्पर्शेन यत्त्वयि।
तन्मन्त्रोपासकस्नानात्तदघं च विनङ्क्ष्यति॥ ५२

तत्रैव त्वमधिष्ठानं करिष्यस्यघमोचनम्।
सार्धं सरिद्भिः श्रेष्ठाभिः सरस्वत्यादिभिः शुभे॥ ५३

तत्तु तीर्थं भवेत्सद्यो यत्र त्वद्गुणकीर्तनम्।
त्वद्रेणुस्पर्शमात्रेण पूतो भवति पातकी॥ ५४
रेणुप्रमाणवर्षं च देवीलोके वसेद् ध्रुवम्।

हैं और तुम साक्षात् लक्ष्मीस्वरूपिणी हो। इस प्रकार पृथ्वीपर एक गुणवान् पुरुषके साथ एक गुणवती स्त्रीका मेल बड़ा ही उत्तम होगा॥ ४३-४४॥

भारतवर्षमें सरस्वती आदि जो भी नदियाँ हैं, उन सबमें क्रीडाकी दृष्टिसे लवणसमुद्रके लिये तुम्ही सर्वाधिक सौभाग्यवती होओगी॥ ४५॥

हे देवेशि! इस समयसे कलियुगके पाँच हजार वर्षोंतक तुम्हें सरस्वतीके शापसे भारतभूमिपर रहना होगा॥ ४६॥

हे देवि! रसिकास्वरूपिणी तुम रसिकराज लवणसमुद्रसे संयुक्त होकर उनके साथ एकान्तमें सदा विहार करोगी॥ ४७॥

भारतवर्षमें रहनेवाले सभी लोग भक्तिपूर्वक तुम्हारी पूजा करेंगे और भगीरथके द्वारा रचित स्तोत्रसे तुम्हारी स्तुति करेंगे॥ ४८॥

जो कण्वशाखामें बतायी गयी ध्यान-विधिसे तुम्हारा ध्यान करके तुम्हारी पूजा तथा स्तुति और तुम्हें नित्य प्रणाम करेगा, उसे अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त होगा॥ ४९॥

जो मनुष्य सौ योजन दूरसे भी 'गंगा, गंगा'— इस प्रकार उच्चारण करता है, वह सारे पापोंसे मुक्त हो जाता है तथा विष्णुलोकको प्राप्त करता है॥ ५०॥

हजारों पापी व्यक्तियोंके स्नानसे जो पाप तुम्हें प्राप्त होगा, वह मूलप्रकृति देवी भुवनेश्वरीके भक्तोंके स्पर्शमात्रसे विनष्ट हो जायगा॥ ५१॥

हजारों पापी प्राणियोंके शवके स्पर्शसे जो पाप तुम्हें लगेगा, वह भगवतीके मन्त्रोंकी उपासना करनेवाले पुण्यात्मा भक्तोंके स्नानसे नष्ट हो जायगा॥ ५२॥

हे शुभे! तुम सरस्वती आदि श्रेष्ठ नदियोंके साथ भारतवर्षमें निवास करोगी और वहाँ प्राणियोंको पापसे मुक्त करती रहोगी॥ ५३॥

जहाँ तुम्हारे गुणोंका कीर्तन होगा, वह स्थान तत्काल तीर्थ बन जायगा। तुम्हारे रज:कणका स्पर्शमात्र हो जानेसे पापी भी पवित्र हो जायगा और उन रज:कणोंकी जितनी संख्या होगी, उतने वर्षोंतक वह निश्चितरूपसे देवीलोकमें निवास करेगा॥ ५४½॥

ज्ञानेन त्वयि ये भक्त्या मन्नामस्मृतिपूर्वकम्॥ ५५

समुत्सृजन्ति प्राणांश्च ते गच्छन्ति हरेः पदम्।
पार्षदप्रवरास्ते च भविष्यन्ति हरेश्चिरम्॥ ५६

लयं प्राकृतिकं ते च द्रक्ष्यन्ति चाप्यसंख्यकम्।
मृतस्य बहुपुण्येन तच्छवं त्वयि विन्यसेत्॥ ५७

प्रयाति स च वैकुण्ठं यावदह्नः स्थितिस्त्वयि।
कायव्यूहं ततः कृत्वा भोजयित्वा स्वकर्मकम्॥ ५८

तस्मै ददामि सारूप्यं करोमि तं च पार्षदम्।
अज्ञानी त्वज्जलस्पर्शाद्यदि प्राणान्समुत्सृजेत्॥ ५९

तस्मै ददामि सालोक्यं करोमि तं च पार्षदम्।
अन्यत्र वा त्यजेत्प्राणांस्त्वन्नामस्मृतिपूर्वकम्॥ ६०

तस्मै ददामि सालोक्यं यावद्वै ब्रह्मणो वयः।
अन्यत्र वा त्यजेत्प्राणांस्त्वन्नामस्मृतिपूर्वकम्॥ ६१

तस्मै ददामि सारूप्यमसंख्यं प्राकृतं लयम्।
रत्नेन्द्रसारनिर्माणयानेन सह पार्षदैः॥ ६२

सद्यः प्रयाति गोलोकं मम तुल्यो भवेद् ध्रुवम्।
तीर्थेऽप्यतीर्थे मरणे विशेषो नास्ति कश्चन॥ ६३

मन्मन्त्रोपासकानां तु नित्यं नैवेद्यभोजिनाम्।
पूतं कर्तुं सशक्तो हि लीलया भुवनत्रयम्॥ ६४

रत्नेन्द्रसारयानेन गोलोकं सम्प्रयान्ति च।
मद्भक्ता बान्धवा येषां तेऽपि पश्वादयोऽपि हि॥ ६५

प्रयान्ति रत्नयानेन गोलोकं चातिदुर्लभम्।
यत्र यत्र स्मृतास्ते च ज्ञानेन ज्ञानिनः सति॥ ६६
जीवन्मुक्ताश्च ते पूता मद्भक्तेः संविधानतः।

जो मनुष्य ज्ञान तथा भक्तिसे युक्त होकर मेरे नामका स्मरण करते हुए तुम्हारे जलमें अपने प्राणोंका त्याग करेंगे, वे श्रीहरिके लोकमें जायँगे और वहाँपर दीर्घ-कालतक उनके श्रेष्ठ पार्षदोंके रूपमें प्रतिष्ठित होंगे और वे असंख्य प्राकृतिक प्रलय देखेंगे॥ ५५-५६½ ॥

महान् पुण्यसे किसी मृत प्राणीका शव तुम्हारे जलमें आ सकता है। जितने दिनोंतक उसकी स्थिति तुम्हारेमें रहती है, उतने समयतक वह वैकुण्ठमें वास करता है। तदनन्तर जब वह अनेक शरीर धारण करके अपने कर्मोंका फल भोग चुकता है, तब मैं उसे सारूप्य मुक्ति दे देता हूँ और उसे अपना पार्षद बना लेता हूँ॥ ५७-५८½ ॥

यदि कोई अज्ञानी मनुष्य भी तुम्हारे जलका स्पर्श करके प्राणोंका त्याग करता है, तो मैं उसे सालोक्य मुक्ति प्रदान कर देता हूँ और उसे अपना पार्षद बना लेता हूँ। अथवा तुम्हारे नामका स्मरण करके कोई व्यक्ति अन्यत्र कहीं भी यदि प्राणत्याग करता है, तो मैं उसे सालोक्य मुक्ति प्रदान करता हूँ और वह ब्रह्माकी आयुपर्यन्त मेरे लोकमें निवास करता है॥ ५९-६०½ ॥

इसी प्रकार यदि कोई मनुष्य तुम्हारे नामका स्मरण करके अन्यत्र किसी भी स्थानपर प्राणत्याग करता है, तो मैं उसे सारूप्य मुक्ति प्रदान करता हूँ और वह असंख्य प्राकृतिक प्रलय देखता है। तदनन्तर बहुमूल्य रत्नोंसे निर्मित विमानमें बैठकर वह मेरे पार्षदोंके साथ गोलोकमें जा पहुँचता है और निश्चय ही मेरे तुल्य हो जाता है॥ ६१-६२½ ॥

प्रतिदिन मेरे मन्त्रकी उपासना तथा मेरा नैवेद्य ग्रहण करनेवाले भक्तोंके लिये तीर्थ अथवा अतीर्थमें मृत्युको प्राप्त होनेमें कुछ भी अन्तर नहीं है। मेरा ऐसा भक्त तीनों लोकोंको सहजतापूर्वक पवित्र करनेमें समर्थ है। अन्तमें मेरे वे भक्त बहुमूल्य रत्नोंसे निर्मित विमानपर आरूढ़ होकर गोलोक जाते हैं। साथ ही, मेरे भक्त जिनके बान्धव हैं; वे तथा उनके पशु आदि भी रत्ननिर्मित विमानसे अत्यन्त दुर्लभ गोलोकमें चले जाते हैं। हे सती! जो ज्ञानीजन चाहे जहाँ भी ज्ञानपूर्वक मेरा स्मरण करते हैं, वे मेरी भक्तिके प्रभावसे जीवन्मुक्त और पवित्र हो जाते हैं॥ ६३—६६½ ॥

इत्युक्त्वा श्रीहरिस्तांश्च प्रत्युवाच भगीरथम्॥ ६७

स्तुहि गङ्गामिमां भक्त्या पूजां च कुरु साम्प्रतम्।
भगीरथस्तां तुष्टाव पूजयामास भक्तितः॥ ६८

कौथुमोक्तेन ध्यानेन स्तोत्रेणापि पुनः पुनः।
प्रणनाम च श्रीकृष्णं परमात्मानमीश्वरम्॥ ६९

भगीरथश्च गङ्गा च सोऽन्तर्धानं चकार ह।

नारद उवाच

केन ध्यानेन स्तोत्रेण केन पूजाक्रमेण च॥ ७०

पूजां चकार नृपतिर्वद वेदविदांवर।

श्रीनारायण उवाच

स्नात्वा नित्यक्रियां कृत्वा धृत्वा धौते च वाससी॥ ७१

सम्पूज्य देवषट्कं च संयतो भक्तिपूर्वकम्।
गणेशं च दिनेशं च वह्निं विष्णुं शिवं शिवाम्॥ ७२

सम्पूज्य देवषट्कं च सोऽधिकारी च पूजने।
गणेशं विघ्ननाशाय आरोग्याय दिवाकरम्॥ ७३

वह्निं शौचाय विष्णुं च लक्ष्म्यर्थं पूजयेन्नरः।
शिवं ज्ञानाय ज्ञानेशं शिवां च मुक्तिसिद्धये॥ ७४

सम्पूज्यैतांल्लभेत्प्राज्ञो विपरीतमतोऽन्यथा।
दध्यावनेन ध्यानेन तद्ध्यानं शृणु नारद॥ ७५

[हे नारद!] गंगासे ऐसा कहकर भगवान् श्रीहरिने उन भगीरथसे कहा—अब आप भक्तिपूर्वक इन गंगाकी स्तुति तथा पूजा कीजिये॥ ६७½ ॥

तदनन्तर भगीरथने कौथुमशाखामें बताये गये ध्यान तथा स्तोत्रके द्वारा भक्तिपूर्वक उन गंगाकी बार-बार स्तुति तथा पूजा की। इसके बाद भगीरथ तथा गंगाने परमेश्वर श्रीकृष्णको प्रणाम किया तथा वे प्रभु अन्तर्धान हो गये॥ ६८-६९½ ॥

नारदजी बोले—हे वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! राजा भगीरथने किस ध्यान, स्तोत्र तथा पूजाविधिसे गंगाका पूजन किया, यह मुझे बतलाइये॥ ७०½ ॥

श्रीनारायण बोले—राजा भगीरथने नित्य-क्रिया तथा स्नान करके दो स्वच्छ वस्त्र धारणकर इन्द्रियोंको नियन्त्रित करके भक्तिपूर्वक गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव और भगवती शिवा—इन छः देवताओंकी विधिवत् पूजा की। इन छः देवताओंकी सम्यक् पूजा करके वे गंगापूजनके अधिकारी हुए॥ ७१-७२½ ॥

मनुष्यको चाहिये कि विघ्न दूर करनेके लिये गणेशकी, आरोग्यके लिये सूर्यकी, पवित्रताके लिये अग्निकी, लक्ष्मी-प्राप्तिके लिये विष्णुकी, ज्ञानके लिये ज्ञानेश्वर शिवकी तथा मुक्ति प्राप्त करनेके लिये भगवती शिवाकी पूजा करे। इन देवताओंकी पूजा कर लेनेके बाद ही विद्वान् पुरुष अन्य पूजामें सफलता प्राप्त कर सकता है, अन्यथा इसके विपरीत परिणाम होता है। हे नारद! जिस ध्यानके द्वारा भगीरथने गंगाका ध्यान किया था, उस ध्यानको सुनिये॥ ७३—७५ ॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे गङ्गोपाख्यानवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः॥ ११॥



अथ द्वादशोऽध्यायः

गंगाके ध्यान एवं स्तवनका वर्णन, गोलोकमें श्रीराधा-कृष्णके अंशसे गंगाके प्रादुर्भावकी कथा

श्रीनारायण उवाच

ध्यानं च कण्वशाखोक्तं सर्वपापप्रणाशनम्।
श्वेतपङ्कजवर्णाभां गङ्गां पापप्रणाशिनीम्॥ १
कृष्णविग्रहसम्भूतां कृष्णतुल्यां परां सतीम्।
वह्निशुद्धांशुकाधानां रत्नभूषणभूषिताम्॥ २

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] कण्वशाखामें कहा गया यह देवी-ध्यान सभी पापोंका नाश करनेवाला है। गंगाका वर्ण श्वेतकमलके समान स्वच्छ है, ये समस्त पापोंका नाश करनेवाली हैं, भगवान् श्रीकृष्णके विग्रहसे आविर्भूत हैं, परम साध्वी

शरत्पूर्णेन्दुशतकमृष्टशोभाकरां पराम्।
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम्॥ ३

नारायणप्रियां शान्तां तत्सौभाग्यसमन्विताम्।
बिभ्रतीं कबरीभारं मालतीमाल्यसंयुतम्॥ ४

सिन्दूरबिन्दुललितं सार्धं चन्दनबिन्दुभिः।
कस्तूरीपत्रकं गण्डे नानाचित्रसमन्वितम्॥ ५

पक्वबिम्बविनिन्द्याच्छचार्वोष्ठपुटमुत्तमम्।
मुक्तापंक्तिप्रभामुष्टदन्तपंक्तिमनोरमम्॥ ६

सुचारुवक्त्रनयनं सकटाक्षं मनोहरम्।
कठिनं श्रीफलाकारं स्तनयुग्मं च बिभ्रतीम्॥ ७

बृहच्छ्रोणिं सुकठिनां रम्भास्तम्भविनिन्दिताम्।
स्थलपद्मप्रभामुष्टपादपद्मयुगं वरम्॥ ८

रत्नपादुकसंयुक्तं कुङ्कुमाक्तं सयावकम्।
देवेन्द्रमौलिमन्दारमकरन्दकणारुणम्॥ ९

सुरसिद्धमुनीन्द्रैश्च दत्तार्घसंयुतं सदा।
तपस्विमौलिनिकरभ्रमरश्रेणिसंयुतम्॥ १०

मुक्तिप्रदं मुमुक्षूणां कामिनां सर्वभोगदम्।
वरां वरेण्यां वरदां भक्तानुग्रहकारिणीम्॥ ११

श्रीविष्णोः पददात्रीं च भजे विष्णुपदीं सतीम्।
इत्यनेनैव ध्यानेन ध्यात्वा त्रिपथगां शुभाम्॥ १२

गंगा उन्हीं श्रीकृष्णके समान हैं, इन्होंने अग्निके समान पवित्र वस्त्र धारण कर रखा है, ये रत्नमय भूषणोंसे विभूषित हैं, ये श्रेष्ठ गंगा शरत्कालीन पूर्णिमाके सैकड़ों चन्द्रोंकी शोभाको तिरस्कृत करनेवाली हैं। मन्द मुसकानयुक्त प्रसन्नतासे इनका मुखमण्डल शोभा पा रहा है, इनका तारुण्य सदा स्थिर रहनेवाला है, ये भगवान् नारायणकी प्रिया हैं, शान्त स्वभाववाली हैं और उनके सौभाग्यसे समन्वित हैं, ये मालतीके पुष्पोंकी मालासे विभूषित चोटी धारण की हुई हैं, इनका ललाट चन्दनकी बिन्दियोंके साथ सिन्दूरकी बिन्दियोंसे सुशोभित है। इनके गण्डस्थलपर कस्तूरी आदि सुगन्धित पदार्थोंसे नाना प्रकारकी चित्रकारियाँ की हुई हैं, इनके परम मनोहर दोनों होठ पके हुए बिम्बाफलकी लालिमाको तिरस्कृत कर रहे हैं, इनकी मनोहर दन्तपंक्ति मोतियोंकी पंक्ति-प्रभाको भी तिरस्कृत कर रही है, इनके सुन्दर मुखपर कटाक्षपूर्ण चितवनसे युक्त मनोहर नेत्र शोभा पा रहे हैं, इन्होंने कठोर तथा श्रीफलके आकारवाले स्तनयुगल धारण कर रखे हैं, ये केलेके खम्भोंको भी लज्जित कर देनेवाले विशाल तथा कठोर जघनप्रदेशसे सम्पन्न हैं, इनके मनोहर दोनों चरणारविन्द स्थलपद्मकी प्रभाको भी तिरस्कृत कर रहे हैं, रत्नमयी पादुकाओंसे युक्त इन चरणोंमें कुमकुम तथा महावर शोभित हो रहे हैं, देवराज इन्द्रके मुकुटमें लगे हुए मन्दार पुष्पोंके रजकणसे ये चरण लाल हो गये हैं, देवता-सिद्ध-मुनीश्वरगणोंके द्वारा प्रदत्त अर्घसे इनके चरण सदा सिक्त रहते हैं, ये चरणकमल तपस्वियोंके जटा-समूहरूपी भ्रमरश्रेणियोंसे सुशोभित हैं, ये चरण मुक्तिकी इच्छा रखनेवालोंको मोक्ष तथा सकाम पुरुषोंको सभी प्रकारके भोग प्रदान करनेवाले हैं! श्रेष्ठ, वरेण्य, वर देनेवाली, भक्तोंपर कृपा करनेवाली, मनुष्योंको भगवान् विष्णुका पद प्रदान करनेवाली विष्णुपदी नामसे विख्यात तथा साध्वी भगवती गंगाकी मैं उपासना करता हूँ॥ १—११ $\frac{१}{२}$ ॥

हे ब्रह्मन्! इसी ध्यानके द्वारा तीन मार्गोंसे विचरण करनेवाली पवित्र गंगाका ध्यान करके सोलह प्रकारके पूजनोपचारोंसे इनकी विधिवत् पूजा करनी

दत्त्वा सम्पूजयेद् ब्रह्मन्नुपचाराणि षोडश।
आसनं पाद्यमर्घ्यं च स्नानीयं चानुलेपनम्॥ १३

धूपं दीपं च नैवेद्यं ताम्बूलं शीतलं जलम्।
वसनं भूषणं माल्यं गन्धमाचमनीयकम्॥ १४

मनोहरं सुतल्पं च देयान्येतानि षोडश।
दत्त्वा भक्त्या च प्रणमेत्संस्तूय सम्पुटाञ्जलिः॥ १५

सम्पूज्यैवं प्रकारेण सोऽश्वमेधफलं लभेत्।

नारद उवाच

श्रोतुमिच्छामि देवेश लक्ष्मीकान्त जगत्पते॥ १६
विष्णोर्विष्णुपदीस्तोत्रं पापघ्नं पुण्यकारकम्।

श्रीनारायण उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि पापघ्नं पुण्यकारकम्॥ १७

शिवसङ्गीतसंमुग्धश्रीकृष्णाङ्गसमुद्भवाम्।
राधाङ्गद्रवसंयुक्तां तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥ १८

यज्जन्म सृष्टेरादौ च गोलोके रासमण्डले।
सन्निधाने शङ्करस्य तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥ १९

गोपैर्गोपीभिराकीर्णे शुभे राधामहोत्सवे।
कार्तिकीपूर्णिमायां च तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥ २०

कोटियोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये लक्षगुणा ततः।
समावृता या गोलोके तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥ २१

षष्टिलक्षयोजना या ततो दैर्घ्ये चतुर्गुणा।
समावृता या वैकुण्ठे तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥ २२

त्रिंशल्लक्षयोजना या दैर्घ्ये पञ्चगुणा ततः।
आवृता ब्रह्मलोके या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥ २३

त्रिंशल्लक्षयोजना या दैर्घ्ये चतुर्गुणा ततः।
आवृता शिवलोके या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥ २४

लक्षयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये सप्तगुणा ततः।
आवृता ध्रुवलोके या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥ २५

चाहिये। आसन, पाद्य, अर्घ्य, स्नान, अनुलेपन, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, शीतल जल, वस्त्र, आभूषण, माला, चन्दन, आचमन और मनोहर शय्या—ये अर्पणयोग्य सोलह उपचार हैं। इन्हें भक्तिपूर्वक गंगाको अर्पण करके दोनों हाथ जोड़कर स्तुति करके उन्हें प्रणाम करे। इस विधिसे गंगाकी विधिवत् पूजा करके वह मनुष्य अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त करता है॥ १२—१५½॥

नारदजी बोले—हे देवेश! हे लक्ष्मीकान्त! हे जगत्पते! अब मैं भगवान् विष्णुकी चिरसंगिनी विष्णुपदी गंगाके पापनाशक तथा पुण्यदायक स्तोत्रका श्रवण करना चाहता हूँ॥ १६½॥

श्रीनारायण बोले—हे नारद! सुनिये, अब मैं उस पापनाशक तथा पुण्यप्रद स्तोत्रको कहूँगा। जो भगवान् शिवके संगीतसे मुग्ध श्रीकृष्णके अंगसे आविर्भूत तथा राधाके अंगद्रवसे सम्पन्न हैं, उन गंगाको मैं प्रणाम करता हूँ॥ १७-१८॥

सृष्टिके आरम्भमें गोलोकके रासमण्डलमें जिनका आविर्भाव हुआ है और जो सदा शंकरके सान्निध्यमें रहती हैं, उन गंगाको मैं प्रणाम करता हूँ॥ १९॥

जो कार्तिक-पूर्णिमाके दिन गोप तथा गोपियोंसे भरे राधा-महोत्सवके शुभ अवसरपर सदा विद्यमान रहती हैं, उन गंगाको मैं प्रणाम करता हूँ॥ २०॥

जो गोलोकमें करोड़ योजन चौड़ाई तथा उससे भी लाख गुनी लम्बाईमें फैली हुई हैं, उन गंगाको मैं प्रणाम करता हूँ॥ २१॥

जो साठ लाख योजन चौड़ाई तथा उससे भी चार गुनी लम्बाईसे वैकुण्ठलोकमें फैली हुई हैं, उन गंगाको मैं प्रणाम करता हूँ॥ २२॥

जो ब्रह्मलोकमें तीन लाख योजन चौड़ाई तथा उससे भी पाँच गुनी लम्बाईमें फैली हुई हैं, उन गंगाको मैं प्रणाम करता हूँ॥ २३॥

जो तीन लाख योजन चौड़ी और उससे भी चार गुनी लम्बी होकर शिवलोकमें विद्यमान हैं, उन गंगाको मैं प्रणाम करता हूँ॥ २४॥

जो ध्रुवलोकमें एक लाख योजन चौड़ाई तथा उससे भी सात गुनी लम्बाईसे विराजमान हैं, उन गंगाको मैं प्रणाम करता हूँ॥ २५॥

लक्षयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये पञ्चगुणा ततः।
आवृता चन्द्रलोके या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥ २६

षष्टिसहस्रयोजना या दैर्घ्ये दशगुणा ततः।
आवृता सूर्यलोके या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥ २७

लक्षयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये पञ्चगुणा ततः।
आवृता या तपोलोके तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥ २८

सहस्रयोजनायामा दैर्घ्ये दशगुणा ततः।
आवृता जनलोके या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥ २९

दशलक्षयोजना या दैर्घ्ये पञ्चगुणा ततः।
आवृता या महर्लोके तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥ ३०

सहस्रयोजनायामा दैर्घ्ये शतगुणा ततः।
आवृता या च कैलासे तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥ ३१

शतयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये दशगुणा ततः।
मन्दाकिनी येन्द्रलोके तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥ ३२

पाताले भोगवती च विस्तीर्णा दशयोजना।
ततो दशगुणा दैर्घ्ये तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥ ३३

क्रोशैकमात्रविस्तीर्णा ततः क्षीणा च कुत्रचित्।
क्षितौ चालकनन्दा या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥ ३४

सत्ये या क्षीरवर्णा च त्रेतायामिन्दुसन्निभा।
द्वापरे चन्दनाभा या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥ ३५

जलप्रभा कलौ या च नान्यत्र पृथिवीतले।
स्वर्गे च नित्यं क्षीराभा तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥ ३६

यत्तोयकणिकास्पर्शे पापिनां ज्ञानसम्भवः।
ब्रह्महत्यादिकं पापं कोटिजन्मार्जितं दहेत्॥ ३७

जो एक लाख योजन चौड़ी तथा उससे भी पाँच गुनी लम्बी होकर चन्द्रलोकमें फैली हुई हैं, उन गंगाको मैं प्रणाम करता हूँ॥ २६॥

जो सूर्यलोकमें साठ हजार योजन चौड़े तथा उससे भी दस गुने लम्बे प्रस्तारमें फैली हुई हैं, उन गंगाको मैं प्रणाम करता हूँ॥ २७॥

जो तपोलोकमें एक लाख योजन चौड़ी तथा उससे भी पाँच गुनी लम्बी होकर प्रतिष्ठित हैं, उन गंगाको मैं प्रणाम करता हूँ॥ २८॥

जो जनलोकमें एक हजार योजन चौड़ाई तथा उससे भी दस गुनी लम्बाईमें फैली हुई हैं, उन गंगाको मैं प्रणाम करता हूँ॥ २९॥

जो दस लाख योजन चौड़ी तथा उससे भी पाँच गुनी लम्बी होकर महर्लोकमें फैली हुई हैं, उन गंगाको मैं प्रणाम करता हूँ॥ ३०॥

जो चौड़ाईमें एक हजार योजन और लम्बाईमें उससे भी सौ गुनी होकर कैलासपर फैली हुई हैं, उन गंगाको मैं प्रणाम करता हूँ॥ ३१॥

जो एक सौ योजन चौड़ी तथा उससे भी दस गुनी लम्बी होकर 'मन्दाकिनी' नामसे इन्द्रलोकमें प्रतिष्ठित हैं, उन गंगाको मैं प्रणाम करता हूँ॥ ३२॥

जो दस योजन चौड़ी तथा लम्बाईमें उससे भी दस गुनी होकर पाताललोकमें 'भोगवती' नामसे विद्यमान हैं, उन गंगाको मैं प्रणाम करता हूँ॥ ३३॥

जो एक कोसभर चौड़ी तथा कहीं-कहीं इससे भी कम चौड़ी होकर 'अलकनन्दा' नामसे पृथ्वीलोकमें प्रतिष्ठित हैं, उन गंगाको मैं प्रणाम करता हूँ॥ ३४॥

जो सत्ययुगमें दुग्धवर्ण, त्रेतायुगमें चन्द्रमाकी प्रभा और द्वापरमें चन्दनकी आभावाली रहती हैं; उन गंगाको मैं प्रणाम करता हूँ। जो कलियुगमें केवल पृथ्वीतलपर जलकी प्रभावाली तथा स्वर्गलोकमें सर्वदा दुग्धके समान आभावाली रहती हैं, उन गंगाको मैं प्रणाम करता हूँ। जिनके जलकणोंका स्पर्श होते ही पापियोंके हृदयमें उत्पन्न हुआ ज्ञान उनके करोड़ों जन्मोंके संचित ब्रह्महत्या आदि पापोंको भस्म कर देता है, [उन भगवती गंगाको मैं प्रणाम करता हूँ]॥ ३५—३७॥

इत्येवं कथिता ब्रह्मन् गङ्गापद्यैकविंशतिः।
स्तोत्ररूपं च परमं पापघ्नं पुण्यजीवनम्॥ ३८

नित्यं यो हि पठेद्भक्त्या सम्पूज्य च सुरेश्वरीम्।
सोऽश्वमेधफलं नित्यं लभते नात्र संशयः॥ ३९

अपुत्रो लभते पुत्रं भार्याहीनो लभेत्स्त्रियम्।
रोगात्प्रमुच्यते रोगी बन्धान्मुक्तो भवेद् ध्रुवम्॥ ४०

अस्पष्टकीर्तिः सुयशा मूर्खो भवति पण्डितः।
यः पठेत्प्रातरुत्थाय गङ्गास्तोत्रमिदं शुभम्॥ ४१

शुभं भवेच्च दुःस्वप्ने गङ्गास्नानफलं लभेत्।

श्रीनारायण उवाच

स्तोत्रेणानेन गङ्गां च स्तुत्वा चैव भगीरथः॥ ४२

जगाम तां गृहीत्वा च यत्र नष्टाश्च सागराः।
वैकुण्ठं ते ययुस्तूर्णं गङ्गायाः स्पर्शवायुना॥ ४३

भगीरथेन सा नीता तेन भागीरथी स्मृता।
इत्येवं कथितं सर्वं गङ्गोपाख्यानमुत्तमम्॥ ४४

पुण्यदं मोक्षदं सारं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि।

नारद उवाच

कथं गङ्गा त्रिपथगा जाता भुवनपावनी॥ ४५

कुत्र वा केन विधिना तत्सर्वं वद मे प्रभो।
तत्रस्थाश्च जना ये ये ते च किं चक्रुरुत्तमम्॥ ४६
एतत्सर्वं तु विस्तीर्णं कृत्वा वक्तुमिहार्हसि।

हे ब्रह्मन्! इस प्रकार इक्कीस श्लोकोंमें गंगाकी यह स्तुति कही गयी है। यह श्रेष्ठ स्तोत्र पापोंका नाश तथा पुण्योंकी उत्पत्ति करनेवाला है॥ ३८॥

जो मनुष्य सुरेश्वरी गंगाकी भक्तिपूर्वक पूजा करके प्रतिदिन इस स्तोत्रका पाठ करता है, वह नित्य ही अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त करता है; इसमें कोई संशय नहीं है॥ ३९॥

इस स्तोत्रके प्रभावसे पुत्रहीन मनुष्य पुत्र प्राप्त कर लेता है, स्त्रीहीन मनुष्यको स्त्रीकी प्राप्ति हो जाती है, रोगी मनुष्य रोगरहित हो जाता है, बन्धनमें पड़ा हुआ प्राणी बन्धनमुक्त हो जाता है, कीर्तिरहित मनुष्य सुन्दर यशसे सम्पन्न हो जाता है और मूर्ख व्यक्ति विद्वान् हो जाता है; यह सर्वथा सत्य है। जो प्रातःकाल उठकर इस पवित्र गंगास्तोत्रका पाठ करता है, दुःस्वप्नमें भी उसका मंगल ही होता है और वह गंगा-स्नानका फल प्राप्त कर लेता है॥ ४०-४१½॥

श्रीनारायण बोले—हे नारद! इस स्तोत्रके द्वारा गंगाकी स्तुति करके और फिर उन्हें अपने साथ लेकर वे भगीरथ उस स्थानपर पहुँचे, जहाँ राजा सगरके पुत्र जलकर भस्म हो गये थे। गंगाका स्पर्श करके बहनेवाली वायुके सम्पर्कमें आते ही वे सगरपुत्र तत्काल वैकुण्ठ चले गये। वे गंगा भगीरथके द्वारा लायी गयीं, इसलिये 'भागीरथी' नामसे विख्यात हुईं॥ ४२-४३½॥

[हे नारद!] इस प्रकार मैंने सारभूत और पुण्य तथा मोक्ष प्रदान करनेवाले उत्तम गंगोपाख्यानका सम्पूर्ण वर्णन कर दिया! अब आप आगे और क्या सुनना चाहते हैं॥ ४४½॥

नारदजी बोले—हे प्रभो! तीन मार्गोंसे संचरण करनेवाली तथा समस्त लोकोंको पवित्र करनेवाली गंगा किसलिये, कहाँ और किस प्रकारसे आविर्भूत हुईं? यह सब मुझे बतलाइये। वहाँपर जो-जो लोग स्थित थे, उन्होंने क्या श्रेष्ठ कार्य किया? आप इन सभी बातोंको विस्तारपूर्वक बतानेकी कृपा कीजिये॥ ४५-४६½॥

श्रीनारायण उवाच

कार्तिक्यां पूर्णिमायां तु राधायाः सुमहोत्सवः ॥ ४७

कृष्णः सम्पूज्य तां राधामुवास रासमण्डले।
कृष्णेन पूजितां तां तु सम्पूज्य हृष्टमानसाः ॥ ४८

ऊषुर्ब्रह्मादयः सर्वे ऋषयः शौनकादयः।
एतस्मिन्नन्तरे कृष्णसङ्गीता च सरस्वती ॥ ४९

जगौ सुन्दरतालेन वीणया च मनोहरम्।
तुष्टो ब्रह्मा ददौ तस्यै रत्नेन्द्रसारहारकम् ॥ ५०

शिवो मणीन्द्रसारं तु सर्वब्रह्माण्डदुर्लभम्।
कृष्णः कौस्तुभरत्नं च सर्वरत्नात्परं वरम् ॥ ५१

अमूल्यरत्ननिर्माणं हारसारं च राधिका।
नारायणश्च भगवान् ददौ मालां मनोहराम् ॥ ५२

अमूल्यरत्ननिर्माणं लक्ष्मीः कनककुण्डलम्।
विष्णुमाया भगवती मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥ ५३

दुर्गा नारायणीशाना ब्रह्मभक्तिं सुदुर्लभाम्।
धर्मबुद्धिं च धर्मश्च यशश्च विपुलं भवे ॥ ५४

वह्निशुद्धांशुकं वह्निर्वायुश्च मणिनूपुरान्।
एतस्मिन्नन्तरे शम्भुर्ब्रह्मणा प्रेरितो मुहुः ॥ ५५

जगौ श्रीकृष्णसङ्गीतं रासोल्लाससमन्वितम्।
मूर्च्छां प्रापुः सुराः सर्वे चित्रपुत्तलिका यथा ॥ ५६

कष्टेन चेतनां प्राप्य ददृशू रासमण्डले।
स्थलं सर्वं जलाकीर्णं राधाकृष्णविहीनकम् ॥ ५७

अत्युच्चै रुरुदुः सर्वे गोपा गोप्यः सुरा द्विजाः।
ध्यानेन ब्रह्मा बुबुधे सर्वं तीर्थमभीप्सितम् ॥ ५८

गतश्च राधया सार्धं श्रीकृष्णो द्रवतामिति।
ततो ब्रह्मादयः सर्वे तुष्टुवुः परमेश्वरम् ॥ ५९

स्वमूर्तिं दर्शय विभो वाञ्छितं वरमेव नः।

श्रीनारायण बोले—एक समयकी बात है—कार्तिक पूर्णिमाके अवसरपर राधा-महोत्सव मनाया जा रहा था। भगवान् श्रीकृष्ण राधाकी विधिवत् पूजा करके रासमण्डलमें विराजमान थे। तत्पश्चात् ब्रह्मा आदि देवता तथा शौनक आदि ऋषिगण श्रीकृष्णके द्वारा पूजित उन राधाकी प्रसन्नचित्त होकर विधिवत् पूजा करके वहींपर स्थित हो गये ॥ ४७-४८½ ॥

इतनेमें भगवान् श्रीकृष्णको संगीत सुनानेवाली देवी सरस्वती वीणा लेकर सुन्दर ताल-स्वरके साथ मनोहर गीत गाने लगीं ॥ ४९½ ॥

तब ब्रह्माजीने प्रसन्न होकर उन सरस्वतीको सर्वोत्तम रत्नोंसे निर्मित एक हार समर्पित किया। इसी प्रकार शिवजीने उन्हें अखिल ब्रह्माण्डके लिये दुर्लभ एक उत्तम मणि; भगवान् श्रीकृष्णने सभी रत्नोंसे श्रेष्ठतम कौस्तुभमणि, राधाने अमूल्य रत्नोंसे निर्मित एक श्रेष्ठ हार, भगवान् नारायणने एक मनोहर माला, लक्ष्मीजीने बहुमूल्य रत्नोंसे जटित स्वर्ण-कुण्डल; विष्णुमाया, ईश्वरी, दुर्गा, नारायणी और ईशाना नामसे विख्यात भगवती मूलप्रकृतिने अत्यन्त दुर्लभ ब्रह्मभक्ति; धर्मने धार्मिक बुद्धि तथा लोकमें महान् यशका वरदान; अग्निदेवताने अग्निके समान पवित्र वस्त्र तथा पवनदेवने मणिनिर्मित नूपुर भगवती सरस्वतीको प्रदान किये ॥ ५०—५४½ ॥

इतनेमें ब्रह्माजीसे प्रेरित होकर भगवान् शंकर रासके उल्लासको बढ़ानेकी शक्तिसे सम्पन्न श्रीकृष्णसम्बन्धी मधुर गीत गाने लगे। उसे सुनकर सभी देवता सम्मोहित हो गये और चित्र-विचित्र पुतलेकी भाँति प्रतीत होने लगे। बड़ी कठिनाईसे किसी प्रकार चेतना लौटनेपर उन्होंने देखा कि रासमण्डलमें सम्पूर्ण स्थल जलमय हो गया है और वह राधा तथा श्रीकृष्णसे रहित है ॥ ५५—५७ ॥

तब सभी गोप, गोपियाँ, देवता और द्विज उच्च स्वरसे विलाप करने लगे। वहाँ उपस्थित ब्रह्माजीने ध्यानके द्वारा श्रीकृष्णका सारा पवित्र विचार जान लिया कि वे श्रीकृष्ण ही राधाके साथ मिलकर द्रवमय हो गये हैं। तदनन्तर ब्रह्मा आदि सभी देवता परमेश्वर श्रीकृष्णकी स्तुति करने लगे। पुनः उन्होंने कहा—हे विभो! हमलोगोंका यही अभिलषित वर है कि आप हमें अपने श्रीविग्रहका दर्शन करा दें ॥ ५८-५९½ ॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र वाग्बभूवाशरीरिणी॥ ६०

तामेव शुश्रुवुः सर्वे सुव्यक्तां मधुरान्विताम्।
सर्वात्माहमियं शक्तिर्भक्तानुग्रहविग्रहा॥ ६१

ममाप्यस्याश्च देहेन कर्तव्यं च किमावयोः।
मनवो मानवाः सर्वे मुनयश्चैव वैष्णवाः॥ ६२

मन्मन्त्रपूता मां द्रष्टुमागमिष्यन्ति मत्पदम्।
मूर्तिं द्रष्टुं च सुव्यक्तां यदीच्छथ सुरेश्वराः॥ ६३

करोतु शम्भुस्तत्रैवं मदीयं वाक्यपालनम्।
स्वयं विधातस्त्वं ब्रह्मन्नाज्ञां कुरु जगद्गुरुम्॥ ६४

कर्तुं शास्त्रविशेषं च वेदाङ्गं सुमनोहरम्।
अपूर्वमन्त्रनिकरैः सर्वाभीष्टफलप्रदैः॥ ६५

स्तोत्रैश्च निकरैर्ध्यानैर्युतं पूजाविधिक्रमैः।
मन्मन्त्रकवचस्तोत्रं कृत्वा यत्नेन गोपनम्॥ ६६

भवन्ति विमुखा येन जना मां तत्करिष्यति।
सहस्त्रेषु शतेष्वेको मन्मन्त्रोपासको भवेत्॥ ६७

जना मन्मन्त्रपूताश्च गमिष्यन्ति च मत्पदम्।
अन्यथा न भविष्यन्ति सर्वे गोलोकवासिनः॥ ६८

निष्फलं भविता सर्वं ब्रह्माण्डं चैव ब्रह्मणः।
जनाः पञ्चप्रकाराश्च युक्ताः स्त्रष्टुं भवे भवे॥ ६९

पृथिवीवासिनः केचित्केचित्स्वर्गनिवासिनः।
इदं कर्तुं महादेवः करोति देवसंसदि॥ ७०
प्रतिज्ञां सुदृढां सद्यस्ततो मूर्तिं च द्रक्ष्यति।

इसी बीच आकाशवाणी हुई। पूर्णरूपसे स्पष्ट तथा मधुरतायुक्त उस वाणीको सभी लोगोंने सुना कि 'मैं सर्वात्मा श्रीकृष्ण हूँ तथा मेरी शक्तिस्वरूपा यह राधा भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाली हैं। [हम दोनोंने ही यह जलमय विग्रह धारण किया है।] मेरे तथा इन राधाके देहसे आप सबको क्या करना है? हे सुरेश्वरो! मनु, मानव, मुनि तथा वैष्णव—ये सभी लोग मेरे मन्त्रोंसे पवित्र होकर मेरा दर्शन करनेके लिये मेरे धाममें आयेंगे। इसी प्रकार यदि आपलोग भी मेरे वास्तविक श्रीविग्रहका प्रत्यक्ष दर्शन करना चाहते हैं, तो आपलोग ऐसा प्रयत्न कीजिये जिससे शिवजी वहींपर रहकर मेरी आज्ञाका पालन करें। हे विधातः! हे ब्रह्मन्! आप स्वयं जगद्गुरु शिवको आदेश कीजिये कि वे सम्पूर्ण अभीष्ट फल प्रदान करनेवाले बहुत-से अपूर्व मन्त्रों, स्तोत्रों, ध्यानों तथा पूजनकी विधियोंसे युक्त वेदांगस्वरूप अत्यन्त मनोहर तथा विशिष्ट शास्त्रकी रचना करें। मेरे मन्त्र, कवच और स्तोत्रसे सम्पन्न वह शिवरचित शास्त्र यत्नपूर्वक गुप्त रखा जाना चाहिये। मेरे जिन मन्त्रोंके गुप्त रखनेसे पापीलोग मुझसे विमुख रहें, वैसा ही कीजिये। किंतु हजारों-सैकड़ोंमें यदि कोई मेरे मन्त्रका उपासक पुण्यात्मा मिल जाय, तो उसके समक्ष मेरे मन्त्रका प्रकाशन कर देना चाहिये; क्योंकि सर्वथा गोपनीय रखनेसे शास्त्र-रचना ही व्यर्थ हो जायगी। इस प्रकार मेरे मन्त्रसे पवित्र होकर वे लोग मेरे धामको प्राप्त होंगे, नहीं तो शास्त्रके अभावमें कोई भी मेरे लोकमें नहीं जा पायेगा। साथ ही पुण्यात्माओंके लिये प्रकाशित किये गये पूर्वोक्त मन्त्रोपदेशके कारण यदि परम्परानुसार सभी लोग उस मन्त्रके प्रभावसे गोलोकवासी हो जायँगे, तब तो सम्पूर्ण ब्रह्माण्डके अन्तर्गत प्राणियोंके अभावके कारण ब्रह्माजीका यह ब्रह्माण्ड ही निष्फल हो जायगा। अतः हे ब्रह्मन्! आप सात्त्विक आदि भेदसे पाँच प्रकारके लोगोंकी रचना प्रत्येक सृष्टिके अन्तर्गत कीजिये, यही सर्वथा समीचीन है। ऐसा होनेपर कुछ लोग पृथ्वीपर रहेंगे और कुछ लोग स्वर्गमें रहेंगे। हे ब्रह्मन्! यदि शिवजी तन्त्रशास्त्रकी रचनाहेतु देव-सभामें दृढ़ प्रतिज्ञा करेंगे, तो वे शीघ्र ही मेरे विग्रहका साक्षात् दर्शन भी प्राप्त कर लेंगे'॥ ६०—७० १/२ ॥

इत्येवमुक्त्वा गगने विरराम सनातनः॥ ७१
तच्छ्रुत्वा जगतां धाता तमुवाच शिवं मुदा।
ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा ज्ञानेशो ज्ञानिनां वरः॥ ७२
गङ्गातोयं करे कृत्वा स्वीकारं च चकार सः।
संयुक्तं विष्णुमायाया मन्त्रौघैः शास्त्रमुत्तमम्॥ ७३
वेदसारं करिष्यामि प्रतिज्ञापालनाय च।
गङ्गातोयमुपस्पृश्य मिथ्या यदि वदेज्जनः॥ ७४
स याति कालसूत्रं च यावद्वै ब्रह्मणो वयः।
इत्युक्ते शङ्करे ब्रह्मन् गोलोके सुरसंसदि॥ ७५
आविर्बभूव श्रीकृष्णो राधया सहितस्ततः।
तं सुदृष्ट्वा च संहृष्टास्तुष्टुवुः पुरुषोत्तमम्॥ ७६
परमानन्दपूर्णाश्च चक्रुश्च पुनरुत्सवम्।
कालेन शम्भुर्भगवान् मुक्तिदीपं चकार सः॥ ७७
इत्येवं कथितं सर्वं सुगोप्यं च सुदुर्लभम्।
स एव द्रवरूपा सा गङ्गा गोलोकसम्भवा॥ ७८
राधाकृष्णाङ्गसम्भूता भुक्तिमुक्तिफलप्रदा।
स्थाने स्थाने स्थापिता सा कृष्णेन च परात्मना।
कृष्णास्वरूपा परमा सर्वब्रह्माण्डपूजिता॥ ७९

आकाशवाणीके रूपमें इस प्रकार कहकर सनातन श्रीकृष्ण चुप हो गये। उनकी वाणी सुनकर जगत्की व्यवस्था करनेवाले ब्रह्माजीने उन भगवान् शिवसे प्रसन्नतापूर्वक वह बात कही॥ ७१½ ॥

ब्रह्माजीकी बात सुनकर ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ ज्ञानेश्वर उन भगवान् शिवने हाथमें गंगाजल लेकर आज्ञाका पालन करना स्वीकार कर लिया॥ ७२½ ॥

उन्होंने कहा कि मैं प्रतिज्ञापालनके लिये विष्णुमायाके मन्त्र-समूहोंसे सम्पन्न तथा वेदोंके सारभूत उत्तम तन्त्रशास्त्रकी रचना करूँगा। यदि कोई मनुष्य हाथमें गंगाजल लेकर झूठी प्रतिज्ञा करता है तो वह 'कालसूत्र' नरकमें जाता है और ब्रह्माकी आयुपर्यन्त वहाँपर उसे रहना पड़ता है॥ ७३-७४½ ॥

हे ब्रह्मन्! गोलोकमें देवसभामें शंकरजीके ऐसा कहते ही भगवान् श्रीकृष्ण भगवती राधाके साथ वहाँ प्रकट हो गये। तब उन पुरुषोत्तम श्रीकृष्णको प्रत्यक्ष देखकर सभी देवता परम प्रसन्न होकर उनकी स्तुति करने लगे और परम आनन्दसे परिपूर्ण होकर फिरसे उत्सव मनाने लगे॥ ७५-७६½ ॥

[हे नारद!] समयानुसार उन भगवान् शिवने मुक्तिदीपस्वरूप तन्त्रशास्त्रका निर्माण किया। इस प्रकार मैंने आपसे अत्यन्त गोपनीय तथा दुर्लभ प्रसंगका वर्णन कर दिया। गोलोकसे आविर्भूत तथा राधा और श्रीकृष्णके विग्रहसे उत्पन्न वे द्रवरूपिणी गंगा भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाली हैं। परमेश्वर भगवान् श्रीकृष्णने स्थान-स्थानपर उन गंगाकी स्थापना की है। श्रीकृष्णस्वरूपा ये अतिश्रेष्ठ गंगा समस्त ब्रह्माण्डोंमें पूजी जाती हैं॥ ७७—७९ ॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे गङ्गोपाख्यानवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

श्रीराधाजीके रोषसे भयभीत गंगाका श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी शरण लेना, श्रीकृष्णके प्रति राधाका उपालम्भ, ब्रह्माजीकी स्तुतिसे राधाका प्रसन्न होना तथा गंगाका प्रकट होना

नारद उवाच

कलेः पञ्चसहस्राब्दे समतीते सुरेश्वर।
क्व गता सा महाभाग तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥ १

नारदजी बोले—हे सुरेश्वर! कलिके पाँच हजार वर्ष व्यतीत हो जानेपर वे गंगा कहाँ चली गयीं? हे महाभाग! मुझे वह प्रसंग बतानेकी कृपा कीजिये॥ १ ॥

श्रीनारायण उवाच

भारतं भारतीशापात्समागत्येश्वरेच्छया।
जगाम तत्र वैकुण्ठे शापान्ते पुनरेव सा॥ २

भारती भारतं त्यक्त्वा तज्जगाम हरेः पदम्।
पद्मावती च शापान्ते गङ्गा सा चैव नारद॥ ३

गङ्गा सरस्वती लक्ष्मीश्चैतास्तिस्त्रः प्रिया हरेः।
तुलसीसहिता ब्रह्मंश्चतस्त्रः कीर्तिताः श्रुतौ॥ ४

नारद उवाच

केनोपायेन सा देवी विष्णुपादाब्जसम्भवा।
ब्रह्मकमण्डलुस्था च श्रुता शिवप्रिया च सा॥ ५

बभूव सा मुनिश्रेष्ठ गङ्गा नारायणप्रिया।
अहो केन प्रकारेण तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥ ६

श्रीनारायण उवाच

पुरा बभूव गोलोके सा गङ्गा द्रवरूपिणी।
राधाकृष्णाङ्गसम्भूता तदंशा तत्स्वरूपिणी॥ ७

द्रवाधिष्ठातृदेवी या रूपेणाप्रतिमा भुवि।
नवयौवनसम्पन्ना सर्वाभरणभूषिता॥ ८

शरन्मध्याह्नपद्मास्या सस्मिता सुमनोहरा।
तप्तकाञ्चनवर्णाभा शरच्चन्द्रसमप्रभा॥ ९

स्निग्धप्रभातिसुस्निग्धा शुद्धसत्त्वस्वरूपिणी।
सुपीनकठिनश्रोणिः सुनितम्बयुगंधरा॥ १०

पीनोन्नतं सुकठिनं स्तनयुग्मं सुवर्तुलम्।
सुचारुनेत्रयुगलं सुकटाक्षं सुवंक्रिमम्॥ ११

वंक्रिमं कबरीभारं मालतीमाल्यसंयुतम्।
सिन्दूरबिन्दुललितं सार्धं चन्दनबिन्दुभिः॥ १२

श्रीनारायण बोले—हे नारद! सरस्वतीके शापके प्रभावसे वे गंगा भारतवर्षमें आयीं और पुनः शापकी अवधि बीत जानेपर श्रीहरिकी इच्छासे वैकुण्ठ चली गयीं। इसी प्रकार सरस्वती और पद्मावतीनदी-स्वरूपिणी वे लक्ष्मी भी शापके अन्तमें भारत छोड़कर उन विष्णुके लोकमें चली गयीं॥ २-३॥

हे ब्रह्मन्! गंगा, सरस्वती और लक्ष्मी—ये तीनों ही भगवान् श्रीहरिकी भार्याएँ हैं। साथ ही तुलसीसहित भगवान् श्रीहरिकी चार स्त्रियाँ वेदोंमें कही गयी हैं॥ ४॥

नारदजी बोले—हे भगवन्! विष्णुके चरण-कमलोंसे प्रकट होकर वे गंगाजी किस प्रकार ब्रह्माके कमण्डलुमें स्थित हुईं और शिवकी प्रियाके रूपमें कैसे विख्यात हुईं? हे मुनिश्रेष्ठ! वे गंगा भगवान् नारायणकी भी प्रेयसी किस प्रकार हुईं, वह सब मुझे बतानेकी कृपा कीजिये॥ ५-६॥

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] प्राचीन कालमें द्रवरूपिणी वे गंगा गोलोकमें विराजमान थीं। राधा और श्रीकृष्णके अंगसे आविर्भूत वे गंगा उन्हींके अंश तथा स्वरूपवाली हैं॥ ७॥

जलमयी गंगाकी जो अधिष्ठात्री देवी हैं, वे अनुपम रूप धारणकर पृथ्वीलोकमें आयीं। उनका श्रीविग्रह नूतन यौवनसे सम्पन्न तथा सभी प्रकारके अलंकारोंसे विभूषित था॥ ८॥

शरद् ऋतुके मध्याह्नकालमें खिले हुए कमलके समान प्रतीत होनेवाला उनका मुखमण्डल मुसकानसे युक्त तथा अत्यन्त मनोहर था। उनके शरीरका वर्ण तप्त स्वर्णकी आभाके समान तथा कान्ति शरत्कालीन चन्द्रमाके समान थी॥ ९॥

वे स्निग्ध प्रभावाली देवी अत्यन्त दयालु मुद्रामें थीं। उनका स्वरूप शुद्ध तथा सात्त्विक था। उनके जघन स्थूल तथा कठोर थे। उनके नितम्बयुगल अत्यन्त सुन्दर थे॥ १०॥

उनका वक्षःस्थल उन्नत, स्थूल, कठोर तथा गोल था। कटाक्षयुक्त तथा वक्राकार उनकी दोनों आँखें बड़ी सुन्दर थीं। मालतीके पुष्प-हारसे सुसज्जित उनके केशपाश घुँघराले थे। उनका ललाट चन्दनके

कस्तूरीपत्रिकायुक्तं गण्डयुग्मं मनोरमम्।
बन्धूककुसुमाकारमधरोष्ठं च सुन्दरम्॥ १३

पक्वदाडिमबीजाभदन्तपंक्तिसमुज्ज्वलम्।
वाससी वह्निशुद्धे च नीवीयुक्ते च बिभ्रती॥ १४

सा सकामा कृष्णपार्श्वे समुवास सुलज्जिता।
वाससा मुखमाच्छाद्य लोचनाभ्यां विभोर्मुखम्॥ १५

निमेषरहिताभ्यां च पिबन्ती सततं मुदा।
प्रफुल्लवदना हर्षान्नवसङ्गमलालसा॥ १६

मूर्च्छिता प्रभुरूपेण पुलकाङ्कितविग्रहा।
एतस्मिन्नन्तरे तत्र विद्यमाना च राधिका॥ १७

गोपीत्रिंशत्कोटियुक्ता चन्द्रकोटिसमप्रभा।
कोपेनारक्तपद्मास्या रक्तपङ्कजलोचना॥ १८

पीतचम्पकवर्णाभा गजेन्द्रमन्दगामिनी।
अमूल्यरत्ननिर्माणनानाभूषणभूषिता॥ १९

अमूल्यरत्नखचितममूल्यं वह्निशौचकम्।
पीतवस्त्रस्य युगलं नीवीयुक्तं च बिभ्रती॥ २०

स्थलपद्मप्रभामुष्टं कोमलं च सुरञ्जितम्।
कृष्णदत्तार्घ्यसंयुक्तं विन्यसन्ती पदाम्बुजम्॥ २१

रत्नेन्द्रसारनिर्माणविमानादवरुह्य सा।
सेव्यमाना च ऋषिभिः श्वेतचामरवायुना॥ २२

कस्तूरीबिन्दुभिर्युक्तं चन्दनेन समन्वितम्।
दीप्तदीपप्रभाकारं सिन्दूरं बिन्दुशोभितम्॥ २३

दधती भालमध्ये च सीमन्ताधःस्थलोज्ज्वले।
पारिजातप्रसूनानां मालायुक्तं सुवंक्रिमम्॥ २४

तिलकके साथ-साथ सिन्दूरकी बिन्दियोंसे सुशोभित हो रहा था। उनके दोनों गण्डस्थलोंपर कस्तूरीसे मनोहर पत्र-रचनाएँ की हुई थीं। उनका अधरोष्ठ बन्धूकके पुष्पके समान अत्यन्त सुन्दर था। उनके दाँतोंकी अति उज्ज्वल पंक्ति पके हुए अनारके दानोंकी भाँति चमक रही थी। वे अग्निके समान पवित्र तथा नीवीयुक्त दो वस्त्र धारण किये हुए थीं। कामभाववाली वे गंगाजी वस्त्रसे मुँह ढँककर लज्जित होती हुई श्रीकृष्णके पास विराजमान हो गयीं और प्रसन्न होकर अपलक नेत्रोंसे प्रभुके मुख-सौन्दर्यका निरन्तर पान करने लगीं। हर्षके कारण नवीन संगमकी लालसासे युक्त उन गंगाका मुखमण्डल प्रसन्नतासे खिल उठा और उनके शरीरका रोम-रोम पुलकित हो गया। प्रभु श्रीकृष्णके रूपसे वे चेतनारहित-सी हो गयी थीं॥ ११—१६½ ॥

इसी बीच राधिका वहाँ आकर विराजमान हो गयीं। उनके साथ तीस करोड़ गोपियाँ भी थीं। उनके शरीरकी कान्ति करोड़ों चन्द्रमाओंकी प्रभाके समान थी; कोपके कारण उनके मुख तथा नेत्र लाल कमलके समान प्रतीत हो रहे थे; उनके श्रीविग्रहका वर्ण पीले चम्पक-पुष्पके समान आभावाला था; वे मत्त गजराजकी भाँति मन्द गतिवाली थीं; बहुमूल्य रत्नोंसे निर्मित अनेक प्रकारके आभूषणोंसे अलंकृत थीं; वे अपने शरीरपर अमूल्य रत्नोंसे जटित तथा अग्निके समान पवित्र दो नीवीयुक्त बहुमूल्य पीले वस्त्र धारण किये हुए थीं, वे स्थल-कमलकी कान्तिको तिरस्कृत करनेवाले, कोमल, सुरंजित तथा भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा प्रदत्त अर्घ्यसे सुशोभित चरण-कमलोंको धीरे-धीरे रख रही थीं; वे देवी सर्वोत्तम रत्नोंसे बने हुए विमानसे उतरकर वहाँ उपस्थित हुई थीं; स्वच्छ चँवरकी वायुसे ऋषियोंके द्वारा उनकी सेवा की जा रही थी; कस्तूरीके बिन्दुओंसे युक्त, चन्दन-मिश्रित, प्रज्वलित दीपकके समान आकारवाला तथा बिन्दुरूपमें शोभायमान सिन्दूर उनके ललाटके मध्य भागमें सुशोभित हो रहा था, उनके सीमन्त (माँग)-का निचला भाग परम स्वच्छ था, पारिजातके पुष्पोंकी मालासे सुशोभित अपनी

सुचारुकबरीभारं कम्पयन्ती सुकम्पिता।
सुचारुरागसंयुक्तमोष्ठं कम्पयती रुषा॥ २५

गत्वोवास कृष्णपार्श्वे रत्नसिंहासने शुभे।
सखीनां च समूहैश्च परिपूर्णा विभोः प्रिया॥ २६

घुँघराली तथा सुन्दर अलकावलीको कँपाती हुई वे स्वयं भी कम्पित हो रही थीं, ऐसी वे राधा रोषके कारण अपने सुन्दर तथा रागयुक्त ओष्ठ कँपाती हुई भगवान् श्रीकृष्णके पास जाकर रत्नमय सुन्दर सिंहासनपर विराजमान हो गयीं। प्रभु श्रीकृष्णकी प्रिया उन राधाके साथ सखियोंका महान् समुदाय विद्यमान था॥ १७—२६॥

तां दृष्ट्वा च समुत्तस्थौ कृष्णः सादरपूर्वकम्।
सम्भाष्य मधुरालापैः सस्मितश्च ससंभ्रमः॥ २७

उन्हें देखते ही भगवान् श्रीकृष्ण आदरपूर्वक उठ खड़े हुए और आश्चर्यपूर्ण मुद्रामें मुसकराते हुए उनसे मधुर बातें करने लगे॥ २७॥

प्रणेमुरतिसन्त्रस्ता गोपा नम्रात्मकन्धराः।
तुष्टुवुस्ते च भक्त्या च तुष्टाव परमेश्वरः॥ २८

उस समय अत्यन्त भयभीत गोपोंने सिर झुकाकर भगवती राधिकाको प्रणाम किया और फिर वे भक्तिपूर्वक उनकी स्तुति करने लगे। साथ ही परमेश्वर श्रीकृष्णने भी राधिकाकी स्तुति की॥ २८॥

उत्थाय गङ्गा सहसा स्तुतिं बहु चकार सा।
कुशलं परिपप्रच्छ भीतातिविनयेन च॥ २९

तदनन्तर गंगाने भी तुरन्त उठकर राधिकाकी बहुत स्तुति की। भयभीत उन गंगाने अति विनम्रतापूर्वक राधासे कुशल पूछा॥ २९॥

नम्रभागस्थिता त्रस्ता शुष्ककण्ठोष्ठतालुका।
ध्यानेन शरणायत्ता श्रीकृष्णचरणाम्बुजे॥ ३०

वे डरके मारे झुककर खड़ी थीं। उनके कण्ठ, ओष्ठ और तालु सूख गये थे। उन्होंने ध्यानपूर्वक भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलकी शरण ली॥ ३०॥

तां हृत्पद्मस्थितां कृष्णो भीतायै चाभयं ददौ।
बभूव स्थिरचित्ता सा सर्वेश्वरवरेण च॥ ३१

अपने हृदयकमलपर स्थित उन गंगाको देखकर भगवान् श्रीकृष्णने उन भयभीत देवीको अभय प्रदान किया। सर्वेश्वर श्रीकृष्णसे वर पाकर देवी गंगाका चित्त शान्त हो गया॥ ३१॥

ऊर्ध्वसिंहासनस्थां च राधां गङ्गा ददर्श सा।
सुस्निग्धां सुखदृश्यां च ज्वलन्तीं ब्रह्मतेजसा॥ ३२

तदनन्तर गंगाने राधाको ऊँचे आसनपर विराजमान देखा। उनका रूप परम मनोहर था, उन्हें देखनेमें सुख प्राप्त हो रहा था और वे ब्रह्मतेजसे देदीप्यमान हो रही थीं॥ ३२॥

असंख्यब्रह्मणः कर्त्रीमादिसृष्टेः सनातनीम्।
सदा द्वादशवर्षीयां कन्याभिनवयौवनाम्॥ ३३

वे सनातन देवी सृष्टिके आरम्भमें असंख्य ब्रह्माओंकी रचना करनेवाली हैं और नवीन यौवनसे युक्त कन्याके समान सदा बारह वर्षकी अवस्थामें रहती हैं॥ ३३॥

विश्ववृन्दे निरुपमां रूपेण च गुणेन च।
शान्तां कान्तामनन्तां तामाद्यन्तरहितां सतीम्॥ ३४

शुभां सुभद्रां सुभगां स्वामिसौभाग्यसंयुताम्।
सौन्दर्यसुन्दरीं श्रेष्ठां सर्वासु सुन्दरीषु च॥ ३५

सम्पूर्ण विश्वमें रूप तथा गुणमें उनके समान कोई नहीं है। वे परम शान्त, कमनीय, अनन्त, आदि-अन्तसे रहित, साध्वी, पवित्र, कल्याणमयी, सुन्दर भाग्यवाली तथा अपने स्वामीके सौभाग्यसे सम्पन्न रहती हैं। वे सम्पूर्ण सुन्दरियोंमें श्रेष्ठ तथा सौन्दर्यसे सुशोभित हैं॥ ३४-३५॥

कृष्णार्धाङ्गां कृष्णसमां तेजसा वयसा त्विषा।
पूजितां च महालक्ष्मीं लक्ष्म्या लक्ष्मीश्वरेण च॥ ३६

प्रच्छाद्यमानां प्रभया सभामीशस्य सुप्रभाम्।
सखीदत्तं च ताम्बूलं भुक्तवन्तीं च दुर्लभम्॥ ३७

अजन्यां सर्वजननीं धन्यां मान्यां च मानिनीम्।
कृष्णप्राणाधिदेवीं च प्राणप्रियतमां रमाम्॥ ३८

दृष्ट्वा रासेश्वरीं तृप्तिं न जगाम सुरेश्वरी।
निमेषरहिताभ्यां च लोचनाभ्यां पपौ च ताम्॥ ३९

एतस्मिन्नन्तरे राधा जगदीशमुवाच सा।
वाचा मधुरया शान्ता विनीता सस्मिता मुने॥ ४०

राधोवाच

केयं प्राणेश कल्याणी सस्मिता त्वन्मुखाम्बुजम्।
पश्यन्ती सस्मितं पार्श्वे सकामा वक्रलोचना॥ ४१

मूर्च्छां प्राप्नोति रूपेण पुलकाङ्कितविग्रहा।
वस्त्रेण मुखमाच्छाद्य निरीक्षन्ती पुनः पुनः॥ ४२

त्वं चापि तां संनिरीक्ष्य सकामः सस्मितः सदा।
मयि जीवति गोलोके भूता दुर्वृत्तिरीदृशी॥ ४३

त्वमेव चैव दुर्वृत्तं वारं वारं करोषि च।
क्षमां करोमि प्रेम्णा च स्त्रीजातिः स्निग्धमानसा॥ ४४

संगृह्येमां प्रियामिष्टां गोलोकाद् गच्छ लम्पट।
अन्यथा न हि ते भद्रं भविष्यति व्रजेश्वर॥ ४५

दृष्टस्त्वं विरजायुक्तो मया चन्दनकानने।
क्षमा कृता मया पूर्वं सखीनां वचनादहो॥ ४६

वे श्रीकृष्णकी अर्धांगिनी हैं। तेज, आयु और कान्तिमें वे श्रीकृष्णके ही सदृश हैं। लक्ष्मीपति श्रीविष्णुके द्वारा लक्ष्मीसहित वे महालक्ष्मीस्वरूपा राधिका पूजित हैं॥ ३६॥

वे राधिका परमात्मा श्रीकृष्णकी प्रभामयी सभाको अपनी कान्तिसे सदा आच्छादित किये रहती हैं। वे सखियोंके द्वारा प्रदत्त दुर्लभ ताम्बूलका सदा सेवन करती रहती हैं॥ ३७॥

वे स्वयं अजन्मा होती हुई भी सम्पूर्ण जगत्की जननी हैं। वे भगवान् श्रीकृष्णको प्राणोंसे भी अधिक प्रिय, उनके प्राणोंकी अधिष्ठातृदेवी, धन्य, मान्य तथा मानिनी और मनोरम हैं॥ ३८॥

[हे नारद!] उस समय उन रासेश्वरी राधिकाको देखकर सुरेश्वरी गंगा तृप्त नहीं हुईं और वे अपलक नेत्रोंसे राधाकी सौन्दर्य-सुधाका पान करने लगीं॥ ३९॥

हे मुने! इसी बीच शान्त तथा विनम्र स्वभाववाली राधा मुसकराकर मधुर वाणीमें जगदीश्वर श्रीकृष्णसे कहने लगीं॥ ४०॥

राधा बोलीं—हे प्राणेश! पासमें बैठकर आपके मुसकानयुक्त मुखकमलको मुसकराकर तिरछी दृष्टिसे देखती हुई यह कामनायुक्त सुन्दरी कौन है? अपना मुख वस्त्रसे ढँककर आपके रूपको बार-बार देखती हुई पुलकित शरीरवाली यह सुन्दरी चेतनारहित हो जाया करती है॥ ४१-४२॥

आप भी कामनायुक्त होकर उसकी ओर देखकर हँस रहे हैं। मेरे जीवित रहते गोलोकमें ऐसी दुर्वृत्तिवाली स्त्री कैसे आयी? और आप भी बार-बार दुश्चेष्टा करते जा रहे हैं। कोमल स्वभाववाली स्त्री-जाति होनेके कारण प्रेमवश मैं आपको क्षमा कर दे रही हूँ॥ ४३-४४॥

हे कामी व्रजेश्वर! अपनी इस अभीष्ट प्रेयसीको लेकर आप अभी गोलोकसे चले जाइये, अन्यथा आपका कल्याण नहीं है॥ ४५॥

एक बार पूर्वमें मैंने आपको चन्दनवनमें विरजाके साथ देखा था। सखियोंका वचन मानकर मैंने उस समय क्षमा कर दिया था॥ ४६॥

त्वया मच्छब्दमात्रेण तिरोधानं कृतं पुरा।
देहं तत्याज विरजा नदीरूपा बभूव सा॥ ४७

कोटियोजनविस्तीर्णा ततो दैर्घ्ये चतुर्गुणा।
अद्यापि विद्यमाना सा तव सत्कीर्तिरूपिणी॥ ४८

गृहं मयि गतायां च पुनर्गत्वा तदन्तिके।
उच्चै रुरोद विरजे विरजे चेति संस्मरन्॥ ४९

तदा तोयात्समुत्थाय सा योगात्सिद्धयोगिनी।
सालङ्कारा मूर्तिमती ददौ तुभ्यं च दर्शनम्॥ ५०

ततस्तां च समाक्षिप्य वीर्याधानं कृतं त्वया।
ततो बभूवुस्तस्यां च समुद्राः सप्त एव च॥ ५१

दृष्टस्त्वं शोभया गोप्या युक्तश्चम्पककानने।
सद्यो मच्छब्दमात्रेण तिरोधानं कृतं त्वया॥ ५२

शोभा देहं परित्यज्य जगाम चन्द्रमण्डले।
ततस्तस्याः शरीरं च स्निग्धं तेजो बभूव ह॥ ५३

संविभज्य त्वया दत्तं हृदयेन विदूयता।
रत्नाय किञ्चित्स्वर्णाय किञ्चिन्मणिवराय च॥ ५४

किञ्चित्स्त्रीणां मुखाब्जेभ्यः चिञ्चिद्राज्ञे च किञ्चन।
किञ्चित्किसलयेभ्यश्च पुष्पेभ्यश्चापि किञ्चन॥ ५५

किञ्चित्फलेभ्यः पक्वेभ्यः सस्येभ्यश्चापि किञ्चन।
नृपदेवगृहेभ्यश्च संस्कृतेभ्यश्च किञ्चन॥ ५६

किञ्चिन्नूतनपत्रेभ्यो दुग्धेभ्यश्चापि किञ्चन।
दृष्टस्त्वं प्रभया गोप्या युक्तो वृन्दावने वने॥ ५७

सद्यो मच्छब्दमात्रेण तिरोधानं कृतं त्वया।
प्रभा देहं परित्यज्य जगाम सूर्यमण्डले॥ ५८

ततस्तस्याः शरीरं च तीव्रं तेजो बभूव ह।
संविभज्य त्वया दत्तं प्रेम्णा प्ररुदता पुरा॥ ५९

विसृष्टं चक्षुषोः कृष्ण लज्जया मद्भयेन च।
हुताशनाय किञ्चिच्च यक्षेभ्यश्चापि किञ्चन॥ ६०

मेरी ध्वनि सुनते ही आप उस समय छिप गये थे। विरजाने वह शरीर त्याग दिया और उसने नदीका रूप धारण कर लिया था॥ ४७॥

वे देवी आज भी एक करोड़ योजन चौड़ाई तथा उससे भी चार गुनी लम्बाईवाली आपकी सत्कीर्तिस्वरूपिणी नदीके रूपमें विद्यमान हैं॥ ४८॥

मेरे घर चले जानेपर आप पुनः उसके पास जाकर विरजे! विरजे! ऐसा कहते हुए जोर-जोरसे रोने लगे थे॥ ४९॥

तब उस सिद्धयोगिनीने योगबलके प्रभावसे जलसे बाहर निकलकर अलंकारयुक्त मूर्तिमती सुन्दरीके रूपमें आपको दर्शन दिया था॥ ५०॥

उस समय आपने उसमें अपने तेजका आधान किया था और समयानुसार उससे सात समुद्र उत्पन्न हुए॥ ५१॥

इसी प्रकार मैंने आपको शोभा नामक गोपीके साथ चम्पक वनमें देखा था। उस समय भी मेरी ध्वनि सुनते ही आप छिप गये थे और वह शोभा शरीर छोड़कर चन्द्रमण्डलमें चली गयी थी। तब उसका शरीर परम सुन्दर तथा तेजोमय हो गया था॥ ५२-५३॥

तत्पश्चात् आपने दुःखित हृदयसे उस तेजको विभक्त करके कुछ तेज रत्नको, कुछ स्वर्णको, कुछ श्रेष्ठ मणियोंको, कुछ स्त्रियोंके मुखकमलको, कुछ राजाको, कुछ नव पल्लवोंको, कुछ पुष्पोंको, कुछ पके फलोंको, कुछ फसलोंको, कुछ राजाओंके सुसज्जित महलोंको, कुछ नये पत्तोंको और कुछ तेज दुग्धको प्रदान कर दिया॥ ५४—५६½ ॥

इसी प्रकार मैंने वृन्दावनमें आपको प्रभा नामक गोपीके साथ देखा था। उस समय आप मेरा शब्द सुनते ही शीघ्रतापूर्वक छिप गये थे और प्रभा अपनी देह त्यागकर सूर्यमण्डलमें चली गयी थी॥ ५७-५८॥

उस समय उसका शरीर अत्यन्त तेजोमय हो गया था और आपने रोते-रोते उस तेजको प्रेमपूर्वक विभाजित करके जगह-जगह स्थान प्रदान कर दिया था। हे कृष्ण! लज्जा तथा मेरे भयके कारण आपकी आँखोंसे निकले हुए उस तेजको आपने कुछ अग्निको

किञ्चित्पुरुषसिंहेभ्यो देवेभ्यश्चापि किञ्चन।
किञ्चिद्विष्णुजनेभ्यश्च नागेभ्योऽपि च किञ्चन॥ ६१

ब्राह्मणेभ्यो मुनिभ्यश्च तपस्विभ्यश्च किञ्चन।
स्त्रीभ्यः सौभाग्ययुक्ताभ्यो यशस्विभ्यश्च किञ्चन॥ ६२

तत्तु दत्त्वा च सर्वेभ्यः पूर्वं प्ररुदितं त्वया।
शान्तिगोप्या युतस्त्वं च दृष्टोऽसि रासमण्डले॥ ६३

वसन्ते पुष्पशय्यायां माल्यवांश्चन्दनोक्षितः।
रत्नप्रदीपैर्युक्ते च रत्ननिर्माणमन्दिरे॥ ६४

रत्नभूषणभूषाढ्यो रत्नभूषितया सह।
तया दत्तं च ताम्बूलं भुक्तवांश्च पुरा विभो॥ ६५

सद्यो मच्छब्दमात्रेण तिरोधानं कृतं त्वया।
शान्तिर्देहं परित्यज्य भिया लीना त्वयि प्रभो॥ ६६

ततस्तस्याः शरीरं च गुणश्रेष्ठं बभूव ह।
संविभज्य त्वया दत्तं प्रेम्णा प्ररुदता पुरा॥ ६७

विश्वे तु विपिने किञ्चिद्ब्रह्मणे च मयि प्रभो।
शुद्धसत्त्वस्वरूपायै किञ्चिल्लक्ष्म्यै पुरा विभो॥ ६८

त्वन्मन्त्रोपासकेभ्यश्च शाक्तेभ्यश्चापि किञ्चन।
तपस्विभ्यश्च धर्माय धर्मिष्ठेभ्यश्च किञ्चन॥ ६९

मया पूर्वं च त्वं दृष्टो गोप्या च क्षमया सह।
सुवेषयुक्तो मालावान् गन्धचन्दनचर्चितः॥ ७०

रत्नभूषितया गन्धचन्दनोक्षितया सह।
सुखेन मूर्च्छितस्तल्पे पुष्पचन्दनचर्चिते॥ ७१

श्लिष्टो निद्रितया सद्यः सुखेन नवसङ्गमात्।
मया प्रबोधिता सा च भवांश्च स्मरणं कुरु॥ ७२

कुछ यक्षोंको, कुछ राजाओंको, कुछ देवताओंको, कुछ विष्णुभक्तोंको, कुछ नागोंको, कुछ ब्राह्मण-मुनि तथा तपस्वियोंको और कुछ तेज सौभाग्यवती स्त्रियों तथा यशस्वी पुरुषोंको प्रदान कर दिया। इस प्रकार इन सबको वह तेज प्रदान करके पूर्व कालमें आपने बहुत रुदन किया था॥ ५९—६२½ ॥

इसी तरह एक बार मैंने आपको शान्ति नामक गोपीके साथ रासमण्डलमें देखा था। वसन्त ऋतुमें रत्नमय दीपकोंसे युक्त रत्ननिर्मित महलमें आप माला धारण किये तथा शरीरमें चन्दन लगाकर और विभिन्न प्रकारके आभूषण पहनकर अनेकविध रत्नाभूषणोंसे अलंकृत उसके साथ पुष्पकी शय्यापर विराजमान थे। हे विभो! पूर्वकालमें उसने आपको ताम्बूल दिया और आपने उसे प्रेमपूर्वक ग्रहण कर लिया था॥ ६३—६५ ॥

हे प्रभो! उस समय मेरा शब्द सुनकर आप तुरन्त छिप गये थे और वह शान्ति भयसे अपना देह त्यागकर आपमें समाविष्ट हो गयी थी॥ ६६ ॥

तब उसका शरीर उत्तम गुणोंके रूपमें परिणत हो गया। तदनन्तर रोते हुए आपने उसे विभाजित करके प्रेमपूर्वक विश्वमें बाँट दिया था। हे प्रभो! उसका कुछ अंश निकुंजमें, कुछ भाग ब्राह्मणोंमें और कुछ भाग मुझ राधामें समाहित हो गया। हे विभो! फिर आपने उसका कुछ भाग शुद्धस्वरूपा लक्ष्मीको, कुछ भाग अपने मन्त्रके उपासकोंको, कुछ भाग शक्तिकी आराधना करनेवालोंको, कुछ भाग तपस्वियोंको, कुछ भाग धर्मको और कुछ भाग धर्मात्मा पुरुषोंको दे दिया॥ ६७—६९ ॥

इसी तरह पूर्वकालमें मैंने आपको क्षमा नामक गोपीके साथ देखा था। आप सुन्दर वेष धारण करके, माला पहनकर तथा शरीरमें गन्ध और चन्दनका लेप करके रत्नोंके आभूषणोंसे अलंकृत और गन्ध-चन्दनचर्चित उस क्षमाके साथ पुष्प तथा चन्दनसे सुरभित शय्यापर सुखपूर्वक अचेतावस्थामें विराजमान थे। उस निद्राग्रस्त सुन्दरीके साथ आप सुखपूर्वक क्रीडामें संसक्त थे। उसी समय पहुँचकर मैंने उस क्षमाको तथा आपको जगाया था, इस बातको आप स्मरण कीजिये॥ ७०—७२ ॥

गृहीतं पीतवस्त्रं च मुरली च मनोहरा।
वनमालाकौस्तुभश्चाप्यमूल्यं रत्नकुण्डलम्॥ ७३

पश्चात्प्रदत्तं प्रेम्णा च सखीनां वचनादहो।
लज्जया कृष्णवर्णोऽभूद्भवान् पापेन यः प्रभो॥ ७४

क्षमा देहं परित्यज्य लज्जया पृथिवीं गता।
ततस्तस्याः शरीरं च गुणश्रेष्ठं बभूव ह॥ ७५

संविभज्य त्वया दत्तं प्रेम्णा प्ररुदता पुनः।
किञ्चिद्दत्तं विष्णवे च वैष्णवेभ्यश्च किञ्चन॥ ७६

धार्मिकेभ्यश्च धर्माय दुर्बलेभ्यश्च किञ्चन।
तपस्विभ्योऽपि देवेभ्यः पण्डितेभ्यश्च किञ्चन॥ ७७

एतत्ते कथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि।
त्वद्गुणं चैव बहुशो न जानामि परं प्रभो॥ ७८

इत्येवमुक्त्वा सा राधा रक्तपङ्कजलोचना।
गङ्गां वक्तुं समारेभे नम्रास्यां लज्जितां सतीम्॥ ७९

गङ्गा रहस्यं विज्ञाय योगेन सिद्धयोगिनी।
तिरोभूय सभामध्ये स्वजलं प्रविवेश सा॥ ८०

राधा योगेन विज्ञाय सर्वत्रावस्थितां च ताम्।
पानं कर्तुं समारेभे गण्डूषात्सिद्धयोगिनी॥ ८१

गङ्गा रहस्यं विज्ञाय योगेन सिद्धयोगिनी।
श्रीकृष्णचरणाम्भोजे विवेश शरणं ययौ॥ ८२

गोलोके सा च वैकुण्ठे ब्रह्मलोकादिके तथा।
ददर्श राधा सर्वत्र नैव गङ्गां ददर्श सा॥ ८३

सर्वत्र जलशून्यं च शुष्कपङ्कं च गोलकम्।
जलजन्तुसमूहैश्च मृतदेहैः समन्वितम्॥ ८४

उस समय मैंने आपका पीताम्बर, मनोहर मुरली, वनमाला, कौस्तुभ और बहुमूल्य रत्नमय कुण्डल ले लिया था। किंतु बादमें सखियोंके प्रेमपूर्वक कहनेपर उसे आपको लौटा दिया था। हे प्रभो! उस समय आप लज्जा तथा पापसे कृष्णवर्णके हो गये थे॥ ७३-७४॥

तत्पश्चात् लज्जाके कारण क्षमा अपना शरीर त्यागकर पृथ्वीमें समा गयी और उसका शरीर उत्तम गुणोंके रूपमें परिणत हो गया। तब रोते हुए आपने उस क्षमाका विभाजन करके उसे प्रेमपूर्वक अनेक लोगोंको दे दिया। उसका कुछ अंश विष्णुको, कुछ विष्णुभक्तोंको, कुछ धार्मिक पुरुषोंको, कुछ धर्मको, कुछ दुर्बलोंको, कुछ तपस्वियोंको, कुछ देवताओंको और कुछ भाग पण्डितोंको आपने दे दिया था॥ ७५—७७॥

हे प्रभो! यह सब मैंने आपको बता दिया। अब आप और क्या सुनना चाहते हैं? आपके और भी बहुत-से बड़े-बड़े गुण हैं, किंतु मैं सब नहीं जानती॥ ७८॥

श्रीकृष्णसे ऐसा कहकर लालकमलके समान नेत्रोंवाली उन राधाने नीचेकी ओर मुख की हुई लज्जित साध्वी गंगासे कहना आरम्भ किया, तभी सिद्धयोगिनी वे गंगा योगके द्वारा सभी रहस्य समझकर सभाके मध्यमें अन्तर्धान होकर अपने जलमें प्रविष्ट हो गयीं॥ ७९-८०॥

तब सिद्धयोगिनी राधा योगबलके प्रभावसे इस रहस्यको जानकर सर्वत्र विद्यमान उन जलस्वरूपिणी गंगाको अंजलिसे उठाकर मुँहसे पान करने लगीं॥ ८१॥

तत्पश्चात् सिद्धयोगिनी गंगा योगबलसे इस रहस्यको जान लेनेके उपरान्त भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलमें प्रवेश कर गयीं और उनके शरणागत हो गयीं॥ ८२॥

तब राधाने गोलोक, वैकुण्ठ तथा ब्रह्मलोक आदि सभी स्थानोंमें गंगाको खोजा, किंतु उन्हें कहीं भी गंगा दिखायी नहीं दीं॥ ८३॥

उस समय सर्वत्र जलका अभाव हो गया तथा सूखा कीचड़ और गोला दिखायी दे रहा था, जो जलचर जन्तुओंके मृत शरीरोंसे युक्त था॥ ८४॥

ब्रह्मविष्णुशिवानन्तधर्मेन्द्रेन्दुदिवाकराः ।
मनवो मुनयः सर्वे देवसिद्धतपस्विनः॥ ८५
गोलोकं च समाजग्मुः शुष्ककण्ठोष्ठतालुकाः।
सर्वे प्रणेमुर्गोविन्दं सर्वेशं प्रकृतेः परम्॥ ८६
वरं वरेण्यं वरदं वरिष्ठं वरकारणम्।
गोपिकागोपवृन्दानां सर्वेषां प्रवरं प्रभुम्॥ ८७
निरीहं च निराकारं निर्लिप्तं च निराश्रयम्।
निर्गुणं च निरुत्साहं निर्विकारं निरञ्जनम्॥ ८८
स्वेच्छामयं च साकारं भक्तानुग्रहकारकम्।
सत्त्वस्वरूपं सत्येशं साक्षिरूपं सनातनम्॥ ८९
परं परेशं परमं परमात्मानमीश्वरम्।
प्रणम्य तुष्टुवुः सर्वे भक्तिनम्रात्मकन्धराः॥ ९०
सगद्गदाः साश्रुनेत्राः पुलकाङ्कितविग्रहाः।
सर्वे संस्तूय सर्वेशं भगवन्तं परात्परम्॥ ९१
ज्योतिर्मयं परं ब्रह्म सर्वकारणकारणम्।
अमूल्यरत्ननिर्माणचित्रसिंहासनस्थितम् ॥ ९२
सेव्यमानं च गोपालैः श्वेतचामरवायुना।
गोपालिकानृत्यगीतं पश्यन्तं सस्मितं मुदा॥ ९३
प्राणाधिकप्रियतमं राधावक्षःस्थलस्थितम्।
तया प्रदत्तं ताम्बूलं भुक्तवन्तं सुवासितम्॥ ९४
परिपूर्णतमं रासे ददृशुश्च सुरेश्वरम्।
मुनयो मनवः सिद्धास्तापसाश्च तपस्विनः॥ ९५
प्रहृष्टमनसः सर्वे जग्मुः परमविस्मयम्।
परस्परं समालोक्य प्रोचुस्ते च चतुर्मुखम्॥ ९६
निवेदितं जगन्नाथं स्वाभिप्रायमभीप्सितम्।
ब्रह्मा तद्वचनं श्रुत्वा विष्णुं कृत्वा स्वदक्षिणे॥ ९७
वामतो वामदेवं च जगाम कृष्णसन्निधिम्।
परमानन्दयुक्तं च परमानन्दरूपिणीम्॥ ९८

ब्रह्मा, विष्णु, शिव, अनन्त, धर्म, इन्द्र, चन्द्रमा, सूर्य, मनुगण, मुनिवृन्द, देवता, सिद्ध और तपस्वी—ये सभी गोलोक चले गये। उस समय उनके कण्ठ, ओष्ठ और तालु सूख गये थे। वहाँ पहुँचकर उन सबने प्रकृतिसे भी परे, सर्वेश्वर, श्रेष्ठ, पूज्य, वरदायक, वरिष्ठ, वरके कारणस्वरूप, सभी गोपों तथा गोपिकाओंके समुदायमें सर्वश्रेष्ठ, कामनारहित, निराकार, आसक्तिहीन, निराश्रय, निर्गुण, निरुत्साह, निर्विकार, निर्दोष, अपनी इच्छासे साकार रूपमें प्रकट होनेवाले, भक्तोंपर कृपा करनेवाले, सत्त्वस्वरूप, सत्येश, सबके साक्षीस्वरूप तथा सनातन प्रभु श्रीकृष्णको प्रणाम किया। उन परम परमेश्वर परमात्मा सर्वेश्वर श्रीकृष्णको प्रणाम करके वे सब भक्तिके कारण अपने मस्तक झुकाकर उनकी स्तुति करने लगे। उस समय उनकी वाणी गद्गद हो गयी थी, उनकी आँखोंमें आँसू भर आये थे और उनके शरीरके रोम-रोम पुलकित हो गये थे॥ ८५—९०½ ॥

इस प्रकार उन सबने सर्वेश्वर, परात्पर, ज्योतिर्मय विग्रहवाले, परब्रह्म तथा सभी कारणोंके भी कारण, बहुमूल्य रत्नोंसे निर्मित, विचित्र सिंहासनपर विराजमान, गोपालोंके द्वारा श्वेत चँवर डुलाकर सेवा किये जाते हुए, प्रसन्नतापूर्वक मुसकराते हुए, गोपिकाओंका नृत्यसंगीत देखनेमें संलग्न, राधाके लिये प्राणोंसे भी अधिक प्रिय, राधाके वक्षःस्थलमें स्थित तथा उन राधाके द्वारा दिये गये सुवासित ताम्बूलका सेवन करते हुए उन परिपूर्णतम सुरेश्वर भगवान्‌की स्तुति करके उन्हें रासमण्डलमें विराजमान देखा। सभी मुनि, स्वायम्भुव आदि मनु, सिद्ध और तपस्वी महात्मा प्रसन्नचित्त हो गये, उन्हें महान् आश्चर्य हुआ। एक-दूसरेको देखकर वे सभी लोग जगत्प्रभु चतुर्मुख ब्रह्मासे अपना वांछित अभिप्राय कहने लगे॥ ९१—९६½ ॥

उनका वचन सुनकर ब्रह्माजी भगवान् विष्णुको दाहिने और महादेवको बायें करके परम आनन्दसे परिपूर्ण श्रीकृष्ण तथा परमानन्दस्वरूपिणी राधाके पास पहुँचे॥ ९७-९८॥

सर्वं कृष्णमयं धाता ददर्श रासमण्डले।
सर्वं समानवेषं च समानासनसंस्थितम्॥ ९९

द्विभुजं मुरलीहस्तं वनमालाविभूषितम्।
मयूरपिच्छचूडं च कौस्तुभेन विराजितम्॥ १००

अतीव कमनीयं च सुन्दरं शान्तविग्रहम्।
गुणभूषणरूपेण तेजसा वयसा त्विषा॥ १०१

परिपूर्णतमं सर्वं सर्वैश्वर्यसमन्वितम्।
किं सेव्यं सेवकं किं वा दृष्ट्वा निर्वक्तुमक्षमः॥ १०२

क्षणं तेजःस्वरूपं च रूपं तत्र स्थितं क्षणम्।
निराकारं च साकारं ददर्श द्विविधं क्षणम्॥ १०३

एकमेव क्षणं कृष्णं राधया रहितं परम्।
प्रत्येकासनसंस्थं च तया सार्धं च तत्क्षणम्॥ १०४

राधारूपधरं कृष्णं कृष्णरूपं कलत्रकम्।
किं स्त्रीरूपं च पुरुषं विधाता ध्यातुमक्षमः॥ १०५

हृत्पद्मस्थं च श्रीकृष्णं ध्यात्वा ध्यानेन चक्षुषा।
चकार स्तवनं भक्त्या परिहारमनेकधा॥ १०६

ततः स्वचक्षुरुन्मील्य पुनश्च तदनुज्ञया।
ददर्श कृष्णमेकं च राधावक्षःस्थलस्थितम्॥ १०७

स्वपार्षदैः परिवृतं गोपीमण्डलमण्डितम्।
पुनः प्रणेमुस्तं दृष्ट्वा तुष्टुवुः परमेश्वरम्॥ १०८

उस समय ब्रह्माजीने रासमण्डलमें सब कुछ श्रीकृष्णमय देखा। सबकी वेष-भूषा एक समान थी, सभी लोग समान आसनपर विराजमान थे, सभी लोगों ने दो भुजाओंवाले श्रीकृष्णके रूपमें हाथमें मुरली ले रखी थी, सभी लोग वनमालासे सुशोभित थे, सबके मुकुटमें मोरके पंख लगे थे, सभी लोग कौस्तुभमणिसे शोभायमान हो रहे थे, गुण-भूषण-रूप-तेज-आयु और कान्तिसे सम्पन्न उन सबका विग्रह अत्यन्त कोमल, सुन्दर तथा शान्त था, सब-के-सब परिपूर्णतम और सम्पूर्ण ऐश्वर्योंसे सम्पन्न थे, उन्हें देखकर कौन सेव्य है तथा कौन सेवक है, यह बता सकनेमें वे ब्रह्मा असमर्थ थे, भगवान् श्रीकृष्ण क्षणभरमें तेजःस्वरूप हो जाते थे और क्षणभरमें ही विग्रहवान् होकर आसनपर विराजित हो जाते थे, इस प्रकार ब्रह्माजीने एक ही क्षणमें उनके साकार तथा निराकार दोनों प्रकारके रूपों को देखा॥ ९९—१०३॥

तदनन्तर एक ही क्षणमें ब्रह्माजीने देखा कि वे परमेश्वर श्रीकृष्ण राधासे रहित हैं और फिर उसी क्षण वे राधिकाके साथ प्रत्येक आसनपर विराजमान दिखायी देने लगे। ब्रह्माजीने श्रीकृष्णको राधाका रूप धारण किये हुए तथा राधाको श्रीकृष्णका रूप धारण किये हुए देखा। इस प्रकार वहाँ कौन स्त्रीरूपमें तथा कौन पुरुषरूपमें है—इस रहस्यको जाननेमें वे ब्रह्मा भी अक्षम हो गये॥ १०४-१०५॥

तत्पश्चात् ब्रह्माजीने अपने हृदयकमलपर विराजमान श्रीकृष्णका ध्यान करके ध्याननेत्रसे उनका दर्शन किया और स्त्री-पुंभावविषयक संशयका अनेक प्रकारसे निराकरण करते हुए भक्तिपूर्वक उनका स्तवन किया॥ १०६॥

इसके बाद भगवान्‌की आज्ञासे उन्होंने अपने नेत्र खोलकर देखा कि वे अद्वितीय श्रीकृष्ण राधिकाके वक्षःस्थलपर स्थित हैं, वे अपने पार्षदोंसे घिरे हुए हैं और गोपिकाओंके समुदायसे सुशोभित हो रहे हैं। तदनन्तर उन ब्रह्मा आदि देवताओंने परमेश्वर श्रीकृष्णका दर्शन करके उन्हें प्रणाम किया और फिर उनकी स्तुति की॥ १०७-१०८॥

तदभिप्रायमाज्ञाय तानुवाच रमेश्वरः।
सर्वात्मा स च सर्वज्ञः सर्वेशः सर्वभावनः॥ १०९

श्रीभगवानुवाच

आगच्छ कुशलं ब्रह्मन्नागच्छ कमलापते।
इहागच्छ महादेव शश्वत्कुशलमस्तु वः॥ ११०

आगता हि महाभागा गङ्गानयनकारणात्।
गङ्गा च चरणाम्भोजे भयेन शरणं गता॥ १११

राधेमां पातुमिच्छन्ती दृष्ट्वा मत्सन्निधानतः।
दास्यामीमां च भवतां यूयं कुरुत निर्भयाम्॥ ११२

श्रीकृष्णस्य वचः श्रुत्वा सस्मितः कमलोद्भवः।
तुष्टाव राधामाराध्यां श्रीकृष्णपरिपूजिताम्॥ ११३

वक्त्रैश्चतुर्भिः संस्तूय भक्तिनम्रात्मकन्धरः।
धाता चतुर्णां वेदानामुवाच चतुराननः॥ ११४

चतुरानन उवाच

गङ्गा त्वदङ्गसम्भूता प्रभोश्च रासमण्डले।
युवयोर्द्रवरूपा सा मुग्धयोः शङ्करस्वनात्॥ ११५

कृष्णांशा च त्वदंशा च त्वत्कन्यासदृशी प्रिया।
त्वन्मन्त्रग्रहणं कृत्वा करोतु तव पूजनम्॥ ११६

भविष्यति पतिस्तस्या वैकुण्ठेशश्चतुर्भुजः।
भूस्थायाः कलया तस्याः पतिर्लवणवारिधिः॥ ११७

गोलोकस्था च या गङ्गा सर्वत्रस्था तथाम्बिके।
तदम्बिका त्वं देवेशी सर्वदा सा त्वदात्मजा॥ ११८

तदनन्तर सभी प्राणियोंके आत्मस्वरूप, सब कुछ जाननेवाले, सर्वेश्वर तथा सबका सृजन करनेवाले लक्ष्मीपति भगवान् श्रीकृष्ण उन देवताओंका अभिप्राय समझकर उनसे कहने लगे॥ १०९॥

श्रीभगवान् बोले—हे ब्रह्मन्! आपका कुशल हो, आइये। हे कमलापते! आइये। हे महादेव! यहाँ आइये। आप लोगोंका सदा कुशल हो। आप सभी महाभाग गंगाको ले जानेके लिये यहाँ आये हुए हैं, किंतु गंगाजी तो इस समय भयभीत होकर मेरे चरणकमलमें शरणागत हो गयी हैं। जब वे गंगा मेरे सांनिध्यमें थी, तब उन्हें देखकर पी जानेके लिये राधिका उद्यत हो गयी थीं, इसलिये वे मेरे सांनिध्यमें आ गयीं। मैं आपलोगोंको उन्हें अवश्य दे दूँगा, किंतु आपलोग पहले उन्हें भयमुक्त कीजिये॥ ११०—११२॥

[हे नारद!] श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर कमलयोनि ब्रह्मा मुसकराने लगे और वे भक्तिके कारण अपना मस्तक झुकाकर चारों मुखोंसे सबकी आराध्या तथा श्रीकृष्णके द्वारा सुपूजित राधिकाकी स्तुति करने लगे। उनकी स्तुति करके चारों वेदोंको धारण करनेवाले चतुर्मुख ब्रह्मा राधासे इस प्रकार कहने लगे॥ ११३-११४॥

चतुरानन बोले—भगवान् शंकरकी संगीत-ध्वनिसे मुग्ध आपके तथा प्रभु श्रीकृष्णके द्रवरूपमें परिणत हुए अंगसे वह गंगा रासमण्डलमें प्रकट हुई थीं॥ ११५॥

अतः आप तथा श्रीकृष्णके अंशस्वरूप होनेके कारण आपकी प्रिय पुत्रीके तुल्य ये गंगा आपका मन्त्र ग्रहण करके आपकी पूजा करें। [इसके फलस्वरूप] वैकुण्ठके अधिपति चतुर्भुज भगवान् श्रीहरि इनको पतिके रूपमें प्राप्त होंगे और साथ ही अपनी एक कलासे जब ये भूमण्डलपर जायँगी, उस समय लवणसमुद्र भी इनके पति बनेंगे॥ ११६-११७॥

हे अम्बिके! ये गंगा जैसे गोलोकमें हैं, वैसे ही इन्हें सर्वत्र रहना चाहिये। आप देवेश्वरी इनकी माता हैं और वे सदा आपकी पुत्री हैं॥ ११८॥

ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा स्वीचकार च सस्मिता।
बहिर्बभूव सा कृष्णपादाङ्गुष्ठनखाग्रतः॥ ११९

तत्रैव सत्कृता शान्ता तस्थौ तेषां च मध्यतः।
उवास तोयादुत्थाय तदधिष्ठातृदेवता॥ १२०

तत्तोयं ब्रह्मणा किञ्चित्स्थापितं च कमण्डलौ।
किञ्चिद्दधार शिरसि चन्द्रार्धकृतशेखरः॥ १२१

गङ्गायै राधिकामन्त्रं प्रददौ कमलोद्भवः।
तत्स्तोत्रं कवचं पूजां विधानं ध्यानमेव च॥ १२२

सर्वं तत्सामवेदोक्तं पुरश्चर्याक्रमं तथा।
गङ्गा तामेव सम्पूज्य वैकुण्ठं प्रययौ सह॥ १२३

लक्ष्मीः सरस्वती गङ्गा तुलसी विश्वपावनी।
एता नारायणस्यैव चतस्रो योषितो मुने॥ १२४

अथ तं सस्मितः कृष्णो ब्रह्माणं समुवाच सः।
सर्वकालस्य वृत्तान्तं दुर्बोधमविपश्चितम्॥ १२५

श्रीकृष्ण उवाच

गृहाण गङ्गां हे ब्रह्मन् हे विष्णो हे महेश्वर।
शृणु कालस्य वृत्तान्तं मत्तो ब्रह्मन्निशामय॥ १२६

यूयं च येऽन्ये देवाश्च मुनयो मनवस्तथा।
सिद्धा यशस्विनश्चैव ये येऽत्रैव समागताः॥ १२७

एते जीवन्ति गोलोके कालचक्रविवर्जिते।
जलाप्लुते सर्वविश्वं जातं कल्पक्षयोऽधुना॥ १२८

ब्रह्माद्या येऽन्यविश्वस्थास्ते विलीनाधुना मयि।
वैकुण्ठं च विना सर्वं जलमग्नं च पद्मज॥ १२९

गत्वा सृष्टिं कुरु पुनर्ब्रह्मलोकादिकं भवम्।
स्वं ब्रह्माण्डं विरचय पश्चाद् गङ्गा प्रयास्यति॥ १३०

[हे नारद!] ब्रह्माका यह वचन सुनकर राधाने हँसते हुए सभी बातें स्वीकार कर लीं। तब वे गंगा श्रीकृष्णके चरणके अँगूठेके नखके अग्रभागसे बाहर निकलीं। वहाँ सब लोगोंने उनका सत्कार किया और वे सबके मध्य शान्त होकर स्थित रहीं। तब जलस्वरूपा गंगाकी अधिष्ठात्री देवी जलसे निकलकर वहींपर विराजमान हो गयीं॥ ११९-१२०॥

उस समय ब्रह्माजीने गंगाका कुछ जल अपने कमण्डलुमें रख लिया और कुछ जल चन्द्रशेखर भगवान् शिवने अपने मस्तकपर धारण कर लिया॥ १२१॥

तदनन्तर कमलयोनि ब्रह्माने गंगाको राधा-मन्त्र प्रदान किया और उन्हें राधाके स्तोत्र, कवच, ध्यान और पूजाकी विधि तथा पुरश्चर्याक्रम—इन सभी सामवेद-प्रतिपादित अनुष्ठानोंके विषयमें बतलाया। गंगाने इन नियमोंके द्वारा उन राधाकी विधिवत् पूजा करके नारायणके साथ वैकुण्ठके लिये प्रस्थान किया॥ १२२-१२३॥

हे मुने! लक्ष्मी, सरस्वती, गंगा और विश्वपावनी तुलसी—ये चारों देवियाँ भगवान् नारायणकी ही पत्नियाँ हैं॥ १२४॥

इसके बाद वे श्रीकृष्ण हँसकर उन ब्रह्माको दुर्बोध, सूक्ष्म तथा सामयिक वृत्तान्त बताने लगे॥ १२५॥

श्रीकृष्ण बोले—हे ब्रह्मन्! आप गंगाको ग्रहण कीजिये। हे विष्णो! हे महेश्वर! हे ब्रह्मन्! आपलोग ध्यानपूर्वक कालका वृत्तान्त मुझसे सुनिये॥ १२६॥

आपलोग तथा अन्य देवता, मुनि, मनुगण, सिद्ध तथा यशस्वीजन—जो-जो यहाँ आये हुए हैं—केवल ये लोग ही कालचक्रके प्रभावसे रहित इस गोलोकमें जीवित हैं। इस समय कल्पक्षयके कारण सम्पूर्ण विश्व जलमें आप्लावित हो गया है। अन्य ब्रह्माण्डोंमें रहनेवाले जो ब्रह्मा आदि देवता हैं, वे मुझमें विलीन हो गये हैं। हे पद्मज! इस समय केवल वैकुण्ठको छोड़कर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड जलमें डूबा हुआ है। आप जाकर ब्रह्मलोक आदि लोकोंकी पुनः सृष्टि कीजिये। आप अपने ब्रह्माण्डकी रचना कीजिये, इसके बाद गंगा वहाँ जायँगी॥ १२७—१३०॥

एवमन्येषु विश्वेषु सृष्टौ ब्रह्मादिकं पुनः।
करोम्यहं पुनः सृष्टिं गच्छ शीघ्रं सुरैः सह॥ १३१

गतो बहुतरः कालो युष्माकं च चतुर्मुखाः।
गताः कतिविधास्ते च भविष्यन्ति च वेधसः॥ १३२

इसी प्रकार इस सृष्टिके अवसरपर मैं अन्य ब्रह्माण्डोंमें भी ब्रह्मा आदिकी रचनाका प्रयत्न कर रहा हूँ। अब आप देवताओंके साथ यहाँसे शीघ्र जाइये। आपका बहुत समय बीत चुका है, न जाने कितने ब्रह्मा समाप्त हो गये और न जाने कितने ब्रह्मा अभी होंगे॥ १३१-१३२॥

इत्युक्त्वा राधिकानाथो जगामान्तःपुरे मुने।
देवा गत्वा पुनः सृष्टिं चक्रुरेव प्रयत्नतः॥ १३३

हे मुने! ऐसा कहकर राधिकानाथ भगवान् श्रीकृष्ण अन्तःपुरमें चले गये और ब्रह्मा आदि देवता वहाँसे चलकर प्रयत्नपूर्वक सृष्टिकार्यमें संलग्न हो गये॥ १३३॥

गोलोके च स्थिता गङ्गा वैकुण्ठे शिवलोकके।
ब्रह्मलोके स्थितान्यत्र यत्र यत्र पुरः स्थिता॥ १३४

तत्रैव सा गता गङ्गा चाज्ञया परमात्मनः।
निर्गता विष्णुपादाब्जात्तेन विष्णुपदी स्मृता॥ १३५

तब गोलोक, वैकुण्ठ, शिवलोक और ब्रह्मलोक तथा अन्यत्र भी जिस-जिस स्थानपर गंगाको रहनेके लिये परमात्मा श्रीकृष्णने आज्ञा दी थी, उस-उसपर वे गंगा चली गयीं। वे गंगा भगवान् विष्णुके चरणकमलसे निकली हैं, इसलिये वे विष्णुपदी कही गयी हैं॥ १३४-१३५॥

इत्येवं कथितं ब्रह्मन् गङ्गोपाख्यानमुत्तमम्।
सुखदं मोक्षदं सारं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ १३६

हे ब्रह्मन्! इस प्रकार मैंने आपसे गंगाके इस सर्वोत्तम, सुखदायक, मोक्षप्रद तथा सारगर्भित उपाख्यानका वर्णन कर दिया। अब आप पुनः क्या सुनना चाहते हैं?॥ १३६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे गङ्गोपाख्यानवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥



अथ चतुर्दशोऽध्यायः

गंगाके विष्णुपत्नी होनेका प्रसंग

नारद उवाच

लक्ष्मीः सरस्वती गङ्गा तुलसी विश्वपावनी।
एता नारायणस्यैव चतस्रश्च प्रिया इति॥ १

गङ्गा जगाम वैकुण्ठमिदमेव श्रुतं मया।
कथं सा तस्य पत्नी च बभूवेति च न श्रुतम्॥ २

नारदजी बोले—[हे प्रभो!] यह तो मैंने आपसे सुन लिया कि लक्ष्मी, सरस्वती, गंगा और विश्वपावनी तुलसी—ये चारों ही भगवान् नारायणकी पत्नियाँ हैं और उनमेंसे गंगा वैकुण्ठ चली गयीं। किंतु वे गंगा विष्णुकी पत्नी कैसे हुईं—यह प्रसंग मैंने नहीं सुना॥ १-२॥

श्रीनारायण उवाच

गङ्गा जगाम वैकुण्ठं तत्पश्चाज्जगतां विधिः।
गत्वोवाच तया सार्धं प्रणम्य जगदीश्वरम्॥ ३

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] जब गंगाजी वैकुण्ठ चली गयीं, उसके पश्चात् जगत्‌की रचना करनेवाले ब्रह्माजी भी वहाँ पहुँचे। गंगाके साथ जगदीश्वर विष्णुके पास पहुँचकर उन्हें प्रणाम करके वे उनसे कहने लगे॥ ३॥

ब्रह्मोवाच

राधाकृष्णाङ्गसम्भूता या देवी द्रवरूपिणी।
नवयौवनसम्पन्ना सुशीला सुन्दरी वरा॥ ४

शुद्धसत्त्वस्वरूपा च क्रोधाहङ्कारवर्जिता।
तदङ्गसम्भवा नान्यं वृणोतीयं च तं विना॥ ५

तत्रातिमानिनी राधा सा च तेजस्विनी वरा।
समुद्युक्ता पातुमिमां भीतेयं बुद्धिपूर्वकम्॥ ६

विवेश चरणाम्भोजे कृष्णस्य परमात्मनः।
सर्वत्र गोलकं शुष्कं दृष्ट्वाहमगमं तदा॥ ७

गोलोके यत्र कृष्णश्च सर्ववृत्तान्तप्राप्तये।
सर्वान्तरात्मा सर्वेषां ज्ञात्वाभिप्रायमेव च॥ ८

बहिश्चकार गङ्गां च पादाङ्गुष्ठनखाग्रतः।
दत्त्वास्यै राधिकामन्त्रं पूरयित्वा च गोलकम्॥ ९

प्रणम्य तां च राधेशं गृहीत्वात्रागमं प्रभो।
गान्धर्वेण विवाहेन गृहाणेमां सुरेश्वरीम्॥ १०

सुरेश्वरेषु रसिको रसिकेयं समागता।
त्वं रत्नं पुंसु देवेश स्त्रीरत्नं स्त्रीष्वियं सती॥ ११

विदग्धया विदग्धेन सङ्गमो गुणवान् भवेत्।
उपस्थितां स्वयं कन्यां न गृह्णातीह यः पुमान्॥ १२

तं विहाय महालक्ष्मी रुष्टा याति न संशयः।
यो भवेत्पण्डितः सोऽपि प्रकृतिं नावमन्यते॥ १३

सर्वे प्राकृतिकाः पुंसः कामिन्यः प्रकृतेः कलाः।
त्वमेव भगवान्नाथो निर्गुणः प्रकृतेः परः॥ १४

ब्रह्माजी बोले—राधा और श्रीकृष्णके अंगसे आविर्भूत जो द्रवरूपिणी देवी गंगा हैं, वे इस समय नवीन यौवनसे सम्पन्न तथा उत्तम स्वभाव-वाली श्रेष्ठ सुन्दरीके रूपमें विराजमान हैं। ये देवी शुद्धसत्त्वस्वरूपिणी तथा क्रोध और अहंकारसे रहित हैं। उन श्रीकृष्णके अंगसे प्रादुर्भूत ये गंगा उन्हें छोड़कर किसी अन्यका पतिरूपमें वरण नहीं करना चाहतीं॥ ४-५॥

किंतु अतिमानिनी राधा वहाँ विद्यमान हैं। वे श्रेष्ठ तथा तेजस्विनी राधा इन गंगाको पी जानेके लिये उद्यत थीं। इससे अत्यन्त भयभीत ये गंगा बड़ी बुद्धिमानीके साथ परमात्मा श्रीकृष्णके चरणकमलमें समाविष्ट हो गयीं॥ ६½॥

उस समय सर्वत्र ब्रह्माण्ड-गोलकको शुष्क हुआ देखकर मैं गोलोक गया, जहाँपर सर्वान्तर्यामी श्रीकृष्ण सम्पूर्ण वृत्तान्त जाननेके लिये विराजमान थे। उन्होंने सबका अभिप्राय समझकर अपने चरणके अँगुष्ठ-नखके अग्रभागसे गंगाको बाहर निकाल दिया। तब मैंने इन गंगाको राधिका-मन्त्र प्रदानकर इनके जलसे ब्रह्माण्ड-गोलकको पूर्ण करके उन राधा तथा राधापति श्रीकृष्णको प्रणाम करके मैं इन्हें साथ लेकर यहाँ आया। हे प्रभो! अब आप गान्धर्व-विवाहके द्वारा इन सुरेश्वरी गंगाको स्वीकार कर लीजिये। श्रेष्ठ देवताओंमें आप परम रसिक हैं और यहाँ विराजमान ये गंगा भी रसिका हैं। हे देवेश! आप पुरुषोंमें रत्न हैं और ये साध्वी गंगा भी स्त्रियोंमें रत्न हैं। विदग्ध नारीका विदग्ध पुरुषके साथ सम्मिलन कल्याणकारी होता है॥ ७—११½॥

जो पुरुष स्वतःप्राप्त कन्याको नहीं ग्रहण करता, उससे महालक्ष्मी रुष्ट हो जाती हैं और उसे छोड़कर चली जाती हैं; इसमें सन्देह नहीं है। जो विद्वान् होता है, वह कभी प्रकृतिका अपमान नहीं करता॥ १२-१३॥

सभी पुरुष प्रकृतिसे उत्पन्न हुए हैं और स्त्रियाँ भी उसी प्रकृतिकी कलाएँ हैं। केवल आप भगवान् जगन्नाथ ही निर्गुण और प्रकृतिसे परे हैं॥ १४॥

अर्धाङ्गं द्विभुजः कृष्णो योऽर्धाङ्गेन चतुर्भुजः।
कृष्णवामाङ्गसम्भूता बभूव राधिका पुरा॥ १५

दक्षिणांशः स्वयं सा च वामांशः कमला तथा।
तेनेयं त्वां वृणोत्येव यतस्त्वद्देहसम्भवा॥ १६

एकाङ्गं चैव स्त्रीपुंसोर्यथा प्रकृतिपूरुषौ।
इत्येवमुक्त्वा धाता तां तं समर्प्य जगाम सः॥ १७

गान्धर्वेण विवाहेन तां जग्राह हरिः स्वयम्।
नारायणः करं धृत्वा पुष्पचन्दनचर्चितम्॥ १८

रेमे रमापतिस्तत्र गङ्गया सहितो मुदा।
गङ्गा पृथ्वीं गता या सा स्वस्थानं पुनरागता॥ १९

निर्गता विष्णुपादाब्जात्तेन विष्णुपदीति च।
मूर्च्छां सम्प्राप सा देवी नवसङ्गमलीलया॥ २०

रसिका सुखसम्भोगाद्रसिकेश्वरसंयुता।
तां दृष्ट्वा दुःखिता वाणी पद्मया वर्जितापि च॥ २१

नित्यमीर्ष्यति तां वाणी न च गङ्गा सरस्वतीम्।
गङ्गा शशाप कोपेन भारते च हरिप्रिया॥ २२

गङ्गया सह तस्यैव तिस्त्रो भार्या रमापतेः।
सार्धं तुलस्या पश्चाच्च चतस्त्रश्चाभवन्मुने॥ २३

वे श्रीकृष्ण ही आधे अंगसे दो भुजावाले श्रीकृष्ण बने रहे और आधे भागसे चतुर्भुज हो गये। इसी प्रकार पूर्वकालमें श्रीकृष्णके वाम अंगसे प्रादुर्भूत राधा भी दो भागोंमें विभक्त हो गयी थीं। दाहिने अंशसे तो वे स्वयं राधा बनी रहीं और बायें अंशसे कमला हो गयीं। इसलिये ये गंगा आपको ही पतिरूपमें वरण करना चाहती हैं; क्योंकि ये आपके ही देहसे उत्पन्न हुई हैं। हे प्रभो! प्रकृति और पुरुषकी भाँति स्त्री-पुरुष दोनोंका शरीर एक ही होता है॥ १५-१६½ ॥

ऐसा कहकर वे ब्रह्माजी श्रीहरिको गंगा सौंपकर वहाँसे चल दिये। तत्पश्चात् नारायण श्रीहरिने गंगाका पुष्प-चन्दनचर्चित हाथ पकड़कर गान्धर्व विवाह-विधिके अनुसार उन्हें पत्नीरूपमें ग्रहण किया। इसके बाद वे रमापति श्रीहरि गंगाके साथ प्रसन्नतापूर्वक विहार करने लगे। इस प्रकार जो गंगा पृथ्वीपर गयी हुई थीं, वे अपने स्थानपर पुनः आ गयीं। ये गंगा भगवान् विष्णुके चरण-कमलसे निकली हैं, इसलिये विष्णुपदी—इस नामसे विख्यात हुईं॥ १७—१९½ ॥

अब रसिकेश्वर भगवान् श्रीहरिके साथ प्रथम रतिक्रीड़ामें अतिशय सुखानुभूतिके कारण वे रसिका देवी गंगा मूर्च्छित हो गयीं। उन गंगाको देखकर सरस्वती नित्य दुःखित रहती थीं। लक्ष्मीके बार-बार मना करनेपर भी सरस्वती उन गंगासे सदा ईर्ष्या करती थीं, किंतु गंगाने सरस्वतीके प्रति ऐसा नहीं किया। अन्तमें विष्णुप्रिया गंगाने कोप करके सरस्वतीको भारतवर्षमें जानेका शाप दे दिया था॥ २०—२२॥

हे मुने! इस प्रकार उन रमापति श्रीहरिकी गंगासहित तीन भार्याएँ हैं। इसके बादमें तुलसीको लेकर उनकी चार पत्नियाँ हुईं॥ २३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे गङ्गायाः कृष्णपत्नीत्ववर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥



अथ पञ्चदशोऽध्यायः

तुलसीके कथा-प्रसंगमें राजा वृषध्वजका चरित्र-वर्णन

नारद उवाच

नारायणप्रिया साध्वी कथं सा च बभूव ह।
तुलसी कुत्र सम्भूता का वा सा पूर्वजन्मनि॥ १

कस्य वा सा कुले जाता कस्य कन्या कुले सती।
केन वा तपसा सा च सम्प्राप्ता प्रकृतेः परम्॥ २

निर्विकारं निरीहं च सर्वविश्वस्वरूपकम्।
नारायणं परं ब्रह्म परमेश्वरमीश्वरम्॥ ३

सर्वाराध्यं च सर्वेशं सर्वज्ञं सर्वकारणम्।
सर्वाधारं सर्वरूपं सर्वेषां परिपालकम्॥ ४

कथमेतादृशी देवी वृक्षत्वं समवाप ह।
कथं साप्यसुरग्रस्ता सम्बभूव तपस्विनी॥ ५

सुस्निग्धं मे मनो लोलं प्रेरयन्मां मुहुर्मुहुः।
छेत्तुमर्हसि सन्देहं सर्वं सन्देहभञ्जन॥ ६

श्रीनारायण उवाच

मनुश्च दक्षसावर्णिः पुण्यवान् वैष्णवः शुचिः।
यशस्वी कीर्तिमांश्चैव विष्णोरंशसमुद्भवः॥ ७

तत्पुत्रो ब्रह्मसावर्णिर्धर्मिष्ठो वैष्णवः शुचिः।
तत्पुत्रो धर्मसावर्णिर्वैष्णवश्च जितेन्द्रियः॥ ८

तत्पुत्रो रुद्रसावर्णिर्भक्तिमान्विजितेन्द्रियः।
तत्पुत्रो देवसावर्णिर्विष्णुव्रतपरायणः॥ ९

तत्पुत्र इन्द्रसावर्णिर्महाविष्णुपरायणः।
वृषध्वजश्च तत्पुत्रो वृषध्वजपरायणः॥ १०

यस्याश्रमे स्वयं शम्भुरासीद्देवयुगत्रयम्।
पुत्रादपि परः स्नेहो नृपे तस्मिञ्छिवस्य च॥ ११

न च नारायणं मेने न लक्ष्मीं न सरस्वतीम्।
पूजां च सर्वदेवानां दूरीभूतां चकार सः॥ १२

नारदजी बोले—परम साध्वी तुलसी भगवान् श्रीहरिकी प्रिय भार्या कैसे बनीं, वे कहाँ उत्पन्न हुई थीं, पूर्वजन्ममें कौन थीं, किसके कुलमें उत्पन्न हुई थीं और वे सती किसके कुलमें कन्याके रूपमें प्रादुर्भूत हुईं और अपने किस तपस्याके प्रभावसे वे तुलसी प्रकृतिसे परे, विकाररहित, निष्काम, सर्वविश्वरूप, नारायण, परब्रह्म, परमेश्वर, ईश्वर, सबके आराध्य, सर्वेश, सब कुछ जाननेवाले, सम्पूर्ण जगत्के कारण, सर्वाधार, सर्वरूप तथा सभी प्राणियोंका पालन करनेवाले भगवान् श्रीहरिको पत्नीरूपमें प्राप्त हुईं? ऐसी साध्वी देवी कैसे वृक्ष बन गयीं और वे तपस्विनी किस प्रकारसे असुरके द्वारा गृहीत हुईं। समस्त शंकाओंका निवारण करनेवाले हे प्रभो! यह सब जाननेके लिये मेरा कोमल तथा चंचल मन मुझे बार-बार प्रेरित कर रहा है। आप मेरे सम्पूर्ण सन्देहको दूर करनेकी कृपा कीजिये॥ १—६॥

श्रीनारायण बोले—विष्णुके अंशसे उत्पन्न दक्ष-सावर्णि मनु परम पवित्र, यशस्वी, कीर्तिमान्, पुण्यशाली तथा विष्णुभक्त थे। उनके पुत्र ब्रह्मसावर्णि थे, जो धर्म-परायण, भगवान् विष्णुके भक्त तथा परम पवित्र थे। उनके पुत्र धर्मसावर्णि थे, जो विष्णुके भक्त तथा जितेन्द्रिय थे। उनके पुत्र रुद्रसावर्णि भक्तिपरायण तथा जितेन्द्रिय थे। उन रुद्रसावर्णिके पुत्र देवसावर्णि थे, जो सर्वदा विष्णु-भगवान्का व्रत करनेमें संलग्न रहते थे। उन देवसावर्णिके पुत्र इन्द्रसावर्णि महाविष्णुके भक्त थे। उन इन्द्रसावर्णिका पुत्र वृषध्वज हुआ, जो भगवान् शिवकी भक्तिमें आसक्ति रखता था; उसके आश्रममें स्वयं भगवान् शंकर तीन युगोंतक स्थित रहे। राजा वृषध्वजके प्रति शिवजीका स्नेह पुत्रसे भी बढ़कर था॥ ७—११॥

वह भगवान् नारायण, लक्ष्मी, सरस्वती—इनमें किसीके भी प्रति आस्था नहीं रखता था और उसने अन्य सभी देवताओंकी पूजाका परित्याग कर दिया था॥ १२॥

भाद्रे मासि महालक्ष्मीपूजां मत्तो बभञ्ज ह।
तथा माघीयपञ्चम्यां विस्तृतां सर्वदैवतैः॥ १३

पापः सरस्वतीपूजां दूरीभूतां चकार सः।
यज्ञं च विष्णुपूजां च निन्दन्तं तं दिवाकरः॥ १४

चुकोप देवो भूपेन्द्रं शशाप शिवकारणात्।
भ्रष्टश्रीस्त्वञ्च भवेति तं शशाप दिवाकरः॥ १५

शूलं गृहीत्वा तं सूर्यमधावच्छङ्करः स्वयम्।
पित्रा सार्धं दिनेशश्च ब्रह्माणं शरणं ययौ॥ १६

शिवस्त्रिशूलहस्तश्च ब्रह्मलोकं ययौ क्रुधा।
ब्रह्मा सूर्यं पुरस्कृत्य वैकुण्ठं च ययौ भिया॥ १७

ब्रह्मकश्यपमार्तण्डाः सन्त्रस्ताः शुष्कतालुकाः।
नारायणं च सर्वेशं ते ययुः शरणं भिया॥ १८

मूर्ध्ना प्रणेमुस्ते गत्वा तुष्टुवुश्च पुनः पुनः।
सर्वं निवेदनं चक्रुर्भयस्य कारणं हरौ॥ १९

नारायणश्च कृपया तेभ्यश्च ह्यभयं ददौ।
स्थिरा भवत हे भीता भयं किञ्च मयि स्थिते॥ २०

स्मरन्ति ये यत्र तत्र मां विपत्तौ भयान्विताः।
तांस्तत्र गत्वा रक्षामि चक्रहस्तस्त्वरान्वितः॥ २१

पाताहं जगतां देवाः कर्ता च सततं सदा।
स्रष्टा च ब्रह्मरूपेण संहर्ता शिवरूपतः॥ २२

शिवोऽहं त्वमहं चापि सूर्योऽहं त्रिगुणात्मकः।
विधाय नानारूपं च करोमि सृष्टिपालनम्॥ २३

अभिमानमें चूर होकर वह भाद्रपद महीनेमें महालक्ष्मीकी पूजामें विघ्न उत्पन्न करता था। इसी प्रकार उस पापीने माघ शुक्ल पंचमीके दिन समस्त देवताओंद्वारा विस्तृत रूपसे की जानेवाली सरस्वती-पूजाका भी त्याग कर दिया था। इस तरह केवल शिवकी आराधनामें निरत रहनेवाले और यज्ञ तथा विष्णुकी पूजाकी निन्दा करनेवाले उस राजेन्द्र वृषध्वजपर भगवान् सूर्यदेव कुपित हो गये और उन्होंने उसे शाप दे दिया 'तुम श्रीविहीन हो जाओ'—यह शाप सूर्यने उसे दे दिया था॥ १३—१५॥

इसपर स्वयं भगवान् शिव हाथमें त्रिशूल लेकर सूर्यके पीछे दौड़े। तब सूर्य अपने पिता कश्यपके साथ ब्रह्माकी शरणमें गये॥ १६॥

तदनन्तर भगवान् शंकर हाथमें त्रिशूल लिये हुए अत्यन्त क्रुद्ध होकर ब्रह्मलोकके लिये प्रस्थित हुए। इसपर भयभीत ब्रह्माजीने सूर्यको आगे करके वैकुण्ठलोकके लिये प्रस्थान कर दिया॥ १७॥

वे सन्तप्त तथा शुष्क तालुवाले ब्रह्मा, कश्यप तथा सूर्य भयपूर्वक सर्वेश्वर नारायणकी शरणमें गये॥ १८॥

उन तीनोंने वहाँ पहुँचकर मस्तक झुकाकर भगवान् श्रीहरिको प्रणाम किया और बार-बार उनकी स्तुति की। तत्पश्चात् उन्होंने श्रीहरिसे भयका समस्त कारण बताया॥ १९॥

तब भगवान् नारायणने कृपापूर्वक [यह कहकर] उन्हें अभय प्रदान किया—हे भयभीत देवगण! आपलोग स्थिरचित्त हो जाइये। मेरे रहते आपलोगोंको भय कैसा? विपत्तिमें भयत्रस्त जो लोग जहाँ भी मुझे याद करते हैं, मैं हाथमें चक्र धारण किये वहाँ तत्काल पहुँचकर उनकी रक्षा करता हूँ॥ २०-२१॥

हे देवतागण! मैं सदा निरन्तर सम्पूर्ण लोकोंकी रचना तथा रक्षा किया करता हूँ। मैं ही ब्रह्मारूपसे जगत्की सृष्टि करनेवाला और शिवरूपसे संहार करनेवाला हूँ। मैं ही शिव हूँ, आप भी मेरे ही रूप हो और ये सूर्य भी मेरे ही स्वरूप हैं। तीनों गुणोंसे युक्त मैं ही अनेकविध रूप धारण करके सृष्टि-पालन करता हूँ॥ २२-२३॥

यूयं गच्छत भद्रं वो भविष्यति भयं कुतः।
अद्यप्रभृति मद्वरेण भयं वो नास्ति शङ्करात्॥ २४

सर्वेशो वै स भगवाञ्छङ्करश्च सतां पतिः।
भक्ताधीनश्च भक्तानां भक्तात्मा भक्तवत्सलः॥ २५

सुदर्शनः शिवश्चैव मम प्राणाधिकः प्रियः।
ब्रह्माण्डेषु न तेजस्वी हे ब्रह्मन्ननयोः परः॥ २६

शक्तः स्रष्टुं महादेवः सूर्यकोटिं च लीलया।
कोटिं च ब्रह्मणामेवं नासाध्यं शूलिनः प्रभोः॥ २७

बाह्यज्ञानं नैव किञ्चिद्ध्यायते मां दिवानिशम्।
मन्मन्त्रान्मद्गुणान्भक्त्या पञ्चवक्त्रेण गायति॥ २८

अहमेवं चिन्तयामि तत्कल्याणं दिवानिशम्।
ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्॥ २९

शिवस्वरूपो भगवाञ्छिवाधिष्ठातृदेवता।
शिवं भवति तस्माच्च शिवं तेन विदुर्बुधाः॥ ३०

एतस्मिन्नन्तरे तत्र जगाम शङ्करः स्थितः।
शूलहस्तो वृषारूढो रक्तपङ्कजलोचनः॥ ३१

अवरुह्य वृषात्तूर्णं भक्तिनम्रात्मकन्धरः।
ननाम भक्त्या तं शान्तं लक्ष्मीकान्तं परात्परम्॥ ३२

रत्नसिंहासनस्थं च रत्नालङ्कारभूषितम्।
किरीटिनं कुण्डलिनं चक्रिणं वनमालिनम्॥ ३३

नवीननीरदश्यामं सुन्दरं च चतुर्भुजम्।
चतुर्भुजैः सेवितं च श्वेतचामरवायुना॥ ३४

आपलोग जाइये। आपलोगोंका कल्याण होगा, आपलोगोंको भय कहाँ। मेरे वरके प्रभावसे आपलोगोंको आजसे शंकरजीसे भय नहीं होगा। वे सर्वेश्वर भगवान् शिव सज्जनोंके स्वामी, भक्तोंके वशमें रहनेवाले, भक्तोंकी आत्मा तथा भक्तवत्सल हैं। हे ब्रह्मन्! सुदर्शन चक्र और भगवान् शिव—ये दोनों ही मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं, इन दोनोंसे बढ़कर तेजस्वी ब्रह्माण्डोंमें कोई भी नहीं है॥ २४—२६॥

वे महादेव खेल-खेलमें करोड़ों सूर्यों तथा करोड़ों ब्रह्माकी रचना कर सकते हैं। उन त्रिशूलधारी प्रभु शिवके लिये कुछ भी दुष्कर नहीं है। वे भगवान् शिव कुछ भी बाह्य ज्ञान न रखते हुए दिन-रात मेरा ही ध्यान करते रहते हैं और अपने पाँचों मुखोंसे भक्तिपूर्वक सदा मेरे मन्त्रोंका जप तथा गुणोंका गान करते रहते हैं॥ २७-२८॥

मैं भी दिन-रात उनके कल्याणका ही चिन्तन करता हूँ; क्योंकि जो लोग जिस प्रकार मेरी उपासना करते हैं, उसी प्रकार मैं भी उनकी सेवामें तत्पर रहता हूँ। भगवान् शंकर शिवस्वरूप हैं और वे कल्याणके अधिष्ठातृदेवता हैं, उन्हींसे कल्याण होता है, अतः विद्वान् लोग उन्हें शिव कहते हैं॥ २९-३०॥

इसी बीच भगवान् शंकर भी वहाँ पहुँच गये। उनके हाथमें त्रिशूल था, वे वृषभपर सवार थे तथा उनकी आँखें लाल कमलके समान थीं। वहाँ पहुँचते ही उन्होंने तुरंत वृषभसे उतरकर तथा भक्तिसे परिपूर्ण होनेके कारण अपना मस्तक झुकाकर उन शान्तस्वभाव परात्पर लक्ष्मीपति विष्णुको भक्तिपूर्वक प्रणाम किया॥ ३१-३२॥

उस समय भगवान् श्रीहरि रत्नमय सिंहासनपर विराजमान थे, रत्ननिर्मित अलंकारोंसे वे अलंकृत थे, वे किरीट; कुण्डल; चक्र और वनमाला धारण किये हुए थे, उनके शरीरकी कान्ति नूतन मेघके समान श्यामवर्णकी थी, वे परम सुन्दर थे, चार भुजाओंसे सुशोभित थे और चार भुजावाले अनेक पार्षदोंके द्वारा श्वेत चँवर डुलाकर उनकी सेवा की जा रही थी॥ ३३-३४॥

चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं भूषितं पीतवाससम्।
लक्ष्मीप्रदत्तताम्बूलं भुक्तवन्तं च नारद॥ ३५

विद्याधरीनृत्यगीतं पश्यन्तं सस्मितं सदा।
ईश्वरं परमात्मानं भक्तानुग्रहविग्रहम्॥ ३६

तं ननाम महादेवो ब्रह्मणा नमितश्च सः।
ननाम सूर्यो भक्त्या च सन्त्रस्तश्चन्द्रशेखरम्॥ ३७

कश्यपश्च महाभक्त्या तुष्टाव च ननाम च।
शिवः संस्तूय सर्वेशं समुवास सुखासने॥ ३८

सुखासने सुखासीनं विश्रान्तं चन्द्रशेखरम्।
श्वेतचामरवातेन सेवितं विष्णुपार्षदैः॥ ३९

पीयूषतुल्यमधुरं वचनं सुमनोहरम्।

विष्णुरुवाच

आगतोऽसि कथं चात्र वद कोपस्य कारणम्॥ ४०

महादेव उवाच

वृषध्वजं च मद्भक्तं मम प्राणाधिकं प्रियम्।
सूर्यः शशाप इति मे प्रकोपस्य तु कारणम्॥ ४१

पुत्रवत्सलशोकेन सूर्यं हन्तुं समुद्यतः।
स ब्रह्माणं प्रपन्नश्च सूर्यश्च स विधिस्त्वयि॥ ४२

त्वयि ये शरणापन्ना ध्यानेन वचसापि वा।
निरापदो विशङ्कास्ते जरा मृत्युश्च तैर्जितः॥ ४३

प्रत्यक्षं शरणापन्नास्तत्फलं किं वदामि भोः।
हरिस्मृतिश्चाभयदा सर्वमङ्गलदा सदा॥ ४४

किं मे भक्तस्य भविता तन्मे ब्रूहि जगत्प्रभो।
श्रीहतस्यास्य मूढस्य सूर्यशापेन हेतुना॥ ४५

हे नारद! उनका सम्पूर्ण अंग दिव्य चन्दनसे अनुलिप्त था, वे अनेक प्रकारके आभूषणोंसे अलंकृत थे, उन्होंने पीताम्बर धारण कर रखा था। वे लक्ष्मीके द्वारा दिये गये ताम्बूलका सेवन कर रहे थे, मुसकराते हुए वे विद्याधरियोंके नृत्य-गीत आदिका निरन्तर अवलोकन कर रहे थे। भक्तोंके लिये साक्षात् कृपामूर्ति ऐसे उन परमेश्वर प्रभुको महादेवने प्रणाम किया। ब्रह्माजीने भी महादेवको प्रणाम किया और अत्यन्त भयभीत सूर्यने भी चन्द्रशेखर शिवको भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। इसी प्रकार कश्यपने महान् भक्तिके साथ शिवकी स्तुति की और उन्हें प्रणाम किया॥ ३५—३७½ ॥

शिवजी सर्वेश्वर श्रीहरिका स्तवन करके एक सुखप्रद आसनपर विराजमान हो गये। इसके बाद सुखमय आसनपर सुखपूर्वक विराजमान तथा विष्णुके पार्षदोंके द्वारा श्वेत चँवर डुलाकर सेवित होते हुए उन विश्रान्त शिवजीसे भगवान् श्रीहरि अमृतके समान मधुर तथा मनोहर वचन कहने लगे॥ ३८-३९½ ॥

विष्णुजी बोले—आप यहाँ किसलिये आये हैं, आप अपने क्रोधका कारण बताइये॥ ४०॥

महादेवजी बोले—[हे भगवन्!] सूर्यने मेरे लिये प्राणोंसे भी अधिक प्रिय मेरे भक्त वृषध्वजको शाप दे दिया है—यही मेरे क्रोधका कारण है। जब मैं अपने पुत्रतुल्य भक्तके शोकसे प्रभावित होकर सूर्यको मारनेके लिये उद्यत हुआ, तब उस सूर्यने ब्रह्माकी शरण ली और पुनः सूर्य तथा ब्रह्मा—ये दोनों आपकी शरणमें आ गये॥ ४१-४२॥

[हे प्रभो!] जो लोग ध्यानसे अथवा वचनसे भी आपकी शरण ग्रहण कर लेते हैं, वे विपत्ति तथा भयसे पूर्णतः मुक्त हो जाते हैं। वे जरा तथा मृत्युतकको जीत लेते हैं। ये लोग तो प्रत्यक्ष शरणागत हुए हैं। इस शरणागतिका फल क्या बताऊँ! आप श्रीहरिका स्मरण सदा अभय तथा सर्वविध मंगल प्रदान करता है। हे जगत्प्रभो! सूर्यके शापके कारण श्रीरहित तथा विवेकहीन मेरे भक्तका क्या होगा? इसे मुझे बतायें॥ ४३—४५॥

विष्णुरुवाच

कालोऽतियातो दैवेन युगानामेकविंशतिः।
वैकुण्ठं घटिकार्धेन शीघ्रं गच्छ त्वमालयम्॥ ४६

वृषध्वजो मृतः कालाद्दुर्निवार्यात्सुदारुणात्।
रथध्वजश्च तत्पुत्रो मृतः सोऽपि श्रिया हतः॥ ४७

तत्पुत्रौ च महाभागौ धर्मध्वजकुशध्वजौ।
हतश्रियौ सूर्यशापात्स्मृतौ परमवैष्णवौ॥ ४८

राज्यभ्रष्टौ श्रिया भ्रष्टौ कमलातपसा रतौ।
तयोश्च भार्ययोर्लक्ष्मीः कलया च भविष्यति॥ ४९

सम्पद्युक्तौ तदा तौ च नृपश्रेष्ठौ भविष्यतः।
मृतस्ते सेवकः शम्भो गच्छ यूयं च गच्छत॥ ५०

इत्युक्त्वा च सलक्ष्मीकः सभातोऽभ्यन्तरं गतः।
देवा जग्मुः सम्प्रहृष्टाः स्वाश्रमं परया मुदा।
शिवश्च तपसे शीघ्रं परिपूर्णतमो ययौ॥ ५१

विष्णुजी बोले—[हे शिव!] दैवकी प्रेरणासे इक्कीस युगोंका बहुत बड़ा समय व्यतीत हो गया, यद्यपि वैकुण्ठमें अभी आधी घड़ीका समय बीता है। अतः अब आप शीघ्र अपने स्थान चले जाइये। किसीसे भी नियन्त्रित न किये जा सकनेवाले अत्यन्त भीषण कालने वृषध्वजको मार डाला है। उसका पुत्र रथध्वज था, वह भी श्रीसे हीन होकर मृत्युको प्राप्त हो गया। उस रथध्वजके भी धर्मध्वज तथा कुशध्वज नामक दो महान् भाग्यशाली पुत्र भी सूर्यके शापसे श्रीहीन हो गये हैं। वे दोनों विष्णुके महान् भक्तके रूपमें प्रसिद्ध हैं। राज्य तथा श्रीसे भ्रष्ट वे दोनों लक्ष्मीके तपमें रत हैं। उन दोनोंकी भार्याओंसे भगवती लक्ष्मी अपनी कलासे आविर्भूत होंगी। उस समय वे दोनों महान् सम्पदासे सम्पन्न होकर श्रेष्ठ राजाके रूपमें पुनः प्रतिष्ठित होंगे। हे शम्भो! आपका भक्त मर चुका है; अब आप यहाँ से जाइये। हे देवतागण! अब आप सबलोग भी यहाँसे प्रस्थान कीजिये॥ ४६—५०॥

[हे नारद!] ऐसा कहकर वे भगवान् श्रीहरि सभासे उठकर लक्ष्मीके साथ अन्तःपुरमें चले गये। तत्पश्चात् परम प्रसन्नतासे युक्त देवतागण भी परम आनन्दका अनुभव करते हुए अपने-अपने आश्रमके लिये प्रस्थित हो गये। तब परिपूर्णतम भगवान् शिव भी तपस्याके उद्देश्यसे वहाँसे चल दिये॥ ५१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे नारायणनारदसंवादे शक्तिप्रादुर्भावो नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥ १५॥

अथ षोडशोऽध्यायः

वेदवतीकी कथा, इसी प्रसंगमें भगवान् श्रीरामके चरित्रके एक अंशका कथन, भगवती सीता तथा द्रौपदी के पूर्वजन्मका वृत्तान्त

श्रीनारायण उवाच

लक्ष्मीं तौ च समाराध्य चोग्रेण तपसा मुने।
वरमिष्टं च प्रत्येकं सम्प्रापतुरभीप्सितम्॥ १

महालक्ष्मीवरेणैव तौ पृथ्वीशौ बभूवतुः।
पुण्यवन्तौ पुत्रवन्तौ धर्मध्वजकुशध्वजौ॥ २

श्रीनारायण बोले—हे मुने! उन दोनोंने कठिन तपस्याद्वारा भगवती लक्ष्मीकी आराधना करके अपना मनोवांछित वर प्राप्त कर लिया॥ १॥

महालक्ष्मीके वरदानसे ही वे धर्मध्वज और कुशध्वज महान् पुण्यशाली तथा पुत्रवान् राजा हो गये॥ २॥

कुशध्वजस्य पत्नी च देवी मालावती सती।
सा सुषाव च कालेन कमलांशां सुतां सतीम्॥ ३

सा च भूयिष्ठकालेन ज्ञानयुक्ता बभूव ह।
कृत्वा वेदध्वनिं स्पष्टमुत्तस्थौ सूतिकागृहात्॥ ४

वेदध्वनिं सा चकार जातमात्रेण कन्यका।
तस्मात्तां च वेदवतीं प्रवदन्ति मनीषिणः॥ ५

जातमात्रेण सुस्नाता जगाम तपसे वनम्।
सर्वैर्निषिद्धा यत्नेन नारायणपरायणा॥ ६

एकमन्वन्तरं चैव पुष्करे च तपस्विनी।
अत्युग्रां च तपस्यां च लीलया हि चकार सा॥ ७

तथापि पुष्टा न क्लिष्टा नवयौवनसंयुता।
सुश्राव सा च सहसा सुवाचमशरीरिणीम्॥ ८

जन्मान्तरे च ते भर्ता भविष्यति हरिः स्वयम्।
ब्रह्मादिभिर्दुराराध्यं पतिं लप्स्यसि सुन्दरि॥ ९

इति श्रुत्वा च सा हृष्टा चकार ह पुनस्तपः।
अतीव निर्जनस्थाने पर्वते गन्धमादने॥ १०

तत्रैव सुचिरं तप्त्वा विश्वस्य समुवास सा।
ददर्श पुरतस्तत्र रावणं दुर्निवारणम्॥ ११

दृष्ट्वा सातिथिभक्त्या च पाद्यं तस्मै ददौ किल।
सुस्वादुभूतं च फलं जलं चापि सुशीतलम्॥ १२

तच्च भुक्त्वा स पापिष्ठश्चोवास तत्समीपतः।
चकार प्रश्नमिति तां का त्वं कल्याणि वर्तसे॥ १३

तां दृष्ट्वा स वरारोहां पीनश्रोणिपयोधराम्।
शरत्पद्मोत्सवास्यां च सस्मितां सुदतीं सतीम्॥ १४

मूर्च्छामवाप कृपणः कामबाणप्रपीडितः।
स करेण समाकृष्य शृङ्गारं कर्तुमुद्यतः॥ १५

कुशध्वजकी मालावती नामक साध्वी भार्या थी। उस देवीने दीर्घकाल बीतनेपर यथासमय लक्ष्मीके अंशसे सम्पन्न एक साध्वी कन्याको जन्म दिया। उसे जन्मसे ही ज्ञान प्राप्त था। वह कन्या स्पष्ट वाणीमें वेद-मन्त्रोंका उच्चारणकर सूतिकागृहसे बाहर निकल आयी। उस कन्याने जन्म लेते ही वेदध्वनि की थी, इसलिये विद्वान् लोग उसे 'वेदवती' कहने लगे॥ ३—५॥

जन्म लेते ही उस कन्याने विधिवत् स्नान किया और तपस्याके लिये वनको प्रस्थान कर दिया; यद्यपि सभी लोगोंने श्रीहरिके चिन्तनमें तत्पर रहनेवाली उस कन्याको ऐसा करनेसे प्रयत्नपूर्वक रोका था॥ ६॥

उस तपस्विनी कन्याने एक मन्वन्तरतक पुष्कर-क्षेत्रमें रहकर लीलापूर्वक अत्यन्त कठोर तप किया, फिर भी वह दुर्बल नहीं हुई; अपितु स्वस्थ और नवयौवनसे सम्पन्न बनी रही॥ ७½॥

उसने सहसा स्पष्ट शब्दोंवाली यह आकाशवाणी सुनी—हे सुन्दरि! दूसरे जन्ममें स्वयं भगवान् श्रीहरि तुम्हारे पति होंगे। ब्रह्मा आदिके द्वारा भी बड़ी कठिनतासे प्रसन्न होनेवाले भगवान् श्रीहरिको तुम पतिरूपमें प्राप्त करोगी॥ ८-९॥

यह आकाशवाणी सुनकर वह कन्या अत्यन्त प्रसन्न हो गयी और गन्धमादनपर्वतपर निर्जन स्थानमें पुनः तप करने लगी॥ १०॥

वहाँ दीर्घकालतक तपश्चर्या करती हुई वह निश्चिन्त होकर रहती थी। एक बार उसने अपने समक्ष उपस्थित ढीठ रावणको देखा॥ ११॥

उसे देखकर वेदवतीने अतिथिभक्तिसे युक्त होकर उसे पाद्य, परम स्वादिष्ट फल और शीतल जल प्रदान किया। उन्हें ग्रहण करके वह पापी रावण उसके पास बैठ गया और उससे यह प्रश्न करने लगा 'हे कल्याणि! तुम कौन हो?'॥ १२-१३॥

स्थूल नितम्बदेश तथा वक्षःस्थलवाली, शरद्ऋतुके विकसित कमलकी भाँति प्रसन्न मुखवाली, मुसकानयुक्त तथा स्वच्छ दाँतोंवाली उस परम साध्वी सुन्दरीको देखकर कामबाणसे आहत होकर वह नीच रावण मूर्च्छित हो गया। वह वेदवतीको हाथसे खींचकर शृंगारिक चेष्टाएँ करने लगा॥ १४-१५॥

सती चुकोप दृष्ट्वा तं स्तम्भितं च चकार ह।
स जडो हस्तपादैश्च किञ्चिद्वक्तुं न च क्षमः॥ १६

तुष्टाव मनसा देवीं प्रययौ पद्मलोचनाम्।
सा तुष्टा तस्य स्तवनं सुकृतं च चकार ह॥ १७

सा शशाप मदर्थे त्वं विनंक्ष्यसि सबान्धवः।
स्पृष्टाहं च त्वया कामाद् बलं चाप्यवलोकय॥ १८

इत्युक्त्वा सा च योगेन देहत्यागं चकार ह।
गङ्गायां तां च संन्यस्य स्वगृहं रावणो ययौ॥ १९

अहो किमद्भुतं दृष्टं किं कृतं वानयाधुना।
इति सञ्चिन्त्य सञ्चिन्त्य विललाप पुनः पुनः॥ २०

सा च कालान्तरे साध्वी बभूव जनकात्मजा।
सीतादेवीति विख्याता यदर्थे रावणो हतः॥ २१

महातपस्विनी सा च तपसा पूर्वजन्मतः।
लेभे रामं च भर्तारं परिपूर्णतमं हरिम्॥ २२

सम्प्राप तपसाराध्यं दुराराध्यं जगत्पतिम्।
सा रमा सुचिरं रेमे रामेण सह सुन्दरी॥ २३

जातिस्मरा न स्मरति तपसश्च क्लमं पुरा।
सुखेन तज्जहौ सर्वं दुःखं चापि सुखं फले॥ २४

नानाप्रकारविभवं चकार सुचिरं सती।
सम्प्राप्य सुकुमारं तमतीव नवयौवना॥ २५

गुणिनं रसिकं शान्तं कान्तं देवमनुत्तमम्।
स्त्रीणां मनोज्ञं रुचिरं तथा लेभे यथेप्सितम्॥ २६

यह देखकर वह साध्वी अत्यन्त क्रोधित हो उठी और उसने [तपोबलसे] उसे स्तम्भित कर दिया। वह हाथों तथा पैरोंसे निश्चेष्ट हो गया और कुछ भी बोल सकनेमें समर्थ नहीं रहा॥ १६॥

वह मन-ही-मन उस कमलनयनी देवीकी शरणमें गया और उसने उसका स्तवन किया। देवी वेदवती उसपर प्रसन्न हो गयी और [परलोकमें] उसे स्तुतिका फल देना स्वीकार कर लिया। साथ ही उसने यह शाप भी दिया—'तुम मेरे ही कारण अपने बान्धवोंसहित विनष्ट हो जाओगे; क्योंकि काम-भावनासे तुमने मेरा स्पर्श किया है। अब तुम मेरा बल देख लो'॥ १७-१८॥

ऐसा कहकर उसने योगबलसे अपने शरीरका त्याग कर दिया। इसके बाद रावणने उसे गंगामें छोड़कर अपने घरकी ओर प्रस्थान किया—'अहो, इस समय मैंने यह कैसा अद्भुत दृश्य देखा है, इस देवीने इस समय क्या कर डाला'— ऐसा सोच-सोचकर वह रावण बार-बार विलाप करता रहा॥ १९-२०॥

[हे मुने!] वही साध्वी वेदवती दूसरे जन्ममें जनककी पुत्रीके रूपमें आविर्भूत हुईं और वे देवी 'सीतादेवी'—इस नामसे विख्यात हुईं, जिनके कारण रावण मारा गया। पूर्वजन्मकी तपस्याके प्रभावसे उस महान् तपस्विनी वेदवतीने परिपूर्णतम भगवान् श्रीरामको पतिरूपमें प्राप्त किया। तपस्याके द्वारा उस देवीने अत्यन्त कठिनतासे सन्तुष्ट होनेवाले तथा सबके आराध्य जगत्पति श्रीरामको प्राप्त किया था। उस सुन्दरी सीताने अत्यन्त दीर्घ कालतक भगवान् श्रीरामके साथ विलास किया॥ २१—२३॥

उसे पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण था, फिर भी पूर्व समयमें तपस्याके कष्टपर उसने ध्यान नहीं दिया। उसने सुखपूर्वक उस क्लेशका त्याग कर दिया था; क्योंकि परिणामके उत्तम होनेपर दुःख भी सुखके रूपमें हो जाता है॥ २४॥

उन सुकुमार श्रीरामको प्राप्त करके उस नवयौवना साध्वीने दीर्घकालतक नाना प्रकारके ऐश्वर्यको प्राप्त किया। उसने अपनी अभिलाषाके अनुरूप ही गुणवान्, रसिक, शान्त, कमनीय, स्त्रियोंके लिये कामदेवतुल्य मनोहर एवं सर्वश्रेष्ठ देवको प्राप्त किया था॥ २५-२६॥

पितुः सत्यपालनार्थं सत्यसन्धो रघूद्वहः।
जगाम काननं पश्चात्कालेन च बलीयसा॥ २७

तस्थौ समुद्रनिकटे सीतया लक्ष्मणेन च।
ददर्श तत्र वह्निं च विप्ररूपधरं हरिः॥ २८

रामं च दुःखितं दृष्ट्वा स च दुःखी बभूव ह।
उवाच किञ्चित्सत्येष्टं सत्यं सत्यपरायणः॥ २९

द्विज उवाच

भगवञ्छ्रूयतां राम कालोऽयं यदुपस्थितः।
सीताहरणकालोऽयं तवैव समुपस्थितः॥ ३०

दैवं च दुर्निवार्यं च न च दैवात्परो बली।
जगत्प्रसूं मयि न्यस्य छायां रक्षान्तिकेऽधुना॥ ३१

दास्यामि सीतां तुभ्यं च परीक्षासमये पुनः।
देवैः प्रस्थापितोऽहं च न च विप्रो हुताशनः॥ ३२

रामस्तद्वचनं श्रुत्वा न प्रकाश्य च लक्ष्मणम्।
स्वीकारं वचसश्चक्रे हृदयेन विदूयता॥ ३३

वह्निर्योगेन सीताया मायासीतां चकार ह।
तत्तुल्यगुणसर्वाङ्गां ददौ रामाय नारद॥ ३४

सीतां गृहीत्वा स ययौ गोप्यं वक्तुं निषिध्य च।
लक्ष्मणो नैव बुबुधे गोप्यमन्यस्य का कथा॥ ३५

एतस्मिन्नन्तरे रामो ददर्श कानकं मृगम्।
सीता तं प्रेरयामास तदर्थे यत्नपूर्वकम्॥ ३६

संन्यस्य लक्ष्मणं रामो जानक्या रक्षणे वने।
स्वयं जगाम तूर्णं तं विव्याध सायकेन च॥ ३७

तदनन्तर रघुकुलकी वृद्धि करनेवाले सत्यसंकल्प श्रीराम बलवान् कालसे प्रेरित होकर अपने पिताके वचनको सत्य करनेके लिये वनमें चले गये॥ २७॥

वे सीता और लक्ष्मणके साथ समुद्रके समीप स्थित थे। उसी समय भगवान्ने विप्ररूपधारी अग्निदेवको वहाँ देखा। तब श्रीरामको दुःखित देखकर अग्नि भी बहुत दुःखी हुए। इसके बाद सत्यपरायण वे अग्निदेव सत्यप्रेमी भगवान् श्रीरामसे यह सत्यवचन कहने लगे॥ २८-२९॥

द्विज बोले—हे भगवन्! हे श्रीराम! सुनिये, यह जो काल आपके समक्ष उपस्थित है, वह सीता-हरणके समयके रूपमें ही आया हुआ है। दैवका प्रतिकार अत्यन्त कठिन है, उस दैवसे बढ़कर बलवान् अन्य कोई नहीं है। अतः आप इस समय जगज्जननी सीताको मुझमें स्थापित करके छायामयी सीताको अपने साथ रख लीजिये। इनकी परीक्षाका समय आनेपर मैं इन सीताको पुनः आपको सौंप दूँगा। मैं ब्राह्मण नहीं हूँ, अपितु इसी कार्यहेतु देवताओंके द्वारा भेजा गया साक्षात् अग्निदेव हूँ॥ ३०—३२॥

श्रीरामने उनकी यह बात सुनकर लक्ष्मणको बताये बिना ही अत्यन्त दुःखी मनसे वह वचन स्वीकार कर लिया॥ ३३॥

हे नारद! तत्पश्चात् अग्निदेवने योगबलसे सीताके ही समान एक माया-सीताकी रचना की। इसके बाद अग्निने गुण और स्वरूपमें उस सीताके ही तुल्य माया-सीताको श्रीरामको सौंप दिया॥ ३४॥

श्रीराम इस गुप्त रहस्यको प्रकट करनेका निषेध करके माया-सीताको साथ लेकर चल पड़े। लक्ष्मणतक इस रहस्यको नहीं जान पाये तो दूसरेकी बात ही क्या॥ ३५॥

इसी बीच श्रीरामने एक स्वर्णमृग देखा। तब सीता जिस किसी भी यत्नसे उसे लानेके लिये श्रीरामको प्रेरित करने लगीं॥ ३६॥

श्रीराम उस वनमें सीताकी रक्षाके लिये लक्ष्मणको वहींपर नियुक्त करके स्वयं शीघ्रतापूर्वक मृगकी ओर दौड़ पड़े और बाणसे उसका वध कर दिया॥ ३७॥

लक्ष्मणेति च शब्दं स कृत्वा च मायया मृगः।
प्राणांस्तत्याज सहसा पुरो दृष्ट्वा हरिं स्मरन्॥ ३८

उस मायामृगने 'हा लक्ष्मण'—यह शब्द करके अपने समक्ष भगवान् श्रीहरिका दर्शन प्राप्त करके उनका स्मरण करते हुए सहसा अपने प्राण त्याग दिये॥ ३८॥

मृगदेहं परित्यज्य दिव्यरूपं विधाय च।
रत्ननिर्माणयानेन वैकुण्ठं स जगाम ह॥ ३९

वैकुण्ठलोकद्वार्यासीत्किङ्करो द्वारपालयोः।
पुनर्जगाम तद्द्वारमादेशाद् द्वारपालयोः॥ ४०

मृगका शरीर त्यागकर दिव्य स्वरूप धारण करके वह रत्ननिर्मित विमानसे वैकुण्ठ चला गया। वह मारीच पूर्वजन्ममें दोनों द्वारपालोंके सेवकके रूपमें वैकुण्ठके द्वारपर रहता था। अब द्वारपालोंके आदेशानुसार वह फिर वैकुण्ठके द्वारपर पहुँच गया॥ ३९-४०॥

अथ शब्दं च सा श्रुत्वा लक्ष्मणेति च विक्लवम्।
तं हि सा प्रेरयामास लक्ष्मणं रामसन्निधौ॥ ४१

इधर 'हा लक्ष्मण'—यह आर्तनाद सुनकर सीताने रामके पास जानेके लिये लक्ष्मणको प्रेरित किया॥ ४१॥

गते च लक्ष्मणे रामं रावणो दुर्निवारणः।
सीतां गृहीत्वा प्रययौ लङ्कामेव स्वलीलया॥ ४२

रामके पास लक्ष्मणके चले जानेपर अत्यन्त दुर्धर्ष वह रावण अपनी मायासे सीताका हरण करके लंकाकी ओर चल दिया॥ ४२॥

विषसाद च रामश्च वने दृष्ट्वा च लक्ष्मणम्।
तूर्णं च स्वाश्रमं गत्वा सीतां नैव ददर्श सः॥ ४३

मूर्च्छां सम्प्राप सुचिरं विललाप भृशं पुनः।
पुनः पुनश्च बभ्राम तदन्वेषणपूर्वकम्॥ ४४

लक्ष्मणको वनमें देखकर श्रीराम विषादग्रस्त हो गये। अपने आश्रमपर तत्काल पहुँचकर जब उन्होंने सीताको नहीं देखा तब वे मूर्च्छित हो गये और पुनः [चेतना आनेपर] उन्होंने बार-बार बहुत विलाप किया। इसके बाद सीताको खोजते हुए वे बार-बार इधर-उधर भटकने लगे॥ ४३-४४॥

कालेन प्राप्य तद्वार्तां गोदावरीनदीतटे।
सहायान्वानरान्कृत्वा बबन्ध सागरं हरिः॥ ४५

कुछ समय पश्चात् गोदावरीनदीके तटपर सीताका समाचार मिलनेपर भगवान् श्रीरामने वानरोंको अपना सहायक बनाकर समुद्रपर पुल बाँधा॥ ४५॥

लङ्कां गत्वा रघुश्रेष्ठो जघान सायकेन च।
कालेन प्राप्य तं हत्वा रावणं बान्धवैः सह॥ ४६

तां च वह्निपरीक्षां च कारयामास सत्वरम्।
हुताशस्तत्र काले तु वास्तवीं जानकीं ददौ॥ ४७

पुनः समय आनेपर लंका जाकर उन रघुश्रेष्ठ रामने बाणसे रावणको मार डाला। इस प्रकार बान्धवोंसहित उस रावणका वध करके श्रीरामने तत्काल उन सीताकी अग्निपरीक्षा करायी। उसी समय अग्निदेवने वास्तविक सीता श्रीरामको सौंप दी॥ ४६-४७॥

उवाच छाया वह्निं च रामं च विनयान्विता।
करिष्यामीति किमहं तदुपायं वदस्व मे॥ ४८

तब छायामयी सीताने विनम्र होकर अग्निदेव और श्रीरामसे कहा—अब मैं क्या करूँ? मुझे वह उपाय बताइये॥ ४८॥

श्रीरामाग्नी ऊचतुः

त्वं गच्छ तपसे देवि पुष्करं च सुपुण्यदम्।
कृत्वा तपस्यां तत्रैव स्वर्गलक्ष्मीर्भविष्यसि॥ ४९

सा च तद्वचनं श्रुत्वा प्रतप्य पुष्करे तपः।
दिव्यं त्रिलक्षवर्षं च स्वर्गलक्ष्मीर्बभूव ह॥ ५०

श्रीराम और अग्निदेव बोले—हे देवि! तुम तपस्या करनेके लिये अत्यन्त पुण्यप्रद पुष्करक्षेत्रमें जाओ। वहाँ तपस्या करके तुम स्वर्गलक्ष्मी बनोगी। वे यह वचन सुनकर पुष्करक्षेत्रमें जाकर दिव्य तीन लाख वर्षोंतक कठिन तपस्या करके स्वर्गलक्ष्मीके रूपमें प्रतिष्ठित हो गयीं॥ ४९-५०॥

सा च कालेन तपसा यज्ञकुण्डसमुद्भवा।
कामिनी पाण्डवानां च द्रौपदी द्रुपदात्मजा॥ ५१

कालक्रमसे वे ही देवी तपस्याके प्रभावसे यज्ञकुण्डसे उत्पन्न होकर महाराज द्रुपदकी पुत्री तथा पाण्डवोंकी प्रिया द्रौपदी बनीं॥ ५१॥

कृते युगे वेदवती कुशध्वजसुता शुभा।
त्रेतायां रामपत्नी च सीतेति जनकात्मजा॥ ५२

तच्छाया द्रौपदी देवी द्वापरे द्रुपदात्मजा।
त्रिहायणी च सा प्रोक्ता विद्यमाना युगत्रये॥ ५३

इस प्रकार सत्ययुगमें कुशध्वजकी वही कन्या कल्याणमयी वेदवती त्रेतायुगमें जनककी पुत्री सीता हुईं और बादमें वे श्रीरामकी पत्नी बनीं। पुनः वही छायासीता द्वापरमें द्रुपदकी पुत्री देवी द्रौपदीके रूपमें आविर्भूत हुईं। अतः तीनों युगोंमें विद्यमान रहनेवाली उस देवीको 'त्रिहायणी' भी कहा गया है॥ ५२-५३॥

नारद उवाच

प्रियाः पञ्च कथं तस्या बभूवुर्मुनिपुङ्गव।
इति मच्चित्तसंदेहं भञ्ज संदेहभञ्जन॥ ५४

नारदजी बोले—शंकाओंका समाधान करनेवाले हे मुनिश्रेष्ठ! उस द्रौपदीके पाँच पति कैसे हुए? मेरे मनका यह सन्देह दूर कीजिये॥ ५४॥

श्रीनारायण उवाच

लङ्कायां वास्तवी सीता रामं सम्प्राप नारद।
रूपयौवनसम्पन्ना छाया च बहुचिन्तया॥ ५५

श्रीनारायण बोले—हे नारद! जब लंकामें वास्तविक सीता भगवान् रामको प्राप्त हो गयीं, तब रूप एवं यौवनसे सम्पन्न छायासीता महान् चिन्तासे व्याकुल हो उठी॥ ५५॥

रामाग्न्योराज्ञया तप्तुमुपास्ते शङ्करं परम्।
कामातुरा पतिव्यग्रा प्रार्थयन्ती पुनः पुनः॥ ५६

पतिं देहि पतिं देहि पतिं देहि त्रिलोचन।
पतिं देहि पतिं देहि पञ्चवारं चकार सा॥ ५७

तदनन्तर भगवान् श्रीराम और अग्निकी आज्ञाके अनुसार वह भगवान् शंकरकी उपासनामें तत्पर हो गयी। कामातुर वह पतिप्राप्तिके लिये व्यग्र होकर बार-बार यही प्रार्थना करने लगी—'हे त्रिलोचन! मुझे पति प्रदान कीजिये'। ऐसा उसने पाँच बार कहा था॥ ५६-५७॥

शिवस्तत्प्रार्थनां श्रुत्वा प्रहस्य रसिकेश्वरः।
प्रिये तव प्रियाः पञ्च भविष्यन्ति वरं ददौ॥ ५८

तेन सा पाण्डवानां च बभूव कामिनी प्रिया।
इति ते कथितं सर्वं प्रस्तावं वास्तवं शृणु॥ ५९

उस प्रार्थनाको सुनकर रसिकेश्वर शंकरने हँसकर यह वर दे दिया—'हे प्रिये! तुम्हारे पाँच पति होंगे'। [हे नारद!] इसीलिये वे छायासीता [द्वापरमें] पाँचों पाण्डवोंकी प्रिय भार्या हुईं। इस प्रकार मैंने आपको यह सब बता दिया, अब वास्तविक प्रसंग सुनिये॥ ५८-५९॥

अथ सम्प्राप्य लङ्कायां सीतां रामो मनोहराम्।
विभीषणाय तां लङ्कां दत्त्वायोध्यां ययौ पुनः॥ ६०

एकादशसहस्राब्दं कृत्वा राज्यं च भारते।
जगाम सर्वैर्लोकैश्च सार्धं वैकुण्ठमेव च॥ ६१
कमलांशा वेदवती कमलायां विवेश सा।

भगवान् श्रीराम लंकामें मनोहारिणी सीताको पा जानेके अनन्तर वह लंका विभीषणको सौंपकर अयोध्या वापस चले गये और भारतवर्षमें ग्यारह हजार वर्षोंतक राज्य करके समस्त पुरवासियों-सहित वैकुण्ठ चले गये। लक्ष्मीके अंशसे प्रादुर्भूत वह वेदवती लक्ष्मीके विग्रहमें समाविष्ट हो गयी॥ ६०-६१½॥

कथितं पुण्यमाख्यानं पुण्यदं पापनाशनम्॥ ६२

सततं मूर्तिमन्तश्च वेदाश्चत्वार एव च।
सन्ति यस्याश्च जिह्वाग्रे सा च वेदवती श्रुता॥ ६३

धर्मध्वजसुताख्यानं निबोध कथयामि ते॥ ६४

इस प्रकार मैंने यह पवित्र, पुण्यदायक तथा पापनाशक आख्यान आपसे कह दिया। मूर्तिमान् रूपमें चारों वेद उसकी जिह्वाके अग्रभागपर निरन्तर विराजमान रहते थे, इसीलिये वह वेदवती नामसे प्रसिद्ध थी। अब मैं आपको धर्मध्वजकी कन्याका आख्यान बता रहा हूँ; ध्यानपूर्वक सुनिये॥ ६२—६४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे महालक्ष्म्या वेदवतीरूपेण राजगृहे जन्मवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः॥ १६॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः

भगवती तुलसीके प्रादुर्भावका प्रसंग

श्रीनारायण उवाच

धर्मध्वजस्य पत्नी माधवीति च विश्रुता।
नृपेण सार्धं सारामे रेमे च गन्धमादने॥ १

शय्यां रतिकरीं कृत्वा पुष्पचन्दनचर्चिताम्।
चन्दनालिप्तसर्वाङ्गी पुष्पचन्दनवायुना॥ २

स्त्रीरत्नमतिचार्वङ्गी रत्नभूषणभूषिता।
कामुकी रसिका सृष्टा रसिकेन च संयुता॥ ३

सुरते विरतिर्नास्ति तयोः सुरतिविज्ञयोः।
गतं देववर्षशतं न ज्ञातं च दिवानिशम्॥ ४

ततो राजा मतिं प्राप्य सुरताद्विरराम च।
कामुकी सुन्दरी किञ्चिन्न च तृप्तिं जगाम सा॥ ५

दधार गर्भं सा सद्यो दैवादब्दशतं सती।
श्रीगर्भा श्रीयुता सा च सम्बभूव दिने दिने॥ ६

शुभे क्षणे शुभदिने शुभयोगे च संयुते।
शुभलग्ने शुभांशे च शुभस्वामिग्रहान्विते॥ ७

कार्तिकीपूर्णिमायां तु सितवारे च पाद्मज।
सुषाव सा च पद्मांशां पद्मिनीं तां मनोहराम्॥ ८

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] राजा धर्मध्वजकी पत्नी माधवी नामसे प्रसिद्ध थी। वह राजाके साथ गन्धमादनपर्वतपर एक सुरम्य उपवनमें विहार करती थी॥ १॥

पुष्प और चन्दनसे सुरभित सुखदायी शय्यापर अपने समस्त अंगोंको चन्दनसे सुसज्जितकर, रत्नाभरणोंसे विभूषित हो पुष्प-चन्दनादिसे सुगन्धित पवनका सुख लेते हुए वह स्त्रीरत्नस्वरूपिणी सर्वांगसुन्दरी अपने रसिक पतिके साथ कामोपभोगमें लगी रहती थी॥ २-३॥

रतिक्रीड़ाके विज्ञ वे दोनों कभी भी भोगसे विरत नहीं होते थे। इस प्रकार उनके दिव्य सौ वर्ष व्यतीत हो गये, किंतु उन्हें दिन-रातका भी ज्ञान नहीं रहा॥ ४॥

तदनन्तर राजाके हृदयमें कुछ ज्ञानका उदय होनेपर वे भोगसे विरत हो गये, किंतु वह कामासक्त सुन्दरी पूर्ण रूपसे तृप्त नहीं हुई। दैवयोगसे उसने शीघ्र ही गर्भ धारण कर लिया। श्रीस्वरूप गर्भवाली वह दिनों-दिन सौन्दर्यसम्पन्न होती गयी। उस साध्वीका गर्भ सौ वर्षोंतक रहा॥ ५-६॥

हे नारद! उस माधवीने कार्तिकपूर्णिमा तिथिमें शुक्रवारको शुभ दिन, शुभ योग, शुभ क्षण, शुभ लग्न, शुभ अंश तथा शुभ स्वामिग्रहसे युक्त उत्तम मुहूर्तमें लक्ष्मीकी अंशस्वरूपिणी तथा पद्मिनीतुल्य एक मनोहर कन्याको जन्म दिया॥ ७-८॥

शरत्पार्वणचन्द्रास्यां शरत्पङ्कजलोचनाम्।
पक्वबिम्बाधरोष्ठीं च पश्यन्तीं सस्मितां गृहम्॥ ९

हस्तपादतलारक्तां निम्ननाभिं मनोरमाम्।
तदधस्त्रिवलीयुक्तां नितम्बयुगवर्तुलाम्॥ १०

शीते सुखोष्णसर्वाङ्गीं ग्रीष्मे च सुखशीतलाम्।
श्यामां सुकेशीं रुचिरां न्यग्रोधपरिमण्डलाम्॥ ११

पीतचम्पकवर्णाभां सुन्दरीष्वेव सुन्दरीम्।
नरा नार्यश्च तां दृष्ट्वा तुलनां दातुमक्षमाः॥ १२

तेन नाम्ना च तुलसीं तां वदन्ति मनीषिणः।
सा च भूमिष्ठमात्रेण योग्या स्त्री प्रकृतिर्यथा॥ १३

सर्वैर्निषिद्धा तपसे जगाम बदरीवनम्।
तत्र देवाब्दलक्षं च चकार परमं तपः॥ १४

मनसा नारायणः स्वामी भवितेति च निश्चिता।
ग्रीष्मे पञ्चतपाः शीते तोयवस्त्रा च प्रावृषि॥ १५

आसनस्था वृष्टिधाराः सहन्तीति दिवानिशम्।
विंशत्सहस्त्रवर्षं च फलतोयाशना च सा॥ १६

त्रिंशत्सहस्त्रवर्षं च पत्राहारा तपस्विनी।
चत्वारिंशत्सहस्त्राब्दं वाय्वाहारा कृशोदरी॥ १७

ततो दशसहस्त्राब्दं निराहारा बभूव सा।
निर्लक्ष्यां चैकपादस्थां दृष्ट्वा तां कमलोद्भवः॥ १८

समाययौ वरं दातुं परं बदरिकाश्रमम्।
चतुर्मुखं च सा दृष्ट्वा ननाम हंसवाहनम्॥ १९
तामुवाच जगत्कर्ता विधाता जगतामपि।

उस कन्याका मुख शरत्-पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान था, उसके नेत्र शरत्कालीन कमलके समान थे, ओष्ठ पके हुए बिम्बाफलके सदृश थे, उस समय वह कन्या मुसकराती हुई अपने घरको देख रही थी, उसके हाथ-पैरके तलवे लाल थे, उसकी नाभि गम्भीर थी, उसका विग्रह मनको मुग्ध कर देनेवाला था, उसका कटिप्रदेश तीन वलियोंसे युक्त था। उसके दोनों नितम्ब गोल थे। शीतकालमें सुख देनेके लिये वह सम्पूर्ण उष्ण अंगोंवाली और ग्रीष्मकालमें शीतल अंगोंवाली थी। वह श्यामा सुन्दरी वटवृक्षको घेरकर शोभित होनेवाले वरोहोंकी भाँति बड़े सुन्दर केशपाशसे सुसज्जित थी, वह पीत चम्पकके वर्णके समान आभावाली थी, वह सुन्दरियोंकी भी सुन्दरी थी—ऐसे अनुपम सौन्दर्यवाली उस कन्याको देखकर सभी स्त्री और पुरुष किसीके साथ उसकी तुलना करनेमें असमर्थ थे, इसलिये विद्वान् पुरुष उसे तुलसी नामसे पुकारते हैं। पृथ्वीपर आते ही वह प्रकृतिदेवी-जैसी योग्य स्त्री हो गयी॥ ९—१३॥

सभी लोगोंद्वारा मना किये जानेपर भी वह तपस्या करनेके उद्देश्यसे बदरीवन चली गयी और वहाँ उसने दिव्य एक लाख वर्षोंतक कठिन तप किया। स्वयं भगवान् नारायण मेरे स्वामी हों—ऐसा अपने मनमें निश्चय करके वह ग्रीष्मकालमें पंचाग्नि तापती थी, जाड़ेके समयमें गीले वस्त्र पहनती थी और वर्षाऋतुमें एक आसनपर बैठकर जलधाराओंको सहती हुई दिन-रात तप करती थी। वह तपस्विनी बीस हजार वर्षोंतक फल और जलके आहारपर, तीस हजार वर्षोंतक पत्तोंके आहारपर और चालीस हजार वर्षोंतक वायुके आहारपर रही। तत्पश्चात् वह कृशोदरी दस हजार वर्षोंतक निराहार रही॥ १४—१७½॥

इस प्रकार उसे निर्लक्ष्य होकर एक पैरपर स्थित रहकर तपस्या करते हुए देखकर ब्रह्माजी उसे वर प्रदान करनेके लिये उत्तम बदरिकाश्रम आये॥ १८½॥

हंसपर विराजमान चतुर्मुख ब्रह्माको देखकर उस तुलसीने प्रणाम किया। तब जगत्‌की सृष्टि करनेवाले तथा सम्पूर्ण लोकोंका विधान करनेवाले ब्रह्मा उससे कहने लगे—॥ १९½॥

ब्रह्मोवाच

वरं वृणीष्व तुलसि यत्ते मनसि वाञ्छितम्॥ २०

हरिभक्तिं हरेर्दास्यमजरामरतामपि।

तुलस्युवाच

शृणु तात प्रवक्ष्यामि यन्मे मनसि वाञ्छितम्॥ २१

सर्वज्ञस्यापि पुरतः का लज्जा मम साम्प्रतम्।
अहं तु तुलसी गोपी गोलोकेऽहं स्थिता पुरा॥ २२

कृष्णप्रिया किंकरी च तदंशा तत्सखी प्रिया।
गोविन्दरतिसम्भुक्तामतृप्तां मां च मूर्च्छिताम्॥ २३

रासेश्वरी समागत्य ददर्श रासमण्डले।
गोविन्दं भर्त्सयामास मां शशाप रुषान्विता॥ २४

याहि त्वं मानवीं योनिमित्येवं च शशाप ह।
मामुवाच स गोविन्दो मदंशं च चतुर्भुजम्॥ २५

लभिष्यसि तपस्तप्त्वा भारते ब्रह्मणो वरात्।
इत्येवमुक्त्वा देवेशोऽप्यन्तर्धानं चकार सः॥ २६

देव्या भिया तनुं त्यक्त्वा प्राप्तं जन्म गुरो भुवि।
अहं नारायणं कान्तं शान्तं सुन्दरविग्रहम्॥ २७

साम्प्रतं तं पतिं लब्धुं वरये त्वं च देहि मे।

ब्रह्मदेव उवाच

सुदामा नाम गोपश्च श्रीकृष्णाङ्गसमुद्भवः॥ २८

तदंशश्चातितेजस्वी लेभे जन्म च भारते।
साम्प्रतं राधिकाशापाद्दनुवंशसमुद्भवः॥ २९
शङ्खचूडेति विख्यातस्त्रैलोक्ये न च तत्समः।

गोलोके त्वां पुरा दृष्ट्वा कामोन्मथितमानसः॥ ३०

ब्रह्माजी बोले—हे तुलसि! हरिकी भक्ति, हरिकी दासता और अजरता-अमरता—इनमेंसे जो भी तुम्हारे मनमें अभीष्ट हो, उसे माँग लो॥ २०½ ॥

तुलसी बोली—हे तात! सुनिये, मेरे मनमें जो अभिलाषा है, उसे बता रही हूँ; क्योंकि सब कुछ जाननेवाले आप ब्रह्माके समक्ष अपनी बात कहनेमें मुझे अब लाज ही क्या है? मैं पूर्वजन्ममें तुलसी नामकी गोपी थी और गोलोकमें निवास करती थी। उस समय मैं भगवान् श्रीकृष्णकी प्रिया, उनकी अनुचरी, उनकी अंशस्वरूपा तथा उनकी प्रेयसी सखीके रूपमें प्रतिष्ठित थी॥ २१-२२½ ॥

एक समय जब मैं भगवान् श्रीकृष्णके साथ विहारमें अचेत तथा अतृप्त अवस्थामें थी, तभी रासकी अधिष्ठात्री देवी भगवती राधाने रासमण्डलमें आकर मुझे देख लिया। उन्होंने श्रीकृष्णकी बहुत भर्त्सना की और कुपित होकर मुझे शाप दे दिया था—'तुम मनुष्ययोनि प्राप्त करो'—यह शाप उन्होंने मुझे दे दिया॥ २३-२४½ ॥

तब उन गोविन्दने मुझसे कहा—'भारतवर्षमें जन्म लेकर घोर तपस्या करके तुम ब्रह्माजीके वरदानसे मेरे अंशस्वरूप चतुर्भुज विष्णुको पतिरूपमें प्राप्त करोगी'। इस प्रकार कहकर वे देवेश्वर श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये। हे गुरो! देवी राधाके भयसे अपना वह शरीर त्यागकर मैंने अब भूमण्डलपर जन्म लिया है और सुन्दर विग्रहवाले तथा शान्तस्वभाव भगवान् नारायण जो उस समय मेरे पति थे, उन्हींको अब भी पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये वर माँग रही हूँ, आप मुझे यह वर दीजिये॥ २५—२७½ ॥

ब्रह्मदेव बोले—भगवान् श्रीकृष्णके अंगसे प्रादुर्भूत, उन्हींके अंशस्वरूप तथा परम तेजस्वी सुदामा नामक गोपने भी इस समय भारतवर्षमें जन्म लिया है। वह राधाके शापसे दनुवंशमें उत्पन्न हुआ है और शंखचूड़ नामसे विख्यात है, उसके समान तीनों लोकोंमें कोई भी नहीं है॥ २८-२९½ ॥

पूर्वकालमें एक बार गोलोकमें तुम्हें देखकर उसके मनमें कामभावना उत्पन्न हो गयी, किंतु राधिकाके प्रभावके कारण वह तुम्हें नहीं पा सका

विलम्भितुं न शशाक राधिकायाः प्रभावतः।
स च जातिस्मरस्तस्मात्सुदामाभूच्च सागरे॥ ३१

जातिस्मरा त्वमपि सा सर्वं जानासि सुन्दरि।
अधुना तस्य पत्नी त्वं सम्भविष्यसि शोभने॥ ३२

पश्चान्नारायणं शान्तं कान्तमेव वरिष्यसि।
शापान्नारायणस्यैव कलया दैवयोगतः॥ ३३

भविष्यसि वृक्षरूपा त्वं पूता विश्वपावनी।
प्रधाना सर्वपुष्पेषु विष्णुप्राणाधिका भवेः॥ ३४

त्वया विना च सर्वेषां पूजा च विफला भवेत्।
वृन्दावने वृक्षरूपा नाम्ना वृन्दावनीति च॥ ३५

त्वत्पत्रैर्गोपिगोपाश्च पूजयिष्यन्ति माधवम्।
वृक्षाधिदेवीरूपेण सार्धं कृष्णेन सन्ततम्॥ ३६

विहरिष्यसि गोपेन स्वच्छन्दं मद्वरेण च।
इत्येवं वचनं श्रुत्वा सस्मिता हृष्टमानसा॥ ३७

प्रणनाम च ब्रह्माणं तं च किञ्चिदुवाच सा।

तुलस्युवाच

यथा मे द्विभुजे कृष्णे वाञ्छा च श्यामसुन्दरे॥ ३८

सत्यं ब्रवीमि हे तात न तथा च चतुर्भुजे।
अतृप्ताहं च गोविन्दे दैवाच्छृङ्गारभङ्गतः॥ ३९

गोविन्दस्यैव वचनात्प्रार्थयामि चतुर्भुजम्।
त्वत्प्रसादेन गोविन्दं पुनरेव सुदुर्लभम्॥ ४०

ध्रुवमेव लभिष्यामि राधाभीतिं प्रमोचय।

ब्रह्मदेव उवाच

गृहाण राधिकामन्त्रं ददामि षोडशाक्षरम्॥ ४१

था। वह सुदामा इस समय समुद्रमें उत्पन्न हुआ है। भगवान् श्रीकृष्णका अंश होनेसे उसे पूर्वजन्मकी सभी बातोंका स्मरण है। हे सुन्दरि! तुम्हें भी पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण है, अतः तुम सब कुछ भलीभाँति जाननेवाली हो। हे शोभने! अब इस जन्ममें तुम उसी सुदामाकी पत्नी बनोगी और बादमें शान्तस्वरूप भगवान् नारायणका पतिरूपमें वरण करोगी॥ ३०—३२½ ॥

दैवयोगसे उन्हीं भगवान् नारायणके शापसे तुम अपनी कलासे विश्वको पवित्र करनेवाली पावन वृक्षरूपमें प्रतिष्ठित होओगी। तुम समस्त पुष्पोंमें प्रधान मानी जाओगी और भगवान् विष्णुके लिये प्राणोंसे भी अधिक प्रिय रहोगी। तुम्हारे बिना की गयी सभी देवताओंकी पूजा व्यर्थ समझी जायगी। वृन्दावनमें वृक्षरूप तुम वृन्दावनी नामसे विख्यात रहोगी। समस्त गोप और गोपिकाएँ तुम्हारे पत्रोंसे ही भगवान् माधवकी पूजा करेंगे। तुम मेरे वरके प्रभावसे वृक्षोंकी अधिष्ठात्री देवी बनकर गोपस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णके साथ स्वेच्छापूर्वक निरन्तर विहार करोगी॥ ३३—३६½ ॥

[हे नारद!] ब्रह्माजीकी यह वाणी सुनकर तुलसी मुसकराने लगी और उसका चित्त प्रफुल्लित हो गया। उसने ब्रह्माजीको प्रणाम किया और फिर वह उनसे कुछ कहने लगी॥ ३७½ ॥

तुलसी बोली—हे तात! मैं यह सत्य कह रही हूँ कि दो भुजाओं वाले श्यामसुन्दर श्रीकृष्णके प्रति जैसी मेरी रुचि है, वैसी चार भुजाओंवाले श्रीविष्णुके लिये नहीं है; क्योंकि मैं दैवयोगसे शृंगार-भंग होनेके कारण गोविन्दसे अभी भी अतृप्त ही हूँ। मैं तो उन गोविन्दकी आज्ञामात्रसे ही चतुर्भुज श्रीहरिके लिये प्रार्थना कर रही हूँ। अब तो मैं आपकी कृपासे उन अत्यन्त दुर्लभ गोविन्दको निश्चितरूपसे प्राप्त कर लूँगी। हे प्रभो! साथ ही आप मुझे राधाके भयसे भी मुक्त कर दीजिये॥ ३८—४०½ ॥

ब्रह्मदेव बोले—हे सुभगे! मैं तुम्हें भगवती राधिकाका सोलह अक्षरोंवाला मन्त्र प्रदान करता हूँ; तुम इसे ग्रहण कर लो। तुम मेरे वरके प्रभावसे उन

तस्याश्च प्राणतुल्या त्वं मद्वरेण भविष्यसि।
शृङ्गारं युवयोर्गोप्यं न ज्ञास्यति च राधिका॥ ४२

राधासमा त्वं सुभगे गोविन्दस्य भविष्यसि।
इत्येवमुक्त्वा दत्त्वा च देव्या वै षोडशाक्षरम्॥ ४३

मन्त्रं चैव जगद्धाता स्तोत्रं च कवचं परम्।
सर्वं पूजाविधानं च पुरश्चर्याविधिक्रमम्॥ ४४

परां शुभाशिषं चैव पूजां चैव चकार सा।
बभूव सिद्धा सा देवी तत्प्रसादाद्रमा यथा॥ ४५

सिद्धं मन्त्रेण तुलसी वरं प्राप यथोदितम्।
बुभुजे च महाभोगं यद्विश्वेषु च दुर्लभम्॥ ४६

प्रसन्नमनसा देवी तत्याज तपसः क्लमम्।
सिद्धे फले नराणां च दुःखं च सुखमुत्तमम्॥ ४७

भुक्त्वा पीत्वा च सन्तुष्टा शयनं च चकार सा।
तल्पे मनोरमे तत्र पुष्पचन्दनचर्चिते॥ ४८

राधाके लिये प्राणतुल्य हो जाओगी। तुम दोनों (श्रीकृष्ण और तुलसी)-के गुप्त प्रेमको राधिका नहीं जान पायेंगी। राधाके समान ही तुम गोविन्दकी प्रेयसी हो जाओगी॥ ४१-४२½॥

[हे मुने!] ऐसा कहकर जगत्‌की रचना करनेवाले ब्रह्माने देवी तुलसीको भगवती राधाके षोडशाक्षर-मन्त्र, स्तोत्र, उत्तम कवच, समस्त पूजाविधान और पुरश्चर्याविधिके क्रम बता करके उसे उत्तम शुभाशीर्वाद प्रदान किया। तत्पश्चात् तुलसीने [पूर्वोक्त विधिसे भगवती राधाका] पूजन किया और उनकी कृपासे वह देवी तुलसी भगवती लक्ष्मीके समान सिद्ध हो गयी॥ ४३—४५॥

ब्रह्माजीने जैसा कहा था, उस मन्त्रके प्रभावसे ठीक वैसा ही वर तुलसीको प्राप्त हो गया। उसने विश्वमें दुर्लभ महान् सुखोंका भोग किया। मन प्रसन्न हो जानेके कारण उस देवीके तपस्याजनित सभी कष्ट दूर हो गये; क्योंकि फलकी प्राप्ति हो जानेके बाद मनुष्योंका दुःख उत्तम सुखमें परिणत हो जाता है॥ ४६-४७॥

तदनन्तर भोजन-पानादि करके तथा सन्तुष्ट होकर उस तुलसीने पुष्प-चन्दनसे चर्चित मनोहर शय्यापर शयन किया॥ ४८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे नारायणनारदसंवादे धर्मध्वजसुतातुलस्युपाख्यानवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥



अथाष्टादशोऽध्यायः

तुलसीको स्वप्नमें शंखचूड़का दर्शन, ब्रह्माजीका शंखचूड़ तथा तुलसीको विवाहके लिये आदेश देना

श्रीनारायण उवाच

तुलसी परितुष्टा च सुष्वाप हृष्टमानसा।
नवयौवनसम्पन्ना वृषध्वजवराङ्गना॥ १

चिक्षेप पञ्चबाणश्च पञ्चबाणांश्च तां प्रति।
पुष्पायुधेन सा दग्धा पुष्पचन्दनचर्चिता॥ २

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] एक समयकी बात है—वृषध्वजकी नवयौवनसम्पन्न कन्या तुलसी अत्यन्त सन्तुष्ट तथा प्रसन्नचित्त होकर शयन कर रही थी॥ १॥

उसी समय कामदेवने उसपर अपने पाँचों बाण चला दिये। पुष्प तथा चन्दनसे अनुलिप्त अंगोंवाली वह कन्या कामदेवके पुष्प-बाणसे परितप्त हो गयी। उसका सारा अंग पुलकित हो उठा, उसके शरीरमें

पुलकाङ्कितसर्वाङ्गी कम्पितारक्तलोचना।
क्षणं सा शुष्कतां प्राप क्षणं मूर्च्छामवाप ह॥ ३

क्षणमुद्विग्नतां प्राप क्षणं तन्द्रां सुखावहाम्।
क्षणं च दहनं प्राप क्षणं प्राप प्रसन्नताम्॥ ४

क्षणं सा चेतनां प्राप क्षणं प्राप विषण्णताम्।
उत्तिष्ठन्ती क्षणं तल्पाद् गच्छन्ती निकटे क्षणम्॥ ५

भ्रमन्ती क्षणमुद्वेगान्निवसन्ती क्षणं पुनः।
क्षणमेव समुद्वेगात्सुष्वाप पुनरेव सा॥ ६

पुष्पचन्दनतल्पं च तद् बभूवातिकण्टकम्।
विषहारि सुखं दिव्यं सुन्दरं च फलं जलम्॥ ७

निलयं च बिलाकारं सूक्ष्मवस्त्रं हुताशनः।
सिन्दूरपत्रकं चैव व्रणतुल्यं च दुःखदम्॥ ८

क्षणं ददर्श तन्द्रायां सुवेषं पुरुषं सती।
सुन्दरं च युवानं च सस्मितं रसिकेश्वरम्॥ ९

चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं रत्नभूषणभूषितम्।
आगच्छन्तं माल्यवन्तं पिबन्तं तन्मुखाम्बुजम्॥ १०

कथयन्तं रतिकथां ब्रुवन्तं मधुरं मुहुः।
सम्भुक्तवन्तं तल्पे च समाश्लिष्यन्तमीप्सितम्॥ ११

पुनरेव तु गच्छन्तमागच्छन्तं च सन्निधौ।
यान्तं क्व यासि प्राणेश तिष्ठत्येवमुवाच सा॥ १२

पुनश्च चेतनां प्राप्य विललाप पुनः पुनः।
एवं सा यौवनं प्राप्य तस्थौ तत्रैव नारद॥ १३

शङ्खचूडो महायोगी जैगीषव्यान्मनोहरम्।
कृष्णमन्त्रं च सम्प्राप्य कृत्वा सिद्धं तु पुष्करे॥ १४

कँपकँपी होने लगी और उसकी आँखें लाल हो गयीं। वह क्षणभरमें सूख जाती थी और दूसरे क्षणमें मूर्च्छित हो जाती थी, पुनः क्षणभरमें उद्विग्न हो उठती थी और फिर क्षणभरमें सुखदायक तन्द्रासे युक्त हो जाती थी। वह क्षणभरमें उत्तप्त हो जाती थी और फिर तुरंत प्रसन्न हो जाती थी। क्षणभरमें सचेत हो जाती थी और क्षणमें विषादग्रस्त हो जाती थी। वह कभी शय्यासे उठती हुई, कभी क्षणभरमें पासमें ही टहलती हुई, क्षणभरमें उद्वेगपूर्वक घूमती हुई और क्षणभरमें बैठती हुई दिखायी पड़ती थी और फिर क्षणभरमें ही अत्यन्त उद्विग्न होकर अपनी शय्यापर पुनः सो जाती थी॥ २—६॥

पुष्प तथा चन्दनसे सुसज्जित शय्या उसे काँटों-जैसी लगने लगी, दिव्य सुख और सुन्दर फल तथा जल उसके लिये विषतुल्य हो गये। उसे अपना भव्य भवन बिलके समान, शरीरके कोमल वस्त्र अग्निके समान और मस्तकका सिन्दूर दुःखदायी व्रणके समान लगने लगा॥ ७-८॥

थोड़ी देरमें तन्द्राकी अवस्थामें उस साध्वी तुलसीने सुन्दर वेष धारण किये हुए, अपने सभी अंगोंमें चन्दन लगाये हुए तथा रत्नमय आभूषणोंसे अलंकृत एक सुन्दर युवा अवस्थावाले, मुसकानयुक्त तथा परम रसिक पुरुषको देखा। मालासे सुशोभित वह युवक उसके मुखकमलका पान करनेके लिये उसकी ओर आ रहा था, वह निरन्तर रतिक्रीड़ा-सम्बन्धी कथाएँ कह रहा था और मधुर-मधुर बोल रहा था तथा सहसा अपनी भुजाओंमें आलिंगित करके शय्यापर विहार कर रहा था। कुछ ही क्षणोंमें वह चला गया और फिर पास आ गया। इसके बाद पुनः जाते हुए उस युवकसे तुलसीने कहा—'हे प्राणनाथ! आप कहाँ जा रहे हैं? बैठ जाइये।' तत्पश्चात् जाग जानेपर वह तुलसी बार-बार विलाप करने लगी। हे नारद! इस प्रकार युवावस्थाको प्राप्तकर वह तुलसी वहींपर स्थित रही॥ ९—१३॥

शंखचूड़ जैगीषव्यमुनिसे श्रीकृष्णका मनोहर मन्त्र प्राप्त करके और उस मन्त्रको पुष्करक्षेत्रमें सिद्ध करके महान् योगी हो गया था। सभी मंगलोंका भी

कवचं च गले बद्ध्वा सर्वमङ्गलमङ्गलम्।
ब्रह्मणश्च वरं प्राप्य यत्ते मनसि वाञ्छितम्॥ १५

आज्ञया ब्रह्मणः सोऽपि बदरीं च समाययौ।
आगच्छन्तं शङ्खचूडं ददर्श तुलसी मुने॥ १६

नवयौवनसम्पन्नं कामदेवसमप्रभम्।
श्वेतचम्पकवर्णाभं रत्नभूषणभूषितम्॥ १७

शरत्पार्वणचन्द्रास्यं शरत्पङ्कजलोचनम्।
रत्नसारविनिर्माणविमानस्थं मनोहरम्॥ १८

रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजितम्।
पारिजातप्रसूनानां मालावन्तं च सुस्मितम्॥ १९

कस्तूरीकुङ्कुमायुक्तं सुगन्धिचन्दनान्वितम्।
सा दृष्ट्वा सन्निधावेनं मुखमाच्छाद्य वाससा॥ २०

सस्मिता तं निरीक्षन्ती सकटाक्षं पुनः पुनः।
बभूवातिनम्रमुखी नवसङ्गमलज्जिता॥ २१

शरदिन्दुविनिन्द्यैकस्वमुखेन्दुविराजिता।
अमूल्यरत्ननिर्माणयावकावलिसंयुता॥ २२

मणीन्द्रसारनिर्माणक्वणन्मञ्जीररञ्जिता।
दधती कबरीभारं मालतीमाल्यसंयुतम्॥ २३

अमूल्यरत्ननिर्माणमकराकृतिकुण्डला।
चित्रकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजिता॥ २४

रत्नेन्द्रसारहारेण स्तनमध्यस्थलोज्ज्वला।
रत्नकङ्कणकेयूरशङ्खभूषणभूषिता॥ २५

रत्नाङ्गुलीयकैर्दिव्यैरङ्गुल्यावलिराजिता।
दृष्ट्वा तां ललितां रम्यां सुशीलां सुन्दरीं सतीम्॥ २६
उवास तत्समीपे तु मधुरं तामुवाच सः।

मंगल करनेवाले उस कवचको गलेमें बाँधकर और ब्रह्माजीसे 'जो तुम्हारे मनमें अभिलषित हो, वह पूर्ण हो जाय'—ऐसा वर प्राप्तकर वह शंखचूड़ भी ब्रह्माकी आज्ञासे बदरीवन आ गया॥ १४-१५½॥

हे मुने! तुलसीने आते हुए शंखचूड़को देख लिया। वह नवयौवनसे सम्पन्न था, उसकी कान्ति कामदेवके समान थी, उसका वर्ण श्वेत चम्पाकी आभाके समान था, वह रत्नमय आभूषणोंसे सुशोभित था, उसका मुखमण्डल शरत्पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान था, उसके नेत्र शरत्कालीन कमलसदृश थे, वह अमूल्य रत्नोंसे निर्मित विमानपर विराजमान था, वह अत्यन्त मनोहर था, दो रत्नमय कुण्डलोंसे उसका गण्डस्थल शोभायमान था, उसने पारिजात पुष्पोंकी माला धारण कर रखी थी, उसका मुखमण्डल मुसकानसे भरा हुआ था और उसका सर्वांग कस्तूरी, कुमकुमसे युक्त तथा सुगन्धित चन्दनसे अनुलिप्त था—ऐसे शंखचूड़को अपने पास देखकर वस्त्रसे अपना मुख ढँककर मुसकराती हुई तथा कटाक्षके साथ बार-बार उसकी ओर देखती हुई तुलसीने नवमिलनके कारण लज्जावश अपना मुख नीचेकी ओर झुका लिया॥ १६—२१॥

उसका चन्द्रसदृश मुख शरत्पूर्णिमाके चन्द्रमाको भी लज्जित कर रहा था, बहुमूल्य रत्नोंसे निर्मित नूपुरोंकी पंक्तिसे वह सुशोभित हो रही थी, सर्वोत्तम मणिसे निर्मित तथा सुन्दर शब्द करती हुई करधनीसे वह सुशोभित हो रही थी, वह मालतीके पुष्पोंकी मालासे सम्पन्न केशपाश धारण किये हुई थी, उसने बहुमूल्य रत्नोंसे बने हुए मकराकृत कुण्डल अपने कानोंमें धारण कर रखे थे, चित्रमय दो कुण्डलोंसे उसका गण्डस्थल सुशोभित था, सर्वोत्तम रत्नोंसे निर्मित हारके द्वारा उसके वक्ष:स्थलका मध्यभाग उज्ज्वल दिखायी दे रहा था, रत्नमय कंकण-केयूर-शंख आदि आभूषणोंसे वह सुशोभित थी। रत्नजटित दिव्य अँगूठियाँ उसकी अँगुलियोंको सुशोभित कर रही थीं—ऐसी भव्य, रमणीय, सुशील, सुन्दर तथा साध्वी तुलसीको देखकर वह शंखचूड़ उसके पास बैठ गया और मधुर वाणीमें उससे कहने लगा॥ २२—२६½॥

शङ्खचूड उवाच

का त्वं कस्य च कन्या च धन्या मान्या च योषिताम्॥ २७

का त्वं मानिनि कल्याणि सर्वकल्याणदायिनि।
मौनीभूते किङ्करे मां सम्भाषां कुरु सुन्दरि॥ २८

इत्येवं वचनं श्रुत्वा सकामा वामलोचना।
सस्मिता नम्रवदना सकामं तमुवाच सा॥ २९

तुलस्युवाच

धर्मध्वजसुताहं च तपस्यायां तपोवने।
तपस्विन्यहं तिष्ठामि कस्त्वं गच्छ यथासुखम्॥ ३०

कामिनीं कुलजातां च रहस्येकाकिनीं सतीम्।
न पृच्छति कुले जात इत्येवं मे श्रुतौ श्रुतम्॥ ३१

लम्पटोऽसत्कुले जातो धर्मशास्त्रार्थवर्जितः।
येनाश्रुतः श्रुतेरर्थः स कामीच्छति कामिनीम्॥ ३२

आपातमधुरां मत्तामन्तकां पुरुषस्य ताम्।
विषकुम्भाकाररूपाममृतास्यां च सन्ततम्॥ ३३

हृदये क्षुरधाराभां शश्वन्मधुरभाषिणीम्।
स्वकार्यपरिनिष्पत्त्यै तत्परां सततं च ताम्॥ ३४

कार्यार्थे स्वामिवशगामन्यथैवावशां सदा।
स्वान्तर्मलिनरूपां च प्रसन्नवदनेक्षणाम्॥ ३५

श्रुतौ पुराणे यासां च चरित्रमतिदूषितम्।
तासु को विश्वसेत्प्राज्ञः प्रज्ञावांश्च दुराशयः॥ ३६

तासां को वा रिपुर्मित्रं प्रार्थयन्ति नवं नवम्।
दृष्ट्वा सुवेषं पुरुषमिच्छन्ति हृदये सदा॥ ३७

शंखचूड़ बोला—हे मानिनि! हे कल्याणि! हे सर्वकल्याणदायिनि! तुम कौन हो और किसकी कन्या हो? तुम समस्त स्त्रियोंमें धन्य तथा मान्य हो। हे सुन्दरि! स्तब्ध हुए मुझ सेवकसे वार्तालाप करो॥ २७-२८॥

शंखचूड़का यह वचन सुनकर सुन्दर नेत्रोंवाली तथा कामयुक्त तुलसी उस कामपीड़ित शंखचूड़से मुसकराते हुए तथा नीचेकी ओर मुख झुकाकर कहने लगी॥ २९॥

तुलसी बोली—मैं धर्मध्वजकी पुत्री हूँ और इस तपोवनमें तपस्या करनेके निमित्त एक तपस्विनीके रूपमें रह रही हूँ। आप कौन हैं? आप यहाँसे सुखपूर्वक चले जाइये। श्रेष्ठ कुलमें उत्पन्न पुरुष उच्च कुलमें उत्पन्न किसी अकेली साध्वी कन्याके साथ एकान्तमें बातचीत नहीं करते—ऐसा मैंने श्रुतिमें सुना है॥ ३०-३१॥

जो नीच कुलमें उत्पन्न है तथा धर्मशास्त्रके ज्ञानसे वंचित है और जिसे श्रुतिका अर्थ सुननेका कभी अवसर नहीं मिला, वह दुराचारी व्यक्ति ही कामासक्त होकर परस्त्रीकी कामना करता है। स्त्री ऊपरसे बड़ी मधुर दिखायी देती है, किंतु सदा अभिमानमें चूर रहती है, पुरुषके लिये विनाशक होती है, वह विषसे परिपूर्ण ऐसे घटके सदृश होती है, जिसके मुखपर अमृत लगा हुआ हो, स्त्रीका हृदय छुरेकी धारके समान तीक्ष्ण होता है, किंतु ऊपरसे वह सदा मधुर बातें करती है, स्त्री अपना ही प्रयोजन सिद्ध करनेमें सदा तत्पर रहती है, अपने कार्यकी सिद्धिके लिये ही वह स्वामीके वशमें रहती है, अन्यथा वह सदा वशमें न रहनेवाली है, स्त्रीका हृदय अत्यन्त दूषित रहता है और उसके मुखमण्डल तथा नेत्रोंसे सदा प्रसन्नता झलकती रहती है॥ ३२—३५॥

श्रुतियों तथा पुराणोंमें जिन स्त्रियोंका चरित्र अत्यन्त दूषित बताया गया है; बुरे विचारवाले व्यक्तिको छोड़कर ऐसा कौन विद्वान् तथा बुद्धिमान् होगा, जो उनपर विश्वास कर सकता है॥३६॥

उनका कौन शत्रु है और कौन मित्र? वे नित्य नये-नये पुरुषकी कामना करती हैं। वे किसी भी सुन्दर वेषयुक्त पुरुषको देखकर उसे मन-ही-मन चाहने लगती हैं॥ ३७॥

बाह्ये स्वार्थं सतीत्वं च ज्ञापयन्ती प्रयत्नतः।
शश्वत्कामा च रामा च कामाधारा मनोहरा॥ ३८

बाह्ये छलात्खेदयन्ती स्वान्तमैथुनमानसा।
कान्तं हसन्ती रहसि बाह्येऽतीव सुलज्जिता॥ ३९

मानिनी मैथुनाभावे कोपना कलहाङ्कुरा।
सुप्रीता भूरिसम्भोगात्स्वल्पमैथुनदुःखिता॥ ४०

सुमिष्टान्नाच्छीततोयादाकाङ्क्षन्ती च मानसे।
सुन्दरं रसिकं कान्तं युवानं गुणिनं सदा॥ ४१

सुतात्परमभिस्नेहं कुर्वती रसिकोपरि।
प्राणाधिकं प्रियतमं सम्भोगकुशलं प्रियम्॥ ४२

पश्यन्ती रिपुतुल्यं च वृद्धं वा मैथुनाक्षमम्।
कलहं कुर्वती शश्वत्तेन सार्धं सुकोपना॥ ४३

वाचया भक्षयन्ती तं सर्प आखुमिवोल्बणम्।
दुःसाहसस्वरूपा च सर्वदोषाश्रया सदा॥ ४४

ब्रह्मविष्णुशिवादीनां दुःसाध्या मोहरूपिणी।
तपोमार्गार्गला शश्वन्मोक्षद्वारकपाटिका॥ ४५

हरेर्भक्तिव्यवहिता सर्वमायाकरण्डिका।
संसारकारागारे च शश्वन्निगडरूपिणी॥ ४६

इन्द्रजालस्वरूपा च मिथ्या च स्वप्नरूपिणी।
बिभ्रती बाह्यसौन्दर्यमधोऽङ्गमतिकुत्सितम्॥ ४७

नानाविण्मूत्रपूयानामाधारं मलसंयुतम्।
दुर्गन्धिदोषसंयुक्तं रक्तारक्तमसंस्कृतम्॥ ४८

वे बाहरसे अपना हित साधनेके लिये अपने सतीत्वका प्रयत्नपूर्वक प्रदर्शन करती हैं, किंतु वास्तवमें सदा कामातुर रहती हैं। मनको आकृष्ट करनेवाली वे स्त्रियाँ कामदेवका आधारस्तम्भ होती हैं॥ ३८॥

स्त्री बाहरसे छलपूर्वक [अपनेको वासनावृत्तिसे रहित दिखाती हुई] अपने प्रेमीको सन्तप्त करती है, किंतु मनमें समागमकी अभिलाषा रखती है। वह बाहरसे अत्यन्त लज्जित दीखती है, किंतु एकान्तमें अपने प्रेमीके साथ हास-परिहास करती है॥ ३९॥

रतिका सुयोग न मिलनेपर मानिनी स्त्री कुपित हो जाती है और कलह करने लगती है। यथेच्छ सम्भोगसे स्त्री प्रसन्न रहती है और स्वल्प सम्भोगसे दुःखी हो जाती है॥ ४०॥

स्त्री स्वादिष्ट भोजन और शीतल जलकी अपेक्षा सुन्दर, रसिक, गुणी तथा युवक पतिकी ही आकांक्षा अपने मनमें रखती है॥ ४१॥

स्त्री अपने पुत्रसे भी अधिक स्नेह रसिक पुरुषपर रखती है। वह सम्भोगमें कुशल प्रेमीको अपने प्राणोंसे भी अधिक प्रिय समझती है॥ ४२॥

स्त्री वृद्ध तथा सम्भोग करनेमें अक्षम पुरुषको शत्रुके समान समझती है और वह अत्यन्त कुपित होकर उस पुरुषके साथ सदा कलह करती रहती है। जिस प्रकार सर्प चूहेपर झपटता है, उसी प्रकार स्त्री वैसे पुरुषको बात-बातपर खाने दौड़ती है। नारी दुःसाहसकी मूर्ति तथा सर्वदा समस्त दोषोंकी आश्रयस्थली है॥ ४३-४४॥

ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवताओंके लिये भी स्त्री दुःसाध्य है। मोहस्वरूपिणी नारी तपस्याके मार्गमें अर्गलादण्डके समान और मोक्षके द्वारपर कपाटके समान बाधक होती है। वह भगवान्‌की भक्तिमें बाधा डालनेवाली तथा सभी प्रकारकी मायाकी पिटारी है। वह संसाररूपी कारागारमें सदा जकड़े रखनेके लिये जंजीरके समान है। स्त्री इन्द्रजालस्वरूप तथा स्वप्नके समान मिथ्या कही गयी है। स्त्री बाह्य सौन्दर्य तो धारण करती है, किंतु इसके भीतरी अंग अत्यन्त कुत्सित रहते हैं। स्त्रीका शरीर विष्ठा-मूत्र-पीब आदिका आधार, मलयुक्त, दुर्गन्धि-दोषसे परिपूर्ण,

मायारूपा मायिनां च विधिना निर्मिता पुरा।
विषरूपा मुमुक्षूणामदृश्याप्यभिवाञ्छताम्॥ ४९

इत्युक्त्वा तुलसी तं तु विरराम च नारद।
सस्मितः शङ्खचूडश्च प्रवक्तुमुपचक्रमे॥ ५०

शङ्खचूड उवाच

त्वया यत्कथितं देवि न च सर्वमलीककम्।
किञ्चित्सत्यमलीकं च किञ्चिन्मत्तो निशामय॥ ५१

निर्मितं द्विविधं धात्रा स्त्रीरूपं सर्वमोहनम्।
कृत्वा रूपं वास्तवं च प्रशस्यं चाप्रशंसितम्॥ ५२

लक्ष्मीः सरस्वती दुर्गा सावित्री राधिकादिका।
सृष्टिसूत्रस्वरूपा च आद्या सृष्टिर्विनिर्मिता॥ ५३

एतासामंशरूपं च स्त्रीरूपं वास्तवं स्मृतम्।
तत्प्रशस्यं यशोरूपं सर्वमङ्गलकारकम्॥ ५४

शतरूपा देवहूती स्वधा स्वाहा च दक्षिणा।
छायावती रोहिणी च वरुणानी शची तथा॥ ५५

कुबेरस्य च पत्नी याप्यदितिश्च दितिस्तथा।
लोपामुद्रानसूया च कोटभी तुलसी तथा॥ ५६

अहल्यारुन्धती मेना तारा मन्दोदरी तथा।
दमयन्ती वेदवती गङ्गा च मनसा तथा॥ ५७

पुष्टिस्तुष्टिः स्मृतिर्मेधा कालिका च वसुन्धरा।
षष्ठी मङ्गलचण्डी च मूर्तिश्च धर्मकामिनी॥ ५८

स्वस्तिः श्रद्धा च शान्तिश्च कान्तिः क्षान्तिस्तथा परा।
निद्रा तन्द्रा क्षुत्पिपासा सन्ध्या रात्रिदिनानि च॥ ५९

सम्पत्तिर्धृतिकीर्ती च क्रिया शोभा प्रभा शिवा।
यत्स्त्रीरूपं च सम्भूतमुत्तमं तु युगे युगे॥ ६०

कलाकलांशरूपं च स्वर्वेश्यादिकमेव च।
तदप्रशस्यं विश्वेषु पुंश्चलीरूपमेव च॥ ६१

सत्त्वप्रधानं यद्रूपं तद्युक्तं च प्रभावतः।
तदुत्तमं च विश्वेषु साध्वीरूपं प्रशंसितम्॥ ६२

रक्तरंजित तथा अपवित्र रहता है। पूर्व समयमें ब्रह्माने स्त्रीका सृजन मायावी पुरुषोंके लिये मायास्वरूपिणीके रूपमें, मुमुक्षुजनोंके लिये विषस्वरूपिणीके रूपमें तथा उसकी कामना करनेवालोंके लिये अदृश्यरूपिणीके रूपमें किया था॥ ४५—४९॥

हे नारद! उस शंखचूड़से ऐसा कहकर जब तुलसी चुप हो गयी, तब उसने हँसकर कहना आरम्भ किया॥ ५०॥

शंखचूड़ बोला—हे देवि! तुमने जो कुछ कहा है, वह सब असत्य नहीं है, किंतु अब मुझसे भी कुछ सत्य तथा कुछ असत्यके विषयमें सुन लीजिये॥ ५१॥

विधाताने सबको मोहित करनेवाला नारीरूप [वास्तविक और अवास्तविक] दो प्रकारसे रचा है—वास्तविक रूप प्रशंसनीय और दूसरा रूप निन्दनीय है। लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, सावित्री, राधा आदि आद्या शक्तियाँ सृष्टिकी सूत्ररूपा हैं, इन्हींसे सृष्टिका प्रारम्भ हुआ है॥ ५२-५३॥

इन देवियोंके अंशसे प्रकट स्त्रीरूप वास्तविक कहा गया है; वह श्रेष्ठ, यशोरूप तथा समस्त मंगलोंका कारण है। शतरूपा, देवहूति, स्वधा, स्वाहा, दक्षिणा, छायावती, रोहिणी, वरुणानी, शची, कुबेरकी पत्नी, अदिति, दिति, लोपामुद्रा, अनसूया, कोटभी, तुलसी, अहल्या, अरुन्धती, मेना, तारा, मन्दोदरी, दमयन्ती, वेदवती, गंगा, मनसा, पुष्टि, तुष्टि, स्मृति, मेधा, कालिका, वसुन्धरा, षष्ठी, मंगलचण्डी, धर्मपत्नी मूर्ति, स्वस्ति, श्रद्धा, शान्ति, कान्ति, क्षान्ति, निद्रा, तन्द्रा, क्षुधा, पिपासा, सन्ध्या, दिवा, रात्रि, सम्पत्ति, धृति, कीर्ति, क्रिया, शोभा, प्रभा और शिवा—ये देवियाँ जो स्त्रीरूपमें प्रकट हैं, वे प्रत्येक युगमें श्रेष्ठ मानी गयी हैं॥ ५४—६०॥

जगदम्बाकी कलाके कलांशसे उत्पन्न जो स्वर्गकी दिव्य अप्सराएँ हैं, उन्हें अप्रशस्त तथा सम्पूर्ण लोकोंमें पुंश्चलीरूप कहा गया है॥ ६१॥

स्त्रियोंका जो सत्त्व-प्रधान रूप है, वही सर्वथा समीचीन है। अपने प्रभावके कारण वे ही उत्तम तथा साध्वीस्वरूप स्त्रियाँ सम्पूर्ण लोकोंमें प्रशंसित हैं।

तद्वास्तवं च विज्ञेयं प्रवदन्ति मनीषिणः।
रजोरूपं तमोरूपं कलासु विविधं स्मृतम्॥ ६३

मध्यमा रजसश्चांशास्तास्तु भोगेषु लोलुपाः।
सुखसम्भोगवश्याश्च स्वकार्ये निरताः सदा॥ ६४

कपटा मोहकारिण्यो धर्मार्थविमुखाः सदा।
रजोरूपस्य साध्वीत्वमतो नैवोपजायते॥ ६५

इदं मध्यमरूपं च प्रवदन्ति मनीषिणः।
तमोरूपं दुर्निवार्यमधमं तद्विदुर्बुधाः॥ ६६

न पृच्छति कुले जातः पण्डितश्च परस्त्रियम्।
निर्जने निर्जले वापि रहस्यपि परस्त्रियम्॥ ६७

आगच्छामि त्वत्समीपमाज्ञया ब्रह्मणोऽधुना।
गान्धर्वेण विवाहेन त्वां ग्रहीष्यामि शोभने॥ ६८

अहमेव शङ्खचूडो देवविद्रावकारकः।
दनुवंश्यो विशेषेण सुदामाहं हरेः पुरा॥ ६९

अहमष्टसु गोपेषु गोपोऽपि पार्षदेषु च।
अधुना दानवेन्द्रोऽहं राधिकायाश्च शापतः॥ ७०

जातिस्मरोऽहं जानामि कृष्णमन्त्रप्रभावतः।
जातिस्मरा त्वं तुलसी सम्भुक्ता हरिणा पुरा॥ ७१

त्वमेव राधिकाकोपाज्जातासि भारते भुवि।
त्वां सम्भोक्तुमुत्सुकोऽहं नालं राधाभयात्ततः॥ ७२

इत्येवमुक्त्वा स पुमान्विरराम महामुने।
सस्मितं तुलसी तुष्टा प्रवक्तुमुपचक्रमे॥ ७३

उन्हींको 'वास्तवरूपा' कहना चाहिये, ऐसा विद्वान् पुरुष कहते हैं। रजोरूप और तमोरूपकी कलाओंके भेदसे अनेक प्रकारकी स्त्रियाँ प्रसिद्ध हैं॥ ६२-६३॥

रजोगुणका अंश जिनमें प्रधान है, वे मध्यम श्रेणीकी हैं और वे भोगोंमें आसक्त रहती हैं। सुखभोगके वशीभूत होकर वे सदा अपने ही कार्यमें संलग्न रहती हैं। वे कपटयुक्त, मोहकारिणी तथा धर्मके अर्थसे पराङ्मुख रहती हैं; अतः रजोगुण-प्रधान स्त्रीमें साध्वीभाव कभी नहीं उत्पन्न हो सकता है, विद्वान् लोग इसे स्त्रियोंका मध्यमरूप कहते हैं॥ ६४-६५ १/२ ॥

तमोरूप दुर्निवार्य है, बुद्धिमान् पुरुषोंने इस रूपको 'अधम' कहा है। [हे देवि! तुमने जो कहा है कि] उत्तम कुलमें उत्तम विद्वान् पुरुष निर्जन, जलविहीन तथा एकान्त स्थानमें किसी परस्त्रीसे कुछ भी नहीं पूछता है—यह तो उचित ही है, किंतु हे शोभने! मैं तो इस समय ब्रह्माकी आज्ञासे ही तुम्हारे पास आया हूँ और गान्धर्वविवाहकी विधिके अनुसार तुम्हें पत्नीरूपमें ग्रहण करूँगा॥ ६६—६८॥

देवताओंको सन्त्रस्त करनेवाला शंखचूड़ मैं ही हूँ। मैं दनुवंशमें उत्पन्न हुआ हूँ। विशेष बात यह है कि पूर्व-जन्ममें मैं श्रीहरिके साथ उनके पार्षदरूपमें रहनेवाले आठ गोपोंमें सुदामा नामक एक गोप था। देवी राधिकाके शापसे इस समय मैं दानवेन्द्र बन गया हूँ॥ ६९-७०॥

कृष्णके मन्त्रके प्रभावके कारण मैं पूर्वजन्मकी सभी बातें जानता हूँ। तुम्हें भी अपने पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण होगा कि तुम उस समय तुलसी थी और श्रीहरिने तुम्हारे साथ विहार किया था और वही तुम राधिकाके कोपके कारण भारत-भूमिपर उत्पन्न हुई हो। उस समय मैं तुम्हारे साथ रमण करनेके लिये बहुत लालायित था, किंतु राधिकाके भयके कारण ऐसा नहीं हुआ॥ ७१-७२॥

हे महामुने! इस प्रकार कहकर जब वह शंखचूड़ चुप हो गया, तब प्रसन्नतासे युक्त तुलसीने हँसते हुए कहना आरम्भ किया॥ ७३॥

तुलस्युवाच

एवंविधो बुधो नित्यं विश्वेषु च प्रशंसितः।
कान्तमेवंविधं कान्ता शश्वदिच्छति कामतः॥ ७४

त्वयाहमधुना सत्यं विचारेण पराजिता।
स निन्दितश्चाप्यशुचिर्यः पुमांश्च स्त्रिया जितः॥ ७५

निन्दन्ति पितरो देवा बान्धवाः स्त्रीजितं नरम्।
स्त्रीजितं मनसा माता पिता भ्राता च निन्दति॥ ७६

शुद्धो विप्रो दशाहेन जातके मृतके यथा।
भूमिपो द्वादशाहेन वैश्यः पञ्चदशाहतः॥ ७७

शूद्रो मासेन वेदेषु मातृवद्धीनसङ्करः।
अशुचिः स्त्रीजितः शुद्ध्येच्चितादहनकालतः॥ ७८

न गृह्णन्तीच्छया तस्य पितरः पिण्डतर्पणम्।
न गृह्णन्त्येव देवाश्च तस्य पुष्पजलादिकम्॥ ७९

किं वा ज्ञानेन तपसा जपहोमप्रपूजनैः।
किं विद्यया च यशसा स्त्रीभिर्यस्य मनो हृतम्॥ ८०

विद्याप्रभावज्ञानार्थं मया त्वं च परीक्षितः।
कृत्वा परीक्षां कान्तस्य वृणोति कामिनी वरम्॥ ८१

वराय गुणहीनाय वृद्धायाज्ञानिने तथा।
दरिद्राय च मूर्खाय रोगिणे कुत्सिताय च॥ ८२

अत्यन्तकोपयुक्ताय वात्यन्तदुर्मुखाय च।
पङ्गवे चाङ्गहीनाय चान्धाय बधिराय च॥ ८३

जडाय चैव मूकाय क्लीबतुल्याय पापिने।
ब्रह्महत्यां लभेत्सोऽपि स्वकन्यां प्रददाति यः॥ ८४

शान्ताय गुणिने चैव यूने च विदुषेऽपि च।
साधवे च सुतां दत्त्वा दशयज्ञफलं लभेत्॥ ८५

तुलसी बोली—इस प्रकारके [सद्विचारसम्पन्न] विज्ञ पुरुष ही विश्वमें सदा प्रशंसित होते हैं। कोई स्त्री कामसे प्रेरित होकर ऐसे ही पतिकी सदा अभिलाषा रखती है॥ ७४॥

आप-जैसे उत्तम विचारवाले पुरुषसे मैं निश्चित ही इस समय पराजित हो गयी हूँ। निन्दनीय तथा अपवित्र पुरुष तो वह होता है, जो स्त्रीके द्वारा जीत लिया गया हो॥ ७५॥

पितृगण, देवता तथा बान्धव—ये सब लोग स्त्रीके द्वारा पराभूत व्यक्तिकी निन्दा करते हैं तथा माता-पिता एवं भ्राता भी स्त्रीजित मनुष्यकी मन-ही-मन निन्दा करते रहते हैं॥ ७६॥

शास्त्रोंमें विहित है कि जन्म और मृत्युजनित अशौचसे ब्राह्मण दस दिनोंमें, क्षत्रिय बारह दिनोंमें, वैश्य पन्द्रह दिनोंमें, शूद्र एक मासमें तथा वर्णसंकर अपनी मातृकुलपरम्पराके आचारके अनुसार शुद्ध हो जाते हैं, किंतु स्त्रीसे पराजित व्यक्ति सर्वदा अपवित्र रहता है और चितादहनके कालमें ही वह शुद्ध होता है॥ ७७-७८॥

स्त्रीजित मनुष्यके पितर उसके द्वारा प्रदत्त पिण्ड तथा तर्पणको इच्छापूर्वक ग्रहण नहीं करते और देवता भी उसके द्वारा अर्पित पुष्प, जल आदिको स्वीकार नहीं करते हैं॥ ७९॥

जिसके मनको स्त्रियोंने हर लिया हो; उसके ज्ञान, तप, जप, होम, पूजन, विद्या अथवा यशसे क्या प्रयोजन!॥ ८०॥

आपकी विद्याका प्रभाव जाननेके लिये ही मैंने आपकी परीक्षा की है; क्योंकि कोई स्त्री किसी पुरुषकी सम्यक् परीक्षा करके ही पतिरूपमें उसका वरण करती है॥ ८१॥

जो मनुष्य गुणहीन, वृद्ध, अज्ञानी, दरिद्र, मूर्ख, रोगी, नीच, परम क्रोधी, अत्यन्त कटुवचन बोलनेवाले, पंगु, अंगहीन, अन्धे, बहरे, जड़, गूँगे, नपुंसकतुल्य तथा पापी वरको अपनी कन्या देता है, वह ब्रह्महत्याके पापका भागी होता है॥ ८२—८४॥

शान्त, गुणी, युवक, विद्वान् तथा सदाचारी वरको अपनी पुत्री अर्पण करनेसे मनुष्यको दस यज्ञोंका फल प्राप्त होता है॥ ८५॥

य: कन्यापालनं कृत्वा करोति यदि विक्रयम्।
विक्रेता धनलोभेन कुम्भीपाकं स गच्छति॥ ८६
कन्यामूत्रं पुरीषं च तत्र भक्षति पातकी।
कृमिभिर्दंशितः काकैर्यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥ ८७
तदन्ते व्याधिसंयुक्तः स लभेज्जन्म निश्चितम्।
विक्रीणाति मांसभारं वहत्येव दिवानिशम्॥ ८८
इत्येवमुक्त्वा तुलसी विरराम तपोनिधे।

ब्रह्मोवाच

किं करोषि शङ्खचूड संवादमनया सह॥ ८९
गान्धर्वेण विवाहेन त्वं चास्या ग्रहणं कुरु।
पुरुषेष्वसि रत्नं त्वं स्त्रीषु रत्नं त्वियं सती॥ ९०
विदग्धाया विदग्धेन सङ्गमो गुणवान्भवेत्।
निर्विरोधसुखं राजन् को वा त्यजति दुर्लभम्॥ ९१
योऽविरोधसुखत्यागी स पशुर्नात्र संशयः।
किं परीक्षसि त्वं कान्तमीदृशं गुणिनं सति॥ ९२
देवानामसुराणां च दानवानां विमर्दकम्।
यथा लक्ष्मीश्च लक्ष्मीशे यथा कृष्णे च राधिका॥ ९३
यथा मयि च सावित्री भवानी च भवे यथा।
यथा धरा वराहे च दक्षिणा च यथाध्वरे॥ ९४
यथात्रेरनसूया च दमयन्ती यथा नले।
रोहिणी च यथा चन्द्रे यथा कामे रतिः सती॥ ९५
यथादितिः कश्यपे च वसिष्ठेऽरुन्धती सखी।
यथाहल्या गौतमे च देवहूतिश्च कर्दमे॥ ९६
यथा बृहस्पतौ तारा शतरूपा मनौ यथा।
यथा च दक्षिणा यज्ञे यथा स्वाहा हुताशने॥ ९७
यथा शची महेन्द्रे च यथा पुष्टिर्गणेश्वरे।
देवसेना यथा स्कन्दे धर्मे मूर्तिर्यथा सती॥ ९८
सौभाग्या सुप्रिया त्वं च शङ्खचूडे तथा भव।
अनेन सार्धं सुचिरं सुन्दरेण च सुन्दरि॥ ९९

कोई कन्याका पालन-पोषण करके यदि उसे बेच देता है, तब धनके लोभसे कन्याका विक्रय करनेवाले उस मनुष्यको 'कुम्भीपाक' नरकमें जाना पड़ता है। वहाँपर वह पापी भोजनके रूपमें कन्याके मल-मूत्रका ही भक्षण करता है और चौदहों इन्द्रोंकी स्थितिपर्यन्त कीड़े तथा कौवे उसे नोचते रहते हैं। तदनन्तर वह फिरसे जन्म प्राप्त करता है और अनेक रोगोंसे ग्रस्त रहता है। वह दिन-रात मांस ढोता है और मांस-विक्रय करता रहता है, यह निश्चित है। हे तपोनिधे! इस प्रकार कहकर देवी तुलसी चुप हो गयी॥ ८६—८८½॥

ब्रह्मा बोले—हे शंखचूड़! तुम इसके साथ क्या बातचीत कर रहे हो? गान्धर्व-विवाहकी विधिके अनुसार अब तुम इसे स्वीकार कर लो; क्योंकि तुम पुरुषोंमें रत्न हो और यह साध्वी तुलसी भी स्त्रियोंमें रत्न है। एक प्रवीण स्त्रीका एक प्रवीण पुरुषके साथ संयोग बड़ा कल्याणकारी होता है। हे राजन्! निर्बाध तथा दुर्लभ सुखको पाकर भला कौन उसका त्याग करता है। जो मनुष्य विरोधरहित सुखका त्याग कर देता है, वह पशु है, इसमें सन्देह नहीं है॥ ८९—९१½॥

[इसके बाद ब्रह्माजीने तुलसीसे कहा—] हे सति! तुम ऐसे गुणी और समस्त देवताओं, असुरों तथा दानवोंका दमन करनेवाले पतिकी क्या परीक्षा ले रही हो? जिस प्रकार विष्णुके पास लक्ष्मी, श्रीकृष्णके पास राधिका, मुझ ब्रह्माके पास सावित्री, भगवान् शिवके पास भवानी, भगवान् वराहके पास धरा, यज्ञके पास दक्षिणा, अत्रिके पास अनसूया, नलके पास दमयन्ती, चन्द्रमाके पास रोहिणी, कामदेवके पास साध्वी रति, कश्यपके पास अदिति, वसिष्ठके पास अरुन्धती, गौतमके पास अहल्या, कर्दमके पास देवहूति, बृहस्पतिके पास तारा, मनुके पास शतरूपा, यज्ञके पास दक्षिणा, अग्निके पास स्वाहा, इन्द्रके पास शची, गणेशके पास पुष्टि, स्कन्द (कार्तिकेय)-के पास देवसेना और धर्मके पास साध्वी मूर्ति पत्नीरूपसे प्रतिष्ठित हैं; उसी प्रकार तुम भी शंखचूड़की सौभाग्यवती प्रिया बन जाओ और हे सुन्दरि! अपने इस सुन्दर प्रियतमके साथ विभिन्न स्थानोंपर अपनी इच्छावे

स्थाने स्थाने विहारं च यथेच्छं कुरु सन्ततम्।
पश्चात्प्राप्स्यसि गोलोके श्रीकृष्णं पुनरेव च।
चतुर्भुजं च वैकुण्ठे शङ्खचूडे मृते सति॥ १००

अनुसार निरन्तर विहार करो। अन्तमें तुम गोलोकमें पुनः भगवान् श्रीकृष्णको तथा वैकुण्ठमें चतुर्भुज श्रीविष्णुको प्राप्त करोगी॥ ९२—१००॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे शङ्खचूडेन सह तुलस्याः सङ्गतिवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

अथैकोनविंशोऽध्यायः

तुलसीके साथ शंखचूड़का गान्धर्वविवाह, शंखचूड़से पराजित और निर्वासित देवताओंका ब्रह्मा तथा शंकरजीके साथ वैकुण्ठधाम जाना, श्रीहरिका शंखचूड़के पूर्वजन्मका वृत्तान्त बताना

नारद उवाच

विचित्रमिदमाख्यानं भवता समुदाहृतम्।
श्रुतेन येन मे तृप्तिर्न कदापि हि जायते॥ १

ततः परं तु यज्जातं तत्त्वं वद महामते।

श्रीनारायण उवाच

इत्येवमाशिषं दत्त्वा स्वालयं च ययौ विधिः॥ २

गान्धर्वेण विवाहेन जगृहे तां च दानवः।
स्वर्गे दुन्दुभिवाद्यं च पुष्पवृष्टिर्बभूव ह॥ ३

स रेमे रामया सार्धं वासगेहे मनोरमे।
मूर्च्छां सा प्राप तुलसी नवसङ्गमसङ्गता॥ ४

निमग्ना निर्जले साध्वी सम्भोगसुखसागरे।
चतुःषष्टिकलामानं चतुःषष्टिविधं सुखम्॥ ५

कामशास्त्रे यन्निरुक्तं रसिकानां यथेप्सितम्।
अङ्गप्रत्यङ्गसंश्लेषपूर्वकं स्त्रीमनोहरम्॥ ६

तत्सर्वं रसशृङ्गारं चकार रसिकेश्वरः।
अतीव रम्यदेशे च सर्वजन्तुविवर्जिते॥ ७

पुष्पचन्दनतल्पे च पुष्पचन्दनवायुना।
पुष्पोद्याने नदीतीरे पुष्पचन्दनचर्चिते॥ ८

गृहीत्वा रसिको रासे पुष्पचन्दनचर्चिताम्।
भूषितो भूषणेनैव रत्नभूषणभूषिताम्॥ ९

नारदजी बोले—[हे भगवन्!] आपने यह अत्यन्त अद्भुत आख्यान सुनाया, जिसे सुनकर किसी भी प्रकारसे मुझे तृप्ति नहीं हो रही है। हे महामते! उसके बाद जो कुछ घटित हुआ, उसे आप मुझे बताइये॥ १$\frac{1}{2}$॥

श्रीनारायण बोले—इस प्रकार [शंखचूड़ तथा तुलसीको] आशीर्वाद देकर ब्रह्माजी अपने लोक चले गये। तब दानव शंखचूड़ने गान्धर्व-विवाहके अनुसार उस तुलसीको पत्नीरूपमें ग्रहण कर लिया। उस अवसरपर स्वर्गमें दुंदुभियाँ बजने लगीं और पुष्पोंकी वर्षा होने लगी॥ २-३॥

अब वह शंखचूड़ अपने सुन्दर भवनमें तुलसीके साथ विलास करने लगा। आनन्दका अनुभवकर वह तुलसी मूर्च्छित-सी हो गयी। वह साध्वी उस समय सुखरूपी निर्जल सागरमें निमग्न हो गयी थी॥ ४$\frac{1}{2}$॥

कामशास्त्रमें जो चौंसठ प्रकारकी कलाएँ तथा चौंसठ प्रकारके सुख बताये गये हैं, वे रसिकजनोंके लिये अत्यन्त प्रिय हैं। अंग-प्रत्यंगके स्पर्श करनेसे स्त्रियोंको सुखप्रद लगनेवाले जो भी रस-शृंगार होते हैं, उन सबको रसिकेश्वर शंखचूड़ने प्रस्तुत किया॥ ५-६$\frac{1}{2}$॥

अनेक प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित वह रसिक शंखचूड़ पुष्प-चन्दनसे चर्चित तथा रत्नमय आभूषणोंसे अलंकृत उस तुलसीको साथमें लेकर अत्यन्त रमणीक तथा पूर्णरूपसे निर्जन स्थानमें पुष्प-चन्दनसे सुरभित वायुयुक्त पुष्पोद्यान और पुष्प-चन्दनसे सुशोभित नदीके तटपर पुष्प-चन्दनसे चर्चित शय्यापर रासक्रीडामें निरत रहता था॥ ७—९॥

सुरते विरतिर्नास्ति तयोः सुरतिविज्ञयोः।
जहार मानसं भर्तुर्लोलया लीलया सती॥ १०

चेतनां रसिकायाश्च जहार रसभाववित्।
वक्षसश्चन्दनं राज्ञस्तिलकं विजहार सा॥ ११

स च जहार तस्याश्च सिन्दूरं बिन्दुपत्रकम्।
तद्वक्षस्युरोजे च नखरेखां ददौ मुदा॥ १२

सा ददौ तद्वामपार्श्वे करभूषणलक्षणम्।
राजा तदोष्ठपुटके ददौ रदनदंशनम्॥ १३

तद्‌गण्डयुगले सा च प्रददौ तच्चतुर्गुणम्।
आलिङ्गनं चुम्बनं च जङ्घादिमर्दनं तथा॥ १४

एवं परस्परं क्रीडां चक्रतुस्तौ विजानतौ।
सुरते विरते तौ च समुत्थाय परस्परम्॥ १५

सुवेषं चक्रतुस्तत्र यद्यन्मनसि वाञ्छितम्।
चन्दनैः कुङ्कुमारक्तैः सा तस्य तिलकं ददौ॥ १६

सर्वाङ्गे सुन्दरे रम्ये चकार चानुलेपनम्।
सुवासं चैव ताम्बूलं वह्निशुद्धे च वाससी॥ १७

पारिजातस्य कुसुमं जरारोगहरं परम्।
अमूल्यरत्ननिर्माणमङ्गुलीयकमुत्तमम् ॥ १८

सुन्दरं च मणिवरं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्।
दासी तवाहमित्येवं समुच्चार्य पुनः पुनः॥ १९

ननाम परया भक्त्या स्वामिनं गुणशालिनम्।
सस्मिता तन्मुखाम्भोजं लोचनाभ्यां पुनः पुनः॥ २०

निमेषरहिताभ्यां चाप्यपश्यत्कामसुन्दरम्।
स च तां च समाकृष्य चकार वक्षसि प्रियाम्॥ २१

सस्मितं वाससाच्छन्नं ददर्श मुखपङ्कजम्।
चुचुम्ब कठिने गण्डे बिम्बोष्ठौ पुनरेव च॥ २२

कामक्रीड़ाके ज्ञाता वे दोनों कभी भी विलाससे विरत नहीं होते थे। उस साध्वी तुलसीने अपनी चंचल लीलासे अपने पतिका मन हर लिया था। इसी प्रकार रस-भावोंके ज्ञाता शंखचूड़ने भी रसिका तुलसीका मन अपनी ओर आकृष्ट कर लिया था। उस तुलसीने राजाके वक्षःस्थलका चन्दन तथा मस्तकका तिलक मिटा दिया, उसी प्रकार उस शंखचूड़ने भी तुलसीके सिन्दूर-बिन्दुको मिटा दिया। कामक्रीड़ामें शंखचूड़ने प्रसन्नतापूर्वक उस तुलसीके वक्षःस्थल आदिपर और उसी प्रकार तुलसीने उसके वाम पार्श्वमें अपने हाथके आभूषणका चिह्न बना दिया। इस प्रकार परस्पर आलिंगन आदि करते हुए कामकलाका सम्यक् ज्ञान रखनेवाले वे दोनों क्रीड़ा करने लगे॥ १०—१४½ ॥

रतिक्रीड़ासे विरत होकर वे दोनों मनमें जो-जो इच्छा रहती थी, उसके अनुसार एक-दूसरेका शृंगार करते थे। वह तुलसी शंखचूड़के मस्तकपर कुमकुम-मिश्रित चंदन लगाती थी और उसके सभी मनोहर अंगोंमें चन्दनका लेप करती थी। वह शंखचूड़को सुवासित ताम्बूल खिलाती थी, अग्निके समान शुद्ध दो वस्त्र पहनाती थी, वृद्धावस्थारूपी रोग दूर करनेवाला पारिजात पुष्प प्रदान करती थी, बहुमूल्य रत्नोंसे निर्मित उत्तम अँगूठी पहनाती थी और तीनों लोकोंमें दुर्लभ उत्तम मणियोंके आभूषणोंसे अलंकृत करती थी—इस प्रकार शंखचूड़का शृंगार करनेके पश्चात् 'मैं आपकी दासी हूँ'—ऐसा बार-बार कहकर वह तुलसी महान् भक्तिके साथ अपने गुणवान् पतिको प्रणाम करती थी। वह अपलक नेत्रोंसे कामदेवके समान अपने पतिके मुखारविन्दको मुसकराती हुई बार-बार देखती रहती थी॥ १५—२०½ ॥

इसी प्रकार शंखचूड़ भी प्रिया तुलसीको आकृष्ट करके वक्षसे लगा लेता था और वस्त्रसे ढँके हुए उसके मुसकानयुक्त मुखकमलको निहारने लगता था। वह तुलसीके कठोर कपोलों तथा बिम्बाफलके समान लाल ओठोंका स्पर्श करने लगता था॥ २१-२२॥

ददौ तस्यै वस्त्रयुग्मं वरुणादाहृतं च यत्।
तदाहृतां रत्नमालां त्रिषु लोकेषु दुर्लभाम्॥ २३
ददौ मञ्जीरयुग्मं च स्वाहाया आहृतं च यत्।
केयूरयुग्मं छायाया रोहिण्याश्चैव कुण्डलम्॥ २४
अङ्गुलीयकरत्नानि रत्याश्च करभूषणम्।
शङ्खं च रुचिरं चित्रं यद्दत्तं विश्वकर्मणा॥ २५
विचित्रपद्मकश्रेणीं शय्यां चापि सुदुर्लभाम्।
भूषणानि च दत्त्वा स भूपो हासं चकार ह॥ २६
निर्ममे कबरीभारे तस्या माङ्गल्यभूषणम्।
सुचित्रं पत्रकं गण्डमण्डलेऽस्याः समं तथा॥ २७
चन्द्रलेखात्रिभिर्युक्तं चन्दनेन सुगन्धिना।
परीतं परितश्चित्रैः सार्धं कुङ्कुमबिन्दुभिः॥ २८
ज्वलत्प्रदीपाकारं च सिन्दूरतिलकं ददौ।
तत्पादपद्मयुगले स्थलपद्मविनिन्दिते॥ २९
चित्रालक्तकरागं च नखरेषु ददौ मुदा।
स्ववक्षसि मुहुर्न्यस्य सरागं चरणाम्बुजम्॥ ३०
हे देवि तव दासोऽहमित्युच्चार्य पुनः पुनः।
रत्नभूषितहस्तेन तां च कृत्वा स्ववक्षसि॥ ३१
तपोवनं परित्यज्य राजा स्थानान्तरं ययौ।
मलये देवनिलये शैले शैले तपोवने॥ ३२
स्थाने स्थानेऽतिरम्ये च पुष्पोद्याने च निर्जने।
कन्दरे कन्दरे सिन्धुतीरे चैवातिसुन्दरे॥ ३३
पुष्पभद्रानदीतीरे नीरवातमनोहरे।
पुलिने पुलिने दिव्ये नद्यां नद्यां नदे नदे॥ ३४
मधौ मधुकराणां च मधुरध्वनिनादिते।
विस्पन्दने सुरसने नन्दने गन्धमादने॥ ३५
देवोद्याने नन्दने च चित्रचन्दनकानने।
चम्पकानां केतकीनां माधवीनां च माधवे॥ ३६
कुन्दानां मालतीनां च कुमुदाम्भोजकानने।
कल्पवृक्षे कल्पवृक्षे पारिजातवने वने॥ ३७

तदनन्तर उसने वरुणके यहाँसे प्राप्त वस्त्रोंका जोड़ा और तीनों लोकोंमें दुर्लभ रत्नमयी माला उस तुलसीको प्रदान की। इसी प्रकार उसने स्वाहादेवीसे प्राप्त दो मंजीर (पायजेब), छायासे प्राप्त एक जोड़ी बाजूबन्द और रोहिणीसे प्राप्त कुण्डल, रतिसे प्राप्त हाथके आभूषणके रूपमें रत्नमय अँगूठी और विश्वकर्माके द्वारा प्रदत्त अद्भुत तथा मनोहर शंख तुलसीको प्रदान किये॥ २३—२५॥

तदनन्तर विचित्र कमल-पुष्पोंसे सुसज्जित हुई अत्यन्त दुर्लभ शय्या तथा अन्य भूषण प्रदान करके राजा शंखचूड़ हँसने लगा। उसने उसकी चोटीमें मांगलिक आभूषण लगाया और उसके गण्डस्थलपर सुगन्धित चन्दनसे तीन चन्द्रलेखाओंसे युक्त तथा चारों ओर कुमकुमबिन्दुओंसे सुशोभित सुन्दर चित्र बनाया। शंखचूड़ने उसके ललाटपर जलती हुई दीपशिखाके आकारके समान सिन्दूर-तिलक लगाया और स्थलकमलिनीको भी लज्जित कर देनेवाले उसके दोनों कमलसदृश चरणोंमें तथा नाखूनोंपर प्रसन्नतापूर्वक सुन्दर महावर लगाया। तत्पश्चात् तुलसीके महावरयुक्त चरणकमलको अपने वक्षःस्थलपर बार-बार रखकर 'हे देवि! मैं तुम्हारा दास हूँ'—ऐसा बार-बार उच्चारण करते हुए उस शंखचूड़ने रत्नमय आभूषणोंसे अलंकृत अपने हाथसे उसे अपने वक्षःस्थलसे लगा लिया॥ २६—३१॥

तदनन्तर राजा शंखचूड़ वह तपोवन छोड़कर अन्य स्थानपर चला गया। पुष्प तथा चन्दनसे चर्चित शरीरवाला वह सकाम शंखचूड़ मलयपर्वतपर, देवस्थानोंमें, विभिन्न पर्वतोंपर, तपोवनोंमें, अत्यन्त रमणीक स्थानोंमें, निर्जन पुष्पोद्यानमें, समुद्रकी तटवर्ती अत्यन्त सुन्दर कन्दराओंमें, जल तथा वायुसे युक्त पुष्पभद्रा नदीके मनोहर तटपर, नदियों तथा सरोवरोंके दिव्य तटोंपर, वसन्त ऋतुमें भ्रमरोंकी मधुर ध्वनिसे निनादित वनोंमें, अत्यन्त अनुपम तथा आनन्दकर गन्धमादनपर्वतपर, नन्दन नामक देवोद्यानमें, अद्भुत चन्दनवनमें, चम्पा-केतकी तथा माधवीके निकुंजमें, कुन्द-मालती-कुमुद तथा कमलोंके वनमें, कल्पवृक्ष तथा पारिजातके वनमें, निर्जन कांचन स्थानमें, पवित्र

निर्जने काञ्चने स्थाने धन्ये काञ्चनपर्वते।
काञ्चीवने किञ्जलके कञ्चुके काञ्चनाकरे॥ ३८

पुष्पचन्दनतल्पेषु पुंस्कोकिलरुतश्रुते।
पुष्पचन्दनसंयुक्तः पुष्पचन्दनवायुना॥ ३९

कामुक्या कामुकः कामात्स रेमे रामया सह।
न हि तृप्तो दानवेन्द्रस्तृप्तिं नैव जगाम सा॥ ४०

हविषा कृष्णवर्त्मेव ववृधे मदनस्तयोः।
तया सह समागत्य स्वाश्रमं दानवस्ततः॥ ४१

रम्यं क्रीडालयं गत्वा विजहार पुनः पुनः।
एवं स बुभुजे राज्यं शङ्खचूडः प्रतापवान्॥ ४२

एकमन्वन्तरं पूर्णं राजराजेश्वरो महान्।
देवानामसुराणां च दानवानां च सन्ततम्॥ ४३

गन्धर्वाणां किन्नराणां राक्षसानां च शान्तिदः।
हृताधिकारा देवाश्च चरन्ति भिक्षुका यथा॥ ४४

ते सर्वेऽतिविषण्णाश्च प्रजग्मुर्ब्रह्मणः सभाम्।
वृत्तान्तं कथयामासू रुरुदुश्च भृशं मुहुः॥ ४५

तदा ब्रह्मा सुरैः सार्धं जगाम शङ्करालयम्।
सर्वेशं कथयामास विधाता चन्द्रशेखरम्॥ ४६

ब्रह्मा शिवश्च तैः सार्धं वैकुण्ठं च जगाम ह।
दुर्लभं परमं धाम जरामृत्युहरं परम्॥ ४७

सम्प्राप च वरं द्वारमाश्रमाणां हरेरहो।
ददर्श द्वारपालांश्च रत्नसिंहासनस्थितान्॥ ४८

शोभितान्पीतवस्त्रैश्च रत्नभूषणभूषितान्।
वनमालान्वितान्सर्वान् श्यामसुन्दरविग्रहान्॥ ४९

शङ्खचक्रगदापद्मधरांश्चैव चतुर्भुजान्।
सस्मितान्स्मेरवक्त्रास्यान्पद्मनेत्रान्मनोहरान् ॥ ५०

कांचन-पर्वतपर, कांचीवनमें, किंजलक, कंचुक और कांचनाकर आदि स्थानोंमें—वनमें, जहाँ कोयलकी मधुर ध्वनि सुनायी देती और पुष्प-चन्दनकी सुगन्धसे सुरभित वायु बहती रहती थी, पुष्प-चन्दनसे सुसज्जित शय्यापर कामनायुक्त रमणी तुलसीके साथ इच्छानुसार विहार किया करता था। किंतु न तो दानवेन्द्र शंखचूड़ तृप्त हुआ और न वह तुलसी ही तृप्त हुई; अपितु आहुतिसे बढ़नेवाली अग्निकी भाँति उन दोनोंकी वासना निरन्तर बढ़ती ही गयी॥ ३२—४०½ ॥

तदनन्तर वह दानव शंखचूड़ उस तुलसीके साथ अपने आश्रम आकरके वहाँ अपने रमणीक क्रीड़ा-भवनमें जाकर बार-बार विहार करने लगा। इस प्रकार महान् प्रतापी राजराजेश्वर शंखचूड़ने पूरे एक मन्वन्तरतक राज्यका उपभोग किया॥ ४१-४२½ ॥

वह देवताओं, असुरों, दानवों, गन्धर्वों, किन्नरों और राक्षसोंको सदा शान्त कर देनेवाला था। उसके द्वारा छिने हुए अधिकारवाले देवतागण भिक्षुकोंकी भाँति विचरण करते थे, अतः वे सभी अत्यन्त दुःखी होकर ब्रह्माकी सभामें गये। उन्होंने अपना वृत्तान्त बताया और बार-बार अत्यधिक विलाप किया॥ ४३—४५ ॥

तब विधाता ब्रह्माजी देवताओंको साथ लेकर भगवान् शंकरके स्थानपर गये और वहाँ पहुँचकर उन्होंने मस्तकपर चन्द्रमाको धारण करनेवाले सर्वेश्वर शिवसे सारी बातें बतायीं॥ ४६ ॥

तत्पश्चात् ब्रह्मा और शिव उन देवताओंको साथ लेकर जरा तथा मृत्युका नाश करनेवाले, सभीके लिये अत्यन्त दुर्लभ तथा परमधाम श्रेष्ठ वैकुण्ठलोकमें गये। जब वे श्रीहरिके लोकोंके श्रेष्ठ प्रवेशद्वारपर पहुँचे, तब वहाँपर उन्होंने रत्नमय सिंहासनपर बैठे हुए द्वारपालोंको देखा। वे सभी पीताम्बरोंसे सुशोभित थे, वे रत्नमय आभूषणोंसे अलंकृत थे, उन्होंने वनमाला धारण कर रखी थी, उनके शरीर सुन्दर तथा श्यामवर्णके थे, शंख-चक्र-गदा-पद्मसे सुशोभित उनकी चार भुजाएँ थीं, उनके प्रसन्न मुखमण्डलपर मुसकान व्याप्त थी और उन मनोहर द्वारपालोंके नेत्र कमलके समान थे॥ ४७—५० ॥

ब्रह्मा तान्कथयामास वृत्तान्तं गमनार्थकम्।
तेऽनुज्ञां च ददुस्तस्मै प्रविवेश तदाज्ञया॥ ५१

ब्रह्माजीने उन द्वारपालोंको अपने आनेका प्रयोजन बताया। तब उन द्वारपालोंने ब्रह्माको अन्दर जानेकी आज्ञा दे दी और ब्रह्माजीने उनकी आज्ञा पाकर भीतर प्रवेश किया॥ ५१॥

एवं षोडश द्वाराणि निरीक्ष्य कमलोद्भवः।
देवैः सार्धं तानतीत्य प्रविवेश हरेः सभाम्॥ ५२

देवर्षिभिः परिवृतां पार्षदैश्च चतुर्भुजैः।
नारायणस्वरूपैश्च सर्वैः कौस्तुभभूषितैः॥ ५३

नवेन्दुमण्डलाकारां चतुरस्त्रां मनोहराम्।
मणीन्द्रहारनिर्माणां हीरासारसुशोभिताम्॥ ५४

अमूल्यरत्नखचितां रचितां स्वेच्छया हरेः।
माणिक्यमालाजालाभां मुक्तापङ्क्तिविभूषिताम्॥ ५५

मण्डितां मण्डलाकारै रत्नदर्पणकोटिभिः।
विचित्रैश्चित्ररेखाभिर्नानाचित्रविचित्रिताम् ॥ ५६

पद्मरागेन्द्ररचितां रुचिरां मणिपङ्कजैः।
सोपानशतकैर्युक्तां स्यमन्तकविनिर्मितैः॥ ५७

पट्टसूत्रग्रन्थियुक्तैश्चारुचन्दनपल्लवैः ।
इन्द्रनीलस्तम्भवर्यैर्वेष्टितां सुमनोहराम्॥ ५८

सद्रत्नपूर्णकुम्भानां समूहैश्च समन्विताम्।
पारिजातप्रसूनानां मालाजालैर्विराजिताम्॥ ५९

कस्तूरीकुङ्कुमारक्तैः सुगन्धिचन्दनद्रुमैः।
सुसंस्कृतां तु सर्वत्र वासितां गन्धवायुना॥ ६०

विद्याधरीसमूहानां नृत्यजालैर्विराजिताम्।
सहस्त्रयोजनायामां परिपूर्णां च किङ्करैः॥ ६१

इस प्रकार ब्रह्माजीने भीतर सोलह द्वारोंको देखा और देवताओंके साथ उन्हें पार करके वे श्रीहरिकी सभामें पहुँचे। वह सभा देवर्षियों तथा चार भुजावाले पार्षदोंसे घिरी हुई थी। वे सभी पार्षद नारायणस्वरूप थे और कौस्तुभमणिसे अलंकृत थे। उस सभाका आकार नवीन चन्द्रमण्डलके समान था, वह मनोहर सभा चौकोर थी, वह सर्वोत्तम दिव्य मणियोंसे निर्मित थी, वह बहुमूल्य हीरोंसे सजी हुई थी, भगवान् श्रीहरिकी इच्छासे निर्मित उस सभाभवनमें बहुमूल्य रत्न जड़े हुए थे, मणिमयी मालाएँ उसमें जालीके रूपमें शोभा दे रही थीं, मोतियोंकी झालरोंसे वह सुशोभित थी, मण्डलाकार करोड़ों रत्नमय विचित्र दर्पणोंसे वह सभा मण्डित थी, अनेक प्रकारके रेखाचित्रोंसे युक्त वह सभा अत्यन्त सुन्दर तथा अद्भुत प्रतीत हो रही थी, पद्मरागमणिसे निर्मित वह सभा मणिमय पंकजोंसे परम सुन्दर प्रतीत हो रही थी, वह स्यमन्तकमणिसे बनी हुई सौ सीढ़ियोंसे युक्त थी, वहाँ दिव्य चन्दन वृक्षके सुन्दर पल्लव रेशमके सूत्रोंसे बँधे वन्दनवारके रूपमें शोभा दे रहे थे, वह मनोहर सभा उत्तम कोटिके इन्द्रनीलमणिसे निर्मित खम्भोंसे आवृत थी, वह उत्तम रत्नोंसे निर्मित अनेक कलशोंसे युक्त थी, पारिजात-पुष्पोंकी माला-पंक्तियोंसे तथा कस्तूरी और कुमकुमसे रंजित सुगन्धित चन्दनके वृक्षोंसे वह सभा सुसज्जित थी, वह सर्वत्र सुगन्धित वायुसे सुरभित थी, बहुत-सी विद्याधरियोंके नृत्यसे उस सभाकी शोभा बढ़ रही थी, वह सभा एक हजार योजन विस्तारवाली थी और बहुतसे सेवकोंसे व्याप्त थी॥ ५२—६१॥

ददर्श श्रीहरिं ब्रह्मा शङ्करश्च सुरैः सह।
वसन्तं तन्मध्यदेशे यथेन्दुं तारकावृतम्॥ ६२

अमूल्यरत्ननिर्माणचित्रसिंहासने स्थितम्।
किरीटिनं कुण्डलिनं वनमालाविभूषितम्॥ ६३

देवताओंसहित ब्रह्मा तथा शिवने सभाके मध्य भागमें विराजमान श्रीहरिको तारोंसे घिरे चन्द्रमाके समान देखा। वे बहुमूल्य रत्नोंसे निर्मित अद्भुत सिंहासनपर विराजमान थे। वे किरीट, कुण्डल तथा वनमालासे सुशोभित थे। उनके सम्पूर्ण अंग चन्दनसे

चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं बिभ्रतं केलिपङ्कजम्।
पुरतो नृत्यगीतं च पश्यन्तं सस्मितं मुदा॥ ६४

शान्तं सरस्वतीकान्तं लक्ष्मीधृतपदाम्बुजम्।
लक्ष्म्या प्रदत्तं ताम्बूलं भुक्तवन्तं सुवासितम्॥ ६५

गङ्गया परया भक्त्या सेवितं श्वेतचामरैः।
सर्वैश्च स्तूयमानं च भक्तिनम्रात्मकन्धरैः॥ ६६

एवं विशिष्टं तं दृष्ट्वा परिपूर्णतमं प्रभुम्।
ब्रह्मादयः सुराः सर्वे प्रणम्य तुष्टुवुस्तदा॥ ६७

पुलकाञ्चितसर्वाङ्गाः साश्रुनेत्राश्च गद्गदाः।
भक्ताश्च परया भक्त्या भीता नम्रात्मकन्धराः॥ ६८

कृताञ्जलिपुटो भूत्वा विधाता जगतामपि।
वृत्तान्तं कथयामास विनयेन हरेः पुरः॥ ६९

हरिस्तद्वचनं श्रुत्वा सर्वज्ञः सर्वभाववित्।
प्रहस्योवाच ब्रह्माणं रहस्यं च मनोहरम्॥ ७०

श्रीभगवानुवाच

शङ्खचूडस्य वृत्तान्तं सर्वं जानामि पद्मज।
मद्भक्तस्य च गोपस्य महातेजस्विनः पुरा॥ ७१

शृणु तत्सर्ववृत्तान्तमितिहासं पुरातनम्।
गोलोकस्यैव चरितं पापघ्नं पुण्यकारकम्॥ ७२

सुदामा नाम गोपश्च पार्षदप्रवरो मम।
स प्राप दानवीं योनिं राधाशापात्सुदारुणात्॥ ७३

तत्रैकदाहमगमं स्वालयाद्रासमण्डलम्।
विरजामपि नीत्वा च मम प्राणाधिका परा॥ ७४

अनुलिप्त थे। वे अपने हाथमें लीला-कमल धारण किये हुए थे। वे प्रसन्नतापूर्वक मुसकराते हुए अपने सामने नृत्य-गीत आदिका अवलोकन कर रहे थे। उन सरस्वतीकान्त भगवान् श्रीहरिका विग्रह शान्त था, लक्ष्मीजी उनके चरणकमल पकड़े हुए उनकी सेवामें संलग्न थीं और लक्ष्मीजीके द्वारा दिये गये सुवासित ताम्बूलका वे सेवन कर रहे थे। भगवती गंगा परम भक्तिके साथ श्वेत चँवर डुलाकर उनकी सेवा कर रही थीं। वहाँ उपस्थित सभी लोग भक्तिपूर्वक मस्तक झुकाकर उनकी स्तुति कर रहे थे॥ ६२—६६॥

[हे नारद!] ऐसे उन विशिष्ट परिपूर्णतम भगवान् श्रीहरिको देखकर ब्रह्मा आदि सभी देवता प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगे। उस समय उनके सभी अंग पुलकित हो गये थे, आँखोंमें आँसू भर आये थे और वाणी गद्गद हो गयी थी। वे सभी भक्त परम भक्तिके साथ अपने कन्धे झुकाये भयभीत होकर उनके समक्ष खड़े होकर स्तुति कर रहे थे। इसके बाद जगत्की रचना करनेवाले ब्रह्माजीने दोनों हाथ जोड़कर भगवान् श्रीहरिके सामने विनम्रतापूर्वक सारा वृत्तान्त निवेदित कर दिया॥ ६७—६९॥

उनकी यह बात सुनकर सभी अभिप्रायोंको समझनेवाले सर्वज्ञ श्रीहरिने ब्रह्माजीसे हँसकर मनको मुग्ध करनेवाला एक अद्भुत रहस्य कहना आरम्भ किया॥ ७०॥

श्रीभगवान् बोले—हे पद्मज! यह महान् तेजस्वी शंखचूड़ पूर्वजन्ममें एक गोप था और मेरा परम भक्त था, मैं इसका सभी वृत्तान्त जानता हूँ। अब आप पुरातन इतिहासके रूपमें निबद्ध उसका सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनिये। गोलोकसे सम्बन्ध रखनेवाला यह चरित पापोंका नाश करनेवाला तथा पुण्य प्रदान करनेवाला है॥ ७१-७२॥

सुदामा नामक एक गोप मेरा प्रधान पार्षद था। राधिकाके दारुण शापके कारण उसे दानवयोनिमें जन्म लेना पड़ा॥ ७३॥

एक बार मैं अपने प्राणोंसे भी अधिक प्रिय श्रेष्ठ विरजाको साथमें लेकर अपने निवास-स्थानसे रासमण्डलमें गया था॥ ७४॥

सा मां विरजया सार्धं विज्ञाय किङ्करीमुखात्।
पश्चात्क्रुद्धा साजगाम न ददर्श च तत्र माम्॥ ७५

विरजां च नदीरूपां मां ज्ञात्वा च तिरोहितम्।
पुनर्जगाम सा दृष्ट्वा स्वालयं सखिभिः सह॥ ७६

मां दृष्ट्वा मन्दिरे देवी सुदाम्ना सहितं पुरा।
भृशं सा भर्त्सयामास मौनीभूतं च सुस्थिरम्॥ ७७

तच्छ्रुत्वासहमानश्च सुदामा तां चुकोप ह।
स च तां भर्त्सयामास कोपेन मम सन्निधौ॥ ७८

तच्छ्रुत्वा कोपयुक्ता सा रक्तपङ्कजलोचना।
बहिष्कर्तुं चकाराज्ञां संत्रस्तं मम संसदि॥ ७९

सखीलक्षं समुत्तस्थौ दुर्वारं तेजसोल्बणम्।
बहिश्चकार तं तूर्णं जल्पन्तं च पुनः पुनः॥ ८०

सा च तत्ताडनं तासां श्रुत्वा रुष्टा शशाप ह।
याहि रे दानवीं योनिमित्येवं दारुणं वचः॥ ८१

तं गच्छन्तं शपन्तं च रुदन्तं मां प्रणम्य च।
वारयामास तुष्टा सा रुदती कृपया पुनः॥ ८२

हे वत्स तिष्ठ मा गच्छ क्व यासीति पुनः पुनः।
समुच्चार्य च तत्पश्चाज्जगाम सा च विक्लवम्॥ ८३

गोप्यश्च रुरुदुः सर्वा गोपाश्चापि सुदुःखिताः।
ते सर्वे राधिका चापि तत्पश्चाद् बोधिता मया॥ ८४

आयास्यति क्षणार्धेन कृत्वा शापस्य पालनम्।
सुदामंस्त्वमिहागच्छेत्युक्त्वा सा च निवारिता॥ ८५

'मैं विरजाके साथ रासमण्डलमें गया हूँ'—परिचारिकाके मुखसे ऐसा सुनकर कुपित हो राधिका वहाँ आ गयीं, किंतु उसने मुझे वहाँ नहीं देखा। बादमें मेरे अन्तर्धान होने तथा विरजाके नदीरूपमें परिणत हो जानेका समाचार सुनकर राधा अपनी सखियोंके साथ फिर अपने भवन चली गयीं॥ ७५-७६॥

उस भवनमें सुदामाके साथ मौन तथा स्थिरचित्त होकर मुझे बैठा हुआ देखकर देवी राधाने मेरी बहुत भर्त्सना की॥ ७७॥

उसे सुनकर सुदामा सहन नहीं कर सका और उनपर कुपित हो गया। उसने मेरे सामने ही राधाको क्रोधके साथ बहुत फटकारा॥ ७८॥

उसकी बात सुनकर राधिका क्रोधित हो उठीं और उनकी आँखें रक्तकमलके समान लाल हो गयीं। उन्होंने तत्काल भयभीत सुदामाको मेरी सभासे बाहर निकाल देनेका आदेश दिया॥ ७९॥

[आज्ञा पाते ही] प्रबल तेजसे सम्पन्न तथा दुर्निवार्य सखियोंका समूह उठ खड़ा हुआ और उसे शीघ्र ही सभासे बाहर कर दिया। उस समय वह सुदामा बार-बार कुछ बोलता जा रहा था॥ ८०॥

इस तरह उन सखियोंसे सुदामाके विवाद करनेके कारण राधा और भी कुपित हो उठीं और उन्होंने कुपित होकर शाप दे दिया—'तुम दानवयोनिमें जन्म प्राप्त करो'। ऐसा दारुण वचन कहा था॥ ८१॥

तदनन्तर सुदामा मुझे प्रणाम करके रोता हुआ तथा सखियोंको कोसता हुआ सभाभवनसे बाहर जाने लगा, तब करुणामयी राधाने कृपावश उसके ऊपर फिर प्रसन्न होकर उसे रोक लिया और रोते हुए कहा—'हे वत्स! ठहरो, मत जाओ। कहाँ जा रहे हो?'—ऐसा बार-बार कहती हुई वे राधा व्याकुल होकर उसके पीछे-पीछे चल पड़ीं॥ ८२-८३॥

यह देखकर सभी गोपी और गोप अत्यन्त दुःखी होकर रोने लगे। तब मैंने राधिकाको तथा उन सभीको समझाया कि शापका पालन करके वह सुदामा आधे क्षणमें ही वापस आ जायगा। हे सुदामन्! तुम यहाँ अवश्य आ जाना—ऐसा कहकर मैंने राधाको शान्त किया॥ ८४-८५॥

गोलोकस्य क्षणार्धेन चैकं मन्वन्तरं भवेत्।
पृथिव्यां जगतां धातरित्येव वचनं ध्रुवम्॥ ८६

इत्येवं शङ्खचूडश्च पुनस्तत्रैव यास्यति।
महाबलिष्ठो योगेशः सर्वमायाविशारदः॥ ८७

हे सम्पूर्ण जगत्की रक्षा करनेवाले ब्रह्मन्! गोलोकके आधे क्षणमें ही पृथ्वीलोकपर एक मन्वन्तरका समय व्यतीत हो जाता है; यह बात बिलकुल सत्य है। इस प्रकार यह सब कुछ पूर्वनिश्चित व्यवस्थाके अनुसार ही हो रहा है। अतः सम्पूर्ण मायाओंका पूर्ण ज्ञाता, महान् बलशाली तथा योगेश्वर शंखचूड़ समय आनेपर पुनः उसी गोलोकमें वापस चला जायगा॥ ८६-८७॥

मम शूलं गृहीत्वा च शीघ्रं गच्छत भारतम्।
शिवः करोतु संहारं मम शूलेन रक्षसः॥ ८८

अब आपलोग मेरा त्रिशूल लेकर शीघ्र भारतवर्षमें चलें और वहाँपर शंकरजी मेरे त्रिशूलसे उस राक्षसका संहार करें॥ ८८॥

ममैव कवचं कण्ठे सर्वमङ्गलकारकम्।
बिभर्ति दानवः शश्वत्संसारे विजयी ततः॥ ८९

वह दानव शंखचूड़ अपने कण्ठमें मेरा सर्वमंगलकारी कवच निरन्तर धारण किये रहता है। इसीसे वह सदा संसार-विजयी बना हुआ है॥ ८९॥

तस्मिन् ब्रह्मन् स्थिते चैव न कोऽपि हिंसितुं क्षमः।
तद्याचनां करिष्यामि विप्ररूपोऽहमेव च॥ ९०

हे ब्रह्मन्! उसके कण्ठमें उस कवचके रहते उसे मारनेमें कोई प्राणी समर्थ नहीं है। अतः मैं ही ब्राह्मणका रूप धारणकर उससे कवचकी याचना करूँगा॥ ९०॥

सतीत्वहानिस्तत्पत्न्या यत्र काले भविष्यति।
तत्रैव काले तन्मृत्युरिति दत्तो वरस्त्वया॥ ९१

जिस समय उसकी पत्नीका सतीत्व नष्ट होगा, उसी समय उसकी मृत्यु होगी—ऐसा आपने उसे वर भी दे रखा है॥ ९१॥

तत्पत्न्याश्चोदरे वीर्यमर्पयिष्यामि निश्चितम्।
तत्क्षणे चैव तन्मृत्युर्भविष्यति न संशयः॥ ९२

पश्चात्सा देहमुत्सृज्य भविष्यति मम प्रिया।

इसके लिये मैं अवश्य ही उसकी पत्नीके उदरमें अपना तेज स्थापित करूँगा, जिससे उसी क्षण उस शंखचूड़की मृत्यु हो जायगी; इसमें सन्देह नहीं है। तब उसकी पत्नी अपना शरीर त्यागकर पुनः मेरी प्रिया बन जायगी॥ ९२½॥

इत्युक्त्वा जगतां नाथो ददौ शूलं हराय च॥ ९३
शूलं दत्त्वा ययौ शीघ्रं हरिरभ्यन्तरे मुदा।
भारतं च ययुर्देवा ब्रह्मरुद्रपुरोगमाः॥ ९४

ऐसा कहकर जगत्के स्वामी भगवान् श्रीहरिने शंकरजीको त्रिशूल दे दिया और त्रिशूल देकर वे श्रीहरि प्रसन्नतापूर्वक तत्काल अन्तःपुरमें चले गये। इसके बाद सभी देवताओंने ब्रह्मा तथा शंकरजीको आगे करके भारतवर्षके लिये प्रस्थान किया॥ ९३-९४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे शङ्खचूडेन सह तुलसीसङ्गमवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥



अथ विंशोऽध्यायः

पुष्पदन्तका शंखचूड़के पास जाकर भगवान् शंकरका सन्देश सुनाना, युद्धकी बात सुनकर तुलसीका सन्तप्त होना और शंखचूड़का उसे ज्ञानोपदेश देना

श्रीनारायण उवाच

ब्रह्मा शिवं संनियोज्य संहारे दानवस्य च।
जगाम स्वालयं तूर्णं यथास्थानं सुरोत्तमाः॥ १

चन्द्रभागानदीतीरे वटमूले मनोहरे।
तत्र तस्थौ महादेवो देवविस्तारहेतवे॥ २

दूतं कृत्वा चित्ररथं गन्धर्वेश्वरमीप्सितम्।
शीघ्रं प्रस्थापयामास शङ्खचूडान्तिकं मुदा॥ ३

सर्वेश्वराज्ञया शीघ्रं ययौ तन्नगरं परम्।
महेन्द्रनगरोत्कृष्टं कुबेरभवनाधिकम्॥ ४

पञ्चयोजनविस्तीर्णं दैर्घ्ये तद् द्विगुणं भवेत्।
स्फटिकाकारमणिभिर्निर्मितं यानवेष्टितम्॥ ५

सप्तभिः परिखाभिश्च दुर्गमाभिः समन्वितम्।
ज्वलदग्निनिभैः शश्वत्कल्पितं रत्नकोटिभिः॥ ६

युक्तं च वीथीशतकैर्मणिवेदिविचित्रितैः।
परितो वणिजां सौधैर्नानावस्तुविराजितैः॥ ७

सिन्दूराकारमणिभिर्निर्मितैश्च विचित्रितैः।
भूषितं भूषितैर्दिव्यैराश्रमैः शतकोटिभिः॥ ८

गत्वा ददर्श तन्मध्ये शङ्खचूडालयं परम्।
अतीव वलयाकारं यथा पूर्णेन्दुमण्डलम्॥ ९

ज्वलदग्निशिखाक्ताभिः परिखाभिश्चतसृभिः।
तद्दुर्गमं च शत्रूणामन्येषां सुगमं सुखम्॥ १०

अत्युच्चैर्गगनस्पर्शिमणिशृङ्गविराजितम्।
राजितं द्वादशद्वारैर्द्वारपालसमन्वितम्॥ ११

मणीन्द्रसारनिर्माणैः शोभितं लक्षमन्दिरैः।
शोभितं रत्नसोपानै रत्नस्तम्भविराजितम्॥ १२

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] उस दानवके संहारकार्यमें शिवजीको नियुक्तकर ब्रह्माजी तत्काल अपने स्थानपर चले गये और अन्य देवता भी अपने-अपने स्थानके लिये प्रस्थित हो गये॥ १॥

तदनन्तर महादेवजी देवताओंके अभ्युदयके उद्देश्यसे चन्द्रभागानदीके तटपर एक मनोहर वटवृक्षके नीचे आसीन हो गये॥ २॥

उन्होंने अपने अत्यन्त प्रिय गन्धर्वराज चित्ररथ (पुष्पदन्त)-को दूत बनाकर तुरन्त प्रसन्नतापूर्वक शंखचूड़के पास भेजा॥ ३॥

सर्वेश्वर शिवकी आज्ञा पाकर चित्ररथ तत्काल शंखचूड़के उत्तम नगरमें गया, जो इन्द्रपुरीसे भी उत्कृष्ट तथा कुबेरके भवनसे भी अधिक सुन्दर था॥ ४॥

वह नगर पाँच योजन चौड़ा तथा उससे दुगुना लम्बा था। वह स्फटिकके आकारवाली मणियोंसे निर्मित था तथा उसके चारों ओर अनेक वाहन स्थित थे। वह नगर सात दुर्गम खाइयोंसे युक्त था। प्रज्वलित अग्निके समान निरन्तर चमकनेवाले करोड़ों रत्नोंसे उसका निर्माण किया गया था। वह नगर सैकड़ों वीथियों तथा मणिमय विचित्र वेदियोंसे सम्पन्न था। वह व्यापारियोंके बड़े-बड़े महलोंसे आवृत था, जिनमें अनेक प्रकारकी सामग्रियाँ विराजमान थीं। उसी प्रकार वह नगर सिन्दूरके समान लाल मणियोंद्वारा निर्मित विचित्र, सुन्दर तथा दिव्य करोड़ों आश्रमोंसे सुशोभित था॥ ५—८॥

हे मुने! नगरमें पहुँचकर पुष्पदन्तने उसके मध्यमें स्थित शंखचूड़का श्रेष्ठ भवन देखा, जो पूर्णचन्द्र-मण्डलकी भाँति पूर्णतः वलयाकार था, प्रज्वलित अग्निकी लपटोंके समान प्रतीत होनेवाली चार परिखाओंसे सुरक्षित था, शत्रुओंके लिये अत्यन्त दुर्गम था, किंतु दूसरे लोगोंके लिये सुगम एवं सुखप्रद था, अत्यन्त ऊँचाईवाले गगनस्पर्शी मणि-निर्मित कंगूरोंसे सुशोभित था, द्वारपालोंसे युक्त बारह द्वारोंसे सुसज्जित था और सर्वोत्कृष्ट मणियोंसे निर्मित लाखों मन्दिरों, सोपानों तथा रत्नमय खम्भोंसे मण्डित था॥ ९—१२॥

तद् दृष्ट्वा पुष्पदन्तोऽपि वरं द्वारं ददर्श सः।
द्वारे नियुक्तं पुरुषं शूलहस्तं च सस्मितम्॥ १३

तिष्ठन्तं पिङ्गलाक्षं च ताम्रवर्णं भयङ्करम्।
कथयामास वृत्तान्तं जगाम तदनुज्ञया॥ १४

अतिक्रम्य च तद्द्वारं जगामाभ्यन्तरं पुनः।
न कोऽपि रक्षति श्रुत्वा दूतरूपं रणस्य च॥ १५

गत्वा सोऽभ्यन्तरद्वारं द्वारपालमुवाच ह।
रणस्य सर्ववृत्तान्तं विज्ञापयत माचिरम्॥ १६

स च तं कथयित्वा च दूतो गन्तुमुवाच ह।
स गत्वा शङ्खचूडं तं ददर्श सुमनोहरम्॥ १७

राजमण्डलमध्यस्थं स्वर्णसिंहासने स्थितम्।
मणीन्द्ररचितं दिव्यं रत्नदण्डसमन्वितम्॥ १८

रत्नकृत्रिमपुष्पैश्च प्रशस्तैः शोभितं सदा।
भृत्येन मस्तकन्यस्तं स्वर्णच्छत्रं मनोहरम्॥ १९

सेवितं पार्षदगणै रुचिरैः श्वेतचामरैः।
सुवेषं सुन्दरं रम्यं रत्नभूषणभूषितम्॥ २०

माल्येन लेपनं सूक्ष्मं सुवस्त्रं दधतं मुने।
दानवेन्द्रैः परिवृतं सुवेषैश्च त्रिकोटिभिः॥ २१

शतकोटिभिरन्यैश्च भ्रमद्भिरस्त्रपाणिभिः।
एवंभूतञ्च तं दृष्ट्वा पुष्पदन्तः सविस्मयः॥ २२
उवाच स च वृत्तान्तं यदुक्तं शङ्करेण च।

पुष्पदन्त उवाच

राजेन्द्र शिवभृत्योऽहं पुष्पदन्ताभिधः प्रभो॥ २३

यदुक्तं शङ्करेणैव तद् ब्रवीमि निशामय।
राज्यं देहि च देवानामधिकारं च साम्प्रतम्॥ २४

उसे देखकर पुष्पदन्तने एक दूसरा प्रधान द्वार देखा। उस द्वारपर सुरक्षाहेतु नियुक्त एक पुरुष हाथमें त्रिशूल धारण किये मुसकराता हुआ वहाँ स्थित था। पुष्पदन्तने पीली आँखोंवाले तथा ताम्र वर्णके शरीरवाले उस भयंकर पुरुषसे सारी बातें बतायीं और फिर उसकी आज्ञासे वह आगे बढ़ा। उस द्वारको पार करके वह भीतर चला गया। यह युद्धका सन्देश देनेवाला दूत है—यह जानकर कोई उसे रोकता भी नहीं था॥ १३—१५॥

भीतरी द्वारपर पहुँचकर उसने द्वारपालसे कहा—युद्धका सम्पूर्ण वृत्तान्त [राजाको] बता दो, इसमें विलम्ब मत करो। उस द्वारपालसे ऐसा कहकर वह दूत [पुष्पदन्त] स्वयं जानेके लिये बोला। वहाँ जाकर उसने राजमण्डलीके मध्यमें स्वर्णके सिंहासनपर बैठे हुए परम मनोहर शंखचूड़को देखा। उस दिव्य सिंहासनमें सर्वोत्तम मणियाँ जड़ी थीं, वह रत्नमय दण्डोंसे युक्त था, वह रत्ननिर्मित कृत्रिम तथा उच्च कोटिके पुष्पोंसे सदा सुशोभित था, एक सेवक शंखचूडके सिरके ऊपर स्वर्णका मनोहर छत्र लगाये खड़ा था, सुन्दर तथा श्वेत चँवर डुलाते हुए पार्षदगण उसकी सेवामें संलग्न थे, सुन्दर वेष धारण करने तथा रत्नमय आभूषणोंसे अलंकृत होनेके कारण वह रमणीय प्रतीत हो रहा था। हे मुने! वह माला पहने था, शरीरमें चन्दनका लेप किये हुआ था और दो महीन तथा सुन्दर वस्त्र धारण किये हुआ था। वह शंखचूड़ सुन्दर वेष धारण करनेवाले तीन करोड़ दानवेन्द्रोंसे घिरा हुआ था। इसी प्रकार हाथमें अस्त्र धारण किये हुए सैकड़ों करोड़ अन्य दानव भी उसके चारों ओर इधर-उधर घूम रहे थे। इस प्रकारके उस शंखचूड़को देखकर परम विस्मयको प्राप्त उस पुष्पदन्तने शंकरजीके द्वारा जो युद्धविषयक समाचार कहा गया था, उसे बताना आरम्भ किया॥ १६—२२½॥

पुष्पदन्त बोला—हे राजेन्द्र! हे प्रभो! मैं शंकरजीका सेवक हूँ, मेरा नाम पुष्पदन्त है। शंकरजीने जो कुछ कहा है, मैं वही कह रहा हूँ, आप सुनिये—अब आप देवताओंका राज्य तथा अधिकार लौटा

देवाश्च शरणापन्ना देवेशं श्रीहरिं परम्।
हरिर्दत्त्वास्य शूलं च तेन प्रस्थापितः शिवः॥ २५
पुष्पभद्रानदीतीरे वटमूले त्रिलोचनः।
विषयं देहि तेषां च युद्धं वा कुरु निश्चितम्॥ २६
गत्वा वक्ष्यामि किं शम्भुमथ तद्वद मामपि।
दूतस्य वचनं श्रुत्वा शङ्खचूडः प्रहस्य च॥ २७
प्रभातेऽहं गमिष्यामि त्वं च गच्छेत्युवाच ह।
स गत्वोवाच तं तूर्णं वटमूलस्थमीश्वरम्॥ २८
शङ्खचूडस्य वचनं तदीयं तन्मुखोदितम्।
एतस्मिन्नन्तरे स्कन्द आजगाम शिवान्तिकम्॥ २९
वीरभद्रश्च नन्दी च महाकालः सुभद्रकः।
विशालाक्षश्च बाणश्च पिङ्गलाक्षो विकम्पनः॥ ३०
विरूपो विकृतिश्चैव मणिभद्रश्च बाष्कलः।
कपिलाख्यो दीर्घदंष्ट्रो विकटस्ताम्रलोचनः॥ ३१
कालकण्ठो बलीभद्रः कालजिह्वः कुटीचरः।
बलोन्मत्तो रणश्लाघी दुर्जयो दुर्गमस्तथा॥ ३२
अष्टौ च भैरवा रौद्रा रुद्राश्चैकादश स्मृताः।
वसवोऽष्टौ वासवश्च आदित्या द्वादश स्मृताः॥ ३३
हुताशनश्च चन्द्रश्च विश्वकर्माश्विनौ च तौ।
कुबेरश्च यमश्चैव जयन्तो नलकूबरः॥ ३४
वायुश्च वरुणश्चैव बुधश्च मङ्गलस्तथा।
धर्मश्च शनिरीशानः कामदेवश्च वीर्यवान्॥ ३५
उग्रदंष्ट्रा चोग्रदण्डा कोटरा कैटभी तथा।
स्वयं चाष्टभुजा देवी भद्रकाली भयङ्करी॥ ३६
रत्नेन्द्रसारनिर्माणविमानोपरि संस्थिता।
रक्तवस्त्रपरीधाना रक्तमाल्यानुलेपना॥ ३७
नृत्यन्ती च हसन्ती च गायन्ती सुस्वरं मुदा।
अभयं ददाति भक्तेभ्योऽभया सा च भयं रिपुम्॥ ३८
बिभ्रती विकटां जिह्वां सुलोलां योजनायताम्।
शङ्खचक्रगदापद्मखड्गचर्मधनुःशरान् ॥ ३९
खर्परं वर्तुलाकारं गम्भीरं योजनायतम्।
त्रिशूलं गगनस्पर्शि शक्तिं च योजनायताम्॥ ४०

दीजिये; क्योंकि वे देवता देवेश श्रेष्ठ श्रीहरिकी शरणमें गये थे। उन श्रीहरिने अपना त्रिशूल देकर आपके विनाशार्थ शिवजीको भेजा है। वे त्रिलोचन शिव इस समय भद्रशीला नदीके तटपर वटवृक्षके नीचे विराजमान हैं। अतः आप उन देवताओंका राज्य लौटा दीजिये अथवा युद्ध कीजिये। अब आप मुझे यह भी बता दीजिये कि मैं शिवजीके पास जाकर उनसे क्या कहूँ?॥ २३—२६½ ॥

[हे नारद!] दूतकी बात सुनकर शंखचूड़ने हँसकर कहा—'तुम चलो, मैं प्रातःकाल वहाँ पहुँचूँगा'॥ २७½ ॥

तदनन्तर पुष्पदन्तने वटवृक्षके नीचे विराजमान परमेश्वर शिवके पास पहुँचकर शंखचूड़के मुखसे कही गयी वह बात ज्यों-की-त्यों उनसे कह दी॥ २८½ ॥

इतनेमें ही कार्तिकेयजी भगवान् शंकरके पास आ गये। वीरभद्र, नन्दी, महाकाल, सुभद्र, विशालाक्ष, बाण, पिंगलाक्ष, विकम्पन, विरूप, विकृति, मणिभद्र, बाष्कल, कपिलाख्य, दीर्घदंष्ट्र, विकट, ताम्रलोचन, कालकण्ठ, बलीभद्र, कालजिह्व, कुटीचर, बलोन्मत्त, रणश्लाघी, दुर्जय, दुर्गम तथा जो आठ भैरव, ग्यारह रुद्र, आठ वसु और बारह आदित्य कहे गये हैं—वे सब, अग्नि, चन्द्रमा, विश्वकर्मा, दोनों अश्विनीकुमार, कुबेर, यमराज, जयन्त, नलकूबर, वायु, वरुण, बुध, मंगल, धर्म, शनि, ईशान तथा ओजस्वी कामदेव भी वहाँ आ गये॥ २९—३५ ॥

उग्रदंष्ट्रा, उग्रचण्डा, कोटरा तथा कैटभी आदि देवियाँ भी वहाँ पहुँच गयीं। इसी प्रकार आठ भुजाएँ धारण करनेवाली तथा भय उत्पन्न करनेवाली साक्षात् भगवती भद्रकाली भी वहाँ पहुँच गयीं। वे सर्वोत्तम रत्नोंसे निर्मित विमानपर विराजमान थीं। वे लाल वस्त्र तथा लाल पुष्पोंकी माला धारण किये थीं और लाल चन्दनसे अनुलिप्त थीं। वे प्रसन्नतापूर्वक नाचती, हँसती तथा मधुर स्वरमें गाती हुई सुशोभित हो रही थीं। वे देवी अभया भक्तोंको अभय तथा शत्रुओंको भय प्रदान करती हैं। वे योजनभर लम्बी तथा लपलपाती हुई भयंकर जीभ, शंख, चक्र, गदा, पद्म, खड्ग, ढाल, धनुष, बाण, एक योजन विस्तृत वर्तुलाकार गम्भीर खप्पर, आकाशको छूता हुआ विशाल त्रिशूल,

मुद्गरं मुसलं वज्रं खेटं फलकमुज्ज्वलम्।
वैष्णवास्त्रं वारुणास्त्रं वाह्नेयं नागपाशकम्॥ ४१

नारायणास्त्रं गान्धर्वं ब्रह्मास्त्रं गारुडं तथा।
पर्जन्यास्त्रं पाशुपतं जृम्भणास्त्रं च पार्वतम्॥ ४२

माहेश्वरास्त्रं वायव्यं दण्डं सम्मोहनं तथा।
अव्यर्थमस्त्रकं दिव्यं दिव्यास्त्रशतकं परम्॥ ४३

आगत्य तत्र तस्थौ च योगिनीनां त्रिकोटिभिः।
सार्धं च डाकिनीनां च विकटानां त्रिकोटिभिः॥ ४४

भूतप्रेतपिशाचाश्च कूष्माण्डा ब्रह्मराक्षसाः।
वेताला राक्षसाश्चैव यक्षाश्चैव तु किन्नराः॥ ४५

ताभिश्चैव सह स्कन्दः प्रणम्य चन्द्रशेखरम्।
पितुः पार्श्वे सहायार्थं समुवास तदाज्ञया॥ ४६

अथ दूते गते तत्र शङ्खचूडः प्रतापवान्।
उवाच तुलसीं वार्तां गत्वाभ्यन्तरमेव च॥ ४७

रणवार्तां च सा श्रुत्वा शुष्ककण्ठोष्ठतालुका।
उवाच मधुरं साध्वी हृदयेन विदूयता॥ ४८

तुलस्युवाच

हे प्राणबन्धो हे नाथ तिष्ठ मे वक्षसि क्षणम्।
हे प्राणाधिष्ठातृदेव रक्ष मे जीवितं क्षणम्॥ ४९

भुंक्ष्व जन्म समासाद्य यन्मे मनसि वाञ्छितम्।
पश्यामि त्वां क्षणं किञ्चिल्लोचनाभ्यां च सादरम्॥ ५०

आन्दोलयन्ते प्राणा मे मनो दग्धं च सन्ततम्।
दुःस्वप्नश्च मया दृष्टश्चाद्यैव चरमे निशि॥ ५१

तुलसीवचनं श्रुत्वा भुक्त्वा पीत्वा नृपेश्वरः।
उवाच वचनं प्राज्ञो हितं सत्यं यथोचितम्॥ ५२

शङ्खचूड उवाच

कालेन योजितं सर्वं कर्मभोगनिबन्धनम्।
शुभं हर्षः सुखं दुःखं भयं शोकश्च मङ्गलम्॥ ५३

एक योजन लम्बी शक्ति, मुद्गर, मुसल, वज्र, खेटक, प्रकाशमान फलक, वैष्णवास्त्र, वारुणास्त्र, आग्नेयास्त्र, नागपाश, नारायणास्त्र, गन्धर्वास्त्र, ब्रह्मास्त्र, गरुडास्त्र, पर्जन्यास्त्र, पाशुपतास्त्र, जृम्भणास्त्र, पर्वतास्त्र, माहेश्वरास्त्र, वायव्यास्त्र, सम्मोहन दण्ड, दिव्य अमोघ अस्त्र तथा दिव्य श्रेष्ठ सैकड़ों अस्त्र धारणकर तीन करोड़ योगिनियों और तीन करोड़ भयंकर डाकिनियोंको साथ लिये वहाँ आकर विराजमान हो गयीं॥ ३६—४४॥

भूत, प्रेत, पिशाच, कूष्माण्ड, ब्रह्मराक्षस, बेताल, राक्षस, यक्ष और किन्नर भी वहाँ उपस्थित हो गये। उन सभी देवियों [तथा अन्य देवगणों]-को साथ लेकर कार्तिकेय अपने पिता शिवको प्रणाम करके सहायता प्रदान करनेके उद्देश्यसे उनकी आज्ञासे उनके पास बैठ गये॥ ४५-४६॥

इधर, दूतके चले जानेपर प्रतापी शंखचूड़ने अन्तःपुरमें जाकर तुलसीको सारी बात बतायी॥ ४७॥

युद्धकी बात सुनकर उस तुलसीके कण्ठ, ओष्ठ और तालु सूख गये और वह साध्वी तुलसी दुःखी मनसे मधुर वाणीमें कहने लगी॥ ४८॥

तुलसी बोली—हे प्राणबन्धो! हे नाथ! हे प्राणेश्वर! मेरे वक्षःस्थलपर क्षणभरके लिये विराजिये। हे प्राणाधिष्ठातृदेव! क्षणभर मेरे प्राणोंकी रक्षा कीजिये। मैं क्षणभर अपने नेत्रोंसे आदरपूर्वक आपको देख लूँ और यह जन्म पाकर आप मेरे मनमें विहारकी जो अभिलाषा है, उसे पूर्ण कीजिये। आज ही रात्रिके अन्तमें मैंने एक दुःस्वप्न देखा है, जिससे मेरे प्राण काँप रहे हैं और मनमें लगातार जलन हो रही है॥ ४९—५१॥

तुलसीकी बात सुनकर परम ज्ञानसम्पन्न राजेन्द्र शंखचूड भोजन-पानादिसे निवृत्त होकर तुलसीसे हितकर, सत्य तथा यथोचित वचन कहने लगा॥ ५२॥

शंखचूड़ बोला—कल्याण, हर्ष, सुख, दुःख, भय, शोक और मंगल—ये समस्त कर्मभोगके बन्धन कालके साथ बँधे हुए हैं॥ ५३॥

काले भवन्ति वृक्षाश्च स्कन्धवन्तश्च कालतः।
क्रमेण पुष्पवन्तश्च फलवन्तश्च कालतः॥ ५४

तेषां फलानि पक्वानि प्रभवन्त्येव कालतः।
ते सर्वे फलिताः काले पातं यान्ति च कालतः॥ ५५

समयसे ही वृक्ष उगते हैं, समयसे ही उनमें शाखाएँ निकलती हैं और फिर क्रमशः पुष्प तथा फल भी उनमें कालानुसार ही लगते हैं। तत्पश्चात् उन वृक्षोंके फल भी समयसे ही पकते हैं। अन्तमें फलयुक्त वे सभी वृक्ष समयानुसार नष्ट भी हो जाते हैं॥ ५४-५५॥

काले भवन्ति विश्वानि काले नश्यन्ति सुन्दरि।
कालात्स्रष्टा च सृजति पाता पाति च कालतः॥ ५६

संहर्ता संहरेत्काले क्रमेण सञ्चरन्ति ते।
ब्रह्मविष्णुशिवादीनामीश्वरः प्रकृतिः परा॥ ५७

स्रष्टा पाता च संहर्ता स चात्मा कालनर्तकः।
काले स एव प्रकृतिं स्वाभिन्नां स्वेच्छया प्रभुः॥ ५८

निर्माय कृतवान्सर्वान्विश्वस्थांश्च चराचरान्।
सर्वेशः सर्वरूपश्च सर्वात्मा परमेश्वरः॥ ५९

हे सुन्दरि! समयसे विश्व बनते हैं और समयपर नष्ट हो जाते हैं। कालकी प्रेरणासे ही ब्रह्मा सृष्टि करते हैं, विष्णु पालन करते हैं और विश्वके संहारक शम्भु संहार करते हैं। वे सब क्रमशः कालानुसार ही अपने-अपने कार्यमें नियुक्त होते हैं। ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवताओंकी नियामिका वे पराप्रकृति ही हैं। वही परमेश्वर सृष्टि, रक्षा तथा संहार करनेवाला है और वही परमात्मा कालको नचानेवाला है। उन्हीं प्रभुने समयानुसार इच्छा-पूर्वक अपनेसे अभिन्न प्रकृतिका निर्माणकर विश्वमें रहनेवाले समस्त स्थावर-जंगम जीवोंकी रचना की है। वे ही सबके ईश्वर हैं, सभी रूपोंमें वे ही विद्यमान हैं, वे ही सबकी आत्मा हैं और वे ही परम ईश्वर हैं॥ ५६—५९॥

जनं जनेन जनिता जनं पाति जनेन यः।
जनं जनेन हरते तं देवं भज साम्प्रतम्॥ ६०

जो जनसे जनकी उत्पत्ति करता है, जनसे जनकी रक्षा करता है और जनसे जनका संहार करता है, उन्हीं प्रभुकी अब तुम उपासना करो॥ ६०॥

यस्याज्ञया वाति वातः शीघ्रगामी च साम्प्रतम्।
यस्याज्ञया च तपनस्तपत्येव यथाक्षणम्॥ ६१

यथाक्षणं वर्षतीन्द्रो मृत्युश्चरति जन्तुषु।
यथाक्षणं दहत्यग्निश्चन्द्रो भ्रमति शीतवान्॥ ६२

मृत्योर्मृत्युं कालकालं यमस्य च यमं परम्।
विभुं स्रष्टुश्च स्रष्टारं मातुश्च मातृकं भवे॥ ६३

संहर्तारं च संहर्तुस्तं देवं शरणं व्रज।
को वा बन्धुश्च केषां वा सर्वबन्धुं भज प्रिये॥ ६४

जिनकी आज्ञासे शीघ्रगामी पवनदेव प्रवाहित होते हैं, सूर्य यथासमय तपते हैं, इन्द्र समयानुसार वृष्टि करते हैं, मृत्यु सभी जीवोंमें विचरण करती है, अग्निदेव यथासमय दाह उत्पन्न करते हैं, शीतल चन्द्रमा आकाशमें परिभ्रमण करते हैं—उन्हीं मृत्युके भी मृत्यु, कालके भी काल, यमराजसे भी बड़े यमराज, सृष्टिकर्ता ब्रह्माके भी स्रष्टा, जगत्में माताकी माता, संहार करनेवाले शिवके भी संहर्ता परमप्रभु परमेश्वरकी शरणमें जाओ। हे प्रिये! इस जगत्में कौन किसका बन्धु है; अतः सभी प्राणियोंके बन्धुस्वरूप उन प्रभुकी उपासना करो॥ ६१—६४॥

अहं को वा च त्वं का वा विधिना योजितः पुरा।
त्वया सार्धं कर्मणा च पुनस्तेन वियोजितः॥ ६५

मैं कौन हूँ और तुम कौन हो? ब्रह्माने पहले मुझे तुम्हारे साथ संयुक्त कर दिया और फिर उन्हींके द्वारा कर्मानुसार वियुक्त भी कर दिया जाऊँगा। शोक

अज्ञानी कातरः शोके विपत्तौ न च पण्डितः।
सुखे दुःखे भ्रमत्येव कालनेमिक्रमेण च॥ ६६

नारायणं तं सर्वेशं कान्तं यास्यसि निश्चितम्।
तपः कृतं यदर्थं च पुरा बदरिकाश्रमे॥ ६७

मया त्वं तपसा लब्धा ब्रह्मणस्तु वरेण च।
हर्यर्थे यत्तव तपो हरिं प्राप्स्यसि कामिनि॥ ६८

वृन्दावने च गोविन्दं गोलोके त्वं लभिष्यसि।
अहं यास्यामि तल्लोकं तनुं त्यक्त्वा च दानवीम्॥ ६९

तत्र द्रक्ष्यसि मां त्वं च द्रक्ष्यामि त्वां च साम्प्रतम्।
अगमं राधिकाशापाद्भारतं च सुदुर्लभम्॥ ७०

पुनर्यास्यामि तत्रैव कः शोको मे शृणु प्रिये।
त्वं च देहं परित्यज्य दिव्यरूपं विधाय च॥ ७१

तत्कालं प्राप्स्यसि हरिं मा कान्ते कातरा भव।
इत्युक्त्वा च दिनान्ते च तया सार्धं मनोहरम्॥ ७२

सुष्वाप शोभने तल्पे पुष्पचन्दनचर्चिते।
नानाप्रकारविभवं चकार रत्नमन्दिरे॥ ७३

रत्नप्रदीपसंयुक्ते स्त्रीरत्नं प्राप्य सुन्दरीम्।
निनाय रजनीं राजा क्रीडाकौतुकमङ्गलैः॥ ७४

कृत्वा वक्षसि तां कान्तां रुदतीमतिदुःखिताम्।
कृशोदरीं निराहारां निमग्नां शोकसागरे॥ ७५

पुनस्तां बोधयामास दिव्यज्ञानेन ज्ञानवित्।
पुरा कृष्णेन यद्दत्तं भाण्डीरे तत्त्वमुत्तमम्॥ ७६

स च तस्यै ददौ सर्वं सर्वशोकहरं परम्।
ज्ञानं सम्प्राप्य सा देवी प्रसन्नवदनेक्षणा॥ ७७
क्रीडां चकार हर्षेण सर्वं मत्वेति नश्वरम्।

तथा विपत्तिमें अज्ञानी मनुष्य भयभीत होता है, न कि विद्वान्। इस प्रकार मनुष्य कालचक्रके क्रमसे सुख तथा दुःखके चक्रमें भ्रमण करता रहता है॥ ६५-६६॥

अब तुम निश्चय ही सर्वेश्वर भगवान् नारायणको पतिरूपमें प्राप्त करोगी, जिनके लिये तुमने पूर्वकालमें बदरिकाश्रममें रहकर तप किया था॥ ६७॥

तपस्या तथा ब्रह्माजीके वरदानसे तुम मुझे प्राप्त हुई हो। हे कामिनि! उस समय जो तुम्हारी तपस्या थी, वह भगवान् श्रीहरिकी प्राप्तिके लिये थी, अतः तुम उन्हीं गोविन्द श्रीहरिको गोलोक-स्थित वृन्दावनमें प्राप्त करोगी। मैं भी अपना यह दानवी शरीर त्यागकर उसी लोकमें चलूँगा, तब वहींपर तुम मुझे देखोगी और मैं तुम्हें देखूँगा। हे प्रिये! सुनो इस समय मैं राधिकाके शापसे ही अगम तथा अत्यन्त दुर्लभ इस भारतवर्षमें आया हूँ और वहींपर पुनः चला जाऊँगा, अतः मेरे लिये शोक क्या? हे कान्ते! तुम भी शीघ्र ही इस शरीरका त्यागकर दिव्य रूप धारण करके उन्हीं श्रीहरिको पतिरूपमें प्राप्त करोगी, अतः दुःखी मत होओ॥ ६८—७१ १/२॥

यह कहकर वह शंखचूड़ सायंकाल होनेपर उस तुलसीके साथ पुष्प तथा चन्दनसे चर्चित सुन्दर शय्यापर सो गया और अनेकविध विलास करने लगा। रत्नके दीपकोंसे सुशोभित अपने रत्नमय भवनमें स्त्रीरत्नस्वरूपिणी सुन्दरीको पाकर राजा शंखचूड़ने मांगलिक आमोद-प्रमोदोंके द्वारा रात्रि व्यतीत की। तत्पश्चात् अत्यन्त दुःखित होकर रोती हुई, निराहार रहनेके कारण कृश शरीरवाली तथा शोक-सागरमें निमग्न अपनी उस प्रिया तुलसीको अपने वक्षःसे लगाकर वह ज्ञानसम्पन्न शंखचूड़ दिव्यज्ञानके द्वारा उसे पुनः समझाने लगा। प्राचीनकालमें भांडीरवनमें स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने जिस उत्तम, सभी शोकोंको दूर करनेवाले परम ज्ञानका उपदेश उसके लिये किया था, उसी सम्पूर्ण ज्ञानको शंखचूड़ने उस तुलसीको प्रदान किया। ज्ञान पाकर देवी तुलसीका मुख तथा नेत्र प्रसन्नतासे खिल उठा। 'सब कुछ नश्वर है'—ऐसा मानकर वह हर्षपूर्वक विहार करने लगी॥ ७२—७७ १/२॥

तौ दम्पती च क्रीडन्तौ निमग्नौ सुखसागरे॥ ७८

पुलकाञ्चितसर्वाङ्गौ मूर्च्छितौ निर्जने मुने।
अङ्गप्रत्यङ्गसंयुक्तौ सुप्रीतौ सुरतोत्सुकौ॥ ७९

एकाङ्गौ च तथा तौ द्वौ चार्धनारीश्वरो यथा।
प्राणेश्वरं च तुलसी मेने प्राणाधिकं परम्॥ ८०

प्राणाधिकां च तां मेने राजा प्राणेश्वरीं सतीम्।
तौ स्थितौ सुखसुप्तौ च तन्द्रितौ सुन्दरौ समौ॥ ८१

सुवेषौ सुखसम्भोगादचेष्टौ सुमनोहरौ।
क्षणं सुचेतनौ तौ च कथयन्तौ रसाश्रयात्॥ ८२

कथां मनोरमां दिव्यां हसन्तौ च क्षणं पुनः।
क्षणं च केलिसंयुक्तौ रसभावसमन्वितौ॥ ८३

सुरते विरतिर्नास्ति तौ तद्विषयपण्डितौ।
सततं जययुक्तौ द्वौ क्षणं नैव पराजितौ॥ ८४

हे मुने! विहार करते हुए वे दोनों पति-पत्नी सुखके सागरमें निमग्न हो गये। रतिक्रीडाके लिये उत्सुक वे दोनों निर्जन स्थानमें परस्पर अंग-प्रत्यंगके स्पर्शसे मूर्च्छित-जैसे हो गये। उस समय अत्यन्त प्रसन्नचित्त उन दोनोंके सभी अंग पुलकित थे। वे दोनों एक अंगके रूपमें होकर अर्धनारीश्वरके समान प्रतीत हो रहे थे। तुलसी अपने पतिको प्राणोंसे भी अधिक प्रिय समझती थी और राजा शंखचूड़ भी अपनी उस साध्वी प्राणेश्वरीको अपने प्राणोंसे भी अधिक प्रिय समझता था। समान सौन्दर्यवाले वे दोनों ही तन्द्रायुक्त दम्पती सुखपूर्वक सोये हुए थे। सुन्दर वेष धारण किये हुए वे मनोहर दम्पती सम्भोगजनित सुखके कारण अचेत पड़े थे। जब कभी वे चेतनामें आते, तब परस्पर रसमयी बातें करने लगते तथा मनोरम और दिव्य कथा कहने लगते, फिर हँसने लगते थे, इसके बाद क्षणभरमें ही शृंगार भावसे युक्त होकर क्रीडा करने लगते थे। इस प्रकार कामकलाके जाननेवाले वे दोनों क्रीडा-विलाससे कभी भी विरत नहीं होते थे। दोनों ही निरन्तर विजयी बने रहकर कभी क्षणभरको भी अपनेको पराजित नहीं मानते थे॥ ७८—८४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे नारायणनारदसंवादे शङ्खचूडेन सह देवानां सङ्ग्रामोद्योगवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः॥ २०॥



अथैकविंशोऽध्यायः

शंखचूड़ और भगवान् शंकरका विशद वार्तालाप

श्रीनारायण उवाच

श्रीकृष्णं मनसा ध्यात्वा रक्षः कृष्णपरायणः।
ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय पुष्पतल्पान्मनोहरात्॥ १

रात्रिवासः परित्यज्य स्नात्वा मङ्गलवारिणा।
धौते च वाससी धृत्वा कृत्वा तिलकमुज्ज्वलम्॥ २

चकाराह्निकमावश्यमभीष्टदेववन्दनम्।
दध्याज्यमधुलाजांश्च ददर्श वस्तु मङ्गलम्॥ ३

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] श्रीकृष्णकी भक्तिमें तत्पर रहनेवाले शंखचूड़ने मनमें श्रीकृष्णका ध्यान करके ब्राह्ममूहूर्तमें ही अपनी मनोहर पुष्प-शय्यासे उठकर स्वच्छ जलसे स्नान करके रातके वस्त्र त्यागकर धुले हुए दो वस्त्र धारण किये। तदनन्तर उज्ज्वल तिलक लगाकर उसने अपने इष्ट देवताके वन्दन आदि नित्य कृत्य सम्पन्न किये। उसने दधि, घृत, मधु और धानका लावा आदि मंगलकारी वस्तुओंका दर्शन किया॥ १—३॥

रत्नश्रेष्ठं मणिश्रेष्ठं वस्त्रश्रेष्ठं च काञ्चनम्।
ब्राह्मणेभ्यो ददौ भक्त्या यथा नित्यं च नारद॥ ४
अमूल्यरत्नं यत्किञ्चिन्मुक्तामाणिक्यहीरकम्।
ददौ विप्राय गुरवे यात्रामङ्गलहेतवे॥ ५
गजरत्नमश्वरत्नं धनरत्नं मनोहरम्।
ददौ सर्वं दरिद्राय विप्राय मङ्गलाय च॥ ६
भाण्डाराणां सहस्राणि नगराणां द्विलक्षकम्।
ग्रामाणां शतकोटिं च ब्राह्मणाय ददौ मुदा॥ ७
पुत्रं कृत्वा तु राजेन्द्रं सर्वेषु दानवेषु च।
पुत्रं समर्प्य भार्यां तां राज्यं च सर्वसम्पदम्॥ ८
प्रजानुचरसङ्घं च भाण्डारं वाहनादिकम्।
स्वयं सन्नाहयुक्तश्च धनुष्पाणिर्बभूव ह॥ ९
भृत्यद्वारा क्रमेणैव चकार सैन्यसञ्चयम्।
अश्वानां च त्रिलक्षेण लक्षेण वरहस्तिनाम्॥ १०
रथानामयुतेनैव धानुष्काणां त्रिकोटिभिः।
त्रिकोटिभिर्वर्मिणां च शूलिनां च त्रिकोटिभिः॥ ११
कृता सेनापरिमिता दानवेन्द्रेण नारद।
तस्यां सेनापतिश्चैव युद्धशास्त्रविशारदः॥ १२
महारथः स विज्ञेयो रथिनां प्रवरो रणे।
त्रिलक्षाक्षौहिणीसेनापतिं कृत्वा नराधिपः॥ १३
त्रिंशदक्षौहिणीबाधं भाण्डौघं च चकार ह।
बहिर्बभूव शिविरान्मनसा श्रीहरिं स्मरन्॥ १४
रत्नेन्द्रसारनिर्माणविमानमारुरोह सः।
गुरुवर्गान्पुरस्कृत्य प्रययौ शङ्करान्तिकम्॥ १५
पुष्पभद्रानदीतीरे यत्राक्षयवटः शुभः।
सिद्धाश्रमं च सिद्धानां सिद्धिक्षेत्रं च नारद॥ १६
कपिलस्य तपःस्थानं पुण्यक्षेत्रे च भारते।

हे नारद! उसने प्रतिदिनकी भाँति ब्राह्मणोंको श्रद्धापूर्वक उत्तम रत्न, श्रेष्ठ मणियाँ, सुन्दर वस्त्र तथा स्वर्ण प्रदान किया। यात्रा मंगलमयी होनेके लिये उसने बहुमूल्य रत्न, मोती, मणि तथा हीरा आदि जो कुछ उसके पास था, अपने विप्र गुरुको समर्पित किया। उसने अपने कल्याणार्थ श्रेष्ठ तथा सुन्दर हाथी, घोड़े और धन-सामग्री सब कुछ दरिद्र ब्राह्मणोंको प्रदान किये। इसी प्रकार शंखचूड़ने ब्राह्मणोंको प्रसन्नतापूर्वक हजारों कोष, भण्डार, दो लाख नगर और सौ करोड़ गाँव प्रदान किये॥ ४—७॥

तत्पश्चात् उसने अपने पुत्रको सम्पूर्ण दानवोंका राजा बनाकर उसे अपनी पत्नी, राज्य, सम्पूर्ण सम्पत्ति, प्रजा, सेवक वर्ग, कोष और वाहन आदि सौंपकर स्वयं कवच पहन लिया और हाथमें धनुष धारण कर लिया, फिर क्रमसे सेवकोंके माध्यमसे सैनिकोंको एकत्र किया। हे नारद! उस दानवराजके द्वारा तीन लाख घोड़ों, एक लाख उत्तम कोटिके हाथियों, दस हजार रथों, तीन करोड़ धनुर्धारियों, तीन करोड़ कवचधारियों और तीन करोड़ त्रिशूलधारियोंसे युक्त एक विशाल सेना तैयार कर ली गयी॥ ८—११$\frac{1}{2}$॥

जो रणमें सभी रथियोंमें श्रेष्ठ होता है, उसे महारथी कहा जाता है। उसने युद्धशास्त्रमें विशारद ऐसे ही एक महारथीको उस सेनाका सेनापति नियुक्त कर दिया। इस प्रकार राजा शंखचूड़ने उसे तीन लाख अक्षौहिणी सेनाका सेनापति बनाकर उसे तीस-तीस अक्षौहिणी सेनाके समूहोंमें रक्षाके लिये सैन्यसामग्रीसे सम्पन्न कर दिया और तत्पश्चात् मनमें भगवान् श्रीहरिका स्मरण करता हुआ वह शिविरसे बाहर निकल गया॥ १२—१४॥

वह सर्वोत्तम रत्नोंसे निर्मित विमानपर आरूढ़ हुआ और गुरुवृन्दोंको आगे करके भगवान् शंकरके पास चल पड़ा॥ १५॥

हे नारद! पुष्पभद्रानदीके तटपर एक सुन्दर वटवृक्ष है, वहाँ सिद्ध महात्माओंका सिद्धाश्रम है। उस स्थानको सिद्धिक्षेत्र कहा गया है। भारतमें स्थित वह पुण्यक्षेत्र कपिलमुनिकी तपोभूमि है। वह पश्चिमी

पश्चिमोदधिपूर्वे च मलयस्य च पश्चिमे॥ १७

श्रीशैलोत्तरभागे च गन्धमादनदक्षिणे।
पञ्चयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये शतगुणा तथा॥ १८

शुद्धस्फटिकसङ्काशा भारते च सुपुण्यदा।
शाश्वती जलपूर्णा च पुष्पभद्रा नदी शुभा॥ १९

लवणाब्धिप्रिया भार्या शश्वत्सौभाग्यसंयुता।
शरावतीमिश्रिता च निर्गता सा हिमालयात्॥ २०

गोमतीं वामतः कृत्वा प्रविष्टा पश्चिमोदधौ।
तत्र गत्वा शङ्खचूडो ददर्श चन्द्रशेखरम्॥ २१

वटमूले समासीनं सूर्यकोटिसमप्रभम्।
कृत्वा योगासनं दृष्ट्वा मुद्रायुक्तं च सस्मितम्॥ २२

शुद्धस्फटिकसङ्काशं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा।
त्रिशूलपट्टिशधरं व्याघ्रचर्माम्बरं वरम्॥ २३

भक्तमृत्युहरं शान्तं गौरीकान्तं मनोहरम्।
तपसां फलदातारं दातारं सर्वसम्पदाम्॥ २४

आशुतोषं प्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकातरम्।
विश्वनाथं विश्वबीजं विश्वरूपं च विश्वजम्॥ २५

विश्वम्भरं विश्ववरं विश्वसंहारकारकम्।
कारणं कारणानां च नरकार्णवतारणम्॥ २६

ज्ञानप्रदं ज्ञानबीजं ज्ञानानन्दं सनातनम्।
अवरुह्य विमानाच्च तं दृष्ट्वा दानवेश्वरः॥ २७

सर्वैः सार्धं भक्तियुक्तः शिरसा प्रणनाम सः।
वामतो भद्रकालीं च स्कन्दं च तत्पुरः स्थितम्॥ २८
आशिषं च ददौ तस्मै काली स्कन्दश्च शङ्करः।

समुद्रके पूर्वमें, मलयपर्वतके पश्चिममें, श्रीशैलपर्वतकी उत्तर दिशामें तथा गन्धमादनपर्वतकी दक्षिण दिशामें स्थित है॥ १६-१७½ ॥

वहाँ भारतवर्षकी एक पुण्यदायिनी नदी बहती है, जो पाँच योजन चौड़ी तथा उससे सौ गुनी लम्बी है। पुष्पभद्रा नामक वह कल्याणकारिणी, शाश्वत तथा शुद्ध स्फटिकमणिके सदृश प्रतीत होनेवाली नदी जलसे सदा परिपूर्ण रहती है। लवण-समुद्रकी प्रिय भार्याके रूपमें प्रतिष्ठित वह नदी सदा सौभाग्यवती बनी रहती है। वह हिमालयसे निकली हुई है तथा कुछ दूर जाकर शरावती नदीमें मिल गयी है। वह गोमतीको अपनेसे बायें करके प्रवाहित होती हुई अन्तमें पश्चिमी समुद्रमें समाविष्ट हो जाती है॥ १८—२०½ ॥

वहाँ पहुँचकर शंखचूड़ने देखा कि करोड़ों सूर्यके समान प्रकाशमान चन्द्रशेखर भगवान् शिव वटवृक्षके नीचे विराजमान हैं। वे मुद्रासे युक्त होकर योगासनमें स्थित थे और उनके मुखमण्डलपर मुसकान व्याप्त थी। ब्रह्मतेजसे देदीप्यमान वे भगवान् शंकर शुद्ध स्फटिकमणिके समान प्रतीत हो रहे थे। वे अपने हाथोंमें त्रिशूल और पट्टिश तथा शरीरपर श्रेष्ठ बाघम्बर धारण किये हुए थे॥ २१—२३ ॥

अपने भक्तोंकी मृत्युतकको टाल देनेवाले, शान्तस्वभाव, मनोहर, तपस्याओंका फल तथा सभी प्रकारकी सम्पदाएँ प्रदान करनेवाले, शीघ्र प्रसन्न होनेवाले, प्रसादपूर्ण मुखमण्डलवाले, भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये व्याकुल, विश्वनाथ, विश्वबीज, विश्वरूप, विश्वज, विश्वम्भर, विश्ववर, विश्वसंहारक, कारणोंके भी कारण, नरकरूपी समुद्रसे पार करनेवाले, ज्ञानप्रद, ज्ञानबीज, ज्ञानानन्द तथा सनातन उन गौरीपति महादेवको देखकर उस दानवेश्वर शंखचूड़ने विमानसे उतरकर सबके साथ वहाँ विद्यमान शंकरको सिर झुकाकर भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। शंखचूड़ने शिवके वामभागमें विराजमान भद्रकाली तथा उनके सामने स्थित कार्तिकेयको भी प्रणाम किया। तब भद्रकाली, कार्तिकेय तथा भगवान् शंकरने उसे आशीर्वाद प्रदान किया॥ २४—२८½ ॥

उत्तस्थुरागतं दृष्ट्वा सर्वे नन्दीश्वरादयः॥ २९

परस्परं च भाषन्ते चक्रुस्तत्र च साम्प्रतम्।
राजा कृत्वा च सम्भाषामुवास शिवसन्निधौ॥ ३०

प्रसन्नात्मा महादेवो भगवांस्तमुवाच ह।

महादेव उवाच

विधाता जगतां ब्रह्मा पिता धर्मस्य धर्मवित्॥ ३१

मरीचिस्तस्य पुत्रश्च वैष्णवाश्चापि धार्मिकः।
कश्यपश्चापि तत्पुत्रो धर्मिष्ठश्च प्रजापतिः॥ ३२

दक्षः प्रीत्या ददौ तस्मै भक्त्या कन्यास्त्रयोदश।
तास्वेका च दनुः साध्वी तत्सौभाग्यविवर्धिता॥ ३३

चत्वारिंशद्दनोः पुत्रा दानवास्तेजसोल्बणाः।
तेष्वेको विप्रचित्तिश्च महाबलपराक्रमः॥ ३४

तत्पुत्रो धार्मिको दम्भो विष्णुभक्तो जितेन्द्रियः।
जजाप परमं मन्त्रं पुष्करे लक्षवत्सरम्॥ ३५

शुक्राचार्यं गुरुं कृत्वा कृष्णस्य परमात्मनः।
तदा त्वां तनयं प्राप परं कृष्णपरायणम्॥ ३६

पुरा त्वं पार्षदो गोपो गोपेष्वपि सुधार्मिकः।
अधुना राधिकाशापाद्भारते दानवेश्वरः॥ ३७

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं तुच्छं मेने च वैष्णवः।
सालोक्यसार्ष्टिसायुज्यसामीप्यं च हरेरपि॥ ३८

दीयमानं न गृह्णन्ति वैष्णवाः सेवनं विना।
ब्रह्मत्वममरत्वं वा तुच्छं मेने च वैष्णवः॥ ३९

इन्द्रत्वं वा मनुत्वं वा न मेने गणनासु च।
कृष्णभक्तस्य ते किं वा देवानां विषये भ्रमे॥ ४०

शंखचूड़को वहाँ आया देखकर नन्दीश्वर आदि सभी गण उठकर खड़े हो गये और परस्पर सामयिक बातें करने लगे। उनसे बातचीत करके राजा शंखचूड़ शिवके समीप बैठ गया, तब प्रसन्न चित्तवाले भगवान् महादेव उससे कहने लगे॥ २९-३०½ ॥

महादेवजी बोले—सम्पूर्ण जगत्की रचना करनेवाले धर्मात्मा ब्रह्मा धर्मके पिता हैं, परम वैष्णव तथा धर्मपरायण मरीचि उन धर्मके पुत्र हैं और उन मरीचिके पुत्र धर्मपरायण कश्यप हैं। प्रजापति दक्षने प्रसन्नतापूर्वक उन्हें अपनी तेरह कन्याएँ सौंप दी थीं। उन्हीं कन्याओंमें एक परम साध्वी दनु भी है, जो उस वंशका सौभाग्य बढ़ानेवाली हुई॥ ३१—३३ ॥

उस दनुके चालीस पुत्र हुए, जो तेजसम्पन्न प्रबल दानवके रूपमें विख्यात थे। उन पुत्रोंमें महान् बल तथा पराक्रमसे युक्त एक पुत्र विप्रचित्ति था। उसका पुत्र दम्भ था; जो परम धार्मिक, विष्णुभक्त तथा जितेन्द्रिय था। उसने शुक्राचार्यको गुरु बनाकर परमात्मा श्रीकृष्णके उत्तम मन्त्रका पुष्करक्षेत्रमें एक लाख वर्षतक जप किया; तब उसने कृष्णकी भक्तिमें सदा संलग्न रहनेवाले तुम-जैसे श्रेष्ठ पुरुषको पुत्ररूपमें प्राप्त किया॥ ३४—३६ ॥

पूर्वजन्ममें तुम भगवान् कृष्णके पार्षद और गोपोंमें परम धार्मिक गोप थे। इस समय तुम राधिकाके शापसे भारतवर्षमें दानवेश्वर बन गये हो॥ ३७ ॥

भगवान् विष्णुका भक्त ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त सभीको तुच्छ समझता है। वैष्णव श्रीहरिकी सेवाको छोड़कर सालोक्य, सार्ष्टि, सायुज्य और सामीप्य—इन मुक्तियोंको दिये जानेपर भी स्वीकार नहीं करते। वैष्णव ब्रह्मत्व अथवा अमरत्वको भी तुच्छ मानता है, इन्द्रत्व अथवा मनुष्यत्वको तो वह किन्हीं भी गणनाओंमें स्थान नहीं देता है; तो फिर तुम-जैसे कृष्णभक्तको देवताओंके भ्रमात्मक राज्यसे क्या प्रयोजन!॥ ३८—४० ॥

देहि राज्यं च देवानां मत्प्रीतिं रक्ष भूमिप।
सुखं स्वराज्ये त्वं तिष्ठ देवास्तिष्ठन्तु वै पदे॥ ४१

अलं भूतविरोधेन सर्वे कश्यपवंशजाः।
यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च॥ ४२

ज्ञातिद्रोहस्य पापानि कलां नार्हन्ति षोडशीम्।
स्वसम्पदां च हानिं च यदि राजेन्द्र मन्यसे॥ ४३

सर्वावस्था च समतां केषां याति च सर्वदा।
ब्रह्मणश्च तिरोभावो लये प्राकृतिके सदा॥ ४४

आविर्भावः पुनस्तस्य प्रभावादीश्वरेच्छया।
ज्ञानवृद्धिश्च तपसा स्मृतिलोपश्च निश्चितम्॥ ४५

करोति सृष्टिं ज्ञानेन स्रष्टा सोऽपि क्रमेण च।
परिपूर्णतमो धर्मः सत्ये सत्याश्रये सदा॥ ४६

त्रिभागः सोऽपि त्रेतायां द्विभागो द्वापरे स्मृतः।
एकभागः कलौ पूर्वं तदंशश्च क्रमेण च॥ ४७

कलामात्रं कलेः शेषे कुह्वां चन्द्रकला यथा।
यादृक् तेजो रवेर्ग्रीष्मे न तादृक् शिशिरे पुनः॥ ४८

दिनेषु यादृङ्मध्याह्ने सायं प्रातर्न तत्समम्।
उदयं याति कालेन बालतां च क्रमेण च॥ ४९

प्रकाण्डतां च तत्पश्चात्कालेऽस्तं पुनरेति सः।
दिने प्रच्छन्नतां याति कालेन दुर्दिने घने॥ ५०

हे राजन्! तुम देवताओंका राज्य वापस कर दो और मेरी प्रीतिकी रक्षा करो। तुम अपने राज्यमें सुखपूर्वक रहो और देवता अपने स्थानपर रहें। प्राणियोंमें परस्पर विरोध नहीं होना चाहिये; क्योंकि सभी तो मुनि कश्यपके ही वंशज हैं। ब्रह्महत्या आदिसे होनेवाले जितने पाप हैं, वे जाति-द्रोह करनेसे लगनेवाले पापकी सोलहवीं कलाके भी बराबर नहीं हैं॥ ४१-४२$\frac{1}{2}$॥

हे राजेन्द्र! यदि तुम इसे अपनी सम्पत्तिकी हानि मानते हो तो यह सोचो कि किन लोगोंकी सभी स्थितियाँ सदा एकसमान रहती हैं। प्राकृतिक प्रलयके समय ब्रह्माका भी सदा तिरोधान हो जाया करता है। तदनन्तर ईश्वरके प्रभाव तथा उनकी इच्छासे पुनः उनका प्राकट्य होता है। उस समय उनकी स्मृति लुप्त रहती है, फिर तपस्याके द्वारा उनके ज्ञानमें वृद्धि हो जाती है, यह निश्चित है। तत्पश्चात् वे ब्रह्मा ज्ञानपूर्वक क्रमशः सृष्टि करते हैं॥ ४३—४५$\frac{1}{2}$॥

सत्ययुगमें लोग सदा सत्यके आश्रयपर रहते हैं, इसलिये उस युगमें धर्म अपने परिपूर्णतम स्वरूपमें विद्यमान रहता है। वही धर्म त्रेतायुगमें तीन भागसे, द्वापरमें दो भागसे तथा कलिमें एक भागसे युक्त कहा गया है। इस प्रकार क्रमसे उसका एक-एक अंश कम होता रहता है। कलिके अन्तमें अमावस्याके चन्द्रमाकी भाँति धर्मकी कला केवल नाममात्र रह जाती है॥ ४६-४७$\frac{1}{2}$॥

ग्रीष्म ऋतुमें सूर्यका जैसा तेज रहता है, वैसा शिशिर ऋतुमें नहीं रह जाता। दिनमें भी सूर्यका जैसा तेज मध्याह्नकालमें होता है, उसके समान तेज प्रातः तथा सायंकालमें नहीं रहता। सूर्य समयसे उगते हैं, फिर क्रमसे बालसूर्यके रूपमें हो जाते हैं, तत्पश्चात् प्रचण्डरूपसे प्रकाशित होने लगते हैं और पुनः यथासमय अस्त हो जाते हैं। वह काल ऐसा भी कर देता है कि सूर्यको दिनमें ही मेघाच्छन्न आकाशमें छिप जाना पड़ता है। वे ही सूर्य राहुसे ग्रसित होनेपर काँपने लगते हैं और फिर थोड़ी ही देरमें प्रसन्न हो जाते हैं॥ ४८—५०॥

राहुग्रस्ते कम्पितश्च पुनरेव प्रसन्नताम्।
परिपूर्णतमश्चन्द्रः पूर्णिमायां च जायते॥ ५१

तादृशो न भवेन्नित्यं क्षयं याति दिने दिने।
पुनश्च पुष्टिमायाति परं कुह्वा दिने दिने॥ ५२

सम्पद्युक्तः शुक्लपक्षे कृष्णे म्लानश्च यक्ष्मणा।
राहुग्रस्ते दिने म्लानो दुर्दिने न विरोचते॥ ५३

काले चन्द्रो भवेच्छुक्लो भ्रष्टश्रीः कालभेदतः।
भविष्यति बलिश्चेन्द्रो भ्रष्टश्रीः सुतलेऽधुना॥ ५४

कालेन पृथ्वी सस्याढ्या सर्वाधारा वसुन्धरा।
काले जले निमग्ना सा तिरोभूताम्बुविप्लुता॥ ५५

काले नश्यन्ति विश्वानि प्रभवन्त्येव कालतः।
चराचराश्च कालेन नश्यन्ति प्रभवन्ति च॥ ५६

ईश्वरस्यैव समता ब्रह्मणः परमात्मनः।
अहं मृत्युञ्जयो यस्मादसंख्यं प्राकृतं लयम्॥ ५७

आदर्शं चापि द्रक्ष्यामि वारं वारं पुनः पुनः।
स च प्रकृतिरूपश्च स एव पुरुषः स्मृतः॥ ५८

स चात्मा स च जीवश्च नानारूपधरः परः।
करोति सततं यो हि तन्नामगुणकीर्तनम्॥ ५९

काले मृत्युं स जयति जन्मरोगभयं जराम्।
स्रष्टा कृतो विधिस्तेन पाता विष्णुः कृतो भवेत्॥ ६०
अहं कृतश्च संहर्ता वयं विषयिणः कृताः।

जैसे पूर्णिमा तिथिको चन्द्रमा पूर्णतम रहते हैं, वैसे वे सदा नहीं रहते, अपितु प्रतिदिन उनकी कलामें क्रमशः क्षय होता रहता है। तत्पश्चात् अमावस्यासे इनमें दिनोंदिन वृद्धि होने लगती है और ये पुनः पुष्ट हो जाते हैं। चन्द्रमा शुक्लपक्षमें शोभायुक्त रहते हैं और कृष्णपक्षमें क्षयके द्वारा म्लान हो जाते हैं। राहुके द्वारा ग्रसित होनेके अवसरपर ये शोभाहीन हो जाते हैं और आकाशके मेघाच्छन्न होनेके समय ये प्रकाशित नहीं होते; इस प्रकार कालभेदसे चन्द्रमा किसी समय तेजस्वी और किसी समय शोभाविहीन हो जाते हैं॥ ५१—५३½ ॥

इस समय श्रीविहीन राजा बलि भविष्यमें सुतललोकके इन्द्र होंगे। सबकी आधारस्वरूपा पृथ्वी कालके प्रभावसे सस्योंसे सम्पन्न हो जाती है और फिर वही पृथ्वी कालके प्रभावसे [प्रलयकालीन] जलमें निमग्न हो जाती है और तिरोहित होकर आप्लावित हो जाती है॥ ५४-५५॥

एक निश्चित समयपर सभी लोक नष्ट हो जाते हैं और फिर समयपर उत्पन्न भी हो जाते हैं। इस प्रकार जगत्के सम्पूर्ण चराचर पदार्थ कालके ही प्रभावसे नष्ट होते हैं तथा उत्पन्न होते हैं॥ ५६॥

ऐश्वर्यसम्पन्न परब्रह्म परमात्माकी ही समता कालसे हो सकती है। उन्हींकी कृपासे मैं मृत्युंजय हो सका हूँ, मैंने असंख्य प्राकृत प्रलय देखे हैं तथा आगे भी बार-बार देखूँगा। वे ही प्रकृतिरूप हैं और वे ही परम पुरुष भी कहे गये हैं। वे परमेश्वर ही आत्मा हैं, वे ही जीव हैं और वे ही अनेक प्रकारके रूप धारण करके सर्वत्र विराजमान हैं॥ ५७-५८½ ॥

जो मनुष्य उन परमेश्वरके नामों तथा गुणोंका सतत कीर्तन करता है, वह यथासमय जन्म, मृत्यु, रोग, भय तथा बुढ़ापेपर विजय प्राप्त कर लेता है। उन्हीं परमेश्वरने ब्रह्माको सृजनकर्ता, विष्णुको पालनकर्ता तथा मुझ महादेवको संहारकर्ताके रूपमें स्थापित किया है। इस प्रकार उन्हींके द्वारा हमलोग अपने-अपने कार्योंमें नियुक्त किये गये हैं॥ ५९-६०½ ॥

कालाग्निरुद्रं संहारे नियोज्य विषये नृप॥ ६१

अहं करोमि सततं तन्नामगुणकीर्तनम्।
तेन मृत्युञ्जयोऽहं च ज्ञानेनानेन निर्भयः॥ ६२

मृत्युर्मृत्युभयाद्याति वैनतेयादिवोरगाः।
इत्युक्त्वा स च सर्वेशः सर्वभावेन तत्परः॥ ६३

विरराम च शम्भुश्च सभामध्ये च नारद।
राजा तद्वचनं श्रुत्वा प्रशशंस पुनः पुनः॥ ६४

उवाच मधुरं देवं परं विनयपूर्वकम्।

शङ्खचूड उवाच

त्वया यत्कथितं देव नान्यथा वचनं स्मृतम्॥ ६५

तथापि किञ्चिद्यथार्थं श्रूयतां मन्निवेदनम्।
ज्ञातिद्रोहे महत्पापं त्वयोक्तमधुना च यत्॥ ६६

गृहीत्वा तस्य सर्वस्वं कुतः प्रस्थापितो बलिः।
मया समुद्धृतं सर्वमूर्ध्वमैश्वर्यमीश्वर॥ ६७

सुतलाच्च समुद्धर्तुं नालं तत्र गदाधरः।
सभ्रातृको हिरण्याक्षः कथं देवैश्च हिंसितः॥ ६८

शुम्भादयश्चासुराश्च कथं देवैर्निपातिताः।
पुरा समुद्रमथने पीयूषं भक्षितं सुरैः॥ ६९

क्लेशभाजो वयं तत्र ते सर्वे फलभोगिनः।
क्रीडाभाण्डमिदं विश्वं प्रकृतेः परमात्मनः॥ ७०

यस्मै यत्र स ददाति तस्यैश्वर्यं भवेत्तदा।
देवदानवयोर्वादः शश्वन्नैमित्तिकः सदा॥ ७१

हे राजन्! इस समय मैं कालाग्नि रुद्रको संहार-कार्यमें नियुक्त करके उन्हीं परमात्माके नाम और गुणका निरन्तर कीर्तन कर रहा हूँ। इसीसे मैं मृत्युको जीत लेनेवाला हो गया हूँ और इस ज्ञानसे सम्पन्न हुआ मैं सदा निर्भय रहता हूँ। मेरे पास आनेसे मृत्यु भी अपनी मृत्युके भयसे उसी प्रकार भाग जाती है, जैसे गरुडके भयसे सर्प॥ ६१-६२½ ॥

हे नारद! पूर्णरूपसे तत्पर होकर सभाके बीच अपने सम्पूर्ण भावोंको प्रदर्शित करते हुए सर्वेश्वर महादेव शंखचूड़से ऐसा कहकर चुप हो गये। उनकी बात सुनकर राजा शंखचूड़ने बार-बार उनकी प्रशंसा की और वह विनम्रतापूर्वक उन परम प्रभुसे यह मधुर वचन कहने लगा॥ ६३-६४½ ॥

शंखचूड़ बोला—[हे भगवन्!] आपने जो बात कही है, उसे अन्यथा नहीं कहा जा सकता, परन्तु मेरा भी कुछ यथार्थ निवेदन है, उसे आप सुन लीजिये॥ ६५½ ॥

आपने अभी यह कहा है कि जाति-द्रोह करनेमें महान् पाप होता है, तो फिर बलिका सर्वस्व छीनकर आपलोगोंने उसे सुतललोकमें क्यों भेज दिया? हे प्रभो! मैं ही बलिके समस्त ऐश्वर्यको पातालसे उठाकर यहाँ लाया हूँ, [अतः इसपर मेरा ही पूर्ण अधिकार है।] उस समय मैं बलिको सुतललोकसे लानेमें समर्थ नहीं था; क्योंकि भगवान् श्रीहरि गदा धारण किये वहाँ स्थित थे। देवताओंने भाईसहित हिरण्याक्षका वध क्यों किया और उन्होंने शुम्भ आदि असुरोंको क्यों मार डाला? इसी प्रकार प्राचीन कालमें समुद्र-मन्थनके समय देवता सारा अमृत पी गये थे। उस समय कष्ट तो हम दानवोंने उठाया था और उसके अमृतरूपी फलका भोग उन समस्त देवताओंने किया था॥ ६६—६९½ ॥

यह विश्व प्रकृतिस्वरूप उन परमात्माका क्रीडाभाण्ड है। वे जिस व्यक्तिको जहाँ जो सम्पत्ति देते हैं, वह उस समय उसीकी हो जाती है। किसी निमित्तको लेकर देवता तथा दानवोंके बीच विवाद सदासे निरन्तर चला आ रहा है। किसी समय उनकी जीत अथवा हार होती है और समयानुसार कभी हमारी

पराजयो जयस्तेषां कालेऽस्माकं क्रमेण च।
तदावयोर्विरोधे वागमनं निष्फलं परम्॥ ७२

समसम्बन्धिनो बन्धोरीश्वरस्य महात्मनः।
इयं ते महती लज्जा युद्धेऽस्माभिः सहाधुना॥ ७३

जये ततोऽधिका कीर्तिर्हानिश्चैव पराजये।
इत्येतद्वचनं श्रुत्वा प्रहस्य च त्रिलोचनः॥ ७४

यथोचितमुत्तरं तमुवाच दानवेश्वरम्।

महादेव उवाच

युष्माभिः सह युद्धे मे ब्रह्मवंशसमुद्भवैः॥ ७५

का लज्जा महती राजन्नकीर्तिर्वा पराजये।
युद्धमादौ हरेरेव मधुना कैटभेन च॥ ७६

हिरण्यकशिपोश्चैव सह तेनात्मना नृप।
हिरण्याक्षस्य युद्धं च पुनस्तेन गदाभृता॥ ७७

त्रिपुरैः सह युद्धं च मयापि च पुरा कृतम्।
सर्वेश्वर्याः सर्वमातुः प्रकृत्याश्च बभूव ह॥ ७८

सह शुम्भादिभिः पूर्वं समरः परमाद्भुतः।
पार्षदप्रवरस्त्वं च कृष्णस्य परमात्मनः॥ ७९

ये ये हताश्च दैतेया नहि केऽपि त्वया समाः।
का लज्जा महती राजन् मम युद्धे त्वया सह॥ ८०

सुराणां शरणस्यैव प्रेषितश्च हरेरहो।
देहि राज्यं च देवानामिति मे निश्चितं वचः॥ ८१

युद्धं वा कुरु मत्सार्धं वाग्व्यये किं प्रयोजनम्।
इत्युक्त्वा शङ्करस्तत्र विरराम च नारद।
उत्तस्थौ शङ्खचूडश्च ह्यमात्यैः सह सत्वरम्॥ ८२

जीत-हार होती है। अतः ऐसी स्थितिमें देवता तथा दानव दोनोंके समान सम्बन्धी तथा बन्धुस्वरूप आप महात्मा परमेश्वरका हम दोनोंके विरोधके बीचमें आना निरर्थक है। यदि इस समय हमलोगोंके साथ आप युद्ध करेंगे, तो यह आपके लिये महान् लज्जाकी बात होगी। हमारी जीत होनेपर पहलेसे भी अधिक हम दानवोंकी कीर्ति बढ़ जायगी और पराजय होनेपर आपकी मानहानि होगी॥ ७०—७३½ ॥

[हे नारद!] शंखचूड़की यह बात सुनकर तीन नेत्रोंवाले भगवान् शिवने हँसकर उस दानवेन्द्रको समुचित उत्तर देना आरम्भ किया॥ ७४½ ॥

महादेवजी बोले—हे राजन्! ब्रह्माके ही वंशमें उत्पन्न हुए तुमलोगोंके साथ युद्ध करनेमें मुझे कौन-सी बड़ी लज्जा होगी और हारनेपर अपकीर्ति ही क्या होगी? हे नृप! इसके पहले भी तो मधु और कैटभसे श्रीहरिका युद्ध हो चुका है। एक बार उनके साथ हिरण्यकशिपुका युद्ध हुआ था और इसके बाद श्रीहरिने गदा लेकर हिरण्याक्षके साथ भी युद्ध किया था। मैं भी तो पूर्वकालमें त्रिपुर राक्षसके साथ युद्ध कर चुका हूँ। इसी प्रकार पूर्व समयमें शुम्भ आदि दानवोंके साथ सर्वेश्वरी, सर्वजननी पराप्रकृतिका भी अत्यन्त विस्मयकारी युद्ध हुआ था॥ ७५—७८½ ॥

तुम तो परमात्मा श्रीकृष्णके प्रधान पार्षद रहे हो। जो-जो दैत्य मारे गये हैं, वे तुम्हारे-जैसे नहीं थे। अतः हे राजन्! तुम्हारे साथ युद्ध करनेमें मुझे कौन-सी बड़ी लज्जा है? सभी देवता श्रीहरिकी शरणमें गये थे, तब देवताओंकी सहायताके लिये उन्होंने मुझे भेजा है। तुम देवताओंका राज्य वापस कर दो—यह मेरा निश्चित वचन है, अन्यथा मेरे साथ युद्ध करो। वाणीका अपव्यय करनेसे क्या लाभ?॥ ७९—८१½ ॥

हे नारद! ऐसा कहकर भगवान् शंकर चुप हो गये; और शंखचूड़ भी मन्त्रियोंके साथ शीघ्र ही उठ खड़ा हुआ॥ ८२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे नारायणनारदसंवादे शङ्खचूडकृते प्रबोधवाक्यवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः॥ २१॥



अथ द्वाविंशोऽध्यायः

कुमार कार्तिकेय और भगवती भद्रकालीसे शंखचूड़का भयंकर युद्ध और आकाशवाणीका पाशुपतास्त्रसे शंखचूड़की अवध्यताका कारण बताना

श्रीनारायण उवाच

शिवं प्रणम्य शिरसा दानवेन्द्रः प्रतापवान्।
समारुरोह यानं च सहामात्यैः स सत्वरः॥ १
शिवः स्वसैन्यं देवांश्च प्रेरयामास सत्वरम्।
दानवेन्द्रः ससैन्यश्च युद्धारम्भे बभूव ह॥ २
स्वयं महेन्द्रो युयुधे सार्धं च वृषपर्वणा।
भास्करो युयुधे विप्रचित्तिना सह सत्वरः॥ ३
दम्भेन सह चन्द्रश्च चकार परमं रणम्।
कालस्वरेण कालश्च गोकर्णेन हुताशनः॥ ४
कुबेरः कालकेयेन विश्वकर्मा मयेन च।
भयङ्करेण मृत्युश्च संहारेण यमस्तथा॥ ५
विकङ्कणेन वरुणश्चञ्चलेन समीरणः।
बुधश्च घृतपृष्ठेन रक्ताक्षेण शनैश्चरः॥ ६
जयन्तो रत्नसारेण वसवो वर्चसां गणैः।
अश्विनौ च दीप्तिमता धूम्रेण नलकूबरः॥ ७
धुरन्धरेण धर्मश्च उषाक्षेण च मङ्गलः।
शोभाकरेण वै भानुः पिठरेण च मन्मथः॥ ८
गोधामुखेन चूर्णेन खड्गेन च ध्वजेन च।
काञ्चीमुखेन पिण्डेन धूम्रेण सह नन्दिना॥ ९
विश्वेन च पलाशेनादित्याद्या युयुधुः परे।
एकादश च रुद्रा वै एकादशभयङ्करैः॥ १०
महामारी च युयुधे चोग्रचण्डादिभिः सह।
नन्दीश्वरादयः सर्वे दानवानां गणैः सह॥ ११
युयुधुश्च महायुद्धे प्रलयेऽपि भयङ्करे।
वटमूले च शम्भुश्च तस्थौ काल्या सुतेन च॥ १२
सर्वे च युयुधुः सैन्यसमूहाः सततं मुने।
रत्नसिंहासने रम्ये कोटिभिर्दानवैः सह॥ १३
उवास शङ्खचूडश्च रत्नभूषणभूषितः।

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] दानवराज प्रतापी शंखचूड़ सिर झुकाकर शिवजीको प्रणाम करके मन्त्रियोंके साथ तत्काल यानपर सवार हुआ॥ १॥

उसी समय महादेवजीने अपनी सेना तथा देवताओंको तुरंत युद्धके लिये आज्ञा दे दी और दानवेन्द्र शंखचूड़ भी अपनी सेनाको साथ लेकर युद्धके लिये तैयार हो गया॥ २॥

स्वयं महेन्द्र वृषपर्वाके साथ और सूर्यदेव विप्रचित्तिके साथ वेगपूर्वक युद्ध करने लगे। इसी तरह दम्भके साथ चन्द्रमाने भीषण युद्ध किया। उस समय कालस्वरके साथ काल, गोकर्णके साथ अग्निदेव, कालकेयके साथ कुबेर, मयके साथ विश्वकर्मा, भयंकरके साथ मृत्यु, संहारके साथ यम, विकंकणके साथ वरुण, चंचलके साथ पवनदेव, घृतपृष्ठके साथ बुध, रक्ताक्षके साथ शनैश्चर, रत्नसारके साथ जयन्त, वर्चसगणोंके साथ सभी वसु, दीप्तिमान्के साथ दोनों अश्विनीकुमार, धूम्रके साथ नलकूबर, धुरन्धरके साथ धर्म, उषाक्षके साथ मंगल, शोभाकरके साथ भानु, पिठरके साथ मन्मथ; गोधामुख, चूर्ण, खड्ग, ध्वज, कांचीमुख, पिण्ड, धूम्र, नन्दी, विश्व और पलाश आदि दानवोंके साथ आदित्यगण युद्ध करने लगे। इसी तरह ग्यारह भयंकर दानवोंके साथ ग्यारहों रुद्र, उग्रचण्डा आदिके साथ महामारी और दानवगणोंके साथ सभी नन्दीश्वर आदि गण प्रलयसदृश भयंकर महासंग्राममें युद्ध करने लगे॥ ३—११½॥

हे मुने! जब दोनों ओरके सभी सैनिक निरन्तर युद्ध कर रहे थे, उस समय भगवान् शंकर भगवती काली तथा पुत्र कार्तिकेयके साथ वटवृक्षके नीचे विराजमान थे। उधर रत्नमय आभूषणोंसे अलंकृत शंखचूड़ करोड़ों दानवोंके साथ रत्ननिर्मित रम्य सिंहासनपर बैठा हुआ था॥ १२-१३½॥

शङ्करस्य च ये योधा दानवैश्च पराजिताः॥ १४

देवाश्च दुद्रुवुः सर्वे भीताश्च क्षतविग्रहाः।
चकार कोपं स्कन्दश्च देवेभ्यश्चाभयं ददौ॥ १५

बलं च स्वर्गणानां च वर्धयामास तेजसा।
सोऽयमेकश्च युयुधे दानवानां गणैः सह॥ १६

अक्षौहिणीनां शतकं समरे च जघान सः।
असुरान्पातयामास काली कमललोचना॥ १७

पपौ रक्तं दानवानामतिक्रुद्धा ततः परम्।
दशलक्षगजेन्द्राणां शतलक्षं च कोटिशः॥ १८

समादायैकहस्तेन मुखे चिक्षेप लीलया।
कबन्धानां सहस्त्रं च ननर्त समरे मुने॥ १९

स्कन्दस्य शरजालेन दानवाः क्षतविग्रहाः।
भीताश्च दुद्रुवुः सर्वे महारणपराक्रमाः॥ २०

वृषपर्वा विप्रचित्तिर्दम्भश्चापि विकङ्कणः।
स्कन्देन सार्धं युयुधुस्ते सर्वे विक्रमेण च॥ २१

महामारी च युयुधे न बभूव पराङ्मुखी।
बभूवुस्ते च संक्षुब्धाः स्कन्दस्य शक्तिपीडिताः॥ २२

न दुद्रुवुर्भयात्स्वर्गे पुष्पवृष्टिर्बभूव ह।
स्कन्दस्य समरं दृष्ट्वा महारौद्रं समुल्बणम्॥ २३

दानवानां क्षयकरं यथा प्राकृतिको लयः।
राजा विमानमारुह्य चकार बाणवर्षणम्॥ २४

नृपस्य शरवृष्टिश्च घनस्य वर्षणं यथा।
महाघोरान्धकारश्च वह्न्युत्थानं बभूव च॥ २५

देवाः प्रदुद्रुवुः सर्वेऽप्यन्ये नन्दीश्वरादयः।
एक एव कार्तिकेयस्तस्थौ समरमूर्धनि॥ २६

उस युद्धमें दानवोंने शंकरजीके अनेक योद्धाओंको परास्त कर दिया। सभी देवताओंके अंग क्षत-विक्षत हो गये और वे भयभीत होकर भाग चले। [यह देखकर] कार्तिकेय कुपित हो उठे और उन्होंने देवताओंको अभय प्रदान किया। उन्होंने अपने तेजसे अपने गणोंके बलमें वृद्धि की। तदनन्तर वे अकेले ही दानवगणोंके साथ युद्ध करने लगे। उन्होंने संग्राममें एक सौ अक्षौहिणी सेनाको मार डाला॥ १४—१६½ ॥

उस युद्धमें कमलके समान नेत्रवाली कालीने बहुतसे असुरोंको धराशायी कर दिया और उसके बाद अत्यन्त क्रुद्ध होकर वे दानवोंका रक्त पीने लगीं। वे दस लाख हाथियों तथा करोड़ों-करोड़ों सैनिकोंको एक हाथसे पकड़-पकड़कर लीलापूर्वक अपने मुखमें डालने लगीं। हे मुने! उस समय हजारों मुण्डविहीन धड़ रणभूमिमें नाचने लगे॥ १७—१९ ॥

रणमें महान् पराक्रम प्रदर्शित करनेवाले समस्त दानव कार्तिकेयकी बाणवर्षासे क्षत-विक्षत शरीरवाले हो गये और भयभीत होकर भागने लगे। तत्पश्चात् वृषपर्वा, विप्रचित्ति, दम्भ और विकंकण—ये सभी दानव पराक्रमी कार्तिकेयके साथ युद्ध करने लगे। भगवती महामारी भी युद्ध करने लगीं, उन्होंने युद्धसे मुख नहीं मोड़ा। उधर स्वामी कार्तिकेयकी शक्तिसे पीड़ित होकर दानव क्षुब्ध हो उठे, किंतु वे भयके कारण रणसे नहीं भागे। कार्तिकेयका वह महाभयंकर तथा भीषण युद्ध देखकर स्वर्गसे पुष्पवृष्टि होने लगी। दानवोंका क्षय करनेवाला वह युद्ध प्राकृतिक प्रलयके समान था॥ २०—२३½ ॥

[दानवोंकी यह स्थिति देखकर] राजा शंखचूड़ विमानपर चढ़कर बाणोंकी वर्षा करने लगा। राजाकी बाणवर्षा मेघोंकी वृष्टिके समान थी। इससे चारों ओर महाघोर अन्धकार छा गया और सर्वत्र अग्निकी लपटें निकलने लगीं। इससे सभी देवता तथा अन्य नन्दीश्वर आदि गण भी भाग खड़े हुए। उस समय एकमात्र स्वामी कार्तिकेय ही समरभूमिमें डटे रहे॥ २४—२६ ॥

पर्वतानां च सर्पाणां शिलानां शाखिनां तथा।
नृपश्चकार वृष्टिं च दुर्वारां च भयङ्करीम्॥ २७

नृपस्य शरवृष्ट्या च प्रहितः शिवनन्दनः।
नीहारेण च सान्द्रेण प्रहितो भास्करो यथा॥ २८

धनुश्चिच्छेद स्कन्दस्य दुर्वहं च भयङ्करः।
बभञ्ज च रथं दिव्यं चिच्छेद रथपीठकान्॥ २९

मयूरं जर्जरीभूतं दिव्यास्त्रेण चकार सः।
शक्तिं चिक्षेप सूर्याभां तस्य वक्षस्य घातिनीम्॥ ३०

क्षणं मूर्च्छां च सम्प्राप बभूव चेतनः पुनः।
गृहीत्वा तद्धनुर्दिव्यं यद्दत्तं विष्णुना पुरा॥ ३१

रत्नेन्द्रसारनिर्माणयानमारुह्य कार्तिकः।
शस्त्रास्त्रं च गृहीत्वा च चकार रणमुल्बणम्॥ ३२

सर्पांश्च पर्वतांश्चैव वृक्षांश्च प्रस्तरांस्तथा।
सर्वांश्चिच्छेद कोपेन दिव्यास्त्रेण शिवात्मजः॥ ३३

वह्निं निर्वापयामास पार्जन्येन प्रतापवान्।
रथं धनुश्च चिच्छेद शङ्खचूडस्य लीलया॥ ३४

सन्नाहं सारथिं चैव किरीटं मुकुटोज्ज्वलम्।
चिक्षेप शक्तिं शुक्लाभां दानवेन्द्रस्य वक्षसि॥ ३५

मूर्च्छां सम्प्राप्य राजा च चेतनश्च बभूव ह।
आरुरोह यानमन्यद्धनुर्जग्राह सत्वरः॥ ३६

चकार शरजालं च मायया मायिनां वरः।
गुहं चच्छाद समरे शरजालेन नारद॥ ३७

जग्राह शक्तिमव्यग्रां शतसूर्यसमप्रभाम्।
प्रलयाग्निशिखारूपां विष्णोश्च तेजसावृताम्॥ ३८

चिक्षेप तां च कोपेन महावेगेन कार्तिके।
पपात शक्तिस्तद्गात्रे वह्निराशिरिवोज्ज्वला॥ ३९
मूर्च्छां सम्प्राप शक्त्या च कार्तिकेयो महाबलः।

राजा शंखचूड़ पर्वतों, सर्पों, पत्थरों तथा वृक्षोंकी दुर्निवार्य तथा भयंकर वर्षा करने लगा। राजा शंखचूड़की बाणवर्षासे शिवपुत्र कार्तिकेय उसी प्रकार ढँक गये, जैसे घने कुहरेसे सूर्य ढँक जाते हैं। उसने कार्तिकेयके दुर्वह तथा भयंकर धनुषको काट डाला, दिव्य रथको खण्ड-खण्ड कर दिया और रथपीठोंको छिन्न-भिन्न कर दिया। उसने कार्तिकेयके मयूरको अपने दिव्य अस्त्रसे जर्जर कर दिया और सूर्यके समान चमकनेवाली प्राण-घातिनी शक्ति उनके वक्षपर चला दी॥ २७—३०॥

इससे वे क्षणभरके लिये मूर्च्छित हो गये, फिर थोड़ी ही देरमें सचेत हो गये। तदनन्तर जिस दिव्य धनुषको पूर्वकालमें भगवान् विष्णुने कार्तिकेयको दिया था, उसे हाथमें लेकर वे सर्वोत्तम रत्नोंसे निर्मित विमानपर आरूढ़ होकर और अनेक शस्त्रास्त्रोंको लेकर भयंकर युद्ध करने लगे॥ ३१-३२॥

वह दानव सर्पों, पर्वतों, वृक्षों और पत्थरोंकी वर्षा करने लगा, किंतु शिवपुत्र कार्तिकेयने क्रोधित होकर अपने दिव्य अस्त्रसे उन सबको काट डाला। प्रतापी कार्तिकेयने शंखचूड़द्वारा लगायी गयी आगको अपने पार्जन्य अस्त्रसे बुझा दिया। तत्पश्चात् उन्होंने शंखचूड़के रथ, धनुष, कवच, सारथी, किरीट तथा उज्ज्वल मुकुटको खेल-खेलमें काट डाला और उस दानवेन्द्रके वक्षपर शुक्ल आभावाली शक्ति चला दी॥ ३३—३५॥

उसके आघातसे राजा शंखचूड़ मूर्च्छित हो गया, किंतु थोड़ी ही देरमें सचेत होनेपर वह तत्काल दूसरे रथपर सवार हो गया और उसने शीघ्र ही दूसरा धनुष उठा लिया। हे नारद! मायावियोंमें श्रेष्ठ उस शंखचूड़ने अपनी मायासे बाणोंका जाल फैला दिया और उस बाणजालसे कार्तिकेयको आच्छादित कर दिया॥ ३६-३७॥

उसने कभी भी व्यग्र न होनेवाली, सैकड़ों सूर्योंके समान प्रभायुक्त, प्रलयकालीन अग्निकी शिखाके समान आकृतिवाली और सदा विष्णुके तेजसे आवृत रहनेवाली शक्ति उठा ली तथा क्रोध करके बड़े वेगसे उसे कार्तिकेयपर चला दिया। अग्नि-राशिके समान उज्ज्वल वह शक्ति उनके शरीरपर गिरी और वे महाबली कार्तिकेय उस शक्तिके प्रभावसे मूर्च्छित हो गये॥ ३८-३९½॥

काली गृहीत्वा तं क्रोडे निनाय शिवसन्निधौ॥ ४०

शिवस्तं चापि ज्ञानेन जीवयामास लीलया।
ददौ बलमनन्तं च समुत्तस्थौ प्रतापवान्॥ ४१

काली जगाम समरं रक्षितुं कार्तिकस्य या।
वीरास्तामनुजग्मुश्च ते च नन्दीश्वरादयः॥ ४२

सर्वे देवाश्च गन्धर्वा यक्षराक्षसकिन्नराः।
वाद्यभाण्डाश्च बहुशः शतशो मधुवाहकाः॥ ४३

सा च गत्वाथ संग्रामं सिंहनादं चकार च।
देव्याश्च सिंहनादेन प्रापुर्मूर्च्छां च दानवाः॥ ४४

अट्टाट्टहासमशिवं चकार च पुनः पुनः।
दृष्ट्वा पपौ च माध्वीकं ननर्त रणमूर्धनि॥ ४५

उग्रदंष्ट्रा चोग्रदण्डा कोटवी च पपौ मधु।
योगिनीडाकिनीनां च गणाः सुरगणादयः॥ ४६

दृष्ट्वा कालीं शङ्खचूडः शीघ्रमाजौ समाययौ।
दानवाश्च भयं प्रापू राजा तेभ्योऽभयं ददौ॥ ४७

काली चिक्षेप वह्निं च प्रलयाग्निशिखोपमम्।
राजा निर्वापयामास पार्जन्येन च लीलया॥ ४८

चिक्षेप वारुणं सा च तीव्रं च महदद्भुतम्।
गान्धर्वेण च चिच्छेद दानवेन्द्रश्च लीलया॥ ४९

माहेश्वरं प्रचिक्षेप काली वह्निशिखोपमम्।
राजा जघान तं शीघ्रं वैष्णवेन च लीलया॥ ५०

नारायणास्त्रं सा देवी चिक्षेप मन्त्रपूर्वकम्।
राजा ननाम तद् दृष्ट्वा चावरुह्य रथादसौ॥ ५१

ऊर्ध्वं जगाम तच्चास्त्रं प्रलयाग्निशिखोपमम्।
पपात शङ्खचूडश्च भक्त्या तं दण्डवद्भुवि॥ ५२

तब भद्रकाली उन्हें अपनी गोदमें लेकर शिवके पास ले गयीं। शिवने अपने ज्ञानके द्वारा उन्हें लीलापूर्वक चेतनायुक्त कर दिया, साथ ही उन्हें असीम शक्ति भी प्रदान की। तब प्रतापी कार्तिकेय उठ खड़े हुए॥ ४०-४१॥

कार्तिकेयकी रक्षामें तत्पर जो भद्रकाली थीं, वे युद्धभूमिके लिये प्रस्थित हो गयीं और नन्दीश्वर आदि जो वीर थे, वे भी उनके पीछे-पीछे चल पड़े। सभी देवता, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, किन्नर, मृदंग आदि बाजे बजानेवाले तथा मधु ढोनेवाले कई सौ अन्य लोग भी उनके साथ चल दिये॥ ४२-४३॥

रणभूमिमें पहुँचते ही कालीने सिंह-गर्जन किया। भगवतीके सिंहनादसे बहुतसे दानव मूर्च्छित हो गये। दानवोंको देखकर देवीने बार-बार भीषण अट्टहास किया और मधुपान किया तथा वे रणभूमिमें नाचने लगीं। उग्रदंष्ट्रा, उग्रदण्डा, कोटवी, योगिनियों तथा डाकिनियोंके गण और देवतालोग भी मधुपान करने लगे॥ ४४—४६॥

भद्रकालीको देखकर शंखचूड़ भी शीघ्र युद्धभूमिमें आ गया। दानव डरे हुए थे, अतः राजा शंखचूड़ने उन्हें अभय प्रदान किया॥ ४७॥

भद्रकालीने प्रलयकालीन अग्निकी शिखाके समान प्रकाशमान आग्नेयास्त्र शंखचूड़पर चला दिया। राजाने अपने पार्जन्यास्त्रसे खेल-खेलमें उसे बुझा दिया॥ ४८॥

तदनन्तर उस कालीने अत्यन्त तीव्र तथा अद्भुत वारुणास्त्र उसपर चलाया, जिसे उस दानवराजने अपने गान्धर्वास्त्रसे लीलापूर्वक काट दिया। तब कालीने अग्निशिखाके सदृश तेजस्वी माहेश्वरास्त्र उसपर चलाया, जिसे राजा शंखचूड़ने अपने वैष्णवास्त्रसे बड़ी सहजता-पूर्वक शीघ्र ही विफल कर दिया॥ ४९-५०॥

इसके बाद कालीने राजा शंखचूड़पर मन्त्रपूर्वक नारायणास्त्र चलाया। उसे देखते ही उसने रथसे उतरकर प्रणाम किया और प्रलयाग्निकी शिखाके समान तेजस्वी वह अस्त्र ऊपरकी ओर चला गया। शंखचूड़ भक्तिपूर्वक दण्डकी भाँति जमीनपर पड़कर पुनः प्रणाम करने लगा॥ ५१-५२॥

ब्रह्मास्त्रं सा च चिक्षेप यत्नतो मन्त्रपूर्वकम्।
ब्रह्मास्त्रेण महाराजो निर्वापं च चकार सः॥ ५३

तदा चिक्षेप दिव्यास्त्रं सा देवी मन्त्रपूर्वकम्।
राजा दिव्यास्त्रजालेन तन्निर्वाणं चकार च॥ ५४

तत्पश्चात् देवीने प्रयत्नशील होकर मन्त्रपूर्वक ब्रह्मास्त्र चलाया, उस राजा शंखचूड़ने अपने ब्रह्मास्त्रसे उसका शमन कर दिया। तब देवीने मन्त्रपूर्वक दिव्यास्त्र चलाया, राजाने अपने दिव्यास्त्रके जालसे उसे भी नष्ट कर दिया॥ ५३-५४॥

तदा चिक्षेप शक्तिं च यत्नतो योजनायताम्।
राजा दिव्यास्त्रजालेन शतखण्डां चकार ह॥ ५५

जग्राह मन्त्रपूतं च देवी पाशुपतं रुषा।
निक्षेपणं निरोद्धुं च वाग्बभूवाशरीरिणी॥ ५६

मृत्युः पाशुपते नास्ति नृपस्य च महात्मनः।
यावदस्ति च मन्त्रस्य कवचं च हरेरिति॥ ५७

यावत्सतीत्वमस्त्येव सत्याश्च नृपयोषितः।
तावदस्य जरामृत्युर्नास्तीति ब्रह्मणो वचः॥ ५८

तत्पश्चात् देवीने प्रयत्नपूर्वक राजापर योजनभर लम्बी शक्ति चलायी। उसने अपने दिव्यास्त्रके जालसे उसके सैकड़ों खण्ड कर दिये। तब देवीने कुपित होकर मन्त्रसे पवित्र किया हुआ पाशुपतास्त्र उठा लिया। इसी बीच उस अस्त्रको चलानेसे रोकने हेतु यह आकाशवाणी हुई—'महान् आत्मावाले इस राजाकी मृत्यु पाशुपतास्त्रसे नहीं होगी। जबतक यह भगवान् श्रीहरिके मन्त्रका कवच अपने गलेमें धारण किये रहेगा और जबतक इसकी साध्वी पत्नीका सतीत्व विद्यमान रहेगा, तबतक जरा और मृत्यु इसपर अपना प्रभाव नहीं डाल सकते'—यह ब्रह्माका वचन है॥ ५५—५८॥

इत्याकर्ण्य भद्रकाली न तच्चिक्षेप शस्त्रकम्।
शतलक्षं दानवानां जग्रास लीलया क्षुधा॥ ५९

ग्रस्तुं जगाम वेगेन शङ्खचूडं भयङ्करी।
दिव्यास्त्रेण सुतीक्ष्णेन वारयामास दानवः॥ ६०

यह सुनकर भद्रकालीने उस अस्त्रको नहीं चलाया। अब वे क्षुधातुर होकर लीलापूर्वक करोड़ों दानवोंको निगलने लगीं। जब भयंकर भगवती काली शंखचूड़को निगल जानेके लिये वेगपूर्वक उसकी ओर बढ़ीं, तब उस दानवने अपने अत्यन्त तीक्ष्ण दिव्यास्त्रसे उन्हें रोक दिया॥ ५९-६०॥

खड्गं चिक्षेप सा देवी ग्रीष्मसूर्योपमं यथा।
दिव्यास्त्रेण दानवेन्द्रः शतखण्डं चकार सः॥ ६१

पुनर्ग्रस्तुं महादेवी वेगेन च जगाम तम्।
सर्वसिद्धेश्वरः श्रीमान्ववृधे दानवेश्वरः॥ ६२

तदनन्तर उन भद्रकालीने ग्रीष्मकालीन सूर्यके समान तेजसम्पन्न खड्ग उसपर चला दिया। तब दानवेन्द्र शंखचूड़ने दिव्यास्त्रसे उसके सैकड़ों टुकड़े कर दिये। इसके बाद महादेवी उसे खा जानेके लिये वेगपूर्वक उसकी ओर बढ़ीं, तब सर्वसिद्धेश्वर तथा श्रीसम्पन्न दानवेन्द्र शंखचूड़ने अत्यन्त विशाल रूप धारण कर लिया॥ ६१-६२॥

वेगेन मुष्टिना काली कोपयुक्ता भयङ्करी।
बभञ्ज च रथं तस्य जघान सारथिं सती॥ ६३

भयंकर रूपवाली सती कालीने कुपित होकर तेज मुष्टिका-प्रहारसे उसका रथ खण्ड-खण्ड कर दिया और उसके सारथीको मार डाला॥ ६३॥

सा च शूलं प्रचिक्षेप प्रलयाग्निशिखोपमम्।
वामहस्तेन जग्राह शङ्खचूडः स्वलीलया॥ ६४

तत्पश्चात् उन भद्रकालीने उसके ऊपर प्रलयाग्निकी शिखाके समान त्रिशूल चलाया। शंखचूड़ने अपनी लीलासे बायें हाथसे उसे पकड़ लिया॥ ६४॥

मुष्ट्या जघान तं देवी महाकोपेन वेगतः।
बभ्राम च तया दैत्यः क्षणं मूर्च्छामवाप च॥ ६५

क्षणेन चेतनां प्राप्य समुत्तस्थौ प्रतापवान्।
न चकार बाहुयुद्धं देव्या सह ननाम ताम्॥ ६६

इसके बाद देवीने अत्यन्त क्रोध करके बड़ी तेजीसे उसपर मुष्टिप्रहार किया। उसके फलस्वरूप उसे चक्कर आ गया और वह क्षणभरके लिये मूर्च्छित हो गया। वह प्रतापी शंखचूड़ अपने तेजसे थोड़ी ही देरमें फिर चेतनामें आकर उठ खड़ा हुआ। उसने देवीके साथ बाहुयुद्ध नहीं किया, बल्कि उन्हें प्रणाम करने लगा॥ ६५-६६ ॥

देव्याश्चास्त्रं स चिच्छेद जग्राह च स्वतेजसा।
नास्त्रं चिक्षेप तां भक्तो मातृभक्त्या तु वैष्णवः॥ ६७

उस शंखचूड़ने अबतक भगवतीके अस्त्रोंको अपने तेजसे काट दिया था अथवा उनके अस्त्रोंको पकड़ लिया था, किंतु उस वैष्णव भक्तने मातृभक्तिके कारण उनपर अस्त्र नहीं चलाया था॥ ६७॥

गृहीत्वा दानवं देवी भ्रामयित्वा पुनः पुनः।
ऊर्ध्वं च प्रापयामास महावेगेन कोपिता॥ ६८

ऊर्ध्वात्पपात वेगेन शङ्खचूडः प्रतापवान्।
निपत्य च समुत्तस्थौ प्रणम्य भद्रकालिकाम्॥ ६९

रत्नेन्द्रसारनिर्माणं विमानं सुमनोहरम्।
आरुरोह हर्षयुक्तो न विश्रान्तो महारणे॥ ७०

तदनन्तर देवीने उस दानवको पकड़कर कई बार घुमाया और कुपित होकर बड़े वेगसे उसे ऊपरकी ओर फेंक दिया। वह प्रतापी शंखचूड़ ऊपरसे बड़े वेगसे गिरा और नीचे गिरते ही उठकर खड़ा हो गया। तदनन्तर भद्रकालीको प्रणाम करके वह अत्यन्त मनोहर रत्ननिर्मित विमानपर हर्षपूर्वक आरूढ़ हो गया। उस महारणमें उसने थोड़ी देर भी विश्राम नहीं किया॥ ६८—७० ॥

दानवानां च क्षतजं सा देवी च पपौ क्षुधा।
पीत्वा भुक्त्वा भद्रकाली जगाम शङ्करान्तिकम्॥ ७१

इसके बाद भगवती भूखके कारण दानवोंका रक्त पीने लगीं। इस प्रकार दानवोंका रक्तपान तथा भक्षण करके वे भद्रकाली शंकरके पास चली गयीं॥ ७१ ॥

उवाच रणवृत्तान्तं पौर्वापर्यं यथाक्रमम्।
श्रुत्वा जहास शम्भुश्च दानवानां विनाशनम्॥ ७२

लक्षं च दानवेन्द्राणामवशिष्टं रणेऽधुना।
भुञ्जन्त्या निर्गतं वक्त्रात्तदन्यं भुक्तमीश्वर॥ ७३

संग्रामे दानवेन्द्रं च हन्तुं पाशुपतेन वै।
अवध्यस्तव राजेति वाग्बभूवाशरीरिणी॥ ७४

राजेन्द्रश्च महाज्ञानी महाबलपराक्रमः।
न च चिक्षेप मय्यस्त्रं चिच्छेद मम सायकम्॥ ७५

[वहाँ पहुँचकर] उन्होंने आरम्भसे लेकर अन्ततक युद्ध-सम्बन्धी सभी वृत्तान्त क्रमसे बतलाया। दानवोंका विनाश सुनकर भगवान् शंकर हँसने लगे। भद्रकालीने यह भी कहा—हे ईश्वर! रणभूमिमें इस समय भी एक लाख दानव बच गये हैं। जब मैं उन दानवोंको खा रही थी, उस समय कुछ दानव खानेसे बचकर मेरे मुखसे निकल गये थे। जब मैं संग्राममें दानवेन्द्र शंखचूड़को मारनेके लिये पाशुपतास्त्र छोड़नेको उद्यत हुई, उसी समय यह आकाशवाणी हुई 'राजा शंखचूड़ तुमसे अवध्य है।' महान् ज्ञानी तथा असीम बल एवं पराक्रमसे सम्पन्न राजेन्द्र शंखचूड़ने मुझपर अस्त्र नहीं चलाया, अपितु मेरे द्वारा छोड़े गये बाणको वह काट दिया करता था॥ ७२—७५ ॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे नारायणनारदसंवादे कालीशङ्खचूडयुद्धवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः॥ २२॥



अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

भगवान् शंकर और शंखचूड़का युद्ध, भगवान् श्रीहरिका वृद्ध ब्राह्मणके वेशमें शंखचूड़से कवच माँग लेना तथा शंखचूड़का रूप धारणकर तुलसीसे हास-विलास करना, शंखचूड़का भस्म होना और सुदामागोपके रूपमें गोलोक पहुँचना

श्रीनारायण उवाच

शिवस्तत्त्वं समाकर्ण्य तत्त्वज्ञानविशारदः।
ययौ स्वयं च समरे स्वगणैः सह नारद॥ १

शङ्खचूडः शिवं दृष्ट्वा विमानादवरुह्य च।
ननाम परया भक्त्या शिरसा दण्डवद्भुवि॥ २

तं प्रणम्य च वेगेन विमानमारुरोह सः।
तूर्णं चकार सन्नाहं धनुर्जग्राह दुर्वहम्॥ ३

शिवदानवयोर्युद्धं पूर्णमब्दशतं पुरा।
न बभूवतुरन्योन्यं ब्रह्मञ्जयपराजयौ॥ ४

न्यस्तशस्त्रश्च भगवान् न्यस्तशस्त्रश्च दानवः।
रथस्थः शङ्खचूडश्च वृषस्थो वृषभध्वजः॥ ५

दानवानां च शतकमुद्धृतं च बभूव ह।
रणे ये ये मृताः शम्भुर्जीवयामास तान्विभुः॥ ६

एतस्मिन्नन्तरे वृद्धब्राह्मणः परमातुरः।
आगत्य च रणस्थानमुवाच दानवेश्वरम्॥ ७

वृद्धब्राह्मण उवाच

देहि भिक्षां च राजेन्द्र मह्यं विप्राय साम्प्रतम्।
त्वं सर्वसम्पदां दाता यन्मे मनसि वाञ्छितम्॥ ८

निरीहाय च वृद्धाय तृषिताय च साम्प्रतम्।
पश्चात्त्वां कथयिष्यामि पुरः सत्यं च कुर्विति॥ ९

ओमित्युवाच राजेन्द्रः प्रसन्नवदनेक्षणः।
कवचार्थी जनश्चाहमित्युवाचातिमायया॥ १०

श्रीनारायण बोले—हे नारद! तत्त्वज्ञानके पूर्ण विद्वान् शिवजी सम्पूर्ण बातें सुनकर अपने गणोंके साथ स्वयं संग्राम-भूमिमें गये॥ १॥

शिवजीको देखकर उस शंखचूड़ने तत्काल विमानसे उतरकर परमभक्तिपूर्वक पृथ्वीपर मस्तक टेककर दण्डवत् प्रणाम किया॥ २॥

उन्हें प्रणाम करके वह बड़े वेगसे रथपर चढ़ गया और शीघ्रतापूर्वक कवच धारणकर उसने अपना दुर्वह धनुष उठा लिया॥ ३॥

हे ब्रह्मन्! भगवान् शिव तथा दानव शंखचूड़का वह युद्ध पूरे सौ वर्षोंतक होता रहा। वे एक-दूसरेको न तो जीत पाते थे और न एक-दूसरेसे पराजित ही हो रहे थे॥ ४॥

कभी अपना शस्त्र रखकर भगवान् शिव वृषभपर विश्राम करने लगते और कभी शस्त्र रखकर दानव शंखचूड़ रथपर ही विश्राम करने लगता था॥ ५॥

असंख्य दानवोंका संहार हुआ। साथ ही रणमें देवपक्षके जो योद्धा मारे गये थे, उन्हें भगवान् शिवने पुनः जीवित कर दिया॥ ६॥

इसी बीच एक परम आतुर बूढ़े ब्राह्मणदेवता रणभूमिमें आकर दानवेन्द्र शंखचूड़से कहने लगे॥ ७॥

वृद्ध ब्राह्मण बोले—हे राजेन्द्र! मुझ ब्राह्मणको भिक्षा प्रदान कीजिये। इस समय आप सम्पूर्ण सम्पदाओंको देनेमें समर्थ हैं, अतः मेरे मनमें जो अभिलषित है, उसे दीजिये। इस समय पहले आप मुझ निरीह, वृद्ध तथा तृषित ब्राह्मणको देनेके लिये सत्य-प्रतिज्ञा कीजिये, तब बादमें मैं अपनी अभिलाषा बताऊँगा॥ ८-९॥

इसपर प्रफुल्लित मुख तथा नेत्रोंवाले राजेन्द्र शंखचूड़ने 'हाँ-हाँ, ठीक है'—ऐसा कहा। तत्पश्चात् वृद्ध ब्राह्मणरूपधारी श्रीहरिने अत्यधिक मायाके साथ कहा 'मैं तुम्हारा कवच चाहता हूँ'॥ १०॥

तच्छ्रुत्वा कवचं दिव्यं जग्राह हरिरेव च।
शङ्खचूडस्य रूपेण जगाम तुलसीं प्रति॥ ११

गत्वा तस्यां मायया च वीर्याधानं चकार ह।
अथ शम्भुर्हरेः शूलं जग्राह दानवं प्रति॥ १२

ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डप्रलयाग्निशिखोपमम् ।
दुर्निवार्यं च दुर्धर्षमव्यर्थं वैरिघातकम्॥ १३

तेजसा चक्रतुल्यं च सर्वशस्त्रास्त्रसारकम्।
शिवकेशवयोरन्यैर्दुर्वहं च भयङ्करम्॥ १४

धनुःसहस्रं दैर्घ्येण प्रस्थेन शतहस्तकम्।
सजीवं ब्रह्मरूपं च नित्यरूपमनिर्दिशम्॥ १५

संहर्तुं सर्वब्रह्माण्डमलं यत्स्वीयलीलया।
चिक्षेप तोलनं कृत्वा शङ्खचूडे च नारद॥ १६

राजा चापं परित्यज्य श्रीकृष्णचरणाम्बुजम्।
ध्यानं चकार भक्त्या च कृत्वा योगासनं धिया॥ १७

शूलं च भ्रमणं कृत्वा पपात दानवोपरि।
चकार भस्मसात्तं च सरथं चाथ लीलया॥ १८

राजा धृत्वा दिव्यरूपं किशोरं गोपवेषकम्।
द्विभुजं मुरलीहस्तं रत्नभूषणभूषितम्॥ १९

रत्नेन्द्रसारनिर्माणं वेष्टितं गोपकोटिभिः।
गोलोकादागतं यानमारुरोह पुरं ययौ॥ २०

उनकी बात सुनकर शंखचूड़ने कवच दे दिया और भगवान् श्रीहरिने उसे ले लिया। तत्पश्चात् वे शंखचूड़का रूप धारणकर तुलसीके पास गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने मायापूर्वक उस तुलसीमें अपने तेजका आधान किया॥ ११॥

उसी समय शंकरजीने श्रीहरिका दिया हुआ त्रिशूल शंखचूड़पर चलानेके लिये हाथमें ले लिया। वह त्रिशूल ग्रीष्म ऋतुमें मध्याह्नकालीन सूर्य और प्रलयाग्निकी शिखाके समान तेजवान् था, किसीसे भी रोका न जा सकनेवाला, प्रचण्ड, अव्यर्थ तथा शत्रुघाती वह त्रिशूल तेजमें भगवान् विष्णुके चक्रके समान था, वह सभी शस्त्रास्त्रोंका सारस्वरूप था, वह भयंकर त्रिशूल शिव तथा केशवके अतिरिक्त अन्य लोगोंके लिये दुर्वह तथा भयंकर था। वह लम्बाईमें हजार धनुष* के बराबर तथा चौड़ाईमें सौ हाथकी मापवाला था, वह त्रिशूल साक्षात् सजीव ब्रह्मस्वरूप ही था, वह नित्यस्वरूप था, उसे सभी लोग देख नहीं सकते थे॥ १२—१५॥

हे नारद! भगवान् शंकरने सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका संहार करनेमें समर्थ उस त्रिशूलको अपनी लीलासे हाथपर सँभालकर शंखचूड़पर फेंक दिया॥ १६॥

[तब सभी रहस्य समझकर] राजा शंखचूड़ अपना धनुष त्यागकर तथा बुद्धिपूर्वक योगासन लगाकर भक्तिके साथ श्रीकृष्णके चरणकमलका ध्यान करने लगा॥ १७॥

वह त्रिशूल कुछ समयतक चक्कर काटकर दानव शंखचूड़के ऊपर जा गिरा। उस त्रिशूलने रथसमेत शंखचूड़को लीलापूर्वक जलाकर भस्म कर दिया॥ १८॥

तदनन्तर शंखचूड़ने किशोर अवस्था तथा दिव्य रूपवाले एक गोपका वेष धारण कर लिया। वह दो भुजाओंसे सुशोभित था, उसके हाथमें मुरली थी तथा वह रत्नमय आभूषणोंसे अलंकृत था। वह उसी समय गोलोकसे आये हुए तथा करोड़ों गोपोंसे घिरे हुए एक सर्वोत्तम रत्ननिर्मित विमानपर आरूढ़ होकर गोलोक चला गया॥ १९-२०॥

* चार हाथके बराबर लम्बाईकी नापको 'धनुष' कहा जाता है।

गत्वा ननाम शिरसा स राधाकृष्णयोर्मुने।
भक्त्या च चरणाम्भोजं रासे वृन्दावने वने॥ २१

हे मुने! वहाँ पहुँचकर उसने वहाँके वृन्दावनमें रासमण्डलके मध्य विराजमान श्रीकृष्ण और राधाके चरणकमलमें भक्तिपूर्वक मस्तक झुकाकर प्रणाम किया॥ २१॥

सुदामानं च तौ दृष्ट्वा प्रसन्नवदनेक्षणौ।
क्रोडे चक्रतुरत्यन्तं प्रेम्णातिपरिसंयुतौ॥ २२

उस सुदामागोपको देखकर उन दोनोंके मुख तथा नेत्र प्रसन्नतासे खिल उठे और उन्होंने अत्यन्त प्रेमके साथ उसे अपनी गोदमें बैठा लिया॥ २२॥

अथ शूलं च वेगेन प्रययौ तं च सादरम्।
अस्थिभिः शङ्खचूडस्य शङ्खजातिर्बभूव ह॥ २३

नानाप्रकाररूपेण शश्वत्पूता सुरार्चने।
प्रशस्तं शङ्खतोयं च देवानां प्रीतिदं परम्॥ २४

तीर्थतोयस्वरूपं च पवित्रं शम्भुना विना।
शङ्खशब्दो भवेद्यत्र तत्र लक्ष्मीः सुसंस्थिरा॥ २५

तदनन्तर वह त्रिशूल वेगपूर्वक आदरके साथ श्रीकृष्णके पास लौट आया। शंखचूड़की हड्डियोंसे शंखजातिकी उत्पत्ति हुई। वही शंख अनेक प्रकारके रूपोंमें निरन्तर विराजमान होकर देवताओंकी पूजामें पवित्र माना जाता है। अत्यन्त प्रशस्त, पवित्र तथा तीर्थजलस्वरूप शंखजल केवल शंकरजीको छोड़कर अन्य देवताओंके लिये परम प्रीतिदायक है। जहाँ शंखकी ध्वनि होती है, वहाँ लक्ष्मीजी स्थिररूपसे सदा विराजमान रहती हैं॥ २३—२५॥

स स्नातः सर्वतीर्थेषु यः स्नातः शङ्खवारिणा।
शङ्खो हरेरधिष्ठानं यत्र शङ्खस्ततो हरिः॥ २६

तत्रैव वसते लक्ष्मीर्दूरीभूतममङ्गलम्।
स्त्रीणां च शङ्खध्वनिभिः शूद्राणां च विशेषतः॥ २७

भीता रुष्टा याति लक्ष्मीस्तत्स्थलादन्यदेशतः।

जो शंखके जलसे स्नान कर लेता है, उसने मानो समस्त तीर्थोंमें स्नान कर लिया। शंख भगवान् श्रीहरिका अधिष्ठानस्वरूप है। जहाँ शंख रहता है, वहाँ भगवान् श्रीहरि विराजमान रहते हैं, वहींपर भगवती लक्ष्मी भी निवास करती हैं तथा उस स्थानसे सारा अमंगल दूर भाग जाता है, किंतु स्त्रियों और विशेषरूपसे शूद्रोंके द्वारा की गयी शंखध्वनियोंसे भयभीत तथा रुष्ट होकर लक्ष्मीजी उस स्थानसे अन्य देशको चली जाती हैं॥ २६-२७॥

शिवोऽपि दानवं हत्वा शिवलोकं जगाम ह॥ २८
प्रहृष्टो वृषभारूढः स्वगणैश्च समावृतः।
सुराः स्वविषयं प्रापुः परमानन्दसंयुताः॥ २९

नेदुर्दुन्दुभयः स्वर्गे जगुर्गन्धर्वकिन्नराः।
बभूव पुष्पवृष्टिश्च शिवस्योपरि सन्ततम्।
प्रशशंसुः सुरास्तं च मुनीन्द्रप्रवरादयः॥ ३०

दानव शंखचूड़को मारकर शिवजी भी वृषभपर सवार होकर अपने गणोंके साथ प्रसन्नतापूर्वक शिवलोक चले गये। देवताओंने अपना राज्य प्राप्त कर लिया और वे परम आनन्दित हो गये। स्वर्गमें दुन्दुभियाँ बजने लगीं, गन्धर्व तथा किन्नर गाने लगे, भगवान् शिवके ऊपर निरन्तर पुष्प-वृष्टि होने लगी और देवता तथा श्रेष्ठ मुनीश्वर आदि उन शिवजीकी प्रशंसा करने लगे॥ २८—३०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे शङ्खचूडवधवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः॥ २३॥



अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

शंखचूड़रूपधारी श्रीहरिका तुलसीके भवनमें जाना, तुलसीका श्रीहरिको पाषाण होनेका शाप देना, तुलसी-महिमा, शालग्रामके विभिन्न लक्षण एवं माहात्म्यका वर्णन

नारद उवाच

नारायणश्च भगवान्वीर्याधानं चकार ह।
तुलस्यां केन रूपेण तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥ १

श्रीनारायण उवाच

नारायणश्च भगवान्देवानां साधनेषु च।
शङ्खचूडस्य कवचं गृहीत्वा विष्णुमायया॥ २

पुनर्विधाय तद्रूपं जगाम तत्सतीगृहम्।
पातिव्रतस्य नाशेन शङ्खचूडजिघांसया॥ ३

दुन्दुभिं वादयामास तुलसीद्वारसन्निधौ।
जयशब्दं च तद्द्वारे बोधयामास सुन्दरीम्॥ ४

तच्छ्रुत्वा च रवं साध्वी परमानन्दसंयुता।
राजमार्गे गवाक्षेण ददर्श परमादरात्॥ ५

ब्राह्मणेभ्यो धनं दत्त्वा कारयामास मङ्गलम्।
वन्दिभ्यो भिक्षुकेभ्यश्च वाचिभ्यश्च धनं ददौ॥ ६

अवरुह्य रथाद्देवो देव्याश्च भवनं ययौ।
अमूल्यरत्ननिर्माणं सुन्दरं सुमनोहरम्॥ ७

दृष्ट्वा च पुरतः कान्तं सा तं कान्तं मुदान्विता।
तत्पादं क्षालयामास ननाम च रुरोद च॥ ८

रत्नसिंहासने रम्ये वासयामास कामुकी।
ताम्बूलं च ददौ तस्मै कर्पूरादिसुवासितम्॥ ९

अद्य मे सफलं जन्म जीवनं च बभूव ह।
रणे गतं च प्राणेशं पश्यन्त्याश्च पुनर्गृहे॥ १०

नारदजी बोले—भगवान् नारायणने कौन-सा रूप धारणकर तुलसीमें वीर्याधान किया था, उसे मुझे बताइये॥ १॥

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] देवताओंका कार्य सिद्ध करनेमें सदा तत्पर रहनेवाले भगवान् श्रीहरि वैष्णवी मायाके द्वारा शंखचूड़का कवच लेकर और फिर उसी शंखचूड़का रूप धारणकर उसकी पत्नीका पातिव्रत्य नष्ट करके शंखचूड़को मारनेकी इच्छासे साध्वी तुलसीके घर गये थे॥ २-३॥

उन्होंने तुलसीके भवनके द्वारके पास दुन्दुभि बजवायी और उस द्वारपर जयकार लगवाकर सुन्दरी तुलसीको यह ज्ञात कराया कि उसके पति विजयी होकर आ गये हैं॥ ४॥

वह ध्वनि सुनकर साध्वी तुलसी परम आनन्दित हुई और अत्यन्त आदरके साथ [पतिदर्शनकी कामनासे] खिड़कीमेंसे राजमार्गकी ओर देखने लगी॥ ५॥

तत्पश्चात् उसने ब्राह्मणोंको धन प्रदान करके मंगलाचार करवाया और बन्दीजनों, भिक्षुकों तथा सूत-मागधोंको [न्यौछावरस्वरूप] धन दिया॥ ६॥

तदनन्तर भगवान् श्रीहरि रथसे उतरकर देवी तुलसीके सुन्दर, अत्यन्त मनोहर तथा अमूल्य रत्ननिर्मित भवनमें गये॥ ७॥

अपने कान्तिमान् पतिको समक्ष देखकर वह बहुत प्रसन्न हुई। उसने प्रेमपूर्वक उनका चरण धोया, फिर उन्हें प्रणाम किया और वह रोने लगी॥ ८॥

तत्पश्चात् उस कामिनी तुलसीने उन्हें अत्यन्त मनोहर रत्नमय सिंहासनपर बैठाया, पुनः उसने कपूर आदिसे सुगन्धित ताम्बूल उन्हें प्रदान किया। [इसके बाद तुलसीने कहा—] आज मेरा जन्म तथा जीवन—ये दोनों सफल हो गये; क्योंकि मैं युद्धभूमिमें गये हुए अपने प्राणनाथको फिरसे घरमें देख रही हूँ॥ ९-१०॥

सस्मिता सकटाक्षं च सकामा पुलकाङ्किता।
पप्रच्छ रणवृत्तान्तं कान्तं मधुरया गिरा॥ ११

तुलस्युवाच

असंख्यविश्वसंहर्त्रा सार्धमाजौ तव प्रभो।
कथं बभूव विजयस्तन्मे ब्रूहि कृपानिधे॥ १२

तुलसीवचनं श्रुत्वा प्रहस्य कमलापतिः।
शङ्खचूडस्य रूपेण तामुवाचामृतं वचः॥ १३

श्रीभगवानुवाच

आवयोः समरः कान्ते पूर्णमब्दं बभूव ह।
नाशो बभूव सर्वेषां दानवानां च कामिनि॥ १४

प्रीतिञ्च कारयामास ब्रह्मा च स्वयमावयोः।
देवानामधिकारश्च प्रदत्तस्तस्य चाज्ञया॥ १५

मयागतं स्वभवनं शिवलोकं शिवो गतः।
इत्युक्त्वा जगतां नाथः शयनं च चकार ह॥ १६

रेमे रमापतिस्तत्र रामया सह नारद।
सा साध्वी सुखसम्भोगादाकर्षणव्यतिक्रमात्॥ १७

सर्वं वितर्कयामास कस्त्वमेवेत्युवाच सा।

तुलस्युवाच

को वा त्वं वद मायेश भुक्ताहं मायया त्वया॥ १८

दूरीकृतं मत्सतीत्वं यदतस्त्वां शपामि हे।
तुलसीवचनं श्रुत्वा हरिः शापभयेन च॥ १९

दधार लीलया ब्रह्मन् सुमूर्तिं सुमनोहराम्।
ददर्श पुरतो देवी देवदेवं सनातनम्॥ २०

नवीननीरदश्यामं शरत्पङ्कजलोचनम्।
कोटिकन्दर्पलीलाभं रत्नभूषणभूषितम्॥ २१

ईषद्धास्यं प्रसन्नास्यं शोभितं पीतवाससम्।
तं दृष्ट्वा कामिनी कामं मूर्च्छां सम्प्राप लीलया॥ २२

पुनश्च चेतनां प्राप्य पुनः सा तमुवाच ह।

तत्पश्चात् मुसकानयुक्त, तिरछी दृष्टिसे देखती हुई, काममदसे विह्वल और पुलकित अंगोंवाली तुलसी अपने प्राणनाथसे मधुर वाणीमें युद्धसम्बन्धी समाचार पूछने लगी॥ ११॥

तुलसी बोली—प्रभो! असंख्य ब्रह्माण्डोंका संहार करनेवाले शिवजीके साथ हुए युद्धमें आपकी विजय कैसे हुई? हे कृपानिधे! इसे मुझे बताइये॥ १२॥

तुलसीका वचन सुनकर शंखचूड़रूपधारी लक्ष्मीकान्त श्रीहरि उस तुलसीसे हँसकर अमृतमय वाणीमें कहने लगे॥ १३॥

श्रीभगवान् बोले—हे प्रिये! हम दोनोंका युद्ध पूरे एक वर्षतक होता रहा। हे कामिनि! उस युद्धमें सभी दानवोंका विनाश हो गया। तब स्वयं ब्रह्माजीने हम दोनोंमें प्रेम करवा दिया और फिर उनकी आज्ञासे मैंने देवताओंको उनका सम्पूर्ण अधिकार लौटा दिया। इसके बाद मैं अपने घर चला आया और शिवजी अपने लोकको चले गये॥ १४-१५½॥

हे नारद! यह कहकर जगन्नाथ रमापति श्रीहरि शय्यापर सो गये और जब उस रमणीके साथ विहार करने लगे, तब उस साध्वी तुलसीने अपने मनमें विचार करके सब कुछ जान लिया और 'तुम कौन हो?'—ऐसा वह उनसे पूछने लगी॥ १६-१७½॥

तुलसी बोली—हे मायेश! तुम कौन हो, यह मुझे बताओ। तुमने छलपूर्वक मेरा सतीत्व नष्ट किया, अतः मैं तुम्हें शाप देती हूँ॥ १८½॥

हे ब्रह्मन्! तुलसीका वचन सुनकर भगवान् श्रीहरिने शापके भयसे लीलापूर्वक अपना मनोहर विष्णुरूप धारण कर लिया॥ १९½॥

तब देवी तुलसीने नूतन मेघके समान श्याम वर्णवाले, शरत्कालीन कमलके समान नेत्रोंवाले, करोड़ों कामदेवके समान सुन्दर प्रतीत होनेवाले, रत्नमय आभूषणोंसे अलंकृत, मन्द-मन्द मुसकानसे युक्त प्रसन्न मुख-मण्डलवाले, पीताम्बर धारण किये हुए तथा अनुपम शोभासम्पन्न देवाधिदेव सनातन श्रीहरिको अपने समक्ष देखा। उन्हें देखकर कामिनी तुलसी लीलापूर्वक पूर्णतः मूर्च्छित हो गयी और कुछ देर बाद चेतना प्राप्त करके वह उन श्रीहरिसे पुनः कहने लगी॥ २०—२२½॥

तुलस्युवाच

हे नाथ ते दया नास्ति पाषाणसदृशस्य च॥ २३

छलेन धर्मभङ्गेन मम स्वामी त्वया हतः।
पाषाणहृदयस्त्वं हि दयाहीनो यतः प्रभो॥ २४

तस्मात्पाषाणरूपस्त्वं भवे देव भवाधुना।
ये वदन्ति च साधुं त्वां ते भ्रान्ता हि न संशयः॥ २५

भक्तो विनापराधेन परार्थे च कथं हतः।
भृशं रुरोद शोकार्ता विललाप मुहुर्मुहुः॥ २६

ततश्च करुणां दृष्ट्वा करुणारससागरः।
नयेन तां बोधयितुमुवाच कमलापतिः॥ २७

श्रीभगवानुवाच

तपस्त्वया कृतं भद्रे मदर्थे भारते चिरम्।
त्वदर्थे शङ्खचूडश्च चकार सुचिरं तपः॥ २८

कृत्वा त्वां कामिनीं सोऽपि विजहार च तत्क्षणात्।
अधुना दातुमुचितं तवैव तपसः फलम्॥ २९

इदं शरीरं त्यक्त्वा च दिव्यदेहं विधाय च।
रामे रम मया सार्धं त्वं रमासदृशी भव॥ ३०

इयं तनुर्नदीरूपा गण्डकीति च विश्रुता।
पूता सुपुण्यदा नृणां पुण्ये भवतु भारते॥ ३१

तव केशसमूहश्च पुण्यवृक्षो भविष्यति।
तुलसीकेशसम्भूता तुलसीति च विश्रुता॥ ३२

त्रिषु लोकेषु पुष्पाणां पत्राणां देवपूजने।
प्रधानरूपा तुलसी भविष्यति वरानने॥ ३३

स्वर्गे मर्त्ये च पाताले गोलोके मम सन्निधौ।
भव त्वं तुलसी वृक्षवरा पुष्पेषु सुन्दरी॥ ३४

तुलसी बोली—हे नाथ! आप पाषाणसदृश हो गये हैं, आपमें दया नहीं है। आपने छलपूर्वक मेरा धर्म नष्ट करके मेरे स्वामीको मार डाला। हे प्रभो! आप पाषाण-हृदयवाले हैं तथा दयाहीन हो गये हैं, अतः हे देव! आप इसी समय लोकमें पाषाणरूप हो जायँ। जो लोग आपको साधु कहते हैं, वे भ्रमित हैं; इसमें सन्देह नहीं है। दूसरेका हित साधनेके लिये आपने अपने भक्तको क्यों मार डाला?॥ २३—२५½॥

[हे नारद!] इस प्रकार शोक-सन्तप्त तुलसीने बहुत रुदन तथा बार-बार विलाप किया। तदनन्तर करुणारसके सागर कमलापति श्रीहरि तुलसीकी कारुणिक अवस्था देखकर नीतियुक्त वचनोंसे उसे समझाते हुए कहने लगे॥ २६-२७॥

श्रीभगवान् बोले—हे भद्रे! तुमने भारतमें रहकर मेरे लिये बहुत समयतक तपस्या की है, साथ ही इस शंखचूड़ने भी उस समय तुम्हारे लिये दीर्घ समयतक तपस्या की थी॥ २८॥

तुम्हें पत्नीरूपमें प्राप्त करके उसने तपस्याका फल प्राप्त करके तुम्हारे साथ विहार किया है। अब तुम्हें तुम्हारेद्वारा की गयी तपस्याका फल देना उचित है॥ २९॥

हे रामे! अब तुम इस शरीरको त्यागकर तथा दिव्य देह धारण करके मेरे साथ आनन्द करो और [मेरे लिये] लक्ष्मीके समान हो जाओ॥ ३०॥

तुम्हारा यह शरीर गण्डकीनदीके रूपमें प्रसिद्ध होगा। वह पवित्र नदी पुण्यमय भारतवर्षके मनुष्योंको उत्तम पुण्य देनेवाली होगी॥ ३१॥

तुम्हारा केशसमूह पुण्य वृक्षके रूपमें प्रतिष्ठित होगा। तुम्हारे केशसे उत्पन्न वह वृक्ष तुलसी नामसे प्रसिद्ध होगा॥ ३२॥

हे वरानने! देवपूजनमें प्रयुक्त होनेवाले त्रिलोकीके समस्त पुष्पों तथा पत्रोंमें तुलसी प्रधानरूपवाली मानी जायगी॥ ३३॥

स्वर्गलोक, मृत्युलोक, पाताल तथा गोलोक—इन सभी स्थानोंमें तुम मेरे सान्निध्यमें रहोगी। वृक्षश्रेष्ठ उत्तम तुलसी नामसे तुम पुष्पोंके मध्य सदा प्रतिष्ठित रहोगी॥ ३४॥

गोलोके विरजातीरे रासे वृन्दावने वने।
भाण्डीरे चम्पकवने रम्ये चन्दनकानने॥ ३५

माधवीकेतकीकुन्दमालिकामालतीवने ।
वासस्तेऽत्रैव भवतु पुण्यस्थानेषु पुण्यदः॥ ३६

तुलसीतरुमूलेषु पुण्यदेशेषु पुण्यदम्।
अधिष्ठानं च तीर्थानां सर्वेषां च भविष्यति॥ ३७

तत्रैव सर्वदेवानां ममाधिष्ठानमेव च।
तुलसीपत्रपतनप्राप्तये च वरानने॥ ३८

स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः।
तुलसीपत्रतोयेन योऽभिषेकं समाचरेत्॥ ३९

सुधाघटसहस्त्राणां या तुष्टिस्तु भवेद्धरेः।
सा च तुष्टिर्भवेन्नूनं तुलसीपत्रदानतः॥ ४०

गवामयुतदानेन यत्फलं तत्फलं भवेत्।
तुलसीपत्रदानेन तत्फलं कार्तिके सति॥ ४१

तुलसीपत्रतोयं च मृत्युकाले च यो लभेत्।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोके महीयते॥ ४२

नित्यं यस्तुलसीतोयं भुंक्ते भक्त्या च मानवः।
लक्षाश्वमेधजं पुण्यं सम्प्राप्नोति स मानवः॥ ४३

तुलसीं स्वकरे कृत्वा धृत्वा देहे च मानवः।
प्राणांस्त्यजति तीर्थेषु विष्णुलोकं च गच्छति॥ ४४

तुलसीकाष्ठनिर्माणमालां गृह्णाति यो नरः।
पदे पदेऽश्वमेधस्य लभते निश्चितं फलम्॥ ४५

तुलसीं स्वकरे कृत्वा स्वीकारं यो न रक्षति।
स याति कालसूत्रं च यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥ ४६

करोति मिथ्याशपथं तुलस्यां योऽत्र मानवः।
स याति कुम्भीपाकं च यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥ ४७

गोलोक, विरजानदीके तट, रासमण्डल, वृन्दावन, भाण्डीरवन, चम्पकवन, मनोहर चन्दनवन, माधवी, केतकी, कुन्द, मालिका, मालतीवन—इन सभी पुण्यमय स्थानोंमें तुम्हारा पुण्यप्रद वास होगा॥ ३५-३६॥

तुलसीवृक्षके मूलोंके सान्निध्यवाले पुण्यमय स्थानोंमें समस्त तीर्थोंका पुण्यप्रद अधिष्ठान होगा। हे वरानने! तुलसीके पत्र अपने ऊपर पड़ें इस उद्देश्यसे वहाँपर मेरा तथा सभी देवताओंका निवास होगा॥ ३७-३८॥

तुलसी-पत्रके जलसे जो व्यक्ति स्नान करता है, उसने मानो सभी तीर्थोंमें स्नान कर लिया और वह सभी यज्ञोंमें दीक्षित हो गया॥ ३९॥

हजारों अमृतकलशोंसे भगवान् श्रीहरिको जो सन्तुष्टि होती है, वह उन्हें तुलसीका एक पत्र अर्पण करनेसे अवश्य ही मिल जाती है॥ ४०॥

जो फल दस हजार गायोंका दान करनेसे होता है, वही फल कार्तिकमासमें तुलसीके पत्रके दानसे प्राप्त हो जाता है॥ ४१॥

जिस व्यक्तिको मृत्युके अवसरपर तुलसीपत्रका जल सुलभ हो जाता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर विष्णु-लोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ ४२॥

जो मनुष्य प्रतिदिन भक्तिपूर्वक तुलसीका जल ग्रहण करता है, वह एक लाख अश्वमेधयज्ञोंसे होनेवाला पुण्य प्राप्त कर लेता है॥ ४३॥

जो मनुष्य हाथमें तुलसी लेकर या शरीरमें इसे धारणकर तीर्थोंमें प्राण त्यागता है, वह विष्णुलोक जाता है॥ ४४॥

जो मनुष्य तुलसी-काष्ठसे निर्मित मालाको धारण करता है, वह पद-पदपर अश्वमेधयज्ञका फल निश्चय ही प्राप्त करता है॥ ४५॥

जो मनुष्य तुलसीको अपने हाथपर रखकर अपने प्रतिज्ञा-वचनकी रक्षा नहीं करता, वह कालसूत्रनरकमें पड़ता है और वहाँपर चन्द्रमा तथा सूर्यकी स्थितिपर्यन्त वास करता है॥ ४६॥

जो मनुष्य इस लोकमें तुलसीके समीप झूठी प्रतिज्ञा करता है, वह कुम्भीपाकनरकमें जाता है और चौदहों इन्द्रोंकी स्थितितक वहाँ पड़ा रहता है॥ ४७॥

तुलसीतोयकणिकां मृत्युकाले च यो लभेत्।
रत्नयानं समारुह्य वैकुण्ठे प्राप्यते ध्रुवम्॥ ४८

पूर्णिमायाममायां च द्वादश्यां रविसंक्रमे।
तैलाभ्यङ्गं च कृत्वा च मध्याह्ने निशि सन्ध्ययोः॥ ४९

अशौचेऽशुचिकाले ये रात्रिवासोऽन्विता नराः।
तुलसीं ये विचिन्वन्ति ते छिन्दन्ति हरेः शिरः॥ ५०

त्रिरात्रं तुलसीपत्रं शुद्धं पर्युषितं सति।
श्राद्धे व्रते च दाने च प्रतिष्ठायां सुरार्चने॥ ५१

भूगतं तोयपतितं यद्दत्तं विष्णवे सति।
शुद्धं च तुलसीपत्रं क्षालनादन्यकर्मणि॥ ५२

वृक्षाधिष्ठातृदेवी या गोलोके च निरामये।
कृष्णेन सार्धं नित्यं च नित्यक्रीडां करिष्यसि॥ ५३

नद्यधिष्ठातृदेवी या भारते च सुपुण्यदा।
लवणोदस्य सा पत्नी मदंशस्य भविष्यति॥ ५४

त्वं च स्वयं महासाध्वी वैकुण्ठे मम सन्निधौ।
रमासमा च रामा च भविष्यसि न संशयः॥ ५५

अहं च शैलरूपेण गण्डकीतीरसन्निधौ।
अधिष्ठानं करिष्यामि भारते तव शापतः॥ ५६

कोटिसंख्यास्तत्र कीटास्तीक्ष्णदंष्ट्रावरायुधैः।
तच्छिलाकुहरे चक्रं करिष्यन्ति मदीयकम्॥ ५७

एकद्वारं चतुश्चक्रं वनमालाविभूषितम्।
नवीननीरदाकारं लक्ष्मीनारायणाभिधम्॥ ५८

एकद्वारं चतुश्चक्रं नवीननीरदोपमम्।
लक्ष्मीजनार्दनो ज्ञेयो रहितो वनमालया॥ ५९

मृत्युके समय जिस मनुष्यके मुखमें तुलसी-जलका एक कण भी पहुँच जाता है, वह रत्नमय विमानपर आरूढ़ होकर निश्चय ही विष्णुलोकको जाता है॥ ४८॥

पूर्णिमा, अमावास्या, द्वादशी, सूर्य-संक्रान्ति, मध्याह्नकाल, रात्रि, दोनों सन्ध्याएँ, अशौच तथा अपवित्र समयोंमें, रातके कपड़े पहने हुए तथा शरीरमें तेल लगाकर जो लोग तुलसीके पत्र तोड़ते हैं; वे साक्षात् श्रीहरिका मस्तक ही काटते हैं॥ ४९-५०॥

श्राद्ध, व्रत, दान, प्रतिष्ठा तथा देवार्चनके लिये तुलसीपत्र बासी होनेपर भी तीन राततक शुद्ध बना रहता है॥ ५१॥

पृथ्वीपर पड़ा हुआ अथवा जलमें गिरा हुआ या श्रीविष्णुको चढ़ाया हुआ तुलसीपत्र धो देनेपर दूसरे कार्योंके लिये शुद्ध होता है॥ ५२॥

वृक्षोंकी अधिष्ठात्री देवी बनकर तुम शाश्वत गोलोकमें मुझ कृष्णके साथ सदा विहार करोगी। उसी प्रकार भारतवर्षमें नदियोंकी जो अत्यन्त पुण्यदायिनी अधिष्ठात्री देवी हैं, उस रूपमें भी तुम मेरे ही अंशस्वरूप लवणसमुद्रकी पत्नी बनोगी॥ ५३-५४॥

स्वयं महासाध्वी तुम वैकुण्ठलोकमें मेरे सन्निकट लक्ष्मीके समान भार्याके रूपमें सदा विराजमान रहोगी; इसमें सन्देह नहीं है॥ ५५॥

मैं भी तुम्हारे शापसे पाषाण बनकर भारतवर्षमें गण्डकीनदीके तटके समीप निवास करूँगा। वहाँ रहनेवाले करोड़ों कीट अपने तीक्ष्ण दाँतरूपी श्रेष्ठ आयुधोंसे काट-काटकर उस शिलाके गड्ढेमें मेरे चक्रका चिह्न बनायेंगे॥ ५६-५७॥

जिसमें एक द्वारका चिह्न होगा, चार चक्र होंगे और जो वनमालासे विभूषित होगा, वह नवीन मेघके समान वर्णवाला पाषाण 'लक्ष्मीनारायण' नामसे प्रसिद्ध होगा॥ ५८॥

जिसमें एक द्वारका चिह्न तथा चार चक्रके चिह्न होंगे, किंतु जो वनमालाकी रेखासे रहित होगा, उस नवीन मेघके समान श्यामवर्ण-वाले पाषाणको 'लक्ष्मी-जनार्दन' नामवाला समझना चाहिये॥ ५९॥

द्वारद्वये चतुश्चक्रं गोष्पदेन विराजितम्।
रघुनाथाभिधं ज्ञेयं रहितं वनमालया॥ ६०

दो द्वार तथा चार चक्रसे युक्त, गायके खुरसे सुशोभित तथा वनमालासे रहित पाषाणको 'रघुनाथ' नामसे जानना चाहिये॥ ६०॥

अतिक्षुद्रं द्विचक्रं च नवीनजलदप्रभम्।
तद्वामनाभिधं ज्ञेयं रहितं वनमालया॥ ६१

जिसमें बहुत सूक्ष्म दो चक्रके चिह्न हों और वनमालाकी रेखा न हो, उस नवीन मेघके सदृश वर्णवाले पाषाणको भगवान् 'वामन' नामसे मानना चाहिये॥ ६१॥

अतिक्षुद्रं द्विचक्रं च वनमालाविभूषितम्।
विज्ञेयं श्रीधरं रूपं श्रीप्रदं गृहिणां सदा॥ ६२

जिस पाषाणमें अत्यन्त सूक्ष्म आकारके दो चक्र हों तथा जो वनमालासे सुशोभित हो, गृहस्थोंको सदा श्री प्रदान करनेवाले उस पाषाणको भगवान् 'श्रीधर' का ही स्वरूप समझना चाहिये॥ ६२॥

स्थूलं च वर्तुलाकारं रहितं वनमालया।
द्विचक्रं स्फुटमत्यन्तं ज्ञेयं दामोदराभिधम्॥ ६३

स्थूल, गोलाकार, वनमालासे रहित तथा अत्यन्त स्पष्ट दो चक्रोंसे अंकित पाषाणको भगवान्‌का 'दामोदर' नामवाला स्वरूप जानना चाहिये॥ ६३॥

मध्यमं वर्तुलाकारं द्विचक्रं बाणविक्षतम्।
रणरामाभिधं ज्ञेयं शरतूणसमन्वितम्॥ ६४

जो मध्यम गोलाईके आकारवाला हो, जिसमें दो चक्र बने हों, जिसपर बाण तथा तरकशका चिह्न अंकित हो और जिसके ऊपर बाणसे कट जानेका चिह्न हो, उस पाषाणको रणमें शोभा पानेवाले भगवान् 'राम' का विग्रह समझना चाहिये॥ ६४॥

मध्यमं सप्तचक्रञ्च छत्रभूषणभूषितम्।
राजराजेश्वरं ज्ञेयं राजसम्पत्प्रदं नृणाम्॥ ६५

मध्यम आकारवाले, सात चक्रोंके चिह्नोंसे अंकित, छत्र तथा आभूषणसे अलंकृत पाषाणको भगवान् 'राजराजेश्वर' समझना चाहिये। वह पाषाण मनुष्योंको विपुल राजसम्पदा प्रदान करनेवाला है॥ ६५॥

द्विसप्तचक्रं स्थूलं च नवनीरदसुप्रभम्।
अनन्ताख्यं च विज्ञेयं चतुर्वर्गफलप्रदम्॥ ६६

जो पाषाण स्थूल हो, चौदह चक्रोंसे सुशोभित तथा नवीन मेघसदृश प्रभावाला हो; उस धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—इन चारों प्रकारके फल प्रदान करनेवाले पाषाणको भगवान् 'अनन्त' का स्वरूप जानना चाहिये॥ ६६॥

चक्राकारं द्विचक्रं च सश्रीकं जलदप्रभम्।
सगोष्पदं मध्यमं च विज्ञेयं मधुसूदनम्॥ ६७

जो चक्रके आकारवाला हो; जिसमें दो चक्र, श्री और गोखुरके चिह्न सुशोभित हों, ऐसे मध्यम तथा नवीन मेघके समान वर्णवाले पाषाणको भगवान् 'मधुसूदन' का विग्रह समझना चाहिये॥ ६७॥

सुदर्शनं चैकचक्रं गुप्तचक्रं गदाधरम्।
द्विचक्रं हयवक्त्राभं हयग्रीवं प्रकीर्तितम्॥ ६८

सुन्दर दर्शनवाले तथा केवल एक गुप्त चक्रसे युक्त पाषाणको भगवान् 'गदाधर' तथा दो चक्रसे युक्त एवं अश्वके मुखकी आकृतिवाले पाषाणको भगवान् 'हयग्रीव' का विग्रह कहा गया है॥ ६८॥

अतीव विस्तृतास्यं च द्विचक्रं विकटं सति।
नरसिंहं सुविज्ञेयं सद्यो वैराग्यदं नृणाम्॥ ६९

जो अत्यन्त विस्तृत मुखवाला हो, दो चक्रके चिह्नोंसे सुशोभित हो, जो देखनेमें बड़ा विकट लगता हो, मनुष्योंको शीघ्र वैराग्य प्रदान करनेवाले ऐसे पाषाणको भगवान् 'नरसिंह' का स्वरूप समझना चाहिये॥ ६९॥

द्विचक्रं विस्तृतास्यं च वनमालासमन्वितम्।
लक्ष्मीनृसिंहं विज्ञेयं गृहिणां च सुखप्रदम्॥ ७०

जिसमें दो चक्र हों, जो विस्तृत मुखवाला हो तथा वनमालासे सुशोभित हो, गृहस्थोंको सुख प्रदान करनेवाले ऐसे पाषाणको 'लक्ष्मीनृसिंह' का स्वरूप समझना चाहिये॥ ७०॥

द्वारदेशे द्विचक्रं च सश्रीकं च समं स्फुटम्।
वासुदेवं तु विज्ञेयं सर्वकामफलप्रदम्॥ ७१

जिसके द्वारदेशमें दो चक्र तथा 'श्री' का चिह्न स्पष्ट रूपसे अंकित हो, समस्त कामनाओंका फल प्रदान करनेवाले उस पाषाणको भगवान् 'वासुदेव' का विग्रह जानना चाहिये॥ ७१॥

प्रद्युम्नं सूक्ष्मचक्रं च नवीननीरदप्रभम्।
सुषिरच्छिद्रबहुलं गृहिणां च सुखप्रदम्॥ ७२

जो सूक्ष्म चक्रके चिह्नसे युक्त हो, नवीन मेघके समान श्यामवर्णका हो और जिसके मुखपर बहुतसे छोटे-छोटे छिद्र विद्यमान हों, गृहस्थोंको सुख प्रदान करनेवाले उस पाषाणको 'प्रद्युम्न' का स्वरूप जानना चाहिये॥ ७२॥

द्वे चक्रे चैकलग्ने च पृष्ठं यत्र तु पुष्कलम्।
सङ्कर्षणं सुविज्ञेयं सुखदं गृहिणां सदा॥ ७३

जिसमें परस्पर सटे हुए दो चक्रोंके चिह्न विद्यमान हों तथा जिसका पृष्ठभाग विशाल हो, गृहस्थोंको निरन्तर सुख प्रदान करनेवाले उस पाषाणको भगवान् 'संकर्षण' का ही रूप समझना चाहिये॥ ७३॥

अनिरुद्धं तु पीताभं वर्तुलं चातिशोभनम्।
सुखप्रदं गृहस्थानां प्रवदन्ति मनीषिणः॥ ७४

जो अत्यन्त सुन्दर, गोलाकार तथा पीत आभावाला हो, गृहस्थोंको सुख प्रदान करनेवाले उस पाषाणको विद्वान् पुरुष भगवान् 'अनिरुद्ध' का स्वरूप कहते हैं॥ ७४॥

शालग्रामशिला यत्र तत्र सन्निहितो हरिः।
तत्रैव लक्ष्मीर्वसति सर्वतीर्थसमन्विता॥ ७५

जहाँ शालग्रामकी शिला रहती है, वहाँ भगवान् श्रीहरि विराजमान रहते हैं और वहींपर भगवती लक्ष्मी भी सभी तीर्थोंको साथ लेकर सदा निवास करती हैं॥ ७५॥

यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च।
तानि सर्वाणि नश्यन्ति शालग्रामशिलार्चनात्॥ ७६

ब्रह्महत्या आदि जो भी पाप हैं, वे सब शालग्रामकी शिलाके पूजनसे नष्ट हो जाते हैं॥ ७६॥

छत्राकारे भवेद्राज्यं वर्तुले च महाश्रियः।
दुःखञ्च शकटाकारे शूलाग्रे मरणं ध्रुवम्॥ ७७

छत्राकार शालग्रामके पूजनसे राज्य, गोलाकार शालग्रामके पूजनसे महालक्ष्मी, शकटके आकारवाले शालग्रामके पूजनसे कष्ट तथा शूलके समान अग्रभागवाले शालग्रामके पूजनसे निश्चितरूपसे मृत्यु होती है॥ ७७॥

विकृतास्ये च दारिद्र्यं पिङ्गले हानिरेव च।
भग्नचक्रे भवेद्व्याधिर्विदीर्णे मरणं ध्रुवम्॥ ७८

व्रतं दानं प्रतिष्ठा च श्राद्धं च देवपूजनम्।
शालग्रामस्य सान्निध्यात्प्रशस्तं तद्भवेदिति॥ ७९

स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः।
सर्वयज्ञेषु तीर्थेषु व्रतेषु च तपःसु च॥ ८०

पाठे चतुर्णां वेदानां तपसां करणे सति।
तत्पुण्यं लभते नूनं शालग्रामशिलार्चनात्॥ ८१

(शालग्रामशिलातोयैर्योऽभिषेकं सदा चरेत्।
सर्वदानेषु यत्पुण्यं प्रदक्षिणं भुवो यथा॥)

शालग्रामशिलातोयं नित्यं भुङ्क्ते च यो नरः।
सुरेप्सितं प्रसादं च लभते नात्र संशयः॥ ८२

तस्य स्पर्शं च वाञ्छन्ति तीर्थानि निखिलानि च।
जीवन्मुक्तो महापूतोऽप्यन्ते याति हरेः पदम्॥ ८३

तत्रैव हरिणा सार्धमसंख्यं प्राकृतं लयम्।
यास्यत्येव हि दास्ये च नियुक्तो दास्यकर्मणि॥ ८४

यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यासमानि च।
तं दृष्ट्वा च पलायन्ते वैनतेयादिवोरगाः॥ ८५

तत्पादरजसा देवी सद्यःपूता वसुन्धरा।
पुंसां लक्षं तत्पितॄणां निस्तरेत्तस्य जन्मतः॥ ८६

शालग्रामशिलातोयं मृत्युकाले च यो लभेत्।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति॥ ८७

निर्वाणमुक्तिं लभते कर्मभोगात्प्रमुच्यते।
विष्णोः पदे प्रलीनश्च भविष्यति न संशयः॥ ८८

विकृत मुखवाले शालग्रामसे दरिद्रता, पिंगलवर्ण-वालेसे हानि, खण्डित चक्रवालेसे व्याधि तथा विदीर्ण शालग्रामसे निश्चय ही मरण होता है॥ ७८॥

व्रत, स्नान, प्रतिष्ठा, श्राद्ध तथा देवपूजन आदि जो भी कर्म शालग्रामकी सन्निधिमें किया जाता है, वह प्रशस्त माना जाता है और वह कर्ता मानो सभी तीर्थोंमें स्नान कर चुका और सभी यज्ञोंमें दीक्षित हो गया। इस प्रकार उसे सम्पूर्ण यज्ञों, तीर्थों, व्रतों और तपस्याओंका फल मिल जाता है॥ ७९-८०॥

चारों वेदोंके पढ़ने तथा तपस्या करनेसे जो पुण्य प्राप्त होता है, वह पुण्य शालग्रामकी शिलाके पूजनसे निश्चितरूपसे सुलभ हो जाता है॥ ८१॥

(जो मनुष्य शालग्रामशिलाके जलसे नित्य अभिषेक करता है, वह सभी दान करने तथा पृथ्वीकी प्रदक्षिणा करनेसे जो पुण्य होता है, उसे प्राप्त कर लेता है।) जो मनुष्य शालग्रामशिलाके जलका नित्य पान करता है, वह देवाभिलषित प्रसाद प्राप्त कर लेता है, इसमें सन्देह नहीं है। समस्त तीर्थ उसका स्पर्श करना चाहते हैं। वह जीवन्मुक्त तथा परम पवित्र मनुष्य अन्तमें भगवान् श्रीहरिके लोक चला जाता है। वहाँपर वह भगवान् श्रीहरिके साथ असंख्य प्राकृत प्रलयपर्यन्त रहता है। वह वहाँ भगवान्का दास्यभाव प्राप्त कर लेता है और उनके सेवाकार्यमें नियुक्त हो जाता है॥ ८२—८४॥

ब्रह्महत्यासदृश जो कोई भी पाप हों, वे भी उस व्यक्तिको देखते ही उसी प्रकार भाग जाते हैं, जैसे गरुड़को देखकर सर्प॥ ८५॥

उस मनुष्यके चरणकी रजसे पृथ्वीदेवी तुरन्त पवित्र हो जाती हैं और उसके जन्मसे उसके लाखों पितरोंका उद्धार हो जाता है॥ ८६॥

जो मनुष्य मृत्युके समय शालग्रामशिलाके जलका पान कर लेता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त होकर विष्णुलोकको चला जाता है। इस प्रकार वह सभी कर्मभोगोंसे मुक्त होकर निर्वाणमुक्ति प्राप्त कर लेता है और भगवान् विष्णुके चरणोंमें लीन हो जाता है; इसमें संशय नहीं है॥ ८७-८८॥

शालग्रामशिलां धृत्वा मिथ्यावाक्यं वदेत्तु यः।
स याति कुम्भीपाके च यावद्वै ब्रह्मणो वयः॥ ८९

शालग्रामशिलां धृत्वा स्वीकारं यो न पालयेत्।
स प्रयात्यसिपत्रं च लक्षमन्वन्तरावधि॥ ९०

तुलसीपत्रविच्छेदं शालग्रामे करोति यः।
तस्य जन्मान्तरे कान्ते स्त्रीविच्छेदो भविष्यति॥ ९१

तुलसीपत्रविच्छेदं शङ्खे यो हि करोति च।
भार्याहीनो भवेत्सोऽपि रोगी च सप्तजन्मसु॥ ९२

शालग्रामं च तुलसीं शङ्खं चैकत्र एव च।
यो रक्षति महाज्ञानी स भवेच्छ्रीहरेः प्रियः॥ ९३

सकृदेव हि यो यस्यां वीर्याधानं करोति च।
तद्विच्छेदे तस्य दुःखं भवेदेव परस्परम्॥ ९४

त्वं प्रिया शङ्खचूडस्य चैकमन्वन्तरावधि।
शङ्खेन सार्धं त्वद्भेदः केवलं दुःखदस्तथा॥ ९५

इत्युक्त्वा श्रीहरिस्तां च विरराम च नारद।
सा च देहं परित्यज्य दिव्यरूपं विधाय च॥ ९६

यथा श्रीश्च तथा सा चाप्युवास हरिवक्षसि।
स जगाम तया सार्धं वैकुण्ठं कमलापतिः॥ ९७

लक्ष्मीः सरस्वती गङ्गा तुलसी चापि नारद।
हरेः प्रियाश्चतस्रश्च बभूवुरीश्वरस्य च॥ ९८

सद्यस्तद्देहजाता च बभूव गण्डकी नदी।
ईश्वरः सोऽपि शैलश्च तत्तीरे पुण्यदो नृणाम्॥ ९९

कुर्वन्ति तत्र कीटाश्च शिलां बहुविधां मुने।
जले पतन्ति या याश्च फलदास्ताश्च निश्चितम्॥ १००

शालग्रामशिलाको हाथमें लेकर जो मनुष्य मिथ्या वचन बोलता है, वह कुम्भीपाकनरकमें जाता है और ब्रह्माकी आयुपर्यन्त वहाँ निवास करता है॥ ८९॥

जो शालग्रामशिलाको हाथमें लेकर अपने द्वारा की गयी प्रतिज्ञाका पालन नहीं करता, वह असिपत्र नामक नरकमें जाता है और वहाँ एक लाख मन्वन्तरकी अवधितक रहता है॥ ९०॥

हे कान्ते! जो मनुष्य शालग्रामशिलासे तुलसीपत्रको हटा देता है, वह दूसरे जन्ममें स्त्रीसे वियुक्त हो जाता है। उसी प्रकार जो पुरुष शंखसे तुलसीपत्रको अलग करता है, वह भी सात जन्मोंतक भार्याविहीन तथा रोगयुक्त रहता है॥ ९१-९२॥

जो महाज्ञानी व्यक्ति शालग्राम, तुलसी और शंखको एकत्र रखता है, वह भगवान् श्रीहरिके लिये अत्यन्त प्रिय हो जाता है॥ ९३॥

जो पुरुष एक बार भी जिस किसी स्त्रीके साथ एकान्तवास कर लेता है, वियोग होनेपर उसका दुःख उन दोनोंको परस्पर होता है। तुम एक मन्वन्तरकी अवधितक शंखचूड़की भार्या रह चुकी हो, अतः उसके साथ तुम्हारा वियोग कष्टदायक तो होगा ही॥ ९४-९५॥

हे नारद! उस तुलसीसे ऐसा कहकर भगवान् श्रीहरि चुप हो गये। तुलसी अपना वह शरीर त्यागकर और दिव्य रूप धारण करके श्रीहरिके वक्षःस्थलपर लक्ष्मीकी भाँति सुशोभित होने लगी। इसके बाद वे लक्ष्मीपति श्रीहरि उसके साथ वैकुण्ठलोक चले गये॥ ९६-९७॥

हे नारद! इस प्रकार लक्ष्मी, सरस्वती, गंगा और तुलसी—ये चारों देवियाँ भगवान् श्रीहरिकी पत्नियाँ हुईं॥ ९८॥

उसी समय तुरन्त तुलसीके शरीरसे गण्डकीनदी उत्पन्न हुई और भगवान् श्रीहरि उसीके तटपर मनुष्योंके लिये पुण्यप्रद शालग्राम बन गये॥ ९९॥

हे मुने! वहाँ रहनेवाले कीट शिलाको काट-काटकर उन्हें अनेक प्रकारके रूपोंवाला बना देते हैं। जो-जो शिलाएँ जलमें गिरती हैं, वे निश्चितरूपसे उत्तम फल देनेवाली होती हैं। जो शिलाएँ धरतीपर

स्थलस्थाः पिङ्गला ज्ञेयाश्चोपतापाद्रवेरिति।

इत्येवं कथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ १०१

गिरी रहती हैं, वे सूर्यके तापके कारण पीली पड़ जाती हैं, उन्हें पिंगला शिला समझना चाहिये। इस प्रकार मैंने सारा प्रसंग कह दिया, अब पुनः क्या सुनना चाहते हैं?॥ १००-१०१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे नारायणनारदसंवादे तुलसीमाहात्म्येन सह शालग्राममहत्त्ववर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः॥ २४॥



अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

तुलसी-पूजन, ध्यान, नामाष्टक तथा तुलसीस्तवनका वर्णन

नारद उवाच

तुलसी च यदा पूज्या कृता नारायणप्रिया।
अस्याः पूजाविधानं च स्तोत्रं च वद साम्प्रतम्॥ १

केन पूजा कृता केन स्तुता प्रथमतो मुने।
तत्र पूज्या सा बभूव केन वा वद मामहो॥ २

सूत उवाच

नारदस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य मुनिपुङ्गवः।
कथां कथितुमारेभे पुण्यां पापहरां पराम्॥ ३

श्रीनारायण उवाच

हरिः सम्पूज्य तुलसीं रेमे च रमया सह।
रमासमानसौभाग्यां चकार गौरवेण च॥ ४

सेहे च लक्ष्मीर्गङ्गा च तस्याश्च नवसङ्गमम्।
सौभाग्यगौरवं कोपात्ते न सेहे सरस्वती॥ ५

सा तां जघान कलहे मानिनी हरिसन्निधौ।
व्रीडया चापमानेन सान्तर्धानं चकार ह॥ ६

सर्वसिद्धेश्वरी देवी ज्ञानिनां सिद्धियोगिनी।
जगामादर्शनं कोपात्सर्वत्र च हरेरहो॥ ७

हरिर्न दृष्ट्वा तुलसीं बोधयित्वा सरस्वतीम्।
तदनुज्ञां गृहीत्वा च जगाम तुलसीवनम्॥ ८

नारदजी बोले—जिस समय विष्णुप्रिया तुलसीकी पूजा की गयी थी, उस समय उनके लिये किये गये पूजन-विधान तथा स्तोत्रको अब आप मुझे बताइये। हे मुने! सर्वप्रथम किसने उनकी पूजा की, किसने उनका स्तवन किया और किस प्रकार वे सर्वत्र पूज्य हुईं—यह सब आप मुझे बताइये॥ १-२॥

सूतजी बोले—हे मुनीश्वरो! नारदका वचन सुनकर मुनिश्रेष्ठ भगवान् नारायणने हँसकर सभी पापोंका नाश करनेवाली, पुण्यमयी तथा श्रेष्ठ कथा कहना आरम्भ किया॥ ३॥

श्रीनारायण बोले—भगवान् श्रीहरि तुलसीकी विधिवत् पूजा करके उस साध्वीके साथ आनन्द करने लगे। उन्होंने तुलसीको गौरव प्रदान करके उसे लक्ष्मीके समान सौभाग्यवती बना दिया॥ ४॥

लक्ष्मी और गंगाने तो उस तुलसीके नवसमागम तथा सौभाग्य-गौरवको सहन कर लिया, किंतु अत्यधिक क्षोभ उत्पन्न होनेके कारण सरस्वती इसे सहन नहीं कर सकीं॥ ५॥

उस मानिनी सरस्वतीने कलहमें श्रीहरिके समक्ष तुलसीको बहुत पीड़ित किया। इससे लज्जा और अपमानके कारण तुलसी अन्तर्धान हो गयीं॥ ६॥

ज्ञानियोंके लिये सर्वसिद्धेश्वरी तथा सिद्धयोगिनी देवी तुलसी कोपके कारण भगवान् श्रीहरिकी आँखोंसे ओझल हो गयीं॥ ७॥

जब भगवान् श्रीहरिने तुलसीको कहीं नहीं देखा, तब सरस्वतीको समझा-बुझाकर तथा उससे आज्ञा लेकर वे तुलसीवनकी ओर चल दिये॥ ८॥

तत्र गत्वा च सुस्नातो हरिः स तुलसीं सतीम्।
पूजयामास तां ध्यात्वा स्तोत्रं भक्त्या चकार ह॥ ९

लक्ष्मीमायाकामवाणीबीजपूर्वं दशाक्षरम्।
वृन्दावनीति ङेऽन्तं च वह्निजायान्तमेव च॥ १०

अनेन कल्पतरुणा मन्त्रराजेन नारद।
पूजयेद्यो विधानेन सर्वसिद्धिं लभेद् ध्रुवम्॥ ११

घृतदीपेन धूपेन सिन्दूरचन्दनेन च।
नैवेद्येन च पुष्पेण चोपचारेण नारद॥ १२

हरिस्तोत्रेण तुष्टा सा चाविर्भूता महीरुहात्।
प्रसन्ना चरणाम्भोजे जगाम शरणं शुभा॥ १३

वरं तस्यै ददौ विष्णुः सर्वपूज्या भवेरिति।
अहं त्वां धारयिष्यामि सुरूपां मूर्ध्नि वक्षसि॥ १४

सर्वे त्वां धारयिष्यन्ति स्वमूर्ध्नि च सुरादयः।
इत्युक्त्वा तां गृहीत्वा च प्रययौ स्वालयं विभुः॥ १५

नारद उवाच

किं ध्यानं स्तवनं किं वा किं वा पूजाविधानकम्।
तुलस्याश्च महाभाग तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥ १६

श्रीनारायण उवाच

अन्तर्हितायां तस्यां च हरिर्वृन्दावने तदा।
तस्याश्चक्रे स्तुतिं गत्वा तुलसीं विरहातुरः॥ १७

श्रीभगवानुवाच

वृन्दरूपाश्च वृक्षाश्च यदैकत्र भवन्ति च।
विदुर्बुधास्तेन वृन्दां मत्प्रियां तां भजाम्यहम्॥ १८

वहाँ पहुँचकर श्रीहरिने विधिवत् स्नान किया और उन साध्वी तुलसीका पूजन किया। तत्पश्चात् उनका ध्यान करके भगवान्ने भक्तिपूर्वक उनकी स्तुति की। उन्होंने लक्ष्मीबीज (श्रीं), मायाबीज (ह्रीं), कामबीज (क्लीं) और वाणीबीज (ऐं)—इन बीजोंको पूर्वमें लगाकर 'वृन्दावनी'—इस शब्दके अन्तमें 'ङे' (चतुर्थी) विभक्ति लगाकर तथा अन्तमें वह्निजाया (स्वाहा)-का प्रयोग करके दशाक्षर मन्त्र (**श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं वृन्दावन्यै स्वाहा**)-से पूजन किया था॥ ९-१०॥

हे नारद! जो इस कल्पवृक्षरूपी मन्त्रराजसे विधिपूर्वक तुलसीकी पूजा करता है, वह निश्चितरूपसे समस्त सिद्धियाँ प्राप्त कर लेता है॥ ११॥

हे नारद! घृतका दीपक, धूप, सिन्दूर, चन्दन, नैवेद्य और पुष्प आदि उपचारों तथा स्तोत्रसे भगवान् श्रीहरिके द्वारा सम्यक् पूजित होकर तुलसीदेवी वृक्षसे तत्काल प्रकट हो गयीं। वे कल्याणकारिणी तुलसी प्रसन्न होकर श्रीहरिके चरणकमलकी शरणमें चली गयीं॥ १२-१३॥

तब भगवान् विष्णुने उन्हें यह वर प्रदान किया—'तुम सर्वपूज्या हो जाओ। सुन्दर रूपवाली तुमको मैं अपने मस्तक तथा वक्षःस्थलपर धारण करूँगा और समस्त देवता आदि भी तुम्हें अपने मस्तकपर धारण करेंगे'—ऐसा कहकर भगवान् श्रीहरि उन तुलसीको साथ लेकर अपने स्थानपर चले गये॥ १४-१५॥

नारदजी बोले—हे महाभाग! तुलसीका ध्यान क्या है, स्तवन क्या है तथा पूजा-विधान क्या है? यह मुझे बतानेकी कृपा कीजिये॥ १६॥

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] उस समय तुलसीके अन्तर्धान हो जानेपर भगवान् श्रीहरि विरहसे व्यथित हो उठे और वृन्दावन जाकर उन तुलसीकी इस प्रकार स्तुति* करने लगे॥ १७॥

श्रीभगवान् बोले—जब वृन्दा (तुलसी)-रूप वृक्ष तथा अन्य वृक्ष एकत्र होते हैं, तब विद्वान् लोग उसे 'वृन्दा' कहते हैं। ऐसी 'वृन्दा' नामसे प्रसिद्ध अपनी प्रियाकी मैं उपासना करता हूँ॥ १८॥

पुरा बभूव या देवी त्वादौ वृन्दावने वने।
तेन वृन्दावनी ख्याता सौभाग्यां तां भजाम्यहम्॥ १९

असंख्येषु च विश्वेषु पूजिता या निरन्तरम्।
तेन विश्वपूजिताख्यां पूजितां च भजाम्यहम्॥ २०

असंख्यानि च विश्वानि पवित्राणि त्वया सदा।
तां विश्वपावनीं देवीं विरहेण स्मराम्यहम्॥ २१

देवा न तुष्टाः पुष्पाणां समूहेन यया विना।
तां पुष्पसारां शुद्धां च द्रष्टुमिच्छामि शोकतः॥ २२

विश्वे यत्प्राप्तिमात्रेण भक्तानन्दो भवेद् ध्रुवम्।
नन्दिनी तेन विख्याता सा प्रीता भवतादिह॥ २३

यस्या देव्यास्तुला नास्ति विश्वेषु निखिलेषु च।
तुलसी तेन विख्याता तां यामि शरणं प्रियाम्॥ २४

कृष्णजीवनरूपा सा शश्वत्प्रियतमा सती।
तेन कृष्णजीवनी सा सा मे रक्षतु जीवनम्॥ २५

इत्येवं स्तवनं कृत्वा तस्थौ तत्र रमापतिः।
ददर्श तुलसीं साक्षात्पादपद्मनतां सतीम्॥ २६

रुदतीमवमानेन मानिनीं मानपूजिताम्।
प्रियां दृष्ट्वा प्रियः शीघ्रं वासयामास वक्षसि॥ २७

भारत्याज्ञां गृहीत्वा च स्वालयं च ययौ हरिः।
भारत्या सह तत्प्रीतिं कारयामास सत्वरम्॥ २८

वरं विष्णुर्ददौ तस्यै सर्वपूज्या भवेरिति।
शिरोधार्या च सर्वेषां वन्द्या मान्या ममेति च॥ २९

विष्णोर्वरेण सा देवी परितुष्टा बभूव च।
सरस्वती तामाकृष्य वासयामास सन्निधौ॥ ३०

जो देवी प्राचीन कालमें सर्वप्रथम वृन्दावनमें प्रकट हुई थी और इसलिये जो 'वृन्दावनी' नामसे प्रसिद्ध हुई, उस सौभाग्यवती देवीकी मैं उपासना करता हूँ॥ १९॥ असंख्य विश्वोंमें सदा जिसकी पूजा की जाती है, इसलिये 'विश्वपूजिता' नामसे प्रसिद्ध उस सर्वपूजित भगवती तुलसीकी मैं उपासना करता हूँ॥ २०॥ तुम असंख्य विश्वोंको सदा पवित्र करती हो, अतः तुम 'विश्वपावनी' नामक देवीका मैं विरहसे आतुर होकर स्मरण करता हूँ॥ २१॥ जिसके विना प्रचुर पुष्प अर्पित करनेपर भी देवता प्रसन्न नहीं होते हैं, मैं शोकाकुल होकर 'पुष्पसारा' नामसे विख्यात, पुष्पोंकी सारभूत तथा शुद्धस्वरूपिणी उस देवी तुलसीके दर्शनकी कामना करता हूँ॥ २२॥ संसारमें जिसकी प्राप्तिमात्रसे भक्तको निश्चय ही आनन्द प्राप्त होता है, इसलिये 'नन्दिनी' नामसे विख्यात वह देवी अब मुझपर प्रसन्न हो॥ २३॥ सम्पूर्ण विश्वोंमें जिस देवीकी कोई तुलना नहीं है, अतः 'तुलसी' नामसे विख्यात अपनी उस प्रियाकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ॥ २४॥ वह साध्वी तुलसी श्रीकृष्णकी जीवनस्वरूपा तथा उन्हें निरन्तर प्रेम प्रदान करनेवाली है, इसलिये 'कृष्णजीवनी' नामसे प्रसिद्ध वह देवी मेरे जीवनकी रक्षा करे॥ २५॥

इस प्रकार स्तुति करके लक्ष्मीपति भगवान् श्रीहरि वहीं विराजमान हो गये। तभी उन्होंने साक्षात् तुलसीको सामने देखा। वह साध्वी उन श्रीहरिके चरणकमलोंमें अपना मस्तक झुकाये हुए थी और अपमानके कारण वह मानिनी तुलसी रो रही थी। ऐसी मानपूजित प्रियाको देखकर प्रेममूर्ति श्रीहरिने उसे अपने वक्षपर स्थान दिया॥ २६-२७॥

तत्पश्चात् सरस्वतीसे आज्ञा लेकर श्रीहरि उसे अपने भवनमें ले गये और वहाँ शीघ्र ही सरस्वतीके साथ उसकी प्रीति करवायी। श्रीहरिने उसे वर प्रदान किया—'तुम सबके लिये तथा मेरे लिये पूजनीय, सिरपर धारण करने योग्य, वन्दनीय तथा मान्य हो जाओ'॥ २८-२९॥

भगवान् विष्णुके इस वरदानसे वे देवी तुलसी परम सन्तुष्ट हो गयीं और सरस्वतीने उन्हें पकड़कर अपने पास बैठा लिया॥ ३०॥

लक्ष्मीर्गङ्गा सस्मिता च तां समाकृष्य नारद।
गृहं प्रवेशयामास विनयेन सतीं तदा॥ ३१

वृन्दा वृन्दावनी विश्वपूजिता विश्वपावनी।
पुष्पसारा नन्दनी च तुलसी कृष्णजीवनी॥ ३२

एतन्नामाष्टकञ्चैव स्तोत्रं नामार्थसंयुतम्।
यः पठेत्तां च सम्पूज्य सोऽश्वमेधफलं लभेत्॥ ३३

कार्तिक्यां पूर्णिमायां च तुलस्या जन्म मङ्गलम्।
तत्र तस्याश्च पूजा च विहिता हरिणा पुरा॥ ३४

तस्यां यः पूजयेत्तां च भक्त्या वै विश्वपावनीम्।
सर्वपापाद्विनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति॥ ३५

कार्तिके तुलसीपत्रं यो ददाति च विष्णवे।
गवामयुतदानस्य फलं प्राप्नोति निश्चितम्॥ ३६

अपुत्रो लभते पुत्रं प्रियाहीनो लभेत्प्रियाम्।
बन्धुहीनो लभेद् बन्धून् स्तोत्रश्रवणमात्रतः॥ ३७

रोगी प्रमुच्यते रोगाद् बद्धो मुच्येत बन्धनात्।
भयान्मुच्येत भीतस्तु पापान्मुच्येत पातकी॥ ३८

इत्येवं कथितं स्तोत्रं ध्यानं पूजाविधिं शृणु।
त्वमेव वेदे जानासि कण्वशाखोक्तमेव च॥ ३९

तद्वृक्षे पूजयेत्तां च भक्त्या चावाहनं विना।
तां ध्यात्वा चोपचारेण ध्यानं पातकनाशनम्॥ ४०

तुलसीं पुष्पसारां च सतीं पूतां मनोहराम्।
कृतपापेध्मदाहाय ज्वलदग्निशिखोपमाम्॥ ४१

हे नारद! उस समय लक्ष्मी और गंगाके मुखपर मुसकराहट आ गयी और उन्होंने विनम्रतापूर्वक उन साध्वी तुलसीको पकड़कर घरमें प्रवेश करवाया॥ ३१॥

वृन्दा, वृन्दावनी, विश्वपूजिता, विश्वपावनी, पुष्पसारा, नन्दिनी, तुलसी तथा कृष्णजीवनी—ये तुलसीके आठ नाम हैं। जो मनुष्य तुलसीकी विधिवत् पूजा करके नामके अर्थोंसे युक्त आठ नामोंवाले इस नामाष्टकस्तोत्रका पाठ करता है, वह अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त करता है॥ ३२-३३॥

कार्तिकपूर्णिमा तिथिको तुलसीका मंगलमय प्राकट्य हुआ था। उस समय सर्वप्रथम भगवान् श्रीहरिने उनकी पूजा सम्पन्न की थी। अतः जो मनुष्य उस दिन उन विश्वपावनी तुलसीकी भक्तिपूर्वक पूजा करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त होकर विष्णुलोक जाता है॥ ३४-३५॥

जो व्यक्ति कार्तिक महीनेमें भगवान् विष्णुको तुलसीपत्र अर्पण करता है, वह दस हजार गायोंके दानका फल निश्चितरूपसे प्राप्त करता है॥ ३६॥

इस नामाष्टकस्तोत्रके श्रवणमात्रसे पुत्रहीनको पुत्र प्राप्त हो जाता है, भार्याहीनको भार्या मिल जाती है, बन्धुविहीनको बन्धुओंकी प्राप्ति हो जाती है, रोगी रोगमुक्त हो जाता है, बन्धनमें पड़ा हुआ व्यक्ति बन्धनसे छूट जाता है, भयभीत मनुष्य निर्भय हो जाता है और पापी पापसे छूट जाता है॥ ३७-३८॥

[हे नारद!] इस प्रकार मैंने आपको तुलसीस्तोत्र बतला दिया। अब उनका ध्यान तथा पूजाविधि सुनिये। आप भी तो वेदमें कण्वशाखाके अन्तर्गत प्रतिपादित इनके ध्यानके विषयमें जानते ही हैं॥ ३९॥

तुलसीका ध्यान पापोंका नाश करनेवाला है, अतः उनका ध्यान करके बिना आवाहन किये ही तुलसीके वृक्षमें विविध पूजनोपचारोंसे पुष्पोंकी सारभूता, पवित्र, अत्यन्त मनोहर और किये गये पापरूपी ईंधनको जलानेके लिये प्रज्वलित अग्निकी शिखाके समान साध्वी तुलसीकी भक्तिपूर्वक पूजा करनी चाहिये॥ ४०-४१॥

पुष्पेषु तुलना यस्या नास्ति वेदेषु भाषितम्।
पवित्ररूपा सर्वासु तुलसी सा च कीर्तिता॥ ४२

शिरोधार्या च सर्वेषामीप्सिता विश्वपावनी।
जीवन्मुक्तां मुक्तिदां च भजे तां हरिभक्तिदाम्॥ ४३

पुष्पोंमें किसीसे भी जिनकी तुलना नहीं है, जिनका महत्त्व वेदोंमें वर्णित है, जो सभी अवस्थाओंमें सदा पवित्र बनी रहती हैं, जो तुलसी नामसे प्रसिद्ध हैं, जो भगवान्‌के लिये शिरोधार्य हैं, सबकी अभीष्ट हैं तथा जो सम्पूर्ण जगत्‌को पवित्र करनेवाली हैं; उन जीवन्मुक्त, मुक्तिदायिनी तथा श्रीहरिकी भक्ति प्रदान करनेवाली भगवती तुलसीकी मैं उपासना करता हूँ॥ ४२-४३॥

इति ध्यात्वा च सम्पूज्य स्तुत्वा च प्रणमेत् सुधीः।
उक्तं तुलस्युपाख्यानं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ ४४

[हे नारद!] विद्वान् पुरुषको चाहिये कि इस प्रकारसे देवी तुलसीका ध्यान, पूजन तथा स्तवन करके उन्हें प्रणाम करे। मैंने आपसे तुलसीके उपाख्यानका वर्णन कर दिया; अब आप पुनः क्या सुनना चाहते हैं॥ ४४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे तुलसीपूजाविधिवर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः॥ २५॥



अथ षड्विंशोऽध्यायः

सावित्रीदेवीकी पूजा-स्तुतिका विधान

नारद उवाच

तुलस्युपाख्यानमिदं श्रुतं चातिसुधोपमम्।
ततः सावित्र्युपाख्यानं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥ १
पुरा केन समुद्भूता सा श्रुता च श्रुतेः प्रसूः।
केन वा पूजिता लोके प्रथमे कैश्च वा परे॥ २

नारदजी बोले—तुलसीकी यह अमृततुल्य कथा तो मैंने सुन ली, अब आप सावित्रीकी कथा कहनेकी कृपा कीजिये। ऐसा सुना गया है कि वे सावित्री वेदोंकी जननी हैं। वे सर्वप्रथम किससे उत्पन्न हुईं, जगत्‌में सर्वप्रथम इनकी पूजा किसने की और बादमें किन लोगोंने इनकी पूजा की?॥ १-२॥

श्रीनारायण उवाच

ब्रह्मणा वेदजननी प्रथमे पूजिता मुने।
द्वितीये च वेदगणैस्तत्पश्चाद्विदुषां गणैः॥ ३
तदा चाश्वपतिर्भूपः पूजयामास भारते।
तत्पश्चात्पूजयामासुर्वर्णाश्चत्वार एव च॥ ४

श्रीनारायण बोले—हे मुने! सर्वप्रथम ब्रह्माजीने वेदमाता सावित्रीकी पूजा की, इसके बाद वेदोंने और तदनन्तर विद्वद्‌गणोंने इनका पूजन किया। तत्पश्चात् भारतवर्षमें राजा अश्वपतिने इनका पूजन किया और इसके बाद चारों वर्णके लोग इनकी पूजा करने लगे॥ ३-४॥

नारद उवाच

को वा सोऽश्वपतिर्ब्रह्मन् केन वा तेन पूजिता।
सर्वपूज्या च सा देवी प्रथमे कैश्च वा परे॥ ५

नारद बोले—हे ब्रह्मन्! वे अश्वपति कौन थे, सर्वप्रथम उन्होंने सर्वपूज्या उन देवीकी पूजा किस कामनासे की तथा बादमें किन लोगोंने उनका पूजन किया?॥ ५॥

श्रीनारायण उवाच

मद्रदेशे महाराजो बभूवाश्वपतिर्मुने।
वैरिणां बलहर्ता च मित्राणां दुःखनाशनः॥ ६

श्रीनारायण बोले—हे मुने! मद्रदेशमें अश्वपति नामक एक महान् राजा हुए। वे अपने शत्रुओंके बलका नाश करनेवाले तथा मित्रोंका दुःख दूर करनेवाले थे॥ ६॥

आसीत्तस्य महाराज्ञी महिषी धर्मचारिणी।
मालतीति समाख्याता यथा लक्ष्मीर्गदाभृतः॥ ७

सा च राज्ञी च वन्ध्या च वसिष्ठस्योपदेशतः।
चकाराराधनं भक्त्या सावित्र्याश्चैव नारद॥ ८

प्रत्यादेशं न सा प्राप्ता महिषी न ददर्श ताम्।
गृहं जगाम दुःखार्ता हृदयेन विदूयता॥ ९

राजा तां दुःखितां दृष्ट्वा बोधयित्वा नयेन वै।
सावित्र्यास्तपसे भक्त्या जगाम पुष्करं तदा॥ १०

तपश्चकार तत्रैव संयतः शतवत्सरम्।
न ददर्श च सावित्र्याः प्रत्यादेशो बभूव च॥ ११

शुश्रावाकाशवाणीं च नृपेन्द्रश्चाशरीरिणीम्।
गायत्र्या दशलक्षं च जपं त्वं कुरु नारद॥ १२

एतस्मिन्नन्तरे तत्र आजगाम पराशरः।
प्रणनाम ततस्तं च मुनिर्नृपमुवाच च॥ १३

मुनिरुवाच

सकृज्जपश्च गायत्र्याः पापं दिनभवं हरेत्।
दशवारं जपेनैव नश्येत्पापं दिवानिशम्॥ १४

शतवारं जपश्चैव पापं मासार्जितं हरेत्।
सहस्रधा जपश्चैव कल्मषं वत्सरार्जितम्॥ १५

लक्षो जन्मकृतं पापं दशलक्षोऽन्यजन्मजम्।
सर्वजन्मकृतं पापं शतलक्षाद्विनश्यति॥ १६

करोति मुक्तिं विप्राणां जपो दशगुणस्ततः।
करं सर्पफणाकारं कृत्वा तद्रन्ध्रमुद्रितम्॥ १७

आनम्रमूर्धमचलं प्रजपेत्प्राङ्मुखो द्विजः।
अनामिकामध्यदेशादधोऽवामक्रमेण च॥ १८
तर्जनीमूलपर्यन्तं जपस्यैवं क्रमः करे।

उनकी महारानी मालती नामसे विख्यात थीं। वे रानी धर्मनिष्ठ थीं। वे उनके लिये उसी प्रकार थीं, जैसे गदाधारी विष्णुके लिये लक्ष्मी॥ ७॥

हे नारद! वे रानी मालती निःसन्तान थीं। अतः उन्होंने वसिष्ठके उपदेशानुसार भगवती सावित्रीकी भक्तिपूर्वक आराधना की। किंतु रानीको देवीसे न तो कोई संकेत मिला और न उनके दर्शन ही हुए, अतः कष्टसे व्याकुल होकर दुःखित मनसे वे घर चली गयीं॥ ८-९॥

राजा अश्वपतिने उन्हें दुःखित देखकर नीतिपूर्ण वचनोंसे समझाया। इसके बाद भक्तिपूर्वक सावित्रीकी तपस्याके लिये वे पुष्करक्षेत्रमें चले गये। वहाँपर उन्होंने इन्द्रियोंको वशमें करके सौ वर्षतक तपस्या की। उन्हें सावित्रीके दर्शन तो नहीं हुए, किंतु प्रत्यादेश प्राप्त हुआ। हे नारद! उन नृपेन्द्रने यह अशरीरी आकाशवाणी सुनी—[हे राजेन्द्र!] तुम गायत्रीका दस लाख जप करो॥ १०—१२॥

इसी बीच वहाँ मुनि पराशर आ गये। राजाने उन्हें प्रणाम किया। तदनन्तर मुनि राजासे कहने लगे॥ १३॥

मुनि बोले—एक बारका गायत्री-जप दिनभरके पापका नाश कर देता है। दस बार गायत्री-जप करनेसे दिन और रातका पाप नष्ट हो जाता है। गायत्रीका सौ बारका जप महीनेभरके संचित पापको हर लेता है और एक हजार बारका जप वर्षभरके संचित पापका नाश कर देता है। गायत्रीका एक लाख जप इस जन्मके किये गये पापों तथा दस लाख जप अन्य जन्मोंमें किये गये पापोंको नष्ट कर देता है। गायत्रीके एक करोड़ जपसे सभी जन्मोंमें किये गये पाप भस्म हो जाते हैं और इससे भी दस गुना जप विप्रोंकी मुक्ति कर देता है॥ १४—१६½॥

द्विजको चाहिये कि हाथको सर्पके फणके आकारका बनाकर अँगुलियोंको परस्पर पूर्णरूपसे सटाकर छिद्ररहित कर ले फिर हाथको नाभिस्थानसे ऊपरकी ओर हृदयदेशतक लाकर कुछ नीचेकी ओर झुकाये हुए उसे स्थिर करके स्वयं पूरबकी ओर मुख करके जप करे। अनामिकाके मध्य भागसे नीचेकी ओर होते हुए प्रदक्षिण क्रमसे तर्जनीके मूलतक जाना चाहिये, करमालाके जपका यही नियम है॥ १७-१८½॥

श्वेतपङ्कजबीजानां स्फटिकानां च संस्कृताम्॥ १९

कृत्वा वै मालिकां राजन् जपेत्तीर्थे सुरालये।
संस्थाप्य मालामश्वत्थपत्रे पद्मे च संयतः॥ २०

कृत्वा गोरोचनाक्तां च गायत्र्या स्नापयेत्सुधीः।
गायत्रीशतकं तस्यां जपेच्च विधिपूर्वकम्॥ २१

अथवा पञ्चगव्येन स्नात्वा मालां सुसंस्कृताम्।
अथ गङ्गोदकेनैव स्नात्वा वातिसुसंस्कृताम्॥ २२

एवं क्रमेण राजर्षे दशलक्षं जपं कुरु।
साक्षाद्द्रक्ष्यसि सावित्रीं त्रिजन्मपातकक्षयात्॥ २३

नित्यं सन्ध्यां च हे राजन् करिष्यसि दिने दिने।
मध्याह्ने चापि सायाह्ने प्रातरेव शुचिः सदा॥ २४

सन्ध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु।
यदह्ना कुरुते कर्म न तस्य फलभाग्भवेत्॥ २५

नोपतिष्ठति यः पूर्वां नोपास्ते यस्तु पश्चिमाम्।
स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः॥ २६

यावज्जीवनपर्यन्तं त्रिःसन्ध्यां यः करोति च।
स च सूर्यसमो विप्रस्तेजसा तपसा सदा॥ २७

तत्पादपद्मरजसा सद्यःपूता वसुन्धरा।
जीवन्मुक्तः स तेजस्वी सन्ध्यापूतो हि यो द्विजः॥ २८

तीर्थानि च पवित्राणि तस्य संस्पर्शमात्रतः।
ततः पापानि यान्त्येव वैनतेयादिवोरगाः॥ २९

न गृह्णन्ति सुराः पूजां पितरः पिण्डतर्पणम्।
स्वेच्छया च द्विजातेश्च त्रिसन्ध्यारहितस्य च॥ ३०

मूलप्रकृत्यभक्तो यस्तन्मन्त्रस्याप्यनर्चकः।
तदुत्सवविहीनश्च विषहीनो यथोरगः॥ ३१

हे राजन्! श्वेतकमलके बीजों अथवा स्फटिक-मणिकी पवित्र माला बनाकर तीर्थमें या किसी देवालयमें जप करना चाहिये। पीपलके पत्र अथवा कमलपर संयमपूर्वक मालाको रखकर गोरोचनसे अनुलिप्त करे, फिर गायत्री मन्त्रका उच्चारण करके विद्वान् पुरुष मालाको स्नान कराये। तत्पश्चात् उसी मालासे विधिपूर्वक गायत्री-मन्त्रका सौ बार जप करना चाहिये अथवा पंचगव्य या गंगाजलसे स्नान कराकर शुद्ध की हुई मालासे भी जप किया जा सकता है॥ १९—२२॥

हे राजर्षे! इस क्रमसे आप दस लाख गायत्रीका जप कीजिये। इससे आपके तीन जन्मोंके पापोंका नाश हो जायगा और आप भगवती सावित्रीका साक्षात् दर्शन प्राप्त करेंगे॥ २३॥

हे राजन्! आप पवित्र होकर प्रतिदिन प्रातः, मध्याह्न एवं सायंकालकी सन्ध्या सदा कीजिये। सन्ध्या न करनेवाला व्यक्ति अपवित्र रहता है और वह समस्त कर्मोंके लिये अयोग्य हो जाता है। वह दिनमें जो भी सत्कर्म करता है, उसके फलका अधिकारी नहीं रह जाता है॥ २४-२५॥

जो ब्राह्मण प्रातः एवं सायंकालकी सन्ध्या नहीं करता, वह शूद्रके समान है और समस्त ब्राह्मणोचित कर्मोंसे बहिष्कृत कर देनेयोग्य है॥ २६॥

जो विप्र जीवनपर्यन्त सदा त्रिकालसन्ध्या करता है, वह तपस्या तथा तेजके कारण सूर्यके समान हो जाता है। उसके चरण-कमलकी धूलसे पृथ्वी शीघ्र पवित्र हो जाती है। जो द्विज सन्ध्या करनेके कारण पवित्र हो चुका है, वह तेजसे सम्पन्न तथा जीवन्मुक्त ही है। उसके स्पर्शमात्रसे सभी तीर्थ पवित्र हो जाते हैं और उसके पाससे पाप उसी प्रकार भाग जाते हैं, जैसे गरुडको देखते ही सर्प॥ २७—२९॥

जो द्विज त्रिकालसन्ध्या नहीं करता, उसके द्वारा सम्पादित पूजाको देवगण तथा पिण्ड-तर्पणको पितृगण स्वेच्छापूर्वक स्वीकार नहीं करते हैं॥ ३०॥

जो व्यक्ति मूलप्रकृतिकी भक्ति नहीं करता, उनके मन्त्रकी आराधना नहीं करता और उनका उत्सव नहीं मनाता; वह विषहीन सर्पकी तरह तेजरहित होता है॥ ३१॥

विष्णुमन्त्रविहीनश्च त्रिसन्ध्यारहितो द्विजः।
एकादशीविहीनश्च विषहीनो यथोरगः॥ ३२

हरेरनैवेद्यभोजी धावको वृषवाहकः।
शूद्रान्नभोजी यो विप्रो विषहीनो यथोरगः॥ ३३

शूद्राणां शवदाही यः स विप्रो वृषलीपतिः।
शूद्राणां सूपकारश्च विषहीनो यथोरगः॥ ३४

शूद्राणां च प्रतिग्राही शूद्रयाजी च यो द्विजः।
मसिजीवी असिजीवी विषहीनो यथोरगः॥ ३५

यः कन्याविक्रयी विप्रो यो हरेर्नामविक्रयी।
यो विप्रोऽवीरान्नभोजी ऋतुस्नातान्नभोजकः॥ ३६

भगजीवी बार्धुषिको विषहीनो यथोरगः।
यो विद्याविक्रयी विप्रो विषहीनो यथोरगः॥ ३७

सूर्योदये स्वपेद्यो हि मत्स्यभोजी च यो द्विजः।
शिवापूजादिरहितो विषहीनो यथोरगः॥ ३८

इत्युक्त्वा च मुनिश्रेष्ठः सर्वपूजाविधिक्रमम्।
तमुवाच च सावित्र्या ध्यानादिकमभीप्सितम्॥ ३९

दत्त्वा सर्वं नृपेन्द्राय ययौ च स्वाश्रमे मुने।
राजा सम्पूज्य सावित्रीं ददर्श वरमाप च॥ ४०

नारद उवाच

किं वा ध्यानं च सावित्र्याः किं वा पूजाविधानकम्।
स्तोत्रं मन्त्रं च किं दत्त्वा प्रययौ स पराशरः॥ ४१

नृपः केन विधानेन सम्पूज्य श्रुतिमातरम्।
वरं च कं वा सम्प्राप सम्पूज्य तु विधानतः॥ ४२

जो द्विज विष्णुके मन्त्रसे विहीन है, त्रिकालसन्ध्यासे रहित है और एकादशी व्रतसे वंचित है; वह विषहीन सर्पकी भाँति निस्तेज होता है॥ ३२॥

जो ब्राह्मण भगवान् श्रीहरिको अर्पण किया गया नैवेद्य प्रसादरूपमें ग्रहण नहीं करता, धोबीका काम करता है, बैलपर बोझा ढोनेका काम करता है, शूद्रोंका अन्न खाता है; वह विषहीन सर्पके समान है॥ ३३॥

जो ब्राह्मण शूद्रोंका शव जलाता है, शूद्र स्त्रीका पति बनता है और शूद्रोंके लिये भोजन तैयार करता है; वह विषहीन सर्पकी भाँति निस्तेज होता है॥ ३४॥

जो द्विज शूद्रोंसे दान लेता है, शूद्रोंका यज्ञ कराता है, मुनीमीका काम करता है और तलवार लेकर पहरेदारी करके जीविकोपार्जन करता है; वह विषहीन सर्पकी भाँति तेजशून्य होता है॥ ३५॥

जो ब्राह्मण कन्या-विक्रय करता है, भगवान्का नाम बेचता है, पति तथा पुत्रसे हीन और ऋतुस्नाता स्त्रीके यहाँ भोजन करता है, स्त्रियोंके व्यभिचारसे अपनी आजीविका चलाता है और सूदखोर होता है; वह विषहीन सर्पके समान तेजरहित होता है। जो द्विज विद्याका विक्रय करता है, वह भी विषहीन सर्पके सदृश होता है। जो ब्राह्मण सूर्योदय हो जानेके बाद सोता रहता है, भोजनमें मछली ग्रहण करता है और भगवतीकी पूजासे वंचित है; वह विषहीन सर्पके समान निस्तेज है॥ ३६—३८॥

हे मुने! ऐसा कहकर मुनिश्रेष्ठ पराशरने राजा अश्वपतिको सावित्रीकी पूजाके सम्पूर्ण विधान तथा ध्यान आदि आवश्यक प्रयोग बतला दिये। महाराज अश्वपतिको सम्पूर्ण उपदेश देकर मुनि अपने आश्रम चले गये। तत्पश्चात् राजाने भगवती सावित्रीकी विधिवत् उपासना करके उनके दर्शन प्राप्त किये तथा उन्हें अभीष्ट वर भी प्राप्त हो गया॥ ३९-४०॥

नारदजी बोले—उन मुनि पराशरने राजा अश्वपतिको सावित्रीके किस ध्यान, पूजा-विधान, स्तोत्र तथा मन्त्रका उपदेश देकर प्रस्थान किया था? साथ ही राजाने किस विधानसे वेदमाता सावित्रीकी भलीभाँति पूजा की और इस प्रकार उनकी विधिवत्

तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि सावित्र्याः परमं महत्।
रहस्यातिरहस्यं च श्रुतिसिद्धं समासतः॥ ४३

श्रीनारायण उवाच

ज्येष्ठकृष्णत्रयोदश्यां शुद्धकाले च यत्नतः।
व्रतमेव चतुर्दश्यां व्रती भक्त्या समाचरेत्॥ ४४

व्रतं चतुर्दशाब्दं च द्विसप्तफलसंयुतम्।
दत्त्वा द्विसप्तनैवेद्यं पुष्पधूपादिकं चरेत्॥ ४५

वस्त्रं यज्ञोपवीतं च भोजनं विधिपूर्वकम्।
संस्थाप्य मङ्गलघटं फलशाखासमन्वितम्॥ ४६

गणेशं च दिनेशं च वह्निं विष्णुं शिवं शिवाम्।
सम्पूज्य पूजयेदिष्टं घटे आवाहिते द्विजः॥ ४७

शृणु ध्यानं च सावित्र्याश्चोक्तं माध्यन्दिने च यत्।
स्तोत्रं पूजाविधानं च मन्त्रं च सर्वकामदम्॥ ४८

तप्तकाञ्चनवर्णाभां ज्वलन्तीं ब्रह्मतेजसा।
ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डसहस्रसम्मितप्रभाम् ॥ ४९

ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां रत्नभूषणभूषिताम्।
वह्निशुद्धांशुकाधानां भक्तानुग्रहविग्रहाम्॥ ५०

सुखदां मुक्तिदां शान्तां कान्तां च जगतां विधेः।
सर्वसम्पत्स्वरूपां च प्रदात्रीं सर्वसम्पदाम्॥ ५१

वेदाधिष्ठातृदेवीं च वेदशास्त्रस्वरूपिणीम्।
वेदबीजस्वरूपां च भजे तां वेदमातरम्॥ ५२

ध्यात्वा ध्यानेन नैवेद्यं दत्त्वा पाणिं स्वमूर्धनि।
पुनर्ध्यात्वा घटे भक्त्या देवीमावाहयेद् व्रती॥ ५३

पूजा करके उन्होंने कौन-सा वर प्राप्त किया? [हे प्रभो!] सावित्रीका वह परम महिमामय, अत्यन्त रहस्ययुक्त और वेदप्रमाणित सम्पूर्ण प्रसंग संक्षेपमें सुनना चाहता हूँ॥ ४१—४३॥

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] ज्येष्ठमासके कृष्णपक्षकी त्रयोदशीतिथिको संयमपूर्वक रहकर व्रतीको चतुर्दशीतिथिमें व्रत करके शुद्ध समयमें भक्तिपूर्वक सावित्रीकी पूजा करनी चाहिये॥ ४४॥

यह व्रत चौदह वर्षका है। इसमें चौदह फलसहित चौदह प्रकारके नैवेद्य अर्पण किये जाते हैं। पुष्प, धूप, वस्त्र तथा यज्ञोपवीत आदिसे विधिपूर्वक पूजन करके नैवद्य अर्पण करना चाहिये। एक मंगल-कलश स्थापित करके उसपर पल्लव रख दे। तत्पश्चात् गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव तथा पार्वतीकी सम्यक् पूजा करके द्विजको आवाहित कलशपर अपनी इष्टदेवी सावित्रीका ध्यान करना चाहिये॥ ४५—४७॥

माध्यन्दिनी शाखामें भगवती सावित्रीका जो ध्यान, स्तोत्र, पूजा-विधान तथा सर्वकामप्रद मन्त्र प्रतिपादित किया गया है, उसे आप सुनिये॥ ४८॥

ध्यान इस प्रकार है—'भगवती सावित्रीका वर्ण तप्त सुवर्णकी प्रभाके समान है, ये ब्रह्मतेजसे देदीप्यमान हैं, ये ग्रीष्म ऋतुके मध्याह्नकालीन हजारों सूर्योंकी सम्मिलित प्रभासे सम्पन्न हैं, इनका मुखमण्डल प्रसन्नता तथा मुसकानसे युक्त है, ये रत्नमय आभूषणोंसे अलंकृत हैं, अग्निके समान विशुद्ध वस्त्र इन्होंने धारण कर रखा है, भक्तोंपर कृपा करनेके लिये ही इन्होंने यह विग्रह धारण किया है, ये सुख प्रदान करनेवाली हैं, मुक्ति देनेवाली हैं, ये शान्त स्वभाववाली हैं, जगत्की रचना करनेवाले ब्रह्माजीकी प्रिया हैं, ये सर्वसम्पत्तिस्वरूपिणी हैं, सभी प्रकारकी सम्पदाएँ प्रदान करनेवाली हैं, वेदकी अधिष्ठात्री देवी हैं तथा समस्त वेद-शास्त्र इन्हींके स्वरूप हैं—ऐसी उन वेदबीजस्वरूपा वेदमाता सावित्रीकी मैं उपासना करता हूँ।' इस ध्यानके द्वारा देवी सावित्रीका ध्यान करके नैवेद्य अर्पण करना चाहिये, तदनन्तर हाथोंको सिरसे लगाकर पुनः ध्यान करके भक्तिपूर्वक व्रतीको कलशपर देवी सावित्रीका आवाहन करना चाहिये॥ ४९—५३॥

दत्त्वा षोडशोपचारं वेदोक्तं मन्त्रपूर्वकम्।
सम्पूज्य स्तुत्वा प्रणमेद्देवदेवीं विधानतः॥ ५४

आसनं पाद्यमर्घ्यं च स्नानीयं चानुलेपनम्।
धूपं दीपं च नैवेद्यं ताम्बूलं शीतलं जलम्॥ ५५

वसनं भूषणं माल्यं गन्धमाचमनीयकम्।
मनोहरं सुतल्पं च देयान्येतानि षोडश॥ ५६

दारुसारविकारं च हेमादिनिर्मितं च वा।
देवाधारं पुण्यदं च मया तुभ्यं निवेदितम्॥ ५७

तीर्थोदकं च पाद्यं च पुण्यदं प्रीतिदं महत्।
पूजाङ्गभूतं शुद्धं च मया तुभ्यं निवेदितम्॥ ५८

पवित्ररूपमर्घ्यं च दूर्वापुष्पदलान्वितम्।
पुण्यदं शङ्खतोयाक्तं मया तुभ्यं निवेदितम्॥ ५९

सुगन्धं गन्धतोयं च स्नेहं सौगन्धकारकम्।
मया निवेदितं भक्त्या स्नानीयं प्रतिगृह्यताम्॥ ६०

गन्धद्रव्योद्भवं पुण्यं प्रीतिदं दिव्यगन्धदम्।
मया निवेदितं भक्त्या गन्धतोयं तवाम्बिके॥ ६१

सर्वमङ्गलरूपं च सर्वं च मङ्गलप्रदम्।
पुण्यदं च सुधूपं तं गृहाण परमेश्वरि॥ ६२

सुगन्धयुक्तं सुखदं मया तुभ्यं निवेदितम्।
जगतां दर्शनार्थाय प्रदीपं दीप्तिकारकम्॥ ६३

अन्धकारध्वंसबीजं मया तुभ्यं निवेदितम्।
तुष्टिदं पुष्टिदं चैव प्रीतिदं क्षुद्विनाशनम्॥ ६४
पुण्यदं स्वादुरूपं च नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम्।

तदनन्तर वेदोक्त मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए सोलह प्रकारके पूजनोपचार अर्पण करके विधिपूर्वक महादेवी सावित्रीकी पूजा तथा स्तुति करके उन्हें प्रणाम करना चाहिये। आसन, पाद्य, अर्घ्य, स्नान, अनुलेपन, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, शीतल जल, वस्त्र, भूषण, माला, चन्दन, आचमन और मनोहर शय्या—ये ही देनेयोग्य सोलह उपचार हैं (इनके निम्न मन्त्र हैं)॥ ५४—५६॥

[**आसन—**] हे देवि! श्रेष्ठ काष्ठसे निर्मित अथवा स्वर्णनिर्मित यह देवताओंका आधारस्वरूप पुण्यप्रद आसन मैंने आपको श्रद्धापूर्वक निवेदित किया है॥ ५७॥

[**पाद्य—**] परम प्रीति उत्पन्न करनेवाला, पुण्यप्रद तथा पूजाका अंगभूत यह पवित्र तीर्थजल मेरे द्वारा आपको पाद्यरूपमें अर्पित किया गया है॥ ५८॥

[**अर्घ्य—**] दूर्वा, पुष्प, तुलसी तथा शंखजलसे समन्वित यह पवित्र तथा पुण्यदायक अर्घ्य मैंने आपको अर्पण किया है॥ ५९॥

[**स्नान—**] चन्दन मिलाकर सुगन्धित किया गया जल तथा सुगन्ध फैलानेवाला यह तैल आपको स्नानहेतु भक्तिपूर्वक निवेदित किया है, आप इसे स्वीकार करें॥ ६०॥

[**अनुलेपन—**] हे अम्बिके! सुगन्धित द्रव्योंसे निर्मित, दिव्य गन्ध प्रदान करनेवाला तथा चन्दनजलसे मिश्रित यह पवित्र तथा प्रीतिदायक अनुलेपन मैंने आपको भक्तिपूर्वक अर्पण किया है॥ ६१॥

[**धूप—**] हे परमेश्वरि! समस्त मंगल प्रदान करनेवाला, पुण्यदायक, सुगन्धयुक्त, सुखदायक तथा सर्वमंगलरूप यह उत्तम धूप मैंने आपको अर्पण किया है, आप ग्रहण करें॥ ६२½॥

[**दीप—**] अन्धकारके नाशके बीजस्वरूप, प्रकाश फैलानेवाला यह दीपक मैंने आपको जगत्‌के दर्शनार्थ अर्पित किया है॥ ६३½॥

[**नैवेद्य—**] सन्तुष्टि, पुष्टि, प्रीति तथा पुण्य प्रदान करनेवाले एवं भूख शान्त करनेवाले इस स्वादिष्ट नैवेद्यको आप स्वीकार करें॥ ६४½॥

ताम्बूलप्रवरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम्॥ ६५
तुष्टिदं पुष्टिदं चैव मया तुभ्यं निवेदितम्।
सुशीतलं वारि शीतं पिपासानाशकारणम्॥ ६६
जगतां जीवनरूपं च जीवनं प्रतिगृह्यताम्।
देहशोभास्वरूपं च सभाशोभाविवर्धनम्॥ ६७
कार्पासजं च कृमिजं वसनं प्रतिगृह्यताम्।
काञ्चनादिविनिर्माणं श्रीकरं श्रीयुतं सदा॥ ६८
सुखदं पुण्यदं रत्नभूषणं प्रतिगृह्यताम्।
नानावृक्षसमुद्भूतं नानारूपसमन्वितम्॥ ६९
फलस्वरूपं फलदं फलं च प्रतिगृह्यताम्।
सर्वमङ्गलरूपं च सर्वमङ्गलमङ्गलम्॥ ७०
नानापुष्पविनिर्माणं बहुशोभासमन्वितम्।
प्रीतिदं पुण्यदं चैव माल्यं च प्रतिगृह्यताम्॥ ७१
पुण्यदं च सुगन्धाढ्यं गन्धं च देवि गृह्यताम्।
सिन्दूरं च वरं रम्यं भालशोभाविवर्धनम्॥ ७२
भूषणानां च प्रवरं सिन्दूरं प्रतिगृह्यताम्।
विशुद्धं ग्रन्थिसंयुक्तं पुण्यसूत्रविनिर्मितम्॥ ७३
पवित्रं वेदमन्त्रेण यज्ञसूत्रं च गृह्यताम्।
द्रव्याण्येतानि मूलेन दत्त्वा स्तोत्रं पठेत्सुधीः॥ ७४
ततो विप्राय भक्त्या च व्रती दद्याच्च दक्षिणाम्।
सावित्रीति चतुर्थ्यन्तं वह्निजायान्तमेव च॥ ७५
लक्ष्मीमायाकामपूर्वं मन्त्रमष्टाक्षरं विदुः।
माध्यन्दिनोक्तं स्तोत्रं च सर्वकामफलप्रदम्॥ ७६
विप्रजीवनरूपं च निबोध कथयामि ते।

[**ताम्बूल—**] कर्पूर आदिसे सुवासित, तुष्टिदायक, पुष्टिप्रद तथा रम्य यह उत्तम ताम्बूल मैंने आपको निवेदित किया है॥ ६५½॥

[**शीतल जल—**] प्यासका शमन करनेवाले, जगत्‌के जीवन तथा प्राणरूप इस परम शीतल जलको आप स्वीकार करें॥ ६६½॥

[**वस्त्र—**] कपास तथा रेशमसे निर्मित, देहके शोभास्वरूप तथा सभाओंमें सौन्दर्यकी वृद्धि करनेवाले इस वस्त्रको आप स्वीकार करें॥ ६७½॥

[**आभूषण—**] सुवर्ण आदिसे निर्मित, प्रभायुक्त, सदा शोभा बढ़ानेवाले, सुखदायक तथा पुण्यप्रद इस रत्नमय आभूषणको आप स्वीकार करें॥ ६८½॥

[**फल—**] अनेक वृक्षोंसे उत्पन्न, विविध रूपोंवाले, फलस्वरूप तथा फल प्रदान करनेवाले इस फलको आप स्वीकार करें॥ ६९½॥

[**पुष्पमाला—**] सभी मंगलोंका मंगल करनेवाली, सर्वमंगलरूपा, अनेक प्रकारके पुष्पोंसे विनिर्मित, परम शोभासे सम्पन्न, प्रीतिदायिनी तथा पुण्यमयी इस मालाको आप स्वीकार करें॥ ७०-७१॥

[**सिन्दूर—**] हे देवि! पुण्यप्रद तथा सुगन्धपूर्ण इस गन्धको आप स्वीकार करें। ललाटकी शोभा बढ़ानेवाले, भूषणोंमें परम श्रेष्ठ तथा अत्यन्त मनोहर इस सिन्दूरको आप स्वीकार करें॥ ७२½॥

[**यज्ञोपवीत—**] पवित्र सूत्रोंसे निर्मित, विशुद्ध, ग्रन्थि (गाँठ)-से युक्त तथा वैदिक मन्त्रोंसे शुद्ध किये गये इस यज्ञोपवीतको आप स्वीकार करें॥ ७३½॥

[हे नारद!] विद्वान् पुरुष मूलमन्त्रोंका उच्चारण करते हुए इन द्रव्योंको भगवती सावित्रीके लिये अर्पण करके स्तोत्र-पाठ करे और इसके बाद व्रती ब्राह्मणको भक्तिपूर्वक दक्षिणा प्रदान करे। 'सावित्री'—इस शब्दमें चतुर्थी विभक्ति लगाकर उसके अन्तमें स्वाहा तथा उसके पूर्वमें लक्ष्मी, माया और कामबीजोंको लगानेसे '**श्रीं ह्रीं क्लीं सावित्र्यै स्वाहा**'—यह अष्टाक्षर मन्त्र कहा गया है। माध्यन्दिनीशाखामें वर्णित, सभी कामनाओंका फल प्रदान करनेवाले तथा विप्रोंके जीवनस्वरूप सावित्री-स्तोत्रको आपके सामने व्यक्त करता हूँ—इसे ध्यानपूर्वक सुनिये॥ ७४—७६½॥

कृष्णेन दत्तां सावित्रीं गोलोके ब्रह्मणे पुरा॥ ७७

नायाति सा तेन सार्धं ब्रह्मलोके च नारद।
ब्रह्मा कृष्णाज्ञया भक्त्या तुष्टाव वेदमातरम्॥ ७८

तदा सा परितुष्टा च ब्रह्माणं चकमे पतिम्।

ब्रह्मोवाच

सच्चिदानन्दरूपे त्वं मूलप्रकृतिरूपिणि॥ ७९

हिरण्यगर्भरूपे त्वं प्रसन्ना भव सुन्दरि।
तेजःस्वरूपे परमे परमानन्दरूपिणि॥ ८०

द्विजातीनां जातिरूपे प्रसन्ना भव सुन्दरि।
नित्ये नित्यप्रिये देवि नित्यानन्दस्वरूपिणि॥ ८१

सर्वमङ्गलरूपे च प्रसन्ना भव सुन्दरि।
सर्वस्वरूपे विप्राणां मन्त्रसारे परात्परे॥ ८२

सुखदे मोक्षदे देवि प्रसन्ना भव सुन्दरि।
विप्रपापेध्मदाहाय ज्वलदग्निशिखोपमे॥ ८३

ब्रह्मतेजःप्रदे देवि प्रसन्ना भव सुन्दरि।
कायेन मनसा वाचा यत्पापं कुरुते नरः॥ ८४

तत्त्वत्स्मरणमात्रेण भस्मीभूतं भविष्यति।
इत्युक्त्वा जगतां धाता तस्थौ तत्रैव संसदि॥ ८५

सावित्री ब्रह्मणा सार्धं ब्रह्मलोकं जगाम सा।
अनेन स्तवराजेन संस्तूयाश्वपतिर्नृपः॥ ८६

ददर्श तां च सावित्रीं वरं प्राप मनोगतम्।
स्तवराजमिमं पुण्यं सन्ध्यां कृत्वा च यः पठेत्।
पाठे चतुर्णां वेदानां यत्फलं लभते च तत्॥ ८७

हे नारद! प्राचीन कालकी बात है—गोलोकमें विराजमान श्रीकृष्णने सावित्रीको ब्रह्माके पास जानेकी आज्ञा दी, किंतु वे सावित्री उनके साथ ब्रह्मलोक जानेको तैयार नहीं हुईं। तब कृष्णके कहनेपर ब्रह्माजी भक्तिपूर्वक वेदमाता सावित्रीका स्तवन करने लगे। तदनन्तर उन सावित्रीने परम प्रसन्न होकर ब्रह्माको पति बनाना स्वीकार कर लिया॥ ७७-७८½ ॥

ब्रह्माजी बोले—सच्चिदानन्द विग्रहवाली, मूलप्रकृति-स्वरूपिणी तथा हिरण्यगर्भरूपवाली हे सुन्दरि! आप मुझपर प्रसन्न हों। परम तेजमय विग्रहवाली, परमानन्दस्वरूपिणी तथा द्विजातियोंके लिये जातिस्वरूपा हे सुन्दरि! आप मुझपर प्रसन्न हों। नित्या, नित्यप्रिया, नित्यानन्दस्वरूपिणी तथा सर्वमंगलमयी हे देवि! हे सुन्दरि! आप मुझपर प्रसन्न हों। ब्राह्मणोंकी सर्वस्वरूपिणी, मन्त्रोंकी सारभूता, परात्परा, सुख प्रदान करनेवाली तथा मोक्षदायिनी हे देवि! हे सुन्दरि! आप मुझपर प्रसन्न हों। विप्रोंके पापरूपी ईंधनको दग्ध करनेके लिये प्रज्वलित अग्निकी शिखाके समान तथा ब्रह्मतेज प्रदान करनेवाली हे देवि! हे सुन्दरि! आप मुझपर प्रसन्न हों। मनुष्य मन, वाणी अथवा शरीरसे जो भी पाप करता है, वह सब आपके स्मरणमात्रसे जलकर भस्म हो जायगा॥ ७९—८४½ ॥

इस प्रकार स्तुति करके जगत्‌की रचना करनेवाले ब्रह्माजी वहींपर सभा-भवनमें विराजमान हो गये। तब वे सावित्री ब्रह्माजीके साथ ब्रह्मलोकके लिये प्रस्थित हो गयीं॥ ८५½ ॥

[हे मुने!] इसी स्तोत्रराजसे राजा अश्वपतिने भगवती सावित्रीकी स्तुति करके उनका दर्शन किया और उनसे मनोभिलषित वर भी प्राप्त किया। जो मनुष्य सन्ध्या करके इस स्तोत्रराजका पाठ करता है, वह उस फलको प्राप्त कर लेता है, जो चारों वेदोंका पाठ करनेसे मिलता है॥ ८६-८७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे सावित्रीपूजाविधिकथनं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥



अथ सप्तविंशोऽध्यायः

भगवती सावित्रीकी उपासनासे राजा अश्वपतिको सावित्री नामक कन्याकी प्राप्ति, सत्यवान्‌के साथ सावित्रीका विवाह, सत्यवान्‌की मृत्यु, सावित्री और यमराजका संवाद

श्रीनारायण उवाच

स्तुत्वानेन सोऽश्वपतिः सम्पूज्य विधिपूर्वकम्।
ददर्श तत्र तां देवीं सहस्रार्कसमप्रभाम्॥ १

उवाच सा च राजानं प्रसन्ना सस्मिता सती।
यथा माता स्वपुत्रं च द्योतयन्ती दिशस्त्विषा॥ २

सावित्र्युवाच

जानाम्यहं महाराज यत्ते मनसि वाञ्छितम्।
वाञ्छितं तव पत्न्याश्च सर्वं दास्यामि निश्चितम्॥ ३

साध्वी कन्याभिलाषं च करोति तव कामिनी।
त्वं प्रार्थयसि पुत्रं च भविष्यति क्रमेण च॥ ४

इत्युक्त्वा सा तदा देवी ब्रह्मलोकं जगाम ह।
राजा जगाम स्वगृहं तत्कन्यादौ बभूव ह॥ ५

आराधनाच्च सावित्र्या बभूव कमला परा।
सावित्रीति च तन्नाम चकाराश्वपतिर्नृपः॥ ६

कालेन सा वर्धमाना बभूव च दिने दिने।
रूपयौवनसम्पन्ना शुक्ले चन्द्रकला यथा॥ ७

सा वरं वरयामास द्युमत्सेनात्मजं तदा।
सत्यवन्तं सत्यशीलं नानागुणसमन्वितम्॥ ८

राजा तस्मै ददौ तां च रत्नभूषणभूषिताम्।
सोऽपि सार्धं कौतुकेन तां गृहीत्वा गृहं ययौ॥ ९

श्रीनारायण बोले—हे नारद! राजा अश्वपतिने विधिपूर्वक भगवती सावित्रीकी पूजा करके इस स्तोत्रसे उनकी स्तुति करनेके अनन्तर उसी स्थानपर हजारों सूर्योंके समान तेजसे सम्पन्न उन देवीके दर्शन किये॥ १॥

अपने प्रभामण्डलसे दिशाओंको आलोकित करती हुई प्रसन्नवदना भगवतीने मुसकराते हुए इस प्रकार राजाको सम्बोधित किया, जैसे माता अपने पुत्रको कहती है॥ २॥

सावित्री बोलीं—हे महाराज! मैं जानती हूँ कि आपके मनमें क्या कामना है और आपकी पत्नी क्या चाहती है, मैं निश्चितरूपसे वह सब प्रदान करूँगी॥ ३॥

आपकी साध्वी पत्नी कन्याकी कामना करती है और आप पुत्रकी इच्छा रखते हैं, ये दोनों ही अभिलाषाएँ क्रमसे पूर्ण होंगी॥ ४॥

ऐसा कहकर वे भगवती सावित्री ब्रह्मलोक चली गयीं और राजा अश्वपति अपने घर लौट गये। उन्हें समयपर पहले कन्या उत्पन्न हुई। भगवती सावित्रीकी आराधनाके प्रभावसे श्रेष्ठ देवी कमला ही पुत्रीरूपमें उत्पन्न हुई थीं। राजा अश्वपतिने उस कन्याका नाम 'सावित्री' रखा॥ ५-६॥

वह कन्या शुक्लपक्षके चन्द्रमाके समान दिनोंदिन बढ़ने लगी और यथासमय रूप तथा यौवनसे सम्पन्न हो गयी॥ ७॥

उसने द्युमत्सेनके सत्यनिष्ठ तथा अनेक गुणोंसे युक्त पुत्र सत्यवान्‌का पतिरूपमें वरण किया। तब राजाने रत्नमय भूषणोंसे अलंकृत उस कन्याको उन्हें समर्पित कर दिया। सत्यवान् भी बड़े हर्षके साथ उस कन्याको लेकर अपने घर चले गये॥ ८-९॥

स च संवत्सरेऽतीते सत्यवान् सत्यविक्रमः।
जगाम फलकाष्ठार्थं प्रहर्षं पितुराज्ञया॥ १०

जगाम साध्वी तत्पश्चात्सावित्री दैवयोगतः।
निपत्य वृक्षाद्दैवेन प्राणांस्तत्याज सत्यवान्॥ ११

यमस्तं पुरुषं दृष्ट्वा बद्ध्वाङ्गुष्ठसमं मुने।
गृहीत्वा गमनं चक्रे तत्पश्चात्प्रययौ सती॥ १२

पश्चात्तां सुदतीं दृष्ट्वा यमः संयमनीपतिः।
उवाच मधुरं साध्वीं साधूनां प्रवरो महान्॥ १३

धर्मराज उवाच

अहो क्व यासि सावित्रि गृहीत्वा मानुषीं तनुम्।
यदि यास्यसि कान्तेन सार्धं देहं तदा त्यज॥ १४

गन्तुं मर्त्यो न शक्नोति गृहीत्वा पाञ्चभौतिकम्।
देहं च मम लोकं च नश्वरं नश्वरः सदा॥ १५

भर्तुस्ते पूर्णकालो वै बभूव भारते सति।
स्वकर्मफलभोगार्थं सत्यवान् याति मद्गृहम्॥ १६

कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणैव प्रलीयते।
सुखं दुःखं भयं शोकः कर्मणैव प्रणीयते॥ १७

कर्मणेन्द्रो भवेज्जीवो ब्रह्मपुत्रः स्वकर्मणा।
स्वकर्मणा हरेर्दासो जन्मादिरहितो भवेत्॥ १८

स्वकर्मणा सर्वसिद्धिममरत्वं लभेद् ध्रुवम्।
लभेत्स्वकर्मणा विष्णोः सालोक्यादिचतुष्टयम्॥ १९

सुरत्वं च मनुत्वं च राजेन्द्रत्वं लभेन्नरः।
कर्मणा च शिवत्वं च गणेशत्वं तथैव च॥ २०

कर्मणा च मुनीन्द्रत्वं तपस्वित्वं स्वकर्मणा।
स्वकर्मणा क्षत्रियत्वं वैश्यत्वं च स्वकर्मणा॥ २१

कर्मणैव च म्लेच्छत्वं लभते नात्र संशयः।
स्वकर्मणा जङ्गमत्वं शैलत्वं च स्वकर्मणा॥ २२

एक वर्ष बीतनेके पश्चात् वे सत्यपराक्रमी सत्यवान् अपने पिताकी आज्ञाके अनुसार हर्षपूर्वक फल तथा लकड़ी लानेके लिये वनमें गये॥ १०॥

साध्वी सावित्री भी उनके पीछे-पीछे गयी। दैवयोगसे सत्यवान् वृक्षसे गिर पड़े और उनके प्राण निकल गये॥ ११॥

हे मुने! सत्यवान्को मृत देखकर जब यमराजने उनके अंगुष्ठ-प्रमाण सूक्ष्म शरीरको साथ लेकर प्रस्थान किया, तब साध्वी सावित्री भी उनके पीछे जाने लगी॥ १२॥

संयमनीपुरीके स्वामी और साधुओंमें परम श्रेष्ठ धर्मराज सुन्दर दाँतोंवाली उस सावित्रीको अपने पीछे-पीछे आते देखकर मधुर वाणीमें उससे कहने लगे॥ १३॥

धर्मराज बोले—हे सावित्रि! तुम यह मानव-शरीर धारण किये कहाँ जा रही हो? यदि तुम अपने पतिके साथ जानेकी इच्छा रखती हो, तो पहले इस शरीरका त्याग करो॥ १४॥

विनाशशील मनुष्य अपने इस नश्वर तथा पांच-भौतिक शरीरको लेकर मेरे लोक कभी नहीं जा सकता है॥ १५॥

हे साध्वि! भारतवर्षमें आये हुए तुम्हारे पतिकी आयु अब पूर्ण हो चुकी है। अपने कर्मोंका फल भोगनेके लिये अब यह सत्यवान् मेरे लोकमें जा रहा है॥ १६॥

प्राणी कर्मके अनुसार ही जन्म प्राप्त करता है और कर्मानुसार ही मृत्युको भी प्राप्त होता है। सुख-दुःख, भय और शोक भी कर्मसे ही मिलते रहते हैं। जीव अपने कर्मके प्रभावसे इन्द्र हो सकता है, वह अपने कर्मसे ब्रह्मपुत्र बन सकता है और अपने कर्मके द्वारा वह हरिका दास बनकर जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त हो जाता है। मनुष्य अपने कर्मके प्रभावसे सम्पूर्ण सिद्धियाँ, अमरत्व और भगवान् विष्णुके सालोक्य आदि चार प्रकारके मोक्षपद निश्चितरूपसे प्राप्त कर सकता है॥ १७—१९॥

मनुष्यको अपने कर्मके द्वारा देवता, मनु, राजेन्द्र, शिव तथा गणेशतकका पद सुलभ हो जाता है। उसी प्रकार अपने कर्मके प्रभावसे ही मनुष्य

कर्मणा राक्षसत्वं च किन्नरत्वं स्वकर्मणा।
कर्मणैवाधिपत्यं च वृक्षत्वं च स्वकर्मणा॥ २३
कर्मणैव पशुत्वं च वनजीवी स्वकर्मणा।
कर्मणा क्षुद्रजन्तुत्वं कृमित्वं च स्वकर्मणा॥ २४
दैतेयत्वं दानवत्वमसुरत्वं स्वकर्मणा।
इत्येतदुक्त्वा सावित्रीं विरराम स वै यमः॥ २५

श्रेष्ठ मुनि, तपस्वी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा म्लेच्छ बन जाता है; इसमें कोई सन्देह नहीं है। अपने कर्मानुसार ही प्राणीको जंगम, पर्वत, राक्षस, किन्नर, अधिपति, वृक्ष, पशु, वनके प्राणी, अत्यन्त सूक्ष्म जन्तु, कीट, दैत्य, दानव तथा असुर आदि योनियाँ प्राप्त होती हैं। सावित्रीसे ऐसा कहकर वे यमराज चुप हो गये॥ २०—२५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे सावित्र्युपाख्याने यमसावित्रीसंवादवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः॥ २७॥



अथाष्टाविंशोऽध्यायः

सावित्री-यमराज-संवाद

श्रीनारायण उवाच

यमस्य वचनं श्रुत्वा सावित्री च पतिव्रता।
तुष्टाव परया भक्त्या तमुवाच मनस्विनी॥ १

श्रीनारायण बोले—[हे मुने!] यमराजकी बात सुनकर पतिव्रता तथा दृढ़ निश्चयवाली सावित्रीने परम भक्तिके साथ उनकी स्तुति की और वह उनसे कहने लगी॥ १॥

सावित्र्युवाच

किं कर्म तद्भवेत्केन को वा तद्धेतुरेव च।
को वा देही च देहः कः को वात्र कर्मकारकः॥ २

किं वा ज्ञानं च बुद्धिः का को वा प्राणः शरीरिणाम्।
कानीन्द्रियाणि किं तेषां लक्षणं देवताश्च काः॥ ३

भोक्ता भोजयिता को वा को वा भोगश्च निष्कृतिः।
को जीवः परमात्मा कस्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥ ४

सावित्री बोली—कर्म क्या है, वह किससे होता है और उसका हेतु कौन है? देही कौन है, देह कौन है और इस लोकमें प्राणियोंसे कौन कर्म कराता है? ज्ञान क्या है, बुद्धि क्या है और शरीरधारियोंका प्राण क्या है? इन्द्रियाँ क्या हैं तथा उनके कौन-कौन-से लक्षण हैं और देवता कौन हैं, भोग करनेवाला कौन है, भोग करानेवाला कौन है, भोग क्या है, निष्कृति क्या है, जीव कौन है तथा परमात्मा कौन हैं?—यह सब आप मुझे कृपा करके बताइये॥ २—४॥

धर्म उवाच

वेदप्रणिहितो धर्मः कर्म यन्मङ्गलं परम्।
अवैदिकं तु यत्कर्म तदेवाशुभमेव च॥ ५

धर्म बोले—वेदमें जो भी प्रतिपादित है, वह धर्म है, और वही कर्म परम मंगलकारी कर्म है। इसके विपरीत जो कर्म अवैदिक होता है, वह निश्चितरूपसे अशुभ होता है॥ ५॥

अहैतुकी देवसेवा संकल्परहिता सती।
कर्मनिर्मूलरूपा च सा एव परभक्तिदा॥ ६

देवताओंकी संकल्परहित तथा अहैतुकी सेवा कर्म-निर्मूलरूपा कही जाती है। यही सेवा पराभक्ति प्रदान करनेवाली होती है॥ ६॥

को वा कर्मफलं भुङ्क्ते को वा निर्लिप्त एव च।
ब्रह्मभक्तो यो नरश्च स च मुक्तः श्रुतः श्रुतौ॥ ७

जन्ममृत्युजराव्याधिशोकभीतिविवर्जितः।
भक्तिश्च द्विविधा साध्वि श्रुत्युक्ता सर्वसम्मता॥ ८

निर्वाणपददात्री च हरिरूपप्रदा नृणाम्।
हरिरूपस्वरूपां च भक्तिं वाञ्छन्ति वैष्णवाः॥ ९

अन्ये निर्वाणमिच्छन्ति योगिनो ब्रह्मवित्तमाः।
कर्मणो बीजरूपश्च सततं तत्फलप्रदः॥ १०

कर्मरूपश्च भगवान्परात्मा प्रकृतिः परा।
सोऽपि तद्धेतुरूपश्च देहो नश्वर एव च॥ ११

पृथिवी वायुराकाशो जलं तेजस्तथैव च।
एतानि सूत्ररूपाणि सृष्टिरूपविधौ सतः॥ १२

कर्मकर्ता च देही च आत्मा भोजयिता सदा।
भोगो विभवभेदश्च निष्कृतिर्मुक्तिरेव च॥ १३

सदसद्भेदबीजं च ज्ञानं नानाविधं भवेत्।
विषयाणां विभागानां भेदि बीजं च कीर्तितम्॥ १४

बुद्धिर्विवेचना सा च ज्ञानबीजं श्रुतौ श्रुतम्।
वायुभेदाश्च प्राणाश्च बलरूपाश्च देहिनाम्॥ १५

इन्द्रियाणां च प्रवरमीश्वरांशमनूहकम्।
प्रेरकं कर्मणां चैव दुर्निवार्यं च देहिनाम्॥ १६
अनिरूप्यमदृश्यं च ज्ञानभेदो मनः स्मृतम्।

कर्मफलका भोक्ता कौन है और कौन निर्लिप्त है? इसके उत्तरमें श्रुतिका वचन है कि जो मनुष्य ब्रह्मकी भक्ति करता है, वही मुक्त है और वह जन्म-मृत्यु, जरा, व्याधि, शोक तथा भय—इन सबसे रहित हो जाता है॥ ७½ ॥

हे साध्वि! श्रुतिमें दो प्रकारकी सर्वमान्य भक्ति बतायी गयी है। पहली भक्ति निर्वाण पद प्रदान करती है और दूसरे प्रकारकी भक्ति मनुष्योंको साक्षात् श्रीहरिका रूप प्रदान करती है। वैष्णवजन श्रीहरिका सारूप्य प्रदान करनेवाली भक्तिकी कामना करते हैं और अन्य ब्रह्मवेत्ता योगी निर्वाणपद देनेवाली भक्ति चाहते हैं॥ ८-९½ ॥

कर्मका जो बीजरूप है, वह उसका सदा फल प्रदान करनेवाला है। कर्म परमात्मा भगवान् श्रीहरि तथा परा प्रकृतिका ही रूप है। वे परमात्मा ही कर्मके कारणरूप हैं, यह शरीर तो सदासे नश्वर है॥ १०-११ ॥

पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—ये सूत्ररूप पंच महाभूत हैं, जो परमात्माके सृष्टिप्रकरणमें प्रयुक्त होते हैं॥ १२ ॥

कर्म करनेवाला जीव देही है और वही अन्तर्यामी रूपसे भोजयिता भी है। सुख और दुःखके साक्षात् स्वरूप वैभवको ही भोग कहते हैं और इससे छूटनेको ही 'निष्कृति' (मोक्ष) कहा गया है॥ १३ ॥

सत् तथा असत्में भेद करनेका जो प्रधान बीजरूप हेतु है, वही ज्ञान है और वह ज्ञान अनेक भेदोंवाला होता है। वह ज्ञान घट-पट आदि विषयोंके भेदका कारण कहा गया है॥ १४ ॥

विवेचनमयी शक्ति ही बुद्धि है। वह श्रुतिमें ज्ञानबीज नामसे विख्यात है। वायुके विभिन्न रूप प्राण हैं। ये देहधारियोंके लिये बलस्वरूप हैं॥ १५ ॥

जो इन्द्रियोंमें प्रमुख, ईश्वरका अंशरूप, अतर्क्य, कर्मोंका प्रेरक, देहधारियोंके लिये दुर्निवार्य, अनिरूप्य, अदृश्य तथा बुद्धिका भेदक है; उसीको मन कहा गया है॥ १६½ ॥

लोचनं श्रवणं घ्राणं त्वक्च रसनमिन्द्रियम्॥ १७
अङ्गिनामङ्गरूपं च प्रेरकं सर्वकर्मणाम्।
रिपुरूपं मित्ररूपं सुखरूपं च दुःखदम्॥ १८
सूर्यो वायुश्च पृथिवी ब्रह्माद्या देवताः स्मृताः।
प्राणदेहादिभृद्यो हि स जीवः परिकीर्तितः॥ १९
परमं व्यापकं ब्रह्म निर्गुणः प्रकृतेः परः।
कारणं कारणानां च परमात्मा स उच्यते॥ २०
इत्येवं कथितं सर्वं त्वया पृष्टं यथागमम्।
ज्ञानिनां ज्ञानरूपं च गच्छ वत्से यथासुखम्॥ २१

सावित्र्युवाच

त्यक्त्वा क्व यामि कान्तं वा त्वां वा ज्ञानार्णवं ध्रुवम्।
यद्यत्करोमि प्रश्नं च तद्भवान्वक्तुमर्हति॥ २२
कां कां योनिं याति जीवः कर्मणा केन वा पुनः।
केन वा कर्मणा स्वर्गं केन वा नरकं पितः॥ २३
केन वा कर्मणा मुक्तिः केन भक्तिर्भवेद् गुरौ।
केन वा कर्मणा योगी रोगी वा केन कर्मणा॥ २४
केन वा दीर्घजीवी च केनाल्पायुश्च कर्मणा।
केन वा कर्मणा दुःखी सुखी वा केन कर्मणा॥ २५
अङ्गहीनश्च काणश्च बधिरः केन कर्मणा।
अन्धो वा पङ्गुरपि वा प्रमत्तः केन कर्मणा॥ २६
क्षिप्तोऽतिलुब्धकश्चौरः केन वा कर्मणा भवेत्।
केन सिद्धिमवाप्नोति सालोक्यादिचतुष्टयम्॥ २७
केन वा ब्राह्मणत्वं च तपस्वित्वं च केन वा।
स्वर्गभोगादिकं केन वैकुण्ठं केन कर्मणा॥ २८
गोलोकं केन वा ब्रह्मन् सर्वोत्कृष्टं निरामयम्।
नरको वा कतिविधः किंसंख्यो नाम किं च वा॥ २९
को वा कं नरकं याति कियन्तं तेषु तिष्ठति।
पापिनां कर्मणा केन को वा व्याधिः प्रजायते।
यद्यत्प्रियं मया पृष्टं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥ ३०

आँख, कान, नाक, त्वचा और जिह्वा—ये कर्मेन्द्रियाँ प्राणियोंके अंगरूप, सभी कर्मोंकी प्रेरक, शत्रुरूप, मित्ररूप, [सत्कार्यमें प्रवृत्त होनेपर] सुख देनेवाली तथा [बुरे कार्यमें प्रवृत्त होनेपर] दुःख देनेवाली हैं। सूर्य, वायु, पृथ्वी, ब्रह्मा आदि इन्द्रियोंके देवता कहे गये हैं॥ १७-१८½ ॥

जो प्राण तथा देहको धारण करता है, उसे जीव कहा गया है। प्रकृतिसे परे तथा कारणका भी कारण जो सर्वव्यापी निर्गुण ब्रह्म है, वही परमात्मा कहा जाता है। [हे सावित्रि!] इस प्रकार तुमने जो कुछ पूछा था, वह सब मैंने तुम्हें शास्त्रानुसार बतला दिया। यह प्रसंग ज्ञानियोंके लिये ज्ञानरूप है। हे वत्से! अब तुम सुखपूर्वक चली जाओ॥ १९—२१ ॥

सावित्री बोली—[हे प्रभो!] मैं अपने इन प्राणनाथ तथा ज्ञानके सागरस्वरूप आपको छोड़कर कहाँ जाऊँ? इस समय मैं आपसे जो-जो प्रश्न कर रही हूँ, उन्हें आप मुझे बताइये॥ २२ ॥

हे पितः! किस-किस कर्मके प्रभावसे जीव किस-किस योनिमें जाता है, वह किस कर्मसे स्वर्ग तथा किस कर्मसे नरकमें जाता है?॥ २३ ॥

हे ब्रह्मन्! किस कर्मसे मुक्ति होती है तथा किस कर्मसे गुरुके प्रति भक्ति होती है? उसी तरह किन-किन कर्मोंके प्रभावसे प्राणी योगी, रोगी, दीर्घजीवी, अल्पायु, दुःखी, सुखी, अंगहीन, काना, बहरा, अन्धा, पंगु, उन्मादी, पागल, अत्यन्त लोभी अथवा चोर हो जाता है? किस कर्मके द्वारा मनुष्य सिद्धि, सालोक्य आदि चारों प्रकारकी मुक्तियाँ, ब्राह्मणत्व, तपस्विता, स्वर्गके भोग आदि, वैकुण्ठ और सर्वोत्तम तथा विशुद्ध गोलोक प्राप्त करता है?॥ २४—२८½ ॥

कितने प्रकारके नरक हैं, उनकी संख्या कितनी है, उनके नाम क्या-क्या हैं? कौन प्राणी किस नरकमें जाता है और वहाँ कितने समयतक निवास करता है? किस कर्मके प्रभावसे पापी मनुष्योंको कौन-सी व्याधि होती है? [हे प्रभो!] मैंने अपनी जो-जो प्रिय बात आपसे पूछी है, उसे कृपा करके मुझे बताइये॥ २९-३० ॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे नारायणनारदसंवादे सावित्र्युपाख्याने यमसावित्रीसंवादवर्णनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥



अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः

सावित्री-धर्मराजके प्रश्नोत्तर और धर्मराजद्वारा सावित्रीको वरदान

श्रीनारायण उवाच

सावित्रीवचनं श्रुत्वा जगाम विस्मयं यमः।
प्रहस्य वक्तुमारेभे कर्मपाकं तु जीविनाम्॥ १

धर्म उवाच

कन्या द्वादशवर्षीया वत्से त्वं वयसाधुना।
ज्ञानं ते पूर्वविदुषां ज्ञानिनां योगिनां परम्॥ २

सावित्रीवरदानेन त्वं सावित्री कला सती।
प्राप्ता पुरा भूभृता च तपसा तत्समा सुते॥ ३

यथा श्रीः श्रीपतेः क्रोडे भवानी च भवोरसि।
यथादितिः कश्यपे च यथाहल्या च गौतमे॥ ४

यथा शची महेन्द्रे च यथा चन्द्रे च रोहिणी।
यथा रतिः कामदेवे यथा स्वाहा हुताशने॥ ५

यथा स्वधा च पितृषु यथा सन्ध्या दिवाकरे।
वरुणानी च वरुणे यज्ञे च दक्षिणा यथा॥ ६

यथा वराहे पृथिवी देवसेना च कार्तिके।
सौभाग्या सुप्रिया त्वं च तथा सत्यवतः प्रिये॥ ७

अयं तुभ्यं वरो दत्तोऽप्यपरं च यथेप्सितम्।
वृणु देवि महाभागे ददामि सकलेप्सितम्॥ ८

सावित्र्युवाच

सत्यवत औरसानां पुत्राणां शतकं मम।
भविष्यति महाभाग वरमेतन्मदीप्सितम्॥ ९

मत्पितुः पुत्रशतकं श्वशुरस्य च चक्षुषी।
राज्यलाभो भवत्वेवं वरमेतन्मदीप्सितम्॥ १०

अन्ते सत्यवता सार्धं यास्यामि हरिमन्दिरम्।
समतीते लक्षवर्षे देहीदं मे जगत्प्रभो॥ ११

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] सावित्रीकी बात सुनकर यमराज आश्चर्यमें पड़ गये और हँसकर उन्होंने प्राणियोंके कर्मफलके विषयमें बताना आरम्भ किया॥ १॥

धर्म बोले—हे वत्से! इस समय तुम्हारी अवस्था तो मात्र बारह वर्षकी है, किंतु तुम्हारा ज्ञान बड़े-बड़े विद्वानों, ज्ञानियों और योगियोंसे भी बढ़कर है॥ २॥

हे पुत्रि! तुम भगवती सावित्रीके वरदानसे उन्हींकी कलासे जन्म लेकर सती सावित्री नामसे विख्यात हो। प्राचीन कालमें राजा अश्वपतिने अपनी की गयी तपस्याके द्वारा उन्हीं सावित्रीके सदृश तुम्हें कन्यारूपमें प्राप्त किया है॥ ३॥

जिस प्रकार लक्ष्मी विष्णुकी गोदमें तथा भवानी भगवान् शिवके वक्षःस्थलपर विराजमान रहती हैं एवं जैसे अदिति कश्यपके, अहल्या गौतमके, शची महेन्द्रके, रोहिणी चन्द्रमाके, रति कामदेवके, स्वाहा अग्निके, स्वधा पितरोंके, सन्ध्या सूर्यके, वरुणानी वरुणके, दक्षिणा यज्ञके, पृथ्वी वाराहके और देवसेना कार्तिकेयके पास उनकी सौभाग्यवती प्रिया बनकर सुशोभित होती हैं, उसी प्रकार हे प्रिये! तुम भी सत्यवान्‌की सौभाग्यवती प्रियाके रूपमें सुशोभित होओ। यह वर मैंने तुम्हें प्रदान कर दिया। हे देवि! हे महाभागे! इसके अतिरिक्त और भी जो दूसरा वर तुम्हें अभीष्ट हो, उसे माँग लो; मैं तुम्हें सभी अभिलषित वर प्रदान करूँगा॥ ४—८॥

सावित्री बोली—हे महाभाग! सत्यवान्‌से मुझे सौ औरस पुत्र प्राप्त हों, यह मेरा अभीष्ट वर है। मेरे पिताके भी सौ पुत्र हों, मेरे श्वसुरको नेत्र-ज्योति मिल जाय और उन्हें राज्य भी प्राप्त हो जाय—यह मेरा अभिलषित वर है। हे जगत्प्रभो! अन्तमें एक लाख वर्ष बीतनेके पश्चात् मैं सत्यवान्‌के साथ भगवान् श्रीहरिके धाम चली जाऊँ—यह वर भी आप मुझे दीजिये॥ ९—११॥

जीवकर्मविपाकं च श्रोतुं कौतूहलं मम।
विश्वनिस्तारबीजं च तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥ १२

जीवके कर्मोंका फल तथा संसारसे उसके उद्धारका उपाय सुननेके लिये मुझे बहुत कौतूहल हो रहा है, अतः वह सब मुझे बतानेकी आप कृपा कीजिये॥ १२॥

धर्मराज उवाच

भविष्यति महासाध्वि सर्वं मानसिकं तव।
जीवकर्मविपाकं च कथयामि निशामय॥ १३

धर्मराज बोले—हे महासाध्वि! तुम्हारे सभी मनोरथ पूर्ण होंगे। अब मैं जीवोंके कर्मफलके विषयमें बता रहा हूँ, तुम ध्यानपूर्वक सुनो॥ १३॥

शुभानामशुभानां च कर्मणां जन्म भारते।
पुण्यक्षेत्रे च नान्यत्र सर्वं च भुञ्जते जनाः॥ १४

सुरा दैत्या दानवाश्च गन्धर्वा राक्षसादयः।
नराश्च कर्मजनका न सर्वे जीविनः सति॥ १५

विशिष्टजीविनः कर्म भुञ्जते सर्वयोनिषु।
शुभाशुभं च सर्वत्र स्वर्गेषु नरकेषु च॥ १६

पुण्यभूमि भारतवर्षमें ही शुभ और अशुभ कर्मोंकी उत्पत्ति होती है, अन्यत्र नहीं। दूसरी जगह लोग केवल कर्मोंका फल भोगते हैं। हे पतिव्रते! देवता, दैत्य, दानव, गन्धर्व और राक्षसादि ये ही शुभाशुभ कर्म करनेवाले हैं, दूसरे पशु आदि प्राणी नहीं। देवादि विशिष्ट प्राणी ही सभी योनियोंका फल भोगते हैं, सभी योनियोंमें भटकते हैं और शुभाशुभ कर्मोंका फल स्वर्ग तथा नरकमें भोगते हैं॥ १४—१६॥

विशेषतो जीविनश्च भ्रमन्ते सर्वयोनिषु।
शुभाशुभं भुञ्जते च कर्म पूर्वार्जितं परम्॥ १७

शुभेन कर्मणा याति स्वर्लोकादिकमेव च।
कर्मणा चाशुभेनैव भ्रमन्ति नरकेषु च॥ १८

वे विशिष्ट प्राणी समस्त योनियोंमें भ्रमण करते रहते हैं और पूर्वजन्ममें अर्जित किये गये शुभ तथा अशुभ कर्मोंका फल भोगते रहते हैं। शुभ कर्मके प्रभावसे प्राणी स्वर्गादि लोकोंमें जाते हैं तथा अशुभ कर्मके कारण वे विभिन्न नरकोंमें पड़ते हैं॥ १७-१८॥

कर्मनिर्मूलने भक्तिः सा चोक्ता द्विविधा सति।
निर्वाणरूपा भक्तिश्च ब्रह्मणः प्रकृतेरिह॥ १९

कर्मके निःशेष हो जानेपर भक्ति उत्पन्न होती है। हे साध्वि! वह भक्ति दो प्रकारकी बतलायी गयी है। एक निर्वाणस्वरूपा भक्ति है और दूसरी ब्रह्मरूपिणी भगवती प्रकृतिके लिये की जानेवाली भक्ति है॥ १९॥

रोगी कुकर्मणा जीवश्चारोगी शुभकर्मणा।
दीर्घजीवी च क्षीणायुः सुखी दुःखी च कर्मणा॥ २०

अन्धादयश्चाङ्गहीनाः कर्मणा कुत्सितेन च।
सिद्ध्यादिकमवाप्नोति सर्वोत्कृष्टेन कर्मणा॥ २१

प्राणी पूर्वजन्ममें किये गये कुकर्मके कारण रोगी और शुभ कर्मके कारण रोगरहित होता है। इस प्रकार अपने कर्मसे ही जीव दीर्घजीवी, अल्प आयुवाला, सुखी तथा दुःखी होता है। प्राणी अपने कुत्सित कर्मके प्रभावसे नेत्रहीन तथा अंगहीन होता है। सर्वोत्कृष्ट कर्मके द्वारा प्राणी अपने दूसरे जन्ममें सिद्धि आदि भी प्राप्त कर लेता है॥ २०-२१॥

सामान्यं कथितं देवि विशेषं शृणु सुन्दरि।
सुदुर्लभं सुगोप्यं च पुराणेषु स्मृतिष्वपि॥ २२

हे देवि! साधारण बात कह चुका, अब विशेष बात सुनो। हे सुन्दरि! यह अत्यन्त दुर्लभ विषय पुराणों और स्मृतियोंमें वर्णित है। इसे पूर्णरूपसे गुप्त रखना चाहिये॥ २२॥

दुर्लभा मानुषी जातिः सर्वजातिषु भारते।
सर्वेभ्यो ब्राह्मणः श्रेष्ठः प्रशस्तः सर्वकर्मसु॥ २३

ब्रह्मनिष्ठो द्विजश्चैव गरीयान् भारते सति।
निष्कामश्च सकामश्च ब्राह्मणो द्विविधः सति॥ २४

सकामाच्च प्रधानश्च निष्कामो भक्त एव च।
कर्मभोगी सकामश्च निष्कामो निरुपद्रवः॥ २५

स याति देहं त्यक्त्वा च पदं यत्तन्निरामयम्।
पुनरागमनं नास्ति तेषां निष्कामिनां सति॥ २६

सेवन्ते द्विभुजं कृष्णं परमात्मानमीश्वरम्।
गोलोकं प्रति ते भक्ता दिव्यरूपविधारिणः॥ २७

सकामिनो वैष्णवाश्च गत्वा वैकुण्ठमेव च।
भारतं पुनरायान्ति तेषां जन्म द्विजातिषु॥ २८

काले गते च निष्कामा भवन्त्येव क्रमेण च।
भक्तिं च निर्मलां तेभ्यो दास्यामि निश्चितं पुनः॥ २९

ब्राह्मणा वैष्णवाश्चैव सकामाः सर्वजन्मसु।
न तेषां निर्मला बुद्धिर्विष्णुभक्तिविवर्जिताः॥ ३०

तीर्थाश्रिता द्विजा ये च तपस्यानिरताः सति।
ते यान्ति ब्रह्मलोकं च पुनरायान्ति भारते॥ ३१

स्वधर्मनिरता ये च तीर्थान्यत्रनिवासिनः।
व्रजन्ति ते सत्यलोकं पुनरायान्ति भारते॥ ३२

स्वधर्मनिरता विप्राः सूर्यभक्ताश्च भारते।
व्रजन्ति ते सूर्यलोकं पुनरायान्ति भारते॥ ३३

मूलप्रकृतिभक्ता ये निष्कामा धर्मचारिणः।
मणिद्वीपं प्रयान्त्येव पुनरावृत्तिवर्जितम्॥ ३४

भारतवर्षमें समस्त योनियोंमें मानवयोनि परम दुर्लभ है। सभी मनुष्योंमें ब्राह्मण श्रेष्ठ होता है। वह सम्पूर्ण कर्मोंमें प्रशस्त माना गया है। हे साध्वि! उनमें ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण भारतवर्षमें अधिक गरिमामय माना जाता है। हे साध्वि! सकाम तथा निष्काम भेदसे ब्राह्मण दो प्रकारके होते हैं। सकाम होनेसे वह कर्मप्रधान होता है। निष्काम केवल भक्त होता है। सकाम कर्मफल भोगता है और निष्काम समस्त सुखासुख भोगोंके उपद्रवोंसे रहित रहता है। हे साध्वि! वह शरीर त्यागकर भगवान्‌का जो निरामय धाम है, उसे प्राप्त करता है और हे साध्वि! उन निष्काम जनोंको पुनः इस लोकमें नहीं आना पड़ता। वे द्विभुज परमात्मा श्रीकृष्णकी उपासना करते हैं और अन्तमें वे भक्त दिव्यरूप धारणकर गोलोकको प्राप्त होते हैं॥ २३—२७॥

सकाम वैष्णव वैकुण्ठधाममें जाकर समयानुसार पुनः भारतवर्षमें लौट आते हैं और यहाँपर द्विजातियोंके कुलमें उनका जन्म होता है। वे सभी कुछ समय बीतनेपर क्रमशः निष्काम भक्त बन जाते हैं और मैं उन्हें अपनी निर्मल भक्ति प्रदान कर देता हूँ; यह सर्वथा निश्चित है। जो सकाम ब्राह्मण तथा वैष्णवजन हैं, अनेक जन्मोंमें भी विष्णुभक्तिसे रहित होनेके कारण उनकी बुद्धि निर्मल नहीं हो पाती॥ २८—३०॥

हे साध्वि! जो द्विज तीर्थोंमें रहकर सदा तपस्यामें संलग्न रहते हैं, वे ब्रह्मलोक जाते हैं और समयानुसार पुनः भारतवर्षमें आते हैं॥ ३१॥

जो तीर्थोंमें अथवा कहीं अन्यत्र रहकर सदा अपने ही धर्म-कर्ममें लगे रहते हैं, वे सत्यलोक पहुँचते हैं और पुनः भारतवर्षमें जन्म लेते हैं॥ ३२॥

जो ब्राह्मण अपने धर्ममें संलग्न रहकर भारतवर्षमें सूर्यकी उपासना करते हैं, वे सूर्यलोक जाते हैं और समयानुसार लौटकर पुनः भारतवर्षमें जन्म लेते हैं॥ ३३॥

जो धर्मपरायण तथा निष्काम मानव मूलप्रकृति भगवती जगदम्बाकी भक्ति करते हैं, वे मणिद्वीप लोकमें जाते हैं और फिर वहाँसे लौटकर नहीं आते॥ ३४॥

स्वधर्मे निरता भक्ताः शैवाः शाक्ताश्च गाणपाः।
ते यान्ति शिवलोकं च पुनरायान्ति भारते॥ ३५

ये विप्रा अन्यदेवेज्याः स्वधर्मनिरताः सति।
ते यान्ति सर्वलोकं च पुनरायान्ति भारते॥ ३६

हरिभक्ताश्च निष्कामाः स्वधर्मनिरता द्विजाः।
ते च यान्ति हरेर्लोकं क्रमाद्भक्तिबलादहो॥ ३७

स्वधर्मरहिता विप्रा देवान्यसेवनाः सदा।
भ्रष्टाचाराश्च कामाश्च ते यान्ति नरकं ध्रुवम्॥ ३८

स्वधर्मनिरता एव वर्णाश्चत्वार एव च।
भवन्त्येव शुभस्यैव कर्मणः फलभोगिनः॥ ३९

स्वकर्मरहिता ये च नरकं यान्ति ते ध्रुवम्।
भारते न भवन्त्येव कर्मणः फलभोगिनः॥ ४०

स्वधर्मनिरता एव वर्णाश्चत्वार एव च।
स्वधर्मनिरता विप्राः स्वधर्मनिरताय च॥ ४१

कन्यां ददति विप्राय चन्द्रलोकं प्रयान्ति ते।
वसन्ति तत्र ते साध्वि यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥ ४२

सालङ्कृताया दानेन द्विगुणं फलमुच्यते।
सकामा यान्ति तल्लोकं न निष्कामाश्च साधवः॥ ४३

ते प्रयान्ति विष्णुलोकं फलसङ्घातवर्जिताः।
गव्यं च रजतं स्वर्णं वस्त्रं सर्पिः फलं जलम्॥ ४४

ये ददत्येव विप्रेभ्यश्चन्द्रलोकं प्रयान्ति ते।
वसन्ति ते च तल्लोके यावन्मन्वन्तरं सति॥ ४५
सुचिरात्सुचिरं वासं कुर्वन्ति तेन ते जनाः।

जो अपने धर्मोंमें संलग्न रहते हुए शिव, शक्ति और गणपतिकी उपासना करते हैं; वे शिवलोक जाते हैं और कुछ समय पश्चात् वहाँसे पुनः भारतवर्षमें लौट आते हैं॥ ३५॥

हे साध्वि! जो ब्राह्मण अपने धर्ममें निरत रहकर अन्य देवताओंकी उपासना करते हैं, वे विभिन्न लोकोंमें जाते हैं और समयानुसार पुनः भारतवर्षमें जन्म लेते हैं॥ ३६॥

जो द्विज अपने धर्ममें संलग्न रहते हुए निष्काम भावसे भगवान् श्रीहरिकी भक्ति करते हैं, वे उस भक्तिके प्रभावसे क्रमसे श्रीहरिके लोकको प्राप्त होते हैं॥ ३७॥

जो विप्र सदा अपने धर्मसे विमुख, आचारहीन, कामलोलुप तथा देवाराधनसे रहित हैं, वे अवश्य ही नरकमें पड़ते हैं॥ ३८॥

चारों वर्णोंके लोग अपने-अपने धर्ममें संलग्न रहकर ही शुभ कर्मका फल भोगनेके अधिकारी होते हैं॥ ३९॥

जो अपने कर्तव्यसे विमुख हैं, वे अवश्य ही नरकमें जाते हैं और अपने कर्मका फल भोगते हैं। वे भारतवर्षमें नहीं आ सकते। अतः चारों वर्णोंके लोगोंको अपने-अपने धर्मका पालन करना चाहिये॥ ४०½॥

हे साध्वि! अपने धर्ममें तत्पर रहनेवाले जो ब्राह्मण अपने धर्ममें संलग्न ब्राह्मणको अपनी कन्या प्रदान करते हैं, वे चन्द्रलोकमें जाते हैं और वहाँपर चौदह इन्द्रोंकी स्थितिपर्यन्त निवास करते हैं। कन्याको अलंकारोंसे विभूषित करके दान करनेसे दुगुना फल कहा जाता है। सकाम भावसे दान करनेवाले उसी चन्द्रलोकमें जाते हैं, किंतु निष्काम भावसे दान करनेवाले साधुपुरुष वहाँ नहीं जाते, फलकी इच्छासे रहित वे विष्णुलोकको प्राप्त होते हैं॥ ४१—४३½॥

जो लोग ब्राह्मणोंको गव्य, चाँदी, सोना, वस्त्र, घृत, फल और जल प्रदान करते हैं; वे चन्द्रलोकमें जाते हैं और हे साध्वि! वे उस लोकमें एक मन्वन्तरतक निवास करते हैं। उस दानके प्रभावसे ही वे लोग वहाँ इतने दीर्घकालतक सुखपूर्वक निवास करते हैं॥ ४४-४५½॥

ये ददति सुवर्णांश्च गाश्च ताम्रादिकं सति॥ ४६

ते यान्ति सूर्यलोकं च शुचये ब्राह्मणाय च।
वसन्ति ते तत्र लोके वर्षाणामयुतं सति॥ ४७

विपुले सुचिरं वासं कुर्वन्ति च निरामयाः।
ददाति भूमिं विप्रेभ्यो धनानि विपुलानि च॥ ४८

स याति विष्णुलोकं च श्वेतद्वीपं मनोहरम्।
तत्रैव निवसत्येव यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥ ४९

विपुले विपुलं वासं करोति पुण्यवान्मुने।
गृहं ददति विप्राय ये जना भक्तिपूर्वकम्॥ ५०

ते यान्ति विष्णुलोकं च सुचिरं सुखदायकम्।
गृहरेणुप्रमाणं च विष्णुलोके महत्तमे॥ ५१

विपुले विपुलं वासं कुर्वन्ति मानवाः सति।
यस्मै यस्मै च देवाय यो ददाति गृहं नरः॥ ५२

स याति तस्य लोकं च रेणुमानाब्दमेव च।
सौधे चतुर्गुणं पुण्यं देशे शतगुणं फलम्॥ ५३

प्रकृष्टे द्विगुणं तस्मादित्याह कमलोद्भवः।
यो ददाति तडागं च सर्वपापापनुत्तये॥ ५४

स याति जनलोकं च रेणुमानाब्दमेव च।
वाप्यां फलं दशगुणं प्राप्नोति मानवः सदा॥ ५५

स तु वापीप्रदानेन तडागस्य फलं लभेत्।
धनुश्चतुःसहस्रेण दैर्घ्यमानेन निश्चितम्॥ ५६

न्यूना वा तावती प्रस्थे सा वापी परिकीर्तिता।
दशवापीसमा कन्या यदि पात्रे प्रदीयते॥ ५७

हे साध्वि! जो लोग पवित्र ब्राह्मणको सुवर्ण, गौ और ताम्र आदि देते हैं, वे सूर्यलोकमें जाते हैं और हे साध्वि! वे वहाँ उस लोकमें दस हजार वर्षोंतक निवास करते हैं। वे उस विस्तृत लोकमें निर्विकार होकर दीर्घकालतक निवास करते हैं॥ ४६-४७½ ॥

जो मनुष्य ब्राह्मणोंको भूमि तथा प्रचुर धन प्रदान करता है, वह भगवान् विष्णुके श्वेतद्वीप नामक मनोहर लोकमें पहुँच जाता है और वहाँपर चन्द्र-सूर्यकी स्थितिपर्यन्त निवास करता है। हे मुने! वह पुण्यवान् मनुष्य उस महान् लोकमें विपुल कालतक वास करता है॥ ४८-४९½ ॥

जो लोग विप्रको भक्तिपूर्वक गृहका दान करते हैं, वे चिरकालतक स्थिर रहनेवाले सुखदायी विष्णुलोकको प्राप्त होते हैं। हे साध्वि! वे मनुष्य दानमें दिये गये उस गृहके रजकणकी संख्याके बराबर वर्षोंतक उस अत्यन्त श्रेष्ठ तथा विशाल विष्णुलोकमें निवास करते हैं। जो मनुष्य जिस किसी भी देवताके उद्देश्यसे मन्दिरका दान करता है, वह उस देवताके लोकमें जाता है और उस लोकमें उतने ही वर्षोंतक वास करता है, जितने उस मन्दिरमें रजकण होते हैं। अपने घरपर दान करनेसे चार गुना, किसी पवित्र तीर्थमें दान करनेसे सौ गुना और किसी श्रेष्ठ स्थानमें दान करनेसे दुगुना पुण्यफल प्राप्त होता है—ऐसा ब्रह्माजीने कहा है॥ ५०—५३½ ॥

जो व्यक्ति समस्त पापोंसे मुक्त होनेके लिये तड़ागका दान करता है, वह जनलोक जाता है और उस तड़ागमें विद्यमान रेणु-संख्याके बराबर वर्षोंतक उस लोकमें रहता है। वापीका दान करनेसे मनुष्य उससे भी दस गुना फल प्राप्त कर लेता है। वापीके दानसे तड़ाग-दानका फल स्वतः प्राप्त हो जाता है। चार हजार धनुषके बराबर लम्बा तथा उतना ही अथवा उससे कुछ कम चौड़ा जिसका प्रमाण हो, उसे वापी कहा गया है॥ ५४—५६½ ॥

यदि कन्या किसी योग्य वरको प्रदान की जाती है, तो वह दान दस वापीके दानके समान होता है और यदि कन्या अलंकारोंसे सम्पन्न करके दी जाती

फलं ददाति द्विगुणं यदि सालङ्कृता भवेत्।
यत्फलं च तडागे च तदुद्धारे च तत्फलम्॥ ५८

वाप्याश्च पङ्कोद्धरणे वापीतुल्यफलं लभेत्।
अश्वत्थवृक्षमारोप्य प्रतिष्ठां यः करोति च॥ ५९

स प्रयाति तपोलोकं वर्षाणामयुतं सति।
पुष्पोद्यानं यो ददाति सावित्रि सर्वभूतये॥ ६०

स वसेद् ध्रुवलोके च वर्षाणामयुतं ध्रुवम्।
यो ददाति विमानं च विष्णवे भारते सति॥ ६१

विष्णुलोके वसेत्सोऽपि यावन्मन्वन्तरं परम्।
चित्रयुक्ते च विपुले फलं तस्य चतुर्गुणम्॥ ६२

तस्यार्धं शिबिकादाने फलमेव लभेद् ध्रुवम्।
यो ददाति भक्तियुक्तो हरये दोलमन्दिरम्॥ ६३

विष्णुलोके वसेत्सोऽपि यावन्मन्वन्तरं शतम्।
राजमार्गं सौधयुक्तं यः करोति पतिव्रते॥ ६४

वर्षाणामयुतं सोऽपि शक्रलोके महीयते।
ब्राह्मणेभ्योऽथ देवेभ्यो दाने समफलं लभेत्॥ ६५

यद्धि दत्तं च तद्भुङ्क्ते न दत्तं नोपतिष्ठते।
भुक्त्वा स्वर्गादिजं सौख्यं पुण्यवाञ्जन्म भारते॥ ६६

लभेद्विप्रकुलेष्वेव क्रमेणैवोत्तमादिषु।
भारते पुण्यवान्विप्रो भुक्त्वा स्वर्गादिकं फलम्॥ ६७

पुनः सोऽपि भवेद्विप्रश्चैवं च क्षत्रियादयः।
क्षत्रियो वाथ वैश्यो वा कल्पकोटिशतेन च॥ ६८
तपसा ब्राह्मणत्वं च न प्राप्नोति श्रुतौ श्रुतम्।

है, तो उससे भी दुगुना फल प्राप्त होता है। जो फल तड़ागके दानसे मिलता है, वही फल उस तड़ागके जीर्णोद्धारसे भी प्राप्त हो जाता है। किसी वापीका कीचड़ दूर कराकर उसका उद्धार करनेसे वापी-दानके समान पुण्य प्राप्त हो जाता है॥ ५७-५८½ ॥

हे साध्वि! जो मनुष्य पीपलका वृक्ष लगाकर उसकी प्रतिष्ठा करता है, वह तपोलोक पहुँचता है और वहाँपर दस हजार वर्षोंतक निवास करता है। हे सावित्रि! जो व्यक्ति समस्त प्राणियोंके लिये पुष्पोद्यानका दान करता है, वह दस हजार वर्षोंतक ध्रुवलोकमें निश्चितरूपसे निवास करता है॥ ५९-६०½ ॥

हे साध्वि! जो मनुष्य विष्णुके उद्देश्यसे भारतमें विमानका दान करता है, वह पूरे एक मन्वन्तरतक विष्णुलोकमें निवास करता है। चित्रयुक्त तथा विशाल विमानका दान करनेपर उसके दानका चौगुना फल होता है। शिविकाका दान करनेसे मनुष्य उसका आधा फल प्राप्त करता है—यह निश्चित है। जो व्यक्ति भगवान् श्रीहरिके उद्देश्यसे भक्तिपूर्वक दोला-मन्दिरका दान करता है, वह भी विष्णुलोकमें सौ मन्वन्तरतक निवास करता है॥ ६१—६३½ ॥

हे पतिव्रते! जो मनुष्य आरामगृहोंसे युक्त राजमार्गका निर्माण कराता है, वह दस हजार वर्षोंतक इन्द्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है॥ ६४½ ॥

ब्राह्मणों अथवा देवताओंको दिया हुआ दान समान फल प्रदान करता है। जो पूर्वजन्ममें दिया गया है, जन्मान्तरमें उसीका फल प्राप्त होता है और जो नहीं दिया गया है, उसका फल नहीं मिलता। पुण्यवान् मनुष्य स्वर्ग आदि लोकोंके सुख भोगकर भारतवर्षमें क्रमशः उत्तमसे उत्तम ब्राह्मणकुलोंमें जन्म ग्रहण करता है। इस प्रकार वह पुण्यवान् विप्र भी पुनः स्वर्गमें अपने कर्मफलका भोग करके भारतवर्षमें ब्राह्मण होकर जन्म प्राप्त करता है। क्षत्रिय आदिके लिये भी ऐसा ही है। क्षत्रिय हो अथवा वैश्य—कोई करोड़ों कल्पके तपस्याके प्रभावसे भी ब्राह्मणत्व नहीं प्राप्त कर सकता—ऐसा श्रुतियोंमें सुना गया है॥ ६५—६८½ ॥

नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि॥ ६९

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।
देवतीर्थसहायेन कायव्यूहेन शुध्यति।
एतत्ते कथितं किञ्चित् किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ ७०

करोड़ों कल्प बीत जानेपर भी बिना भोग प्राप्त किये कर्मका क्षय नहीं होता। अपने द्वारा किये गये शुभ अथवा अशुभ कर्मका फल मनुष्यको भोगना ही पड़ता है। देवता और तीर्थकी सहायतासे तथा कायव्यूह (तप)-से प्राणी शुद्ध हो जाता है। हे साध्वि! ये कुछ बातें मैंने तुम्हें बतला दीं; अब आगे क्या सुनना चाहती हो?॥ ६९-७०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे नारायणनारदसंवादे सावित्र्युपाख्याने कर्मविपाकवर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः॥ २९॥



अथ त्रिंशोऽध्यायः

दिव्य लोकोंकी प्राप्ति करानेवाले पुण्यकर्मोंका वर्णन

सावित्र्युवाच

प्रयान्ति स्वर्गमन्यं च येनैव कर्मणा यम।
मानवाः पुण्यवन्तश्च तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥ १

धर्मराज उवाच

अन्नदानं च विप्राय यः करोति च भारते।
अन्नप्रमाणवर्षं च शिवलोके महीयते॥ २

अन्नदानं महादानमन्येभ्योऽपि करोति यः।
अन्नदानप्रमाणं च शिवलोके महीयते॥ ३

अन्नदानात्परं दानं न भूतं न भविष्यति।
नात्र पात्रपरीक्षा स्यान्न कालनियमः क्वचित्॥ ४

देवेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो वा ददाति चासनं यदि।
महीयते विष्णुलोके वर्षाणामयुतं सति॥ ५

यो ददाति च विप्राय दिव्यां धेनुं पयस्विनीम्।
तल्लोममानवर्षं च विष्णुलोके महीयते॥ ६

चतुर्गुणं पुण्यदिने तीर्थे शतगुणं फलम्।
दानं नारायणक्षेत्रे फलं कोटिगुणं भवेत्॥ ७

सावित्री बोली—हे यम! जिस कर्मके प्रभावसे पुण्यवान् मनुष्य स्वर्ग आदि अन्य लोकोंमें जाते हैं, उसे मुझे बतानेकी कृपा कीजिये॥ १॥

धर्मराज बोले—[हे साध्वि!] जो भारतवर्षमें विप्रको अन्नका दान करता है, वह दान दिये गये अन्नकी संख्याके बराबर वर्षोंतक शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है। अन्नदान महादान है। जो अन्य लोगोंको भी अन्नदान करता है, वह भी अन्नके दानोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक शिवलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। अन्नदानसे बढ़कर न कोई दान हुआ है और न होगा। इस दानमें पात्र-परीक्षा अथवा समय-सम्बन्धी नियमकी कोई आवश्यकता नहीं होती है॥ २—४॥

हे साध्वि! यदि कोई मनुष्य देवताओं अथवा ब्राह्मणोंको आसनका दान करता है, तो वह दस हजार वर्षोंतक विष्णुलोकमें निवास करता है॥ ५॥

जो मनुष्य ब्राह्मणको दूध देनेवाली दिव्य गाय प्रदान करता है, वह उस गायके शरीरमें विद्यमान रोमोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित रहता है॥ ६॥

[साधारण दिनोंकी अपेक्षा] पुण्य-दिनमें दिये गये गोदानका फल चार गुना, तीर्थमें सौ गुना और नारायणक्षेत्रमें गोदानका फल करोड़ गुना होता है॥ ७॥

गां यो ददाति विप्राय भारते भक्तिपूर्वकम्।
वर्षाणामयुतं चैव चन्द्रलोके महीयते॥ ८

जो मनुष्य भारतवर्षमें भक्तिपूर्वक ब्राह्मणको गाय प्रदान करता है, वह दस हजार वर्षोंतक चन्द्रलोकमें निवास करता है॥ ८॥

यश्चोभयमुखीदानं करोति ब्राह्मणाय च।
तल्लोममानवर्षं च विष्णुलोके महीयते॥ ९

जो व्यक्ति किसी ब्राह्मणको उभयमुखी (प्रसव करती हुई) गायका दान करता है, वह उस गायके शरीरमें विद्यमान रोमोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है॥ ९॥

यो ददाति ब्राह्मणाय श्वेतच्छत्रं मनोहरम्।
वर्षाणामयुतं सोऽपि मोदते वरुणालये॥ १०

जो मनुष्य ब्राह्मणको स्वच्छ तथा मनोहर छत्र प्रदान करता है, वह दस हजार वर्षोतक वरुणलोकमें आनन्दित रहता है॥ १०॥

विप्राय पीडिताङ्गाय वस्त्रयुग्मं ददाति च।
महीयते वायुलोके वर्षाणामयुतं सति॥ ११

हे साध्वि! जो मनुष्य पीड़ित शरीरवाले दु:खी ब्राह्मणको एक जोड़ा वस्त्र प्रदान करता है, वह दस हजार वर्षोंतक वायुलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ ११॥

यो ददाति ब्राह्मणाय शालग्रामं सवस्त्रकम्।
महीयते स वैकुण्ठे यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥ १२

जो व्यक्ति किसी ब्राह्मणको वस्त्रसहित शालग्रामका अर्पण करता है, वह चन्द्रमा तथा सूर्यकी स्थितिपर्यन्त वैकुण्ठमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ १२॥

यो ददाति ब्राह्मणाय दिव्यां शय्यां मनोहराम्।
महीयते चन्द्रलोके यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥ १३

जो मनुष्य किसी ब्राह्मणको दिव्य तथा मनोहर शय्याका दान करता है, वह चन्द्रमा तथा सूर्यके स्थिति-कालतक चन्द्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है॥ १३॥

यो ददाति प्रदीपं च देवेभ्यो ब्राह्मणाय च।
यावन्मन्वन्तरं सोऽपि वह्निलोके महीयते॥ १४

जो देवताओं तथा ब्राह्मणोंको दीपकका दान करता है, वह मन्वन्तरपर्यन्त अग्निलोकमें वास करता है॥ १४॥

करोति गजदानं च यदि विप्राय भारते।
यावदिन्द्रो नरस्तावदिन्द्रस्यार्धासने वसेत्॥ १५

भारतवर्षमें जो मनुष्य ब्राह्मणको हाथीका दान करता है, वह इन्द्रकी आयुपर्यन्त उनके आधे आसनपर विराजमान रहता है॥ १५॥

भारते योऽश्वदानं च करोति ब्राह्मणाय च।
मोदते वारुणे लोके यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥ १६

भारतवर्षमें जो मनुष्य ब्राह्मणको अश्वका दान करता है, वह जबतक चौदहों इन्द्रोंकी स्थिति बनी रहती है, तबतक वरुणलोकमें आनन्द प्राप्त करता है॥ १६॥

प्रकृष्टां शिबिकां यो हि ददाति ब्राह्मणाय च।
मोदते वारुणे लोके यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥ १७

जो व्यक्ति ब्राह्मणके लिये उत्तम शिबिकाका दान करता है, वह भी चौदह इन्द्रोंकी स्थितितक वरुणलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ १७॥

प्रकृष्टां वाटिकां यो हि ददाति ब्राह्मणाय च।
महीयते वायुलोके यावन्मन्वन्तरं सति॥ १८

हे साध्वि! जो मनुष्य ब्राह्मणको उत्तम वाटिका प्रदान करता है, वह मन्वन्तरपर्यन्त वायु-लोकमें प्रतिष्ठित होता है॥ १८॥

यो ददाति च विप्राय व्यजनं श्वेतचामरम्।
महीयते वायुलोके वर्षाणामयुतं ध्रुवम्॥ १९

धान्यं रत्नं यो ददाति चिरञ्जीवी भवेत्सुधीः।
दाता ग्रहीता तौ द्वौ च ध्रुवं वैकुण्ठगामिनौ॥ २०

सततं श्रीहरेर्नाम भारते यो जपेन्नरः।
स एव चिरजीवी च ततो मृत्युः पलायते॥ २१

यो नरो भारते वर्षे दोलनं कारयेत्सुधीः।
पूर्णिमारजनीशेषे जीवन्मुक्तो भवेन्नरः॥ २२

इहलोके सुखं भुक्त्वा यात्यन्ते विष्णुमन्दिरम्।
निश्चितं निवसेत्तत्र शतमन्वन्तरावधि॥ २३

फलमुत्तरफल्गुन्यां ततोऽपि द्विगुणं भवेत्।
कल्पान्तजीवी स भवेदित्याह कमलोद्भवः॥ २४

तिलदानं ब्राह्मणाय यः करोति च भारते।
तिलप्रमाणवर्षं च मोदते शिवमन्दिरे॥ २५

ततः सुयोनिं सम्प्राप्य चिरञ्जीवी भवेत्सुखी।
ताम्रपात्रस्य दानेन द्विगुणं च फलं लभेत्॥ २६

सालङ्कृतां च भोग्यां च सवस्त्रां सुन्दरीं प्रियाम्।
यो ददाति ब्राह्मणाय भारते च पतिव्रताम्॥ २७

महीयते चन्द्रलोके यावदिन्द्राश्चतुर्दश।
तत्र स्वर्वेश्यया सार्धं मोदते च दिवानिशम्॥ २८

ततो गन्धर्वलोके च वर्षाणामयुतं ध्रुवम्।
दिवानिशं कौतुकेन चोर्वश्या सह मोदते॥ २९

ततो जन्मसहस्रं च प्राप्नोति सुन्दरीं प्रियाम्।
सतीं सौभाग्ययुक्तां च कोमलां प्रियवादिनीम्॥ ३०

जो व्यक्ति ब्राह्मणको पंखा तथा श्वेत चँवरका दान करता है, वह निश्चितरूपसे दस हजार वर्षोंतक वायुलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ १९॥

जो मनुष्य धान्य तथा रत्नका दान करता है, वह दीर्घायु तथा विद्वान् होता है। दान देनेवाला तथा लेनेवाला—वे दोनों निश्चय ही वैकुण्ठलोकमें चले जाते हैं॥ २०॥

जो मनुष्य भारतवर्षमें निरन्तर भगवान् श्रीहरिके नामका जप करता है, वह दीर्घजीवी होता है और मृत्यु उससे सदा दूर रहती है॥ २१॥

भारतवर्षमें जो विद्वान् पुरुष पूर्णिमाकी रातके कुछ शेष रहनेपर दोलोत्सव कराता है, वह जीवन्मुक्त होता है, इस लोकमें सुख भोगकर वह अन्तमें विष्णुके धामको प्राप्त होता है और वहाँ सौ मन्वन्तरकी अवधि-तक निश्चितरूपसे निवास करता है। उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें यह उत्सव मनानेपर उससे भी दुगुना फल प्राप्त होता है और वह व्यक्ति कल्पपर्यन्त जीवित रहता है—ऐसा ब्रह्माजीने कहा है॥ २२—२४॥

भारतवर्षमें जो मनुष्य ब्राह्मणको तिलका दान करता है, वह तिलोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक शिवजीके धाममें आनन्द प्राप्त करता है। वहाँसे पुनः उत्तम योनिमें जन्म पाकर वह दीर्घकालतक जीवित रहते हुए सुख भोगता है। तिलसे परिपूर्ण ताँबेके पात्रका दान करनेसे उससे भी दूना फल प्राप्त होता है॥ २५-२६॥

भारतमें जो मनुष्य उपभोग करनेयोग्य पतिव्रता तथा सुन्दर कन्याको अलंकारों तथा वस्त्रोंसे विभूषित करके उसे किसी ब्राह्मणको भार्याके रूपमें अर्पण करता है, वह चौदहों इन्द्रोंकी स्थितिपर्यन्त चन्द्रलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है और वहाँपर स्वर्गकी अप्सराओंके साथ दिन-रात आनन्द प्राप्त करता रहता है। उसके बाद वह निश्चय ही गन्धर्वलोकमें दस हजार वर्षोंतक निवास करता है और वहाँपर उर्वशीके साथ क्रीडा करते हुए दिन-रात आनन्द प्राप्त करता है। तत्पश्चात् उसे हजारों जन्मतक सुन्दर, साध्वी, सौभाग्यवती, कोमल तथा प्रिय सम्भाषण करनेवाली भार्या प्राप्त होती है॥ २७—३०॥

प्रददाति फलं चारु ब्राह्मणाय च यो नरः।
फलप्रमाणवर्षं च शक्रलोके महीयते॥ ३१

पुनः सुयोनिं सम्प्राप्य लभते सुतमुत्तमम्।
सफलानां च वृक्षाणां सहस्रं च प्रशंसितम्॥ ३२

केवलं फलदानं वा ब्राह्मणाय ददाति च।
सुचिरं स्वर्गवासं च कृत्वा याति च भारते॥ ३३

नानाद्रव्यसमायुक्तं नानासस्यसमन्वितम्।
ददाति यश्च विप्राय भारते विपुलं गृहम्॥ ३४

सुरलोके वसेत्सोऽपि यावन्मन्वन्तरं शतम्।
ततः सुयोनिं सम्प्राप्य स महाधनवान्भवेत्॥ ३५

यो नरः सस्यसंयुक्तां भूमिं च रुचिरां सति।
ददाति भक्त्या विप्राय पुण्यक्षेत्रे च भारते॥ ३६

महीयते च वैकुण्ठे मन्वन्तरशतं ध्रुवम्।
पुनः सुयोनिं सम्प्राप्य महांश्च भूमिपो भवेत्॥ ३७

तं न त्यजति भूमिश्च जन्मनां शतकं परम्।
श्रीमांश्च धनवांश्चैव पुत्रवांश्च प्रजेश्वरः॥ ३८

यो व्रजं च प्रकृष्टं च ग्रामं दद्याद् द्विजाय च।
लक्षमन्वन्तरं चैव वैकुण्ठे स महीयते॥ ३९

पुनः सुयोनिं सम्प्राप्य ग्रामलक्षसमन्वितम्।
न जहाति च तं पृथ्वी जन्मनां लक्षमेव च॥ ४०

सुप्रजं च प्रकृष्टं च पक्वसस्यसमन्वितम्।
नानापुष्करिणीवृक्षफलवल्लीसमन्वितम् ॥ ४१

नगरं यश्च विप्राय ददाति भारते भुवि।
महीयते स कैलासे दशलक्षेन्द्रकालकम्॥ ४२

पुनः सुयोनिं सम्प्राप्य राजेन्द्रो भारते भवेत्।
नगराणां च नियुतं स लभेन्नात्र संशयः॥ ४३

धरा तं न जहात्येव जन्मनामयुतं ध्रुवम्।
परमैश्वर्यनियुतो भवेदेव महीतले॥ ४४

जो मनुष्य ब्राह्मणको सुन्दर फल प्रदान करता है, वह जितने फल दिये गये होते हैं; उतने वर्षोंतक इन्द्रलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। इसके बाद वह उत्तम योनिमें जन्म लेकर श्रेष्ठ पुत्र प्राप्त करता है। फलवाले वृक्षोंके दानका फल उससे भी हजार गुना अधिक बताया गया है। जो मनुष्य ब्राह्मणको केवल फलदान करता है, वह भी दीर्घ कालतक स्वर्गमें निवास करके पुनः भारतवर्षमें जन्म ग्रहण करता है॥ ३१—३३॥

भारतवर्षमें जो मनुष्य अनेक प्रकारके द्रव्योंसे युक्त तथा नानाविध धान्योंसे परिपूर्ण विशाल भवन ब्राह्मणको प्रदान करता है, वह सौ मन्वन्तरतक देवलोकमें निवास करता है। तदनन्तर उत्तम योनिमें जन्म पाकर वह महान् धनाढ्य हो जाता है॥ ३४-३५॥

हे साध्वि! पुण्यक्षेत्र भारतवर्षमें जो मनुष्य हरी-भरी फसलोंसे सम्पन्न सुन्दर भूमि भक्तिपूर्वक ब्राह्मणको अर्पण करता है, वह निश्चितरूपसे सौ मन्वन्तरतक वैकुण्ठलोकमें प्रतिष्ठित होता है। तत्पश्चात् पुनः उत्तम योनिमें जन्म लेकर वह बहुत महान् राजा होता है। सौ जन्मोंतक भूमि उसका त्याग नहीं करती और वह श्रीयुक्त, धनवान् तथा पुत्रवान् राजा होता है॥ ३६—३८॥

जो व्यक्ति उत्तम गोशाला तथा गाँव ब्राह्मणको प्रदान करता है, वह एक लाख मन्वन्तरतक वैकुण्ठलोकमें प्रतिष्ठित होता है। तत्पश्चात् श्रेष्ठ कुलमें जन्म पाकर वह लाखों गाँवोंसे सम्पन्न हो जाता है और लाख जन्मोंतक भूमि उसका साथ नहीं छोड़ती॥ ३९-४०॥

भारतभूमिपर जो मनुष्य ब्राह्मणको उत्तम प्रजाओंसे युक्त, उत्कृष्ट, पकी हुई फसलोंसे सम्पन्न तथा अनेक प्रकारके कमलयुक्त जलाशयों, वृक्षों, फलों और लताओंसे सुशोभित नगर प्रदान करता है; वह दस लाख इन्द्रोंकी स्थितिपर्यन्त कैलासमें सुप्रतिष्ठित होता है। इसके बाद वह भारतवर्षमें उत्तम योनिमें जन्म लेकर राजेश्वर होता है और लाखों नगर प्राप्त करता है, इसमें सन्देह नहीं है। दस हजार वर्षोंतक धरा उस मनुष्यका साथ नहीं छोड़ती और वह निश्चितरूपसे पृथ्वीतलपर सर्वदा महान् ऐश्वर्यसे सम्पन्न रहता है॥ ४१—४४॥

नगराणां च शतकं देशं यो हि द्विजातये।
सुप्रकृष्टं मध्यकृष्टं प्रजायुक्तं ददाति च॥ ४५
वापीतडागसंयुक्तं नानावृक्षसमन्वितम्।
महीयते स वैकुण्ठे कोटिमन्वन्तरावधि॥ ४६
पुनः सुयोनिं सम्प्राप्य जम्बुद्वीपपतिर्भवेत्।
परमैश्वर्यसंयुक्तो यथा शक्रस्तथा भुवि॥ ४७
मही तं न जहात्येव जन्मनां कोटिमेव च।
कल्पान्तजीवी स भवेद्राजराजेश्वरो महान्॥ ४८
स्वाधिकारं समग्रं च यो ददाति द्विजातये।
चतुर्गुणं फलं चान्ते भवेत्तस्य न संशयः॥ ४९
जम्बुद्वीपं यो ददाति ब्राह्मणाय तपस्विने।
फलं शतगुणं चान्ते भवेत्तस्य न संशयः॥ ५०
जम्बुद्वीपमहीदातुः सर्वतीर्थानि सेवितुः।
सर्वेषां तपसां कर्तुः सर्वेषां वासकारिणः॥ ५१
सर्वदानप्रदातुश्च सर्वसिद्धेश्वरस्य च।
अस्त्येव पुनरावृत्तिर्न भक्तस्य महेशितुः॥ ५२
असंख्यब्रह्मणां पातं पश्यन्ति भुवनेशितुः।
निवसन्ति मणिद्वीपे श्रीदेव्याः परमे पदे॥ ५३
देवीमन्त्रोपासकाश्च विहाय मानवीं तनुम्।
विभूतिं दिव्यरूपं च जन्ममृत्युजराहरम्॥ ५४
लब्ध्वा देव्याश्च सारूप्यं देवीसेवां च कुर्वते।
पश्यन्ति ते मणिद्वीपे सखण्डं लोकसंक्षयम्॥ ५५
नश्यन्ति देवाः सिद्धाश्च विश्वानि निखिलानि च।
देवीभक्ता न नश्यन्ति जन्ममृत्युजराहराः॥ ५६

जो मनुष्य अत्यन्त उत्तम अथवा मध्यम श्रेणीवाले, प्रजाओंसे परिपूर्ण, बावली-तड़ागसे युक्त तथा अनेक प्रकारके वृक्षोंसे सम्पन्न एक सौ नगरोंका दान किसी द्विजको करता है, वह करोड़ मन्वन्तरकी अवधितक वैकुण्ठलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। वह फिरसे उत्तम वंशमें जन्म लेकर जम्बूद्वीपका अधिपति होता है और जैसे इन्द्र स्वर्गमें सुशोभित होते हैं, वैसे ही वह परम ऐश्वर्यवान् होकर पृथ्वीलोकमें शोभा प्राप्त करता है। करोड़ों जन्मोंतक पृथ्वी उसका साथ नहीं छोड़ती और वह महान् राजराजेश्वरके रूपमें प्रतिष्ठित होकर कल्पके अन्ततक जीवित रहता है॥ ४५—४८॥

जो मनुष्य ब्राह्मणको अपना सम्पूर्ण अधिकार दे देता है, उसे अन्तमें चौगुना फल प्राप्त होता है, इसमें संशय नहीं है॥ ४९॥

जो व्यक्ति तपस्वी ब्राह्मणको जम्बूद्वीपका दान देता है, वह अन्तमें सौ गुना फल प्राप्त करता है, इसमें सन्देह नहीं है॥ ५०॥

जम्बूद्वीपकी भूमिका दान करनेवाले, समस्त तीर्थोंमें निवास करनेवाले, सभी तपस्याओंमें रत रहनेवाले, सम्पूर्ण श्रेष्ठ स्थानोंमें निवास करनेवाले, अपना सर्वस्व दान करनेवाले तथा समस्त प्रकारकी सिद्धियोंको प्राप्त किये हुए महेश्वरी जगदम्बाके भक्तको पुनः संसारमें जन्म नहीं लेना पड़ता॥ ५१-५२॥

भगवती जगदम्बाके उपासकोंके समक्ष असंख्य ब्रह्माओंका लय हो जाता है, किंतु वे भगवती भुवनेश्वरीके परम धाम मणिद्वीपमें निवास करते रहते हैं॥ ५३॥

भगवतीके मन्त्रकी उपासना करनेवाले पुरुष मानव-शरीर त्यागनेके अनन्तर जन्म, मृत्यु एवं जरारहित ऐश्वर्यमय दिव्यरूप धारण करके उन भगवतीकी सारूप्यमुक्ति प्राप्तकर उनकी सेवामें सदा संलग्न रहते हैं। वे मणिद्वीपमें निवास करते हुए खण्डप्रलयका अवलोकन करते रहते हैं॥ ५४-५५॥

देवता, सिद्ध तथा समग्र विश्व एक निश्चित अवधिपर नष्ट हो जाते हैं; किंतु जन्म, मृत्यु और जरासे रहित देवीभक्त विनाशको प्राप्त नहीं होते॥ ५६॥

कार्तिके तुलसीदानं करोति हरये च यः।
युगत्रयप्रमाणं च मोदते हरिमन्दिरे॥ ५७

पुनः सुयोनिं सम्प्राप्य हरिभक्तिं लभेद् ध्रुवम्।
जितेन्द्रियाणां प्रवरः स भवेद्भारते भुवि॥ ५८

जो मनुष्य कार्तिक महीनेमें भगवान् श्रीहरिको तुलसी अर्पण करता है, वह श्रीहरिके धाममें तीन युगोंतक आनन्दपूर्वक निवास करता है। तदनन्तर उत्तम कुलमें जन्म लेकर वह निश्चितरूपसे भगवान्की भक्ति प्राप्त करता है और इस भारतभूमिमें रहनेवाले जितेन्द्रिय पुरुषोंमें अति श्रेष्ठ हो जाता है॥ ५७-५८॥

मध्ये यः स्नाति गङ्गायामरुणोदयकालतः।
युगषष्टिसहस्राणि मोदते हरिमन्दिरे॥ ५९

पुनः सुयोनिं सम्प्राप्य विष्णुमन्त्रं लभेद् ध्रुवम्।
त्यक्त्वा च मानुषं देहं पुनर्याति हरेः पदम्॥ ६०

नास्ति तत्पुनरावृत्तिर्वैकुण्ठाच्च महीतले।
करोति हरिदास्यं च तथा सारूप्यमेव च॥ ६१

जो व्यक्ति अरुणोदयके समय गंगाके मध्य स्नान करता है, वह साठ हजार युगोंतक भगवान् श्रीहरिके धाममें आनन्द प्राप्त करता है। वह श्रेष्ठ कुलमें जन्म पाकर विष्णुमन्त्रकी सिद्धि करता है और अन्तमें पुनः मानवशरीर त्यागकर भगवान् श्रीहरिके धाममें चला जाता है। उस वैकुण्ठधामसे फिर पृथ्वीतलपर उसका दुबारा जन्म नहीं होता। भगवान्का सारूप्य प्राप्त करके वह सदा उनकी सेवामें संलग्न रहता है॥ ५९—६१॥

नित्यस्नायी च गङ्गायां स पूतः सूर्यवद्भुवि।
पदे पदेऽश्वमेधस्य लभते निश्चितं फलम्॥ ६२

तस्यैव पादरजसा सद्यःपूता वसुन्धरा।
मोदते स च वैकुण्ठे यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥ ६३

पुनः सुयोनिं सम्प्राप्य हरिभक्तिं लभेद् ध्रुवम्।
जीवन्मुक्तोऽतितेजस्वी तपस्विप्रवरो भवेत्॥ ६४

स्वधर्मनिरतः शुद्धो विद्वांश्च स जितेन्द्रियः।

जो व्यक्ति प्रतिदिन गंगामें स्नान करता है, वह सूर्यकी भाँति पृथ्वीलोकमें पवित्र माना जाता है और उसे पग-पगपर अश्वमेधयज्ञका फल मिलता है, यह सर्वथा निश्चित है। उसकी चरण-रजसे पृथ्वी तत्काल पवित्र हो जाती है। अन्तमें वह वैकुण्ठधाम पहुँचकर सूर्य तथा चन्द्रमाकी स्थितिपर्यन्त वहाँ आनन्द प्राप्त करता है। तदनन्तर उत्तम कुलमें पुनः जन्म लेकर उसे अवश्य ही भगवान् श्रीहरिकी भक्ति सुलभ होती है। वह जीवन्मुक्त, परम तेजस्वी, तपस्वियोंमें श्रेष्ठ, स्वधर्मपरायण, निर्मलहृदय, विद्वान् तथा जितेन्द्रिय होता है॥ ६२—६४½॥

मीनकर्कटयोर्मध्ये गाढं तपति भास्करः॥ ६५

भारते यो ददात्येव जलमेव सुवासितम्।
स मोदते च कैलासे यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥ ६६

पुनः सुयोनिं सम्प्राप्य रूपवांश्च सुखी भवेत्।
शिवभक्तश्च तेजस्वी वेदवेदाङ्गपारगः॥ ६७

मीन और कर्कराशिपर रहते समय सूर्य अत्यधिक तपते हैं। जो पुरुष उस समय भारतमें सुवासित जलका दान करता है, वह चौदहों इन्द्रोंकी स्थितिपर्यन्त कैलासमें आनन्द भोगता है। तत्पश्चात् उत्तम योनिमें जन्म पाकर रूपवान्, सुखी, शिवभक्त, तेजस्वी तथा वेद-वेदांगका पारगामी विद्वान् होता है॥ ६५—६७॥

वैशाखे सक्तुदानं च यः करोति द्विजातये।
सक्तुरेणुप्रमाणाब्दं मोदते शिवमन्दिरे॥ ६८

जो मनुष्य वैशाख महीनेमें ब्राह्मणको सत्तूका दान करता है, वह उस सत्तूके कणोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक शिवलोकमें आनन्दपूर्वक निवास करता है॥ ६८॥

करोति भारते यो हि कृष्णजन्माष्टमीव्रतम्।
शतजन्मकृतं पापं मुच्यते नात्र संशयः॥ ६९
वैकुण्ठे मोदते सोऽपि यावदिन्द्राश्चतुर्दश।
पुनः सुयोनिं सम्प्राप्य कृष्णे भक्तिं लभेद् ध्रुवम्॥ ७०
इहैव भारते वर्षे शिवरात्रिं करोति यः।
मोदते शिवलोके स सप्तमन्वन्तरावधि॥ ७१
शिवाय शिवरात्रौ च बिल्वपत्रं ददाति यः।
पत्रमानयुगं तत्र मोदते शिवमन्दिरे॥ ७२
पुनः सुयोनिं सम्प्राप्य शिवभक्तिं लभेद् ध्रुवम्।
विद्यावान्पुत्रवाञ्छ्रीमान् प्रजावान्भूमिमान्भवेत्॥ ७३
चैत्रमासेऽथवा माघे शङ्करं योऽर्चयेद् व्रती।
करोति नर्तनं भक्त्या वेत्रपाणिर्दिवानिशम्॥ ७४
मासं वाप्यर्धमासं वा दश सप्त दिनानि च।
दिनमानयुगं सोऽपि शिवलोके महीयते॥ ७५
श्रीरामनवमीं यो हि करोति भारते पुमान्।
सप्तमन्वन्तरं यावन्मोदते विष्णुमन्दिरे॥ ७६
पुनः सुयोनिं सम्प्राप्य रामभक्तिं लभेद् ध्रुवम्।
जितेन्द्रियाणां प्रवरो महांश्च धनवान्भवेत्॥ ७७
शारदीयां महापूजां प्रकृतेर्यः करोति च।
महिषैश्छागलैर्मेषैः खड्गैर्भेकादिभिः सति॥ ७८
नैवेद्यैरुपहारैश्च धूपदीपादिभिस्तथा।
नृत्यगीतादिभिर्वाद्यैर्नानाकौतुकमङ्गलम् ॥ ७९
शिवलोके वसेत्सोऽपि सप्तमन्वन्तरावधि।
पुनः सुयोनिं सम्प्राप्य नरो बुद्धिं च निर्मलाम्॥ ८०
अतुलां श्रियमाप्नोति पुत्रपौत्रविवर्धनीम्।
महाप्रभावयुक्तश्च गजवाजिसमन्वितः॥ ८१
राजराजेश्वरः सोऽपि भवेदेव न संशयः।

भारतवर्षमें जो मनुष्य श्रीकृष्ण-जन्माष्टमीका व्रत करता है, वह अपने सौ जन्मोंमें किये गये पापोंसे छूट जाता है, इसमें सन्देह नहीं है। जबतक चौदहों इन्द्रोंकी स्थिति बनी रहती है, तबतक वह वैकुण्ठलोकमें आनन्दका भोग करता है। इसके बाद वह पुनः उत्तम योनिमें जन्म लेकर निश्चितरूपसे भगवान् श्रीकृष्णकी भक्ति प्राप्त करता है॥ ६९-७०॥

इस भारतवर्षमें जो मनुष्य शिवरात्रिका व्रत करता है, वह सात मन्वन्तरोंके कालतक शिवलोकमें आनन्दसे रहता है॥ ७१॥

जो मनुष्य शिवरात्रिके दिन भगवान् शंकरको बिल्वपत्र अर्पण करता है, वह बिल्वपत्रोंकी जितनी संख्या है उतने वर्षोंतक उस शिवलोकमें आनन्द भोगता है। पुनः श्रेष्ठ योनि प्राप्त करके वह निश्चय ही शिवभक्ति प्राप्त करता है और विद्या, पुत्र, श्री, प्रजा तथा भूमि—इन सबसे सदा सम्पन्न रहता है॥ ७२-७३॥

जो व्रती चैत्र अथवा माघमें पूरे मासभर, आधे मास, दस दिन अथवा सात दिनतक भगवान् शंकरकी पूजा करता है और हाथमें बेंत लेकर भक्तिपूर्वक उनके सम्मुख नर्तन करता है, वह उपासनाके दिनोंकी संख्याके बराबर युगोंतक शिवलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ ७४-७५॥

जो मनुष्य भारतवर्षमें श्रीरामनवमीका व्रत सम्पन्न करता है, वह विष्णुके धाममें सात मन्वन्तरतक आनन्द करता है। पुनः उत्तम योनिमें जन्म पाकर वह निश्चय ही रामकी भक्ति प्राप्त करता है और जितेन्द्रियोंमें सर्वश्रेष्ठ तथा महान् धनी होता है॥ ७६-७७॥

हे साध्वि! जो मनुष्य विविध प्रकारके नैवेद्यों, उपहार-सामग्रियों, धूप-दीप आदि पूजनोपचारोंके द्वारा भगवती प्रकृतिकी शारदीय महापूजा करता है तथा उस अवसरपर नृत्य, गीत, वाद्य आदिके द्वारा अनेकविध मंगलोत्सव मनाता है; वह सात मन्वन्तरोंकी अवधितक शिवलोकमें निवास करता है। पुनः उत्तम योनिमें जन्म पाकर वह मनुष्य निर्मल बुद्धि, अपार सम्पत्ति तथा पुत्र-पौत्रोंकी अभिवृद्धि प्राप्त करता है। वह हाथी, घोड़े आदि वाहनोंसे सम्पन्न तथा महान् प्रभावशाली राजराजेश्वर हो जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है॥ ७८—८१½॥

ततः शुक्लाष्टमीं प्राप्य महालक्ष्मीं च योऽर्चयेत्॥ ८२
नित्यं भक्त्या पक्षमेकं पुण्यक्षेत्रे च भारते।
दत्त्वा तस्यै प्रकृष्टानि चोपचाराणि षोडश॥ ८३
गोलोके च वसेत्सोऽपि यावदिन्द्राश्चतुर्दश।
पुनः सुयोनिं सम्प्राप्य राजराजेश्वरो भवेत्॥ ८४
कार्तिकीपूर्णिमायां च कृत्वा तु रासमण्डलम्।
गोपानां शतकं कृत्वा गोपीनां शतकं तथा॥ ८५
शिलायां प्रतिमायां च श्रीकृष्णं राधया सह।
भारते पूजयेद्भक्त्या चोपचाराणि षोडश॥ ८६
गोलोके वसते सोऽपि यावद्वै ब्रह्मणो वयः।
भारतं पुनरागत्य कृष्णे भक्तिं लभेद् दृढाम्॥ ८७
क्रमेण सुदृढां भक्तिं लब्ध्वा मन्त्रं हरेरहो।
देहं त्यक्त्वा च गोलोकं पुनरेव प्रयाति सः॥ ८८
ततः कृष्णस्य सारूप्यं पार्षदप्रवरो भवेत्।
पुनस्तत्पतनं नास्ति जरामृत्युहरो भवेत्॥ ८९
शुक्लां वाप्यथवा कृष्णां करोत्येकादशीं च यः।
वैकुण्ठे मोदते सोऽपि यावद्वै ब्रह्मणो वयः॥ ९०
भारते पुनरागत्य कृष्णभक्तिं लभेद् ध्रुवम्।
क्रमेण भक्तिं सुदृढां करोत्येकां हरेरहो॥ ९१
देहं त्यक्त्वा च गोलोकं पुनरेव प्रयाति सः।
ततः कृष्णस्य सारूप्यं सम्प्राप्य पार्षदो भवेत्॥ ९२
पुनस्तत्पतनं नास्ति जरामृत्युहरो भवेत्।
भाद्रे च शुक्लद्वादश्यां यः शक्रं पूजयेन्नरः॥ ९३
षष्टिवर्षसहस्राणि शक्रलोके महीयते।
रविवारे च संक्रान्त्यां सप्तम्यां शुक्लपक्षके॥ ९४
सम्पूज्यार्कं हविष्यान्नं यः करोति च भारते।
महीयते सोऽर्कलोके यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥ ९५
भारतं पुनरागत्य चारोगी श्रीयुतो भवेत्।

शारदीय नवरात्रकी शुक्लाष्टमी तिथिसे प्रारम्भ करके एक पक्षतक नित्य पवित्र भारतभूमिपर जो मनुष्य भक्तिपूर्वक उत्तम षोडशोपचार अर्पित करके भगवती महालक्ष्मीकी पूजा करता है, वह चौदह इन्द्रोंके कालपर्यन्त गोलोकमें वास करता है। तत्पश्चात् उत्तम कुलमें जन्म लेकर वह राजराजेश्वर बनता है॥ ८२—८४॥

जो भारतवर्षमें कार्तिकपूर्णिमाको सैकड़ों गोपों तथा गोपियोंको साथ लेकर रासमण्डल-सम्बन्धी उत्सव मनाकर शिलापर या प्रतिमामें सोलहों प्रकारके पूजनोपचारोंसे भक्तिपूर्वक राधासहित श्रीकृष्णकी पूजा सम्पन्न करता है, वह ब्रह्माजीके स्थितिपर्यन्त गोलोकमें निवास करता है। पुनः भारतवर्षमें जन्म पाकर वह श्रीकृष्णकी स्थिर भक्ति प्राप्त करता है। भगवान् श्रीहरिकी क्रमशः सुदृढ़ भक्ति तथा उनका मन्त्र प्राप्त करके देह-त्यागके अनन्तर वह पुनः गोलोक चला जाता है। वहाँ श्रीकृष्णके समान रूप प्राप्त करके वह उनका प्रमुख पार्षद बन जाता है। पुनः वहाँसे उसका पतन नहीं होता, वह जरा तथा मृत्युसे सर्वथा रहित हो जाता है॥ ८५—८९॥

जो व्यक्ति शुक्ल अथवा कृष्णपक्षकी एकादशीका व्रत करता है, वह ब्रह्माके आयुपर्यन्त वैकुण्ठलोकमें आनन्दका भोग करता है। पुनः भारतवर्षमें जन्म लेकर वह निश्चय ही श्रीकृष्णकी भक्ति प्राप्त करता है और वह क्रमशः एकमात्र श्रीहरिके प्रति अपनी भक्तिको सुदृढ़ करता जाता है। अन्तमें मानव देह त्यागकर वह पुनः गोलोक चला जाता है और वहाँपर श्रीकृष्णका सारूप्य प्राप्त करके उनका पार्षद बन जाता है। वहाँसे पुनः संसारमें उसका आगमन नहीं होता और वह सदाके लिये जरा तथा मृत्युसे मुक्त हो जाता है॥ ९०—९२½॥

जो मनुष्य भाद्रपद मासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिको इन्द्रकी पूजा करता है, वह साठ हजार वर्षोंतक इन्द्रलोकमें सम्मानित होता है। जो भारतवर्षमें रविवार, संक्रान्ति अथवा शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथिको सूर्यकी पूजा करके भोजनमें हविष्यान्न ग्रहण करता है, वह चौदहों इन्द्रोंके आयुपर्यन्त सूर्यलोकमें सुप्रतिष्ठित होता है। इसके बाद भारतवर्षमें फिरसे जन्म लेकर वह आरोग्ययुक्त तथा श्रीसम्पन्न होता है॥ ९३—९५½॥

ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां सावित्रीं यो हि पूजयेत्॥ ९६

महीयते ब्रह्मलोके सप्तमन्वन्तरावधि।
पुनर्महीं समागत्य श्रीमानतुलविक्रमः॥ ९७

चिरजीवी भवेत्सोऽपि ज्ञानवान्सम्पदा युतः।
माघस्य शुक्लपञ्चम्यां पूजयेद्यः सरस्वतीम्॥ ९८

संयतो भक्तितो दत्त्वा चोपचाराणि षोडश।
महीयते मणिद्वीपे यावद्ब्रह्म दिवानिशम्॥ ९९

सम्प्राप्य च पुनर्जन्म स भवेत्कविपण्डितः।
गां सुवर्णादिकं यो हि ब्राह्मणाय ददाति च॥ १००

नित्यं जीवनपर्यन्तं भक्तियुक्तश्च भारते।
गवां लोमप्रमाणाब्दं द्विगुणं विष्णुमन्दिरे॥ १०१

मोदते हरिणा सार्धं क्रीडाकौतुकमङ्गलैः।
तदन्ते पुनरागत्य राजराजेश्वरो भवेत्॥ १०२

श्रीमांश्च पुत्रवान्विद्वाञ्ज्ञानवान्सर्वतः सुखी।
भोजयेद्योऽपि मिष्टान्नं ब्राह्मणेभ्यश्च भारते॥ १०३

विप्रलोमप्रमाणाब्दं मोदते विष्णुमन्दिरे।
ततः पुनरिहागत्य सुखी च धनवान्भवेत्॥ १०४

विद्वान्सुचिरजीवी च श्रीमानतुलविक्रमः।
यो वक्ति वा ददात्येव हरेर्नामानि भारते॥ १०५

युगं नाम प्रमाणं च विष्णुलोके महीयते।
ततः पुनरिहागत्य स सुखी धनवान्भवेत्॥ १०६

यदि नारायणक्षेत्रे फलं कोटिगुणं भवेत्।
नाम्नां कोटिं हरेर्यो हि क्षेत्रे नारायणे जपेत्॥ १०७

जो मनुष्य ज्येष्ठ मासके कृष्णपक्षकी चतुर्दशी तिथिको भगवती सावित्रीका पूजन करता है, वह सात मन्वन्तरोंकी अवधितक ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है। पुनः पृथ्वीपर लौटकर वह श्रीमान्, अतुल पराक्रमी, चिरंजीवी, ज्ञानवान् तथा सम्पदासम्पन्न हो जाता है॥ ९६–९७½ ॥

जो मनुष्य माघ महीनेके शुक्लपक्षकी पंचमी तिथिको भक्तिपूर्वक सोलहों प्रकारके पूजनोपचारोंको अर्पणकर सरस्वतीकी पूजा करता है, वह ब्रह्माके आयुपर्यन्त मणिद्वीपमें दिन-रात प्रतिष्ठा प्राप्त करता है और पुनः जन्म ग्रहणकर महान् कवि तथा पण्डित होता है॥ ९८–९९½ ॥

भारतवर्षमें जो जीवनभर भक्तिसे सम्पन्न होकर ब्राह्मणको नित्य गौ और सुवर्ण आदि प्रदान करता है, वह उस गौके शरीरमें जितने रोम होते हैं, उससे भी दुगुने वर्षोंतक विष्णुलोकमें वास करता है और वहाँ भगवान् श्रीहरिके साथ मंगलमय क्रीड़ा तथा उत्सव करते हुए आनन्दका भोग करता है। तत्पश्चात् पुनः भारतवर्षमें जन्म पाकर श्रीसम्पन्न, पुत्रवान्, विद्वान्, ज्ञानवान् तथा हर प्रकारसे सुखी राजराजेश्वरके रूपमें प्रतिष्ठित होता है॥ १००—१०२½ ॥

भारतवर्षमें जो मनुष्य ब्राह्मणोंको मिष्टान्नका भोजन कराता है, वह उस ब्राह्मणके शरीरमें जितने रोम होते हैं, उतने वर्षोंतक विष्णुलोकमें आनन्द प्राप्त करता है। तत्पश्चात् वहाँसे पुनः इस लोकमें जन्म लेकर वह सुखी, धनवान्, विद्वान्, दीर्घजीवी, श्रीमान् तथा अतुलनीय पराक्रमवाला होता है॥ १०३–१०४½ ॥

भारतवर्षमें जो मनुष्य भगवान् श्रीहरिके नामका स्वयं कीर्तन करता है अथवा इसके लिये दूसरेको प्रेरणा देता है, वह जपे गये नामोंकी संख्याके बराबर युगोंतक विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है और वहाँसे पुनः इस लोकमें आकर वह सुखी तथा धनवान् होता है॥ १०५–१०६ ॥

यदि भगवान्का नामजप नारायणक्षेत्रमें किया जाय तो उसका फल करोड़ों गुना अधिक होता है। जो मनुष्य नारायणक्षेत्रमें भगवान् श्रीहरिके नामका

सर्वपापविनिर्मुक्तो जीवन्मुक्तो भवेद् ध्रुवम्।
न लभेत्स पुनर्जन्म वैकुण्ठे स महीयते॥ १०८

लभेद्विष्णोश्च सारूप्यं न तस्य पतनं भवेत्।
विष्णुभक्तिं लभेत्सोऽपि विष्णुसारूप्यमाप्नुयात्॥ १०९

एक करोड़ जप करता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे रहित होकर जीवन्मुक्त हो जाता है—यह सत्य है। उसका पुनर्जन्म नहीं होता, वह वैकुण्ठलोकमें प्रतिष्ठित होता है। वह भगवान् विष्णुका सारूप्य प्राप्त कर लेता है और वहाँसे उसका पतन नहीं होता है। इस प्रकार वह भगवान् विष्णुकी परम भक्ति सुलभ कर लेता है और अन्ततः उसे भगवान् विष्णुकी सारूप्यमुक्ति प्राप्त हो जाती है॥ १०७—१०९॥

शिवं यः पूजयेन्नित्यं कृत्वा लिङ्गं च पार्थिवम्।
यावज्जीवनपर्यन्तं स याति शिवमन्दिरम्॥ ११०

मृदो रेणुप्रमाणाब्दं शिवलोके महीयते।
ततः पुनरिहागत्य राजेन्द्रो भारते भवेत्॥ १११

जो मनुष्य प्रतिदिन पार्थिव लिंग बनाकर शिवकी पूजा करता है और जीवनपर्यन्त इस नियमका पालन करता है, वह शिवलोकको प्राप्त होता है और उस पार्थिव लिंगमें विद्यमान रजकणोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है। वहाँसे पुनः भारतवर्षमें जन्म लेकर वह महान् राजा होता है॥ ११०-१११॥

शिलां च पूजयेन्नित्यं शिलातोयं च भक्षति।
महीयते च वैकुण्ठे यावद्वै ब्रह्मणः शतम्॥ ११२

ततो लब्ध्वा पुनर्जन्म हरिभक्तिं च दुर्लभाम्।
महीयते विष्णुलोके न तस्य पतनं भवेत्॥ ११३

जो मनुष्य प्रतिदिन शालग्रामका पूजन करता है और शालग्रामशिलाके जलका पान करता है, वह सौ ब्रह्माकी आयुतक वैकुण्ठलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। उसके बाद फिरसे जन्म लेकर भगवान् श्रीहरिकी दुर्लभ भक्ति प्राप्त करता है और पुनः विष्णुलोकमें सुप्रतिष्ठित होता है और उसका पतन नहीं होता॥ ११२-११३॥

तपांसि चैव सर्वाणि व्रतानि निखिलानि च।
कृत्वा तिष्ठति वैकुण्ठे यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥ ११४

ततो लब्ध्वा पुनर्जन्म राजेन्द्रो भारते भवेत्।
ततो मुक्तो भवेत्पश्चात्पुनर्जन्म न विद्यते॥ ११५

जो मनुष्य समस्त तपों तथा व्रतोंको सम्पन्न कर लेता है, वह चौदह इन्द्रोंके कालपर्यन्त वैकुण्ठमें निवास करता है। वहाँसे पुनः भारतवर्षमें जन्म ग्रहणकर वह महान् सम्राट् होता है। तदनन्तर वह मुक्त हो जाता है और फिर उसे दुबारा जन्म नहीं लेना पड़ता॥ ११४-११५॥

यः स्नात्वा सर्वतीर्थेषु भुवः कृत्वा प्रदक्षिणाम्।
स तु निर्वाणतां याति न च जन्म भवेद्भुवि॥ ११६

जो सभी तीर्थोंमें स्नान तथा पृथ्वीकी प्रदक्षिणा कर लेता है, वह निर्वाणपदको प्राप्त होता है और पुनः पृथ्वीलोकमें उसका जन्म नहीं होता है॥ ११६॥

पुण्यक्षेत्रे भारते च योऽश्वमेधं करोति च।
अश्वलोममिताब्दं च शक्रस्यार्धासनं भजेत्॥ ११७

जो पुण्यक्षेत्र भारतवर्षमें अश्वमेधयज्ञ करता है, वह उस अश्वके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं; उतने वर्षोंतक इन्द्रके आधे आसनपर विराजमान रहता है। राजसूययज्ञ करनेसे मनुष्य इससे भी चार गुना फल प्राप्त करता है॥ ११७॥

चतुर्गुणं राजसूये फलमाप्नोति मानवः।
सर्वेभ्योऽपि मखेभ्यो हि परो देवीमखः स्मृतः॥ ११८
विष्णुना च कृतः पूर्वं ब्रह्मणा च वरानने।
शङ्करेण महेशेन त्रिपुरासुरनाशने॥ ११९
शक्तियज्ञः प्रधानश्च सर्वयज्ञेषु सुन्दरि।
नानेन सदृशो यज्ञस्त्रिषु लोकेषु विद्यते॥ १२०
दक्षेण च कृतः पूर्वं महान्संवादसंयुतः।
बभूव कलहो यत्र दक्षशङ्करयोः सति॥ १२१
शेपुश्च नन्दिनं विप्रा नन्दी विप्रांश्च कोपतः।
यद्धेतोर्दक्षयज्ञं च बभञ्ज चन्द्रशेखरः॥ १२२
चकार देवीयज्ञं स पुरा दक्षः प्रजापतिः।
धर्मश्च कश्यपश्चैव शेषश्चापि च कर्दमः॥ १२३
स्वायम्भुवो मनुश्चैव तत्पुत्रश्च प्रियव्रतः।
शिवः सनत्कुमारश्च कपिलश्च ध्रुवस्तथा॥ १२४
राजसूयसहस्राणां फलमाप्नोति निश्चितम्।
देवीयज्ञात्परो यज्ञो नास्ति वेदे फलप्रदः॥ १२५
वर्षाणां शतजीवी च जीवन्मुक्तो भवेद् ध्रुवम्।
ज्ञानेन तेजसा चैव विष्णुतुल्यो भवेदिह॥ १२६
देवानां च यथा विष्णुर्वैष्णवानां च नारद।
शास्त्राणां च यथा वेदा वर्णानां ब्राह्मणो यथा॥ १२७
तीर्थानां च यथा गङ्गा पवित्राणां शिवो यथा।
एकादशी व्रतानां च पुष्पाणां तुलसी यथा॥ १२८
नक्षत्राणां यथा चन्द्रः पक्षिणां गरुडो यथा।
यथा स्त्रीणां च प्रकृती राधा वाणी वसुन्धरा॥ १२९
शीघ्राणां चेन्द्रियाणां च चञ्चलानां मनो यथा।
प्रजापतीनां ब्रह्मा च प्रजानां च प्रजापतिः॥ १३०
वृन्दावनं वनानां च वर्षाणां भारतं यथा।
श्रीमतां च यथा श्रीश्च विदुषां च सरस्वती॥ १३१
पतिव्रतानां दुर्गा च सौभाग्यानां च राधिका।
देवीयज्ञस्तथा वत्से सर्वयज्ञेषु भामिनि॥ १३२

भगवतीका यज्ञ सभी यज्ञोंसे भी श्रेष्ठ कहा गया है। हे वरानने! विष्णु और ब्रह्माने पूर्वकालमें इस यज्ञको किया था और त्रिपुरासुरका वध करनेके लिये महादेव शंकरजीने भी इस यज्ञको सम्पन्न किया था। हे सुन्दरि! यह शक्ति-यज्ञ सम्पूर्ण यज्ञोंमें प्रधान है; तीनों लोकोंमें इस यज्ञके समान कोई भी यज्ञ नहीं है॥ ११८—१२०॥

हे साध्वि! पूर्व कालकी बात है, दक्षप्रजापतिने महान् उत्सवके साथ भगवतीका यज्ञ किया था, जिसमें दक्ष-प्रजापति तथा शंकरमें परस्पर कलह हो गया। क्रोधमें आकर ब्राह्मणोंने नन्दीको तथा नन्दीने ब्राह्मणोंको शाप दे दिया। इसलिये चन्द्रमाको मस्तकपर धारण करनेवाले शिवने दक्षके यज्ञका विध्वंस कर डाला॥ १२१-१२२॥

प्राचीन कालमें दक्षप्रजापति, धर्म, कश्यप, शेषनाग, मुनि कर्दम, स्वायम्भुव मनु, उनके पुत्र प्रियव्रत, शिव, सनत्कुमार, कपिल तथा ध्रुव—ये सभी लोग भगवतीयज्ञ सम्पन्न कर चुके हैं॥ १२३-१२४॥

देवीयज्ञ करनेवाला पुरुष हजारों राजसूययज्ञोंका फल निश्चित-रूपसे प्राप्त कर लेता है। देवीयज्ञसे बढ़कर फल प्रदान करनेवाला कोई यज्ञ नहीं है—ऐसा वेदमें कहा गया है॥ १२५॥

देवीयज्ञ करनेवाला सौ वर्षतक जीवित रहकर अन्तमें जीवन्मुक्त हो जाता है, यह सत्य है। वह इस लोकमें ज्ञान तथा तपमें साक्षात् भगवान् विष्णुके तुल्य हो जाता है॥ १२६॥

हे वत्से! हे भामिनि! जिस प्रकार देवताओंमें विष्णु, विष्णुभक्तोंमें नारद, शास्त्रोंमें वेद, वर्णोंमें ब्राह्मण, तीर्थोंमें गंगा, पुण्यात्मा पवित्रोंमें शिव, व्रतोंमें एकादशी, पुष्पोंमें तुलसी, नक्षत्रोंमें चन्द्रमा, पक्षियोंमें गरुड, स्त्रियोंमें मूलप्रकृति; राधा; सरस्वती तथा पृथिवी, शीघ्रगामी तथा चंचल इन्द्रियोंमें मन, प्रजापतियोंमें ब्रह्मा, प्रजाओंमें राजा, वनोंमें वृन्दावन, वर्षोंमें भारतवर्ष, श्रीमान् लोगोंमें श्री, विद्वानोंमें सरस्वती, पतिव्रताओंमें भगवती दुर्गा और सौभाग्यवती श्रीकृष्ण-भार्याओंमें राधा सर्वोपरि हैं, उसी प्रकार समस्त यज्ञोंमें देवीयज्ञ श्रेष्ठ है॥ १२७—१३२॥

अश्वमेधशतेनैव शक्रत्वं च लभेद् ध्रुवम्।
सहस्त्रेण विष्णुपदं सम्प्राप्तः पृथुरेव च॥ १३३

स्नानं च सर्वतीर्थानां सर्वयज्ञेषु दीक्षणम्।
सर्वेषां च व्रतानां च तपसां फलमेव च॥ १३४

पाठे चतुर्णां वेदानां प्रादक्षिण्यं भुवस्तथा।
फलभूतमिदं सर्वं मुक्तिदं शक्तिसेवनम्॥ १३५

पुराणेषु च वेदेषु चेतिहासेषु सर्वतः।
निरूपितं सारभूतं देवीपादाम्बुजार्चनम्॥ १३६

तद्वर्णनं च तद्ध्यानं तन्नामगुणकीर्तनम्।
तत्स्तोत्रस्मरणं चैव वन्दनं जपमेव च॥ १३७

तत्पादोदकनैवेद्यं भक्षणं नित्यमेव च।
सर्वसम्मतमित्येवं सर्वेप्सितमिदं सति॥ १३८

भज नित्यं परं ब्रह्म निर्गुणं प्रकृतिं पराम्।
गृहाण स्वामिनं वत्से सुखं वस च मन्दिरे॥ १३९

अयं ते कथितः कर्मविपाको मङ्गलो नृणाम्।
सर्वेप्सितः सर्वमतस्तत्त्वज्ञानप्रदः परः॥ १४०

एक सौ अश्वमेधयज्ञ करनेसे मनुष्य इन्द्रपद पा जाता है। एक हजार अश्वमेध करके राजा पृथुने विष्णुपद प्राप्त किया था॥ १३३॥

सम्पूर्ण तीर्थोंके स्नान, समस्त यज्ञोंकी दीक्षा, सभी व्रतों, तपों तथा चारों वेदोंके पाठोंका पुण्य और पृथ्वीकी प्रदक्षिणा—इन सभी साधनोंके फल-स्वरूप शक्तिस्वरूपा भगवती जगदम्बाकी सेवा सुलभ हो जाती है, जो प्राणीको मोक्ष प्रदान कर देती है॥ १३४-१३५॥

पुराणों, वेदों तथा इतिहासोंमें सर्वत्र भगवतीके चरणकमलकी उपासनाको ही सारभूत बताया गया है। उन भगवतीके चरित्रका वर्णन, उनका ध्यान, उनके नाम तथा गुणोंका कीर्तन, उनके स्तोत्रोंका स्मरण, उनकी वन्दना, उनका नाम-जप, उनके चरणोदक तथा नैवेद्यका ग्रहण—यह सब नित्य सम्पादित करना चाहिये। हे साध्वि! यह सर्वसम्मत तथा सभीके लिये अभीष्ट भी है॥ १३६—१३८॥

हे वत्से! तुम निर्गुण परब्रह्मस्वरूपिणी पराम्बा भगवती मूलप्रकृतिकी उपासना करो। अब तुम अपने पतिको ग्रहण करो और सुखपूर्वक अपने भवनमें निवास करो। मनुष्योंका यह मंगलमय कर्मविपाक मैंने तुमसे कह दिया, यह प्रसंग सबके लिये अभीष्ट, सर्वसम्मत, श्रेष्ठ तथा तत्त्वज्ञान प्रदान करनेवाला है॥ १३९-१४०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे यमेन कर्मविपाककथनं नाम त्रिंशोऽध्यायः॥ ३०॥

अथैकत्रिंशोऽध्यायः

सावित्रीका यमाष्टकद्वारा धर्मराजका स्तवन

श्रीनारायण उवाच

शक्तेरुत्कीर्तनं श्रुत्वा सावित्री यमवक्त्रतः।
साश्रुनेत्रा सपुलका यमं पुनरुवाच सा॥ १

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] यमके मुखसे भगवतीके नामकीर्तनकी महिमा सुनकर सावित्रीके नेत्रोंमें अश्रु भर आये और उसका शरीर पुलकित हो गया। वह यमसे पुनः कहने लगी॥ १॥

सावित्र्युवाच

शक्तेरुत्कीर्तनं धर्म सकलोद्धारकारणम्।
श्रोतॄणां चैव वक्तॄणां जन्ममृत्युजराहरम्॥ २

सावित्री बोली—हे धर्म! शक्तिस्वरूपा भगवती जगदम्बाका नामकीर्तन सबका उद्धार करनेवाला और श्रोता तथा वक्ता—दोनोंके जन्म, मृत्यु तथा बुढ़ापेका नाश करनेवाला है॥ २॥

दानवानां च सिद्धानां तपसां च परं पदम्।
योगानां चैव वेदानां कीर्तनं सेवनं विभो॥ ३

मुक्तित्वममरत्वं च सर्वसिद्धित्वमेव च।
श्रीशक्तिसेवकस्यैव कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥ ४

भजामि केन विधिना वद वेदविदांवर।
शुभकर्मविपाकं च श्रुतं नृणां मनोहरम्॥ ५

कर्माशुभविपाकं च तन्मे व्याख्यातुमर्हसि।
इत्युक्त्वा च सती ब्रह्मन् भक्तिनम्रात्मकन्धरा॥ ६

तुष्टाव धर्मराजं च वेदोक्तेन स्तवेन च।

सावित्र्युवाच

तपसा धर्ममाराध्य पुष्करे भास्करः पुरा॥ ७

धर्मं सूर्यः सुतं प्राप धर्मराजं नमाम्यहम्।
समता सर्वभूतेषु यस्य सर्वस्य साक्षिणः॥ ८

अतो यन्नाम शमनमिति तं प्रणमाम्यहम्।
येनान्तश्च कृतो विश्वे सर्वेषां जीविनां परम्॥ ९

कामानुरूपं कालेन तं कृतान्तं नमाम्यहम्।
बिभर्ति दण्डं दण्डाय पापिनां शुद्धिहेतवे॥ १०

नमामि तं दण्डधरं यः शास्ता सर्वजीविनाम्।
विश्वं च कलयत्येव यः सर्वेषु च सन्ततम्॥ ११

अतीव दुर्निवार्यं च तं कालं प्रणमाम्यहम्।
तपस्वी ब्रह्मनिष्ठो यः संयमी सञ्जितेन्द्रियः॥ १२

जीवानां कर्मफलदस्तं यमं प्रणमाम्यहम्।
स्वात्मारामश्च सर्वज्ञो मित्रं पुण्यकृतां भवेत्॥ १३

पापिनां क्लेशदो यस्तं पुण्यमित्रं नमाम्यहम्।
यज्जन्म ब्रह्मणोंऽशेन ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा॥ १४
यो ध्यायति परं ब्रह्म तमीशं प्रणमाम्यहम्।

हे विभो! भगवतीका यह कीर्तन दानवों, सिद्धों तथा तपस्वियोंका परम पद है और समस्त योगों तथा वेदोंका सेवनरूप ही है॥ ३॥

मोक्षपद, अमरता और सभी प्रकारकी सिद्धियाँ श्रीशक्तिके उपासककी सोलहवीं कलाके भी बराबर नहीं हैं॥ ४॥

हे वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! मैं किस विधिसे उन भगवतीकी उपासना करूँ, मुझे यह बताइये। मैंने आपसे मनुष्योंके शुभ कर्मका मनोहर फल सुन लिया, अब आप मुझे उनके अशुभ कर्मोंका फल बतानेकी कृपा कीजिये॥ ५½॥

हे ब्रह्मन्! ऐसा कहकर वह सावित्री भक्तिभावसे अपना कन्धा झुकाकर वेदोक्त स्तोत्रके द्वारा उन धर्मराजकी स्तुति करने लगी॥ ६½॥

सावित्री बोली—प्राचीन कालमें सूर्यने पुष्करक्षेत्रमें तपस्याके द्वारा धर्मकी उपासना की थी। उस समय जिन धर्मको सूर्यने पुत्ररूपमें प्राप्त किया, उन धर्मराजको मैं प्रणाम करती हूँ॥ ७½॥ जो सभी प्राणियोंमें समभाव रखते हैं और जो सबके साक्षी हैं, अतः जिनका नाम शमन है—उन धर्मराजको मैं प्रणाम करती हूँ॥ ८½॥ जो कालके अनुसार इच्छापूर्वक विश्वके सम्पूर्ण प्राणियोंका अन्त करते हैं, उन भगवान् कृतान्तको मैं प्रणाम करती हूँ॥ ९½॥ जो सभी प्राणियोंको नियन्त्रणमें रखते हैं तथा पापियोंकी शुद्धिहेतु उन्हें दण्डित करनेके लिये हाथमें दण्ड धारण करते हैं, उन भगवान् दण्डधरको मैं प्रणाम करती हूँ॥ १०½॥ जो विश्वके सम्पूर्ण प्राणियोंके समयका निरन्तर परिगणन करते हैं तथा जो परम दुर्धर्ष हैं, उन भगवान् कालको मैं प्रणाम करती हूँ॥ ११½॥ जो तपस्वी, ब्रह्मनिष्ठ, संयमी, जितेन्द्रिय तथा जीवोंको उनके कर्मोंका फल देनेवाले हैं, उन भगवान् यमको मैं प्रणाम करती हूँ॥ १२½॥ जो अपनी आत्मामें रमण करनेवाले, सर्वज्ञ, पुण्यात्माओंके मित्र तथा पापियोंके लिये क्लेशप्रद हैं; उन भगवान् पुण्यमित्रको मैं प्रणाम करती हूँ॥ १३½॥ ब्रह्माके अंशसे जिनका जन्म हुआ है तथा जो सदा परब्रह्मका ध्यान करते रहते हैं—ब्रह्मतेजसे दीप्तिमान् उन भगवान् ईशको मैं प्रणाम करती हूँ॥ १४½॥

इत्युक्त्वा सा च सावित्री प्रणनाम यमं मुने॥ १५

यमस्तां शक्तिभजनं कर्मपाकमुवाच ह।

हे मुने! इस प्रकार प्रार्थना करके उस सावित्रीने यमराजको प्रणाम किया। तदनन्तर धर्मराजने उस सावित्रीको भगवतीके मन्त्र तथा प्राणियोंके कर्मफलके विषयमें बतलाया॥ १५½ ॥

इदं यमाष्टकं नित्यं प्रातरुत्थाय यः पठेत्॥ १६

यमात्तस्य भयं नास्ति सर्वपापात्प्रमुच्यते।
महापापी यदि पठेन्नित्यं भक्तिसमन्वितः।
यमः करोति संशुद्धं कायव्यूहेन निश्चितम्॥ १७

जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर इस यमाष्टकका नित्य पाठ करता है, उसे यमराजसे भय नहीं होता और वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है। यदि महान् पापी मनुष्य भी भक्तिपूर्वक नित्य इसका पाठ करे, तो यमराज अपने कायव्यूहसे निश्चितरूपसे उसे शुद्ध कर देते हैं॥ १६-१७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे यमाष्टकवर्णनं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥



अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः

धर्मराजका सावित्रीको अशुभ कर्मोंके फल बताना

श्रीनारायण उवाच

मायाबीजं महामन्त्रं प्रदत्त्वा विधिपूर्वकम्।
कर्माशुभविपाकं च तामुवाच रवेः सुतः॥ १

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] सूर्यपुत्र यमराज सावित्रीको विधिपूर्वक भगवतीके महामन्त्र मायाबीजकी दीक्षा प्रदानकर उसे प्राणियोंके अशुभ कर्मका फल बताने लगे॥ १॥

धर्मराज उवाच

शुभकर्मविपाकान्न नरकं याति मानवः।
कर्माशुभविपाकं च कथयामि निशामय॥ २

धर्मराज बोले—शुभ कर्मके विपाकके कारण मनुष्य नरकमें नहीं जाता है। अब मैं अशुभ कर्मोंका फल कह रहा हूँ, ध्यानपूर्वक सुनो—॥ २॥

नानापुराणभेदेन नामभेदेन भामिनि।
नानाप्रकारं स्वर्गं च याति जीवः स्वकर्मभिः॥ ३

हे भामिनि! अनेक प्रकारके पुराणोंके अनुसार नामभेदसे अनेकविध स्वर्ग हैं। अपने-अपने कर्मोंके अनुसार जीव वहाँ जाता है॥ ३॥

शुभकर्मविपाकान्न नरकं याति कर्मभिः।
कुकर्मणा च नरकं याति नानाविधं नरः॥ ४

मनुष्य अपने शुभ कर्मोंके फलसे नरकमें नहीं जाता है। वह अपने बुरे कर्मके कारण अनेक प्रकारके नरकमें पड़ता है॥ ४॥

नरकाणां च कुण्डानि सन्ति नानाविधानि च।
नानाशास्त्रप्रमाणेन कर्मभेदेन यानि च॥ ५

विस्तृतानि च गर्तानि क्लेशदानि च दुःखिनाम्।
भयङ्कराणि घोराणि हे वत्से कुत्सितानि च॥ ६

षडशीति च कुण्डानि एवमन्यानि सन्ति च।
निबोध तेषां नामानि प्रसिद्धानि श्रुतौ सति॥ ७

नरकोंके अनेक प्रकारके कुण्ड हैं। हे वत्से! विविध शास्त्रोंके प्रमाणोंके अनुसार तथा जीवोंके कर्मभेदसे प्राप्त होनेवाले अत्यन्त विस्तृत, गहरे, पापियोंके लिये क्लेशदायक, भयंकर, घोर तथा कुत्सित कुल छियासी कुण्ड हैं; इसके अतिरिक्त कुछ अन्य कुण्ड भी हैं। हे साध्वि! उन कुण्डोंके वेदप्रसिद्ध नामोंको बता रहा हूँ, ध्यानपूर्वक सुनो॥ ५—७॥

वह्निकुण्डं तप्तकुण्डं क्षारकुण्डं भयानकम्।
विट्कुण्डं मूत्रकुण्डं च श्लेष्मकुण्डं च दुःसहम्॥ ८
गरकुण्डं दूषिकुण्डं वसाकुण्डं तथैव च।
शुक्रकुण्डमसृक्कुण्डमश्रुकुण्डं च कुत्सितम्॥ ९
कुण्डं गात्रमलानां च कर्णविट्कुण्डमेव च।
मज्जाकुण्डं मांसकुण्डं नक्रकुण्डं च दुस्तरम्॥ १०
लोमकुण्डं केशकुण्डमस्थिकुण्डं च दुस्तरम्।
ताम्रकुण्डं लोहकुण्डं प्रतप्तं क्लेशदं महत्॥ ११
चर्मकुण्डं तप्तसुराकुण्डं च परिकीर्तितम्।
तीक्ष्णकण्टककुण्डं च विषोदं विषकुण्डकम्॥ १२
प्रतप्तकुण्डं तैलस्य कुन्तकुण्डं च दुर्वहम्।
कृमिकुण्डं पूयकुण्डं सर्पकुण्डं दुरन्तकम्॥ १३
मशकुण्डं दंशकुण्डं भीमं गरलकुण्डकम्।
कुण्डं च वज्रदंष्ट्राणां वृश्चिकानां च सुव्रते॥ १४
शरकुण्डं शूलकुण्डं खड्गकुण्डं च भीषणम्।
गोलकुण्डं नक्रकुण्डं काककुण्डं शुचास्पदम्॥ १५
मन्थानकुण्डं बीजकुण्डं वज्रकुण्डं च दुःसहम्।
तप्तपाषाणकुण्डं च तीक्ष्णपाषाणकुण्डकम्॥ १६
लालाकुण्डं मसीकुण्डं चूर्णकुण्डं तथैव च।
चक्रकुण्डं वक्रकुण्डं कूर्मकुण्डं महोल्बणम्॥ १७
ज्वालाकुण्डं भस्मकुण्डं दग्धकुण्डं शुचिस्मिते।
तप्तसूचीमसिपत्रं क्षुरधारं सूचीमुखम्॥ १८
गोकामुखं नक्रमुखं गजदंशं च गोमुखम्।
कुम्भीपाकं कालसूत्रं मत्स्योदं कृमितन्तुकम्॥ १९
पांसुभोज्यं पाशवेष्टं शूलप्रोतं प्रकम्पनम्।
उल्कामुखमन्धकूपं वेधनं ताडनं तथा॥ २०
जालरन्ध्रं देहचूर्णं दलनं शोषणं कषम्।
शूर्पं ज्वालामुखं चैव धूमान्धं नागवेष्टनम्॥ २१
कुण्डान्येतानि सावित्रि पापिनां क्लेशदानि च।
नियुतैः किङ्करगणै रक्षितानि च सन्ततम्॥ २२
दण्डहस्तैः पाशहस्तैर्मदमत्तैर्भयङ्करैः।
शक्तिहस्तैर्गदाहस्तैरसिहस्तैः सुदारुणैः॥ २३

वह्निकुण्ड, तप्तकुण्ड, भयानक क्षारकुण्ड, विट्कुण्ड, मूत्रकुण्ड, दुःसह श्लेष्मकुण्ड, गरकुण्ड, दूषिकुण्ड, वसाकुण्ड, शुक्रकुण्ड, असृक्कुण्ड, कुत्सित अश्रुकुण्ड, गात्रमलकुण्ड, कर्णविट्कुण्ड, मज्जाकुण्ड, मांसकुण्ड, दुस्तर नक्रकुण्ड, लोमकुण्ड, केशकुण्ड, दुस्तर अस्थिकुण्ड, ताम्रकुण्ड, प्रतप्त एवं महान् कष्टदायक लोहकुण्ड, चर्मकुण्ड, तप्तसुराकुण्ड, तीक्ष्ण कण्टककुण्ड, विषपूर्ण विषकुण्ड—ये कुण्ड बताये गये हैं॥ ८—१२॥

हे सुव्रते! इसी प्रकार प्रतप्त तैलकुण्ड, दुर्वह कुन्तकुण्ड, कृमिकुण्ड, पूयकुण्ड, अत्यन्त कष्टप्रद सर्पकुण्ड, मशककुण्ड, दंशकुण्ड, भयानक गरलकुण्ड और वज्रके समान दाँतोंवाले बिच्छुओंके भी कुण्ड हैं। हे शुचिस्मिते! शरकुण्ड, शूलकुण्ड, भयंकर खड्गकुण्ड, गोलकुण्ड, नक्रकुण्ड, कष्टदायक काककुण्ड, मन्थानकुण्ड, बीजकुण्ड, दुःसह वज्रकुण्ड, तप्तपाषाणकुण्ड, तीक्ष्णपाषाणकुण्ड, लालाकुण्ड, मसीकुण्ड, चूर्णकुण्ड, चक्रकुण्ड, वक्रकुण्ड, महाभयंकर कूर्मकुण्ड, ज्वालाकुण्ड, भस्मकुण्ड, दग्धकुण्ड, तप्तसूचीकुण्ड, असिपत्रकुण्ड, क्षुरधारकुण्ड, सूचीमुखकुण्ड, गोकामुखकुण्ड, नक्रमुखकुण्ड, गजदंशकुण्ड, गोमुखकुण्ड, कुम्भीपाककुण्ड, कालसूत्रकुण्ड, मत्स्योदकुण्ड, कृमितन्तु-कुण्ड, पांसुभोज्यकुण्ड, पाशवेष्टकुण्ड, शूलप्रोतकुण्ड, प्रकम्पनकुण्ड, उल्कामुखकुण्ड, अन्धकूपकुण्ड, वेधनकुण्ड, ताडनकुण्ड, जालरन्ध्रकुण्ड, देहचूर्णकुण्ड, दलनकुण्ड, शोषणकुण्ड, कषकुण्ड, शूर्पकुण्ड, ज्वालामुखकुण्ड, धूमान्धकुण्ड और नागवेष्टनकुण्ड—ये कुण्ड कहे गये हैं॥ १३—२१॥

हे सावित्रि! ये सभी कुण्ड पापियोंके लिये क्लेशप्रद हैं। दस लाख अनुचर सदा इन कुण्डोंकी रखवाली करते रहते हैं। वे सभी निर्दयी, अभिमानमें चूर तथा भयंकर सेवकगण अपने हाथोंमें दण्ड, पाश, शक्ति, गदा और तलवार लिये रहते हैं। वे तमोगुणसे युक्त तथा दयाशून्य रहते हैं और कोई भी उनका प्रतिरोध नहीं कर सकता। उन तेजस्वी तथा निर्भीक अनुचरोंकी आँखें ताँबेके सदृश तथा कुछ-कुछ पीले

तमोयुक्तैर्दयाहीनैर्निवार्यैश्च न सर्वतः।
तेजस्विभिश्च निःशङ्कैराताम्रपिङ्गलोचनैः॥ २४

योगयुक्तैः सिद्धियुक्तैर्नानारूपधरैर्भटैः।
आसन्नमृत्युभिर्दृष्टैः पापिभिः सर्वजीविभिः॥ २५

स्वकर्मनिरतैः सर्वैः शाक्तैः सौरैश्च गाणपैः।
अदृश्यैः पुण्यकृद्भिश्च सिद्धैर्योगिभिरेव च॥ २६

स्वधर्मनिरतैर्वापि विततैर्वा स्वतन्त्रकैः।
बलवद्भिश्च निःशङ्कैः स्वप्नदृष्टैश्च वैष्णवैः॥ २७

एतत्ते कथितं साध्वि कुण्डसंख्यानिरूपणम्।
येषां निवासो यत्कुण्डे निबोध कथयामि ते॥ २८

वर्णकी हैं। योगयुक्त तथा सिद्धियोंसे सम्पन्न वे सभी सेवक अनेक प्रकारके रूप धारण कर लिया करते हैं। वे सेवक समस्त पापी प्राणियोंको उनकी मृत्यु निकट आनेपर दिखायी पड़ते हैं। शक्ति, सूर्य तथा गणपतिके उपासकों एवं अपने कर्मोंमें लगे रहनेवाले पुण्यशाली सिद्धों तथा योगियोंको वे दिखायी नहीं पड़ते। इसी प्रकार जो सदा अपने धर्ममें लगे रहते हैं, जिनका हृदय विशाल है, जो पूर्ण स्वतन्त्र हैं तथा जिन्हें स्वप्नमें या कहीं भी अपने इष्टदेवका दर्शन हो चुका है—ऐसे वैष्णवजनोंको वे बलवान् तथा निःशंक यमदूत कभी दिखायी नहीं पड़ते॥ २२—२७॥

हे साध्वि! यह मैंने तुमसे कुण्डोंकी संख्याका निरूपण कर दिया। जिन-जिन पापियोंका जिन-जिन कुण्डोंमें वास होता है, अब मैं तुम्हें यह बता रहा हूँ, ध्यानसे सुनो॥ २८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे नारायणनारदसंवादे सावित्र्युपाख्याने कुण्डसंख्यानिरूपणं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः॥ ३२॥

अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

विभिन्न नरककुण्डोंमें जानेवाले पापियों तथा उनके पापोंका वर्णन

धर्मराज उवाच

हरिसेवारतः शुद्धो योगसिद्धो व्रती सति।
तपस्वी ब्रह्मचारी च न याति नरकं ध्रुवम्॥ १

कटुवाचा बान्धवांश्च बललेपेन यो नरः।
दग्धान्करोति बलवान् वह्निकुण्डं प्रयाति सः॥ २

स्वगात्रलोममानाब्दं तत्र स्थित्वा हुताशने।
पशुयोनिमवाप्नोति रौद्रदग्धां त्रिजन्मनि॥ ३

ब्राह्मणं तृषितं तप्तं क्षुधितं गृहमागतम्।
न भोजयति यो मूढस्तप्तकुण्डं प्रयाति सः॥ ४

तत्र तल्लोममानं च वर्षं स्थित्वा च दुःखदे।
तप्तस्थले वह्नितल्पे पक्षी च सप्तजन्मसु॥ ५

धर्मराज बोले—हे साध्वि! भगवान् श्रीहरिकी सेवामें संलग्न रहनेवाला, विशुद्धात्मा, योगसिद्ध, व्रती, तपस्वी तथा ब्रह्मचारी पुरुष निश्चित ही नरकमें नहीं जाता॥ १॥

जो बलशाली मनुष्य बलके अभिमानमें आकर अपने कटुवचनसे बान्धवोंको दग्ध करता है, वह वह्निकुण्ड नामक नरकमें जाता है और अपने शरीरमें विद्यमान रोमोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक उस वह्निकुण्डमें वास करके वह तीन जन्मोंतक रौद्रदग्ध पशुयोनि प्राप्त करता है॥ २-३॥

जो मूर्ख घरपर आये हुए भूखे-प्यासे दुःखी ब्राह्मणको भोजन नहीं कराता है, वह तप्तकुण्ड नामक नरकमें जाता है। उस ब्राह्मणके शरीरमें विद्यमान रोमोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक उस दुःखप्रद नरकमें वास करके वह सात जन्मोंतक पक्षीकी योनिमें पैदा होकर तपते हुए स्थानपर वह्निशय्यापर यातना भोगता है॥ ४-५॥

रविवारे च संक्रान्त्याममायां श्राद्धवासरे।
वस्त्राणां क्षारसंयोगं करोति केवलं नरः॥ ६

स याति क्षारकुण्डं च सूत्रमानाब्दमेव च।
स व्रजेद्रजकीं योनिं सप्तजन्मसु भारते॥ ७

मूलप्रकृतिनिन्दां यः कुरुते मानवाधमः।
वेदनिन्दां शास्त्रनिन्दां पुराणानां तथैव च॥ ८

ब्रह्मविष्णुशिवादीनां तथा निन्दापरो जनः।
गौरीवाण्यादिदेवीनां तथा निन्दापरो जनः॥ ९

ते सर्वे निरये यान्ति तस्मिन्कुण्डे भयानके।
नातः परतरं कुण्डं दुःखदं तु भविष्यति॥ १०

तत्र स्थित्वानेककल्पं सर्पयोनिं व्रजेत्पुनः।
देवीनिन्दापराधस्य प्रायश्चित्तं न विद्यते॥ ११

स्वदत्तां परदत्तां वा वृत्तिं च सुरविप्रयोः।
षष्टिवर्षसहस्राणि विट्कुण्डं च प्रयाति सः॥ १२

तावन्त्येव च वर्षाणि विड्भोजी तत्र तिष्ठति।
षष्टिवर्षसहस्राणि विट्कृमिश्च पुनर्भुवि॥ १३

परकीयतडागे च तडागं यः करोति च।
उत्सृजेद्दैवदोषेण मूत्रकुण्डं प्रयाति सः॥ १४

तद्रेणुमानवर्षं च तद्भोजी तत्र तिष्ठति।
पुनः पूर्णशताब्दं च स वृषो भारते भवेत्॥ १५

एकाकी मिष्टमश्नाति श्लेष्मकुण्डं प्रयाति च।
पूर्णमब्दशतं चैव तद्भोजी तत्र तिष्ठति॥ १६

ततः पूर्णशताब्दं च स प्रेतो भारते भवेत्।
श्लेष्ममूत्रपरं चैव पूयं भुङ्क्ते ततः शुचिः॥ १७

जो मनुष्य रविवार, सूर्यसंक्रान्ति, अमावास्या और श्राद्धके अवसरपर क्षार पदार्थोंसे वस्त्र धोता है, वह क्षारकुण्ड नामक नरकमें जाता है और उस वस्त्रमें विद्यमान सूतोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक वहाँ निवास करता है। इसके बाद भारतवर्षमें सात जन्मोंतक रजकयोनिमें उसे जन्म लेना पड़ता है॥ ६-७॥

जो अधम मनुष्य मूलप्रकृति भगवती जगदम्बाकी निन्दा करता है, जो वेद-शास्त्र तथा पुराणोंकी निन्दा करता है, जो ब्रह्मा-विष्णु-शिव आदि देवताओंकी निन्दामें संलग्न रहता है और जो मनुष्य गौरी-सरस्वती आदि देवियोंकी निन्दामें तत्पर रहता है—वे सब उस भयानक नरककुण्डमें जाते हैं, जिससे बढ़कर दुःखदायी दूसरा कोई कुण्ड नहीं होता। उस कुण्डमें अनेक कल्पोंतक वास करके वह मनुष्य सर्पयोनिको प्राप्त होता है। भगवतीकी निन्दाके अपराधका कोई प्रायश्चित्त ही नहीं है॥ ८—११॥

जो मनुष्य अपने या दूसरेके द्वारा दी गयी देवता अथवा ब्राह्मणकी वृत्तिको छीनता है, वह साठ हजार वर्षोंके लिये विट्कुण्ड नामक नरकमें जाता है और उतने ही वर्षोंतक विष्ठाभोजी बनकर वहाँ रहता है। इसके बाद वह पुनः पृथ्वीपर साठ हजार वर्षोंतक विष्ठाका कृमि होता है॥ १२-१३॥

जो व्यक्ति दूसरोंके बनवाये तड़ागमें अपने नामसे निर्माण करता है और फिर जनताके लिये उसका उत्सर्ग (लोकार्पण) करता है, वह उस दोषके कारण मूत्रकुण्ड नामक नरकमें जाता है। वहाँपर वह उस तड़ागके रज-कणकी संख्याके बराबर वर्षोंतक उसी मूत्र आदिको ग्रहण करते हुए रहता है और पुनः भारतवर्षमें पूरे सौ वर्षोंतक वृषकी योनिमें रहता है॥ १४-१५॥

जो अकेले ही मिष्टान्न आदिका भक्षण करता है, वह श्लेष्मकुण्ड नामक नरकमें जाता है और उसी श्लेष्माको खाते हुए पूरे सौ वर्षोंतक वहाँ रहता है। इसके बाद वह भारतवर्षमें पूरे सौ वर्षोंतक प्रेतयोनिमें पड़ा रहता है; यहाँ श्लेष्मा, मूत्र तथा पीव आदिका उसे भक्षण करना पड़ता है, तत्पश्चात् उसकी शुद्धि हो जाती है॥ १६-१७॥

पितरं मातरं चैव गुरुं भार्यां सुतं सुताम्।
यो न पुष्णात्यनाथं च गरकुण्डं प्रयाति सः॥ १८

पूर्णमब्दशतं चैव तद्भोजी तत्र तिष्ठति।
ततो व्रजेद्भूतयोनिं शतवर्षं ततः शुचिः॥ १९

जो मनुष्य माता, पिता, गुरु, पत्नी, पुत्र, पुत्री और अनाथका भरण-पोषण नहीं करता; वह गरकुण्ड (विषकुण्ड) नामक नरकमें जाता है और वहाँपर उसी विषको खाते हुए वह पूरे सौ वर्षोंतक पड़ा रहता है। तदनन्तर वह सौ वर्षोंतकके लिये भूतयोनिमें जाता है, इसके बाद वह शुद्ध होता है॥ १८-१९॥

दृष्ट्वातिथिं वक्रचक्षुः करोति यो हि मानवः।
पितृदेवास्तस्य जलं न गृह्णन्ति च पापिनः॥ २०

यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च।
इहैव लभते चान्ते दूषिकाकुण्डमाव्रजेत्॥ २१

पूर्णमब्दशतं चैव तद्भोजी तत्र तिष्ठति।
ततो व्रजेद्भूतयोनिं शतवर्षं ततः शुचिः॥ २२

जो मनुष्य अतिथिको देखकर [उसके प्रति उपेक्षाभावसे] अपनी दृष्टिको वक्र कर लेता है, उस पापीके जलको देवता तथा पितर ग्रहण नहीं करते और ब्रह्महत्या आदि जो कुछ भी पाप हैं, उन सबका फल उसे इसी लोकमें भोगना पड़ता है। अन्तमें वह दूषिकाकुण्ड नामक नरकमें जाता है और वहाँपर दूषित पदार्थोंको खाते हुए पूरे सौ वर्षोंतक निवास करता है। तत्पश्चात् सौ वर्षोंतक भूतयोनिमें रहनेके अनन्तर उसकी शुद्धि हो जाती है॥ २०—२२॥

दत्त्वा द्रव्यं च विप्राय चान्यस्मै दीयते यदि।
स तिष्ठति वसाकुण्डे तद्भोजी शतवत्सरम्॥ २३

कृकलासो भवेत्सोऽपि भारते सप्तजन्मसु।
ततो भवेन्महारौद्रो दरिद्रोऽल्पायुरेव च॥ २४

यदि कोई मनुष्य ब्राह्मणको द्रव्यका दान करनेके बाद वह द्रव्य किसी अन्यको दे देता है, तो वह वसाकुण्ड नामक नरकमें जाता है और उसी वसाको खाते हुए उसे सौ वर्षोंतक वहीं रहना पड़ता है। तदनन्तर उसे भारतवर्षमें सात जन्मोंतक गिरगिट होना पड़ता है। उसके बाद वह महान् क्रोधी, दरिद्र तथा अल्पायु प्राणीके रूपमें जन्म लेता है॥ २३-२४॥

पुमांसं कामिनी वापि कामिनीं वा पुमानथ।
यः शुक्रं पाययत्येव शुक्रकुण्डं प्रयाति सः॥ २५

पूर्णमब्दशतं चैव तद्भोजी तत्र तिष्ठति।
कृमियोनिं शताब्दं च व्रजेद्भूत्वा ततः शुचिः॥ २६

यदि कोई स्त्री परपुरुषसे सम्बन्ध रखती है अथवा कोई पुरुष परनारीमें वीर्याधान करता है, वह शुक्रकुण्ड नामक नरकमें जाता है। वहाँपर उसी वीर्यको खाते हुए उसे पूरे सौ वर्षोंतक रहना पड़ता है। इसके बाद वह सौ वर्षोंतक कीटयोनिमें रहता है, तदनन्तर शुद्ध होता है॥ २५-२६॥

सन्ताड्य च गुरुं विप्रं रक्तपातं च कारयेत्।
स च तिष्ठत्यसृक्कुण्डे तद्भोजी शतवत्सरम्॥ २७

ततो लभेद्व्याघ्रजन्म सप्तजन्मसु भारते।
ततः शुद्धिमवाप्नोति मानवश्च क्रमेण ह॥ २८

जो व्यक्ति गुरु अथवा ब्राह्मणको मारकर उनके शरीरसे रक्त बहाता है, वह असृक्कुण्ड नामक नरकमें जाता है और उसी रक्तका पान करते हुए उसे वहाँ सौ वर्षोंतक रहना पड़ता है। तदनन्तर वह भारतवर्षमें सात जन्मोंतक व्याघ्रका जन्म प्राप्त करता है। इस प्रकार वह क्रमसे शुद्ध होता है और वह फिरसे मानवयोनिमें जन्म लेता है॥ २७-२८॥

योऽश्रु तत्याज गायन्तं भक्तं दृष्ट्वा सगद्गदम्।
श्रीकृष्णगुणसङ्गीते हसत्येव हि यो नरः॥ २९

स वसेदश्रुकुण्डे च तद्भोजी शतवर्षकम्।
ततो भवेच्च चाण्डालस्त्रिजन्मनि ततः शुचिः॥ ३०

करोति शठतां तद्वन्नित्यं सुहृदि यो नरः।
कुण्डं गात्रमलानां च स प्रयाति शताब्दकम्॥ ३१

ततः स गार्दभीं योनिमवाप्नोति त्रिजन्मनि।
त्रिजन्मनि च शार्गालीं ततः शुद्धो भवेद् ध्रुवम्॥ ३२

बधिरं यो हसत्येव निन्दत्येवाभिमानतः।
स वसेत्कर्णविट्कुण्डे तद्भोजी शतवत्सरम्॥ ३३

ततो भवेत्स बधिरो दरिद्रः सप्तजन्मसु।
सप्तजन्मन्यङ्गहीनस्ततः शुद्धिं लभेद् ध्रुवम्॥ ३४

लोभात्स्वभरणार्थाय जीविनं हन्ति यो नरः।
मज्जाकुण्डे वसेत्सोऽपि तद्भोजी लक्षवत्सरम्॥ ३५

ततो भवेच्च शशको मीनश्च सप्तजन्मसु।
त्रिजन्मनि वराहश्च कुक्कुटः सप्तजन्मसु॥ ३६

एणादयश्च कर्मभ्यस्ततः शुद्धिं लभेद् ध्रुवम्।
स्वकन्यापालनं कृत्वा विक्रीणाति च यो नरः॥ ३७

अर्थलोभान्महामूढो मांसकुण्डं प्रयाति सः।
कन्यालोमप्रमाणाब्दं तद्भोजी तत्र तिष्ठति॥ ३८

भगवान् श्रीकृष्णका प्रेमपूर्वक गुणगान करनेवाले भक्तको देखकर जो मनुष्य खेदपूर्वक आँसू बहाता है तथा उनके गुणसम्बन्धी संगीतके अवसरपर जो उपहास करता है, वह सौ वर्षोंतक अश्रुकुण्ड नामक नरकमें वास करता है और वहाँ उसी अश्रुको भोजनके रूपमें उसे ग्रहण करना पड़ता है, तत्पश्चात् वह तीन जन्मोंतक चाण्डालकी योनिमें पैदा होता है, तब वह शुद्ध होता है॥ २९-३०॥

उसी प्रकार जो मनुष्य सहृदय व्यक्तिके साथ सदा शठताका व्यवहार करता है, वह गात्रमलकुण्ड नामक नरकमें जाता है और सौ वर्षोंतक वहाँ वास करता है। तदनन्तर वह तीन जन्मोंतक गर्दभ-योनिमें तथा तीन जन्मोंतक शृगाल-योनिमें जन्म लेता है, इसके बाद वह निश्चित ही शुद्ध हो जाता है॥ ३१-३२॥

जो मनुष्य किसी बहरेको देखकर हँसता है और अभिमानपूर्वक उसकी निन्दा करता है, वह कर्णविट्कुण्ड नामक नरकमें सौ वर्षोंतक वास करता है और वहाँ रहते हुए कानकी मैलका भोजन करता है। तत्पश्चात् वह सात जन्मोंतक दरिद्र तथा बहरा होता है। पुनः सात जन्मोंतक अंगहीन होकर वह जन्म लेता है, तदनन्तर उसकी शुद्धि होती है॥ ३३-३४॥

जो मनुष्य लोभके वशीभूत होकर अपने भरण-पोषणके लिये जीवोंकी हत्या करता है, वह मज्जाकुण्ड नामक नरकमें लाख वर्षोंतक वास करता है और वहाँपर भोजनमें उसे वही मज्जा ही मिलती है। तदनन्तर वह सात जन्मोंतक खरगोश और मछली, तीन जन्मोंतक सूअर और सात जन्मोंतक कुक्कुट होकर जन्म लेता है, फिर कर्मोंके प्रभावसे वह मृग आदि योनियाँ प्राप्त करता है, तत्पश्चात् वह शुद्धि प्राप्त कर लेता है॥ ३५-३६½॥

जो मनुष्य अपनी कन्याको पाल-पोसकर धनके लोभसे उसे बेच देता है, वह महामूर्ख मांसकुण्ड नामक नरकमें जाता है। उस कन्याके शरीरमें विद्यमान रोमोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक वह उस नरकमें रहता है और वहाँपर उसे भोजनके रूपमें वही

तस्य दण्डप्रहारं च कुर्वन्ति यमकिङ्कराः।
मांसभारं मूर्ध्नि कृत्वा रक्तभारं लिहेत्क्षुधा॥ ३९

ततो हि भारते पापी कन्याविट्कृमिगो भवेत्।
षष्टिवर्षसहस्राणि व्याधश्च सप्तजन्मसु॥ ४०

त्रिजन्मनि वराहश्च कुक्कुटः सप्तजन्मसु।
मण्डूको हि जलौकाश्च सप्तजन्मसु भारते॥ ४१

सप्तजन्मसु काकश्च ततः शुद्धिं लभेद् ध्रुवम्।
व्रतानामुपवासानां श्राद्धादीनां च सङ्गमे॥ ४२

करोति यः क्षौरकर्म सोऽशुचिः सर्वकर्मसु।
स च तिष्ठति कुण्डे च नखादीनाञ्च सुन्दरि॥ ४३

तद्दैवदिनमानाब्दं तद्भोजी दण्डताडितः।
सकेशं पार्थिवं लिङ्गं यो वार्चयति भारते॥ ४४

स तिष्ठति केशकुण्डे मृद्रेणुमानवर्षकम्।
तदन्ते यावनीं योनिं प्रयाति हरकोपतः॥ ४५

शताब्दाच्छुद्धिमाप्नोति राक्षसः स भवेद् ध्रुवम्।
पितॄणां यो विष्णुपदे पिण्डं नैव ददाति च॥ ४६

स च तिष्ठत्यस्थिकुण्डे स्वलोमाब्दं महोल्बणे।
ततः सुयोनिं सम्प्राप्य कुखञ्जः सप्तजन्मसु॥ ४७

भवेन्महादरिद्रश्च ततः शुद्धो हि देहतः।
यः सेवते महामूढो गुर्विणीं च स्वकामिनीम्॥ ४८

प्रतप्ते ताम्रकुण्डे च शतवर्षं स तिष्ठति।
अवीरान्नं च यो भुङ्क्ते ऋतुस्नातान्नमेव च॥ ४९

मांस खाना पड़ता है। यमदूत उसपर दण्ड-प्रहार करते हैं। उसे मांस तथा रक्तका बोझ मस्तकपर उठाकर ढोना पड़ता है और रक्त आदिको चाटकर वह अपनी क्षुधा शान्त करता है। तत्पश्चात् वह पापी साठ हजार वर्षोंतक भारतवर्षमें उस कन्याकी विष्ठाका कीड़ा बनकर रहता है। इसके बाद भारतवर्षमें सात जन्मोंतक व्याध, तीन जन्मोंतक सूअर, सात जन्मोंतक कुक्कुट, सात जन्मोंतक मेढक और जोंक तथा पुनः सात जन्मोंतक कौएकी योनि प्राप्त करता है, तत्पश्चात् वह शुद्ध होता है॥ ३७—४१½ ॥

जो मनुष्य व्रतों, उपवासों और श्राद्धों आदिके अवसरपर क्षौरकर्म करता है, वह सम्पूर्ण कर्मोंके लिये अपवित्र हो जाता है। हे सुन्दरि! वह नख आदि कुण्डोंमें उन दिनोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक वास करता है, उन्हीं दुष्पदार्थोंका भक्षण करता है और डण्डोंसे पीटा जाता है॥ ४२-४३½ ॥

जो भारतवर्षमें केशयुक्त मिट्टीसे बने पार्थिव लिंगकी पूजा करता है, वह उस मृदामें विद्यमान रजकणोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक केशकुण्ड नामक नरकमें निवास करता है। तदनन्तर भगवान् शिवके कोपके कारण वह यवनयोनिमें जन्म लेता है और फिर वह राक्षसयोनिमें जन्म ग्रहण करता है तथा सौ वर्षके पश्चात् उसकी शुद्धि हो जाती है॥ ४४-४५½ ॥

जो मनुष्य विष्णुपदतीर्थ (गयातीर्थ)-में पितरोंको पिण्ड नहीं देता, वह अपने शरीरके रोमोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक अस्थिकुण्ड नामक अत्यन्त भयानक कुण्डमें वास करता है। तत्पश्चात् वह मानवयोनि प्राप्तकर सात जन्मोंतक लँगड़ा तथा महान् दरिद्र होता है। तत्पश्चात् उसकी देहशुद्धि हो जाती है॥ ४६-४७½ ॥

जो महामूर्ख मनुष्य अपनी गर्भवती स्त्रीके साथ सहवास करता है, वह सौ वर्षोंतक अत्यन्त तपते हुए ताम्रकुण्ड नामक नरकमें निवास करता है॥ ४८½ ॥

जो व्यक्ति पति-पुत्रहीन स्त्री तथा ऋतुस्नाता स्त्रीका अन्न खाता है, वह जलते हुए लोहकुण्ड नामक नरकमें सौ वर्षोंतक रहता है। इसके बाद वह

लोहकुण्डे शताब्दं च स च तिष्ठति तप्तके।
स व्रजेद्रजकीं योनिं काकानां सप्तजन्मसु॥ ५०

महाव्रणी दरिद्रश्च ततः शुद्धो भवेन्नरः।
यो हि चर्माक्तहस्तेन देवद्रव्यमुपस्पृशेत्॥ ५१

शतवर्षप्रमाणं च चर्मकुण्डे स तिष्ठति।
यः शूद्रेणाभ्यनुज्ञातो भुङ्क्ते शूद्रान्नमेव च॥ ५२

स च तप्तसुराकुण्डे शताब्दं तिष्ठति द्विजः।
ततो भवेच्छूद्रयाजी ब्राह्मणः सप्तजन्मसु॥ ५३

शूद्रश्राद्धान्नभोजी च ततः शुद्धो भवेद् ध्रुवम्।
वाग्दुष्टः कटुको वाचा ताडयेत्स्वामिनं सदा॥ ५४

तीक्ष्णकण्टककुण्डे स तद्भोजी तत्र तिष्ठति।
ताडितो यमदूतेन दण्डेन च चतुर्गुणम्॥ ५५

ततः उच्चैःश्रवाः सप्तजन्मस्वेव ततः शुचिः।
विषेण जीवनं हन्ति निर्दयो यो हि मानवः॥ ५६

विषकुण्डे च तद्भोजी सहस्राब्दं च तिष्ठति।
ततो भवेन्नृघाती च व्रणी च शतजन्मसु॥ ५७

सप्तजन्मसु कुष्ठी च ततः शुद्धो भवेद् ध्रुवम्।
दण्डेन ताडयेद् गां हि वृषञ्च वृषवाहकः॥ ५८

भृत्यद्वारा स्वतन्त्रो वा पुण्यक्षेत्रे च भारते।
प्रतप्ते तैलकुण्डेऽग्नौ तिष्ठति स्म चतुर्युगम्॥ ५९

गवां लोमप्रमाणाब्दं वृषो भवति तत्परम्।
कुन्तेन हन्ति यो जीवं वह्निलोहेन हेलया॥ ६०

सात जन्मोंतक रजक तथा कौएकी योनि पाता है। उस समय वह दरिद्र रहता है और विशाल घावोंसे युक्त रहता है, तदनन्तर वह मनुष्य शुद्ध हो जाता है॥ ४९-५०½ ॥

जो व्यक्ति चर्मसे स्पर्शित हाथके द्वारा देवद्रव्यका स्पर्श करता है, वह सौ वर्षोंतक चर्मकुण्ड नामक नरकमें वास करता है॥ ५१½ ॥

जो ब्राह्मण किसी शूद्रसे स्वीकृति प्राप्तकर उसका अन्न खाता है, वह तप्तसुराकुण्ड नामक नरकमें सौ वर्षोंतक वास करता है। तत्पश्चात् वह सात जन्मोंतक शूद्रयाजी (शूद्रोंका यज्ञ करानेवाला) ब्राह्मण होता है और शूद्रोंका श्राद्धान्न ग्रहण करता है, तदनन्तर वह अवश्य ही शुद्ध हो जाता है॥ ५२-५३½ ॥

जो कटुभाषी मनुष्य कठोर वचनके द्वारा अपने स्वामीको सदा पीडित करता रहता है, वह तीक्ष्णकण्टककुण्ड नामक नरकमें वास करता है और उसे वहाँपर कण्टक ही खानेको मिलते हैं। यमदूतके द्वारा डंडेसे वह चार गुना ताडित किया जाता है। उसके बाद वह सात जन्मतक अश्वकी योनि प्राप्त करता है, फिर वह शुद्ध हो जाता है॥ ५४-५५½ ॥

जो दयाहीन मनुष्य विषके द्वारा किसी प्राणीकी हत्या करता है, वह हजार वर्षोंतक विषकुण्ड नामक नरकमें रहता है और वहाँपर उसे उसी विषका भोजन करना पड़ता है। उसके बाद वह नरघाती सात जन्मोंतक बड़े-बड़े घावोंसे युक्त तथा सात जन्मोंतक कोढ़से ग्रस्त रहता है, तत्पश्चात् वह अवश्य ही शुद्ध हो जाता है॥ ५६-५७½ ॥

पुण्यक्षेत्र भारतवर्षमें जो वृषवाहक गायको और बैलको डण्डेसे स्वयं मारता है अथवा सेवकके द्वारा मरवाता है, उसे चार युगोंतक तपते हुए तैलकुण्ड नामक नरकमें वास करना पड़ता है और तत्पश्चात् उस गायके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं, उतने वर्षोंतक उसे बैल होना पड़ता है॥ ५८-५९½ ॥

हे साध्वि! जो मनुष्य भालेसे अथवा अग्निमें तपाये गये लोहेसे किसी प्राणीकी उपेक्षापूर्वक हत्या कर देता है, वह दस हजार वर्षोंतक कुन्तकुण्ड

कुन्तकुण्डे वसेत्सोऽपि वर्षाणामयुतं सति।
ततः सुयोनिं सम्प्राप्य चोदरे व्याधिसंयुतः॥ ६१

जन्मनैकेन क्लेशेन ततः शुद्धो भवेन्नरः।
यो भुङ्क्ते च वृथा मांसं मांसलोभी द्विजाधमः॥ ६२

हरेरनैवेद्यभोजी कृमिकुण्डं प्रयाति सः।
स्वलोममानवर्षं च तद्भोजी तत्र तिष्ठति॥ ६३

ततो भवेन्म्लेच्छजातिस्त्रिजन्मनि ततो द्विजः।
ब्राह्मणः शूद्रयाजी च शूद्रश्राद्धान्नभोजकः॥ ६४

शूद्राणां शवदाही च पूयकुण्डे वसेद् ध्रुवम्।
यावल्लोमप्रमाणाब्दं यमदण्डेन सुव्रते॥ ६५

ताडितो यमदूतेन तद्भोजी तत्र तिष्ठति।
ततो भारतमागत्य स शूद्रः सप्तजन्मसु॥ ६६

महारोगी दरिद्रश्च बधिरो मूक एव च।
कृष्णं पद्मं च के यस्य तं सर्पं हन्ति यो नरः॥ ६७

स्वलोममानवर्षं च सर्पकुण्डं प्रयाति सः।
सर्पेण भक्षितः सोऽथ यमदूतेन ताडितः॥ ६८

वसेच्च सर्पविड्भोजी ततः सर्पो भवेद् ध्रुवम्।
ततो भवेन्मानवश्च स्वल्पायुर्दद्रुसंयुतः॥ ६९

महाक्लेशेन तन्मृत्युः सर्पेण भक्षिताद् ध्रुवम्।
विधिप्रदत्तजीव्यांश्च क्षुद्रजन्तूंश्च हन्ति यः॥ ७०

नामक नरकमें वास करता है। तत्पश्चात् उत्तम मानवयोनिमें जन्म प्राप्त करके वह उदररोगसे पीडित होता है। इस प्रकार एक ही जन्ममें कष्ट भोगनेके पश्चात् वह मनुष्य शुद्ध हो जाता है॥ ६०–६१½ ॥

जो अधम द्विज भगवत्प्रसादका त्याग करके मांसस्वादके लोभसे व्यर्थ ही मांस-भक्षण करता है, वह कृमिकुण्डमें जाता है। वहाँ अपने शरीरके रोमोंकी संख्याके समान वर्षोंतक रोमका ही भक्षण करता हुआ वह पड़ा रहता है। फिर तीन जन्मोंतक म्लेच्छ जातिमें जन्म लेकर पुनः द्विज होता है॥ ६२–६३½ ॥

जो ब्राह्मण शूद्रोंका यज्ञ कराता है, शूद्रोंका श्राद्धान्न खाता है तथा शूद्रोंका शव जलाता है, वह अपने शरीरमें जितने रोएँ हैं; उतने वर्षोंतक पूयकुण्ड नामक नरकमें अवश्य वास करता है। हे सुव्रते! वह उस नरकमें यमदूतके द्वारा यमदण्डसे पीटा जाता है तथा पीवका भोजन करते हुए पड़ा रहता है। तत्पश्चात् वह भारतवर्षमें जन्म लेकर सात जन्मोंतक शूद्र रहता है। उस समय वह अत्यन्त रोगी, दरिद्र, बहरा तथा गूँगा रहता है॥ ६४—६६½ ॥

कृष्णवर्णवाले तथा जिसके मस्तकपर कमल-चिह्न विद्यमान हो, उस सर्पको जो मनुष्य मारता है, वह अपने शरीरके रोमोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतकके लिये सर्पकुण्ड नामक नरकमें जाता है। उसे वहाँपर सर्प काटते हैं तथा यमदूत उसे पीटते हैं। सर्पकी विष्ठा खाते हुए वह उस नरकमें वास करता है। तत्पश्चात् उसे निश्चय ही सर्पयोनि प्राप्त होती है। तदनन्तर वह मानवयोनि प्राप्त करता है, उस समय वह दाद आदि रोगोंसे युक्त तथा अल्प आयुवाला होता है। उसके बाद सर्पके काटनेसे अत्यन्त कष्टपूर्वक उसकी मृत्यु होती है, यह निश्चित है॥ ६७—६९½ ॥

ब्रह्माके विधानके अनुसार रक्तपान आदिपर जीवित रहनेवाले [मच्छर आदि] क्षुद्र जन्तुओंको जो व्यक्ति मारता है, वह उन जन्तुओंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक दंशकुण्ड और मशककुण्ड नामक नरकमें

स दंशमशयोः कुण्डे जन्तुमानाब्दमेव च।
दिवानिशं भक्षितस्तैरनाहारश्च शब्दवान्॥ ७१

हस्तपादादिबद्धश्च यमदूतेन ताडितः।
ततो भवेत्क्षुद्रजन्तुर्जातिश्च यावनी भवेत्॥ ७२

ततो भवेन्मानवश्च सोऽङ्गहीनस्ततः शुचिः।
यो मूढो मधुमश्नाति हत्वा च मधुमक्षिकाः॥ ७३

स एव गारले कुण्डे जीवमानाब्दकं वसेत्।
भक्षितो गरलैर्दग्धो यमदूतेन ताडितः॥ ७४

ततो हि मक्षिकाजातिस्ततः शुद्धो भवेन्नरः।
दण्डं करोत्यदण्ड्ये च विप्रे दण्डं करोति च॥ ७५

स कुण्डं वज्रदंष्ट्राणां कीटानां याति सत्वरम्।
स तल्लोमप्रमाणाब्दं तत्र तिष्ठत्यहर्निशम्॥ ७६

शब्दकृद्भक्षितस्तैस्तु यमदूतेन ताडितः।
करोति रोदनं भद्रे हाहाकारं क्षणे क्षणे॥ ७७

पुनः सूकरयोनौ च जायते सप्तजन्मसु।
त्रिजन्मनि काकयोनौ ततः शुद्धो भवेन्नरः॥ ७८

अर्थलोभेन यो मूढः प्रजादण्डं करोति सः।
वृश्चिकानां च कुण्डं च तल्लोमाब्दं वसेद् ध्रुवम्॥ ७९

ततो वृश्चिकजातिश्च सप्तजन्मसु भारते।
ततो नरश्चाङ्गहीनो व्याधिशुद्धो भवेद् ध्रुवम्॥ ८०

निवास करता है। वे जन्तु उसे दिन-रात काटते रहते हैं, उसे वहाँ खानेको कुछ भी नहीं मिलता और वह जोर-जोरसे रोता-चिल्लाता रहता है। यमदूत उसके हाथ-पैर बाँधकर उसे पीटते हैं। तत्पश्चात् वह उन्हीं क्षुद्र जन्तुओंकी योनिमें जाता है और पुनः यवनजातिमें जन्म लेता है। तदनन्तर वह अंगहीन मानव होकर जन्म लेता है, तब उसकी शुद्धि हो जाती है॥ ७०—७२½ ॥

जो मूर्ख मनुष्य मधुमक्खियोंको मारकर मधुका भक्षण करता है, वह उन मारी गयी मक्खियोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक गरलकुण्डमें वास करता है। वहाँपर उसे मधुमक्खियाँ काटती रहती हैं, वह सदा विषसे जलता रहता है और यमदूत उसे पीटते रहते हैं। उसके बाद वह मक्खियोंकी योनिमें जन्म लेता है, तदनन्तर उसकी शुद्धि होती है॥ ७३-७४½ ॥

जो मनुष्य किसी विप्रको अथवा दण्ड न देनेयोग्य किसी व्यक्तिको दण्डित करता है, वह वज्रके समान दाँतोंवाले भयानक जन्तुओंसे भरे वज्रदंष्ट्रकुण्ड नामक नरकमें शीघ्र ही जाता है। उस दण्डित व्यक्तिके शरीरमें जितने रोम होते हैं; उतने वर्षोंतक वह उस नरकमें निवास करता है। उसे नरकके वे कीड़े दिन-रात काटते रहते हैं और वह चीखता-चिल्लाता है। हे भद्रे! यमदूत उसे सदा पीटते रहते हैं, जिससे वह रोता है और प्रतिक्षण हाहाकार करता रहता है। तदनन्तर वह सात जन्मोंतक सूअरकी योनिमें और तीन जन्मोंतक कौवेकी योनिमें उत्पन्न होता है, उसके बाद वह मनुष्य शुद्ध हो जाता है॥ ७५—७८ ॥

जो मूर्ख धनके लोभसे प्रजाको दण्ड देता है, वह वृश्चिककुण्ड नामक नरकमें जाता है और उस प्रजाके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं, उतने वर्षोंतक उस नरकमें वास करता है। तत्पश्चात् सात जन्मोंतक वह भारतवर्षमें बिच्छुओंकी योनिमें जन्म लेता है। इसके पश्चात् मनुष्ययोनिमें जन्म प्राप्त करता है तथा अंगहीन और रोगी होकर वह शुद्ध हो जाता है—यह सत्य है॥ ७९-८० ॥

ब्राह्मणः शस्त्रधारी यो ह्यन्येषां धावको भवेत्।
सन्ध्याहीनश्च यो विप्रो हरिभक्तिविहीनकः॥ ८१

स तिष्ठति स्वलोमाब्दं कुण्डेषु च शरादिषु।
विद्धः शरादिभिः शश्वत्ततः शुद्धो भवेन्नरः॥ ८२

जो ब्राह्मण शस्त्र लेकर दूसरे लोगोंके लिये दूतका काम करता है, जो विप्र सन्ध्या-वन्दन नहीं करता तथा जो भगवान् श्रीहरिकी भक्तिसे विमुख है, वह शर आदिके कुण्डोंमें (शरकुण्ड, शूलकुण्ड, खड्गकुण्ड आदिमें) अपने शरीरके रोमोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक निवास करता है। वह वहाँपर निरन्तर शर आदिसे बेधा जाता है, इसके पश्चात् वह मनुष्य शुद्ध हो जाता है॥ ८१-८२॥

कारागारे सान्धकारे प्रणिहन्ति प्रजाश्च यः।
प्रमत्तः स्वस्य दोषेण गोलकुण्डं प्रयाति सः॥ ८३

स पङ्कतप्ततोयाक्तं सान्धकारं भयङ्करम्।
तीक्ष्णदंष्ट्रैश्च कीटैश्च संयुक्तं गोलकुण्डकम्॥ ८४

कीटैर्विद्धो वसेत्तत्र प्रजालोमाब्दमेव च।
ततो भवेत्प्रजाभृत्यस्ततः शुद्धो भवेत्क्रमात्॥ ८५

अभिमानमें चूर रहनेवाला जो व्यक्ति अन्धकारपूर्ण कारागारमें प्रजाओंको मारता-पीटता है, वह अपने इस दोषके प्रभावसे गोलकुण्ड नामक नरकमें जाता है। वह गोलकुण्ड प्रतप्त कीचड़ तथा जलसे युक्त, अन्धकारपूर्ण, अत्यन्त भयंकर तथा तीखे दाँतोंवाले कीटोंसे परिपूर्ण है। उन कीड़ोंसे सदा काटा जाता हुआ वह व्यक्ति प्रजाओंके शरीरमें विद्यमान रोमोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक उस नरकमें निवास करता है। तत्पश्चात् मनुष्यका जन्म पाकर वह उन प्रजाओंका सेवक बनता है, इस प्रकार क्रमसे वह शुद्ध हो जाता है॥ ८३—८५॥

सरोवरादुत्थितांश्च नक्रादीन्हन्ति यो नरः।
नक्रकण्टकमानाब्दं नक्रकुण्डं प्रयाति सः॥ ८६

ततो नक्रादिजातीयो भवेन्नक्रादिषु ध्रुवम्।
ततः सद्यो विशुद्धो हि दण्डेनैव पुनः पुनः॥ ८७

जो मनुष्य सरोवरसे निकले हुए नक्र आदि जल-जन्तुओंकी हत्या करता है, वह नक्रकुण्ड नामक नरकमें जाता है और वहाँ उस नक्रके शरीरमें विद्यमान काँटोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक निवास करता है। तत्पश्चात् वह निश्चितरूपसे नक्र आदि योनियोंमें जन्म लेता है और बार-बार दण्ड पानेपर शीघ्र ही उसकी शुद्धि हो जाती है॥ ८६-८७॥

वक्षःश्रोणीस्तनास्यञ्च यः पश्यति परस्त्रियाः।
कामेन कामुको यो हि पुण्यक्षेत्रे च भारते॥ ८८

स वसेत्काककुण्डे च काकैः संचूर्णलोचनः।
ततः स्वलोममानाब्दं भवेद्दग्धस्त्रिजन्मनि॥ ८९

जो मनुष्य पुण्यक्षेत्र भारतवर्षमें जन्म लेकर कामवासनाके वशीभूत हो परायी स्त्रीका वक्ष, नितम्ब, स्तन तथा मुख देखता है; वह अपने शरीरके रोमोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक काककुण्ड नामक नरकमें वास करता है। वहाँ कौवे उसकी आँखें नोचते रहते हैं। तत्पश्चात् वह तीन जन्मोंतक संतप्त होता रहता है॥ ८८-८९॥

स्वर्णस्तेयी च यो मूढो भारते सुरविप्रयोः।
स च मन्थानकुण्डे वै स्वलोमाब्दं वसेद् ध्रुवम्॥ ९०

जो मूढ भारतवर्षमें जन्म पाकर देवता तथा ब्राह्मणका स्वर्ण चुराता है, वह अपने शरीरके रोमोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक मन्थानकुण्ड नामक नरकमें अवश्य वास करता है। यमदूत उसकी आँखोंपर पट्टी

ताडितो यमदूतेन मन्थानैश्छन्नलोचनः।
तद्विड्भोजी च तत्रैव ततश्चान्धस्त्रिजन्मनि॥ ९१

सप्तजन्म दरिद्रश्च महाक्रूरश्च पातकी।
भारते स्वर्णकारश्च स च स्वर्णवणिक् ततः॥ ९२

यो भारते ताम्रचौरो लोहचौरश्च सुन्दरि।
स च स्वलोममानाब्दं बीजकुण्डं प्रयाति सः॥ ९३

तत्रैव बीजविड्भोजी बीजैश्च छन्नलोचनः।
ताडितो यमदूतेन ततः शुद्धो भवेन्नरः॥ ९४

भारते देवचौरश्च देवद्रव्यापहारकः।
स दुस्तरे वज्रकुण्डे स्वलोमाब्दं वसेद् ध्रुवम्॥ ९५

देहदग्धोऽपि तद्वज्रैरनाहारश्च शब्दकृत्।
ताडितो यमदूतैश्च ततः शुद्धो भवेन्नरः॥ ९६

रौप्यगव्यांशुकानां च यश्चौरः सुरविप्रयोः।
तप्तपाषाणकुण्डे च स्वलोमाब्दं वसेद् ध्रुवम्॥ ९७

त्रिजन्मनि च कंसोऽपि श्वेतरूपस्त्रिजन्मनि।
जन्मैकं श्वेतचिह्नश्च ततोऽन्ये श्वेतपक्षिणः॥ ९८

ततो रक्तविकारी च शूली वै मानवो भवेत्।
सप्तजन्मसु चाल्पायुस्ततः शुद्धो भवेन्नरः॥ ९९

रैतं कांस्यमयं पात्रं यो हरेद्देवविप्रयोः।
तीक्ष्णपाषाणकुण्डे च स्वलोमाब्दं वसेन्नरः॥ १००

स भवेदश्वजातिश्च भारते सप्तजन्मसु।
ततोऽधिकाङ्गजातिश्च पादरोगी ततः शुचिः॥ १०१

बाँधकर उसे डण्डोंसे पीटते हैं। उसे वहाँ उनकी विष्ठा खानी पड़ती है। तत्पश्चात् वह तीन जन्मोंतक अन्धा तथा सात जन्मोंतक दरिद्र रहता है। तदनन्तर वह पापी तथा अति क्रूर मनुष्य भारतमें स्वर्णकारका जन्म लेकर स्वर्णका व्यवसाय करता है॥ ९०—९२॥

हे सुन्दरि! जो मनुष्य भारतवर्षमें जन्म पाकर ताँबे तथा लोहेकी चोरी करता है, वह बीजकुण्ड नामक नरकमें जाता है और अपने शरीरके रोमोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक वहाँ निवास करता है। वहाँ कीड़ोंकी विष्ठा खाता हुआ कीड़ोंसे ढकी आँखोंवाला वह प्राणी यमदूतोंद्वारा पीटा जाता है और तब कालक्रमसे वह शुद्ध होता है॥ ९३-९४॥

जो व्यक्ति भारतवर्षमें जन्म पाकर देवताओंकी मूर्ति तथा देवसम्बन्धी द्रव्योंकी चोरी करता है, वह अपने शरीरमें विद्यमान रोमोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक दुस्तर वज्रकुण्ड नामक नरकमें निश्चित-रूपसे निवास करता है। उसे वहाँ भूखा रहना पड़ता है। उन वज्रोंके द्वारा यमदूतोंसे पीटे जानेपर उसका शरीर दग्ध हो जाता है और वह रोने-चिल्लाने लगता है, तत्पश्चात् उस मनुष्यकी शुद्धि हो जाती है॥ ९५-९६॥

जो मनुष्य ब्राह्मण और देवताके रजत, गव्य पदार्थ तथा वस्त्रोंको चुराता है; वह अपने शरीरके रोमोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक तप्तपाषाणकुण्ड नामक नरकमें निश्चितरूपसे वास करता है। तत्पश्चात् तीन जन्मोंतक कच्छप, तीन जन्मोंतक श्वेतकुष्ठी, एक जन्ममें श्वेत दागवाला और फिर श्वेत पक्षी होता है। उसके बाद वह सात जन्मोंतक रक्तदोषसे युक्त, शूलरोगसे पीडित तथा अल्पायु मनुष्य होता है; तत्पश्चात् वह शुद्ध हो जाता है॥ ९७—९९॥

जो व्यक्ति देवता और ब्राह्मणके पीतल तथा कांसेके बर्तनोंका हरण करता है, वह अपने शरीरके लोमसंख्यक वर्षोंतक तीक्ष्णपाषाणकुण्ड नामक नरकमें वास करता है। फिर वह सात जन्मोंतक भारतवर्षमें घोड़ेकी योनिमें उत्पन्न होता है। उसके बाद वह अधिक अंगोंवाला तथा पैरके रोगसे ग्रस्त होता है। तत्पश्चात् वह शुद्ध हो जाता है॥ १००-१०१॥

पुंश्चल्यन्नं च यो भुङ्क्ते पुंश्चलीजीव्यजीविनः।
स्वलोममानवर्षं च लालाकुण्डे वसेद् ध्रुवम्॥ १०२

ताडितो यमदूतेन तद्भोजी तत्र दुःखितः।
ततश्चक्षुःशूलरोगी ततः शुद्धः क्रमेण सः॥ १०३

म्लेच्छसेवी मसीजीवी यो विप्रो भारते भुवि।
वसेत्स्वलोममानाब्दं मसीकुण्डे स दुःखभाक्॥ १०४

ताडितो यमदूतेन तद्भोजी तत्र तिष्ठति।
ततस्त्रिजन्मनि भवेत्कृष्णवर्णः पशुः सति॥ १०५

त्रिजन्मनि भवेच्छागः कृष्णवर्णस्त्रिजन्मनि।
ततः स तालवृक्षश्च ततः शुद्धो भवेन्नरः॥ १०६

धान्यादिसस्यं ताम्बूलं यो हरेत्सुरविप्रयोः।
आसनं च तथा तल्पं चूर्णकुण्डे प्रयाति सः॥ १०७

शताब्दं तत्र निवसेद्यमदूतेन ताडितः।
ततो भवेन्मेषजातिः कुक्कुटश्च त्रिजन्मनि॥ १०८

ततो भवेद्वानरश्च कासव्याधियुतो भुवि।
वंशहीनो दरिद्रश्च स्वल्पायुश्च ततः शुचिः॥ १०९

करोति चक्रं विप्राणां हृत्वा द्रव्यं च यो जनः।
स वसेच्चक्रकुण्डे च शताब्दं दण्डताडितः॥ ११०

ततो भवेन्मानवश्च तैलकारस्त्रिजन्मनि।
व्याधियुक्तो भवेद्रोगी वंशहीनस्ततः शुचिः॥ १११

जो मनुष्य किसी व्यभिचारिणी स्त्रीका अन्न तथा उस स्त्रीकी जीविकापर आश्रित रहनेवाले व्यक्तिका अन्न खाता है, वह अपने शरीरमें विद्यमान रोमोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक लालाकुण्ड नामक नरकमें निश्चितरूपसे निवास करता है। वहाँपर वह यमदूतोंद्वारा पीटा जाता है और अत्यन्त दुःखी होकर उसे वही लाला (लार) खानी पड़ती है। तदनन्तर वह मानवयोनिमें उत्पन्न होकर नेत्र तथा शूलके रोगसे पीड़ित होता है। इसके बाद वह क्रमसे शुद्ध हो जाता है॥ १०२-१०३॥

जो ब्राह्मण भारतवर्षमें म्लेच्छोंकी सेवा करनेवाला तथा मसिजीवी (मसिपर आश्रित रहकर अपनी जीविका चलानेवाला) है, वह अपने शरीरके रोमोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक मसीकुण्ड नामक नरकमें वास करता है और वहाँ बहुत दुःख पाता है। यमदूत उसे पीटते हैं और उसे वहाँपर उसी मसि (स्याही)-का सेवन करना पड़ता है। हे साध्वि! तत्पश्चात् वह तीन जन्मोंतक काले रंगका पशु होता है। तदनन्तर वह तीन जन्मोंतक काले रंगका छाग बकरा होता है और उसके बाद तीन जन्मोंतक ताड़का वृक्ष होता है; तत्पश्चात् वह शुद्ध हो जाता है॥ १०४—१०६॥

जो मनुष्य देवता अथवा ब्राह्मणके अन्न, फसल, ताम्बूल, आसन और शय्या आदिकी चोरी करता है; वह चूर्णकुण्ड नामक नरकमें जाता है और वहाँ सौ वर्षोंतक निवास करता है। वह यमदूतोंद्वारा पीटा जाता है। तत्पश्चात् वह तीन जन्मोंतक मेष और कुक्कुट होता है। उसके बाद वानर होता है। तदनन्तर भारतभूमिपर काशरोगसे पीड़ित, वंशहीन, दरिद्र तथा अल्पायु मनुष्य होता है; इसके बाद उसकी शुद्धि हो जाती है॥ १०७—१०९॥

जो मनुष्य किसी ब्राह्मणके धनका हरण करके उससे चक्र (कोल्हू)-सम्बन्धी व्यवसाय करता है, वह चक्रकुण्ड नामक नरकमें डण्डोंसे पीटा जाता हुआ सौ वर्षोंतक वास करता है। उसके बाद वह मानवयोनिमें उत्पन्न होता है और तीन जन्मोंतक अनेक प्रकारकी व्याधियोंसे युक्त रोगी तथा वंशहीन तैलकार (तेलका व्यापार करनेवाला) होता है; तत्पश्चात् उसकी शुद्धि हो जाती है॥ ११०-१११॥

गोधनेषु च विप्रेषु करोति वक्रतां पुमान्।
प्रयाति वक्रकुण्डं स तिष्ठेद्युगशतं सति॥ ११२

ततो भवेत्स वक्राङ्गो हीनाङ्गः सप्तजन्मनि।
दरिद्रो वंशहीनश्च भार्याहीनस्ततः शुचिः॥ ११३

ततो भवेद् गृध्रजन्मा त्रिजन्मनि च सूकरः।
त्रिजन्मनि बिडालश्च मयूरश्च त्रिजन्मनि॥ ११४

निषिद्धं कूर्ममांसं च ब्राह्मणो यो हि भक्षति।
कूर्मकुण्डे वसेत्सोऽपि शताब्दं कूर्मभक्षितः॥ ११५

ततो भवेत्कूर्मजन्मा त्रिजन्मनि च सूकरः।
त्रिजन्मनि बिडालश्च मयूरश्च ततः शुचिः॥ ११६

घृतं तैलादिकं चैव यो हरेत्सुरविप्रयोः।
स याति ज्वालाकुण्डं च भस्मकुण्डं च पातकी॥ ११७

तत्र स्थित्वा शताब्दं च स भवेत्तैलपाचितः।
सप्तजन्मनि मत्स्यश्च मूषकश्च ततः शुचिः॥ ११८

सुगन्धितैलं धात्रीं वा गन्धद्रव्यान्यदेव वा।
भारते पुण्यवर्षे च यो हरेत्सुरविप्रयोः॥ ११९

स वसेद्दग्धकुण्डे च भवेद्दग्धो दिवानिशम्।
स्वलोममानवर्षं च ततो दुर्गन्धिको भवेत्॥ १२०

दुर्गन्धिकः सप्तजन्म मृगनाभिस्त्रिजन्मनि।
सप्तजन्मसु मन्थानस्ततो हि मानवो भवेत्॥ १२१

बलेनैव छलेनैव हिंसारूपेण वा सति।
बलिष्ठश्च हरेद्भूमिं भारते परपैतृकीम्॥ १२२

हे साध्वि! जो व्यक्ति गौओं और ब्राह्मणके साथ क्रूरतापूर्ण व्यवहार करता है, वह सौ युगोंतक वक्रतुण्ड नामक नरकमें निवास करता है। तत्पश्चात् वह सात जन्मोंतक वक्र अंगोंवाला, हीन अंगवाला, दरिद्र, वंशहीन तथा भार्याहीन मानव होता है। उसके बाद वह तीन जन्मोंतक गीध, तीन जन्मोंतक सूअर, तीन जन्मोंतक बिल्ली और तीन जन्मोंतक मोर होता है; तत्पश्चात् उसकी शुद्धि हो जाती है॥ ११२—११४॥

जो ब्राह्मण कछुएका निषिद्ध मांस खाता है, वह सौ वर्षोंतक कूर्मकुण्ड नामक नरकमें निवास करता है। वहाँपर उसे कछुए सदा नोंच-नोंचकर खाते रहते हैं। तत्पश्चात् वह तीन जन्मोंतक कछुए, तीन जन्मोंतक सूअर, तीन जन्मोंतक बिल्ली और तीन जन्मोंतक मोरकी योनिमें जन्म लेता है। उसके बाद वह शुद्ध हो जाता है॥ ११५-११६॥

जो व्यक्ति किसी देवता या ब्राह्मणका घृत, तेल आदि चुराता है, वह पापी ज्वालाकुण्ड और भस्मकुण्ड नामक नरकमें जाता है। वहाँपर वह एक सौ वर्षोंतक वास करते हुए तेलमें पकाया जाता है। इसके बाद वह सात जन्मोंतक मछली और सात जन्मोंतक चूहा होता है, तत्पश्चात् उसकी शुद्धि हो जाती है॥ ११७-११८॥

जो मनुष्य पुण्यक्षेत्र भारतवर्षमें किसी देवता या ब्राह्मणके सुगन्धित तेल, इत्र, आँवलाचूर्ण तथा अन्य सुगन्धित द्रव्यकी चोरी करता है; वह दग्धकुण्ड नामक नरकमें वास करता है। वहाँपर वह अपने शरीरमें विद्यमान रोमोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक निवास करता है और दिन-रात दग्ध होता रहता है। इसके बाद वह सात जन्मोंतक दुर्गन्धिक होता है। पुनः तीन जन्मोंतक कस्तूरी मृग और सात जन्मोंतक मन्थान नामक कीड़ा होता है, तत्पश्चात् वह मनुष्ययोनिमें उत्पन्न होता है॥ ११९—१२१॥

हे साध्वि! जो बलिष्ठ पुरुष भारतवर्षमें अपने बलसे अथवा छलसे अथवा हिंसाके द्वारा किसी दूसरेकी पैतृकसम्पत्तिका हरण करता है, वह तप्तसूचीकुण्ड नामक नरकमें वास करता है। वह उस नरकमें

स वसेत्तप्तसूचिं च भवेत्तापी दिवानिशम्।
तप्ततैले यथा जीवो दग्धो भवति सन्ततम्॥ १२३

भस्मसान्न भवत्येव भोगे देही न नश्यति।
सप्तमन्वन्तरं पापी सन्तप्तस्तत्र तिष्ठति॥ १२४

शब्दं करोत्यनाहारो यमदूतेन ताडितः।
षष्टिवर्षसहस्राणि विट्कृमिश्च भवेत्ततः॥ १२५

ततो भवेद्भूमिहीनो दरिद्रश्च ततः शुचिः।
ततः स्वयोनिं सम्प्राप्य शुभं कर्माचरेत्पुनः॥ १२६

दिन-रात उसी तरह संतप्त होता रहता है, जैसे कोई जीव तप्त तेलमें निरन्तर दग्ध होता रहता है। जलाये जानेपर भी कर्मभोगके कारण उसका देह न तो भस्मसात् होता है और न तो उसका नाश ही होता है, अपितु वह पापी सात मन्वन्तरतक वहाँ सन्तप्त होता रहता है। वह सदा चिल्लाता रहता है, भूखा रहता है और यमदूत उसे पीटते रहते हैं। उसके बाद वह साठ हजार वर्षोंतक विष्ठाका कीड़ा होता है। तत्पश्चात् वह मानवयोनिमें उत्पन्न होकर भूमिहीन और दरिद्र होता है। उसके बाद वह शुद्ध हो जाता है और अपनी योनिमें जन्म प्राप्तकर पुनः शुभ आचरण करने लगता है॥ १२२—१२६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे नानाकर्मविपाकफलकथनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३३॥



अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

विभिन्न पापकर्म तथा उनके कारण प्राप्त होनेवाले नरकोंका वर्णन

यम उवाच

छिनत्ति जीवं खड्गेन दयाहीनः सुदारुणः।
नरघाती हन्ति नरमर्थलोभेन भारते॥ १

असिपत्रे वसेत्सोऽपि यावदिन्द्राश्चतुर्दश।
तेषु यो ब्राह्मणान् हन्ति शतमन्वन्तरं वसेत्॥ २

छिन्नाङ्गः संवसेत् सोऽपि खड्गधारेण सन्ततम्।
अनाहारः शब्दमुच्चैर्यमदूतेन ताडितः॥ ३

मन्थानः शतजन्मानि शतजन्मानि सूकरः।
कुक्कुटः सप्त जन्मानि शृगालः सप्तजन्मसु॥ ४

व्याघ्रश्च सप्त जन्मानि वृकश्चैव त्रिजन्मसु।
सप्तजन्मसु मण्डूको यमदूतेन ताडितः॥ ५

स भवेद्भारते वर्षे महिषश्च ततः शुचिः।
ग्रामाणां नगराणां वा दहनं यः करोति च॥ ६

यमराज बोले—[हे सावित्रि!] भारतवर्षमें जो कोई निर्दयी तथा क्रूर व्यक्ति खड्गसे किसी जीवको काटता है या कोई नरघाती धनके लोभसे किसी मनुष्यकी हत्या करता है, वह चौदहों इन्द्रोंकी स्थितिपर्यन्त असिपत्रवन नामक नरकमें वास करता है। उनमें भी जो ब्राह्मणोंकी हत्या करता है, वह सौ मन्वन्तरतक वहाँ रहता है। तलवारकी धारसे उसके शरीरके अंग निरन्तर कटते रहते हैं। आहार न मिलने और यमदूतोंसे पीटे जानेके कारण वह जोर-जोरसे चिल्लाता रहता है। तत्पश्चात् वह सौ जन्मोंतक मन्थान नामक कीड़ा, सौ जन्मोंतक सूअर, सात जन्मोंतक मुर्गा, सात जन्मोंतक सियार, सात जन्मोंतक बाघ, तीन जन्मोंतक भेड़िया और सात जन्मोंतक मेंढक होता है, साथ ही वह यमदूतसे निरन्तर पीटा भी जाता है। इसके बाद वह भारतवर्षमें महिष होता है, फिर उसकी शुद्धि हो जाती है॥ १—५½॥

हे सति! जो मनुष्य गाँवों और नगरोंको जलाता है, वह क्षुरधार नामक नरकमें क्षत-विक्षत अंगोंवाला होकर तीन युगोंतक रहता है। तत्पश्चात् वह शीघ्र

क्षुरधारे वसेत्सोऽपि छिन्नाङ्गस्त्रियुगं सति।
ततः प्रेतो भवेत्सद्यो वह्निवक्त्रो भ्रमन्महीम्॥ ७

सप्तजन्मामेध्यभोजी कपोतः सप्तजन्मसु।
ततो भवेन्महाशूली मानवः सप्तजन्मनि॥ ८

सप्तजन्म गलत्कुष्ठी ततः शुद्धो भवेन्नरः।
परकर्णे मुखं दत्त्वा परनिन्दां करोति यः॥ ९

परदोषे महाश्लाघी देवब्राह्मणनिन्दकः।
सूचीमुखे वसेत्सोऽपि सूचीविद्धो युगत्रयम्॥ १०

ततो भवेद् वृश्चिकश्च सर्पश्च सप्तजन्मसु।
वज्रकीटः सप्तजन्म भस्मकीटस्ततः परम्॥ ११

ततो भवेन्मानवश्च महाव्याधिस्ततः शुचिः।
गृहिणां हि गृहं भित्त्वा वस्तुस्तेयं करोति यः॥ १२

गाश्च छागांश्च मेषांश्च याति गोकामुखे च सः।
ताडितो यमदूतेन वसेत्तत्र युगत्रयम्॥ १३

ततो भवेत्सप्तजन्म गोजातिर्व्याधिसंयुतः।
त्रिजन्मनि मेषजातिश्छागजातिस्त्रिजन्मनि॥ १४

ततो भवेन्मानवश्च नित्यरोगी दरिद्रकः।
भार्याहीनो बन्धुहीनः सन्तापी च ततः शुचिः॥ १५

सामान्यद्रव्यचौरश्च याति नक्रमुखं च सः।
ताडितो यमदूतेन वसेत्तत्राब्दकत्रयम्॥ १६

ततो भवेत्सप्तजन्म गोपतिर्व्याधिसंयुतः।
ततो भवेन्मानवश्च महारोगी ततः शुचिः॥ १७

ही प्रेत होता है और मुँहसे आग उगलते हुए पृथ्वीपर घूमता रहता है। फिर वह सात जन्मोंतक अपवित्र मल-मूत्र आदि पदार्थोंको खाता रहता है और सात जन्मोंतक कपोत होता है। तदनन्तर सात जन्मोंतक मानवयोनिमें उत्पन्न होता है और महान् शूलरोगसे पीड़ित रहता है। पुनः वह सात जन्मोंतक गलित कुष्ठरोगसे ग्रस्त रहता है और तत्पश्चात् वह मनुष्य शुद्ध हो जाता है॥ ६—८½ ॥

जो मनुष्य दूसरेके कानमें अपना मुख लगाकर परायी निन्दा करता है, परदोष निकालकर बड़ी-बड़ी डींग हाँकता है और देवता तथा ब्राह्मणकी निन्दा करता है, वह सूचीमुख नामक नरकमें तीन युगोंतक वास करता है। वहाँ उसके शरीरमें निरन्तर सूई चुभायी जाती है। तत्पश्चात् वह सात जन्मोंतक बिच्छू, सात जन्मोंतक सर्प, सात जन्मोंतक वज्रकीट और सात जन्मोंतक भस्मकीटकी योनिमें रहता है। तदनन्तर मानवयोनिमें जन्म लेकर वह महाव्याधिसे ग्रस्त रहता है, पुनः शुद्ध हो जाता है॥ ९—११½ ॥

जो व्यक्ति गृहस्थोंके घरमें सेंध लगाकर वस्तुओंकी चोरी करता है और गौओं, बकरों तथा भेड़ोंको चुरा लेता है; वह गोकामुख नामक नरकमें जाता है। वहाँपर यमदूतके द्वारा पीटा जाता हुआ वह तीन युगोंतक वास करता है। तत्पश्चात् वह सात जन्मोंतक रोगग्रस्त गौकी योनिमें, तीन जन्मोंतक भेड़की योनिमें और तीन जन्मोंतक बकरेकी योनिमें जन्म पाता है। तत्पश्चात् वह मानवयोनिमें उत्पन्न होता है, उस समय वह नित्य रोगी, दरिद्र, भार्याहीन, बन्धु-बान्धवरहित और दुःखी रहता है, उसके बाद वह शुद्ध हो जाता है॥ १२—१५ ॥

सामान्य द्रव्योंकी चोरी करनेवाला नक्रमुख नामक नरकमें जाता है। वहाँपर वह यमदूतके द्वारा पीटा जाता हुआ तीन वर्षोंतक निवास करता है, तदनन्तर वह सात जन्मोंतक रोगसे पीड़ित रहनेवाला बैल होता है। उसके बाद वह मानवयोनिमें जन्म लेकर महान् रोगोंसे ग्रस्त रहता है और फिर शुद्ध हो जाता है॥ १६-१७॥

हन्ति गाश्च गजांश्चैव तुरगांश्च नगांस्तथा।
स याति गजदंशं च महापापी युगत्रयम्॥ १८

ताडितो यमदूतेन नागदन्तेन सन्ततम्।
स भवेद्गजजातिश्च तुरगश्च त्रिजन्मनि॥ १९

गोजातिर्म्लेच्छजातिश्च ततः शुद्धो भवेन्नरः।
जलं पिबन्तीं तृषितां गां वारयति यः पुमान्॥ २०

नरकं गोमुखाकारं कृमितप्तोदकान्वितम्।
तत्र तिष्ठति सन्तप्तो यावन्मन्वन्तरावधि॥ २१

ततो नरोऽपि गोहीनो महारोगी दरिद्रकः।
सप्तजन्मान्त्यजातिश्च ततः शुद्धो भवेन्नरः॥ २२

गोहत्यां ब्रह्महत्यां च करोति ह्यतिदेशिकीम्।
यो हि गच्छत्यगम्यां च यः स्त्रीहत्यां करोति च॥ २३

भिक्षुहत्यां महापापी भ्रूणहत्यां च भारते।
कुम्भीपाके वसेत्सोऽपि यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥ २४

ताडितो यमदूतेन चूर्ण्यमानश्च सन्ततम्।
क्षणं पतति वह्नौ च क्षणं पतति कण्टके॥ २५

क्षणं पतेत्तप्ततैले तप्तो येन क्षणं क्षणम्।
क्षणं च तप्तलोहे च क्षणं च तप्तताम्रके॥ २६

गृध्रो जन्मसहस्राणि शतजन्मानि सूकरः।
काकश्च सप्त जन्मानि सर्पश्च सप्तजन्मसु॥ २७

षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः।
नानाजन्मसु स वृषस्ततः कुष्ठी दरिद्रकः॥ २८

सावित्र्युवाच

विप्रहत्या च गोहत्या किंविधा चातिदैशिकी।
का वा नृणामगम्या च को वा संध्याविहीनकः॥ २९

अदीक्षितः पुमान्को वा को वा तीर्थप्रतिग्रही।
द्विजः को वा ग्रामयाजी को वा विप्रोऽथ देवलः॥ ३०

जो मनुष्य गायों, हाथियों, घोड़ों और सर्पोंका वध करता है; वह महापापी गजदंश नामक नरकमें जाता है और तीन युगोंतक वहाँ वास करता है। यमदूत उसे हाथी-दाँतसे निरन्तर पीटते रहते हैं। तत्पश्चात् वह तीन जन्मोंतक हाथी, तीन जन्मोंतक घोड़े, तीन जन्मोंतक गाय और तीन जन्मोंतक म्लेच्छकी योनिमें पैदा होता है, तदनन्तर वह मनुष्य शुद्ध हो जाता है॥ १८-१९$\frac{1}{2}$॥

जो मनुष्य पानी पीती हुई प्यासी गायको वहाँसे हटा देता है, वह कीड़ोंसे भरे तथा तप्त जलसे युक्त गोमुख नामक नरकमें जाता है। वहाँपर वह एक मन्वन्तरकी अवधितक सन्तप्त रहता है। तदनन्तर वह सात जन्मोंतक अन्त्य जातिमें उत्पन्न होकर गोहीन, महान् रोगी तथा दरिद्र मनुष्यके रूपमें रहता है। उसके बाद वह व्यक्ति शुद्ध हो जाता है॥ २०—२२॥

जो भारतवर्षमें शास्त्र-वचनकी आड़ लेकर गोहत्या, ब्रह्महत्या, स्त्रीहत्या, भिक्षुहत्या तथा भ्रूणहत्या करता है और जो अगम्या स्त्रीके साथ समागम करता है, वह महापापी व्यक्ति चौदह इन्द्रोंके स्थितिपर्यन्त कुम्भीपाक नरकमें वास करता है। यमदूतके द्वारा वह निरन्तर पीटा जाता है, जिससे उसके शरीरके अंग चूर-चूर हो जाते हैं। उसे कभी आगमें गिराया जाता है और कभी काँटोंपर लिटाया जाता है। उसे कभी तप्त तेलमें, कभी प्रतप्त लोहेमें और ताँबेमें डाला जाता है, जिससे वह प्रत्येक क्षण तपता रहता है। उसके बाद वह हजार जन्मोंतक गीध, सौ जन्मोंतक सूअर, सात जन्मोंतक कौवा और सात जन्मोंतक सर्प होता है। उसके बाद वह साठ हजार वर्षोंतक विष्ठाका कीड़ा और अनेक जन्मोंतक बैल होता है। तत्पश्चात् मानवयोनिमें जन्म लेकर कोढ़ी तथा दरिद्र होता है॥ २३—२८॥

सावित्री बोली—आतिदेशिकी ब्रह्महत्या तथा गोहत्या कितने प्रकारकी होती है? मनुष्योंके लिये कौन स्त्री अगम्य होती है और कौन मनुष्य सन्ध्यासे विहीन है, कौन अदीक्षित है, तीर्थ-प्रतिग्रही कौन है? कौन ग्रामयाजी द्विज है तथा कौन देवल ब्राह्मण है?

शूद्राणां सूपकारश्च प्रमत्तो वृषलीपतिः।
एतेषां लक्षणं सर्वं वद वेदविदां वर॥ ३१

हे वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! जो ब्राह्मण शूद्रोंके यहाँ रसोइयाका काम करता है, प्रमत्त है और शूद्रापति है—इन सभीके समस्त लक्षणोंको आप मुझे बतलाइये॥ २९—३१॥

धर्मराज उवाच

श्रीकृष्णे च तदर्चायामन्येषां प्रकृतौ सति।
शिवे च शिवलिङ्गे च सूर्ये सूर्यमणौ तथा॥ ३२

गणेशे वाथ दुर्गायामेवं सर्वत्र सुन्दरि।
यः करोति भेदबुद्धिं ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः॥ ३३

धर्मराज बोले—हे साध्वि! हे सुन्दरि! श्रीकृष्णमें तथा उनकी मूर्तिमें, अन्य देवताओंमें तथा उनकी प्रतिमामें, शिवमें तथा शिवलिंगमें, सूर्यमें तथा सूर्यकान्तमणिमें, गणेशमें तथा उनकी मूर्तिमें और दुर्गामें तथा उनकी प्रतिमामें जो भेदबुद्धि रखता है, उसे [आतिदेशिकी] ब्रह्महत्या लगती है॥ ३२-३३॥

स्वगुरौ स्वेष्टदेवे च जन्मदातरि मातरि।
करोति भेदबुद्धिं यो ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः॥ ३४

जो व्यक्ति अपने गुरु, अपने इष्टदेव तथा जन्म देनेवाली मातामें भेद मानता है; वह ब्रह्महत्याके पापका भागी होता है॥ ३४॥

वैष्णवेषु च भक्तेषु ब्राह्मणेष्वितरेषु च।
करोति भेदबुद्धिं यो ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः॥ ३५

जो भगवान् विष्णुके भक्तों तथा दूसरे देवताओंकी पूजा करनेवाले ब्राह्मणोंमें भेदबुद्धि करता है, उसे ब्रह्महत्याका पाप लगता है॥ ३५॥

विप्रपादोदके चैव शालग्रामोदके तथा।
करोति भेदबुद्धिं यो ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः॥ ३६

जो मनुष्य ब्राह्मणके चरणोदक तथा शालग्रामके जलमें भेदबुद्धि करता है, वह ब्रह्महत्याके पापका भागी होता है॥ ३६॥

शिवनैवेद्यके चैव हरिनैवेद्यके तथा।
करोति भेदबुद्धिं यो ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः॥ ३७

जो मनुष्य शिवके नैवेद्य तथा भगवान् विष्णुके नैवेद्यमें भेदबुद्धि रखता है, वह ब्रह्महत्याके पापका भागी होता है॥ ३७॥

सर्वेश्वरेश्वरे कृष्णे सर्वकारणकारणे।
सर्वाद्ये सर्वदेवानां सेव्ये सर्वान्तरात्मनि॥ ३८

माययानेकरूपे वाप्येक एव हि निर्गुणे।
करोतीशेन भेदं यो ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः॥ ३९

जो व्यक्ति सर्वेश्वरोंके भी ईश्वर, सभी कारणोंके कारण, सबके आदिस्वरूप, सभी देवताओंके आराध्य, सबकी अन्तरात्मा, एक होते हुए भी अपनी योगमायाके प्रभावसे अनेक रूप धारण करनेमें सक्षम तथा निर्गुण श्रीकृष्णमें और ईशान शिवजीमें भेद करता है; उसे ब्रह्महत्याका पाप लगता है॥ ३८-३९॥

शक्तिभक्ते द्वेषबुद्धिं शक्तिशास्त्रे तथैव च।
द्वेषं यः कुरुते मर्त्यो ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः॥ ४०

जो मनुष्य भगवती शक्तिकी उपासना करनेवालेके प्रति द्वेषभाव रखता है तथा शक्ति-शास्त्रोंकी निन्दा करता है, उसे ब्रह्महत्याका पाप लगता है॥ ४०॥

पितृदेवार्चनं यो वा त्यजेद्वेदनिरूपितम्।
यः करोति निषिद्धं च ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः॥ ४१

जो मनुष्य वेदोंमें प्रतिपादित रीतिसे पितृपूजन तथा देवार्चनका त्याग कर देता है और निषिद्ध विधिसे कर्म सम्पन्न करता है, वह ब्रह्महत्याके पापका भागी होता है॥ ४१॥

यो निन्दति हृषीकेशं तन्मन्त्रोपासकं तथा।
पवित्राणां पवित्रं च ज्ञानानन्दं सनातनम्॥ ४२

जो भगवान् हृषीकेश और उनके मन्त्रोंकी उपासना करनेवालोंकी निन्दा करता है और जो पवित्रोंके भी पवित्र, ज्ञानानन्द, सनातन, वैष्णवोंके

प्रधानं वैष्णवानां च देवानां सेव्यमीश्वरम्।
ये नार्चयन्ति निन्दन्ति ब्रह्महत्यां लभन्ति ते॥ ४३

ये निन्दन्ति महादेवीं कारणब्रह्मरूपिणीम्।
सर्वशक्तिस्वरूपां च प्रकृतिं सर्वमातरम्॥ ४४

सर्वदेवस्वरूपां च सर्वेषां वन्दितां सदा।
सर्वकारणरूपां च ब्रह्महत्यां लभन्ति ते॥ ४५

कृष्णजन्माष्टमीं रामनवमीं च सुपुण्यदाम्।
शिवरात्रिं तथा चैकादशीं वारे रवेस्तथा॥ ४६

पञ्च पर्वाणि पुण्यानि ये न कुर्वन्ति मानवाः।
लभन्ति ब्रह्महत्यां ते चाण्डालाधिकपापिनः॥ ४७

अम्बुवाच्यां भूखननं जलशौचादिकं च ये।
कुर्वन्ति भारते वर्षे ब्रह्महत्यां लभन्ति ते॥ ४८

गुरुञ्च मातरं तातं साध्वीं भार्यां सुतं सुताम्।
अनिन्द्यां यो न पुष्णाति ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः॥ ४९

विवाहो यस्य न भवेन्न पश्यति सुतं तु यः।
हरिभक्तिविहीनो यो ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः॥ ५०

हरेरनैवेद्यभोजी नित्यं विष्णुं न पूजयेत्।
पुण्यं पार्थिवलिङ्गं च ब्रह्महासौ प्रकीर्तितः॥ ५१

गोप्रहारं प्रकुर्वन्तं दृष्ट्वा यो न निवारयेत्।
याति गोविप्रयोर्मध्ये गोहत्यां तु लभेत्तु सः॥ ५२

दण्डैर्गोस्ताडयेन्मूढो यो विप्रो वृषवाहनः।
दिने दिने गोवधं च लभते नात्र संशयः॥ ५३

ददाति गोभ्य उच्छिष्टं भोजयेद् वृषवाहकम्।
भुनक्ति वृषवाहान्नं स गोहत्यां लभेद् ध्रुवम्॥ ५४

परम आराध्य तथा देवताओंके सेव्य परमेश्वरकी पूजा नहीं करते; अपितु निन्दा करते हैं, वे ब्रह्महत्याके पापके भागी होते हैं॥ ४२-४३॥

जो कारणब्रह्मरूपिणी, सर्वशक्तिस्वरूपा, सर्वजननी, सर्वदेवस्वरूपिणी, सबके द्वारा वन्दित तथा सर्वकारण-रूपिणी मूलप्रकृति महादेवीकी सदा निन्दा करते हैं; उन्हें ब्रह्महत्याका पाप लगता है॥ ४४-४५॥

जो मनुष्य पुण्यदायिनी कृष्णजन्माष्टमी, रामनवमी, शिवरात्रि, एकादशी और रविवार—इन पाँच पुण्य पर्वोंके अवसरपर व्रत नहीं करते, वे चाण्डालसे भी बढ़कर पापी हैं और उन्हें ब्रह्महत्याका पाप लगता है॥ ४६-४७॥

जो इस भारतवर्षमें अम्बुवाचीयोग (आर्द्रा नक्षत्रके प्रथम चरण)-में पृथ्वी खोदते हैं या जलमें शौच आदि करते हैं, उन्हें ब्रह्महत्याका पाप लगता है॥ ४८॥

जो मनुष्य अपने गुरु, माता, पिता, साध्वी भार्या, पुत्र तथा अनिन्दनीय आचरण करनेवाली पुत्रीका भरण-पोषण नहीं करता; उसे ब्रह्महत्याका पाप लगता है॥ ४९॥

जिसका विवाह न हुआ हो, जिसने पुत्र न देखा हो, अर्थात् पुत्रवान् न हो तथा जो भगवान् श्रीहरिकी भक्तिसे विमुख हो, वह ब्रह्महत्याके पापका भागी होता है॥ ५०॥

जो मनुष्य भगवान् श्रीहरिको नैवेद्य अर्पण किये बिना भोजन करता है, विष्णुका नित्य पूजन नहीं करता और पवित्र पार्थिव लिंगका पूजन नहीं करता; उसे ब्रह्महत्यारा कहा गया है॥ ५१॥

जो किसी मनुष्यको गायपर प्रहार करते हुए देखकर उसे नहीं रोकता और जो गाय तथा ब्राह्मणके बीचसे निकलता है, वह गोहत्याके पापका भागी होता है॥ ५२॥

जो मूर्ख ब्राह्मण गायोंको डंडोंसे पीटता है और बैलपर सवारी करता है, उसे प्रतिदिन गोहत्याका पाप लगता है॥ ५३॥

जो व्यक्ति गायोंको जूठा अन्न खिलाता है, बैलकी सवारी करनेवालेको भोजन कराता है और बैलकी सवारी करनेवालेका अन्न खाता है; उसे निश्चितरूपसे गोहत्याका पाप लगता है॥ ५४॥

वृषलीपतिं याजयेद्यो भुङ्क्तेऽन्नं तस्य यो नरः।
गोहत्याशतकं सोऽपि लभते नात्र संशयः॥ ५५

पादं ददाति वह्नौ यो गाश्च पादेन ताडयेत्।
गेहं विशेदधौताङ्घ्रिः स्नात्वा गोवधमाप्नुयात्॥ ५६

यो भुङ्क्ते स्निग्धपादेन शेते स्निग्धाङ्घ्रिरेव च।
सूर्योदये च यो भुङ्क्ते स गोहत्यां लभेद् ध्रुवम्॥ ५७

अवीरान्नं च यो भुङ्क्ते योनिजीव्यस्य च द्विजः।
यस्त्रिसन्ध्याविहीनश्च गोहत्यां लभते च सः॥ ५८

स्वभर्तरि च देवे वा भेदबुद्धिं करोति या।
कटूक्त्या ताडयेत् कान्तं सा गोहत्यां लभेद् ध्रुवम्॥ ५९

गोमार्गवर्जनं कृत्वा ददाति सस्यमेव वा।
तडागे वा तु दुर्गे वा स गोहत्यां लभेद् ध्रुवम्॥ ६०

प्रायश्चित्ते गोवधस्य यः करोति व्यतिक्रमम्।
पुत्रलोभादथाज्ञानात्स गोहत्यां लभेद् ध्रुवम्॥ ६१

राजके दैवके यत्नाद् गोस्वामी गां न रक्षति।
दुःखं ददाति यो मूढो गोहत्यां स लभेद् ध्रुवम्॥ ६२

प्राणिनो लङ्घयेद्यो हि देवार्चामनलं जलम्।
नैवेद्यं पुष्पमन्नं च स गोहत्यां लभेद् ध्रुवम्॥ ६३

शश्वन्नास्तीति यो वादी मिथ्यावादी प्रतारकः।
देवद्वेषी गुरुद्वेषी स गोहत्यां लभेद् ध्रुवम्॥ ६४

देवताप्रतिमां दृष्ट्वा गुरुं वा ब्राह्मणं सति।
सम्भ्रमान्न नमेद्यो हि स गोहत्यां लभेद् ध्रुवम्॥ ६५

जो ब्राह्मण शूद्रापतिके यहाँ यज्ञ कराता है और उसका अन्न ग्रहण करता है, वह एक सौ गोहत्याके पापका भागी होता है; इसमें सन्देह नहीं है॥ ५५॥

जो मनुष्य पैरसे अग्निका स्पर्श करता है, गायोंको पैरसे मारता है और स्नान करके बिना पैर धोये देवालयमें प्रवेश करता है; उसे गोहत्याका पाप लगता है॥ ५६॥

जो व्यक्ति गीले पैर भोजन करता है, गीले पैर सोता है और सूर्योदयके समय भोजन करता है; उसे अवश्य ही गोहत्याका पाप लगता है॥ ५७॥

जो द्विज पति-पुत्रहीन स्त्रीका तथा योनिजीवी व्यक्तिका अन्न खाता है और जो त्रिकाल सन्ध्यासे विहीन है, उसे भी गोहत्याका पाप लगता है॥ ५८॥

जो स्त्री अपने पति तथा देवतामें भेदबुद्धि रखती है तथा कटु वचनोंसे अपने पतिको पीड़ित करती है, उसे निश्चितरूपसे गोहत्याका पाप लगता है॥ ५९॥

जो मनुष्य गोचरभूमिको जोतकर उसमें अनाज बोता है या तालाब अथवा दुर्गमें फसल उगाता है, उसे निश्चय ही गोहत्याका पाप लगता है॥ ६०॥

जो व्यक्ति पुत्रके मोहसे अथवा अज्ञानके कारण गोवधके प्रायश्चित्तमें व्यतिक्रम करता है, उसे निश्चित-रूपसे गोहत्याका पाप लगता है॥ ६१॥

जो गायका स्वामी अराजकता तथा दैवोपद्रवके अवसरपर गायकी रक्षा नहीं करता तथा जो गायको पीड़ा पहुँचाता है, उस मूर्खको निश्चय ही गोहत्याका पाप लगता है॥ ६२॥

जो मनुष्य प्राणियों, देवमूर्ति, अग्नि, जल, नैवेद्य, पुष्प तथा अन्नको लाँघता है; वह निश्चितरूपसे गोहत्याके पापका भागी होता है॥ ६३॥

मेरे पास कुछ नहीं है—ऐसा जो सदा कहता है, झूठ बोलता है, दूसरोंको ठगता है और देवता तथा गुरुसे द्वेष करता है, उसे गोहत्याका पाप अवश्य लगता है॥ ६४॥

हे साध्वि! जो मनुष्य देवप्रतिमा, गुरु तथा ब्राह्मणको देखकर आदरपूर्वक प्रणाम नहीं करता, उसे निश्चित-रूपसे गोहत्याका पाप लगता है॥ ६५॥

न ददात्याशिषं कोपात्प्रणताय च यो द्विजः।
विद्यार्थिने च विद्यां च स गोहत्यां लभेद् ध्रुवम्॥ ६६

गोहत्या विप्रहत्या च कथिता चातिदेशिकी।
गम्यां स्त्रियं नृणामेव निबोध कथयामि ते॥ ६७

स्वस्त्री गम्या च सर्वेषामिति वेदानुशासनम्।
अगम्या च तदन्या या चेति वेदविदो विदुः॥ ६८

सामान्यं कथितं सर्वं विशेषं शृणु सुन्दरि।
अत्यगम्या हि या याश्च निबोध कथयामि ताः॥ ६९

शूद्राणां विप्रपत्नी च विप्राणां शूद्रकामिनी।
अत्यगम्या च निन्द्या च लोके वेदे पतिव्रते॥ ७०

शूद्रश्च ब्राह्मणीं गत्वा ब्रह्महत्याशतं लभेत्।
तत्समं ब्राह्मणी चापि कुम्भीपाकं लभेद् ध्रुवम्॥ ७१

शूद्राणां विप्रपत्नी च विप्राणां शूद्रकामिनी।
यदि शूद्रां व्रजेद्विप्रो वृषलीपतिरेव सः॥ ७२

स भ्रष्टो विप्रजातेश्च चाण्डालात्सोऽधमः स्मृतः।
विष्ठासमश्च तत्पिण्डो मूत्रं तस्य च तर्पणम्॥ ७३

न पितॄणां सुराणां च तद्दत्तमुपतिष्ठति।
कोटिजन्मार्जितं पुण्यं तस्यार्चात्तपसार्जितम्॥ ७४

द्विजस्य वृषलीलोभान्नश्यत्येव न संशयः।
ब्राह्मणश्च सुरापीतिर्विड्भोजी वृषलीपतिः॥ ७५

तप्तमुद्रादग्धदेहस्तप्तशूलाङ्कितस्तथा।
हरिवासरभोजी च कुम्भीपाकं व्रजेद् द्विजः॥ ७६

जो ब्राह्मण प्रणाम करनेवालेको क्रोधवश आशीर्वाद नहीं देता और विद्यार्थीको विद्या प्रदान नहीं करता, उसे अवश्य ही गोहत्याका पाप लगता है॥ ६६॥

[हे साध्वि!] यह मैंने आतिदेशिकी ब्रह्महत्या और गोहत्याका वर्णन कर दिया, अब मैं मनुष्योंके लिये गम्य स्त्रीके विषयमें तुमसे कह रहा हूँ, ध्यानपूर्वक सुनो॥ ६७॥

सभी मनुष्योंको केवल अपनी भार्याके साथ गमन करना चाहिये—यह वेदोंका आदेश है। उसके अतिरिक्त अन्य स्त्री अगम्य है—ऐसा वेदवेत्ताओंने कहा है॥ ६८॥

हे सुन्दरि! यह सब सामान्य नियम कहा गया, अब कुछ विशेष नियमोंको सुनो। जो स्त्रियाँ विशेषरूपसे गमन करनेयोग्य नहीं हैं, उनके विषयमें बता रहा हूँ; ध्यानपूर्वक सुनो॥ ६९॥

हे पतिव्रते! शूद्रोंके लिये ब्राह्मणकी पत्नी और ब्राह्मणोंके लिये शूद्रकी पत्नी अति अगम्य तथा निन्द्य है —ऐसा लोक और वेदमें प्रसिद्ध है॥ ७०॥

ब्राह्मणीके साथ समागम करनेसे शूद्र एक सौ गोहत्याके पापका भागी होता है और वह निश्चितरूपसे कुम्भीपाक नरक प्राप्त करता है तथा उस शूद्रके साथ ब्राह्मणी भी कुम्भीपाक नरकमें जाती है। अतः शूद्रोंके लिये ब्राह्मणकी स्त्री तथा ब्राह्मणोंके लिये शूद्रकी स्त्री सर्वथा अगम्य है॥ ७१½॥

यदि कोई विप्र शूद्रा नारीका सेवन करता है तो वह वृषलीपति कहा जाता है। वह विप्रजातिसे च्युत हो जाता है और वह चाण्डालसे भी बढ़कर अधम कहा गया है। उसके द्वारा दिया गया पिण्ड विष्ठातुल्य तथा तर्पण मूत्रके समान हो जाता है। उसके द्वारा प्रदत्त पिण्ड आदि पितरों तथा देवताओंको प्राप्त नहीं होता। करोड़ों जन्मोंमें पूजन तथा तप करके उस ब्राह्मणके द्वारा अर्जित किया गया पुण्य शूद्रा नारीके साथ गमन करनेसे नष्ट हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं है। सुरापान करनेवाला, वेश्याओंका अन्न खानेवाला, शूद्रा नारीका सेवन करनेवाला, तप्त मुद्रा तथा तप्त त्रिशूल आदिसे दागे गये शरीरवाला तथा एकादशीको अन्न ग्रहण करनेवाला ब्राह्मण कुम्भीपाक नरकमें जाता है॥ ७२—७६॥

गुरुपत्नीं राजपत्नीं सपत्नीं मातरं ध्रुवम्।
सुतां पुत्रवधूं श्वश्रूं सगर्भां भगिनीं सतीम्॥ ७७
सहोदरभ्रातृजायां मातुलानीं पितुः प्रसूम्।
मातुः प्रसूं तत्स्वसारं भगिनीं भ्रातृकन्यकाम्॥ ७८
शिष्यां शिष्यस्य पत्नीं च भागिनेयस्य कामिनीम्।
भ्रातुः पुत्रप्रियां चैवात्यगम्या आह पद्मजः॥ ७९
एताः कामेन कान्ता यो व्रजेद्वै मानवाधमः।
स मातृगामी वेदेषु ब्रह्महत्याशतं व्रजेत्॥ ८०
अकर्मार्होऽप्यसंस्पृश्यो लोके वेदे च निन्दितः।
स याति कुम्भीपाके च महापापी सुदुष्करे॥ ८१
करोत्यशुद्धां सन्ध्यां वा न सन्ध्यां वा करोति च।
त्रिसन्ध्यं वर्जयेद्यो वा सन्ध्याहीनश्च स द्विजः॥ ८२
वैष्णवं च तथा शैवं शाक्तं सौरं च गाणपम्।
योऽहङ्कारान्न गृह्णाति मन्त्रं सोऽदीक्षितः स्मृतः॥ ८३
प्रवाहमवधिं कृत्वा यावद्धस्तचतुष्टयम्।
तत्र नारायणः स्वामी गङ्गागर्भान्तरे वसेत्॥ ८४
तत्र नारायणक्षेत्रे मृतो याति हरेः पदम्।
वाराणस्यां बदर्यां च गङ्गासागरसङ्गमे॥ ८५
पुष्करे हरिहरक्षेत्रे प्रभासे कामरूस्थले।
हरिद्वारे च केदारे तथा मातृपुरेऽपि च॥ ८६
सरस्वतीनदीतीरे पुण्ये वृन्दावने वने।
गोदावर्यां च कौशिक्यां त्रिवेण्यां च हिमाचले॥ ८७
एषु तीर्थेषु यो दानं प्रतिगृह्णाति कामतः।
स च तीर्थप्रतिग्राही कुम्भीपाके प्रयाति सः॥ ८८
शूद्रसेवी शूद्रयाजी ग्रामयाजीति कीर्तितः।
तथा देवोपजीवी च देवलः परिकीर्तितः॥ ८९
शूद्रपाकोपजीवी यः सूपकार इति स्मृतः।
सन्ध्यापूजनहीनश्च प्रमत्तः पतितः स्मृतः॥ ९०

ब्रह्माजीने गुरुकी पत्नी, राजाकी पत्नी, सौतेली माँ, पुत्री, पुत्रवधू, सास, गर्भवती स्त्री, बहन, पतिव्रता स्त्री, सहोदर भाईकी पत्नी, मामी, दादी, नानी, मौसी, भतीजी, शिष्या, शिष्यकी पत्नी, भाँजेकी स्त्री और भाईके पुत्रकी पत्नीको अति अगम्या कहा है। जो नराधम काममोहित होकर इनके साथ गमन करता है, उसे वेदोंमें मातृगामी कहा गया है और उसे सौ ब्रह्महत्याका पाप लगता है। वह कोई भी कर्म करनेका पात्र नहीं रह जाता, वह अस्पृश्य है और लोकमें तथा वेदमें सब जगह उसकी निन्दा होती है। वह महापापी अत्यन्त क्लेशदायक कुम्भीपाक नरकमें जाता है॥ ७७—८१॥

जो शास्त्रोक्त विधानसे सन्ध्या नहीं करता अथवा सन्ध्या करता ही नहीं और जो तीनों कालोंकी सन्ध्यासे रहित है, वह द्विज सन्ध्याहीन द्विज कहा गया है॥ ८२॥

जो अहंकारके कारण विष्णु, शिव, शक्ति, सूर्य तथा गणेश—इन देवोंके मन्त्रकी दीक्षा ग्रहण नहीं करता, उसे 'अदीक्षित' कहा गया है॥ ८३॥

गंगाके प्रवाहके दोनों ओरकी चार हाथकी चौड़ी भूमिको गंगागर्भ कहते हैं; वहींपर भगवान् नारायण निवास करते हैं। उस नारायणक्षेत्रमें मृत्युको प्राप्त होनेवाला व्यक्ति भगवान् श्रीहरिके धाममें पहुँच जाता है॥ ८४॥

वाराणसी, बदरिकाश्रम, गंगासागरसंगम, पुष्करक्षेत्र, हरिहरक्षेत्र, प्रभासक्षेत्र, कामाख्यापीठ, हरिद्वार, केदारक्षेत्र, मातृपुर, सरस्वती नदीके तट, पवित्र वृन्दावन, गोदावरीनदी, कौशिकीनदी, त्रिवेणीसंगम और हिमालय—इन तीर्थोंमें जो मनुष्य कामनापूर्वक दान लेता है; वह तीर्थप्रतिग्राही है और इस दानग्रहणके कारण वह कुम्भीपाक नरकमें जाता है॥ ८५—८८॥

जो ब्राह्मण शूद्रोंकी सेवा करता है तथा उनके यहाँ यज्ञ आदि कराता है, उसे ग्रामयाजी कहा गया है। देवताकी पूजा करके अपनी आजीविका चलानेवाला ब्राह्मण देवल कहा गया है। शूद्रके यहाँ रसोई बनाकर आजीविका चलानेवाले विप्रको सूपकार कहा गया है। सन्ध्या तथा पूजनकर्मसे विमुख विप्रको प्रमत्त तथा पतित कहा गया है॥ ८९-९०॥

उक्तं सर्वं मया भद्रे लक्षणं वृषलीपतेः।
एते महापातकिनः कुम्भीपाकं प्रयान्ति ते।
कुण्डान्यन्यानि ये यान्ति निबोध कथयामि ते॥ ९१

हे कल्याणि! वृषलीपतिके समस्त लक्षणोंका वर्णन मैंने कर दिया है। ये सब महापापी हैं और वे कुम्भीपाक नामक नरकमें जाते हैं। [हे साध्वि!] जो पापी दूसरे कुण्डोंमें जाते हैं, उनके विषयमें अब मैं तुम्हें बता रहा हूँ; ध्यानपूर्वक सुनो॥ ९१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे नारायणनारदसंवादे सावित्र्युपाख्याने नानाकर्मविपाकफलवर्णनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३४॥

अथ पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

विभिन्न पापकर्मोंसे प्राप्त होनेवाली विभिन्न योनियोंका वर्णन

धर्मराज उवाच

देवसेवां विना साध्वि न भवेत्कर्मकृन्तनम्।
शुद्धकर्म शुद्धबीजं नरकश्च कुकर्मणा॥ १

धर्मराज बोले—हे साध्वि! देवताओंकी उपासनाके बिना कर्म-बन्धनसे मुक्ति नहीं होती। शुद्ध कर्मका बीज शुद्ध होता है और कुकर्मसे नरककी प्राप्ति होती है॥ १॥

पुंश्चल्यन्नं च यो भुङ्क्ते योऽस्यां गच्छेत्पतिव्रते।
स द्विजः कालसूत्रं च मृतो याति सुदुर्गमम्॥ २

शतवर्षं कालसूत्रे स्थिरीभूतो भवेद् ध्रुवम्।
तत्र जन्मनि रोगी च ततः शुद्धो भवेद् द्विजः॥ ३

हे पतिव्रते! जो ब्राह्मण पुंश्चली स्त्रीका अन्न खाता है अथवा जो इसके साथ भोग करता है, वह मरनेके पश्चात् अत्यन्त कष्टदायक कालसूत्र नामक नरकमें जाता है और उस कालसूत्रमें सौ वर्षोंतक पड़ा रहता है। तत्पश्चात् मानवयोनिमें जन्म लेकर वह सदा रोगी रहता है। उसके बाद वह द्विज शुद्ध हो जाता है॥ २-३॥

पतिव्रता चैकपतौ द्वितीये कुलटा स्मृता।
तृतीये धर्षिणी ज्ञेया चतुर्थे पुंश्चलीत्यपि॥ ४

वेश्या च पञ्चमे षष्ठे पुङ्गी च सप्तमेऽष्टमे।
तत ऊर्ध्वं महावेश्या सास्पृश्या सर्वजातिषु॥ ५

एक पतिवाली स्त्री पतिव्रता तथा दो पतिवाली स्त्री कुलटा कही गयी है। तीन पतिवाली स्त्री धर्षिणी, चार पतिवाली पुंश्चली, पाँच-छः पतिवाली वेश्या तथा सात-आठ पतिवाली स्त्रीको पुंगी जानना चाहिये। इससे अधिक पुरुषोंसे सम्बन्ध रखनेवाली स्त्रीको महावेश्या कहा गया है, वह सभी जातिके लोगोंके लिये अस्पृश्य है॥ ४-५॥

यो द्विजः कुलटां गच्छेद्धर्षिणीं पुंश्चलीमपि।
पुङ्गीं वेश्यां महावेश्यां मत्स्योदे याति निश्चितम्॥ ६

शताब्दं कुलटागामी धृष्टागामी चतुर्गुणम्।
षड्गुणं पुंश्चलीगामी वेश्यागामी गुणाष्टकम्॥ ७

पुङ्गीगामी दशगुणं वसेत्तत्र न संशयः।
महावेश्याकामुकश्च ततो दशगुणं वसेत्॥ ८

जो द्विज कुलटा, धर्षिणी, पुंश्चली, पुंगी, वेश्या तथा महावेश्याके साथ समागम करता है; वह निश्चित-रूपसे मत्स्योद नामक नरकमें जाता है। उस नरकमें कुलटागामी सौ वर्षोंतक, धर्षिणीगामी उससे चार गुने अर्थात् चार सौ वर्षोंतक, पुंश्चलीगामी छः सौ वर्षोंतक, वेश्यागामी आठ सौ वर्षोंतक और पुंगीगामी एक हजार वर्षोंतक निवास करता है, महावेश्याके साथ गमन करनेवाले कामुक व्यक्तिको

तत्रैव यातनां भुङ्क्ते यमदूतेन ताडितः।
तित्तिरिः कुलटागामी धृष्टागामी च वायसः॥ ९

कोकिलः पुंश्चलीगामी वेश्यागामी वृकः स्मृतः।
पुङ्गीगामी सूकरश्च सप्तजन्मनि भारते॥ १०

महावेश्याप्रगामी च जायते शाल्मलीतरुः।
यो भुङ्क्ते ज्ञानहीनश्च ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः॥ ११

अरुन्तुदं स यात्येवाप्यन्नमानाब्दमेव च।
ततो भवेन्मानवश्चाप्युदरे रोगपीडितः॥ १२

गुल्मयुक्तश्च काणश्च दन्तहीनस्ततः शुचिः।
वाक्प्रदत्तां स्वकन्यां च योऽन्यस्मै प्रददाति च॥ १३

स वसेत्पांसुकुण्डे च तद्भोजी शतवत्सरम्।
तद्द्रव्यहारी यः साध्वि पांसुवेष्टे शताब्दकम्॥ १४

निवसेच्छरशय्यायां मम दूतेन ताडितः।
भक्त्या न पूजयेद्विप्रः शिवलिङ्गं च पार्थिवम्॥ १५

स याति शूलिनः पापाच्छूलप्रोतं सुदारुणम्।
स्थित्वा शताब्दं तत्रैव श्वापदः सप्तजन्मसु॥ १६

ततो भवेद्देवलश्च सप्तजन्म ततः शुचिः।
करोति कुण्ठितं विप्रं यद्भिया कम्पते द्विजः॥ १७

प्रकम्पने वसेत्सोऽपि विप्रलोमाब्दमेव च।
प्रकोपवदना कोपात् स्वामिनं या च पश्यति॥ १८

दस हजार वर्षोंतक वहाँ रहना पड़ता है; इसमें संशय नहीं है। वहाँपर यमदूतसे पीटा जाता हुआ वह तरह-तरहकी यातना भोगता है। उसके बाद कुलटागामी तीतर, धर्षिणीगामी कौवा, पुंश्चलीगामी कोयल, वेश्यागामी भेड़िया और पुंगीगामी सूअरकी योनिमें भारतवर्षमें सात जन्मोंतक पैदा होते रहते हैं—ऐसा कहा गया है। महावेश्यासे समागम करनेवाला मनुष्य सेमरका वृक्ष होता है॥ ६—१०½ ॥

जो अज्ञानी मनुष्य चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहणके अवसरपर भोजन करता है, वह अन्नके दानोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक अरुन्तुद नामक नरककुण्डमें जाता है। तत्पश्चात् वह मनुष्ययोनिमें उत्पन्न होता है। उस समय वह उदररोगसे पीड़ित, प्लीहारोगसे ग्रस्त, काना तथा दन्तविहीन हो जाता है; उसके बाद उसकी शुद्धि हो जाती है॥ ११-१२½ ॥

जो अपनी कन्याका वाग्दान करके उसे किसी अन्य पुरुषको प्रदान कर देता है, वह पांसुकुण्ड नामक नरकमें सौ वर्षोंतक वास करता है और उसी धूलराशिका भोजन करता है। हे साध्वि! जो मनुष्य अपनी कन्याके धनका हरण करता है, वह पांशुवेष्ट नामक नरककुण्डमें सौ वर्षोंतक वास करता है। वह वहाँ बाणोंकी शय्यापर लेटा रहता है और मेरे दूत उसे पीटते रहते हैं॥ १३-१४½ ॥

जो विप्र भक्तिपूर्वक पार्थिव शिवलिंगकी पूजा नहीं करता, वह त्रिशूल धारण करनेवाले भगवान् शिवके प्रति अपराधजन्य पापके कारण शूलप्रोत नामक अत्यन्त भयानक नरककुण्डमें जाता है। वहाँ सौ वर्षतक रहनेके पश्चात् वह सात जन्मोंतक वन्य पशु होता है। उसके बाद सात जन्मोंतक देवल होता है, फिर उसकी शुद्धि हो जाती है॥ १५-१६½ ॥

जो किसी विप्रको कुण्ठित कर देता है और उसके भयसे वह काँपने लगता है, वह उस द्विजके शरीरमें जितने रोम होते हैं, उतने वर्षोंतक प्रकम्पनकुण्डमें निवास करता है॥ १७½ ॥

कोपाविष्ट मुखवाली जो स्त्री अपने पतिको क्रोधभरी दृष्टिसे देखती है और कटु वाणीमें उससे बात करती है, वह उल्मुक नामक नरककुण्डमें जाती

कटूक्तिं तं प्रवदति सोल्मुकं सम्प्रयाति हि।
उल्कां ददाति तद्वक्त्रे सततं मम किङ्करः॥ १९

दण्डेन ताडयेन्मूर्ध्नि तल्लोमाब्दप्रमाणकम्।
ततो भवेन्मानवी च विधवा सप्तजन्मसु॥ २०

सा भुक्त्वा चैव वैधव्यं व्याधियुक्ता ततः शुचिः।
या ब्राह्मणी शूद्रभोग्या चान्धकूपे प्रयाति सा॥ २१

तप्तशौचोदके ध्वान्ते तदाहारी दिवानिशम्।
निवसेदतिसन्तप्ता मम दूतेन ताडिता॥ २२

शौचोदके निमग्ना सा यावदिन्द्राश्चतुर्दश।
काकी जन्मसहस्त्राणि शतजन्मानि सूकरी॥ २३

शृगाली शतजन्मानि शतजन्मानि कुक्कुटी।
पारावती सप्तजन्म वानरी सप्तजन्मसु॥ २४

ततो भवेत्सा चाण्डाली सर्वभोग्या च भारते।
ततो भवेच्च रजकी यक्ष्मग्रस्ता च पुंश्चली॥ २५

ततः कुष्ठयुता तैलकारी शुद्धा भवेत्ततः।
निवसेद्वेधने वेश्या पुङ्गी च दण्डताडने॥ २६

जलरन्ध्रे वसेद्वेश्या कुलटा देहचूर्णके।
स्वैरिणी दलने चैव धृष्टा च शोषणे तथा॥ २७

निवसेद्यातनायुक्ता मम दूतेन ताडिता।
विण्मूत्रभक्षा सततं यावन्मन्वन्तरं सति॥ २८

ततो भवेद्विट्कृमिश्च लक्षवर्षं ततः शुचिः।
ब्राह्मणो ब्राह्मणीं गच्छेत्क्षत्रियां वापि क्षत्रियः॥ २९

है। वहाँपर मेरे दूत उसके मुखमें निरन्तर प्रज्वलित अंगार डालते रहते हैं और उसके सिरपर डंडेसे प्रहार करते रहते हैं। उसके पतिके शरीरमें जितने रोम होते हैं, उतने वर्षोंतक उस स्त्रीको उस नरक-कुण्डमें रहना पड़ता है। उसके बाद मानवजन्म प्राप्त करके वह सात जन्मोंतक विधवा रहती है। विधवाका जीवन व्यतीत करनेके पश्चात् वह रोगसे ग्रस्त हो जाती है, तत्पश्चात् उसकी शुद्धि हो जाती है॥ १८—२०½ ॥

जो ब्राह्मणी शूद्रके साथ भोग करती है, वह अन्धकूप नामक नरककुण्डमें जाती है। अन्धकारमय तथा तप्त शौचजलयुक्त उस कुण्डमें वह दिन-रात पड़ी रहती है और उसी तप्त शौचजलका भोजन करती है। मेरे दूतोंके द्वारा पीटी जाती हुई वह वहाँ अत्यन्त सन्तप्त रहती है। वह स्त्री चौदह इन्द्रोंकी स्थितिपर्यन्त उस शौचजलमें डूबी रहती है। तत्पश्चात् वह एक हजार जन्मतक कौवी, एक सौ जन्मतक सूकरी, एक सौ जन्मतक सियारिन, एक सौ जन्मतक कुक्कुटी, सात जन्मतक कबूतरी और सात जन्मतक वानरी होती है। इसके बाद वह भारतवर्षमें सर्वभोग्या चाण्डाली होती है, उसके बाद वह व्यभिचारिणी धोबिन होती है और सदा यक्ष्मारोगसे ग्रस्त रहती है। तत्पश्चात् वह कोढ़रोगसे युक्त तैलकारी (तेलिन) होती है और उसके बाद शुद्ध हो जाती है॥ २१—२५½ ॥

वेश्या वेधनकुण्डमें, पुंगी दण्डताडनकुण्डमें, महावेश्या जलरन्ध्रकुण्डमें, कुलटा देहचूर्णकुण्डमें, स्वैरिणी दलनकुण्डमें और धृष्टा शोषणकुण्डमें वास करती है। हे साध्वि! मेरे दूतसे पीटी जाती हुई वह वहाँ यातना भोगती रहती है। उसे एक मन्वन्तरतक निरन्तर विष्ठा और मूत्रका भक्षण करना पड़ता है। उसके बाद वह एक लाख वर्षतक विष्ठाके कीटके रूपमें रहती है और फिर उसकी शुद्धि हो जाती है॥ २६—२८½ ॥

यदि ब्राह्मण किसी परायी ब्राह्मणीके साथ, क्षत्रिय क्षत्राणीके साथ, वैश्य किसी वैश्याके साथ और शूद्र किसी शूद्राके साथ भोग करता है; तो अपने

वैश्यो वैश्यां च शूद्रां वा शूद्रश्चापि व्रजेद्यदि।
सवर्णपरदारैश्च कषायं यान्ति ते जनाः॥ ३०

भुक्त्वा कषायतप्तोदं निवसेद्वा शताब्दकम्।
ततो विप्रो भवेच्छुद्धस्ततो वै क्षत्रियादयः॥ ३१

योषितश्चापि शुद्ध्यन्तीत्येवमाह पितामहः।
क्षत्रियो ब्राह्मणीं गच्छेद्वैश्यो वापि पतिव्रते॥ ३२

मातृगामी भवेत्सोऽपि शूर्पे च नरके वसेत्।
शूर्पाकारैश्च कृमिभिर्ब्राह्मण्या सह भक्षितः॥ ३३

प्रतप्तमूत्रभोजी च मम दूतेन ताडितः।
तत्रैव यातनां भुङ्क्ते यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥ ३४

सप्तजन्म वराहश्च छागलश्च ततः शुचिः।
करे धृत्वा तु तुलसीं प्रतिज्ञां यो न पालयेत्॥ ३५

मिथ्या वा शपथं कुर्यात्स च ज्वालामुखं व्रजेत्।
गङ्गातोयं करे कृत्वा प्रतिज्ञां यो न पालयेत्॥ ३६

शिलां वा देवप्रतिमां स च ज्वालामुखं व्रजेत्।
दत्त्वा दक्षिणहस्तं च प्रतिज्ञां यो न पालयेत्॥ ३७

स्थित्वा देवगृहे वापि स च ज्वालामुखं व्रजेत्।
आस्पृश्य ब्राह्मणं गां च ज्वालावह्निं व्रजेद् द्विजः॥ ३८

न पालयेत्प्रतिज्ञां च स च ज्वालामुखं व्रजेत्।
मित्रद्रोही कृतघ्नश्च यश्च विश्वासघातकः॥ ३९

मिथ्यासाक्ष्यप्रदश्चैव स च ज्वालामुखं व्रजेत्।
एते तत्र वसन्त्येव यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥ ४०

तथाङ्गारप्रदग्धाश्च मम दूतेन ताडिताः।

ही वर्णकी परायी स्त्रियोंके साथ भोग करनेवाले वे पुरुष कषाय नामक नरकमें जाते हैं। वहाँ वे कषाय (खारा) तथा गर्म जल पीते हुए सौ वर्षतक पड़े रहते हैं। उसके बाद वे ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि पुरुष शुद्ध होते हैं। उसी प्रकार यातनाएँ भोगकर वे ब्राह्मणी आदि स्त्रियाँ भी शुद्ध होती हैं—ऐसा पितामह ब्रह्माने कहा है॥ २९—३१½ ॥

हे पतिव्रते! जो क्षत्रिय अथवा वैश्य किसी ब्राह्मणीके साथ समागम करता है, वह मातृगामी होता है और वह शूर्प नामक नरकमें वास करता है। ब्राह्मणीसहित वह मनुष्य सूपके आकारके कीड़ोंके द्वारा नोचा जाता है। वहाँ वह अत्यन्त गर्म मूत्रका सेवन करता है और मेरे दूत उसे पीटते हैं। वहाँपर वह चौदह इन्द्रोंके आयुपर्यन्त यातना भोगता है। उसके बाद वह सात जन्मोंतक सूअर और सात जन्मोंतक बकरा होता है, तत्पश्चात् वह शुद्ध हो जाता है॥ ३२—३४½ ॥

जो मनुष्य हाथमें तुलसीदल लेकर की गयी प्रतिज्ञाका पालन नहीं करता अथवा मिथ्या शपथ लेता है, वह ज्वालामुख नामक नरकमें जाता है। उसी प्रकार जो मनुष्य अपने हाथमें गंगाजल, शालग्रामशिला अथवा किसी देवताकी प्रतिमा लेकर की गयी प्रतिज्ञाका पालन नहीं करता, वह भी ज्वालामुख नरकमें जाता है। जो मनुष्य किसी दूसरे व्यक्तिके दाहिने हाथमें अपना दायाँ हाथ रखकर अथवा किसी देवालयमें स्थित होकर की गयी प्रतिज्ञाको पूर्ण नहीं करता, वह भी ज्वालामुख नरकमें जाता है। जो द्विज किसी ब्राह्मण अथवा गायका स्पर्श करके की गयी प्रतिज्ञाका पालन नहीं करता, वह ज्वालामुख नामक नरकमें जाता है। उसी तरह जो मनुष्य अपने मित्रके साथ द्रोह करता है, कृतघ्न है, विश्वासघात करता है और झूठी गवाही देता है, वह भी ज्वालामुख नरकमें जाता है। ये लोग उस नरकमें चौदह इन्द्रोंकी स्थितिपर्यन्त निवास करते हैं। मेरे दूत अंगारोंसे उन्हें दागते हैं और बहुत पीटते हैं॥ ३५—४०½ ॥

चाण्डालस्तुलसीं स्पृष्ट्वा सप्तजन्म ततः शुचिः॥ ४१

म्लेच्छो गङ्गाजलस्पर्शी पञ्चजन्म ततः शुचिः।
शिलास्पर्शी विट्कृमिश्च सप्तजन्मसु सुन्दरि॥ ४२

अर्चास्पर्शी ब्रह्मकृमिः सप्तजन्म ततः शुचिः।
दक्षहस्तप्रदाता च सर्पश्च सप्तजन्मसु॥ ४३

ततो भवेद् ब्रह्महीनो मानवश्च ततः शुचिः।
मिथ्यावादी देवगृहे देवलः सप्तजन्मसु॥ ४४

विप्रादिस्पर्शकारी च व्याघ्रजातिर्भवेद् ध्रुवम्।
ततो भवेच्च मूकः स बधिरश्च त्रिजन्मनि॥ ४५

भार्याहीनो बन्धुहीनो वंशहीनस्ततः शुचिः।
मित्रद्रोही च नकुलः कृतघ्नश्चापि गण्डकः॥ ४६

विश्वासघाती व्याघ्रश्च सप्तजन्मसु भारते।
मिथ्यासाक्षी च वक्तव्ये मण्डूकः सप्तजन्मसु॥ ४७

पूर्वान्सप्तापरान्सप्त पुरुषान्हन्ति चात्मनः।
नित्यक्रियाविहीनश्च जडत्वेन युतो द्विजः॥ ४८

यस्यानास्था वेदवाक्ये मन्दं हसति संततम्।
व्रतोपवासहीनश्च सद्वाक्यपरनिन्दकः॥ ४९

धूम्रान्धे च वसेत्सोऽपि शताब्दं धूम्रभक्षकः।
जलजन्तुर्भवेत्सोऽपि शतजन्मक्रमेण च॥ ५०
ततो नानाप्रकारश्च मत्स्यजातिस्ततः शुचिः।

तुलसीका स्पर्श करके मिथ्या शपथ लेनेवाला सात जन्मतक चाण्डाल होता है, उसके बाद उसकी शुद्धि होती है। गंगाजलका स्पर्श करके की गयी प्रतिज्ञाका पालन न करनेवाला पाँच जन्मतक म्लेच्छ होता है, उसके बाद वह शुद्ध होता है। हे सुन्दरि! शालग्रामशिलाका स्पर्श करके की गयी प्रतिज्ञाका पालन न करनेवाला सात जन्मतक विष्ठाका कीड़ा होता है। किसी देवप्रतिमाका स्पर्श करके जो मिथ्या प्रतिज्ञा करता है, वह सात जन्मतक ब्राह्मण-गृहस्थके घर कीड़ा होता है, इसके बाद उसकी शुद्धि हो जाती है। किसीके दाहिने हाथपर अपना दाहिना हाथ रखकर मिथ्या शपथ लेनेवाला सात जन्मतक सर्प होता है। उसके बाद ब्रह्मज्ञानविहीन मानव होता है, पुनः शुद्ध हो जाता है। जो देवमन्दिरमें मिथ्या वचन बोलता है, वह सात जन्मतक देवल होता है। ब्राह्मण आदिको स्पर्श करके झूठी प्रतिज्ञा करनेवाला निश्चितरूपसे बाघयोनिमें जन्म लेता है। उसके बाद वह तीन जन्मतक गूँगा और फिर तीन जन्मतक बहरा होता है। वह भार्यारहित, बन्धु-बान्धवोंसे विहीन तथा निःसन्तान रहता है, तत्पश्चात् शुद्ध हो जाता है। जो मित्रके साथ द्रोह करता है, वह नेवला होता है; जो दूसरोंका उपकार नहीं मानता, वह गैंडा होता है; जो विश्वासघाती होता है, वह सात जन्मतक भारतवर्षमें बाघ होता है और जो झूठी गवाही देता है, वह सात जन्मतक मेढक होता है। वह अपनी सात पीढ़ी पहले तथा सात पीढ़ी बादके पुरुषोंका अधःपतन करा देता है॥ ४१—४७½ ॥

जो द्विज नित्यक्रियासे विहीन तथा जड़तासे युक्त है, वेदवाक्योंमें जिसकी आस्था नहीं है, जो कपटपूर्वक उनका सदा उपहास करता है, जो व्रत तथा उपवास नहीं करता और दूसरोंके उत्तम विचारोंकी निन्दा करता है, वह धूम्रान्ध नामक नरकमें धूमका ही भक्षण करते हुए एक सौ वर्षतक निवास करता है। उसके बाद वह क्रमसे सौ जन्मोंतक अनेक प्रकारका जलजन्तु होता है। तत्पश्चात् वह अनेक प्रकारकी मत्स्ययोनिमें जन्म लेता है, उसके बाद उसकी शुद्धि हो जाती है॥ ४८—५०½ ॥

य: करोत्युपहासं च देवब्राह्मणयोर्धने॥ ५१

पातयित्वा स पुरुषान्दशपूर्वान्दशापरान्।
सोऽयं याति च धूम्रान्धं धूम्रध्वान्तसमन्वितम्॥ ५२

धूम्रक्लिष्टो धूम्रभोजी वसेत्तत्र चतुर्गुणम्।
ततो मूषकजातिश्च सप्तजन्मसु भारते॥ ५३

ततो नानाविधाः पक्षिजातयः कृमिजातिभिः।
ततो नानाविधा वृक्षाः पशवश्च ततो नरः॥ ५४

जो मनुष्य देवता तथा ब्राह्मणकी सम्पत्तिका उपहास करता है, वह अपनी दस पीढ़ी पहले तथा दस पीढ़ी बादके पुरुषोंका पतन कराकर स्वयं धूम्र तथा अन्धकारसे युक्त धूम्रान्ध नामक नरकमें जाता है। वहाँपर धुएँसे कष्ट सहते हुए तथा धुएँका ही भोजन करते हुए वह चार सौ वर्षतक रहता है। उसके बाद वह भारतवर्षमें सात जन्मतक चूहेकी योनिमें जन्म पाता है। तदनन्तर वह अनेक प्रकारके पक्षियों तथा कीड़ोंकी योनिमें जाता है, उसके बाद अनेकविध वृक्ष तथा पशु होनेके अनन्तर वह मनुष्ययोनिमें जन्म ग्रहण करता है॥ ५१—५४॥

विप्रो दैवज्ञजीवी च वैद्यजीवी चिकित्सकः।
लाक्षालोहादिव्यापारी रसादिविक्रयी च यः॥ ५५

स याति नागवेष्टं च नागैर्वेष्टितमेव च।
वसेत्स लोममानाब्दं तत्रैव नागपाशितः॥ ५६

ततो नानाविधाः पक्षिजातयश्च ततो नरः।
ततो भवेत्स गणको वैद्यश्च सप्तजन्मसु॥ ५७

गोपश्च कर्मकारश्च रङ्गकारस्ततः शुचिः।

जो विप्र ज्योतिषविद्यासे अपनी आजीविका चलाता है, वैद्य होकर चिकित्सावृत्तिसे आजीविका चलाता है, लाख-लोहा आदिका व्यापार करता और रस आदिका विक्रय करता है; वह नागोंसे व्याप्त नागवेष्टन नामक नरकमें जाता है और नागोंसे आबद्ध होकर अपने शरीरके रोमप्रमाण वर्षोंतक वहाँ निवास करता है, तत्पश्चात् उसे नानाविध पक्षी-योनियाँ मिलती हैं और उसके बाद वह मनुष्य होता है, तत्पश्चात् वह सात जन्मतक गणक और सात जन्मतक वैद्य होता है। पुनः गोप, कर्मकार और रंगकार होकर शुद्ध होता है॥ ५५—५७½ ॥

प्रसिद्धानि च कुण्डानि कथितानि पतिव्रते॥ ५८

अन्यानि चाप्रसिद्धानि क्षुद्राणि सन्ति तत्र वै।
सन्ति पातकिनस्तेषु स्वकर्मफलभोगिनः।
भ्रमन्ति नानायोनिं च किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ ५९

हे पतिव्रते! मैंने प्रसिद्ध नरककुण्डोंका वर्णन कर दिया। इनके अतिरिक्त और भी छोटे-छोटे कुण्ड हैं, जो प्रसिद्ध नहीं हैं, अपने कर्मोंका फल भोगनेके लिये पापी लोग वहाँ जाते हैं और विविध योनियोंमें भ्रमण करते रहते हैं, अब तुम और क्या सुनना चाहती हो?॥ ५८-५९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे नानाकर्मविपाकफलकथनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः॥ ३५॥



अथ षट्त्रिंशोऽध्यायः

धर्मराजद्वारा सावित्रीसे देवोपासनासे प्राप्त होनेवाले पुण्यफलोंको कहना

सावित्र्युवाच

धर्मराज महाभाग वेदवेदाङ्गपारग।
नानापुराणेतिहासे यत्सारं तत्प्रदर्शय॥ १

सावित्री बोली—हे वेद-वेदांगमें पारंगत महाभाग धर्मराज! नानाविध पुराणों तथा इतिहासोंमें जो सारस्वरूप है, उसे प्रदर्शित कीजिये। अब आप

सर्वेषु सारभूतं यत्सर्वेष्टं सर्वसम्मतम्।
कर्मच्छेदबीजरूपं प्रशस्तं सुखदं नृणाम्॥ २

सर्वप्रदं च सर्वेषां सर्वमङ्गलकारणम्।
भयं दुःखं न पश्यन्ति येन वै सर्वमानवाः॥ ३

कुण्डानि ते न पश्यन्ति तेषु नैव पतन्ति च।
न भवेद्येन जन्मादि तत्कर्म वद साम्प्रतम्॥ ४

किमाकाराणि कुण्डानि तानि वा निर्मितानि च।
के च केनैव रूपेण तत्र तिष्ठन्ति पापिनः॥ ५

स्वदेहे भस्मसाद्भूते याति लोकान्तरं नरः।
केन देहेन वा भोगं करोति च शुभाशुभम्॥ ६

सुचिरं क्लेशभोगेन कथं देहो न नश्यति।
देहो वा किंविधो ब्रह्मंस्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥ ७

श्रीनारायण उवाच

सावित्रीवचनं श्रुत्वा धर्मराजो हरिं स्मरन्।
कथां कथितुमारेभे कर्मबन्धनिकृन्तनीम्॥ ८

धर्मराज उवाच

वत्से चतुर्षु वेदेषु धर्मेषु संहितासु च।
पुराणेष्वितिहासेषु पाञ्चरात्रादिकेषु च॥ ९

अन्येषु धर्मशास्त्रेषु वेदाङ्गेषु च सुव्रते।
सर्वेष्टं सारभूतं च पञ्चदेवानुसेवनम्॥ १०

जन्ममृत्युजराव्याधिशोकसन्तापनाशनम्।
सर्वमङ्गलरूपं च परमानन्दकारणम्॥ ११

कारणं सर्वसिद्धीनां नरकार्णवतारणम्।
भक्तिवृक्षाङ्कुरकरं कर्मवृक्षनिकृन्तनम्॥ १२

विमोक्षसोपानमिदमविनाशपदं स्मृतम्।
सालोक्यसार्ष्टिसारूप्यसामीप्यादिप्रदं शुभम्॥ १३

मुझसे उस कर्मका वर्णन कीजिये; जो सबका सारभूत, सबका अभीष्ट, सर्वसम्मत, कर्मोंका उच्छेद करनेके लिये बीजरूप, परम श्रेष्ठ, मनुष्योंको सुख देनेवाला, सब कुछ प्रदान करनेवाला तथा सभीका सब प्रकारका कल्याण करनेवाला है और जिसके प्रभावसे सभी मनुष्य भय तथा दुःखका अनुभव नहीं करते, नरककुण्डोंको उन्हें देखना नहीं पड़ता, वे उनमें नहीं गिरते तथा जिससे उनका जन्म आदि नहीं होता है॥ १—४॥

उन नरककुण्डोंके आकार कैसे हैं और वे किस प्रकार बने हैं? कौन-कौन पापी किस रूपसे वहाँ निवास करते हैं? अपने देहके भस्मसात् हो जानेपर मनुष्य किस देहसे परलोकमें जाता है और अपने द्वारा किये गये शुभाशुभ कर्मोंके फल भोगता है? दीर्घकालतक महान् क्लेशका भोग करनेपर भी उस देहका नाश क्यों नहीं होता और वह देह किस प्रकारका होता है? हे ब्रह्मन्! यह मुझे बतानेकी कृपा कीजिये॥ ५—७॥

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] सावित्रीकी बात सुनकर धर्मराजने भगवान् श्रीहरिका स्मरण करते हुए कर्मबन्धनको काटनेवाली कथा कहनी आरम्भ की॥ ८॥

धर्मराज बोले—हे वत्से! हे सुव्रते! चारों वेदों, धर्मशास्त्रों, संहिताओं, पुराणों, इतिहासों, पांचरात्र आदि धर्मग्रन्थों तथा अन्य धर्मशास्त्रों और वेदांगोंमें पाँच देवताओंकी उपासनाको सर्वेष्ट तथा सारभूत बताया गया है॥ ९-१०॥

यह देवोपासना जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि, शोक तथा संतापका नाश करनेवाली; सर्वमंगलरूप; परम आनन्दका कारण; सम्पूर्ण सिद्धियोंको प्रदान करनेवाली; नरकरूपी समुद्रसे उद्धार करनेवाली; भक्तिरूपी वृक्षको अंकुरित करनेवाली; कर्मबन्धनरूपी वृक्षको काटनेवाली; मोक्षके लिये सोपानस्वरूप; शाश्वतपदस्वरूप; सालोक्य, सार्ष्टि, सारूप्य तथा सामीप्य आदि मुक्तियोंको प्रदान करनेवाली तथा मंगलकारी बतायी गयी है॥ ११—१३॥

कुण्डानि यमदूतैश्च रक्षितानि सदा शुभे।
न हि पश्यन्ति स्वप्ने च पञ्चदेवार्चका नराः॥ १४

देवीभक्तिविहीना ये ते पश्यन्ति ममालयम्।
यान्ति ये हरितीर्थं वा श्रयन्ति हरिवासरम्॥ १५

प्रणमन्ति हरिं नित्यं हर्यर्चां कल्पयन्ति च।
न यान्ति तेऽपि घोरां च मम संयमिनीं पुरीम्॥ १६

त्रिसन्धिपूता विप्राश्च शुद्धाचारसमन्विताः।
निवृत्तिं नैव लप्स्यन्ति देवीसेवां विना नराः॥ १७

स्वधर्मनिरताचाराः स्वधर्मनिरतास्तथा।
गच्छन्तो मृत्युलोकं च दुर्दृशा मम किङ्कराः॥ १८

भीताः शिवोपासकेभ्यो वैनतेयादिवोरगाः।
स्वदूतं पाशहस्तं च गच्छन्तं वारयाम्यहम्॥ १९

यास्यन्ति ते च सर्वत्र हरिदासाश्रमं विना।
कृष्णमन्त्रोपासकाच्च वैनतेयादिवोरगाः॥ २०

देवीमन्त्रोपासकानां नाम्नाञ्चैव निकृन्तनम्।
करोति नखलेखन्या चित्रगुप्तश्च भीतवत्॥ २१

मधुपर्कादिकं तेषां कुरुते च पुनः पुनः।
विलङ्घ्य ब्रह्मलोकं च लोकं गच्छन्ति ते सति॥ २२

दुरितानि च नश्यन्ति येषां संस्पर्शमात्रतः।
ते महाभाग्यवन्तो हि सहस्रकुलपावनाः॥ २३

यथा च प्रज्वलद्वह्नौ शुष्कानि च तृणानि च।
प्राप्नोति मोहः सम्मोहं तांश्च दृष्ट्वा च भीतवत्॥ २४

कामश्च कामिनं याति लोभक्रोधौ ततः सति।
मृत्युः प्रलीयते रोगो जरा शोको भयं तथा॥ २५
कालः शुभाशुभं कर्म हर्षो भोगस्तथैव च।

हे शुभे! यमदूत इन नरककुण्डोंकी सदा रखवाली किया करते हैं। पंचदेवोंकी आराधना करनेवाले मनुष्योंको स्वप्नमें भी इन कुण्डोंका दर्शन नहीं होता। जो भगवतीकी भक्तिसे रहित हैं, वे ही मेरी पुरीको देखते हैं॥ १४१/२॥

जो भगवान्‌के तीर्थोंमें जाते हैं, एकादशीका व्रत करते हैं, भगवान् श्रीहरिको नित्य प्रणाम करते हैं और उनकी प्रतिमाकी पूजा करते हैं, उन्हें भी मेरी भयंकर संयमिनी पुरीमें नहीं जाना पड़ता॥ १५-१६॥

त्रिकाल सन्ध्यासे पवित्र तथा विशुद्ध सदाचारसे युक्त ब्राह्मण भी बिना भगवतीकी उपासनाके मोक्ष नहीं प्राप्त कर सकते॥ १७॥

अपने धार्मिक आचार-विचारसे सम्पन्न तथा अपने धर्ममें संलग्न रहनेवालोंको मृत्युलोक गये हुए मेरे दूत दिखायी नहीं पड़ते। मेरे दूत शिवके उपासकोंसे उसी तरह भयभीत होते हैं, जैसे गरुड़से सर्प। हाथमें पाश लिये हुए अपने दूतको शिवोपासककी ओर जाते देखकर मैं उसे रोक देता हूँ॥ १८-१९॥

मेरे दूत भगवान् श्रीहरिके भक्तोंके आश्रमको छोड़कर सभी जगह जा सकते हैं। श्रीकृष्णके मन्त्रोंकी उपासना करनेवालोंसे मेरे दूत गरुड़से सर्पकी भाँति डरते हैं॥ २०॥

[पाप करनेवालोंकी सूचीसे] देवीके मन्त्रोपासकोंके लिखे नामोंको चित्रगुप्त भयभीत होकर अपनी नखरूपी लेखनीसे काट देते हैं; साथ ही मधुपर्क आदिसे बार-बार उनका सत्कार करते हैं। हे सति! वे भक्त ब्रह्मलोक पार करके भगवतीके लोक (मणिद्वीप)-को चले जाते हैं॥ २१-२२॥

जिनके स्पर्शमात्रसे सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं, वे [भक्त] महान् सौभाग्यशाली हैं। वे हजारों कुलोंको पवित्र कर देते हैं। जलती हुई अग्निमें पड़े सूखे पत्तोंकी भाँति उनके पाप जल जाते हैं। उन भक्तोंको देखकर मोह भी भयभीत होकर मोहित हो जाता है, हे साध्वि! काम निर्मूल हो जाता है, लोभ तथा क्रोध नष्ट हो जाते हैं और मृत्यु विलीन हो जाती है; इसी प्रकार रोग, जरा, शोक, भय, काल, शुभाशुभ कर्म, हर्ष तथा भोग—ये सब प्रभावहीन हो जाते हैं॥ २३—२५१/२॥

ये ये न यान्ति तां पीडां कथितास्ते मया सति॥ २६

शृणु देहविवरणं कथयामि यथागमम्।
पृथिवी वायुराकाशस्तेजस्तोयमिति स्फुटम्॥ २७

देहिनां देहबीजं च स्त्रष्टृसृष्टिविधौ परम्।
पृथिव्यादिपञ्चभूतैर्यो देहो निर्मितो भवेत्॥ २८

स कृत्रिमो नश्वरश्च भस्मसाच्च भवेदिह।

हे साध्वि! जो-जो लोग उस नारकीय पीड़ाको प्राप्त नहीं करते, उनके विषयमें मैंने बता दिया। अब आगम-शास्त्रके अनुसार देहका विवरण बताता हूँ, उसे सुनो। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—ये पाँच तत्त्व स्पष्ट ही हैं। स्रष्टाके सृष्टिविधानमें प्राणियोंके लिये एक देहबीज निर्मित होता है। पृथ्वी आदि पाँच भूतोंसे जो देह निर्मित होता है, वह कृत्रिम तथा नश्वर है और इस लोकमें ही वह भस्मसात् हो जाता है॥ २६—२८½ ॥

बद्धोऽङ्गुष्ठप्रमाणश्च यो जीवः पुरुषः कृतः॥ २९

बिभर्ति सूक्ष्मं देहं तं तद्रूपं भोगहेतवे।
स देहो न भवेद्भस्म ज्वलदग्नौ ममालये॥ ३०

उस शरीरमें जो जीव आबद्ध रहता है, वह उस समय अँगूठेके आकारवाले पुरुषके रूपमें हो जाता है। अपने कर्मोंका फल भोगनेके लिये वह जीव सूक्ष्मरूपसे उस देहको धारण करता है। मेरी पुरीमें प्रज्वलित अग्निमें डाले जानेपर भी वह देह भस्म नहीं होता॥ २९-३०॥

जलेन नष्टो देही वा प्रहारे सुचिरं कृते।
न शस्त्रेण न वास्त्रेण सुतीक्ष्णकण्टके तथा॥ ३१

तप्तद्रवे तप्तलोहे तप्तपाषाण एव च।
प्रतप्तप्रतिमाश्लेषे यत्पूर्वपतनेऽपि च॥ ३२

न दग्धो न च भग्नः स भुङ्क्ते सन्तापमेव च।
कथितो देहवृत्तान्तः कारणं च यथागमम्।
कुण्डानां लक्षणं सर्वं बोधाय कथयामि ते॥ ३३

वह सूक्ष्म यातनाशरीर न तो जलमें नष्ट होता है और न दीर्घकालतक प्रहार करनेपर ही नष्ट होता है। उस शरीरको अस्त्र अथवा शस्त्रसे नष्ट नहीं किया जा सकता। अत्यन्त तीक्ष्ण धारवाले काँटे, तपते हुए तेल, तप्त लोहे और तप्त पाषाणपर पड़नेपर तथा अत्यन्त तप्त प्रतिमासे सटानेपर और पूर्वकथित नरककुण्डोंमें गिरानेपर भी वह यातनाशरीर न तो दग्ध होता है और न भग्न ही होता है; अपितु कष्ट ही भोगता रहता है। [हे साध्वि!] आगमशास्त्रके अनुसार देहवृत्तान्त तथा कारण आदि मैंने बता दिये, अब तुम्हारी जानकारीके लिये नरककुण्डोंका लक्षण बताता हूँ॥ ३१—३३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे नारायणनारदसंवादे देवपूजनात् सर्वारिष्टनिवृत्तिवर्णनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३६॥

अथ सप्तत्रिंशोऽध्यायः

विभिन्न नरककुण्ड तथा वहाँ दी जानेवाली यातनाका वर्णन

धर्मराज उवाच

पूर्णेन्दुमण्डलाकारं सर्वं कुण्डं च वर्तुलम्।
निम्नं पाषाणभेदैश्च पाचितं बहुभिः सति॥ १

धर्मराज बोले—हे साध्वि! वे सभी नरककुण्ड पूर्ण चन्द्रमाकी भाँति गोलाकार तथा बहुत गहरे हैं। वे अनेक प्रकारके पत्थरोंसे बनाये गये हैं। वे कुण्ड नाशवान् नहीं हैं और प्रलयकालतक बने रहते हैं।

न नश्वरं चाप्रलयं निर्मितं चेश्वरेच्छया।
क्लेशदं पातकानां च नानारूपं तदालयम्॥ २

ज्वलदङ्गाररूपं च शतहस्तशिखान्वितम्।
परितः क्रोशमानं च वह्निकुण्डं प्रकीर्तितम्॥ ३

महाशब्दं प्रकुर्वद्भिः पापिभिः परिपूरितम्।
रक्षितं मम दूतैश्च ताडितैश्चापि सन्ततम्॥ ४

प्रतप्तोदकपूर्णं च हिंस्रजन्तुसमन्वितम्।
महाघोरं काकुशब्दं प्रहारेण दृढेन च॥ ५

क्रोशार्धमानं तद्दूतैस्ताडितैर्मम पार्षदैः।
तप्तक्षारोदकैः पूर्णं पुनः काकैश्च सङ्कुलम्॥ ६

सङ्कुलं पापिभिश्चैव क्रोशमानं भयानकम्।
त्राहीति शब्दं कुर्वद्भिर्मम दूतैश्च ताडितैः॥ ७

प्रचलद्भिरनाहारैः शुष्ककण्ठोष्ठतालुकैः।
विड्भिरेव कृतं पूर्णं क्रोशमानं च कुत्सितम्॥ ८

अतिदुर्गन्धिसंसक्तं व्याप्तं पापिभिरन्वहम्।
ताडितैर्मम दूतैश्च तदाहारैः सुदारुणैः॥ ९

रक्षेति शब्दं कुर्वद्भिस्तत्कीटैरेव भक्षितैः।
तप्तमूत्रद्रवैः पूर्णं मूत्रकीटैश्च सङ्कुलम्॥ १०

युक्तं महापातकिभिस्तत्कीटैर्भक्षितैः सदा।
गव्यूतिमानं ध्वान्ताक्तं शब्दकृद्भिश्च सन्ततम्॥ ११
मद्दूतैस्ताडितैर्घोरैः शुष्ककण्ठोष्ठतालुकैः।

भगवान्‌की इच्छासे उनकी रचना की गयी है, वे पापियोंको क्लेश देनेवाले हैं और अनेक रूपोंवाले हैं॥ १-२॥

चारों ओरसे एक कोसके विस्तारवाले, सौ हाथ ऊपरतक उठती हुई लपटोंवाले तथा प्रज्वलित अंगारके रूपवाले कुण्डको अग्निकुण्ड कहा गया है। भयानक चीत्कार करनेवाले पापियोंसे वह भरा रहता है। उन पापियोंको पीटनेवाले मेरे दूत निरन्तर उस कुण्डकी रक्षामें तत्पर रहते हैं॥ ३-४॥

तप्तजल तथा हिंसक जन्तुओंसे भरा पड़ा, अत्यन्त भयंकर तथा आधे कोसके विस्तारवाला कुण्ड तप्तकुण्ड कहा गया है, जो मेरे सेवकों तथा दूतोंद्वारा पीटे जाते हुए पापियोंसे युक्त रहता है। उनके दृढ़ प्रहार करनेपर वे नारकी जीव उसमें चिल्लाते रहते हैं॥ ५½॥

तप्तक्षारोदकुण्ड एक कोश परिमाणवाला है, वह भयानक कुण्ड खौलते हुए खारे जलसे परिपूर्ण तथा कौवोंसे भरा पड़ा रहता है। मेरे दूतोंद्वारा पीटे जानेपर 'मेरी रक्षा करो'—ऐसे शब्दका जोर-जोरसे उच्चारण करते हुए पापियोंसे वह नरककुण्ड परिपूर्ण रहता है। आहार न मिलनेके कारण सूखे कण्ठ, ओष्ठ तथा तालुवाले पापी उस कुण्डमें इधर-उधर भागते फिरते हैं॥ ६-७½॥

एक कोसके विस्तारवाला विट्कुण्ड है। वह दारुण नरक विष्ठासे सदा पूर्ण रहता है, उसमें अत्यन्त दुर्गन्ध फैली रहती है। मेरे महानिर्दयी दूतोंके द्वारा पीटे जाते हुए, 'मेरी रक्षा करो'—ऐसे शब्द करके चिल्लाते हुए तथा विष्ठाका आहार करनेवाले पापियोंसे वह नरककुण्ड सदा भरा रहता है। विष्ठाके कीड़े उन पापियोंको सदा काटते रहते हैं॥ ८-९½॥

मूत्रकुण्ड नामक नरक खौलते हुए मूत्रसे भरा रहता है। उसमें मूत्रके कीड़े सर्वत्र व्याप्त रहते हैं। दो कोसके विस्तारवाले तथा अन्धकारमय उस नरककुण्डमें मूत्रके कीड़ोंद्वारा निरन्तर काटे जाते हुए तथा मेरे भयानक दूतों द्वारा लगातार पीटे जानेके कारण जोर-जोर चिल्लाते हुए और सूखे कण्ठ, ओष्ठ और तालुवाले महापापी भरे पड़े रहते हैं॥ १०-११½॥

श्लेष्मपूर्णं प्रशमितं तत्कीटैः पूरितं सदा॥ १२

तद्भोजिभिः पापिभिश्च वेष्टितं वेष्टितैः सदा।
क्रोशार्धं गरकुण्डं च गरभोजिभिरन्वितम्॥ १३

गरकीटैर्भक्षितैश्च पापिभिः पूर्णमेव च।
ताडितैर्मम दूतैश्च शब्दकृद्भिश्च कम्पितैः॥ १४

सर्पाकारैर्वज्रदंष्ट्रैः शुष्ककण्ठैः सुदारुणैः।
नेत्रयोर्मलपूर्णं च क्रोशार्धं कीटसंयुतम्॥ १५

पापिभिः सङ्कुलं शश्वद् भ्रमद्भिः कीटभक्षितैः।
वसारसेन सम्पूर्णं क्रोशतुर्यं सुदुःसहम्॥ १६

तद्भोजिभिः पातकिभिर्मम दूतैश्च ताडितैः।
शुक्रकुण्डं क्रोशमितं शुक्रकीटैश्च संयुतम्॥ १७

पापिभिः सङ्कुलं शश्वद् द्रवद्भिः कीटभक्षितैः।
दुर्गन्धिरक्तपूर्णं च वापीमानं गभीरकम्॥ १८

तद्भोजिभिः पापिभिश्च सङ्कुलं कीटभक्षितम्।
पूर्णं नेत्राश्रुभिस्तप्तं बहुपापिभिरन्वितम्॥ १९

वापीतुर्यप्रमाणं च रुदद्भिः कीटभक्षितैः।
नृणां गात्रमलैर्युक्तं तद्भक्षैः पापिभिर्युतम्॥ २०
ताडितैर्मम दूतैश्च व्यग्रैश्च कीटभक्षितैः।

श्लेष्मकुण्ड नामक नरक श्लेष्मा आदि अपवित्र वस्तुओं तथा उनके कीड़ोंसे सदा व्याप्त रहता है। वह नरककुण्ड श्लेष्माका ही निरन्तर भोजन करनेवाले पापीजनोंसे भरा पड़ा हुआ है॥ १२½ ॥

गरकुण्डका विस्तार आधे कोसका है, जो विषका भोजन करनेवाले पापियोंसे परिपूर्ण रहता है। सर्पके समान आकारवाले, वज्रमय दाँतोंसे युक्त, सूखे कण्ठवाले तथा अत्यन्त भयंकर विषैले जन्तुओंके द्वारा काटे जाते हुए और मेरे दूतोंके द्वारा पीटे जानेपर चीत्कार करते तथा अत्यन्त भयके मारे काँपते हुए पापियोंसे वह नरककुण्ड भरा पड़ा रहता है॥ १३-१४½ ॥

आधे कोसके विस्तारवाला दूषिकाकुण्ड है, जो आँखोंके मल तथा कीटोंसे सदा भरा रहता है। कीड़ोंके काटनेपर व्याकुल होकर इधर-उधर सदा घूमते हुए पापियोंसे वह नरककुण्ड व्याप्त रहता है॥ १५½ ॥

वसारससे परिपूर्ण तथा चार कोसके विस्तारवाला वसाकुण्ड है, जो अत्यन्त दुःसह है। वह नरककुण्ड मेरे दूतोंके द्वारा पीटे जाते हुए वसाभोजी पापियोंसे पूर्णतः भरा रहता है॥ १६½ ॥

एक कोसके विस्तारवाला शुक्रकुण्ड है। शुक्रके कीड़ोंसे वह व्याप्त रहता है। कीड़ोंके द्वारा काटे जाते हुए तथा इधर-उधर भागते हुए पापियोंसे वह कुण्ड सदा भरा रहता है॥ १७½ ॥

वापीके समान परिमाणवाला, दुर्गन्धित रक्तसे परिपूर्ण तथा अत्यन्त गहरा रक्तकुण्ड नामक नरक है। उसमें रक्तका पान करनेवाले पापी तथा उन्हें काटनेवाले कीड़े भरे रहते हैं॥ १८½ ॥

अश्रुकुण्ड नामक नरक चार बावलियोंके समान विस्तारवाला है। वह अत्यन्त तप्त तथा नेत्रके आँसुओंसे परिपूर्ण रहता है एवं वहाँके कीड़ोंके काटनेपर रोते हुए बहुत-से पापियोंसे भरा पड़ा रहता है॥ १९½ ॥

मनुष्यके शरीरके मलोंसे तथा मलका भक्षण करनेवाले पापियोंसे युक्त गात्रकुण्ड नामक नरक है। मेरे दूतोंके द्वारा पीटे जाते हुए तथा वहाँके कीटोंद्वारा काटे जाते हुए व्याकुल पापियोंसे वह कुण्ड व्याप्त रहता है॥ २०½ ॥

कर्णविट्परिपूर्णं च तद्भक्षैः पापिभिर्वृतम्॥ २१

वापीतुर्यप्रमाणं च ब्रुवद्भिः कीटभक्षितैः।
मज्जापूर्णं नराणां च महादुर्गन्धिसंयुतम्॥ २२

महापातकिभिर्युक्तं वापीतुर्यप्रमाणकम्।
परिपूर्णं स्निग्धमांसैर्मम दूतैश्च ताडितैः॥ २३

पापिभिः सङ्कुलं चैव वापीमानं भयानकम्।
कन्याविक्रयिभिश्चैव तद्भक्ष्यैः कीटभक्षितैः॥ २४

पाहीति शब्दं कुर्वद्भिस्त्रासितैश्च भयानकैः।
वापीतुर्यप्रमाणं च नखादिकचतुष्टयम्॥ २५

पापिभिः संयुतं शश्वन्मम दूतैश्च ताडितैः।
प्रतप्तताम्रकुण्डं च ताम्रोपर्युल्मुकान्वितम्॥ २६

ताम्राणां प्रतिमालक्षैः प्रतप्तैर्व्याप्तं सदा।
प्रत्येकं प्रतिमाश्लिष्टैः रुदद्भिः पापिभिर्युतम्॥ २७

गव्यूतिमानं विस्तीर्णं मम दूतैश्च ताडितैः।
प्रतप्तलोहधारं च ज्वलदङ्गारसंयुतम्॥ २८

लोहानां प्रतिमाश्लिष्टैः रुदद्भिः पापिभिर्युतम्।
प्रत्येकं प्रतिमाश्लिष्टैः शश्वत्प्रज्वलितैर्भिया॥ २९

रक्ष रक्षेति शब्दं च कुर्वद्भिर्दूतताडितैः।
महापातकिभिर्युक्तं द्विगव्यूतिप्रमाणकम्॥ ३०

भयानकं ध्वान्तयुक्तं लोहकुण्डं प्रकीर्तितम्।
चर्मकुण्डं तप्तसुराकुण्डं वाप्यर्धमेव च॥ ३१
तद्भोजिपापिभिर्व्याप्तं मम दूतैश्च ताडितैः।

चार बावलियोंके समान विस्तारवाला कर्णविट्-कुण्ड है। वह कानोंकी मैलसे सदा भरा रहता है। उसी मैलको खानेवाले तथा कीड़ोंके काटनेपर चिल्लाते हुए पापियोंसे वह कुण्ड भरा रहता है॥ २१½ ॥

मनुष्योंकी मज्जासे भरा हुआ तथा अत्यन्त दुर्गन्धयुक्त मज्जाकुण्ड है। चार बावलियोंके विस्तारवाला वह नरककुण्ड महापापियोंसे व्याप्त रहता है॥ २२½ ॥

एक वापीके समान विस्तारवाला अत्यन्त भयानक मांसकुण्ड है। वह कुण्ड गीले मांसों तथा मेरे दूतोंके द्वारा पीटे जाते हुए पापियोंसे भरा रहता है। कन्याका विक्रय करनेवाले वे पापी वहाँ रहकर उसी मांसका भक्षण करते हैं और भयानक कीड़ोंके काटनेपर अत्यन्त भयभीत होकर 'बचाओ-बचाओ'—इस शब्दको बोलते रहते हैं॥ २३-२४½ ॥

चार बावलियोंके विस्तारवाले नखादि चार कुण्ड हैं। मेरे दूतोंके द्वारा निरन्तर पीटे जाते हुए पापियोंसे वे कुण्ड भरे पड़े रहते हैं॥ २५½ ॥

ताम्रमयी उल्कासे युक्त तथा जलते हुए ताँबेके सदृश ताम्रकुण्ड है। वह ताँबेकी लाखों अतितप्त प्रतिमाओंसे परिपूर्ण रहता है। दो कोसके विस्तारवाला वह कुण्ड मेरे दूतोंके द्वारा पीटे जाते हुए तथा प्रत्येक प्रतिमासे सटानेपर रोते हुए पापियोंसे व्याप्त रहता है॥ २६-२७½ ॥

प्रज्वलित लोहधार तथा दहकते हुए अंगारोंसे युक्त लोहकुण्ड लोहेकी प्रतिमाओंसे चिपके हुए तथा रोते हुए पापियोंसे भरा रहता है। वहाँ निरन्तर दग्ध होते हुए तथा प्रत्येक प्रतिमासे श्लिष्ट और मेरे दूतोंके द्वारा पीटे जानेपर भयभीत होकर 'रक्षा करो, रक्षा करो'—ऐसे शब्द करनेवाले महा-पापियोंसे भरे पड़े, भयानक, दो कोसके विस्तारवाले तथा अन्धकारमय उस कुण्डको लोहकुण्ड कहा गया है॥ २८—३०½ ॥

चर्मकुण्ड और तप्तसुराकुण्ड आधी बावलीके प्रमाणवाले हैं। चर्म खाते हुए तथा सुरापान करते हुए और मेरे दूतोंद्वारा पीटे जाते हुए पापियोंसे वे कुण्ड सदा व्याप्त रहते हैं॥ ३१½ ॥

अतः शाल्मलिकुण्डं च वृक्षकण्टकशोभितम्॥ ३२
लक्षपौरुषमानं च क्रोशमानं च दुःखदम्।
धनुर्मानैः कण्टकैश्च सुतीक्ष्णैः परिवेष्टितम्॥ ३३
प्रत्येकं विद्धगात्रैश्च महापातकिभिर्युतम्।
वृक्षाग्रान्निपतद्भिश्च मम दूतैश्च पातितैः॥ ३४
जलं देहीति शब्दं च कुर्वद्भिः शुष्कतालुकैः।
महाभियातिव्यग्रैश्च दण्डैः सम्भग्नमस्तकैः॥ ३५
प्रचलद्भिर्यथा तप्ततैलजीविभिरेव च।
विषोदैस्तक्षकाणां च पूर्वं च क्रोशमानकम्॥ ३६
तद्भक्षैः पापिभिर्युक्तं मम दूतैश्च ताडितैः।
प्रतप्ततैलपूर्णं च कीटादिपरिवर्जितम्॥ ३७
महापातकिभिर्युक्तं दग्धाङ्गारैश्च वेष्टितम्।
काकुशब्दं प्रकुर्वद्भिश्चलद्भिर्दूतपीडितैः॥ ३८
ध्वान्तयुक्तं क्रोशमानं क्लेशदं च भयानकम्।
शूलाकारैः सुतीक्ष्णाग्रैर्लोहशस्त्रैश्च वेष्टितम्॥ ३९
शस्त्रतल्पस्वरूपञ्च क्रोशतुर्यप्रमाणकम्।
वेष्टितं तत्पातकिभिः कुन्तविद्धैश्च वेष्टितैः॥ ४०
ताडितैर्मम दूतैश्च शुष्ककण्ठोष्ठतालुकैः।
कीटैश्च शङ्कुप्रमितैः सर्पमानैर्भयङ्करैः॥ ४१
तीक्ष्णदन्तैश्च विकृतैर्व्याप्तं ध्वान्तयुतं सति।
महापातकिभिर्युक्तं मम दूतैश्च ताडितैः॥ ४२
द्विगव्यूतिप्रमाणं च पूयकुण्डं प्रचक्षते।
तद्भक्ष्यैः प्राणिभिर्युक्तं मम दूतैश्च ताडितैः॥ ४३

कण्टकमय वृक्षोंसे भरा शाल्मलीकुण्ड है। एक कोसके विस्तारवाले उस दुःखप्रद कुण्डमें लाखों पुरुष समा सकते हैं। वहाँ शाल्मलीवृक्षसे गिरकर तथा मेरे दूतोंद्वारा गिराये जाकर धनुषकी लम्बाईवाले अत्यन्त तीखे काँटे बिछे रहते हैं। एक-एक करके सभी पापियोंके अंग काँटोंसे छिद उठते हैं। सूखे तालुवाले वे पापी 'मुझे जल दो'—ऐसा शब्द करते रहते हैं। जिस प्रकार प्रतप्त तेलमें पड़नेपर जीव छटपटा उठते हैं, वैसे ही मेरे दूतोंके डण्डोंके प्रहारसे भग्न सिरवाले वे महापापी महान् भयसे अत्यधिक व्याकुल होकर चकराने लगते हैं॥ ३२—३५½ ॥

विषोदकुण्ड एक कोसके परिमाणवाला है। वह कुण्ड तक्षकके समान विषधर जीवों, मेरे दूतोंके द्वारा पीटे जाते हुए और उसी विषका भक्षण करनेवाले पापियोंसे भरा रहता है॥ ३६½ ॥

प्रतप्ततैलकुण्डमें सदा खौलता हुआ तेल भरा रहता है। उसमें कीड़े आदि नहीं रहते। चारों ओर जलते हुए अंगारोंसे घिरा हुआ वह नरककुण्ड मेरे दूतोंके द्वारा पीटे जानेसे चीत्कार करते हुए तथा इधर-उधर भागते हुए महापापियोंसे भरा रहता है। एक कोसके विस्तारवाला वह नरककुण्ड बड़ा ही भयानक, क्लेशप्रद तथा अन्धकारपूर्ण है॥ ३७-३८½ ॥

कुन्तकुण्ड त्रिशूलके समान आकारवाले तथा अत्यन्त तीखी धारवाले लौहके अस्त्रोंसे परिपूर्ण है। चार कोसके विस्तारवाला वह नरक-कुण्ड शस्त्रोंकी शय्याके समान प्रतीत होता है। मेरे दूतोंके द्वारा पीटे जाते हुए, भालोंसे बिँधे हुए, सूखे कंठ; ओठ तथा तालुवाले पापियोंसे वह कुण्ड भरा रहता है॥ ३९-४०½ ॥

हे साध्वि! शंकु तथा सर्पके आकार-प्रकारवाले, भयंकर, तीक्ष्ण दाँतोंवाले तथा विकृत कीड़ोंसे युक्त कृमिकुण्ड है। वह अन्धकारमय कुण्ड मेरे दूतोंद्वारा पीटे जाते हुए महापापियोंसे परिपूर्ण रहता है॥ ४१-४२ ॥

पूयकुण्ड चार कोसके विस्तारवाला कहा गया है। मेरे दूतोंद्वारा पीटे जाते हुए पूयभक्षी पापियोंसे वह कुण्ड परिपूर्ण रहता है॥ ४३ ॥

तालवृक्षप्रमाणैश्च सर्पकोटिभिरावृतम्।
सर्पवेष्टितगात्रैश्च पापिभिः सर्पभक्षितैः॥ ४४

सङ्कुलं शब्दकृद्भिश्च मम दूतैश्च ताडितैः।
कुण्डत्रयं मशादीनां पूर्णं च मशकादिभिः॥ ४५

सर्वं क्रोशार्धमानं च महापातकिभिर्युतम्।
हस्तपादादिबद्धैश्च क्षतजौघेन लोहितैः॥ ४६

हाहेति शब्दं कुर्वद्भिस्ताडितैर्मम पार्षदैः।
वज्रवृश्चिकयोः कुण्डं ताभ्यां च परिपूरितम्॥ ४७

वाप्यर्धं पापिभिर्युक्तं वज्रवृश्चिकदंशितैः।
कुण्डत्रयं शरादीनां तैरेव परिपूरितम्॥ ४८

तैर्विद्धैः पापिभिर्युक्तं वाप्यर्धं रक्तलोहितैः।
तप्ततोयोदकैः पूर्णं सध्वान्तं गोलकुण्डकम्॥ ४९

कीटैः शङ्कुसमानैश्च भक्षितैः पापिभिर्युतम्।
वाप्यर्धमानं भीतैश्च पापिभिः कीटभक्षितैः॥ ५०

रुदद्भिः क्रोशमानैश्च मम दूतैश्च ताडितैः।
अतिदुर्गन्धिसंयुक्तं दुःखदं पापिनां सदा॥ ५१

दारुणैर्विकृताकारैर्भक्षितं पापिभिर्युतम्।
वाप्यर्धं परिपूर्णं च जलस्थैर्नक्रकोटिभिः॥ ५२

विण्मूत्रश्लेष्मभक्षैश्च संयुतं शतकोटिभिः।
काकैश्च विकृताकारैर्भक्षितैः पापिभिर्युतम्॥ ५३

सर्पकुण्ड ताड़के वृक्षके समान लम्बाईवाले करोड़ों सर्पोंसे युक्त है। सर्पोंसे जकड़े हुए शरीरवाले, सर्पोंके द्वारा डँसे जाते हुए तथा मेरे दूतोंके द्वारा पीटे जानेपर चीत्कार करते हुए पापियोंसे वह कुण्ड सदा भरा रहता है॥ ४४½ ॥

मशक आदि जन्तुओंसे पूर्ण मशककुण्ड, दंशकुण्ड और गरलकुण्ड—ये तीन नरक हैं। उन नरकोंका विस्तार आधे-आधे कोसका है। जिनके हाथ बँधे रहते हैं, रुधिरसे सभी अंग लाल रहते हैं तथा जो मेरे दूतोंके द्वारा पीटे जानेपर 'हा-हा'—ऐसा शब्द करते रहते हैं—उन महापापियोंसे वे कुण्ड भरे रहते हैं॥ ४५-४६½ ॥

वज्र तथा बिच्छुओंसे परिपूर्ण वज्रकुण्ड तथा वृश्चिककुण्ड है। आधी वापीके विस्तारवाले वे कुण्ड वज्र तथा बिच्छुओंसे निरन्तर डँसे जाते हुए पापियोंसे भरे रहते हैं॥ ४७½ ॥

शरकुण्ड, शूलकुण्ड और खड्गकुण्ड—ये तीन नरककुण्ड उन्हीं शर, शूल और खड्गसे परिपूर्ण हैं। आधी वापीके परिमाणवाले वे कुण्ड उन तीनों अस्त्रोंसे बिँधे तथा रक्तसे लोहित शरीरवाले पापियोंसे व्याप्त रहते हैं॥ ४८½ ॥

गोलकुण्ड तप्त जलसे भरा हुआ तथा अन्धकारसे पूर्ण रहता है। आधी वापीके विस्तारवाला वह नरककुण्ड शंकुके समान आकारवाले कीड़ोंसे भक्षित होनेवाले पापियोंसे भरा रहता है। वह कुण्ड कीड़ोंके काटने तथा मेरे दूतोंके मारनेपर भयभीत तथा व्याकुल होकर रोते हुए पापियोंसे सदा व्याप्त रहता है॥ ४९-५०½ ॥

अत्यन्त दुर्गन्धसे युक्त तथा पापियोंको निरन्तर दुःख देनेवाला नक्रकुण्ड है। नक्र आदि करोड़ों भयानक तथा विकृत आकारवाले जलचर जन्तुओंके द्वारा खाये जाते हुए पापियोंसे आधी वापीके परिमाणवाला वह कुण्ड भरा रहता है॥ ५१-५२॥

काककुण्ड भयानक तथा विकृत आकारवाले कौओंके द्वारा नोचे जाते हुए तथा विष्ठा, मूत्र, श्लेष्मभोजी सैकड़ों-करोड़ों पापियोंसे सदा परिपूर्ण रहता है॥ ५३॥

मन्थानकुण्डं बीजकुण्डं ताभ्यां पूर्णं धनुःशतम्।
भक्षितैः पापिभिर्युक्तं शब्दकृद्भिश्च सन्ततम्॥ ५४

धनुःशतं जीवयुक्तं पापिभिः सङ्कुलं सदा।
शब्दकृद्भिर्वज्रदंष्ट्रैः सान्द्रध्वान्तमयं परम्॥ ५५

वापीद्विगुणमानं च तप्तप्रस्तरनिर्मितम्।
ज्वलदङ्गारसदृशं चलद्भिः पापिभिर्युतम्॥ ५६

क्षुरधारोपमैस्तीक्ष्णैः पाषाणैर्निर्मितं परम्।
महापातकिभिर्युक्तं लालाकुण्डं च लोहितैः॥ ५७

क्रोशमात्रं च गम्भीरं मम दूतैश्च ताडितैः।
तप्ताञ्जनाचलाकारैः परिपूर्णं धनुःशतम्॥ ५८

चलद्भिः पापिभिर्युक्तं मम दूतैश्च ताडितैः।
पूर्णं चूर्णद्रवैः क्रोशमानं पापिभिरन्वितम्॥ ५९

तद्भोजिभिः प्रदग्धैश्च मम दूतैश्च ताडितैः।
कुण्डं कुलालचक्रं च घूर्णमानञ्च सन्ततम्॥ ६०

सुतीक्ष्णं षोडशारं च चूर्णितैः पापिभिर्युतम्।
अतीव वक्रं निम्नं च द्विगव्यूतिप्रमाणकम्॥ ६१

कन्दराकारनिर्माणं तप्तोदैश्च समन्वितम्।
महापातकिभिर्युक्तं भक्षितैर्जलजन्तुभिः॥ ६२
ज्वलद्भिः शब्दकृद्भिश्च ध्वान्तयुक्तं भयानकम्।

मन्थानकुण्ड तथा बीजकुण्ड—इन्हीं दोनों मन्थान तथा बीज नामक कीटोंसे भरे रहते हैं। इन कुण्डोंका परिमाण सौ धनुषके बराबर है। कीड़ोंके काटनेपर निरन्तर चीत्कार करनेवाले पापियोंसे वे कुण्ड व्याप्त रहते हैं॥ ५४॥

हाहाकार करनेवाले पापियोंसे व्याप्त वज्रकुण्ड है। वज्रके समान दाँतवाले जन्तुओंसे युक्त तथा अत्यन्त घने अन्धकारसे आच्छादित उस नरककुण्डका विस्तार सौ धनुषके परिमाणके बराबर है॥ ५५॥

दो वापीके समान विस्तारवाला, अत्यन्त तप्त पत्थरोंसे निर्मित तथा जलते हुए अंगारके सदृश तप्तपाषाणकुण्ड है। वह व्याकुल होकर इधर-उधर भागते हुए पापियोंसे व्याप्त रहता है॥ ५६॥

छुरेकी धारके समान तीक्ष्ण पाषाणोंसे बना हुआ विशाल तीक्ष्णपाषाणकुण्ड है। वह महापापियोंसे परिपूर्ण रहता है। रक्तसे लथपथ जीवोंसे भरा हुआ लालाकुण्ड है। कोसभरकी गहराईवाला यह कुण्ड मेरे दूतोंसे निरन्तर पीटे जाते हुए पापियोंसे परिपूर्ण रहता है। इसी प्रकार सौ धनुषके परिमाणवाला मसीकुण्ड है, वह काजलके समान वर्णवाले तप्त पत्थरोंसे बना हुआ है। मेरे दूतोंके द्वारा पीटे जाते हुए तथा इधर-उधर भागते हुए पापियोंसे वह कुण्ड पूर्णरूपसे भरा रहता है॥ ५७-५८½॥

तपे हुए बालूसे परिपूर्ण एक कोसके विस्तारवाला चूर्णकुण्ड है। [अत्यन्त दहकते हुए बालूसे] दग्ध उसी बालूका भोजन करनेवाले तथा मेरे दूतोंके द्वारा पीटे जाते हुए पापियोंसे वह कुण्ड पूरित रहता है॥ ५९½॥

कुम्हारके चक्रकी भाँति निरन्तर घूमता हुआ, अत्यन्त तीक्ष्ण तथा सोलह अरोंवाला चक्रकुण्ड क्षत-विक्षत अंगोंवाले पापियोंसे भरा रहता है। चार कोसके विस्तारवाला, कन्दराके आकारवाला, अत्यन्त गहरा, टेढ़ा-मेढ़ा तथा सदा खौलते हुए जलसे परिपूर्ण वक्रकुण्ड है। अत्यन्त भयानक तथा अन्धकारसे परिपूर्ण वह कुण्ड जल-जन्तुओंके काटने तथा तप्त जलसे दग्ध होनेके कारण चीत्कार करते हुए महापापियोंसे भरा रहता है॥ ६०—६२½॥

कोटिभिर्विकृताकारैः कच्छपैश्च सुदारुणैः॥ ६३

जलस्थैः संयुतं तैश्च भक्षितैः पापिभिर्युतम्।
ज्वालाकलापैस्तेजोभिर्निर्मितैः क्रोशमानकम्॥ ६४

शब्दकृद्भिः पातकिभिः संयुतं क्लेशदं सदा।
क्रोशमानञ्च गम्भीरं तप्तभस्मभिरन्वितम्॥ ६५

शश्वज्ज्वलद्भिः संयुक्तं पापिभिर्भस्मभक्षितैः।
तप्तपाषाणलोहानां समूहैः परिपूरितैः॥ ६६

पापिभिर्दग्धगात्रैश्च युक्तञ्च शुष्कतालुकैः।
क्रोशमानं ध्वान्तयुक्तं गम्भीरमतिदारुणम्॥ ६७

ताडितैश्च प्रदग्धैश्च दग्धकुण्डं प्रकीर्तितम्।
अतीवोर्मियुतं तोयं प्रतप्तक्षारसंयुतम्॥ ६८

नानाप्रकारैर्विरुतैर्जलजन्तुभिरन्वितम्।
द्विगव्यूतिप्रमाणं च गम्भीरं ध्वान्तसंयुतम्॥ ६९

तद्भक्ष्यैः पापिभिर्युक्तं दंशितैर्जलजन्तुभिः।
ज्वलद्भिः शब्दकृद्भिश्च न पश्यद्भिः परस्परम्॥ ७०

प्रतप्तसूचीकुण्डञ्च कीर्तितं च भयानकम्।
असीव धारापत्रस्याऽप्युच्चैस्तालतरोरधः॥ ७१

क्रोशार्धमानं कुण्डं च पतत्पत्रसमन्वितम्।
पापिनां रक्तपूर्णं च वृक्षाग्रात्पततां ध्रुवम्।७२

परित्राहीति शब्दं च कुर्वतामसतामपि।
गम्भीरं ध्वान्तयुक्तं च रक्तकीटसमन्वितम्॥ ७३

तदसीपत्रकुण्डं च कीर्तितं च भयानकम्।
धनुःशतप्रमाणं च क्षुरधारास्त्रसंयुतम्॥ ७४
पापिनां रक्तपूर्णं च क्षुरधारं भयानकम्।

विकृत आकारवाले अत्यन्त भयानक करोड़ों कच्छपोंसे भरा हुआ कूर्मकुण्ड है। जलमें रहनेवाले कछुए वहाँके पापियोंको नोंचते रहते हैं। प्रज्वलित ज्वालाओंसे व्याप्त ज्वालाकुण्ड है, जो एक कोसके विस्तारमें है। वह क्लेशप्रद कुण्ड चीखते-चिल्लाते हुए पापियोंसे सदा भरा रहता है॥ ६३-६४½ ॥

एक कोसकी गहराईवाला भस्मकुण्ड है। उस कुण्डमें अत्यन्त तपता हुआ भस्म व्याप्त रहता है। जलते भस्मको खानेके कारण वहाँके पापियोंके अंगोंमें निरन्तर दाह उत्पन्न होता रहता है। जो तप्त पाषाण तथा लोहेके समूहोंसे परिपूर्ण तथा जले हुए शरीरवाले पापियोंसे युक्त नरक है, उसे दग्धकुण्ड कहा गया है। वह अत्यन्त भयंकर, गहरा,एक कोसके विस्तारवाला तथा अन्धकारमय कुण्ड मेरे दूतोंद्वारा पीटे जाते हुए तथा जलाये जाते हुए शुष्क तालुवाले पापियोंसे भरा रहता है॥ ६५—६७½ ॥

जो बड़ी-बड़ी लहरोंवाले खौलते हुए खारे जल तथा नाना प्रकारके शब्द करनेवाले जल-जंतुओंसे युक्त है, चार कोसके विस्तारमें फैला हुआ है, अत्यन्त गहरा तथा अन्धकारपूर्ण है, जल-जन्तुओंके काटनेपर चीत्कार करनेवाले तथा तापसे जलते रहनेवाले और घोर अन्धकारके कारण एक-दूसरेको न देख पानेवाले पापियोंसे सदा भरा रहता है, उस भयानक कुण्डको प्रतप्तसूचीकुण्ड कहा गया है॥ ६८—७०½ ॥

तलवारकी धारके समान तीखे पत्तोंवाले ऊँचे-ऊँचे ताड़के वृक्षोंके नीचे स्थित, एक कोसके परिमाणवाले, उन वृक्षोंसे गिरे हुए पत्तोंसे परिपूर्ण, वृक्षोंके अग्रभागसे गिराये जानेपर 'रक्षा करो-रक्षा करो'—ऐसा शब्द करनेवाले अधम पापियोंके रक्तसे भरे हुए, अत्यन्त गहरे, अन्धकारपूर्ण, रक्तके कीड़ोंसे व्याप्त तथा अत्यन्त भयानक कुण्डको असिपत्रकुण्ड कहा गया है॥ ७१—७३½ ॥

क्षुरधारकुण्ड सौ धनुषके बराबर विस्तार-वाला, छुरेकी धारके समान तीखे अस्त्रोंसे युक्त, पापियोंके रक्तसे परिपूर्ण और बड़ा ही भयानक है॥ ७४½ ॥

सूचीमुखास्त्रसंयुक्तं पापिरक्तौघपूरितम्॥ ७५
पञ्चाशद्धनुरायामं क्लेशदं सूचिकामुखम्।
कस्यचिज्जन्तुभेदस्य गोकाख्यस्य मुखाकृति॥ ७६
कूपरूपं गभीरं च धनुर्विंशत्प्रमाणकम्।
महापातकिनां चैव महत्क्लेशप्रदं परम्॥ ७७
तत्कीटभक्षितानां च नम्रास्यानां च सन्ततम्।
कुण्डं नक्रमुखाकारं धनुःषोडशमानकम्॥ ७८
गम्भीरं कूपरूपं च पापिनां सङ्कुलं सदा।
धनुःशतप्रमाणं च कीर्तितं गजदंशनम्॥ ७९
धनुस्त्रिंशत्प्रमाणं च कुण्डं च गोमुखाकृति।
पापिनां क्लेशदं शश्वद् गोमुखं परिकीर्तितम्॥ ८०
कालचक्रेण संयुक्तं भ्रममाणं भयानकम्।
कुम्भाकारं ध्वान्तयुक्तं द्विगव्यूतिप्रमाणकम्॥ ८१
लक्षपौरुषमानं च गम्भीरं विस्तृतं सति।
कुत्रचित्तप्ततैलं च ताम्रादिकुण्डमेव च॥ ८२
पापिनां च प्रधानैश्च मूर्च्छितैः कृमिभिर्युतम्।
परस्परं च नश्यद्भिः शब्दकृद्भिश्च सन्ततम्॥ ८३
ताडितैर्यमदूतैश्च मुसलैर्मुद्गरैस्तथा।
घूर्णमानैः पतद्भिश्च मूर्च्छितैश्च क्षणं क्षणम्॥ ८४
पातितैर्यमदूतैश्च रुदन्त्यस्मात्क्षणं पुनः।
यावन्तः पापिनः सन्ति सर्वकुण्डेषु सुन्दरि॥ ८५
ततश्चतुर्गुणाः सन्ति कुम्भीपाके च दुःखदे।
सुचिरं वध्यमानास्ते भोगदेहा न नश्वराः॥ ८६
सर्वकुण्डप्रधानं च कुम्भीपाकं प्रकीर्तितम्।

सूईकी नोंकवाले अस्त्रोंसे युक्त, पापियोंके रक्तसे सदा परिपूर्ण, पचास धनुषके बराबर विस्तारवाले तथा क्लेशप्रद कुण्डको सूचीमुखकुण्ड कहा गया है॥ ७५ १/२ ॥

जो कुण्ड 'गोका' नामक जन्तुविशेषके मुखके समान आकृतिवाला, कुएँके समान गहरा, बीस धनुषके बराबर विस्तारवाला तथा महापापियोंके लिये अत्यन्त कष्टदायक है, वह गोकामुखकुण्ड है। उस नरकके कीड़ोंके काटनेसे वहाँके पापी जीव सदा अपना मुख नीचे किये रहते हैं॥ ७६-७७ १/२ ॥

नक्र (मगर)-के मुखके समान आकृतिवाले कुण्डको नक्रमुखकुण्ड कहते हैं। वह सोलह धनुषके बराबर विस्तारवाला, गहरा, कुएँके सदृश तथा पापियोंसे परिपूर्ण है। गजदंशकुण्डको सौ धनुषके बराबर विस्तारवाला बताया गया है॥ ७८-७९ ॥

तीस धनुषके बराबर विस्तृत, गोके मुखकी आकृतिके तुल्य और पापियोंको निरन्तर क्लेश प्रदान करनेवाले कुण्डको गोमुखकुण्ड कहा गया है॥ ८० ॥

कुम्भीपाककुण्ड कालचक्रसे युक्त होकर निरन्तर चक्कर काटनेवाला तथा कुम्भके समान आकारवाला है। अत्यन्त भयानक तथा अन्धकारपूर्ण इस कुण्डका विस्तार चार कोसमें है। हे साध्वि! यह नरक एक लाख पौरुष* (पोरसा) मानके बराबर गहरा तथा विस्तृत है। उसमें कहीं-कहीं तप्ततैल तथा ताम्रकुण्ड आदि अनेक कुण्ड हैं। उस कुण्डमें बड़े-बड़े पापी अचेत होकर पड़े रहते हैं। भयंकर कीड़ोंके काटनेपर चीत्कार करते हुए वे पापी एक-दूसरेको देखतक नहीं पाते हैं। मूसलों तथा मुद्गरोंसे मेरे दूतोंद्वारा पीटे जाते हुए वे क्षण-क्षणमें कभी चक्कर खाने लगते हैं, कभी गिर पड़ते हैं और कभी मूर्च्छित हो जाते हैं। वे पापी क्षण-प्रतिक्षण यमदूतोंके द्वारा गिराये जानेपर रोने लगते हैं। हे सुन्दरि! जितने पापी अन्य सभी कुण्डोंमें हैं, उनसे चौगुने पापी केवल इस अति दुःखप्रद कुम्भीपाक नरकमें हैं। दीर्घकालतक यातना पानेपर भी उन भोगदेहोंका विनाश नहीं होता। वह कुम्भीपाक समस्त कुण्डोंमें मुख्य कहा गया है॥ ८१—८६ १/२ ॥

* सामान्य पुरुषकी लम्बाईको पौरुष (पोरसा) कहा गया है।

कालनिर्मितसूत्रेण निबद्धा यत्र पापिनः॥ ८७

उत्थापिताश्च दूतैश्च क्षणमेव निमज्जिताः।
निःश्वासबद्धाः सुचिरं तथा मोहं गताः पुनः॥ ८८

अतीव क्लेशसंयुक्ता देहभोगेन सुन्दरि।
प्रतप्ततोययुक्तं च कालसूत्रं प्रकीर्तितम्॥ ८९

जहाँ कालके द्वारा निर्मित सूत्रसे बँधे हुए प्राणी निवास करते हैं, वे मेरे दूतोंके द्वारा क्षणभरमें ऊपर उठाये जाते हैं तथा क्षणभरमें डुबो दिये जाते हैं। उनकी साँसें बहुत देरतक बन्द रहती हैं, पुनः वे अचेत हो जाते हैं तथा हे सुन्दरि! देहभोगके कारण पापियोंको जहाँ महान् क्लेश प्राप्त होता है तथा जो खौलते जलसे युक्त है, उसे कालसूत्रकुण्ड कहा गया है॥ ८७—८९॥

अवटः कूपभेदश्च मत्स्योदः स उदाहृतः।
प्रतप्ततोयपूर्णं च चतुर्विंशत्प्रमाणकम्॥ ९०

व्याप्तं महापातकिभिर्व्यादग्धाङ्गैश्च सन्ततम्।
मद्दूतैस्ताडितैः शश्वदवटोदं प्रकीर्तितम्॥ ९१

अवट नामक एक कूप है, उसीको मत्स्योदकुण्ड कहा गया है। चौबीस धनुषके बराबर विस्तारवाला वह कुण्ड प्रतप्त जलसे सदा परिपूर्ण रहता है। मेरे दूतोंके द्वारा निरन्तर पीटे जाते हुए, दग्ध अंगोंवाले महापापियोंसे युक्त उस नरकको अवटोदकुण्ड भी कहा गया है॥ ९०-९१॥

यत्रोदस्पर्शमात्रेण सर्वव्याधिश्च पापिनाम्।
भवेदकस्मात्पततां यस्मिन्कुण्डे धनुःशते॥ ९२

अरुन्तुदैर्भक्षितैस्तु प्राणिभिर्यच्च सङ्कुलम्।
हाहेति शब्दं कुर्वद्भिस्तदेवारुन्तुदं विदुः॥ ९३

सौ धनुषकी लम्बाईके बराबर विस्तारवाले जिस नरककुण्डके जलका स्पर्श होते ही उसमें अकस्मात् गिरे हुए पापियोंको सभी व्याधियाँ ग्रस्त कर लेती हैं तथा जो अरुन्तुद नामक भयानक कीड़ोंके काटनेसे हाहाकार मचाते हुए पापी जीवोंसे सदा परिपूर्ण रहता है, उसे अरुन्तुदकुण्ड कहा गया है॥ ९२-९३॥

तप्तपांसुभिराकीर्णं ज्वलद्भिस्तुषदग्धकैः।
तद्भक्षैः पापिभिर्युक्तं पांसुभोजैर्धनुःशतम्॥ ९४

पांसुकुण्ड अत्यन्त तपी हुई धूलसे भरा रहता है। उसका विस्तार सौ धनुषके बराबर है। जलती हुई धूलसे दग्ध त्वचावाले तथा उसी धूलका भक्षण करनेवाले पापियोंसे वह कुण्ड भरा रहता है॥ ९४॥

पातमात्रेण पापी च पाशेन वेष्टितो भवेत्।
क्रोशमात्रेण कुण्डं च तत्पाशवेष्टनं विदुः॥ ९५

जिसमें गिरते ही पापी पाशसे आवेष्टित हो जाता है तथा जिसका विस्तार कोसभरका है, उसे पाशवेष्टनकुण्ड कहा गया है॥ ९५॥

पातमात्रेण पापी च शूलेन वेष्टितो भवेत्।
धनुर्विंशत्प्रमाणं च शूलप्रोतं प्रकीर्तितम्॥ ९६

जिसमें गिरते ही पापी शूलसे जकड़ उठता है तथा जिसका विस्तार बीस धनुषके परिमाणके बराबर है, उसे शूलप्रोतकुण्ड कहा गया है॥ ९६॥

पततां पापिनां यत्र भवेदेव प्रकम्पनम्।
अतीव हिमतोयाक्तं क्रोशार्धं च प्रकम्पनम्॥ ९७

जिस नरककुण्डमें गिरनेवाले पापियोंके शरीरमें कँपकँपी उठने लगती है, उसे प्रकम्पन-कुण्ड कहा जाता है। आधे कोसके विस्तारवाला वह कुण्ड सदा बर्फके समान अत्यन्त शीतल जलसे भरा रहता है॥ ९७॥

ददत्येव हि मे दूता यत्रोल्काः पापिनां मुखे।
धनुर्विंशत्प्रमाणं तदुल्काभिश्च सुसङ्कुलम्॥ ९८

लक्षपौरुषमानं च गम्भीरं च धनुःशतम्।
नानाप्रकारकृमिभिः संयुक्तं च भयानकम्॥ ९९

अत्यन्धकारव्याप्तं च कूपाकारं च वर्तुलम्।
तद्भक्ष्यैः पापिभिर्युक्तं प्रणश्यद्भिः परस्परम्॥ १००

तप्ततोयप्रदग्धैश्च ज्वलद्भिः कीटभक्षितैः।
ध्वान्तेन चक्षुषा चान्धैरन्धकूपः प्रकीर्तितः॥ १०१

नानाप्रकारशस्त्रौघैर्यत्र विद्धाश्च पापिनः।
धनुर्विंशत्प्रमाणं च वेधनं तत्प्रकीर्तितम्॥ १०२

दण्डेन ताडिता यत्र मम दूतैश्च पापिनः।
धनुःषोडशमानं च तत्कुण्डं दण्डताडनम्॥ १०३

निरुद्धाश्च महाजालैर्यथा मीनाश्च पापिनः।
धनुर्विंशत्प्रमाणं च जालरन्ध्रं प्रकीर्तितम्॥ १०४

पततां पापिनां कुण्डे देहश्चूर्णो भवेदिह।
लोहबन्दीनिबद्धानां कोटिपौरुषमानकम्॥ १०५

गम्भीरं ध्वान्तसंयुक्तं धनुर्विंशत्प्रमाणकम्।
मूर्च्छितानां जडानां च देहचूर्णं प्रकीर्तितम्॥ १०६

दलिताः पापिनो यत्र मम दूतैश्च ताडिताः।
धनुःषोडशमानं च तत्कुण्डं दलनं स्मृतम्॥ १०७

पतनेनैव पापी च शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः।
बालुकासु च तप्तासु धनुस्त्रिंशत्प्रमाणकम्॥ १०८

शतपौरुषमानं च गम्भीरं ध्वान्तसंयुतम्।
शोषणं कुण्डमेतद्धि पापिनां परदुःखदम्॥ १०९

जिस नरकमें रहनेवाले पापियोंके मुखमें मेरे दूत जलती हुई लकड़ी डाल देते हैं, वह उल्कामुखकुण्ड है। जलती हुई लकड़ियोंसे युक्त उस कुण्डका विस्तार बीस धनुषके बराबर है॥ ९८॥

एक लाख पोरसेके बराबर गहरे, सौ धनुषके बराबर विस्तृत, भयानक, अनेक प्रकारके कीड़ोंसे युक्त, कुएँके समान गोलाकार तथा सदा अन्धकारसे व्याप्त नरकको अन्धकूप कहा गया है। वह कीड़ोंके काटनेपर परस्पर लड़नेवाले, खौलते हुए जलसे दग्ध शरीरवाले, कीड़ोंके द्वारा निरन्तर काटे जाते हुए और अन्धकारके कारण नेत्रोंसे देखनेमें असमर्थ पापियोंसे युक्त रहता है॥ ९९—१०१॥

जहाँ पापियोंको अनेक प्रकारके शस्त्रास्त्रोंसे वेधा जाता है तथा जिसका विस्तार बीस धनुषके प्रमाणके बराबर है, उसे वेधनकुण्ड कहा गया है॥ १०२॥

जहाँ मेरे दूतोंके द्वारा पापीलोग पीटे जाते हैं तथा जो सोलह धनुषोंके प्रमाणवाला है, वह दण्डताडनकुण्ड है॥ १०३॥

जहाँ जाते ही पापी मछलियोंकी भाँति बड़े-बड़े जालोंमें फँस जाते हैं तथा जो बीस धनुषोंके प्रमाणवाला है, वह जालरन्ध्रकुण्ड कहा गया है॥ १०४॥

जिस कुण्डमें गिरनेवाले पापियोंकी देह चूर-चूर हो जाती है, जहाँके पापियोंके पैरमें लोहेकी बेड़ियाँ पड़ी रहती हैं, जो करोड़ पोरसा गहरा तथा बीस धनुषके बराबर विस्तृत है, जो पूर्णरूपसे अन्धकारसे व्याप्त है तथा जहाँ पापी जीव मूर्च्छित होकर जड़की भाँति पड़े रहते हैं—उसे देहचूर्णकुण्ड कहा गया है॥ १०५-१०६॥

जहाँ मेरे दूत पापियोंको कुचलते तथा पीटते हैं तथा जो सोलह धनुषके विस्तारमें है, उसे दलनकुण्ड कहा गया है॥ १०७॥

प्रतप्त बालूसे व्याप्त होनेके कारण जहाँ गिरते ही पापीके कण्ठ, ओठ और तालु सूख जाते हैं; जो तीस धनुषके परिमाणके विस्तारवाला तथा सौ पोरसा गहरा है, जो सदा अन्धकारसे आच्छादित रहता है तथा पापियोंको महान् कष्ट पहुँचानेवाला है, उसे शोषणकुण्ड कहा गया है॥ १०८-१०९॥

नानाचर्मकषायोदपरिपूर्णं धनुःशतम्।
दुर्गन्धियुक्तं तद्भक्ष्यैः प्राणिभिः सङ्कुलं कषम्॥ ११०

जो अनेक प्रकारके चर्मोंके कषाय (कसैले) जलसे परिपूर्ण रहता है, जिसका विस्तार सौ धनुषके बराबर है, जो दुर्गन्धसे भरा रहता है तथा जो चमड़ेके आहारपर रहनेवाले पापियोंसे सदा पूरित रहता है, उसे कषकुण्ड कहा गया है॥ ११०॥

शूर्पाकारमुखं कुण्डं धनुर्द्वादशमानकम्।
तप्तलोहबालुकाभिः पूर्णं पातकिसंयुतम्॥ १११

दुर्गन्धियुक्तं तद्भक्ष्यैः पापिभिः सङ्कुलं सति।
शूर्पाकारमुखं कुण्डं धनुर्द्वादशमात्रकम्॥ ११२

हे साध्वि! जिस कुण्डका मुख सूपके आकारका है, जिसका विस्तार बारह धनुषके बराबर है, जो तपते हुए लौहकणोंसे व्याप्त रहता है, जहाँ सर्वत्र पापी भरे रहते हैं, जो दुर्गन्धसे परिपूर्ण रहता है तथा जो उसी लोहबालुकाका भक्षण करनेवाले पापियोंसे भरा रहता है, उसे शूर्पकुण्ड कहा जाता है॥ १११-११२॥

प्रतप्तबालुकापूर्णं महापातकिभिर्युतम्।
अन्तरग्निशिखानां च ज्वालाव्याप्तमुखं सदा॥ ११३

धनुर्विंशतिमात्रं च प्रमाणं यस्य सुन्दरि।
ज्वालाभिर्दग्धगात्रैश्च पापिभिर्व्याप्तमेव च॥ ११४

तन्महाक्लेशदं शश्वत्कुण्डं ज्वालामुखं स्मृतम्।

हे सुन्दरि! जो प्रतप्त बालूसे भरा रहता है, महान् पापियोंसे युक्त रहता है, जिसके भीतर आगकी लपटें उठती रहती हैं, जिसका मुखभाग ज्वालाओंसे सदा व्याप्त रहता है, जिसका विस्तार बीस धनुषके बराबर है, जो ज्वालाओंसे दग्ध शरीरवाले पापियोंसे सदा पूरित रहता है, निरन्तर महान् कष्ट प्रदान करनेवाले उस कुण्डको ज्वालामुखकुण्ड कहा गया है॥ ११३—११४½॥

पातमात्राद्यत्र पापी मूर्च्छितो वै नरो भवेत्॥ ११५

तप्तेष्टकाभ्यन्तरितं वाप्यर्धं जिह्मकुण्डकम्।
धूमान्धकारसंयुक्तं धूम्रान्धैः पापिभिर्युतम्॥ ११६

धनुःशतं श्वासरन्ध्रैर्धूम्रान्धं परिकीर्तितम्।
पातमात्राद्यत्र पापी नागैश्च वेष्टितो भवेत्॥ ११७

धनुःशतं नागपूर्णं तन्नागैर्वेष्टितं भवेत्।
षडशीति च कुण्डानि मयोक्तानि निशामय।
लक्षणं चापि तेषां च किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ ११८

जिसमें गिरते ही पापी मनुष्य मूर्च्छित हो जाता है, जिसका भीतरी भाग तपती हुई ईंटोंसे युक्त है, जो आधी बावड़ीके विस्तारवाला है, वह जिह्मकुण्ड है। धुएँके कारण अन्धकारसे युक्त, धूम्रसे अन्धे हो जानेवाले पापियोंसे सदा भरे रहनेवाले, सौ धनुषके बराबर परिमाणवाले तथा श्वास लेनेहेतु बहुतसे छिद्रोंसे युक्त नरककुण्डको धूम्रान्धकुण्ड कहा गया है। जहाँ जाते ही पापी नागोंके द्वारा लपेट लिये जाते हैं, जो सौ धनुषके तुल्य परिमाणवाला है तथा जो नागोंसे सदा परिपूर्ण रहता है, उसे नागवेष्टनकुण्ड कहा गया है। [हे सावित्रि!] सुनो, मैंने इन छियासी नरककुण्डों तथा इनके लक्षणोंका वर्णन कर दिया; अब तुम क्या सुनना चाहती हो?॥ ११५—११८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे नारायणनारदसंवादे नानानरककुण्डवर्णनं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः॥ ३७॥



अथाष्टत्रिंशोऽध्यायः

धर्मराजका सावित्रीसे भगवतीकी महिमाका वर्णन करना और उसके पतिको जीवनदान देना

सावित्र्युवाच

देवीभक्तिं देहि मह्यं साराणां चैव सारकम्।
पुंसां मुक्तिद्वारबीजं नरकार्णवतारकम्॥ १

कारणं मुक्तिसाराणां सर्वाशुभविनाशनम्।
दारकं कर्मवृक्षाणां कृतपापौघहारणम्॥ २

मुक्तिश्च कतिधाप्यस्ति किं वा तासां च लक्षणम्।
देवीभक्तिं भक्तिभेदं निषेकस्यापि खण्डनम्॥ ३

तत्त्वज्ञानविहीना च स्त्रीजातिर्विधिनिर्मिता।
किञ्चिज्ज्ञानं सारभूतं वद वेदविदां वर॥ ४

सर्वं दानं च यज्ञश्च तीर्थस्नानं व्रतं तपः।
अज्ञानिज्ञानदानस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥ ५

पितुः शतगुणा माता गौरवे चेति निश्चितम्।
मातुः शतगुणः पूज्यो ज्ञानदाता गुरुः प्रभो॥ ६

धर्मराज उवाच

पूर्वं सर्वो वरो दत्तो यस्ते मनसि वाञ्छितः।
अधुना शक्तिभक्तिस्ते वत्से भवतु मद्वरात्॥ ७

श्रोतुमिच्छसि कल्याणि श्रीदेवीगुणकीर्तनम्।
वक्तॄणां पृच्छकानां च श्रोतॄणां कुलतारणम्॥ ८

शेषो वक्त्रसहस्रेण नहि यद्वक्तुमीश्वरः।
मृत्युञ्जयो न क्षमश्च वक्तुं पञ्चमुखेन च॥ ९

धाता चतुर्णां वेदानां विधाता जगतामपि।
ब्रह्मा चतुर्मुखेनैव नालं विष्णुश्च सर्ववित्॥ १०

सावित्री बोली—[हे प्रभो!] आप मुझे भगवतीकी भक्ति प्रदान कीजिये; वह देवीभक्ति समस्त तत्त्वोंका तत्त्व, मनुष्योंके लिये मुक्तिद्वारका मूल कारण, नरकरूपी समुद्रसे तारनेवाली, मुक्तिके तत्त्वोंका आधार, सभी अशुभोंका नाश करनेमें समर्थ, समस्त कर्मवृक्षोंको काटनेवाली तथा मनुष्यके द्वारा किये गये पापोंका हरण करनेवाली है॥ १-२॥

[हे भगवन्!] मुक्ति कितने प्रकारकी होती है और उनके क्या लक्षण हैं? देवीभक्तिके स्वरूप, भक्तिके भेद तथा किये हुए कर्मोंके भोगके नाशके विषयमें मुझे बताइये। हे वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! ब्रह्माके द्वारा निर्मित स्त्रीजाति तत्त्वज्ञानसे रहित होती है, अतः आप संक्षेपमें मुझे सारभूत बात बताइये॥ ३-४॥

हे प्रभो! दान, यज्ञ, तीर्थ, स्नान, व्रत और तप—ये सब अज्ञानी मनुष्यको ज्ञान देनेसे होनेवाले पुण्यफलकी सोलहवीं कलाके भी बराबर नहीं हैं। पिताकी अपेक्षा माता सौ गुनी श्रेष्ठ हैं, यह निश्चित है, किंतु ज्ञान प्रदान करनेवाला गुरु मातासे भी सौ गुना अधिक श्रेष्ठ होता है॥ ५-६॥

धर्मराज बोले—हे वत्से! तुम्हारे मनमें पहले जो भी अभिलषित वर था, वह सब मैं दे चुका हूँ, अब जो तुम भगवतीकी भक्ति चाहती हो, वह भी मेरे वरके प्रभावसे तुम्हें प्राप्त हो जाय॥ ७॥

हे कल्याणि! तुम जो श्रीदेवीका गुणकीर्तन सुनना चाहती हो, वह उसे करनेवाले, सुननेवाले तथा इसके विषयमें पूछनेवाले—इन सभीके कुलका उद्धार कर देता है॥ ८॥

भगवान् शेषनाग अपने हजार मुखोंसे उसे बता नहीं सकते और मृत्युंजय महादेव भी अपने पाँच मुखसे उसका वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हैं॥ ९॥

चारों वेदोंकी उत्पत्ति तथा सम्पूर्ण लोकोंका विधान करनेवाले ब्रह्मा अपने चार मुखोंसे उसका वर्णन नहीं कर सकते, उसी प्रकार सर्वज्ञ विष्णु भी उसका वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हैं॥ १०॥

कार्तिकेयः षण्मुखेन नापि वक्तुमलं ध्रुवम्।
न गणेशः समर्थश्च योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः॥ ११

सारभूताश्च शास्त्राणां वेदाश्चत्वार एव च।
कलामात्रं यद्गुणानां न विदन्ति बुधाश्च ये॥ १२

सरस्वती जडीभूता नालं तद्गुणवर्णने।
सनत्कुमारो धर्मश्च सनन्दनः सनातनः॥ १३

सनकः कपिलः सूर्यो येऽन्ये च ब्रह्मणः सुताः।
विचक्षणा न यद्वक्तुं किञ्चान्ये जडबुद्धयः॥ १४

न यद्वक्तुं क्षमाः सिद्धा मुनीन्द्रा योगिनस्तथा।
के चान्ये च वयं के वा श्रीदेव्या गुणवर्णने॥ १५

ध्यायन्ते यत्पदाम्भोजं ब्रह्मविष्णुशिवादयः।
अतिसाध्यं स्वभक्तानां तदन्येषां सुदुर्लभम्॥ १६

कश्चित्किञ्चिद्विजानाति तद्गुणोत्कीर्तनं शुभम्।
अतिरिक्तं विजानाति ब्रह्मा ब्रह्मविशारदः॥ १७

ततोऽतिरिक्तं जानाति गणेशो ज्ञानिनां गुरुः।
सर्वातिरिक्तं जानाति सर्वज्ञः शम्भुरेव सः॥ १८

तस्मै दत्तं पुरा ज्ञानं कृष्णेन परमात्मना।
अतीव निर्जनेऽरण्ये गोलोके रासमण्डले॥ १९

तत्रैव कथितं किञ्चित्तद्गुणोत्कीर्तनं शुभम्।
धर्मं च कथयामास शिवलोके शिवः स्वयम्॥ २०

धर्मस्तु कथयामास भास्वते पृच्छते तथा।
यामाराध्य मत्पितापि सम्प्राप तपसा सति॥ २१

भगवान् कार्तिकेय अपने छः मुखोंसे उसका वर्णन नहीं कर सकते और योगीश्वरोंके गुरुके भी गुरु श्रीगणेश भी भगवतीकी महिमाका वर्णन कर सकनेमें समर्थ नहीं हैं—यह निश्चित है॥ ११॥

सम्पूर्ण शास्त्रोंके सारभूत चारों वेद तथा उन्हें जाननेवाले जो विद्वान् हैं—ये सब उन भगवतीके गुणोंकी एक कलातकको नहीं जानते॥ १२॥

सरस्वती भी जड़के समान होकर उन भगवतीके गुणोंका वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हैं। सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, धर्म, कपिल तथा सूर्य—ये लोग तथा ब्रह्माजीके अन्य बुद्धिमान् पुत्रगण भी उनकी महिमाका वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हैं, तो फिर अन्य जड़बुद्धिवाले लोगोंकी बात ही क्या!॥ १३-१४॥

श्रीदेवीके जिन गुणोंका वर्णन करनेमें सिद्ध, मुनीन्द्र तथा योगीजन भी समर्थ नहीं हैं, उनका वर्णन करनेमें हम तथा अन्य लोग भला किस प्रकार समर्थ हो सकते हैं?॥ १५॥

ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवगण भगवतीके जिस चरणकमलका ध्यान करते हैं, वह उनके भक्तोंके लिये तो अति सुगम है, किंतु अन्य लोगोंके लिये अत्यन्त दुर्लभ है॥ १६॥

कोई व्यक्ति उन भगवतीके पवित्र गुण-कीर्तनको कुछ-कुछ जान सकता है, किंतु ब्रह्मज्ञानी ब्रह्माजी उससे अधिक जानते हैं। ज्ञानियोंके भी गुरु गणेशजी उन ब्रह्मासे भी कुछ विशेष जानते हैं और सब कुछ जाननेवाले भगवान् शिव सबसे अधिक जानते हैं॥ १७-१८॥

पूर्वकालमें गोलोकमें अत्यन्त निर्जन वनमें रासमण्डलके मध्य परमेश्वर श्रीकृष्णने उन शिवको ज्ञान प्रदान किया था। वहींपर भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें भगवतीके कुछ पवित्र गुण बताये थे॥ १९½॥

तत्पश्चात् स्वयं भगवान् शिवने शिवलोकमें धर्मके प्रति उसका उपदेश किया था। उसके बाद सूर्यके पूछनेपर धर्मने उनसे भगवतीके गुणोंका वर्णन किया था। हे साध्वि! मेरे पिता सूर्यने भी तपस्याके द्वारा उन देवीकी आराधना करके उस ज्ञानको प्राप्त किया था॥ २०-२१॥

पूर्वं स्वं विषयं चाहं न गृह्णामि प्रयत्नतः।
वैराग्ययुक्तस्तपसे गन्तुमिच्छामि सुव्रते॥ २२

तदा मां कथयामास पिता तद्गुणकीर्तनम्।
यथागमं तद्वदामि निबोधातीव दुर्गमम्॥ २३

तद्गुणं सा न जानाति तदन्यस्य च का कथा।
यथाकाशो न जानाति स्वान्तमेव वरानने॥ २४

सर्वात्मा सर्वभगवान् सर्वकारणकारणः।
सर्वेश्वरश्च सर्वाद्यः सर्ववित्परिपालकः। २५

नित्यरूपी नित्यदेही नित्यानन्दो निराकृतिः।
निरङ्कुशो निराशङ्को निर्गुणश्च निरामयः॥ २६

निर्लिप्तः सर्वसाक्षी च सर्वाधारः परात्परः।
मायाविशिष्टः प्रकृतिस्तद्विकाराश्च प्राकृताः॥ २७

स्वयं पुमांश्च प्रकृतिस्तावभिन्नौ परस्परम्।
यथा वह्नेस्तस्य शक्तिर्न भिन्नास्त्येव कुत्रचित्॥ २८

सेयं शक्तिर्महामाया सच्चिदानन्दरूपिणी।
रूपं बिभर्त्यरूपा च भक्तानुग्रहहेतवे॥ २९

गोपालसुन्दरीरूपं प्रथमं सा ससर्ज ह।
अतीव कमनीयं च सुन्दरं सुमनोहरम्॥ ३०

नवीननीरदश्यामं किशोरं गोपवेषकम्।
कन्दर्पकोटिलावण्यं लीलाधाममनोहरम्॥ ३१

शरन्मध्याह्नपद्मानां शोभामोचनलोचनम्।
शरत्पार्वणकोटीन्दुशोभाप्रच्छादनाननम् ॥ ३२

अमूल्यरत्ननिर्माणनानाभूषणभूषितम् ।
सस्मितं शोभितं शश्वदमूल्यपीतवाससा॥ ३३

परब्रह्मस्वरूपं च ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा।
सुखदृश्यं च शान्तं च राधाकान्तमनन्तकम्॥ ३४

हे सुव्रते! पूर्वसमयमें मेरे पिताजी यत्नपूर्वक मुझे अपना राज्य देना चाहते थे, किंतु मैंने स्वीकार नहीं किया। उस समय वैराग्ययुक्त होनेके कारण मैं तपस्याके लिये जाना चाहता था। तब पिताजीने मेरे सामने भगवतीके गुणोंका वर्णन किया। उस समय मैंने उनसे जो प्राप्त किया, उसी परम दुर्लभ तत्त्वको तुम्हें बता रहा हूँ, ध्यानपूर्वक सुनो॥ २२-२३॥

हे वरानने! जैसे आकाश अपना ही अन्त नहीं जानता, उसी प्रकार वे भगवती भी अपने सभी गुण नहीं जानतीं, तो अन्य व्यक्तिकी बात ही क्या है!॥ २४॥

सर्वात्मा, सबके भगवान्, सभी कारणोंके भी कारण, सर्वेश्वर, सबके आदिरूप, सर्वज्ञ, परिपालक, नित्यस्वरूप, नित्य देहवाले, नित्यानन्द, निराकार, स्वतन्त्र, निराशंक, निर्गुण, निर्विकार, अनासक्त, सर्वसाक्षी, सर्वाधार, परात्पर तथा मायाविशिष्ट परमात्मा ही मूलप्रकृतिके रूपमें अभिव्यक्त हो जाते हैं; सभी प्राकृत पदार्थ उन्हींसे आविर्भूत हैं॥ २५—२७॥

स्वयं परम पुरुष ही प्रकृति हैं। वे दोनों परस्पर उसी प्रकार अभिन्न हैं, जैसे अग्निसे उसकी शक्ति कुछ भी भिन्न नहीं है॥ २८॥

वे ही सच्चिदानन्दस्वरूपिणी शक्ति महामाया हैं। वे निराकार होते हुए भी भक्तोंपर कृपा करनेके लिये रूप धारण करती हैं॥ २९॥

उन भगवतीने सर्वप्रथम गोपालसुन्दरीका रूप धारण किया था। वह रूप अत्यन्त कोमल, सुन्दर तथा मनोहर था। किशोर गोपवेषवाला वह रूप नवीन मेघके समान श्यामवर्णका था। वह करोड़ों कामदेवोंके समान सुन्दर था, वह मनोहर लीलाधामस्वरूप था, उस विग्रहके नेत्र शरद् ऋतुके मध्याह्नकालीन कमलोंकी शोभाको तुच्छ बना देनेवाले थे, मुख शरत्पूर्णिमाके करोड़ों चन्द्रमाकी शोभाको तिरस्कृत कर देनेवाला था, अमूल्य रत्नोंसे निर्मित अनेक प्रकारके आभूषणोंसे उनका विग्रह सुशोभित था, मुसकानयुक्त मुखमण्डलवाला वह विग्रह निरन्तर अमूल्य पीताम्बरसे शोभित हो रहा था, परब्रह्मस्वरूप वह विग्रह ब्रह्मतेजसे प्रकाशित था, वह रूप देखनेमें बड़ा ही सुखकर था, वह शान्तरूप

गोपीभिर्वीक्ष्यमाणं च सस्मिताभिश्च सन्ततम्।
रासमण्डलमध्यस्थं रत्नसिंहासनस्थितम्॥ ३५

वंशीं क्वणन्तं द्विभुजं वनमालाविभूषितम्।
कौस्तुभेन्द्रमणीन्द्रेण शश्वद्वक्षःस्थलोज्ज्वलम्॥ ३६

कुङ्कुमागुरुकस्तूरीचन्दनार्चितविग्रहम्।
चारुचम्पकमालाक्तं मालतीमाल्यमण्डितम्॥ ३७

चारुचन्द्रकशोभाढ्यं चूडावङ्क्रिमराजितम्।
एवंभूतं च ध्यायन्ति भक्ता भक्तिपरिप्लुताः॥ ३८

राधाको अत्यधिक प्रसन्न करनेवाला था, मुसकराती हुई गोपियाँ उस रूपको निरन्तर निहार रही थीं, वह भगवद्विग्रह रासमण्डलके मध्य रत्नजटित सिंहासनपर विराजमान था, उनकी दो भुजाएँ थीं, वे वंशी बजा रहे थे, उन्होंने वनमाला धारण कर रखी थी, उनके वक्षःस्थलपर मणिराज श्रेष्ठ कौस्तुभमणि निरन्तर प्रकाशित हो रही थी, उनका विग्रह कुमकुम-अगुरु-कस्तूरीसे मिश्रित दिव्य चन्दनसे लिप्त था, वह चम्पा और मालतीकी मनोहर मालाओंसे सुशोभित था, वह कान्तिमान् चन्द्रमाकी शोभासे परिपूर्ण तथा मनोहर चूडामणिसे सुशोभित था। भक्तिरससे आप्लावित भक्तजन उनके इसी रूपका ध्यान करते हैं॥ ३०—३८॥

यद्भयाज्जगतां धाता विधत्ते सृष्टिमेव च।
कर्मानुसाराल्लिखितं करोति सर्वकर्मणाम्॥ ३९

तपसां फलदाता च कर्मणां च यदाज्ञया।
विष्णुः पाता च सर्वेषां यद्भयात्पाति सन्ततम्॥ ४०

कालाग्निरुद्रः संहर्ता सर्वविश्वेषु यद्भयात्।
शिवो मृत्युञ्जयश्चैव ज्ञानिनां च गुरोर्गुरुः॥ ४१

यज्ज्ञानाज्ज्ञानवानस्ति योगीशो ज्ञानवित्प्रभुः।
परमानन्दयुक्तश्च भक्तिवैराग्यसंयुतः॥ ४२

जगत्की रचना करनेवाले ब्रह्मा उन्हींके भयसे सृष्टिका विधान करते हैं तथा कर्मानुसार सभी प्राणियोंके कर्मोंका उल्लेख करते हैं और उन्हींकी आज्ञासे वे मनुष्योंको तपों तथा कर्मोंका फल देते हैं। उन्हींके भयसे सभी प्राणियोंके रक्षक भगवान् विष्णु सदा रक्षा करते हैं और उन्हींके भयसे कालाग्निके समान भगवान् रुद्र सम्पूर्ण जगत्का संहार करते हैं। ज्ञानियोंके गुरुके भी गुरु मृत्युंजय शिव उसी परब्रह्मरूप विग्रहको जान लेनेपर ज्ञानवान्, योगीश्वर, ज्ञानविद्, परम आनन्दसे परिपूर्ण तथा भक्ति-वैराग्यसे सम्पन्न हो सके हैं॥ ३९—४२॥

यद्भयाद्वाति पवनः प्रवरः शीघ्रगामिनाम्।
तपनश्च प्रतपति यद्भयात्सन्ततं सति॥ ४३

हे साध्वि! उन्हींके भयसे तीव्र चलनेवालोंमें प्रमुख पवनदेव प्रवाहित होते हैं और उन्हींके भयसे सूर्य निरन्तर तपते रहते हैं॥ ४३॥

यदाज्ञया वर्षतीन्द्रो मृत्युश्चरति जन्तुषु।
यदाज्ञया दहेद्वह्निर्जलमेवं सुशीतलम्॥ ४४

उन्हींकी आज्ञासे इन्द्र वृष्टि करते हैं, मृत्यु प्राणियोंपर अपना प्रभाव डालती है, उन्हींकी आज्ञासे अग्नि जलाती है और जल शीतल करता है॥ ४४॥

दिशो रक्षन्ति दिक्पाला महाभीता यदाज्ञया।
भ्रमन्ति राशिचक्राणि ग्रहाश्च यद्भयेन च॥ ४५

उन्हींके आदेशसे भयभीत दिक्पालगण दिशाओंकी रक्षा करते हैं और उन्हींके भयसे ग्रह तथा राशियाँ अपने मार्गपर परिभ्रमण करती हैं॥ ४५॥

भयात्फलन्ति वृक्षाश्च पुष्यन्त्यपि च यद्भयात्।
यदाज्ञां तु पुरस्कृत्य कालः काले हरेद्भयात्॥ ४६

उन्हींके भयसे वृक्ष फलते तथा फूलते हैं और उन्हींकी आज्ञा स्वीकार करके भयभीत काल निश्चित समयपर प्राणियोंका संहार करता है॥ ४६॥

तथा जलस्थलस्थाश्च न जीवन्ति यदाज्ञया।
अकाले नाहरेद्विद्धं रणेषु विषमेषु च॥ ४७

धत्ते वायुस्तोयराशिं तोयं कूर्मं तदाज्ञया।
कूर्मोऽनन्तं स च क्षोणीं समुद्रान् सा च पर्वतान्॥ ४८

सर्वा चैव क्षमारूपा नानारत्नं बिभर्ति या।
यतः सर्वाणि भूतानि स्थीयन्ते हन्ति तत्र हि॥ ४९

इन्द्रायुश्चैव दिव्यानां युगानामेकसप्ततिः।
अष्टाविंशे शक्रपाते ब्रह्मणश्च दिवानिशम्॥ ५०

एवं त्रिंशद्दिनैर्मासो द्वाभ्यामाभ्यामृतुः स्मृतः।
ऋतुभिः षड्भिरेवाब्दं ब्रह्मणो वै वयः स्मृतम्॥ ५१

ब्रह्मणश्च निपाते च चक्षुरुन्मीलनं हरेः।
चक्षुरुन्मीलने तस्य लयं प्राकृतिकं विदुः॥ ५२

प्रलये प्राकृते सर्वे देवाद्याश्च चराचराः।
लीना धाता विधाता च श्रीकृष्णनाभिपङ्कजे॥ ५३

विष्णुः क्षीरोदशायी च वैकुण्ठे यश्चतुर्भुजः।
विलीना वामपार्श्वे च कृष्णस्य परमात्मनः॥ ५४

यस्य ज्ञाने शिवो लीनो ज्ञानाधीशः सनातनः।
दुर्गायां विष्णुमायायां विलीनाः सर्वशक्तयः॥ ५५

सा च कृष्णस्य बुद्धौ च बुद्ध्यधिष्ठातृदेवता।
नारायणांशः स्कन्दश्च लीनो वक्षसि तस्य च॥ ५६

श्रीकृष्णांशश्च तद्बाहौ देवाधीशो गणेश्वरः।
पद्मांशाश्चैव पद्मायां सा राधायां च सुव्रते॥ ५७

उनकी आज्ञाके बिना जल तथा स्थलमें रहनेवाले कोई भी प्राणी जीवन धारण नहीं कर सकते और संग्राममें आहत तथा विषम स्थितियोंमें पड़े प्राणीकी भी अकाल-मृत्यु नहीं होती॥ ४७॥

उन्हींकी आज्ञासे वायु जलराशिको, जल कच्छपको, कच्छप शेषनागको, शेष पृथ्वीको और पृथ्वी सभी समुद्रों तथा पर्वतोंको धारण किये रहती है। जो सब प्रकारसे क्षमाशालिनी हैं, वे पृथ्वी उन्हींकी आज्ञासे नानाविध रत्नोंको धारण करती हैं। उन्हींकी आज्ञासे पृथ्वीपर सभी प्राणी रहते हैं तथा नष्ट होते हैं॥ ४८-४९॥

[हे साध्वि!] देवताओंके इकहत्तर युगोंकी इन्द्रकी आयु होती है; ऐसे अट्ठाईस इन्द्रोंके समाप्त होनेपर ब्रह्माका एक दिन-रात होता है। ऐसे तीस दिनोंका एक महीना होता है और इन्हीं दो महीनोंकी एक ऋतु कही गयी है। इन्हीं छः ऋतुओंका एक वर्ष होता है और ऐसे (सौ वर्षों)-की ब्रह्माकी आयु कही गयी है॥ ५०-५१॥

ब्रह्माकी आयु समाप्त होनेपर श्रीहरि आँखें मूँद लेते हैं। श्रीहरिके आँखें मूँद लेनेपर प्राकृत प्रलय हो जाता है। उस प्राकृतिक प्रलयके समय समस्त चराचर प्राणी, देवता, विष्णु तथा ब्रह्मा—ये सब श्रीकृष्णके नाभिकमलमें लीन हो जाते हैं॥ ५२-५३॥

क्षीरसागरमें शयन करनेवाले तथा वैकुण्ठवासी चतुर्भुज भगवान् श्रीविष्णु प्रलयके समय परमात्मा श्रीकृष्णके वाम पार्श्वमें विलीन होते हैं। ज्ञानके अधिष्ठाता सनातन शिव उनके ज्ञानमें विलीन हो जाते हैं। सभी शक्तियाँ विष्णुमाया दुर्गामें समाविष्ट हो जाती हैं और वे बुद्धिकी अधिष्ठात्री देवता दुर्गा भगवान् श्रीकृष्णकी बुद्धिमें प्रविष्ट हो जाती हैं। नारायणके अंश स्वामी कार्तिकेय उनके वक्षःस्थलमें लीन हो जाते हैं॥ ५४—५६॥

हे सुव्रते! श्रीकृष्णके अंशस्वरूप तथा गणोंके स्वामी देवेश्वर गणेश श्रीकृष्णकी दोनों भुजाओंमें समाविष्ट हो जाते हैं। श्रीलक्ष्मीकी अंशस्वरूपा देवियाँ भगवती लक्ष्मीमें तथा वे देवी लक्ष्मी राधामें

गोप्यश्चापि च तस्यां च सर्वाश्च देवयोषितः।
कृष्णप्राणाधिदेवी सा तस्य प्राणेषु संस्थिता॥ ५८

सावित्री च सरस्वत्यां वेदाः शास्त्राणि यानि च।
स्थिता वाणी च जिह्वायां यस्य च परमात्मनः॥ ५९

गोलोकस्य च गोपाश्च विलीनास्तस्य लोमसु।
तत्प्राणेषु च सर्वेषां प्राणा वाता हुताशनाः॥ ६०

जठराग्नौ विलीनाश्च जलं तद्रसनाग्रतः।
वैष्णवाश्चरणाम्भोजे परमानन्दसंयुताः॥ ६१

सारात्सारतरा भक्तिरसपीयूषपायिनः।
विराडंशाश्च महति लीनाः कृष्णे महाविराट्॥ ६२

यस्यैव लोमकूपेषु विश्वानि निखिलानि च।
यस्य चक्षुष उन्मेषे प्राकृतः प्रलयो भवेत्॥ ६३

चक्षुरुन्मीलने सृष्टिर्यस्यैव पुनरेव सः।
यावत्कालो निमेषेण तावदुन्मीलनेन च॥ ६४

ब्रह्मणश्च शताब्दे च सृष्टेः सूत्रलयः पुनः।
ब्रह्मसृष्टिलयानां च संख्या नास्त्येव सुव्रते॥ ६५

यथा भूरजसां चैव संख्यानं नैव विद्यते।
चक्षुर्निमेषे प्रलयो यस्य सर्वान्तरात्मनः॥ ६६

उन्मीलने पुनः सृष्टिर्भवेदेवेश्वरेच्छया।
स कृष्णः प्रलये तस्यां प्रकृतौ लीन एव हि॥ ६७

एकैव च परा शक्तिर्निर्गुणः परमः पुमान्।
सदेवेदमग्र आसीदिति वेदविदो विदुः॥ ६८

मूलप्रकृतिरव्यक्ताप्यव्याकृतपदाभिधा।
चिदभिन्नत्वमापन्ना प्रलये सैव तिष्ठति॥ ६९
तद्गुणोत्कीर्तनं वक्तुं ब्रह्माण्डेषु च कः क्षमः।

विलीन हो जाती हैं। इसी प्रकार समस्त गोपिकाएँ तथा देवपत्नियाँ भी उन्हीं श्रीराधामें अन्तर्हित हो जाती हैं और श्रीकृष्णके प्राणोंकी अधीश्वरी वे राधा उन श्रीकृष्णके प्राणोंमें अधिष्ठित हो जाती हैं॥ ५७-५८॥

सावित्री तथा जितने भी वेद और शास्त्र हैं, वे सब सरस्वतीमें प्रवेश कर जाते हैं और सरस्वती उन परमात्मा श्रीकृष्णकी जिह्वामें विलीन हो जाती हैं॥ ५९॥

गोलोकके सभी गोप उनके रोमकूपोंमें प्रवेश कर जाते हैं। सभी प्राणियोंकी प्राणवायु उन श्रीकृष्णके प्राणोंमें, समस्त अग्नियाँ उनकी जठराग्निमें तथा जल उनकी जिह्वाके अग्रभागमें विलीन हो जाते हैं। सारके भी सारस्वरूप तथा भक्तिरसरूपी अमृतका पान करनेवाले वैष्णवजन परम आनन्दित होकर उनके चरणकमलमें समाहित हो जाते हैं॥ ६०-६१ $\frac{1}{2}$ ॥

विराट्के अंशस्वरूप क्षुद्रविराट् महाविराट्में और महाविराट् उन श्रीकृष्णमें विलीन हो जाते हैं, जिनके रोमकूपोंमें सम्पूर्ण विश्व समाहित हैं, जिनके आँख मीचनेपर प्राकृतिक प्रलय हो जाता है और जिनके नेत्र खुल जानेपर पुनः सृष्टिकार्य आरम्भ हो जाता है। जितना समय उनके पलक गिरनेमें लगता है, उतना ही समय उनके पलक उठानेमें लगता है। ब्रह्माके सौ वर्ष बीत जानेपर सृष्टिका सूत्रपात और पुनः लय होता है। हे सुव्रते! जैसे पृथ्वीके रजःकणोंकी संख्या नहीं है, वैसे ही ब्रह्माकी सृष्टि तथा प्रलयकी कोई संख्या नहीं है॥ ६२—६५ $\frac{1}{2}$ ॥

जिन सर्वान्तरात्मा परमेश्वरकी इच्छासे उनके पलक झपकते ही प्रलय होता है तथा पलक खोलते ही पुनः सृष्टि आरम्भ हो जाती है, वे श्रीकृष्ण प्रलयके समय उन परात्पर मूलप्रकृतिमें लीन हो जाते हैं; उस समय एकमात्र पराशक्ति ही शेष रह जाती है, यही निर्गुण परम पुरुष भी है। यही सत्स्वरूप तत्त्व सर्वप्रथम विराजमान था—ऐसा वेदोंके ज्ञाताओंने कहा है॥ ६६—६८॥

अव्यक्तस्वरूपी मूलप्रकृति 'अव्याकृत' नामसे कही जाती हैं। चैतन्यस्वरूपिणी वे ही केवल प्रलयकालमें विद्यमान रहती हैं। उनके गुणोंका वर्णन करनेमें ब्रह्माण्डमें कौन समर्थ है?॥ ६९ $\frac{1}{2}$ ॥

मुक्तयश्च चतुर्वेदैर्निरुक्ताश्च चतुर्विधाः॥ ७०
तत्प्रधाना देवभक्तिर्मुक्तेरपि गरीयसी।
सालोक्यदा भवेदेका तथा सारूप्यदा परा॥ ७१
सामीप्यदाथ निर्वाणप्रदा मुक्तिश्चतुर्विधा।
भक्तास्ता न हि वाञ्छन्ति विना तत्सेवनं विभोः॥ ७२
शिवत्वममरत्वं च ब्रह्मत्वं चावहेलया।
जन्ममृत्युजराव्याधिभयशोकादिकं धनम्॥ ७३
दिव्यरूपधारणं च निर्वाणं मोक्षणं विदुः।
मुक्तिश्च सेवारहिता भक्तिः सेवाविवर्धिनी॥ ७४
भक्तिमुक्त्योरयं भेदो निषेकखण्डनं शृणु।
विदुर्बुधा निषेकं च भोगं च कृतकर्मणाम्॥ ७५
तत्खण्डनं च शुभदं श्रीविभोः सेवनं परम्।
तत्त्वज्ञानमिदं साध्वि स्थिरं च लोकवेदयोः॥ ७६
निर्विघ्नं शुभदं चोक्तं गच्छ वत्से यथासुखम्।
इत्युक्त्वा सूर्यपुत्रश्च जीवयित्वा च तत्पतिम्॥ ७७
तस्यै शुभाशिषं दत्त्वा गमनं कर्तुमुद्यतः।
दृष्ट्वा यमं च गच्छन्तं सा सावित्री प्रणम्य च॥ ७८
रुरोद चरणौ धृत्वा साधुच्छेदेन दुःखिता।
सावित्रीरोदनं श्रुत्वा यमश्चैव कृपानिधिः॥ ७९
तामित्युवाच सन्तुष्टः स्वयं चैव रुरोद ह।

धर्मराज उवाच

लक्षवर्षं सुखं भुक्त्वा पुण्यक्षेत्रे च भारते॥ ८०
अन्ते यास्यसि तल्लोकं यत्र देवी विराजते।
गत्वा च स्वगृहं भद्रे सावित्र्याश्च व्रतं कुरु॥ ८१

चारों वेदोंने चार प्रकारकी मुक्तियाँ बतलायी हैं। भगवान्‌की भक्ति प्रधान है; क्योंकि वह मुक्तिसे श्रेष्ठ है। एक मुक्ति सालोक्य प्रदान करनेवाली, दूसरी सारूप्य देनेवाली, तीसरी सामीप्यकी प्राप्ति करानेवाली और चौथी निर्वाण प्रदान करनेवाली है; इस प्रकार मुक्ति चार तरहकी होती है। भक्तजन उन परमात्मप्रभुकी सेवा छोड़कर उन मुक्तियोंकी कामना नहीं करते हैं। वे शिवत्व, अमरत्व तथा ब्रह्मत्वतककी अवहेलना करते हैं। वे जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि, भय, शोक, धन, दिव्यरूप धारण करना, निर्वाण तथा मोक्षकी अवहेलना करते हैं। मुक्ति सेवारहित है तथा भक्ति सेवाभावमें वृद्धि करनेवाली है—भक्ति तथा मुक्तिमें यही भेद है; अब निषेकखण्डनका प्रसंग सुनो॥ ७०—७४½ ॥

विद्वान् पुरुषोंने निषेक (जन्म) एवं भोगके खण्डनका कल्याणकारी उपाय श्रीप्रभुकी एकमात्र परम सेवाको ही कहा है। हे साध्वि! यह तत्त्वज्ञान लोक और वेदमें प्रतिष्ठित है। इसे विघ्नरहित तथा शुभप्रद बताया गया है। हे वत्से! अब तुम सुखपूर्वक जाओ॥ ७५-७६½ ॥

ऐसा कहकर सूर्यपुत्र धर्मराज उसके पतिको जीवितकर और उसे आशीर्वाद प्रदान करके वहाँसे जानेके लिये उद्यत हो गये। धर्मराजको जाते देखकर सावित्री उन्हें प्रणाम करके उनके दोनों चरण पकड़कर साधुवियोगके कारण उत्पन्न दुःखसे व्याकुल हो रोने लगी॥ ७७-७८½ ॥

सावित्रीका विलाप सुनकर कृपानिधि धर्मराज भी स्वयं रोने लगे और सन्तुष्ट होकर उससे इस प्रकार कहने लगे— ॥ ७९½ ॥

धर्मराज बोले—[हे सावित्रि!] तुम पुण्यक्षेत्र भारतवर्षमें एक लाख वर्षतक सुखका भोग करके अन्तमें उस लोकमें जाओगी, जहाँ साक्षात् भगवती विराजमान रहती हैं॥ ८०½ ॥

हे भद्रे! अब तुम अपने घर जाओ और स्त्रियोंके लिये मोक्षके कारणरूप सावित्रीव्रतका चौदह वर्षतक पालन करो। ज्येष्ठमासके शुक्लपक्षकी चतुर्दशी तिथिको किया गया सावित्रीव्रत उसी प्रकार

द्विसप्तवर्षपर्यन्तं नारीणां मोक्षकारणम्।
ज्येष्ठशुक्लचतुर्दश्यां सावित्र्याश्च व्रतं शुभम्॥ ८२

शुक्लाष्टम्यां भाद्रपदे महालक्ष्म्या यथा व्रतम्।
द्व्यष्टवर्षं व्रतं चैव प्रत्यादेयं शुचिस्मिते॥ ८३

करोति भक्त्या या नारी सा याति च विभोः पदम्।
प्रतिमङ्गलवारे च देवीं मङ्गलदायिनीम्॥ ८४

प्रतिमासं शुक्लषष्ठ्यां षष्ठीं मङ्गलदायिनीम्।
तथा चाषाढसङ्क्रान्त्यां मनसां सर्वसिद्धिदाम्॥ ८५

राधां रासे च कार्तिक्यां कृष्णप्राणाधिकप्रियाम्।
उपोष्य शुक्लाष्टम्यां च प्रतिमासं वरप्रदाम्॥ ८६

विष्णुमायां भगवतीं दुर्गां दुर्गतिनाशिनीम्।
प्रकृतिं जगदम्बां च पतिपुत्रवतीषु च॥ ८७

पतिव्रतासु शुद्धासु यन्त्रेषु प्रतिमासु च।
या नारी पूजयेद्भक्त्या धनसन्तानहेतवे॥ ८८

इह लोके सुखं भुक्त्वा यात्यन्ते श्रीविभोः पदम्।
एवं देव्या विभूतीश्च पूजयेत्साधकोऽनिशम्॥ ८९

सर्वकालं सर्वरूपा संसेव्या परमेश्वरी।
नातः परतरं किञ्चित्कृतकृत्यत्वदायकम्॥ ९०

इत्युक्त्वा तां धर्मराजो जगाम निजमन्दिरम्।
गृहीत्वा स्वामिनं सा च सावित्री च निजालयम्॥ ९१

सावित्री सत्यवांश्चैव प्रययौ च यथागमम्।
अन्यांश्च कथयामास स्ववृत्तान्तं हि नारद॥ ९२

सावित्रीजनकः पुत्रान् सम्प्राप्तः प्रक्रमेण च।
श्वशुरश्चक्षुषी राज्यं सा च पुत्रान् वरेण च॥ ९३

अत्यन्त मंगलकारी होता है, जैसे भाद्रपद महीनेके शुक्लपक्षकी अष्टमी तिथिको महालक्ष्मीव्रत कल्याणप्रद होता है। हे शुचिस्मिते! इस महालक्ष्मीव्रतको सोलह वर्षतक करना चाहिये। जो स्त्री इस व्रतका अनुष्ठान करती है, वह भगवान् श्रीहरिके चरणोंकी सन्निधि प्राप्त कर लेती है॥ ८१—८३½ ॥

प्रत्येक मंगलवारको मंगलकारिणी भगवती मंगलचण्डिकाका व्रत करना चाहिये। प्रत्येक मासकी शुक्लषष्ठीके दिन व्रतपूर्वक मंगलदायिनी देवी षष्ठीकी पूजा करनी चाहिये। उसी प्रकार आषाढ़-संक्रान्तिके अवसरपर समस्त सिद्धियाँ प्रदान करनेवाली देवी मनसाकी पूजा करनी चाहिये॥ ८४-८५॥

कार्तिकपूर्णिमाको रासके अवसरपर श्रीकृष्णके लिये प्राणोंसे भी अधिक प्रिय श्रीराधाकी उपासना करनी चाहिये। प्रत्येक मासके शुक्लपक्षकी अष्टमी तिथिको उपवासपूर्वक व्रत करके वर प्रदान करनेवाली भगवती दुर्गाकी पूजा करनी चाहिये। पति-पुत्रवती तथा पुण्यमयी पतिव्रताओं, प्रतिमाओं तथा यन्त्रोंमें दुर्गतिनाशिनी विष्णुमाया भगवती दुर्गाकी भावना करके जो स्त्री धन-सन्तानकी प्राप्तिके लिये भक्तिपूर्वक उनका पूजन करती है, वह इस लोकमें सुख भोगकर अन्तमें ऐश्वर्यमयी भगवतीके परम पदको प्राप्त होती है। इस प्रकार साधकको भगवतीकी विभूतियोंकी निरन्तर पूजा करनी चाहिये। उन सर्वरूपा परमेश्वरीकी निरन्तर उपासना करनी चाहिये; इससे बढ़कर कृतकृत्यता प्रदान करनेवाला और कुछ भी नहीं है॥ ८६—९०॥

[हे नारद!] उससे ऐसा कहकर धर्मराज अपने लोकको चले गये और अपने पतिको साथ लेकर सावित्री भी अपने घर चली गयी॥ ९१॥

हे नारद! सावित्री और सत्यवान् जब घरपर आ गये तब सावित्रीने अपने अन्य बन्धु-बान्धवोंसे यह सारा वृत्तान्त कहा॥ ९२॥

धर्मराजके वरके प्रभावसे सावित्रीके पिताने पुत्र प्राप्त कर लिये, उसके ससुरकी दोनों आँखें ठीक हो गयीं और उन्हें अपना राज्य मिल गया तथा उस

लक्षवर्षं सुखं भुक्त्वा पुण्यक्षेत्रे च भारते।
जगाम स्वामिना सार्धं देवीलोकं पतिव्रता॥ ९४

सावित्रीको भी पुत्रोंकी प्राप्ति हुई। इस प्रकार पुण्यक्षेत्र भारतवर्षमें एक लाख वर्षतक सुख भोगकर वह पतिव्रता सावित्री अपने पतिके साथ देवीलोक चली गयी॥ ९३-९४॥

सवितुश्चाधिदेवी या मन्त्राधिष्ठातृदेवता।
सावित्री ह्यपि वेदानां सावित्री तेन कीर्तिता॥ ९५

सविताकी अधिष्ठात्री देवी होने अथवा सूर्यके ब्रह्मप्रतिपादक गायत्री मन्त्रकी अधिदेवता होने तथा सम्पूर्ण वेदोंकी जननी होनेसे ये जगत्में सावित्री नामसे प्रसिद्ध हैं॥ ९५॥

इत्येवं कथितं वत्स सावित्र्याख्यानमुत्तमम्।
जीवकर्मविपाकं च किं पुनः श्रोतुमिच्छसि॥ ९६

हे वत्स! इस प्रकार मैंने सावित्रीके श्रेष्ठ उपाख्यान तथा प्राणियोंके कर्मविपाकका वर्णन कर दिया, अब आगे क्या सुनना चाहते हो॥ ९६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे नारायणनारदसंवादे सावित्र्युपाख्यानवर्णनं नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः॥ ३८॥



अथैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

भगवती लक्ष्मीका प्राकट्य, समस्त देवताओंद्वारा उनका पूजन

नारद उवाच

श्रीमूलप्रकृतेर्देव्या गायत्र्यास्तु निराकृतेः।
सावित्रीयमसंवादे श्रुतं वै निर्मलं यशः॥ १

तद्गुणोत्कीर्तनं सत्यं मङ्गलानां च मङ्गलम्।
अधुना श्रोतुमिच्छामि लक्ष्म्युपाख्यानमीश्वर॥ २

नारदजी बोले—[हे भगवन्!] मैं सावित्री तथा धर्मराजके संवादमें निराकार मूलप्रकृति भगवती गायत्रीका निर्मल यश सुन चुका। उनके गुणोंका कीर्तन सत्यस्वरूप तथा मंगलोंका भी मंगल है। हे प्रभो! अब मैं लक्ष्मीका उपाख्यान सुनना चाहता हूँ॥ १-२॥

केनादौ पूजिता सापि किंभूता केन वा पुरा।
तद्गुणोत्कीर्तनं मह्यं वद वेदविदांवर॥ ३

हे वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! सर्वप्रथम उन भगवती लक्ष्मीकी पूजा किसने की, उनका स्वरूप क्या है तथा पूर्वकालमें किसने उनके गुणोंका कीर्तन किया? यह सब मुझे बताइये॥ ३॥

श्रीनारायण उवाच

सृष्टेरादौ पुरा ब्रह्मन् कृष्णस्य परमात्मनः।
देवी वामांससम्भूता बभूव रासमण्डले॥ ४

श्रीनारायण बोले—हे ब्रह्मन्! प्राचीन समयमें सृष्टिके आरम्भमें रासमण्डलके मध्य परमात्मा श्रीकृष्णके वाम भागसे भगवती राधा प्रकट हुईं॥ ४॥

अतीव सुन्दरी श्यामा न्यग्रोधपरिमण्डिता।
यथा द्वादशवर्षीया शश्वत्सुस्थिरयौवना॥ ५

श्वेतचम्पकवर्णाभा सुखदृश्या मनोहरा।
शरत्पार्वणकोटीन्दुप्रभाप्रच्छादनानना॥ ६
शरन्मध्याह्नपद्मानां शोभामोचनलोचना।

वे भगवती लावण्यसम्पन्न तथा अत्यन्त सुन्दर थीं, उनके चारों ओर वटवृक्ष सुशोभित थे, वे बारह वर्षकी सुन्दरीकी भाँति दिख रही थीं, सर्वदा स्थिर रहनेवाले तारुण्यसे सम्पन्न थीं, श्वेत चम्पाके पुष्प-जैसी कान्तिवाली थीं, उन मनोहारिणी देवीका दर्शन बड़ा ही सुखदायक था, उनका मुखमण्डल शरत्पूर्णिमाके करोड़ों चन्द्रमाओंकी प्रभाको तिरोहित कर रहा था और उनके नेत्र शरद् ऋतुके मध्याह्नकालीन कमलोंकी शोभाको तिरस्कृत कर रहे थे॥ ५-६½॥

सा देवी द्विविधा भूता सह सर्वेश्वरेच्छया॥ ७
स्वीयरूपेण वर्णेन तेजसा वयसा त्विषा।
यशसा वाससा कृत्या भूषणेन गुणेन च॥ ८
स्मितेन वीक्षणेनैव प्रेम्णा वानुनयेन च।
तद्वामांसान्महालक्ष्मीर्दक्षिणांसाच्च राधिका॥ ९
राधादौ वरयामास द्विभुजञ्च परात्परम्।
महालक्ष्मीश्च तत्पश्चाच्चकमे कमनीयकम्॥ १०
कृष्णस्तद्गौरवेणैव द्विधारूपो बभूव ह।
दक्षिणांसश्च द्विभुजो वामांसश्च चतुर्भुजः॥ ११
चतुर्भुजाय द्विभुजो महालक्ष्मीं ददौ पुरा।
लक्ष्यते दृश्यते विश्वं स्निग्धदृष्ट्या ययानिशम्॥ १२
देवीभूता च महती महालक्ष्मीश्च सा स्मृता।
राधाकान्तश्च द्विभुजो लक्ष्मीकान्तश्चतुर्भुजः॥ १३
शुद्धसत्त्वस्वरूपा च गोपैर्गोपीभिरावृता।
चतुर्भुजश्च वैकुण्ठं प्रययौ पद्मया सह॥ १४
सर्वांशेन समौ तौ द्वौ कृष्णनारायणौ परौ।
महालक्ष्मीश्च योगेन नानारूपा बभूव सा॥ १५
वैकुण्ठे च महालक्ष्मीः परिपूर्णतमा रमा।
शुद्धसत्त्वस्वरूपा च सर्वसौभाग्यसंयुता॥ १६
प्रेम्णा सा च प्रधाना च सर्वासु रमणीषु च।
स्वर्गेषु स्वर्गलक्ष्मीश्च शक्रसम्पत्स्वरूपिणी॥ १७
पाताले नागलक्ष्मीश्च राजलक्ष्मीश्च राजसु।
गृहलक्ष्मीर्गृहेष्वेव गृहिणां च कलांशतः॥ १८
सम्पत्स्वरूपा गृहिणां सर्वमङ्गलमङ्गला।

सर्वेश्वर श्रीकृष्णके साथ विराजमान रहनेवाली वे देवी उनकी इच्छासे दो रूपोंमें व्यक्त हो गयीं। वे दोनों ही देवियाँ अपने रूप, वर्ण, तेज, आयु, कान्ति, यश, वस्त्र, कृत्य, आभूषण, गुण, मुसकान, अवलोकन, प्रेम तथा अनुनय-विनय आदिमें समान थीं। उनके बायें अंशसे महालक्ष्मी आविर्भूत हुईं तथा दाहिने अंशसे राधिका स्वयं ही विद्यमान रहीं॥ ७—९ ॥

पहले राधिकाने दो भुजाओंवाले परात्पर श्रीकृष्णको पतिरूपसे वरण किया। तत्पश्चात् महालक्ष्मीने भी उन्हीं मनोहर श्रीकृष्णको पति बनानेकी इच्छा प्रकट की। तब उन्हें गौरव प्रदान करनेके विचारसे वे श्रीकृष्ण भी दो रूपोंमें हो गये। वे अपने दाहिने अंशसे दो भुजाधारी श्रीकृष्ण बने रहे और बायें अंशसे चार भुजाओंवाले श्रीविष्णु हो गये। उसके बाद द्विभुज श्रीकृष्णने चतुर्भुज विष्णुको महालक्ष्मी समर्पित कर दी॥ १०-११½ ॥

जो भगवती अपनी स्नेहमयी दृष्टिसे निरन्तर विश्वकी देखभाल करती रहती हैं, वे अत्यन्त महत्त्व-शालिनी होनेके कारण महालक्ष्मी कही गयी हैं। इस प्रकार दो भुजाओंवाले श्रीकृष्ण राधाके पति बने और चतुर्भुज श्रीविष्णु महालक्ष्मीके पति हुए॥ १२-१३ ॥

शुद्ध सत्त्वस्वरूपिणी भगवती श्रीराधा गोपों और गोपिकाओंसे आवृत होकर अत्यन्त शोभा पाने लगीं और चतुर्भुज भगवान् विष्णु लक्ष्मीके साथ वैकुण्ठ चले गये॥ १४ ॥

परात्पर श्रीकृष्ण और श्रीविष्णु—वे दोनों ही समस्त अंशोंमें समान हैं। भगवती महालक्ष्मी योगबलसे नाना रूपोंमें विराजमान हुईं॥ १५ ॥

वे ही भगवती परिपूर्णतम परम शुद्धस्वरूपा महालक्ष्मी नामसे प्रसिद्ध हो सम्पूर्ण सौभाग्योंसे सम्पन्न होकर वैकुण्ठलोकमें निवास करने लगीं॥ १६ ॥

वे प्रेमके कारण समस्त नारियोंमें प्रधान हुईं। वे भगवती इन्द्रकी विभवस्वरूपा होकर स्वर्गमें स्वर्गलक्ष्मी नामसे प्रसिद्ध हुईं। वे पातालमें नागलक्ष्मी, राजाओंके यहाँ राजलक्ष्मी और गृहस्थोंके घरोंमें गृहलक्ष्मीके रूपमें अपनी कलाके एक अंशसे विराजमान हुईं। सभी मंगलोंका भी मंगल करनेवाली वे भगवती लक्ष्मी गृहस्थोंके लिये सम्पत्तिस्वरूपिणी हैं॥ १७-१८½ ॥

गवां प्रसूतिः सुरभिर्दक्षिणा यज्ञकामिनी॥ १९
क्षीरोदसिन्धुकन्या सा श्रीरूपा पद्मिनीषु च।
शोभास्वरूपा चन्द्रे च सूर्यमण्डलमण्डिता॥ २०
विभूषणेषु रत्नेषु फलेषु च जलेषु च।
नृपेषु नृपपत्नीषु दिव्यस्त्रीषु गृहेषु च॥ २१
सर्वसस्येषु वस्त्रेषु स्थानेषु संस्कृतेषु च।
प्रतिमासु च देवानां मङ्गलेषु घटेषु च॥ २२
माणिक्येषु च मुक्तासु माल्येषु च मनोहरा।
मणीन्द्रेषु च हीरेषु क्षीरेषु चन्दनेषु च॥ २३
वृक्षशाखासु रम्यासु नवमेघेषु वस्तुषु।
वैकुण्ठे पूजिता सादौ देवी नारायणेन च॥ २४
द्वितीये ब्रह्मणा भक्त्या तृतीये शङ्करेण च।
विष्णुना पूजिता सा च क्षीरोदे भारते मुने॥ २५
स्वायम्भुवेन मनुना मानवेन्द्रैश्च सर्वतः।
ऋषीन्द्रैश्च मुनीन्द्रैश्च सद्भिश्च गृहिभिर्भवे॥ २६
गन्धर्वैश्चैव नागाद्यैः पातालेषु च पूजिता।
शुक्लाष्टम्यां भाद्रपदे कृता पूजा च ब्रह्मणा॥ २७
भक्त्या च पक्षपर्यन्तं त्रिषु लोकेषु नारद।
चैत्रे पौषे च भाद्रे च पुण्ये मङ्गलवासरे॥ २८
विष्णुना पूजिता सा च त्रिषु लोकेषु भक्तितः।
वर्षान्ते पौषसङ्क्रान्त्यां माध्यामावाह्य मङ्गले॥ २९
मनुस्तां पूजयामास सा भूता भुवनत्रये।
पूजिता सा महेन्द्रेण मङ्गलेनैव मङ्गला॥ ३०
केदारेणैव नीलेन सुबलेन नलेन च।
ध्रुवेणोत्तानपादेन शक्रेण बलिना तथा॥ ३१
कश्यपेन च दक्षेण कर्दमेन विवस्वता।
प्रियव्रतेन चन्द्रेण कुबेरेणैव वायुना॥ ३२

गायोंकी जननी सुरभि तथा यज्ञपत्नी दक्षिणाके रूपमें वे ही प्रतिष्ठित हैं। वे महालक्ष्मी ही क्षीर-सागरकी कन्याके रूपमें प्रकट हुईं। वे कमलिनियोंमें श्रीरूपसे तथा चन्द्रमामें शोभारूपसे विराजमान हैं और सूर्यमण्डल इन्हींसे सुशोभित है। भूषण, रत्न, फल, जल, राजा, रानी, दिव्य स्त्री, गृह, सभी प्रकारके धान्य, वस्त्र, पवित्र स्थान, देवप्रतिमा, मंगलकलश, माणिक्य, मुक्ता, माला, श्रेष्ठ मणि, हीरा, दुग्ध, चन्दन, वृक्षोंकी सुरम्य शाखा तथा नवीन मेघ—इन सभी वस्तुओंमें परम मनोहर महालक्ष्मीका ही अंश विद्यमान है॥ १९—२३½ ॥

हे मुने! सर्वप्रथम भगवान् नारायणने वैकुण्ठमें उन भगवती महालक्ष्मीकी पूजा की थी, दूसरी बार ब्रह्माने तथा तीसरी बार शंकरने भक्तिपूर्वक उनकी पूजा की, भगवान् विष्णुने भारतवर्षमें क्षीरसागरमें उन महालक्ष्मीकी पूजा की। उसके बाद स्वायम्भुव मनु, सभी राजागण, श्रेष्ठ ऋषि, मुनीश्वर तथा सदाचारी गृहस्थ—इन सभी लोगोंने जगत्‌में महालक्ष्मीकी उपासना की। गन्धर्वों तथा नाग आदिके द्वारा वे पाताललोकमें पूजित हुईं॥ २४—२६½ ॥

हे नारद! ब्रह्माजीने भाद्रपदके शुक्लपक्षकी अष्टमीसे प्रारम्भ करके पक्षपर्यन्त भक्तिपूर्वक उनकी पूजा की, फिर तीनों लोकोंमें उनकी पूजा होने लगी। चैत्र, पौष तथा भाद्रपदमासोंके पवित्र मंगलवारको विष्णुके द्वारा उनकी पूजा की गयी, बादमें तीनों लोकोंमें सभी लोग भक्तिपूर्वक उनकी उपासना करने लगे॥ २७-२८½ ॥

वर्षके अन्तमें पौषकी संक्रान्तिके अवसरपर मध्याह्नकालमें मनुने मंगलकलशपर आवाहन करके उनकी पूजा की। उसके बाद वे भगवती तीनों लोकोंमें पूज्य हो गयीं। इन्द्रके द्वारा वे पूजित हुईं। मंगलने भी उन मंगलमयी भगवतीकी पूजा की। उसके बाद केदार, नील, सुबल, नल, ध्रुव, उत्तानपाद, शक्र, बलि, कश्यप, दक्ष, कर्दम, विवस्वान्, प्रियव्रत, चन्द्र, कुबेर, वायु, यम, अग्नि और वरुणने उनकी उपासना की। इस प्रकार समस्त ऐश्वर्योंकी अधिष्ठात्री देवी

यमेन वह्निना चैव वरुणेनैव पूजिता।
एवं सर्वत्र सर्वेषु पूजिता वन्दिता सदा।
सर्वैश्वर्याधिदेवी सा सर्वसम्पत्स्वरूपिणी॥ ३३

तथा समग्र सम्पदाओंकी विग्रहस्वरूपिणी वे भगवती महालक्ष्मी सर्वत्र सब लोगोंद्वारा सदा पूजित तथा वन्दित हुईं॥ २९—३३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे लक्ष्म्युपाख्यानवर्णनं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ३९॥



अथ चत्वारिंशोऽध्यायः

दुर्वासाके शापसे इन्द्रका श्रीहीन हो जाना

नारद उवाच

नारायणप्रिया सा च परा वैकुण्ठवासिनी।
वैकुण्ठाधिष्ठातृदेवी महालक्ष्मीः सनातनी॥ १

कथं बभूव सा देवी पृथिव्यां सिन्धुकन्यका।
पुरा केन स्तुतादौ सा तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥ २

नारदजी बोले—[हे भगवन्!] वे श्रेष्ठ महालक्ष्मी भगवान् नारायणकी प्रिया होकर वैकुण्ठमें निवास करती हैं। वे सनातनी भगवती वैकुण्ठकी अधिष्ठात्री देवी हैं। वे महालक्ष्मी पूर्व कालमें पृथ्वीलोकमें सिन्धुकी पुत्री कैसे बनीं और सर्वप्रथम किसके द्वारा उनकी स्तुति की गयी, वह सब मुझे बताइये॥ १-२॥

श्रीनारायण उवाच

पुरा दुर्वाससः शापाद् भ्रष्टश्रीश्च पुरन्दरः।
बभूव देवसङ्घश्च मर्त्यलोके हि नारद॥ ३

लक्ष्मीः स्वर्गादिकं त्यक्त्वा रुष्टा परमदुःखिता।
गत्वा लीना तु वैकुण्ठे महालक्ष्मीश्च नारद॥ ४

श्रीनारायण बोले—हे नारद! पूर्व कालमें दुर्वासाके शापके कारण इन्द्र श्रीविहीन हो गये थे और सम्पूर्ण देवसमुदाय मृत्युलोकमें भटकने लगा। हे नारद! तब कुपित लक्ष्मीने स्वर्गका परित्याग करके अत्यन्त दुःखित हो वैकुण्ठलोक पहुँचकर वहाँ महालक्ष्मीमें अपनेको विलीन कर दिया॥ ३-४॥

तदा शोकाद्ययुः सर्वे दुःखिता ब्रह्मणः सभाम्।
ब्रह्माणं च पुरस्कृत्य ययुर्वैकुण्ठमेव च॥ ५

वैकुण्ठे शरणापन्ना देवा नारायणे परे।
अतीव दैन्ययुक्ताश्च शुष्ककण्ठोष्ठतालुकाः॥ ६

उस समय शोकसे संतप्त सभी देवता ब्रह्माकी सभामें गये और वहाँसे ब्रह्माजीको आगे करके वैकुण्ठलोकको गये। वहाँपर सभी देवताओंने भगवान् नारायण श्रीविष्णुकी शरण ग्रहण की। उस समय अत्यन्त दीनतायुक्त सभी देवताओंके कण्ठ, ओठ और तालु सूख गये थे॥ ५-६॥

तदा लक्ष्मीश्च कलया पुराणपुरुषाज्ञया।
बभूव सिन्धुकन्या सा सर्वसम्पत्स्वरूपिणी॥ ७

तथा मथित्वा क्षीरोदं देवा दैत्यगणैः सह।
सम्प्राप्ताश्च महालक्ष्मीं विष्णुस्तां च ददर्श ह॥ ८

सुरादिभ्यो वरं दत्त्वा वनमालां च विष्णवे।
ददौ प्रसन्नवदना तुष्टा क्षीरोदशायिने॥ ९

तब पुराणपुरुष भगवान् श्रीहरिकी आज्ञासे वे सर्वसम्पत्तिस्वरूपा लक्ष्मी अपनी कलासे सिन्धुकी कन्या हुई थीं। उस समय सभी देवताओंने दैत्योंके साथ मिलकर समुद्रमन्थन करके महालक्ष्मीकी प्राप्ति की थी। भगवान् विष्णुने महालक्ष्मीको प्रेमपूर्वक देखा। तब प्रसन्नतायुक्त मुखमण्डलवाली परम सन्तुष्ट भगवती महालक्ष्मीने देवता आदिको वर प्रदान करके क्षीरसागरमें शयन करनेवाले भगवान् श्रीविष्णुको वनमाला अर्पित कर दी॥ ७—९॥

देवाश्चाप्यसुरग्रस्तं राज्यं प्रापुश्च नारद।
तां सम्पूज्य च सम्भूय सर्वत्र च निरापदः॥ १०

नारद उवाच

कथं शशाप दुर्वासा मुनिश्रेष्ठः कदाचन।
केन दोषेण वा ब्रह्मन् ब्रह्मिष्ठस्तत्त्ववित्पुरा॥ ११

ममन्थुः केनरूपेण जलधिं ते सुरादयः।
केन स्तोत्रेण वा देवी शक्रं साक्षाद्बभूव सा॥ १२

को वा तयोश्च संवादो बभूव तद्वद प्रभो।

श्रीनारायण उवाच

मधुपानप्रमत्तश्च त्रैलोक्याधिपतिः पुरा॥ १३

क्रीडां चकार रहसि रम्भया सह कामुकः।
कृत्वा क्रीडां तया सार्धं कामुक्या हृतमानसः॥ १४

तस्थौ तत्र महारण्ये कामोन्मथितमानसः।
कैलासशिखरे यान्तं वैकुण्ठादृषिसत्तमम्॥ १५

दुर्वाससं ददर्शेन्द्रो ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा।
ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डसहस्रप्रभमीश्वरम् ॥ १६

प्रतप्तकाञ्चनाकारं जटाभारमहोज्ज्वलम्।
शुक्लयज्ञोपवीतं च चीरदण्डौ कमण्डलुम्॥ १७

महोज्ज्वलं च तिलकं बिभ्रन्तं चेन्दुसन्निभम्।
समन्वितं शिष्यलक्षैर्वेदवेदाङ्गपारगैः॥ १८

दृष्ट्वा ननाम शिरसा सम्प्रमत्तः पुरन्दरः।
शिष्यवर्गं तदा भक्त्या तुष्टाव च मुदान्वितम्॥ १९

मुनिना च सशिष्येण दत्तास्तस्मै शुभाशिषः।
विष्णुदत्तं पारिजातपुष्पं च सुमनोहरम्॥ २०

हे नारद! देवताओंने असुरोंके द्वारा अपहृत किया गया अपना राज्य पुनः प्राप्त कर लिया। तत्पश्चात् उन भगवती महालक्ष्मीकी भलीभाँति पूजा करके वे देवता सब प्रकारसे विपत्तिरहित हो गये॥ १०॥

नारदजी बोले—हे ब्रह्मन्! पूर्वकालमें ब्रह्मनिष्ठ तथा तत्त्वज्ञानी मुनिश्रेष्ठ दुर्वासाने कब, क्यों और किस अपराधके कारण इन्द्रको शाप दिया था? उन देवता आदिने किस रूपसे समुद्रका मन्थन किया, किस स्तोत्रसे प्रसन्न होकर भगवती लक्ष्मी इन्द्रके समक्ष प्रकट हुईं और उन दोनोंके बीच क्या संवाद हुआ? हे प्रभो! यह सब आप मुझे बताइये॥ ११-१२½॥

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] प्राचीन कालकी बात है—तीनों लोकोंके अधिपति इन्द्र मधुपानसे प्रमत्त और कामासक्त होकर रम्भाके साथ एकान्तमें विहार कर रहे थे। उस कामुकी अप्सराके साथ क्रीडा करनेसे उनका मन मोहित हो गया था। इस प्रकार कामदेवसे मथित मनवाले वे इन्द्र उसी महावनमें स्थित हो गये॥ १३-१४॥

उसी समय इन्द्रने वैकुण्ठधामसे कैलासपर्वतकी ओर जाते हुए महर्षि दुर्वासाको देखा। उनका शरीर ब्रह्मतेजसे देदीप्यमान था, ऐश्वर्यसम्पन्न वे ग्रीष्मऋतुके मध्याह्नकालीन हजारों सूर्योंकी प्रभासे युक्त थे, उनका अत्यन्त स्वच्छ जटाजूट प्रतप्त सुवर्णके समान प्रकाशमान था, वे श्वेतवर्णका यज्ञोपवीत धारण किये हुए थे, उन्होंने अपने हाथोंमें चीर, दण्ड तथा कमण्डलु धारण कर रखा था, वे अपने ललाटपर चन्द्रमाके समान प्रतीत होनेवाला अत्यन्त उज्ज्वल तिलक धारण किये हुए थे। वेदवेदांगके पारगामी लाखों शिष्य उनके साथ विद्यमान थे॥ १५—१८॥

उन्हें देखकर अति प्रमत्त इन्द्रने सिर झुकाकर मुनि तथा शिष्यवर्गको प्रणाम किया और प्रसन्न होकर उनकी स्तुति की। तब शिष्योंसहित मुनि दुर्वासाने इन्द्रको शुभाशीर्वाद दिया, साथ ही उन्होंने भगवान् विष्णुद्वारा प्रदत्त परम मनोहर पारिजात पुष्प भी उन्हें समर्पित किया॥ १९-२०॥

तज्जरारोगमृत्युघ्नं शोकघ्नं मोक्षकारकम्।
शक्रः पुष्पं गृहीत्वा च प्रमत्तो राज्यसम्पदा॥ २१

पुष्पं स न्यस्तयामास तदैव करिमस्तके।
हस्ती तत्स्पर्शमात्रेण रूपेण च गुणेन च॥ २२

तेजसा वयसाकस्माद्विष्णुतुल्यो बभूव ह।
त्यक्त्वा शक्रं गजेन्द्रश्च जगाम घोरकाननम्॥ २३

न शशाक महेन्द्रस्तं रक्षितुं तेजसा मुने।
तत्पुष्पं त्यक्तवन्तं च दृष्ट्वा शक्रं मुनीश्वरः॥ २४

तमुवाच महारुष्टः शशाप च रुषान्वितः।

मुनिरुवाच

अरे श्रिया प्रमत्तस्त्वं कथं मामवमन्यसे॥ २५

मद्दत्तपुष्पं दत्तं च गर्वेण करिमस्तके।
विष्णोर्निवेदितं चैव नैवेद्यं वा फलं जलम्॥ २६

प्राप्तिमात्रेण भोक्तव्यं त्यागेन ब्रह्महा भवेत्।
भ्रष्टश्रीर्भ्रष्टबुद्धिश्च पुरभ्रष्टो भवेत्तु सः॥ २७

यस्त्यजेद्विष्णुनैवेद्यं भाग्येनोपस्थितं शुभम्।
प्राप्तिमात्रेण यो भुङ्क्ते भक्तो विष्णुनिवेदितम्॥ २८

पुंसां शतं समुद्धृत्य जीवन्मुक्तः स्वयं भवेत्।
नैवेद्यं भोजनं कृत्वा नित्यं यः प्रणमेद्धरिम्॥ २९

पूजयेत्स्तौति वा भक्त्या स विष्णुसदृशो भवेत्।
तत्स्पर्शवायुना सद्यस्तीर्थौघश्च विशुध्यति॥ ३०

तत्पादरजसा मूढ सद्यः पूता वसुन्धरा।

तब बुढ़ापा, रोग, मृत्यु तथा शोकका नाश करनेवाले और मोक्ष प्रदान करनेवाले उस पुष्पको लेकर राज्यसम्पदासे मदोन्मत्त इन्द्रने उसे ऐरावत हाथीके मस्तकपर फेंक दिया॥ २१½ ॥

उस पुष्पका स्पर्श होते ही वह ऐरावत हाथी रूप, गुण, तेज तथा आयुमें अकस्मात् भगवान् विष्णुके तुल्य हो गया। तब इन्द्रको छोड़कर वह गजराज घोर वनमें चला गया। हे मुने! अपने तेजोबलसे सम्पन्न इन्द्र उस ऐरावतको रोक पानेमें समर्थ नहीं हो सके॥ २२-२३½ ॥

इन्द्रने उस पुष्पका तिरस्कार किया है—ऐसा जानकर मुनीश्वर दुर्वासा अत्यन्त कुपित हो उठे और रोषमें आकर उन्हें शाप देते हुए कहने लगे॥ २४½ ॥

मुनि बोले—अरे! राज्यश्रीके अभिमानसे प्रमत्त होकर तुम मेरा अपमान क्यों कर रहे हो? मेरे द्वारा दिये गये पुष्पको तुमने गर्वित होकर हाथीके मस्तकपर फेंक दिया? श्रीविष्णुको समर्पित किये हुए नैवेद्य, फल अथवा जलके प्राप्त होते ही उनका उपभोग कर लेना चाहिये, उनका त्याग करनेसे वह ब्रह्महत्याके पापका भागी होता है॥ २५-२६½ ॥

जो मनुष्य सौभाग्यसे प्राप्त हुए भगवान् विष्णुके पावन नैवेद्यका त्याग करता है; वह श्री, बुद्धि तथा राज्य—इन सबसे वंचित हो जाता है॥ २७½ ॥

जो भक्त श्रीविष्णुके लिये अर्पित किये गये नैवेद्यको पाते ही उसे ग्रहण कर लेता है, वह अपने सौ पूर्वजोंका उद्धार करके स्वयं जीवन्मुक्त हो जाता है॥ २८½ ॥

जो मनुष्य प्रतिदिन भगवान् श्रीहरिके नैवेद्यको ग्रहण करके उन्हें प्रणाम करता है तथा भक्तिपूर्वक उनका पूजन एवं स्तवन करता है, वह भगवान् विष्णुके समान हो जाता है। हे मूर्ख! उसका स्पर्श करके चलनेवाली वायुका संयोग पाकर तीर्थसमुदाय शीघ्र ही शुद्ध हो जाता है और उसकी चरणरजसे पृथ्वी शीघ्र ही पवित्र हो जाती है॥ २९-३०½ ॥

पुंश्चल्यन्नमवीरान्नं शूद्रश्राद्धान्नमेव च॥ ३१

यद्धरेरनिवेद्यं च वृथा मांसस्य भक्षणम्।
शिवलिङ्गप्रदानं च यद्दत्तं शूद्रयाजिना॥ ३२

चिकित्सकद्विजान्नं च देवलान्नं तथैव च।
कन्याविक्रयिणामन्नं यदन्नं योनिजीविनाम्॥ ३३

उच्छिष्टान्नं पर्युषितं सर्वभक्षावशेषितम्।
शूद्रापतिद्विजानां च वृषवाहद्विजान्नकम्॥ ३४

अदीक्षितद्विजानां च यदन्नं शवदाहिनाम्।
अगम्यागामिनां चैव द्विजानामन्नमेव च॥ ३५

मित्रद्रुहां कृतघ्नानामन्नं विश्वासघातिनाम्।
मिथ्यासाक्ष्यप्रदान्नं च ब्राह्मणान्नं तथैव च॥ ३६

एते सर्वे विशुध्यन्ति विष्णोर्नैवेद्यभक्षणात्।
श्वपचश्चेद्विष्णुसेवी वंशानां कोटिमुद्धरेत्॥ ३७

हरेरभक्तो मनुजः स्वं च रक्षितुमक्षमः।
अज्ञानाद्यदि गृह्णाति विष्णोर्निर्माल्यमेव च॥ ३८

सप्तजन्मार्जितात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः।
ज्ञात्वा भक्त्या च गृह्णाति विष्णोर्नैवेद्यमेव च॥ ३९

कोटिजन्मार्जितात्पापान्मुच्यते निश्चितं हरे।
यस्मात्संस्थापितं पुष्पं गर्वेण करिमस्तके॥ ४०

तस्माद्युष्मान्परित्यज्य यातु लक्ष्मीर्हरेः पदम्।
नारायणस्य भक्तोऽहं न बिभेमि सुराद्विधेः॥ ४१

कालान्मृत्योर्जरातश्च कानन्यान् गणयामि च।
किं करिष्यति ते तात कश्यपश्च प्रजापतिः॥ ४२

बृहस्पतिर्गुरुश्चैव निःशङ्कस्य च मे हरे।
इदं पुष्पं यस्य मूर्ध्नि तस्यैव पूजनं परम्॥ ४३

भगवान् श्रीहरिको भोग न लगाया हुआ अन्न व्यभिचारिणी स्त्री, पतिपुत्रहीन स्त्री तथा शूद्रके श्राद्धान्नके समान व्यर्थ होता है और वह मांस-भक्षणके समान है॥ ३१½ ॥

शिवलिंगके लिये अर्पण किया हुआ अन्न, शूद्रोंके यहाँ यजन करानेवाले ब्राह्मणके द्वारा प्रदत्त अन्न, चिकित्सावृत्तिमें लगे ब्राह्मणका अन्न; देवल, कन्याविक्रयी तथा वेश्याओंकी वृत्तिपर आश्रित रहनेवाले पुरुषोंका अन्न; उच्छिष्ट, बासी तथा सबके भोजन कर लेनेपर बचा हुआ अन्न; शूद्रापति द्विज, वृषवाही द्विज, दीक्षाहीन द्विज, शवदाही, अगम्या स्त्रीके साथ गमन करनेवाले द्विज, मित्रद्रोही, विश्वासघाती, कृतघ्न तथा झूठी गवाही देनेवाले और तीर्थप्रतिग्राही ब्राह्मणोंका अन्न ग्रहण करनेवाले—ये सभी भगवान् विष्णुका नैवेद्य भक्षण करनेसे शुद्ध हो जाते हैं॥ ३२—३६½ ॥

यदि चाण्डाल भी भगवान् विष्णुकी उपासना करता है, तो वह अपनी करोड़ों पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। भगवान् श्रीहरिकी भक्ति न करनेवाला मनुष्य स्वयं अपनी भी रक्षा करनेमें असमर्थ रहता है॥ ३७½ ॥

यदि कोई मनुष्य अनजानमें भी श्रीविष्णुका नैवेद्य ग्रहण कर लेता है, वह अपने सात जन्मोंके अर्जित पापोंसे मुक्त हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं है। जो ज्ञानपूर्वक भक्तिके साथ भगवान् विष्णुका नैवेद्य ग्रहण करता है, वह तो करोड़ों जन्मोंके अर्जित पापोंसे मुक्त हो जाता है—यह निश्चित है। हे इन्द्र! तुमने जो अभिमानवश इस पारिजात पुष्पको हाथीके मस्तकपर फेंक दिया है, इस अपराधके कारण लक्ष्मीजी तुमलोगोंका परित्याग करके भगवान् श्रीहरिके लोकमें चली जायँ॥ ३८—४०½ ॥

मैं नारायणका भक्त हूँ। मैं देवता, ब्रह्मा, काल, मृत्यु तथा जरासे भी भयभीत नहीं होता तो फिर अन्य किन लोगोंकी गिनती करूँ। हे इन्द्र! तुम्हारे पिता प्रजापति कश्यप और गुरु बृहस्पति मुझ निःशंकका क्या कर लेंगे? यह पारिजात पुष्प जिसके सिरपर रहता है, उसीकी पूजा श्रेष्ठ मानी जाती है॥ ४१—४३॥

इति श्रुत्वा महेन्द्रश्च धृत्वा स चरणं मुनेः।
उच्चै रुरोद शोकार्तस्तमुवाच भयाकुलः॥ ४४

यह सुनकर देवराज इन्द्र मुनि दुर्वासाके चरण पकड़कर शोकसन्तप्त तथा भयसे व्याकुल हो उच्च स्वरसे रोने लगे और उनसे कहने लगे—॥ ४४॥

महेन्द्र उवाच

दत्तः समुचितः शापो मह्यं मायापहः प्रभो।
हृतां न याचे सम्पत्तिं किञ्चिज्ज्ञानं च देहि मे॥ ४५

ऐश्वर्यं विपदां बीजं ज्ञानप्रच्छन्नकारणम्।
मुक्तिमार्गकुठारश्च भक्तेश्च व्यवधायकम्॥ ४६

महेन्द्र बोले—हे प्रभो! आपने मुझे अत्यन्त उचित शाप दिया है; क्योंकि यह मायाका नाश कर देनेवाला है। मैं अपनी अपहृत सम्पत्तिकी याचना नहीं कर रहा हूँ, आप मुझे कुछ ज्ञानोपदेश दीजिये। [क्योंकि यह लौकिक] ऐश्वर्य समस्त विपत्तियोंका बीजस्वरूप है, ज्ञानका आच्छादन कर देनेवाला है, मुक्तिमार्गका कुठार है तथा भक्तिमें व्यवधान उत्पन्न करनेवाला है॥ ४५-४६॥

मुनिरुवाच

जन्ममृत्युजराशोकरोगबीजाङ्कुरं परम्।
सम्पत्तितिमिरान्धश्च मुक्तिमार्गं न पश्यति॥ ४७

मुनि बोले—यह ऐश्वर्य जन्म, मृत्यु, जरा, शोक और रोगके बीजका महान् अंकुर है। सम्पत्तिके घोर अन्धकारसे अन्धा बना हुआ मानव मुक्तिका मार्ग नहीं देख पाता है॥ ४७॥

सम्पन्मत्तो विमूढश्च सुरामत्तः स एव च।
बान्धवैर्वेष्टितः सोऽपि बन्धुत्वेनैव हे हरे॥ ४८

हे इन्द्र! जो मूर्ख सम्पत्तिसे उन्मत्त है, उसको वास्तवमें मदिरापानसे भी प्रमत्त समझना चाहिये। बन्धु-बान्धव उसे बन्धु समझकर सदा घेरे रहते हैं॥ ४८॥

सम्पत्तिमदमत्तश्च विषयान्धश्च विह्वलः।
महाकामी राजसिकः सत्त्वमार्गं न पश्यति॥ ४९

सम्पत्तिके मदमें उन्मत्त वह व्यक्ति विषयान्ध, विह्वल, महाकामी और राजसिक होकर सात्त्विक मार्गका अवलोकन नहीं कर पाता है॥ ४९॥

द्विविधो विषयान्धश्च राजसस्तामसः स्मृतः।
अशास्त्रज्ञस्तामसश्च शास्त्रज्ञो राजसः स्मृतः॥ ५०

विषयान्ध भी राजस तथा तामस भेदसे दो प्रकारका बताया गया है। शास्त्रज्ञानसे हीन व्यक्तिको तामस तथा शास्त्रज्ञको राजस कहा गया है॥ ५०॥

शास्त्रं च द्विविधं मार्गं दर्शयेत्सुरपुङ्गव।
प्रवृत्तिबीजमेकं च निवृत्तेः कारणं परम्॥ ५१

हे सुरश्रेष्ठ! शास्त्र भी दो प्रकारके मार्ग दिखलाता है। एक संसृतिका हेतु है तथा दूसरा निवृत्तिका कारण कहा गया है॥ ५१॥

चरन्ति जीविनश्चादौ प्रवृत्तेर्दुःखवर्त्मनि।
स्वच्छन्दं च प्रसन्नं च निर्विरोधं च सन्ततम्॥ ५२

आयाति मधुनो लोभात्क्लेशेन सुखमानितः।
परिणामे नाशबीजे जन्ममृत्युजराकरे॥ ५३

पहले प्रवृत्तिबीजरूपी दुःखमय मार्गपर सभी प्राणी स्वच्छन्द तथा प्रसन्न होकर निर्विरोधभावसे निरन्तर चलते रहते हैं। जैसे मधुके लोभसे भौंरा अत्यन्त सुख मानकर क्लेशके साथ पुष्पोंपर आता है, वैसे ही मनुष्य परिणाममें विनाशके बीजस्वरूप तथा जन्म-मृत्यु-जराके आश्रयस्वरूप इस प्रवृत्तिमार्गपर अग्रसर होता है॥ ५२-५३॥

अनेकजन्मपर्यन्तं कृत्वा च भ्रमणं मुदा।
स्वकर्मविहितायां च नानायोन्यां क्रमेण च॥ ५४

ततश्चेशानुग्रहाच्च सत्सङ्गं लभते च सः।
सहस्रेषु शतेष्वेको भवाब्धिपारकारणम्॥ ५५

साधुस्तत्त्वप्रदीपेन मुक्तिमार्गं प्रदर्शयेत्।
तदा करोति यत्नं च जीवो बन्धनखण्डने॥ ५६

अनेकजन्मयोगेन तपसानशनेन च।
तदा लभेन्मुक्तिमार्गं निर्विघ्नं सुखदं परम्॥ ५७

इदं श्रुतं गुरोर्वक्त्राद्यत् पृच्छसि पुरन्दर।
मुनेस्तद्वचनं श्रुत्वा वीतरागो बभूव सः॥ ५८

वैराग्यं वर्धयामास तस्य ब्रह्मन् दिने दिने।
मुनेः स्थानाद् गृहं गत्वा स ददर्शामरावतीम्॥ ५९

दैत्यैरसुरसङ्घैश्च समाकीर्णां भयाकुलाम्।
विषमोपप्लवां पुत्रबन्धुहीनां च कुत्रचित्॥ ६०

पितृमातृकलत्रादिविहीनामतिचञ्चलाम्।
शत्रुग्रस्तां च तां दृष्ट्वा जगाम वाक्पतिं प्रति॥ ६१

शक्रो मन्दाकिनीतीरे ददर्श गुरुमीश्वरम्।
ध्यायमानं परं ब्रह्म गङ्गातोये स्थितं परम्॥ ६२

सूर्याभिसम्मुखं पूर्वमुखं च विश्वतोमुखम्।
साश्रुनेत्रं पुलकिनं परमानन्दसंयुतम्॥ ६३

वरिष्ठं च गरिष्ठं च धर्मिष्ठं श्रेष्ठसेवितम्।
प्रेष्ठं च बन्धुवर्गाणामतिश्रेष्ठं च ज्ञानिनाम्॥ ६४

ज्येष्ठं च भ्रातृवर्गाणामनिष्टं सुरवैरिणाम्।
दृष्ट्वा गुरुं जपन्तं च तत्र तस्थौ सुरेश्वरः॥ ६५

प्रसन्नतापूर्वक अनेक जन्मोंतक अपने किये कर्मके परिणामस्वरूप नाना प्रकारकी योनियोंमें क्रमशः भ्रमण करनेके पश्चात् भगवान्‌की कृपासे ही सैकड़ों तथा हजारों प्राणियोंमेंसे कोई बिरला ही संसारसागरसे पार करनेवाले सत्संगको प्राप्त कर पाता है॥ ५४-५५॥

जब कोई साधु तत्त्वज्ञानरूपी दीपकसे उसे मुक्तिमार्ग दिखा देता है, तब संसारबन्धनको तोड़नेके लिये जीव प्रयत्न करने लगता है। अनेक जन्मोंमें किये गये तप तथा उपवाससे जब मानवका पुण्योदय होता है, तब वह निर्विघ्न तथा परम सुखप्रद मुक्तिमार्गको प्राप्त कर पाता है। हे इन्द्र! तुम जो बात पूछ रहे हो, उसे मैंने गुरुके मुखसे सुना है॥ ५६-५७½॥

हे ब्रह्मन्! मुनि दुर्वासाका यह वचन सुनकर देवराज इन्द्र रागरहित हो गये और उनके हृदयमें दिनोंदिन वैराग्यकी भावना बढ़ने लगी॥ ५८½॥

तत्पश्चात् मुनिके स्थानसे अपने भवन पहुँचकर इन्द्रने देखा कि अमरावतीपुरी दैत्यों तथा असुरोंसे भरी हुई है, चारों ओर भय व्याप्त है, सर्वत्र विषमता तथा उपद्रवकी स्थिति है, कहीं किसीके पुत्र तथा बन्धु-बान्धव नहीं थे, कहीं किसीके माता-पिता और स्त्री आदिने उसका साथ छोड़ दिया है, चारों ओर हलचल मची हुई है तथा सम्पूर्ण नगरी शत्रुओंसे पूर्णतया आक्रान्त है। उस अमरावतीको इस स्थितिमें देखकर इन्द्र देवगुरु बृहस्पतिके पास गये॥ ५९—६१॥

मन्दाकिनीनदीके तटपर पहुँचकर देवराज इन्द्रने देखा कि गुरुदेव बृहस्पति पूरबकी ओर सूर्यके अभिमुख हो गंगाजलमें खड़े होकर सर्वतोमुख परब्रह्म परमात्माका ध्यान कर रहे हैं और पुलकित तथा प्रसन्नतायुक्त उनके नेत्रोंसे अश्रु गिर रहे हैं। परम श्रेष्ठ, आदरणीय, धर्मनिष्ठ, श्रेष्ठ जनोंद्वारा सेवित, बन्धुवर्गोंमें अति महान्, ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ, भाई-बन्धुओंमें ज्येष्ठ तथा देवशत्रुओंके लिये अनिष्टकारी गुरु बृहस्पतिको जप करते हुए देखकर सुरेश्वर इन्द्र वहींपर स्थित हो गये॥ ६२—६५॥

प्रहरान्ते गुरुं दृष्ट्वा चोत्थितं प्रणनाम सः।
प्रणम्य चरणाम्भोजे रुरोदोच्चैर्मुहुर्मुहुः॥ ६६

वृत्तान्तं कथयामास ब्रह्मशापादिकं तथा।
पुनर्वरोपलब्धिं च ज्ञानप्राप्तिं सुदुर्लभाम्॥ ६७

वैरिग्रस्तां च स्वपुरीं क्रमेणैव सुरेश्वरः।
शिष्यस्य वचनं श्रुत्वा सुबुद्धिर्वदतां वरः॥ ६८

बृहस्पतिरुवाचेदं कोपसंरक्तलोचनः।

गुरुरुवाच

श्रुतं सर्वं सुरश्रेष्ठ मा रोदीर्वचनं शृणु॥ ६९

न कातरो हि नीतिज्ञो विपत्तौ च कदाचन।
सम्पत्तिर्वा विपत्तिर्वा नश्वरा श्रमरूपिणी॥ ७०

पूर्वस्य कर्मायत्ता च स्वयं कर्ता तयोरपि।
सर्वेषां च भवत्येव शश्वज्जन्मनि जन्मनि॥ ७१

चक्रनेमिक्रमेणैव तत्र का परिदेवना।
उक्तं हि स्वकृतं कर्म भुज्यतेऽखिलभारते॥ ७२

शुभाशुभं च यत्किञ्चित्स्वकर्मफलभुक् पुमान्।
नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि॥ ७३

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।
इत्येवमुक्तं वेदे च कृष्णेन परमात्मना॥ ७४

सामवेदोक्तशाखायां सम्बोध्य कमलोद्भवम्।
जन्मभोगावशेषे च सर्वेषां कृतकर्मणाम्॥ ७५

अनुरूपं हि तेषां च भारतेऽन्यत्र चैव हि।
कर्मणा ब्रह्मशापं च कर्मणा च शुभाशिषम्॥ ७६

कर्मणा च महालक्ष्मीं लभेद्दैन्यं च कर्मणा।
कोटिजन्मार्जितं कर्म जीविनामनुगच्छति॥ ७७
न हि त्यजेद्विना भोगं तच्छायेव पुरन्दर।

एक प्रहरके बाद गुरुको ध्यानसे उपरत देखकर इन्द्रने उन्हें प्रणाम किया। तत्पश्चात् उनके चरणकमलमें मस्तक झुकाकर इन्द्र उच्च स्वरसे बार-बार विलाप करने लगे। देवराज इन्द्रने गुरु बृहस्पतिसे दुर्वासाके द्वारा प्रदत्त शाप आदिसे सम्बन्धित सारा वृत्तान्त, वरकी उपलब्धि, दुर्वासासे अत्यन्त दुर्लभ ज्ञानकी प्राप्ति और शत्रुओंसे आक्रान्त अपनी नगरीके विषयमें सभी बातें क्रमसे कहीं॥ ६६-६७½ ॥

अपने शिष्य इन्द्रकी बात सुनकर क्रोधसे लाल नेत्रोंवाले परम बुद्धिमान् तथा वक्ताओंमें श्रेष्ठ बृहस्पति इस प्रकार कहने लगे—॥ ६८½ ॥

गुरु बोले—हे सुरश्रेष्ठ! मैंने सब कुछ सुन लिया, मत रोओ, मेरी बात सुनो। नीतिज्ञ पुरुष विपत्तिकालमें कभी भी घबराता नहीं; क्योंकि सम्पत्ति अथवा विपत्ति नश्वर हैं। ये दोनों ही श्रमसाध्य हैं। सम्पत्ति अथवा विपत्ति अपने पूर्व जन्ममें किये गये कर्मका फल है और उन्हींके अधीन होकर कर्ताको स्वयं फल भोगना पड़ता है। सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये प्रत्येक जन्ममें यही स्थिति है, जो चक्रमण्डलकी भाँति निरन्तर आती-जाती रहती है, अतः इस विषयमें चिन्ताकी क्या आवश्यकता है?॥ ६९—७१½ ॥

ऐसा कहा गया है कि सम्पूर्ण भारतमें अपने द्वारा किये गये कर्मका फल भोगना ही पड़ता है। शुभ अथवा अशुभ जो कुछ भी कर्म मनुष्य करता है, वह उसे भोगता ही है। सैकड़ों करोड़ों कल्प बीत जानेके बाद भी बिना भोगे हुए कर्मोंका क्षय नहीं होता॥ ७२-७३ ॥

अपने किये हुए शुभाशुभ कर्मका फल अवश्य भोगना पड़ता है—ऐसा परमात्मा श्रीकृष्णने ब्रह्माजीको सम्बोधित करके सामवेदकी शाखामें कहा है। किये हुए सम्पूर्ण कर्मोंका भोग शेष रह जानेपर उन प्राणियोंका कर्मानुसार भारतवर्षमें अथवा अन्यत्र जन्म होता है॥ ७४-७५½ ॥

प्राणी कर्मसे ही ब्रह्मशाप, कर्मसे ही शुभाशीर्वाद, कर्मसे ही महालक्ष्मी और कर्मसे ही दरिद्रता प्राप्त करता है। हे पुरन्दर! करोड़ों जन्मोंके संचित कर्म प्राणीके पीछे उसकी छायाकी भाँति लगे रहते हैं और बिना भोगे उस प्राणीको नहीं छोड़ते॥ ७६-७७½ ॥

कालभेदे देशभेदे पात्रभेदे च कर्मणाम्॥ ७८

न्यूनताधिकभावोऽपि भवेदेव हि कर्मणा।
वस्तुदानेन वस्तूनां समं पुण्यं दिने दिने॥ ७९

दिनभेदे कोटिगुणमसंख्यं वा ततोऽधिकम्।
समे देशे च वस्तूनां दाने पुण्यं समं सुर॥ ८०

देशभेदे कोटिगुणमसंख्यं वा ततोऽधिकम्।
समे पात्रे समं पुण्यं वस्तूनां कर्तुरेव च॥ ८१

पात्रभेदे शतगुणमसंख्यं वा ततोऽधिकम्।
यथा फलन्ति सस्यानि न्यूनान्यप्यधिकानि च॥ ८२

कर्षकाणां क्षेत्रभेदे पात्रभेदे फलं तथा।
सामान्यदिवसे विप्रदानं समफलं भवेत्॥ ८३

अमायां रविसंक्रान्त्यां फलं शतगुणं भवेत्।
चातुर्मास्यां पौर्णमास्यामनन्तं फलमेव च॥ ८४

ग्रहणे शशिनः कोटिगुणं च फलमेव च।
सूर्यस्य ग्रहणे वापि ततो दशगुणं भवेत्॥ ८५

अक्षयायामक्षयं तदसंख्यं फलमुच्यते।
एवमन्यत्र पुण्याहे फलाधिक्यं भवेदिति॥ ८६

यथा दाने तथा स्नाने जपेऽन्यपुण्यकर्मसु।
एवं सर्वत्र बोद्धव्यं नराणां कर्मणां फलम्॥ ८७

यथा दण्डेन चक्रेण शरावेण भ्रमेण च।
कुम्भं निर्माति निर्माता कुम्भकारो मृदा भुवि॥ ८८

काल, देश और पात्रके भेदसे कर्मोंका न्यूनाधिक भाव हुआ ही करता है। साधारण समयमें दानमें दी गयी वस्तुओंका साधारण फल होता है। यदि किसी विशेष पुण्य दिनमें कोई वस्तु दानमें दी जाती है तो उसका फल साधारण दिनकी अपेक्षा करोड़ों गुना उससे भी अधिक या असंख्य गुना प्राप्त होता है॥ ७८-७९½ ॥

उसी प्रकार हे इन्द्रदेव! साधारण स्थानमें दानमें दी गयी वस्तुका साधारण पुण्य होता है, किंतु देशभेदके अनुसार किसी विशेष स्थानमें दानका फल करोड़ गुना या उससे भी अधिक असंख्य गुना होता है॥ ८०½ ॥

साधारण पात्रको दान करनेपर उन वस्तुओंका दान करनेवालेको उसका साधारण पुण्य मिलता है, किंतु किसी विशेष पात्रको दान देनेसे उसकी अपेक्षा सौ गुना या उससे अधिक असंख्य गुना पुण्य होता है॥ ८१½ ॥

जैसे क्षेत्रभेदसे भिन्न-भिन्न खेतोंमें बीज बोनेपर किसानोंके लिये कम या अधिक धान्य उत्पन्न होते हैं, वैसे ही पात्रभेदसे दान देनेपर दाता न्यूनाधिक फल प्राप्त करता है॥ ८२½ ॥

सामान्य दिनमें ब्राह्मणको दिये गये दानका सामान्य फल होता है, किंतु अमावास्या तथा सूर्यसंक्रान्तिको दान देनेसे सौ गुना फल होता है और चातुर्मास्यमें तथा पूर्णिमा तिथिको दिये गये दानका अनन्त फल होता है। चन्द्रग्रहणके अवसरपर दान देनेसे करोड़ गुना फल प्राप्त होता है तथा सूर्यग्रहणके समयपर दिये गये दानका फल उससे भी दस गुना अधिक होता है। अक्षय तृतीयाको दिया गया दान अक्षय होता है और उसका अनन्त फल कहा गया है। इसी प्रकार अन्य पर्वदिनोंमें भी फलोंकी अधिकता हो जाती है। जिस प्रकार दानके फलमें आधिक्य हो जाता है, उसी प्रकार स्नान, जप तथा अन्य पुण्यकार्योंमें भी होता है। मनुष्योंके लिये कर्मफलके विषयमें इसी प्रकार सर्वत्र समझना चाहिये॥ ८३—८७॥

जिस प्रकार पृथ्वीलोकमें कुम्भकार दण्ड, चक्र, शराव और भ्रमणके द्वारा मिट्टीसे कुम्भका निर्माण करता है, उसी प्रकार विधाता कर्मसूत्रसे प्राणियोंको फल प्रदान करते हैं॥ ८८॥

तथैव कर्मसूत्रेण फलं धाता ददाति च।
यस्याज्ञया सृष्टमिदं तं च नारायणं भज॥ ८९

स विधाता विधातुश्च पातुः पाता जगत्त्रये।
स्त्रष्टुः स्त्रष्टा च संहर्तुः संहर्ता कालकालकः॥ ९०

महाविपत्तौ संसारे यः स्मरेन्मधुसूदनम्।
विपत्तौ तस्य सम्पत्तिर्भवेदित्याह शङ्करः॥ ९१

इत्येवमुक्त्वा तत्त्वज्ञः समालिङ्ग्य सुरेश्वरम्।
दत्त्वा शुभाशिषं चेष्टं बोधयामास नारद॥ ९२

[अतः हे देवराज!] जिनकी आज्ञासे इस जगत्की सृष्टि हुई है, उन भगवान् नारायणकी आप आराधना कीजिये। वे भगवान् नारायण त्रिलोकीमें विधाताके भी विधाता, पालन करनेवालेके भी पालक, सृष्टि करनेवालेके भी स्त्रष्टा, संहार करनेवालेके भी संहारक और कालके भी काल हैं॥ ८९-९०॥

जो मनुष्य इस संसारमें घोर विपत्तिके समयमें भगवान् मधुसूदनका स्मरण करता है, उसके लिये उस विपत्तिमें भी सम्पत्ति उत्पन्न हो जाती है—ऐसा भगवान् शंकरने कहा है।॥ ९१॥

हे नारद! ऐसा कहकर तत्त्वज्ञानी बृहस्पतिने देवराज इन्द्रको हृदयसे लगाकर और शुभाशीर्वाद देकर उन्हें अभीष्ट बात समझा दी॥ ९२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे लक्ष्म्युत्पत्तिवर्णनं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४०॥

अथैकचत्वारिंशोऽध्यायः

ब्रह्माजीका इन्द्र तथा देवताओंको साथ लेकर श्रीहरिके पास जाना, श्रीहरिका उनसे लक्ष्मीके रुष्ट होनेके कारणोंको बताना, समुद्रमन्थन तथा उससे लक्ष्मीजीका प्रादुर्भाव

श्रीनारायण उवाच

हरिं ध्यात्वा हरिर्ब्रह्मन् जगाम ब्रह्मणः सभाम्।
बृहस्पतिं पुरस्कृत्य सर्वैः सुरगणैः सह॥ १

शीघ्रं गत्वा ब्रह्मलोकं दृष्ट्वा च कमलोद्भवम्।
प्रणेमुर्देवताः सर्वाः सहेन्द्रा गुरुणा सह॥ २

वृत्तान्तं कथयामास सुराचार्यो विधिं प्रति।
प्रहस्योवाच तच्छ्रुत्वा महेन्द्रं कमलासनः॥ ३

ब्रह्मोवाच

वत्स मद्वंशजातोऽसि प्रपौत्रो मे विचक्षणः।
बृहस्पतेश्च शिष्यस्त्वं सुराणामधिपः स्वयम्॥ ४

मातामहश्च दक्षस्ते विष्णुभक्तः प्रतापवान्।
कुलत्रयं यस्य शुद्धं कथं सोऽहङ्कृतो भवेत्॥ ५

माता पतिव्रता यस्य पिता शुद्धो जितेन्द्रियः।
मातामहो मातुलश्च कथं सोऽहङ्कृतो भवेत्॥ ६

श्रीनारायण बोले—हे ब्रह्मन्! भगवान् श्रीहरिका ध्यान करके देवराज इन्द्र बृहस्पतिको आगे करके सम्पूर्ण देवताओंके साथ ब्रह्माकी सभामें गये॥ १॥

इन्द्रसमेत सभी देवताओंने गुरु बृहस्पतिके साथ शीघ्र ही ब्रह्मलोक जाकर पद्मयोनि ब्रह्माजीका दर्शन करके उन्हें प्रणाम किया॥ २॥

तत्पश्चात् देवगुरु बृहस्पतिने ब्रह्माजीसे सारा वृत्तान्त कहा। उसे सुनकर ब्रह्माजी हँस करके देवराज इन्द्रसे कहने लगे॥ ३॥

ब्रह्माजी बोले—हे वत्स! तुम मेरे वंशमें उत्पन्न हुए हो और मेरे बुद्धिमान् प्रपौत्र हो, इसके अतिरिक्त बृहस्पतिके शिष्य हो और स्वयं देवताओंके स्वामी हो। परम प्रतापी तथा विष्णुभक्त दक्षप्रजापति तुम्हारे नाना हैं। जिसके तीनों कुल पवित्र हों, वह पुरुष अहंकारी कैसे हो सकता है? जिसकी माता पतिव्रता, पिता शुद्धस्वरूप और नाना तथा मामा जितेन्द्रिय हों,

जनः पैतृकदोषेण दोषान्मातामहस्य च।
गुरुदोषात्त्रिभिर्दोषैर्हरिदोषी भवेद् ध्रुवम्॥ ७

सर्वान्तरात्मा भगवान् सर्वदेहेष्ववस्थितः।
यस्य देहात्स प्रयाति स शवस्तत्क्षणं भवेत्॥ ८

मनोऽहमिन्द्रियेशं च ज्ञानरूपो हि शङ्करः।
विष्णुप्राणा च प्रकृतिर्बुद्धिर्भगवती सती॥ ९

निद्रादयः शक्तयश्च ताः सर्वाः प्रकृतेः कलाः।
आत्मनः प्रतिबिम्बश्च जीवो भोगशरीरभृत्॥ १०

आत्मनीशे गते देहात्सर्वे यान्ति ससम्भ्रमाः।
यथा वर्त्मनि गच्छन्तं नरदेवमिवानुगाः॥ ११

अहं शिवश्च शेषश्च विष्णुर्धर्मो महाविराट्।
यूयं यदंशा भक्ताश्च तत्पुष्पं न्यक्कृतं त्वया॥ १२

शिवेन पूजितं पादपद्मं पुष्पेण येन च।
तत्र दुर्वाससा दत्तं दैवेन न्यक्कृतं त्वया॥ १३

तत्पुष्पं मस्तके यस्य कृष्णपादाब्जप्रच्युतम्।
सर्वेषां च सुराणां च तत्पूजापुरतो भवेत्॥ १४

दैवेन वञ्चितस्त्वं हि दैवं च बलवत्तरम्।
भाग्यहीनं जनं मूढं को वा रक्षितुमीश्वरः॥ १५

सा श्रीर्गताधुना कोपात्कृष्णनिर्माल्यवर्जनात्।
अधुना गच्छ वैकुण्ठं मया च गुरुणा सह॥ १६
निषेव्य तत्र श्रीनाथं श्रियं प्राप्स्यति मद्वरात्।

वह अहंकारयुक्त कैसे हो सकता है? पिताके दोष, नानाके दोष और गुरुके दोष—इन्हीं तीन दोषोंसे ही मनुष्य भगवान् श्रीहरिका द्रोही हो जाता है॥ ४—७॥

सभीकी अन्तरात्मा भगवान् श्रीहरि सभी प्राणियोंके शरीरमें विराजमान रहते हैं। वे भगवान् जिसके शरीरसे निकल जाते हैं, वह प्राणी उसी क्षण शव हो जाता है॥ ८॥

मैं प्राणियोंके शरीरमें इन्द्रियोंका स्वामी मन बनकर रहता हूँ, शंकर ज्ञानका रूप धारण करके रहते हैं और विष्णुकी प्राणस्वरूपा भगवती श्रीराधा मूलप्रकृतिके रूपमें और साध्वी भगवती दुर्गा बुद्धिरूपमें विराजमान हैं। निद्रा आदि सभी शक्तियाँ भगवती प्रकृतिकी कलाएँ हैं। आत्माका प्रतिबिम्ब भोगशरीर धारण करके जीवरूपमें प्रतिष्ठित है। शरीरके स्वामीरूप आत्माके देहसे निकल जानेपर ये सब उसीके साथ तुरंत उसी प्रकार चले जाते हैं, जैसे मार्गमें चलते हुए राजाके पीछे-पीछे उसके अनुचर आदि चलते हैं॥ ९—११॥

मैं, शिव, शेषनाग, विष्णु, धर्म, महाविराट् तथा तुम सब लोग जिनके अंश तथा भक्त हैं; उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णके पवित्र पुष्पका तुमने अपमान कर दिया है॥ १२॥

शंकरजीने जिस पुष्पसे भगवान् श्रीहरिके चरणकमलकी पूजा की थी, वही पुष्प मुनि दुर्वासाके द्वारा तुम्हें प्रदान किया गया था; किंतु तुमने दैववश उसका तिरस्कार कर दिया॥ १३॥

भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलसे च्युत वह पुष्प जिसके मस्तकपर स्थान पाता है, उसकी पूजा सभी देवताओंमें सबसे पहले होती है॥ १४॥

तुम तो दैवके द्वारा ठग लिये गये हो। प्रारब्ध सबसे अधिक बलशाली होता है। भाग्यहीन तथा मूर्ख व्यक्तिकी रक्षा करनेमें कौन समर्थ है?॥ १५॥

भगवान् श्रीकृष्णको अर्पित किये जानेवाले पुष्पका तुम्हारे द्वारा त्याग किये जानेके कारण वे भगवती श्रीदेवी कोप करके इस समय तुम्हारे पाससे चली गयी हैं। अतः तुम इसी समय मेरे तथा गुरु बृहस्पतिके साथ वैकुण्ठ चलो। मेरे वरके प्रभावसे वहाँपर लक्ष्मीकान्त भगवान् श्रीहरिकी सेवा करके तुम लक्ष्मीको पुनः प्राप्त कर लोगे॥ १६½॥

एवमुक्त्वा च स ब्रह्मा सर्वैः सुरगणैः सह॥ १७

तत्र गत्वा परब्रह्म भगवन्तं सनातनम्।
दृष्ट्वा तेजःस्वरूपं तं प्रज्वलन्तं स्वतेजसा॥ १८

ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डशतकोटिसमप्रभम्।
शान्तमनादिमध्यान्तं लक्ष्मीकान्तमनन्तकम्॥ १९

चतुर्भुजैः पार्षदैश्च सरस्वत्या युतं प्रभुम्।
भक्त्या चतुर्भिर्वेदैश्च गङ्गया परिवेष्टितम्॥ २०

तं प्रणेमुः सुराः सर्वे मूर्ध्ना ब्रह्मपुरोगमाः।
भक्तिनम्राः साश्रुनेत्रास्तुष्टुवुः परमेश्वरम्॥ २१

वृत्तान्तं कथयामास स्वयं ब्रह्मा कृताञ्जलिः।
रुरुदुर्देवताः सर्वाः स्वाधिकाराच्च्युताश्च ताः॥ २२

स ददर्श सुरगणं विपद्ग्रस्तं भयाकुलम्।
रत्नभूषणशून्यं च वाहनादिविवर्जितम्॥ २३

शोभाशून्यं हतश्रीकं निष्प्रभं सभयं परम्।
उवाच कातरं दृष्ट्वा भयभीतिविभञ्जनः॥ २४

श्रीभगवानुवाच

मा भैर्ब्रह्मन् हे सुराश्च भयं किं वो मयि स्थिते।
दास्यामि लक्ष्मीमचलां परमैश्वर्यवर्धिनीम्॥ २५

किञ्च मद्वचनं किञ्चिच्छ्रूयतां समयोचितम्।
हितं सत्यं सारभूतं परिणामसुखावहम्॥ २६

जनाश्चासंख्यविश्वस्था मदधीनाश्च सन्ततम्।
यथा तथाहं मद्भक्तपराधीनोऽस्वतन्त्रकः॥ २७

यं यं रुष्टो हि मद्भक्तो मत्परो हि निरङ्कुशः।
तद्गृहेऽहं न तिष्ठामि पद्मया सह निश्चितम्॥ २८

[हे नारद!] ऐसा कहकर ब्रह्माजीने सभी देवताओंके साथ वैकुण्ठलोक पहुँचकर परब्रह्म सनातन भगवान् श्रीहरिको देखा। वे तेजस्वरूप प्रभु अपने ही तेजसे देदीप्यमान हो रहे थे, वे ग्रीष्म ऋतुके मध्याह्नकालीन सौ करोड़ सूर्योंकी प्रभासे युक्त थे, आदि-अन्त-मध्यसे रहित अनन्तरूप लक्ष्मीकान्त भगवान् श्रीहरि शान्तभावसे विराजमान थे, वे प्रभु चार भुजाओंवाले पार्षदों तथा भगवती सरस्वतीके साथ सुशोभित हो रहे थे और चारों वेदोंसहित देवी गंगा भक्तिभावसे युक्त होकर उनके पास विराजमान थीं। उन प्रभुको देखकर ब्रह्माके अनुगामी सभी देवताओंने सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम किया। भक्ति तथा विनयसे युक्त होकर देवताओंने नेत्रोंमें आँसू भरकर उन परमेश्वरकी स्तुति की॥ १७—२१॥

तत्पश्चात् स्वयं ब्रह्माजीने हाथ जोड़कर भगवान् श्रीहरिसे सारा वृत्तान्त कहा। अपने अधिकारसे वंचित सभी देवता उस समय रो रहे थे॥ २२॥

उन भगवान् श्रीहरिने देखा कि सभी देवगण विपत्तिसे ग्रस्त, भयसे व्याकुल, रत्न तथा आभूषणसे विहीन, वाहन आदिसे रहित, शोभाशून्य, श्रीहीन, निस्तेज तथा अत्यन्त भयग्रस्त हैं। उन्हें इस प्रकार कष्टसे व्याकुल देखकर संसारका भय दूर करनेवाले प्रभु कहने लगे॥ २३-२४॥

श्रीभगवान् बोले—हे ब्रह्मन्! हे देवगण! आप लोग मत डरिये। मेरे रहते आपलोगोंको किस बातका भय है। मैं आपलोगोंको परम ऐश्वर्यकी वृद्धि करनेवाली स्थिर लक्ष्मी प्रदान करूँगा। किंतु मेरी कुछ समयोचित बात सुनिये; जो हितकर, सत्य, सारभूत तथा परिणाममें सुखकारी है॥ २५-२६॥

जैसे अनन्त ब्रह्माण्डोंमें रहनेवाले सभी प्राणी निरन्तर मेरे अधीन रहते हैं, वैसे ही मैं भी अपने भक्तोंके अधीन रहता हूँ, स्वतन्त्र नहीं हूँ। मेरे प्रति समर्पित मेरा निरंकुश भक्त जिस-जिसके ऊपर रुष्ट होता है, उसके घर मैं लक्ष्मीके साथ कभी नहीं ठहरता—यह निश्चित है॥ २७-२८॥

दुर्वासाः शङ्करांशश्च वैष्णवो मत्परायणः।
तच्छापादागतोऽहं च सलक्ष्मीको हि वो गृहात्॥ २९

भगवान् शंकरके अंशसे उत्पन्न ऋषि दुर्वासा महान् वैष्णव हैं तथा मेरे प्रति अनन्य भक्ति रखते हैं। उन्होंने तुम्हें शाप दे दिया है, अतः मैं आपलोगोंके घरसे लक्ष्मीसहित चला आया हूँ॥ २९॥

यत्र शङ्खध्वनिर्नास्ति तुलसी न शिवार्चनम्।
न भोजनं च विप्राणां न पद्मा तत्र तिष्ठति॥ ३०

जहाँ शंखध्वनि नहीं होती, तुलसी नहीं रहतीं, शिवकी पूजा नहीं होती तथा ब्राह्मणोंको भोजन नहीं कराया जाता, वहाँ लक्ष्मी नहीं रहतीं॥ ३०॥

मद्भक्तानां च मे निन्दा यत्र ब्रह्मन् भवेत्सुराः।
महारुष्टा महालक्ष्मीस्ततो याति पराभवम्॥ ३१

हे ब्रह्मन्! हे देवगण! जहाँ मेरी तथा मेरे भक्तोंकी निन्दा होती है, वहाँसे महालक्ष्मी अत्यन्त रुष्ट होकर चली जाती हैं और उसका पराभव हो जाता है॥ ३१॥

मद्भक्तिहीनो यो मूढो भुङ्क्ते यो हरिवासरे।
मम जन्मदिने वापि याति श्रीस्तद्गृहादपि॥ ३२

जो मूर्ख मनुष्य मेरी भक्तिसे रहित है तथा एकादशी और मेरे जन्मके दिन (जन्माष्टमी आदि)-को भोजन करता है, उसके भी घरसे लक्ष्मी चली जाती हैं॥ ३२॥

मन्नामविक्रयी यश्च विक्रीणाति स्वकन्यकाम्।
यत्रातिथिर्न भुङ्क्ते च मत्प्रिया याति तद्गृहात्॥ ३३

जो व्यक्ति मेरे नामका तथा अपनी कन्याका विक्रय करता है और जिसके यहाँ अतिथि भोजन नहीं करता, उसके घरसे मेरी प्रिया लक्ष्मी चली जाती हैं॥ ३३॥

यो विप्रः पुंश्चलीपुत्रो महापापी च तत्पतिः।
पापिनो यो गृहं याति शूद्रश्राद्धान्नभोजकः॥ ३४

महारुष्टा ततो याति मन्दिरात्कमलालया।

जो ब्राह्मण वेश्याका पुत्र है अथवा उसका पति है, वह महापापी है। जो विप्र ऐसे पापीके घर जाता है तथा शूद्रका श्राद्धान्न खाता है, उसके घरसे कमलासना महालक्ष्मी अत्यन्त रुष्ट होकर चली जाती हैं॥ ३४$\frac{1}{2}$॥

शूद्राणां शवदाही च भाग्यहीनो द्विजाधमः॥ ३५

यति रुष्टा तद्गृहाच्च देवाः कमलवासिनी।

हे देवगण! जो द्विजाधम शूद्रोंका शव जलाता है, वह भाग्यहीन हो जाता है। उससे रुष्ट होकर कमलवासिनी लक्ष्मी उसके घरसे चली जाती हैं॥ ३५$\frac{1}{2}$॥

शूद्राणां सूपकारी यो ब्राह्मणो वृषवाहकः॥ ३६

तत्तोयपानभीता च कमला याति तद्गृहात्।

जो ब्राह्मण शूद्रोंके यहाँ भोजन पकानेका काम करता है तथा जो बैल हाँकता है, उसका जल पीनेसे लक्ष्मी डरती हैं और उसके घरसे चली जाती हैं॥ ३६$\frac{1}{2}$॥

अशुद्धहृदयः क्रूरो हिंसको निन्दको द्विजः॥ ३७
ब्राह्मणः शूद्रयाजी च याति देवी च तद्गृहात्।
अवीरान्नं च यो भुङ्क्ते तस्माद्याति जगत्प्रसूः॥ ३८

जो ब्राह्मण अशुद्ध हृदयवाला, क्रूर, हिंसक, दूसरोंकी निन्दा करनेवाला तथा शूद्रोंका यज्ञ करानेवाला होता है, उसके घरसे भगवती लक्ष्मी चली जाती हैं। जो ब्राह्मण पति-पुत्रहीन स्त्रीका अन्न खाता है, उसके घरसे भी जगज्जननी लक्ष्मी चली जाती हैं॥ ३७-३८॥

तृणं छिनत्ति नखैरस्तैर्वा यो विलिखेन्महीम्।
निराशो ब्राह्मणो यत्र तद्गृहाद्याति मत्प्रिया॥ ३९

सूर्योदये द्विजो भुङ्क्ते दिवास्वापी च ब्राह्मणः।
दिवा मैथुनकारी च यस्तस्माद्याति मत्प्रिया॥ ४०

आचारहीनो विप्रो यो यश्च शूद्रप्रतिग्रही।
अदीक्षितो हि यो मूढस्तस्माद्वै याति मत्प्रिया॥ ४१

स्निग्धपादश्च नग्नो हि यः शेते ज्ञानदुर्बलः।
शश्वद्वदति वाचालो याति सा तद्गृहात्सती॥ ४२

शिरःस्नातस्तु तैलेन योऽन्याङ्गं समुपस्पृशेत्।
स्वाङ्गं च वादयेद्वाद्यं रुष्टा सा याति तद्गृहात्॥ ४३

व्रतोपवासहीनो यः सन्ध्याहीनोऽशुचिर्द्विजः।
विष्णुभक्तिविहीनस्तु तस्माद्याति च मत्प्रिया॥ ४४

ब्राह्मणं निन्दयेद्यो हि तं च यो द्वेष्टि सन्ततम्।
जीवहिंस्रो दयाहीनो याति सर्वप्रसूस्ततः॥ ४५

यत्र यत्र हरेरर्चा हरेरुत्कीर्तनं तथा।
तत्र तिष्ठति सा देवी सर्वमङ्गलमङ्गला॥ ४६

यत्र प्रशंसा कृष्णस्य तद्भक्तस्य पितामह।
सा च कृष्णप्रिया देवी तत्र तिष्ठति सन्ततम्॥ ४७

यत्र शङ्खध्वनिः शङ्खः शिला च तुलसीदलम्।
तत्सेवा वन्दनं ध्यानं तत्र सा परितिष्ठति॥ ४८

जो नखोंसे निष्प्रयोजन तृण तोड़ता है अथवा नखोंसे भूमिको कुरेदता रहता है तथा जिसके यहाँसे ब्राह्मण निराश होकर चला जाता है, उसके घरसे मेरी प्रिया लक्ष्मी चली जाती हैं॥ ३९॥

जो ब्राह्मण सूर्योदयके समय भोजन करता है, दिनमें शयन करता है तथा दिनमें मैथुन करता है, उसके यहाँसे मेरी प्रिया लक्ष्मी चली जाती हैं॥ ४०॥

जो ब्राह्मण आचारहीन, शूद्रोंसे दान ग्रहण करनेवाला, दीक्षासे विहीन तथा मूर्ख है; उसके भी घरसे मेरी प्रिया लक्ष्मी चली जाती हैं॥ ४१॥

जो अल्पज्ञ भींगे पैर अथवा नग्न होकर सोता है तथा वाचालकी भाँति निरन्तर बोलता रहता है, उसके घरसे वे साध्वी लक्ष्मी चली जाती हैं॥ ४२॥

जो व्यक्ति अपने सिरपर तेल लगाकर उसी हाथसे दूसरेके अंगका स्पर्श करता है और अपने किसी अंगको बाजेकी तरह बजाता है, उससे रुष्ट होकर वे लक्ष्मी उसके घरसे चली जाती हैं॥ ४३॥

जो ब्राह्मण व्रत-उपवास नहीं करता, सन्ध्या-वन्दन नहीं करता, सदा अपवित्र रहता है तथा भगवान् विष्णुकी भक्तिसे रहित है, उसके यहाँसे मेरी प्रिया लक्ष्मी चली जाती हैं॥ ४४॥

जो व्यक्ति ब्राह्मणकी निन्दा करता है और उससे सदा द्वेषभाव रखता है, जीवोंकी हिंसा करता है तथा प्राणियोंके प्रति दयाभाव नहीं रखता है; सबकी जननी लक्ष्मी उस व्यक्तिसे दूर चली जाती हैं॥ ४५॥

जिस-जिस जगह भगवान् विष्णुकी पूजा होती है तथा उनका गुणगान होता है, वहाँ सम्पूर्ण मंगलोंको भी मंगल प्रदान करनेवाली वे भगवती लक्ष्मी निवास करती हैं॥ ४६॥

हे पितामह! जहाँ भगवान् श्रीकृष्ण तथा उनके भक्तोंका यशोगान किया जाता है, वहाँ उन श्रीकृष्णकी प्रिया भगवती लक्ष्मी निरन्तर निवास करती हैं॥ ४७॥

जहाँ शंखध्वनि होती है और शंख, शालग्रामशिला तथा तुलसीदल—ये रहते हैं एवं उनकी सेवा, वन्दना तथा ध्यान किया जाता है; वहाँ वे लक्ष्मी सर्वदा निवास करती हैं॥ ४८॥

शिवलिङ्गार्चनं यत्र तस्य चोत्कीर्तनं शुभम्।
दुर्गार्चनं तद्गुणाश्च तत्र पद्मनिवासिनी॥ ४९

जहाँ शिवलिंगकी पूजा तथा उनके गुणोंका शुभ कीर्तन और भगवती दुर्गाका पूजन तथा उनका गुणगान किया जाता है, वहाँ पद्मनिवासिनी देवी लक्ष्मी वास करती हैं॥ ४९॥

विप्राणां सेवनं यत्र तेषां च भोजनं शुभम्।
अर्चनं सर्वदेवानां तत्र पद्ममुखी सती॥ ५०

जहाँ ब्राह्मणोंकी सेवा होती है, उन्हें उत्तम भोजन कराया जाता है और सभी देवताओंकी पूजा होती है, वहाँ कमलके समान मुखवाली साध्वी लक्ष्मी विराजमान रहती हैं॥ ५०॥

इत्युक्त्वा च सुरान्सर्वान् रमामाह रमापतिः।
क्षीरोदसागरे जन्म कलयाकलयेति च॥ ५१

[हे नारद!] समस्त देवताओंसे ऐसा कहकर लक्ष्मीकान्त भगवान् श्रीहरिने लक्ष्मीजीसे कहा—क्षीरसागरके यहाँ तुम अपनी एक कलासे जन्म ग्रहण करो॥ ५१॥

इत्युक्त्वा तां जगन्नाथो ब्रह्माणं पुनराह च।
मथित्वा सागरं लक्ष्मीं देवेभ्यो देहि पद्मज॥ ५२

लक्ष्मीजीसे ऐसा कहकर जगत्प्रभु श्रीहरिने ब्रह्माजीसे पुनः कहा—हे कमलोद्भव! आप समुद्रमन्थन करके उससे प्रकट होनेवाली लक्ष्मी देवताओंको सौंप दीजिये॥ ५२॥

इत्युक्त्वा कमलाकान्तो जगामान्तःपुरं मुने।
देवाश्चिरेण कालेन ययुः क्षीरोदसागरम्॥ ५३

हे मुने! ऐसा कहकर लक्ष्मीपति भगवान् श्रीहरि अन्तःपुरमें चले गये और देवताओंने भी कुछ कालके अनन्तर क्षीरसागरकी ओर प्रस्थान किया॥ ५३॥

मन्थानं मन्दरं कृत्वा कूर्मं कृत्वा च भाजनम्।
कृत्वा शेषं मन्थपाशं ममन्थुरसुराः सुराः॥ ५४

धन्वन्तरिं च पीयूषमुच्चैःश्रवसमीप्सितम्।
नानारत्नं हस्तिरत्नं प्रापुर्लक्ष्मीं सुदर्शनम्॥ ५५

वनमालां ददौ सा च क्षीरोदशायिने मुने।
सर्वेश्वराय रम्याय विष्णावे वैष्णवी सती॥ ५६

समस्त देवताओं तथा राक्षसोंने मन्दराचल-पर्वतको मथानी, कच्छपको आधार और शेषनागको मथानीकी रस्सी बनाकर समुद्रमन्थन किया। उसके परिणामस्वरूप उन्हें धन्वन्तरि, अमृत, इच्छित उच्चैःश्रवा नामक अश्व, अनेकविध रत्न, हाथियोंमें रत्नस्वरूप ऐरावत, लक्ष्मी, सुदर्शन चक्र और वनमाला आदि प्राप्त हुए। हे मुने! तब विष्णुपरायणा साध्वी लक्ष्मीने वह वनमाला क्षीरसागरमें शयन करनेवाले मनोहर सर्वेश्वर श्रीविष्णुको समर्पित कर दी॥ ५४—५६॥

देवैः स्तुता पूजिता च ब्रह्मणा शङ्करेण च।
ददौ दृष्टिं सुरगृहे ब्रह्मशापविमोचनात्॥ ५७

प्रापुर्देवाः स्वविषयं दैत्यग्रस्तं भयङ्करम्।
महालक्ष्मीप्रसादेन वरदानेन नारद॥ ५८

तत्पश्चात् ब्रह्मा, शिव तथा देवताओंके द्वारा पूजा तथा स्तुति किये जानेपर भगवती लक्ष्मीने देवताओंके भवनपर अपनी कृपादृष्टि डाली, फलस्वरूप वे देवगण मुनि दुर्वासाके शापसे मुक्त हो गये। हे नारद! इस प्रकार महालक्ष्मीके अनुग्रह तथा वरदानसे उन देवताओंने दैत्योंके द्वारा अधिकृत किये गये तथा भयंकर बना दिये गये अपने राज्यको पुनः प्राप्त कर लिया॥ ५७-५८॥

इत्येवं कथितं सर्वं लक्ष्म्युपाख्यानमुत्तमम्।
सुखदं सारभूतं च किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ ५९

इस प्रकार मैंने लक्ष्मीका अत्यन्त उत्तम, सुखप्रद तथा सारभूत सम्पूर्ण उपाख्यान आपसे कह दिया, अब आप पुनः क्या सुनना चाहते हैं?॥ ५९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे श्रीलक्ष्म्युपाख्यानवर्णनं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४१॥



अथ द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

इन्द्रद्वारा भगवती लक्ष्मीका षोडशोपचार-पूजन एवं स्तवन

नारद उवाच

हरेरुत्कीर्तनं भद्रं श्रुतं तज्ज्ञानमुत्तमम्।
ईप्सितं लक्ष्म्युपाख्यानं ध्यानं स्तोत्रं वद प्रभो॥ १

श्रीनारायण उवाच

स्नात्वा तीर्थे पुरा शक्रो धृत्वा धौते च वाससी।
घटं संस्थाप्य क्षीरोदे षड् देवान् पर्यपूजयत्॥ २

गणेशं च दिनेशं च वह्निं विष्णुं शिवं शिवाम्।
एतान् भक्त्या समभ्यर्च्य पुष्पगन्धादिभिस्तदा॥ ३

आवाह्य च महालक्ष्मीं परमैश्वर्यरूपिणीम्।
पूजाञ्चकार देवेशो ब्रह्मणा च पुरोधसा॥ ४

पुरःस्थितेषु मुनिषु ब्राह्मणेषु गुरौ हरौ।
देवादिषु सुदेशे च ज्ञानानन्दे शिवे मुने॥ ५

पारिजातस्य पुष्पं च गृहीत्वा चन्दनोक्षितम्।
ध्यात्वा देवीं महालक्ष्मीं पूजयामास नारद॥ ६

ध्यानं च सामवेदोक्तं यद्दत्तं ब्रह्मणे पुरा।
हरिणा तेन ध्यानेन तन्निबोध वदामि ते॥ ७

सहस्रदलपद्मस्थकर्णिकावासिनीं पराम्।
शरत्पार्वणकोटीन्दुप्रभामुष्टिकरां पराम्॥ ८

नारदजी बोले—हे प्रभो! मैंने भगवान् श्रीहरिका कल्याणप्रद गुणानुवाद, उनका उत्तम ज्ञान तथा भगवती लक्ष्मीका अभीष्ट उपाख्यान सुना। अब उन देवीके ध्यान तथा स्तोत्रके विषयमें बताइये॥ १॥

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] प्राचीन कालकी बात है। इन्द्रने क्षीरसमुद्रके तटपर तीर्थस्नान करके दो स्वच्छ वस्त्र धारण करनेके बाद कलशकी स्थापना करके श्रीगणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव तथा पार्वती—इन छः देवताओंकी विधिवत् पूजा की। गन्ध, पुष्प आदिसे भक्तिपूर्वक इन देवोंकी पूजा करके देवेश्वर इन्द्रने ब्रह्माजी तथा अपने पुरोहित गुरु बृहस्पतिके द्वारा निर्दिष्ट विधानके अनुसार परम ऐश्वर्यमयी भगवती महालक्ष्मीका आवाहन करके उनकी पूजा की। हे मुने! उस समय उस पावन स्थलपर अनेक मुनि, ब्राह्मणसमुदाय, गुरु बृहस्पति, श्रीहरि, देवगण तथा ज्ञानानन्द भगवान् शिव आदि विराजमान थे॥ २—५॥

हे नारद! इन्द्रने पारिजातका चन्दन-चर्चित पुष्प लेकर पूर्वकालमें भगवान् श्रीहरिने ब्रह्माजीको सामवेदमें वर्णित जो ध्यान बतलाया था, उसी ध्यानके द्वारा भगवती महालक्ष्मीका ध्यान करके उनका पूजन किया, मैं वही ध्यान तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो॥ ६-७॥

'ये पराम्बा महालक्ष्मी सहस्रदलवाले कमलपर स्थित कर्णिकाके ऊपर विराजमान हैं, वे श्रेष्ठ भगवती शरत्पूर्णिमाके करोड़ों चन्द्रमाओंकी कान्तिका हरण करनेवाली हैं, अपने ही तेजसे देदीप्यमान हैं, इन मनोहर देवीका दर्शन अत्यन्त सुखप्रद है, ये

स्वतेजसा प्रज्वलन्तीं सुखदृश्यां मनोहराम्।
प्रतप्तकाञ्चननिभशोभां मूर्तिमतीं सतीम्॥ ९

रत्नभूषणभूषाढ्यां शोभितां पीतवाससा।
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम्॥ १०

सर्वसम्पत्प्रदात्रीं च महालक्ष्मीं भजे शुभाम्।
ध्यानेनानेन तां ध्यात्वा नानागुणसमन्विताम्॥ ११

सम्पूज्य ब्रह्मवाक्येन चोपचाराणि षोडश।
ददौ भक्त्या विधानेन प्रत्येकं मन्त्रपूर्वकम्॥ १२

प्रशस्तानि प्रकृष्टानि वराणि विविधानि च।
अमूल्यरत्नसारं च निर्मितं विश्वकर्मणा॥ १३

आसनं च विचित्रं च महालक्ष्मि प्रगृह्यताम्।
शुद्धं गङ्गोदकमिदं सर्ववन्दितमीप्सितम्॥ १४

पापेध्मवह्निरूपं च गृह्यतां कमलालये।
पुष्पचन्दनदूर्वादिसंयुतं जाह्नवीजलम्॥ १५

शङ्खगर्भस्थितं स्वर्घ्यं गृह्यतां पद्मवासिनि।
सुगन्धिपुष्पतैलं च सुगन्धामलकीफलम्॥ १६

देहसौन्दर्यबीजं च गृह्यतां श्रीहरेः प्रिये।
कार्पासजं च कृमिजं वसनं देवि गृह्यताम्॥ १७

रत्नस्वर्णविकारं च देहभूषाविवर्धनम्।
शोभायै श्रीकरं रत्नं भूषणं देवि गृह्यताम्॥ १८

सर्वसौन्दर्यबीजं च सद्यः शोभाकरं परम्।
वृक्षनिर्यासरूपं च गन्धद्रव्यादिसंयुतम्॥ १९

श्रीकृष्णकान्ते धूपं च पवित्रं प्रतिगृह्यताम्।
सुगन्धियुक्तं सुखदं चन्दनं देवि गृह्यताम्॥ २०

साध्वी महालक्ष्मी मूर्तिमान् होकर तपाये हुए सुवर्णके समान शोभित हो रही हैं, रत्नमय आभूषणोंसे अलंकृत तथा पीताम्बरसे सुशोभित हो रही हैं, इनके प्रसन्न मुखमण्डलपर मन्द-मन्द मुसकान विराज रही है, ये सर्वदा स्थिर रहनेवाले यौवनसे सम्पन्न हैं—ऐसी कल्याणमयी तथा सर्वसम्पत्तिदायिनी महालक्ष्मीकी मैं उपासना करता हूँ'॥ ८—१०½ ॥

हे नारद! इस प्रकार ध्यान करके इन्द्रने ब्रह्माजीके कथनानुसार सोलह पूजनोपचारोंसे अनेक गुणोंवाली उन भगवती महालक्ष्मीकी पूजा की, उन्होंने भक्तिके साथ मन्त्रपूर्वक विधानके अनुसार प्रत्येक उपचार अर्पित किया। इन्द्रने विविध प्रकारके प्रशस्त, उत्कृष्ट तथा श्रेष्ठ उपचार इस प्रकार समर्पित किये॥ ११-१२½ ॥

हे महालक्ष्मि! विश्वकर्माके द्वारा निर्मित अमूल्य रत्नसारस्वरूप इस विचित्र आसनको ग्रहण कीजिये॥ १३½ ॥

हे कमलालये! पापरूपी ईंधनको जलानेके लिये वह्निस्वरूप, सबके द्वारा वन्दित तथा अभिलषित और परम पवित्र इस गंगाजलको [पाद्यके रूपमें] स्वीकार कीजिये॥ १४½ ॥

हे पद्मवासिनि! पुष्प, चन्दन, दूर्वा आदिसे युक्त इस शंखमें स्थित गंगाजलको सुन्दर अर्घ्यके रूपमें ग्रहण कीजिये॥ १५½ ॥

हे श्रीहरिप्रिये! सुगन्धित पुष्पोंसे सुवासित तैल तथा सुगन्धपूर्ण आमलकीचूर्ण—इन देहसौन्दर्यके बीजरूप स्नानीय उपचारोंको आप ग्रहण कीजिये। हे देवि! कपास तथा रेशमसे निर्मित इस वस्त्रको आप स्वीकार कीजिये॥ १६-१७॥

हे देवि! स्वर्ण तथा रत्नोंसे निर्मित, देहसौन्दर्यकी वृद्धि करनेवाले, ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले, सम्पूर्ण सुन्दरताके कारणस्वरूप तथा शीघ्र ही शोभा प्रदान करनेवाले इस श्रेष्ठ रत्नमय आभूषणको अपनी शोभाके लिये आप ग्रहण कीजिये। हे श्रीकृष्णकान्ते! वृक्षसे रसके रूपमें निकले हुए तथा सुगन्धित द्रव्योंसे युक्त यह पवित्र धूप आप ग्रहण करें। हे देवि! सुगन्धसे परिपूर्ण तथा सुखप्रद इस चन्दनको आप स्वीकार कीजिये॥ १८—२०॥

जगच्चक्षुःस्वरूपं च पवित्रं तिमिरापहम्।
प्रदीपं सुखरूपं च गृह्यतां च सुरेश्वरि॥ २१

नानोपहाररूपं च नानारससमन्वितम्।
अतिस्वादुकरं चैव नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम्॥ २२

अन्नं ब्रह्मस्वरूपं च प्राणरक्षणकारणम्।
तुष्टिदं पुष्टिदं चैव देव्यन्नं प्रतिगृह्यताम्॥ २३

शाल्यन्नजं सुपक्वं च शर्करागव्यसंयुतम्।
स्वादुयुक्तं महालक्ष्मि परमान्नं प्रगृह्यताम्॥ २४

शर्करागव्यपक्वं च सुस्वादु सुमनोहरम्।
स्वस्तिकं नाम नैवेद्यं गृहाण परमेश्वरि॥ २५

नानाविधानि रम्याणि पक्वान्नानि फलानि च।
सुरभिस्तनसंत्यक्तं सुस्वादु सुमनोहरम्॥ २६

मर्त्यामृतं सुगव्यं च गृह्यतामच्युतप्रिये।
सुस्वादु रससंयुक्तमिक्षुवृक्षसमुद्भवम् ॥ २७

अग्निपक्वमतिस्वादु गुडं च प्रतिगृह्यताम्।
यवगोधूमसस्यानां चूर्णरेणुसमुद्भवम्॥ २८

सुपक्वं गुडगव्याक्तं मिष्टान्नं देवि गृह्यताम्।
सस्यचूर्णोद्भवं पक्वं स्वस्तिकादिसमन्वितम्॥ २९

मया निवेदितं भक्त्या नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम्।
शीतवायुप्रदं चैव दाहे च सुखदं परम्॥ ३०

कमले गृह्यतां चेदं व्यजनं श्वेतचामरम्।
ताम्बूलं च वरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम्॥ ३१

जिह्वाजाड्यच्छेदकरं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम्।
सुवासितं सुशीतं च पिपासानाशकारणम्॥ ३२
जगज्जीवनरूपं च जीवनं देवि गृह्यताम्।

हे सुरेश्वरि! जगत्‌के लिये चक्षुस्वरूप, अन्धकार दूर करनेवाले, सुखरूप तथा परम पवित्र इस दीपकको आप स्वीकार कीजिये॥ २१॥

नाना प्रकारके उपहारस्वरूप अनेकविध रसोंसे युक्त तथा अत्यन्त स्वादिष्ट इस नैवेद्यको आप स्वीकार कीजिये। अन्न ब्रह्मस्वरूप होता है, यह प्राणरक्षाका परम कारण है, तुष्टि तथा पुष्टि प्रदान करता है, अतः हे देवि! आप इस अन्नको ग्रहण कीजिये॥ २२-२३॥

हे महालक्ष्मि! शर्करा और गोघृत मिलाकर अगहनी चावलसे तैयार किये गये इस स्वादिष्ट पक्वान्नको परमान्नके रूपमें आप स्वीकार करें। हे परमेश्वरि! शर्करा और घृतमें पकाया गया यह स्वादिष्ट तथा अत्यन्त मनोहर स्वस्तिक नामक नैवेद्य आप ग्रहण करें॥ २४-२५॥

हे अच्युतप्रिये! ये अनेक प्रकारके सुन्दर पक्वान्न तथा फल और सुरभीधेनुके स्तनसे दुहे गये मृत्युलोकके लिये अमृतस्वरूप, अत्यन्त मनोहर तथा सुस्वादु दुग्धको आप स्वीकार कीजिये। ईखसे निकाले गये अत्यन्त स्वादिष्ट रसको अग्निपर पकाकर निर्मित किये गये इस परम स्वादिष्ट गुड़को आप स्वीकार कीजिये। हे देवि! जौ, गेहूँ आदिके चूर्णमें गुड़ तथा गायका घृत मिलाकर भलीभाँति पकाये गये इस मिष्टान्नको आप ग्रहण कीजिये। मैंने धान्यके चूर्णसे बनाये गये तथा स्वस्तिक आदिसे युक्त यह पका हुआ नैवेद्य आपको भक्तिपूर्वक अर्पण किया है, इसे स्वीकार करें॥ २६—२९½॥

हे कमले! शीतल वायु प्रदान करनेवाला और उष्णकालमें परम सुखदायक यह पंखा तथा स्वच्छ चँवर ग्रहण कीजिये॥ ३०½॥

कर्पूर आदि सुगन्धित पदार्थोंसे सुवासित तथा जिह्वाकी जड़ताको दूर करनेवाले इस उत्तम ताम्बूलको आप स्वीकार करें॥ ३१½॥

हे देवि! प्यास बुझानेवाले, अत्यन्त शीतल, सुवासित तथा जगत्‌के लिये जीवनस्वरूप इस जलको स्वीकार कीजिये॥ ३२½॥

देहसौन्दर्यबीजं च सदा शोभाविवर्धनम्॥ ३३

कार्पासजं च कृमिजं वसनं देवि गृह्यताम्।
रक्तस्वर्णविकारं च देहभूषादिवर्धनम्॥ ३४

शोभाधारं श्रीकरं च भूषणं देवि गृह्यताम्।
नानाऋतुषु निर्माणं बहुशोभाश्रयं परम्॥ ३५

सुरभूपप्रियं शुद्धं माल्यं देवि प्रगृह्यताम्।
शुद्धिदं शुद्धरूपं च सर्वमङ्गलमङ्गलम्॥ ३६

गन्धवस्तूद्भवं रम्यं गन्धं देवि प्रगृह्यताम्।
पुण्यतीर्थोदकं चैव विशुद्धं शुद्धिदं सदा॥ ३७

गृह्यतां कृष्णकान्ते त्वं रम्यमाचमनीयकम्।
रत्नसारादिनिर्माणं पुष्पचन्दनचर्चितम्॥ ३८

रत्नभूषणभूषाढ्यं सुतल्पं देवि गृह्यताम्।
यद्यद् द्रव्यमपूर्वं च पृथिव्यामपि दुर्लभम्॥ ३९

देवभूषार्हभोग्यं च तद् द्रव्यं देवि गृह्यताम्।
द्रव्याण्येतानि दत्त्वा च मूलेन देवपुङ्गवः॥ ४०

मूलं जजाप भक्त्या च दशलक्षं विधानतः।
जपेन दशलक्षेण मन्त्रसिद्धिर्बभूव ह॥ ४१

मन्त्रश्च ब्रह्मणा दत्तः कल्पवृक्षश्च सर्वतः।
लक्ष्मीर्माया कामवाणी ङेऽन्ता कमलवासिनी॥ ४२

वैदिको मन्त्रराजोऽयं प्रसिद्धः स्वाहयान्वितः।
कुबेरोऽनेन मन्त्रेण परमैश्वर्यमाप्तवान्॥ ४३

हे देवि! देहसौन्दर्यके मूल कारण तथा सदा शोभा बढ़ानेवाले इस सूती तथा रेशमी वस्त्रको आप ग्रहण करें॥ ३३½ ॥

हे देवि! रक्तस्वर्णनिर्मित, शरीरकी शोभा आदिकी वृद्धि करनेवाला, सौन्दर्यका आधार तथा कान्तिवर्धक यह आभूषण ग्रहण कीजिये॥ ३४½ ॥

हे देवि! विविध ऋतुओंके पुष्पोंसे गूँथी गयी, अत्यधिक शोभाके आश्रयस्वरूप तथा देवराज इन्द्रके लिये भी परम प्रिय इस श्रेष्ठ तथा पवित्र मालाको आप स्वीकार करें॥ ३५½ ॥

हे देवि! सुगन्धित द्रव्योंसे सम्पन्न, सभी मंगलोंका भी मंगल करनेवाले, शुद्धि प्रदान करनेवाले तथा शुद्धस्वरूप इस दिव्य चन्दनको आप ग्रहण कीजिये॥ ३६½ ॥

हे कृष्णकान्ते! यह पवित्र तीर्थजल स्वयं शुद्ध है तथा दूसरोंको भी सदा शुद्धि प्रदान करनेवाला है, इस दिव्य जलको आप आचमनके रूपमें ग्रहण कीजिये॥ ३७½ ॥

हे देवि! अमूल्य रत्नोंसे निर्मित, पुष्प तथा चन्दनसे चर्चित और वस्त्र-आभूषण तथा शृंगार-सामग्रीसे सम्पन्न इस दिव्य शय्याको आप स्वीकार करें। हे देवि! इस पृथ्वीपर जो भी अपूर्व तथा दुर्लभ द्रव्य शरीरकी शोभावृद्धिके योग्य हैं, उन समस्त द्रव्योंको आपको अर्पण कर रहा हूँ, आप ग्रहण कीजिये॥ ३८-३९½ ॥

[हे मुने!] मूलमन्त्र पढ़ते हुए ये उपचार भगवतीको समर्पित करके देवराज इन्द्रने विधानके अनुसार भक्तिपूर्वक उनके मूल मन्त्रका दस लाख जप किया। उस दस लाख जपसे इन्द्रको मन्त्रकी सिद्धि हो गयी॥ ४०-४१ ॥

सभीके लिये कल्पवृक्षके समान यह मूलमन्त्र उन्हें ब्रह्माजीके द्वारा प्रदान किया गया था। पूर्वमें लक्ष्मीबीज (श्रीं), मायाबीज (ह्रीं), कामबीज (क्लीं) और वाणीबीज (ऐं)-का प्रयोग करके कमलवासिनी इस शब्दके अन्तमें 'ङे' (चतुर्थी) विभक्ति लगाकर पुनः 'स्वाहा' शब्द जोड़ देनेपर '**ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं कमलवासिन्यै स्वाहा**'—यही मन्त्र वैदिक मन्त्रराजके

राजराजेश्वरो दक्षः सावर्णिर्मनुरेव च।
मङ्गलोऽनेन मन्त्रेण सप्तद्वीपेऽवनीपतिः॥ ४४

प्रियव्रतोत्तानपादौ केदारो नृप एव च।
एते सिद्धाश्च राजेन्द्रा मन्त्रेणानेन नारद॥ ४५

सिद्धे मन्त्रे महालक्ष्मीः शक्राय दर्शनं ददौ।
रत्नेन्द्रसारनिर्माणविमानस्था वरप्रदा॥ ४६

सप्तद्वीपवतीं पृथ्वीं छादयन्ती त्विषा च सा।
श्वेतचम्पकवर्णाभा रत्नभूषणभूषिता॥ ४७

ईषद्धास्यप्रसन्नास्या भक्तानुग्रहकातरा।
बिभ्रती रत्नमालां च कोटिचन्द्रसमप्रभाम्॥ ४८

दृष्ट्वा जगत्प्रसूं शान्तां तुष्टावैतां पुरन्दरः।
पुलकाञ्चितसर्वाङ्गः साश्रुनेत्रः कृताञ्जलिः॥ ४९

ब्रह्मणा च प्रदत्तेन स्तोत्रराजेन संयुतः।
सर्वाभीष्टप्रदेनैव वैदिकेनैव तत्र च॥ ५०

पुरन्दर उवाच

नमः कमलवासिन्यै नारायण्यै नमो नमः।
कृष्णप्रियायै सततं महालक्ष्म्यै नमो नमः॥ ५१

पद्मपत्रेक्षणायै च पद्मास्यायै नमो नमः।
पद्मासनायै पद्मिन्यै वैष्णव्यै च नमो नमः॥ ५२

सर्वसम्पत्स्वरूपिण्यै सर्वाराध्यै नमो नमः।
हरिभक्तिप्रदात्र्यै च हर्षदात्र्यै नमो नमः॥ ५३

कृष्णवक्षःस्थितायै च कृष्णेशायै नमो नमः।
चन्द्रशोभास्वरूपायै रत्नपद्मे च शोभने॥ ५४

सम्पत्त्यधिष्ठातृदेव्यै महादेव्यै नमो नमः।
नमो वृद्धिस्वरूपायै वृद्धिदायै नमो नमः॥ ५५

रूपमें प्रसिद्ध है। कुबेरने इसी मन्त्रके द्वारा परम ऐश्वर्य प्राप्त किया था और दक्षसावर्णि नामक मनुने राजराजेश्वरका पद प्राप्त कर लिया था। मंगल इसी मन्त्रके प्रभावसे सात द्वीपोंके राजा हुए थे। हे नारद! प्रियव्रत, उत्तानपाद और केदार—ये सभी इसी मन्त्रके प्रभावसे परम सिद्ध राजाधिराज बने॥ ४२—४५॥

इस मन्त्रके सिद्ध हो जानेपर भगवती महालक्ष्मीने इन्द्रको दर्शन दिया। उस समय वे वरदायिनी भगवती सर्वोत्तम रत्नसे निर्मित विमानपर विराजमान थीं, उन्होंने अपने तेजसे सात द्वीपोंवाली सम्पूर्ण पृथ्वीको व्याप्त कर रखा था, उनका श्रीविग्रह श्वेत चम्पाके पुष्पकी आभाके समान था, वे रत्नमय आभूषणोंसे सुशोभित थीं, उनका मुखमण्डल मन्द-मन्द मुसकान तथा प्रसन्नतासे युक्त था, वे भक्तोंपर कृपा करनेके लिये परम आतुर थीं, उन्होंने रत्नमयी माला धारण कर रखी थी और वे करोड़ों चन्द्रमाओंके समान कान्तिसे युक्त थीं। उन शान्त स्वभाववाली जगज्जननी भगवती महालक्ष्मीको देखकर इन्द्रके सभी अंग पुलकित हो उठे और वे दोनों हाथ जोड़कर अश्रुपूरित नेत्रोंसे ब्रह्माजीसे प्राप्त तथा सम्पूर्ण अभीष्ट प्रदान करनेवाले इस वैदिक स्तोत्रराजके द्वारा उन महालक्ष्मीकी स्तुति करने लगे॥ ४६—५०॥

पुरन्दर बोले—भगवती कमलवासिनीको नमस्कार है। देवी नारायणीको नमस्कार है, कृष्णप्रिया महालक्ष्मीको निरन्तर बार-बार नमस्कार है॥ ५१॥ कमलपत्रके समान नेत्रवाली और कमलके समान मुखवालीको बार-बार नमस्कार है। पद्मासना, पद्मिनी और वैष्णवीको बार-बार नमस्कार है॥ ५२॥ सर्वसम्पत्स्वरूपा तथा सबकी आराध्या देवीको बार-बार नमस्कार है। भगवान् श्रीहरिकी भक्ति प्रदान करनेवाली तथा हर्षदायिनी भगवती लक्ष्मीको बार-बार नमस्कार है॥ ५३॥ हे रत्नपद्मे! हे शोभने! श्रीकृष्णके वक्षःस्थलपर सुशोभित होनेवाली तथा चन्द्रमाकी शोभा धारण करनेवाली आप कृष्णेश्वरीको बार-बार नमस्कार है॥ ५४॥ सम्पत्तिकी अधिष्ठात्री देवीको नमस्कार है। महादेवीको नमस्कार है। वृद्धिस्वरूपिणी भगवती महालक्ष्मीको नमस्कार है। वृद्धि प्रदान करनेवाली महालक्ष्मीको बार-बार नमस्कार है॥ ५५॥

वैकुण्ठे या महालक्ष्मीर्या लक्ष्मीः क्षीरसागरे।
स्वर्गलक्ष्मीरिन्द्रगेहे राजलक्ष्मीर्नृपालये॥ ५६

गृहलक्ष्मीश्च गृहिणां गेहे च गृहदेवता।
सुरभिः सागरे जाता दक्षिणा यज्ञकामिनी॥ ५७

अदितिर्देवमाता त्वं कमला कमलालया।
स्वाहा त्वं च हविर्दाने कव्यदाने स्वधा स्मृता॥ ५८

त्वं हि विष्णुस्वरूपा च सर्वाधारा वसुन्धरा।
शुद्धसत्त्वस्वरूपा त्वं नारायणपरायणा॥ ५९

क्रोधहिंसावर्जिता च वरदा शारदा शुभा।
परमार्थप्रदा त्वं च हरिदास्यप्रदा परा॥ ६०

यया विना जगत्सर्वं भस्मीभूतमसारकम्।
जीवन्मृतं च विश्वं च शश्वत्सर्वं यया विना॥ ६१

सर्वेषां च परा माता सर्वबान्धवरूपिणी।
धर्मार्थकाममोक्षाणां त्वं च कारणरूपिणी॥ ६२

यथा माता स्तनान्धानां शिशूनां शैशवे सदा।
तथा त्वं सर्वदा माता सर्वेषां सर्वरूपतः॥ ६३

मातृहीनः स्तनान्धस्तु स च जीवति दैवतः।
त्वया हीनो जनः कोऽपि न जीवत्येव निश्चितम्॥ ६४

सुप्रसन्नस्वरूपा त्वं मां प्रसन्ना भवाम्बिके।
वैरिग्रस्तं च विषयं देहि मह्यं सनातनि॥ ६५

अहं यावत्त्वया हीनो बन्धुहीनश्च भिक्षुकः।
सर्वसम्पद्विहीनश्च तावदेव हरिप्रिये॥ ६६

ज्ञानं देहि च धर्मं च सर्वसौभाग्यमीप्सितम्।
प्रभावञ्च प्रतापं च सर्वाधिकारमेव च॥ ६७
जयं पराक्रमं युद्धे परमैश्वर्यमेव च।

हे भगवति! आप वैकुण्ठमें महालक्ष्मी, क्षीरसागरमें लक्ष्मी, इन्द्रके भवनमें स्वर्गलक्ष्मी, राजाओंके भवनमें राजलक्ष्मी, गृहस्थोंके घरमें गृहलक्ष्मी और गृहदेवता, सागरके यहाँ सुरभि तथा यज्ञके पास दक्षिणाके रूपमें विराजमान रहती हैं॥ ५६-५७॥ आप अदिति, देवमाता, कमला तथा कमलालया नामसे प्रसिद्ध हैं और हवि प्रदान करते समय स्वाहा तथा कव्य प्रदान करते समय स्वधा नामसे कही गयी हैं॥ ५८॥ सम्पूर्ण जगत्को धारण करनेवाली विष्णुस्वरूपिणी पृथ्वी आप ही हैं। आप भगवान् नारायणकी आराधनामें सदा तत्पर रहनेवाली तथा विशुद्ध सत्त्वसम्पन्न हैं। आप क्रोध तथा हिंसासे रहित, वर प्रदान करनेवाली, बुद्धि प्रदान करनेवाली, मंगलमयी, श्रेष्ठ, परमार्थ तथा भगवान्का दास्य प्रदान करनेवाली हैं॥ ५९-६०॥ आपके बिना सम्पूर्ण जगत् भस्मीभूत तथा सारहीन है। आपके बिना यह समग्र विश्व सर्वथा जीते-जी मरे हुएके समान है॥ ६१॥ आप समस्त प्राणियोंकी श्रेष्ठ माता, सबकी बान्धवस्वरूपिणी और धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष (पुरुषार्थचतुष्टय)-की मूल कारण हैं॥ ६२॥ जिस प्रकार माता शैशवावस्थामें स्तनपायी शिशुओंकी सदा रक्षा करती है, उसी प्रकार आप सभी प्राणियोंकी माताके रूपमें सब प्रकारसे उनकी रक्षा करती हैं॥ ६३॥ स्तनपायी शिशु माताके न रहनेपर भी दैवयोगसे जी भी सकता है, किंतु आपसे रहित होकर कोई भी प्राणी जीवित नहीं रह सकता—यह निश्चित है। हे अम्बिके! आप अत्यन्त प्रसन्नतापूर्ण स्वरूपवाली हैं, अतः मुझपर प्रसन्न हों॥ ६४ $\frac{1}{2}$ ॥

हे सनातनि! शत्रुओंके द्वारा अधिकृत किया गया मेरा राज्य मुझे पुनः प्राप्त कराइये। हे हरिप्रिये! मैं जबतक आपके दर्शनसे वंचित था; तभीतक बन्धुहीन, भिक्षुक और सम्पूर्ण सम्पदाओंसे विहीन था। अब आप मुझे ज्ञान, धर्म, पूर्ण सौभाग्य, सम्पूर्ण अभीष्ट, प्रभाव, प्रताप, सम्पूर्ण अधिकार, परम ऐश्वर्य, पराक्रम तथा युद्धमें विजय प्रदान कीजिये॥ ६५—६७ $\frac{1}{2}$ ॥

इत्युक्त्वा च महेन्द्रश्च सर्वैः सुरगणैः सह॥ ६८
प्रणनाम साश्रुनेत्रो मूर्ध्ना चैव पुनः पुनः।
ब्रह्मा च शङ्करश्चैव शेषो धर्मश्च केशवः॥ ६९
सर्वे चक्रुः परीहारं सुरार्थे च पुनः पुनः।
देवेभ्यश्च वरं दत्त्वा पुष्पमालां मनोहराम्॥ ७०
केशवाय ददौ लक्ष्मीः सन्तुष्टा सुरसंसदि।
ययुर्देवाश्च सन्तुष्टाः स्वं स्वं स्थानं च नारद॥ ७१
देवी ययौ हरेः स्थानं हृष्टा क्षीरोदशायिनः।
ययतुश्चैव स्वगृहं ब्रह्मेशानौ च नारद॥ ७२
दत्त्वा शुभाशिषं तौ च देवेभ्यः प्रीतिपूर्वकम्।
इदं स्तोत्रं महापुण्यं त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः॥ ७३
कुबेरतुल्यः स भवेद्राजराजेश्वरो महान्।
पञ्चलक्षजपेनैव स्तोत्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम्॥ ७४
सिद्धस्तोत्रं यदि पठेन्मासमेकं तु सन्ततम्।
महासुखी च राजेन्द्रो भविष्यति न संशयः॥ ७५

[हे नारद!] ऐसा कहकर सभी देवताओंके साथ इन्द्रने अश्रुपूरित नेत्रोंसे तथा मस्तक झुकाकर भगवतीको बार-बार प्रणाम किया। ब्रह्मा, शंकर, शेषनाग, धर्म तथा केशव—इन सभीने देवताओंके कल्याणहेतु भगवतीसे बार-बार प्रार्थना की॥ ६८-६९½ ॥

तब देवसभामें परम प्रसन्न होकर भगवती महालक्ष्मीने देवताओंको वर प्रदान करके भगवान् श्रीकृष्णको मनोहर पुष्पमाला समर्पित कर दी। हे नारद! तदनन्तर सभी देवता प्रसन्न होकर अपने-अपने स्थानको चले गये और प्रसन्नचित्त महालक्ष्मी भी क्षीरसागरमें शयन करनेवाले भगवान् श्रीहरिके लोकको चली गयीं। हे नारद! देवताओंको आशीर्वाद देकर ब्रह्मा और शिव भी प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने लोकको चले गये॥ ७०—७२½ ॥

[हे नारद!] जो मनुष्य तीनों सन्ध्याकालमें इस परम पवित्र स्तोत्रका पाठ करता है, वह कुबेरके समान महान् राजराजेश्वर हो जाता है। पाँच लाख जप करनेपर मनुष्योंके लिये यह स्तोत्र सिद्ध हो जाता है। यदि कोई मनुष्य एक मासतक निरन्तर इस सिद्ध स्तोत्रका पाठ करे, तो वह परम सुखी तथा राजेन्द्र हो जायगा, इसमें सन्देह नहीं है॥ ७३—७५ ॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे महालक्ष्म्या ध्यानस्तोत्रवर्णनं नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४२॥

अथ त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

भगवती स्वाहाका उपाख्यान

नारद उवाच

नारायण महाभाग नारायण महाप्रभो।
रूपेणैव गुणेनैव यशसा तेजसा त्विषा॥ १
त्वमेव ज्ञानिनां श्रेष्ठः सिद्धानां योगिनां मुने।
तपस्विनां मुनीनां च परो वेदविदांवर॥ २
महालक्ष्म्या उपाख्यानं विज्ञातं महदद्भुतम्।
अन्यत्किञ्चिदुपाख्यानं निगूढं वद साम्प्रतम्॥ ३
अतीव गोपनीयं यदुपयुक्तं च सर्वतः।
अप्रकाश्यं पुराणेषु वेदोक्तं धर्मसंयुतम्॥ ४

नारदजी बोले—हे नारायण! हे महाभाग! हे महाप्रभो! आप रूप, गुण, यश, तेज और कान्तिमें साक्षात् नारायण ही हैं॥ १॥

हे मुने! हे वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! आप ज्ञानियों, सिद्धों, योगियों, तपस्वियों और मुनियोंमें परम श्रेष्ठ हैं। मैंने आपसे महालक्ष्मीका अत्यन्त अद्भुत उपाख्यान जान लिया, अब आप मुझे कोई दूसरा उपाख्यान बतलाइये; जो रहस्यमय, अत्यन्त गोपनीय, सबके लिये उपयोगी, पुराणोंमें अप्रकाशित, धर्मयुक्त तथा वेदप्रतिपादित हो॥ २—४॥

श्रीनारायण उवाच

नानाप्रकारमाख्यानमप्रकाश्यं पुराणतः।
श्रुतं कतिविधं गूढमास्ते ब्रह्मन् सुदुर्लभम्॥ ५

तेषु यत्सारभूतं च श्रोतुं किं वा त्वमिच्छसि।
तन्मे ब्रूहि महाभाग पश्चाद्वक्ष्यामि तत्पुनः॥ ६

नारद उवाच

स्वाहा देवी हविर्दाने प्रशस्ता सर्वकर्मसु।
पितृदाने स्वधा शस्ता दक्षिणा सर्वतो वरा॥ ७

एतासां चरितं जन्मफलं प्राधान्यमेव च।
श्रोतुमिच्छामि त्वद्वक्त्राद्वद वेदविदांवर॥ ८

सूत उवाच

नारदस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य मुनिसत्तमः।
कथां कथितुमारेभे पुराणोक्तां पुरातनीम्॥ ९

श्रीनारायण उवाच

सृष्टेः प्रथमतो देवाः स्वाहारार्थं ययुः पुरा।
ब्रह्मलोकं ब्रह्मसभामाजग्मुः सुमनोहराम्॥ १०

गत्वा निवेदनं चक्रुराहारहेतुकं मुने।
ब्रह्मा श्रुत्वा प्रतिज्ञाय निषेवे श्रीहरिं परम्॥ ११

नारद उवाच

यज्ञरूपो हि भगवान् कलया च बभूव ह।
यज्ञे यद्यद्धविर्दानं दत्तं तेभ्यश्च ब्राह्मणैः॥ १२

श्रीनारायण उवाच

हविर्ददति विप्राश्च भक्त्या च क्षत्रियादयः।
सुरा नैव प्राप्नुवन्ति तद्दानं मुनिपुङ्गव॥ १३

देवा विषण्णास्ते सर्वे तत्सभां च ययुः पुनः।
गत्वा निवेदनं चक्रुराहाराभावहेतुकम्॥ १४

ब्रह्मा श्रुत्वा तु ध्यानेन श्रीकृष्णं शरणं ययौ।
पूजाञ्चकार प्रकृतेर्ध्यानेनैव तदाज्ञया॥ १५

श्रीनारायण बोले—हे ब्रह्मन्! ऐसे अनेकविध आख्यान हैं, जो पुराणोंमें वर्णित नहीं हैं। कई प्रकारके आख्यान सुने भी गये हैं, जो अत्यन्त दुर्लभ तथा गूढ़ हैं, उनमें किस सारभूत आख्यानको आप सुनना चाहते हैं? हे महाभाग! आप पहले मुझसे उसे बताइये, तब मैं उसका वर्णन करूँगा॥ ५-६॥

नारदजी बोले—सभी धार्मिक कर्मोंमें हवि-प्रदानके समय स्वाहादेवी और श्राद्धकर्ममें स्वधादेवी प्रशस्त मानी गयी हैं। यज्ञ आदि कर्मोंमें दक्षिणादेवी सर्वश्रेष्ठ हैं। हे वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! मैं आपके मुखसे इन्हीं देवियोंके चरित्र, अवतारग्रहणका प्रयोजन तथा महत्त्व सुनना चाहता हूँ, उसे बताइये॥ ७-८॥

सूतजी बोले—नारदजीकी बात सुनकर मुनिवर नारायणने हँसकर पुराणप्रतिपादित प्राचीन कथा कहनी आरम्भ की॥ ९॥

श्रीनारायण बोले—हे मुने! प्राचीन समयमें सृष्टिके प्रारम्भिक कालमें देवतागण अपने आहारके लिये ब्रह्मलोक गये। वहाँपर वे ब्रह्माजीकी मनोहर सभामें आये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने अपने आहारके लिये ब्रह्माजीसे प्रार्थना की। उनकी बात सुनकर ब्रह्माजीने उनके लिये आहारकी प्रतिज्ञा करके परमेश्वर श्रीहरिकी आराधना की॥ १०-११॥

नारदजी बोले—भगवान् श्रीहरि अपनी कलासे यज्ञके रूपमें प्रकट हो चुके थे। तब यज्ञमें ब्राह्मणोंके द्वारा उन देवताओंको जो-जो हव्य प्रदान किया जाता था, क्या उससे उनकी तृप्ति नहीं होती थी?॥ १२॥

श्रीनारायण बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! ब्राह्मण और क्षत्रिय आदि वर्ण देवताओंके निमित्त भक्तिपूर्वक जो हविदान करते थे, उस प्रदत्त हविको देवगण नहीं प्राप्त कर पाते थे। उसीसे वे सभी देवता दुःखी होकर ब्रह्मसभामें गये और वहाँ जाकर उन्होंने आहारके अभावकी बात बतायी॥ १३-१४॥

देवताओंकी यह प्रार्थना सुनकर ब्रह्माजीने ध्यान करके श्रीकृष्णकी शरण ग्रहण की। तब उन श्रीकृष्णके आदेशानुसार ब्रह्माजी ध्यानके साथ मूलप्रकृति भगवतीकी आराधना करने लगे। इसके फलस्वरूप सर्वशक्ति-स्वरूपिणी स्वाहादेवी भगवती मूलप्रकृतिकी कलासे

प्रकृतेः कलया चैव सर्वशक्तिस्वरूपिणी।
अतीव सुन्दरी श्यामा रमणीया मनोहरा॥ १६

ईषद्धास्यप्रसन्नास्या भक्तानुग्रहकातरा।
उवाचेति विधेरग्रे पद्मयोने वरं वृणु॥ १७

विधिस्तद्वचनं श्रुत्वा सम्भ्रमात्समुवाच ताम्।

प्रजापतिरुवाच

त्वमग्नेर्दाहिका शक्तिर्भव यातीव सुन्दरी॥ १८

दग्धुं न शक्तः प्रकृतीर्हुताशश्च त्वया विना।
त्वन्नामोच्चार्य मन्त्रान्ते यो दास्यति हविर्नरः॥ १९

सुरेभ्यस्तत्प्राप्नुवन्ति सुराः सानन्दपूर्वकम्।
अग्नेः सम्पत्स्वरूपा च श्रीरूपा सा गृहेश्वरी॥ २०

देवानां पूजिता शश्वन्नरादीनां भवाम्बिके।
ब्रह्मणश्च वचः श्रुत्वा सा विषण्णा बभूव ह॥ २१

तमुवाच ततो देवी स्वाभिप्रायं स्वयम्भुवम्।

स्वाहोवाच

अहं कृष्णं भजिष्यामि तपसा सुचिरेण च॥ २२

ब्रह्मंस्तदन्यं यत्किञ्चित्स्वप्नवद् भ्रममेव च।
विधाता जगतस्त्वं च शम्भुर्मृत्युञ्जयो विभुः॥ २३

बिभर्ति शेषो विश्वं च धर्मः साक्षी च धर्मिणाम्।
सर्वाद्यपूज्यो देवानां गणेषु च गणेश्वरः॥ २४

प्रकृतिः सर्वसम्पूज्या यत्प्रसादात्पुराभवत्।
ऋषयो मुनयश्चैव पूजिता यन्निषेवया॥ २५

तत्पादपद्मं नियतं भावेन चिन्तयाम्यहम्।
पद्मास्या पाद्ममित्युक्त्वा पद्मनाभानुसारतः॥ २६

प्रकट हो गयीं। उनका श्रीविग्रह अत्यन्त सुन्दर, लावण्यमय, रमणीय तथा मनोहर था, उनका मुखमण्डल मन्द-मन्द मुसकान तथा प्रसन्नतासे युक्त था, वे अपने भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये आतुर-सी प्रतीत हो रही थीं, ऐसे स्वरूपवाली उन भगवती स्वाहाने ब्रह्माके सम्मुख उपस्थित होकर कहा—हे पद्मयोने! वर माँगो। उनका वचन सुनकर ब्रह्माजी आदरपूर्वक उन भगवतीसे कहने लगे—॥ १५—१७½॥

प्रजापति बोले—[हे देवि!] आप अग्निकी परम सुन्दर दाहिकाशक्ति हो जाइये; क्योंकि आपके बिना अग्निदेव आहुतियोंको भस्म करनेमें समर्थ नहीं हैं। जो मनुष्य मन्त्रके अन्तमें आपके नामका उच्चारण करके देवताओंको हवि प्रदान करेगा, उसे देवगण प्रेमपूर्वक ग्रहण करेंगे। हे अम्बिके! आप अग्निदेवकी सम्पत्स्वरूपिणी तथा श्रीरूपिणी गृहस्वामिनी बन जाइये, देवता तथा मनुष्य आदिके लिये आप नित्य पूजनीय होवें॥ १८—२०½॥

ब्रह्माजीकी बात सुनकर वे भगवती स्वाहा उदास हो गयीं। उसके बाद उन्होंने ब्रह्माजीसे अपना अभिप्राय व्यक्त कर दिया॥ २१½॥

स्वाहा बोलीं—हे ब्रह्मन्! मैं दीर्घकालतक तपस्या करके भगवान् श्रीकृष्णकी आराधना करूँगी; क्योंकि उनके अतिरिक्त जो कुछ भी है, वह सब स्वप्नकी भाँति केवल भ्रम है॥ २२½॥

जिनके अनुग्रहसे आप जगत्का विधान करते हैं, भगवान् शिवने मृत्युपर विजय प्राप्त की है, शेषनाग सम्पूर्ण विश्वको धारण करते हैं, धर्मराज सभी धर्मनिष्ठ प्राणियोंके साक्षी बने हैं, गणेश्वर सभी देवगणोंमें सबसे पहले पूजे जाते हैं, पूर्वकालमें भगवती मूलप्रकृति सबके द्वारा पूजित हुईं और जिनकी उपासनाके प्रभावसे ऋषि तथा मुनिगण पूजित हुए हैं, मैं उन परमेश्वर श्रीकृष्णके चरण-कमलका संयत होकर प्रेमपूर्वक निरन्तर ध्यान करती हूँ॥ २३—२५½॥

ब्रह्माजीसे ऐसा कहकर कमलके समान मुखवाली स्वाहादेवी भगवान् विष्णुकी आज्ञाके अनुसार तपस्या करनेके लिये चली गयीं और उन पद्मजा स्वाहाने

जगाम तपसे देवी ध्यात्वा कृष्णं निरामयम्।
तपस्तेपे वर्षलक्षमेकपादेन पद्मजा॥ २७

तदा ददर्श श्रीकृष्णं निर्गुणं प्रकृतेः परम्।
अतीव कमनीयं च रूपं दृष्ट्वा च रूपिणी॥ २८

मूर्च्छां सम्प्राप कालेन कामेशस्य च कामुकी।
विज्ञाय तदभिप्रायं सर्वज्ञस्तामुवाच ह॥ २९

समुत्थाप्य च तां क्रोडे क्षीणाङ्गीं तपसा चिरम्।

श्रीभगवानुवाच

वाराहे वै त्वमंशेन मम पत्नी भविष्यसि॥ ३०

नाम्ना नाग्नजिती कन्या कान्ते नग्नजितस्य च।
अधुनाग्नेर्दाहिका त्वं भव पत्नी च भामिनी॥ ३१

मन्त्राङ्गरूपा पूज्या च मत्प्रसादाद् भविष्यसि।
वह्निस्त्वां भक्तिभावेन सम्पूज्य च गृहेश्वरीम्॥ ३२

रमिष्यति त्वया सार्धं रामया रमणीयया।
इत्युक्त्वान्तर्दधे देवो देवीं सम्भाष्य नारद॥ ३३

तत्राजगाम सन्त्रस्तो वह्निर्ब्रह्मनिदेशतः।
सामवेदोक्तध्यानेन ध्यात्वा तां जगदम्बिकाम्॥ ३४

सम्पूज्य परितुष्टाव पाणिं जग्राह मन्त्रतः।
तदा दिव्यं वर्षशतं स रेमे रामया सह॥ ३५

अतीव निर्जने देशे सम्भोगसुखदे सदा।
बभूव गर्भस्तस्यां च हुताशस्य च तेजसा॥ ३६

तं दधार च सा देवी दिव्यं द्वादशवत्सरम्।
ततः सुषाव पुत्रांश्च रमणीयान्मनोहरान्॥ ३७
दक्षिणाग्निगार्हपत्याहवनीयान् क्रमेण च।

निर्विकार श्रीकृष्णका ध्यान करके एक पैरपर खड़े होकर एक लाख वर्षतक तप किया। तत्पश्चात् उन्हें अप्राकृत निर्गुण भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन हुए। भगवान् श्रीकृष्णका अत्यन्त मनोहर रूप देखकर ही वे रूपवती भगवती स्वाहा मूर्च्छित हो गयीं; क्योंकि उन कामुकी देवीने दीर्घकालके अनन्तर उन कामेश्वर श्रीकृष्णको देखा था॥ २६—२८½ ॥

भगवती स्वाहाका अभिप्राय समझकर सर्वज्ञ भगवान् श्रीकृष्ण दीर्घकालतक तपस्याके कारण अत्यन्त क्षीण देहवाली उन देवीको गोदमें बैठाकर उनसे कहने लगे॥ २९½ ॥

श्रीभगवान् बोले—हे कान्ते! तुम अंशरूपसे वाराहकल्पमें मेरी भार्या बनोगी, उस समय तुम नग्नजित्की पुत्रीके रूपमें उत्पन्न होकर नाग्नजिती नामसे विख्यात होओगी। इस समय तुम दाहिका-शक्तिके रूपमें अग्निदेवकी मनोहर पत्नी बनो। मेरे अनुग्रहसे तुम मन्त्रोंकी अंगस्वरूपिणी बनकर सबसे पूजित होओगी। अग्निदेव तुम्हें गृहस्वामिनी बनाकर भक्तिभावके साथ तुम्हारी पूजा करेंगे और वे परम रमणीया भार्याके रूपमें तुम्हारे साथ रमण करेंगे॥ ३०—३२½ ॥

हे नारद! देवी स्वाहासे ऐसा कहकर भगवान् श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये। इसके बाद ब्रह्माज्ञासे अत्यन्त भयभीत अग्निदेव वहाँ आये। उन्होंने सामवेदमें कही गयी ध्यानविधिसे उन भगवती जगदम्बिकाका ध्यान करके तथा विधिपूर्वक पूजन करके उन्हें परम प्रसन्न किया तथा मन्त्रोच्चारपूर्वक उनका पाणिग्रहण किया॥ ३३-३४½ ॥

तत्पश्चात् वे विहारके लिये सुखप्रद तथा अत्यन्त निर्जन स्थानमें भगवती स्वाहाके साथ दिव्य एक सौ वर्षोंतक रमण करते रहे और अग्निके तेजसे उन्होंने गर्भधारण कर लिया। देवी स्वाहा उस गर्भको दिव्य बारह वर्षोंतक धारण किये रहीं। तत्पश्चात् उन भगवती स्वाहाने क्रमसे दक्षिणाग्नि, गार्हपत्याग्नि तथा आहवनीयाग्नि—इन सुन्दर तथा मनोहर पुत्रोंको उत्पन्न किया॥ ३५—३७½ ॥

ऋषयो मुनयश्चैव ब्राह्मणाः क्षत्रियादयः॥ ३८

स्वाहान्तं मन्त्रमुच्चार्य हविर्दानं च चक्रिरे।
स्वाहायुक्तं च मन्त्रं च यो गृह्णाति प्रशस्तकम्॥ ३९

सर्वसिद्धिर्भवेत्तस्य मन्त्रग्रहणमात्रतः।
विषहीनो यथा सर्पो वेदहीनो यथा द्विजः॥ ४०

पतिसेवाविहीना स्त्री विद्याहीनो यथा पुमान्।
फलशाखाविहीनश्च यथा वृक्षो हि निन्दितः॥ ४१

स्वाहाहीनस्तथा मन्त्रो न हुतः फलदायकः।
परितुष्टा द्विजाः सर्वे देवाः सम्प्रापुराहुतीः॥ ४२

स्वाहान्तेनैव मन्त्रेण सफलं सर्वमेव च।
इत्येवं कथितं सर्वं स्वाहोपाख्यानमुत्तमम्॥ ४३

सुखदं मोक्षदं सारं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि।

नारद उवाच

स्वाहापूजाविधानं च ध्यानं स्तोत्रं मुनीश्वर॥ ४४

सम्पूज्य वह्निस्तुष्टाव येन तद्वद मे प्रभो।

श्रीनारायण उवाच

ध्यानं च सामवेदोक्तं स्तोत्रपूजाविधानकम्॥ ४५

वदामि श्रूयतां ब्रह्मन् सावधानो मुनीश्वर।
सर्वयज्ञारम्भकाले शालग्रामे घटेऽथवा॥ ४६

स्वाहां सम्पूज्य यत्नेन यज्ञं कुर्यात्फलाप्तये।
स्वाहां मन्त्राङ्गयुक्तां च मन्त्रसिद्धिस्वरूपिणीम्॥ ४७

सिद्धां च सिद्धिदां नृणां कर्मणां फलदां शुभाम्।
इति ध्यात्वा च मूलेन दत्त्वा पाद्यादिकं नरः॥ ४८

सर्वसिद्धिं लभेत्स्तुत्वा मूलमन्त्रं मुने शृणु।
ॐ ह्रीं श्रीं वह्निजायायै देव्यै स्वाहेत्यनेन च॥ ४९
यः पूजयेच्च तां भक्त्या सर्वेष्टं सम्भवेद् ध्रुवम्।

तभीसे ऋषि, मुनि, ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि मन्त्रके अन्तमें स्वाहा शब्द जोड़कर मन्त्रोच्चारण करके अग्निमें हवन करने लगे। जो मनुष्य स्वाहायुक्त प्रशस्त मन्त्रका उच्चारण करता है; मन्त्रके उच्चारणमात्रसे उसे सभी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं॥ ३८-३९½॥

जिस प्रकार विषरहित सर्प, वेदविहीन ब्राह्मण, पतिसेवाविहीन स्त्री, विद्यासे शून्य मनुष्य और फल तथा शाखासे रहित वृक्ष निन्दनीय होता है, उसी प्रकार स्वाहारहित मन्त्र निन्द्य होता है; ऐसे मन्त्रसे किया गया हवन फलप्रद नहीं होता॥ ४०-४१½॥

तब समस्त ब्राह्मण सन्तुष्ट हो गये और देवताओंको आहुतियाँ मिलने लगीं। अन्तमें स्वाहायुक्त मन्त्रसे सब कुछ सफल हो जाता है। [हे मुने!] इस प्रकार मैंने भगवती स्वाहासे सम्बन्धित सम्पूर्ण उत्तम आख्यानका वर्णन कर दिया। यह आख्यान सुखदायक, सारभूत तथा मोक्ष प्रदान करनेवाला है। अब आप और क्या सुनना चाहते हैं?॥ ४२-४३½॥

नारदजी बोले—हे मुनीश्वर! हे प्रभो! अग्निने जिस पूजा-विधान, ध्यान तथा स्तोत्रद्वारा स्वाहाको प्रसन्न किया था, उसे आप मुझे बताइये॥ ४४½॥

श्रीनारायण बोले—हे ब्रह्मन्! हे मुनिश्रेष्ठ! अब मैं भगवतीके सामवेदोक्त ध्यान, स्तोत्र तथा पूजा-विधानको बता रहा हूँ, आप सावधान होकर सुनिये॥ ४५½॥

फलप्राप्तिके निमित्त सम्पूर्ण यज्ञोंके आरम्भिक कालमें शालग्राम अथवा कलशपर यत्नपूर्वक भगवती स्वाहाका विधिवत् पूजन करके यज्ञ करना चाहिये॥ ४६½॥

भगवती स्वाहा वेदांगमय मन्त्रोंसे सम्पन्न, मन्त्रसिद्धिस्वरूपा, सिद्धस्वरूपिणी, मनुष्योंको सिद्धि तथा उनके कर्मोंके फल प्रदान करनेवाली तथा कल्याणमयी हैं—इस प्रकार ध्यान करके मूलमन्त्रसे पाद्य आदि अर्पण करके भगवतीका स्तवन करनेसे मनुष्य सम्पूर्ण सिद्धि प्राप्त कर लेता है। हे मुने! अब मूलमन्त्र सुनिये—'**ॐ ह्रीं श्रीं वह्निजायायै देव्यै स्वाहा**'—इस मन्त्रसे जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक उन भगवती स्वाहाकी पूजा करता है, उसका समस्त अभीष्ट निश्चितरूपसे पूर्ण हो जाता है॥ ४७—४९½॥

वह्निरुवाच

स्वाहा वह्निप्रिया वह्निजाया सन्तोषकारिणी ॥ ५०
शक्तिः क्रिया कालदात्री परिपाककरी ध्रुवा।
गतिः सदा नराणां च दाहिका दहनक्षमा ॥ ५१
संसारसाररूपा च घोरसंसारतारिणी।
देवजीवनरूपा च देवपोषणकारिणी ॥ ५२
षोडशैतानि नामानि यः पठेद्भक्तिसंयुतः।
सर्वसिद्धिर्भवेत्तस्य इह लोके परत्र च ॥ ५३
नाङ्गहीनं भवेत्तस्य सर्वं कर्म सुशोभनम्।
अपुत्रो लभते पुत्रं भार्याहीनो लभेत्प्रियाम् ॥ ५४
रम्भोपमां स्वकान्तां च सम्प्राप्य सुखमाप्नुयात् ॥ ५५

वह्नि बोले—स्वाहा, वह्निप्रिया, वह्निजाया, सन्तोषकारिणी, शक्ति, क्रिया, कालदात्री, परिपाककरी, ध्रुवा, मनुष्योंकी गति, दाहिका, दहनक्षमा, संसारसाररूपा, घोरसंसारतारिणी, देवजीवनरूपा और देवपोषणकारिणी—ये सोलह नाम भगवती स्वाहाके हैं। जो मनुष्य इनका भक्तिपूर्वक पाठ करता है, वह इस लोक तथा परलोकमें सम्पूर्ण सिद्धियाँ प्राप्त कर लेता है। उसका कोई कर्म अपूर्ण नहीं रहता, समस्त कर्म उत्तम फलदायी होते हैं, पुत्रहीन व्यक्ति पुत्रवान् हो जाता है तथा भार्याहीन व्यक्ति पत्नीको प्राप्त कर लेता है और रम्भातुल्य अपनी उस भार्याको प्राप्त करके वह सुख भोगता है ॥ ५०—५५ ॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे नारायणनारदसंवादे स्वाहोपाख्यानवर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

अथ चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

भगवती स्वधाका उपाख्यान

श्रीनारायण उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि स्वधोपाख्यानमुत्तमम्।
पितॄणां च तृप्तिकरं श्राद्धान्नफलवर्धनम् ॥ १

सृष्टेरादौ पितृगणान्ससर्ज जगतां विधिः।
चतुरश्च मूर्तिमतस्त्रींश्च तेजःस्वरूपिणः ॥ २

दृष्ट्वा सप्तपितृगणान् सुखरूपान्मनोहरान्।
आहारं ससृजे तेषां श्राद्धं तर्पणपूर्वकम् ॥ ३

स्नानं तर्पणपर्यन्तं श्राद्धं तु देवपूजनम्।
आह्निकं च त्रिसन्ध्यान्तं विप्राणां च श्रुतौ श्रुतम् ॥ ४

नित्यं न कुर्याद्यो विप्रस्त्रिसन्ध्यं श्राद्धतर्पणम्।
बलिं वेदध्वनिं सोऽपि विषहीनो यथोरगः ॥ ५

देवीसेवाविहीनश्च श्रीहरेरनिवेद्यभुक्।
भस्मान्तं सूतकं तस्य न कर्मार्हश्च नारद ॥ ६

श्रीनारायण बोले—हे नारद! सुनिये, अब मैं स्वधाका उत्तम आख्यान कहूँगा, जो पितरोंके लिये तृप्तिकारक तथा श्राद्धान्नके फलकी वृद्धि करनेवाला है ॥ १ ॥

जगत्‌का विधान करनेवाले ब्रह्माने सृष्टिके आरम्भमें चार मूर्तिमान् तथा तीन तेजःस्वरूप पितरोंका सृजन किया। उन सातों सुखस्वरूप तथा मनोहर पितरोंको देखकर उन्होंने श्राद्ध-तर्पणपूर्वक उनका आहार भी सृजित किया ॥ २-३ ॥

स्नान, तर्पण, श्राद्ध, देवपूजन तथा त्रिकाल सन्ध्या—ये ब्राह्मणोंके आह्निक कर्म श्रुतिमें प्रसिद्ध हैं ॥ ४ ॥

जो ब्राह्मण प्रतिदिन त्रिकाल सन्ध्या, श्राद्ध, तर्पण, बलिवैश्वदेव और वेदध्वनि नहीं करता, वह विषहीन सर्पके समान है ॥ ५ ॥

हे नारद! जो व्यक्ति भगवतीकी सेवासे वंचित है तथा भगवान् श्रीहरिको बिना नैवेद्य अर्पण किये ही भोजन ग्रहण करता है, उसका अशौच केवल दाहपर्यन्त बना रहता है और वह कोई भी शुभ कृत्य करनेके योग्य नहीं रह जाता ॥ ६ ॥

ब्रह्मा श्राद्धादिकं सृष्ट्वा जगाम पितृहेतवे।
न प्राप्नुवन्ति पितरो ददति ब्राह्मणादयः॥ ७

सर्वे च जग्मुः क्षुधिताः खिन्नास्तु ब्रह्मणः सभाम्।
सर्वं निवेदनं चक्रुस्तमेव जगतां विधिम्॥ ८

ब्रह्मा च मानसीं कन्यां ससृजे च मनोहराम्।
रूपयौवनसम्पन्नां शतचन्द्रनिभाननाम्॥ ९

विद्यावतीं गुणवतीमतिरूपवतीं सतीम्।
श्वेतचम्पकवर्णाभां रत्नभूषणभूषिताम्॥ १०

विशुद्धां प्रकृतेरंशां सस्मितां वरदां शुभाम्।
स्वधाभिधां च सुदतीं लक्ष्मीलक्षणसंयुताम्॥ ११

शतपद्मपदन्यस्तपादपद्मं च बिभ्रतीम्।
पत्नीं पितॄणां पद्मास्यां पद्मजां पद्मलोचनाम्॥ १२

पितृभ्यश्च ददौ ब्रह्मा तुष्टेभ्यस्तुष्टिरूपिणीम्।
ब्राह्मणानां चोपदेशं चकार गोपनीयकम्॥ १३

स्वधान्तं मन्त्रमुच्चार्य पितृभ्यो देयमित्यपि।
क्रमेण तेन विप्राश्च पित्रे दानं ददुः पुरा॥ १४

स्वाहा शस्ता देवदाने पितृदाने स्वधा स्मृता।
सर्वत्र दक्षिणा शस्ता हतं यज्ञमदक्षिणम्॥ १५

पितरो देवता विप्रा मुनयो मनवस्तथा।
पूजां चक्रुः स्वधां शान्तां तुष्टुवुः परमादरात्॥ १६

देवादयश्च सन्तुष्टाः परिपूर्णमनोरथाः।
विप्रादयश्च पितरः स्वधादेवीवरेण च॥ १७

इस प्रकार ब्रह्माजी पितरोंके लिये श्राद्ध आदिका विधान करके चले गये, किंतु ब्राह्मण आदि जो श्राद्धीय पदार्थ अर्पण करते थे, उन्हें पितरगण प्राप्त नहीं कर पाते थे॥ ७॥

अतः क्षुधासे व्याकुल तथा उदास मनवाले सभी पितर ब्रह्माजीकी सभामें गये और उन्होंने जगत्का विधान करनेवाले उन ब्रह्माको सारी बात बतायी॥ ८॥

तब ब्रह्माजीने एक मनोहर मानसी कन्याका सृजन किया। वह रूप तथा यौवनसे सम्पन्न थी और उसका मुख सैकड़ों चन्द्रमाओंके समान कान्तिमान् था। वह साध्वी विद्या, गुण तथा परम रूपसे सम्पन्न थी। उसका वर्ण श्वेत चम्पाके समान उज्ज्वल था और वह रत्नमय आभूषणोंसे सुशोभित थी। विशुद्ध, मूलप्रकृतिकी अंशरूपा, वरदायिनी तथा कल्याणमयी वह मन्द-मन्द मुसकानसे युक्त थी। लक्ष्मीके लक्षणोंसे युक्त स्वधा नामक वह देवी सुन्दर दाँतोंवाली थी। शतदलकमलके ऊपर रखे चरणकमलवाली वह देवी अतिशय सुशोभित हो रही थी। पितरोंकी पत्नीस्वरूपा उस कमलोद्भवा स्वधादेवीके मुख तथा नेत्र कमलके समान थे। ब्रह्माजीने उस तुष्टिरूपिणी देवीको सन्तुष्ट पितरोंको समर्पित कर दिया। उसी समय ब्रह्माजीने ब्राह्मणोंको यह गोपनीय उपदेश भी प्रदान किया कि आपलोगोंको अन्तमें स्वधायुक्त मन्त्रका उच्चारण करके ही पितरोंको कव्य पदार्थ अर्पण करना चाहिये। तभीसे ब्राह्मणलोग उसी क्रमसे पितरोंको कव्य प्रदान करने लगे॥ ९—१४॥

देवताओंके लिये हव्य प्रदान करते समय स्वाहा और पितरोंको कव्य प्रदान करते समय स्वधाका उच्चारण श्रेष्ठ माना गया है। दक्षिणा सर्वत्र प्रशस्त मानी गयी है; क्योंकि दक्षिणाविहीन यज्ञ विनष्ट हो जाता है॥ १५॥

उस समय पितरों, देवताओं, ब्राह्मणों, मुनियों तथा मनुगणोंने परम आदरपूर्वक शान्तिस्वरूपिणी भगवती स्वधाकी पूजा तथा स्तुति की॥ १६॥

भगवती स्वधाके वरदानसे पितरगण, देवता तथा विप्र आदि परम सन्तुष्ट तथा पूर्ण मनोरथवाले हो गये॥ १७॥

इत्येवं कथितं सर्वं स्वधोपाख्यानमेव च।
सर्वेषां च तुष्टिकरं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ १८

नारद उवाच

स्वधापूजाविधानं च ध्यानं स्तोत्रं महामुने।
श्रोतुमिच्छामि यत्नेन वद वेदविदांवर॥ १९

श्रीनारायण उवाच

ध्यानं च स्तवनं ब्रह्मन् वेदोक्तं सर्वमङ्गलम्।
सर्वं जानासि च कथं ज्ञातुमिच्छसि वृद्धये॥ २०

शरत्कृष्णत्रयोदश्यां मघायां श्राद्धवासरे।
स्वधां सम्पूज्य यत्नेन ततः श्राद्धं समाचरेत्॥ २१

स्वधां नाभ्यर्च्य यो विप्रः श्राद्धं कुर्यादहंमतिः।
न भवेत्फलभाक्सत्यं श्राद्धस्य तर्पणस्य च॥ २२

ब्रह्मणो मानसीं कन्यां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम्।
पूज्यां वै पितृदेवानां श्राद्धानां फलदां भजे॥ २३

इति ध्यात्वा शिलायां वा ह्यथवा मङ्गले घटे।
दद्यात्पाद्यादिकं तस्यै मूलेनेति श्रुतौ श्रुतम्॥ २४

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं स्वधादेव्यै स्वाहेति च महामुने।
समुच्चार्य तु सम्पूज्य स्तुत्वा तां प्रणमेद् द्विजः॥ २५

स्तोत्रं शृणु मुनिश्रेष्ठ ब्रह्मपुत्र विशारद।
सर्ववाञ्छाप्रदं नृणां ब्रह्मणा यत्कृतं पुरा॥ २६

श्रीनारायण उवाच

स्वधोच्चारणमात्रेण तीर्थस्नायी भवेन्नरः।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो वाजपेयफलं लभेत्॥ २७

हे नारद! इस प्रकार मैंने सभी प्राणियोंको तुष्टि प्रदान करनेवाला यह सम्पूर्ण स्वधाका उपाख्यान आपसे कह दिया; अब आप पुनः क्या सुनना चाहते हैं?॥ १८॥

नारदजी बोले—वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हे महामुने! मैं भगवती स्वधाकी पूजाका विधान, उनका ध्यान तथा स्तोत्र सुनना चाहता हूँ; यत्नपूर्वक बतलाइये॥ १९॥

श्रीनारायण बोले—हे ब्रह्मन्! आप समस्त प्राणियोंका मंगल करनेवाला भगवती स्वधाका वेदोक्त ध्यान तथा स्तवन आदि सब कुछ जानते ही हैं तो फिर उसे क्यों जानना चाहते हैं? तो भी लोगोंके कल्याणार्थ मैं उसे आपको बता रहा हूँ—शरत्कालमें आश्विनमासके कृष्णपक्षमें त्रयोदशी तिथिको मघा नक्षत्रमें अथवा श्राद्धके दिन यत्नपूर्वक देवी स्वधाकी विधिवत् पूजा करके श्राद्ध करना चाहिये॥ २०-२१॥

अहंकारयुक्त बुद्धिवाला जो विप्र भगवती स्वधाका पूजन किये बिना ही श्राद्ध करता है, वह श्राद्ध तथा तर्पणका फल प्राप्त नहीं करता, यह सत्य है॥ २२॥

मैं सर्वदा स्थिर यौवनवाली, पितरों तथा देवताओंकी पूज्या और श्राद्धोंका फल प्रदान करनेवाली ब्रह्माकी मानसी कन्या भगवती स्वधाकी आराधना करता हूँ—इस प्रकार ध्यान करके शिला अथवा मंगलमय कलशपर उनका आवाहनकर मूलमन्त्रसे उन्हें पाद्य आदि उपचार अर्पण करने चाहिये—ऐसा श्रुतिमें प्रसिद्ध है॥ २३-२४॥

हे महामुने! द्विजको चाहिये कि '**ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं स्वधादेव्यै स्वाहा**' इस मन्त्रका उच्चारण करके उनकी विधिवत् पूजा तथा स्तुति करके उन्हें प्रणाम करे॥ २५॥

हे मुनिश्रेष्ठ! हे ब्रह्मपुत्र! हे विशारद! अब आप सभी मनुष्योंकी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण करनेवाले उस स्तोत्रको सुनिये, जिसका पूर्वकालमें ब्रह्माजीने पाठ किया था॥ २६॥

श्रीनारायण बोले—'स्वधा' शब्दका उच्चारण करनेमात्रसे मनुष्य तीर्थस्नायी हो जाता है। वह सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है तथा वाजपेययज्ञका फल प्राप्त कर लेता है॥ २७॥

स्वधा स्वधा स्वधेत्येवं यदि वारत्रयं स्मरेत्।
श्राद्धस्य फलमाप्नोति बलेश्च तर्पणस्य च॥ २८

यदि मनुष्य स्वधा, स्वधा, स्वधा—इस प्रकार तीन बार स्मरण कर ले तो वह श्राद्ध, बलिवैश्वदेव तथा तर्पणका फल प्राप्त कर लेता है॥ २८॥

श्राद्धकाले स्वधास्तोत्रं यः शृणोति समाहितः।
स लभेच्छ्राद्धसम्भूतं फलमेव न संशयः॥ २९

जो व्यक्ति श्राद्धके अवसरपर सावधान होकर स्वधास्तोत्रका श्रवण करता है, वह श्राद्धसे होनेवाला सम्पूर्ण फल प्राप्त कर लेता है, इसमें सन्देह नहीं है॥ २९॥

स्वधा स्वधा स्वधेत्येवं त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः।
प्रियां विनीतां स लभेत्साध्वीं पुत्रगुणान्विताम्॥ ३०

जो मनुष्य त्रिकाल सन्ध्याके समय स्वधा, स्वधा, स्वधा—ऐसा उच्चारण करता है; उसे पुत्रों तथा सद्गुणोंसे सम्पन्न, विनम्र, प्रिय तथा पतिव्रता स्त्री प्राप्त होती है॥ ३०॥

पितॄणां प्राणतुल्या त्वं द्विजजीवनरूपिणी।
श्राद्धाधिष्ठातृदेवी च श्राद्धादीनां फलप्रदा॥ ३१

हे देवि! आप पितरोंके लिये प्राणतुल्य और ब्राह्मणोंके लिये जीवनस्वरूपिणी हैं। आप श्राद्धकी अधिष्ठात्री देवी हैं और श्राद्ध आदिका फल प्रदान करनेवाली हैं॥ ३१॥

नित्या त्वं सत्यरूपासि पुण्यरूपासि सुव्रते।
आविर्भावतिरोभावौ सृष्टौ च प्रलये तव॥ ३२

हे सुव्रते! आप नित्य, सत्य तथा पुण्यमय विग्रहवाली हैं। आप सृष्टिके समय प्रकट होती हैं तथा प्रलयके समय तिरोहित हो जाती हैं॥ ३२॥

ॐ स्वस्तिश्च नमः स्वाहा स्वधा त्वं दक्षिणा तथा।
निरूपिताश्चतुर्वेदैः प्रशस्ताः कर्मिणां पुनः॥ ३३
कर्मपूर्त्यर्थमेवैता ईश्वरेण विनिर्मिताः।

आप ॐ, स्वस्ति, नमः, स्वाहा, स्वधा तथा दक्षिणा रूपमें विराजमान हैं। चारों वेदोंने आपकी इन मूर्तियोंको अत्यन्त प्रशस्त बतलाया है। प्राणियोंके कर्मोंकी पूर्तिके लिये ही परमेश्वरने आपकी ये मूर्तियाँ बनायी हैं॥ ३३½॥

इत्येवमुक्त्वा स ब्रह्मा ब्रह्मलोके स्वसंसदि॥ ३४
तस्थौ च सहसा सद्यः स्वधा साविर्बभूव ह।
तदा पितृभ्यः प्रददौ तामेव कमलाननाम्॥ ३५
तां सम्प्राप्य ययुस्ते च पितरश्च प्रहर्षिताः।
स्वधास्तोत्रमिदं पुण्यं यः शृणोति समाहितः।
स स्नातः सर्वतीर्थेषु वाञ्छितं फलमाप्नुयात्॥ ३६

ऐसा कहकर ब्रह्माजी ब्रह्मलोकमें अपनी सभामें विराजमान हो गये। उसी समय भगवती स्वधा सहसा प्रकट हो गयीं। तब ब्रह्माजीने उन कमलमुखी स्वधादेवीको पितरोंके लिये समर्पित कर दिया। उन भगवतीको पाकर पितरगण अत्यन्त हर्षित हुए और वहाँसे चले गये। जो मनुष्य एकाग्रचित्त होकर भगवती स्वधाके इस पवित्र स्तोत्रका श्रवण करता है, उसने मानो सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान कर लिया। वह इसके प्रभावसे वांछित फल प्राप्त कर लेता है॥ ३४—३६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे नारायणनारदसंवादे स्वधोपाख्यानवर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४४॥



अथ पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

भगवती दक्षिणाका उपाख्यान

श्रीनारायण उवाच

उक्तं स्वाहास्वधाख्यानं प्रशस्तं मधुरं परम्।
वक्ष्यामि दक्षिणाख्यानं सावधानो निशामय॥ १

गोपी सुशीला गोलोके पुरासीत्प्रेयसी हरेः।
राधा प्रधाना सध्रीची धन्या मान्या मनोहरा॥ २

अतीव सुन्दरी रामा सुभगा सुदती सती।
विद्यावती गुणवती चातिरूपवती सती॥ ३

कलावती कोमलाङ्गी कान्ता कमललोचना।
सुश्रोणी सुस्तनी श्यामा न्यग्रोधपरिमण्डिता॥ ४

ईषद्धास्यप्रसन्नास्या रत्नालङ्कारभूषिता।
श्वेतचम्पकवर्णाभा बिम्बोष्ठी मृगलोचना॥ ५

कामशास्त्रेषु निपुणा कामिनी हंसगामिनी।
भावानुरक्ता भावज्ञा कृष्णस्य प्रियभामिनी॥ ६

रसज्ञा रसिका रासे रासेशस्य रसोत्सुका।
उवासादक्षिणे क्रोडे राधायाः पुरतः पुरा॥ ७

सम्बभूवानम्रमुखो भयेन मधुसूदनः।
दृष्ट्वा राधां च पुरतो गोपीनां प्रवरोत्तमाम्॥ ८

कामिनीं रक्तवदनां रक्तपङ्कजलोचनाम्।
कोपेन कम्पिताङ्गीं च कोपेन स्फुरिताधराम्॥ ९

वेगेन तां तु गच्छन्तीं विज्ञाय तदनन्तरम्।
विरोधभीतो भगवानन्तर्धानं चकार सः॥ १०

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] मैंने भगवती स्वाहा तथा स्वधाका अत्यन्त मधुर तथा कल्याणकारी उपाख्यान बता दिया। अब मैं भगवती दक्षिणाका आख्यान कह रहा हूँ, सावधान होकर सुनिये॥ १॥

प्राचीनकालमें गोलोकमें भगवान् श्रीकृष्णकी प्रेयसी सुशीला नामक एक गोपी थी। परम धन्य, मान्य तथा मनोहर वह गोपी भगवती राधाकी प्रधान सखी थी। वह अत्यन्त सुन्दर, लक्ष्मीके लक्षणोंसे सम्पन्न, सौभाग्यवती, उज्ज्वल दाँतोंवाली, परम पतिव्रता, साध्वी, विद्या; गुण तथा रूपसे अत्यधिक सम्पन्न थी। वह विविध कलाओंमें निपुण, कोमल अंगोंवाली, आकर्षक, कमलनयनी, श्यामा, सुन्दर नितम्ब तथा वक्षःस्थलसे सुशोभित होती हुई वट-वृक्षोंसे घिरी रहती थी। उसका मुखमण्डल मन्द मुसकान तथा प्रसन्नतासे युक्त था, वह रत्नमय अलंकारोंसे सुशोभित थी, उसके शरीरकी कान्ति श्वेत चम्पाके समान थी, उसके ओष्ठ बिम्बाफलके समान रक्तवर्णके थे, मृगके सदृश उसके नेत्र थे, कामिनी तथा हंसके समान गतिवाली वह कामशास्त्रमें निपुण थी। भगवान् श्रीकृष्णकी प्रियभामिनी वह सुशीला उनके भावोंको भलीभाँति जानती थी तथा उनके भावोंसे सदा अनुरक्त रहती थी। रसज्ञानसे परिपूर्ण, रासक्रीडाकी रसिक तथा रासेश्वर श्रीकृष्णके प्रेमरसहेतु लालायित रहनेवाली वह गोपी सुशीला एक बार राधाके सामने ही भगवान् श्रीकृष्णके वाम अंकमें बैठ गयी॥ २—७॥

तब मधुसूदन श्रीकृष्णने गोपिकाओंमें परम श्रेष्ठ राधाकी ओर देखकर भयभीत हो अपना मुख नीचे कर लिया। उस समय कामिनी राधाका मुख लाल हो गया और उनके नेत्र रक्तकमलके समान हो गये। क्रोधसे उनके अंग काँप रहे थे तथा ओठ प्रस्फुरित हो रहे थे। तब उन राधाको बड़े वेगसे जाती देखकर उनके विरोधसे अत्यन्त डरे हुए भगवान् श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये॥ ८—१०॥

पलायन्तं च कान्तं च शान्तं सत्त्वं सुविग्रहम्।
विलोक्य कम्पिता गोप्यः सुशीलाद्यास्ततो भिया॥ ११

विलोक्य लम्पटं तत्र गोपीनां लक्षकोटयः।
पुटाञ्जलियुता भीता भक्तिनम्रात्मकन्धराः॥ १२

रक्ष रक्षेत्युक्तवन्त्यो देवीमिति पुनः पुनः।
ययुर्भयेन शरणं यस्याश्चरणपङ्कजे॥ १३

त्रिलक्षकोटयो गोपाः सुदामादय एव च।
ययुर्भयेन शरणं तत्पादाब्जे च नारद॥ १४

पलायन्तं च कान्तं च विज्ञाय परमेश्वरी।
पलायन्तीं सहचरीं सुशीलां च शशाप सा॥ १५

अद्यप्रभृति गोलोकं सा चेदायाति गोपिका।
सद्यो गमनमात्रेण भस्मसाच्च भविष्यति॥ १६

इत्येवमुक्त्वा तत्रैव देवदेवेश्वरी रुषा।
रासेश्वरी रासमध्ये रासेशमाजुहाव ह॥ १७

नालोक्य पुरतः कृष्णं राधा विरहकातरा।
युगकोटिसमं मेने क्षणभेदेन सुव्रता॥ १८

हे कृष्ण प्राणनाथेशागच्छ प्राणाधिकप्रिय।
प्राणाधिष्ठातृदेवेश प्राणा यान्ति त्वया विना॥ १९

स्त्रीगर्वः पतिसौभाग्याद्वर्धते च दिने दिने।
सुखं च विपुलं यस्मात्तं सेवेद्धर्मतः सदा॥ २०

पतिर्बन्धुः कुलस्त्रीणामधिदेवः सदागतिः।
परसम्पत्स्वरूपश्च मूर्तिमान् भोगदः सदा॥ २१

धर्मदः सुखदः शश्वत्प्रीतिदः शान्तिदः सदा।
सम्मानैर्दीप्यमानश्च मानदो मानखण्डनः॥ २२

सारात्सारतरः स्वामी बन्धूनां बन्धुवर्धनः।
न च भर्तुः समो बन्धुर्बन्धोर्बन्धुषु दृश्यते॥ २३

कान्तिमान्, शान्त स्वभाववाले, सत्त्वगुणसम्पन्न तथा सुन्दर विग्रहवाले भगवान् श्रीकृष्णको अन्तर्हित हुआ देखकर सुशीला आदि गोपियाँ भयसे काँपने लगीं। श्रीकृष्णको अन्तर्धान हुआ देखकर वे भयभीत लाखों-करोड़ों गोपियाँ भक्तिपूर्वक कन्धा झुकाकर और दोनों हाथ जोड़कर 'रक्षा कीजिये-रक्षा कीजिये'—ऐसा भगवती राधासे बार-बार कहने लगीं और उन राधाके चरणकमलमें भयपूर्वक शरणागत हो गयीं। हे नारद! वहाँके तीन लाख करोड़ सुदामा आदि गोप भी भयभीत होकर उन राधाके चरण-कमलकी शरणमें गये॥ ११—१४॥

परमेश्वरी राधाने अपने कान्त श्रीकृष्णको अन्तर्धान तथा सहचरी सुशीलाको पलायन करते देखकर उन्हें शाप दे दिया कि यदि गोपिका सुशीला आजसे गोलोकमें आयेगी, तो वह आते ही भस्मसात् हो जायगी॥ १५-१६॥

ऐसा कहकर देवदेवेश्वरी रासेश्वरी राधा रोषपूर्वक रासमण्डलके मध्य रासेश्वर भगवान् श्रीकृष्णको पुकारने लगीं॥ १७॥

श्रीकृष्णको समक्ष न देखकर राधिकाजी विरहसे व्याकुल हो गयीं। उन परम साध्वीको एक-एक क्षण करोड़ों युगोंके समान प्रतीत होने लगा। उन्होंने श्रीकृष्णसे प्रार्थना की—हे कृष्ण! हे प्राणनाथ! हे ईश! आ जाइये। हे प्राणोंसे अधिक प्रिय तथा प्राणके अधिष्ठाता देवेश्वर! आपके बिना मेरे प्राण निकल रहे हैं॥ १८-१९॥

पतिके सौभाग्यसे स्त्रियोंका स्वाभिमान दिन-प्रतिदिन बढ़ता रहता है और उन्हें महान् सुख प्राप्त होता है। अतः स्त्रीको सदा धर्मपूर्वक पतिकी सेवा करनी चाहिये॥ २०॥

कुलीन स्त्रियोंके लिये पति ही बन्धु, अधिदेवता, आश्रय, परम सम्पत्तिस्वरूप तथा भोग प्रदान करनेवाला साक्षात् विग्रह है॥ २१॥

वही स्त्रीके लिये धर्म, सुख, निरन्तर प्रीति, सदा शान्ति तथा सम्मान प्रदान करनेवाला; आदरसे देदीप्यमान होनेवाला और मानभंग भी करनेवाला है। पति ही स्त्रीके लिये परम सार है और बन्धुओंमें बन्धुभावको बढ़ानेवाला है। समस्त बन्धु-बान्धवोंमें पतिके समान कोई बन्धु दिखायी नहीं देता॥ २२-२३॥

भरणादेव भर्ता च पालनात्पतिरुच्यते।
शरीरेशाच्च स स्वामी कामदः कान्त उच्यते॥ २४

बन्धुश्च सुखवृद्ध्या च प्रीतिदानात्प्रियः स्मृतः।
ऐश्वर्यदानादीशश्च प्राणेशात्प्राणनायकः॥ २५

रतिदानाच्च रमणः प्रियो नास्ति प्रियात्परः।
पुत्रस्तु स्वामिनः शुक्राज्जायते तेन स प्रियः॥ २६

शतपुत्रात्परः स्वामी कुलजानां प्रियः सदा।
असत्कुलप्रसूता या कान्तं विज्ञातुमक्षमा॥ २७

स्नानं च सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दक्षिणा।
प्रादक्षिण्यं पृथिव्याश्च सर्वाणि च तपांसि च॥ २८

सर्वाण्येव व्रतादीनि महादानानि यानि च।
उपोषणानि पुण्यानि यानि यानि श्रुतानि च॥ २९

गुरुसेवा विप्रसेवा देवसेवादिकं च यत्।
स्वामिनः पादसेवायाः कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥ ३०

गुरुविप्रेन्द्रदेवेषु सर्वेभ्यश्च पतिर्गुरुः।
विद्यादाता यथा पुंसां कुलजानां तथा प्रियः॥ ३१

गोपीनां लक्षकोटीनां गोपानां च तथैव च।
ब्रह्माण्डानामसंख्यानां तत्रस्थानां तथैव च॥ ३२

विश्वादिगोलकान्तानामीश्वरी यत्प्रसादतः।
अहं न जाने तं कान्तं स्त्रीस्वभावो दुरत्ययः॥ ३३

इत्युक्त्वा राधिका कृष्णं तत्र दध्यौ स्वभक्तितः।
रुरोद प्रेम्णा सा राधा नाथ नाथेति चाब्रवीत्॥ ३४
दर्शनं देहि रमण दीना विरहदुःखिता।

वह स्त्रीका भरण करनेके कारण 'भर्ता', पालन करनेके कारण 'पति', उसके शरीरका शासक होनेके कारण 'स्वामी' तथा उसकी कामनाएँ पूर्ण करनेके कारण 'कान्त' कहा जाता है। वह सुखकी वृद्धि करनेसे 'बन्धु', प्रीति प्रदान करनेसे 'प्रिय', ऐश्वर्य प्रदान करनेसे 'ईश', प्राणका स्वामी होनेसे 'प्राणनायक' और रतिसुख प्रदान करनेसे 'रमण' कहा गया है। स्त्रियोंके लिये पतिसे बढ़कर दूसरा कोई प्रिय नहीं है। पतिके शुक्रसे पुत्र उत्पन्न होता है, इसलिये वह प्रिय होता है॥ २४—२६॥

उत्तम कुलमें उत्पन्न स्त्रियोंके लिये उनका पति सदा सौ पुत्रोंसे भी अधिक प्रिय होता है। जो असत्-कुलमें उत्पन्न स्त्री है, वह पतिके महत्त्वको समझनेमें सर्वथा असमर्थ रहती है॥ २७॥

सभी तीर्थोंमें स्नान, सम्पूर्ण यज्ञोंमें दक्षिणादान, पृथ्वीकी प्रदक्षिणा, सम्पूर्ण तप, सभी प्रकारके व्रत और जो महादान आदि हैं, जो-जो पुण्यप्रद उपवास आदि प्रसिद्ध हैं और गुरुसेवा, विप्रसेवा तथा देव-पूजन आदि जो भी शुभ कृत्य हैं, वे सब पतिके चरणकी सेवाकी सोलहवीं कलाके भी बराबर नहीं हैं॥ २८—३०॥

गुरु, ब्राह्मण और देवता—इन सभीकी अपेक्षा स्त्रीके लिये पति ही श्रेष्ठ है। जिस प्रकार पुरुषोंके लिये विद्याका दान करनेवाला गुरु श्रेष्ठ है; उसी प्रकार कुलीन स्त्रियोंके लिये पति श्रेष्ठ है॥ ३१॥

जिनके अनुग्रहसे मैं लाखों-करोड़ गोपियों, गोपों, असंख्य ब्रह्माण्डों, वहाँके निवासियों तथा अखिल ब्रह्माण्ड-गोलककी ईश्वरी बनी हूँ, अपने उन कान्त श्रीकृष्णका रहस्य मैं नहीं जानती। स्त्रियोंका स्वभाव अत्यन्त दुर्लंघ्य है॥ ३२-३३॥

ऐसा कहकर श्रीराधा भक्तिपूर्वक श्रीकृष्णका ध्यान करने लगीं। विरहसे दुःखित तथा दीन वे राधिका प्रेमके कारण रो रही थीं और 'हे नाथ! हे रमण! मुझे दर्शन दीजिये'—ऐसा कह रही थीं॥ ३४½॥

अथ सा दक्षिणा देवी ध्वस्ता गोलोकतो मुने॥ ३५

सुचिरं च तपस्तप्त्वा विवेश कमलातनौ।
अथ देवादयः सर्वे यज्ञं कृत्वा सुदुष्करम्॥ ३६

नालभंस्ते फलं तेषां विषण्णाः प्रययुर्विधिम्।
विधिर्निवेदनं श्रुत्वा देवादीनां जगत्पतिम्॥ ३७

दध्यौ च सुचिरं भक्त्या प्रत्यादेशमवाप सः।
नारायणश्च भगवान् महालक्ष्याश्च देहतः॥ ३८

विनिष्कृष्य मर्त्यलक्ष्मीं ब्रह्मणे दक्षिणां ददौ।
ब्रह्मा ददौ तां यज्ञाय पूरणार्थं च कर्मणाम्॥ ३९

यज्ञः सम्पूज्य विधिवत्तां तुष्टाव तदा मुदा।
तप्तकाञ्चनवर्णाभां चन्द्रकोटिसमप्रभाम्॥ ४०

अतीव कमनीयां च सुन्दरीं सुमनोहराम्।
कमलास्यां कोमलाङ्गीं कमलायतलोचनाम्॥ ४१

कमलासनपूज्यां च कमलाङ्गसमुद्भवाम्।
वह्निशुद्धांशुकाधानां बिम्बोष्ठीं सुदतीं सतीम्॥ ४२

बिभ्रतीं कबरीभारं मालतीमाल्यसंयुतम्।
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां रत्नभूषणभूषिताम्॥ ४३

सुवेषाढ्यां च सुस्नातां मुनिमानसमोहिनीम्।
कस्तूरीबिन्दुभिः सार्धं सुगन्धिचन्दनेन्दुभिः॥ ४४

सिन्दूरबिन्दुनाल्पेनाप्यलकाधःस्थलोज्ज्वलाम्।
सुप्रशस्तनितम्बाढ्यां बृहच्छ्रोणिपयोधराम्॥ ४५

हे मुने! इसके बाद राधाके द्वारा गोलोकसे च्युत सुशीला नामक वह गोपी दक्षिणा नामसे प्रसिद्ध हुई। दीर्घकालतक तपस्या करके उसने भगवती लक्ष्मीके विग्रहमें स्थान प्राप्त कर लिया। अत्यन्त दुष्कर यज्ञ करनेपर भी जब देवताओंको यज्ञफल नहीं प्राप्त हुआ, तब वे उदास होकर ब्रह्माजीके पास गये॥ ३५-३६॥

देवताओंकी प्रार्थना सुनकर ब्रह्माजीने बहुत समयतक भक्तिपूर्वक जगत्पति भगवान् श्रीहरिका ध्यान किया। अन्तमें उन्हें प्रत्यादेश प्राप्त हुआ। भगवान् नारायणने महालक्ष्मीके विग्रहसे मर्त्यलक्ष्मीको प्रकट करके और उसका नाम दक्षिणा रखकर ब्रह्माजीको सौंप दिया। ब्रह्माजीने भी यज्ञकार्योंकी सम्पन्नताके लिये उन देवी दक्षिणाको यज्ञपुरुषको समर्पित कर दिया। तब यज्ञपुरुषने प्रसन्नतापूर्वक उन देवी दक्षिणाकी विधिवत् पूजा करके उनकी स्तुति की॥ ३७—३९½॥

उन भगवती दक्षिणाका वर्ण तपाये हुए सोनेके समान था; उनके विग्रहकी कान्ति करोड़ों चन्द्रोंके तुल्य थी; वे अत्यन्त कमनीय, सुन्दर तथा मनोहर थीं; उनका मुख कमलके समान था; उनके अंग अत्यन्त कोमल थे; कमलके समान उनके विशाल नेत्र थे; कमलके आसनपर पूजित होनेवाली वे भगवती कमलाके शरीरसे प्रकट हुई थीं, उन्होंने अग्निके समान शुद्ध वस्त्र धारण कर रखे थे; उन साध्वीके ओष्ठ बिम्बाफलके समान थे; उनके दाँत अत्यन्त सुन्दर थे; उन्होंने अपने केशपाशमें मालतीके पुष्पोंकी माला धारण कर रखी थी; उनके प्रसन्नतायुक्त मुखमण्डलपर मन्द मुसकान व्याप्त थी; वे रत्नमय आभूषणोंसे अलंकृत थीं; उनका वेष अत्यन्त सुन्दर था; वे विधिवत् स्नान किये हुए थीं; वे मुनियोंके भी मनको मोह लेती थीं; कस्तूरीमिश्रित सुगन्धित चन्दनसे बिन्दीके रूपमें अर्धचन्द्राकार तिलक उनके ललाटपर सुशोभित हो रहा था; केशोंके नीचेका भाग (सीमन्त) सिन्दूरकी छोटी-छोटी बिन्दियोंसे अत्यन्त प्रकाशमान था। सुन्दर नितम्ब, बृहत् श्रोणी तथा विशाल वक्षःस्थलसे वे शोभित हो रही थीं; उनका विग्रह कामदेवका

कामदेवाधाररूपां कामबाणप्रपीडिताम्।
तां दृष्ट्वा रमणीयां च यज्ञो मूर्च्छामवाप ह॥ ४६

पत्नीं तामेव जग्राह विधिबोधितपूर्वकम्।
दिव्यं वर्षशतं चैव तां गृहीत्वा तु निर्जने॥ ४७

यज्ञो रेमे मुदा युक्तो रामेशो रमया सह।
गर्भं दधार सा देवी दिव्यं द्वादशवर्षकम्॥ ४८

ततः सुषाव पुत्रं च फलं वै सर्वकर्मणाम्।
परिपूर्णे कर्मणि च तत्पुत्रः फलदायकः॥ ४९

यज्ञो दक्षिणया सार्धं पुत्रेण च फलेन च।
कर्मिणां फलदाता चेत्येवं वेदविदो विदुः॥ ५०

यज्ञश्च दक्षिणां प्राप्य पुत्रं च फलदायकम्।
फलं ददौ च सर्वेभ्यः कर्मणां चैव नारद॥ ५१

तदा देवादयस्तुष्टाः परिपूर्णमनोरथाः।
स्वस्थाने ते ययुः सर्वे धर्मवक्त्रादिदं श्रुतम्॥ ५२

कृत्वा कर्म च कर्ता च तूर्णं दद्याच्च दक्षिणाम्।
तत्क्षणं फलमाप्नोति वेदैरुक्तमिदं मुने॥ ५३

कर्मी कर्मणि पूर्णे च तत्क्षणे यदि दक्षिणाम्।
न दद्याद् ब्राह्मणेभ्यश्च दैवेनाज्ञानतोऽथवा॥ ५४

मुहूर्ते समतीते तु द्विगुणा सा भवेद् ध्रुवम्।
एकरात्रे व्यतीते तु भवेच्छतगुणा च सा॥ ५५

त्रिरात्रे तच्छतगुणा सप्ताहे द्विगुणा ततः।
मासे लक्षगुणा प्रोक्ता ब्राह्मणानां च वर्धते॥ ५६

संवत्सरे व्यतीते तु सा त्रिकोटिगुणा भवेत्।
कर्म तद्यजमानानां सर्वं वै निष्फलं भवेत्॥ ५७

आधारस्वरूप था और वे कामदेवके बाणसे अत्यन्त व्यथित थीं—ऐसी उन रमणीया दक्षिणाको देखकर यज्ञपुरुष मूर्च्छित हो गये। पुनः ब्रह्माजीके कथनानुसार उन्होंने भगवती दक्षिणाको पत्नीरूपमें स्वीकार कर लिया॥ ४०—४६½ ॥

तत्पश्चात् यज्ञपुरुष उन रामेशने रमारूपिणी भगवती दक्षिणाको निर्जन स्थानमें ले जाकर उनके साथ दिव्य सौ वर्षोंतक आनन्दपूर्वक रमण किया। वे देवी दक्षिणा दिव्य बारह वर्षोंतक गर्भ धारण किये रहीं। तत्पश्चात् उन्होंने सभी कर्मोंके फलरूप पुत्रको जन्म दिया। कर्मके परिपूर्ण होनेपर वही पुत्र फल प्रदान करनेवाला होता है। भगवान् यज्ञ भगवती दक्षिणा तथा अपने पुत्र फलसे युक्त होनेपर ही कर्म करनेवालोंको फल प्रदान करते हैं—ऐसा वेदवेत्ता पुरुषोंने कहा है॥ ४७—५०॥

हे नारद! इस प्रकार देवी दक्षिणा तथा फलदायक पुत्रको प्राप्तकर यज्ञपुरुष सभी प्राणियोंको उनके कर्मोंका फल प्रदान करने लगे। तदनन्तर परिपूर्ण मनोरथवाले वे सभी देवगण प्रसन्न होकर अपने-अपने स्थानको चले गये—ऐसा मैंने धर्मदेवके मुखसे सुना है॥ ५१-५२॥

हे मुने! कर्ताको चाहिये कि कर्म करके तुरंत दक्षिणा दे दे। ऐसा करनेसे कर्ताको उसी क्षण फल प्राप्त हो जाता है—ऐसा वेदोंने कहा है॥ ५३॥

कर्मके सम्पन्न हो जानेपर यदि कर्ता दैववश या अज्ञानसे उसी क्षण ब्राह्मणोंको दक्षिणा नहीं दे देता, तो एक मुहूर्त बीतनेपर वह दक्षिणा निश्चय ही दो गुनी हो जाती है और एक रात बीतनेपर वह सौ गुनी हो जाती है। वह दक्षिणा तीन रात बीतनेके बाद उसकी सौ गुनी और एक सप्ताह बीतनेपर उसकी दो सौ गुनी हो जाती है। एक माहके बाद वह लाख गुनी बतायी गयी है। इस प्रकार ब्राह्मणोंकी दक्षिणा बढ़ती जाती है और एक वर्ष बीत जानेपर वह तीन करोड़ गुनी हो जाती है, जिससे यजमानोंका सारा कर्म भी व्यर्थ हो जाता है॥ ५४—५७॥

स च ब्रह्मस्वहारी च न कर्मार्होऽशुचिर्नरः।
दरिद्रो व्याधियुक्तश्च तेन पापेन पातकी॥ ५८

तद्‌गृहाद्याति लक्ष्मीश्च शापं दत्त्वा सुदारुणम्।
पितरो नैव गृह्णन्ति तद्दत्तं श्राद्धतर्पणम्॥ ५९

एवं सुराश्च तत्पूजां तद्दत्तामग्निराहुतिम्।
दत्तं न दीयते दानं ग्रहीता नैव याचते॥ ६०

उभौ तौ नरके यातश्छिन्नरज्जौ यथा घटः।
नार्पयेद्यजमानश्चेद्याचितश्चापि दक्षिणाम्॥ ६१

भवेद् ब्रह्मस्वापहारी कुम्भीपाकं व्रजेद् ध्रुवम्।
वर्षलक्षं वसेत्तत्र यमदूतेन ताडितः॥ ६२

ततो भवेत्स चाण्डालो व्याधियुक्तो दरिद्रकः।
पातयेत्पुरुषान्सप्त पूर्वांश्च सप्त जन्मतः॥ ६३

इत्येवं कथितं विप्र किं भूयः श्रोतुमिच्छसि।

नारद उवाच

यत्कर्म दक्षिणाहीनं को भुङ्क्ते तत्फलं मुने॥ ६४

पूजाविधिं दक्षिणायाः पुरा यज्ञकृतं वद।

श्रीनारायण उवाच

कर्मणोऽदक्षिणस्यैव कुत एव फलं मुने॥ ६५

सदक्षिणे कर्मणि च फलमेव प्रवर्तते।
अदक्षिणं च यत्कर्म तद्भुङ्क्ते च बलिर्मुने॥ ६६
बलये तत्प्रदत्तं च वामनेन पुरा मुने।

ब्राह्मणका धन हरनेवाला वह मनुष्य अपवित्र हो जाता है तथा किसी भी कर्मानुष्ठानके योग्य नहीं रह जाता। उस पापके कारण वह पापी मनुष्य रोगी तथा दरिद्र रहता है। भगवती लक्ष्मी उसे दारुण शाप देकर उसके घरसे चली जाती हैं। उसके द्वारा प्रदत्त श्राद्ध तथा तर्पणको पितर ग्रहण नहीं करते। उसी प्रकार देवतागण उसकी पूजा तथा उसके द्वारा अग्निमें प्रदत्त आहुतिको स्वीकार नहीं करते॥ ५८-५९½ ॥

यदि यज्ञके समय कर्ताके द्वारा संकल्पित दान नहीं दिया गया और प्रतिग्रह लेनेवालेने उसे माँगा भी नहीं, तो वे दोनों ही (यजमान और ब्राह्मण) नरकमें उसी प्रकार गिरते हैं, जैसे रस्सी टूट जानेपर घड़ा॥ ६०½ ॥

ब्राह्मणके याचना करनेपर भी यदि यजमान उसे दक्षिणा नहीं देता, तो वह ब्राह्मणका धन हरण करनेवाला कहा जाता है और वह निश्चितरूपसे कुम्भीपाक नरकमें पड़ता है। वहाँ यमदूतोंके द्वारा पीटा जाता हुआ वह एक लाख वर्षतक रहता है। उसके बाद वह चाण्डाल होकर सदा दरिद्र तथा रोगी बना रहता है। वह अपनी सात पीढ़ी पूर्वके तथा सात पीढ़ी बादके पुरुषोंको नरकमें गिरा देता है। हे विप्र! मैंने यह सब कह दिया। अब आप पुनः क्या सुनना चाहते हैं?॥ ६१—६३½ ॥

नारदजी बोले—हे मुने! जो कर्म बिना दक्षिणाके किया जाता है, उसका फल कौन भोगता है? साथ ही, यज्ञपुरुषके द्वारा पूर्वकालमें की गयी भगवती दक्षिणाकी पूजाविधिको भी मुझे बतलाइये॥ ६४½ ॥

श्रीनारायण बोले—हे मुने! दक्षिणाविहीन कर्मका फल हो ही कहाँ सकता है? दक्षिणायुक्त कर्ममें ही फल-प्रदानका सामर्थ्य होता है। हे मुने! जो कर्म बिना दक्षिणाके सम्पन्न होता है, उसके फलका भोग राजा बलि करते हैं। हे मुने! पूर्वकालमें भगवान् वामन राजा बलिके लिये वैसा कर्म अर्पण कर चुके हैं॥ ६५-६६½ ॥

अश्रोत्रियः श्राद्धद्रव्यमश्रद्धादानमेव च॥ ६७
वृषलीपतिविप्राणां पूजाद्रव्यादिकं च यत्।
असद्द्विजैः कृतं यज्ञमशुचेः पूजनं च यत्॥ ६८
गुरावभक्तस्य कर्म बलिर्भुङ्क्ते न संशयः।
दक्षिणायाश्च यद्ध्यानं स्तोत्रं पूजाविधिक्रमम्॥ ६९
तत्सर्वं कण्वशाखोक्तं प्रवक्ष्यामि निशामय।
पुरा सम्प्राप्य तां यज्ञः कर्मदक्षां च दक्षिणाम्॥ ७०
मुमोहास्याः स्वरूपेण तुष्टाव कामकातरः।

यज्ञ उवाच

पुरा गोलोकगोपी त्वं गोपीनां प्रवरा वरा॥ ७१
राधासमा तत्सखी च श्रीकृष्णप्रेयसी प्रिया।
कार्तिकीपूर्णिमायां तु रासे राधामहोत्सवे॥ ७२
आविर्भूता दक्षिणांसाल्लक्ष्म्याश्च तेन दक्षिणा।
पुरा त्वं च सुशीलाख्या ख्याता शीलेन शोभने॥ ७३
लक्ष्मीदक्षांसभागात्त्वं राधाशापाच्च दक्षिणा।
गोलोकात्त्वं परिभ्रष्टा मम भाग्यादुपस्थिता॥ ७४
कृपां कुरु महाभागे मामेव स्वामिनं कुरु।
कर्मिणां कर्मणां देवी त्वमेव फलदा सदा॥ ७५
त्वया विना च सर्वेषां सर्वं कर्म च निष्फलम्।
त्वया विना तथा कर्म कर्मिणां च न शोभते॥ ७६
ब्रह्मविष्णुमहेशाश्च दिक्पालादय एव च।
कर्मणश्च फलं दातुं न शक्ताश्च त्वया विना॥ ७७

अश्रोत्रिय व्यक्तिके द्वारा श्रद्धाहीन होकर दिया गया श्राद्धद्रव्य तथा दान आदि, शूद्रापति ब्राह्मणोंका पूजा-द्रव्य आदि, सदाचारहीन विप्रोंद्वारा किया गया यज्ञ, अपवित्र व्यक्तिका पूजन और गुरुभक्तिसे हीन मनुष्यके कर्मफलको राजा बलि आहारके रूपमें ग्रहण करते हैं, इसमें संशय नहीं है॥ ६७-६८½ ॥

[हे नारद!] भगवती दक्षिणाका जो भी ध्यान, स्तोत्र तथा पूजाविधिका क्रम आदि है, वह सब कण्वशाखामें वर्णित है, अब मैं उसे बताऊँगा, ध्यानपूर्वक सुनिये॥ ६९½ ॥

पूर्वसमयमें कर्मका फल प्रदान करनेमें दक्ष उन भगवती दक्षिणाको प्राप्त करके वे यज्ञपुरुष कामपीड़ित होकर उनके स्वरूपपर मोहित हो गये और उनकी स्तुति करने लगे॥ ७०½ ॥

यज्ञ बोले—[हे महाभागे!] तुम पूर्वकालमें गोलोककी एक गोपी थी और गोपियोंमें परम श्रेष्ठ थी। श्रीकृष्ण तुमसे अत्यधिक प्रेम करते थे और तुम राधाके समान ही उन श्रीकृष्णकी प्रिय सखी थी॥ ७१½ ॥

एक बार कार्तिकपूर्णिमाको राधामहोत्सवके अवसरपर रासलीलामें तुम भगवती लक्ष्मीके दक्षिणांशसे प्रकट हो गयी थी, उसी कारण तुम्हारा नाम दक्षिणा पड़ गया। हे शोभने! इससे भी पहले अपने उत्तम शीलके कारण तुम सुशीला नामसे प्रसिद्ध थी। तुम भगवती राधिकाके शापसे गोलोकसे च्युत होकर और पुनः देवी लक्ष्मीके दक्षिणांशसे आविर्भूत हो अब देवी दक्षिणाके रूपमें मेरे सौभाग्यसे मुझे प्राप्त हुई हो। हे महाभागे! मुझपर कृपा करो और मुझे ही अपना स्वामी बना लो॥ ७२—७४½ ॥

तुम्हीं यज्ञ करनेवालोंको उनके कर्मोंका सदा फल प्रदान करनेवाली देवी हो। तुम्हारे बिना सम्पूर्ण प्राणियोंका सारा कर्म निष्फल हो जाता है और तुम्हारे बिना अनुष्ठानकर्ताओंका कर्म शोभा नहीं पाता है॥ ७५-७६ ॥

ब्रह्मा, विष्णु, महेश, दिक्पाल आदि भी तुम्हारे बिना प्राणियोंको कर्मका फल प्रदान करनेमें समर्थ नहीं हैं॥ ७७॥

कर्मरूपी स्वयं ब्रह्मा फलरूपी महेश्वरः।
यज्ञरूपी विष्णुरहं त्वमेषां साररूपिणी॥ ७८

फलदातृपरं ब्रह्म निर्गुणा प्रकृतिः परा।
स्वयं कृष्णश्च भगवान् स च शक्तस्त्वया सह॥ ७९

त्वमेव शक्तिः कान्ते मे शश्वज्जन्मनि जन्मनि।
सर्वकर्मणि शक्तोऽहं त्वया सह वरानने॥ ८०

इत्युक्त्वा च पुरस्तस्थौ यज्ञाधिष्ठातृदेवता।
तुष्टा बभूव सा देवी भेजे तं कमलाकला॥ ८१

इदं च दक्षिणास्तोत्रं यज्ञकाले च यः पठेत्।
फलं च सर्वयज्ञानां प्राप्नोति नात्र संशयः॥ ८२

राजसूये वाजपेये गोमेधे नरमेधके।
अश्वमेधे लाङ्गले च विष्णुयज्ञे यशस्करे॥ ८३

धनदे भूमिदे पूर्ते फलदे गजमेधके।
लोहयज्ञे स्वर्णयज्ञे रत्नयज्ञेऽथ ताम्रके॥ ८४

शिवयज्ञे रुद्रयज्ञे शक्रयज्ञे च बन्धुके।
वृष्टौ वरुणयागे च कण्डके वैरिमर्दने॥ ८५

शुचियज्ञे धर्मयज्ञेऽध्वरे च पापमोचने।
ब्रह्माणीकर्मयागे च योनियागे च भद्रके॥ ८६

एतेषां च समारम्भे इदं स्तोत्रं च यः पठेत्।
निर्विघ्नेन च तत्कर्म सर्वं भवति निश्चितम्॥ ८७

इदं स्तोत्रं च कथितं ध्यानं पूजाविधिं शृणु।
शालग्रामे घटे वापि दक्षिणां पूजयेत्सुधीः॥ ८८

लक्ष्मीदक्षांससम्भूतां दक्षिणां कमलाकलाम्।
सर्वकर्मसुदक्षां च फलदां सर्वकर्मणाम्॥ ८९

विष्णोः शक्तिस्वरूपां च पूजितां वन्दितां शुभाम्।
शुद्धिदां शुद्धिरूपां च सुशीलां शुभदां भजे॥ ९०

ब्रह्मा स्वयं कर्मरूप हैं, महेश्वर फलरूप हैं और मैं विष्णु यज्ञरूप हूँ, इन सबमें तुम ही साररूपा हो॥ ७८॥

फल प्रदान करनेवाले परब्रह्म, गुणरहित पराप्रकृति तथा स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण तुम्हारे ही सहयोगसे शक्तिमान् हैं॥ ७९॥

हे कान्ते! जन्म-जन्मान्तरमें तुम्हीं सदा मेरी शक्ति रही हो। हे वरानने! तुम्हारे साथ रहकर ही मैं सारा कर्म करनेमें समर्थ हूँ॥ ८०॥

ऐसा कहकर यज्ञके अधिष्ठातृदेवता भगवान् यज्ञपुरुष दक्षिणाके समक्ष स्थित हो गये। तब भगवती कमलाकी कलास्वरूपिणी देवी दक्षिणा प्रसन्न हो गयीं और उन्होंने यज्ञपुरुषका वरण कर लिया॥ ८१॥

जो मनुष्य यज्ञके अवसरपर भगवती दक्षिणाके इस स्तोत्रका पाठ करता है, वह सम्पूर्ण यज्ञोंका फल प्राप्त कर लेता है; इसमें संशय नहीं है॥ ८२॥

राजसूय, वाजपेय, गोमेध, नरमेध, अश्वमेध, लांगलयज्ञ, यश बढ़ानेवाला विष्णुयज्ञ, धनदायक और भूमि देनेवाला पूर्तयज्ञ, फल प्रदान करनेवाला गजमेध, लोहयज्ञ, स्वर्णयज्ञ, रत्नयज्ञ, ताम्रयज्ञ, शिवयज्ञ, रुद्रयज्ञ, इन्द्रयज्ञ, बन्धुकयज्ञ, वृष्टिकारक वरुणयज्ञ, वैरिमर्दन कण्डकयज्ञ, शुचियज्ञ, धर्मयज्ञ, पापमोचनयज्ञ, ब्रह्माणीकर्मयज्ञ और कल्याणकारी अम्बायज्ञ—इन सभीके आरम्भमें जो व्यक्ति इस स्तोत्रका पाठ करता है, उसका सारा यज्ञकर्म निर्विघ्नरूपसे अवश्य ही सम्पन्न हो जाता है॥ ८३—८७॥

यह स्तोत्र मैंने कह दिया, अब ध्यान और पूजा-विधि सुनो। शालग्राममें अथवा कलशपर भगवती दक्षिणाका आवाहन करके विद्वान्‌को उनकी पूजा करनी चाहिये॥ ८८॥

[उनका ध्यान इस प्रकार करना चाहिये—] भगवती लक्ष्मीके दाहिने स्कन्धसे आविर्भूत होनेके कारण दक्षिणा नामसे विख्यात ये देवी साक्षात् कमलाकी कला हैं, सभी कर्मोंमें अत्यन्त प्रवीण हैं, सम्पूर्ण कर्मोंका फल प्रदान करनेवाली हैं, भगवान् विष्णुकी शक्तिस्वरूपा हैं, सबकी वन्दनीय तथा पूजनीय, मंगलमयी, शुद्धिदायिनी, शुद्धिस्वरूपिणी, शोभनशीलवाली और शुभदायिनी हैं—ऐसी देवीकी मैं आराधना करता हूँ॥ ८९-९०॥

ध्यात्वानेनैव वरदां मूलेन पूजयेत्सुधीः।
दत्त्वा पाद्यादिकं देव्यै वेदोक्तेनैव नारद॥ ९१

ॐ श्रीं क्लीं ह्रीं दक्षिणायै स्वाहेति च विचक्षणः।
पूजयेद्विधिवद् भक्त्या दक्षिणां सर्वपूजिताम्॥ ९२

हे नारद! इस प्रकार ध्यान करके विद्वान् पुरुषको मूलमन्त्रसे इन वरदायिनी देवीकी पूजा करनी चाहिये। वेदोक्त मन्त्रके द्वारा देवी दक्षिणाको पाद्य आदि अर्पण करके '**ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं दक्षिणायै स्वाहा**'—इस मूल मन्त्रसे बुद्धिमान् व्यक्तिको सभी प्राणियोंद्वारा पूजित भगवती दक्षिणाकी भक्तिपूर्वक विधिवत् पूजा करनी चाहिये॥ ९१-९२॥

इत्येवं कथितं ब्रह्मन् दक्षिणाख्यानमेव च।
सुखदं प्रीतिदं चैव फलदं सर्वकर्मणाम्॥ ९३

हे ब्रह्मन्! इस प्रकार मैंने भगवती दक्षिणाका यह आख्यान आपसे कह दिया; यह सुख, प्रीति तथा सम्पूर्ण कर्मोंका फल प्रदान करनेवाला है॥ ९३॥

इदं च दक्षिणाख्यानं यः शृणोति समाहितः।
अङ्गहीनं च तत्कर्म न भवेद्भारते भुवि॥ ९४

अपुत्रो लभते पुत्रं निश्चितं च गुणान्वितम्।
भार्याहीनो लभेद्भार्यां सुशीलां सुन्दरीं पराम्॥ ९५

वरारोहां पुत्रवतीं विनीतां प्रियवादिनीम्।
पतिव्रतां च शुद्धां च कुलजां च वधूं वराम्॥ ९६

विद्याहीनो लभेद्विद्यां धनहीनो लभेद्धनम्।
भूमिहीनो लभेद्भूमिं प्रजाहीनो लभेत्प्रजाम्॥ ९७

सङ्कटे बन्धुविच्छेदे विपत्तौ बन्धने तथा।
मासमेकमिदं श्रुत्वा मुच्यते नात्र संशयः॥ ९८

पृथ्वीतलपर भारतवर्षमें जो मनुष्य सावधान होकर देवी दक्षिणाके इस आख्यानका श्रवण करता है, उसका कोई भी कार्य अपूर्ण नहीं रहता। पुत्रहीन व्यक्ति गुणी पुत्र तथा भार्याहीन पुरुष परम सुन्दर तथा सुशील पत्नी प्राप्त कर लेता है; साथ ही वह सुन्दर, पुत्रवती, विनम्र, प्रियभाषिणी, पतिव्रता, पवित्र तथा कुलीन श्रेष्ठ पुत्रवधू भी प्राप्त कर लेता है और विद्याहीन विद्या प्राप्त कर लेता है तथा धनहीन धन पा जाता है। भूमिहीन व्यक्तिको भूमि उपलब्ध हो जाती है और सन्तानहीन व्यक्ति सन्तान प्राप्त कर लेता है। संकट, बन्धुविच्छेद, विपत्ति तथा बन्धनकी स्थितिमें एक महीनेतक इस आख्यानका श्रवण करके मनुष्य इनसे मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं है॥ ९४—९८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे नारायणनारदसंवादे दक्षिणोपाख्यानवर्णनं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४५॥

अथ षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

भगवती षष्ठीकी महिमाके प्रसंगमें राजा प्रियव्रतकी कथा

नारद उवाच

अनेकानां च देवीनां श्रुतमाख्यानमुत्तमम्।
अन्यासां चरितं ब्रह्मन् वद वेदविदांवर॥ १

नारदजी बोले—हे ब्रह्मन्! हे वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! मैंने अनेक उत्तम देवियोंका उत्तम आख्यान सुन लिया; अब आप दूसरी देवियोंके चरित्रका वर्णन कीजिये॥ १॥

श्रीनारायण उवाच

सर्वासां चरितं विप्र वेदेषु च पृथक्पृथक्।
पूर्वोक्तानां च देवीनां कासां श्रोतुमिहेच्छसि॥ २

श्रीनारायण बोले—हे विप्र! पूर्वकालमें कही गयी सभी देवियोंके चरित्र वेदोंमें अलग-अलग बताये गये हैं, आप इनमेंसे किनका चरित्र सुनना चाहते हैं?॥ २॥

नारद उवाच

षष्ठी मङ्गलचण्डी च मनसा प्रकृतेः कला।
उत्पत्तिमासां चरितं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः॥ ३

श्रीनारायण उवाच

षष्ठांशा प्रकृतेर्या च सा च षष्ठी प्रकीर्तिता।
बालकानामधिष्ठात्री विष्णुमाया च बालदा॥ ४

मातृकासु च विख्याता देवसेनाभिधा च या।
प्राणाधिकप्रिया साध्वी स्कन्दभार्या च सुव्रता॥ ५

आयुःप्रदा च बालानां धात्री रक्षणकारिणी।
सततं शिशुपार्श्वस्था योगेन सिद्धियोगिनी॥ ६

तस्याः पूजाविधिं ब्रह्मन्नितिहासमिदं शृणु।
यच्छ्रुतं धर्मवक्त्रेण सुखदं पुत्रदं परम्॥ ७

राजा प्रियव्रतश्चासीत्स्वायम्भुवमनोः सुतः।
योगीन्द्रो नोद्वहद्भार्यां तपस्यासु रतः सदा॥ ८

ब्रह्माज्ञया च यत्नेन कृतदारो बभूव ह।
सुचिरं कृतदारश्च न लेभे तनयं मुने॥ ९

पुत्रेष्टियज्ञं तं चापि कारयामास कश्यपः।
मालिन्यै तस्य कान्तायै मुनिर्यज्ञचरुं ददौ॥ १०

भुक्त्वा च तं चरुं तस्याः सद्यो गर्भो बभूव ह।
दधार तं च सा देवी दैवं द्वादशवत्सरम्॥ ११

ततः सुषाव सा ब्रह्मन् कुमारं कनकप्रभम्।
सर्वावयवसम्पन्नं मृतमुत्तारलोचनम्॥ १२

तं दृष्ट्वा रुरुदुः सर्वा नार्यश्च बान्धवस्त्रियः।
मूर्च्छामवाप तन्माता पुत्रशोकेन भूयसा॥ १३

नारदजी बोले—भगवती षष्ठी, मंगलचण्डी और मनसादेवी मूलप्रकृतिकी कला हैं; मैं इनकी उत्पत्ति तथा इनका चरित्र साररूपमें सुनना चाहता हूँ॥ ३॥

श्रीनारायण बोले—मूलप्रकृतिके छठे अंशसे जो देवी आविर्भूत हैं, वे भगवती षष्ठी कही गयी हैं। ये बालकोंकी अधिष्ठात्री देवी हैं। इन्हें विष्णुमाया और बालदा भी कहा जाता है। ये मातृकाओंमें देवसेना नामसे प्रसिद्ध हैं। उत्तम व्रतका पालन करनेवाली तथा साध्वी ये भगवती षष्ठी स्वामी कार्तिकेयकी भार्या हैं और उन्हें प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं। ये बालकोंको आयु प्रदान करनेवाली, उनका भरण-पोषण करनेवाली तथा उनकी रक्षा करनेवाली हैं। ये सिद्धयोगिनी देवी अपने योगके प्रभावसे शिशुओंके पास निरन्तर विराजमान रहती हैं॥ ४—६॥

हे ब्रह्मन्! उन षष्ठीदेवीकी पूजाविधि तथा यह इतिहास भी सुनिये, जिसे मैंने धर्मदेवके मुखसे सुना है; यह आख्यान पुत्र तथा परम सुख प्रदान करनेवाला है॥ ७॥

स्वायम्भुव मनुके पुत्र प्रियव्रत नामवाले एक राजा थे। योगिराज प्रियव्रत विवाह नहीं करना चाहते थे। वे सदा तपस्याओंमें संलग्न रहते थे, किंतु ब्रह्माजीकी आज्ञा तथा उनके प्रयत्नसे उन्होंने विवाह कर लिया॥ ८॥

हे मुने! विवाह करनेके अनन्तर बहुत समयतक जब उन्हें पुत्रप्राप्ति नहीं हुई, तब महर्षि कश्यपने उनसे पुत्रेष्टियज्ञ कराया। मुनिने उनकी प्रिय भार्या मालिनीको यज्ञचरु प्रदान किया। उस चरुको ग्रहण कर लेनेपर उन्हें शीघ्र ही गर्भ स्थित हो गया। वे देवी उस गर्भको दिव्य बारह वर्षोंतक धारण किये रहीं॥ ९—११॥

हे ब्रह्मन्! तत्पश्चात् उन्होंने स्वर्णसदृश कान्तिवाले, शरीरके समस्त अवयवोंसे सम्पन्न, मरे हुए तथा उलटी आँखोंवाले पुत्रको जन्म दिया॥ १२॥

उसे देखकर सभी स्त्रियाँ तथा बान्धवोंकी पत्नियाँ रोने लगीं और महान् पुत्रशोकके कारण उसकी माता मूर्च्छित हो गयीं॥ १३॥

श्मशानं च ययौ राजा गृहीत्वा बालकं मुने।
रुरोद तत्र कान्तारे पुत्रं कृत्वा स्ववक्षसि॥ १४

नोत्सृजद् बालकं राजा प्राणांस्त्यक्तुं समुद्यतः।
ज्ञानयोगं विसस्मार पुत्रशोकात्सुदारुणात्॥ १५

एतस्मिन्नन्तरे तत्र विमानं च ददर्श सः।
शुद्धस्फटिकसंकाशं मणिराजविनिर्मितम्॥ १६

तेजसा ज्वलितं शश्वच्छोभितं क्षौमवाससा।
नानाचित्रविचित्राढ्यं पुष्पमालाविराजितम्॥ १७

ददर्श तत्र देवीं च कमनीयां मनोहराम्।
श्वेतचम्पकवर्णाभां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम्॥ १८

ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां रत्नभूषणभूषिताम्।
कृपामयीं योगसिद्धां भक्तानुग्रहकातराम्॥ १९

दृष्ट्वा तां पुरतो राजा तुष्टाव परमादरात्।
चकार पूजनं तस्या विहाय बालकं भुवि॥ २०

पप्रच्छ राजा तां तुष्टां ग्रीष्मसूर्यसमप्रभाम्।
तेजसा ज्वलितां शान्तां कान्तां स्कन्दस्य नारद॥ २१

राजोवाच

का त्वं सुशोभने कान्ते कस्य कान्तासि सुव्रते।
कस्य कन्या वरारोहे धन्या मान्या च योषिताम्॥ २२

नृपेन्द्रस्य वचः श्रुत्वा जगन्मङ्गलचण्डिका।
उवाच देवसेना सा देवानां रणकारिणी॥ २३

देवानां दैत्यग्रस्तानां पुरा सेना बभूव सा।
जयं ददौ सा तेभ्यश्च देवसेना च तेन सा॥ २४

हे मुने! उस बालकको लेकर राजा प्रियव्रत श्मशान गये और वहाँ निर्जन स्थानमें पुत्रको अपने वक्षसे लगाकर रुदन करने लगे। राजाने उस पुत्रको नहीं छोड़ा। वे प्राणत्याग करनेको तत्पर हो गये। अत्यन्त दारुण पुत्रशोकके कारण राजाका ज्ञानयोग विस्मृत हो गया॥ १४-१५॥

इसी बीच वहाँ उन्होंने शुद्ध स्फटिकमणिके समान प्रकाशमान, बहुमूल्य रत्नोंसे निर्मित, तेजसे निरन्तर देदीप्यमान, रेशमी वस्त्रसे सुशोभित, अनेक प्रकारके अद्भुत चित्रोंसे विभूषित और पुष्प तथा मालाओंसे सुसज्जित एक विमान देखा। साथ ही उन्होंने उस विमानमें कमनीय, मनोहर, श्वेत चम्पाके वर्णके समान आभावाली, सदा स्थायी रहनेवाले तारुण्यसे सम्पन्न, मन्द-मन्द मुसकानयुक्त, प्रसन्न मुखमण्डलवाली, रत्ननिर्मित आभूषणोंसे अलंकृत, कृपाकी साक्षात् मूर्ति, योगसिद्ध और भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये परम आतुर प्रतीत होनेवाली देवीको भी देखा॥ १६—१९॥

उन देवीको समक्ष देखकर राजाने उस बालकको भूमिपर रखकर परम आदरपूर्वक उनका स्तवन तथा पूजन किया। हे नारद! तत्पश्चात् राजा प्रियव्रत प्रसन्नताको प्राप्त, ग्रीष्मकालीन सूर्यके समान प्रभावाली, अपने तेजसे देदीप्यमान तथा शान्त स्वभाववाली उन कार्तिकेयप्रिया [भगवती षष्ठी]-से पूछने लगे—॥ २०-२१॥

राजा बोले—हे सुशोभने! हे कान्ते! हे सुव्रते! हे वरारोहे! समस्त स्त्रियोंमें परम धन्य तथा आदरणीय तुम कौन हो, किसकी भार्या हो और किसकी पुत्री हो?॥ २२॥

[हे नारद!] नृपेन्द्र प्रियव्रतकी बात सुनकर जगत्का कल्याण करनेमें दक्ष तथा देवताओंके लिये संग्राम करनेवाली भगवती देवसेना उनसे कहने लगीं। वे देवी प्राचीनकालमें दैत्योंके द्वारा पीडित देवताओंकी सेना बनी थीं। उन्होंने उन्हें विजय प्रदान किया था, इसलिये वे देवसेना नामसे विख्यात हैं॥ २३-२४॥

श्रीदेवसेनोवाच

ब्रह्मणो मानसी कन्या देवसेनाहमीश्वरी।
सृष्ट्वा तां मनसा धाता ददौ स्कन्दाय भूमिप॥ २५

मातृकासु च विख्याता स्कन्दभार्या च सुव्रता।
विश्वे षष्ठीति विख्याता षष्ठांशा प्रकृतेः परा॥ २६

अपुत्राय पुत्रदाहं प्रियादात्री प्रियाय च।
धनदाहं दरिद्रेभ्यः कर्मिभ्यश्च स्वकर्मदा॥ २७

सुखं दुःखं भयं शोको हर्षो मङ्गलमेव च।
सम्पत्तिश्च विपत्तिश्च सर्वं भवति कर्मणा॥ २८

कर्मणा बहुपुत्रश्च वंशहीनः स्वकर्मणा।
कर्मणा मृतपुत्रश्च कर्मणा चिरजीवनः॥ २९

कर्मणा गुणवांश्चैव कर्मणा चाङ्गहीनकः।
कर्मणा बहुभार्यश्च भार्याहीनश्च कर्मणा॥ ३०

कर्मणा रूपवान्धर्मी रोगी शश्वत्स्वकर्मणा।
कर्मणा च भवेद्व्याधिः कर्मणारोग्यमेव च॥ ३१

तस्मात्कर्म परं राजन् सर्वेभ्यश्च श्रुतौ श्रुतम्।
इत्येवमुक्त्वा सा देवी गृहीत्वा बालकं मुने॥ ३२

महाज्ञानेन सा देवी जीवयामास लीलया।
राजा ददर्श तं बालं सस्मितं कनकप्रभम्॥ ३३

देवसेना च पश्यन्तं नृपमापृच्छ्य सा तदा।
गृहीत्वा बालकं देवी गगनं गन्तुमुद्यता॥ ३४

पुनस्तुष्टाव तां राजा शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः।
नृपस्तोत्रेण सा देवी परितुष्टा बभूव ह॥ ३५
उवाच तं नृपं ब्रह्मन् वेदोक्तं कर्मनिर्मितम्।

श्रीदेवसेना बोलीं—हे राजन्! मैं ब्रह्माकी मानसी कन्या हूँ। सबपर शासन करनेवाली मैं 'देवसेना' नामसे विख्यात हूँ। विधाताने अपने मनसे मेरी सृष्टि करके स्वामी कार्तिकेयको सौंप दिया। मातृकाओंमें विख्यात मैं स्वामी कार्तिकेयकी पतिव्रता भार्या हूँ। भगवती परा-प्रकृतिका षष्ठांश होनेके कारण मैं विश्वमें 'षष्ठी'—इस नामसे प्रसिद्ध हूँ। मैं पुत्रहीनको पुत्र, पतिको प्रिय पत्नी, दरिद्रोंको धन देनेवाली और कर्म करनेवालोंको उनके कर्मका फल प्रदान करनेवाली हूँ॥ २५—२७॥

हे राजन्! सुख, दुःख, भय, शोक, हर्ष, मंगल, सम्पत्ति और विपत्ति—यह सब कर्मानुसार होता है। अपने कर्मसे मनुष्य अनेक पुत्रोंवाला होता है, कर्मसे ही वह वंशहीन होता है, कर्मसे ही उसे मरा हुआ पुत्र होता है और कर्मसे ही वह पुत्र दीर्घजीवी होता है। मनुष्य कर्मसे ही गुणी, कर्मसे ही अंगहीन, कर्मसे ही अनेक पत्नियोंवाला तथा कर्मसे ही भार्याहीन होता है। कर्मसे ही मनुष्य रूपवान् तथा कर्मसे ही निरन्तर रोगग्रस्त रहता है, कर्मसे ही व्याधि तथा कर्मसे ही नीरोगता होती है। अतः हे राजन्! कर्म सबसे बलवान् है—ऐसा श्रुतिमें कहा गया है॥ २८—३११/२॥

हे मुने! इस प्रकार कहकर उन भगवती षष्ठीने बालकको लेकर अपने महाज्ञानके द्वारा खेल-खेलमें उसे जीवित कर दिया। अब राजा प्रियव्रत स्वर्णकी प्रभाके समान कान्तिसे सम्पन्न तथा मुसकानयुक्त उस बालकको देखने लगे। उसी समय वे भगवती देवसेना बालकको देख रहे राजासे कहकर उस बालकको ले करके आकाशमें जानेको उद्यत हो गयीं॥ ३२—३४॥

[यह देखकर] शुष्क कण्ठ, ओष्ठ तथा तालुवाले वे राजा उन भगवतीकी स्तुति करने लगे, तब राजाके स्तोत्रसे वे देवी षष्ठी अत्यन्त प्रसन्न हो गयीं और हे ब्रह्मन्! उन राजासे कर्मनिर्मित वेदोक्त वचन कहने लगीं॥ ३५१/२॥

देव्युवाच

त्रिषु लोकेषु त्वं राजा स्वायम्भुवमनोः सुतः॥ ३६

मम पूजां च सर्वत्र कारयित्वा स्वयं कुरु।
तदा दास्यामि पुत्रं ते कुलपद्मं मनोहरम्॥ ३७

सुव्रतं नाम विख्यातं गुणवन्तं सुपण्डितम्।
जातिस्मरं च योगीन्द्रं नारायणकलात्मकम्॥ ३८

शतक्रतुकरं श्रेष्ठं क्षत्रियाणां च वन्दितम्।
मत्तमातङ्गलक्षाणां धृतवन्तं बलं शुभम्॥ ३९

धनिनं गुणिनं शुद्धं विदुषां प्रियमेव च।
योगिनां ज्ञानिनां चैव सिद्धिरूपं तपस्विनाम्॥ ४०

यशस्विनं च लोकेषु दातारं सर्वसम्पदाम्।
इत्येवमुक्त्वा सा देवी तस्मै तद्बालकं ददौ॥ ४१

राजा चकार स्वीकारं पूजार्थं च प्रियव्रतः।
जगाम देवी स्वर्गं च दत्त्वा तस्मै शुभं वरम्॥ ४२

आजगाम सहामात्यः स्वगृहं हृष्टमानसः।
आगत्य कथयामास वृत्तान्तं पुत्रहेतुकम्॥ ४३

श्रुत्वा बभूवुः सन्तुष्टा नरा नार्यश्च नारद।
मङ्गलं कारयामास सर्वत्र पुत्रहेतुकम्॥ ४४

देवीं च पूजयामास ब्राह्मणेभ्यो धनं ददौ।
राजा च प्रतिमासेषु शुक्लषष्ठ्यां महोत्सवम्॥ ४५

षष्ठ्या देव्याश्च यत्नेन कारयामास सर्वतः।
बालानां सूतिकागारे षष्ठाहे यत्नपूर्वकम्॥ ४६

तत्पूजां कारयामास चैकविंशतिवासरे।
बालानां शुभकार्ये च शुभान्नप्राशने तथा॥ ४७

सर्वत्र वर्धयामास स्वयमेव चकार ह।
ध्यानं पूजाविधानं च स्तोत्रं मत्तो निशामय॥ ४८

यच्छ्रुतं धर्मवक्त्रेण कौथुमोक्तं च सुव्रत।

देवी बोलीं—तुम स्वायम्भुव मनुके पुत्र हो और तीनों लोकोंके राजा हो। तुम सर्वत्र मेरी पूजा कराकर स्वयं भी करो, तभी मैं तुम्हें कुलके कमलस्वरूप यह मनोहर पुत्र प्रदान करूँगी। यह सुव्रत नामसे विख्यात होगा, यह गुणी तथा विद्वान् होगा, इसे पूर्वजन्मकी बातें याद रहेंगी, यह योगीन्द्र होगा तथा भगवान् नारायणकी कलासे सम्पन्न होगा, यह क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ तथा सभीके द्वारा वन्दनीय होगा और सौ अश्वमेधयज्ञ करनेवाला होगा। यह बालक लाखों मतवाले हाथियोंके समान बल धारण करेगा तथा महान् कल्याणकारी होगा। यह धनी, गुणवान्, शुद्ध, विद्वानोंका प्रिय और योगियों, ज्ञानियों तथा तपस्वियोंका सिद्धिस्वरूप, समस्त लोकोंमें यशस्वी तथा सभीको समस्त सम्पदाएँ प्रदान करनेवाला होगा॥ ३६—४०$\frac{1}{2}$ ॥

ऐसा कहकर उन देवीने वह बालक राजाको दे दिया। राजा प्रियव्रतने भी पूजाकी बातें स्वीकार कर लीं। तब भगवती भी उन्हें कल्याणकारी वर देकर स्वर्ग चली गयीं और राजा प्रसन्नचित्त होकर मन्त्रियोंके साथ अपने घर आ गये। घर आकर उन्होंने पुत्रविषयक वृत्तान्त सबसे कहा। हे नारद! उसे सुनकर समस्त नर तथा नारी परम प्रसन्न हुए॥ ४१—४३$\frac{1}{2}$ ॥

राजाने पुत्र-प्राप्तिके उपलक्ष्यमें सर्वत्र मंगलोत्सव कराया, भगवती षष्ठीकी पूजा की तथा ब्राह्मणोंको धन प्रदान किया॥ ४४$\frac{1}{2}$ ॥

उसी समयसे राजा प्रियव्रत प्रत्येक महीनेमें शुक्लपक्षकी षष्ठी तिथिको भगवती षष्ठीका महोत्सव प्रयत्नपूर्वक सर्वत्र कराने लगे॥ ४५$\frac{1}{2}$ ॥

सूतिकागृहमें बालकोंके जन्मके छठें दिन, इक्कीसवें दिन, बालकोंसे सम्बन्धित किसी भी मांगलिक कार्यमें तथा शुभ अन्नप्राशनके अवसरपर वे भगवतीकी पूजा कराने लगे और स्वयं भी करने लगे, इस प्रकार उन्होंने सर्वत्र भगवतीकी पूजाका प्रचार कराया॥ ४६-४७$\frac{1}{2}$ ॥

हे सुव्रत! अब आप मुझसे भगवती षष्ठीके ध्यान, पूजाविधान तथा स्तोत्रको सुनिये, जिसे मैंने धर्मदेवके मुखसे सुना था और जो सामवेदकी कौथुमशाखामें वर्णित है॥ ४८$\frac{1}{2}$ ॥

शालग्रामे घटे वाथ वटमूलेऽथवा मुने॥ ४९
भित्त्यां पुत्तलिकां कृत्वा पूजयेद्वा विचक्षणः।
षष्ठांशां प्रकृतेः शुद्धां प्रतिष्ठाप्य च सुप्रभाम्॥ ५०
सुपुत्रदां च शुभदां दयारूपां जगत्प्रसूम्।
श्वेतचम्पकवर्णाभां रत्नभूषणभूषिताम्॥ ५१
पवित्ररूपां परमां देवसेनां परां भजे।
इति ध्यात्वा स्वशिरसि पुष्पं दत्त्वा विचक्षणः॥ ५२
पुनर्ध्यात्वा च मूलेन पूजयेत्सुव्रतां सतीम्।
पाद्यार्घ्याचमनीयैश्च गन्धपुष्पप्रदीपकैः॥ ५३
नैवेद्यैर्विविधैश्चापि फलेन शोभनेन च।
ॐ ह्रीं षष्ठीदेव्यै स्वाहेति विधिपूर्वकम्॥ ५४
अष्टाक्षरं महामन्त्रं यथाशक्ति जपेन्नरः।
ततः स्तुत्वा च प्रणमेद्भक्तियुक्तः समाहितः॥ ५५
स्तोत्रं च सामवेदोक्तं वरं पुत्रफलप्रदम्।
अष्टाक्षरं महामन्त्रं लक्षधा यो जपेत्ततः॥ ५६
सुपुत्रं स लभेन्नूनमित्याह कमलोद्भवः।
स्तोत्रं शृणु मुनिश्रेष्ठ सर्वकामशुभावहम्॥ ५७
वाञ्छाप्रदं च सर्वेषां गूढं वेदेषु नारद।
नमो देव्यै महादेव्यै सिद्ध्यै शान्त्यै नमो नमः॥ ५८
शुभायै देवसेनायै षष्ठ्यै देव्यै नमो नमः।
वरदायै पुत्रदायै धनदायै नमो नमः॥ ५९
सुखदायै मोक्षदायै षष्ठ्यै देव्यै नमो नमः।
सृष्ट्यै षष्ठांशरूपायै सिद्धायै च नमो नमः॥ ६०

हे मुने! शालग्राम, कलश अथवा वटके मूलमें अथवा दीवालपर पुत्तलिका बनाकर भगवती प्रकृतिके छठें अंशसे प्रकट होनेवाली, शुद्धस्वरूपिणी तथा दिव्य प्रभासे सम्पन्न षष्ठीदेवीको प्रतिष्ठित करके बुद्धिमान् मनुष्यको उनकी पूजा करनी चाहिये॥ ४९-५०॥

'उत्तम पुत्र प्रदान करनेवाली, कल्याणदायिनी, दयास्वरूपिणी, जगत्की सृष्टि करनेवाली, श्वेत चम्पाके पुष्पकी आभाके समान वर्णवाली, रत्नमय आभूषणोंसे अलंकृत, परम पवित्रस्वरूपिणी तथा अतिश्रेष्ठ परा भगवती देवसेनाकी मैं आराधना करता हूँ।' विद्वान् पुरुषको चाहिये कि इस विधिसे ध्यान करके [हाथमें लिये हुए] पुष्पको अपने मस्तकसे लगाकर उसे भगवतीको अर्पण कर दे। पुनः ध्यान करके मूलमन्त्रके उच्चारणपूर्वक पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, गन्ध, पुष्प, दीप, विविध प्रकारके नैवेद्य तथा सुन्दर फल आदि उपचारोंके द्वारा उत्तम व्रतमें निरत रहनेवाली साध्वी भगवती देवसेनाकी पूजा करनी चाहिये और उस मनुष्यको '**ॐ ह्रीं षष्ठीदेव्यै स्वाहा**' इस अष्टाक्षर महामन्त्रका अपनी शक्तिके अनुसार विधिपूर्वक जप भी करना चाहिये। तदनन्तर एकाग्रचित्त होकर भक्तिपूर्वक स्तुति करके देवीको प्रणाम करना चाहिये। पुत्र-फल प्रदान करनेवाला यह उत्तम स्तोत्र सामवेदमें वर्णित है। जो मनुष्य भगवती षष्ठीके अष्टाक्षर महामन्त्रका एक लाख जप करता है, वह निश्चितरूपसे सुन्दर पुत्र प्राप्त करता है—ऐसा ब्रह्माजीने कहा है॥ ५१—५६½॥

हे मुनिश्रेष्ठ! अब आप सम्पूर्ण शुभ कामनाओंको प्रदान करनेवाले, सभी प्राणियोंको वांछित फल प्रदान करनेवाले तथा वेदोंमें रहस्यमय रूपसे प्रतिपादित स्तोत्रका श्रवण कीजिये॥ ५७½॥

देवीको नमस्कार है, महादेवीको नमस्कार है, भगवती सिद्धि एवं शान्तिको नमस्कार है। शुभा, देवसेना तथा देवी षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। वरदा, पुत्रदा तथा धनदा देवीको बार-बार नमस्कार है। सुखदा, मोक्षदा तथा भगवती षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। मूलप्रकृतिके छठें अंशसे अवतीर्ण, सृष्टिस्वरूपिणी तथा सिद्धस्वरूपिणी भगवतीको बार-बार नमस्कार है। माया तथा सिद्धयोगिनी षष्ठीदेवीको

मायायै सिद्धयोगिन्यै षष्ठीदेव्यै नमो नमः।
सारायै शारदायै च परादेव्यै नमो नमः॥ ६१

बालाधिष्ठातृदेव्यै च षष्ठीदेव्यै नमो नमः।
कल्याणदायै कल्याण्यै फलदायै च कर्मणाम्॥ ६२

प्रत्यक्षायै स्वभक्तानां षष्ठ्यै देव्यै नमो नमः।
पूज्यायै स्कन्दकान्तायै सर्वेषां सर्वकर्मसु॥ ६३

देवरक्षणकारिण्यै षष्ठीदेव्यै नमो नमः।
शुद्धसत्त्वस्वरूपायै वन्दितायै नृणां सदा॥ ६४

हिंसाक्रोधवर्जितायै षष्ठीदेव्यै नमो नमः।
धनं देहि प्रियां देहि पुत्रं देहि सुरेश्वरि॥ ६५

मानं देहि जयं देहि द्विषो जहि महेश्वरि।
धर्मं देहि यशो देहि षष्ठीदेव्यै नमो नमः॥ ६६

देहि भूमिं प्रजां देहि विद्यां देहि सुपूजिते।
कल्याणं च जयं देहि षष्ठीदेव्यै नमो नमः॥ ६७

इति देवीं च संस्तूय लेभे पुत्रं प्रियव्रतः।
यशस्विनं च राजेन्द्रः षष्ठीदेव्याः प्रसादतः॥ ६८

षष्ठीस्तोत्रमिदं ब्रह्मन् यः शृणोति तु वत्सरम्।
अपुत्रो लभते पुत्रं वरं सुचिरजीविनम्॥ ६९

वर्षमेकं च यो भक्त्या सम्पूज्येदं शृणोति च।
सर्वपापाद्विनिर्मुक्तो महावन्ध्या प्रसूयते॥ ७०

वीरं पुत्रं च गुणिनं विद्यावन्तं यशस्विनम्।
सुचिरायुष्यवन्तं च सूते देवीप्रसादतः॥ ७१

काकवन्ध्या च या नारी मृतवत्सा च या भवेत्।
वर्षं श्रुत्वा लभेत्पुत्रं षष्ठीदेवीप्रसादतः॥ ७२

रोगयुक्ते च बाले च पिता माता शृणोति चेत्।
मासेन मुच्यते बालः षष्ठीदेवीप्रसादतः॥ ७३

बार-बार नमस्कार है। सारस्वरूपिणी, शारदा तथा परादेवीको बार-बार नमस्कार है। बालकोंकी अधिष्ठात्री देवीको नमस्कार है। षष्ठीदेवीको बार-बार नमस्कार है। कल्याण प्रदान करनेवाली, कल्याणस्वरूपिणी, सभी कर्मोंके फल प्रदान करनेवाली तथा अपने भक्तोंको प्रत्यक्ष दर्शन देनेवाली देवी षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। सम्पूर्ण कार्योंमें सभीके लिये पूजनीय तथा देवताओंकी रक्षा करनेवाली स्वामी कार्तिकेयकी भार्या देवी षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। शुद्धसत्त्वस्वरूपिणी, मनुष्योंके लिये सदा वन्दनीय तथा क्रोध-हिंसासे रहित षष्ठीदेवीको बार-बार नमस्कार है। हे सुरेश्वरि! आप मुझे धन दीजिये, प्रिय भार्या दीजिये, पुत्र प्रदान कीजिये, मान प्रदान कीजिये तथा विजय प्रदान कीजिये और हे महेश्वरि! मेरे शत्रुओंका संहार कर डालिये। मुझे धर्म दीजिये और कीर्ति दीजिये, आप षष्ठीदेवीको बार-बार नमस्कार है। हे सुपूजिते! भूमि दीजिये, प्रजा दीजिये, विद्या दीजिये, कल्याण और जय प्रदान कीजिये, आप षष्ठीदेवीको बार-बार नमस्कार है॥ ५८—६७॥

इस प्रकार भगवती षष्ठीकी स्तुति करके महाराज प्रियव्रतने षष्ठीदेवीकी कृपासे यशस्वी पुत्र प्राप्त कर लिया॥ ६८॥

हे ब्रह्मन्! जो एक वर्षतक भगवती षष्ठीके इस स्तोत्रका श्रवण करता है, वह पुत्रहीन मनुष्य सुन्दर तथा दीर्घजीवी पुत्र प्राप्त कर लेता है। जो एक वर्षतक भक्तिपूर्वक देवी षष्ठीकी विधिवत् पूजा करके इस स्तोत्रका श्रवण करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है। महावन्ध्या स्त्री भी इसके श्रवणसे प्रसवके योग्य हो जाती है और वह भगवती षष्ठीकी कृपासे वीर, गुणी, विद्वान्, यशस्वी तथा दीर्घजीवी पुत्र उत्पन्न करती है। यदि कोई स्त्री काकवन्ध्या अथवा मृतवत्सा हो तो भी वह एक वर्षतक इस स्तोत्रका श्रवण करके षष्ठीदेवीके अनुग्रहसे पुत्र प्राप्त कर लेती है। पुत्रके व्याधिग्रस्त हो जानेपर यदि माता-पिता एक मासतक इस स्तोत्रको सुनें तो षष्ठीदेवीकी कृपासे वह बालक रोगमुक्त हो जाता है॥ ६९—७३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे नारायणनारदसंवादे षष्ठ्युपाख्यानवर्णनं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४६॥



अथ सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

भगवती मंगलचण्डी तथा भगवती मनसाका आख्यान

श्रीनारायण उवाच

कथितं षष्ठ्युपाख्यानं ब्रह्मपुत्र यथागमम्।
देवी मङ्गलचण्डी च तदाख्यानं निशामय॥ १

तस्याः पूजादिकं सर्वं धर्मवक्त्रेण यच्छ्रुतम्।
श्रुतिसम्मतमेवेष्टं सर्वेषां विदुषामपि॥ २

दक्षा या वर्तते चण्डी कल्याणेषु च मङ्गला।
मङ्गलेषु च या दक्षा सा च मङ्गलचण्डिका॥ ३

पूज्या या वर्तते चण्डी मङ्गलोऽपि महीसुतः।
मङ्गलाभीष्टदेवी या सा वा मङ्गलचण्डिका॥ ४

मङ्गलो मनुवंश्यश्च सप्तद्वीपधरापतिः।
तस्य पूज्याभीष्टदेवी तेन मङ्गलचण्डिका॥ ५

मूर्तिभेदेन सा दुर्गा मूलप्रकृतिरीश्वरी।
कृपारूपातिप्रत्यक्षा योषितामिष्टदेवता॥ ६

प्रथमे पूजिता सा च शङ्करेण परात्परा।
त्रिपुरस्य वधे घोरे विष्णुना प्रेरितेन च॥ ७

ब्रह्मन् ब्रह्मोपदेशेन दुर्गतेन च सङ्कटे।
आकाशात्पतिते याने दैत्येन पातिते रुषा॥ ८

ब्रह्मविष्णूपदिष्टश्च दुर्गां तुष्टाव शङ्करः।
सा च मङ्गलचण्डी या बभूव रूपभेदतः॥ ९

उवाच पुरतः शम्भोर्भयं नास्तीति ते प्रभो।
भगवान्वृषरूपश्च सर्वेशस्ते भविष्यति॥ १०

युद्धशक्तिस्वरूपाहं भविष्यामि न संशयः।
मायात्मना च हरिणा सहायेन वृषध्वज॥ ११
जहि दैत्यं स्वशत्रुं च सुराणां पदघातकम्।

श्रीनारायण बोले—हे ब्रह्मपुत्र! आगमशास्त्रके अनुसार मैंने षष्ठीदेवीका आख्यान कह दिया, अब भगवती मंगलचण्डीका आख्यान और उनका पूजा-विधान आदि सुनिये, जिसे मैंने धर्मदेवके मुखसे सुना था। यह उपाख्यान श्रुतिसम्मत है तथा सभी विद्वानोंको अभीष्ट है॥ १-२॥

कल्याण करनेमें सुदक्षा जो चण्डी अर्थात् प्रतापवती हैं तथा मंगलोंके मध्यमें जो प्रचण्ड मंगला हैं, वे देवी 'मंगलचण्डिका' नामसे विख्यात हैं। अथवा भूमिपुत्र मंगल भी जिन चण्डीकी पूजा करते हैं तथा जो भगवती उन मंगलकी अभीष्ट देवी हैं, वे 'मंगलचण्डिका' नामसे प्रसिद्ध हैं॥ ३-४॥

मनुवंशमें उत्पन्न मंगल नामक एक राजा सात द्वीपोंवाली सम्पूर्ण पृथ्वीके स्वामी थे। ये भगवती उनकी पूज्य अभीष्ट देवी थीं, इससे भी वे 'मंगलचण्डिका' नामसे विख्यात हैं॥ ५॥

वे ही मूर्तिभेदसे मूलप्रकृति भगवती दुर्गा हैं। कृपारूपिणी होकर वे देवी साक्षात् प्रकट होनेवाली हैं और स्त्रियोंकी अभीष्ट देवता हैं॥ ६॥

सर्वप्रथम भगवान् शंकरने विष्णुकी प्रेरणासे तथा ब्रह्माजीके उपदेशसे उन परात्परा भगवतीकी पूजा की थी। हे ब्रह्मन्! त्रिपुरासुरके घोर वधके समय जब शिवजी संकटमें पड़ गये थे और उस दैत्यके द्वारा रोषपूर्वक उनका विमान आकाशसे नीचे गिरा दिया गया था, तब ब्रह्मा और विष्णुका उपदेश मानकर दुर्गतिको प्राप्त भगवान् शंकरने भगवती दुर्गाकी स्तुति की। वे मंगलचण्डी ही थीं; जिन्होंने केवल रूप बदल लिया था, वे शिवजीके सामने प्रकट होकर बोलीं—हे प्रभो! अब आपको कोई भय नहीं है, सर्वेश्वर भगवान् श्रीहरि वृषरूपमें आपका वाहन बनेंगे और मैं युद्धमें शक्तिस्वरूपा होकर आपकी सहायता करूँगी, इसमें सन्देह नहीं है। हे वृषध्वज! तब मायास्वरूप भगवान् श्रीहरिकी सहायतासे आप देवताओंको पदच्युत कर देनेवाले अपने शत्रु उस त्रिपुरदैत्यका वध कर डालेंगे॥ ७—११½॥

इत्युक्त्वान्तर्हिता देवी शम्भोः शक्तिर्बभूव सा॥ १२

विष्णुदत्तेन शस्त्रेण जघान तमुमापतिः।
मुनीन्द्र पतिते दैत्ये सर्वे देवा महर्षयः॥ १३

तुष्टुवुः शङ्करं देवं भक्तिनम्रात्मकन्धराः।
सद्यः शिरसि शम्भोश्च पुष्पवृष्टिर्बभूव ह॥ १४

ब्रह्मा विष्णुश्च सन्तुष्टो ददौ तस्मै शुभाशिषम्।
ब्रह्मविष्णूपदिष्टश्च सुस्नातः शङ्करस्तथा॥ १५

पूजयामास तां भक्त्या देवीं मङ्गलचण्डिकाम्।
पाद्यार्घ्याचमनीयैश्च वस्त्रैश्च विविधैरपि॥ १६

पुष्पचन्दननैवेद्यैर्भक्त्या नानाविधैर्मुने।
छागैर्मेषैश्च महिषैर्गवयैः पक्षिभिस्तथा॥ १७

वस्त्रालङ्कारमाल्यैश्च पायसैः पिष्टकैरपि।
मधुभिश्च सुधाभिश्च फलैर्नानाविधैरपि॥ १८

सङ्गीतैर्नर्तकैर्वाद्यैरुत्सवैर्नामकीर्तनैः।
ध्यात्वा माध्यन्दिनोक्तेन ध्यानेन भक्तिपूर्वकम्॥ १९

ददौ द्रव्याणि मूलेन मन्त्रेणैव च नारद।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं सर्वपूज्ये देवि मङ्गलचण्डिके॥ २०

हूँ हूँ फट् स्वाहाप्येकविंशाक्षरो मनुः।
पूज्यः कल्पतरुश्चैव भक्तानां सर्वकामदः॥ २१

दशलक्षजपेनैव मन्त्रसिद्धिर्भवेद् ध्रुवम्।
ध्यानं च श्रूयतां ब्रह्मन् वेदोक्तं सर्वसम्मतम्॥ २२

देवीं षोडशवर्षीयां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम्।
बिम्बोष्ठीं सुदतीं शुद्धां शरत्पद्मनिभाननाम्॥ २३

श्वेतचम्पकवर्णाभां सुनीलोत्पललोचनाम्।
जगद्धात्रीं च दात्रीं च सर्वेभ्यः सर्वसम्पदाम्॥ २४

संसारसागरे घोरे ज्योतीरूपां सदा भजे।
देव्याश्च ध्यानमित्येवं स्तवनं श्रूयतां मुने॥ २५

हे मुनिवर! ऐसा कहकर वे भगवती अन्तर्धान हो गयीं और उसी क्षण वे भगवान् शिवकी शक्ति बन गयीं। तत्पश्चात् उमापति शंकरने विष्णुजीके द्वारा दिये गये शस्त्रसे उस दैत्यको मार डाला। उस दैत्यके धराशायी हो जानेपर सभी देवता तथा महर्षिगण भक्तिपूर्वक अपना सिर झुकाकर भगवान् शिवकी स्तुति करने लगे॥ १२-१३½ ॥

उसी क्षण भगवान् शिवके सिरपर पुष्पोंकी वर्षा होने लगी। ब्रह्मा तथा विष्णुने परम प्रसन्न होकर उन्हें शुभाशीर्वाद दिया॥ १४½ ॥

तत्पश्चात् हे मुने! ब्रह्मा तथा विष्णुका उपदेश मानकर भगवान् शंकरने विधिवत् स्नान करके पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, अनेक प्रकारके वस्त्र, पुष्प, चन्दन, भाँति-भाँतिके नैवेद्य, वस्त्रालंकार, माला, खीर, पिष्टक, मधु, सुधा, अनेक प्रकारके फल आदि उपचारों, संगीत, नृत्य, वाद्य, उत्सव तथा नामकीर्तन आदिके द्वारा भक्तिपूर्वक उन देवी मंगलचण्डिकाका पूजन किया॥ १५—१८½ ॥

हे नारद! माध्यन्दिनशाखामें बताये गये ध्यानमन्त्रके द्वारा भगवती मंगलचण्डीका भक्तिपूर्वक ध्यान करके उन्होंने मूल मन्त्रसे ही सभी द्रव्य अर्पण किये। '**ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं सर्वपूज्ये देवि मङ्गलचण्डिके हुं हुं फट् स्वाहा**' यह इक्कीस अक्षरोंवाला मन्त्र पूजनीय तथा भक्तोंको समस्त अभीष्ट प्रदान करनेवाला कल्पवृक्ष ही है। दस लाख जप करनेसे इस मन्त्रकी सिद्धि निश्चितरूपसे हो जाती है॥ १९—२१½ ॥

हे ब्रह्मन्! अब वेदोक्त तथा सर्वसम्मत ध्यानका श्रवण कीजिये—'सोलह वर्षकी अवस्थावाली, सर्वदा सुस्थिर यौवनसे सम्पन्न, बिम्बाफलके समान होठोंवाली, सुन्दर दन्तपंक्तिवाली, शुद्धस्वरूपिणी, शरत्कालीन कमलके समान मुखवाली, श्वेत चम्पाके वर्णकी आभावाली, विकसित नीलकमलके सदृश नेत्रोंवाली, जगत्का पालन-पोषण करनेवाली, सभीको सम्पूर्ण सम्पदाएँ प्रदान करनेवाली और घोर संसारसागरमें पड़े हुए प्राणियोंके लिये ज्योतिस्वरूपिणी भगवतीकी मैं सदा आराधना करता हूँ।' हे मुने! यह भगवती मंगलचण्डिकाका ध्यान है, अब उनका स्तवन सुनिये॥ २२—२५ ॥

महादेव उवाच

रक्ष रक्ष जगन्मातर्देवि मङ्गलचण्डिके।
हारिके विपदां राशेर्हर्षमङ्गलकारिके॥ २६

हर्षमङ्गलदक्षे च हर्षमङ्गलदायिके।
शुभे मङ्गलदक्षे च शुभे मङ्गलचण्डिके॥ २७

मङ्गले मङ्गलार्हे च सर्वमङ्गलमङ्गले।
सतां मङ्गलदे देवि सर्वेषां मङ्गलालये॥ २८

पूज्ये मङ्गलवारे च मङ्गलाभीष्टदेवते।
पूज्ये मङ्गलभूपस्य मनुवंशस्य सन्ततम्॥ २९

मङ्गलाधिष्ठातृदेवि मङ्गलानां च मङ्गले।
संसारमङ्गलाधारे मोक्षमङ्गलदायिनि॥ ३०

सारे च मङ्गलाधारे पारे च सर्वकर्मणाम्।
प्रतिमङ्गलवारे च पूज्ये मङ्गसुखप्रदे॥ ३१

स्तोत्रेणानेन शम्भुश्च स्तुत्वा मङ्गलचण्डिकाम्।
प्रतिमङ्गलवारे च पूजां दत्त्वा गतः शिवः॥ ३२

प्रथमे पूजिता देवी शिवेन सर्वमङ्गला।
द्वितीये पूजिता सा च मङ्गलेन ग्रहेण च॥ ३३

तृतीये पूजिता भद्रा मङ्गलेन नृपेण च।
चतुर्थे मङ्गले वारे सुन्दरीभिः प्रपूजिता॥ ३४

पञ्चमे मङ्गलाकाङ्क्षिनरैर्मङ्गलचण्डिका।
पूजिता प्रतिविश्वेषु विश्वेशपूजिता सदा॥ ३५

ततः सर्वत्र सम्पूज्या बभूव परमेश्वरी।
देवैश्च मुनिभिश्चैव मानवैर्मनुभिर्मुने॥ ३६

देव्याश्च मङ्गलस्तोत्रं यः शृणोति समाहितः।
तन्मङ्गलं भवेत्तस्य न भवेत्तदमङ्गलम्।
वर्धते पुत्रपौत्रैश्च मङ्गलं च दिने दिने॥ ३७

महादेवजी बोले—जगत्‌की माता, विपत्तिराशिका नाश करनेवाली, हर्ष तथा मंगल उत्पन्न करनेवाली, हर्ष तथा मंगल देनेमें प्रवीण, हर्ष तथा मंगल प्रदान करनेवाली, कल्याणकारिणी, मंगल करनेमें दक्ष, शुभस्वरूपिणी, मंगलरूपिणी, मंगल करनेमें परम योग्यतासम्पन्न, समस्त मंगलोंकी भी मंगलरूपा, सज्जनोंको मंगल प्रदान करनेवाली, सभी मंगलोंकी आश्रय-स्वरूपिणी, मंगलवारके दिन पूजी जानेवाली, मंगलग्रहकी अभीष्ट देवी, मनुवंशमें उत्पन्न राजा मंगलके लिये सदा पूजनीया, मंगलकी अधिष्ठात्री देवी, मंगलोंके लिये भी मंगल, संसारके समस्त मंगलोंकी आधारस्वरूपा, मोक्षरूप मंगल प्रदान करनेवाली, साररूपिणी, मंगलाधार, सभी कर्मोंकी फलस्वरूपिणी तथा मंगलवारको पूजित होनेपर सबको महान् सुख प्रदान करनेवाली हे देवि मंगलचण्डिके! रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये॥ २६—३१॥

भगवान् शिव इस स्तोत्रसे देवी मंगलचण्डिकाकी स्तुति करके तथा प्रत्येक मंगलवारको उनकी पूजा करके वहाँसे [अपने लोक] चले गये॥ ३२॥

इस प्रकार सर्वप्रथम भगवान् शिवके द्वारा वे सर्वमंगला देवी मंगलचण्डिका पूजित हुईं। दूसरी बार मंगलग्रहने उनकी पूजा की, तीसरी बार राजा मंगलने उन कल्याणमयी देवीकी पूजा की। चौथी बार मंगलवारके दिन भद्र महिलाओंने उनकी पूजा की। तत्पश्चात् पाँचवीं बार अपने कल्याणकी कामना रखनेवाले पुरुषोंने देवी मंगलचण्डिकाका पूजन किया। इस तरह विश्वेश्वर शिवके द्वारा पूजित ये भगवती सभी लोकोंमें पूजी जाने लगीं। हे मुने! तदनन्तर सभी देवताओं, मुनियों, मानवों तथा मनुओंके द्वारा भगवती मंगलचण्डिका सर्वत्र पूजित हो गयीं॥ ३३—३६॥

जो व्यक्ति एकाग्रचित्त होकर भगवती मंगलचण्डिकाके इस मंगलमय स्तोत्रका श्रवण करता है, उसका सदा मंगल होता है और उसका अमंगल कभी नहीं होता, पुत्र-पौत्रोंसहित उसके मंगलकी दिन-प्रतिदिन वृद्धि होती रहती है॥ ३७॥

श्रीनारायण उवाच

उक्तं द्वयोरुपाख्यानं ब्रह्मपुत्र यथागमम्।
श्रूयतां मनसाख्यानं यच्छ्रुतं धर्मवक्त्रतः॥ ३८

सा च कन्या भगवती कश्यपस्य च मानसी।
तेनैव मनसा देवी मनसा या च दीव्यति॥ ३९

मनसा ध्यायते या च परमात्मानमीश्वरम्।
तेन सा मनसा देवी तेन योगेन दीव्यति॥ ४०

आत्मारामा च सा देवी वैष्णवी सिद्धयोगिनी।
त्रियुगं च तपस्तप्त्वा कृष्णस्य परमात्मनः॥ ४१

जरत्कारुशरीरं च दृष्ट्वा यत्क्षीणमीश्वरः।
गोपीपतिर्नाम चक्रे जरत्कारुरिति प्रभुः॥ ४२

वाञ्छितं च ददौ तस्यै कृपया च कृपानिधिः।
पूजां च कारयामास चकार च स्वयं प्रभुः॥ ४३

स्वर्गे च नागलोके च पृथिव्यां ब्रह्मलोकतः।
भृशं जगत्सु गौरी सा सुन्दरी च मनोहरा। ४४

जगद्गौरीति विख्याता तेन सा पूजिता सती।
शिवशिष्या च सा देवी तेन शैवी प्रकीर्तिता॥ ४५

विष्णुभक्तातीव शश्वद्वैष्णवी तेन कीर्तिता।
नागानां प्राणरक्षित्री यज्ञे पारीक्षितस्य च॥ ४६

नागेश्वरीति विख्याता सा नागभगिनीति च।
विषं संहर्तुमीशा या तेन विषहरी स्मृता॥ ४७

सिद्धयोगं हरात्प्राप तेन सा सिद्धयोगिनी।
महाज्ञानं च योगं च मृतसञ्जीवनीं पराम्॥ ४८
महाज्ञानयुतां तां च प्रवदन्ति मनीषिणः।

श्रीनारायण बोले—हे ब्रह्मपुत्र! मैंने आगमशास्त्रके अनुसार देवी षष्ठी और मंगलचण्डिका—इन दोनोंके उपाख्यानका वर्णन कर दिया; अब आप भगवती मनसाका आख्यान सुनिये, जिसे मैंने धर्मदेवके मुखसे सुना है॥ ३८॥

वे भगवती कश्यपकी मानसी कन्या हैं तथा वे मनसे ध्यान करनेपर प्रकाशित होती हैं; इसीलिये 'मनसा' देवी नामसे विख्यात हैं। वे मनसे परब्रह्म परमात्माका ध्यान करती हैं तथा उसी ध्यानयोगके द्वारा प्रकाशित होती हैं, इसीलिये वे देवी 'मनसा'—इस नामसे प्रसिद्ध हैं॥ ३९-४०॥

आत्मामें रमण करनेवाली तथा सिद्धयोगिनी उन वैष्णवी देवीने तीन युगोंतक तप करके परमात्मा श्रीकृष्णका दर्शन प्राप्त किया। उस समय गोपीपति भगवान् श्रीकृष्णने उनके वस्त्र और शरीरको जीर्ण देखकर उनका नाम 'जरत्कारु' रख दिया। कृपानिधि श्रीकृष्णने उन देवीको कृपापूर्वक वाञ्छित वर प्रदान किया। उन प्रभुने उनकी स्वयं पूजा की तथा और लोगोंसे भी उनकी पूजा करायी॥ ४१—४३॥

ब्रह्मलोकसे लेकर स्वर्गमें, पृथ्वीलोकमें तथा नागलोकमें सर्वत्र ये पूजित होने लगीं। सम्पूर्ण जगत्में ये अत्यधिक गौरवर्णा, सुन्दरी तथा मनोहारिणी हैं, अतः ये साध्वी 'जगद्गौरी'—इस नामसे विख्यात होकर पूजित हैं। वे देवी भगवान् शिवकी शिष्या हैं, इसलिये 'शैवी' कही गयी हैं। वे सदा भगवान् विष्णुकी परम भक्तिमें संलग्न रहती हैं, इसलिये 'वैष्णवी' कही गयी हैं॥ ४४-४५½॥

परीक्षित्पुत्र राजा जनमेजयके यज्ञमें उन्होंने नागोंकी प्राणरक्षा की थी, अतः वे 'नागेश्वरी' तथा 'नागभगिनी' नामसे विख्यात हुईं। वे विषका हरण करनेमें समर्थ हैं, अतः 'विषहरी' कही गयी हैं। उन्होंने भगवान् शिवसे सिद्धयोग प्राप्त किया था, इसलिये वे 'सिद्धयोगिनी' कही जाती हैं। साथ ही शिवजीसे उन्होंने महाज्ञान, योग तथा परम मृतसंजीवनीविद्या प्राप्त की थी, अतः विद्वान् पुरुष उन्हें 'महाज्ञानयुता' कहते हैं॥ ४६—४८½॥

आस्तीकस्य मुनीन्द्रस्य माता सापि तपस्विनी॥ ४९

आस्तीकमाता विज्ञाता जगत्यां सुप्रतिष्ठिता।
प्रिया मुनेर्जरत्कारोर्मुनीन्द्रस्य महात्मनः॥ ५०

योगिनो विश्वपूज्यस्य जरत्कारुप्रिया ततः।
जरत्कारुर्जगद्गौरी मनसा सिद्धयोगिनी॥ ५१

वैष्णवी नागभगिनी शैवी नागेश्वरी तथा।
जरत्कारुप्रियास्तीकमाता विषहरेति च॥ ५२

महाज्ञानयुता चैव सा देवी विश्वपूजिता।
द्वादशैतानि नामानि पूजाकाले तु यः पठेत्॥ ५३

तस्य नागभयं नास्ति तस्य वंशोद्भवस्य च।
नागभीते च शयने नागग्रस्ते च मन्दिरे॥ ५४

नागशोभे महादुर्गे नागवेष्टितविग्रहे।
इदं स्तोत्रं पठित्वा तु मुच्यते नात्र संशयः॥ ५५

नित्यं पठेद्यस्तं दृष्ट्वा नागवर्गः पलायते।
दशलक्षजपेनैव स्तोत्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम्॥ ५६

स्तोत्रसिद्धिर्भवेद्यस्य स विषं भोक्तुमीश्वरः।
नागैश्च भूषणं कृत्वा स भवेन्नागवाहनः॥ ५७

नागासनो नागतल्पो महासिद्धो भवेन्नरः।
अन्ते च विष्णुना सार्धं क्रीडत्येव दिवानिशम्॥ ५८

वे तपस्विनी देवी मुनीश्वर आस्तीककी माता हैं, इसलिये 'आस्तीकमाता' नामसे विख्यात होकर जगत्‌में सुप्रतिष्ठित हैं। वे भगवती विश्ववन्द्य, परम योगी तथा मुनियोंमें श्रेष्ठ महात्मा जरत्कारुकी प्रिय पत्नी थीं, इसलिये 'जरत्कारुप्रिया' कहलाती हैं॥ ४९-५०½॥

जरत्कारु, जगद्गौरी, मनसा, सिद्धयोगिनी, वैष्णवी, नागभगिनी, शैवी, नागेश्वरी, जरत्कारुप्रिया, आस्तीकमाता, विषहरा और महाज्ञानयुता—इन नामोंसे वे भगवती विश्वमें पूजी जाती हैं। जो मनुष्य पूजाके समय देवीके इन बारह नामोंका पाठ करता है, उसे तथा उसके वंशजोंको नागोंका भय नहीं रहता॥ ५१—५३½॥

जिस शयनागारमें नागोंका भय हो, जिस भवनमें नाग रहते हों, जो स्थान नागोंसे युक्त होनेके कारण अत्यन्त दारुण बन गया हो तथा जो नागोंसे वेष्टित हो, उन स्थानोंपर इस स्तोत्रका पाठ करके मनुष्य सर्पभयसे मुक्त हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं है॥ ५४-५५॥

जो मनुष्य इसे नित्य पढ़ता है, उसे देखकर नागोंका समुदाय भाग जाता है। दस लाख पाठ करनेसे यह स्तोत्र मनुष्योंके लिये सिद्ध हो जाता है। जिस मनुष्यको स्तोत्रसिद्धि हो जाती है, वह विषभक्षण करनेमें समर्थ हो जाता है। वह नागोंको भूषण बनाकर नागोंपर सवारी करनेमें सक्षम हो जाता है। वह व्यक्ति नागोंपर आसन लगानेवाला, नागोंपर शयन करनेवाला तथा महासिद्ध हो जाता है और अन्तमें भगवान् विष्णुके साथ दिन-रात क्रीडा करता है॥ ५६—५८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे नारायणनारदसंवादे मङ्गलचण्डीमनसयोरुपाख्यानवर्णनं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४७॥

अथाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

भगवती मनसाका पूजन-विधान, मनसा-पुत्र आस्तीकका जनमेजयके सर्पसत्रमें नागोंकी रक्षा करना, इन्द्रद्वारा मनसादेवीका स्तवन करना

श्रीनारायण उवाच

मत्तः पूजाविधानं च श्रूयतां मुनिपुङ्गव।
ध्यानं च सामवेदोक्तं प्रोक्तं देवीविधानकम्॥ १

श्रीनारायण बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! मैंने देवी मनसाके विषयमें विधानपूर्वक कह दिया। अब आप उनके सामवेदोक्त ध्यान तथा पूजा-विधानके विषयमें मुझसे सुनिये॥ १॥

श्वेतचम्पकवर्णाभां रत्नभूषणभूषिताम्।
वह्निशुद्धांशुकाधानां नागयज्ञोपवीतिनीम्॥ २

महाज्ञानयुतां तां च प्रवरज्ञानिनां वराम्।
सिद्धाधिष्ठातृदेवीं च सिद्धां सिद्धिप्रदां भजे॥ ३

इति ध्यात्वा च तां देवीं मूलेनैव प्रपूजयेत्।
नैवेद्यैर्विविधैर्धूपैः पुष्पगन्धानुलेपनैः॥ ४

मूलमन्त्रैश्च वेदोक्तैर्भक्तानां वाञ्छितप्रदः।
मुने कल्पतरुर्नाम सुसिद्धो द्वादशाक्षरः॥ ५

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं मनसादेव्यै स्वाहेति कीर्तितः।
पञ्चलक्षजपेनैव मन्त्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम्॥ ६

मन्त्रसिद्धिर्भवेद्यस्य स सिद्धो जगतीतले।
सुधासमं विषं तस्य धन्वन्तरिसमो भवेत्॥ ७

ब्रह्मन् स्नात्वा तु सङ्क्रान्त्यां गूढशालासु यत्नतः।
आवाह्य देवीमीशानां पूजयेद्योऽतिभक्तितः॥ ८

पञ्चम्यां मनसा ध्यायन् देव्यै दद्याच्च यो बलिम्।
धनवान्पुत्रवांश्चैव कीर्तिमान्स भवेद् ध्रुवम्॥ ९

पूजाविधानं कथितं तदाख्यानं निशामय।
कथयामि महाभाग यच्छ्रुतं धर्मवक्त्रतः॥ १०

पुरा नागभयाक्रान्ता बभूवुर्मानवा भुवि।
गतास्ते शरणं सर्वे कश्यपं मुनिपुङ्गवम्॥ ११

'भगवती मनसा श्वेत चम्पकपुष्पके वर्णके समान आभावाली हैं, ये रत्नमय आभूषणोंसे अलंकृत हैं, इन्होंने अग्निके समान विशुद्ध दिव्य वस्त्र धारण कर रखा है, ये नागोंके यज्ञोपवीतसे युक्त हैं, महान् ज्ञानसे सम्पन्न हैं, प्रसिद्ध ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ हैं, सिद्ध पुरुषोंकी अधिष्ठात्री देवी हैं, सिद्धिस्वरूपिणी हैं तथा सिद्धि प्रदान करनेवाली हैं—ऐसी भगवती मनसाकी मैं आराधना करता हूँ'॥ २-३॥

इस प्रकार ध्यान करके मूलमन्त्रसे देवी मनसाकी विधिवत् पूजा करनी चाहिये। वेदोक्त मूलमन्त्रोंका उच्चारण करके विविध प्रकारके नैवेद्य, धूप, पुष्प तथा पवित्र गन्ध-द्रव्योंके अनुलेपनसे उनकी पूजा सम्पन्न करनी चाहिये। हे मुने! भगवतीका द्वादशाक्षर मन्त्र पूर्णरूपसे सिद्ध हो जानेपर कल्पतरु नामक वृक्षकी भाँति भक्तोंको वांछित फल प्रदान करनेवाला हो जाता है। वह मन्त्र '**ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं मनसादेव्यै स्वाहा**'—ऐसा बताया गया है। पाँच लाख जप करनेसे मनुष्योंके लिये इस मन्त्रकी सिद्धि हो जाती है। जिसकी मन्त्रसिद्धि हो जाती है, वह पृथ्वीतलपर सिद्ध हो जाता है। उसके लिये विष भी अमृतके समान हो जाता है और वह धन्वन्तरितुल्य हो जाता है॥ ४—७॥

हे ब्रह्मन्! जो मनुष्य संक्रान्तिके दिन स्नान करके यत्नपूर्वक किसी गुप्त स्थानमें अति भक्तिसे सम्पन्न होकर भगवती मनसाका आवाहन करके इनकी पूजा करता है तथा पंचमी तिथिको मनसे ध्यान करते हुए देवीको नैवेद्य अर्पण करता है, वह निश्चितरूपसे धनवान्, पुत्रवान् तथा कीर्तिमान् होता है॥ ८-९॥

हे महाभाग! मैं देवी मनसाकी पूजाका विधान बतला चुका, अब मैं उनके उपाख्यानका वर्णन आपसे कर रहा हूँ, जिसे मैंने साक्षात् धर्मदेवके मुखसे सुना, उसे ध्यानपूर्वक सुनिये॥ १०॥

प्राचीन कालमें एक बार भूमण्डलके सभी मानव नागोंके भयसे आक्रान्त हो गये थे। तब वे सब मुनिश्रेष्ठ कश्यपकी शरणमें गये॥ ११॥

मन्त्रांश्च ससृजे भीतः कश्यपो ब्रह्मणान्वितः।
वेदबीजानुसारेण चोपदेशेन ब्रह्मणः॥ १२

मन्त्राधिष्ठातृदेवीं तां मनसा ससृजे तथा।
तपसा मनसा तेन बभूव मनसा च सा॥ १३

कुमारी सा च सम्भूता जगाम शङ्करालयम्।
भक्त्या सम्पूज्य कैलासे तुष्टाव चन्द्रशेखरम्॥ १४

दिव्यवर्षसहस्रं तं सिषेवे च मुनेः सुता।
आशुतोषो महेशश्च तां च तुष्टो बभूव ह॥ १५

महाज्ञानं ददौ तस्यै पाठयामास साम च।
कृष्णमन्त्रं कल्पतरुं ददावष्टाक्षरं मुने॥ १६

लक्ष्मीमायाकामबीजं ङेऽन्तं कृष्णपदं ततः।
त्रैलोक्यमङ्गलं नाम कवचं पूजनक्रमम्॥ १७

पुरश्चर्याक्रमं चापि वेदोक्तं सर्वसम्मतम्।
प्राप्य मृत्युञ्जयान्मन्त्रं सा सती च मुनेः सुता॥ १८

जगाम तपसे साध्वी पुष्करं शङ्कराज्ञया।
त्रियुगं च तपस्तप्त्वा कृष्णस्य परमात्मनः॥ १९

सिद्धा बभूव सा देवी ददर्श पुरतः प्रभुम्।
दृष्ट्वा कृशाङ्गीं बालां च कृपया च कृपानिधिः॥ २०

पूजां च कारयामास चकार च स्वयं हरिः।
वरं च प्रददौ तस्यै पूजिता त्वं भवे भव॥ २१
वरं दत्त्वा तु कल्याण्यै ततश्चान्तर्दधे हरिः।

तत्पश्चात् अत्यन्त भयभीत मुनि कश्यपने ब्रह्माजीके साथ मिलकर मन्त्रोंकी रचना की। उन्होंने वेदबीजमन्त्रोंके अनुसार तथा ब्रह्माजीके उपदेशसे मन्त्रोंका सृजन किया था। साथ ही उन्होंने अपने मनसे मन्त्रोंकी अधिष्ठात्री देवी उन भगवती मनसाका सृजन भी किया, अतः तपस्या तथा मनसे सृजित होनेके कारण वे 'मनसा' नामसे विख्यात हुईं॥ १२-१३॥

कुमारी अवस्थामें विद्यमान वे भगवान् शिवके धाममें चली गयीं। कैलासपर उन्होंने भक्तिपूर्वक विधिवत् शिवजीकी पूजा करके उनकी स्तुति की। इस प्रकार दिव्य एक हजार वर्षोंतक उस मुनि-कन्याने शिवजीकी उपासना की॥ १४$\frac{1}{2}$॥

आशुतोष भगवान् शिव उनपर प्रसन्न हो गये। हे मुने! तब उन्होंने मनसादेवीको महाज्ञान प्रदान किया तथा सामवेद पढ़ाया और श्रीकृष्णके कल्पवृक्षस्वरूप अष्टाक्षर मन्त्रका उपदेश किया। लक्ष्मीबीज, मायाबीज और कामबीजका पूर्वमें प्रयोग करके कृष्ण शब्दके अन्तमें 'ङे' (चतुर्थी) विभक्ति लगाकर उसके बाद 'नमः' जोड़ देनेपर बना हुआ अष्टाक्षर (**श्रीं ह्रीं क्लीं कृष्णाय नमः**) मन्त्र है॥ १५-१६$\frac{1}{2}$॥

भगवान् मृत्युंजय शिवसे त्रैलोक्यमंगल नामक कवच, पूजनक्रम, सर्वसम्मत तथा वेदोक्त पुरश्चरण-क्रम और मन्त्र प्राप्त करके वे मुनिकन्या साध्वी मनसा भगवान् शंकरकी आज्ञासे तपस्या करनेके लिये पुष्करक्षेत्रमें चली गयीं। वहाँ तीन युगोंतक परमेश्वर श्रीकृष्णकी तपस्या करके वे देवी सिद्ध हो गयीं और उन्होंने अपने समक्ष साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन किये॥ १७—१९$\frac{1}{2}$॥

उस समय कृपानिधि भगवान् श्रीकृष्णने कृश शरीरवाली उन बालाको कृपापूर्वक देखकर उनकी स्वयं पूजा की तथा दूसरोंसे भी पूजा करायी। उन्होंने उन देवीको यह वर भी दिया कि 'तुम जगत्में पूजित होओ'। कल्याणी मनसादेवीको यह वर प्रदान करके भगवान् श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये॥ २०-२१$\frac{1}{2}$॥

प्रथमे पूजिता सा च कृष्णेन परमात्मना॥ २२

द्वितीये शङ्करेणैव कश्यपेन सुरेण च।
मुनिना मनुना चैव नागेन मानवादिभिः॥ २३

बभूव पूजिता सा च त्रिषु लोकेषु सुव्रता।
जरत्कारुमुनीन्द्राय कश्यपस्तां ददौ पुरा॥ २४

अयाचितो मुनिश्रेष्ठो जग्राह ब्राह्मणाज्ञया।
कृत्वोद्वाहं महायोगी विश्रान्तस्तपसा चिरम्॥ २५

सुष्वाप देव्या जघने वटमूले च पुष्करे।
निद्रां जगाम स मुनिः स्मृत्वा निद्रेशमीश्वरम्॥ २६

जगामास्तं दिनकरः सायङ्काल उपस्थिते।
सञ्चिन्त्य मनसा साध्वी मनसा सा पतिव्रता॥ २७

धर्मलोपभयेनैव चकारालोचनं सती।
अकृत्वा पश्चिमां सन्ध्यां नित्यां चैव द्विजन्मनाम्॥ २८

ब्रह्महत्यादिकं पापं लभिष्यति पतिर्मम।
नोपतिष्ठति यः पूर्वां नोपास्ते यस्तु पश्चिमाम्॥ २९

स सर्वत्राशुचिर्नित्यं ब्रह्महत्यादिकं लभेत्।
वेदोक्तमिति सञ्चिन्त्य बोधयामास सुन्दरी॥ ३०

स च बुद्धो मुनिश्रेष्ठस्तां चुकोप भृशं मुने।

मुनिरुवाच

कथं मे सुखिनः साध्वि निद्राभङ्गः कृतस्त्वया॥ ३१

व्यर्थं व्रतादिकं तस्या या भर्तुश्चापकारिणी।
तपश्चानशनं चैव व्रतं दानादिकं च यत्॥ ३२

भर्तुरप्रियकारिण्याः सर्वं भवति निष्फलम्।
यया प्रियः पूजितश्च श्रीकृष्णः पूजितस्तया॥ ३३

पतिव्रताव्रतार्थञ्च पतिरूपो हरिः स्वयम्।
सर्वदानं सर्वयज्ञः सर्वतीर्थनिषेवणम्॥ ३४

सर्वं व्रतं तपः सर्वमुपवासादिकं च यत्।
सर्वधर्मश्च सत्यं च सर्वदेवप्रपूजनम्॥ ३५

तत्सर्वं स्वामिसेवायाः कलां नार्हति षोडशीम्।

इस प्रकार वे मनसादेवी सर्वप्रथम परमात्मा श्रीकृष्णके द्वारा पूजित हुईं। दूसरी बार भगवान् शिवने उनकी पूजा की और इसके बाद कश्यप, देवता, मुनि, मनु, नाग एवं मानव आदिके द्वारा वे सुव्रता मनसादेवी तीनों लोकोंमें पूजित हुईं॥ २२-२३½ ॥

इसके बाद कश्यपजीने उन देवीको जरत्कारुमुनिको सौंप दिया। कामनारहित होते हुए भी मुनिश्रेष्ठ जरत्कारुने ब्रह्माजीकी आज्ञासे उन्हें पत्नीरूपमें स्वीकार कर लिया। विवाह करनेके पश्चात् चिरकालीन तपस्यासे थके हुए महायोगी मुनि जरत्कारु पुष्करक्षेत्रमें एक वटवृक्षके नीचे देवी मनसाके जंघापर लेट गये और निद्रेश्वर भगवान् शिवका स्मरण करके सो गये॥ २४—२६॥

इतनेमें सूर्य अस्त हो गये। तब सायंकाल उपस्थित होनेपर परम साध्वी देवी मनसा धर्मलोपके भयसे अपने मनमें विचार करके यह सोचने लगीं कि 'ब्राह्मणोंके लिये नित्यकी सायंकालीन सन्ध्या न करके मेरे पतिदेव ब्रह्महत्या आदि पापके भागी होंगे। जो मनुष्य प्रातः तथा सायंकालकी सन्ध्या नहीं करता, वह सब प्रकारसे सदा अपवित्र होकर ब्रह्महत्याके पापका भागी होता है—ऐसा वेदोंमें कहा गया है'—यह सोचकर उस सुन्दरीने अपने पतिको जगा दिया। हे मुने! जग जानेपर मुनिश्रेष्ठ जरत्कारु मनसादेवीपर अत्यधिक कुपित हो उठे॥ २७—३०½ ॥

मुनि बोले—हे साध्वि! तुमने सुखपूर्वक सोये हुए मेरी निद्रा क्यों भंग कर दी? जो स्त्री अपने पतिका अपकार करती है, उसके व्रत आदि निरर्थक हो जाते हैं। अपने पतिका अपकार करनेवाली स्त्रीका जो भी तप, उपवास, व्रत, दान आदि है; वह सब निष्फल हो जाता है॥ ३१-३२½ ॥

जिस स्त्रीने अपने पतिकी पूजा की, उसने मानो साक्षात् श्रीकृष्णकी पूजा कर ली। पतिव्रता नारियोंके व्रतके लिये स्वयं भगवान् श्रीहरि पतिरूपमें विराजमान रहते हैं॥ ३३½ ॥

समस्त दान, यज्ञ, तीर्थसेवन, व्रत, तप, उपवास, धर्म, सत्य और सभी देवताओंका पूजन आदि जो भी पुण्य-कर्म है, वह सब पतिकी सेवाकी सोलहवीं कलाके भी बराबर नहीं है॥ ३४-३५½ ॥

पुण्ये च भारते वर्षे पतिसेवां करोति या॥ ३६
वैकुण्ठे स्वामिना सार्धं सा याति ब्रह्मणः पदम्।
विप्रियं कुरुते भर्तुर्विप्रियं वदति प्रियम्॥ ३७
असत्कुले प्रसूता हि तत्फलं श्रूयतां सति।
कुम्भीपाकं व्रजेत्सा च यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥ ३८
ततो भवति चाण्डाली पतिपुत्रविवर्जिता।
इत्युक्त्वा च मुनिश्रेष्ठो बभूव स्फुरिताधरः॥ ३९
चकम्पे तेन सा साध्वी भयेनोवाच तं पतिम्।

साध्व्युवाच

सन्ध्यालोपभयेनैव निद्राभङ्गः कृतस्तव॥ ४०
कुरु शान्तिं महाभाग दुष्टाया मम सुव्रत।
शृङ्गाराहारनिद्राणां यश्च भङ्गं करोति वै॥ ४१
स व्रजेत्कालसूत्रं वै यावच्चन्द्रदिवाकरौ।
इत्युक्त्वा मनसा देवी स्वामिनश्चरणाम्बुजे॥ ४२
पपात भक्त्या भीता च रुरोद च पुनः पुनः।
कुपितं च मुनिं दृष्ट्वा श्रीसूर्यं शप्तुमुद्यतम्॥ ४३
तत्राजगाम भगवान्सन्ध्यया सह नारद।
तत्रागत्य मुनिं सम्यगुवाच भास्करः स्वयम्॥ ४४
विनयेन च भीतश्च तया सह यथोचितम्।

भास्कर उवाच

सूर्यास्तसमयं दृष्ट्वा साध्वी धर्मभयेन च॥ ४५
बोधयामास त्वां विप्र शरणं त्वामहं गतः।
क्षमस्व भगवन्ब्रह्मन् मां शप्तुं नोचितं मुने॥ ४६
ब्राह्मणानां च हृदयं नवनीतसमं सदा।
तेषां क्षणार्धं क्रोधश्च ततो भस्म भवेज्जगत्॥ ४७

जो स्त्री पुण्यक्षेत्र भारतवर्षमें पतिकी सेवा करती है, वह अपने पतिके साथ वैकुण्ठधाम जाती है और वहाँ परब्रह्म भगवान् श्रीहरिके चरणोंमें शरण पाती है॥ ३६½ ॥

हे साध्वि! असत्कुलमें उत्पन्न जो स्त्री अपने पतिके प्रतिकूल आचरण करती है तथा उससे अप्रिय वचन बोलती है, उसके कृत्यका फल सुनो। वह स्त्री कुम्भीपाक नरकमें जाती है और वहाँ सूर्य तथा चन्द्रमाके स्थितिकालतक निवास करती है। तत्पश्चात् वह चाण्डाली होती है और पति तथा पुत्रसे विहीन रहती है॥ ३७-३८½ ॥

ऐसा कहकर मुनिश्रेष्ठ जरत्कारुके ओष्ठ प्रस्फुरित होने लगे, जिससे वह साध्वी भयसे काँपने लगी और वह अपने पतिसे कहने लगी॥ ३९½ ॥

साध्वी बोली—हे महाभाग! आपकी सन्ध्याके लोपके भयसे ही मैंने आपकी निद्रा भंग की है। हे सुव्रत! मुझ दुष्टाका यह अपराध अवश्य है, अब आप शान्त हो जाइये॥ ४०½ ॥

जो मानव शृंगार, आहार और निद्राका भंग करता है, वह सूर्य तथा चन्द्रमाकी स्थितिपर्यन्त कालसूत्रनरकमें वास करता है॥ ४१½ ॥

ऐसा कहकर भयभीत मनसादेवी भक्तिपूर्वक अपने स्वामीके चरणकमलोंपर गिर पड़ीं और बार-बार विलाप करने लगीं॥ ४२½ ॥

मुनि जरत्कारुको कुपित होकर सूर्यको शाप देनेके लिये उद्यत देखकर भगवान् सूर्य देवी सन्ध्याको साथ लेकर वहाँ आ गये। हे नारद! उन देवीके साथ स्वयं भगवान् भास्कर वहाँ आकर भयभीत होकर विनयपूर्वक मुनिसे सम्यक् प्रकारसे यथोचित बात कहने लगे॥ ४३-४४½ ॥

भास्कर बोले—हे विप्र! सूर्यास्तका समय जानकर साध्वी मनसाने धर्मलोपके भयसे आपको जगा दिया है। हे भगवन्! मैं आपकी शरणमें आ गया हूँ, मुझे क्षमा कर दीजिये। हे ब्रह्मन्! हे मुने! मुझे शाप देना आपके लिये उचित नहीं है। ब्राह्मणोंका हृदय तो सदा नवनीतके समान कोमल होता है, उनके आधे क्षणमात्रके क्रोधसे सारा संसार भस्म हो सकता

पुनः स्त्रष्टुं द्विजः शक्तो न तेजस्वी द्विजात्परः।
ब्राह्मणो ब्रह्मणो वंशः प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा॥ ४८

श्रीकृष्णं भावयेन्नित्यं ब्रह्मज्योतिः सनातनम्।
सूर्यस्य वचनं श्रुत्वा द्विजस्तुष्टो बभूव ह॥ ४९

सूर्यो जगाम स्वस्थानं गृहीत्वा ब्राह्मणाशिषम्।
तत्याज मनसां विप्रः प्रतिज्ञापालनाय च॥ ५०

रुदतीं शोकसंयुक्तां हृदयेन विदूयता।
सा सस्मार गुरुं शम्भुमिष्टदेवं विधिं हरिम्॥ ५१

कश्यपं जन्मदातारं विपत्तौ भयकर्शिता।
तत्राजगाम गोपीशो भगवाञ्छम्भुरेव च॥ ५२

विधिश्च कश्यपश्चैव मनसा परिचिन्तितः।
दृष्ट्वा विप्रोऽभीष्टदेवं निर्गुणं प्रकृतेः परम्॥ ५३

तुष्टाव परया भक्त्या प्रणनाम मुहुर्मुहुः।
नमश्चकार शम्भुं च ब्रह्माणं कश्यपं तथा॥ ५४

कथमागमनं देवा इति प्रश्नं चकार सः।
ब्रह्मा तद्वचनं श्रुत्वा सहसा समयोचितम्॥ ५५

प्रत्युवाच नमस्कृत्य हृषीकेशपदाम्बुजम्।
यदि त्यक्ता धर्मपत्नी धर्मिष्ठा मनसा सती॥ ५६

कुरुष्वास्यां सुतोत्पत्तिं स्वधर्मपालनाय वै।
जायायां च सुतोत्पत्तिं कृत्वा पश्चात्त्यजेन्मुने॥ ५७

अकृत्वा तु सुतोत्पत्तिं विरागी यस्त्यजेत्प्रियाम्।
स्त्रवते तस्य पुण्यं च चालन्यां च यथा जलम्॥ ५८

ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा जरत्कारुर्मुनीश्वरः।
चकार नाभिसंस्पर्शं योगेन मन्त्रपूर्वकम्॥ ५९
मनसाया मुनिश्रेष्ठ मुनिश्रेष्ठ उवाच ताम्।

है, द्विज फिरसे जगत्की सृष्टि भी कर सकता है, द्विजसे बढ़कर तेजस्वी दूसरा कोई नहीं है। ब्रह्मतेजसे जाज्वल्यमान, ब्रह्मज्योतिस्वरूप तथा ब्रह्मवंश ब्राह्मणको निरन्तर सनातन भगवान् श्रीकृष्णकी आराधना करनी चाहिये॥ ४५—४८½ ॥

सूर्यका वचन सुनकर द्विज जरत्कारु प्रसन्न हो गये। भगवान् सूर्य भी विप्र जरत्कारुका आशीर्वाद लेकर अपने स्थानको चले गये। प्रतिज्ञाकी रक्षाके लिये उन विप्रने विक्षुब्ध हृदयसे रुदन करती हुई तथा शोकसन्तप्त देवी मनसाका परित्याग कर दिया॥ ४९-५०½ ॥

उस विपत्तिमें भयसे व्याकुल देवी मनसाने अपने गुरुदेव शिव, इष्टदेवता ब्रह्मा, भगवान् श्रीहरि तथा जन्मदाता कश्यपजीका स्मरण किया॥ ५१½ ॥

मनसे देवी मनसाके ध्यान करनेपर गोपियोंके ईश भगवान् श्रीकृष्ण, शंकर, ब्रह्मा और कश्यपजी वहाँ आ गये॥ ५२½ ॥

प्रकृतिसे परे तथा निर्गुण अपने अभीष्ट देवको देखकर मुनि जरत्कारुने उनकी स्तुति की तथा बार-बार उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। उन्होंने भगवान् शिव, ब्रह्मा तथा कश्यपको भी नमस्कार किया। 'हे देवगण! यहाँ आपलोगोंका आगमन किसलिये हुआ है?' उन्होंने ऐसा प्रश्न किया॥ ५३-५४½ ॥

मुनि जरत्कारुका वचन सुनकर ब्रह्माजीने भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलको प्रणाम करके सहसा समयोचित उत्तर दिया—'हे मुने! यदि आप अपनी साध्वी तथा धर्मपरायणा पत्नी मनसाका त्याग ही करना चाहते हैं, तो इसे स्त्रीधर्म-पालनके योग्य बनानेहेतु पहले इससे पुत्र उत्पन्न कीजिये। अपनी भार्यासे पुत्र उत्पन्न करनेके बाद आप इसका त्याग कर सकते हैं; क्योंकि जो विरागी पुरुष पुत्र उत्पन्न किये बिना ही अपनी प्रिय भार्याका त्याग करता है, उसका पुण्य चलनीसे बहकर निकल जानेवाले जलकी भाँति नष्ट हो जाता है'॥ ५५—५८ ॥

हे मुनिश्रेष्ठ! ब्रह्माजीका वचन सुनकर मुनीश्वर जरत्कारुने मन्त्रोच्चारण करते हुए योगबलका आश्रय लेकर मनसादेवीकी नाभिका स्पर्श किया। तत्पश्चात् मुनिवर जरत्कारु उन देवीसे कहने लगे॥ ५९½ ॥

जरत्कारुरुवाच

गर्भेणानेन मनसे तव पुत्रो भविष्यति॥ ६०

जितेन्द्रियाणां प्रवरो धार्मिको ब्राह्मणाग्रणीः।
तेजस्वी च तपस्वी च यशस्वी च गुणान्वितः॥ ६१

वरो वेदविदां चैव ज्ञानिनां योगिनां तथा।
स च पुत्रो विष्णुभक्तो धार्मिकः कुलमुद्धरेत्॥ ६२

नृत्यन्ति पितरः सर्वे जन्ममात्रेण वै मुदा।
पतिव्रता सुशीला या सा प्रिया प्रियवादिनी॥ ६३

धर्मिष्ठा पुत्रमाता च कुलस्त्री कुलपालिका।
हरिभक्तिप्रदो बन्धुर्न चाभीष्टसुखप्रदः॥ ६४

यो बन्धुश्चेत्स च पिता हरिवर्त्मप्रदर्शकः।
सा गर्भधारिणी या च गर्भावासविमोचनी॥ ६५

दयारूपा च भगिनी यमभीतिविमोचनी।
विष्णुमन्त्रप्रदाता च स गुरुर्विष्णुभक्तिदः॥ ६६

गुरुश्च ज्ञानदो यो हि यज्ज्ञानं कृष्णभावनम्।
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं ततो विश्वं चराचरम्॥ ६७

आविर्भूतं तिरोभूतं किं वा ज्ञानं तदन्यतः।
वेदजं यज्ञजं यद्यत्तत्सारं हरिसेवनम्॥ ६८

तत्त्वानां सारभूतं च हरेरन्यद्विडम्बनम्।
दत्तं ज्ञानं मया तुभ्यं स स्वामी ज्ञानदो हि यः॥ ६९

ज्ञानात्प्रमुच्यते बन्धात्स रिपुर्यो हि बन्धदः।
विष्णुभक्तियुतं ज्ञानं नो ददाति च यो गुरुः॥ ७०

स रिपुः शिष्यघाती च यतो बन्धान्न मोचयेत्।
जननीं गर्भजक्लेशाद्यमयातनया तथा॥ ७१

न मोचयेद्यः स कथं गुरुस्तातो हि बान्धवः।
परमानन्दरूपं च कृष्णमार्गमनश्वरम्॥ ७२

न दर्शयेद्यः सततं कीदृशो बान्धवो नृणाम्।

जरत्कारु बोले—हे मनसे! तुम्हारे इस गर्भसे जितेन्द्रियोंमें श्रेष्ठ, धार्मिक, ब्राह्मणोंमें अग्रणी, तेजस्वी, तपस्वी, यशस्वी, गुणसम्पन्न और वेदवेत्ताओं-ज्ञानियों-योगियोंमें श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न होगा। वह धार्मिक तथा विष्णुभक्त पुत्र कुलका उद्धार करेगा। ऐसे पुत्रके जन्म लेनेमात्रसे पितृगण हर्षपूर्वक नाच उठते हैं। प्रिय पत्नी वही है; जो मृदुभाषिणी, सुशीला, पतिव्रता, धर्मिष्ठा, सुपुत्रकी माता, कुलस्त्री तथा कुलका पालन करनेवाली होती है। श्रीहरिकी भक्ति प्रदान करनेवाला ही सच्चा बन्धु होता है, न कि अभीष्ट सुख देनेवाला। भगवत्प्राप्तिका मार्ग दिखानेवाला बन्धु ही सच्चा पिता है। जो आवागमनसे मुक्त कर देनेवाली है, वही सच्ची माता होती है। वही बहन दयास्वरूपिणी है, जो यमके त्राससे छुटकारा दिला दे॥ ६०—६५॥

गुरु वही है, जो विष्णुका मन्त्र प्रदान करनेवाला तथा भगवान् श्रीहरिके प्रति भक्ति उत्पन्न करनेवाला हो। ज्ञानदाता गुरु वही है, जो भगवान् श्रीकृष्णका चिन्तन करानेवाला ज्ञान प्रदान करे; क्योंकि तृणसे लेकर ब्रह्मपर्यन्त चराचर सम्पूर्ण विश्व आविर्भूत होकर पुनः विनष्ट हो जाता है, तो फिर अन्य वस्तुसे ज्ञान कैसे हो सकता है? वेद अथवा यज्ञसे जो भी सारतत्त्व निकलता है, वह भगवान् श्रीहरिकी सेवा ही है। यही हरिसेवा समस्त तत्त्वोंका सारस्वरूप है, भगवान् श्रीहरिकी सेवाके अतिरिक्त अन्य सब कुछ विडम्बनामात्र है॥ ६६—६८½॥

[हे देवि!] इस प्रकार मैंने तुम्हें ज्ञानोपदेश कर दिया। ज्ञानदाता स्वामी वही है, जो ज्ञानके द्वारा बन्धनसे मुक्त कर देता है और जो बन्धनमें डालता है, वह शत्रु है॥ ६९½॥

जो गुरु भगवान् श्रीहरिमें भक्ति उत्पन्न करनेवाला ज्ञान नहीं देता, वह शिष्यघाती तथा शत्रु है; क्योंकि वह बन्धनसे मुक्त नहीं करता। जो जननीके गर्भजनित कष्ट तथा यमयातनासे मुक्त न कर सके; उसे गुरु, तात तथा बान्धव कैसे कहा जाय? जो भगवान् श्रीकृष्णके परमानन्दस्वरूप सनातन मार्गका निरन्तर दर्शन नहीं कराता, वह मनुष्योंके लिये कैसा बान्धव है?॥ ७०—७२½॥

भज साध्वि परं ब्रह्माच्युतं कृष्णं च निर्गुणम्॥ ७३

निर्मूलं च भवेत्पुंसां कर्म वै तस्य सेवया।
मया छलेन त्वं त्यक्ता क्षमस्वैतन्मम प्रिये॥ ७४

क्षमायुतानां साध्वीनां सत्त्वात्क्रोधो न विद्यते।
पुष्करे तपसे यामि गच्छ देवि यथासुखम्॥ ७५

श्रीकृष्णचरणाम्भोजे निःस्पृहाणां मनोरथाः।
जरत्कारुवचः श्रुत्वा मनसा शोककातरा॥ ७६

साश्रुनेत्रा च विनयादुवाच प्राणवल्लभम्।

मनसोवाच

दोषो नास्त्येव मे त्यक्तुं निद्राभङ्गेन ते प्रभो॥ ७७

यत्र स्मरामि त्वां नित्यं तत्र मामागमिष्यसि।
बन्धुभेदः क्लेशतमः पुत्रभेदस्ततः परम्॥ ७८

प्राणेशभेदः प्राणानां विच्छेदात्सर्वतः परः।
पतिः पतिव्रतानां तु शतपुत्राधिकं प्रियः॥ ७९

सर्वस्मात्तु प्रियः स्त्रीणां प्रियस्तेनोच्यते बुधैः।
पुत्रे यथैकपुत्राणां वैष्णवानां यथा हरौ॥ ८०

नेत्रे यथैकनेत्राणां तृषितानां यथा जले।
क्षुधितानां यथान्ने च कामुकानां च मैथुने॥ ८१

यथा परस्वे चौराणां यथा जारे कुयोषिताम्।
विदुषां च यथा शास्त्रे वाणिज्ये वणिजां यथा॥ ८२
तथा शश्वन्मनः कान्ते साध्वीनां योषितां प्रभो।

अतः हे साध्वि! तुम निर्गुण तथा अच्युत परब्रह्म श्रीकृष्णकी आराधना करो। उनकी उपासनासे मनुष्योंका सारा कर्म निर्मूल हो जाता है। हे प्रिये! मैंने छलपूर्वक तुम्हारा परित्याग किया है, अतः मेरे इस अपराधको क्षमा करो। सत्त्वगुणके प्रभावसे क्षमाशील साध्वी नारियोंमें क्रोध नहीं रहता। हे देवि! मैं तप करनेके लिये पुष्करक्षेत्र जा रहा हूँ। तुम भी यहाँसे सुखपूर्वक चली जाओ। भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलमें अनुराग ही निःस्पृह प्राणियोंका एकमात्र मनोरथ होता है॥ ७३—७५½ ॥

मुनि जरत्कारुका वचन सुनकर शोकसे व्याकुल तथा अश्रुपूरित नेत्रोंवाली मनसादेवी अपने प्राणप्रिय पतिदेवसे विनम्रतापूर्वक कहने लगीं॥ ७६½ ॥

मनसा बोलीं—हे प्रभो! निद्राभंग कर देनेके कारण जो आप मेरा त्याग कर रहे हैं, इसमें मेरा दोष नहीं है। [अतः आपसे मेरी यही प्रार्थना है कि] मैं जहाँ भी आपका स्मरण करूँ, वहीं आप मुझे सदा दर्शन दीजियेगा॥ ७७½ ॥

अपने बन्धुओंका वियोग अत्यन्त कष्टदायक होता है, पुत्रका वियोग उससे भी अधिक कष्टदायक होता है, किंतु प्राणेश्वर पतिदेवका वियोग प्राण-विच्छेदके तुल्य होनेके कारण सबसे अधिक कष्टकर होता है॥ ७८½ ॥

पतिव्रता स्त्रियोंके लिये पति सौ पुत्रोंसे भी अधिक प्रिय होता है। स्त्रियोंके लिये पति सबसे बढ़कर प्रिय होता है, अतः विद्वान् पुरुषोंने पतिको प्रियकी संज्ञा प्रदान की है॥ ७९½ ॥

जिस प्रकार एक पुत्रवाले लोगोंका मन पुत्रमें, वैष्णवजनोंका भगवान् श्रीहरिमें, एक नेत्रवालोंका नेत्रमें, प्यासे प्राणियोंका जलमें, भूखे प्राणियोंका अन्नमें, कामासक्त-जनोंका मैथुनमें, चोरोंका पराये धनमें, स्वेच्छाचारिणी स्त्रियोंका व्यभिचारी पुरुषमें, विद्वानोंका शास्त्रमें तथा वैश्योंका मन वाणिज्यमें लगा रहता है; उसी प्रकार हे प्रभो! पतिव्रता स्त्रियोंका मन सदा अपने पतिमें लगा रहता है॥ ८०—८२½ ॥

इत्युक्त्वा मनसा देवी पपात स्वामिनः पदे॥ ८३

क्षणं चकार क्रोडे तां कृपया च कृपानिधिः।
नेत्रोदकेन मनसां स्नापयामास तां मुनिः॥ ८४

साश्रु नेत्रा मुनेः क्रोडं सिषेच भेदकातरा।
तदा ज्ञानेन तौ द्वौ च विशोकौ सम्बभूवतुः॥ ८५

स्मारं स्मारं पदाम्भोजं कृष्णस्य परमात्मनः।
जगाम तपसे विप्रः स्वकान्तां सम्प्रबोध्य च॥ ८६

जगाम मनसा शम्भोः कैलासं मन्दिरं गुरोः।
पार्वती बोधयामास मनसां शोककर्शिताम्॥ ८७

शिवश्चातीव ज्ञानेन शिवेन च शिवालयः।
सुप्रशस्ते दिने साध्वी सुषुवे मङ्गलक्षणे॥ ८८

नारायणांशं पुत्रं तं योगिनां ज्ञानिनां गुरुम्।
गर्भस्थितो महाज्ञानं श्रुत्वा शङ्करवक्त्रतः॥ ८९

सम्बभूव च योगीन्द्रो योगिनां ज्ञानिनां गुरुः।
जातकं कारयामास वाचयामास मङ्गलम्॥ ९०

वेदांश्च पाठयामास शिवाय च शिवः शिशोः।
मणिरत्नकिरीटांश्च ब्राह्मणेभ्यो ददौ शिवः॥ ९१

पार्वती च गवां लक्षं रत्नानि विविधानि च।
शम्भुश्च चतुरो वेदान्वेदाङ्गानितरांस्तथा॥ ९२

बालकं पाठयामास ज्ञानं मृत्युञ्जयं परम्।
भक्तिरस्त्यधिका कान्तेऽभीष्टदेवे गुरौ तथा॥ ९३

यस्यास्तेन च तत्पुत्रो बभूवास्तीक एव च।

ऐसा कहकर मनसादेवी अपने स्वामीके चरणोंपर गिर पड़ीं। कृपानिधि मुनिवर जरत्कारुने कृपा करके क्षणभरके लिये उन्हें अपनी गोदमें ले लिया। मुनिने अश्रुसे मनसादेवीको सम्पृक्त कर दिया। वियोगजन्य भयसे व्याकुल तथा अश्रुपूरित नेत्रोंवाली देवी मनसाने भी अपने आँसुओंसे उन मुनिकी गोदको सींच डाला॥ ८३-८४½ ॥

तत्पश्चात् मुनि जरत्कारु तथा देवी मनसा—वे दोनों ही ज्ञानद्वारा शोकसे मुक्त हो गये। अपनी प्रियाको समझाकर बार-बार परमात्मा श्रीकृष्णके चरणकमलका ध्यान करते हुए मुनि जरत्कारु तपस्याके लिये चले गये और देवी मनसा भी अपने गुरु भगवान् शिवके धाम कैलासपर चली गयीं। वहाँ पार्वतीने शोकसन्तप्त देवी मनसाको बहुत समझाया और कल्याण-निधान भगवान् शिवने भी उसे अत्यन्त मंगलकारी ज्ञान प्रदान किया॥ ८५—८७½ ॥

तदनन्तर देवी मनसाने अत्यन्त प्रशस्त तथा मंगलमय वेलामें एक पुत्रको जन्म दिया, जो भगवान् नारायणका अंश और योगियों तथा ज्ञानियोंका भी गुरु था। वह बालक गर्भमें स्थित रहते हुए ही भगवान् शिवके मुखसे महाज्ञानका श्रवण करके योगियों तथा ज्ञानियोंका गुरु और योगीश्वर हो गया था॥ ८८-८९ ॥

भगवान् शिवने उस शिशुका जातकर्म-संस्कार कराया तथा उसके कल्याणके लिये स्वस्तिवाचन और वेदपाठ कराया॥ ९०½ ॥

शिवजीने बहुतसे मणि, रत्न तथा मुकुट ब्राह्मणोंको दान दिये और पार्वतीजीने लाखों गौएँ तथा भाँति-भाँतिके रत्न उन्हें प्रदान किये॥ ९१½ ॥

भगवान् शिवने उस बालकको चारों वेद तथा वेदांग पढ़ाये और उसे श्रेष्ठ मृत्युंजय-ज्ञानका उपदेश दिया॥ ९२½ ॥

अपने पति, अभीष्ट देवता तथा गुरुमें उस मनसाकी अत्यधिक भक्ति थी, इसलिये उसके पुत्रका नाम 'आस्तीक' हुआ॥ ९३½ ॥

जगाम तपसे विष्णोः पुष्करं शङ्कराज्ञया॥ ९४
सम्प्राप्य च महामन्त्रं ततश्च परमात्मनः।
दिव्यं वर्षत्रिलक्षं च तपस्तप्त्वा तपोधनः॥ ९५
आजगाम महायोगी नमस्कर्तुं शिवं प्रभुम्।
शङ्करं च नमस्कृत्य स्थित्वा तत्रैव बालकः॥ ९६
सा चाजगाम मनसा कश्यपस्याश्रमं पितुः।
तां सपुत्रां सुतां दृष्ट्वा मुदं प्राप प्रजापतिः॥ ९७
शतलक्षं च रत्नानां ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुने।
ब्राह्मणान्भोजयामास सोऽसंख्यान् श्रेयसे शिशोः॥ ९८
अदितिश्च दितिश्चान्या मुदं प्राप परन्तप।
सा सपुत्रा च सुचिरं तस्थौ तातालये सदा॥ ९९
तदीयं पुनराख्यानं वक्ष्यामि तन्निशामय।
अथाभिमन्युतनये ब्रह्मशापः परीक्षिते॥ १००
बभूव सहसा ब्रह्मन् दैवदोषेण कर्मणा।
सप्ताहे समतीते तु तक्षकस्त्वां च धक्ष्यति॥ १०१
शशाप शृङ्गी तत्रैव कौशिक्याश्च जलेन वै।
राजा श्रुत्वा तत्प्रवृत्तिं निर्वातस्थानमागतः॥ १०२
तत्र तस्थौ च सप्ताहं देहरक्षणतत्परः।
सप्ताहे समतीते तु गच्छन्तं तक्षकं पथि॥ १०३
धन्वन्तरिर्नृपं भोक्तुं ददर्श गामुकः पथि।
तयोर्बभूव संवादः सुप्रीतिश्च परस्परम्॥ १०४
धन्वन्तरिर्मणिं प्राप तक्षकः स्वेच्छया ददौ।
स ययौ तं गृहीत्वा तु सन्तुष्टो हृष्टमानसः॥ १०५
तक्षको भक्षयामास नृपं तं मञ्चके स्थितम्।
राजा जगाम तरसा देहं त्यक्त्वा परत्र च॥ १०६
संस्कारं कारयामास पितुर्वै जनमेजयः।

मुनि जरत्कारु पहले ही शिवजीकी आज्ञासे भगवान् विष्णुकी तपस्या करनेके लिये पुष्करक्षेत्रमें चले गये थे। वहाँ परमात्मा श्रीकृष्णका महामन्त्र प्राप्त करके वे तपोधन महायोगी जरत्कारु दिव्य तीन लाख वर्षोंतक तपस्या करनेके पश्चात् भगवान् शिवको नमस्कार करनेके लिये आये। शंकरको नमस्कार करके वे वहीं रुक गये। बालक भी वहींपर था॥ ९४—९६॥

तत्पश्चात् वे देवी मनसा अपने पिता कश्यपमुनिके आश्रममें आ गयीं। पुत्रसहित उस पुत्रीको देखकर प्रजापति कश्यप अत्यन्त हर्षित हुए। हे मुने! कश्यपजीने शिशुके कल्याणके लिये ब्राह्मणोंको करोड़ों रत्नोंका दान किया और असंख्य ब्राह्मणोंको भोजन कराया॥ ९७-९८॥

हे परंतप! प्रजापति कश्यपकी दिति, अदिति तथा अन्य सभी पत्नियाँ परम प्रसन्न हुईं। उस समय देवी मनसा अपने पुत्रके साथ दीर्घकालतक अपने पिताके आश्रममें स्थित रहीं। अब उनका आगेका आख्यान पुनः कहूँगा, उसे ध्यानपूर्वक सुनिये॥ ९९½॥

हे ब्रह्मन्! एक समयकी बात है, अभिमन्युपुत्र राजा परीक्षित् दैवकी प्रेरणासे अपने द्वारा किये गये सदोष कर्मके कारण ब्रह्मशापसे सहसा ग्रस्त हो गये। शृंगीऋषिने कौशिकीनदीका जल लेकर उन्हें शाप दे दिया कि एक सप्ताह व्यतीत होते ही तक्षकनाग तुम्हें डँस लेगा॥ १००-१०१½॥

शृंगीऋषिका वह शाप सुनकर राजा परीक्षित् ऐसे सुरक्षित स्थानपर आ गये, जहाँ वायु भी प्रवेश नहीं कर सकता था। अपने देहकी रक्षामें तत्पर रहते हुए राजा परीक्षित् एक सप्ताहतक वहाँ रहे॥ १०२½॥

राजा परीक्षित्को विषमुक्त करनेके लिये जाते हुए धन्वन्तरिने सप्ताह बीतनेपर राजाको डँसनेके लिये जा रहे तक्षकको मार्गमें देखा॥ १०३½॥

उन दोनोंमें बातचीत होने लगी और परस्पर बड़ी प्रीति हो गयी। तक्षकने अपनी इच्छासे उन्हें मणि दे दी और धन्वन्तरिने मणि ग्रहण कर ली। मणि पाकर वे सन्तुष्ट हो गये और प्रसन्नचित्त होकर लौट गये। इसके बाद तक्षकने मंचपर बैठे हुए राजाको डँस लिया। इसके परिणामस्वरूप राजा परीक्षित् तत्काल देह त्यागकर परलोक चले गये। तब राजा जनमेजयने अपने पिताका समस्त और्ध्वदैहिक संस्कार कराया॥ १०४—१०६½॥

राजा चकार यज्ञं च सर्पसत्रं ततो मुने॥ १०७
प्राणांस्तत्याज सर्पाणां समूहो ब्रह्मतेजसा।
स तक्षको वै भीतस्तु महेन्द्रं शरणं ययौ॥ १०८
सेन्द्रं च तक्षकं हन्तुं विप्रवर्गः समुद्यतः।
अथ देवाश्च सेन्द्राश्च सञ्जग्मुर्मनसान्तिकम्॥ १०९
तां तुष्टाव महेन्द्रश्च भयकातरविह्वलः।
तत आस्तीक आगत्य यज्ञं च मातुराज्ञया॥ ११०
महेन्द्रतक्षकप्राणान्ययाचे भूमिपं परम्।
ददौ वरं नृपश्रेष्ठः कृपया ब्राह्मणाज्ञया॥ १११
यज्ञं समाप्य विप्रेभ्यो दक्षिणां च ददौ मुदा।
विप्राश्च मुनयो देवा गत्वा च मनसान्तिकम्॥ ११२
मनसां पूजयामासुस्तुष्टुवुश्च पृथक् पृथक्।
शक्रः सम्भृतसम्भारो भक्तियुक्तः सदा शुचिः॥ ११३
मनसां पूजयामास तुष्टाव परमादरात्।
नत्वा षोडशोपचारं बलिं च तत्प्रियं तदा॥ ११४
प्रददौ परितुष्टश्च ब्रह्मविष्णुशिवाज्ञया।
सम्पूज्य मनसां देवीं प्रययुः स्वालयं च ते॥ ११५
इत्येवं कथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि।

नारद उवाच

केन स्तोत्रेण तुष्टाव महेन्द्रो मनसां सतीम्॥ ११६
पूजाविधिक्रमं तस्याः श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः।

श्रीनारायण उवाच

सुस्नातः शुचिराचान्तो धृत्वा धौते च वाससी॥ ११७
रत्नसिंहासने देवीं वासयामास भक्तितः।
स्वर्गङ्गाया जलेनैव रत्नकुम्भस्थितेन च॥ ११८
स्नापयामास मनसां महेन्द्रो वेदमन्त्रतः।
वाससी वासयामास वह्निशुद्धे मनोहरे॥ ११९

हे मुने! तत्पश्चात् राजाने सर्पसत्र नामक यज्ञ आरम्भ किया, जिसमें ब्रह्मतेजके कारण अनेक सर्प प्राण त्यागने लगे। तब तक्षक भयभीत होकर इन्द्रकी शरणमें चला गया। विप्रसमुदाय इन्द्रसहित तक्षकको मारनेके लिये उद्यत हुआ॥ १०७-१०८½॥

ऐसी स्थितिमें इन्द्रसहित सभी देवगण देवी मनसाके पास गये। वहाँपर भयातुर तथा व्याकुल इन्द्रने उन भगवती मनसाकी स्तुति की॥ १०९½॥

तदनन्तर मुनिवर आस्तीकने माताकी आज्ञासे यज्ञमें आकर श्रेष्ठ राजा जनमेजयसे इन्द्र और तक्षकके प्राणोंकी याचना की। तब महाराज जनमेजयने उन्हें कृपापूर्वक प्राणदानका वर दे दिया और ब्राह्मणोंकी आज्ञासे यज्ञका समापन करके विप्रोंको प्रसन्नतापूर्वक दक्षिणा दी॥ ११०-१११½॥

तत्पश्चात् ब्राह्मण, मुनि तथा देवताओंने देवी मनसाके पास जाकर पृथक्-पृथक् उनकी पूजा तथा स्तुति की। इन्द्रने भी सभी पूजन-सामग्री एकत्र करके पवित्र होकर परम आदरपूर्वक मनसादेवीका पूजन तथा स्तवन किया। उन्होंने अत्यन्त प्रसन्न होकर देवीको श्रद्धापूर्वक नमस्कार करके उन्हें षोडशोपचार तथा प्रियपदार्थ प्रदान किये। इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु और शिवकी आज्ञाके अनुसार देवी मनसाकी पूजा करके वे सब अपने-अपने स्थानको चले गये। [हे मुने!] इस प्रकार मैंने मनसादेवीका सम्पूर्ण आख्यान कह दिया, अब आप पुनः क्या सुनना चाहते हैं?॥ ११२—११५½॥

नारदजी बोले—[हे भगवन्!] देवराज इन्द्रने किस स्तोत्रसे देवी मनसाकी स्तुति की? साथ ही मैं उन देवीके पूजा-विधानका क्रम यथार्थरूपमें सुनना चाहता हूँ॥ ११६½॥

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] देवराज इन्द्रने विधिपूर्वक स्नान किया। इसके बाद पवित्र होकर तथा आचमन करके उन्होंने दो शुद्ध वस्त्र धारण किये, फिर देवी मनसाको भक्तिपूर्वक रत्नमय सिंहासनपर विराजित किया। तत्पश्चात् इन्द्रने वेदमन्त्रोंका उच्चारण करते हुए रत्नमय कलशमें भरे हुए स्वर्गंगाके जलसे भगवतीको स्नान कराया और अग्नितुल्य शुद्ध दो

सर्वाङ्गे चन्दनं कृत्वा पादार्घ्यं भक्तिसंयुतः।
गणेशं च दिनेशं च वह्निं विष्णुं शिवं शिवाम्॥ १२०

सम्पूज्यादौ देवषट्कं पूजयामास तां सतीम्।
ॐ ह्रीं श्रीं मनसादेव्यै स्वाहेत्येवं च मन्त्रतः॥ १२१

दशाक्षरेण मूलेन ददौ सर्वं यथोचितम्।
दत्त्वा षोडशोपचारान्दुर्लभान्देवनायकः॥ १२२

पूजयामास भक्त्या च विष्णुना प्रेरितो मुदा।
वाद्यं नानाप्रकारं च वादयामास तत्र वै॥ १२३

बभूव पुष्पवृष्टिश्च नभसो मनसोपरि।
देवप्रियाज्ञया तत्र ब्रह्मविष्णुशिवाज्ञया॥ १२४

तुष्टाव साश्रुनेत्रश्च पुलकाङ्कितविग्रहः।

पुरन्दर उवाच

देवि त्वां स्तोतुमिच्छामि साध्वीनां प्रवरां वराम्॥ १२५

परात्परां च परमां न हि स्तोतुं क्षमोऽधुना।
स्तोत्राणां लक्षणं वेदे स्वभावाख्यानतत्परम्॥ १२६

न क्षमः प्रकृते वक्तुं गुणानां गणनां तव।
शुद्धसत्त्वस्वरूपा त्वं कोपहिंसादिवर्जिता॥ १२७

न च शक्तो मुनिस्तेन त्यक्तुं याच्ञा कृता यतः।
त्वं मया पूजिता साध्वी जननी मे यथादितिः॥ १२८

दयारूपा च भगिनी क्षमारूपा यथा प्रसूः।
त्वया मे रक्षिताः प्राणाः पुत्रदाराः सुरेश्वरि॥ १२९

अहं करोमि त्वत्पूजां प्रीतिश्च वर्धतां सदा।
नित्या यद्यपि पूज्या त्वं सर्वत्र जगदम्बिके॥ १३०

तथापि तव पूजां च वर्धयामि सुरेश्वरि।
ये त्वामाषाढसङ्क्रान्त्यां पूजयिष्यन्ति भक्तितः॥ १३१

मनोहर वस्त्र पहनाये। देवीके सम्पूर्ण अंगोंमें चन्दन लगाकर उन्हें भक्तिपूर्वक पाद्य तथा अर्घ्य अर्पण करनेके अनन्तर गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव तथा पार्वती—इन छः देवताओंकी विधिवत् पूजा करके इन्द्रने साध्वी मनसाका पूजन किया॥ ११७—१२०½ ॥

इन्द्रने '**ॐ ह्रीं श्रीं मनसादेव्यै स्वाहा**'—इस दशाक्षर मूल मन्त्रके द्वारा यथोचितरूपसे सभी पूजन-सामग्री अर्पित की। इस तरह भगवान् विष्णुकी प्रेरणा पाकर देवराज इन्द्रने सोलह प्रकारके दुर्लभ पूजनोपचार अर्पण करके प्रसन्नतापूर्वक भक्तिके साथ देवी मनसाकी पूजा की। उस समय इन्द्रने नाना प्रकारके वाद्य बजवाये॥ १२१—१२३॥

देवताओंके प्रिय इन्द्रकी आज्ञा तथा ब्रह्मा, विष्णु और शिवकी आज्ञासे देवी मनसाके ऊपर आकाशसे पुष्पवृष्टि होने लगी। तत्पश्चात् पुलकित शरीरवाले इन्द्र नेत्रोंमें आँसू भरकर भगवती मनसाकी स्तुति करने लगे॥ १२४½ ॥

पुरन्दर बोले—हे देवि! पतिव्रताओंमें अति-श्रेष्ठ, परात्पर तथा परमा आप भगवतीकी मैं स्तुति करना चाहता हूँ; किंतु इस समय आपकी स्तुति कर पानेमें समर्थ नहीं हूँ। हे प्रकृते! मैं वेदमें वर्णित आपके स्तोत्रोंके लक्षण तथा आपके चरित्रसम्बन्धी आख्यान आदिका वर्णन करनेमें सक्षम नहीं हूँ। [हे देवि!] मैं आपके गुणोंकी गणना नहीं कर सकता॥ १२५-१२६½ ॥

आप शुद्ध सत्त्वस्वरूपा हैं तथा क्रोध, हिंसा आदिसे रहित हैं। मुनि जरत्कारु आपका त्याग कर सकनेमें समर्थ नहीं थे, इसलिये उन्होंने आपसे क्षमायाचना की थी। आप साध्वी मेरी माता अदितिके समान ही मेरी पूजनीया हैं। आप दयारूपसे मेरी भगिनी तथा क्षमारूपसे मेरी जननी हैं॥ १२७-१२८½ ॥

हे सुरेश्वरि! आपके द्वारा मेरे प्राण, पुत्र और स्त्रीकी रक्षा हुई है, अतः मैं आपकी पूजा करता हूँ। आपके प्रति मेरी प्रीति निरन्तर बढ़ती रहे। हे जगदम्बिके! यद्यपि आप सनातनी भगवती सर्वत्र पूज्य हैं, फिर भी मैं आपकी पूजाका प्रचार कर रहा हूँ। हे सुरेश्वरि! जो मनुष्य आषाढ़-मासकी संक्रान्ति,

पञ्चम्यां मनसाख्यायां मासान्ते वा दिने दिने।
पुत्रपौत्रादयस्तेषां वर्धन्ते च धनानि वै॥ १३२

यशस्विनः कीर्तिमन्तो विद्यावन्तो गुणान्विताः।
ये त्वां न पूजयिष्यन्ति निन्दन्त्यज्ञानतो जनाः॥ १३३

लक्ष्मीहीना भविष्यन्ति तेषां नागभयं सदा।
त्वं स्वयं सर्वलक्ष्मीश्च वैकुण्ठे कमलालया॥ १३४

नारायणांशो भगवाञ्जरत्कारुर्मुनीश्वरः।
तपसा तेजसा त्वां च मनसा ससृजे पिता॥ १३५

अस्माकं रक्षणायैव तेन त्वं मनसाभिधा।
मनसादेवि शक्त्या त्वं स्वात्मना सिद्धयोगिनी॥ १३६

तेन त्वं मनसादेवी पूजिता वन्दिता भव।
ये भक्त्या मनसां देवाः पूजयन्त्यनिशं भृशम्॥ १३७

तेन त्वां मनसां देवीं प्रवदन्ति मनीषिणः।
सत्यस्वरूपा देवि त्वं शश्वत्सत्यनिषेवणात्॥ १३८

यो हि त्वां भावयेन्नित्यं स त्वां प्राप्नोति तत्परः।
इन्द्रश्च मनसां स्तुत्वा गृहीत्वा भगिनीवरम्॥ १३९

प्रजगाम स्वभवनं भूषया सपरिच्छदम्।
पुत्रेण सार्धं सा देवी चिरं तस्थौ पितुर्गृहे॥ १४०

भ्रातृभिः पूजिता शश्वन्मान्या वन्द्या च सर्वतः।
गोलोकात्सुरभिर्ब्रह्मन् तत्रागत्य सुपूजिताम्॥ १४१

तां स्नापयित्वा क्षीरेण पूजयामास सादरम्।
ज्ञानं च कथयामास गोप्यं सर्वं सुदुर्लभम्॥ १४२

तया देवैः पूजिता सा स्वर्लोकं च पुनर्ययौ।

मनसा-पंचमी (नागपंचमी), मासके अन्तमें अथवा प्रतिदिन भक्तिपूर्वक आपकी पूजा करेंगे, उनके पुत्र-पौत्र आदि तथा धनकी वृद्धि अवश्य ही होगी और वे यशस्वी, कीर्तिमान्, विद्यासम्पन्न तथा गुणी होंगे। जो प्राणी आपकी पूजा नहीं करेंगे तथा अज्ञानके कारण आपकी निन्दा करेंगे, वे लक्ष्मीविहीन रहेंगे और उन्हें सदा नागोंसे भय बना रहेगा॥ १२९—१३३½ ॥

[हे देवि!] आप स्वयं सर्वलक्ष्मी हैं तथा वैकुण्ठमें कमलालया हैं और मुनीश्वर भगवान् जरत्कारु नारायणके अंश हैं। आपके पिताने हमलोगोंकी रक्षाके उद्देश्यसे ही तपस्या और तेजके प्रभावसे मनके द्वारा आपका सृजन किया है, अतः आप 'मनसा' नामसे विख्यात हैं॥ १३४-१३५½ ॥

हे मनसादेवि! आप अपनी शक्तिसे सिद्धयोगिनी हैं, अतः आप मनसादेवी सबके द्वारा पूजित और वन्दित हों। देवगण भक्तिपूर्वक मनसे निरन्तर आपकी श्रेष्ठ पूजा करते हैं, इसीलिये विद्वान् पुरुष आपको 'मनसादेवी' कहते हैं। हे देवि! सत्यकी सर्वदा उपासना करनेके कारण आप सत्यस्वरूपिणी हैं। जो मनुष्य तत्पर होकर निरन्तर आपका ध्यान करता है, वह आपको प्राप्त कर लेता है॥ १३६—१३८½ ॥

[हे मुने!] इस प्रकार मनसादेवीकी स्तुति करके और उन भगिनीरूप देवीसे वर प्राप्तकर देवराज इन्द्र अनेकविध भूषणोंसे अलंकृत अपने भवनको चले गये॥ १३९½ ॥

मनसादेवीने अपने पुत्रके साथ पिता कश्यपके आश्रममें दीर्घकालतक निवास किया। भ्राताओंके द्वारा वे सदा पूजित, सम्मानित और वन्दित हुईं॥ १४०½ ॥

हे ब्रह्मन्! तदनन्तर सुरभि गौने गोलोकसे वहाँ आकर इन्द्रद्वारा सुपूजित उन मनसादेवीको अपने दुग्धसे स्नान कराकर आदरपूर्वक उनकी पूजा की और उन देवीने उन्हें अत्यन्त दुर्लभ तथा गोपनीय सम्पूर्ण ज्ञानका उपदेश दिया। तत्पश्चात् उस सुरभि तथा देवताओंके द्वारा पूजित वे देवी मनसा पुनः स्वर्गलोकको चली गयीं॥ १४१-१४२½ ॥

इन्द्रस्तोत्रं पुण्यबीजं मनसां पूजयेत्पठेत्॥ १४३

तस्य नागभयं नास्ति तस्य वंशोद्भवस्य च।
विषं भवेत्सुधातुल्यं सिद्धस्तोत्रो यदा भवेत्॥ १४४

पञ्चलक्षजपेनैव सिद्धस्तोत्रो भवेन्नरः।
सर्पशायी भवेत्सोऽपि निश्चितं सर्पवाहनः॥ १४५

जो मनुष्य पुण्यबीजस्वरूप इस इन्द्रस्तोत्रका पाठ करता है तथा भगवती मनसाकी पूजा करता है, उसे तथा उसके वंशजोंके लिये नागोंका भय नहीं रह जाता। यदि मनुष्य इस स्तोत्रको सिद्ध कर ले, तो उसके लिये विष भी अमृत-तुल्य हो जाता है। इस स्तोत्रका पाँच लाख जप कर लेनेसे मनुष्यको इसकी सिद्धि हो जाती है और वह निश्चय ही सर्पपर शयन करनेवाला तथा सर्पपर सवारी करनेवाला हो जाता है॥ १४३—१४५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे मनसोपाख्यानवर्णनं नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४८॥



अथैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

आदि गौ सुरभिदेवीका आख्यान

नारद उवाच

का वा सा सुरभिर्देवी गोलोकादागता च या।
तज्जन्मचरितं ब्रह्मञ्छ्रोतुमिच्छामि यत्नतः॥ १

नारदजी बोले—हे ब्रह्मन्! गोलोकसे जो सुरभिदेवी आयी थीं, वे कौन थीं? मैं ध्यानपूर्वक उनका जन्मचरित्र सुनना चाहता हूँ॥ १॥

श्रीनारायण उवाच

गवामधिष्ठातृदेवी गवामाद्या गवां प्रसूः।
गवां प्रधाना सुरभिर्गोलोके सा समुद्भवा॥ २

सर्वादिसृष्टेश्चरितं कथयामि निशामय।
बभूव तेन तज्जन्म पुरा वृन्दावने वने॥ ३

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] वे देवी सुरभि गोलोकमें प्रकट हुईं। वे गौओंकी अधिष्ठात्री देवी, गौओंकी आदिस्वरूपिणी, गौओंकी जननी तथा गौओंमें प्रधान हैं। मैं सभी गौओंकी आदिसृष्टिस्वरूपा उन सुरभिके चरित्रका वर्णन कर रहा हूँ, आप ध्यानपूर्वक सुनिये। पूर्वकालमें वृन्दावनमें सुरभिका प्रादुर्भाव हुआ था॥ २-३॥

एकदा राधिकानाथो राधया सह कौतुकी।
गोपाङ्गनापरिवृतः पुण्यं वृन्दावनं ययौ॥ ४

सहसा तत्र रहसि विजहार स कौतुकात्।
बभूव क्षीरपानेच्छा तस्य स्वेच्छामयस्य च॥ ५

एक समयकी बात है, गोपांगनाओंसे घिरे हुए परम कौतुकी राधिकापति श्रीकृष्ण राधाके साथ पुनीत वृन्दावनमें गये हुए थे। वहाँ वे एकान्तमें क्रीडापूर्वक विहार करने लगे, तभी सहसा उन स्वेच्छामय प्रभुको दुग्धपानकी इच्छा हो गयी॥ ४-५॥

ससृजे सुरभिं देवीं लीलया वामपार्श्वतः।
वत्सयुक्तां दुग्धवतीं वत्सो नाम मनोरथः॥ ६

उसी समय उन्होंने अपने वामभागसे लीलापूर्वक बछड़ेसहित दुग्धवती सुरभि गौको प्रकट कर दिया। उस बछड़ेका नाम मनोरथ था॥ ६॥

दृष्ट्वा सवत्सां श्रीदामा नवभाण्डे दुदोह च।
क्षीरं सुधातिरिक्तं च जन्ममृत्युजराहरम्॥ ७

बछड़ेसहित उस गायको देखकर श्रीदामाने एक नवीन पात्रमें उसका दूध दुहा। जन्म, मृत्यु तथा बुढ़ापाको हरनेवाला वह दुग्ध अमृतसे भी बढ़कर

तदुत्थं च पयः स्वादु पपौ गोपीपतिः स्वयम्।
सरो बभूव पयसां भाण्डविस्त्रंसनेन च॥ ८
दीर्घं च विस्तृतं चैव परितः शतयोजनम्।
गोलोकेऽयं प्रसिद्धश्च सोऽपि क्षीरसरोवरः॥ ९

था। सुरभिसे दुहे गये उस स्वादिष्ट दूधको स्वयं गोपीपति भगवान् श्रीकृष्ण पीने लगे। तभी पात्रके गिरकर फूट जानेसे चारों ओर सौ योजनकी लम्बाई तथा चौड़ाईवाला एक विशाल दूधका सरोवर हो गया। यही सरोवर गोलोकमें क्षीरसरोवर नामसे प्रसिद्ध है॥ ७—९॥

गोपिकानां च राधायाः क्रीडावापी बभूव सा।
रत्नेन्द्ररचिता पूर्णं भूता चापीश्वरेच्छया॥ १०
बभूव कामधेनूनां सहसा लक्षकोटयः।
यावन्तस्तत्र गोपाश्च सुरभ्या लोमकूपतः॥ ११
तासां पुत्राश्च बहवः सम्बभूवुरसंख्यकाः।
कथिता च गवां सृष्टिस्तया च पूरितं जगत्॥ १२

वह सरोवर गोपिकाओं तथा राधाका क्रीडावापी हो गया। वापीके [घाट आदि] पूर्णरूपसे श्रेष्ठ रत्नोंसे निर्मित थे। भगवान् श्रीकृष्णकी इच्छासे उसी समय सहसा लाखों-करोड़ों कामधेनु गौएँ प्रकट हो गयीं। वहाँ जितने गोप थे वे सभी उस सुरभिके रोमकूपोंसे प्रकट हुए थे। तत्पश्चात् उन गौओंकी असंख्य सन्तानें उत्पन्न हो गयीं। इस प्रकार उस सुरभिसे गायोंकी सृष्टि कही गयी है; उसीसे यह जगत् व्याप्त है॥ १०—१२॥

पूजां चकार भगवान् सुरभ्याश्च पुरा मुने।
ततो बभूव तत्पूजा त्रिषु लोकेषु दुर्लभा॥ १३
दीपान्वितापरदिने श्रीकृष्णस्याज्ञया हरेः।
बभूव सुरभिः पूज्या धर्मवक्त्रादिदं श्रुतम्॥ १४

हे मुने! पूर्वकालमें भगवान् श्रीकृष्णने देवी सुरभिकी पूजा की थी, उसी समयसे तीनों लोकोंमें उस सुरभिकी दुर्लभ पूजाका प्रचार हो गया। दीपावलीके दूसरे दिन भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञासे देवी सुरभि पूजित हुई थीं—यह मैंने धर्मदेवके मुखसे सुना है॥ १३-१४॥

ध्यानं स्तोत्रं मूलमन्त्रं यद्यत्पूजाविधिक्रमम्।
वेदोक्तं च महाभाग निबोध कथयामि ते॥ १५

हे महाभाग! अब मैं आपको देवी सुरभिका वेदोक्त ध्यान, स्तोत्र, मूलमन्त्र तथा जो-जो पूजाका विधिक्रम है, उसे बता रहा हूँ, ध्यानपूर्वक सुनिये॥ १५॥

ॐ सुरभ्यै नम इति मन्त्रस्तस्याः षडक्षरः।
सिद्धो लक्षजपेनैव भक्तानां कल्पपादपः॥ १६

'**ॐ सुरभ्यै नमः**'—यह उनका षडक्षर मन्त्र है। एक लाख जप करनेपर यह मन्त्र सिद्ध होकर भक्तोंके लिये कल्पवृक्षतुल्य हो जाता है॥ १६॥

ध्यानं यजुर्वेदगीतं तस्याः पूजा च सर्वतः।
ऋद्धिदा वृद्धिदा चैव मुक्तिदा सर्वकामदा॥ १७

देवी सुरभिका ध्यान यजुर्वेदमें वर्णित है। उनकी पूजा सब प्रकारसे ऋद्धि, वृद्धि, मुक्ति तथा समस्त अभीष्ट प्रदान करनेवाली है॥ १७॥

लक्ष्मीस्वरूपां परमां राधासहचरीं पराम्।
गवामधिष्ठातृदेवीं गवामाद्यां गवां प्रसूम्॥ १८
पवित्ररूपां पूतां च भक्तानां सर्वकामदाम्।
यया पूतं सर्वविश्वं तां देवीं सुरभिं भजे॥ १९

[ध्यान इस प्रकार है—] 'लक्ष्मीस्वरूपा, परमा, राधाकी सहचरी, गौओंकी अधिष्ठात्री देवी, गौओंकी आदिस्वरूपिणी, गौओंकी जननी, पवित्ररूपिणी, पावन, भक्तोंके सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण करनेवाली तथा जिनसे सम्पूर्ण जगत् पावन बना हुआ है—उन पराभगवती सुरभिकी मैं आराधना करता हूँ'॥ १८-१९॥

घटे वा धेनुशिरसि बन्धस्तम्भे गवामपि।
शालग्रामे जलाग्नौ वा सुरभिं पूजयेद् द्विजः॥ २०

द्विजको चाहिये कि कलश, गायके मस्तक, गायोंके बाँधनेके स्तम्भ, शालग्रामशिला, जल अथवा अग्निमें सुरभिकी भावना करके उनकी पूजा करे॥ २०॥

दीपान्वितापरदिने पूर्वाह्ने भक्तिसंयुतः।
यः पूजयेच्च सुरभिं स च पूज्यो भवेद्भुवि॥ २१

एकदा त्रिषु लोकेषु वाराहे विष्णुमायया।
क्षीरं जहार सुरभिश्चिन्तिताश्च सुरादयः॥ २२

ते गत्वा ब्रह्मलोके च ब्रह्माणं तुष्टुवुस्तदा।
तदाज्ञया च सुरभिं तुष्टाव पाकशासनः॥ २३

पुरन्दर उवाच

नमो देव्यै महादेव्यै सुरभ्यै च नमो नमः।
गवां बीजस्वरूपायै नमस्ते जगदम्बिके॥ २४

नमो राधाप्रियायै च पद्मांशायै नमो नमः।
नमः कृष्णप्रियायै च गवां मात्रे नमो नमः॥ २५

कल्पवृक्षस्वरूपायै सर्वेषां सततं परे।
क्षीरदायै धनदायै बुद्धिदायै नमो नमः॥ २६

शुभायै च सुभद्रायै गोप्रदायै नमो नमः।
यशोदायै कीर्तिदायै धर्मदायै नमो नमः॥ २७

स्तोत्रश्रवणमात्रेण तुष्टा हृष्टा जगत्प्रसूः।
आविर्बभूव तत्रैव ब्रह्मलोके सनातनी॥ २८

महेन्द्राय वरं दत्त्वा वाञ्छितं चापि दुर्लभम्।
जगाम सा च गोलोकं ययुर्देवादयो गृहम्॥ २९

बभूव विश्वं सहसा दुग्धपूर्णं च नारद।
दुग्धं घृतं ततो यज्ञस्ततः प्रीतिः सुरस्य च॥ ३०

इदं स्तोत्रं महापुण्यं भक्तियुक्तश्च यः पठेत्।
स गोमान् धनवांश्चैव कीर्तिमान्पुत्रवांस्तथा॥ ३१

स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः।
इह लोके सुखं भुक्त्वा यात्यन्ते कृष्णमन्दिरे॥ ३२

जो मनुष्य दीपावलीके दूसरे दिन पूर्वाह्नकालमें भक्तिसे युक्त होकर सुरभिकी पूजा करता है, वह पृथ्वीलोकमें पूज्य हो जाता है॥ २१॥

एक समयकी बात है, वाराहकल्पमें भगवान् विष्णुकी मायासे देवी सुरभिने तीनों लोकोंमें दूध देना बन्द कर दिया, जिससे समस्त देवता आदि चिन्तित हो गये। ब्रह्मलोकमें जाकर उन्होंने ब्रह्माकी स्तुति की, तब ब्रह्माजीकी आज्ञासे इन्द्र सुरभिकी स्तुति करने लगे॥ २२-२३॥

पुरन्दर बोले—देवीको नमस्कार है, महादेवी सुरभिको बार-बार नमस्कार है। हे जगदम्बिके! गौओंकी बीजस्वरूपिणी आपको नमस्कार है॥ २४॥ राधाप्रियाको नमस्कार है, देवी पद्मांशाको बार-बार नमस्कार है, कृष्णप्रियाको नमस्कार है और गौओंकी जननीको बार-बार नमस्कार है॥ २५॥ हे परादेवि! सभी प्राणियोंके लिये कल्पवृक्षस्वरूपिणी, दुग्ध देनेवाली, धन प्रदान करनेवाली तथा बुद्धि देनेवाली आपको बार-बार नमस्कार है॥ २६॥ शुभा, सुभद्रा तथा गोप्रदाको बार-बार नमस्कार है। यश, कीर्ति तथा धर्म प्रदान करनेवाली भगवती सुरभिको बार-बार नमस्कार है॥ २७॥

इस स्तोत्रको सुनते ही जगज्जननी सनातनी देवी सुरभि सन्तुष्ट तथा प्रसन्न होकर उस ब्रह्मलोकमें प्रकट हो गयीं॥ २८॥

देवराज इन्द्रको दुर्लभ वांछित वर प्रदान करके वे गोलोकको चली गयीं और देवता आदि अपने-अपने स्थानको चले गये॥ २९॥

हे नारद! उसके बाद विश्व सहसा दुग्धसे परिपूर्ण हो गया। दुग्ध होनेसे घृतका प्राचुर्य हो गया और उससे यज्ञ होने लगा, जिससे देवताओंको सन्तुष्टि होने लगी॥ ३०॥

जो भक्तिपूर्वक इस परम पवित्र स्तोत्रका पाठ करता है, वह गौओंसे सम्पन्न, धनवान्, यशस्वी तथा पुत्रवान् हो जाता है। उसने मानो सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान कर लिया तथा वह सभी यज्ञोंमें दीक्षित हो गया। वह इस लोकमें सुख भोगकर अन्तमें श्रीकृष्णके धाममें

सुचिरं निवसेत्तत्र करोति कृष्णसेवनम्।
न पुनर्भवनं तत्र ब्रह्मपुत्रो भवेत्ततः॥ ३३

चला जाता है। वह वहाँ दीर्घकालतक निवास करता है और भगवान् श्रीकृष्णकी सेवामें संलग्न रहता है। उसका पुनर्जन्म नहीं होता, वह ब्रह्मपुत्र ही हो जाता है॥ ३१—३३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे सुरभ्युपाख्यानवर्णनं नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ४९॥



अथ पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

भगवती श्रीराधा तथा श्रीदुर्गाके मन्त्र, ध्यान, पूजा-विधान तथा स्तवनका वर्णन

नारद उवाच

श्रुतं सर्वमुपाख्यानं प्रकृतीनां यथातथम्।
यच्छ्रुत्वा मुच्यते जन्तुर्जन्मसंसारबन्धनात्॥ १

अधुना श्रोतुमिच्छामि रहस्यं वेदगोपितम्।
राधायाश्चैव दुर्गाया विधानं श्रुतिचोदितम्॥ २

महिमा वर्णितोऽतीव भवता परयोर्द्वयोः।
श्रुत्वा तं तद्गतं चेतो न कस्य स्यान्मुनीश्वर॥ ३

ययोरंशो जगत्सर्वं यन्नियम्यं चराचरम्।
ययोर्भक्त्या भवेन्मुक्तिस्तद्विधानं वदाधुना॥ ४

नारदजी बोले—[हे भगवन्!] मूलप्रकृतिरूपा देवियोंका सारा आख्यान मैंने यथार्थरूपमें सुन लिया, जिसका श्रवण करके प्राणी जन्म-मरणरूपी भवबन्धनसे मुक्त हो जाता है। अब मैं भगवती राधा तथा दुर्गाका वेदगोपित रहस्य तथा वेदोक्त पूजा-विधान सुनना चाहता हूँ॥ १-२॥

हे मुनीश्वर! आपने इन दोनों पराशक्तियोंकी अद्भुत महिमा बतायी, उसे सुनकर भला किस पुरुषका मन उनमें लीन नहीं हो जायगा॥ ३॥

[हे भगवन्!] यह सम्पूर्ण जगत् जिनका अंश है, यह चराचर विश्व जिनसे नियन्त्रित है तथा जिनकी भक्तिसे प्राणियोंकी मुक्ति हो जाती है, उन देवियोंके पूजा-विधानके विषयमें अब आप मुझे बताइये॥ ४॥

श्रीनारायण उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि रहस्यं श्रुतिचोदितम्।
यन्न कस्यापि चाख्यातं सारात्सारं परात्परम्॥ ५

श्रुत्वा परस्मै नो वाच्यं यतोऽतीव रहस्यकम्।
मूलप्रकृतिरूपिण्याः संविदो जगदुद्भवे॥ ६

प्रादुर्भूतं शक्तियुग्मं प्राणबुद्ध्यधिदैवतम्।
जीवानां चैव सर्वेषां नियन्तृप्रेरकं सदा॥ ७

तदधीनं जगत्सर्वं विराडादिचराचरम्।

श्रीनारायण बोले—हे नारद! सुनिये, मैं वह वेदवर्णित परम सारस्वरूप तथा परात्पर रहस्य आपको बता रहा हूँ, जिसे मैंने किसीको भी नहीं बताया है। इसे सुनकर आप किसी दूसरेसे मत कहियेगा; क्योंकि यह परम गोपनीय है॥ ५॥

जगत्की उत्पत्तिके समय मूलप्रकृतिस्वरूपिणी ज्ञानमयी भगवतीसे प्राण तथा बुद्धिकी अधिष्ठात्री देवियोंके रूपमें दो शक्तियाँ प्रकट हुईं। [श्रीराधा भगवान् श्रीकृष्णके प्राणोंकी तथा श्रीदुर्गा उनकी बुद्धिकी अधिष्ठात्री देवी हैं।] वे शक्तियाँ ही सम्पूर्ण जीवोंको सदा नियन्त्रित तथा प्रेरित करती हैं। विराट् आदि चराचरसहित सम्पूर्ण जगत् उन्हीं शक्तियोंके अधीन है॥ ६-७½॥

यावत्तयोः प्रसादो न तावन्मोक्षो हि दुर्लभः॥ ८

ततस्तयोः प्रसादार्थं नित्यं सेवेत तद्द्वयम्।
तत्रादौ राधिकामन्त्रं शृणु नारद भक्तितः॥ ९

ब्रह्मविष्ण्वादिभिर्नित्यं सेवितो यः परात्परः।
श्रीराधेति चतुर्थ्यन्तं वह्नेर्जाया ततः परम्॥ १०

षडक्षरो महामन्त्रो धर्माद्यर्थप्रकाशकः।
मायाबीजादिकश्चायं वाञ्छाचिन्तामणिः स्मृतः॥ ११

वक्त्रकोटिसहस्रैस्तु जिह्वाकोटिशतैरपि।
एतन्मन्त्रस्य माहात्म्यं वर्णितुं नैव शक्यते॥ १२

जग्राह प्रथमं मन्त्रं श्रीकृष्णो भक्तितत्परः।
उपदेशान्मूलदेव्या गोलोके रासमण्डले॥ १३

विष्णुस्तेनोपदिष्टस्तु तेन ब्रह्मा विराट् तथा।
तेन धर्मस्तेन चाहमित्येषा हि परम्परा॥ १४

अहं जपामि तं मन्त्रं तेनाहमृषिरीडितः।
ब्रह्माद्याः सकला देवा नित्यं ध्यायन्ति तां मुदा॥ १५

कृष्णार्चायां नाधिकारो यतो राधार्चनं विना।
वैष्णवैः सकलैस्तस्मात्कर्तव्यं राधिकार्चनम्॥ १६

कृष्णप्राणाधिदेवी सा तदधीनो विभुर्यतः।
रासेश्वरी तस्य नित्यं तया हीनो न तिष्ठति॥ १७
राध्नोति सकलान्कामांस्तस्माद्राधेति कीर्तिता।

जबतक उन दोनों शक्तियोंकी कृपा नहीं होती, तबतक मोक्ष दुर्लभ रहता है। अतएव उन दोनोंकी प्रसन्नताके लिये उनकी निरन्तर उपासना करनी चाहिये॥ ८½ ॥

हे नारद! उनमें आप पहले राधिकामन्त्रको भक्तिपूर्वक सुनिये, जिस परात्पर मन्त्रको ब्रह्मा, विष्णु आदि भी सदा जपते रहते हैं। 'श्रीराधा' इस शब्दके अन्तमें चतुर्थी विभक्ति लगाकर उसके आगे अग्निपत्नी 'स्वाहा' पद जोड़ देनेपर '**श्रीराधायै स्वाहा**' नामक यह षडक्षर महामन्त्र धर्म, अर्थ आदिको प्रकाशित करनेवाला है। इसी राधिकामन्त्रके आदिमें मायाबीज (ह्रीं)-से युक्त होकर **ह्रीं श्रीराधायै स्वाहा**—यह वाञ्छाचिन्तामणि मन्त्र कहा गया है। इस मन्त्रका माहात्म्य करोड़ों मुखों तथा जिह्वाओंके द्वारा भी नहीं कहा जा सकता है॥ ९—१२॥

सर्वप्रथम भगवान् श्रीकृष्णने गोलोकमें रासमण्डलमें मूलदेवी भगवती श्रीराधाके उपदेश करनेपर भक्तिपूर्वक इस मन्त्रको ग्रहण किया था। तत्पश्चात् भगवान् श्रीकृष्णने विष्णुको, विष्णुने विराट् ब्रह्माको, ब्रह्माने धर्मदेवको और धर्मदेवने मुझको इस मन्त्रका उपदेश किया। इस प्रकार यह परम्परा चली आयी॥ १३-१४॥

मैं उस मन्त्रका जप करता हूँ, इसी कारणसे मैं ऋषिरूपमें पूजित हूँ। ब्रह्मा आदि समस्त देवता भी सदा प्रसन्नतापूर्वक उन श्रीराधिकाका ध्यान करते रहते हैं। राधाकी पूजाके बिना श्रीकृष्णकी पूजा करनेका अधिकार नहीं है, अतः सभी वैष्णवोंको राधिकाका पूजन [अवश्य] करना चाहिये॥ १५-१६॥

वे भगवती राधिका भगवान् श्रीकृष्णके प्राणोंकी अधिष्ठात्री देवी हैं, अतः वे विभु उनके अधीन रहते हैं। वे श्रीकृष्णके रासकी सदा स्वामिनी हैं, इसलिये श्रीकृष्ण उन राधिकाके बिना नहीं रह सकते। वे [प्राणियोंके] सम्पूर्ण मनोरथोंको पूर्ण करती हैं, इसलिये वे 'राधा'—इस नामसे विख्यात हैं॥ १७½ ॥

अत्रोक्तानां मनूनां च ऋषिरस्म्यहमेव च॥ १८

छन्दश्च देवी गायत्री देवतात्र च राधिका।
तारो बीजं शक्तिबीजं शक्तिस्तु परिकीर्तिता॥ १९

मूलावृत्त्या षडङ्गानि कर्तव्यानीतरत्र च।
अथ ध्यायेन्महादेवीं राधिकां रासनायिकाम्॥ २०

पूर्वोक्तरीत्या तु मुने सामवेदे विगीतया।
श्वेतचम्पकवर्णाभां शरदिन्दुसमाननाम्॥ २१

कोटिचन्द्रप्रतीकाशां शरदम्भोजलोचनाम्।
बिम्बाधरां पृथुश्रोणीं काञ्चीयुतनितम्बिनीम्॥ २२

कुन्दपङ्क्तिसमानाभदन्तपङ्क्तिविराजिताम्।
क्षौमाम्बरपरीधानां वह्निशुद्धांशुकान्विताम्॥ २३

ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां करिकुम्भयुगस्तनीम्।
सदा द्वादशवर्षीयां रत्नभूषणभूषिताम्॥ २४

शृङ्गारसिन्धुलहरीं भक्तानुग्रहकातराम्।
मल्लिकामालतीमालाकेशपाशविराजिताम् ॥ २५

सुकुमाराङ्गलतिकां रासमण्डलमध्यगाम्।
वराभयकरां शान्तां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम्॥ २६

रत्नसिंहासनासीनां गोपीमण्डलनायिकाम्।
कृष्णप्राणाधिकां वेदबोधितां परमेश्वरीम्॥ २७

एवं ध्यात्वा ततो बाह्ये शालग्रामे घटेऽथवा।
यन्त्रे वाष्टदले देवीं पूजयेत्तु विधानतः॥ २८

यहाँ कहे गये सभी मन्त्रोंका ऋषि मैं नारायण ही हूँ, उनमें राधामन्त्रका देवी गायत्री छन्द है तथा राधिका देवता हैं, तार (प्रणव) बीज है और देवी भुवनेश्वरीको शक्ति कहा गया है। मूलमन्त्रकी आवृत्तिसे षडंगन्यास कर लेना चाहिये॥ १८-१९½॥

हे मुने! इसके बाद सामवेदमें वर्णित पूर्वोक्त रीतिके अनुसार रासेश्वरी महादेवी राधिकाका ध्यान करना चाहिये। [ध्यान इस प्रकार है]—'परमेश्वरी श्रीराधा श्वेत चम्पाके वर्णके समान आभावाली हैं, शरत्कालीन चन्द्रमाके समान मुखवाली हैं, इनके श्रीविग्रहकी कान्ति करोड़ों चन्द्रोंकी प्रभाके समान है, ये शरद् ऋतुके खिले हुए कमलके समान नेत्रोंवाली हैं, बिम्बाफलके समान ओष्ठवाली तथा स्थूल श्रोणीवाली हैं, करधनीसे सुशोभित नितम्बदेशवाली हैं। कुन्द-पुष्पोंकी पंक्तिके सदृश आभावाली दन्तपंक्तिसे सुशोभित हैं, इन्होंने अग्निके समान विशुद्ध रेशमी वस्त्र धारण कर रखा है, ये मन्द-मन्द मुसकानयुक्त प्रसन्न मुखमण्डलवाली हैं, इनके दोनों वक्ष:स्थल हाथीके मस्तकके समान विशाल हैं, ये सदा बारह वर्षकी अवस्थावाली प्रतीत होती हैं, रत्नमय आभूषणोंसे अलंकृत हैं, शृंगारसिन्धुकी तरंगोंके समान हैं, भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये आतुर हैं, मल्लिका तथा मालतीके पुष्पोंकी मालाओंसे युक्त केशपाशसे सुशोभित हो रही हैं, इनके सुकुमार अंगोंमें मोतियोंकी लड़ियाँ शोभा दे रही हैं, ये रासमण्डलके मध्यभागमें विराजमान हैं, इन्होंने अपने हाथोंमें वर तथा अभय मुद्राओंको धारण कर रखा है, ये शान्त स्वभाववाली हैं, सदा शाश्वत यौवनसे सम्पन्न हैं, रत्ननिर्मित सिंहासनपर विराजमान हैं, समस्त गोपियोंकी स्वामिनी हैं, ये भगवान् श्रीकृष्णको प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं और वेदोंमें इन परमेश्वरी राधिकाकी महिमाका वर्णन हुआ है'॥ २०—२७॥

इस प्रकार हृदयदेशमें ध्यान करके बाहर शालग्रामशिला, कलश अथवा आठ दलवाले यन्त्रपर विधानपूर्वक देवी राधिकाकी पूजा करनी चाहिये॥ २८॥

आवाह्य देवीं तत्पश्चादासनादि प्रदीयताम्।
मूलमन्त्रं समुच्चार्य चासनादीनि कल्पयेत्॥ २९

पाद्यं तु पादयोर्दद्यान्मस्तकेऽर्घ्यं समीरितम्।
मुखे त्वाचमनीयं स्यात्त्रिवारं मूलविद्यया॥ ३०

मधुपर्कं ततो दद्यादेकां गां च पयस्विनीम्।
ततो नयेत्स्नानशालां तां च तत्रैव भावयेत्॥ ३१

देवी राधिकाका आवाहन करनेके पश्चात् आसन आदि समर्पण करे। मूलमन्त्रका सम्यक् उच्चारण करके ही आसन आदि वस्तुएँ भगवतीके सम्मुख उपस्थित करनी चाहिये। पाद्य-जल उनके चरणोंमें अर्पण करना चाहिये। उनके मस्तकपर अर्घ्य देनेका विधान बताया गया है। मूलमन्त्रसे तीन बार मुखमें आचमन कराना चाहिये। तत्पश्चात् मधुपर्क देकर श्रीराधाके लिये एक पयस्विनी (दूध देनेवाली) गौ प्रदान करनी चाहिये। तदनन्तर उन्हें स्नानगृहमें ले जाकर वहींपर उनकी भावना करे॥ २९—३१॥

अभ्यङ्गादिस्नानविधिं कल्पयित्वाथ वाससी।
ततश्च चन्दनं दद्यान्नानालङ्कारपूर्वकम्॥ ३२

पुष्पमाला बहुविधास्तुलसीमञ्जरीयुताः।
पारिजातप्रसूनानि शतपत्रादिकानि च॥ ३३

तैल आदि सुगन्धित द्रव्योंसे विधिपूर्वक स्नान करानेके पश्चात् दो वस्त्र अर्पण करे। तदनन्तर नानाविध आभूषणोंसे अलंकृत करके चन्दन समर्पित करे। इसके बाद तुलसीकी मंजरीसे युक्त अनेक प्रकारकी पुष्पमालाएँ और पारिजात तथा शतदल कमलके पुष्प आदि समर्पित करे॥ ३२-३३॥

ततः कुर्यात्पवित्रं तत्परिवारार्चनं विभोः।
अग्नीशासुरवायव्यमध्ये दिक्ष्वङ्गपूजनम्॥ ३४

कृत्वा पश्चादष्टदले दक्षिणावर्ततोऽग्रतः।
मालावतीमग्रदले वह्निकोणे च माधवीम्॥ ३५

रत्नमालां दक्षिणे च नैर्ऋत्ये तु सुशीलकाम्।
पश्चाद्दले शशिकलां पूजयेन्मतिमान्नरः॥ ३६

मारुते पारिजातां चाप्युत्तरे च परावतीम्।
ईशानकोणे सम्पूज्या सुन्दरी प्रियकारिणी॥ ३७

ब्राह्म्यादयस्तु तद्बाह्येऽप्याशापालांस्तु भूपुरे।
वज्रादिकान्यायुधानि देवीमित्थं प्रपूजयेत्॥ ३८

तदनन्तर प्रधान देवता उन भगवतीकी पवित्र आवरण-पूजा सम्पन्न करनी चाहिये। अग्निकोण, ईशानकोण, नैर्ऋत्यकोण, वायव्यकोण तथा पूर्व आदि दिशाओंमें भगवती राधिकाके अंगपूजनका विधान है। इसके बाद अष्टदल यन्त्रको आगे करके दक्षिणावर्त क्रमसे पूर्वसे प्रारम्भ करके पूजन करे। बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि अष्टदल यन्त्रके पूर्वदिशावाले दलमें मालावती, अग्निकोणमें माधवी, दक्षिणमें रत्नमाला, नैर्ऋत्यकोणमें सुशीला, पश्चिममें शशिकला, वायव्यकोणमें पारिजाता, उत्तरमें परावतीका पूजन करे तथा ईशानकोणमें सुन्दरी प्रियकारिणीकी पूजा करे। यन्त्रपर दलके बाहर ब्राह्मी आदि शक्तियोंकी तथा भूपुरमें दिक्पालों और वज्र आदि आयुधोंका अर्चन करे—इस विधिसे भगवती श्रीराधिकाका पूजन करना चाहिये॥ ३४—३८॥

ततो देवीं सावरणां गन्धाद्यैरुपचारकैः।
राजोपचारसहितैः पूजयेन्मतिमान्नरः॥ ३९

ततः स्तुवीत देवेशीं स्तोत्रैर्नामसहस्रकैः।
सहस्रसंख्यं च जपं नित्यं कुर्यात्प्रयत्नतः॥ ४०

तत्पश्चात् बुद्धिमान् पुरुषको राजोपचारसहित गन्ध आदि पूजनोपचारोंसे आवरणोंसहित भगवती राधिकाकी पूजा करनी चाहिये। इसके बाद सहस्रनामस्तोत्रसे देवेश्वरी राधाकी स्तुति करनी चाहिये और मन्त्रका एक हजार जप भी नित्य प्रयत्नपूर्वक करना चाहिये॥ ३९-४०॥

य एवं पूजयेद्देवीं राधां रासेश्वरीं पराम्।
स भवेद्विष्णुतुल्यस्तु गोलोकं याति सन्ततम्॥ ४१

यः कार्तिक्यां पौर्णमास्यां राधाजन्मोत्सवं बुधः।
कुरुते तस्य सान्निध्यं दद्याद्रासेश्वरी परा॥ ४२

केनचित्कारणेनैव राधा वृन्दावने वने।
वृषभानुसुता जाता गोलोकस्थायिनी सदा॥ ४३

अत्रोक्तानां तु मन्त्राणां वर्णसंख्याविधानतः।
पुरश्चरणकर्मोक्तं दशांशं होममाचरेत्॥ ४४

तिलैस्त्रिस्वादुसंयुक्तैर्जुहुयाद्भक्तिभावतः ।

नारद उवाच

स्तोत्रं वद मुने सम्यग्येन देवी प्रसीदति॥ ४५

श्रीनारायण उवाच

नमस्ते परमेशानि रासमण्डलवासिनि।
रासेश्वरि नमस्तेऽस्तु कृष्णप्राणाधिकप्रिये॥ ४६

नमस्त्रैलोक्यजननि प्रसीद करुणार्णवे।
ब्रह्मविष्ण्वादिभिर्देवैर्वन्द्यमानपदाम्बुजे ॥ ४७

नमः सरस्वतीरूपे नमः सावित्रि शङ्करि।
गङ्गापद्मावतीरूपे षष्ठि मङ्गलचण्डिके॥ ४८

नमस्ते तुलसीरूपे नमो लक्ष्मीस्वरूपिणि।
नमो दुर्गे भगवति नमस्ते सर्वरूपिणि॥ ४९

मूलप्रकृतिरूपां त्वां भजामः करुणार्णवाम्।
संसारसागरादस्मानुद्धराम्ब दयां कुरु॥ ५०

इदं स्तोत्रं त्रिसन्ध्यं यः पठेद्राधां स्मरन्नरः।
न तस्य दुर्लभं किञ्चित्कदाचिच्च भविष्यति॥ ५१

देहान्ते च वसेन्नित्यं गोलोके रासमण्डले।
इदं रहस्यं परमं न चाख्येयं तु कस्यचित्॥ ५२

जो मनुष्य इस विधिसे रासेश्वरी परात्परा राधिकाकी पूजा करता है, वह विष्णुतुल्य हो जाता है और गोलोकमें जाकर सदा वास करता है॥ ४१॥

जो बुद्धिमान् पुरुष कार्तिकपूर्णिमा तिथिको भगवती श्रीराधाका जन्मोत्सव मनाता है, उसे रासेश्वरी परमा श्रीराधिका अपना सान्निध्य प्रदान कर देती हैं॥ ४२॥

गोलोकमें सदा निवास करनेवाली भगवती श्रीराधा किसी कारणसे ही वृन्दावनमें वृषभानुकी पुत्रीके रूपमें आविर्भूत हुईं॥ ४३॥

यहाँ कहे गये मन्त्रोंकी वर्णसंख्याके अनुसार पुरश्चरण-क्रिया बतायी गयी है। इसमें जपे गये मन्त्रके दशांशसे हवन करना चाहिये, भक्ति-भावपूर्वक दुग्ध, मधु और घृत—इन तीन मधुर पदार्थोंसे मिश्रित तिलोंसे आहुति प्रदान करनी चाहिये॥ ४४½॥

नारदजी बोले—हे मुने! अब आप वह स्तोत्र बताइये, जिससे भगवती श्रीराधिका भलीभाँति प्रसन्न हो जाती हैं॥ ४५॥

श्रीनारायण बोले—[स्तोत्र इस प्रकार है—] रासमण्डलमें निवास करनेवाली हे परमेश्वरि! आपको नमस्कार है। कृष्णको प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हे रासेश्वरि! आपको नमस्कार है॥ ४६॥ ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओंके द्वारा वन्दित चरणकमलवाली हे त्रैलोक्यजननि! आपको नमस्कार है। हे करुणार्णवे! आप मुझपर प्रसन्न होइये॥ ४७॥ हे सरस्वतीरूपे! आपको नमस्कार है। हे सावित्रि! हे शंकरि! हे गंगा-पद्मावतीरूपे! हे षष्ठि! हे मंगलचण्डिके! आपको नमस्कार है॥ ४८॥ हे तुलसीरूपे! आपको नमस्कार है। हे लक्ष्मीस्वरूपिणि! आपको नमस्कार है। हे दुर्गे! हे भगवति! आपको नमस्कार है। हे सर्वरूपिणि! आपको नमस्कार है॥ ४९॥ हे अम्ब! मूलप्रकृतिस्वरूपिणी तथा करुणासिन्धु आप भगवतीकी हम उपासना करते हैं, संसारसागरसे हमारा उद्धार कीजिये, दया कीजिये॥ ५०॥

जो मनुष्य तीनों कालों (प्रातः, मध्याह्न, सायं)-में श्रीराधिकाका स्मरण करते हुए इस स्तोत्रका पाठ करता है, उसके लिये कोई भी वस्तु कभी भी दुर्लभ नहीं रहती। वह देह-त्यागके अनन्तर गोलोकमें रासमण्डलमें निरन्तर निवास करता है। [हे मुने!]

अधुना शृणु विप्रेन्द्र दुर्गादेव्या विधानकम्।
यस्याः स्मरणमात्रेण पलायन्ते महापदः॥ ५३

एनां न भजते यो हि तादृङ्नास्त्येव कुत्रचित्।
सर्वोपास्या सर्वमाता शैवी शक्तिर्महाद्भुता॥ ५४

सर्वबुद्ध्यधिदेवीयमन्तर्यामिस्वरूपिणी।
दुर्गसङ्कटहन्त्रीति दुर्गेति प्रथिता भुवि॥ ५५

वैष्णवानां च शैवानामुपास्येयं च नित्यशः।
मूलप्रकृतिरूपा सा सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी॥ ५६

तस्या नवाक्षरं मन्त्रं वक्ष्ये मन्त्रोत्तमोत्तमम्।
वाग्भवं शम्भुवनिता कामबीजं ततः परम्॥ ५७

चामुण्डायै पदं पश्चाद्विच्चे इत्यक्षरद्वयम्।
नवाक्षरो मनुः प्रोक्तो भजतां कल्पपादपः॥ ५८

ब्रह्मविष्णुमहेशाना ऋषयोऽस्य प्रकीर्तिताः।
छन्दांस्युक्तानि सततं गायत्र्युष्णिगनुष्टुभः॥ ५९

महाकाली महालक्ष्मीः सरस्वत्यपि देवताः।
स्याद्रक्तदन्तिकाबीजं दुर्गा च भ्रामरी तथा॥ ६०

नन्दाशाकम्भरीदेव्यौ भीमा च शक्तयः स्मृताः।
धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोग उदाहृतः॥ ६१

ऋषिच्छन्दो दैवतानि मौलौ वक्त्रे हृदि न्यसेत्।
स्तनयोः शक्तिबीजानि न्यसेत्सर्वार्थसिद्धये॥ ६२

इस परम रहस्यको किसीके समक्ष प्रकाशित नहीं करना चाहिये॥ ५१-५२॥

हे विप्रवर! अब आप उन भगवती दुर्गाका पूजा-विधान सुनिये, जिनके स्मरणमात्रसे घोर विपत्तियाँ भाग जाती हैं॥ ५३॥

जो इन भगवती दुर्गाकी उपासना नहीं करता हो, वैसा कोई मनुष्य कहीं नहीं है। ये भगवती सबकी उपास्या, सभी प्राणियोंकी जननी तथा अत्यन्त अद्भुत शैवी शक्ति हैं। ये समस्त प्राणियोंकी बुद्धिकी अधिष्ठात्री देवी तथा अन्तर्यामीस्वरूपिणी हैं। ये घोर संकटसे रक्षा करती हैं, अतः जगत्‌में 'दुर्गा' नामसे विख्यात हैं॥ ५४-५५॥

सभी वैष्णवों तथा शैवोंकी ये सदा उपास्य हैं। मूल प्रकृतिरूपिणी हैं और जगत्‌का सृजन, पालन तथा संहार करनेवाली हैं॥ ५६॥

[हे नारद!] अब मैं उन भगवती दुर्गाके उत्तमोत्तम नवाक्षर मन्त्रका वर्णन करूँगा। सरस्वतीबीज (ऐं), भुवनेश्वरीबीज (ह्रीं) और कामबीज (क्लीं)—इन तीनोंका आदिमें क्रमशः प्रयोग करनेके बाद '**चामुण्डायै**'—इस पदको लगानेके अनन्तर '**विच्चे**' इन दो अक्षरोंको जोड़ देनेपर बना हुआ '**ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे**'—यह नवाक्षर मन्त्र कहा गया है, जो जप करनेवाले मनुष्यके लिये कल्पवृक्षके समान है॥ ५७-५८॥

ब्रह्मा, विष्णु और शिव इस मन्त्रके ऋषि कहे गये हैं। गायत्री, उष्णिक् और अनुष्टुप्—ये तीनों इस मन्त्रके छन्द कहे गये हैं। महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती इस मन्त्रकी देवता हैं। रक्तदन्तिका, दुर्गा तथा भ्रामरी—इस मन्त्रके बीज हैं। नन्दा, शाकम्भरी और भीमा—ये देवियाँ इस मन्त्रकी शक्तियाँ कही गयी हैं॥ ५९-६०॥

धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी प्राप्तिके लिये इस मन्त्रका विनियोग किया जाता है। ऋषि, छन्द और देवताका क्रमशः मस्तकपर, मुखमें और हृदयमें न्यास करना चाहिये। सर्वार्थसिद्धिके लिये दोनों स्तनोंमें शक्तिबीजोंका न्यास करना चाहिये॥ ६१-६२॥

बीजत्रयैश्चतुर्भिश्च द्वाभ्यां सर्वेण चैव हि।
षडङ्गानि मनोः कुर्याज्जातियुक्तानि देशिकः॥ ६३

शिखायां लोचनद्वन्द्वे श्रुतिनासाननेषु च।
गुदे न्यसेन्मन्त्रवर्णान्सर्वेण व्यापकं चरेत्॥ ६४

खड्गचक्रगदाबाणचापानि परिघं तथा।
शूलं भुशुण्डीं च शिरः शङ्खं सन्दधतीं करैः॥ ६५

महाकालीं त्रिनयनां नानाभूषणभूषिताम्।
नीलाञ्जनसमप्रख्यां दशपादाननां भजे॥ ६६

मधुकैटभनाशार्थं यां तुष्टावाम्बुजासनः।
एवं ध्यायेन्महाकालीं कामबीजस्वरूपिणीम्॥ ६७

अक्षमालां च परशुं गदेषुकुलिशानि च।
पद्मं धनुष्कुण्डिकां च दण्डं शक्तिमसिं तथा॥ ६८

चर्माम्बुजं तथा घण्टां सुरापात्रं च शूलकम्।
पाशं सुदर्शनं चैव दधतीमरुणप्रभाम्॥ ६९

रक्ताम्बुजासनगतां मायाबीजस्वरूपिणीम्।
महालक्ष्मीं भजेदेवं महिषासुरमर्दिनीम्॥ ७०

घण्टाशूले हलं शङ्खं मुसलं च सुदर्शनम्।
धनुर्बाणान् हस्तपद्मैर्दधानां कुन्दसन्निभाम्॥ ७१

शुम्भादिदैत्यसंहर्त्रीं वाणीबीजस्वरूपिणीम्।
महासरस्वतीं ध्यायेत्सच्चिदानन्दविग्रहाम्॥ ७२

यन्त्रमस्याः शृणु प्राज्ञ त्र्यस्रं षट्कोणसंयुतम्।
ततोऽष्टदलपद्मं च चतुर्विंशतिपत्रकम्॥ ७३

भूगृहेण समायुक्तं यन्त्रमेवं विचिन्तयेत्।
शालग्रामे घटे वापि यन्त्रे वा प्रतिमासु वा॥ ७४

ऐं, ह्रीं, क्लीं—तीन बीजमन्त्रों, चार वर्णोंवाले **चामुण्डायै**, दो वर्णोंवाले **विच्चे**के साथ तथा पूरे मन्त्रके साथ क्रमशः **नमः**, **स्वाहा**, **वषट्**, **हुम्**, **वौषट्** और **फट्**—इन छः जातिसंज्ञक वर्णोंको लगाकर साधकको शिखा, दोनों नेत्र, दोनों कान, नासिका, मुख और गुदा आदि छः स्थानोंमें न्यास करना चाहिये; साथ ही सम्पूर्ण मन्त्रसे [सिरसे लेकर पैरतक] व्यापक न्यास करना चाहिये॥ ६३-६४॥

[महाकालीका ध्यान—] 'हाथोंमें खड्ग, चक्र, गदा, बाण, धनुष, परिघ, शूल, भुशुण्डि, कपाल तथा शंख धारण करनेवाली; नानाविध आभूषणोंसे अलंकृत; नीलांजनके समान कान्तिवाली; दस चरणों तथा दस मुखोंवाली एवं तीन नेत्रोंवाली भगवती महाकालीकी मैं आराधना करता हूँ, जिनका स्तवन कमलासन ब्रह्माजीने मधु और कैटभका वध करनेके लिये किया था'—इस प्रकार कामबीजस्वरूपिणी भगवती महाकालीका ध्यान करना चाहिये॥ ६५—६७॥

[महालक्ष्मीका ध्यान—] 'जो अपने हाथोंमें अक्षमाला, परशु, गदा, बाण, वज्र, पद्म, धनुष, कुण्डिका, दण्ड, शक्ति, खड्ग, ढाल, कमल, घण्टा, मधुपात्र, शूल, पाश और सुदर्शनचक्र धारण करती हैं; जो अरुण प्रभावाली हैं; रक्त कमलके आसनपर विराजमान हैं तथा मायाबीजस्वरूपिणी हैं'—इस तरहसे महिषासुरमर्दिनी उन महालक्ष्मीका ध्यान करना चाहिये॥ ६८—७०॥

[महासरस्वतीका ध्यान—] 'जो अपने कर-कमलोंमें घण्टा, शूल, हल, शंख, मुसल, सुदर्शनचक्र, धनुष तथा बाण धारण करती हैं; कुन्दके समान मनोहर कान्तिवाली हैं; शुम्भ आदि दैत्योंका संहार करनेवाली हैं; सच्चिदानन्द-विग्रहसे सम्पन्न हैं तथा वाणीबीजस्वरूपिणी हैं'—उन भगवती महासरस्वतीका ध्यान करना चाहिये॥ ७१-७२॥

हे प्राज्ञ! अब इन भगवतीके यन्त्रके विषयमें सुनिये। तीन अस्रोंवाला तथा छः कोणोंसे युक्त यन्त्र होना चाहिये, उसके चारों ओर अष्टदलकमल हो और कमलमें चौबीस पंखुड़ियाँ विद्यमान हों, वह यन्त्र भूगृहसे सम्पन्न हो—इस प्रकारके यन्त्रके विषयमें चिन्तन करना चाहिये॥ ७३ $\frac{१}{२}$ ॥

एकाग्रचित्त होकर शालग्राम, कलश, यन्त्र, प्रतिमा, बाणलिंग अथवा सूर्यमें भगवतीकी भावना करके उनका

बाणलिङ्गेऽथवा सूर्ये यजेद्देवीमनन्यधीः।
जयादिशक्तिसंयुक्ते पीठे देवीं प्रपूजयेत्॥ ७५
पूर्वकोणे सरस्वत्या सहितं पद्मजं यजेत्।
श्रिया सह हरिं तत्र नैर्ऋते कोणके यजेत्॥ ७६
पार्वत्या सहितं शम्भुं वायुकोणे समर्चयेत्।
देव्या उत्तरतः पूज्यः सिंहो वामे महासुरम्॥ ७७
महिषं पूजयेदन्ते षट्कोणेषु यजेत्क्रमात्।
नन्दजां रक्तदन्तां च तथा शाकम्भरीं शिवाम्॥ ७८
दुर्गां भीमां भ्रामरीं च ततो वसुदलेषु च।
ब्राह्मीं माहेश्वरीं चैव कौमारीं वैष्णवीं तथा॥ ७९
वाराहीं नारसिंहीं च ऐन्द्रीं चामुण्डकां तथा।
पूजयेच्च ततः पश्चात्तत्त्वपत्रेषु पूर्वतः॥ ८०
विष्णुमायां चेतनां च बुद्धिं निद्रां क्षुधां तथा।
छायां शक्तिं परां तृष्णां शान्तिं जातिं च लज्जया॥ ८१
क्षान्तिं श्रद्धां कीर्तिलक्ष्म्यौ धृतिं वृत्तिं श्रुतिं स्मृतिम्।
दयां तुष्टिं ततः पुष्टिं मातृभ्रान्ती इति क्रमात्॥ ८२
ततो भूपुरकोणेषु गणेशं क्षेत्रपालकम्।
वटुकं योगिनीश्चापि पूजयेन्मतिमान्नरः॥ ८३
इन्द्राद्यानपि तद्बाह्ये वज्राद्यायुधसंयुतान्।
पूजयेदनया रीत्या देवीं सावरणां ततः॥ ८४
राजोपचारान्विविधान्दद्यादम्बाप्रतुष्टये।
ततो जपेन्नवार्णं च मन्त्रं मन्त्रार्थपूर्वकम्॥ ८५
ततः सप्तशतीस्तोत्रं देव्या अग्रे तु सम्पठेत्।
नानेन सदृशं स्तोत्रं विद्यते भुवनत्रये॥ ८६
ततश्चानेन देवेशीं तोषयेत् प्रत्यहं नरः।
धर्मार्थकाममोक्षाणामालयं जायते नरः॥ ८७
इति ते कथितं विप्र श्रीदुर्गाया विधानकम्।
कृतार्थता येन भवेत्तदेतत्कथितं तव॥ ८८
सर्वे देवा हरिब्रह्मप्रमुखा मनवस्तथा।
मुनयो ज्ञाननिष्ठाश्च योगिनश्चाश्रमास्तथा॥ ८९

यजन करना चाहिये। जया आदि शक्तियोंसे सम्पन्न पीठपर देवीकी विधिवत् पूजा करे॥ ७४-७५॥

यन्त्रके पूर्वकोणमें सरस्वतीसहित ब्रह्माकी पूजा करे, नैर्ऋत्यकोणमें लक्ष्मीसहित विष्णुकी पूजा करे तथा वायव्यकोणमें पार्वतीसहित भगवान् शिवकी पूजा करे। देवीके उत्तरमें सिंहकी तथा बायीं ओर महिषासुरकी पूजा करनी चाहिये। इसके बाद छः कोणोंमें क्रमशः भगवती नन्दजा, रक्तदन्ता, शाकम्भरी, कल्याणकारिणी दुर्गा, भीमा तथा भ्रामरीका पूजन करना चाहिये। तदनन्तर आठ दलोंमें ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, नारसिंही, ऐन्द्री और चामुण्डाकी पूजा करनी चाहिये। तत्पश्चात् चौबीस पंखुड़ियोंमें पूर्वके क्रमसे विष्णुमाया, चेतना, बुद्धि, निद्रा, क्षुधा, छाया, पराशक्ति, तृष्णा, शान्ति, जाति, लज्जा, क्षान्ति, श्रद्धा, कीर्ति, लक्ष्मी, धृति, वृत्ति, श्रुति, स्मृति, दया, तुष्टि, पुष्टि, माता और भ्रान्ति—इन देवियोंकी पूजा करनी चाहिये॥ ७६—८२॥

तदनन्तर बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि भूपुर-कोणोंमें गणेश, क्षेत्रपाल, बटुक और योगिनियोंकी पूजा करे। दलके बाहर वज्र आदि आयुधोंसे युक्त इन्द्र आदि देवताओंकी भी पूजा करे। इसी रीतिसे आवरणसहित भगवती दुर्गाकी पूजा करे। भगवतीकी प्रसन्नताके लिये विविध प्रकारके राजसी पूजनोपचार उन्हें अर्पण करने चाहिये। तत्पश्चात् मन्त्रार्थपर ध्यान रखते हुए नवार्ण मन्त्रका जप करना चाहिये॥ ८३—८५॥

तदनन्तर भगवती दुर्गाके सामने सप्तशतीस्तोत्रका पाठ करना चाहिये। तीनों लोकोंमें इस स्तोत्रके सदृश दूसरा कोई भी स्तोत्र नहीं है, इसलिये मनुष्यको इस स्तोत्रके द्वारा प्रतिदिन देवेश्वरी दुर्गाको प्रसन्न करना चाहिये। ऐसा करनेवाला मनुष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका आलय बन जाता है॥ ८६-८७॥

हे विप्र! इस प्रकार मैंने आपको भगवती दुर्गाके पूजनका विधान बता दिया। इसके द्वारा सबकी कृतार्थता सम्पन्न हो सके, इसीलिये मैंने आपसे इसका वर्णन किया है॥ ८८॥

ब्रह्मा, विष्णु आदि सभी प्रमुख देवतागण, सभी मनुगण, ज्ञाननिष्ठ मुनि, योगिजन, आश्रमवासी तथा लक्ष्मी आदि देवियाँ—ये सब उन भगवती शिवाका

लक्ष्म्यादयस्तथा देव्यः सर्वे ध्यायन्ति तां शिवाम्।
तदैव जन्मसाफल्यं दुर्गास्मरणमस्ति चेत्॥ ९०

चतुर्दशापि मनवो ध्यात्वा चरणपङ्कजम्।
मनुत्वं प्राप्तवन्तश्च देवाः स्वं स्वं पदं तथा॥ ९१

तदेतत्सर्वमाख्यातं रहस्यातिरहस्यकम्।
प्रकृतीनां पञ्चकस्य तदंशानां च वर्णनम्॥ ९२

श्रुत्वैतन्मनुजो नित्यं पुरुषार्थचतुष्टयम्।
लभते नात्र सन्देहः सत्यं सत्यं मयोदितम्॥ ९३

अपुत्रो लभते पुत्रं विद्यार्थी प्राप्नुयाच्च ताम्।
यं यं कामं स्मरेद्वापि तं तं श्रुत्वा समाप्नुयात्॥ ९४

नवरात्रे पठेदेतद्देव्यग्रे तु समाहितः।
परितुष्टा जगद्धात्री भवत्येव हि निश्चितम्॥ ९५

नित्यमेकैकमध्यायं पठेद्यः प्रत्यहं नरः।
तस्य वश्या भवेद्देवी देवीप्रियकरो हि सः॥ ९६

शकुनांश्च परीक्षेत नित्यमस्मिन्यथाविधि।
कुमारीदिव्यहस्तेन यद्वा बटुकराम्बुजात्॥ ९७

मनोरथं तु सङ्कल्प्य पुस्तकं पूजयेत्ततः।
देवीं च जगदीशानीं प्रणमेच्च पुनः पुनः॥ ९८

सुस्नातां कन्यकां तत्रानीयाभ्यर्च्य यथाविधि।
शलाकां रोपयेन्मध्ये तथा स्वर्णेन निर्मिताम्॥ ९९

शुभं वाप्यशुभं तत्र यदायाति च तद्भवेत्।
उदासीनेऽप्युदासीनं कार्यं भवति निश्चितम्॥ १००

ध्यान करते हैं। जन्मकी सफलता तभी समझी जाती है, जब श्रीदुर्गाका स्मरण हो जाय॥ ८९-९०॥

भगवती दुर्गाके चरणकमलका ध्यान करके ही चौदहों मनुओंने मनुपद तथा देवतागणोंने अपना-अपना स्थान प्राप्त किया है॥ ९१॥

इस प्रकार मैंने रहस्योंका भी अति रहस्यस्वरूप यह सारा आख्यान कह दिया। इसमें भगवती प्रकृतिके पाँच मुख्य स्वरूपों तथा उनके अंशोंका वर्णन है॥ ९२॥

इसका नित्य श्रवण करनेसे मनुष्य चारों पुरुषार्थ (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) प्राप्त कर लेता है, इसमें सन्देह नहीं है। यह सब मैंने सच-सच कहा है॥ ९३॥

इस रहस्यके प्रभावसे पुत्रहीन व्यक्ति पुत्र तथा विद्याभिलाषी मनुष्य विद्या प्राप्त कर लेता है। इसका श्रवण करके मनुष्य जिस-जिस मनोरथकी पूर्णताकी कामना करता है, उस-उसको प्राप्त कर लेता है॥ ९४॥

नवरात्रमें एकाग्रचित्त होकर भगवती दुर्गाके सम्मुख इसका पाठ करना चाहिये। जगद्धात्री भगवती दुर्गा इससे निश्चय ही प्रसन्न हो जाती हैं॥ ९५॥

जो मनुष्य प्रतिदिन इस नवम स्कन्धके एक अध्यायका पाठ करता है, भगवती दुर्गा उसके अधीन हो जाती हैं और वह मनुष्य देवीका प्रियकर हो जाता है॥ ९६॥

इस विषयमें किसी कुमारीके दिव्य हाथ अथवा बालकके करकमलसे यथाविधि शकुनकी परीक्षा करनी चाहिये। अपने मनोरथका संकल्प करके पुस्तककी पूजा करे, तत्पश्चात् जगदीश्वरी भगवती दुर्गाको बार-बार प्रणाम करे। भलीभाँति स्नान की हुई कन्याको वहाँ विराजमान करके [देवीके रूपमें] उसकी विधिपूर्वक पूजा करनेके अनन्तर स्वर्णनिर्मित शलाका उस कन्यासे स्कन्धके मध्यमें रखवाना चाहिये। शलाका रखनेपर शुभ अथवा अशुभ जो भी प्रसंग आता है, वैसा ही फल होता है; अथवा उदासीन प्रसंग आनेपर कार्य भी उदासीन ही होता है—यह निश्चित है॥। ९७—१००॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे देव्या आवरणपूजाविधिवर्णनं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५०॥



॥ नवमः स्कन्धः समाप्तः॥

॥ श्रीजगदम्बिकायै नमः ॥

॥ ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ॥

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण

दशमः स्कन्धः

अथ प्रथमोऽध्यायः

स्वायम्भुव मनुकी उत्पत्ति, उनके द्वारा भगवतीकी आराधना

नारद उवाच

नारायण धराधार सर्वपालनकारण।
भवतोदीरितं देवीचरितं पापनाशनम्॥ १

मन्वन्तरेषु सर्वेषु सा देवी यत्स्वरूपिणी।
यदाकारेण कुरुते प्रादुर्भावं महेश्वरी॥ २

तान्नः सर्वान्समाख्याहि देवीमाहात्म्यमिश्रितान्।
यथा च येन येनेह पूजिता संस्तुतापि हि॥ ३

मनोरथान्पूरयति भक्तानां भक्तवत्सला।
तन्नः शुश्रूषमाणानां देवीचरितमुत्तमम्॥ ४

वर्णयस्व कृपासिन्धो येनाप्नोति सुखं महत्।

श्रीनारायण उवाच

आकर्णय महर्षे त्वं चरितं पापनाशनम्॥ ५

भक्तानां भक्तिजननं महासम्पत्तिकारकम्।
जगद्योनिर्महातेजा ब्रह्मा लोकपितामहः॥ ६

आविरासीन्नाभिपद्माद्देवदेवस्य चक्रिणः।
स चतुर्मुख आसाद्य प्रादुर्भावं महामते॥ ७

मनुं स्वायम्भुवं नाम जनयामास मानसात्।
स मानसो मनुः पुत्रो ब्रह्मणः परमेष्ठिनः॥ ८

नारदजी बोले—हे नारायण! हे धराके आधार! हे सर्वपालनकारण! आपने पापोंका नाश करनेवाले देवीचरित्रका वर्णन कर दिया॥ १॥

सभी मन्वन्तरोंमें वे देवी जो-जो स्वरूप धारण करती हैं तथा जिस-जिस स्वरूपसे उन माहेश्वरीका प्रादुर्भाव हुआ है—भगवतीकी महिमासे युक्त उन समस्त प्रसंगोंका अब आप हमसे सम्यक् वर्णन करें॥ २½ ॥

जिस प्रकारसे तथा जिस-जिस मन्त्र अथवा स्तोत्रसे भगवतीका पूजन तथा स्तवन किया गया है और वे भक्तवत्सला देवी भक्तोंका जिस प्रकार मनोरथ पूर्ण करती हैं, सुननेकी अभिलाषावाले हमलोगोंसे आप देवीके उस उत्तम चरित्रका वर्णन कीजिये, जिससे महान् सुख प्राप्त होता है॥ ३-४½ ॥

श्रीनारायण बोले—हे महर्षे! भक्तोंके हृदयमें भक्ति उत्पन्न करनेवाले, महान् सम्पदा प्रदान करनेवाले तथा पापोंका शमन करनेवाले देवी-चरित्रका अब आप श्रवण कीजिये॥ ५½ ॥

सर्वप्रथम जगत्के मूल कारण महान् तेजस्वी लोकपितामह ब्रह्मा चक्रधारी देवदेव भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे प्रादुर्भूत हुए॥ ६½ ॥

हे महामते! विष्णुके नाभिकमलसे प्रकट होकर उन चतुर्मुख ब्रह्माने स्वायम्भुव नामक मनुको अपने मनसे उत्पन्न किया। इस प्रकार वे मनु परमेष्ठी ब्रह्माके मानस पुत्र कहलाये। पुनः ब्रह्माजीने धर्मस्वरूपिणी शतरूपाको उत्पन्न किया और उन्हें मनुकी पत्नीके

शतरूपां च तत्पत्नीं जज्ञे धर्मस्वरूपिणीम्।
स मनुः क्षीरसिन्धोश्च तीरे परमपावने॥ ९

देवीमाराधयामास महाभाग्यफलप्रदाम्।
मूर्तिं च मृण्मयीं तस्या विधाय पृथिवीपतिः॥ १०

उपासते स्म तां देवीं वाग्भवं स जपन् रहः।
निराहारो जितश्वासो नियमव्रतकर्शितः॥ ११

एकपादेन सन्तिष्ठन् धरायामनिशं स्थिरः।
शतवर्षं जितः कामः क्रोधस्तेन महात्मना॥ १२

भेजे स्थावरतां देव्याश्चरणौ चिन्तयन् हृदि।
तस्य तत्तपसा देवी प्रादुर्भूता जगन्मयी॥ १३

उवाच वचनं दिव्यं वरं वरय भूमिप।
तत आनन्दजनकं श्रुत्वा वाक्यं महीपतिः॥ १४

वरयामास तान् हृत्स्थान् वरानमरदुर्लभान्।

मनुरुवाच

जय देवि विशालाक्षि जय सर्वान्तरस्थिते॥ १५

मान्ये पूज्ये जगद्धात्रि सर्वमङ्गलमङ्गले।
त्वत्कटाक्षावलोकेन पद्मभूः सृजते जगत्॥ १६

वैकुण्ठः पालयत्येव हरः संहरते क्षणात्।
शचीपतिस्त्रिलोक्याश्च शासको भवदाज्ञया॥ १७

प्राणिनः शिक्षयत्येव दण्डेन च परेतराट्।
यादसामधिपः पाशी पालनं मादृशामपि॥ १८

कुरुते स कुबेरोऽपि निधीनां पतिरव्ययः।
हुतभुङ् नैर्ऋतो वायुरीशानः शेष एव च॥ १९

त्वदंशसम्भवा एव त्वच्छक्तिपरिबृंहिताः।
अथापि यदि मे देवि वरो देयोऽस्ति साम्प्रतम्॥ २०

रूपमें प्रतिष्ठित किया। तत्पश्चात् वे मनु क्षीरसागरके परम पवित्र तटपर महान् सौभाग्य प्रदान करनेवाली जगदम्बाकी आराधना करने लगे॥ ७—९½ ॥

वहाँपर देवीकी मृण्मयी मूर्ति बनाकर पृथ्वीपति मनु एकान्तमें उन भगवतीके वाग्भव-मन्त्रका जप करते हुए उनकी उपासनामें तत्पर हो गये॥ १०½ ॥

नियमों तथा व्रतोंका पालन करते हुए निराहार रहकर श्वासको नियन्त्रित करके वे सौ वर्षोंतक निरन्तर पृथ्वीपर एक पैरसे खड़े रहे। महात्मा मनुने काम तथा क्रोधपर विजय प्राप्त कर ली। अपने हृदयमें भगवतीके चरणोंका चिन्तन करते हुए वे किसी स्थावरकी भाँति हो गये॥ ११-१२½ ॥

उनकी उस तपस्यासे जगन्मयी भगवती प्रकट हो गयीं और उन्होंने यह दिव्य वचन कहा—'हे भूपाल! तुम वर माँगो'॥ १३½ ॥

तब देवीका आनन्ददायक वचन सुनकर महाराज मनुने देवताओंके लिये भी परम दुर्लभ अपने मनोभिलषित उन श्रेष्ठ वरोंकी याचना की॥ १४½ ॥

मनु बोले—हे देवि! हे विशालनयने! हे समस्त प्राणियोंके भीतर निवास करनेवाली! आपकी जय हो। हे मान्ये! हे पूज्ये! हे जगद्धात्रि! हे सर्वमंगलमंगले! आपके कटाक्षपातमात्रसे पद्मयोनि ब्रह्मा जगत्‌की सृष्टि करते हैं, भगवान् विष्णु पालन करते हैं तथा रुद्र क्षणभरमें संहार करते हैं, शचीपति इन्द्र आपकी ही आज्ञासे तीनों लोकोंपर शासन करते हैं॥ १५—१७॥

आपके ही आदेशपर यमराज दण्डके द्वारा प्राणियोंको नियन्त्रित करते हैं तथा जलचर जीवोंके स्वामी वरुणदेव हम-जैसे प्राणियोंका पालन करते हैं। आपकी ही कृपासे कुबेर निधियोंके अविनाशी अधिपतिके रूपमें प्रतिष्ठित हैं। अग्नि, नैर्ऋत, वायु, ईशान और शेषनाग आपके ही अंशसे उत्पन्न हुए हैं और आपकी ही शक्तिसे परिवर्धित हैं॥ १८-१९½ ॥

फिर भी हे देवि! यदि इस समय आप मुझे वर देना चाहती हैं तो हे शिवे! सृष्टिकार्यमें आनेवाले मेरे सभी विघ्न क्षीण होकर नष्ट हो जायँ। जो भी

तदा प्रह्वाः सर्गकार्ये विघ्ना नश्यन्तु मे शिवे।
वाग्भवस्यापि मन्त्रस्य ये केचिदुपसेविनः॥ २१
तेषां सिद्धिः सत्वरापि कार्याणां जायतामपि।
ये संवादमिमं देवि पठन्ति श्रावयन्ति च॥ २२
तेषां लोके भुक्तिमुक्ती सुलभे भवतां शिवे।
जातिस्मरत्वं भवतु वक्तृत्वं सौष्ठवं तथा॥ २३
ज्ञानसिद्धिः कर्ममार्गसंसिद्धिरपि चास्तु हि।
पुत्रपौत्रसमृद्धिश्च जायेदित्येव मे वचः॥ २४

लोग वाग्भव बीजमन्त्रके उपासक हों, उनके कार्योंकी सिद्धि शीघ्र ही हो जाय। हे देवि! जो लोग इस संवादको पढ़ें और दूसरोंको सुनायें, उनके लिये इस लोकमें भोग तथा मोक्ष सुलभ हो जायँ। हे शिवे! उन्हें पूर्वजन्मोंकी स्मृति बनी रहे और वे वक्तृता तथा वाणी-सौष्ठवसे सम्पन्न रहें। उन्हें ज्ञानकी सिद्धि हो तथा कर्मयोगकी भी सिद्धि प्राप्त हो, साथ ही उनके यहाँ पुत्र-पौत्रकी समृद्धि निरन्तर होती रहे—यही मेरा आपसे निवेदन है॥ २०—२४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां दशमस्कन्धे मनुकृतं देवीस्तवनं नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १॥



अथ द्वितीयोऽध्यायः

देवीद्वारा मनुको वरदान, नारदजीका विन्ध्यपर्वतसे सुमेरुपर्वतकी श्रेष्ठता कहना

श्रीदेव्युवाच

भूमिपाल महाबाहो सर्वमेतद्भविष्यति।
यत्त्वया प्रार्थितं तत्ते ददामि मनुजाधिप॥ १

श्रीदेवी बोलीं—हे भूमिपाल! हे महाबाहो! हे मनुजाधिप! यह सब पूर्ण होगा। तुमने जो-जो माँगा है, वह मैं तुम्हें दे रही हूँ॥ १॥

अहं प्रसन्ना दैत्येन्द्रनाशनामोघविक्रमा।
वाग्भवस्य जपेनैव तपसा ते सुनिश्चितम्॥ २

राज्यं निष्कण्टकं तेऽस्तु पुत्रा वंशकरा अपि।
मयि भक्तिर्दृढा वत्स मोक्षान्ते सत्पदे भवेत्॥ ३

बड़े-बड़े दैत्योंका संहार करनेवाली तथा अमोघ पराक्रमवाली मैं तुम्हारे द्वारा किये गये वाग्भव-मन्त्रके जप तथा तपसे निश्चितरूपसे प्रसन्न हूँ। हे वत्स! तुम्हारा राज्य निष्कण्टक होगा और तुम्हारे पुत्र वंशकी वृद्धि करनेवाले होंगे; तुम मेरे प्रति दृढ़ भक्तिवाले रहोगे और अन्तमें परमपद प्राप्त करोगे॥ २-३॥

एवं वरान्महादेवी तस्मै दत्त्वा महात्मने।
पश्यतस्तु मनोरेव जगाम विन्ध्यपर्वतम्॥ ४

इस प्रकार उन महात्मा मनुको वर देकर महादेवी जगदम्बा उनके देखते-देखते विन्ध्यपर्वतपर चली गयीं॥ ४॥

योऽसौ विन्ध्याचलो रुद्धः कुम्भोद्भवमहर्षिणा।
भानुमार्गावरोधार्थं प्रवृत्तो गगनं स्पृशन्॥ ५

यह वही विन्ध्याचल है, जो सूर्यके मार्गका अवरोध करनेके लिये आकाशको छूता हुआ ऊपरकी ओर बढ़नेके लिये प्रवृत्त था और महर्षि अगस्त्यने उसे रोक दिया था॥ ५॥

सा विन्ध्यवासिनी विष्णोरनुजा वरदेश्वरी।
बभूव पूज्या लोकानां सर्वेषां मुनिसत्तम॥ ६

हे मुनिश्रेष्ठ! वरदायिनी तथा परमेश्वरी वे विष्णुभगिनी विन्ध्यवासिनी सभी लोगोंके लिये पूज्य हो गयीं॥ ६॥

ऋषय ऊचुः

कोऽसौ विन्ध्याचलः सूत किमर्थं गगनं स्पृशन्।
भानुमार्गावरोधं च किमर्थं कृतवानसौ॥ ७

ऋषि बोले—हे सूतजी! वह विन्ध्याचल कौन है, आकाशको छूता हुआ वह क्यों बढ़ा, उसने सूर्यके मार्गका अवरोध क्यों किया और मैत्रावरुणि अगस्त्यजीने

कथं च मैत्रावरुणिः पर्वतं तं महोन्नतम्।
प्रकृतिस्थं चकारेति सर्वं विस्तरतो वद॥ ८

न हि तृप्यामहे साधो त्वदास्यगलितामृतम्।
देव्याश्चरित्ररूपाख्यं पीत्वा तृष्णा प्रवर्धते॥ ९

सूत उवाच

आसीद्विन्ध्याचलो नाम मान्यः सर्वधराभृताम्।
महावनसमूहाढ्यो महापादपसंवृतः॥ १०

सुपुष्पितैरनेकैश्च लतागुल्मैस्तु संवृतः।
मृगा वराहा महिषा व्याघ्राः शार्दूलका अपि॥ ११

वानराः शशका ऋक्षाः शृगालाश्च समन्ततः।
विचरन्ति सदा हृष्टा पुष्टा एव महोद्यमाः॥ १२

नदीनदजलाक्रान्तो देवगन्धर्वकिन्नरैः।
अप्सरोभिः किम्पुरुषैः सर्वकामफलद्रुमैः॥ १३

एतादृशे विन्ध्यनगे कदाचित्पर्यटन् महीम्।
देवर्षिः परमप्रीतो जगाम स्वेच्छया मुनिः॥ १४

तं दृष्ट्वा स नगो मङ्क्षु तूर्णमुत्थाय सम्भ्रमात्।
पाद्यमर्घ्यं तथा दत्त्वा वरासनमथार्पयत्॥ १५

सुखोपविष्टं देवर्षिं प्रसन्नं नग ऊचिवान्।

विन्ध्य उवाच

देवर्षे कथ्यतां जात आगमः कुत उत्तमः॥ १६

तवागमनतो जातमनर्घ्यं मम मन्दिरम्।
तव चङ्क्रमणं देवाभयार्थं हि यथा रवेः॥ १७

अपूर्वं यन्मनोवृत्तं तद् ब्रूहि मम नारद।

नारद उवाच

ममागमनमिन्द्रारे जातं स्वर्णगिरेरथ॥ १८

तत्र दृष्टा मया लोकाः शक्राग्नियमपाशिनाम्।
सर्वेषां लोकपालानां भवनानि समन्ततः॥ १९

मया दृष्टानि विन्ध्याग नानाभोगप्रदानि च।

उस महान् ऊँचे पर्वतको बढ़नेसे क्यों रोक दिया? यह सब आप विस्तारसे मुझे बताइये॥ ७-८॥

हे साधो! आपके मुखसे निःसृत देवीचरित्ररूपी अमृतका पान करते हुए हम सब तृप्त नहीं हो रहे हैं, अपितु तृष्णा बढ़ती ही जा रही है॥ ९॥

सूतजी बोले—सम्पूर्ण पर्वतोंमें श्रेष्ठ विन्ध्याचल नामक एक पर्वत था। वह बड़े-बड़े वनोंसे सम्पन्न तथा अति विशाल वृक्षोंसे घिरा था। वह अनेक प्रकारके पुष्पोंसे लदी हुई लताओं तथा वल्लरियोंसे आच्छादित था। मृग, वराह, महिष, बाघ, सिंह, वानर, खरगोश, भालू, सियार आदि हृष्ट-पुष्ट तथा अति शक्ति-शाली वन्य जन्तु उसमें चारों ओर सदा विचरण करते रहते थे। वह नदियों तथा नदोंके जलसे व्याप्त था एवं देवताओं, गन्धर्वों, किन्नरों, अप्सराओं, किम्पुरुषों तथा सभी प्रकारके मनोवांछित फल देनेवाले वृक्षोंसे शोभायमान था॥ १०—१३॥

किसी समय देवर्षि नारद परम प्रसन्न होकर इच्छापूर्वक पृथ्वीलोकमें विचरण करते हुए इस प्रकारके विन्ध्यपर्वतपर पहुँच गये॥ १४॥

उन्हें देखकर विन्ध्याचलने शीघ्र ही वेगपूर्वक उठ करके आदरपूर्वक उन्हें पाद्य-अर्घ्य प्रदानकर उत्तम आसन अर्पित किया। तदनन्तर सुखपूर्वक आसनपर विराजमान उन प्रसन्न देवर्षि नारदसे विन्ध्यपर्वत कहने लगा॥ १५½॥

विन्ध्य बोला—हे देवर्षे! कहिये, आपका यह शुभागमन कहाँसे हुआ है?॥ १६॥

आपके आगमनसे मेरा घर परम पावन हो गया। जैसे सूर्य संसारके कल्याणार्थ भ्रमण करते हैं, उसी प्रकार आप भी देवताओंको अभय प्रदान करनेहेतु भ्रमण करते रहते हैं। हे नारदजी! आपके मनमें जो भी विशेष बात हो, उसे मुझे बताइये॥ १७½॥

नारदजी बोले—हे इन्द्रशत्रु! मेरा आगमन सुमेरुगिरिसे हुआ है। वहाँ मैंने इन्द्र, अग्नि, यम तथा वरुणके लोकोंको देखा है। हे विन्ध्यपर्वत! वहाँपर मुझे समस्त लोकपालोंके नानाविध भोग प्रदान करनेवाले भवन चारों ओर दिखायी पड़े॥ १८-१९½॥

इति चोक्त्वा ब्रह्मयोनिः पुनरुच्छ्‌वासमाविशत्॥ २०

उच्छ्‌वसन्तं मुनिं दृष्ट्वा पुनः पप्रच्छ शैलराट्।
उच्छ्‌वासकारणं किं तद् ब्रूहि देवऋषे मम॥ २१

इत्याकर्ण्य नगस्योक्तं देवर्षिरमितद्युतिः।
अब्रवीच्छ्रूयतां वत्स ममोच्छ्‌वासस्य कारणम्॥ २२

गौरीगुरुस्तु हिमवाञ्छिवस्य श्वशुरः किल।
सम्बन्धित्वात्पशुपतेः पूज्य आसीत्क्षमाभृताम्॥ २३

एवमेव च कैलासः शिवस्यावसथः प्रभुः।
पूज्यः पृथ्वीभृतां जातो लोके पापौघदारणः॥ २४

निषधः पर्वतो नीलो गन्धमादन एव च।
पूज्याः स्वस्थानमासाद्य सर्व एव क्षमाभृतः॥ २५

यं पर्येति च विश्वात्मा सहस्रकिरणः स्वराट्।
सग्रहर्क्षगणोपेतः सोऽयं कनकपर्वतः॥ २६

आत्मानं मनुते श्रेष्ठं वरिष्ठं च धराभृताम्।
सर्वेषामहमेवाग्र्यो नास्ति लोकेषु मत्समः॥ २७

एवं मानाभिमानं तं स्मृत्वोच्छ्‌वासो मयोज्झितः।
अस्तु नैतावता कृत्यं तपोबलवतां नग।
प्रसङ्गतो मयोक्तं ते गमिष्यामि निजं गृहम्॥ २८

ऐसा कहकर ब्रह्माजीके पुत्र नारदने दीर्घ श्वास ली। नारदमुनिको इस प्रकार श्वास लेते हुए देखकर पर्वतराज विन्ध्यने उनसे पुनः पूछा—हे देवर्षे! इस उच्छ्‌वासका क्या कारण है, उसे मुझे बताइये॥ २०-२१॥

विन्ध्यपर्वतका यह कथन सुनकर अपरिमित तेजवाले देवर्षि नारद बोले—हे वत्स! मेरे उच्छ्‌वासका कारण सुनो॥ २२॥

पार्वतीके पिता हिमालय शिवजीके श्वसुर हैं। इस प्रकार शंकरजीसे सम्बन्ध होनेके कारण वे सभी पर्वतोंके पूज्य हो गये॥ २३॥

इसी प्रकार शिवजीका निवास-स्थल कैलास भी सभी पर्वतोंका पूज्य स्वामी बन गया और लोकमें पापसमूहका विनाशक हो गया॥ २४॥

इसी तरह निषध, नील तथा गन्धमादन आदि सभी पर्वत भी अपने-अपने स्थानपर स्थित होकर पूज्य पर्वतके रूपमें प्रतिष्ठित हैं॥ २५॥

यह वही सुमेरुगिरि है, जिसकी परिक्रमा समस्त विश्वकी आत्मा, स्वर्गके राजा तथा हजारों किरणें धारण करनेवाले सूर्य समस्त ग्रह-नक्षत्रोंके समूहसहित करते हैं॥ २६॥

वह अपनेको पर्वतोंमें श्रेष्ठ तथा महान् मानता है। वह समझता है कि मैं ही सभी पर्वतोंमें अग्रणी हूँ तथा मेरे समान लोकोंमें कोई नहीं है॥ २७॥

इस प्रकारके मान-अभिमानवाले उस पर्वतका स्मरण करके मैंने यह उच्छ्‌वास लिया है। हे पर्वत! जो भी हो, तपरूपी बलवाले हम सबको इससे कोई प्रयोजन नहीं है। मैंने तो प्रसंगवश आपसे ऐसा कह दिया; अब मैं अपने घरके लिये प्रस्थान कर रहा हूँ॥ २८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां दशमस्कन्धे विन्ध्योपाख्यानवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

विन्ध्यपर्वतका आकाशतक बढ़कर सूर्यके मार्गको अवरुद्ध कर लेना

सूत उवाच

एवं समुपदिश्यायं देवर्षिः परमः स्वराट्।
जगाम ब्रह्मणो लोकं स्वैरचारी महामुनिः॥ १

सूतजी बोले—हे ऋषियो! इस प्रकार विन्ध्यगिरिसे वार्तालाप करके परम स्वतन्त्र तथा स्वेच्छापूर्वक विचरण करनेवाले महामुनि देवर्षि नारद ब्रह्मलोक चले गये॥ १॥

गते मुनिवरे विन्ध्यश्चिन्तां लेभेऽनपायिनीम्।
नैव शान्तिं स लेभे च सदान्तःकृतशोचनः॥ २

कथं किं त्वत्र मे कार्यं कथं मेरुं जयाम्यहम्।
नैव शान्तिं लभे नापि स्वास्थ्यं मे मानसे भवेत्॥ ३

(धिगुत्साहं च मानं च धिङ् मे कीर्तिं च धिक्कुलम्)
धिग्बलं मे पौरुषं धिक् स्मृतं पूर्वैर्महात्मभिः।
एवं चिन्तयमानस्य विन्ध्यस्य मनसि स्फुटम्॥ ४

प्रादुर्भूता मतिः कार्ये कर्तव्ये दोषकारिणी।
मेरुप्रदक्षिणां कुर्वन्नित्यमेव दिवाकरः॥ ५

सग्रहर्क्षगणोपेतः सदा दृप्यत्ययं नगः।
तस्य मार्गस्य संरोधं करिष्यामि निजैः करैः॥ ६

तदा निरुद्धो द्युमणिः परिक्रामेत्कथं नगम्।
एवं मार्गे निरुद्धे तु मया दिनकरस्य च॥ ७

भग्नदर्पो दिव्यनगो भविष्यति विनिश्चयम्।
एवं निश्चित्य विन्ध्याद्रिः खं स्पृशन् ववृधे भुजैः॥ ८

महोन्नतैः शृङ्गवरैः सर्वं व्याप्य व्यवस्थितः।
कदोदेष्यति भास्वांस्तं रोधयिष्याम्यहं कदा॥ ९

एवं सञ्चिन्तयानस्य सा व्यतीयाय शर्वरी।
प्रभातं विमलं जज्ञे दिशो वितिमिराः करैः॥ १०

कुर्वन्स निर्गतो भानुरुदयायोदये गिरौ।
प्रकाशते स्म विमलं नभो भानुकरैः शुभैः॥ ११

विकासं नलिनी भेजे मीलनं च कुमुद्वती।
स्वानि कार्याणि सर्वे च लोकाः समुपतस्थिरे॥ १२

हव्यं कव्यं भूतबलिं देवानां च प्रवर्धयन्।
प्राह्णापराह्णमध्याह्नविभागेन त्विषां पतिः॥ १३

मुनिवर नारदके चले जानेपर विन्ध्य निरन्तर चिन्तित रहने लगा। उसे शान्ति नहीं मिल पाती थी। वह अपने अन्तर्मनमें सदा यही सोचता कि अब मैं कौन-सा कार्य करूँ तथा किस प्रकारसे सुमेरुगिरिको जीत लूँ? इस समय मुझे न तो शान्ति मिल पा रही है और न तो मेरा मन ही सुस्थिर हो पा रहा है। (मेरे उत्साह, सम्मान, यश तथा कुलको धिक्कार है) मेरे बल तथा पुरुषार्थको धिक्कार है। पूर्वकालीन महात्माओंने भी ऐसा ही कहा है॥ २-३$\frac{1}{2}$॥

इस प्रकार चिन्तन करते हुए विन्ध्यगिरिके मनमें कर्तव्यके निर्णयमें दोष उत्पन्न कर देनेवाली बुद्धिका उदय हो गया॥ ४$\frac{1}{2}$॥

सूर्य सभी ग्रह-नक्षत्रसमूहोंसे युक्त होकर सुमेरु-पर्वतकी सदा परिक्रमा करते रहते हैं, जिससे यह सुमेरु-गिरि अभिमानमें चूर रहता है। मैं अपने शिखरोंसे उस सूर्यका मार्ग रोक दूँगा। तब इस प्रकार अवरुद्ध हुए ये सूर्य सुमेरुगिरिका परिक्रमण कैसे कर सकेंगे?॥ ५-६$\frac{1}{2}$॥

इस प्रकार मेरे द्वारा सूर्यका मार्गावरोध कर दिये जानेसे उस दिव्य सुमेरुगिरिका अभिमान निश्चितरूपसे खण्डित हो जायगा॥ ७$\frac{1}{2}$॥

ऐसा निश्चय करके विन्ध्यगिरि अपने शिखरोंसे आकाशको छूता हुआ बढ़ने लगा और अत्युच्च श्रेष्ठ शिखरोंसे सम्पूर्ण आकाशको व्याप्त करके व्यवस्थित हो गया। वह प्रतीक्षा करने लगा कि कब सूर्य उदित हों और कब मैं उनका मार्ग अवरुद्ध करूँ॥ ८-९॥

इस प्रकार उसके सोचते-सोचते वह रात्रि व्यतीत हो गयी और विमल प्रभातका आगमन हो गया। अपनी किरणोंसे दिशाओंको अन्धकाररहित करते हुए भगवान् सूर्य उदयाचलपर उदित होनेके लिये प्रकट होने लगे। सूर्यकी शुभ किरणोंसे आकाश स्वच्छ प्रकाशित होने लगा, कमलिनी खिलने लगी और कुमुदिनी संकुचित होने लगी, सभी प्राणी अपने-अपने कार्योंमें लग गये॥ १०—१२॥

इस प्रकार पूर्वाह्न, अपराह्न तथा मध्याह्नके विभागसे देवताओंके लिये हव्य, कव्य तथा भूतबलिका

एवं प्राचीं तथाग्नेयीं समाश्वास्य वियोगिनीम्।
ज्वलन्तीं चिरकालीनविरहादिव कामिनीम्॥ १४

भास्करोऽथ कृशानोश्च दिशं नूनं विहाय च।
याम्यां गन्तुं ततस्तूर्णं प्रतस्थे कमलाकरः॥ १५

न शशाकाग्रतो गन्तुं ततोऽनूरुर्व्यजिज्ञपत्।

अनूरुरुवाच

भानो मानोन्नतो विन्ध्यो निरुध्य गगनं स्थितः॥ १६

स्पर्धते मेरुणा प्रेप्सुस्त्वद्दत्तां च प्रदक्षिणाम्।

सूत उवाच

अनूरुवाक्यमाकर्ण्य सविता ह्यास चिन्तयन्॥ १७

अहो गगनमार्गोऽपि रुध्यते चातिविस्मयः।
प्रायः शूरो न किं कुर्यादुत्पथे वर्त्मनि स्थितः॥ १८

निरुद्धो नो वाजिमार्गो दैवं हि बलवत्तरम्।
राहुबाहुग्रहव्यग्रो यः क्षणं नावतिष्ठते॥ १९

स चिरं रुद्धमार्गोऽपि किं करोति विधिर्बली।
एवं च मार्गे संरुद्धे लोकाः सर्वे च सेश्वराः॥ २०

नान्वविन्दन्त शरणं कर्तव्यं नान्वपद्यत।
चित्रगुप्तादयः सर्वे कालं जानन्ति सूर्यतः॥ २१

संरुद्धो विन्ध्यगिरिणा अहो दैवविपर्ययः।
यदा निरुद्धः सविता गिरिणा स्पर्धया तदा॥ २२

नष्टः स्वाहास्वधाकारो नष्टप्रायमभूज्जगत्।
एवं च पाश्चिमा लोका दाक्षिणात्यास्तथैव च॥ २३

संवर्धन करते हुए प्रभाके स्वामी सूर्य चिरकालीन विरहाग्निसे सन्तप्त तथा वियोगिनी कामिनीसदृश प्राची तथा आग्नेयी दिशाओंको आश्वासन देकर एवं पुनः अग्नि-दिशाको छोड़कर बड़ी तेजीसे दक्षिण दिशाकी ओर प्रस्थान करनेका प्रयास करने लगे। किंतु जब वे सूर्य आगे नहीं बढ़ सके, तब उनका सारथि अनूरु (अरुण) कहने लगा—॥ १३—१५½ ॥

अनूरु बोला—हे सूर्य! अत्यधिक अभिमानी विन्ध्यगिरि आपका मार्ग रोककर आकाशमें स्थित हो गया है। वह सुमेरुगिरिसे स्पर्धा करता है और आपके द्वारा सुमेरुकी की जानेवाली परिक्रमा प्राप्त करनेकी अभिलाषा रखता है॥ १६½ ॥

सूतजी बोले—अरुणका यह वचन सुनकर सूर्य सोचने लगे—अहो! आकाशका भी मार्ग अवरुद्ध हो गया, यह तो महान् आश्चर्य है। प्रायः कुमार्गपर चलनेवाला पराक्रमी व्यक्ति क्या नहीं कर सकता॥ १७-१८ ॥

दैव बड़ा बलवान् होता है। आज मेरे घोड़ोंका मार्ग रोक दिया गया है। राहुकी भुजाओंमें जकड़े जानेपर जो क्षणभरके लिये भी नहीं रुकता था, वही मैं चिरकालसे अवरुद्ध मार्गवाला हो गया हूँ। बलवान् विधाता अब न जाने क्या करेगा?॥ १९½ ॥

इस प्रकार सूर्यका मार्ग अवरुद्ध हो जानेसे समस्त लोक तथा लोकेश्वर कहीं भी शरण नहीं प्राप्त कर सके और वे अपने-अपने कार्य सम्पादित करनेमें अक्षम हो गये॥ २०½ ॥

चित्रगुप्त आदि सभी लोग जिन सूर्यसे समयका ज्ञान करते थे, वे ही सूर्य आज विन्ध्यगिरिके द्वारा अवरुद्ध कर दिये गये। अहो! दैव भी कितना विपरीत हो जाता है॥ २१½ ॥

जब स्पर्धाके कारण विन्ध्यने सूर्यको रोक दिया, तब स्वाहा-स्वधाकार नष्ट हो गये और सम्पूर्ण जगत् भी नष्टप्राय हो गया॥ २२½ ॥

पश्चिम तथा दक्षिणके प्राणी रात्रिके प्रभावमें थे और निद्रासे नेत्र बन्द किये हुए थे, साथ ही पूर्व तथा उत्तरके प्राणी सूर्यकी प्रचण्ड गर्मीसे दग्ध हो रहे थे।

निद्रामीलितचक्षुष्का निशामेव प्रपेदिरे।
प्राञ्चस्तथोत्तराहाश्च तीक्ष्णतापप्रतापिताः॥ २४
मृता नष्टाश्च भग्नाश्च विनाशमभजन् प्रजाः।
हाहाभूतं जगत्सर्वं स्वधाकव्यविवर्जितम्।
देवाः सेन्द्राः समुद्विग्नाः किं कुर्म इतिवादिनः॥ २५

प्रजाओंका विनाश होने लगा। बहुत-से प्राणी मर गये, कितने ही नष्ट हो गये, कितने भग्न हो गये, सम्पूर्ण जगत्‌में हाहाकार मच गया और श्राद्ध-तर्पणसे जगत् रहित हो गया। इन्द्रसहित सभी देवता व्याकुल होकर आपसमें कहने लगे कि अब हमलोग क्या करें?॥ २३—२५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां दशमस्कन्धे देवीमाहात्म्ये विन्ध्योपाख्यानवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

देवताओंका भगवान् शंकरसे विन्ध्यपर्वतकी वृद्धि रोकनेकी प्रार्थना करना और शिवजीका उन्हें भगवान् विष्णुके पास भेजना

सूत उवाच

ततः सर्वे सुरगणा महेन्द्रप्रमुखास्तदा।
पद्मयोनिं पुरस्कृत्य रुद्रं शरणमन्वयुः॥ १

उपतस्थुः प्रणतिभिः स्तोत्रैश्चारुविभूतिभिः।
देवदेवं गिरिशयं शशिलोलितशेखरम्॥ २

देवा ऊचुः

जय देव गणाध्यक्ष उमालालितपङ्कज।
अष्टसिद्धिविभूतीनां दात्रे भक्तजनाय ते॥ ३

महामायाविलसितस्थानाय परमात्मने।
वृषाङ्कायामरेशाय कैलासस्थितिशालिने॥ ४

अहिर्बुध्न्याय मान्याय मनवे मानदायिने।
अजाय बहुरूपाय स्वात्मारामाय शम्भवे॥ ५

गणनाथाय देवाय गिरिशाय नमोऽस्तु ते।
महाविभूतिदात्रे ते महाविष्णुस्तुताय च॥ ६

विष्णुहृत्कञ्जवासाय महायोगरताय च।
योगगम्याय योगाय योगिनां पतये नमः॥ ७

योगीशाय नमस्तुभ्यं योगानां फलदायिने।
दीनदानपरायापि दयासागरमूर्तये॥ ८

सूतजी बोले—[हे मुनियो!] तत्पश्चात् इन्द्र आदि सभी प्रधान देवगण ब्रह्माजीको आगे करके भगवान् शिवकी शरणमें गये॥ १॥

गिरिपर शयन करनेवाले तथा चन्द्रमासे सुशोभित मस्तकवाले देवदेव शिवको प्रणाम करके वे देवता उनके सम्मुख खड़े हो गये और सुन्दर महिमासे युक्त स्तोत्रोंसे उनका स्तवन करने लगे॥ २॥

देवता बोले—हे देव! हे गणाध्यक्ष! हे पार्वतीद्वारा पूजित चरणकमलवाले! हे भक्तजनको आठों सिद्धियोंकी विभूतियाँ प्रदान करनेवाले आपकी जय हो॥ ३॥

महामायारूपी स्थलीमें विलास करनेवाले, परमात्मा, वृषांक, अमरेश, कैलासवासी, अहिर्बुध्न्य, मान्य, मनु, मान प्रदान करनेवाले, अज, अनेक रूपोंवाले, अपनी आत्मामें रमण करनेवाले, शम्भु, गणोंके नाथ, गिरिपर शयन करनेवाले, महान् ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले तथा महाविष्णुके द्वारा स्तुत किये जानेवाले आप महादेवको नमस्कार है॥ ४—६॥

विष्णुके हृदयकमलमें निवास करनेवाले, महायोगमें रत रहनेवाले, योगसे प्राप्त होनेवाले, योगस्वरूप तथा योगियोंके अधीश्वरको नमस्कार है॥ ७॥

योगीश, योगोंके फलदाता, दीनोंको दान देनेमें तत्पर तथा दयासागरकी साक्षात् मूर्ति आपको नमस्कार है॥ ८॥

आर्तिप्रशमनायोग्रवीर्याय गुणमूर्तये।
वृषध्वजाय कालाय कालकालाय ते नमः॥ ९

सूत उवाच

एवं स्तुतः स देवेशो यज्ञभुग्भिर्वृषध्वजः।
प्राह गम्भीरया वाचा प्रहसन्विबुधर्षभान्॥ १०

श्रीभगवानुवाच

प्रसन्नोऽहं दिविषदः स्तोत्रेणोत्तमपूरुषाः।
मनोरथं पूरयामि सर्वेषां देवतर्षभाः॥ ११

देवा ऊचुः

सर्वदेवेश गिरिश शशिमौलिविराजित।
आर्तानां शङ्करस्त्वं च शं विधेहि महाबल॥ १२

पर्वतो विन्ध्यनामास्ति मेरुद्वेष्टा महोन्नतः।
भानुमार्गनिरोद्धा हि सर्वेषां दुःखदोऽनघ॥ १३

तद्वृद्धिं स्तम्भयेशान सर्वकल्याणकृद्भव।
भानुसञ्चाररोधेन कालज्ञानं कथं भवेत्॥ १४

नष्टे स्वाहास्वधाकारे लोके कः शरणं भवेत्।
अस्माकं च भयार्तानां भवानेव हि दृश्यते॥ १५

दुःखनाशकरो देव प्रसीद गिरिजापते।

श्रीशिव उवाच

नास्माकं शक्तिरस्तीह तद्वृद्धिस्तम्भने सुराः॥ १६

इममेवं वदिष्यामो भगवन्तं रमाधवम्।
सोऽस्माकं प्रभुरात्मा च पूज्यः कारणरूपधृक्॥ १७

गोविन्दो भगवान्विष्णुः सर्वकारणकारणः।
तं गत्वा कथयिष्यामः स दुःखान्तो भविष्यति॥ १८

आर्त प्राणियोंका कष्ट निवारण करनेवाले, उग्र पराक्रमवाले, गुणमूर्ति, वृषध्वज, कालस्वरूप तथा कालोंके भी काल आपको नमस्कार है॥ ९॥

सूतजी बोले—यज्ञभोक्ता देवताओंके द्वारा इस प्रकार स्तुत किये गये वृषध्वज देवेश शिव उन श्रेष्ठ देवताओंसे हँसते हुए गम्भीर वाणीमें कहने लगे—॥ १०॥

श्रीभगवान् बोले—हे स्वर्गमें निवास करनेवाले! हे उत्तम पुरुषो! मैं [आपलोगोंकी] स्तुतिसे प्रसन्न हूँ। हे श्रेष्ठ देवताओ! मैं आप सभीका मनोरथ पूर्ण करूँगा॥ ११॥

देवता बोले—हे सर्वदेवेश! हे गिरिश! हे शशिशेखर! हे महाबल! आप दुःखी प्राणियोंका कल्याण करनेवाले हैं, अतएव हमारा भी कल्याण कीजिये॥ १२॥

हे पुण्यात्मन्! विन्ध्य नामक एक पर्वत है, जिसने सुमेरुगिरिसे द्वेष करके आकाशमें अत्यधिक ऊपर उठकर सूर्यका मार्ग रोक दिया है और वह सबके लिये दुःखदायी बन गया है॥ १३॥

हे ईशान! उसकी वृद्धिको रोक दीजिये और सबके लिये कल्याणकारी बन जाइये। सूर्यकी गति अवरुद्ध हो जानेपर लोगोंको कालज्ञान कैसे होगा? लोकमें स्वाहा तथा स्वधाकारके विलुप्त हो जानेपर हमें कौन शरण देगा? भयसे पीड़ित हम देवताओंके लिये एकमात्र शरणदाता तो केवल आप ही परिलक्षित हो रहे हैं। हे पार्वतीपते! हे देव! आप हमपर प्रसन्न होइये और हमारे कष्टका निवारण कीजिये॥ १४-१५½॥

श्रीशिव बोले—हे देवताओ! उस विन्ध्यगिरिकी वृद्धिको रोकनेकी शक्ति इस समय मुझमें नहीं है। अब हमलोग भगवान् लक्ष्मीकान्तसे यह समाचार कहेंगे॥ १६½॥

वे कारणरूपधारी, समस्त कारणोंके कारण, आत्मारूप, गोविन्द भगवान् श्रीविष्णु हमलोगोंके पूज्य स्वामी हैं। अतएव उन्हींके पास जाकर हम कहेंगे और वे हमारा दुःख दूर करनेवाले होंगे॥ १७-१८॥

इत्येवमाकर्ण्य गिरीशभाषितं
देवाश्च सेन्द्राः सपयोजसम्भवाः।
रुद्रं पुरस्कृत्य च वेपमाना
वैकुण्ठलोकं प्रतिजग्मुरञ्जसा॥ १९

इस प्रकार भगवान् शिवका कथन सुनकर इन्द्र तथा ब्रह्मासहित समस्त देवता शंकरजीको आगे करके थर-थर काँपते हुए शीघ्रतापूर्वक वैकुण्ठलोकके लिये प्रस्थित हुए॥ १९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां दशमस्कन्धे रुद्रप्रार्थनं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥



अथ पञ्चमोऽध्यायः

देवताओंका वैकुण्ठलोकमें जाकर भगवान् विष्णुकी स्तुति करना

सूत उवाच

ते गत्वा देवदेवेशं रमानाथं जगद्गुरुम्।
विष्णुं कमलपत्राक्षं ददृशुः प्रभयान्वितम्॥ १
स्तोत्रेण तुष्टुवुर्भक्त्या गद्गदस्वरसत्कृताः।

देवा ऊचुः

जय विष्णो रमेशाद्य महापुरुष पूर्वज॥ २
दैत्यारे कामजनक सर्वकामफलप्रद।
महावराह गोविन्द महायज्ञस्वरूपक॥ ३
महाविष्णो ध्रुवेशाद्य जगदुत्पत्तिकारण।
मत्स्यावतारे वेदानामुद्धाराधाररूपक॥ ४
सत्यव्रत धराधीश मत्स्यरूपाय ते नमः।
जयाकूपार दैत्यारे सुरकार्यसमर्पक॥ ५
अमृताप्तिकरेशान कूर्मरूपाय ते नमः।
जयादिदैत्यनाशार्थमादिसूकररूपधृक्॥ ६
मह्युद्धारकृतोद्योगकोलरूपाय ते नमः।
नारसिंहं वपुः कृत्वा महादैत्यं ददार यः॥ ७
करजैर्वरदृप्ताङ्गं तस्मै नृहरये नमः।
वामनं रूपमास्थाय त्रैलोक्यैश्वर्यमोहितम्॥ ८
बलिं सञ्छलयामास तस्मै वामनरूपिणे।

सूतजी बोले—वैकुण्ठमें जाकर उन देवताओंने कमलपत्रके समान नेत्रोंवाले, देवदेवेश्वर, रमाकान्त, जगद्गुरु भगवान् विष्णुको लक्ष्मीजीके साथ विराजमान देखा। वे गद्गद वाणीसे सत्कार करते हुए भक्तिपूर्वक स्तोत्रसे उनकी स्तुति करने लगे॥ १½॥

देवता बोले—हे विष्णो! हे रमेश! हे आद्य! हे महापुरुष! हे पूर्वज! हे दैत्यशत्रु! हे कामजनक! हे सम्पूर्ण कामनाओंके फल प्रदान करनेवाले! हे महावराह! हे गोविन्द! हे महायज्ञस्वरूप! आपकी जय हो॥ २-३॥

हे महाविष्णो! हे ध्रुवेश! हे आद्य! हे जगत्की उत्पत्तिके कारण! हे मत्स्यावतारमें वेदोंका उद्धार करनेके लिये आधारस्वरूप! हे सत्यव्रत! हे धराधीश! आप मत्स्यरूपधारीको नमस्कार है॥ ४½॥

हे कच्छपावतार! हे दैत्यशत्रु! हे देवकार्यसमर्पक! आपकी जय हो। अमृतकी प्राप्ति करानेवाले हे ईश्वर! आप कूर्मरूपधारीको नमस्कार है॥ ५½॥

आदिदैत्य हिरण्याक्षका संहार करनेके लिये सूकररूप-धारी हे ईश्वर! आपकी जय हो। पृथ्वीका उद्धार करनेहेतु उद्योगपरायण आप वराहरूपधारीको नमस्कार है॥ ६½॥

नृसिंहका रूप धारणकर जिन्होंने वरदानसे उन्मत्त अंगोंवाले महान् दैत्य हिरण्यकशिपुको अपने नखोंसे विदीर्ण कर डाला, उन नृसिंहभगवान्को नमस्कार है॥ ७½॥

वामनरूप धारणकर जिन्होंने त्रिलोकीके ऐश्वर्यसे मोहित राजा बलिको छला था, उन वामनरूपधारीको नमस्कार है॥ ८½॥

दुष्टक्षत्रविनाशाय सहस्रकरशत्रवे॥ ९

रेणुकागर्भजाताय जामदग्न्याय ते नमः।

दुष्टराक्षसपौलस्त्यशिरश्छेदपटीयसे ॥ १०

श्रीमद्दाशरथे तुभ्यं नमोऽनन्तक्रमाय च।

कंसदुर्योधनाद्यैश्च दैत्यैः पृथ्वीशलाञ्छनैः॥ ११

भाराक्रान्तां महीं योऽसावुज्जहार महाविभुः।

धर्मं संस्थापयामास पापं कृत्वा सुदूरतः॥ १२

तस्मै कृष्णाय देवाय नमोऽस्तु बहुधा विभो।

दुष्टयज्ञविघाताय पशुहिंसानिवृत्तये॥ १३

बौद्धरूपं दधौ योऽसौ तस्मै देवाय ते नमः।

म्लेच्छप्रायेऽखिले लोके दुष्टराजन्यपीडिते॥ १४

कल्किरूपं समादध्यौ देवदेवाय ते नमः।

दशावतारास्ते देव भक्तानां रक्षणाय वै॥ १५

दुष्टदैत्यविघाताय तस्मात्त्वं सर्वदुःखहृत्।

जय भक्तार्तिनाशाय धृतं नारीजलात्मसु॥ १६

रूपं येन त्वया देव कोऽन्यस्त्वत्तो दयानिधिः।

इत्येवं देवदेवेशं स्तुत्वा श्रीपीतवाससम्॥ १७

प्रणेमुर्भक्तिसहिताः साष्टाङ्गं विबुधर्षभाः।

तेषां स्तवं समाकर्ण्य देवः श्रीपुरुषोत्तमः॥ १८

उवाच विबुधान्सर्वान् हर्षयञ्छ्रीगदाधरः।

श्रीभगवानुवाच

प्रसन्नोऽस्मि स्तवेनाहं देवास्तापं विमुञ्चथ॥ १९

भवतां नाशयिष्यामि दुःखं परमदुःसहम्।

दुष्ट क्षत्रियोंका संहार करनेवाले, कार्तवीर्य सहस्रार्जुनके शत्रु तथा रेणुकाके गर्भसे उत्पन्न आप जमदग्निपुत्र परशुरामको नमस्कार है॥ ९½ ॥

पुलस्त्यनन्दन दुराचारी राक्षस रावणके सिर काटनेमें परम पटु, अनन्त पराक्रमवाले आप दशरथपुत्र श्रीमान् रामको नमस्कार है॥ १०½ ॥

राजाओंके लिये कलंकस्वरूप कंस, दुर्योधन आदि दैत्योंके द्वारा भाराक्रान्त पृथ्वीका जिन महाप्रभुने उद्धार किया तथा पापोंका अन्त करके जिन्होंने धर्मकी स्थापना की, हे विभो! उन आप श्रीकृष्णभगवान्‌को बार-बार नमस्कार है॥ ११-१२½ ॥

दुष्ट यज्ञोंको विनष्ट करने तथा पशुहिंसा रोकनेके लिये जिन्होंने बौद्धरूप धारण किया; उन आप बुद्धदेवको नमस्कार है॥ १३½ ॥

सम्पूर्ण जगत्‌में म्लेच्छोंका बाहुल्य हो जानेपर तथा दुष्ट राजाओंद्वारा प्रजाओंको पीड़ित किये जानेपर आपने कल्किरूप धारण किया था; उन आप देवाधिदेवको नमस्कार है॥ १४½ ॥

हे देव! आपके ये दसों अवतार भक्तोंकी रक्षाके लिये तथा दुष्ट राक्षसोंके विनाशके लिये ही हुए हैं, अतएव आप सभी प्राणियोंका दुःख हरनेवाले हैं॥ १५½ ॥

भक्तोंका दुःख दूर करनेके लिये आपने मोहिनी स्त्री तथा जल-जन्तुओंका रूप धारण किया, अतएव हे देव! आपके अतिरिक्त दूसरा कौन दयासागर हो सकता है? आपकी जय हो॥ १६½ ॥

इस प्रकार पीताम्बरधारी देवदेवेश श्रीहरिका स्तवन करके उन श्रेष्ठ देवताओंने भक्तिपूर्वक उन्हें साष्टांग प्रणाम किया॥ १७½ ॥

उनकी स्तुति सुनकर गदाधर पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु सभी देवताओंको हर्षित करते हुए बोले— ॥ १८½ ॥

श्रीभगवान् बोले—हे देवताओ! मैं आपलोगोंकी स्तुतिसे प्रसन्न हूँ, आपलोग शोकका त्याग कर दें। मैं आपलोगोंके इस परम दुःसह कष्टको दूर करूँगा॥ १९½ ॥

वृणुध्वं च वरं मत्तो देवाः परमदुर्लभम्॥ २०
ददामि परमप्रीतः स्तवस्यास्य प्रसादतः।
य एतत्पठते स्तोत्रं कल्य उत्थाय मानवः॥ २१
मयि भक्तिं परां कृत्वा न तं शोकः स्पृशेत्कदा।
अलक्ष्मीः कालकर्णी च नाक्रामेत्तद्गृहं सुराः॥ २२
नोपसर्गा न वेताला न ग्रहा ब्रह्मराक्षसाः।
न रोगा वातिकाः पैत्ताः श्लेष्मसम्भविनस्तथा॥ २३
नाकालमरणं तस्य कदापि च भविष्यति।
सन्ततिश्चिरकालस्था भोगाः सर्वे सुखादयः॥ २४
सम्भविष्यन्ति तन्मर्त्यगृहे यः स्तोत्रपाठकः।
किं पुनर्बहुनोक्तेन स्तोत्रं सर्वार्थसाधकम्॥ २५
एतस्य पठनान्नृणां भुक्तिमुक्ती न दूरतः।
देवा भवत्सु यद्दुःखं कथ्यतां तदसंशयम्॥ २६
नाशयामि न सन्देहश्चात्र कार्योऽणुरेव च।
एवं श्रीभगवद्वाक्यं श्रुत्वा सर्वे दिवौकसः।
प्रसन्नमनसः सर्वे पुनरूचुर्वृषाकपिम्॥ २७

हे देवताओ! आपलोग मुझसे परम दुर्लभ वर माँग लीजिये; [आपलोगोंकी] इस स्तुतिके प्रभावसे अति प्रसन्न होकर मैं वर प्रदान करूँगा॥ २०½॥

जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर मुझमें दृढ़ भक्ति रखकर इस स्तोत्रका पाठ करेगा, उसे कभी शोक स्पर्श नहीं कर सकेगा। हे देवताओ! दरिद्रता तथा दुर्भाग्य उसके घरपर आक्रमण नहीं कर सकेंगे। विघ्न-बाधाएँ, वेताल, ग्रह तथा ब्रह्मराक्षस उसे पीड़ित नहीं कर सकते। वात-पित्त-कफसम्बन्धी रोग भी उसे नहीं होंगे। उसकी अकाल-मृत्यु कभी नहीं होगी और उसकी सन्तानें दीर्घ कालतक जीवित रहेंगी। जो इस स्तोत्रका पाठ करेगा, उस मनुष्यके घरमें सुख आदि सभी भोग-साधन विद्यमान रहेंगे। अधिक कहनेसे क्या प्रयोजन, यह स्तोत्र सभी अर्थोंका परम साधन करनेवाला है॥ २१—२५॥

इस स्तोत्रका पाठ करनेसे मनुष्योंके लिये भोग तथा मोक्ष उनसे दूर नहीं रहेंगे। हे देवताओ! आपलोगोंको जो कष्ट हो, उसे आप निःसंकोच बताइये, मैं उसे दूर करूँगा; इसमें आपलोगोंको अणुमात्र भी सन्देह नहीं करना चाहिये॥ २६½॥

इस प्रकार श्रीभगवान‌्का वचन सुनकर सभी देवताओंका मन प्रसन्नतासे भर गया और वे पुनः वृषाकपि भगवान् विष्णुसे कहने लगे॥ २७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां दशमस्कन्धे श्रीविष्णुना देवेभ्यो वरप्रदानं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

~~~o~~~

अथ षष्ठोऽध्यायः

भगवान् विष्णुका देवताओंको काशीमें अगस्त्यजीके पास भेजना, देवताओंकी अगस्त्यजीसे प्रार्थना

सूत उवाच

श्रीशस्य वचनाद्देवाः सन्तुष्टाः सर्व एव हि।
प्रसन्नमनसो भूत्वा पुनरेनं समूचिरे॥ १

देवा ऊचुः

देवदेव महाविष्णो सृष्टिस्थित्यन्तकारण।
विष्णो विन्ध्यनगोऽर्कस्य मार्गरोधं करोति हि॥ २

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] लक्ष्मीकान्त श्रीविष्णुके वचनसे सभी देवता सन्तुष्ट हो गये। उन्होंने प्रसन्नचित्त होकर उन भगवान‌्से पुनः इस प्रकार कहा—॥ १॥

देवता बोले—हे देवदेव! हे महाविष्णो! हे सृजन-पालन-संहारके कारण! हे विष्णो! विन्ध्यपर्वतने सूर्यका मार्ग रोक दिया है। सूर्यका
~~~

तेन भानुविरोधेन सर्व एव महाविभो।
अलब्धभोगभागा हि किं कुर्मः कुत्र याम हि॥ ३

श्रीभगवानुवाच

या कर्त्री सर्वजगतामाद्या च कुलवर्धनी।
देवी भगवती तस्याः पूजकः परमद्युतिः॥ ४

अगस्त्यो मुनिवर्योऽसौ वाराणस्यां समासते।
तत्तेजोवञ्चकोऽगस्त्यो भविष्यति सुरोत्तमाः॥ ५

तं प्रसाद्य द्विजवरमगस्त्यं परमौजसम्।
याचध्वं विबुधाः काशीं गत्वा निःश्रेयसः पदीम्॥ ६

सूत उवाच

एवं समुपदिष्टास्ते विष्णुना विबुधोत्तमाः।
प्रतीताः प्रणताः सर्वे जग्मुर्वाराणसीं पुरीम्॥ ७

क्षणेन विबुधश्रेष्ठा गत्वा काशीपुरीं शुभाम्।
मणिकर्णीं समाप्लुत्य सचैलं भक्तिसंयुताः॥ ८

सन्तर्प्य देवांश्च पितॄन्दत्त्वा दानं विधानतः।
आगत्य मुनिवर्यस्य चाश्रमं परमं महत्॥ ९

प्रशान्तश्वापदाकीर्णं नानापादपसङ्कुलम्।
मयूरैः सारसैर्हंसैश्चक्रवाकैरुपाश्रितम्॥ १०

महावराहैः कोलैश्च व्याघ्रैः शार्दूलकैरपि।
मृगै रुरुभिरत्यर्थं खड्गैः शरभकैरपि॥ ११

समाश्रितं परमया लक्ष्म्या मुनिवरं तदा।
दण्डवत्पतिताः सर्वे प्रणेमुश्च पुनः पुनः॥ १२

देवा ऊचुः

जय द्विजगणाधीश मान्य पूज्य धरासुर।
वातापीबलनाशाय नमस्ते कुम्भयोनये॥ १३

लोपामुद्रापते श्रीमन्मित्रावरुणसम्भव।
सर्वविद्यानिधेऽगस्त्य शास्त्रयोने नमोऽस्तु ते॥ १४

यस्योदये प्रसन्नानि भवन्त्युज्ज्वलभांज्यपि।
तोयानि तोयराशीनां तस्मै तुभ्यं नमोऽस्तु ते॥ १५

मार्ग अवरुद्ध हो जानेके कारण हमलोगोंको यज्ञभाग नहीं मिल पा रहा है। अतएव हे महाविभो! अब हमलोग क्या करें तथा कहाँ जायँ?॥ २-३॥

श्रीभगवान् बोले—हे उत्तम देवगण! सम्पूर्ण जगत्‌की रचना करनेवाली, आदिस्वरूपिणी तथा कुलकी अभिवृद्धि करनेवाली जो भगवती अम्बा हैं, उन्हींके उपासक परम तेजस्वी मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजी हैं। वे इस समय वाराणसीमें विद्यमान हैं। वे अगस्त्यमुनि ही उस विन्ध्यगिरिके तेजको निरस्त करनेमें समर्थ होंगे। हे देवताओ! मोक्षपद प्रदान करनेवाली उस काशीपुरीमें जाकर परम ओजस्वी द्विजश्रेष्ठ अगस्त्यजीको प्रसन्न करके याचना कीजिये॥ ४—६॥

सूतजी बोले—[हे मुनियो!] इस प्रकार भगवान् विष्णुसे आदेश प्राप्त करके वे सभी श्रेष्ठ देवता आश्वस्त होकर नम्रतापूर्वक काशीपुरीके लिये प्रस्थित हुए॥ ७॥

क्षणभरमें पावन काशीपुरीमें पहुँचकर वे श्रेष्ठ देवगण मणिकर्णिकातीर्थमें भक्तिपूर्वक सचैल (वस्त्रसहित) स्नान करके पुनः देवतर्पण तथा पितृतर्पण करनेके बाद विधिपूर्वक दान देकर मुनिवर अगस्त्यके परम पवित्र आश्रमपर आये, जो शान्तस्वभाववाले हिंसक पशुओंसे व्याप्त था; वहाँ नानाविध वृक्ष उगे हुए थे। वह आश्रम मयूर, सारस, हंस, चक्रवाक, महावराह, शूकर, व्याघ्र, सिंह, मृग, काले हिरन, गैंडा तथा शरभ आदि जन्तुओंसे परिपूर्ण था। सभी देवता परम कान्तिसे सम्पन्न मुनिवर अगस्त्यके चरणोंमें दण्डकी भाँति गिर पड़े और बार-बार उन्हें प्रणाम करने लगे॥ ८—१२॥

देवता बोले—हे द्विजगणोंके स्वामी! हे मान्य! हे पूज्य! हे भूसुर! हे वातापीका बल नष्ट करनेवाले तथा घटसे प्रकट होनेवाले आपको नमस्कार है, आपकी जय हो॥ १३॥ हे लोपामुद्रापते! हे श्रीमन्! हे मित्रावरुणसे आविर्भूत! हे सम्पूर्ण विद्याओंके भण्डार! हे शास्त्रयोनि अगस्त्यमुने! आपको नमस्कार है॥ १४॥ जिनके उदय होनेपर समुद्रोंका जल प्रसन्न तथा विमल हो जाता है, उन आपको नमस्कार स्वीकार हो॥ १५॥

काशपुष्पविकासाय लङ्कावासप्रियाय च।
जटामण्डलयुक्ताय सशिष्याय नमोऽस्तु ते॥ १६

जय सर्वामरस्तव्य गुणराशे महामुने।
वरिष्ठाय च पूज्याय सस्त्रीकाय नमोऽस्तु ते॥ १७

प्रसादः क्रियतां स्वामिन् वयं त्वां शरणं गताः।
दुस्तराच्छैलजाद्दुःखात्पीडिताः परमद्युते॥ १८

इत्येवं संस्तुतोऽगस्त्यो मुनिः परमधार्मिकः।
प्राह प्रसन्नया वाचा विहसन् द्विजसत्तमः॥ १९

मुनिरुवाच

भवन्तः परमश्रेष्ठा देवास्त्रिभुवनेश्वराः।
लोकपाला महात्मानो निग्रहानुग्रहक्षमाः॥ २०

योऽमरावत्यधीशानः कुलिशं यस्य चायुधम्।
सिद्ध्यष्टकं च यद्द्वारि स शक्रो मरुतां पतिः॥ २१

वैश्वानरः कृशानुर्हि हव्यकव्यवहोऽनिशम्।
मुखं सर्वामराणां हि सोऽग्निः किं तस्य दुष्करम्॥ २२

रक्षोगणाधिपो भीमः सर्वेषां कर्मसाक्षिकः।
दण्डव्यग्रकरो देवः किं तस्यासुकरं सुराः॥ २३

तथापि यदि देवेशाः कार्यं मच्छक्तिसिद्धिभृत्।
अस्ति चेदुच्यतां देवाः करिष्यामि न संशयः॥ २४

एवं मुनिवरेणोक्तं निशम्य विबुधर्षभाः।
प्रतीताः प्रणयोद्विग्नाः कार्यं निजगदुर्निजम्॥ २५

महर्षे विन्ध्यगिरिणा निरुद्धोऽर्कविनिर्गमः।
त्रैलोक्यं तेन संविष्टं हाहाभूतमचेतनम्॥ २६

काशपुष्पको विकसित करनेवाले, लंकावास (श्रीराम)-के परम प्रिय, जटासमूहसे सम्पन्न तथा शिष्योंसे निरन्तर आवृत आपको नमस्कार है॥ १६॥ समस्त देवताओंसे स्तुत होनेवाले हे महामुने! हे गुणनिधे! वरिष्ठ, पूज्य तथा भार्यासहित आपको नमस्कार है, आपकी जय हो॥ १७॥

हे स्वामिन्! आप हमपर अनुग्रह करें; हम आपकी शरणको प्राप्त हुए हैं। हे परमद्युते! विन्ध्यगिरिद्वारा उत्पन्न किये गये दुःसह कष्टसे हमलोग बहुत पीड़ित हैं॥ १८॥

देवताओंके इस प्रकार स्तुति करनेपर परम धर्मनिष्ठ द्विजश्रेष्ठ अगस्त्यमुनि हँसते हुए प्रसन्नतासे युक्त वाणीमें कहने लगे—॥ १९॥

मुनि बोले—हे देवताओ! आपलोग परम श्रेष्ठ, त्रिलोकीके स्वामी, लोकपाल, महान् आत्मावाले तथा निग्रह-अनुग्रह करनेमें सक्षम हैं॥ २०॥

जो अमरावतीपुरीके स्वामी हैं, वज्र ही जिनका शस्त्र है, आठों सिद्धियाँ जिनके द्वारपर विराजमान रहती हैं तथा जो मरुद्‌गणोंके नायक हैं—वे ही ये इन्द्रदेव हैं॥ २१॥

सर्वदा हव्य-कव्यका वहन करनेवाले, वैश्वानर तथा कृशानु नामसे प्रसिद्ध और सभी देवताओंके मुखस्वरूप जो ये अग्निदेव हैं, उनके लिये कौन-सा कार्य दुष्कर है?॥ २२॥

हे देवताओ! हाथमें दण्ड लेकर सदा व्यस्त रहनेवाले, सभी प्राणियोंके कर्मोंके साक्षीस्वरूप तथा राक्षसगणोंके अधिपति भयंकर यमदेवके लिये कौन-सा कार्य सुकर नहीं है? तथापि हे देवताओ! मेरे सामर्थ्यसे यदि आपका कोई कार्य सिद्ध होनेवाला हो तो आप उसे बताइये। हे देवगण! मैं उसे अवश्य करूँगा; इसमें सन्देह नहीं है॥ २३-२४॥

मुनिवर अगस्त्यका वचन सुनकर वे श्रेष्ठ देवता आश्वस्त हो गये और अधीर होकर विनम्रतापूर्वक अपने कार्यके विषयमें बताने लगे—हे महर्षे! विन्ध्यपर्वतने सूर्यका मार्ग निरुद्ध कर दिया है और तीनों लोकोंको आच्छादित कर रखा है, जिससे सर्वत्र हाहाकार मच गया है तथा सभी प्राणियोंमें अचेतनता उत्पन्न हो गयी है॥ २५-२६॥

तद्वृद्धिं स्तम्भय मुने निजया तपसः श्रिया।
भवतस्तेजसागस्त्य नूनं नम्रो भविष्यति।
एतदेवास्मदीयं च कार्यं कर्तव्यमस्ति हि॥ २७

हे मुने! आप अपने तपोबल तथा प्रतापसे उस विन्ध्यगिरिकी वृद्धिको रोक दीजिये। हे अगस्त्य! आपके तेजसे वह अवश्य ही नम्र हो जायगा, इस समय आपको हमारा इतना ही कार्य सम्पन्न करना है॥ २७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां दशमस्कन्धे-ऽगस्त्याश्वासनवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

~~~O~~~

अथ सप्तमोऽध्यायः

अगस्त्यजीकी कृपासे सूर्यका मार्ग खुलना

सूत उवाच

इति वाक्यं समाकर्ण्य विबुधानां द्विजोत्तमः।
करिष्ये कार्यमेतद्वः प्रत्युवाच ततो मुनिः॥ १

सूतजी बोले—[हे मुनियो!] देवताओंका यह वचन सुनकर द्विजश्रेष्ठ अगस्त्यमुनिने उनसे कहा—मैं आपलोगोंका यह कार्य करूँगा॥ १॥

अङ्गीकृते तदा कार्ये मुनिना कुम्भजन्मना।
देवाः प्रमुदिताः सर्वे बभूवुर्द्विजसत्तमाः॥ २

हे द्विजवरो! कुम्भसे आविर्भूत अगस्त्यमुनिके द्वारा देवकार्य करना स्वीकार कर लिये जानेपर समस्त देवता अत्यन्त हर्षित हो उठे॥ २॥

ते देवाः स्वानि धिष्ण्यानि भेजिरे मुनिवाक्यतः।
पत्नीं मुनिवरः श्रीमानुवाच नृपकन्यकाम्॥ ३

मुनिके वचनसे आश्वस्त होकर जब वे देवता अपने-अपने स्थानोंको चले गये तब श्रीमान् मुनिवर अगस्त्यने अपनी पत्नी राजकन्या लोपामुद्रासे कहा—॥ ३॥

अये नृपसुते प्राप्तो विघ्नोऽनर्थस्य कारकः।
भानुमार्गनिरोधेन कृतो विन्ध्यमहीभृता॥ ४

हे राजपुत्रि! विन्ध्यगिरिने सूर्यके मार्गका अवरोध करके महान् अनर्थकारी विघ्न उपस्थित कर दिया है॥ ४॥

आज्ञातं कारणं तच्च स्मृतं वाक्यं पुरातनम्।
काशीमुद्दिश्य यद् गीतं मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः॥ ५

अविमुक्तं न मोक्तव्यं सर्वथैव मुमुक्षुभिः।
किन्तु विघ्ना भविष्यन्ति काश्यां निवसतां सताम्॥ ६

सोऽन्तरायो मया प्राप्तः काश्यां निवसता प्रिये।

मुझे इसका कारण ज्ञात हो गया। काशीको उद्देश्य करके तत्त्वदर्शी मुनियोंने जो कहा है, वह पुरातन वाक्य मुझे स्मरण हो आया कि मोक्षकी अभिलाषा रखनेवाले प्राणियोंको अविमुक्त काशीक्षेत्रका त्याग कभी नहीं करना चाहिये, किंतु काशीवास करनेवाले सत्पुरुषोंके समक्ष भी विघ्न आते हैं। हे प्रिये! काशीमें निवास कर रहे मेरे समक्ष भी वही बाधा उपस्थित हुई॥ ५-६½॥

इत्येवमुक्त्वा भार्यां तां मुनिः परमतापनः॥ ७

मणिकर्ण्यां समाप्लुत्य दृष्ट्वा विश्वेश्वरं विभुम्।
दण्डपाणिं समभ्यर्च्य कालराजं समागतः॥ ८

अपनी उन भार्यासे ऐसा कहकर परम तपस्वी मुनि अगस्त्य मणिकर्णिकाकुण्डमें स्नान करके तथा भगवान् विश्वनाथ और दण्डपाणिका सम्यक् पूजन करके कालभैरवका दर्शन करने वहाँ आये॥ ७-८॥
~~~

कालराज महाबाहो भक्तानां भयहारक।
कथं दूरयसे पुर्याः काशीपुर्यास्त्वमीश्वरः॥ ९

त्वं काशीवासविघ्नानां नाशको भक्तरक्षकः।
मां किं दूरयसे स्वामिन् भक्तार्तिविनिवारक॥ १०

परापवादो नोक्तो मे न पैशुन्यं न चानृतम्।
केन कर्मविपाकेन काश्या दूरं करोषि माम्॥ ११

एवं प्रार्थ्य च तं कालनाथं कुम्भोद्भवो मुनिः।
जगाम साक्षिविघ्नेशं सर्वविघ्ननिवारणम्॥ १२

तं दृष्ट्वाभ्यर्च्य सम्प्रार्थ्य ततः पुर्या विनिर्गतः।
लोपामुद्रापतिः श्रीमानगस्त्यो दक्षिणां दिशम्॥ १३

काशीविरहसन्तप्तो महाभाग्यनिधिर्मुनिः।
संस्मृत्यानुक्षणं काशीं जगाम सह भार्यया॥ १४

तपोयानमिवारुह्य निमिषार्धेन वै मुनिः।
अग्रे ददर्श तं विन्ध्यं रुद्धाम्बरमथोन्नतम्॥ १५

चकम्पे चाचलस्तूर्णं दृष्ट्वैवाग्रे स्थितं मुनिम्।
गिरिः खर्वतरो भूत्वा विवक्षुरवनीमिव॥ १६

दण्डवत्पतितो भूमौ साष्टाङ्गं भक्तिभावितः।
तं दृष्ट्वा नम्रशिखरं विन्ध्यं नाम महागिरिम्॥ १७

प्रसन्नवदनोऽगस्त्यो मुनिर्विन्ध्यमथाब्रवीत्।
वत्सैवं तिष्ठ तावत्त्वं यावदागम्यते मया॥ १८

अशक्तोऽहं गण्डशैलारोहणे तव पुत्रक।
एवमुक्त्वा मुनिर्याम्यदिशं प्रति गमोत्सुकः॥ १९

आरुह्य तस्य शिखराण्यवारुहदनुक्रमात्।
गतो याम्यदिशं चापि श्रीशैलं प्रेक्ष्य वर्त्मनि॥ २०

मलयाचलमासाद्य तत्राश्रमपरोऽभवत्।

[वहाँ पहुँचकर वे कहने लगे—] हे भक्तोंका भय दूर करनेवाले महाबाहो कालराज! आप काशीपुरीके अधिपति हैं, मुझे इस पुरीसे दूर क्यों कर रहे हैं?॥ ९॥ आप तो काशीमें निवास करनेवाले प्राणियोंकी बाधाओंका नाश करनेवाले तथा भक्तजनोंके रक्षक हैं, तो फिर हे भक्तोंका दुःख दूर करनेवाले स्वामिन्! मुझे क्यों दूर कर रहे हैं?॥ १०॥ मैंने दूसरोंके लिये कभी निन्दित वचन नहीं कहा, चुगली नहीं की तथा मिथ्या-भाषण नहीं किया, तो मेरे किस कर्मके परिणामस्वरूप आप मुझे काशीसे दूर कर रहे हैं?॥ ११॥

उन कालभैरवसे ऐसी प्रार्थना करके कुम्भयोनि अगस्त्यमुनि समस्त विघ्नोंका नाश करनेवाले साक्षीविनायकके पास गये॥ १२॥

उन साक्षीविनायकका दर्शन, पूजन तथा स्तवन करके लोपामुद्रापति श्रीमान् अगस्त्य उस पुरीसे दक्षिण दिशाकी ओर निकल पड़े॥ १३॥

काशीत्यागसे सन्तप्त महान् भाग्यशाली अगस्त्यमुनि प्रतिक्षण काशीका स्मरण करते हुए अपने तपोबलरूपी विमानपर चढ़कर अपनी भार्याके साथ आधे निमेषमें ही वहाँ पहुँच गये और मुनिने देखा कि सामने विन्ध्यगिरिने अत्यन्त ऊँचे उठकर आकाशको आच्छादित कर रखा है॥ १४-१५॥

मुनिको समक्ष उपस्थित देखकर विन्ध्यपर्वत तेजीसे काँपने लगा। वह पर्वत पूर्णरूपसे अभिमानरहित होकर कुछ कहनेके विचारसे उनके सम्मुख पृथ्वीकी भाँति विनयावनत हो भक्ति-भावनासे युक्त होकर दण्डकी भाँति भूमिपर गिरकर साष्टांग प्रणाम करने लगा॥ १६½॥

तब उस विन्ध्य नामक महागिरिको उस समय नम्र शिखरवाला देखकर प्रसन्न मुखवाले अगस्त्यमुनिने विन्ध्याचलसे कहा—हे वत्स! जबतक मैं लौटकर आता हूँ तबतक तुम इसी प्रकार स्थित रहो; क्योंकि हे पुत्र! मैं तुम्हारे उच्च शिखरपर चढ़नेमें असमर्थ हूँ॥ १७-१८½॥

इस प्रकार कहकर दक्षिण दिशाकी ओर प्रस्थान करनेकी इच्छावाले अगस्त्यमुनि उस विन्ध्यके शिखरोंपर चढ़कर क्रमशः नीचे पृथ्वीपर उतर आये और वहाँसे दक्षिण दिशाकी ओर चल पड़े। मार्गमें श्रीशैलका अवलोकन करते हुए मलयाचलपर आकर आश्रममें निवास करने लगे॥ १९-२०½॥

सापि देवी तत्र विन्ध्यमागता मनुपूजिता॥ २१
लोकेषु प्रथिता विन्ध्यवासिनीति च शौनक।

मनुके द्वारा पूजित वे भगवती भी वहीं विन्ध्यगिरिपर आ गयीं। हे शौनक! वे ही देवी समस्त लोकोंमें विन्ध्यवासिनी नामसे विख्यात हो गयीं॥ २१½ ॥

सूत उवाच

एतच्चरित्रं परमं शत्रुनाशनमुत्तमम्॥ २२
अगस्त्यविन्ध्यनगयोराख्यानं पापनाशनम्।
राज्ञां विजयदं तच्च द्विजानां ज्ञानवर्धनम्॥ २३
वैश्यानां धान्यधनदं शूद्राणां सुखदं तथा।
धर्मार्थी धर्ममाप्नोति धनार्थी धनमाप्नुयात्॥ २४
कामानवाप्नुयात्कामी भक्त्या चास्य सकृच्छ्रवात्।

सूतजी बोले—हे मुनियो! इन देवीका चरित्र परम पावन तथा शत्रुओंका नाश करनेवाला है। अगस्त्य तथा विन्ध्यगिरिका यह उपाख्यान समस्त पापोंको नष्ट कर देनेवाला है। यह आख्यान राजाओंको विजय दिलाता है तथा द्विजोंके ज्ञानकी वृद्धि करता है। यह वैश्योंके लिये धन-धान्यदायक तथा शूद्रोंके लिये सुखप्रद है। इस आख्यानके भक्तिपूर्वक एक बार श्रवण करनेसे धर्म चाहनेवाला धर्म प्राप्त करता है, धनकी अभिलाषा रखनेवाला धन प्राप्त कर लेता है और सकाम पुरुष अपने सभी मनोरथोंको प्राप्त कर लेता है॥ २२—२४½ ॥

एवं स्वायम्भुवमनुर्देवीमाराध्य भक्तितः॥ २५
लेभे राज्यं धरायाश्च निजमन्वन्तराश्रयम्।
इत्येतद्वर्णितं सौम्य मया मन्वन्तराश्रितम्।
आद्यं चरित्रं श्रीदेव्याः किं पुनः कथयामि ते॥ २६

इस प्रकार स्वायम्भुव मनुने भक्तिपूर्वक देवीकी आराधना करके अपने मन्वन्तरपर्यन्त पृथ्वीका राज्य प्राप्त किया। हे सौम्य! मन्वन्तरसे सम्बन्ध रखनेवाले भगवती श्रीदेवीके इस आद्य चरित्रका वर्णन मैंने कर दिया; अब आगे किस प्रसंगका वर्णन आपसे करूँ?॥ २५-२६ ॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां दशमस्कन्धे विन्ध्यवृद्ध्यवरोधवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

~~~o~~~

अथाष्टमोऽध्यायः

स्वारोचिष, उत्तम, तामस और रैवत नामक मनुओंका वर्णन

शौनक उवाच

आद्यो मन्वन्तरः प्रोक्तो भवता चायमुत्तमः।
अन्येषामुद्भवं ब्रूहि मनूनां दिव्यतेजसाम्॥ १

शौनकजी बोले—[हे सूतजी!] यह तो आपने आदिमन्वन्तरका उत्तम उपाख्यान कहा, अब दिव्य तेजवाले अन्य मनुओंकी उत्पत्तिका वर्णन कीजिये॥ १ ॥

सूत उवाच

एवमाद्यस्य चोत्पत्तिं श्रुत्वा स्वायम्भुवस्य हि।
अन्येषां क्रमशस्तेषां सम्भूतिं परिपृच्छति॥ २
नारदः परमो ज्ञानी देवीतत्त्वार्थकोविदः।

सूतजी बोले—इसी प्रकार भगवतीके तात्त्विक रहस्योंको पूर्णरूपेण जाननेवाले परम ज्ञानी देवर्षि नारदजीने भी आद्य स्वायम्भुव मनुकी उत्पत्तिका प्रसंग सुनकर क्रमशः अन्य मनुओंके प्रादुर्भावके विषयमें भगवान् नारायणसे पूछा था॥ २½ ॥

नारद उवाच

मनूनां मे समाख्याहि सूत्पत्तिं च सनातन॥ ३

नारदजी बोले—हे सनातन! मनुओंकी उत्तम उत्पत्तिके विषयमें मुझे भलीभाँति बताइये॥ ३ ॥
~~~

श्रीनारायण उवाच

प्रथमोऽयं मनुः स्वायम्भुव उक्तो महामुने।
देव्याराधनतो येन प्राप्तं राज्यमकण्टकम्॥ ४

प्रियव्रतोत्तानपादौ मनुपुत्रौ महौजसौ।
राज्यपालनकर्तारौ विख्यातौ वसुधातले॥ ५

द्वितीयश्च मनुः स्वारोचिष उक्तो मनीषिभिः।
प्रियव्रतसुतः श्रीमानप्रमेयपराक्रमः॥ ६

स स्वारोचिषनामापि कालिन्दीकूलतो मनुः।
निवासं कल्पयामास सर्वसत्त्वप्रियङ्करः॥ ७

जीर्णपत्राशनो भूत्वा तपः कर्तुमनुव्रतः।
देव्या मूर्तिं मृण्मयीं च पूजयामास भक्तितः॥ ८

एवं द्वादश वर्षाणि वनस्थस्य तपस्यतः।
देवी प्रादुरभूत्तात सहस्रार्कसमद्युतिः॥ ९

ततः प्रसन्ना देवेशी स्तवराजेन सुव्रता।
ददौ स्वारोचिषायैव सर्वमन्वन्तराश्रयम्॥ १०

आधिपत्यं जगद्धात्री तारिणीति प्रथामगात्।
एवं स्वारोचिषमनुस्तारिण्याराधनात्ततः॥ ११

आधिपत्यं च लेभे स सर्वारातिविवर्जितम्।
धर्मं संस्थाप्य विधिवद्राज्यं पुत्रैः समं विभुः॥ १२

भुक्त्वा जगाम स्वर्लोकं निजमन्वन्तराश्रयात्।
तृतीय उत्तमो नाम प्रियव्रतसुतो मनुः॥ १३

गङ्गाकूले तपस्तप्त्वा वाग्भवं सञ्जपन् रहः।
वर्षाणि त्रीण्युपवसन् देव्यनुग्रहमाविशत्॥ १४

स्तुत्वा देवीं स्तोत्रवरैर्भक्तिभावितमानसः।
राज्यं निष्कण्टकं लेभे सन्ततिं चिरकालिकीम्॥ १५

श्रीनारायण बोले—हे महामुने! मैंने इन आद्य स्वायम्भुव मनुका वर्णन कर दिया, जिन्होंने देवीकी उपासनासे निष्कण्टक राज्य प्राप्त किया। उन मनुके प्रियव्रत तथा उत्तानपाद नामक महान् तेजस्वी दो पुत्र हुए। राज्यका भलीभाँति पालन करनेवाले वे दोनों भूलोकमें अति प्रसिद्ध हुए॥ ४-५॥

विद्वानोंने स्वारोचिष मनुको द्वितीय मनु कहा है। अमित पराक्रमवाले वे श्रीमान् स्वारोचिष मनु राजा प्रियव्रतके पुत्र थे॥ ६॥

सभी प्राणियोंका हित करनेवाले वे स्वारोचिष नामक मनु यमुनाके तटपर निवास करने लगे। वे सूखे पत्तोंके आहारपर रहकर एक महान् व्रतीके रूपमें तपस्या करनेमें संलग्न हो गये और भगवतीकी मृण्मयी मूर्ति बनाकर भक्तिपूर्वक उनकी पूजा करने लगे॥ ७-८॥

हे तात! इस प्रकार वनमें रहकर बारह वर्षोंतक तपस्या करनेवाले उन मनुके समक्ष हजारों सूर्योंके समान तेजवाली देवी प्रकट हो गयीं॥ ९॥

तत्पश्चात् उत्तम व्रतका पालन करनेवाली उन देवेश्वरीने उस स्तवराजसे प्रसन्न होकर स्वारोचिष मनुको सम्पूर्ण मन्वन्तरका आधिपत्य प्रदान कर दिया। उसी समयसे भगवती जगद्धात्रीको तारिणी मानकर उनकी उपासना करनेकी प्रथा चल पड़ी॥ १०½॥

इस प्रकार स्वारोचिष मनुने उन तारिणीदेवीकी उपासनासे समस्त शत्रुओंसे रहित राज्य प्राप्त कर लिया। इसके अनन्तर वे ऐश्वर्यसम्पन्न मनु विधिपूर्वक धर्मकी स्थापना करके पुत्रोंके साथ अपना राज्य भोगकर अन्तमें अपने मन्वन्तरका अधिकार त्यागकर स्वर्गलोक चले गये॥ ११-१२½॥

इसके बाद प्रियव्रतके उत्तम नामक पुत्र तृतीय मनु हुए। उन्होंने गंगाके तटपर रहकर एकान्तमें निरन्तर भगवतीके वाग्भव मन्त्रका जप करते हुए तीन वर्षोंतक तप करके देवीका अनुग्रह प्राप्त किया॥ १३-१४॥

भक्तिपूर्ण मनसे उत्तम स्तोत्रोंके द्वारा भगवतीकी स्तुति करके उन्होंने निष्कंटक राज्य तथा दीर्घजीवी सन्तान प्राप्त की॥ १५॥

राज्योत्थान्यानि सौख्यानि भुक्त्वा धर्मान्युगस्य च।
सोऽप्याजगाम पदवीं राजर्षिवरभाविताम्॥ १६

राज्यसे प्राप्त होनेवाले सुखोंका भोग करके तथा युग-धर्मोंका पालन करके वे अन्य श्रेष्ठ राजर्षियोंद्वारा प्राप्त पदपर पहुँच गये॥ १६॥

चतुर्थस्तामसो नाम प्रियव्रतसुतो मनुः।
नर्मदादक्षिणे कूले समाराध्य जगन्मयीम्॥ १७

महेश्वरीं कामराजकूटजापपरायणः।
वासन्ते शारदे काले नवरात्रसपर्यया॥ १८

तोषयामास देवेशीं जलजाक्षीमनूपमाम्।

तामस नामवाले चौथे मनु प्रियव्रतके पुत्र थे। नर्मदा नदीके दक्षिणी तटपर गुह्य कामबीज मन्त्रका सतत जप करते हुए उन्होंने जगद्व्यापिनी महेश्वरीकी आराधना की। चैत्र तथा आश्विनमासके नवरात्रमें उपासनाके द्वारा उन्होंने कमलके समान नेत्रोंवाली अनुपमेय देवेश्वरीको सन्तुष्ट किया॥ १७-१८½॥

तस्याः प्रसादमासाद्य नत्वा स्तोत्रैरनुत्तमैः॥ १९
अकण्टकं महद्राज्यं बुभुजे गतसाध्वसः।

अति श्रेष्ठ स्तोत्रोंसे देवीका स्तवन करके उनकी कृपा प्राप्तकर तामस मनुने निःशंक होकर निष्कण्टक विशाल राज्यका भोग किया॥ १९½॥

पुत्रान्बलोद्धताञ्छूरान्दश वीर्यनिकेतनान्॥ २०
उत्पाद्य निजभार्यायां जगामाम्बरमुत्तमम्।

अपनी भार्यासे दस ओजस्वी, शक्तिशाली तथा पराक्रमी पुत्र उत्पन्न करके वे उत्तम लोकको प्राप्त हुए॥ २०½॥

पञ्चमो मनुराख्यातो रैवतस्तामसानुजः॥ २१
कालिन्दीकूलमाश्रित्य जजाप कामसंज्ञकम्।
बीजं परमवाग्दर्पदायकं साधकाश्रयम्॥ २२

तामस मनुके अनुज रैवतको पाँचवाँ मनु कहा गया है। यमुनाके तटपर रहकर उन्होंने परम वाक्-शक्ति तथा प्रतिष्ठा प्रदान करनेवाले एवं साधकोंके लिये आश्रयस्वरूप कामबीजसंज्ञक मन्त्रका जप किया॥ २१-२२॥

एतदाराधनादाप स्वाराज्यर्द्धिमनुत्तमाम्।
बलमप्रहतं लोके सर्वसिद्धिविधायकम्॥ २३
सन्ततिं चिरकालीनां पुत्रपौत्रमयीं शुभाम्।
धर्मान्व्यस्य व्यवस्थाप्य विषयानुपभुज्य च।
जगामाप्रतिमः शूरो महेन्द्रालयमुत्तमम्॥ २४

भगवतीकी इस आराधनासे उन्होंने उत्तम समृद्धिसे सम्पन्न अपना राज्य तथा जगत्‌में सभी सिद्धियाँ प्रदान करनेवाला अप्रतिहत बल प्राप्त कर लिया। उन्होंने शुभ तथा पुत्र-पौत्रसे सम्पन्न सन्तति प्राप्त की। पुनः लोकमें धर्मकी स्थापना करके, राज्यकी व्यवस्था करके तथा राज्य-सुख भोगकर अप्रतिम शूर उन रैवत मनुने उत्तम इन्द्रपुरीके लिये प्रस्थान किया॥ २३-२४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां दशमस्कन्धे मनूत्पत्तिवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः॥ ८॥



अथ नवमोऽध्यायः

चाक्षुष मनुकी कथा, उनके द्वारा देवीकी आराधनाका वर्णन

श्रीनारायण उवाच

अथातः श्रूयतां चित्रं देवीमाहात्म्यमुत्तमम्।
अङ्गपुत्रेण मनुना यथाप्तं राज्यमुत्तमम्॥ १

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] अब आप जगदम्बाका अद्भुत तथा उत्तम माहात्म्य और अंगके पुत्र मनुने जिस तरहसे श्रेष्ठ राज्य प्राप्त किया था, उसे सुनिये॥ १॥

अङ्गस्य राज्ञः पुत्रोऽभूच्चाक्षुषो मनुरुत्तमः।
षष्ठः सुपुलहं नाम ब्रह्मर्षिं शरणं गतः॥ २

ब्रह्मर्षे त्वामहं प्राप्तः शरणं प्रणतार्तिहन्।
शाधि मां किङ्करं स्वामिन् येनाहं प्राप्नुयां श्रियम्॥ ३

मेदिन्याश्चाधिपत्यं मे स्याद्यथावदखण्डितम्।
अव्याहतं भुजबलं शस्त्रास्त्रनिपुणं क्षमम्॥ ४

सन्ततिश्चिरकालीनाप्यखण्डं वय उत्तमम्।
अन्तेऽपवर्गलाभश्च स्यात्तथोपदिशाद्य मे॥ ५

इत्येवं वचनं तस्य मनोः कर्णपथेऽभवत्।
प्रत्युवाच मुनिः श्रीमान् देव्याः संराधनं परम्॥ ६

राजन्नाकर्णय वचो मम श्रोत्रसुखं महत्।
शिवामाराधयाद्य त्वं तत्प्रसादादिदं भवेत्॥ ७

चाक्षुष उवाच

कीदृगाराधनं देव्यास्तस्याः परमपावनम्।
केनाकारेण कर्तव्यं कारुण्याद्वक्तुमर्हसि॥ ८

मुनिरुवाच

राजन्नाकर्ण्यतां देव्याः पूजनं परमव्ययम्।
वाग्भवं बीजमव्यक्तं सञ्जप्यमनिशं तथा॥ ९

त्रिकालं सञ्जपन्मर्त्यो भुक्तिमुक्ती लभेत्तु हि।
न बीजं वाग्भवादन्यदस्ति राजन्यनन्दन॥ १०

जपात्सिद्धिकरं वीर्यबलवृद्धिकरं परम्।
एतस्य जापात्पाद्मोऽपि सृष्टिकर्ता महाबलः॥ ११

विष्णुर्यज्जपतः सृष्टिपालकः परिकीर्तितः।
महेश्वरोऽपि संहर्ता यज्जपादभवन्नृप॥ १२

लोकपालास्तथान्येऽपि निग्रहानुग्रहक्षमाः।
यदाश्रयादभूवंस्ते बलवीर्यमदोद्धताः॥ १३

राजा अंगके उत्तम पुत्र चाक्षुष छठें मनु हुए। वे सुपुलह नामक ब्रह्मर्षिकी शरणमें गये॥ २॥

[उन्होंने सुपुलहसे कहा—] शरणागतोंके कष्टोंको दूर करनेवाले हे ब्रह्मर्षे! मैं आपकी शरणमें आया हूँ। हे स्वामिन्! मुझ सेवकको ऐसी शिक्षा दीजिये; जिससे मैं 'श्री' प्राप्त कर सकूँ, पृथ्वीपर मेरा अखण्ड आधिपत्य हो जाय, मेरी भुजाओंमें अप्रतिहतबल हो जाय तथा अस्त्र-शस्त्रके प्रयोगमें मैं निपुण तथा समर्थ हो जाऊँ, मेरी सन्तानें चिरकालतक जीवित रहें, मैं अखण्डित उत्तम आयुवाला हो जाऊँ तथा आपके उपदेशसे अन्तमें मुझे मोक्षलाभ हो जाय॥ ३—५॥

उन चाक्षुष मनुका यह वचन जब मुनि पुलहके कानमें पड़ा तब उन श्रीमान्‌ने कहा—हे राजन्! कानोंको महान् सुख प्रदान करनेवाली मेरी बात सुनिये—देवीकी आराधना सबसे बढ़कर है। इस समय आप कल्याणी जगदम्बाकी उपासना कीजिये; उन्हींके अनुग्रहसे आपको यह सब सुलभ हो जायगा॥ ६-७॥

चाक्षुष बोले—उन देवीकी परम पावन आराधनाका क्या स्वरूप है तथा उसे किस प्रकार करना चाहिये? इसे आप मेरे ऊपर दया करके बतायें॥ ८॥

मुनि बोले—हे राजन्! देवीके परम सनातन पूजनके विषयमें सुनिये। देवीके अव्यक्त वाग्भव मन्त्रका सतत जप करना चाहिये। इस मन्त्रको त्रिकाल जपनेवाला मनुष्य भोग तथा मोक्ष प्राप्त कर लेता है। हे राजनन्दन! इस वाग्भव बीजसे बढ़कर अन्य कोई बीजमन्त्र नहीं है॥ ९-१०॥

जप करनेसे यह मन्त्र श्रेष्ठ सिद्धियाँ प्रदान करता है और वीर्य तथा बलकी वृद्धि करता है। इस मन्त्रका जप करके ही ब्रह्माजी महाबली तथा सृजन करनेकी क्षमतावाले बन गये। हे राजन्! इसी बीजका जप करके भगवान् विष्णु सृष्टिपालक कहे गये तथा इसीके जपसे भगवान् शंकर जगत्‌का संहार करनेवाले हुए॥ ११-१२॥

इन्हींका आश्रय लेकर अन्यान्य लोकपाल भी निग्रह तथा अनुग्रह करनेमें समर्थ और बल तथा वीर्यसे सम्पन्न हुए हैं॥ १३॥

एवं त्वमपि राजन्य महेशीं जगदम्बिकाम्।
समाराध्य महर्द्धिं च लप्स्यसेऽचिरकालतः॥ १४

एवं स मुनिवर्येण पुलहेन प्रबोधितः।
अङ्गपुत्रस्तपस्तप्तुं जगाम विरजां नदीम्॥ १५

स च तेपे तपस्तीव्रं वाग्भवस्य जपे रतः।
बीजस्य पृथिवीपालः शीर्णपर्णाशनो विभुः॥ १६

प्रथमेऽब्दे पल्लवाशो द्वितीये तोयभक्षणः।
तृतीयेऽब्दे पवनभुक् तस्थौ स्थाणुरिवाचलः॥ १७

एवं द्वादश वर्षाणि त्यक्ताहारस्य भूभुजः।
वाग्भवं जपतो नित्यं मतिरासीच्छुभान्विता॥ १८

तथा च देव्याः परमं मन्त्रं सञ्जपतो रहः।
प्रादुरासीज्जगन्माता साक्षाच्छ्रीपरमेश्वरी॥ १९

तेजोमयी दुराधर्षा सर्वदेवमयीश्वरी।
उवाचाङ्गतनूजं तं प्रसन्ना ललिताक्षरम्॥ २०

देव्युवाच

पृथिवीपाल ते यत्स्याच्चिन्तितं परमं वरम्।
तद् ब्रूहि सम्प्रदास्यामि तपसा ते सुतोषिता॥ २१

चाक्षुष उवाच

जानासि देवदेवेशि यत्प्रार्थ्यं मनसेप्सितम्।
अन्तर्यामिस्वरूपेण तत्सर्वं देवपूजिते॥ २२

तथापि मम भाग्येन जातं यत्तव दर्शनम्।
ब्रवीमि देवि मे देहि राज्यं मन्वन्तराश्रितम्॥ २३

देव्युवाच

दत्तं मन्वन्तरस्यास्य राज्यं राजन्यसत्तम।
पुत्रा महाबलास्ते च भविष्यन्ति गुणाधिकाः॥ २४
राज्यं निष्कण्टकं भावि मोक्षोऽन्ते चापि निश्चितः।

हे राजन्य! इसी प्रकार आप भी महेश्वरी जगदम्बाकी सम्यक् आराधना करके थोड़े ही समयमें महान् समृद्धि प्राप्त कर लेंगे॥ १४॥

इस प्रकार मुनिश्रेष्ठ पुलहसे उपदिष्ट होकर वे अंगपुत्र चाक्षुष मनु तप करनेके लिये विरजानदीके तटपर गये॥ १५॥

वे ऐश्वर्यशाली राजा चाक्षुष जीर्ण-शीर्ण पत्तोंके आहारपर रहकर भगवतीके वाग्भव बीजके जपमें निरन्तर रत रहते हुए उग्र तपस्या करने लगे॥ १६॥

वे प्रथम वर्षमें पत्तोंके आहारपर, दूसरे वर्षमें जल पीकर और तीसरे वर्षमें केवल वायुका आहार करते हुए ठूँठ वृक्षकी भाँति अविचल स्थित रहे॥ १७॥

आहार छोड़कर बारह वर्षोंतक वाग्भव बीजका निरन्तर जप करते हुए राजा चाक्षुषकी बुद्धि परम पवित्र हो गयी॥ १८॥

इस प्रकार देवीके उस परम पवित्र मन्त्रका एकान्तमें जप करते हुए उन राजाके समक्ष जगन्माता परमेश्वरी भगवती साक्षात् प्रकट हो गयीं। किसीसे भी पराभूत न होनेवाली तेजस्विनी सर्वदेवमयी भगवती प्रसन्न होकर ललितवाणीमें उन अंगपुत्र चाक्षुषसे कहने लगीं—॥ १९-२०॥

देवी बोलीं—हे पृथ्वीपाल! तुमने अपने मनमें जो भी श्रेष्ठ वर सोचा हो, उसे बताओ, तुम्हारे तपसे परम सन्तुष्ट मैं उसे अवश्य दूँगी॥ २१॥

चाक्षुष बोले—हे देवदेवेश्वरि! हे देवपूजिते! मैं जिस मनोवांछित वरके लिये आपसे प्रार्थना करना चाहता हूँ, उसे आप अन्तर्यामी स्वरूपवाली होनेके कारण भलीभाँति जानती हैं, तथापि हे देवि! मेरे सौभाग्यसे यदि आपका दर्शन हो गया है तो मैं आपसे प्रार्थना कर रहा हूँ कि आप मुझे मन्वन्तरसे सम्बन्धित राज्य प्रदान करें॥ २२-२३॥

देवी बोलीं—हे नृपश्रेष्ठ! इस मन्वन्तरका राज्य मैंने तुम्हें दे दिया, तुम्हारे पुत्र भी अत्यधिक गुणवान् तथा महान् बलशाली होंगे। तुम्हारा राज्य निष्कंटक होगा तथा अन्तमें तुम्हें निश्चितरूपसे मोक्ष मिलेगा॥ २४½॥

एवं दत्त्वा परं देवी मनवे वरमुत्तमम्॥ २५
जगामादर्शनं सद्यस्तेन भक्त्या च संस्तुता।

इस प्रकार उन चाक्षुष मनुके द्वारा भक्तिपूर्वक स्तुत वे देवी उन्हें अत्यन्त उत्तम वर प्रदान करके शीघ्र ही अन्तर्धान हो गयीं॥ २५½॥

सोऽपि राजा मनुः षष्ठः प्रसादात्तु तदाश्रयात्॥ २६
बभूव मनुमान्योऽसौ सार्वभौमसुखैर्वृतः।
पुत्रास्तस्य बलोद्युक्ताः कार्यभारसहादृताः॥ २७
देवीभक्ताश्च शूराश्च महाबलपराक्रमाः।
अन्यत्र माननीयाश्च महाराज्यसुखास्पदाः॥ २८

वे राजा चाक्षुष मनु भी भगवतीकी कृपासे उनका आश्रय प्राप्तकर छठें मनुके रूपमें प्रतिष्ठित हुए और वे सम्मान्य मनु सार्वभौम सुखोंसे सम्पन्न हो गये। उनके पुत्र बलवान्, कार्यभार सँभालनेमें दक्ष, देवीभक्त, शूरवीर, महान् बलशाली, पराक्रमी, सर्वत्र समादर प्राप्त करनेवाले तथा महान् राज्यसुखके अधिष्ठान थे॥ २६—२८॥

एवं च चाक्षुषमनुर्देव्याराधनतः प्रभुः।
बभूव मनुवर्योऽसौ जगामान्ते शिवापदम्॥ २९

इस प्रकार प्रभुतासम्पन्न वे चाक्षुष मनु भगवतीकी आराधनाके प्रभावसे मनुश्रेष्ठके रूपमें प्रतिष्ठित हुए और अन्तमें देवीके परम धामको प्राप्त हुए॥ २९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां दशमस्कन्धे देवीचरित्रे चाक्षुषमनुवृत्तवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः॥ ९॥



अथ दशमोऽध्यायः

वैवस्वत मनुका भगवतीकी कृपासे मन्वन्तराधिप होना, सावर्णि मनुके पूर्वजन्मकी कथा

श्रीनारायण उवाच

सप्तमो मनुराख्यातो मनुर्वैवस्वतः प्रभुः।
श्राद्धदेवः परानन्दभोक्ता मान्यस्तु भूभुजाम्॥ १

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] राजा वैवस्वत सातवें मनु कहे गये हैं। समस्त राजाओंमें मान्य तथा दिव्य आनन्दका भोग करनेवाले वे श्राद्धदेव भी कहे जाते हैं॥ १॥

स च वैवस्वतमनुः परदेव्याः प्रसादतः।
तथा तत्तपसा चैव जातो मन्वन्तराधिपः॥ २

वे वैवस्वत मनु पराम्बा भगवतीकी तपस्या करके उनके अनुग्रहसे मन्वन्तरके अधिपति बन गये॥ २॥

अष्टमो मनुराख्यातः सावर्णिः प्रथितः क्षितौ।
स जन्मान्तर आराध्य देवीं तद्वरलाभतः॥ ३
जातो मन्वन्तरपतिः सर्वराजन्यपूजितः।
महापराक्रमी धीरो देवीभक्तिपरायणः॥ ४

आठवें मनु भूलोकमें सावर्णि नामसे विख्यात हुए। पूर्वजन्ममें देवीकी आराधना करके तथा उनसे वरदान प्राप्तकर वे मन्वन्तरके अधिपति हो गये। वे सभी राजाओंसे पूजित, धीर, महापराक्रमी तथा देवीभक्तिपरायण थे॥ ३-४॥

नारद उवाच

कथं जन्मान्तरे तेन मनुनाराधनं कृतम्।
देव्याः पृथिव्युद्भवायास्तन्ममाख्यातुमर्हसि॥ ५

नारदजी बोले—उन सावर्णि मनुने पूर्वजन्ममें भगवतीकी पार्थिव मूर्तिकी किस प्रकार आराधना की थी; इसे मुझे बतानेकी कृपा करें॥ ५॥

श्रीनारायण उवाच

चैत्रवंशसमुद्भूतो राजा स्वारोचिषेऽन्तरे।
सुरथो नाम विख्यातो महाबलपराक्रमः॥ ६

श्रीनारायण बोले—स्वारोचिष मन्वन्तरमें चैत्रवंशमें उत्पन्न सुरथ नामसे विख्यात एक राजा हुए। वे महान् बल तथा पराक्रमसे सम्पन्न, गुणग्राही, धनुर्धर, माननीय, श्रेष्ठ, कवि, कुशल, धनसंग्रह

गुणग्राही धनुर्धारी मान्यः श्रेष्ठः कविः कृती।
धनसंग्रहकर्ता च दाता याचकमण्डले॥ ७

अरीणां मर्दनो मानी सर्वास्त्रकुशलो बली।
तस्यैकदा बभूवुस्ते कोलाविध्वंसिनो नृपाः॥ ८

शत्रवः सैन्यसहिताः परिवार्यैनमूर्जिताः।
रुरुधुर्नगरीं तस्य राज्ञो मानधनस्य हि॥ ९

तदा स सुरथो नाम राजा सैन्यसमावृतः।
निर्ययौ नगरात्स्वीयात्सर्वशत्रुनिबर्हणः॥ १०

तदा स समरे राजा सुरथः शत्रुभिर्जितः।
अमात्यैर्मन्त्रिभिश्चैव तस्य कोशगतं धनम्॥ ११

हृतं सर्वमशेषेण तदातप्यत भूमिपः।
निष्कासितश्च नगरात्स राजा परमद्युतिः॥ १२

जगामाश्वमथारुह्य मृगयामिषतो वनम्।
एकाकी विजनेऽरण्ये बभ्रामोद्भ्रान्तमानसः॥ १३

मुनेः कस्यचिदागत्य स्वाश्रमं शान्तमानसः।
प्रशान्तजन्तुसंयुक्तं मुनिशिष्यगणैर्युतम्॥ १४

उवास कञ्चित्कालं स राजा परमशोभने।
आश्रमे मुनिवर्यस्य दीर्घदृष्टेः सुमेधसः॥ १५

एकदा स महीपालो मुनिं पूजावसानके।
काले गत्वा प्रणम्याशु पप्रच्छ विनयान्वितः॥ १६

मुने मम मनोदुःखं बाधते चाधिसम्भवम्।
ज्ञाततत्त्वस्य भूदेव निष्प्रज्ञस्य च सन्ततम्॥ १७

शत्रुभिर्निर्जितस्यापि हृतराज्यस्य सर्वशः।
तथापि तेषु मनसि ममत्वं जायते स्फुटम्॥ १८

किं करोमि क्व गच्छामि कथं शर्म लभे मुने।
त्वदनुग्रहमाशासे वद वेदविदां वर॥ १९

करनेवाले तथा याचकोंको दान देनेवाले, शत्रुओंका दमन करनेवाले, मानी, सभी अस्त्रोंके संचालनमें परम दक्ष तथा बलवान् थे॥ ६-७½ ॥

एक बार कोलाविध्वंसी* नामक क्षत्रिय राजा उनके शत्रु हो गये। महान् बलशाली शत्रुओंने सेनाके साथ चढ़ाई करके सम्मानके धनी उन राजा सुरथकी नगरीको घेर लिया॥ ८-९ ॥

तत्पश्चात् शत्रुओंका विनाश करनेवाले वे राजा सुरथ सेनासे सुसज्जित होकर अपने नगरसे निकल पड़े॥ १० ॥

वे राजा सुरथ युद्धमें शत्रुओंके द्वारा जीत लिये गये। उनके अमात्यों तथा मन्त्रियोंने अवसर पाकर उनके कोषमें स्थित सम्पूर्ण धनका पूरी तरहसे हरण कर लिया। इससे राजाको महान् सन्ताप हुआ। वे परम तेजस्वी राजा सुरथ नगरसे निष्कासित कर दिये गये॥ ११-१२ ॥

तत्पश्चात् वे एक अश्वपर चढ़कर आखेट करनेके बहाने वनमें गये और भ्रमित चित्तवाले वे उस निर्जन वनमें अकेले घूमने लगे॥ १३ ॥

पुनः शान्त स्वभाववाले पशुओंसे युक्त तथा मुनिशिष्योंसे परिपूर्ण [सुमेधा] मुनिके आश्रममें पहुँच जानेपर उनके चित्तको शान्ति मिली॥ १४ ॥

उन राजाने दूरदृष्टिवाले मुनिवर सुमेधाऋषिके परम रमणीक आश्रममें कुछ कालतक निवास किया॥ १५ ॥

एक दिन राजा सुरथ मुनिके पूजनकृत्यकी समाप्तिपर शीघ्र उनके पास पहुँचकर प्रणाम करके विनम्रतापूर्वक उनसे पूछने लगे— ॥ १६ ॥

हे मुने! मेरा मन अत्यधिक मानसिक कष्टके कारण सदा सन्तप्त रहता है। हे भूदेव! इस दुःखने सभी तत्त्वोंके ज्ञाता होनेपर भी मुझे अज्ञानी-सा बना दिया है। मैं शत्रुओंसे पराजित कर दिया गया हूँ तथा राज्यच्युत हो गया हूँ, फिर भी उनके प्रति मेरे मनमें बार-बार ममता उत्पन्न हो रही है॥ १७-१८ ॥

हे मुने! मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ तथा किस प्रकार शान्ति प्राप्त करूँ? हे वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! अब तो मैं एकमात्र आपसे ही अनुग्रहकी आशा करता हूँ। इस कष्टके निवारणका कोई उपाय बताइये॥ १९ ॥

* 'कोलाविध्वंसी' यह किसी विशेष कुलके क्षत्रियोंकी संज्ञा है। दक्षिणमें 'कोला' नगरी प्रसिद्ध है, वह प्राचीन कालमें राजधानी थी। जिन क्षत्रियोंने उसपर आक्रमण करके उसका विध्वंस किया, वे 'कोलाविध्वंसी' कहलाये।

मुनिरुवाच

आकर्णय महीपाल महाश्चर्यकरं परम्।
देवीमाहात्म्यमतुलं सर्वकामप्रदं परम्॥ २०

मुनि बोले—हे राजन्! आप अत्यन्त विस्मयकारी, अनुपम तथा सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले श्रेष्ठ देवी-माहात्म्यका श्रवण कीजिये॥ २०॥

जगन्मयी महामाया विष्णुब्रह्महरोद्भवा।
सा बलादपहृत्यैव जन्तूनां मानसानि हि॥ २१

मोहाय प्रतिसंयच्छेदिति जानीहि भूमिप।
सा सृजत्यखिलं विश्वं सा पालयति सर्वदा॥ २२

संहारे हररूपेण संहरत्येव भूमिप।
कामदात्री महामाया कालरात्रिर्दुरत्यया॥ २३

विश्वसंहारिणी काली कमला कमलालया।
तस्यां सर्वं जगज्जातं तस्यां विश्वं प्रतिष्ठितम्॥ २४

लयमेष्यति तस्यां च तस्मात्सैव परात्परा।
तस्या देव्याः प्रसादश्च यस्योपरि भवेन्नृप।
स एव मोहमत्येति नान्यथा धरणीपते॥ २५

वे विश्वमयी महामाया ब्रह्मा, विष्णु तथा महेशको भी उत्पन्न करनेवाली हैं। वे ही प्राणियोंके मनको बलपूर्वक आकृष्ट करके मोहित कर देती हैं; हे राजन्! इस रहस्यको आप भलीभाँति जान लीजिये। हे पृथ्वीपते! वे ही समग्र विश्वका सृजन करती हैं, सर्वदा पालन करती हैं तथा अन्तमें रुद्ररूपसे संहार करती हैं। वे महामाया सभी मनोरथ पूर्ण करनेवाली, विश्वका संहार करनेवाली तथा दुर्धर्ष कालरात्रिरूपा साक्षात् काली हैं और वे ही कमल-निवासिनी महालक्ष्मी हैं। यह जगत् उन्हींसे उत्पन्न हुआ है, उन्हींमें स्थित भी है और अन्तमें उन्हींमें विलीन भी हो जायगा, अतएव वे भगवती परात्परा हैं। हे राजन्! उन भगवतीकी कृपा जिसके ऊपर हो जाती है, वही इस मोहजालसे मुक्त होता है; हे भूपते! इसमें सन्देह नहीं है॥ २१—२५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां दशमस्कन्धे सुरथनृपतिवृत्तवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥

अथैकादशोऽध्यायः

सावर्णि मनुके पूर्वजन्मकी कथाके प्रसंगमें मधु-कैटभकी उत्पत्ति और भगवान् विष्णुद्वारा उनके वधका वर्णन

राजोवाच

का सा देवी त्वया प्रोक्ता ब्रूहि कालविदां वर।
का मोहयति सत्त्वानि कारणं किं भवेद् द्विज॥ १

कस्मादुत्पद्यते देवी किंरूपा सा किमात्मिका।
सर्वमाख्याहि भूदेव कृपया मम सर्वतः॥ २

राजा बोले—हे कालज्ञान रखनेवालोंमें श्रेष्ठ! आपने जिन देवीका वर्णन किया है, वे कौन हैं, वे प्राणियोंको क्यों मोहित करती हैं और हे द्विज! इसमें क्या कारण है? वे देवी किसलिये आविर्भूत होती हैं, उनका स्वरूप क्या है तथा उनका स्वभाव कैसा है? हे भूदेव! इन सभी बातोंको कृपा करके सम्यक् प्रकारसे मुझे बताइये॥ १-२॥

मुनिरुवाच

राजन् देव्याः स्वरूपं ते वर्णयामि निशामय।
यथा चोत्पतिता देवी येन वा सा जगन्मयी॥ ३

मुनि बोले—हे राजन्! वे जगन्मयी भगवती जिस प्रकार उत्पन्न हुईं, जिनसे उत्पन्न हुईं तथा उन देवीका जैसा स्वरूप है—इन सबका मैं आपसे वर्णन कर रहा हूँ; ध्यानसे सुनिये॥ ३॥

यदा नारायणो देवो विश्वं संहृत्य योगराट्।
आस्तीर्य शेषं भगवान् समुद्रे निद्रितोऽभवत्॥ ४

तदा प्रस्वापवशगो देवदेवो जनार्दनः।
तत्कर्णमलसञ्जातौ दानवौ मधुकैटभौ॥ ५

ब्रह्माणं हन्तुमुद्युक्तौ दानवौ घोररूपिणौ।
तदा कमलजो देवो दृष्ट्वा तौ मधुकैटभौ॥ ६

निद्रितं देवदेवेशं चिन्तामाप दुरत्ययाम्।
निद्रितो भगवानीशो दानवौ च दुरासदौ॥ ७

किं करोमि क्व गच्छामि कथं शर्म लभे ह्यहम्।
एवं चिन्तयतस्तस्य पद्मयोनेर्महात्मनः॥ ८

बुद्धिः प्रादुरभूत्तात तदा कार्यप्रसाधिनी।
यस्या वशं गतो देवो निद्रितो भगवान् हरिः॥ ९

तां देवीं शरणं यामि निद्रां सर्वप्रसूतिकाम्।

ब्रह्मोवाच

देवि देवि जगद्धात्रि भक्ताभीष्टफलप्रदे॥ १०

जगन्माये महामाये समुद्रशयने शिवे।
त्वदाज्ञावशगाः सर्वे स्वस्वकार्यविधायिनः॥ ११

कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिर्मदोत्कटा।
व्यापिनी वशगा मान्या महानन्दैकशेवधिः॥ १२

महनीया महाराध्या माया मधुमती मही।
परापराणां सर्वेषां परमा त्वं प्रकीर्तिता॥ १३

लज्जा पुष्टिः क्षमा कीर्तिः कान्तिः कारुण्यविग्रहा।
कमनीया जगद्वन्द्या जाग्रदादिस्वरूपिणी॥ १४

परमा परमेशानी परानन्दपरायणा।
एकाप्येकस्वरूपा च सद्वितीया द्वयात्मिका॥ १५

[कल्पके अन्तमें] जब योगराट् भगवान् नारायण विश्वका संहार करके समुद्रके भीतर शेषनागकी शय्यापर योगनिद्रामें सोये हुए थे। तब उन देवदेव भगवान् जनार्दनके निद्राके वशीभूत हो जानेपर उनके कानोंके मैलसे मधु तथा कैटभ नामक दो दानव उत्पन्न हुए। भयंकर आकृतिवाले वे दोनों दानव ब्रह्माजीको मारनेको उद्यत हो गये॥ ४-५½ ॥

तब पद्मयोनि ब्रह्मदेव उन मधु-कैटभ दानवोंको तथा देवदेव नारायणको निद्रित देखकर घोर चिन्तामें पड़ गये॥ ६½ ॥

भगवान् विष्णु तो निद्राकी अवस्थामें हैं और ये दोनों दानव दुर्जेय हैं। ऐसी स्थितिमें मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ तथा किस प्रकार शान्ति प्राप्त करूँ? हे तात! इस प्रकार चिन्तन कर रहे कमलयोनि महात्मा ब्रह्माके मनमें कार्य सिद्ध करनेवाली यह बुद्धि उत्पन्न हुई कि निद्रित अवस्थावाले ये भगवान् विष्णुदेव इस समय जिनकी अधीनताको प्राप्त हैं, सबको उत्पन्न करनेवाली उन्हीं निद्रा देवीकी शरणमें मैं भी चला जाऊँ॥ ७—९½ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे देवि! हे जगत्‌का पालन करनेवाली देवि! हे भक्तोंको अभीष्ट फल प्रदान करनेवाली! हे जगन्माये! हे महामाये! हे समुद्रमें शयन करनेवाली! हे शिवे! आपकी आज्ञाके अधीन होकर ही सभी अपना-अपना कार्य सम्पादित करते हैं॥ १०-११ ॥

आप ही कालरात्रि हैं, आप ही महारात्रि हैं तथा आप ही भयंकर मोहरात्रि हैं। आप सर्वव्यापिनी, भक्तोंके वशीभूत, सम्माननीया तथा महान् आनन्दकी एकमात्र सीमा हैं। आप ही महनीया, महाराध्या, माया, मधुमती, मही तथा पर-अपर सभीमें श्रेष्ठतम कही गयी हैं॥ १२-१३ ॥

आप लज्जा, पुष्टि, क्षमा, कीर्ति, कान्ति, करुणाकी प्रतिमूर्ति, कमनीया, विश्ववन्द्या तथा जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्तिके स्वरूपवाली हैं॥ १४ ॥

आप ही परमा, परमेशानी तथा परमानन्दपरायणा हैं। आप ही एका (अद्वितीया) हैं, अतएव आप प्रथमा हैं। आप ही सद्वितीया (मायासहित) होनेके कारण द्वितीया भी हैं। आप ही धर्म-अर्थ-काम—इन

त्रयी त्रिवर्गनिलया तुर्या तुर्यपदात्मिका।
पञ्चमी पञ्चभूतेशी षष्ठी षष्ठेश्वरीति च॥ १६

सप्तमी सप्तवारेशी सप्तसप्तवरप्रदा।
अष्टमी वसुनाथा च नवग्रहमयीश्वरी॥ १७

नवरागकला रम्या नवसंख्या नवेश्वरी।
दशमी दशदिक्पूज्या दशाशाव्यापिनी रमा॥ १८

एकादशात्मिका चैकादशरुद्रनिषेविता।
एकादशीतिथिप्रीता एकादशगणाधिपा॥ १९

द्वादशी द्वादशभुजा द्वादशादित्यजन्मभूः।
त्रयोदशात्मिका देवी त्रयोदशगणप्रिया॥ २०

त्रयोदशाभिधा भिन्ना विश्वेदेवाधिदेवता।
चतुर्दशेन्द्रवरदा चतुर्दशमनुप्रसूः॥ २१

पञ्चाधिकदशी वेद्या पञ्चाधिकदशी तिथिः।
षोडशी षोडशभुजा षोडशेन्दुकलामयी॥ २२

षोडशात्मकचन्द्रांशुव्याप्तदिव्यकलेवरा।
एवंरूपासि देवेशि निर्गुणे तामसोदये॥ २३

त्वया गृहीतो भगवान्देवदेवो रमापतिः।
एतौ दुरासदौ दैत्यौ विक्रान्तौ मधुकैटभौ॥ २४

एतयोश्च वधार्थाय देवेशं प्रतिबोधय।

तीनोंका धाम होनेसे त्रयी अर्थात् तृतीया हैं। आप तुर्या अर्थात् सबसे परे होनेके कारण चतुर्थी भी हैं। आप पंचमहाभूतों (पृथ्वी, तेज, जल, वायु, आकाश)-की ईश्वरी होनेके कारण पंचमी और काम-क्रोध-लोभ-मोह-मद-मत्सर—इन छ:की अधिष्ठात्री होनेके कारण षष्ठी हैं॥ १५-१६॥

आप रवि आदि सातों वारोंकी ईश्वरी होनेके कारण तथा सात-सात वर प्रदान करनेके कारण सप्तमी हैं तथा आठ वसुओंकी स्वामिनी होनेके कारण अष्टमी हैं। आप ही नवग्रहमयी ईश्वरी, रम्य नौ रागोंकी कला तथा नवेश्वरी होनेके कारण नवमी हैं। आप दसों दिशाओंमें व्याप्त रमारूपिणी हैं तथा दसों दिशाओंमें पूजित होती हैं, अतएव दशमी कही जाती हैं॥ १७-१८॥

आप एकादश रुद्रद्वारा आराधित हैं, एकादशी तिथिके प्रति आपकी प्रीति है तथा आप ग्यारह गणोंकी अधीश्वरी हैं; अतः आप एकादशी हैं॥ १९॥

आप बारह भुजाओंवाली हैं तथा बारह आदित्योंको जन्म देनेवाली हैं, अतः द्वादशी हैं। आप मलमास-सहित तेरह मासस्वरूपा हैं, तेरह गणोंकी प्रिया हैं और विश्वेदेवोंकी अधिष्ठात्री देवी हैं, अतः आप त्रयोदशी नामसे प्रसिद्ध हैं। आप चौदह इन्द्रोंको वर प्रदान करनेवाली तथा चौदह मनुओंको उत्पन्न करनेवाली हैं, अतएव चतुर्दशी हैं॥ २०-२१॥

आप पंचदशी अर्थात् कामराज-विद्यारूपा त्रिपुर-सुन्दरीरूपसे जानी जाती हैं तथा आप पंचदशी तिथि-रूपिणी हैं। सोलह भुजाओंवाली, चन्द्रमाकी सोलहवीं कलासे विभूषित तथा चन्द्रमाकी षोडश कलारूपी किरणोंसे व्याप्त दिव्य विग्रहवाली होनेके कारण आप षोडशी हैं। हे तमोगुणसे युक्त होकर प्रकट होनेवाली! हे निर्गुणे! हे देवेशि! आप इस प्रकारके विविध रूपवाली हैं॥ २२-२३॥

देवाधिदेव लक्ष्मीकान्त भगवान् विष्णुको आपने निद्राके वशवर्ती कर रखा है और ये दोनों मधु-कैटभ दानव अत्यन्त पराक्रमी तथा दुर्जेय हैं; अतएव आप इन दोनोंका संहार करनेके लिये देवेश्वर विष्णुको जगाइये॥ २४½॥

मुनिरुवाच

एवं स्तुता भगवती तामसी भगवत्प्रिया॥ २५

देवदेवं तदा त्यक्त्वा मोहयामास दानवौ।
तदैव भगवान्विष्णुः परमात्मा जगत्पतिः॥ २६

प्रबोधमाप देवेशो ददृशे दानवोत्तमौ।
तदा तौ दानवौ घोरौ दृष्ट्वा तं मधुसूदनम्॥ २७

युद्धाय कृतसङ्कल्पौ जग्मतुः सन्निधिं हरेः।
युयुधे च ततस्ताभ्यां भगवान्मधुसूदनः॥ २८

पञ्चवर्षसहस्राणि बाहुप्रहरणो विभुः।
तौ तदातिबलोन्मत्तौ जगन्मायाविमोहितौ॥ २९

व्रियतां वर इत्येवमूचतुः परमेश्वरम्।
एवं तयोर्वचः श्रुत्वा भगवानादिपूरुषः॥ ३०

वव्रे वध्यावुभौ मेऽद्य भवेतामिति निश्चितम्।
तौ तदातिबलौ देवं पुनरेवोचतुर्हरिम्॥ ३१

आवां जहि न यत्रोर्वी पयसा च परिप्लुता।
तथेत्युक्त्वा भगवता गदाशङ्खभृता नृप॥ ३२

कृत्वा चक्रेण वै छिन्ने जघने शिरसी तयोः।
एवं देवी समुत्पन्ना ब्रह्मणा संस्तुता नृप॥ ३३

महाकाली महाराज सर्वयोगेश्वरेश्वरी।
महालक्ष्म्यास्तथोत्पत्तिं निशामय महीपते॥ ३४

मुनि बोले—[ब्रह्माजीके] इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवान्‌को प्रिय तमोगुणमयी भगवतीने देवदेव विष्णुके शरीरको छोड़कर उन दोनों दानवोंको मोहित कर दिया॥ २५½ ॥

उसी समय जगन्नाथ, परमात्मा, परमेश्वर भगवान् विष्णु जग गये और उन्होंने दानवोंमें श्रेष्ठ उन दोनों मधु-कैटभको देखा॥ २६½ ॥

तभी उन दोनों भयंकर दानवोंने मधुसूदन विष्णुको देखकर युद्ध करनेका निश्चय किया और वे भगवान्‌के पास पहुँच गये॥ २७½ ॥

तब सर्वव्यापी भगवान् मधुसूदन उन दोनोंके साथ पाँच हजार वर्षोंतक बाहुयुद्ध करते रहे॥ २८½ ॥

तत्पश्चात् जगन्मायाके द्वारा विमोहित किये गये वे दोनों अत्यधिक बलसे उन्मत्त दानव परमेश्वर विष्णुसे कहने लगे—आप [हम दोनोंसे] वरदान माँग लीजिये॥ २९½ ॥

उन दोनोंकी यह बात सुनकर आदिपुरुष भगवान् विष्णुने यह वर माँगा—तुम दोनों मेरे द्वारा आज ही मार दिये जाओ॥ ३०½ ॥

इसके बाद अत्यन्त बलशाली उन दोनों दानवोंने भगवान् श्रीहरिसे पुनः कहा—जिस स्थानपर पृथ्वी जलमें डूबी हुई न हो, वहींपर आप हमारा वध कीजिये॥ ३१½ ॥

हे राजन्! 'वैसा ही होगा'—यह कहकर गदा तथा शंख धारण करनेवाले भगवान् विष्णुने उनके मस्तकोंको अपनी जाँघपर रखकर चक्रसे काट दिया॥ ३२½ ॥

हे नृप! हे महाराज! इस प्रकार ब्रह्माजीके स्तवन करनेपर सभी योगेश्वरोंकी ईश्वरी महाकाली भगवती प्रकट हुई थीं। हे महीपते! अब आप महालक्ष्मीकी उत्पत्तिके विषयमें सुनिये॥ ३३-३४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां दशमस्कन्धे देवीमाहात्म्ये मधुकैटभवधवर्णनं नाम एकादशोऽध्यायः॥ ११॥



अथ द्वादशोऽध्यायः

समस्त देवताओंके तेजसे भगवती महिषमर्दिनीका प्राकट्य और उनके द्वारा महिषासुरका वध, शुम्भ-निशुम्भका अत्याचार और देवीद्वारा चण्ड-मुण्डसहित शुम्भ-निशुम्भका वध

मुनिरुवाच

महिषीगर्भसम्भूतो महाबलपराक्रमः।
देवान्सर्वान्पराजित्य महिषोऽभूज्जगत्प्रभुः॥ १

सर्वेषां लोकपालानामधिकारान्महासुरः।
बलान्निर्जित्य बुभुजे त्रैलोक्यैश्वर्यमद्भुतम्॥ २

ततः पराजिताः सर्वे देवाः स्वर्गपरिच्युताः।
ब्रह्माणं च पुरस्कृत्य ते जग्मुर्लोकमुत्तमम्॥ ३

यत्रोत्तमौ देवदेवौ संस्थितौ शङ्कराच्युतौ।
वृत्तान्तं कथयामासुर्महिषस्य दुरात्मनः॥ ४

देवानां चैव सर्वेषां स्थानानि तरसासुरः।
विनिर्जित्य स्वयं भुङ्क्ते बलवीर्यमदोद्धतः॥ ५

महिषासुरनामासौ दुष्टदैत्योऽमरेश्वरौ।
वधोपायश्च तस्याशु चिन्त्यतामसुरार्दनौ॥ ६

एवं श्रुत्वा स भगवान्देवानामार्तियुग्वचः।
चकार कोपं सुबहुं तथा शङ्करपद्मजौ॥ ७

एवं कोपयुतस्यास्य हरेरास्यान्महीपते।
तेजः प्रादुरभूद्दिव्यं सहस्रार्कसमद्युति॥ ८

अथानुक्रमतस्तेजः सर्वेषां त्रिदिवौकसाम्।
शरीरादुद्भवं प्राप हर्षयद्विबुधाधिपान्॥ ९

यदभूच्छम्भुजं तेजो मुखमस्योदपद्यत।
केशा बभूवुर्याम्येन वैष्णवेन च बाहवः॥ १०

सौम्येन च स्तनौ जातौ माहेन्द्रेण च मध्यमः।
वारुणेन ततो भूप जङ्घोरू सम्बभूवतुः॥ ११

नितम्बौ तेजसा भूमेः पादौ ब्राह्मेण तेजसा।
पादाङ्गुल्यो भानवेन वासवेन कराङ्गुलीः॥ १२

मुनि बोले—[एक बार] महिषीके गर्भसे उत्पन्न महान् बलशाली तथा पराक्रमी महिषासुर सभी देवताओंको पराजित करके सम्पूर्ण जगत्का स्वामी हो गया॥ १॥

वह महान् असुर समस्त लोकपालोंके अधिकारोंको बलपूर्वक छीनकर तीनों लोकोंके अद्भुत ऐश्वर्यका भोग करने लगा॥ २॥

सभी देवता उससे पराजित होकर स्वर्गसे निष्कासित कर दिये गये। तत्पश्चात् वे ब्रह्माजीको आगे करके उस उत्तम लोकमें पहुँचे, जहाँ देवाधिदेव भगवान् विष्णु तथा शिव विराजमान थे। वे उस दुरात्मा महिषासुरका वृत्तान्त बताने लगे—॥ ३-४॥

हे देवेश्वरो! बल, वीर्य तथा मदसे उन्मत्त वह महिषासुर नामक दुष्ट दैत्य सभी देवताओंके लोकोंको शीघ्र जीतकर उनपर स्वयं शासन कर रहा है। हे असुरोंका नाश करनेवाले! आप दोनों शीघ्र ही उस महिषासुरके वधका कोई उपाय सोचिये॥ ५-६॥

तब देवताओंकी यह दुःखभरी वाणी सुनकर वे भगवान् विष्णु, शिव तथा पद्मयोनि ब्रह्मा अत्यधिक कुपित हो उठे॥ ७॥

हे महीपते! इस प्रकार कुपित उन भगवान् विष्णुके मुखसे हजारों सूर्योंकी कान्तिके समान दिव्य तेज उत्पन्न हुआ॥ ८॥

इसके पश्चात् क्रमसे इन्द्र आदि सभी देवताओंके शरीरसे उन देवाधिपोंको प्रसन्न करता हुआ तेज निकला॥ ९॥ शिवके शरीरसे जो तेज निकला, उससे मुख बना, यमराजके तेजसे केश बने तथा विष्णुके तेजसे भुजाएँ बनीं॥ १०॥

हे भूप! चन्द्रमाके तेजसे दोनों स्तन हुए। इन्द्रके तेजसे कटिप्रदेश, वरुणके तेजसे जंघा और ऊरु उत्पन्न हुए। पृथिवीके तेजसे दोनों नितम्ब, ब्रह्माके तेजसे दोनों चरण, सूर्यके तेजसे पैरोंकी अँगुलियाँ और वसुओंके तेजसे हाथोंकी अँगुलियाँ निर्मित हुईं॥ ११-१२॥

कौबेरेण तथा नासा दन्ताः सञ्जज्ञिरे तदा।
प्राजापत्येनोत्तमेन तेजसा वसुधाधिप॥ १३

पावकेन च सञ्जातं लोचनत्रितयं शुभम्।
सान्ध्येन तेजसा जाते भृकुट्यौ तेजसां निधी॥ १४

कर्णौ वायव्यतो जातौ तेजसो मनुजाधिप।
सर्वेषां तेजसा देवी जाता महिषमर्दिनी॥ १५

शूलं ददौ शिवो विष्णुश्चक्रं शङ्खं च पाशभृत्।
हुताशनो ददौ शक्तिं मारुतश्चापसायकौ॥ १६

वज्रं महेन्द्रः प्रददौ घण्टां चैरावताद् गजात्।
कालदण्डं यमो ब्रह्मा चाक्षमालाकमण्डलू॥ १७

दिवाकरो रश्मिमालां रोमकूपेषु सन्ददौ।
कालः खड्गं तथा चर्म निर्मलं वसुधाधिप॥ १८

समुद्रो निर्मलं हारमजरे चाम्बरे नृप।
चूडामणिं कुण्डले च कटकानि तथाङ्गदे॥ १९

अर्धचन्द्रं निर्मलं च नूपुराणि तथा ददौ।
ग्रैवेयकं भूषणं च तस्यै देव्यै मुदान्वितः॥ २०

विश्वकर्मा चोर्मिकाश्च ददौ तस्यै धरापते।
हिमवान्वाहनं सिंहं रत्नानि विविधानि च॥ २१

पानपात्रं सुरापूर्णं ददौ तस्यै धनाधिपः।
शेषश्च भगवान्देवो नागहारं ददौ विभुः॥ २२

अन्यैरशेषविबुधैर्मानिता सा जगन्मयी।
तां तुष्टुवुर्महादेवीं देवा महिषपीडिताः॥ २३

नानास्तोत्रैर्महेशानीं जगदुद्भवकारिणीम्।
तेषां निशम्य देवेशी स्तोत्रं विबुधपूजिता॥ २४

महिषस्य वधार्थाय महानादं चकार ह।
तेन नादेन महिषश्चकितोऽभूद्धरापते॥ २५

आससाद जगद्धात्रीं सर्वसैन्यसमावृतः।

हे पृथ्वीपते! कुबेरके तेजसे नासिका और प्रजापतिके उत्कृष्ट तेजसे दाँत उत्पन्न हुए। अग्निके तेजसे शुभकारक तीनों नेत्र उत्पन्न हुए, सन्ध्याके तेजसे कान्तिकी निधिस्वरूपा दोनों भृकुटियाँ उत्पन्न हुईं और वायुके तेजसे दोनों कान उत्पन्न हुए। हे नरेश! इस प्रकार सभी देवताओंके तेजसे भगवती महिषमर्दिनी प्रकट हुईं॥ १३—१५॥

शिवजीने उन्हें अपना शूल, विष्णुने चक्र, वरुणने शंख, अग्निने शक्ति और वायुने धनुष-बाण प्रदान किये॥ १६॥

इन्द्रने वज्र तथा ऐरावत हाथीका घण्टा, यमराजने कालदण्ड और ब्रह्माने अक्षमाला तथा कमण्डलु प्रदान किये॥ १७॥

हे पृथ्वीपते! सूर्यने देवीके रोमछिद्रोंमें अपनी रश्मिमालाओंका संचार किया। कालने देवीको तलवार तथा स्वच्छ ढाल दी॥ १८॥

हे राजन्! समुद्रने स्वच्छ हार, कभी जीर्ण न होनेवाले दो वस्त्र, चूड़ामणि, कुण्डल, कटक, बाजूबन्द, विमल अर्धचन्द्र, नूपुर तथा गलेमें धारण किया जानेवाला आभूषण अति प्रसन्न होकर उन भगवतीको प्रदान किये॥ १९-२०॥

हे धरणीपते! विश्वकर्माने उन भगवतीको अँगूठियाँ दीं। हिमालयने उन्हें वाहनके रूपमें सिंह तथा विविध प्रकारके रत्न प्रदान किये। धनपति कुबेरने उन्हें सुरासे पूर्ण एक पानपात्र दिया तथा सर्वव्यापी भगवान् शेषनागने उन्हें नागहार प्रदान किया॥ २१-२२॥

इसी प्रकार अन्य समस्त देवताओंने जगन्मयी भगवतीको सम्मानित किया। इसके बाद महिषासुरद्वारा पीडित देवताओंने जगत्की उत्पत्तिकी कारणस्वरूपिणी उन महेश्वरी महाभगवतीकी अनेक स्तोत्रोंसे स्तुति की॥ २३½॥

उन देवताओंकी स्तुति सुनकर देवपूजित सुरेश्वरी महिषासुरके वधके लिये उच्च स्वरसे गर्जना करने लगीं॥ २४½॥

हे भूपते! महिषासुर उस नादसे चकित हो उठा और अपने सभी सैनिकोंको साथमें लेकर जगद्धात्री भगवतीके पास पहुँचा॥ २५½॥

ततः स युयुधे देव्या महिषाख्यो महासुरः॥ २६

शस्त्रास्त्रैर्बहुधा क्षिप्तैः पूरयन्नम्बरान्तरम्।
चिक्षुरो ग्रामणीः सेनापतिर्दुर्धरदुर्मुखौ॥ २७

बाष्कलस्ताम्रकश्चैव बिडालवदनोऽपरः।
एतैश्चान्यैरसंख्यातैः संग्रामान्तकसन्निभैः॥ २८

योधैः परिवृतो वीरो महिषो दानवोत्तमः।
ततः सा कोपताम्राक्षी देवी लोकविमोहिनी॥ २९

जघान योधान्समरे देवी महिषमाश्रितान्।
ततस्तेषु हतेष्वेव स दैत्यो रोषमूर्च्छितः॥ ३०

आससाद तदा देवीं तूर्णं मायाविशारदः।
रूपान्तराणि सम्भेजे मायया दानवेश्वरः॥ ३१

तानि तान्यस्य रूपाणि नाशयामास सा तदा।
ततोऽन्ते माहिषं रूपं बिभ्राणममरार्दनम्॥ ३२

पाशेन बद्ध्वा सुदृढं छित्त्वा खड्गेन तच्छिरः।
पातयामास महिषं देवी देवगणान्तकम्॥ ३३

हाहाकृतं ततः शेषं सैन्यं भग्नं दिशो दश।
तुष्टुवुर्देवदेवेशीं सर्वे देवाः प्रमोदिताः॥ ३४

एवं लक्ष्मीः समुत्पन्ना महिषासुरमर्दिनी।
राजञ्छृणु सरस्वत्याः प्रादुर्भावो यथाभवत्॥ ३५

एकदा शुम्भनामासीद्दैत्यो मदबलोत्कटः।
निशुम्भश्चापि तद्भ्राता महाबलपराक्रमः॥ ३६

तेन सम्पीडिता देवाः सर्वे भ्रष्टश्रियो नृप।
हिमवन्तमथासाद्य देवीं तुष्टुवुरादरात्॥ ३७

तत्पश्चात् महिष नामक वह प्रबल दानव अपने द्वारा छोड़े गये विविध शस्त्रास्त्रोंसे सम्पूर्ण आकाश-मण्डलको आच्छादित करते हुए भगवतीके साथ युद्ध करने लगा॥ २६१/२॥

प्रधान सेनापति चिक्षुरके अतिरिक्त दुर्धर, दुर्मुख, बाष्कल, ताम्र तथा विडालवदन—इन सभीसे तथा संग्राममें यमराजकी भाँति भयंकर अन्य असंख्य योद्धाओंसे वह दानवश्रेष्ठ पराक्रमी महिषासुर घिरा हुआ था॥ २७-२८१/२॥

तदनन्तर क्रोधसे लाल आँखोंवाली उन जगन्मोहिनी भगवतीने युद्धभूमिमें महिषासुरके अधीनस्थ मुख्य योद्धाओंको मार डाला॥ २९१/२॥

उन योद्धाओंके मारे जानेके अनन्तर परम मायावी वह महिषासुर क्रोधसे मूर्च्छित होकर देवीके समक्ष शीघ्रतासे आ खड़ा हुआ॥ ३०१/२॥

वह दानवेन्द्र महिष अपनी मायाके प्रभावसे अनेक प्रकारके रूप धारण कर लेता था; किंतु वे देवी उसके उन सभी रूपोंको नष्ट कर डालती थीं॥ ३११/२॥

तब अन्तमें महिषका रूप धारण किये हुए उस देवपीडक तथा देवगणोंके लिये यमराजतुल्य महिषासुरको पाशमें दृढ़तापूर्वक बाँधकर भगवतीने अपने खड्गसे उसका सिर काटकर [पृथ्वीपर] गिरा दिया॥ ३२-३३॥

इससे [दानवी सेनामें] हाहाकार मच गया और उसकी शेष सेना दसों दिशाओंमें भाग गयी। समस्त देवगण इससे अति प्रसन्न होकर देवदेवेश्वरी भगवतीकी स्तुति करने लगे॥ ३४॥

महिषासुरका वध करनेवाली देवी महालक्ष्मीका इस प्रकार प्रादुर्भाव हुआ था। हे राजन्! जिस प्रकार सरस्वतीका आविर्भाव हुआ; अब आप वह वृत्तान्त सुनिये॥ ३५॥

एक समयकी बात है—अपने मद तथा बलका अहंकार करनेवाला शुम्भ नामक दैत्य था। महान् बल तथा पराक्रमसे सम्पन्न निशुम्भ नामक उसका एक भाई भी था॥ ३६॥

हे नृप! उस शुम्भसे सन्तापित सभी देवता राज्यविहीन होकर हिमालयपर्वतपर जाकर श्रद्धापूर्वक भगवतीका स्तवन करने लगे॥ ३७॥

देवा ऊचुः

जय देवेशि भक्तानामार्तिनाशनकोविदे।
दानवान्तकरूपे त्वमजरामरणेऽनघे॥ ३८

देवेशि भक्तिसुलभे महाबलपराक्रमे।
विष्णुशङ्करब्रह्मादिस्वरूपेऽनन्तविक्रमे ॥ ३९

सृष्टिस्थितिकरे नाशकारिके कान्तिदायिनि।
महाताण्डवसुप्रीते मोददायिनि माधवि॥ ४०

प्रसीद देवदेवेशि प्रसीद करुणानिधे।
निशुम्भशुम्भसम्भूतभयापाराम्बुवारिधे ॥ ४१

उद्धरास्मान् प्रपन्नार्तिनाशिके शरणागतान्।
एवं संस्तुवतां तेषां त्रिदशानां धरापते॥ ४२

प्रसन्ना गिरिजा प्राह ब्रूत स्तवनकारणम्।
एतस्मिन्नन्तरे यस्याः कोशरूपात्समुत्थिता॥ ४३

कौशिकी सा जगत्पूज्या देवान्प्रीत्येदमब्रवीत्।
प्रसन्नाहं सुरश्रेष्ठाः स्तवेनोत्तमरूपिणी॥ ४४

व्रियतां वर इत्युक्ते देवाः संवव्रिरे वरम्।
शुम्भनामावरो भ्राता निशुम्भस्तस्य विश्रुतः॥ ४५

त्रैलोक्यमोजसाक्रान्तं दैत्येन बलशालिना।
तद्वधश्चिन्त्यतां देवि दुरात्मा दानवेश्वरः॥ ४६

बाधते सततं देवि तिरस्कृत्य निजौजसा।

देव्युवाच

देवशत्रुं पातयिष्ये निशुम्भं शुम्भमेव च॥ ४७

स्वस्थास्तिष्ठत भद्रं वः कण्टकं नाशयामि वः।

देवता बोले—हे भक्तोंका कष्ट दूर करनेमें परम दक्ष देवेश्वरि! हे दानवोंके लिये यमराजस्वरूपिणि! हे जरा-मरणसे रहित! हे अनघे! आपकी जय हो॥ ३८॥

हे देवेश्वरि! हे भक्तिसे प्राप्त होनेवाली! हे महान् बल तथा पराक्रमवाली! हे ब्रह्मा-विष्णु-महेशस्वरूपिणि! हे अनन्त शौर्यशालिनि! हे सृजन तथा पालन करनेवाली! हे संहार करनेवाली! हे कान्तिप्रदे! हे महाताण्डवमें प्रीति रखनेवाली! हे मोददायिके! हे माधवि! हे देवदेवेश्वरि! आप हमपर प्रसन्न होइये। हे करुणानिधे! प्रसन्न होइये। हे शरणमें आये हुए प्राणियोंके दुःखका नाश करनेवाली! शुम्भ तथा निशुम्भसे उत्पन्न महान् भयरूपी अपार समुद्रसे हम शरणागत देवताओंका उद्धार कीजिये॥ ३९—४१ $\frac{1}{2}$ ॥

हे महाराज सुरथ! इस प्रकार उन देवताओंके स्तुति करनेपर हिमाद्रितनया पार्वती प्रसन्न हो गयीं और बोलीं—आपलोग इस स्तुतिका उद्देश्य बताइये॥ ४२ $\frac{1}{2}$ ॥

इसी बीच उनके शरीररूपी कोशसे जगद्वन्द्या कौशिकीदेवी प्रकट हुईं और वे बड़ी प्रसन्नतापूर्वक देवताओंसे कहने लगीं॥ ४३ $\frac{1}{2}$ ॥

हे सुरश्रेष्ठ! उत्तमस्वरूपिणी मैं आपलोगोंकी स्तुतिसे प्रसन्न हूँ, अतः आपलोग वर माँग लीजिये। देवीके ऐसा कहनेपर देवताओंने इस प्रकार वर माँगा—शुम्भ नामक एक प्रसिद्ध दानव है तथा निशुम्भ नामवाला उसका एक लघु भ्राता भी है। उस बलवान् दैत्यने अपने पराक्रमसे तीनों लोकोंको आतंकित कर रखा है। हे देवि! उसके वधका कोई उपाय सोचिये; क्योंकि हे भगवति! वह कुत्सित आत्मावाला दानवेन्द्र शुम्भ अपने बलसे हमें अपमानित करके सदा पीडित करता रहता है॥ ४४—४६ $\frac{1}{2}$ ॥

श्रीदेवी बोलीं—मैं देवताओंके शत्रु शुम्भ तथा निशुम्भको मार गिराऊँगी। आपलोग निश्चिन्त रहिये। आपलोगोंका कल्याण होगा। मैं आपलोगोंके कंटकरूप दैत्यका विनाश अभी करती हूँ॥ ४७ $\frac{1}{2}$ ॥

इत्युक्त्वा देवदेवेशी देवान्सेन्द्रान्दयामयी॥ ४८

जगामादर्शनं सद्यो मिषतां त्रिदिवौकसाम्।
देवाः समागता हृष्टाः सुवर्णाद्रिगुहां शुभाम्॥ ४९

चण्डमुण्डौ पश्यतःस्म भृत्यौ शुम्भनिशुम्भयोः।
दृष्ट्वा तां चारुसर्वाङ्गीं देवीं लोकविमोहिनीम्॥ ५०

कथयामासतू राज्ञे भृत्यौ तौ चण्डमुण्डकौ।
देव सर्वासुरश्रेष्ठ रत्नभोगार्ह मानद॥ ५१

अपूर्वा कामिनी दृष्टा चावाभ्यां रिपुमर्दन।
तस्याः सम्भोगयोग्यत्वमस्त्येव तव साम्प्रतम्॥ ५२

तां समानय चार्वङ्गीं भुङ्क्ष्व सौख्यसमन्वितः।
तादृशी नासुरी नारी न गन्धर्वी न दानवी॥ ५३

न मानवी नापि देवी यादृशी सा मनोहरा।
एवं भृत्यवचः श्रुत्वा शुम्भः परबलार्दनः॥ ५४

दूतं सम्प्रेषयामास सुग्रीवं नाम दानवम्।
स दूतस्त्वरितं गत्वा देव्याः सविधमादरात्॥ ५५

वृत्तान्तं कथयामास देव्यै शुम्भस्य यद्वचः।
देवि शुम्भासुरो नाम त्रैलोक्यविजयी प्रभुः॥ ५६

सर्वेषां रत्नवस्तूनां भोक्ता मान्यो दिवौकसाम्।
तदुक्तं शृणु मे देवि रत्नभोक्ताहमव्ययः॥ ५७

त्वं चापि रत्नभूतासि भज मां चारुलोचने।
सर्वेषु यानि रत्नानि देवासुरनरेषु च॥ ५८

तानि मय्येव सुभगे भज मां कामजै रसैः।

इन्द्रसहित सभी देवताओंसे ऐसा कहकर करुणामयी देवदेवेश्वरी उन देवताओंके देखते-देखते शीघ्र ही अन्तर्धान हो गयीं॥ ४८½ ॥

तत्पश्चात् सभी देवता हर्षित होकर सुमेरुपर्वतकी सुन्दर कन्दरामें चले गये। इधर, शुम्भ-निशुम्भके चण्ड-मुण्ड नामक दो सेवकोंने [उन देवीको] देख लिया॥ ४९½ ॥

तब उन दोनों चण्ड-मुण्ड नामवाले दानव-सेवकोंने सम्पूर्ण लोकको मोहित करनेवाली सर्वांगसुन्दरी भगवतीको देखकर अपने राजा शुम्भके पास आकर उससे कहा॥ ५० ॥

हे देव! हे समस्त असुरोंमें श्रेष्ठ! हे रत्नोंका भोग करनेयोग्य! हे मान प्रदान करनेवाले! हे शत्रुदलन! हम दोनोंने अभी-अभी एक अद्वितीय कामिनी देखी है। उसके साथ भोग करनेयोग्य एकमात्र आप ही हैं। अतएव इसी समय सुन्दर अंगोंवाली उस स्त्रीको ले आइये और सुखपूर्वक उसका भोग कीजिये। जैसी मनोहर वह स्त्री है, वैसी न कोई असुर-नारी है, न गन्धर्व-नारी, न दानव-नारी, न मानव-नारी और न तो कोई देवनारी ही है॥ ५१—५३½ ॥

इस प्रकार अपने सेवककी बात सुनकर शत्रुके बलका मर्दन करनेवाले शुम्भने सुग्रीव नामक दानवको दूतके रूपमें भेजा॥ ५४½ ॥

उस दूतने तत्काल देवीके पास पहुँचकर शुम्भकी जो बात थी, उस वृत्तान्तको आदरपूर्वक यथाविधि देवीसे कह दिया॥ ५५½ ॥

हे देवि! शुम्भ नामक असुर तीनों लोकोंके विजेता राजा हैं। सभी रत्न-सामग्रियोंका भोग करनेवाले उस शुम्भका सभी देवता भी सम्मान करते हैं॥ ५६½ ॥

उन्होंने जो कहा है, उसे मुझसे सुनिये—हे देवि! मैं नित्य सभी रत्नोंका उपभोग करनेवाला हूँ, तुम भी रत्न-स्वरूपा हो, अतएव हे सुलोचने! मेरा वरण कर लो। समस्त देवताओं, असुरों तथा मनुष्योंके पास जो-जो रत्न थे, वे सब इस समय मेरे पास हैं। अतएव हे सुभगे! कामजन्य रसोंके द्वारा तुम मेरे साथ भोग करो॥ ५७-५८½ ॥

देव्युवाच

सत्यं वदसि हे दूत दैत्यराजप्रियङ्करम्॥ ५९

प्रतिज्ञा या मया पूर्वं कृता साप्यनृता कथम्।
भवेत्तां शृणु मे दूत या प्रतिज्ञा मया कृता॥ ६०

यो मे दर्पं विधुनुते यो मे बलमपोहति।
यो मे प्रतिबलो भूयात्स एव मम भोगभाक्॥ ६१

तत एनां प्रतिज्ञां मे सत्यां कृत्वासुरेश्वरः।
गृह्णातु पाणिं तरसा तस्याशक्यं किमत्र हि॥ ६२

तस्माद् गच्छ महादूत स्वामिनं ब्रूहि चादृतः।
प्रतिज्ञां चापि मे सत्यां विधास्यति बलाधिकः॥ ६३

एवं वाक्यं महादेव्याः समाकर्ण्य स दानवः।
कथयामास शुम्भाय देव्या वृत्तान्तमादितः॥ ६४

तदाप्रियं दूतवाक्यं शुम्भः श्रुत्वा महाबलः।
कोपमाहारयामास महान्तं दनुजाधिपः॥ ६५

ततो धूम्राक्षनामानं दैत्यं दैत्यपतिः प्रभुः।
आदिदेश शृणु वचो धूम्राक्ष मम चादृतः॥ ६६

तां दुष्टां केशपाशेषु धृत्वाप्यानीयतां मम।
समीपमविलम्बेन शीघ्रं गच्छस्व मे पुरः॥ ६७

इत्यादेशं समासाद्य दैत्येशो धूम्रलोचनः।
षष्ट्यासुराणां सहितः सहस्राणां महाबलः॥ ६८

तुहिनाचलमासाद्य देव्याः सविधमेव सः।
उच्चैर्देवीं जगादाशु भज दैत्यपतिं शुभे॥ ६९

शुम्भं नाम महावीर्यं सर्वभोगानवाप्नुहि।
नोचेत्केशान्गृहीत्वा त्वां नेष्ये दैत्यपतिं प्रति॥ ७०

इत्युक्ता सा ततो देवी दैत्येन त्रिदशारिणा।
उवाच दैत्य यद् ब्रूषे तत्सत्यं ते महाबल॥ ७१

राजा शुम्भासुरस्त्वं च किं करिष्यसि तद्वद।

देवी बोलीं—हे दूत! तुम दैत्यराज शुम्भके लिये प्रियकर तथा सत्य बात कह रहे हो, किंतु मैंने पूर्वकालमें जो प्रतिज्ञा की है, वह भी मिथ्या कैसे हो सकती है? हे दूत! मैंने जो प्रतिज्ञा की है, उसे तुम सुनो॥ ५९-६०॥

जो मेरा अभिमान चूर कर देगा, जो मेरे बलको निष्प्रभावी बना देगा तथा मेरे समान बलशाली होगा, वही मेरे साथ भोग करनेका अधिकारी हो सकता है॥ ६१॥

अतएव वह असुराधिपति मेरी इस प्रतिज्ञाको सत्य सिद्ध करके तत्काल मेरा पाणिग्रहण कर ले। इस लोकमें ऐसा क्या है, जिसे वह नहीं कर सकता?॥ ६२॥

इसलिये हे महादूत! तुम जाओ और अपने स्वामीसे आदरपूर्वक यह बात कहो। वह अत्यधिक बलवान् शुम्भ मेरी प्रतिज्ञाको अवश्य सत्य सिद्ध कर देगा॥ ६३॥

महादेवीका यह वचन सुनकर उस दानव-दूतने आरम्भसे लेकर अन्ततक देवीका वृत्तान्त शुम्भसे कह दिया॥ ६४॥

तब दूतकी अप्रिय बात सुनकर महाबली दानवराज शुम्भ अत्यधिक कुपित हो उठा॥ ६५॥

तत्पश्चात् उस दानवपति बलशाली शुम्भने धूम्राक्ष नामक दैत्यको आदेश दिया—हे धूम्राक्ष! सावधान होकर मेरी बात सुनो। तुम उस दुष्टाको उसके केशपाश पकड़कर मेरे पास शीघ्र ले आओ। अब तुम मेरे सामनेसे शीघ्र चले जाओ॥ ६६-६७॥

ऐसा आदेश प्राप्तकर वह महाबली दैत्येश धूम्रलोचन साठ हजार असुरोंके साथ चल पड़ा और शीघ्र ही देवीके पास हिमालयपर्वतपर पहुँचकर उसने उच्च स्वरमें देवीसे कहा—हे कल्याणि! तुम शीघ्र ही महान् पराक्रमी शुम्भ नामक दैत्यपतिका वरण कर लो और सभी प्रकारके सुखोपभोग प्राप्त करो अन्यथा तुम्हारे केश पकड़कर मैं तुम्हें दैत्यराजके पास ले चलूँगा॥ ६८—७०॥

देवशत्रु दैत्यके ऐसा कहनेपर उन भगवतीने कहा—हे महाबली दैत्य! यह जो तुम बोल रहे हो, वह तो ठीक है, किंतु यह बताओ कि तुम्हारे राजा शुम्भासुर तथा तुम मेरा क्या कर लोगे?॥ ७१½॥

इत्युक्तो दैत्यपोऽधावत्तूर्णं शस्त्रसमन्वितः॥ ७२
भस्मसात्तं चकाराशु हुङ्कारेण महेश्वरी।
ततः सैन्यं वाहनेन देव्या भग्नं महीपते॥ ७३
दिशो दशाभजच्छीघ्रं हाहाभूतमचेतनम्।
तद्वृत्तान्तं समाश्रुत्य स शुम्भो दैत्यराड् विभुः॥ ७४
चुकोप च महाकोपाद् भ्रुकुटीकुटिलाननः।
ततः कोपपरीतात्मा दैत्यराजः प्रतापवान्॥ ७५
चण्डं मुण्डं रक्तबीजं क्रमतः प्रैषयद्विभुः।
ते च गत्वा त्रयो दैत्या विक्रान्ता बहुविक्रमाः॥ ७६
देवीं ग्रहीतुमारब्धयत्नास्ते ह्यभवन्बलात्।
तानापतत एवासौ जगद्धात्री मदोत्कटा॥ ७७
शूलं गृहीत्वा वेगेन पातयामास भूतले।
ससैन्यान्निहताञ्छ्रुत्वा दैत्यांस्त्रीन्दानवेश्वरौ॥ ७८
शुम्भश्चैव निशुम्भश्च समाजग्मतुरोजसा।
निशुम्भश्चैव शुम्भश्च कृत्वा युद्धं महोत्कटम्॥ ७९
देव्याश्च वशगौ जातौ निहतौ च तयासुरौ।
इति दैत्यवरं शुम्भं घातयित्वा जगन्मयी॥ ८०
विबुधैः संस्तुता तद्वत्साक्षाद्वागीश्वरी परा।
एवं ते वर्णितो राजन् प्रादुर्भावोऽतिरम्यकः॥ ८१
काल्याश्चैव महालक्ष्म्याः सरस्वत्याः क्रमेण च।
परा परेश्वरी देवी जगत्सर्गं करोति च॥ ८२
पालनं चैव संहारं सैव देवी दधाति हि।
तां समाश्रय देवेशीं जगन्मोहनिवारिणीम्॥ ८३
महामायां पूज्यतमां सा कार्यं ते विधास्यति।

श्रीनारायण उवाच

इति राजा वचः श्रुत्वा मुनेः परमशोभनम्॥ ८४
देवीं जगाम शरणं सर्वकामफलप्रदाम्।
निराहारो यतात्मा च तन्मनाश्च समाहितः॥ ८५

देवीके ऐसा कहनेपर वह दैत्य-सेनापति धूम्राक्ष शस्त्र लेकर बड़ी तेजीसे देवीकी ओर दौड़ा, किंतु महेश्वरीने अपने हुंकारमात्रसे उसे तत्क्षण भस्म कर दिया॥ ७२½ ॥

हे महीपते! देवीका वाहन सिंह भी दैत्यसेनाको नष्ट करने लगा। सम्पूर्ण सेना हाहाकार मचाती हुई बेसुध होकर दसों दिशाओंमें तेजीसे तितर-बितर हो गयी॥ ७३½ ॥

दैत्यराज पराक्रमी शुम्भ यह वृत्तान्त सुनकर बड़ा कुपित हुआ और अत्यन्त क्रोधपूर्वक उसकी भौंहें टेढ़ी हो गयीं। उस प्रतापी दैत्यराजने कोपाविष्ट होकर क्रमशः चण्ड, मुण्ड तथा रक्तबीज [नामक दैत्यों]-को भेजा। वे तीनों बलशाली और क्रूर दैत्य वहाँ जाकर बलपूर्वक देवीको पकड़नेका यत्न करने लगे। तब मदोन्मत्त होकर जगदम्बा शूल लेकर वेगपूर्वक उनकी ओर दौड़ीं और उन्होंने उन्हें धराशायी कर दिया॥ ७४—७७½ ॥

उन तीनों दैत्योंको सेनासहित मारा गया सुनकर दानवराज शुम्भ और निशुम्भ तेजीसे वहाँ आ पहुँचे। देवीके साथ भयंकर युद्ध करनेके अनन्तर वे दोनों असुर उनके अधीन हो गये और अन्तमें उनके द्वारा मार डाले गये॥ ७८-७९½ ॥

तत्पश्चात् दैत्यश्रेष्ठ शुम्भका वध करके वे साक्षात् वागीश्वरी पराम्बा जगन्मयी सरस्वती भगवती महालक्ष्मीकी भाँति देवताओंके द्वारा स्तुत हुईं॥ ८०½ ॥

हे राजन्! इस प्रकार मैंने आपसे क्रमशः काली, महालक्ष्मी तथा सरस्वतीके अत्यन्त सुन्दर प्रादुर्भावका वर्णन कर दिया॥ ८१½ ॥

वे ही परमा परमेश्वरी भगवती समस्त जगत्की रचना करती हैं और वे ही देवी पालन तथा संहारकार्य भी सम्पादित करती हैं। [हे राजन्!] आप सांसारिक मोहको दूर करनेवाली उन्हीं पूज्यतमा महामाया देवेश्वरीका आश्रय लीजिये; वे ही आपका कार्य सिद्ध करेंगी॥ ८२-८३½ ॥

श्रीनारायण बोले—मुनि (सुमेधा)-की यह परम सुन्दर बात सुनकर राजा सुरथ सभी वांछित फल प्रदान करनेवाली भगवतीकी शरणमें गये। निराहार

देवीमूर्तिं मृण्मयीं च पूजयामास भक्तितः।
पूजनान्ते बलिं तस्यै निजगात्रासृजं ददत्॥ ८६

तदा प्रसन्ना देवेशी जगद्योनिः कृपावती।
प्रादुर्बभूव पुरतो वरं ब्रूहीति भाषिणी॥ ८७

स राजा निजमोहस्य नाशनं ज्ञानमुत्तमम्।
राज्यं निष्कण्टकं चैव याचति स्म महेश्वरीम्॥ ८८

देव्युवाच

राजन्निष्कण्टकं राज्यं ज्ञानं वै मोहनाशनम्।
भविष्यति मया दत्तमस्मिन्नेव भवे तव॥ ८९

अन्यच्च शृणु भूपाल जन्मान्तरविचेष्टितम्।
भानोर्जन्म समासाद्य सावर्णिर्भविता भवान्॥ ९०

तत्र मन्वन्तरस्यापि पतित्वं बहुविक्रमम्।
सन्ततिं बहुलां चापि प्राप्स्यते मद्वराद्भवान्॥ ९१

एवं दत्त्वा वरं देवी जगामादर्शनं तदा।
सोऽपि देव्याः प्रसादेन जातो मन्वन्तराधिपः॥ ९२

एवं ते वर्णितं साधो सावर्णेर्जन्म कर्म च।
एतत्पठंस्तथा शृण्वन्देव्यनुग्रहमाप्नुयात्॥ ९३

रहते हुए एकाग्रचित्त होकर संयत आत्मावाले वे राजा सुरथ तन्मनस्क होकर देवीकी पार्थिव मूर्तिकी भक्तिपूर्वक पूजा करने लगे। पूजाकी समाप्तिपर उन्होंने देवीको अपने शरीरके रक्तसे बलि प्रदान किया॥ ८४—८६॥

तब दयामयी जगन्माता देवेश्वरी प्रसन्न होकर उनके समक्ष प्रकट हो गयीं और कहने लगीं—वर माँगो। इसपर उन राजा सुरथने महेश्वरीसे अपने मोहका नाश करनेवाले उत्तम ज्ञान तथा निष्कंटक राज्यकी याचना की॥ ८७-८८॥

देवी बोलीं—हे राजन्! मैं आपको वर प्रदान करती हूँ कि इसी जन्ममें आपको निष्कंटक राज्य तथा मोहका नाश करनेवाला ज्ञान प्राप्त होगा। हे भूपाल! अब आप अपने दूसरे जन्मके विषयमें सुनिये। आप उस जन्ममें सूर्यके अंशसे जन्म लेकर सावर्णि मनु होंगे। मेरे वरदानसे आप उस जन्ममें भी मन्वन्तरका स्वामित्व, अत्यधिक पराक्रम तथा बहुत-सी सन्तानें प्राप्त करेंगे॥ ८९—९१॥

ऐसा वर देकर भगवती उसी समय अन्तर्धान हो गयीं। वे राजा सुरथ भी देवीके अनुग्रहसे मन्वन्तरके अधिपति हो गये॥ ९२॥

हे साधो! इस प्रकार मैंने सावर्णि मनुके जन्म तथा कर्मका वर्णन कर दिया। इसको पढ़ने तथा सुननेवाला व्यक्ति भगवतीकी कृपा प्राप्त कर लेता है॥ ९३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां दशमस्कन्धे देवीचरित्रसहितं सावर्णिमनुवृत्तान्तवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

~~~○~~~

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

मनुपुत्रोंकी तपस्या, भगवतीका उन्हें मन्वन्तराधिपति होनेका वरदान देना, दैत्यराज अरुणकी तपस्या और ब्रह्माजीका वरदान, देवताओंद्वारा भगवतीकी स्तुति और भगवतीका भ्रामरीके रूपमें अवतार लेकर अरुणका वध करना

श्रीनारायण उवाच

अथातः श्रूयतां शेषमनूनां चित्रमुद्भवम्।
यस्य स्मरणमात्रेण देवीभक्तिः प्रजायते॥ १

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] इसके बाद अब आप शेष मनुओंकी अद्भुत उत्पत्तिके विषयमें सुनिये, जिसके स्मरणमात्रसे देवीभक्ति उत्पन्न हो जाती है॥ १॥
~~~

आसन्वैवस्वतमनोः पुत्राः षड् विमलोदयाः।
करूषश्च पृषध्रश्च नाभागो दिष्ट एव च॥ २

शर्यातिश्च त्रिशङ्कुश्च सर्व एव महाबलाः।
ततः षडेव ते गत्वा कालिन्द्यास्तीरमुत्तमम्॥ ३

निराहारा जितश्वासाः पूजां चक्रुस्ततः स्थिताः।
देव्या महीमयीं मूर्तिं विनिर्माय पृथक्पृथक्॥ ४

विविधैरुपचारैस्तां पूजयामासुरादृताः।
ततश्च सर्व एवैते तपःसारा महाबलाः॥ ५

जीर्णपर्णाशिना वायुभक्षणास्तोयजीवनाः।
धूम्रपाना रश्मिपानाः क्रमशश्च बहुश्रमाः॥ ६

ततस्तेषामादरेणाराधनं कुर्वतां सदा।
विमला मतिरुत्पन्ना सर्वमोहविनाशिनी॥ ७

बभूवुर्मनुपुत्रास्ते देवीपादैकचिन्तनाः।
मत्या विमलया तेषामात्मन्येवाखिलं जगत्॥ ८

दर्शनं सञ्जगामाशु तदद्भुतमिवाभवत्।
एवं द्वादशवर्षान्ते तपसा जगदीश्वरी॥ ९

प्रादुर्बभूव देवेशी सहस्रार्कसमद्युतिः।
तां दृष्ट्वा विमलात्मानो राजपुत्राः षडेव ते॥ १०

तुष्टुवुर्भक्तिनम्रान्तःकरणा भावसंयुताः।

राजपुत्रा ऊचुः

महेश्वरि जयेशानि परमे करुणालये॥ ११

वाग्भवाराधनप्रीते वाग्भवप्रतिपादिते।
क्लींकारविग्रहे देवि क्लींकारप्रीतिदायिनि॥ १२

कामराजमनोमोददायिनीश्वरतोषिणि।
महामाये मोदपरे महासाम्राज्यदायिनि॥ १३
विष्ण्वर्कहरशक्रादिस्वरूपे भोगवर्धिनि।

वैवस्वत मनुके करूष, पृषध्र, नाभाग, दिष्ट, शर्याति तथा त्रिशंकु नामक उज्ज्वल यशवाले छः पुत्र थे। वे सब महान् पराक्रमी थे॥ २½॥

वे छहों पुत्र यमुनाके पावन तटपर जाकर निराहार रहते हुए अपने श्वासपर नियन्त्रण रखकर वहीं स्थित होकर भगवतीकी उपासना करने लगे। भगवतीकी अलग-अलग पार्थिव मूर्ति बनाकर वे भाँति-भाँतिके उपचारोंसे आदरपूर्वक उनकी पूजा करते थे। इसके बाद उन सभी महाबली तथा महातपस्वी मनुपुत्रोंने क्रमशः सूखे पत्तों, वायु, जल, धूम्र तथा सूर्यकी किरणोंके आहारपर जीवन धारण करते हुए घोर तपस्या की॥ ३—६॥

तत्पश्चात् आदरपूर्वक देवीकी अनवरत आराधना कर रहे उन पुत्रोंके मनमें समस्त मोहोंको नष्ट कर देनेवाली निर्मल बुद्धि जाग्रत् हुई॥ ७॥

वे मनुपुत्र एकमात्र भगवतीके चरणोंमें ही मन लगाये हुए थे। विशुद्ध बुद्धिके प्रभावसे उन्हें शीघ्र अपने ही भीतर सम्पूर्ण जगत् दिखायी पड़ने लगा। वह अद्भुत स्थिति थी। इस प्रकार बारह वर्षोंके पश्चात् उनके तपसे हजारों सूर्योंके समान कान्तिवाली जगत्‌की स्वामिनी देवेश्वरी प्रकट हुईं॥ ८-९½॥

तब विमल आत्मावाले वे छहों राजकुमार देवीको देखते ही विनम्र तथा भाव-विह्वल होकर भक्तिपूर्ण अन्तःकरणसे उनकी स्तुति करने लगे॥ १०½॥

राजकुमार बोले—हे महेश्वरि! हे ईशानि! हे परमे! हे करुणालये! हे वाग्भव बीजमन्त्रकी आराधनासे प्रसन्न होनेवाली! हे वाग्भव मन्त्रसे प्रतिपादित होनेवाली! हे क्लींकाररूपी विग्रहवाली! हे 'क्लीं' बीजमन्त्रसे उपासित होनेपर प्रीति प्रदान करनेवाली! हे कामेश्वरके मनको प्रसन्नता प्रदान करनेवाली! हे परमेश्वरको सन्तुष्ट करनेवाली! हे महामाये! हे मोदपरे! हे महान् साम्राज्य देनेवाली! हे विष्णु, सूर्य, महेश, इन्द्र आदिके स्वरूपवाली! हे भोगकी वृद्धि करनेवाली! आपकी जय हो॥ ११—१३½॥

एवं स्तुता भगवती राजपुत्रैर्महात्मभिः॥ १४
प्रसादसुमुखी देवी प्रोवाच वचनं शुभम्।

देव्युवाच

राजपुत्रा महात्मानो भवन्तस्तपसा युताः॥ १५
निष्कल्मषाः शुद्धधियो जाता वै मदुपासनात्।
वरं मनोगतं सर्वं याचध्वमविलम्बितम्॥ १६
प्रसन्नाहं प्रदास्यामि युष्माकं मनसि स्थितम्।

राजपुत्रा ऊचुः

देवि निष्कण्टकं राज्यं सन्ततिश्चिरजीविनी॥ १७
भोगा अव्याहताः कामं यशस्तेजो मतिश्च ह।
अकुण्ठितत्वं सर्वेषामेष एव वरो हितः॥ १८

देव्युवाच

एवमस्तु च सर्वेषां भवतां यन्मनोगतम्।
अथान्यदपि मे वाक्यं श्रूयतामादरादिदम्॥ १९
भवन्तः सर्व एवैते मन्वन्तरपतीश्वराः।
सन्तत्या दीर्घया भोगैरनेकैरपि सङ्गमः॥ २०
अखण्डितबलैश्वर्यं यशस्तेजोविभूतयः।
भवितारो मत्प्रसादाद्राजपुत्राः क्रमेण तु॥ २१

श्रीनारायण उवाच

एवं तेभ्यो वरान्दत्त्वा भ्रामरी जगदम्बिका।
अन्तर्धानं जगामाशु भक्त्या तैः संस्तुता सती॥ २२
ते राजपुत्राः सर्वेऽपि तस्मिञ्जन्मन्यनुत्तमम्।
राज्यं महीगतान्भोगान्बुभुजुश्च महौजसः॥ २३
सन्ततिं चाखण्डितां ते समुत्पाद्य महीतले।
वंशं संस्थाप्य सर्वेऽपि मनूनां पतयोऽभवन्॥ २४
भवान्तरे क्रमेणैव सावर्णिपदभागिनः।
प्रथमो दक्षसावर्णिर्नवमो मनुरीरितः॥ २५
अव्याहतबलो देव्याः प्रसादादभवद्विभुः।

इस प्रकार उन महात्मा राजपुत्रोंके स्तुति करनेपर प्रसन्नतासे सुन्दर मुखवाली भगवती उनसे कल्याणमय वचन कहने लगीं॥ १४$\frac{1}{2}$॥

देवी बोलीं—हे महात्मा राजपुत्रो! तपस्यासे युक्त आपलोग मेरी उपासनासे निष्कल्मष तथा विमल बुद्धिवाले हो गये हैं। अब आपलोग अपना मनोवांछित वर शीघ्र ही माँग लीजिये। मैं अतीव प्रसन्न हूँ, इस समय आपलोगोंके मनमें जो भी होगा, वह सब मैं अवश्य दूँगी॥ १५-१६$\frac{1}{2}$॥

राजपुत्र बोले—हे भगवति! निष्कंटक राज्य, दीर्घजीवी सन्तान, अखण्डित भोग, यथेच्छ यश, तेज, बुद्धि तथा सभीसे अपराजेयता हमें प्राप्त हो जाय, यही हमारे लिये हितकर वर है॥ १७-१८॥

देवी बोलीं—ऐसा ही हो, आप सभीकी जो मनोगत कामनाएँ हैं, वे पूर्ण होंगी। अब आपलोग मेरी एक और बात सावधान होकर सुन लीजिये॥ १९॥

हे राजपुत्रो! मेरी कृपासे आप सभी लोग क्रमसे मन्वन्तराधिपति बनेंगे, दीर्घजीवी सन्तानें तथा अनेक प्रकारके भोग आपको प्राप्त होंगे। अखण्डित बल, ऐश्वर्य, यश, तेज तथा विभूतियाँ—ये सब आपको प्राप्त होंगे॥ २०-२१॥

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] इस प्रकार उन राजकुमारोंके भक्तिपूर्वक स्तुति करनेपर साध्वी भ्रामरी जगदम्बिका उन्हें वर प्रदानकर तत्काल अन्तर्धान हो गयीं॥ २२॥

उन महान् तेजस्वी सभी राजपुत्रोंने उस जन्ममें महान् राज्य तथा समस्त सांसारिक सुखोंका भोग किया॥ २३॥

सावर्णि पद नामवाले वे सभी राजपुत्र अखण्डित सन्तानें उत्पन्न करके भूलोकमें अपनी-अपनी वंश-परम्परा स्थापितकर दूसरे जन्ममें क्रमसे मन्वन्तरोंके अधिपति हुए॥ २४$\frac{1}{2}$॥

दक्षसावर्णि नामक पहले राजपुत्र नौवें मनु कहलाये। भगवतीकी कृपासे वे अव्याहत बलवाले तथा परम ऐश्वर्यशाली हुए॥ २५$\frac{1}{2}$॥

द्वितीयो मेरुसावर्णिर्दशमो मनुरेव च॥ २६

बभूव मन्वन्तरपो महादेवीप्रसादतः।
तृतीयो मनुराख्यातः सूर्यसावर्णिनामकः॥ २७

एकादशो महोत्साहस्तपसा स्वेन भावितः।
चतुर्थश्चन्द्रसावर्णिर्द्वादशो मनुराड् विभुः॥ २८

देवीसमाराधनेन जातो मन्वन्तरेश्वरः।
पञ्चमो रुद्रसावर्णिस्त्रयोदशमनुः स्मृतः॥ २९

महाबलो महासत्त्वो बभूव जगदीश्वरः।

षष्ठश्च विष्णुसावर्णिश्चतुर्दशमनुः कृती॥ ३०

बभूव देवीवरतो जगतां प्रथितः प्रभुः।
चतुर्दशैते मनवो महातेजोबलैर्युताः॥ ३१

देव्याराधनतः पूज्या वन्द्या लोकेषु नित्यशः।
महाप्रतापिनः सर्वे भ्रामर्यास्तु प्रसादतः॥ ३२

नारद उवाच

केयं सा भ्रामरी देवी कथं जाता किमात्मिका।
तदाख्यानं वद प्राज्ञ विचित्रं शोकनाशकम्॥ ३३

न तृप्तिमधिगच्छामि पिबन्देवीकथामृतम्।
अमृतं पिबतां मृत्युर्नास्य श्रवणतो यतः॥ ३४

श्रीनारायण उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि जगन्मातुर्विचेष्टितम्।
अचिन्त्याव्यक्तरूपाया विचित्रं मोक्षदायकम्॥ ३५

यद्यच्चरित्रं श्रीदेव्यास्तत्सर्वं लोकहेतवे।
निर्व्याजया करुणया पुत्रे मातुर्यथा तथा॥ ३६

मेरुसावर्णि नामक दूसरे राजपुत्र दसवें मनु हुए। महादेवीकी कृपासे वे मन्वन्तरपतिके रूपमें प्रतिष्ठित हुए॥ २६½ ॥

सूर्यसावर्णि नामक तीसरे राजपुत्र ग्यारहवें मनुके रूपमें प्रसिद्ध हुए। अपनी तपस्यासे भावित ये मनु परम उत्साहसे सम्पन्न थे॥ २७½ ॥

चन्द्रसावर्णि नामक चौथे राजपुत्र परम ऐश्वर्यशाली बारहवें मनुके रूपमें अधिष्ठित हुए, जो देवीकी उपासनाके प्रभावसे मन्वन्तरके अधिपति हो गये॥ २८½ ॥

रुद्रसावर्णि नामवाले पाँचवें राजपुत्र तेरहवें मनु कहे गये हैं। महान् बल तथा महान् पराक्रमसे सम्पन्न वे मनु पृथ्वीके स्वामी हुए॥ २९½ ॥

विष्णुसावर्णि नामक छठे राजपुत्र चौदहवें मनु कहे गये हैं। भगवतीके वरदानसे वे लोकोंमें विख्यात राजाके रूपमें प्रतिष्ठित हुए॥ ३०½ ॥

ये सभी चौदहों मनु भगवती भ्रामरीकी आराधना तथा उनके प्रसादसे महान् तेज तथा बलसे सम्पन्न, लोकोंमें नित्य पूजनीय, वन्दनीय और महाप्रतापी हो गये थे॥ ३१-३२॥

नारदजी बोले—ये भ्रामरी देवी कौन हैं, वे कैसे प्रकट हुईं तथा किस स्वरूपवाली हैं? हे प्राज्ञ! आप शोकका नाश करनेवाले उस अद्भुत आख्यानका वर्णन कीजिये॥ ३३॥

मैं भगवतीके कथारूपी अमृतका पान करके भी तृप्त नहीं हो रहा हूँ। अमृत पीनेवालेकी मृत्यु तो सम्भव है, किंतु इस कथाका श्रवण करनेवालेकी मृत्यु सम्भव नहीं है॥ ३४॥

श्रीनारायण बोले—हे नारद! अब मैं अचिन्त्य तथा अव्यक्तस्वरूपिणी जगज्जननीकी मोक्षदायिनी अद्भुत लीलाका वर्णन करूँगा; आप सुनिये॥ ३५॥

भगवती श्रीदेवीके जो-जो चरित्र हैं, वे सब अहैतुकी दयासे लोकहितमें उसी प्रकार सम्पादित किये जाते हैं; जैसे माताके कार्य पुत्रके हितार्थ हुआ करते हैं॥ ३६॥

पूर्वं दैत्यो महानासीदरुणाख्यो महाबलः।
पाताले दैत्यसंस्थाने देवद्वेषी महाखलः॥ ३७

स देवाञ्जेतुकामश्च चकार परमं तपः।
पद्मसम्भवमुद्दिश्य स नस्त्राता भविष्यति॥ ३८

गत्वा हिमवतः पार्श्वे गङ्गाजलसुशीतले।
पक्वपर्णाशनो योगी सन्निरुध्य मरुद्गणम्॥ ३९

गायत्रीजपसंसक्तः सकामस्तमसा युतः।
दशवर्षसहस्राणि ततो वारिकणाशनः॥ ४०

दशवर्षसहस्राणि ततः पवनभोजनः।
दशवर्षसहस्राणि निराहारोभवत्ततः॥ ४१

एवं तपस्यतस्तस्य शरीरादुत्थितोऽनलः।
ददाह जगतीं सर्वां तदद्भुतमिवाभवत्॥ ४२

किमिदं किमिदं चेति देवाः सर्वे चकम्पिरे।
सन्त्रस्ताः सकला लोका ब्रह्माणं शरणं ययुः॥ ४३

विज्ञापितं देववरैः श्रुत्वा तत्र चतुर्मुखः।
गायत्रीसहितो हंससमारूढो ययौ मुदा॥ ४४

प्राणमात्रावशिष्टं तं धमनीशतसङ्कुलम्।
शुष्कोदरं क्षामगात्रं ध्यानमीलितलोचनम्॥ ४५

ददर्श तेजसा दीप्तं द्वितीयमिव पावकम्।
वरं वरय भद्रं ते वत्स यन्मनसि स्थितम्॥ ४६

श्रुतिमात्रेण सन्तोषकारकं वाक्यमूचिवान्।
श्रुत्वा ब्रह्ममुखाद्वाणीं सुधाधारामिवारुणः॥ ४७

उन्मीलिताक्षः पुरतो ददर्श जलजोद्भवम्।
गायत्रीसहितं देवं चतुर्वेदसमन्वितम्॥ ४८
अक्षस्त्रक्कुण्डिकाहस्तं जपन्तं ब्रह्म शाश्वतम्।

पूर्वकालमें अरुण नामक एक महान् बलशाली दैत्य था। देवताओंसे द्वेष रखनेवाला वह घोर नीच दानव दैत्योंके निवासस्थान पातालमें रहता था॥ ३७॥

देवताओंको जीतनेकी इच्छावाला वह दैत्य हिमालयपर पहुँचकर उसके समीप अत्यन्त शीतल गंगाजलमें पद्मयोनि ब्रह्माको प्रसन्न करनेके उद्देश्यसे यह सोचकर कठोर तप करने लगा कि एकमात्र वे ही हमारे रक्षक हो सकते हैं। सूखे पत्तोंके आहारपर रहते हुए वह अपना श्वास रोककर तमोगुणसे युक्त हो सकामभावसे योगपरायण होते हुए गायत्रीमन्त्रके जपमें लीन हो गया। इसके बाद दस हजार वर्षोंतक जलकण पीकर, पुनः दस हजार वर्षोंतक वायुके आहारपर और पुनः दस हजार वर्षोंतक वह पूर्णरूपसे निराहार रहा॥ ३८—४१॥

इस प्रकार तप करते हुए उस दैत्यके शरीरसे अग्नि उठी, जो सम्पूर्ण जगत्को जलाने लगी; वह एक अद्भुत घटना थी॥ ४२॥

यह क्या, यह क्या? ऐसा कहते हुए सभी देवता काँपने लगे तथा सभी प्राणी भयभीत हो गये। वे ब्रह्माजीकी शरणमें गये। वहाँ सभी श्रेष्ठ देवताओंने वह बात बतायी। उसे सुनकर चतुर्मुख ब्रह्माजी गायत्रीसहित हंसपर सवार होकर प्रसन्नतापूर्वक वहाँ गये॥ ४३-४४॥

उस समय उस दैत्यके सैकड़ों नाड़ियोंसे युक्त शरीरमें प्राणमात्र अवशिष्ट था, उसका उदर सूख गया था, शरीर अत्यन्त क्षीण हो गया था, आँखें मूँदकर वह ध्यानमें अवस्थित था तथा अपने तेजसे दूसरे अग्निकी भाँति प्रतीत हो रहा था—ऐसे उस दैत्यको ब्रह्माजीने देखा और तब श्रवणमात्रसे ही सन्तुष्टि प्रदान करनेवाला यह वाक्य उससे कहा—हे वत्स! तुम्हारा कल्याण हो, तुम्हारे मनमें जो भी हो, वह माँग लो॥ ४५-४६½॥

ब्रह्माजीके मुखसे अमृतकी धाराके सदृश वाणी सुनकर अरुणने जब आँखें खोलीं, तब उसने गायत्रीको साथ लिये हुए, चारों वेदोंको धारण किये हुए, हाथोंमें अक्षमाला तथा कुण्डिका ग्रहण किये हुए तथा शाश्वत ब्रह्मका जप करते हुए पद्मयोनि ब्रह्माजीको सामने देखा॥ ४७-४८½॥

दृष्ट्वोत्थाय ननामाथ स्तुत्वा च विविधैः स्तवैः ॥ ४९
वरं वव्रे स्वबुद्धिस्थं मा भवेन्मृत्युरित्यपि।
श्रुत्वारुणवचो ब्रह्मा बोधयामास सादरम् ॥ ५०
ब्रह्मविष्णुमहेशाद्या मृत्युना कवलीकृताः।
तदान्येषां तु का वार्ता मरणे दानवोत्तम ॥ ५१
वरं योग्यं ततो ब्रूहि दातुं यः शक्यते मया।
नात्राग्रहं प्रकुर्वन्ति बुद्धिमन्तो जनाः क्वचित् ॥ ५२
इति ब्रह्मवचः श्रुत्वा पुनः प्रोवाच सादरम्।
न युद्धे न च शस्त्रास्त्रान्न पुंभ्यो नापि योषितः ॥ ५३
द्विपाद्भ्यो वा चतुष्पाद्भ्यो नोभयाकारतस्तथा।
भवेन्मे मृत्युरित्येवं देव देहि वरं प्रभो ॥ ५४
बलं च विपुलं देहि येन देवजयो भवेत्।
इति तस्य वचः श्रुत्वा तथास्त्विति वचोऽब्रवीत् ॥ ५५
दत्त्वा वरं जगामाशु पद्मजः स्वं निकेतनम्।
ततोऽरुणाख्यो दैत्यस्तु पातालात्स्वाश्रयस्थितान् ॥ ५६
दैत्यानाकारयामास ब्रह्मणो वरदर्पितः।
आगत्य तेऽसुराः सर्वे दैत्येशं तं प्रचक्रिरे ॥ ५७
दूतं च प्रेषयामासुर्युद्धार्थममरावतीम्।
दूतवाक्यं तदा श्रुत्वा देवराड् भयकम्पितः ॥ ५८
देवैः सार्धं जगामाशु ब्रह्मणः सदनं प्रति।
ब्रह्मविष्णू पुरस्कृत्य जग्मुस्ते शङ्करालयम् ॥ ५९
विचारं चक्रिरे तत्र वधार्थं ते सुरद्रुहाम्।
एतस्मिन्समये तत्र दैत्यसेनासमावृतः ॥ ६०
अरुणाख्यो दैत्यराजो जगामाशु त्रिविष्टपम्।
सूर्येन्दुयमवह्नीनामधिकारान्पृथक्पृथक् ॥ ६१
स्वयं चकार तपसा नानारूपधरो मुने।

उसने ब्रह्माजीको देखते ही उठकर प्रणाम किया तथा अनेकविध स्तोत्रोंसे उनकी स्तुति करके अपनी बुद्धिमें स्थित वरकी याचना की कि मेरी मृत्यु कभी न हो ॥ ४९½ ॥

अरुणका यह वचन सुनकर ब्रह्माजीने उसे आदरपूर्वक समझाया—हे दानवश्रेष्ठ! जब ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि भी मृत्युके ग्रास बन जाते हैं तो फिर मृत्युके सम्बन्धमें अन्य लोगोंकी बात ही क्या? अतएव तुम दूसरा उचित वर माँगो, जिसे मैं तुम्हें दे सकूँ, बुद्धिमान् लोग इस विषयमें कभी भी आग्रह नहीं करते ॥ ५०—५२ ॥

ब्रह्माजीका यह वचन सुनकर उसने पुनः आदरपूर्वक कहा—हे प्रभो! हे देव! तो फिर मुझे यह वर दीजिये कि मेरी मृत्यु न युद्धमें हो, न अस्त्र-शस्त्रसे हो, न पुरुषसे हो, न स्त्रीसे हो, न दो पैरवाले, न चार पैरोंवाले प्राणियोंसे और न तो उभय आकारवाले प्राणीसे ही हो, इसके साथ-साथ मुझे अत्यधिक बल भी दीजिये, जिससे देवताओंपर मेरी विजय स्थापित हो जाय ॥ ५३-५४½ ॥

अरुणकी यह बात सुनकर ब्रह्माजीने तथास्तु—ऐसा वचन कह दिया और इस प्रकार उसे वर प्रदान करके वे तत्काल अपने लोक चले गये ॥ ५५½ ॥

तत्पश्चात् ब्रह्माजीसे वरदान पाकर अभिमानमें चूर उस अरुण नामक दैत्यने अपने आश्रित रहनेवाले पातालवासी दैत्योंको बुला लिया ॥ ५६½ ॥

पातालसे आकर उन सभी दैत्योंने उसे दैत्योंका राजा बना दिया और देवताओंसे युद्ध करनेके अभिप्रायसे देवपुरीके लिये एक दूत भेजा ॥ ५७½ ॥

दूतकी बात सुनकर देवराज इन्द्र भयसे काँपने लगे और शीघ्र ही देवताओंके साथ ब्रह्मलोकके लिये चल पड़े ॥ ५८½ ॥

वहाँसे पुनः ब्रह्मा तथा विष्णुको आगे करके वे देवता शिवलोक पहुँचे और वहाँ देवशत्रु राक्षसोंके वधके लिये विचार-विमर्श करने लगे ॥ ५९½ ॥

उसी समय वह अरुण नामक दैत्यराज दैत्यसेनाको साथमें लेकर स्वर्ग पहुँच गया। हे मुने! अपनी तपस्यासे अनेक रूप धारण करनेवाले उस दैत्यने सूर्य, चन्द्रमा, यम तथा अग्निके समस्त अधिकारोंको पृथक्-पृथक् अपने अधीन कर लिया ॥ ६०-६१½ ॥

स्वस्वस्थानच्युताः सर्वे जग्मुः कैलासमण्डलम्॥ ६२

शशंसुः शङ्करं देवाः स्वस्वदुःखं पृथक्पृथक्।
महान् विचारस्तत्रासीत्किं कर्तव्यमतः परम्॥ ६३

न युद्धेन च शस्त्रास्त्रैर्न पुंभ्यो नापि योषितः।
द्विपाद्भ्यो वा चतुष्पाद्भ्यो नोभयाकारतोऽपि वा॥ ६४

मृत्युर्भवेदिति ब्रह्मा प्रोवाच वचनं यतः।
इति चिन्तातुराः सर्वे कर्तुं किञ्चिन्न च क्षमाः॥ ६५

एतस्मिन्समये तत्र वागभूदशरीरिणी।
भजध्वं भुवनेशानीं सा वः कार्यं विधास्यति॥ ६६

गायत्रीजपसंसक्तो दैत्यराड् यदि तां त्यजेत्।
मृत्युयोग्यस्तदा भूयादित्युच्चैस्तोषकारिणी॥ ६७

श्रुत्वा दैवीं तथा वाणीं मन्त्रयामासुरादृताः।
बृहस्पतिं समाहूय वचनं प्राह देवराट्॥ ६८

गुरो गच्छ सुराणां तु कार्यार्थमसुरं प्रति।
यथा भवेच्च गायत्रीत्यागस्तस्य तथा कुरु॥ ६९

अस्माभिः परमेशानी सेव्यते ध्यानयोगतः।
प्रसन्ना सा भगवती साहाय्यं ते करिष्यति॥ ७०

इत्यादिश्य गुरुं सर्वे जग्मुर्जाम्बूनदेश्वरीम्।
सास्मान्दैत्यभयत्रस्तान् पालयिष्यति शोभना॥ ७१

तत्र गत्वा तपश्चर्यां चक्रुः सर्वे सुनिष्ठिताः।
मायाबीजजपासक्ता देवीमखपरायणाः॥ ७२

बृहस्पतिस्तदा शीघ्रं जगामासुरसन्निधौ।
आगतं मुनिवर्यं तं पप्रच्छाथ स दैत्यराट्॥ ७३

तदनन्तर अपने-अपने स्थानसे च्युत हुए सभी देवता कैलासपर्वतपर गये और एक-एक करके शंकरजीको अपनी दुःखगाथा सुनाने लगे॥ ६२½ ॥

उस समय शंकरजी भी महान् सोचमें पड़ गये कि अब ऐसी स्थितिमें क्या करना चाहिये? क्योंकि ब्रह्माजी इसे वरदान दे चुके हैं, अतः इसकी मृत्यु न युद्धमें, न शस्त्रास्त्रोंसे, न पुरुषसे, न स्त्रीसे, न दो पैरवाले प्राणियोंसे, न चार पैरवाले प्राणियोंसे और न तो उभय आकारवालोंसे ही सम्भव है। वे सभी इसी चिन्तामें व्याकुल थे; किंतु कुछ भी कर पानेमें समर्थ नहीं हुए॥ ६३—६५ ॥

इसी बीच वहाँ उच्च स्वरमें सन्तोषदायिनी आकाशवाणी हुई—[हे देवताओ!] तुमलोग भगवती भुवनेश्वरीकी आराधना करो। वे ही तुमलोगोंका कार्य सिद्ध करेंगी। गायत्रीजपमें संलग्न दैत्यराज अरुण यदि गायत्री-उपासनाका त्याग कर दे तो उसकी मृत्यु हो सकती है॥ ६६-६७ ॥

इस दिव्य वाणीको सुनकर आदरणीय देवताओंने परस्पर मन्त्रणा की। तदुपरान्त देवराज इन्द्रने बृहस्पतिको बुलाकर उनसे यह वचन कहा—हे गुरो! आप देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये दैत्य अरुणके पास जाइये और जिस किसी भी तरहसे उसके द्वारा गायत्री-जपका त्याग हो सके, वैसा प्रयत्न कीजिये। इधर, हमलोग भी ध्यानयोगमें अवस्थित होकर परमेश्वरीकी उपासना कर रहे हैं। वे प्रसन्न होकर आपकी सहायता अवश्य करेंगी॥ ६८—७० ॥

गुरु बृहस्पतिसे इस प्रकार कहकर वे सभी देवता भगवती जम्बूनदेश्वरीके पास गये कि वे कल्याणी उस दैत्यके भयसे त्रस्त हम देवताओंकी रक्षा अवश्य करेंगी॥ ७१ ॥

वहाँ पहुँचकर देवीयज्ञपरायण वे सभी देवता अत्यन्त निष्ठापूर्वक मायाबीजके जपमें लीन होकर घोर तपश्चर्या करने लगे॥ ७२ ॥

इधर, बृहस्पति शीघ्र ही दानव अरुणके पास पहुँच गये। तब आये हुए उन मुनिवर बृहस्पतिसे उस दैत्यराजने पूछा—हे मुने! आप यहाँ कहाँ आ गये? इस समय कहाँसे तथा किस उद्देश्यसे यहाँ

मुने कुत्रागमः कस्मात्किमर्थमिति मे वद।
नाहं युष्मत्पक्षपाती प्रत्युताराातिरेव च॥ ७४

इति तस्य वचः श्रुत्वा प्रोवाच मुनिनायकः।
अस्मत्सेव्या च या देवी सा त्वया पूज्यतेऽनिशम्॥ ७५

तस्मादस्मत्पक्षपाती न भवेस्त्वं कथं वद।
इति तस्य वचः श्रुत्वा मोहितो देवमायया॥ ७६

तत्याज परमं मन्त्रमभिमानेन सत्तम।
गायत्रीत्यागतो दैत्यो निस्तेजस्को बभूव ह॥ ७७

कृतकार्यो गुरुस्तस्मात्स्थानान्निर्गतवान्पुनः।
ततो वृत्तान्तमखिलं कथयामास वज्रिणे॥ ७८

संतुष्टास्ते सुराः सर्वे भेजिरे परमेश्वरीम्।
एवं बहुगते काले कस्मिंश्चित्समये मुने॥ ७९

प्रादुरासीज्जगन्माता जगन्मङ्गलकारिणी।
कोटिसूर्यप्रतीकाशा कोटिकन्दर्पसुन्दरी॥ ८०

चित्रानुलेपना देवी चित्रवासोयुगान्विता।
विचित्रमाल्याभरणा चित्रभ्रमरमुष्टिका॥ ८१

वराभयकरा शान्ता करुणामृतसागरा।
नानाभ्रमरसंयुक्तपुष्पमालाविराजिता॥ ८२

भ्रामरीभिर्विचित्राभिरसंख्याभिः समावृता।
भ्रमरैर्गायमानैश्च ह्रींकारमनुमन्वहम्॥ ८३

समन्ततः परिवृता कोटिकोटिभिरम्बिका।
सर्वशृङ्गारवेषाढ्या सर्ववेदप्रशंसिता॥ ८४

सर्वात्मिका सर्वमयी सर्वमङ्गलरूपिणी।
सर्वज्ञा सर्वजननी सर्वा सर्वेश्वरी शिवा॥ ८५

दृष्ट्वा तां तरलात्मानो देवा ब्रह्मपुरोगमाः।
तुष्टुवुर्हृष्टमनसो विष्टरश्रवसां शिवाम्॥ ८६

आपका आगमन हुआ है? यह मुझे बताइये। मैं आपका पक्षधर तो हूँ नहीं, अपितु सदासे शत्रु ही हूँ॥ ७३-७४॥

उसकी यह बात सुनकर मुनिश्रेष्ठ बृहस्पतिने कहा—जो देवी हम लोगोंकी आराध्या हैं, उन्हींकी उपासना तुम भी अनवरत कर रहे हो, तो फिर यह बताओ कि क्या तुम हमारे पक्षधर नहीं हुए?॥ ७५ $\frac{1}{2}$ ॥

हे सत्तम (नारद!) उन बृहस्पतिकी यह बात सुनकर देवमायासे मोहित हुए उस दैत्यने अभिमानपूर्वक परम गायत्री-मन्त्रके जपका त्याग कर दिया। तब गायत्री-जपसे विरत होते ही वह तेजशून्य हो गया॥ ७६-७७॥

इसके बाद गुरु बृहस्पति अपना कार्य सिद्ध करके उस स्थानसे चल दिये और वापस आकर उन्होंने इन्द्रसे सम्पूर्ण वृत्तान्त बताया। इससे सभी देवता सन्तुष्ट हो गये और वे देवी परमेश्वरीकी आराधना करने लगे॥ ७८ $\frac{1}{2}$ ॥

हे मुने! इस प्रकार बहुत समय बीत जानेके बाद किसी समय जगत्का कल्याण करनेवाली जगज्जननी प्रकट हुईं। वे देवी करोड़ों सूर्योंके समान प्रभावाली थीं, करोड़ों कामदेवके सदृश सुन्दर, अंगोंमें अद्भुत अनुलेपनसे युक्त, दो सुन्दर वस्त्रोंसे सुशोभित तथा विचित्र माला तथा आभूषणोंसे मण्डित थीं। वे अपनी मुट्ठीमें अद्भुत प्रकारके भ्रमर लिये हुए थीं, वे भगवती अपने हाथोंमें वर तथा अभय मुद्रा धारण की हुई थीं, शान्त तथा करुणामृतके सागरके सदृश अनेकविध भ्रमरोंसे युक्त पुष्पोंकी मालासे वे शोभायमान थीं, वे अद्भुत प्रकारकी असंख्य भ्रामरियोंसे घिरी हुई थीं और वे अम्बिका 'ह्रींकार' मन्त्रका गान कर रहे करोड़ों-करोड़ों भ्रमरोंसे सभी ओरसे परिवृत थीं। वे सभी प्रकारके शृंगारों तथा वेषोंसे अलंकृत थीं तथा सभी वेदोंद्वारा स्तुत हो रही थीं। वे सबकी आत्मारूपा, सर्वमयी, सर्वमंगलरूपिणी, सर्वज्ञ, सर्वजननी, सर्वरूपिणी, सर्वेश्वरी तथा कल्याणमयी हैं॥ ७९—८५॥

उन्हें देखकर ब्रह्माजीको आगे करके दीन देवगण प्रसन्नचित्त होकर वेदोंमें प्रतिपादित देवीकी स्तुति करने लगे॥ ८६॥

देवा ऊचुः

नमो देवि महाविद्ये सृष्टिस्थित्यन्तकारिणि।
नमः कमलपत्राक्षि सर्वाधारे नमोऽस्तु ते॥ ८७

सविश्वतैजसप्राज्ञविराट्सूत्रात्मिके नमः।
नमो व्याकृतरूपायै कूटस्थायै नमो नमः॥ ८८

दुर्गे सर्गादिरहिते दुष्टसंरोधनार्गले।
निरर्गलप्रेमगम्ये भर्गे देवि नमोऽस्तु ते॥ ८९

नमः श्रीकालिके मातर्नमो नीलसरस्वति।
उग्रतारे महोग्रे ते नित्यमेव नमो नमः॥ ९०

नमः पीताम्बरे देवि नमस्त्रिपुरसुन्दरि।
नमो भैरवि मातङ्गि धूमावति नमो नमः॥ ९१

छिन्नमस्ते नमस्तेऽस्तु क्षीरसागरकन्यके।
नमः शाकम्भरि शिवे नमस्ते रक्तदन्तिके॥ ९२

निशुम्भशुम्भदलनि रक्तबीजविनाशिनि।
धूम्रलोचननिर्णाशे वृत्रासुरनिबर्हिणि॥ ९३

चण्डमुण्डप्रमथिनि दानवान्तकरे शिवे।
नमस्ते विजये गङ्गे शारदे विकचानने॥ ९४

पृथ्वीरूपे दयारूपे तेजोरूपे नमो नमः।
प्राणरूपे महारूपे भूतरूपे नमोऽस्तु ते॥ ९५

विश्वमूर्ते दयामूर्ते धर्ममूर्ते नमो नमः।
देवमूर्ते ज्योतिमूर्ते ज्ञानमूर्ते नमोऽस्तु ते॥ ९६

देवता बोले—सृष्टि, पालन तथा संहार करनेवाली हे देवि! हे महाविद्ये! आपको नमस्कार है। हे कमल-पत्रके समान नेत्रोंवाली! आपको नमस्कार है। हे समस्त जगत्को धारण करनेवाली! आपको नमस्कार है॥ ८७॥

हे विश्व, तैजस, प्राज्ञ तथा विराट्रूपके साथ सूक्ष्मरूप धारण करनेवाली! आपको नमस्कार है। व्याकृत तथा कूटस्थरूपवाली आप भगवतीको बार-बार नमस्कार है॥ ८८॥

हे दुर्गे! हे उत्पत्ति आदिसे रहित देवि! हे दुष्टोंके अवरोधार्थ अर्गलास्वरूपिणि! हे अटूट प्रेमसे प्राप्त की जानेवाली! हे तेजोमयी देवि! आपको नमस्कार है॥ ८९॥

हे श्रीकालिके! आपको नमस्कार है। हे मातः! आपको नमस्कार है। हे नीलसरस्वति! हे उग्रतारे! हे महोग्रे! आपको नित्य बार-बार नमस्कार है॥ ९०॥

हे पीताम्बरे! आपको नमस्कार है। हे देवि! हे त्रिपुरसुन्दरि! आपको नमस्कार है। हे भैरवि! आपको नमस्कार है। हे मातंगि! हे धूमावति! आपको बार-बार नमस्कार है॥ ९१॥

हे छिन्नमस्ते! आपको नमस्कार है। हे क्षीरसागरकन्यके! आपको नमस्कार है। हे शाकम्भरि! हे शिवे! हे रक्तदन्तिके! आपको नमस्कार है॥ ९२॥

हे शुम्भ तथा निशुम्भका संहार करनेवाली! हे रक्तबीजका विनाश करनेवाली! हे धूम्रलोचनका वध करनेवाली! हे वृत्रासुरका ध्वंस करनेवाली! हे चण्ड तथा मुण्डका दलन करनेवाली! हे दानवोंका अन्त करनेवाली! हे शिवे! हे विजये! हे गंगे! हे शारदे! हे प्रसन्नमुखि! आपको नमस्कार है॥ ९३-९४॥

हे पृथ्वीरूपे! हे दयारूपे! हे तेजोरूपे! आपको बार-बार नमस्कार है। हे प्राणरूपे! हे महारूपे! हे भूतरूपे! आपको नमस्कार है॥ ९५॥

हे विश्वमूर्ते! हे दयामूर्ते! हे धर्ममूर्ते! आपको बार-बार नमस्कार है। हे देवमूर्ते! हे ज्योतिमूर्ते! हे ज्ञानमूर्ते! आपको नमस्कार है॥ ९६॥

गायत्रि वरदे देवि सावित्रि च सरस्वति।
नमः स्वाहे स्वधे मातर्दक्षिणे ते नमो नमः॥ ९७

नेति नेतीति वाक्यैर्या बोध्यते सकलागमैः।
सर्वप्रत्यक्स्वरूपां तां भजामः परदेवताम्॥ ९८

भ्रमरैर्वेष्टिता यस्माद् भ्रामरी या ततः स्मृता।
तस्यै देव्यै नमो नित्यं नित्यमेव नमो नमः॥ ९९

नमस्ते पार्श्वयोः पृष्ठे नमस्ते पुरतोऽम्बिके।
नम ऊर्ध्वं नमश्चाधः सर्वत्रैव नमो नमः॥ १००

कृपां कुरु महादेवि मणिद्वीपाधिवासिनि।
अनन्तकोटिब्रह्माण्डनायिके जगदम्बिके॥ १०१

जय देवि जगन्मातर्जय देवि परात्परे।
जय श्रीभुवनेशानि जय सर्वोत्तमोत्तमे॥ १०२

कल्याणगुणरत्नानामाकरे भुवनेश्वरि।
प्रसीद परमेशानि प्रसीद जगतोरणे॥ १०३

श्रीनारायण उवाच

इति देववचः श्रुत्वा प्रगल्भं मधुरं वचः।
उवाच जगदम्बा सा मत्तकोकिलभाषिणी॥ १०४

देव्युवाच

प्रसन्नाहं सदा देवा वरदेशशिखामणिः।
ब्रुवन्तु विबुधाः सर्वे यदेव स्याच्चिकीर्षितम्॥ १०५

देवीवाक्यं सुराः श्रुत्वा प्रोचुर्दुःखस्य कारणम्।
दुष्टदैत्यस्य चरितं जगद्बाधाकरं परम्॥ १०६

देवब्राह्मणवेदानां हेलनं नाशनं तथा।
स्थानभ्रंशं सुराणां च कथयामासुरादृताः॥ १०७
ब्रह्मणो वरदानं च यथावत्ते समूचिरे।

हे गायत्रि! हे वरदे! हे देवि! हे सावित्रि! हे सरस्वति! आपको नमस्कार है। हे स्वाहे! हे स्वधे! हे मातः! हे दक्षिणे! आपको बार-बार नमस्कार है॥ ९७॥

समस्त शास्त्र 'नेति-नेति' वचनोंसे जिनका बोध करते हैं, उन प्रत्यक्स्वरूपा परादेवता भगवतीकी हम सभी देवगण उपासना करते हैं॥ ९८॥

सदा भ्रमरोंसे घिरी रहनेके कारण जो 'भ्रामरी' कही जाती हैं, उन भगवतीको नित्य-नित्य अनेकशः प्रणाम है॥ ९९॥

हे अम्बिके! आपके पार्श्व तथा पृष्ठ भागमें हमारा नमस्कार है। आपके आगे नमस्कार है, ऊपर नमस्कार है, नीचे नमस्कार है तथा सभी ओर नमस्कार है॥ १००॥

हे मणिद्वीपमें निवास करनेवाली! हे अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंकी अधीश्वरि! हे महादेवि! हे जगदम्बिके! हम सबपर कृपा कीजिये॥ १०१॥

हे जगज्जननि! हे देवि! आपकी जय हो! हे देवि! हे परात्परे! आपकी जय हो! हे श्रीभुवनेश्वरि! आपकी जय हो! हे सर्वोत्तमोत्तमे! आपकी जय हो॥ १०२॥

हे कल्याण तथा गुणरत्नोंकी निधिस्वरूपे! हे भुवनेश्वरि! प्रसन्न हो जाइये। हे परमेश्वरि! प्रसन्न हो जाइये। हे संसारकी तोरणस्वरूपे! प्रसन्न हो जाइये॥ १०३॥

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] देवताओंकी यह प्रगल्भ तथा मधुर वाणी सुनकर मत्त कोयलके समान बोलनेवाली वे जगदम्बा कहने लगीं॥ १०४॥

देवी बोलीं—हे देवताओ! वर प्रदान करनेवालोंमें श्रेष्ठ मैं (आपसे) सदा प्रसन्न हूँ। आपलोगोंके मनमें जो अभिलाषा हो, उसे बतायें॥ १०५॥

देवीका यह वचन सुनकर देवताओंने अपने दुःखका कारण बतलाया। उन्होंने दुष्ट दैत्यके द्वारा जगत्में किये जानेवाले महान् पीडाकारक कृत्यों; सर्वत्र देवताओं, ब्राह्मणों और वेदोंकी अवहेलना तथा विनाश और अपने-अपने स्थानसे देवताओंके च्युत कर दिये जानेका वर्णन बड़े विनयपूर्वक कर दिया। साथ ही ब्रह्माजीद्वारा उस दैत्यको दिये गये वरदानके विषयमें भी देवताओंने देवीसे यथावत् कह दिया॥ १०६-१०७½॥

श्रुत्वा देवमुखाद्वाणीं महाभगवती तदा॥ १०८

प्रेरयामास हस्तस्थान्भ्रमरान्भ्रामरी तदा।
पार्श्वस्थानग्रभागस्थान्नानारूपधरांस्तथा॥ १०९

जनयामास बहुशो यैर्व्याप्तं भुवनत्रयम्।
मटचीयूथवत्तेषां समुदायस्तु निर्गतः॥ ११०

तदान्तरिक्षं तैर्व्याप्तमन्धकारः क्षितावभूत्।
दिवि पर्वतशृङ्गेषु द्रुमेषु विपिनेष्वपि॥ १११

भ्रमरा एव सञ्जातास्तदद्भुतमिवाभवत्।
ते सर्वे दैत्यवक्षांसि दारयामासुरुद्गताः॥ ११२

नरं मधुहरं यद्वन्मक्षिकाः कोपसंयुताः।
उपायो न च शस्त्राणां तथास्त्राणां तदाभवत्॥ ११३

न युद्धं न च सम्भाषा केवलं मरणं खलु।
यस्मिन्यस्मिन्स्थले ये ये स्थिता दैत्या यथा यथा॥ ११४

तत्रैव च तथा सर्वे मरणं प्रापुरुत्स्मयाः।
परस्परं समाचारो न कस्याप्यभवत्तदा॥ ११५

क्षणमात्रेण ते सर्वे विनष्टा दैत्यपुङ्गवाः।
कृत्वेत्थं भ्रमराः कार्यं देवीनिकटमाययुः॥ ११६

आश्चर्यमेतदाश्चर्यमिति लोकाः समूचिरे।
किं चित्रं जगदम्बाया यस्या मायेयमीदृशी॥ ११७

ततो देवगणाः सर्वे ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः।
निमग्ना हर्षजलधौ पूजयामासुरम्बिकाम्॥ ११८

नानोपचारैर्विविधैर्नानोपायनपाणयः।
जयशब्दं प्रकुर्वाणा मुमुचुः सुमनांसि च॥ ११९

तब देवताओंके मुखसे यह वाणी सुनकर महाभगवती भ्रामरीने अपने हस्तस्थित, पार्श्व-प्रान्तस्थित तथा अग्रभागस्थित अनेकरूपधारी भ्रमरोंको प्रेरित किया; इसके साथ ही बहुत-से भ्रमरोंको उत्पन्न भी किया, जिनसे तीनों भुवन व्याप्त हो गये॥ १०८-१०९½ ॥

उस समय उन भ्रमरोंके झुण्ड टिड्डियोंके दलके समान निकलने लगे। उन भ्रमरोंसे सम्पूर्ण अन्तरिक्ष आच्छादित हो गया और पृथ्वीपर अन्धकार छा गया। आकाशमें, पर्वतोंके शिखरोंपर, वृक्षोंपर तथा वनोंमें सर्वत्र भ्रमर-ही-भ्रमर हो गये। वह दृश्य अत्यन्त आश्चर्यजनक था॥ ११०-१११½ ॥

वे सभी भ्रमर निकल-निकलकर दैत्योंके वक्षःस्थलको उसी प्रकार छेदने लगे, जैसे क्रोधमें भरी मधुमक्खियाँ मधुका दोहन करनेवाले व्यक्तिको काटती हैं॥ ११२½ ॥

उस समय अस्त्रों तथा शस्त्रोंसे किसी प्रकार भी सुरक्षाका उपाय सम्भव नहीं हो सका। दैत्य न युद्ध कर सके और न कोई सम्भाषण ही। उन्हें केवल अपनी मृत्यु दिखायी दे रही थी॥ ११३½ ॥

जिस-जिस स्थानपर जो-जो दैत्य जिस-जिस स्थितिमें विद्यमान थे, वे सब उसी रूपमें उसी स्थानपर अट्टहास करते हुए मृत्युको प्राप्त हुए॥ ११४½ ॥

उन दैत्योंमेंसे किसीकी भी एक-दूसरेसे कोई बातचीत भी नहीं हो सकी और वे सभी दैत्यश्रेष्ठ क्षणभरमें विनष्ट हो गये॥ ११५½ ॥

इस प्रकार यह कार्य करके वे भ्रमर पुनः देवीके पास आ गये। यह तो आश्चर्य हो गया—ऐसा सभी लोग कहने लगे। जिन जगदम्बाकी इस प्रकारकी यह माया है, उनके लिये कौन-सा कार्य आश्चर्यजनक है॥ ११६-११७॥

तदनन्तर हर्षरूपी समुद्रमें डूबे हुए सभी देवगणोंने ब्रह्मा, विष्णु आदिको अग्रसर करके अनेक प्रकारके उपचारोंसे देवीकी पूजा की, अपने हाथोंसे उन्हें नानाविध उपहार प्रदान किये और जय-जयकार करते हुए उनपर पुष्पोंकी वर्षा की॥ ११८-११९॥

दिवि दुन्दुभयो नेदुर्ननृतुश्चाप्सरोगणाः।
पेठुर्वेदान्मुनिश्रेष्ठा गन्धर्वाद्या जगुस्तथा॥ १२०

मृदङ्गमुरजावीणाढक्काडमरुनिःस्वनैः ।
घण्टाशङ्खनिनादैश्च व्याप्तमासीजगत्त्रयम्॥ १२१

नानास्तोत्रैस्तदा स्तुत्वा मूर्ध्न्याधायाञ्जलींस्तथा।
जय मातर्जयेशानीत्येवं सर्वे समूचिरे॥ १२२

ततस्तुष्टा महादेवी वरान्दत्त्वा पृथक्पृथक्।
स्वस्मिंश्च विपुलां भक्तिं प्रार्थिता तैर्ददौ च ताम्॥ १२३

पश्यतामेव देवानामन्तर्धानं गता ततः।
इति ते सर्वमाख्यातं भ्रामर्याश्चरितं महत्॥ १२४

पठतां शृण्वतां चैव सर्वपापप्रणाशनम्।
श्रुतमाश्चर्यजनकं संसारार्णवतारकम्॥ १२५

एवं मनूनां सर्वेषां चरितं पापनाशनम्।
देवीमाहात्म्यसंयुक्तं पठञ्शृण्वञ्शुभप्रदम्॥ १२६

यश्चैतत्पठते नित्यं शृणुयाद्योऽनिशं नरः।
सर्वपापविनिर्मुक्तो देवीसायुज्यमाप्नुयात्॥ १२७

आकाशमें दुन्दुभियाँ बज उठीं, अप्सराएँ नृत्य करने लगीं, गन्धर्व आदि गाने लगे तथा श्रेष्ठ मुनिगण वेदपाठ करने लगे। मृदंग, ढोल, वीणा, ढाक, डमरू, घण्टा और शंख आदिकी ध्वनियोंसे तीनों लोक व्याप्त हो गये॥ १२०-१२१॥

उस समय अनेकविध स्तोत्रोंसे देवीका स्तवन करके अपनी अंजलियाँ मस्तकपर रखकर सभी देवता कहने लगे—हे मातः! आपकी जय हो। हे ईशानि! आपकी जय हो॥ १२२॥

उनके द्वारा इस प्रकार प्रार्थना करनेपर उनपर परम प्रसन्न भगवती महादेवीने उन देवताओंको पृथक्-पृथक् वर प्रदान करके उन्हें अपनी विपुल भक्ति प्रदान की। इसके बाद देवताओंके देखते-देखते वे अन्तर्धान हो गयीं॥ १२३१/२॥

[हे नारद!] इस प्रकार मैंने आपसे भगवती भ्रामरीके सम्पूर्ण महिमाशाली चरित्रका वर्णन कर दिया, जिसके पढ़ने तथा सुननेवालोंके सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। सुननेमें आश्चर्यजनक यह [देवीचरित्र] संसाररूपी सागरसे पार कर देनेवाला है॥ १२४-१२५॥

इसी प्रकार अन्य सभी मनुओंका चरित्र भी पापको नष्ट करनेवाला, देवीके माहात्म्यसे परिपूर्ण तथा पढ़ने-सुननेवालेके लिये कल्याणप्रद है॥ १२६॥

जो मनुष्य इस चरित्रको नित्य पढ़ता है तथा निरन्तर सुनता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर देवी-सायुज्य प्राप्त कर लेता है॥ १२७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां दशमस्कन्धे भ्रामरीचरित्रवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥



॥ दशमः स्कन्धः समाप्तः॥

॥ श्रीजगदम्बिकायै नमः ॥
॥ ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ॥

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण

एकादशः स्कन्धः

अथ प्रथमोऽध्यायः

भगवान् नारायणका नारदजीसे देवीको प्रसन्न करनेवाले सदाचारका वर्णन

नारद उवाच

भगवन् भूतभव्येश नारायण सनातन।
आख्यातं परमाश्चर्यं देवीचारित्रमुत्तमम्॥ १

प्रादुर्भावः परो मातुः कार्यार्थमसुरद्रुहाम्।
अधिकाराप्तिरुक्तात्र देवीपूर्णकृपावशात्॥ २

अधुना श्रोतुमिच्छामि येन प्रीणाति सर्वदा।
स्वभक्तान्परिपुष्णाति तमाचारं वद प्रभो॥ ३

श्रीनारायण उवाच

शृणु नारद तत्त्वज्ञ सदाचारविधिक्रमम्।
यदनुष्ठानमात्रेण देवी प्रीणाति सर्वदा॥ ४

प्रातरुत्थाय कर्तव्यं यद् द्विजेन दिने दिने।
तदहं सम्प्रवक्ष्यामि द्विजानामुपकारकम्॥ ५

उदयास्तमयं यावद् द्विजः सत्कर्मकृद्भवेत्।
नित्यनैमित्तिकैर्युक्तः काम्यैश्चान्यैरगर्हितैः॥ ६

आत्मनश्च सहायार्थं पिता माता न तिष्ठति।
न पुत्रदारा न ज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवलम्॥ ७

तस्माद्धर्मं सहायार्थं नित्यं सञ्चिनु साधनैः।
धर्मेणैव सहायात्तु तमस्तरति दुस्तरम्॥ ८

नारद बोले—हे भगवन्! हे भूतभव्येश! हे नारायण! हे सनातन! आपने भगवतीके परम विस्मयकारक एवं श्रेष्ठ चरित्रका वर्णन किया। साथ ही आपके द्वारा असुरद्रोही देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके निमित्त माता भगवतीके उत्तम प्राकट्य तथा देवीकी पूर्ण कृपासे उनकी अधिकार-प्राप्तिका वर्णन भी किया गया॥ १-२॥

हे प्रभो! अब मैं उस आचारके विषयमें सुनना चाहता हूँ, जिससे भगवती अपने भक्तोंपर सदा प्रसन्न होती हैं तथा उनका पालन-पोषण करती हैं, उसे बताइये॥ ३॥

श्रीनारायण बोले—हे तत्त्वोंके ज्ञाता नारद! जिस सदाचारके अनुष्ठानसे देवी सर्वदा प्रसन्न रहती हैं, उसकी विधिके विषयमें अब आप क्रमसे सुनिये॥ ४॥

प्रातःकाल उठकर द्विजको प्रतिदिन जिस आचारका पालन करना चाहिये; अब मैं द्विजोंका उपकार करनेवाले उस आचारका भलीभाँति वर्णन करूँगा॥ ५॥

द्विजको सूर्योदयसे लेकर सूर्यास्तपर्यन्त नित्य, नैमित्तिक तथा अनिन्द्य काम्य कर्मोंसे युक्त होकर सत्कर्मोंमें संलग्न रहना चाहिये॥ ६॥

पिता, माता, पुत्र, पत्नी तथा बन्धु-बान्धव कोई भी [परलोकमें] आत्माके सहायतार्थ उपस्थित नहीं रहते; केवल धर्म ही उपस्थित होता है। अतः आत्मकल्याणके लिये समस्त साधनोंसे धर्मका नित्य संचय करना चाहिये। धर्मके ही साहाय्यसे मनुष्य दुस्तर अन्धकारको पार कर लेता है॥ ७-८॥

आचारः प्रथमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च।
तस्मादस्मिन्समायुक्तो नित्यं स्यादात्मनो द्विजः॥ ९

आचाराल्लभते चायुराचाराल्लभते प्रजाः।
आचारादन्नमक्षय्यमाचारो हन्ति पातकम्॥ १०

आचारः परमो धर्मो नृणां कल्याणकारकः।
इह लोके सुखी भूत्वा परत्र लभते सुखम्॥ ११

अज्ञानान्धजनानां तु मोहितैर्भ्रामितात्मनाम्।
धर्मरूपो महादीपो मुक्तिमार्गप्रदर्शकः॥ १२

आचारात्प्राप्यते श्रैष्ठ्यमाचारात्कर्म लभ्यते।
कर्मणो जायते ज्ञानमिति वाक्यं मनोः स्मृतम्॥ १३

सर्वधर्मवरिष्ठोऽयमाचारः परमं तपः।
तदेव ज्ञानमुद्दिष्टं तेन सर्वं प्रसाध्यते॥ १४

यस्त्वाचारविहीनोऽत्र वर्तते द्विजसत्तमः।
स शूद्रवद् बहिष्कार्यो यथा शूद्रस्तथैव सः॥ १५

आचारो द्विविधः प्रोक्तः शास्त्रीयो लौकिकस्तथा।
उभावपि प्रकर्तव्यौ न त्याज्यौ शुभमिच्छता॥ १६

ग्रामधर्मा जातिधर्मा देशधर्माः कुलोद्भवाः।
परिग्राह्या नृभिः सर्वैर्नैव ताल्लँङ्घयेन्मुने॥ १७

दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः।
दुःखभागी च सततं व्याधिना व्याप्त एव च॥ १८

परित्यजेदर्थकामौ यौ स्यातां धर्मवर्जितौ।
धर्ममप्यसुखोदर्कं लोकविद्विष्टमेव च॥ १९

आचार ही प्रथम (मुख्य) धर्म है—ऐसा श्रुतियों तथा स्मृतियोंमें कहा गया है, अतएव द्विजको चाहिये कि वह अपने कल्याणके लिये इस सदाचारके पालनमें नित्य संलग्न रहे॥ ९॥

मनुष्य आचारसे आयु प्राप्त करता है, आचारसे सन्तानें प्राप्त करता है तथा आचारसे अक्षय अन्न प्राप्त करता है। यह आचार पापको नष्ट कर देता है॥ १०॥

आचार मनुष्योंका परम धर्म है तथा उनके लिये कल्याणप्रद है। सदाचारी व्यक्ति इस लोकमें सुखी रहकर परलोकमें भी सुख प्राप्त करता है॥ ११॥

मोहसे भ्रमित चित्तवाले तथा अज्ञानान्धकारमें भटकनेवाले लोगोंके लिये यह आचार धर्मरूपी महान् दीपक बनकर उन्हें मुक्तिका मार्ग दिखाता है॥ १२॥

आचारसे श्रेष्ठता प्राप्त होती है, आचारसे ही सत्कर्मोंमें प्रवृत्ति होती है और सत्कर्मसे ज्ञान उत्पन्न होता है—मनुका यह प्रसिद्ध वचन है॥ १३॥

यह आचार सभी धर्मोंसे श्रेष्ठ तथा परम तप है। उसीको ज्ञान भी कहा गया है। उसीसे सब कुछ सिद्ध कर लिया जाता है॥ १४॥

द्विजश्रेष्ठ होकर भी जो इस लोकमें आचारसे रहित है, वह शूद्रकी भाँति बहिष्कारके योग्य है; क्योंकि जैसा शूद्र है वैसा ही वह भी है॥ १५॥

आचार शास्त्रीय तथा लौकिक-भेदसे दो प्रकारका कहा गया है। अपना कल्याण चाहनेवालेको इन दोनों ही आचारोंका सम्यक् पालन करना चाहिये और उनसे कभी भी विरत नहीं होना चाहिये॥ १६॥

हे मुने! सभी मनुष्योंको ग्रामधर्म, जातिधर्म, देशधर्म तथा कुलधर्मोंका भलीभाँति पालन करना चाहिये, उनका कभी उल्लंघन नहीं करना चाहिये॥ १७॥

दुराचारी पुरुष लोकमें निन्दित होता है, दुःख प्राप्त करता है और रोगसे सदा ग्रस्त रहता है॥ १८॥

जो अर्थ तथा काम धर्मसे रहित हों, उनका त्याग कर देना चाहिये। साथ ही लोकविरुद्ध धर्मको भी छोड़ देना चाहिये; क्योंकि वह परिणाममें दुःखदायी होता है॥ १९॥

नारद उवाच

बहुत्वादिह शास्त्राणां निश्चयः स्यात्कथं मुने।
कियत्प्रमाणं तद् ब्रूहि धर्ममार्गविनिर्णये॥ २०

श्रीनारायण उवाच

श्रुतिस्मृती उभे नेत्रे पुराणं हृदयं स्मृतम्।
एतत्त्रयोक्त एव स्याद्धर्मो नान्यत्र कुत्रचित्॥ २१

विरोधो यत्र तु भवेत्त्रयाणां च परस्परम्।
श्रुतिस्तत्र प्रमाणं स्याद् द्वयोर्द्वैधे स्मृतिर्वरा॥ २२

श्रुतिद्वैधं भवेद्यत्र तत्र धर्मावुभौ स्मृतौ।
स्मृतिद्वैधं तु यत्र स्याद्विषयः कल्प्यतां पृथक्॥ २३

पुराणेषु क्वचिच्चैव तन्त्रदृष्टं यथातथम्।
धर्मं वदन्ति तं धर्मं गृह्णीयान्न कथञ्चन॥ २४

वेदाविरोधि चेत्तन्त्रं तत्प्रमाणं न संशयः।
प्रत्यक्षश्रुतिरुद्धं यत्तत्प्रमाणं भवेन्न च॥ २५

सर्वथा वेद एवासौ धर्ममार्गप्रमाणकः।
तेनाविरुद्धं यत्किञ्चित्तत्प्रमाणं न चान्यथा॥ २६

यो वेदधर्ममुज्झित्य वर्ततेऽन्यप्रमाणतः।
कुण्डानि तस्य शिक्षार्थं यमलोके वसन्ति हि॥ २७

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वेदोक्तं धर्ममाश्रयेत्।
स्मृतिः पुराणमन्यद्वा तन्त्रं वा शास्त्रमेव च॥ २८

तन्मूलत्वे प्रमाणं स्यान्नान्यथा तु कदाचन।
ये कुशास्त्राभियोगेन वर्तयन्तीह मानवान्॥ २९
अधोमुखोर्ध्वपादास्ते यास्यन्ति नरकार्णवम्।

नारदजी बोले—हे मुने! जगत्में तो शास्त्रोंका बाहुल्य है; ऐसी स्थितिमें कुछ भी कैसे निश्चित किया जाय। धर्ममार्गका निर्णय करनेवाले कितने प्रमाण हैं; यह मुझे बताइये॥ २०॥

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] श्रुति तथा स्मृति दोनों नेत्र हैं तथा पुराणको हृदय कहा गया है। इन तीनोंमें जो भी कहा गया है, वही धर्म है, इसके अतिरिक्त कहीं भी नहीं॥ २१॥

इन तीनोंमें जहाँ परस्पर विरोध हो, वहाँ श्रुतिको प्रमाण मानना चाहिये। इसी प्रकार स्मृति तथा पुराणमें विरोध होनेपर स्मृति श्रेष्ठ है॥ २२॥

श्रुतिमें जहाँ दो वचनोंमें परस्पर विरोध हो तो वहाँ वे दोनों ही वचन धर्म हैं। यदि स्मृतिमें द्वैध-स्थिति हो जाय तो प्रसंगानुसार पृथक्-पृथक् विषय कल्पित कर लेने चाहिये॥ २३॥

पुराणोंमें कही-कहीं तन्त्र भी सूक्ष्मरूपसे व्याख्यायित किये गये हैं। जिसे धर्म बताया गया है, उसीको धर्मरूपसे ग्रहण करना चाहिये, किसी अन्यको किसी भी तरह नहीं॥ २४॥

यदि तन्त्रका वचन वेदविरोधी नहीं है तो उसकी प्रामाणिकतामें सन्देह नहीं है, किंतु श्रुतिसे जो प्रत्यक्ष विरुद्ध हो, वह वचन प्रमाण नहीं हो सकता॥ २५॥

वेद ही पूर्णरूपसे धर्म-मार्गके प्रमाण हैं। उस वेदराशिसे विरोध न रखनेवाला जो कुछ भी है, वही प्रमाण है; दूसरा नहीं॥ २६॥

वेद-प्रतिपादित धर्मको छोड़कर जो अन्यको प्रमाण मानकर व्यवहार करता है, उसे दण्डित करनेके लिये यमलोकमें नरककुण्ड स्थित हैं। अतएव सभी प्रयत्नोंसे वेदोक्त धर्मका ही आश्रय लेना चाहिये। स्मृति, पुराण, तन्त्र, शास्त्र तथा अन्य ग्रन्थ—इनके वेदमूलक होनेकी स्थितिमें ही वे प्रमाण होते हैं; इसके विपरीत वे कभी भी प्रमाण नहीं हो सकते॥ २७-२८½॥

जो लोग इस लोकमें मनुष्योंको निन्दित शास्त्रोंका उपदेश करते हैं, वे मुख नीचे तथा पैर ऊपर किये हुए नरकसागर जायँगे॥ २९½॥

कामाचाराः पाशुपतास्तथा वै लिङ्गधारिणः॥ ३०

तप्तमुद्राङ्किता ये च वैखानसमतानुगाः।
ते सर्वे निरयं यान्ति वेदमार्गबहिष्कृताः॥ ३१

वेदोक्तमेव सद्धर्मं तस्मात्कुर्यान्नरः सदा।
उत्थायोत्थाय बोद्धव्यं किं मयाद्य कृतं कृतम्॥ ३२

दत्तं वा दापितं वापि वाक्येनापि च भाषितम्।
उपपापेषु सर्वेषु पातकेषु महत्स्वपि॥ ३३

अवाप्य रजनीयामं ब्रह्मध्यानं समाचरेत्।
ऊरुस्थोत्तानचरणः सव्ये चोरौ तथोत्तरम्॥ ३४

उत्तानं किञ्चिदुत्तानं मुखमवष्टभ्य चोरसा।
निमीलिताक्षः सत्त्वस्थो दन्तैर्दन्तान्न संस्पृशेत्॥ ३५

तालुस्थाचलजिह्वश्च संवृतास्यः सुनिश्चलः।
सन्निरुद्धेन्द्रियग्रामो नातिनिम्नस्थितासनः॥ ३६

द्विगुणं त्रिगुणं वापि प्राणायाममुपक्रमेत्।
ततो ध्येयः स्थितो योऽसौ हृदये दीपवत्प्रभुः॥ ३७

धारयेत्तत्र चात्मानं धारणां धारयेद् बुधः।
सधूमश्च विधूमश्च सगर्भश्चाप्यगर्भकः॥ ३८

सलक्ष्यश्चाप्यलक्ष्यश्च प्राणायामस्तु षड्विधः।
प्राणायामसमो योगः प्राणायाम इतीरितः॥ ३९

प्राणायाम इति प्रोक्तो रेचपूरककुम्भकैः।
वर्णत्रयात्मका ह्येते रेचपूरककुम्भकाः॥ ४०
स एव प्रणवः प्रोक्तः प्राणायामश्च तन्मयः।

स्वेच्छाचारी, पाशुपतमार्गावलम्बी, लिंगधारी, तप्त मुद्रासे अंकित तथा वैखानस मत माननेवाले जो भी लोग हैं, वेदमार्गसे विचलित होनेके कारण वे सभी नरक जाते हैं॥ ३०-३१॥

अतएव मनुष्यको सदा वेदोक्त सद्धर्मका ही पालन करना चाहिये। उसे सावधान होकर बार-बार विचार करना चाहिये कि आज मैंने कौन-कौन-सा कार्य किया, क्या दिया, क्या दिलाया अथवा वाणीसे कैसा सम्भाषण किया? यह भी सोचना चाहिये कि अत्यन्त दारुण सभी पातकों तथा उपपातकोंमें कहीं मेरी प्रवृत्ति तो नहीं हो गयी॥ ३२-३३॥

रात्रिके चौथे प्रहरमें [उठकर] ब्रह्मध्यान करना चाहिये। जंघाओंपर पैरको ऊपरकी ओर करके (पद्मासनमें) बैठे, बायीं जंघापर दाहिना पैर उत्तान करके रखना चाहिये। हनु (ठुड्डी)-को वक्ष:स्थलसे लगाकर नेत्रोंको बन्द करके सहज भावमें स्थित होकर बैठना चाहिये, दाँतोंका दाँतोंसे स्पर्श नहीं करना चाहिये॥ ३४-३५॥

जिह्वाको तालुके समीप अचल स्थितिमें रखे, मुँह बन्द किये रहे, शान्तचित्त रहे, इन्द्रियसमूहोंपर नियन्त्रण रखे तथा बहुत नीचे आसनपर स्थित न हो। दो बार अथवा तीन बार प्राणायाम करना चाहिये। तत्पश्चात् दीपकस्वरूप जो प्रभु हृदयमें अवस्थित हैं, उनका ध्यान करना चाहिये। इस प्रकार विद्वान् व्यक्तिको अपने हृदयमें परमात्माके विराजमान रहनेकी धारणा करनी चाहिये॥ ३६-३७½॥

सधूम (श्वाससहित), विधूम (श्वासरहित), सगर्भ (मन्त्र-जपसहित), अगर्भ (मन्त्ररहित), सलक्ष्य (इष्टदेवके ध्यानसहित) और अलक्ष्य (ध्यानरहित)—यह छः प्रकारका प्राणायाम होता है। प्राणायाममें वायुका नियमन किया जाता है, अतएव इस प्राणायामको ही योग कहा गया है॥ ३८-३९॥

यह प्राणायाम भी रेचक, पूरक तथा कुम्भक भेदोंवाला कहा गया है। रेचक, पूरक तथा कुम्भक-संज्ञक प्राणायाम वर्णत्रयात्मक है, इसीको प्रणव कहा गया है। उस प्रणवमें तन्मय हो जाना ही प्राणायाम है॥ ४०½॥

इडया वायुमारोप्य पूरयित्वोदरे स्थितम्॥ ४१

शनैः षोडशमात्राभिरन्यया तं विरेचयेत्।
एवं सधूमः प्राणानामायामः कथितो मुने॥ ४२

आधारे लिङ्गनाभिप्रकटितहृदये तालुमूले ललाटे
द्वे पत्रे षोडशारे द्विदशदशदलद्वादशार्धे चतुष्के।
वासान्ते बालमध्ये डफकठसहिते कण्ठदेशे स्वराणां
हंक्षंतत्त्वार्थयुक्तं सकलदलगतं वर्णरूपं नमामि॥ ४३

अरुणकमलसंस्था तद्रजःपुञ्जवर्णा
हरनियमितचिह्ना पद्मतन्तुस्वरूपा।
रविहुतवहराकानायकास्यस्तनाढ्या
सकृदपि यदि चित्ते संवसेत्स्यात्स मुक्तः॥ ४४

स्थितिः सैव गतिर्यात्रा मतिश्चिन्ता स्तुतिर्वचः।
अहं सर्वात्मको देवः स्तुतिः सर्वं त्वदर्चनम्॥ ४५

अहं देवी न चान्योऽस्मि ब्रह्मैवाहं न शोकभाक्।
सच्चिदानन्दरूपोऽहं स्वात्मानमिति चिन्तयेत्॥ ४६

प्रकाशमानां प्रथमे प्रयाणे
प्रतिप्रयाणेऽप्यमृतायमानाम्।
अन्तःपदव्यामनुसञ्चरन्ती-
मानन्दरूपामबलां प्रपद्ये॥ ४७

इडा नाड़ीसे वायुको ऊपर खींचकर उदरमें पूर्णरूपसे स्थित कर लेनेके अनन्तर पुनः दूसरी (पिंगला) नाड़ीसे धीरे-धीरे सोलह मात्रामें उस वायुको निकालना चाहिये। हे मुने! इस प्रकार यह सधूमप्राणायाम कहा गया है॥ ४१-४२॥

मूलाधार, लिंग, नाभि, हृदय, कंठ तथा ललाट (भ्रूमध्य)-में क्रमशः चतुर्दल, षड्दल, दशदल, द्वादशदल, षोडशदल तथा द्विदल कमल विद्यमान हैं। मूलाधारचक्रमें वँ, शँ, षँ, सँ वर्णों; स्वाधिष्ठानचक्रमें बँ, भँ, मँ, यँ, रँ, लँ वर्णों; मणिपूरकचक्रमें डँ, ढँ, णँ, तँ, थँ, दँ, धँ, नँ, पँ, फँ वर्णों; अनाहतचक्रमें कँ, खँ, गँ, घँ, ङँ, चँ, छँ, जँ, झँ, ञँ, टँ, ठँ वर्णों; विशुद्धाख्यचक्र (कण्ठदेश)-में सभी सोलह स्वरों तथा आज्ञाचक्रमें हँ, क्षँ वर्णोंवाले द्विदल पद्ममें विराजमान तत्त्वार्थयुक्त उन ब्रह्मस्वरूप सभी वर्णोंको मैं प्रणाम करता हूँ॥ ४३॥

जिसके चित्तमें एक बार भी अरुणकमलासना, पद्मरागके पुंजके समान वर्णवाली, शिवलिंगसे अंकित, कमलतन्तुके समान सूक्ष्म स्वरूपवाली, सूर्य-अग्नि-चन्द्र (-रूपी नेत्रों)-से आलोकित मुखमण्डल और उन्नत स्तनोंसे सुशोभित जगदम्बाका निवास हो जाता है, वही मुक्त है॥ ४४॥

वे भगवती ही स्थिति हैं, वे ही गति हैं, वे ही यात्रा हैं, वे ही मति हैं, वे ही चिन्ता हैं, वे ही स्तुति हैं और वे ही वाणी हैं। मैं सर्वात्मा देवता हूँ और मेरे द्वारा की गयी स्तुति ही आपकी समस्त अर्चना है, मैं स्वयं देवीरूप हूँ, इसके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं। मैं ही ब्रह्म हूँ, मुझमें शोक व्याप्त नहीं हो सकता और मैं सच्चिदानन्दस्वरूप हूँ—ऐसा अपनेको समझना चाहिये॥ ४५-४६॥

प्रथम प्रयाणके समय अर्थात् मूलाधारसे ब्रह्मरन्ध्रकी ओर (जाते समय) विद्युत्-सदृश प्रकाशमान, प्रतिप्रयाणमें अमृतसदृश प्रतीतिवाली तथा अन्तिम प्रयाणमें सुषुम्ना नाड़ीमें संचरित होनेवाली आनन्दस्वरूप भगवती कुण्डलिनीकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ॥ ४७॥

ततो निजब्रह्मरन्ध्रे ध्यायेत्तं गुरुमीश्वरम्।
उपचारैर्मानसैश्च पूजयेत्तु यथाविधि॥ ४८

स्तुवीतानेन मन्त्रेण साधको नियतात्मवान्।
गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥ ४९

तत्पश्चात् अपने ब्रह्मरन्ध्रमें ईश्वररूप उन गुरुका ध्यान करना चाहिये और मानसिक उपचारोंसे विधिपूर्वक उनकी पूजा करनी चाहिये। पुनः साधकको संयतचित्त होकर इस मन्त्रसे गुरुकी प्रार्थना करनी चाहिये—'**गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः। गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥**' गुरु ही ब्रह्मा हैं, गुरु ही विष्णु हैं, गुरु ही देवता हैं, गुरु ही महेश्वर शिव हैं और गुरु ही परब्रह्म हैं; उन श्रीगुरुको नमस्कार है॥ ४८-४९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामेकादशस्कन्धे प्रातश्चिन्तनं नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

~~○~~

अथ द्वितीयोऽध्यायः

शौचाचारका वर्णन

श्रीनारायण उवाच

आचारहीनं न पुनन्ति वेदा
यदप्यधीताः सह षड्भिरङ्गैः।
छन्दांस्येनं मृत्युकाले त्यजन्ति
नीडं शकुन्ता इव जातपक्षाः॥ १

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] छहों अंगोंसहित अधीत किये गये वेद भी आचारविहीन व्यक्तिको पवित्र नहीं कर सकते। पढ़े गये छन्द (वेद) ऐसे आचारहीन प्राणीको उसी भाँति मृत्युकालमें छोड़ देते हैं, जैसे पंख निकल आनेपर पक्षी अपना घोंसला त्याग देते हैं॥ १॥

ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय तत्सर्वं सम्यगाचरेत्।
रात्रेरन्तिमयामे तु वेदाभ्यासं चरेद् बुधः॥ २

किञ्चित्कालं ततः कुर्यादिष्टदेवानुचिन्तनम्।
योगी तु पूर्वमार्गेण ब्रह्मध्यानं समाचरेत्॥ ३

विद्वान् पुरुषको ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर आचारसम्बन्धी सभी कर्मोंको भलीभाँति सम्पादित करना चाहिये और रातके अन्तिम प्रहरमें वेदाभ्यास करना चाहिये। तत्पश्चात् योगी पुरुष कुछ समय अपने इष्टदेवका चिन्तन करे और पुनः पूर्वोक्त मार्गसे ब्रह्मका ध्यान करे॥ २-३॥

जीवब्रह्मैक्यता येन जायते तु निरन्तरम्।
जीवन्मुक्तश्च भवति तत्क्षणादेव नारद॥ ४

हे नारद! ऐसा निरन्तर करनेसे जब जीव तथा ब्रह्ममें ऐक्य स्थापित हो जाता है, तब उसी क्षण वह जीवन्मुक्त हो जाता है॥ ४॥

पञ्चपञ्च उषःकालः सप्तपञ्चारुणोदयः।
अष्टपञ्चभवेत्प्रातः शेषः सूर्योदयः स्मृतः॥ ५

रात्रिके अन्तमें पचपन घड़ीके बाद उषःकाल, सत्तावन घड़ीके बाद अरुणोदयकाल तथा अट्ठावन घड़ीके बाद प्रातःकाल होता है। इसके बादवाला शेष समय सूर्योदयकाल कहा गया है॥ ५॥

प्रातरुत्थाय यः कुर्याद्विण्मूत्रं द्विजसत्तमः।
नैर्ऋत्यामिषुविक्षेपमतीत्याभ्यधिकं भुवः॥ ६

श्रेष्ठ द्विजको प्रातःकाल उठकर नैर्ऋत्यदिशामें धनुषसे छोड़े गये बाणद्वारा तय की गयी दूरीसे भी आगेकी भूमिपर जाकर मल-मूत्रका त्याग करना चाहिये॥ ६॥

विण्मूत्रेऽपि च कर्णस्थ आश्रमे प्रथमे द्विजः।
निवीतं पृष्ठतः कुर्याद्वानप्रस्थगृहस्थयोः॥ ७

कृत्वा यज्ञोपवीतं तु पृष्ठतः कण्ठलम्बितम्।
विण्मूत्रं तु गृही कुर्यात्कर्णस्थं प्रथमाश्रमी॥ ८

अन्तर्धाय तृणैर्भूमिं शिरः प्रावृत्य वाससा।
वाचं नियम्य यत्नेन ष्ठीवनश्वासवर्जितः॥ ९

न फालकृष्टे न जले न चितायां न पर्वते।
जीर्णदेवालये कुर्यान्न वल्मीके न शाद्वले॥ १०

न ससत्त्वेषु गर्तेषु न गच्छन्न पथि स्थितः।
सन्ध्ययोरुभयोर्जप्ये भोजने दन्तधावने॥ ११

पितृकार्ये च दैवे च तथा मूत्रपुरीषयोः।
उत्साहे मैथुने वापि तथा वै गुरुसन्निधौ॥ १२

यागे दाने ब्रह्मयज्ञे द्विजो मौनं समाचरेत्।
देवता ऋषयः सर्वे पिशाचोरगराक्षसाः॥ १३

इतो गच्छन्तु भूतानि बहिर्भूमिं करोम्यहम्।
इति सम्प्रार्थ्य पश्चात्तु कुर्याच्छौचं यथाविधि॥ १४

वाय्वग्नी विप्रमादित्यमापः पश्यंस्तथैव गाः।
न कदाचन कुर्वीत विण्मूत्रस्य विसर्जनम्॥ १५

उदङ्मुखो दिवा कुर्याद्रात्रौ चेद्दक्षिणामुखः।
तत आच्छाद्य विण्मूत्रं लोष्ठपर्णतृणादिभिः॥ १६

गृहीतलिङ्ग उत्थाय स गच्छेद्वारिसन्निधौ।
पात्रे जलं गृहीत्वा तु गच्छेदन्यत्र चैव हि॥ १७

ब्रह्मचर्य-आश्रममें स्थित द्विजको मल-मूत्र त्यागते समय यज्ञोपवीत अपने कानपर रख लेना चाहिये। वानप्रस्थ तथा गृहस्थ यज्ञोपवीतको आगे लटकाकर पीठपर कर ले॥ ७॥

गृहस्थको यज्ञोपवीत कण्ठीके समान पीठकी ओर लटकाकर और प्रथम आश्रममें स्थित ब्रह्मचारीको यज्ञोपवीत कानपर रखकर मल-मूत्रका त्याग करना चाहिये॥ ८॥

तृणोंसे भूमिको ढँककर, सिरको वस्त्रसे आच्छादित करके, मौन हो करके, थूकने तथा श्वासक्रियासे रहित होकर मल-मूत्रका त्याग करना चाहिये॥ ९॥

जोती हुई भूमिपर, जलमें, चिताके स्थानपर, पर्वतपर, जीर्ण देवस्थलोंपर, वल्मीक (बिमौट)-पर तथा हरी घासपर, मल-मूत्र नहीं करना चाहिये। मल-मूत्रका त्याग न तो जीव-जन्तुवाले गड्ढोंमें, न तो चलते हुए और न तो रास्तेमें स्थित होकर ही करे॥ १०½॥

दोनों सन्ध्याओंमें, जपकालमें, भोजनके समय, दन्तधावन करते समय, पितृ तथा देव-कार्य सम्पन्न करते समय, मल-मूत्रके उत्सर्गके समय, हर्षातिरेककी स्थितिमें, मैथुन करते समय, गुरुकी सन्निधिमें, यज्ञ करते समय, दान देते समय तथा ब्रह्मयज्ञ (स्वाध्याय)-के समय द्विजको मौन धारण किये रहना चाहिये॥ ११-१२½॥

शौचसे पूर्व ऐसा उच्चारण करना चाहिये—सभी देवता, ऋषि, पिशाच, नाग, राक्षस तथा भूत-समुदाय यहाँसे चले जायँ; क्योंकि मैं यहाँ मल-त्याग करना चाहता हूँ। इस प्रकार प्रार्थना करके विधिपूर्वक शौच करना चाहिये॥ १३-१४॥

वायु, अग्नि, ब्राह्मण, सूर्य, जल तथा गौको देखते हुए मल-मूत्रका त्याग कभी नहीं करना चाहिये। दिनमें उत्तर दिशाकी ओर तथा रातमें दक्षिण दिशाकी ओर मुख करके मल-मूत्रका त्याग करना चाहिये। तत्पश्चात् मल-मूत्रको मिट्टीके ढेलों, पत्तों, तृण आदिसे ढँक करके पुनः उठकर जननेन्द्रियको पकड़े हुए जलके निकट जाना चाहिये। पात्रमें जल लेकर वहाँसे दूसरे स्थानपर जाना चाहिये॥ १५—१७॥

गृहीत्वा मृत्तिकां कूलाच्छ्वेतां ब्राह्मणसत्तमः।
रक्तां पीतां तथा कृष्णां गृह्णीयुश्चान्यवर्णकाः॥ १८

अथवा या यत्र देशे सैव ग्राह्या द्विजोत्तमैः।
अन्तर्जलाद्देवगृहाद्वल्मीकान्मूषकोत्करात् ॥ १९
कृतशौचावशिष्टाच्च न ग्राह्याः पञ्चमृत्तिकाः।

मूत्रात्तु द्विगुणं शौचे मैथुने त्रिगुणं स्मृतम्॥ २०

एका लिङ्गे करे तिस्र उभयोर्मृद्द्वयं स्मृतम्।
मूत्रशौचं समाख्यातं शौचे तद् द्विगुणं स्मृतम्॥ २१

विट्शौचे लिङ्गदेशे तु प्रदद्यान्मृत्तिकाद्वयम्।
पञ्चापाने दशैकस्मिन्नुभयोः सप्त मृत्तिकाः॥ २२

वामपादं पुरस्कृत्य पश्चाद्दक्षिणमेव च।
प्रत्येकं च चतुर्वारं मृत्तिकां लेपयेत्सुधीः॥ २३

एवं शौचं गृहस्थस्य द्विगुणं ब्रह्मचारिणः।
त्रिगुणं वानप्रस्थस्य यतीनां च चतुर्गुणम्॥ २४

आर्द्रामलकमाना तु मृत्तिका शौचकर्मणि।
प्रत्येकं तु सदा ग्राह्या नातो न्यूना कदाचन॥ २५

एतद्दिवा स्याद्विट्शौचं तदर्धं निशि कीर्तितम्।
आतुरस्य तदर्धं तु मार्गस्थस्य तदर्धकम्॥ २६

स्त्रीशूद्राणामशक्तानां बालानां शौचकर्मणि।
यथा गन्धक्षयः स्यात्तु तथा कुर्यादसंख्यकम्॥ २७

गन्धलेपक्षयो यावत्तावच्छौचं विधीयते।
सर्वेषामेव वर्णानामित्याह भगवान्मनुः॥ २८

शुद्धिके लिये जलाशयके तटसे श्रेष्ठ ब्राह्मणको श्वेत, क्षत्रियको लाल, वैश्यको पीली तथा शूद्रको काली मिट्टी लेनी चाहिये अथवा जिस स्थानपर जो मिट्टी उपलब्ध हो जाय; उत्तम द्विजको वही ले लेनी चाहिये। पानीके अन्दरसे, देवालयसे, वल्मीकसे तथा चूहेके बिलसे गृहीत और शौचसे अवशिष्ट—ये पाँच मिट्टियाँ ग्राह्य नहीं हैं॥ १८-१९½ ॥

मूत्र-त्यागकी अपेक्षा मल-त्यागमें दोगुनी तथा मैथुनके बाद तीन गुनी शुद्धि कही गयी है। मूत्र-त्यागके पश्चात् लिंगमें एक बार, बायें हाथमें तीन बार और पुनः दोनों हाथोंमें दो बार मिट्टी लगाना बताया गया है; इसे मूत्र-शौच कहा गया है। मल-शौचमें यही क्रिया दोगुनी कही गयी है। मल-त्यागके पश्चात् शुद्धिहेतु लिंगमें दो बार, गुदामें पाँच बार तथा दोनों हाथोंमें ग्यारह बार मिट्टी लगानी चाहिये॥ २०—२२॥

उत्तम बुद्धिवाले पुरुषको पहले अपने बायें पैर तथा बादमें दाहिने पैरमें—इस प्रकार प्रत्येकमें चार-चार बार मिट्टी लगाकर शुद्धि करनी चाहिये॥ २३॥

शुद्धि सम्बन्धी यह नियम गृहस्थोंके लिये है। ब्रह्मचारीको इससे दुगुनी, वानप्रस्थको तीन गुनी तथा संन्यासीको चार गुनी शुद्धि करनेका विधान है॥ २४॥

शौचकर्ममें प्रत्येक बार आर्द्र आँवलेके बराबर मिट्टी सदा लेनी चाहिये, इससे कम कभी नहीं लेनी चाहिये। दिनमें मल-त्यागके बादकी शुद्धिका यही नियम है। रात्रिमें इससे आधे, रोगीके लिये उससे आधे तथा मार्गमें स्थित व्यक्तिके लिये उससे भी आधे परिमाणमें शुद्धिका विधान बताया गया है॥ २५-२६॥

स्त्रियों, शूद्रों, अशक्तजनों तथा बालकोंके लिये शौचकर्ममें मिट्टी लगानेकी कोई संख्या नहीं है। जितनी बारमें दुर्गन्ध समाप्त हो जाय, उतनी बार मिट्टी लगानी चाहिये। जबतक दुर्गन्धि मिट नहीं जाती, तबतक बार-बार मिट्टीके अनुलेपनसे शुद्धि-कर्म करनेका विधान है। यह नियम सभी वर्णोंके लिये है—ऐसा भगवान् मनुने कहा है॥ २७-२८॥

वामहस्तेन शौचं तु कुर्याद्वै दक्षिणेन न।
नाभेरधो वामहस्तो नाभेरूर्ध्वं तु दक्षिणः॥ २९

शौचकर्मणि विज्ञेयो नान्यथा द्विजपुङ्गवैः।
जलपात्रं न गृह्णीयाद्विण्मूत्रोत्सर्जने बुधः॥ ३०

गृह्णीयाद्यदि मोहेन प्रायश्चित्तं चरेत्ततः।
मोहाद्वाप्यथवालस्यान्न कुर्याच्छौचमात्मनः॥ ३१

जलाहारस्त्रिरात्रः स्यात्ततो जापाच्च शुध्यति।
देशकालद्रव्यशक्तिस्वोपपत्तीश्च सर्वशः॥ ३२

ज्ञात्वा शौचं प्रकर्तव्यमालस्यं नात्र धारयेत्।
पुरीषोत्सर्जने कुर्याद् गण्डूषान्द्वादशैव तु॥ ३३

चतुरो मूत्रविक्षेपे नातो न्यूनान्कदाचन।
अधोमुखं नरः कृत्वा त्यजेत्तं वामतः शनैः॥ ३४

आचम्य च ततः कुर्याद्दन्तधावनमादरात्।
कण्टकिक्षीरवृक्षोत्थं द्वादशाङ्गुलमव्रणम्॥ ३५

कनिष्ठिकाग्रवत्स्थूलं पूर्वार्धे कृतकूर्चकम्।
करञ्जोदुम्बरौ चूतः कदम्बो लोध्रचम्पकौ।
बदरीति द्रुमाश्चेति प्रोक्ता दन्तप्रधावने॥ ३६

अन्नाद्याय व्यूहध्वंसे सोमो राजायमागमत्।
स मे मुखं प्रक्षाल्य तेजसा च भगेन च॥ ३७

आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजाः पशुवसूनि च।
ब्रह्मप्रज्ञां च मेधां च त्वन्नो देहि वनस्पते॥ ३८

अभावे दन्तकाष्ठस्य प्रतिषिद्धदिनेषु च।
अपां द्वादशगण्डूषैर्विदध्याद्दन्तधावनम्॥ ३९

शुद्धि-कार्य दाहिने हाथसे न करके सदा बायें हाथसे ही करना चाहिये। नाभिसे नीचे बायें हाथ तथा इससे ऊपर दाहिने हाथका प्रयोग करना चाहिये। शौचकर्मके सम्बन्धमें श्रेष्ठ द्विजोंको यही नियम समझना चाहिये, इसके विपरीत नहीं॥ २९$\frac{1}{2}$॥

मल-मूत्रका त्याग करते समय विद्वान्‌को जलपात्र हाथमें नहीं लिये रहना चाहिये। यदि अज्ञानतावश लेता है तो बादमें प्रायश्चित्त करना चाहिये। मोह अथवा आलस्यवश यदि वह अपनी शुद्धि नहीं करता तो [इसके प्रायश्चित्तस्वरूप] तीन रात केवल जलके आहारपर रहना चाहिये। इसके बाद गायत्रीजपसे शुद्धि हो जाती है॥ ३०-३१$\frac{1}{2}$॥

देश, काल, द्रव्य, शक्ति तथा अपने साधनोंपर भलीभाँति विचार करके शुद्धिकार्य करना चाहिये; इसमें आलस्य नहीं करना चाहिये॥ ३२$\frac{1}{2}$॥

मल-त्यागके उपरान्त शुद्धिके लिये बारह बार तथा मूत्र-त्यागके उपरान्त चार बार कुल्ला करना चाहिये; इससे कम कभी नहीं करना चाहिये। मनुष्यको चाहिये कि मुख नीचे करके कुल्लेका जल धीरे-धीरे अपने बायीं ओर फेंके॥ ३३-३४॥

तत्पश्चात् आचमन करके सावधानीपूर्वक दन्त-धावन करना चाहिये। इसके लिये काँटे तथा दूधवाले वृक्षसे बारह अंगुलके प्रमाणवाली, छिद्ररहित, कनिष्ठिका अँगुलीके अग्र-भागके सदृश मोटाईवाली तथा आधे भागतक कूर्चके समान बनायी गयी दातौन लेनी चाहिये। करंज, गूलर, आम, कदम्ब, लोध, चम्पा तथा बेरके वृक्ष दन्तधावनके लिये उत्तम कहे गये हैं॥ ३५-३६॥

[उस समय ऐसी प्रार्थना करे] अन्न आदिको सुपाच्य बनाने तथा विघ्नोंको दूर करनेके लिये स्वयं ये [वनस्पतियोंके] राजा सोम यहाँ आये हुए हैं। वे अपने तेज तथा ऐश्वर्यसे मेरे मुखका प्रक्षालन करें। हे वनस्पते! आप मुझे आयु, बल, यश, तेज, प्रजा, पशु, धन, ब्रह्मज्ञान तथा मेधा प्रदान करें॥ ३७-३८॥

दन्तकाष्ठके अभावमें अथवा निषिद्ध तिथियोंमें जलसे बारह बार कुल्ला कर लेनेसे दन्तधावनकी विधि पूर्ण हो जाती है॥ ३९॥

रवेर्दिने यः कुरुते प्राणी दन्तस्य धावनम्।
सविता भक्षितस्तेन स्वकुलं तेन घातितम्॥ ४०
प्रतिपद्दर्शषष्ठीषु नवम्येकादशीरवौ।
दन्तानां काष्ठसंयोगाद्दहत्यासप्तमं कुलम्॥ ४१

जो मनुष्य रविवारको दन्तधावन करता है, उसने मानो सूर्यका ही भक्षण कर लिया तथा अपने कुलका स्वयं विनाश कर लिया। साथ ही प्रतिपदा, अमावास्या, षष्ठी, नवमी, एकादशी तथा रविवारको काष्ठसे दन्तधावन करनेसे वह व्यक्ति अपनी सात पीढ़ियोंको जला डालता है॥ ४०-४१॥

कृत्वालं पादशौचं ह्यमलमथ जलं
त्रिःपिबेद् द्विर्विमृज्य
तर्जन्याङ्गुष्ठवत्या सजलमभिमृशे-
न्नासिकारन्ध्रयुग्मम्।
अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां नयनयुगयुतं
कर्णयुग्मं कनिष्ठा-
ङ्गुष्ठाभ्यां नाभिदेशे हृदयमथ तले-
नाङ्गुलीभिः शिरांसि॥ ४२

पाद-प्रक्षालन करके तीन बार शुद्ध जलसे आचमन करनेके पश्चात् दो बार मुख पोंछ लेना चाहिये। तदनन्तर जल लेकर तर्जनी तथा अँगूठेसे दोनों नासिकाछिद्रोंका, अँगूठे तथा अनामिकासे दोनों नेत्रों तथा दोनों कानोंका, कनिष्ठा तथा अँगूठेसे नाभिस्थलका, हाथके तलसे हृदयका और सभी अँगुलियोंसे सिरका स्पर्श करना चाहिये॥ ४२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायामेकादशस्कन्धे शौचविधिवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥



अथ तृतीयोऽध्यायः

सदाचार-वर्णन और रुद्राक्ष-धारणका माहात्म्य

श्रीनारायण उवाच

(शुद्धं स्मार्तं चाचमनं पौराणं वैदिकं तथा।
तान्त्रिकं श्रौतमित्याहुः षड्विधं श्रुतिचोदितम्॥

विण्मूत्रादिकशौचं च शुद्धं च परिकीर्तितम्।
स्मार्तं पौराणिकं कर्म आचान्ते विधिपूर्वकम्॥

वैदिकं श्रौत्रमित्यादि ब्रह्मयज्ञादिपूर्वकम्।
अस्त्रविद्यादिकं कर्म तान्त्रिको विधिरुच्यते॥)

श्रीनारायण बोले—(शुद्ध, स्मार्त, पौराणिक, वैदिक, तान्त्रिक तथा श्रौत—यह छः प्रकारका श्रुति-प्रतिपादित आचमन कहा गया है। मल-मूत्रादिके विसर्जनके पश्चात् शुद्धिके लिये किया जानेवाला आचमन शुद्ध आचमन कहा गया है। कर्मके पूर्व किया गया आचमन स्मार्त तथा पौराणिक कहा जाता है। ब्रह्मयज्ञ (वेदपाठ) आरम्भ करनेके पूर्व किया गया आचमन वैदिक तथा श्रौत एवं अस्त्र-विद्या आदि कर्मोंके प्रारम्भसे पूर्व कृत आचमन तान्त्रिक आचमन कहा जाता है।)

स्मृत्वा चोङ्कारगायत्रीं निबध्नीयाच्छिखां तथा।
पुनराचम्य हृदयं बाहू स्कन्धौ च संस्पृशेत्॥ १

ॐकार तथा गायत्री मन्त्रका स्मरण करके शिखाबन्धन करे। तत्पश्चात् आचमन करके हृदय, दोनों भुजाओं तथा दोनों स्कन्धोंका स्पर्श करे॥ १॥

क्षुते निष्ठीवने चैव दन्तोच्छिष्टे तथानृते।
पतितानां च सम्भाषे दक्षिणं श्रवणं स्पृशेत्॥ २

अग्निरापश्च वेदाश्च सोमः सूर्योऽनिलस्तथा।
सर्वे नारद विप्रस्य कर्णे तिष्ठन्ति दक्षिणे॥ ३

छींकने, थूकने, दाँतोंसे जूठनका स्पर्श हो जाने, झूठ बोलने तथा पतितोंसे बातचीत हो जानेपर शुद्धिहेतु दाहिने कानका स्पर्श करना चाहिये। हे नारद! अग्नि, जल, चारों वेद, चन्द्रमा, सूर्य तथा वायु—ये सब ब्राह्मणके दाहिने कानपर विराजमान रहते हैं॥ २-३॥

ततस्तु गत्वा नद्यादौ प्रातःस्नानं विशोधनम्।
समाचरेन्मुनिश्रेष्ठ देहसंशुद्धिहेतवे॥ ४

अत्यन्तमलिनो देहो नवद्वारैर्मलं वहन्।
सदास्ते तच्छोधनाय प्रातःस्नानं विधीयते॥ ५

अगम्यागमनात्पापं यच्च पापं प्रतिग्रहात्।
रहस्याचरितं पापं मुच्यते स्नानकर्मणा॥ ६

अस्नातस्य क्रियाः सर्वा भवन्ति विफला यतः।
तस्मात्प्रातश्चरेत्स्नानं नित्यमेव दिने दिने॥ ७

दर्भयुक्तश्चरेत्स्नानं तथा सन्ध्याभिवन्दनम्।
सप्ताहं प्रातरस्नायी सन्ध्याहीनस्त्रिभिर्दिनैः॥ ८

द्वादशाहमनग्निः सन्द्विजः शूद्रत्वमाप्नुयात्।
अल्पत्वाद्धोमकालस्य बहुत्वात्स्नानकर्मणः॥ ९

प्रातर्न तु तथा स्नायाद्धोमकाले विगर्हितः।
गायत्र्यास्तु परं नास्ति इह लोके परत्र च॥ १०

गायन्तं त्रायते यस्माद् गायत्रीत्यभिधीयते।
प्रणवेन तु संयुक्तां व्याहृतित्रयसंयुताम्॥ ११

वायुं वायौ जयेद्विप्रः प्राणसंयमनत्रयात्।
ब्राह्मणः श्रुतिसम्पन्नः स्वधर्मनिरतः सदा॥ १२

स वैदिकं जपेन्मन्त्रं लौकिकं न कदाचन।
गौशृङ्गे सर्षपो यावत् तावद्येषां न स स्थिरः॥ १३

हे मुनिश्रेष्ठ! तत्पश्चात् नदी आदिपर जाकर देह-शुद्धिके लिये विधिपूर्वक प्रातःकालिक स्नान करना चाहिये। नौ द्वारोंसे निरन्तर मल निकालनेवाला शरीर अत्यन्त अशुद्ध रहता है, अतएव उसकी शुद्धिके लिये प्रभात-वेलामें स्नान किया जाता है। अगम्या स्त्रीके साथ गमन करने, प्रतिग्रह स्वीकार करने तथा एकान्तमें निन्द्य कर्म करनेसे जो पाप लगता है, उन सभीसे मनुष्य प्रातःस्नान कर लेनेसे मुक्त हो जाता है॥ ४—६॥

चूँकि प्रातःस्नान न करनेवालेकी सभी क्रियाएँ निष्फल हो जाती हैं, अतएव प्रतिदिन प्रातःकालीन स्नान अवश्य ही करना चाहिये॥ ७॥

स्नान तथा सन्ध्यावन्दन-कार्य कुशसहित करना चाहिये। सात दिनोंतक प्रातःकाल स्नान न करनेवाला, तीन दिनोंतक सन्ध्योपासन न करनेवाला तथा बारह दिनोंतक अग्निकर्म (हवन) न करनेवाला द्विज शूद्रत्वको प्राप्त हो जाता है॥ ८½॥

स्नानादिके अधिक समय-साध्य होनेके फलस्वरूप हवन-कर्मके लिये कम समय बचनेके कारण प्रातःकाल उस प्रकार स्नान न करे कि होम-कार्य उचित समयपर सम्पन्न न हो पानेसे कर्ताको निन्दाका पात्र बनना पड़े॥ ९½॥

गायत्रीसे बढ़कर इस लोक तथा परलोकमें दूसरा कुछ भी नहीं है। चूँकि यह उच्चारण करनेवालेकी रक्षा करती है, अतः इसे गायत्री नामसे अभिहित किया जाता है॥ १०॥

तीन बार प्राणायाम करके विप्रको प्राणवायुको अपानवायुमें नियन्त्रित करना चाहिये और प्रणव (ॐकार) तथा व्याहृतियों (भूर्भुवः स्वः)-सहित गायत्री-जप करना चाहिये॥ ११½॥

श्रुति-सम्पन्न ब्राह्मणको सदा अपने धर्मका पालन करना चाहिये। उसे वैदिक मन्त्रका जप करना चाहिये, लौकिक मन्त्रका जप कभी नहीं करना चाहिये॥ १२½॥

गायकी सींगपर सरसों जितने समयतक स्थिर रह सकती है, उतने समय भी जिनका प्राणवायु प्राणायाम-कालमें नहीं रुकता, वे अपने दोनों पक्षों

न तारयन्त्युभौ पक्षौ पितॄनेकोत्तरं शतम्।
सगर्भो जपसंयुक्तस्त्वगर्भो ध्यानमात्रकः॥ १४

स्नानाङ्गतर्पणं कृत्वा देवर्षिपितृतोषकम्।
शुद्धे वस्त्रे परीधाय जलाद् बहिरुपागतः॥ १५

विभूतिधारणं कार्यं रुद्राक्षाणां च धारणम्।
क्रमयोगेन कर्तव्यं सर्वदा जपसाधकैः॥ १६

रुद्राक्षान्कण्ठदेशे दशनपरिमिता-
न्मस्तके विंशती द्वे
षट् षट् कर्णप्रदेशे करयुगलकृते
द्वादश द्वादशैव।
बाह्वोरिन्दोः कलाभिर्नयनयुगकृते
त्वेकमेकं शिखायां
वक्षस्यष्टाधिकं यः कलयति शतकं
स स्वयं नीलकण्ठः॥ १७

बद्ध्वा स्वर्णेन रुद्राक्षं रजतेनाथवा मुने।
शिखायां धारयेन्नित्यं कर्णयोर्वा समाहितः॥ १८

यज्ञोपवीते हस्ते वा कण्ठे तुन्देऽथवा नरः।
श्रीमत्पञ्चाक्षरेणैव प्रणवेन तथापि वा॥ १९

निर्व्याजभक्त्या मेधावी रुद्राक्षं धारयेन्मुदा।
रुद्राक्षधारणं साक्षाच्छिवज्ञानस्य साधनम्॥ २०

रुद्राक्षं यच्छिखायां तत्तारतत्त्वमिति स्मरेत्।
कर्णयोरुभयोर्ब्रह्मन् देवं देवीं च भावयेत्॥ २१

यज्ञोपवीते वेदांश्च तथा हस्ते दिशः स्मरेत्।
कण्ठे सरस्वतीं देवीं पावकं चापि भावयेत्॥ २२

सर्वाश्रमाणां वर्णानां रुद्राक्षाणां च धारणम्।
कर्तव्यं मन्त्रतः प्रोक्तं द्विजानां नान्यवर्णिनाम्॥ २३

(माता-पिता)-की एक सौ एक पीढ़ियोंके पितरोंको कभी नहीं तार सकते। जपसहित किया गया प्राणायाम सगर्भ और केवल ध्यानयुक्त प्राणायाम अगर्भ नामवाला है॥ १३-१४॥

देवताओं, ऋषियों तथा पितरोंको सन्तुष्ट करनेके निमित्त स्नानांग-तर्पण करना चाहिये। पुनः जलसे बाहर आकर दो शुद्ध वस्त्र धारण करके विभूति तथा रुद्राक्षकी माला धारण करनी चाहिये। इस प्रकार जप-साधना करनेवालोंको क्रमसे यह सब सदैव करना चाहिये॥ १५-१६॥

जो व्यक्ति अपने कण्ठमें बत्तीस, मस्तकपर चालीस, दोनों कानोंमें छः-छः, दोनों हाथोंमें बारह-बारह, दोनों बाहुओंमें चन्द्रकलाके बराबर सोलह-सोलह, दोनों नेत्रोंमें एक-एक, शिखामें एक तथा वक्षःस्थलपर एक सौ आठ रुद्राक्ष धारण करता है, वह साक्षात् नीलकण्ठ शिव हो जाता है॥ १७॥

हे मुने! सोने अथवा चाँदीके तारमें पिरोकर मनुष्यको शिखामें, दोनों कानोंमें, यज्ञोपवीतमें, हाथमें, कण्ठमें तथा उदरपर श्रीपंचाक्षर मन्त्र '**नमः शिवाय**' अथवा प्रणव (ओंकार)-के जपके साथ समाहित होकर रुद्राक्ष धारण करना चाहिये॥ १८-१९॥

मेधावी पुरुषको निष्कपट भक्तिके साथ प्रसन्नतापूर्वक रुद्राक्ष धारण करना चाहिये; क्योंकि रुद्राक्ष धारण करना साक्षात् शिवज्ञानकी प्राप्तिका साधन है॥ २०॥

जो रुद्राक्ष शिखामें धारण किया जाता है, उसे तारक तत्त्वकी भाँति समझना चाहिये। हे ब्रह्मन्! दोनों कानोंमें धारण किये गये रुद्राक्षमें शिव तथा शिवाकी भावना करनी चाहिये। यज्ञोपवीतमें धारण किये गये रुद्राक्षको चारों वेद तथा हाथमें धारण किये गये रुद्राक्षको दिशाएँ जानना चाहिये। कण्ठमें धारित रुद्राक्षको देवी सरस्वती तथा अग्निके तुल्य मानना चाहिये॥ २१-२२॥

सभी आश्रमों तथा वर्णोंके लोगोंके लिये रुद्राक्ष-धारण करनेका विधान है। द्विजोंको मन्त्रोच्चारणके साथ रुद्राक्ष धारण करना चाहिये, किंतु अन्य वर्णके लोगोंको नहीं॥ २३॥

रुद्राक्षधारणाद्रुद्रो भवत्येव न संशयः।
पश्यन्नपि निषिद्धांश्च तथा शृण्वन्नपि स्मरन्॥ २४

जिघ्रन्नपि तथा चाश्नन् प्रलपन्नपि सन्ततम्।
कुर्वन्नपि सदा गच्छन्विसृजन्नपि मानवः॥ २५

रुद्राक्षधारणादेव सर्वपापैर्न लिप्यते।
अनेन भुक्तं देवेन भुक्तं यत्तु तथा भवेत्॥ २६

पीतं रुद्रेण तत्पीतं घ्रातं घ्रातं शिवेन तत्।
रुद्राक्षधारणे लज्जा येषामस्ति महामुने॥ २७

तेषां नास्ति विनिर्मोक्षः संसाराज्जन्मकोटिभिः।
रुद्राक्षधारिणं दृष्ट्वा परिवादं करोति यः॥ २८

उत्पत्तौ तस्य साङ्कर्यमस्त्येवेति विनिश्चयः।
रुद्राक्षधारणादेव रुद्रो रुद्रत्वमाप्नुयात्॥ २९

मुनयः सत्यसङ्कल्पा ब्रह्मा ब्रह्मत्वमागतः।
रुद्राक्षधारणाच्छ्रेष्ठं न किञ्चिदपि विद्यते॥ ३०

रुद्राक्षधारिणे भक्त्या वस्त्रं धान्यं ददाति यः।
सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोकं स गच्छति॥ ३१

रुद्राक्षधारिणं श्राद्धे भोजयेत विमोदतः।
पितृलोकमवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा॥ ३२

रुद्राक्षधारिणः पादौ प्रक्षाल्याद्भिः पिबेन्नरः।
सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते॥ ३३

हारं वा कटकं वापि सुवर्णं वा द्विजोत्तमः।
रुद्राक्षसहितं भक्त्या धारयन् रुद्रतामियात्॥ ३४

रुद्राक्षं केवलं वापि यत्र कुत्र महामते।
समन्त्रकं वा मन्त्रेण रहितं भाववर्जितम्॥ ३५

यो वा को वा नरो भक्त्या धारयेल्लज्जयापि वा।
सर्वपापविनिर्मुक्तः सम्यग्ज्ञानमवाप्नुयात्॥ ३६

रुद्राक्ष धारण कर लेनेसे व्यक्ति साक्षात् रुद्ररूप हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं है। निषिद्ध चीजोंको देखने, उनके विषयमें सुनने, उनका स्मरण करने, उन्हें सूँघने, खाने, निरन्तर उनके विषयमें बातचीत करने, सदा ऐसे कर्म करने, अपरित्याज्य अर्थात् विहितका परित्याग करनेपर रुद्राक्ष धारण कर लेनेसे मनुष्य सभी प्रकारके पापोंसे प्रभावित नहीं होता। ऐसे व्यक्तिने जो कुछ ग्रहण कर लिया, उसे मानो शिवजीने स्वीकार कर लिया, उसने जो भी पी लिया, उसे शिवजीने पी लिया तथा जो कुछ सूँघ लिया, उसे भी मानो शिवजीने ही सूँघ लिया॥ २४—२६½ ॥

हे महामुने! जो लोग रुद्राक्ष धारण करनेमें लज्जाका अनुभव करते हैं, करोड़ों जन्मोंमें भी संसारसे उनका मोक्ष नहीं हो सकता॥ २७½ ॥

किसी रुद्राक्ष धारण करनेवालेको देखकर जो मनुष्य उसकी निन्दा करता है, उसके उत्पन्न होनेमें वर्णसंकरताका दोष निश्चितरूपसे विद्यमान होता है॥ २८½ ॥

रुद्राक्ष धारण करनेसे ही रुद्र रुद्रत्वको प्राप्त हुए, मुनिगण सत्यसंकल्पवाले हुए तथा ब्रह्माजी ब्रह्मत्वको प्राप्त हुए। अतएव रुद्राक्ष धारण करनेसे अतिरिक्त कुछ भी श्रेष्ठ नहीं है॥ २९-३०॥

जो मनुष्य रुद्राक्ष धारण करनेवालेको भक्तिपूर्वक वस्त्र तथा अन्न प्रदान करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर शिवलोकको जाता है॥ ३१॥

जो व्यक्ति प्रसन्न होकर रुद्राक्ष धारण करनेवालेको श्राद्धकर्ममें भोजन कराता है, वह पितृलोकको प्राप्त होता है; इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये॥ ३२॥

रुद्राक्ष धारण करनेवालेके दोनों चरणोंको जलसे प्रक्षालित करके उस जलको पीनेवाला मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त होकर शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है॥ ३३॥

भक्तिपूर्वक रुद्राक्षसहित हार, कड़ा या स्वर्णाभूषण धारण करनेवाला द्विजश्रेष्ठ रुद्रत्वको प्राप्त होता है॥ ३४॥

हे महामते! जो कोई भी मनुष्य जहाँ-कहीं भी समन्त्रक या अमन्त्रक अथवा भावरहित होकर अथवा लज्जासे भी भक्तिपूर्वक केवल रुद्राक्ष धारण करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त होकर सम्पूर्ण ज्ञानकी प्राप्ति कर लेता है॥ ३५-३६॥

अहो रुद्राक्षमाहात्म्यं मया वक्तुं न शक्यते।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कुर्याद्रुद्राक्षधारणम्॥ ३७

अहो, मैं रुद्राक्षमाहात्म्यका वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हूँ, अतएव पूर्ण प्रयत्नके साथ रुद्राक्ष धारण करना चाहिये॥ ३७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामेकादशस्कन्धे सदाचारनिरूपणे रुद्राक्षमाहात्म्यवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥



अथ चतुर्थोऽध्यायः

रुद्राक्षकी उत्पत्ति तथा उसके विभिन्न स्वरूपोंका वर्णन

नारद उवाच

एवंभूतानुभावोऽयं रुद्राक्षो भवतानघ।
वर्णितो महतां पूज्यः कारणं तत्र किं वद॥ १

नारदजी बोले—हे अनघ! इस प्रकारका यह आपका महान् अनुग्रह है जो आपने रुद्राक्षके विषयमें बताया; यह महान् लोगोंके लिये पूज्य है, इसका क्या कारण है, इसे बताइये॥ १॥

श्रीनारायण उवाच

एवमेव पुरा पृष्टो भगवान् गिरिशः प्रभुः।
षण्मुखेन च रुद्रस्तं यदुवाच शृणुष्व तत्॥ २

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] इसी तरहसे पूर्व कालमें षडानन स्कन्दकुमारने गिरिशायी भगवान् रुद्रसे पूछा था; तब उन्होंने उनसे जो कहा था, उसे आप सुनिये॥ २॥

ईश्वर उवाच

शृणु षण्मुख तत्त्वेन कथयामि समासतः।
त्रिपुरो नाम दैत्यस्तु पुरासीत्सर्वदुर्जयः॥ ३

ईश्वर बोले—हे षडानन! सुनो, मैं [रुद्राक्षके विषयमें] संक्षेपमें यथार्थरूपसे वर्णन कर रहा हूँ। प्राचीन कालमें सभी लोगोंसे अपराजेय त्रिपुर नामक एक दैत्य था॥ ३॥

जितास्तेन सुराः सर्वे ब्रह्मविष्णवादिदेवताः।
सर्वैस्तु कथिते तस्मिंस्तदाहं त्रिपुरं प्रति॥ ४

अचिन्तयं महाशस्त्रमघोराख्यं मनोहरम्।
सर्वदेवमयं दिव्यं ज्वलन्तं घोररूपि यत्॥ ५

उसने ब्रह्मा, विष्णु आदि सभी देवताओंको जीत लिया था। तब सभी देवताओंके द्वारा उसके विषयमें मुझसे बतानेपर मैं समस्त देवताओंकी शक्तिसे सम्पन्न, दिव्य, प्रज्वलित, भयानक रूपवाले तथा मनोहर अघोर नामक एक महान् अस्त्रके विषयमें कल्पना करने लगा॥ ४-५॥

त्रिपुरस्य वधार्थाय देवानां तारणाय च।
सर्वविघ्नोपशमनमघोरास्त्रमचिन्तयम्॥ ६

दिव्यवर्षसहस्रं तु चक्षुरुन्मीलितं मया।
पश्चान्ममाकुलाक्षिभ्यः पतिता जलबिन्दवः॥ ७

उस त्रिपुरके संहार तथा देवताओंके उद्धारके लिये मैं समस्त विघ्नोंका नाश करनेवाले उस अघोरास्त्रके लिये चिन्तन करता रहा और दिव्य एक हजार वर्षोंतक मैं नेत्र खोले रह गया। तत्पश्चात् अत्यन्त आकुल मेरे नेत्रोंसे जलकी बूँदें गिरने लगीं॥ ६-७॥

तत्राश्रुबिन्दुतो जाता महारुद्राक्षवृक्षकाः।
ममाज्ञया महासेन सर्वेषां हितकाम्यया॥ ८

बभूवुस्ते च रुद्राक्षा अष्टत्रिंशत्प्रभेदतः।
सूर्यनेत्रसमुद्भूताः कपिला द्वादश स्मृताः॥ ९

उन अश्रु-बिन्दुओंसे रुद्राक्षके बड़े-बड़े वृक्ष उत्पन्न हो गये। हे महासेन! मेरी आज्ञासे सभी लोगोंके कल्याणार्थ वे अड़तीस प्रकारके रुद्राक्ष हुए। मेरे सूर्यनेत्र (दाहिने नेत्र)-से उत्पन्न रुद्राक्ष कपिलवर्णके थे, वे बारह प्रकारके कहे गये हैं। मेरे चन्द्रनेत्र (बायें नेत्र)-से उत्पन्न रुद्राक्ष श्वेतवर्णवाले थे, वे क्रमसे

सोमनेत्रोत्थिताः श्वेतास्ते षोडशविधाः क्रमात्।
वह्निनेत्रोद्भवाः कृष्णा दश भेदा भवन्ति हि॥ १०

श्वेतवर्णश्च रुद्राक्षो जातितो ब्राह्म उच्यते।
क्षात्रो रक्तस्तथा मिश्रो वैश्यः कृष्णस्तु शूद्रकः॥ ११

एकवक्त्रः शिवः साक्षाद् ब्रह्महत्यां व्यपोहति।
द्विवक्त्रो देवदेव्यो स्याद् विविधं नाशयेदघम्॥ १२

त्रिवक्त्रस्त्वनलः साक्षात्स्त्रीहत्यां दहति क्षणात्।
चतुर्वक्त्रः स्वयं ब्रह्मा नरहत्यां व्यपोहति॥ १३

पञ्चवक्त्रः स्वयं रुद्रः कालाग्निर्नाम नामतः।
अभक्ष्यभक्षणोद्भूतैरगम्यागमनोद्भवैः ॥ १४

मुच्यते सर्वपापैस्तु पञ्चवक्त्रस्य धारणात्।
षड्वक्त्रः कार्तिकेयस्तु स धार्यो दक्षिणे करे॥ १५

ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः।
सप्तवक्त्रो महाभागो ह्यनङ्गो नाम नामतः॥ १६

तद्धारणान्मुच्यते हि स्वर्णस्तेयादिपातकैः।
अष्टवक्त्रो महासेन साक्षाद्देवो विनायकः॥ १७

अन्नकूटं तूलकूटं स्वर्णकूटं तथैव च।
दुष्टान्वयस्त्रियं वाथ संस्पृशंश्च गुरुस्त्रियम्॥ १८

एवमादीनि पापानि हन्ति सर्वाणि धारणात्।
विघ्नास्तस्य प्रणश्यन्ति याति चान्ते परं पदम्॥ १९

भवन्त्येते गुणाः सर्वे ह्यष्टवक्त्रस्य धारणात्।

सोलह प्रकारके हैं। इसी प्रकार अग्निनेत्र (तीसरे नेत्र)-से उत्पन्न रुद्राक्ष कृष्णवर्णके थे, उनके दस भेद हैं॥ ८—१०॥

श्वेतवर्णका रुद्राक्ष जातिसे ब्राह्मण, रक्तवर्णका रुद्राक्ष क्षत्रिय, मिश्रवर्णका रुद्राक्ष वैश्य तथा कृष्णवर्णका रुद्राक्ष शूद्र कहा जाता है॥ ११॥

एकमुखी रुद्राक्ष साक्षात् शिवस्वरूप है, वह ब्रह्महत्या-तकके पापको मिटा देता है। दोमुखी रुद्राक्ष देवी-देवता—इन दोनोंका स्वरूप है, वह दो प्रकारके पापोंका शमन करता है। तीन मुखवाला रुद्राक्ष साक्षात् अग्निस्वरूप है, वह स्त्री-वधजनित पापको क्षणभरमें भस्म कर डालता है। चार मुखवाला रुद्राक्ष साक्षात् ब्रह्मास्वरूप है, वह नरवधजनित पापको दूर करता है॥ १२-१३॥

पंचमुखी रुद्राक्ष साक्षात् कालाग्नि नामवाले रुद्रका स्वरूप है। पंचमुखी रुद्राक्षके धारण करनेसे मनुष्य अभक्ष्य वस्तुओंके भक्षणसे उत्पन्न होनेवाले तथा अगम्या नारीके साथ सहवास करनेसे लगे हुए सभी प्रकारके पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ १४½॥

छः मुखवाला रुद्राक्ष कार्तिकेयका स्वरूप है, उसे दाहिने हाथमें धारण करना चाहिये। इसे धारण करनेसे मनुष्य ब्रह्महत्या आदि पापोंसे मुक्त हो जाता है; इसमें सन्देह नहीं है॥ १५½॥

सप्तमुखी रुद्राक्ष अनंग नामवाले महाभाग्यशाली कामदेवका रूप है। उसे धारण करनेसे मनुष्य स्वर्णकी चोरी आदि पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ १६½॥

हे महासेन! आठ मुखवाला रुद्राक्ष साक्षात् विनायक देव है। इसे धारण करनेसे अन्न, वस्त्र तथा स्वर्ण आदिकी विपुल मात्रामें प्राप्ति होती है। धारण करनेपर यह रुद्राक्ष दूषित कुलकी स्त्री तथा गुरुपत्नीके साथ संसर्ग करनेसे लगनेवाले पापों और इसी प्रकारके अन्यान्य पापोंको भी नष्ट कर देता है। उस मनुष्यकी सभी विघ्न-बाधाएँ विनष्ट हो जाती हैं तथा अन्तमें वह परमपदको प्राप्त होता है। ये सभी गुण अष्टमुखी रुद्राक्षके धारण करनेसे फलीभूत होते हैं॥ १७—१९½॥

नववक्त्रो भैरवस्तु धारयेद्वामबाहुके॥ २०
भुक्तिमुक्तिप्रदः प्रोक्तो मम तुल्यबलो भवेत्।
भ्रूणहत्यासहस्राणि ब्रह्महत्याशतानि च॥ २१
सद्यः प्रलयमायान्ति नववक्त्रस्य धारणात्।
दशवक्त्रस्तु देवेशः साक्षाद्देवो जनार्दनः॥ २२
ग्रहाश्चैव पिशाचाश्च वेताला ब्रह्मराक्षसाः।
पन्नगाश्चोपशाम्यन्ति दशवक्त्रस्य धारणात्॥ २३
वक्त्रैकादशरुद्राक्षो रुद्रैकादशकं स्मृतम्।
शिखायां धारयेद्यो वै तस्य पुण्यफलं शृणु॥ २४
अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च।
गवां शतसहस्रस्य सम्यग्दत्तस्य यत्फलम्॥ २५
तत्फलं लभते शीघ्रं वक्त्रैकादशधारणात्।
द्वादशास्यस्य रुद्राक्षस्यैव कर्णे तु धारणात्॥ २६
आदित्यास्तोषिता नित्यं द्वादशास्ये व्यवस्थिताः।
गोमेधे चाश्वमेधे च यत्फलं तदवाप्नुयात्॥ २७
शृङ्गिणां शस्त्रिणां चैव व्याघ्रादीनां भयं न हि।
न च व्याधिभयं तस्य नैव चाधिः प्रकीर्तितः॥ २८
न च किञ्चिद्भयं तस्य न च व्याधिः प्रवर्तते।
न कुतश्चिद्भयं तस्य सुखी चैवेश्वरो भवेत्॥ २९
हस्त्यश्वमृगमार्जारसर्पमूषकदर्दुरान्।
खरांश्च श्वशृगालांश्च हत्वा बहुविधानपि॥ ३०
मुच्यते नात्र सन्देहो वक्त्रद्वादशधारणात्।
वक्त्रत्रयोदशो वत्स रुद्राक्षो यदि लभ्यते॥ ३१
कार्तिकेयसमो ज्ञेयः सर्वकामार्थसिद्धिदः।
रसो रसायनं चैव तस्य सर्वं प्रसिद्ध्यति॥ ३२

नौ मुखवाला रुद्राक्ष भैरवस्वरूप है, इसे बायीं भुजापर धारण करना चाहिये। यह भोग तथा मोक्ष देनेवाला बताया गया है। इसे धारण करनेवाला मेरे समान बलवान् हो जाता है। हजारों भ्रूणहत्या तथा सैकड़ों ब्रह्महत्याके पाप इस नौमुखी रुद्राक्षके धारण करनेसे शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं॥ २०-२१½ ॥

दसमुखी रुद्राक्ष साक्षात् देवेश्वर जनार्दन है। इस दस मुखवाले रुद्राक्षके धारण करनेसे ग्रहों, पिशाचों, बेतालों, ब्रह्मराक्षसों तथा पन्नगोंसे उत्पन्न होनेवाले विघ्न शान्त हो जाते हैं॥ २२-२३॥

ग्यारह मुखवाला रुद्राक्ष साक्षात् एकादश रुद्र है। जो मनुष्य इसे शिखामें धारण करता है, उसके पुण्यफलके विषयमें सुनो। मनुष्य हजारों अश्वमेधयज्ञ करने, वाजपेय-यज्ञ करने और सम्यक्‌रूपसे लाखों गायोंके दान करनेसे जो फल प्राप्त करता है, वही फल उसे ग्यारहमुखी रुद्राक्ष धारण करनेसे शीघ्र ही प्राप्त हो जाता है॥ २४-२५½ ॥

बारह मुखवाले रुद्राक्षको कानमें धारण करनेसे द्वादश आदित्य प्रसन्न हो जाते हैं; क्योंकि वे रुद्राक्षके बारहों मुखपर विराजमान रहते हैं। अश्वमेध करनेसे जो फल मिलता है, वह फल केवल इसे धारण करनेमात्रसे मनुष्यको प्राप्त हो जाता है। उसे सींगवाले जानवरों, व्याघ्र आदि हिंसक पशुओं तथा शस्त्रधारी शत्रुओंका भय नहीं होता। उसे शारीरिक तथा मानसिक कष्टका भी भय नहीं होता। उसे किसी तरहका रोग नहीं होता तथा वह कहींसे भी किसी तरहके भयसे ग्रस्त न रहते हुए सदा सुख तथा ऐश्वर्यसे सम्पन्न रहता है। द्वादशमुखी रुद्राक्ष धारण करनेवाला मनुष्य हाथी, घोड़े, मृग, बिल्ली, सर्प, चूहे, मेढक, गर्दभ, कुत्ते, सियार तथा अनेक प्रकारके जानवरोंको मारनेसे लगनेवाले पापसे मुक्त हो जाता है; इसमें संशय नहीं है॥ २६—३०½ ॥

हे वत्स! तेरहमुखी रुद्राक्ष यदि प्राप्त हो जाय तो उसे कार्तिकेयके सदृश जानना चाहिये। वह सभी प्रकारकी कामनाओं, अर्थों तथा सिद्धियोंको देनेवाला है। उसके लिये रस-रसायन—सब कुछ सिद्ध हो जाता है तथा समस्त प्रकारके भोग्य-पदार्थ उसे प्राप्त हो जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये। हे

तस्यैव सर्वभोग्यानि नात्र कार्या विचारणा।
मातरं पितरं चैव भ्रातरं वा निहन्ति यः॥ ३३

मुच्यते सर्वपापेभ्यो धारणात्तस्य षण्मुख।
चतुर्दशास्यो रुद्राक्षो यदि लभ्येत पुत्रक॥ ३४

धारयेत्सततं मूर्ध्नि तस्य पिण्डः शिवस्य तु।
किं मुने बहुनोक्तेन वर्णनेन पुनः पुनः॥ ३५

पूज्यते सन्ततं देवैः प्राप्यते च परा गतिः।
रुद्राक्ष एकः शिरसा धार्यो भक्त्या द्विजोत्तमैः॥ ३६

षड्विंशद्भिः शिरोमाला पञ्चाशद्धृदयेन तु।
कलाक्षैर्बाहुवलये अर्काक्षैर्मणिबन्धनम्॥ ३७

अष्टोत्तरशतैर्माला पञ्चाशद्भिः षडानन।
अथवा सप्तविंशत्या कृत्वा रुद्राक्षमालिकाम्॥ ३८

धारणाद्वा जपाद्वापि ह्यनन्तं फलमश्नुते।
अष्टोत्तरशतैर्माला रुद्राक्षैर्धार्यते यदि॥ ३९

क्षणे क्षणेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति षण्मुख।
त्रिःसप्तकुलमुद्धृत्य शिवलोके महीयते॥ ४०

षडानन! अपने माता-पिता अथवा भाईका वध करनेवाला व्यक्ति भी उस रुद्राक्षको धारण करनेमात्रसे समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ३१-३३½ ॥

हे पुत्र! यदि किसीको चौदह मुखवाला रुद्राक्ष मिल जाय और वह उसे निरन्तर अपने मस्तकपर धारण करे तो उसका शरीर साक्षात् शिवतुल्य हो जाता है॥ ३४½ ॥

[श्रीनारायण बोले—] हे मुने! अधिक कहने तथा बार-बार वर्णन करनेसे क्या प्रयोजन? देवतालोग भी उसकी निरन्तर पूजा करते हैं और अन्तमें उसे परमगति मिलती है॥ ३५½ ॥

[शिवजी बोले—] हे षडानन! उत्तम द्विजोंको भक्तिपूर्वक एक रुद्राक्ष सिरपर धारण करना चाहिये। छब्बीस रुद्राक्षोंकी माला बनाकर उसे सिरपर, पचास रुद्राक्षकी माला हृदयपर, सोलह रुद्राक्षकी माला बाहु-वलयपर तथा बारह रुद्राक्षकी माला मणिबन्धपर धारण करना चाहिये। एक सौ आठ रुद्राक्षोंकी माला अथवा पचास रुद्राक्षोंकी माला अथवा सत्ताईस रुद्राक्षोंकी माला बनाकर उसे धारण करने अथवा उससे जप करनेसे अनन्त फल प्राप्त होता है॥ ३६—३८½ ॥

हे षडानन! यदि कोई मनुष्य एक सौ आठ रुद्राक्षोंसे निर्मित माला धारण करता है, तो वह प्रतिक्षण अश्वमेध-यज्ञ करनेका फल प्राप्त करता है और अपनी इक्कीस पीढ़ियोंका उद्धार करके अन्तमें शिवलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ ३९-४०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामेकादशस्कन्धे रुद्राक्षमाहात्म्यवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥



अथ पञ्चमोऽध्यायः

जपमालाका स्वरूप तथा रुद्राक्ष-धारणका विधान

ईश्वर उवाच

लक्षणं जपमालायाः शृणु वक्ष्यामि षण्मुख।
रुद्राक्षस्य मुखं ब्रह्मा बिन्दू रुद्र इतीरितः॥ १
विष्णुः पुच्छं भवेच्चैव भोगमोक्षफलप्रदम्।

ईश्वर बोले—हे षडानन! अब मैं जपमालाका लक्षण बताऊँगा, उसे सुनो। रुद्राक्षके मुखको ब्रह्मा तथा बिन्दु (ऊपरी भाग)-को रुद्र कहा गया है। रुद्राक्षका पुच्छ (नीचेका भाग) विष्णुरूप है, यह भोग तथा मोक्षका फल प्रदान करता है॥ १½ ॥

पञ्चविंशतिभिश्चाक्षैः पञ्चवक्त्रैः सकण्टकैः॥ २

रक्तवर्णैः सितैर्मिश्रैः कृतरन्ध्रविदर्भितैः।
अक्षसूत्रं प्रकर्तव्यं गोपुच्छवलयाकृति॥ ३

वक्त्रं वक्त्रेण संयोज्य पुच्छं पुच्छेन योजयेत्।
मेरुमूर्ध्वमुखं कुर्यात्तदूर्ध्वं नागपाशकम्॥ ४

एवं संग्रथितां मालां मन्त्रसिद्धिप्रदायिनीम्।
प्रक्षाल्य गन्धतोयेन पञ्चगव्येन चोपरि॥ ५

ततः शिवाम्भसाक्षाल्य ततो मन्त्रगणान् न्यसेत्।
स्पृष्ट्वा शिवास्त्रमन्त्रेण कवचेनावगुण्ठयेत्॥ ६

मूलमन्त्रं न्यसेत्पश्चात्पूर्ववत्कारयेत्तथा।
सद्योजातादिभिः प्रोक्ष्य यावदष्टोत्तरं शतम्॥ ७

मूलमन्त्रं समुच्चार्य शुद्धभूमौ निधाय च।
तस्योपरि न्यसेत्साम्बं शिवं परमकारणम्॥ ८

प्रतिष्ठिता भवेन्माला सर्वकामफलप्रदा।
यस्य देवस्य यो मन्त्रस्तां तेनैवाभिपूजयेत्॥ ९

मूर्ध्नि कण्ठेऽथवा कर्णे न्यसेद्वा जपमालिकाम्।
रुद्राक्षमालया चैवं जप्तव्यं नियतात्मना॥ १०

कण्ठे मूर्ध्नि हृदि प्रान्ते कर्णे बाहुयुगेऽथवा।
रुद्राक्षधारणं नित्यं भक्त्या परमया युतः।११

किमत्र बहुनोक्तेन वर्णनेन पुनः पुनः।
रुद्राक्षधारणं नित्यं तस्मादेतत्प्रशस्यते॥ १२

स्नाने दाने जपे होमे वैश्वदेवे सुरार्चने।
प्रायश्चित्ते तथा श्राद्धे दीक्षाकाले विशेषतः॥ १३

श्वेतवर्ण या रक्तवर्ण या मिश्रित वर्णवाले, छिद्रयुक्त, अखण्डित तथा काँटेदार पाँच मुखवाले पचीस रुद्राक्षोंसे गायकी पूँछके आकारकी एक अक्षमाला बनानी चाहिये॥ २-३॥

[माला बनानेके लिये] एक दानेका मुख दूसरे दानेके मुखसे संयोजित करते हुए एक दानेका पुच्छ (नुकीला भाग) दूसरे दानेके पुच्छसे जोड़ते जाना चाहिये। सुमेरुका मुख ऊपरकी तरफ और नागपाश उसके ऊपर करना चाहिये॥ ४॥

इस प्रकार गूँथी गयी मन्त्र-सिद्धिप्रदायिनी मालाको पहले गन्धोदक और बादमें पंचगव्यसे विधिवत् प्रक्षालित करके तथा पुनः शिवाभिषिक्त जलसे स्नान करानेके पश्चात् इसमें मन्त्रोंका न्यास करना चाहिये। शिवास्त्रमन्त्रसे स्पर्श करके कवच-मन्त्र (हुम्)-से अवगुंठन करना चाहिये॥ ५-६॥

इसके बाद मूलमन्त्रसे पूर्ववत् न्यास करे तथा गुरु आदिसे न्यास कराये। पुनः सद्योजात आदि मन्त्रोंसे एक सौ आठ बार उसपर जलसे प्रोक्षण करनेके पश्चात् मूलमन्त्रका उच्चारण करके उसे शुद्ध भूमिपर रखकर उसके ऊपर जगत्के परम कारण साम्बसदाशिवका न्यास करना चाहिये॥ ७-८॥

इस प्रकार प्रतिष्ठित की गयी माला समस्त कामनाओंका फल प्रदान करनेवाली होती है। जिस देवताका जो मन्त्र सिद्ध करना हो, उसी मन्त्रसे उस मालाका पूजन करना चाहिये॥ ९॥

जपमालाको मस्तकपर, गलेमें अथवा कानपर धारण करना चाहिये और संयतचित्त होकर रुद्राक्षमालासे ही जप करना चाहिये। परम श्रद्धासे युक्त होकर रुद्राक्षकी माला कण्ठमें, मस्तकपर, हृदयपर, पार्श्वभागमें, कानमें तथा दोनों भुजाओंपर नित्य धारण करनी चाहिये॥ १०-११॥

रुद्राक्षके सम्बन्धमें अधिक कहने तथा बार-बार वर्णन करनेसे क्या लाभ? अतः नित्य रुद्राक्ष धारण करना श्रेयस्कर है। विशेष करके स्नान, दान, जप, होम, बलिवैश्वदेव, देवपूजन, प्रायश्चित्त कर्म, श्राद्ध तथा दीक्षाके समय इसे अवश्य धारण करना चाहिये॥ १२-१३॥

अरुद्राक्षधरो भूत्वा यत्किञ्चित्कर्म वैदिकम्।
कुर्वन्विप्रस्तु मोहेन नरके पतति ध्रुवम्॥ १४

रुद्राक्षं धारयेन्मूर्ध्नि कण्ठे सूत्रे करेऽथवा।
सुवर्णमणिसम्भिन्नं शुद्धं नान्यैर्धृतं शिवम्॥ १५

नाशुचिर्धारयेदक्षं सदा भक्त्यैव धारयेत्।
रुद्राक्षतरुसम्भूतवातोद्धूततृणान्यपि ॥ १६

पुण्यलोकं गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम्।
रुद्राक्षं धारयन्पापं कुर्वन्नपि च मानवः॥ १७

सर्वं तरति पाप्मानं जाबालश्रुतिराह हि।
पशवो हि च रुद्राक्षधारणाद्यान्ति रुद्रताम्॥ १८

किमु ये धारयन्ति स्म नरा रुद्राक्षमालिकाम्।
रुद्राक्षः शिरसा ह्येको धार्यो रुद्रपरैः सदा॥ १९

ध्वंसनं सर्वदुःखानां सर्वपापविमोचनम्।
व्याहरन्ति च नामानि ये शम्भोः परमात्मनः॥ २०

रुद्राक्षालङ्कृता ये च ते वै भागवतोत्तमाः।
रुद्राक्षधारणं कार्यं सर्वश्रेयोऽर्थिभिर्नृभिः॥ २१

कर्णपाशे शिखायां च कण्ठे हस्ते तथोदरे।
महादेवश्च विष्णुश्च ब्रह्मा तेषां विभूतयः॥ २२

देवाश्चान्ये तथा भक्त्या खलु रुद्राक्षधारिणः।
गोत्रर्षयश्च सर्वेषां कूटस्था मूलरूपिणः॥ २३

तेषां वंशप्रसूताश्च मुनयः सकला अपि।
श्रौतधर्मपराः शुद्धाः खलु रुद्राक्षधारिणः॥ २४

श्रद्धा न जायते साक्षाद्वेदसिद्धे विमुक्तिदे।
बहूनां जन्मनामन्ते महादेवप्रसादतः॥ २५

रुद्राक्षधारणे वाञ्छा स्वभावादेव जायते।
रुद्राक्षस्य तु माहात्म्यं जाबालैरादरेण तु॥ २६

रुद्राक्ष धारण न करके मोहपूर्वक कुछ भी वैदिक कृत्य सम्पन्न करनेवाला ब्राह्मण निश्चितरूपसे नरकमें पड़ता है॥ १४॥

सुवर्ण अथवा मणिसे जटित रुद्राक्ष मस्तक, कण्ठ, यज्ञोपवीत अथवा हाथमें धारण करना चाहिये। अन्य व्यक्तिके द्वारा धारण किया हुआ रुद्राक्ष अपने लिये शुद्ध तथा कल्याणकारी नहीं होता है॥ १५॥

अपवित्र अवस्थामें रुद्राक्ष नहीं धारण करना चाहिये; सर्वदा पवित्र अवस्थामें ही इसे भक्तिपूर्वक धारण करना चाहिये। रुद्राक्षके वृक्षसे चली हुई वायुके सम्पर्कमें आकर उगे हुए तृण भी पुण्यलोकमें जाते हैं और वहाँसे पुनः वे इस लोकमें नहीं आते॥ १६½ ॥

रुद्राक्ष धारण करनेवाला मनुष्य पाप करके भी सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है—ऐसा जाबालोपनिषद्में कहा गया है। रुद्राक्षधारणसे पशु भी रुद्रत्वको प्राप्त हो जाते हैं; फिर मनुष्य होकर जो लोग रुद्राक्षकी माला धारण करते हैं, उनकी बात ही क्या! शिवभक्तोंको एक रुद्राक्ष सिरपर सर्वदा अवश्य धारण करना चाहिये, इससे उनके सभी दुःखोंका नाश हो जाता है तथा सभी पापोंकी समाप्ति हो जाती है। जो लोग परमात्मा शिवके नामोंका उच्चारण करते हैं तथा जो रुद्राक्षसे अलंकृत रहते हैं, वे ही भगवान्के श्रेष्ठ भक्त होते हैं। अपने समस्त कल्याणकी कामना करनेवाले मनुष्यको कर्णपाशमें, शिखामें, कण्ठमें, हाथमें तथा उदरपर रुद्राक्ष धारण करना चाहिये॥ १७—२१½ ॥

ब्रह्मा, विष्णु, महेश, उनकी विभूतियाँ तथा सभी देवता भक्तिपूर्वक अवश्य ही रुद्राक्ष धारण करते हैं। गोत्रप्रवर्तक ऋषिगण, सभीके कूटस्थ मूल पुरुष, उनके वंशज तथा शुद्ध आत्मावाले श्रौतधर्मावलम्बी लोग भी रुद्राक्ष अवश्य धारण करते हैं॥ २२—२४॥

यदि आरम्भमें साक्षात् वेद-प्रतिपादित तथा मुक्तिदायक रुद्राक्षको धारण करनेमें श्रद्धा न उत्पन्न हो, तो भी अनेक जन्मोंके बाद भगवान् शिवके अनुग्रहसे रुद्राक्ष धारण करनेके प्रति स्वाभाविक रूपसे इच्छा उत्पन्न हो जाती है। जाबालशाखाके सभी मुनिलोग अत्यन्त आदरपूर्वक रुद्राक्षके माहात्म्यका

पठ्यते मुनिभिः सर्वैर्मया पुत्र तथैव च।
रुद्राक्षस्य फलं चैव त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्॥ २७

फलस्य दर्शने पुण्यं स्पर्शात्कोटिगुणं भवेत्।
शतकोटिगुणं पुण्यं धारणाल्लभते नरः॥ २८

लक्षकोटिसहस्राणि लक्षकोटिशतानि च।
जपाच्च लभते नित्यं नात्र कार्या विचारणा॥ २९

हस्ते चोरसि कण्ठे च कर्णयोर्मस्तके तथा।
रुद्राक्षं धारयेद्यस्तु स रुद्रो नात्र संशयः॥ ३०

अवध्यः सर्वभूतानां रुद्रवद्धि चरेद्भुवि।
सुराणामसुराणां च वन्दनीयो यथा शिवः॥ ३१

रुद्राक्षधारी सततं वन्दनीयस्तथा नरैः।
उच्छिष्टो वा विकर्मस्थो युक्तो वा सर्वपातकैः॥ ३२

मुच्यते सर्वपापेभ्यो रुद्राक्षस्य तु धारणात्।
कण्ठे रुद्राक्षमाबध्य श्वापि वा म्रियते यदि॥ ३३

सोऽपि मुक्तिमवाप्नोति किं पुनर्मानुषोऽपि सः।
जपध्यानविहीनोऽपि रुद्राक्षं यदि धारयेत्॥ ३४

सर्वपापविनिर्मुक्तः स याति परमां गतिम्।
एकं वापि हि रुद्राक्षं कृत्वा यत्नेन धारयेत्॥ ३५

एकविंशतिमुद्धृत्य रुद्रलोके महीयते।
अतः परं प्रवक्ष्यामि रुद्राक्षस्य पुनर्विधिम्॥ ३६

पाठ करते हैं और मैंने भी रुद्राक्ष-माहात्म्यके विषयमें पढ़ा है। हे पुत्र! रुद्राक्ष-धारणका फल तीनों लोकोंमें विख्यात है॥ २५—२७॥

रुद्राक्ष-फलके दर्शनसे महान् पुण्य मिलता है, इसके स्पर्शसे करोड़ गुना अधिक पुण्य होता है तथा इसे धारण कर लेनेपर मनुष्य सौ करोड़ गुना पुण्य प्राप्त करता है। रुद्राक्ष-मालासे नित्य जप करनेसे वह सैकड़ों लाख-करोड़ गुना तथा हजारों लाख-करोड़ गुना पुण्य प्राप्त करता है, इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये॥ २८-२९॥

जो अपने हाथमें, वक्षःस्थलपर, कण्ठमें, दोनों कानोंमें तथा मस्तकपर रुद्राक्ष धारण करता है, वह साक्षात् रुद्र है; इसमें सन्देह नहीं है। वह सभी प्राणियोंसे अवध्य रहते हुए इस पृथ्वीपर रुद्रकी भाँति निर्भय होकर विचरण करता है और शिवजीकी तरह समस्त देवता तथा दानवोंके लिये वन्दनीय हो जाता है॥ ३०-३१॥

सभी मनुष्य भी रुद्राक्ष-धारण करनेवालेकी निरन्तर वन्दना करते हैं। उच्छिष्टकी भाँति त्याज्य, निषिद्ध कर्मोंमें रत तथा सभी प्रकारके पापोंसे युक्त मनुष्य भी रुद्राक्ष धारण करनेपर सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। गलेमें रुद्राक्ष बँधा हुआ कुत्ता भी यदि मर जाय तो वह भी मुक्ति प्राप्त कर लेता है, फिर मनुष्यकी बात ही क्या? ॥ ३२-३३½ ॥

जप तथा ध्यानसे विहीन रहता हुआ भी यदि कोई मनुष्य रुद्राक्ष धारण कर ले तो वह समस्त पापोंसे मुक्त होकर परम गतिको प्राप्त होता है। यदि कोई एक भी रुद्राक्ष प्रयत्नपूर्वक धारण करता है तो वह अपनी इक्कीस पीढ़ियोंका उद्धार करके अन्तमें रुद्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है। इसके बाद अब मैं रुद्राक्षकी और भी विधिका वर्णन करूँगा॥ ३४—३६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामेकादशस्कन्धे रुद्राक्षजपमालाविधानवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

रुद्राक्षधारणकी महिमाके सन्दर्भमें गुणनिधिका उपाख्यान

ईश्वर उवाच

महासेन कुशग्रन्थिपुत्राजीवादयः परे।
रुद्राक्षस्य तु नैकोऽपि कलामर्हति षोडशीम्॥ १

पुरुषाणां यथा विष्णुर्ग्रहाणां च यथा रविः।
नदीनां तु यथा गङ्गा मुनीनां कश्यपो यथा॥ २

उच्चैःश्रवा यथाश्वानां देवानामीश्वरो यथा।
देवीनां तु यथा गौरी तद्वच्छ्रेष्ठमिदं भवेत्॥ ३

नातः परतरं स्तोत्रं नातः परतरं व्रतम्।
अक्षय्येषु च दानेषु रुद्राक्षस्तु विशिष्यते॥ ४

शिवभक्ताय शान्ताय दद्याद्रुद्राक्षमुत्तमम्।
तस्य पुण्यफलस्यान्तं न चाहं वक्तुमुत्सहे॥ ५

धृतरुद्राक्षकण्ठाय यस्त्वन्नं सम्प्रयच्छति।
त्रिःसप्तकुलमुद्धृत्य रुद्रलोकं स गच्छति॥ ६

यस्य भाले विभूतिर्न नाङ्गे रुद्राक्षधारणम्।
न शम्भोर्भवने पूजा स विप्रः श्वपचाधमः॥ ७

खादन्मांसं पिबन्मद्यं सङ्गच्छन्नन्त्यजानपि।
पातकेभ्यो विमुच्येत रुद्राक्षे शिरसि स्थिते॥ ८

सर्वयज्ञतपोदानवेदाभ्यासैश्च यत्फलम्।
तत्फलं लभते सद्यो रुद्राक्षस्य तु धारणात्॥ ९

वेदैश्चतुर्भिर्यत्पुण्यं पुराणपठनेन च।
यत्तीर्थसेवनेनैव सर्वविद्यादिभिस्तथा॥ १०

तत्पुण्यं लभते सद्यो रुद्राक्षस्य तु धारणात्।
प्रयाणकाले रुद्राक्षं बन्धयित्वा म्रियेद्यदि॥ ११
स रुद्रत्वमवाप्नोति पुनर्जन्म न विद्यते।

ईश्वर बोले—हे महासेन! कुश-ग्रन्थि, पुत्रजीव (जियापोती) आदिसे निर्मित तथा अन्य वस्तुसे बनी हुई मालाओंमेंसे कोई एक भी रुद्राक्ष-मालाकी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं हो सकती॥ १॥

जैसे पुरुषोंमें विष्णु, ग्रहोंमें सूर्य, नदियोंमें गंगा, मुनियोंमें कश्यप, घोड़ोंमें उच्चैःश्रवा, देवताओंमें महेश्वर, देवियोंमें गौरी श्रेष्ठ हैं; उसी प्रकार यह रुद्राक्ष श्रेष्ठ है॥ २-३॥

रुद्राक्षसे बढ़कर न कोई स्तोत्र है और न कोई व्रत है। सभी प्रकारके अक्षय दानोंकी तुलनामें रुद्राक्ष-दान विशेष महिमावाला है॥ ४॥

जो मनुष्य किसी शान्त स्वभाववाले शिवभक्तको उत्तम रुद्राक्षका दान करता है, उसके पुण्यफलकी सीमाका वर्णन करनेमें मैं समर्थ नहीं हूँ॥ ५॥

जो मनुष्य कण्ठमें रुद्राक्ष धारण किये हुए किसी व्यक्तिको अन्न प्रदान करता है, वह अपने इक्कीस कुलोंका उद्धार करके रुद्रलोकको जाता है॥ ६॥

जो ब्राह्मण अपने मस्तकपर भस्म नहीं लगाता, शरीरपर रुद्राक्ष नहीं धारण करता और शिवमन्दिरमें पूजा नहीं करता, वह चाण्डालोंमें भी अधम है॥ ७॥

मांस खानेवाला, सुरापान करनेवाला तथा अन्त्यजोंके सान्निध्यमें रहनेवाला भी सिरपर रुद्राक्ष धारण करनेपर तज्जन्य पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ८॥

सभी प्रकारके यज्ञ, तप, दान तथा वेदाध्ययन करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वह फल मात्र रुद्राक्ष-धारणसे शीघ्र ही प्राप्त हो जाता है॥ ९॥

चारों वेदोंका स्वाध्याय करने, पुराणोंको पढ़ने, तीर्थोंका सेवन करने तथा सभी विद्याओंका अध्ययन करनेके फलस्वरूप जो पुण्य होता है, वह पुण्य मनुष्य केवल रुद्राक्षधारणसे तत्काल प्राप्त कर लेता है॥ १०½॥

प्रयाणकालमें रुद्राक्ष धारण करके यदि कोई मृत्युको प्राप्त होता है, तो वह रुद्रत्वको प्राप्त हो जाता है और उसका पुनर्जन्म नहीं होता॥ ११½॥

रुद्राक्षं धारयेत्कण्ठे बाह्वोर्वा म्रियते यदि॥ १२
कुलैकविंशमुत्तार्य रुद्रलोके वसेन्नरः।
ब्राह्मणो वापि चाण्डालो निर्गुणः सगुणोऽपि च॥ १३

यदि मनुष्य कण्ठमें या दोनों भुजाओंपर रुद्राक्ष धारण किये हुए मर जाता है तो वह अपनी इक्कीस पीढ़ियोंको तारकर अन्तमें रुद्रलोकमें निवास करता है॥ १२½॥

भस्मरुद्राक्षधारी यः स देवत्वं शिवं व्रजेत्।
शुचिर्वाप्यशुचिर्वापि तथाभक्ष्यस्य भक्षकः॥ १४
म्लेच्छो वाप्यथ चाण्डालो युतो वा सर्वपातकैः।
रुद्राक्षधारणादेव स रुद्रो नात्र संशयः॥ १५

जो भस्म तथा रुद्राक्ष धारण करता है; वह महादेव शिवके लोकमें पहुँच जाता है, चाहे वह ब्राह्मण हो या चाण्डाल और गुणवान् हो अथवा गुणसे रहित। पवित्र हो अथवा अपवित्र तथा चाहे वह अभक्ष्य पदार्थोंका भक्षण करनेवाला ही क्यों न हो। म्लेच्छ हो अथवा चाण्डाल हो या सभी पातकोंसे युक्त ही क्यों न हो, वह केवल रुद्राक्षधारणसे ही रुद्रस्वरूप हो जाता है, इसमें संशय नहीं है॥ १३—१५॥

शिरसा धारिते कोटिः कर्णयोर्दशकोटयः।
शतकोटिर्गले बद्धो मूर्ध्नि कोटिसहस्त्रकम्॥ १६
अयुतं चोपवीते तु लक्षकोटिर्भुजे स्थिते।
मणिबन्धे तु रुद्राक्षो मोक्षसाधनकः परः॥ १७

सिरपर रुद्राक्ष धारण करनेसे करोड़ गुना, दोनों कानोंमें पहननेसे दस करोड़ गुना, गलेमें धारण करनेसे सौ करोड़ गुना, मस्तकपर धारण करनेसे हजार करोड़ गुना, यज्ञोपवीतमें धारण करनेसे इससे भी दस हजार गुना तथा दोनों भुजाओंपर धारण करनेसे लाख करोड़ गुना फल मिलता है और मणिबन्धमें धारण करनेपर यह रुद्राक्ष मोक्षका परम साधन बन जाता है॥ १६-१७॥

रुद्राक्षधारको भूत्वा यत्किञ्चित्कर्म वैदिकम्।
कुर्वन्विप्रः सदा भक्त्या महदाप्नोति तत्फलम्॥ १८

कोई ब्राह्मण रुद्राक्ष धारण करके भक्तिपूर्वक जो कुछ भी वैदिक कर्म करता है, उसे उसका महान् फल प्राप्त होता है॥ १८॥

रुद्राक्षमालिकां कण्ठे धारयेद्भक्तिवर्जितः।
पापकर्मा तु यो नित्यं स मुक्तः सर्वबन्धनात्॥ १९

श्रद्धारहित होकर भी यदि कोई गलेमें रुद्राक्ष धारण कर ले तो नित्य पापकर्ममें रत रहनेपर भी वह सभी बन्धनोंसे छूट जाता है॥ १९॥

रुद्राक्षार्पितचेता यो रुद्राक्षस्तु न वै धृतः।
असौ माहेश्वरो लोके नमस्यः स तु लिङ्गवत्॥ २०

जो अपने मनमें रुद्राक्ष धारण करनेकी भावना रखता है, किंतु उसे धारण नहीं कर पाता, तो भी वह महेश्वर-स्वरूप है और इस लोकमें शिवलिंगकी भाँति नमस्कारके योग्य है॥ २०॥

अविद्यो वा सविद्यो वा रुद्राक्षस्य तु धारणात्।
शिवलोकं प्रपद्येत कीकटे गर्दभो यथा॥ २१

कोई व्यक्ति चाहे विद्यासम्पन्न हो अथवा विद्यारहित, वह रुद्राक्ष धारण कर लेनेमात्रसे ही शिवलोकको प्राप्त हो जाता है, जैसे कीकट नामक स्थानविशेषमें एक गर्दभ शिवलोक चला गया था॥ २१॥

स्कन्द उवाच

रुद्राक्षान्सन्दधे देव गर्दभः केन हेतुना।
कीकटे केन वा दत्तस्तद् ब्रूहि परमेश्वर॥ २२

स्कन्द बोले—हे देव! उस गर्दभने कीकटदेशमें किस कारणसे रुद्राक्षोंको धारण किया था और किसने उसे रुद्राक्ष दिया था? हे परमेश्वर! वह सारा वृत्तान्त आप मुझे बताइये॥ २२॥

श्रीभगवानुवाच

शृणु पुत्र पुरावृत्तं गर्दभो विन्ध्यपर्वते।
धत्ते रुद्राक्षभारं तु वाहितः पथिकेन तु॥ २३

श्रान्तोऽसमर्थस्तद्भारं वोढुं पतितवान्भुवि।
प्राणैस्त्यक्तस्त्रिनेत्रस्तु शूलपाणिर्महेश्वरः॥ २४

मत्प्रसादान्महासेन मदन्तिकमुपागतः।
यावद्वक्त्रस्य संख्यानं रुद्राक्षाणां सुदुर्लभम्॥ २५

तावद्युगसहस्राणि शिवलोके महीयते।
स्वशिष्येभ्यस्तु वक्तव्यं नाशिष्येभ्यः कदाचन॥ २६

अभक्तेभ्योऽपि मूर्खेभ्यः कदाचिन्न प्रकाशयेत्।
अभक्तो वास्तु भक्तो वा नीचो नीचतरोऽपि वा॥ २७

रुद्राक्षान्धारयेद्यस्तु मुच्यते सर्वपातकैः।
रुद्राक्षधारणं पुण्यं केन वा सदृशं भवेत्॥ २८

महाव्रतमिदं प्राहुर्मुनयस्तत्त्वदर्शिनः।
सहस्रं धारयेद्यस्तु रुद्राक्षाणां धृतव्रतः॥ २९

तं नमन्ति सुराः सर्वे यथा रुद्रस्तथैव सः।
अभावे तु सहस्रस्य बाह्वोः षोडश षोडश॥ ३०

एकं शिखायां करयोर्द्वादश द्वादशैव तु।
द्वात्रिंशत्कण्ठदेशे तु चत्वारिंशच्च मस्तके॥ ३१

एकैकं कर्णयोः षट् षट् वक्षस्यष्टोत्तरं शतम्।
यो धारयति रुद्राक्षान् रुद्रवत्स तु पूज्यते॥ ३२

मुक्ताप्रवालस्फटिकरौप्यवैदूर्यकाञ्चनैः।
समेतान्धारयेद्यस्तु रुद्राक्षान्स शिवो भवेत्॥ ३३

केवलानपि रुद्राक्षान्यद्यालस्याद् बिभर्ति यः।
तं न स्पृशन्ति पापानि तमांसीव विभावसुम्॥ ३४

श्रीभगवान् बोले—हे पुत्र! अब तुम एक प्राचीन वृत्तान्त सुनो। एक गर्दभ विन्ध्यपर्वतपर रुद्राक्षका बोझा ढोया करता था। एक समय पथिक अधिक बोझा लादकर उसे हाँकने लगा, जिससे अत्यधिक थका हुआ वह गर्दभ उस बोझको ढोनेमें असमर्थ होकर भूमिपर गिर पड़ा और उसने प्राण त्याग दिये। हे महासेन! इसके बाद मेरे अनुग्रहसे वह हाथमें त्रिशूल धारण किये हुए तथा त्रिनेत्रधारी होकर महेश्वररूपमें मेरे पास आ गया॥ २३-२४½ ॥

रुद्राक्षके मुखोंकी जितनी दुर्लभ संख्या होती है, उतने हजार युगोंतक रुद्राक्ष धारण करनेवाला शिवलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ २५½ ॥

अपने शिष्यको ही रुद्राक्ष-माहात्म्य बताना चाहिये, जो शिष्य न हो उसे कभी नहीं बताना चाहिये, साथ ही अभक्तों तथा मूर्खोंके समक्ष इसे प्रकट नहीं करना चाहिये॥ २६½ ॥

चाहे कोई भक्तिपरायण हो अथवा भक्तिरहित हो, नीच हो अथवा नीचसे भी बढ़कर हो, यदि वह रुद्राक्ष धारण कर ले तो सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ २७½ ॥

रुद्राक्ष धारण करनेसे होनेवाले पुण्यकी तुलना भला किसके साथ की जा सकती है? तत्त्वदर्शी मुनिगण इस रुद्राक्षधारणको महाव्रतकी संज्ञा देते हैं॥ २८½ ॥

जिस व्यक्तिने एक हजार रुद्राक्षके धारण करनेका नियम बना रखा है, सभी देवता उसे नमस्कार करते हैं, जैसे रुद्र हैं वैसे ही वह भी है॥ २९ ॥

जो मनुष्य एक हजार रुद्राक्षके अभावकी स्थितिमें दोनों भुजाओंपर सोलह-सोलह, शिखामें एक, दोनों हाथोंमें बारह-बारह, गलेमें बत्तीस, मस्तकपर चालीस, प्रत्येक कानमें छः-छः तथा वक्षःस्थलपर एक सौ आठ रुद्राक्ष धारण करता है; वह रुद्रके समान पूजित होता है॥ ३०—३२ ॥

जो व्यक्ति मोती, मूँगा, स्फटिक, रौप्य, वैदूर्य तथा सुवर्ण आदिसे जटित रुद्राक्ष धारण करता है; वह साक्षात् शिवस्वरूप हो जाता है॥ ३३ ॥

जो आलस्यवश केवल रुद्राक्षोंको ही धारण करता है, उस व्यक्तिको पाप उसी तरह स्पर्श नहीं कर सकते, जैसे अन्धकार सूर्यको स्पर्श नहीं कर पाता॥ ३४ ॥

रुद्राक्षमालया मन्त्रो जप्तोऽनन्तफलप्रदः।
यस्याङ्गे नास्ति रुद्राक्ष एकोऽपि बहुपुण्यदः॥ ३५

तस्य जन्म निरर्थं स्यात्त्रिपुण्ड्ररहितं यथा।
रुद्राक्षं मस्तके धृत्वा शिरःस्नानं करोति यः॥ ३६

गङ्गास्नानफलं तस्य जायते नात्र संशयः।
एकवक्त्रः पञ्चवक्त्र एकादशमुखाः परे॥ ३७

चतुर्दशमुखाः केचिद्रुद्राक्षा लोकपूजिताः।
भक्त्या सम्पूज्यते नित्यं रुद्राक्षः शङ्करात्मकः॥ ३८

दरिद्रं वापि पुरुषं राजानं कुरुते भुवि।
अत्र ते कथयिष्यामि पुराणं मतमुत्तमम्॥ ३९

कोसलेषु द्विजः कश्चिद् गिरिनाथ इति श्रुतः।
महाधनी च धर्मात्मा वेदवेदाङ्गपारगः॥ ४०

यज्ञकृद्दीक्षितस्तस्य तनयः सुन्दराकृतिः।
नाम्नागुणनिधिः ख्यातस्तरुणः कामसुन्दरः॥ ४१

गुरोः सुधिषणस्याथ पत्नीं मुक्तावलीमथ।
मोहयामास रूपेण यौवनेन मदेन च॥ ४२

सङ्गतस्तु तया सार्धं कञ्चित्कालं ततो भिया।
विषं ददौ च गुरवे येभे पश्चात्तु निर्भयः॥ ४३

यदा माता पिता कर्म किञ्चिज्जानाति यत्क्षणे।
मातरं पितरं चापि मारयामास तद्विषात्॥ ४४

नानाविलासभोगैश्च जाते द्रव्यव्यये ततः।
ब्राह्मणानां गृहे चौर्यं चकार स तदा खलः॥ ४५

सुरापानमदोन्मत्तस्तदा ज्ञातिबहिष्कृतः।
ग्रामान्निष्कासितः सर्वैस्तदा सोऽभूद्वनेचरः॥ ४६

रुद्राक्षकी मालासे जपा गया मन्त्र अनन्त फल प्रदान करता है। जिसके शरीरपर अत्यन्त पुण्यदायक एक भी रुद्राक्ष नहीं रहता, उसका जन्म उसी भाँति निरर्थक है, जैसे त्रिपुण्ड्र धारण न करनेवालेका जीवन अर्थहीन होता है॥ ३५ $\frac{1}{2}$ ॥

जो अपने मस्तकपर रुद्राक्ष धारण करके शिरःस्नान करता है, उसे गंगास्नान करनेका फल प्राप्त होता है; इसमें संशय नहीं है॥ ३६ $\frac{1}{2}$ ॥

एकमुखी, पंचमुखी, ग्यारहमुखी, चौदहमुखी तथा और भी कुछ रुद्राक्षोंकी लोकमें पूजा की जाती है॥ ३७ $\frac{1}{2}$ ॥

साक्षात् शंकरके आत्मस्वरूप इस रुद्राक्षकी यदि नित्य भक्तिपूर्वक पूजा की जाय तो यह दरिद्र व्यक्तिको भी पृथ्वीपर राजा बना देता है॥ ३८ $\frac{1}{2}$ ॥

अब इस सम्बन्धमें मैं तुमसे एक प्राचीन उत्तम आख्यानका वर्णन करूँगा। ऐसा सुना जाता है कि कोसल-देशमें गिरिनाथ नामक एक ब्राह्मण रहता था। वह महाधनी, धर्मात्मा, वेद-वेदांगमें पारंगत, यज्ञपरायण तथा दीक्षायुक्त था। उसका गुणनिधि नामसे विख्यात एक पुत्र था, जो युवा, मनोहर आकृतिवाला तथा कामदेवके समान सुन्दर था॥ ३९—४१॥

उसने अपने रूप तथा मदयुक्त यौवनसे सुधिषण नामक अपने गुरुकी मुक्तावली नामवाली भार्याको मोहित कर लिया॥ ४२॥

कुछ दिनोंतक मुक्तावलीके साथ उसका सम्पर्क रहा, किंतु बादमें गुरुसे भयके कारण उसने उन्हें विष दे दिया और वह निर्भय होकर सहवासपरायण हो गया॥ ४३॥

जब उसके माता-पिताको इस कर्मके विषयमें कुछ ज्ञात हुआ, तब उसने माता-पिताको भी उसी क्षण विष देकर मार डाला॥ ४४॥

तत्पश्चात् अनेक प्रकारके भोग-विलासोंमें सम्पूर्ण धनके व्यय हो जानेपर उस दुष्टने ब्राह्मणोंके घरमें चोरी करना आरम्भ कर दिया॥ ४५॥

सुरापानसे निरन्तर मदोन्मत्त रहनेके कारण वह जातिसे बहिष्कृत कर दिया गया तथा सभी लोगोंने उसे गाँवसे बाहर निकाल दिया। तब वह वनमें विचरण करने लगा॥ ४६॥

मुक्तावल्या तया सार्धं जगाम गहनं वनम्।
मार्गे स्थितो द्रव्यलोभाज्जघान ब्राह्मणान्बहून्॥ ४७

उस मुक्तावलीको साथमें लेकर वह घने जंगलमें चला गया। वहाँ मार्गमें स्थित होकर उसने [आने-जानेवाले] अनेक ब्राह्मणोंको धनके लोभसे मार डाला॥ ४७॥

एवं बहुगते काले ममार स तदाधमः।
नेतुं तं यमदूताश्च समाजग्मुः सहस्रशः॥ ४८

इस प्रकार बहुत समय बीत जानेके बाद वह नीच प्राणी मृत्युको प्राप्त हुआ और उसे लेनेके लिये हजारों यमदूत आये॥ ४८॥

शिवलोकाच्छिवगणास्तथैव च समागताः।
तयोः परस्परं वादो बभूव गिरिजासुत॥ ४९

उसी समय शिवके गण शिवलोकसे वहाँ आ पहुँचे और फिर हे गिरिजानन्दन! उन दोनों (यमदूतों तथा शिवदूतों)-में परस्पर विवाद होने लगा॥ ४९॥

यमदूतास्तदा प्रोचुः पुण्यमस्य किमस्ति हि।
ब्रुवन्तु सेवकाः शम्भोर्यद्येनं नेतुमिच्छथ॥ ५०

तब यमदूतोंने कहा—हे शम्भुके सेवको! आपलोग बतायें कि इसका कौन-सा पुण्य है, जो आपलोग इसे शिवलोक ले जाना चाहते हैं?॥ ५०॥

शिवदूतास्तदा प्रोचुरयं यस्मिन्स्थले मृतः।
दशहस्तादधो भूमे रुद्राक्षस्तत्र चास्ति हि॥ ५१

तत्प्रभावेण हे दूता नेष्यामः शिवसन्निधिम्।

इसपर शिवदूत कहने लगे कि यह जिस स्थानपर मृत्युको प्राप्त हुआ है, उस भूमिके दस हाथ नीचे रुद्राक्ष विद्यमान है। हे यमदूतो! उसी रुद्राक्षके प्रभावसे इसे हमलोग शिवके पास ले जायँगे॥ ५१ १/२ ॥

ततो विमानमारुह्य दिव्यरूपधरो द्विजः॥ ५२
गतो गुणनिधिर्दूतैः सहितः शङ्करालयम्।
इति रुद्राक्षमाहात्म्यं कथितं तव सुव्रत॥ ५३
एवं रुद्राक्षमहिमा समासात्कथितो मया।
सर्वपापक्षयकरो महापुण्यफलप्रदः॥ ५४

तत्पश्चात् वह गुणनिधि नामक ब्राह्मण दिव्य रूप धारण करके विमानपर आरूढ़ होकर शिवदूतोंके साथ शिवलोक चला गया। हे सुव्रत! मैंने तुमसे रुद्राक्षका यह माहात्म्य कह दिया। इस प्रकार मेरे द्वारा संक्षेपमें वर्णित यह रुद्राक्षमाहात्म्य सभी पापोंका नाश करनेवाला तथा महान् पुण्यफल प्रदान करनेवाला है॥ ५२—५४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामेकादशस्कन्धे रुद्राक्षमाहात्म्ये गुणनिधिमोक्षवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

~~○~~

अथ सप्तमोऽध्यायः

विभिन्न प्रकारके रुद्राक्ष और उनके अधिदेवता

श्रीनारायण उवाच

एवं नारद षड्वक्त्रो गिरिशेन विबोधितः।
रुद्राक्षमहिमानं च ज्ञात्वासीत्स कृतार्थकः॥ १

इत्थं भूतानुभावोऽयं रुद्राक्षो वर्णितो मया।
सदाचारप्रसङ्गेन शृणु चान्यत्समाहितः॥ २

श्रीनारायण बोले—हे नारद! इस प्रकार गिरिशायी भगवान् शिवने षडाननको रुद्राक्षके विषयमें बताया और इस रुद्राक्षमहिमाको जानकर वे भी कृतार्थ हो गये। इस प्रकारके माहात्म्यवाले रुद्राक्षके विषयमें मैंने आपसे वर्णन कर दिया। अब सदाचारके प्रसंगमें रुद्राक्षसम्बन्धी अन्य बातें एकाग्रचित्त होकर सुनिये॥ १-२॥

यथा रुद्राक्षमहिमा वर्णितोऽनन्तपुण्यदः।
लक्षणं मन्त्रविन्यासं तथाहं वर्णयामि ते॥ ३

जिस प्रकार मैंने अनन्त पुण्य प्रदान करनेवाली रुद्राक्ष-महिमाका वर्णन किया है, उसी प्रकार मैं रुद्राक्षके लक्षण तथा मन्त्र-विन्यासका वर्णन आपसे करूँगा॥ ३॥

लक्षं तु दर्शनात्पुण्यं कोटिस्तत्स्पर्शनाद्भवेत्।
तस्य कोटिगुणं पुण्यं लभते धारणान्नरः॥ ४

रुद्राक्षके दर्शनसे एक लाख गुना तथा स्पर्शसे करोड़ गुना पुण्य होता है। रुद्राक्ष धारण कर लेनेपर मनुष्य उसका करोड़ गुना पुण्य प्राप्त करता है॥ ४॥

लक्षकोटिसहस्राणि लक्षकोटिशतानि च।
तज्जपाल्लभते पुण्यं नरो रुद्राक्षधारणात्॥ ५

रुद्राक्ष धारण करनेकी अपेक्षा उसके द्वारा जपसे मनुष्य एक सौ लाख करोड़ गुना और हजार लाख करोड़ गुना पुण्य प्राप्त करता है॥ ५॥

रुद्राक्षाणां तु भद्राक्षधारणात्स्यान्महाफलम्।
धात्रीफलप्रमाणं यच्छ्रेष्ठमेतदुदाहृतम्॥ ६

भद्राक्ष धारण करनेकी अपेक्षा रुद्राक्ष धारण करनेका महान् फल होता है। जो रुद्राक्ष आँवलेके फलके परिमाणका होता है, वह श्रेष्ठ माना गया है॥ ६॥

बदरीफलमात्रं तु प्रोच्यते मध्यमं बुधैः।
अधमं चणमात्रं स्यात्प्रतिज्ञैषा मयोदिता॥ ७

विद्वानोंने बेरके फलके परिमाणवाले रुद्राक्षको मध्यम तथा चनेके परिमाण-तुल्य रुद्राक्षको अधम कहा है; यह एक सिद्धान्त है, जिसका वर्णन मैंने आपसे किया है॥ ७॥

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चेति शिवाज्ञया।
वृक्षा जाताः पृथिव्यां तु तज्जातीयाः शुभाक्षकाः॥ ८

श्वेतास्तु ब्राह्मणा ज्ञेयाः क्षत्रिया रक्तवर्णकाः।
पीता वैश्यास्तु विज्ञेयाः कृष्णाः शूद्राः प्रकीर्तिताः॥ ९

शिवजीकी आज्ञासे पृथ्वीतलपर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र-भेदानुसार उन-उन जातियोंवाले रुद्राक्षके श्रेष्ठ वृक्ष उत्पन्न हुए। श्वेत रुद्राक्षोंको ब्राह्मण, रक्त वर्णके रुद्राक्षोंको क्षत्रिय तथा पीले वर्णके रुद्राक्षोंको वैश्य जानना चाहिये। इसी प्रकार काले रंगके रुद्राक्ष शूद्र कहे जाते हैं॥ ८-९॥

ब्राह्मणो बिभृयाच्छ्वेतान् रक्तान् राजा तु धारयेत्।
पीतान्वैश्यस्तु बिभृयात्कृष्णान् शूद्रस्तु धारयेत्॥ १०

ब्राह्मणको श्वेत वर्ण तथा राजा (क्षत्रिय)-को लाल वर्णके रुद्राक्ष धारण करने चाहिये। इसी तरह वैश्यको पीले वर्ण तथा शूद्रको काले वर्णके रुद्राक्ष धारण करने चाहिये॥ १०॥

समाः स्निग्धा दृढास्तद्वत्कण्टकैः संयुताः शुभाः।
कृमिदष्टाञ्छिन्नभिन्नान्कण्टकैरहितांस्तथा ॥ ११

व्रणयुक्तानावृतांश्च षड्रुद्राक्षांस्तु वर्जयेत्।

समरूप, चिकने, दृढ़ तथा स्पष्टरूपसे कंटक (काँटों)-की रेखाओंसे युक्त रुद्राक्ष श्रेष्ठ होते हैं; किंतु कीड़ोंद्वारा खाये गये, टूटे हुए, फूटे हुए, काँटोंकी रेखाओंसे रहित, व्रणयुक्त तथा परतसे आवृत—इन छः तरहके रुद्राक्षोंको नहीं धारण करना चाहिये॥ ११$\frac{1}{2}$ ॥

स्वयमेव कृतद्वारो रुद्राक्षः स्यादिहोत्तमः॥ १२
यत्तु पौरुषयत्नेन कृतं तन्मध्यमं भवेत्।
समान्स्निग्धान्दृढान्वृत्तान्क्षौमसूत्रेण धारयेत्॥ १३

जिस रुद्राक्षमें स्वयं ही छिद्र बना हो, वह उत्तम रुद्राक्ष होता है और जिसमें मनुष्यके प्रयत्नसे छिद्र किया गया हो, वह मध्यम रुद्राक्ष होता है। सब ओरसे समान, चिकने, मजबूत और गोल रुद्राक्षोंको रेशमके डोरेमें पिरोकर धारण करना चाहिये। शरीरके

सर्वगात्रेषु साम्येन समानातिविलक्षणा।
निर्घर्षे हेमलेखाभा यत्र लेखा प्रदृश्यते॥ १४

तदक्षमुत्तमं विद्यात्स धार्यः शिवपूजकैः।
शिखायामेकरुद्राक्षं त्रिंशद्वै शिरसा वहेत्॥ १५

षट्त्रिंशच्च गले धार्या बाह्वोः षोडश षोडश।
मणिबन्धे द्वादशाक्षान्स्कन्धे पञ्चाशतं भवेत्॥ १६

अष्टोत्तरशतैर्मालोपवीतं च प्रकल्पयेत्।
द्विसरं त्रिसरं वापि बिभृयात्कण्ठदेशतः॥ १७

कुण्डले मुकुटे चैव कर्णिकाहारकेषु च।
केयूरे कटके चैव कुक्षिवंशे तथैव च॥ १८

सुप्ते पीते सर्वकालं रुद्राक्षं धारयेन्नरः।
त्रिशतं त्वधमं पञ्चशतं मध्यममुच्यते॥ १९

सहस्रमुत्तमं प्रोक्तं चैवं भेदेन धारयेत्।
शिरसीशानमन्त्रेण कर्णे तत्पुरुषेण च॥ २०

अघोरेण ललाटे तु तेनैव हृदयेऽपि च।
अघोरबीजमन्त्रेण करयोर्धारयेत्पुनः॥ २१

पञ्चाशदक्षग्रथितां वामदेवेन चोदरे।
पञ्चब्रह्मभिरङ्गैश्चाप्येवं रुद्राक्षधारणम्॥ २२

ग्रथितान्मूलमन्त्रेण सर्वानक्षांस्तु धारयेत्।
एकवक्त्रस्तु रुद्राक्षः परतत्त्वप्रकाशकः॥ २३

परतत्त्वधारणाच्च जायते तत्प्रकाशनम्।
द्विवक्त्रस्तु मुनिश्रेष्ठ अर्धनारीश्वरो भवेत्॥ २४

धारणादर्धनारीशः प्रीयते तस्य नित्यशः।
त्रिवक्त्रस्त्वनलः साक्षात्स्त्रीहत्यां दहति क्षणात्॥ २५

त्रिमुखश्चैव रुद्राक्षोऽप्यग्नित्रयस्वरूपकः।
तद्धारणाच्च हुतभुक् तस्य तुष्यति नित्यशः॥ २६

सभी (पूर्वोक्त) अंगोंपर उन्हें समानरूपसे धारण करना चाहिये। जिस रुद्राक्षको घिसनेसे समान तथा अति विलक्षण स्वर्ण-रेखाकी आभाके समान रेखा दिखायी दे, वह उत्तम रुद्राक्ष होता है। उसे शिवभक्तोंको अवश्य धारण करना चाहिये॥ १२—१४½ ॥

एक रुद्राक्ष शिखामें, तीस रुद्राक्ष सिरपर, छत्तीस रुद्राक्ष गलेमें, दोनों भुजाओंपर सोलह-सोलह, मणि-बन्धमें बारह तथा कन्धेपर पचास रुद्राक्ष धारण करना चाहिये॥ १५-१६ ॥

एक सौ आठ रुद्राक्षोंकी मालाका यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये और दो लड़ी या तीन लड़ीवाली रुद्राक्षकी माला गलेमें पहननी चाहिये॥ १७॥

मनुष्यको कुण्डलमें, मुकुटमें, कर्णिकामें, हारमें, केयूरमें, कटकमें तथा करधनीमें, शयन तथा भोजनपानादि सभी कालोंमें रुद्राक्ष धारण करना चाहिये॥ १८½ ॥

तीन सौ रुद्राक्षोंका धारण करना अधम तथा पाँच सौ रुद्राक्षोंका धारण करना मध्यम कहा जाता है और एक हजार रुद्राक्षोंका धारण करना उत्तम कहा गया है। इस प्रकार उत्तम, मध्यम तथा अधम-भेदसे रुद्राक्ष धारण करना चाहिये॥ १९½ ॥

पचास रुद्राक्षोंकी माला बनाकर ईशानमन्त्रसे सिरपर, तत्पुरुषमन्त्रसे कानमें, अघोरमन्त्रसे ललाट तथा हृदयपर और अघोरबीजमन्त्रसे दोनों हाथोंपर और वामदेवमन्त्रसे उदरपर धारण करना चाहिये। इस प्रकार ईशान आदि पाँच ब्रह्ममन्त्र तथा छः षडंग मन्त्रसे रुद्राक्ष धारण करना चाहिये। मूलमन्त्रका उच्चारण करके गूँथे गये सभी रुद्राक्षोंको धारण करना चाहिये॥ २०—२२½ ॥

एकमुखी रुद्राक्ष परमतत्त्वका प्रकाशक है। अतः इस परमतत्त्वमय एकमुखी रुद्राक्षके धारणसे उस ब्रह्मका साक्षात्कार हो जाता है॥ २३½ ॥

हे मुनिश्रेष्ठ! दो मुखवाला रुद्राक्ष अर्धनारीश्वर होता है। इसे धारण करनेसे उस व्यक्तिपर भगवान् अर्धनारीश्वर सदा प्रसन्न रहते हैं॥ २४½ ॥

तीनमुखी रुद्राक्ष साक्षात् अग्निस्वरूप होता है। यह स्त्री-हत्याके पापको क्षणभरमें भस्म कर देता है। यह तीनमुखी रुद्राक्ष अग्नित्रय (गार्हपत्य, आहवनीय, दक्षिणाग्नि)-के भी स्वरूपवाला है। उसे धारण करनेसे उस व्यक्तिपर अग्निदेवता सदा प्रसन्न रहते हैं॥ २५-२६ ॥

चतुर्मुखस्तु रुद्राक्षः पितामहस्वरूपकः।
तद्धारणान्महाश्रीमान्महदारोग्यमुत्तमम् ॥ २७

महती ज्ञानसम्पत्तिः शुद्धये धारयेन्नरः।
पञ्चमुखस्तु रुद्राक्षः पञ्चब्रह्मस्वरूपकः॥ २८

तस्य धारणमात्रेण सन्तुष्यति महेश्वरः।
षड्वक्त्रश्चैव रुद्राक्षः कार्तिकेयाधिदैवतः॥ २९

विनायकं चापि देवं प्रवदन्ति मनीषिणः।
सप्तवक्त्रस्तु रुद्राक्षः सप्तमात्राधिदैवतः॥ ३०

सप्ताश्वदैवतश्चैव मुनिसप्तकदैवतः।
तद्धारणान्महाश्रीः स्यान्महदारोग्यमुत्तमम्॥ ३१

महती ज्ञानसम्पत्तिः शुचिर्वै धारयेन्नरः।
अष्टवक्त्रस्तु रुद्राक्षोऽप्यष्टमात्राधिदैवतः॥ ३२

वस्वष्टकप्रीतिकरो गङ्गाप्रीतिकरः शुभः।
तद्धारणादिमे प्रीता भवेयुः सत्यवादिनः॥ ३३

नववक्त्रस्तु रुद्राक्षो यमदेव उदाहृतः।
तद्धारणाद्यमभयं न भवत्येव सर्वथा॥ ३४

दशवक्त्रस्तु रुद्राक्षो दशाशादैवतः स्मृतः।
दशाशाप्रीतिजनको धारणे नात्र संशयः॥ ३५

एकादशमुखस्त्वक्षो रुद्रैकादशदैवतः।
तमिन्द्रदैवतं चाहुः सदा सौख्यविवर्धनम्॥ ३६

रुद्राक्षो द्वादशमुखो महाविष्णुस्वरूपकः।
द्वादशादित्यदैवश्च बिभर्त्येव हि तत्परः॥ ३७

त्रयोदशमुखश्चाक्षः कामदः सिद्धिदः शुभः।
तस्य धारणमात्रेण कामदेवः प्रसीदति॥ ३८

चतुर्दशमुखश्चाक्षो रुद्रनेत्रसमुद्भवः।
सर्वव्याधिहरश्चैव सर्वारोग्यप्रदायकः॥ ३९

चतुर्मुखी रुद्राक्ष ब्रह्मास्वरूप है। उसे धारण करनेसे महान् वैभव, अत्यन्त उत्तम आरोग्य तथा विशद ज्ञान-सम्पदाकी प्राप्ति होती है। मनुष्यको आत्मशुद्धिके लिये इसे धारण करना चाहिये॥ २७½ ॥

पंचमुखी रुद्राक्ष साक्षात् पंचब्रह्म-स्वरूप है। उसके धारणमात्रसे ही महेश्वर शिव उस व्यक्तिपर प्रसन्न हो जाते हैं॥ २८½ ॥

छः मुखी रुद्राक्षके अधिदेवता कार्तिकेय हैं और कुछ मनीषिगण विनायक गणेशको भी इस रुद्राक्षके देवतारूपमें बताते हैं॥ २९½ ॥

सातमुखी रुद्राक्षकी अधिदेवी सात मातृकाएँ हैं। इसके अधिदेवता सूर्य तथा सप्तर्षि भी हैं। इसे धारण करनेसे विपुल सम्पदा, उत्तम आरोग्य तथा महान् ज्ञान-राशिकी प्राप्ति होती है। पवित्र होकर ही मनुष्यको इसे धारण करना चाहिये॥ ३०-३१½ ॥

आठमुखी रुद्राक्षके अधिदेवता अष्टमातृकाएँ हैं। यह शुभ रुद्राक्ष आठों वसुओं तथा गंगाके लिये प्रीतिकर है। उसे धारण करनेसे ये सत्यवादी देवता प्रसन्न हो जाते हैं॥ ३२-३३ ॥

नौमुखी रुद्राक्ष साक्षात् यमदेवके तुल्य माना गया है। उसे धारण करनेसे यमका कोई भय नहीं रहता॥ ३४॥

दसमुखी रुद्राक्षके देवता दसों दिशाएँ कही गयी हैं। उसे धारण करनेसे मनुष्य दसों दिशाओंके लिये प्रीतिजनक होता है, इसमें सन्देह नहीं है॥ ३५॥

ग्यारहमुखी रुद्राक्षके अधिदेवता एकादश रुद्र हैं। कुछ लोग इन्द्रको भी निरन्तर सौख्यकी वृद्धि करनेवाले इस रुद्राक्षका देवता कहते हैं॥ ३६॥

बारहमुखी रुद्राक्ष महाविष्णुका स्वरूप है। इसके अधिदेवता बारह सूर्य हैं। ये देवगण उसे धारण करनेवालेका सदा भरण-पोषण करते हैं॥ ३७॥

तेरह मुखवाला रुद्राक्ष समस्त मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला, सिद्धियाँ प्रदान करनेवाला तथा कल्याण करनेवाला है। उसे धारण करनेमात्रसे कामदेव प्रसन्न हो जाते हैं॥ ३८॥

चौदह मुखवाला रुद्राक्ष भगवान् शंकरके नेत्रसे उत्पन्न हुआ है। यह सभी प्रकारकी व्याधियोंको नष्ट करने-वाला तथा सर्वविध आरोग्य प्रदान करनेवाला है॥ ३९॥

मद्यं मांसं च लशुनं पलाण्डुं शिग्रुमेव च।
श्लेष्मातकं विड्वराहं भक्षणे वर्जयेत्ततः॥ ४०

ग्रहणे विषुवे चैव सङ्क्रमे त्वयने तथा।
दर्शे च पौर्णमासे च पुण्येषु दिवसेष्वपि।
रुद्राक्षधारणात्सद्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ४१

रुद्राक्ष धारण करनेवालेको मद्य, मांस, लहसुन, प्याज, सहिजन, लिसोडा तथा विड्वराहका आहारमें त्याग कर देना चाहिये। ग्रहणके समय, सूर्यके विषुवत् रेखापर, संक्रमणकालमें, उत्तरायण तथा दक्षिणायनके संक्रान्तिकालमें, अमावास्या तथा पूर्णिमाके समय तथा अन्यान्य पुण्य दिवसोंमें रुद्राक्ष धारण करनेसे मनुष्य शीघ्र समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ४०-४१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामेकादशस्कन्धे रुद्राक्षमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥



अथाष्टमोऽध्यायः

भूतशुद्धि

श्रीनारायण उवाच

भूतशुद्धिप्रकारं च कथयामि महामुने।
मूलाधारात्समुत्थाय कुण्डलीं परदेवताम्॥ १

सुषुम्णामार्गमाश्रित्य ब्रह्मरन्ध्रगतां स्मरेत्।
जीवं ब्रह्मणि संयोज्य हंसमन्त्रेण साधकः॥ २

पादादिजानुपर्यन्तं चतुष्कोणं सवज्रकम्।
लं बीजाढ्यं स्वर्णवर्णं स्मरेदवनिमण्डलम्॥ ३

श्रीनारायण बोले—हे महामुने! अब मैं भूत-शुद्धिका प्रकार बता रहा हूँ। सर्वप्रथम मूलाधारसे उठकर सुषुम्नामार्गपर होती हुई ब्रह्मरन्ध्रतक देवी परदेवता कुण्डलिनीके पहुँचनेकी भावना करे। तत्पश्चात् साधक हंसमन्त्रसे जीवका ब्रह्ममें संयोजन करके अपने शरीरमें पैरोंसे लेकर घुटनोंतकके भागमें चतुष्कोण (चौकोर), वज्रचिह्नसे युक्त, पीतवर्णवाले तथा 'लं' बीजसे अंकित पृथ्वीमण्डलकी कल्पना करे॥ १—३॥

जान्वाद्यानाभिचन्द्रार्धनिभं पद्मद्वयाङ्कितम्।
वं बीजयुक्तं श्वेताभमम्भसो मण्डलं स्मरेत्॥ ४

घुटनोंसे लेकर नाभितकके भागमें अर्धचन्द्रतुल्य आकृतिवाले, दो कमलोंसे युक्त, शुक्लवर्ण तथा 'वं' बीजमन्त्रसे अंकित जलमण्डलका स्मरण करना चाहिये॥ ४॥

नाभेर्हृदयपर्यन्तं त्रिकोणं स्वस्तिकान्वितम्।
रं बीजेन युतं रक्तं स्मरेत्पावकमण्डलम्॥ ५

इसके बाद नाभिसे लेकर हृदयतकके भागमें त्रिकोणाकार, स्वस्तिक चिह्नसे अंकित, रक्तवर्णवाले तथा 'रं' बीजमन्त्रसे युक्त अग्निमण्डलका स्मरण करना चाहिये॥ ५॥

हृदो भ्रूमध्यपर्यन्तं वृत्तं षड्बिन्दुलाञ्छितम्।
यं बीजयुक्तं धूम्राभं नभस्वन्मण्डलं स्मरेत्॥ ६

पुनः हृदयसे ऊपर भ्रूमध्यतकके भागमें गोल, छः बिन्दुओंसे अंकित, धूम्रवर्णवाले तथा 'यं' बीजसे युक्त वायुमण्डलका स्मरण करना चाहिये॥ ६॥

आब्रह्मरन्ध्रं भ्रूमध्याद् वृत्तं स्वच्छं मनोहरम्।
हं बीजयुक्तमाकाशमण्डलं च विचिन्तयेत्॥ ७

इसके बाद भ्रूमध्यसे लेकर ब्रह्मरन्ध्रतकके भागमें वृत्ताकार, स्वच्छ, परम मनोहर तथा 'हं' बीजसे अंकित आकाशमण्डलका ध्यान करना चाहिये॥ ७॥

एवं भूतानि सञ्चिन्त्य प्रत्येकं संविलापयेत्।
भुवं जले जलं वह्नौ वह्निं वायौ नभस्यमुम्॥ ८

विलाप्य खमहङ्कारे महत्तत्त्वेऽप्यहङ्कृतिम्।
महान्तं प्रकृतौ मायामात्मनि प्रविलापयेत्॥ ९

शुद्धसंविन्मयो भूत्वा चिन्तयेत्पापपूरुषम्।
वामकुक्षिस्थितं कृष्णमङ्गुष्ठपरिमाणकम्॥ १०

ब्रह्महत्याशिरोयुक्तं कनकस्तेयबाहुकम्।
मदिरापानहृदयं गुरुतल्पकटीयुतम्॥ ११

तत्संसर्गिपदद्वन्द्वमुपपातकमस्तकम्।
खड्गचर्मधरं कृष्णमधोवक्त्रं सुदुःसहम्॥ १२

वायुबीजं स्मरन्वायुं सम्पूर्यैनं विशोषयेत्।
स्वशरीरयुतं मन्त्री वह्निबीजेन निर्दहेत्॥ १३

कुम्भके परिजप्तेन ततः पापनरोद्भवम्।
बहिर्भस्म समुत्सार्य वायुबीजेन रेचयेत्॥ १४

सुधाबीजेन देहोत्थं भस्म संप्लावयेत्सुधीः।
भूबीजेन घनीकृत्य भस्म तत्कनकाण्डवत्॥ १५

विशुद्धमुकुराकारं जपन्बीजं विहायसः।
मूर्धादिपादपर्यन्तान्यङ्गानि रचयेत्सुधीः॥ १६

इस प्रकारसे पंचभूतोंकी भावना करके प्रत्येकका अपने कारणरूप दूसरे भूतमें लय करे। पृथ्वीको जलमें, जलको अग्निमें, अग्निको वायुमें, वायुको आकाशमें विलीन करनेका ध्यान करके पुनः आकाशको अहंकारमें, अहंकारको महत्तत्त्वमें, महत्तत्त्वको प्रकृतिमें और मायारूपी प्रकृतिको आत्मामें विलीन करना चाहिये॥ ८-९॥

इस प्रकार निर्मल ज्ञानसे सम्पन्न होकर अपने शरीरमें पापपुरुषकी कल्पना करनी चाहिये कि यह मेरी बायीं कुक्षिमें स्थित है, यह काले रंगका है तथा अँगूठेके परिमाणवाला है, ब्रह्महत्या ही इसका सिर है, स्वर्णकी चोरी ही इसके बाहु हैं, सुरापान ही इसका हृदय है, गुरुतल्प (गुरुपत्नीगमन) ही इसका कटिप्रदेश है, इन महापातकोंसे संसर्ग ही इसके दोनों चरण हैं, उपपातक इसका मस्तक है, यह ढाल-तलवार लिये रहता है, यह कृष्णवर्णवाला है, सदा नीचेकी ओर मुख किये रहता है और अत्यन्त दुःसह है॥ १०—१२॥

तत्पश्चात् वायुबीज 'यं'का स्मरण करते हुए पूरक प्राणायामसे वायुको भरकर उसके द्वारा इस पापपुरुषको सुखा देना चाहिये। पुनः 'रं' अग्निबीजमन्त्रके द्वारा अपने शरीरसे लगे हुए उस पापपुरुषको भस्म कर देना चाहिये॥ १३॥

कुम्भकके जपसे दग्ध किये गये पापपुरुषकी भस्मको वायुबीज 'यं'के जपसे रेचक प्राणायामद्वारा बाहर निकाल देना चाहिये॥ १४॥

तदनन्तर विद्वान् पुरुष अपने शरीरसे उत्पन्न हुए भस्मको सुधाबीज 'वं'के उच्चारणसे उत्पन्न अमृतसे आप्लावित करे। पुनः भू-बीजमन्त्र 'लं'से उस द्रवीभूत भस्मको घनीभूत करके उसके सोनेके अण्ड-जैसा बन जानेकी कल्पना करे॥ १५॥

इसके बाद आकाशबीज 'हं'का जप करते हुए उस सुवर्ण-अण्डकी एक स्वच्छ दर्पणकी तरह कल्पना करके बुद्धिमान् साधकको उसमें मस्तकसे लेकर चरणपर्यन्त सभी अंगोंकी मानसिक रचना करनी चाहिये॥ १६॥

आकाशादीनि भूतानि पुनरुत्पादयेच्चितः।
सोऽहं मन्त्रेण चात्मानमानयेद्धृदयाम्बुजे॥ १७

पुनः चित्तमें आकाश आदि पाँचों भूतोंकी कल्पना करे और '**सोऽहम्**' मन्त्रके द्वारा आत्माको अपने हृदयकमलपर विराजित करे॥ १७॥

कुण्डलीजीवमादाय परसङ्गात्सुधामयम्।
संस्थाप्य हृदयाम्भोजे मूलाधारगतां स्मरेत्॥ १८

तत्पश्चात् जीवको ब्रह्ममें संयोजित करनेवाली कुण्डलिनीको तथा परमात्माके संसर्गसे सुधामय जीवको हृदयरूपी कमलपर स्थापित करके मूलाधारमें विराजनेवाली देवी कुण्डलिनीका [इस प्रकार] ध्यान करना चाहिये॥ १८॥

रक्ताम्भोधिस्थपोतोल्लसदरुण-
सरोजाधिरूढा कराब्जैः
शूलं कोदण्डमिक्षूद्भवमणिगुण-
मप्यङ्कुशं पञ्चबाणान्।
बिभ्राणासृक्कपालं त्रिनयन-
लसिता पीनवक्षोरुहाढ्या
देवी बालार्कवर्णा भवतु
सुखकरी प्राणशक्तिः परा नः॥ १९

रक्तवर्णवाले जलका एक समुद्र है। उसमें एक पोत है, जिसपर एक अरुणवर्णका कमल खिला हुआ है। उस कमलपर विराजमान, अपने छः करकमलोंमें त्रिशूल, इक्षुधनुष, रत्नमय पाश, अंकुश, पाँच बाण तथा रक्तपूरित खप्पर धारण करनेवाली, तीन नेत्रोंसे सुशोभित होनेवाली, स्थूल वक्षःस्थलवाली तथा बालसूर्यके समान वर्णवाली प्राणशक्तिस्वरूपा पराभगवती कुण्डलिनी हमें सुख प्रदान करनेवाली हों॥ १९॥

एवं ध्यात्वा प्राणशक्तिं परमात्मस्वरूपिणीम्।
विभूतिधारणं कार्यं सर्वाधिकृतिसिद्धये॥ २०

इस प्रकार परमात्मस्वरूपिणी प्राणशक्ति देवी कुण्डलिनीका ध्यान करके समस्त कार्योंमें अधिकार प्राप्त करनेके लिये विभूति धारण करना चाहिये॥ २०॥

विभूतेर्विस्तरं वक्ष्ये धारणे च महाफलम्।
श्रुतिस्मृतिप्रमाणोक्तं भस्मधारणमुत्तमम्॥ २१

विभूति धारण करनेसे महान् फल प्राप्त होता है; श्रुति तथा स्मृतिके प्रमाणके अनुसार भस्मधारण अतीव उत्तम है। अब मैं विभूतिके विषयमें विस्तारपूर्वक वर्णन करूँगा॥ २१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामेकादशस्कन्धे भूतशुद्धिवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

~~○~~

अथ नवमोऽध्यायः

भस्म-धारण (शिरोव्रत)

श्रीनारायण उवाच

इदं शिरोव्रतं चीर्णं विधिवद्यैर्द्विजातिभिः।
तेषामेव परां विद्यां वदेदज्ञानबाधिकाम्॥ १

श्रीनारायण बोले—जो द्विजातिगण शिरोव्रत (मस्तकपर भस्म धारण करनेके नियम)-का पालन करते हैं, उन्हींको अज्ञानको नष्ट करनेवाली पराविद्याके विषयमें बताना चाहिये॥ १॥

विधिवच्छ्रद्धया सार्धं न चीर्णं यैः शिरोव्रतम्।
श्रौतस्मार्तसमाचारस्तेषामनुपकारकः॥ २

जो लोग भलीभाँति श्रद्धापूर्वक शिरोव्रतका पालन नहीं करते, उनके लिये श्रुतियों तथा स्मृतियोंमें प्रतिपादित सदाचार व्यर्थ सिद्ध होता है॥ २॥

शिरोव्रतसमाचारादेव ब्रह्मादिदेवताः।
देवता अभवन्विद्वन् खलु नान्येन हेतुना॥ ३

हे विद्वन्! ब्रह्मा आदि देवता शिरोव्रतके सदाचारसे ही देवत्वको प्राप्त हुए हैं; इसमें कोई अन्य हेतु नहीं था॥ ३॥

शिरोव्रतस्य माहात्म्यं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम्।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च देवताः सकला अपि॥ ४

प्राचीन कालके महर्षियोंने शिरोव्रतका माहात्म्य प्रतिपादित किया है। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र तथा समस्त देवता भी भस्म धारण करते थे॥ ४॥

सर्वपातकयुक्तोऽपि मुच्यते सर्वपातकैः।
शिरोव्रतमिदं येन चरितं विधिवद् बुधैः॥ ५

जो मनुष्य विधिपूर्वक इस शिरोव्रतका अनुष्ठान करता है, वह सभी प्रकारके पातकोंसे युक्त होनेपर भी उन सभी पातकोंसे मुक्त हो जाता है—विद्वानोंने ऐसा कहा है॥ ५॥

शिरोव्रतमिदं नाम शिरस्याथर्वणश्रुतेः।
यदुक्तं तद्धि नैवान्यत्तत्तु पुण्येन लभ्यते॥ ६

अथर्ववेदके शिरोभागमें इस व्रतका उल्लेख होनेसे यह शिरोव्रत नामवाला है। इसके विषयमें जो वर्णन वहाँ मिलता है, वैसा अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। यह पुण्यसे ही प्राप्त होता है॥ ६॥

शाखाभेदेषु नामानि व्रतस्यास्य विभेदतः।
पठ्यन्ते मुनिशार्दूल शाखास्वेकव्रतं हि तत्॥ ७

हे मुनिश्रेष्ठ! विभिन्न शाखाओंमें इस व्रतके भिन्न-भिन्न नाम कहे गये हैं, किंतु नामभेद होनेपर भी यही एक व्रत सभी शाखाओंमें वर्णित है॥ ७॥

सर्वशाखासु वस्त्वेकं शिवाख्यं सत्यचिद्घनम्।
तथा तद्विषयं ज्ञानं तथैव च शिरोव्रतम्॥ ८

सभी शाखाओंमें मात्र एक शिव नामक सत्-चित्-घनरूपवाला पदार्थ है और इस पदार्थ (तत्त्व)-का ज्ञान तथा शिरोव्रत भी वैसा ही है॥ ८॥

शिरोव्रतविहीनस्तु सर्वधर्मविवर्जितः।
अपि सर्वासु विद्यासु सोऽधिकारी न संशयः॥ ९

सभी प्रकारकी विद्याओंमें पारंगत होनेपर भी यदि कोई मनुष्य शिरोव्रतसे विहीन है, तो वह सभी धर्मोंसे विहीन है; इसमें कोई सन्देह नहीं है॥ ९॥

शिरोव्रतमिदं कार्यं पापकान्तारदाहकम्।
साधनं सर्वविद्यानां यतस्तत्सम्यगाचरेत्॥ १०

यह शिरोव्रत पापरूपी वनको दग्ध करनेवाला तथा समस्त विद्याओंका साधन है, अतः इसका सम्यक् पालन करना चाहिये॥ १०॥

श्रुतिराथर्वणी सूक्ष्मा सूक्ष्मार्थस्य प्रकाशिनी।
यदुवाच व्रतं प्रीत्या तन्नित्यं सम्यगाचरेत्॥ ११

आथर्वण श्रुति अत्यन्त सूक्ष्म है तथा सूक्ष्म अर्थका प्रकाशन करनेवाली है। उसमें इस शिरोव्रतके विषयमें जो कहा गया है, उसका भलीभाँति प्रेमपूर्वक नित्य आचरण करना चाहिये॥ ११॥

अग्निरित्यादिभिर्मन्त्रैः षड्भिः शुद्धेन भस्मना।
सर्वाङ्गोद्धूलनं कुर्याच्छिरोव्रतसमाह्वयम्॥ १२

'**अग्निरिति भस्म**' आदि इन छः आथर्वण मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए शरीरके सभी अंगोंमें शुद्ध भस्म लगाना चाहिये, यह शिरोव्रत कहा गया है॥ १२॥

एतच्छिरोव्रतं कुर्यात्सन्ध्याकालेषु सादरम्।
यावद्विद्योदयस्तावत्तस्य विद्या खलूत्तमा॥ १३

सभी सन्ध्याकालोंमें इस शिरोव्रतको तबतक करना चाहिये, जबतक ब्रह्मविद्याका उदय न हो। उसकी विद्या उत्तम है॥ १३॥

द्वादशाब्दमथाब्दं वा तदर्धं च तदर्धकम्।
प्रकुर्याद् द्वादशाहं वा सङ्कल्पेन शिरोव्रतम्॥ १४

शिरोव्रतेन यः स्नातस्तं तु नोपदिशेत्तु यः।
तस्य विद्या विनष्टा स्यान्निर्घृणः स गुरुः खलु॥ १५

ब्रह्मविद्यागुरुः साक्षान्मुनिः कारुणिकः खलु।
यथा सर्वेश्वरः श्रीमान्मृदुः कारुणिकः खलु॥ १६

जन्मान्तरसहस्रेषु नरा ये धर्मचारिणः।
तेषामेव खलु श्रद्धा जायते न कदाचन॥ १७

प्रत्युताज्ञानबाहुल्याद् द्वेष एव विजायते।
अतः प्रद्वेषयुक्तस्य न भवेदात्मवेदनम्॥ १८

ब्रह्मविद्योपदेशस्य साक्षादेवाधिकारिणः।
त एव नेतरे विद्वन् ये तु स्नाताः शिरोव्रतैः॥ १९

व्रतं पाशुपतं चीर्णं यैर्द्विजैरादरेण तु।
तेषामेवोपदेष्टव्यमिति वेदानुशासनम्॥ २०

यः पशुस्तत्पशुत्वं च व्रतेनानेन सन्त्यजेत्।
तान्हत्वा न स पापीयान्भवेद्वेदान्तनिश्चयः॥ २१

त्रिपुण्ड्रधारणं प्रोक्तं जाबालैरादरेण तु।
त्रियम्बकेन मन्त्रेण सतारेण शिवेन च॥ २२

त्रिपुण्ड्रं धारयेन्नित्यं गृहस्थाश्रममाश्रितः।
ओङ्कारेण त्रिरुक्तेन सहंसेन त्रिपुण्ड्रकम्॥ २३

धारयेद्भिक्षुको नित्यमिति जाबालिकी श्रुतिः।
त्रियम्बकेन मन्त्रेण प्रणवेन शिवेन च॥ २४

बारह वर्षतक या एक वर्षतक या छः मासतक या तीन मासतक अथवा कम-से-कम बारह दिनोंतक संकल्पके साथ इस शिरोव्रतका पालन करना चाहिये॥ १४॥

शिरोव्रतके स्नातकको जो गुरु ब्रह्मविद्याका उपदेश नहीं देता, वह अत्यन्त निर्दयी होता है और उसकी विद्याका नाश हो जाता है॥ १५॥

जिस प्रकार भगवान् सर्वेश्वर कोमलचित्त तथा परम कारुणिक होते हैं, उसी प्रकार ब्रह्मविद्याका उपदेश करनेवाला गुरु भी साक्षात् मुनि तथा दयावान् होता है॥ १६॥

जो मनुष्य हजारों जन्म-जन्मान्तरोंमें निरन्तर धर्माचरण करते रहते हैं, उन्हींके हृदयमें शिरोव्रतके प्रति श्रद्धा उत्पन्न होती है, दूसरोंके हृदयमें कभी भी नहीं; अपितु उनके हृदयमें अज्ञानकी अधिकताके कारण विद्वेष उत्पन्न होता है। अतएव विद्वेषभावनासे युक्त मनुष्यको आत्मबोध नहीं हो पाता॥ १७-१८॥

हे विद्वन्! ब्रह्मविद्याके उपदेशके सच्चे अधिकारी वे ही हैं जो शिरोव्रतमें स्नातक हो चुके हैं, अन्य लोग नहीं॥ १९॥

जिन द्विजोंने आदरपूर्वक इस पाशुपत शिरोव्रतका अनुष्ठान किया है, उन्हींको ब्रह्मविद्याका उपदेश करना चाहिये—ऐसा वेदोंका आदेश है॥ २०॥

देहाभिमानी पशुतुल्य प्राणियोंको इस शिरोव्रतके पालनसे अपने पशुत्वका नाश करना चाहिये। वेदान्तशास्त्रका ऐसा निश्चय है कि इस व्रतके द्वारा पशुत्वनाशसे कोई हिंसाजन्य पाप भी नहीं होता॥ २१॥

जाबालश्रुतिके अवलम्बियोंद्वारा आदरपूर्वक त्रिपुण्ड्र-धारणका विधान बताया गया है। गृहस्थाश्रमका आचरण करनेवालेको त्रियम्बक मन्त्र अथवा तारकमन्त्र (ॐ)-के साथ '**नमः शिवाय**' मन्त्रका उच्चारण करके प्रतिदिन आदरपूर्वक त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये। संन्यासीको ॐकारके साथ हंसमन्त्रका तीन बार उच्चारण करके प्रतिदिन त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये—ऐसा जाबालोपनिषद्‌का कथन है। गृहस्थ तथा वानप्रस्थको त्रियम्बक-मन्त्रसे अथवा

गृहस्थश्च वानप्रस्थो धारयेच्च त्रिपुण्ड्रकम्।
मेधावीत्यादिना वापि ब्रह्मचारी दिने दिने॥ २५

भस्मना सजलेनापि धारयेच्च त्रिपुण्ड्रकम्।
ब्राह्मणो विधिनोत्पन्नस्त्रिपुण्ड्रभस्मनैव तु॥ २६

ललाटे धारयेन्नित्यं तिर्यग्भस्मावगुण्ठनम्।
(महादेवस्य सम्बन्धात्तद्धर्मेऽप्यस्ति सङ्गतिः।)
सम्यक् त्रिपुण्ड्रधर्मं च ब्राह्मणो नित्यमाचरेत्॥ २७

आदिब्राह्मणभूतेन त्रिपुण्ड्रं भस्मना धृतम्।
यतोऽत एव विप्रस्तु त्रिपुण्ड्रं धारयेत्सदा॥ २८

भस्मना वेदसिद्धेन त्रिपुण्ड्रं देहगुण्ठनम्।
रुद्रलिङ्गार्चनं वापि मोहतोऽपि च न त्यजेत्॥ २९

त्रियम्बकेन मन्त्रेण सतारेण तथैव च।
पञ्चाक्षरेण मन्त्रेण प्रणवेन तथैव च॥ ३०

ललाटे हृदये चैव दोर्द्वन्द्वे च महामुने।
त्रिपुण्ड्रं धारयेन्नित्यं संन्यासाश्रममाश्रितः॥ ३१

त्रियायुषेण मन्त्रेण मेधावीत्यादिनाथवा।
गौणेन भस्मना धार्यं त्रिपुण्ड्रं ब्रह्मचारिणा॥ ३२

नमोऽन्तेन शिवेनैव शूद्रः शुश्रूषणे रतः।
उद्धूलनं त्रिपुण्ड्रं च नित्यं भक्त्या समाचरेत्॥ ३३

अन्येषामपि सर्वेषां विना मन्त्रेण सुव्रत।
उद्धूलनं त्रिपुण्ड्रं च कर्तव्यं भक्तितो मुने॥ ३४

भूत्यैवोद्धूलनं तिर्यक् त्रिपुण्ड्रस्य च धारणम्।
वरेण्यं सर्वधर्मेभ्यस्तस्मान्नित्यं समाचरेत्॥ ३५

प्रणवसहित पंचाक्षरमन्त्रसे त्रिपुण्ड्र लगाना चाहिये। इसी प्रकार ब्रह्मचर्यका पालन करनेवालेको **'मेधावी०'** इत्यादि मन्त्रसे प्रतिदिन त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये॥ २२—२५॥

भस्ममें जल मिलाकर त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये। विधिपूर्वक त्रिपुण्ड्र भस्म लगानेसे ही ब्राह्मणका ब्राह्मणत्व प्रकट होता है। अतः उसे प्रतिदिन तिरछी रेखाओंवाला त्रिपुण्ड्र अपने ललाटपर धारण करना चाहिये। (शिवजीद्वारा अपने शरीरमें भस्म धारण करनेके कारण उनके अनुयायियोंको भी भस्म धारण करना युक्तियुक्त है)। ब्राह्मणको प्रतिदिन त्रिपुण्ड्रधारणव्रतका विधिपूर्वक पालन करना चाहिये। आदिब्राह्मणस्वरूप ब्रह्माजीने भी भस्मसे त्रिपुण्ड्र धारण किया था, अतः ब्राह्मणको सदा त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये॥ २६—२८॥

वेदप्रतिपादित भस्मसे शरीरमें अनुलेपन करना चाहिये तथा त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये और नित्य शिवलिंगकी पूजा करनी चाहिये, भूलकर भी इनका परित्याग नहीं करना चाहिये॥ २९॥

हे महामुने! संन्यास-आश्रममें स्थित व्यक्तिको तारक मन्त्रके साथ त्रियम्बकमन्त्र और प्रणव (ॐ)-के साथ पंचाक्षरमन्त्रका उच्चारण करते हुए अपने ललाट, हृदयदेश तथा दोनों भुजदण्डोंपर नित्य त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये॥ ३०-३१॥

ब्रह्मचारीको **त्र्यायुषमन्त्रसे** अथवा **मेधावी०** इत्यादि मन्त्रसे गौण भस्मसे त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये। निरन्तर सेवाकार्यमें तत्पर शूद्रको **'शिवाय नमः'** मन्त्रसे श्रद्धापूर्वक अपने पूरे शरीरमें भस्म लगाना चाहिये तथा त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये। हे मुने! हे सुव्रत! इसी प्रकार अन्य सभी लोगोंको भी बिना मन्त्रका उच्चारण किये ही अपने शरीरमें भक्तिपूर्वक भस्म लगाना चाहिये तथा त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये॥ ३२—३४॥

सम्पूर्ण शरीरमें भस्म लगाना तथा मस्तकपर तिरछा त्रिपुण्ड्र धारण करना सभी धर्मोंमें श्रेष्ठ है। अतः उसका प्रतिदिन पालन करना चाहिये॥ ३५॥

भस्माग्निहोत्रजं वाथ विरजाग्निसमुद्भवम्।
आदरेण समादाय शुद्धे पात्रे निधाय तत्॥ ३६

प्रक्षाल्य पादौ हस्तौ च द्विराचम्य समाहितः।
गृहीत्वा भस्म तत्पञ्चब्रह्ममन्त्रैः शनैः शनैः॥ ३७

प्राणायामत्रयं कृत्वा अग्निरित्यादिमन्त्रितम्।
तैरेव सप्तभिर्मन्त्रैस्त्रिवारमभिमन्त्रयेत्॥ ३८

ओमापोज्योतिरित्युक्त्वा ध्यात्वा मन्त्रानुदीरयेत्।
सितेन भस्मना पूर्वं समुद्धूल्य शरीरकम्॥ ३९

विपापो विरजो मर्त्यो जायते नात्र संशयः।
ततो ध्यात्वा महाविष्णुं जगन्नाथं जलाधिपम्॥ ४०

संयोज्य भस्मना तोयमग्निरित्यादिभिः पुनः।
विमृज्य साम्बं ध्यात्वा च समुद्धूल्योर्ध्वमस्तकम्॥ ४१

तेन भावनया ब्राह्मभूतेन सितभस्मना।
ललाटवक्षःस्कन्धेषु स्वाश्रमोचितमन्त्रतः॥ ४२

मध्यमानामिकाङ्गुष्ठैरनुलोमविलोमतः।
त्रिपुण्ड्रं धारयेन्नित्यं त्रिकालेष्वपि भक्तितः॥ ४३

अग्निहोत्रजन्य भस्म तथा विरजाग्निजन्य भस्मको अत्यन्त आदरपूर्वक लेकर उसे किसी शुद्ध पात्रमें रखकर पुनः दोनों हाथ तथा पैर धोकर दो बार आचमन करके हाथमें भस्म लेकर एकाग्रचित्त हो धीरे-धीरे पाँच ब्रह्ममन्त्रों (**सद्योजातं प्रपद्यामि** आदि)-का उच्चारण करना चाहिये। तत्पश्चात् तीन बार प्राणायाम करके '**अग्निरिति भस्म**' आदि [छः आथर्वण मन्त्रों तथा बृहज्जाबालोपनिषद्के **तेजो भस्मेति**] कुल सात मन्त्रोंसे उसे तीन बार अभिमन्त्रित करना चाहिये। तदनन्तर '**ॐ आपो ज्योती रसोऽमृतम्**' ऐसा उच्चारण करके शिवजीका ध्यानकर उन सात मन्त्रोंका उच्चारण करना चाहिये। इस श्वेत भस्मको पूरे शरीरमें लगाकर मनुष्य पापसे रहित तथा विशुद्ध हो जाता है; इसमें सन्देह नहीं है॥ ३६—३९½॥

तत्पश्चात् जगत्के स्वामी जलाधिपति महाविष्णुका ध्यान करके भस्ममें जल मिलाकर पुनः '**अग्निरिति**' आदि मन्त्रोंके द्वारा उसका संस्कार करके साम्ब सदाशिवका ध्यानकर उस भस्मको ऊर्ध्व मस्तकपर लगा लेना चाहिये। उस भस्ममें शिवजीकी भावना करके सभी आश्रमोंके लोगोंको अपने-अपने आश्रमके लिये विहित मन्त्रोंका उच्चारणकर ललाटपर, वक्षःस्थलपर तथा कन्धेपर उस ब्रह्मस्वरूप श्वेत भस्मसे मध्यमा-अनामिका तथा अँगूठेसे अनुलोम-विलोमक्रमसे प्रतिदिन तीनों कालों (प्रातः, मध्याह्न, सायं)-में भक्तिपूर्वक त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये॥ ४०—४३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामेकादशस्कन्धे सशिरोव्रतं त्रिपुण्ड्रधारणवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः॥ ९॥



अथ दशमोऽध्यायः

भस्म-धारणकी विधि

श्रीनारायण उवाच

आग्नेयं गौणमज्ञानध्वंसकं ज्ञानसाधकम्।
गौणं नानाविधं विद्धि ब्रह्मन्ब्रह्मविदांवर॥ १

श्रीनारायण बोले—हे ब्रह्मन्! हे ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! अग्निसे तैयार किया गया 'गौण' भस्म भी अज्ञानका नाश करनेवाला तथा ज्ञानका साधन है। इस गौण भस्मको भी आप अनेक प्रकारवाला जानिये॥ १॥

अग्निहोत्राग्निजं तद्वद्विरजानलजं मुने।
औपासनसमुत्पन्नं समिदग्निसमुद्भवम्॥ २
पचनाग्निसमुत्पन्नं दावानलसमुद्भवम्।
त्रैवर्णिकानां सर्वेषामग्निहोत्रसमुद्भवम्॥ ३
विरजानलजं चैव धार्यं भस्म महामुने।
औपासनसमुत्पन्नं गृहस्थानां विशेषतः॥ ४
समिदग्निसमुत्पन्नं धार्यं वै ब्रह्मचारिणा।
शूद्राणां श्रोत्रियागारपचनाग्निसमुद्भवम्॥ ५
अन्येषामपि सर्वेषां धार्यं दावानलोद्भवम्।
कालश्चित्रा पौर्णमासी देशः स्वीयः परिग्रहः॥ ६
क्षेत्रारामाद्यरण्यं वा प्रशस्तः शुभलक्षणः।
तत्र पूर्वत्रयोदश्यां सुस्नातः सुकृताह्निकः॥ ७
अनुज्ञाप्य स्वमाचार्यं सम्पूज्य प्रणिपत्य च।
पूजां वैशेषिकीं कृत्वा शुक्लाम्बरधरः स्वयम्॥ ८
शुद्धयज्ञोपवीती च शुक्लमाल्यानुलेपनः।
दर्भासने समासीनो दर्भमुष्टिं प्रगृह्य च॥ ९
प्राणायामत्रयं कृत्वा प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः।
ध्यात्वा देवं च देवीं च तद्विज्ञापनवर्त्मना॥ १०
व्रतमेतत्करोमीति भवेत्सङ्कल्पदीक्षितः।
यावच्छरीरपातं वा द्वादशाब्दमथापि वा॥ ११
तदर्धं वा तदर्धं वा मासद्वादशकं तु वा।
तदर्धं वा तदर्धं वा मासमेकमथापि वा॥ १२
दिनद्वादशकं वापि दिनषट्कमथापि वा।
तदर्धं दिनमेकं वा व्रतसङ्कल्पनावधि॥ १३

हे मुने! अग्निहोत्राग्निजनित भस्म, उसी तरह विरजाग्निजनित भस्म, औपासनाग्निसे उत्पन्न भस्म, समिधाग्निजन्य भस्म, पचनाग्नि (भोजननिर्माण)-जन्य भस्म तथा दावाग्निसे उत्पन्न भस्म गौण भस्म हैं। हे महामुने! समस्त त्रैवर्णिकों (ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य)-को अग्निहोत्रजन्य तथा विरजाग्निजन्य भस्म धारण करना चाहिये। गृहस्थोंको विशेषकर औपासन-अग्निजनित भस्म तथा ब्रह्मचारीको समिधाग्निसे उत्पन्न भस्म लगाना चाहिये। शूद्रोंको वैदिक ब्राह्मणकी पाकशालामें भोजननिर्माणसे उत्पन्न भस्म तथा अन्य सभी जनोंको दावानलजनित भस्म लगाना चाहिये॥ २—५½॥

[हे ब्रह्मन्! अब मैं विरजाग्निजन्य भस्मकी उत्पत्तिके विषयमें बता रहा हूँ] चित्रा नक्षत्रयुक्त पूर्णिमाकी तिथि तथा अपना निवासस्थान ही इसके निर्माणके लिये समीचीन है। इसके अतिरिक्त खेत, बाग तथा वन भी इस विरजाहोमके लिये शुभ लक्षणोंवाले तथा प्रशस्त हैं। पूर्णिमा तिथिके पूर्व त्रयोदशीको विधिवत् स्नान करके सन्ध्या आदि नित्य कर्म सम्पादितकर अपने आचार्यसे आज्ञा लेकर उनकी पूजा करे तथा उन्हें प्रणाम करे। तदनन्तर उनकी विशिष्ट पूजा करके स्वयं श्वेत वस्त्र धारणकर शुद्ध यज्ञोपवीत पहनकर श्वेत माला धारण करे तथा चन्दनादि लगाये॥ ६—८½॥

तत्पश्चात् कुशके आसनपर बैठकर हाथकी मुट्ठीमें कुश लेकर पूर्व अथवा उत्तर दिशाकी ओर मुख करके तीन बार प्राणायाम करना चाहिये। पुनः महादेव तथा महादेवीका ध्यान करके उनके द्वारा निर्दिष्ट रीतिके अनुसार इस प्रकार निवेदन करके संकल्पमें दीक्षित होना चाहिये—'मैं इस शिरोव्रतको इस शरीरकी समाप्तितक अथवा बारह वर्षतक अथवा छः वर्षतक अथवा तीन वर्षतक अथवा बारह मासतक अथवा छः मासतक अथवा तीन मासतक अथवा एक मासतक अथवा बारह दिनतक अथवा छः दिनतक अथवा तीन दिनतक अथवा एक दिनकी अवधितक अनुष्ठित करनेके लिये यह व्रत-संकल्प ग्रहण करता हूँ'॥ ९—१३॥

अग्निमाधाय विधिवद्विरजाहोमकारणात्।
हुत्वाज्येन समिद्भिश्च चरुणा च यथाविधि॥ १४

पूताहात्पुरतो भूयस्तत्त्वानां शुद्धिमुद्दिशन्।
जुहुयान्मूलमन्त्रेण तैरेव समिदादिभिः॥ १५

तत्त्वान्येतानि मे देहे शुध्यन्तामित्यनुस्मरन्।
पश्चाद्भूतादितन्मात्राः पञ्चकर्मेन्द्रियाणि च॥ १६

ज्ञानकर्मविभेदेन पञ्च पञ्च विभागशः।
त्वगादिधातवः सप्त पञ्च प्राणादिवायवः॥ १७

मनो बुद्धिरहङ्कारो गुणाः प्रकृतिपूरुषौ।
रागो विद्या कला चैव नियतिः काल एव च॥ १८

माया च शुद्धविद्या च महेश्वरसदाशिवौ।
शक्तिश्च शिवतत्त्वं च तत्त्वानि क्रमशो विदुः॥ १९

मन्त्रैस्तु विरजैर्हुत्वा होतासौ विरजो भवेत्।
अथ गोमयमादाय पिण्डीकृत्याभिमन्त्र्य च॥ २०

न्यस्याग्नौ तं च संरक्ष्य दिने तस्मिन् हविष्यभुक्।
प्रभाते च चतुर्दश्यां कृत्वा सर्वं पुरोदितम्॥ २१

तस्मिन्दिने निराहारः कालशेषं समापयेत्।
प्रातः पर्वणि चाप्येवं कृत्वा होमावसानतः॥ २२

उपसंहृत्य रुद्राग्निं गृहीत्वा भस्म यत्नतः।
ततश्च जटिलो मुण्डः शिखैकजट एव च॥ २३

भूत्वा स्नात्वा पुनर्वीतलज्जश्चेत्स्याद्दिगम्बरः।
अन्यः काषायवसनश्चर्मचीराम्बरोऽथवा॥ २४

एकाम्बरो वल्कलवान्भवेद्दण्डी च मेखली।
प्रक्षाल्य चरणौ पश्चाद् द्विराचम्यात्मनस्तनुम्॥ २५

इसके बाद विरजाहोमके लिये विधिपूर्वक (अपनी शाखाके गृह्यसूत्रकी विधिसे) अग्न्याधान करके घृत, समिधा तथा चरुसे विधिवत् हवन करना चाहिये। पुनः इस पवित्र दिनके बाद चतुर्दशीको अपने तत्त्वोंकी शुद्धिके उद्देश्यसे मूलमन्त्रका उच्चारण करते हुए उन्हीं समिधा आदि द्रव्योंसे आहुति प्रदान करनी चाहिये। मेरे शरीरमें ये तत्त्व शुद्धताको प्राप्त हो जायँ—ऐसी भावना करते हुए आहुति डालनी चाहिये। पंचमहाभूत (पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश), पंचतन्मात्राएँ (गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द), पाँच कर्मेन्द्रियाँ (हाथ, पैर, वाक्, पायु, उपस्थ), पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ (नेत्र, कान, नासिका, जीभ, त्वचा), सात धातुएँ (रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, वीर्य) प्राण आदि पाँच वायु (प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान), मन, बुद्धि, अहंकार, तीनों गुण (सत्त्व, रज, तम), प्रकृति, पुरुष, राग, विद्या, कला, नियति, काल, माया, शुद्ध विद्या, महेश्वर, सदाशिव, शक्ति तथा शिवतत्त्व—ये क्रमशः तत्त्व कहे गये हैं॥ १४—१९॥

विरजामन्त्रोंसे आहुति प्रदान करके वह होता निष्पाप हो जाता है। इसके बाद गायका गोबर लेकर उसका पिण्ड बनाकर उसे [पंचाक्षरमन्त्रसे] अभिमन्त्रित करके पुनः उसे अग्निमें रखकर उसका संरक्षण करता रहे। उस दिन केवल हविष्यान्न ग्रहण करे। चतुर्दशीको प्रातःकाल पूर्वोक्त विधिसे [नित्यकर्म तथा हवन आदि] समस्त कार्य सम्पन्न करके उस दिन निराहार रहकर सम्पूर्ण समय व्यतीत करे॥ २०-२१$\frac{१}{२}$॥

तत्पश्चात् पूर्णिमाके दिन प्रातःकाल नित्यकर्म करके हवन करे और होमके अनन्तर रुद्राग्निका विसर्जन करके सावधानीके साथ भस्म ग्रहण कर ले। तदनन्तर जटाधारी, मुण्डी अथवा शिखारूपी एक जटावाला होकर पुनः स्नान कर लेनेके अनन्तर यदि लज्जाशून्य हो गया हो तो दिगम्बर (नग्न) हो जाय, यदि नहीं तो गेरुआ वस्त्र अथवा मृगचर्म अथवा वस्त्रका एक टुकड़ा या एक वस्त्र या पेड़की छाल पहनकर हाथमें दण्ड तथा कटिप्रदेशमें मेखला धारण करे। तत्पश्चात् अपने दोनों पैर प्रक्षालित-कर दो बार आचमन करके विरजाग्निजन्य उस भस्मको

सङ्कलीकृत्य तद्भस्म विरजानलसम्भवम्।
अग्निरित्यादिभिर्मन्त्रैः षड्भिराथर्वणैः क्रमात्॥ २६

विमृज्याङ्गानि मूर्धादिचरणान्तं च तैः स्पृशेत्।
ततस्तेन क्रमेणैव समुद्धूल्य च भस्मना॥ २७

सर्वाङ्गोद्धूलनं कुर्यात्प्रणवेन शिवेन वा।
ततश्च पुण्ड्रं रचयेत्त्रियायुषसमाह्वयम्॥ २८

शिवभावं समागम्य शिवभावमथाचरेत्।
कुर्यात्त्रिसन्ध्यमप्येवमेतत्पाशुपतं व्रतम्॥ २९

भुक्तिमुक्तिप्रदं चैव पशुत्वं विनिवर्तयेत्।
तत्पशुत्वं परित्यज्य कृत्वा पाशुपतं व्रतम्॥ ३०

पूजनीयो महादेवो लिङ्गमूर्तिः सदाशिवः।
भस्मस्नानं महापुण्यं सर्वसौख्यकरं परम्॥ ३१

आयुष्यं बलमारोग्यं श्रीपुष्टिवर्धनं यतः।
रक्षार्थं मङ्गलार्थं च सर्वसम्पत्समृद्धये॥ ३२

भस्मस्निग्धमनुष्याणां महामारीभयं न च।
शान्तिकं पौष्टिकं भस्म कामदं च त्रिधा भवेत्॥ ३३

एकत्र करके '**अग्निरिति भस्म**' आदि छः आथर्वण मन्त्रोंसे अंगोंका शोधन करके पुनः उन्हीं मन्त्रोंसे क्रमसे मस्तकसे लेकर चरणतक भस्म लगाना चाहिये। इस क्रमसे उस भस्मद्वारा उद्धूलन करके प्रणव (ॐ) मन्त्रसे या शिवमन्त्रसे सम्पूर्ण शरीरमें भस्मका अनुलेपन करना चाहिये। इसके बाद '**त्र्यायुष**' संज्ञावाले मन्त्रसे त्रिपुण्ड्र धारण करे। ऐसा कर लेनेपर शिवभावको प्राप्त होकर शिवभावका ही आचरण करे॥ २२—२८½ ॥

इस प्रकार इस पाशुपतव्रतको प्रातःकालीन, मध्याह्नकालीन तथा सायंकालीन तीनों सन्ध्याओंके समय करना चाहिये। यह पाशुपतव्रत भोग तथा मोक्षको देनेवाला है और यह पशुत्वभावको दूर कर देता है। अतएव पशुत्व-विचारका त्याग करके पाशुपतव्रतका अनुष्ठान करनेके अनन्तर लिंगमूर्ति महादेव सदाशिवकी पूजा करनी चाहिये॥ २९-३०½ ॥

भस्मस्नान महान् पुण्यदायक; सभी सुखोंकी प्राप्ति करानेवाला; अतिश्रेष्ठ; आयु, बल, आरोग्य, लक्ष्मी तथा पुष्टिकी वृद्धि करनेवाला है। अतः अपनी रक्षा, कल्याण तथा सर्वविधसम्पदाकी समृद्धिके लिये मनुष्योंको भस्म धारण करना चाहिये। भस्म-स्नान करनेवाले मनुष्योंको महामारीका भय नहीं रहता है। यह भस्म शान्तिक (शान्तिकारक), पौष्टिक (पुष्टिकारक) तथा कामद (सिद्धिप्रदायक)—इन तीन प्रकारका होता है॥ ३१—३३ ॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामेकादशस्कन्धे भस्ममाहात्म्ये पाशुपतव्रतवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥

~~o~~

अथैकादशोऽध्यायः

भस्मके प्रकार

नारद उवाच

त्रिविधत्वं कथं चास्य भस्मनः परिकीर्तितम्।
एतत्कथय मे देव महत्कौतूहलं मम॥ १

श्रीनारायण उवाच

त्रिविधत्वं प्रवक्ष्यामि देवर्षे भस्मनः शृणु।
महापापक्षयकरं महाकीर्तिकरं परम्॥ २

नारदजी बोले—हे देव! यह भस्म तीन प्रकारका कैसे कहा गया है? यह मुझे आप बताइये; क्योंकि इस विषयमें मुझे बहुत कौतूहल हो रहा है॥ १॥

नारायण बोले—हे देवर्षे! मैं भस्मके तीन प्रकारोंका वर्णन करूँगा, आप सुनिये। यह महान् पापोंको नष्ट करनेवाला तथा विपुल कीर्ति प्रदान करनेवाला है॥ २॥

गोमयं योनिसम्बद्धं तद्धस्तेनैव गृह्यते।
ब्राह्मैर्मन्त्रैस्तु सन्दग्धं तच्छान्तिकृदिहोच्यते॥ ३

सावधानस्तु गृह्णीयान्नरो वै गोमयं तु यत्।
अन्तरिक्षे गृहीत्वा तत्षडङ्गेन दहेदतः॥ ४

पौष्टिकं तत्समाख्यातं कामदं च ततः शृणु।
प्रासादेन दहेदेतत्कामदं भस्म कीर्तितम्॥ ५

प्रातरुत्थाय देवर्षे भस्मव्रतपरः शुचिः।
गवां गोष्ठेषु गत्वा तु नमस्कृत्य तु गोकुलम्॥ ६

गवां वर्णानुरूपाणां गृह्णीयाद् गोमयं शुभम्।
ब्राह्मणस्य च गौः श्वेता रक्ता गौः क्षत्रियस्य च॥ ७

पीतवर्णा तु वैश्यस्य कृष्णा शूद्रस्य कथ्यते।
पौर्णमास्याममावास्यामष्टम्यां वा विशुद्धधीः॥ ८

प्रासादेन तु मन्त्रेण गृहीत्वा गोमयं शुभम्।
हृदयेन तु मन्त्रेण पिण्डीकृत्य तु गोमयम्॥ ९

रविरश्मिसुसन्तप्तं शुचौ देशे मनोहरे।
तुषेण वा बुसैर्वापि प्रासादेन तु निक्षिपेत्॥ १०

अरण्युद्भवमग्निं वा श्रोत्रियागारजं तु वा।
तदग्नौ विन्यसेत्तं च शिवबीजेन मन्त्रतः॥ ११

गृह्णीयादथ तत्राग्निकुण्डाद्भस्म विचक्षणः।
नवपात्रं समादाय प्रासादेन तु निक्षिपेत्॥ १२

केतकी पाटली तद्वदुशीरं चन्दनं तथा।
नानासुगन्धिद्रव्याणि काश्मीरप्रभृतीनि च॥ १३

निक्षिपेत्तत्र पात्रे तु सद्योमन्त्रेण शुद्धधीः।
जलस्नानं पुरा कृत्वा भस्मस्नानमतः परम्॥ १४

जो गोमय (गोबर) योनिसे सम्बद्ध अर्थात् योनिसे अलग होनेके पूर्व हाथपर ग्रहण कर लिया गया हो, उस गोमयको [**सद्योजात०** आदि] ब्राह्मन्त्रोंसे दग्ध करनेपर जो भस्म बनती है, उसे शान्तिक भस्म कहा जाता है॥ ३॥

जिस गोमयको [जमीनपर गिरनेसे पूर्व] अन्तरिक्षमें ही सावधानीपूर्वक हाथपर ले लिया गया हो, उस गोमयको षडंगमन्त्रसे दग्ध करनेपर जो भस्म बनती है, उसे पौष्टिक भस्म कहा गया है। [हे देवर्षे!] अब इसके बाद कामद भस्मके विषयमें सुनिये। प्रासादमन्त्र (हौम्)-से दग्ध करनेपर जो भस्म बनती है, उसे कामद भस्म कहा गया है॥ ४-५॥

हे देवर्षे! भस्मव्रतपरायण मनुष्यको प्रातःकाल उठकर [नित्यकर्मसे] पवित्र होनेके पश्चात् गोशालामें जाकर गोवृन्दको नमस्कार करके वर्णानुरूप गायोंका शुद्ध गोमय लेना चाहिये। ब्राह्मणके लिये श्वेत, क्षत्रियके लिये लाल, वैश्यके लिये पीले तथा शूद्रके लिये काले रंगकी गाय [श्रेयस्कर] कही जाती है। विशुद्ध बुद्धिवाले व्यक्तिको पूर्णिमा, अमावास्या अथवा अष्टमीको प्रासाद (हौम्) मन्त्रसे शुद्ध गोमय उठाकर हृदयमन्त्र (नमः)-से उस गोमयको पिण्डके आकारका बना लेनेके अनन्तर पुनः उस पिण्डको सूर्यकी किरणोंमें भलीभाँति सुखाकर उसे धानकी भूसी या [गेहूँ आदिके] भूसेसे वेष्टित करके प्रासादमन्त्रका उच्चारण करते हुए किसी सुन्दर तथा पवित्र स्थानपर रख देना चाहिये॥ ६—१०॥

तत्पश्चात् अरणिसे उत्पन्न अग्नि अथवा वैदिक ब्राह्मणके घरसे अग्नि लाकर शिवबीजमन्त्रसे उस पिण्डको अग्निमें डाल देना चाहिये॥ ११॥

पुनः बुद्धिमान् मनुष्यको चाहिये कि उस अग्निकुण्डसे भस्म निकाले और एक नया पात्र लेकर उसमें भस्मको प्रासाद-मन्त्रसे रख दे। तत्पश्चात् विशुद्ध बुद्धिवाले व्यक्तिको केवड़ा, गुलाब, खस, चन्दन और केसर आदि विविध प्रकारके सुगन्धित द्रव्योंको सद्योजात मन्त्रसे उस पात्रमें स्थित भस्ममें मिला लेना चाहिये। पहले जल-स्नान करके उसके बाद ही भस्म-स्नान करना चाहिये॥ १२—१४॥

जलस्नाने त्वशक्तश्च भस्मस्नानं समाचरेत्।
प्रक्षाल्य पादौ हस्तौ च शिरश्चेशानमन्त्रतः॥ १५

समुद्धूल्य ततः पश्चादाननं तत्पुरुषेण तु।
अघोरेण तु हृदयं नाभिं वामेन तत्परम्॥ १६

सद्योमन्त्रेण सर्वाङ्गं समूद्धूल्य विचक्षणः।
पूर्ववस्त्रं परित्यज्य शुद्धवस्त्रं परिग्रहेत्॥ १७

प्रक्षाल्य पादौ हस्तौ च पश्चादाचमनं चरेत्।
भस्मनोद्धूलनाभावे त्रिपुण्ड्रं तु विधीयते॥ १८

मध्याह्नात्प्रागजलैर्युक्तं परतो जलवर्जितम्।
तर्जन्यनामिकामध्यैस्त्रिपुण्ड्रं च समाचरेत्॥ १९

मूर्ध्नि चैव ललाटे च कर्णे कण्ठे तथैव च।
हृदये चैव बाह्वोश्च न्यासस्थानं हि चोच्यते॥ २०

पञ्चाङ्गुलैर्न्यसेन्मूर्ध्नि प्रासादेन तु मन्त्रतः।
त्र्यङ्गुलैर्विन्यसेद्भाले शिरोमन्त्रेण देशिकः॥ २१

सद्येन दक्षिणे कर्णे वामदेवेन वामतः।
अघोरेण तु कण्ठे च मध्याङ्गुल्या स्पृशेद् बुधः॥ २२

हृदयं हृदयेनैव त्रिभिरङ्गुलिभिः स्पृशेत्।
विन्यसेद्दक्षिणे बाहौ शिखामन्त्रेण देशिकः॥ २३

वामबाहौ न्यसेद्धीमान्कवचेन त्रियङ्गुलैः।
मध्येन संस्पृशेन्नाभ्यामीशान इति मन्त्रतः॥ २४

ब्रह्मविष्णुमहेशानास्तिस्रो रेखा इति स्मृताः।
आद्यो ब्रह्मा ततो विष्णुस्तदूर्ध्वं तु महेश्वरः॥ २५

यदि जलस्नान करनेमें किसी प्रकारकी असमर्थता हो तो केवल भस्मस्नान ही करे। हाथ-पैर धोकर 'ईशान' मन्त्रसे सिरपर भस्म लगा करके 'तत्पुरुष' मन्त्रसे मुखपर, 'अघोर' मन्त्रसे हृदयपर, 'वामदेव' मन्त्रसे नाभिपर भस्म लगाये। तदनन्तर 'सद्योजात' मन्त्रसे शरीरके सभी अंगोंपर भस्म लगाकर बुद्धिमान् व्यक्तिको चाहिये कि पहलेका धारण किया हुआ वस्त्र छोड़कर शुद्ध वस्त्र पहन ले॥ १५—१७॥

तत्पश्चात् हाथ-पैर धोकर आचमन करना चाहिये। और यदि पूरे शरीरपर भस्म न लगा सके तो केवल त्रिपुण्ड्र ही धारण कर लेनेका भी विधान है॥ १८॥

मध्याह्नके पूर्व भस्मको जलमें मिलाकर तथा इसके बाद लगाना हो तो जलरहित (सूखा) भस्मका त्रिपुण्ड्र तर्जनी, अनामिका तथा मध्यमा—इन तीनों अँगुलियोंसे धारण करना चाहिये॥ १९॥

सिर, ललाट, कान, कण्ठ, हृदय और दोनों बाहु—ये त्रिपुण्ड्र धारण करनेके स्थान बताये गये हैं। प्रासाद मन्त्रका उच्चारण करते हुए पाँचों अँगुलियोंसे सिरपर त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये। साधकको चाहिये कि तीन अँगुलियों (तर्जनी, मध्यमा तथा अनामिका)-से शिरोमन्त्र (स्वाहा)-द्वारा ललाटपर त्रिपुण्ड्र लगाये। साधकको सद्योजात मन्त्रसे दाहिने कानपर, वामदेव मन्त्रसे बायें कानपर तथा अघोर मन्त्रसे कण्ठपर मध्यमा अँगुलीद्वारा भस्म लगाना चाहिये॥ २०—२२॥

इसी प्रकार साधकको चाहिये कि हृदयमन्त्रसे तीनों अँगुलियोंद्वारा हृदयमें और शिखामन्त्रसे दाहिनी भुजापर त्रिपुण्ड्र धारण करे। बुद्धिमान् व्यक्तिको उन्हीं तीनों अँगुलियोंद्वारा कवचमन्त्रसे बायीं भुजापर त्रिपुण्ड्र लगाना चाहिये और मध्यमाद्वारा '**ईशानः सर्वविद्यानाम्०**'—इस मन्त्रसे नाभिपर भस्म धारण करना चाहिये॥ २३-२४॥

ये तीनों रेखाएँ ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वरका स्वरूप मानी गयी हैं। त्रिपुण्ड्रकी पहली रेखा ब्रह्मा, उसके बादवाली रेखा विष्णु तथा उसके ऊपरकी रेखा महेश्वरका स्वरूप है॥ २५॥

एकाङ्गुलेन न्यस्तं यदीश्वरस्तत्र देवता।
शिरोमध्ये त्वयं ब्रह्मा ईश्वरस्तु ललाटके॥ २६

कर्णयोरश्विनौ देवौ गणेशस्तु गले तथा।
क्षत्रियश्च तथा वैश्यः शूद्रश्चोद्धूलनं त्यजेत्॥ २७

सर्वेषामन्त्यजातीनां मन्त्रेण रहितं भवेत्।
(अदीक्षितं मनुष्याणामपि मन्त्रं विना भवेत्)॥ २८

एक अँगुली (मध्यमा)-से जो भस्म लगायी जाती है, उस रेखाके देवता ईश्वर हैं। सिरमें साक्षात् ब्रह्मा, ललाटपर ईश्वर, कानोंमें दोनों अश्विनीकुमार और गलेमें गणेश विद्यमान हैं। क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रको सर्वांगमें भस्म नहीं लगाना चाहिये और समस्त अन्त्य जातियोंको मन्त्रोंका उच्चारण किये बिना ही भस्म धारण करना चाहिये। (इसी प्रकार दीक्षारहित मनुष्योंको भी मन्त्रके बिना ही भस्म लगाना चाहिये)॥ २६—२८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामेकादशस्कन्धे त्रिविधभस्ममाहात्म्यवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः॥ ११॥



अथ द्वादशोऽध्यायः

भस्म न धारण करनेपर दोष

श्रीनारायण उवाच

देवर्षे शृणु तत्सर्वं भस्मोद्धूलनजं फलम्।
सरहस्यविधानं च सर्वकामफलप्रदम्॥ १

कपिलायाः शकृत्स्वच्छं गृहीत्वा गगनेऽपतत्।
न क्लिन्नं नापि कठिनं न दुर्गन्धं न चोषितम्॥ २

उपर्यधः परित्यज्य गृह्णीयात्पतितं यदि।
पिण्डीकृत्य शिवाग्न्यादौ तत्क्षिपेन्मूलमन्त्रितम्॥ ३

आदाय वाससाच्छाद्य भस्माधाने विनिक्षिपेत्।
सुकृते सुदृढे शुद्धे क्षालिते प्रोक्षिते शुभे॥ ४

विन्यस्य मन्त्री मन्त्रेण पात्रे भस्म विनिक्षिपेत्।
तैजसं दारवं चाथ मृण्मयं चैलमेव च॥ ५

अन्यद्वा शोभनं शुद्धं भस्माधारं प्रकल्पयेत्।
क्षौमे चैवातिशुद्धे वा धनवद्भस्म निक्षिपेत्॥ ६

श्रीनारायण बोले—हे देवर्षे! अब रहस्य तथा विधानके साथ भस्म लगानेसे प्राप्त होनेवाले समस्त फलके विषयमें सुनिये। यह भस्मोद्धूलन सभी कामनाओंको सफल करनेवाला है॥ १॥

कपिला गायका स्वच्छ गोमय भूमिपर गिरनेके पूर्व ही हाथोंसे ग्रहण कर ले। वह न गीला हो, न कठोर हो, न दुर्गन्धयुक्त हो और न बासी हो। यदि गोबर पृथ्वीपर गिर पड़ा हो तो ऊपर तथा नीचेका भाग छोड़कर बीचका अंश लेना चाहिये। तत्पश्चात् उसे पिण्डके आकारका बनाकर मूलमन्त्रसे अभिमन्त्रित करके शिवाग्निमें डाल देना चाहिये॥ २-३॥

जल जानेपर भस्मको निकालकर तथा उसे किसी शुद्ध वस्त्रसे छानकर एक सुन्दर, पवित्र, सुदृढ़, स्वच्छ, सम्यक् प्रक्षालित किये गये तथा प्रोक्षित भस्मपात्रमें रख ले। मन्त्रवेत्ताको चाहिये कि मूलमन्त्रका उच्चारण करके ही भस्मको पात्रमें रखे। भस्म रखनेके लिये किसी धातु (सोना, ताँबा आदि), काष्ठ, मिट्टी, वस्त्र अथवा किसी अन्य सुन्दर तथा शुद्ध पदार्थका भस्मपात्र बनाना चाहिये। अथवा किसी अति शुद्ध रेशमी वस्त्रसे बने पात्रमें धनकी तरह भस्मको सुरक्षित रखना चाहिये॥ ४—६॥

प्रस्थितो भस्म गृह्णीयात्स्वयं चानुचरोऽपि वा।
न चायुक्तकरे दद्यान्न चाशुचितले क्षिपेत्॥ ७

न संस्पृशेत्तु नीचाङ्गैर्न क्षिपेन्न च लङ्घयेत्।
तस्माद्भसितमादाय विनियुञ्जीत मन्त्रितम्॥ ८

विभूतिधारणविधिः स्मृतिप्रोक्तो मयेरितः।
यदीयाचरणेनैव शिवतुल्यो न संशयः॥ ९

शैवैः सम्पादितं भस्म वैदिकैः शिवसन्निधौ।
भक्त्या परमया ग्राह्यं प्रार्थयित्वा तु पूजयेत्॥ १०

तन्त्रोक्तवर्त्मना सिद्धं भस्म तान्त्रिकपूजकैः।
यत्रकुत्रापि दत्तं चेत्तद् ग्राह्यं नैव वैदिकैः॥ ११

शूद्रैः कापालिकैर्वाथ पाखण्डैरपरैस्तु तत्।
त्रिपुण्ड्रं धारयेद्भक्त्या मनसापि न लङ्घयेत्॥ १२

श्रुत्या विधीयते यस्मात्तत्त्यागी पतितो भवेत्।
त्रिपुण्ड्रधारणं भक्त्या तथा देहावगुण्ठनम्॥ १३

द्विजः कुर्याद्धि मन्त्रेण तत्त्यागी पतितो भवेत्।
उद्धूलनं त्रिपुण्ड्रं च भक्त्या नैवाचरन्ति ये॥ १४

तेषां नास्ति विनिर्मोक्षः संसाराज्जन्मकोटिभिः।
येन भस्मोक्तमार्गेण धृतं न मुनिपुङ्गव॥ १५

तस्य विद्धि मुने जन्म निष्फलं सौकरं यथा।
येषां वपुर्मनुष्याणां त्रिपुण्ड्रेण विना स्थितम्॥ १६
श्मशानसदृशं तत्स्यान्न प्रेक्ष्यं पुण्यकृज्जनैः।

कहीं प्रस्थान करते समय भस्मपात्र या तो स्वयं लिये रहे अथवा साथ चलनेवाला अनुचर (सेवक) इसे लिये रहे। इसे न किसी अयोग्य व्यक्तिके हाथमें दे और न तो किसी अपवित्र स्थानपर ही रखे॥ ७॥

शरीरके नीचेके अंग (पैर आदि)-से भस्मको न तो स्पर्श करे, न तो उसे फेंके और न तो लाँघे। उस पात्रसे भस्म निकालकर अभिमन्त्रित करनेके बाद ही उसे धारण करना चाहिये॥ ८॥

विभूतिधारणकी जो विधि स्मृतिग्रन्थोंमें बतायी गयी है, मैंने उसीका वर्णन किया है। जिसके अनुसार आचरण करनेसे मनुष्य शिवतुल्य हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं है॥ ९॥

भगवान् शिवकी सन्निधिमें वैदिक शिवभक्तोंद्वारा बनाये गये भस्मको ही परम श्रद्धाके साथ ग्रहण करना चाहिये और उसे माँगकर उसकी पूजा करनी चाहिये। तन्त्रशास्त्रमें कही गयी विधिसे तान्त्रिक पूजकोंद्वारा निर्मित किया गया भस्म तान्त्रिकोंके लिये ग्राह्य है, वैदिकोंके लिये नहीं। वैदिकोंको चाहिये कि वे शूद्रों, कापालिकों तथा पाखण्डियोंद्वारा ग्राह्य तथा जिस किसीको भी दिये जानेवाले भस्मको ग्रहण न करें। सभीको अत्यन्त श्रद्धापूर्वक त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये और मनसे भी भस्मका तिरस्कार नहीं करना चाहिये। श्रुतिके द्वारा इसका विधान किया गया है, अतः भस्मका त्याग करनेवाला पतित हो जाता है। द्विजको भक्तिपूर्वक मन्त्रोच्चारणके साथ त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये तथा शरीरपर भस्मका अनुलेपन करना चाहिये। इसका परित्याग करनेवालेका पतन हो जाता है॥ १०—१३½॥

जो लोग भक्तिपूर्वक सभी अंगोंमें भस्म नहीं लगाते तथा त्रिपुण्ड्र धारण नहीं करते, करोड़ों जन्मोंमें भी इस संसारसे उनकी मुक्ति नहीं हो सकती॥ १४½॥

हे मुनिवर! जिस मनुष्यने विहित मार्गसे भस्म धारण नहीं किया; हे मुने! आप उसके जन्मको सूअरके जन्मकी भाँति निरर्थक समझिये॥ १५½॥

जिन मनुष्योंका शरीर बिना त्रिपुण्ड्रके रहता है, उनका शरीर श्मशानके तुल्य होता है, पुण्यात्मा व्यक्तियोंको ऐसे शरीरपर दृष्टितक नहीं डालनी चाहिये॥ १६½॥

धिग्भस्मरहितं भालं धिग्ग्राममशिवालयम्॥ १७

धिगनीशार्चनं जन्म धिग्विद्यामशिवाश्रयाम्।
त्रिपुण्ड्रं ये विनिन्दन्ति निन्दन्ति शिवमेव ते॥ १८

धारयन्ति च ये भक्त्या धारयन्ति तमेव ते।
यथा कृशानुरहितो भूधरो न विराजते॥ १९

अशेषसाधनेऽप्येवं भस्महीनं शिवार्चनम्।
उद्धूलनं त्रिपुण्ड्रं च श्रद्धया नाचरन्ति ये॥ २०

तैः पूर्वाचरितं सर्वं विपरीतं भवेदपि।
भस्मना वेदमन्त्रेण त्रिपुण्ड्रस्य च धारणम्॥ २१

विना वेदोचिताचारं स्मार्तस्यानर्थकारणम्।
कृतं स्यादकृतं तेन श्रुतमप्यश्रुतं भवेत्॥ २२

अधीतमनधीतं च त्रिपुण्ड्रं यो न धारयेत्।
वृथा वेदा वृथा यज्ञा वृथा दानं वृथा तपः॥ २३

वृथा व्रतोपवासेन त्रिपुण्ड्रं यो न धारयेत्।
भस्मधारणकं त्यक्त्वा मुक्तिमिच्छति यः पुमान्॥ २४

विषपानेन नित्यत्वं कुरुते ह्यात्मनो हि सः।
स्रष्टा सृष्टिच्छलेनाह त्रिपुण्ड्रस्य च धारणम्॥ २५

ससर्ज स ललाटं हि तिर्यगूर्ध्वं न वर्तुलम्।
तिर्यग्रेखाः प्रदृश्यन्ते ललाटे सर्वदेहिनाम्॥ २६
तथापि मानवा मूर्खा न कुर्वन्ति त्रिपुण्ड्रकम्।

भस्मरहित मस्तकको धिक्कार है, शिवालयविहीन ग्रामको धिक्कार है, शिव-अर्चनसे विमुख व्यक्तिके जन्मको धिक्कार है तथा शिवका आश्रय प्रदान न करानेवाली विद्याको धिक्कार है॥ १७½ ॥

जो लोग त्रिपुण्ड्रकी निन्दा करते हैं, वे वस्तुतः शिवकी ही निन्दा करते हैं और जो लोग भक्तिपूर्वक त्रिपुण्ड्र धारण करते हैं, वे मानो साक्षात् शिवजीको ही धारण करते हैं॥ १८½ ॥

जिस तरह अग्निहोत्र किये बिना ब्राह्मण सुशोभित नहीं होता, उसी प्रकार भस्मरहित होकर किया गया शिवार्चन शोभा नहीं देता, चाहे वह सभी पूजनोपचारोंके साथ ही क्यों न किया गया हो॥ १९½ ॥

जो लोग श्रद्धापूर्वक अपने सर्वांगमें भस्म नहीं लगाते तथा त्रिपुण्ड्र धारण नहीं करते, उनके द्वारा पूर्वमें किया गया समस्त सत्कर्म भी विपरीत हो जाता है॥ २०½ ॥

वेदमन्त्रके साथ ही भस्मसे त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये। वेदोचित आचारके बिना त्रिपुण्ड्र धारण करना स्मार्तोंके लिये अनर्थकारी होता है॥ २१½ ॥

जो त्रिपुण्ड्र धारण नहीं करता, उसके द्वारा किया गया कृत्य न किये हुएके समान, सुना गया वेदवचन न सुने हुएके समान तथा अधीत शास्त्र अध्ययन न किये हुएके समान हो जाता है॥ २२½ ॥

जो त्रिपुण्ड्र धारण नहीं करता उसके यज्ञ, दान, वेदाध्ययन, तपश्चरण, व्रत तथा उपवास—ये सभी व्यर्थ हो जाते हैं॥ २३½ ॥

जो मनुष्य भस्मधारणका त्याग करके मुक्तिकी अभिलाषा रखता है, वह मानो विषपान करके अपनेको अमर करना चाहता है॥ २४½ ॥

सृष्टिकर्ताने मस्तककी सृष्टिके बहाने ही त्रिपुण्ड्र धारण करना बतला दिया है; इसीलिये उन्होंने मस्तकको तिरछा तथा ऊँचा बनाया है, गोल नहीं॥ २५½ ॥

सभी देहधारियोंके ललाटपर तिरछी रेखाएँ स्पष्ट-रूपसे दिखायी पड़ती हैं, फिर भी मूर्ख मनुष्य त्रिपुण्ड्र धारण नहीं करते॥ २६½ ॥

न तद्ध्यानं न तन्मोक्षं न तज्ज्ञानं न तत्तपः॥ २७
विना तिर्यक्त्रिपुण्ड्रं च विप्रेण यदनुष्ठितम्।
वेदस्याध्ययने शूद्रो नाधिकारी यथा भवेत्॥ २८
त्रिपुण्ड्रेण विना विप्रो नाधिकारी शिवार्चने।
प्राङ्मुखश्चरणौ हस्तौ प्रक्षाल्याचम्य पूर्ववत्॥ २९
प्राणानायम्य सङ्कल्प्य भस्मस्नानं समाचरेत्।
आदाय भसितं शुद्धमग्निहोत्रसमुद्भवम्॥ ३०
ईशानेन तु मन्त्रेण स्वमूर्धनि विनिक्षिपेत्।
तत आदाय तद्भस्म मुखे च पुरुषेण तु॥ ३१
अघोराख्येण हृदये गुह्ये वामाह्वयेन च।
सद्योजाताभिधानेन भस्म पादद्वये क्षिपेत्॥ ३२
सर्वाङ्गं प्रणवेनैव मन्त्रेणोद्धूलनं ततः।
एतदाग्नेयकं स्नानमुदितं परमर्षिभिः॥ ३३
सर्वकर्मसमृद्ध्यर्थं कुर्यादादाविदं बुधः।
ततः प्रक्षाल्य हस्तादीनुपस्पृश्य यथाविधि॥ ३४
तिर्यक्त्रिपुण्ड्रं विधिना ललाटे हृदये गले।
पञ्चभिर्ब्रह्मभिर्वापि कृतेन भसितेन च॥ ३५
धृतमेतत्त्रिपुण्ड्रं स्यात्सर्वकर्मसु पावनम्।
शूद्रैरन्त्यजहस्तस्थं न धार्यं भस्म च क्वचित्॥ ३६
भस्मना साग्निहोत्रेण लिप्तः कर्म समाचरेत्।
अन्यथा सर्वकर्माणि न फलन्ति कदाचन॥ ३७
सत्यं शौचं जपो होमस्तीर्थं देवादिपूजनम्।
तस्य व्यर्थमिदं सर्वं यस्त्रिपुण्ड्रं न धारयेत्॥ ३८
त्रिपुण्ड्रधृग्विप्रवरो यो रुद्राक्षधरः शुचिः।
स हन्ति रोगदुरितव्याधिदुर्भिक्षतस्करान्॥ ३९
समाप्नोति परं ब्रह्म यतो नावर्तते पुनः।
स पङ्क्तिपावनः श्राद्धे पूज्यो विप्रैः सुरैरपि॥ ४०

ब्राह्मण बिना तिरछा त्रिपुण्ड्र धारण किये जो कुछ भी अनुष्ठान करता है, वह न तो ध्यान है, न तो मोक्ष है, न तो ज्ञान है और न तप ही है॥ २७½ ॥

जिस तरह शूद्र वेदके अध्ययनका अधिकारी नहीं है, उसी प्रकार बिना त्रिपुण्ड्र धारण किये ब्राह्मण शिवकी पूजाका अधिकारी नहीं है॥ २८½ ॥

पूर्व दिशाकी ओर मुख करके पूर्ववत् हाथ-पैर धोकर आचमन करके प्राणायाम करनेके अनन्तर संकल्प करके भस्म-स्नान करना चाहिये॥ २९½ ॥

अग्निहोत्रजन्य शुद्ध भस्म लेकर ईशान मन्त्रसे अपने मस्तकपर भस्म धारण करना चाहिये। इसके बाद उस भस्मको लेकर तत्पुरुष मन्त्रसे मुखपर, अघोर मन्त्रसे हृदयपर, वामदेव मन्त्रसे गुह्यस्थलपर तथा सद्योजात मन्त्रसे दोनों पैरोंपर भस्म लगाना चाहिये। तत्पश्चात् प्रणव मन्त्रसे शरीरके सभी अंगोंमें भस्म लगाना चाहिये। महर्षियोंके द्वारा इसे आग्नेय स्नान कहा गया है। बुद्धिमान् व्यक्तिको अपने सभी कर्मोंकी समृद्धिके लिये यह आग्नेयस्नान सबसे पहले करना चाहिये॥ ३०—३३½ ॥

तदनन्तर हाथ-पैर धोकर यथाविधि आचमन करके विधिपूर्वक 'सद्योजात' आदि पंच ब्रह्ममन्त्रोंका उच्चारण करके निर्मित भस्मसे ललाट, हृदयदेश तथा गलेमें तिरछा त्रिपुण्ड्र धारण करे। इस प्रकार धारण किया गया यह त्रिपुण्ड्र सभी कर्मोंमें पवित्रता प्रदान करनेवाला होता है। शूद्रोंको अन्त्यजोंके हाथका भस्म कभी नहीं लगाना चाहिये। अग्निहोत्र-जन्य भस्म लगाकर ही कोई शुभ कर्म करना चाहिये; अन्यथा किये गये सभी कर्म कभी भी फलीभूत नहीं होते॥ ३४—३७॥

जो व्यक्ति त्रिपुण्ड्र धारण नहीं करता; उसका सत्य, शौच, जप, होम, तीर्थ तथा देवपूजन आदि—यह सब व्यर्थ हो जाता है॥ ३८॥

जो विप्रश्रेष्ठ शुद्ध मनसे त्रिपुण्ड्र धारण करता है तथा रुद्राक्ष पहनता है; वह रोग, पाप, व्याधि, दुर्भिक्ष तथा चोर आदिको विनष्ट कर देता है। वह परब्रह्मका सांनिध्य प्राप्त कर लेता है, जहाँसे पुनः लौटकर नहीं आता। वह श्राद्धमें पंक्तिपावन ब्राह्मण माना जाता है तथा ब्राह्मणों और देवताओंद्वारा भी पूजित होता है॥ ३९-४०॥

श्राद्धे यज्ञे जपे होमे वैश्वदेवे सुरार्चने।
धृतत्रिपुण्ड्रः पूतात्मा मृत्युं जयति मानवः।
भस्मधारणमाहात्म्यं भूयोऽपि कथयामि ते॥ ४१

श्राद्ध, यज्ञ, जप, होम, वैश्वदेव तथा देवताओंके पूजन आदिमें जो त्रिपुण्ड्र धारण किये रहता है, वह पवित्र आत्मावाला मनुष्य मृत्युको भी जीत लेता है। अब मैं भस्म धारण करनेका और भी माहात्म्य आपसे कह रहा हूँ॥ ४१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामेकादशस्कन्धे भस्मधारणमाहात्म्यवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥



अथ त्रयोदशोऽध्यायः

भस्म तथा त्रिपुण्ड्र-धारणका माहात्म्य

श्रीनारायण उवाच

महापातकसङ्घाश्च पातकान्यपराण्यपि।
नश्यन्ति मुनिशार्दूल सत्यं सत्यं न चान्यथा॥ १

एकं भस्म धृतं येन तस्य पुण्यफलं शृणु।
यतीनां ज्ञानदं प्रोक्तं वानस्थानां विरक्तिदम्॥ २

गृहस्थानां मुने तद्वद्धर्मवृद्धिकरं तथा।
ब्रह्मचर्याश्रमस्थानां स्वाध्यायप्रदमेव च॥ ३

शूद्राणां पुण्यदं नित्यमन्येषां पापनाशनम्।
भस्मनोद्धूलनं चैव तथा तिर्यक् त्रिपुण्ड्रकम्॥ ४

रक्षार्थं सर्वभूतानां विधत्ते वैदिकी श्रुतिः।
भस्मनोद्धूलनं चैव तथा तिर्यक् त्रिपुण्ड्रकम्॥ ५

यज्ञत्वेनैव सर्वेषां विधत्ते वैदिकी श्रुतिः।
भस्मनोद्धूलनं चैव तथा तिर्यक् त्रिपुण्ड्रकम्॥ ६

सर्वधर्मतया तेषां विधत्ते वैदिकी श्रुतिः।
भस्मनोद्धूलनं चैव तथा तिर्यक् त्रिपुण्ड्रकम्॥ ७

माहेश्वराणां लिङ्गार्थं विधत्ते वैदिकी श्रुतिः।

श्रीनारायण बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! भस्म धारण करनेसे महापातकोंके समूह तथा अन्य पातक भी नष्ट हो जाते हैं, यह मैं सच-सच कह रहा हूँ; इसमें सन्देह नहीं है॥ १॥

जिसने एकमात्र भस्म ही धारण किया हो, उसके पुण्यफलके विषयमें सुनिये। हे मुने! यह भस्मधारण संन्यासियोंको ब्रह्मज्ञान देनेवाला, वानप्रस्थलोगोंको विरक्ति प्रदान करनेवाला कहा गया है। उसी प्रकार यह गृहस्थोंके धर्मकी वृद्धि करनेवाला, ब्रह्मचर्य-आश्रममें स्थित लोगोंके लिये स्वाध्यायके प्रति प्रेरणा देनेवाला, शूद्रोंको नित्य पुण्य प्रदान करनेवाला तथा अन्य लोगोंके पापोंका नाश करनेवाला है॥ २-३½॥

भस्म लगाना तथा तिरछा त्रिपुण्ड्र धारण करना सभी जीवोंकी रक्षाके लिये है—वैदिकी श्रुति ऐसा विधान करती है॥ ४½॥

भस्म लगाना तथा तिरछा त्रिपुण्ड्र धारण करना सभी लोगोंके लिये यज्ञतुल्य है—वैदिकी श्रुति ऐसा विधान करती है॥ ५½॥

भस्म लगाना तथा तिरछा त्रिपुण्ड्र धारण करना सभी (पाशुपत, शैव आदि) धर्मोंमें सामान्य नियम है—वैदिकी श्रुति ऐसा विधान करती है॥ ६½॥

भस्म लगाना तथा तिरछा त्रिपुण्ड्र धारण करना माहेश्वर लोगोंका चिह्न है—वैदिकी श्रुति ऐसा विधान करती है॥ ७½॥

भस्मनोद्धूलनं चैव तथा तिर्यक् त्रिपुण्ड्रकम्॥ ८
विज्ञानार्थं च सर्वेषां विधत्ते वैदिकी श्रुतिः।

भस्म लगाना तथा तिरछा त्रिपुण्ड्र धारण करना सभी लोगोंके लिये ज्ञान-प्राप्तिका साधन है—वैदिकी श्रुति ऐसा विधान करती है॥ ८½ ॥

शिवेन विष्णुना चैव ब्रह्मणा वज्रिणा तथा॥ ९
हिरण्यगर्भेण तदवतारैर्वरुणादिभिः।
देवताभिर्धृतं भस्म त्रिपुण्ड्रोद्धूलनात्मकम्॥ १०

शंकर, विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र, हिरण्यगर्भ तथा उनके अवतारोंने और वरुण आदि देवताओंने भी त्रिपुण्ड्र तथा उद्धूलनके रूपमें भस्म धारण किया था॥ ९-१० ॥

उमादेव्या च लक्ष्म्या च वाचा चान्याभिरास्तिकैः।
सर्वस्त्रीभिर्धृतं भस्म त्रिपुण्ड्रोद्धूलनात्मना॥ ११

देवी पार्वती, लक्ष्मी, सरस्वती, अन्य सभी देवांगनाओं तथा अन्य आस्तिकजनोंने त्रिपुण्ड्र तथा उद्धूलनके रूपमें भस्म धारण किया था॥ ११ ॥

यक्षराक्षसगन्धर्वसिद्धविद्याधरादिभिः ।
मुनिभिश्च धृतं भस्म त्रिपुण्ड्रोद्धूलनात्मना॥ १२

यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर तथा मुनि आदिने भी अपने शरीरपर भस्म तथा त्रिपुण्ड्र धारण किया था॥ १२ ॥

ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैरपि च सङ्करैः।
अपभ्रंशैर्धृतं भस्म त्रिपुण्ड्रोद्धूलनात्मना॥ १३

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, वर्णसंकर तथा वर्णधर्मसे च्युत लोगोंने भी अपने शरीरपर भस्म तथा त्रिपुण्ड्र धारण किया था॥ १३ ॥

उद्धूलनं त्रिपुण्ड्रं च यैः समाचरितं मुदा।
त एव शिष्टा विद्वांसो नेतरे मुनिपुङ्गव॥ १४

हे मुनिश्रेष्ठ! जो लोग प्रसन्नतापूर्वक भस्मका अनुलेपन करते हैं तथा त्रिपुण्ड्र धारण करते हैं, वे ही शिष्ट तथा विद्वान् हैं, अन्य लोग नहीं॥ १४ ॥

शिवलिङ्गं मणिः सख्यं मन्त्रः पञ्चाक्षरस्तथा।
विभूतिरौषधं पुंसां मुक्तिस्त्रीवश्यकर्मणि॥ १५

मोक्षरूपिणी नारीको वशीभूत करनेके निमित्त मनुष्योंके लिये शिवलिंग एक मणिरूप आभूषण है, पंचाक्षरमन्त्र (**नमः शिवाय**) मित्र है और भस्म औषधि है॥ १५ ॥

भुनक्ति यत्र भस्माङ्गो मूर्खो वा पण्डितोऽपि वा।
तत्र भुङ्क्ते महादेवः सपत्नीको वृषध्वजः॥ १६

जहाँ मूर्ख या पण्डित कोई भी अपने शरीरमें भस्म धारण करके भोजन करता है, वहाँ मानो वृषध्वज महादेव अपनी भार्या पार्वतीके साथ भोजन करते हैं॥ १६ ॥

भस्मसञ्छन्नसर्वाङ्गमनुगच्छति यः पुमान्।
सर्वपातकयुक्तोऽपि पूजितो मानवोऽचिरात्॥ १७

जो मनुष्य सर्वांगमें भस्म धारण करनेवालेका अनुगमन करता है, वह सब पापोंसे युक्त होनेपर भी शीघ्र ही सबका पूजनीय हो जाता है॥ १७ ॥

भस्मसञ्छन्नसर्वाङ्गं यः स्तौति श्रद्धया सह।
सर्वपातकयुक्तोऽपि पूज्यते मानवोऽचिरात्॥ १८

जो मनुष्य सर्वांगमें भस्म धारण करनेवालेकी श्रद्धापूर्वक स्तुति करता है, वह सभी पापोंसे युक्त होनेपर भी शीघ्र ही सबके द्वारा पूजित होता है॥ १८ ॥

त्रिपुण्ड्रधारिणे भिक्षाप्रदानेन हि केवलम्।
तेनाधीतं श्रुतं तेन तेन सर्वमनुष्ठितम्॥ १९

जिसने त्रिपुण्ड्र धारण करनेवालेको केवल भिक्षाभर दे दी, उसने मानो वेदोंका अध्ययन कर लिया, सम्पूर्ण श्रुतियोंको सुन लिया तथा सभी धार्मिक कार्योंको कर लिया॥ १९ ॥

येन विप्रेण शिरसि त्रिपुण्ड्रं भस्मना कृतम्।
कीकटेष्वपि देशेषु यत्र भूतिविभूषणः॥ २०

मानवस्तु वसेन्नित्यं काशीक्षेत्रसमं हि तत्।
दुःशीलः शीलयुक्तो वा योगयुक्तोऽप्यलक्षणः॥ २१

भूतिशासनयुक्तो वा स पूज्यो मम पुत्रवत्।
छद्मनापि चरेद्यो हि भूतिशासनमैश्वरम्॥ २२

सोऽपि यां गतिमाप्नोति न तां यज्ञशतैरपि।
सम्पर्काल्लीलया वापि भयाद्वा धारयेत्तु यः॥ २३

विधियुक्तो विभूतिं तु स च पूज्यो यथा ह्यहम्।
शिवस्य विष्णोर्देवानां ब्रह्मणस्तृप्तिकारणम्॥ २४

पार्वत्याश्च महालक्ष्म्या भारत्यास्तृप्तिकारणम्।
न दानेन न यज्ञेन न तपोभिः सुदुर्लभैः॥ २५

न तीर्थयात्रया पुण्यं त्रिपुण्ड्रेण च लभ्यते।
दानं यज्ञाश्च धर्माश्च तीर्थयात्राश्च नारद॥ २६

ध्यानं तपस्त्रिपुण्ड्रस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्।
यथा राजा स्वचिह्नाङ्कं स्वजनं मन्यते सदा॥ २७

तथा शिवस्त्रिपुण्ड्राङ्कं स्वकीयमिव मन्यते।
द्विजातिर्वान्यजातिर्वा शुद्धचित्तेन भस्मना॥ २८

धारयेद्यस्त्रिपुण्ड्राङ्कं रुद्रस्तेन वशीकृतः।
त्यक्तसर्वाश्रमाचारो लुप्तसर्वक्रियोऽपि सः॥ २९
सकृत्तिर्यक्त्रिपुण्ड्राङ्कं धारयेत्सोऽपि मुच्यते।

यदि कोई ब्राह्मण अपने मस्तकपर भस्मसे त्रिपुण्ड्र धारण करके कीकट आदि देशोंमें भी नित्य निवास करता हो; तो विभूतिसे विभूषित उस मनुष्यके लिये वह स्थान काशीक्षेत्रके समान हो जाता है॥ २०½ ॥

कोई मनुष्य आचारवान् हो या आचारहीन, योगसम्पन्न हो या योग-लक्षणोंसे रहित, यदि उसने केवल भस्ममात्र धारण किया है तो वह मेरे पुत्र ब्रह्माके समान पूजनीय है॥ २१½ ॥

छद्मसे भी यदि कोई व्यक्ति ऐश्वर्यमय भस्म धारण करता है, तो वह भी उस गतिको प्राप्त करता है, जो सैकड़ों यज्ञ करनेसे भी प्राप्त नहीं की जा सकती॥ २२½ ॥

जो भस्म धारण करनेवालेके सम्पर्कसे, विनोदमें अथवा भयसे ही विधिपूर्वक भस्म धारण करता है, वह मेरी तरह पूजनीय हो जाता है॥ २३½ ॥

यह भस्म ब्रह्मा, विष्णु, महेश, अन्य देवगण, पार्वती, महालक्ष्मी तथा सरस्वतीकी तृप्तिका कारण है॥ २४½ ॥

जो पुण्य त्रिपुण्ड्र धारण करनेसे प्राप्त होता है; वह पुण्य न दानसे, न यज्ञसे, न दुःसाध्य तपस्याओंसे और न तो तीर्थयात्रासे ही प्राप्त होता है॥ २५½ ॥

हे नारद! दान, सभी यज्ञ, सभी धर्म, तीर्थयात्रा, ध्यान तथा तपस्या आदि त्रिपुण्ड्रकी सोलहवीं कलाकी भी समता नहीं कर सकते॥ २६½ ॥

जिस प्रकार राजा अपने चिह्नसे अंकित व्यक्तिको स्वजन समझता है, उसी प्रकार भगवान् शिव त्रिपुण्ड्र-चिह्न धारण करनेवालेको सदा अपना मानते हैं॥ २७½ ॥

द्विजाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) अथवा अन्य किसी जातिका मनुष्य यदि शुद्ध मनसे भस्मद्वारा त्रिपुण्ड्रका चिह्न धारण करे तो भगवान् शिव उसके वशीभूत हो जाते हैं॥ २८½ ॥

जिसने समस्त आश्रमोंके आचारोंका त्याग कर दिया है तथा समस्त नित्य-नैमित्तिक क्रियाओंको छोड़ दिया है, वह भी यदि एक बार त्रिपुण्ड्र-चिह्न धारण कर ले तो मुक्त हो जाता है॥ २९½ ॥

नास्य ज्ञानं परीक्षेत न कुलं न व्रतं तथा॥ ३०
त्रिपुण्ड्राङ्कितभालेन पूज्य एव हि नारद।

हे नारद! इस त्रिपुण्ड्रधारीके न तो ज्ञानकी, न उसके कुलकी और न तो उसके व्रतकी ही परीक्षा करे; क्योंकि वह तो अपने त्रिपुण्ड्रांकित मस्तकके कारण ही पूज्य है॥ ३०½॥

शिवमन्त्रात्परो मन्त्रो नास्ति तुल्यं शिवात्परम्॥ ३१
शिवार्चनात्परं पुण्यं न हि तीर्थं च भस्मना।

शिवमन्त्रसे बढ़कर दूसरा कोई मन्त्र नहीं है, शिवके समान कोई दूसरा देवता नहीं है, शिवके पूजनसे बढ़कर कोई पुण्य नहीं है और भस्मसे बढ़कर कोई तीर्थ नहीं है॥ ३१½॥

रुद्राग्नेर्यत्परं तीर्थं तद्भस्म परिकीर्तितम्॥ ३२
ध्वंसनं सर्वदुःखानां सर्वपापविशोधनम्।

रुद्राग्निका जो परम तीर्थ है, उसे ही भस्म कहा गया है, वह सभी प्रकारके कष्टोंका नाश करनेवाला तथा सभी पापोंका शोधन करनेवाला है॥ ३२½॥

अन्त्यजो वाधमो वापि मूर्खो वा पण्डितोऽपि वा॥ ३३
यस्मिन्देशे वसेन्नित्यं भूतिशासनसंयुतः।
तस्मिन्सदाशिवः सोमः सर्वभूतगणैर्वृतः।
सर्वतीर्थैश्च संयुक्तः सान्निध्यं कुरुते सदा॥ ३४

अन्त्यज, निर्धन, मूर्ख अथवा पण्डित कोई भी हो, वह नित्य भस्म धारण करके जिस देशमें निवास करता है, सदाशिव महादेव सभी भूतगणोंको साथमें लेकर सभी तीर्थोंसहित पार्वतीके साथ उस स्थानपर सदा विराजमान रहते हैं॥ ३३-३४॥

एतानि पञ्चशिवमन्त्रपवित्रितानि
भस्मानि कामदहनाङ्गविभूषितानि।
त्रैपुण्ड्रकाणि रचितानि ललाटपट्टे
लुम्पन्ति दैवलिखितानि दुरक्षराणि॥ ३५

कामदेवको भस्म करनेवाले भगवान् शिवके अंगके भूषणस्वरूप तथा पंच-शिवमन्त्रोंसे पवित्र की गयी यह भस्मराशि त्रिपुण्ड्ररूपमें [ललाटपर] धारण करनेसे ललाटपट्टपर विधाताके द्वारा लिखे गये अभाग्यसूचक अक्षरोंको भी मिटा देती है॥ ३५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामेकादशस्कन्धे त्रिपुण्ड्रधारणमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥



अथ चतुर्दशोऽध्यायः

भस्मस्नानका महत्त्व

श्रीनारायण उवाच

भस्मदिग्धशरीराय यो ददाति धनं मुदा।
तस्य सर्वाणि पापानि विनश्यन्ति न संशयः॥ १

श्रीनारायण बोले— जो मनुष्य शरीरमें भस्म धारण करनेवालेको प्रसन्नतापूर्वक धन देता है, उसके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं है॥ १॥

श्रुतयः स्मृतयः सर्वाः पुराणान्यखिलान्यपि।
वदन्ति भूतिमाहात्म्यं तत्तस्माद्धारयेद् द्विजः॥ २

सभी श्रुतियाँ, स्मृतियाँ एवं समस्त पुराण भी विभूतिके माहात्म्यका वर्णन करते हैं, अतएव द्विजको विभूति धारण करना चाहिये॥ २॥

सितेन भस्मना कुर्यात् त्रिसन्ध्यं यस्त्रिपुण्ड्रकम्।
सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते॥ ३

जो तीनों सन्ध्याओं (प्रातः, मध्याह्न एवं सायं)-के समय श्वेत भस्मसे त्रिपुण्ड्र धारण करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त होकर शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है॥ ३॥

योगी सर्वाङ्गकं स्नानमापादतलमस्तकम्।
त्रिसन्ध्यमाचरेन्नित्यमाशु योगमवाप्नुयात्॥ ४

जो योगी तीनों सन्ध्याओंको करते समय पैरोंके तलवेसे लेकर मस्तकपर्यन्त सभी अंगोंमें नित्य भस्म लगाता है (भस्मस्नान करता है), वह शीघ्र ही योगस्थिति प्राप्त कर लेता है॥ ४॥

भस्मस्नानेन पुरुषः कुलस्योद्धारको भवेत्।
भस्मस्नानं जलस्नानादसंख्येयगुणान्वितम्॥ ५

भस्मस्नानसे मनुष्य अपने कुलका उद्धार करनेवाला हो जाता है। भस्मस्नान जलस्नानकी अपेक्षा असंख्य गुना फलदायी होता है॥ ५॥

सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वतीर्थेषु यत्फलम्।
तत्फलं लभते सर्वं भस्मस्नानान्न संशयः॥ ६

सभी तीर्थोंका सेवन करनेसे जो पुण्य होता है तथा जो फल मिलता है, वह फल केवल भस्मस्नानसे ही प्राप्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं है॥ ६॥

महापातकयुक्तो वा युक्तो वाप्युपपातकैः।
भस्मस्नानेन तत्सर्वं दहत्यग्निरिवेन्धनम्॥ ७

मनुष्य चाहे जितने भी महापातकों अथवा उपपातकोंसे युक्त हो; केवल भस्मस्नान उसके सभी पापोंको उसी प्रकार दग्ध कर देता है, जैसे अग्नि ईंधनको॥ ७॥

भस्मस्नानात्परं स्नानं पवित्रं नैव विद्यते।
एवमुक्तं शिवेनादौ तदा स्नातः स्वयं शिवः॥ ८

'भस्मस्नानसे बढ़कर पवित्र कोई दूसरा स्नान नहीं है'—ऐसा शिवजीने कहा है और शिवजीने ही सर्वप्रथम स्वयं भस्मस्नान किया था॥ ८॥

तदाप्रभृति ब्रह्माद्या मुनयश्च शिवार्थिनः।
सर्वकर्मसु यत्नेन भस्मस्नानं प्रचक्रिरे॥ ९

उसी समयसे कल्याणकी इच्छावाले ब्रह्मा आदि देवता तथा मुनिगण सभी कर्मोंमें तत्परतापूर्वक भस्मस्नान करने लगे॥ ९॥

तस्मादेतच्छिरःस्नानमाग्नेयं यः समाचरेत्।
अनेनैव शरीरेण स हि रुद्रो न संशयः॥ १०

अतएव जो मनुष्य यह आग्नेय नामक शिरःस्नान करता है, वह इसी शरीरसे साक्षात् रुद्रस्वरूप हो जाता है, इसमें संशय नहीं है॥ १०॥

ये भस्मधारिणं दृष्ट्वा परितृप्ता भवन्ति ते।
देवासुरमुनीन्द्रैश्च पूज्या नित्यं न संशयः॥ ११

जो लोग भस्म धारण किये हुए व्यक्तिको देखकर आनन्दित होते हैं; वे देवताओं, दैत्यों तथा महर्षियोंसे नित्य पूजित होते हैं, इसमें सन्देह नहीं है॥ ११॥

भस्मसञ्छन्नसर्वाङ्गं दृष्ट्वोत्तिष्ठति यः पुमान्।
तं दृष्ट्वा देवराजोऽपि दण्डवत्प्रणमिष्यति॥ १२

अपने शरीरके सभी अंगोंमें भस्म धारण किये हुए व्यक्तिको देखकर जो मनुष्य [श्रद्धाके साथ] उठ जाता है, उसे देखकर देवराज इन्द्र भी दण्डवत् प्रणाम करते हैं॥ १२॥

अभक्ष्यभक्षणं येषां भस्मधारणपूर्वकम्।
तेषां तद्भक्ष्यमेव स्यान्मुने नात्र विचारणा॥ १३

हे मुने! जो लोग भस्म धारण करके अभक्ष्य पदार्थोंका भक्षण करते हैं, उनके लिये वह भी भक्ष्य हो जाता है; इस विषयमें सन्देह नहीं करना चाहिये॥ १३॥

यः स्नाति भस्मना नित्यं जले स्नात्वा ततः परम्।
ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थोऽथवादरात्॥ १४

सर्वपापविनिर्मुक्तः स याति परमां गतिम्।
आग्नेयं भस्मना स्नानं यतीनां च विशिष्यते॥ १५

जो जलमें स्नान करनेके अनन्तर श्रद्धापूर्वक नित्य भस्मस्नान करता है, वह ब्रह्मचारी हो अथवा गृहस्थ हो अथवा वानप्रस्थी हो, सभी पापोंसे मुक्त होकर परमगतिको प्राप्त होता है। यतियोंके लिये भस्मके द्वारा अग्निस्नानको विशिष्ट कहा गया है॥ १४-१५॥

आर्द्रस्नानाद्वरं भस्मस्नानमार्द्रवधो ध्रुवः।
आर्द्रं तु प्रकृतिं विद्यात्प्रकृतिं बन्धनं विदुः॥ १६

प्रकृतेस्तु प्रहाणाय भस्मना स्नानमिष्यते।
भस्मना सदृशं ब्रह्मन्नास्ति लोकत्रयेष्वपि॥ १७

रक्षार्थं मङ्गलार्थं च पवित्रार्थं पुरा सुरैः।
भस्म दृष्ट्वा मुने पूर्वं दत्तं देव्यै प्रियेण तु॥ १८

तस्मादेतच्छिरःस्नानमाग्नेयं यः समाचरेत्।
भवपाशैर्विनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते॥ १९

ज्वररक्षःपिशाचाश्च पूतनाकुष्ठगुल्मकाः।
भगन्दराणि सर्वाणि चाशीतिर्वातरोगकाः॥ २०

चतुःषष्टिः पित्तरोगाः श्लेष्माः सप्तत्रिपञ्चकाः।
व्याघ्रचौरभयं चैवाप्यन्ये दुष्टग्रहा अपि॥ २१

भस्मस्नानेन नश्यन्ति सिंहेनैव यथा गजाः।
शुद्धशीतजलेनैव भस्मना च त्रिपुण्ड्रकम्॥ २२

यो धारयेत्परं ब्रह्म स प्राप्नोति न संशयः।
(भस्मना च त्रिपुण्ड्रं च यः कोऽपि धारयेत्परम्।
स ब्रह्मलोकमाप्नोति मुक्तपापो न संशयः॥)
यथाविधि ललाटे वै वह्निवीर्यप्रधारणात्॥ २३

नाशयेल्लिखितां यामीं ललाटस्थां लिपिं ध्रुवम्।
कण्ठोपरिकृतं पापं नाशयेत्तत्प्रधारणात्॥ २४

कण्ठे च धारणात्कण्ठभोगादिकृतपातकम्।
बाह्वोर्बाहुकृतं पापं वक्षसा मनसा कृतम्॥ २५

जलस्नानकी अपेक्षा भस्मस्नान श्रेष्ठ होता है; इसीसे आर्द्र (प्रकृति-बन्धन)-का नष्ट होना सम्भव है। आर्द्रको 'प्रकृति' समझना चाहिये और इस प्रकृतिको ही 'बन्धन' कहा गया है। अतएव इस प्रकृतिरूप बन्धनको काटनेके लिये भस्मसे स्नान करना चाहिये। हे ब्रह्मन्! तीनों लोकोंमें भस्मके समान कुछ भी नहीं है॥ १६-१७॥

पूर्व कालमें देवताओंने अपनी रक्षाके लिये; अपने कल्याणके लिये और पवित्रताके लिये भस्मको स्वीकार किया था। हे मुने! सबसे पहले शिवजीने भस्म प्राप्त करके इसे देवी पार्वतीको दिया था॥ १८॥

अतएव जो मनुष्य इस आग्नेय शिरःस्नानको करता है, वह सांसारिक बन्धनोंसे विमुक्त होकर शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है॥ १९॥

ज्वर, राक्षस, पिशाच, पूतनारोग, कुष्ठ, गुल्मरोग, सभी प्रकारका भगंदर रोग, अस्सी प्रकारके वातरोग, चौंसठ प्रकारके पित्तरोग, एक सौ पाँच प्रकारके कफरोग, बाघ आदि जन्तुओंका भय, चोरोंका भय और अन्य प्रकारके दुष्टग्रह—ये सब भस्मस्नानसे उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं, जैसे सिंहके द्वारा हाथी विनष्ट कर दिये जाते हैं॥ २०-२१$\frac{1}{2}$॥

जो मनुष्य शुद्ध तथा शीतल जल मिलाकर भस्मसे त्रिपुण्ड्र धारण करता है, वह परब्रह्मको प्राप्त करता है; इसमें सन्देह नहीं है। (जो कोई भी मनुष्य भस्मसे त्रिपुण्ड्र धारण करता है, वह पापोंसे मुक्त होकर ब्रह्मलोकको जाता है; इसमें संशय नहीं है)। ललाटपर विधिपूर्वक इस अग्निवीर्यरूपी भस्मको धारण करनेसे यह मनुष्यके भालपर अंकित यमकी लिपिको भी निश्चितरूपसे मिटा देता है। कण्ठके ऊपरी भागसे किया गया पाप भी उसके धारणसे नष्ट हो जाता है॥ २२—२४॥

कण्ठद्वारा अभक्ष्य पदार्थोंके भोगजनित पाप कण्ठपर भस्म धारण करनेसे, बाहुद्वारा किया गया पाप दोनों बाहुओंपर भस्म लगानेसे तथा मनद्वारा किये गये पाप वक्षःस्थलपर भस्म धारण करनेसे नष्ट हो जाते हैं। नाभिपर भस्म लगानेसे लिंगजनित पाप तथा गुदापर भस्म लगानेसे गुदेन्द्रियजनित पाप मिट जाता

नाभ्यां शिश्नकृतं पापं गुदे गुदकृतं हरेत्।
पार्श्वयोर्धारणाद् ब्रह्मन् परस्त्र्यालिङ्गनादिकम्॥ २६

तद्भस्मधारणं शस्तं सर्वत्रैव त्रिलिङ्गकम्।
ब्रह्मविष्णुमहेशानां त्र्यग्नीनां च धारणम्॥ २७

गुणलोकत्रयाणां च धारणं तेन वै कृतम्।
भस्मच्छन्नो द्विजो विद्वान्महापातकसम्भवैः॥ २८

दोषैर्वियुज्यते सद्यो मुच्यते च न संशयः।
भस्मनिष्ठस्य दह्यन्ते दोषा भस्माग्निसङ्गमात्॥ २९

भस्मस्नानविशुद्धात्मा आत्मनिष्ठ इति स्मृतः।
भस्मना दिग्धसर्वाङ्गो भस्मदीप्तत्रिपुण्ड्रकः॥ ३०

भस्मशायी च पुरुषो भस्मनिष्ठ इति स्मृतः।
भूतप्रेतपिशाचाद्या रोगाश्चातीव दुःसहाः॥ ३१

भस्मनिष्ठस्य सान्निध्याद्विद्रवन्ति न संशयः।
भासनाद्भसितं प्रोक्तं भस्म कल्मषभक्षणात्॥ ३२

भूतिर्भूतिकरी पुंसां रक्षा रक्षाकरी पुरा।
त्रिपुण्ड्रधारिणं दृष्ट्वा भूतप्रेतपुरःसराः॥ ३३

भीताः प्रकम्पिताः शीघ्रं नश्यन्त्येव न संशयः।
स्मरणादेव रुद्रस्य यथा पापं प्रणश्यति॥ ३४

अप्यकार्यसहस्राणि कृत्वा यः स्नाति भस्मना।
तत्सर्वं दहते भस्म यथाग्निस्तेजसा वनम्॥ ३५

कृत्वापि चातुलं पापं मृत्युकालेऽपि यो द्विजः।
भस्मस्नायी भवेत्कश्चित्क्षिप्रं पापैः प्रमुच्यते॥ ३६

है। हे ब्रह्मन्! दोनों पार्श्वमें भस्म धारण करनेसे परनारीका आलिंगन आदि करनेसे लगा हुआ पाप विनष्ट हो जाता है॥ २५-२६॥

सर्वत्र तीन तिर्यक् रेखावाला (त्रिपुण्ड्र) भस्म प्रशस्त माना गया है। जिसने त्रिपुण्ड्र धारण कर लिया, उसने मानो ब्रह्मा, विष्णु, महेश; तीनों अग्नि (गार्हपत्य, आहवनीय तथा दक्षिणाग्नि); तीनों गुणों (सत्त्व, रज, तम) और तीनों लोकोंको धारण कर लिया॥ २७½ ॥

भस्म धारण करनेवाला विद्वान् द्विज महापातक-जन्य दोषोंसे शीघ्र ही मुक्त हो जाता है; इसमें संशय नहीं है॥ २८½ ॥

भस्म धारण करनेवाले मनुष्यके दोष भस्मकी अग्निके सम्पर्कसे नष्ट हो जाते हैं। भस्म-स्नानसे विशुद्ध आत्मावाला व्यक्ति आत्मनिष्ठ कहा गया है॥ २९½ ॥

अपने सर्वांगमें भस्म लगानेवाला, भस्मसे प्रदीप्त त्रिपुण्ड्र धारण करनेवाला तथा भस्मपर ही शयन करनेवाला पुरुष 'भस्मनिष्ठ' कहा गया है॥ ३०½ ॥

भूत, प्रेत, पिशाच आदि बाधाएँ तथा अति दुःसह रोग भस्म धारण करनेवालेके पाससे भाग जाते हैं; इसमें सन्देह नहीं है॥ ३१½ ॥

इस भस्मको ब्रह्मका भास करानेसे 'भसित', पापका भक्षण करनेके कारण 'भस्म', मनुष्योंको भूति (ऐश्वर्य तथा सिद्धियाँ आदि) प्रदान करनेसे 'भूति' तथा रक्षा करनेके कारण 'रक्षा' कहा गया है॥ ३२½ ॥

त्रिपुण्ड्र धारण किये हुए मनुष्यको अपने सम्मुख देखकर भूत-प्रेत आदि भयभीत होकर काँपने लगते हैं और वे शीघ्र ही उसी प्रकार विनष्ट हो जाते हैं, जैसे भगवान् रुद्रके स्मरणमात्रसे पाप दग्ध हो जाते हैं॥ ३३-३४॥

हजारों प्रकारके दुष्कृत्योंको करके भी जो मनुष्य भस्मसे स्नान करता है, उसके उन सभी कुकर्मोंको भस्म उसी प्रकार जला डालता है; जैसे अग्नि अपने तेजसे वनको भस्म कर देती है॥ ३५॥

जो द्विज घोर पाप करके भी यदि मृत्युके समय भस्मस्नान कर लेता है, वह तत्काल समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ३६॥

भस्मस्नानाद्धि शुद्धात्मा जितक्रोधो जितेन्द्रियः।
मत्समीपं समागम्य न स भूयोऽभिवर्तते॥ ३७

वनस्पतिगते सोमे भस्मोद्धूलितविग्रहः।
अर्चितं शङ्करं दृष्ट्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ३८

आयुष्कामोऽथवा विद्वान्भूतिकामोऽथवा नरः।
नित्यं वै धारयेद्भस्म मोक्षकामी च वै द्विजः॥ ३९

त्रिपुण्ड्रं परमं पुण्यं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम्।
ये घोरा राक्षसाः प्रेता ये चान्ये क्षुद्रजन्तवः॥ ४०

त्रिपुण्ड्रधारणं दृष्ट्वा पलायन्ते न संशयः।
कृत्वा शौचादिकं कर्म स्नात्वा तु विमले जले॥ ४१

भस्मनोद्धूलनं कार्यमापादतलमस्तकम्।
केवलं वारुणं स्नानं देहे बाह्यमलापहम्॥ ४२

विभूतिस्नानमनघं बाह्यान्तरमलापहम्।
त्यक्त्वापि वारुणं स्नानं तत्परः स्यान्न संशयः॥ ४३

कृतमप्यकृतं सत्यं भस्मस्नानं विना मुने।
भस्मस्नानं श्रुतिप्रोक्तमाग्नेयं स्नानमुच्यते॥ ४४

अन्तर्बहिश्च संशुद्धं शिवपूजाफलं लभेत्।
यद् बाह्यमलमात्रस्य नाशकं स्नानमस्ति तत्॥ ४५

तन्नाशयति तीव्रेण प्राणिबाह्यान्तरं मलम्।
कृत्वापि कोटिशो नित्यं वारुणं स्नानमादरात्॥ ४६

न भवत्येव पूतात्मा भस्मस्नानं विना मुने।
यद्भस्मस्नानमाहात्म्यं तद्वेदो वेद तत्त्वतः॥ ४७
यद्वा वेद महादेवः सर्वदेवशिखामणिः।

भस्मस्नान करके शुद्ध आत्मावाला, क्रोधको जीत लेनेवाला तथा इन्द्रियोंपर नियन्त्रण कर लेनेवाला मनुष्य मेरे सांनिध्यमें आकर पुनः जन्म-मरणके बन्धनमें नहीं पड़ता॥ ३७॥

सोमवती अमावास्याके दिन भस्मसे अनुलिप्त देहवाला व्यक्ति पूजित हुए भगवान् शिवका दर्शन करके सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ३८॥

दीर्घ आयुकी इच्छा रखनेवाले, विपुल ऐश्वर्यकी अभिलाषा रखनेवाले अथवा मोक्षकी कामना करनेवाले विद्वान् द्विजको भस्म और ब्रह्मा, विष्णु, शिवके स्वरूपवाले परम पवित्र त्रिपुण्ड्रको नित्य धारण करना चाहिये॥ ३९½॥

भयंकर राक्षस, प्रेत तथा जो भी अन्य क्षुद्र जन्तु हैं, वे सभी त्रिपुण्ड्र धारण किये हुए मनुष्यको देखकर भाग जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं है॥ ४०½॥

शौच आदि कार्योंसे निवृत्त होकर स्वच्छ जलमें स्नान करनेके पश्चात् मस्तकसे लेकर पैरके तलवेतक भस्म धारण करना चाहिये॥ ४१½॥

जलका स्नान केवल बाह्य मलको धोनेवाला है, किंतु पवित्र भस्मस्नान बाह्य तथा आभ्यन्तर दोनों प्रकारके मलोंको नष्ट करनेवाला है। अतः जलस्नानका परित्याग करके भी भस्मस्नानके लिये तत्पर होना चाहिये; इसमें संशय नहीं है॥ ४२-४३॥

हे मुने! भस्मस्नानके बिना किया गया कृत्य न किये हुएके बराबर हो जाता है, यह सत्य है। यह वेदोक्त भस्मस्नान ही 'आग्नेयस्नान' कहा जाता है॥ ४४॥

भीतर तथा बाहरसे शुद्ध होनेपर ही मनुष्य शिवपूजाका फल प्राप्त कर सकता है। जो जलस्नान है वह तो केवल बाह्य मलका नाश करता है, किंतु वह भस्मस्नान प्राणीके बाहरी तथा भीतरी दोनों प्रकारके मलोंको बड़ी तीव्रतापूर्वक विनष्ट कर देता है॥ ४५½॥

हे मुने! नित्य करोड़ों बार श्रद्धापूर्वक जलस्नान करके भी कोई मनुष्य बिना भस्मस्नान किये पवित्र आत्मावाला नहीं हो सकता॥ ४६½॥

भस्मस्नानका जो माहात्म्य है, उसे तात्त्विकरूपसे या तो वेद जानते हैं और या समस्त देवताओंके शिखामणिस्वरूप भगवान् महादेव जानते हैं॥ ४७½॥

भस्मस्नानमकृत्वैव यः कुर्यात्कर्म वैदिकम्॥ ४८

स तत्कर्मकलार्धार्धमपि नाप्नोति वस्तुतः।
यः करिष्यति यत्नेन भस्मस्नानं यथाविधि॥ ४९

स एवैकः सर्वकर्मस्वधिकारी श्रुतिश्रुतः।
पावनं पावनानां च भस्मस्नानं श्रुतिश्रुतम्॥ ५०

न करिष्यति यो मोहात्स महापातकी भवेत्।
अनन्तैर्वारुणैः स्नानैर्यत्पुण्यं प्राप्यते द्विजैः॥ ५१

ततोऽनन्तगुणं पुण्यं भस्मस्नानादवाप्यते।
कालत्रयेऽपि कर्तव्यं भस्मस्नानं प्रयत्नतः॥ ५२

भस्मस्नानं स्मृतं श्रौतं तत्त्यागी पतितो भवेत्।
मूत्राद्युत्सर्जनान्ते तु भस्मस्नानं प्रयत्नतः॥ ५३

कर्तव्यमन्यथा पूता न भविष्यन्ति मानवाः।
विधिवत्कृतशौचोऽपि भस्मस्नानं विना द्विजः॥ ५४

न भविष्यति पूतात्मा नाधिकार्यपि कर्मणि।
अपानवायुनिर्याते जृम्भणे स्कन्दने क्षुते॥ ५५

श्लेष्मोद्गारेऽपि कर्तव्यं भस्मस्नानं प्रयत्नतः।
श्रीभस्मस्नानमाहात्म्यस्यैकदेशोऽत्र वर्णितः॥ ५६

पुनश्च सम्प्रवक्ष्यामि भस्मस्नानोत्थितं फलम्।
सावधानेन मनसा श्रोतव्यं मुनिपुङ्गव॥ ५७

जो मनुष्य भस्मस्नान किये बिना ही वैदिक कर्म करता है, वह वस्तुतः उस कर्मकी चौथाई कलाके बराबर भी फल नहीं प्राप्त करता॥ ४८½ ॥

जो मनुष्य प्रयत्नपूर्वक विधि-विधानसे भस्मस्नान करता है, एकमात्र वही समस्त कर्मोंका अधिकारी है; वेदोंमें ऐसा प्रतिपादित किया गया है॥ ४९½ ॥

यह वेदप्रतिपादित भस्मस्नान पवित्रोंको भी पवित्र करनेवाला है। जो अज्ञानवश भस्मस्नान नहीं करता, वह महापातकी होता है॥ ५०½ ॥

द्विजगण असंख्य बार जलस्नान करके जो पुण्य प्राप्त करते हैं, उसका अनन्तगुना पुण्य केवल भस्मस्नानसे ही उन्हें मिल जाता है॥ ५१½ ॥

तीनों कालों (प्रातः, मध्याह्न, सायं)-में प्रयत्नपूर्वक भस्मस्नान करना चाहिये। भस्मस्नान श्रौतकर्म कहा गया है, अतः इसका परित्याग करनेवाला पतित हो जाता है॥ ५२½ ॥

मल-मूत्र आदिका त्याग करनेके पश्चात् प्रयत्नके साथ भस्मस्नान करना चाहिये, अन्यथा इसे न करनेवाले मनुष्य पवित्र नहीं होंगे॥ ५३½ ॥

विधिपूर्वक शौच आदि कृत्य करनेके बाद भी बिना भस्मस्नानके कोई द्विज पवित्र अन्तःकरणवाला नहीं हो सकता और वह किसी कृत्यको सम्पादित करनेका अधिकारी भी नहीं हो सकता है॥ ५४½ ॥

अपान वायु निकलनेपर, जम्हाई आनेपर, दस्त हो जानेपर तथा श्लेष्मा (कफ) निकलनेपर प्रयत्नपूर्वक भस्मस्नान करना चाहिये॥ ५५½ ॥

हे मुनिश्रेष्ठ! यह मैंने श्रीभस्मस्नानके मात्र एक अंशका वर्णन आपसे किया है। अब मैं भस्मस्नानसे प्राप्त होनेवाले फलके विषयमें पुनः बताऊँगा, सावधान मनसे सुनिये॥ ५६-५७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामेकादशस्कन्धे विभूतिधारणमाहात्म्यवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥



अथ पञ्चदशोऽध्यायः

भस्म-माहात्म्यके सम्बन्धमें दुर्वासामुनि और कुम्भीपाकस्थ जीवोंका आख्यान, ऊर्ध्वपुण्ड्रका माहात्म्य

श्रीनारायण उवाच

अग्निरित्यादिभिर्मन्त्रैर्भस्म संशोध्य सादरम्।
धारणीयं ललाटादौ त्रिपुण्ड्रं केवलं द्विजैः॥ १

ब्रह्मक्षत्रियवैश्याश्च एते सर्वे द्विजाः स्मृताः।
तस्माद् द्विजैः प्रयत्नेन त्रिपुण्ड्रं धार्यमन्वहम्॥ २

यस्योपनयनं ब्रह्मन् स एव द्विज उच्यते।
तस्माच्छ्रौतं द्विजैः कार्यं त्रिपुण्ड्रस्य च धारणम्॥ ३

विभूतिधारणं त्यक्त्वा यः सत्कर्म समाचरेत्।
तत्कृतं चाकृतप्रायं भवत्येव न संशयः॥ ४

न गायत्र्युपदेशोऽपि भस्मनो धारणं विना।
ततो धृत्वैव भस्माङ्गे गायत्रीजपमाचरेत्॥ ५

गायत्रीं मूलमेवाहुर्ब्राह्मण्ये मुनिपुङ्गव।
सा भस्मधारणाभावे न केनाप्युपदिश्यते॥ ६

न तावदधिकारोऽस्ति गायत्रीग्रहणे मुने।
यावन्न भस्म भालादौ धृतमग्निसमुद्भवम्॥ ७

भस्महीनललाटत्वं न ब्राह्मण्यानुमापकम्।
एवमेव मया ब्रह्मन् हेतुरुक्तः सुपुण्यदः॥ ८

मन्त्रपूतं सितं भस्म ललाटे परिवर्तते।
स एव ब्राह्मणो विद्वान्सत्यं सत्यं मयोच्यते॥ ९

यस्यास्ति सहजा प्रीतिर्मणिवद्भस्मसंग्रहे।
स एव ब्राह्मणो ब्रह्मन् सत्यं सत्यं मयोच्यते॥ १०

श्रीनारायण बोले—द्विजोंको '**अग्निरिति भस्म**' आदि मन्त्रोंसे भस्मको श्रद्धापूर्वक शुद्ध करके अपने ललाट आदिपर त्रिपुण्ड्ररूपमें धारण करना चाहिये॥ १॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य—ये सब द्विज कहे गये हैं। अतः द्विजोंको प्रतिदिन प्रयत्नपूर्वक त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये॥ २॥

हे ब्रह्मन्! जिसका उपनयन हो गया है, उसीको द्विज कहा जाता है। अतः द्विजोंको श्रुतिविहित त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये॥ ३॥

जो मनुष्य भस्म-धारणका त्याग करके कुछ भी सत्कृत्य करता है, उसका सब किया हुआ न कियेके बराबर हो जाता है; इसमें सन्देह नहीं है॥ ४॥

बिना भस्म धारण किये गायत्रीमन्त्रका उपदेश सार्थक नहीं होता हैं, अतः अपने शरीरमें भस्म लगाकर ही गायत्रीजप करना चाहिये॥ ५॥

हे मुनिश्रेष्ठ! गायत्रीको ही ब्राह्मणत्वका मूल कहा गया है। भस्म धारण न करनेपर कोई भी उस गायत्रीका उपदेश देनेका अधिकारी नहीं हो सकता है॥ ६॥

हे मुने! उसी प्रकार जबतक अग्निहोत्रजनित भस्म ललाट आदि अंगोंमें धारण नहीं किया जाता, तबतक किसीको भी गायत्रीमन्त्र लेनेका अधिकार नहीं होता॥ ७॥

किसीके भस्मरहित ललाटसे उसके ब्राह्मणत्वका अनुमान नहीं किया जा सकता है; इसीलिये हे ब्रह्मन्! मैंने भस्मको अत्यन्त पुण्यदायक हेतु बतलाया है॥ ८॥

जिसके ललाटपर मन्त्रसे पवित्र किया गया श्वेत भस्म विद्यमान रहता है, वस्तुतः वही विद्वान् ब्राह्मण है; ऐसा मैं सत्य कह रहा हूँ॥ ९॥

हे ब्रह्मन्! मणिसंग्रह करनेकी भाँति भस्मसंग्रह करनेमें जिसकी स्वाभाविक प्रीति रहती है, वस्तुतः वही ब्राह्मण है; ऐसा मैं सत्य कह रहा हूँ, किंतु

न यस्य सहजा प्रीतिर्मणिवद्भस्मसंग्रहे।
स चाण्डाल इति ज्ञेयो जन्मजन्मान्तरे ध्रुवम्॥ ११

न यस्य सहजा प्रीतिस्त्रिपुण्ड्रोद्धूलनादिषु।
स चाण्डाल इति ज्ञेयः सत्यं सत्यं मयोच्यते॥ १२

ये भस्मधारणं त्यक्त्वा भुञ्जन्ते च फलादिकम्।
ते सर्वे नरकं घोरं प्राप्नुवन्ति न संशयः॥ १३

(विभूतिधारणं त्यक्त्वा यः शिवं पूजयिष्यति।
स दुर्भगः शिवद्वेष्टा स द्वेषो नरकप्रदः।
सर्वकर्मबहिर्भूतो भस्मधारणवर्जितः॥)

विभूतिधारणं त्यक्त्वा कुर्वन् हेमतुलामपि।
न तत्फलमवाप्नोति पतितो हि भवेद्धि सः॥ १४

यथोपवीतरहितैः सन्ध्या न क्रियते द्विजैः।
तथा सन्ध्या न कर्तव्या विभूतिरहितैरपि॥ १५

गतोपवीतैः सन्ध्यायां कार्यः प्रतिनिधिः क्वचित्।
जपादिकं तु सावित्र्यास्तथैवोपोषणादिकम्॥ १६

विभूतिधारणे त्वन्यो नास्ति प्रतिनिधिः क्वचित्।
विभूतिधारणं त्यक्त्वा यदि सन्ध्यां करोति यः॥ १७

प्रत्यवैत्येव येनासौ नाधिकारी तदा द्विजः।
यथा श्रुत्वान्त्यजो वेदान्प्रत्यवैति तथा द्विजः॥ १८

प्रत्यवैति न सन्देहः सन्ध्याकृद्भस्मवर्जितः।
सम्पादनीयं यत्नेन श्रौतं भस्म सदा द्विजैः॥ १९

स्मार्तं वा तदभावे तु लौकिकं वा समाहितैः।
यादृशं तादृशं वास्तु पवित्रं भस्म सन्ततम्॥ २०

मणिसंग्रह करनेकी भाँति भस्मसंग्रह करनेमें जिसकी स्वाभाविक प्रीति न हो तो ऐसा जान लेना चाहिये कि वह जन्म-जन्मान्तरमें निश्चित ही चाण्डाल रहा होगा॥ १०-११॥

त्रिपुण्ड्रधारण तथा भस्मोद्धूलन आदिमें जिसकी सहज निष्ठा नहीं होती, उसे चाण्डाल समझना चाहिये, ऐसा मैं सत्य कह रहा हूँ॥ १२॥

जो लोग भस्म-धारणका त्याग करके फल आदिका भक्षण करते हैं, वे सब घोर नरकको प्राप्त होते हैं, इसमें सन्देह नहीं है; (विभूति-धारणका त्याग करके जो शिवकी पूजा करता है, वह भाग्यहीन शिवसे द्वेष करनेवाला होता है और वह द्वेष उसके लिये नरकप्रदायक होता है। भस्म न धारण करनेवाला मनुष्य सभी प्रकारके कर्मोंका अनधिकारी होता है।) विभूतिधारणका त्याग करके स्वर्णका तुलादान करनेवाला भी उस दानका फल प्राप्त नहीं कर पाता और वह अपने धर्मसे भ्रष्ट हो जाता है॥ १३-१४॥

जिस प्रकार यज्ञोपवीतसे विहीन द्विज सन्ध्या नहीं करते, उसी प्रकार भस्मविहीन रहनेपर भी द्विजोंको सन्ध्या नहीं करनी चाहिये॥ १५॥

यज्ञोपवीतके च्युत हो जानेपर सन्ध्यामें गायत्री-जप आदि करनेके लिये तथा उसी प्रकार व्रत-उपवास आदिमें किसीको प्रतिनिधिके रूपमें नियुक्त किया जा सकता है, किंतु विभूतिधारणमें कोई दूसरा व्यक्ति प्रतिनिधिके रूपमें नहीं हो सकता। यदि विभूतिधारणका परित्याग करके कोई द्विज सन्ध्या करता है तो वह पापका भागी होता है; क्योंकि वह उस समय सन्ध्या करनेका अधिकारी ही नहीं है। जैसे अन्त्यजको वेदोंका श्रवण करनेसे पाप लगता है, उसी प्रकार भस्म न लगाकर सन्ध्या करनेवाले द्विजको भी पाप लगता है; इसमें सन्देह नहीं है॥ १६—१८½॥

द्विजोंको सदैव यत्नपूर्वक श्रौताग्निजन्य या स्मार्ताग्निजन्य भस्म अथवा उनके अभावमें लौकिकाग्निजन्य भस्म ही अत्यन्त समाहितचित्त होकर धारण करना चाहिये। भस्म चाहे जैसा हो, वह सदा पवित्र होता है। अतः द्विजोंको चाहिये कि

धारणीयं प्रयत्नेन द्विजैः सन्ध्यादिकर्मसु।
न संविशन्ति पापानि भस्मनिष्ठे ततः सदा॥ २१

कर्तव्यमपि यत्नेन ब्राह्मणैर्भस्मधारणम्।
मध्याङ्गुलित्रयेणैव स्वदक्षिणकरस्य तु॥ २२

षडङ्गुलायतं मानमपि चाधिकमानकम्।
नेत्रयुग्मप्रमाणेन भाले दीप्तं त्रिपुण्ड्रकम्॥ २३

कदाचिद्भस्मना कुर्यात्स रुद्रो नात्र संशयः।
अकारोऽनामिका प्रोक्त उकारो मध्यमाङ्गुलिः॥ २४

मकारस्तर्जनी तस्मात् त्रिपुण्ड्रं त्रिगुणात्मकम्।
त्रिपुण्ड्रं मध्यमातर्जन्यनामाभिरनुलोमतः॥ २५

अत्र ते कथयाम्येनमितिहासं पुरातनम्।
कदाचिदथ दुर्वासाः पितृलोकं गतोऽभवत्॥ २६

भस्मसन्दिग्धसर्वाङ्गो रुद्राक्षाभरणान्वितः।
शिव शङ्कर सर्वात्मञ्छ्रीमातर्जगदम्बिके॥ २७

नामानीति गृणन्नुच्चैस्तापसानां शिखामणिः।
कव्यवाडादयस्ते तु प्रत्युत्थानाभिवादनैः॥ २८

आसनाद्युपचारैश्च सम्मानं बहु चक्रिरे।
नानाकथाभिरन्योन्यं सम्भाषाञ्चक्रिरे तदा॥ २९

तस्मिंस्तु समये कुम्भीपाकस्थानां तु पापिनाम्।
घोरः समभवच्छब्दो हा हताः स्मेतिवादिनाम्॥ ३०

मृताः स्मेति वदन्त्येके दग्धाः स्मेति परे जगुः।
छिन्नाः स्मेति विभिन्नाः स्मेत्येवं रोदनकारिणः॥ ३१

श्रुत्वा तं करुणं शब्दं दुःखितो मुनिराड् हृदि।
पप्रच्छ पितृनाथांस्तान्केषां शब्दोऽयमित्यपि॥ ३२

वे सन्ध्या आदि कर्मोंमें उसे प्रयत्नके साथ धारण करें। भस्मनिष्ठ मनुष्यमें पाप प्रविष्ट नहीं हो सकते, अतः ब्राह्मणोंको यत्नपूर्वक सदा भस्म धारण किये रहना चाहिये॥ १९—२१½॥

यदि कोई अपने दाहिने हाथकी तीनों मध्यकी अँगुलियों (तर्जनी, मध्यमा तथा अनामिका)-से छः अंगुलतक अथवा इससे भी अधिक लम्बे परिमाणका अथवा एक नेत्रसे लेकर दूसरे नेत्रतक लम्बा देदीप्यमान त्रिपुण्ड्र भस्मसे अपने ललाटपर लगाये तो वह साक्षात् रुद्ररूप हो जाता है; इसमें सन्देह नहीं है। अनामिका अँगुलीको अकार, मध्यमाको उकार तथा तर्जनीको मकार कहा गया है। अतएव त्रिपुण्ड्र त्रिगुणात्मक है। तर्जनी, मध्यमा तथा अनामिका अँगुलियोंसे अनुलोमक्रमसे त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये॥ २२—२५॥

इस सम्बन्धमें आपसे एक प्राचीन इतिहासका वर्णन कर रहा हूँ। किसी समय तपस्वियोंके शिरोमणि ऋषि दुर्वासा अपने सर्वांगमें भस्म धारण किये हुए तथा रुद्राक्षके आभूषण पहने हुए 'हे शिव! हे शंकर! हे सर्वात्मन्! हे श्रीमातः! हे जगदम्बिके!'— इन नामोंका उच्च स्वरसे उच्चारण करते हुए पितृलोक गये हुए थे॥ २६-२७½॥

उन्हें देखकर कव्यवाट् (अनल, सोम, यम, अर्यमा, अग्निष्वात्ता, बर्हिषद्, सोमपा) आदि पितरोंने उठकर अभिवादनके द्वारा तथा आसन आदि उपचारोंसे उनका अत्यधिक सम्मान किया। तब वे अनेक प्रकारकी कथाओंके माध्यमसे परस्पर वार्तालाप करने लगे॥ २८-२९॥

उसी समय कुम्भीपाकनरकमें पड़े हुए पापियोंका भयंकर चीत्कार हुआ। 'हाय! हमलोग मारे जा रहे हैं'—वे ऐसा बोल रहे थे। उनमें कुछ चिल्ला रहे थे 'हम मर गये', दूसरे कह रहे थे 'हम जल गये', कुछ चीत्कार कर रहे थे 'हम कट गये' तथा कुछ चिल्ला रहे थे 'हम छेदे जा रहे हैं'—इस प्रकार कहकर वे रुदन कर रहे थे॥ ३०-३१॥

वह करुण-क्रन्दन सुनकर मुनिराज दुर्वासाके मनमें बड़ी व्यथा हुई और उन्होंने उन पितृदेवोंसे पूछा कि यह किन लोगोंकी ध्वनि है?॥ ३२॥

ते समूचुर्मुनेऽत्रैव पुरी संयमनी परा।
वर्तते यमराडत्र पापिनां भोगदायकः॥ ३३

नानादूतैः कालरूपैः कृष्णवर्णैर्भयङ्करैः।
सहितोऽत्रैव तत्पुर्यां नायको विद्यतेऽनघ॥ ३४

तत्र कुण्डान्यनेकानि पापिनां भोगदानि च।
षडशीतिर्घोररूपैर्दूतैः परिवृतानि च॥ ३५

तत्र मुख्यतमं कुण्डं कुम्भीपाकाभिधं महत्।
वर्तते तद्‌गतानां च यातनानां तु वर्णनम्॥ ३६

कर्तुं न शक्यते कैश्चिदपि वर्षशतैरपि।
ये शिवद्रोहिणः सन्ति तथा देवीविनिन्दकाः॥ ३७

ये विष्णुद्रोहिणः सन्ति पतन्त्यत्रैव ते मुने।
ये वेदनिन्दकाः सन्ति सूर्यस्य च गणेशितुः॥ ३८

ब्राह्मणानां द्रोहिणो ये पतन्त्यत्रैव ते मुने।
कामाचाराश्च ये सन्ति तप्तमुद्राङ्किताश्च ये॥ ३९

त्रिशूलधारिणो ये च पतन्त्यत्रैव ते मुने।
मातृपितृगुरुज्येष्ठपुराणस्मृतिनिन्दकाः॥ ४०

ये धर्मदूषकाः सन्ति पतन्त्यत्रैव ते मुने।
तेषामयं महाघोरः शब्दः श्रवणदारुणः॥ ४१

श्रूयतेऽस्माभिरनिशं वैराग्यं यच्छ्रुतेर्भवेत्।
इति तेषां वचः श्रुत्वा मुनिराट् तद्दिदृक्षया॥ ४२

उत्थाय चलितस्तूर्णं ययौ कुण्डसमीपतः।
अवाङ्मुखो ददर्शाधस्तस्मिन्नेव क्षणे मुने॥ ४३
तत्रत्यानां पापिनां तु स्वर्गाधिकमभूत्सुखम्।

तब उन पितृदेवोंने कहा—हे मुने! यहींपर संयमनी नामक एक विशाल पुरी है। यहाँ पापियोंको उनके कर्मोंका भोग प्रदान करनेवाले यमराज रहते हैं॥ ३३॥

हे अनघ! साक्षात् कालरूप तथा कृष्णवर्णवाले अनेक भयानक दूतोंके साथ यमराज उस पुरीमें स्वामीके रूपमें निवास करते हैं॥ ३४॥

उस पुरीमें पापियोंको उनके कुकर्मका भोग प्रदान करनेवाले छियासी कुण्ड हैं, जो भयंकर रूपवाले दूतोंसे सदा घिरे रहते हैं॥ ३५॥

उनमें सबसे मुख्य कुम्भीपाक नामक एक विशाल कुण्ड है। उस नरककुण्डमें मिलनेवाली यातनाओंका वर्णन कोई भी सैकड़ों वर्षोंमें भी नहीं कर सकता॥ ३६½॥

हे मुने! जो शिव तथा विष्णुके द्रोही हैं और देवीके निन्दक हैं, वे लोग इसी कुण्डमें गिरते हैं॥ ३७½॥

जो वेदके निन्दक हैं एवं सूर्य, गणेश तथा ब्राह्मणोंके द्रोही हैं, हे मुने! वे लोग इसी कुण्डमें गिरते हैं॥ ३८½॥

जो लोग स्वेच्छाचारी हैं तथा जो तप्तमुद्रासे अंकित हैं तथा जो त्रिशूल धारण करते हैं, हे मुने! वे इसी 'कुम्भीपाक' नरककुण्डमें गिरते हैं॥ ३९½॥

जो लोग माता, पिता, गुरु, श्रेष्ठजनों, पुराणों तथा स्मृतियोंके निन्दक हैं और धर्मको दूषित करनेवाले हैं, हे मुने! वे लोग इसी कुण्डमें पड़ते हैं॥ ४०½॥

[हे मुने!] सुननेमें अत्यन्त दारुण तथा महाभयानक यह ध्वनि उन्हीं लोगोंकी है। हमलोग यह ध्वनि नित्य सुनते रहते हैं, जिसके सुननेसे वैराग्य उत्पन्न हो जाता है॥ ४१½॥

उन पितृगणोंकी यह बात सुनकर मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा उन पापियोंको देखनेकी इच्छासे वहाँसे उठकर चल दिये और शीघ्र ही कुम्भीपाक नरककुण्डके पास पहुँच गये॥ ४२½॥

[श्रीनारायण कहते हैं—] हे मुने! मुख झुकाकर जब दुर्वासामुनि नीचेकी ओर देखने लगे, उसी समय उस कुण्डमें स्थित पापियोंको स्वर्गसे भी अधिक सुखका अनुभव होने लगा॥ ४३½॥

हसन्ति केचिद् गायन्ति नृत्यन्ति च तथापरे॥ ४४
परस्परं रमन्ते तेऽप्युन्मत्ताः सुखवर्धनात्।
मृदङ्गमुरजावीणाढक्कादुन्दुभिनिस्वनाः ॥ ४५
समुद्भूतास्तु मधुराः पञ्चमस्वरभूषिताः।
वसन्तवल्लीपुष्पाणां सुगन्धमरुतो ववुः॥ ४६
मुनिस्तु चकितो दृष्ट्वा यमदूताश्च विस्मिताः।
शीघ्रं ते कथयामासुर्धर्मराजाय वेदिने॥ ४७
महाराज महाश्चर्यमधुनैवाभवद्विभो।
स्वर्गादप्यधिकं सौख्यं कुम्भीपाकस्थपापिनाम्॥ ४८
निमित्तं नैव जानीमः कस्मादिदमभूद्विभो।
चकिताः स्म वयं सर्वे प्राप्ता देव त्वदन्तिकम्॥ ४९
निशम्य दूतवाणीं तां धर्मराट् शीघ्रमुत्थितः।
महामहिषमारूढो ययौ ते यत्र पापिनः॥ ५०
तां वार्तां प्रेषयामास दूतद्वारामरावतीम्।
श्रुत्वा तां देवराजोऽपि प्राप्तो देवगणैः सह॥ ५१
ब्रह्मलोकात्पद्मजोऽपि वैकुण्ठाद्विष्टरश्रवाः।
तत्तल्लोकाच्च दिक्पालाः समाजग्मुर्गणैः सह॥ ५२
परिवार्य स्थिताः सर्वे कुम्भीपाकमितस्ततः।
अपश्यंस्तद्गताञ्जीवान्स्वर्गाधिकसुखान्वितान्॥ ५३
चकिता एव ते सर्वे न विदुस्तस्य कारणम्।
अहो पापस्य भोगार्थं कुण्डमेतद्विनिर्मितम्॥ ५४
तत्र सौख्यं यदा जातं तदा पापात्तु किं भयम्।
उच्छिन्ना वेदमर्यादा परमेशकृता कथम्॥ ५५
भगवान् स्वस्य संकल्पं वितथं कृतवान्कथम्।
आश्चर्यमेतदाश्चर्यमेतदित्येव भाषिणः॥ ५६
तटस्था अभवन्सर्वे न विदुस्तत्र कारणम्।

उनमेंसे कुछ हँसने लगे, कुछ गाने लगे तथा कुछ नाचने लगे। सुख-वृद्धिके कारण उन्मत्त होकर वे परस्पर क्रीडा करने लगे॥ ४४½ ॥

मृदंग, मुरज, वीणा, ढक्का तथा दुन्दुभिकी कोयलसदृश पंचम स्वरसे युक्त मधुर ध्वनियाँ उत्पन्न होने लगीं और वासन्ती लताके पुष्पोंके सम्पर्कसे सुगन्धित हवाएँ बहने लगीं॥ ४५-४६ ॥

यह देखकर मुनि दुर्वासा आश्चर्यचकित हो गये और यमदूत भी अत्यन्त विस्मयमें पड़ गये। वे यमदूत सर्वज्ञ धर्मराजके पास शीघ्र पहुँचकर उनसे कहने लगे—हे महाराज! हे विभो! अभी-अभी एक अत्यन्त आश्चर्यजनक घटना घटी है। कुम्भीपाकमें स्थित पापियोंको स्वर्गसे भी अधिक सुख प्राप्त हो रहा है। हे विभो! यह कैसे हो गया, इसका कारण हम नहीं जानते। हे देव! इस घटनासे हम सभी लोग चकित हैं और आपके पास आये हुए हैं॥ ४७—४९ ॥

दूतोंकी वह बात सुनकर धर्मराज शीघ्र ही उठ खड़े हुए और एक विशाल महिषपर आरूढ होकर उस कुम्भीपाक नरककुण्डके लिये प्रस्थित हुए, जहाँ वे पापी पड़े हुए थे॥ ५० ॥

उन्होंने अपने दूतोंद्वारा वह सन्देश अमरावती (इन्द्रपुरी)-में भेज दिया। उस सन्देशको सुनकर देवराज इन्द्र भी देवताओंके साथ वहाँ आ गये। इसी प्रकार ब्रह्मलोकसे ब्रह्मा, वैकुण्ठलोकसे विष्णु तथा अपने-अपने लोकोंसे समस्त दिक्पाल अपने गणोंसहित वहाँ आ गये॥ ५१-५२ ॥

वे सभी कुम्भीपाकको इधर-उधरसे घेरकर खड़े हो गये। उन्होंने वहाँपर स्थित जीवोंको स्वर्गसे भी अधिक सुखी देखा। विस्मयमें पड़े हुए वे सभी देवता उसका कारण नहीं जान पाये। वे कहने लगे—'अहो! यह कुण्ड तो पाप भोगनेके निमित्त है। जब यहाँपर ऐसा सुख प्राप्त हो रहा है तो फिर लोगोंको पापसे क्या भय रहेगा? परमेश्वरके द्वारा बनायी गयी वेदमर्यादा कैसे विनष्ट हो गयी? भगवान्‌ने अपने ही संकल्पको मिथ्या कैसे कर दिया? यह तो आश्चर्य है, यह तो आश्चर्य है'—ऐसा कहते हुए वे सभी देवता उदास हो गये; वे उस घटनाका कारण नहीं जान सके॥ ५३—५६½ ॥

एतस्मिन्नन्तरे शौरिः सम्मन्त्र्य विबुधादिभिः ॥ ५७
ययौ कैश्चित्सुरगणैः सहितः शङ्करालयम्।
पार्वत्या सहितं देवं कोटिकन्दर्पसुन्दरम्॥ ५८
रमणीयतमाङ्गं तं लावण्यखनिमद्भुतम्।
सदा षोडशवर्षीयं नानालङ्कारभूषितम्॥ ५९
नानागणैः परिवृतं लालयन्तं परां शिवाम्।
ददर्श चन्द्रमौलिं स चतुर्वेदं ननाम ह॥ ६०
वृत्तान्तं कथयामास चमत्कृतमतिस्फुटम्।
एतस्य कारणं देव न जानीमः कथञ्चन॥ ६१
वद तत्कारणं देव सर्वज्ञोऽसि यतः प्रभो।
विष्णुवाक्यं तदा श्रुत्वा प्रसन्नमुखपङ्कजः॥ ६२
उवाच मधुरं वाक्यं मेघगम्भीरया गिरा।
शृणु विष्णो तन्निमित्तं नाश्चर्यं त्वत्र विद्यते॥ ६३
भस्मनो महिमैवायं भस्मना किं भवेन्न हि।
कुम्भीपाकं गतो द्रष्टुं दुर्वासाः शैवसम्मतः॥ ६४
अवाङ्मुखो ददर्शाधस्तदा वायुवशाद्धरे।
भालभस्मकणास्तत्र पतिता दैवयोगतः॥ ६५
तेन जातमिदं सर्वं भस्मनो महिमा त्वयम्।
इतः परं तु तत्तीर्थं पितृलोकनिवासिनाम्॥ ६६
भविष्यति न सन्देहो यत्र स्नात्वा सुखी भवेत्।
पितृतीर्थं तु तन्नाम्नाप्यत ऊर्ध्वं भविष्यति॥ ६७
मल्लिङ्गस्थापनं तत्र कार्यं देव्याश्च सत्तम।
पूजयिष्यन्ति ते तत्र पितृलोकनिवासिनः॥ ६८
त्रैलोक्ये यानि तीर्थानि तत्र श्रेष्ठमिदं भवेत्।
पित्रीश्वरीपूजया तु त्रैलोक्यं पूजितं भवेत्॥ ६९

इसी बीच भगवान् विष्णु देवताओं आदिसे मन्त्रणा करके कुछ देवगणोंके साथ शंकरजीके निवास-स्थानपर गये। वहाँपर उन्होंने पार्वतीके साथ विराजमान, करोड़ों कामदेवके समान सुन्दर, परम रमणीय अंगोंवाले, लावण्यकी खान, अद्भुत, सदा सोलह वर्षकी अवस्थावाले, अनेकविध अलंकारोंसे सुशोभित, विविध गणोंसे घिरे हुए तथा परा शिवाको प्रमुदित करते हुए चतुर्वेदस्वरूप चन्द्रशेखर भगवान् शिवको देखा और उन्हें प्रणाम किया। तत्पश्चात् उन्होंने अत्यन्त स्पष्ट वाणीमें उस आश्चर्यजनक घटनाको बताया—'हे देव! हम इस घटनाका कुछ भी कारण नहीं समझ पा रहे हैं। हे देव! इसका जो कारण हो, उसे आप बताइये; क्योंकि हे प्रभो! आप सर्वज्ञ हैं'॥ ५७—६१½ ॥

तब विष्णुका कथन सुनकर प्रसन्न मुखारविन्दवाले भगवान् शिवने मेघके समान गम्भीर वाणीमें यह मधुर वचन कहा—'हे विष्णो! उसका कारण सुनिये।' इस विषयमें कोई आश्चर्य नहीं है। यह भस्मकी महिमा है। भस्मसे क्या नहीं हो सकता है?॥ ६२-६३½ ॥

शैवसम्मत होकर अर्थात् भस्म तथा त्रिपुण्ड्र आदि धारण करके दुर्वासामुनि कुम्भीपाक देखने गये थे। हे हरे! वे मुख झुकाकर नीचेकी ओर देखने लगे, तभी उनके ललाटपर स्थित भस्मके कुछ कण दैवयोगसे वायुके प्रभावसे उस कुण्डमें गिर पड़े। उसीसे यह सारी घटना हुई है; यह तो भस्मकी ही महिमा है॥ ६४-६५½ ॥

अबसे यह कुम्भीपाक पितृलोकमें निवास करनेवालोंके लिये तीर्थ बन जायगा, जिसमें स्नान करके सुख प्राप्त होगा; इसमें सन्देह नहीं है। आजसे उन्हींके नामसे यह 'पितृतीर्थ' नामवाला होगा। हे श्रेष्ठ! आप वहाँपर मेरे लिंग तथा देवीकी मूर्तिकी स्थापना करें, जिससे पितृलोकमें रहनेवाले हमारी पूजा कर सकें। तीनों लोकोंमें जितने तीर्थ हैं, उनमें यह श्रेष्ठ तीर्थ होगा। वहाँपर स्थापित पित्रीश्वरीकी पूजामात्रसे तीनों लोकोंकी पूजा हो जायगी॥ ६६—६९ ॥

श्रीनारायण उवाच

इति देववचः श्रुत्वा देवं मूर्ध्ना प्रणम्य च।
तदनुज्ञां समादाय ययौ देवान्तिकं हरिः॥ ७०

तत्सर्वं कथयामास कारणं शङ्करोदितम्।
साधु साध्विति ते प्रोचुरमरा मौलिचालनैः॥ ७१

शशंसुर्भस्ममाहात्म्यं हरिब्रह्मादयः सुराः।
पितरश्चैव सन्तुष्टास्तीर्थलाभात्परन्तप॥ ७२

तत्तीर्थतीरे लिङ्गं च देव्या मूर्तिं यथाविधि।
स्थापयामासुरमराः पूजयामासुरन्वहम्॥ ७३

तत्र ये प्राणिनोऽभूवन्पापभोगार्थमास्थिताः।
ते विमानं समारुह्य गताः कैलासमण्डलम्॥ ७४

नाम्ना भद्रगणास्ते तु वसन्त्यद्यापि तत्र हि।
पुनश्च दूरदेशे तु कुम्भीपाको विनिर्मितः॥ ७५

निरुद्धं शैवगमनं देवैस्तत्र तु तद्दिनात्।
इति ते सर्वमाख्यातं भस्ममाहात्म्यमुत्तमम्॥ ७६

नातः परतरं किञ्चिदधिकं विद्यते मुने।
ऊर्ध्वपुण्ड्रविधिं चैवाप्यधिकारिविभेदतः॥ ७७

प्रवक्ष्ये मुनिशार्दूल वैष्णवागमलोकनात्।
ऊर्ध्वपुण्ड्रप्रमाणानि दिव्यान्यङ्गुलिभेदतः॥ ७८

वर्णाभिमन्त्रदेवांश्च प्रवक्ष्यामि फलानि च।
पर्वताग्रे नदीतीरे शिवक्षेत्रे विशेषतः॥ ७९

सिन्धुतीरे च वल्मीके तुलसीमूलमाश्रिते।
मृद एतास्तु सङ्ग्राह्या वर्जयेदन्यमृत्तिकाः॥ ८०

श्यामं शान्तिकरं प्रोक्तं रक्तं वश्यकरं भवेत्।
श्रीकरं पीतमित्याहुर्धर्मदं श्वेतमुच्यते॥ ८१

श्रीनारायण बोले—हे नारद! महादेवजीकी यह बात सुनकर विष्णुजीने सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम किया और उनसे आज्ञा लेकर वे देवताओंके पास चले गये। वहाँ पहुँचकर भगवान् विष्णुने शंकरजीद्वारा बतायी गयी समस्त बातें उनसे कहीं, जिसपर वे सभी देवता सिर हिलाकर 'साधु-साधु'—ऐसा कहने लगे॥ ७०-७१॥

ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता भस्मके माहात्म्यकी प्रशंसा करने लगे और हे परंतप! कुम्भीपाकके तीर्थ हो जानेसे पितरोंको बड़ी प्रसन्नता हुई॥ ७२॥

देवताओंने उस तीर्थके तटपर शिवलिंग तथा देवीकी मूर्तिकी विधिपूर्वक स्थापना की और प्रतिदिन पूजन करने लगे॥ ७३॥

अपने पापकर्मोंका फल भोगनेके लिये उस कुण्डमें जितने भी जीव थे, वे सब विमानपर आरूढ होकर कैलासमण्डलको चले गये। वे इस समय भी वहाँ भद्रगण नामसे निवास करते हैं; और फिर वहाँसे दूर अन्य स्थानपर 'कुम्भीपाक' निर्मित हुआ और उसी दिनसे देवताओंने भस्म तथा त्रिपुण्ड्रधारी शैवोंका कुम्भीपाक नरककुण्ड जाना निरुद्ध कर दिया॥ ७४-७५½॥

इस प्रकार मैंने आपसे भस्मके उत्तम माहात्म्यका सारा वर्णन कर दिया। हे मुने! इस भस्मसे बढ़कर अन्य कुछ भी नहीं है॥ ७६½॥

हे मुनिशार्दूल! वैष्णवशास्त्रोंके अवलोकनसे प्राप्त ज्ञानके अनुसार अब अधिकार-भेदसे ऊर्ध्वपुण्ड्रकी विधिका भी वर्णन करूँगा॥ ७७½॥

हे मुने! अँगुलिके नापसे दिव्य ऊर्ध्वपुण्ड्रके प्रमाण, उसके रंग, उसके मन्त्र, उसके देवता तथा उसके फलोंका वर्णन करूँगा॥ ७८½॥

इसके लिये पर्वतकी चोटी, नदीके तट, विशेष रूपसे शिवक्षेत्र, समुद्रके तट, वल्मीक (बाँबी) और तुलसीके वृक्षकी जड़—इन्हीं स्थानोंकी मिट्टियोंको लेना चाहिये, इसके अतिरिक्त अन्य मिट्टियाँ नहीं लेनी चाहिये॥ ७९-८०॥

श्यामवर्णकी मिट्टी शान्तिदायिनी कही गयी है तथा रक्तवर्णकी मिट्टी वशमें करनेवाली होती है। इसी प्रकार पीली मिट्टी श्रीदायिनी तथा श्वेत मिट्टी धर्मकी ओर प्रवृत्त करनेवाली कही गयी है॥ ८१॥

अङ्गुष्ठः पुष्टिदः प्रोक्तो मध्यमायुष्करी भवेत्।
अनामिकान्नदा नित्यं मुक्तिदा च प्रदेशिनी॥ ८२

एतैरङ्गुलिभेदैस्तु कारयेन्न नखैः स्पृशेत्।
वर्तिदीपावलिकृतिं वेणुपत्राकृतिं तथा॥ ८३

पद्मस्य मुकुलाकारं तथा कुर्यात्प्रयत्नतः।
मत्स्यकूर्माकृतिं वापि शङ्खाकारं ततः परम्॥ ८४

दशाङ्गुलिप्रमाणं तु उत्तमोत्तममुच्यते।
नवाङ्गुलं मध्यमं स्यादष्टाङ्गुलमतः परम्॥ ८५

सप्तषट्पञ्चभिः पुण्ड्रं मध्यमं त्रिविधं स्मृतम्।
चतुस्त्रिद्व्यङ्गुलैः पुण्ड्रं कनिष्ठं त्रिविधं भवेत्॥ ८६

ललाटे केशवं विद्यान्नारायणमथोदरे।
माधवं हृदि विन्यस्य गोविन्दं कण्ठकूपके॥ ८७

उदरे दक्षिणे पार्श्वे विष्णुरित्यभिधीयते।
तत्पार्श्वबाहुमध्ये च मधुसूदनमेव च॥ ८८

त्रिविक्रमं कर्णदेशे वामकुक्षौ तु वामनम्।
श्रीधरं बाहुके वामे हृषीकेशं तु कर्णके॥ ८९

पृष्ठे च पद्मनाभं तु ककुद्दामोदरं स्मरेत्।
द्वादशैतानि नामानि वासुदेवेति मूर्धनि॥ ९०

पूजाकाले च होमे च सायं प्रातः समाहितः।
नामान्युच्चार्य विधिना धारयेदूर्ध्वपुण्ड्रकम्॥ ९१

अँगूठा पुष्टि देनेवाला कहा गया है। मध्यमा अँगुली आयु प्रदान करनेवाली है। अनामिका नित्य अन्न देनेवाली तथा तर्जनी मुक्तिदायिनी कही गयी है। अँगुलिभेदसे इन्हींसे ही ऊर्ध्वपुण्ड्र लगाये तथा लगाते समय नखोंसे स्पर्श न करे। दीपककी बत्तीकी लौके आकारका, बाँसके पत्तेके आकारका, कमलकी कलीकी आकृतिका, मत्स्यके आकारका, कछुएके आकारका अथवा शंखके आकारका ऊर्ध्वपुण्ड्र प्रयत्नपूर्वक धारण करना चाहिये॥ ८२—८४॥

दस अंगुल परिमाणवाला ऊर्ध्वपुण्ड्र उत्तम कोटिमें उत्तम कहा जाता है। नौ अंगुल परिमाणवाला ऊर्ध्वपुण्ड्र उत्तम कोटिमें मध्यम तथा आठ अंगुल परिमाणवाला ऊर्ध्वपुण्ड्र उत्तम कोटिमें कनिष्ठ होता है॥ ८५॥

इसी प्रकार सात, छः तथा पाँच अंगुल परिमाणवाला मध्यम कोटिका ऊर्ध्वपुण्ड्र भी [क्रमशः उत्तम, मध्यम तथा कनिष्ठ]—तीन प्रकारका कहा गया है और चार, तीन तथा दो अंगुल परिमाणवाला कनिष्ठ कोटिका ऊर्ध्वपुण्ड्र भी [क्रमशः उत्तम, मध्यम तथा कनिष्ठ] तीन प्रकारका होता है॥ ८६॥

ललाटके ऊर्ध्वपुण्ड्रको 'केशव', उदरके ऊर्ध्वपुण्ड्रको 'नारायण', हृदयके ऊर्ध्वपुण्ड्रको 'माधव' तथा कण्ठके ऊर्ध्वपुण्ड्रको 'गोविन्द' जानना चाहिये। उदरके दाहिने पार्श्वमें धारित ऊर्ध्वपुण्ड्रको 'विष्णु' कहा जाता है। उदरके वाम पार्श्वके ऊर्ध्व-पुण्ड्रको 'मधुसूदन', कर्णदेशके ऊर्ध्वपुण्ड्रको 'त्रिविक्रम', वाम कुक्षिके ऊर्ध्वपुण्ड्रको 'वामन', बायें बाहुके ऊर्ध्वपुण्ड्रको 'श्रीधर', दाहिने कानके ऊर्ध्वपुण्ड्रको 'हृषीकेश', पीठके ऊर्ध्वपुण्ड्रको 'पद्मनाभ', ककुद्देशके ऊर्ध्वपुण्ड्रको 'दामोदर'—इन बारह नामोंसे तथा मूर्धाके ऊर्ध्वपुण्ड्रको वासुदेवके रूपमें समझकर उन-उन स्थानोंपर उन-उन देवताओंका स्मरण करना चाहिये। इस प्रकार प्रातःकालीन तथा सायंकालीन पूजन तथा हवनके समय शान्तचित्त होकर इन नामोंका उच्चारण करके विधिपूर्वक ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करना चाहिये॥ ८७—९१॥

अशुचिर्वाप्यनाचारो मनसा पापमाचरेत्।
शुचिरेव भवेन्नित्यं मूर्ध्नि पुण्ड्राङ्कितो नरः॥ ९२

कोई भी अपवित्र, अनाचारी अथवा मनसे भी निरन्तर पापकर्मका चिन्तन करनेवाला मनुष्य अपने सिरपर ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण कर लेनेमात्रसे पवित्र हो जाता है॥ ९२॥

ऊर्ध्वपुण्ड्रधरो मर्त्यो म्रियते यत्र कुत्रचित्।
श्वपाकोऽपि विमानस्थो मम लोके महीयते॥ ९३

ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करनेवाले चाण्डाल मनुष्यकी भी मृत्यु चाहे कहीं भी हो, वह विमानमें स्थित होकर मेरे लोक पहुँचकर प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ ९३॥

एकान्तिनो महाभागा मत्स्वरूपविदोऽमलाः।
सान्तरालान्प्रकुर्वन्ति पुण्ड्रान्विष्णुपदाकृतीन्॥ ९४

परमैकान्तिनोऽप्येवं मत्पादैकपरायणाः।
हरिद्राचूर्णसंयुक्ताञ्छूलाकारांस्तु वामलान्॥ ९५

विशुद्ध आत्मावाले तथा मेरे स्वरूपको जाननेवाले महाभाग्यशाली ऐकान्तिक वैष्णवजन भगवान् विष्णुके चरणके आकारवाले तथा बीचमें रिक्त स्थानसे युक्त ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करते हैं। इसी प्रकार एकमात्र मेरे चरणोंके प्रति परायणता रखनेवाले परम ऐकान्तिक भक्त निर्मल, शूलकी आकृतिवाले ऊर्ध्वपुण्ड्रको हल्दीके चूर्णसे धारण करते हैं॥ ९४-९५॥

अन्ये तु वैष्णवाः पुण्ड्रानच्छिद्रानपि भक्तितः।
प्रकुर्वीरन्दीपपद्मवेणुपत्रोपमाकृतीन् ॥ ९६

अच्छिद्रानपि सच्छिद्रान् कुर्युः केवलवैष्णवाः।
अच्छिद्रकरणे तेषां प्रत्यवायो न विद्यते॥ ९७

एकान्तिनां प्रपन्नानां परमैकान्तिनामपि।
अच्छिद्रपुण्ड्राकरणे प्रत्यवायो महान्भवेत्॥ ९८

अन्य वैष्णवजनोंको भक्तिपूर्वक दीपककी बत्तीकी तरह, कमलकी तरह अथवा बाँसके पत्तेकी आकृतिके सदृश तथा रेखाओंके मध्य रिक्तस्थान-रहित ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करना चाहिये। साधारण वैष्णव गृहस्थ अच्छिद्र (रेखाओंके बीच रिक्त स्थानसे रहित) अथवा सच्छिद्र (रेखाओंके बीच रिक्त स्थानयुक्त) कोई भी त्रिपुण्ड्र धारण कर सकते हैं। अच्छिद्र ऊर्ध्वपुण्ड्र लगानेसे उन्हें पाप नहीं लगता है। किंतु प्रपन्न ऐकान्तिक तथा परम ऐकान्तिक वैष्णवोंको अच्छिद्र ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करनेपर महान् पाप लगता है॥ ९६—९८॥

ऊर्ध्वपुण्ड्रं तु यः कुर्याद्दण्डाकारं तु शोभनम्।
मध्ये छिद्रं वैष्णवाश्च नमोऽन्तैः केशवादिभिः॥ ९९

विमलान्यूर्ध्वपुण्ड्राणि सान्तरालानि यो नरः।
करोति विपुलं तत्र मन्दिरं मे करोति सः॥ १००

जो वैष्णव दण्डके आकारके, सुन्दर, रेखाओंके बीचमें रिक्त स्थान छोड़कर पूर्वोक्त 'केशव' आदिके साथ 'नमः' जोड़कर विभिन्न अंगोंमें विमल ऊर्ध्वपुण्ड्रोंको धारण करता है, वह उन-उन स्थानोंपर मानो मेरा विशाल मन्दिर ही बनाता है॥ ९९-१००॥

ऊर्ध्वपुण्ड्रस्य मध्ये तु विशाले सुमनोहरे।
लक्ष्म्या साकं सहासीनो रमते विष्णुरव्ययः॥ १०१

ऊर्ध्वपुण्ड्रके मध्य विशाल तथा अत्यन्त मनोहर रिक्त स्थानमें शाश्वत विष्णुजी लक्ष्मीके साथ विराजमान होकर आनन्दित होते हैं॥ १०१॥

निरन्तरालं यः कुर्यादूर्ध्वपुण्ड्रं द्विजाधमः।
स हि तत्र स्थितं विष्णुं श्रियं चैव व्यपोहति॥ १०२

जो अधम द्विज रेखाओंके बीचमें रिक्तस्थान छोड़े बिना ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करता है, वह उस स्थानपर विराजमान विष्णु तथा लक्ष्मीका तिरस्कार करता है॥ १०२॥

अच्छिद्रमूर्ध्वपुण्ड्रं तु यः करोति विमूढधीः।
स पर्यायेण तानेति नरकानेकविंशतिम्॥ १०३

ऋजूनि स्फुटपार्श्वानि सान्तरालानि विन्यसेत्।
ऊर्ध्वपुण्ड्राणि दण्डाब्जदीपमत्स्यनिभानि च॥ १०४

शिखोपवीतवद्धार्यमूर्ध्वपुण्ड्रं द्विजेन च।
विना कृताश्चेद्विफलाः क्रियाः सर्वा महामुने॥ १०५

तस्मात्सर्वेषु कार्येषु कार्यं विप्रस्य धीमतः।
ऊर्ध्वपुण्ड्रं त्रिशूलं च वर्तुलं चतुरस्त्रकम्॥ १०६

अर्धचन्द्रादिकं लिङ्गं वेदनिष्ठो न धारयेत्।
जन्मना लब्धजातिस्तु वेदपन्थानमाश्रितः॥ १०७

पुण्ड्रान्तरं भ्रमाद्वापि ललाटे नैव धारयेत्।
ख्यातिकान्त्यादिसिद्ध्यर्थं चापि विष्णवागमादिषु॥ १०८

स्थितं पुण्ड्रान्तरं नैव धारयेद्वैदिको जनः।
तिर्यक्त्रिपुण्ड्रं सन्त्यज्य श्रौतं कथमपि भ्रमात्॥ १०९

ललाटे भस्मना तिर्यक्त्रिपुण्ड्रस्य च धारणम्।
विना पुण्ड्रान्तरं मोहाद्धारयन्नारकी भवेत्॥ ११०

वेदमार्गैकनिष्ठस्तु मोहेनाप्यङ्कितो यदि।
पतत्येव न सन्देहस्तथा पुण्ड्रान्तरादपि॥ १११

नाङ्कनं विग्रहे कुर्याद्वेदमार्गं समाश्रितः।
श्रौतधर्मैकनिष्ठानां लिङ्गं तु श्रौतमेव हि॥ ११२

अश्रौतधर्मनिष्ठानामश्रौतं लिङ्गमीरितम्।
देवता वेदसिद्धा यास्तासां लिङ्गं तु वैदिकम्॥ ११३
अश्रौततन्त्रनिष्ठा यास्तासामश्रौतमेव हि।

जो मूर्ख अच्छिद्र (रेखाओंके बीच रिक्त स्थानरहित) ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करता है, वह क्रमशः इक्कीस नरकोंको प्राप्त होता रहता है॥ १०३॥

स्पष्ट तथा सीधी रेखाओंवाले, बीचमें रिक्त स्थानवाले, दण्ड, कमल, दीपककी लौ अथवा मत्स्यकी आकृतिवाले ऊर्ध्वपुण्ड्रोंको धारण करना चाहिये॥ १०४॥

द्विजको शिखा और यज्ञोपवीतकी भाँति ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करना चाहिये। हे महामुने! इसे धारण किये बिना किये गये समस्त कर्म निष्फल हो जाते हैं। अतः बुद्धिमान् ब्राह्मणको समस्त कर्मोंमें त्रिशूलके आकारका गोल अथवा चौकोर ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करना चाहिये॥ १०५-१०६॥

वेदनिष्ठ ब्राह्मणको अर्धचन्द्रके आकारका तिलक नहीं लगाना चाहिये। जन्मसे ब्राह्मणजातिमें उत्पन्न तथा वैदिकपन्थके अनुयायी व्यक्तिको भूलकर भी अपने ललाटपर ऊर्ध्वपुण्ड्रके अतिरिक्त अन्य पुण्ड्र नहीं धारण करना चाहिये। श्रौत तिर्यक् त्रिपुण्ड्र छोड़कर प्रसिद्धि अथवा शारीरिक कान्ति आदिकी प्राप्तिके लिये वैष्णवशास्त्रादिमें वर्णित दूसरे प्रकारके पुण्ड्र वैदिक व्यक्तिको भूलकर भी नहीं धारण करने चाहिये॥ १०७—१०९॥

ललाटपर भस्मसे तिर्यक् त्रिपुण्ड्र धारण न करके अज्ञानवश अन्य प्रकारका त्रिपुण्ड्र धारण करनेवाला वैदिक ब्राह्मण नरकगामी होता है। एकमात्र वेदमार्गका अनुयायी व्यक्ति यदि अज्ञानवश भी भिन्न प्रकारका पुण्ड्र शरीरपर धारण कर लेता है तो वह नरकमें अवश्य ही पड़ता है; इसमें संशय नहीं है॥ ११०-१११॥

वैदिक धर्मावलम्बी मनुष्यको अपने शरीरपर किसी प्रकारका चिह्न नहीं करना चाहिये। वैदिक धर्मका पालन करनेवालोंके लिये एकमात्र वैदिक चिह्न त्रिपुण्ड्र ही है। अश्रौत धर्ममें निष्ठ लोगोंके लिये अश्रौत चिह्न बताया गया है॥ ११२$\frac{1}{2}$॥

वेदोंमें जो-जो देवता वर्णित हैं, उनके चिह्न वैदिक ही हैं। अश्रौततन्त्रमें निष्ठा रखनेवाले जो लोग हैं, उनके चिह्न अश्रौत ही हैं॥ ११३$\frac{1}{2}$॥

वेदसिद्धो महादेवः साक्षात्संसारमोचकः॥ ११४

भक्तानामुपकाराय श्रौतं लिङ्गं दधाति च।
वेदसिद्धस्य विष्णोश्च श्रौतं लिङ्गं न चेतरत्॥ ११५

प्रादुर्भावविशेषाणामपि तस्य तदेव हि।
श्रौतं लिङ्गं तु विज्ञेयं त्रिपुण्ड्रोद्धूलनादिकम्॥ ११६

अश्रौतमूर्ध्वपुण्ड्रादि नैव तिर्यक्त्रिपुण्ड्रकम्।
वेदमार्गैकनिष्ठानां वेदोक्तेनैव वर्त्मना॥ ११७

ललाटे भस्मना तिर्यक्त्रिपुण्ड्रं धार्यमेव हि।
यस्तु नारायणं देवं प्रपन्नः परमं पदम्।
धारयेत्सर्वदा शूलं ललाटे गन्धवारिणा॥ ११८

भवबन्धनसे मुक्ति प्रदान करनेवाले वेदसिद्ध महादेवजी भक्तोंके उपकारके लिये श्रौत चिह्न (भस्म—त्रिपुण्ड्र) धारण करते हैं॥ ११४½॥

वेदसिद्ध भगवान् विष्णुका भी वैदिक चिह्न ही है, इसके अतिरिक्त दूसरा नहीं। विशेष अवतारोंमें भी उनका चिह्न वही [भस्म—त्रिपुण्ड्र] रहता है॥ ११५½॥

सर्वांगमें भस्म लगाने तथा त्रिपुण्ड्र धारण करनेको वैदिक चिह्न समझना चाहिये। ऊर्ध्वपुण्ड्र आदि अश्रौत चिह्न हैं, तिर्यक् त्रिपुण्ड्र अश्रौत नहीं है॥ ११६½॥

एकमात्र वेदमार्गका अनुगमन करनेवालेको वेदोक्त पद्धतिसे भस्मद्वारा ललाटपर तिर्यक् त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये। जो भगवान् नारायणके शरणागत हो तथा उनके परमपदका अभिलाषी हो, उसे गन्ध-द्रव्य-युक्त जलसे अपने ललाटपर शूलकी आकृति धारण करनी चाहिये॥ ११७-११८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामेकादशस्कन्धे त्रिपुण्ड्रोर्ध्वपुण्ड्रधारणविधिवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥ १५॥

~~○~~

अथ षोडशोऽध्यायः

सन्ध्योपासना तथा उसका माहात्म्य

श्रीनारायण उवाच

अथातः श्रूयतां पुण्यं सन्ध्योपासनमुत्तमम्।
भस्मधारणमाहात्म्यं कथितं चैव विस्तरात्॥ १

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] मैंने आपसे भस्म धारण करनेके माहात्म्यका विस्तारपूर्वक वर्णन कर दिया; अब आप पुण्यदायक तथा उत्तम सन्ध्योपासनके विषयमें सुनिये॥ १॥

प्रातःसन्ध्याविधानं च कथयिष्यामि तेऽनघ।
प्रातःसन्ध्यां सनक्षत्रां मध्याह्ने मध्यभास्कराम्॥ २

ससूर्यां पश्चिमां सन्ध्यां तिस्रः सन्ध्या उपासते।
तद्भेदानपि वक्ष्यामि शृणु देवर्षिसत्तम॥ ३

हे अनघ! मैं सर्वप्रथम आपसे प्रातःकालीन सन्ध्याका विधान कह रहा हूँ। प्रातःकालकी सन्ध्या आकाशमें तारोंके रहते-रहते, मध्याह्नकी सन्ध्या सूर्यके मध्य-आकाशमें आनेपर और सायंकालकी सन्ध्या सूर्यके पश्चिम दिशामें रहनेपर करनेका विधान है; इस प्रकार इन तीनों सन्ध्याओंको करना चाहिये। हे देवर्षिश्रेष्ठ! अब मैं उनके भेद भी बताऊँगा, आप सुनिये॥ २-३॥

उत्तमा तारकोपेता मध्यमा लुप्ततारका।
अधमा सूर्यसहिता प्रातःसन्ध्या त्रिधा मता॥ ४

तारोंके आकाशमें विद्यमान रहते की जानेवाली प्रातःसन्ध्या उत्तम, तारोंके लुप्त होनेसे लेकर सूर्योदयके बीचकी अवधिमें की जानेवाली सन्ध्या मध्यम और सूर्यके उदय हो जानेपर की जानेवाली सन्ध्या

उत्तमा सूर्यसहिता मध्यमास्तमिते रवौ।
अधमा तारकोपेता सायंसन्ध्या त्रिधा मता॥ ५

अधम—यह तीन प्रकारकी प्रातःसन्ध्या कही गयी है। सायंकालमें सूर्यके विद्यमान रहते की गयी सायं-सन्ध्या उत्तम, सूर्यके अस्त होने तथा तारोंके उदयके पूर्व की गयी सन्ध्या मध्यम और तारोंके उदयके पश्चात् की गयी सन्ध्या अधम—यह तीन प्रकारकी सायंसन्ध्या कही गयी है॥ ४-५॥

विप्रो वृक्षो मूलकान्यत्र सन्ध्या
वेदः शाखा धर्मकर्माणि पत्रम्।
तस्मान्मूलं यत्नतो रक्षणीयं
छिन्ने मूले नैव वृक्षो न शाखा॥ ६

विप्र वृक्ष है, ये सन्ध्याएँ ही उसकी जड़ें हैं, वेद उसकी शाखाएँ हैं और सभी धर्म-कर्म उसके पत्ते हैं। अतएव प्रयत्नके साथ मूल अर्थात् सन्ध्याकी ही रक्षा करनी चाहिये; क्योंकि मूलके कट जानेपर न तो वृक्ष रहता है और न शाखा॥ ६॥

सन्ध्या येन न विज्ञाता सन्ध्या येनानुपासिता।
जीवमानो भवेच्छूद्रो मृतः श्वा चैव जायते॥ ७

जिसने सन्ध्याका ज्ञान नहीं किया तथा जिसने सन्ध्योपासन नहीं किया, वह जीते-जी शूद्रके समान होता है और मृत्युके अनन्तर कुत्तेकी योनिमें जन्म लेता है॥ ७॥

तस्मान्नित्यं प्रकर्तव्यं सन्ध्योपासनमुत्तमम्।
तदभावेऽन्यकर्मादावधिकारी भवेन्न हि॥ ८

अतः द्विजको नित्य उत्तम सन्ध्या करनी चाहिये। उसे न करनेवाला अन्य किसी भी शुभ कर्मको करनेका अधिकारी नहीं है॥ ८॥

उदयास्तमयादूर्ध्वं यावत्स्याद्घटिकात्रयम्।
तावत्सन्ध्यामुपासीत प्रायश्चित्तं ततः परम्॥ ९

सूर्यके उदय होने तथा अस्त होनेके तीन-तीन घड़ी बादतक सन्ध्योपासना कर लेनी चाहिये। उसके बाद सन्ध्या करनेपर प्रायश्चित्त करना पड़ता है॥ ९॥

कालातिक्रमणे जाते चतुर्थार्घ्यं प्रदापयेत्।
अथवाष्टशतं देवीं जप्त्वादौ तां समाचरेत्॥ १०

समय बीत जानेपर यदि सन्ध्या की जाय, तो [तीन अर्घ्यके अतिरिक्त] चौथा अर्घ्य देना चाहिये अथवा आरम्भमें एक सौ आठ बार गायत्रीका जप करके सन्ध्या करनी चाहिये॥ १०॥

यस्मिन्काले तु यत्कर्म तत्कालाधीश्वरीं च ताम्।
सन्ध्यामुपास्य पश्चात्तु तत्कालीनं समाचरेत्॥ ११

जिस समय जो कर्म करना हो, उस समयकी अधीश्वरी उस गायत्री-स्वरूपिणी सन्ध्याकी उपासना करनेके अनन्तर ही उस कार्यमें प्रवृत्त होना चाहिये॥ ११॥

गृहे साधारणा प्रोक्ता गोष्ठे वै मध्यमा भवेत्।
नदीतीरे चोत्तमा स्याद्देवीगेहे तदुत्तमा॥ १२

घरमें की गयी सन्ध्या साधारण कही गयी है, गोशालामें की गयी सन्ध्या मध्यम कोटिकी होती है, नदीके तटपर की गयी सन्ध्या उत्तम होती है और देवीमन्दिरमें की गयी सन्ध्या उससे भी उत्तम कही गयी है॥ १२॥

यतो देव्या उपासेयं ततो देव्यास्तु सन्निधौ।
सन्ध्यात्रयं प्रकर्तव्यं तदानन्त्याय कल्पते॥ १३

सन्ध्योपासन देवीकी उपासना है, अतः देवीकी सन्निधिमें ही तीनों कालों (प्रातः, मध्याह्न, सायं)-की सन्ध्या करनी चाहिये, वह उन्हें अनन्त फल प्रदान करती है॥ १३॥

एतस्या अपरं दैवं ब्राह्मणानां च विद्यते।
न विष्णूपासना नित्या न शिवोपासना तथा॥ १४

यथा भवेन्महादेव्या गायत्र्याः श्रुतिचोदिता।
सर्ववेदसारभूता गायत्र्यास्तु समर्चना॥ १५

ब्रह्मादयोऽपि सन्ध्यायां तां ध्यायन्ति जपन्ति च।
वेदा जपन्ति तां नित्यं वेदोपास्या ततः स्मृता॥ १६

तस्मात्सर्वे द्विजाः शाक्ता न शैवा न च वैष्णवाः।
आदिशक्तिमुपासन्ते गायत्रीं वेदमातरम्॥ १७

आचान्तः प्राणमायम्य केशवादिकनामभिः।
केशवश्च तथा नारायणो माधव एव च॥ १८

गोविन्दो विष्णुरेवाथ मधुसूदन एव च।
त्रिविक्रमो वामनश्च श्रीधरोऽपि ततः परम्॥ १९

हृषीकेशः पद्मनाभो दामोदर अतः परम्।
सङ्कर्षणो वासुदेवः प्रद्युम्नोऽप्यनिरुद्धकः॥ २०

पुरुषोत्तमाधोक्षजौ च नारसिंहोऽच्युतस्तथा।
जनार्दन उपेन्द्रश्च हरिः कृष्णोऽन्तिमस्तथा॥ २१

ॐकारपूर्वकं नाम चतुर्विंशतिसङ्ख्यया।
स्वाहान्तैः प्राशयेद्वारि नमोऽन्तैः स्पर्शयेत्तथा॥ २२

केशवादित्रिभिः पीत्वा द्वाभ्यां प्रक्षालयेत्करौ।
मुखं प्रक्षालयेद् द्वाभ्यां द्वाभ्यामुन्मार्जनं तथा॥ २३
एकेन पाणिं सम्प्रोक्ष्य पादावपि शिरोऽपि च।

ब्राह्मणोंके लिये इन गायत्रीदेवीके अतिरिक्त अन्य देवता नहीं है। विष्णु तथा शिवकी उपासना भी वैसी नित्य नहीं है, जैसी महादेवी गायत्रीकी वेदप्रतिपादित सन्ध्या नित्य है। गायत्रीदेवीकी आराधना सम्पूर्ण वेदोंका सार-स्वरूप है॥ १४-१५॥

ब्रह्मा आदि देवता भी सन्ध्योपासनाके समय उन गायत्रीदेवीका ध्यान तथा जप करते हैं। वेद उन गायत्रीका नित्य जप करते हैं, अतएव वे 'वेदोपास्या' कही गयी हैं॥ १६॥

इसीलिये सभी द्विज शाक्त हैं, वे न शैव हैं न वैष्णव। वे सभी वेदमाता आदिशक्ति गायत्रीकी उपासना करते हैं॥ १७॥

केशव आदि नामोंसे आचमन करनेके बाद प्राणायाम करनेके अनन्तर सन्ध्योपासनमें प्रवृत्त होना चाहिये। केशव, नारायण, माधव, गोविन्द, विष्णु, मधुसूदन, त्रिविक्रम, वामन, श्रीधर, हृषीकेश, पद्मनाभ, दामोदर, संकर्षण, वासुदेव, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, पुरुषोत्तम, अधोक्षज, नरसिंह, अच्युत, जनार्दन, उपेन्द्र, हरि तथा श्रीकृष्ण—इन चौबीस नामोंके पूर्व 'ॐकार' तथा अन्तमें 'स्वाहा' जोड़कर जलका प्राशन (आचमन) और इन्हीं नामोंके पूर्व 'ॐकार' तथा अन्तमें 'नमः' लगाकर शरीरके विभिन्न अंगोंका स्पर्श करना चाहिये॥ १८—२२॥

'**ॐ केशवाय स्वाहा**' आदि (**ॐ केशवाय स्वाहा, ॐ माधवाय स्वाहा, ॐ नारायणाय स्वाहा**) तीन नाम-मन्त्रोंसे आचमन करके '**ॐ गोविन्दाय नमः**', '**ॐ विष्णवे नमः**'—इन दो नाम-मन्त्रोंसे दोनों हाथोंका प्रक्षालन करना चाहिये। पुनः 'मधुसूदन' तथा 'त्रिविक्रम'—इन दो नामोंसे अँगूठेके मूलद्वारा दोनों ओष्ठोंका प्रक्षालन और 'वामन' तथा 'श्रीधर'—इन नामोंसे मुखका सम्मार्जन करना चाहिये॥ २३॥

'हृषीकेश'—इस नामसे बायें हाथका, 'पद्मनाभ' नामसे दोनों पैरोंका, तथा 'दामोदर' नामसे सिरका प्रोक्षण करना चाहिये। इसी प्रकार 'संकर्षण' आदि देवनामोंसे बारह अंगोंका स्पर्श करना चाहिये। ('संकर्षण' नामसे परस्पर मिली हुई बीचकी तीन अँगुलियोंद्वारा मुखका, 'वासुदेव' तथा 'प्रद्युम्न'—इन

सङ्कर्षणादिदेवानां द्वादशाङ्गानि संस्पृशेत्॥ २४

दक्षिणेनोदकं पीत्वा वामेन संस्पृशेद् बुधः।
तावन्न शुध्यते तोयं यावद्वामेन न स्पृशेत्॥ २५

गोकर्णाकृतिहस्तेन माषमात्रं जलं पिबेत्।
ततो न्यूनाधिकं पीत्वा सुरापायी भवेद् द्विजः॥ २६

संहताङ्गुलिना तोयं पाणिना दक्षिणेन तु।
मुक्ताङ्गुष्ठकनिष्ठाभ्यां शेषेणाचमनं विदुः॥ २७

प्राणायामं ततः कृत्वा प्रणवस्मृतिपूर्वकम्।
गायत्रीं शिरसा सार्धं तुरीयपदसंयुताम्॥ २८

दक्षिणे रेचयेद्वायुं वामेन पूरितोदरम्।
कुम्भेन धारयेन्नित्यं प्राणायामं विदुर्बुधाः॥ २९

पीडयेद्दक्षिणां नाडीमङ्गुष्ठेन तथोत्तराम्।
कनिष्ठानामिकाभ्यां तु मध्यमां तर्जनीं त्यजेत्॥ ३०

रेचकः पूरकश्चैव प्राणायामोऽथ कुम्भकः।
प्रोच्यते सर्वशास्त्रेषु योगिभिर्यतमानसैः॥ ३१

दो नामोंसे अँगूठे और तर्जनी अँगुलियोंद्वारा दोनों नासापुटोंका, 'अनिरुद्ध' तथा 'पुरुषोत्तम' से अँगूठे और अनामिकाद्वारा दोनों नेत्रोंका, 'अधोक्षज' और 'नारसिंह' नामोंद्वारा दोनों कानोंका, 'अच्युत' से कनिष्ठिका और अँगूठेद्वारा नाभिका, 'जनार्दन' से करतलद्वारा हृदयका, 'उपेन्द्र' से सिरका एवं '**ॐ हरये नमः**' तथा '**ॐ कृष्णाय नमः**'—इन दो नाम-मन्त्रोंसे दाहिनी और बायीं भुजाका स्पर्श करना चाहिये)॥ २४॥

बुद्धिमान् व्यक्तिको चाहिये कि दाहिने हाथसे जल पीते समय बायें हाथसे उसे स्पर्श किये रहे; क्योंकि वह जल तबतक शुद्ध नहीं होता जबतक बायें हाथका स्पर्श नहीं होता॥ २५॥

हाथकी मुद्रा गायके कानके आकारकी बनाकर उससे मात्र एक माष जलसे आचमन करना चाहिये। उससे अधिक या कम जलसे आचमन करनेवाला द्विज सुरापान करनेवालेके समान होता है॥ २६॥

दाहिने हाथकी कनिष्ठिका तथा अँगूठेको अलग-अलग करके शेष तीन अँगुलियोंको सटाकर दाहिने हाथसे जलसे आचमन करना बताया गया है॥ २७॥

तत्पश्चात् प्रणवका उच्चारण करके गायत्रीशिरस् तथा गायत्रीके तुरीय (चतुर्थ) पादसहित गायत्रीका जप करते हुए प्राणायाम करना चाहिये॥ २८॥

नासिकाके दाहिने छिद्रसे वायुका रेचन करना चाहिये, बायें छिद्रसे वायुको उदरमें भरना चाहिये तथा उस वायुको उदरमें भरकर कुम्भरूपसे धारण किये रहना चाहिये—इसीको विद्वानोंने प्राणायाम कहा है॥ २९॥

[वायुको खींचते समय] नासिकाके दाहिने छिद्रको अँगूठेसे दबाये। तत्पश्चात् कनिष्ठिका तथा अनामिका अँगुलियोंसे बायें नासिका-छिद्रको बन्द कर ले; इसमें मध्यमा तथा तर्जनीका प्रयोग नहीं करना चाहिये॥ ३०॥

संयमित चित्तवाले योगियोंने सभी शास्त्रोंमें इसी प्रकारके पूरक, कुम्भक तथा रेचकको ही प्राणायाम बताया है॥ ३१॥

रेचकः सृजते वायुं पूरकः पूरयेत्तु तम्।
साम्येन संस्थितिर्यत्तत्कुम्भकः परिकीर्तितः॥ ३२

नीलोत्पलदलश्यामं नाभिमध्ये प्रतिष्ठितम्।
चतुर्भुजं महात्मानं पूरके चिन्तयेद्धरिम्॥ ३३

कुम्भके तु हृदि स्थाने ध्यायेत्तु कमलासनम्।
प्रजापतिं जगन्नाथं चतुर्वक्त्रं पितामहम्॥ ३४

रेचके शङ्करं ध्यायेल्ललाटस्थं महेश्वरम्।
शुद्धस्फटिकसंकाशं निर्मलं पापनाशनम्॥ ३५

पूरके विष्णुसायुज्यं कुम्भके ब्रह्मणो गतिम्।
रेचकेन तृतीयं तु प्राप्नुयादीश्वरं परम्॥ ३६

पौराणाचमनाद्यं च प्रोक्तं देवर्षिसत्तम।
श्रौतमाचमनाद्यं च शृणु पापापहं मुने॥ ३७

प्रणवं पूर्वमुच्चार्य गायत्रीं तु तदित्यृचम्।
पादादौ व्याहृतीस्तिस्रः श्रौताचमनमुच्यते॥ ३८

गायत्रीं शिरसा सार्धं जपेद् व्याहृतिपूर्विकाम्।
प्रतिप्रणवसंयुक्तां त्रितयं प्राणसंयमः॥ ३९

(सलक्षणं तु प्राणानामायामं कीर्त्यतेऽधुना।
नानापापैकशमनं महापुण्यफलप्रदम्॥)
पञ्चाङ्गुलीभिर्नासाग्रं पीडयेत्प्रणवेन तु।
सर्वपापहरा मुद्रा वानप्रस्थगृहस्थयोः॥ ४०
कनिष्ठानामिकाङ्गुष्ठैर्यतेश्च ब्रह्मचारिणः।

'रेचक' वायुका सृजन करता है, 'पूरक' उसे पूर्ण करता है तथा साम्य स्थितिमें जो उसे धारण किये रहता है, वह कुम्भक कहा गया है॥ ३२॥

पूरक करते समय नीले कमल-पत्रके समान श्याम वर्णवाले चतुर्भुज परमात्मा श्रीहरिका नाभिदेशमें ध्यान करना चाहिये॥ ३३॥

कुम्भक करते समय कमलके आसनपर विराजमान, चार मुखवाले, जगत्‌के स्वामी प्रजापति ब्रह्माका हृदयमें ध्यान करना चाहिये॥ ३४॥

रेचक करते समय शुद्ध स्फटिकके सदृश, निर्मल तथा पापोंका नाश करनेवाले महेश्वर शिवका ललाटमें ध्यान करना चाहिये॥ ३५॥

मनुष्य पूरक प्राणायामसे विष्णु-सायुज्य, कुम्भक प्राणायामसे ब्रह्माका पद तथा तीसरे रेचक प्राणायामसे माहेश्वरपद प्राप्त करता है॥ ३६॥

हे देवर्षिश्रेष्ठ! मैंने पहले पौराणिक आचमन बता दिया है। हे मुने! अब आप पापको दूर करनेवाले 'श्रौत आचमन' के विषयमें सुनिये॥ ३७॥

पहले प्रणव (ॐ)-का उच्चारण करके गायत्रीकी ऋचा (**तत्सवितुः** आदि) तथा पदके आदिमें तीनों व्याहृतियोंसे युक्त गायत्री मन्त्रको पढ़कर किया गया आचमन 'श्रौत-आचमन' कहा जाता है॥ ३८॥

गायत्रीके पूर्व तीनों व्याहृतियाँ लगाकर तथा प्रत्येक व्याहृतिमें प्रणव (ॐ) जोड़कर शिरोभागके साथ गायत्री मन्त्रका जप करना चाहिये। पूरक, कुम्भक तथा रेचक करते समय इसका तीन बार जप ही प्राणायाम है (अब लक्षणसहित प्राणायामका वर्णन किया जा रहा है। यह प्राणायाम नानाविध पापोंका शमन करनेवाला तथा महान् पुण्यफल प्रदान करनेवाला है)। गृहस्थ तथा वानप्रस्थको प्रणवमन्त्रसे पाँचों अँगुलियोंद्वारा नासिकाके अग्रभागको दबाना चाहिये। यह मुद्रा सभी प्रकारके पापोंका हरण करनेवाली है। ब्रह्मचारी और संन्यासी कनिष्ठिका, अनामिका तथा अँगूठा—इन अँगुलियोंसे प्राणायाम करें॥ ३९-४०½॥

आपो हि ष्ठेति तिसृभिः प्रोक्षणं स्यात्कुशोदकैः॥ ४१

ऋगन्ते मार्जनं कुर्यात्पादान्ते वा समाहितः।
नवप्रणवयुक्तेन आपो हि ष्ठेत्यनेन तु॥ ४२

नश्येदघं मार्जनेन संवत्सरसमुद्भवम्।
तत आचमनं कृत्वा सूर्यश्चेति पिबेदपः॥ ४३

अन्तःकरणसम्भिन्नं पापं तस्य विनश्यति।
प्रणवेन व्याहृतिभिर्गायत्र्या प्रणवाद्यया॥ ४४

आपो हि ष्ठेति सूक्तेन मार्जनं चैव कारयेत्।
उद्धृत्य दक्षिणे हस्ते जलं गोकर्णवत्कृते॥ ४५

नीत्वा तं नासिकाग्रं तु वामकुक्षौ स्मरेदघम्।
पुरुषं कृष्णवर्णं च ऋतं चेति पठेत्ततः॥ ४६

द्रुपदां वा ऋचं पश्चाद्दक्षनासापुटेन च।
श्वासमार्गेण तं पापमानयेत्करवारिणि॥ ४७

नावलोक्यैव तद्वारि वामभागेऽश्मनि क्षिपेत्।
निष्पापं तु शरीरं मे सञ्जातमिति भावयेत्॥ ४८

उत्थाय तु ततः पादौ द्वौ समौ सन्नियोजयेत्।
जलाञ्जलिं गृहीत्वा तु तर्जन्यङ्गुष्ठवर्जितम्॥ ४९

वीक्ष्य भानुं क्षिपेद्वारि गायत्र्या चाभिमन्त्रितम्।
त्रिवारं मुनिशार्दूल विधिरेषोऽर्घ्यमोचने॥ ५०

ततः प्रदक्षिणां कुर्यादसावादित्यमन्त्रतः।
मध्याह्ने सकृदेव स्यात्सन्ध्ययोस्तु त्रिवारतः॥ ५१

ईषन्नम्रः प्रभाते तु मध्याह्ने दण्डवत्स्थितः।
आसने चोपविष्टस्तु द्विजः सायं क्षिपेदपः॥ ५२

'**आपो हि ष्ठा०**' इत्यादि तीन ऋचाओंसे कुशाके जलद्वारा शरीरका प्रोक्षण करे अथवा समाहित चित्तसे इन तीन ऋचाओंमें विद्यमान नौ पदोंके आदिमें प्रणवका उच्चारण करके उनसे मार्जन करे। इस मार्जनसे वर्षभरमें किया गया समस्त पाप मिट जाता है॥ ४१-४२½ ॥

तत्पश्चात् '**सूर्यश्च०**' इस मन्त्रसे जलसे आचमन करना चाहिये। जो ऐसा करता है, उसके अन्तःकरणमें प्रविष्ट पाप मिट जाता है॥ ४३½ ॥

प्रणवयुक्त व्याहृतियोंके साथ आदिमें प्रणवसहित गायत्रीका और '**आपो हि ष्ठा०**' इस सूक्तका एक साथ उच्चारण करके मार्जन करना चाहिये॥ ४४½ ॥

दाहिने हाथको गायके कानके समान बनाकर उसमें जल भरे और उसे नासिकाके अग्रभागपर ले जाकर अपनी वामकुक्षिमें कृष्णवर्णवाले पुरुषरूप पापकी भावना करनी चाहिये और इसके बाद '**ऋतञ्च सत्यं०**'—इस ऋचाका पाठ करना चाहिये॥ ४५-४६ ॥

तत्पश्चात् '**द्रुपदा०**' इस ऋचाका पाठ करके नासिकाके दाहिने पुटसे श्वासमार्गद्वारा उस पापको दाहिने हाथके जलमें लाये और उस जलपर दृष्टिपात न करते हुए उसे अपने वामभागमें भूमिपर फेंक दे और यह भावना करे कि मेरा शरीर अब पापरहित हो गया है॥ ४७-४८ ॥

इसके बाद उठकर दोनों पैरोंको सीधा करके मिला ले। पुनः तर्जनी तथा अँगूठेको अलग रखते हुए अंजलिमें जल लेकर सूर्यकी ओर देखकर गायत्रीमन्त्रसे अभिमन्त्रित करके तीन बार सूर्यको जलांजलि अर्पित करे। हे मुनिश्रेष्ठ! सूर्यार्घ्य-अर्पणकी यही विधि है॥ ४९-५० ॥

तदनन्तर उस उपासकको आदित्य-मन्त्रसे सूर्यकी प्रदक्षिणा करनी चाहिये। मध्याह्नमें एक बार और प्रातः तथा सायंकालकी दोनों सन्ध्याओंमें तीन-तीन बार अर्घ्यदान देना चाहिये॥ ५१ ॥

द्विजको चाहिये कि प्रातःकाल कुछ झुककर, मध्याह्नमें दण्डकी भाँति स्थित होकर तथा सायंकालमें आसनपर बैठकर सूर्यको जल अर्पण करे॥ ५२ ॥

उदकं प्रक्षिपेद्यस्मात्तत्कारणमतः शृणु।
त्रिंशत्कोट्यो महावीरा मन्देहा नाम राक्षसाः॥ ५३

कृतघ्ना दारुणा घोराः सूर्यमिच्छन्ति खादितुम्।
ततो देवगणाः सर्वे ऋषयश्च तपोधनाः॥ ५४

उपासते महासन्ध्यां प्रक्षिपन्त्युदकाञ्जलिम्।
दह्यन्ते तेन दैत्यास्ते वज्रीभूतेन वारिणा॥ ५५

एतस्मात्कारणाद्विप्राः सन्ध्यां नित्यमुपासते।
महापुण्यस्य जननं सन्ध्योपासनमीरितम्॥ ५६

अर्घ्याङ्गभूतमन्त्रोऽयं प्रोच्यते शृणु नारद।
यदुच्चारणमात्रेण साङ्गं सन्ध्याफलं भवेत्॥ ५७

सोऽहमर्कोऽस्म्यहं ज्योतिरात्मा ज्योतिरहं शिवः।
आत्मज्योतिरहं शुक्लः सर्वज्योती रसोऽस्म्यहम्॥ ५८

आगच्छ वरदे देवि गायत्रि ब्रह्मरूपिणि।
जपानुष्ठानसिद्ध्यर्थं प्रविश्य हृदयं मम॥ ५९

उत्तिष्ठ देवि गन्तव्यं पुनरागमनाय च।
अर्घ्येषु देवि गन्तव्यं प्रविश्य हृदयं मम॥ ६०

ततः शुद्धः स्थले नैजमासनं स्थापयेद् बुधः।
तत्रारुह्य जपेत्पश्चाद् गायत्रीं वेदमातरम्॥ ६१

अत्रैव खेचरी मुद्रा प्राणायामोत्तरं मुने।
प्रातःसन्ध्याविधाने च कीर्तिता मुनिपुङ्गव॥ ६२

तन्नामार्थं प्रवक्ष्यामि सादरं शृणु नारद।
चित्तं चरति खे यस्माज्जिह्वा चरति खे गता॥ ६३

भ्रुवोरन्तर्गता दृष्टिर्मुद्रा भवति खेचरी।
न चासनं सिद्धसमं न कुम्भसदृशोऽनिलः॥ ६४

न खेचरीसमा मुद्रा सत्यं सत्यं च नारद।
घण्टावत्प्रणवोच्चाराद्वायुं निर्जित्य यत्नतः॥ ६५

हे नारद! सूर्यको जलका अर्पण क्यों किया जाता है, उसका कारण अब सुनिये। मन्देहा नामके महापराक्रमी तीस करोड़ राक्षस हैं। वे कृतघ्न, भयंकर तथा क्रूर राक्षस सूर्यको खा जाना चाहते हैं। ऐसी स्थितिमें सभी देवता तथा तपोधन ऋषिगण भगवती महासन्ध्याकी उपासना करते हैं और जलांजलि प्रदान करते हैं। इस प्रकार वज्रके समान हो जानेवाले उस जलसे वे दैत्य भस्म हो जाते हैं। इसी कारणसे विप्रगण नित्य सन्ध्याकी उपासना करते हैं। सन्ध्योपासन महापुण्यका जनक कहा गया है॥ ५३—५६॥

हे नारद! सुनिये, अब अर्घ्यका अंगरूप यह मन्त्र कहा जा रहा है, जिसके उच्चारणमात्रसे सांगोपांग सन्ध्याका फल प्राप्त होता है॥ ५७॥

वह सूर्य मैं ही हूँ, मैं ही आत्मज्योति हूँ, मैं ही शिव-सम्बन्धी ज्योति हूँ, आत्मज्योति भी मेरा ही रूप है, मैं सर्वशुक्ल ज्योति हूँ और मैं रसस्वरूप हूँ॥ ५८॥

हे वरदे! हे देवि! हे गायत्रि! हे ब्रह्मस्वरूपिणि! आप आइये और मेरे जप-अनुष्ठानकी सिद्धिहेतु मेरे हृदयमें प्रवेश कीजिये। हे देवि! उठिये और पुनः आगमनके लिये यहाँसे प्रस्थान कीजिये और हे देवि! इसी अर्घ्यके जलमें स्थित होइये तथा पुनः मेरे हृदयदेशमें विराजमान होइये॥ ५९-६०॥

तत्पश्चात् विद्वान् पुरुष पवित्र स्थानपर अपना आसन लगाये और उसपर बैठकर वेदमाता गायत्रीका जप करे॥ ६१॥

हे मुने! इसी समय प्राणायामके पश्चात् खेचरी मुद्रा करनी चाहिये। हे मुनिश्रेष्ठ! प्रातःकालीन सन्ध्याके विधानमें इस मुद्राको बताया गया है। हे नारद! अब मैं इसके नामका अर्थ बता रहा हूँ, आदरपूर्वक सुनिये। जिसके प्रभावसे चित्त आकाशमें विचरण करता है, जिह्वा भी आकाशमें जाकर संचरण करती है और दृष्टि दोनों भौंहोंके अन्तर्गत स्थिर रहती है, वही खेचरी मुद्रा होती है। हे नारद! सिद्धासनके समान कोई आसन नहीं है, कुम्भक वायुके समान कोई वायु नहीं है और खेचरी मुद्राके समान कोई मुद्रा नहीं है, यह ध्रुव सत्य है। घण्टा-ध्वनिके समान प्लुत स्वरसे प्रणवका उच्चारण करते हुए श्वासको यत्नपूर्वक

स्थिरासने स्थिरो भूत्वा निरहङ्कारनिर्ममः।
लक्षणं नारद मुने शृणु सिद्धासनस्य च॥ ६६

योनिस्थानकमङ्घ्रिमूलघटितं कृत्वा दृढं विन्यसे-
न्मेढ्रे पादमथैकमेव हृदयं कृत्वा समं विग्रहम्।
स्थाणुः संयमितेन्द्रियोऽचलदृशा पश्यन्भ्रुवोरन्तरं
तिष्ठत्येतदतीव योगिसुखदं सिद्धासनं प्रोच्यते॥ ६७

आयातु वरदा देवी अक्षरं ब्रह्मसम्मितम्।
गायत्री छन्दसां मातरिदं ब्रह्म जुषस्व मे॥ ६८

यदह्ना कुरुते पापं तदह्नात्प्रतिमुच्यते।
यद्रात्र्या कुरुते पापं तद्रात्र्यात्प्रतिमुच्यते॥ ६९

सर्ववर्णे महादेवि सन्ध्याविद्ये सरस्वति।
अजरे अमरे देवि सर्वदेवि नमोऽस्तु ते॥ ७०

तेजोऽसीत्यादिमन्त्रेण देवीमावाहयेत्ततः।
यत्कृतं त्वदनुष्ठानं तत्सर्वं पूर्णमस्तु मे॥ ७१

ततः शापविमोक्षाय विधानं सम्यगाचरेत्।
ब्रह्मशापस्ततो विश्वामित्रस्य च तथैव च॥ ७२

वसिष्ठशाप इत्येतत्त्रिविधं शापलक्षणम्।
ब्रह्मणः स्मरणेनैव ब्रह्मशापो निवर्तते॥ ७३

विश्वामित्रस्मरणतो विश्वामित्रस्य शापतः।
वसिष्ठस्मरणादेव तस्य शापो विनश्यति॥ ७४

हृत्पद्ममध्ये पुरुषं प्रमाणं
सत्यात्मकं सर्वजगत्स्वरूपम्।
ध्यायामि नित्यं परमात्मसंज्ञं
चिद्रूपमेकं वचसामगम्यम्॥ ७५

रोककर अहंकार तथा ममतासे रहित होकर स्थिर भावसे स्थिरासनपर बैठना चाहिये। हे नारद! हे मुने! अब आप सिद्धासनका लक्षण सुनिये। ६२-६६॥

सिद्धासनमें एक पैरका मूल लिंगके मूलस्थानपर करके दूसरे पैरका मूल अण्डकोशके नीचे दृढ़तापूर्वक टिकाना चाहिये। हृदय आदि तथा शरीरको सीधा रखते हुए स्थाणुके रूपमें तथा संयमित इन्द्रियोंवाला होकर दोनों भौंहोंके बीचमें अचल दृष्टिसे देखते हुए स्थिर रहना चाहिये। योगियोंके लिये अत्यन्त सुखदायक इस आसनको सिद्धासन कहा जाता है॥ ६७॥

[हे नारद! अब मैं देवीके आवाहन तथा नमस्कारका मन्त्र बताता हूँ]—हे छन्दोंकी माता! आप वर प्रदान करनेवाली भगवती गायत्री हैं। आप अक्षरब्रह्मरूप हैं। हे ब्रह्मस्वरूपिणि! आप यहाँ आइये और मुझपर प्रसन्न होइये। मनुष्य दिनमें जो पाप करता है, वह पाप सायंकालीन उपासनासे नष्ट हो जाता है और जो पाप रातमें करता है, वह प्रात:कालीन उपासनासे मिट जाता है। हे सर्ववर्णस्वरूपिणि! हे महादेवि! हे सन्ध्याविद्ये! हे सरस्वति! हे अजरे! हे अमरे! हे देवि! हे सर्वदेवि! आपको नमस्कार है॥ ६८—७०॥

तदनन्तर '**तेजोऽसीति०**' आदि मन्त्रसे देवीका आवाहन करना चाहिये। पुनः इस प्रकार क्षमा-प्रार्थना करे कि मैंने जो कुछ भी आपका अनुष्ठान किया है, मेरा वह सब कार्य पूर्ण हो॥ ७१॥

तत्पश्चात् शापसे मुक्त होनेके लिये सम्यक् प्रकारसे यत्न करना चाहिये। ब्रह्मशाप, विश्वामित्रशाप तथा वसिष्ठशाप—यह तीन प्रकारका शाप है। ब्रह्माका स्मरण करनेसे ही ब्रह्मशाप मिट जाता है। इसी प्रकार विश्वामित्रका स्मरण करनेसे विश्वामित्रके शापसे तथा वसिष्ठका स्मरण करनेसे वसिष्ठके शापसे निवृत्ति हो जाती है॥ ७२—७४॥

[हे नारद! परमात्माका इस प्रकार ध्यान करे]—मैं पुरुषाकार, सत्यात्मक, सम्पूर्ण जगत्के साक्षात् विग्रह, अद्वितीय, चिद्रूप, वाणीसे अगम्य, शाश्वत तथा परमात्मा संज्ञावाले परमेश्वरका अपने हृदयकमलमें नित्य ध्यान करता हूँ॥ ७५॥

अथ न्यासविधिं वक्ष्ये सन्ध्याया अङ्गसम्भवम्।
ॐकारं पूर्ववद्योज्यं ततो मन्त्रानुदीरयेत्॥ ७६

भूरित्युक्त्वा च पादाभ्यां नम इत्येव चोच्चरेत्।
भुवः पूर्वं तु जानुभ्यां स्वः कटिभ्यां नमो वदेत्॥ ७७

महर्नाभ्यै जनश्चैव हृदयाय ततस्तपः।
कण्ठाय च ततः सत्यं ललाटे परिकीर्तयेत्॥ ७८

अङ्गुष्ठाभ्यां तत्सवितुस्तर्जनीभ्यां वरेण्यकम्।
भर्गो देवस्य मध्याभ्यां धीमहीत्येव कीर्तयेत्॥ ७९
अनामाभ्यां कनिष्ठाभ्यां धियो यो नः पदं वदेत्।
प्रचोदयात्करपृष्ठतलयोर्विन्यसेत्सुधीः ॥ ८०

ब्रह्मात्मने तत्सवितुर्हृदयाय नमस्तथा।
विष्ण्वात्मने वरेण्यं च शिरसे नम इत्यपि॥ ८१

भर्गो देवस्य रुद्रात्मने शिखायै प्रकीर्तितम्।
शक्त्यात्मने धीमहीति कवचाय ततः परम्॥ ८२

कालात्मने धियो यो नो नेत्रत्रय उदीरितम्।
प्रचोदयाच्च सर्वात्मनेऽस्त्राय परिकीर्तितम्॥ ८३

अक्षरन्यासमेवाग्रे कथयामि महामुने।
गायत्रीवर्णसम्भूतन्यासः पापहरः परः॥ ८४

प्रणवं पूर्वमुच्चार्य वर्णन्यासः प्रकीर्तितः।
तत्कारमादावुच्चार्य पादाङ्गुष्ठद्वये न्यसेत्॥ ८५

सकारं गुल्फयोस्तद्वद्विकारं जङ्घयोर्न्यसेत्।
जान्वोस्तुकारं विन्यस्य ऊर्वोश्चैव वकारकम्॥ ८६

रेकारं च गुदे न्यस्य णिकारं लिङ्ग एव च।
कट्यां यकारमेवात्र भकारं नाभिमण्डले॥ ८७

गोकारं हृदये न्यस्य देकारं स्तनयोर्द्वयोः।
वकारं हृदि विन्यस्य स्यकारं कण्ठकूपके॥ ८८

हे नारद! अब मैं सन्ध्याके प्रधान अंगस्वरूप न्यासकी विधिका वर्णन करूँगा। सभी मन्त्रोंके पूर्व ॐकार लगाना चाहिये, इसके बाद उन मन्त्रोंका उच्चारण करना चाहिये॥ ७६॥

'**ॐ भूः पादाभ्यां नमः**' ऐसा बोलकर दोनों पैरोंका स्पर्श करना चाहिये। इसी प्रकार '**ॐ भुवः जानुभ्यां नमः**' बोलकर जानुका, '**ॐ स्वः कटिभ्यां नमः**' बोलकर कमरका, '**ॐ महः नाभ्यै नमः**' बोलकर नाभिका, '**ॐ जनः हृदयाय नमः**' बोलकर हृदयका, '**ॐ तपः कण्ठाय नमः**' बोलकर कण्ठका और '**ॐ सत्यं ललाटाय नमः**' बोलकर ललाटका स्पर्श करना चाहिये॥ ७७-७८॥

'**ॐ तत्सवितुः अङ्गुष्ठाभ्यां नमः**', '**ॐ वरेण्यं तर्जनीभ्यां नमः**', '**ॐ भर्गो देवस्य मध्यमाभ्यां नमः**', '**ॐ धीमहि अनामिकाभ्यां नमः**', '**ॐ धियो यो नः कनिष्ठाकाभ्यां नमः**', '**ॐ प्रचोदयात् करतल-करपृष्ठाभ्यां नमः**'—इस प्रकार उच्चारण करके बुद्धिमान् पुरुषको करन्यास करना चाहिये॥ ७९-८०॥

'**ॐ तत्सवितुर्ब्रह्मात्मने हृदयाय नमः**', '**ॐ वरेण्यं विष्ण्वात्मने शिरसे नमः**', '**ॐ भर्गो देवस्य रुद्रात्मने शिखायै नमः**', '**ॐ धीमहि शक्त्यात्मने कवचाय नमः**', '**ॐ धियो यो नः कालात्मने नेत्रत्रयाय नमः**', '**ॐ प्रचोदयात् सर्वात्मने अस्त्राय नमः**'—इस तरहसे उच्चारण करके हृदय आदि अंगोंमें न्यास करना चाहिये॥ ८१—८३॥

हे महामुने! अब इसके आगे मैं अक्षरन्यास बता रहा हूँ। गायत्रीके वर्णोंसे किया जानेवाला यह न्यास श्रेष्ठ तथा सभी पापोंका नाश करनेवाला है। पहले प्रणवका उच्चारण करके वर्णन्यास करनेकी विधि बतायी गयी है। आरम्भमें 'तत्'कारका उच्चारण करके पैरके दोनों अँगूठोंमें न्यास करना चाहिये। 'स'कारका उच्चारण करके दोनों गुल्फोंमें तथा 'वि'कारका उच्चारण करके दोनों जंघोंमें न्यास करना चाहिये। तत्पश्चात् 'तु'कारका उच्चारण करके दोनों जानुओंमें न्यास करके 'व'कारका दोनों उरुओंमें, 'रे'कारका गुदामें, 'णि'कारका लिंगमें, 'य'कारका कटिभागमें, 'भ'कारका नाभिमण्डलमें, 'गो'कारका

धीकारं मुखदेशे तु मकारं तालुदेशके।
हिकारं नासिकाग्रे तु धिकारं नेत्रमण्डले॥ ८९

भ्रूमध्ये चैव योकारं योकारं च ललाटके।
नकारं वै पूर्वमुखे प्रकारं दक्षिणे मुखे॥ ९०

चोकारं पश्चिममुखे दकारं चोत्तरे मुखे।
याकारं मूर्ध्नि विन्यस्य तकारं व्यापकं न्यसेत्॥ ९१

हृदयमें, 'दे'कारका दोनों स्तनोंमें, 'व'कारका हृदयमें, 'स्य'कारका कण्ठकूपमें, 'धी'कारका मुखमें, 'म'कारका तालुदेशमें, 'हि'कारका नासिकाके अग्रभागमें, 'धि'-कारका नेत्रमण्डलमें, 'यो'कारका भ्रूमध्यमें, 'यो'कारका ललाटमें, 'न'कारका मुखके पूर्व भागमें, 'प्र'कारका मुखके दक्षिण भागमें, 'चो'कारका मुखके पश्चिम भागमें, 'द'कारका मुखके उत्तर भागमें, 'या'कारका मस्तकमें तथा 'त'कारका सम्पूर्ण शरीरमें न्यास करना चाहिये॥ ८४—९१॥

एतन्न्यासविधिं केचिन्नेच्छन्ति जपतत्पराः।
ततो ध्यायेन्महादेवीं जगन्मातरमम्बिकाम्॥ ९२

भास्वज्जपाप्रसूनाभां कुमारीं परमेश्वरीम्।
रक्ताम्बुजासनारूढां रक्तगन्धानुलेपनाम्॥ ९३

रक्तमाल्याम्बरधरां चतुरास्यां चतुर्भुजाम्।
द्विनेत्रां स्रुक्स्रुवौ मालां कुण्डिकां चैव बिभ्रतीम्॥ ९४

सर्वाभरणसन्दीप्तामृग्वेदाध्यायिनीं पराम्।
हंसपत्रामाहवनीयमध्यस्थां ब्रह्मदेवताम्॥ ९५

चतुष्पदामष्टकुक्षिं सप्तशीर्षां महेश्वरीम्।
अग्निवक्त्रां रुद्रशिखां विष्णुचित्तां तु भावयेत्॥ ९६

ब्रह्मा तु कवचं यस्या गोत्रं सांख्यायनं स्मृतम्।
आदित्यमण्डलान्तःस्थां ध्यायेद्देवीं महेश्वरीम्॥ ९७

जपमें तत्पर रहनेवाले कुछ लोग न्यासकी इस विधिको अभीष्ट नहीं मानते हैं। न्यासके पश्चात् जगत्‌को उत्पन्न करनेवाली महाभगवती अम्बिकाका इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—इन परमेश्वरीका विग्रह तेजोमय जपाकुसुमकी आभाके तुल्य है, ये कुमारी हैं, ये रक्त-कमलके आसनपर अवस्थित हैं, इनका श्रीविग्रह रक्त-चन्दनसे अनुलिप्त है, ये रक्तवर्णकी माला तथा वस्त्र धारण किये हुई हैं, ये चार मुखों तथा चार भुजाओंवाली हैं, इनके प्रत्येक मुखमें दो-दो नेत्र हैं। इन्होंने अपने हाथोंमें स्रुक्, स्रुवा, जपमाला तथा कमण्डलु धारण कर रखा है, ये सभी प्रकारके आभूषणोंसे प्रकाशित हैं, ये परा भगवती ऋग्वेदका पारायण कर रही हैं, ये हंसके वाहनपर विराजमान हैं, ये आहवनीय अग्निके मध्य स्थित हैं, ये ब्रह्माजीकी उपास्य देवता हैं, चारों वेद (ऋक्, यजुः, साम, अथर्व) ही इनके चार पद हैं, आठ दिशा (पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊर्ध्व, अधः, अन्तरिक्ष तथा अवान्तर)-रूपी कुक्षियोंसे ये शोभायमान हैं, सात सिरों (व्याकरण, शिक्षा, कल्प, निरुक्त, ज्योतिष, इतिहास-पुराण तथा उपनिषद्)-से मण्डित हैं, ये अग्निरूप मुख; रुद्ररूप शिखा तथा विष्णुरूप चित्तवाली हैं—ऐसे स्वरूपवाली परमेश्वरी भगवतीकी भावना करनी चाहिये। ब्रह्मा जिनके कवच हैं तथा सांख्यायन जिनका गोत्र कहा गया है, आदित्यमण्डलमें विराजमान ऐसी भगवती महेश्वरीका ध्यान करना चाहिये॥ ९२—९७॥

एवं ध्यात्वा विधानेन गायत्रीं वेदमातरम्।
ततो मुद्राः प्रकुर्वीत देव्याः प्रीतिकराः शुभाः॥ ९८

इस प्रकार विधिपूर्वक वेदमाता गायत्रीका ध्यान करनेके अनन्तर भगवतीको प्रसन्न करनेवाली कल्याणकारी मुद्राएँ प्रदर्शित करनी चाहिये॥ ९८॥

सुमुखं सम्पुटं चैव विततं विस्तृतं तथा।
द्विमुखं त्रिमुखं चैव चतुष्कं पञ्चकं तथा॥ ९९
षण्मुखाधोमुखं चैव व्यापकाञ्जलिकं तथा।
शकटं यमपाशं च ग्रथितं सम्मुखोन्मुखम्॥ १००
विलम्बं मुष्टिकं चैव मत्स्यं कूर्मं वराहकम्।
सिंहाक्रान्तं महाक्रान्तं मुद्गरं पल्लवं तथा॥ १०१
चतुर्विंशतिमुद्राश्च गायत्र्याः सम्प्रदर्शयेत्।
शताक्षरां च गायत्रीं सकृदावर्तयेत्सुधीः॥ १०२
चतुर्विंशत्यक्षराणि गायत्र्याः कीर्तितानि हि।
जातवेदसनाम्नीं च ऋचमुच्चारयेत्ततः॥ १०३
त्र्यम्बकस्यर्चमावृत्य गायत्री शतवर्णका।
भवतीयं महापुण्या सकृज्जप्या बुधैरियम्॥ १०४
ॐकारं पूर्वमुच्चार्य भूर्भुवः स्वस्तथैव च।
चतुर्विंशत्यक्षरां च गायत्रीं प्रोच्चरेत्ततः॥ १०५
एवं नित्यं जपं कुर्याद् ब्राह्मणो विप्रपुङ्गवः।
स समग्रं फलं प्राप्य सन्ध्यायाः सुखमेधते॥ १०६

सुमुख, सम्पुट, वितत, विस्तृत, द्विमुख, त्रिमुख, चतुर्मुख, पंचमुख, षण्मुख, अधोमुख, व्यापकांजलि, शकट, यमपाश, ग्रथित, सम्मुखोन्मुख, विलम्ब, मुष्टिक, मत्स्य, कूर्म, वराह, सिंहाक्रान्त, महाक्रान्त, मुद्गर और पल्लव—इन चौबीस मुद्राओंको गायत्रीके समक्ष प्रदर्शित करना चाहिये। पुनः विद्वान् पुरुषको चाहिये कि सौ अक्षरोंवाली गायत्रीकी एक आवृत्ति करे॥ ९९—१०२॥

गायत्रीके चौबीस अक्षर तो बताये ही गये हैं। उसके बाद '**जातवेदस**' नामक ऋचाका तथा त्र्यम्बक ऋचा (**त्र्यम्बकं यजामहे०**)-की आवृत्ति करनेसे यह सौ अक्षरोंवाली गायत्री होती है*। विद्वानोंको एक बार इस महापुण्यदायिनी गायत्रीका जप करना चाहिये। तत्पश्चात् पहले ॐकारका उच्चारण करके '**भूर्भुवः स्वः**' के बाद चौबीस अक्षरोंवाली गायत्रीका जप करना चाहिये। इस प्रकार ब्राह्मणको नित्य जप करना चाहिये। ऐसा करनेसे वह विप्रश्रेष्ठ सन्ध्याका सम्पूर्ण फल प्राप्त करके सुखी हो जाता है॥ १०३—१०६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामेकादशस्कन्धे सन्ध्योपासननिरूपणं नाम षोडशोऽध्यायः॥ १६॥



अथ सप्तदशोऽध्यायः

गायत्री-महिमा

श्रीनारायण उवाच

भिन्नपादा तु गायत्री ब्रह्महत्याप्रणाशिनी।
अभिन्नपादा गायत्री ब्रह्महत्यां प्रयच्छति॥ १

अच्छिन्नपादागायत्रीजपं कुर्वन्ति ये द्विजाः।
अधोमुखाश्च तिष्ठन्ति कल्पकोटिशतानि च॥ २

सम्पुटैका षडोङ्कारा गायत्री विविधा मता।
धर्मशास्त्रपुराणेषु इतिहासेषु सुव्रत॥ ३

पञ्चप्रणवसंयुक्तां जपेदित्यनुशासनम्।
जपसंख्याष्टभागान्ते पादो जप्यस्तुरीयकः॥ ४

श्रीनारायण बोले—हे नारद! भिन्न पादवाली गायत्री ब्रह्महत्याका शमन करनेवाली है तथा अभिन्न पादवाली गायत्रीके जपसे ब्रह्महत्याका पाप लगता है। जो द्विज अभिन्न पादवाली गायत्रीका जप करते हैं, वे कई सौ करोड़ कल्पोंतक नीचे मुख करके लटके हुए रहते हैं॥ १-२॥

हे सुव्रत! धर्मशास्त्रों, पुराणों और इतिहासोंमें गायत्री विविध प्रकारकी मानी गयी है; यथा—प्रणवसे सम्पुटित तथा छः ॐकारसे संयुक्त। पाँच प्रणववाली गायत्रीका जप करना चाहिये, ऐसा भी शास्त्रोंका आदेश है। जितनी जप-संख्या करना अभीष्ट हो, उसके आठवें-आठवें भागके अन्तमें गायत्रीके चौथे पदका जप करना चाहिये। इस तरहसे जप करनेवाले

* **ॐभूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरण्येम्। भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्। ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्। ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो निदहाति वेदः। स नः पर्षदतिदुर्गाणि विश्वा नात्रैव सिन्धुं दुरितात्यग्निः**—यह सौ अक्षरकी गायत्री है। इसमें 'भूर्भुवः स्वः' तीन व्याहृतियाँ नहीं गिनी जाती हैं। ॐ (एक प्रणव)-से सम्पन्न है।

स द्विजः परमो ज्ञेयः परं सायुज्यमाप्नुयात्।
अन्यथा प्रजपेद्यस्तु स जपो विफलो भवेत्॥ ५

सम्पुटैका षडोङ्कारा भवेत्सा ऊर्ध्वरेतसाम्।
गृहस्थो ब्रह्मचारी वा मोक्षार्थी तुरीयां जपेत्॥ ६

तुरीयपादो गायत्र्याः परोरजसे सावदोम्।
ध्यानमस्य प्रवक्ष्यामि जपसाङ्गफलप्रदम्॥ ७

हृदि विकसितपद्मं सार्कसोमाग्निबिम्बं
प्रणवमयमचिन्त्यं यस्य पीठं प्रकल्प्यम्।
अचलपरमसूक्ष्मं ज्योतिराकाशसारं
भवतु मम मुदेऽसौ सच्चिदानन्दरूपः॥ ८

त्रिशूलयोनी सुरभिमक्षमालां च लिङ्गकम्।
अम्बुजं च महामुद्रामिति सप्त प्रदर्शयेत्॥ ९

या सन्ध्या सैव गायत्री सच्चिदानन्दरूपिणी।
भक्त्या तां ब्राह्मणो नित्यं पूजयेच्च नमेत्ततः॥ १०

ध्यातस्य पूजां कुर्वीत पञ्चभिश्चोपचारकैः।
लं पृथिव्यात्मने गन्धमर्पयामि नमो नमः॥ ११

हमाकाशात्मने पुष्पं चार्पयामि नमो नमः।
यं च वाय्वात्मने धूपं चार्पयामि ततो वदेत्॥ १२

रं च वह्न्यात्मने दीपमर्पयामि ततो वदेत्।
वममृतात्मने तस्मै नैवेद्यमपि चार्पयेत्॥ १३

यं रं लं वं हमिति च पुष्पाञ्जलिमथार्पयेत्।
एवं पूजां विधायाथ चान्ते मुद्राः प्रदर्शयेत्॥ १४

उस द्विजको परम ज्ञानी समझना चाहिये; वह द्विज परम सायुज्य प्राप्त कर लेता है। जो इसके विपरीत गायत्रीका जप करता है, वह जप व्यर्थ हो जाता है॥ ३—५॥

एक सम्पुटवाली तथा छः ॐकारवाली जो गायत्री है, वह केवल एकनिष्ठ ब्रह्मचारियोंके लिये है। गृहस्थ, ब्रह्मचारी अथवा मोक्षकी कामना करनेवालेको तुरीया गायत्रीका जप करना चाहिये। गायत्रीका तुरीय पाद '**परोरजसे सावदोम्**' यही है। हे नारद! अब मैं इसके ध्यानके विषयमें बता रहा हूँ, जो जपके सांगोपांग फलको देनेवाला है॥ ६-७॥

हृदयदेशमें सूर्य-चन्द्र तथा अग्निमण्डलसे युक्त, प्रणवमय तथा अचिन्त्य विकसित कमल ही जिनका आसन है—वे ब्रह्म अचल, परम सूक्ष्म, ज्योतिस्वरूप तथा आकाशके साररूप हैं। वे सच्चिदानन्दस्वरूप परमेश्वर मेरी प्रसन्नताके हेतु बनें॥ ८॥

त्रिशूल, योनि, सुरभि, अक्षमाला, लिंग, अम्बुज तथा महामुद्रा—ये सात मुद्राएँ गायत्रीको प्रदर्शित करनी चाहिये॥ ९॥

जो सन्ध्या हैं, वे ही सच्चिदानन्दस्वरूपिणी गायत्री हैं। ब्राह्मणको उन गायत्रीका नित्य पूजन तथा नमन करना चाहिये॥ १०॥

ध्यान किये गये देवताकी पाँच उपचारोंसे [मानसिक] पूजा करनी चाहिये। '**लं**' पृथ्वीस्वरूपिणी देवीको गन्ध अर्पित करता हूँ, उन्हें बार-बार नमस्कार है। '**हं**' आकाशस्वरूपिणी देवीको पुष्प अर्पित करता हूँ, उन्हें बार-बार नमस्कार है। तत्पश्चात् '**यं**' वायुस्वरूपिणी देवीको धूप अर्पित करता हूँ—ऐसा कहना चाहिये। तदनन्तर '**रं**' अग्निस्वरूपिणी देवीको दीपक अर्पित करता हूँ—ऐसा बोलना चाहिये। पुनः '**वं**' अमृतस्वरूपिणी देवीको नैवेद्य भी (उसी प्रकार) अर्पित करना चाहिये॥ ११—१३॥

अन्तमें यं, रं, लं, वं, हं—ऐसा उच्चारण करके पुष्पांजलि अर्पित करनी चाहिये। इस प्रकार मानसिक पूजन करनेके उपरान्त मुद्राएँ दिखानी चाहिये॥ १४॥

ध्यायेत्तु मनसा देवीं मन्त्रमुच्चारयेच्छनैः।
न कम्पयेच्छिरो ग्रीवां दन्तान्नैव प्रकाशयेत्॥ १५

विधिनाष्टोत्तरशतमष्टाविंशतिरेव वा।
दशवारमशक्तो वा नातो न्यूनं कदाचन॥ १६

तत उद्वासयेद्देवीमुत्तमेत्यनुवाकतः।
न गायत्रीं जपेद्विद्वाञ्जलमध्ये कथञ्चन॥ १७

यतः साग्निमुखी प्रोक्तेत्याहुः केचिन्महर्षयः।
सुरभिर्ज्ञानशूर्पं च कूर्मो योनिश्च पङ्कजम्॥ १८

लिङ्गं निर्वाणकं चैव जपान्तेऽष्टौ प्रदर्शयेत्।
यदक्षरपदभ्रष्टं स्वरव्यञ्जनवर्जितम्॥ १९

तत्सर्वं क्षम्यतां देवि कश्यपप्रियवादिनि।
गायत्रीतर्पणं चातः करणीयं महामुने॥ २०

गायत्री छन्द आख्यातं विश्वामित्रऋषिः स्मृतः।
सविता देवता प्रोक्ता विनियोगश्च तर्पणे॥ २१

भूरित्युक्त्वा च ऋग्वेदपुरुषं तर्पयामि च।
भुव इत्येतदुक्त्वा च यजुर्वेदमथो वदेत्॥ २२

स्वर्व्याहृतिं समुक्त्वा च सामवेदं समुच्चरेत्।
मह इत्येतदुक्त्वान्तेऽथर्ववेदं च तर्पयेत्॥ २३

जनः पदान्त इतिहासपुराणमितीरयेत्।
तपः सर्वागमं चैव पुरुषं तर्पयामि च॥ २४

सत्यं च सत्यलोकाख्यपुरुषं तर्पयामि च।
ॐ भूर्भूर्लोकपुरुषं तर्पयामि ततो वदेत्॥ २५

भुवश्चेति भुवर्लोकपुरुषं तर्पयामि च।
स्वः स्वर्गलोकपुरुषं तर्पयामि ततः परम्॥ २६

मनसे देवीका ध्यान करना चाहिये और मन्त्रका उच्चारण धीरे-धीरे करना चाहिये। इस समय सिर तथा गर्दन नहीं हिलाना चाहिये और दाँत नहीं दिखाने चाहिये॥ १५॥

एक सौ आठ बार या अट्ठाईस बार अथवा अशक्त होनेकी स्थितिमें दस बार ही विधिपूर्वक गायत्रीका जप करना चाहिये, किंतु इससे कम जप कभी नहीं करना चाहिये॥ १६॥

इसके बाद '**उत्तम०**' इत्यादि अनुवाक् मन्त्र उच्चारण करके देवीका विसर्जन करना चाहिये। विद्वान् व्यक्तिको चाहिये कि जलमें स्थित रहकर गायत्रीमन्त्रका जप कभी भी न करे; क्योंकि वे अग्निमुखी कही गयी हैं—ऐसा कुछ महर्षियोंने कहा है। जपके अनन्तर सुरभि, ज्ञान, शूर्प, कूर्म, योनि, पंकज, लिंग और निर्वाण—ये आठ मुद्राएँ प्रदर्शित करनी चाहिये। इसके बाद इस प्रकार क्षमा-प्रार्थना करे—कश्यपके प्रति प्रिय सम्भाषण करनेवाली हे देवि! मेरे उच्चारणमें अक्षरों तथा पदोंका जो विचलन हुआ हो और स्वर तथा व्यंजनसम्बन्धी जो दोष रहा हो; उन सबको आप क्षमा कीजिये। हे महामुने! इसके बाद गायत्री-तर्पण करना चाहिये॥ १७—२०॥

'गायत्री' इसका छन्द कहा गया है, 'विश्वामित्र' इसके ऋषि कहे गये हैं और 'सविता' इसके देवता कहे गये हैं। तर्पणक्रियामें इसका विनियोग किया जाता है। '**भूः**' ऐसा बोलकर ऋग्वेद-पुरुषका तर्पण करता हूँ और '**भुवः**' ऐसा उच्चारण करके यजुर्वेदका तर्पण करता हूँ—ऐसा कहे। '**स्वः**' व्याहृतिका उच्चारण करके सामवेदका तर्पण करता हूँ—ऐसा कहे और '**महः**' ऐसा बोलकर अथर्ववेदका तर्पण करे। पुनः '**जनः**' पदके साथ इतिहास-पुराणका तर्पण करता हूँ—ऐसा कहे। '**तपः**' से सम्पूर्ण आगमस्वरूप पुरुषका और '**सत्यं**' से सत्यलोकाख्य पुरुषका तर्पण करता हूँ—ऐसा बोलना चाहिये। तदनन्तर '**ॐ भूः**' से भूर्लोकपुरुषका तर्पण करता हूँ, '**भुवः**' से भुवर्लोकपुरुषका तर्पण करता हूँ तथा '**स्वः**' से स्वर्गलोकपुरुषका तर्पण करता हूँ—ऐसा कहना चाहिये। इसके बाद '**ॐ भूः**' से एकपदा नामवाली गायत्रीका

ॐभूरेकपदां नाम गायत्रीं तर्पयामि च।
भुवो द्विपदां गायत्रीं तर्पयामीति कीर्तयेत्॥ २७
स्वश्च त्रिपदां गायत्रीं तर्पयामि ततो वदेत्।
ॐभूर्भुवः स्वश्चेति तथा गायत्रीं च चतुष्पदाम्॥ २८
उषसीं चैव गायत्रीं सावित्रीं च सरस्वतीम्।
वेदानां मातरं पृथ्वीमजां चैव तु कौशिकीम्॥ २९
साङ्कृतिं वै सार्वजितिं गायत्रीं तर्पणे वदेत्।
तर्पणान्ते च शान्त्यर्थं जातवेदसमीरयेत्॥ ३०
मानस्तोकेति मन्त्रं च शान्त्यर्थं प्रजपेत्सुधीः।
ततोऽपि त्र्यम्बको मन्त्रः शान्त्यर्थः परिकीर्तितः॥ ३१
तच्छंयोरिति मन्त्रं च जपेच्छान्त्यर्थमेव तु।
अतो देवा इति द्वाभ्यां सर्वाङ्गस्पर्शनं चरेत्॥ ३२
स्योनापृथिविमन्त्रेण भूम्यै कुर्यात्प्रणामकम्।
यथाविधि च गोत्रादीनुच्चरेद् द्विजसत्तमः॥ ३३
एवं विधानं सन्ध्यायाः प्रातःकाले प्रकीर्तितम्।
सन्ध्याकर्म समाप्यान्तेऽप्यग्निहोत्रं स्वयं हुनेत्॥ ३४
पञ्चायतनपूजां च ततः कुर्यात्समाहितः।
शिवां शिवं गणपतिं सूर्यं विष्णुं तथार्चयेत्॥ ३५
पौरुषेण तु सूक्तेन व्याहृत्या वा समाहितः।
मूलमन्त्रेण वा कुर्याद् ह्रीश्च ते इति मन्त्रतः॥ ३६
भवानीं तु यजेन्मध्ये तथेशान्यां तु माधवम्।
आग्नेय्यां गिरिजानाथं गणेशं रक्षसां दिशि॥ ३७
वायव्यामर्चयेत्सूर्यमिति देवस्थितिक्रमः।
षोडशानुपचारांश्च षोडशर्ग्भिर्हरेन्नरः॥ ३८
देवीमभ्यर्च्य पुरतो यजेदन्याननुक्रमात्।
न देवीपूजनात्पुण्यमधिकं क्वचिदीक्ष्यते॥ ३९

तर्पण कर रहा हूँ और '**भुवः**' से द्विपदा गायत्रीका तर्पण कर रहा हूँ—ऐसा बोलना चाहिये। '**स्वः**' से त्रिपदा गायत्रीका तर्पण कर रहा हूँ और '**ॐ भूर्भुवः स्वः**' से चतुष्पदा गायत्रीका तर्पण कर रहा हूँ—इस प्रकार बोलना चाहिये॥ २१—२८॥

तदनन्तर उषसी, गायत्री, सावित्री, सरस्वती, वेदमाता, पृथ्वी, अजा, कौशिकी, सांकृति और सार्वजिति—इन नामोंको उच्चारित करके गायत्रीदेवीका तर्पण करना चाहिये। तर्पणके अन्तमें शान्तिके लिये '**जातवेदसम्०**'—इस ऋचाका पाठ करना चाहिये। इसी प्रकार विद्वान् पुरुषको चाहिये कि शान्तिके लिये '**मानस्तोके०**'—इस मन्त्रका भी पाठ करे। तत्पश्चात् शान्तिके लिये '**त्र्यम्बकम्**'—इस मन्त्रका भी पाठ करना बताया गया है। शान्तिहेतु '**तच्छंयो०**' इस मन्त्रका भी जप करना चाहिये। इसके बाद '**देवा गातु०**' इस मन्त्रके द्वारा अपने दोनों हाथोंसे सम्पूर्ण अंगोंका स्पर्श करना चाहिये और '**स्योना पृथिवी०**' मन्त्रके द्वारा पृथ्वीको प्रणाम करना चाहिये। प्रणाम करते समय द्विजश्रेष्ठको विधिके अनुसार अपने गोत्र आदिका उच्चारण कर लेना चाहिये। प्रातःकालीन सन्ध्या-सम्बन्धी इस प्रकारका विधान कहा गया है। सन्ध्याकर्म समाप्त करनेके उपरान्त स्वयं अग्निहोत्र भी करना चाहिये॥ २९—३४॥

तत्पश्चात् एकाग्रचित्त हो पंचायतनपूजा करनी चाहिये; इसमें शिवा, शिव, गणेश, सूर्य तथा विष्णुकी अर्चना करनी चाहिये। पुरुषसूक्त, व्याहृति, मूल मन्त्र अथवा '**ह्रीश्च ते०**' इस मन्त्रसे समाहितचित्त होकर पूजन करना चाहिये॥ ३५-३६॥

देवीकी पंचायतनपूजामें मण्डलके मध्यमें भवानीका पूजन करना चाहिये। मण्डलके ईशानकोणमें माधव, अग्निकोणमें पार्वतीपति शंकर, नैर्ऋत्य-कोणमें गणेश और वायव्यकोणमें सूर्यका अर्चन करना चाहिये। देवी-पंचायतनमें देवताओंकी स्थापनाका यही क्रम है। मनुष्य सोलह ऋचाओंका पाठ करके सोलह प्रकारके पूजनोपचार अर्पित करे॥ ३७-३८॥

सर्वप्रथम देवीकी पूजा करके ही क्रमशः अन्य देवताओंकी पूजा करनी चाहिये। देवीके पूजनसे बढ़कर अधिक पुण्यप्रद कुछ भी दिखायी नहीं पड़ता॥ ३९॥

अत एव तु सन्ध्यासु सन्ध्योपास्तिः श्रुतीरिता।
नाक्षतैरर्चयेद्विष्णुं न तुलस्या गणेश्वरम्॥ ४०
दूर्वाभिर्नार्चयेद्दुर्गां केतकैर्न महेश्वरम्।
मल्लिकाजातिकुसुमं कुटजं पनसं तथा॥ ४१
किंशुकं बकुलं कुन्दं लोध्रं तु करवीरकम्।
शिंशपाऽपराजितापुष्पं बन्धूकागस्त्यपुष्पके॥ ४२
मदन्तं सिन्दुवारं च पालाशकुसुमं तथा।
दूर्वाङ्कुरं बिल्वदलं कुशमञ्जरिकां तथा॥ ४३
शल्लकीमाधवीपुष्पमर्कमन्दारपुष्पकम्।
केतकीं कर्णिकारं च कदम्बकुसुमं तथा॥ ४४
पुन्नागश्चम्पकस्तद्वद्यूथिकातगरौ तथा।
एवमादीनि पुष्पाणि देवीप्रियकराणि च॥ ४५
गुग्गुलस्य भवेद्धूपो दीपः स्यात्तिलतैलतः।
कृत्वेत्थं देवतापूजां ततो मूलमनुं जपेत्॥ ४६
एवं पूजां समाप्यैव वेदाभ्यासं चरेद् बुधः।
ततः स्ववृत्त्या कुर्वीत पोष्यवर्गार्थसाधनम्।
तृतीयदिनभागे तु नियमेन विचक्षणः॥ ४७

इसीलिये सन्ध्याकालोंमें सन्ध्या (गायत्री)-की उपासना श्रुतियोंमें कही गयी है। अक्षतसे भगवान् विष्णुकी, तुलसीसे गणेशकी, दूर्वासे दुर्गाकी तथा केतकी-पुष्पसे शंकरकी पूजा नहीं करनी चाहिये। मल्लिका, जातिपुष्प, कुटज, पनस, किंशुक, बकुल, कुन्द, लोध्र, करवीर, शिंशपा, अपराजिता, बन्धूक, अगस्त्य, मदंत, सिन्दुवार, पलाश-पुष्प, दूर्वांकुर, बिल्वदल, कुश-मंजरी, शल्लकी, माधवी, अर्क, मन्दार, केतकी, कर्णिकार, कदम्ब, नागकेसर, चम्पा, जूही और तगर आदि—ये पुष्प देवीको प्रसन्नता प्रदान करनेवाले हैं॥ ४०—४५॥

भवानीके लिये गुग्गुलका धूप तथा तिलके तेलका दीपक अर्पित करना चाहिये। इस प्रकार देवताओंका पूजन करके मूल मन्त्रका जप करना चाहिये। इस रीतिसे पूजा समाप्त करनेके अनन्तर ही विद्वान् व्यक्तिको वेदाभ्यासमें प्रवृत्त होना चाहिये। इसके बाद बुद्धिमान् पुरुषको दिनके तीसरे भागमें नियमपूर्वक अपनी वृत्तिके अनुसार अपने आश्रितवर्गके भरण-पोषणहेतु प्रयत्न करना चाहिये॥ ४६-४७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामेकादशस्कन्धे सन्ध्यादिकृत्यवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥



अथाष्टादशोऽध्यायः

भगवतीकी पूजा-विधिका वर्णन, अन्नपूर्णादेवीके माहात्म्यमें राजा बृहद्रथका आख्यान

नारद उवाच

पूजाविशेषं श्रीदेव्याः श्रोतुमिच्छामि मानद।
येनाश्रितेन मनुजः कृतकृत्यत्वमावहेत्॥ १

नारदजी बोले—हे मानद! अब मैं श्रीदेवीकी विशेष पूजाका विधान सुनना चाहता हूँ, जिसके करनेसे मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है॥ १॥

श्रीनारायण उवाच

देवर्षे शृणु वक्ष्यामि श्रीमातुः पूजनक्रमम्।
भुक्तिमुक्तिप्रदं साक्षात्समस्तापन्निवारणम्॥ २

श्रीनारायण बोले—हे देवर्षे! समस्त आपदाओंको दूर करनेवाले तथा साक्षात् भुक्ति-मुक्ति प्रदान करनेवाले श्रीमाताके पूजनका क्रम मैं बता रहा हूँ; आप इसे सुनिये॥ २॥

आचम्य मौनी सङ्कल्प्य भूतशुद्ध्यादिकं चरेत्।
मातृकान्यासपूर्वं तु षडङ्गन्यासमाचरेत्॥ ३

वाक्संयमीको सर्वप्रथम आचमन करके संकल्प करनेके बाद भूतशुद्धि आदि करनी चाहिये। पुनः पहले मातृकान्यास करके षडंगन्यास करना चाहिये॥ ३॥

शङ्खस्य स्थापनं कृत्वा सामान्यार्घ्यं विधाय च।
पूजाद्रव्याणि चास्त्रेण प्रोक्षयेन्मतिमान्नरः॥ ४

तत्पश्चात् बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि शंखकी स्थापना करके कलश-स्थापन करनेके अनन्तर अस्त्र-मन्त्रसे समस्त पूजाद्रव्योंका प्रोक्षण करे। इसके बाद

गुरोरनुज्ञामादाय ततः पूजां समारभेत्।
पीठपूजां पुरा कृत्वा देवीं ध्यायेत्ततः परम्॥ ५

आसनाद्युपचारैश्च भक्तिप्रेमयुतः सदा।
स्नापयेत्परदेवीं तां पञ्चामृतरसादिभिः॥ ६

पौण्ड्रेक्षुरसपूर्णैस्तु कलशैः शतसंख्यकैः।
स्नापयेद्यो महेशानीं न स भूयोऽभिजायते॥ ७

यश्च चूतरसैरेवं स्नापयेज्जगदम्बिकाम्।
वेदपारायणं कृत्वा रसेनेक्षूद्भवेन वा॥ ८

तद्गेहं न त्यजेन्नित्यं रमा चैव सरस्वती।
यस्तु द्राक्षारसेनैव वेदपारायणं चरन्॥ ९

अभिषिञ्चेन्महेशानीं सकुटुम्बो नरोत्तमः।
रसरेणुप्रमाणं च देवीलोके महीयते॥ १०

कर्पूरागुरुकाश्मीरकस्तूरीपङ्कपङ्किलैः।
सलिलैः स्नापयेद्देवीं वेदपारायणं चरन्॥ ११

भस्मीभवन्ति पापानि शतजन्मार्जितानि च।
यो दुग्धकलशैर्देवीं स्नापयेद्वेदपाठतः॥ १२

आकल्पं स वसेन्नित्यं तस्मिन् वै क्षीरसागरे।
यस्तु दध्नाभिषिञ्चेत्तां दधिकुल्यापतिर्भवेत्॥ १३

मधुना च घृतेनैव तथा शर्करयापि च।
स्नापयेन्मधुकुल्यादिनदीनां स पतिर्भवेत्॥ १४

सहस्रकलशैर्देवीं स्नापयन्भक्तितत्परः।
इह लोके सुखी भूत्वाप्यन्यलोके सुखी भवेत्॥ १५

क्षौमं वस्त्रद्वयं दत्त्वा वायुलोकं स गच्छति।
रत्ननिर्मितभूषाणां दाता निधिपतिर्भवेत्॥ १६

काश्मीरचन्दनं दत्त्वा कस्तूरीबिन्दुभूषितम्।
तथा सीमन्तसिन्दूरं चरणेऽलक्तपत्रकम्॥ १७

इन्द्रासने समारूढो भवेद्देवपतिः परः।

गुरुसे आदेश प्राप्त करके पूजा आरम्भ करनी चाहिये। पहले पीठ-पूजन करके बादमें देवीका ध्यान करना चाहिये॥ ४-५॥

भगवतीको भक्ति तथा प्रेमसे युक्त होकर आसन आदि उपचार अर्पण करनेके पश्चात् पंचामृत तथा रस आदिसे उन्हें स्नान कराना चाहिये। जो मनुष्य पौण्ड्र नामक गन्नेके रससे भरे हुए सौ कलशोंद्वारा भगवती महेश्वरीको स्नान कराता है, वह पुनः जन्म ग्रहण नहीं करता॥ ६-७॥

इसी प्रकार जो पुरुष वेदका पारायण करके आमके रससे तथा ईखके रससे जगदम्बिकाको स्नान कराता है, लक्ष्मी तथा सरस्वती उसके घरका त्याग कभी नहीं करतीं। जो श्रेष्ठ मानव वेदपारायण करते हुए द्राक्षारससे भगवती महेश्वरीका अभिषेक करता है, वह अपने कुटुम्ब-सहित उस रसमें विद्यमान रेणुओंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक देवीलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ ८—१०॥

वेद-पारायण करते हुए जो पुरुष कर्पूर, अगुरु, केसर, कस्तूरी और कमलके जलसे भगवतीको स्नान कराता है; उसके सैकड़ों जन्मोंके अर्जित पाप भस्म हो जाते हैं। जो पुरुष वेदमन्त्रोंका पाठ करते हुए दुग्धसे पूर्ण कलशोंसे देवीको स्नान कराता है, वह क्षीरसागरमें कल्पपर्यन्त निरन्तर वास करता है। जो उन भगवतीको दधिसे स्नापित करता है, वह दधिकुल्या नदीका स्वामी होता है॥ ११—१३॥

इसी प्रकार जो मनुष्य मधुसे, घृतसे तथा शर्करासे भगवतीको स्नान कराता है, वह मधुकुल्या आदि नदियोंका अधिपति होता है॥ १४॥

भक्तिमें तत्पर होकर हजार कलशोंसे देवीको स्नान करानेवाला मनुष्य इस लोकमें सुखी होकर परलोकमें भी सुखी होता है॥ १५॥

भगवतीको एक जोड़ा रेशमी वस्त्र प्रदान करके वह पुरुष वायुलोकमें जाता है। इसी प्रकार रत्नोंसे निर्मित आभूषण प्रदान करनेवाला निधिपति हो जाता है॥ १६॥

देवीको कस्तूरीकी बिन्दीसे सुशोभित केसरका चन्दन, ललाटपर सिन्दूर तथा उनके चरणोंमें महावर अर्पित करनेसे वह व्यक्ति इन्द्रासनपर विराजमान होकर दूसरे देवेन्द्रके रूपमें सुशोभित होता है॥ १७½॥

पुष्पाणि विविधान्याहुः पूजाकर्मणि साधवः॥ १८

तानि दत्त्वा यथालाभं कैलासं लभते स्वयम्।
बिल्वपत्राण्यमोघानि यो दद्यात्परशक्तये॥ १९

तस्य दुःखं कदाचिच्च क्वचिच्च न भविष्यति।
बिल्वपत्रत्रये रक्तचन्दनेन तु संल्लिखेत्॥ २०

मायाबीजत्रयं यत्नात्सुस्फुटं चातिसुन्दरम्।
मायाबीजादिकं नाम चतुर्थ्यन्तं समुच्चरेत्॥ २१

नमोऽन्तं परया भक्त्या देवीचरणपङ्कजे।
समर्पयेन्महादेव्यै कोमलं तच्च पत्रकम्॥ २२

य एवं कुरुते भक्त्या मनुत्वं लभते हि सः।
यस्तु कोटिदलैरेवं कोमलैरतिनिर्मलैः॥ २३

पूजयेद्भुवनेशानीं ब्रह्माण्डाधिपतिर्भवेत्।
कुन्दपुष्पैर्नवीनैस्तु लुलितैरष्टगन्धतः॥ २४

कोटिसङ्ख्यैः पूजयेत्तु प्राजापत्यं लभेद् ध्रुवम्।
मल्लिकामालतीपुष्पैरष्टगन्धेन लोलितैः॥ २५

कोटिसङ्ख्यैः पूजया तु जायते स चतुर्मुखः।
दशकोटिभिरप्येवं तैरेव कुसुमैर्मुने॥ २६

विष्णुत्वं लभते मर्त्यो यत्सुरेष्वपि दुर्लभम्।
विष्णुनैतद् व्रतं पूर्वं कृतं स्वपदलब्धये॥ २७

शतकोटिभिरप्येवं सूत्रात्मत्वं व्रजेद् ध्रुवम्।
व्रतमेतत्पुरा सम्यक्कृतं भक्त्या प्रयत्नतः॥ २८

तेन व्रतप्रभावेण हिरण्योदरतां व्रजेत्।
जपाकुसुमपुष्पस्य बन्धूककुसुमस्य च॥ २९

साधुपुरुषोंने पूजाकर्ममें प्रयुक्त होनेवाले अनेक प्रकारके पुष्पोंका वर्णन किया है; यथोपलब्ध उन पुष्पोंको देवीको अर्पण करके मनुष्य स्वयं कैलासधाम प्राप्त कर लेता है॥ १८½ ॥

जो मनुष्य पराशक्ति जगदम्बाको अमोघ बिल्वपत्र अर्पित करता है, उसे कभी किसी भी परिस्थितिमें दुःख नहीं होता है॥ १९½ ॥

तीन पत्तेवाले बिल्वदलपर लाल चन्दनसे यत्नपूर्वक अत्यन्त स्पष्ट एवं सुन्दर अक्षरोंमें मायाबीज (ह्रीं) तीन बार लिखे। मायाबीज जिसके आदिमें हो, भुवनेश्वरी इस नामके साथ चतुर्थी विभक्तिका उच्चारण करके उसके अन्तमें '**नमः**' जोड़कर (**ॐ ह्रीं भुवनेश्वर्यै नमः**) इस मन्त्रसे महादेवी भगवतीके चरणकमलमें परम भक्तिपूर्वक वह कोमल बिल्वपत्र समर्पित करे। जो इस प्रकार भक्तिपूर्वक करता है, वह मनुत्व प्राप्त कर लेता है और जो अत्यन्त कोमल तथा निर्मल एक करोड़ बिल्वपत्रोंसे भुवनेश्वरीकी पूजा करता है, वह सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका अधिपति होता है॥ २०—२३½ ॥

अष्टगन्धसे चर्चित एक करोड़ नवीन तथा सुन्दर कुन्द-पुष्पोंसे जो उनकी पूजा करता है, वह निश्चितरूपसे प्रजापतिका पद प्राप्त करता है। इसी प्रकार अष्टगन्धसे चर्चित एक करोड़ मल्लिका तथा मालतीके पुष्पोंसे भगवतीकी पूजाके द्वारा वह चतुर्मुख ब्रह्मा हो जाता है॥ २४-२५½ ॥

हे मुने! इसी तरह दस करोड़ उन्हीं पुष्पोंसे भगवतीका अर्चन करके मनुष्य विष्णुत्व प्राप्त कर लेता है, जो देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। अपना विष्णुपद प्राप्त करनेके लिये भगवान् विष्णुने भी पूर्वकालमें यह व्रत किया था। सौ करोड़ पुष्पोंसे देवीकी पूजा करनेवाला मनुष्य सूत्रात्मत्व (सूक्ष्म ब्रह्मपद) अवश्य ही प्राप्त कर लेता है। भगवान् विष्णुने भी पूर्व कालमें प्रयत्नपूर्वक भक्तिके साथ सम्यक् प्रकारसे इस व्रतको अनुष्ठित किया था; उसी व्रतके प्रभावसे वे हिरण्यगर्भ हुए॥ २६—२८½ ॥

जपाकुसुम, बन्धूक और दाडिमका पुष्प भी देवीको अर्पित किया जाता है—ऐसी विधि कही गयी

दाडिमीकुसुमस्यापि विधिरेष उदीरितः।
एवमन्यानि पुष्पाणि श्रीदेव्यै विधिनार्पयेत्॥ ३०

तस्य पुण्यफलस्यान्तं न जानातीश्वरोऽपि सः।
तत्तदृतूद्भवैः पुष्पैर्नामसाहस्रसंख्यया॥ ३१

समर्पयेन्महादेव्यै प्रतिवर्षमतन्द्रितः।
य एवं कुरुते भक्त्या महापातकसंयुतः॥ ३२

उपपातकयुक्तोऽपि मुच्यते सर्वपातकैः।
देहान्ते श्रीपदाम्भोजं दुर्लभं देवसत्तमैः॥ ३३

प्राप्नोति साधकवरो मुने नास्त्यत्र संशयः।
कृष्णागुरुं सकर्पूरं चन्दनेन समन्वितम्॥ ३४

सिल्हकं चाज्यसंयुक्तं गुग्गुलेन समन्वितम्।
धूपं दद्यान्महादेव्यै येन स्याद्धूपितं गृहम्॥ ३५

तेन प्रसन्ना देवेशी ददाति भुवनत्रयम्।
दीपं कर्पूरखण्डैश्च दद्याद्देव्यै निरन्तरम्॥ ३६

सूर्यलोकमवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा।
शतदीपांस्तथा दद्यात्सहस्रान्वा समाहितः॥ ३७

नैवेद्यं पुरतो देव्याः स्थापयेत्पर्वताकृतिम्।
लेह्यैश्चोष्यैस्तथा पेयैः षड्रसैस्तु समाहितैः॥ ३८

नानाफलानि दिव्यानि स्वादूनि रसवन्ति च।
स्वर्णपात्रस्थितान्नानि दद्याद्देव्यै निरन्तरम्॥ ३९

तृप्तायां श्रीमहादेव्यां भवेत्तृप्तं जगत्त्रयम्।
यतस्तदात्मकं सर्वं रज्जौ सर्पो यथा तथा॥ ४०

ततः पानीयकं दद्याच्छुभं गङ्गाजलं महत्।
कर्पूरवालासंयुक्तं शीतलं कलशस्थितम्॥ ४१

है। इसी प्रकार अन्य पुष्प भी श्रीदेवीको विधिपूर्वक अर्पित करने चाहिये। उसके पुण्यफलकी सीमा वे ईश्वर भी नहीं जानते॥ २९-३०½ ॥

जिस-जिस ऋतुमें जो-जो पुष्प उपलब्ध हो सकें, सहस्रनामकी संख्याके अनुसार उन पुष्पोंको प्रमादरहित होकर प्रत्येक वर्ष भगवतीको समर्पित करना चाहिये। जो भक्तिपूर्वक ऐसा करता है, वह महापातकों तथा उपपातकोंसे युक्त होनेपर भी सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ३१-३२½ ॥

हे मुने! ऐसा श्रेष्ठ साधक देहावसानके पश्चात् श्रेष्ठ देवताओंके लिये भी दुर्लभ श्रीदेवीके चरणकमलको प्राप्त कर लेता है; इसमें कोई सन्देह नहीं है॥ ३३½ ॥

कृष्ण अगुरु, कर्पूर, चन्दन, सिल्हक (लोहबान), घृत और गुग्गुलसे संयुक्त धूप महादेवीको समर्पित करना चाहिये, जिससे मन्दिर धूपित हो जाय; इससे प्रसन्न होकर देवेश्वरी तीनों लोक प्रदान कर देती हैं॥ ३४-३५½ ॥

देवीको कर्पूर-खण्डोंसे युक्त दीपक निरन्तर अर्पित करना चाहिये; ऐसा करनेवाला उपासक सूर्यलोक प्राप्त कर लेता है; इसमें संशय नहीं करना चाहिये। समाहितचित्त होकर एक सौ अथवा हजार दीपक देवीको प्रदान करने चाहिये॥ ३६-३७॥

देवीके सम्मुख पर्वतकी आकृतिके रूपमें नैवेद्यराशि स्थापित करे; जिसमें लेह्य, चोष्य, पेय तथा षड्रसोंवाले पदार्थ हों। अनेक प्रकारके दिव्य, स्वादिष्ट तथा रसमय फल एवं अन्न स्वर्णपात्रमें रखकर भगवतीको निरन्तर अर्पित करे॥ ३८-३९ ॥

श्रीमहादेवीके तृप्त होनेपर तीनों लोक तृप्त हो जाते हैं; क्योंकि सम्पूर्ण जगत् उन्हींका आत्मरूप है; जिस प्रकार रज्जुमें सर्पका आभास मिथ्या है, उसी प्रकार जगत्का आभास भी मिथ्या है॥ ४० ॥

तत्पश्चात् अत्यन्त पवित्र गंगाजल भगवतीको पीनेके लिये निवेदित करे और कर्पूर तथा नारियल-जलसे युक्त कलशका शीतल जल भी देवीको समर्पित करे॥ ४१ ॥

ताम्बूलं च ततो देव्यै कर्पूरशकलान्वितम्।
एलालवङ्गसंयुक्तं मुखसौगन्ध्यदायकम्॥ ४२

दद्याद्देव्यै महाभक्त्या येन देवी प्रसीदति।
मृदङ्गवीणामुरजढक्कादुन्दुभिनिःस्वनैः ॥ ४३

तोषयेज्जगतां धात्रीं गायनैरतिमोहनैः।
वेदपारायणैः स्तोत्रैः पुराणादिभिरप्युत॥ ४४

तत्पश्चात् कर्पूरके छोटे-छोटे टुकड़ों, लवंग तथा इलायचीसे युक्त और मुखको सुगन्धि प्रदान करनेवाला ताम्बूल अत्यन्त भक्तिपूर्वक देवीको अर्पित करे, जिससे देवी प्रसन्न हो जायँ। इसके बाद मृदंग, वीणा, मुरज, ढक्का तथा दुन्दुभि आदिकी ध्वनियोंसे; अत्यन्त मनोहर गीतोंसे; वेद-पारायणोंसे; स्तोत्रोंसे तथा पुराण आदिके पाठसे जगत्‌को धारण करनेवाली भगवतीको सन्तुष्ट करना चाहिये॥ ४२—४४॥

छत्रं च चामरे द्वे च दद्याद्देव्यै समाहितः।
राजोपचारान् श्रीदेव्यै नित्यमेव समर्पयेत्॥ ४५

तदनन्तर समाहितचित्त होकर देवीको छत्र तथा दो चँवर अर्पण करे। उन श्रीदेवीको नित्य राजोचित उपचार समर्पित करना चाहिये॥ ४५॥

प्रदक्षिणां नमस्कारं कुर्याद्देव्या अनेकधा।
क्षमापयेज्जगद्धात्रीं जगदम्बां मुहुर्मुहुः॥ ४६

अनेक प्रकारसे देवीकी प्रदक्षिणा करे तथा उन्हें नमस्कार करे और जगद्धात्री जगदम्बासे बार-बार क्षमाप्रार्थना करे॥ ४६॥

सकृत्स्मरणमात्रेण यत्र देवी प्रसीदति।
एतादृशोपचारैश्च प्रसीदेदत्र कः स्मयः॥ ४७

एक बारके स्मरणमात्रसे जब देवी प्रसन्न हो जाती हैं तब इस प्रकारके पूजनोपचारोंसे वे प्रसन्न हो जायँ तो इसमें कौन-सा आश्चर्य है?॥ ४७॥

स्वभावतो भवेन्माता पुत्रेऽतिकरुणावती।
तेन भक्तौ कृतायां तु वक्तव्यं किं ततः परम्॥ ४८

माता स्वाभाविक रूपसे पुत्रपर अति करुणा करनेवाली होती है, फिर जो माताके प्रति भक्तिपरायण है, उसके विषयमें कहना ही क्या?॥ ४८॥

अत्र ते कथयिष्यामि पुरा वृत्तं सनातनम्।
बृहद्रथस्य राजर्षेः प्रियं भक्तिप्रदायकम्॥ ४९

इस विषयमें मैं राजर्षि बृहद्रथसे सम्बद्ध एक रोचक तथा भक्तिप्रदायक सनातन पौराणिक आख्यानका वर्णन आपसे करूँगा॥ ४९॥

चक्रवाकोऽभवत्पक्षी क्वचिद्देशे हिमालये।
भ्रमन्नानाविधान्देशान्ययौ काशीपुरं प्रति॥ ५०

हिमालयपर किसी जगह एक चक्रवाक पक्षी रहता था। वह अनेकविध देशोंका भ्रमण करता हुआ काशीपुरी पहुँच गया॥ ५०॥

अन्नपूर्णामहास्थाने प्रारब्धवशतो द्विजः।
जगाम लीलया तत्र कणलोभादनाथवत्॥ ५१

वहाँ वह पक्षी प्रारब्धवश अनाथकी भाँति अन्न-कणोंके लोभसे लीलापूर्वक भगवती अन्नपूर्णाके दिव्य धाममें जा पहुँचा॥ ५१॥

कृत्वा प्रदक्षिणामेकां जगाम स विहायसा।
देशान्तरं विहायैव पुरीं मुक्तिप्रदायिनीम्॥ ५२

आकाशमें घूमते हुए वह पक्षी मन्दिरकी एक प्रदक्षिणा करके मुक्तिदायिनी काशीको छोड़कर किसी अन्य देशमें चला गया॥ ५२॥

कालान्तरे ममारासौ गतः स्वर्गपुरीं प्रति।
बुभुजे विषयान्सर्वान् दिव्यरूपधरो युवा॥ ५३

कालान्तरमें वह मृत्युको प्राप्त हो गया और स्वर्ग चला गया। वहाँ एक दिव्य रूपधारी युवक होकर वह समस्त सुखोंका भोग करने लगा॥ ५३॥

कल्पद्वयं तथा भुक्त्वा पुनः प्राप भुवं प्रति।
क्षत्रियाणां कुले जन्म प्राप सर्वोत्तमोत्तमम्॥ ५४

बृहद्रथेति नाम्नाभूत्प्रसिद्धः क्षितिमण्डले।
महायज्वा धार्मिकश्च सत्यवादी जितेन्द्रियः॥ ५५

त्रिकालज्ञः सार्वभौमो यमी परपुरञ्जयः।
पूर्वजन्मस्मृतिस्तस्य वर्तते दुर्लभा भुवि॥ ५६

इति श्रुत्वा किंवदन्तीं मुनयः समुपागताः।
कृतातिथ्या नृपेन्द्रेण विष्टरेषूषुरेव ते॥ ५७

पप्रच्छुर्मुनयः सर्वे संशयोऽस्ति महान्नृप।
केन पुण्यप्रभावेण पूर्वजन्मस्मृतिस्तव॥ ५८

त्रिकालज्ञानमेवापि केन पुण्यप्रभावतः।
ज्ञानं तवेति तज्ज्ञातुमागताः स्म तवान्तिकम्॥ ५९

वद निर्व्याजया वृत्त्या तदस्माकं यथातथम्।

श्रीनारायण उवाच

इति तेषां वचः श्रुत्वा राजा परमधार्मिकः॥ ६०

उवाच सकलं ब्रह्मन् त्रिकालज्ञानकारणम्।
श्रूयतां मुनयः सर्वे मम ज्ञानस्य कारणम्॥ ६१

चक्रवाकः स्थितः पूर्वं नीचयोनिगतोऽपि वा।
अज्ञानतोऽपि कृतवानन्नपूर्णाप्रदक्षिणाम्॥ ६२

तेन पुण्यप्रभावेण स्वर्गे कल्पद्वयस्थितिः।
त्रिकालज्ञानताप्यस्मिन्नभूज्जन्मनि सुव्रताः॥ ६३

को वेद जगदम्बायाः पदस्मृतिफलं कियत्।
स्मृत्वा तन्महिमानं तु पतन्त्यश्रूणि मेऽनिशम्॥ ६४

धिगस्तु जन्म तेषां वै कृतघ्नानां तु पापिनाम्।
ये सर्वमातरं देवीं स्वोपास्यां न भजन्ति हि॥ ६५

इस प्रकार दो कल्पतक वहाँ सुखोपभोग करनेके बाद वह पुनः पृथ्वीलोकमें आया। क्षत्रियोंके कुलमें उसने सर्वोत्तम जन्म प्राप्त किया और पृथ्वीमण्डलपर बृहद्रथ नामसे प्रसिद्ध हुआ। वह महान् यज्ञनिष्ठ, धर्मपरायण, सत्यवादी, इन्द्रियजयी, त्रिकालज्ञ, सार्वभौम, संयमी और शत्रु-राज्योंको जीतनेवाला राजा हुआ। उसे पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण था, जो पृथ्वीपर दूसरोंके लिये दुर्लभ है॥ ५४—५६॥

जनश्रुतिके माध्यमसे उसके विषयमें सुनकर मुनिगण वहाँ आये। उन नृपेन्द्रसे आतिथ्य-सत्कार पाकर वे आसनोंपर विराजमान हुए॥ ५७॥

तत्पश्चात् सभी मुनियोंने पूछा—हे राजन्! हमलोगोंको इस बातका महान् सन्देह है कि किस पुण्यके प्रभावसे आपको पूर्वजन्मकी स्मृति हो जाती है और किस पुण्यके प्रभावसे आपको तीनों कालों (भूत, भविष्य, वर्तमान)-का ज्ञान है? आपके उस ज्ञानके विषयमें जाननेके लिये हमलोग आपके पास आये हुए हैं। आप निष्कपट भावसे यथार्थरूपमें उसे हमें बतायें॥ ५८-५९½॥

श्रीनारायण बोले—हे ब्रह्मन्! उनकी यह बात सुनकर परम धार्मिक राजा अपने त्रिकालज्ञानका सारा रहस्य बताने लगे॥ ६०½॥

हे मुनिगणो! आपलोग मेरे इस ज्ञानका कारण सुनिये। मैं पूर्वजन्ममें चक्रवाक पक्षी था। नीच योनिमें जन्म लेनेपर भी मैंने अज्ञानपूर्वक भगवती अन्नपूर्णाकी प्रदक्षिणा कर ली थी। हे सुव्रतो! उसी पुण्यप्रभावसे मैंने दो कल्पपर्यन्त स्वर्गमें निवास किया और उसके बाद इस जन्ममें भी मुझमें त्रिकालज्ञता विद्यमान है॥ ६१—६३॥

जगदम्बाके चरणोंके स्मरणका कितना फल होता है—इसे कौन जान सकता है? उनकी महिमाका स्मरण करते ही मेरी आँखोंसे निरन्तर अश्रु गिरने लगते हैं॥ ६४॥

किंतु उन कृतघ्न तथा पापियोंके जन्मको धिक्कार है, जो सभी प्राणियोंकी जननी तथा अपनी उपास्य भगवतीकी आराधना नहीं करते॥ ६५॥

न शिवोपासना नित्या न विष्णूपासना तथा।
नित्योपास्तिः परा देव्या नित्या श्रुत्यैव चोदिता॥ ६६

न तो शिवकी उपासना नित्य है और न तो विष्णुकी उपासना नित्य है। एकमात्र परा भगवतीकी उपासना ही नित्य है; क्योंकि श्रुतिद्वारा वे नित्या कही गयी हैं॥ ६६॥

किं मया बहु वक्तव्यं स्थाने संशयवर्जिते।
सेवनीयं पदाम्भोजं भगवत्या निरन्तरम्॥ ६७

इस सन्देहरहित विषयमें मैं अधिक क्या कहूँ! भगवतीके चरणकमलोंकी सेवा निरन्तर करनी चाहिये॥ ६७॥

नातः परतरं किञ्चिदधिकं जगतीतले।
सेवनीया परा देवी निर्गुणा सगुणाथवा॥ ६८

इन भगवतीसे बढ़कर इस धरातलपर श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है। अतः सगुणा अथवा निर्गुणा किसी भी रूपमें उन परा भगवतीकी उपासना करनी चाहिये॥ ६८॥

श्रीनारायण उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा राजर्षेर्धार्मिकस्य च।
प्रसन्नहृदयाः सर्वे गताः स्वस्वनिकेतनम्॥ ६९

श्रीनारायण बोले—उन धार्मिक राजर्षिका यह वचन सुनकर प्रसन्न हृदयवाले वे सभी मुनि अपने-अपने स्थानपर चले गये॥ ६९॥

एवंप्रभावा सा देवी तत्पूजायाः फलं कियत्।
अस्तीति केन प्रष्टव्यं वक्तव्यं वा न केनचित्॥ ७०

वे भगवती जगदम्बा इस प्रकारके प्रभाववाली हैं तथा उनकी पूजाका कितना फल होता है—इस विषयमें न कोई पूछनेमें समर्थ है और न कोई बतानेमें समर्थ है॥ ७०॥

येषां तु जन्मसाफल्यं तेषां श्रद्धा तु जायते।
येषां तु जन्मसाङ्कर्यं तेषां श्रद्धा न जायते॥ ७१

जिनका जन्म सफल होनेको होता है, उन्हीं लोगोंके मनमें देवीके प्रति श्रद्धा उत्पन्न होती है। जो लोग वर्णसंकर जन्मवाले हैं, उनके मनमें देवीके प्रति श्रद्धा नहीं उत्पन्न होती॥ ७१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामेकादशस्कन्धे देवीमाहात्म्ये बृहद्रथकथानकं नामाष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥



अथैकोनविंशोऽध्यायः

मध्याह्नसन्ध्या तथा गायत्रीजपका फल

श्रीनारायण उवाच

अथातः श्रूयतां ब्रह्मन् सन्ध्यां माध्याह्निकीं शुभाम्।
यदनुष्ठानतोऽपूर्वं जायतेऽत्युत्तमं फलम्॥ १

श्रीनारायण बोले—हे ब्रह्मन्! अब आप मध्याह्नकालीन पुण्यदायिनी सन्ध्याके विषयमें सुनिये, जिसका अनुष्ठान करनेसे अद्भुत तथा अतिश्रेष्ठ फल प्राप्त होता है॥ १॥

सावित्रीं युवतीं श्वेतवर्णां चैव त्रिलोचनाम्।
वरदां चाक्षमालाढ्यां त्रिशूलाभयहस्तकाम्॥ २

वृषारूढां यजुर्वेदसंहितां रुद्रदेवताम्।
तमोगुणयुतां चैव भुवर्लोकव्यवस्थिताम्॥ ३

युवावस्थावाली, श्वेत वर्णवाली, तीन नेत्रोंवाली, हाथोंमें वरदमुद्रा-अक्षमाला-त्रिशूल तथा अभयमुद्रा धारण करनेवाली, वृषभपर विराजमान, यजुर्वेदसंहिता-स्वरूपिणी, रुद्रके द्वारा उपास्य, तमोगुणसे सम्पन्न, भुवर्लोकमें स्थित रहनेवाली तथा सूर्यको उनके मार्गपर संचरण करानेवाली, महामाया गायत्रीको मैं

आदित्यमार्गसंचारकर्त्रीं मायां नमाम्यहम्।
आदिदेवीमथ ध्यात्वाचमनादि च पूर्ववत्॥ ४

अथ चार्घ्यप्रकरणं पुष्पाणि चिनुयात्ततः।
तदलाभे बिल्वपत्रं तोयेन मिश्रयेत्ततः॥ ५

ऊर्ध्वं च सूर्याभिमुखं क्षिप्त्वार्घ्यं प्रतिपादयेत्।
प्रातःसन्ध्यादिवत्सर्वमुपसंहारपूर्वकम् ॥ ६

मध्याह्ने केचिदिच्छन्ति सावित्रीं तु तदित्यृचम्।
असम्प्रदायं तत्कर्म कार्यहानिस्तु जायते॥ ७

कारणं सन्ध्ययोश्चात्र मन्देहा नाम राक्षसाः।
भक्षितुं सूर्यमिच्छन्ति कारणं श्रुतिचोदितम्॥ ८

अतस्तु कारणाद्विप्रः सन्ध्यां कुर्यात्प्रयत्नतः।
सन्ध्ययोरुभयोर्नित्यं गायत्र्या प्रणवेन च॥ ९

अम्भस्तु प्रक्षिपेत्तेन नान्यथा श्रुतिघातकः।
आकृष्णेनेति मन्त्रेण पुष्पैर्वाम्बुविमिश्रितम्॥ १०

अलाभे बिल्वदूर्वादिपत्रेणोक्तेन पूर्वकम्।
अर्घ्यं दद्यात्प्रयत्नेन साङ्गं सन्ध्याफलं लभेत्॥ ११

अत्रैव तर्पणं वक्ष्ये शृणु देवर्षिसत्तम।
भुवः पुनः पूरुषं तु तर्पयामि नमो नमः॥ १२

यजुर्वेदं तर्पयामि मण्डलं तर्पयामि च।
हिरण्यगर्भं च तथान्तरात्मानं तथैव च॥ १३

सावित्रीं च ततो देवमातरं साङ्कृतिं तथा।
सन्ध्यां तथैव युवतीं रुद्राणीं नीमृजां तथा॥ १४

सर्वार्थानां सिद्धिकरीं सर्वमन्त्रार्थसिद्धिदाम्।
भूर्भुवः स्वः पूरुषं तु इति मध्याह्नतर्पणम्॥ १५

उदुत्यमिति सूक्तेन सूर्योपस्थानमेव च।
चित्रं देवानामिति च सूर्योपस्थानमाचरेत्॥ १६

प्रणाम करता हूँ—इस प्रकार आदिदेवीका ध्यान करके आचमन आदि सभी क्रियाएँ पूर्वकी भाँति करनी चाहिये॥ २—४॥

अब अर्घ्यका प्रकरण बताता हूँ। इसके लिये पुष्प चुनना चाहिये। पुष्पके अभावमें बिल्वपत्रको जलमें मिला लेना चाहिये और सूर्यकी ओर मुख करके ऊपरकी ओर जल छोड़कर अर्घ्य प्रदान करना चाहिये। आदिसे लेकर अन्ततक सभी नियम प्रातःकालीन सन्ध्याके ही समान हैं॥ ५-६॥

कुछ लोग मध्याह्नसन्ध्यामें गायत्रीमन्त्र '**तत्सवितुः०**' पढ़कर अर्घ्य प्रदान करनेकी सम्मति देते हैं, किंतु वह कर्म परम्पराविरुद्ध है और इससे कार्यकी हानि होती है॥ ७॥

[प्रातः तथा सायं] दोनों सन्ध्याओंको करनेका वेदोक्त कारण यह है कि मन्देहा नामवाले राक्षस सूर्यका भक्षण करना चाहते हैं। अतएव उन राक्षसोंके निवारणके निमित्त ब्राह्मणको प्रयत्नपूर्वक सन्ध्या करनी चाहिये। प्रातः तथा सायंकालकी दोनों सन्ध्याओंमें नित्य प्रणवसहित गायत्रीमन्त्रसे [अर्घ्यके निमित्त] जलका प्रक्षेप करना चाहिये, अन्यथा वह श्रुतिघातक होता है। [मध्याह्नकालकी सन्ध्यामें] जलमिश्रित पुष्पोंसे और यदि पुष्प न मिल सके तो बिल्व और दूर्वा आदिके पत्रसे पूर्वमें बतायी गयी विधिके अनुसार प्रयत्नपूर्वक '**आकृष्णेन०**' इस मन्त्रसे सूर्यको अर्घ्य प्रदान करना चाहिये। ऐसा करनेवाला सांगोपांग सन्ध्याका फल प्राप्त करता है॥ ८—११॥

हे देवर्षिसत्तम! अब इसी प्रकरणमें तर्पणकी विधि बता रहा हूँ, उसे सुनिये। '**भुवः पूरुषं तर्पयामि नमो नमः**', '**यजुर्वेदं तर्पयामि नमो नमः**', '**मण्डलं तर्पयामि नमो नमः**'—इसी प्रकार हिरण्यगर्भ, अन्तरात्मा, सावित्री, देवमाता, सांकृति, सन्ध्या, युवती, रुद्राणी, नीमृजा, सर्वार्थसिद्धिकरी, सर्वार्थमन्त्रसिद्धिदा और **भूर्भुवः स्वः पूरुषं**—इन नामोंके साथ '**तर्पयामि नमो नमः**' जोड़कर तर्पण करना चाहिये। यह मध्याह्न-तर्पण है॥ १२—१५॥

तदनन्तर '**उदुत्यम्०**' तथा '**चित्रं देवानाम्०**'—इन मन्त्रोंसे सूर्योपस्थान करना चाहिये। तत्पश्चात्

ततो जपं प्रकुर्वीत मन्त्रसाधनतत्परः।
जपस्यापि प्रकारं तु वक्ष्यामि शृणु नारद॥ १७

मन्त्र-साधनमें तत्पर रहनेवाले साधकको जप करना चाहिये। हे नारद! अब मैं जपका भी प्रकार बताऊँगा; सुनिये॥ १६-१७॥

कृत्वोत्तानौ करौ प्रातः सायं चाधः करौ तथा।
मध्याह्ने हृदयस्थौ तु कृत्वा जपमुदीरयेत्॥ १८

प्रातःकाल दोनों हाथोंको उत्तान करके, सायंकालमें हाथोंको नीचेकी ओर करके तथा मध्याह्न-कालमें उन्हें हृदयके पास करके जप करना चाहिये॥ १८॥

पर्वद्वयमनामिक्याः कनिष्ठादिक्रमेण तु।
तर्जनीमूलपर्यन्तं करमाला प्रकीर्तिता॥ १९

अनामिका अँगुलीके दूसरे पर्व (मध्य पोर)-से आरम्भ करके कनिष्ठिका आदिके क्रमसे तर्जनी अँगुलीके मूलपर्यन्त करमाला कही गयी है॥ १९॥

गोघ्नः पितृघ्नो मातृघ्नो भ्रूणहा गुरुतल्पगः।
ब्रह्मस्वक्षेत्रहारी च यश्च विप्रः सुरां पिबेत्॥ २०

स गायत्र्याः सहस्रेण पूतो भवति मानवः।
मानसं वाचिकं पापं विषयेन्द्रियसङ्गजम्॥ २१

तत्किल्विषं नाशयति त्रीणि जन्मानि मानवः।
गायत्रीं यो न जानाति वृथा तस्य परिश्रमः॥ २२

जो गोहत्यारा, माता-पिताकी हत्या करनेवाला, भ्रूणघाती, गुरुपत्नीके साथ गमन करनेवाला, ब्राह्मणका धन तथा भूमि हरनेवाला है और जो विप्र सुरापान करता है, वह गायत्रीके एक हजार जपसे पवित्र हो जाता है। गायत्री-जप तीन जन्मोंके मानसिक तथा वाचिक पाप और विषयेन्द्रियोंके संयोगसे उत्पन्न होनेवाले पापको विनष्ट कर देता है। जो मनुष्य गायत्रीमन्त्र नहीं जानता, उसका सम्पूर्ण परिश्रम व्यर्थ है॥ २०—२२॥

पठेच्च चतुरो वेदान् गायत्रीं चैकतो जपेत्।
वेदानां चावृतेस्तद्वद् गायत्रीजप उत्तमः॥ २३

इति मध्याह्नसन्ध्यायाः प्रकारः कीर्तितो मया।
अतः परं प्रवक्ष्यामि ब्रह्मयज्ञविधिक्रमम्॥ २४

मनुष्य एक ओर चारों वेदोंको पढ़े तथा दूसरी ओर गायत्रीजप करे, इनमें वेदोंकी आवृत्तिसे गायत्रीजप उत्तम है। यह मैंने आपको मध्याह्न-सन्ध्याकी विधि बतायी और अब ब्रह्मयज्ञकी विधिका क्रम बताऊँगा॥ २३-२४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामेकादशस्कन्धे मध्याह्नसंध्यावर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥



अथ विंशोऽध्यायः

तर्पण तथा सायंसन्ध्याका वर्णन

श्रीनारायण उवाच

त्रिराचम्य द्विजः पूर्वं द्विर्मार्जनमथाचरेत्।
उपस्पृशेत्सव्यपाणिं पादौ च प्रोक्षयेत्ततः॥ १

शिरसि चक्षुषि तथा नासायां श्रोत्रदेशके।
हृदये च तथा मौलौ प्रोक्षणं सम्यगाचरेत्॥ २

श्रीनारायण बोले—हे नारद! द्विजको चाहिये कि पहले तीन बार आचमन करके दो बार मार्जन करे। इसके बाद पहले अपने दाहिने हाथका तदनन्तर पैरोंका प्रोक्षण करे। इसी प्रकार सिर, नेत्र, नासिका, कान, हृदय तथा शिखाका विधिवत् प्रोक्षण करना चाहिये॥ १-२॥

देशकालौ समुच्चार्य ब्रह्मयज्ञमथाचरेत्।
द्वौ दर्भौ दक्षिणे हस्ते वामे त्रीनासने सकृत्॥ ३

तदनन्तर देश-कालका उच्चारण करके ब्रह्मयज्ञ करे। दाहिने हाथमें दो कुशा, बायें हाथमें तीन कुशा, आसनपर एक कुशा, यज्ञोपवीतमें एक कुशा, शिखापर

उपवीते शिखायां च पादमूले सकृत्सकृत्।
विमुक्तये सर्वपापक्षयार्थं चैवमेव हि॥ ४
सूत्रोक्तदेवताप्रीत्यै ब्रह्मयज्ञं करोम्यहम्।
गायत्रीं त्रिर्जपेत्पूर्वं चाग्निमीळे ततः परम्॥ ५
यदङ्गेति ततः प्रोच्य अग्निर्वै इति कीर्तयेत्।
अथ महाव्रतं चैव पन्था एतच्च कीर्तयेत्॥ ६
अथातः संहितायाश्च विदा मघवदित्यपि।
महाव्रतस्येति तथा इषे त्वोर्जे इतीव हि॥ ७
अग्न आयाहि चेत्येवं शन्नो देवीरितीति च।
अथ तस्य समाम्नायो वृद्धिरादैजितीव हि॥ ८
अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि पञ्चसंवत्सरेति च।
मयरसतजभनेत्येव गौर्ग्मा इत्येव कीर्तयेत्॥ ९
अथातो धर्मजिज्ञासा अथातो ब्रह्म इत्यपि।
तच्छंयोरिति च प्रोच्य ब्रह्मणे नम इत्यपि॥ १०
तर्पणं चैव देवानां ततः कुर्यात्प्रदक्षिणम्।
प्रजापतिश्च ब्रह्मा च वेदा देवास्तथर्षयः॥ ११
सर्वाणि चैव छन्दांसि तथोङ्कारस्तथैव च।
वषट्कारो व्याहृतयः सावित्री च ततः परम्॥ १२
गायत्री चैव यज्ञाश्च द्यावापृथिवी इत्यपि।
अन्तरिक्षं त्वहोरात्राणि च सांख्या अतः परम्॥ १३
सिद्धाः समुद्रा नद्यश्च गिरयश्च ततः परम्।
क्षेत्रौषधिवनस्पत्यो गन्धर्वाप्सरसस्तथा॥ १४
नागा वयांसि गावश्च साध्या विप्रास्तथैव च।
यक्षा रक्षांसि भूतानीत्येवमन्तानि कीर्तयेत्॥ १५
अथो निवीती भूत्वा च ऋषीन्सन्तर्पयेदपि।
शतर्चिनो माध्यमाश्च गृत्समदस्तथैव च॥ १६
विश्वामित्रो वामदेवोऽत्रिर्भरद्वाज एव च।
वसिष्ठश्च प्रगाथश्च पावमान्यस्ततः परम्॥ १७
क्षुद्रसूक्ता महासूक्ताः सनकश्च सनन्दनः।
सनातनस्तथैवात्र सनत्कुमार एव च॥ १८
कपिलासुरिनामानौ वोहलिः पञ्चशीर्षकः।
प्राचीनावीतिना तच्च कर्तव्यमथ तर्पणम्॥ १९
सुमन्तुर्जैमिनिर्वैशम्पायनः पैलसूत्रयुक्।
भाष्यभारतपूर्वं च महाभारत इत्यपि॥ २०

एक कुशा और पादमूलमें एक कुशा रखे। इसके बाद विमुक्त होनेके लिये, सम्पूर्ण पापोंके विनाशहेतु तथा सूत्रोक्त देवताकी प्रसन्नताके लिये मैं ब्रह्मयज्ञ कर रहा हूँ—ऐसा संकल्प करे॥ ३-४½॥

पहले तीन बार गायत्रीका जप करे और इसके बाद '**अग्निमीडे०**', फिर '**यदङ्गे०**' का उच्चारण करके '**अग्निर्वै०**' इस मन्त्रको बोलना चाहिये। तत्पश्चात् '**अथ महाव्रतं चैव पन्थाः०**'—इसका भी पाठ करना चाहिये॥ ५-६॥

तत्पश्चात् संहिताके '**विदा मघवत्०**', '**महाव्रतस्य०**', '**इषे त्वोर्जे०**', '**अग्न आयाहि०**', '**शन्नो देवी०**', '**अथ तस्य समाम्नायो वृद्धिरादैच्०**', '**अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि०**', '**पञ्चसंवत्सर०**', '**मयरसतजभन०**' और '**गौर्ग्मा०**' इत्यादि मन्त्रोंका भी पाठ करना चाहिये। पुनः '**अथातो धर्मजिज्ञासा**' और '**अथातो ब्रह्मजिज्ञासा**' के साथ '**तच्छंयो०**' तथा '**ब्रह्मणे नमः**'—इन मन्त्रोंका भी पाठ करना चाहिये॥ ७—१०॥

तदनन्तर देवताओंका तर्पण करके प्रदक्षिणा करनी चाहिये। [तर्पणके समय] प्रजापति, ब्रह्मा, वेद, देवता, ऋषि, सभी छन्द, ॐकार, वषट्कार, व्याहृतियाँ, सावित्री, गायत्री, यज्ञ, द्यावा, पृथ्वी, अन्तरिक्ष, अहोरात्र, सांख्य, सिद्ध, समुद्र, नदियाँ, पर्वत, क्षेत्र, औषधि, वनस्पतियाँ, गन्धर्व, अप्सराएँ, नाग, पक्षी, गौएँ, साध्यगण, विप्रगण, यक्ष, राक्षस, भूत एवं यमराज आदिके नामोंका उच्चारण करना चाहिये॥ ११—१५॥

एतदनन्तर यज्ञोपवीतको कण्ठीकी भाँति करके शतर्चि, माध्यम, गृत्समद, विश्वामित्र, वामदेव, अत्रि, भरद्वाज, वसिष्ठ, प्रगाथ, पावमान्य, क्षुद्रसूक्त, महासूक्त, सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, कपिल, आसुरि, वोहलि तथा पंचशीर्ष—इन ऋषियोंका तर्पण करना चाहिये। इसके बाद अपसव्य होकर सुमन्तु, जैमिनि, वैशम्पायन, पैल, सूत्र, भाष्य, भारत, महाभारत तथा धर्माचार्योंका तर्पण करे तथा ये सभी तृप्त हो जायँ—ऐसा उच्चारण करे। इसी प्रकार जानन्ति, बाहवि, गार्ग्य, गौतम, शाकल, बाभ्रव्य, माण्डव्य, माण्डूकेय,

धर्माचार्या इमे सर्वे तृप्यन्त्विति च कीर्तयेत्।
जानन्ति बाहविगार्ग्यगौतमाश्चैव शाकलः॥ २१
बाभ्रव्यमाण्डव्ययुतोमाण्डूकेयस्ततः परम्।
गार्गी वाचक्नवी चैव वडवा प्रातिथेयिका॥ २२
सुलभायुक्तमैत्रेयी कहोलश्च ततः परम्।
कौषीतकं महाकौषीतकं वै तर्पयेत्ततः॥ २३
भारद्वाजं च पैङ्ग्यं च महापैङ्ग्यं सुयज्ञकम्।
सांख्यायनमैतरेयं महैतरेयमेव च॥ २४
बाष्कलं शाकलं चैव सुजातवक्त्रमेव च।
औदवाहिं च सौजामिं शौनकं चाश्वलायनम्॥ २५
ये चान्ये सर्व आचार्यास्ते सर्वे तृप्तिमाप्नुयुः।
ये के चास्मत्कुले जाता अपुत्रा गोत्रिणो मृताः॥ २६
ते गृह्णन्तु मया दत्तं वस्त्रनिष्पीडनोदकम्।
एवं ते ब्रह्मयज्ञस्य विधिरुक्तो महामुने॥ २७
यश्चायं कुरुते ब्रह्मयज्ञस्य विधिमुत्तमम्।
सर्ववेदाङ्गपाठस्य फलमाप्नोति साधकः॥ २८
वैश्वदेवं ततः कुर्यान्नित्यश्राद्धं तथैव च।
अतिथिभ्योऽन्नदानं च नित्यमेव समाचरेत्॥ २९
गोग्रासं च ततो दत्त्वा भुञ्जीत ब्राह्मणैः सह।
अह्नस्तु पञ्चमे भागे प्रकुर्यादेतदुत्तमम्॥ ३०
इतिहासपुराणाद्यैः षष्ठसप्तमकौ नयेत्।
अष्टमे लोकयात्रा तु बहिः सन्ध्यां ततः पुनः॥ ३१
अथ सायन्तनीं सन्ध्यां प्रवक्ष्यामि महामुने।
यदनुष्ठानमात्रेण महामाया प्रसीदति॥ ३२
आचम्य प्राणानायम्य साधकः स्थिरमानसः।
बद्धपद्मासनो योगी सायंकाले स्थिरो भवेत्॥ ३३
श्रुतिस्मृत्यादिकर्मादौ सगर्भः प्राणसंयमः।
अगर्भो ध्यानमात्रं तु स चामन्त्रः प्रकीर्तितः॥ ३४
भूतशुद्ध्यादिकं कृत्वा नान्यथा कर्म कीर्तितम्।
सलक्षो देवतां ध्यात्वा पूरकुम्भकरेचकैः॥ ३५

गार्गी, वाचक्नवी, वडवा, प्रातिथेयी, सुलभा, मैत्रेयी, कहोल, कौषीतक, महाकौषीतक, भारद्वाज, पैंग्य, महापैंग्य, सुयज्ञ, सांख्यायन, ऐतरेय, महैतरेय, बाष्कल, शाकल, सुजातवक्त्र, औदवाहि, सौजामि, शौनक और आश्वलायन—इनका तर्पण करे तथा जो अन्य आचार्य हों, वे सब भी तृप्तिको प्राप्त हों—ऐसा कहे। इसके बाद इस प्रकार उच्चारण करते हुए तर्पण करे—जो कोई भी मेरे कुलमें उत्पन्न होकर अपुत्र ही दिवंगत हो चुके हैं तथा मेरे गोत्रसे सम्बद्ध हैं, वे मेरे द्वारा वस्त्र निचोड़कर दिये गये जलको ग्रहण करें। हे महामुने! इस प्रकार मैंने आपको ब्रह्मयज्ञकी विधि बतला दी॥ १६—२७॥

जो साधक ब्रह्मयज्ञकी इस उत्तम विधिका सम्यक् पालन करता है, वह अंगोंसहित समस्त वेदोंके पाठका फल प्राप्त कर लेता है॥ २८॥

इसके बाद वैश्वदेव तथा नित्यश्राद्ध करना चाहिये। अतिथियोंको अन्नदान नित्य करना चाहिये॥ २९॥

गोग्रास देनेके पश्चात् ब्राह्मणोंके साथ बैठकर भोजन करना चाहिये। यह उत्तम कार्य दिनके पाँचवें भागमें करना चाहिये॥ ३०॥

दिनका छठाँ तथा सातवाँ भाग इतिहास, पुराण आदिके स्वाध्यायमें व्यतीत करना चाहिये। दिनके आठवें भागमें लोकव्यवहारसम्बन्धी कार्योंको करे और इसके बाद सायंसन्ध्या करे॥ ३१॥

हे महामुने! अब मैं सायंकालकी सन्ध्याका वर्णन करूँगा, जिसके अनुष्ठानमात्रसे भगवती महामाया प्रसन्न हो जाती हैं॥ ३२॥

सायं वेलामें साधक योगीको आचमन तथा प्राणायाम करके शान्तचित्त हो पद्मासन लगाकर निश्चलरूपसे बैठ जाना चाहिये॥ ३३॥

श्रुति-स्मृतिसम्बन्धी कर्मोंमें प्राणवायुको संयमित करके किया जानेवाला समन्त्रक प्राणायाम सगर्भ कहा गया है तथा ध्यानमात्रवाला प्राणायाम अगर्भ है; वह अगर्भ प्राणायाम अमन्त्रक कहा गया है॥ ३४॥

भूतशुद्धि आदि करके ही कर्ममें प्रवृत्त होना चाहिये, अन्यथा उसे कर्म नहीं कहा जा सकता। लक्ष्य स्थिर करके पूरक, कुम्भक और रेचक प्राणायामद्वारा

ध्यानं प्रकुर्यात्सन्ध्यायां सायंकाले विचक्षणः ।
वृद्धां सरस्वतीं देवीं कृष्णाङ्गीं कृष्णवाससम् ॥ ३६

शङ्खचक्रगदापद्महस्तां गरुडवाहनाम् ।
नानारत्नलसद्भूषां क्वणन्मञ्जीरमेखलाम् ॥ ३७

अनर्घ्यरत्नमुकुटां तारहारावलीयुताम् ।
ताटङ्कबद्धमाणिक्यकान्तिशोभिकपोलकाम् ॥ ३८

पीताम्बरधरां देवीं सच्चिदानन्दरूपिणीम् ।
सामवेदेन सहितां संयुतां सत्त्ववर्त्मना ॥ ३९

व्यवस्थितां च स्वर्लोके आदित्यपथगामिनीम् ।
आवाहयाम्यहं देवीमायान्तीं सूर्यमण्डलात् ॥ ४०

एवं ध्यात्वा च तां देवीं सन्ध्यासङ्कल्पमाचरेत् ।
आपो हि ष्ठेति मन्त्रेण अग्निश्चेति तथैव च ॥ ४१

विदध्यादाचमनकं शेषं पूर्ववदीरितम् ।
गायत्रीमन्त्रमुच्चार्य श्रीनारायणप्रीतये ॥ ४२

अर्घ्यं दद्याच्च सूर्याय साधकः शुद्धमानसः ।
उभौ पादौ समौ कृत्वा हस्ते धृत्वा जलाञ्जलिम् ॥ ४३

देवं ध्यात्वा मण्डलस्थं क्षिपेदर्घ्यं ततः क्रमात् ।
अर्घ्यं दद्यात्तु यो नीरे मूढात्मा ज्ञानवर्जितः ॥ ४४

उल्लङ्घ्य स्मृतिमन्त्रांश्च प्रायश्चित्ती भवेद् द्विजः ।
ततः सूर्यमुपस्थायाप्यसावादित्यमन्त्रतः ॥ ४५

गायत्र्याश्च जपं कुर्यादुपविश्य ततो बृसीम् ।
सहस्रं वा तदर्धं वा श्रीदेवीध्यानपूर्वकम् ॥ ४६

यथा प्रातः पुनस्तद्वदुपस्थानादिकं चरेत् ।
सायं सन्ध्यातर्पणे च क्रमेण परिकीर्तयेत् ॥ ४७

इष्ट देवताका ध्यान करके विद्वान् पुरुषको सायंकालमें सन्ध्या करते समय इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—'भगवती सरस्वती वृद्धावस्थाको प्राप्त हैं, कृष्णवर्ण हैं, वे कृष्ण वस्त्र धारण की हुई हैं, उन्होंने हाथोंमें शंख-चक्र-गदा-पद्म धारण कर रखा है, वे गरुडरूपी वाहनपर विराजमान हैं, वे अनेक प्रकारके रत्नोंसे जटित वेशभूषासे सुशोभित हो रही हैं, उनकी पैजनी तथा करधनीसे ध्वनि निकल रही है, उनके मस्तकपर अमूल्य रत्नोंसे निर्मित मुकुट विद्यमान है, वे तारोंके हारकी आवलीसे युक्त हैं, मणिमय कुण्डलोंकी कान्तिसे उनके कपोल सुशोभित हो रहे हैं, उन्होंने पीताम्बर धारण कर रखा है, वे सत्-चित्-आनन्दस्वरूपवाली हैं, वे सामवेद तथा सत्त्वमार्गसे संयुक्त हैं, वे स्वर्गलोकमें व्यवस्थित हैं, वे सूर्यपथपर गमन करनेवाली हैं, सूर्यमण्डलसे निकलकर मेरी ओर आती हुई इन देवीका मैं आवाहन कर रहा हूँ'॥ ३५—४० ॥

इस प्रकार उन देवीका ध्यान करके सायंकालकी सन्ध्याका संकल्प करना चाहिये। '**आपो हि ष्ठा०**' इस मन्त्रसे मार्जन तथा '**अग्निश्च०**' इस मन्त्रसे आचमन करना चाहिये। शेष कर्म प्रात:कालीन सन्ध्याके समान बताया गया है ॥ ४१½ ॥

साधक पुरुषको शुद्ध मनवाला होकर भगवान् नारायणके प्रसन्नतार्थ गायत्रीमन्त्रका उच्चारण करके सूर्यको अर्घ्य देना चाहिये ॥ ४२½ ॥

दोनों पैरोंको समानरूपसे सीधा करके हाथकी अंजलिमें जल लेकर मण्डलस्थ देवताका ध्यान करके क्रमसे अर्घ्य प्रदान करना चाहिये ॥ ४३½ ॥

जो मूढात्मा तथा अज्ञानी द्विज जलमें अर्घ्य प्रदान करता है, वह स्मृतिमन्त्रोंका उल्लंघन करके प्रायश्चित्तका भागी होता है ॥ ४४½ ॥

तत्पश्चात् '**असावादित्य०**' इस मन्त्रसे सूर्योपस्थान करके कुशके आसनपर बैठकर श्रीदेवीका ध्यान करते हुए एक हजार अथवा उसकी आधी संख्यामें गायत्रीका जप करना चाहिये ॥ ४५-४६ ॥

जैसे प्रात:कालकी सन्ध्यामें उपस्थान आदि किये जाते हैं, उसी तरह सायंकालीन सन्ध्याके तर्पणमें उपस्थान आदि क्रमसे करने चाहिये ॥ ४७ ॥

वसिष्ठो ऋषिरेवात्र सरस्वत्याः प्रकीर्तितः।
देवता विष्णुरूपा सा छन्दश्चैव सरस्वती॥ ४८
सायंकालीनसन्ध्यायास्तर्पणे विनियोगकः।
स्वरित्युक्त्वा च पुरुषं सामवेदं तथैव च॥ ४९
मण्डलं चेति सम्प्रोच्य हिरण्यगर्भकं तथा।
तथैव परमात्मानं ततोऽपि च सरस्वतीम्॥ ५०
वेदमातरमेवात्र सङ्कृतिं तद्वदेव च।
सन्ध्यां वृद्धां तथा विष्णुरूपिणीमुषसीं तथा॥ ५१
निर्मृजीं च तथा सर्वसिद्धीनां कारिणीं तथा।
सर्वमन्त्राधिपतिकां भूर्भुवः स्वश्च पूरुषम्॥ ५२
इत्येवं तर्पणं कार्यं सन्ध्यायाः श्रुतिसम्मतम्।
सायं सन्ध्याविधानं च कथितं पापनाशनम्॥ ५३
सर्वदुःखहरं व्याधिनाशकं मोक्षदं तथा।
सदाचारेषु सन्ध्यायाः प्राधान्यं मुनिपुङ्गव।
सन्ध्याचरणतो देवी भक्ताभीष्टं प्रयच्छति॥ ५४

सायंकालीन सन्ध्यामें सरस्वतीरूपा गायत्रीके ऋषि 'वसिष्ठ' कहे गये हैं, देवता वे विष्णुरूपा 'सरस्वती' हैं तथा छन्द भी वे 'सरस्वती' ही हैं। सायंकालकी सन्ध्याके तर्पणमें इसका विनियोग किया जाता है। स्वः पुरुष, सामवेद, मण्डल, हिरण्यगर्भ, परमात्मा, सरस्वती, वेदमाता, संकृति, सन्ध्या, विष्णुस्वरूपिणी, वृद्धा, उषसी, निर्मृजी, सर्वसिद्धिकारिणी, सर्वमन्त्राधिपतिका तथा भूर्भुवः स्वः पूरुष—इस प्रकार उच्चारण करके श्रुतिसम्मत सायंकालीन सन्ध्याका तर्पण करना चाहिये॥ ४८—५२१/२॥

[हे नारद!] इस प्रकार मैंने पापोंका नाश करनेवाले, सभी प्रकारके दुःखोंको दूर करनेवाले, व्याधियोंका शमन करनेवाले तथा मोक्ष देनेवाले सायंकालीन सन्ध्या-विधानका वर्णन कर दिया। हे मुनिश्रेष्ठ! समस्त सदाचारोंमें सन्ध्याकी प्रधानता है। सन्ध्याका सम्यक् आचरण करनेसे भगवती भक्तको मनोवांछित फल प्रदान करती हैं॥ ५३-५४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामेकादशस्कन्धे ब्रह्मयज्ञादिकीर्तनं नाम विंशोऽध्यायः॥ २०॥

~~०~~

अथैकविंशोऽध्यायः

गायत्रीपुरश्चरण और उसका फल

श्रीनारायण उवाच

अथातः श्रूयतां ब्रह्मन् गायत्र्याः पापनाशनम्।
पुरश्चरणकं पुण्यं यथेष्टफलदायकम्॥ १

श्रीनारायण बोले—हे ब्रह्मन्! इसके बाद अब आप देवीके पापनाशक, पुण्यप्रद और यथेष्ट फल देनेवाले पुरश्चरणके विषयमें सुनिये॥ १॥

पर्वताग्रे नदीतीरे बिल्वमूले जलाशये।
गोष्ठे देवालयेऽश्वत्थे उद्याने तुलसीवने॥ २
पुण्यक्षेत्रे गुरोः पार्श्वे चित्तैकाग्र्यस्थलेऽपि च।
पुरश्चरणकृन्मन्त्री सिध्यत्येव न संशयः॥ ३

पर्वतके शिखरपर, नदीके तटपर, बिल्व-वृक्षके नीचे, जलाशयके किनारे, गोशालामें, देवालयमें, पीपलके नीचे, उद्यानमें, तुलसीवनमें, पुण्यक्षेत्रमें अथवा गुरुके पास अथवा जहाँ भी चित्तकी एकाग्रता बनी रहे—उस स्थानपर मन्त्रका पुरश्चरण करनेवाला व्यक्ति सिद्धि प्राप्त कर लेता है; इसमें सन्देह नहीं है॥ २-३॥

यस्य कस्यापि मन्त्रस्य पुरश्चरणमारभेत्।
व्याहृतित्रयसंयुक्तां गायत्रीं चायुतं जपेत्॥ ४

जिस किसी भी मन्त्रका पुरश्चरण आरम्भ करना हो, उसके पूर्व तीनों व्याहृतियों (भूः, भुवः, स्वः)-सहित दस हजार गायत्री-मन्त्रका जप करना चाहिये॥ ४॥

नृसिंहार्कवराहाणां तान्त्रिकं वैदिकं तथा।
विना जप्त्वा तु गायत्रीं तत्सर्वं निष्फलं भवेत्॥ ५

नृसिंह, सूर्य तथा वराह—इन देवताओंका जो भी तान्त्रिक अथवा वैदिक कर्म बिना गायत्रीका जप किये सम्पन्न किया जाता है, वह सब निष्फल हो जाता है॥ ५॥

सर्वे शाक्ता द्विजाः प्रोक्ता न शैवा न च वैष्णवाः।
आदिशक्तिमुपासन्ते गायत्रीं वेदमातरम्॥ ६

सभी द्विज शाक्त कहे गये हैं; शैव और वैष्णव नहीं; क्योंकि सभी द्विज आदिशक्ति वेदमाता गायत्रीकी उपासना करते हैं॥ ६॥

मन्त्रं संशोध्य यत्नेन पुरश्चरणतत्परः।
मन्त्रशोधनपूर्वाङ्गमात्मशोधनमुत्तमम्॥ ७

गायत्रीके जपद्वारा मन्त्रको शुद्ध करके यत्नपूर्वक पुरश्चरणमें तत्पर हो जाना चाहिये। मन्त्रशोधनके पूर्व आत्मशुद्धि कर लेना उत्तम होता है॥ ७॥

आत्मतत्त्वशोधनाय त्रिलक्षं प्रजपेद् बुधः।
अथवा चैकलक्षं तु श्रुतिप्रोक्तेन वर्त्मना॥ ८

आत्मतत्त्वके शोधनके लिये विद्वान् पुरुषको श्रुतियोंके द्वारा बताये गये नियमके अनुसार गायत्री-मन्त्रका तीन लाख अथवा एक लाख जप करना चाहिये॥ ८॥

आत्मशुद्धिं विना कर्तुर्जपहोमादिकाः क्रियाः।
निष्फलास्तास्तु विज्ञेयाः कारणं श्रुतिचोदितम्॥ ९

कर्ताकी आत्मशुद्धिके बिना की गयी जप-होमादि क्रियाएँ निष्फल ही समझी जानी चाहिये; क्योंकि आत्मशुद्धि करना श्रुतिसम्मत है॥ ९॥

तपसा तापयेद्देहं पितॄन्देवांश्च तर्पयेत्।
तपसा स्वर्गमाप्नोति तपसा विन्दते महत्॥ १०

तपस्याके द्वारा अपने शरीरको तपाना चाहिये और पितरों तथा देवताओंको तृप्त रखना चाहिये। तपस्यासे मनुष्य स्वर्ग तथा महान् फल प्राप्त करता है॥ १०॥

क्षत्रियो बाहुवीर्येण तरेदापद आत्मनः।
धनेन वैश्यः शूद्रस्तु जपहोमैर्द्विजोत्तमः॥ ११

क्षत्रियको बाहुबलसे, वैश्यको धनसे, शूद्रको द्विजातियोंकी सेवासे और श्रेष्ठ ब्राह्मणको जप तथा होमसे अपनी आपदाओंका निवारण करना चाहिये॥ ११॥

अतएव तु विप्रेन्द्र तपः कुर्यात्प्रयत्नतः।
शरीरशोषणं प्राहुस्तापसास्तप उत्तमम्॥ १२

शोधयेद्विधिमार्गेण कृच्छ्रचान्द्रायणादिभिः।
अथान्नशुद्धिकरणं वक्ष्यामि शृणु नारद॥ १३

अतएव हे विप्रेन्द्र! प्रयत्नपूर्वक तपस्या करनी चाहिये। तपस्वियोंने शरीर सुखानेको ही उत्तम तप बतलाया है। विहित मार्गसे कृच्छ्र तथा चान्द्रायण आदि व्रतोंके द्वारा शरीरका शोधन करना चाहिये। हे नारद! अब मैं अन्नशुद्धिका प्रकरण बताऊँगा; उसे सुनिये॥ १२-१३॥

अयाचितोञ्छशुक्लाख्यभिक्षावृत्तिचतुष्टयम्।
तान्त्रिकैर्वैदिकैश्चैवं प्रोक्तान्नस्य विशुद्धता॥ १४

अयाचित, उञ्छ, शुक्ल तथा भिक्षा—ये आजीविकाके चार मुख्य साधन हैं। तान्त्रिकों और वैदिकोंके द्वारा इन वृत्तियोंसे प्राप्त अन्नकी विशुद्धता कही गयी है॥ १४॥

भिक्षान्नं शुद्धमानीय कृत्वा भागचतुष्टयम्।
एकं भागं द्विजेभ्यस्तु गोग्रासस्तु द्वितीयकः॥ १५

अतिथिभ्यस्तृतीयस्तु तदूर्ध्वं तु स्वभार्ययोः।
आश्रमस्य यथा यस्य कृत्वा ग्रासविधिं क्रमात्॥ १६

भिक्षासे प्राप्त शुद्ध अन्न लाकर उसके चार भाग करके एक भाग द्विजोंके लिये, दूसरा भाग गोग्रासके रूपमें गौके लिये, तीसरा भाग अतिथियोंके लिये तथा चौथा भाग भार्यासहित अपने लिये व्यवस्थित करे। जिस आश्रममें ग्रासकी जो विधि निश्चित है, उसी क्रमसे उसका पालन करना चाहिये॥ १५-१६॥

आदौ क्षिप्त्वा तु गोमूत्रं यथाशक्ति यथाक्रमम्।
तदूर्ध्वं ग्राससंख्या स्याद्वानप्रस्थगृहस्थयोः॥ १७

आरम्भमें उस अन्नपर शक्ति तथा क्रमके अनुसार गोमूत्रका छींटा देकर वानप्रस्थी तथा गृहस्थाश्रमीको ग्रासकी संख्या निर्धारित करनी चाहिये॥ १७॥

कुक्कुटाण्डप्रमाणं तु ग्रासमानं विधीयते।
अष्टौ ग्रासा गृहस्थस्य वनस्थस्य तदर्धकम्॥ १८
ब्रह्मचारी यथेष्टं च गोमूत्रं विधिपूर्वकम्।
प्रोक्षणं नववारं च षड्वारं च त्रिवारकम्॥ १९
निश्छिद्रं च करं कृत्वा सावित्रीं च तदित्यृचम्।
मन्त्रमुच्चार्य मनसा प्रोक्षणे विधिरुच्यते॥ २०

ग्रासका परिमाण मुर्गीके अण्डेके बराबर होना चाहिये। गृहस्थको आठ ग्रास, वानप्रस्थीको उसका आधा (चार ग्रास) तथा ब्रह्मचारीको यथेष्ट ग्रास लेनेका विधान है। सर्वप्रथम गोमूत्रकी विधि सम्पन्न करके नौ, छः अथवा तीन बार अन्नका प्रोक्षण करना चाहिये। अँगुलियोंको परस्पर छिद्ररहित करके **'तत्सवितुः०'** इस गायत्री-ऋचाके साथ प्रोक्षण होना चाहिये। मन्त्रका मन-ही-मन उच्चारण करते हुए प्रोक्षण करनेकी विधि कही गयी है॥ १८—२०॥

चौरो वा यदि चाण्डालो वैश्यः क्षत्रस्तथैव च।
अन्नं दद्यात्तु यः कश्चिदधमो विधिरुच्यते॥ २१

चोर, चाण्डाल, वैश्य तथा क्षत्रिय—इनमेंसे कोई भी यदि अन्न प्रदान करता है तो अन्न-प्राप्तिकी इस विधिको अधम कहा गया है॥ २१॥

शूद्रान्नं शूद्रसम्पर्कं शूद्रेण च सहाशनम्।
ते यान्ति नरकं घोरं यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥ २२

जो विप्र शूद्रका अन्न खाते हैं, शूद्रके साथ सम्पर्क स्थापित करते हैं तथा शूद्रके साथ भोजन करते हैं; वे तबतक घोर नरकमें वास करते हैं जबतक सूर्य तथा चन्द्रमाका अस्तित्व रहता है॥ २२॥

गायत्रीच्छन्दो मन्त्रस्य यथासंख्याक्षराणि च।
तावल्लक्षाणि कर्तव्यं पुरश्चरणकं तथा॥ २३

गायत्रीछन्दवाले मन्त्रमें अक्षरोंकी जितनी संख्या है, उतने लाख अर्थात् चौबीस लाख जपसे पुरश्चरण सम्पन्न करना चाहिये॥ २३॥

द्वात्रिंशल्लक्षमानं तु विश्वामित्रमतं तथा।
जीवहीनो यथा देहः सर्वकर्मसु न क्षमः॥ २४
पुरश्चरणहीनस्तु तथा मन्त्रः प्रकीर्तितः।

विश्वामित्रका मत है कि बत्तीस लाख जप होना चाहिये। जिस प्रकार प्राणरहित शरीर समस्त कार्योंको करनेमें समर्थ नहीं होता, उसी प्रकार पुरश्चरणसे हीन मन्त्र भी फल देनेमें असमर्थ कहा गया है॥ २४½॥

ज्येष्ठाषाढौ भाद्रपदं पौषं तु मलमासकम्॥ २५
अङ्गारं शनिवारं च व्यतीपातं च वैधृतिम्।
अष्टमीं नवमीं षष्ठीं चतुर्थीं च त्रयोदशीम्॥ २६
चतुर्दशीममावास्यां प्रदोषं च तथा निशाम्।
यमाग्निरुद्रसर्पेन्द्रवसुश्रवणजन्मभम् ॥ २७
मेषकर्कतुलाकुम्भान्मकरं चैव वर्जयेत्।
सर्वाण्येतानि वर्ज्यानि पुरश्चरणकर्मणि॥ २८

ज्येष्ठ, आषाढ़, भाद्रपद, पौष, अधिकमास, मंगलवार, शनिवार, व्यतीपात, वैधृति, अष्टमी, नवमी, षष्ठी, चतुर्थी, त्रयोदशी, चतुर्दशी, अमावास्या, प्रदोष, रात्रि, भरणी, कृत्तिका, आर्द्रा, आश्लेषा, ज्येष्ठा, धनिष्ठा, श्रवण, जन्म-नक्षत्र, मेष, कर्क, तुला, कुम्भ तथा मकर (लग्न)—इन्हें छोड़ देना चाहिये; पुरश्चरणकर्ममें ये सब त्याज्य हैं॥ २५—२८॥

चन्द्रतारानुकूले च शुक्लपक्षे विशेषतः।
पुरश्चरणकं कुर्यान्मन्त्रसिद्धिः प्रजायते॥ २९

चन्द्रमा तथा नक्षत्रोंके अनुकूल रहनेपर और मुख्यरूपसे शुक्ल पक्षमें पुरश्चरण आरम्भ करना चाहिये; ऐसा करनेसे मन्त्रसिद्धि होती है॥ २९॥

स्वस्तिवाचनकं कुर्यान्नान्दीश्राद्धं यथाविधि।
विप्रान्सन्तर्प्य यत्नेन भोजनाच्छादनादिभिः॥ ३०

आरभेत्तु ततः पश्चादनुज्ञानपुरःसरम्।
प्रत्यङ्मुखः शिवस्थाने द्विजश्चान्यतमे जपेत्॥ ३१

काशीपुरी च केदारो महाकालोऽथ नासिकम्।
त्र्यम्बकं च महाक्षेत्रं पञ्च दीपा इमे भुवि॥ ३२

सर्वत्रैव हि दीपस्तु कूर्मासनमिति स्मृतम्।
प्रारम्भदिनमारभ्य समाप्तिदिवसावधि॥ ३३

न न्यूनं नातिरिक्तं च जपं कुर्याद्दिने दिने।
नैरन्तर्येण कुर्वन्ति पुरश्चर्यां मुनीश्वराः॥ ३४

प्रातरारभ्य विधिवज्जपेन्मध्यदिनावधि।
मनःसंहरणं शौचं ध्यानं मन्त्रार्थचिन्तनम्॥ ३५

गायत्रीच्छन्दो मन्त्रस्य यथासंख्याक्षराणि च।
तावल्लक्षाणि कर्तव्यं पुरश्चरणकं तथा॥ ३६

जुहुयात्तद्दशांशेन सघृतेन पयोऽन्धसा।
तिलैः पत्रैः प्रसूनैश्च यवैश्च मधुरान्वितैः॥ ३७

कुर्याद्दशांशतो होमं ततः सिद्धो भवेन्मनुः।
गायत्री चैव संसेव्या धर्मकामार्थमोक्षदा॥ ३८

नित्ये नैमित्तिके काम्ये त्रितये तु परायणः।
गायत्र्यास्तु परं नास्ति इह लोके परत्र च॥ ३९

मध्याह्नमितभुङ् मौनी त्रिःस्नानार्चनतत्परः।
जले लक्षत्रयं धीमाननन्यमानसक्रियः॥ ४०

कर्मणा यो जपेत्पश्चात्कर्मभिः स्वेच्छयापि वा।
यावत्कार्यं न सिध्येत्तु तावत्कुर्याज्जपादिकम्॥ ४१

आरम्भमें विधिपूर्वक स्वस्तिवाचन तथा नान्दीश्राद्ध सम्पन्न करना चाहिये। भोजन तथा वस्त्र आदिसे ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट करके पुनः उनसे आज्ञा लेकर पुरश्चरण आरम्भ करना चाहिये। द्विजको चाहिये कि शिवमन्दिर तथा अन्य किसी भी शिवस्थानपर पूर्वाभिमुख बैठकर जप करे॥ ३०-३१॥

काशीपुरी, केदार, महाकाल, नासिक और महाक्षेत्र त्र्यम्बक—ये पाँच स्थान पृथ्वीलोकमें दीप (सिद्धिस्थान) हैं। इन स्थानोंके अतिरिक्त सभी जगह कूर्मासनको दीप (सिद्धिस्थान) कहा गया है। प्रारम्भके दिनसे लेकर समाप्तिके दिनतक किसी भी दिन न तो अधिक और न तो कम जप करना चाहिये; श्रेष्ठ मुनिगण निरन्तर पुरश्चरण करते रहते हैं॥ ३२—३४॥

प्रातःकालसे आरम्भ करके मध्याह्नतक विधिवत् जप करना चाहिये। जपकी अवधिमें मनपर नियन्त्रण रखे, पवित्रतासे रहे, इष्टदेवताका ध्यान करता रहे तथा मन्त्रके अर्थका चिन्तन करता रहे॥ ३५॥

गायत्रीछन्दवाले मन्त्रमें अक्षरोंकी जितनी संख्या है, उतने लाख अर्थात् चौबीस लाख जपसे पुरश्चरण सम्पन्न करना चाहिये॥ ३६॥

घृत तथा मधुमिश्रित खीर, तिल, बिल्वपत्र, पुष्प तथा यव आदि द्रव्योंसे जपसंख्याके दशांशसे आहुति देनी चाहिये। दसवें अंशसे हवन करना चाहिये, तभी मन्त्र सिद्ध होता है। धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष प्रदान करनेवाली गायत्रीकी सम्यक् उपासना करनी चाहिये॥ ३७-३८॥

नित्य, नैमित्तिक तथा काम्य—इन तीनों कर्मोंमें गायत्री-उपासनामें तत्पर रहना चाहिये। गायत्रीसे बढ़कर इस लोक तथा परलोकमें दूसरा कुछ भी नहीं है॥ ३९॥

[पुरश्चरणकी दूसरी विधि यह भी है] मध्याह्नकालमें अल्प भोजन करे, मौन रहे, तीनों समय स्नान करे और सन्ध्योपासन करे। बुद्धिमान् पुरुषको अन्य वृत्तियोंसे मनको हटाकर जलमें तीन लाख मन्त्रोंका जप करना चाहिये॥ ४०॥

इस प्रकार पहले पुरश्चरणकर्म करनेके पश्चात् अभिलषित काम्य कर्मोंके निमित्त जप करना चाहिये। जबतक कार्यमें सिद्धिकी प्राप्ति न हो जाय, तबतक जप आदि करते रहना चाहिये॥ ४१॥

सामान्यकाम्यकर्मादौ यथावद्विधिरुच्यते।
आदित्यस्योदये स्नात्वा सहस्रं प्रत्यहं जपेत्॥ ४२

आयुरारोग्यमैश्वर्यं धनं च लभते ध्रुवम्।
षण्मासं वा त्रिमासं वा वर्षान्ते सिद्धिमाप्नुयात्॥ ४३

पद्मानां लक्षहोमेन घृताक्तानां हुताशने।
प्राप्नोति निखिलं मोक्षं सिध्यत्येव न संशयः॥ ४४

मन्त्रसिद्धिं विना कर्तुर्जपहोमादिकाः क्रियाः।
काम्यं वा यदि वा मोक्षः सर्वं तन्निष्फलं भवेत्॥ ४५

पञ्चविंशतिलक्षेण दध्ना क्षीरेण वा हुतात्।
स्वदेहे सिध्यते जन्तुर्महर्षीणां मतं तथा॥ ४६

अष्टाङ्गयोगसिद्ध्या च नरः प्राप्नोति यत्फलम्।
तत्फलं सिद्धिमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा॥ ४७

शक्तो वापि त्वशक्तो वा आहारं नियतं चरेत्।
षण्मासात्तस्य सिद्धिः स्याद् गुरुभक्तिरतः सदा॥ ४८

एकाहं पञ्चगव्याशी चैकाहं मारुताशनः।
एकाहं ब्राह्मणान्नाशी गायत्रीजपकृद्भवेत्॥ ४९

स्नात्वा गङ्गादितीर्थेषु शतमन्तर्जले जपेत्।
शतेनापस्ततः पीत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ५०

चान्द्रायणादिकृच्छ्रस्य फलं प्राप्नोति निश्चितम्।
राजा वा यदि वा विप्रस्तपः कुर्यात्स्वके गृहे॥ ५१

गृहस्थो ब्रह्मचारी वा वानप्रस्थोऽथवापि च।
अधिकारपरत्वेन फलं यज्ञादिपूर्वकम्॥ ५२

सामान्य काम्य कर्मोंमें यथावत् विधि कही गयी है। सूर्योदयकालमें स्नान करके प्रतिदिन एक हजार गायत्रीका जप करना चाहिये। ऐसा करनेवाला साधक आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य तथा धन अवश्य प्राप्त करता है और तीन मास, छः मास अथवा एक वर्षके अन्तमें सिद्धि प्राप्त कर लेता है॥ ४२-४३॥

एक लाख घृताक्त कमलपुष्पोंका अग्निमें होम करनेसे मनुष्य सम्पूर्ण वांछित फलको प्राप्त कर लेता है तथा उसे मोक्ष भी सुलभ हो जाता है; इसमें सन्देह नहीं है॥ ४४॥

मन्त्रसिद्धि किये बिना कर्ताकी जप-होम आदि क्रियाएँ, काम्यकर्म अथवा मोक्ष आदि जो भी हो; वह सब निष्फल हो जाता है॥ ४५॥

पचीस लाख गायत्री-जपसे तथा दही अथवा दूधसे हवन करनेसे मनुष्य सिद्धशरीर हो जाता है—ऐसा महर्षियोंका मत है॥ ४६॥

मनुष्य अष्टांगयोगके द्वारा जो फल प्राप्त करता है, वही फल इस जपसे सिद्ध हो जाता है; इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये॥ ४७॥

साधक सशक्त हो अथवा अशक्त, किंतु उसे नियत आहार ग्रहण करना चाहिये। गुरुके प्रति सदा भक्तिपरायण रहते हुए जो जप करता रहता है, उसे छः महीनेमें सिद्धि मिल जाती है॥ ४८॥

गायत्री-जप करनेवालेको एक दिन पंचगव्यके आहारपर, एक दिन वायुके आहारपर तथा एक दिन ब्राह्मणसे प्राप्त अन्नके आहारपर रहना चाहिये॥ ४९॥

गंगा आदि पवित्र नदियोंमें स्नान करके जलके भीतर ही एक सौ जप करना चाहिये। इसके बाद एक सौ मन्त्रोंका उच्चारण करके जलका पान कर लेनेसे मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है। ऐसा करनेवालेको चान्द्रायण और कृच्छ्र आदि व्रतोंका फल निश्चितरूपसे प्राप्त हो जाता है। यदि साधक राजा अथवा ब्राह्मण हो तो उसे अपने घरपर ही तपरूपी पुरश्चरण करना चाहिये। गृहस्थ, ब्रह्मचारी अथवा वानप्रस्थीको भी अपने-अपने अधिकारके अनुसार जपयज्ञ करनेके पश्चात् [पुरश्चरण सम्पन्न हो जानेपर] फल प्राप्त हो जाता है॥ ५०—५२॥

श्रौतस्मार्तादिकं कर्म क्रियते मोक्षकाङ्क्षिभिः।
साग्निकश्च सदाचारो विद्वद्भिश्च सुशिक्षितः॥ ५३

ततः कुर्यात्प्रयत्नेन फलमूलोदकादिभिः।
भिक्षान्नं शुद्धमश्नीयादष्टौ ग्रासान्स्वयं भुजेत्॥ ५४

मोक्षकी अभिलाषा रखनेवाले पुरुष श्रौत और स्मार्त आदि कर्म करते हैं। साधकको फल, मूल तथा जल आदिके आहारपर रहते हुए विद्वानोंके द्वारा सम्यक् शिक्षा प्राप्त करके सदाचारी तथा अग्निहोत्री होकर प्रयत्नपूर्वक जप करना चाहिये। भिक्षामें प्राप्त शुद्ध अन्न ही ग्रहण करे, जिसमें स्वयं मात्र आठ ग्रास ही भोजन करे॥ ५३-५४॥

एवं पुरश्चरणकं कृत्वा मन्त्रसिद्धिमवाप्नुयात्।
देवर्षे यदनुष्ठानाद्दारिद्र्यं विलयं व्रजेत्।
यच्छ्रुत्वापि च पुण्यानां महतीं सिद्धिमाप्नुयात्॥ ५५

हे देवर्षे! इस प्रकार पुरश्चरण करके मनुष्य मन्त्रसिद्धि प्राप्त कर लेता है; इसके अनुष्ठानमात्रसे दरिद्रता समाप्त हो जाती है और इसके श्रवणसे भी मनुष्य पुण्योंकी महती सिद्धि प्राप्त कर लेता है॥ ५५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामेकादशस्कन्धे गायत्रीपुरश्चरणविधिकथनं नामैकविंशोऽध्यायः॥ २१॥



अथ द्वाविंशोऽध्यायः

बलिवैश्वदेव और प्राणाग्निहोत्रकी विधि

श्रीनारायण उवाच

अथातः श्रूयतां ब्रह्मन् वैश्वदेवविधानकम्।
पुरश्चर्याप्रसङ्गेन ममापि स्मृतिमागतम्॥ १

श्रीनारायण बोले—हे ब्रह्मन्! अब वैश्वदेवकी विधि सुनिये। पुरश्चरणके प्रसंगमें यह भी मेरी स्मृतिमें आ गया है॥ १॥

देवयज्ञो ब्रह्मयज्ञो भूतयज्ञस्तथैव च।
पितृयज्ञो मनुष्यस्य यज्ञश्चैव तु पञ्चमः॥ २

देवयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ, भूतयज्ञ, पितृयज्ञ और पाँचवाँ मनुष्ययज्ञ—ये महायज्ञ हैं॥ २॥

पञ्चसूना गृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्करः।
कण्डणी चोदकुम्भश्च तेषां पापस्य शान्तये॥ ३

न चुल्ल्यां नायसे पात्रे न भूमौ न च खर्परे।
वैश्वदेवं प्रकुर्वीत कुण्डे वा स्थण्डिलेऽपि वा॥ ४

गृहस्थके घरमें चूल्हा, चक्की, झाड़ू, ओखली, जलका घड़ा—इन पाँच वस्तुओंसे होनेवाले पापकी शान्तिके लिये यह यज्ञ आवश्यक होता है। चूल्हा, लौहपात्र, पृथ्वी, मिट्टीके बर्तन, कुण्ड अथवा वेदीपर बलिवैश्वदेव नहीं करना चाहिये॥ ३-४॥

न पाणिना न शूर्पेण न च मेध्याजिनादिभिः।
मुखेनोपधमेदग्निं मुखादेव व्यजायत॥ ५

हाथसे, सूपसे अथवा पवित्र मृगचर्म आदिसे धौंककर अग्निको प्रज्वलित नहीं करना चाहिये, अपितु मुखसे फूँककर अग्निको प्रज्वलित करना चाहिये; क्योंकि अग्निका प्राकट्य मुखसे ही हुआ है॥ ५॥

पटकेन भवेद्व्याधिः शूर्पेण धननाशनम्।
पाणिना मृत्युमाप्नोति कर्मसिद्धिर्मुखेन तु॥ ६

कपड़ेसे हवा करनेपर व्याधि, सूपसे हवा करनेपर धननाश तथा हाथसे हवा करनेपर मृत्युकी प्राप्ति होती है। मुखसे फूँककर आग प्रज्वलित करनेसे कार्यकी सिद्धि होती है॥ ६॥

फलैर्दधिघृतैः कुर्यान्मूलशाकोदकादिभिः।
अलाभे येन केनापि काष्ठमूलतृणादिभिः॥ ७

फल, दही, घी, मूल, शाक, जल आदिसे बलिवैश्वदेव करना चाहिये। इन वस्तुओंके उपलब्ध न होनेपर काष्ठ, मूल अथवा तृण आदि जिस किसी भी वस्तुसे उसे कर लेना चाहिये॥ ७॥

जुहुयात्सर्पिषाभ्यक्तं तैलक्षारविवर्जितम्।
दध्यक्तं वा पायसाक्तं तदभावेऽम्भसापि वा॥ ८

घृतसे सिक्त किये हुए हव्य-पदार्थसे हवन करना चाहिये। तैल तथा लवणमिश्रित पदार्थ हवनहेतु वर्जित हैं। दधि-मिश्रित अथवा दूध-मिश्रित और यदि इनका भी अभाव हो तो जल-मिश्रित द्रव्यसे भी हवन सम्पन्न किया जा सकता है॥ ८॥

शुष्कैः पर्युषितैः कुष्ठी उच्छिष्टेन द्विषां वशी।
रुक्षैर्दरिद्रतां याति क्षारं हुत्वा व्रजत्यधः॥ ९

मनुष्य शुष्क अथवा बासी अन्नसे हवन करनेपर कुष्ठी होता है, जूठे अन्नसे हवन करनेपर शत्रुका वशवर्ती हो जाता है, रुक्ष अन्नसे हवन करनेपर दरिद्र होता है तथा क्षार-वस्तुओंसे हवन करनेपर अधोगामी होता है॥ ९॥

अङ्गारान्भस्ममिश्रांस्तु निर्हृत्योत्तरतोऽनलात्।
जुहुयाद्वैश्वदेवं तु न क्षारादिविमिश्रितम्॥ १०

कुछ भस्ममिश्रित अंगारोंको अग्निके उत्तरकी ओरसे निकालकर फेंक दे, तत्पश्चात् क्षार आदिसे रहित वस्तुओंसे वैश्वदेवके लिये हवन करे॥ १०॥

अकृत्वा वैश्वदेवं तु यो भुङ्क्ते मूढधीर्द्विजः।
स मूढो नरकं याति कालसूत्रमवाक्शिराः॥ ११

जो मूर्खबुद्धि द्विज विना बलिवैश्वदेव किये भोजन करता है, वह मूर्ख 'कालसूत्र' नरकमें सिर नीचेकी ओर किये हुए निवास करता है॥ ११॥

शाकं वा यदि वा पत्रं मूलं वा यदि वा फलम्।
सङ्कल्पयेद्यदाहारं तेनाग्नौ जुहुयादपि॥ १२

शाक, पत्र, मूल अथवा फल—जो कुछ भी भोजनके लिये उपलब्ध हों, उसमेंसे संकल्पपूर्वक अग्निमें हवन भी करना चाहिये॥ १२॥

अकृते वैश्वदेवे तु भिक्षौ भिक्षार्थमागते।
उद्धृत्य वैश्वदेवार्थं भिक्षां दत्त्वा विसर्जयेत्॥ १३

वैश्वदेवकृतं दोषं शक्तो भिक्षुर्व्यपोहितुम्।
न तु भिक्षुकृतं दोषं वैश्वदेवो व्यपोहति॥ १४

वैश्वदेव करनेसे पूर्व ही भिक्षाके लिये किसी भिक्षुकके आ जानेपर वैश्वदेवके लिये सामग्री अलग करके शेष सामग्रीमेंसे भिक्षा देकर उसे विदा कर देना चाहिये; क्योंकि पहले वैश्वदेव न करनेसे उत्पन्न दोषको शान्त करनेमें भिक्षुक तो समर्थ है, किंतु भिक्षुकके अपमानजन्य दोषका शमन करनेमें वैश्वदेव समर्थ नहीं हैं॥ १३-१४॥

यतिश्च ब्रह्मचारी च पक्वान्नस्वामिनावुभौ।
तयोरन्नमदत्त्वा तु भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्॥ १५

संन्यासी और ब्रह्मचारी—ये दोनों ही पके हुए अन्नके स्वामी हैं, अतएव इन्हें अन्न प्रदान किये बिना ही भोजन कर लेनेपर मनुष्यको चान्द्रायण व्रत करना चाहिये॥ १५॥

वैश्वदेवानन्तरं च गोग्रासं प्रतिपादयेत्।
तद्विधानं प्रवक्ष्यामि शृणु देवर्षिपूजित॥ १६

बलिवैश्वदेव करनेके पश्चात् गोग्रास निकालना चाहिये। हे देवर्षिपूजित! उसका विधान मैं बता रहा हूँ, आप सुनिये॥ १६॥

सुरभिर्वैष्णवी माता नित्यं विष्णुपदे स्थिता।
गोग्रासं च मया दत्तं सुरभे प्रतिगृह्यताम्॥ १७

गोभ्यश्च नम इत्येव पूजां कृत्वा गवेऽर्पयेत्।
गोग्रासेन तु गोमाता सुरभिः सम्प्रसीदति॥ १८

ततो गोदोहनं कालं तिष्ठेच्चैव गृहाङ्गणे।
अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते॥ १९

स तस्मै दुष्कृतं दत्त्वा पुण्यमादाय गच्छति।
माता पिता गुरुर्भ्राता प्रजा दासः समाश्रितः॥ २०

अभ्यागतोऽतिथिश्चाग्निरेते पोष्या उदाहृताः।
एवं ज्ञात्वा तु यो मोहान्न करोति गृहाश्रमम्॥ २१

तस्य नायं तु न परो लोको भवति धर्मतः।
यत्फलं सोमयागेन प्राप्नोति धनवान्द्विजः॥ २२

सम्यक् पञ्चमहायज्ञैर्दरिद्रस्तेन चाप्नुयात्।
अथ प्राणाग्निहोत्रं तु वक्ष्यामि मुनिपुङ्गव॥ २३

यज्ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुर्जन्ममृत्युजरादिभिः।
परिज्ञानेन मुच्यन्ते नराः पातककिल्विषैः॥ २४

विधिना भुज्यते येन मुच्येत स ऋणत्रयात्।
कुलान्युद्धरते विप्रो नरकानेकविंशतिम्॥ २५

सर्वयज्ञफलप्राप्तिः सर्वलोकेषु गच्छति।
हृत्पुण्डरीकमरणिर्मनो मन्थानसंज्ञकम्॥ २६

वायुरज्ज्वा मथेदग्निं चक्षुरध्वर्युरेव च।
तर्जनीमध्यमाङ्गुष्ठैः प्राणस्यैवाहुतिं क्षिपेत्॥ २७

हे सुरभे! आप सुरभि नामक वैष्णवी माता हैं, आप सदा वैकुण्ठमें विराजमान रहती हैं। आप मेरे द्वारा निवेदित किये गये इस गोग्रासको स्वीकार कीजिये। **गोभ्यः नमः**—ऐसा कहकर गो-पूजन करके वह गोग्रास गौको अर्पित कर दे; क्योंकि गोग्राससे गोमाता सुरभि परम प्रसन्न होती हैं॥ १७-१८॥

तत्पश्चात् गोदोहनकालतक अतिथिकी प्रतीक्षामें घरके आँगनमें स्थित रहना चाहिये; क्योंकि अतिथि निराश होकर जिसके घरसे लौट जाता है, वह अतिथि उसे अपना पाप देकर उसका पुण्य लेकर चला जाता है॥ १९½॥

माता, पिता, गुरु, भाई, प्रजा, सेवक, अपने आश्रयमें रहनेवाला व्यक्ति, अभ्यागत, अतिथि और अग्नि—ये पोष्य कहे गये हैं। ऐसा जानकर जो व्यक्ति मोहवश धर्मपूर्वक गृहस्थाश्रमका पालन नहीं करता, उसका न तो यह लोक बनता है और न परलोक ही बनता है। धनवान् द्विज सोमयज्ञ करनेसे जो फल प्राप्त करता है, वही फल एक दरिद्र पंचमहायज्ञोंके द्वारा सम्यक्‌रूपसे प्राप्त कर लेता है॥ २०-२२½॥

हे मुनिश्रेष्ठ! अब मैं प्राणाग्निहोत्रके विषयमें बताऊँगा, जिसे जानकर मनुष्य जन्म, मृत्यु, जरा आदिसे मुक्त हो जाता है। इसके सम्यक् ज्ञान होनेसे मनुष्य समस्त प्रकारके पापों तथा दोषोंसे छूट जाते हैं॥ २३-२४॥

जो विप्र इस विधिसे भोजन करता है, वह तीनों ऋणों (पितृ-ऋण, देव-ऋण, ऋषि-ऋण)-से मुक्त हो जाता है और अपनी इक्कीस पीढ़ियोंका नरकसे उद्धार कर देता है। उसे सभी यज्ञोंके फल प्राप्त हो जाते हैं तथा वह सभी लोकोंमें जानेका सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है॥ २५½॥

हृदयरूपी कमल अरणि है, मन मन्थन-काष्ठ है, वायु रस्सी है और यह नेत्र अध्वर्यु बनकर अग्निका मन्थन कर रहा है—ऐसी भावना करके तर्जनी, मध्यमा और अँगूठेसे प्राणके लिये आहुति डालनी चाहिये। मध्यमा, अनामिका और अँगूठेसे अपानके लिये आहुति डालनी चाहिये। कनिष्ठिका,

मध्यमानामिकाङ्गुष्ठैरपानस्याहुतिं क्षिपेत्।
कनिष्ठानामिकाङ्गुष्ठैर्व्यानस्य तदनन्तरम्॥ २८

कनिष्ठातर्जन्यङ्गुष्ठैरुदानस्याहुतिं क्षिपेत्।
सर्वाङ्गुलैर्गृहीत्वान्नं समानस्याहुतिं क्षिपेत्॥ २९

स्वाहान्तान्प्रणवाद्यांश्च नाममन्त्रांश्च वै पठेत्।
मुखे चाहवनीयस्तु हृदये गार्हपत्यकः॥ ३०

नाभौ च दक्षिणाग्निः स्यादधः सभ्यावसथ्यकौ।
वाग्घोता प्राण उद्गाता चक्षुरध्वर्युरेव च॥ ३१

मनो ब्रह्मा भवेच्छ्रोत्रमाग्नीध्रस्थान एव च।
अहङ्कारः पशुश्चात्र प्रणवः पय ईरितम्॥ ३२

बुद्धिश्च पत्नी सम्प्रोक्ता यदधीनो गृहाश्रमी।
उरो वेदिस्तु रोमाणि दर्भाः स्युः स्रुक्स्रुवौ करौ॥ ३३

प्राणमन्त्रस्य च ऋषी रुक्मवर्णः क्षुधाग्निकः।
देवतादित्य एवात्र गायत्रीच्छन्द उच्यते॥ ३४

प्राणाय च तथा स्वाहा मन्त्रान्ते कीर्तयेदपि।
इदमादित्यदेवाय न ममेति वदेदपि॥ ३५

अपानमन्त्रस्य तथा गोक्षीरधवलाकृतिः।
श्रद्धाग्निऋषिरेवात्र सोमो वै देवता स्मृता॥ ३६

उष्णिक्छन्दस्तथापानाय स्वाहेत्यपि कीर्तयेत्।
सोमायेदं च न ममेत्यत्रोहः परिकीर्तितः॥ ३७

व्यानमन्त्रस्य चाख्यातोऽम्बुजवर्णहुताशनः।
ऋषिरुक्तो देवताग्निरनुष्टुप् छन्द ईरितम्॥ ३८

व्यानाय च तथा स्वाहाग्नयेदं न ममेत्यपि।
उदानमन्त्रस्य तथा शक्रगोपसवर्णकः॥ ३९

ऋषिरग्निः समाख्यातो वायुर्वै देवता स्मृता।
बृहतीच्छन्द आख्यातमुदानाय च पूर्ववत्॥ ४०

वायवे चेदं न मम एवं चैवोच्चरेद् द्विजः।

अनामिका और अँगूठेसे व्यानके लिये और पुनः तर्जनी तथा अँगूठेसे उदानके लिये आहुति डालनी चाहिये। इसके बाद सम्पूर्ण अँगुलियोंसे अन्न उठाकर समानाग्निके लिये आहुति डालनी चाहिये। इनके आदिमें प्रणव '**ॐ**' तथा अन्तमें '**स्वाहा**' जोड़कर नाममन्त्रोंका उच्चारण करना चाहिये [यथा **ॐ प्राणाय स्वाहा, ॐ अपानाय स्वाहा** आदि]॥ २६-२९½॥

तदनन्तर मुखमें आहवनीय अग्नि, हृदयमें गार्हपत्य अग्नि, नाभिमें दक्षिणाग्नि तथा नीचेके भागमें सभ्याग्नि और आवसथ्यकाग्नि विद्यमान हैं—ऐसा चिन्तन करे। वाणी होता है, प्राण उद्गाता है, नेत्र ही अध्वर्यु है, मन ब्रह्मा है, श्रोत्र आग्नीध्रस्थान है, अहंकार यज्ञ-पशु है और प्रणवको पय कहा गया है। बुद्धिको पत्नी कहा गया है, जिसके अधीन गृहस्थ रहता है। वक्षःस्थल वेदी है, शरीरके रोम कुश हैं तथा दोनों हाथ स्रुक्-स्रुवा हैं॥ ३०—३३॥

सुवर्णके समान कान्तिवाले क्षुधाग्निको इस प्राणमन्त्र (**ॐ प्राणाय स्वाहा**)-का ऋषि, आदित्यको इसका देवता और गायत्रीको इसका छन्द कहा जाता है। '**ॐ प्राणाय स्वाहा**'—इस मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये और मन्त्रके अन्तमें '**इदमादित्यदेवाय न मम**'—यह भी कहना चाहिये॥ ३४-३५॥

गायके दूधके समान श्वेत वर्णवाले श्रद्धाग्नि अपान मन्त्रके ऋषि हैं। सोमको इस मन्त्रका देवता कहा गया है। उष्णिक् इसका छन्द है। '**ॐ अपानाय स्वाहा**' मन्त्रके अन्तमें '**इदं सोमाय न मम**'—ऐसा पूर्वकी भाँति उच्चारण करना चाहिये॥ ३६-३७॥

कमलके समान वर्णवाले आख्यात नामक अग्नि व्यानमन्त्रके ऋषि कहे गये हैं। अग्नि इस मन्त्रके देवता हैं तथा अनुष्टुप् इसका छन्द कहा गया है। '**ॐ व्यानाय स्वाहा**' के अन्तमें '**इदमग्नये न मम**'—यह भी कहना चाहिये। इन्द्रगोपके समान रक्त वर्णवाले अग्नि उदान मन्त्रके ऋषि कहे गये हैं, वायु इसके देवता कहे गये हैं और बृहती इसका छन्द कहा गया है। पूर्वकी भाँति ही '**ॐ उदानाय स्वाहा**', '**इदं वायवे न मम**'—ऐसा द्विजको उच्चारण करना चाहिये॥ ३८—४०½॥

समानवायुमन्त्रस्य विद्युद्वर्णो विरूपकः॥ ४१
ऋषिरग्निः समाख्यातः पर्जन्यो देवता मता।
पङ्क्तिश्छन्दः समाख्यातं समानाय च पूर्ववत्॥ ४२
पर्जन्यायेदमित्युक्त्वा षष्ठीं चैवाहुतिं क्षिपेत्।
वैश्वानरो महानग्निर्ऋषिर्वै परिकीर्तितः॥ ४३
गायत्रीच्छन्द आख्यातं देवस्त्वात्मा भवेदपि।
स्वाहान्तो मन्त्र आख्यातः परमात्मन उच्चरेत्॥ ४४
इदं न मम चेत्येवं जातं प्राणाग्निहोत्रकम्।
एतज्ज्ञात्वा विधिं कृत्वा ब्रह्मभूयाय कल्पते।
प्राणाग्निहोत्रविद्येयं संक्षेपात्कथिता हि ते॥ ४५

विद्युत्के समान वर्णवाले विरूपकसंज्ञक अग्नि समानमन्त्रके ऋषि कहे गये हैं, पर्जन्यको इस मन्त्रका देवता माना गया है और पंक्तिको इसका छन्द कहा गया है। पूर्वकी भाँति '**ॐ समानाय स्वाहा**', '**इदं पर्जन्याय न मम**' इस मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये। एतदनन्तर छठी आहुति डालनी चाहिये। वैश्वानर नामक महान् अग्नि इस मन्त्रके ऋषि कहे गये हैं। आत्माको इसका देवता और गायत्रीको इसका छन्द कहा गया है। '**ॐ परमात्मने स्वाहा**' के बाद '**इदं परमात्मने न मम**' का उच्चारण करना चाहिये। इस प्रकार प्राणाग्निहोत्र सम्पन्न हुआ। [हे नारद!] इस विधिको जानकर तथा उसके अनुसार आचरण करके मनुष्य ब्रह्मभावको प्राप्त होता है। इस प्रकार मैंने इस प्राणाग्निहोत्रविद्याका वर्णन आपसे संक्षेपमें कर दिया॥ ४१—४५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामेकादशस्कन्धे वैश्वदेवादिविधिनिरूपणं नाम द्वाविंशोऽध्यायः॥ २२॥



अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

कृच्छ्रचान्द्रायण, प्राजापत्य आदि व्रतोंका वर्णन

श्रीनारायण उवाच

अमृतापिधानमित्येवमुच्चार्य साधकोत्तमः।
उच्छिष्टभाग्भ्यः पात्रान्नं दद्यादन्ते विचक्षणः॥ १

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] साधकोंमें उत्तम विद्वान् पुरुषको भोजनके पश्चात् '**ॐ अमृतापिधानमसि**'—इस मन्त्रका उच्चारण करके आचमन करना चाहिये और पात्रमें अवशिष्ट अन्न उच्छिष्टभागी पितरोंको अर्पित करना चाहिये। [उस समय इस प्रकार कहना चाहिये] 'मेरे कुलमें जो उत्पन्न हुए हों तथा जो दास-दासियाँ रही हों, साथ ही मुझसे अन्न पानेकी अभिलाषा रखनेवाले हों—वे सब मेरे द्वारा भूमिपर रखे गये इस अन्नसे तृप्त हो जायँ॥ १-२॥

ये के चास्मत्कुले जाता दासदास्योऽन्नकाङ्क्षिणः।
ते सर्वे तृप्तिमायान्तु मया दत्तेन भूतले॥ २

तत्पश्चात् यह बोलकर जल प्रदान करे—रौरव नामक अपवित्र नरकमें पद्म तथा अर्बुद वर्षोंसे यातना भोगते हुए निवास करनेवाले तथा मुझसे जल पानेकी अभिलाषा रखनेवालोंको यह मेरे द्वारा प्रदत्त अक्षय्योदक प्राप्त हो॥ ३॥

रौरवेऽपुण्यनिलये पद्मार्बुदनिवासिनाम्।
अर्थिनामुदकं दत्तमक्षय्यमुपतिष्ठतु॥ ३

पवित्रग्रन्थिमुत्सृज्य मण्डले भुवि निक्षिपेत्।
पात्रे तु निक्षिपेद्यस्तु स विप्रः पङ्क्तिदूषकः॥ ४

उच्छिष्टस्तेन संस्पृष्टः शुना शूद्रेण च द्विजः।
उपोष्य रजनीमेकां पञ्चगव्येन शुध्यति॥ ५

अनुच्छिष्टेन संस्पृष्टैः स्नानमेव विधीयते।
एकाहुतिप्रदानेन कोटियज्ञफलं लभेत्॥ ६

पञ्चभिः पञ्चकोटीनां तदनन्तफलं स्मृतम्।
प्राणाग्निहोत्रवेत्रे यो ह्यन्नदानं करोति च॥ ७

दातुश्चैव तु यत्पुण्यं भोक्तुश्चैव तु यत्फलम्।
प्राप्नुतस्तौ तदेव द्वावुभौ तौ स्वर्गगामिनौ॥ ८

सपवित्रकरो भुङ्क्ते यस्तु विप्रो विधानतः।
ग्रासे ग्रासे फलं तस्य पञ्चगव्यसमं भवेत्॥ ९

पूजाकालत्रये नित्यं जपस्तर्पणमेव च।
होमो ब्राह्मणभुक्तिश्च पुरश्चरणमुच्यते॥ १०

अधःशयानो धर्मात्मा जितक्रोधो जितेन्द्रियः।
लघुमिष्टहिताशी च विनीतः शान्तचेतसा॥ ११

नित्यं त्रिषवणस्नायी नित्यं स शुभभाषणः।
स्त्रीशूद्रपतितव्रात्यनास्तिकोच्छिष्टभाषणम्॥ १२

चाण्डालभाषणं चैव न कुर्यान्मुनिसत्तम।
नत्वा नैव च भाषेत जपहोमार्चनादिषु॥ १३

मैथुनस्य तथालापं तद्गोष्ठीमपि वर्जयेत्।
कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा॥ १४

सर्वत्र मैथुनत्यागो ब्रह्मचर्यं प्रचक्षते।
राज्ञश्चैव गृहस्थस्य ब्रह्मचर्यमुदाहृतम्॥ १५

[भोजनके समय अँगुलीमें पड़े हुए] पवित्रककी ग्रन्थि खोलकर पृथ्वीपर रख दे। जो विप्र उसे पात्रमें ही रख देता है, वह पंक्तिदूषक कहा जाता है॥ ४॥

यदि उच्छिष्ट द्विजका किसी उच्छिष्टसे या कुत्ते अथवा शूद्रसे स्पर्श हो जाता है, तो वह द्विज एक रात उपवास करके पुनः पंचगव्य ग्रहण करनेसे शुद्ध हो जाता है और अनुच्छिष्टसे स्पर्श होनेपर केवल स्नान करनेका विधान है। प्राणाग्निमें एक आहुति देनेसे करोड़ यज्ञका फल मिलता है, पाँच आहुतियाँ देनेसे पाँच करोड़ यज्ञोंका अनन्त फल प्राप्त होना बताया गया है। जो मनुष्य प्राणाग्निहोत्रवेत्ताको अन्नका दान करता है, उस दाताको जो पुण्य होता है तथा भोक्ताको जो फल मिलता है, वह उनको समानरूपमें प्राप्त होता है। वे दोनों ही स्वर्ग प्राप्त करते हैं॥ ५—८॥

जो विप्र हाथमें पवित्रक धारण करके विधिपूर्वक भोजन ग्रहण करता है, उसे प्रत्येक ग्रासमें पंचगव्य-प्राशनके समान फल प्राप्त होता है॥ ९॥

पूजाके तीनों कालों (प्रातः, मध्याह्न, सायं)-में प्रतिदिन जप, तर्पण, होम, ब्राह्मणभोजन [तथा मार्जन]-को पुरश्चरण कहा जाता है। वह साधक नीचे भूमिपर शयन करे, धर्मपरायण रहे, क्रोधपर तथा इन्द्रियोंपर नियन्त्रण रखे, अल्प; मधुर तथा हितकर पदार्थोंको ग्रहण करे, शान्त मनसे विनम्रतापूर्वक रहे। नित्य तीनों समय स्नान करे तथा सदा सुन्दर वाणी बोले। हे मुनिवर! स्त्री, शूद्र, पतित, व्रात्य, नास्तिक, जूठे मुखवाले व्यक्ति तथा चाण्डालसे वार्तालाप नहीं करना चाहिये। जप, होम, पूजन आदिके समय किसीको नमस्कार करके बातचीत नहीं करनी चाहिये॥ १०—१३॥

मन, वाणी तथा कर्मसे सभी स्थितियोंमें सर्वदा मैथुनसम्बन्धी बातचीत तथा उससे सम्बन्धित गोष्ठीका भी त्याग कर देना चाहिये। सभी तरहसे मैथुनका त्याग ही ब्रह्मचर्य कहा जाता है। राजा तथा गृहस्थके लिये भी ब्रह्मचर्यपालन बताया गया है॥ १४-१५॥

ऋतुस्नातेषु दारेषु सङ्गतिर्या विधानतः।
संस्कृतायां सवर्णायामृतुं दृष्ट्वा प्रयत्नतः॥ १६

रात्रौ तु गमनं कार्यं ब्रह्मचर्यं हरेन्न तत्।
ऋणत्रयमसंशोध्य त्वनुत्पाद्य सुतानपि॥ १७

तथा यज्ञाननिष्ट्वा च मोक्षमिच्छन्व्रजत्यधः।
अजागलस्य यज्जन्म तज्जन्म श्रुतिचोदितम्॥ १८

अतः कार्यं तु विप्रेन्द्र ऋणत्रयविशोधनम्।
ते देवानामृषीणां च पितॄणामृणिनस्तथा॥ १९

ऋषिभ्यो ब्रह्मचर्येण पितृभ्यस्तु तिलोदकैः।
मुच्येद्यज्ञेन देवेभ्यः स्वाश्रमं धर्ममाचरेत्॥ २०

क्षीराहारी फलाशी वा शाकाशी वा हविष्यभुक्।
भिक्षाशी वा जपेद्विद्वान्कृच्छ्रचान्द्रायणादिकृत्॥ २१

लवणं क्षारमम्लं च गृञ्जनं कांस्यभोजनम्।
ताम्बूलं च द्विभुक्तं च दुष्टवासः प्रमत्तनम्॥ २२

श्रुतिस्मृतिविरोधं च जपं रात्रौ विवर्जयेत्।
वृथा न कालं गमयेद् द्यूतस्त्रीस्वापवादतः॥ २३

गमयेद्देवतापूजास्तोत्रागमविलोकनैः।
भूशय्या ब्रह्मचारित्वं मौनचर्या तथैव च॥ २४

नित्यं त्रिषवणस्नानं शूद्रकर्मविवर्जनम्।
नित्यपूजा नित्यदानमानन्दस्तुतिकीर्तनम्॥ २५

नैमित्तिकार्चनं चैव विश्वासो गुरुदेवयोः।
जपनिष्ठस्य धर्मा ये द्वादशैते सुसिद्धिदाः॥ २६

नित्यं सूर्यमुपस्थाय तस्य चाभिमुखो जपेत्।
देवताप्रतिमादौ वा वह्नौ वाभ्यर्च्य तन्मुखः॥ २७

ऋतुस्नान की हुई अपनी भार्याके साथ ही विधिपूर्वक सहवास करना चाहिये। अपने समान वर्णवाली पाणि-गृहीती भार्याका ऋतुकाल उपस्थित जानकर ही प्रयत्नपूर्वक रात्रिमें उसके साथ गमन करना चाहिये। उससे ब्रह्मचर्यका नाश नहीं होता है। तीनों ऋणोंका मार्जन, पुत्रोंकी उत्पत्ति तथा पंचमहायज्ञादि किये बिना ही मोक्षकी कामना करनेवाले व्यक्तिका अध:पतन हो जाता है। बकरीके गलेके स्तनकी भाँति उसका जन्म श्रुतियोंद्वारा निष्फल बताया गया है॥ १६—१८॥

अतएव हे विप्रेन्द्र! तीनों ऋणोंसे मुक्त होनेका प्रयत्न करना चाहिये। मनुष्य देवताओं, ऋषियों तथा पितरोंके ऋणी होते हैं। मनुष्य ब्रह्मचर्यद्वारा ऋषियोंके, तिलोदकदानसे पितरोंके तथा यज्ञानुष्ठानसे देवताओंके ऋणसे मुक्त हो जाता है। मनुष्यको चाहिये कि अपने-अपने आश्रमसम्बन्धी धर्मोंका पालन करे॥ १९-२०॥

कृच्छ्रचान्द्रायण आदि व्रत करनेवाले विद्वान्‌को दुग्ध, फल, शाक, हविष्यान्न तथा भिक्षान्नके आहारपर रहते हुए जप करना चाहिये। उसे लवण, क्षार, अम्ल, गाजर, कांस्यपात्रमें भोजन, ताम्बूल, दो बार भोजन, दुष्टोंकी संगति, उन्मत्तता, श्रुति-स्मृतिके विरुद्ध व्यवहार तथा रातमें जप आदिका त्याग कर देना चाहिये। जुआ खेलने, स्त्रीसंग करने तथा निन्दा आदिमें समयको व्यर्थ व्यतीत नहीं करना चाहिये; अपितु देवताओंकी पूजा, स्तुति तथा शास्त्रावलोकनमें ही समय व्यतीत करना चाहिये॥ २१—२३½॥

भूमिपर शयन, ब्रह्मचर्यपालन, मौनधारण, प्रतिदिन त्रिकाल स्नान, नीच कर्मोंसे विरत रहना, प्रतिदिन पूजा करना, दान देना, आनन्दित रहना, स्तुति करना, कीर्तनमें तत्पर रहना, नैमित्तिक पूजन तथा गुरु और देवतामें विश्वास रखना—जपपरायण पुरुषके लिये महान् सिद्धि प्रदान करनेवाले ये बारह धर्म हैं॥ २४—२६॥

प्रतिदिन सूर्योपस्थान करके उनके सम्मुख होकर जप करना चाहिये। देवप्रतिमा आदि अथवा अग्निमें सूर्यका अभ्यर्चन करके उनके सम्मुख स्थित होकर

स्नानपूजाजपध्यानहोमतर्पणतत्परः ।
निष्कामो देवतायां च सर्वकर्मनिवेदकः॥ २८

एवमादींश्च नियमान्पुरश्चरणकृच्चरेत्।
तस्माद् द्विजः प्रसन्नात्मा जपहोमपरायणः॥ २९

तपस्यध्ययने युक्तो भवेद्भूतानुकम्पकः।
तपसा स्वर्गमाप्नोति तपसा विन्दते महत्॥ ३०

तपोयुक्तस्य सिध्यन्ति कर्माणि नियतात्मनः।
विद्वेषणं संहरणं मारणं रोगनाशनम्॥ ३१

येन येनाथ ऋषिणा यदर्थं देवताः स्तुताः।
स स कामः समृद्ध्येत तेषां तेषां तथा तथा॥ ३२

तानि कर्माणि वक्ष्यामि विधानानि च कर्मणाम्।
पुरश्चरणमादौ च कर्मणां सिद्धिकारकम्॥ ३३

स्वाध्यायाभ्यसनस्यादौ प्राजापत्यं चरेद् द्विजः।
केशश्मश्रुलोमनखान् वापयित्वा ततः शुचिः॥ ३४

तिष्ठेदहनि रात्रौ तु शुचिरासीत वाग्यतः।
सत्यवादी पवित्राणि जपेद्व्याहृतयस्तथा॥ ३५

ॐकाराद्यास्तु ता जप्त्वा सावित्रीं च तदित्यृचम्।
आपो हि ष्ठेति सूक्तं च पवित्रं पापनाशनम्॥ ३६

पुनन्त्यः स्वस्तिमत्यश्च पावमान्यस्तथैव च।
सर्वत्रैतत्प्रयोक्तव्यमादावन्ते च कर्मणाम्॥ ३७

आसहस्रादाशताद्वाप्यादशादथवा जपेत्।
ॐकारं व्याहृतीस्तिस्रः सावित्रीमथवायुतम्॥ ३८

तर्पयित्वाद्भिराचार्यानृषींश्छन्दांसि देवताः।
अनार्येण न भाषेत शूद्रेणापि न गर्हितैः॥ ३९

नापि चोदक्यया वध्वा पतितैर्नान्त्यजैर्नृभिः।
न देवब्राह्मणद्विष्टैर्नाचार्यगुरुनिन्दकैः॥ ४०

जप करना चाहिये। इस प्रकार स्नान, पूजा, जप, ध्यान, होम तथा तर्पणमें तत्पर रहना चाहिये और निष्काम होकर अपने सम्पूर्ण कर्म देवताको समर्पित कर देने चाहिये। पुरश्चरण करनेवाले व्यक्तिको चाहिये कि वह इन प्रारम्भिक नियमोंका पालन अवश्य करे। अतएव द्विजको प्रसन्न मनसे जप तथा होममें लगे रहना चाहिये। उसे तपस्या तथा अध्ययनमें निरत और प्राणियोंके प्रति दयाभाववाला होना चाहिये॥ २७—२९½ ॥

मनुष्य तपस्यासे स्वर्ग प्राप्त करता है तथा तपस्यासे महान् फल पाता है। संयत आत्मावाला तपपरायण पुरुष विद्वेषण, संहरण, मारण तथा रोगशमन आदि सभी कार्योंको सिद्ध कर लेता है॥ ३०-३१ ॥

जिस-जिस ऋषिने जिस-जिस प्रयोजनके लिये देवताओंकी स्तुति की, उन सभीकी वह-वह कामना सिद्ध हुई। अब उन कर्मों तथा उनके विधानोंके विषयमें बताऊँगा। कर्मोंके आरम्भके पूर्व पुरश्चरण कर लेना कर्मसिद्धिका कारक होता है॥ ३२-३३ ॥

स्वाध्यायाभ्यसन अर्थात् गायत्रीमन्त्रके पुरश्चरणमें द्विजको पहले प्राजापत्यव्रत करना चाहिये। इसके लिये सिर तथा दाढ़ीके केश और नखोंको कटाकर शुद्ध हो जाय। इसके बाद एक दिन-रात शरीरकी पवित्रता बनाये रखे। वाणीसे पवित्र रहे। सत्य भाषण करे और पवित्र मन्त्रोंका जप करे। गायत्रीकी व्याहृतियोंके आदिमें ॐकार लगाकर '**तत्सवितुः०**' इस सावित्री ऋचाका जप करना चाहिये। '**आपो हि ष्ठा०**' यह सूक्त पवित्र तथा पापनाशक है। इसी प्रकार '**पुनन्त्यः स्वस्तिमत्यश्च०**' एवं '**पावमान्यः०**'—इन पवित्र मन्त्रोंका प्रयोग सभी कर्मोंके आदि तथा अन्तमें सर्वत्र करना चाहिये। शान्तिके लिये एक हजार, एक सौ अथवा दस बार इनका जप कर लेना चाहिये। अथवा ॐकार और तीनों व्याहृतियोंसहित गायत्रीमन्त्रका दस हजार जप करना चाहिये॥ ३४—३८ ॥

आचार्यों, ऋषियों, छन्दों तथा देवताओंका जलसे तर्पण करना चाहिये। अनार्य, शूद्र, निन्द्य पुरुषों, ऋतुमती स्त्री, पुत्रवधू, पतितजनों, चाण्डालों, देवता-ब्राह्मणसे द्वेष रखनेवाले, आचार्य तथा गुरुकी निन्दा करनेवाले और माता-पितासे द्वेष रखनेवाले

न मातृपितृविद्विष्टैर्नावमन्येत कञ्चन।
कृच्छ्राणामेष सर्वेषां विधिरुक्तोऽनुपूर्वशः॥ ४१

प्राजापत्यस्य कृच्छ्रस्य तथा सान्तपनस्य च।
पराकस्य च कृच्छ्रस्य विधिश्चान्द्रायणस्य च॥ ४२

पञ्चभिः पातकैः सर्वैर्दुष्कृतैश्च प्रमुच्यते।
तप्तकृच्छ्रेण सर्वाणि पापानि दहति क्षणात्॥ ४३

त्रिभिश्चान्द्रायणैः पूतो ब्रह्मलोकं समश्नुते।
अष्टभिर्देवताः साक्षात्पश्येत वरदास्तदा॥ ४४

छन्दांसि दशभिर्ज्ञात्वा सर्वान्कामान्समश्नुते।
त्र्यहं प्रातस्त्र्यहं सायं त्र्यहमद्यादयाचितम्॥ ४५

त्र्यहं परं च नाश्नीयात्प्राजापत्यं चरेद् द्विजः।
गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम्॥ ४६

एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रं सान्तपनं स्मृतम्।
एकैकं ग्रासमश्नीयादहानि त्रीणि पूर्ववत्॥ ४७

त्र्यहं चोपवसेदित्थमतिकृच्छ्रं चरेद् द्विजः।
एवमेव त्रिभिर्युक्तं महासान्तपनं स्मृतम्॥ ४८

तप्तकृच्छ्रं चरन्विप्रो जलक्षीरघृतानिलान्।
प्रतित्र्यहं पिबेदुष्णान्सकृत्स्नायी समाहितः॥ ४९

नियतस्तु पिबेदापः प्राजापत्यविधिः स्मृतः।
यतात्मनोऽप्रमत्तस्य द्वादशाहमभोजनम्॥ ५०

व्यक्तियोंके साथ बातचीत न करे तथा किसीका भी अपमान न करे। सम्पूर्ण कृच्छ्र व्रतोंकी यही विधि है, जिसका आनुपूर्वी वर्णन मैंने कर दिया॥ ३९—४१॥

अब कृच्छ्र, प्राजापत्य, सान्तपन, पराक, चान्द्रायण आदि कृच्छ्र व्रतोंकी विधि कही जाती है। इसके प्रभावसे मनुष्य पाँच प्रकारके पातकों तथा समस्त दुष्कृत्योंसे मुक्त हो जाता है। तप्तकृच्छ्रव्रतसे मनुष्यके सम्पूर्ण पाप क्षणभरमें भस्म हो जाते हैं॥ ४२-४३॥

तीन चान्द्रायणव्रतोंको कर लेनेसे मनुष्य पवित्र होकर ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है, आठ चान्द्रायणव्रतोंसे वर प्रदान करनेवाले देवताओंका साक्षात् दर्शन प्राप्त कर लेता है और दस चान्द्रायणव्रतोंके द्वारा वेदोंका ज्ञान प्राप्त करके अपने सभी मनोरथोंको पूर्ण कर लेता है॥ ४४½॥

तीन दिन प्रातःकाल, तीन दिन सायंकाल तथा तीन दिन बिना माँगे प्राप्त हुआ भोज्यपदार्थ ग्रहण करे। इसके बाद तीन दिनोंतक कुछ भी नहीं ग्रहण करना चाहिये; इस प्रकारसे द्विजको प्राजापत्यव्रत करना चाहिये॥ ४५½॥

प्रथम दिन गोमूत्र, गोमय, गोदुग्ध, दधि, घृत तथा कुशोदकको एकमें सम्मिश्रित करके पी ले; फिर दूसरे दिन उपवास करे—यह कृच्छ्रसान्तपनव्रत कहा जाता है॥ ४६½॥

तीन दिनोंतक एक-एक ग्रास प्रातःकाल तथा तीन दिनोंतक एक-एक ग्रास सायंकाल और तीन दिनोंतक अयाचित रूपसे एक-एक ग्रास ग्रहण करना चाहिये और तीन दिनोंतक उपवास करना चाहिये; इस प्रकार द्विजको अतिकृच्छ्रव्रत करना चाहिये। इस व्रतके नियमोंका तीन गुने रूपसे पालन करना महासान्तपनव्रत कहा गया है॥ ४७-४८॥

इसी प्रकार तप्तकृच्छ्रव्रतका अनुष्ठान करनेवाले विप्रको चाहिये कि समाहितचित्त होकर तीन-तीन दिनोंतक क्रमसे उष्ण जल, उष्ण दुग्ध, उष्ण घृत तथा उष्ण वायुके आहारपर रहे और एक बार स्नान करे॥ ४९॥

नियमपूर्वक केवल जल पीकर रहना प्राजापत्यव्रतकी विधि कही गयी है। मनको अधिकारमें

पराको नाम कृच्छ्रोऽयं सर्वपापप्रणोदनः।
एकैकं तु ग्रसेत्पिण्डं कृष्णे शुक्ले च वर्धयेत्॥ ५१

अमावास्यां न भुञ्जीत एवं चान्द्रायणे विधिः।
उपस्पृश्य त्रिषवणमेतच्चान्द्रायणं स्मृतम्॥ ५२

चतुरः प्रातरश्नीयाद्विप्रः पिण्डान्कृताह्निकः।
चतुरोऽस्तमिते सूर्ये शिशुचान्द्रायणं स्मृतम्॥ ५३

अष्टावष्टौ समश्नीयात्पिण्डान्मध्यन्दिने स्थिते।
नियतात्मा हविष्यस्य यतिचान्द्रायणं व्रतम्॥ ५४

एतद्रुद्रास्तथादित्या वसवश्च चरन्ति हि।
सर्वे कुशलिनो देवा मरुतश्च भुवा सह॥ ५५

एकैकं सप्तरात्रेण पुनाति विधिवत्कृतम्।
त्वगसृक्पिशितास्थीनि मेदोमज्जावसास्तथा॥ ५६

एकैकं सप्तरात्रेण शुध्यत्येव न संशयः।
एभिर्व्रतैर्विपूतात्मा कर्म कुर्वीत नित्यशः॥ ५७

एवं शुद्धस्य कर्माणि सिध्यन्त्येव न संशयः।
शुद्धात्मा कर्म कुर्वीत सत्यवादी जितेन्द्रियः॥ ५८

इष्टान्कामांस्ततः सर्वान्सम्प्राप्नोति न संशयः।
त्रिरात्रमेवोपवसेद्रहितः सर्वकर्मणा॥ ५९

त्रीणि नक्तानि वा कुर्यात्ततः कर्म समारभेत्।
एवं विधानं कथितं पुरश्चर्याफलप्रदम्॥ ६०

रखना, प्रमत्तकी भाँति आचरण न करना तथा बारह दिनोंतक उपवास करना—यही पराक नामक कृच्छ्रव्रत है; यह समस्त पापोंको नष्ट करनेवाला है॥ ५०½॥

[अब चान्द्रायणव्रतकी विधि कही जा रही है]—कृष्णपक्षमें एक-एक ग्रास कम करके तथा शुक्लपक्षमें एक-एक ग्रास बढ़ाकर आहार ग्रहण करना चाहिये तथा अमावास्याके दिन भोजन नहीं करना चाहिये—इस प्रकारकी विधिका चान्द्रायण-व्रतमें पालन करना चाहिये। इसमें तीनों समय स्नान करनेका विधान है। इन सभी नियमोंका पालन चान्द्रायणव्रत कहा गया है॥ ५१-५२॥

प्रात:काल स्नान आदि आह्निक कृत्य सम्पन्नकर विप्र प्रातः चार ग्रास भोजन करे तथा सूर्यास्त हो जानेपर भी चार ही ग्रास ग्रहण करे, इसे शिशुचान्द्रायण-व्रत कहा गया है। संयमित आत्मावाले पुरुषको [मासपर्यन्त] दिनके मध्याह्नकालमें हविष्यके आठ-आठ ग्रास ग्रहण करने चाहिये। इसे यतिचान्द्रायणव्रत कहते हैं॥ ५३-५४॥

रुद्र, आदित्य, वसुगण, मरुद्गण, पृथ्वी तथा सभी कुशल देवता इस व्रतका अनुष्ठान सदैव करते रहते हैं। विधि-विधानसे किया गया यह व्रत सात रात्रिमें शरीरकी त्वचा, रक्त, मांस, अस्थि, मेद, मज्जा तथा वसा—इन धातुओंको एक-एक करके पवित्र कर देता है; इस प्रकार सात रातोंमें वह व्रती शुद्ध हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं है॥ ५५-५६½॥

अतएव व्रतीको चाहिये कि इन व्रतोंके द्वारा पवित्र मनवाला होकर सदा सत्कर्म करता रहे। इस प्रकार शुद्धिको प्राप्त हुए मनुष्यके सभी कार्य सिद्ध हो जाते हैं; इसमें कोई संशय नहीं है। मनुष्यको विशुद्धात्मा, सत्यवादी तथा जितेन्द्रिय होकर कर्म करना चाहिये; तभी वह अपनी सम्पूर्ण अभिलषित कामनाओंकी प्राप्ति करता है, इसमें सन्देह नहीं है॥ ५७-५८½॥

सम्पूर्ण कर्मोंसे अनासक्त होकर पहले तीन दिन उपवास रखे अथवा तीन दिन केवल रातमें भोजन करे; इसके बाद कार्यका आरम्भ करे। यह विधान पुरश्चरणका फल प्रदान करनेवाला कहा गया है। हे देवर्षे! इस प्रकार मैंने सम्पूर्ण वांछित

गायत्र्याश्च पुरश्चर्या सर्वकामप्रदायिनी।
कथिता तव देवर्षे महापापविनाशिनी॥ ६१

फल प्रदान करनेवाले तथा महान् पापोंका नाश करनेवाले गायत्रीपुरश्चरणका वर्णन आपसे कर दिया॥ ५९—६१॥

आदौ कुर्याद् व्रतं मन्त्री देहशोधनकारकम्।
पुरश्चर्यां ततः कुर्यात्समस्तफलभाग्भवेत्॥ ६२

मन्त्रसाधकको आरम्भमें शरीरकी शुद्धि करनेवाला व्रत करना चाहिये। इसके बाद ही पुरश्चरण प्रारम्भ करना चाहिये, तभी साधक सम्पूर्ण फलका भागी होता है॥ ६२॥

इति ते कथितं गुह्यं पुरश्चर्याविधानकम्।
एतत्परस्मै नो वाच्यं श्रुतिसारं यतः स्मृतम्॥ ६३

[हे नारद!] इस प्रकार मैंने पुरश्चरणका यह गोपनीय विधान आपको बता दिया है। इसे दूसरोंको नहीं बताना चाहिये; क्योंकि यह श्रुतियोंका सार कहा गया है॥ ६३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायामेकादशस्कन्धे तप्तकृच्छ्रादिलक्षणवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः॥ २३॥

~~०~~

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

कामना-सिद्धि और उपद्रव-शान्तिके लिये गायत्रीके विविध प्रयोग

नारद उवाच

नारायण महाभाग गायत्र्यास्तु समासतः।
शान्त्यादिकान्प्रयोगांस्तु वदस्व करुणानिधे॥ १

नारदजी बोले—हे महाभाग! हे नारायण! हे करुणा-निधान! अब आप गायत्रीके शान्ति आदिसे सम्बद्ध प्रयोगोंका संक्षेपमें वर्णन कीजिये॥ १॥

श्रीनारायण उवाच

अतिगुह्यमिदं पृष्टं त्वया ब्रह्मतनूद्भव।
न कस्यापि च वक्तव्यं दुष्टाय पिशुनाय च॥ २

श्रीनारायण बोले—हे ब्रह्मापुत्र! आपने यह अत्यन्त गोपनीय बात पूछी है; किसी भी दुष्ट तथा चुगलखोरको इसे नहीं बताना चाहिये॥ २॥

अथ शान्तिः पयोऽक्ताभिः समिद्भिर्जुहुयाद् द्विजः।
शमीसमिद्भिः शाम्यन्ति भूतरोगग्रहादयः॥ ३

आर्द्राभिः क्षीरवृक्षस्य समिद्भिर्जुहुयाद् द्विजः।
जुहुयाच्छकलैर्वापि भूतरोगादिशान्तये॥ ४

हे नारद! अब मैं शान्तिका वर्णन करता हूँ। द्विजको दुग्धमिश्रित समिधाओंसे हवन करना चाहिये। शमीकी समिधाओंसे भूत, रोग, ग्रह आदि शान्त हो जाते हैं। द्विजको चाहिये कि भूत, रोग आदिकी शान्तिके लिये क्षीरवृक्ष (पीपल, गूलर, पाकड़, वट आदि)-की गीली समिधाओंसे हवन करे अथवा उन क्षीरवृक्षोंकी समिधाओंके खण्डोंसे हवन करे॥ ३-४॥

जलेन तर्पयेत्सूर्यं पाणिभ्यां शान्तिमाप्नुयात्।
जानुदघ्ने जले जप्त्वा सर्वान्दोषाञ्छमं नयेत्॥ ५

कण्ठदघ्ने जले जप्त्वा मुच्येत्प्राणान्तिकाद्भयात्।
सर्वेभ्यः शान्तिकर्मभ्यो निमज्याप्सु जपः स्मृतः॥ ६

दोनों हाथोंमें जल लेकर सूर्यका तर्पण करे और इससे शान्ति प्राप्त करे। जानुपर्यन्त जलमें स्थित होकर गायत्रीका जप करके अपने सभी दोषोंको शान्त करे। कण्ठपर्यन्त जलमें स्थित होकर जप करनेसे मनुष्य प्राणका अन्त करनेवाले भयसे भी मुक्त हो जाता है। सभी प्रकारके शान्तिकर्मोंके लिये जलमें निमग्न होकर गायत्रीका जप करना बताया गया है॥ ५-६॥

सौवर्णे राजते वापि पात्रे ताम्रमयेऽपि वा।
क्षीरवृक्षमये वापि निर्व्रणे मृण्मयेऽपि वा॥ ७

सहस्रं पञ्चगव्येन हुत्वा सुज्वलितेऽनले।
क्षीरवृक्षमयैः काष्ठैः शेषं सम्पादयेच्छनैः॥ ८

प्रत्याहुतिं स्पृशञ्जप्त्वा सहस्रं पात्रसंस्थितम्।
तेन तं प्रोक्षयेद्देशं कुशैर्मन्त्रमनुस्मरन्॥ ९

बलिं किरंस्ततस्तस्मिन्ध्यायेत्तु परदेवताम्।
अभिचारसमुत्पन्ना कृत्या पापं च नश्यति॥ १०

देवभूतपिशाचाद्यान् यद्येवं कुरुते वशे।
गृहं ग्रामं पुरं राष्ट्रं सर्वं तेभ्यो विमुच्यते॥ ११

निखने मुच्यते तेभ्यो लिखने मध्यतोऽपि च।
मण्डले शूलमालिख्य पूर्वोक्ते च क्रमेऽपि वा॥ १२

अभिमन्त्र्य सहस्रं तन्निखनेत्सर्वशान्तये।
सौवर्णं राजतं वापि कुम्भं ताम्रमयं च वा॥ १३

मृण्मयं वा नवं दिव्यं सूत्रवेष्टितमव्रणम्।
स्थण्डिले सैकते स्थाप्य पूरयेन्मन्त्रविज्जलैः॥ १४

दिग्भ्य आहृत्य तीर्थानि चतसृभ्यो द्विजोत्तमैः।
एलाचन्दनकर्पूरजातीपाटलमल्लिकाः ॥ १५

बिल्वपत्रं तथा क्रान्तां देवीं व्रीहियवांस्तिलान्।
सर्षपान्क्षीरवृक्षाणां प्रवालानि च निक्षिपेत्॥ १६

सर्वाण्यभिविधायैवं कुशकूर्चसमन्वितम्।
स्नातः समाहितो विप्रः सहस्रं मन्त्रयेद् बुधः॥ १७

[अब दूसरा प्रयोग कहा जाता है—] सोना, चाँदी, ताँबा, मिट्टी अथवा दूधवाले वृक्षकी लकड़ीके छिद्ररहित पात्रमें रखे हुए पंचगव्यद्वारा प्रज्वलित अग्निमें क्षीरवाले वृक्षकी समिधाओंसे एक हजार गायत्रीमन्त्रका उच्चारण करके हवन करे। यह कार्य धीरे-धीरे सम्पन्न करे। प्रत्येक आहुतिके समय पंचगव्यका स्पर्श करते हुए हवन करके पात्रमें अवशिष्ट पंचगव्यको हजार बार गायत्रीमन्त्रसे अभिमन्त्रितकर मन्त्रका स्मरण करते हुए कुशोंद्वारा पंचगव्यसे वहाँके स्थानका प्रोक्षण करे॥ ७—९॥

तदनन्तर बलि-द्रव्य विकीर्ण करते हुए इष्ट देवताका ध्यान करना चाहिये। ऐसा करनेसे अभिचार कर्मोंसे उत्पन्न कृत्या तथा पापका नाश हो जाता है। यदि कोई ऐसा करता है तो देवता, भूत तथा पिशाच उसके वशीभूत हो जाते हैं। साथ ही उसके इस कर्मसे गृह, ग्राम, पुर तथा राष्ट्र—ये सब उनके अनिष्टकारी प्रभावसे मुक्त हो जाते हैं॥ १०-११॥

भूमिपर चतुष्कोणमण्डल बनाकर उसके मध्य भागमें गायत्रीमन्त्र पढ़कर त्रिशूल गाड़ दे। इससे भी उन पिशाचादिसे मनुष्य मुक्ति प्राप्त कर लेता है। अथवा मन्त्रज्ञ पुरुषको चाहिये कि सभी प्रकारकी शान्तिके लिये पूर्वोक्त मण्डलमें ही गायत्रीके एक हजार मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके त्रिशूलको गाड़े और वहाँपर सोने, चाँदी, ताँबा अथवा मिट्टीका एक छिद्ररहित, सूत्रवेष्टित नवीन तथा दिव्य कलश बालूसे बनी हुई एक वेदीपर स्थापित करके जलसे उसे भर दे॥ १२—१४॥

तत्पश्चात् श्रेष्ठ द्विजको चारों दिशाओंके तीर्थोंका उसमें आवाहन करके इलायची, चन्दन, कपूर, जाती, गुलाब, मालती, बिल्वपत्र, विष्णुक्रान्ता, सहदेवी, धान, यव, तिल, सरसों तथा दूधवाले वृक्षोंके कोमल पत्तोंको उस कलशमें छोड़ देना चाहिये और उसमें कुशोंसे बनाया गया एक कूर्च भी रख देना चाहिये। इस प्रकार सब कुछ सम्पन्न हो जानेपर स्नान आदिसे पवित्र बुद्धिमान् विप्रको एकाग्रचित्त होकर एक हजार गायत्रीमन्त्रसे उस कलशको अभिमन्त्रित करना चाहिये॥ १५—१७॥

दिक्षु सौरानधीयीरन्मन्त्रान्विप्रास्त्रयीविदः।
प्रोक्षयेत्पाययेदेनं नीरं तेनाभिषिञ्चयेत्॥ १८

भूतरोगाभिचारेभ्यः स निर्मुक्तः सुखी भवेत्।
अभिषेकेण मुच्येत मृत्योरास्यगतो नरः॥ १९

अवश्यं कारयेद्विद्वान्राजा दीर्घं जिजीविषुः।
गावो देयाश्च ऋत्विग्भ्य अभिषेके शतं मुने॥ २०

दक्षिणा येन वा तुष्टिर्यथाशक्त्याथवा भवेत्।
जपेदश्वत्थमालभ्य मन्दवारे शतं द्विजः॥ २१

भूतरोगाभिचारेभ्यो मुच्यते महतो भयात्।
गुडूच्याः पर्वविच्छिन्नाः पयोऽक्ता जुहुयाद् द्विजः॥ २२

एवं मृत्युञ्जयो होमः सर्वव्याधिविनाशनः।
आम्रस्य जुहुयात्पत्रैः पयोऽक्तैर्ज्वरशान्तये॥ २३

वचाभिः पयसाक्ताभिः क्षयं हुत्वा विनाशयेत्।
मधुत्रितयहोमेन राजयक्ष्मा विनश्यति॥ २४

निवेद्य भास्करायान्नं पायसं होमपूर्वकम्।
राजयक्ष्माभिभूतं च प्राशयेच्छान्तिमाप्नुयात्॥ २५

लताः पर्वसु विच्छिद्य सोमस्य जुहुयाद् द्विजः।
सोमे सूर्येण संयुक्ते पयोऽक्ताः क्षयशान्तये॥ २६

कुसुमैः शङ्खवृक्षस्य हुत्वा कुष्ठं विनाशयेत्।
अपस्मारविनाशः स्यादपामार्गस्य तण्डुलैः॥ २७

पुनः वेदज्ञ ब्राह्मणोंको चारों दिशाओंमें बैठकर सूर्य-सम्बन्धी मन्त्रोंका पाठ करना चाहिये। उस भूतादिग्रस्त पुरुषको वह अभिमन्त्रित जल पिलाना चाहिये और उसीसे उसका प्रोक्षण तथा अभिषेक भी करना चाहिये। इस अभिषेकसे वह व्यक्ति भूतों, रोगों तथा अभिचारोंसे मुक्त होकर सुखी हो जाता है; साक्षात् मृत्युके मुखमें गया हुआ प्राणी भी अभिषेकसे मुक्त हो जाता है॥ १८-१९॥

दीर्घ कालतक जीवन धारण करनेकी अभिलाषा रखनेवाले विद्वान् राजाको ऐसे अनुष्ठान अवश्य कराने चाहिये। हे मुने! अभिषेककी समाप्तिपर ऋत्विजोंको एक सौ गायें प्रदान करनी चाहिये और दक्षिणा उतनी हो, जिससे ऋत्विक् सन्तुष्ट हो जायँ अथवा अपनी सामर्थ्यके अनुसार भी दक्षिणा दी जा सकती है॥ २० 1/2 ॥

द्विजको चाहिये कि शनिवारको पीपलवृक्षके नीचे गायत्रीका सौ बार जप करे। इससे वह भूत, रोग तथा अभिचारसे उत्पन्न महान् भयसे मुक्त हो जाता है॥ २१ 1/2 ॥

द्विजको गाँठोंपरसे खण्ड-खण्ड किये गये गुरुचको दूधमें भिगोकर उससे हवन करना चाहिये। यह 'मृत्युंजयहोम' है, जो समस्त व्याधियोंका नाश करनेवाला है॥ २२ 1/2 ॥

ज्वरकी शान्तिके लिये दूधमें भिगोये गये आमके पत्तोंकी आहुति देनी चाहिये। दूधमें भिगोये गये 'वच' का हवन करनेसे क्षयरोग समाप्त हो जाता है। तीनों मधु (दूध, दही, घृत)-से किये गये हवनसे राजयक्ष्मा नष्ट हो जाता है। खीरका हवन करके उसे सूर्यको अर्पित करनेके बाद राजयक्ष्मासे ग्रस्त पुरुषको [प्रसाद-रूपमें] उसका प्राशन कराना चाहिये, जिससे रोग शान्त हो जाता है॥ २३—२५॥

द्विजको क्षयरोगकी शान्तिके लिये सोमलताको गाँठोंपरसे अलग-अलग करके उसे दूधमें भिगोकर अमावास्या तिथिको उससे हवन करना चाहिये। शंखवृक्षके पुष्पोंसे हवन करके कुष्ठरोग दूर करे। इसी तरह अपामार्गके बीजोंसे हवन करनेपर अपस्मार (मिर्गी) रोगका नाश हो जाता है॥ २६-२७॥

क्षीरवृक्षसमिद्धोमादुन्मादोऽपि विनश्यति।
औदुम्बरसमिद्धोमादतिमेहः क्षयं व्रजेत्॥ २८

प्रमेहं शमयेद्धुत्वा मधुनेक्षुरसेन वा।
मधुत्रितयहोमेन नयेच्छान्तिं मसूरिकाम्॥ २९

कपिलासर्पिषा हुत्वा नयेच्छान्तिं मसूरिकाम्।
उदुम्बरवटाश्वत्थैर्गोगजाश्वामयं हरेत्॥ ३०

पिपीलिमधुवल्मीके गृहे जाते शतं शतम्।
शमीसमिद्भिरन्नेन सर्पिषा जुहुयाद् द्विजः॥ ३१

तदुत्थं शान्तिमायाति शेषैस्तत्र बलिं हरेत्।
अभ्रस्तनितभूकम्पालक्ष्यादौ वनवेतसः॥ ३२

सप्ताहं जुहुयादेवं राष्ट्रे राज्यं सुखी भवेत्।
यां दिशं शतजप्तेन लोष्ठेनाभिप्रताडयेत्॥ ३३

ततोऽग्निमारुतारिभ्यो भयं तस्य विनश्यति।
मनसैव जपेदेनां बद्धो मुच्येत बन्धनात्॥ ३४

भूतरोगविषादिभ्यः स्पृशञ्जप्त्वा विमोचयेत्।
भूतादिभ्यो विमुच्येत जलं पीत्वाभिमन्त्रितम्॥ ३५

अभिमन्त्र्य शतं भस्म न्यसेद्भूतादिशान्तये।
शिरसा धारयेद्भस्म मन्त्रयित्वा तदित्यृचा॥ ३६

सर्वव्याधिविनिर्मुक्तः सुखी जीवेच्छतं समाः।
अशक्तः कारयेच्छान्तिं विप्रं दत्त्वा तु दक्षिणाम्॥ ३७

क्षीरवृक्षकी समिधासे किये गये होमसे उन्माद रोग दूर हो जाता है। गूलरकी समिधासे हवन करनेपर अतिमेहरोग नष्ट हो जाता है; साथ ही मधु अथवा ईखके रससे हवन करके मनुष्य प्रमेहरोगको शान्त कर सकता है। मनुष्य त्रिमधु (दूध, दही और घी)-के हवनसे चेचकरोगको समाप्त कर सकता है, उसी प्रकार कपिला गायके घीसे हवन करके भी चेचकरोगको शान्त कर सकता है और गूलर, वट तथा पीपलकी समिधाओंसे हवन करके गाय, घोड़े और हाथियोंके रोगको नष्ट कर सकता है॥ २८—३०॥

पिपीलिका और मधुवल्मीक जन्तुओंका घरमें उपद्रव होनेपर घृतयुक्त शमीकी समिधाओं तथा भातसे प्रत्येक कार्यके लिये सौ-सौ आहुतियाँ द्विजको देनी चाहिये। ऐसा करनेसे उनके द्वारा उत्पन्न उपद्रव शान्त हो जाता है। इसके बाद बचे हुए पदार्थोंसे वहाँ बलि प्रदान करनी चाहिये॥ ३१$\frac{१}{२}$॥

बिजली गिरने और भूकम्प आदिके लक्षित होनेपर जंगली बेंतकी समिधासे सात दिनोंतक हवन करना चाहिये; इससे राष्ट्रमें राज्यसुख विद्यमान रहता है॥ ३२$\frac{१}{२}$॥

कोई पुरुष सौ बार गायत्रीमन्त्रका जप करके जिस दिशामें मिट्टीका ढेला फेंकता है, उसे उस दिशामें अग्नि, हवा तथा शत्रुओंसे होनेवाला भय दूर हो जाता है। मन-ही-मन इस गायत्रीका जप करना चाहिये; इससे बन्धनमें पड़ा मनुष्य उस बन्धनसे छूट जाता है॥ ३३-३४॥

कोई मनुष्य भूत, रोग तथा विषसे संग्रस्त व्यक्तिको स्पर्श करते हुए गायत्रीका जप करके इनसे मुक्त कर देता है। गायत्रीसे अभिमन्त्रित जल पीकर मनुष्य भूत-प्रेतादिसे मुक्त हो जाता है॥ ३५॥

भूत आदिसे शान्तिके लिये गायत्रीमन्त्रका सौ बार उच्चारण करके भस्मको अभिमन्त्रितकर उसे रख लेना चाहिये और '**तत्सवितु०**' ऋचासे उस भस्मको सिरपर धारण करना चाहिये॥ ३६॥

ऐसा करनेसे वह पुरुष समस्त व्याधियोंसे मुक्त होकर सौ वर्षतक सुखपूर्वक जीता है। यदि कोई इसे करनेमें असमर्थ हो तो किसी विप्रको दक्षिणा देकर उससे शान्ति-कर्म करा लेना चाहिये॥ ३७॥

अथ पुष्टिं श्रियं लक्ष्मीं पुष्पैर्हुत्वाप्नुयाद् द्विजः।
श्रीकामो जुहुयात्पद्मै रक्तैः श्रियमवाप्नुयात्॥ ३८

हुत्वा श्रियमवाप्नोति जातीपुष्पैर्नवैः शुभैः।
शालितण्डुलहोमेन श्रियमाप्नोति पुष्कलाम्॥ ३९

समिद्भिर्बिल्ववृक्षस्य हुत्वा श्रियमवाप्नुयात्।
बिल्वस्य शकलैर्हुत्वा पत्रैः पुष्पैः फलैरपि॥ ४०

श्रियमाप्नोति परमां मूलस्य शकलैरपि।
समिद्भिर्बिल्ववृक्षस्य पायसेन च सर्पिषा॥ ४१

शतं शतं च सप्ताहं हुत्वा श्रियमवाप्नुयात्।
लाजैस्त्रिमधुरोपेतैर्होमे कन्यामवाप्नुयात्॥ ४२

अनेन विधिना कन्या वरमाप्नोति वाञ्छितम्।
रक्तोत्पलशतं हुत्वा सप्ताहं हेम चाप्नुयात्॥ ४३

सूर्यबिम्बे जलं हुत्वा जलस्थं हेम चाप्नुयात्।
अन्नं हुत्वाप्नुयादन्नं व्रीहीन्व्रीहिपतिर्भवेत्॥ ४४

करीषचूर्णैर्वत्सस्य हुत्वा पशुमवाप्नुयात्।
प्रियङ्गुपायसाज्यैश्च भवेद्धोमादिभिः प्रजा॥ ४५

निवेद्य भास्करायान्नं पायसं होमपूर्वकम्।
भोजयेत्तदृतुस्नातां पुत्रं परमवाप्नुयात्॥ ४६

सप्ररोहाभिरार्द्राभिरायुर्हुत्वा समाप्नुयात्।
समिद्भिः क्षीरवृक्षस्य हुत्वायुषमवाप्नुयात्॥ ४७

सप्ररोहाभिरार्द्राभी रक्ताभिर्मधुरत्रयैः।
व्रीहीणां च शतं हुत्वा हेम चायुरवाप्नुयात्॥ ४८

पुष्पोंकी आहुति देकर द्विज पुष्टि, श्री तथा लक्ष्मी प्राप्त करता है। लक्ष्मीकी कामना करनेवाले पुरुषको लाल कमलपुष्पोंसे हवन करना चाहिये, इससे वह श्रीकी प्राप्ति करता है। जातीके नवीन शुभ पुष्पोंसे आहुति देकर मनुष्य लक्ष्मी प्राप्त करता है तथा शालिके चावलोंके हवनसे वियुक्त लक्ष्मी प्राप्त करता है। बिल्ववृक्षकी समिधाओंसे हवन करके मनुष्य लक्ष्मी प्राप्त करता है। साथ ही बिल्वफलके खण्डों, पत्तों, पुष्पों, फलों तथा बिल्व-वृक्षके मूलके खण्डोंसे हवन करके उत्तम लक्ष्मी प्राप्त करता है। इसी प्रकार खीर तथा घृतसे मिश्रित बिल्ववृक्षकी समिधाओंकी सात दिनोंतक सौ-सौ आहुतियाँ देकर मनुष्य लक्ष्मीको प्राप्त कर लेता है॥ ३८—४१½ ॥

मधुत्रय (दूध, दही, घी)-से युक्त लावाका हवन करनेसे पुरुष कन्या प्राप्त करता है और इसी विधिसे कन्या भी अभिलषित वर प्राप्त कर लेती है। एक सप्ताहतक रक्तकमलकी सौ आहुतियाँ देकर पुरुष सुवर्ण प्राप्त कर लेता है और सूर्यके बिम्बमें जलकी आहुति देकर मनुष्य जलमें स्थित सोना प्राप्त कर लेता है॥ ४२-४३½ ॥

अन्नका हवन करके मनुष्य अन्न प्राप्त करता है तथा व्रीहिका हवन करके व्रीहिका स्वामी हो जाता है। बछड़ेके गोमयके चूर्णसे हवन करके पुरुष पशुओंकी प्राप्ति करता है। प्रियंगु, दूध तथा घीके द्वारा हवनसे प्रजा—सन्तान प्राप्त होती है। खीरका हवन करके तथा सूर्यको निवेदित करके उसे ऋतुस्नाता स्त्रीको खिलाये; ऐसा करनेवाला पुरुष श्रेष्ठ पुत्र प्राप्त करता है॥ ४४—४६ ॥

अंकुरित शाखाओंवाली आर्द्र समिधाओंसे हवन करनेपर आयुकी प्राप्ति होती है। इसी प्रकार दूधवाले वृक्षोंकी समिधासे हवन करके मनुष्य आयु प्राप्त करता है। अंकुरित शाखाओंवाली गीली, लाल समिधाओं और मधुत्रय (दूध, दही, घी)-से युक्त व्रीहिकी सौ आहुति देकर मनुष्य स्वर्ण तथा दीर्घ आयु प्राप्त करता है॥ ४७-४८ ॥

सुवर्णकुड्मलं हुत्वा शतमायुरवाप्नुयात्।
दूर्वाभिः पयसा वापि मधुना सर्पिषापि वा॥ ४९

शतं शतं च सप्ताहमपमृत्युं व्यपोहति।
शमीसमिद्भिरन्नेन पयसा वा च सर्पिषा॥ ५०

शतं शतं च सप्ताहमपमृत्युं व्यपोहति।
न्यग्रोधसमिधो हुत्वा पायसं होमयेत्ततः॥ ५१

शतं शतं च सप्ताहमपमृत्युं व्यपोहति।
क्षीराहारो जपेन्मृत्योः सप्ताहाद्विजयी भवेत्॥ ५२

अनश्नन्वाग्यतो जप्त्वा त्रिरात्रं मुच्यते यमात्।
निमज्ज्याप्सु जपेदेवं सद्यो मृत्योर्विमुच्यते॥ ५३

जपेद् बिल्वं समाश्रित्य मासं राज्यमवाप्नुयात्।
बिल्वं हुत्वाप्नुयाद्राज्यं समूलफलपल्लवम्॥ ५४

हुत्वा पद्मशतं मासं राज्यमाप्नोत्यकण्टकम्।
यवागूं ग्राममाप्नोति हुत्वा शालिसमन्वितम्॥ ५५

अश्वत्थसमिधो हुत्वा युद्धादौ जयमाप्नुयात्।
अर्कस्य समिधो हुत्वा सर्वत्र विजयी भवेत्॥ ५६

संयुक्तैः पयसा पत्रैः पुष्पैर्वा वेतसस्य च।
पायसेन शतं हुत्वा सप्ताहं वृष्टिमाप्नुयात्॥ ५७

नाभिदघ्ने जले जप्त्वा सप्ताहं वृष्टिमाप्नुयात्।
जले भस्मशतं हुत्वा महावृष्टिं निवारयेत्॥ ५८

पालाशाभिरवाप्नोति समिद्भिर्ब्रह्मवर्चसम्।
पलाशकुसुमैर्हुत्वा सर्वमिष्टमवाप्नुयात्॥ ५९

पयो हुत्वाप्नुयान्मेधामाज्यं बुद्धिमवाप्नुयात्।
अभिमन्त्र्य पिबेद् ब्राह्मं रसं मेधामवाप्नुयात्॥ ६०

सुनहरे रंगके कमलकी आहुति देकर मनुष्य सौ वर्षकी आयु प्राप्त करता है। दूर्वा, दूध, मधु अथवा घीसे सप्ताहपर्यन्त प्रतिदिन सौ-सौ आहुति देकर मनुष्य अपमृत्यु दूर कर देता है। उसी प्रकार शमीकी समिधाओं, अन्न, दूध तथा घीसे एक सप्ताहतक प्रतिदिन सौ-सौ आहुतियोंसे अपमृत्युका विनाश कर देता है। बरगदकी समिधाओंसे हवन करके खीरका हवन करना चाहिये; एक सप्ताहतक प्रतिदिन इनकी सौ-सौ आहुतियोंसे मनुष्य अपमृत्युको नष्ट कर देता है। यदि कोई दुग्धके आहारपर रहकर गायत्रीका जप करे तो वह सप्ताहभरमें मृत्युपर विजय प्राप्त कर लेता है और बिना कुछ आहार ग्रहण किये मौन रहकर जप करे तो तीन रातमें ही यमसे मुक्ति प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार यदि जलमें निमग्न होकर जप करे तो वह उसी क्षण मृत्युसे मुक्ति पा लेता है॥ ४९—५३॥

बिल्ववृक्षके नीचे जप करनेसे एक मासमें राज्य मिल जाता है। बिल्ववृक्षके मूल, फल तथा पल्लवकी आहुतिसे भी मनुष्य राज्य प्राप्त कर लेता है॥ ५४॥

एक मासतक कमलकी सौ आहुति देनेपर मनुष्य निष्कण्टक राज्य प्राप्त करता है। शालिचावलकी लपसीकी आहुतिसे ग्रामकी प्राप्ति होती है। पीपलवृक्षकी समिधाओंसे हवन करके मनुष्य युद्ध आदिमें विजय करता है और मदारकी समिधाओंसे हवन करके सभी जगह विजयी सिद्ध होता है॥ ५५-५६॥

दुग्ध तथा खीरसे युक्त बेंतके पुष्पों अथवा पत्रोंसे सप्ताहपर्यन्त सौ-सौ आहुति देनेसे वृष्टि प्राप्त होती है। नाभिपर्यन्त जलमें खड़े रहकर एक सप्ताहतक जप करनेसे वृष्टि होती है। जलमें भस्मकी सौ आहुति देनेसे महावृष्टिका निवारण हो जाता है॥ ५७-५८॥

पलाशकी समिधाओंसे हवन करके मनुष्य ब्रह्मतेज प्राप्त करता है और पलाशके पुष्पोंसे हवनद्वारा उसे समस्त अभीष्टकी प्राप्ति हो जाती है॥ ५९॥

मनुष्य दूधकी आहुति देकर मेधा तथा घीकी आहुति देकर बुद्धि प्राप्त करता है। गायत्रीमन्त्रसे अभिमन्त्रित ब्राह्मीके रसका पान करनेसे मनुष्यको मेधाकी प्राप्ति होती है॥ ६०॥

पुष्पहोमे भवेद्वासस्तन्तुभिस्तद्विधं पटम्।
लवणं मधुसम्मिश्रं हुत्वेष्टं वशमानयेत्॥ ६१

नयेदिष्टं वशं हुत्वा लक्ष्मीपुष्पैर्मधुप्लुतैः।
नित्यमञ्जलिनात्मानमभिषिञ्चेज्जले स्थितः॥ ६२

मतिमारोग्यमायुष्यमग्र्यं स्वास्थ्यमवाप्नुयात्।
कुर्याद्विप्रोऽन्यमुद्दिश्य सोऽपि पुष्टिमवाप्नुयात्॥ ६३

अथ चारुविधिर्मासं सहस्रं प्रत्यहं जपेत्।
आयुष्कामः शुचौ देशे प्राप्नुयादायुरुत्तमम्॥ ६४

आयुरारोग्यकामस्तु जपेन्मासद्वयं द्विजः।
भवेदायुष्यमारोग्यं श्रियै मासत्रयं जपेत्॥ ६५

आयुः श्रीपुत्रदाराद्याश्चतुर्भिश्च यशो जपात्।
पुत्रदारायुरारोग्यं श्रियं विद्यां च पञ्चभिः॥ ६६

एवमेवोत्तरान्कामान् मासैरेवोत्तरैर्व्रजेत्।
एकपादो जपेदूर्ध्वबाहुः स्थित्वा निराश्रयः॥ ६७

मासं शतत्रयं विप्रः सर्वान्कामानवाप्नुयात्।
एवं शतोत्तरं जप्त्वा सहस्रं सर्वमाप्नुयात्॥ ६८

रुद्ध्वा प्राणमपानं च जपेन्मासं शतत्रयम्।
यदिच्छेत्तदवाप्नोति सहस्रात्परमाप्नुयात्॥ ६९

ब्राह्मीपुष्पोंके हवनसे सुगन्ध तथा उसके तन्तुओंके हवनसे उसीके समान वस्त्रकी प्राप्ति होती है। मधु-मिश्रित लवणकी आहुति देकर मनुष्य अभीष्टको वशमें कर लेता है। इसी प्रकार शहदसे सिक्त किये गये बिल्वपुष्पोंसे हवन करनेपर मनुष्य अपने इष्टको वशमें कर लेता है। जलमें खड़े होकर [गायत्रीमन्त्रका जप करते हुए] अंजलिसे अपने ऊपर नित्य अभिषेक करनेसे मनुष्य बुद्धि, आरोग्य, उत्तम आयु और स्वास्थ्य प्राप्त करता है। यदि किसी अन्य व्यक्तिके निमित्त कोई ब्राह्मण ऐसा करे तो वह भी पुष्टि प्राप्त करता है॥ ६१—६३॥

आयुकी कामना करनेवालेको किसी पवित्र स्थानमें उत्तम विधिके साथ मासपर्यन्त प्रतिदिन एक-एक हजार गायत्रीका जप करना चाहिये; इससे उसे उत्तम आयु प्राप्त होती है। आयु तथा आरोग्य दोनोंकी कामना करनेवाले द्विजको दो मासतक गायत्रीजप करना चाहिये। इसी प्रकार आयु, आरोग्य तथा लक्ष्मीकी कामना करनेवालेको तीन मासतक जप करना चाहिये। द्विजको चार मासतक जप करनेसे आयु, लक्ष्मी, पुत्र, स्त्री तथा यशकी प्राप्ति होती है और पाँच मासतक जप करनेसे पुत्र, स्त्री, आयु, आरोग्य, लक्ष्मी और विद्याकी प्राप्ति होती है। इस तरहसे जितने मनोरथ संख्यामें बढ़ते जायँ, उसीके अनुसार जपके लिये मास-संख्या भी बढ़ानी चाहिये। विप्रको एक पैरपर स्थित होकर बिना किसी आश्रयके बाँहोंको ऊपर किये हुए तीन सौ गायत्रीमन्त्रोंका प्रतिदिन मास-पर्यन्त जप करना चाहिये; ऐसा करनेसे वह सभी मनोरथोंको पूर्ण कर लेता है। इस प्रकार ग्यारह सौ मन्त्र नित्य मासपर्यन्त जप करके वह सब कुछ प्राप्त कर लेता है॥ ६४—६८॥

प्राण और अपान वायु रोककर प्रतिदिन तीन सौ गायत्रीमन्त्रका जप मासपर्यन्त करनेसे पुरुषको वह सब कुछ प्राप्त हो जाता है, जिसकी वह अभिलाषा रखता है; और इसी तरह एक हजार जप करनेसे सर्वस्वकी प्राप्ति हो जाती है॥ ६९॥

एकपादो जपेदूर्ध्वबाहू रुद्ध्वानिलं वशः।
मासं शतमवाप्नोति यदिच्छेदिति कौशिकः॥ ७०

एवं शतत्रयं जप्त्वा सहस्रं सर्वमाप्नुयात्।
निमज्ज्याप्सु जपेन्मासं शतमिष्टमवाप्नुयात्॥ ७१

एवं शतत्रयं जप्त्वा सहस्रं सर्वमाप्नुयात्।
एकपादो जपेदूर्ध्वबाहू रुद्ध्वा निराश्रयः॥ ७२

नक्तमश्नन् हविष्यान्नं वत्सरादृषितामियात्।
गीरमोघा भवेदेवं जप्त्वा संवत्सरद्वयम्॥ ७३

त्रिवत्सरं जपेदेवं भवेत्त्रैकालदर्शनम्।
आयाति भगवान्देवश्चतुःसंवत्सरं जपेत्॥ ७४

पञ्चभिर्वत्सरैरेवमणिमादिगुणो भवेत्।
एवं षड्वत्सरं जप्त्वा कामरूपित्वमाप्नुयात्॥ ७५

सप्तभिर्वत्सरैरेवममरत्वमवाप्नुयात्।
मनुत्वं नवभिः सिद्धमिन्द्रत्वं दशभिर्भवेत्॥ ७६

एकादशभिराप्नोति प्राजापत्यं सुवत्सरैः।
ब्रह्मत्वं प्राप्नुयादेवं जप्त्वा द्वादशवत्सरान्॥ ७७

एतेनैव जिता लोकास्तपसा नारदादिभिः।
शाकमन्ये परे मूलं फलमन्ये पयः परे॥ ७८

घृतमन्ये परे सोममपरे चरुवृत्तयः।
ऋषयः पक्षमश्नन्ति केचिद्भैक्ष्याशिनोऽहनि॥ ७९
हविष्यमपरेऽश्नन्तः कुर्वन्त्येव परं तपः।

इन्द्रियोंको वशमें करके एक पैरपर स्थित होकर बाँहें ऊपर उठाये हुए श्वास निरुद्ध करके मासभर प्रतिदिन एक सौ गायत्रीमन्त्र जपनेसे मनुष्य जो चाहता है, उसकी वह अभिलाषा पूर्ण हो जाती है—ऐसा विश्वामित्रजीका कथन है। इसी प्रकार तेरह सौ मन्त्रोंका जप करनेसे मनुष्य सब कुछ प्राप्त कर लेता है। जलमें निमग्न होकर एक मासतक प्रतिदिन सौ मन्त्रोंका जप करनेसे मनुष्य अपना अभीष्ट प्राप्त कर लेता है; इसी तरह तेरह सौ मन्त्रोंका जप करनेसे वह सब कुछ पा लेता है॥ ७०-७१½ ॥

बिना किसी अवलम्बके एक पैरपर खड़े होकर बाँहें ऊपर उठाये हुए श्वास-नियमन करके एक वर्षतक जप करे और रात्रिमें केवल हविष्यान्न भक्षण करे तो वह पुरुष ऋषित्वको प्राप्त हो जाता है। इसी तरह यदि मनुष्य दो वर्षतक जप करे तो उसकी वाणी अमोघ हो जाती है॥ ७२-७३ ॥

इसी प्रकार तीन वर्षोंतक जप करे तो मनुष्य त्रिकालदर्शी हो जाता है और यदि चार वर्षोंतक जप करे तो भगवान् सूर्यदेव स्वयं उस व्यक्तिके समक्ष प्रकट हो जाते हैं। इसी प्रकार पाँच वर्षोंतक जप करनेसे मनुष्य अणिमा आदि सिद्धियाँ प्राप्त कर लेता है और इसी प्रकार छः वर्षोंतक जप करके वह कामरूपित्वको प्राप्त हो जाता है॥ ७४-७५ ॥

सात वर्षोंतक जप करनेसे पुरुषको देवत्व, नौ वर्षोंतक जप करनेसे मनुत्व और दस वर्षोंतक जप करनेसे इन्द्रत्वकी प्राप्ति हो जाती है। ग्यारह वर्षोंतक जप करनेसे मनुष्य प्रजापति हो जाता है तथा बारह वर्षोंतक जप करके वह ब्रह्मत्वको प्राप्त हो जाता है॥ ७६-७७ ॥

इसी प्रकारकी तपस्याके द्वारा नारद आदि ऋषियोंने सम्पूर्ण लोकोंको जीत लिया था। कुछ ऋषि केवल शाकके आहारपर, कुछ फलपर, कुछ मूलपर और कुछ दूधके आहारपर रहते थे। कुछ ऋषिगण घीके आहारपर, कुछ सोमरसके आहारपर और अन्य ऋषि चरुके आहारपर रहते थे। इसी प्रकार कुछ ऋषि पूरे पक्षभर केवल एक बार भोजन ग्रहण करते थे तथा कुछ ऋषि प्रतिदिन भिक्षान्नके आहारपर रहते थे और कुछ ऋषि हविष्यान्न ग्रहण करते हुए कठोर तपश्चर्या करते थे॥ ७८-७९½ ॥

अथ शुद्ध्यै रहस्यानां त्रिसहस्रं जपेद् द्विजः॥ ८०

मासं शुद्धो भवेत्स्तेयात्सुवर्णस्य द्विजोत्तमः।
जपेन्मासं त्रिसाहस्रं सुरापः शुद्धिमाप्नुयात्॥ ८१

मासं जपेत् त्रिसाहस्रं शुचिः स्याद् गुरुतल्पगः।
त्रिसहस्रं जपेन्मासं कुटीं कृत्वा वने वसन्॥ ८२

ब्रह्महा मुच्यते पापादिति कौशिकभाषितम्।
द्वादशाहं निमज्ज्याप्सु सहस्रं प्रत्यहं जपेत्॥ ८३

मुच्येरन्नंहसः सर्वे महापातकिनो द्विजाः।
त्रिसाहस्रं जपेन्मासं प्राणानायम्य वाग्यतः॥ ८४

महापातकयुक्तो वा मुच्यते महतो भयात्।
प्राणायामसहस्रेण ब्रह्महापि विशुध्यति॥ ८५

षट्कृत्वस्त्वभ्यसेदूर्ध्वं प्राणापानौ समाहितः।
प्राणायामो भवेदेष सर्वपापप्रणाशनः॥ ८६

सहस्रमभ्यसेन्मासं क्षितिपः शुचितामियात्।
द्वादशाहं त्रिसाहस्रं जपेद्धि गोवधे द्विजः॥ ८७

अगम्यागमनस्तेयहननाभक्ष्यभक्षणे।
दशसाहस्रमभ्यस्ता गायत्री शोधयेद् द्विजम्॥ ८८

प्राणायामशतं कृत्वा मुच्यते सर्वकिल्बिषात्।
सर्वेषामेव पापानां सङ्करे सति शुद्धये॥ ८९

सहस्रमभ्यसेन्मासं नित्यजापी वने वसन्।
उपवाससमं जप्यं त्रिसहस्रं तदित्यृचम्॥ ९०

चतुर्विंशतिसाहस्रमभ्यस्तात्कृच्छ्रसंज्ञिता।
चतुःषष्टिसहस्राणि चान्द्रायणसमानि तु॥ ९१

द्विजको चाहिये कि प्रच्छन्न पातकोंकी शुद्धिके लिये तीन हजार गायत्रीके मन्त्रोंका जप करे। द्विजोंमें श्रेष्ठ पुरुष एक महीनेतक प्रतिदिन इस प्रकार जप करनेसे सुवर्णकी चोरीके पापसे मुक्त हो जाता है। सुरापान करनेवाला मासपर्यन्त प्रतिदिन तीन हजार जप करे तो वह शुद्ध हो जाता है। गुरुपत्नीके साथ गमन करनेवाला व्यक्ति महीनेभर प्रतिदिन तीन हजार गायत्रीमन्त्र जपनेसे पवित्र हो जाता है। वनमें कुटी बनाकर वहीं रहते हुए महीनेभर प्रतिदिन तीन हजार गायत्रीजप करनेसे ब्रह्मघाती उस पापसे मुक्त हो जाता है—ऐसा विश्वामित्रऋषिने कहा है। जलमें निमग्न होकर बारह दिनोंतक प्रतिदिन एक-एक हजार गायत्रीमन्त्रका जप करनेसे सभी महापातकी द्विज सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाते हैं॥ ८०—८३$\frac{१}{२}$॥

महापातकी व्यक्ति मौन रहकर प्राणायामपूर्वक मासपर्यन्त प्रतिदिन तीन हजार गायत्रीमन्त्रका जप करे तो वह महान् भयसे मुक्त हो जाता है। एक हजार प्राणायाम करनेसे ब्रह्महत्यारा भी पापसे मुक्त हो जाता है॥ ८४-८५॥

प्राण और अपान वायुको ऊपर खींचकर संयमपूर्वक गायत्रीमन्त्रका छः बार जप करे; यह प्राणायाम सभी प्रकारके पापोंका नाश करनेवाला है॥ ८६॥

मासपर्यन्त प्रतिदिन एक हजार गायत्रीका जप करनेसे राजा पवित्र हो जाता है। गोवधजन्य पापसे शुद्धिहेतु द्विजको बारह दिनोंतक प्रतिदिन तीन-तीन हजार गायत्रीजप करना चाहिये॥ ८७॥

दस हजार गायत्रीका जप द्विजको अगम्यागमन, चोरी, हिंसा तथा अभक्ष्यभक्षणके पापसे शुद्ध कर देता है। सौ बार प्राणायाम करके मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। सभी प्रकारके मिले-जुले पापोंसे शुद्धिके लिये प्रतिदिन एक मासतक **तत्सवितु०** ऋचाका एक हजार जप वनमें रहकर करना चाहिये। इसका तीन हजार जप उपवासके समकक्ष होता है॥ ८८—९०॥

चौबीस हजार गायत्रीजप कृच्छ्रव्रतके समान और चौंसठ हजार गायत्रीजप चान्द्रायणव्रतके समान कहा गया है॥ ९१॥

शतकृत्वोऽभ्यसेन्नित्यं प्राणानायम्य सन्ध्ययोः।
तदित्यृचमवाप्नोति सर्वपापक्षयं परम्॥ ९२

निमज्ज्याप्सु जपेन्नित्यं शतकृत्वस्तदित्यृचम्।
ध्यायन्देवीं सूर्यरूपां सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ९३

इति ते सम्यगाख्याताः शान्तिशुद्ध्यादिकल्पनाः।
रहस्यातिरहस्याश्च गोपनीयास्त्वया सदा॥ ९४

इति संक्षेपतः प्रोक्तः सदाचारस्य संग्रहः।
विधिनाचरणादस्य माया दुर्गा प्रसीदति॥ ९५

नैमित्तिकं च नित्यं च काम्यं कर्म यथाविधि।
आचरेन्मनुजः सोऽयं भुक्तिमुक्तिफलाप्तिभाक्॥ ९६

आचारः प्रथमो धर्मो धर्मस्य प्रभुरीश्वरी।
इत्युक्तं सर्वशास्त्रेषु सदाचारफलं महत्॥ ९७

आचारवान्सदा पूतः सदैवाचारवान्सुखी।
आचारवान्सदा धन्यः सत्यं सत्यं च नारद॥ ९८

देवीप्रसादजनकं सदाचारविधानकम्।
यदपि शृणुयान्मर्त्यो महासम्पत्तिसौख्यभाक्॥ ९९

सदाचारेण सिद्ध्येच्च ऐहिकामुष्मिकं सुखम्।
तदेव ते मया प्रोक्तं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि॥ १००

प्रातः तथा सायंकालीन दोनों सन्ध्याओंके समय नित्य प्राणायाम करके '**तत्सवितु०**' इस ऋचाका एक सौ जप करनेवाले पुरुषके सभी पाप पूर्णरूपसे विनष्ट हो जाते हैं॥ ९२॥

जलमें निमग्न होकर सूर्यस्वरूपिणी देवीका ध्यान करते हुए गायत्रीमन्त्रका नित्य सौ बार जप करनेवाला समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ९३॥

हे नारद! इस प्रकार मैंने शान्ति, शुद्धि आदिसे सम्बन्धित अनुष्ठानोंका वर्णन आपसे कर दिया। रहस्योंमें भी अति रहस्य इस प्रसंगको आपको सदा गोपनीय रखना चाहिये; इस प्रकार यह सदाचार-संग्रह संक्षेपमें बतला दिया। इस सदाचारका विधिपूर्वक पालन करनेसे महामाया दुर्गा प्रसन्न हो जाती हैं॥ ९४-९५॥

जो मनुष्य नित्य, नैमित्तिक तथा काम्य कर्मोंसे सम्बद्ध आचारोंका विधिपूर्वक पालन करता है, वह भोग तथा मोक्षके फलका अधिकारी होता है॥ ९६॥

आचार प्रथम धर्म है और धर्मकी अधिष्ठात्री भगवती जगदम्बा हैं। इस प्रकार सभी शास्त्रोंमें सदाचारका महान् फल बताया गया है॥ ९७॥

हे नारद! सदाचारपरायण पुरुष सर्वदा पवित्र, सुखी तथा धन्य होता है; यह सत्य है, सत्य है॥ ९८॥

सदाचारका विधान देवीकी प्रसन्नताको उत्पन्न करनेवाला है। इस विधानको सुननेमात्रसे मनुष्य विपुल सम्पदा तथा सुखका अधिकारी हो जाता है। सदाचारके पालनसे मनुष्यको ऐहिक तथा पारलौकिक सुख सुलभ हो जाता है। उसी सदाचारका वर्णन मैंने आपसे किया है। [हे नारद!] अब आप और क्या सुनना चाहते हैं॥ ९९-१००॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामेकादशस्कन्धे सदाचारनिरूपणं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः॥ २४॥

~~~○~~~

॥ एकादशः स्कन्धः समाप्तः॥
~~~

॥ श्रीजगदम्बिकायै नमः॥
॥ ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे॥

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण

द्वादशः स्कन्धः

अथ प्रथमोऽध्यायः

गायत्रीजपका माहात्म्य तथा गायत्रीके चौबीस वर्णोंके ऋषि, छन्द आदिका वर्णन

नारद उवाच

सदाचारविधिर्देव भवता वर्णितः प्रभो।
तस्याप्यतुलमाहात्म्यं सर्वपापविनाशनम्॥ १

श्रुतं भवन्मुखाम्भोजच्युतं देवीकथामृतम्।
व्रतानि यानि चोक्तानि चान्द्रायणमुखानि ते॥ २

दुःखसाध्यानि जानीमः कर्तृसाध्यानि तानि च।
तदस्मात्साम्प्रतं यत्तु सुखसाध्यं शरीरिणाम्॥ ३

देवीप्रसादजनकं शुभानुष्ठानसिद्धिदम्।
तत्कर्म वद मे स्वामिन् कृपापूर्वं सुरेश्वर॥ ४

सदाचारविधौ यश्च गायत्रीविधिरीरितः।
तस्मिन्मुख्यतमं किं स्यात्किं वा पुण्याधिकप्रदम्॥ ५

ये गायत्रीगता वर्णास्तत्त्वसंख्यास्त्वयेरिताः।
तेषां के ऋषयः प्रोक्ताः कानि छन्दांसि वै मुने॥ ६

तेषां का देवताः प्रोक्ताः सर्वं कथय मे प्रभो।
महत्कौतूहलं मे च मानसे परिवर्तते॥ ७

श्रीनारायण उवाच

कुर्यादन्यन्न वा कुर्यादनुष्ठानादिकं तथा।
गायत्रीमात्रनिष्ठस्तु कृतकृत्यो भवेद् द्विजः॥ ८

सन्ध्यासु चार्घ्यदानं च गायत्रीजपमेव च।
सहस्त्रत्रितयं कुर्वन्सुरैः पूज्यो भवेन्मुने॥ ९

नारदजी बोले—हे देव! हे प्रभो! आपने सदाचार-विधिका वर्णन कर दिया; उस विधिका माहात्म्य अत्यन्त अतुलनीय तथा सभी पापोंका नाश करनेवाला है॥ १॥

आपके मुखकमलसे निःसृत देवीके कथारूप अमृतका श्रवण तो कर लिया; किंतु आपने जिन चान्द्रायण आदि मुख्य व्रतोंका वर्णन किया है, कर्तृसाध्य उन व्रतोंको मैं अत्यन्त कष्टसाध्य समझता हूँ। इसलिये अब आप ऐसा उपाय बताइये, जो मनुष्योंके लिये सुखसाध्य हो। हे स्वामिन्! हे सुरेश्वर! आप मुझे कृपापूर्वक उस कर्मानुष्ठानके विषयमें बताइये; जो मंगलकारी, सिद्धि देनेवाला तथा भगवतीकी प्रसन्नताकी प्राप्ति करानेवाला हो॥ २—४॥

सदाचारविधानके अन्तर्गत आपने जिस गायत्री-विधिका वर्णन किया है, उसमें मुख्यतम वस्तु क्या है और क्या करनेसे अधिक पुण्यकी प्राप्ति होती है?॥ ५॥

आपने गायत्रीके जिन चौबीस अक्षरोंको बताया है, उन अक्षरोंके कौन-कौन ऋषि, कौन-कौन छन्द तथा कौन-कौन देवता कहे गये हैं? हे प्रभो! यह सब मुझे बताइये; क्योंकि इस सम्बन्धमें मेरे मनमें महान् कौतूहल उत्पन्न हो रहा है॥ ६-७॥

श्रीनारायण बोले—द्विज कोई दूसरा अनुष्ठान आदि कर्म करे अथवा न करे, किंतु एकनिष्ठ होकर केवल गायत्रीका अनुष्ठान कर ले तो वह कृतकृत्य हो जाता है॥ ८॥

हे मुने! तीनों संध्याओंमें भगवान् सूर्यको अर्घ्य प्रदान करनेवाला तथा तीन हजार गायत्रीजप करनेवाला पुरुष देवताओंका पूज्य हो जाता है॥ ९॥

न्यासान्करोतु वा मा वा गायत्रीमेव चाभ्यसेत्।
ध्यात्वा निर्व्याजया वृत्त्या सच्चिदानन्दरूपिणीम्॥ १०
यदक्षरैकसंसिद्धेः स्पर्धते ब्राह्मणोत्तमः।
हरिशङ्करकञ्जोत्थसूर्यचन्द्रहुताशनैः ॥ ११
अथातः श्रूयतां ब्रह्मन् वर्णऋष्यादिकांस्तथा।
छन्दांसि देवतास्तद्वत्क्रमात्तत्त्वानि चैव हि॥ १२
वामदेवोऽत्रिर्वसिष्ठः शुक्रः कण्वः पराशरः।
विश्वामित्रो महातेजाः कपिलः शौनको महान्॥ १३
याज्ञवल्क्यो भरद्वाजो जमदग्निस्तपोनिधिः।
गौतमो मुद्गलश्चैव वेदव्यासश्च लोमशः॥ १४
अगस्त्यः कौशिको वत्सः पुलस्त्यो माण्डुकस्तथा।
दुर्वासास्तपसां श्रेष्ठो नारदः कश्यपस्तथा॥ १५
इत्येते ऋषयः प्रोक्ता वर्णानां क्रमशो मुने।
गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् च बृहती पङ्क्तिरेव च॥ १६
त्रिष्टुभं जगती चैव तथातिजगती मता।
शक्वर्यतिशक्वरी च धृतिश्चातिधृतिस्तथा॥ १७
विराट् प्रस्तारपङ्क्तिश्च कृतिः प्रकृतिराकृतिः।
विकृतिः संकृतिश्चैवाक्षरपङ्क्तिस्तथैव च॥ १८
भूर्भुवः स्वरितिच्छन्दस्तथा ज्योतिष्मती स्मृतम्।
इत्येतानि च छन्दांसि कीर्तितानि महामुने॥ १९
दैवतानि शृणु प्राज्ञ तेषामेवानुपूर्वशः।
आग्नेयं प्रथमं प्रोक्तं प्राजापत्यं द्वितीयकम्॥ २०
तृतीयं च तथा सौम्यमीशानं च चतुर्थकम्।
सावित्रं पञ्चमं प्रोक्तं षष्ठमादित्यदैवतम्॥ २१
बार्हस्पत्यं सप्तमं तु मैत्रावरुणमष्टमम्।
नवमं भगदैवत्यं दशमं चार्यमेश्वरम्॥ २२
गणेशमेकादशकं त्वाष्ट्रं द्वादशकं स्मृतम्।
पौष्णं त्रयोदशं प्रोक्तमैन्द्राग्नं च चतुर्दशम्॥ २३
वायव्यं पञ्चदशकं वामदैव्यं च षोडशम्।
मैत्रावरुणिदैवत्यं प्रोक्तं सप्तदशाक्षरम्॥ २४
अष्टादशं वैश्वदेवमूनविंशं तु मातृकम्।
वैष्णवं विंशतितमं वसुदैवतमीरितम्॥ २५
एकविंशतिसंख्याकं द्वाविंशं रुद्रदैवतम्।
त्रयोविंशं च कौबेरमाश्विनं तत्त्वसंख्यकम्॥ २६

न्यास करे अथवा न करे, किंतु निष्कपट भावसे सच्चिदानन्दस्वरूपिणी भगवतीका ध्यान करके गायत्रीजप अवश्य करना चाहिये॥ १०॥

उसके एक अक्षरकी भी सिद्धि हो जानेपर ब्राह्मणश्रेष्ठ ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सूर्य, चन्द्र और अग्निके साथ स्पर्धा करनेयोग्य हो जाता है॥ ११॥

हे ब्रह्मन्! अब आप गायत्रीके वर्ण, ऋषि, छन्द, देवता तथा तत्त्व आदिके विषयमें क्रमसे सुनिये॥ १२॥

वामदेव, अत्रि, वसिष्ठ, शुक्र, कण्व, पराशर, महातेजस्वी विश्वामित्र, कपिल, महान् शौनक, याज्ञवल्क्य, भरद्वाज, तपोनिधि जमदग्नि, गौतम, मुद्गल, वेदव्यास, लोमश, अगस्त्य, कौशिक, वत्स, पुलस्त्य, माण्डुक, तपस्वियोंमें श्रेष्ठ दुर्वासा, नारद और कश्यप—हे मुने! ये चौबीस ऋषि क्रमसे गायत्रीमन्त्रके वर्णोंके 'ऋषि' कहे गये हैं। गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप्, जगती, अतिजगती, शक्वरी, अतिशक्वरी, धृति, अतिधृति, विराट्, प्रस्तारपंक्ति, कृति, प्रकृति, आकृति, विकृति, संकृति, अक्षरपंक्ति, भूः, भुवः, स्वः तथा ज्योतिष्मती—हे महामुने! ये गायत्रीमन्त्रके वर्णोंके क्रमशः छन्द कहे गये हैं॥ १३—१९॥

हे प्राज्ञ! अब क्रमशः उन वर्णोंके देवताओंके नाम सुनिये। पहले वर्णके देवता अग्नि, दूसरेके प्रजापति, तीसरेके चन्द्रमा, चौथेके ईशान, पाँचवेंके सविता, छठेके आदित्य, सातवेंके बृहस्पति, आठवेंके मित्रावरुण, नौवेंके भग, दसवेंके ईश्वर, ग्यारहवेंके गणेश, बारहवेंके त्वष्टा, तेरहवेंके पूषा, चौदहवेंके इन्द्राग्नि, पन्द्रहवेंके वायु, सोलहवेंके वामदेव, सत्रहवेंके मित्रावरुण, अठारहवेंके विश्वेदेव, उन्नीसवेंके मातृक, बीसवेंके विष्णु, इक्कीसवेंके वसु, बाईसवेंके रुद्र, तेईसवेंके कुबेर और चौबीसवें वर्णके देवता अश्विनीकुमार कहे गये हैं। हे मुने! इस प्रकार मैंने गायत्रीके चौबीस वर्णोंके देवताओंका वर्णन कर दिया। यह नामसंग्रह

चतुर्विंशतिवर्णानां देवतानां च सङ्ग्रहः।
कथितः परमश्रेष्ठो महापापैकशोधनः।
यदाकर्णनमात्रेण साङ्गं जाप्यफलं मुने॥ २७

परम श्रेष्ठ और महान् पापोंका विनाश करनेवाला है, जिसके श्रवणमात्रसे सांगोपांग गायत्रीजपका फल प्राप्त हो जाता है॥ २०—२७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां द्वादशस्कन्धे गायत्रीविचारो नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १॥



अथ द्वितीयोऽध्यायः

गायत्रीके चौबीस वर्णोंकी शक्तियों, रंगों एवं मुद्राओंका वर्णन

श्रीनारायण उवाच

वर्णानां शक्तयः काश्च ताः शृणुष्व महामुने।
वामदेवी प्रिया सत्या विश्वा भद्रविलासिनी॥ १
प्रभावती जया शान्ता कान्ता दुर्गा सरस्वती।
विद्रुमा च विशालेशा व्यापिनी विमला तथा॥ २
तमोऽपहारिणी सूक्ष्मा विश्वयोनिर्जया वशा।
पद्मालया परा शोभा भद्रा च त्रिपदा स्मृता॥ ३
चतुर्विंशतिवर्णानां शक्तयः समुदाहृताः।
अतः परं वर्णवर्णान्व्याहरामि यथातथम्॥ ४
चम्पका अतसीपुष्पसन्निभं विद्रुमं तथा।
स्फटिकाकारकं चैव पद्मपुष्पसमप्रभम्॥ ५
तरुणादित्यसङ्काशं शङ्खकुन्देन्दुसन्निभम्।
प्रवालपद्मपत्राभं पद्मरागसमप्रभम्॥ ६
इन्द्रनीलमणिप्रख्यं मौक्तिकं कुङ्कुमप्रभम्।
अञ्जनाभं च रक्तं च वैदूर्यं क्षौद्रसन्निभम्॥ ७
हारिद्रं कुन्ददुग्धाभं रविकान्तिसमप्रभम्।
शुकपुच्छनिभं तद्वच्छतपत्रनिभं तथा॥ ८
केतकीपुष्पसंकाशं मल्लिकाकुसुमप्रभम्।
करवीरश्च इत्येते क्रमेण परिकीर्तिताः॥ ९
वर्णाः प्रोक्ताश्च वर्णानां महापापविशोधनाः।
पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाश एव च॥ १०
गन्धो रसश्च रूपं च शब्दः स्पर्शस्तथैव च।
उपस्थं पायुपादं च पाणी वागपि च क्रमात्॥ ११
प्राणं जिह्वा च चक्षुश्च त्वक्श्रोत्रं च ततः परम्।
प्राणोऽपानस्तथा व्यानः समानश्च ततः परम्॥ १२
तत्त्वान्येतानि वर्णानां क्रमशः कीर्तितानि तु।
अतः परं प्रवक्ष्यामि वर्णमुद्राः क्रमेण तु॥ १३
सुमुखं सम्पुटं चैव विततं विस्तृतं तथा।
द्विमुखं त्रिमुखं चैव चतुःपञ्चमुखं तथा॥ १४

श्रीनारायण बोले—हे महामुने! उन वर्णोंकी कौन-कौन-सी शक्तियाँ हैं, अब आप उन्हें सुनिये। वामदेवी, प्रिया, सत्या, विश्वा, भद्रविलासिनी, प्रभावती, जया, शान्ता, कान्ता, दुर्गा, सरस्वती, विद्रुमा, विशालेशा, व्यापिनी, विमला, तमोपहारिणी, सूक्ष्मा, विश्वयोनि, जया, वशा, पद्मालया, पराशोभा, भद्रा तथा त्रिपदा—चौबीस गायत्रीवर्णोंकी ये शक्तियाँ कही गयी हैं॥ १—३½॥

[हे मुने!] अब मैं उन अक्षरोंके वास्तविक वर्णों (रंगों)-के विषयमें बता रहा हूँ। गायत्रीके चौबीस वर्णोंके रंग क्रमशः चम्पा, अलसी-पुष्प, मूँगा, स्फटिक, कमल-पुष्प, तरुण सूर्य, शंख-कुन्द-चन्द्रमा, रक्त कमलपत्र, पद्मराग, इन्द्रनीलमणि, मोती, कुमकुम, अंजन, रक्तचन्दन, वैदूर्य, मधु, हरिद्रा, कुन्द एवं दुग्ध, सूर्यकान्तमणि, तोतेकी पूँछ, कमल, केतकीपुष्प, मल्लिकापुष्प और कनेरके पुष्पकी आभाके समान कहे गये हैं। चौबीस अक्षरोंके बताये गये ये चौबीस वर्ण महान् पापोंको नष्ट करनेवाले हैं॥ ४—९½॥

पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, गन्ध, रस, रूप, शब्द, स्पर्श, जननेन्द्रिय, गुदा, पाद, हस्त, वागिन्द्रिय, नासिका, जिह्वा, नेत्र, त्वचा, कान, प्राण, अपान, व्यान तथा समान—ये वर्णोंके क्रमशः चौबीस तत्त्व कहे गये हैं॥ १०—१२½॥

[हे नारद!] अब मैं क्रमशः वर्णोंकी मुद्राओंका वर्णन करूँगा। सुमुख, सम्पुट, वितत, विस्तृत, द्विमुख, त्रिमुख, चतुर्मुख, पंचमुख, षण्मुख, अधोमुख, व्यापकांजलि, शकट, यमपाश, ग्रथित, सन्मुखोन्मुख,

षण्मुखाधोमुखं चैव व्यापकाञ्जलिकं तथा।
शकटं यमपाशं च ग्रथितं सन्मुखोन्मुखम्॥ १५
विलम्बं मुष्टिकं चैव मत्स्यं कूर्मं वराहकम्।
सिंहाक्रान्तं महाक्रान्तं मुद्‌गरं पल्लवं तथा॥ १६
त्रिशूलयोनी सुरभिश्चाक्षमाला च लिङ्गकम्।
अम्बुजं च महामुद्रास्तुर्यरूपाः प्रकीर्तिताः॥ १७
इत्येताः कीर्तिता मुद्रा वर्णानां ते महामुने।
महापापक्षयकराः कीर्तिदाः कान्तिदा मुने॥ १८

विलम्ब, मुष्टिक, मत्स्य, कूर्म, वराह, सिंहाक्रान्त, महाक्रान्त, मुद्‌गर तथा पल्लव—गायत्रीके अक्षरोंकी ये चौबीस मुद्राएँ हैं। त्रिशूल, योनि, सुरभि, अक्षमाला, लिंग और अम्बुज—ये महामुद्राएँ गायत्रीके चौथे चरणकी कही गयी हैं। हे महामुने! गायत्रीके वर्णोंकी इन मुद्राओंको मैंने आपको बता दिया। हे मुने! ये मुद्राएँ महान् पापोंका नाश करनेवाली, कीर्ति देनेवाली तथा कान्ति प्रदान करनेवाली हैं॥ १३—१८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां द्वादशस्कन्धे गायत्रीशक्त्यादिप्रतिपादनं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥



अथ तृतीयोऽध्यायः

श्रीगायत्रीका ध्यान और गायत्रीकवचका वर्णन

नारद उवाच

स्वामिन्सर्वजगन्नाथ संशयोऽस्ति मम प्रभो।
चतुःषष्टिकलाभिज्ञ पातकाद्योगविद्वर॥ १
मुच्यते केन पुण्येन ब्रह्मरूपः कथं भवेत्।
देहश्च देवतारूपो मन्त्ररूपो विशेषतः॥ २
कर्म तच्छ्रोतुमिच्छामि न्यासं च विधिपूर्वकम्।
ऋषिश्छन्दोऽधिदैवं च ध्यानं च विधिवद्विभो॥ ३

नारदजी बोले—हे स्वामिन्! हे सम्पूर्ण जगत्‌के नाथ! हे प्रभो! हे चौंसठ कलाओंके ज्ञाता! हे योगवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! मनुष्य किस पुण्यकर्मसे पापमुक्त हो सकता है, किस प्रकार ब्रह्मरूपत्व प्राप्त कर सकता है और किस कर्मसे उसका देह देवतारूप तथा विशेषरूपसे मन्त्ररूप हो सकता है? हे प्रभो! उस कर्मके विषयमें साथ ही विधिपूर्वक न्यास, ऋषि, छन्द, अधिदेवता तथा ध्यानको विधिवत् सुनना चाहता हूँ॥ १—३॥

श्रीनारायण उवाच

अस्त्येकं परमं गुह्यं गायत्रीकवचं तथा।
पठनाद्धारणान्मर्त्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ४
सर्वान्कामानवाप्नोति देवीरूपश्च जायते।
गायत्रीकवचस्यास्य ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः॥ ५
ऋषयो ऋग्यजुःसामाथर्वश्छन्दांसि नारद।
ब्रह्मरूपा देवतोक्ता गायत्री परमा कला॥ ६
तद् बीजं भर्ग इत्येषा शक्तिरुक्ता मनीषिभिः।
कीलकं च धियः प्रोक्तं मोक्षार्थे विनियोजनम्॥ ७

श्रीनारायण बोले—गायत्रीकवच नामक एक परम गोपनीय उपाय है, जिसके पाठ करने तथा धारण करनेसे मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है, उसके सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं तथा वह स्वयं देवीरूप हो जाता है॥ ४½॥

हे नारद! इस गायत्रीकवचके ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश ऋषि हैं। ऋक्, यजुः, साम तथा अथर्व इसके छन्द हैं। परम कलाओंसे सम्पन्न ब्रह्मस्वरूपिणी 'गायत्री' इसकी देवता कही गयी हैं॥ ५-६॥

भर्ग इसका बीज है, विद्वानोंने स्वयं इसीको शक्ति कहा है, बुद्धिको इसका कीलक कहा गया है और मोक्षके लिये इसके विनियोगका भी विधान बताया गया है॥ ७॥

चतुर्भिर्हृदयं प्रोक्तं त्रिभिर्वर्णैः शिरः स्मृतम्।
चतुर्भिः स्याच्छिखा पश्चात् त्रिभिस्तु कवचं स्मृतम्॥ ८
चतुर्भिर्नेत्रमुद्दिष्टं चतुर्भिः स्यात्तदस्त्रकम्।
अथ ध्यानं प्रवक्ष्यामि साधकाभीष्टदायकम्॥ ९
मुक्ताविद्रुमहेमनीलधवलच्छायैर्मुखैस्त्रीक्षणै-
र्युक्तामिन्दुनिबद्धरत्नमुकुटां तत्त्वार्थवर्णात्मिकाम्।
गायत्रीं वरदाभयाङ्कुशकशाः शुभ्रं कपालं गुणं
शङ्खं चक्रमथारविन्दयुगलं हस्तैर्वहन्तीं भजे॥ १०
गायत्री पूर्वतः पातु सावित्री पातु दक्षिणे।
ब्रह्मसन्ध्या तु मे पश्चादुत्तरायां सरस्वती॥ ११
पार्वती मे दिशं रक्षेत्पावकीं जलशायिनी।
यातुधानी दिशं रक्षेद् यातुधानभयङ्करी॥ १२
पावमानीं दिशं रक्षेत्पवमानविलासिनी।
दिशं रौद्रीं च मे पातु रुद्राणी रुद्ररूपिणी॥ १३
ऊर्ध्वं ब्रह्माणि मे रक्षेदधस्ताद्वैष्णवी तथा।
एवं दश दिशो रक्षेत्सर्वाङ्गं भुवनेश्वरी॥ १४
तत्पदं पातु मे पादौ जङ्घे मे सवितुः पदम्।
वरेण्यं कटिदेशे तु नाभिं भर्गस्तथैव च॥ १५
देवस्य मे तद्धृदयं धीमहीति च गल्लयोः।
धियः पदं च मे नेत्रे यः पदं मे ललाटकम्॥ १६
नः पातु मे पदं मूर्ध्नि शिखायां मे प्रचोदयात्।
तत्पदं पातु मूर्धानं सकारः पातु भालकम्॥ १७
चक्षुषी तु विकारार्णस्तुकारस्तु कपोलयोः।
नासापुटं वकारार्णो रेकारस्तु मुखे तथा॥ १८
णिकार ऊर्ध्वमोष्ठं तु यकारस्त्वधरोष्ठकम्।
आस्यमध्ये भकारार्णो र्गोकारश्चिबुके तथा॥ १९
देकारः कण्ठदेशे तु वकारः स्कन्धदेशकम्।
स्यकारो दक्षिणं हस्तं धीकारो वामहस्तकम्॥ २०
मकारो हृदयं रक्षेद्धिकार उदरे तथा।
धिकारो नाभिदेशे तु योकारस्तु कटिं तथा॥ २१

चार वर्णोंसे इसका हृदय, तीन वर्णोंसे सिर, चार वर्णोंसे शिखा, तीन वर्णोंसे कवच, चार वर्णोंसे नेत्र तथा चार वर्णोंसे अस्त्र कहा गया है॥ ८$\frac{1}{2}$॥

[हे नारद!] अब मैं साधकोंको उनके अभीष्टकी प्राप्ति करानेवाले ध्यानका वर्णन करूँगा। मोती, मूँगा, स्वर्ण, नील और धवल आभावाले [पाँच] मुखों, तीन नेत्रों तथा चन्द्रकलायुक्त रत्नमुकुटको धारण करनेवाली, चौबीस अक्षरोंसे विभूषित और हाथोंमें वरद-अभयमुद्रा, अंकुश, चाबुक, शुभ्र कपाल, रज्जु, शंख, चक्र तथा दो कमलपुष्प धारण करनेवाली भगवती गायत्रीका मैं ध्यान करता हूँ॥ ९-१०॥

[इस प्रकार ध्यान करके कवचका पाठ करे—] पूर्व दिशामें गायत्री मेरी रक्षा करें, दक्षिण दिशामें सावित्री रक्षा करें, पश्चिममें ब्रह्मसन्ध्या तथा उत्तरमें सरस्वती मेरी रक्षा करें। जलमें व्याप्त रहनेवाली भगवती पार्वती अग्निकोणमें मेरी रक्षा करें। राक्षसोंमें भय उत्पन्न करनेवाली भगवती यातुधानी नैर्ऋत्यकोणमें मेरी रक्षा करें। वायुमें विलासलीला करनेवाली भगवती पावमानी वायव्यकोणमें मेरी रक्षा करें। रुद्ररूप धारण करनेवाली भगवती रुद्राणी ईशानकोणमें मेरी रक्षा करें। ब्रह्माणी ऊपरकी ओर तथा वैष्णवी नीचेकी ओर मेरी रक्षा करें। इस प्रकार भगवती भुवनेश्वरी दसों दिशाओंमें मेरे सम्पूर्ण अंगोंकी रक्षा करें॥ ११—१४॥

'**तत्**' पद मेरे दोनों पैरोंकी, '**सवितुः**' पद मेरी दोनों जंघाओंकी, '**वरेण्यं**' पद कटिदेशकी, '**भर्गः**' पद नाभिकी, '**देवस्य**' पद हृदयकी, '**धीमहि**' पद दोनों कपोलोंकी, '**धियः**' पद दोनों नेत्रोंकी, '**यः**' पद ललाटकी, '**नः**' पद मस्तककी तथा '**प्रचोदयात्**' पद मेरी शिखाकी रक्षा करे॥ १५-१६$\frac{1}{2}$॥

'**तत्**' पद मस्तककी रक्षा करे तथा '**स**' कार ललाटकी रक्षा करे। इसी तरह '**वि**' कार दोनों नेत्रोंकी, '**तु**' कार दोनों कपोलोंकी, '**व**' कार नासापुटकी, '**रे**' कार मुखकी, '**णि**' कार ऊपरी ओष्ठकी, '**य**' कार नीचेके ओष्ठकी, '**भ**' कार मुखके मध्यभागकी, रेफयुक्त '**गो**' कार (**र्गो**) ठुड्डीकी, '**दे**' कार कण्ठकी, '**व**' कार कन्धोंकी, '**स्य**' कार दाहिने हाथकी, '**धी**' कार बायें हाथकी, '**म**' कार हृदयकी, '**हि**' कार

गुह्यं रक्षतु योकार ऊरू द्वौ नः पदाक्षरम्।
प्रकारो जानुनी रक्षेच्चोकारो जङ्घदेशकम्॥ २२

दकारं गुल्फदेशे तु यकारः पदयुग्मकम्।
तकारव्यञ्जनं चैव सर्वाङ्गं मे सदावतु॥ २३

इदं तु कवचं दिव्यं बाधाशतविनाशनम्।
चतुःषष्टिकलाविद्यादायकं मोक्षकारकम्॥ २४

मुच्यते सर्वपापेभ्यः परं ब्रह्माधिगच्छति।
पठनाच्छ्रवणाद्वापि गोसहस्रफलं लभेत्॥ २५

उदरकी, '**धि**' कार नाभिदेशकी, '**यो**' कार कटिप्रदेशकी, पुनः '**यो**' कार गुह्य अंगोंकी, '**नः**' पद दोनों ऊरुओंकी, '**प्र**' कार दोनों घुटनोंकी, '**चो**' कार दोनों जंघाओंकी, '**द**' कार गुल्फोंकी, '**या**' कार दोनों पैरोंकी और '**त**' कार व्यंजन (**त्**) सर्वदा मेरे सम्पूर्ण अंगोंकी रक्षा करे॥ १७—२३॥

[हे नारद!] भगवती गायत्रीका यह दिव्य कवच सैकड़ों विघ्नोंका विनाश करनेवाला, चौंसठ कलाओं तथा समस्त विद्याओंको देनेवाला और मोक्षकी प्राप्ति करानेवाला है। इस कवचके प्रभावसे व्यक्ति सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है और परब्रह्मभावकी प्राप्ति कर लेता है। इसे पढ़ने अथवा सुननेसे भी मनुष्य एक हजार गोदानका फल प्राप्त कर लेता है॥ २४-२५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्रयां संहितायां द्वादशस्कन्धे गायत्रीमन्त्रकवचवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥



अथ चतुर्थोऽध्यायः

गायत्रीहृदय तथा उसका अंगन्यास

नारद उवाच

भगवन् देवदेवेश भूतभव्यजगत्प्रभो।
कवचं च श्रुतं दिव्यं गायत्रीमन्त्रविग्रहम्॥ १

अधुना श्रोतुमिच्छामि गायत्रीहृदयं परम्।
यद्धारणाद्भवेत्पुण्यं गायत्रीजपतोऽखिलम्॥ २

श्रीनारायण उवाच

देव्याश्च हृदयं प्रोक्तं नारदाथर्वणे स्फुटम्।
तदेवाहं प्रवक्ष्यामि रहस्यातिरहस्यकम्॥ ३

विराड्रूपां महादेवीं गायत्रीं वेदमातरम्।
ध्यात्वा तस्यास्त्वथाङ्गेषु ध्यायेदेताश्च देवताः॥ ४

पिण्डब्रह्माण्डयोरैक्याद्भावयेत्स्वतनौ तथा।
देवीरूपे निजे देहे तन्मयत्वाय साधकः॥ ५

नारदजी बोले—हे भगवन्! हे देवदेवेश! हे भूतभव्यजगत्प्रभो! मैंने गायत्रीमन्त्रविग्रह तथा दिव्य गायत्रीकवचके विषयमें सुन लिया। अब मैं श्रेष्ठ 'गायत्रीहृदय' सुनना चाहता हूँ, जिसके धारण करनेसे गायत्रीजपसे प्राप्त होनेवाला सम्पूर्ण पुण्य प्राप्त हो जाता है॥ १-२॥

श्रीनारायण बोले—हे नारद! देवीका गायत्री-हृदय अथर्ववेदमें स्पष्टरूपसे वर्णित है। रहस्योंमें भी अति रहस्ययुक्त उसी प्रसंगका वर्णन मैं आपसे करूँगा॥ ३॥

विराट् रूपवाली वेदमाता महादेवी गायत्रीका ध्यान करनेके बाद अंगोंमें इन देवताओंका ध्यान करना चाहिये॥ ४॥

पिण्ड तथा ब्रह्माण्डमें स्थापित एकत्वकी भाँति अपने तथा देवीमें अभेदकी भावना करनी चाहिये। साधकको देवीके रूपमें तथा अपने शरीरमें तन्मयताभाव रखना चाहिये॥ ५॥

नादेवोऽभ्यर्चयेद्देवमिति वेदविदो विदुः।
ततोऽभेदाय काये स्वे भावयेद्देवता इमाः॥ ६

अथ तत्सम्प्रवक्ष्यामि तन्मयत्वमथो भवेत्।
गायत्रीहृदयस्यास्याप्यहमेव ऋषिः स्मृतः॥ ७

गायत्रीच्छन्द उद्दिष्टं देवता परमेश्वरी।
पूर्वोक्तेन प्रकारेण कुर्यादङ्गानि षट्क्रमात्।
आसने विजने देशे ध्यायेदेकाग्रमानसः॥ ८

न्यास

द्यौर्मूर्ध्नि दैवतम्। दन्तपङ्क्तावश्विनौ। उभे सन्ध्ये चोष्ठौ। मुखमग्निः। जिह्वा सरस्वती। ग्रीवायां तु बृहस्पतिः। स्तनयोर्वसवोऽष्टौ। बाह्वोर्मरुतः। हृदये पर्जन्यः। आकाशमुदरम्। नाभावन्तरिक्षम्। कट्योरिन्द्राग्नी। जघने विज्ञानघनः प्रजापतिः। कैलासमलये ऊरू। विश्वेदेवा जान्वोः। जङ्घायां कौशिकः। गुह्यमयने। ऊरू पितरः। पादौ पृथिवी। वनस्पतयोऽङ्गुलीषु। ऋषयो रोमाणि। नखानि मुहूर्तानि। अस्थिषु ग्रहाः। असृङ्मांसमृतवः। संवत्सरा वै निमिषम्। अहोरात्रावादित्यश्चन्द्रमाः। प्रवरां दिव्यां गायत्रीं सहस्रनेत्रां शरणमहं प्रपद्ये। ॐ तत्सवितुर्वरेण्याय नमः। ॐ तत्पूर्वाजयाय नमः। तत्प्रातरादित्याय नमः। तत्प्रातरादित्यप्रतिष्ठायै नमः। प्रातरधीयानो रात्रिकृतं पापं नाशयति। सायमधीयानो दिवसकृतं पापं नाशयति। सायंप्रातरधीयानो अपापो भवति। सर्वतीर्थेषु स्नातो भवति। सर्वैर्देवैर्ज्ञातो भवति। अवाच्यवचनात्पूतो भवति। अभक्ष्यभक्षणात्पूतो

देवभावसे सम्पन्न हुए बिना देवताकी पूजा नहीं करनी चाहिये—ऐसा वेदवेत्ताओंने कहा है। इसलिये अभेदसम्पादनके लिये अपने शरीरमें इन देवताओंकी भावना करनी चाहिये॥ ६॥

[हे नारद] अब मैं वह उपाय बता रहा हूँ जिससे तन्मयता प्राप्त हो सकती है। स्वयं मैं नारायण ही इस गायत्रीहृदयका ऋषि कहा गया हूँ। गायत्री इसका छन्द है और भगवती परमेश्वरी इसकी देवता हैं। पूर्वमें कही गयी रीतिसे अपने छहों अंगोंमें क्रमसे इनका न्यास करना चाहिये। इसके लिये सर्वप्रथम निर्जन स्थानमें किसी आसनपर बैठकर एकाग्रचित्त हो भगवती गायत्रीका ध्यान करना चाहिये॥ ७-८॥

[अब अंगन्यासकी विधि बतायी जाती है—] मस्तकमें द्यौ नामक देवता, दन्तपंक्तिमें दोनों अश्विनीकुमारों, दोनों ओठोंमें दोनों संध्याओं, मुखमें अग्नि, जिह्वामें सरस्वती, ग्रीवामें बृहस्पति, दोनों स्तनोंमें आठों वसुओं, दोनों भुजाओंमें मरुद्गणों, हृदयमें पर्जन्य, उदरमें आकाश, नाभिमें अन्तरिक्ष, दोनों कटिदेशमें इन्द्र तथा अग्नि, जघनमें विज्ञानघन प्रजापति, एक उरुमें कैलास तथा मलयगिरि, दोनों घुटनोंमें विश्वेदेवों, पिण्डलीमें कौशिक, गुह्यदेशमें उत्तरायण एवं दक्षिणायनके अधिष्ठातृदेवता, दूसरे उरुमें पितरों, पैरोंमें पृथ्वी, अँगुलियोंमें वनस्पतियों, रोमोंमें ऋषियों, नखोंमें मुहूर्तों, हड्डियोंमें ग्रहों तथा रुधिर एवं मांसमें ऋतुओंकी भावना करे। संवत्सर जिनके लिये एक पलके समान है तथा जिनके आदेशसे सूर्य और चन्द्रमा दिन-रातका विभाजन करते हैं, मैं उन परम श्रेष्ठ, दिव्य तथा सहस्र नेत्रोंवाली भगवती गायत्रीकी शरण ग्रहण करता हूँ। ॐ सूर्यके उस श्रेष्ठ तेजको नमस्कार है। ॐ पूर्व दिशामें उदय होनेवाले उन सूर्यको नमस्कार है। प्रातःकालीन उन सूर्यको नमस्कार है। आदित्यमण्डलमें प्रतिष्ठा प्राप्त करनेवाली उन गायत्रीको नमस्कार है। प्रातःकाल गायत्रीहृदयका पाठ करनेवाला रात्रिमें किये हुए पापका नाश करता है, सायंकालमें इसका पाठ करनेवाला दिनमें किये गये पापोंका शमन करता है और सायं तथा प्रातः दोनों वेलाओंमें पाठ करनेवाला निष्पाप हो जाता है। वह समस्त तीर्थोंमें स्नान किया हुआ हो जाता है। वह सभी देवताओंके लिये ज्ञात हो जाता है। गायत्रीकी कृपासे

भवति। अभोज्यभोजनात्पूतो भवति। अचोष्यचोषणात्पूतो भवति। असाध्यसाधनात्पूतो भवति। दुष्प्रतिग्रहशतसहस्रात्पूतो भवति। सर्वप्रतिग्रहात्पूतो भवति। पङ्क्तिदूषणात्पूतो भवति। अनृतवचनात्पूतो भवति। अथाब्रह्मचारी ब्रह्मचारी भवति। अनेन हृदयेनाधीतेन क्रतुसहस्रेणेष्टं भवति। षष्टिशतसहस्रगायत्र्या जप्यानि फलानि भवन्ति। अष्टौ ब्राह्मणान्सम्यग्ग्राहयेत्। तस्य सिद्धिर्भवति। य इदं नित्यमधीयानो ब्राह्मणः प्रातः शुचिः सर्वपापैः प्रमुच्यत इति। ब्रह्मलोके महीयते। इत्याह भगवान् श्रीनारायणः।

मनुष्य अभाष्यभाषण, अभक्ष्यभक्षण, अभोज्यभोजन, अचोष्यचोषण, असाध्यसाधन, लाखों दुष्प्रतिग्रहों, सभी प्रकारके प्रतिग्रहों, पंक्तिदूषण तथा असत्यवचन—इन सभीसे पवित्र हो जाता है। उनकी कृपासे अब्रह्मचारी भी ब्रह्मचारी हो जाता है। इस गायत्रीहृदयके पाठसे हजार यज्ञोंके करनेसे होनेवाला फल प्राप्त हो जाता है। इसके पाठसे साठ लाख गायत्रीजपसे मिलनेवाले फल प्राप्त हो जाते हैं। इसके अनुष्ठानमें सम्यक् प्रकारसे आठ ब्राह्मणोंका वरण करना चाहिये; ऐसा करनेसे उस व्यक्तिको सिद्धि प्राप्त हो जाती है। जो ब्राह्मण प्रतिदिन प्रातःकाल पवित्र होकर इस गायत्रीहृदयका पाठ करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है और ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है—ऐसा स्वयं भगवान् श्रीनारायणने कहा है।

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां द्वादशस्कन्धे गायत्रीहृदयं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥



अथ पञ्चमोऽध्यायः

गायत्रीस्तोत्र तथा उसके पाठका फल

नारद उवाच

भक्तानुकम्पिन् सर्वज्ञ हृदयं पापनाशनम्।
गायत्र्याः कथितं तस्माद् गायत्र्याः स्तोत्रमीरय॥ १

श्रीनारायण उवाच

आदिशक्ते जगन्मातर्भक्तानुग्रहकारिणि।
सर्वत्र व्यापिकेऽनन्ते श्रीसन्ध्ये ते नमोऽस्तु ते॥ २

त्वमेव सन्ध्या गायत्री सावित्री च सरस्वती।
ब्राह्मी च वैष्णवी रौद्री रक्ता श्वेता सितेतरा॥ ३

प्रातर्बाला च मध्याह्ने यौवनस्था भवेत्पुनः।
वृद्धा सायं भगवती चिन्त्यते मुनिभिः सदा॥ ४

हंसस्था गरुडारूढा तथा वृषभवाहिनी।
ऋग्वेदाध्यायिनी भूमौ दृश्यते या तपस्विभिः॥ ५

यजुर्वेदं पठन्ती च अन्तरिक्षे विराजते।
सा सामगापि सर्वेषु भ्राम्यमाणा तथा भुवि॥ ६

नारदजी बोले—हे भक्तोंपर अनुकम्पा करनेवाले! हे सर्वज्ञ! आपने पापोंका नाश करनेवाले गायत्रीहृदयका तो वर्णन कर दिया; अब गायत्रीस्तोत्रका कथन कीजिये॥ १॥

श्रीनारायण बोले—हे आदिशक्ते! हे जगन्मातः! हे भक्तोंपर कृपा करनेवाली! हे सर्वत्र व्याप्त रहनेवाली! हे अनन्ते! हे श्रीसन्ध्ये! आपको नमस्कार है॥ २॥

आप ही सन्ध्या, गायत्री, सावित्री, सरस्वती, ब्राह्मी, वैष्णवी तथा रौद्री हैं। आप रक्त, श्वेत तथा कृष्ण वर्णोंवाली हैं॥ ३॥

आप प्रातःकालमें बाल्यावस्थावाली, मध्याह्नकालमें युवावस्थासे युक्त तथा सायंकालमें वृद्धावस्थासे सम्पन्न हो जाती हैं। मुनिगण इन रूपोंमें आप भगवतीका सदा चिन्तन करते रहते हैं॥ ४॥

आप प्रातःकाल हंसपर, मध्याह्नकालमें गरुडपर तथा सायंकालमें वृषभपर विराजमान रहती हैं। आप ऋग्वेदका पाठ करती हुई भूमण्डलपर तपस्वियोंको दृष्टिगोचर होती हैं। आप यजुर्वेदका पाठ करती हुई अन्तरिक्षमें विराजमान रहती हैं। वही आप सामगान करती हुई भूमण्डलपर सर्वत्र भ्रमण करती रहती हैं॥ ५-६॥

रुद्रलोकं गता त्वं हि विष्णुलोकनिवासिनी।
त्वमेव ब्रह्मणो लोकेऽमर्त्यानुग्रहकारिणी॥ ७

सप्तर्षिप्रीतिजननी माया बहुवरप्रदा।
शिवयोः करनेत्रोत्था ह्यश्रुस्वेदसमुद्भवा॥ ८

आनन्दजननी दुर्गा दशधा परिपठ्यते।
वरेण्या वरदा चैव वरिष्ठा वरवर्णिनी॥ ९

गरिष्ठा च वरार्हा च वरारोहा च सप्तमी।
नीलगङ्गा तथा सन्ध्या सर्वदा भोगमोक्षदा॥ १०

भागीरथी मर्त्यलोके पाताले भोगवत्यपि।
त्रिलोकवाहिनी देवी स्थानत्रयनिवासिनी॥ ११

भूर्लोकस्था त्वमेवासि धरित्री लोकधारिणी।
भुवो लोके वायुशक्तिः स्वर्लोके तेजसां निधिः॥ १२

महर्लोके महासिद्धिर्जनलोके जनेत्यपि।
तपस्विनी तपोलोके सत्यलोके तु सत्यवाक्॥ १३

कमला विष्णुलोके च गायत्री ब्रह्मलोकदा।
रुद्रलोके स्थिता गौरी हरार्धाङ्गनिवासिनी। १४

अहमो महतश्चैव प्रकृतिस्त्वं हि गीयसे।
साम्यावस्थात्मिका त्वं हि शबलब्रह्मरूपिणी॥ १५

ततः परा परा शक्तिः परमा त्वं हि गीयसे।
इच्छाशक्तिः क्रियाशक्तिर्ज्ञानशक्तिस्त्रिशक्तिदा॥ १६

गङ्गा च यमुना चैव विपाशा च सरस्वती।
सरयूर्देविका सिन्धुर्नर्मदैरावती तथा॥ १७

गोदावरी शतद्रूश्च कावेरी देवलोकगा।
कौशिकी चन्द्रभागा च वितस्ता च सरस्वती॥ १८

गण्डकी तापिनी तोया गोमती वेत्रवत्यपि।
इडा च पिङ्गला चैव सुषुम्णा च तृतीयका॥ १९

गान्धारी हस्तिजिह्वा च पूषापूषा तथैव च।
अलम्बुषा कुहूश्चैव शङ्खिनी प्राणवाहिनी॥ २०

विष्णुलोकमें निवास करनेवाली आप रुद्रलोकमें भी गमन करती हैं। देवताओंपर अनुग्रह करनेवाली आप ब्रह्मलोकमें भी विराजमान रहती हैं॥ ७॥

मायास्वरूपिणी आप सप्तर्षियोंको प्रसन्न करनेवाली तथा अनेक प्रकारके वर प्रदान करनेवाली हैं। आप शिवशक्तिके हाथ, नेत्र, अश्रु तथा स्वेदसे दस प्रकारकी दुर्गाके रूपमें प्रादुर्भूत हुई हैं। आप आनन्दकी जननी हैं। वरेण्या, वरदा, वरिष्ठा, वरवर्णिनी, गरिष्ठा, वरार्हा, सातवीं वरारोहा, नीलगंगा, सन्ध्या और भोगमोक्षदा—आपके ये दस नाम हैं॥ ८—१०॥

आप मृत्युलोकमें भागीरथी, पातालमें भोगवती और स्वर्गमें त्रिलोकवाहिनी (मन्दाकिनी)-देवीके रूपमें तीनों लोकोंमें निवास करती हैं॥ ११॥

लोकको धारण करनेवाली आप ही धरित्रीरूपसे भूलोकमें निवास करती हैं। आप भुवर्लोकमें वायुशक्ति, स्वर्लोकमें तेजोनिधि, महर्लोकमें महासिद्धि, जनलोकमें जना, तपोलोकमें तपस्विनी, सत्यलोकमें सत्यवाक्, विष्णुलोकमें कमला, ब्रह्मलोकमें गायत्री और रुद्रलोकमें शंकरके अर्धांगमें निवास करनेवाली गौरीके रूपमें स्थित हैं॥ १२—१४॥

अहंकार और महत् तत्त्वोंकी प्रकृतिके रूपमें आप ही कही जाती हैं। नित्य साम्य अवस्थामें विराजमान आप शबल ब्रह्मस्वरूपिणी हैं॥ १५॥

आप उससे भी बड़ी 'पराशक्ति' तथा 'परमा' कही गयी हैं। आप इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति और ज्ञानशक्तिके रूपमें विद्यमान हैं और इन तीनों शक्तियोंको प्रदान करनेवाली हैं॥ १६॥

आप गंगा, यमुना, विपाशा, सरस्वती, सरयू, देविका, सिन्धु, नर्मदा, इरावती, गोदावरी, शतद्रु, देवलोकमें गमन करनेवाली कावेरी, कौशिकी, चन्द्रभागा, वितस्ता, सरस्वती, गण्डकी, तापिनी, तोया, गोमती तथा वेत्रवती नदियोंके रूपमें विराजमान हैं और इडा, पिंगला, तीसरी सुषुम्ना, गान्धारी, हस्तिजिह्वा, पूषा, अपूषा, अलम्बुषा, कुहू और शंखिनी—इन प्राणवाहिनी नाड़ियोंके रूपमें आपको ही प्राचीन विद्वानोंने शरीरमें स्थित बताया है। आप हृदयकमलमें प्राणशक्तिके रूपमें, कण्ठदेशमें स्वप्ननायिकाके रूपमें, तालुओंमें

नाडी च त्वं शरीरस्था गीयसे प्राक्तनैर्बुधैः।
हृत्पद्मस्था प्राणशक्तिः कण्ठस्था स्वप्ननायिका॥ २१

तालुस्था त्वं सदाधारा बिन्दुस्था बिन्दुमालिनी।
मूले तु कुण्डलीशक्तिर्व्यापिनी केशमूलगा॥ २२

शिखामध्यासना त्वं हि शिखाग्रे तु मनोन्मनी।
किमन्यद् बहुनोक्तेन यत्किञ्चिज्जगतीत्रये॥ २३

तत्सर्वं त्वं महादेवि श्रिये सन्ध्ये नमोऽस्तु ते।
इतीदं कीर्तितं स्तोत्रं सन्ध्यायां बहुपुण्यदम्॥ २४

महापापप्रशमनं महासिद्धिविधायकम्।
य इदं कीर्तयेत्स्तोत्रं सन्ध्याकाले समाहितः॥ २५

अपुत्रः प्राप्नुयात्पुत्रं धनार्थी धनमाप्नुयात्।
सर्वतीर्थतपोदानयज्ञयोगफलं लभेत्॥ २६

भोगान्भुक्त्वा चिरं कालमन्ते मोक्षमवाप्नुयात्।
तपस्विभिः कृतं स्तोत्रं स्नानकाले तु यः पठेत्॥ २७

यत्र कुत्र जले मग्नः सन्ध्यामज्जनजं फलम्।
लभते नात्र सन्देहः सत्यं सत्यं च नारद॥ २८

शृणुयाद्योऽपि तद्भक्त्या स तु पापात्प्रमुच्यते।
पीयूषसदृशं वाक्यं सन्ध्योक्तं नारदेरितम्॥ २९

सर्वाधारस्वरूपिणीके रूपमें और भ्रूमध्यमें बिन्दु-मालिनीके रूपमें विराजमान रहती हैं। आप मूलाधारमें कुण्डलीशक्तिके रूपमें तथा चूडामूलपर्यन्त व्यापिनीशक्तिके रूपमें स्थित हैं। शिखाके मध्यभागमें परमात्मशक्तिके रूपमें तथा शिखाके अग्रभागमें मनोन्मनीशक्तिके रूपमें आप ही विराजमान रहती हैं। हे महादेवि! अधिक कहनेसे क्या लाभ? तीनों लोकोंमें जो कुछ भी है, वह सब आप ही हैं। हे सन्ध्ये! मोक्षलक्ष्मीकी प्राप्तिके लिये आपको नमस्कार है॥ १७—२३½ ॥

[हे नारद!] सन्ध्याके समय पढ़ा गया यह स्तोत्र अत्यधिक पुण्य प्रदान करनेवाला, महान् पापोंका नाश करनेवाला तथा महान् सिद्धियोंकी प्राप्ति करानेवाला है। जो व्यक्ति एकाग्रचित्त होकर सन्ध्याकालमें इस गायत्रीस्तोत्रका पाठ करता है, वह यदि पुत्रहीन है तो पुत्र और यदि धनका अभिलाषी है तो धन प्राप्त कर लेता है। ऐसा करनेवालेको समस्त तीर्थ, तप, दान, यज्ञ तथा योगका फल प्राप्त हो जाता है और दीर्घ कालतक सुखोंका उपभोग करके अन्तमें वह मोक्षको प्राप्त होता है॥ २४—२६½ ॥

हे नारद! जो पुरुष स्नानकालमें तपस्वियोंद्वारा किये गये इस स्तोत्रका पाठ करता है, वह जहाँ कहीं भी जलमें स्नान करे, उसे सन्ध्यारूपी मज्जनसे होनेवाला फल प्राप्त हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं है; मेरा यह कथन सत्य है, सत्य है॥ २७-२८॥

हे नारद! सन्ध्याको उद्देश्य करके कहे गये इस अमृततुल्य स्तोत्रको जो भी व्यक्ति भक्तिपूर्वक सुनता है, वह पापसे मुक्त हो जाता है॥ २९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां द्वादशस्कन्धे श्रीगायत्रीस्तोत्रवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

~~o~~

अथ षष्ठोऽध्यायः

गायत्रीसहस्त्रनामस्तोत्र तथा उसके पाठका फल

नारद उवाच

भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वशास्त्रविशारद।
श्रुतिस्मृतिपुराणानां रहस्यं त्वन्मुखाच्छ्रुतम्॥ १

सर्वपापहरं देव येन विद्या प्रवर्तते।

नारदजी बोले—सभी धर्मोंको जाननेवाले तथा सभी शास्त्रोंमें निष्णात हे भगवन्! मैंने आपके मुखसे श्रुतियों, स्मृतियों तथा पुराणोंसे सम्बद्ध सभी प्रकारके पापोंका नाश करनेवाला वह रहस्य सुन लिया,

केन वा ब्रह्मविज्ञानं किं नु वा मोक्षसाधनम्॥ २

ब्राह्मणानां गतिः केन केन वा मृत्युनाशनम्।
ऐहिकामुष्मिकफलं केन वा पद्मलोचन॥ ३

वक्तुमर्हस्यशेषेण सर्वं निखिलमादितः।

श्रीनारायण उवाच

साधु साधु महाप्राज्ञ सम्यक् पृष्टं त्वयानघ॥ ४

शृणु वक्ष्यामि यत्नेन गायत्र्यष्टसहस्रकम्।
नाम्नां शुभानां दिव्यानां सर्वपापविनाशनम्॥ ५

सृष्ट्यादौ यद्भगवता पूर्वं प्रोक्तं ब्रवीमि ते।
अष्टोत्तरसहस्रस्य ऋषिर्ब्रह्मा प्रकीर्तितः॥ ६

छन्दोऽनुष्टुप् तथा देवी गायत्री देवता स्मृता।
हलो बीजानि तस्यैव स्वराः शक्तय ईरिताः॥ ७

अङ्गन्यासकरन्यासावुच्येते मातृकाक्षरैः।
अथ ध्यानं प्रवक्ष्यामि साधकानां हिताय वै॥ ८

रक्तश्वेतहिरण्यनीलधवलैर्युक्तां त्रिनेत्रोज्ज्वलां
रक्तां रक्तनवस्रजं मणिगणैर्युक्तां कुमारीमिमाम्।
गायत्रीं कमलासनां करतलव्यानद्धकुण्डाम्बुजां
पद्माक्षीं च वरस्रजं च दधतीं हंसाधिरूढां भजे॥ ९

अचिन्त्यलक्षणाव्यक्ताप्यर्थमातृमहेश्वरी ।
अमृतार्णवमध्यस्थाप्यजिता चापराजिता॥ १०

जिससे विद्याकी प्राप्ति होती है। हे देव! किसके द्वारा ब्रह्मज्ञान प्राप्त होता है और मोक्षका साधन क्या है? हे कमलनयन! किस साधनसे ब्राह्मणोंको उत्तम गति मिलती है, किससे मृत्युका नाश होता है? और किसके आश्रयसे मनुष्यको इहलोक तथा परलोकमें उत्तम फल प्राप्त होता है? इस सम्बन्धमें प्रारम्भसे लेकर सम्पूर्ण बातें विस्तारपूर्वक बतानेकी कृपा कीजिये॥ १—३½ ॥

श्रीनारायण बोले—हे महाप्राज्ञ! हे अनघ! आपको साधुवाद है, जो आपने इतनी उत्तम बात पूछी है। सुनिये, मैं प्रयत्नपूर्वक गायत्रीके दिव्य तथा मंगलकारी एक हजार आठ नामोंवाले सर्वपापहारीस्तोत्रका वर्णन करता हूँ॥ ४-५॥

पूर्वकालमें सृष्टिके आदिमें भगवान्‌ने जिसे कहा था, वही मैं आपको बता रहा हूँ। इस एक हजार आठ नामवाले स्तोत्रके ऋषि ब्रह्माजी कहे गये हैं। अनुष्टुप् इसका छन्द है तथा भगवती गायत्री इसकी देवता कही गयी हैं। हल् (व्यंजन) वर्ण इसके बीज और स्वर इसकी शक्तियाँ कही गयी हैं। मातृकामन्त्रके छः अक्षर ही इसके छः अंगन्यास और करन्यास कहे जाते हैं॥ ६-७½ ॥

अब साधकोंके कल्याणके लिये देवीका ध्यान बताता हूँ। रक्त-श्वेत-पीत-नील एवं धवलवर्ण (-वाले मुखों)-से सम्पन्न, तीन नेत्रोंसे देदीप्यमान विग्रहवाली, रक्तवर्णवाली, नवीन रक्तपुष्पोंकी माला धारण करनेवाली, अनेक मणिसमूहोंसे युक्त, कमलके आसनपर विराजमान, अपने दो हाथोंमें कमल और कुण्डिका एवं अन्य दो हाथोंमें वर तथा अक्षमाला धारण करनेवाली, कमलके समान नेत्रोंवाली, हंसपर विराजमान रहनेवाली तथा कुमारी अवस्थासे सम्पन्न भगवती गायत्रीकी मैं उपासना करता हूँ॥ ८-९॥
[देवीके सहस्रनाम इस प्रकार हैं—]

१. **अचिन्त्यलक्षणा** (बुद्धिकी पहुँचसे परे लक्षणोंवाली) २. **अव्यक्ता**, ३. **अर्थमातृमहेश्वरी** (अर्थ आदि पार्थिव पदार्थोंके परिच्छेदक ब्रह्मा आदि देवताओंपर नियन्त्रण करनेवाली) ४. **अमृता** (अमृतस्वरूपिणी), ५. **अर्णवमध्यस्था** (समुद्रके भीतर विराजमान रहनेवाली),

अणिमादिगुणाधाराप्यर्कमण्डलसंस्थिता ।
अजराजापराधर्मा अक्षसूत्रधराधरा॥ ११

६. **अजिता**, ७. **अपराजिता** ८. **अणिमादिगुणाधारा** (अणिमा आदि सिद्धियोंकी आश्रयभूता), ९. **अर्कमण्डलसंस्थिता** (सूर्यमण्डलमें विराजमान), १०. **अजरा** (सदा तरुण अवस्थामें रहनेवाली), ११. **अजा** (जन्मरहित), १२. **अपरा** (जिनसे अतिरिक्त कोई दूसरा नहीं है), १३. **अधर्मा** (जात्यादिनिमित्तक लोकधर्मोंसे रहित), १४. **अक्षसूत्रधरा** (अक्षसूत्र धारण करनेवाली), १५. **अधरा** (अपने ही आधारपर स्थित)॥ १०-११॥

अकारादिक्षकारान्ताप्यरिषड्वर्गभेदिनी ।
अञ्जनाद्रिप्रतीकाशाप्यञ्जनाद्रिनिवासिनी ॥ १२

१६. **अकारादिक्षकारान्ता** (जिनके आदिमें अकार तथा अन्तमें क्षकार है, वे वर्णमातृकास्वरूपिणी देवी), १७. **अरिषड्वर्गभेदिनी** (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद एवं मात्सर्य—इन छः प्रकारके शत्रुओंका भेदन करनेवाली), १८. **अञ्जनाद्रिप्रतीकाशा** (अंजनगिरिके समान कृष्णवर्णकी प्रभासे सुशोभित), १९. **अञ्जनाद्रिनिवासिनी** (अंजनगिरिपर निवास करनेवाली)॥ १२॥

अदितिश्चाजपाविद्याप्यरविन्दनिभेक्षणा ।
अन्तर्बहिःस्थिताविद्याध्वंसिनी चान्तरात्मिका॥ १३

२०. **अदितिः** (देवताओंकी माता), २१. **अजपा** (अजपाजपरूपिणी), २२. **अविद्या** (माया), २३. **अरविन्दनिभेक्षणा** (कमलसदृश नेत्रोंवाली), २४. **अन्तर्बहिःस्थिता** (सभीके भीतर तथा बाहर स्थित रहनेवाली), २५. **अविद्याध्वंसिनी** (अविद्याका नाश करनेवाली), २६. **अन्तरात्मिका** (सभीके अन्तःकरणमें विराजमान रहनेवाली)॥ १३॥

अजा चाजमुखावासाप्यरविन्दनिभानना।
अर्धमात्रार्थदानज्ञाप्यरिमण्डलमर्दिनी ॥ १४

२७. **अजा** (जन्मसे रहित प्रकृतिस्वरूपिणी), २८. **अजमुखावासा** (ब्रह्माके मुखमें निवास करनेवाली), २९. **अरविन्दनिभानना** (कमलके समान प्रफुल्लित मुखवाली), ३०. **अर्धमात्रा** (प्रणवांगभूत अर्धमात्रास्वरूपा), ३१. **अर्थदानज्ञा** (धर्म आदि चारों पुरुषार्थोंका दान करनेमें कुशल), ३२. **अरिमण्डलमर्दिनी** (शत्रु-समूहोंका मर्दन करनेवाली)॥ १४॥

असुरघ्नी ह्यमावास्याप्यलक्ष्मीघ्न्यन्त्यजार्चिता।
आदिलक्ष्मीश्चादिशक्तिराकृतिश्चायतानना॥ १५

३३. **असुरघ्नी** (राक्षसोंका संहार करनेवाली), ३४. **अमावास्या** (अमावस्यातिथिरूपा), ३५. **अलक्ष्मीघ्न्यन्त्यजार्चिता** (अलक्ष्मीका संहार करनेवाली अन्त्यजा—मातंगीदेवीसे अर्चित होनेवाली), ३६. **आदिलक्ष्मीः**, ३७. **आदिशक्तिः** (महामाया), ३८. **आकृतिः** (आकारस्वरूपिणी), ३९. **आयतानना** (विशाल मुखवाली)॥ १५॥

आदित्यपदवीचाराप्यादित्यपरिसेविता ।
आचार्यावर्तनाचाराप्यादिमूर्तिनिवासिनी ॥ १६

४०. आदित्यपदवीचारा (आदित्यमार्गपर चलनेवाली सूर्यगतिरूपा), **४१. आदित्यपरिसेविता** (सूर्य आदि देवताओंसे सुसेवित), **४२. आचार्या** (सदाचारकी व्याख्या करनेवाली), **४३. आवर्तना** (भ्रमणशील जगत्की रचना करनेवाली), **४४. आचारा** (आचारस्वरूपिणी), **४५. आदिमूर्तिनिवासिनी** (आदिमूर्ति अर्थात् ब्रह्ममें निवास करनेवाली) ॥ १६ ॥

आग्नेयी चामरी चाद्या चाराध्या चासनस्थिता ।
आधारनिलयाधारा चाकाशान्तनिवासिनी ॥ १७

४६. आग्नेयी (अग्निकी अधिष्ठात्री), **४७. आमरी** (देवताओंकी पुरी जिनका रूप माना जाता है), **४८. आद्या** (आदिस्वरूपिणी), **४९. आराध्या** (सभीके द्वारा आराधित), **५०. आसनस्थिता** (दिव्य आसनपर विराजमान रहनेवाली), **५१. आधारनिलया** (मूलाधारमें निवास करनेवाली कुण्डलिनीस्वरूपिणी), **५२. आधारा** (जगत्को धारण करनेवाली), **५३. आकाशान्तनिवासिनी** (आकाशतत्त्वके अन्तरूप अहंकारमें निवास करनेवाली) ॥ १७ ॥

आद्याक्षरसमायुक्ता चान्तराकाशरूपिणी ।
आदित्यमण्डलगता चान्तरध्वान्तनाशिनी ॥ १८

५४. आद्याक्षरसमायुक्ता (आदि अक्षर अर्थात् अकारसे युक्त), **५५. आन्तराकाशरूपिणी** (दहराकाश-रूपिणी), **५६. आदित्यमण्डलगता** (सूर्यमण्डलमें विद्यमान), **५७. आन्तरध्वान्तनाशिनी** (अज्ञानरूप आन्तरिक अन्धकारका नाश करनेवाली) ॥ १८ ॥

इन्दिरा चेष्टदा चेष्टा चेन्दीवरनिभेक्षणा ।
इरावती चेन्द्रपदा चेन्द्राणी चेन्दुरूपिणी ॥ १९

५८. इन्दिरा (लक्ष्मी), **५९. इष्टदा** (मनोरथ पूर्ण करनेवाली), **६०. इष्टा** (साधकोंकी अभीष्ट देवतारूपिणी), **६१. इन्दीवरनिभेक्षणा** (सुन्दर नीलकमलके समान नेत्रोंवाली), **६२. इरावती** (इरा अर्थात् पृथ्वीसे युक्त), **६३. इन्द्रपदा** (अपनी कृपासे इन्द्रको पद दिलानेवाली), **६४. इन्द्राणी** (शचीरूपसे विराजमान), **६५. इन्दुरूपिणी** (चन्द्रमाके समान सुन्दर रूपवाली) ॥ १९ ॥

इक्षुकोदण्डसंयुक्ता चेषुसन्धानकारिणी ।
इन्द्रनीलसमाकारा चेडापिङ्गलरूपिणी ॥ २०

६६. इक्षुकोदण्डसंयुक्ता (हाथमें इक्षुका धनुष धारण करनेवाली), **६७. इषुसन्धानकारिणी** (बाणोंका संधान करनेमें दक्ष), **६८. इन्द्रनीलसमाकारा** (इन्द्रनील-मणिके समान प्रभावाली), **६९. इडापिङ्गलरूपिणी** (इडा और पिंगला आदि नाड़ीरूपिणी) ॥ २० ॥

इन्द्राक्षी चेश्वरी देवी चेहात्रयविवर्जिता ।

७०. इन्द्राक्षी (शताक्षी नामवाली देवी), **७१. ईश्वरी देवी** (अखिल ऐश्वर्योंसे युक्त भगवती), **७२. ईहात्रयविवर्जिता** (तीन प्रकारकी ईहा अर्थात्

उमा चोषा ह्युडुनिभा उर्वारुकफलानना॥ २१

लोकैषणा, वित्तैषणा और पुत्रैषणासे रहित), **७३. उमा, ७४. उषा, ७५. उडुनिभा** (नक्षत्रके सदृश प्रभावाली), **७६. उर्वारुकफलानना** (ककड़ीके फलके समान सदा प्रफुल्लित मुखवाली) ॥ २१ ॥

उडुप्रभा चोडुमती ह्युडुपा ह्युडुमध्यगा।
ऊर्ध्वं चाप्यूर्ध्वकेशी चाप्यूर्ध्वाधोगतिभेदिनी॥ २२

७७. उडुप्रभा (जलके समान वर्णवाली), **७८. उडुमती** (रात्रिरूपिणी), **७९. उडुपा** (चन्द्रमा अथवा नौकारूपिणी), **८०. उडुमध्यगा** (नक्षत्रमण्डलके मध्य विराजमान), **८१. ऊर्ध्वम्** (ऊर्ध्वदेशरूपिणी), **८२. ऊर्ध्वकेशी** (ऊपरकी ओर उठे हुए केशोंवाली), **८३. ऊर्ध्वाधोगतिभेदिनी** (ऊर्ध्वगति अर्थात् स्वर्ग और अधोगति अर्थात् नरक दोनोंका भेदन करनेवाली) ॥ २२ ॥

ऊर्ध्वबाहुप्रिया चोर्मिमालावाग्ग्रन्थदायिनी।
ऋतं चर्षिर्ऋतुमती ऋषिदेवनमस्कृता॥ २३

८४. ऊर्ध्वबाहुप्रिया (भुजाओंको ऊपर उठाकर आराधना करनेवाले भक्तोंसे प्रेम करनेवाली), **८५. ऊर्मिमालावाग्ग्रन्थदायिनी** (तरंगमालाओंके समान श्रेष्ठ वाणीसे सम्पन्न ग्रन्थ-रचनाका सामर्थ्य प्रदान करनेवाली), **८६. ऋतम्** (सूनृत-स्वरूपिणी), **८७. ऋषिः** (वेदरूपा), **८८. ऋतुमती, ८९. ऋषिदेव-नमस्कृता** (ऋषियों तथा देवताओंसे नमस्कृत होनेवाली) ॥ २३ ॥

ऋग्वेदा ऋणहर्त्री च ऋषिमण्डलचारिणी।
ऋद्धिदा ऋजुमार्गस्था ऋजुधर्मा ऋतुप्रदा॥ २४

९०. ऋग्वेदा (ऋग्वेदरूपा), **९१. ऋणहर्त्री** (देव-ऋण, ऋषि-ऋण और पितृ-ऋणका नाश करनेवाली), **९२. ऋषिमण्डलचारिणी** (ऋषियोंकी मण्डलीमें विचरण करनेवाली), **९३. ऋद्धिदा** (समृद्धि प्रदान करनेवाली), **९४. ऋजुमार्गस्था** (सदाचारके मार्गपर चलनेवाली), **९५. ऋजुधर्मा** (सहज धर्मवाली), **९६. ऋतुप्रदा** (अपनी कृपासे विभिन्न ऋतुएँ प्रदान करनेवाली) ॥ २४ ॥

ऋग्वेदनिलया ऋज्वी लुप्तधर्मप्रवर्तिनी।
लूतारिवरसम्भूता लूतादिविषहारिणी॥ २५

९७. ऋग्वेदनिलया (ऋग्वेदमें निवास करनेवाली), **९८. ऋज्वी** (सरल स्वभाववाली), **९९. लुप्तधर्म-प्रवर्तिनी** (लुप्त धर्मोंका पुनः प्रवर्तन करनेवाली), **१००. लूतारिवरसम्भूता** (लूता नामक रोगविशेषके महान् शत्रुरूपी मन्त्रोंको उत्पन्न करनेवाली), **१०१. लूतादिविषहारिणी** (मकड़ी आदिके विषका हरण करनेवाली) ॥ २५ ॥

एकाक्षरा चैकमात्रा चैका चैकैकनिष्ठिता।

१०२. एकाक्षरा (एक अक्षरसे युक्त), **१०३. एकमात्रा** (एक मात्रामें विराजनेवाली), **१०४. एका** (अद्वितीय), **१०५. एकनिष्ठा** (सर्वदा एकनिष्ठ

ऐन्द्री ह्यैरावतारूढा चैहिकामुष्मिकप्रदा॥ २६

भावमें रहनेवाली), १०६. **ऐन्द्री** (इन्द्रकी शक्तिस्वरूपा), १०७. **ऐरावतारूढा** (ऐरावतपर आरूढ़ रहनेवाली), १०८. **ऐहिकामुष्मिकप्रदा** (इहलोक तथा परलोकका फल प्रदान करनेवाली)॥ २६॥

ओङ्कारा ह्योषधी चोता चोतप्रोतनिवासिनी।
और्वा ह्यौषधसम्पन्ना औपासनफलप्रदा॥ २७

१०९. **ओङ्कारा** (प्रणवस्वरूपिणी), ११०. **ओषधी** (सांसारिक रोगोंसे ग्रस्त प्राणियोंके लिये ओषधिरूपा), १११. **ओता** (मणिमें सूत्रकी भाँति सम्पूर्ण प्राणियोंके अन्त:करणमें विराजमान), ११२. **ओतप्रोत-निवासिनी** (ब्रह्मसे व्याप्त ब्रह्माण्डमें निवास करनेवाली), ११३. **और्वा** (वाडवाग्निस्वरूपिणी), ११४. **औषधसम्पन्ना** (भवरोगके शमनहेतु औषधियोंसे सम्पन्न), ११५. **औपासनफलप्रदा** (उपासना करनेवालोंको श्रेष्ठ फल प्रदान करनेवाली)॥ २७॥

अण्डमध्यस्थिता देवी चाःकारमनुरूपिणी।
कात्यायनी कालरात्रिः कामाक्षी कामसुन्दरी॥ २८

११६. **अण्डमध्यस्थिता देवी** (ब्रह्माण्डके भीतर विराजमान देवी), ११७. **अःकारमनुरूपिणी** (अःकार अर्थात् विसर्गरूप मन्त्रमय विग्रहवाली), ११८. **कात्यायनी** (कात्यायनऋषिद्वारा उपासित), ११९. **कालरात्रि** (दानवोंके संहारके लिये कालरात्रिके रूपमें प्रकट करनेवाली), १२०. **कामाक्षी** (कामको नेत्रोंमें धारण करनेवाली), १२१. **कामसुन्दरी** (यथेच्छ सुन्दर स्वरूप धारण करनेवाली)॥ २८॥

कमला कामिनी कान्ता कामदा कालकण्ठिनी।
करिकुम्भस्तनभरा करवीरसुवासिनी॥ २९

१२२. **कमला**, १२३. **कामिनी**, १२४. **कान्ता**, १२५. **कामदा**, १२६. **कालकण्ठिनी** (कालको अपने कण्ठमें समाहित कर लेनेवाली), १२७. **करिकुम्भस्तनभरा** (हाथीके कुम्भसदृश पयोधरोंवाली), १२८. **करवीरसुवासिनी** (करवीर अर्थात् महालक्ष्मीक्षेत्रमें निवास करनेवाली)॥ २९॥

कल्याणी कुण्डलवती कुरुक्षेत्रनिवासिनी।
कुरुविन्ददलाकारा कुण्डली कुमुदालया॥ ३०

१२९. **कल्याणी**, १३०. **कुण्डलवती**, १३१. **कुरुक्षेत्रनिवासिनी**, १३२. **कुरुविन्ददलाकारा** (कुरुविन्ददलके समान आकारवाली), १३३. **कुण्डली**, १३४. **कुमुदालया**, १३५. **कालजिह्वा** (राक्षसोंके संहारके लिये कालरूपिणी जिह्वासे सम्पन्न), १३६. **करालास्या** (शत्रुओंके समक्ष विकराल मुखाकृतिवाली), १३७. **कालिका**, १३८. **कालरूपिणी**, १३९. **कमनीयगुणा** (सुन्दर गुणोंसे सम्पन्न), १४०. **कान्तिः**, १४१. **कलाधारा** (समस्त चौंसठ कलाओंको धारण करनेवाली), १४२. **कुमुद्वती**॥ ३०-३१॥

कालजिह्वा करालास्या कालिका कालरूपिणी।
कमनीयगुणा कान्तिः कलाधारा कुमुद्वती॥ ३१

कौशिकी कमलाकारा कामचारप्रभञ्जिनी।
कौमारी करुणापाङ्गी ककुबन्ता करिप्रिया॥ ३२

१४३. **कौशिकी**, १४४. **कमलाकारा** (कमलके समान सुन्दर आकार धारण करनेवाली), १४५. **कामचारप्रभञ्जिनी** (स्वेच्छाचारका ध्वंस करनेवाली), १४६. **कौमारी**, १४७. **करुणापाङ्गी** (करुणामय कटाक्षसे भक्तोंपर कृपा करनेवाली), १४८. **ककुबन्ता** (दिशाओंकी अवसानरूपा), १४९. **करिप्रिया** (जिन्हें हाथी प्रिय है)॥ ३२॥

केसरी केशवनुता कदम्बकुसुमप्रिया।
कालिन्दी कालिका काञ्ची कलशोद्भवसंस्तुता॥ ३३

१५०. **केसरी**, १५१. **केशवनुता** (भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा प्रणम्य), १५२. **कदम्बकुसुमप्रिया** (कदम्बके पुष्पसे प्रेम करनेवाली), १५३. **कालिन्दी**, १५४. **कालिका**, १५५. **काञ्ची**, १५६. **कलशोद्भवसंस्तुता** (अगस्त्यमुनिसे स्तुत होनेवाली), १५७. **काममाता**, १५८. **क्रतुमती** (यज्ञमय विग्रह धारण करनेवाली), १५९. **कामरूपा**, १६०. **कृपावती**, १६१. **कुमारी**, १६२. **कुण्डनिलया** (हवन-कुण्डमें विराजनेवाली), १६३. **किराती** (भक्तोंका कार्यसाधन करनेके लिये किरात-वेष धारण करनेवाली), १६४. **कीरवाहना** (तोतापक्षीको वाहनरूपमें रखनेवाली)॥ ३३-३४॥

काममाता क्रतुमती कामरूपा कृपावती।
कुमारी कुण्डनिलया किराती कीरवाहना। ३४

कैकेयी कोकिलालापा केतकी कुसुमप्रिया।
कमण्डलुधरा काली कर्मनिर्मूलकारिणी॥ ३५

१६५. **कैकेयी**, १६६. **कोकिलालापा**, १६७. **केतकी**, १६८. **कुसुमप्रिया**, १६९. **कमण्डलुधरा** (ब्रह्मचारिणीके रूपमें कमण्डलु धारण करनेवाली), १७०. **काली**, १७१. **कर्मनिर्मूलकारिणी** (आराधित होनेपर कर्मोंको निर्मूल कर देनेवाली)॥ ३५॥

कलहंसगतिः कक्षा कृतकौतुकमङ्गला।
कस्तूरीतिलका कम्रा करीन्द्रगमना कुहूः॥ ३६

१७२. **कलहंसगतिः**, १७३. **कक्षा**, १७४. **कृतकौतुकमङ्गला** (सर्वदा मंगलमय वैवाहिक वेष धारण करनेवाली), १७५. **कस्तूरीतिलका**, १७६. **कम्रा** (चंचला), १७७. **करीन्द्रगमना** (ऐरावतपर आरूढ होनेवाली), १७८. **कुहूः** (अमावस्या नामसे प्रसिद्ध)॥ ३६॥

कर्पूरलेपना कृष्णा कपिला कुहराश्रया।
कूटस्था कुधरा कम्रा कुक्षिस्थाखिलविष्टपा॥ ३७

१७९. **कर्पूरलेपना**, १८०. **कृष्णा**, १८१. **कपिला**, १८२. **कुहराश्रया** (बुद्धिरूपी गुहामें स्थित रहनेवाली), १८३. **कूटस्था** (पर्वतशिखरपर निवास करनेवाली), १८४. **कुधरा** (पृथ्वीको धारण करनेवाली), १८५. **कम्रा** (अत्यन्त सुन्दरी), १८६. **कुक्षिस्थाखिलविष्टपा** (अपनी कुक्षिमें स्थित अखिल जगत्की रक्षा करनेवाली)॥ ३७॥

खड्गखेटकरा खर्वा खेचरी खगवाहना।
खट्वाङ्गधारिणी ख्याता खगराजोपरिस्थिता॥ ३८

१८७. खड्गखेटकरा (दानवोंको मारनेके लिये हाथमें ढाल-तलवार धारण करनेवाली), **१८८. खर्वा** (अभिमानिनी), **१८९. खेचरी, १९०. खगवाहना, १९१. खट्वाङ्गधारिणी, १९२. ख्याता, १९३. खगराजोपरिस्थिता** (गरुडके ऊपर विराजमान रहनेवाली)॥ ३८॥

खलघ्नी खण्डितजरा खण्डाख्यानप्रदायिनी।
खण्डेन्दुतिलका गङ्गा गणेशगुहपूजिता॥ ३९

१९४. खलघ्नी, १९५. खण्डितजरा (बुढ़ापेसे रहित विग्रहवाली), **१९६. खण्डाख्यानप्रदायिनी** (मधुर कथाओंको प्रदान करनेवाली), **१९७. खण्डेन्दुतिलका** (ललाटपर खण्डित चन्द्रमा अर्थात् द्वितीयाके चन्द्रमाको तिलकरूपमें धारण करनेवाली), **१९८. गङ्गा, १९९. गणेशगुहपूजिता** (गणेश तथा कार्तिकेयसे पूजित)॥ ३९॥

गायत्री गोमती गीता गान्धारी गानलोलुपा।
गौतमी गामिनी गाधा गन्धर्वाप्सरसेविता॥ ४०

२००. गायत्री (अपना गुणगान करनेवालोंकी संरक्षिका), **२०१. गोमती, २०२. गीता, २०३. गान्धारी, २०४. गानलोलुपा, २०५. गौतमी, २०६. गामिनी, २०७. गाधा** (पृथ्वीको आश्रय देनेवाली), **२०८. गन्धर्वाप्सरसेविता** (गन्धर्व तथा अप्सराओंसे सेवित)॥ ४०॥

गोविन्दचरणाक्रान्ता गुणत्रयविभाविता।
गन्धर्वी गह्वरी गोत्रा गिरीशा गहना गमी॥ ४१

२०९. गोविन्दचरणाक्रान्ता (श्रीविष्णुके चरणोंसे आक्रान्त अर्थात् पृथ्वीस्वरूपिणी), **२१०. गुणत्रयविभाविता** (तीन गुणोंके साथ आविर्भूत होनेवाली), **२११. गन्धर्वी, २१२. गह्वरी** (दुरूह महिमावाली), **२१३. गोत्रा** (पृथ्वीरूपा), **२१४. गिरीशा** (पर्वतकी अधिष्ठात्री), **२१५. गहना** (गूढ़ स्वभाववाली), **२१६. गमी** (गमनशीला)॥ ४१॥

गुहावासा गुणवती गुरुपापप्रणाशिनी।
गुर्वी गुणवती गुह्या गोप्तव्या गुणदायिनी॥ ४२

२१७. गुहावासा, २१८. गुणवती, २१९. गुरुपापप्रणाशिनी (महान् पापोंका नाश करनेवाली), **२२०. गुर्वी, २२१. गुणवती, २२२. गुह्या, २२३. गोप्तव्या** (हृदयमें छिपाये रखनेयोग्य), **२२४. गुणदायिनी**॥ ४२॥

गिरिजा गुह्यमातङ्गी गरुडध्वजवल्लभा।
गर्वापहारिणी गोदा गोकुलस्था गदाधरा॥ ४३

२२५. गिरिजा, २२६. गुह्यमातङ्गी (ब्रह्म-विद्यास्वरूपिणी), **२२७. गरुडध्वजवल्लभा** (विष्णुकी परम प्रिया), **२२८. गर्वापहारिणी** (अभिमानका नाश करनेवाली), **२२९. गोदा** (गौ अथवा पृथ्वीका दान करनेवाली), **२३०. गोकुलस्था, २३१. गदाधरा**॥ ४३॥

गोकर्णनिलयासक्ता गुह्यमण्डलवर्तिनी।
घर्मदा घनदा घण्टा घोरदानवमर्दिनी॥ ४४

२३२. **गोकर्णनिलयासक्ता** (गोकर्ण नामक तीर्थस्थानमें निवासहेतु तत्पर रहनेवाली), २३३. **गुह्यमण्डलवर्तिनी** (अत्यन्त गोपनीय मण्डलमें विद्यमान रहनेवाली), २३४. **घर्मदा** (ऊष्मा प्रदान करनेवाली), २३५. **घनदा** (मेघ उत्पन्न करनेवाली), २३६. **घण्टा**, २३७. **घोरदानवमर्दिनी**॥ ४४॥

घृणिमन्त्रमयी घोषा घनसम्पातदायिनी।
घण्टारवप्रिया घ्राणा घृणिसन्तुष्टकारिणी॥ ४५

२३८. **घृणिमन्त्रमयी** (सूर्यको प्रसन्न करनेवाले मन्त्ररूपसे विराजमान), २३९. **घोषा** (युद्धमें भयावह नाद करनेवाली), २४०. **घनसम्पातदायिनी** (मेघोंको जलवृष्टिकी आज्ञा देनेवाली), २४१. **घण्टारवप्रिया** (घण्टाध्वनिसे प्रसन्न होनेवाली), २४२. **घ्राणा** (घ्राणेन्द्रियकी अधिष्ठात्री देवी), २४३. **घृणिसन्तुष्टकारिणी** (सूर्यको सन्तुष्ट करनेवाली)॥ ४५॥

घनारिमण्डला घूर्णा घृताची घनवेगिनी।
ज्ञानधातुमयी चर्चा चर्चिता चारुहासिनी॥ ४६

२४४. **घनारिमण्डला** (अनेकानेक शत्रुओंसे परिवृता), २४५. **घूर्णा** (सर्वत्र भ्रमणशीला), २४६. **घृताची** (सरस्वतीरूपा अथवा रात्रिकी अधिष्ठात्री देवी), २४७. **घनवेगिनी** (प्रचण्ड वेगशाली), २४८. **ज्ञानधातुमयी** (चिन्मय धातुओंसे बनी हुई), २४९. **चर्चा**, २५०. **चर्चिता** (चन्दन आदि सुगन्धित द्रव्योंसे सुपूजित), २५१. **चारुहासिनी**॥ ४६॥

चटुला चण्डिका चित्रा चित्रमाल्यविभूषिता।
चतुर्भुजा चारुदन्ता चातुरी चरितप्रदा॥ ४७

२५२. **चटुला**, २५३. **चण्डिका**, २५४. **चित्रा**, २५५. **चित्रमाल्यविभूषिता** (अनेक प्रकारके रंगोंकी मालाओंसे सुशोभित), २५६. **चतुर्भुजा**, २५७. **चारुदन्ता**, २५८. **चातुरी**, २५९. **चरितप्रदा** (सदाचारकी शिक्षा प्रदान करनेवाली)॥ ४७॥

चूलिका चित्रवस्त्रान्ता चन्द्रमःकर्णकुण्डला।
चन्द्रहासा चारुदात्री चकोरी चन्द्रहासिनी॥ ४८

२६०. **चूलिका** (देवी-देवताओंमें शीर्ष स्थानवाली), २६१. **चित्रवस्त्रान्ता**, २६२. **चन्द्रमःकर्णकुण्डला** (कानोंमें चन्द्राकार कुण्डल धारण करनेवाली), २६३. **चन्द्रहासा**, २६४. **चारुदात्री**, २६५. **चकोरी**, २६६. **चन्द्रहासिनी** (चन्द्रमाको अपने मुखसौन्दर्यसे आह्लादित करनेवाली)॥ ४८॥

चन्द्रिका चन्द्रधात्री च चौरी चौरा च चण्डिका।
चञ्चद्वाग्वादिनी चन्द्रचूडा चोरविनाशिनी॥ ४९

२६७. **चन्द्रिका**, २६८. **चन्द्रधात्री**, २६९. **चौरी** (अपनी शक्तिको गुप्त रखनेवाली), २७०. **चौरा** (भक्तोंका पाप हरण करनेवाली), २७१. **चण्डिका**, २७२. **चञ्चद्वाग्वादिनी** (चंचलतापूर्वक सम्भाषण करनेवाली), २७३. **चन्द्रचूडा**, २७४. **चोरविनाशिनी** (चौरवृत्तिमें लिप्त लोगोंका विनाश करनेवाली)॥ ४९॥

चारुचन्दनलिप्ताङ्गी चञ्चच्चामरवीजिता।
चारुमध्या चारुगतिश्चन्दिला चन्द्ररूपिणी॥ ५०

२७५. **चारुचन्दनलिप्ताङ्गी** (सुन्दर चन्दनसे अनुलिप्त अंगोंवाली), २७६. **चञ्चच्चामरवीजिता** (निरन्तर डुलाये जाते हुए चँवरोंसे सुसेवित), २७७. **चारुमध्या** (सुन्दर कटिप्रदेशवाली), २७८. **चारुगतिः** (मनमोहक गतिवाली), २७९. **चन्दिला,** २८०. **चन्द्ररूपिणी** ॥ ५० ॥

चारुहोमप्रिया चार्वाचरिता चक्रबाहुका।
चन्द्रमण्डलमध्यस्था चन्द्रमण्डलदर्पणा॥ ५१

२८१. **चारुहोमप्रिया** (श्रेष्ठ हवनसे प्रसन्न होनेवाली), २८२. **चार्वाचरिता** (उत्तम आचरणसे सम्पन्न), २८३. **चक्रबाहुका,** २८४. **चन्द्रमण्डलमध्यस्था,** २८५. **चन्द्रमण्डलदर्पणा** (चन्द्रमण्डलरूपी दर्पणको धारण करनेवाली) ॥ ५१ ॥

चक्रवाकस्तनी चेष्टा चित्रा चारुविलासिनी।
चित्स्वरूपा चन्द्रवती चन्द्रमाश्चन्दनप्रिया॥ ५२

२८६. **चक्रवाकस्तनी** (चक्रवाकके समान स्तनोंवाली), २८७. **चेष्टा,** २८८. **चित्रा,** २८९. **चारुविलासिनी,** २९०. **चित्स्वरूपा** (चिन्मय स्वरूपवाली), २९१. **चन्द्रवती,** २९२. **चन्द्रमा,** २९३. **चन्दनप्रिया** ॥ ५२ ॥

चोदयित्री चिरप्रज्ञा चातका चारुहेतुकी।
छत्रयाता छत्रधरा छाया छन्दःपरिच्छदा॥ ५३

२९४. **चोदयित्री** (भक्तोंको प्रेरणा प्रदान करनेवाली), २९५. **चिरप्रज्ञा** (सनातन विद्यास्वरूपिणी), २९६. **चातका** (चातकके समान दृढ संकल्पवाली), २९७. **चारुहेतुकी,** २९८. **छत्रयाता** (छत्रयुक्त होकर गमन करनेवाली), २९९. **छत्रधरा,** ३००. **छाया,** ३०१. **छन्दःपरिच्छदा** (वेदोंसे ज्ञात होनेवाली) ॥ ५३ ॥

छायादेवीच्छिद्रनखा छन्नेन्द्रियविसर्पिणी।
छन्दोऽनुष्टुप्प्रतिष्ठान्ता छिद्रोपद्रवभेदिनी॥ ५४

३०२. **छायादेवी,** ३०३. **छिद्रनखा,** ३०४. **छन्नेन्द्रियविसर्पिणी** (जितेन्द्रिय योगियोंके पास पधारनेवाली), ३०५. **छन्दोऽनुष्टुप्प्रतिष्ठान्ता** (अनुष्टुप् छन्दमें प्रतिष्ठित रहनेवाली), ३०६. **छिद्रोपद्रवभेदिनी** (कपटरूप उपद्रवको शान्त करनेवाली) ॥ ५४ ॥

छेदा छत्रेश्वरी छिन्ना छुरिका छेदनप्रिया।
जननी जन्मरहिता जातवेदा जगन्मयी॥ ५५

३०७. **छेदा** (पापोंका उच्छेदन करनेवाली), ३०८. **छत्रेश्वरी,** ३०९. **छिन्ना,** ३१०. **छुरिका,** ३११. **छेदनप्रिया,** ३१२. **जननी,** ३१३. **जन्मरहिता,** ३१४. **जातवेदा** (अग्निस्वरूपिणी), ३१५. **जगन्मयी** ॥ ५५ ॥

जाह्नवी जटिला जेत्री जरामरणवर्जिता।
जम्बूद्वीपवती ज्वाला जयन्ती जलशालिनी॥ ५६

जितेन्द्रिया जितक्रोधा जितामित्रा जगत्प्रिया।
जातरूपमयी जिह्वा जानकी जगती जरा॥ ५७

३१६. **जाह्नवी,** ३१७. **जटिला,** ३१८. **जेत्री,** ३१९. **जरामरणवर्जिता,** ३२०. **जम्बूद्वीपवती,** ३२१. **ज्वाला,** ३२२. **जयन्ती,** ३२३. **जलशालिनी,** ३२४. **जितेन्द्रिया,** ३२५. **जितक्रोधा,** ३२६. **जितामित्रा,** ३२७. **जगत्प्रिया,** ३२८. **जातरूपमयी** (परम सुन्दर रूपवाली), ३२९. **जिह्वा,** ३३०. **जानकी,** ३३१. **जगती,** ३३२. **जरा** (सन्ध्याकालमें वृद्धरूप धारण करनेवाली) ॥ ५६-५७ ॥

जनित्री जह्नुतनया जगत्त्रयहितैषिणी।
ज्वालामुखी जपवती ज्वरघ्नी जितविष्टपा॥ ५८

३३३. जनित्री, **३३४. जह्नुतनया**, **३३५. जगत्त्रयहितैषिणी** (तीनों लोकोंका हित चाहनेवाली), **३३६. ज्वालामुखी**, **३३७. जपवती** (सदा ब्रह्मके जपमें तत्पर रहनेवाली), **३३८. ज्वरघ्नी**, **३३९. जितविष्टपा** (सम्पूर्ण जगत्पर विजय प्राप्त करनेवाली)॥ ५८॥

जिताक्रान्तमयी ज्वाला जाग्रती ज्वरदेवता।
ज्वलन्ती जलदा ज्येष्ठा ज्याघोषास्फोटदिङ्मुखी॥ ५९

३४०. जिताक्रान्तमयी (सबको आक्रान्त करनेके लिये विजयशालिनी देवी), **३४१. ज्वाला**, **३४२. जाग्रती**, **३४३. ज्वरदेवता**, **३४४. ज्वलन्ती**, **३४५. जलदा**, **३४६. ज्येष्ठा**, **३४७. ज्याघोषास्फोटदिङ्मुखी** (दिशाओं-विदिशाओंको अपने धनुषकी स्पष्ट तथा भीषण टंकारसे व्याप्त कर देनेवाली)॥ ५९॥

जम्भिनी जृम्भणा जृम्भा ज्वलन्माणिक्यकुण्डला।
झिंझिका झणनिर्घोषा झंझामारुतवेगिनी॥ ६०

३४८. जम्भिनी (अपने दाँतोंसे दानवोंको पीस डालनेवाली), **३४९. जृम्भणा**, **३५०. जृम्भा**, **३५१. ज्वलन्माणिक्यकुण्डला** (प्रभायुक्त मणियोंके कुण्डलोंसे सुशोभित), **३५२. झिंझिका** (झींगुरसदृश तुच्छ प्राणीको भी अपने अंशसे उत्पन्न करनेवाली), **३५३. झणनिर्घोषा** (कंकणकी झंकार ध्वनिसे सर्वदा मुखरित), **३५४. झंझामारुतवेगिनी** (झंझावातके सदृश भयावह वेगशाली)॥ ६०॥

झल्लरीवाद्यकुशला ञरूपा ञभुजा स्मृता।
टङ्कबाणसमायुक्ता टङ्किनी टङ्कभेदिनी॥ ६१

३५५. झल्लरीवाद्यकुशला (झाँझ नामक वाद्य बजानेमें अत्यन्त निपुण), **३५६. ञरूपा** (बलीवर्दके समान रूपवाली), **३५७. ञभुजा** (बलीवर्दके समान पराक्रमी भुजाओंवाली), **३५८. टङ्कबाणसमायुक्ता**, **३५९. टङ्किनी**, **३६०. टङ्कभेदिनी**॥ ६१॥

टङ्कीगणकृताघोषा टङ्कनीयमहोरसा।
टङ्कारकारिणी देवी ठठशब्दनिनादिनी॥ ६२

३६१. टङ्कीगणकृताघोषा (रुद्रगणके समान गम्भीर ध्वनि करनेवाली), **३६२. टङ्कनीयमहोरसा** (वर्णनीय महान् वक्षःस्थलवाली), **३६३. टङ्कारकारिणीदेवी**, **३६४. ठठशब्दनिनादिनी** (ठ ठ शब्दके घोर निनादसे शत्रुओंको भयाक्रान्त करनेवाली)॥ ६२॥

डामरी डाकिनी डिम्भा डुण्डुमारैकनिर्जिता।
डामरीतन्त्रमार्गस्था डमड्डमरुनादिनी॥ ६३

३६५. डामरी, **३६६. डाकिनी**, **३६७. डिम्भा**, **३६८. डुण्डुमारैकनिर्जिता** (डुण्डुमार नामक राक्षसको परास्त करनेवाली), **३६९. डामरीतन्त्रमार्गस्था** (डामर-तन्त्रके मार्गपर स्थित), **३७०. डमड्डमरुनादिनी** (डमरुसे डमड्-डमड् ध्वनि उत्पन्न करनेवाली)॥ ६३॥

डिण्डीरवसहा डिम्भलसत्क्रीडापरायणा।
ढुण्ढिविघ्नेशजननी ढक्काहस्ता ढिलिव्रजा॥ ६४

३७१. **डिण्डीरवसहा** (डिण्डी नामक वाद्यकी ध्वनिको सहन करनेवाली), ३७२. **डिम्भलसत्क्रीडा-परायणा** (छोटे बच्चोंके साथ प्रेमपूर्वक क्रीडा करनेमें संलग्न), ३७३. **ढुण्ढिविघ्नेशजननी**, ३७४. **ढक्काहस्ता**, ३७५. **ढिलिव्रजा** (ढिलि नामक गणसमूहोंसे समन्वित)॥ ६४॥

नित्यज्ञाना निरुपमा निर्गुणा नर्मदा नदी।
त्रिगुणा त्रिपदा तन्त्री तुलसीतरुणातरुः॥ ६५

३७६. **नित्यज्ञाना**, ३७७. **निरुपमा**, ३७८. **निर्गुणा**, ३७९. **नर्मदा**, ३८०. **नदी**, ३८१. **त्रिगुणा**, ३८२. **त्रिपदा**, ३८३. **तन्त्री**, ३८४. **तुलसीतरुणातरुः** (वृक्षोंमें तरुणी तुलसीरूपसे विराजमान)॥ ६५॥

त्रिविक्रमपदाक्रान्ता तुरीयपदगामिनी।
तरुणादित्यसङ्काशा तामसी तुहिना तुरा॥ ६६

३८५. **त्रिविक्रमपदाक्रान्ता** (भगवान् वामनके तीन डगोंसे आक्रान्त पृथ्वीरूपा), ३८६. **तुरीयपदगामिनी** (चतुर्थ पादमें गमन करनेवाली), ३८७. **तरुणादित्य-सङ्काशा** (प्रचण्ड सूर्यके समान तेजवाली), ३८८. **तामसी**, ३८९. **तुहिना** (चन्द्रमासदृश शीतल किरणोंवाली), ३९०. **तुरा** (शीघ्र गमन करनेवाली)॥ ६६॥

त्रिकालज्ञानसम्पन्ना त्रिवेणी च त्रिलोचना।
त्रिशक्तिस्त्रिपुरा तुङ्गा तुरङ्गवदना तथा॥ ६७

३९१. **त्रिकालज्ञानसम्पन्ना**, ३९२. **त्रिवेणी** (गंगा-यमुना-सरस्वतीरूपा), ३९३. **त्रिलोचना**, ३९४. **त्रिशक्तिः** (इच्छाशक्ति-क्रियाशक्ति-ज्ञानशक्तिरूपा), ३९५. **त्रिपुरा**, ३९६. **तुङ्गा**, ३९७. **तुरङ्गवदना**॥ ६७॥

तिमिङ्गिलगिला तीव्रा त्रिस्रोता तामसादिनी।
तन्त्रमन्त्रविशेषज्ञा तनुमध्या त्रिविष्टपा॥ ६८

३९८. **तिमिङ्गिलगिला** (मत्स्यभोजी तिमिंगिलको भी खा जानेवाली), ३९९. **तीव्रा**, ४००. **त्रिस्रोता**, ४०१. **तामसादिनी** (अज्ञानरूपी अन्धकारका भक्षण करनेवाली), ४०२. **तन्त्रमन्त्रविशेषज्ञा**, ४०३. **तनुमध्या**, ४०४. **त्रिविष्टपा**॥ ६८॥

त्रिसन्ध्या त्रिस्तनी तोषासंस्था तालप्रतापिनी।
ताटङ्किनी तुषाराभा तुहिनाचलवासिनी॥ ६९

४०५. **त्रिसन्ध्या**, ४०६. **त्रिस्तनी** (राजा मलय-ध्वजके यहाँ कन्याके रूपमें विराजमान), ४०७. **तोषा-संस्था** (सदा सन्तुष्ट भावमें स्थित), ४०८. **तालप्रतापिनी** (ताली बजाकर शत्रुओंको आतंकित करनेवाली), ४०९. **ताटङ्किनी**, ४१०. **तुषाराभा** (बर्फके समान धवल कान्तिवाली), ४११. **तुहिनाचलवासिनी** (हिमालयमें निवास करनेवाली)॥ ६९॥

तन्तुजालसमायुक्ता तारहारावलिप्रिया।
तिलहोमप्रिया तीर्था तमालकुसुमाकृतिः॥ ७०

४१२. **तन्तुजालसमायुक्ता**, ४१३. **तारहारा-वलिप्रिया** (चमकीले तारोंसे युक्त हार-पंक्तियोंसे प्रेम करनेवाली), ४१४. **तिलहोमप्रिया**, ४१५. **तीर्था**, ४१६. **तमालकुसुमाकृतिः** (तमालपुष्पके समान श्याम आकृतिवाली)॥ ७०॥

तारका त्रियुता तन्वी त्रिशङ्कुपरिवारिता।
तलोदरी तिलाभूषा ताटङ्कप्रियवाहिनी॥ ७१

४१७. **तारका** (भक्तोंको तारनेवाली), ४१८. **त्रियुता**, ४१९. **तन्वी**, ४२०. **त्रिशङ्कुपरिवारिता** (राजा त्रिशंकुके द्वारा उपास्यरूपमें वरण की हुई), ४२१. **तलोदरी** (पृथ्वीको उदरके रूपमें धारण करनेवाली), ४२२. **तिलाभूषा** (तिलके पुष्पके सदृश नीलकान्तिवाली), ४२३. **ताटङ्कप्रियवाहिनी** (कानोंमें सुन्दर कर्णफूल धारण करनेवाली)॥ ७१॥

त्रिजटा तित्तिरी तृष्णा त्रिविधा तरुणाकृतिः।
तप्तकाञ्चनसंकाशा तप्तकाञ्चनभूषणा॥ ७२

४२४. **त्रिजटा**, ४२५. **तित्तिरी**, ४२६. **तृष्णा**, ४२७. **त्रिविधा**, ४२८. **तरुणाकृतिः**, ४२९. **तप्तकाञ्चनसङ्काशा** (तप्त सोनेके सदृश प्रभावाली), ४३०. **तप्तकाञ्चनभूषणा** (तप्त सोनेके सदृश दीप्तिवाले आभूषणोंसे अलंकृत)॥ ७२॥

त्रैयम्बका त्रिवर्गा च त्रिकालज्ञानदायिनी।
तर्पणा तृप्तिदा तृप्ता तामसी तुम्बुरुस्तुता॥ ७३

४३१. **त्रैयम्बका**, ४३२. **त्रिवर्गा**, ४३३. **त्रिकालज्ञानदायिनी**, ४३४. **तर्पणा**, ४३५. **तृप्तिदा**, ४३६. **तृप्ता**, ४३७. **तामसी**, ४३८. **तुम्बुरुस्तुता**, ४३९. **तार्क्ष्यस्था** (गरुडपर विराजमान रहनेवाली), ४४०. **त्रिगुणाकारा**, ४४१. **त्रिभङ्गी**, ४४२. **तनुवल्लरिः** (कोमल लताकी भाँति कमनीय अंगोंवाली), ४४३. **थात्कारी** (युद्धभूमिमें 'थात्' शब्दका उच्चारण करनेवाली), ४४४. **थारवा** (भयसे मुक्त करनेवाले शब्दका उच्चारण करनेवाली), ४४५. **थान्ता** (मंगलमयी देवी), ४४६. **दोहिनी** (यथेच्छ दोहन करनेयोग्य कामधेनुस्वरूपिणी), ४४७. **दीनवत्सला**॥ ७३-७४॥

तार्क्ष्यस्था त्रिगुणाकारा त्रिभङ्गी तनुवल्लरिः।
थात्कारी थारवा थान्ता दोहिनी दीनवत्सला॥ ७४

दानवान्तकरी दुर्गा दुर्गासुरनिबर्हिणी।
देवरीतिर्दिवारात्रिर्द्रौपदी दुन्दुभिस्वना॥ ७५

४४८. **दानवान्तकरी**, ४४९. **दुर्गा**, ४५०. **दुर्गासुरनिबर्हिणी** (दुर्ग नामक राक्षसका वध करनेवाली), ४५१. **देवरीतिः** (दिव्य मार्गसे सम्पन्न), ४५२. **दिवारात्रिः**, ४५३. **द्रौपदी**, ४५४. **दुन्दुभिस्वना** (दुन्दुभिके समान तीव्र ध्वनि करनेवाली)॥ ७५॥

देवयानी दुरावासा दारिद्र्योद्भेदिनी दिवा।
दामोदरप्रिया दीप्ता दिग्वासा दिग्विमोहिनी॥ ७६

४५५. **देवयानी**, ४५६. **दुरावासा**, ४५७. **दारिद्र्योद्भेदिनी** (दरिद्रता दूर करनेवाली), ४५८. **दिवा**, ४५९. **दामोदरप्रिया**, ४६०. **दीप्ता**, ४६१. **दिग्वासा** (दिशारूपी वस्त्रवाली), ४६२. **दिग्विमोहिनी** (समस्त दिशाओंको मोहित करनेवाली)॥ ७६॥

दण्डकारण्यनिलया दण्डिनी देवपूजिता।
देववन्द्या दिविषदा द्वेषिणी दानवाकृतिः॥ ७७

४६३. **दण्डकारण्यनिलया**, ४६४. **दण्डिनी**, ४६५. **देवपूजिता**, ४६६. **देववन्द्या**, ४६७. **दिविषदा** (सदा स्वर्गमें विराजमान रहनेवाली), ४६८. **द्वेषिणी** (राक्षसोंसे द्वेष करनेवाली), ४६९. **दानवाकृतिः** (समयानुसार दानवसदृश आकृति धारण करनेवाली)॥ ७७॥

दीनानाथस्तुता दीक्षा दैवतादिस्वरूपिणी।
धात्री धनुर्धरा धेनुर्धारिणी धर्मचारिणी॥ ७८

धरंधरा धराधारा धनदा धान्यदोहिनी।
धर्मशीला धनाध्यक्षा धनुर्वेदविशारदा॥ ७९

धृतिर्धन्या धृतपदा धर्मराजप्रिया ध्रुवा।
धूमावती धूमकेशी धर्मशास्त्रप्रकाशिनी॥ ८०

नन्दा नन्दप्रिया निद्रा नृनुता नन्दनात्मिका।
नर्मदा नलिनी नीला नीलकण्ठसमाश्रया॥ ८१

नारायणप्रिया नित्या निर्मला निर्गुणा निधिः।
निराधारा निरुपमा नित्यशुद्धा निरञ्जना॥ ८२

नादबिन्दुकलातीता नादबिन्दुकलात्मिका।
नृसिंहिनी नगधरा नृपनागविभूषिता॥ ८३

नरकक्लेशशमनी नारायणपदोद्भवा।
निरवद्या निराकारा नारदप्रियकारिणी॥ ८४

नानाज्योतिःसमाख्याता निधिदा निर्मलात्मिका।
नवसूत्रधरा नीतिर्निरुपद्रवकारिणी॥ ८५

नन्दजा नवरत्नाढ्या नैमिषारण्यवासिनी।
नवनीतप्रिया नारी नीलजीमूतनिःस्वना॥ ८६

निमेषिणी नदीरूपा नीलग्रीवा निशीश्वरी।
नामावलिर्निशुम्भघ्नी नागलोकनिवासिनी॥ ८७

४७०. **दीनानाथस्तुता**, ४७१. **दीक्षा**, ४७२. **दैवतादिस्वरूपिणी**, ४७३. **धात्री**, ४७४. **धनुर्धरा**, ४७५. **धेनुः**, ४७६. **धारिणी**, ४७७. **धर्मचारिणी**, ४७८. **धरंधरा**, ४७९. **धराधारा**, ४८०. **धनदा**, ४८१. **धान्यदोहिनी**, ४८२. **धर्मशीला**, ४८३. **धनाध्यक्षा**, ४८४. **धनुर्वेदविशारदा**॥ ७८-७९॥

४८५. **धृतिः**, ४८६. **धन्या**, ४८७. **धृतपदा**, ४८८. **धर्मराजप्रिया**, ४८९. **ध्रुवा**, ४९०. **धूमावती**, ४९१. **धूमकेशी**, ४९२. **धर्मशास्त्रप्रकाशिनी**, ४९३. **नन्दा**, ४९४. **नन्दप्रिया**, ४९५. **निद्रा**, ४९६. **नृनुता** (मनुष्यों-द्वारा नमस्कृत), ४९७. **नन्दनात्मिका**, ४९८. **नर्मदा**, ४९९. **नलिनी**, ५००. **नीला**, ५०१. **नीलकण्ठसमाश्रया** (नीलकण्ठ महादेवकी आश्रयरूपा)॥ ८०-८१॥

५०२. **नारायणप्रिया**, ५०३. **नित्या**, ५०४. **निर्मला**, ५०५. **निर्गुणा**, ५०६. **निधिः**, ५०७. **निराधारा**, ५०८. **निरुपमा**, ५०९. **नित्यशुद्धा**, ५१०. **निरञ्जना** (मायासे रहित), ५११. **नादबिन्दुकलातीता** (नाद-बिन्दु-कलासे परे), ५१२. **नादबिन्दुकलात्मिका** (नादबिन्दुकला-रूपिणी), ५१३. **नृसिंहरूपा**, ५१४. **नगधरा**, ५१५. **नृपनागविभूषिता** (नागराजसे विभूषित)॥ ८२-८३॥

५१६. **नरकक्लेशशमनी**, ५१७. **नारायणपदोद्भवा** (भगवान् विष्णुके चरणसे प्रकट गंगास्वरूपिणी), ५१८. **निरवद्या** (दोषरहित), ५१९. **निराकारा**, ५२०. **नारदप्रियकारिणी**, ५२१. **नानाज्योतिः-समाख्याता** (अनेकविध ज्योतिरूपसे विख्यात), ५२२. **निधिदा**, ५२३. **निर्मलात्मिका** (विशुद्धस्वरूपा), ५२४. **नवसूत्रधरा** (नवीन सूत्र धारण करनेवाली), ५२५. **नीतिः**, ५२६. **निरुपद्रवकारिणी** (समस्त उपद्रवोंको समाप्त कर देनेवाली)॥ ८४-८५॥

५२७. **नन्दजा** (नन्दकी पुत्री), ५२८. **नवरत्नाढ्या** (नौ प्रकारके रत्नोंसे विभूषित), ५२९. **नैमिषारण्यवासिनी** (नैमिषारण्यमें लिंगधारिणी ललितादेवीके रूपमें विराजमान), ५३०. **नवनीतप्रिया**, ५३१. **नारी**, ५३२. **नीलजीमूतनिःस्वना** (नीले मेघके समान गर्जन करनेवाली), ५३३. **निमेषिणी** (निमेषरूपा), ५३४. **नदीरूपा**, ५३५. **नीलग्रीवा**, ५३६. **निशीश्वरी** (रात्रिकी अधिष्ठात्री देवी), ५३७. **नामावलिः** (नानाविध नामोंवाली), ५३८. **निशुम्भघ्नी** (निशुम्भ दैत्यका संहार करनेवाली), ५३९. **नागलोकनिवासिनी**॥ ८६-८७॥

नवजाम्बूनदप्रख्या नागलोकाधिदेवता।
नूपुराक्रान्तचरणा नरचित्तप्रमोदिनी॥ ८८

५४०. **नवजाम्बूनदप्रख्या** (नवीन सुवर्णसदृश कान्तिसे सम्पन्न), ५४१. **नागलोकाधिदेवता** (पाताल-लोककी अधिष्ठात्री देवी), ५४२. **नूपुराक्रान्तचरणा** (नूपुरोंकी झंकारसे समन्वित चरणोंवाली), ५४३. **नरचित्तप्रमोदिनी**, ५४४. **निमग्नारक्तनयना** (धँसी हुई लाल आँखोंवाली), ५४५. **निर्घातसमनिःस्वना** (वज्रपातके समान भीषण शब्द करनेवाली), ५४६. **नन्दनोद्याननिलया** (नन्दनवनमें विहार करनेवाली), ५४७. **निर्व्यूहोपरिचारिणी** (बिना व्यूहरचनाके आकाशमें स्वच्छन्द विचरण करनेवाली)॥ ८८-८९॥

निमग्नारक्तनयना निर्घातसमनिःस्वना।
नन्दनोद्याननिलया निर्व्यूहोपरिचारिणी॥ ८९

५४८. **पार्वती**, ५४९. **परमोदारा**, ५५०. **पर-ब्रह्मात्मिका**, ५५१. **परा**, ५५२. **पञ्चकोशविनिर्मुक्ता** (अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय—इन पाँच कोशोंसे रहित विग्रहवाली), ५५३. **पञ्चपातकनाशिनी** (पाँच प्रकारके महापातकोंका नाश करनेवाली), ५५४. **परचित्त-विधानज्ञा** (दूसरोंके मनोभावोंको समझनेवाली), ५५५. **पञ्चिका** (पंचिकादेवीके नामसे प्रसिद्ध), ५५६. **पञ्चरूपिणी**, ५५७. **पूर्णिमा**, ५५८. **परमा**, ५५९. **प्रीतिः**, ५६०. **परतेजः** (परम तेजस्विनी), ५६१. **प्रकाशिनी**॥ ९०-९१॥

पार्वती परमोदारा परब्रह्मात्मिका परा।
पञ्चकोशविनिर्मुक्ता पञ्चपातकनाशिनी॥ ९०

परचित्तविधानज्ञा पञ्चिका पञ्चरूपिणी।
पूर्णिमा परमा प्रीतिः परतेजः प्रकाशिनी॥ ९१

५६२. **पुराणी**, ५६३. **पौरुषी**, ५६४. **पुण्या**, ५६५. **पुण्डरीकनिभेक्षणा** (विकसित कमलके सदृश नेत्रोंवाली), ५६६. **पातालतलनिर्मग्ना** (पातालके तलतक प्रविष्ट होनेकी सामर्थ्यसे सम्पन्न), ५६७. **प्रीता**, ५६८. **प्रीतिविवर्धनी**, ५६९. **पावनी**, ५७०. **पादसहिता** (तीन पदोंसे शोभा पानेवाली), ५७१. **पेशला** (परम सुन्दर विग्रहवाली), ५७२. **पवनाशिनी** (वायुका भक्षण करनेवाली), ५७३. **प्रजापतिः**, ५७४. **परिश्रान्ता** (प्रयत्नशीला), ५७५. **पर्वतस्तन-मण्डला** (विशाल स्तनोंसे सुशोभित)॥ ९२-९३॥

पुराणी पौरुषी पुण्या पुण्डरीकनिभेक्षणा।
पातालतलनिर्मग्ना प्रीता प्रीतिविवर्धिनी॥ ९२

पावनी पादसहिता पेशला पवनाशिनी।
प्रजापतिः परिश्रान्ता पर्वतस्तनमण्डला॥ ९३

५७६. **पद्मप्रिया** (कमलपुष्प अर्पित करनेसे प्रसन्न होनेवाली), ५७७. **पद्मसंस्था** (कमलके आसनपर स्थित रहनेवाली), ५७८. **पद्माक्षी**, ५७९. **पद्मसम्भवा**, ५८०. **पद्मपत्रा** (कमलपत्रकी भाँति जगत्से निर्लिप्त रहनेवाली), ५८१. **पद्मपदा** (कमलके समान कोमल चरणोंवाली), ५८२. **पद्मिनी** (हाथमें कमल धारण करनेवाली), ५८३. **प्रियभाषिणी**॥ ९४॥

पद्मप्रिया पद्मसंस्था पद्माक्षी पद्मसम्भवा।
पद्मपत्रा पद्मपदा पद्मिनी प्रियभाषिणी॥ ९४

पशुपाशविनिर्मुक्ता पुरन्ध्री पुरवासिनी।
पुष्कला पुरुषा पर्वा पारिजातसुमप्रिया॥ ९५

पतिव्रता पवित्राङ्गी पुष्पहासपरायणा।
प्रज्ञावतीसुता पौत्री पुत्रपूज्या पयस्विनी॥ ९६

पट्टिपाशधरा पङ्क्तिः पितृलोकप्रदायिनी।
पुराणी पुण्यशीला च प्रणतार्तिविनाशिनी॥ ९७

प्रद्युम्नजननी पुष्टा पितामहपरिग्रहा।
पुण्डरीकपुरावासा पुण्डरीकसमानना॥ ९८

पृथुजङ्घा पृथुभुजा पृथुपादा पृथूदरी।
प्रवालशोभा पिङ्गाक्षी पीतवासाः प्रचापला॥ ९९

प्रसवा पुष्टिदा पुण्या प्रतिष्ठा प्रणवागतिः।
पञ्चवर्णा पञ्चवाणी पञ्चिका पञ्जरस्थिता॥ १००

परमाया परज्योतिः परप्रीतिः परागतिः।
पराकाष्ठा परेशानी पावनी पावकद्युतिः॥ १०१

५८४. **पशुपाशविनिर्मुक्ता** (पाशविक बन्धनोंसे मुक्त), ५८५. **पुरन्ध्री** (गृहस्थीके कार्यमें संलग्न स्त्रीके रूपमें विराजमान), ५८६. **पुरवासिनी**, ५८७. **पुष्कला**, ५८८. **पुरुषा** (पुरुषार्थमयी), ५८९. **पर्वा** (पर्वस्वरूपा), ५९०. **पारिजातसुमप्रिया** (पारिजात पुष्पसे अत्यधिक प्रेम रखनेवाली), ५९१. **पतिव्रता**, ५९२. **पवित्राङ्गी**, ५९३. **पुष्पहासपरायणा** (खिले हुए पुष्पके समान हँसनेवाली), ५९४. **प्रज्ञावतीसुता**, ५९५. **पौत्री**, ५९६. **पुत्रपूज्या**, ५९७. **पयस्विनी** (प्राणियोंके संवर्धनहेतु अमृततुल्य दुग्ध प्रदान करनेवाली)॥ ९५-९६॥

५९८. **पट्टिपाशधरा**, ५९९. **पंक्तिः**, ६००. **पितृलोकप्रदायिनी**, ६०१. **पुराणी**, ६०२. **पुण्यशीला**, ६०३. **प्रणतार्तिविनाशिनी** (शरणागतजनोंका क्लेश दूर करनेवाली), ६०४. **प्रद्युम्नजननी**, ६०५. **पुष्टा** (पुष्टिरूपा), ६०६. **पितामहपरिग्रहा** (आदिशक्तिद्वारा पितामह ब्रह्माके लिये अर्पित की गयी देवी), ६०७. **पुण्डरीकपुरावासा** (पुण्डरीकपुर अर्थात् चिदम्बरक्षेत्रमें निवास करनेवाली), ६०८. **पुण्डरीकसमानना** (कमल-सदृश सुन्दर मुखवाली)॥ ९७-९८॥

६०९. **पृथुजङ्घा** (विशाल जाँघोंवाली), ६१०. **पृथुभुजा** (दीर्घ भुजाओंवाली), ६११. **पृथुपादा** (बृहत् चरणोंवाली), ६१२. **पृथूदरी** (विशाल उदरवाली), ६१३. **प्रवालशोभा** (मूँगेके समान कान्तिसे सम्पन्न), ६१४. **पिङ्गाक्षी**, ६१५. **पीतवासाः**, ६१६. **प्रचापला** (अत्यन्त चंचल स्वभाववाली), ६१७. **प्रसवा** (सम्पूर्ण जगत्को उत्पन्न करनेवाली), ६१८. **पुष्टिदा**, ६१९. **पुण्या**, ६२०. **प्रतिष्ठा**, ६२१. **प्रणवागतिः** (ओंकारकी मूलरूपा), ६२२. **पञ्चवर्णा**, ६२३. **पञ्चवाणी**, ६२४. **पञ्चिका**, ६२५. **पञ्जरस्थिता** (प्राणियोंके शरीरमें स्थित रहनेवाली)॥ ९९-१००॥

६२६. **परमाया** (परम मायारूपा), ६२७. **परज्योतिः**, ६२८. **परप्रीतिः**, ६२९. **परागतिः**, ६३०. **पराकाष्ठा** (ब्रह्माण्डकी अन्तिम सीमा), ६३१. **परेशानी** (परमेश्वरी), ६३२. **पावनी**, ६३३. **पावकद्युतिः**, ६३४. **पुण्यभद्रा** (पवित्र करनेमें अतीव दक्ष),

पुण्यभद्रा परिच्छेद्या पुष्पहासा पृथूदरी।
पीताङ्गी पीतवसना पीतशय्या पिशाचिनी॥ १०२

६३५. **परिच्छेद्या** (सबसे विलक्षण स्वभाववाली), ६३६. **पुष्पहासा**, ६३७. **पृथूदरी**, ६३८. **पीताङ्गी**, ६३९. **पीतवसना**, ६४०. **पीतशय्या** (पीले रंगकी शय्यापर शयन करनेवाली), ६४१. **पिशाचिनी** (पिशाचोंके गण साथमें रखनेवाली)॥ १०१-१०२॥

पीतक्रिया पिशाचघ्नी पाटलाक्षी पटुक्रिया।
पञ्चभक्षप्रियाचारा पूतनाप्राणघातिनी॥ १०३

६४२. **पीतक्रिया** (मधुपानक्रियारूपा), ६४३. **पिशाचघ्नी**, ६४४. **पाटलाक्षी** (विकसित गुलाब-पुष्पसदृश नयनोंवाली), ६४५. **पटुक्रिया** (चतुरताके साथ कार्य सम्पन्न करनेवाली), ६४६. **पञ्चभक्ष-प्रियाचारा** (भोज्य-चर्व्य-चोष्य-लेह्य और पेय—इन पाँचों प्रकारके पदार्थोंका प्रेमपूर्वक आहार करनेवाली), ६४७. **पूतनाप्राणघातिनी** (पूतनाके प्राणोंका नाश करनेवाली), ६४८. **पुन्नागवनमध्यस्था** (जायफलके वनके मध्य भागमें विराजमान रहनेवाली), ६४९. **पुण्यतीर्थनिषेविता** (पुण्यमय तीर्थोंमें निवास करनेवाली), ६५०. **पञ्चाङ्गी**, ६५१. **पराशक्तिः**, ६५२. **परमाह्लादकारिणी** (परम आनन्द प्रदान करनेवाली)॥ १०३-१०४॥

पुन्नागवनमध्यस्था पुण्यतीर्थनिषेविता।
पञ्चाङ्गी च पराशक्तिः परमाह्लादकारिणी॥ १०४

६५३. **पुष्पकाण्डस्थिता** (फूलोंके डंठलोंपर स्थित रहनेवाली), ६५४. **पूषा**, ६५५. **पोषिताखिलविष्टपा** (सम्पूर्ण संसारका भरण-पोषण करनेवाली), ६५६. **पानप्रिया**, ६५७. **पञ्चशिखा**, ६५८. **पन्नगोपरिशायनी** (सर्पोंपर शयन करनेवाली), ६५९. **पञ्चमात्रात्मिका**, ६६०. **पृथ्वी**, ६६१. **पथिका**, ६६२. **पृथुदोहिनी** (पर्याप्त दोहन करनेवाली), ६६३. **पुराणन्यायमीमांसा** (पुराण, न्याय तथा मीमांसास्वरूपिणी), ६६४. **पाटली**, ६६५. **पुष्पगन्धिनी**, ६६६. **पुण्यप्रजा**, ६६७. **पारदात्री**, ६६८. **परमार्गैकगोचरा** (एकमात्र श्रेष्ठ मार्गद्वारा अनुभवगम्य), ६६९. **प्रवालशोभा** (मूँगेसे सुशोभित विग्रहवाली), ६७०. **पूर्णाशा**, ६७१. **प्रणवा** (ॐकारस्वरूपिणी), ६७२. **पल्लवोदरी** (नवीन पल्लवके समान सुकोमल उदरवाली)॥ १०५—१०७॥

पुष्पकाण्डस्थिता पूषा पोषिताखिलविष्टपा।
पानप्रिया पञ्चशिखा पन्नगोपरिशायिनी॥ १०५

पञ्चमात्रात्मिका पृथ्वी पथिका पृथुदोहिनी।
पुराणन्यायमीमांसा पाटली पुष्पगन्धिनी॥ १०६

पुण्यप्रजा पारदात्री परमार्गैकगोचरा।
प्रवालशोभा पूर्णाशा प्रणवा पल्लवोदरी॥ १०७

फलिनी फलदा फल्गुः फूत्कारी फलकाकृतिः।
फणीन्द्रभोगशयना फणिमण्डलमण्डिता॥ १०८

६७३. **फलिनी** (फलरूपिणी), ६७४. **फलदा**, ६७५. **फल्गुः** (फल्गु नामक नदीके रूपमें विद्यमान), ६७६. **फूत्कारी** (क्रोधावस्थामें फूत्कार करनेवाली), ६७७. **फलकाकृतिः** (बाणके अग्रभागके समान आकारवाली), ६७८. **फणीन्द्रभोगशयना** (नागराज शेषनागके फनपर शयन करनेवाली), ६७९. **फणि-मण्डलमण्डिता** (नागमण्डलोंसे सुशोभित)॥ १०८॥

बालबाला बहुमता बालातपनिभांशुका।
बलभद्रप्रिया वन्द्या वडवा बुद्धिसंस्तुता॥ १०९

बन्दीदेवी बिलवती बडिशघ्नी बलिप्रिया।
बान्धवी बोधिता बुद्धिर्बन्धूककुसुमप्रिया॥ ११०

६८०. बालबाला (बालिकाओंमें बालारूपिणी), **६८१. बहुमता**, **६८२. बालातपनिभांशुका** (उदयकालके सूर्यकी भाँति अरुण वस्त्र धारण करनेवाली), **६८३. बलभद्रप्रिया**, **६८४. वन्द्या**, **६८५. वडवा**, **६८६. बुद्धिसंस्तुता**, **६८७. बन्दीदेवी**, **६८८. बिलवती** (गुहामें रहनेवाली), **६८९. बडिशघ्नी** (कपटका विनाश करनेवाली), **६९०. बलिप्रिया**, **६९१. बान्धवी**, **६९२. बोधिता**, **६९३. बुद्धिः**, **६९४. बन्धूककुसुमप्रिया** (बन्धूकपुष्पसे प्रसन्न होनेवाली)॥ १०९-११०॥

बालभानुप्रभाकारा ब्राह्मी ब्राह्मणदेवता।
बृहस्पतिस्तुता वृन्दा वृन्दावनविहारिणी॥ १११

बालाकिनी बिलाहारा बिलवासा बहूदका।
बहुनेत्रा बहुपदा बहुकर्णावतंसिका॥ ११२

६९५. बालभानुप्रभाकारा (प्रात:कालीन सूर्यकी प्रभासे युक्त विग्रहवाली), **६९६. ब्राह्मी**, **६९७. ब्राह्मणदेवता**, **६९८. बृहस्पतिस्तुता**, **६९९. वृन्दा**, **७००. वृन्दावनविहारिणी**, **७०१. बालाकिनी** (बगुलोंकी पंक्तिसदृश रूपवाली), **७०२. बिलाहारा** (कर्मोंके दोषका निवारण करनेवाली), **७०३. बिलवासा** (बिलरूपिणी गुहामें निवास करनेवाली), **७०४. बहूदका**, **७०५. बहुनेत्रा**, **७०६. बहुपदा**, **७०७. बहुकर्णावतंसिका** (अनेक प्रकारके कर्णभूषणोंसे अलंकृत)॥ १११-११२॥

बहुबाहुयुता बीजरूपिणी बहुरूपिणी।
बिन्दुनादकलातीता बिन्दुनादस्वरूपिणी॥ ११३

बद्धगोधाङ्गुलित्राणा बदर्याश्रमवासिनी।
बृन्दारका बृहत्स्कन्धा बृहती बाणपातिनी॥ ११४

७०८. बहुबाहुयुता, **७०९. बीजरूपिणी**, **७१०. बहुरूपिणी**, **७११. बिन्दुनादकलातीता** (बिन्दु, नाद और कलासे सर्वथा परे), **७१२. बिन्दुनादस्वरूपिणी** (बिन्दु और नादके स्वरूपवाली), **७१३. बद्धगोधाङ्गुलित्राणा** (गोधाके चर्मका अंगुलित्राण धारण करनेवाली), **७१४. बदर्याश्रमवासिनी** (बदरिकाश्रममें निवास करनेवाली), **७१५. बृन्दारका**, **७१६. बृहत्स्कन्धा** (विशाल कन्धोंवाली), **७१७. बृहती**, **७१८. बाणपातिनी** (बाणोंकी वर्षा करनेवाली)॥ ११३-११४॥

वृन्दाध्यक्षा बहुनुता वनिता बहुविक्रमा।
बद्धपद्मासनासीना बिल्वपत्रतलस्थिता॥ ११५

बोधिद्रुमनिजावासा बडिस्था बिन्दुदर्पणा।
बाला बाणासनवती वडवानलवेगिनी॥ ११६

७१९. वृन्दाध्यक्षा (वृन्दा आदि कृष्णसखियोंमें प्रमुखतम), **७२०. बहुनुता** (सभीके द्वारा नमस्कृत), **७२१. वनिता**, **७२२. बहुविक्रमा**, **७२३. बद्धपद्मासनासीना**, **७२४. बिल्वपत्रतलस्थिता**, **७२५. बोधिद्रुमनिजावासा** (पीपलके वृक्षके नीचे अपना निवासस्थान बनानेवाली), **७२६. बडिस्था**, **७२७. बिन्दुदर्पणा** (अव्यक्तमायारूप दर्पणवाली), **७२८. बाला**, **७२९. बाणासनवती** (हाथमें धनुष धारण करनेवाली), **७३०. वडवानलवेगिनी** (वडवाग्निके समान वेग धारण करनेवाली)॥ ११५-११६॥

ब्रह्माण्डबहिरन्तःस्था ब्रह्मकङ्कणसूत्रिणी।
भवानी भीषणवती भाविनी भयहारिणी॥ ११७

भद्रकाली भुजङ्गाक्षी भारती भारताशया।
भैरवी भीषणाकारा भूतिदा भूतिमालिनी॥ ११८

भामिनी भोगनिरता भद्रदा भूरिविक्रमा।
भूतवासा भृगुलता भार्गवी भूसुरार्चिता॥ ११९

भागीरथी भोगवती भवनस्था भिषग्वरा।
भामिनी भोगिनी भाषा भवानी भूरिदक्षिणा॥ १२०

भर्गात्मिका भीमवती भवबन्धविमोचिनी।
भजनीया भूतधात्रीरञ्जिता भुवनेश्वरी॥ १२१

भुजङ्गवलया भीमा भेरुण्डा भागधेयिनी।
माता माया मधुमती मधुजिह्वा मधुप्रिया॥ १२२

महादेवी महाभागा मालिनी मीनलोचना।
मायातीता मधुमती मधुमांसा मधुद्रवा॥ १२३

७३१. **ब्रह्माण्डबहिरन्तःस्था** (ब्रह्माण्डके भीतर तथा बाहर दोनों स्थानोंमें रहनेवाली), ७३२. **ब्रह्मकङ्कण-सूत्रिणी** (ब्रह्माकी कंकणसूत्रस्वरूपिणी),७३३. **भवानी**, ७३४. **भीषणवती** (दानवोंके वधके लिये भयावह रूप धारण करनेवाली), ७३५. **भाविनी** (जगत्‌की उत्पत्ति, पालन तथा संहार करनेवाली),७३६. **भयहारिणी**, ७३७. **भद्रकाली**, ७३८. **भुजङ्गाक्षी**, ७३९. **भारती**, ७४०. **भारताशया** (अपने ध्यानमें रत पुरुषोंके अन्तःकरणमें विराजमान रहनेवाली), ७४१. **भैरवी**, ७४२. **भीषणाकारा**, ७४३. **भूतिदा** (ऐश्वर्य प्रदान करनेवाली), ७४४. **भूतिमालिनी** (विपुल ऐश्वर्यसे सम्पन्न)॥ ११७-११८॥

७४५. **भामिनी**, ७४६. **भोगनिरता**, ७४७. **भद्रदा**, ७४८. **भूरिविक्रमा** (अत्यधिक पराक्रमसे सम्पन्न), ७४९. **भूतवासा** (सभी प्राणियोंमें विद्यमान रहनेवाली), ७५०. **भृगुलता**, ७५१. **भार्गवी** (भृगु-मुनिकी शक्तिके रूपमें विराजमान), ७५२. **भूसुरार्चिता** (ब्राह्मणोंके द्वारा अर्चित), ७५३. **भागीरथी**, ७५४. **भोगवती**, ७५५. **भवनस्था**, ७५६. **भिषग्वरा** (भवरोग दूर करनेके लिये श्रेष्ठ वैद्यरूपा), ७५७. **भामिनी**, ७५८. **भोगिनी**, ७५९. **भाषा**, ७६०. **भवानी**, ७६१. **भूरिदक्षिणा**॥ ११९-१२०॥

७६२. **भर्गात्मिका** (परम तेजसे सम्पन्न), ७६३. **भीमवती**, ७६४. **भवबन्धविमोचिनी**, ७६५. **भजनीया**, ७६६. **भूतधात्रीरञ्जिता** (प्राणियोंका पालन तथा अनुरंजन करनेवाली), ७६७. **भुवनेश्वरी**, ७६८. **भुजङ्गवलया** (साँपोंको वलयाकृतिके रूपमें हाथोंमें धारण करनेवाली), ७६९. **भीमा**, ७७०. **भेरुण्डा** (भेरुण्डा नामसे प्रसिद्ध देवी), ७७१. **भागधेयिनी** (परम सौभाग्यवती), ७७२. **माता**, ७७३. **माया**, ७७४. **मधुमती** (मधुपान करनेवाली), ७७५. **मधुजिह्वा**, ७७६. **मधुप्रिया** (मधुसे अतिशय प्रीति रखनेवाली)॥ १२१-१२२॥

७७७. **महादेवी**, ७७८. **महाभागा**, ७७९. **मालिनी**, ७८०. **मीनलोचना** (मछलीके समान नेत्रोंवाली), ७८१. **मायातीता**, ७८२. **मधुमती**, ७८३. **मधुमांसा**, ७८४. **मधुद्रवा** (मधुका अर्पण करनेसे भक्तोंपर द्रवित होनेवाली), ७८५. **मानवी** (मानवरूप धारण

मानवी मधुसम्भूता मिथिलापुरवासिनी।
मधुकैटभसंहर्त्री मेदिनी मेघमालिनी॥ १२४

मन्दोदरी महामाया मैथिली मसृणप्रिया।
महालक्ष्मीर्महाकाली महाकन्या महेश्वरी॥ १२५

माहेन्द्री मेरुतनया मन्दारकुसुमार्चिता।
मञ्जुमञ्जीरचरणा मोक्षदा मञ्जुभाषिणी॥ १२६

मधुरद्राविणी मुद्रा मलया मलयान्विता।
मेधा मरकतश्यामा मागधी मेनकात्मजा॥ १२७

महामारी महावीरा महाश्यामा मनुस्तुता।
मातृका मिहिराभासा मुकुन्दपदविक्रमा॥ १२८

मूलाधारस्थिता मुग्धा मणिपूरकवासिनी।
मृगाक्षी महिषारूढा महिषासुरमर्दिनी॥ १२९

योगासना योगगम्या योगा यौवनकाश्रया।
यौवनी युद्धमध्यस्था यमुना युगधारिणी॥ १३०

करनेवाली), ७८६. **मधुसम्भूता** (चैत्रमासमें प्रकट होनेवाली), ७८७. **मिथिलापुरवासिनी** (मिथिलापुरीमें निवास करनेवाली सीतास्वरूपिणी), ७८८. **मधुकैटभ-संहर्त्री** (मधु तथा कैटभ दानवोंका संहार करनेवाली), ७८९. **मेदिनी** (पृथ्वीस्वरूपिणी), ७९०. **मेघमालिनी** (मेघमालाओंसे घिरी हुई)॥ १२३-१२४॥

७९१. **मन्दोदरी**, ७९२. **महामाया**, ७९३. **मैथिली**, ७९४. **मसृणप्रिया** (मधुर पदार्थोंसे प्रेम करनेवाली), ७९५. **महालक्ष्मीः**, ७९६. **महाकाली**, ७९७. **महाकन्या**, ७९८. **महेश्वरी**, ७९९. **माहेन्द्री** (शचीके रूपमें विराजमान), ८००. **मेरुतनया**, ८०१. **मन्दारकुसुमार्चिता** (मन्दारपुष्पसे पूजित होनेवाली), ८०२. **मञ्जुमञ्जीरचरणा** (चरणोंमें सुन्दर पायल धारण करनेवाली), ८०३. **मोक्षदा**, ८०४. **मञ्जुभाषिणी**॥ १२५-१२६॥

८०५. **मधुरद्राविणी** (भक्तिसे द्रवित होकर मधुर वचन बोलनेवाली), ८०६. **मुद्रा**, ८०७. **मलया** (मलयाचलपर निवास करनेवाली), ८०८. **मलयान्विता** (मलयगिरि चन्दनसे युक्त), ८०९. **मेधा**, ८१०. **मरकतश्यामा** (मरकतमणिके सदृश श्याम वर्णवाली), ८११. **मागधी**, ८१२. **मेनकात्मजा**, ८१३. **महामारी**, ८१४. **महावीरा**, ८१५. **महाश्यामा**, ८१६. **मनुस्तुता** (मनुके द्वारा स्तुत), ८१७. **मातृका**, ८१८. **मिहिराभासा** (सूर्यके समान प्रभावाली), ८१९. **मुकुन्दपदविक्रमा** (भगवान् विष्णुके पदका अनुसरण करनेवाली)॥ १२७-१२८॥

८२०. **मूलाधारस्थिता** (मूलाधारचक्रमें कुण्डलिनीके रूपमें स्थित रहनेवाली), ८२१. **मुग्धा** (सर्वदा प्रसन्नचित्त रहनेवाली), ८२२. **मणिपूरकवासिनी** (मणिपूर नामक चक्रमें निवास करनेवाली), ८२३. **मृगाक्षी** (मृगके समान नेत्रोंवाली), ८२४. **महिषारूढा** (महिषपर आरूढ़ होनेवाली), ८२५. **महिषासुरमर्दिनी** (महिष नामक दानवका वध करनेवाली)॥ १२९॥

८२६. **योगासना**, ८२७. **योगगम्या**, ८२८. **योगा**, ८२९. **यौवनकाश्रया** (सदा यौवनावस्थामें विराजमान), ८३०. **यौवनी**, ८३१. **युद्धमध्यस्था**, ८३२. **यमुना**, ८३३. **युगधारिणी**, ८३४. **यक्षिणी**, ८३५. **योगयुक्ता**,

यक्षिणी योगयुक्ता च यक्षराजप्रसूतिनी।
यात्रा यानविधानज्ञा यदुवंशसमुद्भवा॥ १३१

८३६. **यक्षराजप्रसूतिनी** (यक्षराजको उत्पन्न करनेवाली), ८३७. **यात्रा**, ८३८. **यानविधानज्ञा** (विमानोंकी व्यवस्थाका विशेष ज्ञान रखनेवाली), ८३९. **यदुवंश-समुद्भवा** (यदुवंशमें प्रादुर्भूत देवी)॥ १३०-१३१॥

यकारादिहकारान्ता याजुषी यज्ञरूपिणी।
यामिनी योगनिरता यातुधानभयङ्करी॥ १३२

८४०. **यकारादिहकारान्ता** (यकारसे लेकर हकारतक सभी वर्णोंके रूपवाली), ८४१. **याजुषी** (यजुर्वेदस्वरूपिणी), ८४२. **यज्ञरूपिणी**, ८४३. **यामिनी**, ८४४. **योगनिरता**, ८४५. **यातुधानभयङ्करी** (राक्षसोंको भय उत्पन्न करनेवाली)॥ १३२॥

रुक्मिणी रमणी रामा रेवती रेणुका रतिः।
रौद्री रौद्रप्रियाकारा राममाता रतिप्रिया॥ १३३

रोहिणी राज्यदा रेवा रमा राजीवलोचना।
राकेशी रूपसम्पन्ना रत्नसिंहासनस्थिता॥ १३४

८४६. **रुक्मिणी**, ८४७. **रमणी**, ८४८. **रामा**, ८४९. **रेवती**, ८५०. **रेणुका**, ८५१. **रतिः**, ८५२. **रौद्री**, ८५३. **रौद्रप्रियाकारा** (रौद्र आकृतिसे प्रीति करनेवाली), ८५४. **राममाता** (कौसल्यारूपमें विराजमान), ८५५. **रतिप्रिया**, ८५६. **रोहिणी**, ८५७. **राज्यदा**, ८५८. **रेवा** (नर्मदासंज्ञक नदी), ८५९. **रमा**, ८६०. **राजीवलोचना**, ८६१. **राकेशी**, ८६२. **रूपसम्पन्ना**, ८६३. **रत्नसिंहासनस्थिता** (रत्नसे निर्मित सिंहासनपर विराजमान रहनेवाली)॥ १३३-१३४॥

रक्तमाल्याम्बरधरा रक्तगन्धानुलेपना।
राजहंससमारूढा रम्भा रक्तबलिप्रिया॥ १३५

रमणीययुगाधारा राजिताखिलभूतला।
रुरुचर्मपरीधाना रथिनी रत्नमालिका॥ १३६

८६४. **रक्तमाल्याम्बरधरा**, ८६५. **रक्तगन्धानुलेपना**, ८६६. **राजहंससमारूढा**, ८६७. **रम्भा**, ८६८. **रक्तबलि-प्रिया**, ८६९. **रमणीययुगाधारा** (रमणीय युगकी आश्रय-स्वरूपिणी), ८७०. **राजिताखिलभूतला** (सम्पूर्ण पृथ्वी-तलको सुशोभित करनेवाली), ८७१. **रुरुचर्मपरीधाना** (मृगचर्मको वस्त्रके रूपमें धारण करनेवाली), ८७२. **रथिनी**, ८७३. **रत्नमालिका**॥ १३५-१३६॥

रोगेशी रोगशमनी राविणी रोमहर्षिणी।
रामचन्द्रपदाक्रान्ता रावणच्छेदकारिणी॥ १३७

रत्नवस्त्रपरिच्छन्ना रथस्था रुक्मभूषणा।
लज्जाधिदेवता लोला ललिता लिङ्गधारिणी॥ १३८

८७४. **रोगेशी** (रोगोंपर शासन करनेवाली), ८७५. **रोगशमनी**, ८७६. **राविणी** (भयावह गर्जन करनेवाली), ८७७. **रोमहर्षिणी**, ८७८. **रामचन्द्रपदाक्रान्ता**, ८७९. **रावणच्छेदकारिणी** (रावणका संहार करनेवाली), ८८०. **रत्नवस्त्रपरिच्छन्ना** (रत्न तथा वस्त्रोंसे सम्यक् आच्छादित), ८८१. **रथस्था**, ८८२. **रुक्मभूषणा** (स्वर्णमय आभूषणोंसे सुशोभित), ८८३. **लज्जाधिदेवता**, ८८४. **लोला** (अत्यन्त चंचल स्वभाववाली), ८८५. **ललिता**, ८८६. **लिङ्गधारिणी**॥ १३७-१३८॥

लक्ष्मीर्लोला लुप्तविषा लोकिनी लोकविश्रुता।
लज्जा लम्बोदरी देवी ललना लोकधारिणी॥ १३९

८८७. **लक्ष्मीः**, ८८८. **लोला**, ८८९. **लुप्तविषा** (विषसे निष्प्रभावित रहनेवाली), ८९०. **लोकिनी**, ८९१. **लोकविश्रुता**, ८९२. **लज्जा**, ८९३. **लम्बोदरीदेवी**, ८९४. **ललना** (स्त्रीस्वरूपा), ८९५. **लोकधारिणी**॥ १३९॥

वरदा वन्दिता विद्या वैष्णवी विमलाकृतिः।
वाराही विरजा वर्षा वरलक्ष्मीर्विलासिनी॥ १४०

विनता व्योममध्यस्था वारिजासनसंस्थिता।
वारुणी वेणुसम्भूता वीतिहोत्रा विरूपिणी॥ १४१

८९६. वरदा, **८९७. वन्दिता**, **८९८. विद्या**, **८९९. वैष्णवी**, **९००. विमलाकृतिः**, **९०१. वाराही** (वराहरूप धारण करनेवाली), **९०२. विरजा**, **९०३. वर्षा** (वृष्टिरूपा), **९०४. वरलक्ष्मीः**, **९०५. विलासिनी**, **९०६. विनता**, **९०७. व्योममध्यस्था**, **९०८. वारिजासनसंस्थिता** (कमलके आसनपर विराजमान रहनेवाली), **९०९. वारुणी** (वरुणकी शक्तिस्वरूपिणी), **९१०. वेणुसम्भूता** (बाँससे प्रकट होनेवाली), **९११. वीतिहोत्रा** (अग्निस्वरूपिणी), **९१२. विरूपिणी** (विशिष्टरूपसे सम्पन्न)॥ १४०-१४१॥

वायुमण्डलमध्यस्था विष्णुरूपा विधिप्रिया।
विष्णुपत्नी विष्णुमती विशालाक्षी वसुन्धरा॥ १४२

वामदेवप्रिया वेला वज्रिणी वसुदोहिनी।
वेदाक्षरपरीताङ्गी वाजपेयफलप्रदा॥ १४३

वासवी वामजननी वैकुण्ठनिलया वरा।
व्यासप्रिया वर्मधरा वाल्मीकिपरिसेविता॥ १४४

९१३. वायुमण्डलमध्यस्था, **९१४. विष्णुरूपा**, **९१५. विधिप्रिया**, **९१६. विष्णुपत्नी**, **९१७. विष्णुमती**, **९१८. विशालाक्षी** (विशाल नेत्रोंवाली), **९१९. वसुन्धरा**, **९२०. वामदेवप्रिया** (रुद्राणीरूपसे विद्यमान), **९२१. वेला** (समयकी अधिष्ठात्री देवी), **९२२. वज्रिणी**, **९२३. वसुदोहिनी** (सम्पदाका दोहन करनेवाली), **९२४. वेदाक्षरपरीताङ्गी** (वेदाक्षरोंसे युक्त अंगोंवाली), **९२५. वाजपेयफलप्रदा** (वाजपेययज्ञका फल प्रदान करनेवाली), **९२६. वासवी**, **९२७. वामजननी** (वामदेवकी जननी), **९२८. वैकुण्ठनिलया**, **९२९. वरा**, **९३०. व्यासप्रिया**, **९३१. वर्मधरा** (कवच धारण करनेवाली), **९३२. वाल्मीकिपरिसेविता** (वाल्मीकिके द्वारा भलीभाँति सेवित)॥ १४२—१४४॥

शाकम्भरी शिवा शान्ता शारदा शरणागतिः।
शातोदरी शुभाचारा शुम्भासुरविमर्दिनी॥ १४५

शोभावती शिवाकारा शङ्करार्धशरीरिणी।
शोणा शुभाशया शुभ्रा शिरःसन्धानकारिणी॥ १४६

९३३. शाकम्भरी (शाकम्भरीदेवी नामसे प्रसिद्ध), **९३४. शिवा**, **९३५. शान्ता**, **९३६. शारदा**, **९३७. शरणागतिः**, **९३८. शातोदरी** (तेजसे युक्त उदरवाली), **९३९. शुभाचारा** (पवित्र आचरणवाली), **९४०. शुम्भासुरविमर्दिनी** (शुम्भ नामक दानवका वध करनेवाली), **९४१. शोभावती**, **९४२. शिवाकारा** (कल्याणमयी आकृति धारण करनेवाली), **९४३. शङ्करार्धशरीरिणी** (शिवकी अर्धांगिनी), **९४४. शोणा** (रक्त वर्णवाली), **९४५. शुभाशया** (मंगलकारी अभिप्रायसे युक्त), **९४६. शुभ्रा**, **९४७. शिरःसन्धानकारिणी** (दैत्योंके मस्तकपर संधान करनेवाली)॥ १४५-१४६॥

शरावती शरानन्दा शरज्ज्योत्स्ना शुभानना।
शरभा शूलिनी शुद्धा शबरी शुकवाहना॥ १४७

श्रीमती श्रीधरानन्दा श्रवणानन्ददायिनी।
शर्वाणी शर्वरीवन्द्या षड्भाषा षड्ऋतुप्रिया॥ १४८

१४८. **शरावती** (बाणोंसे रक्षा करनेवाली), १४९. **शरानन्दा** (आनन्दपूर्वक बाणका संचालन करनेवाली), १५०. **शरज्ज्योत्स्ना** (शरत्कालीन चन्द्रमाके समान धवल किरणोंवाली), १५१. **शुभानना**, १५२. **शरभा** (हरिणी-स्वरूपा), १५३. **शूलिनी**, १५४. **शुद्धा**, १५५. **शबरी**, १५६. **शुकवाहना** (शुकपर सवार होनेवाली), १५७. **श्रीमती**, १५८. **श्रीधरानन्दा** (विष्णुको आनन्द प्रदान करनेवाली), १५९. **श्रवणानन्ददायिनी** (देवी-चरित्र सुननेसे भक्तोंको आनन्द प्रदान करनेवाली), १६०. **शर्वाणी** (शंकरकी शक्तिरूपा भगवती पार्वती), १६१. **शर्वरीवन्द्या** (रात्रिमें पूजित होनेवाली), १६२. **षड्भाषा** (छः भाषाओंके रूपवाली), १६३. **षड्ऋतुप्रिया** (सभी छः ऋतुओंसे प्रीति रखनेवाली)॥ १४७-१४८॥

षडाधारस्थिता देवी षण्मुखप्रियकारिणी।
षडङ्गरूपसुमतिसुरासुरनमस्कृता ॥ १४९

सरस्वती सदाधारा सर्वमङ्गलकारिणी।
सामगानप्रिया सूक्ष्मा सावित्री सामसम्भवा॥ १५०

१६४. **षडाधारस्थितादेवी** (छः प्रकारके आधारोंमें विराजमान होनेवाली भगवती), १६५. **षण्मुख-प्रियकारिणी** (कार्तिकेयका प्रिय करनेवाली), १६६. **षडङ्गरूपसुमतिसुरासुरनमस्कृता** (षडंग रूपवाले सुमति नामक देवताओं तथा असुरोंद्वारा नमस्कृत), १६७. **सरस्वती**, १६८. **सदाधारा** (सत्यपर प्रतिष्ठित रहनेवाली), १६९. **सर्वमङ्गलकारिणी** (सबका कल्याण करनेवाली), १७०. **सामगानप्रिया**, १७१. **सूक्ष्मा**, १७२. **सावित्री**, १७३. **सामसम्भवा** (सामवेदसे प्रादुर्भूत होनेवाली)॥ १४९-१५०॥

सर्वावासा सदानन्दा सुस्तनी सागराम्बरा।
सर्वैश्वर्यप्रिया सिद्धिः साधुबन्धुपराक्रमा॥ १५१

सप्तर्षिमण्डलगता सोममण्डलवासिनी।
सर्वज्ञा सान्द्रकरुणा समानाधिकवर्जिता॥ १५२

१७४. **सर्वावासा** (सबमें व्याप्त रहनेवाली), १७५. **सदानन्दा**, १७६. **सुस्तनी**, १७७. **सागराम्बरा** (वस्त्रके रूपमें सागरको धारण करनेवाली), १७८. **सर्वैश्वर्यप्रिया** (समस्त ऐश्वर्योंसे प्रेम करनेवाली), १७९. **सिद्धिः**, १८०. **साधुबन्धुपराक्रमा** (सज्जनों तथा प्रिय भक्तजनोंके लिये पराक्रम प्रदर्शित करनेवाली), १८१. **सप्तर्षिमण्डलगता**, १८२. **सोममण्डलवासिनी** (चन्द्रमण्डलमें विराजमान रहनेवाली), १८३. **सर्वज्ञा**, १८४. **सान्द्रकरुणा** (अतीव करुणामयी), १८५. **समानाधिकवर्जिता** (सदा एक समान रहनेवाली)॥ १५१-१५२॥

सर्वोत्तुङ्गा सङ्गहीना सद्गुणा सकलेष्टदा।
सरघा सूर्यतनया सुकेशी सोमसंहतिः॥ १५३

हिरण्यवर्णा हरिणी ह्रींकारी हंसवाहिनी।
क्षौमवस्त्रपरीताङ्गी क्षीराब्धितनया क्षमा॥ १५४

गायत्री चैव सावित्री पार्वती च सरस्वती।
वेदगर्भा वरारोहा श्रीगायत्री पराम्बिका॥ १५५

इति साहस्रकं नाम्नां गायत्र्याश्चैव नारद।
पुण्यदं सर्वपापघ्नं महासम्पत्तिदायकम्॥ १५६

एवं नामानि गायत्र्यास्तोषोत्पत्तिकराणि हि।
अष्टम्यां च विशेषेण पठितव्यं द्विजैः सह॥ १५७

जपं कृत्वा होमपूजाध्यानं कृत्वा विशेषतः।
यस्मै कस्मै न दातव्यं गायत्र्यास्तु विशेषतः॥ १५८

सुभक्ताय सुशिष्याय वक्तव्यं भूसुराय वै।
भ्रष्टेभ्यः साधकेभ्यश्च बान्धवेभ्यो न दर्शयेत्॥ १५९

यद्गृहे लिखितं शास्त्रं भयं तस्य न कस्यचित्।
चञ्चलापि स्थिरा भूत्वा कमला तत्र तिष्ठति॥ १६०

इदं रहस्यं परमं गुह्याद् गुह्यतरं महत्।
पुण्यप्रदं मनुष्याणां दरिद्राणां निधिप्रदम्॥ १६१

९८६. **सर्वोत्तुङ्गा** (सर्वोच्च स्थान रखनेवाली), ९८७. **सङ्गहीना** (आसक्तिभावनासे रहित), ९८८. **सद्गुणा**, ९८९. **सकलेष्टदा** (सभी अभीष्ट फल प्रदान करनेवाली), ९९०. **सरघा** (मधुमक्षिका-स्वरूपिणी), ९९१. **सूर्यतनया** (सूर्यपुत्री), ९९२. **सुकेशी** (सुन्दर केशोंसे सम्पन्न), ९९३. **सोमसंहतिः** (अनेक चन्द्रमाओंकी शोभासे सम्पन्न)॥ १५३॥

९९४. **हिरण्यवर्णा** (स्वर्णके समान वर्णवाली), ९९५. **हरिणी**, ९९६. **ह्रींकारी** (ह्रीं-बीजस्वरूपिणी), ९९७. **हंसवाहिनी** (हंसपर सवार होनेवाली), ९९८. **क्षौमवस्त्रपरीताङ्गी** (रेशमी वस्त्रोंसे ढँके हुए अंगोंवाली), ९९९. **क्षीराब्धितनया** (क्षीरसागरकी पुत्रीस्वरूपा), १०००. **क्षमा**, १००१. **गायत्री**, १००२. **सावित्री**, १००३. **पार्वती**, १००४. **सरस्वती**, १००५. **वेदगर्भा**, १००६. **वरारोहा**, १००७. **श्रीगायत्री**, १००८. **पराम्बिका**॥ १५४-१५५॥

हे नारद! भगवती गायत्रीका यह सहस्रनाम है। यह अत्यन्त पुण्यदायक, सभी पापोंका नाश करनेवाला तथा विपुल सम्पदाओंको प्रदान करनेवाला है॥ १५६॥

इस प्रकार कहे गये ये नाम गायत्रीको सन्तुष्टि प्रदान करनेवाले हैं। ब्राह्मणोंके साथ विशेष करके अष्टमी तिथिको इस सहस्रनामका पाठ करना चाहिये। भलीभाँति जप, होम, पूजा और ध्यान करके इसका पाठ करना चाहिये। जिस किसीको भी इस गायत्रीसहस्रनामका उपदेश नहीं करना चाहिये; अपितु योग्य भक्त, उत्तम शिष्य तथा ब्राह्मणको ही इसे बताना चाहिये। पथभ्रष्ट साधकों अथवा ऐसे अपने बन्धुओंके भी समक्ष इसे प्रदर्शित नहीं करना चाहिये॥ १५७—१५९॥

जिस व्यक्तिके घरमें यह गायत्रीसम्बन्धी शास्त्र लिखा होता है, उसे किसीका भी भय नहीं रहता और अत्यन्त चपल लक्ष्मी भी उस घरमें स्थिर होकर विराजमान रहती हैं॥ १६०॥

यह परम रहस्य गुह्यसे भी अत्यन्त गुह्य है। यह मनुष्योंको पुण्य प्रदान करानेवाला, दरिद्रोंको सम्पत्ति सुलभ करानेवाला, मोक्षकी अभिलाषा रखनेवालोंको

मोक्षप्रदं मुमुक्षूणां कामिनां सर्वकामदम्।
रोगाद्वै मुच्यते रोगी बद्धो मुच्येत बन्धनात्॥ १६२

ब्रह्महत्यासुरापानसुवर्णस्तेयिनो नराः।
गुरुतल्पगतो वापि पातकान्मुच्यते सकृत्॥ १६३

असत्प्रतिग्रहाच्चैवाभक्ष्यभक्षाद्विशेषतः।
पाखण्डानृतमुख्येभ्यः पठनादेव मुच्यते॥ १६४

इदं रहस्यममलं मयोक्तं पद्मजोद्भव।
ब्रह्मसायुज्यदं नृणां सत्यं सत्यं न संशयः॥ १६५

मोक्षप्राप्ति करानेवाला तथा सकाम पुरुषोंको समस्त अभीष्ट फल प्रदान करनेवाला है। इस सहस्रनामके प्रभावसे रोगी रोगमुक्त हो जाता है तथा बन्धनमें पड़ा हुआ मनुष्य बन्धनसे छूट जाता है। ब्रह्महत्या, सुरापान, स्वर्णकी चोरी तथा गुरुपत्नीगमनसदृश महान् पाप करनेवाले भी इसके एक बारके पाठसे पापमुक्त हो जाते हैं॥ १६१—१६३॥

इसका पाठ करनेसे मनुष्य निन्दनीय दान लेने, अभक्ष्यभक्षण करने, पाखण्डपूर्ण व्यवहार करने और मिथ्याभाषण करने आदि प्रमुख पापोंसे मुक्त हो जाता है। हे ब्रह्मापुत्र नारद! मेरे द्वारा कहा गया यह परम पवित्र रहस्य मनुष्योंको ब्रह्मसायुज्य प्रदान करनेवाला है। यह बात सत्य है, सत्य है; इसमें सन्देह नहीं है॥ १६४-१६५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां द्वादशस्कन्धे गायत्रीसहस्रनामस्तोत्रवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥



अथ सप्तमोऽध्यायः

दीक्षाविधि

नारद उवाच

श्रुतं सहस्रनामाख्यं श्रीगायत्र्याः फलप्रदम्।
स्तोत्रं महोन्नतिकरं महाभाग्यकरं परम्॥ १

अधुना श्रोतुमिच्छामि दीक्षालक्षणमुत्तमम्।
विना येन न सिध्येत देवीमन्त्रेऽधिकारिता॥ २

ब्राह्मणानां क्षत्रियाणां विशां स्त्रीणां तथैव च।
सामान्यविधिना सर्वं विस्तरेण वद प्रभो॥ ३

नारदजी बोले—[हे भगवन्!] मैंने यह श्रीगायत्रीदेवीका सहस्रनामसंज्ञक श्रेष्ठ फल प्रदान करनेवाला, महान् उन्नतिकी प्राप्ति करानेवाला तथा महान् भाग्योदय करनेवाला स्तोत्र सुन लिया। अब मैं दीक्षाका उत्तम लक्षण सुनना चाहता हूँ; जिसके बिना ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों तथा स्त्रियोंको देवीमन्त्र जपनेका अधिकार प्राप्त नहीं होता। अतः हे प्रभो! सामान्य विधिसे [दीक्षासम्बन्धी] सम्पूर्ण प्रसंगका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये॥ १—३॥

श्रीनारायण उवाच

शृणु दीक्षां प्रवक्ष्यामि शिष्याणां भावितात्मनाम्।
देवाग्निगुरुपूजादावधिकारो यया भवेत्॥ ४

दिव्यं ज्ञानं हि या दद्यात्कुर्यात्पापक्षयं तु या।
सैव दीक्षेति सम्प्रोक्ता वेदतन्त्रविशारदैः॥ ५

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] सुनिये, मैं आपको पुण्यात्मा शिष्योंके दीक्षा लेनेका विधान बता रहा हूँ, जिससे उन्हें देवता, अग्नि तथा गुरुकी पूजा आदिका अधिकार प्राप्त हो जाता है॥ ४॥

जो दिव्य ज्ञान दे और जो पापोंका क्षय करे, उसीको वेदतन्त्रोंके पारगामी विद्वानोंने 'दीक्षा' इस नामकी संज्ञा दी है॥ ५॥

अवश्यं सा तु कर्तव्या यतो बहुफला मता।
गुरुशिष्यावुभावत्राप्यतिशुद्धावपेक्षितौ ॥ ६

गुरुस्तु विधिवत्प्रातः कृत्यं सर्वं विधाय च।
स्नानसन्ध्यादिकं सर्वं यथाविधि विधाय च॥ ७

कमण्डलुकरो मौनी गृहं यायात्सरित्तटात्।
यागमण्डपमासाद्य विशेत्तत्रासने वरे॥ ८

आचम्य प्राणानायम्य गन्धपुष्पविमिश्रितम्।
सप्तवारास्त्रमन्त्रेण जप्तं वारि सुसाधयेत्॥ ९

वारिणा तेन मतिमानस्त्रमन्त्रं समुच्चरन्।
प्रोक्षयेद् द्वारमखिलं ततः पूजां समाचरेत्॥ १०

ऊर्ध्वोदुम्बरके देवं गणनाथं तथा श्रियम्।
सरस्वतीं नाममन्त्रैः पूजयेद् गन्धपुष्पकैः॥ ११

द्वारदक्षिणशाखायां गङ्गां विघ्नेशमर्चयेत्।
द्वारस्य वामशाखायां क्षेत्रपालं च सूर्यजाम्॥ १२

देहल्यां पूजयेदस्त्रदेवतामस्त्रमन्त्रतः।
सर्वं देवीमयं दृश्यमिति सञ्चिन्त्य सर्वतः॥ १३

दिव्यानुत्सारयेद्विघ्नानस्त्रमन्त्रजपेन तु।
अन्तरिक्षगतान्विघ्नान्पादघातैस्तु भूमिगान्॥ १४

वामशाखां स्पृशन्पश्चात्प्रविशेद्दक्षिणाङ्घ्रिणा।
प्रविश्य कुम्भं संस्थाप्य सामान्यार्घ्यं विधाय च॥ १५

तेन चार्घ्यजलेनापि नैर्ऋत्यां दिशि पूजयेत्।
वास्तुनाथं पद्मयोनिं गन्धपुष्पाक्षतादिभिः॥ १६

ततः कुर्यात्पञ्चगव्यं तेन चार्घ्योदकेन च।
तोरणस्तम्भपर्यन्तं प्रोक्षयेन्मण्डपं गुरुः॥ १७

दीक्षा अवश्य लेनी चाहिये; क्योंकि यह अनेक फल प्रदान करनेवाली बतायी गयी है। इस दीक्षाग्रहणकार्यमें गुरु तथा शिष्य दोनों ही अत्यन्त शुद्ध भाववाले होने चाहिये॥ ६॥

गुरुको चाहिये कि प्रातःकालीन सम्पूर्ण कृत्य विधिवत् सम्पन्न करके पुनः विधानके अनुसार स्नान तथा सन्ध्या आदि करनेके अनन्तर हाथमें कमण्डलु लेकर मौनभावसे नदीतटसे घरपर आये और यज्ञमण्डपमें पहुँचकर वहाँ एक उत्तम आसनपर बैठ जाय॥ ७-८॥

तदनन्तर आचमन तथा प्राणायाम करके '**ॐ फट्**' इस अस्त्रमन्त्रको सात बार जपते हुए गन्ध और पुष्पसे मिश्रित जलको अभिमन्त्रित करे। पुनः बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि अस्त्रमन्त्रका उच्चारण करते हुए उसी जलसे सम्पूर्ण द्वारका प्रोक्षण करे और उसके बाद पूजन करे॥ ९-१०॥

दरवाजेके ऊपरी भागमें भगवान् गणेश, लक्ष्मी तथा सरस्वतीका पूजन नाममन्त्रोंका उच्चारण करते हुए गन्ध तथा पुष्प आदि अर्पित करके करना चाहिये। तत्पश्चात् द्वारकी दक्षिणशाखामें भगवती गंगा और विघ्नेश्वर गणेशकी एवं द्वारकी वामशाखामें क्षेत्रपाल तथा सूर्यपुत्री यमुनाकी पूजा करनी चाहिये। इसी प्रकार देहलीपर अस्त्रमन्त्रसे अस्त्रदेवताकी पूजा करे। सब ओर ऐसी भावना करे कि सम्पूर्ण दृश्य जगत् देवीमय ही है॥ ११—१३॥

पुनः अस्त्रमन्त्रके जपद्वारा दैवीविघ्नोंका उच्छेद करे और पदके आघातोंसे अन्तरिक्ष तथा भूतलके विघ्नोंका अपसारण करे॥ १४॥

इसके बाद द्वारदेशकी बायीं शाखाका स्पर्श करते हुए पहले दाहिना पैर रखकर मण्डपमें प्रवेश करे। भीतर प्रवेश करके जलका कलश रखकर सामान्य अर्घ्य बना ले और उसी अर्घ्यजलसे तथा गन्ध-पुष्प-अक्षत आदिसे नैर्ऋत्य दिशामें वास्तुके स्वामी पद्मयोनि ब्रह्माकी पूजा करे॥ १५-१६॥

तत्पश्चात् पंचगव्य बनाना चाहिये और पुनः गुरुका उस पंचगव्य तथा अर्घ्य-जलके द्वारा तोरणसे लेकर स्तम्भतक उस मण्डपका प्रोक्षण करना चाहिये।

सर्वं देवीमयं चेदं भावयेन्मनसा किल।
मूलमन्त्रं जपन्भक्त्या प्रोक्षणं स्याच्छराणुना॥ १८

शरमन्त्रं समुच्चार्य ताडयेन्मण्डपक्ष्माम्।
हुंमन्त्रं तु समुच्चार्य कुर्यादभ्युक्षणं ततः॥ १९

धूपयेदन्तरं धूपैर्विकिरान् विकिरेत्ततः।
मार्जयेत्तांस्तु मार्जन्या कुशनिर्मितया पुनः॥ २०

ईशानदिशि तत्पुञ्जं कृत्वा संस्थापयेन्मुने।
पुण्याहवाचनं कृत्वा दीनानाथांश्च तोषयेत्॥ २१

विशेन्मृद्वासने पश्चान्नमस्कृत्य गुरुं निजम्।
प्राङ्मुखो विधिवद्ध्यात्वा देयमन्त्रस्य देवताम्॥ २२

भूतशुद्ध्यादिकं कृत्वा पूर्वोक्तेनैव वर्त्मना।
ऋष्यादिन्यासकं कुर्याद्देयमन्त्रस्य वै मुने॥ २३

न्यसेन्मुनिं तु शिरसि मुखे छन्दः समीरितम्।
देवतां हृदयाम्भोजे गुह्ये बीजं तु पादयोः॥ २४

शक्तिं विन्यस्य पश्चात्तु तालत्रयरवात्ततः।
दिग्बन्धं कारयेत्पश्चाच्छोटिकाभिस्त्रिभिर्नरः॥ २५

प्राणायामं ततः कृत्वा मूलमन्त्रमनुस्मरन्।
मातृकां विन्यसेद्देहे तत्प्रकारस्तथोच्यते॥ २६

ॐ अं नम इति प्रोच्य न्यसेच्छिरसि मन्त्रवित्।
एवमेव तु सर्वेषु न्यसेत्स्थानेषु वै मुने॥ २७

मूलमन्त्रं षडङ्गं च न्यसेदङ्गेषु सत्तमः।
अङ्गुष्ठादिष्वङ्गुलीषु हृदयादिषु च क्रमात्॥ २८

नमः स्वाहावषड्युक्तैर्हुंवौषट्फट्पदान्वितैः।
प्रणवादियुतैर्मन्त्रैः षड्भिरेवं षडङ्गकम्॥ २९

वर्णन्यासादिकं पश्चान्मूलमन्त्रस्य योजयेत्।
स्थानेषु तत्तत्कल्पोक्तेष्विति न्यासविधिः स्मृतः॥ ३०

उस समय मनमें यह भावना करे कि यह सब कुछ देवीमय है। भक्तिपूर्वक मूलमन्त्रका जप करते हुए अस्त्रमन्त्रसे प्रोक्षण करना चाहिये॥ १७-१८॥

अस्त्रमन्त्रका उच्चारण करके मण्डपभूमिका ताडन करे और इसके बाद **'हुम्'**—इस मन्त्रका उच्चारण करके उसपर जलके छींटे दे। तदनन्तर धूप आदि सुगन्धित पदार्थोंसे धूपित करे और विघ्नकी शान्तिहेतु जल, चन्दन, सरसों, अक्षत, दूर्वा और भस्म वहाँ विकिरित कर दे। पुनः कुशकी निर्मित मार्जनीसे उनका मार्जन करे। हे मुने! उन मार्जित द्रव्योंको एकत्र करके ईशान दिशामें किसी उचित स्थानपर रख दे। तत्पश्चात् पुण्याहवाचन करके दीनों और अनाथोंको सन्तुष्ट करे॥ १९—२१॥

इसके बाद पूर्व दिशाकी ओर मुख करके कोमल आसनपर बैठना चाहिये और अपने गुरुको नमस्कार करके देयमन्त्रके देवताका विधिवत् ध्यान करना चाहिये॥ २२॥

हे मुने! पूर्वोक्त विधिसे ही भूतशुद्धि आदि क्रिया करके देयमन्त्रके ऋषि आदिका न्यास करना चाहिये॥ २३॥

मस्तकमें देयमन्त्रके ऋषिका, मुखमें छन्दका, हृदयकमलमें देवताका, गुह्यमें बीजका और दोनों पैरोंमें शक्तिका न्यास करके तीन बार ताली बजाये, फिर साधक पुरुषको चाहिये कि तीन बार चुटकी बजाकर दिग्बन्ध करे॥ २४-२५॥

तत्पश्चात् प्राणायाम करके मूलमन्त्रका स्मरण करते हुए अपनी देहमें मातृकाका न्यास करना चाहिये। उसकी विधि इस प्रकार बतायी जा रही है। हे मुने! मन्त्रवित्‌को चाहिये कि **'ॐ अं नमः'** का उच्चारण करके सिरमें मातृकान्यास करे, इसी प्रकार शरीरके सभी अंगोंमें न्यास करे॥ २६-२७॥

श्रेष्ठ पुरुषको चाहिये कि अंगुष्ठ आदि अँगुलियों और हृदय आदि अंगोंमें क्रमशः मूलमन्त्रसे षडंगन्यास करे॥ २८॥

'नमः, स्वाहा, वषट्, हुं, वौषट् और फट्'—इन पदोंके साथ 'ॐ' लगे हुए छः मन्त्रोंसे ही षडंगन्यास करना चाहिये। तदनन्तर देय मूलमन्त्रके वर्णोंसे तत्तत् कल्पित स्थानोंमें न्यास करे, यही न्यासकी विधि कही गयी है॥ २९-३०॥

ततो निजे शरीरेऽस्मिंश्चिन्तयेदासनं शुभम्।
दक्षांसे च न्यसेद्धर्मं वामांसे ज्ञानमेव च॥ ३१

वामोरौ चापि वैराग्यं दक्षोरावथ विन्यसेत्।
ऐश्वर्यं मुखदेशे तु मुने ध्यायेदधर्मकम्॥ ३२

वामपार्श्वे नाभिदेशे दक्षपार्श्वे तथा पुनः।
नञादींश्चापि ज्ञानादीन्पूर्वोक्तानेव विन्यसेत्॥ ३३

पादा धर्मादयः प्रोक्ताः पीठस्य मुनिसत्तम।
अधर्माद्यास्तु गात्राणि स्मृतानि मुनिपुङ्गवैः॥ ३४

मध्येऽनन्तं हृदि स्थाने न्यसेन्मृद्वासने स्थले।
प्रपञ्चपद्मं विमलं तस्मिन्सूर्येन्दुपावकान्॥ ३५

न्यसेत्कलायुतान्मन्त्री संक्षेपात्ता वदाम्यहम्।
सूर्यस्य द्वादश कलास्ता इन्दोः षोडश स्मृताः॥ ३६

दश वह्नेः कलाः प्रोक्तास्ताभिर्युक्तांस्तु तान्स्मरेत्।
सत्त्वं रजस्तमश्चैव न्यसेत्तेषामथोपरि॥ ३७

आत्मानमन्तरात्मानं परमात्मानमेव च।
ज्ञानात्मानं न्यसेद्विद्वानित्थं पीठस्य कल्पना॥ ३८

अमुकासनाय नम इति मन्त्रेण साधकः।
आसनं पूजयित्वा तु तस्मिन्ध्यायेत्पराम्बिकाम्॥ ३९

कल्पोक्तविधिना मन्त्री देयमन्त्रस्य देवताम्।
मानसैरुपचारैश्च पूजयेत्तां यथाविधि॥ ४०

मुद्राः प्रदर्शयेद्विद्वान्कल्पोक्ता मोदकारिकाः।
याभिर्विरचिताभिस्तु मोदो देव्यास्तु जायते॥ ४१

श्रीनारायण उवाच

ततः स्ववामभागाग्रे षट्कोणोपरि वर्तुलम्।
चतुरस्त्रयुतं सम्यङ्मध्ये मण्डलमालिखेत्॥ ४२

तदनन्तर अपने इस शरीरमें एक पवित्र आसनकी भावना करनी चाहिये। हे मुने! इसके दक्षिण भागमें धर्म, वामभागमें ज्ञान, वाम ऊरूमें वैराग्य और दक्षिण ऊरूमें ऐश्वर्यका न्यास करना चाहिये। मुखदेशमें धर्मका न्यास करना चाहिये। साथ ही वामपार्श्व, नाभिस्थल तथा दक्षिणपार्श्वमें नञ् समासपूर्वक क्रमशः धर्म, ज्ञान तथा वैराग्यका (अर्थात् अधर्म आदिका) न्यास करना चाहिये॥ ३१—३३॥

हे मुने! उस आसनके ये धर्मादि पाये कहे गये हैं तथा मुनिश्रेष्ठोंने अधर्म आदिको उसका शरीर बताया है॥ ३४॥

तत्पश्चात् ऐसी भावना करे कि इस अत्यन्त सुकोमल आसनके मध्यमें हृदय है, जिसमें भगवान् अनन्त विराजमान हैं। पुनः उस अनन्तमें प्रपंचमय विमल कमलका चिन्तन करे और साधकको चाहिये कि उस कमलके ऊपर कलायुक्त सूर्य, चन्द्रमा और अग्निकी भावना करे। अब मैं संक्षेपमें उन कलाओंके विषयमें बताता हूँ। सूर्यकी बारह, चन्द्रमाकी सोलह और अग्निकी दस कलाएँ कही गयी हैं। उन कलाओंके साथ उन सूर्य आदिका भी स्मरण करना चाहिये। इसके बाद उनके ऊपर सत्त्व, रज और तमका न्यास करना चाहिये। पुनः विद्वान् पुरुषको चाहिये कि उस पीठकी चारों दिशाओंमें आत्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा और ज्ञानात्माका न्यास करे। इस प्रकार पीठकी कल्पना करनी चाहिये॥ ३५—३८॥

तदनन्तर साधक पुरुष '**अमुकासनाय नमः**'— इस मन्त्रसे शरीररूपी आसनकी पूजा करके उसपर पराम्बिकाका ध्यान करे। इसके बाद मन्त्रवित्को चाहिये कि कल्पोक्त विधिसे मानसिक उपचारोंद्वारा देयमन्त्रके देवता उन भगवतीकी विधिपूर्वक पूजा करे॥ ३९-४०॥

तदनन्तर विद्वान् पुरुष प्रसन्नता उत्पन्न करनेवाली कल्पोक्त मुद्राएँ प्रदर्शित करे, जिन्हें बनाकर प्रदर्शित करनेसे देवीको परम प्रसन्नता होती है॥ ४१॥

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] तत्पश्चात् अपने वामभागके अग्रस्थानमें षट्कोण चक्र बनाये और उसके ऊपर एक गोल चक्र बनाये और उसके

मध्ये त्रिकोणं संलिख्य शङ्खमुद्रां प्रदर्शयेत्।
षडङ्गानि च षट्कोणेष्वर्चयेत्कुसुमादिभिः॥ ४३
अग्न्यादिषु तु कोणेषु षडङ्गार्चनमाचरेत्।
आधारपात्रमादाय शङ्खस्य मुनिसत्तम॥ ४४
अस्त्रमन्त्रेण सम्प्रोक्ष्य स्थापयेत्तत्र मण्डले।
मं वह्निमण्डलायोक्त्वा ततो दशकलात्मने॥ ४५
अमुकदेव्या अर्घ्यपात्रस्थानाय नम इत्यपि।
मन्त्रोऽयमुक्तः शङ्खस्याप्याधारस्थापने बुधैः॥ ४६
आधारे पूर्वमारभ्य प्रदक्षिणक्रमेण तु।
दश वह्निकलाः पूज्या वह्निमण्डलसंस्थिताः॥ ४७
ततो वै मूलमन्त्रेण प्रोक्षितं शङ्खमुत्तमम्।
स्थापयेत्तत्र चाधारे मूलमन्त्रमनुस्मरन्॥ ४८
अं सूर्यमण्डलायोक्त्वा द्वादशान्ते कलात्मने।
अमुकदेव्यर्घ्यपात्राय नम इत्युच्चरेत्ततः॥ ४९
शं शङ्खाय पदं प्रोच्य नम इत्येतदुच्चरेत्।
प्रोक्षयेत्तेन तं शङ्खं तस्मिन्द्वादश पूजयेत्॥ ५०
सूर्यस्य द्वादश कलास्तपन्याद्या यथाक्रमम्।
विलोममातृकां प्रोच्य मूलमन्त्रं विलोमकम्॥ ५१
जलैरापूरयेच्छङ्खं तत्र चेन्दोः कलां न्यसेत्।
ॐ सोममण्डलायोक्त्वान्ते षोडशकलात्मने॥ ५२
अमुकार्घ्यामृतायेति हृन्मन्त्रान्तो मनुः स्मृतः।
पूजयेन्मनुना तेन जलं तु सृणिमुद्रया॥ ५३
तीर्थान्यावाह्य तत्रैवाप्यष्टकृत्वो जपेन्मनुम्।
षडङ्गानि जले न्यस्य हृदा सम्पूजयेदपः॥ ५४
अष्टकृत्वो जपेन्मूलं छादयेन्मत्स्यमुद्रया।
ततो दक्षिणदिग्भागे शङ्खस्य प्रोक्षणीं न्यसेत्॥ ५५
शङ्खाम्बु किञ्चिन्निक्षिप्य प्रोक्षयेत्तेन सर्वतः।
पूजाद्रव्यं निजात्मानं विशुद्धं भावयेत्ततः॥ ५६

ऊपर चतुष्कोण मण्डलका निर्माण करे। तत्पश्चात् उस मण्डलके मध्यमें त्रिकोण लिखकर शंखमुद्रा प्रदर्शित करे और छः कोणोंमें छः अंगोंकी पुष्प आदिसे पूजा करे। हे मुनिश्रेष्ठ! अग्नि आदि कोणोंमें छः अंगोंका अर्चन करे। तत्पश्चात् शंख रखनेका पात्र लेकर '**फट्**'—इस अस्त्रमन्त्रसे प्रोक्षण करके उसे मण्डलमें स्थापित करे। '**मं वह्निमण्डलाय नमः**' मन्त्र पढ़कर '**दशकलात्मने अमुकदेव्या अर्घ्यपात्रस्थानाय नमः**' इसका उच्चारण करना चाहिये। विद्वान् पुरुषोंने शंखके आधारस्थापनके लिये यही मन्त्र बताया है। आधारदेशमें पूर्वसे आरम्भ करके दक्षिणके क्रमसे अग्निमण्डलमें निवास करनेवाली दसों अग्निकलाओंकी पूजा करनी चाहिये॥ ४२—४७॥

तत्पश्चात् मूलमन्त्रद्वारा प्रोक्षित किये गये उत्तम शंखको वहीं आधारपर मूलमन्त्रका स्मरण करते हुए रख देना चाहिये। फिर '**अं सूर्यमण्डलाय नमः**' कहकर '**द्वादशान्ते कलात्मने अमुकदेव्यर्घ्यपात्राय नमः**'—इस मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये॥ ४८-४९॥

इसके बाद '**शं शङ्खाय नमः**' इस पदका उच्चारण करके उसीसे उस शंखका प्रोक्षण करे और उस शंखमें सूर्यकी 'तपिनी' आदि बारह कलाओंकी यथाक्रम रीतिसे पूजा करे। फिर विलोम मातृका और विलोम मूलमन्त्रका उच्चारण करके शंखको जलसे भर दे और उसमें चन्द्रमाकी कलाओंका न्यास करे। '**ॐ सोममण्डलाय षोडशकलात्मने अमुकार्घ्यामृताय हृदयाय नमः**' यह मन्त्रका रूप बतलाया गया है। उसी मन्त्रके द्वारा अंकुशमुद्रासे जलकी पूजा करनी चाहिये॥ ५०—५३॥

वहींपर तीर्थोंका आवाहन करके आठ बार इस मन्त्रका जप करे। फिर जलमें षडंगन्यास करके '**हृदयाय नमः**' इस मन्त्रसे जलका पूजन करना चाहिये॥ ५४॥

तत्पश्चात् आठ बार मूलमन्त्रका जप करके मत्स्य-मुद्रासे जलको ढक दे, फिर दक्षिणभागमें शंखकी प्रोक्षणी रखे। शंखसे कुछ जल लेकर उसके द्वारा सब ओर प्रोक्षण करे। पूजन-सामग्री और अपने शरीरका भी उस जलसे प्रोक्षण करे। तत्पश्चात् अपने शरीरकी परमशुद्धिकी कल्पना कर ले॥ ५५-५६॥

श्रीनारायण उवाच

ततः स्वपुरतो वेद्यां सर्वतोभद्रमण्डलम्।
संलिख्य कर्णिकामध्यं पूरयेच्छालितण्डुलैः॥ ५७

आस्तीर्य दर्भांस्तत्रैव न्यसेत्कूर्चं सलक्षणम्।
आधारशक्तिमारभ्य पीठमन्वन्तमर्चयेत्॥ ५८

निर्व्रणं कुम्भमादायाप्यस्त्राद्भिः क्षालितान्तरम्।
तन्तुना वेष्टयेत्तं तु त्रिगुणेनारुणेन च॥ ५९

नवरत्नोदरं कूर्चयुतं गन्धादिपूजितम्।
स्थापयेत्तत्र पीठे तु तारमन्त्रेण देशिकः॥ ६०

ऐक्यं कुम्भस्य पीठस्य भावयेत्पूरयेत्ततः।
मातृकां प्रतिलोमेन जपंस्तीर्थोदकैर्मुने॥ ६१

मूलमन्त्रं च सञ्जप्य पूरयेद् देवताधिया।
अश्वत्थपनसाम्राणां कोमलैर्नवपल्लवैः॥ ६२

छादयेत्कुम्भवदनं चषकं सफलाक्षतम्।
संस्थापयेत मतिमान् वस्त्रयुग्मेन वेष्टयेत्॥ ६३

प्राणस्थापनमन्त्रेण प्राणस्थापनमाचरेत्।
आवाहनादिमुद्राभिर्मोदयेद्देवतां पराम्॥ ६४

ध्यायेत्तां परमेशानीं कल्पोक्तेन प्रकारतः।
स्वागतं कुशलप्रश्नं देव्या अग्रे समुच्चरेत्॥ ६५

पाद्यं दद्यात्ततोऽप्यर्घ्यं ततश्चाचमनीयकम्।
मधुपर्कं च साभ्यङ्गं देव्यै स्नानं निवेदयेत्॥ ६६

वाससी च ततो दद्याद्रक्ते क्षौमे सुनिर्मले।
नानामणिगणाकीर्णानाकल्पान्कल्पयेत्ततः॥ ६७

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] इसके बाद अपने सामने वेदीपर 'सर्वतोभद्रमण्डल' बनाकर उसकी कर्णिकाके मध्यभागको अगहनी धानके चावलसे भर दे। वहीं पर 'कूर्च' संज्ञावाले कुशोंको स्थापित करके '**ॐ आधारशक्तये नमः**', '**ॐ मूलप्रकृत्यै नमः**', '**ॐ कूर्माय नमः**', '**ॐ शेषाय नमः**' '**ॐ क्षमायै नमः**', '**ॐ सुधासिन्धवे नमः**', '**ॐ दुर्गादेवीयोग-पीठाय नमः**'—इन मन्त्रोंका उच्चारण करके पीठका पूजन करे॥ ५७-५८॥

तदनन्तर छिद्ररहित कलश हाथमें लेकर '**फट्**'—इस अस्त्रमन्त्रसे अभिमन्त्रित जलके द्वारा उसे प्रक्षालित करे। इसके बाद तिगुने रक्तसूत्रसे उस कलशको आवेष्टित करे। उस कलशमें नवरत्न तथा कूर्च डालकर गन्ध आदिसे उसका पूजनकर प्रणवमन्त्रका उच्चारण करते हुए उस पीठपर कलशको साधक स्थापित कर दे॥ ५९-६०॥

हे मुने! तत्पश्चात् कलश और पीठमें ऐक्यकी भावना करे; फिर प्रतिलोमके क्रमसे मातृकामन्त्रका उच्चारण करते हुए तीर्थके जलसे उस कलशको भर दे। देव-बुद्धिसे मूलमन्त्रका जप करके उस कलशको पूर्ण करे। तदनन्तर बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि पीपल, कटहल तथा आमके कोमल नवीन पल्लवोंसे कलशका मुख आच्छादित कर दे और उसके ऊपर फल और अक्षतसहित पात्र रखकर दो वस्त्रोंसे उस कलशको वेष्टित कर दे॥ ६१—६३॥

तदनन्तर प्राणप्रतिष्ठाके मन्त्रसे प्राणप्रतिष्ठाकी क्रिया सम्पन्न करे; फिर आवाहन आदि मुद्राओंसे परादेवता भगवतीको प्रसन्न करे। इसके बाद कल्पोक्तविधिसे उन परमेश्वरीका ध्यान करे और उन भगवतीके आगे स्वागत तथा कुशल-प्रश्न-सम्बन्धी वाक्योंका उच्चारण करे॥ ६४-६५॥

तत्पश्चात् पाद्य, अर्घ्य, आचमन, मधुपर्क और अभ्यंगसहित स्नान आदि देवीको निवेदित करे। इसके बाद उन्हें रक्तवर्णवाले तथा स्वच्छ दो रेशमी वस्त्र प्रदान करके नानाविध मणियोंसे जटित आभूषण कल्पित करने चाहिये॥ ६६-६७॥

मनुना पुटितैर्वर्णैर्मातृकाया विधानतः।
देव्या अङ्गेषु विन्यस्य चन्दनाद्यैः समर्चयेत्॥ ६८

गन्धः कालागुरुभवः कर्पूरेण समन्वितः।
काश्मीरं चन्दनं चापि कस्तूरीसहितं मुने॥ ६९

कुन्दपुष्पादिपुष्पाणि परदेव्यै समर्पयेत्।
धूपोऽगुरुपुरुव्रातोशीरचन्दनशर्कराः ॥ ७०

मधुमिश्राः स्मृता देव्याः प्रिया धूपात्मना सदा।
दीपाननेकान्दत्त्वाथ नैवेद्यं दर्शयेत्सुधीः॥ ७१

प्रतिद्रव्यं जलं दद्यात्प्रोक्षणीस्थं न चान्यथा।
ततः कुर्यादङ्गपूजां कल्पोक्तावरणानि च॥ ७२

साङ्गां देवीमथाभ्यर्च्य वैश्वदेवं ततश्चरेत्।
दक्षिणे स्थण्डिलं कृत्वा तत्राधाय हुताशनम्॥ ७३

मूर्तिस्थां देवतां तत्रावाह्य सम्पूज्य च क्रमात्।
तारव्याहृतिभिर्हुत्वा मूलमन्त्रेण वै ततः॥ ७४

पञ्चविंशतिवारं तु पायसेन ससर्पिषा।
हुनेत्पश्चाद्व्याहृतिभिः पुनश्च जुहुयान्मुने॥ ७५

गन्धाद्यैरर्चयित्वा च देवीं पीठे तु योजयेत्।
वह्निं विसृज्य हविषा परितो विकिरेद् बलिम्॥ ७६

देवतायाः पार्षदेभ्यो गन्धपुष्पादिसंयुतान्।
पञ्चोपचारान्दत्त्वाथ ताम्बूलं छत्रचामरे॥ ७७

दद्याद्देव्यै ततो मन्त्रं सहस्रावृत्तितो जपेत्।
जपं समर्प्य चैशान्यां विकिरे दिशि संस्थिते॥ ७८

कर्करीं स्थापयेत्तस्यां दुर्गामावाह्य पूजयेत्।
रक्ष रक्षेति चोच्चार्य नालमुक्तेन वारिणा॥ ७९

अस्त्रमन्त्रं जपन्देशं सेचयेत्तु प्रदक्षिणम्।
कर्करीं स्थापयेत्स्थाने पूजयेच्चास्त्रदेवताम्॥ ८०

तदनन्तर मन्त्र-पुटित वर्णोंद्वारा विधिपूर्वक देवीके अंगोंमें मातृकाका न्यास करके चन्दन आदि उपचारोंसे भलीभाँति उनकी पूजा करनी चाहिये॥ ६८॥

हे मुने! काले अगुरु तथा कपूरसे युक्त गन्ध, कस्तूरीयुक्त केसर, चन्दन, कुन्दपुष्प तथा अन्य प्रकारके पुष्प आदि परा भगवतीको अर्पित करे। अगुरु, गुग्गुल, उशीर तथा चन्दनके चूर्णमें शर्करा और मधु मिलाकर बनाया गया धूप देवीके लिये सदा अत्यन्त प्रिय कहा गया है। विद्वान् पुरुष अनेक प्रकारके दीपक प्रदर्शित करके देवीको नैवेद्य अर्पण करे। प्रत्येक पूजन-द्रव्यमें प्रोक्षणीमें स्थित कुछ जल अवश्य छोड़े, अन्य जलका प्रयोग न करे। तत्पश्चात् अंगपूजा तथा कल्पोक्त-आवरणपूजा करे॥ ६९—७२॥

देवीकी सांगपूजा करनेके बाद विश्वेदेवकी पूजा करे। तदनन्तर दक्षिण दिशामें वेदी बनाकर उसपर अग्नि-स्थापन करके कलशस्थित देवताका आवाहनकर क्रमसे अर्चन करे। इसके बाद प्रणवपूर्वक व्याहृतियोंसहित मूलमन्त्रका उच्चारण करते हुए घृतसहित खीरकी पचीस आहुतियाँ दे; तत्पश्चात् हे मुने! व्याहृति-मन्त्रोंसे हवन करे॥ ७३—७५॥

तदनन्तर गन्ध आदि उपचारोंसे देवीकी पूजा करके उन्हें उस पीठपर विराजित करे। उसके बाद अग्निको विसर्जित करके वहाँ होमसे अवशिष्ट खीरको बलि-प्रदानके रूपमें चारों ओर बिखेर दे॥ ७६॥

प्रधान देवताके पार्षदोंको गन्ध-पुष्प आदिसे युक्त पंचोपचार अर्पण करके उन्हें ताम्बूल, छत्र तथा चामर समर्पित करे। इसके बाद देवीके मन्त्रका एक हजार जप करे। परमेश्वरीको वह जप समर्पित करके ईशान दिग्भागमें स्थित विकिरके ऊपर कर्करी (करवा) स्थापित करे और उसके ऊपर भगवती दुर्गाका आवाहन करके उनका पूजन करे। तत्पश्चात् 'रक्ष-रक्ष'—इस मन्त्रका उच्चारण करके उस करवेकी टोंटीसे जल गिराते हुए तथा 'फट्' मन्त्रका जप करते हुए दाहिनी ओरके मण्डपस्थानको सींचे। इसके बाद कर्करीको अपनी जगह रख दे और अस्त्रदेवताका पूजन करे॥ ७७—८०॥

पश्चाद् गुरुस्तु शिष्येण सह भुञ्जीत वाग्यतः।
तस्यां रात्रौ तु तद्वेद्यां निद्रां कुर्यात्प्रयत्नतः॥ ८१

श्रीनारायण उवाच

ततः कुण्डस्य संस्कारं स्थण्डिलस्य च वा मुने।
प्रवक्ष्यामि समासेन यथाविधि विधानतः॥ ८२

मूलमन्त्रं समुच्चार्य वीक्षयेदस्त्रमन्त्रतः।
प्रोक्षयेत्ताडनं कुर्यात्तेनैव कवचेन तु॥ ८३

अभ्युक्षणं समुद्दिष्टं तिस्त्रस्तिस्त्रस्ततः परम्।
प्रागग्रा उदगग्राश्च लिखेल्लेखाः समन्ततः॥ ८४

प्रणवेन समभ्युक्ष्य पीठं देव्याः समर्चयेत्।
आधारशक्तिमारभ्य पीठमन्त्रावसानकम्॥ ८५

तस्मिन्पीठे समावाह्य शिवौ परमकारणौ।
गन्धाद्यैरुपचारैश्च पूजयेत्तौ समाहितः॥ ८६

देवीं ध्यायेदृतुस्नातां संसक्तां शङ्करेण तु।
कामातुरां तयोः क्रीडां किञ्चित्कालं विभावयेत्॥ ८७

अथ वह्निं समादाय पात्रेण पुरतो न्यसेत्।
क्रव्यादांशं परित्यज्य पूर्वोक्तैर्वीक्षणादिभिः॥ ८८

संस्कृत्य वह्निं रं बीजमुच्चार्य तदनन्तरम्।
चैतन्यं योजयेत्तस्मिन्प्रणवेनाभिमन्त्रयेत्॥ ८९

सप्तवारं ततो धेनुमुद्रां सन्दर्शयेद् गुरुः।
शरेण रक्षितं कृत्वा तनुत्रेणावगुण्ठयेत्॥ ९०

अर्चितं त्रिः परिभ्राम्य प्रादक्षिण्येन सत्तमः।
कुण्डोपरि जपंस्तारं जानुस्पृष्टमहीतलः॥ ९१

शिवबीजधिया देव्या योनौ वह्निं विनिक्षिपेत्।
आचामयेत्ततो देवं देवीं च जगदम्बिकाम्॥ ९२

तदनन्तर गुरु मौन होकर शिष्यके साथ भोजन करे और उस रात उसी वेदीपर प्रयत्नपूर्वक शयन करे॥ ८१॥

श्रीनारायणजी बोले—हे मुने! अब मैं कुण्ड तथा वेदीके विधि-विधानसे किये जानेवाले संस्कारका संक्षेपमें वर्णन करूँगा॥ ८२॥

सर्वप्रथम मूलमन्त्रका उच्चारण करके कुण्ड अथवा वेदीका निरीक्षण करे, फिर '**फट्**' इस अस्त्र-मन्त्रसे समिधा आदिका प्रोक्षण तथा ताडन करे। इसके बाद '**हुं**'—इस कवचमन्त्रसे अभ्युक्षण करे और फिर उसपर प्रागग्र तथा उदगग्र तीन-तीन रेखाएँ खींचे॥ ८३-८४॥

इसके बाद प्रणवमन्त्रसे अभ्युक्षण करके '**ॐ आधारशक्तये नमः**' से आरम्भ करके पीठमन्त्र (**ॐ अमुकदेवीयोगपीठाय नमः**)-तकके मन्त्रोंको पढ़कर भगवतीके पीठकी पूजा करे॥ ८५॥

तदनन्तर उस पीठपर जगत्के परम कारण भगवान् शिव और पार्वतीका आवाहन करके गन्ध आदि उपचारोंसे एकाग्रचित्त होकर उनका पूजन करे। उस समय इस प्रकार देवीका ध्यान करे कि 'भगवती पार्वती ऋतुस्नानसे निवृत्त होकर आसक्त भावसे भगवान् शिवके साथ विराजमान हैं। उन दोनोंके परस्पर हासविलासकी क्रीड़ाकी भी कुछ कालतक भावना करनी चाहिये'॥ ८६-८७॥

तत्पश्चात् एक पात्रमें अग्नि लाकर सामने रखे और उसमेंसे क्रव्यादांशका परित्याग करके पूर्वोक्त वीक्षण आदि क्रियाओंद्वारा अग्निका संस्कार करके '**रं**'—इस बीज-मन्त्रका उच्चारणकर उस अग्निमें चैतन्यकी भावना करे। पुनः सात बार प्रणवका उच्चारणकर उसे अभिमन्त्रित करे। तत्पश्चात् गुरु अग्निको धेनुमुद्रा प्रदर्शित करे। इसके बाद '**फट्**'—इस अस्त्रमन्त्रका उच्चारण करके अग्निको सुरक्षितकर '**हुं**'—इस कवच-मन्त्रसे अवगुण्ठन करे॥ ८८—९०॥

तत्पश्चात् श्रेष्ठ पुरुषको चाहिये कि अपने घुटनोंको पृथ्वीपर टेककर तारमन्त्रका जप करते हुए भलीभाँति पूजित अग्निको प्रदक्षिणाके क्रमसे कुण्डके ऊपर तीन बार घुमाकर उस अग्निमें शिवबीजकी भावना करके उसे देवीकी कुण्डरूपा योनिमें छोड़ दे। इसके बाद भगवान् शिव और भगवती जगदम्बिकाको आचमन कराये॥ ९१-९२॥

चित्पिङ्गल हनदहपचयुग्मं ततः परम्।
सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा मन्त्रोऽयं वह्निदीपने॥ ९३

अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनम्।
सुवर्णवर्णममलं समिद्धं विश्वतोमुखम्॥ ९४

मन्त्रेणानेन तं वह्निं स्तुवीत परमादरात्।
ततो न्यसेद्वह्निमन्त्रं षडङ्गं देशिकोत्तमः॥ ९५

सहस्त्रार्चिः स्वस्तिपूर्ण उत्तिष्ठपुरुषः स्मृतः।
धूमव्यापी सप्तजिह्वो धनुर्धर इति क्रमात्॥ ९६

जातियुक्ताः षडङ्गाः स्युः पूर्वस्थानेषु विन्यसेत्।
ध्यायेद्वह्निं हेमवर्णं त्रिनेत्रं पद्मसंस्थितम्॥ ९७

इष्टशक्तिस्वस्तिकाभीर्धारकं मङ्गलं परम्।
परिषिञ्चेत्ततः कुण्डं मेखलोपरि मन्त्रवित्॥ ९८

दर्भैः परिस्तरेत्पश्चात्परिधीन्विन्यसेदथ।
त्रिकोणवृत्तषट्कोणं साष्टपत्रं सभूपुरम्॥ ९९

यन्त्रं विभावयेद्वह्नेः पूर्वं वा संलिखेदथ।
तन्मध्ये पूजयेद्वह्निं मन्त्रेणानेन वै मुने॥ १००

वैश्वानर ततो जातवेदः पश्चादिहावह।
लोहिताक्षपदं प्रोक्त्वा सर्वकर्माणि साधय॥ १०१

वह्निजायान्तको मन्त्रस्तेन वह्निं तु पूजयेत्।
मध्ये षट्स्वपि कोणेषु हिरण्या गगना तथा॥ १०२

रक्ता कृष्णा सुप्रभा च बहुरूपातिरक्तिका।
पूजयेत्सप्तजिह्वास्ताः केसरेष्वङ्गपूजनम्॥ १०३

दलेषु पूजयेन्मूर्तीः शक्तिस्वस्तिकधारिणीः।
जातवेदाः सप्तजिह्वो हव्यवाहन एव च॥ १०४

अश्वोदरजसंज्ञोऽन्यः पुनर्वैश्वानराह्वयः।
कौमारतेजाः स्याद्विश्वमुखो देवमुखः स्मृतः॥ १०५

'**चित्पिङ्गल हन हन दह दह पच पच सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा**' यह अग्निदीपनका मन्त्र है। जातवेदा नामसे प्रसिद्ध, तेजोमय, सुवर्णके समान पीतवर्णवाले, निर्मल, परम प्रदीप्त तथा सभी ओर मुखवाले हुतभुक् अग्निदेवको मैं प्रणाम करता हूँ। श्रेष्ठ साधकको अत्यन्त आदरपूर्वक इस मन्त्रसे उन अग्निदेवकी स्तुति करनी चाहिये और इसके बाद वह्निमन्त्रसे षडंगन्यास करना चाहिये। '**सहस्त्रार्चिषे हृदयाय नमः**', '**स्वस्तिपूर्णाय शिरसे स्वाहा**', '**उत्तिष्ठपुरुषाय शिखायै वषट्**', '**धूमव्यापिने कवचाय हुम्**', '**सप्तजिह्वाय नेत्रत्रयाय वौषट्**', '**धनुर्धराय अस्त्राय फट्**' इस प्रकार क्रमसे पूर्व स्थानोंमें षडंगन्यास करे। ये नाम अंगन्यासके समय जातियुक्त अर्थात् नमः, स्वाहा, वषट्, हुम्, वौषट् और फट्—इन पदोंसे युक्त होने चाहिये। इसके बाद अग्निका इस प्रकार ध्यान करे—ये सुवर्णतुल्य वर्णवाले, तीन नेत्र धारण किये हुए, कमलके आसनपर विराजमान, इष्टशक्ति-स्वस्तिक-अभयमुद्रा धारण किये हुए तथा परम मंगल स्वरूप हैं॥ ९३—९७½ ॥

इसके बाद मन्त्रवित्‌को चाहिये कि मेखलासे ऊपर कुण्डका सेचन करे और कुशोंसे परिस्तरण करे। पुनः कुण्डके चारों ओर परिधियाँ बनाये। अग्निस्थापनके पूर्व त्रिकोण, वृत्त, षट्कोण, अष्टदल कमल और भूपुरसहित यन्त्र लिखे अथवा अग्निस्थापन करके भी उसे लिख ले। हे मुने! उसके मध्यमें वह्निमन्त्रसे अग्निकी पूजा करे। '**वैश्वानर जातवेद इहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा**'—यह अग्निमन्त्र है, इससे अग्निकी पूजा करे। यन्त्रके मध्यमें तथा छः कोणोंमें हिरण्या, गगना, रक्ता, कृष्णा, सुप्रभा, बहुरूपा और अतिरक्तिका—इन सात जिह्वाओंकी पूजा करे। केसरोंमें अंगपूजन करना चाहिये और दलोंमें शक्ति तथा स्वस्तिक धारण करनेवाली मूर्तियोंका पूजन करना चाहिये। जातवेदा, सप्तजिह्व, हव्यवाहन, अश्वोदरज, वैश्वानर, कौमारतेज, विश्वमुख और देवमुख—ये अग्नियाँ कही गयी हैं। इन अग्निनामोंके आदिमें '**ॐ अग्नये**' तथा अन्तमें

ताराग्नये पदाद्याः स्युर्नत्यन्ता वह्निमूर्तयः।
लोकपालांश्चतुर्दिक्षु वज्राद्यायुधसंयुतान्॥ १०६

श्रीनारायण उवाच

ततः स्रुक्स्रुवसंस्कारावाज्यसंस्कार एव च।
कृत्वा होमं ततः कुर्यात्स्रुवेणादाय वै घृतम्॥ १०७

दक्षिणाद् घृतभागात्तु वह्नेर्दक्षिणलोचने।
जुहुयादग्नये स्वाहेत्येवं वै वामतोऽन्यतः॥ १०८

सोमाय स्वाहेति मध्याद् घृतमादाय सत्तम।
अग्नीषोमाभ्यां स्वाहेति मध्यनेत्रे हुनेत्ततः॥ १०९

पुनर्दक्षिणभागात्तु घृतमादाय वै मुखे।
अग्नये स्विष्टकृत्स्वाहेत्यनेनैव हुनेत्ततः॥ ११०

सताराभिर्व्याहृतिभिर्जुहुयादथ साधकः।
जुहुयादग्निमन्त्रेण त्रिवारं तु ततः परम्॥ १११

ततस्तु प्रणवेनैवाप्यष्टावष्टौ घृताहुतीः।
गर्भाधानादिसंस्कारकृते तु जुहुयान्मुने॥ ११२

गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तोन्नयनं ततः।
जातकर्म नामकर्माप्युपनिष्क्रमणं तथा॥ ११३

अन्नाशनं तथा चूडा व्रतबन्धस्तथैव च।
महानाम्न्यं व्रतं पश्चात्तथौपनिषदं व्रतम्॥ ११४

गोदानोद्वाहकौ प्रोक्ताः संस्काराः श्रुतिचोदिताः।
ततः शिवं पार्वतीं च पूजयित्वा विसर्जयेत्॥ ११५

जुहुयात्पञ्च समिधो वह्निमुद्दिश्य साधकः।
पश्चादावरणानां चाप्येकैकामाहुतिं हुनेत्॥ ११६

घृतं स्रुचि समादाय चतुर्वारं स्रुवेण च।
पिधाय तां तु तेनैव मुने तिष्ठन्निजासने॥ ११७

वौषडन्तेन मनुना वह्नेस्तु जुहुयात्ततः।
महागणेशमन्त्रेण जुहुयादाहुतीर्दश॥ ११८

'**नमः**' पद लगाकर यथा '**ॐ अग्नये जातवेदसे नमः**' इत्यादिके द्वारा पूजनका विधान है। इसके बाद चारों दिशाओंमें वज्र आदि आयुध धारण करनेवाले लोकपालोंका पूजन करे॥ ९८—१०६॥

श्रीनारायण बोले—[हे मुने!] तत्पश्चात् स्रुक्, स्रुवा और घृतका संस्कार करके स्रुवासे घी लेकर अग्निमें हवन करना चाहिये। हे मुनिश्रेष्ठ! दक्षिण भागसे घृत उठाकर '**ॐ अग्नये स्वाहा**'—ऐसा उच्चारण करके अग्निके दक्षिणनेत्रमें हवन करे। इसी प्रकार वामभागसे घृत उठाकर '**ॐ सोमाय स्वाहा**'—ऐसा बोलकर बायें नेत्रमें तथा मध्यभागसे घृत लेकर '**ॐ अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा**'—ऐसा उच्चारण करके अग्निके मध्य नेत्रमें हवन करे॥ १०७—१०९॥

तत्पश्चात् दक्षिणभागसे पुनः घृत लेकर '**ॐ अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा**'—इस मन्त्रसे अग्निके मुखमें आहुति डाले॥ ११०॥

तदनन्तर साधक पुरुष प्रणवयुक्त व्याहृतियोंके द्वारा हवन करे; पुनः अग्निमन्त्रसे तीन बार आहुति प्रदान करे॥ १११॥

हे मुने! तदनन्तर प्रणवमन्त्रसे गर्भाधान आदि संस्कारोंके निमित्त घृतकी आठ-आठ आहुतियाँ देनी चाहिये। गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूडाकरण, व्रतबन्ध, महानाम्न्यव्रत, औपनिषद-व्रत, गोदान (केशान्तसंस्कार) और उद्वाहक (विवाह)—ये वेदप्रतिपादित संस्कार बताये गये हैं। तत्पश्चात् शिव और पार्वतीकी पूजा करके उनका विसर्जन करना चाहिये॥ ११२—११५॥

इसके बाद साधकको चाहिये कि अग्निको उद्देश्य करके पाँच समिधाओंका हवन करे, फिर आवरण-देवताओंके निमित्त भी एक-एक आहुति प्रदान करे॥ ११६॥

हे मुने! तत्पश्चात् स्रुक्में घृत रखकर उसे ढँक दे, पुनः अपने आसनपर बैठे हुए ही स्रुवाके द्वारा उसी घृतसे अग्निमन्त्रके साथ वौषट् लगाकर चार बार आहुति प्रदान करे। इसके बाद महागणेश मन्त्रसे दस आहुतियाँ प्रदान करे॥ ११७-११८॥

वह्नौ पीठं समभ्यर्च्य देयमन्त्रस्य देवताम्।
वह्नौ ध्यात्वा तु तद्वक्त्रे पञ्चविंशतिसंख्यया॥ ११९

मूलमन्त्रेण जुहुयाद्वक्त्रैकीकरणाय च।
वह्निदेवतयोरैक्यं भावयन्नात्मना सह॥ १२०

एकीभूतं भावयेत्तु ततस्तु साधकोत्तमः।
षडङ्गं देवतानां च जुहुयादाहुतीः पृथक्॥ १२१

तत्पश्चात् देयमन्त्रके देवताके पीठासनकी अग्निमें पूजा करके उसी अग्निमें उनका ध्यान करके उनके मुखके एकीकरणके निमित्त मुखमें मूलमन्त्रसे पचीस आहुतियाँ देनी चाहिये। इसके बाद अग्नि तथा देयमन्त्रके देवताके ऐक्यकी भावना करते हुए अपने साथ इनके एकीभूत होनेकी कल्पना करनी चाहिये। तत्पश्चात् श्रेष्ठ साधकको चाहिये कि छः अंगवाले देवताओंको पृथक्-पृथक् आहुतियाँ प्रदान करे॥ ११९—१२१॥

एकादशैव जुहुयादाहुतीर्मुनिसत्तम।
एतेन नाडीसन्धानं वह्निदेवतयोर्मुने॥ १२२

एकैकक्रमयोगेनाप्यावृत्तीनां तथैव च।
एकैकक्रमयोगेन घृतेन जुहुयान्मुने॥ १२३

हे मुनिश्रेष्ठ! अग्निदेव और देयमन्त्रके देवताकी नाड़ियोंके एकीकरणके निमित्त ग्यारह आहुतियाँ देनी चाहिये। हे मुने! एक देवताके उद्देश्यसे एक आहुति होनी चाहिये, इस प्रकार आवृत्तिपूर्वक घृतसे क्रमशः एक-एक आहुति प्रदान करनी चाहिये॥ १२२-१२३॥

ततः कल्पोक्तद्रव्यैस्तु जुहुयादथवा तिलैः।
देवतामूलमन्त्रेण गजान्तकसहस्रकम्॥ १२४

इसके बाद कल्पोक्त द्रव्यों अथवा तिलोंसे देवताके मूलमन्त्रका उच्चारण करते हुए एक हजार आठ आहुतियाँ प्रदान करे॥ १२४॥

एवं हुत्वा ततो देवीं सन्तुष्टां भावयेन्मुने।
तथैवावृतिदेवीश्च वह्न्याद्या देवता अपि॥ १२५

हे मुने! इस प्रकार आहुति देनेके पश्चात् यह भावना करे कि भगवती अब पूर्णरूपसे प्रसन्न हो गयी हैं। उसी तरह इस आवृत्तिसे देवी, अग्नि तथा देयमन्त्रके देवता भी प्रसन्न हो गये हैं॥ १२५॥

ततः शिष्यं च सुस्नातं कृतसन्ध्यादिकक्रियम्।
वस्त्रद्वययुतं स्वर्णाभरणेन समन्वितम्॥ १२६

कमण्डलुकरं शुद्धं कुण्डस्यान्तिकमानयेत्।
नमस्कृत्य ततः शिष्यो गुरूनथ सभासदः॥ १२७

कुलदेवं नमस्कृत्य विशेत्तत्राथ विष्टरे।
गुरुस्ततस्तु तं शिष्यं कृपादृष्ट्या विलोकयेत्॥ १२८

तच्चैतन्यं निजे देहे भावयेत्सङ्गतं त्विति।
ततः शिष्यतनुस्थानामध्वनां परिशोधनम्॥ १२९

कुर्यात्तु होमतो विद्वान्दिव्यदृष्ट्यवलोकनात्।
येन जायेत शुद्धात्मा योग्यो देवाद्यनुग्रहे॥ १३०

तत्पश्चात् भलीभाँति स्नान किये हुए, संध्या आदि क्रियाओंसे निवृत्त, दो वस्त्र धारण किये हुए, स्वर्णके आभूषणसे अलंकृत तथा हाथमें कमण्डलु धारण किये पवित्र शिष्यको आचार्य कुण्डके पास ले आये और शिष्य वहाँ आकर गुरुजनोंको तथा सभासदोंको नमस्कार करनेके अनन्तर कुलदेवको नमस्कार करके कुशासनपर बैठ जाय। इसके बाद गुरु उस शिष्यको कृपादृष्टिसे देखे और अपने शरीरके अन्दर उस शिष्यके चैतन्यकी समाविष्ट होनेकी भावना करे। तत्पश्चात् विद्वान् गुरुको चाहिये कि अपनी दिव्य दृष्टिके अवलोकनस्वरूप होमद्वारा शिष्यके शरीरमें स्थित अध्वोंका शोधन करे, जिससे शुद्ध आत्मावाला वह शिष्य देवता आदिके अनुग्रहके योग्य हो जाय॥ १२६—१३०॥

श्रीनारायण उवाच

तनौ ध्यायेत्तु शिष्यस्य षडध्वनः क्रमेण तु।
पादयोस्तु कलाध्वानमन्धौ तत्त्वाध्वकं पुनः॥ १३१

नाभौ तु भुवनाध्वानं वर्णाध्वानं तथा हृदि।
पदाध्वानं तथा भाले मन्त्राध्वानं तु मूर्धनि॥ १३२

शिष्यं स्पृशंस्तु कूर्चेन तिलैराज्यपरिप्लुतैः।
शोधयाम्यमुमध्वानं स्वाहेति मनुमुच्चरन्॥ १३३

ताराढ्यं जुहुयादष्टवारं प्रत्यध्वमेव हि।
षडध्वनस्ततस्तांस्तु लीनान् ब्रह्मणि भावयेत्॥ १३४

पुनरुत्पादयेत्तस्मात्सृष्टिमार्गेण वै गुरुः।
आत्मस्थितं तच्चैतन्यं पुनः शिष्ये तु योजयेत्॥ १३५

पूर्णाहुतिं ततो हुत्वा देवतां कलशे नयेत्।
पुनर्व्याहृतिभिर्हुत्वा वह्नेरङ्गाहुतीस्तथा॥ १३६

एकैकशो गुरुर्दत्त्वा विसृजेद्वह्निमात्मनि।
ततः शिष्यस्य नेत्रे तु बध्नीयाद्वाससा गुरुः॥ १३७

नेत्रमन्त्रेण तं शिष्यं कुण्डतो मण्डलं नयेत्।
पुष्पाञ्जलिं मुख्यदेव्यां कारयेच्छिष्यहस्ततः॥ १३८

नेत्रबन्धं निराकृत्य वेशयेत्कुशविष्टरे।
भूतशुद्धिं शिष्यदेहे कुर्यात्प्रोक्तेन वर्त्मना॥ १३९

मन्त्रोदितांस्तथा न्यासान्कृत्वा शिष्यतनौ ततः।
मण्डले वेशयेच्छिष्यमन्यस्मिन्कुम्भसंस्थितान्॥ १४०

पल्लवाञ्छिष्यशिरसि विन्यसेन्मातृकां जपेत्।
कलशस्थजलैः शिष्यं स्नापयेद्देवतात्मकैः॥ १४१

वर्धनीजलसेकं च कुर्याद्रक्षार्थमञ्जसा।
ततः शिष्यः समुत्थाय वाससी परिधाय च॥ १४२

श्रीनारायण बोले—[हे मुने!] गुरु शिष्यके शरीरमें क्रमसे छः अध्वोंका चिन्तन करे। दोनों पैरोंमें कलाध्वका, लिंगमें तत्त्वाध्वका, नाभिमें भुवनाध्वका, हृदयमें वर्णाध्वका, ललाटमें पदाध्वका तथा मस्तकमें मन्त्राध्वका चिन्तन करना चाहिये॥ १३१-१३२॥

गुरुको चाहिये कि कूर्चसे शिष्यको स्पर्श करते हुए '**ॐ अमुमध्वानं शोधयामि स्वाहा**' इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए घृतमिश्रित तिलोंसे प्रत्येक अध्वके निमित्त आठ बार आहुति प्रदान करे। तत्पश्चात् उन छहों अध्वोंके ब्रह्ममें लीन हो जानेकी भावना करे॥ १३३-१३४॥

इसके बाद गुरु ब्रह्ममें लीन उन अध्वों (मार्गों)-को पुनः सृष्टिमार्गसे उत्पन्न करनेकी भावना करें और अपने शरीरमें स्थित उस चैतन्यको पुनः शिष्यमें नियोजित करें॥ १३५॥

तत्पश्चात् पूर्णाहुति प्रदान करके आवाहित देवताको कलशमें प्रतिष्ठित करे और इसके बाद व्याहृतियोंका उच्चारण करके अग्निके अंगोंके निमित्त आहुतियाँ दे। गुरुको चाहिये कि एक-एक देवताके लिये एक-एक आहुति देकर अपनी आत्मामें अग्निका विसर्जन कर दे। तत्पश्चात् गुरु 'वौषट्' इस नेत्रमन्त्रका उच्चारण करके वस्त्रसे शिष्यके दोनों नेत्रोंको बाँध दे और फिर उस शिष्यको कुण्ड-स्थलसे मण्डलमें ले जाय। इसके बाद शिष्यके हाथसे प्रधान देवीके लिये पुष्पांजलि अर्पित कराये॥ १३६—१३८॥

तदनन्तर नेत्रोंका आवरण हटाकर शिष्यको कुशके आसनपर बैठा दे और पूर्वोक्त रीतिसे शिष्यकी देहमें भूतशुद्धि करे॥ १३९॥

शिष्यके शरीरमें मन्त्रोक्त न्यास करनेके पश्चात् शिष्यको दूसरे मण्डलमें बैठाये। तत्पश्चात् कलशपर स्थित पल्लवोंको शिष्यके सिरपर रखे और मातृका-जप करे। इसके बाद कलशमें स्थित देवमय जलसे शिष्यको स्नान कराये। स्नानके पश्चात् शिष्यकी रक्षाके लिये वर्धनीसंज्ञक कलशके जलसे भलीभाँति अभिषेक करे। इसके बाद शिष्य उठकर दो शुद्ध वस्त्र धारण करे और भस्म आदि लगाकर गुरुके समीप बैठ जाय। तत्पश्चात् करुणानिधान

कृतभस्मावलेपश्च संविशेद् गुरुसन्निधौ।
ततो गुरुः स्वकीयात्तु हृदयान्निर्गतां शिवाम्॥ १४३

प्रविष्टां शिष्यहृदये भावयेत्करुणानिधिः।
पूजयेद् गन्धपुष्पाद्यैरैक्यं वै भावयंस्तयोः॥ १४४

ततस्त्रिंशो दक्षकर्णे शिष्यस्योपदिशेद् गुरुः।
महामन्त्रं महादेव्याः स्वहस्तं शिरसि न्यसन्॥ १४५

अष्टोत्तरशतं मन्त्रं शिष्योऽपि प्रजपेन्मुने।
दण्डवत्प्रणमेद्भूमौ तं गुरुं देवतात्मकम्॥ १४६

सर्वस्वमर्पयेत्तस्मै यावज्जीवमनन्यधीः।
ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां दत्त्वा ब्राह्मणांश्चापि भोजयेत्॥ १४७

सुवासिनीः कुमारीश्च बटुकांश्चैव सर्वशः।
दीनानाथान्दरिद्रांश्च वित्तशाठ्यविवर्जितः॥ १४८

कृतार्थतां स्वस्य बुद्ध्वा नित्यमाराधयेन्मनुम्।
इति ते कथितः सम्यग्दीक्षाविधिरनुत्तमः॥ १४९

विमृश्यैतदशेषेण भज देवीपदाम्बुजम्।
नान्यस्तु परमो धर्मो ब्राह्मणस्यात्र विद्यते॥ १५०

वैदिकः स्वस्वगृह्योक्तक्रमेणोपदिशेन्मनुम्।
तान्त्रिकस्तन्त्ररीत्या तु स्थितिरेषा सनातनी॥ १५१

तत्तदुक्तप्रयोगांस्ते ते ते कुर्युर्न चान्यथा।

श्रीनारायण उवाच

इति सर्वं मयाख्यातं यत्पृष्टं नारद त्वया॥ १५२

अतः परं पराम्बाया भज नित्यं पदाम्बुजम्।
नित्यमाराध्य तच्चाहं निर्वृतिं परमां गतः॥ १५३

व्यास उवाच

इति राजन्नारदाय प्रोक्त्वा सर्वमनुत्तमम्।
समाधिमीलिताक्षस्तु दध्यौ देवीपदाम्बुजम्॥ १५४

गुरुदेव यह भावना करें कि भगवती शिवा उनके हृदयसे निकलकर अब शिष्यके हृदयमें प्रविष्ट हो गयी हैं। अतः शिष्य तथा देवी उन दोनोंमें तादात्म्यकी भावना करते हुए वे गन्ध-पुष्प आदिसे शिष्यका पूजन करें॥ १४०—१४४॥

तत्पश्चात् गुरु अपना दाहिना हाथ शिष्यके सिरपर रखते हुए उसके दाहिने कानमें महाभगवतीके महामन्त्रका तीस बार उपदेश करें। हे मुने! इसके बाद शिष्य उस मन्त्रका एक सौ आठ बार जप करे। पुनः पृथ्वीपर दण्डकी भाँति गिरकर उन देवतास्वरूप गुरुको प्रणाम करे॥ १४५-१४६॥

इसके बाद शिष्य जीवनभरके लिये गुरुके प्रति अनन्यबुद्धिवाला होकर गुरुके प्रति एकनिष्ठ भावसे अपना सर्वस्व उन्हें अर्पण कर दे। तदनन्तर ऋत्विजोंको दक्षिणा देकर ब्राह्मणों, सौभाग्यवती स्त्रियों, कन्याओं और बटुकोंको भलीभाँति भोजन कराये। साथ ही धनकी कृपणतासे रहित होकर दीनों, अनाथों तथा दरिद्रोंको सन्तुष्ट करे। अपनेको कृतार्थ समझकर मन्त्रकी नित्य उपासना करे। इस प्रकार दीक्षाकी यह उत्तम विधि मैंने आपको बतला दी॥ १४७—१४९॥

इस विषयमें पूर्णरूपसे विचार करके अब आप देवीके चरण-कमलका सेवन कीजिये। ब्राह्मणके लिये इसके अतिरिक्त कोई श्रेष्ठ धर्म नहीं है॥ १५०॥

वैदिक पुरुष अपने-अपने गृह्यसूत्रमें कहे गये नियमके अनुसार तथा तान्त्रिक पुरुष तन्त्र-पद्धतिके अनुसार मन्त्रका उपदेश करें; यही सनातन नियम है। जिनके लिये जो-जो प्रयोग बताये गये हैं, उन्हें उसीका उपयोग करना चाहिये; दूसरे नियमोंका नहीं॥ १५१ $\frac{1}{2}$॥

श्रीनारायण बोले—हे नारद! आपने जो पूछा था, वह सब मैंने बता दिया। अब आप पराम्बा भगवतीके पदारविन्दकी नित्य उपासना कीजिये। मैं भी उसी चरणकमलकी नित्य आराधना करके परम शान्तिको प्राप्त हुआ हूँ॥ १५२-१५३॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! इस प्रकार यह सम्पूर्ण उत्तम प्रसंग नारदजीसे कहकर श्रेष्ठ मुनियोंके भी शिरोमणि भगवान् नारायण अपने नेत्र बन्द करके समाधिस्थ होकर भगवतीके चरण-

नारायणस्तु भगवान् मुनिवर्यशिखामणिः।
नारदोऽपि ततो नत्वा गुरुं नारायणं परम्।
जगाम सद्यस्तपसे देवीदर्शनलालसः॥ १५५

कमलका ध्यान करने लगे। नारदजीने भी उन परम गुरु भगवान् नारायणको प्रणाम करके भगवतीके दर्शनकी लालसासे तपस्या करनेके लिये उसी क्षण प्रस्थान कर दिया॥ १५४-१५५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां द्वादशस्कन्धे मन्त्रदीक्षाविधिवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥



अथाष्टमोऽध्यायः

देवताओंका विजयगर्व तथा भगवती उमाद्वारा उसका भंजन, भगवती उमाका इन्द्रको दर्शन देकर ज्ञानोपदेश देना

जनमेजय उवाच

भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वशास्त्रवतांवर।
द्विजातीनां तु सर्वेषां शक्त्युपास्तिः श्रुतीरिता॥ १

सन्ध्याकालत्रयेऽन्यस्मिन् काले नित्यतया विभो।
तां विहाय द्विजाः कस्माद् गृह्णीयुश्चान्यदेवताः॥ २

दृश्यन्ते वैष्णवाः केचिद् गाणपत्यास्तथापरे।
कापालिकाश्चीनमार्गरता वल्कलधारिणः॥ ३

दिगम्बरास्तथा बौद्धाश्चार्वाका एवमादयः।
दृश्यन्ते बहवो लोके वेदश्रद्धाविवर्जिताः॥ ४

किमत्र कारणं ब्रह्मंस्तद्भवान् वक्तुमर्हति।
बुद्धिमन्तः पण्डिताश्च नानातर्कविचक्षणाः॥ ५

अपि सन्त्येव वेदेषु श्रद्धया तु विवर्जिताः।
न हि कश्चित्स्वकल्याणं बुद्ध्या हातुमिहेच्छति॥ ६

किमत्र कारणं तस्माद्वद वेदविदांवर।
मणिद्वीपस्य महिमा वर्णितो भवता पुरा॥ ७

कीदृक् तदस्ति यद्देव्याः परं स्थानं महत्तरम्।
तच्चापि वद भक्ताय श्रद्दधानाय मेऽनघ॥ ८

प्रसन्नास्तु वदन्त्येव गुरवो गुह्यमप्युत।

जनमेजय बोले—सम्पूर्ण शास्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ तथा समस्त धर्मोंको जाननेवाले हे भगवन्! सभी द्विजातियोंके लिये शक्तिकी उपासना नित्य होनेके कारण तीनों सन्ध्या-कालोंमें तथा अन्य समयमें भी करणीय है—ऐसा श्रुतिका कथन है; तो फिर हे विभो! उन भगवतीको छोड़कर द्विजगण अन्य देवताओंकी उपासना क्यों करते हैं?॥ १-२॥

कुछ विष्णुके उपासक, कुछ गणपतिके उपासक, कुछ कापालिक, कुछ चीनमार्गी, कुछ वल्कलधारी, कुछ दिगम्बर, कुछ बौद्ध, कुछ चार्वाक आदि दिखायी पड़ते हैं। इसी प्रकार लोकमें बहुतसे ऐसे लोग भी दिखायी देते हैं, जो वेदोंके प्रति श्रद्धा-भावसे रहित हैं। हे ब्रह्मन्! इसमें क्या कारण है? वह मुझे बतानेकी आप कृपा कीजिये॥ ३-४½॥

कुछ बुद्धिमान् पण्डित और अनेक प्रकारके तर्क करनेमें दक्ष विद्वान् लोग भी हैं, जो वेदोंके प्रति श्रद्धासे विहीन हैं। कोई भी व्यक्ति जान-बूझकर अपने कल्याणका परित्याग नहीं करना चाहता है, तो फिर वे ऐसा क्यों करते हैं? हे वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! इसमें क्या कारण है; मुझे बतलाइये॥ ५-६½॥

आपने पहले मणिद्वीपकी महिमाका वर्णन किया था। भगवतीका वह परम उत्तम स्थान कैसा है? हे अनघ! आप मुझ श्रद्धावान् भक्तको इसे भी बताइये; क्योंकि प्रसन्न गुरुजन गुप्त बात भी बता देते हैं॥ ७-८½॥

सूत उवाच

इति राज्ञो वचः श्रुत्वा भगवान् बादरायणः॥ ९

निजगाद ततः सर्वं क्रमेणैव मुनीश्वराः।
यच्छ्रुत्वा तु द्विजातीनां वेदश्रद्धा विवर्धते॥ १०

व्यास उवाच

सम्यक्पृष्टं त्वया राजन् समये समयोचितम्।
बुद्धिमानसि वेदेषु श्रद्धावांश्चैव लक्ष्यसे॥ ११

पूर्वं मदोद्धता दैत्या देवैर्युद्धं तु चक्रिरे।
शतवर्षं महाराज महाविस्मयकारकम्॥ १२

नानाशस्त्रप्रहरणं नानामायाविचित्रितम्।
जगत्क्षयकरं नूनं तेषां युद्धमभून्नृप॥ १३

पराशक्तिकृपावेशाद्देवैर्दैत्या जिता युधि।
भुवं स्वर्गं परित्यज्य गताः पातालवेश्मनि॥ १४

ततः प्रहर्षिता देवाः स्वपराक्रमवर्णनम्।
चक्रुः परस्परं मोहात्साभिमानाः समन्ततः॥ १५

जयोऽस्माकं कुतो न स्यादस्माकं महिमा यतः।
सर्वोत्तरः कुत्र दैत्याः पामरा निष्पराक्रमाः॥ १६

सृष्टिस्थितिक्षयकरा वयं सर्वे यशस्विनः।
अस्मदग्रे पामराणां दैत्यानां चैव का कथा॥ १७

पराशक्तिप्रभावं ते न ज्ञात्वा मोहमागताः।
तेषामनुग्रहं कर्तुं तदैव जगदम्बिका॥ १८

प्रादुरासीत्कृपापूर्णा यक्षरूपेण भूमिप।
कोटिसूर्यप्रतीकाशं चन्द्रकोटिसुशीतलम्॥ १९

विद्युत्कोटिसमानाभं हस्तपादादिवर्जितम्।
अदृष्टपूर्वं तद् दृष्ट्वा तेजः परमसुन्दरम्॥ २०

सविस्मयास्तदा प्रोचुः किमिदं किमिदं त्विति।
दैत्यानां चेष्टितं किं वा माया कापि महीयसी॥ २१

सूतजी बोले—हे मुनीश्वरो! महाराज जनमेजयकी यह बात सुनकर भगवान् वेदव्यासने उन्हें क्रमसे वह सब कुछ बतला दिया, जिसे सुनकर द्विजातियोंके मनमें वेदोंके प्रति श्रद्धा बढ़ जाती है॥ ९-१०॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! इस समय आपने जो पूछा है, वह अत्युत्तम तथा कालके अनुरूप ही है। आप बुद्धिमान् तथा वेदोंमें श्रद्धा रखनेवाले प्रतीत होते हैं॥ ११॥

हे महाराज! पूर्वकालमें मदसे उन्मत्त दानवोंने देवताओंके साथ सौ वर्षोंतक एक अत्यन्त विस्मयकारक युद्ध किया था॥ १२॥

हे नृप! अनेक प्रकारके शस्त्रोंके प्रहार तथा अनेक प्रकारकी मायाओंके प्रयोगसे भरा उनका वह युद्ध जगत्‌के लिये अत्यन्त विनाशकारी सिद्ध हुआ॥ १३॥

उस समय पराशक्ति भगवतीकी कृपासे देवताओंने युद्धमें दैत्योंको जीत लिया और वे दैत्य भूलोक तथा स्वर्ग छोड़कर पाताललोकमें चले गये॥ १४॥

इस विजयसे अत्यन्त हर्षित देवतागण मोहके कारण अभिमानयुक्त होकर चारों ओर परस्पर अपने पराक्रमकी इस प्रकार चर्चा करने लगे—हमारी विजय क्यों न हो? क्योंकि हमारी महिमा सर्वोत्तम है। कहाँ ये अधम और पराक्रमहीन दैत्य तथा कहाँ सृजन, पालन तथा संहार करनेवाले हम यशस्वी देवता! तो फिर हमारे सामने असहाय दैत्योंकी बात ही क्या॥ १५—१७॥

हे राजन्! पराशक्तिके प्रभावको न जाननेके कारण ही वे देवता मोहित हो गये थे। तब उनके ऊपर अनुग्रह करनेके लिये दयामयी जगदम्बा एक यक्षके रूपमें प्रकट हुईं॥ १८½॥

करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशवाले, करोड़ों चन्द्रमाओंके समान अत्यन्त शीतल, करोड़ों विद्युत्‌के समान आभावाले और हाथ-पैर आदि अवयवोंसे रहित, पहले कभी न देखे गये उस परम सुन्दर तेजको देखकर देवता महान् विस्मयमें पड़ गये और कहने लगे—यह क्या है! यह क्या है! यह दैत्योंकी चेष्टा है अथवा कोई बलवती माया है? देवताओंको आश्चर्यचकित करनेवाली यह माया किसके द्वारा

केनचिन्निर्मिता वाथ देवानां स्मयकारिणी।
सम्भूय ते तदा सर्वे विचारं चक्रुरुत्तमम्॥ २२

यक्षस्य निकटे गत्वा प्रष्टव्यं कस्त्वमित्यपि।
बलाबलं ततो ज्ञात्वा कर्तव्या तु प्रतिक्रिया॥ २३

ततो वह्निं समाहूय प्रोवाचेन्द्रः सुराधिपः।
गच्छ वह्ने त्वमस्माकं यतोऽसि मुखमुत्तमम्॥ २४

ततो गत्वा तु जानीहि किमिदं यक्षमित्यपि।
सहस्राक्षवचः श्रुत्वा स्वपराक्रमगर्भितम्॥ २५

वेगात्स निर्गतो वह्निर्ययौ यक्षस्य सन्निधौ।
तदा प्रोवाच यक्षस्तं त्वं कोऽसीति हुताशनम्॥ २६

वीर्यं च त्वयि किं यत्तद्वद सर्वं ममाग्रतः।
अग्निरस्मि तथा जातवेदा अस्मीति सोऽब्रवीत्॥ २७

सर्वस्य दहने शक्तिर्मयि विश्वस्य तिष्ठति।
तदा यक्षं परं तेजस्तदग्रे निदधौ तृणम्॥ २८

दहैनं यदि ते शक्तिर्विश्वस्य दहनेऽस्ति हि।
तदा सर्वबलेनैवाकरोद्यत्नं हुताशनः॥ २९

न शशाक तृणं दग्धुं लज्जितोऽगात्सुरान्प्रति।
पृष्टे देवैस्तु वृत्तान्ते सर्वं प्रोवाच हव्यभुक्॥ ३०

वृथाभिमानो ह्यस्माकं सर्वेशत्वादिके सुराः।
ततस्तु वृत्रहा वायुं समाहूयेदमब्रवीत्॥ ३१

त्वयि प्रोतं जगत्सर्वं त्वच्चेष्टाभिस्तु चेष्टितम्।
त्वं प्राणरूपः सर्वेषां सर्वशक्तिविधारकः॥ ३२

त्वमेव गत्वा जानीहि किमिदं यक्षमित्यपि।
नान्यः कोऽपि समर्थोऽस्ति ज्ञातुं यक्षं परं महः॥ ३३

रची गयी है? तब उन सभी देवताओंने एकत्र होकर उत्तम विचार किया कि यक्षके समीप जाकर पूछना चाहिये कि 'तुम कौन हो?' इस प्रकार उसके बलाबलकी जानकारी कर लेनेके पश्चात् ही कोई प्रतिक्रिया करनी चाहिये॥ १९—२३॥

तत्पश्चात् देवराज इन्द्रने अग्निको बुलाकर उनसे कहा—'हे अग्निदेव! आप जाइये। चूँकि आप ही हम लोगोंके उत्तम मुख हैं, इसलिये वहाँ जाकर इसकी जानकारी कीजिये कि यह यक्ष कौन है'॥ २४½॥

हजार नेत्रोंवाले इन्द्रके मुखसे अपने प्रति पराक्रमसे युक्त वचन सुनकर वे अग्निदेव अत्यन्त वेगपूर्वक निकल पड़े और शीघ्र ही यक्षके पास जा पहुँचे॥ २५½॥

तब यक्षने उन अग्निसे पूछा—'तुम कौन हो? तुममें कौन-सा पराक्रम है? जो हो वह सब मुझे बतलाओ'॥ २६½॥

इसपर उसने कहा—'मैं अग्नि हूँ; मैं जातवेदा हूँ। सम्पूर्ण विश्वको दग्ध कर डालनेका सामर्थ्य मुझमें विद्यमान है'॥ २७½॥

तब परम तेजस्वी यक्षने अग्निके समक्ष एक तृण रख दिया और कहा—'यदि विश्वको भस्म करनेकी शक्ति तुममें है, तो इसे जला दो'॥ २८½॥

तब अग्निने अपनी सम्पूर्ण शक्तिका प्रयोग करते हुए उस तृणको जलानेका प्रयास किया, किंतु वे उस तृणको भस्म करनेमें समर्थ नहीं हुए और लज्जित होकर देवताओंके पास लौट गये॥ २९½॥

देवताओंके द्वारा वृत्तान्त पूछे जानेपर अग्निदेवने सब कुछ बता दिया और कहा—हे देवताओ! सर्वेश आदि बननेमें हमलोगोंका अभिमान सर्वथा व्यर्थ है॥ ३०½॥

तत्पश्चात् वृत्रासुरका संहार करनेवाले इन्द्रने वायुको बुलाकर यह कहा—सम्पूर्ण जगत् आपमें व्याप्त है और आपकी ही चेष्टाओंसे यह क्रियाशील है। आप प्राणरूप होकर सभी प्राणियोंमें सम्पूर्ण शक्तिका संचार करते हैं। आप ही जाकर यह जानकारी प्राप्त कीजिये कि यह यक्ष कौन है? क्योंकि अन्य कोई भी उस परम तेजस्वी यक्षको जाननेमें समर्थ नहीं है॥ ३१—३३॥

सहस्राक्षवचः श्रुत्वा गुणगौरवगुम्फितम्।
साभिमानो जगामाशु यत्र यक्षं विराजते॥ ३४

यक्षं दृष्ट्वा ततो वायुं प्रोवाच मृदुभाषया।
कोऽसि त्वं त्वयि का शक्तिर्वद सर्वं ममाग्रतः॥ ३५

ततो यक्षवचः श्रुत्वा गर्वेण मरुदब्रवीत्।
मातरिश्वाहमस्मीति वायुरस्मीति चाब्रवीत्॥ ३६

वीर्यं तु मयि सर्वस्य चालने ग्रहणेऽस्ति हि।
मच्चेष्टया जगत्सर्वं सर्वव्यापारवद्भवेत्॥ ३७

इति श्रुत्वा वायुवाणीं निजगाद परं महः।
तृणमेतत्तवाग्रे यत्तच्चालय यथेप्सितम्॥ ३८

नोचेद् गर्वं विहायैनं लज्जितो गच्छ वासवम्।
श्रुत्वा यक्षवचो वायुः सर्वशक्तिसमन्वितः॥ ३९

उद्योगमकरोत्तच्च स्वस्थानान्न चचाल ह।
लज्जितोऽगाद्देवपार्श्वे हित्वा गर्वं स चानिलः॥ ४०

वृत्तान्तमवदत्सर्वं गर्वनिर्वापकारणम्।
नैतज्ज्ञातुं समर्थाः स्म मिथ्यागर्वाभिमानिनः॥ ४१

अलौकिकं भाति यक्षं तेजः परमदारुणम्।
ततः सर्वे सुरगणाः सहस्राक्षं समूचिरे॥ ४२

देवराडसि यस्मात्त्वं यक्षं जानीहि तत्त्वतः।
तत इन्द्रो महागर्वात्तद्यक्षं समुपाद्रवत्॥ ४३

प्राद्रवच्च परं तेजो यक्षरूपं परात्परम्।
अन्तर्धानं ततः प्राप तद्यक्षं वासवाग्रतः॥ ४४

अतीव लज्जितो जातो वासवो देवराडपि।
यक्षसम्भाषणाभावाल्लघुत्वं प्राप चेतसि॥ ४५

गुण और गौरवसे समन्वित इन्द्रकी बात सुनकर वे वायुदेव अभिमानसे भर उठे और शीघ्र ही वहाँ पहुँच गये, जहाँ यक्ष विराजमान था॥ ३४॥

तब वायुको देखकर यक्षने मधुर वाणीमें कहा—तुम कौन हो? तुममें कौन-सी शक्ति है? यह सब मेरे सामने बतलाओ॥ ३५॥

यक्षका वचन सुनकर वायुने गर्वपूर्वक कहा—'मैं मातरिश्वा हूँ; मैं वायु हूँ। सबको संचालित करने तथा ग्रहण करनेकी शक्ति मुझमें विद्यमान है। मेरी चेष्टासे ही सम्पूर्ण जगत् सब प्रकारके व्यवहार-वाला होता है'॥ ३६-३७॥

वायुकी यह वाणी सुनकर परम तेजस्वी यक्षने कहा—तुम्हारे सामने यह जो तृण रखा हुआ है, उसे तुम अपनी इच्छाके अनुसार गतिमान् कर दो; अन्यथा इस अभिमान का त्याग करके लज्जित हो इन्द्रके पास लौट जाओ॥ ३८$\frac{1}{2}$॥

यक्षका वचन सुनकर वायुदेवने अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर उस तृणको उड़ानेका प्रयत्न किया, किंतु वह तृण अपने स्थानसे हिलातक नहीं। तब वे पवनदेव लज्जित होकर अभिमानका त्याग करके इन्द्रके पास चले गये॥ ३९-४०॥

उन्होंने अभिमानको चूर करनेवाला सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाते हुए कहा—'मिथ्या गर्व तथा अभिमान करनेवाले हमलोग इस यक्षको जाननेमें समर्थ नहीं हैं। परम प्रचण्ड तेजवाला यह यक्ष अलौकिक प्रतीत हो रहा है'॥ ४१$\frac{1}{2}$॥

तत्पश्चात् सभी देवताओंने सहस्र नेत्रोंवाले इन्द्रसे कहा—'आप देवताओंके स्वामी हैं, अतः अब आप ही यक्षके विषयमें ठीक-ठीक जाननेका प्रयत्न कीजिये'॥ ४२$\frac{1}{2}$॥

तब इन्द्र अत्यन्त अभिमानपूर्वक उस यक्षके पास गये। उनके पहुँचते ही यक्षरूप परात्पर परम तेज शीघ्र ही अदृश्य हो गया। जब वह यक्ष इन्द्रके सामनेसे अन्तर्हित हो गया तब देवराज इन्द्र अत्यन्त लज्जित हो गये और यक्षके उनसे बाततक न करनेके कारण वे मनमें अपनेको छोटा समझने लगे। वे सोचने लगे कि अब मुझे देवताओंके समाजमें नहीं जाना चाहिये; क्योंकि वहाँ देवताओंके समक्ष अपनी

अतः परं न गन्तव्यं मया तु सुरसंसदि।
किं मया तत्र वक्तव्यं स्वलघुत्वं सुरान्प्रति॥ ४६

देहत्यागो वरस्तस्मान्मानो हि महतां धनम्।
माने नष्टे जीवितं तु मृतितुल्यं न संशयः॥ ४७

इति निश्चित्य तत्रैव गर्वं हित्वा सुरेश्वरः।
चरित्रमीदृशं यस्य तमेव शरणं गतः॥ ४८

तस्मिन्नेव क्षणे जाता व्योमवाणी नभस्तले।
मायाबीजं सहस्राक्ष जप तेन सुखी भव॥ ४९

ततो जजाप परमं मायाबीजं परात्परम्।
लक्षवर्षं निराहारो ध्यानमीलितलोचनः॥ ५०

अकस्माच्चैत्रमासीयनवम्यां मध्यगे रवौ।
तदेवाविरभूत्तेजस्तस्मिन्नेव स्थले पुनः॥ ५१

तेजोमण्डलमध्ये तु कुमारीं नवयौवनाम्।
भास्वज्जपाप्रसूनाभां बालकोटिरविप्रभाम्॥ ५२

बालशीतांशुमुकुटां वस्त्रान्तर्व्यञ्जितस्तनीम्।
चतुर्भिर्वरहस्तैस्तु वरपाशाङ्कुशाभयान्॥ ५३

दधानां रमणीयाङ्गीं कोमलाङ्गलतां शिवाम्।
भक्तकल्पद्रुमामम्बां नानाभूषणभूषिताम्॥ ५४

त्रिनेत्रां मल्लिकामालाकबरीजूटशोभिताम्।
चतुर्दिक्षु चतुर्वेदैर्मूर्तिमद्भिरभिष्टुताम्॥ ५५

दन्तच्छटाभिरभितः पद्मरागीकृतक्ष्माम्।
प्रसन्नस्मेरवदनां कोटिकन्दर्पसुन्दराम्॥ ५६

रक्ताम्बरपरीधानां रक्तचन्दनचर्चिताम्।
उमाभिधानां पुरतो देवीं हैमवतीं शिवाम्॥ ५७

निर्व्याजकरुणामूर्तिं सर्वकारणकारणाम्।
ददर्श वासवस्तत्र प्रेमगद्गदितान्तरः॥ ५८

इस हीनताके विषयमें क्या बताऊँगा। अतः शरीरका त्याग कर देना ही मेरे लिये अच्छा होगा; क्योंकि मान ही महापुरुषोंका धन होता है। मानके नष्ट हो जानेपर मनुष्यका जीवित रहना मृत्युके समान है, इसमें संशय नहीं है॥ ४३—४७॥

यह निश्चय करके देवराज इन्द्र अभिमान त्यागकर उन्हीं पराशक्तिकी शरणमें गये, जिनकी ऐसी अद्भुत लीला है॥ ४८॥

उसी क्षण गगन-मण्डलमें यह आकाशवाणी हुई—'हे सहस्राक्ष! तुम मायाबीजका जप करो और उससे सुखी हो जाओ'॥ ४९॥

तब इन्द्रने नेत्र बन्द करके देवीका ध्यान करते हुए निराहार रहकर एक लाख वर्षतक अतिश्रेष्ठ परम मायाबीजका जप किया॥ ५०॥

एक दिन चैत्रमासके शुक्ल पक्षमें नवमी तिथिको मध्याह्नकालमें उसी स्थलपर सहसा एक महान् तेज प्रकट हुआ॥ ५१॥

इन्द्रने उस तेजमण्डलके मध्यमें नूतन यौवनसे सम्पन्न, कुमारी अवस्थामें विद्यमान, प्रभायुक्त जपाकुसुमकी कान्तिसे सम्पन्न, प्रातःकालीन करोड़ों सूर्यकी प्रभासे सुशोभित, द्वितीयाके चन्द्रमासदृश मुकुट धारण किये हुई, वस्त्रके अन्दरसे परिलक्षित होते हुए वक्षःस्थलवाली, अपने चारों श्रेष्ठ हाथोंमें वर-पाश-अंकुश और अभयमुद्रा धारण करनेवाली, अत्यन्त मनोहर अंगोंसे सम्पन्न, कोमल लताके समान अंगोंवाली, कल्याणस्वरूपिणी, भक्तोंके लिये कल्पवृक्षस्वरूपा, नानाविध आभूषणोंसे सुशोभित, तीन नेत्रोंवाली, अपनी वेणीमें चमेलीकी माला धारण की हुई, चारों दिशाओंमें स्थित होकर मूर्तिमान् चारों वेदोंद्वारा स्तुत होती हुई, अपने दाँतोंकी प्रभासे वहाँकी भूमिको पद्मरागमय बना देनेवाली, प्रसन्नता तथा मुसकानयुक्त मुखमण्डलवाली, करोड़ों कामदेवके समान सुन्दर रक्तवर्णके वस्त्र धारण की हुई, लालचन्दनसे अनुलिप्त विग्रहवाली, समस्त कारणोंकी भी कारण तथा बिना किसी हेतुके साक्षात् करुणाकी मूर्तिस्वरूपा उमा नामसे विख्यात जगदम्बा हैमवती भगवती शिवाको अपने समक्ष देखा। इससे इन्द्रका अन्तःकरण प्रेमसे गद्गद हो उठा॥ ५२—५८॥

प्रेमाश्रुपूर्णनयनो रोमाञ्चिततनुस्ततः।
दण्डवत्प्रणनामाथ पादयोर्जगदीशितुः॥ ५९

तुष्टाव विविधैः स्तोत्रैर्भक्तिसन्नतकन्धरः।
उवाच परमप्रीतः किमिदं यक्षमित्यपि॥ ६०

प्रादुर्भूतं च कस्मात्तद्वद सर्वं सुशोभने।
इति तस्य वचः श्रुत्वा प्रोवाच करुणार्णवा॥ ६१

रूपं मदीयं ब्रह्मैतत्सर्वकारणकारणम्।
मायाधिष्ठानभूतं तु सर्वसाक्षि निरामयम्॥ ६२

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति
तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीमि॥ ६३

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म तदेवाहुश्च ह्रींमयम्।
द्वे बीजे मम मन्त्रौ स्तो मुख्यत्वेन सुरोत्तम॥ ६४

भागद्वयवती यस्मात्सृजामि सकलं जगत्।
तत्रैकभागः सम्प्रोक्तः सच्चिदानन्दनामकः॥ ६५

मायाप्रकृतिसंज्ञस्तु द्वितीयो भाग ईरितः।
सा च माया परा शक्तिः शक्तिमत्यहमीश्वरी॥ ६६

चन्द्रस्य चन्द्रिकेवेयं ममाभिन्नत्वमागता।
साम्यावस्थात्मिका चैषा माया मम सुरोत्तम॥ ६७

प्रलये सर्वजगतो मदभिन्नैव तिष्ठति।
प्राणिकर्मपरीपाकवशतः पुनरेव हि॥ ६८

रूपं तदेवमव्यक्तं व्यक्तीभावमुपैति च।
अन्तर्मुखा तु यावस्था सा मायेत्यभिधीयते॥ ६९

बहिर्मुखा तु या माया तमःशब्देन सोच्यते।
बहिर्मुखात्तमोरूपाज्जायते सत्त्वसम्भवः॥ ७०
रजोगुणस्तदैव स्यात्सर्गादौ सुरसत्तम।

प्रेमाश्रुओंसे पूर्ण नयनवाले तथा रोमांचित शरीरवाले इन्द्रने उन जगदीश्वरीके चरणोंमें दण्डकी भाँति गिरकर प्रणाम किया और अनेक प्रकारके स्तोत्रोंद्वारा उनकी स्तुति की। भक्ति-भावसे सम्पन्न हो सिर झुकाकर परम प्रसन्नतापूर्वक इन्द्रने देवीसे कहा—हे सुशोभने! यह यक्ष कौन था और किसलिये प्रकट हुआ था? यह सब आप मुझे बतलाइये॥ ५९-६०½ ॥

उनकी यह बात सुनकर करुणासागर भगवतीने कहा—यह मेरा ही रूप है; यही ब्रह्म है जो मायाका अधिष्ठानस्वरूप, सबका साक्षी, निर्विकार और समस्त कारणोंका भी कारण है॥ ६१-६२॥

सभी वेद जिस पदका बार-बार प्रतिपादन करते हैं, समस्त तप भी तपश्चरणके द्वारा जिस पदकी प्राप्तिको बताते हैं और साधकगण जिसकी प्राप्तिकी अभिलाषासे ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं, उसी पदको मैं तुम्हें नामपूर्वक बतलाती हूँ॥ ६३॥

उसीको 'ॐ' एक अक्षरवाला ब्रह्म कहते हैं और वही 'ह्रीं' रूप भी है। हे सुरश्रेष्ठ! ह्रीं और ॐ ये दो मेरे मुख्य बीजमन्त्र हैं। इन्हीं दो भागोंसे सम्पन्न होकर मैं सम्पूर्ण जगत्का सृजन करती हूँ। उनमें एक भाग सच्चिदानन्द नामवाला कहा गया है और दूसरा भाग मायाप्रकृति संज्ञावाला कहा गया है। वह माया ही परा शक्ति है और सम्पूर्ण जगत्पर प्रभुत्व रखनेवाली वह शक्तिशालिनी देवी मैं ही हूँ॥ ६४—६६॥

यह माया चन्द्रमाकी चाँदनीकी भाँति अभिन्नरूपसे सर्वदा मुझमें विराजमान रहती है। हे सुरोत्तम! साम्यावस्थास्वरूपिणी मेरी यह माया सम्पूर्ण जगत्के प्रलय होते समय भी मुझसे भिन्न नहीं रहती है। प्राणियोंके कर्मपरिपाकवश मायाका वही अव्यक्तरूप पुनः व्यक्तरूप धारण कर लेता है॥ ६७-६८½ ॥

जो अवस्था अन्तर्मुखी है, वह माया कही जाती है और जो बहिर्मुखी अवस्थावाली माया है, वह तम (अविद्या) नामसे कही जाती है। तमोरूपिणी उस बहिर्मुखी मायासे प्राणियोंकी उत्पत्ति होती है। हे सुरश्रेष्ठ! सृष्टिके आदिमें यह माया रजोगुणरूपसे विद्यमान रहती है॥ ६९-७०½ ॥

गुणत्रयात्मकाः प्रोक्ता ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ ७१

रजोगुणाधिको ब्रह्मा विष्णुः सत्त्वाधिको भवेत्।
तमोगुणाधिको रुद्रः सर्वकारणरूपधृक् ॥ ७२

स्थूलदेहो भवेद् ब्रह्मा लिङ्गदेहो हरिः स्मृतः।
रुद्रस्तु कारणो देहस्तुरीया त्वहमेव हि ॥ ७३

साम्यावस्था तु या प्रोक्ता सर्वान्तर्यामिरूपिणी।
अत ऊर्ध्वं परं ब्रह्म मद्रूपं रूपवर्जितम् ॥ ७४

निर्गुणं सगुणं चेति द्विधा मद्रूपमुच्यते।
निर्गुणं मायया हीनं सगुणं मायया युतम् ॥ ७५

साहं सर्वं जगत्सृष्ट्वा तदन्तः सम्प्रविश्य च।
प्रेरयाम्यनिशं जीवं यथाकर्म यथाश्रुतम् ॥ ७६

सृष्टिस्थितितिरोधाने प्रेरयाम्यहमेव हि।
ब्रह्माणं च तथा विष्णुं रुद्रं वै कारणात्मकम् ॥ ७७

मद्भयाद्वाति पवनो भीत्या सूर्यश्च गच्छति।
इन्द्राग्निमृत्यवस्तद्वत्साहं सर्वोत्तमा स्मृता ॥ ७८

मत्प्रसादाद्भवद्भिस्तु जयो लब्धोऽस्ति सर्वथा।
युष्मानहं नर्तयामि काष्ठपुत्तलिकोपमान् ॥ ७९

कदाचिद्देवविजयं दैत्यानां विजयं क्वचित्।
स्वतन्त्रा स्वेच्छया सर्वं कुर्वे कर्मानुरोधतः ॥ ८०

तां मां सर्वात्मिकां यूयं विस्मृत्य निजगर्वतः।
अहङ्कारावृतात्मानो मोहमाप्ता दुरन्तकम् ॥ ८१

अनुग्रहं ततः कर्तुं युष्मद्देहादनुत्तमम्।
निःसृतं सहसा तेजो मदीयं यक्षमित्यपि ॥ ८२

ब्रह्मा, विष्णु और महेश—ये देवता त्रिगुणात्मक कहे गये हैं। ब्रह्मामें रजोगुणकी अधिकता, विष्णुमें सत्त्वगुणकी अधिकता तथा सभी कारणोंके स्वरूपवाले रुद्रमें तमोगुणकी अधिकता रहती है ॥ ७१-७२ ॥

ब्रह्मा स्थूलदेहवाले हैं। विष्णु लिंगदेहवाले तथा रुद्र कारणदेहवाले कहे गये हैं। जो सर्वान्तर्यामिस्वरूपिणी साम्यावस्था कही गयी है, वह तुरीयरूपा मैं ही हूँ और इसके भी ऊपर जो निराकार परब्रह्म है, वह भी मेरा ही रूप है ॥ ७३-७४ ॥

निर्गुण तथा सगुण—यह मेरा दो प्रकारका रूप कहा जाता है। मायासे रहित रूप निर्गुण और मायायुक्त रूप सगुण है। वही मैं सम्पूर्ण जगत्की रचना करके उसके भीतर भलीभाँति प्रविष्ट होकर जीवको उसके कर्म तथा शास्त्रके अनुसार निरन्तर प्रेरित करती रहती हूँ ॥ ७५-७६ ॥

ब्रह्माको सृष्टि करने, विष्णुको जगत्का पालन करने और कारणरूप रुद्रको संहार करनेके लिये मैं ही प्रेरणा प्रदान करती हूँ ॥ ७७ ॥

वायु मेरे भयसे प्रवाहित होता है और सूर्य मेरा भय मानकर निरन्तर गति करता रहता है। उन्हींकी भाँति इन्द्र, अग्नि और यम भी मेरे भयसे अपने-अपने कार्य सम्पन्न करते हैं। इसीलिये मैं सर्वश्रेष्ठ कही गयी हूँ ॥ ७८ ॥

आप सभी देवताओंने मेरी ही कृपासे सब प्रकारकी विजय प्राप्त की है। मैं आपलोगोंको कठपुतलीके समान नचाती रहती हूँ ॥ ७९ ॥

मैं कभी देवताओंकी विजय कराती हूँ और कभी दैत्योंकी। मैं स्वतन्त्र होकर अपनी इच्छासे सभीके कर्म-विपाकके अनुसार सब कुछ सम्पादित करती हूँ ॥ ८० ॥

अहंकारसे आवृत बुद्धिवाले तुमलोग अपने गर्वसे वैसी प्रभाववाली मुझ सर्वात्मिका भगवतीको भूलकर दुःखदायी मोहको प्राप्त हो गये थे। इसलिये तुमलोगोंपर अनुग्रह करनेके लिये तुमलोगोंके शरीरसे मेरा दिव्य तेज निकलकर यक्षके रूपमें प्रकट हो गया था ॥ ८१-८२ ॥

अतः परं सर्वभावैर्हित्वा गर्वं तु देहजम्।
मामेव शरणं यात सच्चिदानन्दरूपिणीम्॥ ८३

अब तुमलोग अपने देहसे उत्पन्न गर्वका सब प्रकारसे त्याग करके मुझ सच्चिदानन्दस्वरूपिणी भगवतीकी ही शरणमें आ जाओ॥ ८३॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा च महादेवी मूलप्रकृतिरीश्वरी।
अन्तर्धानं गता सद्यो भक्त्या देवैरभिष्टुता॥ ८४

व्यासजी बोले—[हे जनमेजय!] ऐसा कहकर मूलप्रकृतिरूपा सर्वेश्वरी महादेवी देवताओंके द्वारा भक्ति-पूर्वक सुपूजित होकर तत्काल अन्तर्धान हो गयीं॥ ८४॥

ततः सर्वे स्वगर्वं तु विहाय पदपङ्कजम्।
सम्यगाराधयामासुर्भगवत्याः परात्परम्॥ ८५

त्रिसन्ध्यं सर्वदा सर्वे गायत्रीजपतत्पराः।
यज्ञभागादिभिः सर्वे देवीं नित्यं सिषेविरे॥ ८६

तत्पश्चात् सभी देवता अपने अभिमानका त्याग करके भगवतीके परात्पर चरणकमलकी विधिवत् आराधना करने लगे। वे सब तीनों सन्ध्याओंमें सदा गायत्री-जपमें संलग्न रहते थे और यज्ञ-भाग आदिके द्वारा नित्य भगवतीकी उपासना करते थे॥ ८५-८६॥

एवं सत्ययुगे सर्वे गायत्रीजपतत्पराः।
तारहृल्लेखयोश्चापि जपे निष्णातमानसाः॥ ८७

इस प्रकार सत्ययुगमें सभी लोग गायत्री-जपमें तत्पर थे और वे प्रणव तथा हृल्लेखाके जपमें भी दत्तचित्त रहते थे॥ ८७॥

न विष्णूपासना नित्या वेदेनोक्ता तु कुत्रचित्।
न विष्णुदीक्षा नित्यास्ति शिवस्यापि तथैव च॥ ८८

गायत्र्युपासना नित्या सर्ववेदैः समीरिता।
यया विना त्वधःपातो ब्राह्मणस्यास्ति सर्वथा॥ ८९

तावता कृतकृत्यत्वं नान्यापेक्षा द्विजस्य हि।
गायत्रीमात्रनिष्णातो द्विजो मोक्षमवाप्नुयात्॥ ९०

कुर्यादन्यन्न वा कुर्यादिति प्राह मनुः स्वयम्।
विहाय तां तु गायत्रीं विष्णूपास्तिपरायणः॥ ९१

शिवोपास्तिरतो विप्रो नरकं याति सर्वथा।
तस्मादाद्ययुगे राजन् गायत्रीजपतत्पराः।
देवीपदाम्बुजरता आसन्सर्वे द्विजोत्तमाः॥ ९२

वेदके द्वारा कहीं भी विष्णुकी उपासना तथा विष्णु-दीक्षा नित्य नहीं कही गयी है; उसी प्रकार शिवकी भी उपासना तथा दीक्षा नित्य नहीं कही गयी है, किंतु गायत्रीकी उपासना सभी वेदोंके द्वारा नित्य कही गयी है, जिसके बिना ब्राह्मणका सब प्रकार अधःपतन हो जाता है। द्विज केवल उतनेसे ही कृतकृत्य हो जाता है, उसे किसी अन्य साधनकी अपेक्षा नहीं रहती। केवल गायत्री-उपासनामें ही तत्पर रहकर द्विज मोक्ष प्राप्त कर लेता है, चाहे वह अन्य कार्य करे अथवा न करे—ऐसा मनुने स्वयं कहा है। उन गायत्रीके बिना विष्णु तथा शिवकी उपासनामें संलग्न रहनेवाला विप्र सब प्रकारसे नरकगामी होता है। इसीलिये हे राजन्! सत्ययुगमें सभी उत्तम द्विजगण गायत्रीजप तथा भगवतीके चरणकमलकी उपासनामें निरन्तर संलग्न रहते थे॥ ८८—९२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां द्वादशस्कन्धे पराशक्तेराविर्भाववर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

अथ नवमोऽध्यायः

भगवती गायत्रीकी कृपासे गौतमके द्वारा अनेक ब्राह्मणपरिवारोंकी रक्षा, ब्राह्मणोंकी कृतघ्नता और गौतमके द्वारा ब्राह्मणोंको घोर शाप-प्रदान

व्यास उवाच

कदाचिदथ काले तु दशपञ्चसमा विभो।
प्राणिनां कर्मवशतो न ववर्ष शतक्रतुः॥ १

व्यासजी बोले—हे विभो! एक समयकी बात है, प्राणियोंको कर्म-फलका भोग करानेके लिये इन्द्रने पन्द्रह वर्षोंतक वृष्टि नहीं की॥ १॥

अनावृष्ट्यातिदुर्भिक्षमभवत्क्षयकारकम् ।
गृहे गृहे शवानां तु संख्या कर्तुं न शक्यते॥ २

केचिदश्वान्वराहान्वा भक्षयन्ति क्षुधार्दिताः।
शवानि च मनुष्याणां भक्षयन्त्यपरे जनाः॥ ३

बालकं बालजननी स्त्रियं पुरुष एव च।
भक्षितुं चलिताः सर्वे क्षुधया पीडिता नराः॥ ४

ब्राह्मणा बहवस्तत्र विचारं चक्रुरुत्तमम्।
तपोधनो गौतमोऽस्ति स नः खेदं हरिष्यति॥ ५

सर्वैर्मिलित्वा गन्तव्यं गौतमस्याश्रमेऽधुना।
गायत्रीजपसंसक्तगौतमस्याश्रमेऽधुना ॥ ६

सुभिक्षं श्रूयते तत्र प्राणिनो बहवो गताः।
एवं विमृश्य भूदेवाः साग्निहोत्राः कुटुम्बिनः॥ ७

सगोधनाः सदासाश्च गौतमस्याश्रमं ययुः।
पूर्वदेशाद्ययुः केचित्केचिद्दक्षिणदेशतः॥ ८

पाश्चात्या औत्तराहाश्च नानादिग्भ्यः समाययुः।
दृष्ट्वा समाजं विप्राणां प्रणनाम स गौतमः॥ ९

आसनाद्युपचारैश्च पूजयामास वाडवान्।
चकार कुशलप्रश्नं ततश्चागमकारणम्॥ १०

ते सर्वे स्वस्ववृत्तान्तं कथयामासुरुत्स्मयाः।
दृष्ट्वा तान्दुःखितान्विप्रानभयं दत्तवान्मुनिः॥ ११

युष्माकमेतत्सदनं भवद्दासोऽस्मि सर्वथा।
का चिन्ता भवतां विप्रा मयि दासे विराजति॥ १२

धन्योऽहमस्मिन्समये यूयं सर्वे तपोधनाः।
येषां दर्शनमात्रेण दुष्कृतं सुकृतायते॥ १३

इस अनावृष्टिके कारण घोर विनाशकारी दुर्भिक्ष पड़ गया। घर-घरमें शवोंकी संख्याका आकलन नहीं किया जा सकता था॥ २॥

क्षुधासे पीड़ित कुछ लोग घोड़ों और सूअरोंका भक्षण कर जाते थे और कुछ लोग मनुष्योंके शवतक खा जाते थे। माता अपने बच्चेको और पुरुष पत्नीको खा जाते थे। इस प्रकार सभी लोग क्षुधासे पीड़ित होकर एक-दूसरेको खानेके लिये दौड़ पड़ते थे॥ ३-४॥

तब बहुत-से ब्राह्मणोंने एकत्र होकर यह उत्तम विचार प्रस्तुत किया कि महर्षि गौतम तपस्याके महान् धनी हैं। वे हमारे कष्टका निवारण कर देंगे। अतएव इस समय हम सभी लोगोंको मिलकर गौतमके आश्रममें चलना चाहिये। सुना गया है कि गायत्रीजपमें निरन्तर संलग्न रहनेवाले गौतमके आश्रममें इस समय भी सुभिक्ष है और बहुत लोग वहाँ गये हुए हैं॥ ५-६½ ॥

इस प्रकार परस्पर विचार करके वे सभी ब्राह्मण अग्निहोत्रकी सामग्री, अपने परिवारजनों, गोधन तथा दासोंको साथमें लेकर गौतमऋषिके आश्रमपर गये। कुछ लोग पूर्व दिशासे, कुछ लोग दक्षिण दिशासे, कुछ लोग पश्चिम दिशासे और कुछ लोग उत्तर दिशासे—इस प्रकार अनेक स्थलोंसे लोग वहाँ पहुँच गये॥ ७-८½ ॥

ब्राह्मणोंके उस समाजको देखकर उन गौतमऋषिने प्रणाम किया और आसन आदि उपचारोंसे विप्रोंकी पूजा की। तत्पश्चात् महर्षि गौतमने उनका कुशल-क्षेम तथा उनके वहाँ आनेका कारण पूछा॥ ९-१०॥

उन सभी ब्राह्मणोंने उदास होकर अपना-अपना वृत्तान्त कहा। मुनि गौतमने उन विप्रोंको दुःखित देखकर उन्हें अभय प्रदान किया। [और कहा—] हे विप्रो! यह आश्रम आपलोगोंका घर है और मैं हर तरहसे आपलोगोंका दास हूँ। मुझ दासके रहते आपलोगोंको चिन्ता किस बात की? आप सभी तपोधन ब्राह्मण यहाँ आये हैं, इसलिये मैं अपनेको धन्य मानता हूँ। जिनके दर्शनमात्रसे दुष्कृत भी सुकृतमें परिणत हो जाता है, वे सभी विप्रगण अपने

ते सर्वे पादरजसा पावयन्ति गृहं मम।
को मदन्यो भवेद् धन्यो भवतां समनुग्रहात्॥ १४

स्थेयं सर्वैः सुखेनैव सन्ध्याजपपरायणैः।

व्यास उवाच

इति सर्वान्समाश्वास्य गौतमो मुनिराट् ततः॥ १५

गायत्रीं प्रार्थयामास भक्तिसन्नतकन्धरः।
नमो देवि महाविद्ये वेदमातः परात्परे॥ १६

व्याहृत्यादिमहामन्त्ररूपे प्रणवरूपिणि।
साम्यावस्थात्मिके मातर्नमो ह्रींकाररूपिणि॥ १७

स्वाहास्वधास्वरूपे त्वां नमामि सकलार्थदाम्।
भक्तकल्पलतां देवीमवस्थात्रयसाक्षिणीम्॥ १८

तुर्यातीतस्वरूपां च सच्चिदानन्दरूपिणीम्।
सर्ववेदान्तसंवेद्यां सूर्यमण्डलवासिनीम्॥ १९

प्रातर्बालां रक्तवर्णां मध्याह्ने युवतीं पराम्।
सायाह्ने कृष्णवर्णां तां वृद्धां नित्यं नमाम्यहम्॥ २०

सर्वभूतारणे देवि क्षमस्व परमेश्वरि।
इति स्तुता जगन्माता प्रत्यक्षं दर्शनं ददौ॥ २१

पूर्णपात्रं ददौ तस्मै येन स्यात्सर्वपोषणम्।
उवाच मुनिमम्बा सा यं यं कामं त्वमिच्छसि॥ २२

तस्य पूर्तिकरं पात्रं मया दत्तं भविष्यति।
इत्युक्त्वान्तर्दधे देवी गायत्री परमा कला॥ २३

अन्नानां राशयस्तस्मान्निर्गताः पर्वतोपमाः।
षड्रसा विविधा राजंस्तृणानि विविधानि च॥ २४

भूषणानि च दिव्यानि क्षौमानि वसनानि च।
यज्ञानां च समारम्भाः पात्राणि विविधानि च॥ २५

चरणरजसे मेरे आश्रमको पवित्र बना रहे हैं। आपलोगोंके अनुग्रहसे मुझसे बढ़कर धन्य दूसरा कौन है? सन्ध्या और जपमें निरन्तर संलग्न रहनेवाले आप सभी लोग सुखपूर्वक यहाँ रहिये॥ ११—१४½ ॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] इस प्रकार सभी ब्राह्मणोंको आश्वस्त करके मुनिराज गौतम भक्तिभावसे सिर झुकाकर गायत्रीकी प्रार्थना करने लगे—हे देवि! आपको नमस्कार है। आप महाविद्या, वेदमाता और परात्परस्वरूपिणी हैं। व्याहृति आदि महामन्त्रों तथा प्रणवके स्वरूपवाली, साम्यावस्थामें विराजमान रहनेवाली तथा ह्रींकार स्वरूपवाली हे मातः! आपको नमस्कार है॥ १५—१७॥

स्वाहा और स्वधा-रूपसे शोभा पानेवाली हे देवि! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाली, भक्तोंके लिये कल्पलतासदृश, तीनों अवस्थाओंकी साक्षिणी-स्वरूपा, तुरीयावस्थासे अतीत स्वरूपवाली, सच्चिदानन्द-स्वरूपिणी, सभी वेदान्तोंकी वेद्यविषयरूपा, सूर्यमण्डलमें विराजमान रहनेवाली, प्रातःकालमें बाल्यावस्था तथा रक्तवर्णवाली, मध्याह्नकालमें श्रेष्ठ युवतीकी भाँति शोभा पानेवाली और सायंकालमें वृद्धास्वरूपिणी तथा कृष्णवर्णवाली उन भगवतीको मैं नित्य प्रणाम करता हूँ। सम्पूर्ण प्राणियोंको उत्पन्न करनेवाली हे परमेश्वरि! हे देवि! आप क्षमा करें॥ १८—२०½ ॥

गौतमजीके इस प्रकार स्तुति करनेपर जगज्जननी भगवतीने उन्हें अपना प्रत्यक्ष दर्शन दिया। उन्होंने उन गौतमऋषिको एक ऐसा पूर्णपात्र प्रदान किया, जिसके द्वारा सबका भरण-पोषण हो सके॥ २१½ ॥

उन जगदम्बाने मुनिसे कहा—आप जिस-जिस वस्तुकी कामना करेंगे, मेरे द्वारा प्रदत्त यह पूर्णपात्र उसकी पूर्ति करनेवाला सिद्ध होगा॥ २२½ ॥

ऐसा कहकर श्रेष्ठ कलास्वरूपिणी भगवती गायत्री अन्तर्धान हो गयीं। हे राजन्! उस पात्रसे पर्वतके समान विशाल अन्नराशि, छः प्रकारके रस, भाँति-भाँतिके तृण, दिव्य आभूषण, रेशमी वस्त्र, यज्ञोंकी सामग्रियाँ तथा अनेक प्रकारके पात्र निकले॥ २३—२५॥

यद्यदिष्टमभूद्राजन् मुनेस्तस्य महात्मनः।
तत्सर्वं निर्गतं तस्माद् गायत्रीपूर्णपात्रतः॥ २६

अथाहूय मुनीन्सर्वान्मुनिराड् गौतमस्तदा।
धनं धान्यं भूषणानि वसनानि ददौ मुदा॥ २७

गोमहिष्यादिपशवो निर्गताः पूर्णपात्रतः।
निर्गतान्यज्ञसम्भारान्स्रुक्स्रुवप्रभृतीन्ददौ ॥ २८

ते सर्वे मिलिता यज्ञांश्चक्रिरे मुनिवाक्यतः।
स्थानं तदेव भूयिष्ठमभवत्स्वर्गसन्निभम्॥ २९

यत्किञ्चित् त्रिषु लोकेषु सुन्दरं वस्तु दृश्यते।
तत्सर्वं तत्र निष्पन्नं गायत्रीदत्तपात्रतः॥ ३०

देवाङ्गनासमा दाराः शोभन्ते भूषणादिभिः।
मुनयो देवसदृशा वस्त्रचन्दनभूषणैः॥ ३१

नित्योत्सवः प्रववृते मुनेराश्रममण्डले।
न रोगादिभयं किञ्चिन्न च दैत्यभयं क्वचित्॥ ३२

स मुनेराश्रमो जातः समन्ताच्छतयोजनः।
अन्ये च प्राणिनो येऽपि तेऽपि तत्र समागताः॥ ३३

तांश्च सर्वान्पुपोषायं दत्त्वाभयमथात्मवान्।
नानाविधैर्महायज्ञैर्विधिवत्कल्पितैः सुराः॥ ३४

सन्तोषं परमं प्रापुर्मुनेश्चैव जगुर्यशः।
सभायां वृत्रहा भूयो जगौ श्लोकं महायशाः॥ ३५

अहो अयं नः किल कल्पपादपो
मनोरथान्पूरयति प्रतिष्ठितः।
नोचेदकाण्डे क्व हविर्वपा वा
सुदुर्लभा यत्र तु जीवनाशा॥ ३६

हे राजन्! उन महात्मा गौतमको जिस-जिस पदार्थकी अभिलाषा होती थी, वे सभी पदार्थ भगवती गायत्रीके द्वारा प्रदत्त उस पूर्णपात्रसे निकल आते थे॥ २६॥

इसके बाद मुनिवर गौतमने सभी मुनियोंको बुलाकर उन्हें प्रसन्नतापूर्वक धन-धान्य, आभूषण तथा वस्त्र आदि प्रदान किये। उस पूर्णपात्रसे निर्गत गाय-भैंस आदि पशु तथा स्रुक्-स्रुवा आदि यज्ञकी सामग्रियाँ सभी मुनियोंको दी गयीं॥ २७-२८॥

तदनन्तर वे सभी मुनि एकत्र होकर गौतमऋषिकी आज्ञासे नानाविध यज्ञ करने लगे। इस प्रकार वह आश्रम स्वर्गके समान एक अत्यन्त दिव्य स्थान हो गया॥ २९॥

तीनों लोकोंमें जो कुछ भी सुन्दर वस्तु दृष्टिगत होती, वह सब कुछ गायत्रीके द्वारा दिये गये पात्रसे प्राप्त हो जाती थी॥ ३०॥

मुनियोंकी स्त्रियाँ भूषण आदिके द्वारा देवांगनाओंकी भाँति और मुनिगण वस्त्र, चन्दन तथा आभूषणोंसे देवताओंके समान सुशोभित हो रहे थे॥ ३१॥

गौतमऋषिके आश्रममें चारों ओर नित्य उत्सव मनाया जाने लगा। किसीको भी रोग आदिका कोई भी भय नहीं था और दैत्योंका कहीं भी भय नहीं रहा॥ ३२॥

गौतममुनिका वह आश्रम चारों ओरसे सौ योजनके विस्तारवाला हो गया; और भी अन्य जिन प्राणियोंको इसकी जानकारी हुई, वे भी वहाँ आ गये। तब आत्मज्ञानी गौतममुनिने उन्हें अभय प्रदान करके उन सभीके भरण-पोषणका समुचित प्रबन्ध कर दिया। अनेक प्रकारके महायज्ञोंके विधिपूर्वक सम्पन्न हो जानेसे देवतागण परम प्रसन्न हुए और मुनिका यशोगान करने लगे। वृत्रासुरका संहार करनेवाले महान् यशस्वी इन्द्रने भी अपनी सभामें बार-बार यह श्लोक कहा—अहो, इस समय ये गौतमऋषि हमारे लिये साक्षात् कल्पवृक्षके रूपमें प्रतिष्ठित होकर हमारे सभी मनोरथ पूर्ण कर रहे हैं, अन्यथा इस दुष्कालमें जहाँ जीवनकी आशा भी अत्यन्त दुर्लभ थी, फिर हमलोग हवि कैसे प्राप्त करते?॥ ३३—३६॥

इत्थं द्वादशवर्षाणि पुपोष मुनिपुङ्गवान्।
पुत्रवन्मुनिराड् गर्वगन्धेन परिवर्जितः॥ ३७

गायत्र्याः परमं स्थानं चकार मुनिसत्तमः।
यत्र सर्वैर्मुनिवरैः पूज्यते जगदम्बिका॥ ३८

त्रिकालं परया भक्त्या पुरश्चरणकर्मभिः।
अद्यापि यत्र देवी सा प्रातर्बाला तु दृश्यते॥ ३९

मध्याह्ने युवती वृद्धा सायंकाले तु दृश्यते।
तत्रैकदा समायातो नारदो मुनिसत्तमः॥ ४०

रणयन्महतीं गायन्गायत्र्याः परमान्गुणान्।
निषसाद सभामध्ये मुनीनां भावितात्मनाम्॥ ४१

गौतमादिभिरत्युच्चैः पूजितः शान्तमानसः।
कथाश्चकार विविधा यशसो गौतमस्य च॥ ४२

ब्रह्मर्षे देवसदसि देवराट् तव यद्यशः।
जगौ बहुविधं स्वच्छं मुनिपोषणजं परम्॥ ४३

श्रुत्वा शचीपतेर्वाणीं त्वां द्रष्टुमहमागतः।
धन्योऽसि त्वं मुनिश्रेष्ठ जगदम्बाप्रसादतः॥ ४४

इत्युक्त्वा मुनिवर्यं तं गायत्रीसदनं ययौ।
ददर्श जगदम्बां तां प्रेमोत्फुल्लविलोचनः॥ ४५

तुष्टाव विधिवद्देवीं जगाम त्रिदिवं पुनः।
अथ तत्र स्थिता ये ते ब्राह्मणा मुनिपोषिताः॥ ४६

उत्कर्षं तु मुनेः श्रुत्वासूयया खेदमागताः।
यथास्य न यशो भूयात्कर्तव्यं सर्वथैव हि॥ ४७
काले समागते पश्चादिति सर्वैस्तु निश्चितम्।

ततः कालेन कियताप्यभूद् वृष्टिर्धरातले॥ ४८

इस प्रकार वे मुनिवर गौतम अभिमानकी गन्धतकसे रहित होकर बारह वर्षोंतक उन श्रेष्ठ मुनियोंका पुत्रवत् पालन-पोषण करते रहे॥ ३७॥

उन मुनिश्रेष्ठ गौतमने गायत्रीकी उपासनाहेतु एक पवित्र स्थलका निर्माण कराया, जहाँ सभी श्रेष्ठ मुनिगण पुरश्चरण आदि कर्मोंके द्वारा परम भक्तिके साथ तीनों कालों—प्रातः, मध्याह्न तथा सायंकालमें भगवती जगदम्बाकी पूजा करते थे। उस स्थानपर आज भी वे भगवती प्रातःकाल बाला-रूपमें, मध्याह्न-कालमें युवतीके रूपमें तथा सायंकालमें वृद्धाके रूपमें दृष्टिगोचर होती हैं॥ ३८-३९½॥

एक बार मुनिश्रेष्ठ नारदजी अपनी महती नामक वीणा बजाते हुए और गायत्रीके उत्तम गुणोंका गान करते हुए वहाँ आये और पुण्यात्मा मुनियोंकी सभामें बैठ गये॥ ४०-४१॥

तत्पश्चात् गौतम आदि श्रेष्ठ मुनियोंसे विधिवत् पूजित होकर शान्त मनवाले नारदजी गौतमकी यश-सम्बन्धी विविध कथाओंका वर्णन करने लगे—हे ब्रह्मर्षे! देवराज इन्द्रने मुनियोंके भरण-पोषणसे सम्बन्धित आपकी विमल कीर्तिका गान देवताओंकी सभामें अनेक प्रकारसे किया है। शचीपति इन्द्रकी वही वाणी सुनकर आपका दर्शन करनेके लिये मैं यहाँ आया हूँ। हे मुनिश्रेष्ठ! जगदम्बाकी कृपासे आप धन्य हैं॥ ४२—४४॥

उन मुनिवर गौतमसे ऐसा कहकर नारदजी गायत्री-सदनमें गये। प्रेमसे प्रफुल्लित नेत्रोंवाले नारदजीने वहाँ उन भगवती जगदम्बाका दर्शन किया और विधिवत् उनकी स्तुति की। तत्पश्चात् उन्होंने स्वर्गके लिये प्रस्थान किया। इसके बाद वहाँपर मुनि गौतमके द्वारा पालित-पोषित जो ब्राह्मण थे, वे मुनिका उत्कर्ष सुनकर ईर्ष्यासे दुःखी हो गये। कुछ समय बीतनेके बाद उन सभीने यह निश्चय किया कि किसी भी प्रकारसे हमलोगोंको सर्वथा वही प्रयत्न करना चाहिये, जिससे इस गौतमऋषिका यश न बढ़े॥ ४५—४७½॥

हे महाराज! कुछ कालके अनन्तर पृथ्वीतलपर वृष्टि भी होने लगी और सभी देशोंमें सुभिक्ष हो गया।

सुभिक्षमभवत्सर्वदेशेषु नृपसत्तम।
श्रुत्वा वार्तां सुभिक्षस्य मिलिताः सर्ववाडवाः॥ ४९

गौतमं शप्तुमुद्योगं हा हा राजन् प्रचक्रिरे।
धन्यौ तेषां च पितरौ ययोरुत्पत्तिरीदृशी॥ ५०

कालस्य महिमा राजन् वक्तुं केन हि शक्यते।
गौर्निर्मिता माययैका मुमूर्षुर्जरती नृप॥ ५१

जगाम सा च शालायां होमकाले मुनेस्तदा।
हुंहुंशब्दैर्वारिता सा प्राणांस्तत्याज तत्क्षणे॥ ५२

गौर्हतानेन दुष्टेनेत्येवं ते चुक्रुशुर्द्विजाः।
होमं समाप्य मुनिराड् विस्मयं परमं गतः॥ ५३

समाधिमीलिताक्षः संश्चिन्तयामास कारणम्।
कृतं सर्वं द्विजैरेतदिति ज्ञात्वा तदैव सः॥ ५४

दधार कोपं परमं प्रलये रुद्रकोपवत्।
शशाप च ऋषीन्सर्वान्कोपसंरक्तलोचनः॥ ५५

वेदमातरि गायत्र्यां तद्ध्याने तन्मनोर्जपे।
भवतानुन्मुखा यूयं सर्वथा ब्राह्मणाधमाः॥ ५६

वेदे वेदोक्तयज्ञेषु तद्वार्तासु तथैव च।
भवतानुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः॥ ५७

शिवे शिवस्य मन्त्रे च शिवशास्त्रे तथैव च।
भवतानुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः॥ ५८

मूलप्रकृत्याः श्रीदेव्यास्तद्ध्याने तत्कथासु च।
भवतानुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः॥ ५९

देवीमन्त्रे तथा देव्याः स्थानेऽनुष्ठानकर्मणि।
भवतानुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः॥ ६०

देव्युत्सवदिदृक्षायां देवीनामानुकीर्तने।
भवतानुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः॥ ६१

देवीभक्तस्य सान्निध्ये देवीभक्तार्चने तथा।
भवतानुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः॥ ६२

सर्वत्र सुभिक्षकी बात सुनकर वे ब्राह्मण एकत्र हो गये और हे राजन्! हाय-हाय! वे गौतमको शाप देनेका प्रयत्न करने लगे। वे माता-पिता भी आज धन्य हो गये, जिनके यहाँ ऐसे [कृतघ्न ब्राह्मण-] पुत्रोंका जन्म हुआ है॥ ४८—५०॥

हे राजन्! कालकी महिमा भला कौन जान सकता है? उस समय उन ब्राह्मणोंने मायाके द्वारा एक मरणासन्न वृद्ध गाय बनायी, जब मुनि हवन कर रहे थे, उसी समय वह गाय यज्ञशालामें पहुँची। मुनि गौतमने 'हुं हुं' शब्दोंसे उसे आनेसे रोका; उसी क्षण उसने अपने प्राण त्याग दिये॥ ५१-५२॥

तब वे ब्राह्मण जोर-जोरसे कहने लगे कि इस दुष्ट गौतमने गौकी हत्या कर दी। तब मुनिराज गौतम हवन समाप्त करनेके पश्चात् इस घटनासे अत्यन्त आश्चर्यचकित हो उठे। वे अपने नेत्र बन्द करके समाधिमें स्थित होकर इसके कारणपर विचार करने लगे। यह सब कुछ ब्राह्मणोंने ही किया है—ऐसा जानकर उन्होंने प्रलयकालीन रुद्रके क्रोधके समान परम कोप किया। इस प्रकार कोपसे लाल नेत्रोंवाले उन गौतमने सभी ऋषियोंको यह शाप दे दिया—'अधम ब्राह्मणो! तुमलोग वेदमाता गायत्रीकी उपासना, ध्यान और उनके मन्त्र-जपसे सर्वथा विमुख हो जाओ। हे अधम ब्राह्मणो! वेद, वेदोक्त यज्ञों तथा वेदसम्बन्धी वार्ताओंसे तुम सभी सदा वंचित रहो। हे अधम ब्राह्मणो! तुम सभी शिवोपासना, शिव-मन्त्रके जप तथा शिव-सम्बन्धी शास्त्रोंसे सर्वदा विमुख हो जाओ॥ ५३—५८॥

हे अधम ब्राह्मणो! मूलप्रकृति भगवती श्रीदेवीकी उपासना, उनके ध्यान तथा उनकी कथाओंसे तुमलोग सदा विमुख हो जाओ। हे अधम ब्राह्मणो! देवीके मन्त्र-जप, उनकी प्रतिष्ठास्थली तथा उनके अनुष्ठान-कर्मसे तुमलोग सदा पराङ्मुख हो जाओ॥ ५९-६०॥

हे अधम ब्राह्मणो! देवीका उत्सव देखने तथा उनके नामोंके कीर्तनसे तुम सब सदा विमुख रहो। हे अधम ब्राह्मणो! देवी-भक्तके समीप रहने तथा देवी-भक्तोंकी अर्चना करनेसे तुम सभी लोग सर्वदा विमुख रहो॥ ६१-६२॥

शिवोत्सवदिदृक्षायां शिवभक्तस्य पूजने।
भवतानुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः॥ ६३

रुद्राक्षे बिल्वपत्रे च तथा शुद्धे च भस्मनि।
भवतानुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः॥ ६४

श्रौतस्मार्तसदाचारे ज्ञानमार्गे तथैव च।
भवतानुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः॥ ६५

अद्वैतज्ञाननिष्ठायां शान्तिदान्त्यादिसाधने।
भवतानुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः॥ ६६

नित्यकर्माद्यनुष्ठानेऽप्यग्निहोत्रादिसाधने।
भवतानुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः॥ ६७

स्वाध्यायाध्ययने चैव तथा प्रवचनेऽपि च।
भवतानुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः॥ ६८

गोदानादिषु दानेषु पितृश्राद्धेषु चैव हि।
भवतानुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः॥ ६९

कृच्छ्रचान्द्रायणे चैव प्रायश्चित्ते तथैव च।
भवतानुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः॥ ७०

श्रीदेवीभिन्नदेवेषु श्रद्धाभक्तिसमन्विताः।
शङ्खचक्राद्यङ्किताश्च भवत ब्राह्मणाधमाः॥ ७१

कापालिकमतासक्ता बौद्धशास्त्ररताः सदा।
पाखण्डाचारनिरता भवत ब्राह्मणाधमाः॥ ७२

पितृमातृसुताभ्रातृकन्याविक्रयिणस्तथा।
भार्याविक्रयिणस्तद्वद्भवत ब्राह्मणाधमाः॥ ७३

वेदविक्रयिणस्तद्वत्तीर्थविक्रयिणस्तथा।
धर्मविक्रयिणस्तद्वद्भवत ब्राह्मणाधमाः॥ ७४

पाञ्चरात्रे कामशास्त्रे तथा कापालिके मते।
बौद्धे श्रद्धायुता यूयं भवत ब्राह्मणाधमाः॥ ७५

हे अधम ब्राह्मणो! भगवान् शिवका उत्सव देखने तथा शिवभक्तका पूजन करनेसे तुम सदा विमुख रहो। हे अधम ब्राह्मणो! रुद्राक्ष, बिल्वपत्र तथा शुद्ध भस्मसे तुमलोग सर्वदा वंचित रहो॥ ६३-६४॥

हे अधम ब्राह्मणो! श्रौत-स्मार्त-सम्बन्धी सदाचार तथा ज्ञान-मार्गसे तुमलोग सदा वंचित रहो। हे अधम ब्राह्मणो! अद्वैत ज्ञाननिष्ठा और शम-दम आदि साधनोंसे तुमलोग सर्वदा विमुख रहो॥ ६५-६६॥

हे अधम ब्राह्मणो! नित्यकर्म आदिके अनुष्ठान तथा अग्निहोत्र आदि सम्पन्न करनेसे भी तुमलोग सदा वंचित हो जाओ॥ ६७॥

हे अधम ब्राह्मणो! स्वाध्याय-अध्ययन तथा प्रवचन आदिसे भी तुम सभी लोग सर्वदा विमुख रहो॥ ६८॥

हे अधम ब्राह्मणो! गौ आदिके दान और पितरोंके श्राद्धकर्मसे तुम सभी लोग सदाके लिये विमुख हो जाओ॥ ६९॥

हे अधम ब्राह्मणो! कृच्छ्रचान्द्रायण आदि व्रतों तथा पाप आदिके प्रायश्चित्त कर्मोंसे तुम सभी लोग सर्वदाके लिये विमुख हो जाओ॥ ७०॥

हे अधम ब्राह्मणो! तुमलोग देवी भगवतीके अतिरिक्त अन्य देवताओंके प्रति श्रद्धा तथा भक्तिसे युक्त होकर और शंख-चक्र आदिका चिह्न धारण करनेवाले हो जाओ॥ ७१॥

हे अधम ब्राह्मणो! तुमलोग कापालिक मतमें आसक्त, बौद्ध शास्त्रोंके परायण तथा पाखण्डपूर्ण आचारमें निरत रहो॥ ७२॥

हे अधम ब्राह्मणो! तुमलोग पिता, माता, पुत्री, भाई, कन्या और पत्नीका विक्रय करनेवाले व्यक्तियोंके समान हो जाओ॥ ७३॥

हे अधम ब्राह्मणो! वेदका विक्रय करनेवाले, तीर्थ बेचनेवाले और धर्म बेचनेवाले व्यक्तियोंके समान तुमलोग हो जाओ॥ ७४॥

हे अधम ब्राह्मणो! तुमलोग पांचरात्र, कामशास्त्र, कापालिक मत और बौद्ध मतके प्रति श्रद्धा रखनेवाले हो जाओ॥ ७५॥

मातृकन्यागामिनश्च भगिनीगामिनस्तथा।
परस्त्रीलम्पटाः सर्वे भवत ब्राह्मणाधमाः॥ ७६

युष्माकं वंशजाताश्च स्त्रियश्च पुरुषास्तथा।
मद्दत्तशापदग्धास्ते भविष्यन्ति भवत्समाः॥ ७७

किं मया बहुनोक्तेन मूलप्रकृतिरीश्वरी।
गायत्री परमा भूयाद्युष्मासु खलु कोपिता॥ ७८

अन्धकूपादिकुण्डेषु युष्माकं स्यात्सदा स्थितिः।

व्यास उवाच

वाग्दण्डमीदृशं कृत्वाप्युपस्पृश्य जलं ततः॥ ७९

जगाम दर्शनार्थं च गायत्र्याः परमोत्सुकः।
प्रणनाम महादेवीं सापि देवी परात्परा॥ ८०

ब्राह्मणानां कृतिं दृष्ट्वा स्मयं चित्ते चकार ह।
अद्यापि तस्या वदनं स्मययुक्तं च दृश्यते॥ ८१

उवाच मुनिवर्यं तं स्मयमानमुखाम्बुजा।
भुजङ्गायार्पितं दुग्धं विषायैवोपजायते॥ ८२

शान्तिं कुरु महाभाग कर्मणो गतिरीदृशी।
इति देवीं प्रणम्याथ ततोऽगात्स्वाश्रमं प्रति॥ ८३

ततो विप्रैः शापदग्धैर्विस्मृता वेदराशयः।
गायत्री विस्मृता सर्वैस्तदद्भुतमिवाभवत्॥ ८४

ते सर्वेऽथ मिलित्वा तु पश्चात्तापयुतास्तथा।
प्रणेमुर्मुनिवर्यं तं दण्डवत्पतिता भुवि॥ ८५

नोचुः किञ्चन वाक्यं तु लज्जयाधोमुखाः स्थिताः।
प्रसीदेति प्रसीदेति प्रसीदेति पुनः पुनः॥ ८६

प्रार्थयामासुरभितः परिवार्य मुनीश्वरम्।

हे अधम ब्राह्मणो! तुमलोग माता, कन्या, भगिनी तथा परायी स्त्रियोंके साथ व्यभिचार करनेवाले हो जाओ॥ ७६॥

तुम्हारे वंशमें उत्पन्न स्त्रियाँ तथा पुरुष मेरे द्वारा दिये हुए इस शापसे दग्ध होकर तुमलोगोंके ही समान हो जायँगे॥ ७७॥

मेरे अधिक कहनेसे क्या प्रयोजन! मूलप्रकृति परमेश्वरी भगवती गायत्रीका अवश्य ही तुमलोगोंपर महान् कोप है। अतः तुमलोगोंका अन्धकूप आदि नरककुण्डोंमें सदा वास होगा॥ ७८½॥

व्यासजी बोले—इस प्रकारका वाग्दण्ड देकर गौतममुनिने आचमन किया और तत्पश्चात् भगवती गायत्रीके दर्शनार्थ अत्यन्त उत्सुक होकर वे देवी-मन्दिर गये। वहाँ उन्होंने महादेवीको प्रणाम किया। वे परात्परा भगवती गायत्री भी ब्राह्मणोंकी कृतघ्नताको देखकर स्वयं अपने मनमें चकित हो रही थीं और आज भी उनका मुख आश्चर्यसे युक्त दिखायी पड़ता है॥ ७९—८१॥

आश्चर्ययुक्त मुखकमलवाली भगवती गायत्रीने उन मुनिवर गौतमसे कहा—'हे महाभाग! सर्पको दिया गया दुग्ध उसके विषको ही बढ़ानेवाला होता है। अब आप धैर्य धारण कीजिये; क्योंकि कर्मकी ऐसी ही गति होती है।' तत्पश्चात् भगवतीको प्रणामकर गौतमजी अपने आश्रमके लिये चल दिये॥ ८२-८३॥

तब शापदग्ध वे ब्राह्मण वेदोंको भूल गये। उन सभीको गायत्री मन्त्र भी विस्मृत हो गया। ऐसी आश्चर्यकारी घटना हुई॥ ८४॥

अब वे सभी ब्राह्मण एकत्र होकर पश्चात्ताप करने लगे और दण्डकी भाँति पृथ्वीपर गिरकर उन्होंने मुनिवर गौतमको प्रणाम किया॥ ८५॥

लज्जासे अपने मुख नीचेकी ओर किये हुए वे कुछ भी वाक्य नहीं बोल सके। वे चारों ओरसे मुनीश्वरको घेरकर बार-बार यही प्रार्थना करने लगे—आप प्रसन्न हो जाइये, प्रसन्न हो जाइये, प्रसन्न हो जाइये॥ ८६½॥

करुणापूर्णहृदयो मुनिस्तान्समुवाच ह॥ ८७

कृष्णावतारपर्यन्तं कुम्भीपाके भवेत्स्थितिः।
न मे वाक्यं मृषा भूयादिति जानीथ सर्वथा॥ ८८

ततः परं कलियुगे भुवि जन्म भवेद्धि वाम्।
मदुक्तं सर्वमेतत्तु भवेदेव न चान्यथा॥ ८९

मच्छापस्य विमोक्षार्थं युष्माकं स्याद्यदीषणा।
तर्हि सेव्यं सदा सर्वैर्गायत्रीपदपङ्कजम्॥ ९०

व्यास उवाच

इति सर्वान्विसृज्याथ गौतमो मुनिसत्तमः।
प्रारब्धमिति मत्वा तु चित्ते शान्तिं जगाम ह॥ ९१

एतस्मात्कारणाद्राजन् गते कृष्णे तु धीमति।
कलौ युगे प्रवृत्ते तु कुम्भीपाकात्तु निर्गताः॥ ९२

भुवि जाता ब्राह्मणाश्च शापदग्धाः पुरा तु ये।
सन्ध्यात्रयविहीनाश्च गायत्रीभक्तिवर्जिताः॥ ९३

वेदभक्तिविहीनाश्च पाखण्डमतगामिनः।
अग्निहोत्रादिसत्कर्मस्वधास्वाहाविवर्जिताः॥ ९४

मूलप्रकृतिमव्यक्तां नैव जानन्ति कर्हिचित्।
तप्तमुद्राङ्किताः केचित्कामाचाररताः परे॥ ९५

कापालिकाः कौलिकाश्च बौद्धा जैनास्तथापरे।
पण्डिता अपि ते सर्वे दुराचारप्रवर्तकाः॥ ९६

लम्पटाः परदारेषु दुराचारपरायणाः।
कुम्भीपाकं पुनः सर्वे यास्यन्ति निजकर्मभिः॥ ९७

तस्मात्सर्वात्मना राजन् संसेव्या परमेश्वरी।
न विष्णूपासना नित्या न शिवोपासना तथा॥ ९८

नित्या चोपासना शक्तेर्यां विना तु पतत्यधः।
सर्वमुक्तं समासेन यत्पृष्टं तत्त्वयानघ॥ ९९

इसपर मुनिका हृदय करुणासे भर आया और वे उन ब्राह्मणोंसे बोले—'कृष्णावतारपर्यन्त तुमलोगोंको कुम्भीपाक नरकमें वास करना पड़ेगा; क्योंकि मेरा वचन मिथ्या कदापि नहीं हो सकता—इसे तुमलोग भलीभाँति जान लो। तत्पश्चात् कलियुगमें भूमण्डलपर तुमलोगोंका जन्म होगा। मेरे द्वारा कही गयी ये सारी बातें अन्यथा नहीं हो सकतीं। यदि मेरे शापसे मुक्तिकी तुमलोगोंको इच्छा है, तो तुम सब भगवती गायत्रीके चरणकमलकी सदा उपासना करो'॥ ८७—९०॥

व्यासजी बोले—ऐसा कहकर मुनिश्रेष्ठ गौतमने सभी ब्राह्मणोंको विदा कर दिया। तत्पश्चात् 'यह सब प्रारब्धका प्रभाव है'—ऐसा मानकर उन्होंने अपना चित्त शान्त कर लिया। हे राजन्! यही कारण है कि बुद्धिसम्पन्न भगवान् श्रीकृष्णके महाप्रयाण करनेके पश्चात् कलियुग आनेपर वे सभी ब्राह्मण कुम्भीपाक नरककुण्डसे निकल आये॥ ९१-९२॥

इस प्रकार पूर्वकालमें शापसे दग्ध वे ब्राह्मण भूमण्डलपर उत्पन्न हुए; जो त्रिकाल सन्ध्यासे हीन, भगवती गायत्रीकी भक्तिसे विमुख, वेदोंके प्रति श्रद्धारहित, पाखण्डमतका अनुसरण करनेवाले, अग्निहोत्र आदि सत्कर्म न करनेवाले और स्वाहा-स्वधासे रहित हैं। उनमें कुछ ऐसे हैं, जो मूलप्रकृति तथा अव्यक्तस्वरूपिणी गायत्रीके विषयमें कुछ भी नहीं जानते। कोई-कोई तप्तमुद्रा धारण करके स्वेच्छाचार-परायण हो गये हैं। उनमेंसे कुछ कापालिक, कौलिक, बौद्ध तथा जैनमतको माननेवाले हैं, वे सभी पण्डित होते हुए भी दुराचारके प्रवर्तक हैं। परायी स्त्रियोंके साथ दुराचार करनेवाले सभी लम्पट अपने कुत्सित कर्मोंके कारण पुनः उसी कुम्भीपाक नरककुण्डमें जायँगे॥ ९३—९७॥

अतएव हे राजन्! हर प्रकारसे परमेश्वरीकी उपासना करनी चाहिये। न विष्णुकी उपासना नित्य है और न तो शिवकी ही उपासना नित्य है; केवल शक्तिकी उपासना नित्य है, जिसके न करनेसे मनुष्यका अधःपतन हो जाता है। हे निष्पाप! आपने मुझसे जो पूछा था, वह सब मैंने संक्षेपमें बता दिया। अब आप

अतः परं मणिद्वीपवर्णनं शृणु सुन्दरम्।
यत्परं स्थानमाद्याया भुवनेश्या भवारणेः॥ १००

मणिद्वीपका मनोरम वर्णन सुनिये, जो जगत्को उत्पन्न करनेवाली आदिशक्तिस्वरूपिणी भुवनेश्वरीका परमधाम है॥ ९८—१००॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां द्वादशस्कन्धे ब्राह्मणादीनां गायत्रीभिन्नान्यदेवोपासनाश्रद्धाहेतुनिरूपणं नाम नवमोऽध्यायः॥ ९॥

अथ दशमोऽध्यायः

मणिद्वीपका वर्णन

व्यास उवाच

ब्रह्मलोकादूर्ध्वभागे सर्वलोकोऽस्ति यः श्रुतः।
मणिद्वीपः स एवास्ति यत्र देवी विराजते॥ १

सर्वस्मादधिको यस्मात्सर्वलोकस्ततः स्मृतः।
पुरा पराम्बयैवायं कल्पितो मनसेच्छया॥ २

सर्वादौ निजवासार्थं प्रकृत्या मूलभूतया।
कैलासादधिको लोको वैकुण्ठादपि चोत्तमः॥ ३

गोलोकादपि सर्वस्मात्सर्वलोकोऽधिकः स्मृतः।
न तत्समं त्रिलोक्यां तु सुन्दरं विद्यते क्वचित्॥ ४

छत्रीभूतं त्रिजगतो भवसन्तापनाशकम्।
छायाभूतं तदेवास्ति ब्रह्माण्डानां तु सत्तम॥ ५

बहुयोजनविस्तीर्णो गम्भीरस्तावदेव हि।
मणिद्वीपस्य परितो वर्तते तु सुधोदधिः॥ ६

मरुत्सङ्घट्टनोत्कीर्णतरङ्गशतसङ्कुलः।
रत्नाच्छवालुकायुक्तो झषशङ्खसमाकुलः॥ ७

वीचिसङ्घर्षसञ्जातलहरीकणशीतलः।
नानाध्वजसमायुक्तनानापोतगतागतैः॥ ८

विराजमानः परितस्तीररत्नद्रुमो महान्।
तदुत्तरमयोधातुनिर्मितो गगने ततः॥ ९
सप्तयोजनविस्तीर्णः प्राकारो वर्तते महान्।

व्यासजी बोले—[हे महाराज जनमेजय!] ब्रह्मलोकसे ऊपरके भागमें जो सर्वलोक सुना गया है, वही मणिद्वीप है; जहाँ भगवती विराजमान रहती हैं॥ १॥

चूँकि यह सभी लोकोंसे श्रेष्ठ है, इसलिये इसे सर्वलोक कहा गया है। पूर्वकालमें मूलप्रकृतिस्वरूपिणी पराम्बा भगवतीने सबसे प्रारम्भमें अपने निवासहेतु स्वेच्छासे इसका निर्माण किया था। यह लोक कैलास, वैकुण्ठ और गोलोकसे भी महान् तथा उत्तम है। समस्त लोकोंसे श्रेष्ठ होनेके कारण यह सर्वलोक कहा गया है। तीनों लोकोंमें उसके समान सुन्दर स्थान कहीं नहीं है॥ २—४॥

हे सत्तम! वह मणिद्वीप तीनों जगत्का छत्रस्वरूप तथा सांसारिक सन्तापोंका नाश करनेवाला है और सभी ब्रह्माण्डोंका भी छायास्वरूप वही है॥ ५॥

उस मणिद्वीपके चारों ओर अनेक योजन विस्तारवाला तथा परिमाणमें उतना ही गहरा अमृतका सागर विद्यमान है, जो पवनके आघातसे उठी हुई सैकड़ों तरंगोंसे परिपूर्ण, रत्नमयी स्वच्छ बालुकासे युक्त, मत्स्य और शंखोंसे सम्पन्न, तरंगोंके परस्पर संघर्षसे उत्पन्न बड़ी-बड़ी लहरोंद्वारा विकीर्ण शीतल जल-कणोंसे शोभायमान और अनेक प्रकारकी ध्वजाओंसे युक्त नानाविध आवागमनवाले पोतोंसे मण्डित है॥ ६—८॥

उस सुधासागरके चारों ओर तटोंपर रत्नमय वृक्ष विराजमान हैं। उसके उत्तर तरफ लौहधातुकी बनी हुई सात योजन विस्तारवाली एक गगनस्पर्शी महान् चहारदीवारी है॥ ९½॥

नानाशस्त्रप्रहरणा नानायुद्धविशारदा: ॥ १०
रक्षका निवसन्त्यत्र मोदमाना: समन्तत:।
चतुर्द्वारसमायुक्तो द्वारपालशतान्वित: ॥ ११
नानागणै: परिवृतो देवीभक्तियुतैर्नृप।
दर्शनार्थं समायान्ति ये देवा जगदीशितु: ॥ १२
तेषां गणा वसन्त्यत्र वाहनानि च तत्र हि।
विमानशतसङ्घर्षघण्टास्वनसमाकुल: ॥ १३
हयहेषाखुराघातबधिरीकृतदिङ्मुख: ।
गणै: किलकिलारावैर्वेत्रहस्तैश्च ताडिता: ॥ १४
सेवका देवसङ्घानां भ्राजन्ते तत्र भूमिप।
तस्मिन्कोलाहले राजन्न शब्द: केनचित्क्वचित् ॥ १५
कस्यचिच्छ्रूयतेऽत्यन्तं नानाध्वनिसमाकुले।
पदे पदे मिष्टवारिपरिपूर्णसरांसि च ॥ १६
वाटिका विविधा राजन् रत्नद्रुमविराजिता:।
तदुत्तरं महासारधातुनिर्मितमण्डल: ॥ १७
सालोऽपरो महानस्ति गगनस्पर्शि यच्छिर:।
तेजसा स्याच्छतगुण: पूर्वसालादयं पर: ॥ १८
गोपुरद्वारसहितो बहुवृक्षसमन्वित:।
या वृक्षजातय: सन्ति सर्वास्तास्तत्र सन्ति च ॥ १९
निरन्तरं पुष्पयुता: सदा फलसमन्विता:।
नवपल्लवसंयुक्ता: परसौरभसङ्कुला: ॥ २०
पनसा बकुला लोध्रा: कर्णिकाराश्च शिंशपा:।
देवदारुकाञ्चनारा आम्राश्चैव सुमेरव: ॥ २१
लिकुचा हिङ्गुलाश्चैला लवङ्गा: कट्फलास्तथा।
पाटला मुचुकुन्दाश्च फलिन्यो जघनेफला: ॥ २२

उसमें अनेक प्रकारके शस्त्रोंके प्रहारमें दक्ष तथा नानाविध युद्धकलाओंमें पारंगत बहुत-से रक्षक सभी ओर आनन्दपूर्वक निवास करते हैं॥ १०½ ॥

हे राजन्! उस परकोटेमें चार द्वार तथा सैकड़ों द्वारपाल हैं। भगवतीमें भक्ति रखनेवाले अनेक गणोंसे वह चारों ओरसे घिरा हुआ है। जो देवता भगवती जगदीश्वरीके दर्शनार्थ आते हैं, उनके गण तथा वाहन यहाँ रहते हैं॥ ११-१२½ ॥

यह सैकड़ों विमानोंकी घरघराहट तथा घंटा-ध्वनिसे सदा परिपूर्ण रहता है। घोड़ोंकी हिनहिनाहट तथा उनके खुरोंके आघातकी ध्वनिसे दिशाएँ बधिर-सी हो जाती हैं। हे राजन्! किलकिलाहटकी ध्वनि करते हुए तथा हाथमें बेंत लिये हुए देवी-गणोंके द्वारा ताडित देवताओंके सेवक वहाँ सदा विराजमान रहते हैं॥ १३-१४½ ॥

हे राजन्! उस कोलाहलमें कोई किसीकी बात नहीं सुन पाता। अनेक प्रकारकी ध्वनियोंसे मिश्रित उस स्थानपर अत्यधिक चेष्टा करनेपर ही किसीकी बात सुनी जा सकती है। हे राजन्! वहाँ स्थान-स्थानपर मीठे जलसे परिपूर्ण सरोवर और रत्नमय वृक्षोंसे युक्त अनेक प्रकारके उद्यान सुशोभित हो रहे हैं॥ १५-१६½ ॥

उस परकोटेके आगे कांस्य धातुसे बना हुआ उससे भी विशाल दूसरा मण्डलाकार परकोटा है, जिसका शिखर आकाशको छूता रहता है। यह परकोटा पहले परकोटेसे तेजमें सौ गुना अधिक है॥ १७-१८॥

गोपुर और द्वारसे शोभा पानेवाला यह प्राकारमण्डल अनेक वृक्षोंसे युक्त है। वृक्षोंकी जितनी जातियाँ होती हैं, वे सब वहाँपर हैं। वे वृक्ष सदा फूलों और फलोंसे लदे रहते हैं तथा वे नये-नये पल्लवों और उत्तम सुगन्धसे सदा परिपूर्ण रहते हैं॥ १९-२०॥

कटहल, मौलसिरी, लोध, कर्णिकार, शीशम, देवदारु, कचनार, आम, सुमेरु, लिकुच, हिंगुल, इलायची, लौंग, कट्फल, पाटल, मुचुकुन्द, फलिनी,

तालास्तमालाः सालाश्च कङ्कोला नागभद्रकाः।
पुन्नागाः पीलवः साल्वका वै कर्पूरशाखिनः॥ २३
अश्वकर्णा हस्तिकर्णास्तालपर्णाश्च दाडिमाः।
गणिका बन्धुजीवाश्च जम्बीराश्च कुरण्डकाः॥ २४
चाम्पेया बन्धुजीवाश्च तथा वै कनकद्रुमाः।
कालागुरुद्रुमाश्चैव तथा चन्दनपादपाः॥ २५
खर्जूरा यूथिकास्तालपर्ण्यश्चैव तथेक्षवः।
क्षीरवृक्षाश्च खदिराश्चिञ्चाभल्लातकास्तथा॥ २६
रुचकाः कुटजा वृक्षा बिल्ववृक्षास्तथैव च।
तुलसीनां वनान्येवं मल्लिकानां तथैव च॥ २७
इत्यादितरुजातीनां वनान्युपवनानि च।
नानावापीशतैर्युक्तान्येवं सन्ति धराधिप॥ २८
कोकिलारावसंयुक्ता गुञ्जद्भ्रमरभूषिताः।
निर्यासस्राविणः सर्वे स्निग्धच्छायास्तरूत्तमाः॥ २९
नानाऋतुभवा वृक्षा नानापक्षिसमाकुलाः।
नानारसस्राविणीभिर्नदीभिरतिशोभिताः॥ ३०
पारावतशुकव्रातसारिकापक्षमारुतैः।
हंसपक्षसमुद्भूतावातव्रातैश्चलद्द्रुमम्॥ ३१
सुगन्धग्राहिपवनपूरितं तद्वनोत्तमम्।
सहितं हरिणीयूथैर्धावमानैरितस्ततः॥ ३२
नृत्यद्बर्हिकदम्बस्य केकारावैः सुखप्रदैः।
नादितं तद्वनं दिव्यं मधुस्रावि समन्ततः॥ ३३
कांस्यसालादुत्तरे तु ताम्रसालः प्रकीर्तितः।
चतुरस्रसमाकार उन्नत्या सप्तयोजनः॥ ३४
द्वयोस्तु सालयोर्मध्ये सम्प्रोक्ता कल्पवाटिका।
येषां तरूणां पुष्पाणि काञ्चनाभानि भूमिप॥ ३५
पत्राणि काञ्चनाभानि रत्नबीजफलानि च।
दशयोजनगन्धो हि प्रसर्पति समन्ततः॥ ३६
तद्वनं रक्षितं राजन् वसन्तेनर्तुनानिशम्।
पुष्पसिंहासनासीनः पुष्पच्छत्रविराजितः॥ ३७
पुष्पभूषाभूषितश्च पुष्पासवविघूर्णितः।
मधुश्रीर्माधवश्रीश्च द्वे भार्ये तस्य सम्मते॥ ३८

जघनेफल, ताल, तमाल, साल, कंकोल, नागभद्र, नागकेसर, पीलु, साल्व, कर्पूरशाखी, अश्वकर्ण, हस्तिकर्ण, तालपर्ण, दाडिम, गणिका, बन्धुजीव, जम्भीरी नीबू, कुरण्डक, चम्पा, बन्धुजीव, धतूरा, कालागुरु, चन्दन, खजूर, जूही, तालपर्णी, ईख, क्षीरवृक्ष, खैर, इमली, भेलावा, बिजौरा नीबू, कुटज तथा बिल्वके वृक्ष वहाँ सुशोभित रहते हैं। तुलसी तथा मल्लिकाके वन भी वहाँ विद्यमान हैं। हे राजन्! अनेक जातिवाले वृक्षोंके वन तथा उपवन यहाँ शोभायमान हैं, जो सैकड़ों बावलियोंसे युक्त हैं॥ २१—२८॥

कोयलोंकी मीठी ध्वनिसे युक्त, भौंरोके गुंजारसे भूषित तथा शीतल छाया प्रदान करनेवाले वे सभी उत्तम वृक्ष निरन्तर रसस्राव करते रहते हैं। अनेक ऋतुओंमें उत्पन्न होनेवाले वे वृक्ष अनेक प्रकारके पक्षियोंसे सदा युक्त रहते हैं। वे अनेकविध रस प्रवाहित करनेवाली नदियोंसे सर्वदा सुशोभित रहते हैं। कबूतर, तोता, मैना तथा हंस आदि पक्षियोंके पंखोंसे निकली हुई वायुसे वहाँके वृक्ष सदा हिलते रहते हैं। सुगन्धि-मिश्रित पवनसे परिपूर्ण वह वन इधर-उधर दौड़ती हुई हरिणियोंके समूहोंसे सदा शोभा प्राप्त करता है। नाचते हुए मोरोंकी सुखदायक केका-ध्वनियोंसे मुखरित वह दिव्य वन सदा मधुका स्राव करता रहता है॥ २९—३३॥

उस कांस्यके प्राकारके आगे ताम्रकी चहारदीवारी बतायी गयी है, जो आकारमें चौकोर तथा ऊँचाईमें सात योजन परिमाणवाली है। हे राजन्! उन दोनों प्राकारोंके मध्यमें एक कल्पवाटिका कही गयी है, जिसके वृक्षोंके पुष्प तथा पत्ते सुवर्ण-सदृश आभावाले हैं और बीज तथा फल रत्नके समान हैं। वहाँ चारों ओर दस योजनतक सुगन्ध फैली रहती है॥ ३४—३६॥

हे राजन्! वसन्त ऋतु उस वनकी सदा सुरक्षा करता रहता है। पुष्पके भूषणसे विभूषित, पुष्प-छत्रसे सुशोभित तथा पुष्पके आसवका सेवन करके मदमत्त वह वसन्त पुष्पके सिंहासनपर विराजमान रहता है। मधुश्री तथा माधवश्री नामक मुसकानयुक्त मुखवाली उसकी दो प्रिय भार्याएँ हैं, जो सदा पुष्पोंके गुच्छोंका

क्रीडतः स्मेरवदने सुमस्तबककन्दुकैः।
अतीव रम्यं विपिनं मधुस्त्रावि समन्ततः॥ ३९

दशयोजनपर्यन्तं कुसुमामोदवायुना।
पूरितं दिव्यगन्धर्वैः साङ्गनैर्गानलोलुपैः॥ ४०

शोभितं तद्वनं दिव्यं मत्तकोकिलनादितम्।
वसन्तलक्ष्मीसंयुक्तं कामिकामप्रवर्धनम्॥ ४१

ताम्रसालादुत्तरत्र सीससालः प्रकीर्तितः।
समुच्छ्रायः स्मृतोऽप्यस्य सप्तयोजनसंख्यया॥ ४२

सन्तानवाटिकामध्ये सालयोस्तु द्वयोर्नृप।
दशयोजनगन्धस्तु प्रसूनानां समन्ततः॥ ४३

हिरण्याभानि कुसुमान्युत्फुल्लानि निरन्तरम्।
अमृतद्रवसंयुक्तफलानि मधुराणि च॥ ४४

ग्रीष्मर्तुर्नायकस्तस्या वाटिकाया नृपोत्तम।
शुक्रश्रीश्च शुचिश्रीश्च द्वे भार्ये तस्य सम्मते॥ ४५

सन्तापत्रस्तलोकास्तु वृक्षमूलेषु संस्थिताः।
नानासिद्धैः परिवृतो नानादेवैः समन्वितः॥ ४६

विलासिनीनां वृन्दैस्तु चन्दनद्रवपङ्किलैः।
पुष्पमालाभूषितैस्तु तालवृन्तकराम्बुजैः॥ ४७

प्राकारः शोभितो राजञ्छीतलाम्बुनिषेविभिः।
सीससालादुत्तरत्राप्यारकूटमयः शुभः॥ ४८

प्राकारो वर्तते राजन् मुनियोजनदैर्घ्यवान्।
हरिचन्दनवृक्षाणां वाटी मध्ये तयोः स्मृता॥ ४९

सालयोरधिनाथस्तु वर्षर्तुर्मेघवाहनः।
विद्युत्पिङ्गलनेत्रश्च जीमूतकवचः स्मृतः॥ ५०

कन्दुक बनाकर क्रीडा करती रहती हैं। वह अत्यन्त रम्य वन चारों ओर मधुकी धारा प्रवाहित करता रहता है॥ ३७—३९॥

पुष्पोंकी गन्धको लेकर प्रवाहित होनेवाली वायुके द्वारा वहाँका दस योजनपर्यन्त स्थान सदा सुवासित रहता है। इस प्रकार वह दिव्य वन वसन्तलक्ष्मीसे संयुक्त, कामियोंके कामको उद्दीप्त करनेवाला, मतवाले कोकिलोंकी ध्वनिसे मुखरित तथा अपनी अंगनाओंसहित गान-लोलुप दिव्य गन्धर्वोंसे सदा सुशोभित रहता है॥ ४०-४१॥

उस ताम्रके परकोटेके आगे एक सीसेका परकोटा है; इसकी भी ऊँचाई सात योजन कही गयी है। हे राजन्! इन दोनों प्राकारोंके मध्यमें सन्तान नामक वाटिका है। वहाँके पुष्पोंकी सुगन्धि चारों ओर दस योजनतक फैली रहती है। सुवर्णकी आभावाले खिले हुए फूल तथा अमृत-तुल्य मधुर रसोंसे परिपूर्ण मधुर फल वहाँ सदा विद्यमान रहते हैं॥ ४२—४४॥

हे नृपश्रेष्ठ! उस वाटिकाका नायक ग्रीष्मऋतु है। शुकश्री तथा शुचिश्री नामवाली उसकी दो प्रिय भार्याएँ हैं। सन्तापसे व्याकुल प्राणी उस वाटिकाके वृक्षोंकी छायामें सुखपूर्वक स्थित रहते हैं। अनेक सिद्धों तथा देवताओंसे वह प्राकार सदा समन्वित रहता है॥ ४५-४६॥

हे राजन्! पुष्प-मालाओंसे विभूषित होकर अपने करकमलोंमें ताड़का पंखा लिये और अपने अंगोंमें चन्दन लगाये तथा शीतल जलका सेवन करनेवाली अनेक विलासिनी अंगनाओंके द्वारा वह प्राकार नित्य सुशोभित रहता है॥ ४७½॥

हे राजन्! उस सीसेके प्राकारके भी आगे परिमाणमें सात योजन लम्बा पीतलकी धातुसे निर्मित एक सुन्दर परकोटा है॥ ४८½॥

उन दोनों परकोटोंके मध्यमें हरिचन्दन वृक्षोंकी एक वाटिका कही गयी है। वहाँका स्वामी मेघोंपर आसीन रहनेवाला वर्षाऋतु है। वह पिंगल-वर्णवाले विद्युत्को नेत्रके रूपमें तथा मेघोंको कवचके रूपमें धारण करनेवाला कहा गया है। विद्युत्का गर्जन ही इसका मुख है और वह इन्द्रधनुषको

वज्रनिर्घोषमुखरश्चेन्द्रधन्वा समन्ततः।
सहस्रशो वारिधारा मुञ्चन्नास्ते गणावृतः॥ ५१

नभःश्रीश्च नभस्यश्रीः स्वरस्या रस्यमालिनी।
अम्बा दुला निरत्निश्चाभ्रमन्ती मेघयन्तिका॥ ५२

वर्षयन्ती चिपुणिका वारिधारा च सम्मताः।
वर्षर्तोर्द्वादश प्रोक्ताः शक्तयो मदविह्वलाः॥ ५३

नवपल्लववृक्षाश्च नवीनलतिकान्विताः।
हरितानि तृणान्येव वेष्टिता यैर्धराखिला॥ ५४

नदीनदप्रवाहाश्च प्रवहन्ति च वेगतः।
सरांसि कलुषाम्बूनि रागिचित्तसमानि च॥ ५५

वसन्ति देवाः सिद्धाश्च ये देवीकर्मकारिणः।
वापीकूपतडागाश्च ये देव्यर्थं समर्पिताः॥ ५६

ते गणा निवसन्त्यत्र सविलासाश्च साङ्गनाः।
आरकूटमयादग्रे सप्तयोजनदैर्घ्यवान्॥ ५७

पञ्चलोहात्मकः सालो मध्ये मन्दारवाटिका।
नानापुष्पलताकीर्णा नानापल्लवशोभिता॥ ५८

अधिष्ठातात्र सम्प्रोक्तः शरदृतुरनामयः।
इषुलक्ष्मीरूर्जलक्ष्मीर्द्वे भार्ये तस्य सम्मते॥ ५९

नानासिद्धा वसन्त्यत्र साङ्गनाः सपरिच्छदाः।
पञ्चलोहमयादग्रे सप्तयोजनदैर्घ्यवान्॥ ६०

दीप्यमानो महाशृङ्गैर्वर्तते रौप्यसालकः।
पारिजाताटवीमध्ये प्रसूनस्तबकान्विता॥ ६१

दशयोजनगन्धीनि कुसुमानि समन्ततः।
मोदयन्ति गणान्सर्वान्ये देवीकर्मकारिणः॥ ६२

धनुषरूपमें धारण किये रहता है। वह अपने गणोंसे आवृत होकर चारों ओर हजारों जलधाराएँ छोड़ता रहता है॥ ४९—५१॥

नभःश्री, नभस्यश्री, स्वरस्या, रस्यमालिनी, अम्बा, दुला, निरत्नि, अभ्रमन्ती, मेघयन्तिका, वर्षयन्ती, चिपुणिका और वारिधारा—ये बारह वर्षाऋतुकी प्रिय शक्तियाँ कही गयी हैं, जो सदा मदसे विह्वल रहती हैं॥ ५२-५३॥

नवीन लताओंसे समन्वित तथा नवीन पल्लवोंसे युक्त वृक्ष तथा हरे-भरे तृण वहाँ सदा विद्यमान रहते हैं, जिनसे वहाँकी सम्पूर्ण भूमि आच्छादित रहती है। वहाँ नदी तथा नद अत्यन्त वेगसे प्रवाहित होते रहते हैं। राग-द्वेषसे युक्त मनुष्योंके चित्तके समान गन्दे जलवाले अनेक सरोवर भी वहाँ विद्यमान हैं॥ ५४-५५॥

देवता तथा सिद्धपुरुष वहाँ निवास करते हैं। देवी-कर्ममें निरन्तर तत्पर रहनेवाले तथा वापी, कूप और तालाबका निर्माण कराके देवीको अर्पण करनेवाले वे लोग अपनी स्त्रियोंके साथ वहाँ आनन्दपूर्वक रहते हैं॥ ५६½॥

उस पीतलके प्राकारके आगे सात योजनकी लम्बाईवाला एक पंचलौह-निर्मित परकोटा है, जिसके बीचमें नानाविध पुष्पों, लताओं तथा पल्लवोंसे सुशोभित मन्दारवाटिका विराजमान है॥ ५७-५८॥

विकाररहित शरद् ऋतुको यहाँका अधिष्ठाता कहा गया है। इक्षुलक्ष्मी और ऊर्जलक्ष्मी—ये उसकी दो प्रिय भार्याएँ हैं। अनेक सिद्धलोग अपनी भार्याओं तथा अनुचरोंके साथ यहाँ निवास करते हैं॥ ५९½॥

उस पंचलौहमय परकोटेके आगे विशाल शिखरों तथा सात योजन लम्बाईवाला एक दीप्तियुक्त रजत-निर्मित परकोटा है। उसके मध्यमें पुष्पोंके गुच्छोंसे परिपूर्ण पारिजात-वन विद्यमान है॥ ६०-६१॥

चारों ओर दस योजनकी दूरीतक सुगन्ध फैलानेवाले पुष्प वहाँपर देवी-पूजन आदि कर्मोंमें तत्पर सभी गणोंको प्रसन्न किये रहते हैं॥ ६२॥

तत्राधिनाथः सम्प्रोक्तो हेमन्तर्तुर्महोज्वलः।
सगणः सायुधः सर्वान् रागिणो रञ्जयन्नृप॥ ६३

सहश्रीश्च सहस्यश्रीर्द्वे भार्ये तस्य सम्मते।
वसन्ति तत्र सिद्धाश्च ये देवीव्रतकारिणः॥ ६४

रौप्यसालमयादग्रे सप्तयोजनदैर्घ्यवान्।
सौवर्णसालः सम्प्रोक्तस्तप्तहाटककल्पितः॥ ६५

मध्ये कदम्बवाटी तु पुष्पपल्लवशोभिता।
कदम्बमदिराधाराः प्रवर्तन्ते सहस्रशः॥ ६६

याभिर्निपीतपीताभिर्निजानन्दोऽनुभूयते ।
तत्राधिनाथः सम्प्रोक्तः शैशिरर्तुर्महोदयः॥ ६७

तपःश्रीश्च तपस्यश्रीर्द्वे भार्ये तस्य सम्मते।
मोदमानः सहैताभ्यां वर्तते शिशिराकृतिः॥ ६८

नानाविलाससंयुक्तो नानागणसमावृतः।
निवसन्ति महासिद्धा ये देवीदानकारिणः॥ ६९

नानाभोगसमुत्पन्नमहानन्दसमन्विताः ।
साङ्गनाः परिवारैस्तु सङ्घशः परिवारिताः॥ ७०

स्वर्णसालमयादग्रे मुनियोजनदैर्घ्यवान्।
पुष्परागमयः सालः कुङ्कुमारुणविग्रहः॥ ७१

पुष्परागमयी भूमिर्वनान्युपवनानि च।
रत्नवृक्षालवालाश्च पुष्परागमयाः स्मृताः॥ ७२

प्राकारो यस्य रत्नस्य तद्रत्नरचिता द्रुमाः।
वनभूः पक्षिणश्चैव रत्नवर्णजलानि च॥ ७३

मण्डपा मण्डपस्तम्भाः सरांसि कमलानि च।
प्राकारे तत्र यद्यत्स्यात्तत्सर्वं तत्समं भवेत्॥ ७४

हे राजन्! महान् उज्ज्वल हेमन्तऋतु वहाँका स्वामी कहा गया है। वह सभी रागी पुरुषोंको आनन्दित करते हुए हाथमें आयुध लेकर अपने गणोंके साथ वहाँ उपस्थित रहता है॥ ६३॥

उसकी सहश्री तथा सहस्यश्री नामक दो प्रिय भार्याएँ हैं। भगवतीका व्रत करनेवाले जो सिद्धलोग हैं, वे वहाँ निवास करते हैं॥ ६४॥

उस रजतके परकोटेके आगे तप्त स्वर्णसे निर्मित सात योजन लम्बा एक अन्य परकोटा है, जिसे सौवर्णसाल कहा गया है॥ ६५॥

उसके बीचमें पुष्पों तथा पल्लवोंसे सुशोभित एक कदम्ब-वाटिका है, जहाँ कदम्बके आसवकी हजारों धाराएँ निरन्तर बहती रहती हैं, जिसका सेवन करनेसे आत्मानन्दका अनुभव होता है। वहाँका स्वामी श्रेष्ठ शिशिर ऋतु कहा गया है॥ ६६-६७॥

उसकी तपःश्री और तपस्यश्री नामक दो प्रिय भार्याएँ हैं। अपने अनेक गणोंसे घिरा हुआ शिशिर ऋतु इन दोनों भार्याओंके साथ प्रसन्नतापूर्वक अनेकविध क्रीडाओंमें तत्पर रहता है॥ ६८½॥

देवीकी प्रसन्नताके निमित्त अनेक दान करनेवाले जो महान् सिद्धपुरुष हैं, वे अनेकविध भोगोंसे उत्पन्न महानन्दसे युक्त होकर और अपने परिवारजनों तथा भार्याओंको साथ लेकर वहाँ समूहमें निवास करते हैं॥ ६९-७०॥

उस स्वर्णनिर्मित परकोटेके आगे कुमकुमके समान अरुणवर्णवाला तथा सात योजन लम्बा पुष्परागमणिनिर्मित परकोटा है॥ ७१॥

वहाँकी भूमि पुष्परागमयी है। इसी प्रकार वहाँके वन, उपवन तथा थालोंसमेत वृक्ष पुष्परागरत्नसे युक्त कहे गये हैं॥ ७२॥

वहाँ जिस रत्नका परकोटा बना हुआ है, उसी रत्नसे वहाँके वृक्ष, वन, भूमि, पक्षी, मण्डप, मण्डपोंके स्तम्भ, सरोवर और कमल भी निर्मित हैं; वहाँ जल भी उसी रत्नके वर्णका है। उस परकोटेके अन्दर जो-जो वस्तुएँ हैं, वे सब उसी रत्नके समान हैं॥ ७३-७४॥

परिभाषेयमुद्दिष्टा रत्नसालादिषु प्रभो।
तेजसा स्याल्लक्षगुणः पूर्वसालात्परो नृप॥ ७५

दिक्पाला निवसन्त्यत्र प्रतिब्रह्माण्डवर्तिनाम् ।
दिक्पालानां समष्ट्यात्मरूपाः स्फूर्जद्वरायुधाः॥ ७६

पूर्वाशायां समुत्तुङ्गशृङ्गा पूरमरावती।
नानोपवनसंयुक्तो महेन्द्रस्तत्र राजते॥ ७७

स्वर्गशोभा च या स्वर्गे यावती स्यात्ततोऽधिका।
समष्टिशतनेत्रस्य सहस्रगुणतः स्मृता॥ ७८

ऐरावतसमारूढो वज्रहस्तः प्रतापवान्।
देवसेनापरिवृतो राजतेऽत्र शतक्रतुः॥ ७९

देवाङ्गनागणयुता शची तत्र विराजते।
वह्निकोणे वह्निपुरी वह्निपूःसदृशी नृप॥ ८०

स्वाहास्वधासमायुक्तो वह्निस्तत्र विराजते।
निजवाहनभूषाढ्यो निजदेवगणैर्वृतः॥ ८१

याम्याशायां यमपुरी तत्र दण्डधरो महान्।
स्वभटैर्वेष्टितो राजन् चित्रगुप्तपुरोगमैः॥ ८२

निजशक्तियुतो भास्वत्तनयोऽस्ति यमो महान्।
नैर्ऋत्यां दिशि राक्षस्यां राक्षसैः परिवारितः॥ ८३

खड्गधारी स्फुरन्नास्ते निर्ऋतिर्निजशक्तियुक्।
वारुण्यां वरुणो राजा पाशधारी प्रतापवान्॥ ८४

महाझषसमारूढो वारुणीमधुविह्वलः।
निजशक्तिसमायुक्तो निजयादोगणान्वितः॥ ८५

समास्ते वारुणे लोके वरुणानीरताकुलः।

हे प्रभो! रत्ननिर्मित परकोटोंके विषयमें मैंने आपको यह सम्यक् परिचय दे दिया। हे राजन्! इनमें प्रत्येक अगला प्राकार अपने पहलेवाले प्राकारसे एक लाख गुना अधिक तेजसम्पन्न है॥ ७५॥

प्रत्येक ब्रह्माण्डमें रहनेवाले दिक्पाल अपना एक समूह बनाकर हाथोंमें श्रेष्ठ तथा अत्यन्त तेजोमय आयुध धारण किये हुए यहाँ निवास करते हैं॥ ७६॥

इस मणिद्वीपकी पूर्वदिशामें ऊँचे शिखरोंसे युक्त अमरावतीपुरी है। अनेकविध उपवनोंसे युक्त उस पुरीमें इन्द्र विराजमान रहते हैं॥ ७७॥

स्वर्गलोकमें जितनी शोभा स्वर्गकी है, उससे भी अधिक शोभा इस अमरावतीपुरीकी है। अनेक इन्द्रोंके हजार गुनेसे भी अधिक इसकी शोभा कही गयी है। अपने ऐरावतपर आरूढ होकर हाथमें वज्र धारण किये हुए प्रतापी इन्द्र देवसेनाके साथ यहाँ सुशोभित होते हैं और वहींपर अनेक देवांगनाओंके साथ शची भी विराजमान रहती हैं॥ ७८-७९½॥

हे राजन्! उस मणिद्वीपके अग्निकोणमें अग्निसदृश प्रज्वलित वह्निपुरी है। वहाँपर अपने देवगणोंसे घिरे हुए अग्निदेव अपने वाहनों तथा भूषणोंसे सुशोभित होकर 'स्वाहा' और 'स्वधा'—इन दो शक्तियोंके साथ विराजमान रहते हैं॥ ८०-८१॥

मणिद्वीपकी दक्षिणदिशामें यमपुरी है। हे राजन्! सूर्यपुत्र महाभाग श्रेष्ठ यमराज चित्रगुप्त आदि मन्त्रियोंके साथ अपने अनुचरोंसे घिरे रहकर हाथमें दण्ड धारण किये अपनी शक्तिके साथ वहाँ विराजमान रहते हैं॥ ८२½॥

इस मणिद्वीपके नैर्ऋत्यकोणमें राक्षसोंकी पुरी विद्यमान है, जिसमें खड्गधारी निर्ऋति अपनी शक्तिके साथ राक्षसोंसे घिरे हुए विराजमान रहते हैं॥ ८३½॥

पश्चिमदिशामें वरुणलोकमें वारुणीपानसे विह्वल, पाश धारण करनेवाले प्रतापवान् वरुणराज विशाल मत्स्यपर सवार होकर वरुणानीमें आसक्त रहते हुए अपनी शक्ति वरुणानी तथा अपने गणोंके साथ विराजमान रहते हैं॥ ८४-८५½॥

वायुकोणे वायुलोको वायुस्तत्राधितिष्ठति॥ ८६

वायुसाधनसंसिद्धयोगिभिः परिवारितः।
ध्वजहस्तो विशालाक्षो मृगवाहनसंस्थितः॥ ८७

मरुद्गणैः परिवृतो निजशक्तिसमन्वितः।
उत्तरस्यां दिशि महान् यक्षलोकोऽस्ति भूमिप॥ ८८

यक्षाधिराजस्तत्रास्ते वृद्धिऋद्ध्यादिशक्तिभिः।
नवभिर्निधिभिर्युक्तस्तुन्दिलो धननायकः॥ ८९

मणिभद्रः पूर्णभद्रो मणिमान्मणिकन्धरः।
मणिभूषो मणिस्त्रग्वी मणिकार्मुकधारकः॥ ९०

इत्यादियक्षसेनानीसहितो निजशक्तियुक्।
ईशानकोणे सम्प्रोक्तो रुद्रलोको महत्तरः॥ ९१

अनर्घ्यरत्नखचितो यत्र रुद्रोऽधिदैवतम्।

मन्युमान्दीप्तनयनो बद्धपृष्ठमहेषुधिः॥ ९२

स्फूर्जद्धनुर्वामहस्तोऽधिज्यधन्वभिरावृतः।
स्वसमानैरसंख्यातरुद्रैः शूलवरायुधैः॥ ९३

विकृतास्यैः करालास्यैर्वमद्वह्निभिरास्यतः।
दशहस्तैः शतकरैः सहस्रभुजसंयुतैः॥ ९४

दशपादैर्दशग्रीवैस्त्रिनेत्रैरुग्रमूर्तिभिः।
अन्तरिक्षचरा ये च ये च भूमिचराः स्मृताः॥ ९५

रुद्राध्याये स्मृता रुद्रास्तैः सर्वैश्च समावृतः।
रुद्राणीकोटिसहितो भद्रकाल्यादिमातृभिः॥ ९६

नानाशक्तिसमाविष्टडामर्यादिगणावृतः।
वीरभद्रादिसहितो रुद्रो राजन् विराजते॥ ९७

मुण्डमालाधरो नागवलयो नागकन्धरः।
व्याघ्रचर्मपरीधानो गजचर्मोत्तरीयकः॥ ९८

चिताभस्माङ्गलिप्ताङ्गः प्रमथादिगणावृतः।
निनदड्डमरुध्वानैर्बधिरीकृतदिङ्मुखः॥ ९९

अट्टहासास्फोटशब्दैः सन्त्रासितनभस्तलः।

मणिद्वीपके वायव्यकोणमें वायुलोक स्थित है। विशाल नेत्रोंवाले वायुदेव प्राणायाम करनेमें परम सिद्ध योगियोंके समूह तथा मरुद्गणोंसे सदा घिरे रहकर हाथमें ध्वजा धारण करके मृगपर आरूढ होकर अपनी शक्तिके साथ वहाँ निवास करते हैं॥ ८६-८७½॥

हे राजन्! मणिद्वीपकी उत्तरदिशामें यक्षोंका महान् लोक है। वहाँपर अपनी शक्तिसहित यक्षोंके अधिराज तुन्दिल कुबेर वृद्धि-ऋद्धि आदि शक्तियों, नौ निधियों और मणिभद्र, पूर्णभद्र, मणिमान्, मणिकन्धर, मणिभूष, मणिस्त्रग्वी, मणिकार्मुकधारक आदि यक्षसेनानियोंके साथ अपनी शक्तिसे समन्वित होकर विराजमान रहते हैं॥ ८८—९०½॥

मणिद्वीपके ईशानकोणमें बहुमूल्य रत्नोंसे सम्पन्न महान् रुद्रलोक कहा गया है, जहाँ प्रज्वलित नेत्रों तथा कोपयुक्त विग्रहवाले भगवान् रुद्र अपनी पीठपर महान् तरकस बाँधे तथा बायें हाथमें तेजस्वी धनुष लिये हुए अधिदेवताके रूपमें प्रतिष्ठित हैं। वे भगवान् रुद्र धनुष्कोटिपर प्रत्यंचा चढ़ाये हुए धनुर्धारियों, हाथमें शूल तथा श्रेष्ठ आयुध धारण करनेवाले, विकृत मुखवाले, विकराल मुखाकृतिवाले, मुखसे निरन्तर अग्निज्वाला उगलनेवाले, दस भुजाओंवाले, कोई सौ भुजाओंवाले, कितने हजार भुजाओंवाले, दस पैरोंवाले, दस गर्दनवाले, तीन नेत्रोंवाले और अत्यन्त उग्र विग्रहवाले अपने ही सदृश असंख्य रुद्रोंसे सदा घिरे रहते हैं। अन्तरिक्षलोकमें तथा भूलोकमें विचरण करनेवाले जो-जो रुद्र प्रसिद्ध हैं और रुद्राध्यायमें भी जो रुद्र वर्णित हैं; उन सबसे वे भगवान् रुद्र वहाँ आवृत रहते हैं। इसी प्रकार वे करोड़ों रुद्राणियों, भद्रकाली आदि मातृकाओं और विविध शक्तियोंसे युक्त डामरी आदि गणोंसे सदा घिरे रहते हैं। हे राजन्! गलेमें मुण्डकी माला, हाथमें सर्प-वलय, कन्धेपर सर्पका यज्ञोपवीत, शरीरपर बाघम्बर और उत्तरीयके रूपमें गज-चर्म धारण करनेवाले; शरीरके अंगोंमें सदा चिताकी भस्म लगाये रहनेवाले; अपने डमरूकी तीव्र ध्वनिसे दिशाओंको बधिर बना देनेवाले; अपने अट्टहास और आस्फोट शब्दोंसे गगनमण्डलको भयभीत कर देनेवाले, भूतसमुदायसे युक्त रहनेवाले तथा समस्त प्राणियोंके आवासस्वरूप भगवान् महेश्वर

भूतसङ्घसमाविष्टो भूतावासो महेश्वरः।
ईशानदिक्पतिः सोऽयं नाम्ना चेशान एव च॥ १००

रुद्र वहाँपर वीरभद्र आदि गणोंके साथ सदा विराजमान रहते हैं। ये ईशानदिशाके अधिपति हैं; इसीलिये ये 'ईशान' नामसे विख्यात हैं॥ ९१—१००॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां द्वादशस्कन्धे मणिद्वीपवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥

~~○~~

अथैकादशोऽध्यायः

मणिद्वीपके रत्नमय नौ प्राकारोंका वर्णन

व्यास उवाच

पुष्परागमयादग्रे कुङ्कुमारुणविग्रहः।
पद्मरागमयः सालो मध्ये भूश्चैव तादृशी॥ १
दशयोजनवान्दैर्घ्ये गोपुरद्वारसंयुतः।
तन्मणिस्तम्भसंयुक्ता मण्डपाः शतशो नृप॥ २

व्यासजी बोले—पुष्परागनिर्मित प्राकारके आगे कुमकुमके समान अरुण विग्रहवाला पद्मरागमणियुक्त प्राकार है, जिसके मध्यमें भूमि भी उसी प्रकारकी है। अनेक गोपुर और द्वारोंसे युक्त यह प्राकार लम्बाईमें दस योजन परिमाणवाला है। हे राजन्! वहाँ उसी मणिसे निर्मित खम्भोंसे युक्त सैकड़ों मण्डप विद्यमान हैं॥ १-२॥

मध्ये भुवि समासीनाश्चतुःषष्टिमिताः कलाः।
नानायुधधरा वीरा रत्नभूषणभूषिताः॥ ३
प्रत्येकलोकस्तासां तु तत्तल्लोकस्य नायकाः।
समन्तात्पद्मरागस्य परिवार्य स्थिताः सदा॥ ४
स्वस्वलोकजनैर्जुष्टाः स्वस्ववाहनहेतिभिः।
तासां नामानि वक्ष्यामि शृणु त्वं जनमेजय॥ ५

उसके मध्यकी भूमिपर रत्नमय भूषणोंसे भूषित, अनेक आयुध धारण करनेवाली तथा पराक्रमसम्पन्न चौंसठ कलाएँ विराजमान रहती हैं। उन कलाओंका एक-एक पृथक् लोक है और अपने-अपने लोकको वे अधीश्वरी हैं। वहाँ चारों ओरकी सभी वस्तुएँ पद्म-रागमणिसे निर्मित हैं। अपने-अपने लोकके वाहनों तथा आयुधोंसे युक्त वे कलाएँ अपने-अपने लोकके निवासियोंसे सदा घिरी रहती हैं। हे जनमेजय! अब मैं उन कलाओंके नाम बता रहा हूँ; आप सुनें॥ ३—५॥

पिङ्गलाक्षी विशालाक्षी समृद्धिर्वृद्धिरेव च।
श्रद्धा स्वाहा स्वधाभिख्या माया संज्ञा वसुन्धरा॥ ६
त्रिलोकधात्री सावित्री गायत्री त्रिदशेश्वरी।
सुरूपा बहुरूपा च स्कन्दमाताच्युतप्रिया॥ ७
विमला चामला तद्वदरुणी पुनरारुणी।
प्रकृतिर्विकृतिः सृष्टिः स्थितिः संहतिरेव च॥ ८
सन्ध्या माता सती हंसी मर्दिका वज्रिका परा।
देवमाता भगवती देवकी कमलासना॥ ९
त्रिमुखी सप्तमुख्यन्या सुरासुरविमर्दिनी।
लम्बोष्ठी चोर्ध्वकेशी च बहुशीर्षा वृकोदरी॥ १०
रथरेखाह्वया पश्चाच्छशिरेखा तथापरा।
गगनवेगा पवनवेगा वेगा चैव ततः परम्॥ ११
अग्रे भुवनपाला स्यात्तत्पश्चान्मदनातुरा।
अनङ्गानङ्गमथना तथैवानङ्गमेखला॥ १२
अनङ्गकुसुमा पश्चाद्विश्वरूपा सुरादिका।
क्षयङ्करी भवेच्छक्तिरक्षोभ्या च ततः परम्॥ १३
सत्यवादिन्यथ प्रोक्ता बहुरूपा शुचिव्रता।
उदाराख्या च वागीशी चतुःषष्टिमिताः स्मृताः॥ १४

पिंगलाक्षी, विशालाक्षी, समृद्धि, वृद्धि, श्रद्धा, स्वाहा, स्वधा, अभिख्या, माया, संज्ञा, वसुन्धरा, त्रिलोकधात्री, सावित्री, गायत्री, त्रिदशेश्वरी, सुरूपा, बहुरूपा, स्कन्दमाता, अच्युतप्रिया, विमला, अमला, अरुणी, आरुणी, प्रकृति, विकृति, सृष्टि, स्थिति, संहति, सन्ध्यामाता, सती, हंसी, मर्दिका, परा वज्रिका, देवमाता, भगवती, देवकी, कमलासना, त्रिमुखी, सप्तमुखी, सुरासुरविमर्दिनी, लम्बोष्ठी, ऊर्ध्वकेशी, बहुशीर्षा, वृकोदरी, रथरेखा, शशिरेखा, गगनवेगा, पवनवेगा, भुवनपाला, मदनातुरा, अनंगा, अनंगमथना, अनंगमेखला, अनंगकुसुमा, विश्वरूपा, सुरादिका, क्षयंकरी, शक्ति, अक्षोभ्या, सत्यवादिनी, बहुरूपा, शुचिव्रता, उदारा और वागीशी—ये चौंसठ कलाएँ कही गयी हैं॥ ६—१४॥

ज्वलज्जिह्वानना: सर्वा वमन्त्यो वह्निमुल्बणम्।
जलं पिबाम: सकलं संहरामो विभावसुम्॥ १५

पवनं स्तम्भयामोऽद्य भक्षयामोऽखिलं जगत्।
इति वाचं संगिरन्ते क्रोधसंरक्तलोचना:॥ १६

चापबाणधरा: सर्वा युद्धायैवोत्सुका: सदा।
दंष्ट्राकटकटारावैर्बधिरीकृतदिङ्मुखा: ॥ १७

पिङ्गोर्ध्वकेश्य: सम्प्रोक्ताश्चापबाणकरा: सदा।
शताक्षौहिणिका सेनाप्येकैकस्या: प्रकीर्तिता॥ १८

एकैकशक्ते: सामर्थ्यं लक्षब्रह्माण्डनाशने।
शताक्षौहिणिका सेना तादृशी नृपसत्तम॥ १९

किं न कुर्याज्जगत्यस्मिन्नशक्यं वक्तुमेव तत्।
सर्वापि युद्धसामग्री तस्मिन्साले स्थिता मुने॥ २०

रथानां गणना नास्ति हयानां करिणां तथा।
शस्त्राणां गणना तद्वद् गणानां गणना तथा॥ २१

पद्मरागमयादग्रे गोमेदमणिनिर्मित:।
दशयोजनदैर्घ्येण प्राकारो वर्तते महान्॥ २२

भास्वज्जपाप्रसूनाभो मध्यभूस्तस्य तादृशी।
गोमेदकल्पितान्येव तद्वासिसदनानि च॥ २३

पक्षिण: स्तम्भवर्याश्च वृक्षा वाप्य: सरांसि च।
गोमेदकल्पिता एव कुङ्कुमारुणविग्रहा:॥ २४

तन्मध्यस्था महादेव्यो द्वात्रिंशच्छक्तय: स्मृता:।
नानाशस्त्रप्रहरणा गोमेदमणिभूषिता:॥ २५

प्रत्येकलोकवासिन्य: परिवार्य समन्तत:।
गोमेदसाले सन्नद्धा: पिशाचवदना नृप॥ २६

क्रोधके कारण अति रक्त नेत्रोंवाली तथा प्रज्वलित जिह्वासे युक्त मुखवाली वे सभी कलाएँ प्रचण्ड अग्नि उगलती हुई सदा इन शब्दोंका उच्चारण करती रहती हैं—'हम अभी सम्पूर्ण जल पी डालेंगी, हम अग्निको नष्ट कर देंगी, हम वायुको रोक देंगी और समस्त संसारका भक्षण कर डालेंगी'॥ १५-१६॥

वे सभी कलाएँ धनुष-बाण धारण करके सदा युद्धके लिये तत्पर रहती हैं और दाँतोंके कटकटानेकी ध्वनिसे दिशाओंको बधिर-सी बना देती हैं॥ १७॥

अपने हाथमें सदा धनुष और बाण धारण करनेवाली ये शक्तियाँ पिंगलवर्णके उठे हुए केशोंसे सम्पन्न कही गयी हैं। इनमेंसे एक-एक कलाके पास सौ-सौ अक्षौहिणी सेना बतायी गयी है। लाखों ब्रह्माण्डोंको नष्ट कर डालनेकी क्षमता एक-एक शक्तिमें विद्यमान है। हे नृपश्रेष्ठ! तो फिर वैसी शक्तियोंसे सम्पन्न सौ अक्षौहिणी सेना इस संसारमें क्या नहीं कर सकती—उसे बतानेमें मैं असमर्थ हूँ॥ १८-१९$\frac{1}{2}$ ॥

हे मुने! युद्धकी समस्त सामग्री उस पद्मरागके प्राकारमें सदा विद्यमान रहती है। उसमें रथों, घोड़ों, हाथियों और शस्त्रोंकी गणना नहीं है। उसी प्रकार गणोंकी भी कोई गणना नहीं है॥ २०-२१॥

इस पद्मरागमय प्राकारके आगे गोमेदमणिसे निर्मित दस योजन लम्बा एक परकोटा है, जो प्रभायुक्त जपाकुसुमके समान कान्तिमान् है। इसके मध्यकी भूमि भी वैसी ही है। वहाँके निवासियोंके भवन, पक्षी, उत्तम खम्भे, वृक्ष, वापी तथा सरोवर—ये सभी गोमेदमणिसे ही निर्मित हैं। गोमेदमणिसे बनी वहाँकी सभी वस्तुओंका विग्रह कुमकुमके समान अरुण वर्णका है॥ २२—२४॥

उस प्राकारके मध्यमें गोमेदमणिसे भूषित तथा अनेकविध शस्त्र धारण करनेवाली बत्तीस महादेवियाँ निवास करती हैं, जो शक्तियाँ कही गयी हैं। हे राजन्! गोमेदनिर्मित उस प्राकारमें पिशाचोंके समान भयंकर मुखवाली प्रत्येक लोककी निवासिनी शक्तियाँ सावधान होकर चारों ओरसे उसे घेरकर स्थित रहती हैं॥ २५-२६॥

स्वर्लोकवासिभिर्नित्यं पूजिताश्चक्रबाहवः।
क्रोधरक्तेक्षणा भिन्धि पचच्छिन्धि दहेति च॥ २७
वदन्ति सततं वाचं युद्धोत्सुकहृदन्तराः।
एकैकस्या महाशक्तेर्दशाक्षौहिणिका मता॥ २८
सेना तत्राप्येकशक्तिर्लक्षब्रह्माण्डनाशिनी।
तादृशीनां महासेना वर्णनीया कथं नृप॥ २९
रथानां नैव गणना वाहनानां तथैव च।
सर्वयुद्धसमारम्भस्तत्र देव्या विराजते॥ ३०
तासां नामानि वक्ष्यामि पापनाशकराणि च।
विद्याह्रीपुष्टयः प्रज्ञा सिनीवाली कुहूस्तथा॥ ३१
रुद्रा वीर्या प्रभा नन्दा पोषिणी ऋद्धिदा शुभा।
कालरात्रिर्महारात्रिर्भद्रकाली कपर्दिनी॥ ३२
विकृतिर्दण्डिमुण्डिन्यौ सेन्दुखण्डा शिखण्डिनी।
निशुम्भशुम्भमथिनी महिषासुरमर्दिनी॥ ३३
इन्द्राणी चैव रुद्राणी शङ्करार्धशरीरिणी।
नारी नारायणी चैव त्रिशूलिन्यपि पालिनी॥ ३४
अम्बिका ह्लादिनी पश्चादित्येवं शक्तयः स्मृताः।
यद्येताः कुपिता देव्यस्तदा ब्रह्माण्डनाशनम्॥ ३५
पराजयो न चैतासां कदाचित्क्वचिदस्ति हि।
गोमेदकमयादग्रे सद्वज्रमणिनिर्मितः॥ ३६
दशयोजनतुङ्गोऽसौ गोपुरद्वारसंयुतः।
कपाटशृङ्खलाबद्धो नववृक्षसमुज्ज्वलः॥ ३७
सालस्तन्मध्यभूम्यादि सर्वं हीरमयं स्मृतम्।
गृहाणि वीथयो रथ्या महामार्गाङ्गणानि च॥ ३८
वृक्षालवालतरवः सारङ्गा अपि तादृशाः।
दीर्घिकाश्रेणयो वाप्यस्तडागाः कूपसंयुताः॥ ३९
तत्र श्रीभुवनेश्वर्या वसन्ति परिचारिकाः।
एकैका लक्षदासीभिः सेविता मदगर्विताः॥ ४०

स्वर्गलोकके निवासियोंद्वारा नित्य पूजी जानेवाली वे शक्तियाँ हृदयमें युद्धकी लालसासे युक्त होकर हाथोंमें चक्र धारण किये हुए तथा क्रोधके कारण नेत्र लाल करके 'काटो, पकाओ, छेदो और भस्म कर डालो'—इन शब्दोंको निरन्तर बोलती रहती हैं। उनमें एक-एक महाशक्तिके पास दस-दस अक्षौहिणी सेना कही गयी है। उस सेनाकी एक ही शक्ति एक लाख ब्रह्माण्डोंका संहार करनेमें समर्थ है तो हे राजन्! उस प्रकारकी शक्तियोंसे युक्त विशाल सेनाका वर्णन कैसे किया जा सकता है!॥ २७—२९॥

उनके रथों तथा वाहनोंकी गणना नहीं की जा सकती। भगवतीकी युद्ध-सम्बन्धी समस्त सामग्री वहाँ विद्यमान रहती है। अब मैं भगवतीकी शक्तियोंके पापनाशक नामोंका वर्णन करूँगा—विद्या, ह्री, पुष्टि, प्रज्ञा, सिनीवाली, कुहू, रुद्रा, वीर्या, प्रभा, नन्दा, पोषिणी, ऋद्धिदा, शुभ्रा, कालरात्रि, महारात्रि, भद्रकाली, कपर्दिनी, विकृति, दण्डिनी, मुण्डिनी, सेन्दुखण्डा, शिखण्डिनी, निशुम्भशुम्भमथिनी, महिषासुरमर्दिनी, इन्द्राणी, रुद्राणी, शंकरार्धशरीरिणी, नारी, नारायणी, त्रिशूलिनी, पालिनी, अम्बिका और ह्लादिनी—ये शक्तियाँ कही गयी हैं। यदि ये देवियाँ कुपित हो जायँ, तो सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका तत्क्षण नाश हो जायगा। कहीं किसी भी समय इन शक्तियोंकी पराजय सम्भव नहीं है॥ ३०—३५ १/२॥

गोमेदनिर्मित प्राकारके आगे वज्रमणि (हीरे)-से निर्मित दस योजन ऊँचाईवाला एक परकोटा है। उस परकोटेमें अनेक गोपुर तथा द्वार बने हुए हैं। वह परकोटा कपाट और सांकलसे बन्द रहता है तथा नये-नये वृक्षोंसे सदा सुशोभित रहता है। उस प्राकारके मध्यभागकी समस्त भूमि हीरायुक्त कही गयी है। भवन, गलियाँ, चौराहे, महामार्ग, आँगन, वृक्षोंके थाले, वृक्ष, सारंग, अनेक बावलियाँ, वापी, तडाग तथा कुएँ—ये सब उसी प्रकार हीरकमय हैं॥ ३६—३९॥

उस प्राकारमें भगवती भुवनेश्वरीकी परिचारिकाएँ रहती हैं। मदसे गर्वित रहनेवाली एक-एक परिचारिका लाखों दासियोंसे सेवित रहती हैं॥ ४०॥

तालवृन्तधराः काश्चिच्चषकाढ्यकराम्बुजाः।
काश्चित्ताम्बूलपात्राणि धारयन्त्योऽतिगर्विताः॥ ४१

काश्चित्तच्छत्रधारिण्यश्चामराणां विधारिकाः।
नानावस्त्रधराः काश्चित्काश्चित्पुष्पकराम्बुजाः॥ ४२

अत्यधिक गर्वित कई परिचारिकाएँ ताड़के पंखे, कई अपने करकमलोंमें मधुपात्र तथा कई अपने हाथमें ताम्बूलपात्र धारण किये रहती हैं। कई परिचारिकाएँ छत्र लिये रहती हैं, कई चामर धारण किये रहती हैं, कुछ अनेक प्रकारके वस्त्र धारण किये रहती हैं और कुछ अपने कमलसदृश हाथोंमें पुष्प लिये स्थित रहती हैं॥ ४१-४२॥

नानादर्शकराः काश्चित्काश्चित्कुङ्कुमलेपनम्।
धारयन्त्यः कज्जलं च सिन्दूरचषकं पराः॥ ४३

काश्चिच्चित्रकनिर्मात्र्यः पादसंवाहने रताः।
काश्चित्तु भूषाकारिण्यो नानाभूषाधराः पराः॥ ४४

पुष्पभूषणनिर्मात्र्यः पुष्पशृङ्गारकारिकाः।
नानाविलासचतुरा बह्व्य एवंविधाः पराः॥ ४५

कुछ परिचारिकाएँ अपने हाथोंमें दर्पण, कुछ कुमकुमका लेप, कुछ काजल और कुछ सिन्दूर-पात्र धारण किये खड़ी रहती हैं। कुछ चित्रकारी बनाने, कुछ चरण दबाने, कुछ भूषण सजाने तथा कुछ भगवतीके भूषणसे पूरित रत्नमय पात्र धारण करनेमें तत्पर रहती हैं। कुछ पुष्पोंके आभूषण बनानेवाली, कुछ पुष्प-शृंगारमें कुशल तथा अनेक प्रकारके विलासमें चतुर इसी तरहकी बहुत-सी युवतियाँ वहाँ विद्यमान रहती हैं॥ ४३—४५॥

निबद्धपरिधानीया युवत्यः सकला अपि।
देवीकृपालेशवशात्तुच्छीकृतजगत्त्रयाः॥ ४६

एता दूत्यः स्मृता देव्यः शृङ्गारमदगर्विताः।
तासां नामानि वक्ष्यामि शृणु मे नृपसत्तम॥ ४७

सुन्दर-सुन्दर परिधान धारण की हुई वे सभी युवतियाँ भगवतीकी लेशमात्र कृपाके प्रभावसे तीनों लोकोंको तुच्छ समझती हैं। शृंगारके मदमें उन्मत्त ये सब देवीकी दूतिकाएँ कही गयी हैं। हे नृपश्रेष्ठ! अब मैं उनके नाम बता रहा हूँ, सुनिये॥ ४६-४७॥

अनङ्गरूपा प्रथमाप्यनङ्गमदना परा।
तृतीया तु ततः प्रोक्ता सुन्दरी मदनातुरा॥ ४८

ततो भुवनवेगा स्यात्तथा भुवनपालिका।
स्यात्सर्वशिशिरानङ्गवदनानङ्गमेखला॥ ४९

विद्युद्दामसमानाङ्ग्यः क्वणत्काञ्चीगुणान्विताः।
रणन्मञ्जीरचरणा बहिरन्तरितस्ततः॥ ५०

धावमानास्तु शोभन्ते सर्वा विद्युल्लतोपमाः।
कुशलाः सर्वकार्येषु वेत्रहस्ताः समन्ततः॥ ५१

अष्टदिक्षु तथैतासां प्राकाराद् बहिरेव च।
सदनानि विराजन्ते नानावाहनहेतिभिः॥ ५२

पहली अनंगरूपा, दूसरी अनंगमदना और तीसरी सुन्दर रूपवाली मदनातुरा कही गयी है। तत्पश्चात् भुवनवेगा, भुवनपालिका, सर्वशिशिरा, अनंगवदना और अनंगमेखला हैं। इनके सभी अंग विद्युत्की कान्तिके समान प्रकाशमान रहते हैं, इनके कटिभाग कई लड़ियोंवाली ध्वनिमय किंकिणियोंसे सुशोभित हैं और इनके चरण ध्वनि करते हुए नूपुरसे सुशोभित हैं। ये सभी दूतियाँ वेगपूर्वक बाहर तथा भीतर जाते समय विद्युत्की लताके सदृश सुशोभित होती हैं। हाथमें बेंत लेकर सभी ओर भ्रमण करनेवाली ये दूतियाँ सभी कार्योंमें दक्ष हैं। इस प्राकारसे बाहर आठों दिशाओंमें इन दूतियोंके निवासहेतु अनेकविध वाहनों तथा शस्त्रोंसे सम्पन्न भवन विद्यमान हैं॥ ४८—५२॥

वज्रसालादग्रभागे सालो वैदूर्यनिर्मितः।
दशयोजनतुङ्गोऽसौ गोपुरद्वारभूषितः॥ ५३

वज्रमणि-निर्मित प्राकारसे आगे वैदूर्यमणिसे बना हुआ एक प्राकार है। अनेक गोपुरों तथा द्वारोंसे सुशोभित वह प्राकार दस योजन ऊँचाईवाला है॥ ५३॥

वैदूर्यभूमिः सर्वापि गृहाणि विविधानि च।
वीथ्यो रथ्या महामार्गाः सर्वे वैदूर्यनिर्मिताः॥ ५४

वापीकूपतडागाश्च स्रवन्तीनां तटानि च।
बालुका चैव सर्वापि वैदूर्यमणिनिर्मिता॥ ५५

तत्राष्टदिक्षु परितो ब्राह्म्यादीनां च मण्डलम्।
निजैर्गणैः परिवृतं भ्राजते नृपसत्तम॥ ५६

प्रतिब्रह्माण्डमातॄणां ताः समष्टय ईरिताः।
ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा॥ ५७

वाराही च तथेन्द्राणी चामुण्डाः सप्त मातरः।
अष्टमी तु महालक्ष्मीर्नाम्ना प्रोक्तास्तु मातरः॥ ५८

ब्रह्मरुद्रादिदेवानां समाकारास्तु ताः स्मृताः।
जगत्कल्याणकारिण्यः स्वस्वसेनासमावृताः॥ ५९

तत्सालस्य चतुर्द्वार्षु वाहनानि महेशितुः।
सज्जानि नृपते सन्ति सालङ्काराणि नित्यशः॥ ६०

दन्तिनः कोटिशो वाहाः कोटिशः शिबिकास्तथा।
हंसाः सिंहाश्च गरुडा मयूरा वृषभास्तथा॥ ६१

तैर्युक्ताः स्यन्दनास्तद्वत्कोटिशो नृपनन्दन।
पार्ष्णिग्राहसमायुक्ता ध्वजैराकाशचुम्बिनः॥ ६२

कोटिशस्तु विमानानि नानाचिह्नान्वितानि च।
नानावादित्रयुक्तानि महाध्वजयुतानि च॥ ६३

वैदूर्यमणिसालस्याप्यग्रे सालः परः स्मृतः।
दशयोजनतुङ्गोऽसाविन्द्रनीलाश्मनिर्मितः॥ ६४

तन्मध्यभूस्तथा वीथ्यो महामार्गा गृहाणि च।
वापीकूपतडागाश्च सर्वे तन्मणिनिर्मिताः॥ ६५

तत्र पद्मं तु सम्प्रोक्तं बहुयोजनविस्तृतम्।
षोडशारं दीप्यमानं सुदर्शनमिवापरम्॥ ६६

तत्र षोडशशक्तीनां स्थानानि विविधानि च।
सर्वोपस्करयुक्तानि समृद्धानि वसन्ति हि॥ ६७

वहाँकी सम्पूर्ण भूमि वैदूर्यमणियुक्त है। वहाँके अनेक प्रकारके भवन, गलियाँ, चौराहे तथा महामार्ग—ये सब वैदूर्यमणिसे निर्मित हैं। इस परकोटेकी बावलियाँ, कुएँ, तडाग, नदियोंके तट और बालू—ये सब वैदूर्यमणिसे निर्मित हैं॥ ५४-५५॥

हे नृपश्रेष्ठ! उस प्राकारकी आठों दिशाओंमें सब ओर अपने गणोंसे सदा घिरी रहनेवाली ब्राह्मी आदि देवियोंका मण्डल सुशोभित रहता है। वे प्रत्येक ब्रह्माण्डके मातृकाओंकी समष्टियाँ कही गयी हैं। ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी और चामुण्डा—ये सात मातृकाएँ और आठवीं महालक्ष्मी नामवाली—इस प्रकार ये आठ मातृकाएँ कही गयी हैं॥ ५६—५८॥

जगत्का कल्याण करनेवाली तथा अपनी-अपनी सेनाओंसे घिरी हुई वे मातृकाएँ ब्रह्मा, रुद्र आदि देवताओंके समान आकारवाली कही गयी हैं॥ ५९॥

हे राजन्! उस परकोटेके चारों द्वारोंपर महेश्वरी भगवतीके वाहन अलंकारोंसे सुसज्जित होकर सर्वदा विराजमान रहते हैं॥ ६०॥

उनके वाहनके रूपमें करोड़ों हाथी, करोड़ों घोड़े, पालकियाँ, हंस, सिंह, गरुड, मयूर और वृषभ हैं। हे नृपनन्दन! उन वाहनोंसे युक्त करोड़ों रथ वहाँ विद्यमान रहते हैं, जिनपर सेनापति विराजमान रहते हैं और आकाशतक पहुँचनेवाली पताकाएँ सुशोभित रहती हैं॥ ६१-६२॥

अनेकविध वाद्य-यन्त्रोंसे युक्त, विशाल ध्वजाओंसे सुशोभित और अनेक प्रकारके चिह्नोंसे अंकित करोड़ों विमान उस प्राकारमें स्थित रहते हैं॥ ६३॥

वैदूर्यमणिमय प्राकारके भी आगे इन्द्रनीलमणि-निर्मित दस योजन ऊँचा एक दूसरा प्राकार कहा गया है॥ ६४॥

उस प्राकारके मध्यकी भूमि, गलियाँ, राजमार्ग, भवन, वापी, कुएँ और सरोवर—ये सब उसी मणिसे बने हुए हैं॥ ६५॥

वहाँपर दूसरे सुदर्शन चक्रकी भाँति प्रतीत होनेवाला, अनेक योजन विस्तृत तथा सोलह दलोंवाला एक दीप्तिमान् कमल विद्यमान कहा गया है। उसपर सोलह शक्तियोंके लिये सभी सामग्रियों तथा समृद्धियोंसे सम्पन्न विविध स्थान बने हुए हैं॥ ६६-६७॥

तासां नामानि वक्ष्यामि शृणु मे नृपसत्तम।
कराली विकराली च तथोमा च सरस्वती॥ ६८

श्रीदुर्गोषा तथा लक्ष्मीः श्रुतिश्चैव स्मृतिर्धृतिः।
श्रद्धा मेधा मतिः कान्तिरार्या षोडश शक्तयः॥ ६९

नीलजीमूतसंकाशाः करवालकराम्बुजाः।
समाः खेटकधारिण्यो युद्धोपक्रान्तमानसाः॥ ७०

सेनान्यः सकला एताः श्रीदेव्या जगदीशितुः।
प्रतिब्रह्माण्डसंस्थानां शक्तीनां नायिकाः स्मृताः॥ ७१

ब्रह्माण्डक्षोभकारिण्यो देवीशक्त्युपबृंहिताः।
नानारथसमारूढा नानाशक्तिभिरन्विताः॥ ७२

एतत्पराक्रमं वक्तुं सहस्रास्योऽपि न क्षमः।
इन्द्रनीलमहासालादग्रे तु बहुविस्तृतः॥ ७३

मुक्ताप्राकार उदितो दशयोजनदैर्घ्यवान्।
मध्यभूः पूर्ववत्प्रोक्ता तन्मध्येऽष्टदलाम्बुजम्॥ ७४

मुक्तामणिगणाकीर्णं विस्तृतं तु सकेसरम्।
तत्र देवीसमाकारा देव्यायुधधराः सदा॥ ७५

सम्प्रोक्ता अष्टमन्त्रिण्यो जगद्वार्ताप्रबोधिकाः।
देवीसमानभोगास्ता इङ्गितज्ञास्तु पण्डिताः॥ ७६

कुशलाः सर्वकार्येषु स्वामिकार्यपरायणाः।
देव्यभिप्रायबोध्यस्ताश्चतुरा अतिसुन्दराः॥ ७७

नानाशक्तिसमायुक्ताः प्रतिब्रह्माण्डवर्तिनाम्।
प्राणिनां ताः समाचारं ज्ञानशक्त्या विदन्ति च॥ ७८

तासां नामानि वक्ष्यामि मत्तः शृणु नृपोत्तम।
अनङ्गकुसुमा प्रोक्ताप्यनङ्गकुसुमातुरा॥ ७९

हे नृपश्रेष्ठ! अब मैं उन शक्तियोंके नामोंका वर्णन करूँगा, सुनिये—कराली, विकराली, उमा, सरस्वती, श्री, दुर्गा, उषा, लक्ष्मी, श्रुति, स्मृति, धृति, श्रद्धा, मेधा, मति, कान्ति और आर्या—ये सोलह शक्तियाँ हैं॥ ६८-६९॥

अपने करकमलोंमें ढाल तथा तलवार धारण किये हुए, नीले मेघके समान वर्णवाली तथा अपने मनमें सदा युद्धकी लालसा रखनेवाली ये सभी शक्तियाँ जगदीश्वरी श्रीदेवीकी सेनानी हैं। ये प्रत्येक ब्रह्माण्डमें स्थित रहनेवाली शक्तियोंकी नायिकाएँ कही गयी हैं॥ ७०-७१॥

अनेक शक्तियोंको साथ लेकर भाँति-भाँतिके रथोंपर विराजमान ये शक्तियाँ भगवती जगदम्बाकी शक्तिसे सम्पन्न होनेके कारण सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको क्षुब्ध करनेमें समर्थ हैं। हजार मुखवाले शेषनाग भी इनके पराक्रमका वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हैं॥ ७२ १/२॥

उस इन्द्रनीलमणिके विशाल प्राकारके आगे दस योजनकी ऊँचाईतक उठा हुआ एक अतिविस्तीर्ण तथा प्रकाशमान मोतीका प्राकार है। इसके मध्यकी भूमि भी मोतीकी बनी हुई कही गयी है। उसके मध्यमें मुक्तामणियोंसे निर्मित तथा केसरयुक्त आठ दलोंवाला एक विशाल कमल विद्यमान है। उन आठों दलोंपर भगवती जगदम्बाके ही समान आकारवाली देवियाँ अपने हाथोंमें आयुध धारण किये सदा विराजमान रहती हैं। जगत्‌का समाचार सूचित करनेवाली ये आठ देवियाँ भगवतीकी मन्त्रिणी कही गयी हैं॥ ७३—७५ १/२॥

वे देवियाँ भगवतीके समान भोगवाली, उनके संकेतको समझनेवाली, बुद्धिसम्पन्न, सभी कार्योंमें कुशल, अपनी स्वामिनीके कार्य-सम्पादनमें तत्पर, भगवतीके अभिप्रायको जाननेवाली, चतुर तथा अत्यन्त सुन्दर हैं॥ ७६-७७॥

विविध शक्तियोंसे सम्पन्न वे देवियाँ अपनी ज्ञान-शक्तिके द्वारा प्रत्येक ब्रह्माण्डमें रहनेवाले प्राणियोंका समाचार जान लेती हैं। हे नृपश्रेष्ठ! मैं उनके नाम बता रहा हूँ, आप सुनिये—अनंगकुसुमा, अनंगकुसुमातुरा, अनंगमदना, अनंगमदनातुरा, भुवन-

अनङ्गमदना तद्वदनङ्गमदनातुरा।
भुवनपाला गगनवेगा चैव ततः परम्॥ ८०

शशिरेखा च गगनरेखा चैव ततः परम्।
पाशाङ्कुशवराभीतिधरा अरुणविग्रहाः॥ ८१

विश्वसम्बन्धिनीं वार्तां बोधयन्ति प्रतिक्षणम्।
मुक्तासालादग्रभागे महामारकतोऽपरः॥ ८२

सालोत्तमः समुद्दिष्टो दशयोजनदैर्घ्यवान्।
नानासौभाग्यसंयुक्तो नानाभोगसमन्वितः॥ ८३

मध्यभूस्तादृशी प्रोक्ता सदनानि तथैव च।
षट्कोणमत्र विस्तीर्णं कोणस्था देवताः शृणु॥ ८४

पूर्वकोणे चतुर्वक्त्रो गायत्रीसहितो विधिः।
कुण्डिकाक्षगुणाभीतिदण्डायुधधरः परः॥ ८५

तदायुधधरा देवी गायत्री परदेवता।
वेदाः सर्वे मूर्तिमन्तः शास्त्राणि विविधानि च॥ ८६

स्मृतयश्च पुराणानि मूर्तिमन्ति वसन्ति हि।
ये ब्रह्मविग्रहाः सन्ति गायत्रीविग्रहाश्च ये॥ ८७

व्याहृतीनां विग्रहाश्च ते नित्यं तत्र सन्ति हि।
रक्षःकोणे शङ्खचक्रगदाम्बुजकराम्बुजा॥ ८८

सावित्री वर्तते तत्र महाविष्णुश्च तादृशः।
ये विष्णुविग्रहाः सन्ति मत्स्यकूर्मादयोऽखिलाः॥ ८९

सावित्रीविग्रहा ये च ते सर्वे तत्र सन्ति हि।
वायुकोणे परश्वक्षमालाभयवरान्वितः॥ ९०

महारुद्रो वर्ततेऽत्र सरस्वत्यपि तादृशी।
ये ये तु रुद्रभेदाः स्युर्दक्षिणास्यादयो नृप॥ ९१

गौरीभेदाश्च ये सर्वे ते तत्र निवसन्ति हि।
चतुःषष्ट्यागमा ये च ये चान्येऽप्यागमाः स्मृताः॥ ९२

ते सर्वे मूर्तिमन्तश्च तत्रैव निवसन्ति हि।

पाला, गगनवेगा, शशिरेखा और गगनरेखा। अपने हाथोंमें पाश, अंकुश, वर तथा अभय मुद्राएँ धारण किये हुए लाल विग्रहवाली वे देवियाँ विश्वसे सम्बन्धित सभी बातोंसे भगवतीको प्रतिक्षण अवगत कराती रहती हैं॥ ७८—८१½ ॥

इस मुक्ता-प्राकारके आगे महामरकतमणिसे निर्मित एक दूसरा श्रेष्ठ प्राकार कहा गया है। वह दस योजन लम्बा और अनेकविध सौभाग्य तथा भोगवाली सामग्रियोंसे परिपूर्ण है॥ ८२-८३॥

इसके मध्यकी भूमि भी वैसी ही कही गयी है अर्थात् मरकत-मणिके सदृश है और वहाँके भवन भी उसी मणिसे निर्मित हैं। उस प्राकारमें भगवतीका एक विशाल तथा छः कोणोंवाला यन्त्र है। अब आप उन कोणोंपर विराजमान रहनेवाले देवताओंके विषयमें सुनिये॥ ८४॥

इसके पूर्वकोणमें कमण्डलु, अक्षसूत्र, अभयमुद्रा, दण्ड तथा आयुध धारण करनेवाले चतुर्मुख श्रेष्ठ ब्रह्माजी भगवती गायत्रीके साथ विराजमान रहते हैं। परादेवता भगवती गायत्री भी उन्हीं आयुधोंको धारण किये रहती हैं। समस्त वेद, विविध शास्त्र, स्मृतियाँ तथा पुराण मूर्तिमान् होकर वहाँ निवास करते हैं। ब्रह्माके जो विग्रह हैं, गायत्रीके जो विग्रह हैं और व्याहृतियोंके जो विग्रह हैं—वे सभी वहाँ नित्य निवास करते हैं॥ ८५—८७½ ॥

नैर्ऋत्यकोणमें भगवती सावित्री अपने करकमलमें शंख, चक्र, गदा और कमल धारण किये विराजमान हैं। महाविष्णु भी वहाँपर उसी रूपमें विराजमान रहते हैं। मत्स्य तथा कूर्म आदि जो महाविष्णुके विग्रह हैं और जो भगवती सावित्रीके विग्रह हैं—वे सब वहाँ निवास करते हैं॥ ८८-८९½ ॥

वायुकोणमें परशु, अक्षमाला, अभय और वरमुद्रा धारण करनेवाले महारुद्र विराजमान हैं और सरस्वती भी उसी रूपमें वहाँ रहती हैं। हे राजन्! भगवान् रुद्रके दक्षिणास्य आदि जो-जो रूप हैं और इसी प्रकार भगवती गौरीके जो-जो रूप हैं—वे सभी वहाँ निवास करते हैं। चौंसठ प्रकारके जो आगम तथा इसके अतिरिक्त भी जो अन्य आगमशास्त्र कहे गये हैं—वे सभी मूर्तिमान् होकर वहाँ विराजमान रहते हैं॥ ९०—९२½ ॥

अग्निकोणे रत्नकुम्भं तथा मणिकरण्डकम्॥ ९३

दधानो निजहस्ताभ्यां कुबेरो धनदायकः।
नानावीथीसमायुक्तो महालक्ष्मीसमन्वितः॥ ९४

देव्या निधिपतिस्त्वास्ते स्वगुणैः परिवेष्टितः।
वारुणे तु महाकोणे मदनो रतिसंयुतः॥ ९५

पाशाङ्कुशधनुर्बाणधरो नित्यं विराजते।
शृङ्गारा मूर्तिमन्तस्तु तत्र सन्निहिताः सदा॥ ९६

ईशानकोणे विघ्नेशो नित्यं पुष्टिसमन्वितः।
पाशाङ्कुशधरो वीरो विघ्नहर्ता विराजते॥ ९७

विभूतयो गणेशस्य या याः सन्ति नृपोत्तम।
ताः सर्वा निवसन्त्यत्र महैश्वर्यसमन्विताः॥ ९८

प्रतिब्रह्माण्डसंस्थानां ब्रह्मादीनां समष्टयः।
एते ब्रह्मादयः प्रोक्ताः सेवन्ते जगदीश्वरीम्॥ ९९

महामारकतस्याग्रे शतयोजनदैर्घ्यवान्।
प्रवालसालोऽस्त्यपरः कुङ्कुमारुणविग्रहः॥ १००

मध्यभूस्तादृशी प्रोक्ता सदनानि च पूर्ववत्।
तन्मध्ये पञ्चभूतानां स्वामिन्यः पञ्च सन्ति च॥ १०१

हृल्लेखा गगना रक्ता चतुर्थी तु करालिका।
महोच्छुष्मा पञ्चमी च पञ्चभूतसमप्रभाः॥ १०२

पाशाङ्कुशवराभीतिधारिण्योऽमितभूषणाः।
देवीसमानवेषाढ्या नवयौवनगर्विताः॥ १०३

प्रवालसालादग्रे तु नवरत्नविनिर्मितः।
बहुयोजनविस्तीर्णो महासालोऽस्ति भूमिप॥ १०४

तत्र चाम्नायदेवीनां सदनानि बहून्यपि।
नवरत्नमयान्येव तडागाश्च सरांसि च॥ १०५

अग्निकोणमें धन प्रदान करनेवाले कुबेर अपने दोनों हाथोंमें रत्नयुक्त कुम्भ तथा मणिमय करण्डक (पात्र) धारण किये हुए विराजमान हैं। अनेक प्रकारकी वीथियोंसे युक्त और अपने सद्गुणोंसे सम्पन्न देवीकी निधिके स्वामी कुबेर महालक्ष्मीके साथ वहाँ विराजमान रहते हैं॥ ९३-९४½ ॥

पश्चिमके महान् वरुणकोणमें अपनी भुजाओंमें पाश, अंकुश, धनुष और बाण धारण करनेवाले कामदेव रतिके साथ निवास करते हैं। सभी प्रकारके शृंगार मूर्तिमान् होकर वहाँ सदा विराजमान रहते हैं॥ ९५-९६ ॥

ईशानकोणमें विघ्नको दूर करनेवाले तथा पराक्रमी विघ्नेश्वर गणेशजी अपने हाथोंमें पाश तथा अंकुश धारण किये हुए देवी पुष्टिके साथ सदा विराजमान रहते हैं। हे नृपश्रेष्ठ! गणेशजीकी जो-जो विभूतियाँ हैं, वे सभी महान् ऐश्वर्योंसे सम्पन्न होकर वहाँ निवास करती हैं॥ ९७-९८ ॥

प्रत्येक ब्रह्माण्डमें रहनेवाले ब्रह्मा आदिकी समष्टियाँ ब्रह्मा आदि नामसे कही गयी हैं—ये सभी भगवती जगदीश्वरीकी सेवामें संलग्न रहती हैं॥ ९९ ॥

इस महामरकतमणि-निर्मित प्राकारके आगे कुमकुमके समान अरुण विग्रहवाला तथा सौ योजन लम्बाईवाला एक दूसरा प्रवालमणिका प्राकार है। उसके मध्यकी भूमि तथा भवन भी उसी प्रकारके कहे गये हैं। उसके मध्यभागमें पंचभूतोंकी पाँच स्वामिनियाँ निवास करती हैं। हृल्लेखा, गगना, रक्ता, चौथी करालिका और पाँचवीं महोच्छुष्मा नामक ये शक्तियाँ पंचभूतोंके समान ही प्रभावाली हैं। पाश, अंकुश, वर तथा अभय मुद्रा धारण करनेवाली ये शक्तियाँ अनेक प्रकारके भूषणोंसे अलंकृत, नूतन यौवनसे गर्वित और भगवती जगदम्बाके सदृश वेषभूषासे मण्डित हैं॥ १००—१०३ ॥

हे राजन्! इस प्रवालमय प्राकारके आगे नौ रत्नोंसे बना हुआ अनेक योजन विस्तृत एक विशाल प्राकार है। आम्नायमें वर्णित देवियोंके बहुतसे भवन, तडाग तथा सरोवर—वे सभी उन्हीं नौ रत्नोंसे निर्मित हैं। हे भूपाल! श्रीदेवीके जो-जो अवतार हैं, वे सब

श्रीदेव्या येऽवतारा: स्युस्ते तत्र निवसन्ति हि।
महाविद्या महाभेदा: सन्ति तत्रैव भूमिप॥ १०६
निजावरणदेवीभिर्निजभूषणवाहनै: ।
सर्वदेव्यो विराजन्ते कोटिसूर्यसमप्रभा:॥ १०७
सप्तकोटिमहामन्त्रदेवता: सन्ति तत्र हि।
नवरत्नमयादग्रे चिन्तामणिगृहं महत्॥ १०८
तत्रत्यं वस्तुमात्रं तु चिन्तामणिविनिर्मितम्।
सूर्योद्गारोपलैस्तद्वच्चन्द्रोद्गारोपलैस्तथा ॥ १०९
विद्युत्प्रभोपलै: स्तम्भा: कल्पितास्तु सहस्रश:।
येषां प्रभाभिरन्त:स्थं वस्तु किञ्चिन्न दृश्यते॥ ११०

वहाँ निवास करते हैं और महाविद्याके सभी रूप वहाँ विद्यमान हैं। करोड़ों सूर्योंके समान प्रभासे युक्त सभी देवियाँ अपनी-अपनी आवरणशक्तियों, अपने भूषणों तथा वाहनोंके साथ वहाँ विराजमान रहती हैं। सात करोड़ महामन्त्रोंके देवता भी वहाँ रहते हैं॥ १०४—१०७½ ॥

इस नौ रत्नमय प्राकारके आगे चिन्तामणिसे बना हुआ एक विशाल भवन है। वहाँकी प्रत्येक वस्तु चिन्तामणिसे निर्मित है। उसमें सूर्य, चन्द्रमा और विद्युत्के समान दीप्तिवाले पत्थरोंसे निर्मित हजारों स्तम्भ हैं, जिनकी तीव्र प्रभाके कारण उस भवनके अन्दर स्थित कोई भी वस्तु दृष्टिगोचर नहीं हो पाती है॥ १०८—११०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां द्वादशस्कन्धे पद्मरागादिमणिविनिर्मितप्राकारवर्णनं नामैकादशोऽध्याय:॥ ११॥



अथ द्वादशोऽध्याय:

भगवती जगदम्बाके मण्डपका वर्णन तथा मणिद्वीपकी महिमा

व्यास उवाच

तदेव देवीसदनं मध्यभागे विराजते।
सहस्रस्तम्भसंयुक्ताश्चत्वारस्तेषु मण्डपा:॥ १
शृङ्गारमण्डपश्चैको मुक्तिमण्डप एव च।
ज्ञानमण्डपसंज्ञस्तु तृतीय: परिकीर्तित:॥ २
एकान्तमण्डपश्चैव चतुर्थ: परिकीर्तित:।
नानावितानसंयुक्ता नानाधूपैस्तु धूपिता:॥ ३
कोटिसूर्यसमा: कान्त्या भ्राजन्ते मण्डपा: शुभा:।
तन्मण्डपानां परित: काश्मीरवनिका स्मृता॥ ४
मल्लिकाकुन्दवनिका यत्र पुष्कलका: स्थिता:।
असंख्याता मृगमदै: पूरितास्तत्स्रवा नृप॥ ५
महापद्माटवी तद्वद्रत्नसोपाननिर्मिता।
सुधारसेन सम्पूर्णा गुञ्जन्मत्तमधुव्रता॥ ६
हंसकारण्डवाकीर्णा गन्धपूरितदिक्तटा।
वनिकानां सुगन्धैस्तु मणिद्वीपं सुवासितम्॥ ७

व्यासजी बोले—त्रिकोणके मध्यभागमें भगवती जगदम्बाका वही चिन्तामणि नामक भवन विराजमान है। उसमें हजार स्तम्भोंवाले चार मण्डप विद्यमान हैं॥ १॥

उनमें पहला शृंगारमण्डप, दूसरा मुक्तिमण्डप, तीसरा ज्ञानमण्डप और चौथा एकान्तमण्डप कहा गया है॥ २½ ॥

अनेक प्रकारके वितानोंसे युक्त तथा नानाविध धूपोंसे सुवासित ये सुन्दर मण्डप कान्तिमें करोड़ों सूर्योंके समान दीप्तिमान् रहते हैं॥ ३½ ॥

हे राजन्! उन मण्डपोंके चारों ओर केसर, मल्लिका और कुन्दकी वाटिकाएँ बतायी गयी हैं, जिनमें मृगमदोंसे परिपूर्ण तथा मदस्रावी असंख्य गन्धमृग स्थित हैं। उसी प्रकार मण्डपोंके चारों ओर रत्नसे निर्मित सोपानोंवाली महापद्माटवी है। वह अमृतरससे परिपूर्ण, गुंजार करते हुए मतवाले भौरोंसे युक्त, कारण्डवों तथा हंसोंसे सदा सुशोभित और चारों ओरसे सुगन्धसे परिपूर्ण तटवाली है। इस प्रकार वह मणिद्वीप इन वाटिकाओंकी सुगन्धोंसे सदा सुवासित रहता है॥ ४—७॥

शृङ्गारमण्डपे देव्यो गायन्ति विविधैः स्वरैः।
सभासदो देववरा मध्ये श्रीजगदम्बिका॥ ८

मुक्तिमण्डपमध्ये तु मोचयत्यनिशं शिवा।
ज्ञानोपदेशं कुरुते तृतीये नृप मण्डपे॥ ९

चतुर्थमण्डपे चैव जगद्रक्षाविचिन्तनम्।
मन्त्रिणीसहिता नित्यं करोति जगदम्बिका॥ १०

चिन्तामणिगृहे राजञ्छक्तितत्त्वात्मकैः परैः।
सोपानैर्दशभिर्युक्तो मञ्चकोऽप्यधिराजते॥ ११

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः।
एते मञ्चखुराः प्रोक्ताः फलकस्तु सदाशिवः॥ १२

तस्योपरि महादेवो भुवनेशो विराजते।
या देवी निजलीलार्थं द्विधाभूता बभूव ह॥ १३

सृष्ट्यादौ तु स एवायं तदर्धाङ्गो महेश्वरः।
कन्दर्पदर्पनाशोद्यत्कोटिकन्दर्पसुन्दरः॥ १४

पञ्चवक्त्रस्त्रिनेत्रश्च मणिभूषणभूषितः।
हरिणाभीतिपरशून् वरं च निजबाहुभिः॥ १५

दधानः षोडशाब्दोऽसौ देवः सर्वेश्वरो महान्।

कोटिसूर्यप्रतीकाशश्चन्द्रकोटिसुशीतलः॥ १६

शुद्धस्फटिकसंकाशस्त्रिनेत्रः शीतलद्युतिः।
वामाङ्के सन्निषण्णास्य देवी श्रीभुवनेश्वरी॥ १७

नवरत्नगणाकीर्णकाञ्चीदामविराजिता।
तप्तकाञ्चनसन्नद्धवैदूर्याङ्गदभूषणा॥ १८

कनच्छ्रीचक्रताटङ्कविटङ्कवदनाम्बुजा।
ललाटकान्तिविभवविजितार्धसुधाकरा॥ १९

शृंगारमण्डपके मध्यभागमें विराजमान जगदम्बिकाके चारों ओर सभासद्के रूपमें श्रेष्ठ देवगण विद्यमान रहते हैं और वहाँ देवियाँ नानाविध स्वरोंमें सदा गाती रहती हैं। मुक्तिमण्डपके मध्यमें विराजमान होकर कल्याणमयी भगवती जगदम्बा भक्तोंको सदा मुक्ति प्रदान करती रहती हैं और हे राजन्! तीसरे ज्ञानमण्डपमें विराजमान होकर वे ज्ञानका उपदेश करती हैं। एकान्तमण्डप नामक चौथे मण्डपमें अपनी मन्त्रिणियोंके साथ भगवती जगत्की रक्षाके विषयमें नित्य विचार-विमर्श किया करती हैं॥ ८—१०॥

हे राजन्! चिन्तामणिगृहमें भगवतीके शक्ति-तत्त्वरूपी दस श्रेष्ठ सोपानोंसे युक्त उनका मंच अत्यधिक सुशोभित होता है॥ ११॥

ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और सदाशिव ईश्वर—ये उस मंचके पाये कहे गये हैं। सदाशिव मंचके फलक हैं। उसके ऊपर भुवनेश्वर महादेव विराजमान हैं॥ १२½॥

सृष्टिके आदिमें अपनी लीला करनेके लिये जो भगवती स्वयं दो रूपोंमें प्रकट हुई थीं, उन्हींके अर्धांगस्वरूप ये भगवान् महेश्वर हैं॥ १३½॥

वे कामदेवके अभिमानका नाश करनेमें परम कुशल, करोड़ों कामदेवके समान सुन्दर, पाँच मुख तथा तीन नेत्रोंसे युक्त और मणिके भूषणोंसे विभूषित हैं॥ १४½॥

सदा सोलह वर्षके प्रतीत होनेवाले वे सर्वेश्वर महादेव अपनी भुजाओंमें हरिण, अभयमुद्रा, परशु तथा वरमुद्रा धारण किये हुए हैं॥ १५½॥

वे त्रिनेत्र महादेव करोड़ों सूर्यके समान प्रकाशमान, करोड़ों चन्द्रमाके समान शीतल, शुद्ध स्फटिकमणिके समान आभावाले तथा शीतल कान्तिवाले हैं॥ १६½॥

इनके वाम अंकमें देवी श्रीभुवनेश्वरी विराजमान हैं, वे नौ प्रकारके रत्नोंसे जटित सुवर्णकी करधनीसे सुशोभित हैं और तप्त सुवर्ण तथा वैदूर्यमणिसे निर्मित बाजूबन्दसे भूषित हैं॥ १७-१८॥

कमलके समान मुखवाली भगवतीके कानोंमें श्रीचक्रकी आकृतिके समान सुवर्णका कर्णफूल सुशोभित हो रहा है। उनके ललाटकी कान्तिके वैभवने अर्धचन्द्रके सौन्दर्यको जीत लिया है॥ १९॥

बिम्बकान्तितिरस्कारिरदच्छदविराजिता ।
लसत्कुङ्कुमकस्तूरीतिलकोद्भासितानना ॥ २०

वे बिम्बाफलकी कान्तिको तिरस्कृत करनेवाले होठोंसे सुशोभित हैं। कुमकुम-कस्तूरीके तिलकसे अनुलिप्त उनका मुखमण्डल अति प्रकाशित है॥ २०॥

दिव्यचूडामणिस्फारचञ्चच्चन्द्रकसूर्यका ।
उद्यत्कविसमस्वच्छनासाभरणभासुरा ॥ २१

कान्तियुक्त चन्द्रमा तथा सूर्यके समान दिव्य तथा उज्ज्वल रत्नमय चूडामणि उनके मस्तकपर विराजमान है। उदयकालीन शुक्रनक्षत्रके सदृश स्वच्छ नासिकाभूषणसे वे सुशोभित हैं॥ २१॥

चिन्ताकलम्बितस्वच्छमुक्तागुच्छविराजिता ।
पाटीरपङ्ककर्पूरकुङ्कुमालङ्कृतस्तनी ॥ २२

चिन्ताक नामक कण्ठभूषणमें लटकते हुए मोतीके गुच्छसे वे सुशोभित हो रही हैं। चन्दन, कपूर और कुमकुमके अनुलेपसे उनका वक्षःस्थल अलंकृत है॥ २२॥

विचित्रविविधाकल्पा कम्बुसंकाशकन्धरा।
दाडिमीफलबीजाभदन्तपङ्क्तिविराजिता ॥ २३

वे अनेक रूपोंसे सुसज्जित, शंखके समान ग्रीवावाली तथा अनारके दानोंके सदृश दन्तपंक्तिसे सुशोभित हो रही हैं॥ २३॥

अनर्घ्यरत्नघटितमुकुटाञ्चितमस्तका ।
मत्तालिमालाविलसदलकाढ्यमुखाम्बुजा ॥ २४

वे अपने मस्तकपर बहुमूल्य रत्नोंसे निर्मित मुकुट धारण किये रहती हैं। उनके मुखकमल-पर मतवाले भ्रमरोंकी पंक्तिके सदृश अलकावली सुशोभित है॥ २४॥

कलङ्ककार्श्यनिर्मुक्तशरच्चन्द्रनिभानना ।
जाह्नवीसलिलावर्तशोभिनाभिविभूषिता ॥ २५

वे कलंककी कालिमासे रहित शारदीय चन्द्रमाके सदृश मुखमण्डलवाली हैं और गंगाके जलावर्त (भँवर)-तुल्य सुन्दर नाभिसे विभूषित हैं॥ २५॥

माणिक्यशकलाबद्धमुद्रिकाङ्गुलिभूषिता ।
पुण्डरीकदलाकारनयनत्रयसुन्दरी ॥ २६

वे माणिक्यके दानोंसे जटित मुद्रिकासे युक्त अँगुलियोंसे सुशोभित हैं और कमलदलकी आकृतिवाले तीन नेत्रोंसे वे अत्यन्त सौन्दर्यमयी प्रतीत होती हैं॥ २६॥

कल्पिताच्छमहारागपद्मरागोज्ज्वलप्रभा ।
रत्नकिङ्किणिकायुक्तरत्नकङ्कणशोभिता ॥ २७

वे शानपर चढ़ाकर अतीव स्वच्छ किये गये महाराग तथा पद्मरागमणिके सदृश उज्ज्वल कान्तिसे सम्पन्न हैं और रत्नमय घुँघरूवाली करधनी तथा रत्ननिर्मित कंकणसे सुशोभित हैं॥ २७॥

मणिमुक्तासरापारलसत्पदकसन्ततिः ।
रत्नाङ्गुलिप्रविततप्रभाजाललसत्करा ॥ २८

उनके चरणकमल मणियों और मोतियोंकी मालाओंमें विराजमान रहनेवाली अपार शोभासे सम्पन्न हैं। वे रत्नोंसे युक्त अँगुलियोंसे फैलते हुए प्रभाजालसे सुशोभित हाथवाली हैं॥ २८॥

कञ्चुकीगुम्फितापारनानारत्नततिद्युतिः ।
मल्लिकामोदिधम्मिल्लमल्लिकालिसरावृता ॥ २९

उनकी कंचुकीमें गुथे हुए नानाविध रत्नोंकी पंक्तियोंसे अनुपम प्रकाश निर्गत हो रहा है। मल्लिकाकी सुगन्धिसे पूर्ण केशके जूड़ेपर स्थित मल्लिकाकी मालापर मँडरानेवाले भौंरोंके समूहसे देवी सुशोभित हो रही हैं॥ २९॥

सुवृत्तनिविडोत्तुङ्गकुचभारालसा शिवा।
वरपाशाङ्कुशाभीतिलसद्बाहुचतुष्टया ॥ ३०

सर्वशृङ्गारवेषाढ्या सुकुमाराङ्गवल्लरी।
सौन्दर्यधारासर्वस्वा निर्व्याजकरुणामयी॥ ३१

निजसंलापमाधुर्यविनिर्भर्त्सितकच्छपी।
कोटिकोटिरवीन्दूनां कान्तिं या बिभ्रती परा॥ ३२

नानासखीभिर्दासीभिस्तथा देवाङ्गनादिभिः।
सर्वाभिर्देवताभिस्तु समन्तात्परिवेष्टिता॥ ३३

इच्छाशक्त्या ज्ञानशक्त्या क्रियाशक्त्या समन्विता।
लज्जा तुष्टिस्तथा पुष्टिः कीर्तिः कान्तिः क्षमा दया॥ ३४

बुद्धिर्मेधा स्मृतिर्लक्ष्मीर्मूर्तिमत्योऽङ्गनाः स्मृताः।
जया च विजया चैवाप्यजिता चापराजिता॥ ३५

नित्या विलासिनी दोग्ध्री त्वघोरा मङ्गला नव।
पीठशक्तय एतास्तु सेवन्ते यां पराम्बिकाम्॥ ३६

यस्यास्तु पार्श्वभागे स्तो निधी तौ शङ्खपद्मकौ।
नवरत्नवहा नद्यस्तथा वै काञ्चनस्रवाः॥ ३७

सप्तधातुवहा नद्यो निधिभ्यां तु विनिर्गताः।
सुधासिन्ध्वन्तगामिन्यस्ताः सर्वा नृपसत्तम॥ ३८

सा देवी भुवनेशानी तद्वामाङ्के विराजते।
सर्वेशत्वं महेशस्य यत्सङ्गादेव नान्यथा॥ ३९

चिन्तामणिगृहस्यास्य प्रमाणं शृणु भूमिप।
सहस्रयोजनायामं महान्तस्तत्प्रचक्षते॥ ४०

तदुत्तरे महाशालाः पूर्वस्माद् द्विगुणाः स्मृताः।
अन्तरिक्षगतं त्वेतन्निराधारं विराजते॥ ४१

वृत्ताकार, सघन तथा उन्नत उरोजोंके भारसे कल्याणमयी भगवती अलसायी हुई प्रतीत होती हैं। उनकी चारों भुजाओंमें वर, पाश, अंकुश तथा अभयमुद्रा सुशोभित हो रही है॥ ३०॥

वे भगवती समस्त शृंगारवेषसे सम्पन्न, लताके समान अत्यन्त कोमल अंगोंवाली, समस्त सौन्दर्योंकी आधारस्वरूपा तथा निष्कपट करुणासे ओतप्रोत हैं॥ ३१॥

वे अपनी वाणीकी मधुरतासे वीणाके स्वरोंको भी तुच्छ कर देती हैं। वे परा भगवती करोड़ों-करोड़ों सूर्यों तथा चन्द्रमाओंकी कान्ति धारण करती हैं॥ ३२॥

वे बहुत-सी सखियों, दासियों, देवांगनाओं तथा समस्त देवताओंसे चारों ओरसे सदा घिरी रहती हैं॥ ३३॥

वे इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्तिसे सम्पन्न हैं। लज्जा, तुष्टि, पुष्टि, कीर्ति, कान्ति, क्षमा, दया, बुद्धि, मेधा, स्मृति तथा लक्ष्मी—ये मूर्तिमती अंगनाएँ कही गयी हैं। जया, विजया, अजिता, अपराजिता, नित्या, विलासिनी, दोग्ध्री, अघोरा और मंगला—ये नौ पीठशक्तियाँ उन भगवती पराम्बाकी निरन्तर सेवा करती रहती हैं॥ ३४—३६॥

शंख तथा पद्म नामक वे दोनों निधियाँ उन भगवतीके पार्श्वभागमें विराजमान रहती हैं। नवरत्नवहा (नौ प्रकारके रत्नोंका वहन करनेवाली), कांचनस्रवा (स्वर्णका स्राव करनेवाली) तथा सप्तधातुवहा (सातों धातुओंका वहन करनेवाली) नामक नदियाँ उन्हीं दोनों निधियोंसे निकली हुई हैं और हे राजेन्द्र! वे सभी नदियाँ अन्तमें सुधा-सिन्धुमें जाकर समाहित होती हैं॥ ३७-३८॥

वे भगवती भुवनेश्वरी परमेश्वरके वाम अंकमें विराजमान रहती हैं। उन्हीं भगवतीके सांनिध्यसे महेश्वरको सर्वेश्वरत्व प्राप्त है, इसमें सन्देह नहीं है॥ ३९॥

हे भूपाल! अब आप इस चिन्तामणिगृहके परिमाणके विषयमें सुनिये। यह विशाल भवन हजार योजन विस्तारवाला कहा जाता है॥ ४०॥

उसके उत्तर भागमें अनेक विशाल प्राकार हैं, जो परिमाणमें पूर्व प्राकारसे दुगुने कहे गये हैं। भगवतीका यह मणिद्वीप बिना किसी आधारके अन्तरिक्षमें विराजमान है॥ ४१॥

सङ्कोचश्च विकासश्च जायतेऽस्य निरन्तरम्।
पटवत्कार्यवशतः प्रलये सर्जने तथा॥ ४२

शालानां चैव सर्वेषां सर्वकान्तिपरावधि।
चिन्तामणिगृहं प्रोक्तं यत्र देवी महोमयी॥ ४३

ये ये उपासकाः सन्ति प्रतिब्रह्माण्डवर्तिनः।
देवेषु नागलोकेषु मनुष्येष्वितरेषु च॥ ४४

श्रीदेव्यास्ते च सर्वेऽपि व्रजन्त्यत्रैव भूमिप।
देवीक्षेत्रे ये त्यजन्ति प्राणान्देव्यर्चने रताः॥ ४५

ते सर्वे यान्ति तत्रैव यत्र देवी महोत्सवा।
घृतकुल्या दुग्धकुल्या दधिकुल्या मधुस्त्रवाः॥ ४६

स्यन्दन्ति सरितः सर्वास्तथामृतवहाः पराः।
द्राक्षारसवहाः काश्चिज्जम्बूरसवहाः पराः॥ ४७

आम्रेक्षुरसवाहिन्यो नद्यस्तास्तु सहस्रशः।
मनोरथफला वृक्षा वाप्यः कूपास्तथैव च॥ ४८

यथेष्टपानफलदा न न्यूनं किञ्चिदस्ति हि।
न रोगपलितं वापि जरा वापि कदाचन॥ ४९

न चिन्ता न च मात्सर्यं कामक्रोधादिकं तथा।
सर्वे युवानः सस्त्रीकाः सहस्रादित्यवर्चसः॥ ५०

भजन्ति सततं देवीं तत्र श्रीभुवनेश्वरीम्।
केचित्सलोकतापन्नाः केचित्सामीप्यतां गताः॥ ५१

सरूपतां गताः केचित्सार्ष्टितां च परे गताः।
या यास्तु देवतास्तत्र प्रतिब्रह्माण्डवर्तिनाम्॥ ५२

समष्टयः स्थितास्तास्तु सेवन्ते जगदीश्वरीम्।
सप्तकोटिमहामन्त्रा मूर्तिमन्त उपासते॥ ५३

महाविद्याश्च सकलाः साम्यावस्थात्मिकां शिवाम्।
कारणब्रह्मरूपां तां मायाशबलविग्रहाम्॥ ५४

जैसे किसी कार्यवश पटका संकोच तथा विकास होता रहता है, वैसे ही प्रलयावस्थामें इस मणिद्वीपका संकोच तथा सृष्टिकालमें विकास हो जाता है। इसका सृष्टि-विनाश नहीं होता॥ ४२॥

सभी परकोटोंकी सम्पूर्ण कान्तिकी परम सीमाको ही चिन्तामणिगृह कहा गया है, जहाँ तेजोमयी देवी विराजमान रहती हैं॥ ४३॥

हे भूपाल! प्रत्येक ब्रह्माण्डमें रहनेवाले तथा देवलोक, नागलोक, मनुष्यलोक एवं अन्य लोकोंमें निवास करनेवाले जो भी श्रीदेवी भुवनेश्वरीके उपासक हैं, वे सब इसी मणिद्वीपको प्राप्त होते हैं॥ ४४½॥

जो लोग भगवतीकी आराधनामें संलग्न रहते हुए देवीक्षेत्रमें प्राणोत्सर्ग करते हैं वे सब वहीं जाते हैं, जहाँ महानन्दस्वरूपिणी भगवती विराजमान रहती हैं॥ ४५½॥

घृतकुल्या, दुग्धकुल्या, दधिकुल्या तथा मधुस्त्रवा नदियाँ वहाँ सदा प्रवाहित रहती हैं। उसी प्रकार अमृतवहा, द्राक्षारसवहा, जम्बूरसवहा, आम्ररसवाहिनी तथा इक्षुरसवाहिनी हजारों अन्य नदियाँ भी वहाँ हैं॥ ४६-४७½॥

वहाँ मनोरथरूपी फलवाले अनेक वृक्ष तथा वैसे ही बावलियाँ और कूप भी विद्यमान हैं, जो प्राणियोंकी इच्छाके अनुरूप उन्हें यथेष्ट फल तथा जल प्रदान करते हैं। वहाँ किसी प्रकारका अभाव नहीं है॥ ४८½॥

उस मणिद्वीपमें किसीको भी रोगोंसे जर्जरता, बुढ़ापा, चिन्ता, मात्सर्य, काम, क्रोध आदि कभी नहीं होते॥ ४९½॥

वहाँ रहनेवाले सभी लोग युवावस्थासे सम्पन्न, स्त्रीयुक्त और हजारों सूर्योंके समान तेजस्वी रहते हैं और वे श्रीभुवनेश्वरीदेवीकी निरन्तर उपासना करते हैं॥ ५०½॥

उपासना-परायण लोगोंमेंसे कुछ लोग सालोक्य मुक्ति प्राप्त कर चुके हैं, कुछ सामीप्य मुक्तिको प्राप्त हुए हैं, कुछ सारूप्य मुक्ति प्राप्त कर चुके हैं तथा कुछ अन्य प्राणी सार्ष्टि मुक्तिके अधिकारी हुए हैं॥ ५१½॥

प्रत्येक ब्रह्माण्डमें रहनेवाले जो-जो देवता हैं, उनके अनेक समूह वहाँ स्थित रहकर जगदीश्वरीकी उपासना करते हैं। मूर्तिमान् होकर सात करोड़ महामन्त्र तथा समस्त महाविद्याएँ उन साम्यावस्थावाली, कारणब्रह्मस्वरूपिणी तथा मायाशबलविग्रह धारण करनेवाली कल्याणमयी भगवतीकी उपासनामें तत्पर रहते हैं॥ ५२—५४॥

इत्थं राजन् मया प्रोक्तं मणिद्वीपं महत्तरम्।
न सूर्यचन्द्रौ नो विद्युत्कोटयोऽग्निस्तथैव च॥ ५५

एतस्य भासा कोट्यंशकोट्यंशेनापि ते समाः।
क्वचिद्विद्रुमसंकाशं क्वचिन्मरकतच्छवि॥ ५६

विद्युद्भानुसमच्छायं मध्यसूर्यसमं क्वचित्।
विद्युत्कोटिमहाधारा सारकान्तिततं क्वचित्॥ ५७

क्वचित्सिन्दूरनीलेन्द्रमाणिक्यसदृशच्छवि।
हीरसारमहागर्भधगद्धगितदिक्तटम्॥ ५८

कान्त्या दावानलसमं तप्तकाञ्चनसन्निभम्।
क्वचिच्चन्द्रोपलोद्गारं सूर्योद्गारं च कुत्रचित्॥ ५९

रत्नशृङ्गिसमायुक्तं रत्नप्राकारगोपुरम्।
रत्नपत्रै रत्नफलैर्वृक्षैश्च परिमण्डितम्॥ ६०

नृत्यन्मयूरसङ्घैश्च कपोतरणितोज्ज्वलम्।
कोकिलाकाकलीलापैः शुकलापैश्च शोभितम्॥ ६१

सुरम्यरमणीयाम्बुलक्षावधिसरोवृतम्।
तन्मध्यभागविलसद्विकचद्रत्नपङ्कजैः॥ ६२

सुगन्धिभिः समन्तात्तु वासितं शतयोजनम्।
मन्दमारुतसम्भिन्नचलद्द्रुमसमाकुलम्॥ ६३

चिन्तामणिसमूहानां ज्योतिषा वितताम्बरम्।
रत्नप्रभाभिरभितो धगद्धगितदिक्तटम्॥ ६४

वृक्षव्रातमहागन्धवातव्रातसुपूरितम्।
धूपधूपायितं राजन् मणिदीपायुतोज्ज्वलम्॥ ६५

मणिजालकसच्छिद्रतरलोदरकान्तिभिः।
दिङ्मोहजनकं चैतद्दर्पणोदरसंयुतम्॥ ६६

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य शृङ्गारस्याखिलस्य च।
सर्वज्ञतायाः सर्वायास्तेजसश्चाखिलस्य वै॥ ६७

हे राजन्! इस प्रकार मैंने अत्यन्त महान् मणिद्वीपका वर्णन कर दिया। करोड़ों सूर्य, चन्द्रमा, विद्युत् और अग्नि—वे सब इस मणिद्वीपकी प्रभाके करोड़वें अंशके करोड़वें अंशके भी बराबर नहीं हैं। वहाँ कहींपर मूँगेके समान प्रकाश फैल रहा है, कहीं मरकतमणिकी छवि छिटक रही है, कहीं विद्युत् तथा भानुसदृश तेज विद्यमान है, कहीं मध्याह्नकालीन सूर्यके समान प्रचण्ड तेज फैला हुआ है और कहीं करोड़ों बिजलियोंकी महान् धाराओंकी दिव्य कान्ति व्याप्त है। कहीं सिन्दूर, नीलेन्द्रमणि और माणिक्यके समान छवि विद्यमान है। कुछ दिशाओंका भाग हीरा-मोतीकी रश्मियोंसे प्रकाशित हो रहा है, वह कान्तिमें दावानल तथा तपाये हुए सुवर्णके समान प्रतीत हो रहा है। कहीं-कहीं चन्द्रकान्तमणि और सूर्यकान्तमणिसे बने स्थान हैं॥ ५५—५९॥

इस मणिद्वीपका शिखर रत्नमय तथा इसके प्राकार और गोपुर भी रत्ननिर्मित हैं। यह रत्नमय पत्रों, फलों तथा वृक्षोंसे पूर्णतः मण्डित है॥ ६०॥

यह पुरी मयूरसमूहोंके नृत्यों, कबूतरोंकी बोलियों और कोयलोंकी काकली तथा शुकोंकी मधुर ध्वनियोंसे सुशोभित रहती है॥ ६१॥

यह सुरम्य तथा रमणीय जलवाले लाखों सरोवरोंसे घिरा हुआ है। इस मणिद्वीपका मध्यभाग विकसित रत्नमय कमलोंसे सुशोभित है॥ ६२॥

उसके चारों ओर सौ योजनतकका क्षेत्र उत्तम गन्धोंसे सर्वदा सुवासित रहता है। मन्द गतिसे प्रवाहित वायुके द्वारा हिलाये गये वृक्षोंसे यह व्याप्त रहता है॥ ६३॥

चिन्तामणिके समूहोंकी ज्योतिसे वहाँका विस्तृत आकाश सदा प्रकाशित रहता है और रत्नोंकी प्रभासे सभी दिशाएँ प्रज्वलित रहती हैं॥ ६४॥

वृक्षसमूहोंकी मधुर सुगन्धोंसे सुपूरित वायु वहाँ सदा बहती रहती है। हे राजन्! दस हजार योजनतक प्रकाशमान वह मणिद्वीप सदा सुगन्धित धूपसे सुवासित रहता है॥ ६५॥

रत्नमयी जालियोंके छिद्रोंसे निकलनेवाली चपल किरणोंकी कान्ति तथा दर्पणसे युक्त यह मणिद्वीप दिशाभ्रम उत्पन्न कर देनेवाला है॥ ६६॥

हे राजन्! समग्र ऐश्वर्य, सम्पूर्ण शृंगार, समस्त सर्वज्ञता, समग्र तेज, अखिल पराक्रम, समस्त उत्तम

पराक्रमस्य सर्वस्य सर्वोत्तमगुणस्य च।
सकलाया दयायाश्च समाप्तिरिह भूपते॥ ६८

गुण और समग्र दयाकी इस मणिद्वीपमें अन्तिम सीमा है॥ ६७-६८॥

राज्ञ आनन्दमारभ्य ब्रह्मलोकान्तभूमिषु।
आनन्दा ये स्थिताः सर्वे तेऽत्रैवान्तर्भवन्ति हि॥ ६९

एक राजाके आनन्दसे लेकर ब्रह्मलोकपर्यन्त जो-जो आनन्द हो सकते हैं, वे सब इस मणिद्वीपके आनन्दमें अन्तर्निहित हैं॥ ६९॥

इति ते वर्णितं राजन् मणिद्वीपं महत्तरम्।
महादेव्याः परं स्थानं सर्वलोकोत्तमोत्तमम्॥ ७०

हे राजन्! इस प्रकार मैंने आपसे अति महनीय मणिद्वीपका वर्णन कर दिया। महादेवीका यह परम धाम सम्पूर्ण उत्तम लोकोंसे भी उत्तम है॥ ७०॥

एतस्य स्मरणात्सद्यः सर्वं पापं विनश्यति।
प्राणोत्क्रमणसन्धौ तु स्मृत्वा तत्रैव गच्छति॥ ७१

इस मणिद्वीपके स्मरणमात्रसे सम्पूर्ण पाप शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं और मृत्युकालमें इसका स्मरण हो जानेपर प्राणी उसी पुरीको प्राप्त हो जाता है॥ ७१॥

अध्यायपञ्चकं त्वेतत्पठेन्नित्यं समाहितः।
भूतप्रेतपिशाचादिबाधा तत्र भवेन्न हि॥ ७२

इन पाँच अध्यायोंका (अध्याय आठसे लेकर बारहतक) जो प्राणी सावधान होकर नित्य पाठ करता है; उसे भूत, प्रेत, पिशाच आदि बाधाएँ नहीं होतीं॥ ७२॥

नवीनगृहनिर्माणे वास्तुयागे तथैव च।
पठितव्यं प्रयत्नेन कल्याणं तेन जायते॥ ७३

नये भवनके निर्माण तथा वास्तुयज्ञके अवसरपर प्रयत्नपूर्वक इसका पाठ करना चाहिये; उससे कल्याण होता है॥ ७३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां द्वादशस्कन्धे मणिद्वीपवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥



अथ त्रयोदशोऽध्यायः

राजा जनमेजयद्वारा अम्बायज्ञ और श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणका माहात्म्य

व्यास उवाच

इति ते कथितं भूप यद्यत्पृष्टं त्वयानघ।
नारायणेन यत्प्रोक्तं नारदाय महात्मने॥ १

व्यासजी बोले—हे राजन्! हे अनघ! आपने मुझसे जो-जो पूछा था, वह मैंने आपको बता दिया, जिसे पूर्वमें नारायणने महात्मा नारदसे कहा था॥ १॥

श्रुत्वैतत्तु महादेव्याः पुराणं परमाद्भुतम्।
कृतकृत्यो भवेन्मर्त्यो देव्याः प्रियतमो हि सः॥ २

महादेवीका यह परम अद्भुत पुराण सुनकर मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है और वह भगवतीका प्रियतम हो जाता है॥ २॥

कुरु चाम्बामखं राजन् स्वपित्रुद्धरणाय वै।
खिन्नोऽसि येन राजेन्द्र पितुर्ज्ञात्वा तु दुर्गतिम्॥ ३

गृहाण त्वं महादेव्या मन्त्रं सर्वोत्तमोत्तमम्।
यथाविधिविधानेन जन्मसाफल्यदायकम्॥ ४

हे राजेन्द्र! चूँकि अपने पिताकी दुर्गतिके विषयमें जानकर आप अत्यन्त विषादग्रस्त हैं, अतएव हे राजन्! अब आप अपने पिताके उद्धारके निमित्त देवीयज्ञ कीजिये। आप विधि-विधानके अनुसार महादेवीके सर्वोत्तमोत्तम मन्त्रकी दीक्षा ग्रहण कीजिये, जो मनुष्य-जन्मको सार्थक कर देता है॥ ३-४॥

सूत उवाच

तच्छ्रुत्वा नृपशार्दूलः प्रार्थयित्वा मुनीश्वरम्।
तस्मादेव महामन्त्रं देवीप्रणवसंज्ञकम्॥ ५

सूतजी बोले—उसे सुनकर नृपश्रेष्ठ जनमेजयने मुनीन्द्र व्याससे प्रार्थना करके उन्हींसे विधिपूर्वक देवीके प्रणवसंज्ञक महामन्त्रकी दीक्षा ग्रहण की।

दीक्षाविधिं विधानेन जग्राह नृपसत्तमः।
तत आहूय धौम्यादीन्नवरात्रसमागमे॥ ६
अम्बायज्ञं चकाराशु वित्तशाठ्यविवर्जितः।
ब्राह्मणैः पाठयामास पुराणं त्वेतदुत्तमम्॥ ७
श्रीदेव्यग्रेऽम्बिकाप्रीत्यै देवीभागवतं परम्।
ब्राह्मणान्भोजयामासाप्यसंख्यातान्सुवासिनीः॥ ८
कुमारीर्वटुकादींश्च दीनानाथांस्तथैव च।
द्रव्यप्रदानैस्तान्सर्वान् सन्तोष्य वसुधाधिपः॥ ९
समाप्य यज्ञं संस्थाने संस्थितो यावदेव हि।
तावदेव हि चाकाशान्नारदः समवातरत्॥ १०
रणयन्महतीं वीणां ज्वलदग्निशिखोपमः।
ससम्भ्रमः समुत्थाय दृष्ट्वा तं नारदं मुनिम्॥ ११
आसनाद्युपचारैश्च पूजयामास भूमिपः।
कृत्वा तु कुशलप्रश्नं पप्रच्छागमकारणम्॥ १२

राजोवाच

कुत आगमनं साधो ब्रूहि किं करवाणि ते।
सनाथोऽहं कृतार्थोऽहं त्वदागमनकारणात्॥ १३
इति राज्ञो वचः श्रुत्वा प्रोवाच मुनिसत्तमः।
अद्याश्चर्यं मया दृष्टं देवलोके नृपोत्तम॥ १४
तन्निवेदयितुं प्राप्तस्त्वत्सकाशे सुविस्मितः।
पिता ते दुर्गतिं प्राप्तो निजकर्मविपर्ययात्॥ १५
स एवायं दिव्यरूपवपुर्भूत्वाधुनैव हि।
देवदेवैः स्तुतः सम्यगप्सरोभिः समन्ततः॥ १६
विमानवरमारुह्य मणिद्वीपं गतोऽभवत्।
देवीभागवतस्यास्य श्रवणोत्थफलेन च॥ १७
अम्बामखफलेनापि पिता ते सुगतिं गतः।
धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि जीवितं सफलं तव॥ १८
नरकादुद्धृतस्तातस्त्वया तु कुलभूषण।
देवलोके स्फीतकीर्तिस्तवाद्य विपुलाभवत्॥ १९

तत्पश्चात् महाराजने नवरात्रके आनेपर धौम्य आदि मुनियोंको बुलाकर धनकी कृपणता किये बिना शीघ्रतापूर्वक अम्बायज्ञ आरम्भ कर दिया। इसमें उन्होंने भगवती जगदम्बाकी प्रसन्नताके लिये उनके समक्ष ब्राह्मणोंके द्वारा इस परम उत्तम देवीभागवत-महापुराणका पाठ कराया॥ ५—७½ ॥

इस यज्ञमें उन्होंने असंख्य ब्राह्मणों, सुवासिनी स्त्रियों, कुमारी कन्याओं, ब्रह्मचारियों, दीनों तथा अनाथोंको भोजन कराया। तत्पश्चात् धन-दानके द्वारा उन सभीको पूर्ण सन्तुष्ट करनेके बाद पृथ्वीपति जनमेजय यज्ञ समाप्त करके ज्यों ही अपने स्थानपर विराजमान हुए, उसी समय प्रज्वलित अग्निकी शिखाके समान तेजवाले देवर्षि नारद अपनी महती नामक वीणा बजाते हुए आकाशसे उतरे॥ ८—१०½ ॥

उन नारदमुनिको देखकर आश्चर्यचकित हो महाराज जनमेजय अपने आसनसे उठ खड़े हुए और उन्होंने आसन आदि उपचारोंसे उनका पूजन किया। तत्पश्चात् वे कुशल-क्षेमसम्बन्धी प्रश्न करके उनके आनेका कारण पूछने लगे॥ ११-१२॥

राजा बोले—हे साधो! आप कहाँसे आ रहे हैं? आप मुझे यह बताइये कि मैं आपकी क्या सेवा करूँ? मैं आपके आगमनसे सनाथ और कृतार्थ हो गया हूँ॥ १३॥

राजाकी यह बात सुनकर मुनिश्रेष्ठ नारदने कहा—हे नृपश्रेष्ठ! आज मैंने देवलोकमें एक आश्चर्यजनक घटना देखी है। उसीको बतानेके लिये मैं विस्मित होकर आपके पास आया हूँ॥ १४½ ॥

अपने विपरीत कर्मोंके कारण आपके पिताजी दुर्गतिमें पड़े हुए थे। वे ही अब दिव्य शरीर धारण करके श्रेष्ठ विमानपर चढ़कर श्रेष्ठ देवताओं तथा अप्सराओंसे चारों ओरसे भलीभाँति स्तुत होते हुए मणिद्वीपको चले गये हैं॥ १५-१६½ ॥

इस देवीभागवतके श्रवणजनितफल तथा देवीयज्ञके फलसे ही आपके पिताजी उत्तम गतिको प्राप्त हुए हैं। हे कुलभूषण! आप धन्य तथा कृतकृत्य हो गये हैं और आपका जीवन सफल हो गया। आपने नरकसे अपने पिताजीका उद्धार कर दिया है और आज देवलोकमें आपकी महान् कीर्ति और अधिक विस्तृत हो गयी है॥ १७—१९॥

सूत उवाच

नारदोक्तं समाकर्ण्य प्रेमगद्गदितान्तरः।
पपात पादाम्बुजयोर्व्यासस्याद्भुतकर्मणः॥ २०

तवानुग्रहतो देव कृतार्थोऽहं महामुने।
किं मया प्रतिकर्तव्यं नमस्कारादृते तव॥ २१

अनुग्राह्यः सदैवाहमेवमेव त्वया मुने।
इति राज्ञो वचः श्रुत्वाप्याशीर्भिरभिनन्द्य च॥ २२

उवाच वचनं श्लक्ष्णं भगवान् बादरायणः।
राजन्सर्वं परित्यज्य भज देवीपदाम्बुजम्॥ २३

देवीभागवतं चैव पठ नित्यं समाहितः।
अम्बामखं सदा भक्त्या कुरु नित्यमतन्द्रितः॥ २४

अनायासेन तेन त्वं मोक्ष्यसे भवबन्धनात्।
सन्त्यन्यानि पुराणानि हरिरुद्रमुखानि च॥ २५

देवीभागवतस्यास्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्।
सारमेतत्पुराणानां वेदानां चैव सर्वशः॥ २६

मूलप्रकृतिरेवैषा यत्र तु प्रतिपाद्यते।
समं तेन पुराणं स्यात्कथमन्यन्नृपोत्तम॥ २७

पाठे वेदसमं पुण्यं यस्य स्याज्जनमेजय।
पठितव्यं प्रयत्नेन तदेव विबुधोत्तमैः॥ २८

इत्युक्त्वा नृपवर्यं तं जगाम मुनिराट् ततः।
जग्मुश्चैव यथास्थानं धौम्यादिमुनयोऽमलाः॥ २९

देवीभागवतस्यैव प्रशंसां चक्रुरुत्तमाम्।
राजा शशास धरणीं ततः सन्तुष्टमानसः।
देवीभागवतं चैव पठञ्छृण्वन्निरन्तरम्॥ ३०

सूतजी बोले—[हे मुनीश्वरो!] नारदजीका यह वचन सुनकर महाराज जनमेजयका हृदय प्रेमसे गद्गद हो गया और वे अद्भुत कर्मोंवाले व्यासजीके चरण-कमलोंपर गिर पड़े। [वे कहने लगे—] हे देव! आपकी कृपासे ही मैं कृतार्थ हुआ हूँ। हे महामुने! नमस्कारके अतिरिक्त मैं आपके लिये विशेष कर ही क्या सकता हूँ। हे मुने! आप मुझपर इसी प्रकार अनुग्रह सदा करते रहें॥ २०-२१½॥

राजाका यह वचन सुनकर भगवान् बादरायण व्यासने अपने आशीर्वचनोंसे उनका अभिनन्दनकर मधुर वाणीमें कहा—हे राजन्! सब कुछ त्याग करके आप भगवतीके चरणकमलोंकी उपासना कीजिये और दत्तचित्त होकर नित्य देवीभागवतपुराणका पाठ कीजिये। साथ ही नित्य आलस्यरहित होकर भक्तिपूर्वक देवीयज्ञका अनुष्ठान कीजिये; उसके फलस्वरूप आप भव-बन्धनसे अनायास ही छूट जायँगे॥ २२—२४½॥

यद्यपि विष्णुपुराण तथा शिवपुराण आदि अनेक पुराण हैं, किंतु वे इस देवीभागवतपुराणकी सोलहवीं कलाकी भी समता नहीं कर सकते। यह देवीभागवत समस्त वेदों तथा पुराणोंका सारस्वरूप है॥ २५-२६॥

हे नृपश्रेष्ठ! जिस देवीभागवतमें साक्षात् मूल-प्रकृतिका ही प्रतिपादन किया गया है, उसके समान अन्य कोई पुराण भला कैसे हो सकता है?॥ २७॥

हे जनमेजय! जिस देवीभागवतपुराणका पाठ करनेसे वेद-पाठके समान पुण्य प्राप्त होता है, उसका पाठ श्रेष्ठ विद्वानोंको प्रयत्नपूर्वक करना चाहिये॥ २८॥

उन नृपश्रेष्ठ जनमेजयसे ऐसा कहकर मुनिराज व्यास चले गये। उसके बाद विमलात्मा धौम्य आदि मुनि भी अपने-अपने स्थानोंको चले गये। उन्होंने देवीभागवतकी ही श्रेष्ठ प्रशंसा की। तदनन्तर सन्तुष्ट मनवाले महाराज जनमेजय देवीभागवतपुराणका निरन्तर पाठ तथा श्रवण करते हुए पृथ्वीका शासन करने लगे॥ २९-३०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां द्वादशस्कन्धे जनमेजयेनाम्बामखकरण-देवीभागवतश्रवणपूर्वकं स्वपितुरुद्धारवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणकी महिमा

सूत उवाच

अर्धश्लोकात्मकं यत्तु देवीवक्त्राब्जनिर्गतम्।
श्रीमद्भागवतं नाम वेदसिद्धान्तबोधकम्॥ १

उपदिष्टं विष्णवे यद्वटपत्रनिवासिने।
शतकोटिप्रविस्तीर्णं तत्कृतं ब्रह्मणा पुरा॥ २

तत्सारमेकतः कृत्वा व्यासेन शुकहेतवे।
अष्टादशसहस्रं तु द्वादशस्कन्धसंयुतम्॥ ३

देवीभागवतं नाम पुराणं ग्रथितं पुरा।
अद्यापि देवलोके तद् बहुविस्तीर्णमस्ति हि॥ ४

नानेन सदृशं पुण्यं पवित्रं पापनाशनम्।
पदे पदेऽश्वमेधस्य फलमाप्नोति मानवः॥ ५

पौराणिकं पूजयित्वा वस्त्राद्याभरणादिभिः।
व्यासबुद्ध्या तन्मुखात्तु श्रुत्वैतत्समुपोषितः॥ ६

लिखित्वा निजहस्तेन लेखकेनाथवा मुने।
प्रौष्ठपद्यां पौर्णमास्यां हेमसिंहसमन्वितम्॥ ७

दद्यात्पौराणिकायाथ दक्षिणां च पयस्विनीम्।
सालङ्कृतां सवत्सां च कपिलां हेममालिनीम्॥ ८

भोजयेद् ब्राह्मणानन्तेऽप्यध्यायपरिसम्मितान्।
सुवासिनीस्तावतीश्च कुमारीर्बटुकैः सह॥ ९

देवीबुद्ध्या पूजयेत्तान्वसनाभरणादिभिः।
पायसान्नवरेणापि गन्धस्रक्कुसुमादिभिः॥ १०

पुराणदानेनैतेन भूदानस्य फलं लभेत्।
इहलोके सुखी भूत्वाप्यन्ते देवीपुरं व्रजेत्॥ ११

सूतजी बोले—पराम्बा देवीके मुखकमलसे वेद-सिद्धान्तका बोधक जो आधा श्लोक* निकला था और जिसका उपदेश स्वयं देवीने वट-पटपर शयन करनेवाले विष्णुको किया था, उसीको पूर्वकालमें ब्रह्माजीने सौ करोड़ श्लोकोंके रूपमें विस्तृत कर दिया॥ १-२॥

तत्पश्चात् व्यासजीने शुकदेवजीको पढ़ानेके लिये इसके सारभागको एकत्र करके अठारह हजार श्लोकों तथा बारह स्कन्धोंसे युक्त श्रीमद्देवीभागवत नामक पुराणकी रचना की। वह पुराण अब भी देवलोकमें वैसे ही विस्तृतरूपसे विद्यमान है॥ ३-४॥

इस पुराणके समान पुण्यदायक, पवित्र तथा पापनाशक दूसरा कोई पुराण नहीं है। इसके एक-एक पदका पाठ करनेसे मनुष्य अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त करता है॥ ५॥

हे मुने! स्वयं अपने हाथसे देवीभागवतपुराण लिखकर या किसी लेखकसे लिखवाकर पुराणका वाचन करनेवाले विद्वान्‌को इसे देकर वस्त्र तथा आभूषण आदिसे उनकी पूजा करके उनके प्रति व्यासबुद्धि रखकर नियमपूर्वक उनके मुखसे इस पुराणका श्रवण करना चाहिये। कथाकी समाप्तिके दिन भाद्रपदपूर्णिमा तिथिको स्वर्णसिंहासनपर स्थापित करके इस पुराणका दान उस पौराणिक विद्वान्‌को करना चाहिये। पुनः दक्षिणाके रूपमें उन्हें विविध अलंकारों तथा सोनेके हारसे विभूषित और बछड़ेसे युक्त दूध देनेवाली कपिला गौ प्रदान करनी चाहिये॥ ६—८॥

कथाके अन्तमें पुराणमें जितने अध्याय हैं; उतने ही ब्राह्मणों तथा उतनी ही सुवासिनियोंको, उतनी ही कुमारियों और बालकोंके साथ भोजन कराना चाहिये। उन सबमें देवीकी भावना करके वस्त्र, आभूषण, चन्दन, माला, पुष्प आदिसे उनकी पूजा करे एवं उत्तम पायसान्न (खीर)-का भोजन कराये॥ ९-१०॥

मनुष्य इस पुराणके दानसे पृथ्वीके दानका फल प्राप्त करता है और इस लोकमें सुख भोगकर अन्तमें देवीलोकको प्राप्त होता है॥ ११॥

* सर्वं खल्विदमेवाहं नान्यदस्ति सनातनम्॥ (श्रीमद्देवीभा० १।१५।५२) अर्थात् सब कुछ मैं ही हूँ और दूसरा कोई भी सनातन नहीं है।

नित्यं यः शृणुयाद्भक्त्या देवीभागवतं परम्।
न तस्य दुर्लभं किञ्चित्कदाचित्क्वचिदस्ति हि॥ १२

अपुत्रो लभते पुत्रान्धनार्थी धनमाप्नुयात्।
विद्यार्थी प्राप्नुयाद्विद्यां कीर्तिमण्डितभूतलः॥ १३

वन्ध्या वा काकवन्ध्या वा मृतवन्ध्या च याङ्गना।
श्रवणादस्य तद्दोषान्निवर्तेत न संशयः॥ १४

यद्गेहे पुस्तकं चैतत्पूजितं यदि तिष्ठति।
तद्गेहं न त्यजेन्नित्यं रमा चैव सरस्वती॥ १५

नेक्षन्ते तत्र वेतालडाकिनीराक्षसादयः।
ज्वरितं तु नरं स्पृष्ट्वा पठेदेतत्समाहितः॥ १६

मण्डलान्नाशमाप्नोति ज्वरो दाहसमन्वितः।
शतावृत्त्यास्य पठनात्क्षयरोगो विनश्यति॥ १७

प्रतिसन्ध्यं पठेद्यस्तु सन्ध्यां कृत्वा समाहितः।
एकैकमस्य चाध्यायं स नरो ज्ञानवान्भवेत्॥ १८

शकुनांश्चैव वीक्षेत कार्याकार्येषु चैव हि।
तत्प्रकारः पुरस्तात्तु कथितोऽस्ति मया मुने॥ १९

नवरात्रे पठेन्नित्यं शारदीयेऽतिभक्तितः।
तस्याम्बिका तु सन्तुष्टा ददातीच्छाधिकं फलम्॥ २०

वैष्णवैश्चैव शैवैश्च रमोमा प्रीयते सदा।
सौरैश्च गाणपत्यैश्च स्वेष्टशक्तेश्च तुष्टये॥ २१

पठितव्यं प्रयत्नेन नवरात्रचतुष्टये।
वैदिकैर्निजगायत्रीप्रीतये नित्यशो मुने॥ २२

पठितव्यं प्रयत्नेन विरोधो नात्र कस्यचित्।
उपासना तु सर्वेषां शक्तियुक्तास्ति सर्वदा॥ २३

जो इस श्रेष्ठ श्रीमद्देवीभागवतका नित्य भक्तिपूर्वक श्रवण करता है, उसके लिये कुछ भी कहीं और कभी दुर्लभ नहीं है। इसके श्रवणसे पुत्रहीन व्यक्तिको पुत्र, धन चाहनेवालेको धन और विद्याके अभिलाषीको विद्याकी प्राप्ति हो जाती है, साथ ही सम्पूर्ण पृथ्वीलोकमें वह कीर्तिमान् हो जाता है॥ १२-१३॥

जो स्त्री वन्ध्या, काकवन्ध्या अथवा मृतवन्ध्या हो; वह इस पुराणके श्रवणसे उस दोषसे मुक्त हो जाती है; इसमें सन्देह नहीं है॥ १४॥

यह पुराण जिस घरमें विधिपूर्वक पूजित होकर स्थित रहता है, उस घरको लक्ष्मी तथा सरस्वती कभी नहीं छोड़तीं और वेताल, डाकिनी तथा राक्षस आदि वहाँ झाँकतेतक नहीं। यदि ज्वरग्रस्त मनुष्यको स्पर्श करके एकाग्रचित्त होकर इस पुराणका पाठ किया जाय तो दाहक ज्वर उसके मण्डलको छोड़कर भाग जाता है। इसकी एक सौ आवृत्तिके पाठसे क्षयरोग समाप्त हो जाता है॥ १५—१७॥

जो मनुष्य प्रत्येक सन्ध्याके अवसरपर दत्तचित्त होकर सन्ध्या-विधि सम्पन्न करके इस पुराणके एक-एक अध्यायका पाठ करता है, वह ज्ञानवान् हो जाता है॥ १८॥

कार्य-अकार्यके अवसरोंपर इस पुराणके द्वारा शकुनका भी विचार करना चाहिये। हे मुने! उसकी विधिका वर्णन मेरे द्वारा पहले किया जा चुका है॥ १९॥

शारदीय नवरात्रमें परम भक्तिसे इस पुराणका नित्य पाठ करना चाहिये। इससे जगदम्बा उस व्यक्तिपर प्रसन्न होकर उसकी अभिलाषासे भी अधिक फल प्रदान करती हैं॥ २०॥

वैष्णव, शैव, सौर तथा गाणपत्यजनोंको अपने-अपने इष्टदेवकी शक्तिकी सन्तुष्टिके लिये चैत्र, आषाढ़, आश्विन और माघ—इन मासोंके चारों नवरात्रोंमें इस पुराणका प्रयत्नपूर्वक पाठ करना चाहिये; इससे रमा, उमा आदि शक्तियाँ उसपर सदा प्रसन्न रहती हैं। हे मुने! इसी प्रकार वैदिकोंको भी अपनी गायत्रीकी प्रसन्नताके लिये इसका नित्य पाठ करना चाहिये। इस पुराणमें कहीं किसीका विरोधवचन नहीं है। [वैष्णव, सौर आदि] सभी जनोंकी उपासना

तच्छक्तेरेव तोषार्थं पठितव्यं सदा द्विजैः।
स्त्रीशूद्रो न पठेदेतत्कदापि च विमोहितः॥ २४

शृणुयाद् द्विजवक्त्रात्तु नित्यमेवेति च स्थितिः।
किं पुनर्बहुनोक्तेन सारं वक्ष्यामि तत्त्वतः॥ २५

सदा शक्तियुक्त ही होती है, इसलिये शक्तिको सन्तुष्ट करनेके लिये द्विजोंको इस पुराणका सदा पाठ करना चाहिये। स्त्रियों तथा शूद्रोंको चाहिये कि वे अज्ञानवश इसका कभी पाठ न करें, अपितु वे ब्राह्मणके मुखसे ही इसका नित्य श्रवण करें, यही मर्यादा है। अधिक कहनेसे क्या लाभ, मैं आपको इसका वास्तविक सार बताऊँगा॥ २१—२५॥

वेदसारमिदं पुण्यं पुराणं द्विजसत्तमाः।
वेदपाठसमं पाठे श्रवणे च तथैव हि॥ २६

हे श्रेष्ठ मुनियो! यह पुराण परम पवित्र तथा वेदोंका सारस्वरूप है। इसके पढ़ने तथा सुननेसे वेदपाठके समान फल प्राप्त होता है॥ २६॥

सच्चिदानन्दरूपां तां गायत्रीप्रतिपादिताम्।
नमामि ह्रींमयीं देवीं धियो यो नः प्रचोदयात्॥ २७

गायत्री नामसे प्रतिपादित उन सच्चिदानन्दस्वरूपिणी ह्रींमयी भगवतीको मैं प्रणाम करता हूँ, वे हमारी बुद्धिको प्रेरणा प्रदान करें—

सच्चिदानन्दरूपां तां गायत्रीप्रतिपादिताम्।
नमामि ह्रींमयीं देवीं धियो यो नः प्रचोदयात्॥ २७॥

इति सूतवचः श्रुत्वा नैमिषीयास्तपोधनाः।
पूजयामासुरत्युच्चैः सूतं पौराणिकोत्तमम्॥ २८

पौराणिकोंमें श्रेष्ठ सूतजीका यह वचन सुनकर नैमिषारण्यवासी तपोधन मुनियोंने बड़े समारोहके साथ उनका सम्मान किया॥ २८॥

प्रसन्नहृदयाः सर्वे देवीपादाम्बुजार्चकाः।
निर्वृतिं परमां प्राप्ताः पुराणस्य प्रभावतः॥ २९

भगवतीके चरणकमलोंके उपासक वे सभी मुनि प्रसन्न हृदयवाले हो गये। इस पुराणके प्रभावसे वे परम शान्तिको प्राप्त हुए॥ २९॥

नमश्चक्रुः पुनः सूतं क्षमाप्य च मुहुर्मुहुः।
संसारवारिधेस्तात प्लवोऽस्माकं त्वमेव हि॥ ३०

मुनियोंने सूतजीको नमस्कार किया और बार-बार क्षमा-प्रार्थना करके कहा—हे तात! इस संसार-सागरसे पार करनेके लिये आप ही निश्चितरूपसे हमारे लिये नौकास्वरूप हैं॥ ३०॥

इति स मुनिवराणामग्रतः श्रावयित्वा
सकलनिगमगुह्यं दौर्गमेतत्पुराणम्।
नतमथ मुनिसङ्घं वर्धयित्वाशिषाम्बा-
चरणकमलभृङ्गो निर्जगामाथ सूतः॥ ३१

इस प्रकार सभी श्रेष्ठ मुनियोंके समक्ष सभी वेदोंके गुह्य विषयरूप इस दुर्गाचरित्रप्रतिपादक श्रीमद्देवीभागवत-पुराणको विनयसम्पन्न मुनिजनोंको सुनाकर तथा उनके आशीर्वादसे वृद्धिको प्राप्त होकर भगवतीके चरणकमलोंके भृंगस्वरूप सूतजी वहाँसे चले गये॥ ३१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां द्वादशस्कन्धे श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणश्रवणफलवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥

~~O~~

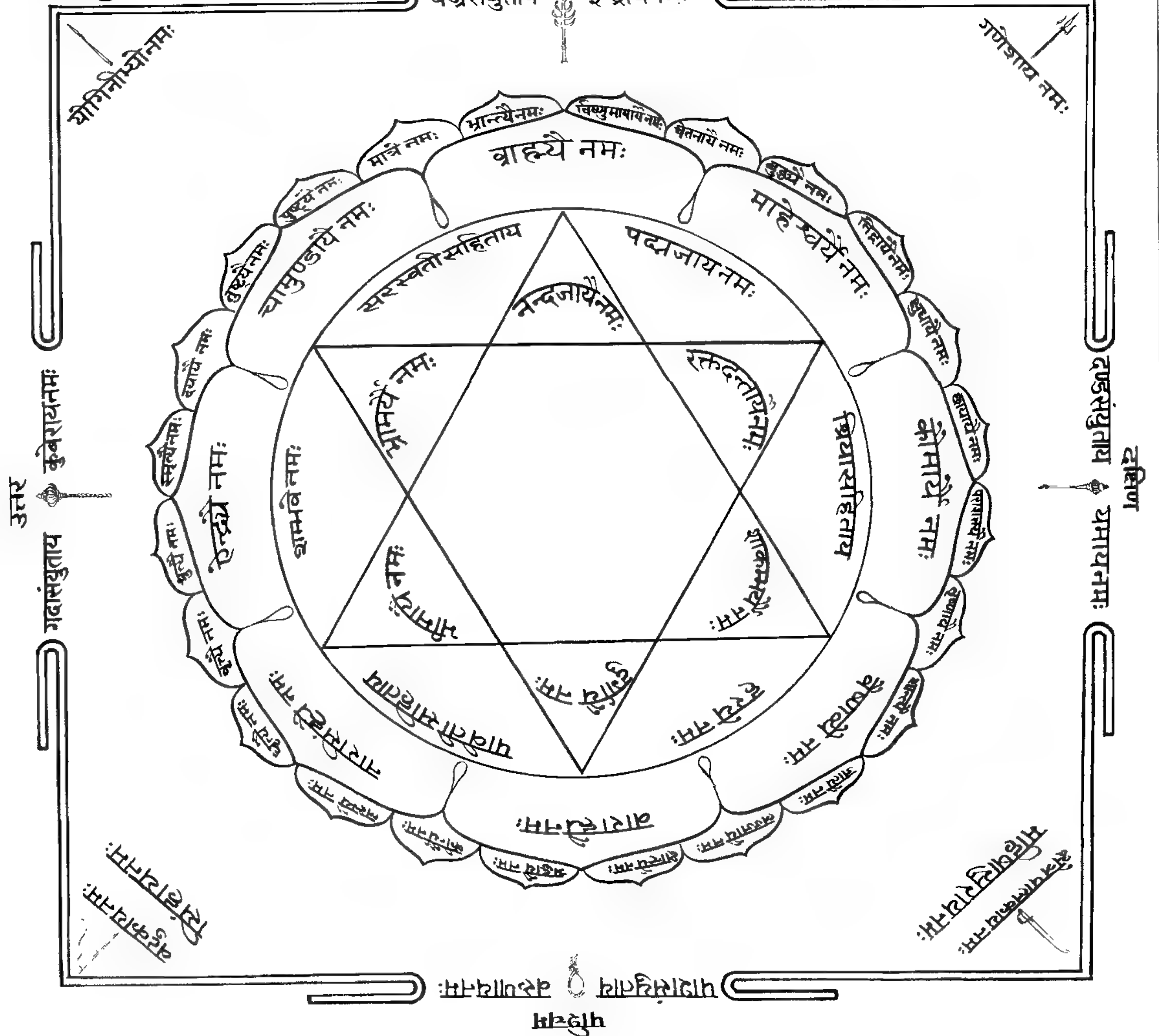
॥ द्वादशः स्कन्धः समाप्तः॥

॥ श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण सम्पूर्णम्॥

[सम्पूर्णोऽयं ग्रन्थः]

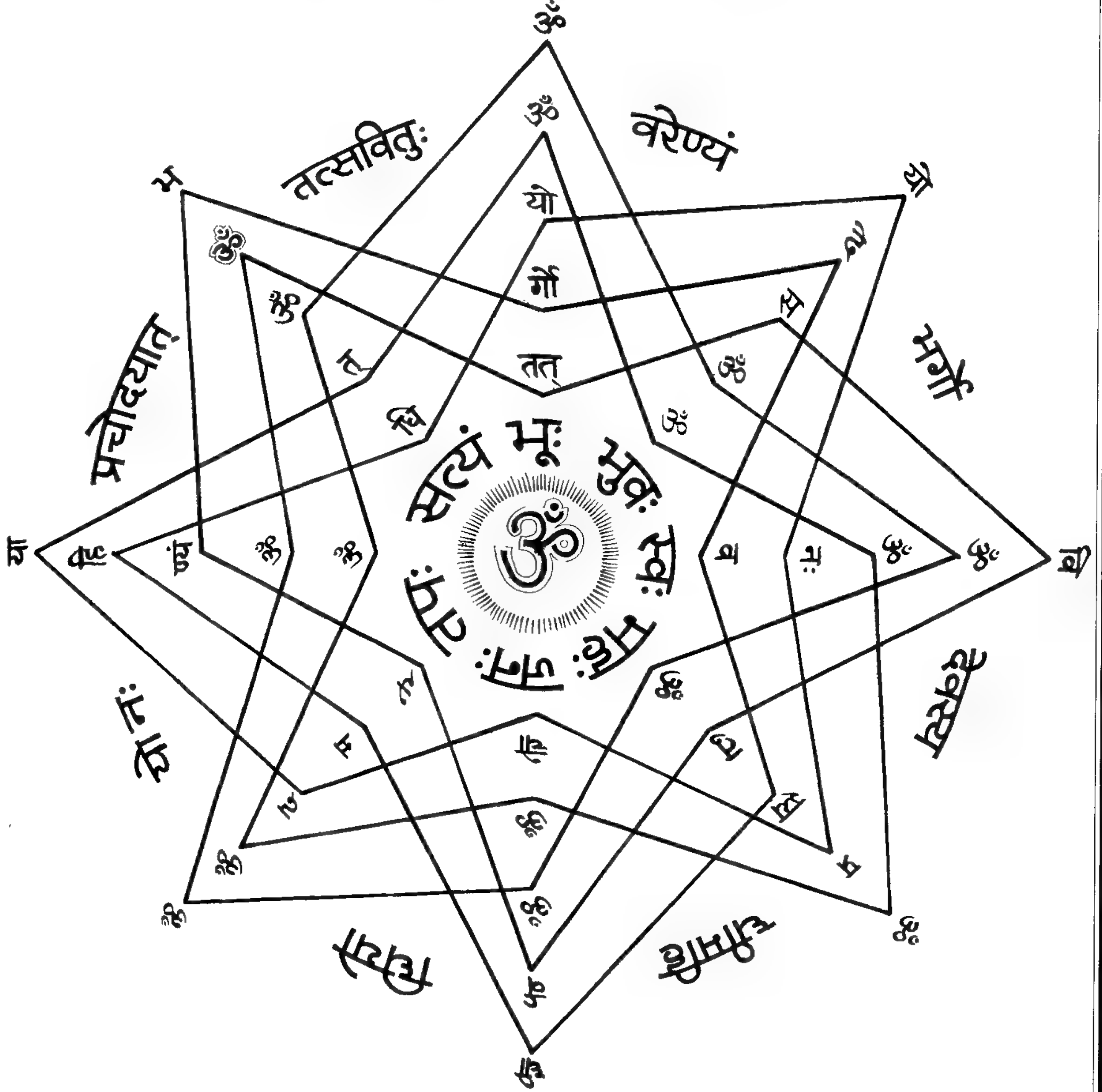
~~O~~

॥ श्रीदुर्गायन्त्रम् ॥



[सन्दर्भ—श्रीमद्देवीभागवत स्कन्ध ९, अ० ५०]

॥ श्रीगायत्रीयन्त्रम् ॥



[श्रीमद्देवीभागवतके गायत्री-प्रकरणसे सम्बद्ध]

श्रीगायत्रीयन्त्रम्

पराजितायै नमः
वज्राय नमः
इन्द्राय नमः

शूलाय नमः ईशानाय नमः

राहवे नमः केतवे नमः

ब्राह्म्यै नमः

आदित्याय नमः

शान्त्यै नमः अग्नये नमः

सावित्र्यै नमः कान्त्यै नमः

लक्ष्म्यै नमः विमलायै नमः

माहेश्वर्यै नमः

सर्वसिद्धिप्रदायिकायै नमः दुर्गायै नमः

सन्ध्यायै नमः

आदित्याय नमः

शनैश्चराय नमः

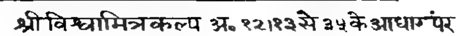
पद्मास्यायै नमः

भूः

सोमाय नमः

दुर्गायै नमः गणपतये नमः सोमाय नमः

चामुण्डायै नमः


श्री विश्वामित्रकल्प अ० १२।१३से ३५के आधारपर

[श्रीमद्देवीभागवतके गायत्री-प्रकरणसे सम्बद्ध]

सप्तश्लोकी दुर्गा

शिव उवाच

देवि त्वं भक्तसुलभे सर्वकार्यविधायिनी।
कलौ हि कार्यसिद्ध्यर्थमुपायं ब्रूहि यत्नतः॥

देव्युवाच

शृणु देव प्रवक्ष्यामि कलौ सर्वेष्टसाधनम्।
मया तवैव स्नेहेनाप्यम्बास्तुतिः प्रकाश्यते॥

विनियोगः

ॐ अस्य श्रीदुर्गासप्तश्लोकीस्तोत्रमन्त्रस्य नारायण ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीमहाकाली-महालक्ष्मीमहासरस्वत्यो देवताः, श्रीदुर्गाप्रीत्यर्थं सप्तश्लोकीदुर्गापाठे विनियोगः।

ॐ ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा।
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति॥ १॥

दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः
स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि।
दारिद्र्यदुःखभयहारिणि का त्वदन्या
सर्वोपकारकरणाय सदार्द्रचित्ता॥ २॥

सर्वमङ्गलमङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते॥ ३॥

शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे।
सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते॥ ४॥

सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते॥ ५॥

शिवजी बोले—हे देवि! तुम भक्तोंके लिये सुलभ हो और समस्त कर्मोंका विधान करनेवाली हो। कलियुगमें कामनाओंकी सिद्धि-हेतु यदि कोई उपाय हो तो उसे अपनी वाणीद्वारा सम्यक्-रूपसे व्यक्त करो।

देवीने कहा—हे देव! आपका मेरे ऊपर बहुत स्नेह है। कलियुगमें समस्त कामनाओंको सिद्ध करनेवाला जो साधन है वह बतलाऊँगी, सुनिये! उसका नाम है 'अम्बास्तुति'।

विनियोग—ॐ इस दुर्गासप्तश्लोकी स्तोत्रमन्त्रके नारायण ऋषि हैं, अनुष्टुप् छन्द है, श्रीमहाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती देवता हैं, श्रीदुर्गाकी प्रसन्नताके लिये सप्तश्लोकी दुर्गापाठमें इसका विनियोग किया जाता है।

वे भगवती महामाया देवी ज्ञानियोंके भी चित्तको बलपूर्वक खींचकर मोहमें डाल देती हैं॥ १॥

माँ दुर्गे! आप स्मरण करनेपर सब प्राणियोंका भय हर लेती हैं और स्वस्थ पुरुषोंद्वारा चिन्तन करनेपर उन्हें परम कल्याणमयी बुद्धि प्रदान करती हैं। दुःख, दरिद्रता और भय हरनेवाली देवि! आपके सिवा दूसरी कौन है, जिसका चित्त सबका उपकार करनेके लिये सदा ही दयार्द्र रहता हो॥ २॥

नारायणि! आप सब प्रकारका मंगल प्रदान करनेवाली मंगलमयी हैं, आप ही कल्याणदायिनी शिवा हैं, आप सब पुरुषार्थोंको सिद्ध करनेवाली, शरणागत-वत्सला, तीन नेत्रोंवाली गौरी हैं; आपको नमस्कार है॥ ३॥

शरणागतों, दीनों एवं पीड़ितोंकी रक्षामें संलग्न रहनेवाली तथा सबकी पीड़ा दूर करनेवाली नारायणी देवि! आपको नमस्कार है॥ ४॥

सर्वस्वरूपा, सर्वेश्वरी तथा सब प्रकारकी शक्तियोंसे सम्पन्न दिव्यरूपा दुर्गे देवि! सब भयोंसे हमारी रक्षा कीजिये; आपको नमस्कार है॥ ५॥

रोगानशेषानपहंसि तुष्टा
रुष्टा तु कामान् सकलानभीष्टान्।
त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां
त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति॥ ६॥

देवि! आप प्रसन्न होनेपर सब रोगोंको नष्ट कर देती हैं और कुपित होनेपर मनोवांछित सभी कामनाओंका नाश कर देती हैं। जो लोग आपकी शरणमें हैं, उनपर विपत्ति तो आती ही नहीं; आपकी शरणमें गये हुए मनुष्य दूसरोंको शरण देनेवाले हो जाते हैं॥ ६॥

सर्वाबाधाप्रशमनं त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि।
एवमेव त्वया कार्यमस्मद्वैरिविनाशनम्॥ ७॥

सर्वेश्वरि! आप इसी प्रकार तीनों लोकोंकी समस्त बाधाओंको शान्त करें और हमारे शत्रुओंका नाश करती रहें॥ ७॥

॥ इति श्रीसप्तश्लोकी दुर्गा सम्पूर्णा।



देव्यपराधक्षमापनस्तोत्रम्

न मन्त्रं नो यन्त्रं तदपि च न जाने स्तुतिमहो
न चाह्वानं ध्यानं तदपि च न जाने स्तुतिकथाः।
न जाने मुद्रास्ते तदपि च न जाने विलपनं
परं जाने मातस्त्वदनुसरणं क्लेशहरणम्॥ १॥

माँ! मैं न मन्त्र जानता हूँ, न यन्त्र; अहो! मुझे स्तुतिका भी ज्ञान नहीं है। न आवाहनका पता है, न ध्यानका। स्तोत्र और कथाकी भी जानकारी नहीं है। न तो तुम्हारी मुद्राएँ जानता हूँ और न मुझे व्याकुल होकर विलाप करना ही आता है; परंतु एक बात जानता हूँ, केवल तुम्हारा अनुसरण—तुम्हारे पीछे चलना। जो कि सब क्लेशोंको—समस्त दुःख-विपत्तियोंको हर लेनेवाला है॥ १॥

विधेरज्ञानेन द्रविणविरहेणालसतया
विधेयाशक्यत्वात्तव चरणयोर्या च्युतिरभूत्।
तदेतत् क्षन्तव्यं जननि सकलोद्धारिणि शिवे
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति॥ २॥

सबका उद्धार करनेवाली कल्याणमयी माता! मैं पूजाकी विधि नहीं जानता, मेरे पास धनका भी अभाव है, मैं स्वभावसे भी आलसी हूँ तथा मुझसे ठीक-ठीक पूजाका सम्पादन हो भी नहीं सकता; इन सब कारणोंसे तुम्हारे चरणोंकी सेवामें जो त्रुटि हो गयी है, उसे क्षमा करना; क्योंकि कुपुत्रका होना सम्भव है, किंतु कहीं भी कुमाता नहीं होती॥ २॥

पृथिव्यां पुत्रास्ते जननि बहवः सन्ति सरलाः
परं तेषां मध्ये विरलतरलोऽहं तव सुतः।
मदीयोऽयं त्यागः समुचितमिदं नो तव शिवे
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति॥ ३॥

माँ! इस पृथ्वीपर तुम्हारे सीधे-सादे पुत्र तो बहुत-से हैं, किंतु उन सबमें मैं ही अत्यन्त चपल तुम्हारा बालक हूँ; मेरे-जैसा चंचल कोई विरला ही होगा। शिवे! मेरा जो यह त्याग हुआ है, यह तुम्हारे लिये कदापि उचित नहीं है; क्योंकि संसारमें कुपुत्रका होना सम्भव है, किंतु कहीं भी कुमाता नहीं होती॥ ३॥

जगन्मातर्मातस्तव चरणसेवा न रचिता
न वा दत्तं देवि द्रविणमपि भूयस्तव मया।
तथापि त्वं स्नेहं मयि निरुपमं यत्प्रकुरुषे
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति॥ ४॥

जगदम्ब! मातः! मैंने तुम्हारे चरणोंकी सेवा कभी नहीं की, देवि! तुम्हें अधिक धन भी समर्पित नहीं किया; तथापि मुझ-जैसे अधमपर जो तुम अनुपम स्नेह करती हो, इसका कारण यही है कि संसारमें कुपुत्र पैदा हो सकता है, किंतु कहीं भी कुमाता नहीं होती॥ ४॥

परित्यक्ता देवा विविधविधसेवाकुलतया
मया पञ्चाशीतेरधिकमपनीते तु वयसि।
इदानीं चेन्मातस्तव यदि कृपा नापि भविता
निरालम्बो लम्बोदरजननि कं यामि शरणम्॥ ५॥

गणेशजीको जन्म देनेवाली माता पार्वती! [अन्य देवताओंकी आराधना करते समय] मुझे नाना प्रकारकी सेवाओंमें व्यग्र रहना पड़ता था, इसलिये पचासी वर्षसे अधिक अवस्था बीत जानेपर मैंने देवताओंको छोड़ दिया है, अब उनकी सेवा-पूजा मुझसे नहीं हो पाती; अतएव उनसे कुछ भी सहायता मिलनेकी आशा नहीं है। इस समय यदि तुम्हारी कृपा नहीं होगी तो मैं अवलम्बरहित होकर किसकी शरणमें जाऊँगा॥ ५॥

श्वपाको जल्पाको भवति मधुपाकोपमगिरा
निरातङ्को रङ्को विहरति चिरं कोटिकनकैः।
तवापर्णे कर्णे विशति मनुवर्णे फलमिदं
जनः को जानीते जननि जपनीयं जपविधौ॥ ६॥

माता अपर्णा ! तुम्हारे मन्त्रका एक अक्षर भी कानमें पड़ जाय तो उसका फल यह होता है कि मूर्ख चाण्डाल भी मधुपाकके समान मधुर वाणीका उच्चारण करनेवाला उत्तम वक्ता हो जाता है, दीन मनुष्य भी करोड़ों स्वर्ण-मुद्राओंसे सम्पन्न हो चिरकालतक निर्भय विहार करता रहता है। जब मन्त्रके एक अक्षरके श्रवणका ऐसा फल है तो जो लोग विधिपूर्वक जपमें लगे रहते हैं, उनके जपसे प्राप्त होनेवाला उत्तम फल कैसा होगा ? इसको कौन मनुष्य जान सकता है॥ ६॥

चिताभस्मालेपो गरलमशनं दिक्पटधरो
जटाधारी कण्ठे भुजगपतिहारी पशुपतिः।
कपाली भूतेशो भजति जगदीशैकपदवीं
भवानि त्वत्पाणिग्रहणपरिपाटीफलमिदम्॥ ७॥

भवानी! जो अपने अंगोंमें चिताकी राख—भभूत लपेटे रहते हैं, जिनका विष ही भोजन है, जो दिगम्बरधारी (नग्न रहनेवाले) हैं, मस्तकपर जटा और कण्ठमें नागराज वासुकिको हारके रूपमें धारण करते हैं तथा जिनके हाथमें कपाल (भिक्षापात्र) शोभा पाता है, ऐसे भूतनाथ पशुपति भी जो एकमात्र 'जगदीश' की पदवी धारण करते हैं, इसका क्या कारण है? यह महत्त्व उन्हें कैसे मिला; यह केवल तुम्हारे पाणिग्रहणकी परिपाटीका फल है; तुम्हारे साथ विवाह होनेसे ही उनका महत्त्व बढ़ गया॥ ७॥

न मोक्षस्याकाङ्क्षा भवविभववाञ्छापि च न मे
न विज्ञानापेक्षा शशिमुखि सुखेच्छापि न पुनः।
अतस्त्वां संयाचे जननि जननं यातु मम वै
मृडानी रुद्राणी शिव शिव भवानीति जपतः॥ ८॥

मुखमें चन्द्रमाकी शोभा धारण करनेवाली माँ! मुझे मोक्षकी इच्छा नहीं है, संसारके वैभवकी भी अभिलाषा नहीं है; न विज्ञानकी अपेक्षा है, न सुखकी आकांक्षा; अतः तुमसे मेरी यही याचना है कि मेरा जन्म 'मृडानी, रुद्राणी, शिव, शिव, भवानी'—इन नामोंका जप करते हुए बीते॥ ८॥

नाराधितासि विधिना विविधोपचारैः
किं रुक्षचिन्तनपरैर्न कृतं वचोभिः।
श्यामे त्वमेव यदि किञ्चन मय्यनाथे
धत्से कृपामुचितमम्ब परं तवैव॥ ९॥

माँ श्यामा! नाना प्रकारकी पूजन-सामग्रियोंसे कभी विधिपूर्वक तुम्हारी आराधना मुझसे न हो सकी। सदा कठोर भावका चिन्तन करनेवाली मेरी वाणीने कौन-सा अपराध नहीं किया है ! फिर भी तुम स्वयं ही प्रयत्न करके मुझ अनाथपर जो किंचित् कृपादृष्टि रखती हो, माँ ! यह तुम्हारे ही योग्य है। तुम्हारी-जैसी दयामयी माता ही मेरे-जैसे कुपुत्रको भी आश्रय दे सकती है॥ ९॥

आपत्सु मग्नः स्मरणं त्वदीयं
करोमि दुर्गे करुणार्णवेशि।
नैतच्छठत्वं मम भावयेथाः
क्षुधातृषार्ता जननीं स्मरन्ति॥ १०॥

माता दुर्गे! करुणासिन्धु महेश्वरी! मैं विपत्तियोंमें फँसकर आज जो तुम्हारा स्मरण करता हूँ [पहले कभी नहीं करता रहा], इसे मेरी शठता न मान लेना; क्योंकि भूख-प्याससे पीड़ित बालक माताका ही स्मरण करते हैं॥ १०॥

जगदम्ब विचित्रमत्र किं
परिपूर्णा करुणास्ति चेन्मयि।
अपराधपरम्परापरं
न हि माता समुपेक्षते सुतम्॥ ११॥

जगदम्ब! मुझपर जो तुम्हारी पूर्ण कृपा बनी हुई है, इसमें आश्चर्यकी कौन-सी बात है, पुत्र अपराध-पर-अपराध क्यों न करता जाता हो, फिर भी माता उसकी उपेक्षा नहीं करती॥ ११॥

मत्समः पातकी नास्ति पापघ्नी त्वत्समा न हि।
एवं ज्ञात्वा महादेवि यथायोग्यं तथा कुरु॥ १२॥

महादेवि! मेरे समान कोई पातकी नहीं है और तुम्हारे समान दूसरी कोई पापहारिणी नहीं है; ऐसा जानकर जो उचित जान पड़े, वह करो॥ १२॥

॥ इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं देव्यपराधक्षमापनस्तोत्रं सम्पूर्णम्॥



श्रीदुर्गाजीकी आरती

जगजननी जय ! जय !! (मा! जगजननी जय ! जय !!)
भयहारिणि, भवतारिणि, भवभामिनि जय! जय ॥ टेक ॥
तू ही सत-चित-सुखमय शुद्ध ब्रह्मरूपा।
सत्य सनातन सुन्दर पर-शिव सुर-भूपा ॥ जग० ॥
आदि अनादि अनामय अविचल अविनाशी।
अमल अनन्त अगोचर अज आनन्दराशी ॥ जग० ॥
अविकारी, अघहारी, अकल, कलाधारी।
कर्ता विधि, भर्ता हरि, हर सँहारकारी ॥ जग० ॥
तू विधिवधू, रमा, तू उमा, महामाया।
मूल प्रकृति विद्या तू, तू जननी, जाया ॥ जग० ॥
राम, कृष्ण तू, सीता, व्रजरानी राधा।
तू वांछाकल्पद्रुम, हारिणि सब बाधा ॥ जग० ॥
दश विद्या, नव दुर्गा, नानाशस्त्रकरा।
अष्टमातृका, योगिनि, नव नव रूप धरा ॥ जग० ॥
तू परधामनिवासिनि, महाविलासिनि तू।
तू ही श्मशानविहारिणि, ताण्डवलासिनि तू ॥ जग० ॥
सुर-मुनि-मोहिनि सौम्या तू शोभाधारा।
विवसन विकट-सरूपा, प्रलयमयी धारा ॥ जग० ॥
तू ही स्नेह-सुधामयि, तू अति गरलमना।
रत्नविभूषित तू ही, तू ही अस्थि-तना ॥ जग० ॥
मूलाधारनिवासिनि, इह-पर-सिद्धिप्रदे।
कालातीता काली, कमला तू वरदे ॥ जग० ॥
शक्ति शक्तिधर तू ही नित्य अभेदमयी।
भेदप्रदर्शिनि वाणी विमले! वेदत्रयी ॥ जग० ॥
हम अति दीन दुखी मा! विपत-जाल घेरे।
हैं कपूत अति कपटी, पर बालक तेरे ॥ जग० ॥
निज स्वभाववश जननी! दयादृष्टि कीजै।
करुणा कर करुणामयि! चरण-शरण दीजै ॥ जग० ॥